श्री:।
शुकसागर
अर्थात
श्रीमद्भागवतभाषा।
लालाशालिग्रामकृत.

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भागवत भाषा ।

गोलोकवासी लालाशालिग्रामजी अनुवादित.

जिसको

संवत १९८५, शके १८५०.
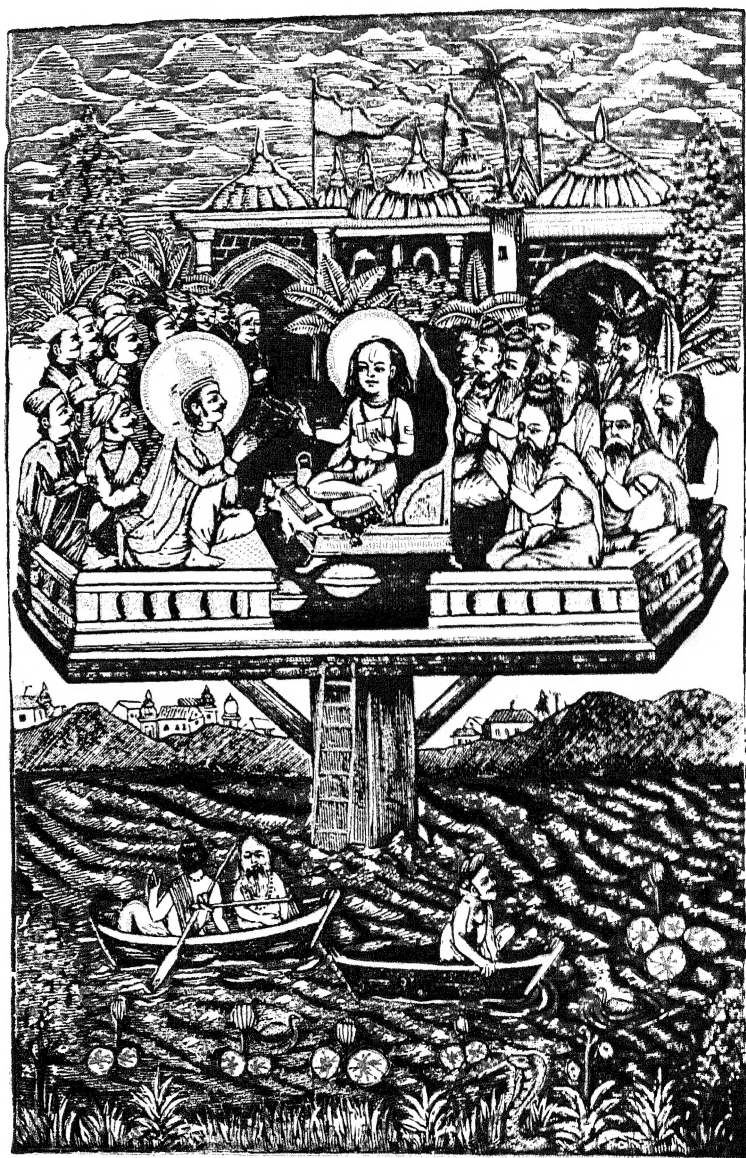
श्रीयुत-लाला शालिग्रामजी.

धन्यवादः !

संतु भूयांसो महीयसे विश्वश्रवसे महापुरुषाय सकलजगदचरपदार्थसार्थसृष्टिस्थिति-प्रलयमहाकारणाय करुणावरुणालयाय लीलयोपात्तदिव्यविग्रहाय विरचितदुरितनिग्रहाय भगवते नारायणाय धन्यवादाः। येन परमकारुणिकेन भगवतेदं समस्तं जगदुत्पाद्य तत्क्षेम-संपादनाय विहितविविधावतारैर्विचित्राणि पवित्राणि चरित्राणि विरचय्य चतुर्विधपुरुषार्थ-सौधमारोढुं निश्रेणिरेव केवलं कीर्तिर्निर्मितास्ति। यस्य चानन्तान्गुणाननेके महानुभावा महर्षयो यत्र तत्र सज्जनसंवादगोष्ठीषु मीमांसंतेऽनुवदन्ति च अवर्णनीयः खलु स्वल्पमतीनां महीयसां मनोवाचामगोचरो महिमेति किन्तु वर्णयामोऽस्य महिमानमनयैकयाननवनविहा-रिण्याऽल्परसज्ञया रसज्ञयाऽकृतपुण्यपुञ्जया। अस्तु।

तथैव च श्रीमते व्यासमुनये सन्तु सहस्रान्ता धन्यवादाः। येन चेतरदुर्विगाह्यस्या-नादिसिद्धस्य वेदस्य विभागं कृत्वा तदुपबृंहणायाष्टादशपुराणानि महाभारतेतिहासश्च निरमीयन्त। तन्मध्ये सकलजनदुस्तरतरतमोपहरणाय भवजलधिसमुत्तरणाय श्रीमद्भग-वदेकप्रधानगुणानुवर्णनैकप्रचुररसारंभारसंभृतं श्रीमद्भागवतं नाम महापुराणं निर्मायात्मनो मनसः संतोषपोषपुरस्सरं बहुधन्यतामन्यत। कः पामरो नराऽमरवराङ्क्षिस्तुतिपात्रस्या-नवरतकृष्णमित्रस्य नरवरस्य श्रीव्यासमुनेः पदवीमनुगन्तुं शक्नुयात्। वयं तु नीति सर्वोपरि श्रीव्यासमुनिरित्येव मन्यामहे। नैतादृशः काव्ययावधि ग्रन्थरचनाचतुरो नरवरः कश्चनाभून्नभावी वर्तमानो वा दृश्यते श्रूयतेऽपि। अतस्तदीयं सर्वमपि धन्यमि-त्येवोमत्ता तिष्ठामः।

संतु च शतशो धन्यवादाः श्रीमद्वैश्यवंशावतंसाय श्रीमाथुरकुलकुमुदचन्द्रमसे गोविप्र-प्रतिपालनैकबद्धादराय भगवद्भक्तिनिष्ठागरिष्ठाय रसालंकारपरिष्कृतकाव्यनिर्माणविचक्षणाय विलक्षणप्रतिभाभासुराय भगवद्गुणगणसद्रत्नमालालंकृतकंठनालायानेकविधचातुरीपारीणाय श्रीमते श्रीरामगंगातटस्थमुरादाबादनगरनिवासिने श्रीबुधवर "श्रीलालाशालिग्राम" सुगृहीतनामधेयाय येन चाद्यावधि बहवो रसपूर्णाः काव्यग्रन्था भगवत्प्रसादलब्धयातिवि-शदया बुद्ध्या निर्मिताः येषां तत्कृतानां ग्रन्थानां माधुर्यमास्वादयन्ति रसिका भूरिभा-गधेयाः सज्जनाः। अहो किं वर्णनीयं भूतलभागधेयस्यास्य भूरिभागधेयम्। यदनेन श्रीमद्व्यासमुनिप्रणीतेऽस्मिञ्छ्रीमद्भागवताभिधेये महापुराणे परिपूर्णमभ्यासं कृत्वा सकल-प्राकृतजनानुजिघृक्षया सरलया सुबोधया विशदया रसालंकारादिपरिपूर्णदृष्टान्तदार्ष्टा-न्तिकाद्युपकरणोपबृंहितया शंकासमाधानादिभिर्निःसंदिग्धार्थावबोधिन्या भाषाटीकया व्याख्यातम्। अहो भाग्यं वाचकानां भगवतरसलोलुपानां भव्यजनानाम्। यदेतद्बुध-

वरप्रणीतभाषाभागवतापरपर्याय "**श्रीशुकसागर**" ग्रन्थेन श्रीमद्भागवतस्य यथार्थमर्थं बुद्ध्वा सर्वेऽपि श्रद्धालवः साधुजनाः सद्गृहस्थास्तद्विमर्शं कुर्वन्त आत्मनो जन्मनः साफल्यमासादयिष्यन्तीति बाढं निश्चिनुमः अयमस्य बुधवरस्य भूयानुपकार एव जागर्ति भूतले। विशेषतश्चैनं प्रशंसामो वयम्। यतोऽनेन विदुषा भाषाभागवतापरपर्यायं '**श्रीशुकसागरं**' स्वयं निर्माय केवलं परोपकाराय भूतले ग्रन्थप्रसारो भूयादिति बुद्ध्याऽस्माकं समीपे संप्रेषितः। स चायं ग्रन्थोऽस्माभिः पूर्वं स्वकीये "**श्रीवेङ्कटेश्वर**" नाम्नि मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा सकलजनानां तल्लाभाय प्रसिद्धिं नीतः। स एवाधुना '**चतुर्थावृत्तौ**' पूर्वावृत्त्यपेक्षया विशेषतः संशोध्य न्यूनविषयपरिपूर्णेन परिष्कृत्य च संमुद्र्य प्रकाशमानीयत। स एष हि प्रोक्तविदुषः संप्रति सर्वोपरि भूयानेव निरुपाधिकोऽपि कारुण्यैकप्रदर्शकोऽनुग्रहः। अतो यावंतोऽस्मै धन्यवादा देयास्तावन्तोऽपि ते न्यूना एवेति मन्यामहे। ततश्च वयं भगवन्तमेवाभ्यर्थयामहे, यदेनं '**श्रीमच्छालिग्राम**' नामधेयं बुधवरं श्रीवैकुण्ठनिलयाधिवासिनं भवत्प्रीतिपात्रं नितांतं कुर्विति शम्।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस,-मुद्रणायन्त्रालयाध्यक्ष-मुंबई.

भूमिका।

प्रियपाठकगण!

यह श्रीमद्भागवत सब पुराणोंमें श्रेष्ठ, सब पुराणोंमें गोप्य, सब पुराणोंमें मोक्षदायक, और परम पवित्र ग्रन्थ है, भगवान् वेदव्यासजीने संसारका कल्याण करनेके लिये भगवल्लीलामय, सर्वशान्तिनिकेतन, सर्वपुरुषार्थसाधन, सर्ववेदतुल्य, सर्वमंगलमय, सर्वश्रेष्ठ इस श्रीमद्भागवत पुराणको निर्माण किया है; जब महर्षि कृष्णद्वैपायन दूसरे पुराण और महाभारतादि इतिहास निर्माण करके किसी प्रकार अपने चित्तमें शान्तिका संचार न करसके, तब उन्होंने महर्षि नारद मुनिके उपदेशानुसार भगवद्गुणगणप्रधान इस महापुराणका प्रणयन (निर्माण) करके अपने हृदयको संतुष्ट किया; इस प्रकार इस श्रीमद्भागवतमें और अन्यान्य धर्मग्रंथोंमें इस महापुराणका माहात्म्य अनेक प्रकारसे वर्णित है; इस संक्षिप्त भूमिकामें उस माहात्म्यका वर्णन करना अथवा इस महापुराणका विशेष परिचय देना किसी प्रकार सम्भव नहीं है; और इसकी यहाँ कुछ आवश्यकता भी नहीं ज्ञात होती, क्योंकि हमारे देशके आबालवृद्ध समस्तही मनुष्य परम आदर, परम श्रद्धा और परम भक्तिके साथ श्रीमद्भागवतमें अपना तन, मन, धन लगाते हैं; इस लिये इस ग्रन्थके परिचय देनेमें अधिक वाक्यव्यय न करके केवल नारदपुराणोक्त श्रीमद्भागवतकी अनुक्रमणिका यहाँ अविकल उद्धृत करते हैं, इस अनुक्रमणिकामें श्रीमद्भागवतके स्थूल स्थूल विषय अतिसंक्षेप और अतिविशदरूपसे वर्णन किये हैं, यथा–

पञ्चमं श्रीमद्भागवतपुराणम्।

ब्रह्मोवाच।

मरीचे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम्।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥
तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम्।
सुरपादपरूपोऽयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः॥

अर्थ–ब्रह्माजी बोले कि–हे वत्स मरीचि! वेदव्यासजीके निर्माण किये ७५ वेदके समान श्रीमद्भागवत नामक पुराणका विवरण करता हूं, सो सुनो यह पापनाशकारी श्रीमद्भागवत अठारह सहस्र श्लोकात्मक और बारह स्कन्धयुक्त कल्पवृक्षरूप है, इसका फल अत्यन्त अद्भुत और रसीला है, उस रसके पान करनेसे चार प्रकारका स्वाद प्राप्त होता है, प्रथम यह फल वैकुण्ठलोकमें था, जब मैंने अधिक तप किया तब विष्णुभगवान्ने प्रसन्न होकर वह फल मुझको दिया, मैंने नारदमुनिको दिया, नारदजीने वह फल व्यास-

देवको दिया और व्यासजीने वह फल अपने पुत्र शुकदेवजीको दिया, तब वह फल
पृथ्वीपर आया, हे रसिको (रसके जानने वालो !) तुम्हारे धन्य भाग्य हैं जो तुम
लोगोंके पान करनेके लिये ऐसा अमृतरूप फल पृथ्वीपर प्राप्त हुआ, यह नहीं कि, इस
फलका रस इसी अवस्थामें फलदायक है, यह रस जीवन्मुक्त अवस्थामें भी पान करने
योग्य हैं, त्यागने योग्य नहीं, क्योंकि इस रसका पान करनेसे जीवन--मरणका संशय
नहीं रहता, ऐसे अनुपम रसके पान करनेकी किसको अभिलाषा न होगी ? ऐसा फल इसी
देशमें है, और देशान्तरोंमें ऐसे फलका मिलना महादुर्लभ है, इस फलके पान करनेकी
विदेशी जनभी आशा करते हैं, फिर भला भारतवासी इस सुखराशी फलकी रसिकताको
कैसे त्याग सक्ते हैं ? इस बातपर एक दृष्टान्त है, एक समय इस देशका एक साधु किसी
द्वीपान्तरमें गया था, वहाँके देशाधिकारीने बूझा कि, भगवन् ! कोई ऐसा भी उपाय है
कि, जिसके द्वारा यह प्राणी अमर होजाय और जन्म मरणसे छूट जाय ? तब उस
महात्माने कहा कि, भारतवर्षमें एक वृक्ष ऐसा है कि उसके फलका रस पीनेसे प्राणी
अमृत हो जाता है, यह वचन सुनकर देशाधिपतिने अपने मंत्रीको भारतवर्षमें इस अमृत
फलकी खोज करनेके लिये भेजा, वह सम्पूर्ण स्थानोंमें भ्रमण करता फिरा और कहीं
उसको ऐसा फल न मिला जैसा उस साधुने बतलाया था, तब वह निराश और श्रान्त
होकर एक स्थानपर बैठगया और अत्यन्त पश्चात्ताप कर कहने लगा, कि, मेरा सम्पूर्ण
परिश्रम वृथा हुआ, और उस साधुने भी असत्य कहा, इसप्रकार साधुकी निन्दा करने
लगा, तब विष्णु भगवान्ने समझा कि, मेरे भक्तकी वृथा निन्दा होती है, उसी समय
एक संन्यासीका रूप धारण कर वह उस मंत्रीके समीप आनकर प्रगट हुए, और कहा
कि, तुम क्या कह रहे हो ? साधुभी कहीं असत्यवादी होते हैं ? कदापि नहीं, तब उस
मंत्रीने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया और अपने आनेका कारण कहा, तब उस संन्या-
सीने कहा कि, तुम वृथा इतने दिनतक नदी, वन, देश देशान्तरोंमें और अचर सृष्टिमें
इस फलकी खोज करते फिरे; क्योंकि यह फल चरसृष्टिमें महात्मा पुरुषोंके पास विद्यमान
है, यह वेदरूप कल्पवृक्षसे उत्पन्न होकर शुकरूपी शुकदेवके मुखरूपसे अधिकही सुधारस-
से पूर्ण होगया है, इस फलका नाम " श्रीमद्भागवत " है, इसके रसका पान करनेसे
प्राणीको फिर जन्म मृत्युका भय नहीं रहता, यह कह उस संन्यासीने अनेक भक्तिज्ञानके
मार्गोंसे उसको उपदेश कर भगवत्का तत्त्व प्रदान किया कि, जिससे वह अपने आपको
कृतकृत्य मान निवृत्त हो अपने अधिकारीके पास लौटकर गया, और उसको वह तत्त्व
सुनाया कि, जिससे उसके जन्म मरणकी निवृत्ति हुई, इत्यादि और भी शतशः इस
प्रकारके दृष्टान्त हैं, ऐसे इस श्रीमद्भागवतके प्रतापसे सहस्रों अमर होगये, यदि उनका
वर्णन किया जाय तो एक बडाभारी ग्रन्थ हो सक्ता है, इस ग्रन्थकी महिमाको और कोई
दूसरा ग्रन्थ नहीं पासक्ता, हे विप्रो ! यह साक्षात् विश्वरूप भगवान्का अंग है.

प्रथमस्कन्ध ॥ श्लोक ॥

तत्र तु प्रथमस्कन्धे सूतर्षीणां समागमः ।
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ॥
पारीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम् ॥

अर्थ–प्रथमस्कन्धमें सूतजीके साथ शौनकादिक ऋषियोंका समागम, भगवान् व्यासदेवजीका पवित्र चरित्र, पाण्डवोंका परम पावन आख्यान, परीक्षित्का वृत्तान्त, यह कई विषय वर्णन कियेगये हैं

द्वितीयस्कन्ध ॥ श्लोक ॥

परीक्षिच्छुकसंवादे श्रुतिद्वयनिरूपणम् ।
ब्रह्मनारदसंवादेऽवतारचरितामृतम् ॥
पुराणलक्षणं चैव सृष्टिकारणसम्भवः ।
द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ।

अर्थ–राजा परीक्षित् और श्रीशुकदेवजीका संवाद, योग, ब्रह्मा और नारदमुनि-संवाद, अवतारोंकी पृथक् पृथक् लीला और चरित्रामृतकथा, पुराणोंके लक्षण, सृष्टिके समस्त कारणोंका सम्भव होना, बुद्धिमान् भगवान् व्यासदेवजीने यह सम्पूर्ण बातें द्वितीयस्कन्धमें वर्णन की हैं,

तृतीयस्कन्ध ॥ श्लोक ॥

चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य सङ्गमः ।
सृष्टिप्रकरणं पश्चाद्ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
कापिलं सांख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः ।

अर्थ–प्रथम विदुरचरित्र, विदुरजीके साथ मैत्रेयजीका मिलना, उसके पीछे परमात्मा ब्रह्माकी सृष्टिका प्रकरण, कपिलदेवका बनाया सांख्ययोग शास्त्र, यह सब कथा तीसरे स्कन्धमें वर्णन की गई हैं.

चतुर्थस्कन्ध ॥ श्लोक ॥

सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः ।
पृथोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनबर्हिषः ॥
इत्येष तुर्यो गदितो विसर्गे स्कन्ध उत्तमः ।

अर्थ--प्रथम सतीका उपाख्यान, फिर ध्रुवचरित्र, राजा पृथुका पवित्र इतिहास, इसके उपरान्त प्राचीनबर्हिकी कथा, विसर्ग सम्बन्धमें चतुर्थस्कंधके मध्य यह विषय वर्णन किये गये हैं.

पञ्चमस्कन्ध ॥ श्लोक ॥

प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानां च पुण्यदम् ।
ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः ॥
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पञ्चमो मतः ।

अर्थ-प्रियव्रत राजाका चारित्र, प्रियव्रतके पुण्यकी और वंशकी कथा, ब्रह्माण्डान्तर्गत समस्त लोकोंका वर्णन, नरकवर्णन, संस्थानसम्बन्धमें पञ्चमस्कंधके मध्य यह सब कथा वर्णन की हैं.

षष्ठस्कन्ध ॥ श्लोक ॥

अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ।
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम् ।
षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन पारितोषणे ।

अर्थ-प्रथम अजामिलका उपाख्यान, दक्षप्रजापतिकी सृष्टिका निरूपण, इसके उपरान्त वृत्रासुरका चारित्र, उनञ्चास४९ मरुतोंके जन्मका वृत्तान्त छठे स्कंधके विषय पारितोषण सम्बन्धमें वेदव्यासजीने यह कथायें वर्णन की हैं.

सप्तमस्कन्ध ॥ श्लोक ॥

प्रह्लादचारितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम् ।
सप्तमो गदितो वत्स वासनाकर्मकीर्तने ॥

अर्थ-भगवद्भक्त प्रह्लादका पवित्र चारित्र, वर्णाश्रमका निरूपण, सप्तमस्कंधमें यह विषय सकाम कर्मविषयमें व्यासजी महाराजने वर्णन किये हैं.

अष्टमस्कंध ॥ श्लोक ॥

गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम् ।
समुद्रमथनं चैव बलिवैभवबन्धनम् ॥
मत्स्यावतारचारितमष्टमोऽयं प्रकीर्तितः ।

अर्थ-गजराज और ग्राहका युद्ध, मन्वन्तरोंका निरूपण, समुद्रका मथना, राजा बलिका वैभव और बन्धन, मत्स्य अवतारका चारित्र, इस अष्टमस्कंधमें वर्णन किया है.

नवमस्कंध ॥ श्लोक ॥

सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ।
वंशानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते ॥

अर्थ-सूर्यवंशके राजाओंकी कीर्ति, चन्द्रवंशके राजाओंका सुयश, इसप्रकार वंशावली हीके कीर्तनसे यह नवमस्कन्ध समाप्त होगया.

दशमस्कंध ॥ श्लोक ॥

कृष्णस्य बालचरितं कौमारञ्च व्रजस्थितिः ।
कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थितिः ॥
भूभारहरणं चात्र निरोधे दशमः स्मृतः ।

अर्थ–श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका बालचरित्र, कौमार अवस्थाकी लीला, व्रजविहार, कैशोर दशाके चारित्र, मथुरावास, गोचरावनलीला, द्वारकापुरीका बसाना, और दुष्टोंका मारना, पृथ्वीका भार उतारना, दशमस्कन्धके विरोधविषयमें यह कथायें वेदव्यासने कही हैं.

एकादशस्कंध ॥ श्लोक ॥

नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्तितः ।
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च ॥
यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशःस्मृतः ।

अर्थ–नारदजीके साथ वसुदेवजीका संवाद, श्रीदत्तात्रेयजीके साथ यदुकी वार्त्ता, श्रीकृष्ण उद्धवका संवाद, यादव लोगोंका परस्पर संग्राम, और उसीमें सबका संहार, और अपनी मायाके प्रभावसे पृथ्वीको त्यागकर वैकुण्ठविहारीका वैकुण्ठको जाना, यह विषय मुक्ति विषयमें एकादशस्कन्धमें वर्णन किये हैं.

द्वादशस्कंध ॥ श्लोक ॥

भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः ।
वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मृतम् ॥
सौरीविभूतिसहिता सात्वती च ततः परम् ।
पुराणसंख्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम् ॥
इत्येवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव ।

अर्थ–प्रथम कलियुगका भविष्य वृत्तान्त, परीक्षितका मुक्तिपदको प्राप्त होना, वेदकी शाखाओंका प्रणयन, मार्कण्डेयजीका अद्भुत आख्यान, सूर्यकी विभूतियोंका वर्णन तत्पश्चात् भगवानूकी विभूतियां, पुराणोंके श्लोकोंकी संख्या, द्वादशस्कन्धके विषय आश्रय विशेषमें इन कथाओंका वर्णन किया है,

हे वत्स ! यह तुमसे श्रीमद्भागवतका वृत्तान्त संक्षिप्त मात्र वर्णन किया,

इसके श्रवण करनेका फल श्लोकः–

वक्तुः श्रोतुश्चोपदेष्टुरनुमोदितुरेव च ।
साहाय्यकर्तुर्गदितं भक्तिभुक्तिविमुक्तिदम् ।
प्रौष्ठपद्यां पूर्णिमायां हेमसिंहसमन्वितम् ।

देयं भागवतायेदं द्विजाय प्रीतिपूर्वकम् ।
संपूज्य वसुहेमाद्यैर्भगवद्भक्तिमिच्छता ।
योऽप्यनुक्रमणीमेतां श्रावयेच्छृणुयात्तथा ।
स पुराणश्रवणजं प्राप्नोति फलमुत्तमम् ।

अर्थ-यह श्रीमद्भागवत, वक्ता, श्रोता, उपदेष्टा, अनुमोदिता और सहायकर्त्ता सबही को भक्ति, मुक्ति और विमुक्तिकी देनेवाली है, जो भक्तजन भगवद्भक्तिकी इच्छा करै वह भाद्रपदमासकी पूर्णमासीको विष्णुभक्त ब्राह्मणादिकी वस्त्र और सुवर्णादिसे पूजा करके प्रीतिपूर्वक श्रीमद्भागवतकी पुस्तक सुवर्णके सिंहासनपर धरकर दान करै, जो पुरुष इस अनुक्रमणिकाको सुनता है, वा सुनाता है, वह आद्योपांत पुराण श्रवण करनेके फलको प्राप्त होता है ।

इति श्रीनारदीयपुराण पूर्वभाग बृहदुपाख्यान चतुर्थपाद ९६ अध्यायमें यह कथा है,

और मत्स्यपुराणमें भी लिखा है ॥ श्लोक ॥

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते ।
लिखित्वा तच्च यो दद्यात् हेमसिंहसमन्वितम् ।
प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम् ।
अष्टादश सहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ।

अर्थ-जिस पुराणमें गायत्रीका आशय, धर्मका विस्तार वर्णित हो, और वृत्रासुरके वधकी कथा हो, वह श्रीमद्भागवत है, उस पुस्तकको महादिव्य अक्षरोंमें लिखवाकर सुवर्णके सिंहासनपर स्थापित कर भादों सुदी पूर्णमासीके दिन जो वैष्णव ब्राह्मणको प्रदान करै, वह प्राणी परम पदको प्राप्त होता है, इस महापुराणमें अठारह सहस्र श्लोक कहे हैं, इति मत्स्यपुराणम् ॥

स्कन्दपुराणमें भी लिखा है ॥ श्लोक ॥

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः ।
हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ।
गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः ।

अर्थ-स्कन्दपुराणमें लिखा है, जिसमें अठारह सहस्र श्लोक, बारह स्कन्ध, नारायण कवचरूप ब्रह्मविद्या, वृत्रासुरके वधकी कथा और प्रारम्भमें गायत्री हो, उसका नाम श्रीमद्भागवत है. इति स्कन्धपुराणम् ॥

पद्मपुराणमें लिखा है ॥ श्लोक ॥

अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु ।
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ।

अर्थ-गौतमजी बोले, कि-हे अम्बरीष ! जो तुम इस संसारसागरके पार होना चाहो तो उस महापुराण श्रीमद्भागवतको सुनो, जो कि व्यासदेवके पुत्र श्रीशुकदेवजीने राजर्षि परीक्षित्को सुनाई है, उसको सुनकर अपने मुखसेभी उसका पाठ करो ॥ इति पद्मपुराणम् ॥

सब पुराणोंमें श्रीमद्भागवतका प्रमाण है, इसीलिये इस अनुपम ग्रन्थका नाम महापुराण है, ऐसे महाप्रभावशाली अद्भुत अलौकिक ग्रन्थका स्वाद ग्रहण करनेके लिये किस सहृदयका मन न ललचायगा! परन्तु संस्कृतमें इस महापुराणके होनेसे संस्कृतानभिज्ञ पुरुष इसका सार ग्रहण नहीं करसक्ते थे, और मन मार जीमें हार मान चुपचाप होकर बैठ रहते थे, और जो कहीं भागवतकी कथा होती तो छे महीनेमें समाप्त होनेका ढंग लगता, वहाँ नित्यका जाना कठिन, क्योंकि गृहस्थीमें सैकडों विपत्तियें लगी रहती हैं, कभी आप रोगग्रसित, कभी बाल बच्चोंको ज्वर, खाँसी, कभी देश परदेशका आना जाना, कभी लडकेका विवाह, लडकीका द्विरागमन ऐसे २ अनेक कार्य बनेरहते है, कहां तक गिनाये जाँय, भला जब कथाके इतने वैरी शिरपर गाजते रहैं फिर पूरी कथा सुननेमें क्यों कर आवै ? और जो इन सब कामोंको त्यागकर श्रीमद्भागवतको सुनभी लेवे तो एक बडी कठिनता थी कि, किसी स्थलकी कथा स्मरणमें रहती, किसीकी भूल जाते तो चित्तमें अनेक प्रकारके भ्रम उत्पन्न होते, उन प्रेमियोंके हृदयकी प्रीति देखकर किसी किसी महात्माने इस श्रीमद्भागवतका अनुवाद भी किया परन्तु मनमें आया सो गाया, श्लोकोंके मिलानेका कोसोंतक पता नहीं, और किसी किसीने मूलानुसार श्लोकांक भी लगाये परंतु उन्होंने भी मत मतान्तरका झगडा डाल दिया, किसीने ब्रजभाषामें उल्था किया उसको और देशवालोंने पसन्द नहीं किया, जब मैंने लोगोंको महाभ्रम जालमें पडा देखा तो अपनी जिह्वा पवित्र करनेके लिये महात्माओंके प्रसादसे जिससे सर्व साधारणकी समझमें आवे, ऐसा उत्तम रीतिसे सरल हिन्दी भाषामें श्रीमद्भागवतका अनुवाद किया, और अध्याय २ में श्लोकांक भी इसलिये लगादिये गये हैं कि पाठकगणोंको जहाँ कहीं संस्कृतका आशय मिलाना हो बराबर मिला लें, और नाम इस ग्रन्थका शुकसागर रक्खा, क्योंकि यह पुराण श्रीशुकदेवजी महाराजका प्रकाशित किया हुआ है इससे शुकसागरही नाम रखना उचित समझा, और केवल पूज्यपाद श्रीधरस्वामीजीके तिलकानुसार अर्थ किया, और जहाँ तहाँ शंका समाधानभी लगादिये कि, जिससे पाठकोंको कहीं उलझना न पडे, और उचित उचित स्थलोंपर भजन, कवित्त, दोहे, चौपाई, सोरठे, छन्द भी लगा दिये हैं, जिससे अनुरागियोंके चित्तमें अनुराग उत्पन्न हो, और जहाँ कहीं वृद्धि की है, अर्थात् ग्रन्थांतरोंकी कथा लिखी है वहाँ श्लोकांक नहीं हैं, इससे पाठकोंको सरलतासे प्रतीत हो जायगा कि यह वार्ता श्रीमद्भागवतकी नहीं है और और ग्रन्थोंकी है, अधिक क्या कहैं ! ग्रन्थके सर्वश्रेष्ठ, सर्वांगसुन्दर, और सर्वप्रकार शुद्धहोनेके लिये यत्न व

परिश्रम करनेमें किसीप्रकारकी त्रुटि नहीं की है, अब इस ग्रन्थके अनुवादका अच्छा वा बुरा होना विद्वान् लोग स्वयं ही विचार लेंगे,

''हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा''

अर्थात् सुवर्णके खरे खोटेकी परीक्षा अग्निमेंही धरनेसे ज्ञात होती है; अब सब विद्वान् पुरुषोंसे मेरी यह प्रार्थना है कि, आप मेरे इस अनुवादका अवलोकन करके मेरे परिश्रम-को सफल करें; और जो भ्रांतिसे इसमें कहीं भूल चूक रह गई हो तो मेरे अपराधको क्षमा करके उन अशुद्धियोंको सुधार लें और इस ग्रन्थको निर्मित करके सर्व साधारणके उपकारार्थ श्रयुित वैश्यवंशावतंस, सकलगुणग्राहक, गोब्राह्मणहितकारी, परमोदार, सर्व विद्याविभूषित, श्रीमद्रत्नाकरसन्निकट मुम्बईपत्तननिवासी श्रीमान् सेठ **खेमराज श्रीकृ-ष्णदासजी** को समर्पण करदिया, उनको कोटिशः धन्यवाद हैं कि जिन्होंने अपना धन व्यय करके इस भाषानुवाद शुकसागरको अपने जगद्विख्यात ''श्रीवेङ्कटेश्वर'' स्टीम् यंत्रालयमें मुद्रित करके मुझको कृतार्थ किया,

मोहल्ला-दीदारपुरा,
मुरादाबाद, सिटी,

ग्रंथकार
शालिग्राम वैश्य,

यह पुस्तक बडे आकारमें हमारे यहां बहुत दिनोंसे छपी है परन्तु बडे अक्षरोंमें होनेके कारण वह इतनी बडी है कि प्रतिदिन अवलोकन करनेके प्रेमी महाशयोंको अपने तीर्थादि यात्राके समय साथ ले जाना कठिन हो जाताहै, और बहुतसे महाशय जो कि अधिक द्रव्य व्यय नहीं करसकते उनके भी सुभीतेके लिये छोटे आकार तथा अक्षरोंमें यह मुद्रित की गई है। बडे आकारके शुकसागरमें जितने विषय हैं वह उसी प्रकार इसमें सब आगये हैं । आशा है कि भक्तजन इसे ग्रहणकर स्वयं लाभ उठावेंगे और हमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

भक्तजन कृपाकांक्षी-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

''श्रीवेङ्कटेश्वर'' स्टीम्-प्रेस-मुम्बई.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम् ।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा ।

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित ।

श्रीमद्भागवतमाहात्म्य.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस—

बंबई.

श्रीभागवत ग्रन्थ-निगम कल्पतरु.
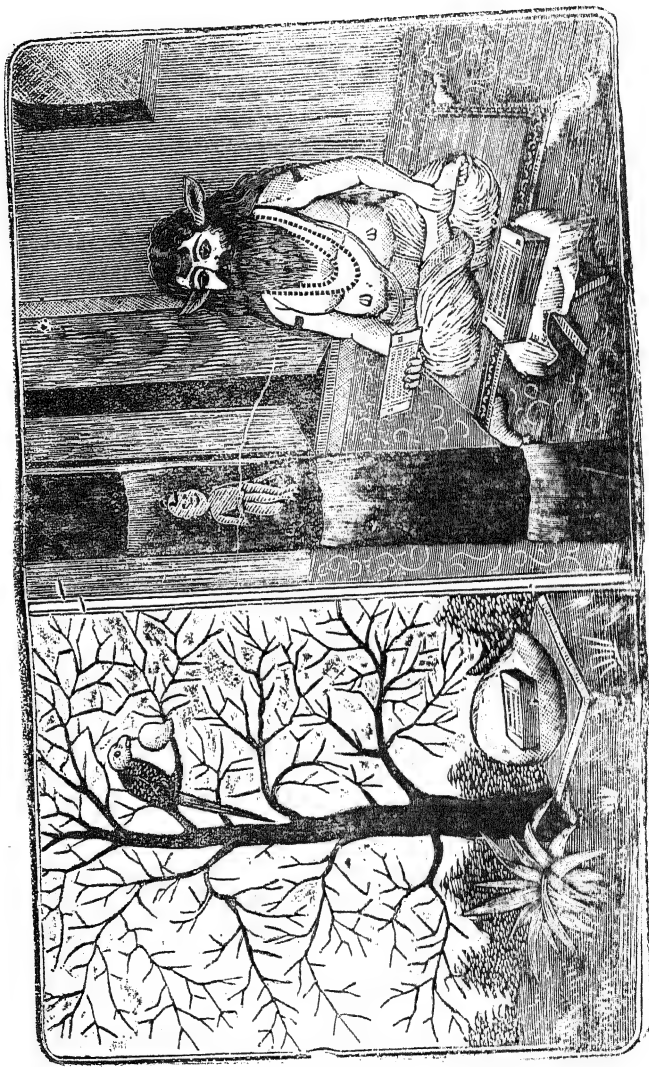
भागवत माहात्म्य-गोकर्ण प्रेतरूप धुन्धुकारी.

॥ श्रीदत्तात्रेयाय नमः ॥

शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतमाहात्म्य-भाषा.

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-हे नँदनन्दन जगतपति, आनँदकन्द मुकुन्द।
तव पद वन्दन करतही, मिटत सकल छल छन्द ॥१॥
तेरी कृपा कटाक्षकी, मुझको पूरण आश।
कहौं महातम भागवत, भक्त बुद्धि परकाश ॥ २ ॥
व्यासनन्द शुक वन्दि पद, कृष्णचन्द्र उरधार।
कहौं भागवत सकलफल, कलिमल काटनहार ॥ ३ ॥

कवित्त-श्रीमद्भागवत महिमाको कौन वर्ण सकै, खोई २ फिरै बुद्धि वाणी औ गणेशकी। एकबार सुनै वह चतुर्भुजी रूपधार, विना श्रम बैठ बैठ पीठपै खगेशकी ॥ विष्णुपुरी जाय जाय मोक्षपद पावत हैं, शंका नाहिं मानै मन नेकहू यमेशकी। ताहीको माहात्म्य कुछ वर्णौं चहै शालि-ग्राम, भक्ति मुक्ति ज्ञान देनहारी देश देशकी ॥ १ ॥ सुकठिन भागवत अर्थ नाहिं जानपरै, विनाअर्थ जाने किमि प्रेम जगै तनमैं। विनाप्रेम

प्रीति कहाँ प्रीतिबिन रीति नीति, कैसोहो पूरण रति वेद शास्तरनमैं ॥ विनावेद भेद कैसे ज्ञान औ वैराग्य होय, विना ज्ञान ध्यान कैसे भक्ति होय मनमैं। भगवत भक्ति विन भागवत आवत ना, भागवत विन मुक्ति कोऊ न भुवनमैं ॥ २ ॥

दोहा–पहिले श्रीमद्भागवत, कहत सकल सुर सिद्ध।
अब शुकसागर नाम धर, जगमें कियो प्रसिद्ध ॥ १ ॥
बार बार मुहिं दीजिये, नाथ यही वरदान।
मेरो श्रीभागवतमैं, लगो रहै नित ध्यान ॥ २ ॥
वृन्दावन व्याकुल पडे, भक्ति ज्ञान वैराग्य।
उसी समय आये तहाँ, नारदमुनि बडभाग्य ॥ ३ ॥

जिस सब संसारकी माया मोहको त्यागकरके चलतेहुयेके पीछे श्रीव्यासदेवजीमहाराज हे पुत्र ! हे पुत्र ! इसप्रकार बारंबार पुकारते चले जातेथे जिसको तन्मय होकर वृक्ष भी कहते हुए उन सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित मुनिवरको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥ किसी समय नैमिषारण्यक्षेत्रमें शौनकादिक अट्ठासीसहस्र ऋषि भगवत्कथारूपी अमृत स्वादके रसिकोंने महाबुद्धिमान् सूतजीको प्रणामकर ॥ २ ॥ शौनकजी बोले कि हे सूत ! सर्व अज्ञान अन्धकारनाशक कोटिसूर्यसमप्रकाशक हमारे श्रवणोंके आनन्ददायक रसायन रूप कथाओंका सार हमारे ऊपर अनुग्रह करके आप वर्णन कीजे ॥ ३ ॥ किस रीतिसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी प्राप्ति होती है, और ज्ञान किसप्रकारसे अधिक होता है, और महात्मा पुरुष किस भाँतिसे माया मोहको परित्याग करते हैं ॥ ४ ॥ इस महाघोर कलि-कालके आनेसे संसारी जीवोंका चित्त असुरसंज्ञाको प्राप्त होगयाहै, उस क्लेशसे ग्रसित जीवोंको उद्धार करनेके लिये, क्या कर्म करना चाहिये ? ॥ ५ ॥ जो कुशलका कुशल पावनका पावन और सब प्रकार भगवत्की भक्तिका उत्पन्न करनेवाला साधन होय वह आप हमसे वर्णन कीजै ॥ ६ ॥ चिन्तामणि, संसारका सुख, इन्द्रासन, स्वर्ग पर्यन्तकी पदवीको देताहै और गुरु प्रसन्न होकर योग भक्ति परम दुर्लभ वैकुण्ठगतिको देता है ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकमुनि ब्राह्मणो ! तुम लोगोंके मनमें अधिक स्नेह है, इसलिये मैं पूर्ण विचार करके सर्वसिद्धान्तोंका सिद्धान्त संसारका भयनाशक आनन्दका प्रकाशक ॥ ८ ॥ भक्तिकी वृद्धि करनेवाला श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दके सन्तोषका कारण मैं तुम्हारे सन्मुख वर्णन करताहूं, आपलोग सावधान होकर सुनिये ॥ ९ ॥ जो लोग कालरूपी सर्पके मुखके ग्रास होनेके त्रासका नाशकर्ता श्रीमद्भागवत पुराण श्रीशुक-देवजीमहाराजने राजा परीक्षितूसे कहाथा ॥ १० ॥ उससे अधिक मनका शुद्ध करनेवाला और आनन्ददायक और कोई दूसरा उपाय नहीं है, अनेक जन्मके पुण्यका फल इकट्ठा होनेसे भागवतोंको श्रीमद्भागवतकी कथा प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ जिससमय राजा परीक्षितूसे शृंगीऋषिके शाप देनेके पश्चात् बडे बडे ऋषि मुनियोंकी सभामें श्रीशुकदेव व्यासनन्दन

गंगा तीरपर आनकर श्रीमद्भागवतकी कथा कहनेका प्रारम्भ किया चाहतेथे उसीसमय सब देवताओंने अमृतका कलशा वहाँ लाकर रक्खा ॥ १२ ॥ और श्रीशुकदेवजी महाराजको दण्डवत् प्रणाम करके सब देवता बोले, कि हे महाराज ! कथारूप अमृत हमको दीजिये और इसके बदले यह अमृतका घट लीजिये देवता तो अपना प्रयोजन सिद्ध करनेमें प्रसिद्ध ही हैं ॥ १३ ॥ महाराज ! राजा परीक्षित्को तो आप अमृत पिलाइये, और हम देवता लोगोंका यह मनोरथ है कि उसके बदलेमें हम श्रीमद्भागवतरूपी सुधाका पान करैं ॥ १४ ॥ कहाँ तो तुच्छ अमृत और कहाँ संसारतारक सकल कलिमलविदारक श्रीमद्भागवतकी कथा, कहाँ नीच काँच और कहाँ अमूल्य चिंतामणि, कहाँ सेमल और कहाँ पारिजात, यह बात देवताओंके मुखसे सुन परीक्षित् अपने मनमें बहुत हँसे और कहा धन्य है आपकी चतुराईको ॥ १५॥ उनको अभक्त जानकर जो सदा संकटमें सहायक भक्ति, मुक्तिदायक श्रीमद्भागवतकथारूपी अमृत नहीं दिया सो श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ १६ ॥ इसप्रकार राजाकी मुक्ति देखकर ब्रह्मा अपने मनमें अत्यन्त विस्मित हुवा फिर सत्यलोकमें तुलाको बाँध और साधनोंके संग इसको तोला ॥ १७ ॥ तो श्रीमद्भागवतके गौरवके आगे सब साधन हलके दीख पडे, तब तो सब ऋषीश्वर मुनीश्वर अपने मनमें बडे चकित हुए ॥ १८ ॥ और भूमण्डलमें श्रीमद्भागवतको भगवत्का स्वरूप समझ कर कहा कि, यह मोक्षदायक शास्त्र पढने सुननेसे तत्काल सुरपुरका वास देता है ॥ १९ ॥ यह महापुराण सप्ताहमें श्रवण करनेवालेको सर्वथा मोक्षदायक है, यह सनकादिकोंने कृपाकरके नारदजीसे प्रथमही कहा है ॥ २० ॥ यद्यपि यह कथा देवर्षिने ब्रह्माजीसे सुनीहै परन्तु सप्ताहपारायण सुननेका विधान सनत्कुमारने उनसे वर्णन नहीं किया ॥ २१ ॥ यह बात सुनकर शौनकजी बोले, कि लोकमें विग्रह करानेवाले नारद दो घडीसे अधिक एकस्थानमें कभी नहीं रहसक्तेथे फिर किसप्रकार स्थिर होकर प्रीतिपूर्वक सप्ताह पारायणकी विधि सुनी और सनत्कुमारका और इनका समागम कहाँ हुवा ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि, तुम सावधान होकर सुनो । यह भक्तियुक्त मुक्तिदायक कथा मैं आपके सन्मुख वर्णन करता हूं, जो कुछ मुझसे श्रीशुकदेवजी महाराजने अपना अन्तरंग शिष्य समझकर कहा है ॥ २३ ॥ एक समय बद्रिकाश्रममें सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, शुद्ध चारों ऋषि सत्संगके लिये नारदजीके देखनेको आये ॥ २४ ॥ सनत्कुमार बोले, कि, हे नारदमुनि ! तुम तनछीन मनमलीन दीनमुख कैसे हो रहे हो, ऐसी क्या चिन्ता है जो चित्त असावधान है और शीघ्रतासे किस बातका चिन्तवन कर रहे हो, और कहाँसे आते हो ॥ ॥ २५ ॥ इससमय तुम ऐसे शून्यचित्त जान पडते हो, जैसे किसीका धन हरगया हो अथवा कोई अद्भुतचरित्र देखा हो, हे मुक्तसंग ! तौभी यह बात आपमें अनुचित है, इसकारण इस शोकका कारण वर्णन कीजे ॥ २६ ॥ नारदजीने चारों भाइयोंको नमस्कार करके कहा हे महाभाग्य ! मैं सब लोकोंमें उत्तम भूलोकको जानकर पुष्कर, प्रयाग,

काशी, गोदावरी, गयाको गया ॥ २७ ॥ और हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग, सेतुबन्ध आदि तीर्थोंमें विचरता फिरा ॥ २८ ॥ परन्तु कहीं मनको सन्तोष करनेवाली कोई कल्याणदायक बात देखनेमें न आई, अधर्मके मित्र कलियुगने सब संसारमें ऐसा भ्रष्टाचार फैला रक्खा है ॥ २९ ॥ कि सत्य, तप, शौच, दयाका कहीं नाम नहीं रहा, केवल झूठबोलने और उदरपोषण करनेवाले रहगये हैं, इसकारण चित्तमें अत्यन्त चिन्ता है ॥ ३० ॥ आलसी, कुबुद्धि, मन्दभागी, पाखण्डी, कुमार्गी, स्त्री पतियोंकी आज्ञा नहीं मानती उनसे अलग हो अपना व्यवहार करती हैं ॥ ३१ ॥ जहाँ तहाँ स्त्रियोंहीकी प्रभुताई है, शाले, श्वशुर, सम्मतिदाता हैं, धनके लोभसे कन्याको नीचकुलमें बेचदेते हैं, स्त्री पुरुषोंमें दिन रात क्लेश रहता है ॥ ३२ ॥ आश्रम अर्थात् मठ, मन्दिर, ठाकुरद्वारे, तीर्थ और नदियोंमें यवन लोगोंका अधिकार हो रहा है, देवताओंके स्थान दुष्टोंने जहाँ तहाँ नष्ट करडाले हैं ॥ ३३ ॥ योगी, सिद्ध, ज्ञानी कोई सत्क्रियावाला पुरुष नहीं रहा, कलिरूपी घोरअग्निमें सब साधन जलकर भस्म होगये ॥ ३४ ॥ अन्नके बेचनेवाले तो जनपदके मनुष्य, वेद बेचनेवाले ब्राह्मण, भग बेचनेवाली कुलटा स्त्रियें, कलियुगमें अनेक होंगी ॥ ३५ ॥ इसप्रकार कलियुगके अनेक दोष दुःख देखता पृथ्वीमें विचरता हुवा वृन्दावनमें यमुनाके निकट आया, जहाँ श्रीवृन्दावनविहारी कृष्ण मुरारीने अनेक अनेक प्रकारकी अद्भुत लीला करी थीं ॥ ३६ ॥ हे मुनियो ! वहाँ एक अलौकिक आश्चर्य देखनेमें आया, सो मैं आपके सन्मुख वर्णन करता हूं, तहाँ एक युवा स्त्री अत्यन्त दुःखी मनमारे बैठी शोच कर रही थी ॥ ३७ ॥ और उसके समीप दो वृद्ध मनुष्य अचेत पडे लम्बे लम्बे श्वास लेरहेथे, वह स्त्री उनकी शुश्रूषा करतीथी और बारंबार समझातीथी और उनके आगे रोरोकर कहती थी ॥ ३८ ॥ और अपने देहकी सहायता करनेवालेको दशोंदिशामें आँखें पसार पसार देखती थी, और सहस्रों स्त्री उसकी पवन करती थीं और वारंवार धैर्य देदेकर समझा रही थीं ॥ ॥ ३९ ॥ उसकी आश्चर्यमय दशा देखतेही मैं शोकाकुल बालाके निकट गया, वह मुझको देखतेही अचानक उठबैठी और व्याकुल होकर बोली ॥ ४० ॥ हे कृपासिन्धु ! कुछ काल मेरे समीप ठहरकर मेरा कष्ट निवारण कीजिये आपका दर्शन संसारके जीवोंका निस्सन्देह सब पाप दूर करनेवाला है ॥ ४१ ॥ आपके अमृतरूपी वाक्योंसे मेरे दुःखकी शान्ति होजायगी क्योंकि जब कोई पूर्वजन्मका पूर्ण पुण्य उदय होता है तब आप सरीखे साधुओंका दर्शन होता है ॥ ४२ ॥ उसके मधुरवचन सुन मैंने उस स्त्रीसे बूझा कि, हे देवि ! तू कौन है, अपने दुःखका विस्तार सहित वर्णन कर ॥ ४३ ॥ बाला बोली कि हे भक्तवत्सल ! मैं भक्ति हूँ, और मेरा नाम सब संसारमें विख्यात है, और यह दोनो ज्ञान और वैराग्य मेरे पुत्र हैं कुसमयके प्रभावसे यह दोनों वृद्ध होगये हैं अब कोई इनका आदर सत्कार करनेवाला नहीं रहा ॥ ४४ ॥ और यह जो स्त्रियें मेरेनिकट बैठी मेरा धैर्य बँधाती हैं यह गंगा यमुना सरस्वती आदिक नदी हैं, स्त्रियोंका रूप धारण कर मेरी सेवा

करनेको आगई हैं परन्तु इनकी सेवा करनेसे मेरा चित्त शान्त नहीं होता॥ ४५ ॥ हे तपोधन! इससमय मेरी दीनताकी ओर ध्यानकरके एकबात सुनो, मेरी कथा बहुत बडी है उसको सुनकर आपको परमानन्द प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ प्रथम द्रविड देशमें मेरा जन्म हुवा था और करणाटक देशमें मेरी युवाअवस्था हुई, कुछकाल पर्यन्त दक्षिणमें रहकर गुजरात और महाराष्ट्र देशमें पहुँची और उसी देशमें वृद्ध होगई ॥ ४७॥ और महाघोर कलियुगी लोगोंके पाखण्डोंसे मेरा और मेरे पुत्रोंका शरीर महादुर्बल होगया ॥४८॥ अब इससमय फिर वृन्दावनमें आनेसे मैं उसीभाँति तरुण सुन्दर रूपवती होगई हूं ॥ ४९ ॥ परन्तु यह मेरे दोनोंपुत्र परिश्रमके मारे दुःखित और अचेत पडे हैं बात करनेतककी भी सामर्थ्य नहीं है, इसस्थानको छोड मुझ समेत देश देशान्तरोंमें घूमे ॥ ५० ॥ अब यह दोनों वृद्ध होगये इस महादुःखसे मैं अत्यन्त दुःखी हूँ क्योंकि मैं तरुण और मेरे पुत्र कैसे वृद्ध होगये इस बातकी मुझे बडी लज्जा है ॥ ५१ ॥ हम तीनों सदा एक संग रहते हैं यह विपरीतता कैसेहुई मानो माता वृद्धा पुत्र तरुण यह बात तो योग्यहै परन्तु यह महाविपरीत है कि, माता तरुण और पुत्र वृद्ध ऐसा कहीं नहीं होता देखा ॥ ५२ ॥ इस-कारण बडे आश्चर्यपूर्वक अपने आत्माको शोचती हूँ सो हे योगीमहात्मन्! आप कहिये यह क्या कारण है? ॥ ५३ ॥ नारदजी बोले हे निष्पापे! मैं अपने योगबलसे तेरे सब वृत्तान्तका विचार करता हूँ, तू अपने मनमें दुःख मतमाने परमेश्वर तेरा कल्याण करैंगे ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले कि, क्षणमात्रमें सब विचारकर, नारदमुनि कहनेलगे कि हे देवि! सावधान होकर सुन इससमय महाघोर कलियुग वर्त्त रहा है ॥ ५५ ॥ इसलिये सदाचार, योगमार्ग, सत्य, तप लुप्त होगये हैं और मनुष्योंका पाप करनेके लिये असुरोंकेसा स्वभाव होगया है ॥ ५६ ॥ इस कलिकालमें सन्त अत्यन्त दुःख पाते हैं, कपटी कुचाली प्रसन्न रहते हैं, जो ज्ञानीपुरुष धैर्य धारण करते हैं वही धीर पण्डित हैं ॥ ५७॥ यह शेषजीको भार करनेवाली पृथ्वी अब छूने और देखनेके अयोग्य होगई है और प्रतिवर्ष क्रमसे ऐसीही होती जाती है, अब कहीं शुभकर्म देखनेमें नहीं आता॥५८॥अब तुझको भी पुत्र सहित कोई नहीं देखसक्ता पुत्र दारा धनादिके अभिमानमें अन्धे हो रहे हैं, इसीलिये तेरा आदर सन्मान कोई नहीं करता और इसीकारण तेरा शरीर दुर्बल होगया है ॥ ५९ ॥ वृन्दावनके आनेसे अब फिर तू नवीन तरुणी होगई है, इससे यह वृन्दावन धन्य है, जहां मुक्तिदायक भक्ति विराजमान है ॥ ६० ॥ इस वृन्दावनमें यह ज्ञान वैराग्य ग्राहकोंके न होनेसे अपनी वृद्ध अवस्थाको नहीं छोडेंगे, इसस्थानमें ज्ञान वैराग्यकी और तेरीभी काम क्रोधादि दुःखभावसे सुखपूर्वक स्थिति होगी, क्योंकि और सबस्थानोंसे यह वृन्दा-वन परमोत्तम मानाजाता है ॥

कवित्त–वामनबन विष्णुने पृथ्वीसब नापडारी, मनमानी वृद्ध कोउ मिली नाहिं ठाम है ॥ देवतोंसे कही कहीं तुम्हीं ढूँढो शुद्धभूमि, देवतोंने कहो शुद्ध आपहीको नाम है॥ हारकर हरिने त्रिलोकीको मथ मथकै,

मथुरा निकारी तीनलोकसे ललाम है ॥ मथुराको तत्त्व सब खेंचखाँच शालिग्राम, भक्तनके हेतु रचो वृन्दावन धाम है ॥ १ ॥ ६१ ॥

नारदजीकी मनोहर वाणी सुन भक्ति बोली, कि हे आनन्दरूप ! जब कलियुग ऐसा महापापी और दुष्टात्मा है तो राजा परीक्षित्ने उसको क्यों स्थापित किया, इसके प्रवृत्त होतेही सबका सारबल कहाँ चलागया ॥६२॥ और दयासिन्धु भगवान् विष्णु इस पापको कैसे देखसक्ते हैं, कृपाकरके यह सन्देह मेरा निवारण करो, तुम्हारी मनोहर वाणीसे मेरा मन अत्यन्त प्रसन्नहै ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले, कि हे बाले ! जो तैंने बूझा है तो सावधान होकर सुन मैं तेरे सन्मुख समस्त कथा वर्णन करता हूं, जिसके सुननेसे तेरा सब दुःख दूर होगा ॥ ६४ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द वृन्दावन विहारी भक्तहितकारी पृथ्वीको छोडकर अपने परमधामको सिधारे, उसी दिनसे सब साधनोंका बाधक कलियुगने आनकर संसारमें प्रवेश किया ॥ ६५ ॥ जब दिग्विजय करते कलियुगको राजा परीक्षितने देखा उसी समय उसके मारनेको उपस्थित हुए तब यह दीनबन राजाकी शरण हुवा तब राजाने अपने मनसें विचारा कि, यह मेरी शरण आया है, इस कारण इसका मारना उचित नहीं समझा, यह राजा सारकी नाईं सारका भोगनेवाला है ॥ ६६ ॥ दूसरा इसमें एक गुण और उत्तम देखा इसलिये इसको नहीं मारा, और युगोंमें जो फल तपस्या, और योग, समाधि, यज्ञ, दान करनेसे भी नहीं होता, वह फल कलियुगमें केवल भलेप्रकार चित्त शान्तकर नारायणका नाम लेनेसे मिलता है ॥ ६७ ॥ जिसमें केवल एक भक्तिही साधक है,और ज्ञान,वैराग्य जिसमें निरस हैं ऐसे कलियुगको देख कलियुगवासी मनुष्य भक्ति करनेहीसे तरजाँयगे, ऐसा शुभगुण विचार राजाने उसका स्थापन किया ॥ ६८ ॥ परन्तु कलियुगवासियोंसे साधारण काम भी नहीं होसक्ता इसलिये कलियुगने सबका धर्म कर्म भ्रष्ट करदिया, कुकर्माचरण करनेसे सबका स्थिरांश निकल गया है और पृथ्वी में पदार्थहीन, वीर्यहीन, बुद्धिहीन मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंने थोडे धनके लोभसे भगवत्सम्बन्धी वार्त्ता घर घरमें जिस तिस मनुष्यके सन्मुख कहनी आरम्भ करदी, इसलिये कथाका फल जातारहा ॥ ७० ॥ बडे बडे भयंकर अत्याचारी, कुकर्मी, पापी, पाखण्डी मनुष्य कपटवेष धारणकर तीर्थोंमें वास करने लगे, इसलिये तीर्थोंका सार जातारहा ॥ ७१ ॥ जिनके चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोहसे अत्यन्त व्याकुल होरहे हैं वह लोग झूठातप करनेलगे, इसलिये तपस्याका सार जाता रहा ॥ ७२ ॥ मनको नहीं जीतनेसे लोभ, दम्भ, पाखण्ड का आश्रय करनेसे और शास्त्र पुराणोंके अनभ्याससे ध्यान योगका फल जातारहा ॥ ७३ ॥ पण्डित महिषकी नाईं स्त्रियोंके संग रमणकर पुत्र उत्पन्न करनेमें तौ चतुर और विलक्षण हैं परन्तु मुक्तिसाधनमें मूर्ख हैं ॥ ७४ ॥ वैष्णवोंकी जो श्रेष्ठ सम्प्रदाय हैं वह कहीं नहीं पाई जाती, बात बातमें ठगविद्या, इसलिये स्थान स्थानमें सब पदार्थोंका तत्त्व जातारहा ॥ ७५ ॥ फिर यह तो कलियुगका धर्म ही ठहरा इसमें किसीका क्या दोष है ! इसकारण पुण्डरी-

काक्ष निकट स्थितहुए भी सहन करते हैं ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले, कि हे शौनकऋषि ! इसप्रकार नारदजीके वचन सुन अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हो ॥ ७७ ॥ भक्ति फिर बोली-कि हे देवर्षि ! तुम धन्य हो ! मेरे भाग्यसे ही इस स्थानपर आगये हो साधुओंका दर्शन लोकमें सब सिद्धियोंका देनेवाला है ॥ ७८ ॥ जगत्में जिसने तुम्हारी केवल अनुपम वचनरचनाको सुन लोकमें कयाधूके पुत्र प्रह्लादने मायाका त्यागकिया और जिसकी कृपासे ध्रुवने अचलपदवी पाई सब क्षेमोंके पात्र ब्रह्माजीके पुत्र नारदजीको मैं बारंबार नमस्कार करती हूं ॥ ७९ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां शालिग्राम वैश्यकृत भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-नारद सनतकुमारको, भयो सुभग संवाद।
सो द्वितीय अध्यायमें, वरणों सहित अह्लाद ॥ २ ॥

नारदजी बोले कि, हे देवि ! किसलिये वृथाखेद करती है और क्यों इसप्रकार शोकाकुल होरहीहै, श्रीमन्नारायण जगत्हितकारी वृन्दावनविहारीके चरणारविन्दका स्मरणकर तेरा सब संकट कटजाय ॥ १ ॥ जिन श्रीकृष्ण द्वारकाधीशने कौरवोंके महासंकटमें द्रौपदीकी सहायकरी और उसकी लज्जा रक्खी और गोपकुमारोंको शंखचूड आदिकसे बचाया और गजेन्द्रको ग्राहसे बचाया, वह वृन्दावनविहारी वृन्दावनसे कहीं चले नहीं गये हैं ॥२॥ और तूतो उनको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है क्योंकि सब संसारी उनको भक्तहितकारी कहकर पुकारते हैं तेरे बुलाये भगवान् तो नीचोंके घरोंमें भी आते हैं ॥

कवित्त-तेरेही प्रतापसे ये हरिने त्रिलोकी रची, तेरोही प्रताप सनताप तापहारीहै। तेरेही प्रतापसे ये विष्णु शेषशायी भये, तेरोही प्रताप शेष शीसधराधारीहै ॥ तेरोही प्रताप कौन वर्णसकै शालग्राम, तेरी तो महिमा सब दुनियांसे न्यारीहै। तूतो सदा प्राणनते प्यारी ब्रजविहारी-जूको, कौन काज आज तुझे कृष्णने विसारी है ॥ ३ ॥

सत्ययुग, द्वापर, त्रेतामें ज्ञान वैराग्य मुक्तिके साधक थे और इन्हींके द्वारा महात्मा पुरुषोंका उद्धार होताथा, कलियुगमें केवल भक्तिही प्रधान है, वही ब्रह्मसायुज्यकी देनेवाली है और ज्ञान वैराग्यका कोई बूझनेवाला नहीं रहा ॥ ४ ॥ उस परमात्मा पूर्णब्रह्म चिद्घनानन्द जनार्दनने, हे सुन्दरी ! कृष्णवल्लभा, अपना निजस्वरूप तुझको उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥ जब तैंने भगवान् वासुदेवके सन्मुख हाथ जोडकर विनयकरी कि, हे वैकुण्ठनाथ ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ! तब कृष्णचन्द्रवनवारी भक्तिहितकारीने कहा तू मेरे भोलेभाले भक्तोंको पुष्टकर ॥ ६ ॥ जब तैंने उनका वचन अंगीकार किया तब तो भगवान् वासुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए; और तेरी सेवा करनेके लिये मुक्तिदासी और ज्ञान वैराग्य तुझको दिये ॥ ७ ॥ अपने निजस्वरूपसे तो तू वैकुण्ठधाममें भक्तोंका पालन,

पोषण करती है, और पृथ्वीपर भक्तोंके विशेष आनन्दके लिये तैंने छायारूप धारण कर रक्खा है ॥ ८ ॥ फिर मुक्ति और ज्ञान वैराग्यको अपने साथ लेकर तू मृत्युलोकमें आई और सतयुगसे लेकर द्वापरके अन्ततक ऋषीश्वर मुनीश्वर तेरा बडा आदर सत्कार करते रहे और बहुत आनन्दसे भूमण्डलमें तू रही ॥ ९ ॥ अब कलियुगमें पाखण्डियोंके पाखंड फैलानेसे अत्यन्तपीडित हो क्षय होगई, फिर तेरी आज्ञा शीशपर धारणकर शीघ्र ही वैकुंठलोकको चलीगई ॥ १० ॥ और फिर तेरे स्मरण मात्रसे ही इसस्थानमें आनकर उपस्थित होजाती है, और यह मुक्ति क्षणमात्रको भी तेरे वचनोंका उल्लंघन नहीं करती, और तैंने ज्ञान वैराग्यको अपना पुत्र समझकर अपने निकटही रक्खा है ॥ ११ ॥ और कलियुगमें दुराचारियोंके त्याग करनेसे यह तेरे दोनों पुत्र अत्यन्त वृद्ध होगये हैं परन्तु तौभी तू कुछ चिन्ता और शोच मतकर, इनके लिये मैं कुछ उत्तम उपाय विचारताहूँ ॥ १२ ॥ हे भक्ति ! कलियुगके समान कोई उत्तमयुग नहीं है, उसमें तुझे मैं घर घर हर मनुष्यके हृदयमें स्थापित करूंगा ॥ १३ ॥ और सब धर्मोंका निरादरकर और महोत्सवोंको आगे धर जो मैं संसारमें तेरा प्रचार न करूं तो परमेश्वरका दास मुझको मत कहना ॥ १४ ॥ और जो कलिकालमें तेरे प्रेमी जीव होंगे और वह पापी दुराचारीभी होंगे तौभी देवमन्दिर ठाकुरद्वारोंमें नित्य प्रति जाया करेंगे ॥ १५ ॥ और जिनके हृदयमें तेरा वास होगा वहपुरुष पापी और कुकर्मी होनेपर भी कभी यमराजका दर्शन नहीं करेंगे, तेरी कृपासे वैकुंठलोककाही वास उनको मिलैगा ॥ १६ ॥ और तेरे माननेवाले महात्मापुरुषोंका, भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, असुर, कोई भी हाथ नहीं पकडसक्ता ॥ १७ ॥ जप, तप, व्रत, नियम, दान, पुण्य, वेद, ज्ञान कोई परमेश्वरको ऐसा वशमें नहीं करसक्ता जैसा कि त्रिलोकीनाथको तू वशमें करसक्तीहै, इसमें गोपियोंका और द्विजपत्नियोंका प्रमाण है, भक्ति करनेसे सहजहीमें मुक्त होगई ॥ १८ ॥ और युगोंमें सहस्रों जन्मके अनुष्ठान करनेसे मनुष्यकी भक्तिमें प्रीति उत्पन्न होती है कलियुगमें केवल भक्तिसेही भगवान् भक्तवत्सलका दर्शन होताहै ॥१९॥ जो भक्तिका अथवा भक्तजनोंका द्रोह करतेहैं वह लोग त्रिलोकीमें सदादुःखी रहते हैं, जैसे भक्तिकी निन्दा करनेसे दुर्वासा ऋषि बडे दुःखी हुयेथे ॥ २० ॥ तीर्थ, व्रत, योग यज्ञ, जप, ज्ञान, वैराग्य कथालापसे क्या है, एक भक्तिही मुक्ति देनेको बहुत है ॥ २१ ॥ सूतजी बोले, कि इसप्रकार नारदजीके मुखसे अपनी प्रशंसा और माहात्म्यको सुनकर भक्ति सर्वांगपुष्ट सन्तुष्ट हो नारदजीके सम्मुख खडी होकर ॥ २२ ॥ बोली कि हे देवर्षि ! तुमको धन्य है तुम्हारे चरणारविन्दमें मेरी दृढप्रीति है, सो मैं कभी त्याग न करूंगी. सदा अपने चित्तमें धारण किये रहूंगी ॥ २३ ॥ हे महात्मन् ! आपने मुझपर कृपाकरके मेरी सब बाधा क्षणमात्रमें दूर करदी, और मुझको धैर्य बँधाया परन्तु अभी मेरे पुत्रोंको चैतन्यता नहीं हुई अबतक अचेत पडेहैं, कृपाकरके इनको भी जगाओ जो मेरा हृदय ठण्ढा हो ॥२४॥ सूतजी बोले, कि, हे ऋषियो ! दयालु नारदजी भक्तिके मधुर वचन सुनकर सहज सद-

जमें हाथसे सहराकर ज्ञान वैराग्यको जगाने लगे ॥ २५ ॥ जब सहरानेसे ज्ञान वैराग्य न जागे तब कानके समीप मुखकरके नारदजीने उच्चस्वरसे पुकारा, अरे ज्ञान ! शीघ्र जाग, अरे वैराग्य ! शीघ्रउठ, जब जगानेसे उन दोनोंने अपने नेत्र खोले, तब नारदजीने ॥ २६ ॥ वेद वेदान्तके शब्द और बारंबार भगवद्गीताके पाठ उनको सुनाये तब वह बलपूर्वक बडी कठिनाईसे उठे ॥ २७ ॥ आँखें मीचेही मीचे बडे आलस्यसे जँभाई लेने लगे, बगलेके समान श्वेतबाल होरहेथे सूखेकाष्ठके सदृश शरीर सूख रहाथा ॥ २८ ॥ भूखके मारे क्षीण होनेके कारण वह फिर सोगये, जब उनकी यह दशा देखी तब तो नारदजी बहुत चिन्ता करनेलगे, अब मैं क्या उपाय करूं ॥ २९ ॥ यह दोनों क्यों नहीं उठते इनकी यह घोरनिद्रा किसप्रकार जायगी, इसी भाँति विचार करते २ नारदजी श्रीगोविंद भगवान्के चरणारविन्दका ध्यान करनेलगे ॥ ३० ॥ उससमय आकाशवाणी हुई कि हे तपोधन ! खेद मतकरो तुम्हारा उद्यम सफल होगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ॥ ३१ ॥ हे देवर्षि ! इनके लिये सत्कर्मका आरम्भकरो और संतोंके भूषण महात्मा पुरुष सत्कर्म आपसे कहैंगे,विना सत्कर्म यह नहीं जागेंगे ॥३२॥ सत्कर्मके करनेमात्रसे ही इन दोनोंकी निद्रा और वृद्धता जाती रहैगी और सब संसारमें भक्तिका प्रकाश होजायगा॥ ॥ ३३ ॥ यह आकाशवाणी उन सबने सुनी, नारदजीने कहा यह क्या बात है मैं अबतक नहीं समझा मुझको बडा आश्चर्य है ॥ ३४ ॥ फिर नारदजी बोले, कि इस आकाशवाणीका प्रयोजन मैंने नहीं जाना, इसने भी गुप्तरूपसे ही कहा सो वह कौनसा साधन है, जिससे इन दोनोंका कार्य सिद्धहो ॥ ३५ ॥ वह संतलोग कहाँ होंगे और साधन किस प्रकार होगा, जो आकाशवाणीने कहाहै उसको मैं किसप्रकार करूं ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले, कि, नारदजीने इसी शोच विचारमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको उसी स्थानपर छोडकर और वहाँसे साधुवोंकी खोजमें प्रत्येक तीर्थोंमें जा जाकर ऋषि मुनियोंसे बूझा ॥ ३७ ॥ सबने उनका वृत्तान्त सुना परन्तु किसीने निश्चय करके उत्तर नहीं दिया, कोई बोला असाध्य है, किसीने कहा तुम्हारा प्रश्न हमारी समझमें नहीं आता ॥ ३८ ॥ कोई सुनकर चुप होरहा, कोई सुनतेही चलदिया, इसप्रकार त्रिलोकीमें महाविस्मयदायक बडा हाहाकार मचा परन्तु किसीने कोई यत्न न बताया ॥ ३९ ॥ वेद वेदान्त और बारंबार गीताके पाठ सुननेसेभी, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका तिगड्डा न जागा तो ॥ ४० ॥ इससे अधिक और कौनसा उपाय है यह वार्त्ता मनुष्य कानों कानोंमें कहनेलगे, और जहाँ जाओ वहाँ यही चर्चा थी, कोई कहता था, कि हे भाई ! नारदसे योगिराजकी बुद्धिमें भी तो यह बात नहीं आई ॥ ४१ ॥ तो इतर मनुष्य इस बातको किस प्रकार कहसक्ते हैं, यह दुर्गमवार्त्ता ऋषियोंने निश्चयकरके नारदजीसे कही ॥ ४२ ॥ तब नारदमुनि चिन्तातुर होकर बद्रिकाश्रममें आये, और यह अपने मनमें निश्चय किया कि, यहाँ तप करूंगा ॥ ४३ ॥ उसी समय सनकादिक मुनि कहींसे घूमते घामते नारदजीके सन्मुख आगये, जिनकी कोटिसूर्यके समान कान्ति देखकर मुनिश्रेष्ठ महाभाग्य भक्त-

भूषण॥४४॥ नारदजी बोले कि हे मुनिसत्तम ! इससमय बडे भाग्यसे आपका दर्शन हुआ है, हे कुमारो ! मेरे ऊपर कृपाकरके तुम शीघ्र कहो ॥ ४५ ॥ क्योंकि तुम सब बुद्धिमान् शास्त्रवेत्ता, योगिराज हो, सदा पाँचवर्षके बने रहते हो, और सबसे पहिले आप उत्पन्न हुए हो ॥ ४६ ॥ सदा वैकुंठमें रहकर भगवान् वासुदेवके गुणानुवाद गाते हो और भगवत् लीलारूपी अमृतरससे मत्त केवल एककथा मात्रसेही जीतेहो ॥ ४७ ॥ " हरिः शरणम् " अर्थात् परमात्मा रक्षक हैं, यही वचन आपके मुखसे सदा निकलता है, इसकारण वृद्धपन आपको बाधा नहीं करता ॥ ४८ ॥ पहिले नारायणके जय, विजय नामक दो द्वारपाल आपके भ्रूभंग मात्रसेही पृथ्वीपर गिरे, और फिर आपकी कृपासे शीघ्र वैकुण्ठको गये ॥ ४९ ॥ कोई मेरा बडाही भाग्यका उदय है जो आपका दर्शन हुवा, आपसे दयालुओंको मुझ दीनपर दया करनी चाहिये ॥ ५० ॥ और जो कुछ आकाशवाणीने कहा है वह क्या साधन है, सो आप कृपाकरके मुझको बताओ और कैसे उसका अनुष्ठान करना चाहिये, सो आप विस्तारपूर्वक मुझसे कहो ॥ ५१ ॥ और भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको किसप्रकारसे सुख प्राप्त होगा, और सब वर्णोंमें किसप्रकारसे प्रेमपूर्वक उनका प्रचार और स्थापन होगा ॥ ५२ ॥ सनत्कुमार बोले, कि हे देवर्षि ! तुम इस शोक संतापको छोडो कुछ चिन्ता मतकरो प्रसन्न होओ, इसका उपाय सुखसाध्य पहिलेसेही है ॥ ५३ ॥ हे नारद ! तुम धन्य हो, विरक्तोंके शिरोमणि हो,श्रीवृन्दावनविहारीके दासोंमें तुम अग्रणी हो, भक्तोंके भूषण हो, योगके मार्त्तण्ड हो ॥ ५४ ॥ भक्तिके लिये परिश्रम करना यह आपमें कुछ विचित्रवार्त्ता नहींहै श्रीकृष्णके दासोंको तो सदा भक्तिकी स्थापना करनी उचितही है ॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंने संसारमें धर्म कर्मके अनेकमार्ग प्रगट किये हैं परन्तु वह सब श्रमसाध्य हैं और स्वर्गका फल देनेवाले हैं॥५६॥ और जो वैकुण्ठसाधक पंथ हैं वह अत्यन्तगुप्त हैं उसके उपदेशक और मार्ग बतानेवाले गुरु भाग्यसे ही मिलते हैं ॥ ५७ ॥ और जो पूर्व आकाशवाणीने तुमको सत्कर्मका उपदेश किया है सो स्थिरचित्त करके सुनो, हम आपके सन्मुख कहते हैं ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, (वेदका पढना) ज्ञानयज्ञ यह सब कर्मफल स्वर्गादिक देनेवाले हैं ॥ ५९ ॥ परन्तु सत्कर्मके जतानेवाले पण्डितोंने ज्ञानयज्ञ कहा है, वह ज्ञानयज्ञ श्रीमद्भागवत है जो श्रीशुकदेवादिक महात्माओंने गाया है ॥६०॥ उसके सुननेसे भक्ति, ज्ञान,वैराग्यका बल बढैगा और दोनोंका कष्ट क्षणमात्रमें दूर हो जायगा, और भक्तिको भी अधिक सुख मिलैगा ॥ ६१ ॥ श्रीमद्भागवतके उच्चारणमात्रसे कलिकालके सब दोष इसप्रकार नाश होजाँयगे जैसे सिंहके शब्दसे भेडिये, शृगाल, वन छोडकर भागजाते हैं ॥ ६२ ॥ तब ज्ञान, वैराग्य की हितकारिणी प्रेमरस वर्षानेवाली भक्ति घर घर मनुष्योंके हृदयमें क्रीडा करैगी ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले जब कि वेद वेदान्तके शब्दसे और भगवद्गीताके पाठसे भी भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका त्रिक नहीं जागा ॥ ६४ ॥ तो श्रीमद्भागवतके आलापसे कैसे चैतन्यताको प्राप्त होगा, उस कथामें भी तो श्लोक श्लोकमें पद पदमें

वेदार्थही है ॥ ६५ ॥ हे अमोघदर्शन ! आपलोग यह मेरा सन्देह दूर कीजिये, हे शरणागतवत्सलो ! इसमें विलम्ब मतकरो ॥ ६६ ॥ सनतकुमार बोले, कि वेदोपनिषदके सारसे श्रीमद्भागवतकी कथा हुई है, इसलिये पृथकभूत हुई, और उत्तम उत्तम फलोंकी बढानेवाली होगई है ॥ ६७ ॥ जैसे मूलसे लेकर अग्रभाग तक रसवाली वस्तुमें वह रस उतना स्वादिष्ठ नहीं होता जितना कि वही रस पृथक् फलमें होकर विश्वमनोहररूप होता है॥ ६८॥ जैसे दूधमें स्थित घृत ऐसा स्वादिष्ठ नहींहोता जैसा कि पृथक् होकर वह स्वादिष्ठ देवताका रसवर्द्धक होता है ॥ ६९ ॥ जैसे खांड गन्नेमें सर्वत्र व्यापक रहती है परन्तु वह पृथक् होकर औरभी स्वादु हो जाती है और अधिकमीठी लगती है इसीप्रकार श्रीमद्भागवतकी कथा है ॥ ७० ॥ यह सर्ववेदसम्मत श्रीमद्भागवतपुराण ज्ञान वैराग्यके स्थापन करनेहीके लिये संसारमें प्रकाश कियाहै ॥७१॥ वेद वेदान्तके पारगामी भगवद्गीताके कर्त्ता श्रीव्यासजीमहाराज अज्ञानसागरमें मोहित हो दुःखको प्राप्तहुए ॥ ७२ ॥ तब तुमने व्यासजीको धैर्य दिया और जो चतुःश्लोकी भागवत श्रीनारायणने ब्रह्माको उपदेश किया, और ब्रह्माजीने तुमको पढाया, वही चतुःश्लोकी भागवत आपने व्यासजीसे कही, जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल व्यासजीका दुःख दूर होगया ॥ ७३ ॥ फिर तुमको इसमें क्या सन्देह है और क्यों यह संशय तुमको प्राप्तहुवा जो बारम्बार प्रश्न करतेहो ? उसी भागवतके चार श्लोकोंको व्यासजीने विस्तारपूर्वक रचकर अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढाया अब उसी संकटहरणी आनन्दकरणी शोकनाशिनी श्रीमद्भागवतका पाठ साधनसहित, ज्ञान वैराग्यको सुनाओ ॥ ७४ ॥ नारदजी बोले, कि जिसका दर्शन अशुभकर्मोंका दूर करनेवाला और संसारके दुखारियोंका दुःख दूर करनेवाला, कल्याणकारी और संतापहारी है, सम्पूर्ण शेषजीके मुखोंसे गाईहुई कथाके रसिक जनोंके प्रेमसे, प्रकाश करनेवाले भगवान्‌की मैं शरणहूं ॥ ७५ ॥ बहुत जन्मके भाग्य उदय होनेसे मनुष्यको महात्माओंके सत्संगकी प्राप्ति होतीहै तब अज्ञानकृत मोह मदके अन्धकारका नाशहोकर ज्ञान वैराग्य उदय होताहै ॥ ७६ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां शालिग्रामवैश्यकृते सनतकुमारनारदमुनिसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–इस तृतीय अध्यायमें, सप्ताह कथा सुनाय।
भक्ति ज्ञान वैराग्यको, सब दुख दियो मिटाय ॥ ३ ॥

नारदजी बोले कि हे दयासागर ! अब मैं यत्नपूर्वक भक्ति, ज्ञान, वैराग्यके स्थापनके लिये शुकशास्त्रकी कथाका उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूंगा ॥ १ ॥ जहां यह महायज्ञ कियाजाय, आप उस उत्तम स्थानको बताओ वेदके जाननेवालोंमें शुकशास्त्रकी महिमा कहने योग्य कौन है ॥ २ ॥ और यह श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंतक सुननी चाहिये और उसमें क्या क्या विधानहै सो मुझसे आप कृपाकरके कहिये ॥ ३ ॥ सनतकुमार

बोले, कि हे नारदजी ! सावधान होकर सुनो, हम नम्रीभूत ज्ञानवाले आपसे कहते हैं गंगाद्वारके निकटही आनन्द नाम तट है ॥ ४ ॥ अनेक ऋषिगणोंसे युक्त देवता सिद्धोंसे सेवित अनेक वृक्ष लताओंसे संघटित नवीन कोमल वालुकासे शोभित ॥ ५ ॥ बडा मनोहर रमणीक एकान्तस्थान सुवर्णके आकारवाले कमलोंकी सुगंधसे परिपूर्ण है, जिसके समीपके रहनेवाले जीवोंके मनमें वैर नहीं होता ॥ ६ ॥ उस स्थलमें तुमको अप्रयत्न होकर ज्ञानयज्ञ करना चाहिये, और उसी स्थानपर परम अपूर्व रस रूप युक्त कथा होनी योग्य है ॥ ७ ॥ और आगे निर्बल जराजर्जरित देहके ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सहित वहाँपर हम भी आवेंगे ॥ ८ ॥ जहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, तहाँ भक्ति आदिक सब जाते हैं और कथा शब्द श्रवणसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का त्रिक करुणायुक्त होता है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले, कि, इसप्रकार वार्त्तालाप करके चारोंकुमार नारदजीके साथही कथामृतपान करनेको उसीसमय गंगाके तीरको चलदिये ॥ १० ॥ जब गंगाजीके निकट वह पहुंचे तब यह कवित्त पढा ॥

कवित्त-कीरति कहै हैं सबदेव करजोर तेरी, बनिता अन्हान दौरैं पाँयन सुरेशकी। गावैं गुण केते हम देखे जग तेते पर, पावत न पार वाणी पावन गणेशकी। कौन विधि उपमा कहँहिं शेष शोचैं मन तेरीही तरंगैं त्रास मेटत यमेशकी। जप माला योगिन गुमान माला ज्ञानिनकी ध्यानमाला ध्रूकी मौलि माला है महेशकी ॥ १ ॥

इनके जानेसे बडा कोलाहल हुवा, भूलोकमें, देवलोकमें और इसप्रकार ब्रह्मलोकतक कोलाहल मचगया ॥ ११ ॥ और श्रीमद्भागवतरूपी अमृतके पान करनेको जो वैष्णव-लोग थे वह चारोंओरसे दौडे ॥ १२ ॥ भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथी, देवल देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेय,अत्रिके पुत्र दत्तात्रेय, पिप्पलाद ॥ १३ ॥ योगेश्वर याज्ञवल्क्य, जैगीषव्य, व्यास, पराशर, छाया, शुक, जाज-लि, जह्नु यह मुख्य मुख्य ऋषिगण पुत्र पौत्र शिष्य स्त्रियों समेत प्रणयपूर्वक आये ॥ ॥ १४ ॥ और वेद, वेदान्त, वेदमंत्र, तंत्र अपनी अपनी मूर्ति धारणकर चले आते थे, इसीप्रकार सत्रह पुराण छः शास्त्र भी आये ॥१५॥ फिर गंगा यमुना सरस्वती आदिक नदियें पुष्करादि सरोवर और सब क्षेत्र दिशा दण्डकादि वन ॥ १६ ॥ पर्वतादिक सब आये, और गन्धर्व, देवता, दानव, किन्नर, यक्ष, नाग शरीरके गौरवसे नहीं आये, उनको आदर सन्मान सहित ब्रह्माजीके पुत्र भृगुजी बुलालाये ॥ १७ ॥ और आसन देदेकर सबको बैठाया तब नारदजीसे दीक्षित हो दियेहुए उत्तम आसनपर कृष्णकथामें तत्पर सबसे नमस्कृत हो सनत्कुमार बैठे ॥ १८ ॥ वैष्णव, विरक्त, संन्यासी ब्रह्मचारी, यह मुख्यभागमें स्थितहुए, और सबके आगे नारदजी बैठे ॥ १९ ॥ एक भागमें ऋषिगण, एकभागमें देवता और एकस्थानमें वेद उपनिषद, एकस्थानमें तीर्था-दिक, और एकस्थानमें स्त्रियें बैठीं ॥ २० ॥ तब चारोंओरसे जय जय शब्द नमःशब्द

और शंखध्वनि होनेलगी, और चूर्ण, खीलैं, और पुष्पोंकी वर्षा हुई ॥ २१ ॥ कितने तो देवनायक विमानोंमें बैठे आकाशसे फूलोंकी वर्षा करनेलगे और सब अपने अपने मनोंमें यह विचार कररहेथे कि देखिये सनत्कुमारजी कब कथाका आरम्भ करैं ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार सबके एक चित्त होकर बैठनेमें नारदजीके निमित्त सनत्कुमारने भागवतमाहात्म्य कहना प्रारम्भ किया ॥ २३ ॥ सनत्कुमार बोले, कि हम तुमको वह कथा सुनाते हैं जो व्यासनंदन शुकदेवजीसे उत्पन्नहुई श्रीमद्भागवत है, जिसके श्रवण मात्रसे श्रीकृष्णचन्द्र चित्तमें प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ इस ग्रन्थमें अठारहसहस्र श्लोक और बारह स्कन्ध हैं और यह वह भागवत है जो श्रीशुकदेवजी महाराजने राजा परीक्षितसे कहीथी, वह श्रीमद्भागवत हम आप लोगोंको सुनाते हैं आप सावधान होकर सुनिये ॥ २६ ॥ पुरुष अज्ञानसे तबतक इस संसारचक्रमें भ्रमता है जबतक शुकशास्त्रकी कथा क्षणमात्रको कर्णगोचर नहीं होती ॥ २७ ॥ बहुतसे शास्त्र और भ्रमानेवाले पुराणोंके सुननेसे क्या है एक श्रीमद्भागवतही मुक्तिदान करनेमें बहुत है ॥ २८ ॥ जिसके घरमें नित्य श्रीमद्भागवतकी कथा होतीहै वह घर तीर्थरूप है वहां रहनेवालोंके सम्पूर्ण पाप नाश होजाते हैं ॥ २९ ॥ सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ शुकसागरकी कथाकी सोलहवीं कला भी नहीं हैं ॥ ३० ॥ हे महात्मा पुरुषो ! तबतक ही इस शरीरमें पाप निवास करता है जबतक मनुष्य मनलगाकर भागवतकी कथा नहीं सुनते ॥ ३१ ॥ शुकसागरके फलकी समता, गंगा, गया, काशी, प्रयाग, पुष्कर भी नहीं करसक्ते ॥ ३२ ॥ जो जन मुक्तिकी इच्छा रखते हों तो नित्यही अपने मुखसे एक आधा चौथाई श्लोक श्रीभागवतका उच्चारण किया करें ॥ ३३ ॥ वेदादि ओंकार, वेदमाता गायत्री, पुरुषसूक्त, ऋक्, यजुः, साम तीनों वेद भागवत पुराण "ॐ नमोभगवते वासुदेवाय" द्वादशाक्षरमंत्र ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा सूर्य प्रयाग सम्वत्सरात्मक काल ब्राह्मण अग्निहोत्र कामधेनु द्वादशी ॥ ३५ ॥ तुलसी वसन्तऋतु पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इनको बुद्धिमान् तत्त्वसे पृथक् पृथक् भाव नहीं देखते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष भागवत पुराणको अर्थ सहित पढते हैं, उनके कोटिजन्मके पाप क्षणमात्रमें नष्ट होजाते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३७ ॥ जो कोई श्रीमद्भागवतका आधा चौथाई श्लोक प्रीतिसहित प्रतिदिन पढते हैं, उनको राजसूय अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ नित्यप्राति भागवतका कथन नारायणका कीर्त्तन, तुलसीका पोषण, गौओंका सेवन समान है ॥ ३९ ॥ अन्तकालमें जिसने शुकसागरकी वाणी श्रवण करी है उसको श्रीवैकुण्ठनाथ प्रसन्नहोकर वैकुण्ठका वास देते हैं ॥ ४० ॥ जो जन श्रीमद्भागवतका पुस्तक सुवर्णके सिंहासनपर धरकर वैष्णवके निमित्त प्रदान करते हैं, वह पुरुष निःसन्देह श्रीनारायणकी सायुज्यपदवीको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ जिस मूर्खने जन्मसे अन्ततक मनलगाकर सुधारूपी शुकसागरकी कथाका पान नहीं किया उसने चाण्डाल और खरकी नाईं अपना जन्म वृथा खोया और उत्पन्न होकर अपनी माताको वृथा कष्ट दिया ॥ ४२ ॥ जिसने

कभी शुकसागरकी कथाका कोई वचन नहीं सुना वह पापकर्मा जीताही मृतक समान है उस पशुवत् पृथ्वीपर भाररूप मनुष्यको धिक्कार है ऐसा ब्रह्मादिक देवता कहते हैं ॥ ॥ ४३ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा संसारमें मनुष्योंको महादुर्लभ है, कोटिजन्मके प्राप्तहुए पुण्योंसे यह भगवतूरूपी कथा प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥ इसलिये हे योगनिधान ! बुद्धिमान् महात्माजनो ! यह कथा यत्नपूर्वक सुननी चाहिये, इसमें किसी दिनका नियम नहीं है सदा सुनै ॥ ४५ ॥ सत्य और ब्रह्मचर्य सहित यह कथा नित्यप्रति सुने अशक्य होनेसे कलियुगमें शुकआज्ञासे विशेषता कहीहै ॥ ४६ ॥ मनकी वृत्तियोंका जीतना नियमाचरण करना दीक्षा करनेमें अशक्य होतो सप्ताह सुनना श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ नित्य श्रद्धापूर्वक माघमासमें कथा सुननेसे जितना फल होता है वही फल सप्ताहपारायणके सुननेमें होताहै ॥ ४८ ॥ मनके अजय होनेसे रोग होनेसे और आयुके क्षय होनेसे और कलियुगके अनेक दोष होनेसे सप्ताहका सुनना बहुत श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ जो फल तप योग समाधिसे नहीं होता है सो फल अनायास सप्ताहके सुननेसे होताहै ॥ ५० ॥ यज्ञसे, व्रतसे, दानसे, पुण्यसे, संयमसे, नियमसे, तपसे, तीर्थोंसे सप्ताहयज्ञ नित्य बलवान् है ॥ ॥ ५१ ॥ योगसे समाधिसे, ज्ञानसे, ध्यानसे, सप्ताह बलवान् है उसकी बलवंतताको हम क्या कहैं, वह सबके ऊपर अररर करके गर्जता है, जबतक भागवत नहीं सुनी तबहीतक व्रतादिक हैं इसके सुननेके उपरान्त और कुछ नहीं, क्योंकि इसीके अन्तरमें सब आजाते हैं ॥ ५२ ॥ शौनकजी बोले, कि हे महाभाग्य ! यह बडे आश्चर्यका कथानक सुनाया कि ज्ञान धर्मादिकोंको तिरस्कार करके अब परब्रह्मका सूचक श्रीभागवतपुराण मोक्ष देनेवाला है सो अवश्य सुनाओ ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले कि, जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द पृथ्वीको त्यागकर अपने निजधामको जानेलगे उस समय एकादशस्कन्धके कहेहुए ज्ञानको सुनकर ॥ ५४ ॥ उद्धवजी बोले, कि हे भगवन् ! आप तो भक्तोंका कार्यकरके वैकुण्ठलोकको जाते हो, मेरे मनमें बडी चिन्ता है उसको सुनकर मुझे समझाकर सुखी करो ॥ ५५ ॥ यह महाघोर कलियुग आता है इसमें बडे बडे दुष्ट और दुराचारी उत्पन्न होंगे उनके संगसे साधुसंत भी जब उग्रताको प्राप्त होंगे ॥ ५६ ॥ तब यह गोरूप भूमि भाराक्रान्त होकर किसका आश्रय करेगी हे दीनानाथ ! तुम विना इसका कोई रक्षक नहीं है ॥ ५७ ॥ इसलिये हे भक्तवत्सल ! हे अन्तर्यामी ! हे पुरुषोत्तम ! सत्पुरुषोंके ऊपर दयाकरके मतजाओ, हे आदिपुरुष अविनाशी ! निराकार चिन्मय आपने भक्तोंहीके कारण सगुण रूप धारण किया है ॥ ५८ ॥ हे आनन्दवल्लभ ! तुम्हारे वियोगसे तुम्हारे भक्त संसारमें कैसे रहैंगे, और दैत्य दानवोंसे कौन इनकी रक्षा करैगा ॥

कवित्त–आते कलियुगके ही धर्मकी मर्याद मिटै, दुष्टजन गायें और विप्रोंको सतावेंगे। जीतोंका शराद्ध करो पितरोंको मानोमत, शालिग्राम ढेला नदी गंगाको बतावेंगे। शास्त्र औ पुराणोंको वे झूँठा कहैं

बारंबार, अद्भुत पाखण्ड खण्ड खण्डमें फैलावैंगे। ऐसे ऐसे अत्याचार होंगे जब पृथ्वीपर, कृष्ण कृष्ण कह किसे हम बुलावैंगे ॥ १ ॥

हे नाथ! उससमय निर्गुण उपासनामें बडा कष्ट होगा, क्योंकि सगुण उपासनावालोंसे निर्गुण उपासना नहीं होती, इसलिये कुछ उपाय विचारिये और हम लोगोंकी ओर कृपा दृष्टिसे निहारिये ॥ ५९ ॥ ऐसे अपने मित्र उद्धवके दीन वचन सुनकर भगवान् भक्तहितकारी श्रीवैकुण्ठविहारी प्रभासक्षेत्रमें विचार करनेलगे कि, भक्तोंके अवलम्बनके लिये मुझे क्या करना चाहिये ॥ ६० ॥ यह शोच समझ उद्धवसे कहा हे प्राणप्यारे! जो कुछ मुझमें तेज था वह अपना तेज तो मैंने श्रीमद्भागवतमें धरदिया है, उसीको मेरा शरीर समझकर पूजना, इतना कह अन्तर्धान होकर श्रीमद्भागवतरूपी शुकसागरमें प्रवेश करगये ॥ ६१ ॥ इसलिये यह श्रीकृष्णकी वाणीरूप प्रत्यक्ष मूर्ति है, सेवन, श्रवण, पाठ, दर्शन, करनेसे सब पाप दूर करती है ॥ ६२ ॥ इसलिये सबसे अधिक फल सप्ताह सुननेका कहा है और सब साधनोंका तिरस्कार करके कलियुगमें यह उत्तम धर्म कहा है ॥ ६३ ॥ दुःख, दरिद्र, दुर्भाव और पापके धोनेके लिये, काम क्रोधकी जयके कारण कलियुगमें यही धर्म परमोत्तम है ॥ ६४ ॥ अथवा जो वैष्णवी माया देवताओंको भी दुस्तर है सो मनुष्योंको कैसे त्यागन होगी इसलिये सप्ताहविधि कही है ॥ ॥ ६५ ॥ सूतजी बोले कि, इसप्रकार जब ऋषियोंने सप्ताहधर्म सुननेका बडा प्रकाश किया तब एक बडा आश्चर्य उस समय हुआ सो हे शौनकजी तुम सुनो ॥ ६६ ॥ जब सभामें लाखों ऋषीश्वर मुनीश्वर आय आनकर बैठे उस समय भक्ति भी अपने दोनों तरुण हुए ज्ञान वैराग्य पुत्रोंको संग लेकर शीघ्र प्रेमके मारे सभामें प्रगट हुई, और श्रीगोविन्द हरे मुरारे यह नाम बारंबार उच्चारण करनेलगी ॥ ६७ ॥ उस भागवतार्थभूषण सुन्दर वेष किये सभामें आई हुईको देखनेलगे, और सब यह कहनेलगे कि यह कैसे मुनिजनोंके मध्यमें आई, इसप्रकार सब परस्पर चर्चा करने लगे ॥ ६८ ॥ तब सनत्कुमार बोले कि, यह इससमय कथाही सुननेके लिये आई है, इसप्रकार वह भक्ति ज्ञान, वैराग्यसहित सनत्कुमारके वचन सुनकर बडी नम्रतासे बोली ॥ ६९ ॥ भक्ति बोली, कि कलियुगमें प्रनष्ट हुई मुझको कथारस सुनाकर पुष्ट किया अब मैं कहां रहूं सो बताओ? तब ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार उससे इस प्रकार बोले ॥ ७० ॥ हे गोविन्दके समान रूप धारण करनेवाली! हे भक्तहितकारिणी! हे संसारसंकटनिवारिणी! बडे बडे धैर्य धारण करनेहारे श्रीकृष्णके प्यारे वैष्णव भक्तोंके मनमें तू नित्यप्रति वासकर ॥ ७१ ॥ तो इस कलियुगके दोष तुझको देखनेको समर्थ न हों, इसप्रकार सनत्कुमारकी आज्ञामान जो जो नारायणके भक्त वहाँ बैठेथे उनके हृदयमें प्रवेश कर गई ॥ ७२ ॥ इस संसारमें वह निर्धन भी धन्य हैं जिनके हृदयमें भक्ति निवास करती है, भक्तिसूत्रसे वशीभूत हो भगवान् अपने लोकको छोडकर उनके हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥ ७३ ॥ इस ब्रह्मरूप

श्रीमद्भागवतका पृथ्वीपर हम क्या माहात्म्य कहैं जिसके कहने सुननेसे श्रोता वक्ता कृष्णके समान विभूतिको प्राप्त करते हैं फिर और धर्मोंसे क्या प्रयोजन है।

कवित्त-भागवत शास्त्र सदा भक्त सुख देनहारो, भागवत शास्त्र सब सिद्धोंका सदन है। भागवत शास्त्र सब सिद्धि नवनिधि दायक, भागवत शास्त्र भक्ति मुक्तिको भवन है ॥ भागवतसुने भागवंत होत नर नारि, भागवत पढे दुख दारिद दवन है। भागवत महिमा कौन वर्ण सकै शालिग्राम, भागवत शास्त्र साक्षात् वृन्दावन है ॥ १ ॥ ७४ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्यभाषाटीकायां शालिग्रामवैश्यकृत भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा-दुष्ट धुन्धकारी भयो, जैसे द्विजके गेह ।
सो चौथे अध्यायमें, मेटो सब सन्देह ॥ ४ ॥

सूतजी बोले, कि हे शौनकमुनि! वैष्णव लोगोंके चित्तमें अलौकिक भक्ति देख भगवान् भक्तवत्सल ॥ १ ॥ वनमाली, घनश्याम, श्रीवृन्दावनविहारी, पीतवस्त्र धारे, मनोहर वेषधारे, चन्दन केशरका तिलक दिये, मोर मुकुट धरे, त्रिभंगी छवि करे ॥ २ ॥ मकराकृत कुण्डल पहिरे, सुन्दर कौस्तुभमणि हियेमें विराजमान, कोटि कामदेवके समान शोभायमान, कटिमें किंकिणी पहिरे हुए ॥ ३ ॥ परमानन्द, चिन्मूर्ति, मधुर मुरली करलिये, भक्तोंके निर्मल मनोंमें प्रवेश करगये ॥ ४ ॥ जो वैकुण्ठ धामके रहनेवालेथे और जो वैष्णव उद्धवादिक थे वह सब गूढ रूपसे कथा सुननेको स्थित हुए ॥ ५ ॥ उस समय चारोंओर जय जय शब्द रसरूप श्रीमद्भागवतकी पुष्टि चूर्ण और पुष्पोंकी वृष्टि धूमधामसे होने लगी और बारम्बार शंखध्वनि महात्मा लोग करने लगे ॥ ६ ॥ उस सभामें जो जो ऋषीश्वर मुनीश्वर महात्मा पुरुष उपस्थित थे उनको अपने देह गेह और आत्माकी कुछ सुधि बुधि न रही सबकी तन्मय अवस्था देख देखकर नारदजी मधुरवाणीसे कहने लगे ॥ ७ ॥ हे मुनीश्वरो! आज इस जन समुदायमें मैंने सप्ताहकी अलौकिक महिमा देखी कि, जिसको सुनकर मूढ, शठ, पशु, पक्षी, तक भी सब निष्पाप होते हैं ॥ ८ ॥ इसलिये इस कलियुगमें चित्तके शुद्ध करनेको और पापके समूह हरनेको इसके समान पृथ्वीमें और कोई दूसरा उत्तम उपाय नहीं है ॥ ९ ॥ परन्तु यह आप मुझसे कहिये कि कथामय सप्ताहयज्ञसे कौन कौन विशुद्ध होते हैं, महात्माओंने लोकका हित विचारकर क्या कोई नवीन मार्ग स्थापित किया है ॥ १० ॥ सनत्कुमार बोले, कि जो मान देनेवाले पापात्मा व सदा दुराचारी, कुत्सितमार्गी, अपनी क्रोधाग्निसे आप जलनेवाले, कुटिल, कामी हैं वह भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जायँगे ॥ ॥ ११ ॥ सत्यहीन, माता पिताके दोषी, तृष्णासे व्याकुल, आश्रम धर्मसे वर्जित, जो पाखण्डी, घमण्डी, हिंसक भी हैं वह भी सप्ताहयज्ञसे कलियुगमें पवित्र होजायँगे ॥ १२ ॥

जिसके पाँच बड़े उग्र ताप हैं और छल छद्मकारी जो क्रूर पिशाचोंकी नाईं निर्दयी हैं जो ब्राह्मणोंका धन चुराचुरा कर पुष्ट होते हैं और जो व्यभिचारी हैं वह भी मलिन मन दुष्टात्मा कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र होजायँगे ॥ १३ ॥ और जो शठ हठपूर्वकमन वचन कर्मसे नित्य नये पाप करते हैं, पराया द्रव्य लेकर अपनी आतमा पोषण करते हैं, वह अत्याचारी कलियुगमें सप्ताह यज्ञसे पवित्र होजायँगे ॥ १४ ॥ यहाँ हम तुमसे एक पुरातन इतिहास वर्णन करतेहैं, जिसके सुननेसे पापोंका नाश हो जाता है ॥ १५ ॥ तुङ्गभद्रानदीके किनारे एक सर्वोत्तमनाम नगर था जिसमें चारोंवर्ण अपने अपने धर्मोंके सत्कर्मोंमें तत्पर थे ॥ १६ ॥ उसी नगरमें चार वेद षट् दर्शन अठारहपुराणोंका जानने-वाला आत्मदेवनामक एक ब्राह्मण श्रौतस्मार्त्त कर्मोंका पारंगत दूसरे सूर्य्यके समान निवास करता था ॥ १७ ॥ वह भिक्षावृत्ति करनेवाला होकर भी धनवान् था और उसकी स्त्रीका नाम धुन्धली महासुन्दरी सत्कुलोत्पन्ना सदा अपने वचनकी टेक रखनेवाली थी ॥ ॥ १८ ॥ लोकवार्त्तामें प्रीति करनेवाली क्रूरा बहुत बोलै बलवान् घरके कार्योंमें कृपण क्लेशकारिणी थी ॥ १९ ॥ इसप्रकार प्रेमपूर्वक उन दोनोंको रहते रहते आहार विहार करते बहुत दिन व्यतीत होगये,और कुछ अर्थ प्रयोजन काम सम्पन्न गृहादिक उनको सुखकारी न हुवा ॥ २० ॥ तब तो उन्होंने सन्तान उत्पन्न करनेके लिये अनेक उपाय किये, दोनोंने ब्राह्मणोंको गौ, भूमि और सुवर्ण देदेकर धर्म करना प्रारम्भ किया ॥ २१ ॥ जब कि उन दोनों स्त्री पुरुषोंने धर्ममार्गमें आधा धन लगादिया पर तो भी कोई बेटी बेटा न हुवा, तब ब्राह्मणको अत्यन्त चिन्ता हुई ॥ २२ ॥ तब वह ब्राह्मण घरसे निकल वनको चलदिया जब दुपहर हुवा तो प्यासके मारे व्याकुलहो एक सरोवरके निकट पहुँचा ॥ २३ ॥ और जल पीकर सन्तानके दुःखसे दुःखी हो वह वहीं बैठगया और अपने मनमें अनेक अनेक प्रकारसे विचार करने, लगा, दो घडी उपरान्त एक संन्यासी वहां आ निकला ॥ २४ ॥ जब वह महा, पुरुष जल पी चुका तब वह ब्राह्मण उसके समीप जा दण्डवत् कर उसके चरणारविन्दकी वन्दनाकर लम्बे लम्बे श्वास लेने लगा ॥ २५ ॥ यती बोला कि, हे ब्राह्मणदेवता ! तू क्यों रोता है ? और तेरे मनमें क्या चिन्ता है? और किसलिये अकेला वनमें विचरता फिरता है ? तू शीघ्र अपने दुःखका कारण कह ॥ २६॥ तब ब्राह्मण बोला कि, हे दीन-दयालु ! हे कृपासागर ! अपने सब पापोंसे संचित कियेहुये दुःखको आपसे कहताहूं, मेरे पूर्व पितर मेरे दियेहुये जलको गर्म गर्म श्वास भरकर पीतेहैं, कि आगेको कोई सन्तान नहीं इसके न होनेसे हमको जल नहीं मिलनेका ॥ २७ ॥ मेरे दियेहुये दानको प्रीति और सन्मानसे देवता और ब्राह्मण भी ग्रहण नहीं करते, मैं सन्तानके दुःखसे जडताको प्राप्त हो प्राणत्यागन करनेके लिये यहाँ आयाहूं ॥ २८ ॥ सन्तानके विना संसारमें जीनेको धिक्कार है। विनासन्तानके घरको धिक्कार है, पुत्रहीनके धनको धिक्कार है,अपुत्रके कुलको धिक्कार है ॥ २९ ॥ और मैं ऐसा भाग्यहीन हूं कि जो मैं गाय भी पालताहूं तो वह भी

वन्ध्या होजाती है, और जो मैं वृक्ष लगाताहूं तो वह भी नहीं फलता ॥ ३० ॥ जो फल कहींसे मेरे घर आता है वह भी मेरे भाग्यसे सूखजाता है तो मुझ मन्दभागी पुत्र-हीनका जीना जगतमें व्यर्थ है ॥ ३१ ॥ ऐसे शोक सन्ताप भरे वचन कहकर वह ब्राह्मण उस संन्यासीके समीप बैठकर उच्चस्वरसे बडेविलाप कर करके रोनेलगा, तब उस महात्मा साधुके मनमें बडी दया आई ॥ ३२ ॥ वह संन्यासी उस ब्राह्मणके मस्तककी रेखा देख अनेक प्रकारके विचार करके ॥ ३३ ॥ बोला, कि हे ब्राह्मण ! सन्तान-रूपी अज्ञानको त्यागनकर, तेरी प्रारब्धमें सन्तान नहीं लिखी, कर्मकी गति बडी बलवान् है कोई जान नहीं सक्ता, अब तू ज्ञानके आश्रित हो संसारकी वासनाको परित्यागकर ॥ ३४ ॥ क्योंकि इससमय मैंने तेरे भाग्यको सब प्रकारसे विचारकर देखा, परन्तु सात वर्षतक तेरेपुत्र होनेकी आशा नहीं ॥ ३५ ॥ देखो ! सन्तानके होनेसे सगर, और अंग-राजाने कैसे कैसे दुःख पाये क्या उनका इतिहास तैंने नहींसुना, अरे मूर्ख ! पुत्र पौत्रोंमें क्या रक्खा है ? यह सब संसार स्वप्नकेसी माया है न कोई किसीका पुत्र है न कोई किसीका पिता है, सब अपने अपने प्रयोजनके हैं, अन्तसमय विना परमेश्वरके भजनके और कुछ काम नहीं आता, और पुत्रादिकमें मन लगानेसे नारायणका भजन नहीं बनता और उसकी ममतामें फँसकर नरक भोगना पडताहै, इसलिये हे ब्राह्मण ! तू पुत्रादि-कोंकी आशा छोडकर संन्यास धारणकर जिसमें सर्वथा सुख मिले ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण बोला, कि हे कृपासिन्धु ! मुझे ज्ञान ध्यानसे कुछ प्रयोजन नहीं जैसे तैसे एक पुत्र मुझको दीजिये, नहीं तो मैं तुम्हारे आगेही अपने प्राणोंका घात करके मरजाऊँगा ॥ ३७ ॥ पुत्रादिक सुखविना यह संसार सभी वृथाही है, गृहस्थ जो पुत्र पौत्र संयुक्त हैं वही लोकमें प्रसन्न हैं ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणकी यह दशा देख तपस्वी फिर उसको समझाने लगा, कि हे ब्राह्मण ! विधिके अंक मिटानेसे चित्रकेतुकी कैसी दुर्दशा हुईथी, इसलिये प्रार-ब्धका अतिक्रमण नहीं करना ॥ ३९ ॥ जैसे दैवहीन होनेसे उद्यम वृथा होता है, इसी-प्रकार पुत्रसे तुझे कुछ सुख प्राप्त नहीं होगा, इसकारण तुझ हठीले अपस्वार्थीसे मैं कहूं-हूं ॥ ४० ॥ " ब्राह्मण बोला कि आप जितनी बातें ज्ञान ध्यानकी कहते हैं वह मेरे हृदयमें बाणके समान लगती हैं, और यह योगकी कथा मेरे मनको नहीं भाती । अब आप कृपाकरके कोई ऐसा उत्तम उपाय बताइये जिससे मेरे सन्तान हो" उस ब्राह्मणका अत्यन्तआग्रह देखकर तपस्वीने उस ब्राह्मणको एक फल दिया, और यह कहा कि तू यह फल अपनी स्त्रीको खिला दे परमेश्वरकी इच्छा हो तो तेरे एक पुत्र होगा ॥४१॥ सत्य, शौच, दया, दान पूर्वक रहने दुपहरके उपरान्त एक अतिथिको भोजन कराके पीछे आप भोजन किया करैं, इसप्रकार एक वर्षतक वह स्त्री अपने धर्म कर्मसे शुद्ध और चैतन्य रहेगी तो एक श्रेष्ठपुत्र होगा ॥ ४२ ॥ यह वचन कह वह महात्माजी तो कहींको चल-दिये, और वह ब्राह्मण देवता अपने घर आया, और वह फल अपनी भार्याको देकर उसका विधान बताया और कहा इसके खानेसे तेरे एक महातेजस्वी स्वरूपवान् पुत्र

होगा, यह कह वह ब्राह्मण तो अपने किसी कामको चलागया ॥ ४३ ॥ उसकी तरुणी कुटिल तो थीही उसके निकट उससमय एक सखी कहींसे आगई, तब वह ब्राह्मणी अपनी सहेलीके सम्मुख रुदन करने लगी और कहने लगी कि, हे प्यारी ! आज मुझे बडी चिन्ता उत्पन्न हुईहै क्योंकि आज मेरे स्वामीने मुझको पुत्र होनेके लिये यह फल दिया है, सो इस फलको मैं कभी नहीं खाऊंगी ॥ ४४ ॥ फल खानेसे गर्भ रहैगा फिर पेट बढेगा थोडा भोजन करनेसे शरीर निर्बल होजायगा तो घरके काम काजमें बाधा होगी ॥ ४५ ॥ कहीं भाग्यसे गाँवमें आग लगजाय तो गर्भिणीका भागना महाकठिन है तोतेकी नाईं रहते हुये गर्भको कोखसे कैसे त्यागन करै ॥ ४६ ॥ और जो कहीं दैव-इच्छासे गर्भ टेढा पडगया तो वृथा प्राण जांयगे। मैंने सुना है बालक होनेके समय बडा कष्ट होता है, वह सुकुमारी स्त्री नहीं सहसक्ती ॥ ४७ ॥ जो इस दुःखसे मुझ मन्दभागिनीका मरण होगया तो मेरे सर्वस्व धनको ननँद हरण करलेगी और फिर सत्य शौचादि नियम मुझे दुःसाध्यही दीखै हैं ॥ ४८ ॥ फिर बालकके लालन पालनमें बडा दुःख होता है, शरीरका सबसुख जातारहता है, गीलेमें आप सोना पडता है, सूखेमें बालकको सुलाना पडता है, जाडे पालेमें ठण्ढा पानी छूना पडता है, प्रसूतआदिक रोगका चित्तमें नित्य खटका लगारहता है,इन बाधाओंसे तो वन्ध्या और विधवा नारी अच्छी जो यह दुःख कभी देखनेहीमें न आवै ॥ ४९ ॥ ऐसी ऐसी अनेकप्रकारकी कुतर्कना करके उस ब्राह्मणीने वह फल नहीं खाया जब उसके पतिने पूछा कि, हे चंद्रानने ! वह फल तैंने खालिया वा नहीं, तो बाला बोली कि, हे स्वामिन् ! अबतक क्या रहा मैंने उसी समय फल खालिया ॥ ५० ॥ एकसमय उस ब्राह्मणीकी भगिनी निजइच्छासे उसके घर आई और अपनी बहिनको कृश और उदास देखकर बूझा कि हे भगिनी ! तुझको क्या कष्ट है जो तेरा शरीर अत्यन्त दुर्बल होरहा है, यह बात सुन उस ब्राह्मणीने अपनी बहनको अपना सब वृत्तान्त सुनाया कि यह मुझको बडी भारी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ इसी दुःखकी मारी मैं निर्बल होरहीहूं, हे भगिनी ! बता तो अब मैं क्या उपाय करूं ? तब उसकी बहन बोली कि, हे सहोदरी ! तू धैर्य धर और कुछ सन्देह मतकर मैं तेरे संशयको सब-प्रकार शमन करसक्तीहूं और यह उपाय तो तेरा मैं अभी कर देतीहूं, क्योंकि मुझको एक मासका गर्भ है,जब मेरे पुत्र उत्पन्न होगा तब उस बालकको मैं तेरेही घर भेजकर तेराही नाम प्रसिद्ध करूंगी कि, मेरी बडी बहिनके लडका हुवा है और यह बात तेरे स्वामीको किसीभाँति प्रगट न होगी ॥५२॥ तबतक तू गर्भवतीसी होकर घरमें सुखीरह और मेरे पतिको कुछ धन देकर प्रसन्न करलेना वह उस बालकको प्रसन्नतापूर्वक तुझको देदेगा और यह बात तैंने जानी क्या मैंने औरको विदित न होगी॥५३॥और मैं सबमें यह बात प्रगट करदूंगी कि, बालक होकर मरगया और प्रतिदिन तेरे बालकको अपना दूध पिला जाया करूंगी ॥ ५४ ॥ और जो फल तेरा पति कहींसे लाया है वह फल परीक्षाके लिये अपनी गायको खिला दे, यह बात सुनकर उस ब्राह्मणीने स्त्री स्वभावसे प्रसन्नहोकर

उसका कहना स्वीकार किया, और वह योगेश्वरका दिया हुवा फल गायको दे दिया ॥५५॥ कुछ समय उपरान्त उस ब्राह्मणीकी बहिनके बालक उत्पन्न हुवा तब उसकी बहिनके पतिने एकान्तमें छिपाकर वह बालक लाकर धुन्धलीको दे दिया, और यह भेद किसीने नहीं जाना ॥५६॥ तब धुन्धलीने अपने पतिसे कहला भेजा कि महाराज ! आज आपके इस समय सुखपूर्वक पुत्र उत्पन्न हुआ, यह सुधासम वचन सुनकर आत्मदेवको अत्यन्त हर्ष हुवा और उस ब्राह्मणके पुत्र होनेसे बहुत लोगोंको आनन्द हुवा ॥ ५७ ॥ और ब्राह्मणने ब्राह्मणोंको बुलाकर जातकर्म किया और अपने वित्त समान दान उनको दिया, गीत बाजोंके शब्द और सब प्रकारके मंगलाचार उसके द्वारपर होने लगे ॥ ५८ ॥ धुन्धली अपने पतिसे बोली, कि हे प्राणनाथ ! मेरे कुचोंमें दूध नहीं उतरा सो मैं निर्बुध्या दूसरी धायके दूध विना इस फुलवासे बालकको कैसे पालूंगी ॥ ५९ ॥ मेरी बहिनका थोडेही दिनोंका बालक मरगयाहै आपकी आज्ञा हो तो मैं उसको अपने घर बुलालूं, वह सब घरका काम काज भी करलेगी और बालकको भी अपने बालकके समान पाल लेगी ॥ ६० ॥ ब्राह्मणने भी पुत्रकी रक्षाके लिये सब बातें अंगीकार करलीं और अपने पुत्रका नाम धुन्धुकारी रक्खा ॥ ६१ ॥ तीन महीने उपरान्त उस गायके भी एक बालक उत्पन्न हुआ मनुष्योंकेसा स्वरूप सर्वांग सुन्दर उज्ज्वल दिव्य शरीर सुवर्णकी सदृश ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण उसको देख बहुत प्रसन्न हुआ, और स्वयं उसका संस्कार किया, और इस अद्भुत आश्चर्यको बहुत लोग देखनेको आये देखो आत्मदेवका भाग्य कैसा उदय हुवा, जो गौके भी देवरूपी बालक परमेश्वरने उत्पन्न किया है, बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ६३ ॥ किसीने भी इस अद्भुत भेदको नहीं जाना, सब शरीर तो मनुष्यकेसा था, परन्तु केवल दो कानहीं गौकेसेथे, इस कारण उसके पिताने उसका नाम गोकर्ण रक्खा, और दोनों बालकोंको अपना समान पुत्र समझकर आनन्दपूर्वक उनका पालन पोषण किया ॥ ६४ ॥ जब कुछ कालोपरान्त वह दोनों बालक तरुण हुए, तब गोकर्ण थोडीही अवस्थामें लिखपढकर बडा ध्वजाधारी पण्डित और बुद्धिमान् हुवा जिसके समान ज्ञानवान् और गुणनिधान दूसरा नहीं था, सदा भगवत्में निष्ठा पुण्यमें मन आठ पहर भगवान्के ध्यानमें मतवाला रहै और धुन्धुकारी महाव्यभिचारी और दुराचारी हुवा ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ स्नान, शौच, क्रियाहीन, कुत्सितकर्म करनेवाला, क्रोधी, कुमार्गी, विग्रहकर्त्ता चाण्डालोंके हाथका भोजन करै ॥ ६७ ॥ चोरीमें चित्त, सबसे शत्रुता, पराये घरोंमें आगलगादे, छोटेछोटे बालकोंको देखकर कुएँमें डालदे ॥ ६८ ॥ वह हत्यारा, शस्त्रधारे, दीन और अन्धोंको दुःखदे, चाण्डालोंसे प्रीति रक्खे, पक्षियोंके फांसनेको जाल लिये फिरै ॥ ६९ ॥ वेश्याओंकी संगतिमें उसने अपने पिताका सब धन नष्ट करदिया। एकदिन अपनी माता पिताको मार पीटकर घरके बर्त्तन भांडे उठाकर लेगया, और बेंच खोंचकर सब वेश्याओंको खिला दिया ॥ ७० ॥ जब वह ब्राह्मण अत्यन्त कृपण

और धनहीन होगया तब उच्च स्वरसे रोरोकर कहनेलगा कि, हे विधाता ! ऐसे कुकर्मी पुत्र होनेसे तो मैं अपुत्रही अच्छा था, क्योंकि, कुपुत्र सदा दुःखदायक है ॥ ॥ ७१ ॥ अब मैं क्या करूं कहां जाऊं इस समय कौन मेरे दुःखका दूर करनेवाला है, यह महाकष्ट मुझसे नहीं सहाजाता, अब मैं इस दुःखसे अपना प्राण त्याग दूंगा,हा दैव ! बडा कष्ट है; हे विधाता ! क्या इस कठिन दुःखके सहनेको संसारमें मैं हीं एक रह गयाथा ? फिर शोच समझकर बोला कि, हे विधाता ! तेरा कुछ दोष नहीं यह सब मेरे ही कर्मोंका फल है, क्योंकि संन्यासीने मुझको बहुतेरा समझाया था परन्तु मैंने उनका कहना एक न माना उसीका यह फल भोगना पडा ऐसे ऐसे पश्चात्ताप और विलाप करके वह ब्राह्मण फिर रोने लगा ॥ ७२ ॥ उस समय वह ज्ञानी गोकर्ण आनकर पिताको ज्ञान वैराग्य दिखाकर समझाने लगा ॥ ७३ ॥ हे पिता ! यह संसार असार है दुःख-रूप है मोहका बढानेवाला है किसका सुत किसका धन यह सब मिथ्या है प्रेम करने-वाला रात दिन दुःखी रहता है ॥ ७४ ॥ इन्द्रकोभी कुछ सुख नहीं न चक्रवर्त्तीको कुछ सुख है संसारमें जिसने जन्म लिया उसको एक न एक दुःख लगाही रहता है, परन्तु एकांतसेवी परमेश्वरके भजन करनेवालों ऋषि मुनियोंहीको कुछ आनन्द प्राप्त होता है ॥ ॥ ७५ ॥ इस संतानरूपी अज्ञानको छोडो, मोहसे नरक होताहै यह देह एक न एक दिन गिरजायगी इसका कुछ भरोसा नहीं, इसलिये सब मोह ममताको तज वनमें जाय नारायणका भजन करो ॥ ७६ ॥ आत्मदेव पुत्रके मनोहर वचन सुन वनके जानेकी इच्छाकर अपने पुत्र गोकर्णसे कहा हे पुत्र ! वनमें जाकर क्या क्या करना उचित है सो विस्तार सहित कहो ? ॥ ७७ ॥ स्नेहके पाशमें बँधाहुवा मैं लँगडा, लूला, मूर्ख, कर्मोंसे इस संसाररूपी कूपमें पडाहूं, हे दयालुपुत्र ! तू मुझे इस जगत् जंजालसे निकाल ॥ ॥ ७८ ॥ गोकर्ण बोला हे पिता ! इस अस्थि, मांस, रुधिरसे बने हुये देहका अभिमान मतकरो, स्त्री पुत्रोंसे स्नेह ममताका त्यागन करो, इस संसारको प्रतिदिन क्षणभंग जानों, भक्तिमें प्रीतिकरके वैराग्यका अनुभव करो ॥ ७९ ॥ नित्य भागवत धर्मोंका सेवन करो, काम्यकर्मोंका त्यागन करो, काम और तृष्णाको छोड साधुसंतोंकी सेवा करो, औरोंके दोष गुणोंका चिन्तवन छोड भगवत्की सेवा करो सुधारूपी कथाको सदा पियो ॥ ८० ॥ यह पुत्रका उपदेश सुन प्रसन्न हो स्त्री, पुत्र, गृहका महामोह त्यागकर साठवर्षकी अवस्थामें स्थिरचित्तकरके वनको चलागया, और नित्यप्रति श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्दके चरणारविन्दकी वन्दना और दशमस्कन्धका पाठ करनेसे श्रीकृष्णको प्राप्त होगया ॥ ८१ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषायां शालिग्राम-वैश्यकृत आत्मदेवइतिहासवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-इस पञ्चम अध्यायमें, कुछ गोकर्णवृतान्त।
वर्णतहूं मैं प्रेमसों, सुनहु चित्त करि शान्त ॥ ५ ॥

सूतजी बोले, कि पिताके मरजानेसे धुन्धुकारी माताको मारनेलगा और कहा बता धन कहाँ रक्खा है, जो नहीं बतावेगी तो मैं तुझे मार डालूंगा ॥ १ ॥ इसप्रकार धुन्धुली उसके वचनोंसे भयभीत और दुःखी हो रातको कुएँमें जापडी और मरगई ॥ २ ॥ जब गोकर्णने माताकी यह दशा देखी तो उसके निकट अपना रहना अच्छा न समझ, योगमें स्थित हो, तीर्थयात्राको चलदिया । वह गोकर्ण ऐसा सुबोध और ज्ञानी था कि दुःख, सुख, शत्रु, मित्रको समान समझता था ॥ ३ ॥ धुन्धुकारी उस घरमें पांच वेश्याओंके साथ रहनेलगा, बडा कुत्सितकर्मी, उन वेश्याओंका पालन, पोषण, मूर्ख-ताठगईसे करने लगा ॥ ४ ॥ एकसमय उन वारांगनाओंको गहनेकी इच्छा हुई तो वह धुन्धुकारी कामान्ध मृत्युका भय तजकर घरसे कहींको चलदिया ॥ ५ ॥ और इधर उधरसे बहुतसा धन संग्रह करके फिर घरको आया और उनको अनेक अनेक प्रकारके भूषण वसन दिये ॥ ६ ॥ बहुत धन देखकर वह वेश्या रात्रिमें विचार करने लगीं कि यह दुष्ट प्रतिदिन चोरी करके द्रव्य हमारे लिये लाता है कदाचित् राजाने इसको पकड लिया तो हम लोगोंको भी अवश्य दण्ड होगा ॥ ७ ॥ और यह सब धन लेकर इसको भी मारडालेगा, इसलिये धनकी रक्षाके निमित्त गुप्तरीतिसे हमहीं इसको मारडालें तो अच्छा है ॥ ८ ॥ क्योंकि इसको मारकर यह सब धनले अपनी इच्छापूर्वक जहाँ जी चाहैगा वहाँ जायँगी, यह बात निश्चयकरके उन्होंने सोते हुयेको रस्सियोंसे बाँधा ॥ ९ ॥ और उसके गलेमें फाँसी डालकर लटका दिया जब वह पापात्मा फाँसी देनेसे नहीं मरा तो चिन्ताकरने लगीं ॥ १० ॥ फिर बहुतसे अंगारोंसे उसका मुख जलाया, तब अग्निके लगनेसे वह अकुला कर मरगया ॥ ११ ॥

दोहा–जो गणिकाके सँग रमैं, उनकी यह गति होय।
तातै कबहुँ न भूलकर, इनसे रमियो कोय ॥

कवित्त–कायासे काम जात गाँठहूसे दाम जात, सुयशका नाम जात रूपजात अंगसे । उत्तम सब कर्म जात कुलके सब धर्म जात, गुरु जनकी शर्म जात अपने चित भंगसे ॥ राग रंग रीति जात ईश्वरसों प्रीति जात, जगसे प्रतीति जात कामकी उमंगसे । सुरपुरका वास जात भक्तिका निवास जात, पुण्यका प्रकाश जात वेश्याके प्रसंगसे ११

उन साहसी गणिकाओंने एक गहरा गडहा खोदकर उसको गडहेमें गाड दिया, यह भेद किसीको प्रगट न हुवा ॥ १२ ॥ जब उन वारांगनाके निकटवर्त्तियोंने बूझा कि धुन्धुकारी तुम्हारा मित्र कहाँ गया, तव उन वेश्याओंने कहा हमारा प्यारा द्रव्य उपार्ज-नके लिये परदेशको गया है, इस वर्षके अन्तमें आवैगा ॥ १३ ॥ पण्डितोंको योग्य है कि दुष्टोंका और वेश्याओंका विश्वास कदापि न करैं, जो इनका विश्वास करता है वह अनेक दुःख भोगता है, यह दुष्टा पहिले धन हरकर अन्तको प्राणोंकी ग्राहक होती हैं ॥ १४ ॥ इनके वचन कामियोंके रस बढानेवाले अमृतके समान हैं,हृदय इनके खांडेकी

धारके सदृश तीव्र है, यह किसीकी मित्र नहीं ॥ १५ ॥ वह कुलटा बहुत भर्त्ता करनेवालीं उसका सब धन हरकर चलीगईं, और धुन्धुकारी कुकर्मसे बडाभारी प्रेत हुवा ॥ १६ ॥ वायुरूप धारण कियेहुए नित्य दशों दिशाओंमें फिरै, शीत धूपसे व्याकुल निराहार भूखा प्यासा ॥ १७ ॥ कहीं शांतिको प्राप्त न हुवा, हा दैव ! हा दैव ! ऐसा बारम्बार कहने लगा कुछ कालोपरान्त गोकर्णने लोगोंसे सुना कि, धुन्धुकारी मरगया ॥ १८ ॥ उसको अनाथ जानकर गयाजीमें श्राद्ध किया और जिस जिस तीर्थमें जाय तहाँ तहाँ उसका श्राद्ध करै ॥ १९ ॥ इसप्रकार भ्रमण करताहुवा अपने नगरमें प्राप्त हुवा, रात्रिके समय घरके आँगनमें सोनेको आया इसको किसीने न पहिचाना ॥२०॥ वह धुन्धुकारी अपने भाई गोकर्णको सोता जान भयानक रूप दिखानेलगा ॥ २१ ॥ कभी मेढा, कभी हाथी, कभी भैंसा होजाय, कभी अग्नि होजाय,कभी इन्द्र, फिर पुरुष होजाय ॥ २२ ॥ इस विपरीतताको देखकर धैर्य धारण कर गोकर्णने जाना कि, यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुवा है, ऐसा निश्चय करके ॥ २३ ॥ गोकर्ण बोला, हे भाई ! तू कौन है जो रातमें यहाँ आया है और क्यों तू इसदुर्दशाको पहुँचा, क्या तू भूत,प्रेत, पिशाच, राक्षसहै, अपना वृत्तान्त हमसे कह ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिक ऋषियो ! जब उस प्रकारसे गोकर्णने बूझा तो वह उच्चस्वरसे रोने लगा, परन्तु बोलनेकी सामर्थ्य नहीं थी, केवल संकेतहीसे कहा ॥ २५ ॥ तब गोकर्णने अंजलीसे जल लेकर मंत्र पढकर उसके ऊपर छीटा मारा उस जलके छिडकनेसे वह प्रेत पापरहित हो कहने लगा ॥ २६ ॥ हे गोकर्ण ! मैं धुन्धुकारी तेरा भाई हूं अपनेही दोषसे मैंने अपना ब्राह्मणत्व नाश कर दिया ॥ २७ ॥ मैंने अज्ञानपनसे कुकर्म किये हैं उन कुकर्मोंकी संख्या नहीं है मैं लोगोंका मारनेवाला मुझे वेश्याओंने फाँसी देकर महादुःखसे मारडाला ॥ २८ ॥ इस कारण मैं प्रेतयोनिको प्राप्त हुवा हूं अपनी दुर्दशा भी कहता हूं, दैवाधीनके फल प्राप्त होनेसे मैं पवन भक्षण कर करके जीता हूं ॥ २९ ॥ हे कृपासिन्धु बन्धु ! मुझे इस महासंकटसे शीघ्र छुडाओ जो मेरा उद्धार हो, धुन्धुकारीकी यह बात सुनकर ॥ ३० ॥ गोकर्ण बोला,हे भाई ! मैंने तेरे उद्धारके लिये गयाजीमें पिण्ड दिये और फल्गूपर श्राद्ध किया था तोभी तेरी मुक्ति नहीं हुई, यह बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ३१ ॥ जो गयामें पिण्ड देनेसे मुक्ति नहीं हुई तो फिर और कुछ उपाय नहीं है, हे बन्धु ! अब मैं क्या करूं सो विस्तारसहित कह ॥ ३२ ॥ प्रेत बोला, कि हे भ्राता ! एक गया क्या सौगया श्राद्धसे भी मेरी मुक्ति नहीं होगी, क्योंकि मैंने महापाप किया है अब और कोई उपाय तुम विचारो ॥ ३३ ॥ उसकी यह बात सुनकर गोकर्णको बडा आश्चर्य हुवा कि जो सौ श्राद्धसे भी मुक्ति न होगी तो तेरी मुक्ति असाध्य है ॥ ३४ ॥ परन्तु अब तू अपने मनमें धैर्य धर और निर्भय अपने स्थानमें बैठा रह अब तेरी मुक्तिका साधन मैं विचार कर करूंगा ॥ ३५ ॥ गोकर्णकी यह बात सुनकर धुन्धुकारी अपने स्थानको गया, और गोकर्ण रातभर विचार करता रहा परन्तु कोई उपाय निश्चित न हुवा ॥ ३६ ॥ जब

प्रातःकाल हुवा तो गोकर्णका आना सुन सब नगरनिवासी उसके देखनेको आये, तब गोकर्णने उन सब लोगोंका यथायोग्य आदरसत्कार कर कुशल क्षेम बूझ अपने निकट बैठाय रातका वृत्तान्त सबसे कहा ॥ ३७ ॥ यह बात सुनकर पण्डित, विद्वान, योगी, ब्रह्मचारी, पुरुष बहुत शास्त्र देखनेलगे परन्तु कोई उत्तम उपाय उसकी मुक्तिका सिद्ध नहीं हुवा ॥ ३८ ॥ तब सबने यही निश्चय किया कि, तुम सूर्यभगवान्से इसका उपाय बूझो जो वह कहैं सो करना, तब गोकर्णने सावधान हो सूर्यभगवान्का ध्यानकर मंत्र पढा और मनके वेगको रोककर बिनती करने लगा ॥ ३९ ॥ हे जगत्पते ! हे जगत्के साक्षी ! तुमको बारंबार नमस्कार हैं,हे तमनाशक ! इस मेरे भ्राता धुन्धुकारीकी मुक्तिका कोई उपाय बताओ जिससे इसका उद्धार हो ॥ ४० ॥ गोकर्णके दीनवचन सुन भगवान् भास्कर दूरसे प्रगट होकर बोले कि, हे गोकर्ण ! श्रीमद्भागवतका सप्ताह यज्ञकर, इस प्रेतकी मुक्ति सुनतेही होजायगी ॥ ४१ ॥ धर्मरूप श्रीभगवान् सूर्यनारायणका यह वचन सबने सुना और अत्यन्त प्रसन्न होकर सब नगरनिवासी कहने लगे कि अवश्य यह शुभकर्म करना चाहिये ॥ ४२ ॥ गोकर्ण भी मनमें निश्चयकर श्रीमद्भागवतके सप्ताहकी कथा बाँचनेमें प्रवृत्त हुये ! उस सप्ताह पारायणके सुननेको देश देश और ग्राम ग्रामके मनुष्य दूर दूरसे आये ॥ ४३ ॥ अनेक लँगडे, लूले, अंधे, वृद्ध, मन्दभागी भी पाप दूर करनेको आये, देवताओंको विस्मयदायक यह सभा हुई ॥ ४४ ॥ जब आसनपर बैठकर गोकर्ण कथा कहने लगे, तब धुन्धुकारी भी वहाँ आया और इधर उधर देखनेलगा ॥ ४५ ॥ वहाँ एक सात गाँठोंका बाँस रक्खाथा उसकी मूलमें छिद्रके मार्ग प्रवेशकर सुननेको बैठगया ॥ वह पवनरूपी था इसलिये स्थित न रहसका तब बाँसमें प्रवेश किया, गोकर्णने मुख्य वैष्णव ब्राह्मणको श्रोता कल्पना करके ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ श्रीमद्भागवतके प्रथमस्कन्धकी कथा प्रेमपूर्वक सबको सुनाई, जब सन्ध्यासमय कथा विसर्जन हुई तब एकबडा आश्चर्य हुआ ॥४८॥ कि, जिस बाँसमें धुन्धुकारी घुस बैठाथा उस बाँसकी एक गाँठ टूट गई और बडा घोर शब्द हुवा उसे सुनकर सब लोग विस्मित होगये कि यह क्या कारण है,इसीप्रकार दूसरे दिन कथा होनेसे फिर सन्ध्या समय दूसरी गाँठ टूटगई॥४९॥ तीसरे दिन फिर कथा आरम्भ हुई और सन्ध्यासमय तीसरी गाँठ टूट गई, इसीप्रकार सात दिनमें सातों गाँठें फटगईं॥५०॥द्वादशस्कन्ध सुननेसे धुन्धुकारीने प्रेतयोनिको त्याग दिव्य रूप धारण किया,तुलसीकी माला कण्ठमें विराज रही ॥५१॥पीतवस्त्र पहरे घनश्याम मुकुटधारे मकराकृत कुण्डल पहरे, अपने भाई गोकर्णके निकट जाकर नमस्कार करके बोला ॥ ॥ ५२ ॥ भाई ! तुमने बडी कृपा करके प्रेतयोनिसे मुझको छुडाया यह भागवतकी कथा धन्य है जो प्रेतबाधाकी विनाश करनेवाली है ॥ ५३ ॥ यह सप्ताह धन्य है जो कृष्णलोकका फल देनेवाला है सप्ताह सुननेको बैठतेही मनुष्यके पाप काँपने लगते हैं ॥ ॥ ५४ ॥ हम प्रेतोंकी तो यह भागवत प्रलय कर देगी, गीला सूखा लघु स्थूल वाणीसे मनसे कर्मसे किये हुये ॥ ५५ ॥ पापोंको सप्ताहयज्ञ नाश कर देताहै जैसे अग्नि समि-

धाको, इस भारतवर्षमें देवताओंकी सभामें विद्वानोंने कहाहै ॥ ५६ ॥ कि विना कथा सुननेवालोंका जन्म निष्फलहै, मोहसे रक्षा करके पुष्ट बलवान् देहसे क्या फलहै ॥ ॥ ५७ ॥ जिस शरीरने यह शुकसागर नहीं सुना वह अस्थियोंका स्तम्भ नसोंमें बँधा माँस रुधिरसे लेपित ॥ ५८ ॥ चर्मसे आच्छादित, दुर्गन्धयुक्त मूत्रपुरीषका पात्र है, बुढापा,शोकके फल समेत रोगका भवन दुःखरूप ॥ ५९ ॥ कभी भरता नहीं दुर्धर खोटा दोषसहित क्षणभंगुर है कीडे विष्ठा और भस्मका कारण यह शरीर कहा है ॥ ६० ॥ इस अस्थिर देहसे सदैव रहनेवाला कर्म क्यों न साधन किया जाय, जो प्रातःकाल खायाहुवा अन्न सायंकालको नष्ट होजाता है ॥ ६१ ॥ सो अन्नादिकके रसोंसे पुष्ट इस कायाकी क्या नित्यता है क्षणभंगुर है सप्ताह सुननेसे लोकमें भगवान् वासुदेवके निकटही प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ इन दोषोंकी निवृत्तिके लिये एक सप्ताहहीका साधन बहुत है, जैसे जलमें बुद्बुदे, जन्तुओंमें मच्छर, डांसादिक ऐसेही कथाके न सुननेवाले मनुष्य संसार में वृथाही उत्पन्न होते हैं ॥ ६३ ॥ जहाँ जड और सूखे बाँसकी गाँठ टूटगई तो फिर चैतन्य चित्तकी ग्रन्थि टूट जाय तो क्या आश्चर्य है ॥ ६४ ॥ उनके हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है सब सन्देह शमन होजाते हैं, कर्मोंका क्षय होजाता है, जो सप्ताह प्रेमपूर्वक सुनते हैं ॥६५॥ संसाररूपी कीचडमें सनेहुयोंको धोनेके लिये इस शुकसागरकी कथा परमोत्तम है, जिसका मन कथारूपी तीर्थमें है उसकी पण्डितलोगोंने मुक्ति कही है ॥ ६६ ॥ यह वचन उसके कहतेही एक विमान वैकुण्ठसे आया, जिसके चारों ओर प्रभाकरकीसी प्रभा फैलीहुई वैकुण्ठवासियोंके संग ॥ ६७ ॥ सबके देखते हुये धुन्धकारी विमानमें बैठा और उस विमानमें और वैष्णवोंको बैठा देखकर ॥ ६८ ॥ गोकर्ण बोला कि यहाँ बहुतसे सुननेवाले उज्ज्वल चित्तके हैं उनके लिये विमान क्यों नहीं आये ॥ ६९ ॥ जब कि सबका सुनना समान होताहै तो फलमें भेद क्यों हुवा ? हे हरिके प्यारे भगवज्जन ! इसका कारण कहो ॥ ७० ॥ हरिदास बोले, कि सुननेके भेदसे फलका भी भेद होताहै, सबने सुना परन्तु उस प्रकार मनन किसीने नहीं किया ॥ ७१ ॥ इसलिये भजनेसे भी फलमें भेद हुवा सातरात तक जागरण कर एकाग्र चित्त हो प्रेतने सप्ताह श्रवण किया ॥ ७२ ॥ और उसने स्थिर चित्त होकर मननादि भी किया, जिसको दृढ नहीं होता उसका ज्ञान हत होजाताहै और जो प्रमादसे कथा सुनता है, उसका ज्ञान भी हत होजाता है ॥ ७३ ॥ और संदिग्धका मंत्र हत होजाताहै, व्यग्रचित्तका जप निरर्थक है वैष्णवरहित देश हत है, अपात्र सद्गुण रहितको श्राद्ध में देना भी वृथा है ॥ ७४ ॥ विद्याहीनको दान देना वृथा है, सदाचाररहित कुल हत है, गुरुके वाक्योंमें विश्वास और अपने आपमें दीनताकी भावना करनी योग्यहै ॥ ७५ ॥ मनके दोषोंको जीतना कथामें निश्चल बुद्धि रखनी, जब इसप्रकारसे विश्वस्त शुद्ध चित्त हो, तब कथाके सुननेका फल होता है ॥ ७६ ॥ फिर कथान्तमें सबका वैकुण्ठलोकमें वास होताहै, हे गोकर्ण ! तुझे तो श्रीगोविन्द वासुदेव भगवान् स्वयं गोलोक देंगे ॥ ७७ ॥ इसप्रकार

सब वृत्तान्त कहकर वह भगवान्के पार्षद सब वैकुंठलोक को चलेगये, फिर श्रावणके महीनेमें गोकर्णने कथाका आरम्भ किया ॥ ७८ ॥ फिर सात रात्रिवाली सप्ताहकी कथाको बहुत मन लगाकर सुना ? हे नारदजी ! जब सप्ताह कथा समाप्त हुई तब ॥ ७९ ॥ विमानों और भक्तों समेत श्रीनारायण वासुदेव आनकर प्रगटहुए तब चारों ओरसे जयजयध्वनि और नमः शब्द होने लगा ॥ ८० ॥ उस समय भगवान् द्वारका-नाथने अत्यन्त प्रसन्न होकर वहाँ पाञ्चजन्य शंखध्वनिकर गोकर्णको अपने हृदयसे लगा-लिया अपने रूपके समान बनालिया ॥ ८१ ॥ और जितने श्रोताथे उनको क्षणमात्रमें श्रीवैकुण्ठनाथने घनश्याम पीताम्बरयुक्त किरीट कुण्डलधारी करदिया ॥ ८२ ॥ और जो उस ग्राममें श्वानसे लेकर चाण्डालादि जातिके थे वह भी गोकर्णकी कृपासे विमानमें स्थित हुए ॥ ८३ ॥ उनको भगवान्ने उस स्थानमें भेजदिया जहाँ योगीजन गमन करते हैं और गोपाल श्रीकृष्णचन्द्र गोकर्णसहित गोलोकको गये ॥ ८४ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा सुननेसे भक्तवत्सल भगवान् ऐसे प्रसन्न होगये जैसे पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्र अयोध्या-वासियोंको साकेत लोकको लेगयेथे ॥ ८५ ॥ उसी प्रकार भगवान् कृष्णचन्द्र भी योगि-योंको जो गोलोक दुर्लभ है उस गोलोकको उन्हें अपने साथ लेगये सूर्य चन्द्रमा और सिद्धोंकी भी गति नहीं होती ॥ ८६ ॥ जो सप्ताहयज्ञमें इस कथाके सुननेसे फल प्राप्त होता है, हे महात्माओ ! हम उस माहात्म्यका कहाँ तक वर्णन करें जिन्होंने गोकर्णकी कथाके अक्षर कर्णद्वारा पान कियेहैं, वह फिर गर्भमें नहीं आनेके ॥ ८७ ॥ जिस गतिको सप्ताह सुननेसे प्राप्त होते हैं उस गतिको, पवन,जल, पत्र भक्षण कर तपस्यासे देहके सुखानेवाले बहुत दिनोंसे उग्रतपके संचय करनेवाले तथा योगी भी नहीं पहुँचते ॥ ८८ ॥ इस पवित्र इतिहासको शांडिल्य ऋषीश्वर चित्रकूटमें पाठकरनेसे ब्रह्मानन्दसे व्याप्त हुए ॥ ॥ ८९ ॥ यह पवित्र आख्यान है जो इसका एक बार भी पाठ कर लेता है, उसके सब पाप दूर होजाते हैं, और जो श्राद्धमें पढते हैं उनके पितरोंकी तृप्ति होतीहै और नित्य पाठ करनेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥ ९० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषायां शालिग्रामवैश्यकृते गोकर्णवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा–कहौं छठे अध्यायमें, सप्ताह यज्ञ विधान।
प्रेम सहित जे सुनत हैं, उपजत उर गुरुज्ञान ॥ ६ ॥

सनत्कुमार बोले, कि अब हम तुम्हैं सप्ताहश्रवणकी विधि सुनाते हैं, जो विधि साधनसे भी साध्य है ॥ १ ॥ प्रथम तो ज्योतिषीको बुलाकर मुहूर्त्त बूझे फिर जैसी विवाहादिक में मण्डप रचना होती है उसीप्रकार रचना करे ॥ २ ॥ भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ, श्रावण, यह छः महीने कथा सुनने वालोंको मोक्षसूचक हैं ॥ ॥ ३ ॥ जो महीनोंके विग्रह हैं अर्थात् भद्रा, दग्ध व्यतीपात वैधृति, गंडांत, रक्ष,

मृत्यु, उत्पातादि, निन्दित, दिनोंको त्याग दे और सहाय जो अच्छा दिन नक्षत्रादि है सो सर्वथा करणीयहै ॥ ४ ॥ सब नगरमें यत्नपूर्वक अपने इष्टमित्रोंको यह बात प्रगट कर देनी कि हमारे यहाँ अमुक वारको सप्ताहयज्ञका प्रारम्भ होगा, सब कुटुम्ब सहित तुम लोगोंको आनो उचित है ॥ ५ ॥ कोई हरि कथासे दूर है, कोई अच्युतके गुणकीर्त्तनसे दूर है, स्त्री शूद्रादिकोंको जिसप्रकारसे बोध होय वह काम करना ॥ ६ ॥ देश देशमें जो विरक्त वैष्णवलोग कथाके प्रेमी और हरिगुणके कीर्त्तन करनेवाले हैं, उनके पास पत्र भेजना और यह लिखना ॥ ७ ॥ महादुर्लभ सातादिनतक सत्पुरुषोंकी सभा होगी और अपूर्व रसरूपी भगवान्की कथा होगी ॥ ८ ॥ श्रीमद्भागवतरूपी अमृतपानमें रसलंपट आप प्रेमीजन शीघ्र आइये ॥ ९ ॥ यदि आप लोगोंको सावकाश न होतो एकदिनको तो अवश्यही आइये क्योंकि इस सभाका क्षणमात्रका सत्संग भी दुर्लभहै ॥१०॥ इस प्रकारसे उनको पत्र भेजकर बुलावै, और आयेहुवोंके लिये उत्तम बास और उत्तमस्थान नियतकरै ॥ ११ ॥ चाहे तीर्थमें चाहे उपवनमें चाहे वाटिकामें चाहे घरमें कथा सुनै, परन्तु वह कथाका स्थान कहीं बडी लम्बी चौडी पृथ्वीमें कल्पना करै जहाँ बहुतसे भवन अतिथि परदेशी लोगोंको ठहरनेको हों ॥ १२ ॥ जलादिकोंसे मार्जन कर बुहारीसे बहार गोवरसे लीप दे, फिर गेरू आदिक रंगोंसे चित्रित कर घरकी सामग्री उठाकर एक कोनेमें लगादे ॥ १३ ॥ पाँच दिन पहिले आसन संग्रह कर रक्खे केलेके वृक्षोंसे मण्डित मण्डप ऊँचा बनावे ॥ १४ ॥ फल पुष्प पत्रादि चारोंओर बन्दनवार बाँधे, और ध्वजा गाडे, वितान अर्थात् चंदोवा तानै ॥ १५ ॥ वेदिकाके ऊपर भागसे सातलोक अर्थात् सात स्थान बनावे उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बैठावे ॥ १६ ॥ प्रथम तो उनको यथायोग्य आसन दे, फिर वक्ताको भी एक परमदिव्य सुन्दर ऊँचा आसन दे, जिसपर बैठकर कथा कहे ॥१७॥ वक्ता उत्तरकी ओर को मुख करके बैठे और सुननेवाले पूर्वकी ओर मुखकरके बैठें अथवा वक्ता पूर्वकी ओरको मुख करके बैठे तो श्रोता उत्तरकी ओरको अथवा पूजा करनेवाले और पूज्यके मध्यसे पूर्वदिशामें सब सुननेवाले बैठें ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ जो अपने धर्ममें विरक्त वैष्णव, ब्राह्मण, वेदशास्त्रानुसार शुद्ध अथवा वेदशास्त्र जाननेवाला दृष्टांतदेनेमें कुशल, धीर, निर्लोभ, ऐसा वक्ता होना चाहिये ॥ २० ॥ जो अनेक धर्मोंमें भ्रमते हैं अर्थात् जहाँ जैसा देखा वहाँ धनके लिये वैसाही मत स्वीकार कर लिया, स्त्रीलम्पट, पाखण्डवादी, पराईस्त्रियोंको चोरीसे ले भागनेवाले यदि वह पण्डित भी हों तो भी इस श्रेष्ठ महापुराणकी कथा उनसे न कहलावै, क्योंकि नीच अपने नीचपनको नहीं छोडता ॥

कवित्त-दान हठ ठानै दोष औरके बखानै रीति, प्रीति नाहिं जानै हेत मानै खांड पूरीसे । विद्याको न लेश और वेषरूप रेख कछु इज्जत हमेश बाज आवै नाहिं कूरीसे ॥ हठ अपनी ही राखै जो चाहै सोइ

भाषै, चोट टेढी कर आँख चीर डारे पेट छूरीसे । कलियुगका जनको खाजैं तज लाजनको ऐसे द्विजराजनको नमस्कार दूरीसे ॥ २१ ॥

कथाकहनेवालेके समीप एक और भी पण्डित स्थापन करना उचित है जो सन्देहोंके निवारण करनेमें समर्थ हो लोगोंको इच्छापूर्वक समझासके ॥ २२ ॥ फिर वक्ताको एक दिन पहिले व्रतके लिये क्षौर कराना चाहिये, और अरुणोदय होते ही शौचादिकर्मसे निवृत्त हो स्नान करै ॥ २३ ॥ प्रथम तो नित्य सन्ध्या संक्षेपसे करके कथाके विघ्ननाशके लिये गणेशजीका पूजन करै ॥२४॥ फिर पितरोंका तर्पण करके शुद्धिके अर्थ प्रायश्चित्त करै, और एक मण्डल बनाकर कृष्णचंद्रका पूजन करै ॥ २५ ॥ फिर "नमः कृष्णाय" इस मंत्रसे आरम्भ कर पूजा सम्पूर्ण करै, और प्रदक्षिणा नमस्कारादि करके पूजाके अन्त स्तुति करै ॥ २६ ॥ हे करुणानिधान संसारसागरमें मग्नहुए मुझ दीनको जो कि मैं कर्म मोहसे ग्रसित हो रहाहूँ आप इस संसारसागरसे उद्धार कीजिये ॥ २७ ॥ फिर श्रीमद्भागवतकी भी पूजा यत्नपूर्वक करनी चाहिये फिर प्रीतिसे धूप, दीप, नैवेद्य करै ॥ २८ ॥ फिर श्रीफल चढाकर नमस्कार करै और प्रसन्नचित्त हो स्तुतिकरै ॥ २९ ॥ कि श्रीमद्भागवतकी कथा प्रत्यक्ष श्रीकृष्णरूपही है, हे नाथ ! मैंने भवसागरसे मुक्तिहोनेके लिये स्वीकार कियाहै ॥ ३० ॥ यह मेरा मनोरथ तुमहीसे सफल होगा सो महाराज मैं आपका दासहूं, ऐसी कृपा करो कि यह सप्ताहयज्ञ निर्विघ्न समाप्त होजाय ॥ ३१ ॥ऐसे नम्र वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करै,वस्त्राभूषणसे भूषितकर फिर पूजा करके स्तुति करै ॥ ३२ ॥ हे कृपासिन्धु ! आप शुकदेवरूप ज्ञानदायक सब शास्त्रोंके ज्ञाताहो, इस भास्कररूपी कथाके प्रकाशसे मेरा अज्ञान तिमिर नाशकरो ॥ ३३ ॥ फिर वक्ताके आगे कल्याणके निमित्त नियम करै, प्रसन्न होकर यथाशक्ति सातरात्रितक नियम धारणकरै ॥ ३४ ॥ कथाभंग निवृत्तिके लिये पाँच ब्राह्मणोंका वरणकरै, वह (ॐनमोभगवते वासुदेवाय) इस द्वादशाक्षर मंत्रका जप करतेरहैं ॥ ३५ ॥ और वैष्णव ब्राह्मणोंको तथा हरिचरित्र कीर्त्तन करनेवालोंको नमस्कार कर विनयपूर्वक उनसे आज्ञा ले आप आसनपर बैठे ॥ ३६ ॥ लोक, धन, स्थान पुत्रादि सबकी चिन्ता त्याग करके कथामें शुद्धबुद्धिसे मन लगावै, उसको उत्तम फल प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ सूर्योदयसे लेकर साढे तीन पहरतक कथा बाँचनी योग्य है, और शीघ्रता न करै धीरे कण्ठसे समझाकर कहै ॥ ३८ ॥ दुपहरको दोघडीके लिये कथाका विराम करै, कथाके अन्तमें वैष्णवलोग भगवानूका कीर्त्तन करैं ॥ ३९ ॥ मल मूत्रकी बाधा शान्तिके लिये लघु भोजन करना चाहिये उन कथा सुन्नेवालोंको चावल दुग्धादिकका भोजन एकवार करना चाहिये ॥ ४० ॥ यदि शक्ति हो तो सात रात्रितक व्रत करके कथा सुनै, अथवा घृतपान दुग्धपान करके सुनै ॥ ४१ ॥ वा फलाहार करके सुनै वा एकहीबार सूक्ष्म भोजन करै, अथवा जिस प्रकारसे कथा सुन्नेमें आलस्य न आवै सुख प्राप्त हो वह काम करै ॥ ४२ ॥ कथा सुन्नेके समय आलस्य न आवै इतना थोडा भोजन करना चाहिये, यदि उपवास करनेसे कथा सुन्नेमें

विघ्न पड़े तो वह भी अच्छा नहीं ॥ ४३ ॥ हे नारदजी ! सप्ताहव्रत करनेवालोंके तुम नियम सुनो, विष्णुदीक्षा विहीन जो गायत्रीका जप वा जिन्होंने भगवान्‌का मंत्र गुरुसे नहीं लिया है, उनको कथा सुन्नेका अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यसे रहना, पृथ्वी-पर शयन करना, पत्तलमें भोजन करना, कथा समाप्तिके समय नित्यप्रति भोजन पावै ॥ ४५ ॥ कथा सुन्नेवाले व्रती रहैं, दो पत्तेवाला अन्न (दोपत्तेवाला अन्न उसको कहते हैं जिसमें उपजनेके समय पृथ्वीमें दोपत्ते निकलैं) मद, गरिष्ठ अन्न, स्वाभाविक दुष्ट अन्न और बासी अन्नका सदा त्याग करैं ॥ ४६ ॥ काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह, वैर, कथा सुन्नेवाला त्याग दे ॥ ४७ ॥ कथाका व्रती, वेद, वैष्णव, ब्राह्मण गुरु, गौ, व्रतधारीस्त्री, राजकुमारोंकी कन्याओंकी निन्दा न करै ॥ ४८ ॥ रजस्वला, नष्टि, पतित, म्लेच्छ, चांडाल, द्वेषीब्राह्मण और जो वेदबाह्य हैं; उन लोगोंसे व्रती बात न करै ॥ ४९ ॥ सत्य, पतिव्रता, दया, मौन, नम्रता, विनय, उदारता यह व्रतीको करना उचित है ॥ ५० ॥ दरिद्री, क्षयी, रोगी, निर्भाग्य, पापकर्मा, जिसके पुत्र न हो और मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला इस कथाको सदा सुनै ॥ ५१ ॥ जिस स्त्रीको रजोधर्म न होता हो काकबन्ध्या, अर्थात् एकबार जिसके बालक हुआ हो, अथवा जिसके बालक होकर मरजाते हों, जिसका गर्भ गिरने लगै, वह स्त्री भी इस कथाको प्रयत्नसे सुनै॥५२॥ इन सात दिनतक जो विधिपूर्वक सुनै तो अक्षय फल होताहै। यह दिव्यकथा अत्युत्तम है जो सुनेगा उसको यह यज्ञका फल देनेवाली है ॥५३॥ इसप्रकार व्रतका विधान करके फिर उद्यापन करै, फलकी इच्छा करनेवालेको जन्माष्टमीके व्रतकी नाईं यह व्रत करना चाहिये॥५४॥ और निष्काम भक्तोंको उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है,वह निष्काम वैष्णव श्रवण मात्रसेही कृतार्थ हो जाते हैं ॥ ५५ ॥ इस सप्ताहयज्ञकी समाप्तिमें श्रोताओंको पुस्तककी और वक्ताकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ ५६ ॥ प्रसाद, नैवेद्य,तुलसी, पुष्पमाला, सुन्नेवालोंको देनी चाहिये, फिर मृदंग, ताल आदि बाजोंसे परमेश्वरका कीर्त्तन करना योग्य है ॥ ५७ ॥ फिर जय जय शब्द, नमस्कार शंखध्वनि करै, ब्राह्म-णोंको और याचकोंको धन और अन्न दे ॥ ५८ ॥ जो मुख्य श्रोता विरक्त हों तो दूसरे दिन गीताका पाठ करै, और जो गृहस्थ होवैं तो शांतिके निमित्त हवन करै ॥ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ अथवा गायत्रीसे सावधान होकर हवन करै ॥ क्योंकि यह महापुराण तत्त्वसे गायत्रीमयही है ॥ ६१ ॥ जो होम करनेमें असमर्थ हो तो बुद्धिमान् उसके फलकी सिद्धिके लिये होम करनेयोग्य वस्तु देदे, अनेकप्रकारके छिद्र शान्तिके अर्थ और न्यूनता अधिकता ॥ ६२ ॥ दोषोंके शान्तकरनेको विष्णुसहस्रनामका पाठ करै, इससे सब फल पूर्ण हो जाता है, क्योंकि इससे परे और कुछ नहीं ॥ ६३ ॥ फिर बारह ब्राह्मणों-को बूरा मिश्रित खीरसे भोजन करावै, और व्रतपूर्तिके निमित्त सुवर्ण, गाय देनी योग्य है ॥ ६४ ॥ और समर्थ हो तो तीन पल सोनेका सिंहासन बनाकर उसके ऊपर सुन्दर अक्षरोंसे लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पुस्तक स्थापन करै ॥ ६५ ॥ फिर पूजन कर

आवाहनादिक उपचार दक्षिणा सहित वस्त्रालंकार गन्धादिसे पूजित जितेन्द्रिय ॥ ६६ ॥ आचार्यके लिये बुद्धिमान् पुरुष पुस्तक प्रदान करे तो भवभयबन्धनसे मुक्त होजाय, इस प्रकारके सब पाप हरनेवाले विधानके करनेसे ॥ ६७ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण फळ दायक होता है यह धर्मार्थ काम मोक्षका साधन है इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥ सनत्कुमार बोले कि हे नारद ! यह तो सब कुछ तुमको सुनाया अब क्या सुननेकी इच्छा है; श्रीमद्भागवतके श्रवण करनेसेही भुक्ति मुक्ति हाथों हाथ होती है ॥ ६९ ॥ सूतजी बोले कि ऐसे मनोहर वचन सुनकर फिर नारदजी महात्मा श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवण करने लगे जो कथा सब पापोंकी हरनेवाली पुण्य भुक्ति मुक्तिकी दाता है ॥ ७० ॥ इस सप्ताहयज्ञको सब जितेन्द्रिय महात्मा और सब प्राणियोंने यथाविधि श्रवण करनेसे पुरुषोत्तम भगवानको प्रसन्न किया ॥ ७१ ॥ उसके अन्तमें ज्ञान वैराग्य और भक्तिकी बडी पुष्टि हुई, सब प्राणियोंके मन हरनेवाले ज्ञान वैराग्य तत्काल तरुण होगये ॥ ७२ ॥ नारदजी अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेसे कृतार्थ होगये, शरीर पुलकित सर्वांगमें आनन्द भरगया ॥ ७३ ॥ इसप्रकार भगवान्के प्यारे नारदजी कथा सुनके प्रेमसे गद्गदवाणी हो, हाथ जोड सनकादिकोंसे ॥७४॥ नारदजी बोले कि, मैं धन्य, हे करुणासागर!आपने मेरे ऊपर बडी कृपाकरी, आज मुझे सब पाप हरनेहारे हरि भगवान् मिलगये ॥ ७५ ॥ हे तपोधन ! हे कथा सुननेवाले महातमाओ ! सब धर्मोंसे श्रवणधर्म अधिक है, किसकारण कि जिसके श्रवणसे वैकुण्ठमें स्थिति और श्रीकृष्णचन्द्र प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले, कि हे वैष्णवोत्तम ! नारदजी जिस समय यह कह रहेथे उसी समय कहींसे विचरते हुये योगीश्वर शुकदेवजी आगये ॥ ७७ ॥ षोडश वर्षकी अवस्था, वेदव्यासजी महाराजके पुत्र महाज्ञानसागरके चन्द्रमा श्रीमद्भागवतके प्रकाशक, कथावसानमें अपनेही लाभसे परिपूर्ण, प्रेमपूर्वक शनैः शनैः श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहेथे, और परमात्माके ध्यानमें मग्नथे ॥ ७८ ॥ बडे बडे उग्र तेजस्वी महात्मा इनको देखतेही सब सभासद उठ खडे हुये और महादिव्य आसन दिया, और नारदजीने उनका प्रीतिपूर्वक पूजन किया, तब सुखसे स्थित हो श्रीशुकदेवजी बोले ॥ ७९ ॥ वेद कल्पवृक्ष है, उसका यह भागवत फल है, सो मुझ शुकदेवके मुखसे पृथ्वीपर गिरा है, अमृतरूपी रससे संयुक्त है, " जिस फलमें तोतेकी चोंच लग जाती है वह अधिक मीठा होजाता है, यहाँ शुकरूपी शुकदेव-इसका स्वाद लिया है, इस कारण यह अधिक मीठा होयगा यह भाव है " यह भक्तिरूप रससे परिपूर्ण है, हे रसिको ! हे भगवच्चरितामृतपान करनेवाले महात्माओ ! इससे मोक्ष भी न्यूनहै, इसकारणसे इसे बारम्बार पानकरो ॥ ८० ॥ जिस श्रीमद्भागवतमेंसे फलाकांक्षारूप कपट धर्म सम्यक् त्याग दिया है केवल ईश्वर सेवारूप धर्म निरूपण कियाहै मत्सरतारहित सत्पुरुषोंका इसमें अधिकारहै, महामुनि श्रीनारायणके बनायेहुये, इस श्रीमद्भागवतमें वास्तव परमार्थरूप एक परमेश्वरही जाननेयोग्य है, जो कल्याणदायक तीनों तापका नाश करनेवाला है, निश्चय श्रीमद्भागवतके सुननेवाले महातमाओंके हृदयमें

शीघ्र ईश्वर प्राप्त होजाता है, क्या और शास्त्रोंसे शीघ्र हृदयमें प्राप्त होजाता है ? अर्थात् कभी नहीं होता ॥ ८१ ॥ यह श्रीमद्भागवत पुराणोंमें श्रेष्ठ वैष्णवोंका परमधन है जिसमें भक्तोंके परमप्रिय ज्ञान, परब्रह्म श्रीकृष्णही गाये जाते हैं, जिस श्रीमद्भागवतमें, ज्ञान, वैराग्य भक्ति सहित निष्कर्मतारूप ब्रह्म हृदयमें प्राप्त होते हैं, इसके श्रवण करनेसे, पाठ करनेसे, विचार करनेसे भक्ति करनेसे, मनुष्य मुक्त होजाता है॥ ८२ ॥ स्वर्गमें, सत्यलोकमें, कैलासमें वैकुण्ठमें यह रस नहीं है इसलिये हे सद्भाग्यवाले महात्मा पुरुषो ! इस आनन्दरूपी रस को पियो कभी मत त्यागन करो, यह रस बडे भाग्यसे प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ सूतजी बोले कि, जिससमय श्रीशुकदेवजीने मधुरवाणीसे प्रेमपूर्वक यह मनोहर वचन कहे, उसी समय श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द भक्तहितकारी वृन्दावनविहारी पीताम्बर पहिरे, मुकुट शिरधरे त्रिभंगी छवि करे चन्दन केशरका तिलक दिये वनमाल हिये मुरली कर धारण किये, ध्रुव, प्रह्लाद, बलि, उद्धव, अर्जुनादिक भक्तोंको संग लिये उसी सभाके मध्यमें प्रगट होगये, इस अद्भुत आश्चर्यको देख सबको परमानन्द प्राप्त हुआ और सबने खडे होकर बडे आदर सन्मानसे ऊंचे ऊंचे आसनोंपर बैठाया और नारदजीने प्रेम सहित प्रथम श्रीवैकुण्ठनाथ वासुदेवका पूजन किया फिर उद्धवादिकका पूजन किया ॥ ८४ ॥ फिर आसनोंपर बैठेहुए भगवान्के सन्मुख सब महात्मा पुरुष कीर्तन करनेलगे, तब पार्वतीसहित शिव और ब्रह्माजी कीर्त्तन दर्शन करनेके लिये वहाँ आये ॥ ८५ ॥ और सब खडे होगये, प्रह्लादने करतालें धारण करीं, तरलगतिसे उद्धवने छैने हाथमें लिये, नारदजीने वीणा बजाया, स्वर भेदमें कुशल होनेसे अर्जुनने राग गाना आरम्भ किया, इन्द्रने मृदंग लिया, सनत्कुमारादि जय जय अथवा धन्य धन्य कहने लगे, और सबके आगे रसकी विरचनतासे भाव बतानेवाले श्रीशुकदेवजी हुये ॥ ८६ ॥ उस स्थानमें भक्ति ज्ञान वैराग्यका तिगड्डा नाचने लगा, नटोंकी नाई यह अलौकिक नाटक और कीर्त्तन देखकर श्रीवैकुण्ठविहारी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले ॥ ८७ ॥ हे भक्तो ! तुम्हारे कीर्त्तनसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुवा जो इच्छा हो सो वर मांगो. श्रीभगवान्के यह वचन सुनकर सब हरिभक्त प्रेममें मग्नहो गद्गदकंठसे बोले ॥ ८८ ॥ महाराज ! सप्ताहकी कथाओंमें आपको इसीप्रकार प्रगट होना चाहिये अथवा भक्तोंके हृदयमें प्रगट होना उचित है, यही हमारा मनोरथ पूर्ण करो, बहुत अच्छा ऐसा कहकर श्रीनारायण अंतर्धान होगये ॥ ८९ ॥ इसके उपरान्त नारदजी सनकादिकके चरणोंको नमस्कार करतेहुये, और शुकदेवजी तथा अन्य तपस्वियोंको भी नमस्कार किया, वह सब मोहरहित प्रसन्न हो कथामृत पान करके वह सब अपने अपने स्थानोंको चलेगये ॥ ९० ॥ और भक्ति ज्ञान वैराग्य सहित शुकदेवजीने इन तीनोंको इस श्रीमद्भागवतमें स्थापित किया है, इसलिये श्रीमद्भागवतके सेवन करनेसे भगवान् वैष्णवोंके चित्तमें नित्य प्राप्त होतेहैं ॥ ९१ ॥ दरिद्र, दुःख ज्वरसे दुःखित, मायापिशाचिनीसे मर्दित, संसार सागरमें गिरे हुवोंको कल्याणके लिये यह श्रीमद्भागवतकी कथा बलवान्

है ॥ ९२ ॥ शौनकजी बोले कि, हे आनन्ददायक ! श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित् को यह कथा कब सुनाई, और महात्मा गोकर्णने कब सुनाई, और सनत्कुमारने नारदजीको कब सुनाई, यह हमारा संशय आप कृपाकरके दूर कीजे ॥ ९३ ॥ सूतजी बोले कि, श्रीकृष्णचन्द्र त्रिलोकीनाथके परलोकजानेके तीनसौ वर्ष उपरान्त भादोंके शुक्लपक्षकी नवमीको शुकदेवजीने यह कथा राजा परीक्षित्को सुनाई ॥ ९४ ॥ राजा परीक्षितको कथा सुनानेके दोसौ वर्ष पीछे आषाढके शुक्लपक्षमें गोकर्णने कथाका आरम्भ किया था ॥९५॥ उसके पश्चात् फिर कलियुगके तीनसौ वर्ष व्यतीत होनेसे कार्तिकके शुक्लपक्षमें सनकादिकोंने नारदजीको कथा सुनाई ॥ ९६ ॥ हे पापरहित ! जो कुछ तुमने पूछा सो मैंने तुमको सुनाया, कलियुगमें यह श्रीमद्भागवतकी वार्त्ता संसारके रोगोंका नाश करनेवाली है ॥ ॥ ९७ ॥ कृष्णकी प्यारी सब पापोंकी शमन करनेहारी मुक्तिके कारण भक्तिकी लीला करनेहारी यह कथा है, जो जो महात्मा प्रेम प्रीतिसे इस कथाका पान करते हैं उनको और तीर्थोंके सेवन करनेकी क्या आवश्यकता है ॥ ९८ ॥ यमराजने पाश हाथमें लिया तब अपने दूतोंके कानमें कहा कि, जो पुरुष भगवत् कथारसमें मत्त हैं उनके निकट कभी मत जाइयो मैं औरोंको निग्रह करता हूं परन्तु वैष्णवोंका दास हूं, क्योंकि वह प्रतिदिन भगवत्की सेवा करते रहते हैं ॥ ९९ ॥ इस असार संसारमें विषयरूपी विषके संसर्गसे व्याकुलबुद्धि वालोंको उचित है कि आधे क्षणको तो अतुल अमृतरूपी श्रीशुकदेवजी महाराजकी गाथाको कल्याणके निमित्त पान करें, और कुत्सित कथाके कुमार्गमें क्यों व्यर्थ फिरते हो इस कथाके श्रवण करनेसे निश्चय मुक्ति होती है । इस वार्त्ता के महाराज परीक्षित् साक्षी हैं ॥ १०० ॥ रसप्रवाहसे युक्त श्रीशुकदेवजीने यह कथा कही है, जो कोई कण्ठमें धारण करता है, वह वैकुण्ठका प्रभु होता है ॥ १०१ ॥ हे शौनक! इस प्रकारसे यह परमगुह्य सब सिद्धांतोंका सिद्धान्त अनेक शास्त्रोंकी आलोचना कर कहा इस जगत्में शुककथासे निर्मल और कुछ नहीं है परमसुखके कारण द्वादशस्कंधात्मक श्रीमद्भागबतरसका पान कर ॥ १०२ ॥ जो नियमित होकर इस कथाको श्रवण करते हैं और भक्ति प्रीतिसे शुद्ध वैष्णवोंके आगे सुनाते हैं, वह वक्ता श्रोता सम्यक् विधान करनेसे सम्पूर्ण फलको प्राप्त होते हैं, सत्य वचनसे अधिक संसारमें कोई वस्तु भी उत्तम नहीं है ॥ १०३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये मुरादाबादनिवासिकविवर शालिग्रामकृतभाषायां श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीवैकुण्ठविहारिणे नमः ।

अथ शुकसागर अर्थात् श्रीमद्भागवतभाषाकी विषयानुक्रमणिका ।

चतुर्थस्कन्धः ४.

सप्तमस्कन्धः ७.

अध्यायाः	विषयाः	अध्यायाः	विषयाः

एकादशस्कंधः ११.

इति शुकसागर अर्थात श्रीमद्भागवत भाषाकीविषयानुक्रमणिका समाप्त ।

॥ श्रीलक्ष्मीकान्ताय नमः ॥

शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

स्कन्ध पहिला १.

सोरठा-ऋद्धि सिद्धि दातार, सिद्धिसदन वारणवदन।
सुमिरौं बारंबार, मदनकदनके लालको ॥ १ ॥
गणपति कृपानिधान, देहु हर्षि वरदान म्वहिं।
भाषातिलक प्रमान, वरणहुँ श्रीभागवतको ॥ २ ॥
जयशिवआनँदकन्द, भूतनाथ भवभयहरण।
भक्तिविषय निर्द्वन्द, गौरवर्ण मंगलकरण ॥ ३ ॥
हे ब्रजचन्द मुकुन्द, ब्रजभूषण दूषणहरण।
काटहु भवभय फन्द, चरणशरण ली आनकर ॥ ४ ॥
जयजयजय जगदेव, सेवत शेष महेश अज।
महिमा अमित अभेव, वेद भेद जानत नहीं ॥ ५ ॥
देहु मोहिं वरदान, राधावर यह वर सदा।
प्रेमभरीमुसकान, नित चितमें खटकत रहै ॥ ६ ॥

मुहिंचहिये कछु नाहिं, और वस्तु प्रभुजगतकी।
बसीरहै मनमाहिं, यह बाँकी झाँकी सदा ॥ ७ ॥
लिये लकुटियाहाथ, गायनके पाछे फिरत।
ग्वाल बाल लिये साथ, मोरमुकुट शिरपरधरे ॥ ८ ॥
करमुरली उरमाल, शीशमुकुट कटिपीतपट।
याछबिसों नँदलाल, बसहुहृदयममनिशिदिवस ॥ ९ ॥
गुरुपदरजधरिशीश, तिलकभागवतको रचहुँ।
जो शुकदेव मुनीश, कह्योपरीक्षितनृपतिसों ॥ १० ॥

श्रीभगवत् कलावतार श्रीवेदव्यासजीने, अनेक पुराण और अनेक शास्त्र तथा महाभारतादिक प्रबन्ध किये, परन्तु चित्तको शान्ति न हुई और उन उन शास्त्रोंके कहेहुए सिद्धान्तोंमें अप्रसन्न हुए, भगवत्के अवतार श्रीनारदमुनिके उपदेशसे "श्रीमद्भागवत" शास्त्र रचा जिसमें श्रीभागवतहीके गुण वर्णन किये, उसके प्रारम्भमें विघ्नकी निवृत्ति और आनन्दकी सिद्धिके लिये श्रीभागवतके इष्टदेवका स्मरणरूप मंगलाचरण करते हैं॥

श्रीभगवान् व्यासजी ग्रन्थके मंगलाचरणमें परमेश्वरका स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षणसे वर्णन करते हैं-प्रथम स्वरूपलक्षणको कहते हैं जो परमेश्वर त्रिकालमें एकरस सत्य स्वरूपहैं, जिसमें मायाके सत, रज, तम तीन गुण अपने (पंचभूत इन्द्रिय देवतारूप प्रपंच) कार्य सहित सर्वत्र मिथ्या भासते हैं, जिस अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्यतासे असत्य प्रपंच सत्यकी समान दृष्टि आताहै, इसकारण वह सब सत्यहै. जैसे किसीको रात्रिके समय ऊपर भूमिमें जलका भ्रम और थलका भ्रम होताहै, और दिन मरु मरीचिकामें जल दृष्टि आता है, जैसे कांचमें जलका भ्रम होताहै, यह सब भ्रम अधिष्ठानकी सत्यतासे सत्यही दिखाई देतेहैं. ऐसेही अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्यतासे मिथ्याभी प्रपंच सत्य सम दीखता है अथवा ब्रह्मकीही पारमार्थिकी सत्यता कथन करनेके हेतु प्रपंचको मिथ्याभाव वर्णन कियाहै. "जिस ब्रह्ममें यह प्रपंच सर्वकालमें असत्यहै कभी सत् नहीं है" इसके कहनेसे ब्रह्ममें प्रपंचरूपी उपाधिका सम्बन्ध कहाहै उसकी निवृत्ति करते हैं. जिसने अपने तेजसे सर्वकालमें मायाके लक्षण कपट दूर किये हैं, अन्धकारमें जो रस्सी पड़ीहो और उसमें किसीको सर्प प्रतीत हुवा सो बास्तवमें उस सर्प और रस्सीका कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसेही अधिष्ठान ब्रह्ममें अज्ञानअवस्थामें जो प्रपंच प्रतीत होताहै उसका ज्ञानअवस्थामें कुछभी सम्बन्ध नहीं, उस परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं।

अब तटस्थ लक्षणसे कहतेहैं जो इस विश्वका उत्पत्ति, पालन, प्रलय करताहै, जो घटपटादिक पदार्थोंमें सत्यरूपसे व्यापक और अकार्य अथवा प्रपंचका सत्तारूप कारणहै, जैसे घटका कारण मृत्तिका और कुण्डलादिक आभूषणका कारण सुवर्णहै, अथवा ब्रह्मका विश्व, मृत्तिकाका घट, सुवर्णका कुण्डल कार्य है, जो जिसका कार्य है वह उससे भिन्न नहीं. श्रुतिमें लिखाहै "यतो वेति" जिससे सम्पूर्ण जीव उत्पन्न होतेहैं और उत्पन्न हुएहैं, जिसके

जिवाये जीतेहैं और प्रलयकालमें जिसमें समातेहैं और मुक्तिकालमें जिसमें प्रविष्ट होतेहैं. और स्मृतिमेंभी लिखाहै "यतः सर्वाणीति" युगकी आदिमें जिस ब्रह्मसे सब जीव उत्पन्न होतेहैं और युगके अन्तमें सब उसीमें लय हो जातेहैं, इत्यादिक । यदि कोई कहे कि, जगत्का कारण तो जडमाया है उसका ध्यान करतेहैं, सो कहतेहैं:-हम सर्वज्ञ स्वतः सिद्ध ज्ञानवान् जिसने सबसे पूर्व ब्रह्माको उत्पन्न किया, उनके हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया, जो सत्यस्वरूपहै, जिसकी सत्यतासे असत्यप्रपंच सत्यसा दीखताहै, जो मायारूपी कपटजालसे दूर है, उस परमेश्वरका ध्यान करतेहैं ॥ १ ॥ इस श्रीमद्भागवतमें ईश्वराराधनाके वह धर्म वर्णन करतेहैं, जिसमें मोक्ष पर्यन्त फलचाहनारूप कपटका लेश नहीं, इसकारण यह कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड विषयक शास्त्रोंसे श्रेष्ठहै. अब अधिकारियोंकी श्रेष्ठता कहतेहैं:-जो मत्सर रहित कृपालु संतहैं । यहाँ कर्मकाण्डकी श्रेष्ठता कही, उनको परमार्थ रूपवस्तु (यहाँ द्रव्य गुणादिक वास्तव परमार्थ वस्तु नहीं कहेहैं) जाननेयोग्यहै, अथवा वस्तु जो ब्रह्म उसका अंश जीवहै और वस्तुकी शक्ति मायाहै, यह तीनों ब्रह्मरूपहैं भिन्न नहींहैं, यह बिना यतनही जाननेके योग्यहैं. क्योंकि परमसुखदायक और अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीनों तापोंको जड़से उखाड़नेहाराहै. ज्ञानकाण्डकी श्रेष्ठता दिखाकर अब कर्त्ताकी श्रेष्ठता दिखातेहैं । महामुनि नारायणने यह प्रथम संक्षेपसे रचीहै (देवताकाण्डसे श्रेष्ठता दिखातेहैं) और शास्त्रोंके साधनसे ईश्वरकी स्थिति शीघ्र हृदयमें नहीं होती और इसके श्रवणमात्रसेही ईश्वरकी स्थिति हृदयमें होतीहै, इसलिये परमादर कर सेवनीयहै ॥ २ ॥ जब परमादर सत्कारसे सेवन योग्यहै तो यह कहतेहैं कि 'पानकरो' अखिलकामनादायक वेदरूपी कल्पवृक्षका फल श्रीभागवतहै (जो मुझे स्वर्गसे नारदजीके द्वारा प्राप्त हुआ) मैंने अपने पुत्र शुकदेवजीके मुखमें धरा, शुकदेवजीके मुखसे निर्गत होनेसे अमृतके समान मीठे रससे युक्त होगया । "लोकमें यह बात प्रसिद्धहै कि, जिस फलमें तोतेकी चोंच लगैहै सो फल मीठा होवैहै" यहाँ शुकरूप श्रीव्यासनन्दन शुकदेवकी चोंच लगनेसे उनके शिष्यरूप पत्तोंपर लुडकता हुवा, धीरे धीरे पृथ्वीमें प्राप्तहुआ. आशय यह है कि, इतने ऊँचेसे गिरा और फूटा नहीं. रस वही है, कि जिस रसके प्राप्त होनेसे जीवको परमानन्द प्राप्तहो. हे रसिकजनो ! रसजाननेवालो ! धन्य भाग्यहै तुम लोगोंका, जो ऐसा अमृतरूपी फल पृथ्वीपर प्राप्त हुवा यह अलभ्य लाभकी उक्तिहै, इसकारण इस भागवतफलको वारम्वार पियो यह फल रसरूपीहै, इसमें छिलका और गुठली किंचिन्मात्रभी नहींहै केवल रसहीरस भराहै, इसलिये पीनेको कहा. इसकारण श्रीमद्भागवत अमृतरूपी रसका पान जीवन्मुक्ति अवस्थामेंभी पान करना उचित है. स्वर्गादिक सुखके समान त्यागना नहींहै सेवनही करने योग्यहै ॥ ३ ॥ इन तीन श्लोकोंमें श्रीमद्भागवतकी उत्तमता और श्रेष्ठता और गौरवता दिखाकर, अब सब शास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवतके इष्टदेवका स्मरणकर इस ग्रन्थका प्रारम्भ करूं हूं । ब्रह्माजीका मनोमय चक्र कुण्ठितधार होकर गिरा उसी तीर्थका नाम नैमिषहै यह कथा वायुपुराणमेंहै. "एक समय बहुतसे ऋषिलोग ब्रह्माजीके पास गये और यह कहा कि, हे ब्रह्मन् ! हमको

तपके योग्य कोई उत्तम तीर्थ बताओ, कौनसा तीर्थ अत्यन्तपावन (पवित्र) है. ऋषिलोगोंका यह वचन सुन ब्रह्माजी बोले कि, हे ऋषिगण ! मैं मनोमय चक्र बनाकर छोड़ताहूं तुम सब इसके पीछे पीछे चले जाओ, जिस स्थानपर इस चक्रकी धार कुंठित होकर गिरपड़े वह भूमि तपके योग्य जानलेना, यह कह ब्रह्माजीने मनोमय चक्र छोड़ा । उसका प्रकाश मार्तण्डके सदृश सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें फैलगया, वह चक्र जिस स्थानपर गिरा उस स्थानका नाम उस दिनसे नैमिषारण्य विख्यात हुवा'' और वाराहपुराणमें ऐसा लिखाहै कि, ''किसी समय गौरवमुख ऋषिसे भगवान्‌ने कहाथा कि, हे गौरवमुख ! इस वनमें मैंने निमिषमात्रकालमें अनेक दानवोंकी सेनाका संहार कियाहै इसलिये इस वनका नाम नैमिषारण्य हुवा'' ब्राह्मणोंको तपस्याके लिये यह भूमि परमोत्तमहै । एक समय शौनकादि ८८००० अट्ठाशीसहस्र ऋषियोंने स्वर्गकी प्राप्तिके हेतु नैमिषारण्य क्षेत्रमें १०००० दशसहस्र वर्षतक यज्ञ करनेका संकल्प किया ॥ ४ ॥ एक दिन वह मुनि प्रातःकाल उठ नित्य क्रियाकर जब नैमित्तिक अग्निहोत्र करचुके, उसी समय व्यासजीके परमकृपापात्र सूतजी आ पहुँचे, तब ऋषियोंने सूतजीको देख ब्रह्मासन बिछादिया, सूतजी सब ऋषिगणको प्रणामकर उनकी आज्ञासे आसनपर बैठे और परस्पर कुशलक्षेम पूछ चुके, तब ऋषिलोग सूतजीसे बोले ॥ ५ ॥ कि हे सूतजी ! हे निष्पाप ! सर्व शास्त्र, पुराण, इतिहास तुमने व्यासजी महाराजसे पढेहैं और देखेहैं ॥ ६ ॥ और ज्ञानियोंमें जो शिरोमणि श्रीव्यासजी महाराज जिन जिन शास्त्रोंको जानतेहैं और सगुण निर्गुण ब्रह्मके उपासक और भी जिन जिन शास्त्रोंको जानतेहैं ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! हे सूतजी ! उन सब शास्त्रोंको गुरुकी कृपासे तुम यथार्थ जानतेहो, क्योंकि निष्कपट प्रेमी शिष्यको गुरु गुप्त पदार्थभी प्रगट कर देते हैं ॥ ८ ॥ हे आयुष्मन् ! उन सब शास्त्रोंका सिद्धान्त निश्चयकर सरलरीतिसे हमको उपदेश करो, जिस सिद्धान्तको जानिके मुमुक्षु जीव सुगमसे साधनकर मोक्षके भागीहों ॥ ॥ ९ ॥ इस कलियुगमें प्रथम तो जीवोंकी आयुही अल्पहै, दूसरे आलसी, तीसरे मन्दबुद्धि और मन्दभागी, चौथे विघ्नोंसे व्याकुल, पांचवें रोगग्रसितहैं ॥ १० ॥ हे सूतजी ! बहुतसे शास्त्रोंके सुननेसेही फलकी सिद्धि नही होती, क्योंकि विभागपूर्वक सुननेकेयोग्य सैकडों शास्त्रहैं, इसकारण हे साधो ! सब साधनोंमें सारभूत जो सिद्धान्त होय उसे अपनी बुद्धिसे निश्चय करके हमलोगोंको उपदेश करो जिससे हम श्रद्धालुओंकी बुद्धि शांत होय, (यह शौनकका पहिला प्रश्न हुवा) ॥ ११ ॥ हे सूतजी ! तुम्हारा कल्याणहो, यह तुम जानतेहो भगवान् वसुदेवजीकी स्त्री देवकीके पुत्र किसकार्य करनेके लिये हुएथे ॥ १२ ॥ हे अंग सूतजी ! जिनका साधारण अवतार प्राणियोंके कल्याण और समृद्धिके हेतु होताहै उनके चरित्र वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥ पराधीन जीवभी जिसके नामस्मरण कर संसारके बन्धनसे छूट तुरन्त मुक्ति पातेहैं और जिनसे भयभी भयभीतहै ॥ १४ ॥ उन भगवान्‌के चरणारविन्दोंका आश्रयी शान्तमार्गमें निपुण मुनि संगत मात्रसेही जीवको पवित्र करदेतेहैं और गंगाजीका जल तो बहुत दिनों सेवाकरो तब पवित्र करताहै ॥ १५ ॥

साधारण भी जिनके कर्मोंको गाकर पुण्यश्लोक कहाये, उन भगवान्के कलिमल नाशक यशको, अंतःकरणकी शुद्धि चाहनेवाला कौन नहीं सुनेगा (यह दूसरा प्रश्न समाप्त हुवा) ॥ १६ ॥ नारदादि मुनियोंने जो भगवान्के उदारकर्म गाये, उन गुणोंके सुननेके श्रद्धावान् हमहैं, सो कृपा करके हमें सुनाओ, जो लीलासे ब्रह्मा रुद्रादिक मूर्ति धारण करतेहैं, (यह तीसरा प्रश्न समाप्त हुवा) ॥ १७ ॥ हे बुद्धिमन् ! जो परमेश्वर अपनी माया करके यथेष्ट लीला अवतारोंको धारण करैहैं, उनकी मनोहर कथा कृपा करके हमें सुनाओ ॥ ॥ १८ ॥ हे सूतजी ! उस परमेश्वरकी महिमा और उनके पराक्रमोंको सुनते सुनते हमारी तृप्ति नहीं होती, क्योंकि रसिकोंको भगवान्का यश पदपदपै स्वादसे अधिक स्वादिष्ठ लगताहै, भगवत्का यश अनेकप्रकार स्वादसे पूरितहै, (यह चौथा प्रश्न हुवा) ॥ ॥ १९ ॥ श्रीबलरामके साथ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दने गोवर्द्धनोद्धारणादिक, जो मनुष्योंसे दुःसाध्य कर्म कपटसे मनुष्यरूप धरकै किये सो कहो ॥ २० ॥ महाघोर कलियुग आता जान इसके डरसे वैकुण्ठके जानेकी इच्छा करकै, हम इस नैमिषारण्य वैष्णवक्षेत्रमें एक सहस्र वर्षका संकल्पकर श्रीभगवान्के गुणानुवाद सुननेको वैठेहैं ॥ २१ ॥ हे सूतजी ! इस समय आपका दर्शन भगवत्की कृपासेही हमको हुवाहै, क्योंकि अतिधैर्यवानोंके धैर्यरूपी सेतुके तोडनेवाले महाकराल कलिकालरूप समुद्रके तरनेकी इच्छा जैसे हमको हुई, उसी समय आपका दर्शन हुवा, जैसे समुद्र पार करनेको जहाज सहित मल्लाह आजाय, (यह पांचवाँ प्रश्न समाप्त हुवा) ॥ २२ ॥ धर्मके कवचवत् रक्षक, ब्रह्मण्य, योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णभगवान् अपने–निज परमधामको सिधाये तब धर्म किसकी शरणमें रहा । (यह छठा प्रश्न समाप्तहुवा) ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृतभाषावार्तिक प्रथमस्कन्धे नैमिषारण्योपाख्यानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा–इस द्वितीयअध्यायमें, शुक वन कीन्ह प्रवेश ।
जैसे आये निजभवन, नारदके उपदेश ॥ १ ॥

श्रीवेदव्यासजी बोले कि, शौनकादिक ऋषियोंका प्रश्न सुनकर, रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा उसके वचनकी प्रशंसा करके उत्तर देनेको प्रस्तुत हुए ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि, जो जन्म लेतेही कर्ममार्गको त्याग संन्यास लेकर वनको चले और व्यासजी उन शुकदेवके विरहमें व्याकुलहो, पुत्र ! पुत्र ! पुकारते उनके पीछे हुए, तब पिताके मोह दूरकरनेको वृक्षरूप बनकै उत्तर दिया और उनका स्नेह दूर किया, जो सब जीवोंके हृदयमें योगबलसे प्रवेश कियेहैं, ऐसे शुकदेवजीको वारम्वार नमस्कार करूंहूं ॥ २ ॥ जिसमें अपना प्रभाव और सब श्रुतियोंका सार, एक अध्यात्मविद्याका साक्षात् दीपक संसारको तरनेकी इच्छा करने वाले जीवोंपर कृपा करकै जो शुकदेवजीने गोप्य पुराण कहाहै, उन व्यास पुत्रकी हम शरणहैं ॥ ३ ॥ नारायण नर-नरोत्तम देवी सरस्वती और व्यासजीको नमस्कार करकै जय-

रूप ग्रन्थका वर्णन करताहूं ॥ ४ ॥ हे मुनियो! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया सब लोकोंका मंगलदायक श्रीकृष्णचन्द्र व्रजनायकका जो वृत्तान्त बूझा यह सब शास्त्रोंका सारहै और इस असार संसारसे उद्धार करनेवालाहै और आत्माको प्रसन्न करताहै. धर्म दोप्रकारकाहै, प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग, स्वर्गादिकके लिये जो किया जाय वह धर्मप्रवृत्ति मार्ग है और श्रवण आदर, आदिक जो लक्षणा भक्तिहै, सो निवृत्तिमार्ग है, वह मुक्तिदायकहै सोई पुरुषोंका परमधर्महै ॥ ५ ॥ जिससे नारायणमें फलरहित, विघ्नरहित, भक्ति होय उससे जीवात्मा अत्यन्त प्रसन्न होताहै ॥ ६ ॥ वासुदेव भगवान्में भक्तियोग करै तो शीघ्र ज्ञान और वैराग्य उपनिषद्का उत्पन्न होताहै ॥ ७ ॥ अच्छा अनुष्ठान कराहुवा धर्म मनुष्योंको विष्वक्सेन भगवान्की कथामें जो प्रीति न करावे तो वह केवल श्रमहीहै ॥ ८ ॥ मोक्षपर्यन्त धर्म फल प्राप्त होनेसे प्रयोजन नहींहै और धर्मके योग्य धनव्यय करना उसका फल काम लाभके लिये नहीं है, धन धर्मका फल मोक्षहै ॥ ९ ॥ कामको विषय भोगकर इन्द्रियोंसे प्रीति लाभ नहीं होती, इससे जबतक जीवितरहै तबतक यह जीव तत्त्वके जाननेकी इच्छा करताहै, कर्मका फल स्वर्गादि नहीं है, मोक्षप्राप्ति फल है ॥ १० ॥ तत्त्ववेत्ता जो अद्वितीय ज्ञान कहतेहैं उसीको उपनिषद् ब्रह्म कहै हैं, परमात्मा कहै हैं, भगवान् कहै हैं ॥ ११ ॥ मुनिजन उस ब्रह्ममें ज्ञान वैराग्य युक्त भक्ति श्रद्धासे वेदान्त सुनकर आत्मामें आत्माका दर्शन करतेहैं ॥ १२ ॥ हे ऋषियो! इससे वर्णाश्रमके विभागसे सुन्दर अनुष्ठित धर्मकी यही सिद्धिहै कि परमेश्वरका प्रसन्न करना यही मनुष्योंके योग्यहै ॥ १३ ॥ इसकारण एकाग्रमनसे भगवान् सात्त्वतपतिका, श्रवण, कीर्तन, ध्यान, पूजन करना योग्यहै ॥ १४ ॥ जिस भगवान्का ध्यानरूप खड्ग लेकर कर्मरूप ग्रन्थिके बन्धनका विद्वान् (पण्डित) खण्डन करतेहैं, उनकी कथामें कौन प्रीति नहीं करेगा ॥ १५ ॥ हे द्विजो! वासुदेव भगवान्की कथामें सुननेवाले श्रद्धालुकी रुचि महात्मा लोगोंकी सेवा करनेसे और पुण्यतीर्थकी सेवासे होतीहै ॥ १६ ॥ सत् पुरुषोंके मित्र पुण्यरूप श्रवण, कीर्तन करनेयोग्य श्रीकृष्ण अपनी कथा सुननेवाले सज्जनोंके हृदयमें वासकर सब अमंगल नाश करतेहैं ॥ १७ ॥ जब नित्यप्रति भगवान्की सेवा करनेसे अमंगल नष्ट होगये तब भगवान् वासुदेवमें फलानुसन्धान रहित निष्कामभक्ति उत्पन्न होताहै ॥ १८ ॥ जब रज, तम, भाव कामादि लोभादिकसे जिनका मन बांधा नहीं उनका मन सतोगुणमें स्थित होकर प्रसन्न होताहै ॥ १९ ॥ भगवान्के भक्तियोगसे जिसका मन प्रसन्नहै उसको भगवान्के तत्त्वका ज्ञान मुक्तसंग होनेसे होताहै ॥ २० ॥ जीव जब अपनेही रूपमें परमात्माका दर्शन करताहै तब उसके हृदयकी ग्रन्थि खुलजातीहै और सब संशय मिटजातेहैं, सब कर्मोंका क्षय होजाताहै ॥ २१ ॥ इसकारण सज्जनपुरुष मनकी शुद्धकरनेवाली भक्ति नित्य वासुदेव भगवान्में करतेहैं ॥ २२ ॥ सत्त्व, रज, तम यह तीनों मायाके गुणहैं उन तीनों गुणोंसे मिलाहुवा परमपुरुष एक इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, नाशके लिये-ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह संज्ञा धारण करते हैं परन्तु इन तीनोंमें कल्याणके और शुभफलके दाता वासु-

देवही हैं ॥ २३ ॥ पृथ्वीके विकारसे काठमें धुआँ होताहै, जिससे वेदत्रयीप्रतिपाद्य कर्मसाधक अग्नि होताहै इसीप्रकार तमसे रज रजसे सत्त्वगुण बढ़के ब्रह्मका दर्शन होताहै॥ २४॥ इसकारणसे पहिले विशुद्ध सत्त्वमूर्ति इन्द्रियोंसे परे भगवान्‌को कल्याणके हेतु मुनीश्वर लोग भजतेथे, अबभी जो उनके पीछे इसप्रकार भजे हैं वे जीव इस संसारमें परमानन्द पाते हैं ॥ २५ ॥ इसकारण मुक्तिके चाहनेवाले घोररूप भूतपतियोंको त्यागकर, निन्दाको छोड़ शान्तरूप नारायणकी कलाको भजैहैं ॥ २६ ॥ राजसी तामसी स्वभाववाले और सामान्य शीलवाले–पितर, भूत, प्रेत, प्रजाके अधीश्वरोंको लक्ष्मी, ऐश्वर्य, पुत्रके लिये पूजते हैं ॥ २७ ॥ सब शास्त्रोंका सार यहीहै कि, मोक्षके लिये मोक्षदाता वासुदेवका भजन करे. वेदभी वासुदेवकाही वर्णन करते हैं और यज्ञभी वासुदेवको कहैं हैं, योगभी वासुदेवको कहैं हैं सब क्रिया वासुदेवका प्रतिपादन करैं हैं ॥ २८ ॥ ज्ञानभी वासुदेवको कहैं हैं, तपभी वासुदेवको कहैं हैं, सब धर्म वासुदेवहीका वर्णन करैं हैं, गति सब वासुदेव हीको कहैं हैं ॥ २९ ॥ उस भगवान्‌ने अपनी मायासे पहिले इस विश्वको रचा. सत् असत् रूप गुणमयी मायासे आप समर्थ हैं ॥ ३० ॥ उस मायाके गुणोंमें गुणवान्‌की भांति विज्ञानसे अधिक बढकर भीतर प्रवेशकर प्रकाश करै हैं ॥ ३१ ॥ जैसे अपने उत्पत्तिस्थान काष्ठमेंही अग्नि अनेक भाँतिसे प्रकाश करैहै, ऐसेही विश्वात्मा पुरुष सब भूतोंमें नानारूपसे प्रकाश करताहै ॥ ३२ ॥ वह परमेश्वर गुणमय भूत सूक्ष्म इन्द्रिय आत्माके भावसे अपने रचेहुए पंचभूतोंमें उन गुणोंको भोगैहै ॥ ३३ ॥ वह वासुदेव भगवान् जगत्‌कर्ता संसारको सत्त्वगुणसे पालन करैहै. देव, पक्षी मनुष्यादिमें लीलावतार धारण करैहै ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे प्रथमस्कन्धे भगवद्गुणानुवादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–परब्रह्म अवतार जो, धरे चार अरु वीस।
सो वरणों अब चरितसब, सुनिये कथा ऋषीश ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनकऋषि ! इस अध्यायमें चौवीस अवतारोंकी कथा है, प्रथम पुरुष अवतार हुआ, भगवान्‌ने महत्तत्त्व आदि ले पुरुषरूप धारण किया, संसार रचनेकी इच्छा कर सोलहकलाके रूपसे अवतार लिया ॥ १ ॥ जब जलशायी नारायणने योगनिद्रा विस्तारी उस समय श्रीनारायणकी नाभिरूप सरोवरके कमलमेंसे विश्वरचनेवालोंके पति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ जिनके अंगसे जगत्‌का विस्तार हुआहै, वह भगवान्‌का विशुद्धतत्त्व महाबलिष्ठ रूपहै ॥ ३ ॥ जिनके असंख्य चरण, जंघा, भुजा, मुख अद्भुतहैं और जिसमें असंख्य मस्तक, श्रवण, नेत्र, नासिका हैं, असंख्य शिर, भूषण, वस्त्र, कुण्डल विराजरहेहैं ऐसे स्वरूपका ज्ञान नेत्रोंसे योगीजन दर्शन करते हैं ॥ ४ ॥ यह आदिनारायण सब अवतारोंका बीज अव्ययहै. सब कार्य अन्तसमय इसीमें प्रवेश करै हैं, जिसके अंश ब्रह्माजी हैं जिनके अंशसे मरीचि आदिकदेव, पशु, पक्षी, मनुष्यादि रचेजातेहैं ॥ ५ ॥

प्रथम सनत्कुमार अवतार श्रीनारायणने लिया उनका चरित्र वर्णन करते हैं. सो प्रथम देवकुमार हुए, ब्राह्मण होकरभी अति अखण्ड कठिन तप कर ब्रह्मचर्य व्रत करतेरहे ॥ ६॥ दूसरी बार वाराह अवतार धारणकर रसातल गईहुई पृथ्वीको उठालाये, इस विश्वकी उत्पत्तिके लिये यज्ञेश वाराहजी हुये ॥ ७ ॥ तीसरा बार सो भगवान् नारदजी हुए, ऋषियोंमें देवऋषि होकर सब कर्मोंके बन्धनसे छूटगये, जिन्होंने वैष्णवोंके लिये, पंचरात्र तंत्र कहा ॥ ८॥ चौथी बार धर्मकी कला नाम स्त्रीके उदरसे नरनारायण नाम विख्यात ऋषि हुए और संसारके जीवोंको दिखानेके लिये बदरीकेदारमें जाकर तप किया ॥ ९ ॥ पांचवींबार कपिलदेव अवतार धरकर सिद्धेश कपिल नाम होकर बहुत दिनोंसे जो तत्त्वसमूहोंका ज्ञान नष्ट होगया था उसके निश्चयकरनेको सांख्यशास्त्र बनाकर आसुरी ब्राह्मणको उपदेश किया और अपनी माताको ज्ञानदिया ॥ १० ॥ छठा दत्तात्रेय अवतारले अत्रिमुनिके पुत्र हुए और अनसूयाको प्रसन्न करा और राजा अलर्क अरु प्रह्लाद भक्तको आत्मविद्या पढाई ॥ ११ ॥ सातवां यज्ञअवतार हुवा रुचि प्रजापतिकी आकूती नाम स्त्रीके उदरसे यज्ञ भगवान्ने जन्म लिया यामानाम देवगण समेत स्वायंभुव मन्वन्तरकी रक्षाकरी ॥ १२ ॥ आठवींबार ऋषभदेवजीका अवतार हुआ, नाभि नाम राजाकी मेरुदेवी नाम स्त्रीसे प्रगट हुए, सब आश्रम जिसको नमस्कार करतेथे, जिन्होंने धीर पुरुषोंको पारमहंस्य आश्रम दिखाया ॥ १३॥ नवमी बार पृथु अवतार राजा वेनके शरीर मथनेसे हुआ ऋषियोंकी चाहनासे पृथुअवतार धारण करके सब औषधी जिसने छिपालीं उस गऊरूपी पृथ्वीको दुहकर सब वस्तुका सारांश निकाला, यह अवतार अत्यन्त श्रेष्ठ हुआ ॥ १४ ॥ दशवींबार मत्स्यावतार धर चाक्षुषमन्वन्तरमें सब समुद्र एकहुए. पृथ्वी मयनामकदैत्यसे वैवस्वत मन्वन्तरकी रक्षाकरी और सत्यव्रतको सप्तऋषियों समेत नौकापर बैठालकर ज्ञानउपदेश किया और उसको अपनी मायाका कौतुक दिखाया ॥१५॥ ग्यारहवीं बार कच्छपरूप धरा, जब सुर असुरोंने समुद्रको मथा, उस समय कच्छप अवतार धार मंदराचल पर्वतको भगवान्ने पीठपर धरा ॥ ॥ १६ ॥ बारहवींबार धन्वन्तरि अवतार धारणकर एक कलश अमृतका हाथमें लिये समुद्रसे उत्पन्न हुए। तेरहवींबार मोहनी अवतार धारणकर दैत्योंको अपना सुन्दर स्वरूप दिखाकर मोहित किया और अमृतका कलश उनसे लेलिया और देवताओंको पिलाकर उनकी रक्षाकरी ॥ १७ ॥ चौदहवींबार नृसिंहरूपधर हिरण्यकशिपुदैत्यका नखोंसे उदर विदार अपने प्यारे भक्त प्रह्लादकी रक्षाकरी ॥१८॥ पन्द्रहवींबार वामनतनु धर राजाबलिके यज्ञमें गये और तीन पग पृथ्वी माँगकर इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया और बलिको पातालका राजा किया "परन्तु मांगना अत्यन्त बुरा कामहै, मांगने वालेको सबठौर छोटा बनना पडताहै इसी कारण नारायणने छोटारूप धारण किया" ॥ १९ ॥ सोलहवीं परशुराम अवतारधर क्षत्रियोंका क्षयकिया और उनसे इक्कीसबार पृथ्वीको जीतकर ब्राह्मणोंको दान करदी ॥ २० ॥ सत्रहवींबार पराशरजीकी पत्नी सत्यवतीके उदरसे व्यास अवतारले पुरुषोंको निर्बुद्धि और अज्ञानी जानकर वेदका विभाग और वेदकी शाखाओंका विस्तार और

अठारह पुराण महाभारतादिक ग्रन्थ रच संसारका उद्धार किया ॥ २१ ॥ अठारहवीं बार श्रीरामचन्द्र अवतार धारणकर भक्तोंके कार्य करनेके लिये समुद्रका पुल बांध, रावण, घन-नाद, कुम्भकर्णादि राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार उतारा और अनेक आश्चर्ययुक्त कर्म करके देवताओंकी रक्षा करी ॥ २२ ॥ उन्नीसवीं बार बलराम और श्रीकृष्णचन्द्र अवतार धरकर कालयवन, जरासन्ध, कंसादिक दुष्ट राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार उतार, भक्तोंको संसारसे उद्धार करनेके लिये अद्भुत अद्भुत चारित्र दिखाये ॥ २३ ॥ बीसवी बार कलियुगकी प्रवृत्ति देख जिनसुत बुद्धने गयाके समीप कीकटदेशमें अवतार लिया "जब कलियुग आया तब देवताओंने यज्ञ कर करके दैत्योंका बल नहीं चलने दिया, तो दैत्योंने अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे बूझा कि, हे भगवन् ! देवतालोग सर्वथा इन्द्रपुरीका राज्य करना चाहतेहैं कोई ऐसा उत्तम उपाय बताओ जिसमें दैत्यकुलका राज्य बना रहै शुक्राचार्यने कहा हे दैत्यो ! देवताओंका राज्य यज्ञादिक कर्म करनेसे निष्कण्टक बनरहाहै तुमभी यज्ञ करो। शुक्राचार्यका उपदेश मान दैत्योंनेभी यज्ञ करना आरंभ करदिया तब तो सब देवता भयभीत होकर विष्णुके पास गये और बहुत स्तुतिकर हाथ जोडकर बोले कि, हे वैकुण्ठनाथ ! अब दैत्यलोगभी यज्ञ करनेको उपस्थितहैं, जो उनका यज्ञ पूर्ण होगया तो वह लोग हमसे बलवान् होजाँयगे और हमारा बल उनके सन्मुख कुछ न चलैगा और फिर हम उनको कभी नहीं जीत सकेंगे, अब हमको कोई ऐसा उपाय बताओ जिसमें हमारा कल्याण होय । देवताओंका यह वचन सुन श्रीनारायणजीने उसीसमय बौद्ध अवतार धारण किया और सेवडेका रूपधर मैले कुचैले वस्त्र पहन चौरी हाथमें लेकर वहां पहुँचे जहां दैत्यलोग यज्ञ कर रहेथे दैत्योंने उनका तेजस्वी स्वरूप देख और ज्ञानवान् जान बडा आदर सन्मान किया और उनसे बूझा कि, हे कृपानाथ ! आपके हाथमें यह क्या वस्तु है, बौद्धजीने कहा यह चौरीहै, दैत्य बोले कि हे नाथ ! इसके रखनेसे क्या लाभ है ? बौद्धजीने उत्तर दिया कि, जिसस्थानपर मनुष्य बैठताहै, उसके नीचे छोटे छोटे जीव जो पृथ्वीपर रहतेहैं, वह दबकर मरजातेहैं, सो इस चौरीसे भूमिको झाडकर बैठना चाहिये, जिससे जीवोंकी रक्षाहो । फिर दैत्योंने बूझा कि, हे स्वामिन् ! आपके वस्त्र मैले कुचैले किस कारणहैं ? बौद्धजीने कहा, कपडे धोनेसे भी जीवहिंसा होतीहै, क्योंकि वस्त्रोंमें भी अनेक जीव रहतेहैं, दैत्योंने जब इस प्रकारके वचन सुने, तब तो दैत्योंके मनमें दया उपजी और यज्ञ करनेसे उनका चित्त हटगया और पर-स्पर विचार करने लगे कि, यज्ञ करनेमें तो अनेक जीवोंकी हिंसा होगी तो हमारा सब यज्ञ करना निष्फलहै, बरन् और दूना पापका भागी होना पडेगा । ऐसे मनहीमनमें सोच समझ दैत्योंने यज्ञ करना बंद करदिया, तब तो उनका सब पुरुषार्थ ढीला होगया और सब धर्म कर्म नष्ट होगये और देवताओंका बल बढा ॥ २४ ॥ युगकी सन्धिमें जब राजाभी चोर होजाँयगे, तब सम्भलग्राममें विष्णुयश नाम ब्राह्मणके यहाँ जगत्पति कल्किअवतार धारण करेंगे ॥ २५ ॥ उस सत्त्वगुणी परब्रह्म परमेश्वरके अनंत अवतार हैं, जैसे कभी जिस सरोवरसे जल नहीं घटै, उस सरोवरसे तुच्छ प्रवाहवाली अनेक नदी बहैं हैं ॥ २६ ॥

ऋषि, मुनि देवता, मनुसुत, महाबली, प्रजापति, यह सब परब्रह्म परमेश्वरकी कला हैं ॥ ॥ २७ ॥ जब अविनाशी पुरुषके यह सब अंश और कलाहैं, श्रीकृष्णचंद्र स्वयं भगवानहैं शत्रुओंसे सब जगत् व्याकुल होजाताहै तब युग युगमें अवतारले सबको सुखी करते हैं ॥ ॥ २८ ॥ उस अविनाशी अव्यय पुरुषके छिपेहुए जन्मोंकी कथा जो नर पवित्र होकर संध्यासमय और प्रातःकाल पढै हैं और सुने हैं, वे लोग अनेक २ कष्टोंके समूहोंसे छूट जातेहैं ॥२९॥ जिसका रूप नहीं और चित् एक रस व्यापक उसका वह रूपहै, यह तत्त्वादि मायाके गुणोंसे जीवात्मा अन्तर्यामीमें प्रगट होतेहैं ॥ ३० ॥ जैसे पवनके आश्रयसे मेघ आकाशमें रहतेहैं, यह अज्ञानियोंने मान रक्खाहै, जैसे पृथ्वीके रेणुको धुन्धकारादिक पवनमें अज्ञानी समझ-तेहैं तैसे द्रष्टा आत्मामें दृश्यत्वादि शरीरधर्म अज्ञानियोंने मानाहै ॥ ३१ ॥ इस कारण पर ईश्वर अतिसूक्ष्म है. अनंत आकार, विशेष रहितहै, अदृष्ट अश्रुतवस्तुहै, इसलिये जीवांतर्यामीहै, बारबार अपना ज्ञान होनेके हेतु जीवरूपसे होताहै ॥ ३२ ॥ जिसमें अपने ज्ञानसे यह सत् असत् रूप अविद्यासे जीवात्माके अन्तर्यामीमें विचारे तो ब्रह्मका दर्शन होताहै ॥ ३३ ॥ जो यह क्रीडा करनेवाली परमेश्वरकी माया दूर होजाय तो श्रेष्ठमतवाले ब्रह्मरूपमें लय होतेहैं और अपनी महिमामें आपही पूजित होते हैं ॥ ३४ ॥ ऐसे अकर्त्ताके कर्म और अजन्माके जन्म वेदमें छिपेहुएहैं यह सब लक्षण अन्तर्यामीके हैं ऐसे कवीश्वर लोग वर्णन करतेहैं ॥ ॥ ३५ ॥ अमोघ लीलाधारी ईश्वर इस विश्वको रचेहै, पालन करैहै, प्रलयकरैहै परन्तु इसमें आसक्त नहीं होता सब जीवोंमें अन्तर्हितहै, स्वतंत्रहै, छे गुणोंके ईश्वरहैं परन्तु छहों इन्द्रि-योंके विषय दूरसे ग्रहण करै है, छहों इन्द्रियोंका स्वामी है ॥ ३६ ॥ मन वचनसे नाम रूपका विस्तार करैहै ऐसे ईश्वरकी लीलाको कोई मनुष्य सम्पूर्णतासे नहीं जानसक्ता, जैसे नटकी लीलाको मूर्ख लोग नहीं जानते ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य कुटिलभाव त्याग सदा अनु-कूलतासे परमेश्वरके चरणारविन्दोंकी सुगन्धको भजैहै, सो मनुष्य चक्रधारी, महाप्रतापी, दीर्घपराक्रमी, धाता परमेश्वरकी पदवीको जानतेहैं ॥ ३८ ॥ इससे तुम लोग सब धन्यहो. जो सब लोकोंके नाथ परमेश्वरमें सर्वात्मासे आत्मभावना करतेहो, अब तुम्हारा जन्म मरण संसारमें नहीं होगा ॥ ३९ ॥ सब वेदोंके समान, भगवान्के चरित्रोंसे परिपूर्ण ऐसा उत्तम यह 'श्रीमद्भागवत' महापुराण व्यासजीने बनायाहै ॥४०॥ संसारके सुखके लिये धनदायक मंगलदायक महान् ज्ञानवान् आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजीको सब वेदों और इतिहासोंका सार निकालकर पढाया ॥ ४१ ॥ वही श्रीमद्भागवत समस्त वेद इतिहासोंका तत्त्व निकालकर शुकदेवजीने राजा परीक्षित्को सुनाया ॥ ४२ ॥ परम ऋषि समेत राजा परीक्षित् गंगाकिनारे अन्तसमयतक बैठेरहे, धर्म ज्ञानादिसहित जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द द्वारकासे परमधामको गये ॥ ४३ ॥ कलियुगका समय जान लोगोंकी बुद्धि भ्रष्ट देख श्रीवेदव्यासजीने यह 'श्रीमद्भागवत' महापुराण धर्मरूपी सूर्यका प्रकाश किया. हे ऋषियो ! श्रीशुकदेवजी तेजस्वीने राजापरीक्षित्से यह बात कही ॥ ४४ ॥ वहाँभी उनकी कथा संक्षे-

पसे हमने सुनी सो कथा जैसी हमने सुनीहै और गुरुसे पढ़ीहै, अपनी बुद्धिके अनुसार आप लोगोंकी विस्तारसहित सुनावैंगे ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे प्रथमस्कंधे चतुर्विंशत्यवतारकथावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा-सुनत प्रश्न सब ऋषिनके, हर्ष सूत मुसकाय ॥
जेहिविधि बने पुराण सब, कहौ कथा समझाय ॥ १ ॥

व्यासजी बोले कि, पूर्ण यज्ञ कर्त्ता मुनिमण्डलीके मध्य सूतजी जो विराजमानथे, उनसे वृद्ध कुलभूषण ऋग्वेदपारगामी शौनक मुनि बोले ॥ १ ॥ कि, हे सूत ! हे महाभाग ! ! हे सत्यवक्ता ! ! ! श्रीमद्भागवतकी पुण्यदायक कथा हमको सुनाओ, जो भगवान् श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहीथी ॥ २ ॥ कौनसे युगमें किसस्थानमें किसकारणसे भागवतकी प्रवृत्ति हुई, व्यासजीके चित्तमें किसने प्रेरणा करी, जो मुनिवरने यह अमृतरूपी संहिता रची ॥ ३ ॥ उनके पुत्र महायोगी, दिगम्बर वेषधारी, समदर्शी, भेदभावरहित, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, भगवद्भजनमें लवलीन ऐसे शुकदेवजीने ॥ ४ ॥ " जिस समय जन्म लिया उसी समय संन्यास ले, संसारकी माया तज, नार विवारसहित वनको चलदिये. और मनमें यह विचार किया कि,यहाँ रहनेसे सैकड़ों आपत्ति हैं, इसलिये अभी वनमें जाकर परमेश्वरका भजन करना चाहिये. पुत्रकी यह दशा देख व्यासजी मनमें अत्यन्त सोच संकोच कर मोहवश पुत्रके विरहमें व्याकुलहो, पुत्र पुत्र पुकारते पुत्रके पीछे दौड़े. हे पुत्र ! हमको कहाँ छोड़े जातेहो, ठहरो ठहरो किंचिन्मात्र खड़े होकर हमारी एक वात तो सुनते जाओ, परन्तु शुकदेवजीने खडा होना उचित न समझा, क्योंकि यह तो संसारसे पहिलेही विरक्त होकर परमेश्वरके चरणारविन्दोंमें अपने मनको लवलीन कर चुकेथे. शुकदेवजीने अपने मनमें कहा देखो हमारे पिताको इस अवस्थामें भी कुछ ज्ञान नहीं, संसारकी मायामें लिप्त होरहे हैं, उनको धैर्य देनेके लिये वनके वृक्षोंमें प्रवेशित होकर कहा, हे व्यासजी ! तुम किस मायामें भूलरहेहो न कोई किसीका पुत्र है न कोई किसीका पिताहै यह सब स्वप्नकेसा व्यवहार है, संसारकी गति सदासे इसी भाँति चली आती है और यह जीव बारंवार संसारमें जन्म-लेताहै और मरताहै, यह संसार आवागमनकी जड़ है.यह वात सुन व्यासजीको धैर्य हुआ" यह कह शुकदेवजी आगेको चले तो मार्गमें एक सरोवर दृष्टि आया उसमें देवस्त्रियें नंगी स्नान कर रहींथीं उन्होंने शुकदेवजीको देख कुछ लज्जा नहीं करी उसीभांति नंगी खड़ी-रहीं. पीछे व्यासजी वृद्ध बाबाभी वहाँ पहुँचे, तब तो सब देवांगना लज्जितहो अपना अंग वस्त्रोंसे ढकने लगीं. यह विचित्र भाव देख व्यासजी अपने मनमें विचार करनेलगे कि, शुकदेव हमारे पुत्रको देख इन्होंने लज्जा नहीं करी और मुझ वृद्ध मनुष्यको देख वस्त्र पहन लिये इसका क्या कारण है ? उन देवांगनाओंने देवदृष्टिसे व्यासजीके मनका भ्रम जान कहा हे व्यासजी ! आप स्त्री और पुरुषके भेदभावको भलीभांति जानतेहो, इस लिये आपसे

लज्जा की, और शुकदेवजीकी परमहंस गतिहै वह स्त्री और पुरुषमें कुछ भेद नहीं समझते वह समदर्शी हैं, इसलिये हमने उनसे कुछ लज्जा नहीं करी। यह वा० सुन व्यासजीके मनका सब सन्देह जातारहा ॥ ५ ॥ कुरु जांगल देशमें गये तो कैसे विदित हुआ कि, यह शुकदेवजी हैं, उन्मत्त गूँगे जडकी नाईं हस्तिनापुरमें फिरतेथे ॥ ६ ॥ सो परमभागवत शुकाचार्यसे राजऋषि परीक्षित्‌का संवाद कैसे हुआ ? ॥ ७ ॥ हे सूतजी ! इस बातका हमको बडा सन्देहहै. जो महाभाग्य शुकाचार्य गोदोहन मात्रसे अधिक कहीं नहीं ठहर सक्तेथे, ऐसे विरक्त होकर सातदिन राजा परीक्षित्‌के निकट कैसे ठहरकर कथा सुनाते रहे ? और उनके आश्रमको पवित्र किया ॥ ८ ॥ हे सूत ! अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्‌को भागवतोंमें उत्तम कहते हैं, सो उनका जन्म कर्म महाआश्चर्यकाहै सो कहो ॥ ९ ॥ पाण्डुकुल भूषण चक्रवर्ती महाराज परीक्षित् राज्यलक्ष्मीका अनादर कर किस हेतुसे गंगाके किनारे अन्न जल त्यागकर अन्तसमयतक बैठे सो कहो ॥ १० ॥ हे मित्र सूत ! शत्रुलोग धनलाकर जिनके चरणोंको प्रणाम करते हैं, अपनी देहकी रक्षाके लिये ऐसी लक्ष्मीको वीर तरुण राजा परीक्षित्‌ने प्राणसहित त्यागनेकी इच्छा करी ॥ ११ ॥ संसारके कल्याणके लिये सब जीवोंके ऐश्वर्यके अर्थ सुन्दर यशस्वी श्रीनारायणके परायण जन जीतेहैं कुछ अपनी देह आत्माके कारण नहीं। जब ऐसाहै तो अनेक जीवोंको जीवनदान देनेवाली देहको वैराग्य लेकर कैसे त्याग किया ? ॥ १२ ॥ हे कृपासिन्धु ! जो कुछ मैंने पूछा और जो कुछ मेरे बूझनेसे रहगया होय सो सब कृपा करके हमसे कहो, क्योंकि वेदविषय छोडकर वाणीसे जानने योग्य अर्थमें तुम चतुर और पारगामी हो ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकमुनि ! बहत्तर ७२ चतुरयुगियोंमें जब तीसरी बार द्वापरयुग आया तब पराशर मुनिसे उपरिचर वसुके वीर्यसे उत्पन्न सत्यवतीमें योगीश्वर श्रीव्यासजी महाराजने विष्णुकी कलासे अवतार लिया ॥ १४ ॥ सो व्यासजी एकसमय सरस्वतीमें स्नानकर पवित्रहो सूर्योदयके समय एकांत स्थान बद्रिकाश्रममें बैठेथे ॥ १५ ॥ भूत भविष्यके ज्ञाता श्रीव्यासदेव कलियुगके कारणसे युगयुगमें पृथ्वीपर सब वर्णाश्रम धर्म उलटेहुए जानकर ॥ १६ ॥ शरीर धारियोंको शक्तिहीन, श्रद्धाहीन, सत्त्वगुणहीन, बुद्धिहीन, आयुहीन ॥ १७ ॥ ऐसे दुर्भागी जीवोंको देख श्रीमुनिराज दिव्यज्ञानचक्षुसे सब वर्णोंका और सब आश्रमोंका हित बिचारकर ॥ १८ ॥ ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, आग्नीध्र, इन चारोंसे अनुष्ठेय प्रजाओंका शुद्धकारक वैदिककर्मको जानकर यज्ञोंके अविच्छेदके लिये एक वेदके चारभाग किये ॥ १९ ॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यह चार अलग अलग किये, इतिहास पुराणोंको पंचमवेद कहाहै ॥ २० ॥ पैलमुनिने ऋग्वेद पढा, जैमिनि पण्डितने सामवेद सीखा, वैशंपायनजी यजुर्वेदके पारंगतहुए ॥ २१ ॥ अंगिरा गोत्री सुमन्तमुनि, अथर्ववेदके ज्ञाता हुए. उस वेदके मारण उच्चाटनादि कर्म करनेसे उनका नाम दारुक हुआ और इतिहास पुराणोंके पारगामी हमारे पिता रोमहर्षणजी हुए ॥ २२ ॥ वह सब ऋषि अपने अपने वेदका अनेक प्रकारसे विभाग करनेलगे, उनके शिष्य और प्रशिष्य और उनकेभी शिष्योंसे वेदोंकी शाखा

हुई ॥ २३ ॥ पहिले बड़े बड़े चतुर और अतिविशालबुद्धि वेदका अर्थ जानतेथे, अब उन्हीं वेदोंको मूर्ख निर्बुद्धि लोग पढ़के उनके उलटे पुलटे अर्थ करने लगे, तब व्यासजी महाराजने यह बनाया ॥ २४ ॥ स्त्री, शूद्र और मूर्ख इन तीनोंको वेदत्रयी पढ़नेका अधिकार नहीं, उनके कल्याणके लिये ॥ २५ ॥ यह विचार कृपापूर्वक महाभारत बनाया और व्यासजीने उसमें सब वेदोंका सार लेकर उसे बनाया ॥ २६ ॥ हे शौनकादिक मुनियो ! सब जीवोंके हितके लिये अधिक परिश्रमकरके महाभारतादिक ग्रन्थ रचे परन्तु मन तौभी प्रसन्न नहीं हुआ और वारवार यही विचार करते थे कि, अब हम कौनसा ग्रन्थ रचें जिसमें हमारे मनको धैर्य हो ॥ २७ ॥ इसी चिन्तामें व्यासजी पवित्र सरस्वतीके किनारे एकांतमें बैठे अनेक अनेक तर्क वितर्क करते करते उदासीन चित्त होकर धर्मात्मा व्यासजी कहने लगे मैंने व्रत करके अनेक शुद्ध कर्म करके गुरु, अग्नि, सबको निष्कपट भावसे माना और उनकी आज्ञाको अपने शिर धारण किया ॥ २८ ॥ भारतके बहानेसे सब वेदका अर्थ कहा, जिस भारतमें स्त्री शूद्रादिकका भी धर्म, अर्थ, काम जानपड़े ॥ २९ ॥ मैं ब्रह्मतेजवालोंमें श्रेष्ठभी हूं. परन्तु बड़े खेदकी बात है कि मेरा जीव समर्थ मनसे प्रसन्न नहीं ॥ ॥ ३० ॥ अथवा वोह भागवत धर्म अनेक प्रकारसे नहीं कहे हैं जो भगवत्को प्यारे हैं, परमहंसोंको प्यारे हैं वह भागवत भगवत्को प्याराहै ॥ ३१ ॥ अपने आपको छोटा समझ खेदित मन इसी सोचमें व्यासजी सरस्वतीके निकट बैठे विचार कररहे थे कि, उसी अवसरपर श्रीनारदजी उस आश्रमपर आये ॥ ३२ ॥ उनको देख व्यासजी अत्यन्त प्रफुल्लितहो शीघ्रतासे उठे और विधिवत् पूजन कर बड़े आदर सत्कारसे आसनपर बैठाला ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे प्रथमस्कन्धे
नारदव्याससंगमो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा–इस पंचम अध्यायमें, नारद व्यास मिलाप।
कही कथा सब देवऋषि, जैसे मुनि भये आप ॥ १ ॥

इतनी कथा कह सूतजी बोले कि, सुखपूर्वक बैठे व्यासजी सर्व विद्यासागर जगत उजागर वीणा हाथमें लिये देवऋषि नारदजी मुसकाके बोले ॥ १ ॥ हे पराशरपुत्र ! हे महाभाग ! ! आपके शरीरसे शरीरका अभिमानी प्रसन्न है और मनका अभिमानी मनसे प्रसन्न है कि नहीं ॥ २ ॥ जो जानने योग्यथा सो भी आपने जाना अद्भुत अद्भुत सब अर्थोंकी खानि महाभारत भी आपने रचा ॥ ३ ॥ जो सनातन नित्य परब्रह्मकोभी विचारसे आपने प्राप्त किया एक वेदके चार भाग किये और उनका सार निकाल और बहुतसे ग्रन्थ और पुराण रचे तौभी ऐसे शोचवश हो रहेहो जैसे किसीने अनेक यत्नकर अपना कार्य सिद्ध कियाहो और उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआहो जैसे वह सोच करै है. हे प्रभो ! तुम सर्वज्ञ होकर ऐसे सोचवश किसकारण होरहे हो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले जो तुमने कहा सो सब सत्यहै परन्तु तौभी मेरा मन प्रसन्न नहीं है इसका कारण मैं नहीं जानता

इसलिये आपको ब्रह्माजीका पुत्र ब्रह्मज्ञानी जान आपसे पूछोहूं ॥ ५ ॥ जो सबसे गुप्त बातहै सो आप भली भांति जानते हो, क्योंकि जो पुराणपुरुषहै उसकी तुमने उपासना करीहै, गुणरहित कार्य कारणके नियंता जो अपने मनसेही सब विश्वको रचै पालै संहार करैहै ॥ ६ ॥ सूर्यकी भांति त्रिलोकीमें तुम विचरते हो पवनकी नाईं सबके अंतःकरणकी जानते हो, बुद्धिकी वृत्तिको भली भांति जानते हो परन्तु मैंभी परब्रह्म और वेदमें धर्मसे और व्रतसे परायण हूं तौभी मेरे मनकी न्यूनता नहीं गई सो तुमको भली भांति प्रगट है ॥ ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे व्यासमुनि ! तुमने भगवान्‌का निर्मल यश वर्णन नहीं किया, इसीलिये आपका मन प्रसन्न नहीं है यही न्यूनता समझो ॥ ८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रधानतासे आपने धर्म अर्थादिक कहेहैं उस प्रधानतासे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी महिमा वर्णन नहीं किया ॥ ९ ॥ जिसमें जगत्‌के पवित्र करनेवाले परमात्माका यश नहीं कहा, चाहे उसमें कैसे ही चित्र विचित्र पदहों और वह काकतुल्य कामियोंको अच्छी लगे. ऐसी कविताईको सत्वगुण प्रधान परब्रह्ममें निवास करनेवाले मनस्वी सार असारके ज्ञानी ब्रह्मवादी काकतीर्थ कहैं हैं अत्यन्त करकै उस कविताईको नहीं पढ़ते जैसे प्रसिद्ध है कि मानससरोवरवासी हंस मानससरोवरहीमें विचरते हैं वह कमलवनको त्याग जहाँ जूंठन डाली जाती है और काक काँव काँव करते हैं वहाँ हंस कभी नहीं जाते. इसी भाँति भगवद्भक्त भगवत्‌हीके चरित्रोंके ग्रन्थ पढै हैं रसिक ग्रन्थोंमें ध्यान नहीं लगाते ॥ १० ॥ एक एक श्लोक चाहे जिस ग्रन्थका अशुद्ध हो परन्तु परमेश्वरका विषयहो, जो संसारके जीवोंका पाप नाश करै है, और सुयशका प्रकाशकरै ऐसी कविताई और कथाको साधु ब्राह्मण गावैं हैं और सुनावैं हैं और सुनैं हैं ॥ ११ ॥ और जिसने ब्रह्मार्पणकर्म किया परन्तु भगवद्भक्तिसे रहितहै, वह उपाधि रहित अत्यन्त ज्ञान शोभाको नहीं प्राप्त होता, फिर फलके समय भी दुःख होताहै जिसने निष्काम कर्म ईश्वरमें समर्पण नहीं किये उसकी ऐसीही गति होती है ॥ १२ ॥ इसकारण हे महाभाग ! आप यथार्थद्रष्टा हो, शुद्ध यशस्वी तेजस्वी, सत्यवादी, सब व्रत करनेवाले हो अब आप चित्तको सावधान करके परमेश्वरकी लीला वर्णन करो, जिसको पढ़कर संसारके बन्धनसे लोग छूटैं और ॥ १३ ॥ भगवान्‌के यशबिना जो कुछ पृथक् दृष्टिसे वर्णन किया है उस नामरूपमें पड़कर बुद्धि चंचल हो जाती है, जैसे वायुसे कम्पित नौका जलमें एक ठिकाने नहीं रहती ॥ १४ ॥ धर्मके लिये शिक्षा करनेवाले, तुम्हारी नैष्कर्मकी आज्ञाको देख दुष्टजन महा अन्याय करैंगे और तुम्हारे वाक्योंसे संसारके तुच्छ जीव यही मानैंगे कि, यह भी एक प्रकारका धर्म है, यह नहीं जानैंगे कि, इसका व्यासजीने निवारण किया है ॥ १५ ॥ जो अति निपुण हैं वह स्वभावसे अनन्त अपार परमेश्वरके स्वरूपको जानेहैं गुणोंसे प्रवृत्तमान जीवोंसे भिन्न समर्थ ईश्वर-लीला तुम वर्णन करो ॥ १६ ॥ अपने धर्मको त्यागकर वासुदेवके चरणारविन्दका भजन करते करते जो अधबीचमें मरजाय तो उसको अपने धर्मके त्यागनेका दोष होता है परंतु स्वधर्मसे भजनेवाले इस जीवका जहाँ कहीं कुयोनिमें भी जन्म होय तौ भी भक्तही होता है

भक्ति सदा कल्याणकी दाता है भक्ति सब कार्यको सिद्ध करै है ॥ १७ ॥ विवेकी उस सुखके लिये यत्नकरै और वह सुख ब्रह्मलोकतक हो जाओ और नीचे स्थावरतक हो जाओ परन्तु सुख नहीं मिलता. विषयसुख प्राचीनकर्मसे सब ठौर नरकादिकमें भी बिना यत्न किये दु:ख किसी भांति प्राप्त होता है ऐसेही सुख भी प्राचीन कर्मसे गम्भीर वेगवाले कालसे विनाही चाहे आनकर प्रगट हो जाता है ॥ १८ ॥ मुकुन्दसेवीजन, कभी भी संसारमें नहीं आता है, हे मित्र ! केवल कर्मनिष्ठावालों की भांति, क्योंकि भगवच्चरणारविन्दका स्पर्श फिर स्मरणकरै हे त्यागनेकी इच्छा नहीं करते वह रस मानकर उसको ग्रहण करते हैं ॥ १९ ॥ यह विश्व ईश्वररूप ही है और नहीं है जिससे जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है सो तुम सब भलीभांति जानोहो तौभी आपको एक देशमात्र दिखाया है ॥ ॥ २० ॥ हे अमोघदृष्टिवाले ! परपुरुष परमात्माकी तुम साक्षात् कलाहो सो मनसे परमात्माको जानो जिसे अजन्मा कहते हैं उसी परमात्माने जगत्के कल्याणके लिये जन्मलिया ऐसे महाप्रतापीकी लीला वर्णन करो ॥ २१ ॥ पुरुषके तप, श्रवण, दान, पुण्य, करने और सुन्दर कूप, बावडी बनाने, श्रेष्ठयुक्तिका, बुद्धिका, यही प्रयोजन कवियोंने कहाहै कि, परमात्माका गुणगाना ॥ २२ ॥ हे व्यासदेव ! मैं पहिले जन्ममें एक वेदवादी ब्राह्मणकी दासीसे उत्पन्न हुआथा, मुझे बाल अवस्थामें ही वर्षाकालमें ठहरे हुए साधुओंकी सेवा करनेको नियुक्त कर दियाथा, वह ब्राह्मण साधु संतोंकी सेवामें लवलीनथा वर्षाके दिनोंमें उस ब्राह्मणके स्थानपर साधु संत आनकर उसके यहाँ विश्राम किया करतेथे और उस ब्राह्मणने साधु लोगोंके चौका बर्तनकी टहलके लिये मेरी माताको नियतकर दियाथा, मैंभी अपनी माताके संग उन साधुओंके निकट रहकर आठोंपहर उनका दर्शन करता रहताथा, जिस समय साधुलोग परस्पर बैठकर श्रीनारायणकी कथा वार्ता कहतेथे, उस समय मैंभी उनके समीप बैठा सुनता रहता और उनकी सेवा करता रहताथा और वह ऋषिभी मेरे ऊपर दया करतेथे ॥ २३ ॥ मेरे चित्तकी सब चंचलता दूर होगई, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता थोडा बोलता और वह समदर्शी साधुभी मुझपर अनुग्रह करतेथे ॥ २४ ॥ उस ब्राह्मणकी आज्ञानुसार उन साधुओंके पात्रोंमें उच्छिष्ट जो शेष रहजातीथी मैं नित्यप्रति वही भोजन पाताथा इससे मेरे सब पाप दूर होगये जब मैं ऐसे विशुद्ध चित्तसे रहने लगा तब तो उस धर्ममें मेरी अधिक रुचि होगई ॥ २५ ॥ हे मित्र ! दिन रात कृष्णकथा उनके मुखसे सुननेसे प्रिय यशवाले भगवान् वासुदेवमें मेरी रुचि दिन दिन अधिक होती गई ॥ २६ ॥ हे व्यास ! श्रीनारायणके चरणारविन्दोंमें जब मेरी अधिक रुचि बढ़ी तौ मेरी अखण्डित बुद्धि होगई, यह सब मुझको दीखने लगा सत् असत् अपनी मायासे ब्रह्ममें कल्पित माननेलगा ॥ २७ ॥ इसप्रकार शरद् वर्षाऋतुमें दिनरात परमेश्वरका निर्मल यश सुनतारहूं जो महात्मा मुनियोंने गाया उससे आत्माके रज, तम, नाशकरनेवाली प्रवृत्ति होगई ॥ २८ ॥ वह अनुरागी, नम्र, श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, मुझ सेवक बालकपर अत्यन्त कृपा करनेलगे ॥ २९ ॥ वह दीनवत्सल साधु चलते समय मुझे साक्षात् श्रीभगवान्के

मुखसे निर्गत गुह्यतमज्ञानका उपदेश करगये ॥ ३० ॥ उस ज्ञानसे सर्वव्यापक भगवान् वासुदेवकी मायाका प्रभाव जाना जिससे उस परम पदवीको सब जातेहैं ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह आध्यात्मादि तापत्रयीकी औषधिहै जो बृहत्वादि, गुणविशिष्ट, चैतन्य, पूर्णरूप, भगवान् ब्रह्म, ईश्वरमें सब कर्म समर्पण करना ॥ ३२ ॥ हे मुनन ! जो रोग जिस वस्तुसे जीवोंको होय वह रोग उस वस्तुसे उनका नहीं जाता चाहे कैसाही चिकित्साकरो ॥ ॥ ३३ ॥ ऐसे मनुष्योंके सब कर्मकाण्ड अपने निमित्तसे करै तो सदा संसारमें जन्मता मरता रहताहै और अपना विनाश होयहै वही सब परमेश्वरमें समर्पण करै तो अपना मोक्ष होताहै। प्रथम तो महात्मा पुरुषोंकी सेवा उससे उनकी कृपा होय उस कृपासे उस भगमें श्रद्धा होय तब भगवत् कथा सुननेसे ईश्वरमें प्रीति होय उस प्रीतिसे दोनों देहोंका विवेक होय ऐसा आत्मज्ञान होताहै तब दृढ़ भक्ति उस भक्तिसे भगवानका तत्त्वज्ञान उस तत्त्वज्ञानसे सर्वज्ञत्त्वसर्वात्मत्त्व अपहतपाप्मत्वइत्यादि भगवद्गुण प्रगट होनेका यह क्रमहै ॥ ३४ ॥ जिस कर्ममें भगवत्की प्रसन्नताहै यह जानिकै जो कर्म करै है उस कर्मके अधीन भक्तियों समेत ज्ञान होताहै ॥ ३५ ॥ भगवान्की आज्ञाहै कि, सब शुभ कर्म करो यह जान जो कर्म करैं हैं उनका मोक्ष होताहै जो मनुष्य श्रीकृष्णके गुण अपने मुखसे उच्चारण करै है वह निःसन्देह मोक्षका भागी है ॥ ३६ ॥ भगवान्को नमस्कार और वासुदेवका ध्यान करै प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्धको नमस्कार करै ॥ ३७ ॥ इन मूर्तियोंके नामसे मंत्रोक्त मूर्ति बनावे वह मूर्तियोंके नामसेहै और बाह्यकी यह मूर्ति नहीं है ऐसा जानकर जो पूजन करै तो वो पुरुष सुंदर दर्शन करने योग्य होजाताहै ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह अपना ज्ञान जो मैंने अनुष्ठान किया इससे परमात्माने मुझको ज्ञान ऐश्वर्य दिया ॥ ३९ ॥ हे बहुश्रुत ! विभुकी लीला तुमभी कहो जिससे ज्ञानियोंके सब जाननेकी इच्छा पूरी होजाय और दुःखसे पीडित जीवोंका सब क्लेश जिससे शान्त होगा और प्रकारसे नहीं ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे प्रथमस्कंधे श्रीव्यास-नारदसंवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-मिले छठे अध्यायमें, ज्यों नारदको सिद्ध।
जगतमाहिं जातेभये, नारदपरमप्रसिद्ध ॥ १ ॥

इतनी कथा सुनाय सूतजी बोले, कि हे शौनकऋषि ! सत्यवतीसुत व्यासजी देवऋषि-नारदके जन्म कर्मकी कथा सुनकर फिर नारदजीसे बूझने लगे ॥ १ ॥ कि, हे कृपासिंधु ! वह ज्ञानदाता भिक्षु जब सब चलेगये तो आपने प्रथम अवस्थामें क्या किया ॥ २ ॥ हे स्वायंभुव ! आपने पिछली अवस्था कैसे व्यतीत करी जब काल आया तो वह शरीर कैसे त्यागन किया ॥ ३ ॥ हे सुरसत्तम ! प्रथम कल्पका स्मरण तुमको कैसे बनारहा सबको परलोकदाता यह काल खंडित न हुआ तुम्हारी स्मृतिभी खंडित नहीं हुई सो कहो ॥ ॥ ४ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, ज्ञानदाता भिक्षु जब चलेगये तब आयुकी आदिमें यह

किया ॥ ५ ॥ मेरी माता स्त्रीस्वभाव मूढ दासी कोई बाततक करनी जिससे न आवै एक मैंही उसके अकेला बेटा मुझसे अधिक स्नेह रक्खे ॥ ६ ॥ और मेरे निर्वाहकी चिंता रात दिन करती रहे, परन्तु मनमें वहभी पराधीन और असमर्थथी जैसे काठकी पुतली नटुवेके वशमें रहती है ॥ ७ ॥ माताके स्नेहसे मैं उस ब्राह्मणके पास रहता रहा: परन्तु मनमें दिनरात यह विचार करता रहूं कि, इस मोहकी फांसीसे किस दिन छूटूंगा? साधु लोगोंकी कृपासे मैं अपने आपको पांचवर्षका नहीं समझताथा ॥ ८ ॥ एकदिन मेरी माता उस ब्राह्मणके लिये दूध दुहानेको जाती थी सो मार्गमें उस बिचारीको काले सर्पने डसलिया ॥ ९ ॥ तब मैं अत्यन्त आनन्दहो उस समय यही विचार किया कि ईश्वर भक्तोंका सदा कल्याण करते हैं और मुझे अपना दास जान मुझपरभी अनुग्रह किया यह बात निश्चय समझ मैं उसी समय उत्तर दिशाकी ओरको चलदिया ॥ १० ॥ समृद्ध देश, राजधानी, ग्राम, ब्रज, रत्नादि उत्पत्ति स्थान किसानोंके गांव, सुपारी, पुष्पोंकी वाटिका स्वतःसिद्ध वृक्षसमूहोंसे वन डट रहे और वृक्षसमूहोंके सुन्दर उपवन देखे ॥ ११ ॥ चित्रधातु विचित्र पर्वत हाथी वृक्षोंकी शाखा तोडरहे, निर्मल जल भरे ताल झकोलरहे, मार्गमें जहां तहां मनोहर कूप, बावडी, ताल, नदी, वन, दृष्टि आतेथे ॥ १२ ॥ सुन्दर सुन्दर भ्रमर जहां तहां गुञ्जार रहेथे पक्षी चित्र विचित्र अपनी अपनी बोली बोल रहेथे, नर्फल, बांस वीणमूलके समूह कुशा बांसोंमें आपसे आप छिद्र होरहे हैं उसमें पवन भरकर बांसुरीके समान सुरीले शब्द निकल रहे हैं वह कीचक कहाते हैं, इनसेही महागम्भीर हो रहाहै ॥ १३ ॥ मैं अकेला ऐसे महा घोरभयंकर वनमें सर्प, बिच्छू, शृगाल, जहां भयानक बोली बोल रहेथे उनको देखता चला जाताथा ॥ १४ ॥ चलते चलते सब शरीर शिथिल होगया तो एक सुन्दर सरोवर मुझको दृष्टि आया तब मैं भूखा प्यासा उस तालके जलमें स्नान करके जलपिया तो मेरे शरीरका सब श्रम दूर हुआ ॥ १५ ॥ उस महागम्भीर सरोवरके तीर एक पीपलका वृक्ष था मैं उस पीपलके वृक्षके नीचे बैठकर परमेश्वरके स्वरूपका हृदयमें ध्यान करने लगा ॥ १६ ॥ भावसे मन जीतकर परमात्माके चरणकमल अमलका ध्यान करने लगा, प्रीतिवशहो नेत्रोंसे आंसू बहनेलगे तब धीरे धीरे हृदयमें भगवान् वासुदेवका दिव्यरूप ऐसा दिखाई दिया कि, एक पुरुष सुन्दर स्वरूप जिसके मुखारविन्दका प्रकाश कोटि भास्करसे भी अधिक चतुर्भुजी मूर्ति, शंख चक्र गदा पद्म चारों हाथोंमें लिये पीताम्बरपहने वैजयंती माला कण्ठमें धारणकिये, किरीट मुकुट शिरधरे, त्रिभंगी छबिकरे, मकराकृत कुण्डल कानोंमें पहने श्यामस्वरूप कमलनयन, लंबी भुजा, तापहारिणी चितवन, मन्द मन्द मुसकाते बांकी झांकी दिखाते मेरे सम्मुख आये, उस मनमोहन स्वरूपको देखतेही मैंने परमानन्द होकर चाहा कि इसी सुन्दर स्वरूपको निहारता रहूं ॥ १७ ॥ प्रेम प्रीतिके भावसे हृदय पुलकायमान होगया मन महासुखीहो आनन्दके महाप्रवाहमें लीन होगया, देहकी सब सुधि बिसरगई परमात्माकी भी सुधि नहीं रही ॥ १८ ॥ मनका सुखदायक शोकनाशक जो भगवान्का रूप है

सो एक संग हृदयमें दीखा और मैं आनंदसे दीखतारहा विवशतासे मेरा मन कुछ खेदित हुआ जब वह स्वरूप मेरे ध्यानसे अंतर्धान हुआ ॥ १९ ॥ उस रूपके देखनेको फिर हृदयमें मन लगाया प्रथम जो रूप देखा था वह रूप फिर दिखाई नहीं दिया ॥ २० ॥ उस एकान्त वनमें मुझ यतनशीलको परमेश्वरने गम्भीर आकाशवाणीसे मेरे मनका सब शोक दूरकिया ॥ २१ ॥ बडे खेदकी वात है कि, इस जन्ममें तू मेरा दर्शन करनेके योग्य नहींथा, क्योंकि कामका मल जिनके हृदय और मनके दग्ध नहीं हुए हैं उन कुयोगियोंको मेरा दर्शन नहीं होता ॥ २२ ॥ हे पापरहित ! एकबार मैंने अपना स्वरूप तुझको इसलिये दिखायाहै कि, तेरे मनमें अनुराग बढे और जो मेरे चाहनेवाले साधक लोग हैं वह सब कामादिक विषयका त्याग करदेतेहैं ॥ २३ ॥ और थोडीहीसी सज्जनोंकी सेवासे तेरी मति मुझमें अत्यन्त दृढ होगई अब इस निंदित देहको त्याग तू मेरा पार्षद होगा ॥ ॥ २४ ॥ और मुझसे तेरी प्रीति सृष्टिके आदि अंतमें कभी नहीं छूटैगी और मेरी कृपासे तुझे इस जन्मका सब वृत्तान्त स्मरण रहैगा ॥ २५ ॥ इस श्लोकमें विलक्षण बातहै कि, जिसकी देह नहीं, सबसे बडी जिसकी श्वास आकाशके भीतर जिसकी मूर्ति, ऐसे ईश्वर परमात्मा मुझसे कहकर चुप होगये मैंने भी सब बडोंकी कृपासे उस परब्रह्म परमेश्वरको वारंवार प्रणाम किया ॥ २६ ॥ और सब लज्जा तजकर भगवान्‌का भजन करने लगा, जो मांगलिक छिपेहुए परमेश्वरके चारित्रथे उनका स्मरण करने लगा और सब पृथ्वीपर फिरूं और अपने मनको प्रसन्न रक्खूं किसी वस्तुकी चाहना नहीं करता मद, मत्सर, ईर्षा, सब त्यागदी, कालकी बाट दिनरात देखता रहता ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे अकस्मात् सुदामा पर्वतसे बिजली निकलै और उसीमें समाय उसकी समान कृष्णमें मेरी मतिहुई और किसीमें आसक्त नहीं, निर्मल आतमा मेरा होगया जब मृत्युका समय आया तो मृत्यु हो ॥ २८ ॥ प्रारब्धकर्म समाप्त हुए तब पंचभूतका यह शरीर गिरपडा शुद्ध भगवत् पार्षदका देह जो शुद्ध सत्वमय है सो परमात्माने मुझको दिया ॥ २९ ॥ कल्पके अंतमें इस त्रिलोकीका संहारकर श्रीनारायणने क्षीरसमुद्रमें सोनेकी इच्छाकरी और वह शेषशय्यापर सोये, तब उनके श्वासके संगमें प्रविष्ट होगया ॥ ३० ॥ जब सहस्र युग सोते सोते होगये तब उठे, तब ब्रह्मा अंतर्यामी ईश्वरने इसके रचनेकी इच्छाकरी, तब मरीच्यादिऋषि हुए और प्राणसे हम हुए ॥ ३१ ॥ सब ठौरमें मेरे जानेकी गति होगई बाहर भीतर त्रिलोकीमें कहीं चलाजाऊं अखण्डित ब्रह्मचर्य लेकर महाविष्णुके अनुग्रहसे सब संसारमें पर्यटनकरूंहूं ॥ ३२ ॥ श्रीईश्वरके दिये जो "सा, री, ग, म, प, ध, नी" यह सात स्वरहैं, ब्रह्मरूप इनके ग्राम, इस वीणामें बजाता, परमेश्वरके गुण गाता, सब संसारमें घूमता फिरूंहूं ॥ ३३ ॥ और भगवान्‌के चरित्र जब मैं गाऊंहूं तो ऐसा मग्न हो जाऊंहूं मानो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द शीघ्र चित्तमें आनके दर्शन देतेहैं और मुझको बुलातेहैं ॥ ३४ ॥ आतुर चित्तवालोंको विषय स्पर्शकी इच्छासे वारंवार संसार समुद्रके तरनेकी नाव हरिके चरित्रोंका वर्णन करनाहै ॥ ३५ ॥ काम लोभ मोहसे ग्रसित जीवका

मन योगके मार्गमें यम नियमादिसे शान्त नहीं होता जैसे मुकुन्दकी सेवामात्रसे मन शान्त होताहै ॥ ३६ ॥ हे पापरहित व्यासजी ! जो तुमने बूझा सो हमने सब जन्म कर्मका रहस्य आपसे कहा और आपका मन प्रसन्न किया ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि, शौनक-मुनि सत्यवतीके पुत्र श्रीव्यासजीसे भगवान् नारदमुनि ऐसे कहके उनसे आज्ञाले बीणा वजाते हरिगुणगाते स्वप्रयोजन संकल्पशून्य होकर चलेगये ॥ ३८ ॥ देवर्षि धन्यहैं जो भगवान्की कीर्तिगातेहैं और आनन्दित होतेहैं और नित्यप्रति बीणा बजाकर सब आतुर संसारका उद्धार करतेहैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागर प्रथमस्कन्धे व्यासप्रति नारद पूर्वजन्मकथा वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-इससप्तमअध्यायमें, रचीभागवतव्यास ॥
पुनि पढ़ाय निजपुत्रको, पूरीमनकी आस ॥ १ ॥

शौनक मुनि बोले कि, हे सूतजी ! जब नारदमुनि चलेगये, तब उनका सब अभिप्राय सुनकर, सर्व समर्थ विभु व्यासजीने क्या किया ॥ १ ॥ ब्रह्माजी सरस्वती नदीके किनारे ऋषियोंका यज्ञ बढानेवाला पश्चिमकी ओर शम्याप्रासनामक एक आश्रम था ॥ २ ॥ उस आश्रमके चारों ओर बेरके वृक्ष शोभा देरहेथे, उनकी शीतल छायामें व्यासजी बैठे आचमन कर मनसे परमेश्वरका ध्यान करनेलगे ॥ ३ ॥ भक्तियोगसे अपने निर्मल मनको निश्चल किया तो पूर्ण पुरुषका दर्शन हुआ और उनके अधीन जोमायाहै उसकोभी देखा ॥ ४ ॥ जिस मायाके मोहित होनेसे जीव त्रिगुणसे परभी आत्माको देहरूप मान-ताहै और उस देहमें जो सुख दुःख होतेहैं सो आत्मामें मानताहै ॥ ५ ॥ अनर्थ नाशक साक्षात् भक्तियोग भगवान्में जब लोग न करनेलगे तो श्रीव्यासजीने श्रीमद्भागवत संहिता बनाई ॥ ६ ॥ जिस श्रीमद्भागवत संहिताके हितचितसे सुननेसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द परमपुरुषके चरणारविन्दोंमें मोह, शोक जरा नाशक सुखप्रकाशक भक्ति पुरुषको उत्पन्न होतीहै ॥ ७ ॥ सो व्यासदेव श्रीभागवत संहिता रचकर और शोधकर अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढाने लगे वह शुकदेवजी सदा निवृत्तिमार्गमें लगे रहतेथे ॥ ८ ॥ शौनक ऋषि बोले कि, हे सूतजी ! जो सदा निवृत्तिमार्गमें लग रहैं सब संसारसे जिनका त्याग आत्मामें रमण करते रहैं ऐसे शुकदेवजीने किसकारण ऐसी भारी संहिताके पढनेका अभ्यास किया ? ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषियो ! आत्माराम क्रोध अहंकाररूपी गांठें जिनकी दूर होगई. ऐसे मुनिलोग फलकी इच्छा नहीं करते बिनाही फल परमेश्वरकी भक्ति करैं हैं हरिके गुण ऐसेही हैं ॥ १० ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंमें जिनकी परम प्रीति ऐसे भगवान् शुकाचार्यने यह महा व्याख्यान पढा उन शुकदेवजीको विष्णुके भक्त बडे प्यारे हैं ॥ ११ ॥ अब हम तुमको परीक्षित् राजऋषिके जन्म, कर्म, मुक्ति मृत्युकी और पाण्डु पुत्रोंके स्वर्ग जाने और श्रीकृष्णचन्द्रकी कथाओंका उदय सुनाते हैं ॥ १२ ॥

जैसे—जब परीक्षित् गर्भमें थे तब अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे श्रीकृष्णचन्द्रने रक्षाकरी उस कथाका प्रारम्भ करतेहैं । जिस समय युद्धमें कौरव पाण्डव धृष्टद्युम्न प्रभृतियों समेत वीरलोग जब वीरगतियोंको गये. भीमसेनकी फेंकी गदाके लगनेसे धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनकी जंघा टूटीथी ॥ १३ ॥ उस समय अश्वत्थामा दुर्योधनका प्रिय मित्र, उसकी जंघा टूटी देखकर द्रौपदीके सोते हुए पुत्रोंका शिर काटलाया, यह बहुत बुरी बातहै । इस निन्दित कर्मकी शास्त्रमें बडी निन्दा लिखी है ॥ १४ ॥ द्रौपदी पुत्रोंका मरना सुनकर महा दुःखीहो रोती पीटती आंखोंसे आंसू बहाती अर्जुनके पास आई, अर्जुनने उसको रोनेसे बंदकिया और यह कहा ॥ १५ ॥ हे भद्रे ! आगका लगानेवाला १, विषका देनेवाला २, शस्त्रका बांधनेवाला ३, धनका चुरानेवाला ४, पराई भूमिका हरनेवाला ५, स्त्री और बालकोंका मारनेवाला ६, यह छः आततायी कहलातेहैं सो ब्राह्मणोंमें अधम आततायी अश्वत्थामाका शिर गाण्डीवधनुषके निकरे बाणोंसे काटकर तेरे सन्मुख लाऊं उसके ऊपर खडी होकर तुम स्नान करोगी तो तुम्हारा पुत्रोंके मरनेका शोक दूर होगा ॥ ॥ १६ ॥ ऐसे द्रौपदीका मन मनोहर विचित्र वाक्योंसे प्रसन्न करके श्रीकृष्ण जिसके मित्र और सारथी कवच पहरे गाण्डीव धनुष हाथमें लिये कपिध्वजअर्जुन गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे रथपर चढके दौडा ॥ १७ ॥ बालघाती कम्पितहृदय प्राणोंका भय किये जी लिये अश्वत्थामा अर्जुनको दूरसे अपने पीछे आता देख, रथपर बैठकर जहाँतक भागा गया वहाँतक भागा । जैसे शिवके भयसे सूर्य भागेथे । वामनपुराणमें ऐसे लिखा है "विद्युन्माली नाम एक शिवका भक्त राक्षस था उसको शिवजीने सोनेका एक विमान दिया, सो वह राक्षस विमानपर चढा सूर्यके पीछे २ फिरा करे विमानके प्रकाशसे रातहोनी दूर होगई, तब सूर्यने देखा कि, मेरा तेजतो नष्ट होगया यह जान उसका विमान पृथ्वीपर गिरादिया, यह सुन महादेवजी कोप करके सूर्यके मारनेको दौडे तब तो सूर्य घबराकर भागे और रुद्रकी क्रूरदृष्टिसे जलकर काशीमें गिरे. सो आजतक काशीमें लोलार्क नाम तीर्थ विख्यातहै" ॥ १८ ॥ जब अश्वत्थामाके रथके घोडे थकगये और अपने शरीरका कोई रक्षक नहीं दिखाई दिया तब विप्रपुत्रने अपनी रक्षाके लिये ब्रह्मास्त्र चलानेकी चेष्टा की ॥ ॥ १९ ॥ तब आचमनकर प्राण बचानेके लिये ब्रह्मास्त्र चलाया परन्तु ब्रह्मास्त्रका फेरना वह नहीं जानताथा ॥ २० ॥ सब ओरसे प्रचण्डतेज जब ब्रह्मास्त्रका प्रगटा और प्राणोंपर आपत्ति आईजान, अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले ॥ २१ ॥ हेकृष्ण ! हेकृष्ण महाभाग ! तुम भक्तोंके अभयकारक और संसारके जीव जंतुओंके सुखदायक हो ॥ २२ ॥ तुम आदि पुरुष साक्षात् केवल मायासे परे हो अपनी चिच्छक्तिसे मायाका तिरस्कार कर कैवल्य आत्मामें आप स्थितहो ॥ २३ ॥ माया मोहित चित्त ऐसे जीवलोकका अपने प्रभावसे धर्मादिक लक्षण कल्याण सो तुमही विधान करो हो ॥ २४ ॥ यह आपका अवतार भूमिका भार उतारनेकी इच्छासे है और अपने जातिके और एकान्तभक्तोंके ध्यानके लिये है ॥ २५ ॥ हे देवदेव ! यह क्या है ? कहाँसे आयाहै ! सबओरसे परमदारुण तेज आवै

है हम नहीं जानते ॥ २६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे पार्थ ! प्राणोंपर आपत्ति आती देख द्रोणाचार्यके पुत्रने ब्रह्मास्त्र चलाया है सो यह चलानातो जानता है परन्तु अपने पास बुलाना नहीं जानता ॥ २७ ॥ इस अस्त्रको दूर करनेवाला और कोई उपाय नहीं है तुम भी अपना ब्रह्मास्त्र चलाकर अपने तेजसे इसका नाशकरो, क्योंकि तुम दोनों बातें जानते हो ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषियो ! शत्रुनाशी अर्जुन भगवान्की बात सुनकर जलसे आचमनकर श्रीकृष्ण महाराजकी परिक्रमा करके उस ब्राह्मणपर ब्रह्मास्त्र चलाया ॥ ॥ २९ ॥ तब दोनों ब्रह्मास्त्र परस्पर लडने लगे उनका तेज महाप्रचण्ड पृथ्वी आकाशको ढककर महाप्रलयकेसा समय करदिया। जैसे महाप्रलयमें संकर्षणके मुखकी अग्नि, ऊपरसे सूर्यका तेज यह दोनों मिलाकर बढे हैं। उसी भाँति दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज बढा ॥ ३० ॥ उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज महाघोर त्रिलोकीको फूंके डालता था और जलीहुई प्रजा कह-तीथी कि आज महाप्रलयका समय आगया ॥ ३१ ॥ प्रजा और लोकका नाश होता देख वासुदेवका मत लेकर अर्जुनने दोनोंको शान्तकर अपने पास बुलालिया ॥ ३२ ॥ बडे वेगसे उनको पकडकर गौतम वंशकी गौतमी कृपीके कठोर पुत्र अश्वत्थामाको क्रोधसे लाल लाल तांबेके रंगकेसे नेत्र किये यज्ञके पशुकी भाँति बांधलिया ॥ ३३ ॥ शोक रोष युक्त धनंजयकी धर्मनिष्ठा देख श्रीकृष्णजी सेनानिवासस्थानमें लेजाकर वलसे रस्सीसे वैरीको बांधकर क्रोधितहो अर्जुनसे बोले ॥ ३४ ॥ हे पार्थ ! यह अधम ब्राह्मण रक्षा करने योग्य नहीं, इसको अभी मारडालो इस पापीने सोते हुए निरपराधी बालकोंको मारा है ॥ ३५ ॥ धर्मशास्त्रमें ऐसे लिखा है कि, जो कोई मद्यादिकसे मत्त हो १, या और किसी प्रकारसे प्रमत्तहो २, ग्रहवातादिसे उन्मत्त हो ३, सोताहुआ जीव ४, बालक ५, स्त्री ६, जो कोई उद्यम नहीं जानता ७, जो कोई अपनी शरण आया हो ८, इन आठजीवोंकी धर्मवेत्ताओंको सदैव रक्षा करनी चाहिये चाहे यह अपने शत्रुभी हों तौ भी इनका मारना योग्य नहीं ॥ ॥ ३६ ॥ पराये प्राणलेकर जो निर्दयी दुष्ट अपने प्राण पुष्ट करता है उसका मारनाही श्रेष्ठ है उस दुष्टके मारनेसे पुरुष नरकमें नहीं जाते ॥ ३७ ॥ मेरे सन्मुख आपने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा कीथी कि, हे प्राणप्रिये ! जो तेरे पुत्रोंका मारनेवाला है उसका शिर काटकर तेरे आगे लाऊंगा ॥ ३८ ॥ सो तुम अपने पुत्रके वध करनेवाले आततायीको अवश्य मारो। हेवीर ! दुर्योधन भी इन बालकोंको देख दुःखी हुआ. यह अपने कुलमें धूरि समान है ॥ ॥ ३९ ॥ ऐसे श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद अर्जुनको समझाने लगे और अर्जुन यह जानताथा कि, यही मेरे पुत्रोंको मारने वाला है तौभी गुरुपुत्र समझ मारनेकी इच्छा नहीं करी ॥ ॥ ४० ॥ ऐसे धर्मध्वजाधारी अर्जुन जिनके श्रीकृष्ण सरीखे मित्र और सारथी सो अश्व-त्थामाको पकडकर अपने दलमें लाया जहाँ द्रौपदी बैठी अपने मरे पुत्रोंका शोक कर रही थी, कहा हे द्रुपदनंदिनि ! तुम्हारे पुत्रोंका मारनेवाला यह उपस्थित है ॥ ४१ ॥ पशुके समान गलेमें फांसी पडी निंदित कर्मसे नीचेको नारकरे अपराधी गुरुपुत्र अश्वत्थामाको देख कृपाकरके शील स्वभाववाली द्रौपदीने नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ और अपने पति

अर्जुनसे कहा हे स्वामी ! इसका बांधना मुझको सहन नहीं हो सका, छोडदो छोडदो, यह ब्राह्मण हमारा परम पूज्य है इसके मारनेसे हमारे पुत्र जी नहीं सके यह हत्यारा अपने कर्मोंका फल आप भोगैगा जिस भाँति मैं अपने मरेहुए पुत्रोंका शोक करती हूं, इसीप्रकार कृपी इसकी माताभी पुत्रके मरनेका दुःख देखेगी ॥ ४३ ॥ और आपको इसके पिताने गोप्य मंत्र सहित धनुर्वेद और ब्रह्मास्त्र चलाना और बुलाना दोनो बातें सिखाईं और इसको इसके पिताने ब्रह्मास्त्र चलाना सिखाया परंतु बुलाना नहीं सिखाया, इसलिये जिस द्रोणाचार्यकी कृपासे सब अस्त्र, शस्त्र, यंत्र, मंत्र, तंत्र, तुम सीखेहो इसलिये इसको गुरुपुत्र समझकर छोडदो ॥ ४४ ॥ क्योंकि उन भगवान् द्रोणाचार्यने तुमको पुत्र करके समझा, सो उन द्रोणाचार्यकी अर्द्धांगिनी कृपी इस पुत्रके रहनेसे सती नहीं हुई इस इकलौते अपने पुत्रका सुख देख देख जिती है, हाय ! जैसे मैं अपने मरेहुए पुत्रोंका शोक करूंहूं, ऐसेही वहभी सोच करैगी ॥ ४५ ॥ इसलिये हे धर्मज्ञ ! हे महाभाग ! आप गुरुकुलको कष्ट नहीं दीजिये, बारंबार पूजन और वन्दन करने योग्य ब्राह्मण है ॥ ४६ ॥ पतिव्रता गौतमी इसकी माताको सोच न हो, क्योंकि जैसे मेरे मुखपर आंसू बारंबार सलिल धारासे चले जातेहैं और मैं शिर पटक पटक रोरहीहूं ऐसे कहीं वह पुत्रके शोकमें न रोवै॥ ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण कुल जिसपै कोप करै चाहै, वह कैसाही राजाहो उसका वंश और परिवार क्षणमात्रमें ब्रह्मतेजसे भस्म होजाताहै ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणो निष्कपट धर्मशीला शान्तस्वभाववाली द्रौपदीके वचनसुन धर्मपुत्र युधिष्ठिरने बडी प्रशंसाकरी ॥ ॥ ४९ ॥ नकुल, सहदेव, सात्यकी, अर्जुन, देवकीनन्दन भगवान् और जो स्त्रियें वहां प्रस्तुतथीं द्रौपदीकी यह बात सुन सबका मन प्रसन्न हुआ ॥ ५० ॥ उस समय भीमसेन द्रौपदीकी बात सुनकर बडे क्रोधसे बोले कि, ऐसे दुष्टका मारनाही अच्छाहै, क्योंकि अपने मित्र दुर्योधनका और अपना दोनोंका कुछ प्रयोजन सोते हुए बालकोंके मारनेसे नहीं निकला "तुमने अश्वत्थामाका शिर काटनेकी प्रतिज्ञा कीथी, सो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये और जो तुम कहतेहो कि, हमको ब्रह्महत्याका कलंक लगैगा सो इसमें ब्रह्मअंश और ब्राह्मणका एक कर्मभी नहीं रहा, राजाओंका धर्म है कि, ऐसे मनुष्योंको अवश्य मारना चाहिये" ॥ ५१ ॥ भीमसेनकी यह बात सुन द्रौपदी और अर्जुनकी ओर देखकर ॥ ५२॥ श्रीकृष्णभगवान् वासुदेव बोले कि, आततायी वधकेयोग्यहै और ब्राह्मणहोय तो मारना नहीं चाहिये दोनों बातें हमने कही हैं परन्तु ब्राह्मणके लिये देहदण्ड देना उचित नहीं यह हमारी आज्ञाहै कि, सदा ब्राह्मणोंकी रक्षाकरो, उनको धनदो, पूजा करो, ब्राह्मण कैसाही अपराध करे परन्तु वह वधके योग्य नहीं ॥ ५३ ॥ द्रौपदीके सन्मुख जो आपने प्रतिज्ञा कीहै उसका प्रतिपालनकरो और भीमसेनकी बातको माननाभी अवश्य चाहिये और राजा युधिष्ठिरका वचनभी स्वीकार करना चाहिये और मेरीभी प्रसन्नता करो और द्रौपदी की भी प्रसन्नता करो ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले कि, हरिके हृदयकी बात जानकर अर्जुनने विचारा कि, कोई ऐसा यत्न करना चाहिये कि, अश्वत्थामाका प्राणभी बच जाय और मरणतुल्यभी होजाय.

ऐसा विचारकर अर्जुनने अश्वत्थामाके मस्तककी मणि अपनी तरवारकी नोकसे चीरकर निकालली और मूंड उसका मुँडवादिया ॥ ५५ ॥ रस्सीसे जो उसके हाथपांव बँधेथे और गलेमें फांसी पड़ी थी वह खोलदी बालोंके मुंडनसे उसकी कांति मलीन होगई और तेजहीन दृष्ट आनेलगा और मणि छीन अपने दलसे बाहर निकाल दिया मुंडन करना, धनहरना और देशसे निकालदेना यही ब्राह्मणका मारनाहै और देहदण्ड तो हत्या है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ सब पाण्डव शोकसे व्याकुलहो द्रौपदीको आगे कर मरेहुए पुत्रोंकी दाह क्रिया करने लगे ॥ ५८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे प्रथमस्कन्धे भागवत-
संहितावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
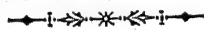
दोहा–अब अष्टम अध्यायकी, कथा सुनो दे कान ।
नृपदुर्योधनकी क्रिया, कीन्हीं वेदविधान ॥ १ ॥

इतनी कथा कह सूतजी बोले कि, हे ऋषीश्वरो ! अश्वत्थामाके छोड़नेके उपरान्त राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा पाकर, दुर्योधन आदिक वीरोंकी लोथें जो रणस्थलमें पड़ीथीं उनके पुत्र पौत्र बन्धु उठा लेगये और विधिपूर्वक उनकी दाहक्रिया करी और पुत्रोंको तिलांजली देनेके लिये द्रौपदीको साथले और स्त्रियोंको आगेकर गंगा किनारे गये ॥ १ ॥ वह सब जल देकर बारंबार विलापकर श्रीगंगामहारानीके अमृतरूपी जलमें स्नान किया ॥ २ ॥ तहाँ युधिष्ठिर धृतराष्ट्र भीमादि सहित पुत्रशोकातुर कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी आदिको श्रीकृष्णचन्द्रने ॥ ३ ॥ जिनके पुत्र बन्धु मरगयेथे उन शोकाकुलोंको शान्त किया और जिसका कोई कछु न करसके ऐसा बलशाली कठिन करालकी चाल सब जीवोंमें दिखाने लगे ॥ ४ ॥ कपटी दुर्योधनादिकोंसे छीनाहुआ राज्य युधिष्ठिरको दिलवादिया और द्रौपदीकी चोटी पकड़नेसे जिनकी अवस्था नष्ट होगई ऐसे खोटे राजाओंको मरवायकर ॥५॥ और उत्तम उत्तम यज्ञकी सामग्री मँगाकर तीन अश्वमेध यज्ञ करवाकर उनका पवित्र यश इन्द्रकी भाँति दशों दिशाओंमें विस्तार किया ॥ ६ ॥ पांडुपुत्रोंसे आज्ञा लेकर सात्यकि उद्धव सहित महा पूजनीय द्वैपायन आदि विप्रोंने उनकी पूजाकरी ॥ ७ ॥ हे ऋषियो ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी द्वारका जानेकी इच्छा हुई और रथमें बैठ सबसे विदा मांगी, उससमय अश्वत्थामाने अपना अपमान समझ फिर ब्रह्मास्त्र चलाया. तब वह पांच मुख बनाकर पांचोंभाई पाण्डवोंकी ओरको आया और एकछोटी चिनगारी उसमेंसे निकली उसने उत्तराके उदरमें प्रवेश किया कि, इसके गर्भका बालकभी भस्म होजाय तो अच्छा है, जब उत्तराके उदरमें अचानक आगसी भडक उठी और हृदय फुंकनेलगा, तब वह उस कृशानुके जलनेसे अत्यन्त व्याकुल और भयभीत हो रोती डकराती श्रीकृष्णके पासको दौडी ॥ ८ ॥ और आनकर प्रार्थना की. हे महायोगिन् ! हे दीनवत्सल ! हे जगत्पते ! मेरी रक्षाकरो मेरी रक्षाकरो ! इस अग्निकी मृत्युसे इस विश्वमें आपके अतिरिक्त अभयदाता

मुझको कोई दृष्ट नहीं आता ॥ ९ ॥ हे ईश ! तप्तलोहके समान बाण सामनेसे चला आता है हे समर्थ ! हे दीनानाथ ! चाहै मेरा दाह होजाय परन्तु मेरा गर्भ स्थिररहै ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि, भक्तवत्सल भगवान् उत्तराके दीन वचन सुन कहनेलगे कि, हे उत्तरे ! अश्वत्थामाने यह समझकर ब्रह्मास्त्र चलायाहै कि, पाण्डवोंके वंशमें कोई न रहै ॥ ११ ॥ देखा तो पांच बाण पांचों पाण्डवोंके भस्म करनेके लिये सामनेसे अग्निसम प्रकाश करते चले आतेहैं यह देखकर पाण्डव अपने अस्त्र ग्रहण करने लगे ॥ १२ ॥ पाण्डवोंको अपना हितकारी जान श्रीबाँकेबिहारी भक्तभयहारी मुनिमनरंजन कोटिकष्टभंजन देवकीनंदनने पांडवोंकी रक्षाके लिये चक्र सुदर्शन सँभाला ॥ १३ ॥ सब जीवमात्रके अंतर्यामी व्यापक सकल दुःखहर्ता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अपनी मायासे कौरवोंके संतानकी वृद्धिके लिये विराटकी बेटी उत्तराका दुःख देख चक्रसुदर्शनको आज्ञादी कि, तुम उत्तराके उदरमें जाकर ब्रह्मास्त्रकी गर्मीको शान्तकरो और पीछेसे आपभी श्रीकृष्ण मुकुंद मधुसूदन भक्तहितकारी अंगुष्ठमात्र तनु धारणकर उत्तराके उदरमें घुसगये और ऐसी शीतलाई फैलाई कि उसके हृदयका सब कष्ट शमन होगया उस समय परीक्षितने मधुसूदनकी माधुरी मूर्तिको अपने हृदयमें धारण करलिया और कहा हे वैकुण्ठनाथ ! इस दासपर आपने बडा अनुग्रह किया जो गर्भहीमें मुझे दर्शन दिया धन्यहै मेरा भाग्य आपकी कृपाका कहाँतक उपकार वर्णन करूं ॥ १४ ॥ हे शौनक ऋषि ! जो कभी निष्फल नहीं होता, जिसका संसारमें कोई सामना नहीं करसकै और उसकी प्रबल प्रचण्ड ज्वालासे त्रिलोकीमें कोई जीवमात्र न बचसकै, सो ब्रह्मास्त्रभी विष्णुके चक्रसुदर्शनके सन्मुख क्षणमात्रमें शान्त होगया ॥ १५ ॥ सबको आश्चर्य दिखानेवाली भगवान्की लीलामें कुछ आश्चर्य मत मानो वह अपनी प्रकाशिनी मायासे इस विश्वको रचैहै, रक्षा करैहै, संहारकरैहै और आप अजन्माहै ॥ १६ ॥ ब्रह्मास्त्रसे छुटे पुत्रोंको देख कुन्ती द्रौपदी समेत श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारका जानेका समाचार सुन हरिके समीप आनकर ॥ १७ ॥ कुन्ती बोली कि, हे आदिपुरुष ! अविनाशी, प्रकृतिसे परे, जो किसीके देखनेमें न आवै, सब जीवोंके बाहर भीतरकी जाननेवाले तुम संसारमें व्यापकहो, तुमको वारंवार नमस्कार करूंहूं ॥ १८ ॥ जो मायारूपी जवनिकासे दृष्ट और अदृष्टहै, जो इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए ज्ञानसे नहीं जानेजाते, आप अविनाशीको मैं मूढ अज्ञानी स्त्री क्याजानूं मूढ दृष्टि युक्त पुरुष तुमको नहीं देखसक्ते । जैसे नटकी मायाको नाट्कविद्या विहीन पुरुष नहीं जानसक्ते तैसेही आपहो ॥१९॥ जीवात्माके द्वारा जो परमात्माको देखनेवाले परमहंस मनन करनेवाले मुनि राग द्वेष शून्य निर्मल अन्तःकरण युक्त महात्माओंकोभी जाननेमें नहीं आते भक्ति योग विधानके निमित्त आपने अवतार धारण कियाहै सो मैं स्त्री आपकी महिमाको कैसे जानूं ॥ २० ॥ वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्दगोपकुमार, गोविन्द, श्रीकृष्णचन्द्र, आनन्दकन्दको वारंवार नमस्कारहै ॥ २१ ॥ जिनकी नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्नहुआ, ऐसे कमलमालाधारी कमलदललोचन, कमलसमान कोमल अमल चरण वालेको वारंवार नमस्कारहै ॥ २२ ॥ हे हृषीकेश ! दुष्ट कंसके भयसे देवकी बहुत दिनतक

घरमें बन्द रहीथी तब अकेली देवकीकी आपहीने रक्षाकरी ओर मेरीभी आप समर्थने पुत्रों-सहित विपत्तिसे वारंवार रक्षाकरी और अपनी माताके समान आप सदा मुझपर दया करते रहे ॥ २३ ॥ और जिन जिन विपत्तियोंसे रक्षा करी वह विपत्ति यहथी—भीमसेनको विषके लड्डुओंसे, लाक्षामन्दिरमें अग्निसे, पुरुष खानेवाले हिडंबादि बकके दीखनेसे, खोटी सभासे, वनवासके कष्टसे, संग्राममें अनेक महारथियोंके अस्त्रसे, अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे और सब ओरकी विपत्तियोंसे अनेकबार रक्षा करी ॥ २४ ॥ हे जगद्गुरो ! जहाँ तहाँ हमपै तो विपत्तियाँहीं रहैं, क्यों ? उन विपत्तिओंमें मोक्षदाता तुम्हारा दर्शन होताहै, फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥ २५ ॥ सत्कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्र, लक्ष्मी, इनके होनेसे पुरुषको अभिमान होता जाताहै, सो भक्तजन आठपहर जिनके नाम भजैं, श्रीकृष्ण, गोविन्द, नारायण वासुदेव ऐसे उच्चारण करनेके योग्य नहीं होते ॥ २६ ॥ जिनको किसी वस्तुकी कांक्षा नहीं जो ऐसे भक्त हैं जिनके मनसे धन गुणोंकी वृत्ति दूरहोगई, उन आत्माराम शांत मोक्षदाताको नमस्कारहै ॥ २७ ॥ काल ईश्वर जिसका आदि अन्त नहीं ऐसे प्रभु समदर्शी सबको एक भाव वर्तें सब जीवोंमें किसी निमित्तसे परस्पर क्लेश होता है ऐसे तुमको मानूं हूं ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! मनुष्योंकी एक लीलामात्र चेष्टाकरों, ऐसी तुम्हारी करनेकी इच्छाहै सो कोई भी नहीं जानता, जिसका कोई शत्रु मित्र नहीं; यह ईश्वरमें मनुष्योंको विषममति होती है कि, इसपै कृपा करैं हैं, इसपै कृपा नहीं करते ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन् ! सबमें तुम व्याप्त हो, ऐसे तुम्हारे अकर्त्ताके कर्म, अजन्माके जन्म, आश्चर्यमय हैं कभी वाराहरूप, कभी रामचन्द्ररूप, कभी वामनरूप, कभी मत्स्यरूप धारण करते हो, यह सब कहनेमात्रको हैं ॥ ३० ॥ जिससमय यशोदाने तुम्हारे अपराधको देखकर बांधनेके लिये रस्सी ली तब तुम आंसुओंसे आंखोंका अंजन बहाय व्याकुलहो, नीचेको मुखकर भयके भावसे अलग जा बैठे और जिस समय दधिके भाजन फोड डाले उस समयकी जो आपकी दशाहै, मुझको मोह करावै है क्योंकि, जो भय आपके सन्मुख थरथर कॉपै है सो आप यशोदासे डरो यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ३१ ॥ पुण्यश्लोकोंके कीर्तनके लिये प्रिय यदुके वंशमें आपने अजन्मा होकर जन्मलिया, जैसे मलयगिरिपर चन्दन उपजै है, उसीप्रकार अजन्माने जन्मलिया, कोई कोई ऐसे कहैं हैं ॥ ३२ ॥ और कोई मुनीश्वर ऐसे कहैं हैं कि, वसुदेवदेवकीकी चाहनासे अवतार लिया, आप जन्म कभी नहीं लेते, तौभी इस विश्वके कल्याणके लिये और देवद्रोहियोंके वधके कारण अवतार धारण करते हैं ॥ ३३ ॥ और कोई ऐसे कहैं हैं कि, समुद्रमें जैसे नाव डूबती हो उसकी रक्षा करै इस प्रकार महाभारसे व्याकुल पृथ्वीको निहार भूभारहरनेको ब्रह्माकी प्रार्थनासे अवतारलेते हैं ॥ ३४ ॥ कोई आचार्य ऐसे कहैं हैं, अविद्या, कामकर्मसे दुःखी होकर विश्वके जीव पुनि श्रवण स्मरण करैं हैं इस कारण अवतार धारण करते हैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य तुम्हारी लीलाको देखते हैं और चारित्रोंको सुनते हैं, और सुनाते हैं और बारंबार स्मरण करते हैं और यश गाते हैं और मनहींमनमें मग्न होते हैं, वह मनुष्य थोडेही दिनोंमें संसारके प्रवाह नाशक

तुम्हारे चरणारविन्दका दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ हे भक्ताभीष्टदायक ! हे प्रभो ! निश्चय है कि, आपके दर्शनहीसे जीते हैं, आपके सुहृद् हैं उनको आप अब त्यागो हो, हमतो आपही की कृपासे शत्रुओंके दुःखदायक हैं हमको आपके चरणकमलके अतिरिक्त कोई वस्तु सुखदायक नहीं है ॥ ३७ ॥ यादवों सहित हमारा विना आपके दर्शनके नामरूपसे क्या है, जैसे विना जीवके इन्द्रियोंके नाम रूपसे कुछ कार्य सिद्धि नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे गदाधर ! जैसी अब पृथ्वी शोभायमान है फिर ऐसी शोभा नहीं देगी, क्योंकि अबतो आपके वज्र, यव, अंकुश आदि चिह्नयुक्त चरणोंसे शोभित हैं, फिर इन चरणोंका अभाव होजायगा ॥ ३९ ॥ आपके होनेसे यह देश सुन्दर समृद्धिवान् है, सुन्दर सुन्दर रूपकी औषधी, लतायें, जहाँ तहाँ उपस्थित हैं, वन, पर्वत, नदी यह सब आपके देखनेसे वृद्धिको प्राप्त हैं ॥ ४० ॥ इसलिये हे विश्वेश ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वमूर्ते, अपने जनोंमें, पाण्डवोंमें, यादवोंमें यह स्नेहकी जो फांसी है, इसको तुम काटो ॥ ४१ ॥ हे मधुपते ! तुम्हारे चरणोंमें मेरी यह बुद्धि सदा लगीरहै और कहीं नहीं लगे, जैसे गंगाका प्रवाह निरन्तर समुद्रमें मिला रहता है ॥ ४२ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे अर्जुनसखे ! हे यादवकुलभूषण ! हे पृथ्वीद्रोही क्षत्रियवंशनाशक ! हे अक्षीण प्रभाव ! हे गोविन्द ! हे गरुडध्वज ! हे गोब्राह्मणदेवताक्लेशनाशक ! हे योगीश्वर ! हे अखिलगुरो ! हे भगवन् ! आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ४३ ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषिगण ! सब महिमा जिसमें उदित है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनकी मधुर मधुर पदोंसे जब कुन्तीने स्तुति करी, तब भगवान् परमानन्द मन्द मन्द मुसकाये, मानो मायासे मोहका जाल डाल रहे हैं हरिकी हाँसी सब जनोंको उन्माद करती है ॥ ४४ ॥ हे कुन्ती ! जो तुम्हारी इच्छा होय सो वर माँगो. मैं तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करूंगा ऐसे कह हस्तिनापुरमें आय सुभद्रादि स्त्रियोंसे बूझकर अपने नगरके चलनेको उपस्थित हुए, उसरागय युधिष्ठिरने बहुत कहा कि आपको यहाँसे हमैं छोडकर जाना नहीं चाहिये, तुम्हारे जानेसे हमलोगोंको बडा दुःख होगा, तुमविना हमारी सहायता कौन करेगा, जो सुख हमको तुम्हारे चरणकमल कोमल अमलके देखनेसे मिलता था, वह सुख हमको इस राज्यके पानेसे नहीं मिलता, तुम्हारे चरणारविन्दोंके विनादेखे हमको धैर्य किसभाँति होगा और शत्रुओंके हाथसे कौन बचावैगा, हे नाथ ! अब हमको शत्रुओंसे जीतनेका उपाय कौन बतावैगा अब हम क्याकरैं ॥ ४५ ॥ ईश्वरकी चेष्टा जाननेवाले व्यासादिकोंने और अद्भुत कर्मवाले श्रीकृष्णजीने अनेक इतिहासोंसे ज्ञानभी दिया, तोभी शोकके मारे युधिष्ठिरका मन शान्त न हुआ ॥ ४६ ॥ उस समय राजा युधिष्ठिर अपने मरे सुहृद् बांधवोंका चिंतवनकर बोले कि, हे ब्राह्मणो ! मैं उस समय अज्ञान और मोहवश होगयाथा, हाय ! मुझ दुरात्माके हृदयमें ऐसा अज्ञानसमूह होगया कि जिस देहको श्वान शृगालभी नहीं खाते, मैंने उसी देहके पोषणके लिये बहुत अक्षौहिणीसेना मारी. उस अक्षौहिणीकी संख्या इस प्रकारहै (२१८७० जिसमें हाथी, ६५६१० घोडे. २१८७०

रथ, १०९३५० पैदल) इसको अक्षौहिणी कहते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ बालक, ब्राह्मण, सुहृद्, मित्र, पिता, भ्राता, गुरु, इनका द्रोही जो मैंहूं सो मेरा नरकसे करोडों वर्षतकभी उद्धार नहोगा ॥ ४९ ॥ आप जो कहतेहैं धर्मयुद्धमें द्वेषियोंके वध करनेसे प्रजापालक राजाओंको पाप नहीं होता इस शिक्षाके वचन मेरे मनको बोध नहीं करते ॥ ५० ॥ मेरे हाथसे भ्रातृगण मारे गयेहैं, उनकी स्त्रियोंके मनमें उठाहुआ तीव्र द्रोह दूर करनेको मैं कितनेही गृहस्थाश्रमके कर्म करूं तौभी मेरा उस पापसे उद्धार नहीं होसक्ता ॥ ५१ ॥ जैसे कीचका सना कीचसे नहीं धोयाजाता, मदिरासे मदिराका पात्र नहीं शुद्धहोता तैसेही हठसे एकजीवकीभी हिंसा यज्ञोंके करनेसे नहीं छूटती ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुति-युधिष्ठिरानुतापोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा-कहौंनवमअध्यायमें, भीष्मकृष्णसम्वाद।
राज्ययुधिष्ठिरकोदियो, मेटोसकलविषाद ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि, हे ऋषिराज! युधिष्ठिर प्रजाके द्रोहसे भयभीतहो, सब धर्मके जाननेकी इच्छा करके जहाँ भीष्मपितामह कुरुक्षेत्रमें बाणोंकी शय्यापर पडेथे उनके पास आये ॥ १ ॥ और सब भाई सुवर्णभूषण भूषित घोडोंके रथोंपर आरूढहो भीष्मपितामहके निकट पहुँचे और उसी समय व्यास, धौम्य, कृपाचार्यादिकभी वहाँ आगये ॥ २ ॥ हे शौनक! अर्जुनको और द्रौपदीको अपने साथ लिये रथपर बैठे भगवान् इस प्रकार शोभित हुए जैसे यक्षों सहित कुबेर शोभा पावैं ॥ ३ ॥ स्वर्गसे मानो कोई देवता गिरपडा है इसप्रकार पृथ्वी पर पडे भीष्मपितामहको सभृत्य पाण्डव और श्रीकृष्णचन्द्र सहित सबने प्रणाम किया ॥४॥ तहाँ हेसत्तम! देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि भीष्मपितामहके देखनेको आये ॥ ५ ॥ पर्वतमुनि, नारदमुनि, धौम्य, भगवान् बादरायणजी, बृहदश्व, भरद्वाज, सशिष्य परशुराम ॥ ६ ॥ वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, असित, त्रित, गृत्समद, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, कौशिक, सुदर्शन ॥ ७ ॥ और निर्मल शुक्राचार्यादिकमुनि, शिष्योंको संग लेकर, कश्यप, अंगिरा आदि अनेक ऋषि मुनि आये ॥ ८ ॥ सूतजी बोले, हे ब्रह्मन्! उस समय धर्मज्ञ पितामह उन सब महात्मा पुरुषोंको देखा, और देश काल विभाग जाननेवाले भीष्मपितामहने मानसी पूजन किया ॥ ९ ॥ जगदीश्वर हृदयनिवासी, अपनी मायासे जिन्होंने विग्रह धारणकिया, सिंहासनपर विराजमान श्रीकृष्णका, भगवत्के प्रभाव जाननेवाले भीष्मपितामहने पूजनाकिया ॥ १० ॥ विनय स्नेहसे नम्र समीप बैठे नेत्रोंमें जल भरकर पाण्डुपुत्रोंसे प्रेम प्रीतिसनी वाणीसे भीष्मपितामह बोले ॥ ११ ॥ महा कष्ट है बड़ा अन्यायहै, हे धर्मपुत्रों! ब्राह्मण धर्म भगवान्के आश्रित होकर भी क्लेशसे जीते हो ॥ १२ ॥ महारथी राजा पाण्डुके मरे पीछे बालक जिनकी सन्तान ऐसे, वधू कुन्तीने तुम्हारे लिये बडा क्लेश भोगा ॥ १३ ॥ जो आपको अप्रिय है सो सब यह समयकी करीहुई बात

है सो काल वह है कि, जिसके वशमें सब लोग हैं, जैसे मेघपंक्ति पवनके वशमें रहती है ॥ १४ ॥ जहां धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीमसे गदाधारी, जहां अर्जुनसे गाण्डीवधनुषधारी, श्रीकृष्णसे मित्र, महाशील द्रौपदीसी पतिव्रता स्त्री तहां भी विपत्ति पडी ॥ १५ ॥ हे युधिष्ठिर ! मुझको पूर्ण विश्वास है कि, विना परमात्माकी इच्छा कोई कार्य नहीं होता उसकी अपार महिमा कोई नहीं जानसक्ता, जिनके जाननेकी इच्छा करके बडे बडे कविलोगभी मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! यह संसारके दुःख सुख दैवाधीन हैं, हे नाथ! हे प्रभो ! उनके अनुवर्ती जो आप हो, सो तुम इस अनाथ प्रजाका पालन करो ॥ १७ ॥ यह साक्षात् भगवान् आद्य नारायण पुरुष हैं, मायासे लोकको मोहित कर वृष्णियोंमें छिपकर विचरैं हैं ॥ १८ ॥ इनका प्रभाव जो छिपाहुआ है उसको महादेवजी जाने हैं. वा देवऋषि नारदजी और साक्षात् भगवान् कपिलदेवजी जाने हैं ॥ १९ ॥ अज्ञानसे जिनको तुम मामाका पुत्र, परममित्र, सुहृदोत्तम मानो हो, जिन्होंने तुम्हारा मंत्रीपना किया, दूत बने, और तुम्हारे प्यारे हितकारी व सारथी बने ॥ २० ॥ सर्वात्मा, समदृष्टिवाला जिनके समान कोई नहीं, जिनको अहंकार नहीं, रागादिकका जिनमें लेश नहीं. ऐसे ईश्वरको नीचे उच्च कर्म करना, यह हमारे योग्यहै यह बात हमारे योग्य नहीं है यह बुद्धिकी विषमता परमेश्वरमें नहीं है ॥ २१ ॥ हे राजा युद्धिष्ठिर ! यद्यपि परमेश्वरमें यह बात है तौभी जो उनके एकान्तमें ध्यान करनेवाले भक्तहैं उनपर दया ही करे हैं "उनकी बडाई और अपने भाग्यकी बडाई कहाँतक करूं" देखो ! जो मेरे प्राण त्यागनेके समय श्रीकृष्णचन्द्रने आनकर दर्शन दिया ॥ २२ ॥ भक्तिसे जिसमें मन लगाकर वाणीसे जिनका नाम आठ प्रहर कीर्त्तन करै और इसी ध्यानमें देहत्याग करे तो वह पुरुष कामकर्मसे छूट जाता है ॥ २३ ॥ जबतक मैं देहत्याग न करूं, तबतक प्रसन्नवदन कमलनयन रुचिरमुखकमल चतुर्भुज देव देव तुम्हारा मार्ग ध्यानयोग्य है मेरे सन्मुख दर्शन देतेरहो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि, बाणोंकी शय्यापर सोये भीष्मजीकी यह वाणी सुन युधिष्ठिर सब ऋषियोंके मध्यमें अनेक धर्म बूझनेलगे ॥ २५ ॥ जो धर्म पुरुषके स्वभावके योग्य हैं वर्णोंके धर्म, आश्रमोंके धर्म वैराग्य राग उपाधियोंके धर्म, वेदोक्त प्रवृत्तिमार्ग, निवृत्तिमार्ग ॥ २६ ॥ दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रियोंके धर्म भगवद्धर्म संक्षेप विस्तारसे अलग अलग कहे ॥ २७ ॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके उपाय, हे मुने ! अनेक अनेक प्रकारके इतिहास कथामें तत्त्ववेत्ता भीष्मजीने वर्णन किये। उस समय द्रौपदीभी वहाँ भीष्मपितामहके निकट बैठी थी जब भीष्मपितामहने कहा कि जो कोई धर्मात्मा इस धर्मका जाननेवाला मनुष्य बैठा हो? और उस सभामें कोई अधर्मी अधर्म करना चाहै. तो धर्मात्मा पुरुषको उचित है कि उस पापीको पापकर्मसे वर्जै. कदाचित वह वर्जित करनेके योग्य नहीं होय और कुछ सामर्थ्य न रखता हो, तो उस सभासे उठकर चलाजाय, भीष्मपितामहका यह वचन सुनकर द्रौपदी राजा युधिष्ठिर और अर्जुनकी ओर देखकर हँसीं, और फिर अत्यन्त लज्जित होकर कहा देखो ! राजा दुर्योधनकी सभामें भीष्मपितामहके सन्मुख अधर्मसे मेरी दुर्दशाहुई, और दुःशासनने मुझको नग्न करनेके

लिये मेरा वस्त्र खैंचा, और राजा दुर्योधनने मुझे अपनी जंघापर बैठानेका उद्योगकिया और सब सभा मेरा उपहास करनेको उस समय उपस्थित थी, उस समय ऐसी महादुर्दशाहोने-पर मुझपापिनीके पापी प्राण न निकले, और मैं इतनेपरभी अपना मुख तुम लोगोंको दिखातीहूं, ऐसे जीवसे तो मरनाही भला था, परन्तु क्या कीजे? परमेश्वरकी इच्छामें किसीका वश नहीं चलता,मेरे भाग्यमें ऐसाही लिखा था, जो उस विपत्तिमें द्वारकापति मेरी पति न रखते तो सब धर्म डूबजाते. तब भीष्मपितामहने द्रौपदीको उदास और मनमलीन देखतेही उसके अन्तःकरणकी बात अपने ज्ञानसे जानकर कहा, हे पुत्री! तुम अपने मनमें कुछ सोच संकोच मत करो, यह सब धिक्कार मेरे ऊपर है, क्योंकि जिस समय यह महा अन्याय तेरे ऊपर हुआथा, उस समय मैं वहांथा तो परन्तु मेरे मनमें तब यह ज्ञान नहीं था. इस कारण हे बेटी! मेरा अपराध क्षमाकर, परमात्माकी इच्छा इसी भांति थी, जो परमेश्वरको करना होता है; उसका उसी प्रकार बानक बन जाता है. किसीकी चतुराई नहीं चलती, इसका एक कारण और है, सो मैं तुझसे कहूं हूं, कोई मनुष्य कैसाही चतुर और ज्ञानीहो परन्तु अधर्मीकी संगतिसे उसका धर्म कर्म ज्ञान ध्यान सब नष्ट होजाता है, और समयपर काम नहीं आता. जो कोई अधर्मीका अन्न भोजन करताहै उसकी बुद्धि उसीके समान होजाती है; सो मैंने उन दिनों दुर्योधन अधर्मीका अन्न भोजन किया था, इस कारण मुझको उस समय धर्म अधर्मका कुछ ज्ञान नहीं रहा और मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई, अब मुझको एक महीना छब्बीस दिन अन्न जल छोडे और बाणोंकी शय्यापर पडे होगया, इसलिये अब मेरे शरीरसे दुर्योधन दुराचारीके अन्नका विकार और उसके संगका प्रभाव निवृत्त होगया तो अब मुझे इसबातका विचार हुआ. कि मैंनेभी अत्याचारियोंके संग रहकर अत्याचार किया॥ हे पुत्री! इस बातपर मुझको एक दृष्टान्त महाभारतका स्मरण हुआ. त्रेतायुगमें राजा शिविके राज्यमें, एक बड महात्मा परमहंस पुरुष रहते थे. बडे धर्मात्मा और ज्ञानवान् थे राजा उनकी सेवा तन मनसे करता था उस राजाके नगरमें एक ब्राह्मणने अपनी कन्याका आभूषण किसी सुनारको बनानेके लिये दिया सो उस सुनारने सुवर्ण तो बदललिया और पीतलका गहना बनाकर और ऊपरसे सोना चढाकर ब्राह्मणको दिया. उस ब्राह्मणने विना दिखाये भलाये वह गहना अपनी पुत्रीको पहना दिया. वह लडकी उस आभूषणको पहनकर अपनी ससुरालको चलीगई. उसका पति चतुर था पीतलका गहना देखकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुआ और उस लड-कीको पिताके घर पहुँचा दिया. तब उस ब्राह्मणने बहुत दुःख मानकर राजा शिविके समीप जाय निवेदनपत्र दे अपना सब वृत्तान्त कहा, तब राजा शिविने उस ब्राह्मणकी बात सुनकर सुनारको पकडा मँगाया और उसको अपराधी समझकर सब उसका अन्न धन लुटवाकर भंडारमें मँगालिया और उसको कारागारमें भिजवा दिया, उसी अन्नका भोजन परमहंसने भी किया. उस सुनारका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि भ्रष्ट होगई और रानीका रत्नजडित हार चुरालिया और अलग किसी गुप्त स्थानमें जा छिपे. और

अन्न जलभी तीन दिनतक उनको नहीं प्राप्त हुआ तबतो उपास करनेसे सुनारके अन्नका विकार उनके उदरसे जातारहा फिर ज्ञान हुआ तो समझा कि मैंने बड़ा अन्याय किया जो रानीका हार चुरालिया. यह समझ राजाके सन्मुख जाकर कहा. मैंने बड़ा पाप किया, इस पापके बदले मुझको नरक भोगना पड़ेगा, इसलिये अपने कर्मका दण्ड इसी देहसे भोगलेना उचितहै, जिसमें परलोककी चिंता न रहै, इस कारण हे पृथ्वीनाथ ! इस पापके बदलेमें मेरे दोनों हाथ कटवा दीजिये कि मैं अपने अधर्मका दण्ड इसी जन्ममें भोगलूं, न जानिये परलोकमें क्या दशा होगी, यह बात सुनते ही राजाने उदास होकर पण्डित और ज्ञानियोंको बुलाकर बूझा, कि यह क्या कारण है जो परमहंसका चित्त उस दिन ऐसा बदलगया, कि इन्होंने हार चुराया और अब आपही उस हारको लेकर मेरे पास आये, और कहते हैं कि मेरे हाथ कटवादो, ब्राह्मणोंने अपनी विद्याके विचारसे कहा कि, हे भूपालमणि ! जिस दिन परमहंसने चोरी करीथी उस दिन किसी पापीका अन्न खानेसे परमहंसकी यह गति होगई, सो राजाने बूझा तो विदित हुआ कि उसी सुनार अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि बदलगई थी, सुनारको बुलाकर बूझा कि तैने पीतलपर सोना कैसे चढाया ? उसने कहा कि-एक घातीने किसीके बालकको मारकर उसका गहना मेरे हाथ बेचा, उस धान्यके खानेसे मैं मतिहीन होगया सो हे द्रौपदी ! एक दिन अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसका ज्ञान नष्ट होगया जो उसने चोरी करी, और मैं राजा दुर्योधन अधर्मीका सदा अन्न भोजन करताथा और उसके संग रहताथा, मुझे उससमय इतना ज्ञान नहीं हुआ. जो दुर्योधनको तेरे ऊपर अन्याय करनेसे उसे वर्जित करता और वह नहीं मानता, यह सब मेराही अपराध है. क्षमाकर, यह कह भगवान् वासुदेवकी मनोहर मूर्तिको हृदयमें धारणकर नेत्र बन्द कर लिये ॥ २८ ॥ उसी समय काल आनकर प्राप्त हुआ. जिसको अपनी इच्छासे मोक्ष जाना होय सो उत्तरायण काल है ॥२९॥ युद्धमें सदा सबके समीप रहनेवाले, सहस्रों मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले, उन भीष्म पितामहने सहस्र अर्थ कहनेवाली वाणीसे, आदिपुरुष भगवान् पीताम्बरधारी चतुर्भुज सन्मुख स्थित श्रीकृष्णजीमें सब सग छोड़ मन लगाया ॥ ३० ॥ बुद्धिको शुद्ध और मन स्थिर करनेसे जिनके पाप नष्ट होगये, और श्रीकृष्णजीके दर्शनसे आयुधोंके लगनेकी व्यथा दूर हो गई और सब इन्द्रियोंकी वृत्तियोंका भ्रम भी जिनका दूर हो गया, सो भीष्मजी देह त्यागनेके समय जनार्दन भगवान्की स्तुति करके बोले ॥ ३१ ॥ हे यादवकुलश्रेष्ठ ! महामहिमायुक्त स्वरूपभूत परमानन्दको प्राप्त किसी समय विहार करनेके निमित्त योगमायाके आश्रितहो देहधारण करते हो, जिससे संसार कृतार्थ होय. ऐसे भगवान् षड्गुण ऐश्वर्यवान् श्रीकृष्णजीमें मैंने निष्काम बुद्धि समर्पणकरी ॥ ३२ ॥ त्रिलोकीमें सुन्दर तमालवत् नीलवर्ण सूर्यकी किरणसम प्रकाशवान् तनुपर उज्ज्वल वस्त्र धारण किये, मुखारविन्दपर सघन समूहवत् अलकें चारों ओरको छिटकरहीं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र यदुनायकमें निष्काम मेरी प्रीति हो ॥ ३३ ॥ युद्धमें घोड़ोंके खुरोंकी धूरिसे अटी हुई अलकें इधर उधरको बिखरी हुई,

और अलकोंके श्रमसे जिस मुखपर पसीना ऐसे आरहाथा, जैसे श्यामकमलके फूलपर ओसके कण चमकते हैं, कठिन पैने बाणोंसे जिनकी देह मैंने भेदन कर डाली, ऐसे शोभा-यमान कवचधारी श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी बुद्धि लगै ॥ ३४ ॥ अर्जुनका वचन सुन शीघ्र अपने रथको कौरवोंकी सेनामें खड़ा करके शत्रुओंके सेनापतियोंकी आयु छीनकर, यह भीष्म, यह द्रोण, यह कर्ण, ऐसे उंगली दिखानेके बहानेसे सबकी आयु खैंचकर अर्जुनकी जय कराई ऐसे पार्थसखा श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी प्रीतिहो ॥ ३५ ॥ दूर खड़ी सेनाका मुख देख, मोहित खिन्न अर्जुनकी कुमतिको अध्यात्मविद्या (गीताशास्त्र) के उपदेशसे दूर किया ऐसे श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति मेरे नेत्रोंमें बसी रहै ॥ ३६ ॥ हे नाथ ! आप अपने भक्तोंका ऐसा वचन प्रतिपालन करते हैं, कि जब महाभारत भी नहीं हुआ था तो आपने प्रतिज्ञा करी थी, कि हम विना शस्त्रधारण किये केवल पाण्डवोंकी सहायता करैंगे, और इधर मैंने प्रण कियाथा, कि जो मैं भीष्मपितामह हूं तो आपको संग्राममें व्याकुल करके तुम्हारी प्रतिज्ञा छुड़ाकर एकबार आपको शस्त्रग्रहण करादूंगा, सो आपने भक्तभावकी रीतिसे सोचा कि मेरी प्रतिज्ञा छूटजाय तो छूटजाय परन्तु मेरे भक्तकी प्रतिज्ञा नहीं छूटै, क्योंकि जब भक्तकी प्रतिज्ञा छूटगई तो फिर कोई भक्त पूर्ण प्रतिज्ञा नहीं करैगा और भक्ति संसारसे उठ जायगी, यह समझकर अपनी प्रतिज्ञा छोड़दी और मैंने अपना प्रण पूरा करनेके लिये अर्जुनके रथका चक्र तोड़कर घोड़ोंका घात किया, और उसके रथकी ध्वजा तोड़ धनुषको काटकर गिरादिया, तब आप अत्यन्त क्रोधित होकर उसी रथका चक्र उठाकर मेरे मारनेके लिये मेरे पीछे दौड़े, उस समय दुपट्टेसे कैसे शोभायमान दिखाई देते थे जैसे श्याम घटामें चपला चमक जाती है, जब आप दौड़ते दौड़ते व्याकुल होगये उस समय आपका पीताम्बर पृथ्वीपर गिरपड़ा उसके गिरनेका यह अभिप्राय था, कि जब आपने अपनी प्रतिज्ञा त्यागकर शस्त्रधारण किया, तब पृथ्वीका हृदय काँपने लगा, कि श्रीकृष्ण भगवान्ने तो भूमिका भार उतारनेके लिये संसारमें अवतार लिया है कहीं वहभी अपनी प्रतिज्ञा न छोड़दें, मेदिनीके मनका भाव जानकर उसका संशय मिटानेके लिये अपना उपर्णा धरणीपर गिरादिया, और यह कहा कि, हे वसुधे ! धैर्य धारणकर धैर्य धारणकर, शोकाकुल मतहो ! मैंने अपने भक्तकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये अपना प्रण छोड़ाहै परन्तु तेरा भार अवश्य उतारूंगा, तू किसी प्रकारका संदेह मतकर. हे वसुमती ! जब तेरे मनमें विस्मय हुआ मैंने उसी समय तुझको धैर्य देनेके लिये अपना पीतांबर तुझको सौंपा, कि जबतक तेरा भार न उतारूं तबलों मेरा उपर्णा अपने पास रक्खा रहनेदे ऐसे पृथ्वीको धैर्य देनेवाले मदनमोहनमें मेरी रुचिहो ॥ ३७ ॥ मुझ आततायीके तीक्ष्ण बाणोंसे आपका कवच भग्नहो शरीरमेंसे रुधिर निकलने लगा, उस समय हठपूर्वक मेरे सन्मुख मुझे मारनेको आये "और मैं चाहता था कि पाण्डवोंकी सब सेनाको मारकर भगादूं तब तुम मेरे रथके चारों ओर आनकर अनेक अनेक प्रकारके रूप अपने मुझको दिखातेथे, जिन रूपोंको देख देखकर मेरे मनमें भ्रांति होतीथी कि इनमें कौनसा रूप

सत्यहै कौनसा मायाकाहै ? तब तुम मेरे बाणोंकी चोट सहकर मेरी सराहना करतेथे अब मैं उन बातोंका स्मरण करताहूं तो आपके सन्मुख मेरा मुख नहीं होता; सो आपने मेरे अपराधपर कुछ ध्यान नहीं किया और मरती समय मुझको आनकर दर्शन दिया, हे घनश्याम ! यही श्यामस्वरूप मेरे नेत्रोंमें बसारहै ॥ ३८ ॥ अर्जुनके रथरूप कुटुम्बमें कोडा लिये घोडोंकी पचरंगी बागडोर पकडे सारथीपनकी शोभा धारण किये, दर्शनीय भगवानमें मुझ मरणशीलकी प्रीति होय, जो आपके दर्शन करते करते युद्धमें मरे, सो आपके स्वरूपको प्राप्तहुए ॥ ३९ ॥ ललित गति विलास मनोहर हास्ययुक्त नम्र विलोकन श्रीकृष्णके चारित्रोंका अनुष्ठान करनेवाली मदमत्त गोपवधूभी जिनके स्वरूपको प्राप्त होगई ॥ ४० ॥ राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें अनेक मुनिगण नृपतिसमूहके समक्ष जिनकी सबसे पहिले पूजाहुई, आज मेरा धन्य भाग्यहै, सो श्रीकृष्णचन्द्र दर्शन योग्य मेरी दृष्टिके सन्मुख आनकर प्रगट हुए ॥ ४१ ॥ अपने रचे हुए शरीरधारियोंके हृदयमें विराजमान जन्मरहित, मोहरहितकी मैं शरणागत हूं, जैसे सब प्राणियोंकी दृष्टियोंमें एक सूर्य अनेक घटोंमें दिखाई देताहै ऐसे एक ईश्वर जीवोंके शरीरके भेदसे अनेक दृष्टि आते हैं ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले-कि, हे ऋषिगण ! भगवान् कृष्णमें मन वाणी दृष्टिकी वृत्तियों सहित जीवात्माको लगाकर भीष्मजी अंतःश्वासी उपरामको प्राप्तहुए ॥ ४३ ॥ भीष्मजीको उपाधिरहित ब्रह्ममें लीन जानकर, जैसे सन्ध्या समय सब पक्षी चुप हो जातेहैं ऐसे सब चुप होगये ॥ ४४ ॥ देवता मनुष्योंके बजाये हुए बाजे बजे, राजाओंमें साधु प्रशंसा करने लगे, आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ४५ ॥ हे शौनक मुनि ! भीष्मजीकी दाह क्रियाकर पाण्डव एक घडी शोकसे अपने मनमें बहुत दुःखीहुए, । "उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने पाण्डवोंको बहुत समझाया"-"कि जैसी मृत्यु संसारमें भीष्मजीकी हुई है, ऐसी मृत्यु दूसरेकी होनी बहुत दुर्लभहै, संसारमें जिसने शरीर धारण किया वह अवश्य एक दिन कालकौर होगा इस लिये मरनेका शोच करना वृथाहै, जो कोई संसारमें नरतनु पाकर माया मोहमें लिप्तरहै और परमात्मासे विमुख रहकर कलह क्लेशमें अपने दिन व्यतीत करे और वह अपना तनु त्यागकरै उसके लिये शोक करना अवश्य चाहिये. क्योंकि वह नरकोंमें वासकर कष्ट भोगैगा, और भीष्मपितामहने तो संसारमें भक्तिपूर्वक धर्म संयुक्त रहकर तनु त्यागकिया, इसलिये इनके मरनेका क्या शोक संताप है ? आप तो चतुर और ज्ञानी हैं, अधिक समझाना तो मूर्खोंको चाहिये. यह बात सुनकर युधिष्ठिरने अपने मनको धैर्य दिया" ॥४६॥ उस समय सब मुनियोंने प्रसन्न होकर छिपे नामोंसे श्रीकृष्णकी स्तुतिकरी, और श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति हृदयमें बसाय सब अपने अपने आश्रमको गये ॥ ४७ ॥ तब श्रीयदुनाथसमेत युधिष्ठिर हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्रसहित तपस्विनी गान्धारीको शान्त किया ॥ ४८ ॥ धृतराष्ट्रने और वासुदेवने राजा युधिष्ठिरकी सराहनाकरी और समर्थ राजा युधिष्ठिर प्रसन्नहो, धर्म कर्मसे अपने परदादाकी राजगद्दीपर बैठकर धर्म राज करने लगे॥४९॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामकृते प्रथमस्कन्धे भीष्मस्तुति-युधिष्ठिर-राजप्रलंभो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-कियो दशम अध्यायमें, धर्मराज सुतराज।
गमन द्वारकाको कियो, कृष्णचन्द्र महाराज ॥ १ ॥

इतनी कथा सुन शौनक मुनि बोले, कि हे सूतजी महाराज! जो अपनेसे अधिक राज्यकी इच्छा करतेथे, उन अन्यायी दुराचारियोंको मारकर, धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयों समेत वैरागी होकर कैसे अपना समय व्यतीत किया, सो वर्णन कीजे ? ॥ १ ॥ सूतजी बोले-कि, हे शौनकमुनि ! जो कुरुवंशरूप दावानलसे जले वंशको श्रीकृष्णचन्द्र फिर अपनी कृपादृष्टिसे उत्पन्नकर हस्तिनापुरके राज्यमें युधिष्ठिरको प्रवेश कराकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ और राजा युधिष्ठिर, भीष्मपितामह और श्रीयदुनाथ भगवानका परमज्ञान सुनकर, सब भ्रम और भटकना छोड़ श्रीकृष्णाश्रयसे सब भाइयों समेत समुद्रपर्यन्त पृथ्वी और प्रजाका इन्द्रकी समान पालन करने लगे ॥ ३ ॥ जब इच्छा होती तब मेघ बरसता सब पृथ्वी कामधेनु हो रहीथी, गौओंसे व्रज पूरित हो रहाथा ॥ ४ ॥ नदी समुद्र, पर्वत, वन, वनस्पति लतासमेत सब औषधियें सब ऋतुओंमें इच्छा-पूर्वक फूलती फलतीथीं ॥ ५ ॥ और राजा युधिष्ठिरके राज्यमें किसी जीवको किसी समय, मानसी व्यथा रोग, शीत उष्णादिक, अध्यात्मिक, अधिदैव, अधिभूत, दुःख नहीं होतेथे ॥ ६ ॥ श्रीद्वारकानाथ देवकीनंदन अपने मित्र पाण्डवोंका दुःख दूर करनेके लिये और भगिनीकी प्रीतिकी इच्छासे कुछ दिनों हस्तिनापुरमें वासकरके पश्चात् युधिष्ठिरसे सम्मति-कर और आज्ञाले भेंट प्रणामकर, और वहांके पुरुषोंसे यथा योग्य मिल प्रणामको प्राप्तहो श्रीभगवान्वासुदेव रथपर बैठे ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा गान्धारी, धृतराष्ट्र युयुत्सु, "जो धृतराष्ट्रके वीर्यसे वेश्यासे जन्माथा" कृपाचार्य, नकुल, सहदेव ॥ ९ ॥ भीम, धौम्य, ऋषि, और मत्स्यसुता उत्तरा, आदि मोहके वशहो, मदन-मोहन ब्रजनाथ बांकेविहारीके वियोगको न सहसके, मत्स्यसुता सत्यवतीका भी नाम है॥ ॥१०॥महात्मापुरुषोंके मुखसे जो बुद्धिमान एक बार भी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके यशको सुनचुका,वह उसी समय राग लोभ मोह स्त्री पुत्रादिकोंकी प्रीति तज उस कृष्णगुणगानेवालेके सत्संगको नहीं त्यागसक्ता, और जो नित्य साक्षात् परमेश्वरके परस्पर दर्शन स्पर्शन संभाषण और एक स्थानमें सोना बैठना भोजन करनेवाले युधिष्ठिरादिक हैं वह उस विरहको कैसे सहसकें ? ॥ ११ ॥ जिन युधिष्ठिरादिकोंकी श्रीकृष्णमें अलौकिक प्रीति, नित्यप्रति आना, जाना, हँसना, बोलना, देखनाभालना, चलना, फिरना, शयन, आसन रहताथा. उनसे उनका विरह किसप्रकार सहाजाय ॥ १२ ॥ सब अतिस्नेहके मारे बँधेहुए श्रीकृ-ष्णकी पूजा करनेके लिये जहां तहां चले ॥ १३ ॥ देवकीसुतकी यात्रामें किसी प्रकारका अमंगल न हो इसलिये बांधवोंकी स्त्रियोंने उत्कंठाके मारे आँखोंके आँसू आँखोंहीमें रोके ॥ १४ ॥ और जहां तहां मृदंग, शंख, वीणा, भेरी, गोमुख, धुंधरी घण्टा, दुंदुभी बाजे बड़े गम्भीर शब्दसे बजरहेथे ॥ १५ ॥ और कौरवोंकी स्त्रियें छज्जोंपर बैठीहुई श्रीमदनमोहन बांकेविहारीकी प्रीतिके जालमें फँसी, लज्जाकी मारी मनहीमन मुसकाय

तिरछी चितवनसे देखतीथीं, और जय जय शब्दकर श्रीकृष्णपर सुगंधित पुष्पोंकी वर्षा करतीथीं ॥ १६ ॥ महाहर्षसे श्रीकृष्णजीके ऊपर श्वेत छत्र अर्जुन लगाये खड़ेथे, जिसमें सुन्दर रत्नोंकी डंडी और मोतियोंके गुच्छे लटक रहेथे ॥ १७ ॥ परम अद्भुत पंखा उद्धव और सात्यकी हाथमें लिये पवन कर रहेथे, और पुरुषोत्तमपर पुष्पोंकी वर्षा मार्गमें होती चली जातीथी, उस समयकी शोभाको कौन वर्णन करसके? ॥ १८ ॥ निर्गुण सगुण परमेश्वरके जो अनेक अनेक रूपके योग्य सत्य आशीर्वाद जहाँ तहाँ ब्राह्मणोंके मुखसे सुनाई आतेथे ॥ १९ ॥ मन लगाये कौरवेंद्र युधिष्ठिरके पुरकी स्त्रियोंके परस्पर कहे मनोहर वचन मनको मोड़ लेतेथे ॥ २० ॥ उत्तम आत्मामें निश्चय करके पुरातन एक पुरुष यह हुए, समस्त जगत् जिनकी देहमें गुणोंसे आगे जिनका जन्म, निशामें जो शक्ति सो उस समय आँखें न मीचैं सो यह पूर्ण परमात्माहैं ॥ २१ ॥ अपने वीर्यसे प्रेरित सबकी जिवाने रचनेवाली प्रकृतिको नामरूप जिस आत्मा व्यापकमें नहीं होसकै, उसमें रूप, नाम, विधान करनेको, सब शिक्षा शास्त्र करनेवाले सो यह फिर मायामें स्थितहुए ॥ २२ ॥ निश्चय यह परमेश्वरहैं, जिनके पदको बड़े बडे जितेन्द्री विवेकी देखै हैं, सो यह श्रीव्रजानन्द सब जीवात्माओंके शुद्ध करनेवालेहैं ॥ २३ ॥ सो यह ईश्वर वहहैं कि जिनकी सतकथा सखाओंने और वेदमें गुह्यनामोंमें, इनकी एकान्तकी बातें जाननेवालोंने कही गाई हैं, कि यह एक परमात्मा अपनी लीलासे संसारकी उत्पत्ति पालन संहार करतेहैं, परन्तु इस विषमें आसक्त नहीं होते ॥ २४ ॥ जब तामसी बुद्धिवाले राजा पृथ्वीपरसे अधर्म से राज्य करैहैं तब परब्रह्म परमात्मा सात्त्विक रूप धरकर निःसन्देह संसार स्थितिके लिये युग युगमें अपना रूप धारणकर ऐश्वर्य, सत्यप्रतिज्ञा, यथार्थ वार्ता, भक्तोंपरकृपा, यह अद्भुत कर्म करतेहैं ॥ २५ ॥ यह यादवकुल अत्यन्त श्लाघा करने योग्यहै, यह मधुवन अत्यन्त पुनीत स्थानहै, जिसे सब जगतके स्वामी श्रीपतिने जन्मले और चल फिरकर पूजनके योग्य किया ॥ २६ ॥ यह द्वारकापुरी पुण्ययशकर्त्री और स्वर्गके उत्तम यशकी तिरस्कार करनेवालीहै, जिसमें नित्य अनुग्रहीतादृष्टि और मधुर मुसकान युक्त श्रीकृष्णचन्द्रजीको उनकी प्रजा देखतीहै ॥ २७ ॥ हे सखी! जिन स्त्रियोंका इन्होंने पाणिग्रहण कियाहै निश्चय उन स्त्रियोंने जन्मान्तरमें व्रत स्नान हवनसे ईश्वरका पूजन किया है. और जिनके अधरामृतमें अपने अंतःकरण लगाकर व्रजबाला बारंबार मोहित होतीथीं॥ ॥ २८ ॥ जो शिशुपालआदिक बड़े बड़े नामी राजाओंको जीतकर अपने पराक्रमरूप वीर्यसे स्वयंवरसे सुन्दरियोंको हरलाये, और प्रद्युम्न, साम्ब, अम्बादि पुत्र जिसने उत्पन्न किए और भौमासुरको मारकर जो कई सहस्र स्त्री लाये, उन सबके धन्य भाग्यहैं ॥२९॥ यह परम स्त्री भावको ही प्राप्तथीं, क्योंकि जिनमें चतुराई नहीं, शोक संताप नहीं परन्तु देवी शोभितहुई. यह सब व्रत पूजनका प्रभावहै कि जिन्होंने हृदयग्राहिणी मधुर वाणियोंसे व्रजराजको मोहित करलिया, कि कभी उनके घरसे बाहर नहीं निकलतेथे ॥ ३० ॥ वह

पुरकी स्त्रियें इसप्रकारसे बातें करतीथीं और व्रजचंद्र उनकी ओर देख देख आनन्दित होकर मुसकाते चलेजातेथे ॥ ३१ ॥ राजायुधिष्ठिरने भगवान्को अकेला जान शत्रुओंकी शंकासे अपने स्नेहसे रक्षाके लिये थोडीसी सेना उनके साथ भेजदी, जिसमें हाथी घोडे रथ पालकी पैदल थे ॥ ३२ ॥ और आप चारों भाई बहुत कुरुवंशियों समेत पहुँचानेको संगचले, प्रेम-प्रीति जब बातें करते करते बहुत दूर निकलगये, तब विरहातुर कौरवोंको श्रीकृष्णजीने हस्तिनापुरको लौटादिया और आप द्वारकाजीको चल दिये ॥ ३३ ॥ कुरु, जांगल, पांचाल, शूरसेन, यमुना किनारेके देश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, सरस्वतीतीरके देश ॥ ३४ ॥ मारवाडसे बडे सौवीर, आभीरदेश और और देशोंमें होतेहुए, आनर्तदेशमें जो द्वारकाके समीप हैं पहुँचे और घोडे थकजानेके कारण वहीं विश्राम किया ॥ ३५ ॥ जहाँ जहाँ सूर्यास्त होनेपर श्रीकृष्णने विश्रामकिया वहां वहांके वासी श्रीकृष्णजीके निकट आनकर भेंट पूजन करते थे, और परस्पर कहतेथे, कि यही आदिपुरुष अविनाशी भूमिकाभार उतारनेके लिये संसारमें जन्मले अपने भक्तोंको सुखदेते हैं, जिनका दर्शन शिव विरंचि नारदादि देवताओंके ध्यानमें नहीं आता, उनका दर्शन हम लोगोंको बडे भाग्यसे प्राप्त हुवा, और धन्यभाग्य उन वृन्दावनके ग्वाल ग्वालिनियोंके हैं, जिन्होंने व्रजमें रहकर दिन रात इनके साथ आहार व्यवहार रास विलास किया, और इन्होंने ही कौरव पाण्डवोंमें महाभारत कराके कुरुवंशविध्वंस करादिया. कोई यह कहतेथे कि यदुवंशियोंने पूर्व जन्ममें बडा उग्रतप किया होगा, जिसके प्रतापसे इनको अपना हित और सम्बन्धी समझ दिन रात संग रहकर आनन्दभोगा, और उनको अनेक अनेक प्रकारका सुखदिया। और उन नगरनिवासियोंकी नारी बाँकेविहारीकी बाँकी झांकी देख मतवाली हो परस्पर कहती थीं, आली ! इस सांवलीसूरत मोहनी मूरतने तो हमारे ऊपर ऐसी मोहनी डाली, न खाने की, न पीनेकी, न-सोनेकी न जागनेकी, क्याकरैं क्या नकरैं ! किसी प्रकार मनको धैर्य नहीं होता, दूसरी सखी बोली-अरी ! तेरीतो एकही दिनमें यह गति होगई. वह व्रजनारी विचारी कैसे जीती होंगी जिन्होंने जन्मभर इन्हींके संग रास विलास किया, और सारी अवस्था इनहींके नेग लगादी उनकी क्या गति होगी ? हमतो एकही इनकी तिरछी चितवन देख तिरछी होगई; और एक सखी बोली-आली ! जो यह वनमाली सदा यहां रहैं तो हमारा मनोरथ पूर्णहो. एक बोली, अरी ! हमारे ऐसे भाग्य कहां है, एक बोली-प्यारी ! अभीसे तो हारी हारी बातें मतकरै, अभी तो कुंजविहारी तुम्हारी आँखोंके आगे ही फिररहे हैं. एक बोली-अरी ! कहीं इनके फंदेमें अपना मन मत फँसादेना यह बड़े कपटी हैं, जो राधाही अपनी प्यारीको वनमें अकेली छोड़कर चलेगये तो और किसके होंगे ? सखी तू नहीं जानती यह सच्ची प्रीतिके प्रेमी हैं, द्रौपदीकी कैसी लाज रक्खी, गजको ग्राहसे कैसा बचाया. रुक्मिणीके बुलानेसे कैसे पहुँचे, प्रह्लादके हेत खंभ फाड़कर कैसे प्रकटे, भारतमें भारतीके अण्डे कैसे बचाये ? इस प्रकार सब स्त्री पुरुष हरिके गुण गाय गाय आनन्दित होते थे, हे शौनक

ऋषि ! ऐसे ही चलते चलते श्रीकृष्णचन्द्र आनर्तदेशमें पहुँचे जो द्वारकाके समीपही है, वहां घोडे थकगये और उसी स्थानपर द्वारकाधीशने वास किया ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे श्रीकृष्णस्थानानर्तदेशागमनो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-एकादश अध्यायमें, कृष्ण द्वारकाचन्द।
जाय द्वारकापुरीमें, दियो सबहिं आनन्द ॥ १ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने समृद्ध आनर्तदेशसे चल द्वारकाके निकट जाय यदुवंशियों-का विषाद शान्त करनेको पांचजन्य शंख बजाया ॥ १ ॥ जिसका श्वेत उदर श्रीभगवान् के अधरकी ललाईसे लाल होगया, कमलसदृश हस्त सम्पुटमें धराहुआ ऐसा शोभायमान दिखाई देताथा, जैसे लाल कमलके समूहमें राजहंस शोभित होताहै ॥ २ ॥ जगत्के भय नाश करनेवाले शंखकी धुनि सुन, कृष्णदर्शनाभिलाषी प्रजा कृष्णचन्द्रका आगमनजान सन्मुखचले ॥ ३ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रको बडे आदर सत्कारसे भेंटदी, जैसे कोई सूर्यनारा-यणको दीपदान देता है, भगवान् तो आप आत्माराम पूर्णकाम हैं, निज लाभसे नित्य प्रसन्न हैं ॥ ४ ॥ प्रसन्नवदनसे अत्यन्त हर्षित हो गद्गदकण्ठसे मधुर वचन बोले. जैसे सब सुहृद रक्षक पितासे बालक मीठे बोल बोलै हैं ॥ ५ ॥ हे नाथ ! ब्रह्मा, शिव सन-कादिकदेवता इन्द्रसे नमस्कृत कुशलकी इच्छावालोंको परम आश्रयदायक जहां कालका सामर्थ्यनहीं ऐसे आपके चरणकमलको सदा नमस्कार करे हैं ॥ ६ ॥ विश्वभावन ! हम सबकी उत्पत्ति आपहीसे है, तुमहीं माताहो, तुमहीं भ्राताहो, तुमहीं पतिहो, तुमहीं पिताहो, तुमहीं सुहृदहो, तुमहीं हमारे परमदेवताहो, जो हम सब तुम्हारी सेवाकरके कृतार्थ होतेहैं ॥ ७ ॥ स्वर्गवासी देवताओंका तो दूरसेही दर्शन होताहै और जिसमें सब प्रकारकी सुंद-रताई, और प्रेमभरी मुसकान, मनोहर वचन, बाँकी चितवन सहित आपके मुख को सदा देखै हैं, इसकारण हम ऐश्वर्यवान् हैं ॥ ८ ॥ हे अम्बुजाक्ष ! हे अच्युत ! जब आप हस्ति-नापुरको अथवा मथुराको अपने इष्टमित्रोंको देखनेको पधारो हो, वह समय करोड वर्षके समान हमको व्यतीत होताहै, जैसे सूर्यके विना नेत्रोंसे कुछ नहीं दीखता, ऐसे हमारी गति होजाती है ॥ ९ ॥ प्रजाकी मधुर मधुर वाणी सुन सुनकर श्रीकृष्ण भक्तवत्सलने आनन्दसहित सबको अनुग्रहकी दृष्टिसे देख कुशल क्षेम बूझते बूझते द्वारका पुरीमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ अपने समान जिनमें बल ऐसे, मधु, भोज, दशार्ह, कुकुर, अंधक, वृष्णि वंशोत्पन्न यादव जैसे भोगपुरीको नाग रक्षा करतेहैं उसी भाँति वह द्वारकापुरीकी रक्षा कर रहेहैं ॥ ११ ॥ जिस द्वारकापुरीमें सब दिन वसंत ऋतुही वनी रहेहै सब प्रकार के जिसमें वन उपवन आराम शोभितहैं, जिसमें सब ऋतुओंके पुष्प खिले पुण्यदायक वृक्ष लतामंडप शोभितहैं, फल प्रधानहोंय वह उद्यान कहावैहै, और पुष्प प्रधान होंय वह उप-वन कहाताहै, खेलनेके अर्थ जो वनहै उसको आराम कहतेहैं यह जहाँ शोभितहैं और

तालोंमें कमलोंकी शोभा न्यारीही हो रही थी ॥ १२ ॥ गोपुर द्वार मार्गोंमें उत्सव होरहाहै, तोरण बन्दनवारें बँधीहैं. चित्र विचित्र गरुडचिह्नसे अंकित ध्वजा लगरहीहैं, जयदायक यंत्र जिसमें कढे ऐसे बडे बडे झण्डे जहाँ तहाँ फहराय रहेहैं, जिनकी ओटसे धूप धोरे नहीं आती ॥ १३ ॥ महामार्ग, छोटेमार्ग, दूकानदारोंके मार्ग, चौराहे, सब झारे बुहारे स्वच्छहैं, उनपर सुगन्धियोंका जल छिडका हुआहै, फल, पुष्प. अक्षत, दूर्वा अंकुर जहाँ तहाँ बिखर रहेहैं ॥ १४ ॥ मंदिरोंके द्वार द्वारपर, दधि अक्षत, चन्दन, पान, सुपारी फल, फूल, कञ्चनके कलश, बलिदान, धूप, दीप, शोभा दे रहेहैं. ऐसी द्वारकाकी शोभा होरहीहै ॥ १५ ॥ उस समय देवकीनन्दनका आना सुनकर महाबुद्धिमान् वसुदेव अक्रूर, उग्रसेन, बलराम अद्भुत पराक्रमी सब आये ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, जाम्ब-वतीसुत, साम्ब, अत्यन्त हर्षके मारे शयन, आसन भोजन त्याग चलदिये ॥ १७ ॥ एक गजेन्द्र आगेकर, ब्राह्मण मंगलगाते शंख बजाते आते हैं, ब्राह्मणोंके वेद पाठका गम्भीर शब्द होरहाहै ॥ १८ ॥ रथपर बैठे श्रीकृष्णको देख नमस्कार दंडवत् कर स्तुति करने लगे. और जो बडे बडे यादव थे वे श्रीकृष्णसे भेटकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ सहस्रों वेश्या श्रीकृष्णके दर्शनके लिये रथोंमें बैठकर आईं, तिनके सुन्दर सुन्दर कपोलोंपर कुण्डल अद्भुत शोभा दे रहेहैं ॥ २० ॥ नवरस जाननेवाले नट (तालके संग नाचैं वह) नर्तक गानेवाले गन्धर्व, पुराणवक्ता सूत वंशोंके जानने वाले मागध (जैसा देखैं वैसा कहैं) वह उनका बन्दीजन यह सब यदुनाथके अद्भुत चरित्र गावैहैं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजीने उन गुणियों और पुरवासियोंको आता देख यथाविधि आदर सन्मान किया ॥ २२ ॥ कोई शिरसे नवें, कोई वाणीसे नवें, कोई मिलें, कोई हाथसे हाथ मिलावें. किसीको मुसका-कर देखा, चाण्डालतकका हृदय शान्त कर सबको यथायोग्य वर दिया ॥ २३ ॥ सूतजी बोले. कि हे ऋषिराज ! जब श्रीकृष्णजी राजमार्गमें आये तब द्वारकाकी सब स्त्रियें उनका महा उत्सव देखनेको कोठोंपर जा बैठीं ॥ २४ ॥ श्रीजीका धाम जिनका अंग ऐसे अच्यु-तको नित्य देखनेवाले द्वारकावासियोंकी दृष्टि तृप्त नहीं हुई ॥ २५ ॥ लक्ष्मी जिनके हृदयमें निवास करें, जिनका मुख सब प्राणियोंकी दृष्टियोंकी सौंदर्यता पानार्थ पात्रहै जिनके बाहु लोकपालोंके निवासस्थानहैं ॥ २६ ॥ शुक्लछत्र चमरकी शोभा निरालेही ढंगकीहै, मार्गमें पुष्पोंकी वृष्टि औरही रंग दिखा रहीहै, श्याम अंगपर पीतांबर वनमालकी छवि और ही प्रकारकी थी, यह सब छबि मिलकर कैसी ज्ञात होतीथी मानो, सूर्य तारागण, इन्द्रधनुष, बिजली, यह एक संग विराजमानहैं. शुक्लछत्रसे सूर्यकी उपमा दी, पुष्पवृष्टिसे नक्षत्रोंकी, चन्द्रमा सम अभ्रमें मण्डलाकारक चमरकी, धनुषसे बनमाला की, बिजलीसे पीतांबरकी यह अद्भुतोपमा कहावैहै ॥ २७ ॥ राजभवनमें आनकर अपनी मातासे मिले फिर पिताके मंदि-रमें जाकर पिताको दंडवतकर शिरसे सातों देवकी आदि माताओंकी आनन्दितहो वन्दना-करी ॥ २८ ॥ उन्होंने पुत्रको गोदीमें बैठाया, स्नेहसे स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा. हर्षसे विह्वलहोकर दहने नेत्रोंके जलसे सींचा, “ पीछे हस्तिनापुरकी कुशल और महाभारतका

वृत्तान्त और पाण्डवोंका विजय सब ब्योरेवार सुनाया, पाण्डवोंका विजय सुन वसुदेव देवकी प्रसन्नहुए. परन्तु गान्धारीके पुत्रोंका अरु और और महारथियोंका मरण सुन शोक हुआ " ॥ २९ ॥ सब कामसे निश्चिंतहो रनवासमें प्रवेश किया जहाँ सोलह सहस्र एकसौ आठ रानी छज्जोंपर बैठी देख रहीथीं ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर बहुत आनन्दहो जैसे नियमसे व्रती बैठींथीं वैसेही बाँके विहारीकी बाँकी छवि देख लज्जित नेत्र किये सोलहो शृंगार कर उठधाईं "याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है, क्रीडा करना, मलके शिर धोना, समाजमें जाना, उत्सव देखना, हँसीकरनी, परायेघर जाना, जिसका पति परदेशमें होय उस स्त्रीको यह छःकाम नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकमुनि! पुत्रोंसे दृष्टिसे अंतःकरणसे, जिनका श्रीकृष्णमें अत्यन्त भावहै अपने पतिसे मिलीं, प्रेमकी विह्वलतासे लज्जित नेत्रोंका जल नहीं रुकसका, आँसू बह निकले ॥ ३२ ॥ यद्यपि श्रीकृष्ण उनके पासहैं एकान्तमें रहतेहैं तौभी उनके दोनों चरणोंका नवीन २ संगम क्षण क्षण मैं कौन भूलैगा जिनके धोरेसे चञ्चल लक्ष्मीभी नहीं जाती ॥ ३३ ॥ पृथ्वीपर भाररूप जिन राजाओंके जन्म जिनकी अक्षौहिणी सेनाका चारों ओर तेज फैलरहाथा, ऐसे राजाओंका परस्पर वैर कराकर वध कर दिया और आप उपरामको प्राप्त हुए, जैसे बाँसके वनमें आपसमें बाँससे बाँस घिसनेसे अग्नि उत्पन्नहो, वनको जलाकर आपही शान्त होजातीहै ॥ ३४ ॥ सो यह अपनी मायासे मनुष्यलीला करनेको अवतार धारण करतेहैं, स्त्रीरत्नसमूहमें स्थित भगवान प्राकृत संसारी जीवोंकी नाईं रमण करने लगे ॥ ३५ ॥ जिन स्त्रियोंके गंभीर अभिप्राय, मनोहर वचन, सुन्दर लाजसहित हास्यसे ताडित महादेवजीने मोहित होकर अपना पिनाक धनुष त्यागन किया, ऐसी वह स्त्री श्रीकृष्णजीकी इन्द्रियोंको वश करनेको कपट भावसे समर्थ न हुईं ॥ ३६ ॥ उन श्रीकृष्णजीको यह प्राकृत लोग अपने सदृश, अपनासाथी, अपना मित्र मनुष्यही मानैहैं, वह आदिपुरुष अविनाशी श्रीकृष्णचन्द्र किसीका संग नहीं करतेहैं, और जो उनको अज्ञानी व्यापारी विषयी मानै हैं सो मूर्ख हैं ॥ ३७ ॥ ईश्वरकी यही ईश्वरताहै, कि मायामें स्थित होकर, असत् सुख दुःखादिक मायाके गुणोंसे लिप्त नहोना. जैसे मायाश्रया बुद्धि मायाकी उपाधिमें लिप्त नहीं होती है॥ ३८ ॥ वह मूर्ख स्त्री श्रीकृष्णके प्रभावको न जानकर स्त्रियोंके प्रेमी एकान्त विहारशील अपने पतिको मानतीथीं, जैसे अहंकारवृत्तियुक्त बुद्धि ईश्वरको स्वाधीन मानती है ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे श्रीद्वारकानाथद्वारकाप्रवेशो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा-इस द्वादश अध्यायमें, प्रगटे कुरुकुलचन्द।
धर्मपाल कलिमलदलन, पूरण आनँद कन्द ॥ १ ॥

इतनी कथा सुन शौनक मुनि बोले-हे सूतजी महाराज! अश्वत्थामाके छोडे ब्रह्मास्त्रसे जो उत्तराका गर्भ नष्ट होगयाथा, उसे फिर ईश्वरने बचादिया ॥ १ ॥ उसका आश्चर्ययुक्त

जन्म, कर्म, राज्यस्थिति और किसप्रकार शरीर त्यागन किया? सो कहो ॥ २ ॥ आप इसके कहनेयोग्य हैं. सो आप हम इच्छा करनेवाले श्रद्धालुओंको सुनाओ, जो कछु शुकदेवजीने वर्णन कियाहै! ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिकमुनि! राजा युधिष्ठिर पिताके समान प्रजाको सुखदेते और राज्यका पालन करतेथे, सब कामकी चाहना त्याग श्रीकृष्णके चरणकमलकी सेवा करतेथे ॥ ४ ॥ सम्पत्ति, यज्ञ, लोक, स्त्री, भाई, पृथ्वी, जम्बूद्वीपका राज्य, यश, स्वर्गतक पहुंचा ॥ ५ ॥ हे शौनकमुनि! जिनका मन परमेश्वरमें लगरहाहै, उन्हें देवताओंके प्रिय कामादिकभी आनन्द नहीं देते, जैसे भूखोंको पुष्पमाला चन्दन इत्यादि सुख नहीं देते, ऐसेही राजा युधिष्ठिरको जानो ॥ ६ ॥ हे भृगुनन्दन! जब माताके गर्भमेंभी अस्त्रके तेजसे उत्तरासुत तापितहुए, तब एक पुरुष दृष्ट आया ॥ ७ ॥ अंगुष्ठमात्र निर्मलकान्ति, सुवर्णसमान मस्तक, अति सुन्दर श्यामवर्ण बिजली सदृश पीताम्बर पहरे श्रीअच्युत भगवानको देखा॥ ८॥शोभायमान लंबी लंबी चार भुजा, मकराकृत कुण्डल, लाल लाल नेत्र, गदा हाथमें लिये चारों ओर घूमते फिरैहैं ॥ ९ ॥ एक ओर उल्कासी घूमती दीखे, अत्यन्त श्रेष्ठ भक्तोंकी रक्षामें परायण ऐसी कौमोदकी गदाको बारंबार घुमा रहेहैं॥१०॥ अपनी गदासे ब्रह्मास्त्रके तेजका नाश करदिया, जैसे सूर्यके तेजको कुहर नाश करैहै, चारों ओरको नेत्र खोलकर देखाकि यह मेरे निकट कौन फिरैहै ॥११॥धर्म रक्षक देह विभुभगवान उस ब्रह्मास्त्रके तेजको दूरकर, दशमासके बालकके देखते देखते तहां अन्तर्द्धान होगये॥१२॥ तब सब गुण सम्पन्न अनुकूल ग्रहोंके उदयके समय, वंशधारीने पाण्डुके वंशमें जन्म लिया मानो फिर पाण्डुराजा संसारमें जन्मे ॥१३॥ प्रसन्नमन राजायुधिष्ठिरने धौम्य कृपादिक ब्राह्मणोंको बुलाकर बालकके जन्मसमयके सर्व कर्म कराये स्वस्तिवाचन मंगलाचरण कराये ॥१४॥ जबतक नालछेदन नहीं होता तबलों सूतक नहीं लगता, नालकटनेके पीछे सूतक लगैहै. सो सुवर्ण, गो, धरती, ग्राम, हाथी, घोडे, श्रेष्ठसमय जानकर याचकोंको देनेलगे, सुन्दर सुन्दर भोजन ब्राह्मणोंको जिमाये, पुत्रके उत्पन्न होनेके समय तीर्थमें दान करनेके समान दान किया ॥ १५ ॥ उससमय प्रसन्नब्राह्मण नम्रीभूत राजा युधिष्ठिरसे बोले हे पुरुकुलमुकुटमणि! यह पुत्रभी प्रजापालनमें आपकी समान होगा ॥ १६ ॥ कोई राजा इसके सन्मुख स्थित न होगा, यह बालक ऐसे समयमें और शुद्ध दिनमें उत्पन्न हुआ है, तुम्हारे सबके ऊपर अनुग्रहके लिये सर्व व्यापक, सबके उत्पत्तिकर्त्ता, प्रभु विष्णुभगवानने इसकी रक्षा करी है ॥ १७ ॥ इसलिये इसका नाम लोकमें विष्णुरात होगा, बड़ा यशस्वी अरु महाभागवत होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ श्रीयुधिष्ठिरजी बोले कि हे सत्तमो! पुण्यश्लोक महात्मा राजा ऋषियोंके वंशके अनुसार साधुवादसे उनका अनुवर्ती होगा कि नहीं होगा सो कहो? ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले. कि हे पार्थ! यह पुरुष प्रजारक्षक साक्षात् इक्ष्वाकुकी सदृश, ब्रह्मण्य सत्यवादी दाशरथि रामचन्द्रके समान होगा ॥ २० ॥ यह बडा दानी शरणागतका प्रतिपालक राजा शिबि उसीनरदेशवासीकी नाई होगा, उशीनरदेशवासी राजा शिबिने अपना मांस सिकरेको देकर शरणागत कपोतकी रक्षाकरी। अपनोंका यश संसारमें

विस्तारित करैगा, भरत समान याज्ञिकोंमें यशविस्तारी होगा ॥ २१ ॥ धनुषधारियोंमें अग्रणी सहस्रार्जुन अर्जुनकी नाईं, अग्निके समान दुर्द्धर्ष, सागरके समान गम्भीर होगा ॥ ॥ २२ ॥ सिंहकी समान विकराल, धैर्यमें हिमाचलकी सदृश, वसुधाकी नाईं सहनशील, अरु माता पिताकी नाईं सहनेवाला होगा ॥ २३ ॥ साम्यभावमें ब्रह्माके समान होगा, शीघ्रप्रसन्न होनेमें महादेवकी सदृश, समस्त जीवोंका आश्रय भगवानकी नाईं रहैगा ॥ ॥ २४ ॥ सब सद्गुणोंका माहात्म्य यह कृष्णभक्त होगा, उदारतामें रंतिदेव, और धर्मात्मा-ओंमें ययातिके समान होगा ॥ २५ ॥ धैर्यमें बलिसमान, समतामें श्रीकृष्णचन्द्रजीकी नाईं प्रह्लादकी नाईं सब सत्पदार्थग्राही होगा. और अश्वमेध करके वृद्धजनोंकी उपासना करैगा॥ २६ ॥ बुद्धिमें बृहस्पति, और शूरतामें परशुरामके समान होगा, सुखविला-सियोंमें इन्द्रके समान, और सत्य बोलनेमें आपकी सदृश होगा, राजर्षियोंका उत्पन्न कर्त्ता, पाखण्डियोंका शिक्षक, भूमिके व धर्मके कारणसे यह कलियुगको पक-डैगा ॥ २७ ॥ ब्राह्मणके पुत्रके शापसे तक्षक सर्पके काटनेसे मृत्यु होगी, सबका संग त्यागकर श्रीमद्भागवत सुन, श्रीवैकुण्ठनाथके वैकुण्ठको प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ आत्माकी यथा-र्थता जानकर व्यासपुत्र शुकदेवसे ज्ञानसुन, श्रीगंगाजीमें देहत्याग अभयपदवीको प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ ज्योतिषी, ब्राह्मण पण्डित लोग यह वचन राजासे कहकर पूजा दक्षिणा लेकर अपने अपने स्थानोंको चलेगये ॥ ३० ॥ और संसारमें नाम परीक्षित विख्यात हुआ, क्योंकि गर्भमें श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया, और उनहीके ध्यानमें रहकर सब जनोंकी परीक्षा करतेथे ॥ ३१ ॥ सो राजकुमार दिन दिन ऐसे बढ़ने लगे जैसे शुक्लप-क्षका चन्द्रमा बढ़ता है, उसी समान पूर्ण हुए ॥ ३२ ॥ सजातियोंके द्रोह त्यागनेकी इच्छासे अश्वमेधयज्ञ करनेके लिये, राजाका कर दण्डके विना धन प्राप्त हुआ ॥ ३३ ॥ यह प्रयोजन जानकर भगवानके भेजे, सब भाई उत्तरकी दिशासे बहुत धन लाये ॥ ३४ ॥ उस धनसे सब सामग्री उपस्थितकर धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरने तीन अश्वमेधयज्ञ किये, जातिके द्रोहसे डरकर यज्ञोंसे भगवान् वासुदेवका पूजन किया ॥ ३५ ॥ राजायुधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाय ब्राह्मणोंसे यज्ञकराय अपने सुहृद जनोंके प्यारकी इच्छासे कुछमास वहां निवास किया ॥ ३६ ॥ इतनी कथा सुनाय सूतजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! कुछ दिन पीछे राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा ले, द्रौपदीसे बूझ, भाई बंधु मित्रोंसे बिदाहो, नौकर चाकर यादवोंसमेत श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द द्वारकापुरीको चलेगये ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे परीक्षितजन्मोत्सवो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा-त्रयोदशम अध्यायमें, बिदुरकथाउपरान्त ।
धृतराष्ट्रकी मोक्षका, वरणों सब वृत्तान्त ॥ १० ॥

सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! विदुरजी तीर्थयात्रामें, मैत्रेयजीसे श्रीकृष्णचन्द्रकी गति सुनके हस्तिनापुरमें आये, अरु जिस बातके जाननेकी इच्छा थी सो सब पूरी हुई ॥ १ ॥

और विदुरजीने मैत्रेयजीके आगे जितने प्रश्नकरे उनमें तीन चार प्रश्नसेही विदुरजीकी श्रीगोविन्दमें पूर्ण भक्ति हुई, सो उन प्रश्नोंसे उपराम हुआ ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! अपने भाई विदुरजीको आता देख, सब भाइयोंसमेत धर्मपुत्र, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, संजय, कृपाचार्य, कुन्ती ॥ ३ ॥ गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी, द्रोणाचार्यकी स्त्री, जातिकी स्त्रियें, पुत्रसहित और स्त्रियें ॥ ४ ॥ अत्यन्तहर्षसे जैसे देहमें प्राण आवें ऐसे आये, अरु सब बड़े आदर सत्कारसे मिले विरहकी उत्कण्ठासे प्रेमके विवश होकर नेत्रोंसे जलधारा प्रवाह बहने लगा युधिष्ठिरने हाथ जोड़कर पूजनकर आसनपर बैठाला ॥ ५ ॥ ६ ॥ जब भोजनसे निश्चिंतहो आसनपर विश्राम किया, उस समय नम्रतासे प्रणामकर उनके चरण दाबनेलगे, और यह बोले कि आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रहकिया जो इस समय आनकर दर्शन दिया ॥ ७ ॥ हम पांचों भाई आपके पक्षरूपी छायामें पले, आप हमको कभी स्मरण करतेथे वा नहीं, जैसे पक्षी अपने पुत्रोंको अतिस्नेहसे पंखोंकी छायामें बढावैहैं, उसीरीतिसे आपने हमको बढ़ाया अरु हमारी माता सहित सब विपत्तियोंसे बचाया. विषसे अग्निसे, और अनेक कठोर विघ्नोंसे रक्षाकरी " जिस समय दुर्योधनादिक कौरवोंने हमको लोहके कोटमें बन्द करके यह विचार किया कि इनको भस्मकर डालैं उस समय आपने कृपाकरके पहिलेही सुरंग खुदवाकर हमको बचाया, हम कहांलों आपकी बड़ाई करैं आपतो सदा हमारी सहाय करते रहे " ॥ ८ ॥ इस क्षितिमण्डलमें आपने कौन वृत्तिसे शरीरका निर्वाह किया, इस भारतवर्षमें पृथ्वीपर जितने तीर्थक्षेत्र मुख्य हैं, सो सब आपने किये ॥ ९ ॥ आप सरीखे महात्माओंकी तीर्थयात्रा तीर्थोंपर कृपा करनेके लिये है, कुछ अपने अर्थ नहीं । आप सरीखे भागवत तो आपही तीर्थरूप हैं, आपके दर्शनसे तीर्थ भी पवित्र होजाते हैं । अपने अंतःकरणके निवासी गदाधारी भगवान्से मलिन जनोंके कुसंगसे तीर्थभी मलिन होजाते हैं, उनको फिर, सत्कर्म अनुष्ठानी, वेदान्ती, ज्ञानी, भगवद्भक्त पवित्र, सत्त्वादि गुणयुक्त ब्राह्मण पवित्र, करै हैं, भगवद्भक्तोंके सतसंगसे तीर्थभी पवित्र, होजाते हैं ॥ १० ॥ हे पितः ! आपने बहुत तीर्थ किये, परन्तु द्वारकापुरीमेंभी गयेथे वा नहीं क्योंकि हमारे सुहृद बान्धव श्रीकृष्णादिक यादवोंको आप भली भाँति जानते हैं. हमको जबसे राज्यदेकर गये हैं तबसे उनका कुछ समाचार नहीं मिला. न जाने वह अपनी पुरीमें कैसेहैं कैसे नहीं ? सो कृपाकरके कहो ॥ ११ ॥ धर्मराजने जब यह बूझा तब विदुरजीने सब तीर्थोंका वृत्तान्त कहा जैसा कुछ देखाथा वैसा परन्तु यदुकुलके क्षय होनेका वर्णन नहीं किया ॥ १२ ॥ यह भलीभाँति निश्चयहै कि जो बात अप्रियहै सहनेयोग्य नहींहै वह मनुष्योंको आपही प्रगट होजातीहै. दयालु विदुरजीने अपने सामैने उनका दुखीदेखना उचित न जानकर नहीं कहा ॥ १३ ॥ " जब रनवासमें स्त्रियोंने विदुरजीके आनेका वृत्तान्त सुना. तब द्रौपदी आदिने अपने पास बुलाया अरु परमेश्वरका परम भक्त जानकर विदुरजीको दंडवत् किया और उनके आनेसे बहुत प्रसन्न हुई. फिर विदुरजीने धृतराष्ट्रके भवनमें जाय उन्हैं और गान्धारीको दण्डवतकरी तब धृतराष्ट्रने उन्हैं

उठाय हृदयसे लगाय नेत्रोंमें जल भरकर कहा-हे भ्रातः ! तुम्हारे जानेके पीछे मेरे ऊपर बड़ा कष्ट पड़ा अरु हमारे सब पुत्र मारे गये, राज्य नष्ट होगया, यह बात सुनकर विदुरजीने कहा हे भ्रातः ! हरि इच्छा बलवान् है उसकी गतिसे किसीकी पार नहीं बसाती, परमेश्वरकी इच्छा इसी प्रकारथी. उन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके कारण संसारमें अवतार लियाथा. दैवगति किसीसे जानी नहीं जाती अब धैर्य धारण करनेका समयहै तो कहो कि राजा युधिष्ठिर तुम्हारा आदर सत्कार किसप्रकार करतेहैं धृतराष्ट्रने उत्तर दिया. कि युधिष्ठिर तो हमसे बड़ा स्नेह रखताहै मुझको अपने पिता और गान्धारीको महतारीकी समान मानताहै और सब भाईभी हमसे अधिक रीति प्रीति रखतेहैं परन्तु भीमसेन युधिष्ठिरके पीछे हमको दुर्वाक्य कहताहै, यह दुःख नहीं देखाजाता, धृतराष्ट्रकी बातें सुन कुछ काल विदुरजीने वहां वास किया, और देवताओंकी समान सुखीहो, बड़े भ्राताके कल्याणके कारण सबसे रीति प्रीति करते रहे ॥ १४ ॥ यमराज मांडव्यके शापसे शूद्रयोनिमें विदुर हुएथे, तबतक यमराजके स्थानमें अर्यमा काम करते रहे " इसकी कथा इसप्रकारहै " किसी देशमें चोर किसीका धन चुराकर भागे, और राजाके दूत उनके पीछे दौड़े, वह चोर भागते भागते वहाँ पहुँचे जहाँ मांडव्य ऋषि तप कर रहेथे. उनके निकटही चोर जाकर छिपरहे, राजाके दूत उनके समीप आकर ऋषि समेत चोरोंको पकड़कर राजाके पास लेगये. राजाने आज्ञादी कि सबको शूलीदेदो, राजाकी आज्ञासे चोरोंको शूलीपर चढ़ाना आरम्भ किया, मांडव्य ऋषिकी ओरको जो देखा तो उनको ऋषि जान-शूलीसे उतारलिया अरु दण्डवत् प्रणामकर अपना अपराध क्षमा करा उनको प्रसन्न किया, पीछे मांडव्यऋषि धर्मराजके निकट जाकर बड़े क्रोधसे बोले, कि अरे यम ! तैंने मुझे किस अपराधसे शूलीपर चढ़ाया ? तब यमराज बोले ! कि महाराज ! आपने बालकपनमें टीड़ीको कुशाके अग्रभागसे छेदकर खेलेथे. उसके बदलेमें शूलीपर आप चढ़ाये गये. यमराजका यह वचन सुन मांडव्य ऋषिने यमराजको शापदिया कि मैंने बाल अवस्थामें अज्ञानसे यह काम किया उसका तैंने मुझे ऐसा भारी दंड दिया, अब तू शूद्रहो, यह वही विदुरजीहैं ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर राज्य पाय पोतेको कुलोद्धारक देख लोकपालसमान भ्राताओं सहित परम लक्ष्मीसे आनन्दित हुए ॥ १६ ॥ गृहके व्यापारमें ऐसे आसक्त होगये उन्हें विदित न हुवा कि परम दुस्तर कालका समय आनपहुँचा ॥ १७ ॥ यह अभिप्राय जानकर विदुरजी धृतराष्ट्रसे बोले हे राजन् ! शीघ्र निकलो यह भयंकर भय आताहै, सो देखो ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! जिसकालके लौटानेका कोई उपाय नहीं है जो कहींसे कभीभी नहीं जासकैहै सो यह भगवान् काल सबको हमको ऐसेही आयेहै ॥ १९ ॥ जिसकालसे ग्रसाहुवा जीव अधिक प्रियप्राणोंसे तत्काल वियोग पाताहै और धन पुत्रादिककी तो बातही क्या है ॥ २० ॥ जब पिता, भ्राता, सुहृद, पुत्रही सब तुम्हारे मारेगये, सब आयु तुम्हारी हो चुकी, देहको बुढ़ापेने घेर लिया तौभी पराये घरमें रहतेहो ॥ २१ ॥ बड़े आश्चर्यकी बातहै कि, इस जीवको जीवनकी बड़ी आशा लगरहीहै, सो तुमकोभी है,

भीमसेनके दियेहुए टुकड़े श्वानकी नाईं तुम खाओहो ॥ २२ ॥ तुमनेभी तो अपनी चलती में उनके साथ कुछ कसर नहीं करी, लोहेके कोटमें बन्दकरके आगलगाई, लड्डुओंमें विष दिया, उनकी स्त्री द्रौपदीकी सभामें अवज्ञाकरी, पृथ्वी उनकी छीनी, धन, धाम उनका लिया, अब उनका दिया अन्न खाकर शरीर पुष्ट करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं निकलेगा ॥ ॥ २३ ॥ कृपणपनसे जीनेकी इच्छा अच्छी नहीं, और जो इच्छाभी है तौभी यह तुम्हारा जरा जीर्ण शरीर सब प्रकार क्षीण होगयाहै जैसे पुरानेवस्त्र त्यागने योग्य होतेहैं ऐसी तुम्हारी देहकी गतिहै सो अब धैर्यधरो ॥ २४ ॥ विरक्त, सब बन्धनोंसे मुक्तहो, इस देह-को त्यागे सो अत्यंतगति स्वार्थ रहित धीर कहाताहै ॥ २५ ॥ जो कोई अपने आप अथवा पराये उपदेशसे आत्माको पहिचानकर हृदयमें परमेश्वरके चरणारविन्दोंको धारण कर घर त्याग संन्यास धारण करतेहैं वही मनुष्य मनुष्योंमें श्रेष्ठहैं ॥ २६ ॥ अपने सम्ब-न्धियोंसे छिपकर तुम उत्तराखण्डको चलो, इससे पीछे पुरुषोंका गुणनाशक बहुत बुरा समय आवैगा ॥ २७ ॥ आज मीढ़वंशी जन्मान्धको इसभाँति विदुरजीने जब समझाया तब तो धृतराष्ट्रने अपना चित्त दृढ़कर कुटुम्बके लोगोंसे स्नेह त्याग विदुरजीने जो मुक्तमार्ग बताया उसपर आरूढ होकर कहा 'भाई तुमने सत्य कहा, हमारे मनमें भी यही इच्छा है. परन्तु हम दोनों स्त्री पुरुष नेत्रहीन हैं किसप्रकार उत्तराखण्डको जाँय धृतराष्ट्रके आधीनताके वचन सुन विदुरजी बोले कि, इस बातका आप कुछ सन्देह मतकरो मैं दोनोंको अपने साथ हाथ पकड़कर ले चलूंगा, तुम हमारे बड़े भ्राता हो, इसकारण पूजनीय हो जबतक आप जी-वित रहैंगे सब प्रकार दिन रात हम आपकी सेवा करैंगे" ॥ २८ ॥ पतिके जानेका समा चार सुन, सुबलदुहिता, पतिव्रता, साध्वी गान्धारी भी उनके संग चलनेको उपस्थित हुई संन्यस्त दण्ड ले अतिहर्षसे हिमालयको गये, मनस्वी शूरोंको जैसे युद्धमें सुन्दर प्रहार प्यारे लगे हैं तैसे जानो ॥ २९ ॥ राजायुधिष्ठिर सन्ध्यावन्दनसे निश्चिंतहो, अग्निहोत्रकर, तिल, गौ, भूमि, सुवर्णदानदे, ब्राह्मणोंको नमस्कारकर माता पिताकी वन्दना करनेके लिये, उनके मन्दिरमें गये, वहां विदुर, धृतराष्ट्र, गान्धारीको न देखा ॥ ३० ॥ उद्विग्नमनसे वहां बैठ-गये और संजयसे बूझा कि, हे संजय ! हमारे चाचा वृद्ध नेत्रहीन कहां चले गये ॥ ॥ ३१ ॥ पुत्रोंके शोकसे महाव्याकुल हमारी चाची भी नहीं दिखाई देती. जो आपको विदित हो तो कहो. क्योंकि व्यासजी महाराजकी कृपासे तुम सब जानते हो ॥ ३२ ॥ मुझ बुद्धिहीनमें अपराध विचार बन्धुओंके मरनेसे दुःखी होकर स्त्रीसहित गंगामें तौ नहीं डूबमरे ॥ ३३ ॥ जब हमारे पिता परमधामको चलेगये तो हम सबको बालक जानकर अनेक कष्टोंसे हमारी रक्षाकरी अरु पाला वह हमारी चाची चाचा यहांसे कहां चलेगये ॥ ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, कि हे शौनकमुनि ! संजय अपने ईश्वर युधिष्ठिरको महादुःखी देख अतिपीडित हुआ, और मुखसे कुछ नहीं कहसका ॥ ३५ ॥ दोनों हाथोंसे आंसू पोंछ बुद्धिको सावधानकर मनको धैर्य दे प्रभुके चरणोंका स्मरण करते अजातशत्रुसे बोले, और प्रभुके चरणोंका स्मरण किया ॥ ३६ ॥ संजयबोले, कि, हे कुरुनन्दन ! तुम्हारे

पिताके समाचार मैं कुछ नहीं जानता. और गान्धारी तुम्हारी चाचीके जानेकी भी मुझको कुछ सुधि नहीं. मैं इन महात्माओंसे वंचित हुवा हूँ ॥ ३७ ॥ उसी समय कहांसे घूमते घामते नारदजी भी तुम्बुरू गन्धर्वको संगलिये आगये, उनको देख भाइयों समेत उठ पूजा सत्कार प्रणामकर बोले ॥ ३८ ॥ कि हे भगवन् ! हमारे चाचा चाची न जानिये कहां चले गये, पुत्रोंके निधन होनेसे महादुःखी हो. तपस्विनी गांधारी कहां गई ॥ ३९ ॥ अपार शोकसागरमें डूबेहुए को धैर्यरूपी केवट बनकर नारदजी आप आन पहुँचे. "हे अज्ञाननाशक ! महाबुद्धिमान, सर्वज्ञानी विघ्नहर्ता, सबकी विपत्तिमें आनकर सहायक होते हो, जो उनको कहीं सिंह व्याघ्रने खालिया, अथवा कहीं कुयेंमें डूबकर मरगये तो मेरी बड़ी दुर्नामता होगी, किसीके सम्मुख मुख दिखानेको भी न रहूंगा आप दिव्यदृष्टी हैं; दया करके बतादीजै हम उनकी विनतीकर-उनको यहां लौटार लावेंगे क्योंकि भोजन छाजनमें अत्यन्त दुःखी होंगे" ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरके वचन सुनकर मुनिसत्तम भगवान् नारदजी बोले. कि हे राजन् ! शोक संताप मतकरो. यह सब संसार ईश्वरके वशमें है ॥ ४१ ॥ जो सबका ईश्वर है उसको अपने पालकसहित सब लोग भेटते हैं. वोही परमात्मा सब जीवोंका संयोग वियोग करै है ॥ ४२ ॥ जैसे बलवान् बैल नाथके वशमें होकर अपने स्वामीका सब कार्यकर बलिदेता है, ऐसे यह करना यह न करना ऐसी वेदकी वाणीरूप डोरमें वर्णाश्रम धर्मरूप नाथसे बँधे सबजीव परमेश्वरको बलिदेते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे खेलने वाले की इच्छासे खेल की सब सामग्रियोंका संयोग वियोग हो जाता है, इसी प्रकार ईश्वरकी इच्छासे सब जीवोंका संयोग वियोग समझना चाहिये ॥ ४४ ॥ जो लोकका ध्रुव मानो, अथवा अध्रुव मानो वा दोनोंको मत मानो, मोहसे, स्नेहसे सब प्रकारसे शोककरना नहीं चाहिये ॥ ४५ ॥ हे युधिष्ठिर ! यह जो अज्ञानपनकी तुम्हारी व्याकुलता है इसको त्यागो, क्योंकि तुम कहो हो, कि अज्ञान, अनाथ, कृपण, अन्धे, मुझ बिन वनमें कैसे रहैंगे, और उनके, खाने पीनेकी सुधि कौन लेगा, यह शोच करना तुम्हारा सब वृथा है ॥ ४६ ॥ कालकर्मगुण इनके आधीन यह पञ्चतत्त्वका बना हुआ देह है, सो यह किसकी रक्षा करसक्ता है. जैसे अजगरसर्पग्रसित जीव औरको कैसे बचा सकेगा ॥ ४७ ॥ चार पगवाले पशुआदि तृणादिकको खाते हैं हाथ जिनके हैं वह जीव और भी सूक्ष्म वस्तुका भक्षणकरै हैं, ऐसे ही सब जीवमात्र जीवोंका जीव बचावे हैं परन्तु सब कालग्रसित हैं ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! सर्वद्रष्टा एक सब आत्माओंमें एक भीतर बाहर जामें नहीं. मायासे बहुत दीखे हैं. सजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य, यह भगवान् प्रकाशकरै हैं ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! सो यह भगवान् भूतभावन कालरूपने सुरद्रोहियोंके मारणके कारण पृथ्वीपर मनुज अवतार धारण किया है ॥ ५० ॥ देवताओंका तो सब कार्य कर चुके हैं केवल यदुकुलकी ओर बाट देखरहे हैं, तबलों तुमभी यहां रहो जबलों ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यहां रहैं. पीछे तुमभी चलेजाना ॥५१॥ हे राजन् ! धृतराष्ट्र विदुर सहित गान्धा-रीको लिये दक्षिण हिमाचलकी ओर ऋषियोंके आश्रममें गयेहैं ॥ ५२ ॥ जहां गंगाजी सात

ओर बहकर. आप सातरूप हुई है, सातों ऋषियोंकी प्रीतिके अर्थ सप्तस्रोता ऐसे विख्यात
हैं ॥ ५३ ॥ वहां सदा स्नानकर यथाविधि अग्निहोत्रकर. वायुभक्षणके आश्रय रहकर अति
शान्त मनसे परमात्माके चरणोंमें चित्त लगा, सब कुटुम्बसे स्नेह तज वहाँ वास
करैंगे ॥ ५४ ॥ आसन जीत श्वास जीत इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके. हरि भावनसे राजस,
तामस सात्त्विक सब मल जिनके भस्म होगये ॥ ५५ ॥ विशेष ज्ञानकी व्यापक जिनकी
देह जीवान्तर्यामी, सर्वाधार बृहत्वादि गुण विशिष्ट चैतन्य ब्रह्ममें जीवात्माका तद्रूप होकर
परमात्मामें लीनहोंगे जैसे घट फूटनेसे घटाकाश महाकाशमें लीन होजाताहै ॥ ५६ ॥
माया गुणोंकी वासना जिनसे सर्वत्र दूर होगई, इन्द्रियें अंतःकरण जिनका शुद्ध होगया, सब
प्रकारके आहार जिन्होंने त्यागदिये; सो खम्भकी सदृश अचल होगये ॥ ५७ ॥ सब कर्मसे
संन्यस्तहैं उसमें कोई विघ्न मतकरना, हे राजन्! सो वह आजसे पांच दिन उपरान्त
॥ ५८ ॥ अपना शरीर त्यागन करैंगे, और देह आपही भस्म होजायगी. विदुरजीके ज्ञानसे
धृतराष्ट्रको मोक्ष प्राप्त होगी ॥ ५९ ॥ पर्णशालामें अग्निसे जब देह भस्म होजायगी, तो
गान्धारी उनकी स्त्रीभी उसी अग्निमें प्रवेश करके सती होजायगी ॥ ६० ॥ हे कुरुनन्दन!
विदुरजी यह आश्चर्य देखकर अति हर्ष शोकयुक्त तीर्थयात्राको चलेजायँगे ॥ ६१ ॥
ऐसे कह तुंबुरू गन्धर्व समेत नारदजी स्वर्ग लोकको चलेगये, और युधिष्ठिर उनका वच-
न मान हृदयसे सब शोक संताप त्यागकर वासुदेव भगवानके ध्यानमें लवलीन हुए ॥ ६२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे
विदुरोक्त्या धृतराष्ट्रमोक्षवर्णनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा-पार्थ द्वारकाकी कथा, जैसे बरणी आय।
भयो दुखी सुन धर्मसुत, कहों सकल समझाय ॥ १ ॥

जब द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र, आनन्दकन्द देवकीनन्दनका समाचार बहुत दिनोंसे
न मिला तो युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा, कि भाई तुम द्वारकाको जाओ और द्वारकानाथकी
सुधि लाओ, धर्मराजकी यह बात सुनकर बन्धुके देखनेकी इच्छासे पार्थने द्वारकाको गमन
किया पुण्ययशस्वी श्रीकृष्णचद्रकी सुधिके लिये ॥ १ ॥ हे शौनकमुनि! जब कई मास
व्यतीत होगये और अर्जुन द्वारकासे न लौटे, उस समय युधिष्ठिर घोर उत्पात देखने लगे
॥ २ ॥ कालकी घोरगति, धर्मका उलटापन, दिखाई देनेलगा, मनुष्योंके मनमें क्रोध,
लोभ, मोह, मिथ्यावाद बसगया. सब जीवोंकी पापयुक्त बातें दीखने लगीं ॥ ३ ॥ सब
लोग व्योहारमें कपट करनेलगे, सुहृदतामें ठगपना, पिता, पुत्र, स्त्री, पुरुष, भाई, बन्धुओंमें
क्लेश होनेलगा ॥ ४ ॥ अत्यन्त अरिष्टकारी शकुन होनेलगे, ऐसा समय आगया कि, लोभ
से आदि लेकर अधर्मकी प्रकृति देखकर युधिष्ठिर शोचवश हो भीमसेनसे बोले ॥ ५ ॥
हे भ्रातः! अर्जुनको श्रीकृष्णजीकी सुधि लेनेको द्वारकाको भेजाहै. न जानिये पुण्य यशवाले
श्रीयदुनाथकी क्या करनेकी इच्छा है? ॥ ६ ॥ सो हे भइयाभीम! सात महीने अर्जुनको

गये बीते, सो अबतक आया नहीं, न जानिये क्या कारणहै यह भेद हम कुछ नहीं जान-सक्ते ॥ ७ ॥ ऐसा निश्चय होताहै कि नारदजी जो कहगये थे वह समय आगया; क्योंकि जिस समय सब क्रीडाके साधन श्रीभगवान् शरीरको त्यागेंगे वह समय सब अमांगलिक होगा ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णजीकी कृपासे सब हमारे सम्पदा, राज्य, प्राण, कुलस्त्री, प्रजा वैरियोंसे विजय, सब लोकका धन हुआ ॥ ९ ॥ हे नरव्याघ्र ! दोहा-" जानैं हारि इच्छा कहा, कछु नहिं जानीजात ॥ हे भइया मोहिं होतेहैं, नये नये उत्पात " ॥ १ ॥ स्वर्गके, भूमिके, शरीरके दारुण बुद्धिके मोहके करानेवाले भयानक उत्पातको देखो ॥ १० ॥ छातीका, वामभाग, वामनेत्र, वामभुजा, वारंवार फडकती हैं और हृदय बारंबार कांपताहै, इन लक्षणोंसे यह विदित होता है, कि शीघ्र कुछ अप्रियबात सुनाइ देगी ॥ ११ ॥ सूर्यके सन्मुख खडी होकर शृगालिनी रोतीहैं और मुखसे आग उगलती हैं, हे भइया भीम ! मेरी सन्मुख निःशंक खडे होकर श्वान रोते हैं ॥ १२ ॥ अच्छे पशु गौ आदिक तौ मेरे बांये ओर होकर निकलतेहैं और गर्दभ आदि दुष्ट पशु मेरी परिक्रमा करैहैं हे पुरुषसिंह भीम ! मेरे रथके घोडे जब सवार होताहूं तब रोतेसे दीखैं हैं ॥ १३ ॥ मृत्युके दूत यह कपोत काग, उलूक, श्वान रातको बोलतेहैं उनका बोलना विश्वको शून्य करना चाहताहै ऐसे कुलक्षणोंको देख देख मेरा हृदय कांपता हैं ॥ १४ ॥ सब दिशाओंमें धुन्ध छा रहाहै (सूर्य चन्द्रमाके मण्डल बँधेहैं) पर्वतोंसहित भूचाल होरहाहै, विना बादल आकाशसे गर्जनेका शब्द सुनाई आताहै ॥ १५ ॥ पवन धूरि लेकर आकाशको चढै हैं; सब नभमण्डलमें रेतसे अन्धकार छारहाहै, सब ओरसे भयानक मेघ रुधिर बरसातेहैं ॥ १६ ॥ स्वर्गमें सब ग्रह परस्पर लडते हैं. सूर्य कान्तिहीन दृष्टि आताहै, यह देखो भूतगणोंसे व्याकुल होकर सब पृथ्वी मानो अग्निसम उत्तप्त हो रहीहै ॥ १७ ॥ नदी और नद ताल और सरोवर क्षोभको प्राप्तहै, अग्नि घृत डालनेसे प्रज्व-लित नहीं होती, न जानिये यह कुसमय क्या करैगा ॥ १८ ॥ बछडे गायोंका दूध प्रसन्न होकर नहीं पीते, माता स्तनोंसे दूध नहीं छोडती धेनु सूर्यनारायणके सन्मुख खडी होकर नेत्रोंसे जलधारा बहातीहै, खडकोंमें वृषभ प्रसन्न चित्तसे शब्द नहीं करते ॥ १९ ॥ मन्दिरोंमें देवताओंकी प्रतिमा रुदन कर रहीहैं. पसीना आताहै. कम्पायमान हो रही हैं, देश, ग्राम, पुर, नगर, कूप वाटिका, आश्रम, इन सबकी शोभा मलीन होगई, आनन्दका नाम नहीं. न जानिये यह हमको क्या दुःख देंगे ? ॥ २० ॥ निश्चयहै कि इन उत्पातोंसे अनन्य पुरुष श्रीकृष्णकी शोभासे और भगवतके चरणारविन्दसे जिसका सौभाग्य हीन होगया. इसलिये भूमिकी शोभा नष्ट होगई ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिस समय राजा युधि-ष्ठिरजी बैठे यह विचार कररहेथे कि यह अरिष्ट क्या करैगा ? उसी समय राजा युधिष्ठिरके समीप यदुपुरीसे अर्जुन आये ॥ २२ ॥ आतेही नीचेको मुख कर धर्मराजके चरणोंमें गिर-पडे अत्यन्त व्याकुल आंसुओंसे पूर्णनेत्र ॥ २३ ॥ कान्तिहीन सुहृद अर्जुनके सन्मुख नारद जीके वचन स्मरणकर कम्पित हृदय हो राजा युधिष्ठिर बूझने लगे ॥ २४ ॥ हे भ्रातः ! मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सारस्वत अन्धक, वृष्णि, यह सब राजा आनन्दित हैं ? ॥२५॥

मान्यवर शूर नाना वसुदेव तो प्रसन्नहैं ? भाई सहित मामा कुशलहैं ? ॥ २६ ॥ सातों बहिनें उनकी स्त्रियें, हमारी मामी, पुत्रसहित, पुत्रवधूसहित, देवकी आदिकी क्षेमहै ? ॥ २७ ॥ राजा आहुक, देवक भाई सहित, जिसका पुत्र महाखोटाहै वह जीवैहै ? हृदीक पुत्रसहित अक्रूर, जयन्त, गद, सारण ॥ २८ ॥ शत्रुजित आदिक कुशलहैं ? भगवान् सात्वतोंके प्रभु बलदेवजी अच्छे हैं ? ॥ २९ ॥ सब वृष्णियोंमें महारथी प्रद्युम्नतो सुखी हैं ? भगवान्‌की समान महागम्भीर वेगवाले अनिरुद्धजी कुछ बड़े हुएहैं कि अभी छोटे हैं ? ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवतीपुत्रसाम्ब और सब श्रीकृष्णसुत पुत्रसहित ऋषभादिक ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णजीके अनुचर श्रुतदेव, उद्धवादिक, सुनन्द, नन्द यादवोंमें मुख्य श्रेष्ठहैं ॥ ३२ ॥ राम कृष्णकी भुजाओंसे पालित वह सब प्रसन्नहैं ? जिन्होंने हमसे सौहृद कियाहै वह सब कुशलहैं ? ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंके पालनेवाले भक्तवत्सल गोरक्षक भगवान् भाई बन्धु समेत द्वारकामें सुधर्मा सभामें सुखीहैं ? ॥३४॥ सब लोगोंके मंगलके लिये सबकी कुशलके अर्थ सबकी वृद्धिके कारण शेषजीके सखा आदिपुरुष श्रीकृष्ण यदुकुलमें प्रसन्नहैं ? ॥ ३५ ॥ जिनकी भुजारूपी दण्डसे रक्षित द्वारकामें पूजित होकर. यादव परमानन्दसे वैकुंठनाथके पार्षदकी नांई क्रीडा करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनके चरणारविन्दकी सेवारूप मुख्य कर्मसे सत्यभामादिक सोलह सहस्र स्त्रियां संग्राममें जीत उनके निमित्त देवताओंके भोग्य कल्पवृक्षको स्वर्गसे लाकर द्वारकामें रक्खा ॥ ३७ ॥ यादवलोग जिनकी भुजाओंके प्रतापसे निर्भय उत्साहित सुरसत्तम योग्य सुधर्मा सभा अपने बलसे लाये और बारंबार उसमें चरण धरतेहैं ॥ ३८ ॥ हे तात ! हे भैया ! तुमतो प्रसन्नहो ? मुझको ऐसा विदित होताहै कि तुम्हारा तेज नष्ट होगया. अथवा बहुत दिनोंके रहनेसे भाइयोंने तुम्हारा आदर सत्कार नहीं किया ? क्या तुम्हारी अवज्ञाकरी ? किसीने अमंगल शब्द प्रेमरहित वाणीसे तो तुमको नहीं पुकारा ? पहिले किसीको आशाका भरोसा दे पीछे क्या वस्तु उसे नहींदी ? ऐसा तो नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कोई भयभीत, ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी, स्त्री, तुम्हारी शरण आये होंय उनको तो तुमने कहीं नहीं त्यागदिया ॥ ॥ ४१ ॥ अगम्यास्त्रीसे तुमने रमण तो नहीं किया अथवा विना श्रृंगारवाली नीच स्त्रीसे तो तुम नहीं बोले ? अथवा उत्तम वा सामान्य पुरुषने मार्गमें तुमको पराजय तो नहीं किया ? ॥ ४२ ॥ अथवा भोजनके समय किसी ब्राह्मण वा वृद्ध, बालक, वा और किसी पुरुषको त्यागकर पहिले तुमने तो भोजन नहीं करालिया ? अथवा कोई असह्य महानिषिद्ध कर्म तो तुमने नहीं किया ? ॥ ४३ ॥ अथवा हमारे प्यारे नेत्रोंके तारे हृदयरूप बन्धु श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द सर्व सुख देनेहारे तो कहीं परधामको नहीं सिधारे ? जिनके मारे तुम अत्यन्त व्याकुल होरहेहो. और कोई रोग तो मुझे विदित नहीं होता यह कारण क्या है? वर्णनतो करो, क्यों ऐसे तनु छीन मनमलीन कांतिहीन होरहेहो? जो बात हो सो सत्य सत्य कहो जो मेरे मनको धैर्य हो ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते
प्रथमस्कंधे युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा-पंचदशमअध्यायमें, सुन यदुवंशविनास ।
धर्मराजसबराजतज. कियो हिमालयवास ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि हे शौनक ऋषि ! श्रीकृष्णके सखा अर्जुनसे राजा युधिष्ठिरने अनेक अनेक प्रकारसे बूझा. परन्तु यदुनाथके वियोगमें ऐसे कृशित होगये ॥ १ ॥ कि उत्तर न दिया गया, शोकके मारे मुख हृदयकमल सूखगया, शरीरकी कान्ति जाती रही, श्रीकृष्ण सर्व समर्थका ध्यान करनेलगे, परन्तु मुखसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं रही ॥ २ ॥ बड़े कष्ट-से शोकको रोक नेत्रोंके आंसू पोंछ श्रीकृष्णके अंतर्धान होजानेके कारण प्रेमवश व्याकुलहो ॥ ३ ॥ उनका सारथीपनका समय, सखाभाव, मित्रता, सुहृदताको स्मरणकर, भाई युधि-ष्ठिरके आगे शोकको रोक रुके गद्गद कण्ठसे बोले ॥ ४ ॥ हे महाराज ! बन्धुरूप श्री-हरिने मुझको ठगलिया, देवताओंको विस्मयदायक मेरा तेजभी जातारहा "मैं क्या कहूं ? और क्या आप बारंबार मुझसे बूझतेहो ? हमारे प्राणप्यारे द्वारकानाथ हमारी पीठपर हाथ धरनेवाले हमको धोखादेकर परमधामको चलेगये, और हम अपने मूर्खपनसे उनको अपना ममेराभाई ही समझते रहे, उनको आदि पुरुष अविनाशी नहीं जाना, जो परमात्मा समझकर हम उनके चरणारविन्दोंकी सेवा करते तो भवसागरसे पार उतर मोक्षको प्राप्त होते. उनकी माया ऐसी प्रबलहै उसके फंदमें फँसकर हमने जगदीश्वरको नहीं पहिचाना, जैसे एक समय चन्द्रमा दक्ष प्रजापतिके शापसे बहुत कालतक क्षीर समुद्रमें रहा, यह बात सबको विदित है कि चन्द्रमामें अमृत रहताहै और कच्छ मच्छ आदिक अनेक जलचर उसमें रहतेथे और उसी समुद्रमें चन्द्रमा बसताथा, और संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं जो अपना अमर होना न चाहै सब यही इच्छा रखतेहैं कि अमृतमिलै तो हम पीकर अमरहो संसारमें रहकर आनन्द भोगैं; परन्तु मच्छ कच्छ सहस्रों वर्षतक चन्द्रमाके संग रहे और अमृतका कुछ ध्यान नहीं किया, जिस प्रकार उन समुद्रके जीवोंने चन्द्रमाका भेद नहीं जाना और उसकोभी समुद्रका एक जीव माना, इसी प्रकार हम लोगोंने भी परब्रह्म परमा-त्माको नहीं पहिचाना यदुवंशीही जाना. अब वह बात समझकर हमको बड़ा पश्चात्ताप आताहै कि हाय ! हम भाईकेही धोखेमें रहे और परमेश्वर हमारे हाथसे निकल गये, हाय ! हमने आदिपुरुष अविनाशीको अपना सारथी समझा, हे भ्रातः ! जो समस्त भूमंडल मेरे तेजके सन्मुख थरथर कांपताथा आज वह मेरा सब तेज नष्ट होगया" ॥५॥ जिस प्राणके क्षणमात्रके वियोग होनेसे यह लोग नहीं रहते मृतक कहावे हैं सो प्राणरूप श्रीभगवानके अन्तर्धान होनेसे हमभी मृतककी समान होगये ॥ ६ ॥ जिन श्रीकृष्ण चन्द्रके आश्रयसे द्रुपदके यहां आये कामके उन्मत्त राजाओंका तेज स्वयम्वरमें मैंने हरा और धनुष सूधाकर मत्स्यवेधन किया और द्रौपदीको हम ले आये ॥ ७ ॥ जिन श्रीविपिनविहारीके समीप रहकर खाण्डव वन अग्निको भोजन करनेके लिये दिया और देवगण सहित सुरे-शको जीतकर मयनाम दैत्यकी बनाई हुई अद्भुत सभा जिसमें अनेक अनेक प्रकारकी शिल्पकारी विद्याकी कारीगरी थी सो सभा हमको मिली; और आपके यज्ञमें सब देशोंके

राजाओंने आन आनकर भेटेंदीं. यह सब उन्हीं यदुनन्दनकी दयाथी ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णके तेजसे राजाओंके शिरपर चरण धरनेवाला जरासन्ध जिसमें दशसहस्र हाथीका बल था, ऐसे बडे भारी बलवानको भीमसेनने यज्ञके लिये मारा, और भैरवजीके यज्ञके कारण उसने जिन राजाओंको रोक रक्खाथा उनको छुड़ाया और वह सब नरेश आपके यज्ञमें भेटलाये ॥ ॥ ९ ॥ आँखोंसे आंसू वहाती श्रीकृष्णजीके चरणोंमें पड़ी, तुम्हारी द्रौपदीका राजसूय यज्ञमें रचित गुंधाहुआ अभिषेक होनेसे श्लाघनीय श्रेष्ठ रमणीका जूड़ा जिन कपटी दुर्योधनादिकोंने सभामें छूकर बखेरा यह देख भीमसेनने प्रतिज्ञा करी, कि इस जूड़ेके खोलने वालोंको मारकर उनकी स्त्रियोंका जूड़ा खुलवाया क्योंकि वैधव्य कालमें माथेका जूड़ा खोलाजाताहै और फिर नहीं बँधताहै इसीप्रकार भगवान्‌ने विचारा कि मेरे भक्तोंकी स्त्रियोंका जूडा तो थोडेही दिनों खुला रहैगा परन्तु तुम्हारी विधवाओंका जूडा जबतक जियेंगी तबतक खुला रहैगा. यह सब उन्हीं पूर्ण प्रतापीका प्रताप था ॥ १० ॥ हे नरेंद्र ! जिन कृष्णजीने वनमें आये दशसहस्र शिष्योंको संगलिये दुर्योधनके भेजे अत्यन्त दुरन्तकष्टसे दुर्वासा ऋषिसे हमारी रक्षाकरी और शाकपत्रको पाय त्रिलोकी तृप्तकरी, कि जलमें स्नान करते सब चेले भागगये "भारतमें यह इतिहास इस भांति लिखाहै किसीसमय दुर्योधनने दुर्वासा ऋषिको भोजन करवायाथा. दुर्योधनसे प्रसन्नहो दुर्वासा ऋषि बोले, कि कुछ मांगो, तब दुर्योधनने मनमें विचार किया कि दुर्वासाके शापसे पाण्डवकुल नष्ट होजाय तो अच्छा है, तब दुर्योधनने कहा कि युधिष्ठिर हमारे कुलमें मुख्यहै, जब द्रौपदी प्रसाद पायले उस समय तुम दशसहस्र शिष्योंको साथ ले उसके घरको भोजनको जाना यह वचन सुन दुर्वासाने वैसाही किया युधिष्ठिरने दुर्वासाको देख अत्यन्त आदर सन्मानसे मध्याह्नकृत्य कर दण्डवत् प्रणाम किया. मुनि समूह पापनाशके अर्थ जलमें स्नान करनेको गयेहैं भोजन करेंगे, युधिष्ठिरने कहा बहुत अच्छा. यह बात सुन द्रौपदीने चिन्तासे आतुर होकर श्रीकृष्ण विश्वभरका स्मरण किया कि हेदीनानाथ ! आज धर्मराजकी और मेरी लाज आपके हाथहै, हे यदुपति ! जो मेरी अपति हुई तो आपहीकी अपतिहै, श्रीकृष्णचन्द्र वनवारी भक्तहितकारी तत्क्षण आन उपस्थित हुए और द्रौपदीसे बूझा क्यों ? द्रौपदी बोली; कि हेदीनबंधु ! हेभक्तवत्सल ! हेभगवन् ! आज दुर्वासाऋषि शिष्यों सहित हमारे घर आयेहैं और यहां भोजनकी कुछ सामग्री उपस्थित नहीं क्या कियाजाय ? इस कारण आपका स्मरण कियाहै, यह बात सुन श्रीविश्वनाथ बोले, कि हमभी भूखेहैं, पहिले हमको भोजन करादो पीछे दुर्वासाको देखा जायगा, तब द्रौपदी अत्यन्त लज्जित हुई अरु हाथ जोड़कर बोली—कि हे स्वामी ! मेरे भोजन पर्यन्त अक्षय अन्न बटलोईसे निकलताहै, जब मैं इसमेंका भोजन करलूंहूं फिर इसमें भोजन नहीं रहता, सो हे नाथ ! अब मैं भोजन कर चुकी इसमें अब कुछ भोजन नहीं रहा. फिर भगवान् बोले कि उस बटलोईको यहांतो लाओ. यह सुन वह बटलोई लाई उसके किनारेमें कोई शाकान्न लगा रहगयाथा सो पायकर भगवान् बोले कि इस शाकान्नसे विश्वात्मा भगवान प्रसन्न हों यह कह युधिष्ठिरसे कहा कि अब मुनि समूहको

भोजनके लिये बुलाओ सो वह स्नान करके सब भागगये क्योंकि भगवानने तो उनके पेट पहिलेही भरदियेथे, दुर्वासा ऋषिने कहाकि हमने वृथा पाक बनवाया यह भय मान सब चेलों समेत दुर्वासा ऋषि वहाँसे भागगये अरु यह वरदान दिया कि वासुदेव भगवान सदा तुम्हारी जय करैं" ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णके तेजसे मैंने पार्वतीसहित महादेव शूलपाणि-को भुलादिया उन्होंने मुझको अपना पाशुपत अस्त्र दिया फिर औरोंनेभी अनेक अस्त्र दिये. इसी शरीरसे इन्द्रलोकमें आधा आसन इन्द्रका हमको मिला ॥ १२ ॥ तहाँ स्वर्गमें हम विहार करतेथे तब इन्द्रसहित देवताओंने निवात कवच वैरियोंके मारनेके लिये मेरा गाण्डीव धनुष मेरे भुजदण्डका आश्रय कियाथा. हे युधिष्ठिर ! ऐसा मेरा प्रभाव बढ़ाया ऐसे श्रीद्वारकानाथने अपनी माया दिखाकर मुझको ठग लिया ॥ १३ ॥ निज श्रीकृष्णरूप बन्धुके आश्रितहो अपार भीष्मादि महारथी रूप ग्राहों से दुस्तर कुरुसेनारूप सागरको अकेला रथसे पार होगया. और मोहास्त्रसे मोहितकर उत्तर गोगृहमें शत्रुओंके शिरोंसे तेजवन्त मणिमय मुकुट कुण्डल पाग बहुत धन लाया. हाय ! सो श्रीकृष्ण हमारे प्यारे अन्तर्धान होगये ॥ १४ ॥ हे युधिष्ठिर ! वड़े राजेन्द्रोंके रथोंसे शोभित भीष्मपितामह, गुरु, कर्ण शल्य, इनकी सेनामें सारथी होकर मेरे आगे चले और उन रथी यूथपालोंकी आयु, मन, बल, सब शस्त्रादिकुशलता दृष्टिसे क्षीण करते चले जातेथे ॥ १५ ॥ उन्होंने मुझे अपनी भुजाओंमें रखलिया फिर गुरु, भीष्म, कर्ण, द्रोण, त्रिगर्त, शल्य, सैंधव, बा-ह्लीक, इनके अमोघ महिमावाले तीव्र अस्त्र मेरे शरीरको स्पर्श न करसके जैसे भगवतके दासको नीच लोग नहीं छू सक्ते ॥ १६ ॥ जिनके चरणकमलका श्रेष्ठ जन मोक्षके लिये दिन रात भजन करतेहैं जब मेरे घोड़े थकजानेसे मैं रथसे नीचे उतरकर खड़ा होगया तब मुझको श्रीकृष्णके प्रभावसे परास्त रथी वैरी न मारसके. ऐसे त्रिलोकीके नाथको मैंने अपना सारथी बनाया, हाय ! मुझसे बड़ी भारी भूल हुई ॥ १७ ॥ हे नरदेव ! श्रीकृष्ण जब उदार रुचिर शोभित मधुर मुसकानयुक्त मृदुल मनमोहिनी वाणीसे, हे अर्जुन ! हे पार्थ ! हे धनंजय ! हे सखे ! हे कुरुनन्दन ! कहतेथे वह बातें जब मुझको स्मरण होतीहैं तौ हृदयमें शूलसा खटक जाताहै ॥ १८ ॥ शय्या, आसन, अटनमें चाहै जैसे मैं बोलता भोजन इत्यादिमें हे बन्धो ! हे सखे ! सत्य है जो तुम कहोहो सब सत्य है, ऐसे बोलते जैसे सखाका अपराध सखा सहै पिता पुत्रके अवगुण सहै श्रीकृष्णजी अपने बड़प्पनसे मुझ-से कुमतिके अपराध सहतेथे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! अंग, सखा, प्रीतम, हृदयवल्लभ, पुरु-षोत्तमके विना मैं ऐसा शून्य होगयाहूं कि, श्रीकृष्णके परिवारकी रक्षा, करते हुए मुझे मार्ग-में भीलोंने लूट लिया ॥ २० ॥ देखो भाई ! जो पृथ्वीके राजा मेरे नामसे थरथर कांपते थे मैं वही धनंजयहूं, और वही रथहै, वही घोड़ेहैं वही धनुषहै, वही बाणहैं वही मेरी भुजाहैं जिन भुजाओंके बलसे मैंने महेश, सुरेश, गन्धर्व, और मयनाम राक्षसको परास्त करदिया, और भीष्मपितामह, कर्ण, जयद्रथ आदि वड़े वड़े बलशाली योद्धाओंका विध्वंस किया, और यज्ञके घोड़े-के संग गया अरु वड़े वड़े नामी नरेशोंका मानभंग करके उनको अपने संग लिया, और

सब पृथ्वीपर यज्ञके घोडेको फिराकर हस्तिनापुरमें लाया, अश्वत्थामाका मस्तक चीरकर मणि निकाली, परन्तु बिना द्वारकानाथके यह सब निष्फल होगये. जैसे भस्समें किया हुआ हवन, कपटीसे मिला धन, ऊषरमें बोया अन्न निष्फल होताहै ॥ २१ ॥ हे नरेन्द्र ! सुहृदपुरके सुहृद् जो आपने बूझे—वह सब दुर्वासा ऋषिके शापसे परस्पर कटकटकर मरगये ॥ २२ ॥ "आदिपुरुष अविनाशी त्रिलोकीनाथने चित्तमें विचारा कि यह यदुवंशी हमारे वंशमें बडे नामी और बलवान् हैं न जानिये मेरे पीछे संसारमें क्या क्या उपद्रव मचावें ? और लोगोंको कैसे कैसे दुःख दें ? इसलिये अपने आगेही इन लोगोंको कुछ उपाय करना चाहिये. परन्तु अपने हाथसे उनका मारना भी उचित नहीं समझा. इसलिये दुर्वासा ऋषिसे उनको शाप दिलवादिया." तब वह वारुणी मदिरा पीपीकर ऐसे उन्मत्त हुए कि तनमनकी सुधि बुधि कुछ न रही अजानकी भांति सब परस्पर कटमरे, चार पांच शेष रहगये हैं ॥ २३ ॥ हे भ्रात ! प्रायः यह ईश्वरकी चेष्टा है कभी परस्पर विध्वंसकराते हैं कभी पालन करते हैं जैसे समुद्रके वासी बड़े जीव छोटे जीवोंको खाजाते हैं ऐसे बली राजा निर्बलको परस्पर जीतलेतेहैं ॥ २४ ॥ ऐसे बली महान् यादवोंसे छोटे छोटे यादवोंका विध्वंस करवाकर भूमिका भार उतारा ॥ २५ ॥ देश, काल, योग्य, अर्थ, हृदयतापके नाश श्रीकृष्णके वचन जब मैं स्मरण करता हूं तो मेरा चित्त व्याकुल होजाता है, उसी समय मेरे प्राण देहसे निकल जाते; परन्तु इसकारण यह पापी प्राण देहमें पापभोगनेको रह गये, जब यदुनाथ परमधामको सिधारे थे तो दारुक सारथीसे मुझे यह बात कहलाभेजी थी, कि स्त्री और बालकोंको द्वारकासे हस्तिनापुरको अपने साथ लेजाना, और मेरे वियोगका कुछ शोच मतकरना. जो कुछ ज्ञान गीतामें हमने तुमसे कहा है उसीके अनुसार इस शरीरको झूठा समझना और चैतन्य आत्माको सत्य जानकर अपने मनको धैर्यदेना, हे भ्रातः ! वही ज्ञान समझकर मैंने संतोष कियाहै. ऐसे सोचते सोचते अर्जुनने श्रीकृष्णके चरणकमलको हृदयमें धारणकर अपने चित्तको धैर्य दिया ॥ २६ ॥ और भगवान् वासुदेवके चरणोंमें प्रीति बढ़ाई, जिस भक्तिके प्रभावसे सब कामादिक अरु मल नष्ट होगये ॥ २७ ॥ जिस गीताका ज्ञान संग्रामके आदिमें भगवानने मुझको सुनाया था, वह ज्ञान काल, कर्म अन्धकारसे मैं भूल गयाथा, अब फिर श्रीकृष्णकी कृपासे प्राप्त हुआ ॥ २८ ॥ ब्रह्मज्ञानसे जब अविद्या लीन होगई तो फिर निर्गुणहो, स्थूलशरीरहीन सुन्दर भोग भोग्य होकर, द्वैतभ्रम सब नष्ट होगया तब विशोक होता है ॥ २९ ॥ भगवन्मार्गकी बात सुनकर यदुकुलका विध्वंस सुनकर युधिष्ठिरने निश्चल चित्त करके स्वर्गके जानेका विचार किया. " भीमसेन सहदेवादि अपने भाइयोंसे कहा—अब हम जीकर क्या करेंगे ? और यह राज्य हमारे किस कामका है ? जब हमारी बातका बूझनेवाला और पतिका रखनेवाला नहीं है. जब २ हमपर भीड पडतीथी उसीसमय आयके सहाय किया करतेथे. हाय ! अब कौन हमारा रक्षा करेगा ? " ॥ ३० ॥ अर्जुनके मुखसे द्वारकानाथके परमधामके जानेका समाचार कुन्तीने सुनकर एकान्त भक्ति कर भगवान् वासुदेवमें मन लगाय हाय करके अपना शरीर त्यागकर जीव-

नमुक्त हुई; " और द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा आदिने रोरोकर इतना विलाप किया कि जिसका वर्णन नहीं हो सक्ता " ॥ ३१ ॥ युधिष्ठिर बोले, क्यों वृथा विलाप करो हो ? जन्मरहित भगवानने जिस शरीरसे भूमिका भार दूर किया उस शरीरको भी त्यागदिया. जैसे कांटेको कांटेसे निकालें हैं ऐसेही समझो. क्योंकि परमेश्वरको तो दोनो शरीर समानहैं. ॥ ३२ ॥ जैसे मत्स्यादिक रूपको अजन्मा ईश्वर धारण करेहै त्यागन करता है जिस देहसे जैसे भूभारका नाश किया, ऐसेही वह तनु भी त्याग दिया ॥ ३३ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र इस संसारको त्यागकर परमधामको गये उसी दिनसे अज्ञानियोंके चित्तमें अधर्मका हेतु कलियुग आनकर वर्तने लगा ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने अपने घर, राज्य, नगर में कलियुगका आगमन जान, लोभ, झूठ, कपट, हिंसा, अधर्मका चक्र आता देख, वनगमनकी इच्छा करी ॥ ३५ ॥ राजायुधिष्ठिरने अपने पोतेको गुणमें अपने समान विनयी गुणग्राही जान समुद्रपर्यन्तकी भूमिका राज्यतिलक हस्तिनापुरमें करदिया ॥ ३६ ॥ और शूरसेनदेशके पति वज्रनाभको मथुराका राज्याभिषेककर प्राजापत्य अग्निके आत्मामें आरोपित करलिया ॥ ३७ ॥ तहां सब वस्त्र कंकन आदिकोंको त्याग, ममताछोड, अहंकार तज, सब उपाधिको अलग किया ॥ ३८ ॥ वाणीको मनमें लगाय, मनको प्राणमें लीन-कर, प्राणको अपानमें और अपानको मृत्युमें लीनकर उत्सर्ग वायुके सहित मृत्युको पंचत्वमें होमदिया ॥ ३९ ॥ पंचभूतोंको त्रिगुणमें त्रिगुणको अविद्यामें, अविद्याको जीवमें जीवको अव्यय ब्रह्ममें लीन करदिया ॥ ४० ॥ चीर वस्त्रपहन, भोजन त्याग, मौनधर, शिरके बाल खोल, अपना रूप पांचों भाइयोंने जब उन्मत्त पिशाचकी सदृश बनालिया ॥ ४१ ॥ सबकी ओरसे दृष्टि फेरली. कान, बन्द करलिये. बहिरेसे बन उत्तर दिशाको चल दिये. उस दिशाको बडे बडे महात्मापुरुष पहिले भी गये हैं ॥ ४२ ॥ हृदयमें परब्रह्मका ध्यान करे हैं जहांके गये फिर नहीं आते हैं, ब्रह्मकावेत्ता ब्रह्मही होता है पीछे ब्रह्मलोकको जाता है ॥ ४३ ॥ सब भैया निश्चयकर युधिष्ठिरके पीछे चलदिये, अधर्मके मित्र कलियुगने सब प्रजा भूमिमें स्पर्श कर लिया, यह देखा ॥ ४४ ॥ सब कृत्योंको साधकर, आत्माकी अत्यन्त क्षेम जान वैकुण्ठनाथ भगवानके चरणारविन्दोंका मनसे ध्यान करने लगे ॥ ४५ ॥ उनके ध्यान और बढी हुई भक्तिसे सब इन्द्रियें विशुद्धकर परात्पर नारायणमें एकान्त मतिकर परमगतिको प्राप्त हुए. विषयी असत् पुरुषोंको वह नहीं प्राप्त होती, सब कल्मष धोकर निर्मल शरीर हो, वैकुण्ठस्थानको गये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ आत्मज्ञानी विदुरजी भी प्रभासक्षेत्रमें देहत्यागकर श्रीकृष्णमें चित्तलगाय युधिष्ठिरादिसहित अपने अधिकारस्थानको गये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अपनी ओर न देखें ऐसे पतियोंको जान द्रौपदी भगवान् वासुदेवमें एकान्तमन लगाय परम पदको प्राप्त हुई ॥ ५० ॥ भगवतके प्यारे पाण्डुके पुत्रोंका यह स्वर्गारोहण श्रद्धासे जो सुनै हैं वह पवित्र होते हैं सदा मंगल होते हैं श्रीनारायणमें भक्ति होकर सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा-पाय परीक्षित राज जिमि, देखे सब निज देश।
सो सबवर्णोहितसहित, जो कुछ लखेउ नरेश ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि हे शौनक ऋषि! महाभागवत परीक्षित जब ब्राह्मणोंकी शिक्षासे पृथ्वीकी रक्षा करनेलगे, जन्मके समय सब विद्वान् आनकर जैसे जैसे गुण कह गयेथे, वैसेही सब महागुण उनमें सम्पन्न थे ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने राजा उत्तरकी पुत्री इरावतीके साथ विवाह किया उससे जन्मेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दक्षिणा देकर तीन अश्वमेध यज्ञ किये. गंगातीरपर कृपाचार्यको गुरु कर, जिस यज्ञमें देवता सन्मुख आन आन कर अपना अपना भाग लेगये ॥ ३ ॥ किसी समय राजाओंकैसा वेष धारण किये शूद्र गौको और बैलको पाँवसे मारता कलियुगको दिग्विजयमें अपने पराक्रमसे राजाने पकडा ॥४॥ शौनक ऋषि बोले, कि राजा परीक्षितने दिग्विजयमें किसलिये कलियुगको पकडा? राजाओंके चिह्न धारनेवाला वह शूद्र कौन था? जो पाँवसे गौको मारताथा! ॥ ५ ॥ हे महाभाग! जो कृष्णकथाके आधीन बात होय सो अथवा श्रीकृष्णके पदकमलके मकरन्दके स्वादलेनेवाले संतोंकी कथा होय सो कहो ॥ ६ ॥ खोटी कथाओंसे क्या प्रयोजनहै जो वृथा आयुको क्षयकरैं, जो लोग वृथा अपनी आयुको खोते हैं वही नरकमें वास करते हैं ॥ ७ ॥ हे मुने! थोडी आयु मरणवाले मोक्षकी इच्छावाले मनुष्योंको मृत्युहै, उसको सब कर्मबन्धनका शमन करनेवालेने यज्ञमें बुलाया ॥ ८ ॥ जबतक यह मृत्यु यहां रहेगी तबतक कोई नहीं मरैगा, इसलिये भगवान्, मृत्युको परम ऋषियोंको बुलाया और कहा तुमभी यहां बैठकर कथा सुनाकरो ॥ ९ ॥ अहो मनुष्यो! नरलोकमें हरिलीला कथा अमृत पियो, कलियुगमें हरिचरित्र श्रवण करनेसे वैकुण्ठवास मिलताहै ॥ १० ॥ मंद, मंद बुद्धिवाले, थोडी आयुवाले जीव राततो सोनेमें गमावे हैं और दिन व्यर्थ कर्मोंमें खोवे हैं ॥ ११ ॥ सूतजी बोले, कि जब परीक्षित कुरु जांगल देशमें बसतेथे तब अपने चक्रसे रक्षित राज्यमें कलियुग आता जानकर बहुत अमांगलिक बातें सुन परीक्षितने धनुष बाण हाथमें लिया ॥ १२ ॥ सेनापतिको बुलाकर कहा शीघ्र सेना सजाओ सुन्दर शृंगार किये श्यामकर्ण घोडे जिसमें जुतेहुए सिंहध्वज रथमें बैठे रथ घोडे हाथी सिपाहियोंकी चतुरंगिनी सेना संग लिये दिग्विजयको निकले ॥ १३ ॥ भद्राश्व केतुमाल, भारतवर्ष उत्तरतक, किंपुरुष, हरिवर्ष रम्यक, हिरण्मय, इत्यादि खंडोंको जीतकर बलि लिया ॥ १४ ॥ और उन खण्डोंमें अपने पूर्वके महात्मा पुरुषोंका और कृष्णका माहात्म्य जतानेवाला गायाहुआ यश सुना ॥ १५ ॥ अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे अपनी रक्षा, यादवोंका और पाण्डवोंका स्नेह, उनकी केशवमें भक्ति यह सुनी ॥ १६ ॥ उनपर अति सन्तुष्टहो, प्रीतिसे प्रफुल्लित नयनकर महामना परीक्षितने महा धन वस्त्र हार दिये ॥ १७ ॥ अपने प्यारे पाण्डवोंका सारथीपन, पारषद बनना, सेवा करनी, सख्यभाव, दूतबनना, वीरासन बैठकर रक्षाकरनी, उनके पीछे चलना, प्रणाम करना, विष्णुकी जगत् कर्तृता सुन राजा परीक्षितने विष्णुके चरणारविन्दोंमें मन लगादिया ॥ १८ ॥ ऐसे राजाथे

दिन रात उनकी ऐसी वृत्तिथी पूर्व पुरुषोंकी भाँति राज्य करतेथे थोडी देर पीछे एक ऐसा आश्चर्य हुआ सो सुनो ॥ १९ ॥ वृषरूपधारी धर्म एक पदसे चलताहै और उसके तीन पद टूटरहे हैं आंखोंसे आंसू चले जाते हैं कान्तिहीन, बछडे जिसके नष्ट होगये हैं, सबकी माता पृथ्वी गोरूप धारण किये उसके समीप खडी है दोनों परस्पर कुछ वार्तालाप कर रहे हैं. धर्मने पूछा ॥ २० ॥ हे भद्रे! हे अम्ब! तुम अच्छी तो हो? मुख मलीनसा होरहा है तनु छीन दिखाई देता है आपके हृदयमें कुछ पीडा तो नहीं है? अथवा तुम्हारे बन्धु कहीं दूर तो नहीं चलेगये जिस कारण तुम्हारी यह दशा है? ॥ २१ ॥ क्या तुमको मेरे पैर टूटे देखकर शोच होगया जो तुम रोतीहो? कदाचित् तुमको मेरे तीन पांव टूट-जानेका दुःखहै? तुमपर शूद्र राज्य करै हैं यह कष्ट है? अथवा यज्ञमें जिनको भाग नहीं मिलता उन देवताओंका शोकहै? वा प्रजाका दुःख है क्या मेघ जो नहीं बरसता यह संशयहै ॥ २२ ॥ हे पृथ्वी! माता पिताकी पुत्र रक्षा नहीं करतेहैं क्या यह संतापहै? वा तुम्हें पुरुष खानेवाले निर्दयी महा क्लेशित सबहैं यह विषादहै? कुकर्मियोंमें सरस्वती जाय बसी अथवा जो ब्राह्मणोंको न माने उनके घर लक्ष्मी देवी गई. राजालोग ब्राह्म-णोंको नहीं मानने लगे. कुलीन ब्राह्मण सेवकाई करने लगे क्या यह सन्देह है? ॥ २३ ॥ अथवा कलियुग ग्रसित क्षत्रिय होगये. उनके राज्य कलियुगी होगये सब जीव इधर उधर भोजनके लिये, जल पीनेके अर्थ, स्नानके कारण मैथुन करनेको ऊपरको मुख उठाये फिरैं हैं ॥ २४ ॥ हे अम्ब! हे धरणि! अथवा तुम्हारे ऊपर जो बड़ा भार है इसके उतारने वाले ईश्वर अवतार धारी अन्तर्धान होगये यह शोकतो नहीं है? वा मोक्षदायक उनके करेहुए कर्मोंको स्मरण करोहो? ॥ २५ ॥ हे वसुन्धरे! जिसलिये तुम अतिक्लेशितहो, सो अपने दुःखका कारण कहो? अथवा बलियोंके बली काल सहित देवताओंका पूजनीय सौभाग्य अब हरा गयाहै क्या यह अप्रसन्नताहै? ॥ २६ ॥ पृथ्वी बोली-हे धर्म! आप तो सब जानो हो तो भी तुम मुझसे बूझोहो, अच्छा मैं ही कहतीहूं, लोकके सुखदाता चारपादसे आप वर्तते हैं ॥२७॥ यथार्थ बोलना १ शुद्ध रहना २ पराया दुःख सहना ३ क्रोध आवै उस समय मनको रोकना ४ धन मांगै उसको सदा धन देना ५ सदा मग्न रहना ६ कि-सीसे टेढा न होना ७ मनको निश्चल रखना ८ बाह्य इंद्रियोंका निश्चल करना ९ अपने धर्मका त्याग न करना १० शत्रु मित्रका दुर्भाव न रखना ११ औरके अपराध सहना १२ लाभ प्राप्तिमें उदासीन रहना १३ सत्शास्त्रका विचार करते रहना १४ ॥२८॥ परमेश्वरहै यह ज्ञान मानना १५ तृष्णाका त्याग करना १६ हमारा नियन्ता है यह मानना १७ संग्राममें उत्साह करना १८ प्रभाव रखना १९ चतुराई रखना २० जो काम करना हो उसका स्मरण रखना २१ पराधीन न रहना २२ सब क्रिया कर्ममें निपुण रहना २३ सदा शोभायमान रहना २४ कभी व्याकुल न होना २५ कठोर चित्त न रखना २६ ॥ २९ ॥ बुद्धिको प्रकाशित रखना २७ विजई रहना २८ सुन्दर स्वभाव रखना २९ सहनशक्ति रखना ३० पराक्रम रखना ३१ देहमें बल रखना ३२ सब भोग भोगना ३३ गम्भीर चित्त रहना ३४

चञ्चल न रहना ३५ सबमें श्रद्धा रखना ३६ जिसमें यश होय सो काम करना ३७ पूजा होय सो कर्म करना ३८ अभिमान न करना ३९ ॥ ३० ॥ हे भगवन्! यह उन्तालीस गुण भगवान्में हैं और भी महागुण हैं, महत्वकी इच्छावालोंको यह करना योग्य है हरिमेंसे यह गुण कभी नहीं जाते ॥ ३१ ॥ सब गुणपात्र श्रीनिवास सदा हितकारी अब इस पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये शोच करूं हूं कि पापी कलियुगने सब लोग ग्रसलिये हैं यही शोच है ॥ ३२ ॥ मेरे तो वत्स न रहे, केवल आप एक पदसे रहे हैं, देवश्रेष्ठको, देवताओंको, पित्रोंको, ऋषियोंको, साधुवोंको, सब ब्राह्मण आदि वर्णोंको, सब आश्रमोंको, मैं शोचती हूं ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीका कटाक्ष हमपर होय यह कामनाकर बहुत दिनतक भगवत्प्रपन्न ब्रह्मादिकने तप किया. सो लक्ष्मी अपने वासस्थान कमलको त्यागकर जिनके चरणारविन्दकी सुन्दरताको अपने हृदयमें ध्यान करती है ॥ ३४ ॥ भगवतके कमल, वज्र, अंकुश, ध्वजा, इत्यादि चिह्न अंकित श्रीमच्चरणकमलमें अलंकृत थी, और भगवत् विभूतिको प्राप्त होकर त्रिलोकीमें शोभायमान हुई, यह गर्व जब मुझको हुआ तो सब लोकसमेत मुझे त्यागदिया यह शोच है ॥ ३५ ॥ मेरे ऊपर अतिभारकारी असुरवंशी राजाओंकी सैंकडों अक्षौहिणी आपने अपने अधीन होकर मारडालीं, स्थित होनेमें असमर्थ आप धर्मको अपने पुरुषार्थसे स्थापनकर यादवोंमें शरीर धारणकर कार्य किया ॥ ३६ ॥ प्रेमका अवलोकन, मनोहर मुसकान, कोमल वचनोंसे सत्यभामादिकका मान धीरता मथनकरते हुए उनके शोभायमान चरणस्पर्शसे मुझे रोमांच हो आता था। ऐसे मनमोहनका विरह कौन सहन कर सक्ता है? ॥ ३७ ॥ धरणी और धर्ममें परस्पर यह वार्ता होरहीथी, उसी समय पूर्ववाहिना सरस्वती युक्त कुरुक्षेत्रमें परीक्षित नामक राजऋषि पहुँचे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कंधे धरिणीधर्मसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-सप्तदशम अध्यायमें, धर्मनृपतिसम्वाद।
जेहिप्रकार मेटो सकल, धरणीधर्मविषाद ॥ १ ॥

सूतजी बोले, कि हे शौनकऋषि! तहां राजापरीक्षितने देखा कि दण्ड हाथमें लिये शूद्र राजाओंकासा वेषकिये, एक पुरुष गाय बैलको माररहा है ॥ १ ॥ कमलनालकी समान श्वेतवर्ण भयभीत एक पदसे स्थित चलनेमें असमर्थ होनेके कारण कम्पायमान गोबर करते हुए दुःखित शूद्रसे ताडित बैलको देखा ॥ २ ॥ धर्मकी पूर्ण करनेवाली, दीन, शूद्रके चरणप्रहारसे तिरस्कृत, वत्सहीन कृशित, भोजनमें इच्छाहीन. नेत्रोंसे आंसू बहाती, गोरूपधारिणी पृथ्वी देखी ॥ ३ ॥ राजा परीक्षित सुवर्णखचित रथमें बैठे, धनुषबाण चढ़ाये मेघसमान गम्भीर वाणीसे बूझने लगे ॥ ४ ॥ अरे नीच! तू कौन है? सब पृथ्वीका राजा तो मैं हूं और मेरे सम्मुख अपने बलसे निर्बलोंको मारता है, प्रगटमें तैंने राजाका वेष धारण कर रक्खा है. परन्तु नटकी नाईं है, तेरा कर्म शूद्रोंकी समान है ॥ ५ ॥ तू कौन है? क्या

गांडीवधनुषधारी अर्जुनको तैंने दूर गया जाना है, और श्रीकृष्णचन्द्र महाराज त्रिलोकीनाथको तू भूलगया अरु उनको वैकुंठ गया समझा, क्या तैंने पृथ्वीको अभीसे वीरहीन समझ लिया, जो गायको और बैलको एकान्तमें सताता है. इस कारण तू महा अपराधी है अरु वधयोग्य है ॥ ६ ॥ तब राजाने बैलसे बूझा हे कमलनालसदृश धवलकाय ! तुम कौन हो ? अरु तीन पांवरहित क्यों हो ? एक चरणसे चलना चाहते हो बैलरूप धारण किये कोई देवता तो तुम नहीं हो जो मुझे भ्रम करात हो ? ॥ ७ ॥ कौरवोंके भुजदण्डोंसे रक्षित पृथ्वीपर तुम्हारे विना किसी प्राणीमात्रके दुःखसे आंसू नहीं निकलते हैं ॥ ८ ॥ हे सुरभिनंदन ! इस शूद्रसे अब हमको कुछ भय नहीं होगा, हे गोमाता ! तुम्हारा भी कल्याण होगा मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूं ॥ ९ ॥ जिस राजाके देशमें साधुप्रजा दुष्टोंसे दुःखित होती है. उस मदान्ध राजाके चार गुण, कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य, परलोक, नष्ट हो जाते हैं ॥ ॥ १० ॥ राजाओंका यही परम धर्म है कि आर्तोंकी पीडा दूर करनी इसलिये मैं इस दुष्टको जीता नहीं छोडूंगा ॥ ११ ॥ हे सुरभिनन्दन ! तुम्हारे तीन चरणोंको किसने तोडा तुम तो चार चरणवाले हो "तुम शीघ्र बताओ ? मैं अभी उसके हाथ काटूंगा, मैं श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक अर्जुनका पोताहूं, जो तुम्हारा दुःख दूर नहीं करूंगा तो पाण्डवोंके कुलको दोष लगैगा, मनुष्यकी तो क्या सामर्थ्य है जो देवताभी मेरे राज्यमें आन किसी दीनको सतावेगा, निःसन्देह मैं उसी समय उसका शिर काट डालूंगा" श्रीकृष्णके सेवक राजाओंके राज्यमें तुमसरीखा कोई न होय ॥ १२ ॥ हे वृष ! तुम्हारा कल्याण हो निरपराधी साधु सन्तोंको विरूप करना यह राजाओंकी कीर्तिको दूषण लगानेवाला है ॥ १३ ॥ निरपराधी पुरुषको अपराध लगानेवालेको सब ओरसे मेरा भय रहताहै, ब्राह्मण, बालक, गौ इनको जो दोष निरंकुश होकर लगावै वह देवताभी होय तो उसकी बाजू समेत भुजा काटडालूं ॥ १४ ॥ १५ ॥ परम धर्म राजाओंका यही है कि स्वधर्ममें जो स्थितहो उसका पालन करना और विना विपत्तिके समय पाखण्डियोंको शास्त्रके अनुसार शिक्षाकरना ॥ १६ ॥ धर्म बोला, कि पाण्डुवंशियोंको यही अभयदान वचन कहना युक्तहै जिनके गुणोंसे वशीभूत भगवान्ने दूतादिके कर्म स्वीकार कियेथे ॥ १७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! जहां क्लेशका बीज होताहै वह भी मैं नहीं जानता, जिनके वचनोंके मदसे जीव विमोहित होताहै ॥ १८ ॥ कोई विकल्पवादी आत्मामें आत्माको मानते हैं, कोई भाग्यको ईश्वर कहैहैं, कोई कर्मको, कोई स्वभावको प्रभु मानतेहैं ॥ १९ ॥ किसीने तर्क अनिर्देशनिश्चय कियाहै, जिस परमेश्वरकी इच्छासे सब जीव उत्पन्न होतेहैं वही परमात्माहै इसमें जो आपको जानपड़े सो अपनी बुद्धिसे विचारलो "मैं किसीका नाम नहीं बतासक्ता कि किसने मुझे सताया" ॥ ॥ २० ॥ हे द्विजसत्तम ! धर्मने जब ऐसे वचन कहे तब तो राजा परीक्षित चित्त सावधान करके बडा दुःखी हुआ " और मनमें विचारा कि यह वृषरूप धारण किये धर्म है. और गोरूपी धरिणीहै. और यह शूद्ररूपधारी कलियुग है. इसी दुष्टने धर्मके पांव तोड़कर धरिणीको दुःख दियाहै, और इस वसुन्धराके स्वामी परमेश्वर परमधामको चलेगये

इसीलिये यह आंखोंमें आंसू भरे चिन्ता कररहीहै धर्मात्माका नाम लेनेसे धर्म और पापीका नाम लेनेसे पाप होताहै इसी कारण वृषरूपी धर्मने कलियुगको पापी जानकर उसका नाम नहीं लिया, यह विचार परीक्षित बोला " ॥ २१ ॥ हे धर्मज्ञ! क्या तुम धर्महो? वृषरूप धारण किये बोलतेहो, जो कोई धर्मकी बात करताहै और जो उसकी सूचना करताहै उन दोनोंको इकसार पाप होताहै ॥ २२ ॥ अथवा देवताओंकी मायाको कोई नहीं जानसक्ता मन वचनसे जो जीवोंको निश्चय होय वही श्रेष्ठहै ॥ २३ ॥ धर्मके चार चरण, तप, सत्य, शौच, दयाहै, और अधर्मके अंशसे विस्मय, परस्त्रीप्रसंग, मद यह तीनहैं, इनके प्रवृत्त होनेसे तीन चरण टूटकर एक चरण शेष रहगयाहै ॥ २४ ॥ अब हे धर्म! सत्य एकचरण तुम्हारा रहगया है उसकोभी यह कलियुग तोडना चाहताहै, क्योंकि झूंठ बोलनेसे यह कलियुग बढताहै ॥ २५ ॥ भगवानने सब भार जिसका दूर किया ऐसी सती वसुन्धरा श्रीमान्पदोंके स्पर्शसे सब ओरसे मंगलरूप होरहीथी ॥ २६ ॥ सो आज कृष्ण महाराजके विरहसे व्याकुलहो आंखोंसे आंसूवहारही है, साध्वी जैसे दुर्भागिनीहो शोक करैहै ब्राह्मण निन्दक राजा रूपधारी शूद्र मेरे ऊपर राज्य करे यह कठिन दुःखहै ॥ २७ ॥ महारथी राजाने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको शान्त कर, तीक्ष्णखड्ग अधर्मी कलियुगके वधके निमित्त उठाया ॥ २८ ॥ जब कलियुगने देखा कि यह बलवान् राजा इससमय क्रोधमें भररहाहै और मुझको मारनेके लिये उपस्थितहै, और मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं जो इससे युद्धकरूं, यह विचार कर नृपके सब चिह्न त्याग भयभीतहो राजाके चरणोंमें गिरपडा और अपने प्राण बचानेके लिये राजाकी विनती करनेलगा ॥ २९ ॥ राजा उस शूद्रको अपने पैरोंमें पडा देख दीनवत्सल कृपालु हँसकर बोले, कि शरणागतको नामी नरेश नहीं मारते ॥ ३० ॥ राजा बोले—कि अर्जुन सरीखे यशस्वियोंके हाथजोड, जो शरण आयाहै उसको किसी प्रकारका भय नहीं है परन्तु तू अधर्मका रूपहै जहांतक हमारा राज्यहै तुझे रहना उचित नहीं शीघ्र यहांसे चलाजा ॥ ३१ ॥ नरदेह धारणकर जो तू रहैगा तो अधर्मका समूह बढैगा; लोभ, अनृत, चौर्य, मूर्खता, अहंकार, पाप, माया, क्लेश, दम्भ यह अधिक बढ़ैंगे ॥ ३२ ॥ हे अधर्मके मित्र! तू यहाँ मत रह, और जो सत्य, धर्म, व्रत, करे तो रह, यज्ञके विस्तारमें चतुर ज्ञानी लोग इस ब्रह्मावर्त बिठूरमें यज्ञेश्वरका यज्ञसे यजनकरे हैं ॥ ३३ ॥ इस यज्ञमें भगवान् वासुदेवका पूजन होताहै. यज्ञमूर्ति ईश्वर यज्ञ करनेवालोंको कल्याण करते हैं अमोघ सब कामना पूर्ण होती हैं. जैसे स्थावर जंगमोंके बाहर भीतर वायु रहैहै तैसे ईश्वर रहैहै ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले कि हे ऋषियो! जब राजापरीक्षितने यह वचनकहे तब तो कलियुग थरथर काँपने लगा. खड्ग हाथमें लिये यमराजकी नाईं राजापरीक्षितको देखकर बोला ॥ ३५ ॥ हे महाराज! तुम्हारी आज्ञासे जहां कहीं रहूंगा तो वहांभी आप धनुष बाण लिये मेरे पीछे फिरोगे; इसकारण मैं यहां नहीं रहूंगा ॥ ३६ ॥ हे धर्मपाल! ब्रह्माने चार युग रचे, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग. उनकी अवस्थाका प्रमाण इस प्रकार कियाहै सो सतयुग १७२८००० सत्तरह लाख अट्ठाईस सहस्र वर्ष राज्य भोगकर चलदिया,

फिर त्रेता आया उसनेभी १२९६००० बारहलाख, छियानवे सहस्र वर्ष राज्य किया, फिर द्वापरका प्रवेश हुआ, उसनेभी आनन्दसहित ८६४००० आठलक्ष चौंसठ सहस्र वर्ष राज्य करलिया, अब सब अपना अपना राज्य भोगचुके, अब मेरे राज्य करनेका समय आया, और ४३२००० चारलाख वत्तीस सहस्र वर्षकी मेरी अवस्थाहै, सो मुझको भोगनी पड़ेगी और मुझे आप आज्ञा देतेहैं कि, तू हमारे राज्यसे निकलजा सो सातद्वीप नौखण्डमें तो आपका राज्यहै फिर मैं कहां जाकर बसूं ? और जो विधाताका लेख है वह किसी प्रकार मिट नहीं सक्ता, फिर मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? हे दीनदयालु ! आप मेरे अवगुणोंका विचार तो करते हैं परन्तु मेरे गुणोंका ओर ध्यान नहीं करते सो मुझमें एक गुण अत्यन्त उत्तमहै वह आपसे निवेदन करताहूं सतयुगमें जिस राजाके राज्यमें एक मनुष्य अपराध करताथा तो समस्त राज्यभरके मनुष्य दण्ड पातेथे, त्रेतामें एक मनुष्यके पाप करनेसे सब ग्रामका ग्राम दण्डका भागी होताथा और द्वापरमें जो कोई कुकर्म करताथा तो उसके सब कुटुम्बको शासना दीजातीथी और कलियुगमें जो पुरुष अन्याय करताहै वही अपने शरीरसे भोगताहै दूसरेसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं, और युगोंमें मनुष्योंको मानस पाप लगताथा और उसका दण्ड भोगना पडताथा, सो मेरे राज्यमें मानस पाप नहीं लगता, वरन् मानस पुण्यका फल मिलताहै. जब इस वातपर राजा परीक्षित् संतुष्ट न हुए और उनके मनमें दया नहीं आई तो फिर कलियुगने कहा हे दीनानाथ ! मुझमें एक गुण और बडा लाभदायक है सतयुगमें जो कोई वैकुण्ठके जानेके लिये दशसहस्र वर्ष जप तप संयम करताथा तब उसकी मनोकामना सफल होतीथी, त्रेतामें जब मनुष्य बहुत साधन लगाकर सहस्र वर्षतक अश्वमेध यज्ञ करतेथे तब उनका मनोरथ सिद्ध होताथा, द्वापरमें सौवर्षतक दान, व्रत, पूजा, ध्यान भगवान् वासुदेवका करनेसे इच्छा पूर्ण होतीथी. और मेरे "राज्यमें जो मनुष्य एक पल मात्र भी एकाग्रचित्तकरके सच्चे मनसे परमेश्वरका भजनकरे, वा सच्चे मनसे हृदयमें ध्यान करे, और उनकी कथा वार्ता सुने वह अपने सर्वत्र कार्यको साध अनेक जन्मके पापोंसे छूट मोक्षका भागी होताहै जब कलियुगमें यह पूरा गुण सुना, तब तो राजा परीक्षित कलियुगपर बहुत प्रसन्नहुए; तौ कलियुग हाथ जोडकर बोला, कि हे पृथ्वीनाथ ! हे दयानिधि ! हे दीनदयालु! जो आप मुझपर प्रसन्न हो तौ कृपा करके मुझको प्राणदान दीजे. और जिस स्थानपर आपकी आज्ञा मेरे रहनेकी हो मैं वहां निश्चिन्त होकर रहूं, और सदा आपका आज्ञाकारी रहूंगा ॥ ३७ ॥ जब इस प्रकार कलियुगने प्रार्थना करी तब राजा कलियुगके लिये स्थान बताने लगे, जहाँ जुआ होताहो, जहां मदिरा बिकताहो, जहां वेश्या रहतीहो और जहां जीवहिंसा होतीहो, यह चार स्थान तुमको दिये तुम इन चारों स्थानोंमें वासकरो ॥ ३८ ॥ फिर विनती करके कलियुग बोला हे कृपासिन्धो ! मेरा कुटुम्ब बहुत है इन स्थानोंमें कैसे समायगा, तब राजाने कहा—सोनेमेंभी तुम रहो; इसी प्रकार, झूठ, मद, काम, रजोगुण, वैर यह पांच स्थान तुमको और दिये ॥ ३९ ॥ राजापरीक्षितके दिये हुए उन्हीं पांच स्थानोंपर अधर्मी कलिने अपना वास किया ॥ ४० ॥ जो पुरुष संसारमें अपनी वृद्धि चाहे

तो इन पांचोंके निकट न जाय, धर्मात्माराजा, लोकपति, गुरु, विशेष करके इनका सेवन नहीं करे ॥ ४१ ॥ धर्मरूपी वृषके तीन पद, तप शौच दया यह नष्ट होगये थे इनको अपने धर्मसे अच्छा किया, और पृथ्वीकोभी धैर्य देकर शान्तकिया, ॥ ४२ ॥ सो यह राजापरीक्षित राजाओंके योग्य आसनपर बैठे. जो राजसिंहासन राजा युधिष्ठिर और अर्जुन वनको जाते समय इनको देगयेथे ॥ ४३ ॥ अब वह राजऋषि कौरवोंकी शोभा बढानेवाले महाभागवत चक्रवर्ती, महायशस्वी, हस्तिनापुरमें हैं ॥ ४४ ॥ राजा अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षितका ऐसा प्रतापहै कि, वह समस्त पृथ्वीका पालन करतेहैं, तबहां तुम यज्ञ करते हो ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे कलिनिग्रहोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥
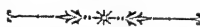
दोहा-अष्टादश अध्यायमें, कियो नृपति अतिपाप।
ताके बदलेमें दियो, शृंगी ऋषिने शाप ॥ १ ॥

जो राजा परीक्षित अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होकर माताके पेटमें नहीं मरे. यह अद्भुतकर्मवाले श्रीकृष्णजीकी ही कृपाथी ॥ १ ॥ ब्राह्मणने क्रोध करके यह शाप दिया कि तुमको तक्षक सांप काटेगा तोभी इस प्राणनाशक महाभयसे मोहित न हुए, और भगवान् वासुदेवके चरण कमलमें ही लवलीन रहे ॥ २ ॥ सबका संग त्याग वैराग ले, भगवत् तत्त्वज्ञान व्यासपुत्र श्रीशुकदेव मुनिके समीप श्रीगंगाजीके तटपर तनुत्याग किया ॥ ३ ॥ ऐसे श्रीमद्भागवतकी वार्त्ता सेवन करनेवाले, उनकी कथा अमृत पान करनेवालोंको श्रीकृष्ण-चन्द्रके चरण कमल स्मरण करनेवालोंको अन्तकालमेंभी संभ्रम नहीं होता है ॥ ४ ॥ कलियुग प्रविष्ट तो हुआ परन्तु सब स्थानोंमें अभीतक प्रवेश नहीं किया जबतक पृथ्वी-नरेश परीक्षित राज्य करते रहे ॥ ५ ॥ जिस दिनसे जिस समयसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्दने पृथ्वीको त्यागा, उसी दिनसे यहां अधर्मवर्द्धक कलियुगने सब पृथ्वीपर प्रवेश किया ॥ ६ ॥ राजा परीक्षितने कलियुगसे शत्रुता नहीं की भ्रमरवत् सारग्राही हुए, क्योंकि जिस कलियुगमें मानस पुण्य तो संकल्प मात्र करनेसे सिद्ध होताहै, और संकल्प करनेसे पाप नहीं होता. अरु जो कदाचित् करो भी तो उसका फल तत्काल नहीं होता ॥ ७ ॥ जो प्राणी धैर्यसे कार्य करनेवाले हैं उनका अधर्मी कलियुग क्या कर सक्ता है? मदान्ध मनुष्योंमें कलियुग शीघ्र प्रवेश करेहै, जैसे बालकोंमें भेडिया आता है और शूरमाओंके निकट नहीं आता ॥ ८ ॥ पुण्यरूप परीक्षितका आख्यान हमने आपके सामने वर्णन किया. भगवान् वासुदेवकी कथा वार्ता जिसमें होय ऐसा आख्यान-कोई और बूझो ॥ ९ ॥ कथनयोग्य श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म हैं उन भगवान् वासुदेवको जो जो कथा गुण कर्म आश्रित वह संसारमें सुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको सदा सेवने योग्यहैं ॥ १० ॥ सब ऋषि बोले कि हे सूत ! हे सौम्य ! सहस्र वर्षकी तुम्हारी आयुहो,

बहुत दिनोंतक संसारमें तुम्हारा यश रहै, जो तुम श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्र मनुष्योंको अमृतके तुल्य पान करातेहो ॥ ११ ॥ अविश्वासवाले इस कर्मरूपी धुयेंसे धुंधुरी आत्मा हमारी होगई, सो आप मनुष्योंको अमृतरूपी श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका मधुपान कराओ ॥ ॥ १२ ॥ भगवत्के भक्तोंके संग करनेवालोंको एक लव मात्रके सत्संगकी समता स्वर्ग नहीं कर सक्ता, न मुक्ति, फिर क्षुद्रविषय कहां करसक्ते हैं ॥ १३ ॥ महात्माओंके एकान्त ध्यान उनकी कथामें कौन रसवेत्ता तृप्त होताहै ? कोई नहीं. निर्गुणी ईश्वरके गुणोंका अन्त, योगेश्वर, शिव, ब्रह्मादिक नहीं जान सक्ते ॥ १४ ॥ हेविद्वज्जन ! हरिके उदार विशुद्ध चरित्र सुननेवाले लोगोंसे भगवत्प्रधान आप विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १५ ॥ महा-भागवत मोक्षके जाननेमें चतुर बुद्धिमान् राजा परीक्षित, व्यासपुत्र शुकाचार्यके कहे हुए ज्ञानसे गरुडध्वज श्रीहरिके चरणोंके समीपको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ अतिश्रेष्ठ, पुण्यदायक जिसमें सुगम अर्थ अति अद्भुत, योगागम्य, अनन्त चरित्र युक्त, परीक्षितकी जिसमें कथा हो, भागवतोंको आनन्ददायक बहुत बडा वह आख्यान हमसे कहो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! बडे आनन्दकी बात है कि विलोममें हमारा जन्महै तौ भी वृद्धोंकी सेवासे हमारा जन्म सफलहुआ, और महात्माओंका सत्संग कुलके जन्मकी जो मानसी पीडा है उसको शीघ्र नाश करताहै ॥ १८ ॥ महात्माओंका एकान्तमें चिन्तवन योग्य श्रीनारायणका नाम लेना सब पापोंसे छुडाता है, अनन्तशक्ति भगवान् अनंत महागुणवान् होनेसे अनंत कहाते हैं ॥ १९ ॥ बस इतनाही कहना पूर्ण है कि, गुणोंमें जिनकी समान कोई नहीं, लक्ष्मीकी जिनको इच्छा नहीं, ऐसे परमात्माके चरणोंकी रेणुओंको लक्ष्मी दिन रात सेवन करती है और ब्रह्मादिककी प्रार्थनाको भी त्याग देती है ॥ २० ॥ जिनके चरणनखका प्रक्षालन गंगाजी ब्रह्माजीसे धोयाहुआ जल सबको पवित्र करताहै ऐसे सर्व-सामर्थ्यवान् भगवान् वासुदेवसे अधिक और भगवत् पदार्थलोकमें कौनहै अर्थात् कोई नहीं है ॥ २१ ॥ जहाँ अनुरागी धीर देहादिकोंसे सबका संग त्यागकर परमहंसोंका आश्रम सबको पीछेकाहै उसको जातेहैं. जिसमें कोई हिंसा नहीं है उपशांति आदि आपना धर्म उसमें है ॥ २२ ॥ हे सूर्यसमान ! हे त्रयीमूर्ति ! आपने जो हमसे बूझाहै सो जितना मुझको ज्ञानहै उतना हम आपसे कहेंगे जैसे पक्षी लोग अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उडैहैं, उसीभांति विष्णु नारायणकी लीलाको अपनी बुद्धिके अनुसार विद्वान् लोग कहतेहैं ॥ २३ ॥ एक दिन राजा परीक्षित धनुष बाण लेकर वनमें आखेट खेलनेको गये, मृगोंके पीछे दौडनेसे भूँख प्यासके मारे अत्यन्त व्याकुल हो ॥ २४ ॥ जलाशय ढूंढते ढूंढते एक आश्रममें प्रवेश किया, वहां एक ऋषीश्वर शान्तस्वरूप नेत्र मूंदे बैठ देखे ॥ २५ ॥ प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियें, सब जीते, सबसे उपराम हुए, तीनों अवस्थासे तुरीया अवस्था को प्राप्त हुए, क्रियारहित, ब्रह्मभूत, ब्रह्मरूप हो रहेथे ॥ २६ ॥ जटा राख शरीरपर बिखर रही रुरुनामक मृगके चर्मके ऊपर बैठे. जिनको देहका कुछ अनुसंधान नहीं. उन शमीक मुनिसे भूख प्यासका मारा शुष्ककण्ठ राजा बोला ॥२७॥ " मैं पियासाहूं" जब

ऋषिने, तृण, भूमि, अर्घ्य, मीठे वचनोंसे राजाका सत्कार नहीं किया, तब राजाने अपने मनमें समझा कि इसको अपने तपका घमण्ड है. इसलिये इसने मेरी अवज्ञा करी, यह समझ राजाके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन्! ऐसा कभी नहीं हुआ जो राजाने भूँख प्याससे व्याकुल हो ब्राह्मणों पर क्रोध और मत्सरता की हो ''यह सब कलियुगका कौतुकहै क्योंकि राजाने कलियुगसे प्रतिज्ञा करलीथी कि हिंसामें तेरा वास होगा उस समय कलियुगने अहेरमें जीवहिंसा करनेसे राजाके चित्तमें अपना वास करके क्रोध उत्पन्न किया, तब राजाके मनमें अनीतिका अंकुर जमा तो उसने यह विचारा कि देखो! हम सात द्वीप नव खण्डके राजा होकर इस ऋषीश्वरके द्वारपर जल मांगने आये सो इस ब्राह्मणने हमको देखकर आंखैं बन्द करलीं, पानी तौ और वस्तु है परन्तु इसने हमारी ओरको देखातकभी नहीं इसे अवश्य कुछ दण्डदेना चाहिये जो आगेको फिर यह ऐसा काम न करै, फिर बुद्धिको सावधान कर समझा कि कुरुवंशी होकर कैसे ऋषिको दण्डदूं. फिर कलियुगने राजाको भौंदाया तौ राजाकी मति फिर वैसेही होगई और झट घोडेसे उतरा तौ उसने एक सर्प मरा हुआ देखा, और मनमें विचारा कि यह सर्प इसके कण्ठमें डालदूं तौ सांपके भयसे यह ब्राह्मण अपनी आंखैं खोलदेगा'' ॥ २९ ॥ यह विचारकर राजा परीक्षितने उस ब्रह्मऋषिके कण्ठमें मरा हुआ सर्प क्रोध करके धनुषके अग्रभागसे डालदिया और अपने नगरको चला आया ''अरु मार्गमें मनही मन यह कहता जाताथा'' ॥ ३० ॥ सब इन्द्रियोंको रोके नेत्र मूंदे झूठी समाधि लगाये इसने अपने मनमें यह समझा होगा कि क्षत्रिय लोग हमारा क्या करैंगे! ॥ ३१ ॥ उनका अतितेजस्वी बालक पुत्र बालकोंके संग खेलता था, वहां किसी लडकेने आकर कहा, हे बन्धो! आज तुम्हारे पिताके गलेमें राजापरीक्षित मरा हुआ सौंप डाल गये हैं. यह बात सुन शृंगीऋषि कहने लगा ॥ ३२ ॥ बडा अधर्म है, कि पालक, पुष्ट, दास, द्वारपालक, राजाओंको अपने स्वामीमें अपराध करना नहीं चाहिये, जैसे काक श्वान करते हैं ॥ ३३ ॥ क्षत्रियोंको ब्राह्मणोंने द्वारपालक किया है. सो द्वारवासी घरमें जाकर उसी पात्रमें कैसे भोजन करने योग्य हैं ॥ ३४ ॥ पाखण्डियोंके शिक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीसे चले गये, सो मैं धर्मके सेतु तोडनेवालोंको आज भली भांति शिक्षा करता हूं, तुम सब मेरा पुरुषार्थ देखो ॥ ३५ ॥ यह कह शृंगीऋषिने क्रोधसे लाल नेत्रकर अपने समान बालकोंके सन्मुख कौशिकी नदीका जल हाथमें लेकर राजाके ऊपर वाग्वज्र छोडा ॥ ३६ ॥ आजसे सातवेंदिन मर्यादानाशक कुलमें अंगाररूप मेरा भेजा तक्षकसर्प मेरे द्रोहीको काटे ॥ ३७ ॥ पीछे आश्रमपर आनकर अपने पिताके गलेमें सर्पपडा देख बहुत दुःखी हुआ और धाड मार मारकर रोने लगा ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन्! उस अंगिरागोत्री शमीकऋषिने पुत्रका विलापसुन, साधारणसे नेत्र खोलकर अपने कण्ठमें मरासांप देखा ॥ ३९ ॥ उसको निकाल पुत्रसे बोले, हे पुत्र! क्यों रोता है? किसने तेरा अनादर किया?यह बात पिताके मुखसे सुन उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया॥४०॥यह बात सुन शमीकऋषि घबराकर बोले. ''अरे बेटा! तैंने यह क्या किया ? जो राजा

परीक्षित शापके योग्य नहीं थे उनको तैंने विना समझे शाप दिया, अरे पुत्र ! यह अच्छा नहीं हुआ बड़े खेदकी बात है कि थोड़े अपराध करनेपर द्रोहसे ऐसा कठिन दण्ड दिया ॥ ४१ ॥ हे मूर्ख ! राजापरीक्षित मनुष्योंके समान नहीं हैं, उनका पराजय करना योग्य नहीं है. जिनके महातेजसे प्रजा रक्षित हो भयरहित सदा सुख भोगती है ॥ ॥ ४२ ॥ श्रीभगवतका स्वरूप राजा प्रजाकी रक्षा न करे तो यह लोक चोरोंके बढनेसे नष्ट होजाय. मेढ़ोंके समूहकी भाँति ॥ ४३ ॥ जब राजा नष्ट हो जायगा तो उनका धनभी लूट जायगा. इस पापसे हमारा सब वंश पाप भोगेगा, परस्पर मरेंगे, मारेंगे, शापदेंगे, बहुत चोर लुटेरे बढकर, पशु स्त्री इत्यादि अनेक पदार्थ हरे जायँगे ॥ ४४ ॥ तब सदाचार, धर्म, वेदोक्त वर्णाश्रम, आचार, सब मनुष्योंके लीन होय जायंगे, अर्थ, कामकी अभिलाषा करनेवाले, वानर, श्वान पशुओंकी नाईं सब वर्णसंकर होजायँगे ॥ ४५ ॥ हे पुत्र! धर्मकी रक्षा करनेवाला नरपति साक्षात् महायशस्वी, राजर्षि, अश्वमेधकारी, राजापरीक्षित है ॥ ४६ ॥ क्षुधा, तृषा, परिश्रमसहित, अपने स्थानपर आया और हमारे यहां आकर उलटा शापित हुआ, क्या वह शापके योग्य था ? " यह बात शमीक ऋषिने पुत्र श्रृंगीऋषिसे कही ॥ ४७ ॥ फिर परमात्माका ध्यान करके यह प्रार्थना की कि हे नाथ ! मेरे पापरहित अज्ञान बालक सेवकसे बडा अपराध हुआ. इस अज्ञान बालकका दोष क्षमा करो ॥ ४८ ॥ तिरस्कृत, वंचित, शापित, अवमानित, ताडित, भगवानके भक्त अपने अपराध करनेवालेको शाप नहीं देते ॥ ४९ ॥ पुत्रके अपराधसे महामुनि अत्यन्त दुःखी हुए. परन्तु राजाने जो अपराध किया उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया ॥ ५० ॥ बाहुल्य करके लोकमें परकार्यके साधक ब्राह्मणोंको दुःख सुख कुछ नहीं व्यापता. न उनको कोई व्यथा होय, न वह प्रसन्न होंय. क्योंकि वह गुणोंसे सर्वव्यापक ईश्वरके समान आप हो जाते हैं. "फिर शमीकऋषिने सोचा कि जो कुछहोनाथा सो हुआ परन्तु राजाको यह वृत्तान्त अवश्य कहला भेजना चाहिये; जिससे वह अपनी मोक्षका उपाय करले, यह बात सुनकर जगत्के लोगतो श्रृंगीऋषिको दूषण देहींगे परन्तु ऐसे धर्मात्मा राजाको यह बात अवश्य जतादेनी चाहिये" यह विचार शमीकमुनिने एक अपने शिष्यसे कहाः- तू राजापरीक्षितके पास जाकर हमारी ओरसे आशीर्वाद देकर यह कह, कि श्रृंगीने तुमको शापदिया है कि सांपके काटनेसे तुम्हारी अकालमृत्यु होगी, सो तुम सावधानहोकर अपनी मोक्षका यत्न करो. इतनीकथा कह सूतजीबोले, कि हे "ब्रह्मन् ! देखो जो राजापरीक्षित अश्वत्थामाके अस्त्रसे बचा जिसने धर्मकी और धरणीकी रक्षाकर कलिकालको अपने वशमें किया" वही राजापरीक्षित एक ब्राह्मणके बालकके शापसे सर्पके मुखमें गया और किसीसे उसकी रक्षा न हुई. ऐसा तेज और महा घोर क्रोध ब्राह्मणोंका है ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते प्रथम स्कन्धे विप्रशापवर्णननामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा—बरणोंकथाविशेषसब, यथाशापइतिहास।
राजकाजतजनृपतिज्यों, कीन्हगंगातटवास ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि हे शौनक मुनि! राजा परीक्षितने अपने आप जो निंदित कर्म किया उसका चिन्तवनकर अपने मनमें बहुत दुःखी होकर कहने लगे, कि मैंने बिना अपराध ब्राह्मणको सताया जिनका तेज छिपाहुआ निरपराधी ब्राह्मणपर महानीच कर्म अपनी मूर्खतासे मैंने किया ॥ १ ॥ निश्चयहै कि मैंने ईश्वरके भक्त महात्माकी अवज्ञा करीहै इसलिये थोडे दिनोंमें अत्यन्त दुःख शीघ्र इस पापके प्रायश्चित्तके लिये मुझकोहो, मेरी यह इच्छाहै. क्योंकि अपने आप फिर ऐसा पाप मैं न करूं ॥२॥ राज्य, सेना, ऋद्धि, कोष, अत्यन्त कुपित ब्राह्मणके कुलसे उठी आग क्षणमात्रमें सबको भस्म करदे. जो मुझ अमंगलीककी ऐसी पापी बुद्धि, ब्राह्मण, गो, देवतामें फिर कभी न होय ॥ ३ ॥ ऐसे चिंतवन करही रहेथे. उसी समय शमीकमुनिके भेजेहुए एक शिष्यने आकर कहा, कि हे राजन् शमीकमुनिके पुत्र शृंगीऋषिने आपको यह शाप दियाहै कि आजसे सातवें दिन तक्षक सांप राजाको डसैगा जिससे मृत्यु होजायगी, यह सुन राजाने तक्षकाग्निको बहुत उत्तम माना, क्योंकि विषयासक्तोंको यह विरक्तताका कारण है ॥ ४ ॥ राज्य और देह दोनों पहिलेही त्यागनेके योग्य हैं, और यह अधिकता है कि श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंकी सेवा करूंगा यह विचार श्रीगंगाजीके तट जानेकी इच्छा करी ॥ ५ ॥ तुलसी मिश्रित श्रीकृष्णके चरणोंकी रेणुसे अत्यन्त शोभित, अधिक पवित्र निर्मल जल बहानेवाली गंगाजी दोनों लोकोंको ईशसहित सबको पवित्र करै हैं, ऐसी गंगाको जिसकी मृत्यु निकट आईहो अवश्य सेवन करै. "परन्तु राजाके मनमें इस बातका बडा खेदथा कि इस अन्यायके बदले ऋषिने मुझको तुरन्त दंड नहीं दिया जो तुरन्त प्राण छूट जाते तो सात दिनतक इस पापी शरीरके रखनेका क्या अभिप्रायथा. अव मुझको उचित है कि सात दिन तो मेरे मरनेके हैं इस अन्यायी शरीरको यही दण्डहै कि अन्नपानी नदूं क्योंकि जिस देहसे परमेश्वरका भजन और भक्ति न हो वह देह किसी कामका नहीं, अब सब माया, मोह, स्त्री, पुत्र, धन, धाम; त्याग परमात्माके ध्यानमें लय होना चाहिये. इतनी अवस्था हमारी संसारके माया मोहमें वृथा नष्ट हुई और तौभी यह पापीमन विरक्त न हुआ, और जब मैं सातवें दिन मरजाऊंगा तब यह राज्य और धन धराही रहेगा. इसलिये मुझको उचित है कि मैं पहिलेंही इन सबका माया मोह त्यागदूं और श्रीगंगाजीके निकट जाऊं जो तीनोंलोकोंका निस्तारा करतीहै सातादिन वहीं बैठकर वैकुण्ठनाथका भजन करूं तो मोक्षहो. क्योंकि संसारमें जो जन्मलेगा वह अवश्य मरैगा ब्रह्मादिक देवताभी अमर नहीं रहते इस संसारमें जो कोई जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है और चौरासी लक्ष योनिमें भ्रमता फिरता है सो इस सात दिनमें अब कोई ऐसा उपाय करूं जिसमें आवागमनके फन्देसे मुक्ति पाऊं" यह बात विचार सर्व नगर निवासियोंको बुलाय जन्मेजय नामक अपने बड पुत्रको जिसकी चौदह वर्षकी अवस्थाथी राज्यसिंहासनका अधिकारी किया और सब,

राजकाजका भार मंत्री और प्रधानोंको सौंपकर जन्मेजयसे कहा-हे पुत्र ! गो, ब्राह्मण, साधु, संतकी रक्षा करना, और प्रजाको पुत्रकी समान पालना, किसीपर अन्याय न करना, यह कह राजाने अपना मन विरक्त कर भूषण वस्त्र तनुसे उतार रानियोंको समझाया कि, स्त्रियोंका धर्म यही है कि जिस बातमें उसके पतिकी प्रीति रहे वह काम करना चाहिये पतिके धर्ममें विघ्न नहीं डाले. परमेश्वर जन्मेजयादि पुत्रोंको जीता रक्खें, तुमको सर्व प्रकारका सुख है. इस भांति सबको धैर्य दिया. हे शौनकमुनि ! सो पाण्डुनन्दन यह निश्चय कर अनशनव्रत ले गंगातीर जाय सब भाव हरिमें कर मौनव्रतधार सब संग त्याग भगवानके चरणोंका ध्यान करने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ सर्वत्र भुवनके पवित्रकर्ता महा अनुभव ज्ञानी शिष्यों सहित बहुतसे तीर्थयात्राके मिषसे आप सर्व तीर्थोंको पवित्र करने वाले ब्राह्मण मननशील मुनि आने लगे ॥ ८ ॥ अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मबाहु ॥ ९ ॥ मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, द्वैपायन, भगवत अवतार श्रीनारद ॥ १० ॥ और देवर्षि, ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ, राजर्षिवर्य, आरुणादिक नाना ऋषिवर्य आये ॥ ११ ॥ जब आनन्दपूर्वक सब बैठगये तब राजाने सबको प्रणाम किया. एकान्त चित्त कुशासनपर बैठे. हाथ जोडकर जो अपनी करनेकी इच्छाथी सो कही ॥ १२ ॥ फिर बोले, कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि शीलवान् महात्माओंने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, इसकारण मैं राजाओंमें धन्यहूं, क्योंकि ब्राह्मणोंके चरणामृतने राजाओंका कुल दूरसे त्यागाहै और एक मुझसे यह निंदित कर्म होगया ॥ ॥ १३ ॥ घरमें बारंबार आसक्तचित्त मुझ पापीको ज्ञानदायक पर अवरोमें ईश्वरही ब्राह्मण शाप रूप होगये जिसमें मुझे शीघ्र भय होताहै ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरो ! मैं आपकी शरणागतहूं यह जानो कि परमेश्वरको और गंगाजीको चित्तमें धारण करलिया, विप्रके शापसे कपटी तक्षकके काटनेका मुझे भय नहीं; आप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकी कथा गाइये ॥ ॥ १५ ॥ जिस्से अनन्त भगवान्में मेरी प्रीति अधिक होय, और उनके आश्रयी महात्मा ब्राह्मणोंमें मेरी मैत्री होय और जहां जहां मेरा जन्म होय, तहां तहां सबको नमस्कार होय, और ब्राह्मणोंकी शरणमें रहूं ॥ १६ ॥ राजा परीक्षित ऐसे निश्चयकर पूर्वके मूल कुशाके आसनपर महा धीर उत्तरकी ओरको मुखकर समुद्रकी स्त्री गंगाजीके दक्षिणकी ओर बैठे, और जन्मेजयको सब राज्यका भार पहिले ही सौंप गयेथे ॥ १७ ॥ जब वह नरदेव अन्न जल त्याग एकाग्रचित्त बैठे तब देवताओंके समूहके समूह स्वर्गमें प्रशंसा करकर दुन्दुभी बजाय बजाय बारंबार भूमिमें पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १८ ॥ जो महाऋषि आयेथे वह सब प्रशंसा और बड़ाई करने लगे जिनका प्रजाके अनुग्रहके अर्थ शील सार है वह मुनि उत्तमश्लोकके सुन्दर गुण वर्णन करनेलगे ॥ १९ ॥ हे राजर्षिवर्य ! श्रीकृष्णके अनुवर्ती आपमें यह कुछ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि भगवतके समीपकी चाहनेवाले राजाने किरीटोंसे सेवित राज्य त्याग दिया ॥ २० ॥ जबतक यह शरीरको

नहीं त्यागैंगे तबतक हम इनहींके निकट बैठे रहैंगे, क्योंकि यह भगवतोंमें प्रधान पवित्र विशोक वैकुण्ठको जायँगे ॥ २१ ॥ सब ऋषिगणोंका पक्षपात शून्य अमृतरूपी गम्भीर अर्थ सत्य वचन राजा परीक्षित सुनकर विष्णुके चरित्र सुननेकी इच्छासे सब ऋषीश्वरोंको प्रणाम करके यह बोला ॥ २२ ॥ त्रिलोकसे ऊपर सत्यलोकमें जैसे वेदमूर्ति धार कर बैठेहैं ऐसे ही सब आन कर मेरे निकट विराजमान हुएहो, पराये अनुग्रहके लिये परिश्रम करनेका आपका स्वभाव है, इस लोकमें जो कर्तव्य होय अथवा परलोकके लिये जो कुछ होय सो सब कृपाकरके वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ हे मुनिगणों ! आपपर विश्वास कर जो कुछ बूझने योग्यहै सो बूझताहूं कि इस समय क्या करना चाहिये ? सब प्रकारसे जिसकी मृत्यु आई होय उसकी शुद्ध कृत्य होनेका कृपापूर्वक सम्मतिकर कोई उपाय बताइये ॥ २४ ॥ यह सुन कोई बोले, कि यज्ञकरो, किसीने कहा योगकरो, कोई बोले तपकरो, किसीने कहा दान करो, यह विवाद होरहाथा, उसी समय व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजी अपनी इच्छासे विचरते विचरते इच्छारहित, आश्रमचिह्न रहित, यथालाभसं तुष्ट, स्त्री बालक पीछे कौतूहलसे लगे, अवधूत वेष किये, शुकदेवजी आये ॥ २५ ॥ षोडश वर्षकी अवस्था, चरण, हाथ, हृदय, बाहु, कन्धा, कपोल, शरीर, सुन्दर, विशाल नेत्र उठे हुए दोनों तुल्यकर्ण, सुन्दर, भौं, मुख शंखसमान, कण्ठ शोभायमान ॥ २६ ॥ मांससे छिपी हुई कण्ठसे नीचेकी दोनों हड्डी, चौडा ऊंचा वक्षस्थल, कुण्डके समान गोल गम्भीर नाभिस्थल तिरछी झुकी हुई रेखाओंसे मनोहर उदर दिगम्बर अर्थात् नग्न, फैले हुए केश लम्बे भुजदण्ड यह शोभा सुरोत्तम भगवानकी हो रही ॥ २७ ॥ सुन्दर श्याम शरीर, श्रीयुक्त अंग, मनोहर मुसकान गुप्ततेज ऐसे लक्षणोंसे पहिचानकर मुनि आसनोंसे उठखड़े हुए ॥ २८ ॥ राजापरीक्षितने अतिथि शुकदेवजीको देख दण्डवत् प्रणाम कर पूजनकिया, अज्ञानी स्त्री बालक सब चले गये. यह पूजित हो महासिंहासनपर बैठे ॥ २९ ॥ तहां महापूज्योंमें ब्रह्मऋषि, राजर्षि, देवर्षियोंके समूहमें भगवान् शुकदेवजी अत्यन्त शोभित हुए जैसे ग्रह नक्षत्र तारागणोंके समूहमें चन्द्रमा शोभा देता है ॥ ३० ॥ सब अर्थमें जिनकी बुद्धि अति शान्त बैठे ऐसे शुकदेव मुनिको भागवत नृप प्राप्त होकर मस्तकसे प्रणामकर सावधानीसे हाथ जोड़ नमस्कार कर कोमल वाणीसे बूझने लगे ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आज ब्राह्मणोंकी सेवा करके क्षत्रिय लोग सफलजन्म हुए अतिथिरूप आपने कृपाकरके मुझे दर्शन दिया ॥ ३२ ॥ जिन ब्राह्मणोंके स्मरणसे पुरुषोंके ग्रहादिक शीघ्र शुद्ध होजाते हैं, और दर्शन स्पर्शन पाद धोनेसे मिष्टान्न भोजन करानेसे तो अत्यन्तही शुद्ध और पवित्र होतेहैं, सब पाप ताप कांप जाते हैं ॥ ३३ ॥ हे महायोगिन् ! आपकी समीपतासे पुरुषोंके महापातक नष्ट हो जातेहैं, जैसे विष्णुकी समीपतासे गयादिक असुर नष्ट होगये ॥ ३४ ॥ यद्यपि ऐसे हैं तथापि श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्रपर प्रसन्न हुए जो आप रूप धारणकर फूफीके कुलवालोंकी प्रीतिके अर्थ उस गोत्रके कारण भाई बन्धुहोकर रहे ॥ ३५ ॥ अत्यन्त मृतक

संसिद्ध याचक, मनुष्योंको अप्रगटगतिवालोंका दर्शन होनां कठिनहै ॥ ३६ ॥ इस्से योगियोंके परम गुरु आपसे सिद्धिका उपाय पूछताहूं, इस संसारमें मरणधर्मी पुरुषको सर्वथा जो कर्तव्य होय सो कहो ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! मनुष्यसे जो श्रवण, जप स्मरण भजनके योग्य होय अथवा कुछ और प्रकारसे जो होय सो कहो ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! गृहस्थीके घरमें गोदोहन कालसे अधिक स्थिति होना आपका बहुत कठिन है ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक मुनि ! राजाने कोमल वाक्योंसे जब यह पूछा तो धर्मज्ञ शुकाचार्य कहनेलगे ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे मुरादाबादनिवासि शालिग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे परमहंससंहिता नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीमद्वेंकटेशो विजयतेतराम् ।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा ।

द्वितीयस्कन्ध २.

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालय बम्बई.

श्रीमदनसूयात्मजाय नमः ॥

शुकसागर ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

द्वितीय स्कन्ध ।

सोरठा–जय वृन्दावनचन्द, श्रीमुकुन्द गोविन्द हरि ।
नँदनंदन सुखकन्द, कृपा करहु जन जान निज ॥ १ ॥
अतिसुन्दर कमनीय, जो छबि श्यामाश्यामकी ।
बसहि सदा मम हीय, यह वर देहु गणेश मुहिं ॥ २ ॥
गुरुपदरज धर शीश, कहों द्वितीयस्कन्ध अब ।
सब मिलि देहु अशीश, शीघ्र भागवत पूर्ण हो ॥ ३ ॥

दोहा–कहत प्रथम अध्यायमें, नृपसों श्रीशुकदेव ।
आदि विराट स्वरूपको, वर्णत हैं सब भेव ॥ १ ॥

श्रीवासुदेवाय नमः “जैसे द्वितीय स्कन्धके प्रथमाध्यायमें श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितके प्रश्नकी प्रशंसा करके भगवतके विराट स्वरूपका वर्णन कियाहै. सो सब कथा वर्णन करैंगे” श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जगत् हितकारी, भक्तजनोंका सम्मत श्रवण योग्य

और अत्यन्त श्रेष्ठ है. यह अच्छा प्रश्न किया ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! आत्मतत्त्वको नहीं विचारते हैं, और घरमें जहां पांच हत्यां¹ नित्य होती हैं ऐसे मनुष्योंकी श्रवण योग्य बातें सहस्रों हैं हे राजन् ! रात्रिमें निद्रा और मैथुनमें आयुको नष्ट करते हैं, दिनमें धनके प्राप्त करने, व कुटुम्बके पालन पोषणकी चिन्तामें सब अवस्थाका क्षय करते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ अपनी आत्माकी अत्यन्त खोटी सेना, देह, पुत्र, स्त्री, इनके मोहमें आसक्त होकर इनका नाश देखते हैं. तथापि परमात्माकी ओर नहीं देखते ॥ ४ ॥ हे भारत ! ताते सबके अन्तर्यामी, सुन्दर भगवान् वासुदेव, कष्टहर्ता, ईश्वरकी कथा श्रवणकरने व कीर्तन करने योग्यहै, मोक्षकी इच्छा करनेवालोंको उन्हींका नाम स्मरण करना चाहिये ॥ ५ ॥ तत्त्वोंका विचार, सांख्य, अष्टांग योग, स्वधर्ममें अत्यन्त निष्ठा करनी, यही संसारमें जन्म लेनेका परमलाभ है कि अन्त समयमें नारायणमें स्मृति होय ॥ ६ ॥ प्रायः विधि निषेध रहित मुनिलोग श्रीकृष्णके गुण कथनमें और निर्गुण बृहत्त्वादिगुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्ममें रमण करतेहैं ॥ ७ ॥ श्रीभगवत्प्रोक्त यह भागवत नामक पुराण वेदके समान, ब्रह्मका सुन्दर ज्ञान करानेवाला है । सो द्वापरके आदिमें वेदव्यास पितासे हमने पढाथा ॥ ८ ॥ हे राजर्षे ! उत्तम यशस्वीकी लीलासे निर्गुण में हमारी अत्यन्त निष्ठाथी श्रीकृष्णके चरित्रोंने मन ग्रहण कर लिया इस कारण यह आख्यान पढा ॥ ९ ॥ महापुरुष श्रीविष्णुके गुणग्राहक आपहो. सो हम आपसे कहेंगे इसमें श्रद्धाकरनेवालोंको मुक्तिदायक माधव मुकुंदमें प्रीतियुक्त मति होती है ॥ १० ॥ हे नृप ! अत्यन्त वैराग्यवान् मुमुक्षु जनोंको और योगियोंको निर्भय श्रीकृष्णका नाम सदा कीर्तन करना; सबने यही निर्णय किया है ॥ ११ ॥ जो मदान्ध हैं उनको कुछ नहीं देख पडता, और बरषोंमें भी उनसे कुछ नहीं होता. और जो शुभ कार्यमें यत्न करै उसकी वह दो घडी भी श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥ खट्वांग नाम राजर्षि दो घडी अपनी आयु जान एक मुहूर्त में सबको त्यागकर अभयदायक परमेश्वरको प्राप्त हुए. जब राजाने इन्द्रकी सहायता कर दैत्योंको जीता तब देवता प्रसन्न होकर बोले, वर माँगो ! यह सुन राजाने कहा कि प्रथम मेरी अवस्थाका वृत्तान्त कहिये कि मैं कितने दिन और जीऊंगा ? तब देवताओंने कहा तुम दो घडी और जियोगे; यह सुन राजा खट्वांग शीघ्र विमानपर बैठ भूमिमें आ श्रीकृष्णकी शरणागति कर मुक्तहोगया ॥ १३ ॥ सो हे राजन् ! तुम तो सातदिन जियोगे, जो जो परलोक साधनकी क्रिया हैं सो सावधानीसे करो. ॥ १४ ॥ जब अंतमें काल आवे तब यह पुरुष मृत्युके भयसे रहित होकर असंग रूप शस्त्र से इस देह और इसके पीछे जो पुत्र कलत्रादिकसे सुखकी इच्छा है उसको काटै ॥ १५ ॥ घरसे निकलकर धीर पुरुष पुण्यतीर्थके जलमें तो स्नान करै, एकान्तमें विधिवत पवित्र आसन पर बैठे ॥ १६ ॥ शुद्ध अ उ म यह तीन अक्षर युक्त परब्रह्म स्वरूप ओंकारका मनमें अभ्यास करे मनको व श्वासको जीतै. ब्रह्मका जो बीज मंत्र प्रणव उसको कभी भूल

---

१ वह पांच हत्या १ ऊखल २ चक्की ३ चूल्हा ४ पनहडी ५ बुहारी इन स्थानोंमें सदा जीव मरते हैं.

नहीं ॥ १७ ॥ बुद्धि सारथीसे मन इन्द्रियोंको विषयोंसे जीतै, अनेक कर्मोंसे मनका खेंचकर भगवत्के रूपमें बुद्धिसे धारण करै ॥ १८ ॥ और एक मुहुर्तकोभी परमात्माके चरणकमलोंका ध्यान न भूले सब रूपका ऐसे चित्तसे ध्यान करे मनको सब विषयोंसे हटाय परमानंदके साक्षात्कार बिना कुछ भी स्मरण न करे ॥ १९ ॥ वही विष्णुका परमपद है जिससे मन प्रसन्न होय; जो मानसी पूजामें लवलीन हैं, उनको वैकुण्ठवास मिलताहै ॥ २० ॥ अपना मन रजोगुणसे प्रेरा हुआ तमोगुणसे विमूढ धारणा करके. रज तमके करे-हुए मलका नाशकरै ॥ २१ ॥ जिस धारणाके करते २ अपने कल्याणके करनेवाले आश्रयको, देखते हुए प्राणीको, उसी कल्याणसे भगवत्के रूपमें भक्तिरूप योगप्राप्ति शीघ्र होती है ॥ २२ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! जैसी सम्मत धारणा सुन्दर होती है, जिस धारणासे शीघ्र पुरुषका मन निर्मल होय सो कहो ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि अति-स्थूल विराटरूप हम कहते हैं सो तुम चित्त सावधान करके सुनो. आसन और श्वासको जीतो, संग सुसंगकरो, सब इन्द्रियोंको जीतो, स्थूल भगवतके रूपमें मनको और बुद्धिको लगाओ ॥ २४ ॥ जितने रूप हैं उनके मध्यमें विराट्देह यह है कि जहां भूत, भविष्यत, वर्तमान, सत्विश्व ईश्वरमें ही दीखता है ॥ २५ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, यह सप्त आवरण सहित इस ब्रह्मांड, अथवा शरीरमें जो विराट् पुरुष है सो भगवान इस धारणाके आश्रय है ॥ २६ ॥ अब विराट् रूपका वर्णन करते हैं सर्व व्यापक ईश्वरके पादमूलमें पाताल है, एँडीमें रसातल हैं; विश्व रचनेहारेकी एँडीके ऊपरकी गाठोंके भागमें महातल है; और तलातल बिराट् पुरुषकी जंघामें है ॥ २७ ॥ विश्वमूर्तिके दोनों जानुओंमें सुतल लोक है. दोनों ऊरूमें वितल अतल लोकहै महीतल जंघनमें है, नभस्थल नाभिमें है ॥ २८ ॥ ज्योतियोंका समूह जहां सूर्य चन्द्रमा रहते हैं वह स्वर्ग ईश्वरके हृदयमें है ! ग्रीवामें महर्लोक, वदनमें जनलोक, और आदिपुरुषके ललाटमें तपो-लोक है । और सहस्र शिर धारीके शिरमें सत्यलाक है ॥ २९ ॥ तेजोमय इन्द्रादिक बाहुमें, सब दिशा कर्णोंमें, शब्द, श्रोत्रमें अश्विनीकुमार नासिकामें, गन्ध घ्राण इन्द्रियमें, देदीप्यमान अग्नि मुखमें है ॥ ३० ॥ अन्तरिक्ष नेत्रगोलक हैं. चक्षु इन्द्रिय सूर्य है, विष्णुके दोनों पलक दिन रात हैं; भ्रुकुटियोंका चलना ब्रह्मपद है. जल इनका तालु है रस इनकी जीभ है ॥ ३१ ॥ अनन्तके वेद शिर हैं, यमराज डाढ, स्नेह दाँत. सब जनोंको उन्माद करानेवाली हँसी, अपार विस्तार स्वर्ग अर्थात् विश्वरचना उनका कटाक्ष है ॥ ३२ ॥ लज्जा ऊपरका होंठ, लोभ नीचेका होंठ, धर्म उनके स्तन, अधर्मका मार्ग पीठ है, प्रजापति शिश्न इन्द्रिय हैं, मित्रावरुण अंडकोश हैं कोखमें सातों समुद्र हैं. और सब पहाड उनके हाड हैं ॥ ३३ ॥ सब नदी इनकी नाड़ी, सब वृक्ष शरीरके रोम हैं; हे नृपेंद्र ! श्रीभगवान विश्वरूप हैं. अनन्तवीर्य हरिका श्वास पवन है, गति अवस्था है, गुण प्रवाह संसार भगवान्का कर्म है ॥ ३४ ॥ मेघघटा उनके शिरके बाल हैं, हे कुरुनन्दन ! व्यापक ईश्वरके वस्त्र संध्या हैं, प्रभात छाती है, सब विकारोंका कोष चन्द्रमा, भगवानका मन है ॥ ३५ ॥ विज्ञानशक्ति

महत्तत्त्व है, सर्वात्मा श्रीहरिके अंतःकरण शिवजी हैं, हाथी, घोडे, ऊंट, और खचर परमेश्वरके नख हैं, सब मृग पशु नितम्ब हैं ॥ ३६ ॥ भगवान्के विचित्र व्याकरण शब्दशास्त्र, सब पक्षी हैं, सब मनुष्योंके निवास मनु, भगवान्की बुद्धि है. गंधर्व, विद्याधर, चारणादिक यह षड्ज ऋषभादि सात स्वर हैं, उर्वश्यादि अप्सरा भगवान्की स्मृति है, और असुरोंकी सब सेना उनका पराक्रम है ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य ऊरु, और चरणके आश्रित श्यामवर्ण शूद्र उनके पद हैं, नाना प्रकारके जिनके नाम, सब प्रकारसे पूजनीय. देवगण सहित जिस्में अनेक द्रव्योंसे प्रयोग विस्तारयज्ञ जो होता है, वह यज्ञ भगवान्का वीर्य है ॥ ३८ ॥ ईश्वरके विग्रहकी यह अवयवोंकी स्थिति है, सो मैंने तुमसे कही. इस स्थूल शरीरमें मन अपनी बुद्धिसे मुमुक्षु जनोंकरके भले प्रकार धारण किया जाताहे. इससे परे और कुछ नहीं है ॥ ३९ ॥ सब बुद्धिकी वृत्तिसे अनुभव करके स्वप्नके समय एक आत्माको ही जो जन सब ओरसे देखते हैं, और मन लगाय सत्य स्वरूप आनन्दसागर ईश्वरको, और वस्तुओंमें आसक्तिरहित होकर भजन करै, क्योंकि आसक्त होनेसे संसार बन्धनमें स्थिति होतीहै, ईश्वर विद्याशक्तिके आश्रय है इस कारण बन्धनमें नहीं आता और जीव अविद्या शक्तिके आश्रय है, इस कारण संसारके बन्धनसे मुक्त नहीं होता ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे विराट्रूपवर्णनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-कहूं द्वितीय अध्यायमें, हरिको सूक्षम रूप।
पुनि कछु वरणों पुरुषकी, आकृति परम अनूप ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसे पहिले प्रलयके समय में इस धारणासे ईश्वर प्रसन्न हुए! ब्रह्माजी उनसे सृष्टिके रचनेकी स्मृतिको प्राप्त होकर महाप्रलयसे पहले जैसा यह विश्व था उसी प्रकारका फिर रचा. उनकी निश्चयकारी बुद्धि और अमोघ दृष्टि थी ! इस धारणासे विश्व रचनेकी सामर्थ्य होती है ॥ १ ॥ उपासना फल सेवी विरक्तको शुद्ध आत्मधारणामें अधिकार है। इसलिये वैराग्यके अर्थ सब कर्म फलकी निन्दा करते हैं। शब्द ब्रह्म जो वेदका मार्ग यह है, कि जिसमें कुछ प्रयोजन नहीं. ऐसे स्वर्गादिक नामसे साधककी बुद्धि ध्यान करैहै। सो उन २ लोकोंमें घूमता भी है. परन्तु अपने अभिप्रायको नहीं पहुँचता क्योंकि मायामय वासनामें यह सो रहा है। इस कारण अखण्डित सुख इसको नहीं मिलता ॥ २ ॥ इसलिये पाण्डित लोग नागमात्र भोगके योग्य पदार्थोंमें, जितनेमें देहका निर्वाह हो, उतनेहीमें आसक्त होकर यह निश्चय करनेवाली बुद्धि है। विना परिश्रम जब प्रयोजन सिद्ध होजाय तौ उनमें परिश्रम समझकर यत्न न करै ॥ ३ ॥ विना परिश्रम यह पदार्थ हैं, फिर इनके लिये ज्ञानी पुरुष परिश्रम नहीं करै। शयनके लिये जब पृथ्वी है, तो शय्याके कारण परिश्रम करना वृथा है. स्वतः सिद्ध तकियेके लिये भुजा है, फिर तकिया बनानेकी क्या आवश्यकता है ? जल पीनेको अंजली और भोजनको अन्न बहुत है फिर पात्रका

रखना वृथा है। दिगम्बर रहै, वल्कल पहिरे, वस्त्रसे कुछ प्रयोजन न रक्खै ॥ ४ ॥ मार्गमेंसे चीर लाकर उनकी कंथा बनावै, सबके भरण पोषण करनेवाले वृक्षोंसे फलादिक भिक्षा माँग पेट भरै, नदियोंसे जल पिये, वह कभी शुष्क नहीं होतीं पर्वतकी कन्दराओंमें वास करै, उनहीं में शरणागतोंकी रक्षा परमेश्वर करताहै। फिर क्यों विद्वान् महात्मा, धनमें अंधे भये अज्ञानियोंका सेवन करैं ॥ ५ ॥ ऐसे अपना चित्त जब अपने आपही सिद्ध होय, तब ईश्वरको अपना प्रियजान, भवनाथ अनंतके महाआनंदसे निश्चित स्वरूपको भजै॥ तब संसारके हेतुओंका नाश होता है ॥ ६ ॥ ऐसा कौनहै जो परमेश्वरके ध्यानकी चिन्ताको त्याग विषयोंका ध्यान करै ? पशु बुद्धिवाले तो विषयकाही सेवन करते हैं, अपने करेहुए कर्मोंके क्लेशोंका सहन करनेवाले जीव वैतरणी नदीमें पडते हैं, यह देख सदा परमात्माका स्मरण करै। उसे एक पलको न भूले ॥ ७ ॥ अब मानसी पूजाका वर्णन करते हैं। कोई अपने देहके भीतर हृदयके भीतर अवकाशमें जहां तर्जनी अंगुष्ठ फैलावै एक बिलस्त भरमें पुरुष बसतेहैं। चारभुजा, कमल, चक्र, शंख, गदा, धारे, प्रसन्न मुख ईश्वरकी धारणा करके स्मरण करते हैं ॥ ८ ॥ प्रसन्नमुख, पद्मदलवत् लोचन, कदंब प्रसूनकी समान पीतांबर धारण किये, सुवर्णके भुजबन्दोंमें शोभायमान महारत्न दमक रहे और महामणियोंके जडे हुये किरीट कुण्डल धारे हैं ॥ ९ ॥ प्रसन्न हृदय कमलके पत्ररूप स्थानपर, जिनके चरणकमल योगीश्वरोंसे स्थापन किये जातेहैं; महालक्ष्मी भृगुलता हृदयमें दीखै हैं, कौस्तुभ रत्न कण्ठमें धारण किये हैं, जिसकी कांति कभी मलिन नहीं होती ऐसी प्रसूनमाला ग्रीवामें शोभायमान है ॥ १० ॥ कौंधनी, अँगूठियें, कड़े कंकण, नूपुर, इत्यादिकोंसे भूषित हैं ॥ चिकनी, निर्मल, घूँघरवाली, श्यामअलकोंसे शोभित, मनहरण मुस्कानयुक्त ॥ ११ ॥ उदारलीलासे हास्य, नेत्रोंपर अत्यन्त शोभित भ्रुकुटीका चलाना, उससे बड़ा अनुग्रह सूचित होताहै. चितवन करके प्रगट होताहै उनका दर्शन करै, जब तक मन धारणा करके उनमें स्थित रहै ॥ १२ ॥ गदाधरके चरणोंसे लेकर हाँसीपर्यन्त एक २ अंगको बुद्धिसे अनुभव करै, जो जो स्थान विना यत्न प्रगट होजाय, उसको त्यागकर और और जंघा आदिको ध्यान करै तैसेही बुद्धि शुद्धि होती जायगी ॥ १३ ॥ पर अवर द्रष्टा विश्वेश्वरमें भक्तियोग जबतक न होय, तबतक स्थूल विराट् पुरुषका रूप आवश्यक कर्मके अनुष्ठानके उपरान्त नियमोंमें तत्परहो स्मरण करै, यह तो समीप मृत्युवालेका कर्तव्यहै ॥ १४ ॥ और अपने आप देह त्यागै उसका कर्तव्यहै। हे नरनाथ ! जो इस लोकके त्यागनेकी इच्छा करै वह स्थिर सुखद एक आसन बैठ शुभ कालमें पुण्यदेशमें मनको आसक्त न करै, प्राणको जीतै, मनसे योगाभ्यासही योगीको मोक्षदायक है ॥ १५ ॥ अपनी निर्मल बुद्धिसे बुद्ध्यादिकोंके द्रष्टा जीवमें मन लगावै। जीवात्माको शुद्ध चैतन्य ब्रह्ममें एक करके आनंदको प्राप्त होकर सब कृत्यसे विराम करै, उससे परे कोई कार्य कर्तव्य नहीं है॥ १६ ॥ जिस आत्मस्वरूपमें देवनका परम प्रभु, काल भी समर्थ नहीं हो सकेहै, वहां जगत्के ईश्वर देवताओंकी क्या सामर्थ्य है ? वहाँ

सत्त्वगुणकी चलै, न तमोगुणकी, न रजोगुण, न अहंकार, न महत्तत्त्व, न माया, इन सबकी कुछ सामर्थ्य नहीं, फिर जगत्की तौ क्या सामर्थ्य है ? ॥ १७ ॥ यह भा " नहीं नहीं " कहनेवाले उसको विष्णुका परमपद कहते हैं. आत्माको त्यागकर औरमें मित्रता नहीं करते; पूजनीय ईश्वरको क्षण २ में हृदयसे मिलते हैं ॥ १८ ॥ ईश्वरका चिंतवन करके इस प्रकार मुनि स्थित होकर सबसे उपराम करै, ब्रह्मज्ञानकी दृष्टिके बलसे विषयवासना त्यागकर, अपनी एँडीसे गुदाको बन्दकर, सब परिश्रम जीत, नाभि, आदि छः स्थानोंमें पवनको प्राप्त करै ॥ १९ ॥ वह पवन जो नाभिके मणिपूरक चक्रमें स्थित है उसको, हृदयमें अनाहत चक्रमें रोककर, उदानगतिसे कण्ठके विशुद्धि चक्रमें उस पवनको प्राप्त करै वह मुनि है. पीछे बुद्धिसे अनुसंधानकर चित्तको जीतनेवाला अपने तालुके मूलमें धीरेसे उस वायुको प्राप्त कर ॥ २० ॥ दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नाक, एक मुख, इन सातोंको रोककर किसी वस्तुकी चाहना न करै, वो मुनि वहांसे उस भ्रुकुटी भीतर आज्ञाचक्र है उसमें प्राप्तकरै, एक घड़ी स्थित होकर, शुद्ध दृष्टिकर, परब्रह्मको प्राप्तहो, ब्रह्मरंध्रको भेदकर देह इन्द्रियें सबको त्याग करै ॥ २१ ॥ यह पूर्वोक्त सद्योमुक्ति कही, अब क्रममुक्ति कहते हैं ॥ हे नृपेन्द्र ! जो ब्रह्माके स्थानमें होकर जाता है, जहां गगनचारी सिद्धोंका विहारस्थान है, और अणिमादिक अष्ट सिद्धि मिलती हैं इस ब्रह्माण्डमें मन इन्द्रियोंके साथही चला जाता है, क्योंकि मृत्युके समय जो वासना प्राणीके हृदयमें रहता है कि सब लोकोंके भोग भोगता हुआ जाऊं, तो मन इन्द्रिय सहित जीव जाता है ॥ २२ ॥ पवनरूप जिनकी देह, उपासना, भगवद्धर्म, अष्टांगयोग समाधि, इनके करनेवाले योगीश्वरोंको त्रिलोकीके बाहर भीतर सब स्थानोंमें जानेकी गति होतीहै, जो ऐसे कहते हैं वह उस गतिको कर्मोंसे नहीं प्राप्त होतेहैं ॥ २३ ॥ हे भूपाल ! आकाशमें होकर, ब्रह्मलोकके मार्गमें ज्योतिर्मय सुषुम्णा नाड़ीसे अग्निअभिमानी देवताको प्राप्त होता है पीछे सब मलरहित हो, सो ऊपर वर्तमान हरि संबंधी ताराख्प शिशुमारचक्रको प्राप्त होता है, शिशुमारचक्रका वर्णन पंचमस्कन्धमें करेंगे ॥ २४ ॥ श्रीविष्णुभगवान्, और सूर्यादिकोंका आश्रयभूत विश्वकी नाभिरूप चक्रको उल्लंघन करते हैं। क्योंकि उससे परे फिर स्वर्गियोंकी गति नहीं है, इसकारण एकही निर्मल लिंग शरीर अणुरूप होकर औरोंसे नमस्कृत ब्रह्मवेत्ताओंके स्थान, महर्लोकको प्राप्त होताहै। महाकल्पकी आयुवाले पंडित भृगु आदिक जहां रमण करते हैं ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त कल्पांतमें श्रीशेषजीके मुखकी अग्निसे संसारको भस्म देखकर सिद्धेश्वरोंसे सेवित स्थान जो द्विपरार्द्धमें स्थित रहे है, उस ब्रह्मलोकको जाते हैं ॥ २६ ॥ उस ब्रह्मलोकमें शोक, वृद्धापन, मृत्यु, दुःख, भय, कहींसे कभी नहीं होता है. जो भगवत्के ध्यानको नहीं जानते हैं उनको भगवत्की कृपाविना, दुःखकारी चित्तको व्यथा उपजानेवाला जन्म मरण होता रहता है; परन्तु वहां शोकादिक कभी नहीं होताहै ॥ २७ ॥ जो ब्रह्मलोकमें जाते हैं उनकी गति तीन प्रकारकी है, जो बहुत पुण्य बहुत दान कर गये हैं, वह कल्पान्तरमें पुण्यकी

न्यूनाधिकतासे अधिकारी होतेहैं. जो हिरण्यगर्भादिककी उपासनाके बलसे गयेहैं वह ब्रह्माके संग मुक्ति पावेंगे. जो भगवत्के उपासक हैं, वह अपनी इच्छासे ब्रह्माण्डको भेदकर श्रीवैकुण्ठमें वैष्णवपदको जातेहैं ॥ २८ ॥ पीछे लिंगदेहसे पृथ्वीरूपको प्राप्त होकर, भय त्याग पृथ्वीरूप हो जलको प्राप्तहो, शीघ्रता न करके ज्योतिर्मयहो, वायुको प्राप्तहो, पवनरूप होकर बडे भारी ब्रह्मके स्वरूप आकाशको प्राप्त होताहै, भगवत् भक्तको ब्रह्माण्ड भेदनेका जो प्रकार है सो कहतेहैं ॥ ईश्वररचित प्रकृतिके किसी अंशसे महत्तत्त्व होताहै, उसके अंशसे अहंकार, और उसके अंशसे शब्द बनताहै, उसकी मात्राके द्वारा आकाश, आकाशके अंशसे स्पर्श, उसकी मात्राके द्वारा वायु, वायुके अंशसे रूप, तन्मात्राके द्वारा तेज तेजके अंशसे रस उसकी मात्रासे जल जलसे गंध और जलकी मात्रासे पृथ्वी होतीहै. यह सब मिलकर चतुर्दश भुवनात्मक विराट् शरीर ब्रह्माण्ड होताहै, उस ब्रह्माण्डका पंचशतकोटि योजन विस्तार है. पृथ्वी शब्द वाच्य विशेष अंड कटाह दशकोटि योजन विस्तारवाला है । कोई २ पंचाशत् कोटि योजन कहते हैं फिर वायु आदिकोंके अनगिन्त अंशहैं सो वह उत्तरोत्तर दश गुण अधिक हैं । आठ पृथ्वीके आवरण व्यापक हैं ॥ घ्राणसे गंध, रसनासे रस, दृष्टिसे रूप, त्वचासे श्वास, श्रोत्रसे आकाशके गुणको प्राप्त होकर योगी प्राणसे उन २ क्रियाओंको प्राप्तहोतेहैं ॥ २९ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है; तामस, राजस, सात्त्विक; तामससे जड़भूत सूक्ष्म उत्पन्न होतेहैं, राजससे बहिर्मुख दश इन्द्रियें सात्त्विकसे मन इन्द्रिय देवता, उनका लय उस अहंकारसे होताहै । सो योगी भूत सूक्ष्म इन्द्रियालय, मनोमय देवमय, अहंकारकी गतिसे प्राप्त होकर, गुणोंका जिसमें लय ऐसे महत्तत्त्वको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ हे नरेश ! आनन्दमय जीव उपाधियोंके अंतमें प्रधानरूपसे उस आत्माको प्राप्त होताहै, भगवत्की गतिको जो गयाहै सो फिर इस संसारमें आसक्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ हे राजेंद्र! यह दोनों मार्ग वेदने गाये हैं सनातन मार्ग आपने जाना है पहिले भगवान्की ब्रह्माने आराधना करी थी, तब भगवान् वासुदेवने यह गति ब्रह्माजीसे कहीथी ॥ ३२ ॥ जो जीव संसारमें फँस रहेहैं, उनको इससे अधिक और कल्याणदायक मार्ग नहीं है, जिससे कि, भगवान् वासुदेवमें भक्तियोग हो ॥ ३३ ॥ भगवान् चतुरानन निर्विकारी एकाग्र चित्त करके वेदको तीनबार बुद्धिसे विचारकर आत्मामें प्रीतिहोय जिस्से वही निश्चय करते हुए ॥ ३४ ॥ भगवान् सब जीवोंमें अपने आत्मा करके श्रीहरि दीखे हैं, बुद्धि आदि जो ईश्वरके देखनेके उपाय हैं और अनुमान करनेके जो लक्षण हैं उनसे दीखतेहैं ॥ ३५ ॥ हे नृपेन्द्र ! इसकारण सर्वात्मा हरि सर्वत्र सब कालमें श्रवण करनेके योग्यहैं । और वही मधुसूदन सब जीवोंके स्मरण करने योग्यहैं ॥ ३६ ॥ जो कोई भगवान् सर्वव्यापककी अथवा ब्राह्मणोंकी कथामृत को श्रवणोंसे भली प्रकार भर २ के पीतेहैं, वह विषयोंसे अतिदूषित अंतःकरणको पवित्र कर श्रीहरिके चरणकमलोंके समीप जाते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे सूक्ष्मरूपध्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-कहों तृतीय अध्यायमें, देवार्चनको हेत।
जौन जौनसे देवता, जेहि २ फलको देत ॥ १ ॥

जो बात आपने हमसे पूँछी सो हमने कही- आसन्नमृत्यु बुद्धिमान् मनुष्योंको यह श्री हरिकी कथा श्रवणादिक ही श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ परन्तु अनेक कामोंकी फलप्राप्तिके लिये अन्य अन्य देवताओंका भी भजन करना योग्य है, ब्रह्मतेज बढ़ानेकी इच्छावाले वेदपति ब्रह्मका पूजन करें, इन्द्रियोंकी पुष्टता चाहनेवाले इन्द्रकी पूजाकरें, सन्तानवृद्धि चाहनेवाला दक्षप्रजापतिकी पूजा करे ॥ २ ॥ लक्ष्मीकी इच्छावाला दुर्गादेवीकी पूजा करे, तेजकी अभिलाषावाला अग्निकी पूजा करे, धनकी कामनावाला श्रेष्ठ वस्तुका पूजन करे। जो वीर्य-वान् होनाचाहै वह धनदाता महादेवका पूजन करे ॥ ३ ॥ अन्नादिक भोगकी इच्छावाला अदितिकी सेवामें अनुरक्त हो, स्वर्गकी कामनावाला द्वादश आदित्योंकी पूजाकरे, राजकी कामनावाला विश्वेदेवोंका भजन करे, जो देश देशान्तरकी प्रजाको अपने अधीन करना चाहै वह साध्यनामक देवताओंका पूजन करै ॥ ४ ॥ आयुका प्रार्थी अश्विनीकुमारको और पुष्टिकी कामनावाला पृथ्वीको स्वच्छकर पूजन करे। जिसको अपनी प्रतिष्ठाकी वाञ्छा हो वह लोकप्राप्त द्यावापृथ्वीकी पूजा करै ॥ ५ ॥ रूपका चाहनेवाला गन्धर्वोंका, सुन्दर स्त्री चाहनेवाला उर्वशी अप्सराका, और सब देशके राज्यकी कामनावाला परमेष्ठी नामक ईश्वरका पूजन करै ॥ ६ ॥ यशकी इच्छावाला यज्ञपुरुषकी, और कोषकी इच्छावाला अन्वे-ता वरुणकी, विद्या चाहनेवाला महादेवजीकी, दंपतिमें प्रीत्यर्थ पार्वतीजीकी ॥ ७ ॥ धर्म का चाहनेवाला विष्णुकी, संतानकी वृद्धि चाहनेवाला अर्यमा नामक पितृकी, जो सदा बाधा विपत्तिसे अपनी रक्षा चाहे वह यक्षोंकी, बलकी कामनावाला मरुत्‌गणोंकी ॥ ८ ॥ जिसको राजगद्दीकी इच्छा होय वह मनु महाराजकी, और शत्रुका नाश चाहनेवाला नि-र्ऋति मृत्युकी, भोगकी इच्छा हो तौ चंद्रमाकी, किसी कामकी इच्छा न हो केवल वैराग्य-की चाहना हो वह परम पुरुष भगवानकी ॥ ९ ॥ जिसको किसी वस्तुकी चाहना न हो, अथवा सब वस्तुकी इच्छाके संग मोक्षकी भी कामना हो तौ उदार भक्ति और तीव्र बुद्धि से परमपुरुष विष्णुभगवानकी पूजा करे ॥ १० ॥ ईश्वरमें अचलभाव हो, ब्राह्मण भगवत् भक्तोंकी संगति करना यही सब कर्म करनेवालेको परमपुरुषार्थका लाभ है ॥ ११ ॥ सब ओरसे रागादिकका समूह जिस्से दूर होजावे, ऐसा ज्ञान जिस कथामें होता है तब आत्मा मन प्रसन्न होता है, जव सब विषयोंसे मन हटै है तब कैवल्यसम्मत मार्गमें भक्तियोग होता है, तब सब सुख होते हैं. और तब वह हरिकथामें प्रीति करते हैं ॥ १२ ॥ शौनक जी बोले-कि, भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ राजापरीक्षितने यह कथा सुनकर, फिर व्यासपुत्र, शब्द-ब्रह्मके ज्ञाता, परब्रह्मदर्शी शुकदेवजीसे क्या बूझा ? ॥ १३ ॥ हे विद्वज्जन ! सुननेकी इच्छावाले मुझसे आप कहनेके योग्यहो, संतोंकी सभामें श्रीभगवान्‌की कथाही फलहै, सो निश्चय करनेसे होता है ॥ १४ ॥ सो भागवत पाण्डुनन्दन महारथी परीक्षित बालक्रीडामें खेलनेके समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी क्रीड़ा किया करतेथे ॥ १५ ॥ और व्यासपुत्र

भगवान् वासुदेवमें परायण, कथनयोग्य श्रीवृन्दावनविहारीके उदार चरित्र संतोंकी सभामें सदा कहा करते हैं ॥ १६ ॥ सूर्यनारायण उदय अस्त होकर नित्य पुरुषकी आयुका हरण करते हैं । उत्तम यशस्वी परमेश्वरकी चिंतनाके विना जो क्षण व्यतीत होते हैं, वह आयु वृथा जाती है ॥ १७ ॥ वृक्ष क्या जीते नहीं हैं ? धौंकनी क्या श्वास नहीं लेतीहै ? और ग्रामके पशु क्या नहीं खातेहैं ? वा विष्टादिक नहीं करते हैं ? इनकी आयु व्यर्थही है ॥ ॥ १८ ॥ विष्टा खानेवाला श्वान, ऊँट, गधा यह जिसकी स्तुति करें वह व्यक्तिभी पशु है । जिसके श्रवणमें कभी भगवच्चरित्र न सुनाया गया हो वह पुरुष पशुतुल्य है ॥ १९ ॥ परमेश्वरके चरित्र जो मनुष्य कानसे न सुने वह कान साँपके बिल समानहैं । और हे सूत ! जिनकी जीभ से परमात्माका नाम नहीं निकलता, और भगवत्कथा नहीं होती वह खोटी जीभ मेंडककी जिह्वावत् है. और वृथा बकवाद करती है ॥ २० ॥ रेशमी वस्त्र-वेष्टित, शोभायमान किरीटयुक्त शिर, जो भक्तवत्सलको प्रणाम नहीं करता वह मस्तक केवल शरीरपर भार है । यदि हाथोंमें सुन्दर २ कंकणादि शोभितहों, वह भुजा हरिकी सेवा करैं नहीं तो वह भी काष्ठकी करछीके तुल्य हैं ॥ २१ ॥ जिन नेत्रोंने बाँकेबिहारीकी मनोहर झाँकी न निहारी, और महात्मापुरुषोंका न दर्शन किया वह आँखें मोरपंखकी सदृश हैं, और जिन पैरोंसे मधुसूदनके क्षेत्रोंमें न फिरा, और तीर्थयात्रा न करी वह पद वृक्षोंकी समान हैं ॥ २२ ॥ जिसके शरीरमें ब्राह्मणों और नारायणके चरणकी रजका न स्पर्श हुआ वह प्राणी जीताहुआ मृतकतुल्यहै । जिसने विष्णुभगवान् और शालिग्रामके ऊपर चढ़ी-हुई तुलसीपत्रकी सुगन्ध न ली वह श्वास लेता हुआ मृतक है ॥ २३ ॥ बड़े खेदका विषयहै कि, ग्रहण करने योग्य जो भगवत्के नाम हृदयसे नहीं लेते वह हृदय प्रस्तरकी नाईहै । जिन्हें हरियश श्रवण करनेसे हृदयमें विकार न हो और आंखोंमें जल न आवै. शरीरके रोम खडे न हों वह हृदय पाषाणनिर्मित समझो ॥ २४ ॥ जो अभक्त हैं उनका किया कर्म सब व्यर्थ है । हे अंग ! हमारे मनके अनुकूल तुम कहो, भक्तोंमें प्रधान व्यास-नन्दन आत्मविद्याके ज्ञातासे जो राजाने बूझा, और उन्होंने कहा सो आपभी कहिये॥२५॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते द्वितीय स्कन्धे ब्रह्मादिदेवपूजनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–अबकछुवर्णन सृष्टिको, वर्णतमतिअनुसार ।
रचना पालन लय करन, भगवत कौन प्रकार ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि, शुकाचार्यके आत्माके तत्त्व निश्चय करनेवाले वचन सुनकर भली-भांति राजेंद्र परीक्षितने कृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपना मन लगाया ॥ १ ॥ शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, भ्राता, बन्धु, राज्य, पशु और धन, इन सबकी ममता संपूर्ण त्यागदी ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ जनो ! जो तुमने मुझसे पूंछा, इसीको श्रीकृष्णके अनुभव सुननेमें श्रद्धावाले पुरुष बूझते हैं ॥ ३ ॥ अपनी मृत्यु निकट जान धर्म, अर्थ, काम, इनको सम्यक् प्रकार ईश्वरमें

समर्पणकर पतितपावन गोवर्द्धनधारी नारायणमें अपनी आत्माको लगाय ॥ ४ ॥ परीक्षित बोले कि, हे ब्रह्मन् ! हे पापरहित ! श्रीवासुदेव भगवान्‌की कथा कहनेवाले वचन बहुत सुन्दर हैं, जिस्से मेरा सब अंधकार दूर होगया ॥ ५ ॥ जिसकी चिंता ब्रह्मादिक करते हैं ऐसे इस विश्वको भवनाथ अपनी मायासे जिसप्रकार रचना करतेहैं वह मैं सुना चाहताहूँ ॥ ६ ॥ जैसे इस विश्वको रचकर पालन व फिर संहार करते हैं; जिस शक्तिका आश्रय लेकर परमपुरुष बहुत शक्ति धारण करतेहैं सो कहो ? ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! अद्भुतकर्म करनेवाले लोकनाथ हरिकी चेष्टा यथार्थ बडे २ कवियोंसेभी निश्चय नहीं करी गई है, ऐसा विदित होता है ॥ ८ ॥ जन्मधारणकर कर्मकर्ता एक ईश्वर एक कालमें अथवा क्रम २ से प्रकृतिके गुणोंको धारण करतेहैं ॥ ९ ॥ यह श्रवण करनेकी मेरी इच्छाहै सो आप कृपाकर कहिये ? क्योंकि आप परमेश्वर और शब्द परब्रह्मके भली प्रकार पारंगत हैं ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि, श्रीहरिके गुणानुवाद कहनेको नरनाथ परीक्षितने ऐसे प्रार्थनाकी, तब व्यासनंदन श्रीशुकदेवजीने श्रीवृन्दावनचन्द्रका स्मरणकर श्रीमद्भागवतके कहनेका प्रारम्भकिया ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजीबोले कि, हरिकी महिमाका प्रमाणनहीं, इस विश्वकी उत्पत्ति पालन संहार, इन चारित्रोंसे ब्रह्मादिक तीन शक्ति धारण करनेवाले घट २ वासी, किसीको जिनका मार्ग नहीं दीखे ऐसे परम पुरुष ईश्वरको मेरा नमस्कारहै ॥ १२ ॥ धर्मवर्ती संतोंके कष्टनाशक, अधर्मी असंतोंके विनाशक, सब जीवमात्रमें जिनकी मूर्ति परमहंस आश्रममें स्थित पुरुषोंको बार बार ढूँढनेकी योग्यता देनेवाले परमेश्वरको फिर नमस्कारहै ॥ १३ ॥ भक्तपालक, कुत्सित योगियोंसे दूर, अपने समान वा अधिकतासे रहित, ऐश्वर्यसे अपने स्वरूपमें रमण करनेहारे परब्रह्मको वारंवार नमस्कार है ॥ १४ ॥ जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, कथा श्रवण, पूजन, सब लोकोंके पापको शीघ्र नाश करता है। सुन्दर मंगलरूप यशस्वी परमात्माको नमस्कार है। सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वरको सब ओरसे नमस्कार मात्रही श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ विवेकी लोग जिनके चरणकी सेवासे आत्माका दोनों ओरसे संग त्याग परिश्रमरहित परब्रह्मकी गतिको प्राप्त होतेहैं ऐसे मंगलरूप यशस्वीके अर्थ नमस्कार है ॥ १६ ॥ तपस्वी महादानी, यशस्वी, मनस्वी, मंत्रवेत्ता, मंगलकारी, अपने २ करेहुवे जिन कर्मोंको परमेश्वरमें समर्प्पण किये विना क्षेमको प्राप्त नहीं होते हैं, ऐसे सुन्दर मंगलरूप यशस्वीको नमस्कार है ॥ १७ ॥ किरात, हूण, आंध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खशादिक और और पापी भी जिसके आश्रयसे शुद्ध होजाते हैं उस सर्व व्यापक शीलयुक्त ईश्वरके अर्थ नमस्कार है ॥ १८ ॥ आत्मज्ञानियोंके आत्मा सबके ईश्वर, वेदत्रयीमय, धर्ममय, तपोमय, निष्कपटी, ब्रह्मा, शंकर आदियोंसे अति आश्चर्यद्वारा जिनकी मूर्ति देखने योग्य है सो भगवान् मुझपर प्रसन्न होवें ॥ १९ ॥ श्रीभूलीलानायक, यज्ञपति, प्रजापती, बुद्धिपति, लोकपति, धरापति, अन्धक, वृष्णि सात्वतोंके पति, गति, संतोंके पति मुझपर प्रसन्न होवें ॥ २० ॥ जिनके दोनों चरणोंके निरन्तर ध्यानरूप समाधिसे धुई हुई बुद्धिसे सगुण, निर्गुण, उपासना करके

ईश्वरके तत्त्वका दर्शन करते, और पंडित लोग अपनी बुद्धिके अनुसार इस तत्त्वका वर्णन करते हैं, सो मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ २१ ॥ कल्पके आदिमें ब्रह्माके हृदयमें सृष्टिके रचनेवाली स्मृति विस्तार करनेवालेसे प्रेरित सरस्वती ब्रह्माके मुखसे प्रगट हुई, असाधारण लक्षण ऋषियोंके भी बडे श्रेष्ठ ईश्वर मुझपर प्रसन्न होवें ॥ २२ ॥ जो ईश्वर पंचभूतोंसे इन सबको निर्माणकर इनके भीतर बसतेहैं, वे षोडशकलाधारी समर्थ सोलह गुणोंके भोक्ता भगवान् मेरे वचनोंको अलंकृतकरैं ॥ २३ ॥ ब्रह्माके अन्तर्यामी ! भक्तजन जिनके मुखकमलके मादक ज्ञानमय रसको पीते हैं, उन ब्रह्माके अन्तर्यामी भगवान् वासुदेवके अर्थ नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे नृपल ! वेदगर्भ साक्षात् हरि व्यापक ईश्वरने जो ब्रह्माजीसे कहा, ब्रह्माने नारदजीसे कहा यह वही बात है जो तुमने प्रश्न किया ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते द्वितीय-स्कन्धे सृष्टयादिश्रीहरिचेष्टावर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-इस पंचमअध्यायमें, विराटलीलारूप।
विराटकी सब सृष्टिको, वरणों परम अनूप ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले कि, हे देवाधिदेव ! हे सर्वजीववत्सल ! हे पूर्वज ! आपके अर्थ नमस्कार है. आत्माके तत्त्वका निरन्तर दर्शन देनेवाला ज्ञान आप कहिये ॥ १ ॥ हे प्रभो ! जो रूप है, जिसके आश्रय यह सब हैं, और जिस्से यह सब रचागया है, जिसमें यह लीन और जिसके आधीन है, जो कुछ है वह तत्त्व सिद्धान्तसे आप कहो ? ॥ २ ॥ हे प्रभो ! तुम भूत भविष्यत् वर्तमान यह सब जानते हो, हाथमें जैसे निर्मल जलकी बूँद अथवा आमला होय ऐसे अत्यन्त ज्ञानकर निश्चिन्त हो, इस विश्वको तुम जान्ते हो ॥ ३ ॥ जो विशेष ज्ञान है जो आधार है जिसमें तुम परायण हो; जो स्वरूप है अपनी मायासे सब जीवोंको एक तुम रचो हो मुझको तो तुम ही ईश्वर जान पडते हो ॥ ४ ॥ उन सबको आपही पालन करते हो तुम्हारा तिरस्कार कोई नहीं करसकता जैसे श्रमरहित मकरी अपनी शक्तिका आश्रय लेकर घर रचती है तद्वत् तुम हो ॥ ५ ॥ हे विभो ! इस विश्वमें उत्तम अधम समान मनुष्यादि नामरूप द्विपदत्वादि गुण शुक्लादिसे साध्य सूक्ष्म स्थूल और तुमसे परे कोई नहीं है यह सब तुमसे ही होता है ॥ ६ ॥ सावधान अच्छी प्रकार होकर आपभी घोर तप करते हो इसलिये हमको चिन्ता व खेद उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ हे सर्वज्ञ ! हे सकलेश्वर ! मैं जो जिज्ञासा करता हूं सो आपसे शिक्षित जैसे मैं जान सकूं तैसे विशेषकर मुझसे तुम कहो ॥ ८ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र ! दयावंत तुम्हारा संदेह ठीकहै ॥ हे सौम्य ! भगवत्के वीर्यके प्रकाशमें जो तुमने मुझसे प्रेरणाकी ॥ ९ ॥ हे नारद ! जैसे आप मुझसे कहते हैं यह ऐसे ही है, तुम्हरा कहना मिथ्या नहीं है। मुझसे परे और कौन है ? यह ऐसेही है ॥ १० ॥ जिनके प्रकाशित प्रकाशसे विश्वको मैं प्रकाश करूहूं, जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारे, यह

ईश्वरकी सत्तासे सब प्रकाश करतेहैं. श्रुति "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमग्निस्तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली, अग्नि, ईश्वरके प्रकाशसे प्रकाशित हैं, उनके तेजसे यह सब प्रकाश करते हैं ॥ ११ ॥ तिन भगवान्को नमस्कार है । वासुदेवका ध्यान करते हैं जिनकी दुर्जय मायासे मुझको सब जीव जगद्गुरु कहते हैं ॥ १२ ॥ उस ईश्वरके सम्मुख खडे होनेसे जिसको लाज आवे ऐसी मायासे मोहित दुर्बुद्धिवाले हम सरीखे ब्रह्मादिक 'यह मेरा है' यह हम हैं ऐसी श्लाघा करते हैं ॥ १३ ॥ सबका उत्तर ब्रह्मदेव कहते हैं, कि द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव यह सिद्धान्तसे विचारे हैं तौ हे ब्रह्मन्! वासुदेवसे परे नहीं हैं. व्याकरणसे वासुदेव शब्दकी व्युत्पत्ति है कि, 'वसंति भूतान्यस्मिन्निति वासुः दीव्यतीतिदेवः वासुश्चासौ देवश्च वासुदेवः इति" ॥ १४ ॥ वेद नारायणको कहते हैं, सब देवता नारायणके अंशसे जन्मे हैं, श्रुति है कि "स आत्मा अंगान्यन्या देवतेति" सब लोक नारायणका वर्णन करते हैं, सब यज्ञ नारायणका वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥ योगशास्त्र नारायणका वर्णन करते हैं, तप नारायणको कहता है। ज्ञान नारायणको कहता है, सबकी गति नारायण ही हैं ॥ १६ ॥ जीवके द्रष्टा, ईश्वर, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापी, उनके रचे हुये पदार्थ मैं रचूहूं. उन्होंने मुझको रचाहै, उनके कटाक्षसे मैं प्रेरित हूं ॥ १७ ॥ आपके निर्गुण ईश्वरमें सत्व, रज, तम, यह तीन गुण उत्पत्ति, पालन, संहारमें मायासे ग्रहण करते हैं ॥ १८ ॥ कार्य कारण कर्ता अपनेमें द्रव्य ज्ञान क्रियाके आश्रयी गुण नित्य मायावी पुरुष को बाधित होते हैं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्! सो ये भगवान् तीन गुणोंसे सबके और मेरे ईश्वर हैं, उनके ब्राह्मणोंकोही उनकी गति देखनेमें आती है ॥ २० ॥ काल कर्म स्वभाव अपनी मायाके स्वामी आत्मामें इच्छासे प्राप्त विविध प्रकारसे होनेकी इच्छासे ग्रहण करते हैं ॥ २१ ॥ कालसे गुणोंका उलट पलट होताहै. स्वभावसे औरका और रूप होजाता है, पुरुष जिनके स्वामी ऐसे कर्मसे महत्तत्त्व होय है॥२२॥ रज सत्वसे बढे हुए महत्तत्त्वसे द्रव्य ज्ञान क्रियात्मक तम प्रधान होता है ॥२३॥ उसीको अहंकार कहते हैं, उसमें तीन प्रकारके विकार होते हैं। वैकारिक, तैजस,तामस यह तीन भेद होते हैं ॥ २४ ॥ हे प्रभो! द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति हुई, सब भूतोंकी आदि तामस जब विकारको प्राप्त हुआ तब आकाश हुआ ॥२५॥ उसकी मात्रा शब्द गुण है। जो द्रष्टा और दृश्य उनका जतानेवाला है। जब आकाश विकारको प्राप्त हुआ तब स्पर्श गुणवाला पवन हुआ ॥ २६ ॥ परमें बसनेवाला शब्दवान् ओज, सह, बल, प्राण यही होतेहैं. काल कर्मके स्वभावसे जब विकार वायु हुआ तब ॥२७॥ रूपकी सदृश, स्पर्श, शब्दकी सदृश तेज उत्पन्न हुआ तेज जब विकारी हुआ, तब रस आत्मा जल हुआ ॥२८॥ रूपकी सदृश, जल स्पर्शकी सदृश शब्दवत् हुआ, जल जब विकारको प्राप्त हुआ, तब जलसे पृथ्वी हुई ॥ २९ ॥ सबमें व्याप्त रस स्पर्श रूप गुण हुये, विकारी आत्मासे विकारी दश देव हुये ॥ ३० ॥ दिशा, पवन, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, ब्रह्मा यह दश हुये, तैजस अहंकार जब

विकारी हुआ तब दश इन्द्रियें हुईं ॥ ३१ ॥ ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, बुद्धि, प्राण, तैजस, अहंकारसे हुये। कान, त्वचा, नाक, नेत्र, जीभ, वाणी, भुजा, लिंग, गुदा, चरण यह हुये. दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनी–कुमार, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक, इनके स्वामी हैं। और अग्नि, इन्द्र, मित्र, उपेन्द्र, ब्रह्मा, यह वाणी, पद, लिंग, गुदा, इनके देवता हैं ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मवित्तम ! जब यह भूत, इन्द्रिय, भुजा, मन, गुण न मिले तब शरीर रचनेमें समर्थ न हुये ॥ ३३ ॥ तब भगवत्की शक्तिसे प्रेरित सब परस्पर मिलकर सत् असत्को ले समष्टि सब ब्रह्माण्ड व्यष्टि एक २ शरीर युक्त विश्व रचा ॥ ३४ ॥ जब असंख्यवर्ष होगये तब यह अंड जलमें पडारहा, फिर काल कर्म स्वभावमें स्थित होकर " जीवयतीति जीवः " सदा जीनेवाले परमात्मा अचेतन जीवको जिवाते हुए ॥ ३५ ॥ सो यह पुरुष सहस्र ऊरू, चरण, भुजा, नेत्र और सहस्रशिरवाले हुये ॥ ३६ ॥ जिसकी लेशमात्र चेष्टासे बुद्धिमान् लोकोंको कल्पना करते हैं, कमरसे नीचे सात लोक हैं और जघनसे सात ऊपर हैं ॥ ३७ ॥ परब्रह्म पुरुषका मुख ब्राह्मण, क्षत्रिय भुजा, ऊरु वैश्य, और पांवसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ३८ ॥ भूलोक पगमें, भुवर्लोक नाभिमें, स्वर्ग हृदयमें; और ऊरुमें महर्लोक है ॥ ३९ ॥ ग्रीवामें जनलोक, स्तनोंमें तपलोंक, मस्तकमें सत्यलोक है। ब्रह्मलोक वैकुण्ठ सनातन है, इस ब्रह्माण्डमें नहीं है ॥ ४० ॥ उनकी कमरमें अतल लोक, विभुके ऊरुमें वितललोक, जानुमें शुद्ध सुतल लोक, जंघामें तलातल लोक ॥ ४१ ॥ गुल्फोंमें महातल लोक, एँडियोंमें रसातल और पादके तले पाताल लोकहै ! ऐसी लोकमय पुरुष ईश्वर है ॥४२॥ पांवमें भूर्लोक, नाभिमें भुवर्लोक, और स्वर्ग लोक मस्तकमें है ॥ ऐसे भी, लोकोंकी कल्पना है ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे श्रीविराट्सृष्ट हरिलीला विराट्रूपवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा–इस षष्ठे अध्यायमें, कहौं विराट विभूति।
नरसूक्तार्थ बखानिहौं, सकल विश्व करतूति ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी बोले कि, अब विराट पुरुषकी विभूति वर्णन करते हैं। अस्मदादिकोंकी वाणीके स्वामी वह्नि उन ईश्वरका मुख उत्पत्तिस्थान है। इनमें चार बातें हैं। वाणीतो इन्द्रिय है वरुण देवता, मुख उत्पत्तिस्थान है, रसका स्वाद लेना यह उसका विषय है। यह बात सब स्थानोंमें जानलेना। ग्रन्थविस्तारके कारण अधिक नहीं लिखा है। गायत्री आदि सात छन्द जो हैं सो अपने लोगोंकी सप्त त्वचाहै, ! "देवानामन्नं हव्यं " जो देवताओंके निमित्त दियाजाय वह अन्न हव्य है "पितृणामन्नंकव्यम् " जो पितरोंके लिये दियाजाय वह अन्न कव्य है, अन्नकी सब रस और अमृतकी जिह्वा कारण है ॥१॥ हमारे सबके प्राण वायु उत्तम क्षेत्र उनकी नाक है जिसमें मोद प्रमोद जाननेवाली घ्राणेन्द्रिय है। अश्विनी–कुमार देवता है सब औषधी विषयहैं ॥ २ ॥ रूप और रूपप्रकाशक तेज इन परमेश्वरके चक्षु

इन्द्रिय स्थान है । स्वर्ग और सूर्य इनका स्थान परमेश्वरके नेत्र गोलक हैं। दिशा और तीर्थ इनका स्थान परमात्माके कर्ण अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियके अधिष्ठानहैं और आकाश और उसका सूक्ष्मरूप शब्द इन दोनोंका स्थान ईश्वरका श्रोत्र इन्द्रिय वस्तुके सारांश स्थान ईश्वरका स्पर्श गुणवाला वायु ईश्वरकी त्वचा है । सब यज्ञ सर्वत्रक्षोंसे होतेहैं । शिला लोह मेघ बिजुली हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ केश मूछ नखहैं । क्षेमकारी लोकपाल हरिकी बाहु हैं। क्षेमी ईश्वरका पग्द रखना भूर्भुवः स्वर्ग लोक हैं ॥ ६ ॥ सबका मन हरिके चरण स्थानमें है, ब्रह्म जिसका देवता ऐसे विश्वके मेघ शुक्र हैं ॥ ७ ॥ ईश्वरका शिश्न उपस्थ वह है जो संतानार्थ भोग करते हैं जिसमें आनन्द सुख और नहीं हैं ॥ ८ ॥ हे नारद ! मल त्यागकी पायु इन्द्रिय गुदा है तिसका अधर्म अज्ञान यह भगवानकी पीठ है उसका यम देवता है ॥ ९ ॥ सरोवर व नदी ईश्वरकी नाडियें हैं समस्त पर्वत ईश्वरके हाथहैं प्रधान रस समुद्र है जिसमें जीवोंका नाश है ॥ १० ॥ वह उसमहापुरुषका पेटहै हृदय मनका स्थान है, धर्मका मेरे तुम्हारे, सनकादिकको महादेव-जीका ॥ ११ ॥ शेष ज्ञानका और सतोगुणका जो परमेश्वरका चित्त है सो स्थान है। हम तुम शिव ये सब मुनि लोग जो तुमसे पहले जन्मे हैं ॥ १२ ॥ देवता, असुर, नर, नाग, पक्षी, मृग, सर्प, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, उरग ॥ १३ ॥ पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष और अनेक प्रकारके जितने जीव जल, थल और आकाशके ॥ १४ ॥ नवग्रह, अश्विनी आदि नक्षत्र, प्रलयके समय जो पूँछल तारे होते हैं वह और बिजली गर्जनशब्द भूत भविष्यत् वर्तमान और जो कुछ है यह सब पुरुष परमेश्वरस्वरूपही है "पूर्षु शेते इति पुरुषः" जो सब जीवमात्रके शरीर रूप पुरियोंमें बसे वह पुरुष ईश्वर है। "पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यमिति" ॥ १५ ॥ उन ईश्वरसे व्याप्य यह विश्व है कि, वितस्तिभरमें विराजते हैं। हृदयको मंगलको प्रकाश करते हैं। यह प्राण और यही प्रकाश से सूर्यकी तुल्य तपताहै "असौ प्राण आदित्य असावादित्यः प्राणः" इति श्रुतेः ॥ १६ ॥ ऐसे इस विराटरूपमें बाहर भीतर पुरुष तपते हैं "उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति" भयरहित मोक्षके ईश्वरने मरण धर्मक अन्नकर्म फलको प्रगट किया ॥ १७ ॥ "एतावानस्य महिमाऽतोज्यायांश्च पूरुषः" हे ब्रह्मन् ! ईश्वर पुरुषकी महिमा बडी कठिन है "पादोस्य विश्वाभूतानि" ईश्वरके पुरुषके पादमें सब जीवोंकी स्थिति है । ऐसा जानो ॥ १८ ॥ 'त्रिपादस्यामृतं दिवि" क्षेमदायक, अभयदायक अमृत, त्रिलोकीके शिरपर रक्खा. अथवा क्षेमी, अभयी, मरण जहाँ नहीं ऐसी त्रिपाद विभूति बाहर है, जो नैष्ठिक ब्रह्मचारि-योंके स्थान हैं आश्रम हैं ॥ १९ ॥ इस त्रिलोकीके भीतर गृहस्थी ब्रह्मचर्य नहीं करते है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंका घरमेंही सदा मोक्ष होताहै ॥ २० ॥ "ततो विष्वग् व्यक्रामत् साशनानशने अभि" "विविधं सुष्ठु अंचतीति विष्वक्" अनेक प्रकारसे सब ओरसे जिनकी पूजा होय वह ईश्वर शिक्षाशास्त्र और एक विना शिक्षाका शास्त्र जिसमें दोमार्ग प्रगट किया विद्या अविद्या रची. परन्तु ईश्वर दोनोंके आश्रित हैं, अविद्या बंधनका करनवाली है

और विद्या मुक्तिकी दाता है ॥ २१ ॥ "ततो विराडजायत" भूत इन्द्रियसे गुणात्मक विराट ब्रह्माण्ड हुआ. जिससे अनेक द्रव्य हुए. इस विश्वको सूर्यकी नाई ईश्वरने तपाया ॥ ॥ २२ ॥ "यत्पुरुषेण हविषा" । "नाभौभवंनाभ्यम्" जिस समय व्यापक ईश्वरकी नाभिके कमलसे मैं उत्पन्न हुआ, तब पुरुषके अवयवके विना यज्ञकी कुछ सामग्री न देखी ॥ ॥ २३ ॥ तिनके यज्ञके पशु, वनस्पति, कुशा और देवताओंके यजनयोग्य स्थान रचे, और जिसमें बहुत गुण ऐसा समय रचा ॥ २४ ॥ सब पात्रादि रचे. ओषधी, घृतादिक, मधुरादिक, सुवर्णादिक धातु, मृत्तिका, जल, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, चार ब्राह्मण. और जिसमें हवन करें वह कर्म रचा, हे सत्तम ! ॥ २५ ॥ ज्योतिष्टोमादिनाम "मंतारमनुसंधातारं त्रायंते" इति स्वाहाकारादिमंत्राः । सुवर्णादि दक्षिणा, एकादश्यादि सब व्रत, देवताओंके नाम सबके निमित्त बौधायनादि कर्मपद्धति संकल्प अनुष्ठानकी क्रियातंत्र ॥ २६ ॥ विष्णुक्रमादि गति देवताओंका ध्यानादि मति प्रायश्चित्त जो करना उनको भगवान्में समर्पण करना. पुरुषके अवयवोंसे मैंने सब सामग्री रची ॥ २७ ॥ "यज्ञेन यज्ञमयजंत देवाः" पुरुषके अवयवोंकी ऐसे सब सामग्रीसे पूजनीय परमात्माने पुरुषका यज्ञ किया ॥ २८ ॥ उनके पीछे प्रजापति नौ, यह तुम्हारे भ्राता सावधान होकर इन्द्रादि रूपसे अपने आपही पुरुषका पूजन करने लगे ॥ २९ ॥ उसके पीछे अपने समयमें सब मनुष्य सब ऋषि और सब पितर विबुध दैत्य मनुष्य यज्ञोंसे समर्थ जनार्दनका यज्ञ किये ॥ ३० ॥ यह सब विश्व भगवान् नारायणमें स्थित है इस सृष्टिके रचनेकी आदिमें बहुत मायाके गुण ग्रहण किये, आप सब गुणोंसे पृथक् रहे ॥ ३१ ॥ उसी परमात्माकी आज्ञासे संसारको मैं रचताहूं, और ईश्वरके वश होकर शिव संहार करैहैं. पुरुष विष्णुरूप होकर विश्वकी रक्षा करते हैं. "त्रिशक्तिर्माया तां धरतीति त्रिशक्तिधृक्" तीनशक्तिधारी मायाधारी ईश्वर है ॥ ३२ ॥ हे नारद ! जैसे हमसे तैंने बूझा उसी प्रकार मैंने कहा. भगवानके विना सत् असत् आत्मक इस विश्वमें कुछ भी नहीं है ॥ ३३ ॥ हे अंग ! हे नारद ! मेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती. और मनकी गति कभी मिथ्या नहीं होती. मेरी इन्द्रियें कभी खोटे मार्गमें नहीं जातीं. क्योंकि मैंने निश्चय करके अत्यन्त भक्तिसे हृदयमें हरिको धारण किया है ॥ ३४ ॥ सो हम वेदमय. तोयमय. प्रजापतियोंके पति सबसे वन्दित सुन्दरयोगमें स्थित होकर तप करते हैं. परन्तु मैं अपने सृजन करनेहारेको अबतक नहीं जानता ॥ ३५ ॥ शरणागतके रक्षक, संसारके नाशक, स्वस्तिदाता, मंगलदायक नारायणके चरणके हम आश्रित हैं जो भगवान् अपनी मायाका विस्तार आपभी नहीं जानते, जिस प्रकार आकाशका अंत आकाश नहीं जानसक्ता इसी प्रकार औरोंकी तो क्या सामर्थ्य है ? जैसे आकाशके पुष्पको न देखना कुछ सर्वज्ञताका नाश नहीं करता. श्रुतिश्च "योअस्याध्यक्षः परमेव्योमन्सो अंग वेद यदि वा न वेद" इति ॥ ३६ ॥ जिसकी गतिको न हम, न तुम सब, न शिव जानें, फिर देवताओंकी तो क्या सामर्थ्य है ? उनकी मायासे मोहित बुद्धिवाले सब इस मायाके रचे हुए विश्वको अपने ज्ञानके अनुसार वर्णन

करते हैं ॥ ३७ ॥ जिन ईश्वरके अवतारोंके कर्म (अस्मदादिक) अर्थात् हम सब गाते हैं परन्तु सिद्धान्तसे उनको नहीं जानते. उन त्रिलोकनाथके अर्थ वारंवार नमस्कार है ॥ ॥ ३८ ॥ जो अजन्मा पुरुष ईश्वर सबसे प्रथमहैं । वही कल्प २ में विश्वरचता कर्ता अधिकरण साधन कर्म सब रूप आपही हैं, वही संहार करताहै वही रक्षा करताहै ॥ ३९ ॥ "विशुद्धं" विषय आकार रहित है "केवलं" जलशायी है "ज्ञानं" ज्ञानस्वरूप है । "प्रत्यक्" सबका अन्तर्यामी है, "सम्यक्" संदेहादिरहित है । "अवस्थित" स्थिर है "सत्यं" सत्यरूप है । "पूर्णं" सबमें पूर्ण है । "अनाद्यंतं" आदि अंतरहित है । "निर्गुणं" मायाकृत गुण जिसमें नहीं हैं, "नित्यम्" सदा रहै है । "अद्वयम्" ईश्वरके विना और कोई नहीं है ॥ ४० ॥ प्रसन्न आत्मा मन इन्द्रियें अंतःकरण होते हैं । तब मुनिगण ईश्वरको जानते हैं । हे नारद ! जब खोटेलोग खोटीतर्क करतेहैं तब सब ईश्वरका ज्ञान नष्ट होकर आदिपुरुष अन्तर्धान हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ परब्रह्मका प्रथम अवतार पुरुष है । काल स्वभाव सत् असत् मन महाभूत अहंकार मन आदि इन्द्रियें विराट् स्वरूप स्थावर जंगम यह सब परमेश्वरके अवतार हैं ॥ ४२ ॥ हम महादेव यज्ञ प्रजेश्वर दक्षादिक तुम सब, स्वर्लोक पालक, खगलोकपालक, मनुष्यलोकपालक, तललोकपालक, सब ईश्वरकी विभूति हैं ॥ ४३ ॥ गन्धर्व, विद्याधर, चारण, ईश, यक्ष, राक्षस, उरग, सर्पोंके स्वामी जो ऋषियोंसे बडे हैं, पित्रीश्वर, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवेन्द्र ॥ ४४ ॥ और प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड, जलजन्तु मृग, पक्षियोंके ईश इस ब्रह्माण्डकटाहमें जो कुछ है सो स्वरूप सब परमेश्वरका है ॥ ॥ ४५ ॥ जो कुछ इस लोकमें है सो भगवान्‌के महापराक्रम बलकी नाईं क्षमावत् श्रीलज्जा संपदा और ईश्वरके समान जो है वह जो रूपवान् है जो विना रूपवान् हैं यह सब परमतत्त्व हैं ॥ ४६ ॥ प्रधानतासे जिन्हैं ऋषिलोग नमस्कार करतेहैं, वह लीलावतार पुरुष ब्रह्मके हैं. वह कानोंका मल दूरकरनेवाले हैं ॥ वह सुन्दर अब हम तुमसे कहैंगे ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे विराड्विभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-इस सप्तम अध्यायमें, जो हरि किये विहार ।
भिन्न भिन्न वर्णन करों, चौबीसों अवतार ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले ? कि, अब वाराह अवतार कहतेहैं । पृथ्वीतल उद्धारके कारण श्रीवाराहजी अनंत भगवान्‌ने वाराहरूप धारण किया । जब हिरण्याक्ष दैत्य महा समुद्रमें आया तब उसको मार धरतीको डाढ़पर रखलाये । जिसप्रकार पाकशासनने पर्वतोंका बिदार डाला था, इसी रीति भगवान् वाराहजीने हिरण्याक्षका उदर दाँतोंसे फाडडाला ॥ १ ॥ अब यज्ञावतार कहतेहैं । रुचि प्रजापतिकी आकूती नाम स्त्रीसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका सुयज्ञ नाम प्रसिद्ध हुआ. वह सुयज्ञ अपनी सुदक्षिणा नाम स्त्रीसे सुयमनामक देवताओंको उत्पन्न करता हुआ । उसीने इन्द्र होकर तीनों लोकोंकी महा पीडाका नाश किया जो पहिले सुयज्ञ

नामक था परन्तु मातामहने हरिनाम रक्खा. देवोंकी उत्पत्ति लोकत्रयकी पीडा हरना उनका कामहै यह सब अवतारमें और अवतारका कर्म सब स्थानोंमें जान लेना ॥ २ ॥ अब कपिल अवतार कहते हैं। हे नारद ! कर्दमजीके घर देवहूतीसे नौ भगिनी सहित कपिलदेवजीने अवतार लिया और अपनी माताको सांख्यशास्त्र-अर्थात् ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। जिस ब्रह्मविद्यासे जीवको मलीन करनेवाले संसारकीचको इसी जन्ममें धोकर महात्मा कपिलदेवजीकी माता गतिको प्राप्त हुई॥ ३॥अब दत्तात्रेय अवतारका वर्णन करतेहैं. जब अत्रिऋषिने पुत्रकी चाहना की तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर कहा "मैं स्वयंही तुम्हारे घर जन्म लूंगा" इसकारण दत्तात्रेय नामसे हृषीकेशने अवतार लिया, जिनके चरणपंकजकी रजसे निर्मल आत्मा यदु, हैहयादिक, ऐहिक, आमुष्मिक, भुक्ति मुक्तिरूप योगसिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ अब सनकादिक अवतारका वर्णन करतेहैं. पहिले अनेक लोक रचनेकी इच्छासे ब्रह्माने बहुत तप किया, तपके प्रभावसे परमेश्वरने सनकादिकका अवतार लिया। पहिले कल्पके प्रलयमें नष्ट आत्मतत्त्वको सुंदरतासे वर्णन किया। जिनके कहने मात्रसे मुनिलोगोंने अपने आपमें साक्षात् परमात्माको देखा ॥ ५ ॥ अब नरनारायण अवतारकी कथा कहते हैं। धर्मकी स्त्री दक्षसुता, मूर्तिनामसे प्रसिद्ध थी। उसमें अपने तपके प्रभावसे नर नारायण हुए। उनका तप भंग करनेको कामसेना नामक अप्सरा उनके पास गई परन्तु नर नारायणके निकट अपनी समान उर्वशी आदि स्त्रियोंको देख अपने रूपका अभिमान भूलगइ और ईश्वर नर-नारायणके व्रतभंग न करसकी ॥ ६ ॥ महासुकर्मकारी त्रिपुराराने, क्रोधदृष्टिसे कामदेवको भस्म किया. परन्तु देहके जलानेवाले क्रोधको भस्म न करसकेथे सो यह रोष नर नारायणको हृदयमें प्रवेश करनेसे बहुत डरा, फिर कुसुमायुध उनके हृदयमें कैसे प्रवेश करसके? ॥ ७ ॥ अब ध्रुव अवतार कहते हैं। उत्तानपाद नरनाथके गृहमें ध्रुवजीने जन्म लिया, एक समय ध्रुवने पिताके अंकमें बैठनेको मन किया तब निकट बैठी हुई सुरुचि विमाताके कहे कटुवाक्य बाणोंसे विद्ध होकर बालक ध्रुवजी तपके अर्थ काननमें चलेगये। और स्तुति करनेसे प्रसन्नहो हरिने ध्रुवको ध्रुवपद दिया. "दिविभवादिव्याः" स्वर्गवासी उत्तानपाद राजर्षिके समीप भृगुआदिक ऊपरसे, और नीचेसे सप्तर्षि जिनकी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ अब पृथु अवतार कहते हैं। एक समय राजा वेनके पाखण्ड अवलम्बनसे धर्म नष्ट होगया। तब ब्राह्मणके वाक्यरूप वज्रसे उसका पुरुषार्थ और सब ऐश्वर्य नष्ट होगया। और नरकमें गिरा, तब मुनियोंकी प्रार्थनासे भगवान्ने पृथु होकर रक्षा करी. जगत्में पुत्र नाम विख्यात किया। पुत्र शब्दकी व्युत्पत्ति यह है " पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा " महात्मा पृथुने पृथ्वीको दुहा और सब वस्तु निकाली ॥ ९ ॥ अब ऋषभ अवतारका वृत्तान्त सुनो, यह नाभिराजाके आग्नीध्र पुत्रसे सुमेरुदेवीपुत्र ऋषभ देवजी हुए। समानद्रष्टा जडकी नांई बन योगाभ्यास किया. जिनके परमहंसपदको ऋषियोंने नमस्कार किया. स्वस्थ इन्द्रियें जिनकी शांत सबका संग त्याग ऐसे ऋषभदेवजी हुए, जिनसे जैनमत प्रगट हुआ ॥ १० ॥ अब

हयग्रीव अवतारका वर्णन सुनो। मेरे यज्ञमें हयग्रीव अवतार भगवान् हुए। साक्षात् यज्ञ पुरुष, सुवर्णसदृश वर्ण, वेदमय, यज्ञमय, सर्व देवतामय, वेदरूप सुन्दरश्वासोंसे अर्थात् वेदरूप नामके श्वाससे हुए "लेत जासु नासाके श्वासा, चार वेद वर भये प्रकाशा। धर्मधरन जीवन आधारा, ऐसे श्रीवसुदेवकुमारा" ॥ ११ ॥ अब मत्स्यावतार कहते हैं। प्रलयकालके समयमें वैवस्वत मनुने पृथ्वीमय सबजीवोंका आश्रयरूप मत्स्यभगवान्को देखा, महाभयानक जलमें मेरे मुखसे गलित वेद मार्गोंको लाकर इससे प्रलयके जलमें विहार किया ॥ १२ ॥ अब कच्छपावतार कहतेहैं। सत्ययुगमें क्षीर समुद्रका अमृतके लिये देवता और दानवयूथ मथन करने लगे ॥ तब आदिदेव भगवानने कच्छरूप धारणकर मन्दराचलपर्वतको पीठपर धर ज्यों २ घुमातेथे त्यों २ कूर्म महाराजका खुजाहट जाता था और सुख प्राप्त होता था। जब निद्राके वशहो बहुतसे श्वास छोडे उस दिनसे आजतक समुद्रमें विलास करते हैं ॥ १३ ॥ अब नृसिंह अवतारका वर्णन सुनो। सुरगणोंको महाभयभीत देख "धर नरसिंह रूप अति घोरा। कुपित दृष्टि देखेउ चहुँ ओरा" महाभयंकर रूप टेढी २ भ्रुकुटि, महाकालकी समान भयानक डाढें, नेत्रलाल २ अग्निवत् प्रदीपमान, शीघ्र गदा लेकर निकट आये हिरण्यकशिपुके हृदयको महाकराल नखोंसे फाडडाला। अब हरि अवतारका वर्णन करते हैं—त्रिकूट पर्वतके सरोवरमें महाबलवान् ग्राहने गजेंद्रका पांव पकडकर जलमें खेंचा। तब यूथपति गजनाथ व्याकुल हो कमलफूल शुण्डमें ले यह कहने-लगा। हे आदिपुरुष ! हे दीनबन्धु ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे पुण्ययशश्रवण ! हे मंगलनामधेय ! रक्षा करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ श्रीहरि शरणागतवत्सल, गजेंद्रकी पुकार सुनकर महाबली चक्रायुध लिये गरुडपर बैठ तत्कालें आन चक्रसे मगरका मुख काट शुण्ड पकड कृपा करके गजका उद्धार किया ॥ १६ ॥ आपसे अब वामन अवतार कहतेहैं। गुणोंमें सबसे बडे, अदितिके द्वादश पुत्रोंमेंसे छोटे वामनजी हुए, जिन्होंने तीनों लोकोंको दोनों पगोंसे नाप लिया। यज्ञ भगवान्ने पृथ्वी वामनरूप धारणकर बलिसे तीन पदके मिससे लेली क्योंकि धर्ममार्गमें वर्तमान समर्थको ईश्वर मांगनेकी वृत्तिके विना चलायमान न करसके ॥ १७ ॥ हे नारदजी ! श्रीभगवानके चरणोंका धोवन गंगाजल बलिने शिरपर धारण किया, राज्यप्राप्तिके लिये नहीं, क्योंकि राजा बलिने जो प्रतिज्ञा की थी। उससे अधिक इच्छा न कर अपनी देह और शिरमें हरिका तीसरा चरण पूरा किया ॥ १८ ॥ हंस अवतार कहतेहैं। हे नारद ! हंस भगवानने अत्यन्त भक्तिभावसे प्रसन्न हो ज्ञानयोग भागवत आत्मज्ञानका प्रकाशक तुमसे कहा जिसको वासुदेवके शरणागत भक्त विना परिश्रम प्राप्त होतेहैं ॥ १९ ॥ अब मन्वन्तर अवतार कहते हैं। दशोंदिशाओंमें जिसकी अप्रतिबन्ध आज्ञा वर्तनेसे सुदर्शनचक्र मन्वतरोंमें मनुवंशधारी भगवान्ने धारण किया और दुष्ट राजाओंको दंड दिया। और त्रिलोकीमें अपने चरित्रोंको प्रकाशकर अपनी सुन्दर कीर्तिका विस्तार किया ॥ २० ॥ अब धन्वन्तरिका वर्णन सुनो। धन्वन्तरि भगवानने अपनी कीर्तिसे अपने नामसे महारोगियोंका रोग दूर किया और यज्ञमें अमृत असुरोंसे लाये।

लोकमें वैद्यकशास्त्र आयुर्वेद, अवतार लेकर विस्तार सहित मनुष्योंको सिखाया ॥ २१ ॥ अब परशुराम अवतार कहते हैं। दैवसे प्राप्त ब्राह्मणद्रोही, वेदमार्ग त्यागी, नरकभागी धरतीपर कंटक, क्षत्रियोंके क्षयके अर्थ उग्रवीर्य धार–

दोहा–क्षितिक्षयकारक निरखि कर, लै कर कठिन कुठार।
क्षत्रिरहित कीन्हीं क्षमा, अतिबल इक्किसबार ॥ १ ॥

तीक्ष्ण धारके परशेसे इक्कीस बार क्षत्रियोंको मार २ कर पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान करदी ॥ २२ ॥ अब श्रीरामचन्द्र अवतार वर्णन करते हैं ! हमारे ब्रह्मादिकोंके ऊपर प्रसन्नहो पन्द्रह कलाका अवतार धार कालके ईश्वर इक्ष्वाकुवंशियोंमें श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्नहो राजादशरथकी आज्ञामान सीता लक्ष्मण सहित वनको गमन किया जिनसे विरोधकर लंकानाथ रावण विनाशको प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ सीताके विरहमें क्रोधसे लाल २ नेत्र करके समुद्र तीक्ष्ण तेजके ताप और भयके मारे थर २ काँपने लगा ॥ २४ ॥ युद्धमें रावणके वक्षस्थलके स्पर्शसे इन्द्रका ऐरावत हाथी घबड़ागया और उसके दांतोंके टुकड़े २ होगयेथे इसी गर्वसे राक्षसाधिपति दशशीश दशों दिशाओंमें निर्भय विचरता फिरता था । उस सीताहारी राक्षसेन्द्रके वर्द्धित महा गर्वको शीघ्र प्राणसहित मर्य्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजीने नाश किया ॥ २५ ॥ अब श्रीकृष्ण अवतारका वर्णन करतेहैं। असुरोंके अंशी राजाओंके समूहसे दुःखित भूमि क्लेश नाशकर, बलदेव सहित कृष्ण जिनके केश, किसी मनुष्यसे जिनका मार्ग नहीं जाना जाय. वह परब्रह्म श्रीकृष्णावतार धारणकर अपनी महिमाके प्रकट करनेवाले कर्म करेंगे। कोई यह तर्क न करै कि, केशमात्र अवतार हैं, क्योंकि भारका उतारना क्या बड़ा कार्य है ? हमारे केशहै। यह प्रगट करनेके लिये और राम कृष्ण वर्णसूचनाके लिये ऐसा लिखाहै "सचापि केशौ हरिरुज्जहे शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम्। तौ चापि केशावाविशतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च ॥ १ ॥ तयोरेको बलभद्रो बभूव योसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः। कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः" ॥ ॥ २ ॥ महाभारतमें लिखाहै कि, ईश्वरने दो बाल काले सफेद उखाड़े, वह दोनों बाल यादवोंके कुलमें रोहिणी और देवकी स्त्रीमें प्रवेश करगये। जो उन देवका श्वेत केश था, उससे संकर्षण उत्पन्न हुए दूसरे श्यामवर्णथा उससे केशीवधकारी गोपीआनंदकारी विहारी श्रीकृष्णचन्द्र हुये। जिन्होंने बालकपनमें पूतनाको मारा और जब तीन मासके हुए तब शकटासुर–कागासुरका संहार किया, जब घुटनों चलने लगे तब अतिउन्नत यमलार्जुन वृक्षोंको मूलसे उखाडा, भला यह कार्य विना ईश्वरके कौन साधन करसक्ताहै ? ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ जो श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दने ब्रजमें ब्रजके गाय वत्स जब कालीदहका जल पीकर अचेत होगयेथे, उनपर अनुग्रहकर अमृतदृष्टिकी वृष्टिकर उनको जिलाया और यमुनाकी शुद्धिके लिये उसमें विहारकर और अति चंचल जिह्वावाले कालीनागको नाथ और उसे जलसे निकाल लाये ॥ २८ ॥ उन भक्तवत्सल यशोदानन्दके अलौकिक कर्म हैं। क्योंकि जब दावाग्निसे पवित्र वन जला तौ आप उसमें सोतेथे। उस भीषणाग्निसे

निश्चय सबका काल आया था यह जान भक्तवत्सलने सबसे कहाकि नेत्र बंदकरो। नेत्रोंके बंद करतेही ब्रजको उबारा और अग्निका पान कर गये॥२९॥जब यशोदा मैयाने श्रीकृष्णके बांधनेको रस्सी लाई और वह रज्जु पूरी न हुई तब उसने दूसरी और लाई जब वहभी ओछीहुई तब और लाई,इस भांति सब घर भरकी रस्सीयें जोड़ी परन्तु पूरी न हुई।जब श्रीकृष्णने कहा कि, मैया "मैंने माटी नहीं खाई मेरा मुख देखले" श्रीकृष्णने यशोदाको मुख दिखलाया तौ उसमें सब विश्व दृष्टि आया, यशोदा विश्वको देख शंकित हुई। परन्तु पश्चात् ज्ञान हुआ॥ ३० ॥ वरुणकी फाँसीसे भयभीत नंदको बचावेंगे। व्योमासुरके पर्वतकी गुफामें गायोंको बंद करनेपर उन्हें छुटावेंगे। और दिनमें तौ सब काम करके रात्रिको अतिश्रमसे सोये हुये सब गोकुलवासियोंको वैकुंठ दिखलावेंगे॥ ३१ ॥ हे नारद! जब गोपोंने इन्द्रयज्ञ न किया तब ब्रजका नाश करनेको॥

चौपाई–इन्द्र कोप सब मेघ हँकारी। कीन्ही वारिवृष्टि ब्रज भारी॥
तब सब गोप ग्वाल अकुलाये। रोवत श्रीकृष्णहि ढिग आये॥
आय गया अब काल हमारा। वेग बचावहु नंदकुमारा॥
सात वर्षको नन्ददुलारो। छत्रक सम गिरिवर कर धारो॥
सप्त दिवसलों इसी प्रकारा। वरसो पानी मूशळ धारा॥

हे नारद! इसी प्रकार सात दिनलों गिरि गोवर्द्धनको बायें हाथकी कन उँगलीपर धारण करैंगे॥ ३२ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंसे युक्त श्वेत रजनीमें रासकी इच्छा करके क्रीडा करती मधुर पदसे नाच २ राग गाय २ ब्रजयुवतियोंका कामदेव जगावेंगे। गोपाङ्गनाओंके हरनेवाले कुबेरके सेवक शंखचूडके शिरका रत्न हरैंगे॥ ३३ ॥ और प्रलंबासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर, मल्ल, कुवलियापीड, कंस, कालयवन, नरकासुर, पौंड्रकादिक, शाल्व, द्विविद, बंदर, बल्वल, दंतवक्र, सप्तवृषभ, शंबर, विदूरथ, रुक्मैया आदिक और संग्राममें श्लाघनीय धनुषधारी, कांबोज, मत्स्य, कुरु, कैकय, संजय, आदिक यह सब बलदेव, भीमसेन, अर्जुन, इनके मिससे दुर्लभ दर्शन श्रीहरि ऐसे दुष्टोंको वैकुंठ धाम पहुँचावेंगे॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अब व्यास अवतार कहते हैं। काल करके मनुष्योंकी बुद्धि संकुचित हुई और मनुष्योंकी आयु थोडी होनेलगी और वह वेदका भूलने लगे। तब युग २ में सत्यवतीसे श्रीव्यासजी प्रकटहो वेदरूप वृक्षकी शाखा भेद करके उनका विस्तार करेंगे॥ ॥ ३६ ॥ अब बौद्ध अवतार कहतेहैं। देवताओंके द्रोही वेदमें निष्ठा करनेवालोंको मयदैत्यकी रचीहुई पुरियोंसे अदृश्य लोकोंका त्रासकारक बुद्धिके मोह करनेहारे, लोभ बढानेहारे पाखण्ड धर्मको बौद्धजी कहैंगे॥ ३७ ॥ अब कल्कि अवतारका वर्णन करतेहैं। जिस समय कहीं हरिकी कथा न होगी, ब्राह्मण पाखण्डी हो जायँगे, शूद्र राजा बन राज्य करैंगे। स्वाहा स्वधा, वषट्, यह वेदवाणी जब न होगी, मनुष्य पशुकी समान होजांयगे उस समय कलियुगके अंतमें भगवान् कल्की अवतार धारणकर शिक्षा करैंगे॥ ३८ ॥ माया गुणावतार भगवान्‌की विभूति हैं सो इस संसारके रचनेमें तप हम सप्तऋषि नौ प्रजाके

ईश, स्थान, धर्म, यज्ञ, मनु, देवता राजालोग अंतमें अधर्म हरनेवाले क्रोधी असुर आदिक बहुतशक्ति धारी ईश्वरकी मायाकी यह सब विभूतियेंहें ॥३९॥ यह अवतारोंकी कथा मैंने संक्षेपसे कहीहे, विस्तारसहित कहनेको किसकी सामर्थ्येह ? विष्णुके चरित्र कोई नहीं कहसक्ता चाहे पृथ्वीके रजके कण गिन ले. (वेदका मंत्रहे) " विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि " जो ईश्वरने अत्यन्त वेगसे त्रिलोकीको धारण किया, परंतु त्रिलोकीके समान स्थानसे भी अधिक कंपायमान करनेवाला जिनका वेग है ॥ ४० ॥ मायासे बलवान् पुरुष ईश्वरका प्रपंच हम नहीं जान सक्ते । हे मुने ! यह तुम्हारे भाइयोंमेंसेभी कोई नहीं जान सक्ता । सहस्रमुखधारी आदिदेव शेषजी भी सदा ईश्वरके गुण गाते हैं, परन्तु अब तक पार नहीं पाया, और न पावें । फिर औरोंकी तौ क्या गिनती है ॥ ४१ ॥ कोई यह शंका करे कि, कोई हरिके गुणोंको न कहसक्ता हो तौ मोक्ष कैसे होती है ? उत्तर । मोक्ष हरिकी कृपासे होतीहै और किसीसे नहीं हो सक्ती. सो भी जब अनंत भगवान् कृपा करें और सब प्रकारसे निष्कपट होकर जो उनके चरणारविन्दोंका आश्रय लेकर अतिदुस्तर, देवताओंकी मायासे तरजाते हैं और श्वान शृगालोंके भोज्य देहमें आसक्तिवान् पुरुष नहीं तर सकैंगे ॥ ४२ ॥ हे नारद ! उनहींकी कृपासे परमात्माकी योगमायाको जाने हैं । हम और यह सब जानते हैं । तुम, शिव, भगवान्, प्रह्लाद, मनुकी स्त्री शतरूपा, स्वायंभुवमनु, उनके पुत्र प्राचीनवर्हि, ऋभु, ध्रुवजी ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकु, नृपति ऐल, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, नृपेंद्र, रघु, अंबरीष, सगर, नहुषादिक, मान्धाता, अलर्क, शतधनु, पश्चात् रंतिदेव भीष्मपितामह, बलि, अमूर्तरय, दिलीप ॥ ४४ ॥ सौभरि, उत्तंक, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण, विभीषण, हनुमान्, उपेंद्र, दत्तात्रेय, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर, श्रुतदेववर्य ॥ ४५ ॥ यह सब जानते हैं, इससे तर गये. ईश्वरकी मायाको स्त्री, शूद्र, हूण, यवन, शबर और पापी जीव, जो जो अद्भुत चारित्रकारी, ईश्वरपरायण, जिन्होंनें भली भाँति शिक्षा ली है वह और जिन्होंने ईश्वरधारणा की है वह यह सब जानतेहैं. और पशु पक्षियोंकी तौ क्या चर्चा है ? यह सब तर गये ॥ ४६ ॥ अब भगवतका स्वरूप वर्णन करते हैं । सदा प्रशांतमन, भयरहित, ज्ञानघन, शुद्ध, समान, कार्य कारणसे परे, आत्माका तत्त्व है, जहां बहुतकारकवान्, क्रियाकारक शब्द नहीं कह सक्ते हैं । जिनके सम्मुख माया लज्जाके मारे मुख नहीं करती, दूरसे दूरही भागती है ॥ ४७ ॥ सोई परमपुरुष ईश्वर वह स्थान है जिसको कोई ब्रह्म निरंतर, यतिलोग मनको जिसे प्राप्त होकर अकर्तापन और साधनोंको त्याग देते हैं । जैसे कुएँ खोदनेपर फावडे आदिको छोड देते हैं, वा जैसे इन्द्र स्वयं बादलरूप होनेसे खनित्रादि वस्तुको नहीं ग्रहण करते ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ सो भगवान् सर्व कल्याणकारी कर्मके फलदायक हैं । इसलिये इस विश्वका भाव स्वभाव विहित सत् पदार्थकी प्रसिद्धि है । जैसे सब धातुओंके वियोगसे देह नष्ट होती है परंतु देहके संग आकाशका नाश नहीं होता, ऐसे ही अजन्मा पुरुष देहके साथ जन्म लेते हैं परंतु

सबके फलदाता आप हैं ॥ ५० ॥ हे नारद ! सो यह भगवान् सब विश्वमें जिनकी भावना है उन राधारमणके चारित्र मैंने संक्षेपसे कहे हैं । इन ईश्वरसे पृथक् सत् असत् कछु नहीं है ॥ ५१ ॥ जो मुझसे भगवानने कहा है सो यह भागवतपुराण महाआनंददायक है । हरिकी विभूतियोंका संग्रह है अब इसे तुम विख्यात करो ॥ ५२ ॥ जिस रीतिसे वृन्दावनविहारीमें मनुष्योंकी भक्ति हो सबके आधार ईश्वरका चिंतवन करके तुम वर्णन करो ॥ ५३ ॥ जो परमेश्वरकी मायाका वर्णन करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं और जो श्रद्धासे नित्य परमात्माके चारित्र सुनते हैं वह माया करके कभी मोहको प्राप्त नहीं होते ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे चतुर्विंशत्यवतारवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-ब्रह्मा नारदको सुनत, अति अनुपम संवाद ।
देवरात शुकदेवसों, पूछो अति आह्लाद ॥ १ ॥

हे ब्रह्मन् इस प्रकार ब्रह्माजीसे प्रेरितहो देवदर्शन नारदजी निर्गुण ईश्वरके गुण जिन २ के अर्थ कहते भये सो आप वर्णन कीजिये ? ॥ १ ॥ हे विदांवर ! मुझे उसके सुननेकी अभिलाषा है । अद्भुत पराक्रमी ईश्वरकी कथा लोकमें सुन्दर मंगल करनेवाली है ॥ २ ॥ हे महाभाग ! वह कथा वर्णन करो । सबसे मन हटाय वैराग्य ले सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णजी में मन लगाऊं और इस दुःखदायी देहका त्याग करूं, सो कहो ॥ ३ ॥ श्रद्धायुक्त हो हरिके गुण नित्य श्रवण करनेसे श्रीकृष्णलीलाओंको मुखसे कहे । थोड़े ही दिनोंमें भगवान् हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥ कानके छिद्रमें हो सदा मधुसूदन अपने जनोंके हृदयका जो कमल है और उसमें जो मल है उसका नाश करदेते हैं । जैसे जलका मल शरद-ऋतुके आनेसे दूर होजाताहै ॥ ५ ॥ पवित्र आत्मापुरुष श्रीवासुदेवके चरणमूलका त्याग नहीं करते वह सब क्लेशसे छूट जातेहैं. जैसे मार्ग चलनेवाले अपने घर आय सब दुःखसे छूट जातेहैं ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! त्वचा, रुधिर, मांस, स्नायु, मेद, मज्जा, हाड़, इन सातधातुओंसे रहित जिनकी देह ऐसे ईश्वरका पंचभूत देह धारना निज इच्छासे है या किसीकारणसे शरीर धारण करते हैं ? जो आप यथार्थ जानते हो सो कहिये ॥ ७ ॥ सब लोकोंकी रचनारूप कमल जिनकी नाभिमें यह पुरुष रचते हैं जैसे अवयवोंसे अलग २ है और इतने हैं यह सब कहो ? ॥ ८ ॥ तितनेही यह ईश्वर कहेहैं । संख्या अन्वयकी समान है. हे शुकाचार्य ! जिसको हम न जानते हों सो आप सब कहें. ॥ ९ ॥ अजन्मा ईश्वर सब जीवोंको रचते हैं उनकी कृपासे ब्रह्मा रचते हैं, नाभिकमलसे जन्मे ब्रह्माजीने उनका रूप देखा ॥ १० ॥ वह ईश्वर पुरुष विश्वकी उत्पत्ति पालन संहार करताहै ॥ मायाके ईश, अपनी मायाको त्याग सबके अन्तर्यामी भी कहां सोते रहतेहैं ? ॥ ॥ ११ ॥ पुरुषके अवयवोंसे पूर्वकल्पित लोकपालक इनके अवयवोंसे रचेगये यह सब

श्रवण कराइये ॥ १२ ॥ जैसा कल्प है जैसा विकल्पहै जैसा कालका अनुमान किया जाता है, भूत भविष्यत् वर्तमान आयुका यो प्रमाण है सो कहो ? ॥ १३ ॥ कालकी गति जो छोटी मोटी है जितनी कर्मकी गतियें हैं और जैसी गति होतीहैं सो हे द्विजसत्तम ! शुक्राचार्य ! आप कहिये ? ॥ १४ ॥ सत्त्वादि गुणोंका देवादि रूप परिणामकी इच्छा करते जीवोंके मध्यमें जिसपरिणाममें पुण्य पापके कर्मोंका स्वरूप समूह किस कर्मके समुदायसे कैसे करनेसे कौन अधिकारी देव आदि भावको प्राप्त होताहै ? सो कहो ॥ १५ ॥ भूमि, पाताल, सब दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप इनकी उत्पत्ति और जो इनके वासी हैं सो कहो ? ॥ १६ ॥ इस ब्रह्माण्डका प्रमाण, बाहर भीतरका भेद महात्माओंका चरित्र, वर्णाश्रमका निर्णय, जिन २ स्वभावोंसे सब वर्ण आश्रमका निर्द्धार होय सो कहो ? ॥ १७ ॥ अत्यन्त आश्चर्यदायक, श्रीहरिअवतारोंके चरित्र, और युग-युगोंके प्रमाण और युग २ में जो धर्म होयँ सो कहो ? ॥ १८ ॥ मनुष्योंके साधारण धर्म होंय सो कहो, और जो जो व्यवहारियोंके धर्म होयँ सो कहो, और प्रजापालोंके अधिकारी राजर्षियोंके धर्म सो कहो । सब जीवमात्रका आपद्धर्म सो कहिये ॥ १९ ॥ तत्त्वोंकी संख्या, और उनके लक्षण, अथवा किसी हेतुसे उनके लक्षण जैसे होयँ सो कहो ? परमेश्वरके पूजनकी विधि, अष्टांगयोगकी विधि ब्रह्मविद्या, यह सब कहो ॥ २० ॥ योगीश्वरोंके ऐश्वर्यकी गति, अर्चिरादि मार्गके योगियोंके लिंगदेहके भंगकी गति, ऋगादिवेद, आयुर्वेदादि, धर्म शास्त्रोंकी गति, इतिहास पुराणोंका सार यह सब कहो ॥ २१ ॥ सब जीवनका प्रलय स्थित महाप्रलय वैदिक कर्म पूर्तकर्म यह है कि "वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ॥ अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते" बावडी कुआं तालाव आदि देवमंदिर बनाना सदा अन्नदान करना बाग लगाना ईश्वरके निमित्त इनको पूर्त कहतेहैं, कामना करके कर्म करना अर्थ धर्म कामकी विधि यह सब इष्ट कहिये ॥ २२ ॥ उपाधिरहित जीवोंके धर्म, उनकी रचना, पाखंडकी उत्पत्ति जीवोंका बंधमोक्ष स्वरूपमें स्थिति सो कहो॥ २३ ॥ जैसे स्वाधीनभगवान् अपनी मायासे क्रीडा करतेहैं, कभी मायाको त्याग साक्षी समान विभु विराजतेहैं सोकहो ॥ २४ ॥ इनप्रश्नोंके उत्तर क्रमसे अपने सिद्धान्तसे आप कहने योग्यहो हेमहामुनि ! मैं तुम्हारे आश्रितहूं ॥ २५ ॥ इसमें स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रमाणहैं पहिलेसे पहिले हुए वह और सब इसी मार्गमें स्थित रहैंगे ॥ ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे प्राण भूख प्याससे नहीं निकलेंगे भागवतकथामृत पानकरनेवाले मुझको कुपित द्विजके सर्पका भय किंचित भी नहींहै ॥ २७ ॥ सूतजी बोले "संतोंके प्रतिहारकी कथामें इस प्रकार राजाने प्रार्थनाकी; तब सभामें राजा परीक्षितसे शुकदेवजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥ वेदके समान भागवत नाम पुराण ब्रह्मकल्पमें ब्रह्मासे भगवान्ने कहा था ॥ २९ ॥पांडवोंमें श्रेष्ठ परीक्षित जो जो पूछतेहैं सो सब संक्षेपसे और विस्तारसे व्याख्या करनेको प्रारंभ किया ॥ ३० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते
द्वितीयस्कन्धे राजकृतप्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्याय; ॥ ८ ॥

दोहा-कथा नवम अध्यायकी, नाशक सब सन्देह।
चतुःश्लोकी भागवत, वरणों सहित सनेह ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! अनुभव परमेश्वरको देहका संबंध अपनी मायाके विना नहीं होता। जैसे अनायास करके स्वप्नके द्रष्टाको स्वप्नके समयका देहसंबंध नहीं होताहै ॥ १ ॥ अनेक रूपवाली मायासे बाल युवादिरूप देव नरादि रूपकी नांई प्रकाश कर्ता है। इस मायाके गुणमें रमण करके "मेराहै" "हमहै" ऐसे आप माने हैं ॥ २ ॥ जिस समय अपनी महिमामें उस काल मायासे परे ईश्वरमें सब मोह त्याग रमण करताहै। तब अहंकार ममकार दोनोंको त्याग साक्षी की सदृश रहता है ॥ ३ ॥ जीवकी तत्त्वशुद्धिके कारण जो भगवान्ने सत्य कहाहै सो निष्कपट तपके विना नहीं होता। ब्रह्माको अपना रूप दिखायाहै ॥ ४ ॥

दोहा-नारायणकी नाभिसे, प्रगट भयो अरविन्द।
ताते चतुरानन भये, जो गुरु सुर मुनि वृन्द ॥ १ ॥

सो आदिदेव ब्रह्माजी जगत्के परमगुरु अपने कमलमें बैठकर जगत्के रचनेका विचार करने लगे, इस संसारके रचनेके योग्य दृष्टिको नहीं पहुँचे, जिससे यह विश्व रचनेकी विधि ठीक होय ॥ ५ ॥ एक समय ब्रह्माजी यही चिंतवन कर रहेथे, तब उस जलमेंसे दोबार यह शब्द सुनाई आया कि तप करो, २ (क) से लेके (म) पर्यंत अक्षरोंकी स्पर्श संज्ञा है। इनमें १६ वाँ अक्षर (त) है और इक्कीसवाँ (प) है दोनों मिलकर तप हुआ ॥ हे राजेन्द्र! जिनको किसी बस्तुकी चाहना नहीं ऐसे मुनियोंका वह धन है। तपोधन मुनि प्रसिद्ध हैं ॥ ६ ॥ तपकरो यह सुन ब्रह्माजीने सब ओर देखा। और बक्ताके देखनेकी इच्छाकरी। तब कमलपर बैठ अपना हित विचार तप करनेको मनमें धारणाकी ॥ ७ ॥ सफल दर्शन पवन, मन जीत, और ज्ञानेंद्रियें कर्म इंद्रियें जीत, तप करनेवालोंमें अति तपस्वी ब्रह्माजी सब लोकको प्रकाश करनेवाला दिव्य तप सहस्र वर्षतक किया ॥ ८ ॥ जिससे श्रेष्ठ और कोई नहीं, क्लेश, मोह, संभ्रम, जहां नहीं, सत्पुरुषवान् आत्मवेत्ता अपने दर्शन करनेवालोंसे श्रीवैकुण्ठ लोकको प्रसन्नहो भगवान्ने ब्रह्माके लिये दिखाया ॥ ९ ॥ जिस वैकुण्ठमें राजस, तामस नहीं शुद्ध सत्त्व जहाँ वर्तै, रज तम मिला सत्त्व गुण जहां नहीं। जहां कालका पराक्रम नहीं चलता, मायाका नाम वहां रागादिककी क्या सामर्थ्यहै? देव असुर जिनका दोनों पूजन करैं ऐसे भगवतके पार्षद जहां हैं ॥ १० ॥ पार्षदोंका वर्णन करते हैं। श्यामसुन्दर, उज्ज्वलस्वरूप, कमलनयन, पीताम्बर पहिरे, परम मनोहर अति सुकुमार उत्तम २ रत्न मणि जटित सब आभूषण धारण किये अति तेजस्वी सब पार्षदहैं ॥ ११ ॥

दोहा-कोउ प्रवालद्युति सोहहीं, कोउ वैदूर्य मृणाल।
भ्राजमान माथे महा, मुकुट मणिनकी माल ॥ १ ॥

सामवेदको गाय २ सर्वेश्वरको चारों ओरसे नमस्कार कर रहे हैं, कहीं स्मरण और

कहीं प्रशंसा और कहीं भगवान्‌के चारित्रोंकी व्याख्या कर रहे हैं ऐसे भगवतके पार्षद हैं ॥ १२ ॥ महात्माओंके प्रकाशमान शोभित विमानोंकी पंक्तियोंसे श्रीवैकुंठ लोक सब ओरसे विशेष करके प्रकाशमान होरहा है। उत्तम स्त्रियोंकी कांतिसे ऐसा प्रकाशित हो रहा है, जैसे विजुलीसहित मेघमालासे आकाश शोभित होता है । दामिनीसदृश तो स्त्रियें हैं। मेघपंक्तिकी समान विमान हैं, आकाशकी तुल्य वैकुंठ लोक है ॥ १३ ॥ वहां वैकुंठमें रूपवती महालक्ष्मीजी श्रीनारायणके चरणोंमें अनेक विभूतियोंसे मानकर हैं। और हिंडोलेमें झुलावें हैं। वसंतके अनुचर, भ्रमर अनेक २ प्रकारसे गुंजार करते हैं ॥ और अपने प्यारे प्रीतमके चारित्रोंको गाती जाती हैं और आनंदसे झूलती हैं ॥ १४ ॥ उस वैकुंठमें सब भक्तोंके पति श्रीप्रभुलीलानायक यज्ञपति जगत्पालक सुनंद, नंद, प्रबल अर्हण आदि अपने मुख्य पार्षद सब ओरसे जिनकी सेवा करैं उन समर्थ त्रिलोकनाथका ब्रह्माजीने दर्शन किया ॥ १५ ॥ भृत्यजनोंके प्रसादमें जिनका मुखदर्शन करनेवालोंको प्रमदकी नाईं हर्ष-दायक, प्रसन्ननयन, जिनकी मुसकानसे नेत्र मुख लाल हो रहे, शशिपर मुकुट, कानोंमें कटक कुंडल, चार भुजा, पीतांबर धारण किये, हृदयमें श्रीजी विराजमान हो रही हैं ॥ १६ ॥ अत्यन्त पूजन योग, सिंहासनपर विराजमान, परब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व अहंकार चार तो यह और ग्यारह इन्द्रियें, पंच महाभूत सोलह, पांच उनकी मात्रा इन शक्तियों और अपने सब स्वाभाविक जो ऐश्वर्य उनसे युक्त, योगियोंका ध्रुव आगामी ऐश्वर्य समेत अपने मंदिरमें सदा रमण करते हैं ॥ १७ ॥ जिनके दर्शनके आनंदसे अंतःकरण प्रसन्न मन रोमाञ्चित देह प्रेमके भावसे नेत्रोंमें आंसूभर आनंदमें मग्नहो ब्रह्माने श्रीवासुदेवके चरणसरोरुहको नमस्कार किया, जिनका दर्शन परमहंसोंको ज्ञानमार्गसे होता है उनका दर्शन ब्रह्माजीने किया ॥ १८ ॥ संसारके रचनेमें जो हरिकी आज्ञा उसकी सुन्दरतामें स्थित चित्त उन ब्रह्माजीसे मंद मुसकानकी वाणीसे चिदानंद घनश्याम, आप ब्रह्माका हाथसे हाथ पकडकर ॥ १९ ॥ बोले कि हे वेदगर्भ! विश्वके रचनेकी इच्छासे तुमने हमें बहुत प्रसन्न किया और सहस्र वर्षतक अत्यन्त तप किया; जो मूर्ख योगीजन हैं । उनसे मैं बहुत प्रसन्न नहीं होता हूं ॥ २० ॥ हे ब्रह्मा! आपका कल्याण हो। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं जो इच्छा हो सो वर मांगो, कल्याणकी प्राप्तिमें पुरुषको जबतक भ्रम है तब तक मेरादर्शन नहीं होता। अब तुम्हें मेरा दर्शन होगया अब तुमको कोई परिश्रम न होगा । जो इच्छा हो सो मांगो ॥ २१ ॥ मेरे मनकी इच्छाका यह प्रभाव है कि मेरे लोकका तुमको दर्शन हुआ. यह मनमें मत विचारना कि मैंने तपके बलसे यह किया है। स्वतंत्र कभी न होना । मेरी ही कृपासे तुमको यह दर्शन हुआ । जो श्रवण करके एकान्तमें तुमने सहस्रवर्ष तप किया॥२२॥जब कर्मसे तुम विशेष मोहित हुए तब मैंने तुमसे कहा हे पापरहित! तप कर, तप मेरा हृदय है, तप साक्षात मेरा देह है, तप मेरी भीतरकी शक्ति है "यस्य ज्ञानमयं तपः" इति श्रुतेः ॥ २३ ॥ तपसेही इस विश्वको रचताहूं, और फिर तपसेही संसारका पालन व संहार करताहूं। यह तपरूप बडा पराक्रम है, बडा दुस्तर है।

तपका बडा प्रभाव है तप करना बडा कठिन है ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोकेश! सब जीवमात्रके अधिष्ठाता सबमें स्थित हो; दृढ ज्ञानमें जो करनेकी इच्छा है उसको तुम जानते ही हो ॥ २५ ॥ यद्यपि आप ऐसे हैं तौ भी हे नाथ! आपसे जो मांगे ऐसे मनुष्यको जो याचित पदार्थ है सो तुम हो । निर्गुण तुम्हारे सूक्ष्म स्थूल को जैसे जानूं सो कहो ॥ २६ ॥ जैसे आप मायाके संयोगसे अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे–

दोहा–सिरजत पालत हरतहो, आपहि यह संसार।
सतसंकल्प करहु सदा, मकरीसरिस विहार ॥ १ ॥

वर्द्धित विश्वका संहार रचना पालन आपही चतुराननरूप धारणकर क्रीडा करतेहो ॥ २७ ॥ हे अमोघसंकल्प! जैसे मकरी अपने तन्तुओंके जालसे आप फैल जाती हैं ऐसे ही आप क्रीडा करते हैं । हे माधव ! अब आप दयाकरके सृष्टिके रचनेकी बुद्धि मेरे हृदयमें धारणकरो ॥ २८ ॥ जो आपसे शिक्षित होकर मैं निरालस्य हो तुम्हारे अनुग्रहसे प्रजासर्गकी चेष्टा करूंगा; परन्तु अहंकारका बंधन न हो ॥ २९ ॥ हे ईश! तुमने लौकिक सखाकी समान जान, स्वर्गादिकमें मेरा सन्मान किया सो प्रजाके रचनेरूप कर्ममें अव्याकुल होकर उत्तम मध्यमादिक भेदसे जीवका विभाग करूं तब "अजमानी" मुझको यह महामद न होय सो कीजे ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच.

श्लोक–ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदंगं च, गृहाण गदितं मया ॥ १ ॥

दोहा–परमगुप्त है ज्ञान मम, अंगसहित विज्ञान ।
भक्तिसहित मैं देत हूं, लीजे विधि मतिमान ॥ १ ॥

श्रीभगवान्जी बोले कि मेरा शास्त्रोक्त ज्ञान अत्यन्त छिपा हुआ है वह अनुभव, भक्ति, सब साधन सहित है सो कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ ३१ ॥

श्लोक–यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥ २ ॥

दोहा–जो मोमें जस भाव मम, जस गुण कर्महु रूप ।
होय तत्त्वविज्ञान तस, लहि मम कृपा अनूप ॥ २ ॥

स्वरूपसे जैसे हम हैं, और जैसे सत्तावान् हैं; जो रूप कर्म गुण हमारे हैं, इसी प्रकार तत्त्वोंका ज्ञान विशेष करके मेरी कृपासे तुमको होय ॥ २ ॥ ३२ ॥

श्लोक–अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥

दोहा–सृष्टि पूर्व सत् असत् वपु, रहै हमहिं नहिं आन ।
मध्यहु हम औ अंतमें, बचो सो हमहिं सुजान ॥ ३ ॥

इस सृष्टिसे पहले मैं ही था अतिरिक्त मेरे और दूसरा कोई नहीं था, अरु स्थूल सूक्ष्म इनका परम कारण कुछ भी नहीं था । पीछे सृष्टिका कारण मैं ही हूं. पीछे सृष्टिके उपरान्त

भी मैंहीं हूं। जो यह विश्व है सो भी मैंहीं हूं, जो कुछ शेष रहेगा सो भी मैंहीं हूं। जो कुछ सब सृष्टिका मूल है सोभी मैंहीं हूं। जिस प्रकार सुवर्णके अलंकार नाक, कान, हाथ, पांवके भिन्न होते हैं। जैसे कंकन, कुण्डल, कर्णफूल, मालादिक पृथक् २ होते हैं, जब सबको गलादिया तौ फिर केवल कंचनका कंचन, इसी भाँति मुझको समझना कि अनादि अनन्त अद्वितीय परिपूर्ण मैंही हूं ॥ ३ ॥ ३३ ॥

श्लोक–ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः ॥ ४ ॥

दोहा–चेतनमें जानो परे, है नहिं चेतनवास।
सो मम माया जानिये, जस तम तस आभास ॥ ४ ॥

अर्थके विना जो प्रतीत होताहै और आत्मामें प्रतीत नहीं होता है उसीको मेरी माया जानो। जैसे दो चन्द्रमा प्रतीत होते हैं। जैसे राहु ग्रहमंडलमें स्थित है परन्तु दीखता नहीं। ग्रहणके द्वारा दीखता है। इसी प्रकार यह माया कार्योंके द्वारा दीखती है। साक्षात प्रगट नहीं होती ॥ ४ ॥ ३४ ॥

श्लोक–यथा महांति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ५ ॥

दोहा–महाभूत जिमि भूतमें, अहैं न हैं करतार।
तैसे लघु बड जातमें, जानहु वास हमार ॥ ५ ॥

जैसे पंच महाभूत संसारीके छोटे बडे जीवमात्रमें प्रविष्ट, अप्रविष्टकी समान विदित होते हैं ऐसेही प्रकार मैं उनमें ज्ञात नहीं होताहूं ॥ ५ ॥ ३५ ॥

श्लोक–एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥ ६ ॥

दोहा–मोर तत्त्व जानो चहै, आत्मतत्त्वको जान।
और तत्त्व जाने नहीं, दोऊते विभु ज्ञान ॥ ६ ॥

आत्मतत्त्वके जाननेवालेको इतनाही जानना योग्य है। अन्वय, व्यतिरेकसे जो सब ठौर सदा ही ईश्वर है। "कार्येषु कारणत्वेनानुवृत्तिरन्वयः" अर्थ–कार्योंमें कारण भावसे जो सदा वर्ते उसका नाम अन्वय है. "कारणावस्थायां च तेभ्यो व्यतिरेकः" अर्थ–कारण अवस्थामें उनसे अलग रहे सो व्यतिरेक ॥ ६ ॥ ३६ ॥

श्लोक–एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ७ ॥

दोहा–ह्वै एकाग्र यह मोर मत, धारहु विधि करुँ छोह।
कल्प विकल्पहुमें कबहुँ, तुम्हें न ह्वैहै मोह ॥ ७ ॥

हे ब्रह्मा! एकाग्रचित्त करके परम समाधिसे तुम इस मतमें स्थिर रहोगे तौ तुम कल्पों विकल्पोंमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि है उसका तुमको कभी भी यह अभिमान न होगा कि इस संसारका कर्त्ता मैं हूं ॥ ७ ॥ ३७ ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि मनुष्योंमें श्रेष्ठ जो ब्रह्माजी हैं उनसे अजन्मा ईश्वर यह कहकर अंतर्द्धान होगये ॥ ३८ ॥ आदिरूप अविनाशी जगदीश्वरके अंतर्द्धान होने उपरान्त सब जीवमय ब्रह्मा श्रीविश्वनाथको हाथ जोड़कर विश्वको पहिलेकी रीतिसे रचना आरम्भ करने लगे ॥ ३९ ॥ प्रजापति धर्मपतिने एक समय यम नियमको प्रजाके कल्याणके लिये और अपने स्वार्थकी कामनाके लिये रचनाकी, और यम नियमादिकमें आप स्थितहुए ॥ ४० ॥ अतिप्रिय भाग लेनेवालोंमें पुत्रोंमें पिता ब्रह्मामें अनुरक्त शील नम्रतादि शुश्रूषा करनेहारे नारदजी ब्रह्माजीकी सेवा करने लगे ॥ ४१ ॥ हे राजन्! मायाके ईश्वर व्यापक विष्णुकी मायाको जाननेकी इच्छाकर महामुनि महाभागवत नारदजीने पिताको प्रसन्न किया ॥ ४२ ॥ "वेष्टीति विष्णुः" सबमें व्यापे उसका नाम विष्णु है; व्याकरणमें 'विष्लृ व्याप्तौ' धातुहै उससे विष्णु शब्द व्युत्पादित होता है ॥ ४३ ॥ सब लोकके पितामह ब्रह्माको प्रसन्न जानकर नारदने बूझाथा जो आप हमसे पूछते हैं। दशालक्षणयुक्त, अत्यन्त शोभायमान, श्रीभागवत पुराण जो भगवानने ब्रह्माजीसे कहा और उन्होंने अपने प्रियपुत्र नारदसे कहा ॥ ४४ ॥ हे पृथ्वीनाथ, ! सरस्वतीके तटपर नारदजीने परब्रह्मके ध्यानी, परमज्ञानी, महातेजस्वी, व्यास मुनिको सुनाया ॥ ४५ ॥ जो हमसे तुमने जिज्ञासा किया कि विराट् पुरुषसे यह विश्व कैसे होताहै ? वह, और तुम्हारे कहे हुए प्रश्न, और और भी बातें जैसी हैं तैसेही कहेंगे ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे चतुःश्लोकीभागवतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-तहँ शुकदेव प्रमोदभर, लक्षण दशहु पुरान।
भूप परीक्षितसे कहत, संयुत अर्थ महान ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि अब सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति, आश्रय ॥ १ ॥ दशवें आश्रय लक्षणकी विशेष शुद्धिके लिये नौ लक्षण महात्मा लोग सुनें अर्थसे अनायास वर्णन करते अथवा श्रुतियोंसे कहते हैं ॥ २ ॥ अब दशों लक्षणोंका वर्णन करते हैं नभ, मही, जल, तेज, वायु, गंध, शब्द, स्पर्श, रूप, रस। पायु, उपस्थ, पद, कर, वाक् यह पांचों कर्मेन्द्रिय हैं। नाक, कान, रसना, त्वचा, नेत्र; यह पांचों ज्ञानेंद्रिय हैं। अहंकार, मन, बुद्धि, अंतःकरण; इन पंच भूत मात्रा इन्द्रियोंकी उत्पत्तिको सर्ग कहतेहैं ॥ ब्रह्मासे गुणकी विषमता होनेसे विराट् पुरुषसे जो उत्पन्न हुआ उसका नाम विसर्ग है ॥ ३ ॥ वैकुंठका विजय यह है कि परमात्माकी रचीहुई मर्य्यादाओंका पालन करना, इसका नाम स्थान है, अपने भक्तोंपर कृपा करना इसका नाम पोषण है। मन्वन्तरोंके अधिपतियोंका जो धर्म वा सद्धर्मका नाम मन्वन्तर है । कर्मकी बासनाका नाम ऊति है ॥ ४ ॥ श्रीआदिपुरुष नारायणके अवतारोंका चारित्र और इनके पीछे महात्मा पुरुषोंके नाना प्रकारके आख्यानोंकी अधिक वार्ताका नाम ईशकथा

है॥ ५ ॥ इस ईश्वरकी योगनिद्राके पश्चात शक्ति और उपाधियोंसहित लय होजानेका नाम निरोधहै। अन्यथा रूपको त्याग करके अपने स्वरूपमें स्थिति होनेका नाम मुक्ति है ॥ ६ ॥ जो सृष्टिको उत्पन्न पालन और लय करता है; जिसको परब्रह्म कहते हैं उसीका नाम आश्रय है ॥ ७ ॥ जो यह आध्यात्मिक पुरुष है, सोई यह आधिदैविक है; जो इनमें विभक्त है सोई आधिभौतिक है ॥ ८ ॥ एकको एकके अभावमें जब नहीं प्राप्त होता है उसमें जो दृक्, रूप, सूर्य, वपु, इस त्रितयको जो जानता है सो आत्मा अपने आश्रय है, उसको भी आश्रय कहते हैं ॥ ९ ॥ जब विराट् पुरुष अंडको भेदकर बाहर निकले, तब अपने रहने के अर्थ स्थानकी इच्छा करी; आप ईश्वर पवित्र हैं इस कारण पवित्र जलकी रचनाकी ॥ ॥ १० ॥ अपने रचेहुए जलमें सहस्र वर्षतक वास किया, तदनन्तर परब्रह्म सच्चिदानंदने नररूप धारण किया, इस कारण नारायण नाम हुआ. "आपो नारा इति प्रोक्ताः नारा-अयनं यस्य स नारायणः" नार नाम जलका है, उसमें जिसका स्थान सो नारायण हुआ आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः प्रोक्तास्तेन नारायणः स्मृतः" ॥ ११ ॥ द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव, जिनकी कृपासे होता है और जिनकी इच्छा नहीं होय तौ नहीं होय ॥ १२ ॥ एक परमात्माने जब नानाप्रकार होनेकी इच्छा की तब योग शय्यासे उठ सुवर्णमय अपने वीर्यके तीन भाग किये ॥ १३ ॥ अधिदेव, अध्यात्म, और अधिभूत; इनको ईश्वरने रचा, एक पुरुषका वीर्य तीन प्रकारके भेदोंको प्राप्त हुआ सो तुम ध्यान धरके सुनो ॥ १४ ॥ जब विशेष चेष्टा की तब पुरुषमेंसे इन्द्रियशक्ति, मनः-शक्ति, देहशक्ति; यह हुई और सबमें मुख्य प्राण हुए ॥ १५ ॥ सब जीवोंमें ईश्वर प्राण-रूप चेष्टा करता है, सो सब इन्द्रियें चेष्टा करती हैं, जो चेष्टाका त्याग करता है तौ प्राणभी चेष्टा त्याग करते हैं. जैसे राजाके पीछे राजाका भृत्य, राजा चलै तौ भृत्य भी चलै, राजा खड़ा होजाय तौ भृत्यभी खड़े होजाते हैं ॥ १६ ॥ एक देह जो परमात्माने रची, तब उसमें प्राणने प्रेरणाकी, तब भूंख प्यास हुई, तब जल पीने और भोजन करनेको प्रथम मुख निकला, यहां यह बात जाननी उचित है कि तालु अधिष्ठान है, जिह्वा इन्द्रिय है, नाना प्रकारके रस विषय हैं, वरुण देवता हैं यह सर्वत्र जान लेना ॥ १७ ॥ मुखसे तालु हुआ तहां जिह्वा हुई जीभसे अनेक प्रकारके स्वादोंका ज्ञान हुआ ॥ १८ ॥ फिर कुछ बोलनेकी इच्छा हुई उस समय जीवकी अग्नि देवता. वाणी इन्द्रिय सुन्दर शब्द निकला, परन्तु जलमें वचनकी रुकावट होती है. नासिकाका पवन जब अत्यन्त चलाय-मान हुआ. तब नासिका हुई. वायु जिसका देवता है. सो सुगन्धदाता घ्राण इन्द्रिय सूंघने-को हुई॥१९॥२०॥ जब देखनेकी इच्छा हुई कुछ न देखा, देवतात्मक रूपगुण करनेहारी चक्षु इन्द्रिय हुई॥२१॥जब वेदवचन सुननेकी इच्छा हुई तब दिशादेवता वारिदेवता श्रोत्र श्रवणइन्द्रिय गुणके ग्रहण करनेहारे कान निकले ॥ २२ ॥ वस्तुओंकी कोमलता, कठिनता, लघु, गुरु, उष्ण, शीतके ज्ञानकी इच्छा हुई. तब केश रोम जिसमें, वृक्षसमान ऐसी त्वचा उत्पन्न हुई ॥ २३ ॥ बाहर भीतर पवनके प्रवेश गुणवारी त्वचासे स्पर्शका ज्ञान हुआ।

उसमें सर्व लोकोंके पालन करनेवाले पवनदेवने प्रवेश किया ॥ २४ ॥ जब अनेक प्रकारके कर्म करनेकी इच्छा हुई तब बल इन्द्रिय इन्द्र देवात्मक सब पदार्थोंको धरने उठानेके कर्म योग्य दो हाथ बने ॥ २५ ॥ जब इसकी इच्छा हुई कि जहां मेरा मन होय तहां जाऊं, तब विष्णु भगवान् जिनके देवता, यज्ञादिकके समिधादिकलाना और अनेक कर्म करने तथा तीर्थगमन योग्य चरण प्रगट हुये ॥ २६ ॥ जब यह इच्छा हुई कि पुत्र होवें, विषय आनन्द अमृत सुखहो तब शिश्न इन्द्रिय प्रजापति जिसके देवता, कामप्रिय लिंग बनाया, जो दोनों कार्य करे ॥ २७ ॥ भोजन करने उपरांत जब उसके मल त्यागनेकी इच्छा हुई तब पायु इन्द्रिय मल त्याग कर्मयुक्त मित्र देवात्मक उभयकार्यसाधक गुदाहुई ॥ २८ ॥ जब इस देह रूप पुरीसे देहरूप पुरोंमें जानेकी अभिलाषा हुई तब नाभिद्वारकी अपान वायुसे अपानद्वारा मृत्यु होना, पृथक् होना दोनों कार्य साधक नाभि उत्पन्न हुई ॥ ॥ २९ ॥ जब अन्न पानी ग्रहण करनेवाली इच्छा हुई. तब कोष, कुक्षि, आँतें, नाड़िये, हुईं, नदियें समुद्र कोष पानीके देवता हुए । पुष्टि तिनके आश्रय रूप हुई ॥ ३० ॥ ईश्वरकी मायाके अत्यन्त चिन्तवनकी इच्छा हुई तब हृदय हुआ । उस हृदयमें मन चन्द्रमा देवता समेत संकल्प काम इत्यादिक हुए ॥ ३१ ॥ त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, हाड यह सप्तधातु हुईं, सप्तप्राण और सप्तधातुयें, भूमि, जल, तेज, वायु; आकाशसे होते हैं ॥ ३२ ॥ सब इन्द्रियें गुणोंसे होती हैं और गुण अहंकारसे होते हैं; मन सब विकाशका स्वरूप है; बुद्धि विशेष ज्ञानकी रूपिणी है ॥ ३३ ॥ यह नारायणका स्थूलरूप मैंने तुमसे कहा. जो पृथ्वीसे आदि आठ अवतारसे बाहर व्यापते हैं ॥ ३४ ॥ मायासे सूक्ष्मतम अव्यक्त, विशेषणरहित अनादिमध्य अनंत सदा एक रूप वाणी मनसे परे वह परमात्मा है ॥ ३५ ॥ यह दोष गुण निर्गुणरूप आदिपुरुष नारायणके मैंने तुमसे वर्णन किये, परन्तु इस मायाके रचे विद्वान् लोग दोनोंको ग्रहण नहीं करते ॥ ३६ ॥ सो भक्तवत्सल ब्रह्मरूपधारी कुछ कर्म नहीं करते । वह परमेश्वर कर्मकारक वाच्यरूपसे नाम धारण करते, और वाच्यरूपसे रूप क्रिया धारण करतेहैं ॥ ३७ ॥ जो जो रूप यशोदानन्द जगत्कार्यके अर्थ धरते हैं सो हम आपसे कहते हैं, कि प्रजापति, मनुदेवता, ऋषि, पित्रोंके गण पृथक् २ सिद्ध, चारण. गंधर्व, विद्याधर, सुर, गुह्यक ॥ ३८ ॥ किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, वानर, उरग, सप्तमातृका, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत, विनायक ॥ ३९ ॥ कूष्माण्ड, उन्मादकारी ग्रह, वैताल. यातुधान, ग्रह. पक्षी, मृग, पशु. वृक्ष, पर्वत, रेंगनेवाले जीव, सरीसृप ॥ ४० ॥ स्थावर, जंगम, रूप दो प्रकारके जीव, और जल, स्थल, आकाशवासी जीव उत्तम नीच कुछ २ दोनों मिलेहुए यह कर्मकी गतियें हैं. यह सब रूप भगवान्ने धारण किये ॥ ४१ ॥ हे राजन ! सत्त्व, रज, तम इन तीनोंसे देवता मनुष्य नारकी जीव होते हैं । उनमें भी एक २ गति तीन तीन प्रकारसे भेदको प्राप्त होती हैं ॥ ४२ ॥ जब एक और गुणसे और प्रकारका होजाता है, तब स्वभावनष्ट होता है । जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकी गति भी उसी प्रकार होजाती है ॥ ४३ ॥ वही

भगवान् वासुदेव धर्मरूपधारी जगत्के धारण करनेवाले इस विश्वमें तिर्यक् पशु पक्षियोंमें अवतार लेकर इसका स्थापन कर पुष्ट करते हैं ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त काल अग्नि रूप, रुद्रान्तर्यामी ईश्वर जिस्में यह सब रचा हुआ है । इस संसारका कालसे संहार किया करते हैं । जैसे मेघके समूहको पवन उडा देता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे भगवान् भक्तवश्यका वर्णन किया इस भावके विना और प्रकारसे बडे २ विवेकी लोग भी उन्हें नहीं देख सक्ते ॥ ४६ ॥ इन परमेश्वरके जन्मादिक और कर्मकर्तापनेके भाव मायासे होते हैं ॥ ४७ ॥यह ब्रह्माका कल्प विकल्पसहित कहा । जहां साधारण विधि है जिसमें प्राकृत वैकृत सर्ग होते हैं ॥ ४८ ॥ परिमाण, कल्प. लक्षण, विग्रह स्थूल, सूक्ष्म, कालको तृतीयस्कंधमें कहैंगे, अब पाद्मकल्प सम्पूर्णतासे कहते हैं सो सुनो ॥ ४९ ॥ शौनकजी बोले कि हे सूतजी ! जो तुमने कहा कि सबमें भागवतोत्तम विदुरजी क्या समझा है जो त्यागने रहित बांधवोंका त्याग कर पृथ्वीके सब तीर्थोंमें विचरते फिरे ॥ ५० ॥ मैत्रेय और विदुरजीका कहा संवाद जिसमें ब्रह्मविद्याका वर्णन था. अथवा मैत्रेयजीने उनसे बूझा तौ विदुरजीने उनसे क्या तत्त्वज्ञान कहा ! ॥ ५१ ॥ हे सौम्य ! उन विदुरजीकी कथाका वर्णन करो; बांधवोंका त्यागनेका कारण, और फिर किस प्रकार प्रत्यावर्तन किया सो सब विस्तारसहित वर्णन कीजे ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले कि जो राजापरीक्षितने व्यासनन्दन शुकदेवजीसे बूझाथा, और भूपालसे जो कुछ भगवान् महामुनि शुकदेवजीने कहा सो राजेंद्रके ही प्रश्न अनुसार हम तुमसे कहते हैं ध्यान लगाकर सुनो ॥ ५३ ॥ जिस ईश्वरने श्रीमद्भागवत ब्रह्माजीसे आप कही, और ब्रह्माजीने नारदसे कही उस परमात्मा गुरुको बारंबार नमस्कार है ॥ वह सच्चिदानन्द निर्विकार वेदान्तरूप कैसे गुरु हैं कि जैसा इस निम्नलिखित कवित्तमें कहा है.

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते द्वितीय-स्कन्धे अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां पुरुषसंस्थानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इति

शुकसागर द्वितीयस्कन्ध

समाप्त.

श्रीमद्वेंकटेशो विजयतेतराम् ।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा ।

तृतीयस्कन्ध ३.

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालय बम्बई.

॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥
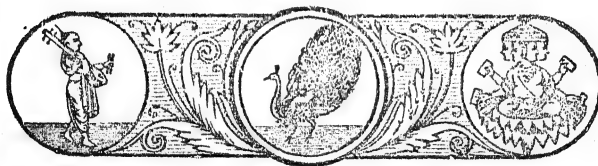
शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

तृतीय स्कन्ध।

सोरठा—जय गजवदन गणेश, विघ्नकदनप्रद सुखसदन।
एकरदन सम वेश, मदनकदनके वर नँदन ॥ १ ॥
जय श्रीनन्दकुमार, व्रजभूषण दूषणहरण।
अपनो दास निहार, दयासिंधु कीजे दया ॥ २ ॥
दोहा—कह्यो द्वितिय स्कन्ध शुक, पुनि प्रभुपद धर ध्यान।
कथा तृतीयस्कंधकी, लागे करन बखान ॥ ३ ॥
इस तृतीय स्कन्धके, तेतीसों अध्याय।
कहे परीक्षितनृपतिसों, शुकाचार्य समुझाय ॥ ४ ॥

तीसरे स्कन्धमें ततीस अध्याय हैं, जिनमें सर्गका वर्णन हैं। ईश्वरकी इच्छासे गुणोंके चलायमान होनेसे ब्रह्माण्डका होना इसका नाम सर्ग है, प्रथम अध्यायमें क्षीणआयु बान्धवोंको त्याग विदुरजी जैसे घरसे चलेगये उनका संवाद आदिसे वर्णन करते हैं। पहिले

भगवानका और ब्रह्माका संवाद संक्षेपसे कहाहै; अब फिर शेषजीकी कही भागवत सुन्दर विस्तारसे कहतेहैं। दो प्रकारसे श्रीमद्भागवतके संप्रदायकी प्रवृत्ति है; एक संक्षेपसे श्रीनारायण ब्रह्माके द्वारा, और विस्तारसे शेषजी, सनत्कुमार, सांख्यायनादि द्वारा हुई. तहां द्वितीयस्कन्धमें श्रीनारायण ब्रह्माके संवादमें संक्षेपसे "अहमेवासमेवाग्रे" इत्यादि करके चतुःश्लोकी भागवत कही. सोई ब्रह्मा नारदके संवादसे दशलक्षणसे कुछ विस्तारसहित कही, सोई शेषजीकी कहीहुईको अब अतिविस्तारसे कहनेके कारण तृतीय स्कंधका प्रारम्भ है। पहिले चार अध्यायमें बिदुर मैत्रेयका संगम, फिर आठ अध्यायोंमें विसर्गसहित सब प्रपंच कहा, विसर्गके प्रस्तावसे सात अध्यायोंमें वाराह अवतारका वर्णन कियाहै; एक अध्यायमें विसर्ग की संपूर्णता कहीहै; फिर चार अध्यायमें कपिलदेवजीके अवतारकी कथा कहीहै; इसके पीछे नव अध्यायमें, कपिलदेवजीका आख्यान किया। इस प्रकार तृतीय स्कन्धकी तेंतीस अध्यायमें. प्रवृत्तिहै ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण! सर्व सम्पदासे पूर्ण गृहको त्याग वनमें जा बिदुरजीने निश्चय कर भगवान् मैत्रेयजीसे पहले यह चारित्र इस प्रकार बूझा ॥ १ ॥ सर्वके ईश्वर, षड्गुण ऐश्वर्यवान् यह जगन्नाथ श्रीकृष्ण तुम्हारे पांडवोंके मंत्री हुए. और दुर्योधनके गृहको त्याग विदुरको अपना जान उसके घरपर गये ॥ २ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने कहा कि हे समर्थ शुकाचार्य! भगवान् मैत्रेय और विदुरजीका सत्संग कहां हुआ? और किस समय हुआ? सो विस्तारसे कहिये ॥ ३ ॥ हे मुने! उन शुद्धात्मा विदुरजीका प्रश्न ऐसे महात्मा मैत्रेयजीसे कुछ थोडे प्रयोजनका देनेवाला तो न हुआ होगा, वरन अधिकही प्रयोजनका साधक होगा; क्योंकि जिसके प्रश्नको सराहना महात्मा पुरुष करतेहैं ॥ ४ ॥ सूतजी बोले "कि राजा परीक्षितका अत्युत्तम प्रश्न सुनकर आत्मज्ञानी प्रसन्न मन श्रीशुकदेवजी बोले" कि हे नरपाल! सुनो-जिस समय दुष्ट राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंको पुष्टकियाथा; इसलिये अधर्मसे विनष्टदृष्टि हुई, सो बडे भाई पाण्डुके अनाथपुत्रोंको लाक्षाभवनमें प्रवेश करवाकर उनको जलानेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ ६ ॥ जिस समय सभामें अपनी पुत्रवधू राजा युधिष्ठिरकी पत्नी द्रौपदी अपने अश्रुजलसे पयोधरोंकी कुंकुमको धोरहीथी, उसके केशोंको पकड खैंच रहाथा, यह पुत्रका कुकर्म देखकर भी धृतराष्ट्रने उसको नहीं निवारण किया ॥ ७ ॥ अधर्मसे जुएमें हारे हुए, सीधे सत्यवादी बारहवर्ष वनमें बस जब घर आये तब पुरोहितको भेजा और अपना राज्य मांगा और महाप्रतापी राजा युधिष्ठिर जिनका कोई शत्रु नहीं उनको अधर्मी दुर्योधनसेवी, धृतराष्ट्रने भागदेना नहीं स्वीकार किया ॥ ८ ॥ जिस समय युधिष्ठिरके भेजेहुए जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रजीने सब पुरुषोंको अमृततुल्य वचन सभामें सुनाये तब नष्टपुण्य धृतराष्ट्रने उन वचनोंका बहुत मान न किया ॥ ९ ॥ दुर्योधनने द्वारकानाथको सिंहासन बैठाय बडा आदर सन्मान किया, और कुशल क्षेम बूझकर कहा, आपने बडी कृपाकी जो मुझे दर्शन दिया, परन्तु यह तो कहिये कि यहाँ कैसे आना हुआ तब नंदनंदन बोले कि हे कुरुपति! मैं इस

कारण तुम्हारे पास आया हूं कि पाण्डवोंका भाग बाँट दो, क्योंकि ऐसा करनेसे आपका लोक और परलोक दोनोंमें यश होगा. और जो उनका भाग न दोगे तो बहुत बुराई निकलैगी ॥

दोहा–आपसमें बढिहै कलह, हुइ है कुलसंहार।
तातें कुरुपति मानिये, इतनी कही हमार ॥ १ ॥

चौपाई।

सुन यदुनन्दनकी मृदु वानी * बोला वचन महाअभिमानी ॥
कहा सँदेशा लेकर आये * भाग भाग्यवानोंने पाये ॥
दायभाग तो बहुत कहावै * इसमेंसे कोउ तनक न पावै ॥
सूची अग्रभाग महि जेती * बिन रण देहौं तिनहिं न तेती॥

ऐसे कह झरांता बरांता वहाँसे उठकर चलदिया और श्रीकृष्णजीकी बातपर कुछ ध्यान नहीं किया, जब मनुष्यके बुरेदिन आतेहैं तो उसकी बुद्धि विपरीत हो जातीहै, यदुनाथ फिर विराटपुरको लौट आये, और राजा युधिष्ठिरको सब वृत्तान्त सुनाकर बोले " मैं जानताहूं कि दुर्योधन और धृतराष्ट्रके पुण्यका अस्त होगया, जो उन्होंने मेरे वचनको न माना " अब जिस प्रकार विदुरकी अवज्ञा हुई सो कहतेहैं। जिस समय मदान्ध धृतराष्ट्रने अपने गृहमें विदुरजीको परामर्श करनेके लिये बुलाया उस समय बडे ध्वजाधारीपुरुषोंमें जो सम्मति विदुरजीने प्रकाश की उन विदुरजीके वाक्योंको आजतक नीतिवेत्ता लोग "विदुर-नीति" कहते हैं। [परीक्षित बोले, कि कृपासिंधु ! क्या विदुरजी नीतिविद्यामें ऐसे निपुण थे, जो नीतिज्ञलोग उनकी प्रशंसा करतेहैं ? शुकदेवजी बोले क्या तुमने उनकी विद्या और गुणका वृत्तान्त नहीं सुना ? वह परमेश्वरके परमभक्त चार वेद, षट्शास्त्र, अठारह पुराणके जाननेवाले, प्रत्येक विद्यामें चतुर, जिनका रचाहुआ " विदुरनीति " नाम ग्रंथ ऐसा अद्भुत है कि उसकी सदृश आजतक दूसरा ग्रन्थ नीतिशास्त्रका नहीं है; जो अबतक संसारमें सूर्यके समान प्रकाशवान् और प्रसिद्ध है ! राजा परीक्षित बोले कि ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है तो पहिले उसीको सुनाइये । श्रीशुकदेवजी बोले. कि हे राजन् ! एक समय राजा धृतराष्ट्रके निकट संजय आया, और कौरवोंकी निन्दा करके बोला. कि कल मैं राज-सभामें आऊंगा. और जहां भीष्म, कर्ण, द्रोणादिक बैठे होंगे वहां सबके सन्मुख पाण्डवोंका एक संदेशा सुनाऊंगा, फिर जो कुछ होना होगा सो देखा जायगा. यह बात कहकर संजय तो अपने स्थानको चलागया. और राजा धृतराष्ट्रने अपने चित्तमें चिन्ता करके आत्मज्ञानी, अत्यन्त बुद्धिमान्, निस्पृह, सब सन्देहोंके समाधान करनेवाले विदुरजीको बुलाकर कहा, कि हे विदुरजी ! कल संजय हमारे निकट आकर हमारा तिरस्कार कर गया है, और युधिष्ठिरने जो कुछ संदेशा उससे कहा है, वह प्रातःकालही संजय सभामें आनकर युधि-ष्ठिरके कहे हुए वाक्योंको कहेगा, न जानिये युधिष्ठिरने क्या कहा है ? और न जानिये उसके कहनेसे क्या उपद्रव हो ? सो उस कुरुवीर युधिष्ठिरके वचनोंका अभिप्राय अभीतक

मैंने नहीं जाना है, जबसे वह कह गया है कि मैं सभामें कहूंगा, तबसे मैं अपार शोक-सागरमें निमग्न पडाहूं, चित्त व्याकुल हो रहाहै, निद्रा नेत्रोंके निकट नहीं आती, जाग्रत रहकर केवल चिन्तानलसे मेरा हृदय जलरहाहै ॥ सो हे तात ! जिस बातमें मेरा कल्याण हो, और यह संताप दूरहो, वह उपाय करो। क्योंकि एक तुमही हमारे कुलमें ज्ञानी और धर्मार्थमें कुशलहो ॥ १ ॥ जबसे संजय पाण्डवोंके समीपसे आयाहै तबसे मेरे चित्तमें किसीप्रकारकी शांति यथावत् नहीं है, सब इन्द्रियोंने अपनी अपनी प्रकृतिको छोड दिया, और चिन्तासे मेरे हृदयमें दाह लग रहीहै, यह दाह मेरे सब अंगोंको भस्म करे डालतीहै, मुझको बडी भारी चिन्ता यहीहै, कि न जानिये संजय क्या कहेगा? ॥ २ ॥ विदुरजी बोले, कि संजय तो परमधार्मिक, विवेकी, और महात्मा पुरुष है; इस लिये वह कभी अन्यथा बात नहीं कहैगा. परन्तु तुमसे तो कुछ अपराध नहीं हुआहै ? निद्रा चार जनोंको नहीं आतीहै. जिसको किसीका बल और सहायता नहो । और बलवानसे बैर करे १ जिसका सब सर्वस्व हरण होगयाहो २ कामीको ३ और चोरको ४ उनहींकी निद्रा जाती रहती है ॥ ३ ॥ सो हे राजन् ! इन चारों कर्मोंमेंसे तुमसे तो कोई ऐसा कुकर्म नहीं हुआ? परन्तु मुझको यह जान पडताहै कि तुम दूसरेके धनका लोभ न करते तो यह महाक्लेश कभी नहीं पाते ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्र बोले, कि हे विदुर ! मैं तुम्हारे धर्मानुगत सर्वमंगलदायक परमानन्दकारी, मनोहर वचनोंको सुनाचाहताहूं ? सो कीर्तन करो क्योंकि इस राजवंशमें केवल एक तुमहीं प्राज्ञसम्मत हो ॥ ५ ॥ विदुरजी बोले, कि जो सर्व सुलक्षणसम्पन्न राजा युधिष्ठिर त्रिलोकीके अधिपति हो सक्ते हैं, उन युधिष्ठिरको आपने वनको भेजकर वनवासी बनाया ॥ ६ ॥ तुम धर्मात्मा और धार्मिकोंमें चतुर होकर नयनहीनतासे विपरीत अर्थात् राज्यलक्षणसे हीन हो. और राज्य प्राप्तिके योग्य नहीं हो ॥ ७ ॥ पाण्डवलोग क्रूरताके अभाव, दया, धर्म, सत्य, पराक्रम, नाम अपने गुणोंसे तुमको गुरुसमान जान, ज्ञान करके अशेष क्लेशको सहते हैं ॥ ८ ॥ और आप इन दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासनको ऐश्वर्यभार समर्प्पण करके किस प्रकारसे विभूतिकी इच्छा करते हो ? ॥ ९ ॥ हे महाराज ! आत्मज्ञान. कर्मारम्भ, क्षमा और धर्मसे स्थिति, यह सब गुण जिस पुरुषको अर्थसे विचलित नहीं करसकैं, वही पण्डित है ॥ १० ॥ जो पुरुष श्रेष्ठ कर्मोंका सेवन करताहै, निन्दित कर्मोंका परित्याग करताहै. जो अनास्तिक और श्रद्धावान् होकर प्रशस्त कार्यानुष्ठान करताहै, वही पण्डित हैं ॥ ११ ॥ जो पुरुष क्रोध, हर्ष, दर्प, लज्जा, अनम्रता, और आत्माभिमानके परतंत्र न हो, अर्थात् पृथक् होय वही पण्डित है ॥ १२ ॥ जिसके कार्य और मंत्रणाका जबतक फल न होजाय तबतक शत्रुगण नहीं जानसकें वही पण्डित है ॥ १३ ॥ और शीत, ग्रीष्म, भय, प्रीति, समृद्धि, असमृद्धिसे जिसके कार्यमें विघ्न नहीं होताहै वही पण्डित है ॥ १४ ॥ और जिसकी स्वाभाविकी बुद्धि धर्मार्थकी अनुगामिनी है और जो दोनों लोकके सुखकी कामना करते हैं वेही पण्डित हैं ॥ १५ ॥ जो अपनी शक्तिके अनुसार कार्यसाधनकी इच्छा करते हैं, और किसीविषयमें अवज्ञा-

प्रदर्शन नहीं करते हैं वेही पण्डित हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष प्रत्येक कार्यको शीघ्रही जान जाते हैं और अधिककालतक शास्त्रोंको ज्ञानके दृढतार्थ सुनते हैं, अर्थको विशेष जानकर सेवन करते हैं, कामवश हो, अर्थसाधनमें प्रवृत्ति नहीं होती है और दूसरेके प्रयोजनमें भाषण नहीं करते, वेही पण्डितहैं ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य अप्राप्य वस्तुके लाभके निमित्त अभिलाषी नहीं होतेहैं, और विनष्ट वस्तुके लिये शोक सन्ताप नहीं करते हैं, और आपत्कालमें मोहित नहीं होतेहैं, वेही जन पण्डित हैं ॥ १८ ॥ और जो जन पहिले निश्चय करके पीछे उस कार्यके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होतेहैं और उस कार्यके किये विना चित्तमें शान्त नहीं होते और क्षण मुहूर्त्तमात्रको वृथा अतिबाहित नहीं करते हैं. वेही पण्डित हैं ॥ ॥ १९ ॥ और जो श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रीति करते हैं, ऐश्वर्य देनेवाले कर्मोंको हितकारी समझते हैं. अपने हित, सुहृद जनोंकी निन्दा नहीं करते; हे भरतर्षभ! वही चतुर पण्डित हैं ॥ ॥ २० ॥ जो जन अपने सन्मानसे हर्षित नहीं होते और अपमानका दुःख नहीं मानते, सदा गंगाके ह्रदकी समान अविचलित और क्षोभहीन रहते हैं वेही जन श्रेष्ठ पण्डित हैं ॥ ॥ २१ ॥ जो पुरुष सर्वभूतके तत्त्वज्ञ, सर्व कर्मोंके योगज्ञ और सर्व प्राणियोंके उपायज्ञ हैं वेही पण्डित हैं ॥ २२ ॥ और जो अकुण्ठित चित्तसे वाक्यप्रयोग करते हैं, लोकवार्तासे परिज्ञात रहते हैं, तर्कमें विशेष प्रतिभा लाभ करते हैं, और शीघ्र ग्रन्थार्थकी व्याख्या कर सक्ते हैं, वेही पण्डित हैं ॥ २३ ॥ जिसका शास्त्र बुद्धिका अनुगामी है और बुद्धि शास्त्रानुसारिणी है, और बुद्धिके अनुसार श्रेष्ठ जनोंकी मर्यादा रखनेवाले हैं, वेही चतुर पण्डित हैं ॥ २४ ॥ अब मूर्खोंके लक्षण कहते हैं-जो पुरुष विना शास्त्रके अध्ययन कर्ता पण्डितोंकी समान अभिमान करते हैं, दरिद्री होकर धनियोंकी सदृश धनका गर्व करते हैं और कुकर्मसे धन उपार्जनकी इच्छा करते हैं, वेही जन मूर्ख हैं ॥ २५ ॥ और जो जन अपने प्रयोजनको त्यागकर दूसरेके कार्यका अनुष्ठान करतेहैं और इष्ट मित्रोंके कार्यसाधनमें मिथ्याचरण करते हैं वेही मूर्ख हैं ॥२६॥ और जो भक्तिहीन पुरुषोंसे स्नेह करते हैं, महात्मा और भक्तजनोका परित्याग करते हैं और बलवान् पुरुषोंसे विद्रोह रखते हैं, वेही मूर्ख हैं ॥ २७ ॥ और जो मनुष्य शत्रुजनोंको मित्र समझते हैं और मित्रोंसे द्वेष रखते हैं कुत्सित कर्माचार (हिंसाद्यूतचोरी)में प्रवृत्त रहतेहैं वेही मूर्ख हैं ॥२८॥ और जो पुरुष सांसारिक कर्मोंको और अपने करने योग्य कर्मोंको भृत्य जनोंसे कराते हैं और पीछे उनकी परीक्षा करते हैं,शीघ्र करनेयोग्य कर्ममें विलम्ब करते हैं,हे भरतर्षभ! वेही मूर्ख हैं ॥२९॥जो जन पितरोंका श्राद्ध तर्पण देवपूजादिक नहीं करते, सुहृद् मित्रोंसे नहीं मिलते और रीति प्रीति नहीं रखते, वेही मूर्ख हैं ॥३०॥ और जो विना बुलाये किसीके घर जाते हैं, और विनाबूझे बात कहते हैं अविश्वस्त पुरुषका विश्वास करते हैं ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य आप दोषी होकर दूसरेको दोष लगाकर निरादर करतेहैं और निर्बल होकर सदा बलवानोंपर क्रोध करते हैं, वेही मूर्ख हैं॥ ३२॥ अपने बलको आप समझैं नहीं, धर्म अर्थको जाने नहीं, जो वस्तु मिलनेके योग्य नहीं हो उसकी विनाही उद्योग किये इच्छा करते हैं, जहां लाभ होनेकी किञ्चिन्मात्र भी आशा नहीं

वहांसे लाभकी आशा करते हैं, कृपणका आश्रय करते हैं, वेही मनुष्य मूर्ख कहलाते हैं॥ ३३॥ जो पुरुष अशिष्यको उपदेश करते हैं और शून्य राज्यद्वारादिकका सेवन करते हैं, लोभीसे लाभकी इच्छा रखते हैं, वे मूढचित्त कहलातेहैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य अधिक धन, विद्या, वा ऐश्वर्यको पाकर अभिमान रहित विचार करते हैं, वेही पण्डितहैं, ॥ ३५ ॥ हे महाराज जो जन अपने भृत्यगणोंको यथोचित भाग प्रदान न करते उस सम्पदा, वस्त्र, आभूषणोंको आपही अकेले भोगते हैं, अपने आश्रयवालोंके विषयमें बहुत कृपणता करते हैं और अनर्थ करके धन सञ्चय करते हैं, और आप उस धनका भोग नहीं भोगते औरही दूसरे भोगते हैं केवल वे उनके पापोंहीके भागी होते हैं, यह सब मूर्खोंके लक्षण हैं ॥ ३६॥ अकेला पापोंसे द्रव्य संग्रह करके कुटुम्बका पालन पोषण करता है और सब घरभर उस फलको भोगता है परन्तु सब भोक्ता मुक्त होते हैं एक केवल कर्ता दोषमें लिप्तही रहता है ॥ ३७ ॥ देखिये धनुषके छोडेहुए बाणसे एक बारही प्राणनाश होना कठिन है मारै वा न मारै, परन्तु बुद्धिमान्के बुद्धिप्रभावसे राजा और राज्य एकबारही विनष्ट हो सक्ता है ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! इस समय आप बुद्धिपूर्वक कार्य्याकार्य्य निर्द्धारण करके साम, दान, दण्ड, भेद उपायचतुष्टयसे मित्र उदासीन और शत्रुगणको वशीभूत, इन्द्रियपराजय, सन्धिविग्रहादिक ज्ञान लाभ और स्त्री, अक्ष, मृगया, पान, वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य, और अर्थपारुष्यका परित्याग करके सुख स्वच्छन्दसे कालयापन कीजिये ॥ ३९ ॥ देखिये विष, वा शस्त्र, एकही प्राणीका विनाश करसक्ता है, परन्तु मंत्रका विगाड होनेसे राजा, राज्य, प्रजा एकबारही विनष्ट हो सक्ता है. इसलिये राज्यकी गुप्तबात प्रगट करनी नहीं चाहिये ॥ ४० ॥ अकेले छिप छिप कर स्वादिष्ट भोजन खाना नहीं चाहिये अकेलाही सर्व द्रव्य लेनेकी इच्छा न करे, अकेला मनुष्य मार्गमें न चलै, जहां बहुतसे मनुष्य सोते होंय वहां अकेले मनुष्यको जागना नहीं चाहिये ॥ ४१ ॥ हे महाराज ! वह एकहीहै दूसरा अपनी समताका नहीं रखता, उसकी महिमा परम अगाधहै जो स्वर्गके मार्गकी सीढी और संसारसागरके तरनेकेलिये नौका ऐसा जो सब धर्मोंमें श्रेष्ठ "सत्य" है उसको कभी नहीं छोडना चाहिये ॥ ४२ ॥ क्षमावान् पुरुषोंके चित्तमें दया बहुत होती है इसलिये वह किसीपर उपद्रव नहीं करते, इसीसे लोग उन क्षमायुक्त पुरुषोंको निर्बल और असमर्थ कहते हैं, परन्तु उन पुरुषोंमेंसे यह दोष निकलना नहीं चाहिये, क्योंकि क्षमाकी समान बल दूसरा नहीं है ॥ ४३ ॥ इस बातका दोष नहीं समझनाचाहिये, क्योंके क्षमाही महाबल है, क्षमाही असमर्थोंका परम-गुण है, समर्थोंका क्षमाही भूषण हैं ॥ ४४ ॥ संसारमें क्षमाही वशीकरण है, क्षमासे किसवस्तुका साधन नहीं होसक्ता ? जिसके हाथमें क्षमारूप खड्ग है तो फिर शत्रु उसका क्या कर सक्ताहै ? ॥ ४५ ॥ जैसे तृणरहित स्थानमें अग्नि आपही शान्त होजाती है, तैसे क्षमाहीन पुरुष क्षमावाले पुरुषका कुछ कर नहीं सक्ता. परन्तु क्षमाहीन पुरुष आपही अपराधी होजाता है ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! केवल अकेला धर्मही सर्व मंगलदायक है, अकेला क्षमाही सर्व शान्ति करनेवाली है, अकेली विद्याही सर्व तृप्तियोंकी करनेवाली है,

अकेली अहिंसाही अनेक सुखोंका मूल है ॥ ४७ ॥ युद्ध करनेवाले राजाको विदेशहीन ब्राह्मणको विदेशकी भूमि निगल जातीहै, जैसे सर्प बिलके रहनेवाले जीवोंको निगल जाता है ॥ ४८ ॥ मनुष्यको इसलोकमें कठोर वाक्यका प्रयोग, और नीचलोगोंका पूजन परित्याग करनेसे अत्यन्त यश और लाभ प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥ हे पुरुषोत्तम ! यह दोनों प्राणी दूसरेका विश्वास करनेवालेहैं एक स्त्रीने जो जो वस्तु संग्रह करी हैं उसको देखकर दूसरीभी इच्छा करती है, और जो पुरुष एक एकका पूजन करता है उसको देखकर दूसरा पुरुषभी उसीका पूजन करता है ॥ ५० ॥ यह दोनों तीक्ष्ण कण्टक अपनेही शरीरको सोखते हैं. निर्धनकी अभिलाषा, और अनीश्वरका क्रोध ॥ ५१ ॥ यह दोनों अपने विपरीतकर्मसे यश नहीं पाते, जो गृहस्थ होकर संसारीके कर्मोंको त्यागदे, और संन्यासी होकर संसारीके कर्म करै ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! यह दोनों पुरुष स्वर्गवासी होते हैं; दरिद्री होकर दाता, और राजा होकर कृपालु ॥ ५३ ॥ न्यायसे जो धन प्राप्त हो, तो उसकी दो प्रकारकी मर्यादा बांधनी चाहिये. कुपात्रको न देना, और सुपात्रको देना ॥ ५४ ॥ जो पुरुष अपरिमित धनसम्पन्न होकर अदाता होय, और दरिद्री होकर तप-परायण न होय, इन दोनोंके गलेमें दृढ़ शिला बांधकर महागम्भीर जलमें डुबाना चाहिये, ॥ ५५ ॥ हे पुरुषोत्तम ! यह दोनों सिंहपुरुष, सूर्यमण्डलको भेदकर परमधामको जानेवाले हैं, योगमें युक्त संन्यासी. और रणस्थलमें शत्रुके सन्मुख मरनेवाला वीर ॥ ५६ ॥ हे भरतर्षभ ! मनुष्योंके तीन उपायहैं, अधम (युद्धकरना) १ मध्यम (भेदसे दानकरना) २ उत्तम (सामसात्त्विकी से कर्म करना) ३ अथवा अधम कामके अर्थ युद्धकरना. मध्यम ऐहिक लोभसे दान देना, उत्तम सात्विकी वृत्तिसे योग करना. इसप्रकार वेदवेत्ता लोग कहते हैं ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! पुरुष तीन प्रकारके होते हैं, उत्तम, मध्यम, और अधम, उनको तीनही प्रकारके कर्ममें यथाक्रम नियत करना चाहिये ॥ ५८ ॥ हे महाराज ! स्त्री, दास, पुत्र, यह तीनों निर्धन हैं, क्योंकि यह जिसके होते हैं, वही इनके उपार्जन कियेहुये द्रव्यका स्वामी होता है ॥ ५९ ॥ इसलिये परद्रव्यापहरण, परदाराभिमर्शन, और सुहृद्-बन्धुपरित्याग, यह तीनोंदोष महाभयानक कष्टके देनेवाले हैं ॥ ६० ॥ काम क्रोध और लोभ, यह तीनों महाघोर नरकमें डालनेवाले हैं, और आत्मविनाशके हेतु हैं इसलिये इन तीनों शत्रुओंका परित्याग करना चाहिये ॥ ६१ ॥ जो पुरुष भक्त, हरिउपासक, और शरणापन्न होकर अपना आश्रय ग्रहण करै तो तीनोंको महासंकटमेंभी परित्याग करना योग्य नहीं है ॥ ६२ ॥ हे महाराज ! देवतासे वरदानका मिलना लाभ है १ राज्यप्राप्ति होनेका लाभ है २ पुत्र जन्म होनेका लाभ है ३ परन्तु शत्रुके संकटसे छुटाना परमलाभ है ॥ ६३ ॥ महाबलीराजाको चार बातें करनी नहीं चाहिये. पण्डितलोग उनको जानते हैं, अल्पबुद्धि १ दीर्घसूत्री २ आलसी ३ और चारण ४ इन पुरुषोंके साथ सम्मति करनी अनुचित है ॥ ६४ ॥ हे तात ! जिस पुरुषको परमेश्वर लक्ष्मीवान् करै, अथवा गृहस्थ-धर्मका पालन करना चाहै, तो इन चार पुरुषोंका संग न छोडे. अपनी जातिका बडाबूढा

जोकि कुलधर्मका उपदेश करनेवाला हो १ कुलीन जो बालकोंको आचार विचार सिखाने वालाहो २, दरिद्री मित्र जो बालकपनसे साथ रहा हो ३, सन्तानहीन भगिनी कि जिसके कुलमें कोई पालन पोषण करनेवाला न हो ४, अपने घरमें रखना चाहिये ॥ ६५ ॥ सुरगुरु बृहस्पतिजीने इन्द्रसे यह चार बातें कहीं थीं कि, यह चारों बातें तत्काल फल देनेवाली हैं सो मैं आपसे कहताहूं ॥ ६६ ॥ देवताओंका संकल्प १, बुद्धिमानोंका महानुभाव २, विद्यावानोंकी नम्रता ३, पापकरने वालोंका विनाश ४ ॥ ६७ ॥ हे भरतर्षभ ! चार कर्म सदा अभयदायकहैं. और विपरीत करनेसे भयके देनेवाले हैं. अहंकारसे अग्निहोत्र कर्म करना १, अहंकारसे मौन धारण करना २, अहंकारसे पण्डित बनजाना ३, और अहंकारसे यज्ञ करना ४ ॥ ६८ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! मनुष्यको बडे यत्नद्वारा पांच अग्नि सेवन करने योग्य हैं. पिता, माता, अग्नि, आत्मा, गुरु ॥ ६९ ॥ जो मनुष्य जगतमें अपनी कीर्ति चाहै तो देवता १ पितृ २ मनुष्य ३ भिक्षुक ४ अतिथि ५ इन पांचोंका पूजन यथायोग्य करै ॥ ७० ॥ हे महाराज ! राजा लोग जहां जहां जाते हैं वहां यह पांचों उनके साथ रहते हैं. मित्र १ शत्रु २ मध्यस्थ ३ गुरु ४ और आश्रित ५ ॥ ७१ ॥ श्रोत्र १ त्वचा २ चक्षु ३ जिह्वा ४ घ्राण ५ इन पांचों इन्द्रियोंमेंसे एक वा दोभी भ्रष्ट हो जाती है तो पीछे बुद्धिका धीरे धीरे सम्पूर्ण नाश होजाताहै जैसे जलसे पूर्ण चर्ममयपात्रके किसी स्थानमें किञ्चित् छिद्रहोनेसे समस्त जल निकल जाता है, इसीलिये इन्द्रियोंका रोकना सम्भव है ॥ ७२ ॥ ऐश्वर्य अभिलाषी पुरुषको, निद्रा १ तन्द्रा २ भय ३ क्रोध ४ आलस्य ५ दीर्घसूत्रता ६ यह छे दोष परित्याग करने अवश्य चाहिये ॥ ७३ ॥ सत्य १ दान २ अनालस्य ३ अनसूया ४ क्षमा ५ और धैर्य ६ यह छे बातें प्राणीको कभीभी परित्याग करने नहीं चाहिये ॥ ७४ ॥ जैसे टूटी नौकाको चतुरनर समुद्रमें छोड देते हैं इसी प्रकार पुरुष इन छे जनोंका परित्याग करदे. धर्मउपदेश न करनेवाला पुरोहित १ वेद न जाननेवाला ऋत्विज २ ॥ ७५ ॥ रक्षाहीन नरेश ३ अप्रियवादिनीभार्या ४ ग्रामवासी ग्वालिया ५ और वनमें रहनेवाला नाई ६ ॥ ७६ ॥ यह छे बातें मुहूर्तके बिसारनेसे नष्ट होजाती हैं. गो १ सेवा २ खेती ३ स्त्री ४ विद्या ५ और नीचकी संगति ६ ॥ ७७ ॥ यह छे अपना कार्य होजानेपर उपकार करनेवालोंकी अवज्ञा करते हैं. शिक्षितशिष्य आचार्यका १ विगतकाम पुरुष नारीका २ सिद्धार्थ पुरुष प्रयोजनका ३ नदीके पार उतरनेके पीछे नाववालेका ४ रोगी अच्छा होनेके पीछे वैद्यका ५ विवाह होनेके पीछे पुत्र माताका ६ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ शरीरका आरोग्य होना १ किसीका ऋणी न होना २ सत्पुरुषोंकी संगति ३ अपने वशकी आजीविका होना ४ निर्भय स्थानका वास ५ परदेशमें न रहना ६ यही संसारमें रहने के छे सुख हैं ॥ ८० ॥ ईर्षा करनेवाला १ दयाहीन २ असन्तोषी ३ क्रोधी ४ नित्य शंकित ५ परभाग्योपजीवी ६ यह छे मनुष्य, सदा दुःखके भागी हैं ॥ ८१ ॥ नित्य धनका आगम १ आरोग्यता २ हितकारी मित्र ३ प्रियवादिनी स्त्री ४ आज्ञाकारी पुत्र ५ धनदायक विद्या ६ हे राजन् ! यही छे सुखके भूषण हैं ॥ ८२ ॥

काम १ क्रोध २ लोभ ३ मोह ४ मद ५ मत्सर ६ यह छै सदा मनुष्यके मनमें अवस्थान करते हैं. परन्तु जो इनका पराजय करताहे वही पुरुष संसारमें धन्य है ॥ ८३ ॥ यह छै प्राणी सदा पराये आश्रयसे जीते हैं, चोर असावधानोंसे १ वैद्य रोगियोंसे २ ॥ ८४ ॥ विषयी व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे ३ याचक यजमानोंसे ४ पण्डित मूर्खोंसे ५ और राजा विवादियोंसे ६ ॥ ८५ ॥ जो कि यह सात दोष व्यसन उदय करनेवाले हैं राजाको चाहिये कि इनका परित्याग करदे, बहुधा जिन दोषोंसे दृढमूल राजाभी विनाशको पातेहैं ॥ ८६ ॥ पाशेका खेल १ जुवा २ मृगया ३ मद्यपान ४ कठोर वचन ५ थोडे अन्यायपर अधिक दण्ड ६ अन्यायसे लिया हुआ धन ७ ॥ ८७ ॥ मनुष्यके नष्ट होनेके यह आठ लक्षण हैं. ब्राह्मणोंसे द्वेष करना १ उनसे विरोध रखना २ ॥ ८८ ॥ उनका धन हरलेना ३ उनको मारना ४ उनकी निन्दा और हास्य करना ५ उनकी कीर्ति नहीं चाहना ६ ॥ ८९ ॥ यज्ञादिक कर्मोंमें उनका स्मरण न करना ७, याचनाके समय निन्दा न करना ८, ज्ञानी पुरुषोंको उचित है कि इन दोषोंको त्यागदे ॥ ९० ॥ हे भरतवंशी ! हर्षके कारण केवल आठ वर्तमान दीखते हैं वेभी अत्यन्त दुःखरूप हैं ॥ ९१ ॥ बन्धुवर्गसे समागम १ विपुल अर्थागम २ पुत्रका आलिंगन ३ ॥ ९२ ॥ स्त्री संसर्ग ४ उपयुक्त समयमें प्रियालाप ५ स्वपक्षकी उन्नति व अपने समूहमें बडाई ६ अभिलषितवस्तुका लाभ ७ और सभामें सन्मान पूजा प्राप्ति ८ ॥ ९३ ॥ यह आठगुण पुरुषका प्रकाश करते हैं, सुबुद्धि १ उत्तम कुलमें जन्म २ चित्तस्वाधीन ३ शास्त्राध्ययन ४ पुरुषार्थ ५ सत्यभाषण ६ यथाशक्ति दान ७ और दूसरेका किया हुआ उपकार स्मरण रखना ८॥९४॥ हे महाराज ! इस देहरूप गृहमें नवद्वार हैं (नेत्रोंके छिद्र२ नाकके छिद्र २ श्रवणोंके छिद्र मुखका छिद्र१ मल, मूत्रके छिद्र२)तीन खम्भ हैं, (सतवगुण १ रजोगुण २ तमोगुण ३) पञ्च साक्षी हैं, (पृथ्वी १ जल २ पवन ३ तेज ४ आकाश ५) इस घरमें वास करनेवाला जीवात्मा है, वही परम पुरुष है, जो महात्मा जन उसको पहचानते हैं वेही पूर्ण पण्डितहैं ॥ ९५ ॥ हे कुरुकुलमुकुटमणि ! दश मनुष्य धर्मको नहीं जानते. सो हे धृतराष्ट्र ! आपके सन्मुख वर्णन करता हूं, मत्त १ (मद्यपीनेवाला) प्रमत्त २ (विषयासक्त) उन्मत्त ३ (रोगादिकसे) श्रान्त ४ (थकाहुआ) क्रुद्ध ५ (क्रोधसे भरा हुआ) बुभुक्षित ६ (भूखा) ॥ ९६ ॥ त्वरमाण ७ (उतावला) लुब्ध८ (लोभी) भीत ९ (डरनेवाला) कामी १० (कामातुर) इन दशपुरुषोंका अपने शरीरका ज्ञान नहीं रहता ॥९७॥ इस स्थलपर यह प्राचीन इतिहास कहते हैं कि जिसको असुरेन्द्रधन्वाने अपने पुत्रसे कहा ॥ ९८ ॥ कि जो राजा काम, क्रोधका परित्याग और सतपात्रको धन दान करते हैं, सब लोग विशेष ज्ञानी शास्त्रज्ञ और शीघ्र कर्म करनेवाले उनहीके मतानुसार कर्म करते हैं ॥ ॥ ९९ ॥ जो पुरुष मनुष्यको विश्वास उत्पन्न करासक्ते हैं जिनका अपराध जानते हैं उनको दण्ड देते हैं और उसके दोषके न्यूनाधिक्यकी विवेचना करसक्ते हैं. और विशेष मनुष्यपर क्षमा प्रदर्शन करते हैं, वेही राजा समस्त लक्ष्मीके आधार हैं ॥ १०० ॥ जो पुरुष अतीव दुर्बलजनकोंभो अवज्ञा नहीं करतेहैं, और शत्रुका छिद्रान्वेषण करनेको बुद्धि पूर्वक उसकी

शुश्रूषा करतेहैं, बलवानोंके साथ विरोध करना नहीं चाहते, और जो उपयुक्त समयपर बलप्रकाश करतेहैं वेही यथार्थ पण्डित हैं ॥ १०१ ॥ जो महात्मापुरुष आपत्कालमें व्यथित न होकर अप्रमत्त चित्तसे उद्योग करते हैं और समयपर दुःखपरसदन करते हैं वेही धुरन्धर शत्रुगणका पराजय करसक्ते हैं ॥ १०२ ॥ जो मनुष्य विना प्रयोजन घर छोडकर विदेश वास करते हैं १ पापीजनोंसे मिलाप २ परस्त्रीसे स्पर्श ३ दम्भ ४ चोरी ५ चुगुली ६ मद्यपानका सेवन नहीं करते हैं वेही सदैव सुखी हैं ॥ १०३ ॥ जो पुरुष क्रोधको त्यागकर अर्थ, धर्म, कामका प्रारम्भ करता है, सदा श्रेष्ठ सिद्धान्तको कहता है, मित्रसे विवाद नहीं करता है, वह ज्ञानी अपूजितभी कोप नहीं करता ॥ १०४ ॥ जो नर दूसरेमें दोषारोपण नहीं करते सदा दयाही करते हैं, निर्बल होनेपरभी विरोध नहीं करते, मर्यादाके विपरीत कोई बात नहीं कहते अत्यन्त विवादमें प्रवृत्त नहीं होते हैं और विवादका सहन करते हैं वेही पुरुष प्रशंसापाने योग्य हैं ॥ १०५ ॥ जो जन कभी उद्धतवेषको धारण नहीं करते अपने पुरुषार्थके प्रकाशके सन्मुख दूसरेकी निन्दा नहीं करते, और गर्वित होकर किसीपर, कटुवाक्य प्रयोग नहीं करते, उनका सबकोई प्रियानुष्ठान करतेहैं ॥ १०६ ॥ जो शान्त वैरको उद्दीपित नहीं करते, गर्वमें आरूढ नहीं होते, अपने आपको दुःखी मानकर दूसरेका अकार्य नहीं करते, आर्यपुरुषोंमें उस आर्यशीलको श्रेष्ठ कहते हैं ॥ १०७ ॥ जो जन अपने सुखमें परदुःखसे दुःखी नहीं होते और दान करके फिर पीछे पश्चात्ताप नहीं करते, वेहीसत्पुरुष आर्यशील कहाते हैं ॥ १०८ ॥ जो पुरुष देशाचार, भाषा भेद, और जातिधर्मोंके ऐश्वर्यकी प्राप्ति नहीं चाहता और अधर्मका विवेक रखनेवालाहै, वह नर जहाँ तहाँ वर्तमानकी समान महापुरुषोंके स्वामित्त्वको करता है ॥ १०९ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष दम्भ १ (परवञ्चनार्थ धर्मानुष्ठान) मोह २ (आत्मामें अनात्मबुद्धि) द्वेष ३ (मारणादिकपापकर्म) राज्यद्वेष ४ खलता ५ (चुगुली) बहुतजनोंसे शत्रुता ६ और मत्त, उन्मत्त, दुर्जनोंसे वाद विवाद नहीं करते हैं वेही पण्डित प्रधान पदवीके योग्य हैं ॥ ११० ॥ जो मनुष्य दान, होम, दैवत मंगल, अनेकप्रकारका लोकापवाद कर्म और प्रायश्चित्त, इत्यादि नित्य करते हैं, उन का देवताभी आराधन करते हैं ॥ १११ ॥ जो बुद्धिमान् समान पुरुषोंके साथ विवाह और प्रीति करते हैं, नीचोंके साथ नहीं करते, वेही श्रेष्ठ नीतिज्ञ और गुणियोंमें प्रधान हैं ॥ ॥ ११२ ॥ जो जन आश्रितलोगोंको यथायोग्य भाग देकर, तब आप परिमित भोजन करते हैं, अमित कर्म करके यथार्थ सोते हैं, और याचना करनेसे शत्रुकोभी द्रव्य दान देते, ऐसे महात्माजनोंको कभी अनर्थ प्राप्त नहीं होता ॥ ११३ ॥ जिसके मनका अच्छा बुरा कर्म दूसरा पुरुष नहीं जान सक्ता, और गुप्तभावसे मंत्रण करके कार्य अनुष्ठानकरते हैं, उनका अणुमात्रभी अर्थ नष्ट नहीं होसक्ता ॥ ११४ ॥ जो मनुष्य सब प्राणियोंके कल्याण करनेका उद्योग करता है, सत्य और मृदु भाषणसे दूसरेका सन्मान करता है, और शुद्ध-चित्त है, वह अपनी जातिमें अत्यन्त शोभा पाता है, जैसे उत्तम खानमें निर्मल मणि ॥ ॥ ११५ ॥ जो मनुष्य अपना दोष आपही जानकर लज्जित होता है, वह सब लोकका

गुरु और सूर्यकी समान देदीप्यमान होता है ॥ ११६ ॥ हे महाराज ! शापदग्ध राजा पाण्डुके पांच पुत्र इन्द्रकी सदृश पराक्रमी, वनमें जन्म लेकर आपहीके अनुग्रहसे पालन और शिक्षित किये गये. आपहीकी आज्ञाका प्रतिपालन करते हैं ॥११७॥ हे तात ! हे नरेन्द्र ! सो आप उनको समुचित भाग देकर पुत्रगणके सहित सुखसे कालयापन कीजिये, तब आपको कुछभी शंका नहीं रहेगी ॥ ११८ ॥

इति श्रीशालिग्रामवैश्यकृत-विदुरनीतिभाषानुवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र, बोले कि, हे विदुर ! जो जन जागृत होकर दुःखानलसे जलते हैं उनको क्या करना चाहिये ? हे तात ! धर्मार्थमें तुम कुशल हो ॥ १ ॥ हे विदुर ! प्रज्ञापूर्वक शास्त्रानुसार हमको ठीक ठीक उपदेश करो, जिसमें युधिष्ठिरका हितसाधन और कौरवगणका कल्याणकारी जो कर्म मानते हो सो कहो ? ॥ २ ॥ पापकी शंका रखनेवाला अपने पूर्व अपराधको देखकर मेरा आत्मा व्याकुल होता है, सो इसलिये मैं तुमसे बूझता हूं कि, हे सर्वज्ञ ! उस वृत्तान्तको ठीक ठीक मुझसे कहो ? जो कुछ युधिष्ठिरका मनोरथ है ॥ ३ ॥ विदुर बोले कि हे राजन् ! जो सब कर्म असत्य दोषसे दूषित है, और कार्यसाधनमें असदुपाय है, और अवलम्बन करना पडै, उसका स्मरण करनाभी उचित नहीं है ॥ ४ ॥ विना प्रयोजनके कोई कर्म नहीं करना; पहिले निश्चय करले पीछे उस कामका अनुष्ठान करना चाहिये. अधीरतासे कोई कर्म न करना ॥ ५ ॥ हे भरतवंशी ! मिथ्या कपट द्यूतसे और नीच उपायोंसे युक्त दुःखरूप फलवाले कर्म सिद्ध होयँ, उनमें मनको लगाना नहीं चाहिये ॥ ६ ॥ जो योगसे स्थापित, उपायके करनेसे कर्म सिद्ध न होय उसमें बुद्धिमान् अपने मनमें दुःख न माने कि, यह कर्म मुझसे नहीं हुआ ॥ ७ ॥ जिस कामको जो सहायता चाहिये उसका पहिलेहीसे प्रबन्ध बांधे, शीघ्रतासे हाथ डालना नहीं चाहिये ॥ ८ ॥ कर्मका परिणाम और प्रयोजन, अपने कामका उद्योग, और उसकी सामग्री, पहिले देखलेना, आरम्भकिया हुआ काम इस वस्तुसे सम्पूर्ण होगा वा नहीं, यह सब बातें विचार कर करना ॥ ९ ॥ जो नरेश अपने दुर्गका प्रबन्ध, सेनाका बल, स्थान, वृद्धि, क्षय, कोष, और दण्डका प्रमाण, नहीं जानते वे राजा किसी प्रकारका लाभ नहीं उठा सक्ते ॥ ॥ १० ॥ जो राजा इन कहेहुए प्रमाणोंको देखता है वा करता है; और अर्थ; धर्मके ज्ञानसे युक्त है वह राजा राज्यको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ राज्याधिकार पाकर जो राजा नम्रता रखता है और अविनयसे सदा लक्ष्मीका नाश करता है; उस राजाकी लक्ष्मी शीघ्रही नष्ट हो जाती है. जिस प्रकारसे बुढापा रमणीयोंके रूपको विनष्ट करता है ॥ १२ ॥ जैसे मछली गलको लगा हुआ मांस देख भक्षण करनेको दौडती है परन्तु वह यह नहीं जानती कि इस भक्ष्यमें लोहेका कांटा है और अपनेही कण्ठको छेदकर प्राणोंका लेनेवाला होजायगा ॥ १३ ॥ जो जो पदार्थ भक्षण करनेके योग्य हैं और जिसको भक्षण करके पचानेकी शक्ति है जीर्ण होकर वही हितकारी है और वही बलको और पुरुषार्थको बढाता है ॥

॥ १४ ॥ जो वृक्षके कच्चे फलोंको तोडकर खाता है वह उन फलोंके रसको नहीं पाता, और उसका बीजभी आगेको नष्ट होजाता है ॥ १५ ॥ और जो समयपर भूखे हुए पक्के फलको खाता है, वह उसके रसको पाता है और उसके बीजसेभी पुनर्वार फलको प्राप्त करता है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! जैसे भ्रमर पुष्पकी रक्षा करके उस रसका ग्रहण करता है; उसी प्रकार विना हिंसाकिये मनुष्य मनुष्यगणसे अर्थ ग्रहण करै ॥ १७ ॥ जैसे माली पुष्पवाटिकामें वृक्षसे फूल फल लेता है और मूलको स्थिर रखता है, ऐसे भ्रमर पुष्पकी सुगन्ध मात्र लेकर पुष्पको यथावत् रखता है ॥ १८ ॥ इस कामको करके मेरा क्या होगा ? मुझ अकर्ताका क्या होय ? इस प्रकार पुरुष विचार कर कर्मोंको करै चाहै न करै ॥ ॥ १९ ॥ बलवानोंके साथमें वैर करना योग्य नहीं है, क्योंकि उनका किया हुआ उपाय निरर्थक हैं ॥ २० ॥ जिसका प्रसादभी निष्फल है और क्रोधभी निष्फल है, उस स्वामीको कोई नहीं चाहते, जैसे स्त्रियें नपुंसक पुरुषको नहीं चाहतीं ॥ २१ ॥ ज्ञानी पुरुष उस कर्मों-को करते हैं, किं जिनका उपाय छोटा और फल बडा है, उनका शीघ्र आरम्भ करते हैं, ऐसे कार्योंमें विघ्न नहीं करते ॥ २२ ॥ जो जन सरल स्वभाव होकर प्रीति भरे नेत्रोंसे सबको देखते हैं, वह मौनभाव अवलम्बन करलें तो भी प्रजागण उनपर प्रीति रखते हैं ॥ ॥ २३ ॥ अच्छा पुष्पित (वचन नेत्रसे अफलदर्शक हो जो कि निष्फल) पालन करनेवाला हो और फल युक्त दुरारोह (भृत्यजनका अवश्य) होवे, और अपक्व (अन्तर्बलहीन) भी पक्व (वहिर्बलसे युक्त) की तुल्य कभी न गिरे ॥ २४ ॥ जो राजा नेत्र, मन, वचन, दान, इन चार प्रकारसे भृत्यवर्गको प्रसन्न करते हैं, वे उसपर प्रसन्न होतेहैं ॥ २५ ॥ जिसराजासे प्राणी ऐसे डरते हैं जैसे अहेरियेसे मृग, वह सागरान्त पृथ्वीको पाकरभी त्रास पाता है ॥ ॥ २६ ॥ जिसने अपने कर्मसे पूर्वजोंके राज्यको पाया वह अनीतिमें स्थित होनेवाला राजा उसको भ्रंशित करता है, जैसे पवन बादलको पाकर तितर बितर करदेताहै ॥ २७ ॥ आदि से सत्पुरुषोंके आचरित धर्मको करनेवाले राजाकी पृथ्वी धनसे पूर्ण और ऐश्वर्य बढानेवाली वृद्धि पाती है ॥ २८ ॥ और धर्मके त्यागनेवाले, और अधर्मके अनुष्ठान करनेवाले राजाकी पृथ्वी संकोचको पातीहै, जैसे अग्निमें पडकर चमडा सूखकर संकोचको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ जो प्रयत्न शत्रुके राज्य लेनेका किया जाता है वही उपाय अपने राज्य और प्रजापालनमें करना चाहिये ॥ ३० ॥ धर्मसे जिस राजाको राज्य प्राप्त होता है और धर्मसेही पालन करता है तो उसको धर्मका मूल लक्ष्मी प्राप्त होती है. वह लक्ष्मी उसको कभी नहीं छोडती, बरन धीरे धीरे बढती है ॥ ३१ ॥ कोई उन्मत्त बकवादकर रहा हो, वा जो ग्रहवातादिसे अचेत प्रलाप करनेवाला बालक अथवा बहुभाषी हो, उसमेंसे सारांशको लेलेना चाहिये जैसे पत्थरमेंसे सुवर्णको लेलेते हैं ॥ ३२ ॥ माता, पिता, गुरु, पण्डित, इत्यादिके भाषणमेंसे चतुरोंको उचित है कि उसमेंसे उत्तम उत्तम बातोंको छांट छांट सञ्चय करलें; जैसे रत्नपारखी अच्छे अच्छे रत्नोंका संग्रह करता है ॥ ३३ ॥ पशु सूंघनेसे जान सक्ता है, ब्राह्मणको वेदोंसे दीखताहै, राजाको सेवकोंके नेत्रोंसे दीखता है, और प्रजागणको अपने अपने नेत्रोंसे

दीखती है, ॥३४॥ हे राजन् ! जो गौ सुखसे दूध नहीं देती वह बहुत क्लेश पाती है, और जिसके दुहनेमें कुछ उपाय करना नहीं पड़ता वह किसीप्रकारका कष्ट नहीं पाती ॥ ३५ ॥ जो वस्तु विनाही तपाये चाहे जैसी झुकालो, तो फिर उस काष्ठको कोई अग्निमें डालकर नहीं तपाता; वह आपही झुकजाता है. इसप्रकार जो मनुष्य विनाही दण्ड दिये कार्य पूरा करदे उसको दण्ड देनेकी क्या आवश्यकता है? इसलिये आपको पाण्डवोंसे झुकना चाहिये ॥ क्योंकि वह महाबलवान् हैं ॥ ३६ ॥ पण्डित लोग इसी उपमासे बलवान्के समीप नम्र होते हैं, जो बलवान्से नम्र हैं, वे बलाधिष्ठातृ इन्द्रको प्रणाम करते हैं ॥ ३७ ॥ पशुओंको पर्जन्यका बल, राजाको मंत्रीका बल, ब्राह्मणको वेदका बल और स्त्रीको पतिका बल है ॥३८॥ सत्यसे धर्म रहता है, अभ्याससे विद्या रहती है, उबटन करनेसे रूप रहता है, और धर्मकी रक्षा करनेसे कुलका आचरण रहता है ॥ ३९ ॥ धान्यका तोलनेसे रक्षण होताहै, घोडेका फिरानेसे रक्षण होता है, गायोंका निरन्तर देखनेसे रक्षण होता है, और स्त्रीका रक्षण गाढवस्त्र पहरनेसे होता है ॥ ४० ॥ जिस मनुष्यका बडे कुलमें जन्म है परन्तु आचरणहीन है, तो उसको बडा नहीं समझना चाहिये ॥ ४१ ॥ जो पुरुष दूसरेके धन रूप, पुरुषार्थ, कुल, सुख, सम्पत्ति, और सत्कारको देखकर; ईर्षा करते हैं; उनको अनन्त बाधा लगी रहती हैं ॥ ४२ ॥ और जो मनुष्य विनाकाम करनेके कामसेभी डरताहै, करनेका काम करनेसेभी डरता है, और पहिले लोगोंकी सम्मतिके समाचार सुनकर भी डरताहै, ऐसे पुरुषोंको जो काम करना होय तो सावधानीसे करना चाहिये ॥ ४३ ॥ अयोग्य कर्मका अनुष्ठान, योग्यकर्मका त्याग, मंत्रमें भेद, इन तीनोंसे इष्टसिद्धिके पूर्व भययुक्त होय, और जिस लोभादिसे उन्मत्तहोय उसको पान नहीं करते ॥ ४४ ॥ विद्या-मद, धनमद, तीसरा कुलकी सहायका मद, यह तीनों मद मूर्खोंको वहुत चढते हैं; इनका त्याग करनाही सत्पुरुषोंका बाह्येन्द्रिय दम है. परन्तु यही सज्जन पुरुषोंको मिले तो उनमें और नम्रतापन आजाता है ॥ ४५ ॥ किसी मनुष्यने अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये दुर्जनका बहुत सन्मान किया तो वह इतनी बातमें अपने आपको सज्जन समझने लगा कि, हम सज्जन हैं, परन्तु दूसरे लोग उसको दुर्जन ही समझते हैं. यह बात उनके ध्यानमें नहीं आती ॥ ४६ ॥ आत्मज्ञानीकी साधु पुरुष विना गति नहीं होती, और साधुकीभी साधुविना गति नहीं होती, असाधुकोभी साधुही गति देते हैं, परन्तु साधुको असाधुकी आवश्यकता नहीं ॥ ४७ ॥ अच्छे वस्त्र शरीरमें पहिरनेवालेने सभा जीती, जिसके घरमें गायका दूध और मीठे भोजन हैं उसने स्वादिष्ठ भोज्यकी आशा जीती, वाहनपर बैठकर चलनेवालेने मार्ग जीता, और जिसका स्वभाव अच्छा है उसने सर्वस्वको जीता इसलिये पुरुषोंको अपना स्वभाव अच्छा रखना चाहिये ॥ ४८ ॥ पुरुषमें केवल एक शीलही प्रधान है. इस लोकमें जिसका शील नष्ट होगया उसका प्रयोजन धन, वन्धु और जीवन, सबही नष्ट हुआ समझो ॥ ४९ ॥ हे भरतर्षभ ! धनवानोंका श्रेष्ठ भोजन मांस है, और मध्यम भोजन गोरसहै और दरिद्रियोंके भोजनमें तेल प्रधान

है ॥ ५० ॥ और दरिद्री सदा मीठा अन्न भोजन करतेहैं, क्योंकि क्षुधा अनेक प्रकारके स्वाद उत्पन्न करतीहै वह धनवानोंको अति दुर्लभ है ॥ ५१ ॥ हे महीपति ! इस संसारमें बहुधा धनवानोंकी भोजनशक्ति विद्यमान नहीं है, दरिद्री लोग लक्कडभी खाजायँ तो पचा सक्ते हैं ॥ ५२ ॥ अधम पुरुषोंको जीविकाका भय है, मध्यम जनोंको मृत्युका भयहै, और उत्तम मनुष्योंको अपमानका अत्यन्त भयहै ॥ ५३ ॥ ऐश्वर्यका मद, मदपानसेभी अधिक निन्दनीय है. क्योंकि विना पतनहुए यह मद दूर नहीं होसक्ता ॥ ५४ ॥ यह लोक उन विषयोंमें वर्तमान वशमें न होनेवाली इन्द्रियोंसे तपाया जाताहै, जैसे सूर्यादिक ग्रहोंसे आक्रान्त होकर नक्षत्र तपाया जाताहै ॥ ५५ ॥ जिस मनुष्यके शरीरसे उत्पन्न हुए पांच विषय हैं, शब्द विषय (मधुरवचन बोलनेसे मनको हरताहै सो वस्तु १) स्पर्श (अंग स्पर्श होनेसे आनन्द देता है वह वस्तु २) रूप (सुन्दर शोभा देखकर भूल जाता है वह वस्तु ३),(रस जिह्वाको स्वादिष्ठ लगै वह वस्तु ४) गन्ध (सुगन्ध देकर चित्तको प्रसन्न करै वह वस्तु ५) यह पांच विषय हैं, जो जन इनके वशीभूत होगया उसकी आपत्तियां दिन दिन बढती जाती हैं, जैसे शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला ॥ ५६ ॥ जो पुरुष मनको तो न जीते, और इन्द्रियोंके जीतनेका मनोरथ करता है, उसको इन्द्रियां हीं, काम, क्रोध, शत्रुओंके वशमें डाल देती हैं ॥ ५७ ॥ इसलिये मनुष्यको उचित है कि प्रथम मनको जीते, तदनन्तर मंत्री, और काम, क्रोधको जीते. उस प्राणीके सब मनोरथ सिद्ध होजाते हैं ॥ ५८ ॥ जो पुरुष इन्द्रियोंको मनसमेत वशमें करनेवाला है, अपराधियोंको दण्डदेनेवाला है और विचार विचारकर सब कर्म करता हैं, उस धीर पुरुषको लक्ष्मी आप आनकर सेवन करती है ॥ ५९ ॥ हे महाराज ! पुरुषका शरीर रथ है, इसका सारथी मन है, इन्द्रियगण घोडे हैं, वह सावधान और चतुर पुरुष इन अश्वरूप इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह अपनी इच्छानुसार ठिकानेपर पहुँचता है, जैसे कोई प्रत्यक्ष रथपर बैठकर आनन्द भोगता है॥ ६०॥ ऐसेही इसका आत्माभी आनन्द भोगता है, यह निग्रहरहित इन्द्रियें गिरानेकोभी समर्थ हैं जैसे अशिक्षित और बेवश घोडे कुमार्गमें सारथीको खेंच लेजाते हैं, और ऊंचे नीचे स्थानमें रथ उलट जाता है ॥ ६१ ॥ जो पुरुष अजित इन्द्रियोंके द्वारा अर्थके हेतु अनर्थ-को देखते हैं, और अन्यायसे अर्थको देखते हैं बडे भारी दुःखको सुख मानते हैं, और सुखको दुःख जानते हैं यह अज्ञानियोंकी रीति है ॥ ६२ ॥ जो जन धर्मार्थको छोडकर इन्द्रियोंके वशमें रहकर उनका अनुगामी हो रहता है, वह शीघ्र वैभव, प्राण, धन, स्त्रीसे रहित होते हैं ॥ ६३ ॥ जो मनुष्य अर्थोंका स्वामी बनै, और इन्द्रियोंका स्वामी न बनै, वह इन्द्रियोंके अस्वामीपनसे ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ ६४ ॥ वशीभूत मन, बुद्धि, इन्द्रियोंके शुद्ध बुद्धिसे साक्षात् चैतन्यरूप आत्माको चाहै, क्योंकि आत्माका मित्र आत्माही है, और आत्माका शत्रुभी आत्मा है ॥ ६५ ॥ जिस आत्माके द्वारा आत्मा (बुद्धि) को जीतलिया, उस जीवात्माका मित्र आत्मा (बुद्धि) है, क्योंकि निश्चय वहीमित्र और वही शत्रु है ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! जैसे सूक्ष्म छिद्रवाले जालके द्वारा अवद्धारु मछलियां

नहीं पकडी जातीं. इसी प्रकार वे काम, क्रोध ज्ञानको नष्ट करतेहैं ॥ ६७ ॥ और जो मनुष्य इस संसारमें धर्मार्थको विचारकर जय साधनोंको करता है, वही साधक निरन्तर सुख भोगता है ॥६८॥ और जो मनुष्य पांच अंतर शत्रुओंको, जो कि मनरूप हैं, उनको विना जीते बाहिरके शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा कराता है, शत्रु लोग उसका तिरस्कार करतेहैं और उसको काम क्रोधादिक शत्रु भ्रष्ट करदेते हैं ॥ ६९ ॥ महात्मा राजा(रावणादि)ओंने इन्द्रियोंके अनीशत्वसे और ऐश्वर्य विलासोंके कारण निजकर्म (सीताहरणादि) से ऐश्वर्यसहित प्राण गमाया ॥ ७० ॥ पापियोंका त्यागन करनेसे और उनके साथ मित्रता करनेसे; पुण्यवान् पुरुषोंकोभी पापियोंकी संगतिसे उनका आधा पाप लगता है. जैसे सूखा काष्ठसे गीला मिलकर जल जाता है, इसलिये पापीपुरुषोंकी संगति कभीभी न करै ॥ ७१ ॥ जो मनुष्य पांच पांच प्रयोजन रखनेवाली कुमार्गगामी पञ्चशत्रु (इन्द्रियों) को वशमें नहीं करता है उसको आपत्ति ग्रस लेती हैं ॥ ७२ ॥ दुष्ट पुरुषके समीप यह आठगुण नहीं रहते, दूसरेको सुखी देखकर सन्तोष करना १ सरलपन २ शौच ३ सन्तोष ४ प्रियवचन कहना ५ इन्द्रियोंका दमन ६ सत्यभाषण ७ शान्ति ८ ॥ ७३ ॥ हे भरतवंशी ! ब्रह्मज्ञान १ शान्ति २ द्वंद्वसहन ३ शीलता ४ नित्यधर्मता ५ असम्बन्ध ६ प्रलापसे रहितवाणी ७ और दान ८ यह आठ गुण नीचोंमें नहीं होते ॥ ७४ ॥ सूक्ष्म भाषण और जो दुष्ट मनुष्य है वे कटुवाक्य और निन्दा करके महात्मा पुरुषोंको पीडा देते हैं. वक्ता पापको ग्रहण करताहै. और क्षमावान् पापसे छूटताहै ॥ ७२ ॥ हिंसा असाधुओंका बल है, दण्डविधान राजाओंका बल है, शुश्रूषा स्त्रियोंका बलहै, क्षमा और धर्म गुणवानोंका बल है ॥ ७६ ॥ राजाका वाक्संयम, कठिनतम माना है, गिनतीकेही शब्दोंसे भाषण करते हैं यह बहुत कठिन है, अर्थवान् चमत्कारसंयुक्त वैसेही बहुत बुलायके बोलनेसे अर्थचमत्कार नहीं छोडता यह वातही बहुत कठिन है, सारांश बहुत बोलना सबके लिये अच्छा नहीं होता ॥ ७७ ॥ बोलनेमें अच्छे शब्द आनेसे अत्यन्त हितकारी होते हैं, और वही दुष्ट वचन अनर्थोंको करते हैं ॥ ७८ ॥ बाणोंसे छेदन किया हुआ और कुल्हाडेसे काटा हुआ बन पुनर्वार उत्पन्न होजाता है; परन्तु दुर्वाक्यरूप-सायकका जो घाव लगता है वह किसी प्रकारसे नहीं भरसक्ता ॥ ७९ ॥ बाणादिक शस्त्र शरीरसे बाहिर निकल सक्ता है, परन्तु वचनरूप भाला हृदयमेंसे किसी प्रकार निकल नहीं सक्ता ॥ ॥ ८० ॥ वाक्यरूप बाण हृदयमें लगनेसे मनुष्यको रातदिन चैन नहीं पडता, इसलिये जो सज्जन पुरुष हैं वे वचनरूप बाणसे किसीका मर्मस्थल छेदन नहीं करते ॥ ८१ ॥ देवता लोग जिस पुरुषका पराभव करते हैं, उसकी बुद्धि मलिन हो जाती है. वह नीच कर्मोंको देखता है ॥ ८२ ॥ और वह पुरुष दुष्कर्महीका अनुसरण करता है; मृत्यु निकट और बुद्धि कलुषित होनेसे दुर्नीतिभी नीतिवत् प्रतीत होतीहै ॥ ८३ ॥ हे महाराज ! पाण्डवगणसे विरोध करके आपके पुत्रोंकी कैसी कलुषित बुद्धि होगई है और ऐसी अनीति चित्तमें बसी है कि, वह किसी प्रकार हृदयसे अलगही नहीं होती ॥ ८४ ॥ हे धृतराष्ट्र !

आप अपने पुत्रोंकी समान युधिष्ठिरको समझो, क्योंकि जो अपने लक्षणोंसे युक्त, त्रिलोकीका राजा होकर वह युधिष्ठिर आपका शिष्य बनता है ॥ ८५ ॥ वह सर्वधर्मार्थतत्त्वका जाननेवाला, पराक्रम और बुद्धिसे युक्त तुम्हारे सब पुत्रोंको उल्लंघन कर राज्यांश पाने योग्य है ॥ ८६ ॥ हे महाराज ! जो यह युधिष्ठिर धर्मध्वजाधारी श्रेष्ठ है. वह दयालुता, अक्रूरता, और आपकेसे अत्यन्त क्लेशोंको सहता है ॥ ८७ ॥

इति श्रीशालिग्रामवैश्यकृत-विदुरनीतिभाषानुवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥
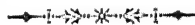
धृतराष्ट्रबोले कि, हे विदुर ! तुमने जो कहा सो सब आश्चर्यमय बोध होता है. सो और भी धर्मार्थ युक्त वचन कहो ? तुम्हारे विचित्र वचनोंके सुननेसे मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि, हे महाराज ! सबतीर्थोंमें स्नान और सबप्राणियोंमें सरलरीतिसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार यह दोनों तुल्यहों अथवा सरलता विशेषहो. प्रत्येक प्राणीमात्रसे प्रीतिरखनी तीर्थ स्नानसेभी अधिक पुण्य है ॥ २ ॥ हे प्रभो ! आप पाण्डवगणसे सरल व्यवहार करके इसलोकमें सरलकीर्तिको पाकर परलोकमें परमानन्द पाओगे ॥ ३ ॥ हे पुरुषोत्तम ! पृथ्वीपर जबतक मनुष्यकी कीर्तिपताका फहराती रहती है तबतक वह स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ ४ ॥ अब हम एक पुरातन इतिहास कहतेहैं जिसमें केशिनी नाम कन्या और विरोचनका संवाद सुधन्वाके साथ है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! अतीवोत्तम रूप पाकर केशिनी कन्या श्रेष्ठपतिकी कामनाकेलिये स्वयंवरमें उपस्थित हुई ॥ ६ ॥ तब विरोचन दैत्य आया और वहां स्त्रीकी इच्छाकरनेवाले दैत्येन्द्रको देखकर केशिनीने कहा ॥ ॥ ७ ॥ केशिनी बोली कि, हे विरोचन ! प्रह्लादकेपुत्र ! मैं तुमसे यह पूंछतीहूं कि, ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं वा दैत्य ? फिर किसलिये सुधन्वा पर्यंकारोहण नहीं करसक्ता ? इसका क्या कारण है जो तुम मान्यवर बनकर राज्यासनपर बैठतेहो ब्राह्मण क्यों नहीं बैठते ? और जो दैत्यही बडे हैं तो सब संसार ब्राह्मणोंकी पूजा क्यों करता है ? ॥ ८ ॥ विरोचनबोला कि; हे चन्द्रानने ! हम प्रजापतिके पुत्र हैं; और सब सृष्टीमें श्रेष्ठ और बडे साधु हैं. निश्चय करलो कि, यह लोक सब तुम्हारे हैं, हमारे सन्मुख देव और ब्राह्मण क्यावस्तु हैं ? ॥ ९ ॥ केशिनी बोली कि, हे विरोचन ? तुम दोनों इस स्थानपर इससमय उपस्थित हो. मैं यहांही तुम्हारी परीक्षा करती हूं, सुधन्वा प्रातःकाल यहां आवेगा उस समय तुमभी यहां आना, इकट्ठे तुम दोनोंको यहां देखूं ॥ १० ॥ विरोचनने कहा कि, हे कल्याणी ! ऐसाही होगा जैसा तुम कहतीहो, परन्तु प्रातःकाल सुधन्वाको यहां पाऊं ॥ ११ ॥ विदुरजी बोले कि, जैसे तैसे रात्रि व्यतीतकर सूर्यनारायणके उदयहोनेपर सुधन्वा ब्राह्मण अंगिराका पुत्र और विरोचन, केशिनीके सन्मुख आनकर उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ हे भरतर्षभ ! केशिनी उस सावधान ब्राह्मणको देखकर उठी, और उसे आसन पाद्यार्घ दिया और यथाशक्ति पूजन किया. क्योंकि सुधन्वाको सुवर्णमय आसनपर न बैठाया. उस अवसरपर विरोचनको अपनी श्रेष्ठता प्रसिद्ध करनी थी, इसलिये सुधन्वासे बोला कि, हे ब्राह्मण !

यह दर्भका आसन छोड़कर मेरे सुवर्णमय आसनपर बैठ ॥ १३ ॥ यह सुन उसका अभिप्राय समझकर सुधन्वा बोला कि, हे प्रह्लादके पुत्र विरोचन ! जो मैं तेरे सुनहरी श्रेष्ठ आसनका स्पर्श करूं तो तेरे संग एकता पानेवाला मैं चलाजाऊं. परन्तु तेरे संग एक आसनपर नहीं बैठूंगा ॥ १४ ॥ यह सुन विरोचन क्रोधातुर होकर बोला कि, अरे सुधन्वा! तू सत्य कहता है तेरी हमारी समता नहीं. तू काष्ठपीठ कूर्च वा कुशासनके योग्य है तू मेरे संग एक आसनपर बैठने योग्य नहीं है ॥ १५ ॥ सुधन्वा बोला कि, पिता पुत्र दोनों साथ बैठो, दो क्षत्रिय और दो ब्राह्मण भी साथ बैठो, दो वृद्ध वा दो वैश्य, अथवा दो शूद्र एकआसनपर बैठो, परन्तु विपरीतवर्णके दो मनुष्य एकआसनपर नहीं बैठ सक्ते ॥ ॥ १६ ॥ तेरा पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर मुझको सुवर्ण आसनपर बिठाकर मेरे सन्मुख खडा होकर मेरी पूजा करता है, यह तू देखताहै वा नहीं ? ॥ १७ ॥ विरोचनबोला कि, हे सुधन्वा ! असुरोंके पास जो सुवर्ण, गौ, घोडा है वह सब धन हमाराहै मैं प्रणकरके कहता हूं; परन्तु प्रश्न उससे बूझैं जो जानताहो ॥ १८ ॥ सुधन्वा बोला कि, हे विरोचन ! सुवर्ण और घोडा, गाय, तेराही धनहो, परन्तु हम प्राणोंका प्रण करके उससे बूझैं जो इस बातको जानताहो ॥ १९ ॥ विरोचन बोला कि, हम तुम दोनों प्राणोंका प्रण करके और किसको ढूंढें ? और किसके पास चलैं ? परन्तु मैं किसी समयभी देवता और मनुष्योंकी उपासना नहीं करूंगा ॥ २० ॥ सुधन्वाबोला कि, प्राणोंका प्रणकरके हम और किसको ढूंढते फिरें ? तेरे पिताहीके पास चलतेहैं, क्योंकि वह सत्यशीलहै तेरेलिये कभी झूंठ नहीं बोलनेका ॥ २१ ॥ विदुरजी बोले कि, इस प्रकार प्राणोंका प्रण करके क्रोधसहित दोनों जन प्रह्लादजीके पासगये ॥ २२ ॥ प्रह्लादबोले कि, यह दोनों वे दीखतेहैं, जिन्होंने वैरभावसे सदाचरण नहीं किया, और सर्पकी सदृश क्रोधमें भरे एकमार्गसे यहां आये ॥ २३ ॥ इसप्रकार क्यों दोनों साथ साथ फिरतेहो ? पहिले साथ नहीं चले. हे विरोचन ! मैं यह बात बूझताहूं क्या सुधन्वाके साथ तेरी मित्रताहै ? ॥ २४ ॥ विरोचनबोला कि, हे पिता ! सुधन्वाके साथ मेरी मित्रता नहीं हैं, हम दोनों प्राणोंका प्रणकरके यह सिद्धान्त आपसे बूझनेके लिये आये हैं. तुम सत्यवादी और न्यायकर्ता हो, इसमें किसीका पक्षपात न करना सत्यसत्य होय सो कहदेना, प्रश्नको झूठ मत कहना यह कह सब वृत्तान्त आद्योपान्त सुना दिया ॥ २५ ॥ प्रह्लादबोले कि, हे विरोचन ! सुधन्वाके लिये जल, मधुपर्क, और पुष्ट श्वेतगौको भी लाओ, हे ब्राह्मण ! तुम पूजन योग्यहो ॥ २६ ॥ सुधन्वाबोला कि, हे पह्लादजी ! जल और मधुपर्क मेरे प्रश्नके निर्णयमें वर्जित है, तुम मेरे प्रश्नको ठीक ठीक कहो ॥ २७ ॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, वा दैत्यगण श्रेष्ठ हैं, आप इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर दीजिये ॥ २८ ॥ प्रह्लादजीबोले कि, हे ब्रह्मन् ! हमारे एकही पुत्रहै, और तुम यहाँ साक्षात् स्थितहो, हम किस प्रकारसे इसविवादका सिद्धान्त करसक्ते हैं ? सुधन्वाबोले कि, तुम गौको अथवा और जो दूसरा प्रिय धनहो उसको उसपुत्रकेलिये देदो, परन्तु हे बुद्धिमान् ! तुमको दोनों विवादियोंका प्रश्न निष्पक्ष होकर सत्यसत्य कहना चाहिये ॥ २९ ॥ प्रह्लादबोले कि, हे

सुधन्वा ! मैं यह बूझताहूं कि, जो सत्य और असत्यको जानले और फिर उस सत्यको वा झूठको ठीक न कहै अथवा प्रश्नका विपरीत निर्णय करे; वह प्राणी किस किस कष्टको भोगता है ? ॥ ३० ॥ सुधन्वाबोला कि, सौत रखनेवाली स्त्रीको जो दुःख होता है वा झूठी साक्षी भरता है, अथवा जुआ खेलनेमें जो हारता है उसको जो दुःख होता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य नगरमें घिरजाता है, और क्षुधातुर होता है, और शत्रुओंको शस्त्र लिये देखता है, उस समय जो दुःख उसको होता है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष छोटे पशु केलिये झूंठी साक्षी भरता है, यह पांचशाखको स्वर्गसे गिराता है, और जो गायके लिये झूंठी शपथ खाता है वह दशशाखकेलिये अपने पित्रोंको स्वर्गसे गिराता है, जो घोडेके लिये झूंठ साक्षी भरता है वह (१००) शाखको और जो मनुष्यके लिये झूठ बोलता है वह सहस्र (१०००) शाखको नरकमें डालता है ॥ ३३ ॥ और सुवर्णके लिये जो मनुष्य झूंठ बोलता है वह पिछले अगले सब पुरुषाओंको नरकमें लेजाता है, और पृथ्वीके लिये असत्य बोलनेसे कुलसमेत सर्वस्वका नाश होजाताहै. इसलिये भूमि (भूमि-रूपीकेशिनी) के लिये असत्य बोलनेकी समान जगतमें दूसरा पाप नहीं ॥ ३४ ॥ प्रह्लाद बोले कि, हे विरोचन ! निश्चय आंगिरा मुझसे श्रेष्ठ है, और सुधन्वा तुझसे उत्तम है. इसकी माता तेरी मातासे पवित्र है इसलिये उसने तुझको जीता ॥ ३५ ॥ हे विरो-चन ! यह सुधन्वा तेरे प्राणोंका स्वामी है; हे सुधन्वा ! मैं तुझको दिये हुए पुत्र विरोच-नको तुझसे मांगता हूं ॥ ३६ ॥ सुधन्वा बोला कि, हे प्रह्लादजी ! जिसकारण तुमने धर्म को अंगीकार किया, और अपनी इच्छासे झूठ नहीं बोला, इसलिये तुम्हारे दुर्लभ पुत्रको मैं तुमको देताहूं ॥ ३७ ॥ मेरा दिया हुआ यह तुम्हारा पुत्र विरोचन सदा सुखी रहै; और केशिनी सुमुखी इसकी स्त्री हो, परन्तु मेरे सन्मुख यह उस मनोरमाके चरण धोवै ॥ ॥ ३८ ॥ विदुरजी बोले कि हे राजेन्द्र ! उनकी समान भूमिके लिये झूठ कहने योग्य तुम नहींहो, इसलिये वसुधाके निमित्त असत्य बोलकर पुत्र प्रधानसहित विनाश मत करो ॥ ॥ ३९ ॥ दैव हाथमें दण्ड लेकर पशुपालक बन मनुष्योंकी रक्षा नहीं करता, परन्तु दैव जिसकी रक्षा करनी चाहता है उसको अपनी बुद्धिसे विभाग देता है, यही दैवकी कृपा जाननी चाहिये ॥ ४० ॥ पुरुष जिस जिस प्रकारसे कल्याणमें मन लगाता है, उसी उस प्रकारसे इसकी सब मनोकामना सिद्ध होती हैं, इसमें किंचिन्मात्र भी संशय नहीं ॥ ४१ ॥ छलसे वर्तमान मायावीको वेद, पापसे नहीं तारते; जिसका ब्राह्मणकुलमें जन्म, और सर्वकाल मुखमें वेद, परन्तु अन्तःकरणमें कपट हो तो ऐसे पुरुषकी रक्षा दैव भी नहीं करता, जैसे जातपक्ष पक्षी अण्डको त्यागते हैं उसीप्रकार वेदभी अन्तसमयपर ऐसे प्राणीका त्याग करदेते हैं, फिर उस पुरुषकी रक्षा दैवभी नहीं करता ॥ ४२ ॥ मद्यपीने-वालेका साथ १ विनाकारण क्रोध २ बहुतजनोंसे वैर ३ स्त्री पुरुषका वियोग करानेवाला ४ जातिमें भेदडालना ५ राज्यद्वेष करना ६ स्त्री पुरुषमें वैर करा देना ७ खोटे मार्गमें चलना ८ इन आठ पुरुषोंका संग त्यागने योग्य है ॥ ४३ ॥ हस्तरेखापरीक्षक, (सामु-

द्रिकजाननेवाला पण्डित) १ तोलमें कमती तोलनेवाला, वा झूठ बोलनेवाला व्यापारी २ जुआरी अथवा पाशा डालनेवाला, शकुनादिक कहकर दूसरेको ठगनेवाला ३ धूर्तवैद्य ४ इन चार जनोंको तो केवल धनकाही लोभ है; इसलिये यह वर्जनीय कहे, पांचवें शत्रुकी साक्षी नहीं देना क्योंकि उसका विश्वास नहीं ५ मित्रका इसलिये निषेधकिया जो वह सत्यभी कहे तो लोग झूंठ समझें ६ कुत्सित शीलवान् न जानिये कि, मुखसे क्या निकाल बैठे ? ७ इन सातोंको साक्षीकेलिये कभी न लेना ॥ ४४ ॥ जगत्में अपनी उत्कर्षताके लिये अग्निहोत्र १ मौनसाधन २ विद्याअध्ययन ३ यज्ञ ४ यह चार सत्कर्म सुख देनेवाले हैं, परन्तु वे अविधिसे किये तो यही महाभयकारी होजाते हैं ॥ ४५ ॥ आगका लगानेवाला १ विष देनेवाला २ अपनी स्त्रीके जारकर्मसे पुत्र उत्पन्न हुआ, उसके उपार्जन किये हुए धनसे उदर पूर्ण करना ३ मद्य बेचनेवाला ४ बाणादिकशस्त्र बनानेवाला ५ निन्दाकरनेवाला ६ मित्रद्रोही ७ परस्त्रीगामी ८ ॥ ४६ ॥ गर्भनाशक ९ गुरुपत्नीसे प्रसंग करनेवाला १० मद्यपीनेवाला ब्राह्मण ११ विश्वासघाती १२ दुःखीको दुःखदेनेवाला १३ परलोकको झूंठा बतानेवाला १४ वेदकी निन्दा करनेवाला १५ ॥ ४७ ॥ राज्यसत्ताके बलसे लोहेकी शलाका मारकर थैलेमेंसे अन्न निकालनेवाला १६ नियत समयपर यज्ञोपवीत न लेनेवाला १७ निर्बल जावोंका हिंसक शरणागतको मारनेवाला १८ यह अठारह प्राणी ब्रह्महत्या करनेवालेके समान हैं ॥ ४८ ॥ तृणकी आगसे अँधियारेमें देखा जाता है, चारित्र से भद्र देखा जाता है, आचरणसे साधु देखा जाता है, भय उपस्थित होनेसे शूरमा देखा जाता है, अर्थ संकट (दुर्भिक्षकालादिक) में पंडित देखा जाता है, और आपत्कालमें शत्रु और मित्र देखा जाता है ॥ ४९ ॥ जरा सौंदर्यताका नाश करती है, बलवती आशा धैर्यका नाश करती है, मृत्यु प्राणोंका नाश करती है, क्रोध सम्पत्तिका नाश करता है, द्वेष धर्मचर्याका नाश करता है, नीचसेवा लक्ष्मीका नाश करती है, काम लज्जाका नाश करता है और अभिमान ज्ञान और ध्यानादिक सबहीका नाश करता है ॥ ५० ॥ मंगलादिक कर्मसे लक्ष्मी प्रगट होती है, तीक्ष्णतासे अधिक होती है, और चतुरतासे जड पकडती है; और इन्द्रियोंके संयमसे स्थित होती है ॥ ५१ ॥ आठ गुण पुरुषको सदा प्रकाशवान् करते हैं, बुद्धिमानी १ कुलीनता २ इन्द्रियोंका जीतना ३ शास्त्रका अभ्यास ४ पराक्रम ५ यथार्थ-सूक्ष्मभाषण ६ यथाशक्तिदान ७ और परोपकार करना ८ ॥ ५२ ॥ हे तात ! एक गुण हठ करके इन महानुभवगुणोंका आश्रय करता है अर्थात् जिस पुरुषका राजाने सत्कार किया उसमें बलात्कारसे यह सब गुण प्रकाश करने लगते हैं, (सो हे राजन् ! यह गुण कर्णादिकमें देखे जाते हैं, सो स्वाभाविक नहीं हैं परन्तु तुम उनका बहुत सन्मान करतेहो, इसलिये देखने मात्र हैं) ॥ ५३ ॥ हे महाराज ! नरलोकमें यह आठ गुण स्वर्गमें लेजाने-वाले हैं, यज्ञ १ दान २ अध्ययन ३ तप ४ यह चार तो सत्पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं ॥ ५४ ॥ इंद्रियदमन ५ सत्य ६ शमता ७ और दया ८ इन चारोंका सन्त सेवन करते हैं ॥ ५५ ॥ यह धर्मका मार्ग आठ प्रकारका वर्णन किया है. यज्ञ १ दान २ वेदपाठ ३ तप४

क्षमा ५ सत्य ६ दया ७ और निर्लोभ ८ ॥ ५६ ॥ उसमेंसे चार पहिले धर्मोंको पाखण्डार्थभी सेवन करते हैं, और पिछले चार नीचोंमें स्थित नहीं होते ॥ ५७ ॥ जिस सभामें वृद्धका समागम नहीं वह सभाही नहीं है, जो वृद्ध धर्मका उपदेश न करें वह वृद्ध ही नहीं हैं. जिस धर्ममें सत्य नहीं वह धर्मही नहीं है, और जिस सत्यमें कपटःभाव है वह सत्यही नहीं है ॥ ५८ ॥ सत्यरूप १ नम्रता २ शास्त्रविद्या ३ इष्टदेवोपासना ४ कुलीनता ५ शील स्वभाव ६ बल ७ धन ८ शूरता ९ विचित्रभाषण १० यह दश गुण स्वर्गवासके देनेवाले हैं ॥ ५९ ॥ पाप करनेवाला पापकीर्त्ति होकर पापहीको भोगता है पुण्य करनेवाला पुण्यकीर्ति होकर अनन्त पुण्यहीको भोगताहै ॥ ६० ॥ इसलिये शंसनीय व्रत धारण करनेवाला पाप न करै क्योंकि बारम्बार किया हुआ पाप बुद्धिको नष्ट करता है ॥ ६१ ॥ नष्टबुद्धिपुरुष सदैव पापहीका आरम्भ करताहै और बारम्बार किया हुआ पुण्य बुद्धिको बढाताहै ॥ ६२ ॥ और बुद्धिके बढनेसे पुरुष सदा पुण्यही करताहै और पुण्यके संयोगसे पुण्यकीर्ति होकर पवित्र स्थानको पाता है इसलिये निश्चय बुद्धिसे पुण्यही करता रहै ॥ ६३ ॥ दोषदृष्टि, मर्मभेदक, निष्ठुरवाक्य, वैर करनेवाला, कपटी ऐसे पुरुष पाप करनेसे अन्तसमय नरकमें जाते हैं ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य निर्दोषदृष्टि, ज्ञानी, सदा उत्तम कर्म करनेवाले हैं, वे इस दुःखको नहीं पाते, सर्वत्र सुखही पाते हैं ॥ ६५ ॥ ज्ञाता पुरुषोंकी संगतिमें जो अपना ज्ञान बढाते हैं, वे उचित कर्म करके अपना सुख बढाते हैं ॥ ॥ ६६ ॥ दिनके समय ऐसा कर्म करना चाहिये जिसमें रात्रि सुखसे कटै, और महीनेमें वह कर्म करै जिससे वर्षाऋतु आनन्दसे व्यतीतहो ॥ ६७ ॥ तरुण अवस्थामें वह कर्म करे जिसमें वृद्धावस्थाका निर्वाह आल्हादसे हो, और यावज्जीवन वह कर्म करै जिसके द्वारा परलोकमें निर्द्वन्द्वताके साथ वासुदेवके चरणारविन्दोंका दर्शन करता रहै ॥ ६८ ॥ पण्डित गण, जीर्णअन्न, गतयौवन भार्या, समरविजयी वीर और पारदर्शी तपस्वीकी विशेषप्रशंसा करते हैं ॥ ६९ ॥ अधर्मसे उपार्जन कियेहुए धनसे जो मनुष्य अपने पाप ढकनेकी इच्छाकरता है; परन्तु वह पाप अधिक प्रसिद्ध होताहै ढका नहीं जाता ॥ ७० ॥ शुद्ध अंतःकरणवाले मनुष्यको गुरु शिक्षा करताहै, दुरात्माओंको दण्डदेनेवाला राजाहै, और गुप्त पापियोंका शासन करनेवाला सूर्यनारायणका पुत्र यमराज है ॥ ७१ ॥ ऋषि, नदी, महात्मापुरुषोंके कुलोंका माहात्म्य, और स्त्रियोंके दुराचरणकी थाह कोईभी नहीं पा सक्ता ॥ ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! ब्राह्मणोंका पूजनकरनेवाला, ज्ञानियोंमें समता रखनेवाला, दाता, क्षत्रिय दीर्घकालतक पृथ्वीका पालन करताहै ॥ ७३ ॥ तीन पुरुष सुवर्णमय पृथ्वीके शोभायमान पुष्पोंका सञ्चय करसक्ते हैं, शूर १ विद्यावान् २ और जो सेवा करके स्वामीको प्रसन्न करना जानता है ॥ ७४ ॥ हे भरतवंशी ! जिसकामको बुद्धिसे विचारकर किया वह श्रेष्ठ है, भुजाओंके बलसे किया वह काम मध्यम है, जो कपटसे किया वह काम नीच है और सब कर्मोंका भार अपनेही माथेपर रखता है वह महा अधम गिना जाता है ॥ ॥ ७५ ॥ हे महाराज ! आप दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और कर्णको सब ऐश्वर्य समर्पण

करके क्योंकर कुशलकी अभिलाषा करते हो? ॥ ७६ ॥ हे भरतकुलभूषण! वे पाण्डवगण सर्वगुणगौरव पितातुल्य तुमको मानते हैं. उनपर तुमको पुत्रवत् कृपादृष्टि रखनी चाहिये ॥ ७७ ॥

इति श्रीशालिग्रामवैश्यकृत विदुरनीतिभाषानुवादेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

विदुरजी बोले कि महाराज! इस समय मैं एक वह पुरातन इतिहास आपसे कहताहूं जो कि महर्षि आत्रेयजीने साधुगणसे रमणीय प्रसंग कहाथा ॥ १ ॥ एक समय आत्रेय-ऋषिसे साध्यदेवने हंसरूपसे विचरते, तीक्ष्ण व्रत, परमज्ञानी महर्षिसे बूझा ॥ २ ॥ साध्य बोले, कि, हे महर्षि! हम साध्यदेव हैं, आपको देखकर आपका स्वरूप जाना नहीं जाता, हमने आपको शास्त्रमें तत्त्वज्ञानी और बुद्धिमान् मान रक्खा है, सो आप कृपा करके हम से ज्ञानी पुरुषोंके लक्षण कहो जिससे हम अपना हित समझकर सुख पावैं ॥ ३ ॥ हंस बोले कि हे देवो! मैंने गुरुसे यह सुना है कि–धैर्य्य, इन्द्रियदमन, सत्यधर्मानुष्ठानद्वारा, हृदयकी सब ग्रन्थि छेदन करके जो सुखदुःखको समान जानताहै उसको ज्ञानी समझना ॥ ॥ ४ ॥ यदि कोई पुरुष आपको शाप प्रदान करै तौ उसको प्रतिशाप न देवै, क्योंकि क्षमा करनेवालेका क्रोधही उस शाप देनेवालेको जलाता है, और क्षमावान् उसके पुण्यको पाता है ॥ ५ ॥ और जो कोई क्रोधको त्यागता है और दूसरेका अपमान नहीं करता, मित्रद्रोह नहीं करता, और नीच जनकी सेवा, अभिमान, दुष्टस्वभाव, और क्रोधयुक्त वचनोंको त्याग कर ॥ ६ ॥ अतिकठोर वाक्य, पुरुषका कर्म, अस्थि, हृदय, और प्राणोंको दग्ध करता है इसलिये धार्मिक पुरुष, कर्कश, और मर्मभेदी वाक्य, किसीको नहीं कहते हैं ॥ ७ ॥ और जो मनुष्य पुरुषकार करके ऐश्वर्य शाली होसक्ते हैं, परन्तु महत्कुल-सम्भूत पुरुषका चारित्र और कीर्तिलाभ करना अत्यन्त कठिन है ॥ ८ ॥ जो दूसरा मनुष्य इसको अति तीक्ष्णाग्नि सूर्यके समान दीप्त वाक्यरूप बाणोंसे घायल करै वह पण्डित अपने आपको घायल और अति दग्धभी जाने तौभी यह कहै कि, यह मेरे पुण्यको बढाता है, ऐसे पुरुषोंको ज्ञानका सार समझनेवाला समझो ॥ ९ ॥ जैसी संगति होती है वैसाही गुण उत्पन्न होता है, साधुकी संगति करनेसे साधु होता है और मूर्खकी संगतिसे मूर्ख होजाताहै और चोरकी संगतिसे चोर, जो जिसकी संगति करताहै, वह उसीके वशमें हो जाता है, जैसे वस्त्र रंगके वशमें है, श्वेत वस्त्रको जैसे रंगमें डालोगे उसी प्रकारका रंग चढैगा ॥ ॥ १० ॥ जो मनुष्य निन्दक वचन न तो किसीको कहते हैं, और न किसीसे कहलाते हैं, आप क्लेश सहतेहैं परन्तु दूसरेको क्लेश नहीं देते, और जो पापी अपने आपको मारना चाहै परन्तु वे उसको नहीं मारते ऐसे अभ्यागतकी संगतिको देवताभी चाहते हैं ॥ ११ ॥ बोलनेसे मौन रहना श्रेष्ठहै, और जो बोलेभी तो सत्य बोले यह दूसरावचन है, और जो सत्यभी बोलै तो प्रिय बोलै यह तीसरा वचनहै, और प्रियभी बोलै तो धर्मयुक्त बोलै यह चौथा वचन है और जो धर्मयुक्त बोलै तो पिछले पिछलेसे अग्र अग्र श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

जैसे मनुष्योंके पास बैठताहै; जैसे पुरुषोंका सेवन करता है, वैसाही वह पुरुषभी होजाताहै. जैसे होना चाहता है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य जिन जिन दुःखदायक बातोंको छुटानेकी इच्छा करता है, उन उन बातोंसे मुक्ति पाता है, जब सब प्रपञ्च उससे छूट जाते हैं, तब उसको किञ्चिन्मात्रभी दुःख नहीं होता, जिस जिस कार्यको मनुष्य चाहता है उन सब कार्योंको करसक्ता है, पुरुषसे असाध्य कोईभी कार्य नहीं है ॥ १४ ॥ जो पुरुष अनीति करके किसीको जीतना नहीं चाहता वही आप दूसरेसे पराभवभी नहीं पाता और किसीसे शत्रुताभी नहीं करता, निन्दा स्तुतिको समान जानता है, हर्ष शोकसे कुछ प्रयोजन नहीं रखता ॥ १५ ॥ सब इन्द्रियोंको जीत लिया है, सबका मङ्गल चाहता है किसीके अम-ङ्गलमें मन नहीं लगाता, सत्यभाषण करता है, कोमल स्वभाव है, ऐसेही महात्मा पुरुषोंको उत्तम पुरुष कहते हैं ॥ १६ ॥ जो जन मिथ्या संकल्प नहीं करते जो प्रतिज्ञा अपने मुख से करते हैं, उसको पूरी करते हैं परन्तु दूसरेके छिद्रकोभी देखते रहते हैं, वे मध्यम पुरुष हैं ॥ १७ ॥ दुःखशासन, कृतघ्नी, जिनकी किसीसे रीति प्रीति नहीं, मित्रतामें शत्रुता करें, अच्छी बातको बुरी समझें, मित्रोंको दिनरात ठगते रहें, ऐसे दुराचारियोंको अधम पुरुष कहते हैं ॥ १८ ॥ जो मनुष्य गुरुओंके द्वारा कल्याणमें श्रद्धा नहीं करता, मन में शंकित रहता है, मित्रोंका निरादर करता है, लोगोंको ठगविद्यासे ठगठगकर धनसंग्रह करताहै; अपने आपको अत्यंत चतुर और पराक्रमी समझताहै उसीको नीचपुरुष कहते हैं ॥ ॥ १९ ॥ जो अपने ऐश्वर्यको चाहै, और श्रेष्ठ पुरुषोंका सेवन करै, समयपर मध्यम पुरुषों-की संगति करै, परन्तु नीचोंका सेवन कभी न करै ॥ २० ॥ जो पुरुष सदा नीचोंके बलसे अपने उद्यमसे और बुद्धिके पराक्रमसे धन उत्पन्न करता है, परन्तु उसकी प्रशंसा नहीं होती. यद्यपि वह बडे कुलका है परन्तु बडे कुलकी योग्यताको नहीं पाता ॥ २१ ॥ धृतराष्ट्र बोले कि तप १ (कृच्छ्रचान्द्रायणादि) इन्द्र भी इच्छा करते हैं, फिर दूसरा करे तो क्या आश्चर्य है ? क्योंकि वह कुल सदा धर्मार्थमें स्थित और महाज्ञानी होता है, हे विदुर ! मैं तुमसे कुल प्रश्न बूझताहूं, सो कृपा करके बडे कुलोंका लक्षण कहो ॥ २२ ॥ विदुरजी बोले कि तप १ (कृच्छ्रचान्द्रायणादि) की इन्द्रियोंका जय २ वेदाध्ययन ३ यज्ञानु-ष्ठान ४ धन ५ पुण्यविवाह ६ और सर्वदा अन्नदान ७ यह सात गुण जिस पुरुषमें वास करते हैं, वह उत्तम व्रतवाले महाकुलका है ॥ २३ ॥ पित्रादिक जिनका चारित्र देखकर आनन्द होते हैं, सत्यवादी, धार्मिक, अपने वंशमें कीर्ति स्थापन करनेकी अभिलाषा करते हैं, ऐसे कुलमें धन अल्पभी होय तो वही महाकुलहै. और यह सब गुण जिसमें विपरीत हों वही दुष्कुल है ॥ २४ ॥ यज्ञके न करनेसे, निन्दित विवाह, वेदके न पढनेसे, और ब्राह्मणोंके अतिक्रमसे वे कुल अकुलताको प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥ हे भरतवंशी ! ब्राह्मणोंके ताडन, निन्दा और न्यासहरणसे वे कुल अकुल होजाते हैं ॥ २६ ॥ गौ, मनुष्य और धनसे पूर्ण ये कुल, कुलसंज्ञा नहीं पाते. जो कि वृत्त (गुरुदेवपूजनादि) हीन हैं ॥ २७ ॥ सूक्ष्म धन रखनेवालेहों, और वृत्तसंयुक्त वह कुलहो, वह कुलीन कुलमें संख्या पाते हैं,

और बडे यशस्वी कहलाते हैं ॥२८॥ वृत्तकी रक्षा यत्नसे करनी चाहिये जिससे कुल महाकुल कहलाता है, धनकी रक्षा क्या है? यह तो कभी आता है कभी जाताहै जो पुरुष धनसे हीन है उसको हीन नहीं समझना, परन्तु जो आचरणसे हीन है वह हीनहै ॥ २९ ॥ सदाचारहीन जो कुल विद्यमानभी है वह, गौ, पशु, अश्वादि, कृषि, समृद्धि होनेसे कभी वृद्धि नहीं पा सक्ता ॥३०॥ हमारे कुलमें कोई राजा अमात्य वैर करनेवाला कोई नहीं हो. हमारे कुलमें राजा अथवा मंत्री वा कोई दूसरी सत्तावाला किसीका धन हरनेवाला नहीं हो. कृत्रिमी,मित्रद्वेष करनेवाला, असत्यभाषी,कपटी, झूंठा, देव, पितर, अतिथि, इनको भोजन करानेसे पहिले भोजन करनेवाला नहींहो, क्योंकि ये सब कुलघातकी कहलाते हैं ॥३१॥ जो पुरुष ब्राह्मणोंका घात करनेवाला, ब्रह्मकुलद्रोही, वृद्धजनोंका पालन न करै, वह हमारे कुलमें उत्पन्न नहो ॥३२॥ जो कुलीन पुरुष हैं उनके घर, अतिथि और सम्बन्धियोंको आसन १ विश्रामके लिये भूमि २ जलकी शुश्रूषा ३ और मधुर वचन बोलना ४ यह चार पदार्थ सत्पुरुषोंके घरसे कभी नष्ट नहीं होते ॥३३ ॥ हे राजन्! ये सब पदार्थ बडीश्रद्धासे, पुण्यकर्मसे, धर्मात्माओंके सत्कारार्थसे प्राप्त और प्रवृत्त होते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन्! छोटा रथभी भारीभारका सहन करसक्ताहै, इतना भार दूसरा वाहन नहीं सँभाल सक्ता, इसप्रकार उत्तम कुलोंके जो सत्पुरुषहैं वे सब संसारके लोगोंका भार आप सहन करते हैं, क्योंकि संसारके लोगोंका दुःख सब अपने शिरपर धरकर उनको सुखी करते हैं, यह शुभकर्म और मनुष्योंसे नहीं होसक्ते ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य इस बातसे डरताहै कि, मित्रको क्रोध आवेगा, अथवा मित्रके सन्मुख बोलनेसे भय मानताहै परन्तु जहाँ मित्रता है वहां ऐसा समझना नहीं चाहिये, क्योंकि मित्रके साथ पिताकी समान विश्वास करै उसीका नाम मित्रहै, और दूसरा तो केवल सम्बन्धमात्रहै ॥ ३६ ॥ जो कोई सम्बन्धीभी मित्रभावसे वर्तता है, वही बन्धु, मित्र, गति और शरणस्थानहै, पराया सो पराया, मित्रता करके यह कभी न समझना चाहिये. क्योंकि,-

चौपाई-जे न मित्रदुख होत दुखारी * तिनहिं विलोकत पातक भारी॥
मित्र विपतिमें होत सहायक* मित्र सदा उर आनँददायक ॥
मित्रसमान और को दूजा * ताते करहि मित्रकी पूजा॥३७॥

जो चञ्चलात्मा मनुष्य हैं वे अपने वृद्ध जनोंका आदर सत्कार नहीं करते. उनके साथ प्रेम प्रीति अधिक दिन निर्वाह नहीं होती, जो चित्तका चञ्चल, मनका कपटी, इन्द्रियोंका स्वाधीन ऐसे मनुष्यको दैवयोगसे नित्य नये मित्र मिलते रहते हैं ॥ ३८ ॥ चञ्चल चित्त, स्थूल बुद्धि, वृद्धोपदेशपराङ्मुख, पुरुषसे मित्रभाव कभी पूरा नहीं होसक्ता, जैसे हंसमण्डली सूखे सरोवरपर कभी नहीं वासकरसक्ती, ऐसेही सब अर्थ अव्यवस्थित चित्त, इन्द्रियवशवर्ती पुरुषको त्याग करता है ॥ ३९ ॥ अकस्मात् प्रसन्न हो जाना, विनाही कारण कुपित होजाना, यह नीचमनुष्योंका स्वभाव है, जैसे चञ्चल बादल कभी उठ जाता है, और कभी हट जाता है ॥ ४० ॥ जो मनुष्य मित्रद्वारा सत्कृत और कृतकार्य होकर भी उनका

उपकार नहीं करते हैं, वेही कृतघ्न कहलाते हैं. उन कृतघ्नियोंके मरे हुये शरीरका मांस श्वान और काक आदिक पक्षीभी नहीं खाते. धनी हो वा निर्धनहो, परन्तु मित्रका अर्चन करना अवश्य है, और मित्रसे किसी बातकी याचना करनी नहीं चाहिये. मित्रताही संसारमें अद्भुत पदार्थहै, मित्रोंके सारासारको कोई नहीं जानता ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ सन्ताप (प्रियमित्रके वियोगका कष्ट) से रूप, बल और ज्ञान, नष्ट होकर व्याधि उत्पन्न होती है ॥ ४३ ॥ शोक करनेसे अभिलषित वस्तु प्रदान नहीं होती है, वरन् और शरीर सन्तप्त होता है, और शत्रुगण अत्यन्त सन्तुष्ट होतेहैं, इसलिये सन्ताप कभी नहीं करना ॥ ४४ ॥ मनुष्य वारम्वार उत्पन्न होता है, मरता है, छोटा होता है, बडा होता है, मांगता है, मँगवाताहै, शोक करता है, कराता है ॥ ४५ ॥ सुख, दुःख, जन्म, मरण, हानि, लाभ, ये सब पर्य्याय क्रमसे भोगने पडते हैं, इसीलिये धीरपुरुष हर्ष और शोकके वशीभूत नहीं होते ॥ ४६ ॥ चक्षुरादि छः इन्द्रियगण अत्यन्त चञ्चल हैं उनमें जो जो जहां जहां जिस जिस विषयमें वृद्धि पाता हैं, बुद्धि उसी विषयमें भ्रंश होजाती है. जैसे छिद्रवाले पात्रसे जल सदा निकलता है ॥ ४७ ॥ धृतराष्ट्र बोले कि, हे विदुर ! व्रत उपवास धारी कृशतनु हुआ है तौभी उस तेजस्वी, पुण्यात्मा, महावलशाली, युधिष्ठिरको मैंने अनेक प्रकारके कपटव्यवहारसे छला है, इसलिये वह मेरे मन्दमति पुत्रगणको रणस्थलमें संहार करेगा, इसमें किञ्चिन्मात्रभी सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ हे महामते विदुर ! यह सब विषयही उद्वेगका कारण है. एकाकी उद्वेगका पाया हुआ चित्त शान्त नहीं होसक्ता. सो अब जिस प्रकार शान्त हो वैसा उपदेश करो ॥ ४९ ॥ विदुर बोले कि हे निष्पाप ! विद्या, तपस्या, इन्द्रियसंयम, और लोभपरित्याग किये विना आपको शान्तिलाभ होना महाकठिन है ॥ ५० ॥ आत्मज्ञानसे संसार भय निर्वाण, तपस्यासे ब्रह्मज्ञान, गुरुकीसेवासे ज्ञान वैराग्य, और योगसे शान्तिको पाता है ॥ ५१ ॥ इस जगतमें दान और वेदपाठके पुण्यकी इच्छाको परित्याग करनेवाले, लौकिक पदार्थोंपर प्रीति और अप्रीति दोनों नहीं रखते, और जबतक मोक्ष नहीं होता तबतक वारंवार संसारहीमें जन्म लेलेकर विचरते फिरते हैं ॥ ५२ ॥ उस अच्छे वेदपाठ, धर्मयुद्ध, सुकृत कर्म और कियेहुए उत्तम तपके प्रभावसे अन्तसमय मोक्ष पाते हैं ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! भेददृष्टिवाले, अथवा जातिजनसे द्वेषरखनेवाले मनुष्य, सुन्दर, कोमल शय्याओंपर शयन करके भी कभी निद्राको नहीं पाते, और न स्त्रियोंमें रतिको पाते हैं, और मागध और सूतोंसे कभी स्तुतिके योग्य नहीं होते ॥ ५४ ॥ भेद बुद्धि, और ज्ञातिविरोधी, कभी धर्म नहीं करते और इस लोकमें कभी गौरवताको नहीं पाते, क्योंकि भेदबुद्धिवाला पुरुष अन्धा होजाता है, उसको कुछ आगा पीछा नहीं सूझता * ॥ ५५ ॥ पथ्य वचन उनके मनको

* **कवित्त**–भेदबुद्धि जाके सो न गहत है धर्मपन्थ, भेदबुद्धि जाके सो न पावै सुख नेक है ॥ भेदबुद्धि जाके सो न गौरव लहत नेक, योग क्षेम कुशल न ताके भाग एक है ॥ भेदबुद्धि जाके सो शिखावन न मानत है, भेदबुद्धि जाके सो न माने निजटेक है ॥ भेदबुद्धि जाके सो लहत खेद अन्त समै, सहत दुःख अनेक नेक रहत ना विवेक है ॥

नहीं भासता है, अप्राप्तका लाभ और लब्धकी रक्षा उसको प्राप्त नहीं होती. हे नरेन्द्र ! भिन्नपुरुषोंका परायण विनाशके व्यतिरिक्त दूसरा कोई विद्यमान नहीं जान पडता ॥ ५६ ॥ धेनुसें दूध उत्पन्न होता है,ब्राह्मणोंसे तपोनुष्ठान,स्त्रियोंसे चपलता, और ज्ञानियोंसे भय उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥ आपने बाल्यावस्थासे पाण्डवगणका लालन पालन किया है, अब वे लोग ब्राह्मणोंकी नांई बनमें रहे और सन्तानके लिये बहुतसे क्लेशोंको सहते हैं; यह सत्पुरुषोंकी उपमा है ॥ ५८ ॥ हे भरतवंशी धृतराष्ट्र ! जलतीहुई लकडियोंसे पृथक् पृथक् करनेसे उनमें धुवां निकलने लगता है, और नेत्रोंको कष्ट देता है, और एकत्रमेल करनेसे प्रज्वलित होती हैं और फिर अपने तेजके प्रभावसे किसीको निकट नहीं आने देतीं, देखो सिंह अत्यन्त महाबली है, परन्तु उस जलतीहुई अग्निको देख वहभी भीतहो पलायित होजाताहै. इसीप्रकार ज्ञातिजन उल्मुक समान हैं इसलिये आपको उचित है कि पाण्डवोंसे मेल करो ॥ ॥ ५९ ॥ हे धृतराष्ट् ! जो पुरुष, ब्राह्मण १ स्त्री २ ज्ञातिजन ३ और गौ ४ इनके ऊपर पराक्रम करता है, वह पकेहुए फलकी समान, वृक्षपरसे जैसे फल गिरता है, वैसेही प्राणीभी पापके भरनेसे पतित होजाता है ॥ ६० ॥ जिस तरुवरकी जड पृथ्वीमें दृढ है, और प्रतिष्ठित शाखावालाहै परन्तु तौभी अकेलेको पवन क्षणमात्रमें गिरादेता है ॥ ६१ ॥ और जो वृक्ष वृक्षके समूहोंमें, एकके आश्रयसे एक है तो वह पवनकाभी उपद्रव सहन करसक्ता है ॥ ६२ ॥ इसप्रकार अकेले गुणवान् पुरुषकोभी शत्रुगण पराजय योग्य समझ ते हैं जैसे पवन अकेले तरुवरको कुछ नहीं समझता ॥ ६३ ॥ देखो ! ज्ञानीजन जैसे एक का एक आश्रय लेनेसे और परस्पर वश्य होनेसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे सरो-वरमें कमलके फूल ॥ ६४ ॥ ब्राह्मण, गौ, ज्ञातिजन, बालक, स्त्री, शरणागत, और जिसका अन्न भोजन कियाहो, ये सब मारने योग्य नहीं हैं ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! आपका कल्याण हो, पुरुषमें धनवानता और आरोग्यताके अतिरिक्त कोई दूसरा शुभ गुण नहीं है ॥ ॥ ६६ ॥ हे महाराज ! आरोग्यतासे उत्पन्न अरोचक, शिरोरोग, पापयुक्त, रूखे, छेदक, दुःसह, स्पर्श, सत्पुरुषोंके पान योग्य, दैन्यकी जिसको असन्त लोग पान नहीं करते उस को तुम पान करो, और शान्तिको पाओ ॥ ६७ ॥ रोगसे पीडित मनुष्य फलोंका आदर नहीं करते, विषयोंसे तत्त्वोंको नहीं पाते, रोगी सदा दुःखी रहते हैं, क्या वह धन योग्य और सुखको नहीं जानते हैं ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! तुमने पूर्वकालमें द्यूतसे जीतीहुई द्रौपदीको जो देखकर मेरे कहेहुए उस मंगलदायक वचनको नहीं माना कि इस अक्षवती सभामें दुर्योधनको समझाया पण्डित द्यूतप्रियत्वका निषेध करते हैं ॥ ६९ ॥ वह सेना श्रेष्ठ नहीं है, जो क्षमावान्के साथ विद्रोह करती है, सूक्ष्म धर्म योग सेवन योग्य है, क्रूरके पास लक्ष्मी नाशकारक है, और क्षमावान्के पास वृद्धिपाने वाली है, पुत्र पौत्रको प्राप्त होती है ॥ ७० ॥ हे धृतराष्ट्र ! मैं तुमसे अच्छा कहताहूं कि आप पाण्डवोंकी रक्षा करैं, और पाण्डवगण आपकी रक्षा करैं ॥ जो आपके शत्रु मित्रहैं वे उनके और जो उनके शत्रु मित्र हैं वे आपके, और जो उनका कार्य है वह आपका, और जो आपका कार्य है; वह उनका

यह उत्तम भाव मनमें रखना चाहिये. इसप्रकार सुखसे अपना जीवन व्यतीत करो ॥७१॥ हे अजमीढवंशी ! अब तुम कौरवोंके शिक्षकहो, और कुरुकुल आपके अधीन है, इस-लिये आप वनवाससे दुःखी, बालक पाण्डवगणकी रक्षा करके अपने यशकी वृद्धि कीजिये॥ ॥ ७२ ॥ हे नरदेव ! अब तुम पाण्डवगणके साथ सन्धि करलो, और दुर्योधनकोभी युद्धसे निवृत्त करो और जो शत्रुगण तुम्हारे मनमें भेदडालनेवाले हैं, फिर वेभी सब शान्त होजायँगे, सत्य तो यह है कि पाण्डवगण अवतक अपने धर्मपर स्थित हैं, वे अवश्य जय पावेंगे, इसलिये आप मेरी बातको निश्चय मानकर दुर्योधनको युद्धसे निवृत्त करो, इसीमें तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ७३ ॥

इति श्रीशालिग्रामवैश्यकृत-विदुरनीतिभाषानुवादे विदुरधृतराष्ट्रसंवादो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

विदुरजी बोले कि, हे धृतराष्ट्र ! स्वायम्भुवमनुने सत्रहप्रकारके मूर्ख कहेहैं, सो ये कैसे हैं ? कि, आकाशको घूंसा मारकर तोडना चाहते हैं ॥ १ ॥ इन्द्रके धनुषको ताननेकी इच्छा करते हैं, सूर्यचन्द्रमाकी किरणोंको मुट्ठीमें वन्द करनेकी अभिलाषा रखते हैं ॥ २ ॥ कुशिष्योंको शिक्षा करके गुरु बना देना १ थोडे लाभसे संतुष्ट न होना २ शत्रुकी सेवाकरके कल्याणकी इच्छा करे ३ कुभार्याकी रक्षा करके कुशल चाहै ४ अयाच्यसे याचना करे ५ ॥ ३ ॥ अपने सुखसे अपनी श्लाघा करै ६ अनुचित कर्म करके कुलीनता चाहै ७ निर्बल होकर बलवान्से वैर करै ८ अविश्वासीका विश्वास करै ९ अकाम्य वस्तुकी कामना करै १० ॥ ४ ॥ पुत्रवधूसे परिहास करै ११ ससुरालमें रहकर सन्मान अभिलाषाकरै १२ पराये क्षेत्रमें बीजका बोना १३ स्त्रियोंसे विवाद करै १४ ॥ ५ ॥ किसीका धन लेकर भूल जाना १५ तीर्थमें दान करके उधार रखना और फिर न देना और अपने दानीपनकी प्रशंसा करना १६ दुष्ट और झूँठेको साधु समझनेवाले १७ इन सबके गलेमें फाँसी डाल कर नरकमें लेजाते हैं ॥ ६ ॥ जो मनुष्य जैसा व्यवहार करे, उससे वैसाही व्यवहार वर्तना चाहिये, कपटीसे कपट व्यवहार करना और साधुसे साधुव्यवहार करना चाहिये ॥ ॥ ७ ॥ जरा रूपको, आशा धैर्यको, मृत्यु प्राणोंको, दूसरेमें दोषारोपण धर्मचर्याको, काम लज्जाको, नीचसेवा वृत्तको, क्रोध लक्ष्मीको और मानको दूर करताहै ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्र बोले कि, हे विदुर ! जब वेदशास्त्रमें मनुष्यकी सौ वर्षकी आयु कही है, सो अब सौ १०० वर्षकी आयु भोगेविना प्राणी बीचमें क्यों मरजाता है ? पूर्णायु क्यों नहीं होती ? ॥ ९ ॥ विदुरजी बोले कि, वृद्धपुरुषोंको तुच्छ समझना १, सबसे अधिक अपनी बडाई करना २, देनेयोग्य वस्तुको न देना ३, अकारण क्रोध करना ४, अपनेही शरीरका पालन करना ५, मित्रके साथ द्रोह करना ६, यह छः अवगुण हैं॥१०॥सो महातीक्षण खड्गकी समान हैं और प्राणियोंकी आयुके छेदन करनेवाले हैं, परमेश्वर आपका कल्याण करै॥११॥जो विश्वस्तकी स्त्रीसे रमण करता है१,जो गुरुपत्नीके साथ रमण करता है २, जो ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य, शूद्रकी स्त्रीसे

रमण करता है ३, मद्य पीता है ४ ॥ १२ ॥ जो ब्राह्मण, ब्राह्मणपर आज्ञा करता है ५, जो ब्राह्मणोंकी आजीविका नष्ट करता है ६,जो ब्राह्मणोंसे सेवा कराता है ७, और जो शरणागतका मारनेवाला है ८यह आठौ ब्रह्मघातीके समान हैं; इनसे मिलकर प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ॥ १३॥ विद्यावान्, नीतिज्ञ, दानी, देवब्राह्मणको भोजन कराकर पीछे भोजन करनेवाला, अहिंसक, अनर्थ न करनेवाला, उपकारका प्रत्युपकार करनेवाला, सत्य और मीठे वचन बोलनेवाला ऐसे विद्वान् लोगोंको स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! प्रिय बोलनेवाले मनुष्य बहुत मिलेंगे, परन्तु अप्रियवचनोंसे हित करनेवाले श्रोता वक्ता बहुत दुर्लभ हैं ॥ १५ ॥ राजाको कडुवा जानपडे वा मीठा, परन्तु धर्मका वचन कहना उचित है; जिसने धर्मका आश्रय लेकर स्वामीसे प्रिय अप्रिय छोड़कर, अप्रिय हित वचनोंको कहा उसीको अपना सहायक समझना चाहिये ॥ १६ ॥ कुलमें एक पुरुष अनीतिकारी हो, और उसके त्यागनेसे कुलकी रक्षा होती हो तो निःसन्देह उसको त्याग दे, और कुलके त्यागनेसे ग्रामकी रक्षा होती हो तो उस कुलको त्याग दे; और जो ग्रामके त्यागनेसे देशकी रक्षा होती हो तो उस ग्रामको त्याग दे और देशके त्यागनेसे अपने शरीरकी रक्षा होती हो तो सब भूमिको त्याग देना उचित है ॥ १७ ॥ आपत्कालके लिये धनकी रक्षा करना और धनसे स्त्रीकी रक्षा करना, धन और स्त्रीसे आत्माकी रक्षा करना. क्योंकि शरीर है तो सब सुख हो रहैंगे, श्लोक-" पुनर्दाराः पुनर्वित्तं न शरीरं पुनः पुनः " ॥ १८ ॥ पूर्वकल्पमें आपने देखा है कि, इसी द्यूतक्रीडासे परस्पर वैरभाव उत्पन्न हुआ, इसीलिये बुद्धिमान् मनुष्य आमोदके निमित्तभी द्यूतक्रीडा नहीं करते हैं ॥ ॥ १९ ॥ हे राजन् ! आपने जुवा खेलनेका प्रारम्भही किया था, उससमयभी मैंने आपसे कहा था कि द्यूतकर्म आपके योग्य नहीं है; परन्तु आपने उसको अग्राह्य किया था. सत्य है कि; जब रोगीकी मृत्यु निकट आती है तो गुणदायक औषधि जो उसके पथ्यके योग्यहै वह उसको कभी नहीं रुचती और वैद्य शत्रु दिखाई देता है ॥ २० ॥ काकरूप दुर्योधनकी सहायताके लिये चित्रपक्ष मयूररूप पाण्डवगणका पराजय करना दोनोंही समान हैं; क्या कहें ? आप सिंहका पारित्याग करके शृगालका पालन करते हैं ! परन्तु समयपर आपको अवश्यही शोक सन्ताप करना पडेगा ॥ २१ ॥ हे तात ! जो मनुष्य भक्त और हितार्थीपर कभी क्रुद्ध नहीं होते हैं भृत्य उसी भर्ताका विश्वास करता है, और आपत्कालमेंभी उसका साथ नहीं छोडता ॥ २२ ॥ भृत्यगणकी आजीविका रोकनेसे बाह्य धनको जो कि आप लेना नहीं चाहे, क्योंकि वञ्चित भोगहीन विरुद्ध प्रीतिमान् मंत्रीभी स्वामीका परित्याग करता है ॥ २३ ॥ प्रथम सब कार्योंको साध्य असाध्यका भलेप्रकार विचार कर लाभ, व्यय अनुसार आजीविका नियत करके अपने समान सहायकोंको प्राप्तकरे. निश्चय दुष्करकार्य सहायसाध्यहै ॥ २४ ॥ जो निरालस्य अधिकारी स्वामीके अभिप्रायको जानकर सब कार्योंको करता है हितकारी वचन कहनेवाला प्रीतिमान् श्रेष्ठ और अपनी सामर्थ्यको जानता है, ऐसे सेवकको प्राणसमान

रखना चाहिये ॥ २५ ॥ जो पुरुष आज्ञा कियेहुए वचनोंका आदर नहीं करता है और जिस नियुक्तने उत्तरभी दिया और अपने आपको बुद्धिमान् जानकर अभिमान करै और प्रतिकूल भावी होय, ऐसे भृत्यको शीघ्र त्यागना उचित है ॥ २६ ॥ गर्वहीन १, सामर्थ्यशाली २, शीघ्रकारी ३, दयावान् ४, मधुरभाषी ५, अपने स्वामीके अतिरिक्त दूसरेके वशीभूत न होनेवाला ६, जिह्वास्वाधीन ७, और किसी रोगकी पीडा न होय ८, जिसमें यह आठ गुण होयँ उसीको उत्तम सेवक समझना चाहिये ॥ २७ ॥ जिसको अपना विश्वास नहीं, सायंकालके समय उसके घरमें गमन न करै, रातके समय चौराहेमें वास करै तो छिपकर न ठहरै, जिस स्त्रीसे राजा स्नेह करता हो उससे कभी स्नेह न करै ॥ ॥ २८ ॥ जिस कुसंग कार्यकेभी मंत्री बहुत हैं उस कार्यको दोष न लगावै और यह भी न कहै कि, यह बात मेरे मनको नहीं भाती और मुझको तुम्हारा विश्वास नहीं; बरन् यह बात उनको प्रगट नहीं हो और किसी निमित्तसे वहांसे उठकर चला आवै ॥ ॥ २९ ॥ लज्जाशील राजा १, व्यभिचारिणी स्त्री २, राजभृत्य ३, पुत्र अथवा बंधु ४, बालपुत्रवाली विधवा ५, सेनाजीवी ६, अधिकारसे अलग किया हुआ ७, इन सात पुरुषोंसे द्रव्यका व्यवहार न करना ॥ ३० ॥ मनुष्यको आठ गुण सदा प्रकाशवान् करते हैं, बुद्धि १, कुलीनता २, शास्त्रावलोकन ३, बाह्येन्द्रियोंका जीतना ४, पराक्रम ५, अमित भूषण ६, यथाशक्ति दान ७, कृतज्ञता ८ ॥ ३१ ॥ हे तात ! इन महानुभाववाले गुणों को एक गुण हठसे आश्रय करता है, अर्थात् जब राजा पुरुषका सत्कार करता है तब यह गुण सब गुणोंको धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ यह दश गुण प्रातःकाल स्नान करनेवालेके समीप सदा रहते हैं. बल १, रूप २, स्वरशुद्धि ३; स्पष्टवर्णोच्चार ४, मृदुता ५, सुगन्ध ६, विशुद्धता ७, श्री ८, सुकुमारता ९; जिसमें यह नव गुण हैं उसको अत्यन्त सुन्दर मनकी हरनेवाली दशवीं स्त्री प्राप्त होती है १० ॥ ३३ ॥ यह छःगुण भूंख लगनेपर भोजन करनेवालेके निकट रहते हैं और इनही पुरुषोंको मितभोजी कहते हैं. अपनी भूखके चार भाग करै, उसमें दो भाग अन्नके, एक भाग जलका, चौथा भाग पवनके संचार होनेके लिये रखना, इसीका नाम मितभोजनहै आरोग्य १, आयु २, बल ३, सुख ४, उत्तम डकार ५ और निर्मल सन्तान उत्पन्न होती है ६ ॥ ३४ ॥ अकर्मण्य १ बहुभोजी २, लोकविद्विष्ट ३, कपटी ४, नृशंस ५, देशकालका न जाननेवाला ६, और अप्रिय वेषधारी ७, इतने मनुष्योंको घरमें न बसावे ॥ ३५ ॥ इन नव पुरुषोंके पास महाक्लेशके समयभी मांगना नहीं चाहिये; अदाता १, दुर्वाक्य कहनेवाला २, मूर्ख ३, वनवासी ४, कपटी ५, धूर्त ६, अभिमानी ७, निर्दयी ८, और कृतघ्नी ९ ॥ ३६ ॥ यह छः प्रकारके आततायी हैं, इनसे कभी रीति प्रीति न करना. क्रूरकर्मी १, मिथ्यावादी २, भक्तिशून्य ३, स्नेहशून्य ४, चंचलवृत्ति ५ और निपुणस्मय ६ ॥ ३७ ॥ अर्थ सहायकोंके वशमें है और सहायक अर्थोंके वशमें हैं, यह दोनों ऐसे हैं कि, एकके वशमें एक है, इस लिये एकके विना दूसरेका कार्य सिद्ध नहीं होसक्ता ॥ ३८ ॥ कुलीन स्त्रीसे पुत्र उत्पादन

करना उसको धर्मशास्त्रकी विद्याका अभ्यास कराना, और ऋणशून्य करके कुछ आजीविका उसके लिये नियत कर देना, और कन्या होय तो उसको अच्छे कुलमें सत्पात्र वरके साथ विवाह देना. पीछे मुनिवृत्ति धारणकर वनको गमन करना, और एकान्तस्थानमें समाधि लगाकर निरन्तर वासुदेव भगवान्‌के ध्यानमें मनको लगाना ॥ ३९ ॥ जो कर्म सब प्राणियोंका हितकारक अपना सुखदायक हो वही कर्म करना, और परमेश्वरके निकट वह कर्म सर्वार्थसिद्धिदायक है ॥ ४० ॥ बुद्धि, प्रभाव, तेज, बल, उद्योग, निश्चय, जिसको यह छः प्राप्त होवें उसको आजीविकाकी कुछ चिन्ता नहीं ॥ ४१ ॥ विदुरजी बोले कि, हे महाराज ! आप पाण्डवोंके साथ वैर करनेके दोषोंका विचारकर देखो ! कि, उनसे युद्ध घटना होनेसे महाअनिष्ट होगा, यह बडे बलशाली और समरविजयी हैं कि, इन्द्रभी जिनसे युद्ध करनेमें व्यथित होता है, वह दोष यह हैं, पुत्रोंसे वैर, दूसरे सदा उद्विग्न, तीसरे संसारमें अपयश, चौथे शत्रुगणका हर्षोत्पादन ॥ ४२ ॥ हे राजा धृतराष्ट्र ! जैसे धूम्रकेतु आकाशसे पतित हो तो सब लोकका विनाश हो, उसी प्रकारसे भीष्म, द्रोण, युधिष्ठिर, आपका क्रोध होनेसे सब लोकका विध्वंस होजायगा ॥ ४३ ॥ इसलिये आपके सौ पुत्र, कर्ण और पांचों पाण्डव एकत्र होकर सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करें ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! आपके पुत्र वन हैं, जिसमें पाण्डवगण सिंह हैं, इसलिये तुम सिंहोंसहित वनको मत काटो. सिंह वनके होनेसे नाशको नहीं पाते ॥ ४५ ॥ क्योंकि विना सिंहोंके वन नहीं होता, और विना वनके सिंह नहीं होते, जिस वनमें सिंहोंका वास है उसीका नाम वन है, सिंहोंहीसे वनकी रक्षा है और वन सिंहोंकी रक्षा करता है ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! दुष्टचित्तवाला मनुष्य दूसरेके सद्गुण जाननेकी इच्छा नहीं करता, केवल दोषमात्रका शोधन रखता है, और उत्तम गुणोंपर जान बूझकर दोष लगाता है ॥ ४७ ॥ उत्कृष्ट पुरुष अर्थकी निन्दा करनेवाले, प्रथम अपने धर्मका आचरण करते हैं. और अपने धर्मका परित्याग करनेसे किञ्चिन्मात्रभी अर्थकी प्राप्ति नहीं होती, जैसे स्वर्गलोकके परित्याग करनेसे अमृत नहीं प्राप्त होता ॥ ४८ ॥ जिसका चित्त पापोंसे रहित होकर परमात्माके चरणारविन्दोंमें लगता है, वह सब कुछ जानता है, कोई बात उससे गुप्त नहीं, और जो तीन गुण रखनेवाले माया महत्तत्त्वादिक हैं उनकोभी जान जाता है ॥ ४९ ॥ जो पुरुष समयानुसार धर्मार्थकामका सेवन करताहै, वह दोनों लोकोंमें धर्मार्थकामके संयोगको पाता है ॥ ५० ॥ हे राजन् ! जो पुरुष हर्षक्रोधके उठेहुए वेगको रोकता है और मायाकी आपत्तियोंमें मोहित नहीं होता, कालसे भय नहीं मानता, वह पुरुष लक्ष्मीका कृपापात्र है ॥ ५१ ॥ मनुष्योंका बल पांच प्रकारका होता है, बाहुबलनामक कनिष्ठ बल है १ ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! आपका मंगल हो, मंत्रीबल दूसरा कहा जाता है २ और बुद्धिमानोंने तीसरा बल धनलाभ कहा है. ३ ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! पिता परपितासे सम्बन्ध रखनेवाला सहज बल है, वह अभिजात बलहै, और चौथा बल कहलाता है. ४ ॥ ५४ ॥ हे भारतकुलभूषण ! जिस बलसे यह सब इन्द्रिय वशमें हैं, और जो बल सबमें उत्तम है वह बुद्धिबल कहलाता है,

इसद्वारा सब संग्रह हो सके हैं ॥ ५५ ॥ जो जन बडे पुरुषके अपकारार्थ उपाय करता है, वह उसके साथ शत्रुता करके विचारा न करे कि, मैं उससे दूर हूं ॥ ५६ ॥ कौन ज्ञानी अप्रोक्त प्राणियोंपर विश्वास करनेके योग्य है? स्त्री, राजा, सर्प, स्वाध्ययन, प्रभु, शत्रु, विषय-भोग और आयुका विश्वास कोई ज्ञानी नहीं करता है ॥ ५७ ॥ बुद्धिरूप बाणसे जिसका जीव घायल हुआ है उसकी परीक्षा करनेके लिये वैद्य तो हैं. परन्तु औषधि नहीं है, न होम है, न मंत्र है न मंगलहै न अर्थ व मंत्र है और सिद्धरसभी नहीं है ॥ ५८ ॥ हे भरतवंशी ! सर्प, अग्नि, सिंह, कुलपुत्र, इनकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ये बडे तेजस्वी होते हैं ॥ ५९ ॥ इस लोकमें अग्नि काष्ठके भीतर गुप्त रहती है तबतक कोई नहीं जानता और उस काष्ठका भोगभी नहीं करती जबतक कोई उसका उद्दीपन नहीं करता ॥ ६० ॥ जब वह काष्ठसे मथकर उद्दीपनको प्राप्त होती है फिर जिस काष्ठमें रहती है उस काष्ठसहित सब वनको भस्म कर डाळती है ॥ ६१ ॥ इसी प्रकार आपके वंशमें पाण्डव अग्निसमान तेजस्वी हैं अनादर कियेहुए क्षमावन्त ऐसे गुप्त वास करते हैं, और पुरुषार्थ नहीं दिखाते, जैसे आग काष्ठमें वास करतीहै ॥ ६२ ॥ आप और आपके पुत्रगण लतारूप हैं, और पाण्डवगण शालवृक्ष स्वरूप हैं; सो बडे वृक्षका आश्रय लिये बिना लता बढती नहीं ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! आप और आपके पुत्र दुर्योधनादिक वनस्वरूप हैं और पाण्डवगण सिंहस्वरूप हैं, सिंहके न रहनेसे वन विनष्ट होजाता है, और सिंह भी वनके विना विनाशको प्राप्त होजाता है ॥ ६४ ॥

इति श्रीशालिग्रामवैश्यकृतविदुरनीतिभाषानुवादे विदुरधृतराष्ट्रसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विदुरजी बोले कि हे महाराज ! साधुजन अभ्यागत जानकर आये हुये पुरुषका सत्कार करते हैं और जो कोई दूषित जनभी अतिथिरूपसे अपने घर आवे तो उसकाभी अर्चन करना उचित है ॥ १ ॥ पण्डितलोग साधु अभ्यागतके लिये बैठनेको आसन दें और जल लाकर उसके दोनों पांव धोवैं, फिर कुशल क्षेम बूझकर, अपनी व्यवस्था कहकर तदनन्तर अन्न देखकर दे और कुछ उपहार समर्पण करैं ॥ २ ॥ मंत्रज्ञ ब्राह्मण जिसके घरमें जल, मधुपर्क, और गौको नहीं लेता और उसका आदर सत्कार नहीं होता, लोभसे अथवा कृपणतासे श्रेष्ठ पुरुषोंने उसका जीवन निष्फल कहा है ॥ ३ ॥ वैद्य, शस्त्र बनानेवाला, ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट, चोर, दयाहीन, मद्य पीनेवाला, गर्भ गिरानेवाला, सेनाजीवी, वेद बेचनेवाला इस प्रकारका परमप्रियभी अतिथि होय तौभी जल देनेके योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ लवण, पक्वान्न. दही, दूध, मधु. तेल, घृत, तिल, मांस, फल, फूल, शाक, रक्तवस्त्र, गन्धद्रव्य और गुड ये वस्तुयें बेचनेके योग्य नहीं हैं ॥ ५ ॥ जो पुरुष रोषहीन, लोष्ट पत्थर स्वर्णको समान माननेवाला, द्रव्यको पास न रखनेवाला, सन्धि, विग्रहके व्यतिरिक्त, निन्दाप्रशंसासे उपरामी है, वह उदासीनकी समान प्रियाप्रियको त्याग करता संन्यासी है ॥ ६ ॥ तृण,

धान्य, मूल, इंगुद (हिङ्गोट) शाकजीवी, वशचित्त अग्निकार्योंमें सावधान, वनमें वास करनेवाला अतिथियोंमें अप्रमत्त धर्मरूप धुरका धारण करनेवाला, और दान पुण्यका करनेवाला ये तपस्वी हैं ॥ ७ ॥ बुद्धिमानका अपमान करके फिर विश्वास न करै और यह न जाने कि, मैं दूर स्थितहूं बुद्धिमान्की दीर्घ भुजा होती हैं जिनका माराहुआ तुरन्त मरजाता है ॥ ८ ॥ अविश्वासीका विश्वास कभीभी न करै और विश्वासीकाभी अत्यन्त विश्वास न करै विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय मूलकोभी काटता है ॥ ९ ॥ जो स्त्रियां महाभाग्य, पावन, पवित्र अद्भुत चरित्रवाली जो घरका प्रकाश हैं वे लक्ष्मी कहलाती हैं, इसलिये वे अधिक रक्षा करनेके योग्य हैं ॥ १० ॥ उनसे ईर्षा न करै, उनपर क्षमा रखनी चाहिये, उनकी सदा रक्षा करता रहै, देवादिकोंके विभाग देनेमें उनको अग्रणी करै, अन्न वस्त्रादिक उनको यथायोग्य दे, और सदा उनसे सरल व मधुर वचन बोले, परन्तु इनके वशमें होना नहीं चाहिये ॥ ११ ॥ पिताको अन्तःपुरका अधिकार दे माताको पाठशाला अथवा घरका प्रबन्ध करनेवाली बनावै, गौओंको आत्मातुल्य वस्तु दे और उनके लिये आपही खेती करै ॥ १२ ॥ भृत्यजनोंसे व्यवहार कराना, पुत्रोंसे ब्राह्मणोंका सेवन कराना जलसे अग्निकी पूजा करनी ब्रह्मकुलसे क्षत्रिय कुलकी रक्षा करानी और पत्थरोंसे लोहा निकालना ॥ १३ ॥ ऐसे पुरुषोंका तेज जो सर्वत्र स्थानोंमें व्याप्त होरहा है, वह अपनी योनिमें शान्त होता है; कुलमें जो साधु उत्पन्न होता है वह सदा अग्निके सदृश तेजस्वी है ॥ १४ ॥ अपमान किये हुए क्षमावान् पुरुष इस प्रकार वास करते हैं जैसे अग्नि काष्ठमें वास करता है बाहिर भीतरके मनुष्य जिसके मंत्रको नहीं जानते हैं ॥ १५ ॥ सब ओर दृष्टि रखनेवाला राजा दीर्घ काल-तक ऐश्वर्य भोगता है. भूपतिको चाहिये कि, कार्य करनेके समय कुछ न कहै, सिद्ध होनेपर कार्योंको दिखावे ॥१६॥ जो कि, धर्मार्थ कामके कार्य हों उसप्रकार मंत्रभेद नहीं होता है क्योंकि इसका गुप्त रखनाही उचित है, और जो इन बातोंकी सम्मति करै तो कहां करै ? पर्व-तकी चोटीपर वा बडेस्थान पर चढकर वा एकान्तमें जाकर ॥१७॥ अथवा तृणरहित वनमें बैठकर जहां कोई न सुनसके और कोई न जा सके, ऐसे स्थानपर बैठकर मंत्र किया जाताहै, हे भरतवंशी ! जो सुहृद् नहीं वह मंत्रके जाननेके योग्य नहीं, क्योंकि श्रेष्ठ मंत्र मित्रोंहीके जानने योग्य है ॥१८॥ और जो मित्र है परन्तु ज्ञानी नहीं, अथवा ज्ञानी भी है परन्तु जिह्वा वशमें नहीं और जो जिह्वा वशमें हो परन्तु चपल हो, तो ऐसे मित्रसे गुप्त बात कहनी उचित नहीं राजाको चाहिये कि, विना परीक्षा किये अपना मंत्री न करै ॥ १९ ॥ क्योंकि मंत्रीमें अर्थलिप्सा और मंत्ररक्षण होता है, जो मंत्री सम्पादन करना चाहता है वह सब कार्योंको सिद्ध करसक्ता है और गुह्यगुप्त बातोंको मनमें रखना जानता है वही मंत्री मंत्री-पदके योग्य है ॥२०॥और वही राजा धर्मार्थ कार्योंके विषय राजाओंमें श्रेष्ठ है,कि–जिसके गुप्त मंत्रको सभाके सभासद्भी नहीं जानते ॥२१॥ जो पुरुष मोहके वशीभूत हो निन्दित कार्योंका अनुष्ठान करता है; वह सिद्धिको नहीं पाता, बरन् किसी समयमें जीवित्वसे भी भ्रष्ट होजाता है ॥ २२ ॥ उत्तम कर्मका अनुष्ठान परमसुखदायक है, उसका अनुष्ठान न करना अत्यन्त

पश्चात्तापको उत्पन्न करता है ॥ २३ ॥ जैसे ब्राह्मण वेदोंको न पढकर श्राद्ध करनेके योग्य नहीं होता, इसीप्रकार संध्यादिक और शत्रुके साथ वर्ताव कहनेके लिये छे गुण जिसमें नहीं हों, वह पुरुष परामर्शके योग्य नहीं है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! प्रथम गुण मैत्री १, हानि २, चढ़जाना ३, ठहर जाना ४, फूट करना ५, सन्धि करना ६, अपनी पहिलेसी स्थिति है, वा वृद्धि है अथवा क्षय है, यह छै गुण जो राजा भली प्रकार जानता है और जगत् प्रसिद्ध शीलवान् है, यह सब पृथ्वी उसके अधीन है ॥ २५ ॥ जिसके क्रोधसे लोग डरते हैं और हर्षसे लाभ पाते हैं, अपने कार्योंको आप अपने नेत्रोंसे देखता है और अपने भण्डारको वारम्बार रक्षा करता है, वही राजा सर्वत्र पृथ्वीका राज्य करता है ॥ २६ ॥ राजाको उचित है कि नाममात्रसे तृप्त होवे, और जो क्षत्र अपने शिरपर है उसीपर सन्तुष्ट रहै, सम्पत्तिको सेवकों समेत भोगे, उसको अपनी न समझे, अकेलाही सब के भोगनेकी इच्छा न करै ॥ २७ ॥ ब्राह्मणके स्वरूपको ब्राह्मण जानता है, राजाके स्वरूप को राजा जानता है, स्त्रीके स्वरूपको भर्ता जानता है और मंत्रीके स्वरूपको राजा जानता है ॥ २८ ॥ वध करने योग्य अपराधी अपने हाथ आजाय उस शत्रुको जहां-तक अपना वश चले कभी न छोडे, निःसन्देह मारडाले. और शत्रु नीचा बनकर अपनी सेवा करना भी स्वीकार करै तोभी उसका छोडना उचित नहीं; क्योंकि छोडनेसे वह शीघ्रही अपकार करता है. दण्ड देनेवाले शत्रुसे कभी अचेत नहीं रहना चाहिये ॥ २९ ॥ देवता १, ब्राह्मण २, राजा ३, वृद्ध ४, बालक ५, रोगी ६; इनपर क्रोध आवै तो उसको शान्त करना चाहिये ॥ ३० ॥ बुद्धिमान् अज्ञानीकी सेवाको और क्लेशको सदा परित्याग करते हैं; इसीसे वे लोग लोकमें कीर्तिको पाते हैं, और अनर्थ उनको बाधा नहीं करता ॥ ॥ ३१ ॥ जिसका प्रसाद निष्फल है, उसका क्रोधभी व्यर्थ है, ऐसे स्वामीको लोग नहीं चाहते. जैसे नपुंसकपुरुषको स्त्री नहीं चाहती ॥ ३२ ॥ धन लाभके लिये नहीं, अज्ञानता दरिद्रके लिये नहीं, जगत्के सनातन वृत्तान्तको ज्ञानीलोग भलीप्रकार जानते हैं दूसरा नहीं जानता ॥ ३३ ॥ हे भरतवंशी ! जो पुरुष विद्या, शील, स्वभाव, अवस्था, बुद्धि, द्रव्य, उत्तमकुलमें बडे हैं; अज्ञानी सदा उनकी निन्दा करते हैं ॥ ३४ ॥ नीचकर्मी, मूर्ख, दोषदृष्टि, अधर्मी, दुर्वाक्य बोलनेवाला, क्रोधी, इन पुरुषोंको अनर्थ शीघ्रही प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ किसीके साथ छल न करना; दानमर्यादाका अनतिक्रम, यथोचित भाषण; ये गुण जिस प्राणीमें हों, उसको शत्रुओंका वश करना कुछ कठिन नहीं है ॥ ॥ ३६ ॥ छलहीन, चतुर, उपकारी, बुद्धिमान्, सरलस्वभाव, ऐसा पुरुष जो निर्धनभी होगा तोभी उसकी, इष्ट, मित्र, सेवक, शुश्रूषा करैंगे ॥ ३७ ॥ धैर्य्यवान्, क्रोधजित्, इन्द्रियदमन किये हुए, निर्मल, करुणाकर, मधुर बोलनेवाला, मित्रोंसे द्रोह न रखनेवाला ये सात गुण सब जगत्में कीर्तिके प्रसिद्ध करनेवाले हैं ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष कुटुम्बादिकको विभाग नहीं देनेवाला, दुष्टचित्त, अकृतज्ञ और निर्लज्ज है वह नीच संसार में त्याग करने योग्य है ॥ ३९ ॥ वह मनुष्य रात्रिमें नहीं सोता जैसे सर्पवाले घरमें रहनेसे

प्राणीको निद्रा नहीं आती ॥ ४० ॥ हे भरतवंशी ! जिन दुष्टोंमें द्रव्यके आगम और रक्षाका दोष हो सदा उनकी प्रसन्नता देवता लोगोंके समान है ॥ ४१ ॥ जो धन स्त्रियों के हाथमें गया उसको गयाही जानो. उन्मत्तोंके हाथ, वा मूर्खोंके हाथ, अथवा नीच और अनार्यके हाथमें गया, वह ऐसाही जानना; क्योंकि जहां स्त्री प्रबल है, वहां कैसी कुशल ? ॥ ४२ ॥ जहां स्त्री, वा द्यूतकारक, वा, छलीका अधिकार है; और जहां बालक बुद्धिका नरेश आज्ञाकारी है; हे राजन् ! वहां जो लोग रहते हैं, वे ऐसे डूबते हैं, जैसे पाषाणकी नावमें बैठनेवाले नदीमें डूबते हैं ॥ ४३ ॥ जिसके हाथमें अपना कार्य हो. उस के गुण दोषोंपर ध्यान नहीं करना चाहिये, चतुर हो वा मूर्ख क्योंकि ऐसे ध्यान देने से कार्यभंग होजाता है ॥ ४४ ॥ द्यूतकारक जिसकी श्लाघा करते हैं, चारणादिक जिसको अच्छा कहते हैं, व्यभिचारिणी स्त्री जिसकी प्रशंसा करती है, वह पुरुष बहुत दिन नहीं जीता ॥ ४५ ॥ हे भरतवंशी ! तुमने उन महाधनुषधारी, महातेजस्वी पाण्डवोंको त्यागकर दुर्योधनके ऊपर ऐश्वर्यका भार रक्खा है ॥ ४६ ॥ परन्तु थोडे कालमें उसको भ्रष्ट देखोगे, जैसे ऐश्वर्यमदसे अचेत राजा बलिको तीनों लोकोंसे भ्रष्ट देखा है ॥ ४७ ॥

इति श्रीशालिग्रामवैश्यकृतविदुरनीति भाषानुवादे विदुरधृतराष्ट्रसंवादो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र बोले कि, हे विदुर ! यह मनुष्य ऐश्वर्य और अनैश्वर्यमें असमर्थ है, ईश्वरसत्ताके अधीन है, जैसे काठकी कठपुतली सूत्रडोरी संचालनवालेके स्वाधीन होती है, यह पुरुष ईश्वरसे प्रारब्ध वश कियागया, इसलिये तुम मेरे कानमें कहो, मैं धैर्यवान् हूं ॥ १ ॥ विदुर बोले कि हे महाराज ! बृहस्पतिजी भी असमयपर वचन कहनेसे बुद्धिके निरादर और तिरस्कारको पाते हैं और मेरी तो क्या सामर्थ्य है ? आपकी आज्ञानुसार मैं कहता हूं आप सुनिये ॥ २ ॥ जिससे धन प्राप्त होता है वह प्रिय लगता है, और मधुर वचन बोलनेवालाभी प्रिय लगता है, अथवा बुद्धि देनेवाला भी प्रिय लगता है. और आश्रय देनेवाला भी प्रिय लगता है, वही इन गुणोंके न होनेसे अप्रिय लगता है, इसलिये इनको प्रिय कहना नहीं चाहिये, कारण प्रिय है, वह तो प्रियही है, और मंत्रमूल बलसे जो प्रिय है वही प्रिय है ॥ ३ ॥ द्वेषकर्ता न तो साधु होता है, न मेधावी, और न पण्डित प्रियमें शुभ है द्वेषमें पाप है जो वस्तु अपने मनको नहीं रुचे उसमें सद्गुण भी हों तो दुर्गुण विदित होते हैं और जिस वस्तुमें अपना स्नेह होता है उसके दुर्गुण भी अपने आपको सद्गुण दिखाई देते हैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! दुर्योधनके जन्म लेतेही मैंने आपसे कहा था कि आप इस अकेले पुत्रका परित्याग करो इसके परित्याग करनेसे सौ पुत्रोंका कल्याण होगा और नहीं तो तुम्हारे समस्त पुत्रोंका विनाश होगा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! उस वृद्धिको अधिक न मानना चाहिये कि जिसकी उत्तर कालमें क्षयकी सम्भावना हो, क्षयको भी बहुत मानना चाहिये कि, जो वृद्धिको प्राप्त करे ॥ ६ ॥ हे महाराज ! वह क्षय नहीं है, जो वृद्धिको

प्राप्त करै यहाँ वह क्षय है कि, जिसको पाकर सर्वनाश हो, और जो क्षयसे पहिले वृद्धि-लाभ हो, उस क्षयको भी प्राप्त करै. यहाँ वह क्षय है. कोई पुरुष धनसे कोई गुणसे समृद्ध होते हैं, हमारी समझसे धनाढ्य और गुणहीन, दोनों जनोंका परित्याग करनाही उचित है ॥ ७ ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्र बोले कि हे विदुर ! तुमने जो वचन कहे वे सबही मेरे परम हितकारी हैं; परन्तु मैं किसी प्रकार पुत्रको परित्याग नहीं करसक्ता, देखो ! जहाँ धर्म तहाँ जय होती है ॥ ९ ॥ विदुरजी बोले कि, हे राजन् ! जो सर्वगुणसंपन्न हैं, वे कभी विनयके योग्य नहीं हैं वे प्राणियोंके किंचित् नाशकोभी उपेक्षा करते हैं ॥ १० ॥ जो पुरुष पराई निन्दासे स्नेह मानकर निरन्तर उठकर मनुष्यपर दुःखके उदय और परस्पर बिरोधमें यत्नवान् हैं ॥ ११ ॥ जिन लोगोंका दर्शन करनेसे अत्यन्त दोष हैं, उनके सह-वाससे भी बडाही भय है, और उनका धन लेनेमें महादोष है और देनेमें अतिभय है॥१२॥ जो भेदनशील, सकाम, निर्लज्ज और जड हैं. वे पापी विख्यात हैं और सहवासमेंभी निन्दित हैं जो मनुष्य दूसरे महादोषोंसे युक्त हैं उनका त्याग करनाही उचित है, क्योंकि सौहार्दके निवृत्त होनेपर नीचकी प्रीति विनाशको उत्पन्न करती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ जो फल सिद्ध है और सौहृदमें जो सुख है, वह भी नाश होजाता है, वे पुरुष नाशार्थ वा निन्दार्थ यथासाध्य प्रयत्नारम्भ करते हैं ॥ १५ ॥ अज्ञानवश उन लोगोंका अणुमात्र अपकार करनेसेभी वे लोग शान्तिपथका अवलम्बन नहीं करते हैं ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् जन दूरहीसे ऐसे लोगोंका परित्याग कर देते हैं, हे राजन् ! जो जन, दीन, दरिद्री, रोगी और ज्ञातिगणके ऊपर अनुग्रह करते हैं ॥ १७ ॥ उनहीकी वृद्धि होती है इसलिये आप सत्कर्मका अनुष्ठान कीजिये. ज्ञातिगण गुणहीन होनेसेभी उनकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ॥ १८ ॥ हे राजन् ! शुभ कर्म करो और कुलकी वृद्धिभी करनी चाहिये; जो ज्ञातिकी सत्क्रिया करता है उसका सदा कल्याण होता हैं ॥ १९ ॥ हे नरेन्द्र ! विगुण ज्ञातिजनभी भलेप्रकार रक्षा करनेके योग्य हैं; फिर वे गुणवान् और आपकी प्रसन्नता चाहनेवाले जो पाण्डवगण हैं; उनकी रक्षा क्यों नहीं होती ? ॥२०॥ हे विशांपते ! अशेषगुणालंकृत पाण्ड-वगण बडे शूरवीर हैं उनपर आपको अत्यन्त प्रसन्न होना अवश्य चाहिये ॥ २१ ॥ हे नरा-धिप ! आप अनुग्रह करके पाण्डवगणकी आजीविकाके लिये एक ग्राममात्र उनको प्रदान कीजिये, उससे आपका यश संसारमें विख्यात होगा ॥ २२ ॥ हे तात ! आप वृद्ध हैं, आपको पुत्रगणका शासन करना योग्य हैं, हम सदा आपको हितोपदेश प्रदान करते हैं ॥ ॥ २३ ॥ हमकोभी आप अपना हितैषी जानो. इसलिये हम आपसे कहते हैं, कि हे तात ! शुभार्थीको ज्ञातिजनोंके साथ भोजन, भाषण और परस्पर प्रीति करनी उचित है कभी विद्रोह करना नहीं चाहिये.

सोरठा-नष्ट होत ऐश्वर्य्य, शत्रु हँसत सब जगतमें ।
बढ़ो कौन नृपवर्य्य, प्रबल बन्धुसों वैर कर ॥ २४ ॥

इस लोकमें ज्ञातिजनही तारते हैं और ज्ञातिजनही विग्रह करनेसे डुबाते हैं; यहां श्रेष्ठ

वृत्तधारी और उपकारी पुरुष तारते हैं. और दुर्वृत्तधारी और अत्याचारी डुबाते हैं ॥ २५ ॥ हे मानदाता नरेन्द्र! पाण्डवगणके साथ सुवृत्त होकर जो तुम उनका पालन करोगे तो शत्रुगणको जीतकर अजीत होगे ॥ २६ ॥ जो ज्ञातिजन श्रीमान् पुरुषको पाकर उसके पास आता है और उसका दुःख दूर नहीं होता तौ उसको महापातक लगता है, जैसे मृग, विषके बुझेहुए बाणवाले धनुषको पाकर और उस मनुष्यसे उन दीनमृगोंकी रक्षा न हो, जैसे वह पापका भागी होता है, ऐसेही ज्ञातिगणके त्याग करनेवालेको महापाप होता है ॥ २७ ॥ हे नरोत्तम! थोडेही कालके पश्चात् पाण्डवगणका अथवा अपने पुत्रगणका मरण सुनकर तुमको अत्यन्त पश्चात्ताप करना पडेगा ॥ २८ ॥ जिस कर्मके करनेसे खट्वारूढ पुरुष दुःखित होय, उचित है कि, जीवितके अनित्य होनेपर प्रथमही उस कर्मको न करै ॥ २९ ॥ हे महाराज! नीतिशास्त्रके कर्ता, भार्गवमुनि, शुक्राचार्यके अतिरिक्त क्या कोई मनुष्य संसारमें अनीति कर्म नहीं करता? यह बात नहीं, अर्थात् सब लोग नीतिविपरीत कर्म करते हैं; इसलिये शेषकालका विचारही बुद्धि मनोमय स्थित होता है और बुद्धिमान् पुरुष मोहवश अनुष्ठित अनीतिका शीघ्रही प्रतिविधान करलेते हैं ॥ ॥ ३० ॥ पूर्वकालमें दुर्योधनने पाण्डवोंपर जो पापाचरण किया है, हे नरेश्वर! आप कुलवृद्ध हैं, इस समय आपको उसका प्रतिविधान करना चाहिए ॥ ३१ ॥ हे नरोत्तम! आप पाण्डवगणको राज्यपद प्रदान करके जगत्में यशलाभ कीजिये और निर्दोष बुद्धिमानोंके पूजनीय होइये ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य महात्माजनोंका हितवाक्य विशेष चिन्ताकरके कार्य करते हैं, उनका यश दीर्घकालतक प्रकाश करता रहता है ॥ ३३ ॥ और कुपात्रों को उपदेश करना निष्फल होता है, क्योंकि, ऐसे मनुष्य उपदेश नहीं समझ सक्ते हैं. और कदाचित् समझभी गये तो उनसे वैसा आचरण नहीं होसक्ता ॥ ३४ ॥ जो विद्वान् उपदेश करी हुई बातोंका ध्यान अपने चित्तमें रखता है और पापफलवाले कर्मोंका आरम्भ नहीं करता और यह समझता है कि, इसके कर्म करनेसे क्या पाप होगा? वह वृद्धि पाता है, और जो पूर्व किये हुए कर्मोंको नहीं विचारता है, और फिरभी उसमें प्रवृत्त होता है ॥ ॥ ३५ ॥ वह दुष्टबुद्धि महाघोर नरकमें डाला जाता है. और ज्ञानी पुरुष मंत्रभेदके इन छे द्वारोंको देखते रहते हैं ॥ ३६ ॥ और वृद्धि चाहनेवाला सदा इन छे बातोंको चित्तमें धारण करै, क्योंकि गुप्त बात इनही छे स्थानोंसे फूटकर निकलती है. मद्यपान १, निद्रा २, अविज्ञान अर्थात् इधर उधरको विना देखे गुप्त बात कहदेना ३. नेत्र मुख आदिका विकार जो कि आत्मशरीरोत्पन्न है ४ ॥ ३७ ॥ दुष्ट मंत्रियोंपर विश्वास ५, अकुशल सेवकोंपर विश्वास ६, हे नराधीश! जो पुरुष सदा इन छे द्वारोंको जानकर बन्द करता है ॥ ॥ ३८ ॥ वह बृहस्पतिजीके सदृश जनभी हो, परन्तु शास्त्राध्ययन और वृद्ध पुरुषोंकी सेवा विना किये कभी धर्मार्थके तत्त्वको नहीं जानसक्ता है ॥ ३९ ॥ समुद्रमें गिरा सो गया १, जो अपनी बात किसीसे नहीं कहता, उसके कानमें गया सो गया २ ॥ ४० ॥ अज्ञानीको शास्त्र सुनाया सो गया ३, अग्निहोत्र विना होम किया सो गया ४, मेधावी पुरुष

बारंवार युक्ति विचारसे इतनी परीक्षा पहिले कर ले कि, कुल कैसा है ? शील कैसा है ? अपने अनुभवमें कैसा आता है ? लोग उसको क्या कहते हैं ? उसकी आकृति प्रत्यक्ष देखना, उसकी चातुर्यता देखना, पीछे उसके साथ मित्रता करना ॥ ४१ ॥ विनय अकीर्तिका नाश करती है और पराक्रम अर्थका नाश करता है, क्षमा सदा क्रोधको मारती है, और आचार अलक्षणका नाश करता है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! सामग्री, जन्मभूमि, स्थान, आचरण, भोजन, वस्त्रके द्वारा कुलकी परीक्षा करै, सिद्धार्थ पुरुषका विपरीत वचन विद्यमान नहीं है ॥ ४३ ॥ बंधनसे मुक्त शरीर मनुष्यका भी विपरीत वचन विद्यमान नहीं है फिर काम विरक्तका क्या होगा ? ॥ ४४ ॥ पहिले राजाके पास वास करनेवाले विद्यमान धार्मिक, प्रियदर्शन, मित्रवान्, सुवाक्य सुहृदका सब प्रकार पालन करै ॥ ४५ ॥ परन्तु मर्यादाका उल्लघन न करनेवाला जो पुरुष है, वह चाहै उत्तम कुलका होय, चाहै नीचकुलका होय, ज्ञानी होय चाहै अज्ञानी होय ॥ ४६ ॥ धर्मका चाहनेवाला हो, नम्र और लज्जावान् हो, वह पुरुष शतकुलीनसेभी श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ और जो दोनोंका आचरण समान है, प्रकृति समान है, ज्ञान समान है तो दोनोंकी मित्रता अचल होती है; कभी जीर्ण नहीं होती ॥ ४८ ॥ और दुर्बुद्धि, अज्ञानी, तृणावृत कूपकी सदृश मनुष्यको ज्ञानी त्याग देवे क्योंकि उसमें मित्रता नष्ट होती है पंडित लोग उन लोगोंके साथ मित्रता नहीं करते जो कि गर्वसे अविवेकी, मूर्ख, क्रोधसे प्रवृत्त ॥ ४९ ॥ और धर्मसे रहित हैं उनसे कभी मित्रता न करैं; कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवृद्ध, दृढभक्तिवाला, ब्रह्मज्ञानी, वेदवेत्ता ॥ ५० ॥ जितेन्द्रिय,मर्यादास्थ, ऐसे मित्रको वह चाहता है, जो ऐश्वर्यका त्यागी नहीं है.इन्द्रियोंके विषयको अलग करना मृत्युसेभी कठिन है ॥ ५१ ॥ फिर विषयोंमें अत्यन्त प्रवृत्ति देवताओंकोभी पीडित करै है; सब प्राणियोंसे नम्रता रक्खै १, दूसरेपर दोष नहीं रखना २, क्षमा ३, धैर्य ४ ॥ ५२ ॥ मित्रोंका अपमान न करना ५, ज्ञानियोंने यह पांचों गुण ज्ञानकी और आयुकी वृद्धि करनेवाले कहे हैं, ज्ञानसे स्थिर होकर विषयोंके स्वादको नहीं चाहता वह शूरव्रत है. भविष्य कालमैं दुःखप्रतीकार जाननेवाला, वर्तमान कालमें दृढनिश्चयवाला ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ भूतकालमें शेषकार्य जाननेवाला मनुष्य अर्थहीन नहीं होता, उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं; मनसा वाचा कर्मणा जिसका निरन्तर सेवन करता है और वही अभ्यास रखता है ॥ ५५ ॥ वही इस पुरुषको ऱ्हास करता है और सब साध्य है । इसलिये पुण्यकर्मकी भावना करै, मगलादि (दधि, दूर्वा, रोली, अक्षत, चन्दन) का स्पर्श करना १, सहायकोंकी अनुकूलता २, शास्त्रका ज्ञान ३, उद्योग ४. सरलता ५ ॥ ५६ ॥ सत्पुरुषोंका निरन्तर दर्शन ६, ये छः पदार्थ सब ऐश्वर्यको करते हैं, निरन्तर उपायमें तत्पर होनेवालेको लक्ष्मीका लाभ और सदा मंगल होता है ॥ ५७ ॥ दुःखहीन पुरुष बडा होताहै और वह अनन्त सुख पाता है, इससे अधिक और दूसरा कोई अत्यन्त शोभित पथ्यतम नहीं माना ॥ ५८ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! ऐश्वर्य चाहनेवालेकी क्षमा सदा सर्वत्र है, असमर्थ सबकी क्षमा करै, और सामर्थ्यवान् धर्मके कारण क्षमा

करे ॥ ५९ ॥ जिस मनुष्यके अर्थ, अनर्थ दोनों समान हैं, उसकी क्षमा सदा स्थिर है ॥ ६० ॥ जो सुखसेवन करनेवालाभी धर्मार्थसे रहित नहीं है, वह इच्छापूर्वक सेवन करे, परन्तु मूढव्रत (आहारादिकमें हठ) न करे ॥ ६१ ॥ लक्ष्मी उन पुरुषोंके समीप नहीं बसती जो कि, दुःखसे पीडित, प्रमत्त, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय, उत्साहहीन हैं ॥ ६२ ॥ आर्जवयुक्त, लज्जित मनुष्यको असमर्थ माननेवाले दुर्बुद्धि अनादर करते हैं ॥ ६३ ॥ अतिश्रेष्ठ, अत्यन्त गुणवान्, महाशूर, अतिव्रतशील अति प्रामाणिक, अत्यन्त दाता, प्राज्ञाभिमाना, पुरुषके निकट लक्ष्मी भयसे विश्राम नहीं करती ॥ ६४ ॥ यह लक्ष्मी बडे पुण्यवानोंके पास नहीं रहती, और अत्यन्त निर्गुणोंके पासभी नहीं ठहरती, यह दोनों-हीका परित्याग करती है; यह गुणोंको नहीं चाहती और निर्गुणोंसे अनुरञ्जन नहीं करती ॥ ६५ ॥ उन्मत्त लोगोंकी सदृश यह लक्ष्मी अन्धी है, कहीं ठहरती है कहीं नहीं ठहरती इसका कुछ नियम नहीं; हे महाराज ! वेदका फल अग्निहोत्र, अध्ययनका फल सत्स्वभाव और सदाचरण ॥ ६६ ॥ नारीका फल रति और पुत्र, धनका फल दान और भोग, जो पुरुष अधर्मोपार्जित अर्थद्वारा परलोक हितकारी, कार्य करते हैं ॥ ६७ ॥ उस दुष्टागम धन-से उनको कुछभी फललाभ नहीं होता जैसे विकटमार्गमें,वृक्षयुक्त वनमें, पर्वतमें, विपत्तिवाले स्थानमें, भयमें ॥ ६८ ॥ और उद्यत शस्त्रोंमें, सत्यशीलवाले पुरुषको भय उत्पन्न नहीं होता उपाय, इन्द्रियदमन, संयम, सेना, सञ्चय, चातुर्यता, निरालस्य, धैर्य, स्मृति ॥ ६९ ॥ ये बातें विचारकर भलेप्रकार कर्मारंभ करना, इनको ऐश्वर्यका मूल समझो. तपस्वियोंका बल तप समझो, और ब्राह्मणोंका बल वेदविद्या ॥ ७० ॥ नीचोंका बल हिंसा और गुणवानोंका बल क्षमा है, इन आठके सेवनसे व्रतभंग नहीं होता, उदक १, मूल २, फल ३, दुग्ध. ४ ॥ ७१ ॥ होमद्रव्य ५, ब्राह्मणेच्छा ६, गुरुवचन ७, औषधि ८, यह सब अन्यद्वारा न करे, जो कि अपना प्रतिकूल हो ॥ ७२ ॥ ये धर्म धनसंग्रहसे होतेहैं, दूसरा कामसे वर्तमान होता है, क्रोध धन बढनेसे होता है शान्तिसे क्रोधको जीते और असाधुको साधुकर्मसे जीते ॥ ७३ ॥ दानसे कृपणको जीते, सत्यसे असत्यको जीते. इन नव पुरुषोंका विश्वास कभी न करे. स्त्री १, व्यभिचारी, २, आलसी ३, भीरु ४, अत्यन्त क्रोधी ५, अभिमानी ६ ॥ ७४ ॥ चोर ७, कृतघ्नी, ८, और नास्तिक ९, सर्वदा नम्रता और वृद्धोंके सेवन करनेवाले पुरुषोंके चार गुण अधिक होते हैं ॥ ७५ ॥ कीर्ति १, आयु २, यश ३. बल ४, यह चार सदा बढते हैं, धनादिक अत्यन्त क्लेशसे अथवा धर्मसे ॥ ७६ ॥ द्रव्यका मिलना वा शत्रुके प्रणाम करनेसे धनका मिलना. वह धन सिद्धिदायक न होगा, ऐसे द्रव्यकी ओर पण्डितलोग कभी दृष्टि नहीं करते, निरक्षर मनुष्य सोच करनेके योग्य हैं १; सन्तानोत्पत्ति हीन मैथुन सोच करनेके योग्य है २, ॥ ७७ ॥ निराहार प्रजा सोच करनेके योग्य है ३, और नरेशहीन देश सोच करनेके योग्य है ४. यह चारों बातें सदा शोकदायक हैं. नित्य मार्ग चलनेसे प्राणियोंका हृदय टूटता है, पानीके झरनेसे पर्वत टूटता है ॥ ७८ ॥ पुरुषोंके वियोगसे स्त्रीका मन टूटता है.

और दुर्वाक्यसे हृदय टूटता है. वेदोंका मल अमर्यादा, ब्राह्मणका मल अव्रत ॥ ॥ ७९ ॥ पृथ्वीका मल वल्मीक अर्थात् दीमकस्थान, मनुष्यका मल अनृत है, पतिव्रता स्त्रीका मल कौतूहल है परदेशमें रहना स्त्रीका मल है ॥ ८० ॥ सोनेका मल चांदी है, और चांदीका मल रांग है और रांगका मल शीशा है, और शीशेका मल मट्टी है ॥ ८१ ॥ स्वप्नसे निद्राको न जीते, कामसे स्त्रीको न जीते, इंधनसे अग्निको न जीते और पानसे मद्य-को न जीते ॥ ८२ ॥ क्योंकि इनको ज्यों ज्यों बढाते हैं त्यों त्यों अधिक बढते जाते हैं, सो इनका बढाना अच्छा नहीं, जिसने लेने देनेसे मित्र को जीता, जिसने युद्धसे शत्रुको जीता, अशन वसनसे स्त्रीको जीता, ऐसे पुरुषका जीवन सफल है ॥ ८३ ॥ हे धृतराष्ट्र ! दरिद्री और धनी दोनोंही अपनी आजीविकाका निर्वाह करते हैं, इस पृथ्वीपर ऐसा कोई नहीं है जो अपनी आजीविकाका निर्वाह नहीं करसक्ता. इसलिये आप अपनी दुराशाका परित्याग कीजिये और जो कुछ परमेश्वरने दिया है उसीमें मनको संतुष्ट कीजिये ॥ ८४ ॥ यदि एकही पुरुषको इस पृथ्वीका समस्त धन, पशु, स्त्री आदि प्राप्त हों, तो उसको तृप्ति न होगी, साधुगण यही विवेचना करके मोहरूप कूपमें निपतित नहीं होते हैं ॥ ८५ ॥ हे राजन् ! फिरभी मैं आपसे वारंवार कहता हूं कि आप अपने पुत्रोंको और पांडवोंको सम समझकर, दोनोंपर समान व्यवहार कीजिये, क्योंकि वे तुम्हारेही सहारेसे हैं, और तुमकोहा अपना जानते हैं ॥

सोरठा-शिशुपनते पितुहीन, पालो तिन्हको पुत्रसम ।
सुन क्षितिपाल प्रवीन, अब न तिनहिं त्यागे बनै ॥
सबविधि कहत बुझाय, जहँलों पार बसाय है ।
नातरु नीति सुभाय, होउँ अदोषी जगतमें ॥ ८६ ॥

इति श्रीशालिग्रामवैश्यकृत-विदुरनीतिभाषानुवादे विदुरधृतराष्ट्रसंवादो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

विदुरजी बोले कि, हे महाराज ! जो जन सज्जनोंसे पूजित होकर गर्वपरित्यागपूर्वक अर्थोपार्जन करते हैं वे अति शीघ्रही यशस्वी होते हैं. प्रसन्न सन्तजन सुखके योग्य हैं ॥ १ ॥ दूसरेसे धर्महानिको न पानेवाला जो मनुष्य अधर्मयुक्त महाअनर्थकोभी परित्याग करता है. वह सब क्लेशोंसे निवृत्त होकर सुखसे सोता है, जैसे सर्प जीर्ण कांचलीको त्याग-कर सुख पाता है ॥ २ ॥ झूंठ बोलकर जय पाना, राजाके समीप पिशुनताकरके उपद्रव करना, गुरु तथा वृद्ध जनोंके साथ कपट करना, ये सब ब्रह्महत्याके समान हैं ॥ ३ ॥ परगुणमें दोष लगाना पूर्ण मृत्यु है, अतिविवादसे लक्ष्मीका विनाश होता है, विद्याके तीन शत्रु हैं गुरुकी सेवा न करना, पढनेमें शीघ्रता करना, अपने मुखसे अपनी श्लाघा करना ॥ ४ ॥ आलस्य, मद, मोह, चपलता, गोष्ठी, ढिठाई, अभिमान, लोभ, ये सात विद्याओंके महादोष हैं ॥ ५ ॥ सुखार्थियोंको विद्याका लाभ नहीं होता और विद्यार्थियोंको

सुख सम्भव नहीं होता ॥ ६ ॥ इसलिये सुखार्थी विद्याको और विद्यार्थी सुखको परित्याग करे. अग्नि काष्ठसे तृप्त नहीं होता और महासमुद्र नदियोंसे तृप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ सर्वत्र प्राणीमात्रसे मृत्यु तृप्त नहीं होता, और पुरुषोंसे व्यभिचारिणी स्त्री तृप्त नहीं होती, आशा धैर्यका नाश करती है, काल पदार्थका नाश करता है, क्रोध लक्ष्मीका नाश करता है, कृपणता कीर्तिका नाश करती है, अपालन पशुओंका नाश करता है और अकेले ब्राह्मणका क्रोध सब देशका नाश करता है ॥ ८ ॥ बकरी, घोडा, कांसीपात्र, चांदी, सोना, मद्य, विषयोंकी प्राप्ति, पक्षी, वेदपाठी, वृद्धज्ञाति, पीडित, ये सब सदा आपके यहां हैं ॥ ९ ॥ हे महाराज! बकरी, वृष, चन्दन, वीणा, आदर्श, मधु, घृत, जल, ताम्रपात्र, शंख, शालग्राम, चन्दनादिक गन्ध ॥ १० ॥ ये सब धनदायक वस्तु, घरमें रखने योग्य हैं, देवता, ब्राह्मण और अतिथिगण पूजाके साधनार्थ हैं, यह मनुजीने कहा है ॥ ११ ॥ हे तात! सब पुण्यकर्मोंसे श्रेष्ठ पवित्र और उत्सव तुल्य पदको मैं आपसे कहताहूं कि, कामके लिये वा लोभके लिये अथवा जीवके लिये, धर्मका परित्याग न करना, क्योंकि प्राणरक्षाके लियेभी धर्मका त्याग न करना, धर्मही जगत्‌में सबका जयदाता है. अधर्मसे कभी जय नहीं होता ॥ १२ ॥ धर्म नित्य पदार्थ है और सुख दुःख अनित्य हैं. जीवात्मा नित्य है, परन्तु इस जीवका कारण अविद्या अनित्य है. इसलिये अनित्यको छोडकर नित्य अविद्याहीन आत्मामें स्थित हो. जिसका कभी नाश नहीं होता ऐसा जो नित्य पदार्थ परमेश्वर है, उसमें निष्ठा रखकर सन्तुष्ट हो. जिसमें सन्तोष श्रेष्ठ है, वही परमलाभ है ॥ १३ ॥ देखिये बडे बडे बलवान्, महापराक्रमी राजगण विपुल धनधान्य परिपूर्ण पृथ्वीपर आज्ञाकर राज्य और बडे २ भोगोंको छोडकर कालव्यालके वशीभूत हुए ॥ १४ ॥ हे राजन्! महाकठिन दुःखसे पालेहुए पुत्रको मरे उपरान्त अपने घरसे उठाकर उसको दूर ले जाते हैं और मुक्तकेश स्त्रियां करुणा करकर रुदन करती हैं और चिताग्निमें उसको काष्ठवत् डालदेते हैं ॥ १५ ॥ प्रेतधनको अन्यजन संभोग करते हैं, और उसका शरीरगतधातु सब अग्निमें दग्ध होता है, पक्षी और जलके जीव उसका भक्षण करते हैं वह केवल पुण्य और पापसे परिवृत होकर परलोकगमन करता है ॥ १६ ॥ हे पितः! जैसे फलपुष्पहीन वृक्षका पक्षिगण परित्याग करते हैं वैसेही ज्ञाति सुहृद, और पुत्रगण मृतकको छोडकर सब लौट आते हैं ॥ १७ ॥ केवल स्वकर्महीं किया हुआ उस अग्निहुत प्राणीका साथी होता है, और कोई सङ्ग नहीं जाता, इस लिये पुरुषको चाहिये कि यत्नपूर्वक धीरेधीरे धर्मसञ्चय करके गठरी बांधे ॥ १८ ॥ इस मनुष्यलोकके ऊपर जैसे स्वर्ग लोक है, ऐसेही नीचे पाताल लोकमें बडा तमोगुण रूप अन्धकार (अन्धतामिस्रनरक) स्थित है. निश्चय वह इंद्रियोंका महामोह है इसलिये हे महाराज! आप सावधान हों कि, जिसमें महामोहदायक नरकका कहीं आपको स्पर्श करना न पडे ॥ १९ ॥ यदि आप मेरे इस उपदेशको सुनकर हृदयमें धारण करोगे तो इस लोकमें यशस्वी होओगे और परलोकमें निर्भय स्वर्ग भोग करोगे ॥ २० ॥ हे भरतवंशी ! यह जीव एक परम पवित्र लोभशून्य आत्मा

नदीरूप है, पुण्य उसका तीर्थ, सत्य उसका जल, धैर्यरूप, उसका तट और दयारूप उसकी तरङ्गें हैं, लोभहीन, पुण्यात्मा पुरुष इस नदीमें स्नान करके पवित्र होते हैं ॥ २१ ॥ काम-क्रोध रूप ग्राह, पञ्चेन्द्रियरूप जल रखनेवाला यह संसाररूप सरोवर है, उसमें धैर्यरूप नौका बनाकर जन्मरूप दुःखसे पार हो ॥ २२ ॥ जो पुरुष बुद्धिमें, धर्ममें, विद्यामें, और अवस्थामें बडे अपने भाई बन्धुओंका पूजन कर संतुष्ट रहते हैं, और जो कुछ कार्याकार्य करते हैं, उसमें परस्पर बैठकर सम्मति कर लेते हैं, वे कभी मोहित नहीं होते ॥ २३ ॥ धैर्यसे लिङ्ग और उदरकी रक्षा करे, नेत्रोंसे हाथ पांवोंकी रक्षा करे, मनसे नेत्रकानोंकी रक्षा करे, और कर्मोंसे मन और वाणीकी रक्षा करे ॥ २४ ॥ जो ब्राह्मण नित्य स्नानाचमन-सम्पादन, नित्य यज्ञोपवीतधारण, नित्य वेदाध्ययन, वा जापक, पतितान्नपारत्यागी, सत्य-वाक्यप्रयोग और गुरुके कार्यका साधन करे उसको ब्रह्मलोकसे च्युत नहीं होना पडेगा ॥ ॥ २५ ॥ वेदपाठक अग्निहोत्री; समरमें तन त्यागनेवाला, यज्ञकर्ता, प्रजापालक और गो ब्राह्मणके लिये तनुपर्यन्त त्यागनेवाला, क्षत्रिय स्वर्गवासी होताहै ॥ २६ ॥ जो वैश्य वेद पढकर समयपर ब्राह्मण, क्षत्रिय और आश्रितगणको धन विभागकर त्रेताग्निसे पवित्र धूमको सूंघकर अपवित्र तन त्यागकर सुरपुरको गमन करते हैं ॥ २७ ॥ जो शूद्र इन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी यथा योग्य न्यायसे सेवा करके अपने पापको दग्ध कर सक्ता है, अन्तसमय वही स्वर्गलोकमें सुख भोगता है ॥ २८ ॥ हे महाराज ! हमने चारों वर्णोंका यह परमधर्म इसलिये आपसे कहा कि युधिष्ठिर प्रजापालन करके क्षात्रधर्मसे परिच्युत होते हैं, अब आपको उचित है कि उनको राजधर्म (पृथ्वीपालन रूपमें) युक्त करो ॥ २९ ॥ धृतराष्ट्र बोले कि जैसा आप हमको उपदेश करते हो ऐसाही हमारा भी विचार होता है परंतु वह विचार दुर्योधनके पास आनेपर दूर होजाताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इससे यह विदित होता है कि दैवकी गति किसीसे जानी नहीं जाती, दैवही ध्रुव है पुरुषार्थ निरर्थक है ॥ सत्य बूझो तो युधिष्ठिरके समान शीलवान् और साधु होना कठिन है, क्योंकि आजतक उसने आपके सन्मुख आँख उठाकर नहीं देखा और आपको पिताकी समान मानता रहा. जो ऐसेही साधु आपके पुत्र होते तो कभी विरोध न होता वह सब दुर्योधन, कर्ण, दुःशासनादिककी अनीति है:—

चौपाई–पाण्डुसुतनकी कछु न अनीती * उन अपने बल जो महि जीती।
सोऊ देत न पुत्र तुम्हारे * फिरहिं विचारे बन बन मारे॥
थोरो बहुत देहु धन उनको * करहु प्रसन्न भीम अर्जुनको।
तजहु अनीति नीति उर धारो * आपहि अपनो न्याय विचारो॥
सब कुटुम्ब इक ठौर समेटो * दायभाग दे विग्रह मेटो।

हे तात ! आप भलीभाँति विचारकर देखलीजिये, यह सब आपहीकी लाज है, नहीं तो भीम और अर्जुनने अबतक तुम्हारे सब पुत्रोंको मारकर छारमें मिलादिया होता और आप उनका किञ्चिन्मात्रभी ध्यान नहीं करते; और इतनाभी नहीं समझते कि, श्रीकृष्ण-

चन्द्र आनन्द कन्द वृन्दावनचन्द यदुनायकसे उनके सहायक, भला फिर उनको क्या भय है? वे कालसेभी लडनेको उपस्थित हैं; अर्जुन जबही धनुष वाण उठाता है और भीम अपनी गदा हाथमें लेता है युधिष्ठिर उसी समय रोक देता है, अभी धैर्य धारण करो, हमारे पिता बैठे हैं, जिन्होंने हमको बालकपनसे पाला है वह हमारा भलेप्रकार न्याय करैंगे, किसीप्रकारका सन्देह मत करो. हे नाथ! आपको उचित है कि, दुर्योधनको समझाओ और इस वंशकी आगको बुझाओ और इनको कुछ दे दिलाकर यह झगडा मिटाओ- यह वात आपसे हित समझकर कहताहूं, जिससे वंशका विध्वंस न हो, और रीति प्रीति बनी रहे, परन्तु इतना हम कहे देते हैं कि, जबतक भीम अर्जुनको युधिष्ठिर आज्ञा नहीं देते तबही तक भलाई है, अन्तको बडा उपद्रव मचैगा, क्योंकि पाण्डवसुत बडे क्रूरकर्मी समरविजयी कुटिलस्वभाव, महासाहसी, परम जुझार, संसारमें प्रसिद्ध हैं. उनको तुम भलीभांति जानते हो कि, वे कालसेभी नहीं डरते, यक्षराजको अर्जुनने जीता सो आपको भलीभांति विदित होगा; लंका पुरीसे सहदेवने दंड लिया सो आपने देखाही होगा. सम्पूर्ण पश्चिमदेशके यवनोंको नकुलने पराजित किया सो आपने सुनाही होगा, महादेवको धनञ्जयने परास्त किया सो सब संसारमें प्रगट हीहै ऐसे वलशाली महाबलवान् पाण्डुपुत्रोंसे वैर करके क्या फलपाओगे * हे नरेन्द्र! क्या आपने रावण और विभीषणका इतिहास नहीं सुना? कि जिसके भयके मारे घरोंको छोड छोड कर पर्वतोंकी कन्दराओंमें देवता जा छिपे थे. जिसने अपनी शूर्पणखाके नाक कान काटनेका रामचन्द्रसे बदला लिया था और अपने मनमें कुछ शङ्का नहीं मानी, दशों दिग्पाल जिसका नाम सुनकर थर थर कांपते थे, ऐसे तेजःपुञ्ज समरविजयी महाबलवान् रावणका भी, घरके विद्रोहसे पुत्र पौत्र सहित विनाश होगया, एक क्या? ऐसे ऐसे सहस्रों वंश घरकी फूटसे विध्वस्त हो गये. कहांतक गिनाऊं? आप क्या नहीं जानते? होनी बलवान् है उससे किसीकी नहीं बसाती? ॥ ३२ ॥

इति श्रीशालिग्रामवैश्यकत-विदुरनीतिभाषानुवादे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ इति विदुरनीतिः समाप्ता ॥

॥ १० ॥ "जो जो विपत्ति युधिष्ठिरके सहने योग्य न थी. वहभी उसने सही, उस

---

* **कवित्त**—भीम अरु अर्जुनसे योधा कहूं सुने नाहीं, बडे बडे बलियोंके दल दलमारे हैं ॥ ऐसो नाहीं वीर कोउ धीरको धरैया आज, इनके सन्मुख जो रणमें ललकारे हैं ॥ द्यूतक्रीडाहीमें कालक्रीडासी दिखाय देते, मुश्किलसे युधिष्ठिरने क्रोधसे निवारे हैं ॥ ब्रह्माकी न मानैं जब मनमाहिं क्रोध बढै, तुम्हारे सौ पुत्रनके प्राण लेनवारे है। अहो धृतराष्ट्र! आज कहतहौं सभामाहिं तेरे हित चितकीही सुखदानी बानी है ॥ मेरो कह्यो नेक नीके सुन लीजे कान देके, पाण्डवन भाग देनो नीतिकी निशानी है। ना तो सब क्षेत्रनके क्षत्रिनकी क्षय ह्वै है होनहार होनी सो तो प्रगटही जानी है ॥ एक घर हानी दूजी धनहूकी हानी होत, तीजे प्राणहानी एक हानिकी न हानी है ॥

असह्य अपराधके सहनेहारे युधिष्ठिरका अंश तुम देदो। सब भ्राताओं सहित सर्परूपी भीमसेन क्रोधसे श्वास ले रहा है, जिससे तुम सदा भयभीत रहते हो" ॥ ११ ॥ विदुरजी फिर कहने लगे हे धृतराष्ट्र! तुम भीमसेन और अर्जुनसमान बलवान् नहीं हो और अपने मनमें यह अभिमान मत करो कि मेरे बहुतसे पुत्र हैं क्योंकि तुम यह नहीं जानते कि पाण्डवोंके पृष्ठरक्षक श्रीयदुनायक हैं और उनको श्रीमुकुन्दने निजभावसे ग्रहण किया है, और वह मुकुन्द स्वयं भगवान् हैं. जिनके साथ सब देवता और मुनीश्वर हैं; सो अपनी द्वारका पुरीमें विद्यमान हैं, कहीं चले नहीं गए हैं, फिर वह द्वारकानाथ यदुवंशीय राजाओंके पूज्य हैं और उनके संग यदुवंशभी बलवान् और एकसे एक गुण-निधान हैं, और जिन वसुदेवकुमार वासुदेव भगवानने बडे २ राजाओंको जीतकर स्वाधीन किया, इसलिये सब राजा लोगभी उनके पक्षमें सहायक हैं, इससे केवल अपने पुत्रोंकी धीरता और वीरताका जो अभिमान है, उसको छोडकर पांडवोंको उनका भाग देदो.

चौ०-भीषम द्रोण कर्ण कृप चोखे * रहहु न नृप तुम इनके धोखे।
जहां कृष्ण तहँ रामहुं हैं हैं * यदुबंशी तब और न ऐहैं॥
जहाँ धर्म तहँ रहत मुरारी * जहँ केशव तहँ विजय विचारी।

दोहा-देव असुर नर देवके, जीतनहार मुरारि।
वैर करत तिनसों वृथा, देखहु सोच विचारि॥

इसलिये बारंबार मैं तुमको समझाता हूं. कि तुम बडे हो और वे तुम्हारे पुत्र हैं उनको अपना बेटा समझकर थोडा बहुत कुछ देदो जो उनके आंसू पुंछ जांय ॥ १२ ॥ सो यह श्रीकृष्णसे विमुख दुर्योधन विनष्टश्री होकर दोषरूप धारी तुम्हारे घरमें घुसाहै. जिसको तुम पुत्र बुद्धिसे पुष्ट करतेहो. कृष्णविमुख श्रीनष्ट एक दुर्योधनको कुलकी कुशलताके अर्थ शीघ्र त्याग करो, जिस्से कुल विनाश न हो वही अपत्य है ॥ १३ ॥ अत्यन्त शीलवान् विदुरजी उस सभामें ऐसा कह रहे थे इसको सुन दुर्योधनका कोप अत्यन्त बढा, होंठ फडकने लगे, और वह लाल २ नेत्र कर बोला. -"इस दुष्टको यहांसे निकालो" इसी प्रकार कर्ण, दुःशासन, शकुनिनेभी उनका तिरस्कार किया. उन्होंने कहा था-"इस कपटीको यहां किसने बुलाया है? यह दासीपुत्र होकर हमसे पाला जाकर हमारेही प्रतिकूल शत्रुओंकी कुशल चाहता है; इसलिये इस जीतेहुए अमांगलिकको शीघ्र नगरसे निकालो."

चौपाई-खाय हमारी जूठ जुठाई * अब हमहींसो करत खुटाई॥

॥ १४ ॥ १५ ॥ अपने भाई धृतराष्ट्रके सन्मुख दुर्योधनके वचनबाणसे विद्ध हो कहा कि, ईश्वरकी मायाका माहात्म्य ऐसा ही है. ऐसे मनमें विचार विदुरजी अपने धनुषको द्वारपर रखकर तीर्थयात्राको चलदिये ॥ १६ ॥ कौरवोंके पुण्यकर्मसे प्राप्त विदुरजी हस्तिनापुरसे निकल अपने चरणोंसे हरिके क्षेत्रोंको पवित्र करने चले गये. पृथ्वीपर जहां २ ब्रह्म रुद्र, आदि अनेक रूप हो आप निवास करते हैं तहाँ २ सब क्षेत्रोंमें गये ॥ १७ ॥ पुरोंमें पुण्यदाता जो उपवन उनमें, पर्वतोंमें कुंजोंमें, सरोवरोंमें, अपङ्क नदियोंमें, ईश्वरके चिह्नोंसे

सुंदर अलंकृतोंमें, और जो जो तीर्थोंके स्थान क्षेत्र हैं उन सबमें अकेले विदुरजी विचरते फिरे ॥ १८ ॥ एकांत वृत्ति, शान्तस्वभाव, पवित्र आत्मा सदा सब तीर्थोंमें स्नान करें, पृथ्वीपर शयन करें शरीरके संस्कार न करें, अवधूत रहें, वल्कल वसन पहिनें, रूपको छिपाये अवधूत वेष बनाय वे व्रत करने लगे जिस्से परमात्मा प्रसन्न हो ॥ १९ ॥ इस भांति भारतवर्षमें विचरते २ बहुतदिन हो गए. उस समय राजा युधिष्ठिर श्रीपुण्डरीकाक्ष कृष्णचन्द्रकी सहायतासे पृथ्वीपर एकछत्र राज करतेथे ॥ २० ॥ जैसे बाँसोंके बनमें-बासोंके रगडनेसे अग्नि निकल बाँसोंको जलाकर निवृत्त होजाती है. उसी प्रकार प्रभास क्षेत्रमें अपने सुहृद् कौरवपाण्डवोंका विनाश सुना कि, परस्पर ईर्षा करके भस्म होगये, उनका अत्यन्त शोक किया फिर चुप होकर पूर्ववाहिनी सरस्वतीके निकट गये ॥ २१ ॥ उस सरस्वतीके निकट एकादश तीर्थ हैं, ब्रह्माविष्णुशिवतीर्थ १, शुक्राचार्यका मन्दिर २, मनुका स्थान ३, पृथुका भवन ४, अग्निकुण्ड ५, शनैश्चरका चित्र ६, वायुका वासस्थान ७, सुदास राजाकी प्रतिमा ८, गोशाला ९, स्वामिकार्तिकका मंदिर १०. श्राद्धदेवमनुकी सभा ११, इन सबका विदुरजीने सेवन किया ॥ २२ ॥ औरभी ऋषियोंके, देवताओंके, बनाये हुये, विष्णुके स्थान वहांपर हैं. जिनमें विष्णुके संपूर्ण अंगकी शोभा करनेवाले आयुधोंमें मुख्य जो सुदर्शनायुधसे चिह्नित शोभायमान अनेकानेक प्रकारके मंदिर हैं, उनके दर्शनसे श्रीकृष्णका स्मरण होता था, तहाँ २ मज्जन वंदन करते फिरते थे ॥ २३ ॥ सुराष्ट्र, ऋद्ध, सौवीर, मत्स्य, कुरु, जांगल, इन सब देशोंको यथाक्रम उल्लंघन करके यमुना पुलिनपर आये तहाँ परम भागवत उद्धवको देखा ॥ २४ ॥ श्रीकुंजबिहारीके अनुचर, प्रशांत, बृहस्पतिके नीतिशास्त्रमें पहिले विख्यात शिष्य उद्धवको हृदयसे लगा विदुरजी मिले, और भगवत्की प्रजा, और अपने इष्ट मित्रोंकी कुशलकी उन्होंने जिज्ञासा की ॥ २५ ॥ और फिर बूझा कि श्रीरामकृष्ण कुशल हैं. जो पुराण पुरुष अपनी नाभिमेंसे पैदा हुए, ब्रह्माजीकी सेवासे प्रसन्न हो यहां अवतार लिया; और पृथ्वीको कुशल विधान कर अब इस समय अवकाशसे शूरसेनके गृहमें विराजते हैं ॥ २६ ॥ कुरुके परम सुहृद हमारे भगिनीपति परम पूज्य वसुदेवजी कुशल हैं ? जो अति उदार वसुदेवजी अपनी बहिनोंको बहुत धन दे तृप्त कर शूरसेनकी समान सदा धन देते हैं ॥ २७ ॥ सब सेनाके सेनापति. यादवाधीश, महावीर प्रद्युम्न कुशली हैं ? जिन मदनके अवतारको रुक्मिणीने पूर्वजन्ममें अनेक प्रकारकी आराधना कर पाया है ॥

दोहा-जेहि सन्मुख सुर असुर नृप, महारथी बरजोर।
बाण धार धावत धुवें, धधक जरें चहुं ओर ॥ २८ ॥

सात्त्वत, वृष्णि, भोज, दशार्ह, इनके स्वामी उग्रसेन महाराज सुखी हैं नृपासनकी आशा त्यागे उग्रसेनको कमलनयन भगवानने स्वयं नृपासन त्याग अभिषेक किया ॥ २९ ॥ हे सौम्य ! उद्धव महारथियोंमें अग्रगण्य वृन्दावनविहारीकी समान शीलवान् जैसे पूर्वजन्ममें शैलसुता भवानीने स्वामिकार्तिकको उत्पन्न किया; इसीप्रकार व्रतकरके जाम्बवतीने जिन्हें

उत्पन्न किया सो श्रीकृष्णतनय साम्ब अच्छे हैं ॥ ३० ॥ जो गति यतियोंको महादुर्लभ है सो श्रीयदुनायककी सेवासे सहजमें प्राप्त हुई ॥

दोहा-धनुविद्या जेहि पार्थसों, पढी महारणधीर ।
बड़ा मित्र श्रीकृष्णका, दायक अरिउर पीर ॥

सो शान्तरूप सात्यकी सुखी हैं ? ॥ ३१ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान्, निष्पाप, भगवत्के शरणागत आठों याम श्रीकृष्णके प्रेमरसमें जो मग्न, सब लज्जाको तज ब्रजका रजमें लोटने-हारे श्वफल्कसुत अक्रूर तो आनंदमें हैं ? ॥ ३२ ॥ देवकनाम भोजकी कन्या, अदितिकी समान सब जगतके स्वामी; आदि, ब्रह्म, अविनाशी त्रिलोकीनाथ जिनके पुत्र, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दको जिन्होंने गर्भमें इसप्रकार धारण किया जैसे वेदत्रयी यज्ञके विस्तृत अर्थको धारण करती है सो देवकी प्रसन्न हैं ? ॥ ३३ ॥ भगवान् उपासकोंकी कामनाके दाता आपके अनिरुद्धजी तौ कुशल हैं ? जिनको वेद शब्दशास्त्रके कारण ! मनोमय अंतःकरण के चतुर्थतत्त्व मानते हैं ॥ ३४ ॥ हे विद्वज्जन ! अपने आत्मदेव अनन्य वृत्तिसे जो भगवत् परायण हैं वे सुखी हैं ? हृदीकादि सत्यभामाके पुत्र-

दोहा-चारुदेष्ण गद आदिकी, उद्धव कहिये क्षेम ।
जिनपै निजसुततें अधिक, कुन्तीको दृढ प्रेम ॥ ३५ ॥

अर्जुन श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंसे धर्मसमेत धर्मके सेतुको धर्मावतार युधिष्ठिर क्या रक्षा करते हैं जिनकी सभासे विशेष जयकी अनुवृत्ति और सम्राटपनकी लक्ष्मीसे दुर्योधन तपता हुआ ॥ ३६ ॥ अपराधकारी कुरुओंमें क्रोधी भीमसेन सर्पकी सदृश महाघोर श्वास लेने-वाला गदा ग्रहणकर विचित्र मार्गोंमें विचरते समय जिस भीमसेनके चरणकी धमक धरती नहीं सहन कर सक्ती सो पवनपुत्र भीमसेन प्रसन्न हैं ? ॥ ३७ ॥ महारथी यूथपोंमें यशस्वीशत्रुनाशक अलक्षित जिनके बाणोंसे मायासे ठगे हुए भीलरूप धारण कियेहुए भूत-नाथ प्रसन्नहुए सो गाण्डीव धनुषधारी इन्द्रसुत अर्जुन अच्छीतरहहैं ? और माद्रीके पुत्रोंको भी तुमने देखा ? जिनका कुन्ती पुत्रसमान पालन करती है, और जिसप्रकार पलक नेत्रों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार रक्षा की, शत्रु इन्द्रके मुखसे जैसे गरुड अमृत लावे उनकी सदृश युद्ध करके बरजोरी अपना भाग लेकर बिहार करते हैं वे प्रसन्न हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वडे आश्चर्यकी बात है कि, पाण्डु राजर्षिके विना केवल पुत्रोंकी रक्षाके अर्थ कुन्ती जीवन धारण करती है । एकही वीर जिन पाण्डुने एक धनुष लेकर अकेले चारों दिशाओंको जीत-कर शत्रुओंका विनाश किया ॥ ४० ॥ हे सौम्य उद्धव ! हमारा ज्येष्ठ बंधु जो अभिमानके मदमें अंधा हो रहाथा और जिसने अपने नगरसे मुझको निकाल दिया;

दोहा-पाण्डुसुतनसों द्रोह कर, निजपापिनसुत नेह ।
अवशि नरकमें सो गिरत, यह मोहिं अति संदेह ॥

परन्तु यह तौ कहिये वह आनन्दमें तो है ॥ ४१ ॥ मनुष्योंमें अवतार धर नरलीला कर मनुष्योंके बुद्धिको चलायमान करता, सब संसारके धारक श्रीवृन्दावनविहारीके प्रसादसे

मैं परमपदवीको प्राप्त कर विषादरहित हो सब पृथ्वीपर विचरता फिरा और मैंने अपने रूपको ऐसा छिपाया कि किसीने मुझको नहीं पहिचाना ॥ ४२ ॥ "विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः । एते मदा मदांधानां त एव हि सतां दमाः ॥ अर्थ-विद्या, धन,जाति, ये तीन मद हैं. सो जो मदांध होते हैं, उनको यह तीनों मद चढते हैं संतोंके यही दम हैं इन तीनों मदोंसे युक्तहो सेनासे सब धरतीको चलायमान करैं उनका हठ हटानेके अर्थ वध करने और शरणागतोंका कष्ट हरनेको देवकीनंदनने कौरवोंका अपराध क्षमा किया" ॥ राजा परीक्षित बोले-हे कृपासिन्धु ! वह कौनसा अपराध था जो त्रिलोकनाथने क्षमा किया था ? श्रीशुकदेवजी बोले, हे नृपाल ! जब श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकासे हस्तिनापुरमें आये थे, और दुर्योधन व धृतराष्ट्रको समझाकर हस्तिनापुर जानेकी इच्छा की तब कर्ण, शकुनि, दुःशासन दुर्योधनसे परामर्श करने लगे. भाई ! कृष्ण हमारी भलाईमें नहीं है, यह हमारे कुलका नाश चाहता है और पाण्डवोंका सहायक है और अर्जुन भीमभी इनहींके बलसे बलवान् हो रहे हैं. और वे इनहींके भरोसेपर हमसे भाग मांगते हैं जो अब दैवयोगसे कृष्ण यहां आजाय तौ जाने न पावै. उसे पकड कारागारमें बंद करदो, फिर जो कुछ संदेह है सब मिट जायगा. तब पाण्डवोंका परास्त करना कुछ बडी बात नहीं. कृष्णको यहां आने तो दो. इधर इस वृत्तान्तसे सात्यकि अवगत हुये और श्रीकृष्णचन्द्रके समीप जा कहनेलगे कि, "प्रभो ! कौरवोंने यह परामर्श किया है कि जो श्रीकृष्णचन्द्र यहां आवैं तौ उनको पकडकर बन्दीगृहमें बंद करदो. इसकारण यदि आप वहां चलैं तो कुछ सेना संग लेलीजिये" यह सुन करुणानिधान वहुत हँसे, और रथपर चढ कौरवोंकी सभामें चले; जब द्वारपर पहुँचे तो द्वारपालोंने कहा कि, "महाराजकी यह आज्ञा है कि श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई दूसरा सभामें न आवै आज एकान्तही परामर्श है श्रीकृष्णजी बोले हम अकेलेही जायँगे" जब श्रीभगवान् चले तो उनके पीछे सात्यकि और कृतवर्मा चलने लगे. उनको द्वारपालोंने निवारण किया, परन्तु वे कब मानते थे, झट पहरुओंको ढकेल ढकाल भीतर चलेगये, तब द्वारकानाथ सात्यकीका हस्तधारण कर कौरवेशकी सभामें पहुँचे, जहाँ कर्ण, दुःशासन, शकुनि, दुर्योधन, बैठे थे इनको देख सब उठ खडे हुए और आदर सत्कारसे इन्हें आसन दिया और सात्यकीको भी ऊँचे आसनपर बैठाया, तव सात्यकीने सभामें पुकारकर कहा-"वह कौन बलवान् है ? जो कहता था कि, हम कृष्ण भगवान्को पकड कर कारागारमें बंदी करेंगे; वह हमारे सम्मुख आवै अब श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद सभामें उपस्थित हैं वह अपनी मनोकामना पूर्ण करे" सात्यकीका यह वचन सुन-

चौ०-तब गोविंद कह्यो मुसकाई * यह डर मोको नेक न भाई ।
हैं कौरव समर्थ अस नाहीं * मोहिं पकारि राखें गृहमाहीं ॥
फिर यदुपतिबोले कुरुपतिसों * कहहु मंत्र सब निज २ मतिसों ।
होय विचार सो सब करलीजे * अब विलंब केहि कारण कीजै ॥

हे दुर्योधन ! तुम वृथा बखेडा मत करो, पाण्डवोंका भाग पाण्डवोंको दे दो, वृथा रार

करनेसे कुलका नाश होगा, हम यह चाहते हैं कि, कुरुवंश बना रहै. परन्तु जिसके शिरपर काल गर्ज रहा है, वह अच्छी बातको कब मानता है, परन्तु मैं फिर तुमको समझाता हूँ.

सोरठा-फूटे उनके भाग, फूट परै जिनके भवन।
प्यारे जाओ जाग, अबलों कछु बिगरो नहीं॥
कृष्ण वचन सुनि कान, कोप कौरवनको बढ्यो।
हमरे घरपर आन, पक्ष पाण्डवनको करत॥

दुर्योधनने कहा देखो इस कृष्णकी ढिठाई जो हमारे सन्मुख ही हमारी बुराई करता है. इसके हाथ पाँव बाँध कारागारमें भेजदो. हाथ पाँवके बाँधनेका नाम सुन त्रिलोकीनाथ हँसकर बोले, "कि हमारी माता यशोदाके अतिरिक्त और किसकी सामर्थ्य है ? कि जो हमारे हाथ पाँव बाँधे" यह कह जनार्दनने अपना विराटरूप प्रकट किया.

चौ०-तब दुर्योधनरूप लखाय ✻ कर्ण ओर लख हँसो ठठाय।
इसकी माया लखी न जाय ✻ इन्द्रजाल बैठो फैलाय॥

कहो भ्राता ! अब क्या उपाय करना चाहिये ? उस बिकट रूपको देख सब योधा सभाको त्याग भागने लगे परन्तु मदन मोहनने उनकी दुष्टताका कुछ ध्यान नहीं किया और सात्यकी सहित विराटपुरको चलेगये ॥ ४३ ॥ अजन्मा ईश्वरके जन्म पाखण्डी और दुष्टोंके नाश करने और अकर्ताके कर्म पुरुषोंके ग्रहण करनेके अर्थ हैं इनके बिना गुणोंरो परे जो ईश्वर है उनके बिना कर्मके वश होना और ब्रह्मनिष्ठाका धारण और देहके योग्य नहीं है ॥ ४५ ॥ हे सखे ! शरणागत सब लोकपालोंके और अपनी आज्ञामें जो स्थित हैं उनके कारण यादवोंमें जन्म लिया, ऐसे तीर्थरूप वसुदेवकुमार बाँकेविहारी, कृष्णमुरारीकी मनोहर कथा सुनाओ,

दोहा-कोटिन तीरथकी सरिस, जाकी कीरति गाय।
पामर पावन होत है, सब अघओघ बहाय॥ ४६॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-कहौं द्वितीय अध्यायमें, उद्धव विरह विलाप।
जैसे वरणो विदुरसे सकल शोक सन्ताप॥

श्रीशुकदेवजी बोले, "श्रीकृष्णका स्मरण करनेहारी ऐसी बातें भागवत विदुरजीने उद्धवसे पूछीं. तब श्रीवृन्दावन विहारीके विरहमें उद्धव सब सुधि बुधि बिसराय खडे होगये और मुखसे कुछ न कहसके ॥ १ ॥ जिस समय उद्धव पांच वर्षके थे तब बाललीलामें भी श्रीगोविन्दके चरणारविंदकी पूजा करते रहे थे, और जब प्रातःकाल मैया भोजनको बुलाती तबभी न जाते ॥ २ ॥ सो उद्धवजी उनकी सेवा करते २ अब वृद्ध होयगे थे,

श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलका स्मरण कर जो कुछ जिज्ञासा किया सो वर्णन करने लगे ॥ ३॥ श्रीकृष्णके चरणामृत और पूर्ण भक्तिमें अत्यन्त मग्न हो अति सुख पाय मुहूर्तमात्रको मौन होगये ॥ ४ ॥ और पुलकायमान हो नेत्र मूंद शोक तज प्रेम प्रवाहमें निमग्न सब अर्थोंसे परिपूर्णसी दशा होगई ॥ ५ ॥ धीरे २ भगवान्‌के ध्यानसे फिर संदेहानुसन्धानमें आ, अश्रु निवारण कर उद्धवजी फिर विदुरजीसे बोले ॥ ६ ॥ "हे विदुरजी ! हमारे नेत्रोंके तारे, श्रीकृष्णरूप सूर्य अस्त होगये, और कालरूप अजगरने सब शोभित ग्रहोंको डसलिया अव मैं किसकी कुशल और प्रसन्नता कहूं ॥ ७ ॥ यह सब लोक भाग्यहीन है और यादव तौ सभी महा अभागे हैं प्रारब्धके मंद हैं. जो आदिपुरुष अविनाशीके निकट वास करते रहे तौभी लोकनाथ विश्वात्माको नहीं पहिचाना जैसे एक समय सुधाकर किसी शापसे जलनिधिमें मीन होकर रहा परन्तु किसी जलचरने नहीं जाना कि, यह अमृतकी खानि है. अथवा जैसे मीन अवतारको जलचरोंने संसारतारक नहीं समझा, और कहीं ऐसा भी लिखा है कि समुद्रमथनसे पहिले चंद्ररूप हरिको संसारतापहारक नहीं माना इसी प्रकार हमारी गति जानो ॥ ८ ॥ भगवत् चित्तके ज्ञाता, अतिनिपुण एक स्थानमें सदा रहनेहारे, यादवोंने यदुनाथ, यादवश्रेष्ठ जगन्निवास ईश्वरको अपना मित्र करके माना ॥ ९ ॥ असत् पदार्थके आधीन असुरादिक ईश्वरकी मायासे फसे हुए थे उनके वाक्योंसे आत्मा हरिमें जिनका चित्त लगा ऐसी हमारी बुद्धि भ्रमी ॥ १० ॥ तप नहीं किया दृष्टि तृप्त नहीं हुई ऐसे मनुष्योंको संसारके नेत्र अपने मनमोहन स्वरूपका दर्शन दिखाय आप अंतर्द्धान होगये ॥ ११ ॥ जिन्होंने नरलीलाके योग्य अपनी योगमायाका बल दिखानेको शरीर ग्रहण किया, सो अपनोंको विस्मय करानेवाले, अत्यन्त सौभाग्य, ऋद्धिके भण्डार, भूषणके भूषण श्रीभगवान् वासुदेवहैं ॥ १२ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें दृष्टिके आनन्द-दायक मदनमोहनकी मनोहर छबि देख तीनों लोकोंने यह माना कि, ब्रह्माकी सृष्टिमें आज श्रीकृष्णचंद्रजीके श्रीअंगमें सब चतुराई बिसर गई, क्योंकि, सब अवतारोंके अंग चतुराननके रचे हुए नहीं हैं आप स्वयंभू हैं ॥ १३ ॥ जिनकी परमसुखदायक प्रेमयुक्त अनुराग रसभरी मुसकान तिरछी चितवन देख, सुधासम मधुरवाणी सुन, सुन्दर रासविलास देख, दृष्टिसे वह बुद्धिसे न जाने जायँ; अपूर्ण मनोरथसी, मानवती, ब्रजवाला ऐसी होगई कि ब्रजविहारीको जाता देख उनके संग अपने नेत्रोंको भी भेजदिया कि, हमारे प्यारे अकेले जाते हैं और आप अपनी सुधि बुद्धि बिसार ठगीसी रह गई ॥ १४ ॥ भगवत् अपने शान्त अशान्त रूपोंमें और स्वरूपोंसे, दुखारी दासोंपर दयालु देह धार पर अवरके ईश महाअंशसे युक्त अजन्मा ईश्वरने जन्म लिया. जैसे महाभूतरूपमें नित्य वसनेहारी अग्निकाष्ठमेंसे प्रगट हुई. इसाप्रकार अवतार धर सब दुष्टोंको मार भूमिका भार उतारा ॥ १५ ॥ उद्धवजी बोले "अतर्क्य अगम्यके यह चरित्र समझकर मुझकोभी खेद होता हैं अजन्माभी वसुदेवदेव-कीके घरमें जन्म ले और ब्रजमें सब घर २ घूमे. शत्रुओंके भयसे भय भीतरहे, जिनमें अनंत बल और जरासन्धके भयसे द्वारका बसाई, और मथुरा तजकर वहाँ रहे ॥ १६ ॥

हे विदुर ! इन बातोंको स्मरण कर २ के मेरे चित्तमें व्यथा भी और हँसी दोनों आती हैं. जब मातापिताके चरणारविन्दकी वन्दना कर यह बोले कि, हे तात ! हे जननी ! मेरा अपराध क्षमा करो मुझपर प्रसन्नहो. कंसकी शंकासे आपकी सेवा मुझसे कुछ बन नहीं पडी ॥ १७ ॥ जिन्होंनें, चलायमान भ्रूविटरूप यमधर्मराजसे पृथ्वीका भार उतारा, उनके चरणारविंदकी रजको कौन ऐसा मूर्ख है जो भूल सक्ता है ॥ १८ ॥ धर्मराजके राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्णकी निन्दा कर शिशुपालको जो सिद्धि प्राप्त हुई सो आपने देखी जिस सिद्धिके सुन्दरयोगसे योगीजन मोक्षको प्राप्त होते हैं ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका वियोग कौन सह सक्ता है ? ॥ १९ ॥ इसीप्रकार भारतके युद्धमें वीर मनुष्य नेत्रोंके आनंददायक श्रीकृष्णके मुखारविन्दका रस नेत्रोंसे पान करने लगे, अर्जुनके अस्त्रसे पवित्र होकर भीष्मादिक वीरलोग वेखटके वैकुण्ठको चलेगये !

चौ०-मृषा भये हम हरि अनुरागी * हरि बिछुरत तन दिये न त्यागी२०॥

आज श्रीकृष्णकी समान कोई बलवान् और उनसे अधिक नहीं है. अपनी राज्यलक्ष्मीसे सब भोग जिनको प्राप्त हैं, और चिरलोकपाल ब्रह्मादिक शक्रादिक बलिदानपूर्वक जिनके चरणारविंदकी चौकीको अपने किरीटके अग्रभागसे स्तुति करते हैं ॥ २१ ॥ सो प्रभु सुधर्मासभामें राज्यसिंहासनपर बैठे और उग्रसेनसे कहते रहे थे; "हे देव ! आप हमको निरन्तर धारण करो उनकी यह बात सुनकर हम दासोंको बडा विस्मय होता है ॥ २२ ॥ आश्चर्यकी बात है कि, महादुष्ट पूतना राक्षसीने स्तनोंमें कालकूट लगा मारनेकी इच्छा कर दूध पिलानेके बहाने यशोदानंदको गोदमें लिया, और उसको यशोदा माताकी समान मान परमगति दी. ऐसे दीनदयालु, परमकृपालु, श्रीकृष्ण प्यारेके बिना किसकी शरण जायँ ॥ २३ ॥ देखो महाक्रोधसे असुरोंने श्रीकृष्णमें मन लगाया हम उनको परमभागवत मानते हैं जो संग्राममें गरुडजीके ऊपर चढ अपने सम्मुख आये हुए श्रीकृष्णके दर्शन कर वैकुंठको गये ॥ २४ ॥ कंसके बंधनमें वसुदेवदेवकीके घर पृथ्वीका भार उतारनेको ब्रह्माकी प्रार्थना करनेपर अवतार धारण किया ॥ २५ ॥ दुष्ट कंसके भयसे वसुदेवजीने नंदके घर ब्रजमें पहुँचाया, तहां एकादशवर्ष अपने तेजको गुप्त करके ब्रजमें वास किया और अनेक प्रकारके चरित्र दिखलाये ॥ २६ ॥ ग्वालबालसमेत गोपाललालने गाय बत्स चराये कालिंदीके कूलपर कुंजोंमें वृक्षोंमें कोकिलादिक पक्षियोंके समूह मनोहरशब्द करते, और नवललितलतिका जहाँ लहलहारहीं थीं उन उपवनोंमें नित्यप्रति विहार करते थे ॥ २७ ॥ देखने योग्य बालअवस्थाके सुख ब्रजवासियोंको दिखाये ।

चौ०-कबहुँ रूस रोवत जननीसों * कबहुँ हँसहिं सुन्दर सजनीसों ॥
कबहूँ मुरि २ देखत इत उत * बालसिंहसम नाथ नंदसुत ॥
प्रेमफाँस फाँसी ब्रजनारी * धन धन धन श्रीकुंजविहारी २८॥

जब बाँके विहारी अधिक बडे होगये तब लक्ष्मीका स्थान गोवर्द्धनके निकट गाय बैलोंको चराय बाँसुरी बजाय २ ग्वालबालोंके संग अनेक २ ढंगके रास रंग इत्यादिक खेल

किया करते थे ॥ २९ ॥ उस समय महाबली कंसके भेजे बडे २ बलशाली दैत्य नाना-प्रकारके रूप धरकर व्रजमें आये उनको भक्तहितकारी बाँके विहारीने बालक्रीडासे विनष्ट कर वैकुठको भेजदिया. जिसप्रकार बाल घरूआ बनाके विगाड देते हैं ॥ ३० ॥ फिर भगवान्‌ने विष जलपान करनेसे मरेहुए गोप और गायोंको जिलाय कालीदहमें कूद काली अहिको नाथकर निकाल अपना चरणचिह्न उसके मस्तकपर लगाय रमणक द्वीपको पहुँचाया और कालिन्दीका जल निर्मल करके वही जल गोप गायोंको पान कराया ॥ ३१ ॥ फिर ब्राह्मणोंके द्वारा समर्थ भगवान्‌ने नन्दजीसे गौओंकी पूजाके अर्थ यज्ञ कराया ॥ ३२ ॥ अपनी प्रतिष्ठा भंग समझकर इन्द्रने क्रोधयुक्त हो ब्रजपर मूसलधार जल बरसाया तब गोप ग्वाल बछडोंको दुःखी देख मंगलकी इच्छाकर श्रीब्रजनाथने कंदुक इव गोवर्द्धनको उठाय बायें करकी कनअंगुलीपर धारणकर व्रजमण्डलकी रक्षा की ॥ ३३ ॥ शरद शशधरकी विमलकिरणोंसे प्रकाशित रजनीमुखको मान मनमोहनने मनमोहिनी मुरलीमें मनोहर गीत गाय, ब्रजबालाओंको बुलाय उनके संग विहार किया ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीय-स्कन्धे विदुरश्रीकृष्णचारित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–कहौं तृतीय अध्यायमें, ब्रजको सब वृत्तान्त ।
फेर द्वारकाके चरित, वरणों आद्योपान्त ॥

उद्धवजी बोले कि "फिर श्रीकृष्णचन्द्र सुखधाम बलराम समेत अक्रूरके संग मधुपुरीमें आये और अपने पिताके कल्याणकी इच्छा कर संकर्षणसहित रंगभूमिमें जाय ऊँचे मंचपरसे असुरनाथ कंसके केश पकड पृथ्वीपर धर पटका, प्राण निकलने उपरान्त उसके शवको घसीटते फिरे ॥ १ ॥ फिर सान्दीपनि गुरुके घर जाय उनके मुखसे कहे हुए चारों वेद एक बारमें विस्तारसहित पढ चौंसठ कला स्मरणकीं. फिर गुरुके मरेहुए पुत्र, पंचजनके उदरसे लाकर गुरुदक्षिणामें गुरूजीको देदिये ॥ २ ॥ फिर श्रीमहालक्ष्मीके सदृश रूपवती रुक्मिणीजीके विवाहकी इच्छा कर अनेक भूपालोंको साथ ले राजा शिशुपाल ब्याहने आया उसकाल भगवान् वासुदेव सबके देखते बडे २ नरेशोंके मध्यसे उन लोगोंके शिरपर पग धरकर रुक्मिणीको इस प्रकार हरलाये, जिसप्रकार पक्षिराजने अमृत-हरण किया था ॥ ३ ॥ फिर यदुवीरने अवधनगरमें जा सात बेनथे बैलोंको नाथकर स्वयंवरमें सत्या, नग्नजितकी पुत्रीके संग विवाह किया, और बैलोंने जिनका मान भंग किया सो अत्याचारी नाग्नजितीके अभिलाषी, अज्ञानी शस्त्रधारी दुष्टोंका अपने शस्त्रसे विध्वंस किया ॥ ४ ॥ जिस सत्यभामा प्रियाके प्रेमनिमित्त संसारी मनुष्योंकी सदृश पारि-जात समूल उखाड लाये, और जब सब दलसमेत क्रोधसे अन्धा स्त्रियोंके मध्यमें मर्कट विषयी इन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्रसे लडनेको आया तो क्षणमात्रमें गर्वप्रहारी बाँके विहारीने उसका गर्व दूर किया ॥ ५ ॥ फिर श्रीवैकुण्ठनाथने संग्राममें बडे लम्बे भौमासुरका चक्रसे वध

किया । उसे गिरा देख उसकी माता पृथ्वीने अत्यन्त व्याकुल होकर प्रभुसे प्रार्थनाकी. भूमिकी विनय सुन उसके पौत्र भगदत्तको राजतिलक दे उसके भवनमें गये ॥ ६ ॥ तहाँ भौमासुरकी हरी हुई सोलह हजार भूपालोंकी कन्याओंने श्रीवृन्दावनविहारीकी बाँकी छबि निहार शीघ्र उठ अतिहर्षित हो लाज अनुरागकी चितवनसे मनहांमन विवाहकी अभिलाषा की ॥ ७ ॥ और उन स्त्रियोंके मन्दिरोंमें एक मुहूर्तमात्रमें अपनी मायासे उन-के चित्तानुसार हो विवाहयोग्य प्रकारसहित पाणिग्रहण किया ॥ ८ ॥ और फिर उन सोलह सहस्र युवतियोंको द्वारकामें लेजाय षोडश सहस्रसदनोंमें एक संग बसी. तब उन सब रानियोंके गुणोंमें अपने समान दश २ पुत्रोंको एक २ स्त्रियोंमें मायाको अनेक प्रकार करनेकी इच्छासे उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ फिर कालयवनजरासन्धशाल्वादिकोंने सेनाको जब द्वारकाको भेजा तब उनका विध्वंस किया, और अपने पूर्वजोंके दिव्य तेजको जागृत किया ॥ १० ॥ फिर शंबरासुर, द्विविद वानर, बाणासुर, मुर, निकुंभ, बल्वल, और दंत वक्रादिक जो बडे २ बलवान् असुर थे उनमेंसे किसीको आपने मारा और किसीको औरके हाथोंसे कालकवलित कराया ॥ ११ ॥ इनके पीछे तुम्हारे भ्राताके पुत्रोंकी और जो नरेश थे उनकी सेना आनेसे कुरुक्षेत्रकी भूमि कंपित हुई थी.

दोहा—तिन सबहिनको नाश किय, प्रगट प्रभाव अपार ।
पारथके रथवान है, हरो भूमिको भार ॥ १२ ॥

कर्ण, दुःशासन, सौबल के कुपरामर्शसे जिसकी राजलक्ष्मी आयु नष्ट हुई पवनकुमार भीमसेनने घोर युद्ध करके जिसकी जंघा तोडी उसको पृथ्वीपर अचेत पडा देख श्रीकृष्ण कुछ प्रसन्न नहीं हुए ॥ १३ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, फाल्गुन, भीमसेन, जिसमें मूल थे उन अठारह अक्षौहिणियोंके न होनेसे क्या लाभ हुआ ? मेरे अंश प्रद्युम्न आदि असह्य यादवरूप अभी हैं, भूमिपर बडा भारी भार तो इनहींका है ॥ १४ ॥ जब मीठी वारुणीके मदमें मतवाले हों, यादवलोग परस्पर बिवाद करें, यही इनके संहार करनेका सहज उपाय है. और इनके मरनेका दूसरा उपाय नहीं, क्योंकि—

चौ०—और न कोउ इन जीतन लायक ॥ जहँ प्रद्युम्न आदि भटनायक ॥

और जब हम इस कामके करनेका प्रारंभ करेंगे तो आप ही नष्ट हो सब अन्तर्द्धान हो जावेंगे ॥ १५ ॥ ऐसे विचार कर भगवानने अपने राज्यको स्थापित कर श्रेष्ठ रीति दर-शाय सुहृदोंसहित आनंदित होते हुए ॥ १६ ॥ साधु अभिमन्युने विराटपुत्री उत्तरामें गर्भ-धारण किया, उसको द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रसे नष्ट करना चाहा था, तब उस गर्भ-स्थित बालककी प्रणतपाल दीनदयालु त्रिलोकीनाथने रक्षा की ॥ १७ ॥ फिर सामर्थ्यवान् जगत्पतिने तीन अश्वमेध यज्ञ राजा युधिष्ठिरसे करवाये और महाराज युधिष्ठिर श्रीवासुदेव की कृपासे भ्राताओंसमेत पृथ्वीपर विहार करते रहे ॥ १८ ॥ तदनन्तर भगवान् विश्व-आत्माने लोकवेद मार्गानुसार द्वारावतीमें वास कर सांख्यशास्त्रमें मन लगाय सब प्रजाकी शिक्षाके कारण धर्म कर्म किये ॥ १९ ॥ मनोहर मुसकानकी दृष्टिसे और सुधा विनिन्दित

मधुरवाणीसे लक्ष्मीनिवास शरीरसे सबको आनंद देते रहे ॥ २० ॥ इस लोक और उस लोकमें निरन्तर यादवोंको रमण कराया और सोलह सहस्र रमणियोंसे आप रमण करते रहे ॥ २१ ॥ बहुत वर्षतक रमण करते २ श्रीकृष्णको गृहस्थाश्रममें वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ॥२२॥ जो हरि किसीके अधीन नहीं, अपने कार्योंमें स्वतंत्र, उन परमात्माको विराग हुआ, तो जिनके काम पराये आधीन हैं और आप भी वे पराधीन हैं, उनमें कौन ऐसा योगेश्वर है जो भगवत्का भजन करता हुआ दैवाधीन कार्योंमें प्रीति करेगा ॥ २३ ॥ एक समय द्वारकापुरीमें यदुवंशियोंके बालकों द्वारा खेलमें मुनिकी हँसी कराई, तब भगवदिच्छाके अनुकूल मुनिने उनको महाघोर शाप दिया ॥ २४ ॥ फिर कुछ मास पश्चात् वृष्णि, भोज, अंधक आदिक प्रसन्न हो रथपर बैठ दैवसे विमोहित हो प्रभासक्षेत्रमें गये ॥ २५ ॥ वहां स्नानकर उसी वारिसे पितृ, देव, ऋषियोंका तर्पण कर बहुत दूधवाली गायें अलंकार युक्त, ब्राह्मणोंको दान करीं ॥ २६ ॥ और सुवर्ण, चांदी, तथा अनेक प्रकारके रत्न आभूषण, शय्या, वस्त्र दुशाले, पीतांबर, मृगचर्म, सवारी, रथ, हाथी, घोडे, कन्या, पृथ्वी जिससे सब वृत्ति चले ऐसा दान विप्रोंको दिया ॥ २७ ॥ फिर जिसमें अनेक रस पूर्ण ऐसा अन्न महीसुरोंको दे भगवत्के समर्पण किया; फिर उन गो ब्राह्मण हितकारी यादवोंने श्रीकृष्णजीके प्रसन्नतार्थ भूमिमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीय स्कन्धे प्रभासक्षेत्रगमनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–इस चतुर्थ अध्यायमें, बन्धुनिधन सुन कान।
उद्धवशिक्षासे विदुर, गये मित्रसुत जान ॥

उद्धवजी बोले कि, ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले भोजन करा, फिर वारुणीपान करनेसे सब यादव वीर ज्ञानशून्य होगये. और परस्पर बुरी २ बातें कर, मर्मस्थानमें वचनबाण एक दूसरेके मारने लगे ॥ १ ॥ उस मदके दोषसे उनके चित्त विषम होगये. सूर्य अस्त होनेके समय जिसप्रकार बांस घिसकर अग्निके उत्पन्न होनेसे नष्ट होजाते हैं, ऐसेही परस्पर वे लडकर शापाग्निसे नष्ट होगये ॥ २ ॥ भगवान् अपनी मायाके इस प्रभावको देख सरस्वती नदीमें आचमन कर एक वृक्षकी जडमें बैठगये ॥ ३ ॥ उस समय शरणागतके पीडानाशक अपने वंशके विध्वंस करनेवाले भगवान्ने मुझसे कहा कि, तुम बदरिकाश्रमको जाओ ॥ ॥ ४ ॥ यद्यपि उनके अभिप्रायोंको मैं भलीप्रकार जानता था तौ भी मैं शत्रुविनाशकारी, दैत्यारी श्रीवासुदेवजीके पश्चात् २ गया क्योंकि श्रीयदुनाथके कोमल चरणोंका वियोग मैं सहन नहीं करसका ॥ ५ ॥ तब मैं वृन्दावन विहारीके चरणचिह्न खोजता हुआ सरस्वतीके तटपर पहुँचा देखा तो राधाचित्तचोर श्रीनिवास स्वतंत्र अकेले वहाँ बैठे हैं ॥ ६ ॥ श्याम सुन्दर शुद्ध सत्वमय चारभुजाधारी आनन्दस्वरूप–

चौ०–पीताम्बर पहिरे तन श्याम * शान्त अरुण लोचन सुखधाम ॥ ७ ॥

दहिना चरण बायें चरणपर स्थापित किये, पीपलके पेडके निकट बैठे, पुष्टशरीर, जिन्होंने

सम्पूर्ण विषयोंका त्याग करदिया ॥८॥ तहाँ दैवइच्छासे महाभागवत व्यासजीके सुहृद्सखा मैत्रेयजी भी विचरण करतेहुए उधर आ निकले ॥ ९ ॥ तब भक्तअनुरागी आनन्दभावसे नीची ग्रीवा करे मेरे सन्मुख प्रेम हास्यकी दृष्टिसे विश्राम दे आनंदित होकर मुर्गाधरसे श्रीव्रजनाथजी बोले ॥ १० ॥ हे वसुरूप उद्धव ! तुम्हारे मनकी जो गति है वह मैं भली प्रकार जानताहूं, और तुम्हारी अभिलषित वस्तु तुमको दूंगा, जो औरोंको प्राप्त नहीं होती, प्रथम विश्वके रचयिता वसुओंके यज्ञमें मेरी सिद्धिकी कामनासे तुमने मेरा यजन कियाथा ॥११॥ सो हे तात ! मेरी कृपासे यह आपका अन्तिम जन्म है, इसी जन्ममें तुम मेरे अनुग्रहका फल भोग लो, अब मैं मृत्युलोक त्याग वैकुण्ठधामको जाता हूं, इस समय मेरा एकान्तमें एकान्तभक्तिसे दर्शन करो यही परमानंद है ॥ १२ ॥ पहिले पाद्मकल्पकी आदिसृष्टिमें कमलासन ब्रह्माजीसे मैंने अपनी लीलाका प्रकाशक परम श्रेष्ठ ज्ञान कहा था जिसको महाज्ञानी परमचतुर विद्वान् लोग "भागवत" कहते हैं सोई ज्ञान प्रथम मैंने तुमको दिया अब तुम उस विमलज्ञानको विचार संसारी माया मोह तज मेरा भजन करो ॥१३॥ ऐसे आदरभावसे जब कृपानिधानने मुझे समझाया तब परमपुरुषके क्षण २ के प्रति अनुग्रहका पात्र स्नेहसे मेरे रोमांच खडे होकर गद्गद कंठ होगया, मुखसे शब्द न निकला, शोकाश्रु नेत्रोंमें आगये तब मैं बडे कष्टसे हाथ जोडकर बोला ॥ १४ ॥ हे ईश ! हे प्रभु ! यद्यपि इस संसारमें तुम्हारे पदपंकज सेवन करनेवालोंको चारों पदार्थोंमें सब पदार्थ प्राप्त होते हैं तथापि मैं भी आपके चरणकमलका सेवक हूं परन्तु मुझको उन पदार्थोंमेंसे किसीकी इच्छा नहीं ॥ १५ ॥ जो अघटमान हैं सो कहते हैं कि, जो चेष्टा न करें अकर्ताके कर्म, अजन्माके जन्म, शत्रुओंके भयसे भागना, कालकी आत्मा असंख्यात रमणियोंसे विहार करना, अपनी आत्मामें सदा रमण करना, ऐसे तुम्हारे अद्भुतचरित्र देखकर इस संसारमें सब विवेकियोंकी बुद्धि खेदको प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! हे देव ! सब कालमें अखंड, अंतर्यामी, जगत्के कारण अजानकी नाईं मुझे निकट बुलाकर मंत्र बूझते थे और मुझको बड़ाई देते थे, इसकारण, मेरा मन आपके चरणकमलको नहीं छोडा चाहता ॥ १७ ॥ अपने आत्माका एकान्तमें प्रकाश करनेवाला ज्ञान संपूर्ण ब्रह्मासे तुमने कहा. हे स्वामिन् ! जो मेरे जानने योग्य हो सो कहो जिससे अनायास संसारके दुःखसे हम सब तरैं ॥ १८ ॥ ऐसे मेरे हृदयकी प्रीति जान श्रीवासुदेव भगवान् कमलनयनने आत्माकी परम स्थितिका ज्ञान कहा ॥ १९ ॥ तब मैंने उसीप्रकार भगवान् वासुदेवका आराधन किया उनके चरणामृतके प्रतापसे आपसे आप तत्त्व आत्माके ज्ञानका मार्ग मुझको प्राप्त होगया तब मैं उनके चरणोंको प्रणाम कर परिक्रमा दे विरहमें आतुर हो यहां आया हूं ॥ २० ॥ उनके दर्शनकी प्राप्तिके हर्ष और वियोगकी पीडासे खेदित हो प्रभुके प्रिय बदरिकाश्रम मंडलको जाऊंगा ॥ २१ ॥ जहां नारायण देव और नर ऋषि सब उपद्रवरहित दुश्चर तप कल्पपर्यंत सब लोकके अनुग्रहके कारण करते हैं ॥ २२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, उद्धवजीके मुखसे अपने सुहृद् बंधुओंका वध सुन

बुद्धिमान् विदुरजीको शोक संताप हुआ उसको ज्ञानके प्रकाशसे तुरंत मिटाय ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णके परिवार यदुवंशका विध्वंस सुन उद्धव महाभागवतसे भगवतके गमनका वृत्तान्त सुन विश्वास कर विदुरजी यह बोले ॥ २४ ॥ कि, हे उद्धव ! आत्माका एकान्तमें प्रकाश करनेवाला परमज्ञान जो योगीश्वर श्रीकृष्णजीने आपसे कहा, वह ज्ञान आप हमसे कहिये। क्योंकि, श्रीकृष्णके उपासक ब्राह्मण लोग अपने दासोंके प्रयोजन साधनेको विचरते हैं. जो कृतार्थ हैं उनको और कुछ कृत्य करनेको नहीं है ॥ २५ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे विदुरजी !

चौ०-मोहिं न क्षण भरको अवकाश * बिन व्रजवल्लभ रमानिवास।
को अब सुनहि सुनावहि ज्ञान * मोहिं शरीरकर भार महान ॥
जब मोहिं हरिने ज्ञान सुनाये * मित्रसूनु हरिके ढिग आये।
परमज्ञान जो करम बखानो * सो सब भलीभाँति तिन जानो ॥

निश्चय तत्त्वोंकी सुन्दर सिद्धिके ज्ञाता मैत्रेयजी आपको ज्ञान सुनावेंगे जो मनुष्य लोकके त्याग करनेवाले भगवान्ने कहा है ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेजी बोले, इसप्रकार विदुरजीके साथ मोहनमूर्तिके गुणोंकी कथारूप अमृतसे सब जिनका ताप नष्ट होगया तब उद्धवजीने कालिन्दीके पुलिनमें एक रात्रि वास किया, वह रात्रि एक पलके समान व्यतीत हुई ॥ २७ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित बोले कि, कृपासिंधु ! वृष्णि, भोज महारथी यूथपालोंमें मुख्य २ जब नष्ट होगये और ब्राह्मणके शापसे त्रिगुणोंके स्वामी कृष्ण परमात्माने जब मनुष्यके आकारको त्यागदिया फिर उद्धवजी कैसे बच रहे ? यह बडे आश्चर्य की बात है ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, शापकी तो कुछ सामर्थ्य नहीं थी ब्राह्मणके शापका तो एक मिष था कालानुसार अमोघ वांछावाले श्रीकृष्णजी अपने कुलका संहार कर शरीर त्याग तिस समय चित्तमें यह विचारने लगे ॥ २९ ॥ जो मैं इस लोकसे चला जाऊँ तो मेरा यह परमज्ञान आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धवके अतिरिक्त और कोई समझने योग्य नहीं ॥ ३० ॥ उद्धव ज्ञान जाननेमें अणुमात्रभी मुझसे न्यून नहीं हैं, सब भाँति मेरी ही समान हैं इनके गुणोंसे कभी ईश्वरका चित्त पीडित न हुआ; मेरे संबंधका ज्ञान जो छः प्रकारकी शरणागत है उसे उपदेश करूं ॥ ३१ ॥ शब्दमात्रके कर्ता, वेदके कर्ता, त्रिलोकीके गुरुसे जब यह आज्ञा पाई, तब बदरिकाश्रममें जाकर समाधि लगा श्रीहरिके चरणकमलका ध्यान करने लगे ॥ ३२ ॥ जिन्होंने लीलाके लिये मनुष्य शरीर धारण कर श्लाघनीय कर्म किये सो श्रीकृष्णपरमात्माके गुण उद्धवजीके मुखसे विदुरजीने श्रवण किये ॥ ॥ ३३ ॥ और वैकुण्ठनाथके अनन्तधामको जाना, धैर्यवालोंको धैर्य देता हुआ और अधीरपुरुषोंको अतिदुष्कर जानपडा ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द का ध्यान करते हुए ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धवजी चलेगये, तब विरहवश हो विदुरजी क्रंदन करने लगे ॥ ३५ ॥

दोहा-पुनि कछु दिन बस मधुपुरी, कालिन्दीके तीर।
बहुरि गये जहँ बसत हैं, मित्रासुत मतिधीर ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीय-स्कन्धे विदुरोद्धवसंवादवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-विदुर पंचमाध्यायमें, बूझो जगविस्तार।
महत्तत्त्व सब सृष्टिको, वरणो मित्रकुमार ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, हे अभिमन्युनंदन ! कुरुवंशभूषण, अच्युतके भाव से शुद्ध गुण, दया, शीलतासे तृप्त विदुरजी गंभीरज्ञानी हरिद्वारमें मैत्रेयजीके निकट पहुँचे ॥ १ ॥ उनको दंडवत प्रणाम कर विदुरजी बोले कि, कर्म सब सुखके अर्थ करते हैं, परन्तु न सुख मिला, न दुःखका विनाश हुआ, सो सब जन्म दुःखहीमें व्यतीत हुआ. इसीलिये जो करने योग्य उपाय हो सो बताओ ? क्योंकि, आप सर्वज्ञ हैं ॥ २ ॥ श्री-नारायणसे विमुख, प्राचीन कर्मसे अधर्ममें रुचि, अत्यंत दुःखी जीवोंके ऊपर दया करने को, इस संसारमें परमात्माके भक्त मंगलकारी, परोपकारमें निरत ब्राह्मण विचरते हैं ॥ ॥ ३ ॥ इसकारण हे साधुवर्य ! सुखका मार्ग कहो, जिससे पुरुषोंके हृदयमें भगवान् वासुदेव स्थित हों, और भगवद्भक्तिसे पवित्र हृदयमें अनादि वेदप्रमाणसिद्ध तत्त्वज्ञान दें ॥ ॥ ४ ॥ त्रिगुणी मायाके नियंता स्वतंत्र भगवान् अवतार धारण कर जिन कर्मोंको करते हैं निष्क्रिय होकर ईश्वरने जिस प्रकारसे प्रथम इस संसारको रचा, पीछे स्थिरतासे जगत्की वृत्तिका विधान किया ॥ ५ ॥ जैसे फिर अपने हृदयआकाशमें इसको स्थिर करके सब वृत्तियोंसे निवृत्त होकर अंतःकरणमें सोते हैं, जब फिर विसर्जनकाल आवे है तब योगीश्वरों-के ईश्वर एक इस विश्वमें प्रविष्ट होके बहुतसे होते हैं ॥ ६ ॥ ब्राह्मण गौ देवताओंके क्षेमके लिये कल्प २ में अवतारभेदसे विहारकारी कर्म करते हैं. सुन्दरयशस्वियोंमें मुकुट-मणि श्रीनारायणके चरित्रामृत पान करनेसे हमारा चित्त तृप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ सब लोकोंके नाथोंके अधिपतिने जिन तत्त्वोंके भेदसे लोक और अलोक पर्वतसे बाहर सब लोक पालसहित कल्पनाकी. जहाँ सब जीवोंके समूहोंके भेद अधिकारीसे प्रगट करते हैं ॥ ८ ॥ हे विप्रवर ! जिस प्रकारसे प्रजाके आत्मा कर्म रूप नाम- भेद विश्व रचनेवाले स्वतःसिद्ध नारायणने प्रगट किये सो आप हमसे वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! श्रीकृष्णजीकी कथामृतपानके समूह कि, जिनके विना मुख मलीन होरहे हैं उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंके धर्म व्यासजीके मुखसे बारंबार हमने सुने हैं. परन्तु उनके श्रवण करनेसे हमारी तृप्ति नहीं हुई ॥ १० ॥ आपके यज्ञमें नारदादिकोंने श्रीभगवान्के जो यश गाए हैं ऐसे भगवतनामसे तृप्ति नहीं होसक्ती. जो नाम पुरुषोंकी कानकी नाडीमें प्राप्त होकर संसारकी देनेवाली घरमें जो प्रीति है उसका खंडनकर पतित और पाँमरोंको पावन करनेवाला ह ॥ ॥ ११ ॥ श्रीव्यासमुनिकी मोक्षधर्मके अंतमें नारायणीय उपाख्यानमें भागवतके गुणोंके

कहनेकी इच्छा हुई. तब आपके सुहृद् सखा व्यासजीने महाभारत कहा. जिस भारतमें संसार सुखके बहानेसे हरिकी कथामें भक्ति ग्रहण किये हैं. सो सब बात इतिहास समुच्चयमें है.

श्लोक-"कामिनो वर्णयन्कामं लोभं लुब्धस्य वर्णयन्।
नरः किं फलमाप्नोति कूपेऽन्धमिव पातयन् ॥१॥
लोकचित्तावतारार्थं वर्णयित्वाऽत्र तेन तौ।
इतिहासैः पवित्रार्थैः पुनरत्रैव निन्दितौ ॥ २ ॥
अन्यथा घोरसंसारबन्धहेतू जनस्य तौ।
वर्णयेत्स कथं विद्वान्महाकारुणिको मुनिः ॥ ३॥

भावार्थ-"कामीसे कहा काम कर, लोभीसे कहा लोभ कर इस बातसे जीवनको क्या फल प्राप्त हुआ ? जैसे अंधेको कूपमें ढकेल देना ॥ १ ॥ व्यासजीने लोगोंका चित्त रंजन करनेको काम लोभ वर्णन किया, परन्तु उसी स्थलपर पवित्र इतिहास सुनाकर उसकी निंदा करी है ॥ २ ॥ केवल चित्तके प्रवेशरूप प्रयोजनके विना विद्वान् महादयालु मुनिजन प्राणियोंके घोर नरकमें बन्धनके लिये जो काम और लोभ है उसको किस प्रकार वर्णन करसक्ते हैं ? ॥ ३ ॥ इति" ॥ १२ ॥ श्रद्धालु लोग नारायणके चरणारविन्दोंमें अपना मन लगानेसे आनंदित होतेहैं ऐसे पुरुषोंकी बढीहुई भक्ति संसारके सुखोंमें विराग करती है. और सब दुःखोंका नाश करती है ॥ १३ ॥ मैं शोच्य नरोंको और शोच्योंके भी शोच्योंको शोचता हूं. शोच्य उसको जानना चाहिये कि, जो राजालोगोंकी संग्रामादिक मनोरम विषय रसभरी कथा केवल मनके स्थिर होनेके अर्थ है, और किसी प्रयोजनके अर्थ नहीं. ऐसे भारतके तात्पर्यको नहीं जानते वे शोच्य है; और जो जान बूझकर भी श्रीभगवान् वासुदेवकी कथासे विमुख है, वे शोच्योंके भी शोच्य हैं, (क्योंकि, काल भगवान्) (वाद जो वाणीका व्यापार, गमन जो देहका व्यापार, स्मरण जो मनका व्यापार, यह तीनों व्यापार जिसके वृथा हैं. अर्थात् वाणीसे तौ आदिपुरुष श्रीनारायणका नाम नहीं लिया, देहसे चलकर प्रधान २ ईश्वरके धामोंमें पांव नहीं दिया, और मनसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनविहारी, मोरमुकुटधारीका ध्यान नहीं किया) उनकी आयुको क्षीण करता है ॥ १४ ॥ हे मैत्रेयजी ! इसलिये संसारके सुखदायक श्रीव्रजनायक की कथामें सार पवित्रात्मा दीनबन्धु, भक्तवत्सल श्रीनारायणकी कथा कहो. जैसे पुष्पोंसे निकाल २ मधुको मक्खियें लाती हैं उसी भांति सब वेद शास्त्र पुराणोंका रस निचोड २ कर आप मुझको पान कराओ. कि, मेरे मनकी तृप्ति हो ॥ १५ ॥ आदिपुरुष अविनाशीने जगत्की उत्पत्ति, पालन, नाशके लिये शक्तिसे अवतार धार जो चरित्र मनुष्योंसे न होसकैं सो किये; वे चरित्र विस्तारसहित कृपा कर मुझसे कहो ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार मैत्रेयमुनिसे विदुरजीने पूछा, तब मैत्रेयजी पुरुषोंके मोक्षके लिये उनका अत्यन्त आदर सत्कार कर ॥ १७ ॥ बोले कि, हे साधो ! सब संसारके जीवोंपर

अनुग्रह कर ईश्वरमें मन लगानेहारी और लोकोंमें कीर्ति बढानेहारी तुमने अतिसुन्दर विषयजिज्ञासा की ॥ १८ ॥ हे विदुर ! व्यासजीसे उत्पन्न होनेके कारण आपमें यह बात विचित्र नहीं है. तुमने सब प्रकार भक्तअनुरागसे ईश्वरको ग्रहण किया है ॥ १९ ॥ मांडव्यऋषिके शापसे सब प्रजाके दंडदाता यमराजहीने विचित्रवीर्य भ्राताके क्षेत्र भुजिष्यादासीमें व्यासजीके वीर्यसे तुम जन्म ले प्रकट हुए हो ॥ २० ॥ भगवज्जनसहित भगवान्को सदा तुम प्यारे हो, जो कि, तुमको ज्ञान उपदेश करनेके लिये परमधामको चलते समय भगवान्ने मुझे आज्ञा दी ॥ २१ ॥ अब हम तुमसे उत्पत्ति संहार पालनकर्ता भगवान्की लीला विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं जो योगमायासे बढी हुई लीला हैं ॥ २२ ॥ और व्यापक सब जीवोंके स्वामी समर्थ अपनी इच्छानुसार आप अनेक मतिसे सबको समीप देखनेवाले एक आदिपुरुष अविनाशी सर्वशक्तिमान् भगवान् सबसे पहले थे ॥२३॥ उस समय यह ईश्वर, सर्वद्रष्टा एक सर्वशक्तियां जिसकी जागती रहती हैं परन्तु इस वैभवको कोई देखनेवाला नहीं सब शक्तियां अपने आप में लीन हैं उस समय सर्वद्रष्टा एक मात्र जिसकी शक्ति जागती है इसप्रकार यह ईश्वर रहता है; उस समय कामना हुई, कि हम बहुतरूप होकर अपनेको देखें ॥ २४ ॥ हे महाभाग !

दोहा–सर्वशक्ति धारण करन, जेहि संकुचित न ज्ञान।
निजमाया विरची हरी, जेहिते जग निर्मान ॥

तब सर्वद्रष्टा परमात्माकी कार्यकारणरूपिणी माया महाशक्ति अनुसंधानरूपा हुई. उससे सर्वसमर्थ ईश्वरने सब संसारको रचा ॥ २५ ॥ गुणमयी कालकी शक्तिसे मायामें पुरुषरूप धरके परमेश्वरने वीर्यको धारण किया ॥ २६ ॥ कालप्रेरित अव्यक्त मायासे महत्तत्त्व प्रगट हुआ, तमोगुणनाशक विज्ञान आत्मा जीवके देहमें स्थित होकर विश्वको प्रकाश किया ॥ २७ ॥ सो जीव, अंश. गुण, काल, आत्मा भगवत्की दृष्टिके सम्मुख इस जगत्को रचनेके कारण जीवात्माने अपने आत्माका रूपान्तर किया ॥ २८ ॥ जब महत्तत्व विकारको प्राप्त हुआ, तब अहंकार उत्पन्न हुआ; जो कार्य, कारण, कर्ता, जीव, पंचभूत, इन्द्रिय, मनोमय होता हुआ ॥ २९ ॥ वह अहंकार वैकारिक, तैजस, तामस भेदसे तीन प्रकारका हुआ. अहंकार विकारको प्राप्त हुआ, तब विकारी अहंकारसे मन हुआ ॥ ३० ॥ वैकारिक देवता हुए, उनसे शब्दादि गुण प्रकाश हुआ, जिससे रज सत्त्वतमोमय ब्रह्मा विष्णु शिव हैं ॥ ३१ ॥ तैजस अहंकारसे ज्ञानकर्ममय इन्द्रियें हुईं, और तामस अहंकारसे पंचभूत सूक्ष्म आदि आकाश व्यापकका चिह्न हुआ "आकाशं शरीरं ब्रह्मेति श्रुतेः" ॥ ३२ ॥ काल मायाके अंशयोगसे भगवतसे देखा हुआ आकाशके पीछे स्पर्श हुआ स्पर्शके विकारसे पवन प्रगट हुआ ॥ ३३ ॥ आकाशके अत्यन्तबलसे जब वायु विकारको प्राप्त हुआ तब उसकी मात्रासहित सब लोकका लोचन प्रकाश प्रगट हुआ ॥ ३४ ॥ ईश्वरके देखनेसे पवनसहित ज्योति जब विकारको प्राप्त हुई तब काल मायाके अंशोंके योगसे रसमय जल उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ ब्रह्मकी इच्छासे ज्योतिकरके

जलसहित कालमायाके अशोंके योगसे गंधगुणवाली पृथ्वी हुई ॥ ३६ ॥ हे विदुर ! आकाशादिक पंचभूतोंके जो पर अवर हैं उनके परमसंगसे यथाक्रम गुणोंको जानो, आकाशका गुण शब्द, वायुका गुण स्पर्श, तेजका गुण रूप, जलका गुण रस है, परंतु पृथ्वीमें सब गुण होते हैं ॥ ३७ ॥ कालमाया अंशरूपी विष्णुकी ये सब देवता कला हैं. भांति २ के रूप होनेसे जब ब्रह्माण्डकी रचना करनेमें समर्थ न हुये तब हाथ जोडकर सबने परमात्माकी स्तुति की ॥ ३८ ॥ सब सुर बोले—हे शरणागततापनाशक ! छत्ररूप आपके चरणारविन्दको, हे नाथ ! हम बारंबार नमस्कार करते हैं आपके चरणकमलके आश्रित हो यतीलोग संसारसमुद्रके पार होजाते हैं ॥ ३९ ॥ हे धातः ! हे आत्मन् ! हे ईश ! हे भगवन् ! तीन तापोंसे दुःखी जीव इस संसारमें सुखको नहीं प्राप्त होते हैं. इसकारण विद्यासहित तुम्हारें चरणोंकी छायाका आश्रय लेते हैं ॥ ४० ॥ जिन चरणोंसे भगवती भागीरथी प्रगट हुई, जिनका जल पाप ताप नाशक है; जो नदियोंमें श्रेष्ठ हैं उन श्रीगंगाजीके स्थान आपके चरणकमलकी शरणागत हो ऋषिलोग एकान्तमें बैठकर तुम्हारे चरणकमलके सुखमें बसे हैं और वेद पक्षी होकर तुम्हारे मार्गको खोजते हैं, जैसे अपने घोंसलेमेंसे निकल फिर पक्षी अपने घोंसलेमें आजाते हैं उसीप्रकार वेद आपसे उत्पन्न होकर सब स्थानोंमें विचर फिर आपहीमें प्रवेश करते हैं ॥ ४१ ॥ जिन पदपंकजोंको श्रद्धाभक्तिसे शुद्ध हृदयमें धारणकर ज्ञानसे वैराग्यके बलसे धीर पुरुष आपके चरणकमलके पीठके निकट प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ हे विश्वनाथ ! विश्वके उत्पत्ति, पालन. संहारके लिये आप अवतार धारण करते हो, तुम्हारे पादारविन्दकी हम सब शरण हैं. सो आप अपने दासोंको स्मरण करने योग्य अभयदान दीजे ॥ ४३ ॥ हे भगवन् !

दोहा—असत देह औ गेहमें, जिनकी मति लवलीन ।
कुटिलकुमति ते रहत हैं, तव पदभक्तिविहीन ॥

ऐसे दुराग्रहसे देहपुरीमें वास करते हैं ऐसे पुरुषोंको दुष्प्राप्य तुम्हारे चरणकमलको हम भजते हैं ॥ ४४ ॥ हे उरुगाय ! क्रूर, कुमति, कपटी, खोटे मार्गमें जानेवाली इन्द्रियोंसे जिनके मन लौलीन हैं वे मनुष्य आपके चरणारविन्द सेवनके विलासकी शोभाको नहीं देखते ॥ ४५ ॥ हे देव ! आपके कथामृत पानके करनेसे अत्यन्त अधिक भक्ति करनेसे विशालअंतःकरणवाले वैराग्यके सार, विज्ञानको प्राप्त होकर, विनाहीं प्रयास संसारको तज, श्रीवैकुण्ठधामको चले जाते हैं ॥ ४६ ॥ इसीप्रकार औरभी आत्मयोगबलसे बली प्रकृतिको जीतकर धीरपुरुष तुममें प्रवेश करते हैं और जो लोग आपके चरणोंकी सेवा नहीं करते उनको परिश्रम होता है ॥ ४७ ॥ हे आद्यपुरुष ! आपने लोकके रचनेकी इच्छा कर तीन गुणोंसे रचे सो हम सब विरुद्ध स्वभावसे पृथक् हैं, सो आपके विहारसे इस ब्रह्माण्डको आपको समर्प्पण करनेकी हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४८ ॥ हे अज ! जबतक हम आपको समयमें भेंट देवें, जहां हम सब अन्नको जिसप्रकारसे भक्षण करैं, जैसे आपको हमको यह सब निःसन्देहतक छोडकर लोग बलि दें अन्नको पावें सो कीजिये यही हमारी

प्रार्थना है ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! तुम हमारे और देवताओंके सब वंशोंके आद्यपुरुष पुराण अविक्रिय अजन्मा हो, सत्त्वादिगुणकर्मकी कारणरूप शक्ति मायामें तुमने क्रान्तदर्शी वीर्यको धारण किया है ॥५०॥ हे आत्मन् ! हे देव ! तात तत्प्रमुख हम सब महदादि जो अर्थ हुए हैं सो हम आपका क्या काम करें ? हे नाथ ! आपके अनुग्रहके पात्र जो हम सब लोग हैं, हमको सब संसारके रचनेकी सामर्थ्य अपनी शक्ति, अपना ज्ञान, सब ओरसे कृपा करके दो.

दोहा-रचनहेत ब्रह्माण्डके, हमको उत्पन कीन्ह ।
ज्ञानशक्ति अब देहु प्रभु, हम तुम्हरे हि अधीन ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम- शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे महदादिसर्गे सर्वदेवकृतस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-प्रभू षष्ठ अध्यायमें, विराट तनको धार ।
अधिदेवादिक भेद सब, वरणों सहित विचार ॥

मैत्रेयजी बोले, इसप्रकारसे अत्यन्त विस्मृत लोकरचनावाली उन अपनी विभिन्न स्थित शक्तियोंकी गतिको जान ईश्वरने प्रवेश किया ॥ १ ॥ उससमय कालसंज्ञा शक्तिको ईश्वरने धारणकर तेईस (२३) तत्त्वोंके गणमें एकसंग प्रवेश किया ॥ २ ॥ सो भगवान् चेष्टारूपसे उस तत्त्वात्मक गणमें प्रवेश कर फिर सुप्तकर्मोंको बोधन करते अलग २ जो सब गण थे उनको एकत्र कर दिया ॥ ३ ॥ ईश्वरकी प्रेरणासे जागकर तेईस तत्त्वोंके गणने अपने अंशोंसे विराट्देहको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ जिसमें ईश्वरने अपने अंशोंसे प्रवेश किया. जिसमें चराचर लोक हैं, ऐसा वह विश्व रचने वालोंका समूह परस्पर इकट्ठा हो अपनेहीमें चलायमान हुआ ॥ ५ ॥ सुवर्णमय सब ब्रह्माण्डका कोश भूत सब जीवोंसे वर्द्धित, उस पुरुषने सहस्रवर्ष पर्यन्त जलमें वास किया ॥ ६ ॥ देव, कर्म, आत्मा, इन तीन शक्तिवालेने उन विश्व रचनेवालोंका गर्भ अपनी आत्मासे एक दश तीन विभाग किये; देवशक्ति अर्थात् ज्ञानशक्तिसे हृदयमें चैतन्यरूपसे विराजमान हैं, और कर्मशक्ति जो क्रिया शक्ति, उससे प्राणरूपकरके दशरूप होते हैं. आत्मशक्ति अर्थात् भोक्तृशक्तिसे तीन प्रकारके होते हैं इसीप्रकार जानलेना ॥ ७ ॥ परमात्माकी आत्माका अंश, सब जीवमात्रके अंतर्यामी यह हैं, यह प्रथम अवतार है जिससे सब जीवमात्रका जन्म होता है ॥ ८ ॥

दोहा-आधिभूत अध्यातम अरु, आधिदेव विधि तीन ।
जीव एकधा प्राण दश, अस विभाग तेहि कीन ॥

आधिभूत, अध्यात्म, अधिदेव, यह तीन प्रकार हैं. विराट् प्राण दश प्रकारका है, एकरूपसे हृदयमें है ॥ ९ ॥ इस प्रकारका स्मरणसे विराट्के विनती करनेपर विश्वरचनेवालोंके ईश्वरने अपने तेजसे इन महदादिकोंकी वृद्धिके लिये तप किया ॥ १० ॥ अब उस विराट्के मुखआदिसे जितने स्थान देवताओंके निकले मैं उनका वर्णन करताहूं तुम ध्यान लगाकर

सुनो ॥ ११ ॥ प्रथम विराट्का मुख प्रगट हुआ. उसमें लोकपालक अग्निने प्रवेश किया, जिस अपनी वाणीके अंशसे, यह विराट्देह जो कुछ कहनेके योग्य है उसको प्राप्त हुआ मुख अधिष्ठान है १ वाणी इन्द्रिय है २ अग्नि देवता है ३ वचन विषय हैं ४॥ १२ ॥ हरिरूप विराट्के तालुसे प्रगट हुआ, उसमें लोकपाल वरुणने प्रवेश किया. जिस रसनाके अंशसे इस विराट्देहने रसास्वादन किया. ॥ १३ ॥ उस व्यापक विष्णु विराट्के नासिका निकली, उसमें अश्विनीकुमारने प्रवेश किया. घ्राणके अंशसे सुगंधिकी सिद्धि हुई ॥ १४ ॥ विभुके विराट्देहमें दो नेत्र उत्पन्न हुए तब उनमें लोकपालक सूर्यने प्रवेश किया तौ चक्षुके अंशसे रूपकी सिद्धि हुई ॥ १५ ॥ उस परमात्मा विराट्के देहमें चर्म प्रगटा उसमें लोकपाल पवनने प्रवेश किया तब प्राणके अंशसे इसका स्पर्श होनेलगा ॥ १६ ॥ फिर विराट्के देहसे कान निकले तौ दिशाओंने अपना स्थान जान उसमें प्रवेश किया तौ श्रोत्रके अंशसे शब्दकी सिद्धि इसको होती हुई ॥ १७ ॥ फिर हरि विराट्के देहसे त्वचा उत्पन्न हुई; तब उसमें सब औषधियोंने प्रवेश किया जिनके अंशसे रुमोंमें खुजाहट हुई ॥ १८ ॥ फिर उस भगवान् विराट्के देहसे लिंग उत्पन्न हुआ उसमें प्रजापतिने वास किया तब वीर्यके अंशसे आनंदहुआ ॥ १९ ॥ जब उस आदिपुरुष विराट्के देहसे गुदा उत्पन्न हुई तब उसमें लोकेशमित्रने प्रवेश किया जिस वायुके अंशसे मलका त्याग हुआ ॥ २० ॥ फिर इनके हाथ निकले तब उनके (हस्तोंके) स्वामी इन्द्रने उनमें प्रवेश किया वार्ताके अंशकरके निजभुजाओंसे सब वृत्ति यह विराट्देह करनेलगा ॥ २१ ॥ फिर चरण पैदा हुए उनमें सर्व लोकोंके ईश्वर विष्णुने प्रवेश किया चलने फिरनेके अंशसे जो प्राप्तियोग्य हो उसको प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ फिर बुद्धि हुई इसमें वीणापाणि सरस्वतीने प्रवेश किया तब ज्ञानके अंशसे संकल्प विकल्प आदि क्रियाओंको प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ जब इस विराट्के देहसे हृदय हुआ उसके अर्धांश निशानाथ चंद्रमा देवता हुए; उनके अंशसे यह देह संकल्परूप विकारको प्राप्त हुआ ॥२४॥ फिर इसको अहंकार प्राप्त हुआ उसके पति शिवने हृदयमें प्रवेश किया जिस कर्मके अंशसे सब कार्य करने योग्यकी योग्यताको प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ फिर इसके पीछे सत्त्व हुआ तौ ब्रह्माजीने उसमें प्रवेश किया, जिस चित्तके अंशसे यह विराट् ज्ञानको प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ इसका शिर और नाभि आकाशमें, पाँव पृथ्वीमें भी जिनमें गुणोंकी वृत्तियोंसे देवता आदि प्रतीत होते हैं ॥ २७ ॥ अत्यन्त सत्त्वगुण अधिक होनेसे देवताओंने स्वर्गमें वास किया जो रजोगुणके स्वभावसे यज्ञादिक व्यवहार करने लगे वे मनुष्य और गौ आदिक पृथ्वीपर प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ तीसरे तमोगुणसे भगवान्की नाभिके आश्रयवाले दोनोंके मध्यमें आकाश हुआ जहां रुद्रके पार्षद भूतप्रेतगण बसे ॥ ॥ २९ ॥ हे राजन्! उस महापुरुषका मुख वेद ब्रह्म हुआ, वेदके मुखके कहनेसे सब वर्णोंमें मुख्य ब्राह्मण गुरु हुए ॥ ३० ॥ भुजाओंसे पालनरूप कर्म हुआ, उससे क्षत्रिय हुए उन्होंने चोरादिकोंके उपद्रवसे रक्षा की, इससे ईश्वरांश हुए. जिसने जन्मसे वर्णोंका रक्षा की ॥ ३१ ॥ उनके ऊरुसे कृष्यादिक व्यवहार हुए. वे संसारके सब व्यवहार करनेवाले

वैश्य हुए. जिनसे मनुष्योंकी सब व्यवहार वार्ता हुई ॥ ३२ ॥ शुश्रूषाकी सिद्धिके अर्थ विष्णुके चरणोंसे सेवक वृत्तिवाले शूद्र हुए. जिनकी जीविकासे परमेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हुए.

दोहा-ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यकी, सेवा करत जु शूद्र।
तापर होत प्रसन्न हरि, गनहिं नहीं तेहि क्षुद्र ॥ ३३ ॥

इन चारों वर्णोंने अपने धर्मसे अपने गुरु हरिका पूजन किया श्रद्धासे आत्माकी विशुद्धिके लिये सब वृत्तिसमेत सब वर्ण हुए ॥ ३४ ॥ हे क्षत्त; ! दैव कर्म आत्मारूपी भगवान्की योगमायाका बल कौन वर्णन करसक्ता है ? ॥ ३५ ॥ हे विदुर ! जैसी मेरी बुद्धि है अथवा जैसा मैंने सुना हैं, वैसा अपनी वाणीको शुद्ध करनेके अर्थ हरिका चरित्र वर्णन करताहूं क्योंकि यह खोटी वाणी और २ वर्णनसे अशुद्ध होगई है ॥ ३६ ॥ पुरुषोंके वचनको एकान्तमें लाभदायक जिन्हें श्रुतियोंसे विद्वानोंने संग्रह किया है, कथाभूतमें जिनका वर्णन है उन सुन्दर यशस्वियोंके शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द वृन्दावन विहारीके गुणानुवाद कहते हैं ॥ ३७ ॥ हे विदुरजी ! श्रीनारायणकी महिमाको ब्रह्मादिक योगाभ्याससे निश्चल बुद्धि करके भी सहस्रवर्षके अंततक नहीं जानसक्ते ॥ ३८ ॥ इसकारण भगवान्की माया मायावियोंको भी मोह करानेवाली है, क्योंकि जब सर्वव्यापक श्रीविश्वनाथ आप अपनी मायाकी गतिको नहीं जानसक्ते फिर और दूसरोंकी क्या सामर्थ्य है ? ॥ ३९ ॥

दोहा-शेष सहस्रमुखसे रटत, शंभु पांच विधि चार।
जपत रहत निशिदिन सदा, तौहु न पावत पार ॥

जिस ज्ञानके लिये मनसमेत वाणी वर्णन करते २ अंत न पाकर उलटी लौट आती है, हम व सब देवताभी जिसको नहीं जानसक्ते, उस षट्गुण ऐश्वर्यसम्पत्तिमान् श्रीभगवान्को वारंवार नमस्कार है ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे विराड्देहे ईश्वरप्रवेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-इस सप्तम अध्यायमें, सुनि मुनिवचन विवेक।
बहुरि प्रशंसा कर विदुर, कीन्हे प्रश्न अनेक ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि इसप्रकार कहते हुए मैत्रेयजीको परमबुद्धिमान् विदुरजी वाणीसे प्रसन्न करके बोले ॥ १ ॥ विदुरजी बोले, हे ब्रह्मन् ! षट्गुण ऐश्वर्य संपत्तिमान, चैतन्य-मात्र, अविकारी, निर्गुण, बृहत्त्वादिगुणविशिष्ट चैतन्यब्रह्मकी क्रिया और गुण, लीलासे कैसे होते हैं सो कहिये ॥ २ ॥ बालकको क्रीडामें उद्यम करना यह काम है, और खेल करनेकी इच्छा करनी योग्य है, परन्तु अपने आप तृप्त सदा औरसे निवृत्त, ईश्वरको काम और इच्छा कैसे होती है सो कहिये ॥ ३ ॥ गुणमयी अपनी मायासे इस संसारको रचते हैं, फिर पालन करते हैं तदुपरान्त संहार करते हैं ॥ ४ ॥ देश, काल, अवस्थाद्वारा अपनी ओरसे जिसका ज्ञान नष्ट नहीं होता, सो यह ईश्वर मायासे किसप्रकार संयुक्त होते

है सो कहिये ? ॥ ५ ॥ भगवान् एक है. सब क्षेत्रमें व्यापक है इनका दुर्भागीपन, क्लेश, होना, यह कर्मोंसे किसप्रकार होसक्ता है ? सो कहिये ॥ ६ ॥ हे विद्वन् ! हे विभो ! इस अज्ञानसंकटमें मेरा मन अत्यन्त खेदको प्राप्त होरहा है, सो कृपादृष्टि करके मेरे मनका यह महासंकट तुम दूर करो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, तत्त्व जाननेके अभिलाषी विदुरजीने यह वार्ता मैत्रेयजीसे बूझी, तब भगवद्भक्त मैत्रेयजी यह प्रश्न सुनकर मुसकाये ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, यही भगवान्‌की माया है जो तर्कसे प्रवृत्त होती है, विमुक्त ईश्वरका कृपण होना बन्धन होना यह तर्कसे होते हैं ॥ ९ ॥ जो कोई पुरुष स्वप्नमें देखे कि, मेरा शिर कटगया, शिर छेदनके विना स्वप्नके साक्षी पुरुषको यह आत्माका उलटा पुलटा होना प्रतीत होना है ॥ १० ॥ जैसे जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब जलकी उपाधिसे कम्पायमान दृष्टि आता है, कुछ आकाशमें जो चंद्रमा स्थित है उसमें कम्पादिक दोष नहीं, इसीप्रकार आत्माका देहादिधर्म सत् नहीं है परन्तु तदभिमानी द्रष्टा तदंतर्यामी ईश्वरको दीखे है सो यह केवल मिथ्या है ॥ ११ ॥ सो देहके गुणोंका आत्मामें अज्ञानकृत आभास निश्चय करके निवृत्तिमार्गके धर्मसे भगवान्वासुदेवकी कृपासे भगवत्की भक्तियोगसे धीरे २ अर्थात् साधनके अनुसार सब नष्ट होजाता है. तात्पर्य यह है कि, जैसा साधन करेगा उतनेही कालमें अज्ञान नष्ट होगा, उत्तम साधनसे शीघ्र, और निकृष्टसाधनसे विलम्ब ॥ १२ ॥ जब सब इन्द्रियें शांत होजाती हैं; तब द्रष्टा आत्मामें सब क्लेश विशेष करके लीन होजाते हैं, जैसे सोतेहुएका सब क्लेश नष्ट होजाता है, इसीप्रकार जान लीजे ॥

दोहा-श्रवणकरतहीहरिकथा, सब अघ होत निपात।
जबयदुपतिपदपद्मरति, का कहिबेकी बात ॥ १३ ॥

जब श्रीमुरारी भक्तहितकारीके गुणानुवाद सम्पूर्ण कष्टको नष्ट करनेवाले हैं, इसीप्रकार उनके चरणारविन्दके परागकी प्रीति आत्माके लाभ करनेहारी है ॥ १४ ॥ विदुरजी बोले, हे विभो ! आपके खड्गरूपी वचनोंसे मेरे सब संशय कटगये. परन्तु हे भगवन् ! यह जीव परतंत्र है, और परमात्मा स्वतंत्र है इन दोनों बातोंमें मेरा मन फिर दौडता है सो कहो ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! बहुत सुन्दर बात कही कि, श्रीनारायण अपनी मायामें निवास करते हैं, परन्तु यह कुछ सिद्धान्त नहीं है, निर्मूल है; कि परन्तु बाहरसे विश्वकी यही माया कारण है ॥ १६ ॥ लोकमें जो अत्यन्त मूर्ख हैं, वे सदा सुखी रहते हैं, और अत्यन्त बुद्धिमान् हैं वे भी सदा आनन्दित रहते हैं. परन्तु जो न मूर्ख है न बुद्धिमान् हैं. वे अध-बीचके जीव हैं, वे सदा क्लेश सहते रहते हैं. "इस बातपर एक दोहा"-

दोहा-कुछसेवा कुछ दुष्टता, कुछ संशय कुछ ज्ञान।
घरका रहै न घाटका, ज्यों धोबीका श्वान ॥ १७ ॥

सबमें दिखाई दे, ऐसे संसारमें अर्थके भावको निश्चय कर तुम्हारे चरणकमलकी सेवासे उस मायाको त्याग करते हैं ॥ १८ ॥ जिनकी सेवासे सर्वान्तर्यामी मधुद्वेषी भगवान्‌के चरणोंमें सब कष्टके विनाश करनेवाली तीव्र प्रीति होती है ॥ १९ ॥ थोडे तप करने-

वालोंकी सेवा श्रीहरिके मार्गमें नहीं पहुँचती, क्योंकि देवोंके देव वासुदेवका यश जिसमें नित्य गाया जाय वह सेवा महादुर्लभ है ॥ २० ॥ क्रमसे विकारसहित महदादिकको रचकर उनसे विराट्देह उत्पन्न कर विभुने उसमें प्रवेश किया ॥ २१ ॥ इन्द्रिय इन्द्रियोंके अर्थसहित तीन वृत्तिवाले सब दश विधि प्राण जिसमें हुए, तुमसे प्रेरित जिसमें सब वर्ण होते हैं उनकी विभूति हमको सुनाओ ? ॥ २२ ॥ जिस संसारमें पुत्र पौत्र, नाती, गोत्र-समेत अनेक अनेक प्रकारकी आकृतिकी प्रजा होकर जिससे यह विश्वमें विस्तार हुआ सो कहो ? ॥ २३ ॥ प्रजापतियोंके मध्यमें किस २ को प्रजापति किया ? सर्ग, अनुसर्ग, मनु, मन्वन्तरोंके स्वामी कौन हुए ? सो कहो ॥ २४ ॥ हे मैत्रेयजी ! इनके वंशोंके वंशमें जो हुए उनके चरित्र और भूमिके ऊपर नीचेके जो लोक हैं सो हमसे कहो ॥ २५ ॥ उनकी स्थिति उनके प्रमाण और भूलोकका वर्णन करो. सुर, नर, मुनि, देवता, पशु, पक्षी; सर्पादिक इन सबका वर्णन करो ॥ २६ ॥ सब संप्रदाय कहो, और कलियुगके धर्म कहो. श्रीवैष्णवमत और सर्गोंका विभाग, गर्भसे जो प्रगट हुए हैं, स्वेदसे जो उत्पन्न होते हैं, वृक्षोंसे जिनकी उत्पत्ति है सो सब कहिये ॥ २७ ॥ गुण, अवतार, संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार, श्रीनिवासने जो जो रचे हैं उनके उदार चरित्र कहिये ॥ २८ ॥ वर्णाश्रमके विभाग, रूप, शील, स्वभाव, ऋषीश्वरोंके जन्म, कर्म आदि वेदके विभाग ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! यज्ञोंके विस्तार, योगका मार्ग, फलकी चाहना त्यागकर कर्म करना, सांख्य भाग-वत नारदपंचरात्रतंत्र सो कहो ॥ ३० ॥ पाखण्डका मार्ग, उनका उलटा होना, वर्णसंकर होजाना, गुणकर्मसे जीवको जो जो गति होती हैं सो कहिये ? ॥ ३१ ॥ जिसमें किसी प्रकारका विरोध न पडे सो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कहो ? दंडनीतिके श्रवण करनेकी वार्ता पृथक् २ शास्त्रकी विधि कहो ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्राद्धकी विधि पितरोंकी सृष्टि, ग्रह, नक्षत्र, तारागण, कालके अवयवोंकी स्थिति कहो ॥ ३३ ॥ दान, तप, इष्टा-पूर्तका फल, परदेशका धर्म जो पुरुष आपत्तिमें धर्म करे सो कहो ॥ ३४ ॥ हे पापरहित! धर्मके कारण भगवान् जिससे प्रसन्न होकर कृपा करें सो धर्म कहिये जिनके ऊपर भगवान् प्रसन्न हुए हों वह भी कहिये ॥ ३५ ॥ हे विद्योत्तम ! अनुरागी शिष्योंको और अपने पुत्रोंको, दीनवत्सल, दीनानाथ, गुरुजन विना जिज्ञासा की हुई बातको भी कह देते हैं. हे स्वामिन् ! गुरु किसको कहते हैं ? " गुकारस्त्वन्धकारः स्याद्रुकारस्तन्निरोधकः । अन्धकार विनाशित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते" ॥ १ ॥ "गु" अन्धकारको कहते हैं; और "रु" नाशको कहते हैं, जो अंधकारका विनाश करे. उसका नाम गुरु है.

दोहा-अन्धकारको कहत गु, रु है नाशका नाम ।
अन्धकारको जो हरै, सोई गुरु सुखधाम ॥ ३६ ॥

हे भगवन् ! तत्त्वोंकी संख्या कहो, प्रलयमें कौन २ उनकी उपासना करता है ? और कौन उनके पीछे सोता रहताहै ? सो कहिये ॥ ३७ ॥ पुरुषकी स्थिति, परमेश्वरका स्वरूप, निगमका ज्ञान, गुरुशिष्यका प्रयोजन ॥ ३८ ॥ हे कृपासिन्धो ! जो महात्माओंने कहे हैं,

उन निमित्त पुरुषोंको अपने आप ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, कैसे होता है? सो कहिये ॥ ३९ ॥ परमात्माके जाननेकी इच्छासे जो मैंने ये प्रश्न किये हैं सो आप कृपाकरके वर्णन कीजे. आप मेरे मित्र हैं और मायाके प्रभावसे मेरी दृष्टि नष्ट होगई है ॥ ४० ॥ सब वेद, यज्ञ, तप, दान, हे पापरहित! जीवके अभयदान करनेको एक कलासेभी समर्थ नहीं हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले-कौरवोंमें श्रेष्ठ विदुरने मुनिप्रधान पुराणोंमें जिनका विस्तारसहित वर्णन है ऐसे मैत्रेयजीसे सब बूझा. भगवत्की कथामें जिनका अधिक प्रेम, सो विदुरजीको प्रेरणा कर बोले ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे विदुरोक्तब्रह्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-इस अष्टम अध्यायमें, वरणों कथा अनूप।
मैत्रेय जिमि विदुरसों, वरणो हरिको रूप ॥

मैत्रेयजी बोले-

दोहा-अहै प्रशंसायोग्य यह, कुरुभूपतिको वंश।
विदुरभागवत जहँ भये, संतनकुल अवतंस ॥

मैत्रेयजी बोले कि हम बहुत आनंद हैं कि यह पुरुवंश संतोंकी सेवा करनेयोग्य है. जो भगवान्के मंत्री यम, तुम धर्मराज हुए श्रीनारायणकी कीर्तिरूप मालाको क्षण २ में नवीन-सी करो हो ॥ १ ॥ तुच्छ सुखके लिये जो मनुष्य महादुःखको प्राप्त होते हैं उनका वह दुःख दूर करनेके अर्थ मैं श्रीमद्भागवत पुराणका प्रवर्तन करूं हूं; जो साक्षात् श्रीभगवान्ने ऋषियोंके सम्मुख वर्णन किया है ॥ २ ॥ आदि संकर्षण भगवान् जो पातालमें विराजमान हैं जिनका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता, उन शेषजीसे भगवान् वासुदेवके तत्त्वके जाननेकी इच्छासे सनत्कुमार आदि मुख्य मुनियोंने बूझा ॥ ३ ॥ अपने हृदयमें विराजमान उन वासुदेव भगवान्की सर्वोत्कर्षसे पूजनहार सनत्कुमार आदिकोंकी कृपाके लिये नीचेको शिर कर नयनकमलको किंचित् खोलकर देखा ॥ ४ ॥ श्रीमद्भागवत सुननेको सत्यलोकसे पाताल लोकमें गंगाद्वार होकर सनत्कुमारादिक गये. गंगाजलसे उनके केश भीग गए थे, उन अपने भीगे जटासमूहोंसे श्रीशेषजीके चरणकमलमें सनकादिकोंने अपना शिर धर कर नमस्कार किया. जिन चरणारविन्दोंकी नागराजकन्या अत्यन्त प्रेमसे अनेक २ प्रकारकी भेटें धरधर पतिकी चाहनाके लिये आनंद होहोकर पूजन करती है ॥ ५ ॥ भगवान् शेषजीके चरित्रके माहात्म्यको जो जाननेवाले हैं वे अनुराग सहित गद्गद वचनोंसे वारंवार उनकी स्तुति करते हैं, जिनके सहस्रों किरीटोंके मणि रत्नोंसे अत्यन्त प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ६ ॥ निवृत्तिमार्गके धर्मसंयुक्त सनत्कुमारके अर्थ निश्चयकर भगवान् शेषजीने कहा हे राजन्! वही धर्म सर्वव्रतधारी सांख्यायनने सनत्कुमारसे पूछा तब सनत्कुमारने उनसे कहा ॥ ७ ॥ कि परमहंसोंमें मुख्य सांख्यायनजीको भगवत्की विभूति कहनेकी इच्छा हुई, तब

उनके समीप पराशर और बृहस्पतिजी आये, जो हमारे गुरु हैं. उनकी प्रीति जानकर श्रीभागवतपुराण सांख्यायनने उनको कह सुनाया ॥ ८ ॥ पुलस्त्यमुनिने पराशरको यह वर दिया कि तुम पुराणके वक्ता हो सो उनहीं पराशरमुनिने दयालुभावसे आद्यपुराण भागवत-पुराण मुझको सुनाया. हे वत्स!

दोहा–वर्णन करिहौं सकल विधि, श्रद्धा जानि तुम्हारि।
सावधान हो सुनहु अब, हरिकी रति मन धारि॥

हे विदुर! हम श्रद्धालु नित्य सेवा करनेवाले आपसे कहते हैं, इस प्रसंगमें इस प्रकार की कथा है कि पिताको राक्षससे खायाहुआ सुन पराशरजी राक्षसोंके विनाशार्थ यज्ञमें प्रवृत्त हुए, तब वसिष्ठजीके कहनेसे निवृत्त हुए तब पुलस्त्यमुनिने अपना संतानकी रक्षा समझ-कर प्रसन्न होकर यह वर दिया कि तुम सब पुराणोंके वक्ता होगे ॥ ९ ॥ जब महाप्रलयमें यह विश्व नष्ट होगया, उस समय चिच्छक्तिको त्याग नेत्र मूंद शेषशय्यापर शयन कर केवल एक श्रीविश्वनाथ सावकाश प्राप्त कर अपनी आत्माकी रतिमें चेष्टारहित होतेहुए ॥ १० ॥ शरीरके भीतर भूत सूक्ष्म उनके अर्पितकालात्मका अपनी शक्तिको प्रेरणा करके आप अपने जलस्थानमें वास करनेलगे; जैसे काष्ठमें अग्नि अपने पराक्रमको रोककर निवास करती है रगडनेसे उसी काष्ठसे फिर वही अग्नि प्रकट होजाती है, इसीप्रकार जान लीजे ॥ ११ ॥ चारों युगोंके सहस्रों वर्षतक उस जलमें सोते होगये और अपनी प्रेरित कालरूपी शक्तिसे सब कर्म जिनके प्राप्त होते रहे; वे त्रिलोकनाथ सब लोकोंको अपनेमें लीन देखते हुए ॥ १२ ॥ सूक्ष्म अर्थमें सब ओरसे जिनका प्रविष्टदृष्टि उन ईश्वरके अंतरका जो कारण था, वह रजोगुणसे सूक्ष्म होकर कालके अनुसार गुणसे चलायमान होकर सूखा, तब नाभि-से एक कमल पैदाहुआ ॥ १३ ॥ कर्मका प्रतिबाधक समय पाकर एक संग वह सबका कोष एक कमल निकला, और आप अत्यन्त अनूप, अपनी कांतिसे विशाल, उस जलके प्रकाशक, तमनाशक, मार्तण्डकी नाई, समस्त ब्रह्माण्डके कारण सूक्ष्मरूप हुए ॥ १४ ॥

दोहा–प्रभुप्रतापते कमलमें, प्रगट भयो करतार।
जाहि स्वयंभू कहत हैं, सिरजन सब संसार ॥ १५ ॥

उस कमलके दलोंके ऊपर बैठे २ इधर उधरको देखा तो लोक दृष्टि न आये. तब आकाशकी ओर नेत्र घुमाये तब चारों दिशा देखनेको चार मुख प्रगट हुये ॥ १६ ॥ प्रलयकी वायुसे जल कांप रहा, गंभीर लहरोंसे भँवर पडरहे, उस जलमें सब लोकका तत्त्व, कमलमें विराजमान, आदिदेव, ब्रह्मान साक्षात् अपने आपको और कमलको कुछ नहीं जाना ॥ १७ ॥ जो मैं कमलकी पीठके ऊपर बैठा हूं सो मैं कौन हूं? एक यह कमल जलमें कहाँसे प्रगट होगया? नीचेतक है कि यहींसे उत्पन्न हुआ है? जो यहां स्थित है तो इसका उत्पन्न करनेवालाभी कोई होगा? इससे यह संभावना निश्चित्त होतीहै ॥ १८ ॥ पीछे कमलकी नाल जिनकी नाभि जहां वह नाभि है यह खोजते २ बाहर निकले, परन्तु कमलकी मूलका ठिकाना नहीं लगा ॥ १९ ॥ हे विदुरजी! उस निविड अंधकारमें अपने

रचनेवालेको ढूंढते ढूंढते जब ब्रह्माको बहुत दिन होगये, तौ अजन्मा ईश्वरके कालने देह धारियोंको भय दिया. श्रीविष्णुके सुदर्शनचक्र कालरूपने सबकी आयु क्षीण की. इसका अभिप्राय यह है कि सौ वर्ष ब्रह्माको ढूंढते ढूंढते होगए तोभी भेद न मिला कि कहां हैं ? ॥ २० ॥ जब निवृत्त हुए और मनःकामना पूरी न हुई तौ फिर ब्रह्मदेव अपने कमलपर आनकर बैठे; धीरेसे श्वास जीत सबसे निवृत्त चित कर योग साध समाधि लगाकर बैठे ॥ २१ ॥ सौ वर्षके उपरान्त उस योगसाधनासे ब्रह्माको ज्ञान उत्पन्न हुआ तौ आप अपनेहृदयमें प्रकाशित जो कभी नहीं देखा था वह उनका दर्शन हुआ ॥ २२ ॥ कमलनालवत् गौर विस्तृत शेषजीके फणरूप शय्यापर एक पुरुष अत्यन्त प्रकाशवान् सो रहे हैं, दश हजार फणोंके छत्ररूप मस्तकोंके रत्नोंकी कांतिसे महाप्रलयके अंधकारको दूर कर रहे हैं ॥ २३ ॥ संध्याकालके मेघवत् पीताम्बर पहिरे, अनेक सुवर्ण शिखर जिसमें किरीटसमान रत्नजलधारा, पुष्पोंकी वनमाला, बांस भुजाके तुल्य, वृक्ष चरणवत्, जिसमें मरकत शिलामय पर्वतकी शोभाको अपनी सुंदरतासे तिरस्कार करते हैं. उस पर्वतमें स्थित रत्नादिक होते हैं, बांस भुजातुल्य हैं, वृक्ष पदसमान हैं ॥ २४ ॥ अतिदीर्घ विस्तृत अपना मान करनेवाला, लोकत्रयके संग्रह देहसे विचित्र दिव्य आभरण वस्त्रोंकी शोभा, देहका वेष अलंकार किया है ॥ २५ ॥ अपनी २ कामनासे वेदगीतमार्गोंसे पूजतेहुए मनुष्योंको नखरूप चंद्रमाओंकी किरणोंसे सुन्दर अलग २ अंगुलीरूप जिसमें पत्र सो संपूर्ण मनो-रथोंके पूर्ण करनेवाले, अत्यन्त कोमल कमलसे चरणोंको कुछ ऊपरको उठाकर दिखारहेथे, ऐसे नारायणको देखा ॥ २६ ॥ लोककी क्लेशनाशक मधुर मुसकान, चारोंओरसे झमकने-वाले कुण्डल कानोंमें झलक रहे; लाल २ बिंबाफलसमान होठोंकी कान्ति, शुकतुंडसी सुन्दर नाक, भ्रू, मुखसे अपने पूजन करनेवाले पुरुषों का सन्मान करते हैं ॥ २७ ॥ कदंबके केसरवत् पीले पीताम्बरसे, क्षुद्रघंटिकासे कटिका पश्चात् भाग सुन्दर अलंकृत है. हे वत्स ! कौस्तुभमणि और भगवान्वासुदेवको अमूल्य हारोंसे श्रीजीका चिह्नभृगुलता वक्षस्थलमें शोभित है ॥ २८ ॥ अमूल्य भुजवन्दोंकी उत्तम २ मणियोंसे भुजदण्ड सहस्रशाखासम व्याप्त होरहे हैं, जैसे चन्दनके वृक्ष केयूरादिकतुल्य फलपुष्पादिसे व्याप्त होते हैं. इसीप्रकार जानो. अप्रगट जिसकी मूल है, सकलभुवनात्मक वृक्षराज शेषजीके फनोंसे स्कन्धादिक-शाखा ईश्वर हैं, जैसे चंदन सर्पोंसे वेष्टित होता है ऐसे महाशेषजीसे परमेश्वर वेष्टित हैं ॥ ॥ २९ ॥ जिसमें चरअचरका भवन और भगवान्ही जिसमें पर्वत, शेषजीके बन्धु जिसमें जल, सहस्रकिरीट सुवर्णशृंगसमान हैं, कौस्तुभरत्न गर्भमें जिनके ऐसे ईश्वर हैं ॥ ३० ॥ वेदरूपभ्रमरोंसे शोभावाली अपनी कीर्तिरूप वनमाला कंठमें पहिरे, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि ये जिसको न जानसकें त्रिलोकीमें संग्राम करनेको फिरनेवाले, भगवत् प्रधानोंकोभी असह श्रीहरिहैं ॥ ३१ ॥ जिस समय भगवान्को देखा उसीसमय नाभि सरोवरमें कमल, अपना देह, प्रलयका जल, पवन आकाश जगत्के यही जगत्के विधानकरनेवाले, ब्रह्माजी देखा इससे परे लोकके विशेषकरके रचनेकी दृष्टिवालेने कुछ न देखा ॥ ३२ ॥ सो ब्रह्माने

सब कर्मोंका सब बीज, रजोगुणसे युक्त प्रजाके रचनेकी इच्छा की, दृष्टिसे त्रिसर्गमें चित्त किये, श्रीभगवान्‌के गुप्तमार्गमें निवेशितचित्त ब्रह्माजी, स्तुतियोग्य भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

इतिश्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे ब्राह्मणसर्वोत्कृष्टत्व-श्रीमन्नारायणस्वरूपवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा--इस नवमें अध्यायमें, अज तप कियो अपार ।
देख दुखी वनको भयो, रचे लोक दश चार ॥

ब्रह्माजी बोले कि, हे नाथ ! अब मुझको आपके स्वरूपका ज्ञान होजानेसे मैं अपनी कृतार्थताको प्राप्त हुआ और बहुतकाल तप करके अब मैंने आपको जाना, देहधारियोंसे आपकी महिमा नहीं जानी जाती, यही दोष है कि वे आपके चरणकमलमें मन नहीं लगाते. हे भगवन् ! तुमसे परे और कोई शुद्ध नहीं है, क्योंकि चलायमान होनेसे तुम अनेकरूप प्रकाश करोहो. आप किसीसे भिन्न नहीं, आप सब चराचरभूतोंके स्वामी और अन्तर्यामी हो १ ॥ शंका-हे ब्रह्मन् ! तुमभी भलीभांति मेरे स्वरूपको नहीं जानते हो, क्योंकि यह रूप जो तुमने देखा है यहभी गुणात्मक है और सत्य तो निर्गुण ब्रह्मही है; इस शंकाको उठाकर अब समाधान करते हैं. ज्ञानरस सूर्यके उदय होनेसे सदा अंधकार दूर होजाता है. इसीप्रकार तुम उपासकोंके अनुग्रहके अर्थ शत अवतारोंका एक बीज, यह रूप आदिमें आप ग्रहण करते हो, इसकी नाभिकमलसे मैं हुआ ॥ २ ॥ हे पुरुषोत्तम! हे आत्मन् ! आनन्दमात्रमें कोई संकल्प विकल्प न करे, सदा तेजोमय विश्व रचकर एक विश्वसे, और दिव्यपंचभूत इन्द्रियात्मक आपका यह आनंदरूप है. इससे परे और कुछ नहीं, यह मैं देखता हूं इसकारण आपके चरणकमलकी शरण हूं ॥ ३ ॥ हे भुवनमंगल ! अपने ध्यानमें मुझसरीखे उपासकोंको चौदह भुवनोंका मंगलदायक चिदानंदस्वरूपका दर्शन कराया भगवान् दयानिधानको मेरा वारंवार नमस्कार है, जो नरकके भागी, खोटे प्रसङ्गके करनेवाले हैं; और इस सगुणरूपका तिरस्कार करते हैं, उनको स्वप्नमेंभी इस स्वरूपका दर्शन नहीं होता ॥ ४ ॥ वेदसे प्राप्त जो तुम्हारे चरणारविन्दकी सुगंधिको सूंघे हैं और अत्यन्तभक्तिसे चरण ग्रहण करते हैं. हे नाथ आप ऐसे पुरुषोंके हृदयकमलसे निकलकर कभी नहीं जाते हो निरंतर वास करते हो ॥ ५ ॥ जबतक ये लोग आपके अभयदायक चरणकमलका आश्रय नहीं लेते, तबतकही धन, स्त्री, पुत्रमें भय होता है. सुहृदोंके निमित्त शोक मोहसे लोभ अत्यन्त अनादर होता है. खोटा आग्रह सदा दुःखदायक है॥ ६ ॥ जिन भाग्यहीनोंकी बुद्धि नष्ट होगई और तुम्हारी कथा सब अशुभनाशक यश प्रकाशकसे जिनकी इन्द्रियें विमुख लोभमें लौलीन ऐसे मनुष्य लेशमात्र कामसुखके लिये उचित अनुचित कुछ नहीं समझते, और जिसमें अपनी कुशल न हो ऐसे कर्म करते हैं ॥ ७ ॥ हे उरुक्रम ! क्षुधा, तृषा, वात, पित्त, कफसे वारंवार दुःखित, शीत, उष्ण,

पवन, वर्षासे पीडित, कामाग्नि और आपके अत्यन्तकोपसे प्रजाको दुःखी देखकर मेरा मन कम्पायमान होता है ॥ ८ ॥ हे ईश ! जबतक इस शरीरकी इन्द्रियें, अर्थ, माया, बल, मैं हूं ईश्वरसे अलग समझे है तबलों यह जीव संसारसे मुक्ति न पावेगा और अनेक दुःखदाई व्यर्थ कर्म करता रहैगा ॥ ९ ॥

दोहा--दिनभर कर व्यापार बहु, श्रमित करहिं निशि सैन ।
विवश विषयसुख उझकि झकि, लहत न कबहूं चैन ॥

मनमें अनेक प्रकारके मनोरथ करते हैं, परन्तु सिद्ध एकभी नहीं होता. सब नष्ट हो जाते हैं. हे देव ! तुम्हारे प्रसंगसे विमुख जो ऋषिलोग इस संसारमें वारंवार जन्मते मरते हैं ॥ १० ॥ हे उरुगाय ! हे नाथ ! भावयोगशोधित जिसके हृदयकमलमें तुम वास करो हो तुम्हारी कथा सुनकर तुम्हारा दर्शन करते हैं उन पुरुषोंके हृदयमें तुम रहो हो तौभी जो जो बुद्धिकरके अपनी इच्छासे तुम्हारे भक्त तुम्हारा रूप जैसा २ देखा चाहतेहैं उसीप्रकारका स्वरूप आप अपने भक्तोंपर अनुग्रह करके धारण करते हो ॥ ११ ॥ जिनके मनमें अनेक २ प्रकारकी कामना लग रही हैं, उन देवगणोंके रचे उपचार आराधनासे ऐसे प्रसन्न नहीं होतेहो, जितना कि, जो सब जीवमात्रपर दया करते हैं उनपर प्रसन्न होतेहो; यह असंतोंको प्राप्त नहीं होता, इसलिये तुम सब जीवोंके अन्तरमें निरन्तर वास करो, सुहृद् व्यापक तुम प्रसन्न होओ ॥ १२ ॥ इसलिये पुरुषोंके अनेक कर्म यज्ञादिकसे तप, दान, संयम, नियम, उग्रव्रतसे आपका आराधनरूप सत्क्रिया अर्थदायक धर्म, जिसने तुमको समर्पण किया वह कभी नष्ट नहीं होता है ॥ १३ ॥ सदा स्वरूपके तेजसे भेदमोहका नाश करे, ज्ञान बुद्धि जिसमें परेसे परे, जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहारके निमित्त, नित्य अद्भुत २ लीला करनेहारे ईश्वरके अर्थ वारंवार नमस्कार है ॥ १४ ॥ जिनके अवतारोंका कथन, देवकीनन्दनादि गुणकथन, सर्वज्ञ भक्तवत्सलादि गुणकर्मकथन, गोवर्द्धनका उद्धरण, कंसाराति इत्यादिक गुणकथन, प्राणान्तके समय विवश होकर जो पुरुष इनका नाम लेते हैं. वे अनेक जन्मके पाप नष्टकर तत्काल सत्यस्वरूप ईश्वरको प्राप्त होते हैं. मैं ऐसे ईश्वरके शरणागत हूं ॥ १५ ॥ मैं शिव, विष्णु, आप उत्पत्ति, पालन, नाशके हेतु हैं, आप जिसके मूल, ब्रह्मादिक बडे २ जिसके कन्धे, मरीचिमन्वादिरूप जिसकी अनेक शाखा ऐसा एक वृक्षरूप होकर जो बढे, उस भुवनद्रुम श्रीभगवानको नमस्कार है ॥ १६ ॥ जो लोकविरुद्ध कर्ममें सदा लगे रहते हैं और सुखदायक आपका पूजनरूप कर्म करनेको आपने आज्ञा दी है उन कर्मोंमें मन नहीं लगाते हैं, आपने कहा है-"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्" जबतक जिस जनको जीवनकी आशा काटी हो ऐसे कालरूप आपको वारंवार नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! मैंभी आपसे डरता हूं, महाप्रलयके स्थानमें सब लोग स्थित हो जिसको नमस्कार करते हैं ऐसा तप बहुतवर्षतक किया सो सब यज्ञोंके अधिष्ठाता आप हैं आपको वारंवार नमस्कार है ॥ १८ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, देवतादिक योनियोंमें अपनी

इच्छासे अपने करेहुए धर्मसेतुओंके पालनकी इच्छासे रमण करते हुए जिसने विषय सुख नहीं माना, अपने वीर्यको जिसने रोक रक्खा ऐसे परमपुरुष आपको वारंवार नमस्कार है ॥ १९ ॥ तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अंधतामिस्र इस पांच प्रकारकी अविद्यारहित, सब लोक जिनके उदरमें वास करें सो ईश्वर भयंकर लहरोंकी मालावाले जलमें शेषशय्या-पर शयन करनेसे अनुकूल निद्राको प्राप्त हुए, मानों संसारके जनोंको निद्राका सुख सिखाया ॥ २० ॥ हे स्तुतियोग्य ! त्रिलोकीके रचनेका पात्र आपने अपनी कृपासे अपने नाभि-कमलसे मुझको उत्पन्न किया. आपके उदरमें विश्व योगनिद्राके अंतमें प्रफुल्लित कमलके समान जो आपके नेत्र हैं ऐसे आपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे समस्त संसारके सुहृद् ! एक आत्मा तत्त्वऐश्वर्यके द्वारा सब संसारको सुख देते हो, वही दिव्य-दृष्टि मुझको मिले; जो पूर्वकी नाई इस विश्वको रचूं, आप अपने दासोंके प्यारे ईश्वर हैं ॥ ॥ २२ ॥ शरणागतके वरदायक, हे विश्वनायक ! श्रीलक्ष्मी अपनी शक्तिसे सगुण अव-तार धार २ अनेक २ प्रकारकी लीला, और विहार संसारके सुख देनेको करते हो. हे नाथ ! मुझको इस विश्वके रचनेमें प्रवृत्त करो. मैं अज्ञानफन्दमें न फसूं, और कर्मके करे हुए पापोंको मैं त्याग करूं ऐसी कृपा मेरे ऊपर करो ॥ २३ ॥ अनन्तशक्तिवाले महा-पुरुषकी नाभिसरोवरसे जलमें विज्ञानशक्तिरूप मैं प्रगट हुआ, इस विश्वका विचित्र विस्ता-रक, और मेरी वेदकी अवयवरूप वाणीका उच्चारण लुप्त न होजाय ॥ २४ ॥ सो हे महा-दयालो भगवन् ! अत्यन्त अधिकप्रेमकी मधुर मुसकानसे नयनकमलका प्रकाश कर शीघ्र विश्वविजयके निमित्त, मेरे ताप और क्लेशको मनोहरवाणीसे दूर करो; क्योंकि दासोंपर दया करनेकी सदा तुम्हारी वाणी है ॥ २५॥ मैत्रेयजी बोले; कि इस विधिसे जब श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्द मोहन मुकुन्दसे अपना जन्म सुन, तप विद्यासमाधिसे जहांतक मन वचन पहुँचा वहांतक स्तुति करके थकगये ॥ २६ ॥ उस कल्पके उलट करनेवाले जल से खेदित ब्रह्माका अभिप्राय भगवान् जानकर ॥ २७ ॥ लोकको स्थितिके विज्ञानमें ब्रह्मा-का मोह दूरकर गंभीरवाणीसे ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले, कि हे वेदगर्भ ! ब्रह्मन् ! आलस्य मत करो सृष्टि रचनेमें उद्यम करो जिस कारण तुमने मेरी प्रार्थना की है सो शक्ति मैं प्रथमही तुमको देचुका ॥ २९ ॥ हे चतुरानन ! फिर तुम तप करो तो मेरी विद्यासे विस्तृत सब लोकोंको अपने हृदयमें देखोगे ॥ ३० ॥ हे कमलासन ! फिर पीछे आत्मामें, लोकोंमें, भक्तिसहित सावधानतासे मुझको व्याप्त देखोगे, और लोकको मुझमें देखोगे, जीवोंको देखोगे ॥ ३१ ॥ जैसे काठमें आग स्थित रहती है, इसीभांति जब सब-जीवोंमें तुम मुझको देखोगे तो सब पातक और मल तुम्हारे उसीसमय जलकर भस्म हो जायँगे ॥ ३२ ॥ भूत इन्द्रियें अंतःकरण गुणोंसे रहित आत्माको मेरे स्वरूपसे जब युक्त देखोगे तब अपने राज्यको प्राप्त होगे ॥ ३३ ॥ अनेक २ कर्मोंको विस्तारकर बहुत प्रजा रचनेवाली तुम्हारी आत्मा नहीं फँसेगी. यह मेराही कृपा है जिससे तुम ब्रह्मत्वयुक्त रहो ॥ ॥ ३४ ॥ आद्यऋषे ! तुमको यह पापी रजोगुण नहीं व्यापेगा क्योंकि प्रजा रचनेके

समय तुमने अपना मन मुझमें लगाया है ॥ ३५ ॥ देहधारियोंको मेरा जानना बहुत दुर्लभ है, नहीं जानाजाता; सो तुमने मुझको जानलिया. अब भूत, इन्द्रिय, गुण, आत्मासे जो तुमने मुझको माना, वह ठीक है ॥ ३६ ॥ कमलकी नालके द्वारा जलमें कमलकी जड ढूंढने और मेरे जाननेकी अभिलाषा की तब मैंने अपना रूप तुम्हारे हृदयमें प्रगट किया ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरी कथाके उदयवाली जो तुमने मेरी स्तुति की, और जो तपमें तुम्हारी निष्ठा है; यह सब मेरीही कृपा है ॥ ३८ ॥ हे अज ! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूं तुम्हारा कल्याण हो लोकोंकी विजयके मनोरथसे गुणमय मेरी प्रार्थना की और मुझे निर्गुण वर्णन किया ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य इसप्रकार स्तुति कर स्तोत्रोंसे मेरा भजन करतेहैं, उनसे मैं सबप्रकार प्रसन्न हो कामवर देता हूं ॥ ४० ॥ कुआ बावडी बनानेसे, जप, तप, दान, धर्म, कर्म, करनेसे, योग, यज्ञ, समाधिके लगानेसे, मनुष्योंका यह सिद्धान्त है कि परमात्मामेंभी हमारी प्रीति हो, यह तत्त्ववेत्ताओंका मत है ॥ ४१ ॥ सो मैं सबकी आत्मा सब आत्माओंका पोषण करनेवाला प्यारोंका प्यारा हूं इसलिये मुझसे प्रीति करैं, मुझसे प्रीति करनेसे वे देह आदि सब प्रिय होते हैं ॥ ४२ ॥ सब वेदमय मेरी आत्मा तुम हो; मैंही तुम्हारा आदिकारण हूँ. जो प्रथम मुझमें प्रजा लीन है, जैसा जगत् प्रथम था वैसाही अब रचना चाहिये ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि प्रधानपुरुष ईश्वर जगत्के रचयिता ब्रह्माको इस भाँति अपना स्वरूप दिखाकर अंतर्धान होगये.

दोहा-चतुरानन प्रति भाष अस, परमपुरुष भगवान।
विधिके देखत ताहि थल, ह्वै गये अन्तर्धान ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे भगवदंतर्धानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-प्रश्न दशम अध्यायमें, कीन्हे विदुर अनेक।
प्रगट किये दश सर्ग अज, सो वरणों यक एक ॥
विधि अस्तुति सुनि विदुर तब, अति आनँद उर आनि।
पुनि बोले मैत्रेयसों, जोरि सरोरुहपानि ॥

विदुरजी बोले, हे मैत्रेय ! जब भगवान् वासुदेव अंतर्धान होगये तब लोकपितामह ब्रह्माजीने दैहिकी, मानसी, कितनी प्रजा रची ? ॥ १ ॥ हे बहुवित्तम ! हे भगवन् ! जो जो बातें मैंने आपसे बूझीं उनको प्रथमसे लेकर अबतक वर्णन करो, जिससे हमारे सब संशय मिटजायँ ॥ २ ॥ सूतजी बोले, हे शौनक ! विदुरजीने मैत्रेयजीसे यह प्रश्न किये तब अति प्रसन्न हो जो हृदयमें स्थित प्रश्न थे उनके प्रकाश करनेकी इच्छाकी ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, ब्रह्माजीने परमेश्वरमें मन लगाय दिव्य सौ वर्षतक तप किया, जो भगवान् अजन्माने आज्ञा दी थी उसके अनुसार कार्यमें प्रवृत्त हुए ॥ ४ ॥ प्रलयकालके पराक्रमी पवनसे जलकमलको कांपता ब्रह्माजीने कमलपर बैठे देखा ॥ ५ ॥ उस समय बढेहुए तप आत्म-

विद्यासे अत्यन्त जिनका विज्ञानबल था सो पवनके संग जलको पीगए ॥ ६ ॥ जब आकाशतक कमलको स्थित देखा तब विचार किया कि इस कमलसे पहले मैं तीन लोक रचूंगा ॥ ७ ॥ भगवत्की इच्छासे अपने कर्ममें प्रेरित उस कमलपर बैठकर एक विश्वको त्रिलोकीरूप कर चतुर्दश भुवनरूप बहुतप्रकारसे भावनाके योग्य विभाग किये ॥ ८ ॥ जीवलोककी रचनाका विशेष इतना है निष्कामधर्मका फल श्रीब्रह्माजीका अवतार है ॥ ९ ॥ विदुरजी बोले, कि हे ब्रह्मन् ! बहुरूपी, अद्भुत कर्मकारी, परमात्माको जैसे तुम कहते हो और उनके कालका लक्षण जैसे है, वैसा हमसे कहो ॥१०॥ मैत्रेयजी बोले कि सामान्यसे कालका स्वरूप पहले कहतेहैं, अगले अध्यायमें विशेष करके कहेंगे गुणोंकी ओरसे और आकार करना जिसका कोई विशेषण नहीं एक स्थानपर रहे नहीं सबका उपादान कारण आप ईश्वरका आत्मा ऐसे कालको श्रीनारायणने अपनी लीलासे रचा॥११॥निश्चय है कि विश्व ब्रह्मस्वरूपही है. विष्णुकी मायासे स्थित, और गुप्तमूर्ति कालरूप परमात्मासे अलग प्रकाशित है ॥ १२ ॥ जैसा यह विश्व अब है, ऐसाही आगे था और ऐसाही पीछे रहेगा. परंतु संसारके रचनेकी विधि ना प्रकारकी हैं. सो एक प्रकृतिसे होती है और एक विकारसे होती है यह दशवां सर्ग है ॥ १३ ॥ केवल कालसे सदा प्रलय होता है. और संकर्षणकी अग्निरूप द्रव्यसे नैमित्तिक प्रलय होता है ॥ १४ ॥ अपने अपने कार्योंके ग्रसनेवाले गुणोंसे प्राकृतिक प्रलय होता है, यह तीन प्रकारका प्रलय है प्रथमप्रलय यह है कि महत्तत्त्वका सर्ग गुणोंकी विषमतासे सर्वव्यापक ईश्वरसे होता है ॥ १५ ॥ द्रव्यज्ञान क्रियाका उदय दूसरा अहंकार है, उनकी मात्राद्रव्य शक्तिमान् तीसरा भूतसर्ग है ॥ १६ ॥ ज्ञान और क्रियाकी आत्मा चौथा इन्द्रियोंका सर्ग है, विकारी देवताओंका पांचवा सर्ग सो मन है ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! छठों अज्ञानियोंका किया तामस सर्ग है; यह छे प्रकृतियोंके सर्ग हैं ॥ १८ ॥ अब जो विकारके सर्ग हैं सो सुनो. राजससेभी भगवान् हरि पूजनीयकी यह लीला है. मुख्य सर्ग सात हैं और छे प्रकारकी स्थावरोंकी रचना है ॥ १९ ॥ वे छे प्रकारके सर्ग ये हैं सो वर्णन करते हैं, जो विना फूलके फलें हैं, सो वनस्पति हैं, जिनका फल अंतमें पके वे औषधि हैं, सहारेसे बढैं सो बेल हैं. आश्रयसे बढैं सो वीरुध वैसेही पहिले फूल आकर पीछे फल लगैं वे द्रुम हैं, जिनका आहार संचार ऊपरसे होय, वे तामसी हैं, चैतन्यगुप्त है, भीतरसे घटने बढनेको जानते हैं इनके घटने बढनेका प्रमाण नहीं है अनेक भेद होते हैं ॥ २० ॥ पशुओंका आठवां सर्ग अट्ठाईस प्रकारका है, कलको क्या होगा ? ऐसे ज्ञानसे वे रहित हैं आहारादिकका ज्ञानमात्र जानते हैं, नासिकाके स्वरसे जो कुछ अपना इष्टअर्थ है सो जान-लेते हैं. दीर्घज्ञानशून्य हैं ॥ २१ ॥ अट्ठाईस भेद कहते हैं, गौसे आदि लेकर ऊंटतक द्विशफके (दोखुरके) नौ हैं, गौ, बकरा, भैंसा, कृष्णसारमृग, लीलगाय, रुरुमृग, भेड, ऊंट. हे सत्तम ! इन पशुओंके खुर नीचेसे दो चिरे हुए होते हैं ॥ २२ ॥ खर, अश्व, खच्चर, गौरमृग, चित्रमृग, चमरगाय. हे विदुरजी ! इनके खुर चिरेहुए नहीं होते ॥ २३ ॥ अब पंचनखके पशु सुनो. कुत्ता, शृगाल, भेडिया, बाघ, बिलाव, शशा, सेही, सिंह, बंदर,

हाथी, कछुवा, गोह मगरादिक इनके पांचनख हैं ॥ २४ ॥ अब पक्षियोंके नाम कहतेहैं. कालाकौआ, गीध, बट, शिकरा, अरुणशिखा, मोर, हंस, सारस, चकवा, श्वेतकाक, उलूक यह विहगजाति हैं ॥२५॥ हे विदुर! नीचे प्रवाहवाला यह नवम सर्ग मनुष्योंका है;राजस अधिक है ये कर्मपरायण हैं दुःखमें सुख मानते हैं ॥ २६ ॥ हे सत्तम! देवताओंका सर्ग तीन प्रकारका है वैकारिक जो कहा है सो कौमार सर्ग दो भांतिका है ॥ २७ ॥ देवसर्ग आठ प्रकारका है. विबुध, पितर, सुर, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, यक्ष; राक्षस, चारण ॥२८॥ भूत, प्रेत, पिशाच, विद्याधर किन्नरादिक हैं. हे विदुर! विश्वके रचयिता ब्रह्माने दश सर्ग भेद किये हैं ॥ २९ ॥ इसके पीछे अब वंश और मन्वन्तर कहते हैं राजस व्याप्त है कल्पके आदिमें हरिरूप ब्रह्माने रचे ॥३० ॥ पूर्णसंकल्प आपहीको आप रचते हैं सदा शुद्ध चैतन्य-स्वरूपी नारायणही सब आप हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ गुणोंके उलटे होनेसे सर्गमें मायावेत्ता ईश्वरका पूर्वापर जाना नहीं जाता, जिसप्रकार नदीमें घूमती हुई नावमें घुमेर आती है इसीभांति जानलेना ॥ ३२ ॥ हे विदुर! इस कल्पमें देवअसुरादिक जो हमने कहे हैं वेही मन्वन्तरमें नामरूपसे होते हुए ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे दशविधसर्गवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-कहुं परमाणुन कालके, चिह्न इकादशमाहिं।
युग मन्वन्तर कल्प सब, गुप्त रहै कछु नाहिं ॥

मैत्रेय बोले कि, हे विदुरजी! कालके विशेष लक्षण कहते हैं सो सुनो. सचे विशेषणों-का जो अंत जिसका विभाग न होसके, किसीमें मिले नहीं, सदा रहे जिससे और कोई वस्तु सूक्ष्म न हो, वह परमाणु जानो. जिन परमाणुओंसे मनुष्यको ऐसा भ्रम होय है कि एक है ॥ १ ॥ सतही है जो पदार्थ अपने स्वरूपमें स्थित है वह केवल अत्यन्त महाबड़ा है, जिसका कोई विशेषण नहीं, निरंतर है ॥ २ ॥ हे सत्तम! सूक्ष्म स्थूलरूपसे ऐसे कालका अनुमान किया है, सुन्दरस्थितिकी व्याप्तिसे विभु भगवान् अव्यक्त है सो मायाको भोगते हैं, ॥ ३ ॥ सो काल परमाणु है, जो परमाणुभावको भोगता है, उससेभी अधिक भोगै सो काल अत्यन्त बडा है, इसका यह अर्थ है कि, ग्रह, नक्षत्र, ताराचक्र इत्यादिसे सूर्यका पर्यटन कहते हैं, तहां सूर्य जितने परमाणुके देशको उल्लंघन करे उस कालका नाम परमाणु है, जितनी द्वादश राशिरूप होकर सब ब्रह्माण्डमें विचरै है वह परममहान संवत्सर कहाता है; उस क्रमसे युग मन्वंतर आदि क्रमसे द्विपरार्द्ध अंत काल होता है. सब कालका विभाग हम पांचवें स्कंधमें कहेंगे ॥ ४ ॥ दो परमाणुका अणु होता है; और तीन अणुका एक त्रसरेणु होता है, वह त्रसरेणु झरोखोंमें सूर्यकी किरणोंसे दिखाई देता है. जो अतिसूक्ष्म है, पृथ्वीमें नहीं आता है. आकाशको उडता दीखता है ॥ ५ ॥ तीनत्रस-रेणुकी एक त्रुटि, त्रुटि उसे कहते हैं, जितनेकालमें चुटकी बजावे, सौवेर चुटकी बजानेसे

जो काल व्यतीत हो उसे वेध कहते हैं. तीन वेधका एक लव होताहै ॥ ६ ॥ तीन लवका एक निमेष होता है और तीन निमेषका एक क्षण कहलाता है. पांच क्षणकी एक काष्ठा बनती है. पंद्रह काष्ठासे एक लघु होता है ॥ ७ ॥ पंद्रह लघुकी एक नाडी होती है. (इसे दंडभी कहते हैं) और दो नाडियोंका नाम मुहूर्त हैं. छे दंड अथवा सात दंडका एक प्रहर वा याम होताहै. सो याम दिनका चौथा भाग है,और रात्रिकाभी चौथाभाग होता है. दिन रातके घटने बढनेका यह नियम है कि घटनेमें छे घडीका और बढनेमें सात घडीका अंतर समझना चाहिये. क्योंकि, नित्य२दिन और रात्रिके घटने बढनेके गिननेमें बहुत परिश्रम है इसलिये छे और सात घडीका मोटा प्रमाण समझलिया ॥ ८॥ एक घडीका अनुमान कहते हैं छे पलभर तांबेका पात्र हो सो इसप्रकार पलका प्रमाण भास्कराचार्यने सिद्धान्तशिरोमणिमें लिखाहै कि "दशार्द्धगुञ्जम्प्रवदन्ति माषं माषाह्वयैः षोडशभिश्च कर्षम् । कर्षैश्चतुर्भिश्च पलं तुलाज्ञाः" इति (अर्थ)-पांच गुंजाका एक माष होता है और गुंजा नाम चिरमिटीका है, और भास्कराचार्यने दो जवभरका एक गुंजा लिखा है. "तुल्या यवाभ्यां कथितात्र गुंजा" और सोलह मासेका एक कर्ष होता है, और चार कर्षका एक पल होता है इस रीतिसे ३२० गुंजाका एक पल हुआ, ऐसे छे पलभर तांबेका पात्र बनाना, और उस पात्रमें चार मासे सोनेकी शलाका बनाकर उस शलाकासे उस पात्रमें छिद्र करना, उस छिद्रसे जितने समयमें प्रस्थभर जलके प्रवेश होनेसे वह पात्र जलमें डूबजावे, उतने समयको घडी कहते हैं. सिद्धान्तशिरोमणिके अनुसारही प्रस्थका प्रमाण कहते हैं, हाथभर ऊँचा हाथभर चौडा, हाथभर लम्बा, चौकोण पात्रको खारी कहते हैं, और इसका सोलहवां भाग द्रोण कहाता है, और द्रोणके चतुर्थ भागको आढक कहते हैं और आढकके चतुर्थभागका नाम प्रस्थ है, प्रस्थजल उसको जानना चाहिये कि, जो खारीभर जलके सोलहवें भागके चौथे भागका चौथा भाग है ॥ ९ ॥ चार चार प्रहरके मनुष्योंके दिन रात होते हैं. हे मानद ! पंद्रह दिनका शुक्लपक्ष और पंद्रह दिनका कृष्णपक्ष होताहै ॥ १० ॥ दोनों इकट्ठे होनेसे एक मास होताहै, वह पितरोंका एक अहोरात्र होता है ॥ ११ ॥ दो मासकी एक ऋतु और छे मासका एक अयन, एक दक्षिण एक उत्तर होता है ॥ ॥ १२ ॥ और येही दोनो अयनें क्रमसे देवताओंके दिन और रात्रि होते हैं, और बारह मासका संवत्सर होता है. उसको वर्षभी कहते हैं, मनुष्यकी परमायु सौ वर्षकी होती है; इस क्रमसे यह सूर्य उदय अस्त होकर जगत्‌की आयु क्षीण करता है और यह कहते हैं कि, ग्रह जो चंद्रआदि, नक्षत्र अश्विनी आदि जो और नक्षत्र उनसे उपलक्षित अर्थात् जिनसे जो कालचक्र जानाजाता है उसमें स्थित काल आत्मा व्यापक समर्थ सूर्य नारायण हैं. और संसार जो वारह राशिप्रमाण भुवनकोश है उसका पर्यटन करते हैं ॥ ॥ १३ ॥ हे विदुरजी ! संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर, यह वर्षोंकी संख्या वर्णन की है, संवत्सरादिका, भेद, सौर, वार्हस्पत्य, सावन, चांद्र, नाक्षत्रमासके भेदसे जानलेना, जब शुक्लपक्षकी संक्रांति पडवाको होती है तब सौरचांद्रमाससे एक संग वर्ष

होजाता है. और सौरमानसे वर्षमें छे दिन बढते हैं और चान्द्रमानसे वर्षमें छे दिन घट-जाते हैं. इसप्रकार बारह दिनके घटने बढनेसे दोनोंका आगा पीछा होजाता है. ऐसे विचारसे पांच वर्ष होते हैं, उनके मध्यमें दो मलमास होते हैं. फिर छठा संवत्सर होता है ॥ १४ ॥ ऐसे कालात्मा सूर्यनारायणका अप्रमत्त होकर नित्य पूजन करे, इस बातको कहते हैं; " यः सृज्य " इत्यादि श्लोक अंकुरआदि कार्य जिसका विषय है ऐसी बीजआदिकोंकी शक्तिको, कालस्वरूप अपनी शक्तिसे बहुतप्रकार कार्यके सम्मुख करता हुआ अन्तरिक्षमें धावता है, सो कौन है ? जो कि महाभूतविशेष तेजोमण्डलरूपी सूर्य है. वह किस प्रयो-जनसे दौडताहै ? पुरुषके मोहको दूर करनेके, अर्थ-अर्थात् दिनरातके प्रमाणसे आयुआदिके क्षीण होनेसे विषयोंमें लगीहुई प्रीतिको छुडवाता है. और सकाम पुरुषोंको तो गुणमय स्वर्गादि फलको यज्ञोंसे विस्तार करवाता है. उस संवत्सरपंचकप्रवर्त्तककी पूजा करो ॥ ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले, पितर, देव, मनुष्योंकी आयु आपने कही, अब जो इस कल्पसे बाहर ज्ञानी पुरुष हैं उनकी गति कहो ॥ १६ ॥ निश्चय है कि कालरूप ईश्वरकी गति आप जानते हो, जो धीरपुरुष हैं वे अपने योगाभ्यासकी सिद्धिके नेत्रोंसे विश्वकी सब गति जानते हैं ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले हे विदुरजी ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये चार युग संध्या और संध्यांशके समेत दिव्य द्वादशवर्षोंसे निरूपण किये हैं ॥ १८ ॥ फिर बारह सहस्र दिव्यवर्षोंकी यह अवस्था है, कि सत्ययुगका प्रमाण तौ चार सहस्र ४००० दिव्यवर्ष, और उसकी सन्ध्या संध्यांशका प्रमाण आठसौ ८०० दिव्यवर्ष, त्रेता युगका प्रमाण तीन सहस्र ३००० दिव्यवर्ष, और इसकी सन्ध्या संध्यांशका प्रमाण छे सौ ६०० दिव्यवर्ष, और द्वापरयुगका प्रमाण दो सहस्र २००० दिव्यवर्ष, और इसकी संध्या संध्याशका प्रमाण चारसौ ४०० दिव्यवर्ष, और कलियुगका प्रमाण एक सहस्र १००० दिव्यवर्ष, और इसकी संध्या सन्ध्यांशका प्रमाण दोसौ २०० दिव्यवर्ष होते हैं. इन सबका जोड लगानेसे संध्या और अंशसमेत चारों युगोंका प्रमाण बारह सहस्र १२००० दिव्यवर्ष होते हैं मनुष्योंके एक वर्षका देवताओंका एक दिनरात्रि होता है. दक्षिणायनकी रात्रि उत्तरायणका दिन इसप्रकार मनुष्योंके तीनसौ साठ ३६० वत्सरका देवताओंका एक वर्ष होता है, इस स्थूलमतके मानसे १४४०००० चौदह लाख चालीस सहस्र मनुष्योंके वर्षोंसे सत्ययुगका प्रमाण होता है; इसके संध्यांशका प्रमाण दो लाख अट्ठाईस हजार २२८००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और त्रेतायुगका प्रमाण दश लाख पचास सहस्र १०५०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं; और त्रेतायुगके सन्ध्यांशका प्रमाण दो लाख सोलह सहस्र २१६००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं. और द्वापर-युगका प्रमाण सात लाख बीस सहस्र ७२०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं. और द्वापरयुगके संध्यांशका प्रमाण एक लाख चोवालिस सहस्र १४४००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और कलियुगका प्रमाण तीन लाख साठ सहस्र ३६०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं. और कलि-युगके संध्यांशका प्रमाण बहत्तर सहस्र ७२००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं. इसप्रकार संध्या

और अंशोंसमेत चारों युगोंका प्रमाण ४३२०००० तेंतालीस लाख वीस हजार मनुष्योंके वर्ष होते हैं ॥ १९ ॥ दिव्यवर्षोंके सैंकडोंसे जिनका प्रमाण कहा, वे संध्या और अंश हैं. और उनके बीचमें जो काल है उसकी युग संज्ञा है, कि जिसमें गवालम्भ यज्ञ आदिक विशेष धर्मका विधान है, और साधारण धर्म तो संध्या और अंशमें भी होता है. युगके आदिमें संध्या और अंतमें अंश होते हैं ॥ २० ॥

दोहा-धर्म चार पद सतयुगे, त्रेतामें पद तीन।
द्वापरमें द्वै पद रहे, कलिमें एक प्रवीन ॥

सत्ययुगमें चारों पदसमेत धर्म मनुष्योंका सेवन करता है. और वही धर्म त्रेतादिक युगोंमें एक २ चरणसे रहित होता है जिस २ प्रकारसे एक २ पाँवसे अधर्म बढता है. उसी भांति कलिकालमें तीन चरणोंसे धर्म रहित होजाता है. यह कथन केवल वैराग्यके लिये है, कुछ धर्मके त्यागनेको नहीं ॥ २१ ॥ त्रिलोकीसे बाहर जो महर्लोकसे आदि लेके ब्रह्मलोकतक हैं उनमें सहस्र १००० चतुर्युगीका एक दिन होता है. हे तात ! उन लोकोंमें रातभी सहस्र १००० चौयुगीकी होती है. कि किस रात्रिमें जगतका रचनेवाला ब्रह्मा शयन करता है. रात्रिके अंतमें लोकोंकी रचना आरंभ होती है, ब्रह्माके एकदिनमें चौदह मनु होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ इकहत्तर ७१ चौकडी युगतक एक २ मनु अपना२ समय भोगता है, उन मनुओंके वंशमें देवता ऋषि होते हैं ॥ २४ ॥ सप्त ऋषि गन्धर्व यह सब क्रमसे होते हैं और इन्द्रादिक जो उनके पीछेके हैं वे एकसंग होते हैं ॥ २५ ॥ त्रिलोकीके प्रवर्त्तक चतुराननके दिनकी यह रचना है. पशु, मनुष्य, पितर, देवताओंका जन्म कर्मसे होता है ॥ २६ ॥ मन्वन्तरोंमें आदिपुरुष नारायण अपनी मूर्त्तियोंसे सत्यको धारण करते हैं; और अपने पुरुषार्थको उदय कर मन्वादिकोंकी सृष्टिकी रचना करते हैं ॥ ॥ २७ ॥ तामस अंशका ग्रहण कर अपने विक्रमसे रोकते हैं, और समय पाकर सब अपनेमें लीन देख सायंकालके समय मौन साध लेते हैं ॥ २८ ॥ भुवआदि लोक उनमें लीन होजाते हैं. जैसे जव निशा प्रवृत्त होती है तब चंद्रमा सूर्य क्षुद्र होते हैं ॥ २९ ॥ शेषजीके मुखसे जब अग्निकी लपटें निकलती हैं तव त्रिलोकी भस्म होने लगती है. तव अग्निकी दाहसे पीडित हो भृगुआदि ऋषीश्वर महर्लोकसे जनलोकको चले जाते हैं ॥३०॥ कल्पान्तमें समुद्रका जल बढकर शीघ्रसब त्रिलोकीको उत्कट क्षोभित चंड प्रचंड पवनोंकी चलायमान लहरोंसे डुबादेता है और जलहीजल दृष्टि आता है ॥ ३१ ॥ शेषजीकी शय्यापर श्रीपति नारायण जलमें योगनिद्रासे नेत्र मूंद स्थित होते, और जनलोकनिवासी बारंबार स्तुति करते हैं ॥ ३२ ॥ इसप्रकार कालगतिसे दिन रात इस प्राणीकी आयु क्षीण होती है. परमायु सौ वर्षकी है ॥ ३३ ॥ आधी आयुको परार्द्ध कहते हैं, पूर्वार्द्ध होचुका अब द्वितीय परार्द्ध प्रवृत्त हुआ है ॥ ३४ ॥ पूर्वपरके आदिमें ब्राह्म नामक कल्प हुआ उसका नाम ब्राह्मकल्प है जहां ब्रह्माजीका नाम शब्दब्रह्म है ॥ ३५ ॥ उसके अंतमें जो कल्प हुआ उसका नाम पाद्म है जो श्रीनारायणके नाभिसरोवरसे सर्व

लोक उत्पन्नकर्ता कमल हुआ ॥ ३६ ॥ हे भारत! यह कल्प तो हुआ, अब दूसरा वाराहकल्प हुआ जहां आदि पुरुष अविनाशी भगवान्ने वराहअवतार धारण किया ॥ ३७ ॥ जिसकी अचिन्त्य शक्ति कार्योंकी उपाधिरहित अनंतआदि जगत्‌की आत्मा ईश्वरका द्विपरार्द्ध निमेष काल कहाजाता है. इस क्रमसे आयुकी गणना गणनी नहीं चाहिये ॥ ३८ ॥ परमाणु आदि द्विपरार्द्ध पर्यन्तका यह कालरूप ईश्वर जो अभिमानी तेजस्वियोंको वश करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३९ ॥ जो मैंने इस ब्रह्माण्डका वर्णन किया सो सब विकारोंसे भरा हुआ, विशेषादिसे वेष्टित बाहरसे यह अंडकोश पंचाशत्कोटि योजनका विस्तार है॥ ४० ॥ इस ब्रह्मांडमें परमाणुकी नाईं दशगुण अधिक कोटानकोट ब्रह्मांण्डोंके समूह लक्षित होते हैं ॥ ४१ ॥

चौ०-सोई सब कारणको कारण * अक्षर ब्रह्म सकल जगतारण ॥

वह सर्व व्यापक महात्मा पुरुष विष्णुका परमधाम वैकुण्ठ है, जहां श्रीनिवास सदा वास करते हैं.

दोहा-एक पादमें सकल जग, जानहु विदुर सुजान।
तीन पाद वैकुण्ठ है, जहां बसत भगवान॥४२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे परमाण्वादिद्विपरार्द्धपर्यन्तकालस्वरूपेश्वरवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
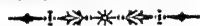
दोहा-द्वादशमें सब सृष्टिको, कियो विचार कुमार।
तनके किये विभाग दो, मनु शतरूपा नार।.

इतनी कथा कह श्रीमैत्रेयजी बोले कि, हे विदुरजी! कालरूप भगवान् वासुदेवकी यह अद्भुत महिमा आपके सम्मुख वर्णन की; अब वह सुनिये कि, जैसे ब्रह्माजीने सृष्टि रची ॥ १ ॥ प्रथम अंधतामिस्र, तामिस्र, महामोह, मोह, तम, यह ब्रह्माने रचे, ये सब अज्ञानकी प्रवृत्तियें हैं ॥ २ ॥ अपनी सृष्टिको पापी देख ब्रह्माने अपने मनमें आनन्द नहीं माना, और फिर भगवान्‌का ध्यान कर अपने मनको पवित्र दूसरी सृष्टिके रचनेका विचार किया ॥ ३ ॥ तब मनसे सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, ये चार ऋषि ब्रह्माजीने उत्पन्न किये. इन्होंने क्रिया छोड वीर्य ऊपरको चढालिया, नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए ॥ ४ ॥ तब ब्रह्माजीने कहा, हे पुत्रो ! जगत् रचो; तब चारोंने सृष्टिके रचनेकी इच्छा नहीं की. मोक्षधर्ममें परायण श्रीनारायणके ध्यानमें सदा लौलीन रहनेलगे.

दोहा-जान विघ्न हरि भजनमें, सृष्टि रचनको धर्म।
माने नहिं विधिके वचन, भावत भगवद्धर्म ॥ ५ ॥

मेरी आज्ञा पुत्रोंने न मानी यह विचार, ब्रह्माजीको रोष उत्पन्न हुआ फिर पुत्र जानकर क्रोध संवरण किया ॥ ६ ॥ बुद्धिसे क्रोध रोका तौभी ब्रह्माकी भृकुटीमेंसे उसी समय वह क्रोध, नीलवर्ण बालकरूप बन उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ वह देवताओंसे प्रथम प्रादुर्भूत, रुदन

करता हुआ ब्रह्मासे बोला, हे पितः ! हे जगद्गुरो ! मेरा नामकरण करो; और मेरे रहनेको स्थान बताओ ॥ ८ ॥ बालकका यह वचन सुन ब्रह्मा पालन करते हुए सुन्दरवाणीसे बोले मत रोओ, जो तुम कहोगे सो करेंगे ॥ ९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! उद्वेगमें बालकसदृश तुम रोये इस कारण सब प्रजा तुम्हें रुद्रनामसे पुकारेगी ॥ १० ॥ हृदय, प्राण, इन्द्रियें, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चंद्रमा, तप ये स्थान पहलेहीसे हमने तुम्हारे वास करनेके लिये रचे हैं. इनमें तुम वास करो ॥ ११ ॥ और सब संसार ग्यारह नामोंसे तुम्हारा पूजन करेगा. मन्यु, मनु, महिनस. महान्, शिव, ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव धृतव्रत, ॥ १२ ॥ और एकादश शक्तियां तुम्हारी होंगी. उनके नाम इस प्रकार हैं, धी, वृत्ति, उशना, उर्मा, नियुत सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा, दीक्षा. हे रुद्र ! ये ग्यारह रुद्राणी तुम्हारी स्त्रियां हैं ॥ १३ ॥ और स्थान और नारी तुम ग्रहण करो. अपनी स्त्रियोंसमेत तुम प्रजा रचो, जिससे तुम प्रजापति कहाओ ॥ १४ ॥ जब ब्रह्माने यह आज्ञा दी, तब नीलकण्ठ शिवजीने अपनी आकृति स्वभावसे अपने समान भयंकर प्रजा रची॥१५॥

दोहा-भूत प्रेत बेतालगण, और पिशाच कराल ।
डाकिनि शाकिनि योगिनी, सिरजी शिव तेहि काल ॥

जब रुद्रके रचेहुए भूत प्रेत सब जगत्को सब ओरसे खानेलगे, तब यह चारित्र देख प्रजापतिको अतिशंका हुई ॥ १६ ॥ हे सुरोत्तम ! ऐसी प्रजाके रचनेसे मैंने भरपाया. बस करो ! तीव्र नेत्रोंसे मुखसमेत ये प्रजा खानेको उपस्थित हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, तप करो जिससे सब जीवोंको सुखदायक जैसी प्रजा प्रथम थी तपसे वैसीही प्रजा रचोगे ॥ १८ ॥ परमज्योतिस्वरूप भगवान् अधोक्षज, जो सब जीवोंके हृदयमें वास करें उस ईश्वरको तप करके अनायाससे प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी बोले, ब्रह्माजीकी आज्ञा मान परिक्रमा दे बहुत अच्छा कहकर, तप करनेको वनमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ कुछ समय उपरान्त ब्रह्माके फिर जगत्के रचनेकी इच्छा हुई; तब भगवत्की शक्तियुक्त लोककी सन्तानके हेतु दश पुत्र उत्पन्न किये ॥ २१ ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्षप्रजापति, और दशवें नारदहुए ॥ २२ ॥ विरंचिके उत्संगसे नारदजी हुए, स्वयम्भूके अंगुष्ठसे दक्ष, प्राणसे वसिष्ठ, त्वचासे भृगु, हुए ॥ २३ ॥ नाभिसे पुलह, श्रवणसे पुलस्त्य, आननसे अंगिरा, नेत्रोंसे अत्रि, मनसे मरीचि हुए ॥ ॥ २४ ॥ दक्षिणस्तनसे धर्म हुआ, श्रीनारायण जिस धर्ममें विराजमान हैं, पीठसे अधर्म प्रकट हुआ जिससे सब संसारकी भयानक मृत्यु हुई ॥ २५ ॥ हृदयसे काम, भ्रुकुटीसे क्रोध, नीचेके ओष्ठसे लोभ, मुखसे वाणी, लिंगसे समुद्र, गुदासे मृत्यु हुई जो पापकी आश्रित है ॥ २६ ॥ छायासे कर्दमऋषि हुए जो देवहूतिके प्राणनाथ थे.

चौ०एहि विधि बहुविधि विधितनमनसे॥प्रगट भयो जग विनहि यतनसे२७

मुखसे वीणापाणि सरस्वती उत्पन्न हुई. यद्यपि यह सुन्दरी अकामा थी, परन्तु हमने ऐसा सुना है कि ब्रह्माजी इसे देखकर कामातुर होगये थे ॥ २८ ॥ पिताकी बुद्धि अधर्ममें

देख, ब्रह्माके पुत्र मरीचिमुख्य मुनियोंने अपने ज्ञानसे उपदेश किया ॥ २९ ॥ हे पिता ! आजतक ऐसा अनुचित कर्म किसीने नहीं किया, न आगे कोई करेगा. तुम जो सरस्वतीमें गमन करो हो. कामको जीतो, तुम समर्थ हो ॥ ३० ॥ हे जगद्गुरु ! तेजवंतोंके योग्य यह कार्य नहीं है. जिनके कर्मअनुसार कर्म करनेसे सब संसारको सुख मिलता है ॥ ३१ ॥

दोहा-तेजवंत जेहि मग चलत, तेहि मग सब संसार।
अनुचित उचित न गनत कछु, मानत मोद अपार ॥

उस परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है कि जिसने इस सृष्टिको अपने तेजसे आत्मामें स्थित किया है. वह परमेश्वर धर्मकी रक्षा करने योग्य है ॥ ३२ ॥ प्रजापति इस भांति अपने पुत्रोंका विनय सुन अत्यन्त ग्लानि मान मनमें अतिलज्जित हुये और उसी समय अपना शरीर त्याग दिया ॥ ३३ ॥ उस धीरवान् शरीरको दिशाओंने ग्रहण किया; जो तम नीहारनामसे प्रसिद्ध हुआ जो कभी २ अबभी संसारमें देखा जाता है जिसको आजकल कुहर कहते हैं. फिर ब्रह्माने द्वितीय शरीर धार यह विचार किया कि, जैसे पूर्वकालमें सब संसार रचित था, अब वैसा किसप्रकार रचाजायगा ? यह विचार करही रहे थे कि, उसी समय चार मुखोंसे चार वेद हुये ॥ ३४ ॥ जिसको चार ब्राह्मण मिलकर करें वह यज्ञ, यज्ञोंका विस्तार, उपवेद, न्यायसहित ये धर्मके चार चरण हैं. इसी प्रकार चार आश्रम हैं, चारों आश्रमोंकी चार वृत्तियें ब्रह्माजीने रचीं ॥ ३५ ॥ विदुरजी बोले कि, हे तपोधन ! संसारके रचयिता विधाताने वेदादिको मुखसे किसप्रकार रचा ? और जो जो जिसने रचा हो सो कृपाकर मुझसे सब कहो ॥ ३६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे विदुरजी ! ऋक्, यजु, साम, अथर्वनामक पहिले चारों वेदोंको पूर्वादि चारों मुखोंसे रचा, क्रमपूर्वक जो गानेमें आवें उन मंत्रोंका स्तोत्र, यज्ञका कर्म, स्तुतियोंका समूह, प्रायश्चित्त, ये भी सब क्रमसे रचे ॥ ३७ ॥ फिर अपने पूर्वादिमुखोंसे (आयुर्वेद) अर्थात् वैद्यकशास्त्र (धनुर्वेद) अर्थात धनुषविद्याका शास्त्र, (गान्धर्ववेद) गानाविद्याका शास्त्र, सारिगमइत्यादि (स्थापत्य) मन्दिर बनानेका शास्त्र, जिसको देवशिल्पी विश्वकर्मा भलीभांति जानता है, ये चारों उपवेदभी उसी क्रमसे रचे ॥ ३८ ॥ सबके दर्शनीय चतुराननने इतिहास पुराण पंचमवेद सब मुखोंसे रचा ॥ ३९ ॥ षोडशी, मृतककर्म, यह पूर्वकी ओरके मुखसे रचा अग्नि, लाना, अग्निष्टोम यज्ञ, ये दक्षिण मुखसे रचे. उचितवक्तोंके शास्त्र, रात्रिके अनुष्ठान पश्चिममुखसे रचे. वाजपेय यज्ञ, गोमेध यज्ञ, उत्तरमुखसे रचे ॥ ४० ॥ विद्याके द्वारा शौच करना, दया, तप, सत्य, दान, ये धर्मके चार चरण हैं. सब वृत्तियोंसे यथाविधि आश्रम रचे ॥ ४१ ॥ गायत्रीके उपासकोंको सावित्र कहते हैं, एक वर्षतक व्रत करें उनको प्राजापत्य कहते हैं. वेदपाठ करना यह ब्राह्मणका धर्म है, नैष्ठिकब्रह्मचर्य्यको बृहद्व्रत कहते हैं. जिसका कोई निषेध न करे उसको वार्तावृत्ति कहते हैं, खेती करनी, यज्ञ करनेको यज्ञ करानेको संचयवृत्ति कहते हैं. विना मांगे जीविका करनेको शालीनवृत्ति कहते हैं. गिराहुआ अन्न बीनकर निर्वाह करनेको शिलोंछवृत्ति कहते हैं. घरमें रहकर उदरपूर्ण करनेको गृहवृत्ति कहते हैं. इसप्रकार वृत्तियें रचीं ॥ ४२ ॥ और जो सांवेके चावलोंका

भोजन करके तप करते हैं, वे वैखानस कहाते हैं. और जो नया अन्न मिलनेपर पहिला अन्न परित्याग करते हैं, वे वालखिल्य कहाते हैं. और जो प्रातःकाल उठकर जिस दिशोको जाय और उधरको जो फल प्रथम मिले, उसका भक्षण कर जो अपनी आत्माको संतुष्ट करते हैं वे औदुम्बर कहाते हैं. जो फल आपसे आप पककर पृथ्वीपर गिरे उसे खाकर जो आत्माका पोषण करते हैं वे फेनप कहाते हैं. ये चार प्रकारके वनवासी ब्राह्मण हैं. अपने आश्रमके कर्मसे प्रधान रहें, वे कुटीचक हैं, जो कुछ काम करके जीविकानिर्वाह करते हैं, और ज्ञान सीखते हैं वे बहोद हैं और जो ज्ञानमें अभ्यास करते हैं. वे हंस हैं. तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति करनेवाले निष्क्रिय हैं, ये चार प्रकारके संन्यासी इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ ४३ ॥ वेदविद्या, वेदत्रयीकी वार्ता, दण्डविद्या, नीतिकी वार्ता, भूरादिक व्याहृति ये प्रणव ब्रह्माके हृदयसे होतीहुई ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजीके बालोंसे उष्णिक्छन्द प्रगट हुआ, त्वचासे गायत्रीछन्द हुआ, मांससे त्रिष्टुप्छन्द हुआ, होठोंसे जगतीछन्द हुआ, स्नायुसे अनुष्टुप्छन्द हुआ ॥ ४५ ॥ मज्जासे पंक्तिच्छन्द हुआ, और प्राणसे बृहतीछन्द हुआ. जीवसे स्पर्श (‘ क ’ से लेकर ‘ म ’ पर्यंत कवर्गादि पंचवर्ग) हुआ, और देहसे स्वर (अकारादिक) हुए, ॥ ४६ ॥ ‘ श ’ ‘ ष ’ ‘ स ’ ‘ ह ’ ये ऊष्म ब्रह्माकी इन्द्रियोंसे हुए. ‘ य ’ ‘ र ’ ‘ ल ’ ‘ व ’ ये अन्तस्थ ब्रह्माके बलसे हुए, षड्जादिक सप्तस्वर श्रीब्रह्माजीके विहारसे हुए. इसीप्रकार सब जानो ॥ ४७ ॥ प्रगट अव्यक्त जिसकी आत्मा उस शब्द ब्रह्मसे परे ब्रह्म विस्तृत अनेक २ शक्तिसे प्रकाश करे है ॥ ४८ ॥ इसके पीछे अपरविद्याका आश्रय लेकर फिर सृष्टि रचनेकी इच्छा करी. बडे वीर्यवान् ऋषियोंके महाविस्तृत सर्ग वर्णन किये, परन्तु बढे नहीं.

दोहा–प्रजा बढनके हेत विधि, बहुविधि कीन्ह उपाय ।
सो न बढ़त यह होत कह, घातक देव जनाय ॥ ४९ ॥

हे राजन् ! अनेक २ प्रकारके विचार कर करतार हृदयमें चिंता करनेलगा कि यह बडा आश्चर्य है कि मैं नित्य ऐसे २ प्रचार करता हूं परन्तु संसार बढता नहीं ॥ ५० ॥ मुझको निश्चय होता है कि दैव इस सृष्टिको बढने नहीं देता इसकारण प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, इसप्रकार जब ब्रह्माने दैवको दोष दिया ॥ ५१ ॥ तब ब्रह्माके तनमेंसे दो रूप प्रगट हुए. जिसको काय कहते हैं. तब उन दोनों स्वरूपोंसे मिथुन अर्थात् जोडा उत्पन्न हुआ ॥ ५२ ॥ उनमेंसे जो पुरुष था उसका नाम स्वायंभुव मनु हुआ और जो स्त्री थी उसका नाम शतरूपा हुआ, वह उन महात्माकी रानी हुई ॥ ५३ ॥ उन दोनोंने मैथुन धर्म प्रगट किया, मैथुनकर्म करनेसे प्रजा बढी. मनुने शतरूपाके भर्गसे पांच पुत्र पुत्री उत्पन्न किये ॥ ५४ ॥ हे सत्तम ! प्रियव्रत, उत्तानपाद, ये दो पुत्र, और आकूति, देवहूति, प्रसूति, ये तीन कन्या ये पांच संतान हुई ॥ ५५ ॥ आकूति, रुचिप्रजापतिको व्याहीगई, देवहूति कर्दमजीको, प्रसूति दक्षको इनसे सब जगत् भरगया ॥ ५६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे मनुवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा-इस त्रयोदश अध्यायमें, वराहप्रादुर्भाव।
कथा परमआनन्दकी, वरणों सहज स्वभाव ॥

इतना कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! श्रीशुकाचार्यकी अत्यन्त मनोहर वाणी सुन भगवान् वासुदेवकी कथामें आदरकर कुरुनन्दन फिर बूझने लगे ॥ ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे महामुने ! ब्रह्माजीके प्यारे पुत्र स्वायंभुवमनु राजेश्वरने प्रिय पत्नीको पाकर क्या किया ? ॥ २ ॥ हे सत्तम ! उस आदिराजका चरित्र मुझसे कहो, जो मुझको श्रद्धा है वह श्रीवृन्दावनविहारीके आश्रित हो ॥ ३ ॥ बहुत प्राचीन राजाओंकी कथा श्रवण करनेका यही फल है और यही महात्माओंने कहा है कि श्रीमुकुन्दके चरणारविन्द जिनके हृदयमें वास करते हैं उनके गुणानुवादका श्रवण करना शुभफलका देनेवाला है ॥४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, विनीत सहस्र शिरवाले भगवान्के चरणारविन्दमें जिनके शिर सो मैत्रेयजी भगवत्की कथामें अत्यन्त प्रसन्न रोमांचित हो विदुरजीके सन्मुख बोले ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब अपनी प्रियपत्नीसमेत स्वायम्भुवमनु हुए तब हाथ जोड कर ब्रह्माजीसे बोले ॥ ६ ॥ तुम सब जीवोंके उत्पन्न करनेवाले वृत्तिदायक पितामह हो, हे नाथ ! कौनसे कर्मद्वारा यह प्रजा आपकी सेवा करै ॥ ७ ॥ हे स्तुतियोग्य ! आप बताइये कि आपको किसप्रकार नमस्कार हो और अपनी सामर्थ्यानुसार जो कर्म करसके जिसके करनेसे लोक परलोक दोनोंमें सुयश हो और सब प्रकारसे उत्तम गति प्राप्त हो ॥ ॥ ८ ॥ स्वायम्भुवमनुकी विनय सुन मैत्रेयजी बोले कि, हे पुत्र ! हे पृथ्वीश्वर ! मैं तुमपर प्रसन्न हूं, संसारमें तुम्हारा यश बढे, मंगलकी वृद्धि हो. निष्कपट हृदयसे जो मैंने कहा सो तुमने किया और सब प्रकार मेरी आज्ञा मानी.

दोहा-यही धर्म है सुतनको, यही सत्य पितु सेव।
सदा भक्तिभर शीशपर, पितुशासन भरलेव ॥ ९ ॥

हे वीर ! ईर्षा त्याग अपनी शक्त्यनुसार पिताकी आज्ञा उल्लंघन न करे, पिताको महा आदरसे इतनीही पूजा करनी बहुत है ॥ १० ॥ हे आत्मज ! तुम्हारे समान जिनमें गुण और पुरुषार्थ हों, ऐसी संतान इस शतरूपा स्त्रीमें उत्पन्न कर धर्मसे पृथ्वीकी रक्षा करो और परमेश्वरमें मन लगाओ ॥ ११ ॥ हे नृप ! प्रजाकी रक्षा मन लगाकर करो यह मेरी परम शुश्रूषा है. भगवान् सब प्रजाके भर्ता हृषीकेश प्रसन्न होंगे ॥ १२ ॥ यज्ञरूप जनार्दन भगवान् जिनपर संतुष्ट नहीं होते उनका मनुष्यदेह धारण करना केवल श्रममात्र हुआ है. आपही धन्य हैं जो नारायणका आदर किया ॥ १३ ॥ मनुजी बोले कि, हे पापनाशक ! हे प्रभो ! मैं आपकी आज्ञा अवश्य करूंगा, परन्तु मेरा वासस्थान और प्रजाके रहनेको जगह बताइये ॥ १४ ॥ हे देव ! सब जीवमात्रका जिस पृथ्वीपर वास करनेका स्थान है, सो पृथ्वी महाप्रलयके जलमें निमग्न हो रही है, इस भूदेवीके उद्धारका कोई यत्न प्रधान करो, जिसपर यह प्रजागण वास करैं ॥ १५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, चतुरानन जलमें धरणीको डूबी देख मनमें बहुतकालतक चिंतवन करते रहे कि, किसप्रकारसे इसका उद्धार किया

जायगा जो प्रजागण इसप्रकार वास करें ? ॥ १६ ॥ विश्व रचनेकेही समय मेरे सम्मुख जलमें डूबकर पृथ्वी रसातलको चलीगई. अब हम सब इस वसुधाके निकालनेका क्या उपाय करें ? ॥ १७ ॥ जिसके हृदयकमलसे में उत्पन्न हुआहूं वह भगवान् वासुदेव करुणासिंधु, भक्तवत्सल, दीनबन्धु, तीर्थरूप जिसकी कीर्ति सो नारायण मेरा मनोरथ पूरा करेंगे ॥ ॥ १८ ॥ हे अनघ ! ब्रह्माजी यही विचार कर रहे थे, कि उसीसमय पितामहकी नासिकाके छिद्रसे अकस्मात् अंगुष्ठमात्र वराहका एक बच्चा निकला ॥ १९ ॥ हे नरनाथ ! सबके देखते २ वह एक क्षणमें आकाशतक पहुँचा, गजके समान बढकर महाअद्भुतरूप दृष्टि आनेलगा ॥ २० ॥ मरीचिआदि ब्राह्मण सनत्कुमारादि मनुसहित ब्रह्माजी सूकरको निहार अनेक २ प्रकारके विचार करने लगे ॥ २१ ॥ यह वाराहरूप धारण कर कोई स्वर्गवासी तौ नहीं चला आया है, बडे आश्चर्यकी बात है कि, मेरी नासिकामेंसे यह सूकररूप धारण कर कौन निकला ? ॥ २२ ॥ पहिले तौ अंगुष्ठसमान था, एक क्षणमें गजसम दृष्टि आनेलगा, अब बडे पर्वतसमान स्थूल दृष्टि आनेलगा, कहीं यज्ञ भगवान् मेरे मनको खेद तौ नहीं करते हैं ? ॥ २३ ॥ पुत्रोंसमेत ब्रह्माजी यह विचार कर रहे थे कि, उसी समय अंतरिक्षसे बादलके गर्जनके समान शब्द हुआ, ब्रह्माके सम्मुख यज्ञपुरुष भगवान् बादलकी समान गर्जनेलगे ॥ २४ ॥ उन उत्तम ब्राह्मणोंको और ब्रह्माको श्रीवाराहजीने महामोदित किया; और सामर्थ्यवान् श्रीवाराहजीके गर्जनसे सब दिशा गर्जन करउठीं ॥ २५ ॥ उस समय मायामय वाराहजीका घुर्घुर शब्द क्लेशनाशक सुनकर जनलोक तपोलोक निवासी मुनिगण परम पवित्र वेदत्रयीमन्त्र पढ २ मधुरवाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ उन सज्जनोंको वेदविस्तारक ब्रह्म अपने गुणानुवादोंको सुनकर श्रीवाराहजीने गर्जकर देवताओंके उदयके अर्थ गजेन्द्रसमान लीला कर जलमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥ जिनकी पुच्छ ऊपरको उठ रही, आकाशमें विचरें, कठोर कंधे धूसर रंगके बाल फडक रहे, तीक्ष्ण रोम,

दोहा-खने जात जाके खुरन, नभ जलचर चहुँ ओर।
महाकराल विशाल अति, सोहत दन्त कठोर ॥
चौ०—ध्रुव धरणी उद्धारन हेत ॥ देवनहित मंगल श्रुतिसेत ॥

भयानक दृष्टि पृथ्वीके उद्धारक श्रीवाराहजीने प्रकाश किया ॥ २८ ॥ नासिकासे पृथ्वीको सूँघें जिसकारण श्रीवाराहरूप धारण किया. यज्ञ तौ आपके अंग हैं, कठोर डाढ, कोमल दृष्टिसे स्तुति करते हुए ब्राह्मणोंकी ओर देखकर जलमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ हीराके पर्वत समान अङ्ग जलमें कूदनेके वेगसे कोखें फटीं, इस प्रकार समुद्रका जल इधर उधर फैलगया, दीर्घ तरंगमाला भुजायेंसी दृष्टि आती हैं, दुःखीजन सदृश शब्द करता भया कि, हे यज्ञेश्वर ! हमारी रक्षा करो ॥ ३० ॥ यज्ञमूर्ति वाराहजी महाराजने अथाह जलकी थाह लेनेके लिये जलको कुदालकी नाईं तीव्र खुरोंसे चीरते फाडते जाकर पृथ्वीको देखा, जिस सब जीवोंको धरनेवाली धरणीको प्रलयके समय आप श्रीजलनाथने उदरमें धारण किया था ॥ ३१ ॥ जो धरणी जलमें डूब गई थी उस पृथ्वीको अपनी डाढसे उठाय

रसातलसे ऊपरको लाये तब अत्यन्त शोभा हुई, चक्रसे सहस्रगुण तीव्र तेज जिनमें ऐसे वाराहजीने हिरण्याक्षदानवको गदा हाथमें लिये आता हुआ देखा ॥ ३२ ॥ वाराहजीके सम्मुख आ मार्ग रोककर खडा हुआ, और भूमिके छीननेका उद्योग करने लगा. तब वाराहजीका क्रोध अत्यन्त बढा, और सिंहसमान गर्जकर दोनों दांतोंसे हिरण्याक्षका सब शरीर चीरडाला. और उसके रुधिरकी कीचमें अटीहुई अपनी तुण्डकी लीला करनेलगे ॥ ॥ ३३ ॥ हे भूपाल ! तमालसमान नीलश्वेत दांतोंके अग्रभागोंसे गजलीलाकी भांति पृथ्वीको उछालतेहुए वाराहजीको देख सर्व ऋषि, मुनि, ब्रह्मादिक देवता हाथ जोड वेदके मंत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ ऋषिलोग बोले कि, हे अजित ! हे यज्ञभावन ! आपने सबको जीता है; वेदत्रयीमय रूप धरकर शरीरको कँपाया सो आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे देव ! निश्चय है कि, दुष्टकर्म करनेवालोंके इस आपके यज्ञस्वरूपका दर्शन होना कठिन है, सब छंद आपके त्वचामें हैं, यज्ञ रोममें हैं, सुन्दर आज्य दृष्टिमें है, चतुर्होत्र यज्ञ चरणोंमें है ॥ ३६ ॥ हे ईश ! जुहू नामक स्रुवा आपकी तुण्ड है, द्वितीय स्रुवा आपकी नासिका है, भक्षणका पात्र चमस कर्णका छिद्र है, ब्रह्मभाग पात्र मुखका छिद्र है, चर्वण अग्निहोत्र हैं ॥ ३७ ॥ दीक्षा आपका जन्म, तीन इष्टि, शिर, ओष्ठ ग्रीवा है. दीक्षाके पीछेकी इष्टि और समाप्तिकी इष्टि आपकी दाढ है. जो प्रथम होमाग्नि करा जाय सो रसना है यज्ञ तुम्हारा शीश है, उपासनाकी अग्नि सभासद है, इष्टकाचयन तुम्हारे पंच प्राण हैं ॥ ॥ ३८ ॥ हे देव ! चंद्रमा आपका वीर्य है, सब यज्ञ अवस्थिति है, संस्थाभेद तुम्हारी सप्त धातु हैं, वह संस्थाविभेद यह है अग्निष्टोम १ अत्यग्नि २ उक्थ्या ३ षोडशी ४ वाजपेय ५ अतिरात्र ६ आप्तोर्याम ७ आपही सब यज्ञ शरीरकी सन्धि हैं. आपही सब यज्ञ इष्टबन्धनहो ॥ ३९ ॥ सब मंत्रदेवता द्रव्यरूप, सर्वक्रिया रूप यज्ञरूपके अर्थ नमस्कार हैं. वैराग्य भक्ति, मनके जयार्थ अनुभव किये ज्ञानरूप विद्यागुरुके निमित्त प्रणाम है ॥४०॥ हे भगवन् ! हे भूधर ! डाढके अग्रभागपर पर्वतसहित धरणी तुमने धारण की है, सो अत्यन्त प्रकाशमान हो रही है, जैसे जलमेंसे निकले गजेंद्रके दांतोंपर धरी हुई कमलिनी शोभा देती है, इसीप्रकार आपके दशनोंपर पृथ्वी शोभायमान होरही है ॥ ४१ ॥ वेदत्रयीमें यह वाराहरूप है, सो भूमंडल आपने दांतोंपर धारण किया, डाढारूढ शृंगपर मेघवत् विदित होता है, बडे भारी कुलाचलपर्वतकी जिसप्रकार विलास सोहै, इसीप्रकार आपकी शोभा है ॥ ४२ ॥

छंद ।

जय सब सुररूपा, त्रिभुवनभूपा, रूप अनूपा, यज्ञमये, प्रभु प्रगट भये ॥
जय ज्ञानविरागा, भक्ति विभागा, प्रद बडभागा, क्षमा क्षये, सुख दास दये ॥
जय वपुष वराहा, खलनरनाहा, दायक दाहा, कृष्ण हरे, अति भास भरे ॥
जय धरणिउधारण, ज्यों वर वारण, पद्मिनि धारण, दन्त करे, जलतें निकरे
तवडाढ़कराला, परयह काला, धरणिविशाला, बिलसिरही, कवि सुछविकही

जिमि मेघनमाला, माधिउ ऊमाला, तापर काला, राहुसही, तेहि ग्रसत नहीं ॥
जय वसुधाधारी, जलधिविहारी, सुछवि तुम्हारी, निरखि परे, मन मोद भरै ॥
मनु शैलशृंगपर, द्विजचन्द्रवर, जलधर तापर, प्रभा भरै, कवि यूं उचरै ॥
जय दीनदयाला, रूप विशाला, हरण उताला, शोक सबै, हम लखैं अबै॥
जय विधिविधुमाला, देवनमाला, त्रिभुवनपाला, चरण नवै, कृत महारवै॥
जननिवसनहेतू- हे खगकेतू- मोदनिकेतू- धरणि धरो, द्विजकाज करो ॥
है तुमहिं प्रणामा, महि तुव वामा, हे श्रीधामा, तेज भरो, निजनाथ अरो ॥
हे कृष्ण मुरारी, जनहितकारी, संकटहारी, महि धरता, तेहि उद्धरता ॥
कछु अचरज नाहीं, रचहु सदाहीं, यहि जगकाहीं, सुखकर्ता, लक्ष्मी भरता
तव केशन कारे, पारावारे, बिन्दु अपारे, छूट गये, सुरलोक गये ॥
विधिलोकनिवासी, दर्शनआशी, हम शुचिराशी, होत भये, तव दर्श लये॥
जो चहत महाना, तव गुण नाना, कोअवसाना, मूढ सोई, नहिं सकत जोई
तुम्हरी यहमाया, जगतनिकाया, मोहहि छाया, नाहिंगोई, तेहिसमनहिंकोई ॥
जग मंगल कीजै, भक्ति न छीजै, यह यश लीजे, जगदीशा, धृत क्षितिशीशा॥
हे करुणासागर, गुणगणनागर, जगतउजागर, मोहि दीशा, प्रभुविधिईशा॥
कोटिनयुगपापा, औरहु शापा, दुसह सतापा, कर न सकैं नियरा, तजिकैं॥
जे अति मन लाई, कथा सुहाई, धरणि बचाई, रद धरिकै, रिपुसे लडिकै
कोउ तुमसम नाहीं, त्रिभुवनमाहीं, जोहिढिगपाहीं, हम जाहीं, स्वारथपाहीं॥
दृग नहिं दरशाहीं, तेहि भुजछाहीं, हम सुखपाहीं, दुखदाहीं अति बिलसाहीं
हे श्रीगोविन्दा, यदुकुलचन्दा, आनन्दकन्दा, नंदनन्दा, हर भवफन्दा ॥
तुव पद अरविन्दा, निकट वसिन्दा, हम मतिमन्दा, स्वच्छन्दा, तज जगनिंदा॥
सूकर तन धारे, नाथ हमारे, मोद अपारे, विस्तारे, दुख निरवारे ॥
माधे पारावारे, करहु विहारे, सदा सुखारे, बहु बारे, कारज सारे ॥
धरणी उद्धारे, दानव मारे, सुयश पसारे, बळवारे, तनमनवारे ॥
युगचरण तुम्हारे, सदा हमारे, रक्षनहारे, सुख सारे, यह संसारे ॥

दोहा-यहि विधि जब अस्तुति करी, मुनिनसहित करतार ।
तब धरणीमें धरत भये, अपनो तेज अपार ॥

हे नाथ ! उसको स्थित करो यह स्थावर जंगमकी माता है लोकके अर्थ तुम्हारी भार्या है, तुम हमारे पिता हो, हम तुम समेत अचलादेवीको नमस्कार करते हैं. जिस पृथ्वीपर अपना तेज अग्निको काष्ठमें तुम धारण करते हो ॥ ४३ ॥ हे प्रभो ! रसातल गई मेदिनीका लाना आपके विना कौन करसक्ता है ? विस्मय करनेवालोंको आपके कर्तव्यमें कुछ विस्मय नहीं है जो अपनी मायासे इस विस्मयकारी विश्वको रचा ॥ ४४ ॥ हे ईश ! वेदमय निजशरीरको कँपानेसे जो आपके बाल उठे उस समय सुन्दरजलकी विन्दुओंसे स्नान

किये, तप, जन, सत्यलोकवासी हम सब पवित्र होगये ॥ ४५ ॥ हे कर्मरहित ! जो तुम्हारे कर्मोंका पार मानते हैं वे निश्चय मतिहीन हैं; हे भगवन् ! योगमायाके गुणोंसे मोहित तुम सब विश्वके मंगलकर्ता हो ॥ ४६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, ब्रह्मादिक देवताओंने जब इसभांति स्तुति की तब वाराहजीने अपनी धारणाशक्तिद्वारा, पृथ्वीको अपने खुरोंसे मथित जलपर अचल किया॥४७॥सो वाराह भगवान् विष्वक्सेन प्रजापति हरि रसातलसे लीलाकरके पृथ्वीको ला जलपर स्थापित कर वैकुण्ठको चलेगये ॥४८॥ जो श्रोता इस मायावी, पवित्र श्रीवाराहजीकी महासुन्दर,आनन्दकारी,विघ्नहारी कथाको भक्तिसे प्रीति लगाकर सुनतेहैं अथवा सुनाते हैं उनके हृदयमें जनार्दन भगवान् अपना वासस्थल बनाते हैं ॥ ४९ ॥ जब सब आशीर्वादोंके स्वामी प्रसन्न हुए फिर जीवोंको कोई बात दुर्लभ नहीं. सब कुछ प्राप्त हुआ, अनन्य दृष्टिसे भजनेवालोंके अन्तःकरणवासी, अपनी परमगतिको आपही देते हैं ॥ ५० ॥ इस लोकमें पुरुषार्थ सारवेत्ता पुरातनकथामें भगवत्कथामृतको कर्ण अंजलीसे जिसने पान किया है. यह कथा उसके सब संसारी पापोंका नाश करनेवाली है; एक पशु ही तौ नहीं, और सबको ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

कवित्त-कौन है अभागी, काके कुमति प्रजागी,काके लागी कुल आगी, कौन कागी योनि पावैगो ॥ कौन विषै पान कीन्हों, स्वारथ न चीन्हो कछु, कौन धर्मसेतु नोधि, नरक सिधावैगो ॥ पुच्छशृंगहीन कौन, पशु पातकी न होत कहै रघुराज, काज काहूके न आवैगो ॥ रसिक कहाय हाय कौन मन्दमति ह्वै है, जौन नाहीं आनन्द, गोविन्दगुण गावैगो ॥

दोहा-जो जन सेवत प्रीतिसों, केशवपद अरविन्द ।
पकर हाथ भवसिंधुतें, तेहि तारत गोविन्द ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे श्रीवाराहावतारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा-इस चौदह अध्यायमें, हिरण्याक्षवध मूल ।
सांझ समयके गर्भकी, कहौं कथा प्रतिकूल ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले हे कुरुनन्दन ! जगत्कारण, वाराहतनधारी, श्रीवैकुंठनाथकी कथा मैत्रेयजीसे सुन हाथ जोडकर विदुरजीने बूझा ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि, हे मुनिसत्तम ! यज्ञमूर्ति श्रीवाराहजीने आदिदैत्य हिरण्याक्षका जिस प्रकार वध किया वह मैंने सुना ॥ २ ॥ परंतु हे ब्रह्मन् ! त्रिलोकीनाथ डाढके अग्रभागपर धरकर धराको लीलापूर्वक जब लाये उस समय श्रीवाराहजी और हिरण्याक्षमें किसप्रकार संग्राम हुआ ? सो कृपापूर्वक कहिये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि,हे कुरुकुलमणे ! तुमने यह मनोहर भगवान् जगदाधारकी कथा मनुष्योंके कालकर्म छुटानेवाली बहुत अच्छी बूझी ॥ ४ ॥ श्रीनारदमुनिकी कही यह कृष्णकथा सुनकर राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव पाँचवर्षका बालक भक्तिके प्रभावसे-

दोहा-दै डंका यमलोकमें, सुरन शीश धर पाँय।
देहसहित सुरपुर गयो, रही कीर्ति जग छाय ॥ ५ ॥

यह इतिहास मैंने सुना है; यह प्रथम देवताओंके बूझनेपर लोककर्ता चतुराननजीने देवताओंके सम्मुख पहिले वर्णन किया था ॥ ६ ॥ अब हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुकी उत्पत्ति कहते हैं, एक समय संध्याकालमें दक्षपुत्री दितिने पुत्रार्थ कामशरसे पीडित हो मरीचिसुवन कश्यपनामक अपने स्वामीके पास जाय उनसे विषयकी इच्छा की ॥ ७ ॥ अग्निजिह्वा यजुर्वेदके पति विष्णु भगवान्‌का दूधसे यजन करके सूर्यअस्तके समय यज्ञशालामें सावधानतासे बैठे थे ॥ ८ ॥ दिति बोली कि, हे स्वामिन् ! पंचशर घोर धनुष बाण लेकर मुझे तुम्हारे कारण दुःख देता है, और मुझ अबलापर बल प्रकाश करता है. जिसप्रकार मतवाला हाथी केलेके वृक्षपर बल प्रकाश कर उसको व्यथा देता है इसी भाँति यह मनसिज मेरे तनरूपी वनको भस्म किये डालता है ॥ ९ ॥ पुत्रवती सौतनकी बढती मुझसे नहीं देखी जाती. अब आप मुझपर कृपा करके सर्व गुणखान, महाबलवान एक पुत्र मुझे दीजिये ॥ १० ॥ भर्तासे बहुत सम्मानित स्त्रियोंका यश सब संसारमें फैल जाता है; सो आपसरीखे मेरे पति हो और फिर भी मेरे पुत्र न हो यह बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ११ ॥ हे नाथ ! पुत्रियोंके परम हितकारी हमारे पिता पुत्रियोंसे अत्यन्त स्नेह करते थे, एकदिन पिता हम सबसे हँसकर बोले कि, हे पुत्रियो ! तुम किसके संग अपना विवाह करोगी ! इसभाँति प्रत्येकसे पृथक् २ बूझने लगे ॥ १२ ॥ उस समय हम तेरह बहनोंने आपमें ही मन लगाया तब हम सब पुत्रियोंके संतान होनेका भाव जान तेरह बेटियोंको पिताजीने तुम्हें दिया और हम सब तुम्हारे शील स्वभावके अनुसार चलीं ॥ १३ ॥ हे कल्याणकर्ता ! हे कमलनयन ! हे प्राणनाथ ! हमारी इच्छा पूर्ण करो. हे भूमन् ! आपसरीखे महात्माओंके निकट आर्तोंका आना व्यर्थ नहीं होता ॥ १४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! इस प्रकार महाकृपण दितिके मनोहर वचन सुन उसकी अत्यन्त प्रशंसा कर मदनका बल वर्द्धित देख कश्यपजी मधुरवाणीसे बोले ॥ १५ ॥ हे भीरु ! जो तेरा मनोरथ है यह प्रियविधान मैं सब तेरा पूर्ण करूंगा. जिस स्त्रीसे धर्म, अर्थ, काम, पदार्थ प्राप्त हो उसका काम कौन नहीं कर-सक्ता ! स्त्रीके विना चारों वर्णोंका तिरस्कार है, इसलिये गृहस्थ होना मुख्य धर्म है ॥१६॥ सब आश्रमोंको ग्रहण कर जो अपने गृहस्थाश्रममें रहते हैं वे सब व्यसनोंके समुद्रको तर जाते हैं; जिस प्रकार जहाजमें बैठ समुद्र पार होजाते हैं; ऐसे ही संसारमें गृहस्थ लोग भव-सागर पार होजाते हैं ॥ १७ ॥ हे मानिनि ! श्रेयकामके लिये अपनी अर्द्धांगिनी जिसको कहते हैं; जिसमें अपना सब भार धर पुरुष विगतज्वर होकर विचरते हैं ॥ १८ ॥ और आश्रमियोंके जीतनेके अयोग्य उन दुर्जय इन्द्रियरूप शत्रुओंको जिस स्त्रीके आश्रयसे लीला करके हम पराजित करते हैं, जैसे दुर्गेश दुर्गमें अवस्थान कर चोरोंका पराभव करता है ॥ १९ ॥ अरी गृहेश्वरी ! तुम्हारे किये उपकारका प्रत्युपकार करनेको संपूर्ण आयुसे तुम्हारे समान होनेकी सामर्थ्य नहीं है और जो प्रियगुण तुममें हैं उनके वर्णन करनेकी भी सामर्थ्य

मुझे नहीं है ॥ २० ॥ तो भी पुत्रकी उत्पत्तिके लिये तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा. परन्तु एक मुहूर्त धीर धारण करो. जिससे संसारी मनुष्य निंदा न करें ॥२१॥ इस समय महाघोर तम है, बरन घोरोंको भी घोरतम दिखानेवाले भूतनाथके गण इस समय जहाँ तहा विचरते हैं.

दोहा-संध्यासमय भयावनो, घूमैं भूत पिशाच ।
डाकिनि शाकिनि, योगिनी, जहाँ तहाँ रहिं नाच ॥ २२ ॥

हे शुभानने ! इस सायंकालमें भगवान भूतभावन, त्रिपुरारी भूतनाथ, भूतपार्षदोंके गण-सहित श्रीमहादेवजी वृषारूढ हो संसारमें पर्य्यटन करते हैं ॥ २३ ॥ श्मशानस्थ पवनमंड-लीसे उडीहुई धूलिसे धूम्र, विथुरे प्रकाशित जटासमूह, रजतसरिस शोभायमान तन-पर चिताभस्म लगाये; महाभयंकर काले नाग लिपटाये, तुम्हारे देवर, शिवशंकर चन्द्र, सूर्य, अग्नि, इन तीनों नेत्रोंसे आठों प्रहर देखते रहते हैं सो वे अवश्य हमारे तुम्हारे विहारको देखेंगे ॥ २४ ॥ और महादेव ऐसे बेलाग हैं कि, संसारमें न कोई उनका मित्र है, न शत्रु है; न अतिआदरणीय, न निन्दायोग्य है, जिनके चरणोंसे त्यक्त भोग जिसके भोगको व्रतोंकरके उनका आराधन कर, उनके विभूतिरूप महाप्रसादकी हम सब आशा करतें हैं ॥ २५ ॥ जिन भूतभावन, भोलानाथके विषयशक्तिशून्य अनिंद्य चरित्र, अवि-द्यानाशक, विलक्षण बुद्धिमान् महात्मा लोग वर्णन करतेहैं, उनकी समान वा उनसे बडा ज्ञानवान् जगतमें और कोई नहीं, सज्जनोंको गति देनेवाले आप सदाशिव पिशाचवत् लीला करते हैं ॥ २६ ॥ सदा अपनी आत्मामें रमण करें सर्वज्ञ, त्रिकालके ज्ञाता जिन महादेवके चरित्रोंको देख २ दुर्भागी लोग हँसते हैं, परन्तु भुजंगभूषणके आचरणोंका आशय नहीं जानते, वे अभागे अनेक २ प्रकारके वसन वस्त्र आभूषण पहिने, चन्दन सुगन्ध लगाये, जिस शरीरको श्वान काक खायँ उस देहको अत्यन्त प्रिय मानते हैं और यह जानते हैं कि, यह देह आत्मा है. यह समझ उसका अत्यन्त लालन पालन करते हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मादिक देवता दिक्पाल जिनकी स्थापित मर्यादाको पालते हैं, इस जगत्के जो कारण हैं उनकी आज्ञाकारिणी माया है वह भी पिशाचिनियोंकी भांति रहती है, ये परमेश्वरके चरित्र तर्कमें नहीं आते, उनकी अपारमहिमाका पार कौन पासक्ता है ?

कवित्त-नन्दीकी सवारी, नागशृङ्गकर धारी, सदा, सन्तसुखकारी, नील-कंठ त्रिपुरारी हैं ॥ मुण्डमालधारी, शिर गंग जटाधारी वाम-अंगमें विहारी गिरिराजसुता प्यारी हैं॥दानरेख भारी, शेष शारदा पुकारी, काशी-पति मद नारी, करशूलचक्रधारी हैं॥कला उजियारी, शीश नाथ है तुम्हारी यश गावें बेद चारी, शिव पूर्ण ब्रह्मचारी हैं ॥ तत्क्षण धरत तनक अरचत जन, गन गन सघन कनक दरशत दर ॥ तरलनयन धन धरत अधर तन, करतल कर लस सरल गरल धर ॥ रटत अजर यश, अटत गहन घन, सघनरजत रज रजत अचल धर ॥ दहत सकल अघ, दरशत, दरशत, दरद न रहत कहत नर हर हर ॥ २८ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, कश्यपजीने दितिको बहुत समझाया, परन्तु दितिके ध्यानमें एक न आया; क्योंकि, वह तो मदनके मदसे अचेत थी.

दोहा–कामविवश कश्यपप्रिया, छांड़ि सकल तनलाज।
पतिको पट पकरो तुरत, गणिकासम रतिकाज ॥ २९ ॥

निषिद्धकर्ममें अपनी पत्नीका हठ जान भाग्यरूप भगवान् वासुदेवको नमस्कार कर उस हठीली भार्य्यासे विहार करनेलगे ॥ ३० ॥ भोगविलाससे निश्चिन्त हो, स्नान कर, मौन हो प्राणायाम किया, रजोगुणरहित सनातन ब्रह्म ज्योतिस्वरूपके ध्यानमें मग्न हो जप तप ध्यान करनेलगे ॥ ३१ ॥ हे परीक्षित् ! उस निन्दितकर्मसे दिति लज्जित हो, अछताय, पछताय, नीचे शिर झुकाय अपने पतिके निकट आकर बोली ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन् ! सर्वजीवमात्रके ईश्वर मेरे इस गर्भका विध्वंस न करें, क्योंकि, सब भूतोंके स्वामी रुद्र हैं उनकी मैंने लज्जा न करी, यह मुझसे शिवका बडा भारी अपराध हुआ है ॥ ३३ ॥ दुःखके दूरकर्ता, भयहर्ता, रुद्रदेव, उग्रतपधारी. सबके फलदायक, मंगलरूप, दयासिन्धु, दुष्टोंके संहारार्थ प्रचण्ड क्रोध करनेवाले श्रीमहादेवजीको मेरा नमस्कार है ॥ ३४ ॥ वे हमारे भगिनीभर्ता, अत्यन्त अनुग्रहकारी, सदाशिव, त्रिपुरारी, कृपासागर, स्त्रियोंके देव, सतीपति, निर्दयीपर भी दया करनेवाले, भूतनाथ मुझपर प्रसन्न होवें ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, अपनी सन्तानका शुभ आशीर्वाद दोनों लोकोंके योग्य चाहनेवाली शरीर जिसका थर २ काँपरहा उस अपनी प्यारी पत्नीसे संध्यावन्दनके नियमसे निवृत्त होकर ॥ ३६ ॥ कश्यपजी बोले कि, हे प्रिया ! तुम्हारे चित्तके अशुद्ध होनेसे सायंकालके दोषसे मेरी आज्ञा का भंग करनेसे देवताओंका अनादर करनेसे ॥ ३७ ॥ हे चण्डी ! हे मंगलरूपिणी ! महा अमंगलरूप ! अत्यन्त अधम अतिभयानक, दो पुत्र तेरे होंगे जो लोकपालसहित त्रिलोकीको जीतैंगे वे संसारके प्राणियोंको दुःख देंगे ॥ ३८ ॥ पराई स्त्रियोंको पकड २ कर ले जायँगे, दीन निरपराधी जीवोंको मारेंगे, संतों और साधुओंको सतावेंगे तब महात्मालोग कोप करेंगे ॥ ३९ ॥ उस समय देवताओंकी पुकार सुन आदि पुरुष अविनाशी सच्चिदानंद विश्वेश्वर भगवान् त्रिलोकपावन क्रोध कर वाराह अवतार धार जैसे पर्वतोंको इंद्रने मारा इस प्रकार मारेंगे ॥ ४० ॥ दिति यह बात अपने पतिके मुखसे सुन अत्यन्त दुःखी होकर बोली, हे स्वामिन् ! मेरा मनोरथ यह नहीं था कि, मेरे पुत्र देवताओंको जीतकर सुरपुरका राज्य पा आनंद भोगैं और देवता, साधु, संत, गो, ब्राह्मण आदिकोंको सतावें, ऐसी पापी संतान होनेसे तो मैं असंतानही भली थी परंतु, एक बातको श्रवण कर मेरे मनमें आनंदभी होता है कि, मेरे पुत्र ऐसे बलवान् होंगे कि, जिनको चक्रायुधधारी उदारबाहुसे साक्षात् अचिन्त्यरूप भगवान् वध करेंगे इससे अधिक और क्या ? परतु मेरे दोनों पुत्रोंको कोई क्रोधी ब्राह्मण न मारे ॥ ४१ ॥ क्योंके ब्राह्मणोंके दंडसे दग्ध सब जीवोंके भयदातापर नरकवासी भी दया नहीं करते वे जिस योनिमें जाते हैं वहां निरादर ही पाते हैं प्रियाके ऐसे असमंजसयुक्त वचन सुनकर ॥ ४२ ॥ कश्यपजी बोले कि, अपने

करे अपराधके विचारनेसे शीघ्र यह कर्म योग्य है, यह अयोग्य है, यह विचारनेसे भगवान्में बहुत मान करनेसे, श्रीमहादेवमें मुझमें बहुत आदर करनेसे ॥ ४३ ॥ तेरे बडे पुत्र हिरण्यकशिपुके पुत्रोंके मध्यमें एक परम ज्ञानी, भक्तजन संतहितकारी, महातपधारी उत्पन्न होगा, जिसका यश परमेश्वरके यशके संग भक्तजन गावेंगे और सब हरिभक्तोंमें उसकी परम पदवी होगी. भागवतोंमें महाप्रतापी, शीलसिन्धु, गुणग्राहक जगत उजागर देवता, दैत्य, जिसका गुण गावेंगे प्रह्लाद उसका नाम होगा जिसका शुद्र यश भगवत्के समान पौराणिक वर्णन करेंगे ॥ ४४ ॥ जैसे दुर्वर्ण कंचन तपानेसे सुवर्ण हो जाता है, उसी भांति निर्वैरादि करके उसके आत्मवत् बननेको अपने शरीरकी साधुजन भावना करेंगे ॥४५॥ जिनकी कृपासे जिनका स्वरूपभूत यह विश्व प्रसन्न होता है, तैसे सर्वान्तर्यामी भगवान् अनन्यदृष्टिसे संतुष्ट होंगे ॥ ४६ ॥ सो महाभागवत महात्मापुरुष महाप्रभाववाले महज्जनोंमें अत्यन्त महान् अत्यन्त अधिकभक्तिसे अनुभव करेहुए अंतःकरणमें श्रीवैकुंठनाथ भगवानको प्रवेश कर इस शरीरका त्याग करेंगे ॥ ४७ ॥ सबसे विरक्त, शीलधारी, सकल गुणभूषण, पराई संपदसे आप प्रसन्न, पराये दुःखसे आप दुःखी संसारमें जिसका कोई शत्रु न होगा,सबका दुःखहर्ता इसप्रकार होगा, जैसे कि,तापको सुधांशु दूर करताहै ॥४८॥ भीतर बाहर निर्मल, कमलनयन अपने भक्तोंकी रक्षासे जो अवतार धारण करते हैं और कुण्डलोंसे मण्डित मुखारविन्द कमलापति कमलनयन लक्ष्मीजी दिन रात निहार २ जिन के चरण कमलको पलोटती हैं; ऐसे परमात्माका दर्शन तुम्हारा पोता करेगा ॥ ४९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, नातीका भागवत होना सुनकर दिति प्रसन्न हुई, और दोनों पुत्रोंकी मृत्यु विष्णुके हाथसे श्रवणकर मनको संतोष देती हुई ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे दितिकश्यपसंवादवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा–पन्द्रहवें अध्यायमें, गये अजढिग सब देव।
अजने सब वर्णन कियो, सनकादिकको भेव ॥

मैत्रेयजी बोले कि, देवताओंकी पीडाकी शंकासे शत्रुओंके तेजका नाशक कश्यपका वीर्य दितिने अतिआनंदपूर्वक सौ वर्षतक धारण किया ॥ १ ॥ उस गर्भके तेजसे त्रिलोकीको विह्वल, और दशोंदिशाओंमें अन्धकार देख सब लोकपाल व देवतागण अत्यन्त दुःखी हो ब्रह्माजीके निकट गये ॥ २ ॥ और हाथ जोड विनती कर बोले, हे समर्थ ! इस अन्धकारको आप जानते हैं जिससे हम सब डरे हुए हैं; दुर्भेद्य भगवान्को कालकरके हम नहीं जानसक्ते ॥ ३ ॥ हे देवदेव ! हे जगत्पितः ! हे लोकेश ! हे शिखामणे ! आप पर अपरलोकस्थ जीवोंके भाववेत्ता हो ॥ ४ ॥ विज्ञानवीर्य मायासे यह देहधारी सब गुण आपने ग्रहण किये, तुम्हारा आदिकारण प्रगट नहीं होता, आप सब जगत्के ईश्वर और अन्तर्यामी हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ५ ॥ आत्माके भावन, आत्मासे

मिलेहुए, सब भुवन सत् असतसे परे जो आप हैं, सो हम आपको अनन्यभावसे भजते हैं ॥ ६ ॥ उन सुन्दर, परिपक्क योगसाधनोंका द्वारा, इन्द्रिय आत्मा जीतनेवाले तुम्हारे प्रसादसे जिनको प्राप्त हुआ; उनका कहीं भी तिरस्कार नहीं होता ॥ ७ ॥ जैसे रस्सीके वश बैल होता है, उसीप्रकार आपकी वाणीरूप रस्सीमें सब प्रजागण बँधकर आपके अधीन हो बलि देते हैं, सो हे सब देवताओंमें मुख्य ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे भूमन् ! तुम हमारा कल्याण करो, और इस अंधकारसे जो सब संसारके कर्म लुप्त होरहे हैं. और हम पर महा आपत्ति है सो आप देवताओंमें मुख्य ईश्वर हमारे सब कष्ट निवारणहारे अत्यन्तदयाकी दृष्टिसे देखनेवाले हो ॥ ९ ॥ हे जगत्पते ! हे नाथ ! यह दितिका गर्भ है, इसमें कश्यपमुनिका पराक्रम झलक रहा है, इसने दशों दिशाओंमें अंधकार करदिया, जिस प्रकार ईंधनमें क्षण २ अग्नि अधिक होती जाती है, इसीभाँति दितिका गर्भ बढता चलाजाता है, इसको निहार २ नये २ भय उत्पन्न होते हैं; दिन रात कुछ नहीं जाना जाता, इससे चित्तको और भी अत्यन्त खेद होता है ॥ १० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे महाबाहो ! विदुरजी ! करतार शब्दके जाननेवाले चतुरानन हँसकर मधुरवाणीसे देवताओंको प्रसन्न करते हुए ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे देवगण ! तुमसे भी प्रथम मेरे मनसे चार कुमार उत्पन्न हुए. सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ये परमेश्वरके पूर्ण भक्त हैं, आकाश मार्ग होकर त्रिलोकीमें सदा निष्प्रयोजन घूमते रहते हैं ॥ १२ ॥ एक समय सनकादिक पवित्रआत्मा श्रीस्वर्गनाथके साक्षात् करनेको वैकुण्ठको जातेहुए, जिस वैकुण्ठको सब नमस्कार करते हैं ॥ १३ ॥ जिस वैकुण्ठके सब पुरुष विष्णुभगवान्के समान चतुर्भुजी हैं. जिससे कोई प्रयोजन नहीं उस निमित्तक धर्मसे श्रीमन्नारायणका पूजन करते हैं ॥ १४ ॥ जिस वैकुण्ठलोकमें आदिपुरुष शब्दमात्रके वक्ता श्रीविष्णुनारायण विराजते हैं, शुद्धसत्त्वमयस्वरूप धारण किये विरजानदीके तीर अपने पार्षदोंको सदा सुख देते हैं ॥ १५ ॥ जहाँ निरन्तर सुखदायक नैःश्रेयसनामक वन है जिसमें सब कामना पूर्ण करनेवाले फलफूलोंसे शोभित सुन्दर २ वृक्ष हैं, यह, बाग षड्ऋतु की शोभासे आठों याम प्रकाशित रहता है. मानो कैवल्य मूर्तिमान् हो विराजमान है ॥ १६ ॥ जिस वैकुण्ठमें श्रीमन्नारायणके सब लोकोंके पापनाशक चरित्र, स्त्रियोंसमेत भगवत्पार्षद विमानोंपर बैठ २ मधुर २ स्वरोंसे गान करते हैं, जहाँकी नदीके जलमें प्रफुल्लित मधुमालती लताओंकी सुगन्धसे जिनकी बुद्धियें तृप्त होरही हैं, उस पवनको तिरस्कारित करते हैं ॥ १७ ॥ कीर, कपोत, कोकिला, सारस, हंस, चकवा, चातक, तीतर, मयूर, बक, चकोरोंका कलरव जब विरामको प्राप्त हुआ तो भृंगराज जो श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका यश गा रहे हैं. वे सब दिव्यरूप हैं, सबके शुद्धसत्त्वमय प्राकृत देह हैं ॥ १८ ॥ कल्पवृक्ष, कुन्द, तिलवृक्ष, रात्रिमें प्रकाश करनेवाले कमल, चंपक, जिनको भवनमें रखनेसे मनुष्य ऋणी नहीं होता; जिसकी छाया पुरुषोंको हस्तीको समान बलदायक वे पुन्नाग, नागकेशर, बकुल, दिनमें प्रकाश करनेहारे कमल पारिजात इन वृक्षोंके पुष्पोंकी सुगन्ध बहुत उडती है, तौ भी

तुलसीके आभरणोंकी सुगन्धसे उस काननमें तपको सब देवता बहुमान करते हैं, सब वैकुंठ पारिजातादि कल्पवृक्षोंसे शोभित है ॥ १९ ॥ श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथके चरणारविन्दोंको नमस्कार करते दीखे हैं, वैदूर्य्य मरकत सुवर्णमय विमानोंसे वैकुण्ठ सघन हो रहा है. ईषत् मुसकानसे शोभित मुखारविन्दवाली नितम्बिनी स्त्रियें श्रीकृष्णमें मन लगनेके कारण उनके भक्तोंको परिहासादिकसे रजोगुण उत्पन्न नहीं करातीं ॥ २० ॥ श्रीलक्ष्मीजी चरणारविन्दमें नूपुरकी धुन करती, लीलाके लिये कमल हाथमें लिये, सब दोष जिससे दूर हों, जिसके लिये ब्रह्मादिक कोटि यत्न करें सो स्फटिकके आलयमें सुवर्णसे जडित श्रीवैकुण्ठमें संमार्जन करती हुई लक्षित होती हैं ॥ २१ ॥ सुन्दर २ वापी तडाग, जिनकी विद्रुमकी सीढी निर्मल जल भरी बावडीपर अपने निजवनमें तुलसीसे दासीसमेत ईश्वरकी आराधना करतीहुई, सुन्दर अलकें, सुन्दरनासिकावारे मुखको देख भगवत्के भोगयोग्य श्रीजी मानती हुई; हे विदुरजी ! उन लक्ष्मीका कैसा सुन्दर प्रताप है ?

कवित्त-जिनको कभी स्वप्नमाहिं मुख नाहिं देखो हमैं, उनहींकी सेवामें आठों याम रहनो परो ॥ जिनको हम, अपराधी व्याधीसम जान रहे, उनहींको कोप नैन नीच कर सहनो परो ॥ दूर २ करत जिन्हें धोरे नाहिं बैठन दियो, उनहींके पाँयनको रात दिन गहनों परो ॥ धन लक्ष्मीजी तुम्हें धन्य आपको प्रताप, मूर्खोंको महाराज महाराज कहनो परो ॥

उस वैकुण्ठको वे लोग नहीं जाते जो पापहारी श्रीवृन्दावनविहारीके चारित्रोंको त्याग कर विषयकी बढानेवाली बुद्धिका विनाश करनेवाली कहानी सुनते हैं. बडे खेदकी बात है कि, भाग्यहीन पुरुषोंने जो कुत्सित कथा सुनी उनके सब मनोरथ नाश होते हैं, कोई उनकी रक्षा नहीं करता और वह नरकमें डाले जाते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ जिस मनुष्य देहको ब्रह्मादिक चाहैं उस मनुष्य गतिको पाय ज्ञानतत्त्वका विषय धर्मसहित जिस देहसे प्राप्त कर जो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका आराधन नहीं करते वे अज्ञानी मूर्ख इनकी मायासे अत्यन्त मोहित हैं यह महाखेद है ॥ २४ ॥ जो देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथकी सेवा कर हमसे ऊपर रहते हैं, और करुणामय शीलस्नेहसे परस्पर सुन्दर २ भगवत्के पवित्र चारित्र चित्तसे वर्णन कर अनुरागवश हो, नेत्रोंसे अश्रुपात बहाते हैं और क्षण २ में शरीर पुलकायमान होता है.

दोहा-वे ही हम सब सुरनके, अहैं शिरोमणि साँच ।
कबहुँ न तिनके तन लगत, नरक अनलकी आँच ॥

ऐसेही ज्ञानी ध्यानी महात्मापुरुषोंको वैकुण्ठधामका वास मिलता है. और देवतालोग उनको प्रणाम करते हैं, और सदा भगवान् वासुदेव नारायणकी लीलाको देख २ मग्न होते हैं, और बारंबार अपने भाग्यकी बडाई करते हैं ॥ २५ ॥ जहां समस्त विश्वके गुरु विराजमान, चौदह भुवनोंमें एक वन्दन करनेयोग्य दिव्य २ विचित्र देवेन्द्रोंके विमानोंकी

अत्यन्तकान्ति उस वैकुण्ठधाममें योगमायाके बलसे जो सनकादिक मुनियोंने कभी प्रथम नहीं देखा था सो वहाँ पहुँचकर परमानंदको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ वहाँकी शोभा देख सनक, सनन्दन अत्यन्त प्रसन्न हुए, जब छः द्वारोंको लाँघ सातवें द्वारपर पहुँचे, तहाँ गदा हाथमें लिये अमूल्यरत्नजडित कुण्डल कानोंमें पहिरे, शीशपर किरीट धरे, सुन्दरवेषधारी श्यामतन, एकसा स्वरूप, समान बैस, द्वारके दो ओर दोनों पार्षद जय, विजय, नामक खडे देखे ॥ २७ ॥ कण्ठमें सुन्दर वनमाला पहिरे, जिनपै मतवाले भौंरोंके झुंडके झुंड गुंजार कर रहे, सुन्दर विशाल भुजा चार मध्यमें धरीहुई दीखें, कुटिल भृकुटी, जैसे अभी कुछ मुखसे बोलें, लाल २ नेत्रोंसे कुछ थोडासा क्रोध किये मुनियोंके मुखकी ओर देखने लगे ॥ २८ ॥ कंचनमें जडित हीरोंके कपाटकी अनुपम शोभा ऐसे पहिले छः द्वारोंको जैसे लाँघते आये, उसी भाँति इनको देखते इस द्वारमें भी वे मुनि घुसने लगे; क्योंकि, सर्वत्र वे अविषम दृष्टिसे, कोई नहीं रोक सकै जिनको कुछ भी भय नहीं निःशंक चले गये, हरिके द्वारपालोंसे कुछ नहीं बूझा; जैसे सरल और लोकोंमें विचरते थे उसी भाँति बैकुण्ठलोकको समझो ॥ २९ ॥ वे पवनआधारी चारों कुमार बुद्धिमान् दीखैं पाँच वर्षकी अवस्था, आत्मतत्त्वके ज्ञाता, रोकनेयोग्य नहीं, उन सनकादिकोंको भगवत प्रतिकूल शीलवान् दोनों पार्षद बेतसे भगवत्के तेजको हँसकर रोकनेलगे ॥ ३० ॥ देवताओंमें सुन्दर पूज्यतम श्रीवैकुंठनाथके द्वारपालोंने उनको बैकुंठ जानेसे निषेध किया,तब अत्यन्त प्यारे श्रीमन्नारायणके दर्शनकी इच्छा भंग होनेसे मनमें दुःखमान क्रोधसे लाल २ नेत्र कर ॥ ३१ ॥ सनकादिक मुनि बोले कि तुम दोनों कौन हो ? जो बडीभारी भगवान्की परिचर्या कर इस वैकुण्ठमें पुरुष आता है जो पूर्णभगवद्भक्त है यहाँ सब वैकुण्ठवासी शीलके सागर और सुखकी राशि हैं, किसीके मनमें अहंकारविकार नहीं है सब वस्तुको इकसार समझते हैं, तुम वैकुण्ठके मध्य ऐसे विषमस्वभाव होकर कैसे बसते हो ? इस वैकुण्ठमें तो प्रशान्त पुरुष श्रीभगवान् वासुदेवके विग्रह दर्शन करनेको भगवद्भक्त विना और कौन आसक्ता है ? जैसे तुम आप कपटी हो, ऐसे औरको भी कपटी समझते हो-

दोहा-कपटी कुमती कल्मषी, कुटिल कठोर स्वभाव ।
तुम पाखण्डी क्रूर हो, कहाँ रहे यहँ आय ॥ ३२ ॥

इस दिव्य त्रिपादविभूतिमें सब विश्व जिसकी कोखमें, सब आत्माओंके आत्मामें धीर पुरुष किंचित् भेद नहीं रखते जैसे आकाशमें आकाशका भेद नहीं होता, इसलिये तुम हरिकेसे वेषधारियोंमें यह भेद कैसे उत्पन्न हुआ ? हमने जाना कि, तुम परमेश्वरके दास नहीं हो, केवल पेट भरनेवाले हो, जैसे पेट भरनेवाला दूसरे उदरपोषकको देख भय मानता है ऐसे ही तुम हो ॥ ३३ ॥ इसकारण श्रीवैकुंठनाथ परमश्रेष्ठ ईश्वरके पार्षद तुम सरीखे मन्दभागियोंका जिसमें कल्याण हो सो हमने करनेका विचार किया है. इस वैकुंठसे तुमलोग उन लोकोंमें जाओ जहाँ भेदभाव दृष्टिसे काम, क्रोध. लोभ. यह पापी रहते हैं येही तीनों इस प्राणीके शत्रु हैं ॥ ३४ ॥ अतिघोर ब्रह्मशाप जो अस्त्रोंके समूहोंसे

निवारण न होसके ऐसा महाघोर शाप मुनियोंके मुखसे श्रवणकर दोनों पार्षद काँपने लगे और अति कायर होकर उन मुनियोंके चरणोंमें गिडगिडाकर गिरपडे और बोले ॥ ॥ ३५ ॥ हे नाथ ! जो दण्ड आपने हमें दिया वह पापयोनि हमें अंगीकार है परन्तु वासुदेवकी अवज्ञारूप हमारा अपराध दूर होजाय चाहे हम नीचसे नीच योनिमें जायँ तो भी हम आनन्द हैं परन्तु आपकी कृपासे भगवत्‌की स्मृतिका नाशक मोह हमको न होय हमने अज्ञानतासे आपको रोका उसका फल तत्काल नेत्रोंसे देखलिया अब हमारा अपराध क्षमा कीजे और कृपापूर्वक यह वर दीजे यह प्रार्थना की.

सवैया-आपतो पातकि पावन हो अब कीजै क्षमा अपराध हमारो।
भूलकै चूक भई हमसे प्रभु जानो नहीं कछु भेद तुम्हारो ॥
शाप नहीं वरदान है ये अभिमान गुमान मिटावन हारो।
ये वर और दया कर दो हरिध्यान कभी बिसरै न बिसारो ॥३६॥

इस प्रकार उसीसमय बडोंके मन मोहनेहारे कमलनाभ भगवान् अपने पार्षदोंसे अपने प्यारे भक्तोंका अपराध हुआ जान परमहंस महामुनि जिन चरणोंको खोजें उन चरणोंसे श्रीमहालक्ष्मीजीसमेत तहाँ आनकर आप उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥ भगवत्पार्षद श्रीनारायणके उपयोगी छत्र चामर लिये भगवान्‌के संग आवें नेत्रोंके सम्मुख हुए अपनी समाधिरूप भाग्यसे हंसतुल्य दो पंखोंके समान सुखदायक पवनसे चलायमान शुक्लचन्द्रवत् छत्रके मोतियोंकी झालरोंसे जलकण झरते हैं ऐसे श्रीवैकुंठनाथका सबने दर्शन किया ॥ ३८॥ सबपर प्रसन्न होनेमें सुमुख चाहने योग्य सुन्दर तेज प्रेमयुक्त कटाक्षसे हृदयको स्पर्श करें, श्याम विशाल वक्षस्थल श्रीजीके शोभित स्वर्गका शिरमुकुट अपने वैकुंठको शोभित करते हैं ॥ ३९ ॥ कटिपश्चाद्भागपर पीताम्बर धारण करे दमकती हुई क्षुद्रघंटिकाओंसे शोभित भ्रमर गुंजार करें ऐसी मनोहर वनमाला धारण किये चार भुजाधारी जिनमें भुजबन्द कडे विराजें, एक हाथ गरुडपर धरे, दूसरे हाथमें कमलको घुमाते ॥ ४० ॥ विद्युच्छटाकी द्युति दूर करनेवाले मकराकृति कुण्डलोंसे सुशोभित कपोल, ऊँची नाक, मनोहर सुन्दर मुख, मणिमय किरीट धारण किये, भुजदण्डके समूहोंके मध्य कंठमें अमूल्य हार, कंधेमें कौस्तुभमणि धारे शोभित हैं ॥ ४१ ॥ श्रीमहालक्ष्मीजीकी सब सुन्दरता भगवत्‌के आगे अस्तश्री दृष्टि आती है, अपने भक्तोंकी बुद्धिसे विशेष करके रचेहुए आभूषण बहुत सुन्दर उनको धारे हैं, भक्त चाहें जैसी सुन्दरता धारण करे हैं, मेरे अर्थ महादेवके लिये और जो कोई भजन करें, उनके निमित्त शरीरधारी होय ऐसे श्रीप्रभु लीलानायक श्रीनारायणको देख दर्शन करते २ दृष्टिसे अतृप्त हो सनकादिकोंने आनन्दसे भगवान्‌के चरणारविन्दोंमें अपने अपने शिर झुकाय नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ कमलनयनके पादारविन्दकी केसरमिश्रित तुलसीके सुगन्धकी वायु नासिकाके छिद्रमें प्रवेश कर ब्रह्मानन्द सेवा करनेवालोंके भी चित्त देहका बहुत क्षोभ करती हुई ॥ ४३ ॥ श्रीवैकुण्ठपतिके बहुत सुन्दर अधरोंकी ललाई कुन्दकली समान जिनमें हास्य ऐसे मनोहर मुखारविन्दको निहार सब आशीर्वादोंको

प्राप्त होकर उनके दोनों चरणोंके लाल २ नख मणिसमानका आश्रय देख निरन्तर हृदयमें सनकादिक ध्यान करने लगे ॥ ४४ ॥ इस संसारमें योगमार्गसे पुरुषोंकी गतियों-को ढूंढें उनके ध्यानयोग्य, बहुत सम्मानित, नयन आनन्ददाता, पुरुषदेह धार दर्शन दे अनन्य सिद्ध औत्पत्तिक अणिमाद्यष्ट सिद्धि सहित श्रीमन्नारायणकी स्तुति करने लगे ॥ ॥ ४५ ॥ सनकादिक बोले कि. हे अनन्त ! जो आप हृदयमें प्राप्त भी हो तौ भी दुरात्मा-ओंको दर्शन नहीं देतेहो सो आप हमारे नेत्रोंके सम्मुख प्राप्त हुए हम आपसे उत्पन्न आप एकान्तमें उपदेश करो रहस्यसे ऐसे पितामह ब्रह्मासे जिस समय कर्णके छिद्रसे जन्में उसी समय अंत:करणमें आय प्राप्त हुए ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! परसे पर आत्मतत्त्वको हम जानते हैं सो वर्तमानसे इन भक्तोंकी क्षण २ में प्रीतिको रचते हैं आपकी कृपासे जानना योग्य है दृढ भक्तियोगसे विगत मुनीश्वर आपको जानते हैं॥४७॥और आपके अत्यन्त प्रसादकी इच्छा रखते हैं; और आपकी भ्रुकुटीसे भयमाननेहारे इन्द्रकी पदवीका भी आदर नहीं करते. हैं हे भगवन् ! आपकी कथा, कीर्तन, तीर्थ, यश होय ऐसे कर्ममें कुशल रसज्ञ तुम्हारे चरणोंकी शरण होते हैं ॥ ४८ ॥ हे भगवन् ! आपके भक्तोंको शाप दिया सो हमारा भले ही नरकोंमें वास होय. परन्तु चित्त भ्रमरसमान सदा तुम्हारे पदपद्मोंमें रमा रहै, तुलसी सदृश आपसे सम्बन्ध रखनेवाली तुम्हारे चरणकी शोभा वाणी कहै, और कर्णके छिद्र आप-के गुणगणोंसे पूरित रहैं ॥ ४९ ॥ हे विपुलकीर्ते ! जो यह रूप आपने प्रगट किया इससे हमारी दृष्टिको अत्यन्त आनन्द हुआ इस कारण आपको वारंवार नमस्कार है. अजितेंद्रियों-को अप्रगट हो तौ भी आप हमारे सम्मुख हो ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम- शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे श्रीवैकुण्ठमाहिमाविप्रशापवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
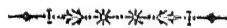
दोहा-सोलहमें हरिसान्त्व सुनि, मुनि मन मानी हार ।
दैत्यदेहपर भी मुनिन्ह, कीन्ही कृपा अपार ॥

ब्रह्माजी बोले, इसप्रकार जब मुनीश्वरोंने जगदीश्वरकी स्तुति की, तब योगाभ्यासी मुनियोंकी अत्यन्त सराहना कर श्रीवैकुण्ठवासी वासुदेव ॥ १ ॥ भगवान् बोले, इन दोनों मेरे पार्षदोंनें आपका अपराध किया, और मेरे धर्मपर कुछ ध्यान नहीं दिया इसकारण ये मेरे भी अपराधी हैं ॥ २ ॥ मेरे अनुवर्ती जो आप हैं. और आपने इनको दंड दिया, यह बहुत अच्छा किया. मेरी भी यही सम्मति है. क्योंकि, जो लोग विप्रोंका अनादर करते हैं वे मुझको भी प्रिय नहीं लगते ॥ ३ ॥ ब्राह्मण मेरे परमदेवता हैं. और सदा मेरा चित्त ब्राह्मणोंके चरणोंमें रहता है, मेरे इष्टदेव ब्राह्मण हैं इसलिये आपको मैं प्रसन्न करूँगा, क्योंकि, हमारे पार्षदोंने जो आपका अपराध किया है, सो मैंने ही किया है इसकारण मैं अपने शिर धरता हूँ ॥ ४ ॥ कि जिसके अनुचर अपराध करते हैं, तो लोक उसके स्वा-मीको ही दोष देते हैं उनका नाम कोई नहीं लेता.

दोहा-जैसे इन्द्रिय करत हैं, विषयविवश अपराध।
पै ताके संबन्धसों, होत जीवको व्याध ॥

असाधुवाद सब कीर्तिका नाश करता है. जैसे श्वेतकुष्ठका रोग सब शरीरको बिगाड- देता है ॥ ५ ॥ जो मुझ श्रीमन्नारायणका सुधासागर समान निर्मल यश श्रवणमें स्नान करना जगत्के श्वपचपर्यन्तको क्षणमात्रमें पावन पवित्र करे है यह सब ब्राह्मणोंकी ही सेवाका प्रताप है. और यह कीर्ति और वैकुण्ठकी पदवी आप ही लोगोंके प्रसादसे प्राप्त हुई, इसकारण तुम्हारी वृत्तिके विपरीत जो हमारी भुजातुल्य इन्द्रादि हों तौ भी उस समय हम मारडालैं कुछ विचार नहीं करें ॥ ६ ॥ जिन ब्राह्मणोंकी सेवा करके मेरे चरणकी पवित्र रजसे शीघ्र सब पाप नष्ट होते हैं, ब्राह्मणोंकी ही सेवा करके यह शील और बडाई विरक्तता मुझको प्राप्त हुई और इसीकारण लक्ष्मी मेरा त्याग नहीं करती, जिस लक्ष्मीके लवमात्र अनुग्रहसे ब्रह्मादिक नितनये नियमोंको करते हैं ॥ ७ ॥ यज्ञमें यजमानकी चरुपुरोडाशादि हवि, अग्निमुखसे भोजन करती है ऐसे मैं भोजन नहीं करता हूँ. जैसा घृत टपके ऐसा मोहनभोगादिक ग्रास २ में रसका स्वादपूर्वक भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके मुखसे हम पाते हैं, और निज कर्मफलोंसे मैं उनपर प्रसन्न होता हूँ ॥ ८ ॥ जिन ब्राह्मणोंके चरणारविन्दके निर्मल रज अखण्ड अकुण्ठित योगमायाका वैभव मैं किरीटोंपर धारण करता हूँ, उन ब्राह्मणोंका अपमान कौन कर सक्ता है ? मेरे चरणोंका धोवन गंगाजी शिवसहित सबको पवित्र करती है ॥ ९ ॥ मेरे शरीरके सब कामपूरक मेरे ब्राह्मण जिनका मेरे विना कोई रक्षक नहीं जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जो भेदबुद्धिसे देखते हैं उनकी पापसे नष्ट दृष्टि है. ऐसे ब्राह्मणद्रोहियोंको मेरे दंडदाता यमके सर्पवत् क्रोधी गीध रोषपूर्वक चोंचोंसे छेदन करते हैं ॥ १० ॥ और जो कठोरभाषी ब्राह्मणोंको ईश्वरकी समान पूजते हैं और हृदय जिनके तुष्ट स्मितसुधासिक्त पंकजसे मुखवाले प्रेमशोभित वाणीसे स्तुति करते हैं, मानो वे मुझको संबोधन करते हैं, उन्हीं महात्मापुरुषोंने मुझको वशमें कर रक्खा है जैसे भृगुजीने मेरे हृदयमें लात मारी तब मैंने कुछ नहीं कहा, उसी भृगुलताके चिह्नसे ऋषिमुनियोंमें मेरी प्रतिष्ठा हुई ॥ ११ ॥ और विप्रोंकी ही सेवासे मेरा नाम त्रिलोकीनाथ हुआ और उन्हींके प्रतापसे आजतक रणमें हार नहीं मानी. और इन्हींके प्रतापसे बडे २ अभिमानी दैत्य और राक्षसोंका संहार किया अग्नि और ब्राह्मण मेरे मुख हैं, विप्रोंके भोजन करनेसे और अनलमें हवन करनेसे मेरी तृप्ति होती है; ब्राह्मणोंकी ही कृपासे मेरा चरणोदक ब्रह्माने कमण्डलुमें लिया. वह शिवने शीशपर धारण किया और उसीका नाम त्रिलोकपावनकारिणी, अधमोद्धारिणी श्रीगंगा महारानी जगतसुखदानी हुआ, सो गंगा कैसी सुखदानी है-

कवित-विघन विनाशै भवपाश होत नाशै भाशै नाशै, पुण्यपुञ्जकी प्रकाशै रंग रंगाके ॥ सुखकी समाजै छपराजै साज छाजै क्षिति-घनसे गराजै राजे शीश ईश नंगाके ॥ कहै पदमाकर सुजानै कर ज्ञानै, जानै

तानै मनमानै भोग आनै देव अंगाके ॥ सुन्दर सुभंगा नित अमित अभंगा आछे, ओघभंगा राजत तरंगा देविगंगाके ॥

ऐसी परममनोहर सदा अपने शीशपर धारण करता हूँ, क्योंकि, इनके ही प्रसादसे सब ऐश्वर्य मुझको प्राप्त हुए. इसी रजके प्रभावसे विश्वको रचा, इसी रजके प्रभावसे विष्णु हो सृष्टिकी रक्षा की, इसी रजके प्रभावसे शिव हो संसारका संहार किया.

दोहा-विप्रनकी सेवा किये, भये अनँत मम नाम।
कमलासी वामा मिली, औ सुरपुरको धाम ॥
जिस चंचलसुकटाक्ष हित, विधि शिव बहु तप कीन।
सोइ रमा द्विजकी कृपा, निशिदिन मम आधीन ॥

ब्राह्मण मेरा शरीर है जो धीर पुरुष हैं वे इसमें अंतर नहीं समझते और जो लोग ब्राह्मणोंमें और मुझमें भेद समझते हैं वे अभागे यमपुरके भागी होते हैं. जन्मानुजन्म नरकमें वास करते हैं, सो इन पार्षदोंने मेरे अभिप्राय और मेरे प्रभावको नहीं जाना, ये दोनों पार्षद तुम्हारे अपराधकी उचित गतिको शीघ्र प्राप्त होकर मेरे निकट आवेंगे, यह मेरी कृपा है कि, मेरे भृत्योंको थोडे ही काल विवास (अन्य स्थानमें वास) रहे,

चौ०-मोर विरह सहि सकिहैं नाहीं। जेते दिन रहि हैं जगमाहीं१२॥

ब्रह्माजी बोले कि, सुन्दर प्रकाशित ऋषिकुलयोग्य विष्णुकी मनोहर वाणी सुनकर क्रोध सर्पसे डसे हुए ऋषियोंका आत्मा तृप्त न हुआ ॥ १३ ॥ सुन्दर, श्रेष्ठ, थोडे, अक्षर, अधिक गंभीर, अत्यन्त गौरववाली,भगवान्की वाणी कानसे सुने परन्तु उसका अभिप्राय न समझे कि,श्रीवैकुण्ठनाथकी इच्छा क्या है ? हमारी बडाई करते हैं, या बुराई करते हैं. अथवा हमारे शापको छुटाना चाहते हैं. वा अधिक किया चाहते हैं ॥ १४ ॥ योगमाया और ब्राह्मणोंका महा उदय जान हाथ जोड प्रसन्नवदन रोमांचित ॥ १५ ॥ सनकादिक ऋषि बोले कि, हे भगवन् ! हे देव ! हे आनंदमूर्ते ! तुम्हारे करनेकी इच्छाको हम नहीं जानते. आपने हमपर बडा अनुग्रह किया, जो हमें दर्शन दिया; और हमसे बोले ॥ १६ ॥ हे नाथ ! आप निश्चय करके ब्रह्मण्य हो आपके परम देवता ब्राह्मण हैं, आप देवताओंके देव आत्मादेव हैं ॥ १७ ॥ सनातन धर्म आपसे ही है, आप ही अवतार धार संसारकी रक्षा करते हैं. और परमगुप्त धर्मके निर्विकाररूप आप ही हैं ॥ १८ ॥ निवृत्तिमार्गमें लगेहुए योगीजन जिनके अनुग्रहसे अनायास तर जाते हैं, सो आप परसे पर जो हैं वे भी अनुग्रह करते है ॥ १९ ॥ जो लक्ष्मी क्षण २ आपके चरणोंकी सेवा करती है, और धनार्थी सब उन पदोंकी रजको शीशपर धारण करते हैं और धनियोंसे अर्पित तुम्हारे चरणारविन्दमें तुलसीकी नवीन मालाके धाम भ्रमरपंक्तिकी नाईं वैकुण्ठकी इच्छा श्रीजी सदा करती हैं ॥ २० ॥ एकान्तचारित्रवालोंसे अनुवर्तमान श्रीजीको आप अत्यन्त सादर नहीं करते हो, परन्तु परमभागवतोंमें तुम्हारा प्रसंग ब्राह्मणोंके मार्गका पुण्यरजसे पुनीत हो श्रीवत्सचिह्न भृगुलताका चिह्न धारण कर तुम सब ऐश्वर्यके पात्र हुए ॥ २१ ॥ आप

अपने धर्मके तीनों युगोंमें तप, शौच दया, तीनों चरणोंसे चराचर इस विश्वको ब्राह्मण देवताओंके लिये निश्चय धारण करते हो, और उनके घातक हमारे रज, तमको सब वरदायक तनुसे आप दूर करते हो ॥ २२ ॥ हे प्रभो! आपके रक्षायोग्य उत्तम ब्राह्मणोंके कुलोंकी जो अत्यन्त पूजन करके कोमलवाणीसे आप द्विजोत्तमोंकी रक्षा न करते, और मर्यादा न बाँधते, तो कल्याणरूप आपका नष्ट हो जाता, श्रेष्ठपुरुष जो कार्य करते हैं उनका प्रमाण सब लोग मानते हैं, सो गीतामें लिखा है कि, "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते" ॥ २३ ॥ अत्यन्त शुद्ध सत्त्वमय, क्षेमविधान करनेको जीवोंके लिये अपनी शक्तियोंसे जिन्होंने धर्मप्रतिपक्षी दूर किये हैं आपको ब्राह्मणोंका पूजन करना योग्य ही है, त्रिगुणमायाके स्वामी विश्वभर्ताका तेज कुछ ऐसी बातोंसे नष्ट नहीं होता; आपका नमस्कारादिक करना भी एक आनद है ॥ २४ ॥ हे अधीश! इन दोनोंको और दंडविधान करो अथवा कोई कपटरूप वृत्ति इनसे करानी चाहिये, और जो हमारे योग्य उचित दंड हो सो हमें दीजिये; जो निरपराध पार्षदोंको हमने शाप दिया ॥ २५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्राह्मणो! ये दोनों असुरयोनिको प्राप्त होकर फिर शीघ्र ही मेरे समीप आवेंगे, क्रोधावेश समाधिबन्धनके योगका यही फल है, इनको आपने कुछ अनुचित शाप नहीं दिया. वरन् मैंने ही आपके द्वारा इनको शाप दिलवाया है, हे ब्राह्मणो! आप तो सब जानते हो ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी बोले कि सनकादिक सब मुनिजन नेत्रानंदपात्र श्रीवैकुण्ठनाथ और वैकुण्ठलोक, स्वयंप्रकाश स्थान देखकर ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्की प्रदक्षिणा दे प्रणाम कर, आज्ञा ले वैष्णवी श्रीशोभाकी प्रशंसा कर परमानन्दित हो चले गये ॥ २८ ॥ तब उन दोनों पार्षदोंसे श्रीलक्ष्मीनाथजी बोले कि, तुम कुछ भय मत करो. तुम्हारा सब प्रकारसे आनंद होगा. तुम्हारा संताप देख यद्यपि मैं ब्रह्मतेजको दूर कर सक्ता हूं परन्तु यह मुझको उचित नहीं और कुछ मेरे मनमें भी लीला करनेकी है. तुम मृत्युलोकमें जाकर राक्षसतन धार देवताओंको अद्भुत दीखे ऐसी करनी करो; जब, ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादिक देवता मेरे निकट आनकर पुकार करेंगे. तब मैं अवतार धार तुम्हारा संहार करूँगा तब फिर तुम वैकुंठलोकमें आनकर निवास करोगे, और तुम्हारा सब शोक समाप्त होजायगा, इस प्रकार दोनों द्वारपालोंको समझाय बुझाय श्रीरमारमण रमासहित अपने मन्दिरमें चलेगये, और कहीं ऐसी भी कथा है कि. किसीसमय लक्ष्मीजी नाथके चरण दाबते २ कोमल भुजाओंको निहार मनमें यह विचार करनेलगीं कि, देखनेमें तो ये भुजा अत्यन्त कोमल दृष्टि आती हैं, इन भुजाओंसे महाघोर रूप राक्षस किस प्रकार मारे जाते होंगे? वा उनका मारनेवाला कोई और है इन भुजाओंमें तो मुझको कुछ ऐसा पुरुषार्थ नहीं जान पडता. श्रीलक्ष्मीवल्लभ अन्तर्यामीने कमलाके मनका संदेह जान अपना पुरुषार्थ लक्ष्मीजीको दिखानेके लिये यह विचार विचारा कि, मेरे बलका सँभालनवाला जयविजयके अतिरिक्त और कोई नहीं है; दूसरेकी क्या सामर्थ्य है? जो मेरे बलको सह सके और मुझसे युद्ध करे, इसकारण

इन दोनोंका दैत्यकुलमें जन्म होना चाहिये, जो हमारे परम शत्रु हैं, इन दोनोंसे संग्राम कर अपनी भुजाओंका पुरुषार्थ लक्ष्मीजीको दिखाऊँ. यह शोच समझ जय विजयका ज्ञान हरलिया और सनकादिकमुनियोंके हृदयोंमें क्रोधकी प्रेरणा कर शाप दिलवाया, इसी कारण जय विजयने दैत्यकुलमें तीनबार जन्म लिया दूसरा सिद्धान्त यह है कि, यद्यपि सनकादिकोंको क्रोध कभी नहीं होता था और न विष्णुके पार्षदोंको ब्राह्मणोंसे प्रतिकूलता थी, न कभी उन्होंने भगवत्भक्तोंका अनादर किया, और न वैकुण्ठवासियोंका पुनर्जन्म होता है; ये सब परमेश्वरके कर्तव्य हैं, जिस समय जैसी इच्छा होती है वैसा ही बानक बन जाता है, जिस समय भगवान्को युद्ध करनेकी इच्छा हुई तो अपने समान कोई बली न जानपडा तब अपने पार्षदोंको अपने तुल्य बली जान यह विचार किया कि, दोनों ये हमारे प्रतिपक्षी हों तो पूर्णयुद्धका समागम बने. यह विचार कर दोनोंकी बुद्धि विपरीत करदी. और सनकादिकोंके हृदयमें क्रोध उत्पन्न कर जय विजयको शाप दिलवा. दैत्यरूप बना अपना कार्य सिद्ध कर लिया, यहाँ लिखनेका तो बहुत कुछ विचार था, परन्तु ग्रंथके अधिक विस्तार होनेके कारण सिद्धान्तमात्र लिखाहै. वे परमात्मा सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द अचिन्त्यरूप. अव्यक्त, अविनाशी, ईश्वर हैं ॥ २९ ॥ जब हम उपरामको प्राप्त हुए तब आनंदसे क्रोधित होकर श्रीलक्ष्मीजीने प्रथम ही कहा था कि, सनत्कुमारादिक मुनि द्वारपर आवेंगे और उनको जय विजय पार्षद रोकेंगे ॥ ३० ॥ हे पार्षदो ! अपने क्रोधके योगसे ब्राह्मणोंके शापसे मोक्ष पाकर थोडे कालमें मेरे समीप आओगे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दोनों द्वारपालोंको समझायबुझाय विमानोंकी पंक्तियोंसे शोभित सबसे सुन्दर श्रीलक्ष्मीजीसमेत श्रीवैकुण्ठनाथने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वे दोनों पार्षद पवित्रात्मा महादुस्तर हरिलोकसे विप्रोंके शापसे महाविस्मयको प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ हे पुत्रो ! जिस समय वे वैकुण्ठसे गिरे तो विमानों के आगे महा हाहाकार हुआ ॥ ३४ ॥ वे ही दोनों विष्णुके पार्षद दितिके उदरमें कश्यपजीके महातेजरूप प्रविष्ट हैं ॥ ३५ ॥ उन दोनों असुरोंके तेजके आगे तुम लोगोंके तेजका तिरस्कार होगया इसी कारण संसारमें तुम्हें अंधकार दिखाई देता है, अब तुम उनहीं वैकुण्ठनाथका भजन करो; वे ही श्रीनाथ; भक्तहितकारी दीनवत्सल, दीनानाथ, तेजरूप तुम्हारे तेजको बढावेंगे ॥ ३६ ॥ विश्वकी उत्पत्ति स्थितिका हेतु उनकी मायाका योग आद्ययोगी स्वरोंसे न जाना जाय, वे ही आदि पुरुष अविनाशी सर्वशक्तिमान् भगवान् वासुदेव तुम्हारा क्षेम करेंगे, हमार विचारसे क्या होगा ? वे त्रिगुणोंक स्वामी हैं.

दोहा-जाहु गमन कर धीर धर, बसहु आपने धाम ।
देखहु श्रीपतिको चरित, सिद्धि होहिं सब काम ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे वैकुण्ठनाथकर्तृकवैकुण्ठब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-इस सत्रह अध्यायमें, सुमिर रमापति कांत।
हिरणकशिपु हिरणाक्षको, वरणौं जन्मवृतान्त॥

मैत्रेयजी बोले-

दोहा-सुन चतुराननके वचन, सकल देव तज शंक।
गये भवन यह कहत सब, को मेटहि विधिअंक॥

दितिके गर्भका सर्व वृत्तान्त और ईश्वरके अवतारकी कथा सुन सब देवता अपने २ स्थानको चलेगये ॥ १ ॥ दितिने सौ वर्षतक गर्भ धारण किया परन्तु पतिके वचनोंसे पुत्रोंकी ओरसे शंकित रहती थी; जब शतवर्ष पूरेहुए तब सती साध्वी दितिने दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ उनके जन्म लेतेही धरती व आकाशमें अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे ॥ ३ ॥ पर्वतों सहित भूचाल होनेलगा, दशों दिशाओंमें अग्निसी प्रज्वलित होगई. उल्कासहित जहां तहां वज्रपात होनेलगे, आर्तिके हेतु केतुका उदय हुआ ॥ ४ ॥ बारंबार सर्पवत् फुंकार करतेहुए चारों ओरसे महाभयंकर पवन चलने लगे, उस महाप्रचंड समीरके वेगसे वृक्ष जडसहित उखड २ पक्षियोंकी तुल्य उडनेलगे ॥ ५ ॥ मूसलधार जलसे और दामिनीकी द्युतिसे सूर्यकी संपूर्ण प्रभा नष्ट होगई, आकाशमें ऐसा अँधियारा था कि कोई स्थान नहीं दृष्टि आते थे ॥ ६ ॥ समुद्रके वारिमें महाघोर शब्द उठने लगे वे लहरें उछलने लगीं. जिससे मकरादिकोंका चित्त चलायमान होगया. वापी, कूप, तडाग, जिनमें पंकज खिल रहे, गंभीर नीर झकोर रहे सो सब सूख गये, अथाह नदियें चलायमान होगईं, सूर्यचंद्रमामें मण्डल दिखाई देनेलगे ॥ ७ ॥ बारंबार विना बादल गर्जन शब्द सुनाई आनेलगा. राहु, केतु सूर्यचंद्रमाको विनाही योग हुए ग्रसनेलगे. पहाडोंमें रथकेसा शब्द होनेलगा ॥ ८ ॥ शृगाल उलूक दिनमें ही महाभयंकर शब्द करनेलगे, और गीदडी ग्रामोंके भीतर आन २ मुखसे भयंकर अग्नि उगलनेलगीं. और अति डरावनी बोली बोलने लगीं. अग्निका तेज मंद पडगया ॥ ९ ॥ सारंगीकेसा शब्द ऊपरको मुख उठाउठाकर और नेत्र बंद कर २ अनेक २ प्रकारकी वाणी श्वान बोलनेलगे ॥ १० ॥ हे विदुर !-

दोहा-खरखुरतें खोदत मही, करत भयंकर शोर।
यूथ बाँधिके धरणिमें, धावत हैं चहुँ ओर॥

उनके चिल्लानेका शब्द सुन २ कर हृदय विदीर्ण होता था ॥ ११ ॥ गधोंके रेंकनेके भयानक कोलाहलसे पक्षी भयभीत हो खोतोंसे गिर २ कर घरोंमें वनमें विष्ठा मूत्र बारंबार करने लगे ॥ १२ ॥ त्रासके मारे गायोंके थनोंसे रुधिर बहनेलगा. बादलसे पीव और राधकी वर्षा होनेलगी; देवताओंकी प्रतिमायें मन्दिरोंमें रुदन करने लगीं, विना पवन वृक्ष उखडनेलगे ॥ १३ ॥ पुण्यतम नक्षत्रगण, गुरु, बुध, आदि ग्रहोंकी दीप्ति, और क्रूर मंगलादिक वक्रगतिसे विपरीत चालद्वारा परस्पर युद्ध करनेलगे ॥ १४ ॥ उस तत्त्वके न जाननेवाली प्रजा अनेक २ उत्पात देखकर आह मार प्रलयकाल समझ अत्यन्त शोक करनेलगी; परन्तु ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंने कुछ भय नहीं माना ॥ १५ ॥

वह आदिदैत्य बलपूर्वक अपने पुरुषार्थको प्रगट कर २ पाषाणसम शरीरसे पर्वतकी भांति बढनेलगे ॥ १६ ॥

नाराच छन्द ।

विशालभालऔकरालरालबाल सोहते।अखण्ड बोझ दोरदंड ब्रह्मअंडपोहते
अमन्दरत्नवृन्दयुक्तअंगदौ विराजते । विलोकश्याममेघसोशरीरदेवभाजते ॥
प्रतप्तहेमरत्नकोजडोमहाविकाशहै।किरीटकोटिनोककोत्रिलोकलौंप्रकाशहै
गिरीन्द्रकन्दरैसमानकानहूमहानहैं।महाप्रकाशनैन ज्यों प्रलैसमान भान हैं
चलैं स्वभावतैं पदैं धरैं धरा धरक्कती।फणीशशीश बारबार भारसोंफरक्कती
भुजानके प्रमान वे महान हैं दिशानलों।दुहूनकोशरीरभासमानआसमानलों
अनेक गर्भ गाजके गराजके पराजते।समाजते समेत मेघराजभूरिलाजते॥
दलैसमेतदेखिकैडरातदेवराजहै।लवालुकातज्योंविलोकिकैबलीन्द्रबाजहै ॥
मनो अनन्त विश्वको तुरन्तही ग्रसन्तहै।मनोसमुद्रसातहूनपानकेकरन्तहै॥
मनो महानमंदरैप्रवेगसोंउखारहीं।मनोकृशानु कोपतैंत्रिलोकओकजारहीं ॥
करालकालमीचहूनगीच्चनाहिंजातहै।अशेष जीवदेखिकेविशेषकैडरातहैं ॥
पसारि पाणिपौनओनचासहूनरोकहीं।अपारतारतोरिकैमनोपतालझोकहीं॥
विलोकिदोउदैत्यभीतदेवताकहैं मने ।भये न होयँगेनहैं इन्हैंसमानजीवने ॥
कृशानुभानुशीतभानुदेखिभानुभूलिगे।दिशानकेगजानसोंसभूरिभारतूलिगे
विशालवक्षवज्रसे लसंत वज्रमालहै।सुवज्रपाणिवज्रकीनत्रासर्वकालहै ॥
पतालसे महानजासु आनने भयावने।विलोकिकैतिन्हैंपरैत्रिलोकमेंपरावने॥

जिनके सुवर्णके किरीटका अग्रभाग स्वर्गका स्पर्श करता था. इससे सब दिशाओंको अवरोध किये दमकते बजुल्ले भुजाओंमें पहिरे, चरणोंसे पृथ्वी कँपाते, सुन्दर तगडीशोभित कमरसे सूर्यको उल्लंघन कर स्थित हुए (अर्थात् कोंधनीका चमक सूर्यप्रभासे अधिक थी) ॥ १७ ॥ प्रजापति कश्यपजीने उन दोनोंका नामकरण किया, जो कि पहिले कश्यपसे ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम प्रजागणने हिरण्यकशिपु कहकर पुकारा, और जो दितिसे पहिले उत्पन्न हुआ उसका नाम हिरण्याक्ष कहनेलगे. यह भाव है कि "जिस समय वीर्य योनिके पुष्पमें प्रवेश करता है तौ वीर्य दो भागसे होकर पहिले पीछे होकर प्रवेश करता है तब यम (दोगर्भ) होते हैं फिर वे दोनों गर्भ माताके पेटसे, दूसरे क्रमसे निकलते हैं. अर्थात् जो विन्दु गर्भाधानके समय प्रथम योनिके पुष्पमें पडता है, उस विन्दुका गर्भ माताके गर्भाशयसे पीछे निकलता है और जो बिन्दु योनिपुष्पमें पीछे गिरता है उसका गर्भ पहिले निकलता है" सोई पिण्डसिद्धिमें कहा है कि " यदा विशेद्विधाभूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत् । द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेशविपर्य्ययात् ॥ १ ॥ अर्थ-जिस समय गिरताहुआ वीर्य और पुष्प (रज) दोभागसे होकर गर्भाशयमें प्रवेश करता है तौ दो गर्भ होते हैं और जन्म दूसरे क्रमसे होता है ॥ १८ ॥

हिरण्यकशिपुने अपनी भुजाओंके बलसे और ब्रह्माके वरदानसे त्रिलोकीके लोकपालों-को अपने वशमें करलिया, वे बडे भारी बलवान् सबसे अवध्य योधा हुए ॥ १९ ॥ हिरण्याक्ष उसका प्यारा भाई दिनरात उससे प्रीति रखता; वह गदा हाथमें लेकर स्वर्गमें गया. और युद्धकी इच्छासे किसी रणधीरको खोजनेलगा ॥ २० ॥ वह असह्यवेग शब्दायमान सुवर्णके नूपुर वैजयन्ती माला पहिरे, और कन्धेपर महाभयानक गदा धरे ॥ ॥ २१ ॥ शूरता और बलसे वढाहुआ अभिमान, जिसपर कोई अंकुश नहीं जो किसीका भय न माने, उनके भयसे देवता लोग कंदराओंमें जा छिपे, जैसे गरुडके भयसे उरग बिलोंमें घुस जाते हैं ॥ २२ ॥ दोनों भ्राताने अपने तेजसे देवताओंको भागे जान फिर दैत्यराज इंद्रसमेत देवगणोंको देखकर अत्यन्त गम्भीरनाद करनेलगे ॥ २३ ॥ वहाँसे लौट क्रीडाकी इच्छाकर गम्भीर शब्द करके महाबली मत्तहाथीकी सदृश समुद्रमें घुसकर स्नान करने लगे ॥ २४ ॥ इनके जलमें घुसतेही वरुणके सेनापति जलके गण अधीर बुद्धिवाले भ्रमसहित उनके तेजसे ताडित हो घवराये हुए वहुत दूरको भागगये ॥ २५ ॥ हे तात ! वे दोनों महाबली अनेक वर्षतक पवनप्रेरित सागरकी लहरोंको बारंबार लोहेकी गदासे मारते थे, और जल उछल २ आकाशको जाता था, उसके वेगसे नभचर अधीर हो २ कर नीरमें पतित होते थे. और जलमें गदा लगनेसे जलचर व्याकुल हो २ कर अपने प्राण छोडते थे; इसप्रकार जलविहारकर प्रचेतावरुणकी विभावरी नाम्नी पुरीको गये ॥ २६ ॥ वहाँ जाकर असुरलोकपालक जलके गणोंके ऋषभ प्रचेताको प्रणाम कर मुसकाकर हँसे, और नीचोंकी नाईं बोले हे अधिराज ! हमसे युद्ध करो ! ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! तुम सब लोकपालोंके स्वामी महायशस्वी दुर्मदवीरमानियोंके पराक्रमनाशक हो सो आपने प्रथम सब दैत्यदानवोंको जीतकर राजसूय यज्ञ किया था ॥ २८ ॥ सो इस प्रकार अत्यन्त मदसे वैरसे भगवान् जलके पति हँसाये गये तब वरुण बहुत उठेहुए क्रोधको अपनी बुद्धिसे शान्तकर बोले कि हे दैत्येन्द्र ! अब तौ मैं युद्धादिककी सब कुशलता छोडकर भगवत्के भजनमें सदा लौलीन रहता हूँ मैं तुम्हारी समान योद्धा नहीं हूँ-

दोहा-युद्ध करन जानूँ कहा, मैं तौ हूँ जलनाथ।
प्रथम सुनत तब आगमन, भज्यो इन्द्रके साथ ॥ २९ ॥

हे असुराधिप ! पुरातन पुरुषसे अधिक रणविद्यामें चतुर और दूसरा कोई मुझको दृष्टि नहीं आता वे संग्राम करनेमें बडे विचक्षण हैं, वेही आपका मन संतुष्ट करेंगे, आप उनके पास जाइये, आपसरीखे मनस्वी सदा उनकी स्तुति करते हैं ॥ ३० ॥ उन महावीरके समीप जा गर्व नष्टकर रणभूमिमें श्र्गालकुत्तोंके मध्यमें तुम सोवोगे, जो परमात्मा तुम संरीखे असतोंके नाशार्थ सज्जनोंके ऊपर कृपा करके-

दोहा-तुमहीसे बलवानको, खंडनहेत खरारि।
तनु अनेक धारण करत, धराधर्म धुर धारि ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्षहिरण्यकशिपूत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा-अष्टादश अध्यायमें, दैत्यराज है क्रुद्ध।
जाय रसातलमें कियो, श्रीवराहसों युद्ध ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! वरुणके दीन वचन सुन महामनस्वी अभिमानी हिरण्याक्षने वरुणको कुछ वस्तु न मानकर नारदजासे बूझा कि वाराहजी कहाँ रहते हैं? नारदजी बोले कि श्रीवाराहभगवान् रसातलमें वास करते हैं. नारदजीके बचनका विश्वास मान हिरण्याक्षने अतिद्रुतगतिसे पातालमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ तहाँ सब ओरसे जीतनेवाले, धराधारी, डाढके अग्रभागपर पृथ्वीको धर ऊपरको उठाये लाते थे, अपने नेत्रोंकी लाल २ शोभासे दैत्योंके तेजको दूरसे नाश करनेवाले श्रीवाराहभगवान्को देख हिरण्याक्ष हँसकर बोला, कि वनवासी सूकर तुमहीं हो. दूसरा अर्थ--इस स्तुतिमें सरस्वती करती है. वनगोचर मृग जलशायी; जिन्हें योगिजन खोजते हैं ॥ २ ॥ फिर हिरण्याक्ष बोला कि ब्रह्माने यह पृथ्वी हमको समर्प्पण करदी है सो छोडदो. तुम अज्ञानी हो. दूसरा अर्थ यह है; हे सर्वज्ञ ! हे सुराधम ! हे सुरोत्तम ! हे सूकराकृते ! मेरे सम्मुख इस पृथ्वीसमेत तुम मंगलको प्राप्त न होसकोगे ॥ ३ ॥ हे परोक्षजित ! तुम हमारे सपत्नोंके नाशार्थ उत्पन्न हुए हो, सो तुम मायासे असुरोंका संहार करते हो. हे चतुर ! तुम्हारा बल योगमाया है सोभी थोडा है, अब मैं तुमको मारकर अपने सुहृदोंका शोक दूर करूंगा ॥ ४ ॥ तुम्हारे शिरको तोडनेवाली मेरी भुजा जब गदासे तुम्हारा मस्तक चूर्ण करेंगी; फिर जो तुम्हें भेट देनेवाले ऋषि व देवता हैं वे स्वयंही निर्मूल होजायँगे ॥ ५ ॥ शत्रुके दुष्ट वचनरूप शस्त्रोंसे व्यथितशरीर डाढके अग्रभागसे पृथ्वीको भीत देख उसके बुरे वचनोंको मृषा मान जलसे बाहर निकले, जिसप्रकार ग्राहोंसे मार खाकर हस्तिनी सहित गज निकलता है ॥ ६ ॥ सुवर्णके रंगसमान थाल, डाढ महाकराल, वज्रके समान शब्दयुक्त विकटरूप वाराहजीको जलसे निकलते देख हिरण्याक्ष उनके पीछे धावमान हुआ. यथा गजराजके पीछे मगर दौडता है, और बोला कि, अरे निर्लज्ज ! दुष्टोंको कौनसा कर्म निन्दित है ? ॥ ७ ॥ ब्रह्मा जिनकी स्तुति कर रहे और देवता जिनपर फूल बरसा रहे थे ऐसे वाराहजीने जलपर पृथ्वीको धरकर उसको अपनी आधाररूप शक्तिसे स्थित किया ॥ ८ ॥ वाराहजीके पीछे गदा हाथमें लिये, सुवर्णके आभूषण पहिरे वह सोनेहीका कवच धारणकिये और खोटे वचनोंसे वारंवार हृदयमें पीडा देता हुआ चलाआता था, उस हिरण्याक्षसे प्रचंड क्रोधवाले वाराहजी हँसकर बोले ॥ ९ ॥ श्रीभगवान्जी बोले हिरण्याक्ष ! तू सत्य कहता है हम वनवासी सूकर हैं परन्तु तुझसरीखे श्वानोंको खोजते फिरते हैं, रे अभद्र ! जो मृत्युरूप पाशमें बँधे हुए हैं उनके कुवचनोंको कभी धीरलोग ग्रहण नहीं करते ॥ १० ॥ यह तैंने सत्य कहा कि यह धरती तेरी है सो रसातलवालोंकी धरोहरके पचानेवाले हमहीं हैं, जब देखा कि भागनेसे निस्तार नहीं तब तुम्हारे सम्मुख समुद्रके तीर अब संग्राममें स्थित होगये क्योंकि तुझसरीखे वीरोंसे वैर बिसाहके भागकर हम कहाँ जायँगे ॥ ११ ॥ तुम पदाति रथियोंके स्वामी

हो, यूथपोंकेस्वामी हो, अब तर्क और विवादको तज हमारे मारनेका कोई उपाय शीघ्र कीजे जो अपने बन्धुगणोंसे उऋण हो उनके आँसू पोंछो. जो वीर अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करते, वे सभामें बैठनेके योग्य नहीं होते ॥ १२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान्ने जब ऐसे आक्षेपकर क्रोधसे अत्यन्त उपहास किया, उससमय दानवेन्द्र महाक्रोधमें भरगया, जैसे काला भुजंग क्रीडा करनेको क्रोध करै ॥ १३ ॥ क्रोधसे इन्द्रियें चलायमान होगईं. गंभीर श्वास भर २ घोर गदा ले वह वाराहजीकी ओरको धाया, और महा डरावनी नाद करके बडे वेगसे वाराहजीके वक्षस्थलमें गदाप्रहार किया ॥ १४ ॥ वैरीकी चलाई हुई छातीपर आतीहुई गदाको बचाकर तिरछे उछलकर ऐसे निकलगए जैसे योगिजन कालसे बचजाते हैं ॥ १५ ॥ वह असुर फिर दूसरी गदाको बारंबार घुमाने लगा, उसे आती देख श्रीपति दाँतोंसे अधरोंको पीसते क्रोधसहित दौडे ॥ १६ ॥ फिर भगवानने शत्रुकी दाहिनी भौंमें गदा मारी; हे विदुर ! उस कुशल राक्षसने वही गदा फिर भगवान्के उपर फेंककर मारी ॥ १७ ॥ इसप्रकार भारी २ गदाओंसे हिरण्याक्ष और वाराहजी जीतनेकी इच्छा करके परस्पर घोर युद्ध करनेलगे, वह इनको मारता, और ये उसको मारते और युद्ध करते थे ॥ १८ ॥ दोनों वीर महारणधीर युद्धमें जिनके मन, तेज गदाप्रहारोंसे जिनके शरीर घायल, घावोंसे रुधिरकी धारा निकलते देख क्रोध क्षण २ में अधिक होता था.

द०-दोउ वीर धीर अतिबलनिधान । दोउ गदायुद्धमें अतिसयान ॥
दोउ चहत आपनी विजय भूर । दोउ किये चित्तसे शंक दूर ॥
दोउ करहिं युद्धमें सिंहनाद । दोउ करहिं परस्पर वीरवाद ॥
दोउ जात कबहुँ उडिकै अकाश । दोउ गिरत करन चाहत विनाश
दोउ लगत गदा अंगनप्रहार । दोउ देहनते बहै रुधिरधार ॥
दोउ ओर शोर ह्वै रह्यो घोर । भर रह्यो भुवनमें चहूँ ओर ॥
जब हिरण्याक्ष ह्वै जात वाम । तब गहै नाथ दाहिनी ठाम ॥
जब हिरण्याक्ष दक्षिणहिं जात । तब वाम दिशा श्रीपति लखात ॥
जिमि लरहिं वृषभ ह्वै सुरभिहेत । तिमि धरणिहेत दोउ बलनिकेत १९

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जिस दैत्यके मारनेको यज्ञ अवतार श्रीवाराहजी महात्माने वाराहतनु ग्रहण किया है, उन द्वेषियोंके मायावीयुद्ध देखनेको ऋषियोंसहित ब्रह्माजी आये ॥ २० ॥ चातुर्यता जिसको प्राप्त, मोहसे दूर, अनेक प्रतीकारकर्ता, जिसके पराक्रमको कोई रोक न सके, ऐसे दैत्यको बलवान् जान सहस्र ऋषियोंके स्वामी, भगवान् ब्रह्माजी आदिवाराहरूपधारी श्रीमन्नारायणके निकट जाकर ॥ ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे देव ! हे भक्तवत्सल ! आपके चरणारविन्दके समीप प्राप्त होनेवाले देवता, गौ, ब्राह्मण, इन निरपराधी जीवोंको ॥ २२ ॥ वृथाही यह महाभयकारी, दुराचारी हम लोगोंको सदा क्लेश देता है, हमसेही वर पाकर हमारेही मारनेको

उपस्थित है, यह महाकंटक देवताओंको सब लोकोंमें खोजता फिरता है ॥ २३ ॥ "एक समय सब देवता सभा कर दल जोड ऐरावतपर आरूढ हो सबने हिरण्याक्षके ऊपर अपने२ वज्रायुध चलाये, परन्तु उस अत्याचारीके शरीरपर किसीने कुछ प्रभाव न किया; और सबके अस्त्र शस्त्र टूट २ कर टुकडे २ होगए, तब इन्द्र देवताओंको लेकर भागगया; उस दिनसे कोई देवता उससे नहीं लडते वरन नाम लेनेसे कोसों भागतेहैं" हे सुरोत्तम ! इस मायावी महा अभिमानीको मत रक्खो. इसको अपने बलका बडा घमंड है, हे नाथ ! बालककी नाईं सर्पकी पूंछ पकड पकड मत खिलाओ साँपको खिलाना अच्छा नहीं होता ॥ २४ ॥ हे कृपासिन्धो ! यह दारुण असुर जबतक संध्यासमय अपने अधिकारको न पावै उससे पहिलेही इसका विध्वंस होजाय तो अच्छा है; इसलिये अपनी योगमायामें स्थित होकर इस दुष्टको तुम शीघ्र मारो ॥ २५ ॥ हे सर्वात्मन् ! यह संध्यासमय डरावना दैत्योंको हुलास और लोकोंका विनाश करनेवाला है. हे प्रभो ! इस समय देवताओंकी जय करो ॥ २६ ॥ इस समय इसके मारनेका मुहूर्त और अभिजितयोगभी आगया है, हम सुहृदोंके कल्याणार्थ शीघ्र इस कष्टसे हमारी रक्षा करो ॥ २७ ॥ हे संसारके मंगल-कर्त्ता ! भयभीतोंके भयहर्त्ता ! जिसके मारनेको आपने यह वराहतनु धारण किया सो यह पापी आपही आपके सम्मुख आगया, अब इस पराक्रमीको संग्राममें मार देवताओंकी रक्षा करो. जैसे इनकी रक्षा की थी,-

कवित्त-नन्दके दुलारे हम, दास हैं तुम्हारे सदा, भक्तनके काज आप कोटिरूप धारेजू ॥ गिरिवर कर धारे, प्रह्लादजन उबारे, और हिरण्याक्ष मारे ध्रुवभक्त तारेजू ॥ इन्द्रमान मारे, और दुष्ट सब दल डारे, काटे गजफंद कष्ट देवकि निवारे जू ॥ द्रौपदीकी लाज, जैसे राखी कुरुसभा माहिं, ऐसेही हमारी लाज, राखो कृष्ण प्यारेजू ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे श्रीवाराहाहिरण्याक्षयुद्धवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा-उन्निसवें अध्यायमें, अजविनती सुन कान ।
कियो प्रशंसायोग्यवध, हिरण्याक्ष बलवान ॥

मैत्रेयजी बोले कि, निष्कपट सुधासम ब्रह्माके वचन सुनकर मुसकाय प्रेमके कटाक्षसे ग्रहण किये ॥ १ ॥ जब अपने सम्मुख उस शत्रुको विचरता और चहुँओरसे भयरहित देखा तब उसके निकट शीघ्र कूदकर वाराहजीने उसकी ठोडीमें एक गदा मारी ॥ २ ॥ वह सुवर्णसे बनी फेंकीहुई गदा भगवान्के करसे छूट घूमकर गिरी सो अद्भुत हो शोभित हुई ॥ ३ ॥ तब भगवान्को निरायुध देख संग्रामका धर्म मान शस्त्र न चलाया, और वाराहजीको भी कोप बढवाया ॥ ४ ॥ इस आश्चर्यको देख सब देवता मनमें शंका मान हाहाकार करने लगे, संग्रामके धर्मको मान विभु वाराहजीने चक्रका स्मरण किया ॥ ५ ॥

वह अधम दितिसुत भगवान्‌को चक्र गहे देख महाक्रोधित हो घोर शब्द कर गदा ग्रहण कर दौडा, हिरण्याक्षको आता निहार सब देवता हाहाकार कर बोले; हे नाथ ! अब शीघ्र इस हिरण्याक्ष दुष्टको मार हमारा शोक दूर करो तुम्हारा कल्याण हो ॥ ६ ॥ कमल-नयन श्रीवराहजीको सुदर्शनचक्र लिये खडा देख क्रोधमें भर गंभीर श्वाससे दांत चाबने लगा ॥ ७ ॥ विकराल कालसमान नेत्रोंमें ऐसी प्रचण्डज्वाला प्रज्वलित होरही थी मानो अभी भस्म करेगा, ऐसे हरिकी ओर देख गदा फेंककर मारी और पुकार कर बोला कि अब मेरे हाथसे बचना बहुत कठिन है ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि हे साधो ! भगवान् यज्ञ-वाराह लीला कर शत्रुके देखते २ वायुवेगसमान गदाको बांयें चरणसे फेंककर ॥ ९ ॥ बोले, आयुध लो चेष्टा करो, जो तुमको जीतनेकी अभिलाषा है तो; जब भगवान्‌ने यह कहा, तब फिर वह दैत्य शस्त्रप्रहारसे ताडनकर अत्यन्त दहाडने लगा ॥ १० ॥ उस गदाको आती देख गदाधरने इस प्रकार रोका जैसे सर्पिणीको गरुड पकडै, ऐसेही लीला-पूर्वक गदाको पकडलिया ॥ ११ ॥ असुरका पुरुषार्थ जब नष्ट होगया तब वह घबराकर गिरपडा और उसने कमलाक्ष भगवानकी गदाको लज्जित हो ग्रहण नहीं किया, और भगवान्‌ने उसकी सब कान्ति नष्ट करदी ॥ १२ ॥ जलतीहुई प्रलयकी अग्निके समान तीन शिखायुक्त त्रिशूलको लेकर उसने फिर वाराह भगवान्‌पर चलाया. जैसे कोई ब्राह्मण-के ऊपर मारण प्रयोग करता है ॥ १३ ॥ उस समय पराक्रमसे महाबलवान् दैत्यका फेंका हुआ तीव्रकान्तिवाला त्रिशूल आकाशलों प्रकाशित करनेलगा. श्रीवाराहजीने त्रिशूलको आता देख, सुदर्शनचक्रसे उसके खंड २ करदिये, जैसे गरुडजीके छोडे हुए पंखको इन्द्रने अपने वज्रसे काटाथा ॥ १४ ॥ श्रीहरिके चक्रसे अपना त्रिशूल बहुतबार काटा जान, अपने आपको निरायुध समझ विशालवक्षस्थल श्रीमान् भगवान्‌के सम्मुख आन अत्यन्त क्रोध कर वह दुष्ट मुष्टिप्रहारपूर्वक अन्तर्द्धान होगया ॥ १५ ॥ हे विदुर ! भगवान् आदिवराह हृदयमें मुष्टि खाय हटे नहीं जैसे फूलके मारनेसे हाथी नहीं हटता, इसीभाँति भगवान् किंचित्मात्र भी न काँपे ॥ १६ ॥ जो योगमायाके ईश्वर उन भगवान्‌के संग वह अज्ञान माया रचने लगा, उसको देख प्रजा और देवता भीत हो विश्वका नाश मानने लगे ॥ १७ ॥ धूल और अंधकारको फैलाता हुआ प्रचण्डपवन चारों ओर चलनेलगा, सब दिशाओंमें पत्थरोंकी वर्षा होनेलगी, जैसे कोई फेंक २ कर मारता है ॥ ॥ १८ ॥ आकाशसे नक्षत्रसमूह नष्ट होगये, कभी चपलाका प्रकाश, कभी गर्जनका शब्द सुनाई आता था, कभी काली २ घटा छाजातीथी, कभी पृथ्वी और आकाशमें धुंधका-रही धुंधकार दृष्टि आता था, कभी रुधिरकी, कभी केशोंकी, कभी पीबकी, कभी बिष्टाकी. कभी मूत्रकी, कभी हाडोंकी, कभी पद, कन्ध, कर्ण, मांस, मज्जा, मेदकी वर्षा होती थी ॥ ॥ १९ ॥ कभी अनेक २ प्रकारके आयुध दिखाई देते थे, कभी चारों ओर ऊँचे पहाड दिखाई देतेथे, कभी पिशाचिनी भूतिनी नग्न, हाथोंमें शूल लिये, शिरके केश खोले पृथ्वीपर घूमती फिरतीहुई दिखलाई देती थीं ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, सिपाही, घोडे,

रथ और हाथी व आततायीलोग हँसते और कुत्सितवाणी बोलते थे ॥ २१ ॥ जब हिरण्याक्षने नानाप्रकारकी माया प्रगट करी तब समरमें वाराह भगवान्‌ने त्रिपदी सुदर्शनास्त्रका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तब दितिका हृदय काँपनेलगा, स्तनोंसे रुधिरकी धारा छूटी और उसको अपने पतिके वचनोंका ध्यान आया कि आज हरिके हाथसे हिरण्याक्षका वध होगा ॥ २३ ॥ जब उस दुष्टकी सब माया नष्ट होगई तब फिर वाराहजीके सम्मुख क्रोध करके धाया और बाहर हरिको स्थित देखा ॥ २४ ॥ उसने उन वैकुण्ठनाथके हृदयमें वज्रसमान घूंसे मारे तब हिरण्याक्षकी कनपटीपर वाराहजीने एक थप्पड मारा, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके मारा था ॥ २५ ॥ विश्वके जीतनेवाले श्रीमुकुन्दने जब उसकी अवज्ञा कर उसको मारा तब उसका शरीर घूमकर वह वमन करनेलगा, दोनों नेत्र निकलकर बाहर आपडे, तथा हाथ पाँव कंधा और शिर जिसका टूटगया, जैसे पवनके झोंकेसे वृक्ष उखडकर गिरपडता है इसप्रकार भगवान्‌का थप्पड लगतेही हिरण्याक्ष पृथ्वी पर गिरगया ॥ २६ ॥ दाँतोंसे अधरोंको दबाये हुए करालतेज पृथ्वीपर सोता देवताओंने देखा और वाराहजीसे बोले कि इसकी समान मृत्यु किसको मिलेगी ? ॥ ॥ २७ ॥ असतशरीरसे मोक्षकी इच्छा कर योगसमाधिसे एकान्तवनमें योगी जिसका ध्यान करते हैं उस भगवत्‌के हाथसे दैत्य अधम माराजाय और मुख देखते २ तनत्याग करे ॥ २८ ॥ कोई कहता था यह दोनों असुर नहीं हैं नारायणके पार्षद हैं ब्राह्मणके शापसे राक्षस होगये थे तीन जन्म असुरतन भोगकर फिर वैकुण्ठमें जायँगे ॥ २९ ॥ देवता कहते थे कि सब यज्ञोंके विस्तारके कारण स्थितिके लिये निर्मल सत्त्वमूर्ति ग्रहण करनेवाले तुम्हारे अर्थ वारंवार नमस्कार है. आपने यह बहुत अच्छा किया जो सब जगतके दुःख देनेवालेको मारा. हे ईश ! तुम्हारे चरणारविन्दकी भक्तिसे हम अत्यन्त पवित्र हुए ॥ ३० ॥

कवित्त–जै जै यज्ञ रूप, जै जै नाशी भवकूप, जै जै जै जै सुरभूप, जै हो सदा, कष्टहारीकी ॥ जै जै हिरण्याक्षहंत, जै जै प्रभु रमाकंत, जै जै श्रीअनंत, जै हो अधमउधारीकी ॥ जै हो श्रीवाराहजीकी, जै हो सुरनाहजीकी, जै जै हो मुरारी, जै हो भक्तहितकारीकी ॥ जै हो गिरिधारीकी, श्रीपति असुरारीकी, जै, हो प्रभु दुष्टदमन द्वारकाविहारीकी ॥

मैत्रेयजी बोले कि महापराक्रमी हिरण्याक्षको श्रीआदिवाराहजी मार ब्रह्मादिक देवताओंकी स्तुति सुन श्रीवैकुण्ठलोकको चलेगए ॥ ३१ ॥ हे सुमित्र ! मैंने तुमसे ऐसे अवतारधारी हरिकी चेष्टा वर्णन की. जैसे उदारपराक्रमी हिरण्याक्षको महासंग्राममें खेलकीसी नाई तिरस्कार किया ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि, यह मैत्रेयजीकी कही हुई वाराहजी भगवान्‌की कथा सुन विदुर महाभागवतोत्तम परमानंदको प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ जब कि, पवित्रात्मा विख्यातयश ब्राह्मणोंकी कथा सुननेसे आनन्द होजाता है तब श्रीहरिवर्णोंका-

न्तकी कथा सुन पवित्र हो तो इसमें आश्चर्य क्या है? ॥ ३४ ॥ जिनके चरणारविन्दका ध्यान करतेही मगरग्रासित गजेन्द्रको हथिनियोंके पुकारनेसे क्षणमात्रमें कष्टसे छुटाया.

कवित्त-सुनू गजेन्द्रकी गुहार, धारी गिरि धारी कान, लगी नाहिं बार, शीघ्र चक्र ले सिधारो है ॥ पक्षिराज पादुका लै, धायो पै न पायो पाय, खसतमहीमाँ पीतपट ना सँभारो है ॥ कहै रघुराज, मेरे नाथ सो कृपालु कौन, सरके समीप शुद्र, सिन्धुर निहारो है ॥ जौलौं ग्राहग्रीवापै गुविन्दजू चलावै चक्र, तौलौं ग्राह ग्रीवाको, अगाऊ काट डारो है ॥ ३५ ॥

अनन्यशरणागत कोमलमनुष्योंसे सुखाराध्य हरिको कृतज्ञ कौन सेवन न करैगा? जो भगवान् दुष्टोंसे सदा दुराराध्य हैं ॥ ३६ ॥ जो महात्मा जन महाअद्भुत हिरण्याक्षका वध व वाराहजीकी लीलाको मन लगाके सुनते और प्रीतिपूर्वक गाते हैं व अनुमोदन करतेहैं, हे ब्राह्मणो! वे पुरुष ब्रह्महत्याके पापसेभी छूटजाते हैं ॥ ३७ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! यह महापुण्य अत्यन्तपवित्र यशऐश्वर्यदायक वैकुण्ठवास देनेवाला, आयुआशीर्वाददाता, प्राणइन्द्रियोंकी संग्राममें शूरता बढानेवाला और अंतसमयमें श्रीनारायणके निकट पहुँचानेवाला है ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्षवधवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा-कहौं वीस अध्यायमें, वराहका! अवतार।
इसकारण मनुवंशको. वरणौं अबकी बार ॥

शौनकमुनि बोले कि हे सूतपुत्र! जब पृथ्वी स्थित हुई उसके पीछे स्वायंभुवमनुने जन्म लिया, और उनके मार्गके अर्थ कौन २ द्वारमें स्थित हुए सो कहो? ॥ १ ॥ महाभागवत विदुरजी श्रीव्रजरत्नजीके परममित्रने श्रीकृष्णजीके साथ पुत्रोंसहित शत्रुता करतेही धृतराष्ट्रको त्याग दिया ॥ २ ॥ यह व्यासजीसे महिमामें न्यून नहीं थे क्योंकि उनहींके शरीरसे इनका शरीर उत्पन्न हुआ है. सब प्रकारसे श्रीकृष्णजीमें आसक्त हैं, श्रीकृष्णके प्यारे हैं अनुवृत्तिसे तत्पर हैं ॥ ३ ॥ तीर्थोंके सेवन करनेसे रजोगुण जिनका नष्ट होगया, ऐसे विदुरजीने हरिद्वारमें आकर तत्त्वदर्शी मैत्रेयजीसे क्या क्या पूछा? ॥ ॥ ४ ॥ हे सूत! उनके संवादसे निर्मलकथा प्रगट हुई जैसे हरिके चरणारविन्दाश्रयसे गंगाजल सब पापोंका नाशक है इसीप्रकार भगवत्कथा सब पापनाशिनी और आनन्दप्रकाशिनी है ॥ ५ ॥ सो वह कथा मुझसे कहो तुम्हारा मंगल होवे कहने योग्य उदारकर्मवाले जनार्दनकी, लीलाका अमृत पीते २ कौन रसज्ञ तृप्त होसक्ता है, ॥ ६ ॥ नैमिषारण्यऋषिगणोंने उग्रश्रवासे बूझा, तब परमात्माके परमभक्त उग्रश्रवा उन कथाओंको मुदित हो वर्णन करनेलगे, सो सुनिये ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, श्रीवाराहरूपधारी हरिने अपनी मायाके

द्वारा रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया. और हिरण्याक्षको अवज्ञासे मारकर लीला की ॥ ॥ ८ ॥ विदुरजी बोले कि प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माने प्रजा रचनेके लिये प्रजापतियोंको उत्पन्न करके किस कर्मका आरंभ किया ? हे भगवन् ! भगवतमार्गके जाननेवाले आप अनुग्रह करके इस वृत्तान्तको कहिये ॥ ९ ॥ जो मरीचि आदि ऋषि हैं जो स्वायंभुवमनु हैं इन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर कैसे इस विश्वको उत्पन्न किया ? ॥ १० ॥ अपनी स्त्रियोंसमेत अथवा अकेले मरीचि आदि ऋषियोंने स्वतंत्र होकर इस संसारको रचो ? अथवा सबने इकट्ठे होकर इस संसारका विस्तार किया ? सो हे मुनिवर ! कृपा करके वर्णन कीजे ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले, "ब्रह्माने किस कर्मको आरंभ किया ?" इस प्रश्नका उत्तर–यक्ष आदिकोंको रचा, इसके उत्तरको कहनेके लिये प्रथम कहीहुई सृष्टिका स्मरण कराया, और मनुष्यादिकोंको प्रश्नका उत्तर अगले अध्यायमें कहेंगे, किसीके समझमें न आनेयोग्य जीवोंका भाग्य, और प्रकृतिका अधिष्ठाता अर्थात् महापुरुष और काल इन हेतुओंसे निर्विकार भगवत्से क्षोभको प्राप्त जो जो रज, सत्त्व, तम, ये तीनों गुण इनसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ रजोगुणप्रधान दैवप्रेरित महत्तत्त्वसे सब भूतोंका आदि त्रिगुण अहंकार हुआ, अहंकारसे पांच भूतमात्रा, और पांच महाभूत, और पांच ज्ञानेंद्रिय, और पांच कर्मेन्द्रिय, और पांच २ उन इन्द्रियोंके देवता उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ वे सबके सब तत्त्व एक २ पृथक् २ होकर जब रचनेके योग्य न हुए तब दैवयोगसे सबने मिलकर सुवर्णमय अंड रचा ॥ १४ ॥ सो आत्मासे रहित अंड समुद्रके जलमें हजार वर्षतक पडा रहा, जब उसमें परमात्माने प्रवेश किया, तब वह चैतन्य होगया ॥ १५ ॥ उसकी नाभिसे सब जीवोंके समूहको धार सहस्रभानुके समान कान्तियुक्त एक कमल उत्पन्न हुआ, उसमें जगत्कर्ता स्वयंभु ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ जो जलरूप हृदयमें सोतेरहे सो नारायणके आश्रयसे सब लोककी रचना करी जैसी कि पूर्वकालमें थी, उसीप्रकार नामरूपके विभागसे निर्माण की ॥ १७ ॥ आगेसे पांच पर्ववाली अविद्या छायासे रची; तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महत्तम ये पांच पर्व हैं ॥ १८ ॥ जिस तनसे यह विश्व रचा था, उस तनको त्याग दिया क्योंकि वह तमोमय था, इससे रात्रि उत्पन्न हुई, इसलिये वह प्रसन्न न हुए. तब भूँख प्यास लगनेवाली रात्रिको यक्ष राक्षसोंने ग्रहण करलिया ॥ १९ ॥ वे ब्रह्माके बनाये यक्ष राक्षस भूँखसे व्याकुल हो अजकेही खानेको दौडे वे भूखसे अधीर हो बोले कि इसकी रक्षा मत करो इसे खाही जाओ ॥ २० ॥ ब्रह्माजी घबराकर उनसे बोले कि तुम मुझे मत खाओ, मेरी रक्षा करो, हे यक्षराक्षस ! तुम मेरी प्रजा होवो ॥ २१ ॥ अपनी प्रभासे जो जो देवता रचे उस प्रकाशित प्रभातेजको देवताओंने ग्रहण किया ॥ २२ ॥ ब्रह्माजीने जाँघसे असुरोंको उत्पन्न किया वे स्त्रीमें लंपट महाकामी, लज्जाको त्याग ब्रह्मासे मैथुन करनेको दौडे ॥ ॥ २३ ॥ उन निर्लज्ज असुरोंको भगवान् ब्रह्माजी पीछे आतेहुए देख अत्यन्त क्रोध करने लगे परन्तु फिर डरकर भागगये ॥ २४ ॥ जब कहीं बचनेका ठीक न लगा. तब

दीनदुःखहरण शरणागतवत्सल भक्तोंके अनुग्रहके अर्थ भक्तोंकी इच्छानुसार आप स्वरूप धारण करते हैं, ऐसे प्रभु विरदवरदायक, श्रीसुरनायककी शरण जाकर ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले हे परमात्मन् ! हे प्रभो ! हे अभयदायक मेरी रक्षा करो. आपकी आज्ञासे मैंने प्रजा रची, सो यह पापी प्रजा मुझसेही मैथुन करनेके लिये मेरे पीछे दौडी आती है ॥ २६ ॥ निश्चय है कि तुमही एक सब लोकोंके क्लेशके नाशक हो, हे नाथ ! जो तुम्हारे चरणकमलका आश्रय नहीं लेते उनको तुमहीं एक क्लेश देनेवाले हो-

दोहा-कष्टहरण आनँदकरण, चरणशरण ली आन ।
मेटहु कठिन कलेश यह, कृपासिन्धु भगवान ॥ २७ ॥

वे आदिपुरुष अविनाशी श्रीनारायणजी, ब्रह्माका यह कृपणभाव जान एकान्तमें ब्रह्मविद्यासे जिनका दर्शन हो सो भगवान् बोले कि इस शरीरकोभी त्यागो, यह श्रवण करते ही विरिंचिने उस शरीरको त्याग दिया ॥ २८ ॥ चरणोंमें नूपुरोंकी झमक, मदभरे विह्वल नेत्र, कांचीकलापसे शोभित, वस्त्रोंसे कटिपश्चात्भाग जिसका ढकाहुआ ॥ २९ ॥ अत्यन्त भारी २ दोनों कुच, कंचनके कलशसमान परस्पर अडनेके कारण जिनके बीचमें कुछ बीच नहीं रहा, ऐसे मनोहर जिसके स्तन और अत्यन्त सुन्दर कीरकेसी जिसकी नासिका बनीहुई, दाडिमके दानोंकेसी दाँतोंकी पाँति, और प्यारी मनमोहनेवाली जिसकी हँसी. तिरछी चितवन, लाजके मारे वस्त्रोंकी जवनिकासे अपने शरीरको ढकती दबाती काले काले केशोंकी सघनघटामें चंद्रसा मुखारविंद दीप्तमान ऐसी मृगनयनी, पिकवयनी, मनहरनी, चंपकबरनी, चंचलचटकीली, सजीली, सोहनी, मनमोहिनी; बालाको देख सब दैत्य मोहित होगये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अहो रूप ! अहो धैर्य्य ! ! अहो इसकी किशोर अवस्था ! ! ! हे चाहनेवालो ! यह अनचाहीसी फिर रही है ॥ ३२ ॥ स्त्रीकी आकृति उस संध्याको असुरोंने बहुत वितर्क कर विश्वाससे सत्कार कर कुबुद्धिवालाने बूझा ॥ ३३ ॥ हे चंद्रानने ! तुम कौन हो ? किसकी कुमारिका हो ? यहां क्यों आई हो ? तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? रूपधनके व्यवहारद्वारा तुम हमसे अभागियोंको बाधा देतीहो ॥ ३४ ॥ हे भागिनी ! तुम्हारा कल्याण हो हमारे बडे भाग्यहैं जो तुम्हारा दर्शन हमें प्राप्तहुआ. गेंद खेलनेकी इच्छासे यहां आये थे सो हम असमर्थोंके मनको तुमने मथन कर चित्त चुरालिया ॥ ३५ ॥ हे शालिनी ! तुम्हारे चरणकमल एक ठिकाने नहीं ठहरते तुम बारंवार गेंदको फेंकतीहो, बडे स्तनके भारसे भीत पेट विषाद पारहा है, शान्तकी नांई तुम चलती हो और केश तुम्हारे बहुत सुन्दर हैं ॥ ३६ ॥ इसप्रकार सायंतनकी संध्या स्त्रीरूपधारिणी लोभ करानेवाली स्त्री ऐसे मान मूर्ख असुरोंने उसको पकडलिया ॥ ३७ ॥ गंभीरभावसे हँसके अपने आपको आप सूंघे उस कांतिसे भगवान् ब्रह्माजीने फिर सृष्टि रचनेका विचार किया और गंधर्व अप्सराओंको बनानेलगे ॥ ३८ ॥ ज्योत्स्ना कान्तिमयी प्रियाकोभी जब त्याग दिया तब विश्वावसु गंधर्वने मुख्यप्रीतिसे उसको ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ फिर ब्रह्माजीने अपने आलस्यसे भूतपिशाचोंको रचकर नंगे बालोंको खोले खडा देखकर नेत्र बंद करलिये ॥ ४० ॥ हे प्रभो ! उनका रचाहुआ जृंभारूप

तनभी त्याग दिया वह निद्रा इन्द्रियको विवश करनेवाली है जिससे सब जीवोंमें देखते हैं ॥ ४१ ॥ जिससे उच्छिष्टको घिसते हैं उसको उन्माद कहते हैं; उन्मादसे सब जीवोंको महाक्लेश होता है ॥ ४२ ॥ भगवान् बढेहुए आत्माको मान प्रत्यक्ष करके साध्यगण पितृगण प्रभुने रचे जिनको कर्मकोविद लोग श्राद्धादिकद्वारा हव्यकव्य देते हैं ॥ ४३ ॥ वे अपने सर्गका काय पितासे प्राप्त होकर साध्यपितर इनसे कभी होय हैं ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजीने सिद्धविद्याधरोंको तिरोधानसे रच अंतर्धाननामक अद्भुत आत्मा उनको दी ॥ ॥ ४५ ॥ अपने प्रतिबिम्बसे ब्रह्माजीने किन्नरकिंपुरुषोंको रचा, आत्मासे आत्माको मान आत्माका प्रकाश देखा ॥ ४६ ॥ जो तन ब्रह्माजीने त्याग दिया था वह रूप उन्होंने ग्रहण किया, उसीको एकत्र होकर प्रातःकालमें सब गाते हैं ॥ ४७ ॥ अत्यन्त चिंतासे सोये भोगवान् देहसे बडी सृष्टिमें क्रोधसे उस वपुको रच फिर इस शरीरकोभी तजदिया ॥ ४८ ॥ जो इस देहसे बाल च्युत हुए वे अहिनामक सर्प हुए सर्प चलनेसे और क्रूर नागभोग उरुकन्धर ये हुए ॥ ४९ ॥ जब ब्रह्माजीने अपने आपको कृतकृत्यकी नाई माना तब अंतमें लोकपालक मनुओंको मनसे रचा ॥ ॥ ५० ॥ उन आत्मवान् पुरुषोंके लिये रूप पुर रचे, वे पहिले रचेहुओंको देखकर प्रजापतिकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ५१ ॥ धन्य है, जगतस्रष्टाने बडा सुकृत किया है, जिसमें स्थित होकर कर्म करते हुए सब अन्नकी पारणा करेंगे तपविद्यासे युक्त सुन्दर योगसमाधिसे हर्षीकेश ब्रह्माने अपने समान प्रजा और ऋषियोंको रचा ॥ ५२ ॥ और जो योग, विद्या, समाधि, तप, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सिद्धि, विरक्ति उन सबको एक २ अंशविभागसहित ब्रह्माजीने दिया और ऐसा अद्भुत शरीर रचा, नहीं जानाजाता कि इसमें कौन बोलता है ? और इसका नाम क्या है ?

कवित्त-केश शीश जूड़ भाल, भ्रूहणी पलक नैन, गोलक कपोल गंड नासा मुख श्रौन है ॥ ठोडी होठ डाढ दन्त, रसना मसूढा तालु, चिबुक कंठिका कंठ कंध कर मौन है ॥ कांख कटि भुजा नाडी, नाभी कुच पेट पीठ, अंगुली हथेली नख जंघा स्थल जौन है ॥ नितंब चरण रोम, एते नाम अंगनके, तामें तौ विचार नर तेरो नाम कौन है ॥ ५३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे सर्गवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥
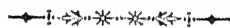
दोहा-इक्किसमें जब हरि लखो, कर्दमतेज अपार।
मनुकन्या इन योग्य है, कीन्हो यही विचार ॥
दोहा-सुन वर्णन अज श्रेष्ठको, विदुर परम सुख पाय।
बार २ स्तुति करत, चरणकमल शिर नाय ॥

विदुरजी बोले कि, हे भगवन् ! स्वायम्भुव मनुका परमश्रेष्ठ वंश कहो कि, किसप्रकार

मैथुन करके प्रजा बढी ? ॥ १ ॥ स्वायम्भुव मनुके दो पुत्र हुए, प्रियव्रत और उत्तानपाद, उन्होंने धर्म और सप्तद्वीप पृथ्वीकी रक्षा की, सो किस प्रकारकी ? उसका सविस्तर वर्णन कीजै ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे पापरहित ! स्वायंभुवमनुकी एक कन्या हुई जिसका नाम देवहूति जगतमें विख्यात था, वह कर्दममुनिको व्याही थी उसका वृत्तान्त कहो ॥ ३ ॥ सो कर्दममुनि महायोगी योगलक्षणसंपन्नने देवहूतिमें कितने पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मसुत दक्ष और रुचिप्रजापति मानवी भार्याको प्राप्त हो किसप्रकार सृष्टि उत्पन्न की ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब भगवान् कर्दममुनिसे ब्रह्माजीने कहा कि, तुम अपार सृष्टि रचो, तब सरस्वतीनदीके किनारे दक्षने हजार वर्षतक तप किया ॥ ६ ॥ तब समाधियुक्त योगक्रियासे प्रयत्नकर भक्तिसे वरदायक भगवान् वासुदेवको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ हे विदुर ! तब श्रीत्रिलोकनाथ भक्तभूषण भगवान्ने सत्ययुगमें प्रसन्न हो, शब्दब्रह्मरूप शरीर धार कर्दमजीको अपना सुन्दरस्वरूप दिखाया ॥ ८ ॥ रजोगुणरहित कोटिसूर्यसम वदनका प्रकाश, शुक्लकमलकी माला विराज रही-

दोहा-नीलअलक झलके झलक, छलक छलक छबि जात।
ललक ललक जिनको अमर, ललना लखत लुभात ॥

घूँघरवाली अलकें मुखारविन्दपर बिखरीं, निर्मलवस्त्र पहिने ॥ ९ ॥ किरीट मुकुट शिरपर धारण किये, कानोंपरके कुण्डल कपोलोंपर लटक रहे शंख, चक्र, गदा, पद्म शोभा देरहे, श्वेतकमल घुमातेहुए मनस्पर्श स्मितईक्षणवाले ॥ १० ॥ गरुडजीके कंधेपर चरणकमल धारे, कौस्तुभमणि गलेमें पडी, हृदयमें श्रीजी, यह अद्भुतशोभा मनको हरलेती थी ॥ ॥ ११ ॥ दर्शनसेही सब मनोरथ पूर्ण जान कर्दमजीने अत्यन्त हर्षसे पृथ्वीमें शिर नवा साष्टांग प्रणाम किया, फिर प्रेमसे, प्रीतिसे, वाणीसे व मनसे स्तुति करने लगे ॥ ॥ १२ ॥ कर्दमजी बोले कि हे भक्तवत्सल ! हे स्तुति करने योग्य ! आज मेरे नेत्र सफल हुए आज सब सत्त्वराशि और सब सिद्धि, मुझको प्राप्त हुई जो आपका दर्शन हुआ. इस आपके दर्शनके कारण योगीजन कोटानकोटि जन्म समाधि लगाकर वांछा करते हैं ॥ ॥ १३ ॥ जो तुम्हारी मायाके वश मंदबुद्धिवाले मनुष्य हैं, वे संसारसमुद्रमें नौकारूप तुम्हारे चरणारविन्दको हे कमलेश ! लवमात्रके लिये उपासना करते हैं, उनके तुम सब मनोरथ पूर्ण करतेहो परन्तु वे मनोरथ नरकमें भी प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ हे नाथ ! मुझको विवाहकी इच्छा है, परन्तु स्त्री शीलवती बुद्धिनिधान ज्ञानवती मेरे समान हो, स्त्रीसे त्रिवर्ग सिद्ध होता है, अब मैं सब कर्मपूरक कल्पवृक्षरूप आपके चरणशरणमें पडा हूँ, हे प्रभो ! मेरा अंतःकरण अच्छा नहीं है जो आपसे कामकी कामना चाहता हूँ ॥ ॥ १५ ॥ हे जगदीश ! प्रजापतिरूप तुम्हारे वचनरूप रस्सीसे बँधा हुआ कामान्ध यह संसार है, हे शुक्ल ! मैं भी निश्चय करके इस संसारमें प्राप्त कालरूप तुम्हारे अर्थ बलि देता हूँ ॥ १६ ॥ जो लोक लोकोंके अधीन पशुओंको त्याग परस्पर तुम्हारे गुणानुवाद मादक अमृतपानसे लोकधर्मका त्याग करते हैं वे मनुष्य आपके चरणरूप छत्रके

आश्रित होते हैं ॥ १७ ॥ यह कालचक्र तुम्हारे भक्तोंकी आयु नहीं काटसक्ता और सब विश्वकी आयु काटनेको तुम्हारा कालचक्र घूमता है ब्रह्मरूप अक्षमें तौ वह घूमें हैं, तेरह मास चक्रके आरे हैं, तीनसौ साठ दिन उसके पर्व हैं, छः ऋतु उसकी नेमी हैं, पत्र उसके अनंत हैं, शीत, उष्ण, वर्षा, ये तीन नाभि हैं, कठोर उसका वेग है ये सात विशेषण कालचक्रके हैं ॥ १८ ॥ जब तुम अकेले होते हो तो आप जगत् रचनेकी इच्छा कर, दूसरी अपनी योगमायासे मकडीकी नाईं अपनी शक्तियोंसे इस संसारको रचते, पालते, नाश करते और पुनः रचते हो ॥ १९ ॥ हे अधीश ! आप हमसे भक्तों-को अपनी मायाकरके विषय सुख देते हो, परन्तु वह आपको अच्छा नहीं लगता. तौ भी अपनी कृपाके लिये वह हमको देना ही योग्य है, क्योंकि, तुलसीमालासे शोभित आपके स्वरूपका दर्शन करनेसे मोक्ष होता है ॥ २० ॥ अनुभवजन्य ज्ञानसे क्रियाके अर्थ जिनके दूर होगये हैं अपनी मायासे सब लोकोंको रचते हो ऐसे नमस्कार-योग्य चरणकमल आपके थोडेसे भजन व सेवा पूजासे बहुतसे काम सिद्ध हो ऐसे जो आप हैं सो मैं आपको वारंवार नमस्कार करताहूँ ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि, इस प्रकार नमस्कार करनेसे निष्कपट कमलनाभ भगवान् वासुदेव अमृतसमान वचन बोले, गरुडके ऊपर विराजमान हैं और प्रेमके स्मितसे जिनकी भ्रुकुटी चलायमान हैं ॥ २२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ऋषे ! जिसकारण तुमने चित्त लगाकर मेरा पूजन भजन किया है सो मैंने पहले ही तुम्हारे मनकी अभिलाषा जानकर सब ठीक उपाय कर रक्खा है ॥ ॥ २३ ॥ मैं सब प्रजाका स्वामी हूँ, मेरा पूजन कभी मिथ्या नहीं होता, मुझसमान जिनकी आत्मा और आपसे महात्माओंके हृदयमें तौ मैं सदा वास करता हूँ ॥ २४ ॥ प्रजापति सुत राजा मनु विख्यात मंगलीक है और शतरूपा उसकी स्त्रीका नाम है सो ब्रह्मावर्त जो बिठूर है तहां सदा बसता है और सात द्वीप नौ खंड सबका पालन पोषण करता है ॥ २५ ॥ हे मुने ! सो राजर्षि शतरूपा अपनी स्त्रीसमेत, परसोंतक आपके देखनेको यहां आवेगा ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! सुन्दर कटाक्षवाली, शीलगुणवती, सुकुमार अवस्था, पतिके प्रेमकी अभिलाषिणी सो उसके तुम अनुरूप हो. वह जगत्पति अपनी पुत्री तुमको देजायगा॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! तुमने इतने वर्षोंसे जिस स्त्रीमें मन लगाया वह राजकन्या तुम्हारे मनोरथको शीघ्र पूर्ण करेगी ॥ २८ ॥ जो वह तुम्हारे वीर्यके नव विभागोंसे नव कन्या उत्पन्न करेगी और तुम्हारी कन्याओंमें ऋषि-गण अनायाससे अपनी संतान उत्पन्न करेंगे ॥ २९ ॥ तुम सदा मेरी आज्ञामें स्थित होकर मुझको तीर्थसमान मान सब कर्मफल मुझकोही समर्पणकर मुझकोही प्राप्त होगे ॥ ३० ॥ सब प्राणियोंपर दया कर आत्मज्ञानी हो सबको अभयदान दे मुझमें आपसहित सब संसार को देखोगे और सब संसारमें व अपने आपमें मुझको देखोगे ॥ ३१ ॥ हे महामुने ! मैं अपने अंशकलासमेत तुम्हारे वीर्यसे तुम्हारी स्त्री देवहूतिमें कपिलमुनि अवतार धारण करके तत्त्वसंहिताका प्रकाश करूंगा ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, प्रत्यक्षभूत इन्द्रियोंके सम्मुख आनकर श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद, कर्दमऋषिसे यह बात कह सरस्वतीपरिवेष्टित बिंदुसरसे

परमधामको चलेगये ॥ ३३ ॥ कर्दमऋषिके देखते २ वासुदेव भगवान् चलेगए, जो सब सिद्धेश्वरोंसे स्तुतिसिद्ध मार्ग हैं. गरुडजीके पंखोंसे स्तोत्रसमुदाय सामवेद स्वरसहित उच्चारण हुआ सुननेलगे ॥ ३४ ॥ भगवान् जब चलेगए तब कर्दममुनि बिन्दुसरपर बैठे उस समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥ ३५ ॥ और यहां राजा मनु स्वर्णजटित रथपर बैठ अपनी पुत्रीको बैठाय स्त्रीसमेत पृथ्वीपर्यटन करनेको चलदिये ॥ ३६ ॥ हे धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ विदुरजी ! विचरते २ उस शान्तव्रतमुनिके आश्रमपर आए जहां कर्दमऋषिने विवाहके हेतु तप किया था ॥ ३७ ॥ जहां दयाके कारण भगवान्ने शरणागत कर्दमपर प्रसन्न होनेसे अश्रुबिन्दु गिराये हैं ॥ ३८ ॥ उसी दिनसे उस आश्रमका नाम बिन्दुसरोवर हुआ, सरस्वतीसे परिवेष्टित है, पुण्यदायक है, आरोग्य करता है, सुधासमान जल है, महर्षिगणों करके सेवित है ॥ ३९ ॥ फलदायक वृक्षलताओंसे शोभित, मनोहर कुंजैं, खगमृगपक्षियोंसे दीप्त, सब ऋतुओंमें फलफूलसे वनपंक्तियोंसे शोभायमान थे ॥ ४० ॥ मतवाले पक्षिगण जहां मनभावनी सुहावनी बोली बोलरहे, मतवाले भौंरे गुंजार कर रहे, मोर नटोंकी सदृश पंख पसार पसार मधुर २ वाणीसे पुकार रहे, मदमाती कोयल मीठी २ कूकसे कूकरहीं ॥ ४१ ॥ कदंब. चम्पक, अशोक करंज, बकुल, अशन, कुरबक, कुन्द, मंदार, कुटज, आम इत्यादिक भांति २ के वृक्षोंकी शाखा फलफूलोंके भारसे नीचेको झुक रही हैं ॥ ४२ ॥ सुन्दर २ तालोंमें जलकुक्कुट जलकुक्कुटी, मेंडक, हंस, कुरर, सारस, चकई, चकवे, चकोर जलक्रीडा कर २ मनोहर शब्द कर रहे ॥ ४३ ॥ कहीं हिरन, वराह, रोझ, श्वान, शल्लक, गवय, मतङ्गज, गोपुच्छ, वानर, सिंह, नकुल, कस्तूरीमृग डरावने सुहावने शब्द कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ राजा मनुने अपनी पत्नी और पुत्रीसमेत उस श्रेष्ठतीर्थमें प्रवेश किया. हवनयोग्य अग्निमें होम करतेहुए कर्दममुनिको बैठादेखा ॥ ४५ ॥

चौ०–जासु प्रकाश प्रकाशित कानन * तपके तेज तूलयुत आनन ॥
दीप्तमान तन तप व्रतधारी * रटत निरंतर कृष्ण मुरारी ॥

भगवततुल्य मुनिके मनोहर कटाक्षोंकी चितवनसे तृप्त नहीं हुए ॥ ४६ ॥ तिनका वचन अमृतमय, चंद्रकलाके सदृश वचन श्रवणसम्मान जो अधिक प्रिय वाणी बोलै हैं वे पुरुष मुझको शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ ऊंचे ऊंचे कन्धे कमलनयन विशालमूर्ति जटाधारी वल्कल वसन पहिरे मलिन जैसे कोई महारत्न संस्काररहित इसप्रकार कर्दममुनिको मनुजीने देखा ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त मनु पर्णशालाके निकट आये, कर्दमजीने राजा मनुको आता देख आगे बढकर उनको लिया. राजाने प्रणाम किया, राजाको यथायोग्य आशीर्वाद और बडाई दी और पूजा करके उनको ग्रहण किया ॥ ४९ ॥ पूजन कर जब बैठगये तब मुनिने राजाको प्रसन्न कर भगवान् वासुदेवका वचन स्मरण करके कोमल वाणीसे कहा ॥ ५० ॥ हे देव ! तुम लोगोंका फिरना सज्जन महात्माओंकी रक्षाके निमित्त है और असतोंके वधके लिये है, जो तुम भगवान्की अनपायिनी शक्ति हो ॥ ५१ ॥ जो राजा, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, यम, धर्म, प्रचेता इनका स्वरूप

धारण कर स्थान २ में सब कार्य करते हैं उन धर्मात्मा तुमसरीखे राजाओंको वारंवार नमस्कार है ॥ ५२ ॥ हे आदिनृपेंद्र ! जो जयप्रद कनककलित मणिजटित रथपर बैठ प्रचण्ड कोदण्ड ले पापी दुराचारियोंको त्रास न दो और पृथ्वीपर न घूमो तो सब धर्मका नाश होजाय ॥ ५३ ॥ अपनी चतुरंगिणी सेनासे भूमंडलको खूंदते और सब सेनासमेत मार्तण्डकी सदृश सात द्वीप नव खण्डोंमें तुम विचरते हो ॥ ५४ ॥ जब तुम सोजातेहो तो लोभी, लंपट और निरंकुश जीवोंसे अधर्म और पाप बढजाता है; लोग चोरोंसे ग्रसित होकर सब विनष्ट होनेलगते हैं ॥ ५५ ॥ हे वीर ! मैं आपसे यह बात बूझता हूं कि आपका यहां आना किसकारण हुआ ? सो आप वर्णन कीजे. हम निष्कपट हृदयसे आपकी आज्ञा पूर्ण करेंगे ॥ ५६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनास-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कर्दमाश्रमे स्वायंभुवमनुसमागमनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा-बाइसवें अध्यायमें, देवहूतिको व्याह ।
जैसे कर्दमऋषसों, कियो मनू नरनाह ॥

मैत्रेयजी बोले जिनके गुणका और कर्मका प्रकाश संसारमें उदय होरहा है. सो मनु लज्जावालोंकी नाई लज्जाकरके अत्यन्त हर्षित होकर ॥ १ ॥ मनुजी बोले कि, हे मुनिराज ! आपको अपनी रक्षाके कारण ब्रह्माजीने अपने मुखसे अपनी समान वेदविद् विद्यायोगयुक्त अलंपट तुम ब्राह्मणोंको प्रगट किया है ॥ २ ॥ और अनंत भगवान्ने अपनी अनंत भुजाओंसे ब्राह्मणोंके प्रतिपालके लिये हमको उत्पन्न किया है, उनका हृदय ब्राह्मण हैं और क्षत्रिय भुजा हैं ॥ ३ ॥ इसलिये ब्राह्मण क्षत्रियोंकी रक्षा करैं और क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी रक्षा करैं इसप्रकार परस्पर आदिपुरुष अविनाशी देव सत् असत् आत्मा सबकी रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ आपके दर्शनसे मेरे सब संशय मिटगए, जो आप भगवान्ने स्नेहकरके रक्षाकी इच्छासे धर्मका वर्णन किया ॥ ५ ॥ धन्य भाग जो हमको आपका दर्शन हुआ; अवशेंद्रियोंको आपका दर्शन नहीं होता, धन्य है जो मुझ असांगलिकके शिरपर मांगलिक चरणोंको रजका स्पर्श हुआ ॥ ६ ॥ बडे आनन्दकी बात है, बडा अनुग्रह है, जो आपने आज्ञा की, आज मेरे कर्णकुहर पवित्र हुए जो आपकी अमृतसम मनोहर वाणी सुनी ॥ ॥ ७ ॥ हे मुने ! मैं पुत्रीके प्रेमविवश दीन हूं यह कन्या मुझको अत्यन्त प्यारी है, सो आप कृपा करके मेरी विनय सुनिये॥ ८॥प्रियव्रत और उत्तानपादकी यह भगिनी है,और मेरी पुत्री है; शील,रूप,गुण वयमें अपने समान पतिसे मिलनकी अभिलाषा करती है ॥९॥ जबसे नारदजीके मुखसे आपके गुणरूपशील अवस्थाकी प्रशंसा सुनीहै उसी दिनसे इसने अपने मनसे निश्चय आप को अपना पति समझ लिया है ॥ १० ॥ हे द्विजाग्रगण्य ! श्रद्धासे इस कन्याको आपके चरणशरमें लाया हूं, सो आप इसको ग्रहण कीजे. आपके गृहस्थकर्म करनेका यह सर्वप्रकार योग्य है ॥ ११ ॥ जो वस्तु आप घर बठे मिलजाय उसका त्यागना उचित नहीं,

जो सब सगसे निर्मुक्त हैं, जो सकाम हैं उसकी तो क्या बात है? ॥ १२ ॥ जो कोई प्राप्त होती वस्तुका निरादर करते हैं वे पीछे बहुत पछताया करते हैं-

दोहा-वस्तु जो अपनेते मिलै, ताहि त्याग जो कोय।
पुनि घर २ मांगत फिरै, तासु हँसी जग होय॥
मान बडाई प्रेमरस, गरुवाई औ नेह।
ये पांचौ तबहीं गये, जबहिं कहा कछु देह॥ १३॥

हे मुनिसत्तम! मैंने सुना था कि आपकी इच्छा विवाह करनेकी है, इसकारण इस देवहूतिकन्याको आप ग्रहण करें ॥ १४ ॥ ऋषि बोले कि, आपने बहुत अच्छा विचारा मेरी विवाह करनेकी इच्छा है, तुम्हारी दुहिताभी अप्रमत्त अविवाहिता है हमारे दोनोंके अनुरूप यह आद्य विवाहकी विधि है ॥ १५ ॥ हे नरनाह! तुम्हारी इस कन्याका मनोरथ पूर्ण होवे, और हमें तुम्हें उत्साह होवे यही वेदविधि है, भूषण वसनोंसे भूषित, अपनी कान्तिसे श्रीकी कान्तिको क्षीण करनेहारी इस तुम्हारी सुताका कौन आदर नहीं करेगा? ॥ १६ ॥ यह तुम्हारी कन्या पिकबयनी, मृगनयनी, चम्पकबरनी, मनहरनी-

दोहा-एक समय ऊंची अटा, नूपुर पगन बजाय।
कंदुक खेलत शशिमुखी, मन्द २ मुसकाय॥

इसकी मनोहर छवि निरख मोहसे मोहित चित्त होकर विश्वावसुगन्धर्व अपने विमानसे नीचे गिर पडा ॥ १७ ॥ देवललना उसकी ललितकलित छवि निहार मन मार २ कर रहजाती थीं और रमाके चरणोंकी सेवा उनसे नहीं होती थी. सब स्त्रियोंकी मुकुटमणि सी मनुकी पुत्री उत्तानपादकी भगिनी अपने आप प्राप्त हो सो ऐसी कन्याको कौन न भजेगा? ॥ १८ ॥ इसकारण ऐसे समयमें इस तुम्हारी साध्वी कन्याको हम अवश्य भजेंगे, परन्तु जबतक इसके पुत्र न होगा, तबतक इसका अंगस्पर्श करेंगे, इसके पीछे हम परमहंसोंके मुख्य भगवत्प्रोक्त हिंसारहित धर्म मानेंगे ॥ १९ ॥ जो परमात्मा अनंत विश्व रचता है, पालन करता है, संहार करता है, सोई प्रजापतियोंके पति अनंत भगवान्के वचन मुझे प्रमाण हैं ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे उग्रधन्वा विदुर! यह कह भगवान् कर्दमजी चुप होगए, बुद्धिसे व मंदमुसकानसे देवहूतिके मनको लुभाय ग्रहण किया ॥ २१ ॥ रानी शतरूपा और पुत्रीकी संमति लेकर प्रसन्न हो गुणवान् कर्दमजीको अपनी बेटी समर्प्पण की ॥ २२ ॥ फिर शतरूपा महारानीने दहेजमें बहुत और अनेक प्रकारके वस्त्राभूषण घरकी सब सामग्री स्त्रीपुरुष दिये ॥ २३ ॥ राजाने सब व्यथासे दूर हो समान वरको कन्या देकर उत्कण्ठासे विवश हो भुज भर कर देवहूतिको हृदयसे लगाया ॥ २४ ॥ सुताका वियोग राजा रानी न सहसके, नेत्रोंसे बारंबार आंसू गिरनेलगे फिर शतरूपा अपनी पुत्रीको गोदमें बैठाय, हे दुहिता! हे बेटी!! कह, नेत्रोंके नीरसे पुत्रीकी शिखाको सिक्त करनेलगी-

चौ०-पुनि पुनि मिल कह हाय कुमारी* रोदन कर २ भई दुखारी॥
जननीजनकविरह जिय जानी * देवहूति अतिशय दुख मानी॥

तात मात कहि बारहि बारा * तेहि क्षण रोदन कियो अपारा ॥
अहो तात ! हे मात ! पियारी * बालकपनकी प्रीति विसारी॥२५॥

स्वायंभुवमनु शतरूपा कन्याको धैर्य दे मुनिवरसे विदा मांग रथमें बैठ स्त्रीसमेत अपने नगरको चलदिये ॥ २६ ॥ ऋषि और मुनियों सहित सरस्वती तीर देख दंडवत् कर दोनों ओरकी शान्त ऋपियोंके आश्रमोंकी सम्पदा देखते चलेगए ॥ २७ ॥ जब स्वायंभुव मनु ब्रह्मावर्त्तदेशमें आये तो प्रजागण गीत गाय बाजे बजाय अत्यन्त हर्षसे सब सम्मुख खडे हो स्तुति कर ॥ २८ ॥ सब संपत्तिसहित बर्हिष्मती नाम पुरीमें लाये, जहां यज्ञरूप श्रीवाराहजीने अपने अंगको झाड़ा और उनके रोम वहां गिरे थे ॥ २९ ॥ उन रोमोंके हरे रंगके कुश और काश होगये. जिन कुशाओंसे यज्ञनाशकोंका ऋषिलोग तिरस्कार कर यज्ञ करनेलगे ॥ ३० ॥ भगवान् स्वायंभुव मनुभी कुशकाशका आसन बिछाय यज्ञ कर आनंदसहित स्थानपर आये ॥ ३१ ॥ बर्हिष्मती नाम पुरीमें प्रवेश किया जहांके मनोहर भवन त्रितापके हरनेवाले थे ॥ ३२ ॥ तहां पत्नीपुत्रोंसमेत वास करनेलगे—

दोहा—भोगैं भोग सुरेशसम, भूमें भूपति भूरि।
तीनहुँ लोकनमें रही, जिनकी कीरति पूरि ॥ ३३ ॥

प्रातःकाल सन्ध्यासमय अनुरागी हृदयसे श्रीनारायणकी कथा नित्यप्रति सुनें, कलियुगमें केवल कथाहीमात्रके सुननेसे संसारी जीव भवसागरपार होजायँगे ॥ ३४ ॥ योगमायामें निमग्न रहते भगवत्परायणको अनेक प्रकारके भोग भ्रष्ट करनेको समर्थ न हुए ॥ ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान्‌की कथा सुनते २ ध्यान करते २ परमात्माका गुण गाते २ मन्वन्तरका काल व्यतीत करदिया ॥ ३६ ॥ इसीप्रकार इकहत्तर युग भगवान् वासुदेवकी कथासे मन्वन्तरको जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओंको कृष्णकथाहीमें व्यतीत किया, कारण कि इस देहका यही फल है कि, सुकृतकर्ममें अपनी आयुको व्यतीत करे—

कवित्त—पायो है मनुजदेह, औसर बन्यो है आय, ऐसी देह बार २ कहो कहां पाइये। भूलत है बावरे तू, सबसे सयानो होय, रतन अमोल यह, काहेको गँवाइये ॥ समुझ विचार कर, ठगनको संग त्याग। ठग जैहैं देख कहूं, मन न डुलाइये ॥ सुन्दर कहत अबहुँ तु सावधान होय। हरिको भजन कर हरिमें समाइये ॥ ३७ ॥

हे व्यासनन्दन विदुर ! यह शरीरी, दैविक, भौतिक, मानसिक और जो शीतोष्णादिक अनेक प्रकारके ताप हैं. वे श्रीवृन्दावनविहारी भक्तहितकारीके आश्रयवालेको कभी बाधा नहीं करते ॥ ३८ ॥ वर्णाश्रमादिक अनेक प्रकारके शुभधर्म, मनुष्योंके धर्म, सब जीवोंके धर्म जो जो मुनियोंने बूझे सो मनुने वर्णन किये ॥ ३९ ॥ आदिनृप स्वायंभुवमनुका चारित्र मैंने सब आपसे वर्णन किया अब उनके सन्तानोंकी कथा सुनो ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे सपत्नीकस्वायंभुवमनोर्बर्हिष्मतीं प्रत्यागमनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा-देवहूतिकर्दमकथा, वरणों सहित सनेह।
नव कन्या उत्पति भई, तौहुँ रह्यो सन्देह॥

मैत्रेयजी बोले कि जब शतरूपा और स्वायंभुव मनु अपने नगरको चलेगए तब साध्वी देवहूति अपने पतिके मनकी बात जाननेवाली नित्यप्रति प्रीतिसे पतिकी सेवा करने लगी, जिसप्रकार हिमाचलपुत्री महेश्वरकी सेवामें दिनरात लगी रहती हैं ॥ १ ॥ विश्वास शौच व अपने गौरवसे, दम सुहृदता व मधुरवाणीसे शुश्रूषा करैं ॥ २ ॥ कपट, दंभ, द्वेष, लोभ, पाप, मद, इन सबको त्यागकर महातेजस्वी मुनीश्वरको संतुष्ट करती रहें, इसप्रकार अपने शरीरकी सब सुध बिसार कांतकी सेवा करते करते सब शरीर शिथिल होगया, परन्तु पतिकी सेवा करनेसे मन न थका ॥ ३ ॥ निश्चय करके सो देवर्षियोंमें श्रेष्ठ कर्दम, उस मानवी सदा सेवा करनेवाली सबसे बडे भाग्यवाली पतिसे बडे २ आशीर्वादोंकी अभिलाषा करनेवाली ॥ ४ ॥ बहुत दिन सेवा करनेसे जिसका शरीर दुर्वल होगया है ऐसी देवहूतिसे प्रेमसहित गद्गदवाणीसे पीडित हो कृपा करके ॥ ५ ॥ कर्दमजी बोले कि, हे मानवी ! आज मानदात्री तुम्हारी परम शुश्रूषासे, और अत्यन्त भक्तिसे मैं तुमसे वहुत प्रसन्न हूं; जो अपना देह देहधारियोंको अत्यन्त प्यारा है सो देह तुमने मेरी सेवाके अर्थ लगादिया, और अपना जीवन मरण कुछ न समझा, इसकारण मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं ॥ ६ ॥ जो मैंने स्वधर्ममें रत होकर, तप, समाधि, विद्या, आत्मयोगसे जीते भगवत्के दिव्यप्रसाद प्राप्त कियेहुए हैं, उनको मेरी सेवा करके तैंने अपने वशमें करलिया है अब मैं तुझको दिव्यदृष्टि देताहूँ जिसके प्रतापसे अभय अशोक सविस्तार संसारको तुम देखोगी भगवानका ॥ ७ ॥ भ्रुकुटि टेढी होनेसे जिनकी अर्थरचनाका विनाश होजाता है और वैभव तो क्या वस्तु है ? तू सिद्ध होगई है, इसलिये निजधर्मपूरक प्राप्त हुए हैं उन वैभवोंको अनुभव करो जो नृपोंकीसी क्रिया करनेवाले मनुष्योंकोभी नहीं प्राप्त होते ॥ ॥ ८ ॥ इसप्रकार पतिकी सब योगमाया और विद्या व पांडित्यको देखकर देवहूतिकी सब पीडा और चिंता नष्ट होगई और फिर विनयप्रेमसे विह्वल हो गद्गदवाणीसे कुछ लज्जाकी चितवनसे विलसित हँसित मुखारविन्दवाली ॥ ९ ॥ देवहूति बोली कि हे विप्रवर ! हे प्राणनाथ ! ! हे स्वामिन् ! ! ! आप अमोघ योगमायाके स्वामी हो तुममें यह सब प्रस्तुत है; यह मैं भलीप्रकार जानूं हूं, परन्तु तुमने जो मुझसे कहा था कि,-

दोहा-कछुक काललों आपसे, मोदित करहिं विहार।
जबलों होय न गर्भ मोहिं, यह वर देहु उदार॥

तुमने कहा था कि ऐसाही होगा. सो अपने कहे अनुसार एकबार अंगसंग करना योग्य है; क्योंकि महातेजस्वी पतिसे जो सतीस्त्रियोंके संतान उत्पन्न होती हैं वे अत्यन्त गुणवान् होती हैं ॥ १० ॥ हे प्रभो ! अंगसंग करने योग्य कामशास्त्रोंकी शिक्षा है, जिससे मेरी यह मलीन और क्षीण देह रमण करनेयोग्य हो तुम्हारे कियेहुए कामसे मैं हर्षित हूं, इसकारण उसको शान्त करनेके लिये उत्तम भवन बनाना चाहिये ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी

बोले कि, हे विदुरजी ! प्रियाके प्रियवचन सुन कर्दमजीने योगबलसे उसी समय एक ऐसा परमोत्तम विमान प्रगट किया कि, इच्छानुसार सब भूमण्डलमें घूमनेवाला ॥ १२ ॥ सर्व इच्छा पूर्ण करनेवाला दिव्ययान बडे मूल्यके रत्नोंसे जडाहुआ सब वृद्धियोंके समूहोंसे संचित मणिमाणिकोंके खम्भोंसे शोभित, ऐसा यान बनाया -

दोहा-ग्रीषम पावस शिशिर अरु, शरद हिमंत वसंत।
निजप्रभाव प्रगटत निपट, षट ऋतु सदा लसंत ॥ १३ ॥

दिव्य सामग्री समेत प्रत्येकका सुख देनेवाला नानाप्रकारकी अद्भुत २ ध्वजा व विचित्र पताकाओंसे विभूषित ॥ १४ ॥ विचित्र पुष्पोंकी सुन्दर २ माला लटक रहीं जिनपर भँवरोंके झुण्डके झुण्ड गुंजार रहे, रेशमी वस्त्र बढिया पीतांबरादिक अनेक प्रकारसे लगेहुए ॥ ॥ १५ ॥ चौखंडे पंचखंडे रचेहुए स्थानों व मन्दिरोंमें पृथक् २ शय्या, चमर, पर्यङ्क, व्यजन, आसन जहां तहां विराजमान ॥ १६ ॥ उन स्थानोंमें नानाप्रकारकी शिल्पकी कारीगरीसे चित्रसारी और तिवारी ऐसी मनोहर सवारीं थीं कि जिनकी मणिमरकतमय भूमिमें अद्भुत वेदी बनरही थी ॥ १७ ॥ द्वारोंपर विद्रुमकी देहलियोंका प्रकाश हीरोंसे जडे वज्रकिंवाड विद्युच्छटासम चमक रहे, शिखरोंपर इन्द्रनील मणि लसी हुई, कनकके कलश कलशियां दमकरहे ॥ १८ ॥ भीतोंके भीतर हीरे, माणिक, पद्मराग जहां तहां चित्र-विचित्र नेत्रोंकी समान चमक रहे थे और रंगबिरंगे अधिक मोलके सामियाने तने थे ॥ ॥ १९ ॥ मणियोंके कृत्रिम हंस व कपोतोंको देख २ हंस कबूतरोंके झुंडके झुंड उनको अपना सजातीय समझ उड २ उनके निकट आआकर बैठते थे ॥ २० ॥ विहारस्थान, शयन भवन, विश्रामगृह, उपभोगस्थल, आंगन, दुर्गसे बाहरके मन्दिर, सविस्तार चौक उसमें ऐसे २ अद्भुत भवन यथासुख बने थे कि, जिनको देख कर्दमजीको भी विस्मय होता था ॥ २१ ॥ ऐसे शोभायमान मन्दिरोंको देख, देहकी मलिनता, और सखियोंके न होनेसे देवहूति अपने मनमें अत्यानंद न हुई, तब सब जीवमात्रके अन्तर्यामी कर्दमजी देवहूतिसे बोले ॥ २२ ॥ हे सुमुखि ! इस विन्दुसरोवरमें स्नान करके इस विमानमें बैठ यह तीर्थ अपने नेत्रोंसे आनन्दका विन्दु इस भूमिपर डालकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने उत्पन्न किया है, यह मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला, और आशीर्वादका देनेवाला है ॥ ॥ २३ ॥ वह पंकजनेत्रा देवहूति पतिका वचन मान, मलिनवस्त्र पहिरे, दुर्बल शरीर, वेणीभूत केश धारण किये ॥ २४ ॥ मैली देह, कीचमट्टीमें सनीहुई, ऐसी देवहूतिने उस विस्तीर्ण सरस्वतीके शिवसरोवरमें स्नान किया ॥ २५ ॥ सरोवरके भीतरसे एक हजार कन्या सब किशोर वय, सर्वगुणसंपन्न, कमलसमान सुगंधवाली दृष्टि आईं ॥ २६ ॥ देवहूतिको देख हाथ जोडकर सब स्त्रियें बोलीं, कि हम आपकी दासी हैं और सब कर्मकी करनेवाली हैं; हमको जो आज्ञा दो वह करैं ॥ २७ ॥ उस मनस्विनीको स्वच्छतासे स्नान कराकर अमूल्य वस्त्र दासियोंने पहिराकर ॥ २८ ॥ सर्व स्वादुयुत अन्न जिमाये अमृतसमान मिष्ट मादक जल पिलाया और अमोल रत्नजटित

वस्त्राभूषण पहिराये ॥ २९ ॥ फिर देवहूतिने पुष्पोंकी माला पहिर, शुक्ल वस्त्र धार निर्मल स्वस्त्ययन करीहुई, बहुत कन्या सम्मान करैं ऐसे अपने अंगको आरसीमें देखा ॥ ३० ॥ शिरसे स्नान किये सब आभरण शोभित गलेमें हार और हाथोंमें कंकन पहिरे, सौभाग्यके सब मांगलिकपदार्थ धारण किये पावोंमें स्वर्णके नूपुर झन-झनाती ॥ ३१ ॥ बहुतरत्नोंकी करधनीकटीमें पहिरे. हीरोंके हार कंठमें शोभायमान ॥ ॥ ३२ ॥ सुन्दर दांत, सुन्दर भौंहैं. मनोहर प्रेमरस भरे कटाक्षवाले नेत्र, पद्मरागनिंदा करनेवाले नील मेघनिभ अलकोंसे शोभित मुखारविंद दृष्टि आया ॥ ३३ ॥ उस मनोहर छविको निरख ऋषिश्रेष्ठ अपने प्राणप्रीतमका देवहूतिने स्मरण किया, वह वहां गई जहां सब ऋषियोंमें अग्रगण्य कर्दमजी विराजते थे ॥ ३४ ॥ हजार सहचरियों समेत, प्यारे अपने पतिकी योगमायाको देख देवहूतिको महासंशय हुआ कि, यह क्या आश्चर्य है ? ॥ ॥ ३५ ॥ मज्जन (स्नान) करनेसे अपूर्व शरीरकी कांति प्रकाशित है जैसीकि विवाहके समय थी, उस रूपको धारण किये वस्त्रसे उरोंजोको छिपाये कर्दमजीने देवहूतिको देखा ॥ ३६ ॥ सहस्रविद्याधरियोंसे सेवित, मनोहर वस्त्र पहिरे उस मनोरमाको देखकर. हे विदुरजी कर्दममुनिने देवहूतिका कोमल मृणालवत् कर पकडकर प्रेमसहित उस विमान पर बिठाया ॥ ३७ ॥ महिमा जिनकी लुप्त न हुई प्रियामें आसक्त विद्याधरियोंसे शुश्रूषित, कर्दमजी प्रफुल्लित पद्मकी समान सुन्दर आकाशमें तारागणसेवित चन्द्रमाकी समान शोभा पानेलगे ॥ ३८ ॥ उस विमानमें बैठकर आठों लोकपालोंके विहारका कुलाचलेन्द्र सुमेरुकी कन्दराओंमें कामदेवके सखा शीतल, मन्द, सुगन्ध, बयार चलरही, गंगाके गिरनेका कल्याण दायक शब्द होरहा ऐसे सुमेरुपर्वतपर कुबेरसम कर्दमजी ललनागणोंको साथ लिये सिद्ध जिनकी स्तुति करैं सो कर्दमजी रमण करनेलगे ॥ ३९ ॥ फिर कर्दमजी प्रसन्न होकर वैश्रंभक, नन्दन, सुरसन, पुष्पभद्रक, मानस, चत्ररथ, इन देवता-ओंकी वाटिकाओंमें अपनी रमणीके साथ रमण करनेलगे ॥ ४० ॥ प्रकाशक मन जहां चाहे वहां जायँ, ऐसे बडे विमानमें बैठकर लोकोंमें जैसे पवन चले तैसे सब विमानोंको उल्लंघनकर कर्दमजी सबके शिरोमणि हुए ॥ ४१ ॥ उन धैर्यवानोंको कौन वस्तु दुर्लभ है ? जिन्होंने कष्टहरण श्रीनारायणके कमलरूपी चरणका आश्रय लिया है, सब व्यसन उनके नाश होजाते हैं ॥ ४२ ॥ फिर जितना भूमण्डल है सो सब अपनी भार्याको दिखाया जिससे वह आश्चर्य्यान्वित हुई. सबमें विचरकर महायोगी कर्दमजी अपने आश्रमको आये ॥ ४३ ॥ मनुकन्याने नव कन्या उत्पन्न की तौभी मैथुनमें जिसका मन जब अपनी प्रिया देवहूति स्त्रीसे बहु (सौ) वर्ष एक मुहूर्तकी नाईं रमण करते कर्दमजी को वीत गए ॥ ४४ ॥ तब उस विमानपर स्थित होकर देवहूती अपने पतिके साथ ऐसी मोहित हुई कि समयकी कुछ सुधि न रही ॥ ४५ ॥ इसप्रकार योगके प्रभावसे स्त्रीपुरुषको आनंद क्रीडा करते २ कामकी लालसामें सौ वर्ष व्यतीत होगए ॥ ४६ ॥ देवहूतिको अत्यन्तस्नेहके कारण आत्मज्ञानी आत्माका भाव जानकर नौ प्रकारका रूप विधान कर, विभु सब संकल्पके ज्ञाता कर्दमजीने देवहूतिमें वीर्य धारण किया, पुरुषका

वीर्य अधिक होय तो पुत्र, स्त्रीका रज अधिक होय तो कन्या होती है ॥ ४७ ॥ इसकारण देवहूतिके शीघ्रही नौ कन्या उत्पन्न हुई वे सब श्रेष्ठ कोमलांगी, जिनका लालकमलकेसा रंग और अंगसें सुगंधि थी ॥ ४८ ॥

चौ०-सब रविशशिमनमोहनहारीं * मनहु काम निजहाथ सँवारीं ॥

फिर जिस समय कर्दमजीने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार संन्यास ले वनके जानेकी इच्छा की उस समय पतिको देख सती देवहूति मोहसे विवशहृदय हो मुसकाई ॥ ४९ ॥ नीचेको ग्रीवा किये, मणि समानकान्ति, चरणके अँगूठेके नखसे धरतीको खोदनेलगी, और धीरें २ आंखोंसे आँसू पोंछ मृदुलवाणीसे ॥ ५० ॥ देवहूति बोली कि, हे नाथ! आपने सब प्रकार मेरा मनोरथ पूरा किया, तौभी मैं आपकी शरण आई हूं. मुझको आप अभयदान दीजिये ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन्! आपको इतनी कृपा और करनी चाहिये कि इन कन्याओंके योग्य कोई उत्तमकुलका वर ढूँढकर विवाह करतेजाओ, व एक मेरा शोकहर्ता पुत्र उत्पन्न कर पीछे वनको जाइयो-

दोहा-मुझ दासीकी यह विनय, सुनहु कृपा कर नाथ।
दै एक सुत मोहिं जाहु वन, कहौं जोरि युग हाथ ॥ ५२ ॥

हे प्रभो! इन्द्रियोंके प्रसंगसे मैंने परब्रह्मको त्यागकर इतना समय व्यतीत किया, इसीमें मेरा मन तृप्त होगया ॥ ५३ ॥ इन्द्रियसुखमें आसक्त होकर मैंने आपसे भोग विलास किया सो आपके परम भावको मैं नहीं जानती थी, तौभी मेरे अभयके अर्थ कुछ उपाय करना चाहिये ॥ ५४ ॥ संयोग संसारके बन्धनका कारण है सो कुबुद्धिसे असत्पदार्थोंमें संयोग किया, वही संयोग महात्माओंसे कियाजाय तो निश्चय मोक्ष होजाय ॥ ५५ ॥ इस संसारमें आनकर जिसने धर्मार्थ न तौ कोई उत्तम कर्म किया, न वैराग्यार्थ कुछ तप किया, न नारायणके चरणारविन्दोंकी सेवा करनेको कुछ उपाय किया है, वह पुरुष जीता हुआ मृतककी समान है ॥ ५६ ॥ निश्चय है कि मैं भगवानकी मायासे मोहित होगई जो आपसे मोक्षदायक पतिको पाकर भी इस संसारके बन्धनसे न छूटी मनुष्य कितनाही बुद्धिमान् हो परंतु भगवान्की भक्तिविना सब वृथा है--

सवै०-बुद्धि बडी, चतुराई बडी, मनमें ममता, अति ना लिपटी है ॥
नाम बडो, धनवान, बडो करतूत बडी, जगमें प्रकटी है ॥
गज बाजिहु द्वार, मनुष्य हजार. तौ इन्द्रसमानसे, कौन घटी है ॥
सो सब, विष्णुकी भक्तिविना, मानो सुन्दर, नारिकी नाक कटी है ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे नवकन्योत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा-चौबिसवें अध्यायमें, कपिलदेव अवतार।
कर्दममुनि वनको गए, त्याग जगतव्योहार ॥

मैत्रेयजी बोले कि मनुतनया देवहूतिने जब इसप्रकार ज्ञानवैराग्यके वचन कहे, उस

समय भगवान् वासुदेवके कहे वचन स्मरण करके महात्मा कर्दमजी देवहूतिकी प्रशंसा कर ॥ १ ॥ ऋषि बोले; कि हे राजपुत्रि ! खेद त्यागो, अपने आत्माकी इसप्रकार निंदा मत करो, अक्षर भगवान् थोडेही दिनोंमें तुम्हारे गर्भमें आनकर प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ तुमने अनंतव्रत धारण किये हैं, तुम्हारी कुशल होगी; यम, नियम, तप, धन, दान, श्रद्धासे परमात्माकी सेवा करो ॥ ३ ॥ तुम आदिपुरुष अविनाशी श्रीमन्नारायणका आराधन करोगी तो त्रिलोकीनाथ ज्ञानउपदेशक श्रीभगवान् तुम्हारे उदरसे उत्पन्न होकर मेरा यश विस्तारकर तेरे हृदयकी ग्रंथि और मोह ममताका छेदन करेंगे ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, देवहूति कर्दमप्रजापतिके वचन सुन उनपर पूर्ण विश्वास कर श्रद्धासहित अचिंत्यरूप कूटस्थ पुरुष जगद्गुरु ईश्वरका भजन करनेलगी ॥ ५ ॥ कुछदिनोंके उपरांत मधुसूदन भगवान् कर्दमजीके वीर्यको प्राप्त होकर, जैसे काष्ठसे अग्नि उत्पन्न होती है तैसे देवहूतिके उदरसे उत्पन्न हुए ॥ ॥ ६ ॥ उस समय आकाशमें बड़े शब्दसे बाजे बजनेलगे, गन्धर्व गानेलगे, अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ७ ॥ दिव्य आकाशवासियोंके छोडेहुए पुष्प वर्षनेलगे, सब दिशा जल और मन अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ सरस्वतीपरिवेष्टित उस कर्दमजीके आश्रमपर मरीचिआदि ऋषियोंको संग लेकर ब्रह्माजी आये ॥ ९ ॥ हे रिपुसूदन ! विदुरजी ! भगवान् परब्रह्म सत्त्वअंशसे सम्यक् सांख्य शास्त्रको प्रगट करनेके लिये जन्म लिया है, यह बात स्वतःसिद्ध आत्मज्ञानवाले ब्रह्माजीको प्रगट हुई ॥ १० ॥ ब्रह्माजी विशुद्धचित्तसे उनके करनेकी जो इच्छा प्रगट हुई उसको अत्यन्त सत्कारकर हर्षितचित्तसे कर्दमजीसे ॥ ११ ॥ बोले कि, हे पुत्र ! हे मान देनेवाले ! तुमने निष्कपट होकर मेरी पूजा की जो मेरा वचन मानसे तुमने ग्रहण किया ॥ १२ ॥ पुत्रोंको पिताकी इतनीही शुश्रूषा करनी चाहिये ? "जो आज्ञा" ऐसा कहकर पितृवचन, गुरुवचन गौरवतासे माने ॥ १३ ॥ हे सभ्य ! यह तुम्हारी सुन्दर नव पुत्रियें अपने प्रभावसे अनेकप्रकारकी सृष्टिको बढावेंगी ॥ १४ ॥ इसलिये इनके शील और रुचिके अनुसार मुख्य २ मरीचि आदि ऋषियोंके लिये इन कन्याओंको दो, और संसारमें अपना यश विस्तार करो ॥ १५ ॥ हे मुने ! हम इस बातको भलीभांति जानते हैं कि प्राणियोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आदिपुरुषने अपनी मायासे कपिलदेह धारण किया है ॥ १६ ॥ हे देवहूति ! जो आदिपुरुषने तुम्हारे गर्भमें प्रवेश किया है, सो ज्ञान जो शास्त्रका सिद्धान्त और विज्ञान जो अपरोक्ष, अर्थात् विना देखे, विना सुने, विना कहे यथार्थ वस्तुका जान लेना; येही दोनों एक उपाय हैं, इनसे कर्मोंके जो मूल हैं, अर्थात् वासना, उनको उखाड़ेंगे सो सुवर्णकेश, कमलनयन, पद्मचिह्नवाले जिनके चरणारविन्द हैं, ऐसे कैटभदैत्यके मारनेवाले तुम्हारे आत्मरूपका अज्ञान और मिथ्याज्ञानकी ग्रंथिरूपोंको काटकर सब पृथ्वीपर बिचरेंगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ और ये तुम्हारे पुत्र सब संसारमें प्रसिद्ध होंगे, सिद्धगणोंमें मुख्य और सांख्यशास्त्रके आचार्य्योंमें सेव्यमान और लोकमें कपिलदेव नामसे विख्यात होकर तुम्हारी कीर्तिको बढ़ावेंगे ॥ ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जगत्कर्ता चतुरानन उन दोनों स्त्रीपुरुषोंको धैर्य देकर

सनत्कुमार और नारदमुनिसहित हंसवाहनपर बैठकर सत्यलोकको चलेगए ॥ २० ॥ हे विदुर ! जब ब्रह्माजी अपने लोकको चलेगये, तब कर्दमजीने ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार अपनी नवो कन्याओंको विश्व रचनेवाले मरीचि आदि मुनीश्वरोंको देदिया ॥ २१ ॥ कलानाम कन्या मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अंगिराको, हविर्भू पुलस्त्यको ॥ ॥ २२ ॥ योग्यगति पुलहको, क्रियासती यज्ञको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको और शान्ति अथर्वको दी जिस शान्तिसे यज्ञ समृद्ध होता है ॥ २३ ॥ इसप्रकार उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ विवाह करके स्त्रियों सहित उनको अत्यन्त लालन किया ॥ ॥ २४ ॥ हे विदुर ! विवाह होनेके उपरान्त ऋषि कर्दमजीसे विदा मांग आनन्दित हो अपने २ आश्रमोंको चलेगए ॥ २५ ॥ कर्दमजी अपनी स्त्रीमें देवश्रेष्ठ विष्णु अवतार हुआ जानकर, एकान्तमें आ प्रणाम कर बोले ॥ २६ ॥ हे हरे ! अपने पापकर्मोंसे पापी जीव नरकमें दुःख भोगते हैं, उनका बहुतकाल बीतनेपर देवता उनपर प्रसन्न होते हैं ॥ ॥ २७ ॥ महात्मापुरुष एकान्तस्थानमें बैठकर अनेक जन्मके करेहुए सुन्दर योगसमाधि-सम्बन्धी जप तप साधन कर आपके पदपंकजके दर्शनार्थ उपाय करते हैं ॥ २८ ॥ वही त्रिभुवनपति नारायण आज हमारे अपराधोंको बिसारकर, अपने दासोंका पक्ष पुष्ट करने-वाले, हमसे तुच्छ ग्रामवासियोंके घरमें आपने जन्म लिया ॥ २९ ॥ अपना प्रण पूरा करनेको और ज्ञानवैराग्यकी शिक्षा करनेको और भक्तोंका मान बढानेको मेरे घर आनकर आपने अवतार लिया ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! यद्यपि चतुर्भुज आदि जो अद्भुतरूप है वही आपके योग्य है, तथा आपके सुजनभक्तोंको जिस जिस प्रकारके रूपकी इच्छा होती है हे रूपरहित ! आप उसीप्रकारका रूप धारण कर उनको प्रसन्न करते हो ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! प्रत्यक्ष तत्त्वज्ञानके मनोरथसे महात्मापुरुष जिन आपके चरणपीठको नमस्कार करते हैं उन ऐश्वर्य्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य, श्रीसे पूर्ण जो आप हैं, सो मैं आपकी शरण हूं, अर्थात् सर्व गुणनिधान आपकी शरण होनेसे मैंभी निष्काम होगया ॥ ३२ ॥ परमेश्वरका प्रधानपुरुष महत्तत्त्व, काल, कवि, अहंकार, लोक और लोकपालक, अपने अनुमानसे संसारमें आते हैं, भक्तोंके आधीन जिसकी शक्ति और जिनके स्वरूपमें सब प्रपंच समाया रहता है ऐसे कपिलदेव भगवान्की मैं शरण हूं ॥ ३३ ॥ हे प्रजापतियोंके पति ! मैं आपसे संन्यास धारणके कारण आदेश मांगता हूं और यह भी जानता हूं कि आपके अवतार लेनेसे मैं पितृऋणसे छूटगया और मेरी मन कामनाभी सिद्ध हुई, अब संन्यासियोंकी पदवीमें स्थित हो, आपको हृदयमें धारणकर विशोक होकर विचरण करूंगा ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे मुने ! सत्य लौकिकमें सब कार्योंमें मेरा कहना सबको प्रमाण है इसकारण जो वाक्य मैंने आपसे कहे थे वे सब सत्य करनेको तुम्हारे यहां मैंने जन्म लिया ॥ ३५ ॥ इस लोकमें लिंगशरीरसे मुमुक्षुलोगोंको आत्माके दर्शनके लिये और जगत्की दुर्वासना मोक्षके लिये, और तत्त्वोंकी संख्याके लिये संसारमें मैंने जन्म लियाहै ॥ ३६ ॥ बहुतकालसे यह सूक्ष्म, अनादि, ईश्वरसम्बन्धी ज्ञानमार्ग नष्ट होगया

था, उसके प्रचार करनेको यह मनुजअवतार संसारमें मैंने धारण किया है ॥ ३७ ॥ जो कुछ कर्म करो वह मेरे निमित्त समर्पण करो यही पूर्णसंन्यास है इस बातको मनमें धारण कर जहां इच्छा हो वहां जाओ और अत्यन्त दुर्जय इस मृत्युको जीतकर मोक्षके अर्थ मेरा भजन करो ॥ ३८ ॥ मैं आत्मज्योति हूं और सब जीवमात्रके हृदयमें वास करताहूं सो अपनी बुद्धिसे सर्वत्र परमात्माको जानकर विगतशोक हो अभय पदको प्राप्त होओगे ॥ ३९ ॥ सब कर्मोंका नाश करनेवाली ब्रह्मविद्याका उपदेश अपनी माताके लिये विस्तारसहित कहूंगा, जिससे वह संसारबंधनसे छूटकर तरजायगी ॥ ४० ॥ मैत्रेयजी बोले जब कपिलदेवजीने इसप्रकार कर्दमजीसे वचन कहे, तब कर्दम प्रजापति कपिलदेवजीकी प्रदक्षिणा करके वनको चलेगए ॥ ४१ ॥ मुनिलोगोंका धर्म जो मौनव्रत है उसमें स्थित होकर; आत्माके शरणागत हो, सबका सत्संग तजकर मोहविगत हो फलाहार करनेलगे, एकस्थानपर न ठहरें, सब पृथ्वीपर विचरते रहें ॥ ४२ ॥ जो कार्य-कारणसे परे ब्रह्म है उसमें मन लगाय, गुणोंका जिसमें प्रकाश है ऐसे निर्गुण ब्रह्ममें लौलीन हो एक भक्तिको अनुभव करतेहुए ॥ ४३ ॥ अहंकार, ममता, त्याग सुखदुःख समान समझ समदर्शी ज्ञानदर्शी हो सबसे शान्ति बुद्धि कर जैसे समुद्रमें सब तरंगें शान्त होजाती हैं ॥ ४४ ॥ इसीप्रकार महाधीर प्रजापति कर्दमऋषि अपना मन सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवान् सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामीमें लगा परमभक्तिभावसे आत्मज्ञान प्राप्त कर सब बन्धनसे मुक्त हुए ॥ ४५ ॥ सब जड चेतनमें आत्मा भगवान् वासुदेवको स्थित देखनेलगे और सब जड चेतनको भगवान् वासुदेव आत्मामें देखनेलगे ॥ ४६ ॥ कामना द्वेषको त्याग सर्वत्र समान चित्त कर भगवान्की भक्तिमें लय हो भगवद्गतिको प्राप्त हुए. जैसे भक्तिमें वश होकर इन नीचे कहे हुओंकी रक्षा की थी उसीप्रकार कर्दमजीकी रक्षा की-

कवित्त-गिरिको उठाय ब्रजगोपोंको बचाय लीन्हों, अग्नितें उबारे पाण्डु बालक मँजारीको ॥ गजकी अरज सुन ग्राहतें छुटायो शीघ्र, राख्यो व्रत नेम धर्म पाण्डवकी नारीको ॥ राख्यो गजघण्टातले बालक विहंगमको, राख्यो प्रण भारतमें भीष्मब्रह्मचारीको ॥ त्रिविधतापहारी निजसंतनसुख कारी है, मोहिं तो भरोसो वाही सांवरे विहारीको ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कपिलदेवावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥
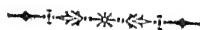
दोहा-देवहूति पच्चीसमें, बूझत मुक्ति उपाय।
भक्ति मुक्तिकी रीति सब, कही कपिल समुझाय ॥

श्रीशौनकजी बोले कि, तत्त्व सांख्यशास्त्रके कर्ता भगवान् कपिलदेवजी मनुष्योंको आत्म-तत्त्वका उपदेश करनेके लिये अपनी मायासे आपही अजन्मा भगवान्ने जन्म लिया ॥ १ ॥

सब पुरुषोंमें शिरोमणि, योगिजनोंमें श्रेष्ठ, ऐसे वासुदेव भगवान्की कीर्ति और परमेश्वरके अत्यन्त चरित्र सुननेसेभी मेरी इन्द्रियें तृप्त नहीं होतीं ॥ २ ॥ अपने प्यारे भक्तोंकी इच्छासे जो जो स्वरूप त्रिभुवनेश्वर भगवान् धारण करते हैं और अपनी मनमोहनी मायासे जो जो अलौकिक लीला करते हैं, और अपनी मनमोहिनी मायासे जो जो अलौकिक लीला की हैं वे चरित्र मुझ श्रद्धालुको कीर्तन करनेके योग्य हैं, सो कृपा कर कीर्तन कीजै ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, वेदव्यासजीके प्यारे सखा मैत्रेय भगवान्ने विदुरजीसे प्रीतिके मारे, ब्रह्मविद्यामें प्रेरित इसी प्रकारके वचन कहे थे, जैसा तुमने मुझसे प्रश्न किया, सो हम तुमसे कहेंगे. आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब कर्दमजी वनको चलेगए, तब कपिलदेवजी अपनी माताकी मनकामनाको पूर्ण करनेके अर्थ उसी बिन्दुसरोवरपर वास करनेलगे ॥ ५ ॥ अपने सुत अकर्मी तत्त्वमार्गके अग्र दिखानेवाले कपिलदेवजीको बैठा देखकर ब्रह्माका वचन स्मरण कर ॥ ६ ॥ देवहूति बोली, हे भूमन् ! हे प्रभो ! खोटी इन्द्रियोंकी तृष्णासे अब वैराग्य प्राप्त हुआ जिन विषयोंकी भावनासे अन्धतममें गिरनापडा ॥ ७ ॥ जो महागम्भीर दुःखके समुद्रसे कठिनाईपूर्वक पार जासकै; उसके अन्धकारको पार करनेवाले, अनेक जन्मोंके अन्तमें आपकी कृपासे मुझको इस सुन्दरस्वरूपका दर्शन हुआ है ॥ ८ ॥ पुरुषोंमें आद्यपुरुष भगवान् ईश्वर हैं सो आप हो; अँधियारेसे अन्धेहुए लोकोंके सूर्यके समान नेत्ररूप तुम उदित हुए हो ॥ ॥ ९ ॥ इस कारण हे देव ! जो यह असत्आग्रह, अहं, ममता, मोह, आपनेही इनसे संयोगकर रक्खाहै, सो आप हमारे मोहको दूर कीजै ॥ १० ॥ शरणागतप्रतिपालक, भक्तवत्सल, अपने भक्तोंकी मृत्युके वृक्षको काटनेके लिये कुठाररूप, सद्धर्ममें श्रेष्ठ प्रकृति पुरुष जाननेकी इच्छा करके मैं तुम्हारे शरण आई हूं, इसलिये आपको प्रणाम करती हूं ॥ ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार अनिंद्य चाह, अपनी माताकी सुनी जो मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली बुद्धिसे सराहनाकर आत्मज्ञानी संतोंकी गति मंद मंद मुसकानसे शोभायमान मुखसे अपनी मातासे कहा ॥ १२ ॥ कि, पुरुषोंके कल्याणार्थ ब्रह्मविद्यामें आशा रखनी यही मेरा मत है, जिस ब्रह्मविद्याके लाभ होनेसे सुखदुःखका नाश होजाता है ॥ १३ ॥ हे अनघे ! सर्वप्रकारसे बहुत निपुणयोगको सुननेकी इच्छावाले योगियोंको जो योग मैंने प्रथम कहा था वही कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥ १४ ॥ चित्त निश्चय करके इसके बंधनार्थ है, और आत्माका चित्त मुक्तिके अर्थभी कहा है गुणोंमें आसक्तता होनेसे बंधन होता है, और जिस पुरुषका चित्त ईश्वरमें लगै वह मुक्त होजाता है ॥ १५ ॥ मैं, मेरा, यह अभिमानसे उठाहुआ, कामलोभादि मलोंसे रहित शुद्ध मन होता है तब सब दुःखोंका नाश होकर सुखकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ तब पुरुष आत्मा केवल प्रकृतिसे परे निरंतर स्वयंज्योति अणुमात्र अखंडित परमेश्वरको ॥ १७ ॥ ज्ञानवैराग्यभक्तियुक्त आत्मद्वारा सबसे उदासीन प्रकृतिके पराक्रमका नाश करनेवाला ब्रह्म जीव ब्रह्मको देखता है ॥ १८ ॥ भगवान् अखिलात्मामें लगेहुएके समान योगियोंको ब्रह्मसिद्धिके लिये इससे

अधिक और मंगलदायक मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥ इस जीवको जगत्में आसक्त होजाना यह अजर अमर फाँसी है. यही आसक्ति साधुसंतोंमें करै तौ उसके लिये मोक्षका द्वार खुला हुआ है ॥ २० ॥ मुनिजनोंका कथन है कि, सबकी सब बातैं सहै, सब देहधारियोंपर दयालुता रक्खै; सब जीवमात्रके साथ सुहृद्भावसे वर्तै, किसीको अपना शत्रु न समझै, शांतगुण परकार्यसहायक साधुओंके अलंकार हैं ॥ २१ ॥ जो मुझमें अनन्यभावसे दृढभक्ति करके मेरेलिये सब काम त्यागते हैं, और सब स्वजन बन्धुओंसे स्नेह छोडते हैं ॥ ॥ २२ ॥ जो मेरीही कथा मनोहर मृदुलको सुनते हैं, अथवा कहते हैं, और जो अपना मन मुझमें लगाते हैं उनको किसीप्रकारका ताप नहीं व्यापसक्ता ॥ २३ ॥ हे साध्वी ! जो साधु हैं वे सब संगसे रहित हैं और किसी तापसे तापित नहीं होते, उन महात्माओंका संग करना चाहिये. किसलिये कि वे सब संगतिके दोष दूर करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ हे जननी ! संतोंके प्रसंगसे मेरे पुरुषार्थवाली कथा हृदय और कर्णको सुखदायक आत्मज्ञान करानेवाली होती है, उसके सुनने और प्रेम करनेसे मोक्षमार्गमें शीघ्र श्रद्धा, प्रीति, भक्ति, श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदमें सहज २ में उत्पन्न होसक्ती है ॥ २५ ॥ मेरे चरित्रोंका चिंतवन करनेसे प्रथम मनुष्यके हृदयमें भक्ति प्रकट होती है, और भक्ति करनेसे पुरुषको वैराग्य उत्पन्न होता है. और वैराग्यमें मेरी अलौकिक रचनाके विचार करनेसे योगयुक्त होकर चित्तके ग्रहणार्थ कोमल योगके मार्गोंसे यत्न करै ॥ २६ ॥ प्रकृतिके गुणोंकी सेवा न करनेसे और ज्ञानवैराग्य अधिक बढानेका चिंतवन करै; योगका साधन करे, सब कर्म मेरे समर्पण करै और एकाग्रचित्त हो मेरी दृढभक्ति करनेसे प्राणी सर्व अंतर्यामी मुझको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ देवहूति बोली कि, ऐसी कौनसी भक्ति है जिसको मैं करसकूँ ? क्योंकि मैं स्त्री हूँ, मुझको किसप्रकारकी भक्ति करनी चाहिये ? जिसके प्रभावसे विना प्रयास, तुम्हारा मोक्षपद प्राप्त होता है ऐसा मैंने सुना है ॥ २८ ॥ भगवान्का उपलक्ष करनेवाला योग तुमने कहा है. सो कैसा है ? और उसके कितने अंग हैं ? जिससे तत्त्वज्ञान होता है ॥ २९ ॥

दोहा-कपिल कहो मोसों सविधि, कैसा है वह योग ।
जा करिकै योगी सकल, लहत भक्तिको भोग ॥

हे हरे ! ऐसी सुगमरीतिसे कोई शिक्षा मुझको करो कि, जिसके प्रभावसे मैं मन्दमति स्त्री भी तुम्हारे अनुग्रहसे कठिन बातको सहजमें समझलूँ ॥ ३० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, कपिलदेवजीने अपनी जननीके मनोरथको जानकर अधिक स्नेह किया, जहाँ शरीरधारी होकर जन्मे उस माताको तत्त्वोंकी संख्यावाले सांख्यशास्त्रकी शिक्षा भक्ति विस्तृत योगकी रीतिसे कपिलदेवजी कहनेको उद्यत हुए ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, गुणोंके जिनके शरीर वेदविहित कर्म करैं, ऐसे देवताओंका सतोगुण एक मन है. उनकी जो स्वभावकी वृत्ति है वही भक्ति है ॥ ३२ ॥ निष्प्रयोजन कीहुई भागवती भक्ति सिद्धिसे भी बड़ी है, जैसे जठरानल भोजन किये हुए अन्नको भस्म कर देता है, वैसेही भक्तिभी वासनाको

जलादेती है ॥ ३३ ॥ मेरे चरणोंकी सेवामें जिन पुरुषोंकी चेष्टा रहती है, और केवल मेरे ही लिये सब कर्म करते हैं वे लोग सायुज्यमोक्षकी इच्छा नहीं रखते, वे सज्जनपुरुष इकट्ठे होकर मेरे चरित्रोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३४ ॥ हे अम्ब ! वे महात्मालोग ! मेरे कोटि-शशिसम प्रसन्नवदन, अरुण नयन दिव्यवरप्रद रूपोंको वार्णीसे वद २ कहते हैं और आनंद हो होकर निहारते हैं ॥ ३५ ॥ दर्शनयोग्य रूप, उदार विलासहास, अवलो-कन, संभाषण, अत्यन्त मनोहर सूक्तोंसे जिनके प्राण व मन और इन्द्रियोंको वशमें कर-लिया है उनको विना इच्छाके भी सूक्ष्मगति देता है ॥ ३६ ॥ इसलिये विभूति, ऐश्वर्य, अष्टाङ्गयोग, भगवती श्रीकल्याणदायिनी सही ॥ ३७ ॥ ये सत्पुरुष मुझमें परायण हैं, वे शान्तरूप कभी नाशको नहीं प्राप्त होते, और मेरा कालचक्र उनको नहीं मारसक्ता क्योंकि जिनका मैं प्रिय आत्मा हूं, पुत्रके तुल्य प्रतिपालक, मित्रके समान विश्वासी, गुरुके सदृश उपदेशक, भ्राताके समान हितकारी, और देवतावत् पूज्यवर हूं ॥ ३८ ॥ इस लोक और परलोकको और दोनों लोकोंमें जानेवाले आत्माको और आत्माके पीछे जो यहां धन, पशु, गृह इत्यादिक और वस्तु हैं ॥ ३९ ॥ उनको सबको त्यागकर और विश्वमुख मुझको जो अनन्यभावसे भजते हैं उनको मैं संसारसागरसे पार उतार देता हूं ॥ ४० ॥ भगवान् प्रधान पुरुषेश्वर और सब पदार्थोंका आत्मा व अधिष्ठाता जो मैं हूं, मेरी शरणा-गत विना आत्माको सब जीवोंका तीव्रभय कभी निवृत्त नहीं होसक्ता ॥ ४१ ॥ मेरे भय से पवन चलता है, सूर्य तपता है, इंद्र जल वर्षाता है, अग्नि दाह करता है, और मृत्यु संसारमें घूमता फिरता है ॥ ४२ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्त भक्तियोगसे योगीजन अपनी कुशलके लिये निर्भय हो मेरे चरणारविंदका आश्रय लेते हैं ॥ ४३ ॥ पुरुषोंको आनन्द-का हेतु इसलोकमें इतनाही है कि, तीव्र भक्तियोगसे स्थिरमन मुझमें अर्पित करै, जिससे सदा आनन्द हो—

सवैया—मंगल होत सबै सुख देत सदा अणिमादिक मोद बढ़ावत ॥
पावन औरनहूको करैं प्रियसंतसभा धनिवादको छावत ॥
शुद्धिहितै नित युक्ति चितै कर कर्म बितैकै इतै नहिं आवत ॥
जो भजिहै यदुनन्दनको सोइ जन्मपदारथको फल पावत ॥४४॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे
कपिलयोगोपाख्याने योगमाणिक्यमंजूषायां भक्तिलक्षणवर्णनं नाम
पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा—छव्विसवें अध्यायमें, पुरुषप्रकृतिको ज्ञान।
भिन्न भिन्न लक्षणसहित, कहौं पदार्थ बखान ॥

श्रीभगवान् बोले कि, अब मैं तुमको तत्त्वोंके लक्षण पृथक् २ सुनाता हूं, जिनके जान-नेसे पुरुष प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त होजाता है ॥ १ ॥ पुरुषके आत्माका दर्शन जो ज्ञानमोक्षके

लिये है सो तुमसे वर्णन करता हूं, वही ज्ञान हृदयकी ग्रन्थिका भेदन करनेवाला है ॥ २ ॥ अनादि, आत्मा, पुरुष, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, पूजनीय, तेजका आप ज्योतिःस्वरूप है, जिससे यह विश्व प्रकाशित है ॥ ३ ॥ सो यह प्रभु सूक्ष्म देवी गुणमयी, यदृच्छासे प्राप्त प्रकृतिको लीलाकरके प्राप्त हुए. यहां यह सिद्धान्त है "आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति भेदसे प्रकृति दो प्रकारकी है" आवरणशक्ति जो है वही जीवोंकी उपाधि अविद्या है, और विक्षेपशक्ति जो है वह परमात्माकी माया है और पुरुष भी जीव और ईश्वर दो प्रकारका है; जो प्रकृति अज्ञानसे संसारमें आता है वह तो जीव है और जो प्रकृतिको वशमें करके विश्वकी सृष्टयादि करता है वह ईश्वर है ॥ ४ ॥ ज्ञानकी ढकनेवाली मायाको विचित्र अपने समान प्रजाको गुणोंसे रचती देख सो जीव ज्ञानचेष्टासे मोहित हो अपने स्वरूपको भूलगया, अर्थात् मैं देह हूं, यह समझनेलगा ॥ ५ ॥ इसप्रकार परमेश्वरके ध्यानसे और प्रकृतिके करेहुए गुणोंसे कर्म करनेपर भी यह जीव कहता है कि, मैं कर्म करता हूं कर्ताभावको आत्मामें मानता है ॥ ६ ॥ यद्यपि यह पुरुष साक्षीमात्र है, इस कारण अकर्ता है तो भी इस अकर्ताकोही अपनेमें कर्मत्वधर्म्मको माननेसे ही कर्मका बंधन होता है और जो किसीके आधीन नहीं है, उसीको भोगोंमें पराधीनता होती है, और जो सुखात्मक है उसको जन्म अर्थात् मृत्युप्रवाह होता है ॥ ७ ॥ कार्य कारण कर्तृत्वमें कारण प्रकृतिको जानो, सुखदुःखका भोक्ता प्रकृतिसे परपुरुष है ॥ ८ ॥ देवहूती बोली कि, हे पुरुषोत्तम ! प्रकृतिपुरुषका लक्षण कहो, और इनका सत्असत्आत्मकका कारण है सो कहो ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, स्वतः विशेष अर्थात भेदरहित होनेपर भी जो सर्व विशेषोंका आश्रय और प्रधानतत्त्व है उसे प्रकृति कहते हैं. क्या ब्रह्मको प्रकृति कहते हो ? नहीं वह त्रिगुण है और ब्रह्म गुणरहित है, तब क्या महत्तत्त्वादि हैं ? नहीं वह कार्य नहीं है. महत्तत्त्वादि कार्य हैं; क्या काल आदि है ? नहीं वह कार्य कारण रूप है; काल कार्यकारणरूप नहीं है, तब क्या जीव प्रकृति है ? नहीं; वह नित्य है ॥ १० ॥ पाँच २ चार और दश यह चौबीस तत्त्वोंका समूह प्रकृतिकी बनावट होनेसे प्राकृतिक कहलाता है ॥ ११ ॥ पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, आकाश, ये पांच महाभूत होते हैं; और गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द ये पांच तन्मात्रा हैं ॥ १२ ॥ कर्ण, त्वचा, दृष्टि, जिह्वा, श्रोत्र, ये पांच ज्ञानेन्द्रियें हैं; वाक्, कर, चरण, शिश्न, गुदा, ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं, नासिका यह मिलकर दश इन्द्रियें हुईं ॥ १३ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये आत्माके भीतर हैं, लक्षणरूप वृत्तियोंसे चार प्रकारका भेद लक्षित होता है ॥ १४ ॥ सगुणरूपका इतनाही व्याख्यान है, यह संक्षेपमात्र मैंने तुमसे कहा, जो काल है वह भी मायाकी ही एक अवस्था पचीस तत्त्व होकर रहती है ॥ १५ ॥ जो पुरुष अहंकारवश हो मूढतासे कहते हैं कि, यह काल परमेश्वरका प्रभाव है और देह हम हैं, इसप्रकार अज्ञानतासे देहाभिमानी पुरुषको जगत्का भय बना रहता है ॥ १६ ॥ हे माता ! जिसको कोई विशेष नहीं, त्रिगुणसाम्य भाव ही जिसका स्वरूप है, प्रकृतिकी चेष्टा काल है, जिससे भगवान्का

अनुमान होता है ॥ १७ ॥ जो भगवान् अपनी मायासे सब जीवमात्रके भीतर प्राप्त हो-रहे हैं, भीतर पुरुषसे और बाहर कालरूपसे रहते हैं ॥ १८ ॥ दैवसे जिसके धर्म क्षोभको प्राप्त हुए, ऐसी अपनी योगमायामें परपुरुषने हिरण्यमय महत्तत्त्वको रचा ॥ १९ ॥ अपने भीतर विश्वको जो धारण किया था उसको प्रकट किया और सर्वान्तःस्थिर जगत्का अंकुर महत्तत्त्वको अपने आप सुलानेवाले तमको अपने तेजसे पीलिया ॥ २० ॥ जो सत्त्वगुण स्वच्छ शांत रागद्वेषरहित, भगवत्का उत्तम स्थान है, जिसको वासुदेव कहते हैं, महत्तत्त्वरूप चित्त है, पंडितलोग इसमें यह सिद्धान्त करते हैं, कि उपास्य वासुदेव है क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता है. इसीप्रकार उपास्य व अहंकारमें संकर्षण उपास्य हैं, रुद्र अधिष्ठाता है. मनमें अनिरुद्ध उपास्य है, चंद्रमा अधिष्ठाता है, बुद्धिमें प्रद्युम्न उपास्य है ब्रह्म अधिष्ठाता है ॥ २१ ॥ पृथ्वीका संसर्ग होनेसे प्रथम जैसे जलकी स्थिति स्वच्छ और शांत होती है तैसेही दूसरे विकारके प्राप्त होनेसे प्रथम स्वच्छता अर्थात् भगवान्के विभवका ग्रहण करना, लयविक्षेप शून्यहोना, शांतहोना, इन वृत्तियोंद्वारा महत्तत्त्वका लक्षण कहाजाताहै ॥ २२ ॥ भगवत्के वीर्यसे जिसकी उत्पत्ति ऐसा महत्तत्त्व विकारको प्राप्त हुआ, तब क्रियाशक्ति अहंकार त्रिविध उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ वैकारिक, तैजस, तामस, जिससे हों, वह मन इन्द्रियें पंचभूत महत्तत्त्व इनसे प्रगट होते हैं ॥ २४ ॥ अहंकारके उपास्य देवता भग-वान् शेषजी हैं जिनके सहस्र शीश हैं उनको साक्षात् अनंत कहते हैं वे संकीर्ण पुरुष हैं, भूतइन्द्रिय मनोमय हैं ॥ २५ ॥ कर्तृत्व, करणत्व, कार्यत्व, शांतत्व, घोरत्व, विमूढत्व यह अहंकारका लक्षण है ॥ २६ ॥ जब सात्विक अहंकार विकारको प्राप्त होता है, तब मनस्तत्त्व प्रगट होता है और संकल्प, विकल्पसे जो कामना उत्पन्न होती है वह मनका लक्षण है ॥ २७ ॥ सब इन्द्रियोंके अधीश्वर, शरद्कालके नील कमलसमान श्यामस्वरूप, योगियोंसे सुन्दर आराधन करनेके योग्य उनको अनिरुद्ध कहते हैं ॥ २८ ॥ हे जननि ! तैजस अहंकारतत्त्व जब विकारको प्राप्त हुआ, तब बुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ; इसमें द्रव्यके स्फुरणज्ञान इन्द्रियोंका अनुग्रह होता है ॥ २९ ॥ संशय, मिथ्याज्ञान, निश्चय, स्मृति, निद्रा ये बुद्धिके लक्षण हैं, सब वृत्तियोंसे पृथक् ॥ ३० ॥ ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय ये दशों राजस अहंकारसे उत्पन्न हुई कहते हैं; क्रियाशक्ति प्राणकी है और विज्ञानशक्ति बुद्धिकी है, ये दोनों राजस और अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं. इसलिये ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय भी इसीसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३१ ॥ भगवत्के वीर्यसे प्रेरित तामस अहंकार जब विकारको प्राप्त हुआ, उससे शब्दमात्र प्रगट हुआ, और शब्द नभ उत्पन्न हुआ, और शब्दकी उपलब्ध करने-वाली श्रोत्रइन्द्रिय, राजस और अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ शब्दसे सब पदार्थोंके नाम होते हैं, जो मनुष्यदृष्टिमें नहीं आता तौ भी वह किसी पदार्थको देखकर उसके चिह्न मात्रका ज्ञान होना, उसकी मात्रा जाननी यह कवियोंने आकाशका लक्षण कहा है, शब्दके अर्थको अर्थात् जिससे सब पदार्थोंके नाम रक्खे जाते हैं जानना और देखनेवालेके चिह्न-मात्रका ज्ञान न होना और उसकी मात्राको पहिचानना यह बुद्धिमानोंने आकाशका लक्षण

कहा है ॥ ३३ ॥ सब प्राणिमात्रोंमें अवकाशका छिद्र रखना और बाहर भीतर व्यवहारको आश्रय देना, प्राण इन्द्रिय आत्मामें स्थान रखना आकाशकी वृत्तिका लक्षण है ॥ ३४ ॥ शब्दमात्रावाला आकाश जब कालकी गतिसे क्षुभित हुआ तब उससे स्पर्शतन्मात्रा प्रगट हुई, उससे वायु उत्पन्न हुई, त्वचाइन्द्रियसे स्पर्शका ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥ कोमलता, कठिनता, शीतलता, उष्णता यह स्पर्शरूपवाले पवनकी तन्मात्रा हैं, यही स्पर्शका लक्षण है ॥ ३६ ॥ वृक्षादिकोंके पत्तोंको चलायमान करना, शब्दका लेजाना, तृणादिकोंको मिलाना, प्राप्त कराना, सब इन्द्रियोंको बल देना, यह कर्मद्वारा वायुका लक्षण कहा है ॥ ॥ ३७ ॥ जब स्पर्शवाली वायु दैवसे प्रेरित हुई तब उससे रूप प्रगट हुआ, उससे तेज हुआ, उससे ग्रहण करनेवाली चक्षुइन्द्रिय हुई ॥ ३८ ॥ हे माता! रूप पदार्थोंको आकर देता है और द्रव्यमें गौणरीतिसे प्रतीत होना और पदार्थोंकी रचनाके पीछे प्रतीत होना यह भी रूपमात्राको वृत्ति हैं ॥ ३९ ॥ प्रकाश, पाचन, पान, भोजन, शीत, मर्दन, भूँख प्यास, सुखाना ये तेजकी वृत्तियें हैं ॥ ४० ॥ जब दैवइच्छासे रूपगुणवाला तेज विकारी हुआ, तब उससे रसमात्रा हुई, उससे जल हुआ; उसकी ग्रहण करनेवाली जीभ हुई ॥ ॥ ४१ ॥ यह एकरस भौतिक विकारसे कसैला, मधुर, चर्परा, कडुआ, खट्टे आदि अनेक भेदोंको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ गीलापन, गोला बांधना, तृप्ति करना, जीवन, प्यास-मिटाना, नर्म करना, ताप दूर करना, कूपादिसे जल निकालनेपर भी अधिक होना यह जलवृत्ति है ॥ ४३ ॥ रसगुणवाला जल, जब दैवसे प्रेरित हो विकारको प्राप्त हुआ तब उसमें गंधतन्मात्रा हुई, उससे पृथ्वी हुई, नासिकासे गंधग्रहण होता है ॥ ४४ ॥ यह एकही गंध संसर्गवाले पदार्थोंकी विषमतासे, मिली गन्ध और सुगन्ध शांत व उग्रआदि अनेक भेद-वाली होती है ॥ ४५ ॥ प्रतिमादिरूपसे ब्रह्मका भाव करना, स्थान देना, धारण करना आकाशादिकोंका मठाकाश आदिरूपसे अवच्छेदक होना, और सब जीवमात्रके गुणोंको भेद करना यह पृथ्वीकी वृत्तिका लक्षण है ॥ ४६ ॥ आकाशका मुख्य गुण शब्दविषय वाली श्रोत्र इन्द्रिय कहलाती है और वायुके मुख्यगुणयुक्त स्पर्शगुणवाली त्वचाइन्द्रिय कह-लाती है ॥ ४७ ॥ तेजके मुख्यगुणरूपविषयवाली चक्षुइन्द्रिय है, और जलके मुख्य गुण रस विषयवाली जिह्वा इन्द्रिय है, पृथ्वीका मुख्यगुणगन्धविषयवाली घ्राणइन्द्रिय कहलाती है ॥ ४८ ॥ इन पूर्वके पदार्थोंका पिछले पदार्थोंमें संबंध होनेसे अपने कारण आकाशादि-पदार्थोंका धर्म शब्दादिकार्यरूप वायुआदिपदार्थोंमें अपने धर्म स्पर्शादिके संग दीखता है. इसीसे पृथ्वीमें चारों कारणोंके धर्म—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और अपना धर्म गंध ये देख-नेमें आते हैं ॥ ४९ ॥ जब यह महत्तत्त्वादि सातों पदार्थ परस्पर न मिलें, तब इनमें और तत्त्वोंमें भी कालकर्म गुणोंके साथ जगदादि ईश्वरने प्रवेश किया ॥ ५० ॥ फिर परमे-श्वरके प्रवेश करनेसे जब यह क्षोभको प्राप्त हुए, तब अचेतन अंड प्रगट हुआ, उससे विराट्पुरुष हुआ ॥ ५१ ॥ चौदह भुवनवाला यह भगवान्का स्वरूपभूत पृथ्वीरूप ब्रह्माण्ड बाहरकी और प्रधानसे घिरेहुए; जलादि सात आवरण जो क्रमसे एक २ से दशगुणे बडे

हैं. उनसे घिरे हैं ॥ ५२ ॥ उदासीनताका त्याग न कर भगवान् महादेवने जलमें पडे हुए हिरण्मय अंडकोशमें प्रवेशकर बहुत प्रकारसे छिद्र कर दिये ॥ ५३ ॥ मुख प्रथम प्रगट हुआ, उससे वाणी हुई, उसके देवता वह्नि हुए, फिर नाक उत्पन्न हुई, जो प्राणको चलाने वाली हुई, इससे घ्राण इन्द्रिय हुई ॥ ५४ ॥ घ्राणसे वायु उत्पन्न हुआ इन दोनोंसे अक्षिणी चक्षु हुए, उससे सूर्य उत्पन्न हुआ, फिर कान प्रगट हुए, उसमें श्रोत्र इन्द्रिय हुई, उनसे दशों दिशा प्रगट हुई ॥ ५५ ॥ फिर विराटकी त्वचा निकली, उसमें रोम, मूँछ, केश आदि हुए, उनसे सब औषधि उत्पन्न हुई, फिर शिश्नेंद्रिय हुई ॥ ५६ ॥ उसमें जल-रूप वीर्य उत्पन्न हुआ, फिर गुदा उत्पन्न हुई गुदामें अपान रहता है, अपानवायुसे लोकों-की भय देनेवाला मृत्यु प्रगटी ॥ ५७ ॥ फिर विराट्के दोनों हाथ उत्पन्न हुए, उनमें बल हुआ और इन्द्रदेवता प्रगट हुए फिर विराट्के पांव निकले, उनमें गति हुई और हरि देवता प्रगट हुए ॥ ५८ ॥ फिर नाडियां निकलीं; उनमें रुधिर भरा और नदियां प्रगटीं. फिर उदर उत्पन्न हुआ, ॥ ५९ ॥ उसमें भूख प्यास हुई; सागर देवता हुआ, फिर विराट्के हृदय उत्पन्न हुआ, उसमें मन उत्पन्न हुआ ॥ ६० ॥ मनमें चन्द्रमा प्रगट हुआ, फिर सब वाणियोंके पति बुद्धि उत्पन्न हुई बुद्धिसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, फिर हृदयमें अहंकार उत्पन्न हुआ उसमें क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता प्रगट हुए, फिर विराट्के हृदयमें चित्त इन्द्रिय उत्पन्न हुआ, और चित्तमें क्षेत्रज्ञ प्रगट हुआ ॥ ६१ ॥ यह सब देवता उत्पन्न होकर उस विराट्के देहमें घुसे, परन्तु उसको उठा न सके, फिर क्रमसे आकाशादिकोंने उठानेको उसमें प्रवेश किया ॥ ६२ ॥ वाणीके मार्ग हो अग्निने मुखमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा, घ्राणइन्द्रिय सहित नाकमें पवन घुसा तौ भी विराट् न उठा ॥ ६३ ॥ चक्षु इन्द्रिय सहित भास्करने नेत्रोंमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा, श्रोत्रके संग दिशायें घुसीं तौ भी विराट् न उठा ॥ ६४ ॥ फिर रोमसहित सब औषधियें त्वचामें प्रविष्ट हुई तौ भी विराट् न उठा, वीर्यसहित जलमें शिश्नमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा ॥ ६५ ॥ अपानसहित मृत्यु गुदामें आई तौ भी विराट् न उठा. इन्द्रने बलसहित हाथोंमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा ॥ ६६ ॥ गतिसहित विष्णुने चरणोंमें प्रवेश किया तौ भी विराट् सावधान न हुए नदियें रुधिर सहित नाडियोंमें घुसीं तौ भी विराट् न जागा ॥ ६७ ॥ क्षुधा तृषा सहित समुद्रने उदरमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न चेता, मनसहित हृदयमें चन्द्रमाने प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा ॥ ६८ ॥ फिर बुद्धिसहित ब्रह्मा हृदयमें पैठे तौ भी विराट् न उठा. अभिमानसहित रुद्रने हृदयमें प्रवेश किया तौ भी विराट् न उठा ॥ ६९ ॥ चित्तसहित चित्तके स्वामी क्षेत्रज्ञ ईश्वरने जब हृदयमें प्रवेश किया, उसी समय विराट्पुरुष जलमेंसे उठ बैठा ॥ ७० ॥ जैसे सोये हुए पुरुषको प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि जिनके विना कोई अपने पराक्रमसे उठा नहीं सक्ता, इसीप्रकार इस विराट्पुरुषको चेतन क्षेत्रके विना कोई नहीं उठासका ॥ ७१ ॥ सब जीव २ के प्रति इन ईश्वरके योगसे उत्पन्न जो बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है, उससे विरक्ति और

विरक्तिसे एकान्तमें बैठकर ज्ञान उत्पन्न करै, फिर पुरुषको चाहिये कि देहमें आत्माका विचार करै, जब आत्माका विचार निश्चय होजाय, तब नित्य प्रति उसीका ध्यान और चिन्तवन किया करै, और जो आत्माका चिन्तवन नहीं करते उनको ऐसा समझना चाहिये–

सवैया–गेह तज्यो अरु नेह तज्यो पुनि खेह लगायकै देह सँवारी ॥
मेघ सहे शिर शीत सहे तन धूप सहेमें पंचागिनी बारी ॥
भूख सही रहि रूख तरै पर सुन्दरदास सहे दुख भारी ॥
डासनछोडिकै आसन ऊपर आसन मारो पै आश न मारी ७२

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे चतुर्विंशतितत्त्ववर्णनं नाम षड्विंशातितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, साधन योगविचार ।
प्रकृतिपुरुषके ज्ञानसे, बरणों मोक्षविचार ॥ १ ॥

भगवान् कपिलदेवजी बोले कि, यद्यपि पुरुष प्रकृतिमें स्थित है तौ भी प्रकृतिके गुणोंके करेहुए दुःखसुखादि गुणोंमें लिप्त नहीं होता, क्योंकि, पुरुष निर्विकारी होनेसे, अकर्ता होनेसे, निर्गुण होनेसे जलमें सूर्यकी परछांईकी नाईं लिप्त नहीं होता, और उसीभांति पुरुष देहके गुणोंसे भी लिप्त नहीं होता ॥ १ ॥ वही पुरुष जब गुणोंमें सब ओरसे आसक्त होजाता है तब कहता है कि, देह **मैं** हूं, इसप्रकार अहंकारसे विमूढ बनकर फिर कहता है कि, आत्माका कर्ता मैं हूं, इसप्रकार सदा अभिमानी बना रहता है ॥ २ ॥ इसी अभिमानसे बेवश होकर और सुख न पाकर सत् असत् मिश्रित योनियोंमें प्रकृतिके संगके कर्म और दोषोंसे संसारके चक्रमें घूमते रहते हैं. कभी जन्म कभी मरण ॥ ३ ॥ विचारकी रीतिसे देखिये तो संसार कोई वस्तु ही नहीं, और विषयवासना करनेवालोंसे संसार छूटताही नहीं; स्वप्न सबप्रकारसे झूठा है; तो भी उस स्वप्न देखनेवाले मनुष्यके वे अनर्थ उससमय नष्ट नहीं होते, अनर्थका आगम भोगनाही पडता है ! यहां एक दृष्टान्त है. "कि एक लकडी वेचनेवाला लकडियोंका बोझा शिरपर धरे कहींसे आता था. गर्मीका समय था, एक इमली के पेडके नीचे कुएके समीप ठंढी छाया देखकर बैठगया, उसीसमय एक सिपाही घोडेपर सवार, घोडेको कुदाता, नचाता, दौडाता चला आता था. सवारको देख लकडहारा मनमें कहनेलगा कि, सब अवस्था लकडी ही बेचते २ बीती, और खोपडीमें गढे पडगए जो परमेश्वर मुझको भी घोडा देता तौ मैं भी इसीप्रकार सवार होकर नचाता कुदाता, इसी मनोरथमें शरीरको शीतल पवन जो लगा तौ नींद आगई, तो स्वप्नमें क्या देखता है कि, उस बोझका घोडा बनाकर स्वप्नमें सवार होकर कुदानेको ज्यों झटका दिया त्यों ही झट कुएमें जा पडा, ज्यों त्यों करके पथिकोंने उसको निकाला तौ वह बोला कि आज मैंने अपने मनमें घोडेपर चढनेका संकल्प किया था तब यह कुदशा हुई, और जो नित्य घोडेपर चढते

होंगे, न जानिये उनकी क्या गति होती होगी ? कदाचित् वह तौ घडी२ नदी और कुओंमें गिरते होंगे, इसलिये मैं अपनी लकडी ही बेचनेमें प्रसन्न हूं, मुझको किसी घोडेपाडेसे प्रयोजन नहीं" अनर्थ आगमन होनसे उसको उसका फल मिला इसीप्रकार विषयोंका ध्यान करनेसे प्राणी संसारके बंधनसे नहीं छूटता ॥ ४ ॥ इसलिये कुकर्मियोंके मार्गसे आसक्त चित्तको सहज २ में तीव्र भक्तियोग विरक्तिसे अपने वशमें करै ॥ ५ ॥ श्रद्धासहित योगमार्गादिकोंसे अभ्यास करता है और मुझसे निष्कपट प्रीति रक्खै; मेरी कथा सुनै ॥ ६ ॥ सब जीवमात्रमें समभाव वर्त्तै, किसीसे शत्रुता न करै, कुसंगका त्याग करै, ब्रह्मचर्य्य धारण करै, मौनव्रत गहै, अपना धर्म बलवान् समझकर उसमें स्थिर रहै ॥ ७ ॥ जो भगवतइच्छासे मिलजाय उसीमें संतुष्ट रहै, सूक्ष्म भोजन करै, मुनियोंकी वृत्ति धारण करै, एकान्तमें वास करै, शान्तिवृत्तिमें सबसे मित्रता रक्खै, सबसे दयालु हो आत्मज्ञानी रहै ॥ ८ ॥ कुटुम्बसहित देहमें आसक्त न हो ज्ञानसे तत्वका दर्शन करै, प्रकृतिपुरुषको देखै ॥ ९ ॥ प्रकृतिपुरुषका जब निश्चय विवेक होजाता है तब बुद्धिकी तीनों अवस्था जाग्रदादिसे निवृत्त होजाता है, उस समय सब असंगलोंसे पृथक् रहे, बुद्धिसे परमात्माको प्राप्त होय जैसे चक्षुइन्द्रियद्वारा सूर्यको देखै, उसीप्रकार अपने अहंकारावच्छिन्न आत्मासे शुद्ध आत्माको जानकर आत्माका दर्शन करै ॥ १० ॥ इसप्रकार अभ्यास करते २ परमात्मा जो उपाधिरहित मिथ्याभूत अहंकारमें सद्रूपसे आभासमान मायाका अधिष्ठान ब्रह्मको प्राप्त होता है, सद्बन्धु, असत्के चक्षु, सर्वत्रमें परिपूर्ण हैं उनके अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं हैं ॥ ११ ॥ जैसे आकाशके भास्करका जलस्थित प्रकाश स्थलवासी पुरुषको दीखै, उसी भांति अपने प्रकाशसे सूर्य जलस्थित प्रतिबिंबसे स्वर्गस्थ सूर्य दीखै है ॥ १२ ॥ इसीप्रकार तीन वृत्तिवाला अहंकार पंच भूत इन्द्रिय मनोमय अपने प्रकाशसे इस सदाकालमें होनेवाले आभाससे सत्यदृष्टि ईश्वर लक्षित होता है ॥ १३ ॥ सुषुप्ति अवस्थामें निद्राके कारण पंचमहाभूत, उनके शब्दादिक सूक्ष्मरूप मन इन्द्रियें बुद्ध्यादिक इस संसारमें निद्रासे असत्में लीन होजाता है; विनिद्र होकर सब अहंकारको त्याग देता है ॥ ॥ १४ ॥ तब आत्मा नष्ट तौ नहीं होता है; परन्तु झूठे ही नष्टवत् मानै है. जब सब अहंकार नष्ट होजाता है, तब नष्टचित्तवाला जैसे आतुर होता है वैसे ही ईश्वरके दर्शनकी इच्छा होती है ॥ १५ ॥ यह जीव ऐसे विचारके आत्माको प्राप्त होजाता है, अहंकारसहित द्रव्यकी जो अवस्था है वह मेरी ही कृपा है ॥ १६ ॥ देवहूती बोली कि, हे ब्रह्मन् ! हे जनार्दन ! प्रकृति कभी पुरुषको नहीं छोड़ती, क्योंकि पुरुष प्रकृतिके आश्रित है और प्रकृति पुरुषके आश्रित है, इसकारण इनका विलग होना बन नहीं सक्ता ॥ १७ ॥ जैसे गंध कभी पृथ्वीसे पृथक् नहीं होती, गन्धमें पृथ्वी, पृथ्वीमें गन्ध, जलमें रस, रसमें जल, इसीप्रकार परमेश्वरमें बुद्धि है. प्रकृति और पुरुषका अलग होना कठिन है ॥ १८ ॥ अकर्ता पुरुषको और जिसके आश्रयसे कर्मके बंधनमें और प्रकृति सद्गुणोंमें यह पुरुष फसा हुआ है उसको कैवल्यमोक्ष कैसे होसक्ता है ? सो कहिये ॥ १९ ॥ कभी तत्त्वके

विचारनेसे यह महातीव्र भय दूर होजाता है, परन्तु उसका निमित्त नष्ट नहीं होता सो फिर पीछे यह शंका खड़ी होजाती है ॥ २० ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे जननि! कोई निमित्त हो ऐसे निमित्तके धर्म करनेसे, मन निर्मल करनेसे, बहुत दिनके शास्त्र सुननेसे, मुझमें तीव्र दृढभक्ति करनेसे ॥ २१ ॥ तत्त्वदर्शन होता है, ऐसे ज्ञानसे, बलवान् वैराग्यसे, तपसहित योगाभ्याससे तीव्र अपनी समाधिसे ॥ २२ ॥ इस पुरुषकी माया दिनरात जलकर शनैःशनैः छिपजाती है. जैसे अग्नि काष्ठको जलाकर उसीमें लीन होजाती है जैसे अग्निकी आदिकारणभूत लकड़ी अपने आपमेंसे उत्पन्न हो अग्निसे आप जलकर भस्म हो जाती है. इसीप्रकार साधनदशामें अविद्याके कियेहुए देहादि अभिमानसे उत्पन्न ज्ञानादि साधनोंसे दह्यमान प्रकृति नष्ट होजाती है ॥ २३ ॥ भोग भोगकर फिर अपने हृदयमें उसका दोष विचारकर उसको त्यागदिया. सो प्रकृति अपनी महिमा स्थित पुरुष ईश्वरका कभी कुछ अशुभ नहीं करसक्ती ॥ २४ ॥ जैसे सोतेहुए पुरुषको स्वप्न दिखाई देता है, जबतक वह न जागै तबतक वह स्वप्न उस मनुष्यको अनेक दुःखोंका देनेवाला है और वही स्वप्न जागनेसे जब उसको ज्ञानका संस्कार हुआ तो कुछ भी कष्टकारी नहीं होसक्ता ॥ २५ ॥ इसीप्रकार तत्त्वके जाननेवाले और मुझमें मन लगानेवाले आत्मारामको प्रकृति कभी अपने वशमें नहीं करसकती ॥ २६ ॥ इसप्रकार अनेक जन्मके साधन करनेसे ब्रह्मलोकतक सब पदार्थोंके त्यागनेसे मेरे पूर्णभक्त मेरी अनंतभक्तिसे जब मेरे यथार्थ रूपका ज्ञान उसको होजाता है तब अध्यात्मज्ञानमें उसकी प्रीति होती है, तब आत्मज्ञानसे मुनि होता है ॥ २७ ॥ मेरा भक्त मेरी अतीव कृपासे मोक्षका भागी होता है, मोक्षदायक मेरा स्थान कैवल्य जिसका नाम मेरे आश्रय है उस वैकुण्ठको ॥ २८ ॥ इस संसारमें धीर अनायास प्राप्त होते हैं. अपनी दृष्टिसे सब संशय नष्ट होजाता है. इस शरीरको त्यागकर वहां जाता है जहांके गये योगीजन फिर लौटकर संसारमें नहीं आते ॥ २९ ॥ हे माता! जब योगीजनोंका योग बढ़ता है तब मायाकी वृद्धि होनेसे अणिमादिक सिद्धियाँ भी बढ़ती हैं, उनके बढ़नेका कुछ और प्रयोजन नहीं है केवल वह विघ्न करनेके लिये आती हैं जो उस समय भक्तका चित्त उनमें आसक्त न हुआ तो उसको मेरी अनन्य अत्यन्तसुखदायिनी व अनपायिनी गति प्राप्त होती है. जहां मृत्युका कुछ भय नहीं इसप्रकार जब मानै-

कवित्त-कामी है न यती है न सूम है न सती है, न राजा है न रंक है न तन है न मन है ॥ सोवै है न जागै है न पीछे है न आगे है, न गृही है न त्यागी है न घर है न वन है ॥ स्थिर है न डोलै है न मौन है न बोलै है, न बँधो है न खुलो है न स्वामी है न जन है ॥ ऐसो जब होवै तब मेरी गति जाने तब, सुंदर कहत ज्ञानी ज्ञानशुद्धघन है ॥ ३० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे मोक्षरीतिवर्णनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा-बरणौं अट्ठाईसमें, योगाष्टांगविधान ।
निरुपाधी वर्णन करूं, हरिस्वरूपका ध्यान ॥ १ ॥

भगवान् बाले कि, हे नृपात्मजे ! अब बीजसहित योगका लक्षण कहता हूं, कि जिस विधिके अनुष्ठानसे प्रसन्न होकर मन सत्पथमें लगता है ॥ १ ॥ अपनी सामर्थ्यभर स्वधर्मका आचरण करै, पापसे अलग रहै, जो अपने भाग्यके अनुसार प्राप्त हो उसीमें संतोष करै, आत्मज्ञानी पुरुषोंके चरणारविन्दोंका पूजन करै ॥ २ ॥ लौकिकसम्बन्धी धर्मसे निवृत्त रहै; मोक्ष धर्ममें प्रीति करैं, परिमित और महाशुद्ध भोजन करै, परिमित इसको कहते हैं, पेटके दो भाग तो अन्नसे भरै और एकमें जल, चौथा वायुके आनेजानेको खाली रक्खै, एकान्तस्थानमें वास करै. जहां किसीप्रकारकी बाधा न हो ॥ ३ ॥ जीवहत्या न करै, सत्य बोलै, चोरी न करै, जितनेमें अपना प्रयोजन सिद्ध हो उतना ही संचय करै, अधिक न करै, ब्रह्मचर्यधारण करै, तप करै, शौचसे रहै, वेदका पाठ करै, श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके चरणारविंदकी वंदना करै ॥ ४ ॥ वृथा न बोले, मौनधारण करै, आसनको जीतनेका अभ्यास करै, स्थिर रहै, शनैः २ प्राणको जीतै, मनको और इन्द्रियोंको विषयसे खींचकर हृदयमें रक्खै ॥ ५ ॥ सब प्राणोंके स्थान जो मूलाधारादिक हैं उनमेंसे एकदेशमें मनसहित प्राणको धारण करै, और त्रिलोकीनाथ भगवान्की लीलाका ध्यान करै, और मनको आत्माकार करै ॥ ६ ॥ इनसे और इनसे अधिक अन्य उपायोंसे और साधनोंसे मनको जीतै, और असत् मार्गोंमें जो मन लगा है उसको धीरे २ बुद्धिसे जीतै, और प्राणको जीतै, निरालस्य होकर रहै ॥ ७ ॥ पवित्र देशमें रहै, विशेष करके प्रथम तो आसनको जीतै फिर कुशाओंपर कृष्णचर्म, उसके ऊपर वस्त्र बिछाकर मांगलिक आसन मारकर बैठे, शरीरको सीधा रखकर प्राणको वश करनेका अभ्यास करै यह स्वस्तिकासन है ॥ ८ ॥ पूरक, कुंभक, रेचकसे प्राणके मार्गको साधै, और प्राणायामोंके उलटे क्रमसे चित्तका शोधन करै, जिससे यह चित्त फिर चंचल न होय ऐसा स्थिर करै ॥ ९ ॥ जिसने श्वास जीते ऐसे योगियोंका मन थोडे ही दिनोंमें शुद्ध होजाता है जैसे पवन अग्निके धर्मसे तापित सुवर्ण, मलको त्यागकर निर्मल होजाता है-

दोहा-जैसे कनक तपायकै, अमल करै मतिमान ।
तिमि साधनसे होत है, मानस अमलसमान ॥ १० ॥

प्राणायामोंसे तो वात, पित्त, कफके मलोंको दूर करै, और धारणासे सब पापोंको दूर करै; और प्रत्याहारसे विषयोंको दूर करै, और ध्यानसे रागादिकोंको दूर करै ॥ ११ ॥ जब योगके प्रभावसे मन शुद्ध होजाय तब सावधानतासे भगवत्के स्वरूपका ध्यान करै और अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहै ॥ १२ ॥ वारिजसमान जिनका प्रसन्न वदन अरुणकमलवत् नेत्र, नीलकमलदलसम श्याम वर्ण, शंख, चक्र, गदा धारणकर रहे हैं, यह ध्यान करै ॥ १३ ॥ सुन्दरसरसिजकेसरवत् पीताम्बर पहिरे, श्रीवत्स वक्षःस्थलमें ददीप्यमान है, कौस्तुभमणि मुक्तामयमाला कंठमें विराजमान है ॥ १४ ॥ मत्तभ्रमरोंकी ध्वनि

जिसपर होरही ऐसी मनमोहनी सोहनी वनमाला धारण किये हैं, और अमूल्यहार, कंकण, किरीट, भुजबंद, नूपुर जिनके चरणारविन्दोंमें दीप्यमान है ॥ १५ ॥ क्षुद्रघंटिकाओंसे शोभित कटिपश्चात् भाग हैं, भक्तोंके हृदयकमलमें जिनका आसन है, दर्शन करने योग्योंमें दर्शन योग्य शान्तचित्त मन और नयनोंका आनन्द बढानेवाला जिनका मनोहर स्वरूप है ॥ १६ ॥ अत्यन्त शोभायमान जिनका दर्शन है, सब लोकवासी जिनको नमस्कार और दंडवत करते हैं. जिनकी किशोर अवस्था है, अपने अनुचरोंपर अनुग्रह करनेमें नित्यप्रति कुशल हैं ॥ १७ ॥ तीर्थरूप यश जिनका कीर्तन करने योग्य है, पुण्यश्लोकोंमें यश करनेवाले भगवान्के अंगोंका ध्यान करे, अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहे, जबतक कि, मन उस बांके बिहारीकी मूर्तिमें लय न होजाय ॥ १८ ॥ दर्शनके योग्य जिनकी अलौकिक लीला है, ऐसे घटघटवासी वृन्दावननिवासी, सुखरासी, मदनमोहनकी चाहै विराजमानमूर्तिका, चाहै फिरते चलते स्वरूपका, चाहै शयन करतीहुई श्यामसुन्दरकी मूर्तिका, चाहै खडीहुइ प्रतिमाका शुद्ध चित्तके भावसे ध्यान करै, उनकी अद्भुत लीला देखने ही योग्य है ॥ १९ ॥ मुनि लोग उनको चित्तमें स्थान देकर. सब अवयव सुन्दरस्थित ईश्वरका दर्शनकर भगवान्के एक अंगमें अपने मनको लगावै ॥ २० ॥ पहिले तो वज्र, अंकुश, ध्वज, पद्म इन चिह्नोंसे युक्त उठेहुए अरुण शोभित नखमंडलकी किरणोंसे ध्यान करनेवाले भगवान्के चरणकमलका ध्यान कर ॥ २१ ॥ जिनके चरणप्रक्षालनरूप गंगाजलतीर्थके मस्तकपर धारण करनेसे मंगलमय भूतनाथ और अत्यन्त मंगलरूप होगए. इसीप्रकार जिनके चरणचित्ररूप वज्रसे ध्यान करनेवालोंके पापरूप पर्वत चूर्ण करनेवाले भगवान्के पादाम्बुजका बहुत कालतक ध्यान करै ॥ २२ ॥ सब जगत्का विधान करनेवाला, विधाता ब्रह्माकी माता, साक्षात् लक्ष्मी. सब देवता सदा प्रेम प्रीति सहित दिनरात जिसके चरणारविन्दकी वन्दना करते हैं, कमलसे जिसके नेत्र, वह महालक्ष्मीसे लालित जानुद्वय, अजन्मा विभुके हृदयमें करपल्लवकी कांतिसे बडी लालित्यके साथ जिनका सेवन करती हैं. उन भवभंजन भगवान्के दोनों घुटनोंपर्यंत युगल जंघाओंका हृदयमें ध्यान करै ॥ २३ ॥ फिर गरुडजीकी भुजाओंमें शोभित महापराक्रमी अलसीके कुसुमसमान दोनों ऊरुओंका चित्तमें ध्यान कर. फिर अतिलम्बा पीताम्बर झमझमाताहुआ, उसमें वर्तमान कांचीकलापका मिलना, ऐसे भगवान्के शोभायमान नितम्बका ध्यान करै ॥ २४॥ फिर चतुर्दश भुवनोंके कोष जिनके हृदयमें विराजमान, जहां आत्मयोनि ब्रह्मका स्थान है, सब लोकात्मक कमल जिसमें उत्पन्न हुआ था उसके नाभिसरोवरका ध्यान करै. फिर उठे हुए मरकतमणिके श्रेष्ठ विशद हारोंकी चटकीली किरणोंसे गौरवर्ण भगवानके दोनों स्तनोंका ध्यान करे जिनकी कैसी सुन्दरशोभा है—

चौ०--छाजत छटा छहरि तहँ द्वारा। मनहु नीलगिरि सुरसरिधारा २५

सर्वश्रेष्ठा महाविभूति श्रीलक्ष्मीजीका वासस्थान. महात्माओंके मन और नेत्रोंका परम सुखदायक वक्षस्थलका मनमें ध्यान करै. सब लोक जिनको नमस्कार करते हैं, उन प्रभुके

कंठमें जो कौस्तुभमणि भूषण भूषित है उसकी शोभाका चित्तमें ध्यान करै ॥ २६ ॥ फिर मंदराचलके घूमनेसे घिसकर जो उज्ज्वल होगये हैं, बाहुओंके कंगन, जिनमें लोकपाल देवता वास करते हैं, उन भुजाओंका ध्यान करै; फिर जिसका अनंततेज सहा न जाय, ऐसे हजार धारवाले सुदर्शनका चिंतवन करे. फिर जिन भगवानके हस्तकमलमें राजहंस-वत् शंख विराजमान है, उसका ध्यान करै ॥ २७ ॥ फिर वासुदेव भगवानकी प्यारी कौमोदकी गदा. जो कि, शत्रुवीरोंके रक्तकी कीचमें लिपटीहुई है उसका स्मरण करै, भ्रम-रोंके झुंडके झुंड जिसपर गुंजार रहे हैं उस भगवान्की वनमालाका ध्यान करै, जो जीवा-त्माकी परमतत्त्व निर्मल कौस्तुभमणि भगवान्के कंठमें दीप रही है उसका ध्यान करे ॥ ॥ २८ ॥ अपने भृत्योंके ऊपर कृपा करके अपनी बुद्धिसे जिन्होंने मूर्तिमान् अवतार धारण किये हैं, उन भगवान्के मुखकमलका ध्यान करै, कि जिसपर दमकते हुए मकरा-कार कुण्डलोंके प्रकाशसे निर्मलकपोलोंकी शोभा और उदार जिसमें नाक है ॥ २९ ॥ श्री-जीका जहां स्थान भ्रमरोंसे सेव्यमान अपने वैभवसे कुटिलकुंतलसमूहयुक्त हो मीनसमानका तिरस्कार करनेवाले मनोमय निरालस भ्रू जिसमें-

दोहा-युगझक आलि अवलीसहित, पुनि इंदिरानिकेत।
अस कंजहु नहिं लहत छबि, हरिमुख सुषमासेत ॥

ऐसे श्रीभगवान्के नेत्रकमलका ध्यान करै ॥ ३० ॥ फिर अपनी कृपासे महाघोर अत्यन्त भयानक त्रयतापके नाश करनेके लिये नेत्रोंसे निकस मनोहर मुसकानसंयुक्त बहुत प्रसन्न होनेवाले प्रसादयुक्त अत्यन्त भावनासे हृदयमें अनंतकालतक भगवान्के अवलोकनका ध्यान करै ॥ ३१ ॥ अवनतोंके सब तीव्रशोकसे प्रगटहुए अश्रुसागरके शोषणहारे अतिउदार श्रीभगवान्के मंदहास्यका ध्यान करै, फिर भगवान्ने जो अपनी मायासे मोहनेके लिये रची हैं, मुनिमनोंके मोहित करनेवाले ऐसे मकरध्वजके मोहके भ्रूमण्डलका ध्यान करै ॥ ३२ ॥ ध्यानका स्थान प्रहसित अधिक अधरहोठकी कान्तिसे लाल तनमें झांईके पडनेसे कुन्दकलीके दातोंकी पंक्ति भी कुछ २ अरुणाईसी लिये ज्ञात होती है, उनका अपने हृदयाकाशमें ध्यान करै, इसप्रकार प्रेमरसीली विष्णुकी भक्तिसे उसीमें मनको लगावै, उसके अतिरिक्त और किसी वस्तुके देखनेकी चाहना न करै. चित्तको उसीमें स्थिर रक्खै ॥ ३३ ॥ इसप्रकार भगवान्का ध्यान करते २ भावमें हरिमें लोभकर भक्तिसे द्रवीभूत हृदयमें अत्यन्त आनन्द प्रफुल्लित होजाय, और भगवत्से मिल-नेकी अति उत्कण्ठासे अश्रुपात करके बारंबार पीडित धीरसे चित्तरूप मत्स्यवेधन काँटेके सदृश उसे शनैःशनैः भगवत्के अंगसे ध्यान न्यून करदे ॥ ३४ ॥ मुक्तोंके आश्रय जब निर्विषय विरक्तमन सहसा सूर्यकी सदृश मोक्षको प्राप्त होजाता है, जब पुरुष आत्माको आनंदमय एकरूप देखै है तब संसारसे निवृत्त होजाता है ॥ ३५ ॥ इसप्रकार मनकी अंतिम निवृत्तिसे सुखदुःखसहित ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हुआ योगी सुखदुःखका भोगना, जो पहिले अपने स्वरूपमें विदित होता था, उसे अविद्यासे उत्पन्न हुए अहंकारमें त्याग

देता है, अर्थात् सुखदुःखका भोक्तापनके असत् अहंकारमें ही है, मुझमें नहीं है, ऐसे देखता है क्योंकि, उसको आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष दीखता है अर्थात् होचुका है ॥ ३६ ॥ पहिले कहेहुए लक्षणसे सिद्ध हुआ योगी अपनी देहको भी नहीं देखता, फिर सुखदुःखको क्योंकर देखे ? जैसे मदमत्त मनुष्योंको पहिनेहुए वस्त्रका ज्ञान नहीं रहता इसीप्रकार योगीको अपने शरीरका ज्ञान नहीं रहता, मत्तपुरुषका वस्त्र प्रारब्धसे जाता रहै, वा रहजाय उसको उसकी सुधि नहीं रहती, इसीप्रकार योगीका देह चाहै आसनपर रहै वा चलाजाय उसे उसकी सुधि नहीं रहती ॥ ३७ ॥ प्रारब्धके आधीन हुआ उसका देह जबतक उसका प्रेरक होवै तबतक इन्द्रियसहित जीता रहता है, परन्तु समाधिपर्य्यन्त योगको प्राप्त हुआ आत्मस्वरूपका ज्ञाता योगी स्वप्नअवस्थाकी देहके समान, मैं और मेरा, करके नहीं जानता ॥ ३८ ॥ जैसे पुत्र धनसे पुरुष अपने आपको अलग मानता है ऐसे ही आत्माभाव मानकर अभिमत देहादिकसे ईश्वरको पृथक् मानता है ॥ ३९ ॥ जैसे अज्ञानी मनुष्य ज्वलितकाष्ठसे कणका धूम होता है ऐसा पृथक् मानते हैं, परन्तु वास्तवमें दाहक और प्रकाशक अग्निसे अलग है, इसप्रकार सब ब्रह्ममय ही है ॥ ४० ॥ जैसे पंचभूत इन्द्रियें अन्तःकरण प्रधान जीवसंज्ञासे आत्मा अलग है, इसीप्रकार द्रष्टा भगवान् ब्रह्म पृथक् है ॥ ४१ ॥ जैसे सब प्राणीमात्रमें आत्मा व्यापै है, और सब जीवमात्र आत्मामें व्यापै है, इसीप्रकार सब पदार्थोंमें मैं हूं, और मुझमें सब पदार्थ हैं ऐसे अनन्यभावकरके सब प्राणियोंमें तदात्मतासे देखते है, वे सिद्ध हैं ॥ ४२ ॥ जैसे अपनी योनि काष्ठमें एक अग्निकी ज्योति योनियोंके गुणविषमतासे दीर्घ ह्रस्व दृष्टि आती है, इसीप्रकार आत्मा एक होनेपरभी प्रत्येक देहके गुणोंकी विषमतासे दीर्घ ह्रस्वादि भेदके कारण अनेकप्रकारका दृष्टि आता है ॥ ४३ ॥ इसलिये अपनी सत्असत् आत्मिक विचारमें आवै ऐसी प्रकृतिके भगवान्की कृपासे जीतकर अपने स्वरूपमें स्थित होते हैं, और कुमति, कपट, लोभ, मोहमें फँसकर खोटे संगसे जीवका नाश होजाता है. किसी कविका वचन है-

कवित्त-कुमतिसे जश जाय गर्वसे लक्षण जाय, कुनारीसे कुल जाय जोग जाय संगसे ॥ भूखसे मर्याद जाय लडायेसे पुत्र जाय, शोचसे शरीर जाय शीलता कुसंगसे ॥ कपटसे धर्म जाय लोभसे बडाई जाय, माँगनेसे मान जाय पाप जाय गंगसे । क्रोधसे तपस्या जाय अनीतिसे राज जाय, वंशकी प्रशंसा जाय वीर मुरे जंगसे ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कापिलयोपाख्याने अष्टांगयोगध्यानयोगवर्णनं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दोहा-भक्तियोग उनतीसमें, कालतेजवैराग्य ।
घोर दुःख जीवन मरण, कहौं जासु जस भाग्य ॥

देवहूती बोली कि, हे प्रभो ! महदादिकोंका लक्षण और प्रकृतिपुरुषका स्वरूप पारमा-

र्थिक जैसा होय, और जिसप्रकारसे इनका ज्ञान होय सो कहो ॥ १ ॥ हे भगवन् ! जैसे सांख्यशास्त्रमें इनकी मूल आपने कही, परन्तु उसके कहनेका अभिप्राय भक्तियोग है, इसकारण भक्तियोगका मार्ग मुझसे विस्तारसहित आप कहिये ॥ २ ॥ हे जगत्-पते ! जिससे इस पुरुषको सब ओरसे वैराग्य उत्पन्न होजाय, ऐसा लोकका अनेकप्रकारका आवागमन है सो कहो ॥ ३ ॥ और ईश्वररूप कालका स्वरूप कहो, जिसके भयसे लोग कुशलकर्म करते हैं ॥ ४ ॥ झूंठे अभिमानी, शरीरादिक पदार्थोंमें अहंकार करनेवाले, अज्ञानी, कर्मासक्त, निराधार, अहंकारमें बहुत दिनसे सोयेहुए, कर्म करते २ श्रान्त होगये, ऐसे शठलोगोंके चैतन्य करनेके लिये, और उनकी निर्मलबुद्धि करनेके अर्थ व योगशास्त्रका प्रकाश करनेको आप इस जगतमें सूर्यरूप उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, महामुने ! हे कुरुश्रेष्ठ विदुर ! ! इसप्रकार माताके बहुत मीठे वचनोंकी सराहना कर, अत्यन्त प्रसन्न हो, प्रीतिसे भरे करुणासे पीडित मीठे वचन कहे ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे जननि ! भक्तियोग अनेक प्रकारका है, और बहुत मार्गोंसे प्रकाशित होता है, पुरुषोंकी प्रकृति सतरजतमोगुणकी होनेसे उनके संकल्पमें भेद पडजाता है ॥ ७ ॥ संकल्पसे, हिंसासे, दंभसे, मत्सरतासे, क्रोधसे, भिन्नदृष्टिका भाव मुझमें करते हैं, वह तामसी भक्ति है ॥ ८ ॥ विषयभोगकी चाहना कर यश ऐश्वर्य्यके लिये जो अर्चादिकमें मेरी भावना करते हैं वह राजसी भक्ति है ॥ ९ ॥ पाप नाशनेके उद्देशसे अथवा सिद्धिसाधनके उद्देशसे मूर्ति आदिकमें जो कर्म करै अथवा जो पूजन करै उसमें यह मानै कि, भगवत्की आज्ञा है इसलिये पूजनकेही योग्य है, ऐसे भावसे जो भक्ति करते हैं, वह सात्त्विकी भक्ति है–

दोहा–उत्तम मध्यम अधम यह, इकमें त्रय त्रय भेद।
एहि विधिश्रवणादिकनमें, इक इक नव नव भेद॥

इसका प्रयोजन यह है कि, श्रवण कीर्तनादिक जो नवधा भक्ति है, वही फल देनेके लिये तीन प्रकारकी तामस, तीन प्रकारकी राजस, तीन प्रकारकी सात्त्विकभक्ति होनेसे सत्ताईस (२७) प्रकारकी हुई, और सुननेसे एक २ में नौ नौ भेद होजाते हैं; तब इक्यासी (८१) प्रकारकी हो जाती है. यह सगुणभक्तिके भेद हैं ॥ १० ॥ मेरे गुणके श्रवणमात्रसे मैं जो अन्तर्यामी हूं, मुझमेंसे कभी न निकलै, इसप्रकार मनकी गति लगावै, जैसे गंगाजल धाराप्रवाहसे समुद्रमें लय होजाता है, फिर नहीं लौटता, ऐसे ही ईश्वरमें लीन होजाय भेद न रक्खै ॥ ११ ॥ निर्गुणभक्तियोगका यह लक्षण है. पुरुषोत्तमके फलानुसन्धान भेदभावरहित भक्ति करै, श्रीपतिके अतिरिक्त दूसरेकी आशा न करै ॥ ॥ १२ ॥ मेरे साथ एकलोकमें वास, समान ऐश्वर्य, सदा निकट रहै, मेरे समान रूप हो-जाय, एक रूप होजाय, इन पाँचों मुक्तियोंको मैं देता हूँ, परन्तु मेरे भक्त मेरी सेवाके अतिरिक्त और कुछ नहीं ग्रहण करते ॥ १३ ॥ यह अत्यन्त निर्गुणभक्ति योगभक्ति है, जिससे तीनों गुणोंका उल्लंघन करके मेरे भावको प्राप्त होता है, इससे अधिक और दूसरी

भक्ति नहीं ॥ १४ ॥ सुन्दर नित्य नैमित्तिक महास्वधर्मके अनुष्ठान करके निष्काम नारद-पंचरात्रतंत्रोक्त पूजा करनेसे और हिंसारहित पूजा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होजाता है ॥ ॥ १५ ॥ मेरी प्रतिमाके दर्शन, स्पर्शन, पूजा, स्तुति, प्रणामादिकसे सब जीवमात्रमें मेरी भावनासे, धैर्य्यसे, वैराग्यसे हृदय पवित्र होता है ॥ १६ ॥ महात्मा लोगोंका आदर सम्मान करनेसे, दीनोंपर दया करनेसे, अपने समान कक्षामें मित्रता करनेसे, यम नियम करनेसे, शरीर शुद्ध होजाता है ॥ १७ ॥ ब्रह्मविद्याके सुननेसे, मेरे नामोंके उच्चारण और संकीर्तनसे, साधुसंतोंकी संगति करनेसे, अहंकार त्यागनेसे चित्त शुद्ध होता है ॥ १८ ॥ जो पुरुष मेरे धर्मके गुणोंका साधन करता है, उसका हृदय शुद्ध होजाता है, केवल मेरे गुणोंके सुननेसेही पुरुषको मेरा स्वरूप विना ही श्रम प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ "ये सात आठ श्लोक किसी प्रतिमानिन्दकने कुछ दिनोंसे लिखदिये हैं, इसकारण ये शुद्ध नहीं हैं, परन्तु अन्धपरम्परा चलीआवै है इसकारण हमें भी लिखनेपडे, ये सब माननीय नहीं, न प्राचीन पुस्तकोंमें इनका उल्लेख है" जैसे सब स्थानोंमें पवनद्वारा गंध आवै है उसीप्रकार भक्तियोगमें लगाहुआ अविकार मन आत्मामें आप आ मिलता है ॥ २० ॥ सब जीव-मात्रमें भूतात्मा मैं सदा स्थिर रहता हूँ. मेरी अवज्ञा करके जो पुरुष केवल मूर्तिका पूजन करते हैं, वह विडम्बनामात्र है ॥ २१ ॥ मैं सबके शरीरमें रहनेवाला हूँ, मुझे छोडकर जो मनुष्य मूर्तिकी अर्चा करते हैं, वे अपना मूर्खतासे राखमें हवन करते हैं ॥ २२ ॥ सब प्राणियोंकी देहमें जो मैं विराजमान हूँ, जो मुझसे द्वेष रखता है, अभिमान रखता है, भेदभाव रखता है ऐसे उन प्राणियोंका मन कभी शान्त नहीं होता ॥ २३ ॥ हे मातः! ऊँचे नीचे द्रव्योंसे, क्रियासे अर्चासे, मैं संतुष्ट नहीं होता हूँ, और जो जीवोंका अनादर करता है उसपर मैं प्रसन्न नहीं ॥ २४ ॥ सब जीवमात्रमें परमात्मा मैं हूँ, जवतक मेरा अनुभव हृदयमें प्रकाश न होय तवतक मनुष्योंको मूर्ति आदिकका पूजन करना चाहिये ॥ ॥ २५ ॥ आपमें और मुझमें जो प्राणी अंतर समझते हैं, उन भिन्नदृष्टिवालोंको मैं सदा कष्ट देता रहता हूँ ॥ २६ ॥ इसलिये मुझको सब जीवोंमें और भूतोंमें विराजमान जान-कर सब प्राणियोंका अन्तर्यामी मैं हूँ मुझसे दान मान मित्रता रखकर भेददृष्टिसे न देखना चाहिये ॥ २७ ॥ हे शुभे ! अचेतन जीवोंमें सचेतन अर्थात् प्राणधारी जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे प्राणवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चित्तवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे इन्द्रियवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ॥ २८ ॥ उनमें स्पर्शज्ञानी श्रेष्ठ हैं, उनमें रसज्ञानी मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं, उनमें गंधज्ञानी भ्रमरादिक श्रेष्ठ हैं, उनमें शब्दज्ञानी सर्पादिक श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥ उनमें रूपवेत्ता काक-आदिक श्रेष्ठ हैं, उनमें दोनों ओर दन्तवाले श्रेष्ठ हैं, उनमें वहुत पांववाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चौपाये श्रेष्ठ हैं, उनसे दोपदवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ द्विपदोंमें चारों वर्ण श्रेष्ठ हैं, उनमें ब्राह्मणवर्ण श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मणोंमें वेदपाठी श्रेष्ठ हैं, वेदपाठियोंमें अर्थके जाननेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ॥ ३१ ॥ अर्थ जाननेवालोंमें संशयच्छेदी मीमांसा करनेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे स्वकर्मकर्ता श्रेष्ठ हैं, उनसे मुक्तसंगी श्रेष्ठ हैं, उनसे ईश्वरके धर्मकर्ता श्रेष्ठ हैं ॥ ३२ ॥ जिस पुरुषने

अपने धर्म कर्मका फल और अपना शरीर मेरे अर्पण करदिया है उनमें वह श्रेष्ठ है, मुझमें जिसने अपनी आत्मा समर्पी मुझमें ही सब कर्मोंका संन्यास किया है उस समदृष्टि महात्मासे कोई अधिक श्रेष्ठ नहीं ॥ ३३ ॥ ऐसे समदर्शीके समान कोई दूसरा नहीं है, समदर्शी मनुष्य वैकुण्ठको जाता है ॥ ३४ ॥ वह आदिपुरुष अविनाशी सबके घट घट में विराजमान है; इसलिये सब जीवमात्रको अत्यन्त आदरसम्मानसे मनही मनमें दंडवत् प्रणाम करै ॥ ३५ ॥ हे मनुसुते ! भक्तियोग और योग दोनों मैंने तुमसे कहे; इन दोनोंमेंसे एकका भी साधन करै तो वह पुरुष परमेश्वरके निकट पहुँच सक्ता है ॥ ३६ ॥ सबका स्वामी प्रकृतिपुरुष रूप और उनसे पृथक् जो परमात्मास्वरूप है. परम प्रधानपुरुष उसीको देव कहते हैं, जिसमें यह जीव अनेक २ प्रकारकी योनियांको भोगता है ॥ ३७ ॥ रूपभेदके आश्रय होनेसे दिव्यकाल कहलाता है, जिससे भिन्नदृष्टिवालेको महदादिभूतोंका भय होता है ॥ ३८ ॥ सर्वाधार और यज्ञोंके फलदायक जो ईश्वर जीवोंके भीतर प्रविष्ट होकर सब जीवोंको भक्षण करते हैं, वही विष्णु है, वही अधियज्ञ है, वही काल है, वही वशी करनेवालोंका प्रभु है ॥ ३९ ॥ इस कालका न तौ कोई प्यारा है, न कोई शत्रु है, न कोई बांधव है, अप्रमत्त होकर प्रमत्तपुरुषोंका अन्त करै है ॥ ४० ॥ जिस कालके भयसे पवन चलता रहता है, मार्तण्ड तपा करता है, इन्द्र वर्षा करता है; तारागण प्रकाश करते हैं ॥ ॥ ४१ ॥ जिसके भयसे वनस्पति, वृक्ष, लता, औषधीसहित अपने २ समयपर पुष्प और फल उत्पन्न करती हैं ॥ ४२ ॥ जिसके भयसे नदियें दिनरात बहती रहती हैं; समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोडसक्ते, अग्नि प्रज्वलित होता रहता है, पर्वतोंसहित भूमि डूबती नहीं ॥ ४३ ॥ जिसकी आज्ञासे यह आकाश सब श्वास लेनेवालोंको सावकाश देता है, महत्तत्त्व सात आवरणयुक्त इस लोकमें इस देहका विस्तार करता है ॥ ४४ ॥ जिसके भयसे गुणाभिमानी देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, स्वर्गादिकमें युग २ वर्तमान रहते हैं; और बारंबार संसारकी उत्पात्ति, पालन, संहार करते रहते हैं ॥ ४५ ॥ सो अनंत अंत करनेवाला काल अनादि आदि करनेवाला है, अव्यय है, जनोंसे जनोंको जन्माता है. परन्तु कालकोभी मृत्युसे संहार करता है, वह परमात्मा कालरूप अपनी इच्छानुसार काम करता है-

सवैया-स्थावरजंगमरूप जिते सब, नानाप्रकारके रूप धरे हैं ॥
ताहीमें सच्चिदानंद महाप्रभु, आतम एक प्रकाश करे हैं ॥
सो बिनुजानेते सिन्धुसमान, औ जानेते गोपदबिन्दु तरे हैं ॥
बन्दत ताहि सदा शुकदेव, जो ब्रह्म चराचररूप परे हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे बहुविधभक्तियोगवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा-नारीतनके नेहमें, जिनका मन दिनरात ।
करौं तीस अध्यायमें, तिनको यश विख्यात ॥

कपिलदेवजी बोले कि, इस कालकरालके पराक्रमको यह जीव नहीं जानसक्ता, जैसे

पवनसे चलायमान मेघमाला वायुके विक्रमको नहीं जानसक्ती ॥ १ ॥ अपने शरीरके सुखकेलिये वह जीव अनेक दुःख करके जिस वस्तुका संग्रह करता है, उस वस्तुको काल-भगवान् नाश करदेते हैं, जिसके लिये रातदिन प्राणी शोचमें पडा रहता है ॥ २ ॥ शोचमें क्यों पडा रहता है ? कि, जो वस्तु नाशवान् है, यह मूर्ख परिवारसहित देहको धनको खेतको मोहसे इन नाशवान् वस्तुओंको यह अज्ञानी ध्रुवसमान स्थिर मानताहै ॥ ॥ ३ ॥ निश्चयकरके यह जीव संसारमें जिस जिस योनिमें जाताहै, उसी उसी यो-निमें आनंदसे रहता है, परन्तु कभी वैराग्य धारण नहीं करता ॥ ४ ॥ नरकवासी जीव भी अपने शरीरके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते, नरककोही आनंदभवन मानते हैं, देवकी मायासे जीव ऐसे विमोहित होरहे हैं ॥ ५ ॥ और शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, पशु, गज, वाजी, बंधुजनोंमें उनका हृदय अत्यन्त फँसा है, सो अपने आपको बहुत बुद्धिमान् और सुखनिधान मानता है ॥ ६ ॥ और अपने कुटुंबियोंके पालन पोषणके संदेहमें सब शरीर, उसका सरदी गरमीसे जलता गलता रहता है, तौ भी वह मूढ बुरे हृदयसे सदा बुरे बुरे कर्म करता ही रहता है ॥ ७ ॥ खोटी वेश्यादिक स्त्रियोंकी एकान्तमें मैथुनादिक मायासे शरीर इन्द्रिय सब विक्षिप्त रहती हैं और तोतली रसभरी बालकोंकी मधुरवाणीके साथ झूंठी बातें कर कर उन्मत्तसा बनारहता है.

दोहा-पालनहित परिवारके, करत हजारन पाप।
काहूकी मानत नहीं, सहत रहत संताप॥
यह अचरज अतिशय जननि,बोधहुं बोध न होय।
जो उपदेशहि ताहि शठ, शठ भाषहिं सब कोय ॥ ८ ॥

धनके लोभसे धर्म करै उसमेंभी अधर्म, सदा दुःख, ऐसे घरमें आलस्य तज दुःख दूर करनेके लिये उपाय करते हैं, और गृहस्थीको सुखके समान मानते हैं ॥ ९ ॥ और महाहिंसा करके इधर उधरसे धन इकट्ठा कर, परिवारका पालन पोषण करते हैं और आप उनकी जूँठन खा खाकर अपनी अवस्था पूरी करते हैं, और अंतसमय नरकमें जाते हैं ॥ ॥ १० ॥ जब उनकी जीविका बंद होजाती है, तब उसके उपार्जनके लिये सहस्रों उपाय करते हैं, इसीप्रकार बारंबार वह महालोभी, वह निर्धन यत्न करता जब मनमें हार मानता है तब पराये धनके लेनेकी इच्छा करता है ॥ ११ ॥ जब कुटुम्बके पालन पोषणकी सामर्थ्य न रहा और उद्यम निष्फल होनेलगा, तब वह मंदभागी मंदबुद्धी कृपण अत्यन्त शोचवश होकर लम्बे २ श्वास लेनेलगा, तब उस कृपणसे लक्ष्मी बोली, अरे मूर्ख ! क्यों निराश होता है ? जबतक मैं हूं तबतक खा पीकर चैन उडा. तब कृपण बोला कि, हे लक्ष्मि !

कवित्त-दाताघर जाती तौ कदर ऐसी नाहिं पाती, मेरे घर आई तो बधाई बांट बावरी। खाने दशखाने औ तेखानेमें छिपाय राखूं, होहु न उदास मेरो यहां चित्त चावरी ॥ खाउं न खवाऊं मरजाऊं तौ सिखाय

जाऊं, नाती और पूतनको आपनो स्वभाव री। दमडी न देहुँ कभी स्वप्नमें भिखारिनको, कृपण कहै लक्ष्मीसे बैठी गीत गाव री ॥ १२ ॥

इसप्रकार जब वह प्राणी कुटुम्बके पालन पोषणमें सामर्थ्य नहीं धरता, तब उसके कुटुम्बीलोग पहिलेकेसा उसका आदर सत्कार नहीं करते. जिसप्रकार किशान बूढे बैलका आदर नहीं करते ॥ १३ ॥ इतनेपर भी ज्ञान और वैराग्य उन मूर्खोंको नहीं होता अब वह वृद्ध मनहीमन कहता है कि, हाय! जिनका लालन पोषण मैं करता था, आज वह मेरा पालन करते हुए कडुए वचन कहते हैं, हा! जराके आनेसे मेरा रूप कुरूप होगया, मरनेके सम्मुख घरमें घुटना पडा ॥ १४ ॥ घरके लोग जब भोजन करचुके हैं तब अनादरसे कुछ खानेपीनेको श्वानकी समान दूरसे टुकडा डालते हैं, रोग सब शरीरमें प्रगट होगए, मंदाग्निसे भोजन भी थोडा खायाजाता है, उठने बैठनेकी सामर्थ्य नहीं रही. नेत्रोंसे दीखना बंद होगया ॥ १५ ॥ जब मृत्युका समय आया तब वायुसे नेत्र फटनेलगे, पुतलियें ऊपरको चढ़गईं, आंसू निकलने लगे, नाडियें रूक गईं, कासश्वासके कियेहुए क्लेशोंसे कंठमें कफ घिरनेलगा.

चौ०-मुखमक्खी नहिं उडत उडाये। बधिर भयो नहिं सुनत सुनाये ॥
घुर २ कंठ होन तब लागो। तौउ कुटुँबको मोह न त्यागो ॥
बाढ़ो कफ आवत बहु खाँसी। देख कुटुम्ब करत सब हाँसी ॥
अब यह वृद्ध जियैगो नाहीं। गंगाजल डारहु मुखमाहीं ॥ १६ ॥

उस समय शोचवश हो भाईबन्धु चारों ओरसे घेरकर बैठ जाते हैं और बहुत ही पुकार २ कर बूझते हैं कि, हे पिता! हे दादा! कुछ धन धराधराया हो तो बतादो, अब तुम्हारा चित्त कैसे है? वह तौ कालकी फाँसीमें फँसाहुआ है, कंठ रुका हुआ है, अपना सुख दुःख मुखसे कुछ नहीं कहसक्ता, तब लोग फिर उसको समझाते हैं कि, आप कुछ द्रव्य बतावैं तो हम गाय मँगायके आपपर पुण्य करावैं-

कवित्त-द्रव्यहीसों पितापर पुत्रनको प्रेम होत, द्रव्यहीसों पुण्य और द्रव्यहीसों नाम है। द्रव्यहीसों देवी और देवता प्रसन्न होत, द्रव्यहीसों जगमाहिं होत सारो काम है ॥ द्रव्यहीसों धर्म अर्थ मनोरथ पूरे होत, द्रव्यहीसों धर्म अर्थ काम पर धाम है। द्रव्यहीकी खातर चातर होत द्रव्यहीसो, शालिग्राम द्रव्यहीको काम सब ठाम है ॥ १७ ॥

जिसने कुटुम्बके भरनेमें और चारों ओरसे उनके पालन करनेमें कसर न की, अपनी इन्द्रियोंको न जीता. वह नष्टबुद्धि, वह अज्ञानी रोते हुए अपने बन्धुबान्धवोंमें मरगया ॥ ॥ १८ ॥ उस समय उसके लेनेके लिये क्रोधसे लाल २ नेत्र किये, महाभयानक यमराजके दो दूत आये. दंडपाश उनके हाथोंमें देख त्रासके मारे वह पापी जीव विष्ठा मूत्र कर रहता है ॥ १९ ॥ वह दूत उसे उसीसमय बरबश पकड गलेमें फाँसी डाल उस नरदेहमेंसे जीवको निकाल, यातनादेह (जो यमलोकमें कष्ट भोगनेको नियत है) में

रख, हाथ बांधकर, राजाके दूत जैसे अपराधीको बरबश पकड व घसीटकर लेजाते हैं, उसीभाँति उस जीवको बडी दूरके मार्गको लेजाते हैं ॥ २० ॥ उन दूतोंके मारने पीटनेसे, उसका हृदय फटजाता है, देह कांपने लगती है, गिरते, पडते, मार्गमें कुत्ते फाडनेको दौडते हैं, उस समय वह प्राणी आर्त होकर अपने किये पापोंको याद करता है ॥ ॥ २१ ॥ मार्गमें क्षुधा तृषा सताती है, भोजन देखनेको भी नहीं मिलता, ऊपरसे सूर्यकी गर्मी पडती है, नीचे धरती जलती है फिर तपतीहुई बालूपर तपना पडता है, जब कहीं थककर बैठ जाता है, और नहीं चलता, तब यमदूत बडे निर्दयीपनसे कोडे मारते हैं, मार्गमें न कहीं ठहरनेका ठिकाना है, न कहीं पानी पीनेको मिलता है, उस समय मुखसे हाय २ निकलती है ॥ २२ ॥ और जहां तहां थकित होकर गिरपडता व मूर्च्छित होजाता है, फिर उठकर चलनेलगता है, इसीप्रकार उस पापी जीवको महा अन्धकार व्याप्त मार्गमें होकर यमदूत यमपुरीको लेजाते हैं ॥ २३ ॥ निन्यानवे हजार ९९००० योजन मार्ग चार घडीमें उस महापापीको लेजाते हैं और पापीको छः घडीमें यमपुर लेजाते हैं, वहां अनेक २ प्रकारकी यातना भोगनी पडती है ॥ २४ ॥ कहीं तो उस जीवकी देह लकडियोंसे जलाते हैं, कहीं इसीका मांस इसको भक्षण कराते हैं, कहीं आपही अपने मांससे अपना पेट भरता है ॥ २५ ॥ कहीं यमलोकमें श्वान गीध जीतेकी आंतें निकाल लेजाते हैं, कहीं साँप बिच्छू डाँसआदिकी पीडासे दुःख पाकर अपने कर्मोंका क्रिया फल भोगता है ॥ २६ ॥ कहीं उसका शरीर काट २ कर खण्ड २ करते हैं. कहीं हाथी दांतोंपर धर २ कर घुमा २ कर पटके देते हैं, कहीं पाँवोंसे दबाय २ शुण्डसे उठाय चीर २ कर बगेल देते हैं, कहीं पाँवोंसे पीस २ कर मारते हैं, कहीं पर्वतोंके शृङ्गोंसे पटक देते हैं. कहीं पानीमें डुबो देते हैं, कहीं गढेमें बन्द कर देते हैं ॥ २७ ॥ जो तामिस्र, अन्धतामिस्र और रौरवादिक नरकोंकी पीडा है, सो नर नारी भोगते हैं, जो पूर्व कुकर्म किये हैं उनका फल उनको भोगना पडता है ॥ २८ ॥ हे मातः ! यह बात कुछ आश्चर्य की नहीं है. क्योंकि, नरक और स्वर्ग दोनों यहीं दिखाई देते हैं जो जो कष्ट नरकमें सहने पड़ते हैं वे संसारके मध्यमें भी देखनेमें आते हैं ॥ २९ ॥ जो प्राणी केवल इस प्रकार अपने परिवारका पालन पोषण करता है, वा अपना उदर भरता है उसके वह कर्म उसके साथ जाते हैं, और जब मरकर यमपुरीमें जाता है, तब उसको अपने पापका फल इकले ही भोगना पडता है ॥ ३० ॥ इस अपने शरीरको छोडकर एकही जीव नरकको जाता है, भृत्यद्रोहके लिये जो पाप किये हैं, वे सब वहीं भोगने पडते हैं ॥ ३१ ॥ दैवके प्राप्त कियेहुए, उसको अकेलेमें पुरुष सब कष्ट भोगता है, कुटुम्ब पालनेका फल यहां भोगता है, और जिसका धन लूटजाता है ऐसे पुरुषकी नाईं वह आतुर होजाता है ॥ ३२ ॥ केवल अधर्मसे जो परिवार पालनेमें तत्पर है वह प्राणी अन्धतामिस्रतमका जो स्थान है उसमें जाता है ॥ ३३ ॥ नरलोकसे जो नीचे यातनादिक नरक हैं, उन सबको क्रमसे भोगकर जब पाप क्षीण होता है, तब फिर शुद्ध होकर मनुष्यदेह पाता है ॥ ३४ ॥

॥ राग बिहाग ॥

तबतें गोविंद क्यों न सँभारे ?

अपने लोभलाभके कारण चलत न कबहूँ हारे ॥ १ ॥
अपने एक जीवके कारण जीव सहस दश मारे ॥
उन जीवनपर क्यों छूटोगे दावनगीर तुम्हारे ॥ २ ॥
भूमिपरे तब शोचन लागे भये कठिन दिन भारे ॥
सूरदास कहैं कंठ पकारि तब निकसत प्राण दुखारे ॥ ३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कामिनां नरकादिकवर्णनंनाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दोहा-इकतिसमें वर्णन करौं, शोणितवीर्यमिलाप।
राजसयोनी होत जब, मिलत पुण्य औ पाप ॥

श्रीभगवानजी बोले कि, दैवप्रेरित पिछले जन्मोंके कर्मोंके प्रभावसे देहप्राप्तिके लिये यह जीव पुरुषके वीर्यकणमें आश्रय लेकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है ॥ १ ॥ एक रात में तौ शुक्रशोणित मिलता है, पांच रातमें बुद्बुदासा होता है, दश दिनमें बेरके समान हो जाता है, फिर मांसपिंडाकार होजाता है ॥ २ ॥ एक मासमें शिर बनता है. दो मासमें बाहु, चरण आदि अङ्गके आकार बनजाते हैं. तीसरे मासमें नख, रोम, हाड, चाम, सब इन्द्रियोंके छिद्र बनजाते हैं ॥ ३ ॥ चौथे मासमें सातों धातु प्रगट होती हैं, पांचवें मासमें भूख प्यास उत्पन्न होती है, छठे मासमें जेलमें लिपटाहुआ माताकी दाहिनी कोखमें घूमा करता है ॥ ४ ॥ माताके भोजन करेहुए अन्नादिकसे इसकी धातु बढती है, और वह जीव जीवोंकी खान ऐसे २ विष्ठा और मूत्रके गर्तमें दिन रात पडारहता है "मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि, स्त्रीकी नाभिमें एक बालककी वृद्धि करनेवाली आप्यायनी नाडी बँधी है, उसीके द्वारा स्त्रियोंके खाये पिये पदार्थका रसांश उस गर्भको पहुँचता है, और वह जीव उसीको पीपीकर दिन २ बढता है" ॥ ५ ॥ सुकुमारतासे गर्भके कीडे जो क्षण २ में उसको काटते हैं, उस कठिनपीडासे वह जीव अत्यन्त व्याकुल हो मूर्छित होजाता है, वह कृमि भूखसे व्याकुल होकर जीवको सताते हैं ॥ ६ ॥ और कीडोंके काटेहुए घावोंपर जो जननीके खाये, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, लवण, रूखा, अम्लादि नानाभांतिकी वस्तु जो खाती है उनके लगनेसे उस जीवके शरीरमें अत्यन्त पीडा होती है ॥ ७ ॥ उदरके भीतर जरायुसे बँधा, और बाहर जननीकी आंतोंसे बँधा नीचे योनिकी ओर शिर किये धनुषकीसी टेढी पीठ झुकाये मलमूत्रमें पडा रहता है, हाथ पाँवतक नहीं चलासक्ता, यह माताका उदर नहीं है, बंदीगृह है ॥ ८ ॥ अपने तनकी चेष्टा करनेमें कुछ सामर्थ्य नहीं रहती, जैसे पिंजरेमें पक्षी अपना मनोरथ सिद्ध नहीं करसक्ता, वहां इस प्राणीको पिछले सौ जन्मके कर्मोंकी याद आती है. उस समय वह

दीर्घ श्वास भरकर पश्चात्ताप करता है, और सुख तौ वहां नामकोभी नहीं मिलता ॥ ॥ ९ ॥ गर्भकी समान दुःख तौ न हुआ न होय. सातवें महीनेमें इसको अधिक बाधा होती है, यह एक ठिकाने नहीं ठहर सक्ता, प्रसूतिकी वातसे सदा कांपता रहता है, और विष्ठेके कीडोंको अपना सम्बधी समझता है ॥ १० ॥ उस समय दुःखी हो वह जीव वारंवार परम उदास हो, गर्भवासकी त्रास देख सात धातुओंसे बंधाहुआ हाथ जोड व्याकुलवाणीसे उस परमात्माकी स्तुति करता है ॥ ११ ॥ कि जिसने इसको इस बंदी गृहमें डाला है. जीव कहता है-

॥ स्तुति गीतिका छन्द ॥

तेहि कृष्णके चरणारविन्दहि, मैं शरण अब होत हूं ॥
जो दासहित बहु रूप धारत, मैं परो दुखसोत हूं ॥
माया विवशमें कर्मबंधन, बँधो गर्भहिमें परो ॥
अविकार शुद्ध अखंड बोध, मुरारि मेरो दुख हरो ॥
मैं हौं असंग हिये वृथाही, बँधो भूतहि पंचमें ॥
इन्द्रियविषय आसक्त हौं, मैं बढो मायामंचमें ॥
दुखरूप यहि संसारमें, जेहि विवश जीव सिधावतो ॥
नहिं कटत जाकी कृपा विन, तेहि नाथको गुहरावतो ॥
यह ज्ञानदायक नाथ सोई, जो सकल जग व्यापत रहै ॥
मम मति न ज्ञान विनाशहित, अब नाथ सोइ दाया गहै ॥
मलमूत्रशोणितकूपमें, जननीजठर वडवानलै ॥
तन दहत मासनको गनत, उद्धार करिहौ कब भलै ॥
दशमास बालक मोहिं जो, यह ज्ञान दिय सुखगाथ है ॥
जो करत निरहेतुक कृपा, सो सत्य दीनानाथ है ॥
प्रभुको न निरखत पशुखगादिक, निज सुखै दुख भोगते ॥
मैं तौ लखौं तुमको सकल थल, आय ज्ञान संयोगते ॥
पै मैं न इतते कढन चाहत, यदपि कठिन कलेश है ॥
निकसे ग्रसे तुव प्रबल माया, यह विशेष अशेष है ॥
यह गर्भहीमें भक्ति कर, संसारसागर तरहुगे ॥
तुव कृपासे वैकुण्ठवश नहिं, विश्वव्यालहि डरहुगे ॥

हे शरणागतवत्सल ! विश्वके पालन करनेके लिये आप अपनी इच्छासे अनन्तरूपधारी भगवान् वासुदेवके भूमिपर पर्यटन करतेहुये निर्भय चरणारविन्दके मैं शरण हूं, कि जिसने मुझ पापीको यह गर्भवासकी गति दिखाई ॥ १२ ॥ जो ईश्वरकी मायासे इस संसारके कर्मबन्धनसे जननीके उदरमें पंचमहाभूत इन्द्रिय अन्तःकरणरूप मायाका आश्रय लेकर कर्मोंसे बँधाहुआ हूं, अब उस विशुद्ध, अविकार, अखण्डज्ञान स्वरूपको इस तपित हृदयमें

वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥ जो ईश्वर पंचभूत चित्शरीरमें ढकाहुआ विदित होता है, जैसाही इन्द्रिय, गुण, अर्थ, चैतन्य आत्मक मैं हूं, तैसे देहरहित होनेपरभी प्रसिद्ध महिमावाले ऋषि परमेश्वर प्रकृति पुरुषसे परे जो आप हैं सो मैं आपके चरणारविन्दोंकी वंदना वारंवार करता हूं ॥ १४ ॥ जिसकी मायासे अपने निजस्वरूप और ज्ञानका विस्मरण होनेसे यह जीव बहुत गुणकर्मसे करे हुए इस जगतसंबंधी मार्गमें महाकष्टसे विचरण करताहुआ यह परमात्माकी कृपा विना और किसी युक्तिसे अपने निजस्वरूपको नहीं जानसक्ता, क्योंकि भगवत्कृपाविना ज्ञान नहीं होसक्ता और ज्ञान विना मोक्ष कहाँ? इसलिये ईश्वरकी सेवा करनी उचित है ॥ १५ ॥ स्थावर जंगममें अनुवर्ते जिसका अंश ऐसे देव ईश्वरके विना जो यह कालका ज्ञान मुझको हुआ, इस ज्ञानको मेरे हृदयमें किसने प्रकाश किया? वह कौन है? इसलिये जीवकर्मपदवीमें वर्तमानके त्रयतापनाशार्थ उस परमात्माको भजता हूं ॥ १६ ॥ माताके देहरूपी विवरमें यह तन जठराग्निसे अति तपित रुधिर विष्ठामूत्रके कूपमें अतितम देहसे जीव यहांसे वाहर निकलनेके लिये अपने मासोंको गिनता है और यह कहता है कि हे दीनबंधो! दीनानाथ! इस जीवको यहांसे कब निकालोगे? ॥ १७ ॥ हे नाथ! दशमासको बडे अनुग्रहसे आपने ऐसी गतिदी सो दीनानाथ आप अपने किये उपकारसे आपही संतुष्ट होते हो, केवल हाथ जोडनेके अतिरिक्त आपका प्रत्युपकार कौन करसक्ता है? ॥ ॥ १८ ॥ सात धातुका जिसका शरीर सो तौ अपने देहसंबंधी दुःख सुखहीको देखता रहता है, और मैं तो परमात्माकी कृपासे उसके दिये ज्ञानसे जो शम दम आदि सब साधन बनसकैं ऐसी स्थितिमें हूं, उन पुरुषको मैं बाहर और हृदयके भीतर चित्की नांई विश्वस्त मन कर देखता हूं ॥ १९ ॥ हे विभो! सो मैं अत्यन्त दुःखवासमें बसूं हूं तौभी इस अन्धकूपसे वाहर निकलनेकी इच्छा नहीं. क्योंकि बाहिर आतेही आपकी माया व्यापैगी, और जिसके संबंधसे स्त्री पुत्रादिकके मोह ममतामें फसना पडेगा ॥ २० ॥ इसकारण अब मैं यहीं चित्तको स्थिर करके आपके कोमल चरणकमलोंको हृदयमें धारण करूंगा, और उनहींके अनुग्रहसे अपनी सुहृद आत्माकरके आत्माको तुमसे उद्धार करूंगा; फिर ऐसे अनेक रन्ध्रोंका शरीर जिसमें नानाप्रकारके व्यसन होते हैं यह देह मेरा न होय, और यह कठिन कष्ट मुझको भोगना न पडै, क्योंकि अब श्रीकृष्णचंद्र कृपानिधानका मैंने आश्रय लिया है ॥ २१ ॥ कपिलदेवजी बोले कि इसप्रकार गर्भमें जो दशमासका जीव स्तुति कर रहा था उसको बाहर निकालनेके लिये प्रसूतिवायुने तुरन्त उसको पृथ्वीपर फेंकदिया ॥ २२ ॥ वायुके फेंकनेसे वह जीव नीचेको मुख किये श्वासबन्द बडे कष्टसे वाहर निकलता है, और सब ज्ञान उसी समय शमन होजाताहै ॥ २३ ॥ भूमिपर गिरकर रुधिरमूत्रमें विष्ठाकी समान चेष्टा करता है, और कहां २ करके वारंवार रोता है और ज्ञानके जाते रहनेसे विपरीत गति होजाती है ॥ २४ ॥ अतिरिक्त रोनेके और वह कुछभी नहीं कहसक्ता, अपने पराये प्रयोजनको नहीं जानता, जननी जनक

उसके पोषणके लिये उनको भूँखा समझ कभी दूध पिलाते हैं कभी उदरकी बाधा समझ घूटी देते हैं, परंतु उसकी इच्छानुसार एक काम भी नहीं होता, जब वह भूखका मारा रोता है तब माता पिता उसकी दीठ उतारते हैं परन्तु वह किसी बातको 'हां, 'ना' नहीं करसक्ता ॥ २५ ॥ गरमी सरदीसे पीडित अपवित्र शय्यापर पडा रहता है, मच्छर, मक्खी, खटमल आदि उस जीवको काटते हैं, उस समय न तौ वह अपने तनको खुजा सक्ता है, न उठासक्ता है, न बैठसक्ता है, न कोई उपाय ही करसक्ता है, केवल अपनी व्यथाको आप ही जानता है.

दोहा-मुखसे कछु नहिं कह सकत, सहत विपति दिन रैन।
खटियापर विलखत रहत, परत न छिनको चैन ॥ १ ॥
कोमल काया जानिकै, काटत कीट कुठौर।
मात भेद जानत नहीं, करत यत्न कछु और ॥ २ ॥ २६ ॥

कच्ची खालमें मच्छर डांस खटमल आदि अनेक जीव इस जीवको काटते हैं. इसीसे वह बालक बार २ रोता है, ज्ञान सब नष्ट होजाता है, जैसे और कीडे हैं. ऐसे ही इसको भी एक कीडा समझो ॥ २७ ॥ इसभांति अनेक भांतिके कष्ट भोगकर फिर बाल अवस्थामें पठनपाठनका दुःख सहकर अज्ञानपनसे उसको भी नहीं सीखता, खेलकूदमें ही वृथा समय खोया, जब तरुणाई आई तब मनमानी वस्तु पाकर महा अभिमानी बन लगा. अज्ञानसे क्रोध करने और कष्ट उठाने ॥ २८ ॥ देहके संग बढेहुए काम क्रोधके घमंडमें विषयीजनोंके संग मिलकर अपनी आत्माके नाशार्थ लडाई करता है ॥ २९ ॥ पंचभूतके देहमें वारंवार यह अज्ञानी जीव अपने अभिमानसे कहता है कि, यह शरीर मेरा है, मैं इसका पालन करता हूं, ऐसी असत् बातें ग्रहण करने लगता है. कुमतिसे सुमतिका नाश होजाता है ॥ ३० ॥ देहके अर्थ कर्म करता है, जिस कर्मसे बँधकर संसारको प्राप्त होता है, क्लेश देता हुआ जो यह शरीर है इसके लिये यह प्राणी दिन रात कर्म किया करता है, और सदा जीवन मरणके चक्रमें पडा घूमता ही रहता है ॥ ३१ ॥ फिर शिश्न और उद्यमकारी असतोंके मार्गमें स्थित होकर उसी मार्गमें चलने लगता है, और फिर कुसंगतिके प्रभावसे उसीभांति नरक भोगता है ॥ ३२ ॥ और सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा, यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य, यह सब खोटे पुरुषोंकी संगतिसे नष्ट होजाते हैं ॥ ३३ ॥ इसलिये अशान्त, मूढ अज्ञानी, अखण्डित आत्मा, अपने साधु शोचके योग्य योषिताओंकी क्रीडामृग अर्थात् नीच स्त्रियोंसे रमण, और नीच मनुष्योंकी संगति कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ३४ ॥ और प्रसंगोंसे जैसा यह बँधे हैं उससे अधिक मोह नहीं होता जैसा कि, स्त्रियोंके संगसे होता है, और उनकी संगति करनेवाले पुरुषोंकी संगतिसे अत्यन्त ही मोह बढता है, और महाक्लेश होता है ॥ ३५ ॥ चतुरानन अपनी सरस्वतीको देख उसके वश होगये, जब सरस्वतीसे कुछ न बनपडा तौ मृगीका रूप धारण कर भागी, उस समय ब्रह्माजी भी लज्जा तज मृग बन उसके पीछे भागे ॥ ३६ ॥

जब ब्रह्माजीसे ज्ञानीकी यह गति है तब उनके रचे मरीच्यादि, उनके रचेहुए कश्यपादि उनके रचेहुए देवता मनुष्यादिके मनमें ऐसा अखण्डित बुद्धिवाला कौन है ? जो उसका चित्त योषितारूप मायाको देख खंडित न होय. एक श्रीनरनारायणोंको तौ हम नहीं कह सक्ते जो सब संसारके प्रलय पालन करनेवाले मौनरूप धारण किये विराजमान हैं ॥ ३७ ॥ मेरी स्त्रीमयी मायाका बल देखो, जो दिशाओंके जीतनेवाले शूर वीरोंकोभी केवल भ्रुकुटी चढाके अपने पाँवोंमें लुटालेती है ॥ ३८ ॥ कदाचित् जो मनुष्य योगका पार पाना चाहै वह स्त्रियोंका संग न करै; मेरी सेवासे आत्मज्ञानी होता है फिर वह योगीश्वर स्त्रियोंको नरकका द्वार समझता है. इस बातपर एक श्लोक है-

श्लोक-आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानाम् ।
दोषाणां संनिधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ॥
स्वर्गद्वारस्य विघ्नं नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डम् ।
स्त्रीरत्नं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिनां मोहपाशः ॥ १ ॥

भावार्थ-संदेहोंकी भँवर, अविनयका स्थान, साहसोंका नगर, दोषोंका समूह, कपटमय, अविश्वासोंका क्षेत्र, स्वर्गद्वारका विघ्नरूप, नरकपुरका मुख, सब मायाका डिब्बा, यह स्त्री-रत्न विष अमृतमय है, प्राणियोंको साक्षात् मोहकी फाँसी है. विचारपूर्वक देखनेसे इस श्लोकका आशय सर्वथा सत्य प्रतीत होता है ॥ ३९ ॥ परमेश्वरकी रची हुई स्त्रीरूपी माया जो धीरे २ अपने निकट आवै तौ उसको अपनी मृत्यु जानै जैसे तृणोंसे छिपाहुआ कुआ ॥ ४० ॥ मुमुक्षु स्त्रीके प्रति कहते हैं, पुरुषसमान आचरण करती हुई मेरी माया उस वित्तके देनेवालेको पति मानै तो उस पुरुषरूप मायाको मृत्यु समझै जिससे पूर्वजन्ममें आप पुरुष था, फिर मरणसमय स्त्रीके ध्यानमें स्त्रीधर्मको प्राप्त हुआ इसभांति फिर जो पुरुषधर्मको प्राप्त होगा फिर स्त्रीकी इच्छासे स्त्री होगा ॥ ४१ ॥ पति, पुत्र, गृहरूप, नारी अपनी मृत्यु जानो. वधिकके गाने और वीणा बजानेसे जैसे मृगकी मृत्यु है, इसी-प्रकार दैवसे प्राप्त नारीको अपनी मृत्यु जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ जीवरूप अपने शरीरसे दूसरे शरीरमें एक कर्मका भोक्ता निरंतर पिछले कर्मको किया करता है ॥ ४३ ॥ पंचभूत इन्द्रिय मनोमय देह जीव इसके संग है, जीवका रुकना इसका मरण है, आविर्भाव होना जीवका संभव है ॥ ४४ ॥ द्रव्यकी प्राप्ति इसको द्रव्यसे चेष्टा अयोग्यता जब होती है, अहंकारसे, मानसे, उत्पत्ति, द्रव्य, दर्शन, ये नाश होजाते हैं ॥ ४५ ॥ जैसे नेत्रोंका द्रव्य अवयव दर्शनकी अयोग्यता जब होती है,तबहीं चक्षुके द्रष्टाको इनके द्रष्टृत्वाभावकी योग्यता होती है ॥ ४६ ॥ इसकारण न तौ मृत्युका भय माने, न जीवनकी आशा ठाने, और न जीवनको प्रयत्नोंका आदर करना चाहिये जीव गति जानकर धीर मुक्तसंग हो-कर इस संसारमें विचरै ॥ ४७ ॥ सुंदर देखनेवाली, योग और वैराग्यवाली सत्यविचार करनेवाली बुद्धिसे माया विरचित लोकमें शरीरकी आसक्ति त्यागकर आनंदसे विचरै-

कवित्त-योग करै यज्ञ करै वेदविधि त्याग करै, जप करै तप करै योंही आयु खूटि है। यम करै नेम करै तीर्थ हू व्रतादि करै, पुहुमि अटन करै

वृथाश्वास टूटि है ॥ जीवको यतन करै वनमाहिं वास करै, पचि पचि योंही मरै काल शिर कूटि है ॥ औरहू अनेक विधि कोटिन उपाय करै, सुन्दर कहत विनु ज्ञान नहीं छूटि है ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने पुण्यपापैरिह मनुष्ययोनिसम्प्राप्तौ जीवगतिवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दोहा-बत्तिसमें सुरलोकको, सात्त्विकपनसे जाय।
तत्त्वज्ञानविन फिर फिरै, शिर धुनि धुनि पछिताय ॥

कपिलदेवजी बोले कि, कोई गृहस्थ गृहस्थके धर्मोंका आचरण घरमें बैठकर करते हैं, और अर्थकामरूपकी कामनाके लिये उन सब कामोंका अनुष्ठान कर फिर उन सब कामोंको पूर्ण करते हैं ॥ १ ॥ वे मनुष्य कामनाओंमें विमूढ हो भगवद्धर्मसे पराङ्मुख होकर श्रद्धालु बनकर यज्ञोंसे देवतापितरोंका यजन करते हैं ॥ २ ॥ और जिनकी बुद्धि और श्रद्धा पितृ और देवताओंमें लग रही है वे मनुष्य पितृदेवताओंका व्रत कर चन्द्रलोकमें जाते हैं. और वहां अमृतपान कर फिर जन्म लेते हैं ॥ ३ ॥ जब शेषशय्यापर अनंतासन नारायण शयन करते हैं तब गृहस्थियोंके सब लोक लयको प्राप्त होजाते हैं; इससे ज्ञात होता है कि. सकामकर्म करनेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं वे स्थिर नहीं रहते ॥ ४ ॥ जो धीरपुरुष काम अर्थके लिये स्वधर्मका आचरण करते हैं वें सब संग त्याग, सब कर्म त्याग, अत्यन्तशान्त शुद्धचित्तसे श्रीभगवान्‌के निवासस्थानको जाते हैं ॥ ५ ॥ जो पुरुष निवृत्तिकर्ममें प्रीति करते हैं, और ममता व अहंकारको त्यागकर अपने स्वधर्मका सात्त्विकभावसे आचरण करके अत्यन्त शुद्ध चित्तसे भगवत्‌के लोकको जाते हैं ॥ ६ ॥ और सूर्यद्वारकरके विश्वमुख पुरुषको प्राप्त होतेहैं, पर अपवर्गके स्वामी प्रकृतिके पति इस विश्वकी उत्पत्ति पालन संहार करते हैं ॥ ७ ॥ जो पुरुष परमेश्वर दृष्टिसे ब्रह्माका पूजन करते हैं सो ब्रह्माके सौ वर्षके अन्तमें प्रलय होता है तबतक तौ ब्रह्माके लोकमें वास करते हैं ॥ ८ ॥ द्विपरार्ध लक्षण कालका अनुभव कर पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, मन, इन्द्रिय उनके अर्थ, पंचभूत, अहंकार इनसे युक्त संसारके संहारकी इच्छा करनेवाला गुणत्रयमय शरीरवाला ब्रह्मा अपने सौ वर्षको भोगकर परमेश्वरमें लीन होजाता है ॥ ॥ ९ ॥ तब यहांसे दूर जाकर भगवत्‌के सेवक योगीजन जिन्होंने पवनमनको जीत वैराग्य लिये हैं, वे ब्रह्माहीके साथ अमृतस्वरूप पुरुष पुराण प्रधान ब्रह्मको अभिमान त्यागनेवाले प्राप्त होते हैं परन्तु ब्रह्मासे पहिले उस पदवीको नहीं पासक्ते क्योंकि ब्रह्माके समयतक उन देहाभिमानियोंका अभिमान निवृत्त नहीं होसक्ता ॥ १० ॥ हे प्रकाशरूपिणि ! अब सब जीवोंके हृदयकमलमें जिनका स्थान है उनका अनुभव सुन भावसे शरण जाव ॥ ११ ॥ स्थावर जंगमके आद्य ऋषि सहित ब्रह्माजी योगीश्वर सनकादिक

सिद्धयोग प्रवर्तक वे भी ॥ १२ ॥ भेददृष्टि करके अभिमानसे निष्कामकर्म करके कर्ताभाव होनेसे पुरुषोंमें श्रेष्ठ सगुणब्रह्मको ॥ १३ ॥ सो ब्रह्मा अपने पदको प्राप्त हो ईश्वररूप कालकरके संसारमें फिर जन्म लेकर जैसे पहिले ब्रह्मा थे उसी पदवीको फिर प्राप्त हुए ॥ ॥ १४ ॥ हे सति ! परमेष्ठीके ऐश्वर्य्यकी धर्मनिमित्त सेवा कर फिर संसारमें जन्म लेते हैं ॥ १५ ॥ और जो लोग इस संसारमें आसक्तमन हैं श्रद्धाकर कर्ममें लग रहे हैं, सब ओरसे जिनका कोई निषेध न करै ऐसे कर्म करते हैं ॥ १६ ॥ और रजोगुणसे उनके मन हरे गए हैं कामोंमें आत्मा उनकी लगी हुई है, इन्द्रियें नहीं जीती हैं, घरमें जिनका मन सदा लगा रहता है और नित्य पितरोंका पूजन करते हैं ॥ १७ ॥ अर्थ, धर्म, काममें मनको लौलीन रखते हैं, ईश्वरसे विमुख कथनीय भगवत्यश गानेयोग्य जिनके पराक्रम हैं, उन मधुद्वेषीकी कथामें जो विमुख हैं ॥ १८ ॥ और जो पुरुष नारायणोंकी सुधारूपी कथाको त्यागकर रसिकग्रंथोंमें मन लगाते हैं, और उनहीं चरित्रोंको पढकर प्रसन्न होते हैं, जैसे सब उत्तमोत्तम पदार्थोंको तजकर विष्ठाभोजी विष्ठाहीसे प्रसन्न होता है ऐसे जो नीचलोगोंकी कथा कहानी सुनते रहते हैं, वे अभागी निश्चय भाग्यके मारेहुए हैं, दैवने उनको भाग्यहीन बनाया है ॥ १९ ॥ जिन्होंने गर्भसे लेकर श्मशानपर्यन्त क्रिया की है, वे पुरुष सूर्यसे दक्षिणमार्ग होकर पितृलोकको जाते हैं, फिर कुछ काल व्यतीत कर अपने पुत्रादिकोंमेंही आनकर जन्म लेते हैं ॥ २० ॥ हे सति ! पितृलोकसे जब उसका सुकृत क्षीण होता है, तब देवतालोग उसके सब साधनोंको नष्ट कर देते हैं, उससे वह प्राणी विवश होकर फिर इसी मृत्युलोकमें आनकर जन्म लेता है ॥ २१ ॥ इसलिये सब भावसे परमेश्वरके पदारविन्दका भजन करना मुख्य है, उनके गुणाश्रयीभूत-भक्तिसे भजनीय चरणकमल भगवान्‌के हैं ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोग करै तौ शीघ्रही वैराग्यज्ञान ब्रह्मदर्शन होजाता है ॥ २३ ॥ जब इस भक्तका मन इन्द्रियोंकी वृत्तिकरके समान अर्थोंमें जो प्रिय अप्रियमें विषमभावको नहीं ग्रहण करता ॥ २४ ॥ जब निःसंग समदर्शी त्यागने और ग्रहण करनेसे रहित है, तब उसको आपही विदित होजाता है कि स्वयंप्रकाश आत्मका परमानंद मैंही हूं, ऐसा निश्चय होजाता है ॥ २५ ॥ ज्ञानमात्र परब्रह्म परमात्मा ईश्वर पुरुष देखनेके पृथक्‌भावसे भगवान् एक प्रतीत होते हैं ॥ २६ ॥ इस विश्वमें समग्र थो॥से योगीजन अपना अभिमत अर्थ इतनाही मानते हैं कि, सब प्रकारसे सबसे संग छूटजाय ॥ २७ ॥ बहिर्मुख इन्द्रियोंसे, अर्थरूपसे, भ्रांतिसे, शब्दादिधर्मसे, एक ज्ञानरूप निर्गुण बृहत्त्वादिगुणसे, विशिष्टचैतन्यब्रह्म प्रकाशै है ॥ २८ ॥ जैसे प्रथम एकरूप परमात्माका था वही महत्तत्त्व, अहंकार, त्रिगुण, पंचभूत स्वराट् एकादशविधिका शरीर इनके रूपसे अनंतरूप प्रगट हुए, जिन महत्तत्त्वा-दिकोंसे इस प्राणीका देहरूप जगत् उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ जिस पुरुषका मन भक्तिसे, वैराग्यसे, श्रद्धासे, योगाभ्याससे, एकाग्र होगया है, जिसका आत्मा सब संग त्यागकर विरक्तिकरके देखता है. वह महात्मा पुरुष इस भेदका निश्चय करसक्ता है ॥ ३० ॥ हे

मातः! साक्षात् ब्रह्मका स्वरूप होजाता है, और प्रकृतिपुरुषका तत्त्व दीखने लगता है. वह ज्ञान मैंने तुमको सुनाया ॥ ३१ ॥ मुझमें निष्ठा कर ज्ञानयोग करना, और निर्गुणभक्ति इन दोनोंका अर्थ एकही है भगवतशब्द लक्षणरूप है ॥ ३२ ॥ जिसप्रकार रूप रस आदि अनेक गुणयुक्त सबही वस्तु पृथक् २ मार्गवाली इन्द्रियोंसे अनेक भांतिकी विदित होती हैं; जैसे कि हरड नेत्रसे हरित; जिह्वासे कसैली, त्वचासे अशीत, प्रतीत होती है; इसही प्रकार एकही भगवान् शास्त्रोंके द्वारा नानाप्रकारके ज्ञात होते हैं ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकारकी शुभक्रिया करनेसे जैसे कुआ, बावडी, वाटिका, धर्मशाला, पाठशाला, औषधालय आदिक; यज्ञ, दान, तप, वेदपाठ, आत्माके विचार, इन्द्रियोंके जीतने, मनके दमन और कर्मोंका त्याग अर्थात् संन्यास करनेसे ॥ ३४ ॥ अनेक अंगके योगाभ्यास, भक्तियोग, दृढवैराग्य, सकाम निष्काम धर्म, प्रवृत्ति निवृत्ति मार्गमें निष्ठासे ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वबोध, दृढ वैराग्य, सगुण निर्गुण स्वदृक् भगवान्‌की इन सब साधनोंसे प्राप्ति होती है ॥ ॥ ३६ ॥ मैंने भक्तियोगका स्वरूप तुमसे चार प्रकारका कहा, और संसारके संहारकर्ता अप्रगट गतिवाले कालकाभी स्वरूप तुमसे कहा ॥ ३७ ॥ हे मातः! प्राणीकी अनेकयोनि अविद्याकर्मसे निर्मित होती हैं; जिनकी गतियोंमें प्रविष्ट होनेसे अपने शुद्धस्वरूपको भूल जाता है; जैसा है वैसा नहीं जानता; और न ईश्वरकी गतिको पहिंचानता है ॥ ३८ ॥ यह ज्ञान खल, अविनयी, अभिमानी, दुराचारी, पाखण्डीको कभी सुनाना नहीं चाहिये ॥ ॥ ३९ ॥ लोभीको, गृहमें चित्त लगानेवालेको, अभक्तको, और मेरे भक्तोंका द्रोह करनेवालोंको तो कभी भूलकर यह ज्ञान न सुनावै ॥ ४० ॥ इस ज्ञानके सुननेके अधिकारी वे हैं जो श्रद्धालु, भक्त, नम्र, किसीसे शत्रुता न करैं, जीवमात्रसे मित्रता करनेवाला, शुश्रूषा करनेवाला, मेरी सेवामें तत्पर हो ॥ ४१ ॥ बाहिर्मुख, वैराग्यवाला, शान्ताचित्तवाला, मत्सरतारहित, पवित्रआत्मा, जो मुझको सबसे अधिक प्यारा मानै, ऐसे पुरुषोंको यह ज्ञान उपदेश करना उचित है ॥ ४२ ॥ हे अम्ब! जो पुरुष श्रद्धासे वारंवार इस कथाको सुनै और कहै वह मुझमें मिलकर मेरी पदवीको प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥

स०–प्रीति प्रचण्ड लगे परब्रह्महिं और सबै कछु लागत फीको।
शुद्ध हृदै मन होय सो निर्मल द्वैतप्रभाव मिटै सब जीको॥
गोष्ठ्यरु ज्ञान अनन्त चलै जहँ सुन्दर जैसे प्रवाह नदीको।
तेहिते जानि करौ निशि वासर साधुको संग सदा अतिनीको॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्यानवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दोहा–तेतिसवें अध्यायमें, कपिलदेवको ज्ञान।
सुनो देवहूती जबै, पायो पद निर्वान॥

मैत्रेयजी बोले कि इसप्रकार कपिलदेवजीके ज्ञानरूपी वचन सुनकर, मोहपटली जिसकी

दूर होगई, वह कर्दमजीकी प्यारी पत्नी, और कपिलदेवजीकी माता देवहूती तत्त्वविषयोंसे अंकित सिद्धभूमि सांख्यशास्त्रके कर्त्ता कपिलदेवजीको प्रणाम कर स्तुति करनेलगी ॥ १ ॥ देवहूती बोली कि यद्यपि आप ऐसे हैं तौभी अजन्मा जलशार्यी पंचमहाभूत इन्द्रियार्थात्म-मय यह आपका शरीर है, आप मेरे उदरसे जन्मे, सबका बीज यह संसार उसमें तुम्हारा मैं वारंवार ध्यान करूं हूं ॥ २ ॥ हे नारायण ! जिस समय आप जलके भीतर शेषशय्या पर शयन कर रहे थे, उस स्वरूपका ब्रह्माजीनेभी केवल ध्यान मात्र दर्शन किया, उनको उस स्वरूपका साक्षात् दर्शन नहीं हुआ, वे चतुरानन आपही जिनकी नाभिकमलसे प्रगट हुए हैं, वे आपकी महिमाको नहीं जानसक्ते, आपही विश्वको उत्पन्न पालन संहार करो हो, संहारसे अनेक वीर्योंके विभाग किये, कोई क्रिया नहीं करते, सत्यसंकल्प आत्माके ईश्वर तर्कमें नहीं आते, सहस्रशक्तिरूप आप हो ॥ ३ ॥ हे नाथ ! जिस उदरमें प्रलयके समय यह सब विश्व था, और आप अपनी विश्वमोहिनी मायासे बालक बन अपने चरण का अँगूठा चचोडते हुए वटपत्रपर शयनकर रहे थे, सो हे प्रभो ! तुमको मैंने उदरमें धारण किया ॥ ४ ॥ हे समर्थ ! पापियोंके नाशके लिये और अपनी आज्ञापालन तथा ऐश्वर्यप्राप्तिके कारण जैसे आपने शूकरादिक अवतार धारण किये हैं इसीप्रकार आपने आत्मज्ञान प्राप्ति करनेके लिये अवतार लिया है ॥ ५ ॥ आपके नाम श्रवण, कीर्तन, प्रणाम, स्मरण करनेसे चाण्डालभी यज्ञ करनेके योग्य होजाता है. हे विभो ! जिसने आपका दर्शन किया है, उसके शुद्ध होनेमें तौ संदेहही क्या है ? ॥ ६ ॥ हे नाथ ! वह चाण्डालभी श्रेष्ठ है, जिसकी जीभसे आपका नाम निकलता है, इसलिये वह प्राणी सब प्राणियोंसे उत्तम हैं, विदित होता है कि जो पुरुष आपका यश वर्णन किया करते हैं, उन्होंने निःसन्देह पिछले जन्ममें कोई तप किया होगा. अथवा होम तीर्थस्नान और एकाग्र चित्त हो वेदपाठ किया होगा, विना पूर्वजन्मके प्रभाव भगवद्भजन करना बहुत कठिन है, जिसने तुम्हारा नाम लिया उसने सब कुछ किया–

भजन–रे मन कृष्णनाम कहिलीजै ।

गुरुके वचन अटल कर मानहु साधुसमागम कीजै ॥
पढ़िये गुनिये भक्ति भागवत और कहा कथ खीजै ।
कृष्णनामरस बह्यो जात है तृषावन्त है पीजै ॥
कृष्णनामबिन जन्म बाद है वृथा जीवन कह जीजै ।
सूरदास हरि शरण ताकिय जन्म सुफल कर लीजै ॥ ७ ॥

परब्रह्म, परमपुरुष, सावधान हृदयमें ध्यान करनेयोग्य, और तेजके प्रतापसे संसारकी मायाकेनाश करनेवाले, ऐसे सर्वव्यापक, विष्णु, वेदगर्भ आप कपिलदेवजीको मैं वारंवार प्रणाम करूं हूं ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले पर पुमान् भगवान् कपिलदेवजीकी जब देवहूतीने इसप्रकार स्तुति की तब गम्भीरवाणीसे कपिलदेवजी अपनी जननीपर दयालु हो ॥ ९ ॥ कपिलदेवजी बोले कि, हे मातः ! सुन्दर सेवन करनेयोग्य मेरे कहेहुए मार्गमें स्थित

होनेमें तुम थोडेही कालमें जीवन्मुक्तिको प्राप्त होगी ॥ १० ॥ जिस ब्रह्मविद्याका ब्रह्मवादी ब्रह्मर्षियोंने सेवन किया है सो इस मेरे मतपर श्रद्धास्नेहसे चल, जो इस भवभयसे निवृत्त हो मेरे समीप रहे, और जो ज्ञानी पुरुष मेरे इस सिद्धान्तका शान्त चित्तसे चिन्तवन करते हैं वे मेरे अभय लोकको जाते हैं और जो इस मतसे विमुख हैं वे सदा जन्ममरणके चक्रमें घूमाकरतेहैं ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान् कपिलदेवजी उस ब्रह्मवादिनी अपनी माता, सती देवहूतीको अपनी आत्मगति दिखाकर और समझाकर आज्ञा ले आप तो वहांसे चलेगए ॥ १२ ॥ और वह देवहूती पुत्रके कहेहुए मार्गसे योगाभ्यासमें एकाग्रचित्त हो सब आश्रमोंमें मुकुटतुल्य, पुष्परचित सरस्वतीनदीके तीरपर सावधानतासे वास करने लगी "यह स्थान गुजरातमें सीधपुरके समीप है, वहां सरस्वतीजी बहती हैं, वहीं बिन्दु-सरोवर है; वहीं कपिलदेवजीका आश्रम इत्यादि सबहैं" ॥ १३ ॥ उसी बिन्दुसरोवरमें तीन बार स्नानकर; पीतकुटिल अलकोंको धारण किये कृशशरीरपर चीर पहिरे, अपने आपको उग्रतपसे धारते हुए ॥ १४ ॥ कर्दमजी प्रजापतिने तप और योगके प्रभावसे वर्द्धित अपना गृहस्थाश्रम जिसकी उपमा नहीं, देवता प्रार्थना करें ऐसे अनु-पम गृहस्थाश्रमको त्याग दिया ॥ १५ ॥ दुग्धफेनके समान निर्मल और कोमलशय्या-हाथीदांतके जिसमें पाये, सुवर्णकी सामग्री, कंचनके आसन सुन्दर स्पर्शयोग्य जहां बिछे थे ॥ १६ ॥ स्वच्छ स्फटिकके आलोंमें महामरकतमणिजडी रत्नोंके दीपकप्रकाश करते थे, और स्त्रीरत्नोंसे सब स्थान शोभायमान थे ॥ १७ ॥ भवनोंके उद्यान जिसमें अनेक २ प्रकारके पुष्पवाले वृक्ष फूलोंसे फूलेहुए कल्पवृक्षोंसे रमणीक, पक्षियोंके जोडे जहां कूँज रहे, मतवाले भौंरे जहां गुंजार रहे, सरोवरोंमें सुन्दर २ कमल खिल रहे, जिनके रजके मकरन्दका पान करते थे, और झरझरकर जलमें गिरतीथी ॥ १८ ॥ उस फुलवा-डीमें हरिके पूजनार्थ जिस समय देवहूती जाती थी. तो उस समय देवताओंके मृतकगण गंधर्व समीप मधुर २ स्वरोंसे गाते थे और कमलकी सुगन्धिवाली वापीके भीतर जिसको कर्दमजी रमण कराते थे ॥ १९ ॥ देवहूतिका सुखभुवन ऐसा शोभायमान था कि इन्द्राणी उसके सुखकी अभिलाषा करती थी, ऐसे सुखको कर्दमजीके वियोगमें त्याग दिया था. जब पुत्रका वियोग हुआ तो उसके विरहमें आतुरतासे उसका मुख कुम्हला गया ॥ ॥ २० ॥ प्रजापति कर्दमजीके स्त्रीपुत्रका मोह तज वनको चलेजानेसे और जब दूसरा पुत्रका वियोग हुआ, उस समय तत्त्वज्ञान जाननेपरभी इतनी अधिक देवहूती व्याकुल हुई, जैसे बछडेके बिछडनेसे साधु गायकी दुर्दशा होजाती है ॥ २१ ॥ हे विदुरजी ! वह देवहूती अपने पुत्र कपिलदेवजीका ध्यान करनेसे थोडेही कालमें वैभवयुक्त घरकी इच्छा त्याग अनन्यगतिको पहुँचगई-

चौ०-अचलचित्त हरिचरण लगाई * ब्रह्मलोकलो विभो बिहाई ॥
स्वप्रसरिस सुख सकल बिसारी *कर समाधि तनुसुरति निवारी२२

जो ज्ञानध्यानगोचर भगवद्रूप भगवान् कपिलदेवजीने देवहूतिसे कहा था उसीका ध्यान करनेलगी और प्रसन्न मुखवाले पुत्रकी चिन्ताका त्याग किया ॥ २३ ॥ भक्तिके

प्रवाहयोगसे, बली वैराग्यसे और युक्त अनुष्ठानसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ जीवा-त्माविशुद्धसे विश्वमुख आत्माको अपने अनुभवसे जिस मायाके विशेषगुण छिपे हैं उसका ध्यान करनेलगी ॥ २५ ॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् ब्रह्ममें जिसका मन स्थिर होगया, और सब भाव दूर होगया, सब क्लेश मिटगया, और सब जीवन्मुक्तका सुख प्राप्त हुआ ॥ ॥ २६ ॥ नित्य समाधि लगानेसे गुणोंके सब भ्रम दूर होगये उस समय अपने देहका अनुसंधान न रहा, जैसे स्वप्नकी वस्तुका स्मरण जागेहुए पुरुषको नहीं रहता, इसीप्रकार देवहूतिको अपने देहका स्मरण जाता रहा ॥ २७ ॥ वह देह कर्दमादिसे रक्षित अकृश मनको कुछ ग्लानि नहीं मानती थी, मलसे ढकीहुई धूमसहित अग्नि जैसे प्रकाश करती है ॥ २८ ॥ तपयोगमय, खुले केश, वस्त्र पहिने, ईश्वररक्षित, वासुदेवमें जिसकी बुद्धि प्रविष्ट सो अपने शरीरका अनुसंधान भूलगई ॥ २९ ॥ इस प्रकार कपिलदेवजीके कहेहुए मार्गमें चलनेसे थोडेही दिनोंमें परब्रह्मआत्माके स्वरूप भगवान्को प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ हे विदुर ! जहां वह देवहूती जोवन्मुक्त हुई, पुण्यतम, परमपवित्र, त्रैलोक्यमें विदित-सिद्धपदनामसे वह आश्रम विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ हे विदुर ! योगबलसे उसके शरीरका सब मल भस्म होगया, और देवहूतिका मनुष्य देह सरस्वतीनदीरूप होगया, वह नदी सब नदियोंसे श्रेष्ठ हुई. सब सिद्धोंकी सिद्धिको देनेवाली है, जिसके निकट सिद्धपुरुष वास करते हैं ॥ ३२ ॥ भगवान् कपिलदेवजी महायोगी पिताके आश्रमसे मातासे आज्ञा लेकर ईशानकोणकी ओरको गये ॥ ३३ ॥ वहां सिद्ध, चारण, गन्धर्व, सुर, मुनि, अप्सरागणोंने उनकी स्तुति की, और समुद्रनेभी उनका पूजन कर अनेक २ प्रकारकी भेंट दे अपने भीतर रहनेको स्थान दिया ॥ ३४ ॥ अबतक भगवान् कपिल-देवजी महाराज त्रिलोकीकी शान्तिके निमित्त सावधान हो योग धारणकर उसी स्थानपर विराजमान हैं, और सदा सांख्यशास्त्रके आचार्य उनकी सेवा करते हैं ॥ ३५ ॥ हे तात ! हे पापरहित ! जो तुमने भगवान् कपिलदेवजी और सती देवहूतिका पवित्र संवाद हमसे बूझा सो विस्तारसहित हमने वर्णन किया ॥ ३६ ॥ यह परमगुह्य कपिलदेवजीका आत्मयोग साधनेके लिये जो महात्मापुरुष सुनेंगे और कहेंगे उनकी बुद्धि गरुडध्वज भगवान्के चरणारविन्दोंमें लगी रहेगी. सो भगवान् कैसे हैं–

स०–जाकी कृपा शुक ज्ञानी भये, अति दानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी ।
जाकी कृपा विधि वेद रचे, भये व्यास पुराणनके अधिकारी ॥
जाकी कृपा भये शेष महेश, गणेश दिनेश महातपधारी ॥
सोई हमारे हियेमें बसो, व्रजचन्द मुकुन्द गोविन्द मुरारी ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते तृतीय-स्कन्धे कपिलान्तर्धानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशतमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इति तृतीयस्कन्ध समाप्त ।

श्रीमद्वेंकटेशो विजयतेतराम्।

शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत भाषा।

चतुर्थस्कन्ध ४.

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालय-बम्बई,
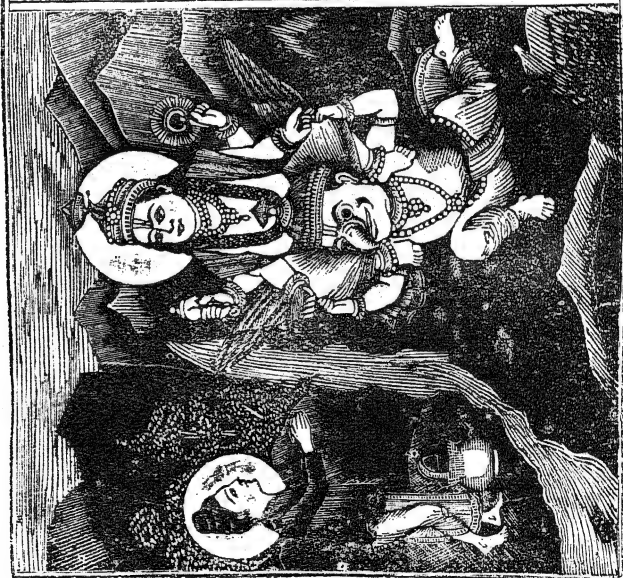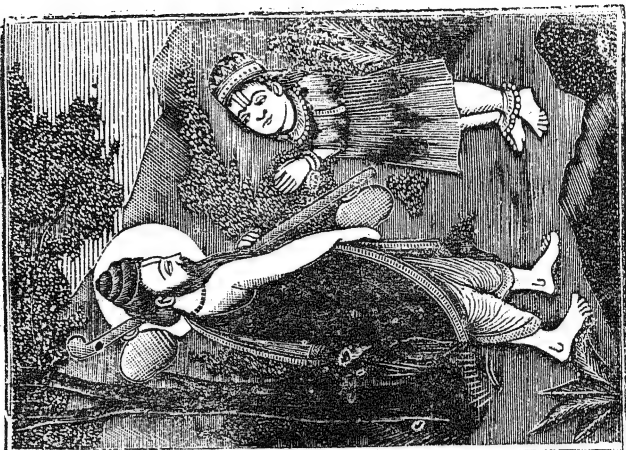
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शुकसागर ।

अर्थात्
श्रीमद्भागवत भाषा.

चतुर्थ स्कन्ध ।

सोरठा–जय प्रभु जगदाधार, करुणानिधि करुणायतन ।
भक्तहेत तन धार, हरत भूमिको भार तुम ॥
जय वृन्दावनईश, जय यदुपति जय श्यामघन ।
जय जय जय जगदीश, चरणशरण मुहिं राखिये ॥
हे वृन्दावनचंद, श्रीगोविन्द सुखकन्द हरि ।
हरहु सकल दुखद्वंद, काटे गजके फंद जिमि ॥
शिव अज सनतकुमार, नारद शारद शेष शशि ।
राखो नाम तुम्हार, शरणागतवत्सल प्रभू ॥
करहु कृपा तुम आज, मूषकवाहन गजवदन ।
जय गणेश गणराज, कहौं चतुर्थस्कंध अब ॥

दोहा–इसी चतुर्थस्कंधमें, हैं इकतिस अध्याय ।
तिनकी भाषा रचत हौं, सुमरौं श्रीयदुराय ॥

कहैं प्रथम अध्यायमें, मनुपुत्रिनको वंश।
यज्ञरूप अवतार धर, करें असुरविध्वंस ॥

मैत्रेयजी बोले कि मनुजीने शतरूपानारीमें विख्यात आकूति, देवहूति, प्रसूति नाम तीन पुत्री और दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ यद्यपि रुचिप्रजापति आकूतिका भाई अर्थात मनुका पुत्र था, परंतु तौभी मनुने शतरूपाकी सम्मतिसे रुचिप्रजापतिके साथ पुत्रिका धर्मका आश्रय लेकर उसका विवाह करदिया. पुत्रिकाधर्म उसको कहते हैं कि यह कन्या विना भाईकी अलंकृत भूषित तुमको दूंहूं इससे जो प्रथम पुत्र उत्पन्न होगा मैं लूंगा ॥ २ ॥ ब्रह्मतेजस्वी श्रीभगवान् रुचिप्रजापतिने परमसमाधिसे उसमें एक जोडा उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ जो उनमें पुरुष हुआ वह साक्षात् विष्णु यज्ञस्वरूपधारी थे और जो स्त्री वह नित्य श्रीनारायणके संग रहनेवाली दक्षिणा हुई. यह लक्ष्मीजीके अंशसे थी ॥ ४ ॥ उस महाप्रकाशक अपनी पुत्रीके पुत्रको अत्यन्त प्रसन्नतासे स्वायम्भुवमनु अपने घर लाये और रुचिप्रजापतिने आनंदसहित दक्षिणाको अपने पास रखलिया ॥ ५ ॥ दक्षिणा जब कामकी इच्छाके योग्य हुई, तब भगवान् यज्ञपतिने उसके साथ विवाह किया, और अत्यन्त प्रसन्न होकर उस दक्षिणामें बारह पुत्र उत्पन्न किये ॥ ६ ॥ तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव, रोचन ॥ ७ ॥ यह स्वायम्भुवमन्वंतरमें तुषित नामके देव हुए, मरीचिआदि ऋषि हुए, और यज्ञ सुरगण ईश्वर इन्द्र हुए, श्रीभगवान्‌जीके छे प्रकारके अवतार यहभी हैं, "मन्वतरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः। ऋषयोऽशावतारश्च हरेः षड्विध उच्यते" यह बात आगे विस्तारसहित कहेंगे ॥ ८ ॥ राजा मनुके महाबली और अतिपराक्रमी प्रियव्रत उत्तानपाद नामक दो पुत्र हुए उनके पुत्र पौत्र नातियोंके वंशसे मन्वन्तर अत्यन्त भरगया ॥ ९ ॥ हे तात ! मनुने देवहूतिका विवाह तो कर्दमजीके साथ करदिया, उसकी कथा तौ मैं प्रथमही आपसे कहआया हूं ॥ १० ॥ अब भगवान् मनुजीने ब्रह्माजीके पुत्र दक्षको प्रसूतिनाम कन्या विवाहदी, जिस प्रसूतिके वंशका विस्तार संसारमें ऐसा बढा कि जिसका यश आजतक त्रिलोकीमें छारहा है ॥ ११ ॥ और जो कर्दमजीकी नौ पुत्रियें थीं वह ब्रह्मर्षियोंकी पत्नियें हुईं, उनमेंसे प्रसूतिके जो संतान हुईं उनका वृत्तान्त मुझसे सुनिये ॥ १२ ॥ मरीचिकी पत्नी कर्दमकी कन्या कलाने कश्यप व पूर्णिमा दो पुत्र उत्पन्न किये उन दोनोंके वंशसे यह सब संसार परिपूर्ण होगया ॥ १३ ॥ हे शत्रुतापन पूर्णिमाके दो पुत्र उत्पन्न हुए, विरज व विश्वग इनके अतिरिक्त सुरकुल्यानामक एक पुत्री उत्पन्न हुई, जो नारायणके चरण नित्य प्रति प्रेमसे धोती थी, और उन्हीके प्रतापसे जन्मान्तरमें आकाशगंगा अर्थात् सुरसरिता हुई ॥ १४ ॥ अत्रिमुनिकी पत्नी अनसूयाके सुन्दर यश कर्ता तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो ब्रह्मा विष्णु शिवके अंशसे दत्तात्रेय, दुर्वासा, सोम ये तीनों महातेजस्वी हुए ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले कि हे गुरो ! अत्रिऋषिके भवनमें देवताओंमें श्रेष्ठ उत्पत्ति, पालन, संहारके कर्ता इन तीनोंने किसकारण आनकर अवतार लिया ? सो कृपा कर मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥

मैत्रेय ऋषि बोले कि अत्रिऋषिको ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ समझकर ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेके लिये प्रेरणाकी, उस समय अत्रिऋषि अपनी भार्याको संग ले कुलाचलपर्वत परके ऋक्ष-नामक तीर्थमें जाकर तप करनेलगे ॥ १७ ॥ जहां पुष्पोंके गुच्छे अशोक व पलाशके वृक्षोंमें लाल लाल लटक रहे हैं, उसकी अद्भुत शोभा व निर्विन्ध्या नदीके चारों ओर झरनोंके जलका शब्द हो रहा है ॥ १८ ॥ उस मनोहर स्थानमें सुखदुःखको समान समझकर प्राणायामसे चित्तको रोक सौ वर्षतक एक पांवसे खडे हो, पवनको भक्ष बना तप करनेलगे ॥ १९ ॥ और इस प्रकार वह वारंवार चितवन करते थे कि जगदीश्वर जगत्का स्वामी जो हैं मैं उसकी शरणागत हूं, वह जैसा आप है इसीप्रकारकी संतान मुझको दे ॥ २० ॥ प्राणायामकी बढीहुई अग्नि जो ऋषीश्वरके शीशमें प्रगट हुई उससे त्रिभुवन तपनेलगा. उस समय तीनों देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॥ २१ ॥ अत्रिमुनिके स्थानपर गये, जाकर देखा तौ अप्सरा, मुनि, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, नाग ये सब देवता अत्रिमुनिके यशका गान करते हैं ॥ २२ ॥ इन तीनों देवताओंके प्रगट होनेसे मुनिका मन चकित होगया परन्तु तौभी एकपांवसे खडे होकर मुनिने श्रेष्ठदेवको देखा ॥ २३ ॥ और पुष्पादिक अंजलिमें लेकर प्रसन्न मनसे दंडवत् प्रणाम कर वृष, हंस, गरुड पर बैठे और अपने अपने त्रिशूल कमण्डलु, चक्र इन चिह्नोंसे चिह्नित तीनों देवताओंका पूजन किया ॥ २४ ॥ अनुग्रहकी दृष्टि व मुसकाते मुखसे, और सुशोभित कांति जानकर अपने मिचेहुए नेत्रोंको मल-॥ २५ ॥ दोनों हाथ जोड़, उनहींमें अपने मनको लगा कोमल मधुर मनोहर वाणीसे त्रिलोकीनाथकी स्तुति कर ॥ २६ ॥ अत्रि मुनि बोले कि, युगयुगमें सृष्टि, उत्पत्ति, पालन व संहार करनेके लिये विभाग किये हुए मायाके गुणोंसे जिन्होंने देह धारण किये हैं, ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश हो सो आप तीनोंको मैं वारंवार नमस्कार करता हूं. उन तीनोंमेंसे आप कौन हैं ? मैंने तो एकको बुलाया था. इस बातको आप मुझसे कहिये ॥ २७ ॥ मैंने यहां विविधविधान व अनेकप्रकारके उपचार करके संतान होनेके लिये केवल एक भगवान्का ध्यान किया था, आप तीनों देव कृपा करके यहां कैसे आये ?

दोहा-यह कारण मोहिं करि कृपा, स्वामी देहु बताय ।
तौ मेरे मनको सकल, विस्मय जाय नशाय ॥ २८ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, वे तीनों देवश्रेष्ठ इसप्रकार मुनीश्वरके वचन सुनकर हे प्रभो ! इसप्रकार कोमलवाणीसे हँस कहनेलगे ॥ २९ ॥ देवता बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जैसा संकल्प आपने किया था; उसीप्रकार हम आये. इसमें किंचित्मात्रभी अंतर नहीं हुआ, आपने हम सबहीका ध्यान किया था ॥ ३० ॥ हे मुने ! इसलिये हम तीनोंके अंशसे जगत्विख्यात आपके तीन पुत्र होंगे और सब संसारमें आपके यशका विस्तार करेंगे, उसीसे आपका कल्याण होगा ॥ ३१ ॥ इसप्रकार वे तीनों सुरेश्वर मनोवांछित वर देकर, और मुनिसे आदर पाकर उन दोनों स्त्रीपुरुषोंके सन्मुखसे अपने स्थानको गये ॥ ॥ ३२ ॥ कुछ कालउपरान्त ब्रह्माके अंशसे सोम सुत हुआ और विष्णुके अंशसे

योगवेत्ता दत्तात्रेयजी प्रगट हुए, और शिवके अंशसे महाऋषि दुर्वासा उत्पन्न हुए, अब अंगिराऋषिके वंशका वृत्तांत सुनो ॥ ३३ ॥ अंगिराकी श्रद्धानाम पत्नीमें चार कन्या उत्पन्न हुई, सिनीवाली, कुहू, राका और चौथी अनुमति ॥ ३४ ॥ उनके दो पुत्र और हुए, जो स्वायंभुवमन्वन्तरमें विख्यात हैं ! एक तो साक्षात् भगवान् उतथ्य हुए और दूसरे ब्रह्मज्ञानी सुरगुरु बृहस्पतिजी ॥ ३५ ॥ और पुलस्त्यजीके हविर्भूनाम पत्नीमें अगस्त्यजी उत्पन्न हुए, जो दूसरे जन्ममें जठराग्निरूप हुए, और उसका दूसरा पुत्र महातपस्वी विश्रवा हुवा ॥ ३६ ॥ विश्रवाके इडविडाभार्यामें यक्षपति देवता कुबेर हुआ. केशिनीनाम आदिभार्यामें रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तीन पुत्र हुए, इस बातपर एक दृष्टांत है, "एक थोडे पढे लिखे पंडित थे, परंतु बात बनानेमें पल्लेसिरेके चतुर थे, वे एकदिन किसी शास्त्री पंडितके स्थानपर गये, शास्त्रीजीने बडे आदरसत्कारसे अपने-निकट बैठालकर पूंछा कि आप कहांसे आये हैं ? उक्तपंडितजी बोले कि, श्रीगंगाजीके किनारे मधुसूदनजीके मंदिरमें रामायणकी कथा होती है वहां गया था. शास्त्रीजी बोले कि कौनसा काण्ड होता है ? और आज क्या कथा हुई थी ? पंडितजी बोले कि लंकाकाण्ड होता है. और आज पंडितजीने रामराभणका युद्ध इसप्रकार वर्णन किया कि सब श्रोता पंडितजीको वारंवार धन्यवाद देतेथे, शास्त्रीजी बोले कि आप पंडित होकर अशुद्ध शब्द बोलते हो (राभण) शब्द नहीं है, रावण है, पंडितजी बोले कि कुम्भकर्ण विभीषण दोनोंके नाममें तो दूसरा अक्षर (भ) है. फिर राभणके नाममें भी दूसरा अक्षर (भ) अवश्य होना चाहिये. क्योंकि वह तो सबसे बडा था, उसके नाममें दूसरा अक्षर (व) किसीप्रकार नहीं बनसक्ता, बरन् इसकी साक्षीमें किसी महात्माने यह श्लोकभी कहा है;

श्लोक-भकारः कुम्भकर्णेऽस्ति भकारोऽस्ति विभीषणे ।
तयोर्भ्रातरि च ज्येष्ठे भकारो न कथं भवेत् ॥ २७ ॥

हे महामुने ! पुलहकी गति नाम सती स्त्रीमें तीन पुत्र उत्पन्न हुए, कर्मश्रेष्ठ, वरीयांस, सहिष्णु ॥ ३८ ॥ और क्रतुकी क्रियानाम भार्याने ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान साठ सहस्र वालखिल्यादि ऋषि उत्पन्न किये ॥ ३९ ॥ हे महामुने ! वसिष्ठजीकी ऊर्जानाम स्त्रीमें चित्रकेतुआदि निर्मल ब्रह्मऋषि सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान, द्युमान् और दूसरी भार्यामें शक्ति आदि दूसरे पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ और अथर्वणकी चित्तिनाम पत्नीमें धृतव्रत, अश्वशिरा, दध्यंच नाम पुत्र उत्पन्न हुए, अब हमसे भृगुमुनिके वंशका वृत्तांत सुनो ॥ ४२ ॥ हे महाभाग ! ख्याति-नाम भार्यासे भृगुजीने धाता, विधाता नाम दो पुत्र और एक कन्या भगवत्परायण श्रीलक्ष्मीजीको उत्पन्न किय ॥ ४३ ॥ मेरुने अपनी आयति, नियति, दोनों पुत्री धाता, विधाताको विवाहदे . धाताके आयतिनाम पत्नीमें मृकंडनाम सुत हुआ और विधाताके नियतिनाम भा[र्या]में प्राण नाम पुत्र हुआ ॥ ४४ ॥ और मृकंडके पुत्र

मार्कंडेय हुए और प्राणके सुत वेदशिरा मुनि हुए, और भृगुके पुत्र भगवान् उशनानाम शुक्राचार्य्य हुए ॥४५॥ हे विदुर ! मुनीश्वरोंने सृष्टि रचकर इसप्रकार लोकोंकी वृद्धि करी.

दोहा-कर्दमकन्यावंश यह, तुमको दियो सुनाय।
श्रवण करत श्रद्धासहित, पापपहार विलाय ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने मनुकी प्रसूतिनाम कन्याके संग विवाह किया ॥ ४७ ॥ और उसमें निर्मलकांतिवाली चन्द्रवदनी सोलह पुत्रियें उत्पन्न करीं. उनमेंसे तेरह तो धर्मको विवाहदीं, एक अग्निको ॥ ४८ ॥ एक पितृगणको और एक संसारनाशक शिवजीको विवाहदी. श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति ॥ ४९ ॥ बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री, मूर्ति, ये तेरह धर्मकी दारा हुईं. श्रद्धाने शुभनाम पुत्र उत्पन्न किया, मैत्रीने प्रसाद, दयाने अभय ॥ ५० ॥ शांतिने सुख, तुष्टिने मुद, और पुष्टिने गर्व पुत्र उत्पन्न किया. क्रियाने योग, उन्नतिने दर्प, बुद्धिने अर्थ ॥ ५१ ॥ मेधाने स्मृति, तितिक्षाने क्षेम, ह्रीने प्रश्रय पुत्र उत्पन्न किया और मूर्तिके यहां सब गुणोंके उत्पादक नरनारायण नाम दो ऋषि पुत्र उत्पन्न हुए. जिनके जन्मके समय यह विश्व परमानंदित हुआ ॥ ५२ ॥ और मन, दशों दिशा, वायु, सरिता और सब पर्वत अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५३ ॥ और स्वर्गमें दुंदुभीआदि उत्तम उत्तम बाजे बजनेलगे, देवता पुष्पोंकी वर्षा करनेलगे, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, प्रसन्न हो स्तुति करने लगे. गंधर्व, किन्नर, मधुर मधुर स्वरोंसे गाने लगे ॥ ५४ ॥ देवांगना नृत्य करने लगीं. ब्रह्मादिक देवता स्तोत्र पढ पढ स्तुति करनेलगे. इसप्रकार सब संसारमें परममंगल होगया ॥ ५५ ॥ सब देवता कहनेलगे कि जो भगवान् अपनी निजमायासे आकाशरूपकी नाईं अपनी आत्माको प्रकाश करनेके लिये आज धर्मके मंदिरमें आद्यऋषि मूर्तिरूप हो प्रगट हुए, उन आद्य पुरुष महात्माको हम नमस्कार करते हैं ॥ ५६ ॥ अपने विद्याके बलसे देवता जिनके तत्त्वका अनुमान करते हैं, सो भगवान् जगत्की उत्पत्ति, पालन, नाशके लिये सत्त्वगुणसे रचित लक्ष्मीके विनाशवाली कमलकीभी तिरस्कारकर्ता अपने जनोंके सन्मुख करुणायुक्त दृष्टिसे देखो ॥ ५७ ॥ हे विदुर ! इसप्रकार जब देवताओंने प्रार्थना करी तव भगवान् नरनारायण देवताओंकी ओर निहार अपनी पूजा अंगीकार कर गन्धमादनपर्वतको चलेगये ॥ ५८ ॥ सो ये उन्हीं दोनोंने भूमिका भार उतारनेके लिये यहां अवतार धारण किया है इनमें नरके अंशसे तो कुरुकुलमें अर्जुन उत्पन्न हुआ, और साक्षात नारायणने यदुकुलमें श्रीकृष्णरूप धारण किया ॥ ५९ ॥ अग्निकी पत्नी स्वाहाने महाबलशाली तीन पुत्र उत्पन्न किये. पावक, पवमान, शुचि ये उनके नाम हैं ॥ ६० ॥ इन तीनोंसे पैंतालीस (४५) अग्नि उत्पन्न हुए, इसप्रकार प्रपितामह, पितामह, पिता. पुत्र, मिलकर उनचास (४९) अग्नि हुए ॥ ६१ ॥ वैदिक कर्मरूप यज्ञमें ब्राह्मण जिनका नाम लेलेकर अग्निदेवताको आहुति देतेहैं वे सब अग्नि ये हैं ॥ ६२ ॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, सौम्य और आज्यप ये पितृगण हैं इनमें कोई साग्निहै और कोई अनग्नि हैं. इन सबकी पत्नी केवक एक दक्षपुत्री स्वधा

है ॥ ६३ ॥ पितरोंसे स्वधामें दो कन्या उत्पन्न हुई वयुना और धारिणी, वे दोनों ब्रह्मवादिनी और ज्ञान, विज्ञानमें परायण हुई ॥ ६४ ॥ शिवजीकी पत्नी सती, शिवजीकी सेवा करनेलगी, परन्तु सतीको आपके समान गुणवान्, शीलवान्, पुत्र प्राप्त नहीं हुआ ॥ ६५ ॥ दक्षप्रजापतिने शिवजीको सती विवाही, परन्तु अपने समान नहीं समझा, और शिवजीके प्रतिकूल चला, तब सतीने रोषकरके युवाअवस्था न देखी, छोटाही अवस्थामें योगाभ्यास करके निर्मलबुद्धिसे अपनी देहका त्याग करदिया ॥ ६६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे मनुकन्यान्वये नर-नारायणावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-कहौं द्वितीयाध्यायमें, प्रजापतिनको यज्ञ।
कियो वैर जिमि शंभुसन, दक्षप्रजापति अज्ञ॥
सुनि मित्रासुतके वचन, विदुर परमसुख पाय।
जोरि युगल करकंज पुनि, विनय करत परि पाँय॥

विदुरजी बोले कि, शीलवानोंमें शीलसिंधु शिवसे दुहितृवत्सल दक्षप्रजापतिने किसलिये विद्वेष किया ? और अपनी कन्या सतीका अनादर क्यों किया ? ॥ १ ॥ शान्तिरूप चराचरके स्वामी, द्वेषरहित, जगत्पूज्य, त्रिलोकनाथ, आत्माराम, सुराधीश, ऐसे भोले भाले शिवसे दक्षने क्यों विरोध किया ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जामाता और श्वशुरमें ऐसा भारी वैर कैसे पडगया ? जिससे सतीने अपने दुस्त्यज प्राणोंको त्यागदिया. यह सब कथा भिन्न भिन्नकर मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, विश्वरचनेवाले मरीचिके यज्ञमें वसिष्ठ नारदादि बडे बडे ऋषीश्वर, मुनीश्वर, देवगण अपने अपने अनुगामियोंसहित सिद्ध और अग्नि सब इकट्ठे हुये ॥ ४ ॥ उस महासभाका अधिकार अपने तेजकी कांतिसे दूर करतेहुए सूर्य्यके समान प्रकाशवान् दक्षको आता देखकर ॥ ५ ॥ सब सभासद अपने अपने स्थानोंसे अग्निसमेत उठ खडे हुए, क्योंकि उनके तेजके प्रभावसे सबके हृदयमें घबराहट उत्पन्न होगया, परन्तु ब्रह्मा और महादेवजी यह आसनसे न उठे ॥ ६ ॥ और सब सभासदोंने दक्षप्रजापतिका अत्यन्त आदर सन्मान किया. तब दक्ष, लोकगुरु ब्रह्माजीको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे आसनपर बैठगया ॥ ७ ॥ अपने आनेसे पहिले शिवको बैठा देखा और अपने मनमें समझा कि, शंकरने मेरा अनादर किया, क्योंकि मुझको देखकर न उठे, इस बातको न सहसका, और कोपदृष्टिसे तिरछे नेत्रकर बोला ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मऋषियो ! हे देवताओ ! ! हे अग्निसहित सबजनो ! ! ! सुनो, महात्मापुरुषोंका जो उत्तमाचार है, सो कहता हूं, कुछ अज्ञान और ईर्षासे नहीं कहता ॥ ९ ॥ शिवको कुछ लज्जा नहीं, यह लोकपालोंके यशका नाश करनेवाला है. इस अभिमानीने अपने अभिमानसे सज्जनोंके चलाये हुए मार्ग और आचरणोंको दूषित करदिया ॥ १० ॥ यह मेरा जामाता मेरे शिष्यभावको प्राप्त है, ब्राह्मण और अग्निके सन्मुख, गायत्रीतुल्य मेरी पुत्रीका साधुकी नाईं

पाणिग्रहण किया है ॥ ११ ॥ और इस मर्कटसम नेत्रवालेने मेरी मृगछौनाकेसी नेत्रवाली भोलीभाली कन्याका पाणिग्रहण करके इसको उचित था कि, औरोंकी समान उठकर मुझको प्रणाम करता, परन्तु इसने वाणीसेभी मेरा सत्कार नहीं किया ॥ १२ ॥ इसलिये मैं अपनी कन्या इस क्रियारहित, अशुचि, अनाचारी, महाअभिमानी; मर्य्यादाहीनके साथ विवाह करना नहीं चाहता था, परन्तु मैंने अपनी मूर्खतासे विना इच्छाके बेटी विवाहदी, जैसे कोई शूद्रको सुन्दर वाणी वेदलक्षण सिखाता है ॥ १३ ॥ यह घोर मरघटका निवासी भूत, प्रेत, पिशाचोंके संग रहनेवाला, उन्मत्तकी तुल्य, नंगा, शिरके वाल खोले, कभी हँसता, कभी रोता, फिरा करता है ॥ १४ ॥ चिताका भस्मको सदा शरीरसे लगाता है, प्रेतोंके मुंडोंकी माला सदा कण्ठमें पहनता है, हड्डियोंके गहने पहने श्मशानमें विचरता है; नाम तो लोगोंने इसका शिव रखदिया है, परन्तु निरा अमंगलकी खान है, और उन्मत्तलोगोंसे प्रीति है,

चौ०–आप मत्त मतवारन प्यारो * सदा अशिव शिव नामहि धारो ॥
तामसि भूतपिशाचननाथा * सज्जन याहि नवावहिं माथा ॥

कवित्त–वेष जगतसे निराला, पिये भांग भर प्याला, नित रहै मतवाला साथी भूतगण बनाये हैं। गल सोहै मुंडमाला, कर डमरू विशाला, सदा ओढे मृगछाला, चिताभस्म तन लगाये हैं ॥ एक मत्तबैल पाला, जाते होते प्रतिपाला, नाम धरो है अकाला, जटालटा शिर बढाये हैं। ऐसा हृदयका काला कहीं नहीं देखा भाला, वरै नेत्रोंमें ज्वाला व्याल तनसे लिपटाये हैं ॥ १५ ॥

त्रिपुण्ड्रधारी, त्रिशूल लिये, तीन नेत्रवाला, सर्पोंका आभूषण पहने, तमोगुणी प्रमथ भूतोंका पति यह है ॥१६॥ इस भूतनाथ,भ्रष्टाचरण, दुष्टहृदय, कठोरचित्त, अज्ञानी शिवको ब्रह्माके कहनेसे अपनी महासूधीसाधी सती विवाहदी. मुझे यह बडा भारी खेद है ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, अपने अप्रातिकूल बैठे शिवकी इसप्रकार निन्दा करके वह क्रोधी दक्ष जलका आचमनकर शिवको शाप देनेलगा ॥ १८ ॥ कि, यह शिव देवताओंके यज्ञमें इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु,देवताओंके संगमें भागका अधिकारी न हो. क्योंकि देवगणोंमें यह अधम है॥ ॥ १९ ॥ हे राजा परीक्षित ! सब सभासदोंमें जो मुखिया थे उन्होंनेभी अत्यन्त निषेध किया, तो भी दक्षप्रजापति शिवको शाप देकर; वहांसे उठ अपने स्थानको चलागया ॥ ॥ २० ॥ शिवजीके गणोंमें प्रधान नन्दीश्वरने जब शिवके शाप देनेका समाचार सुना, उस समय महारोषमें भर लाल लाल नेत्रकर महादारुण शाप दिया और जिन ब्राह्मणोंने शाप देनेके समय दक्षकी बडाई करी थी उनको भी शाप दिया ॥ २१ ॥ श्रीभगवान् महादेवजी समदर्शी हैं, किसीसे द्रोह नहीं रखते, ऐसे प्रभुसे द्रोह करके जो अज्ञानी पृथक् दृष्टिवाला तत्त्वसे विमुख होय ॥ २२ ॥ जो कपटकर्ममें परम प्रवीण गृहोंमें संसारके सुख की इच्छासे आसक्त हैं; वेदवादियोंमें नष्टबुद्धि होकर कर्मको केवल मुख्य धर्म मानते हैं ॥ ॥ २३ ॥ देहको जीवको ईश्वर माननेवाली बुद्धिसे पशुवत् ईश्वरकी गति भूल स्त्रीकामी

दक्षका थोडेही समयमें वकरेकैसा मुख होजाय ॥ २४ ॥ विद्या, बुद्धि, अविद्या, कर्ममयीमें यह जड होय, और यहां जो लोग शिवजीका अपमान करनेवाले हैं. और जो उनके साथी हे वे सदा संसारसें जन्मते मरते रहें ॥ २५ ॥ जिसकी मीठी वाणी पुष्पकी समान खिलीहुई वहुत सुगन्ध देनेवाली केवल चित्तको प्रसन्न करनेवाली है ऐसी वेदवाणीके मोह करानेवाले मधुरवचनसे मूर्खोंके मन मथित होरहे हैं वे हरद्वेषी सदा मोहको प्राप्त होयँ ॥ ॥ २६ ॥ और ब्राह्मण भक्ष्याभक्ष्यविचाररहित हों, सबके घर भोजन करैं. केवल उदरपोषणकेही लिये विद्या, तप, व्रत, करैं और धन शरीरके सुखके लिये संसारमें याचक बनैं. और घर घर माँगते फिरैं ॥ २७ ॥ द्विजकुलको नन्दीने जब इसप्रकार शाप दिया, यह शाप सुन भृगुजीसे न रहागया, और महाकठोर शाप दिया ॥ २८ ॥ जो कोई शिवका व्रत धारण करेगा, और उनका अनुवर्ती होकर चलेगा, वह पाखण्डी हो सतशास्त्रोंमें भ्रष्ट होगा ॥ २९ ॥ नष्टाचरण मूढमति, जटाभस्मधारी, हड्डियोंकी माला पहने, शिवकी दीक्षामें वे लोग प्रवेश करैं, जिन्होंने मद्य मांसही देवताओंकी समान पूज्यवर मान रक्खा है ॥ ॥ ३० ॥ ब्रह्म ब्राह्मणोंको जो तुम निन्दा करते हो, यह पुरुषोंकी मर्यादास्थापक हैं, इस लिये जो शिवके गण हैं, सो सब पाखण्डके आश्रित होंगे ॥ ३१ ॥ सनातनका श्रेष्ठ मार्ग लोगोंका यही है; ऋषीश्वर मुनीश्वर इसीपर आरूढ थे, क्योंकि वेदमार्ग सदा कल्याणदायक है, इसमें भगवान् वासुदेव प्रमाण हैं ॥ ३२ ॥ सो वह ब्रह्म परमशुद्ध महात्माजनोंका सनातन मार्ग है, सो उसकी तुम निन्दा करोहो, इसलिये पाखण्डी हो. और वहां रहो, जहां भूतेश्वर तुम्हारे देवता हैं ॥ ३३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब भृगुजीके मुखसे इसप्रकारका शाप सुना, तब महादेव कुछ विमनसे होकर अपने गणोंसमेत वहांसे उठकर कैलासको चलेगये ॥ ३४ ॥ हे विदुर ! उन प्रजापति विश्व रचनेवालोंने सहस्र वर्षतक यज्ञ करके सबसे श्रेष्ठ पूजनीय विष्णु भगवान्का पूजन किया ॥ ३५ ॥ फिर तीर्थ गंगायमुनाके संगममें यज्ञान्त स्नानकर; निर्मलचित्त हो, अपने अपने स्थानको चलेगये॥ ३६ ॥

इतिश्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे दक्षशापवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-सती तृतीय अध्यायमें, सुनेउ पितागृह यज्ञ।
विन न्योते लागी चलन, वर्जेउ शिव सर्वज्ञ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, सदा इसीप्रकार वैरभाव करते महादेवजीको और दक्षको महाकाल व्यतीत होगया ॥ १ ॥ परमेष्ठी ब्रह्माजीने दक्षको सब प्रजापतियोंका अधीश बनाना नियत किया. तो उसको वडा गर्व हुआ ॥ २ ॥ तव दक्षने वाजपेययज्ञ कर अपने अभिमानसे ब्रह्मिष्ठियोंका निरादर कर सब यज्ञोंका उत्तम वृहस्पतिसवनामक यज्ञका आरम्भ किया ॥ ३ ॥ उस समय यज्ञमें ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता, सब अपनी अपनी भार्याओंका शृंगार कराकर अपने अपने संग लाये ॥ ४ ॥ परस्पर आकाशमें देवगणोंको जाते

देख सती दाक्षायणीने देवोंके मुखसे अपने पिताके यज्ञको महोत्सव सुना ॥ ५ ॥ और सब दिशाओंसे देवताओंकी स्त्रियें अपने अपने पतियोंको लिये विमानोंमें बैठीं पदक कण्ठमें पहने अमूल्य वस्त्र धारण किये ॥ ६ ॥ अपने आश्रमके निकट चञ्चलाक्षी उज्ज्वल रत्नजडित कुण्डलोंसे देदीप्यमान सुन्दर सुन्दर युवतियोंको निहार उत्कण्ठित हो सतीने अपने पति महादेवसे कहा ॥ ७ ॥ सती बोली कि, हे नाथ ! आपके श्वशुर दक्षप्रजापतिके यहां यज्ञके महोत्सवका आरम्भ है.

दोहा-भूषण वसन सँवारिकै, निजनिज साज विमान ।
चलीजात सुरसुन्दरी, करत मनोहर गान ॥

हे वाम ! जो आपकी इच्छा होय तो मुझको लेकर आपभी वहां चलिये, अभी वहां यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुआ है, क्योंकि अभी सब देवता बराबर चले जाते हैं ॥ ८ ॥ उस यज्ञमें अपने पतियोंसमेत मेरी बहिनेंभी निश्चय सुहृदोंके देखनेको और उनसे मिलनेको जायँगी, इससे मेरीभी अभिलाषा है कि, आपके साथ चलकर मैंभी अपने मातापितासे मिल उनके दिये वस्त्र आभूषण ले अपने मनकी आशा पूर्ण करूं ॥ ९ ॥ हे प्राणपते ! मुझको निश्चय है कि, अपने भर्ताओंसमेत मेरी बहिनें, पिताकी बहिनें, माताकी बहिनें अवश्य आवेंगी, सो स्नेहबुद्धि वा स्त्री कोमलचित्त अपनी माताको देखूंगी क्योंकि मुझको बहुतकालसे उनके देखनेकी उत्कण्ठा है और महाऋषियोंका जो उत्तम यज्ञ किया है, उसकेभी देखनेकी लालसा है ॥ १० ॥ यद्यपि यह आश्चर्य जगत्में आपकी मायासे निर्मित त्रिगुणात्मक आपमें प्रकाश कररहा है, इसलिये आपके तो इस बातका कुछ सन्देह नहीं, परन्तु मैं जो दीन स्त्रीजाति तुम्हारे तत्त्वको नहीं जान सक्ती, ऐसी मैं अबला अपनी जन्मभूमिको देखना चाहती हूं, सो हे नाथ ! आप मेरे साथ चलिये ॥ ११ ॥ हे संसार-निवर्तक ! हे शितिकण्ठ ! ! और भी तो स्त्रियें पतियोंके सङ्ग जारहीं हैं, उनको देखो तो कैसे २ मनोहर हंसवत् श्वेत विमानोंपर बैठीं.

चौ०-भूषण वसन सजे सब अंगा * चली जांय निज २ पतिसंगा ॥

मेरे पिताके घरको जाती हैं, जिनके समूहोंसे आकाश शोभित है ॥ १२ ॥ हे मरण-धर्मरहित पिताके घर कौतुक सुनकर बेटीका देह किसप्रकार चलायमान न होगा ? पति, गुरु, पिता, मित्र, सुहृद्, सम्बंधी, इनके घर तो विना बुलाये भी जानेमें कुछ दोष नहीं है ॥ १३ ॥ हे देव ! सो मेरे ऊपर आप कृपा करके यह मेरी मनोवांछा पूरी करो, आप परमज्ञानी हैं तौभी मुझपर अनुग्रह करके मुझे आपने अपने अर्द्धांगमें दिव्यचक्षु करके धारण किया है. इसलिये मैं आपसे वारंवार विनय करती हूं कि, इस समय मुझपर अनुग्रह करनाही उचित है ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब इसप्रकार सतीने शिवजीकी विनय करी, तब विश्व रचनेवालोंके सन्मुख दक्षने मर्मभेदी कटुवचनरूपी बाण मारे थे उसका स्मरण कर सबके सुहृद महादेवजीने अपनी प्रिया सतीसे हँसकर कहा ॥ ॥१५॥ शिवजी बोले कि, हे शोभने ! यह तेरा कहना बहुत ठीक है कि, विना बुलाये

बंधुओंके घर जायँ, परन्तु कब ? कि, जब जो बली अपने मदके क्रोधसे दोषदृष्टि उत्पन्न न करे, तो जानेमें कुछ अपराध नहीं ॥ १६ ॥ और जब विद्या, तप, धन, शरीर, अवस्था, कुल ये छै जो सत्पुरुषोंके गुण हैं और असत्तम अतिधूर्तोंसे प्रेरित होते हैं तब बुद्धि विनष्ट होजाती है, और अभिमान बढजाता है, उस समय मदांध हो महात्माजनोंके पराक्रमको नहीं देखते ॥ १७ ॥ जिनके चित्त ऐसे असावधान हैं उन सज्जनोंके घरकी ओरको दृष्टि उठाकर देखनाभी नहीं चाहिये. क्योंकि वह कुटिलबुद्धि अपने घर आये-हुओंको महाक्रोधसे भ्रुकुटी चढाय तिरछी दृष्टिसे देखा करते हैं ॥ १८ ॥ ऐसे अभिमानी कुटिल कुटुम्बियोंके दुर्वाक्योंसे जैसी कठिन पीडा होती है ऐसी बैरियोंके शराघातसे शरीर छिन्नभिन्न भी होगया हो तौभी नहीं होती, क्योंकि जिसके हृदयको शर फाडकर पारभी निकल जाय उसकोभी किसीसमय निद्रा आजाती है परन्तु दुष्टसंबंधियोंके दुर्वा-क्योंसे जो मर्मस्थान वेधा जाता है वह दग्धहृदय दिन रात दहताही रहता है ॥ १९ ॥ हे शुभानने यह मै भली भांति जानता हूं कि, तुम दक्षप्रजापतिकी पुत्रियोंमें सबसे अधिक प्यारी हो, इसमें किंचिन्मात्रभी संदेह नहीं. तौभी उन पितासे तुमको आदर सन्मान प्रदान न होगा, क्योंकि मेरे नामसे दक्षके हृदयमें ताप आता है ॥ २० ॥ सत्पुरुषोंकी उत्तम कीर्ति, और यश देखकर दुष्टजन उनकी श्लाघा और उच्चपदवीको पहुँच नहीं सक्ते, वे पापीहृदयवाले कुजन अपने मनमें जलकर उनसे द्वेष करै हैं, जैसे राक्षस हरिसे वैर करते हैं ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे ! जो सज्जनपुरुष आपसे बडेको देखकर परस्पर उठ खडे होते हैं, प्रणाम करते हैं, दंडवत् करते हैं, यह मर्य्यादा परमोत्तम है, वे लोग सर्वान्तर्यामी, परपुरुष गुहाशय; ईश्वरका मान करते हैं, कुछ देहाभिमानियोंको नहीं करते, सो हम उस समय किये हैं ॥ २२ ॥ विशुद्धसत्त्व वासुदेव शब्द है, आवर-णरहित पुरुष वासुदेव प्रकाशे हैं, इससे सब जीवमात्रमें शुद्धसत्त्व भगवान् वासुदेव विराजमान हैं, इससे ऐसे अंतःकरणमें भगवान् वासुदेव जो कि इन्द्रियोंसे अगोचर हैं, मैं उनकी प्रणामद्वारा सेवा करता हूं ॥ २३ ॥ हे वरारोहे ! यद्यपि दक्षप्रजापति तुम्हारा देहकर्ता पिता है. परन्तु तौभी मेरा द्रोही है, तुमको उसको देखनाभी नहीं चाहिये. क्योंकि उसके अनुचरभी मुझसे वैर रखते हैं. सब देवता जानते हैं कि; मेरा कुछ अपराध नहीं था जो दक्षने विश्व रचनेवालोंके यज्ञमें मुझको दुर्वचन कहकर मेरा अपमान किया ॥ २४ ॥ जो मेरे वचनका उल्लंघन कर दक्षके घर जाओगी, तो तुम्हारा कल्याण न होगा, क्योंकि अतिप्रशंसित अपने सुजनोंसे तिरस्कार ही मरणके तुल्य होता है.

दोहा-बिना बुलाये जो कोउ, काहूके घर जात।
महाकठिन दुख होत जब, मित्र न बूझत बात ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थ-स्कन्धे उमाशिवसंवादो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा-हर तज चतुरध्यायमें, सती गई पितुगेह।
शंभुभाग देखेउ नहीं, तुरत उठी जर देह ॥

मैत्रेयजी बोले कि, शिवजी तो यह बात कहकर चुप होगये, परन्तु मनमें कहनेलगे कि, सतीके तनका दोनों ओरसे विनाश हुआ. और सती पिताके देखनेकी इच्छा कर महादेवके भयसे कभी बाहर जाती थी और कभी भीतर आती थी, दुबधामें मन था ॥ ॥ १ ॥ सुहृदोंके दर्शनकी इच्छाके नाशसे विमन हो प्रेमके वशीभूत हो रोनेलगी और आंखोंसे आंसुवोंकी धारा बहनिकली. सती क्रोधमें आनकर काँपने लगी और ऐसी विह्वल हुई कि, उनके समान दूसरा कोई नहीं हो, इसप्रकार भवको भवानीने देखा मानों अभी भस्म करदेगी ॥ २ ॥ फिर वहांसे कठिन श्वास लेती घरसे निकल, शिवको त्याग शोक और क्रोधसे व्यथित हो हृदयमें दुःख मान स्त्रीस्वभावसे मूढमति सतीको महात्मा-जनोंके प्यारे श्रीविश्वनाथ शिवने प्रेमसे अपना आधा अंग बांटदिया, ऐसे भोलेनाथका साथ छोड पिताके घरको चलदी ॥ ३ ॥ तब सतीको शिवके गण नंदीगणपर चढाय, मैना, गेंद, दर्पण, कमल, श्वेतछत्र, पंखा, भाला आदि लिये गाते और दुंदुभी, शंख, वीणा, बांसुरी बजाते प्रसन्न होकर चले ॥ ४ ॥ ५ ॥ चहुँ ओरसे ब्राह्मण वेदध्वनिकरके यज्ञसंबंधी पशुको मार रहे हैं, ब्राह्मण पूजन कर रहे हैं, चारों ओर देवता विराजमान हैं, मृत्तिका, काष्ठ, लोहा, सुवर्ण, कुश और चर्म इनके बनायेहुए पात्र जहां यज्ञशालामें धरे थे उस यज्ञमें सती पहुँची ॥ ६ ॥ परन्तु यज्ञकर्ता दक्षके भयसे माता और भगि-नीके अतिरिक्त और किसी देव, मुनि, नगरनिवासीने कुशल क्षेम न बूझी, और उसकी ओर न देखा, क्योंकि उसके पिताने जो उसका आदर सन्मान नहीं किया. केवल एक माता और बहिन तो स्नेहके आंसू भर गद्गद कण्ठसे प्रीतिसहित आनंदसे मिली ॥ ७ ॥ पिताके निरादर, और अवज्ञासे माता और मौसियोंके उत्तम आसनका देना और निरादरसे शुश्रूषाका करना सतीने कुछ स्वीकार न किया और बहिनोंने कुछ रीति प्रीतिकी बातें करीं परंतु सतीने उनका भी कुछ ध्यान न किया ॥ ८ ॥ क्योंकि, उस यज्ञमें कहीं शिवजीका भाग नहीं देखा तो समझा कि, विश्वेश्वर विभुका बिना अपराध निरादर किया ऐसे अभिमानी दक्षको देख भुवनेश्वरी भवानी महाक्रोधमें भरगई मानों अभी त्रिलोकी भस्म करदेगी, इसप्रकार यज्ञशालामें सतीने रोष किया ॥ ९ ॥ तब भूतगण दक्षके मारनेको दौडे; उस समय अपने तेजसे शिवगणोंको रोककर शिवद्रोही कर्ममार्ग करनेसे जिसको अभिमानहुआ, उस अभिमानी और अज्ञानी दक्षको सब सभाके सन्मुख गंभीरवाणीसे धिक्कार देकर ॥ १० ॥ सती बोली-सब शरीरधा-रियोंके प्रिय आत्मा, अचिंत्यरूप, चिदानंद, ऐसे भोलेभाले शिवजी न तो कोई इनसे बडा, न किसीके शत्रु, सबके आत्मा, उनसे तेरे विना कौन शत्रुता करे ? ॥ ११ ॥ हे द्विज ! औरोंके गुणोंमें साधु दोष ग्रहण नहीं करते हैं; तुम सरीखे निंदक, खोटे मनुष्य थोडे गुणोंको बहुत नहीं करते हैं, और मध्यस्थ पुरुष अपने ज्ञानसे यथावस्थित

गुणदोष ग्रहण करते हैं और जो सत्पुरुष हैं, वे केवल गुणोंहीको ग्रहण करते हैं, दोषोंपर ध्यान नहीं देते, वरन थोडेसे गुणोंको अधिक करके मानते हैं, अरे शठ ! ऐसे सज्जनपुरुषोंका तैंने अपमान किया ॥१२॥ शरीरमें जीवको माननेवाले नीच लोग सदा ईर्षासे महत्पुरुषोंकी निन्दा करते हैं, यह बात कुछ आश्चर्य्यकी नहीं है, क्यों कि महात्माजनोंके चरणारविन्दोंकी रजसे और प्रतापसे शठ और दुष्टजनोंके लिये निन्दाही शुभ ह ॥ १३ ॥ शिव यह जो दो अक्षरका नाम है, जो कोई किसीप्रकारसे एकबारभी यह नाम अपने मुखसे लेता है, उसके पापोंका तत्क्षणही विनाश होजाता है, ऐसे आनंदस्वरूप जिनकी आज्ञा संसारमें कोई उल्लंघन न करसकै, तू ऐसे सर्वसामर्थ्यवान् शिवजीसे द्रोह करता है, तेरा कल्याण कभी न होगा ॥ १४ ॥ अरे ! जिन कैलासपति महादेवजीके पदपंकजकी रज ब्रह्मरजसे मिलीहुई मकरंदकी इच्छावालोंके मनरूपी भ्रमरोंसे सेवित है, सब लोकोंके मनकी कामना पूर्ण करनेवाले, विश्वबंधुसे तैंने द्वेष किया है ॥ १५ ॥ जिन शिवको तू अशिव कहता है, क्या तेरे अतिरिक्त ब्रह्मादिक उनको नहीं जानते ? श्मशानमें जटा फैलाये, चिताभस्म शरीरसे लगाये, मनुष्योंके कपालोंकी माला धारण किये, भूतगणोंको साथ लिये पिशाचोंमें वास करते हैं. तौभी उनके चरणकमलकी रज ब्रह्मादिक, अपने मस्तकपर धरते हैं ॥ १६ ॥ धर्मके रक्षक ईशको निरंकुश होकर जहां लोग निन्दा करते होंय, और वहां अपनी कुछ पार न बसाय, तौ कान बंद करके वहांसे उठजाय, और जो निंदकके मारनेकी सामर्थ्य होय तो जैसे बने वैसे उसकी जिह्वा काटकर खंड खंड कर डाले, फिर अंतको अपने प्राण त्याग कर दे, यह सनातन धर्म है ॥ १७ ॥ हे नीलकंठके निंदक ! तेरे शरीरसे जो यह मेरा देह उत्पन्न है, इस देहको नहीं रक्खूंगी, क्योंकि जो कोई भूलसे अशुद्ध अन्नका भोजन कर ले, वह वमन करनेसेही शुद्ध होता है ॥ १८ ॥ अपने धर्ममें रहनेवाले महामुनिकी मति वेदके विधिनिषेध वाक्योंमें प्रीति नहीं करती, जैसे देवता और मनुष्योंकी गति अलग २ है, एक संग नहीं होसकती; इसलिये प्रवृत्तिमार्ग हो अथवा निवृत्तिमार्ग हो, परंतु अपने धर्ममें स्थित होकर किसीकी निन्दा करनी उचित नहीं ॥ १९ ॥ मुनियोंने दोनों मार्ग सत्य कहे हैं, प्रवृत्तिकर्ममें अग्निहोत्रादिक करना चाहिये, और निवृत्तिकर्ममें शम, दमादि, सत्यभाषण, राग और विराग, इन दोनों चिह्नोंका आश्रय करना चाहिये, यह सब वेदोंने बहुत विचार करके कहा है और जो मनुष्य इन दोनों कर्मोंको एकही समय करै तो ये परस्पर विरोधी होजाते हैं और शिव तो परब्रह्म ईश्वर हैं, वे चाहे ईश्वरकी आज्ञा मानें, चाहें न मानें उनपर वेदकी आज्ञा नहीं है ॥ २० ॥ हे पितः ! जो पदवी हमको प्राप्त है, वोह तुमको कभी नहीं मिलसकती, क्योंकि हमारी इच्छामात्रसे अणिमा, महिमादिक सिद्धियां उत्पन्न होसक्ती हैं, जिनका बडे बड ब्रह्मज्ञानी और ध्यानी सेवन करते हैं, जो अन्न खानेवाले प्राणपोषी यज्ञशालामें हवन कर धूममार्ग करके सेवन करते हैं, उनको प्राप्त नहीं होती, हमारी पदवी ऐसी है कि जिनके चिह्न प्रगट हैं, अवधूत लोग जिनकी सेवा करते हैं ॥ २१ ॥ अरे शिवअपराधी ! तुझसे जो

यह मेरा देह उत्पन्न हुआ है इस देहसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं; तुझसरीखे कुमति दुर्जनके नामसे मुझे लाज आती है; उसके जन्मको धिक्कार है जो महात्माओंका निंदक है ॥२२॥ भगवान् शिव वृषध्वज हंसीसेभी कभी पुकारेंगे कि, हे दक्षसुते ! उस समय मुझे महाक्लेश होगा और मुसकान मान तज लज्जित होना पडेगा, इसलिये यह अधम शरीर जो तुझसे उत्पन्न हुआ है; मैं अभी त्याग करूंगी ॥ २३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे शत्रुहन ! इस प्रकारकी बातें सती दक्षसे कह मौन हो उत्तरकी ओरको मुख करके बैठगई और आचमन कर पीतवसन धार नेत्र मूंदकर योगमार्गका साधन करनेलगी ॥ २४ ॥ और आसनको जीत प्राण अपान पवनको समान कर, नाभिचक्रको उदानवायुसे उठाय, बुद्धिसे हृदयमें स्थित कर, निश्चल होकर कंठमार्गसे भ्रुकुटीके मध्यमें लाकर स्थापित किया ॥ २५ ॥ इसप्रकार महात्माजनोंके परमपूज्य सदाशिवने जिसको आदरसन्मानसे गोदीमें रक्खा ऐसे अपने कोमल शरीरको दक्षप्रजापतिपर क्रोध कर मनस्विनी सतीने अपने शरीरमें पवन और अग्निको धारण किया ॥ २६ ॥ और जगद्गुरु अपने पति शिवजीके चरणकमलका चिंतवन करनेलगी. उस निर्दोषी सतीने औरको नहीं देखा; अपने कल्मषदेहको देख समाधिके अनलसे अपने गात्रको भस्म करदिया ॥ २७ ॥ उस समय देखनेवालोंका पृथ्वी और आकाशमें महाभयानक हाहाकार शब्द हुआ कि, खेदकरके शून्य शिवजीकी प्रिया सतीने दक्षके निरादरसे क्रोधित होकर अपना तन त्यागदिया ॥ २८ ॥ अहो प्रजाओ ! इस महादुरात्मा चराचरके प्रजापतिकी घोर दुष्टता तो देखो. जिसके अनादर करनेसे अनेक प्रकारके मान करनेयोग्य निष्पाप सतीने अपने प्राणोंको त्याग दिया ॥ २९ ॥ सो यह अत्यन्त क्रोधी, कठोरहृदय, शिवद्रोही लोकमें बडी दुर्नामताको प्राप्त होगा. क्योंकि जिसने अपने अपराधसे मरतीहुई पुत्रीको नहीं बचाया ॥ ३० ॥ इसप्रकार परस्पर लोग बातें कर रहे थे, उसीसमय अद्भुत सतीका देहत्याग देखके महादेवके पार्षद आयुध लेलेकर दक्षके मारनेको उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ गणोंके आनेका वेग सुनकर भगवान् भृगुजी यज्ञके नाशकोंके नाशक यजुर्वेदमंत्रका आहुतिसे दक्षिणकी अग्निमें होम करनेलगे ॥ ३२ ॥ भृगुजीके हवन करनेसे और अपने तपके बलसे अमृत पियेहुए सहस्रों ऋतु नामक देवता बडे वेगके साथ वेदीसे उठकर निकलपडे ॥ ३३ ॥ हवनकी अधजली लकडी हाथमें लिये सुन्दर ब्रह्मतेजसे बढेहुए गणोंको मारनेलगे, सो सब प्रमथ गुह्यक शिवके पार्षद यक्षोंसमेत भूत प्रेत सब दिशाओंको भागनेलगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे सतीदेहत्यागवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-इस पंचम अध्यायमें, सतीमरण सुन ईश ।
वीरभद्र भेजो तुरत, हरो दक्षको शीश ॥

मैत्रेयजी बोले कि, दक्षप्रजापतिके निरादरसे सतीके तनका त्याग, और अपने पार्षदोंकी

सेनाका ऋभु नामक देवताओंसे विद्रावण, शिवजीने जो नारदके मुखसे सुना तो महादेवजीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ और क्रोधित होकर दांतोंसे होठोंके पुट दबाय धूर्जटी रुद्र झट उठकर भयंकर रूपसे अट्टहासके साथ महाघोर नाद कर बिजलीकी अग्निके समान बालोंकी उग्रकांतिवाली जटाको उखाडकर पृथ्वीपर देमारी ॥ २ ॥ जटाको धरणीपर पटकतेही उसमेंसे एक वीरभद्रनामक पुरुष प्रगट हुआ. महादेहधारी, स्वर्गतक लम्बा शरीर, सहस्र भुजा, मेघवत् वर्ण, तीन सूर्यके समान लाल लाल नेत्र, महाविकराल डाढें, प्रज्वलित अग्निसदृश बाल, कपालमाला धारण किये, अनेकप्रकारके उठेहुए आयुध हाथोंमें लिये श्रीभूतनाथके सन्मुख हाथ जोड़कर विनती करनेलगा ॥ ३ ॥ कि, हे नाथ ! मैं क्या करूं ? मेरे लिये क्या आज्ञा है ? इसप्रकार वीरभद्रको हाथ जोडे खडा देख भगवान् भूतेश्वर बोले कि, हे रुद्र ! हे भट ! तू मेरे सब भटोंमें अग्रणी हो, क्योंकि, तू मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ है, अभी दक्षका नाश कर, तुझबिना और दक्षको कोई नहीं मारसकेगा "इतना कहकर फिर शिवजीने महागम्भीर एक लम्बा श्वास भरा. उस समय रुद्रके क्रोधयुक्त श्वाससे आठ पुरुष महाभयानक रूप धारण किये अनेक अनेक प्रकारके आयुध हाथोंमें लिये उत्पन्न हुए, उनके ये नाम थेः-बीभत्स, त्रिशिरा, कपिलाक्ष, भस्मप्रहार, त्रिपाद्, पिंगाक्ष, महोदर और ज्वलद्विग्रह उनका यह स्वरूप था-रक्तके रँगेहुए वस्त्र पहने, रुधिरकी दुर्गन्ध अंगमें आवे, मुण्डोंकी माला गलेमें पडी, लाल लाल नेत्र, कृमिसे संकुल देह, और दुर्गन्ध दिन रात जिसके शरीरमें आवे, नग्न और अत्यन्त बलवान, कोपयुक्त, और संसारके स्त्रीपुरुषोंका घात करनेवाला, काला काला शरीर, मदांधोंका मददमन करनेवाला, और पूषादेवताके दांत तोडनेवाला, इसका नाम बीभत्सथा ॥ १ ॥ दूसरा रुद्रके महाक्रोधसे दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाला तीन शिर, तीन चरण, नौ नेत्र, दीर्घांग, चलायमान जिह्वासे होठोंको चाबता हुआ,अत्यन्त लम्बे तालके सदृश पीडरीवाला महाक्रोधी था इसका नाम त्रिशिरा था ॥ २ ॥ तीसरा शिवके क्रोधसे जो कापिलज्वर उत्पन्न हुआ वह अत्यन्त ऊंची देहवाला, मुखसे अग्निके समूहोंको उगलता, मदसे चढेहुए ताम्रवर्ण,अत्यन्त चमकीले बाल, मेघसमान महागम्भीर शब्द करनेवाला, प्रसन्नचित्तवालोंकी प्रसन्नताका शमन करनेवाला, इसका नाम कपिलाक्ष था ॥ ३ ॥ चौथा श्रीमहादेवजीके कोपसे अत्यन्त भयंकर भस्मविक्षेपक ज्वर उत्पन्न हुआ, वह महागंभीर अट्टहासका करनेवाला, बारंबार जँभाई लेताहुआ, महाविकराल कालरूप, उग्र दाढोंवाला, तप्ततांबेके समान प्रकाशवान्, लाल लाल दाढों और केशवाला, इसका नाम भस्मविक्षेप था ॥ ४ ॥ पांचवां जो रुद्रके कोपसे प्रगट हुआ इसके तीन चरण, लाल नेत्र, गधेके समान खडे कान, दीर्घ बाहु, बारंबार श्वासोंको छोडनेवाला, तथा रणमें उन्मत्त, अत्यन्त संग्राम करनेवाला, अंगअंगमें दाहको उपजानेवाला, तृषासे व्याकुल और भृगुऋषिकी दाढीका उखाडनेवाला, इसका नाम त्रिपाद् था ॥ ५ ॥ छठा वीर जो यह उत्पन्न हुआ इसकेभी तीन नेत्र और अत्यन्त लाल लाल नेत्र थे और इसका मुखभी वीरभद्रसे अधिक टेढा और

भयदायक था, छोटी छोटी पीडरी, अग्निके तेजके समान लाल नेत्र, प्याससे व्याकुल, सर्पकी स॒दृश दो जिह्वावाला, सिंहकी समान मानो दूसरा नृसिंहअवतार दुबारा प्रगट हुआ, उसने हिरण्यकशिपुको मारा यह दक्षका विनाश करनेवाला होगा, चलायमान तीव्र बालोंवाला, कृशशरीर और सूखे मांसवाला, इसका नाम पिंगाक्ष था ॥ ६ ॥ सातवां यह महादीर्घ पेटवाला, लम्बे कान, प्रज्वलित अग्निके सदृश रूप, महाचंचल लाल लाल नेत्र, तृषा, श्वास, जँभाईसहित अंगोंका तोडनेवाला योद्धाओंका मानभंजक, शरीरका लालवर्ण, अत्यन्त मतवाला, इसका नाम महोदर था ॥ ७ ॥ आठवां यह अग्नि समान शरीरवाला, बिखरे हुए केश बंक भ्रुकुटी, त्रिशूल, कृपाण, सर्पपाश धारण किये, सब ज्वरोंका राजा महापुरुषार्थी, कृशशरीर, शुष्कमांस, महाबलवान्, अत्यन्त भयंकर भैरवसमान रूपवाला इसका नाम ज्वलद्विग्रह था ॥ ८ ॥ ये आठों वीर ज्वररूप शिवके सन्मुख प्रार्थना करके बोले, कि हे प्रभो ! हमारेलिये क्या आज्ञाहै ? शिवजी इन आठों वीरोंको महाबलवान् जान बोले, कि, तुमभी बीरभद्रके साथ जाओ और दक्षके यज्ञका विध्वंस करो" हे विदुर ! अत्यन्त क्रुद्ध श्रीमहादेवजीकी आज्ञा पाय वीरभद्र देवोंके देव, सर्वसमर्थ शिवजीकी परिक्रमा करके उस समय अप्रतिम वेगसे वह अपने आपको महाबलियोंका बल विनाश करनेको बलवान् जानता था ॥ ४ ॥ ५ ॥ अत्यन्त गंभीर नाद करनेवाले रुद्रपार्षदोंको संग ले वीरभद्र महाभयंकर शब्द कर, मृत्युका नाश करनेवाला त्रिशूल हाथमें ले, चरणोंके घुँघरुओंके शब्दसे दिग्गजोंको शब्दायमान करता, वीरोंका मान हरता, धरणीको धमकाता, पर्वतोंको गिराता, दक्षके देशकी ओरको धाया ॥ ६ ॥ जब दक्षका मख पांच योजन रहा तब ऋत्विज, यजमान, सभापति, ब्राह्मण, उत्तर दिशाकी ओर धूलि उडती, और महा धुंधकार देख परस्पर विचार करनेलगे कि, आज उत्तरकी ओर यह कैसा अंधकार है ? अरे ! यह धूलि कहांसे आई ? ॥ ७ ॥ ऐसा तीव्र पवनभी नहीं चलता ? चोरभी नहीं है, उनको उग्र दंडदाता राजा प्राचीनबर्हि अभी जीता है, और गौवोंके आनेकाभी यह समय नहीं है, तो फिर यह धूलि कहांसे आती है ? आज सब संसारका प्रलय तो नहीं होजायगा ? यह आश्चर्य्य देख सब चकित होरहे थे ॥ ८ ॥ प्रसूतिआदि सब स्त्रियें उद्विग्न मन कर बोलीं, अरी ! यह वही अपराध है, जो सब बेटियोंके देखते देखते निरपराधिनी अपनी सुता सतीका दक्ष अन्यायीने अनादर किया ॥ ९ ॥ जो भूतेश्वर त्रिभुवननाशक शिव अंतकालमें जटाजूट फैलाय अपने त्रिशूलके अग्रभागसे दिग्गजोंको निर्मूल करते हैं, और जब अस्त्रोंको उठाकर भुजारूपी ध्वजाओंको फैलाकर नाचते हैं, और उच्चाट्टहाससे गर्जन शब्द करके आठों दिशाओंके दिग्गजोंको विदीर्ण करनेवाले ॥ १० ॥ क्रोधका तेज जिनका सहा नहीं जाय उन महाक्रोधीकी क्रोध भरी भृकुटीसे और कठिन कराल दाढोंसे बखेर दिया है सर्वत्र नक्षत्रमंडल जिन्होंने, और प्रलयकालकी ज्वालावत् लाल लाल तीन नेत्र हैं विशाल जिनके, ऐसे प्रचंड अखंड तेजवान् शिव शूलपाणिके कोपसे ब्रह्माभी सुख नहीं पासक्ता ॥ ११ ॥ इसप्रकार महात्मा दक्षके

यज्ञमें उद्विग्न दृष्टि कर परस्पर वार्ता कर रहे थे, इतनेमें अनेक भांतिके सहस्रों उत्पात महाभयदायक पृथ्वी और आकाशमें होने लगे ॥ १२ ॥ हे विदुर ! इतनेमें अनेकप्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये, काले पीले वेष किये, मगरके समान जिनके उदर, मुख, वामन, आदि अनेक शंकरकिंकर, रुद्रगणोंने दक्षके यज्ञको चारों ओरसे घेरलिया * ॥१३॥ किसीने यज्ञशालाके पूर्व पश्चिम स्तंभके समीप पश्चिमका जो देवशाला प्राग्वंश था उसको तोडा, किसी गणने यज्ञशालाके पश्चिम ओर पत्नीशाला थी उसको फोडा, यज्ञशालाके आगे स्थित सभामंडप था किसीने उसको तोडा, सभाके आगे आगे अग्नि धरनेकी शाला थी किसीने उसको तोडा, किसीने यजमानोंके घर तोडे, किसीने पाकभोजनशाला तोडडाली ॥ ॥ १४ ॥ किसीने यज्ञके पात्र तोड कलश फोडदिये, किसीने अग्नि बुझादी, किसीने कुंडमें मूत दिया, किसीने वेदी और मेखलाका भेदन करदिया ॥ १५ ॥ कोई कोई मुनियोंको मारने लगे कोई स्त्रियोंको भयानक वेष दिखाकर डराने लगे, किसीने देवताओंको खडा देखकर पकड लिया ॥ १६ ॥ मणिमान्‌ने भृगुको बांध लिया, वीरभद्रने दक्षको घेरलिया, चण्डीशने पूषादेवको पकडा, नन्दीश्वरने भगदेवको पकडा ॥ १७ ॥ शिवके गणोंने और पार्षदोंने उनके तकतकर ऐसे पत्थर मारे कि जिससे ऋत्विज, सभासद, सब देवता, अत्यन्त पीडित होकर चारों ओरको भागगये ॥ १८ ॥ हाथमें स्रुवा लिये जो हवन कर रहे थे उन भृगुजीकी दाढी मूँछें पकडकर वीरभद्रने उखाड डालीं, क्योंकि शिवशापके समय भृगु मूछोंपर हाथ फेरकर हँसे थे ॥ १९ ॥ भगवान् वीरभद्रने भगदेवताकी आखें निकाल लीं. क्योंकि शापके समय दक्षको उसने सभामें आँखोंसे सूचना की थी ॥ २० ॥ और पूषाकी गर्दन पकडकर उसके दांत उखाड डाले. जैसे बलदेवजीने कलिंगदेशके राजाके दांत तोड डाले थे, इसीप्रकार पूषाके दांत झाडदिये, क्योंकि यहभी शिबजीको शाप देते, समय दांत दिखाकर ठठ्ठे मारमार कर हँसा था ॥ २१ ॥ दक्षकी छातीपर चढकर वीरभद्र महातीक्ष्ण शस्त्रोंसे उसका शिर काटनेको उद्यत हुए, तौभी काटनेकी सामर्थ्य न हुई ॥ ॥ २२ ॥ जब अस्त्रशस्त्रोंसे उसकी त्वचा न कटसकी तब वीरभद्रको बडा विस्मय हुआ, और पशुपतिको मनमें धार बहुत कालतक विचार करता रहा ॥ २३ ॥ पशुओंके पति वीरभद्रने उस यज्ञमें कण्ठ घोटकर मारनेका उपाय देखकर यजमान पशुरूप दक्षका शिर पराक्रम करके देहसे मरोडकर उखाडलिया ॥ २४ ॥ बहुत अच्छा हुआ यह उसके कर्मकी जहां तहां भूत-प्रेत-पिशाचोंमें प्रशंसा हुई, और दक्षके पक्षमें महाशोक संताप हुआ ॥२५॥

---

* **शंका**-दक्षके यज्ञकी ब्राह्मणोंने वेदके मंत्रोंसे रक्षा की थी. और जब वीरभद्रने यज्ञका विध्वंस करडाला तब उन वेदके मंत्रोंने वेदरूप होकर यज्ञकी रक्षा क्यों नहीं की ?

उत्तर-जब यज्ञके हवनकुंडमें सती जल भस्म होगई. तब सतीके शरीरको देखकर भविष्यके जाननेवाले मुनियोंने जानलिया कि, यज्ञ अब बहुत शीघ्र भ्रष्ट होगा देर नहीं है ऐसा जानकर बहुत शीघ्र वेदके मंत्रोंका विसर्जन कर दिया.

उस समय वीरभद्रने अत्यन्त क्रोधित होकर दक्षका शीश दक्षिणाग्निमें हवन करदिया, और यज्ञस्थानको विध्वंस कर फूंक पजार अपनी भूतसेनाको संग ले कैलासको चले और मार्गमें भूत खोपडी बजाय बजाय यह भजन गाते जाते थे–

पंचवदन सिद्धिसदन शम्भु जटाधारी।

शीश गंग चंद्र भाल, कंठमांहि मुंडमाल, तीन नेत्र अतिविशाल, अग्नि-सीसजारी ॥ १ ॥ जय जय जय शिव दयाल, प्रेतनाथ प्रणतपाल, महा ज्योति महाकाल, दक्षमानहारी ॥ २ ॥ करमें डमरू त्रिशूल, भुवनेश्वर भक्तिमूल, सोहत तन चिताधूल, व्याघ्रांबरधारी ॥ ३ ॥ जटाजूट लसै शीश, गिरिजानायक गिरीश, गावत गुण नित अहीश, ब्रह्मा असुरारी ॥ ४ ॥ विश्वनाथ विश्वेश्वर, शूलपाणि शशिशेखर, नीलकण्ठ गंगाधर, मृतकाक्षितिविहारी ॥ ५ ॥ हरिये हर भयनिकाय, विनवत पद शीशनाय, कीजिये सहाय आय, शंकर त्रिपुरारी ॥ ६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे वीरभद्रकृतदक्षयज्ञविध्वंसनवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा–इस छट्ठे अध्यायमें, ब्रह्मादिक सब देव।
दक्ष जिवावन हेत सब, गये जहां महादेव ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि, जब सब देवगण शिवकी सेनासे पराजित हो त्रिशूल, पट्टिश, निस्त्रिंश, गदा, परिघ, मुद्गर इनसे मारेगये ॥ १ ॥ तब टूटे कटे अंगभंग सब देवता डरके मारे, अत्यन्त व्याकुल होकर ऋत्विक् और सभापतियोंको संग ले ब्रह्माके समीप जा नमस्कार कर सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥ २ ॥ परन्तु इस भविष्यवृत्तान्तको कमलोद्भव ब्रह्मा और विश्वात्मा नारायण पहलेसेही जानते थे. इसीलिये वे दोनों दक्षके यज्ञमें नहीं गये थे ॥ ३ ॥ देवताओंकी दुहाई सुनकर ब्रह्माजी बोले कि, तेजवन्तोंका अपराध किया हो; और दूसरा उस अपराधका बदला चाहै तो उसका मनोरथ उसको फलदायक न होगा ॥ ४ ॥ यद्यपि उन्होंने तुम्हारे साथ ऐसाभी किया तौभी तुम सब उनके अपराधी हो, क्योंकि जो सदा यज्ञमें शिवको भाग मिलता रहा और आज तुमने शिवका भाग नहीं निकाला; अब तुम शीघ्र शुद्ध चित्त कर शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवके चरण पकडकर उनको प्रसन्न करो, तो वह तुम्हारा सब अपराध क्षमा करेंगे ॥ ५ ॥ मैं यह चाहता हूं कि, दक्षजी उठैं; और यज्ञ फिर होय, जिन महादेवके कोपसे लोकपालसहित लोक नष्ट होजाते हैं, उन सदाशिवके पास जाकर शीघ्र निवेदन करो, जो कि, दुष्टदक्षके दुर्वाक्योंके बाणोंसे उनका हृदय विध रहा है ॥ ६ ॥ और उन स्वाधीन शिवके तत्त्व और पुरुषार्थके प्रमाण और बलवीर्यको न तो मैंने जाना और न विष्णु भगवान् जानसक्ते हैं. न तुम लोग जान सक्ते हो, और दूसरे पुरुषकी तो क्या सामर्थ्य है ? ॥ ७ ॥ फिर ऐसे अवसरपर

क्या उपाय बनसक्ता है ? ब्रह्माजी इसप्रकार देवताओंको समझाय बुझाय पितरोंको और प्रजापतियोंको संग ले अपने स्थानसे जहां त्रिपुरारी शिवजीके रहनेका परम श्रेष्ठ आश्रम जो पर्वतोत्तम कैलास है वहांको चले ॥ ८ ॥ जहां जन्म, औषधि, तप, मन्त्र और योगकी सिद्धि रहती है, और किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा, नित्य बसती हैं ॥ ९ ॥ नानाप्रकारकी मणिमय शृंगवाले गेरु आदि धातुओंसे चित्र विचित्र रंगोंसे शोभा होरही थी, और भांति भांतिके वृक्ष लतागुल्म फूल फलोंसे भरे लटक रहे थे, नानाप्रकारके मृगोंके समूह जहां तहां दौडते फिरते थे ॥ १० ॥ नानाप्रकारके निर्मल झरने झर रहे थे, अनेक प्रकार की कन्दरा और शिखर शोभा दे रहे थे, उनमें सिद्धलोगोंकी युवतियें अपने अपने पतियोंके संग अत्युत्तम रीति प्रीतिसे विहार कर रही थीं ॥ ११ ॥ मयूर अपनी मयूरनियोंके संग उमंगमें भर मधुरवाणी बोल रहे थे, कामांध भ्रमरोंकी पंक्तिकी पंक्ति गुंजार रही थी, रक्तनेत्रवाली कोकिला कुहू कुहू शब्द उच्चार रही थीं. और अनेकप्रकारके पक्षी अपनी अपनी मनोहर बोलियां बोल रहे थे ॥ १२ ॥ मनकी अभिलाषाके पूर्ण फलदायक वृक्षोंकी शाखा ऊंचे ऊंचे पर्वतोंपर पवनके झकोलोंसे ऐसे झूमरही थी, मानों हाथ उठा उठाकर पर्वत पक्षियोंको बुला रहे हैं, मन्द मन्द गति हाथियोंकी ऐसी दृष्टि आती थी मानो पर्वत चल रहे हैं, झरनोंकी ध्वनि ऐसी सुनाई आती थी मानो भूधर परस्पर बातें कर रहे हैं ॥ १३ ॥ और वहां मन्दार, पारिजात, सरल, ताल, तमाल, शाल, कोविदार, असन, अर्जुन ॥ १४ ॥ आम, नीम, कदंब, पुन्नाग, नागकेशर (चंपक) गुलाब, अशोक, बकुल, कुंद, कुरबक ॥ १५ ॥ स्वर्णपर्ण, शतपत्र, अनेक प्रकारकी वांसी, कुब्जक, मल्लिका, माधवीलताकी न्यारीही शोभा थी ॥ १६ ॥ पनस, पलाश, गूलर, पीपर, पाकर, न्यग्रोध, वट, हींग, भोजपत्र, ओषधी, सुपारी, मोटी सुपारी, जामुन ॥ १७ ॥ राजपूर, खजूर, आम्रातक, आमडे, प्रियाल, मधूक, इंगुदी, हिंगोट आदि अनेकप्रकारके वृक्षोंकी शोभा होरही थी ॥ १८ ॥ औरभी अनेक जातिके वृक्ष और वेणु कीचकोंसे शोभायमान थे, कहीं तालोंमें कुमुद, उत्पल, कल्हार, शतपत्र जातिकी कमलिनी खिल रहीं थीं, सरोवरोंमें मनोहर पक्षियोंके वृंदोंकी कलकल ध्वनि मनको मोहे लेती थी ॥ १९ ॥ मृग, शाखा मृग, मर्कट, सिंह, सूकर, ऋक्ष, शेही, गवय, रोझ, कस्तूरीमृग, भेडियें और महिषादिक पशु जहां तहां घूम रहे थे ॥ २० ॥ कर्णोंमें आंतवाले पशु, एक पगके जीव, घुडमुहें पशु, वृक, कस्तूरीमृग और केलेके समूहोंसे ढकीहुई कमलनियोंकी शोभा हो रही थी ॥ २१ ॥ आगे बढकर देखा तौ नंदानाम गंगा चारों ओर बह रही है, तटके निकट जल चला जाता है, और सतीजीके स्नानकी सुगंधीसे पुण्यरूप होरही है, और जहां तहां पुलिन कदलीवनसे घिरेहुए हैं ॥ २२ ॥ ऐसे सुन्दर शोभायमान शिवजीके परमोत्तम कैलासपर्वतको देखकर सब देवता अत्यन्त विस्मित हुए और उसके निकट अतिरमणीक अलकानाम्नी कुबेरकी पुरीको देखा और सौगंधिकनामक कमलोंका वन दृष्टि आया ॥ २३ ॥ श्रीपति भगवान् वासुदेवके पदपंकजकी रेणुसे परमपवित्र नंदा

और अलकनंदा नगरसे बाहर दो सरिता बह रही हैं ॥ २४ ॥ हे विदुर! उन सरिताओंमें नित्यप्रति देवताओंकी कुलांगना रतिकी इच्छावाली अपने अपने विमानोंसे उतर उतरकर विहार करती हैं; और अपने भर्ताओंके अति सूक्ष्म शरीरधारी पुरुषोंपर नीर छिडक उनका श्रम हरती हैं ॥ २५ ॥ देवरमणी जो सरिताओंमें मज्जन करती हैं, और कुचोंसे कुंकुम धुलधुलकर जो जलमें बहाती हैं, तो उन सरिताओंका सलिल पीतवर्ण और सुगंधित होरहा है, उसी सुगंधके कारण बिना ही प्यास उस जलको हाथी पीते हैं, और अपनी हथनियोंको पिलाय पिलाय मुदित करते हैं ॥ २६ ॥ वे देवांगना चांदी सोनेके अमूल्य रत्नोंसे जटित सैकडों विमानोंमें बैठीं कैसी शोभा देरही थीं, जैसे गगनमंडलोंमें बिजली चमकती हैं ॥ २७ ॥ ऐसी कुबेरकी पुरीसे निकलकर सौगंधिकवनमें पहुँचे जहां परम सुखदायक चित्र विचित्र सुमन मनवांछित मनोरथ पूर्णकरनेवाले, कल्पवृक्षकी समान सहस्रों वृक्ष शोभायमान थे ॥ २८ ॥ लाल कंठवाली कोकिलाओंके वृन्दके वृन्द मृदुलवाणीसे जहां तहां कोलाहल कर रहे थे, भ्रमरोंका मनोहर शब्द होरहा था, कमलयुक्त जलाशय देदीप्यमान थे, कलहंसादिक जलविहंग निजपत्नियोंके संग विचर रहे थे ॥ २९ ॥ वनके बलवान् हाथियोंके गमनसे हरिचंदनके वृक्षोंमें रगडसे सुगंधयुक्त पवनके प्रभावसे यक्षोंकी रमणियोंके मनको मन्मथ वारंवार मथ रहा था ॥ ३० ॥ प्रवाल रत्नकी सोपानवाली बावडियें कमलमालासे शोभायमान दृष्टि आती थीं और राजहंसोंके मित्र उस मनोहरवाटिकाको त्यागकर किंपुरुष वहां विहार कररहे थे, सौगंधिक वनकी ऐसी अनुपम शोभा देखते हुए आगे बढे, तो निकट ही एक वटवृक्ष दृष्टि आया ॥ ३१ ॥ वह वटका तरुवर चारसौ कोस ऊंचा और तीनसौ कोसमें उसका विस्तार था, चारोंओर उसकी सघन छाया आठोंप्रहर रहती थी. और न किसी पक्षीका उसमें घोंसला था, और ताप तथा धूप तो वहां देखनेको भी नहीं थी ॥ ॥ ३२ ॥ उस वटके नीचे महायोगमय मुमुक्षुजनोंके रक्षक सदाशिव विराजमान थे, मानो क्रोध तजकर अंतक बैठा है इसप्रकार देवताओंने महादेवजीको बैठा देखा ॥ ३३ ॥ शांत शरीरवाले सनंदन आदि महासिद्ध शांतस्वरूप शिवजीकी सेवा कर रहे थे और यक्षराज राक्षसोंका अधीश और शिवका सखा कुबेर मस्तक नवाये चरणारविन्दोंकी ओर तकतक ज्ञान वैराग्य और आनंदका रस छक रहा था ॥ ३४ ॥ सो शिवजी महाराज विद्या, तप, योगमार्गमें स्थित सबके ईश्वर विश्वके सुहृद और वात्सल्यतासे सब लोकके मंगल करनेवाले हैं ॥ ३५ ॥ और अतीव सुहावन और मनभावन तपस्वीवेष धारण किये हैं, शीशपर जटा बढाये, मृगचर्म अंगमें विभूति लगाये, हाथमें दंड लिये, संध्याकालके मेघपांक्तिकी कांतिके समान अपने मस्तकपर चंद्ररेखा धारण कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

दोहा-कुशआसन आसीन प्रभु, लसत भाल विधु बाल।
जेहि दरशत सब जननके, मिटत सकल जंजाल ॥

इसप्रकार आसनपर बैठे हैं, और नारदजी जो कुछ उनसे बूझते हैं उनको सब सज्-

नोंके सम्मुख सनातन परब्रह्मका ज्ञान सुना रहे हैं ॥ ३७ ॥ बांयें चरणको दहिने ऊरूपर धर और बांईं जानुपर अपना कर धरकर दाहिने बाहुके प्रकोष्ठपर अक्षमालासहित तर्कमुद्राधारण किये बैठे हैं ॥ ३८ ॥ ब्रह्मसुखकी समाधिमें स्थित सबसे विरक्त गिरीश योगज्ञानी सब मनुओंके आद्यमनु महादेवजीको हाथ जोडकर सब लोकपाल मुनिलोगोंने प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ सुर असुर जिनके चरणकमलको नित्य प्रति दंडवत करते हैं, सो महादेव देवताओंसहित चतुराननको आता देखकर शीघ्र उठ खडेहुए, और जैसे सर्वपूज्य विष्णु वामनजीने कश्यपजीको प्रणाम किया था, उसीप्रकार शिवजीने ब्रह्माजीको नमस्कार किया ॥ ४० ॥ और जो सिद्धगण महर्षियोंसहित शशिशेखर शिवजीके समीप उपस्थित थे, उन लोगोंने भी उसीभांति ब्रह्माजीको प्रणाम किया, इसप्रकार जिन ब्रह्माजीको सबने नमस्कार किया सो ब्रह्माजी चंद्रचूड महादेवजीसे हँसकर बोले ॥ ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे ईश तुमको मैं भलीभांति जानता हूं कि, तुम विश्वरूप जगत्के योनि, बीज, शक्ति, प्रकृति, पुरुषके ईश, भेदरहित, निर्विकार, परब्रह्म, निरंतर, ईश, सर्वांतर्यामी ईश्वर हो ॥ ४२ ॥ हे भगवन् ! स्वरूपधारी, शिवशक्तिरूप प्रकृतिपुरुषमें विहार करतेहुए तुमहीं मकरीको नाईं इस सृष्टिको रचते हो, पालते हो, फिर अपने आपमें लीन करलेते हो. तुम्हारी गतिका कोई पार नहीं पासक्ता ॥ ४३ ॥ धर्म, अर्थ, पूर्ण करनेको और वेदकी रक्षाके लिये दक्ष निमित्तमात्रने यज्ञ किया था और सब संसारकी मर्य्यादा भी आपकीही बांधी हुई है; जिन मर्यादाओंको व्रतधारी ऋषिलोग श्रद्धा सहित आजतक पालन करेजाते हैं ॥ ४४ ॥ हे मंगलरूप ! शुभकर्म करनेवालोंको तुम स्वर्ग परलोक दायक हो. और अशुभ कर्म करनेवालोंको भयंकर नरक अंधतामिस्रवासके देनेवाले हो, तो फिर किसकारणसे किसी पुरुषको इन मर्यादाओंके प्रतिकूल फल प्राप्त होता है ? ॥ ॥४५॥तुम्हारे पादारविंदोंमें जिनके मन और देह अर्पित हैं और सर्वजीवमात्रमें आपको ही देखते हैं, और सब जीवोंमें ईश्वरको देखते हैं, आत्मा सब जीवोंमें देखनेवाले महात्माजनोंको कभी क्रोध नहीं आसक्ता और आपका तो कहना ही क्या है ? ॥ ४६ ॥ पृथक् जिनकी बुद्धि, कर्मोंपर दृष्टि, दुष्टहृदय-

चौ०-जे जन देख पराइ विभूती ※ जरत रहत न चलै करतूती ।
कहहिं वचन कटु बिशिख समाना ※ भेदहिं मर्म देहिं दुख नाना ॥

दैवसे भ्रष्ट, अनेक कर्मोंके मारेहुओंको, आपसरीखे महात्माओंका धर्म है कि, न मारें क्योंकि, वे तो आपही अपने कर्मोंके मारे हैं ॥ ४७ ॥ जिस देशमें जिस समय नारायणकी दुस्तर मायासे पृथक् दृष्टिवाले जो अभिमानी मोहित होकर सज्जनोंसे विरोध करते हैं, परंतु तौ भी साधुजन अपनी नम्रतासे परमेश्वरकी इच्छा ऐसी ही थी, यह विचार कर उन लोगोंपर कृपा करते हैं; परंतु उनको मारते नहीं ॥ ४८ ॥ आप तो परमपुरुषकी कठिन मायासे लिप्त नहीं हो, समस्त जगत्के द्रष्टा हो, भगवत्के दासोंमें श्रेष्ठ हो, दयाके समुद्र हो, हे प्रभो ! जो सदा कर्मोंके बंधनमें बंधे हैं, उनपर तुम कृपा करने

योग्य हो ॥४९॥ हे रुद्र ! आपकेही विना दक्षका यज्ञ समाप्त न हुआ, अब तुम मरेहुए मतु दक्षप्रजापतिके यज्ञका उद्धार करो, जहां कुत्सित होम करनेवालोंने तुमको भाग नहीं दिखाया उसका फल तत्काल अपनी आँखोंसे देखलिया ॥ ५० ॥ अब इतना अनुग्रह कीजे कि, यह हमारा यजमान तो जीजाय और भगदेवको नेत्र दिये जांय, भृगुकी मूछें निकल आवें और पूषाके दांत पहलेसे होजायँ ॥ ५१ ॥ हे मन्यो ! देवताओंके और ऋत्विजोंके अंग जो आयुध और पाषाणोंसे टूट गये हैं, उनपर अनुग्रह करके तुम सबको आरोग्य करो ॥ ५२ ॥ हे कल्याण रूप ! हे यज्ञविध्वंसक ! ! जो कुछ इस यज्ञमें शेषभाग बचा है वह सब आपका भाग है इसप्रकार यह सब अंगीकार करते हैं, अब आप कृपा करके यह कहदीजै कि. यज्ञहनरुद्रके भागसे यह यज्ञ तुम्हारा पूर्ण हो; इसलिये हम सब देवता आपके पास यह कहने आये हैं ॥ ५३ ॥

कवित्त-अहो मुंडमाली बलशाली को तुमसमान, बारबार विनै करें आपको मनायकै । ज्ञान ध्यान ज्ञाता तुम संपतिके दाता तुम, छोडो मत नाता तुम लीजे अपनाय कै ॥ ऐसे समै महिमाको बखानै का शालिग्राम, आज करामात सब विश्वको दिखायकै ॥ सांकरेमें शंकर सहाय करो शीघ्र जाय, जगमाहिं लीजे यश दक्षको जिवायकै ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे रुद्रसान्त्वनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-इस सप्तम अध्यायमें, प्रगट भये भगवान ।
शिव ब्रह्मादिक देव सब, सुस्तुति करत बखान ॥

मैत्रेयजी बोले कि, हे महाबाहो विदुर ! जब ब्रह्माने इसप्रकार शिवजीकी स्तुति करी, तब महादेव अत्यन्त प्रसन्न हो हँसकर बोले कि, हे कमंडलुपाणे ! सुनिये ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि; हे प्रजेश ! इन अज्ञानियोंके अपराधको मैं अपने मुखसे कुछ नहीं कह सक्ता हूं. और न कुछ चिंतवन करता हू, क्योंकि ये मूर्खलोग देवकी मायासे मोहित होरहे हैं, इसलिये मैंने इनको उचित दंड दिया है ॥ २ ॥ दक्षप्रजापतिका शिर तो जलादिया, इसलिये बकरेका मुख उसके धडपर लगा दिया जाय और भगदेव अपने मित्रके नेत्रोंसे यज्ञके भागको देखें ॥ ३ ॥ पिसा हुआ अन्न पूषा यजमानोंके दांतोंसे भक्षण किया करे, और जिन देवताओंने मुझको यज्ञका उच्छिष्ट दिया है, उनके सर्वांग पूर्ण होजायँगे ॥ ४ ॥ और जिनके अंग सर्वत्रहीं नष्ट होगये हैं उनको भुजाओंका काम अश्विनीकुमारकी भुजाओंसे होगा. और हाथोंका काम पूषाके हाथसे हुआ करेगा. अध्वर्यु और ऋत्विज जैसे पहले थे वैसेही होजायँगे और भृगुकी दाढी मूंछ बकरेकी पूंछकी होगी ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! शिवजीके स्नेहभरे वचन सुनकर भूतमात्र और देवतालोग अत्यन्त प्रसन्न हो साधु साधु कर धन्यवाद देनेलगे ॥ ६ ॥ फिर सब देवता

और मुनियोंने जब शिवजीकी विनयकी कि, कृपा करके आप वहां चलिये और सब कार्य पूर्ण कीजिये. तब देवताओंकी आज्ञा शिरपरधर शिवजी ब्रह्मा और ऋषियोंसहित देवताओंको साथ ले उस देवयज्ञशालामें पहुँचे ॥ ७ ॥ और सम्पूर्णतासे यज्ञ कराय जो कुछ शिवजीने कहा, उसी भाँति यज्ञमें पशुका शिर काटकर दक्षके धडपर धरकर जोडदिया ॥ ८ ॥ शीश जोडकर शिवजीने दयादृष्टिसे उसकी ओर देखा. दृष्टिके पडतेही दक्षप्रजापति ऐसे उठकर बैठगया मानो निद्रासे अभी जागा है, और नेत्र खोलकर देखा तो शिवजी सन्मुख खडे हैं ॥ ९ ॥ यद्यपि शिवके द्वेषसे उसका चित्त दूषित हो रहा था परन्तु शशिशेखरका दर्शन करतेही सब वैरभाव मिटगया. और शरदकालके तडागके तुल्य दक्षका मन निर्मल होगया ॥ १० ॥ और वारंबार मनमें यह विचार करता था कि दीनदयालु भूतेश्वर महादेवजीकी स्तुति करूं परन्तु अनुरागवश हो कुछ मनसे नहीं उच्चार सका और अपनी मरीहुई दुहिता सतीका स्मरण कर उत्कण्ठासे आंखोंमें आंसू भरलाया ॥ ११ ॥ और जैसे तैसे बडी कठिनाईसे मनको रोककर प्रेमसे व्याकुल हो वह सुबुद्धि दक्ष कपट भावको हृदयसे त्यागकर शिवजीकी स्तुति करनेलगा ॥ १२ ॥ दक्ष बोला कि, हे भगवन् ! मैंने तो आपका तिरस्कार किया था. तोभी आपने उस अपमानका ध्यान त्याग करके मुझको दंड दिया. यह आपने मुझ दीनपर बडी दया करी. जो अधम ब्राह्मण तिरस्कारयोग्य हैं, आप और विष्णु भगवान्, जब उन्हीं ब्राह्मणोंका निरादर नहीं करते तब तपव्रतधारी श्रेष्ठब्राह्मणोंकी अवज्ञा आपसे कब होसक्ती है? ॥ १३ ॥ हे प्रभो ! अपने विद्या--तप--व्रतधारी ब्राह्मणोंको वेदमार्गकी रक्षा करनेके लिये प्रथम आपने मुखसे प्रगट किया है, इसलिये हे विभो ! आप सब विपत्तियोंमें ब्राह्मणका सदा पालन करते हो, जैसे पशुपालक दंड हाथमें लेकर पशुओंकी रक्षा करता है ॥ १४ ॥ आपके तत्त्वज्ञानको मैंने न जानकर सुरसभाके मध्य दुर्वाक्यरूप शरोंसे आपको दुःखित किया था, तौभी आपने उस दोषको नहीं माना और प्रतिष्ठित जनोंकी निन्दा करनेके कारण नरकमें पडतेहुए मुझको क्षमा दृष्टिसे बचालिया. हे नाथ ! अपने करेहुए उपकारसे आपही संतुष्ट होओ. मेरी सामर्थ्य नहीं जो इसका बदला मैं आपको देसकूं ॥ १५ ॥ मैत्रेयजीबोले कि इस भांति दक्षने शिवजीसे अपना अपराध क्षमा कराय चतुराननकी सम्मतिसे उपाध्याय ऋत्विज अग्निसहित यज्ञकर्मका सुन्दरतासे विस्तार किया ॥ १६ ॥ तीन कपालका पुरोडाश विष्णुके निमित्त; यज्ञ सम्पूर्ण करनेके हेतु, प्रमथादिक वीरोंकी शुद्धिके लिये श्रेष्ठब्राह्मणोंको वह दिया ॥ १७ ॥ हे विदुर ! अध्वर्युने जब हवि हाथमें लेकर यजमानसे विशुद्धबुद्धिसे हवन कर श्रीवासुदेव भगवान्का ध्यान किया, उसीसमय श्रीभगवान् आनकर प्रगट हुए ॥ १८ ॥ जिस गरुडके पंखोंसे सामवेदके मंत्रोंकी ध्वनि निकलती हैं उसपर विराजमान होकर श्रीभगवान् आये उस समय उनके तेजके सन्मुख सबका तेज मंद विदित होता था और दशों दिशा उनके तेजसे प्रकाशमान होरहीं थीं ॥ १९ ॥ श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, सूर्य समान किरीट शिर धारे, नील अलकें भ्रमरवत् शोभित

मुखवाले, श्रवणोंमें कुण्डल लटकाये, नानाप्रकारके आभूषण पहिरे, भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, शर, चाप, खड्ग, ढाल, धारण किये कनेरके पुष्पवत् श्रीभगवान् देदीप्यमान विदित होते थे ॥ २० ॥ वक्षस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान वनमाला पहरे उदार हाँसी-युक्त अवलोकनकी कलासे विश्वको रमण कराते पार्श्वमें घूमतेहुए व्यजन चमर राजहँसवत् दोनों ओर डुलरहे थे ओर ऊपरकी ओर पूर्ण शशिसम श्वेतछत्र अत्यन्त शोभाको बढा रहा थ. ॥ २१ ॥ उन भगवान्को ब्रह्मा, इन्द्र, शिव ओर सब देवगणादिकोंने आता देख उठकर दंडवत् प्रणाम किया ॥ २२ ॥ उन श्रीवासुदेव भगवान्के तेजके प्रकाशसे सबकी कांति मलिन होगई. ऐसे वह पुरुष अंजलियोंके संपुट शिरपर करके मोहसे संभ्रमित हो गद्गदवाणीसे भगवान्की स्तुति करनेलगे ॥ २३ ॥ तब ब्रह्मादिक देवताओंकी मन-वाणीकी सब वृत्तियां विसरगईं, भगवान्की महिमाको नहीं पहुँचसकीं तोभी उन्होंने कृपा करनेके लिये, निजस्वरूप धारण कर अपने निकट आयेहुए भगवान्की मति अनुसार सबने स्तुति की ॥ २४ ॥ यज्ञार्धांश, विश्वके रचनेवाले, ब्रह्मादिकोंके परमगुरु ओर नंद सुनंदआदि पार्षदोंसहित भगवान्के समीप जाकर प्रजापति दक्षने पूजाकी सामग्री समर्पण की, तब श्रीनारायणने वह पूजाके द्रव्यका पात्र अपने हस्तकमलसे ग्रहण किया. तब दक्षने प्रसन्न हो हाथ जोड बडी सावधानीसे भगवान्की स्तुति करी ॥ २५ ॥ दक्ष बोला कि, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे रहित अपने रूपमें स्थित, पवित्र चैतन्यस्वरूप, अद्वितीय केवल एक आपही हो. आप मायाका तिरस्कार कर स्वाधीन होनेपरभी फिर उसीमें स्थित होकर पुरुषरूप बन मायारूपी नाटक रचोहो, तब उस मायामें रहनेसे ऐसा विदित होता है कि, रागद्वेषादिक कर्म आपमेंभी आगये हैं, परंतु यह मेरी दृष्टिका भेद है, आप तो निर्लेप और निर्विकार हैं ॥ २६ ॥ सब ऋत्विज बोले कि, हे निरंजन! हे उपाधिरहित!! हे भगवन्!!! रुद्रके शापसे केवल कर्मोंमें दुराग्रह रखनेवाले हैं, परंतु आपके तत्त्वको हम लोग नहीं जानसक्ते; धर्मका उपलक्षण वेदत्रयीप्रतिपाद्य यह यज्ञ है, ऐसे जानकर हम यज्ञ करते हैं, जिससे अध्यात्म, अधिभूत, आधिदैव, यह तीनों अवस्था दूर होती हैं ॥ २७ ॥ सभासद बोले कि, हे शरणागतवत्सल! इस उत्पत्तिके कालरूपी संसारका महाकठिन पंथ है, जिसमें कोई विश्रामका स्थान दृष्टि नहीं आता, न कोई रक्षक है और हैं भी तो अनेक क्लेशदायक विषमस्थान हैं, मृत्युरूप उग्रसर्प फणा उठाये फुंकार-रहा है, सुखदुःखादिकरूप नानाप्रकारके अनेक गंभीर गढे हैं, दुष्टपुरुष मृगरूपी घातक-प्राणियोंके भयदायक हैं, मोहरूपी नदी नाले हैं, और शोकरूपी दावाग्नि भडक रही है, तृष्णा ओर कामनासे दुःखित हो, उस मार्गमें जाता है, विषयमार्ग तृष्णावश अज्ञानको साथलिये भ्रमके भारको शिरपर धरे शीघ्र चलता है, फिर यह कामव्याप्त जीव कब आपके चरणरूपी मंदिरको प्राप्त होसक्ता है ॥ २८ ॥ रुद्र बोले कि, हे वरद! सर्व विषयोंमें वैराग्यवाले सत् अर्थदायक असक्त मुनियोंके आदरभावसे पूजनीय तुम्हारे चरणकमलमें रचित बुद्धिवाला, अविद्याकामसे लोकमें बिंधा हुआ. आपके पूर्ण प्रेमभरी दयादृष्टिसे मैं

अपने मनको लगा रहा हूं. उसको मूर्ख लोग आचारभ्रष्ट कहते हैं तौभी आपके अनुपम अनुग्रहसे उस वातको मैं कुछभी नहीं समझता ॥ २९ ॥ भृगुजी वोले कि आपकी गंभीर मायासे देहधारी ब्रह्मादिक देवताभी अंधकारमें सोएहुए आत्मज्ञानको भूल रहे हैं; आत्मामें रहनेपरभी आपके तत्त्वको अवतक नहीं जानते, सो हे भक्तोंके आत्मवन्धो ! भगवन् ! मुझपर प्रसन्न होओ ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी वोले कि ज्ञान, अर्थ, गुणाश्रय पदार्थोंको पृथक् २ रीतिसे विचार करनेवाली इंद्रियोंसे प्राणियोंकी दृष्टिमें जो कुछ आता है, वह आप सत्यस्वरूप नही हैं, क्योंकि ज्ञानपदार्थ और इन्द्रियोंका अधिष्ठानरूप आपको मायाके पदार्थोंसे सर्वत्र पृथक् है ॥ ३१ ॥ इन्द्र बोले कि, हे अच्युत ! विश्वभावन, संसारपालक, चिदानंद, असुरवंशविध्वंस करनेवाले, यह ऊंचे उठेहुए आयुधवाला अष्टभुजी सुन्दर स्वरूपभी आपका अप्राप्त नहीं है ॥ ३२ ॥ पत्निये बोली कि, हे यज्ञरूप ! हे रमेश ! ! यह यज्ञ केवल तुम्हारेही यजनके लिये दक्षप्रजापतिने रचा था, सो पशुपति महादेवने आज दक्षपर कोप करके विध्वंस करदिया, सो हे कमलनयन ! हे शांतबुद्धे ! ! हे यज्ञात्मन् ! ! ! सो यह यज्ञ उत्सवरहित श्मशानवत् महाअशुचि होगया है, आप अपनी कमलवत् पावन दृष्टिसे इसको पवित्र करो ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले कि, हे भगवन् ! आपकी माया वडी दुरंत है, किसीसे जानी नहीं जाती. जिसरूपसे आप विचरतेहो उसमें लिप्त नहीं होते, जिस हेतुसे ऐश्वर्य्यके लिये ईश्वरी लक्ष्मीजीको उपासना ब्रह्मादिक करते हैं, वह लक्ष्मी आठ पहर आपके चरणारविन्दोंकी ओर तकती रहती है; तौभी आप उसको आदर नहीं देते ॥ ३४ ॥ सिद्धलोग बोले कि, क्लेशरूपी दावाग्निसे दग्ध हुआ, प्याससे पीडित हो, यह हमारा मातंगरूपी मन, आपकी कथारूपी उज्ज्वल अमृतकी नदीमें स्नान करनेसे और शीतल जल पीनेसे फिर जगत्रूप दावानलको स्मरण नहीं करता, और उस नदीमेंसे बाहर नहीं निकलाचाहता. अब हमको विदित होता है कि; परब्रह्मके संग रंग होगया ॥ ॥ ३५ ॥ दक्षकी स्त्री प्रसूति बोली कि, हे रमापते ! हे श्रीनिवास ! ! हे परमात्मन् ! ! ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, श्रीसहित हमारी रक्षा करो, तुम्हारे विना हे अर्धांश ! यह यज्ञ शोभा नहीं देता था, जैसे शिरहीन कबंध शोभा नहीं देता ॥ ३६ ॥ लोकपाल बोले कि, हे भूमन् ! विज्ञानरूप, ज्ञानगुणप्रकाशक, दृश्यमात्रको जाननेवाले, प्रत्यगात्मरूप, सर्व द्रष्टा, आप हो यह असत्पदार्थोंको ग्रहण करनेवाली हमारी इन्द्रियें तुम्हारा स्वरूप देख नहीं सक्तीं, क्योंकि यह पंचभूतात्मक शरीरमें जो छठे जीवरूपसे आप विदित होते हो, वही आपकी माया है ॥ ३७ ॥ योगेश्वर बोले कि, हे प्रभो ! हे ईश ! ! हे वत्सल ! ! ! तर्क करते हैं कि, आप विश्वात्मा हैं, आपसे जीव अपनी आत्माको भिन्न नहीं समझता, उससे अधिक प्यारा और आपको कोई नहीं है, यद्यपि ऐसे हैं तौभी अनन्यभक्तिसे जो आपकी उपासना करते हैं उनपर अनुग्रह करो ॥ ३८ ॥ दैवसे जगत्की उत्पत्ति और लयमें जीवके अदृष्टके कारण जिसके गुणोंका नानाप्रकारसे भेद होता है, ऐसा आपकी अद्भुतमायाने जिनके स्वरूपमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि भिन्न भिन्न भेद रचे हैं, परंतु

स्वरूपकी स्थिति देखते जिनमें भेदभाव दूर करनेसे उसका कारण कुछभी नहीं है, ऐसे आप परब्रह्मको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, सत्त्वावच्छिन्न चैतन्यस्वरूपधारी, धर्मादिकोंके उत्पन्न करनेवाले और जिनके गुणतत्त्वको न तो मैं जानताहूं, और न कोई दूसरा जानता है, ऐसे निर्गुण निर्विकारको वारंवार नमस्कार है ॥ ॥ ४० ॥ अग्नि बोले कि, आपके तेजसे जो मुझमें प्रकाश है इसीसे उत्तम उत्तम यज्ञोंमें टपकतेहुए घृतका हव्य मैं धारण करता हूं और सब देवताओंको पहुँचाताहूं, उन यज्ञोंके रक्षक और यज्ञरूप पांचप्रकारके पंच यजुमंत्रसे सुन्दर यज्ञ करे जाते हैं. सो हे यज्ञमूर्त भगवन् ! हम वारंवार आपको प्रणाम करते हैं. वे पांच ऐतरेय उपनिषद्की श्रुतिमें हैं. " स एष यज्ञः पंचविधः-अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः, सोम इति । तथाच श्रुतिः-आश्रावयेति चतुरक्षरम् । अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम् । यजेति द्व्यक्षरम् । ये यजामह इति पञ्चाक्षरम् । द्व्यक्षरो वषट्कारः ॥ अर्थ-आश्रावय, अस्तुश्रौषट्, यज, ये, यजामहे, वषट् इत्यर्थः" ॥ ४१ ॥ देवता बोले कि, पहले आप महाप्रलयमें अपने रचेहुए विश्वको अपने उदरमें धरकर आप ही आद्यपुरुष उस जलमें शेषशय्यापर सोये थे, सिद्धोंने अपने हृदयमें जिनकी अध्यात्मपदवी विचारी है, सो वह भगवान् आज हमलोगोंके नेत्रगोचर हुए, सो आपने हमारे ऊपर बडा अनुग्रह किया, आप सदा दासोंका ऐसेही पालन किया करते हैं ॥ ४२ ॥ गंधर्व बोले कि, हे देव ! मरीचिआदि ऋषि, ब्रह्मा, इन्द्रादिक देवगण, रुद्र जिनमें मुखिया हैं ये सब आपके अंशके अंशभाग हैं, और यह सब संसार आपके विहार करनेका खिलौना है. हे विभूमन् ! हे नाथ ! ! हे दीनबंधो ! ! ! ऐसे जो आप हैं हम निरंतर आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४३ ॥ विद्याधर बोले कि, ऐसा पराक्रमी और पुरुषार्थी देह पाकर जो पुरुष आपकी मायाके अधिकारमें हो, अभिमानमें आनकर कोई कोई मनुष्य कहने लगते हैं कि, मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसे वचन कह उलटे मार्गमें चलने लगते हैं अपने कुटुम्बियोंके अनादर करनेपरभी मूर्खतासे तुच्छ विषयोंमें तृष्णा रखते हैं. सो वहभी आत्मका मोह तुम्हारी कथामृतके सेवन करनेसे सब नष्ट होजाता है ॥ ४४ ॥ ब्राह्मण बोले कि, यज्ञ, हवि, अग्नि, मंत्र, समिधा, दर्भ, पात्र, सभासद्, ऋत्विज, यजमान, यजमानकी स्त्री, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमवल्ली लता, घृत, दुग्ध और यज्ञपशु सब आपही हो. इसलिये आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ हे त्रयीगात्र ! आपने पहले महासूकररूप धारणकर योगीजनोंके स्तुति करनेसे महागंभीर शब्द कर डाढपर रखकर रसातलसे वसुधाको ऐसे लेआये जैसे गजेंद्र लीलापूर्वक पद्मिनीको ले आता है. हे प्रभो ! यज्ञ और क्रतुरूप आपही हो ॥ ४६ ॥ तुम हम लोगोंपर प्रसन्न होओ, और सत्कर्मसे परिभ्रष्ट जो तुम्हारे दर्शनकी चाहनावाले हैं, उनपर अनुग्रह करके उनको अपना दर्शन दो. हे यज्ञेश ! जब यज्ञमें लोग आपके नामका उच्चारण करते हैं, उसी समय यज्ञके सब विघ्न क्षय होजाते हैं. हे विघ्नविनाशन ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! इसप्रकार सब

देवगण ऋषिलोगोंने हृषीकेश भगवान्की स्तुति की. तब दक्षने कवि, रुद्र, वीरभद्रके विनाशित यज्ञको फिर प्रवृत्त किया ॥ ४८ ॥ सर्वात्मा, सब भागके भोक्ता, यज्ञभावन भगवान् अपना भाग ले प्रसन्न हो दक्षप्रजापतिसे बोले ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जगत्का परमकारण सर्वात्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश, उपाधिरहित जो मैं हूं, वही ब्रह्मा और शिव जगत्के आदिकारण हैं ॥ ५० ॥ हे द्विज ! मैंही त्रिगुणात्मक अपनी गुणमयी मायाको धारण कर विश्वकी स्थिति करनेके लिये उन उन कार्योंके योग्य पृथक् पृथक् क्रिया, योग, संज्ञा, धारण करता हूं ॥ ५१ ॥ केवल अद्वितीय, परमात्मा, परब्रह्म जो मैं हूं सो अज्ञानी लोग ब्रह्मा, शिव और जीवमें भेद समझकर भिन्न भिन्न रीतिसे देखते हैं ॥ ५२ ॥ जैसे पुरुष अपने शिर हाथ चरण आदि अपने अंगोंमेंसे किसी अंगको दूसरेका नहीं जानता इसीप्रकार महात्मा पुरुष सब प्राणियोंमें मेराही रूप मानते हैं ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सब जीवमात्रका आत्मा अद्वितीय केवल मैं ही हूं. जो पुरुष ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंका भाव समझता है और भेदबुद्धिसे नहीं देखता, वह शांतिको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार हृषीकेश भगवान्ने जब दक्षप्रजापतिको उपदेश किया तब प्रजापतियोंके पति दक्षने अपने यज्ञमें प्रथम उनका पूजन कर फिर दूसरे देवताओंका पूजन किया ॥ ५५ ॥ फिर चित्तको सावधान करके यज्ञके अवशेषभागसे संपूर्ण कर्म पूर्ण करनेवाले महादेवजीका पूजन करके कर्मसे समाप्तिके देनेवाले दूसरे जो अमृतपान करनेवाले देवता हैं उनको भाग दिया ॥ ५६ ॥ फिर सब कर्मको समाप्त करके स्तुति करनेलगे. ऋत्विजोंको साथ लेकर उसने सबको भाग दे पीछे यज्ञांत स्नान किया, और विप्रोंके लिये दक्षिणा देकर यथाविहार करनेलगे ॥ ५७ ॥ भगवान्की कृपासे दक्षको अपनेही प्रभावसे सब सिद्धियां प्राप्त होगई थीं. तोभी धर्ममें बुद्धि रहनेका वरदान देकर सब देवता सुरपुरको चलेगये ॥ ॥ ५८ ॥ इसप्रकार दक्षसुता सतीने अपने पूर्वतनुको त्यागकर पीछे हिमाचलकी भार्या मैना नाम्नी रानीमें जन्म लिया. यह बात हम सबने सुनी है ॥ ५९ ॥ वह हिमाचलकी पुत्री अंबिका भवानी पार्वती प्रलयकालमें सोईहुई, शक्ति जैसे आद्यपुरुषको प्राप्त होती है, इसी प्रकार फिर दूसरी वारभी उन्हीं शिवजीको प्राप्त हुई, जो एकवृत्तिसे भक्तोंके मुख्य आश्रयरूप है ॥ ६० ॥ दक्षप्रजापतिके यज्ञविनाशक भगवान् शिवजीका यह कर्म भागवत बृहस्पतिजीके शिष्य उद्धवजीसे मैंने सुना था; सो आपको सुनादिया ॥ ६१ ॥ पापपुंजका हरता, और कोटि कष्ट विनाश करता, यश और आयुको बढानेवाला, तेजका चमकानेवाला, यह अत्यन्त पवित्र शिवजीका चरित्र है. जो मनुष्य प्रेमप्रीतिसे सुने और सुनावे वह प्राणी शिवकी भक्तिके प्रतापसे सब पापोंसे छूट जाता है. सो महादेवजी कैसे हैं–

भजन–शंकर सुख करन सदा संतन सुखदाई ॥ सेवत सुर नर मुनीश आद्यरूप जगत ईश। सोहत नित गंग शीश, भस्म अंगछाई ॥ १ ॥ पंच वदन अति विशाल, सोहत दृग लाल लाल। बालचंद्र लसत भाल,

शोभा अधिकाई ॥ २ ॥ पूरण आनन्द कन्द, मेट सकल द्वन्द गन्ध । बैठे निर्द्वन्द मंद, मैनको जराई ॥ ३ ॥ ज्ञान भक्ति मुक्ति धाम, रटत रहत अष्टयाम । राम राम राम राम, रघुपति रघुराई ॥ ४ ॥ ६२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञे सर्वकृतस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-ध्रुव अष्टम अध्यायमें, मातवचन सुनिकान ।
गये विपिन तप करनको, मिलै आन भगवान ॥

मैत्रेयजी बोले कि, सनकादिक, नारद, कतु, हंस, अरुणि और यति इन ब्रह्माजीके पुत्रोंने नैष्ठिक ब्रह्मचारी होनेके लिये गृहस्थाश्रम नहीं किया ऊर्ध्वरेता हुए ॥ १ ॥ हे शत्रु-दमन ! अधर्म भी ब्रह्माजीका पुत्र है, इसलिये उसके वंशकाभी वर्णन करते हैं. अधर्मकी मृषा नाम पत्नीमें दंभ नामक पुत्र और माया नाम्नी कन्या उत्पन्न हुई, सो मृत्युके पुत्र नहीं था, इसलिये उन दोनोंको अपने घर उसने रख लिया ॥ २ ॥ हे महामते ! दंभकी माया नाम भार्यामें लोभ नामक पुत्र और निष्कृति नाम पुत्री हुई. लोभकी निष्कृति नाम स्त्रीमें क्रोध नामक सुत और हिंसा नाम्नी सुता उत्पन्न हुई. क्रोधके हिंसा नाम्नी पत्नीमें कलि नाम तनय और दुरुक्ति नाम्नी तनया प्रगट हुई ॥ ३ ॥ हे सत्तम ! कलिकी दुरुक्ति नाम स्त्रीमें भय नाम पुत्र और मृत्युनाम दुहिता प्राप्त हुई, भयकी मृत्यु नामक स्त्रीमें निरय नाम बेटा और यातना नाम्नी बेटी हुई ॥ ४ ॥ हे अनघ ! संक्षेपसे मैंने यह सर्ग वर्णन किया जो पुरुष तीन बार इस अधर्मवंशावलीको सुने उसके शरीरके सब मलोंका नाश होजाताहै ॥ ॥ ५ ॥ हे परीक्षित् ! पुण्यकीर्तिवाले श्रीभगवान्‌के अंशसे जिनका जन्म हुआ, उन स्वायंभुवमनुका वंशवर्णन करता हूं ॥ ६ ॥ शतरूपाके पति मनुके भगवान् वासुदेवकी कलासे प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए और जगतकी रक्षामें स्थित रहने लगे ॥ ॥ ७ ॥ राजा उत्तानपादकी दो रानियां थीं सुनीति और सुरुचि सो उसमें सुरुचिपर राजाका अधिक प्रेम था. और सुनीति जो ध्रुवजीकी माता थी वह राजाको प्यारी नहीं थी ॥ ८ ॥ एक दिन वह राजा सुरुचिके पुत्रको गोदमें बिठाकर खिला रहाथा उसका नाम उत्तम था, उसीसमय ध्रुवजी भी कहींसे आगये और पिताकी गोदीमें बैठनेको उपस्थित हुए, तब राजाने उनका लालन पालन नहीं किया ॥ ९ ॥ और कुछ कहनेकी इच्छा थी इतनेमें सुरुचिने अपनी सौतके पुत्र ध्रुवजीको सुनाय राजाके सन्मुख ईर्षासे अभिमानके वचन कहे ॥ १० ॥ सुरुचि बोली कि, हे पुत्र ! आप राजकुमार हो तौभी राजसिंहासनके बैठने योग्य नहीं हो, क्योंकि तैंने मेरी कुक्षिमें जन्म नहीं लिया है ॥ ॥ ११ ॥ अरे ! अभी तू बालक है इसीलिये तुझे कुछ इस बातका ज्ञान नहीं कि, मैं और स्त्रीके गर्भसे जन्मा हूं, जो चेष्टा तू करता है, वह मनोरथ तेरा बहुत दुर्लभ है ॥ ॥ १२ ॥ यदि तू राजसिंहासनकी इच्छा करता है, तौ तपसे आदिपुरुष परमात्माका

आराधन कर उनकी कृपासे मेरे गर्भमें जन्म लेगा तौ राजसिंहासनपर बैठनेकी इच्छा करना ॥ १३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, सौतेली माताके दुर्वाक्यके कठिनबाणोंके वाक्योंसे विंधाहुआ, वह ध्रुव रोषसे श्वास लेता दंडहत उरगकी सदृश मौन साधे देखता हुआ पिताके सन्मुखसे रोताहुआ माताके समीप गया ॥ १४ ॥ क्रोधके मारे अधर होंठ जिसके फडक रहे थे, अपने पुत्र ध्रुवको गंभीर श्वास लेता हुआ देखकर उसकी माता सुनीतिने दौडकर उसको गोदीमें उठालिया और जो कुछ उसको सौतने कहा था, पुरवासियोंके मुखसे वह बात सुनके अत्यन्त पीडित हुई ॥ १५ ॥ और धैर्य्यको त्याग शोकदावाग्निके मध्यमें स्थित लताकी नाईं वह अबला विलाप करनेलगी और सौतके वचनोंको स्मरण करकरके वह कमलाक्षी कमलसे नेत्रोंसे आँसू बहानेलगी ॥ १६ ॥ लम्बे लम्बे श्वास भरती दुःखके पारको न पाती वह अबला अपने बालकसे बोली कि; हे पुत्र ! औरोंका अपराध मत मानो, जो पहले दूसरेको दुःख देता है, उसको उसका फल निःसन्देह भोगना पडता है ॥ १७ ॥ सुरुचिने जो कहा सो सब सत्य है, क्योंकि एक तो तैने मुझे भाग्यहीनके उदरमें जन्म लिया. दूसरे मेरे स्तनोंका दूध पीकर इतना बडा हुआ, राजा मुझको भार्या कहते तो हैं परन्तु मनमें अत्यन्त लज्जित होते हैं ॥ १८ ॥ हे वत्स ! ईर्षा छोडकर निष्कपट होकर जो सत्यवचन तेरी विमाताने कहा है, उसको तू स्वीकार करके श्रीवासुदेव भगवान्के चरणारविन्दोंको आराधन कर, जो उत्तमकी नाईं राजाकी इच्छा हो तौ ॥ १९ ॥ सत्वगुणी भगवान् वासुदेवके चरणकमलकी सेवा कर; संसारके पालनेके लिये जो निश्चयकरके आत्मा श्वास जीतनेवाले जिसकी वंदना करते हैं. ऐसे परमपदको ब्रह्माजी प्राप्त हुए हैं ॥ २० ॥ उसी भांति तुम्हारे पितामह भगवान् मनु, जिन आदिपुरुष अविनाशी अंतर्यामीकी कृपासे उत्तम दक्षिणाके यज्ञकरके पूजन किया और और उपायसे नहीं मिले. वह भूमिके, स्वर्गके मुक्तिके सुखको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! जिन भक्तवत्सल श्रीनारायणके चरणारविन्दोंके पंथको मुमुक्षु लोग खोज रहे हैं, तुमभी उन भगवान्का आश्रय लो, और दूसरा भाव न होय, ऐसे निजधर्मसुशोभित मनमें आद्यपुरुषको स्थित कर श्रीभगवान् वासुदेवका भजन करो ॥ २२ ॥ विना कमलनयन भगवान्के तुम्हारा दुःख दूर करनेवाला मुझको कोई नहीं दिखाई देता. हे वत्स ! ब्रह्मादिक सब देवता जिनकी खोजमें रहते हैं और लक्ष्मीजी कोमलकमलसे हाथमें कमल लिये जिनकी चाहना करती है, उनके चरणारविन्दकी उपासना करो ॥ २३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, ऐसे मनवांछित माताके मधुरवचन सुन,

दोहा-धरि धीरज मतिधीर ध्रुव, छोड राजकी आस ।
चला तुरतही तमकके, उर धर रमानिवास ॥ १ ॥
अब हम वनको जात हैं, छाँडि सकल धन धाम ।
जो चाहो सो राज्य लो, हमें नहीं कुछ काम ॥ २ ॥
मनमें यह प्रण करत हौं. ढूंढौं श्रीरघुवीर ।
जो नहिं दर्शन होयँगे, तौ तज देहुँ शरीर ॥ ३ ॥

अपनी मातासे और छोटे छोटे अपने संगके खेलनेवाले बालकोंसे यह बात कह और वासुदेव भगवान्‌को अपना हितू जान पिताके पुरसे चलदिया ॥ २४ ॥ नारदजी इस बातको सुनकर उसके मनका पूर्ण दृढव्रत जान भगवान्‌के परमभक्त पापनाशक अपना हस्तकमल उसके शिरपर धरकर विस्मितहो मनही मनमें कहने लगे ॥ २५ ॥ अहो! क्षत्रियोंका तेज ऐसा उग्र है, कि यह अपने मानभंगको किंचित्‌मात्रभी सहन न करसका. यह बालक है, तौभी विमाताके दुर्वाक्योंको हृदयमें धारण नहीं करसका ॥ २६ ॥ नारदजी बोले कि, हे कुमार! खेलनेवाले आसक्त बालकोंका कोई अपमान करे, वा सन्मान करे तो उसमें हम कुछ बुरा भला नहीं देखते ॥ २७ ॥ जो तुमको मानअपमानका ज्ञान है तौ संतोषके हेतु यह भिन्न नहीं है, क्योंकि संसारमें पुरुषको विना मोह अपने कर्मोंसे सुख दुःख होते हैं, और किसी प्रकार नहीं होते ॥ २८ ॥ हे तात! इसलिये जब ईश्वर सहाय होते हैं, तौ कार्यभी सिद्ध होते हैं, इस बातको निश्चय कर, परमात्मासे जो कुछ प्राप्त हो उतनेहीमें मनुष्यको चाहिये कि, अपने मनमें संतोष करले ॥ ॥ २९ ॥ और तू माताके कहेहुए योग करनेको योग्य है. जिनका प्रसन्न होना पुरुषोंपर बहुत कठिन है, दुःखसे आराधन करने योग्य है, यह मुझकोभी सम्मत है ॥ ३० ॥ मुनिलोग सबका संग तजकर तीव्रयोगसमाधिसे अनेक जन्मोंसे उसकी पदवीका अनुसरण करते हैं, तौभी जान नहीं सक्ते ॥ ३१ ॥ इसलिये इस हठको छोडदे. क्योंकि यह तेरी हठ अच्छी नहीं है और अभी फलदायकभी नहीं होगी, जब योगसाधनका समय वृद्धअवस्था आजायगी तब इसके लिये भी प्रयत्न करना ॥ ३२ ॥ दैवने जिसके भागमें जो लिखा है, उसको उचित है कि, सुखसे दुःखसे उतनेहीमें अपने मनको प्रसन्न रक्खे क्योंकि जो उतनेहीमें अपनी आत्माको संतुष्ट रखता है वह पुरुष निःसन्देह मोक्षका भागी होता है, ॥ ३३ ॥ जो आपसे गुणमें अधिक होय तो उसको देखकर आनंदित होना चाहिये, उसकी निन्दा न करै, और जो आपसे हीन होय तो उसपर अनुग्रह रखना चाहिये. उसका अनादर न करे, और जो अपने समान हो तो उससे मित्रभाव रखना चाहिये. परन्तु उससे अपनी उन्नति न चाहै. जो पुरुष इस रीतिसे चलता है, उसका किसीप्रकारके तापसे विनाश नहीं होता ॥ ३४ ॥ ध्रुवजी बोले कि, अपने सुखदुःखसे अभागे पुरुषोंपर कृपा करके भगवान्‌ने शांतिका यह उपाय दिखाया है. हमसरीखे मतिमंद मनुष्योंको दर्शन नहीं होसका ॥ ३५ ॥ तोभी घोर क्षत्रियस्वभावको आपके मधुर वचन कहेहुए मुझ अविनीत अभागेके हृदयमें ठहर नहीं सक्ते; क्योंकि सुरुचिके दुर्वाक्यरूपी शरोंसे मेरा हृदय बिंधा पडा है ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन्! संसारमें जो उत्तम पद है उसको कोई नहीं पासक्ता, जिस पदको हमारे पिता पितामह और कोई दूसराभी उस पदवीको नहीं पहुँचा हो. ऐसे त्रिभुवनके उत्तम पदको जीतनेका मेरा मनोरथ है, सो उपाय कृपा करके मुझे बताओ,

दोहा-जेहि उपायसे परमपद, मोहिं सहज मिल जाय।
हे विरंचिनंदन सोई, दीजे आप बताय ॥ ३७ ॥

आप साक्षात् भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र हो और वीणा हाथमें लिये जगत्के हितके हेतु मार्तण्डकी नाईं खण्डखण्डमें घूमते फिरोहो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, नारद ध्रुवके ऐसे गम्भीर वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सत्यवाक्योंसे उस बालकपर परमस्नेह किया ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले कि तेरी जननीने जो तेरे अभिप्रायका पन्थ बताया है. वह निश्चय मोक्षदायक और वासुदेव भगवान्से मिलानेवाला है. इसलिये मनको सावधान करके उन्हींका भजन कर ॥ ४० ॥ जो मनुष्य अपना सुख चाहै, तो वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके निमित्त श्रीमन्नारायणके चरणारविंदका आराधन करै, क्योंकि प्रधान कल्याणका कारण वही है ॥ ४१ ॥ इसलिये हे पुत्र ! श्रीयमुनाजीके तटपर अत्यन्त रमणीय मधुवन नाम क्षेत्र है, जहां श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द सदा विराजते हैं. तहां तू जा निश्चय तेरा कल्याण होगा ॥ ४२ ॥ उस पवित्र आश्रममें जाकर नित्य यमुनाजीके अमृतरूपी जलमें त्रिकाल स्नान कर अपने नित्यकृत्यसे निश्चिंत हो दृढ आसन जमाकर वहां तू रहना ॥ ४३ ॥ पूरक, रेचक, कुम्भक ये तीन प्रकारकी जिसकी वृत्ति हैं. ऐसे प्राणायामसे धीरे धीरे प्राण इन्द्रिय मनके मलको दूर करके धीरमनसे गुरुरूप कृष्ण भगवान्का ध्यान कर ॥ ४४ ॥ अपने ऊपर प्रसन्न होनेमें सुमुख निरन्तर प्रसन्नवदन, सुन्दर नेत्र सुन्दर नासिका, सुंदर भ्रुकुटी,सुन्दर कपोल देवताओंमें सुन्दर ईश्वर हैं ॥४५॥ तरुण अवस्था, रमणीय अंग, अरुण होठ, देखने योग्य बिंबवत् अधर, नम्रीभूत उनके आश्रय सुखदायक, शरण्यरूप; करुणानिधान ॥ ४६ ॥ श्रीवत्सका चिह्न, मेघवत् श्याम वर्ण, वनमाली, अन्तर्यामी, शंख-चक्र, गदा, पद्मसे शोभित चतुर्भुज हैं ॥ ४७ ॥ किरीट, कुण्डल, केयूर, कंकणसे देदीप्य, मान कौस्तुभमणि और आभरण, ग्रीवामें लसे, पीताम्बर पहरे ॥ ४८ ॥ कटिमें क्षुद्रघंटिका धारण किये कंचनके नूपुर चरणारविन्दोंमें सजाये, अत्यन्त दर्शनयोग्य शांतचित्त मन और नेत्रोंके आनन्दवर्द्धक ॥ ४९ ॥ नख मणि पंक्तिसे शोभित, पूजित चरण हृदय-कमलकी कलियोंपर विराजमान, जीवात्मामें स्थित हैं ॥ ५० ॥ मन्द मन्द मुसकाते, प्रेमसहित अवलोकन वरदायकोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपका पहिले धारणासे दृढ हुए एकाग्रमनसे ध्यान कर ॥ ५१ ॥ इसप्रकार मंगलदायक श्रीयदुनायकके स्वरूपका जो ध्यान करता है, उस पुरुषका मन तुर्त परमानंदित हो अन्यविषयोंसे निवृत्त होजाता है ॥ ५२॥ हे नृपनन्दन ! परमगुह्य जो जपनेयोग्य मन्त्र है सो सुन. जिसको सात रात्रि मनुष्य जपै तो आकाशके सब देवता प्रत्यक्ष देखनेमें आवैं ॥ ५३ ॥ " ॐ नमोभगवते वासुदेवाय " उत्पत्ति पालन, संहारकरता; षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान् सब जीव जिनमें निवास करैं. उनके लिये नमस्कार हैं, सज्जनपुरुषोंको उचित है कि इस मंत्रसे भगवान् वासुदेवकी नाना प्रकारकी पूजाकी सामग्रियोंसे देशकालके विभागको जानकर द्रव्यमयी पूजन करै ॥ ५४ ॥ पवित्र जल वनके फलफूल आदिक सुन्दर अंकुर, वस्त्र, तुलसीदलसहित भगवान् वासुदेवका पूजन करै ॥ ५५ ॥ शालिग्रामशिलादिककी मूर्ति बनाकर द्रव्यमयी पूजा करै अर्चाकी, पृथिवी जल आदिकसे पूजन करै, इन्द्रियोंको भी जीत मनको शांत कर मौन वन वनके

कन्दमूल खाय ॥ ५६ ॥ और अपनी इच्छासे जो अवतार धारण करते हैं उनका चिंतवन करै, और विष्णु भगवान् फिर अपनी अचिंत्य मायाकरके अवतार ले सुन्दर सुन्दर लीला करेंगे, इसप्रकार हृदयमें ईश्वरका ध्यान करै ॥ ५७ ॥ पहिले ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंने भगवान् वासुदेवकी परिचर्या जिसप्रकार करी है, उन्हीं विधानोंसे द्वादशाक्षर मंत्रका उच्चारण करके मंत्रमूर्तिके अर्थ प्रयोग करै ॥ ५८ ॥ इसप्रकार मन, वचन शरीरसे मनोगत ईश्वरकी परिचर्य्या करै,इस भाँतिकी सेवा करनेसे भगवान्, भक्ति करनेवालेको मनोवांछित फल देते हैं ॥ ५९ ॥ निष्कपट भजन करनेसे पुरुषोंको भाववर्द्धन करनेवाले भगवान् धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष, चारों पदार्थ और जो मनोभिलषित धन पुत्रादिक फल चाहते हे उसी समय उसको देते हैं ॥ ६० ॥ जो भक्त मुक्ति होनेकी इच्छा करै वह विरक्त होकर भक्तियोगके दृढ कियेहुए भावसे साक्षात् निरंतर भावसे भजन करै॥ ६१॥नारदजीके ऐसे मनोहर वचन सुनकर सुनीति कुमार ध्रुवजी उनको परिक्रमा दे प्रणामकर भक्तिरूप हरिचरणारविंदसे शोभित मथुराके निकट मधुबनको चलदिया ॥ ६२ ॥ ध्रुवजीके वन जानेके उपरान्त नारदजी राजा उत्तानपादके अंतःपुरमें पहुँचे, राजाने नारदजीको आता देख अर्घ्य दे बडे आदरसत्कारसे पूजन कर आसन दिया, उसपर आनंदपूर्वक बिराजमान् होकर ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! आपका मन मलीन तन छीन होरहा है, ऐसी क्या चिंता हैं ? आपका धर्म, अर्थ, कर्मसहित नष्ट तो नहीं होगया ॥ ६४ ॥ राजा बोले कि, हे ब्रह्मन् ! मैंने स्त्रीके विवश होकर निर्दयीपनसे सकल सुलक्षणधाम महात्मा अपने पांच वर्षके बालक पुत्रको उसकी मातासमेत घरसे निकालदिया ॥ ६५ ॥ हे नारदजी ! जिसका कोमल मुखारविन्द कुम्हला रहा है, ऐसे अनाथ भूखे थकेहुए सोते बालकको कहीं भेडिया न खाजाय; क्योंकि वनमें अकेला होगा ॥ ६६ ॥ हाय ! मुझ दुरात्मा दुर्जन दुर्भाग्य स्त्रीजितकी ओर तो देखो, वह बालक प्रेमसे मेरी गोदमें चढता था, और मुझ महानीचने नारीविवश हो उसको गोदीमें न लिया ॥ ६७ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! आपने अपने पुत्रकी महिमाको नहीं जाना, वह वडा प्रतापी है और भगवान् उसके रक्षक हैं, इसलिये ऐसे सुतका शोच तुम न करो, क्योंकि "जिसका राम रक्षक, उसका कौन भक्षक" ॥

दोहा–जगमें अनुपम यश करै, हरै सकल भ्रमजाल ।
भयो न है नहिं होयगो, महीमाहिं महिपाल ॥ ६८ ॥

जो लोकपालोंसेभी न होसकै ऐसे २ महाकठिन कर्म करके वह ध्रुव, तुम्हारा यश विस्तार करता हुआ बहुत शीघ्र आवैगा ॥ ६९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, राजा उत्तानपाद नारदजीका यह वचन सुनकर पुत्रका सोच करने लगे. और राजलक्ष्मीका किंचिन्मात्रभी आदर न किया ॥ ७० ॥ ध्रुवजीने देवर्षिकी आज्ञानुसार मथुराजीमें आन यमुनाजीमें स्नान कर वहाँ एक रात्रि उपवास किया फिर सावधान हो एकान्तचित्त कर भगवान्का ध्यान करनेलगे ॥ ७१ ॥ तीन तीन रात्रिके अन्तमें कैथा, और बेरोंके आहारसे अपने शरीरकी निवृत्तिके अनुसार एक मास व्यतीत किया. और अत्यन्त प्रीति

बढाकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविन्दका ध्यान किया ॥ ७२ ॥ दूसरे मासमें ध्रुवजीने छठे छठे दिन आपसे आप गिरेहुए तृण और पत्तोंको खाखाकर उदर पूर्ण किया, और हरिका भजन किया ॥ ७३ ॥ तीसरे मासमें नौ नौ दिनमें जलपान करके उत्तमश्लोक ईश्वरका समाधिसे पूजन किया ॥ ७४ ॥ चौथे महीनेमें बारह २ दिनमें श्वासको जीतकर वायुभक्षणकर श्रीगोविंदके चरणारविंदका ध्यान किया ॥ ॥ ७५ ॥ जब पांचवें मासका प्रारंभ हुआ तब नृपनंदन श्वासको जीत खंभेकी नाईं एक चरणसे खडे होकर परब्रह्म परमात्माका ध्यान करनेलगे ॥ ७६ ॥ इसके अनंतर सब ओरसे मनको खैंचकर हृदय पंचभूत इन्द्रिय अंतःकरणमें भगवत्के रूपका ध्यान करनेलगे, ऐसे कृष्णमय होगये कि, जहां देखें वहां कृष्णही कृष्ण दिखाई देते थे ॥ ७७ ॥ जब महत्तत्त्वादिकोंके आधार प्रधान पुरुषके ईश्वरकी उसने इसप्रकार धारणा की तब एकाएक तीनों लोक कांप उठे ॥ ७८ ॥ जब वह नृपकुमार एकचरणके आधारसे खडारहा तब धरणी उसके अँगूठेसे दबी तो झुकनेलगी, जैसे गजेन्द्र, एक पग दक्षिण धरनेसे नौका झुक जाती है. ऐसे थोडीसी एक ओरको झुकगई ॥ ७९ ॥ अनन्यमन प्राणजीत दशों द्वारोंको रोककर आत्माके साथ अभेददृष्टिसे विश्वात्मा विष्णु भगवान्का उसने ध्यान किया. तब श्वासके रोकनेसे सब विश्वका श्वास रुका और लोकोंका दम घुटनेलगा. तब लोकपाल और सब देवता महादुःखी हुए, और इस भेदको न जान भगवान्की शरणमें गये ॥ ८० ॥ देवता बोले कि, हे भगवन्! सर्वान्तर्यामी चराचरलोकके प्राण क्यों रुक-गये ? इसका कारण हम नहीं जानते. हे शरणागतवत्सल ! हम सब आपको शरण हैं. इस महाविपत्तिसे हमें बचाओ ॥ ८१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, तुम कुछ भय मत करो. एक बालकने तप किया है. सो उसको मैं अभी जाकर निवृत्त करूंगा तुम अपने अपने स्थानको जाओ उत्तानपादका पुत्र ध्रुव तप करनेसे मुझमें उसकी आत्मा सम्यक् प्रकारसे प्राप्त हुई है ॥ ८२ ॥

रागभैरवी–भक्त हैं मेरे जीवनप्रान ।

जब जब भीर परत भक्तनपर धरत हमारो ध्यान ॥
उसी समय सुधि लेत गरुड चढ त्याग खान अरु पान ॥१॥ भक्त० ॥
भक्तहेतु अवतार लेत हूं भूमंडलमें आन ॥
मैं भक्तनको भक्त हमारो करत सदा सन्मान ॥ २ ॥ भक्त० ॥
जो कोइ मेरी शरण लेत हैं मुझको अपनो जान ॥
मेरे हृदय बसत सो निशिदिन सज्जन स्वजन सुजान ॥ ३ ॥ भक्त०॥
मैं अपने पूरण भक्तोंको देत हृदय अस्थान ॥
शालिग्राम नामसे बढकर और कौनसो दान ॥ ४ ॥ भक्त० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थ-स्कन्धे ध्रुवस्य मधुवनसमागमवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा-इस नवमें अध्यायमें, ध्रुव हरिसों वर पाय।
आय भवन सबसे मिले, मातचरण शिर नाय॥

मैत्रेयजी बोले कि, जब उन देवताओंका भय दूर होगया. तब सब भगवान् वासुदेवको प्रणाम कर करके सुरपुरको चलेगये, और श्रीभगवान् गरुडपर चढकर अपने भृत्यके देखनेके लिये मधुवनमें आये॥ १॥ ध्रुव नेत्र बंद किये अपने ध्यानमें मग्न थे, योगसे पकीहुई तीव्रबुद्धि करके हृदयकमलके कोशमें प्रकाशित चपलासम चमकवाले भगवतके चतुर्भुजी स्वरूपको उसने जब हृदयमें न देखा तो एकाएकी चौंक उठा और आंख खोलकर चारों ओरको देखा, तो वही सुन्दर सुहावनी मनभावनी मूर्ति जिसका हृदयमें ध्यान कर रहा था; वही भगवान् सन्मुख विराजमान हैं॥ २॥ उनका दर्शन करके विस्मयको प्राप्त हो, देहको पृथ्वीमें नवाय दंडवत् करी और ऐसा जानपडा कि मानो मनोहर छबिके रसको नेत्रोंसे पियेगा, मुखसे चुम्बन करैगा. भुजाओंसे मिलैगा; इसप्रकार ध्रुवजीने दंडवत् साष्टांग किया॥ ३॥ और कुछ भगवान्‌की स्तुति करनेकी इच्छा थी. परंतु कुछ कहना नहीं जानता था, सो इस भोलेभाले बालकके और सब जीवमात्रके हृदयमें वास करनेवाले भगवान् वासुदेवने उसके मनकी भावना जान हाथ जोडे खडा देख, उसपर अनुग्रह करके पांचजन्य शंख उसके कपोलोंसे छुवादिया॥ ४॥ सो ध्रुवजी उसी समय देववाणीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे जीव और ईश्वरके निर्णयको जान ज्ञान और विज्ञान भक्तिभावसे सब प्रकार प्रगट हैं प्रताप जिनका ऐसे ध्रुवस्थान निवासी भगवान्‌की स्तुति करनेलगे॥ ५॥ ध्रुवजी बोले कि, जो अखिल शक्तिधारक मेरे भीतर प्रवेश कर मेरी सोई हुई वाणीको और हाथ, पाँव, कर्ण, त्वचा, प्राणादिकोंको सर्वशक्तिधारी अपने तेजसे जिवाते हैं, उन भगवान् पुरुषके लिये मेरा नमस्कार है॥ ६॥ हे नाथ! तुम एकहो, अपनी मायारूप अनेक गुणवाली शक्तिसे महदादिक, सब यह जगत् रचकर पीछे उसमें प्रविष्ट होकर इस मायाके असत् गुणोंमें नानारूप होकर प्रकाशते हो, जैसे काष्ठमें अग्नि नानारूप होकर प्रकाश करती है॥ ७॥ हे भगवन्! शरणागत ब्रह्मा आपके दियेहुये ज्ञानसे जैसे सोताहुआ उठता है, ऐसे इस विश्वको रचता है, हे आर्त बंधो! आपके किये उपकारोंका जाननेवाला, मुक्तजनोंकी रक्षा करनेवाला आपके पादमूलको किसप्रकार भूलसक्ता है?॥ ८॥ जन्ममरणसे मोक्ष देनेवाले आपको जो पुरुष विषयादिक कर्मोंके लिये भजते हैं, निःसंदेह वे आपकी मायासे निश्चय भ्रष्टमति हैं, क्योंकि कल्पवृक्षके सदृश आपको पूजकर वे पुरुष मृतककी नाईं, शरीरकरके उपभोगकी चाहना करते हैं. हाय हाय!! अरे मूर्खो!!! विषयजन्य सुख तो प्राणियोंको नरकमेंभी प्राप्त होसक्ता है॥ ९॥ हे नाथ! शरीरधारियोंको जो सुख आपके चरणारविंदके ध्यानसे अथवा आपके वैष्णवजन ब्राह्मणोंकी कथा श्रवणसेभी नहीं होता है, वह आनंद अपनी महिमामें और ब्रह्ममें तौ हैही नहीं फिर यमराजके खड्गरूप कालसे मरनेवाले विमानसे गिरनेवाले सुरपुरवासियोंको कहाँ मिल सक्ता है?॥ १०॥ हे

अनंत ! सदा आपकी निरतर भक्ति करनेवाले, अत्यन्त निर्मल अंतःकरणवाले महात्मा जनोंका सदा सत्संग बना रहै; जिन सज्जनोंके मुखसे आपके गुणोंकी कथारूपी अमृतके पान करनेसे उन्मत्त हो इस महादुःखदाई संसारको विना प्रयास उल्लंघन करूंगा ॥ ११ ॥ हे ईश ! कमलनाभ ! ! जो पुरुष आपके चरणकमलकी सुगंधिके लोभी हृदयवालोंसे सत्संग करते हैं, वे लोग न तो अतिशय प्रिय अपनी देहको समझते हैं. और न इस शरीरसंबंधी सुत, सुहृद्, भवन, धन, स्त्री इत्यादिका अनुसंधान करते हैं ॥ १२ ॥ हे ईश ! हे परम ! ! पशु, पक्षी, पर्वत, द्विज, सर्प, देव, दैत्य, सत्, असत् विशेष-समेत महदादि अनेक कारणवाले आपके केवल इस विराट्रूपको तो मैं जानता हूं, परंतु इससे परे उस परमेश्वरके स्वरूपको नहीं जानता, जहाँ कोई वादविवाद न करसकै और शब्दकाभी ज्ञान नहीं है ॥ १३ ॥ महाप्रलयके समय इस विश्वको उदरमें रखकर सर्वद्रष्टा आप शेषजीकी गोदमें एक पुरुषरूप शयन करते हो, जिनकी नाभिसमुद्रसे उत्पन्न हुए सुवर्णमय लोकको कमलकी कर्णिकामें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए उन भगवान्को मैं बारंबार नमस्कार करता हूं ॥ १४ ॥ तुम नित्यमुक्त सब ओरसे विशुद्ध सदा ज्ञानवान् व्यापक, सर्वान्तर्यामी आदिपुरुष भगवान् त्रिगुणोंके ईश्वर जो बुद्धिकी अवस्था हैं तिन्हें अखण्डित अपनी दृष्टिसे देखते हो विश्वकी स्थितिमें अतिपूज्य सबसे पृथक् होकर तुम रहते हो ॥ ॥ १५ ॥ जिसमें विरुद्धगतिवाले विद्यादिक सर्वशक्तिमान् संक्षेपसे निरंतर उत्पन्न होते हैं उस विश्वके उत्पन्न करनेवाले अनंत, अखण्ड, अनादि, निर्विकार आनंदमय, परब्रह्मके मैं शरणहूं ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे चरणकमलके भजन करनेवालोंके पुरुषार्थ और मूर्तिके आशीर्वाद सब सत्य होते हैं. हे श्रेष्ठ ! यह वार्ता ऐसी है तथापि जैसे नवप्रसूता गौ अपने बछडेको दूध पिलाकर सिंहादिकसे रक्षा करती है, उसीकी नाईं आप अनुग्रह-युक्त करुणारससे कातर होकर मुझसरीखे दीनोंकी सब ओरसे रक्षा करतेहो ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, सत्यसंकल्पवाले बुद्धिमान् ध्रुवने जब इसप्रकार स्तुति करी तब, भक्त-अनुरागी भक्तवत्सल भगवान्ने आनंदित होकर यह वचन कहा ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि. हे राजपुत्र ! तेरे मनका विचार मैं जानता हूं, हे सुव्रत ! तेरा मंगल होगा. हे ध्रुव ! यह पद और दूसरे मनुष्यको आजतक दुःखसेभी नहींमिला ॥ १९ ॥ हे भद्र ! जो प्रकाशमान् ध्रुवस्थान है, वहां और कोई स्थित नहीं है, जिसमें ग्रह, नक्षत्र. तारोंका अर्पित ज्योतिषचक्र है ॥ २० ॥ धान निकालनेका घूमतेहुए पशुके बंधनका जो बीचका खंभ होता है उसको मेढी कहते हैं. सो उसी ज्योतिश्चक्रकी मेढीमें लगेहुए वृषभचक्रवत् स्थित ऊपरके कल्पवासियोंने कल्पना किया है, उसका त्रिलोकीके लय होने-परभी लय नहीं होता. धर्म, अग्नि, कश्यप, शुक्र, वनवासी मुनि अर्थात् सप्तऋषि ॥ ॥ २१ ॥ तारामंडलसहित जिसकी परिक्रमा करके विचरते रहते हैं. हे ध्रुव ! वह सबमें सिद्ध ध्रुवस्थान मैंने तुझको दिया ॥ २२ ॥ अब तू अपने नगरको जा, तेरा पिता तुझको राज्यतिलक देकर वनको जायगा और तू गंधर्वोंसे युद्ध कर अपना मनोरथ पूज धर्मा-

नुसार छत्तीससहस्र वर्षपर्यंत भूमंडलकी रक्षा करेगा ॥ २३ ॥ तेरा भाई उत्तम आखेटको जायगा और वहां उसका प्राण नष्ट होगा, तब अपने पुत्रके ढूंढनेके लिये उसकी जननी वनमें जायगी और वहां जब वह न मिलेगा तो उसीके ध्यानमें दावानलमें जलकर मरजायगी ॥ २४ ॥ तब तू महाचक्रवर्ती हो यज्ञ करेगा और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणा दे. इन्द्रसेभी अधिक विभूतिको प्राप्त करेगा और बहुतसे यज्ञ करके सब सत्य आशीर्वाद यहां भोग अंतमें मेरा स्मरण करेगा ॥ २५ ॥ फिर सब लोग जिसको प्रणाम करते हैं, सप्त ऋषियोंसेभी ऊपर उस मेरे स्थानको जायगा और ऋषि तेरी स्तुति करेंगे जहाँका गया फिर लौटकर यहाँ नहीं आसक्ता ॥ २६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार पूजित हो, अपना स्थान दिखाय उस बालकके देखते देखते गरुडध्वज भगवान्ने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ २७ ॥ यद्यपि वह ध्रुव विष्णु भगवान्के पादारविंदकी सेवामें लब्धसंकल्प मोक्षरूप अपनी मनोकामनाको प्राप्त होगया था तौभी अपने मनमें प्रसन्न न हुआ, क्योंकि श्रीपतिभगवान्के दर्शनका वियोग विचारकर अत्यन्त दुःखी हो अपने नगरकी ओरको चला ॥ २८ ॥ विदुरजी बोले कि, जो विष्णु भगवान्का परमपद सकामपुरुषोंको महादुर्लभ है, सो भगवत्के पदार्चनसे उस सिद्धिको एकही जन्ममें प्राप्त होकर उसने अपने आपको निष्फलसा क्यों समझा ? ध्रुव तो सब अर्थवेत्ता थे ॥ २९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, विमाताके वाक्यरूपीबाणोंसे बिंधे हुए हृदयमें दुर्वचनोंका ध्यान बनारहा और मुक्तिपति भगवान्से मुक्ति नहीं माँगी राज्यकाही अनुराग मनमें लगारहा.

दोहा—राज्य लियो तातें प्रथम, कियो सुदुर्लभ भोग।
अंतसमय हरिधामको, जैहें तजि सब सोग ॥ ३० ॥

ध्रुवजी बोले कि, अनेक जन्मोंसे समाधि लगाकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनंदनादिकोंने जिस पदको नहीं पाया, सो मैं छह मासमें अव्यक्त भगवान्की पादच्छायाको प्राप्त होकर, हाय ! मैं भिन्नमति फिर संसारका संसारमें रहा ॥ ३१ ॥ अहो ! मंदभागा मेरी दुरात्माका भाव तो देखो. संसारनाशक भगवत्के चरणकमलको प्राप्त होकर नाशवान् पदार्थको माँगा ॥ ३२ ॥ मेरे वरदानको सुनकर देवतालोग सहन न करसके, उन देवताओंने मेरी मति हरली. हाय ! मेरी मति मंद होनेका कारण यही है, जो मुझ दुरात्माने नारदजीका वचन न माना ॥ ३३ ॥ जगत्में कोई दूसरा मेरा विरोधी नहीं था तौभी दैवीमायाके अधीन होकर जैसे सोये पुरुषको स्वप्नमें द्वितीय अनेक असत्वस्तु भाई चाचाका जो हृदयमें शत्रुभाव लगरहता है, वैसे क्लेशसे मैंभी वृथा संतापको प्राप्त होता हूं ॥ ॥ ३४ ॥ जैसे आयुक्षीणकी चिकित्सा करना वृथा है, इसीप्रकार मैंने जो यह माँगा है सो सब वृथा है, क्योंकि मुझ कर्महीन अभागेने विश्वात्मा विश्वाधार जो अनेक जन्म तप करनेसे अत्यन्त कठिनतासे प्रसन्न होते हैं, उन सर्वशक्तिमान् भगवान्को मैंने प्रसन्न करके फिर इस नाशवान् संसारहीको माँगा धिक्कार धिक्कार है मेरी इस अज्ञानताको,

सब ठौर भाग्यही बलवान् है, न तप है, न विद्या है ॥ ३५ ॥ भगवान् तो मुझको परमधाम देते थे और अपनी समान बनाते थे, परन्तु मुझ भाग्यहीनने अपनी शठतासे शठ बन मान मांगा, जैसे निर्धनपुरुष चक्रवर्ती राजाको प्रसन्न करके धनधान्यको छोड धानोंका तुष मांगै, इसप्रकार मैंने मान मांगा इस बातपर एक दृष्टांतका स्मरण हुआ. "चार पण्डित रोजगारके लिये अपने घरसे परदेशको चले, उनमें एक ज्योतिषी, दूसरा नैयायिक, तीसरा व्याकरणी, चौथा वेदान्ती था. वे एक नगरमें पहुँचे और सबने यह विचार किया कि राजासे मिलना चाहिये; ज्योतिषीजीसे कहा कि, कोई श्रेष्ठ मुहूर्त विचारो. ज्योतिषीजीने कहा कि, आधीरातका मुहूर्त बहुत श्रेष्ठ है, यह विचार चारों आधीरातके समय राजभवनको चलदिये, वहांका दरवाजा बंद होगया था, बहुत सोच विचार किया, अब क्या करैं ? निदान परनालेके मार्ग होकर प्रवेश किया. देखा तो वहां एक धानकी भूसीका ढेर पडा है. सब बोले कि, इसीको लेचलो. हमारी भैंसकी सानीकेही काम आवैगी, यह कह चारोंने भूसी बांधी. व्याकरणी बोले कि; राजासे तो भेंट हुईही नहीं, भाई ! राजासे भेंट करलो, जाकर देखा तो राजा पलँगपर सो रहे हैं इनको निहार राजा पुकार उठा कि चोर हैं ! चोर हैं ! पकडलो यह बोले कि हम चोर नहीं हैं, हम पण्डित हैं, आपके दर्शन करनेके लिये आये हैं, तब राजाने दण्डवत् करके कहा कि आपने बडे कुसमय शुभागमन किया. पण्डित बोले महाराज ! मुहूर्त इसी समय का था फिर राजाने कहा कि आपकी जो इच्छा हो सो मांगो, पंडितोंने कहा केवल आपके दर्शनोंकीही आकांक्षा थी और लेनेके लिये तो पहलेही भूसकी गठरिया बांधचुके, राजाने कहा तुम्हारी इच्छा, मार्गमें आनकर चारोंने बडा पश्चात्ताप किया" सोई गति ध्रुवजीकी हुई ॥ ३६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे तात ! आपकी समान जो भगवान् वासुदेवके चरणमूलकी सेवा करने वाले दास हैं, वे दास्यभावके बिना और पदार्थकी इच्छा नहीं करते. क्योंकि मनकी समृद्धि तो यदृच्छासेही प्राप्त होजाती है ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ नगरके निकट जब ध्रुव आया तो दूतोंने राजासे कहा कि, महाराज ! आपका पुत्र ध्रुव आता है, पुत्रका आना सुन राजाको विश्वास न आया, जैसे मरेहुएके आनेका वृत्तांत सुनकर कोई विश्वास नहीं करता है, ऐसेही पुत्रका आना सुन राजाने श्रद्धा न करी और कहा कि मुझ अमङ्गलीकके मंगल कहांसे आया ? ॥ ३९ ॥ फिर नारदजीके वाक्योंमें विश्वास करके आनन्दके वेगसे हर्षित हो; ध्रुवजीके आनेका समाचार सुन दूतोंको बहुत धन और हार दिये ॥ ४० ॥ सुन्दर २ सुवर्णके रथ उत्तम उत्तम वस्त्रोंसे मढे, जिनमें श्यामकर्ण घोडे जुते, ऐसे ऐसे सुहावने मनभावने रथोंपर बैठ बैठकर, ब्राह्मण, गुरु, कुलवृद्ध, मन्त्री, सज्जन, बन्धुजनोंको साथ लिया ॥ ४१ ॥ और शंख, दुंदुभी बाँसुरी बजाते ब्राह्मण वेद ध्वनि करते पुत्रके दर्शनकी उत्कण्ठासे राजा शीघ्र पुरसे चला.

चौ०-कनककलश शिर धरि पुरनारी * दधि तंदुल दूर्वा भरि थारी ॥
चलीं करत कल मंगलगाना * साजि शृंगार अनेक विधाना ॥

रोरी चन्दन कुंकुम केशर * छिरकत चलींजात मगसुन्दर ॥
कहतजात सब चंपकबरनी * धन धन धन सुनीतिकी करनी ॥
गयो भयो सुत फिर आयो है * मनहु सुनीति बहुरि जायो है ॥४२॥

सुनीति और सुरुचि दोनों राजा उत्तानपादकी स्त्री सुंदर शृंगार करकर सुवर्णकी पालकियोंमें बैठ बैठ उत्तम कुमारको संग ले ध्रुवकी अगवानीको चलीं ॥ ४३ ॥ उपवनके समीप ध्रुवको आता देख राजा शीघ्र स्यन्दनसे उतरकर प्रेमविवश पुलकायमान हो पुत्रके पास गया ॥ ४४ ॥ और मनमें अत्यन्त उत्कलित होनेके कारण श्वास लेता, भगवत्के चरणस्पर्शसे जिस ध्रुवके सब पाप नष्ट होगये थे, उस अपने सुतसे भुजा पसारकर मिला ॥ ४५ ॥ और वारंवार उसका शिर सूँघकर राजाने शीतल नेत्रोंके जलसे सुतको स्नान कराया और राजा उत्तानपादके मनके सब मनोरथ सुफल हुए ॥ ४६ ॥ फिर ध्रुवने पिताके चरणोंको दण्डवत् प्रणाम किया, राजाने बहुत प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, फिर विमाताके पदोंमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया जो ध्रुव सज्जनोंमें अग्रणी और आदर सन्मान पानेवाला था ॥ ४७ ॥ अपने पांवोंमेंसे उस ध्रुवको उठा हृदयसे लगाकर नेत्रोंसे आंसू बहाय गद्गदकण्ठसे सुरुचि बोली कि, हे पुत्र ! युग युग जियो ॥ ४८ ॥ जो सुरुचिने ध्रुवसे अत्यन्त प्रेम प्रीति भरी बातें करीं तो क्या आश्चर्य है ? जिसके ऊपर आप भगवान् हरि मैत्री आदि गुणोंसे प्रसन्न होते हैं. उसको सब प्राणीमात्र नमस्कार करते हैं जैसे जल आपसे आप नीचा ओरको ढला चलाजाता है ॥ ४९ ॥ उत्तम और ध्रुव दोनों प्रेम विवश परस्पर मिलनेसे रोमांचित हो नेत्रोंसे अश्रुधारा बहानेलगे ॥ ५० ॥ फिर सुनीति ध्रुवकी जननीने अपने प्राणोंसे प्यारे सुतसे मिलकर हृदयकी दाहको शान्त किया, और अंगके स्पर्शसे परमानन्दित हो मनसे सब विषाद तज दिया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे विदुर ! उस समय सुनीतिके स्तनोंसे तो दूध टपकने लगा और नेत्रोंसे निर्मल जलकी धारा बहने लगी, उस समय वीरपुत्रको जननी दोनों धाराओंसे वारंवार सींच रहीथीं ॥ ५३ ॥ उस सुनीतिकी सब लोग सराहना करने लगे कि, बहुत अच्छा हुआ जो भक्तोंके दुःखका हरनेवाला, समस्त भूमण्डलका रक्षक, पांचवर्षका तेरा पुत्र नगरसे निकल गया था, सो धरणी और धर्मका आधार कुशलपूर्वक तुझको मिला ॥ ५४ ॥ निश्चय होता है कि भगवान् वासुदेव प्रणतोंके दुःखभञ्जन, भक्तमनरञ्जन, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविन्दका तैंने भली भाँति आराधन किया है, जिनके ध्यान करनेवाले वीरपुरुष महाकठिन मृत्युको जीत लेते हैं ॥ ५५ ॥ इसप्रकार जिस ध्रुव कुमारको वारंवार लाडलडाते और देख देख सुख पाते थे, उस ध्रुवको उत्तम कुमारसमेत हथिनीपर चढाकर राजाने आनन्दपूर्वक नगरकी ओरको प्रविष्ट किया, और सब लोग आगे २ स्तुति करते चले ॥ ५६ ॥ उस नगरमें जहां तहां मरकतमणि लिस रहे थे तोरण बन्दनवार द्वारद्वारपर विराज रहीं थीं, समूहके समूह केलेके खम्भोंके जहांके तहां वैसेही श्रीफल सुपारीके छोटे छोटे वृक्ष जहां शोभा दे रहे थे ॥ ५७ ॥ आम्रपल्लव, वस्त्रमाला और मोतियोंके लम्बे लम्बे हार जिनमें

लटक रहे थे, द्वारद्वारपर दीपोंकी जगाज्योति होरही थी, उनके प्रकाशसे सुवर्णके कलश कलशियां बिजलीसी झमझमा रही थीं ॥ ५८ ॥ नगरकोट, कोटद्वार; गोपुर, मन्दिर मन्दिर पर सुन्दर सुन्दर सुवर्णकी सामग्री सुशोभित थी और सब ओरसे श्रीमत् विमान शिखरोंकी कांतिसे देदीप्यमान थे ॥ ५९ ॥ जहां सुन्दर सुन्दर चौबटियां, वांथी, अटा, अटारी; और मार्ग सेवतीके जलसे छिडका हुआ चन्दनसे चर्चित, खीलैं, चावल, पुष्प, फल, तंदुल, लोग बखेर रहे थे और भेटें धरी थीं ॥ ६० ॥ दधि, दूर्वा, सरसों, फल, फूल, अक्षत थालोंमें धरकर पुरकी स्त्रियें धाय धायकर ध्रुवसे मिलनेको आतीं थीं ॥ ६१ ॥ और अत्यन्त स्नेहसे सत्य आशीर्वाद देती थीं उन कोकिलकण्ठियोंके मनोहर गीतोंको सुनतेहुए ध्रुवजी पिताके भवनमें चलेगये ॥ ६२ ॥ महामणियोंके समूहयुक्त उस परमोत्तम मन्दिर में पिताने बहुत लालन किया; स्वर्गमें देवता जैसे वास करते हैं, ऐसे पिताके भवनमें ध्रुवजी निवास करनेलगे ॥ ६३ ॥ जिसमें हाथीदांतके पायोंका पलंग, सुवर्णकी सामग्री; दूधके फेनकी समान शय्या बिछी हुईथी; बैठके आसनोंकी शोभा होरही थी. और सब कार्य की सामग्री ठौर ठौर धरीथी ॥ ६४ ॥ बिल्लौरकी भीतें जिनमें महामरकतमणिके आले बनेहुए उनमें मणियोंके दीपक जहां तहां धरे जगजगा रहेहैं और स्त्रीरत्न जहाँ बहुत इकट्ठे हैं ॥ ॥ ६५ ॥ अत्यन्त रमणीक जहां बाग लग रहे हैं तहां विचित्र कल्पद्रुम समान वृक्षोंपर रंग-रंगके पक्षियोंके जोडे अपनी अपनी मनोहर बोलियें बोल रहे थे और मतवाले भ्रमरोंके झुण्डके झुण्ड गुंजार रहेथे ॥ ६६ ॥ कनकमयी बावडी तडागोंमें निर्मल नीर झकोल रहे थे वैदूर्यमणियोंकी सुन्दर शोभायमान सोपान चारों ओर बन रही थी. पद्म. कंज, उत्पल, कह्लार जिसमें चार प्रकारके कमल फूल रहे थे और हंस, सारस, बक, चकवे, चकवियोंके समूहके समूह किलोलें कर रहे थे. सुरेन्द्र नागेंद्र और किसी नरेंद्रके जो विभूति आजतक नहीं हुई, सो सब ऐश्वर्य भगवानकी कृपासे ध्रुवजीके नगरमें उपस्थित था ॥ ६७ ॥ उत्तान-पाद राजा ऋषिपुत्रका अद्भुत प्रभाव कानोंसे सुनकर और नेत्रोंसे देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ. "ध्रुवजीको हरिभक्त जानकर और अपनी वृद्धावस्था देखकर प्रजा और मंत्रियोंको बुलाकर बोला कि, अधिकार तो उत्तम कुमारका है वह श्रेष्ठ पुत्र है परंतु मेरे मनमें यह विचार है कि, राज्यपद ध्रुवजीको दूं क्योंकि ध्रुवमें सब गुण हैं.

दोहा-रूपवान गुणवान अति, शीलवान मतिवान।
भटप्रधान छोटा कुँवर, भूरिभक्त भगवान ॥

सचिव और प्रजागण एकबार पुकार उठे कि, हे पृथ्वीनाथ! आपने ठीक विचार विचारा ध्रुवजीकोही राज्याभिषेक देना चाहिये, प्रजागणकी सम्मतिसे सबको अनुरागी देख राजाने राज्यअधिकार दे पृथ्वीका पति ध्रुवको किया ॥ ६८ ॥ और राजा उत्तानपाद अपना देह वृद्ध जानकर सबसे विरक्त हो अपनी आत्माकी गति विचार करके तप करनेके लिये वनको चलदिया ॥ ६९ ॥

भजन-तप है परम धर्म सुखदायक ॥ तपबलसे अज सृष्टि रची है; तपबल भये विनायक ॥ १ ॥ तपहीते भये शेष सहसमुख, शंकर संकट-घायक ॥ तपहीसे खलदलघालक, हनुमान भये हरिपायक ॥ २ ॥ तपही से भये सनकसनंदन, नारवली सुरनायक ॥ तपते शालिग्राम और कोउ, दूजो नाहिं सहायक ॥ ३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे ध्रुवस्य भगवत्कृपया पुनाराज्यप्राप्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-इस दशवें अध्यायमें, ध्रुव अलकापुर जाय ।
जैसे मारे यक्ष सब, अति वीरता दिखाय ॥

मैत्रेयजी बोले कि, शिशुमार प्रजापतिकी भ्रमी नाम्नी कन्यासे ध्रुवजीने विवाह करके उसमें कल्प और वत्सर नाम दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ दूसरी स्त्री वायुकी कन्या इला नाम्नीसे महाबली ध्रुवजीने उत्कल नामक पुत्र उत्पन्न किया और उसी रानीसे एक रत्नरूप कन्या उत्पन्न करी ॥ २ ॥ उत्तम कुमारने अपना विवाहही नहीं किया था, वह पहलेही हिमालयपर्वतके भीतर आखेट खेलनेको गया था एक बलवान् यक्षने उसको मार-डाला और उसकी माताभी उसकी समान गतिको पाकर मरगई ॥ ३ ॥ जब ध्रुवजीको मालूम हुआ कि, उत्तमकुमार यक्षोंके हाथसे मारागया तब कोप अमर्ष शोकमें मग्न हो जयदायक, रथमें बैठकर अकेलेहीने पुण्यजनोंके निवासस्थल अलकापुरपर चढाई की ॥४॥ रुद्रके अनुचर जिसमें वास करैं ऐसी उत्तरदिशामें जाकर हिमालयकी गुफामें ध्रुवजीने अलकापुरी देखी.

दोहा-जहँ कोटिन हरगण वसहिं, कोटिन गुह्यक वीर ।
कोटिन राक्षस यक्ष तहँ, फिरैं महारणधीर ॥ ५ ॥

तब बड़ी बाहुवाले ध्रुवने पांचजन्यसम शंखध्वनि करी, जिसके शब्दसे आकाश और दशों दिशा गूँज उठीं, मानों वज्रपात हुआ. हे विदुर! उद्विग्नमन करके यक्षोंकी स्त्रियें अत्यन्त भयभीत हुईं ॥ ६ ॥ तब शंखनाद सुनकर कुबेरके महाबली उपदेव, महाभट, गुह्यक, राक्षस, गंधर्वोंने प्रथम तो पृथ्वी और पर्वतोंकी ओर देखा जब कुछ दृष्टि न आया तो क्रोधवंत हो कुबेर बोला कि, ऐसा कौन बली है, जो हमसे युद्ध करने आया? और जिसने शंख बजाया?

दोहा-ताहि मार यमलोकको, दीजो तुरत पठाय ।
तासु शीश तुम काटके, दीजो मोहि दिखाय ॥

चौ०-सुनत सुभट धनपतिकी वानी * चले सकल गहि आयुध पानी ॥
कोउ तुरंग कोउ चढे मतंगा * कोउ स्यंदनमें कंध निषंगा ॥
औरहु विविध भाँतिके वाहन * विविध भाँति आयुध अरिदाहन ॥

विविध भाँति कर शोर कठोरा * विविध भाँतिके आनन घोरा ॥
हर अनुचर गंधर्वहु नाना * औ गुह्यक अतिशय बलवाना ॥
विद्याधर चारण औ यक्षा * औरहु भूमि भयानक रक्षा ॥
निकले सकल नगरसे जबहीं * लखे अकेले ध्रुवकहँ तबहीं ॥
लम्बी भुजा सोमसम आनन * मानहुँ ठाढ कुपित पंचानन ॥
निपट निडर डर नेकु न मनमें * तेजपुंज सोहत स्यंदनमें ॥

ध्रुवजीको देख यक्षपति बोला कि, सावधान होजाओ, यह वीर कोई बडा बलवान् तेजवान् है; जो सिंहकी समान निःशंक अकेला चलाआता है, भयका नामभी इसके निकट कहीं नहीं दिखाई देता–

तोमर छन्द ।

गंधर्व गुह्यक सर्व, राक्षस पिशाच अखर्व । काढिकै नगरसे वीर, लखि ध्रुवहि ध्रुव धुरधीर ॥ कोई काढकर करवाल, निजअंग ढापेढाल, । कोउ लिये शूल अतूल, धाये चलावनहूल ॥ कोउ परिघ परस प्रचंड, कोउ दौर दंडन दंड । कोउ लिये चक्रन बक्र, कोउ धनुषवाणन चक्र ॥ कोउ तोमरानि अतूल, जे करत अरि निर्मूल । कोउ भिंदिपाल कराल, कोउ गदा परमविशाल ॥ कोउ लिये मूशल घोर, कोउ पास लै बरजोर । कोउ लिये वृक्षन हाथ, कोउ शैल धरि निजमाथ ॥ कोउ लिये पीनपषान, कोउ वमत वदन कृशान । कोउ नख निकासे पैन, कोउ तकत तिरछे नैन ॥ कोउ गहे परशु महान, कोउ शक्ति भट बलवान । कोउ लिये भुशुंडी शूर, कोउ लिये शतघ्नी क्रूर ॥ कोउ लिये मल्ल तबल्ल, कोउ सूध कीन्हें भल्ल । धाये सबै तेहि ओर, जहँ ठाढ भूपकिशोर ॥ कोउ मकरआनन घोर, कोउ गजवदन बरजोर । कोउ खल खरानन फार, कोउ गिद्धकी अनुहार ॥ कोउ वीर बदनवराह, कोउ मृगनमुखस उछाह। कोउ सकल अंगनि नंग, धाये करन हठजंग ॥ कोउ कृशित लंब शरीर, दृगकूपसरिस गँभीर । धरु मारु धरु धरु मार, चहुँ ओर करहिं पुकार॥ बहु योगिननि जम्हात, कर लिये खप्पर जात । कोउ तहँ पिशाचिनि क्रूर, दोउ हाथमें लिये धूर ॥ कोउ करहिं कटकट दंत, कोऊ ठठाय हसंत । कोउ करहिं खरसम शोर, कोउ धावती चहुँ ओर ॥ कोउ चल-हिं गति अतिबंक, किलकार करहिं निशंक । कोउ खड्ग खप्पर धार, कज्जल अचल आकार ॥ यहि भांति योगिनि जूह, धाईं करत अति हूह। तहँ भयो धुन्धाकार, रवि छिपो तेज अपार ॥ एकबार करिके शोर, धाये ध्रुवकी ओर ॥

दोहा-धावत आवत रिपुन लखि, घोर मचावत शोर।
अतिनिशंक भूपतिसुवन, तानेउ धनुष कठोर ॥ ७ ॥

ध्रुवजी प्रचंड कोदंड हाथमें लेकर सारथीसे बोले कि, शीघ्र रथको ले शत्रुसेनाकी ओरको चल, आज इस शत्रुदलको हन, मनकी अभिलाषा पूर्ण करूंगा, नृपनंदनके गंभीर वचन सुन सूतने रथको ऐसा दौडाया कि, जिसको देख पवनभी मनमें लज्जित होता था; जातेही धनुषटंकार कर मार मार मचादा, और रथको ऐसे दौडाता फिरता था, जैसे घनमें दामिनी दौडती है कभी यहां कभी वहां बाणोंसे चारों ओर ऐसा अंधकार छागया कि, वीरोंको दिशाओंका ज्ञानभी नहीं रहा, कि कहां है पूर्व और कहां है पश्चिम, एक एक यक्षके तीन तीन बाण एकसंग मारे ॥ ८ ॥ जब उनके मस्तकोंमें तीक्ष्ण बाणोंके घाव लगे तब सब अपने आत्माको पराजय मानकर ध्रुवके पराक्रम और वीरताकी प्रशंसा करने लगे ॥ ९ ॥ परन्तु ध्रुवजीकी धीरता और वीरता यक्षोंसे सही नहीं गई, जैसे भुजंगके अंगमें पांव लगनेसे वह उसका सहन नहीं करसक्ता, इसीप्रकार यक्षोंके हृदयमें क्रोधकी दावानल भडकी और महाक्रोधवंत हो ध्रुवसे द्विगुण बाण चलानेलगे, क्योंकि इनको तो अपना बदला लेना था ॥ १० ॥ परिघ, निस्त्रिंश, पाश, शूल, खड्ग, परशु, शक्ति, ऋष्टि, भुशुंडी और विचित्र पक्षोंवाले विशिख वर्षानेलगे ॥ ११ ॥ एक लक्ष तीस सहस्र १३०००० यक्षोंने ध्रुवजीको चारों ओरसे आनकर घेरलिया और अपने अपने रथोंपर बैठे अत्यन्त कुपित हो बाण चला रहे थे ॥ १२ ॥ उस समय उत्तानपादका पुत्र बहुत शस्त्रोंसे ऐसे ढकगया जैसे अधिक वर्षा होनेसे सुमेरुपर्वत घटामें छिप जाता है ॥ १३ ॥ जो सिद्धलोग आकाशमें विमानोंपर बैठे देख रहे थे, उनमें बडा हाहाकार शब्द हुआ कि हाय! आज सर्वनाश होगया, आज मनुवंशका मार्तण्ड पुण्यजनरूपी सागरमें डूबगया ॥ १४ ॥ जय चाहनेवाले यातुधान जब युद्धस्थलमें जय जय शब्द उच्चारण करने लगे उस समय ध्रुवके रथका एक ऐसा प्रकाश हुआ, जैसे कुहरामेंसे सूर्य निकलता है और दशों दिशाओंमें प्रकाश होजाता है ॥ १५ ॥ उस समय ध्रुवजीने अपने दिव्यधनुषकी टंकार कर, द्वेष और खेदके उत्पन्न करनेवाले शत्रुओंके शस्त्रसमूहोंको अपने तीव्रबाणोंसे काटकर ऐसे बखेर दिया जैसे पवन मेघोंके समूहको खंड खंड कर देता है ॥ १६ ॥ ध्रुवके धनुषसे जो बाणोंके निकर निकलते थे, वे यक्षोंके कवचोंको भेदकर उनके शरीरके भीतर ऐसे घुस जाते थे जैसे वज्र पर्वतको तोडकर भीतर प्रवेश करता है, एक एक बाण दश दश यक्षोंके हृदयको विदीर्ण कर निकल जाताथा, ऐसे लक्षों बाण ध्रुवने यक्षोंको मारे ॥ १७ ॥ कंचनके कुंडल जिनमें झलक रहे ऐसे ऐसे सहस्रशिर शरोंसे छिदे हुए, हेमतालसम जंघा, कंकण, भुजबंद, जिनमें शोभित ऐसी सहस्रों भुजायें काटडालीं ॥ १८ ॥ हार, केयूर, मुकुट, पगडियोंसे ढकीहुई संग्रामभूमि योद्धाओंका मन मोहनेवाली ऐसी अनुपम शोभायमान् दिखाई देती थी मानों नये नये शृंगार किये आनन्दमें मग्न है ॥ १९ ॥ क्षत्रियवंशउजागर जो ध्रुवजी हैं, उनके तीक्ष्ण बाणोंसे जिनके अंग कट गये थे ऐसे वीर

पुरुष रणस्थलमें पडेथे और जो मरनेसे बच रहेथे वे संग्रामांगणसे ऐसे भागगये, जैसे पंचाननको देखतेही हाथियोंके यूथके यूथ पलायित होजाते हैं और एक ओर योगिनी अलगही बाणोंकी मारी आर्तशब्द पुकार पुकार घूम घूम पृथ्वीपर गिरतीथीं, और शरीरको कुछ सुध बुध नहीं थी, किसीके केश मुडगये थे, किसीके कान उड गये थे, किसीके दाँत टूट गये थे, किसीके कपोल फूट गये थे, किसीकी नाक कट गईथी, किसीकी खोपडी फट गईथी, किसीके हाथ पांवही बाणके साथ आकाशको चले गये थे, कहीं रथोंका चूराचूरा हुआ पडा था, कहीं सहस्रों वीर अंग भंग हो लोट रहे थे, कहीं मरेहुए हाथी पर्वतसे जान पडते थे, रणस्थलमें चारों ओर हाहाकार शब्द सुनाई आता था, ऐसा कोई वीर पुरुष नहीं था, जो ध्रुवके धाराप्रवाह बाणोंको रोकसके, न कोई सायक चलासक्ता था न कोई ध्रुवजीके धोरे जासक्ता था, जहां यक्षोंका समूह ध्रुव देखता था वहां ऐसा बाण मारता था कि चारों ओर काईसो फटजातीथी, जब यक्षोंने हार मानी, तो सब अपना मरण विचार एकवारही ध्रुवपै ऐसे धाये जैसे दीपशिखापर पतंग दौडते हैं, उस समय ध्रुव धनुषको टंकार मण्डलाकार कर चारों ओरको बाण चलाने लगा और दशों दिशाओंको बाणोंसे आच्छादित करदिया, तब तो सब यक्षोंके तेजका सूर्य अस्त होगया.

दोहा-गिरत उठत झूमत झकत, उमर समरमें यक्ष।
पुनि पुनि धावत ध्रुवहिपर, मानहु मृत्यु प्रत्यक्ष॥

छंद किरवान।

जहँ लक्षन प्रत्यक्ष, यक्ष आयुधमें दक्ष, धाये बोल भक्ष भक्ष, पक्षवानसे दिखान। कोई मच्छपै सवार, कोई कच्छपै सवार, कोई अक्षविकरार, बीर राक्षसमहान कोईकहैगच्छगच्छ, कोईकहैरक्षरक्ष, तेगकाढेस्वच्छस्वच्छ कियेलक्षनृपजान। तहँ तेज अंशुमान, धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिर जहांन, बान झारे बेप्रमान ॥ १ ॥ जहँ मुंडनके झुंड, भरे शोणितके कुंड, परे रुंड खंड खंड, खंड खंड दरसान। जहँ आयुध उदंड, हने वीर बरबंड, भरे भारी हैं घमंड, परचंड सोरबान ॥ जहँ टोकैं दौरदंड, दंड पायकै अदंड, धुंधकार भौ अखंड, मार्तण्डहू छिपान। जहँ तेज अंशुमान, धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिर जहाँन, बान झारे बेप्रमान ॥ २ ॥ जहँ कुंभिनकरार, घाटबाजि बेशुमार, वीरबारके से वार, मुंडपुंडरीक भान। जहँ रतनकतार, अहे कंककर अपार, मीन तेग और कटार, नक्रचक्र है महान ॥ जहँ शोणितकी धार, भुज भुजगविहार, ढाल कच्छ अनुहार, शिशुमारस्य हनान। जहँ तेज अंशुमान, धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिर जहान, बान झारे बेप्रमान ॥ ३ ॥ जहँ भूत औ बैताल, रूप धारे विकराल, शोर करत कराल, देख परै चहूंघान । जहँ लै लै करवाल, रोक बाननको ढाल, पिले जात मनों काल, नैन लाल कोपवान ॥ जहँ वीरता विशाल, बढ़ै

फूल फल गाल, हटें नेकहू न हाल, भरे भेदजात मान। जहँ तेज अंशुमान, धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिर जहान, बान झारे बेप्रमान ॥ ४ ॥ जहँ गिद्ध हरषान, लगे मांस मेद खान, कहूं आंतले उडान, काक कंक दरशान। जहँ शोणितको पान, करि जंबुक अघान, करैं भूत गणगान, जुरी योगिनी जवान॥ जहँ कंध धै कयान, ते कबंध तेगवान, धावें मध्य मैदान, मचा घोर घमसान। जहँ तेज अंशुमान, धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिर जहान, बान झारे बेप्रमान ॥५॥ जहँ कोई कहै आउ, कोई कहै जाउ जाउ, कोई कहै खाउखाउ, खाउ वैरी बलवान। जहँ कोई कहै धाउ, कोई कहै लाउ लाउ, कोई कहै मारु घाउ, यक्ष वृद्ध औ जवान॥ जहँ बाढो है उछाउ, देहि मूछनपै ताउ, भूलो शत्रुमित्र भाउ, देखे दोउ दर्प्पवान। जहँ तेज अंशुमान, धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिर जहान, बान झारे बेप्रमान ॥ ६ ॥ जहँ शीश नट्टवट्ट, से अनेक फट्टफट्ट, फूटैं भट्टभट्ट भट्ट, गिरैं भूमि भासमान। जहँ उठैं झट्टझट्ट, पिलैं वीर ठट्ट ठट्ट, गदा चलैं चट्ट चट्ट, चट्ट पट्ट पट्टवान॥ जहँ रक्त शर घट्ट, घट्ट शोणितको घट्ट, घट्टयोगिनी गरट्ट, करं घट्ट घट्टपान। जहँ तेज अंशुमान, धराधीश धीरवान. ध्रुव जाहिर जहान, बान झारे बेप्रमान ॥ ७ ॥ जहँ युद्धबीच आय, वीरमुंडन उठाय, लेहि मालन बनाय, सुख छायकै इसान। जहँ वीरन भगाय, कोई भागो न बचाय, कोई लोथिन लुकाय, रहे मृतकसमान ॥ जहँ यक्षसमुदाय, मध्य मचो हाय हाय, प्रलय होतसी दिखाय, भयो सोच देवतान। जहँ तेज अंशुमान, धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिर जहान, बान झारे बेप्रमान ॥ ८॥

दोहा-ध्रुव धरेश शरधारसे, हने वीर बरियार।
भागत भे सब समरसे, करकर हाहाकार॥
जैसे मत्तमतंगदल, मृगपति देत भगाय।
तैसे राक्षस यक्षगण, ध्रुव दीने बिचलाय॥ २०॥

मनुकुलभूषण ध्रुवजीने जब उस महासंग्राममें किसी शस्त्रधारीको खडा न देखा तो शत्रुकी पुरीमें जानेका विचार किया फिर मनही मनमें विचारा कि, ये गुह्यकलोग बडे मायावी होते हैं न जानिये क्या उपद्रव कर उठावैं। इनके कर्तव्यको मैं नहीं जानसक्ता. हे सारथे! तेरी क्या इच्छा है? मैं नगरमें जाऊं वा न जाऊं? सारथी बोला कि; हे नाथ! कदापि भूलकरभी नगरमें पैसार न कीजिये, क्योंकि माया रचनेमें ये यक्ष बडे छली और बडे बली हैं कोई न कोई छल अवश्य करैंगे तो फिर जीता हुई बाजी हाथसे जाती रहेगी और सदा पश्चात्ताप मनमें बना रहेगा ॥ २१ ॥ ध्रुव विचित्र रथी अपने सारथीसे यह बातें कर रहे थे और वैरियोंके पुनरुद्योगकी शंकासे यह यत्नवान् हो रथको रोके हुए खडा

था कि, इतनेमें अनाश्रित समुद्रके गर्जनेकेसा शब्द सुनाई दिया और चारोंओरसे आँधी-कीसी धूर उडती दृष्टि पडी, पवन ऐसे वेगसे चलनेलगे मानो आजही सब भूमिके भूधरोंको उखाडकर बगेल देंगे ॥ २२ ॥ एक क्षणमात्रमें सब गगनमंडल मेघसमूहोंसे व्याप्त होगया, संसारमें अंधकार छागया, चारों ओर अनेक प्रकारकी दामिनी दमकने लगीं, महाभयानक वज्रपात होने लगा, और बादलके गर्जनेका ऐसा महाघार शब्द होता था मानों आजही प्रलय होजायगी ॥ २३ ॥ हे पापरहित विदुर ! क्षणमात्र पश्चात् आकाशसे रक्तकी धारा वर्षनेलगी, फिर पुरीष, पीब, मूत्र, चर्बी, मांसादिक अधम पदार्थोंकी वृष्टि होनेलगी, और ध्रुवके आगे आनकर कबंध गिरनेलगे ॥२४॥ फिर आकाशमें एक बडा लम्बा चौडा पहाड दिखाई दिया, मानों चारों दिशाओंमें एक वितान तान दिया है फिर उसमेंसे लाखों पाषाण गिरनेलगे, फिर अखंड वृक्षोंकी वर्षा होनेलगी, फिर अत्यन्त भयानक अग्निके अंगारके अंगारे आनेलगे, फिर दशों दिशाओंसे गदा, परिघ, मुसल, खड्ग और महाकुठार कुठार गिरनेलगे ॥ २५ ॥ फिर कुपित हो वज्रसमान श्वास लेतेहुए सहस्रों सर्प फण उठाये फुंकारते कुपित हो आँखोंसे अग्निकीसी लपटें निकालते ध्रुवपैंको धाये, फिर मतवाले मतंग, सिंह, व्याघ्र, वराह, ऋक्ष, श्वानोंके समूहके समूह चारों ओर दौडने लगे, फिर दो दो शिरवाले पांच पांच शिरवाले, दश दश शिरवाले, पांच भुजावाले, दश भुजावाले, बीस भुजावाले तीन चरणवाले, छह चरणवाले, नौ चरणवाले अनेक अनेक भाँतिके भूत, प्रेत, वेताल आनेलगे और ध्रुवजीको भय दिखानेलगे ॥२६॥ फिर समुद्र भयंकर लहरें लेता चारों ओरसे भूमिको डुबाता भूधरोंको गिराता चला आता है, और प्रलयकालकी समान महाघोर शब्द करता हुआ भयानकरूपसे ध्रुवजीके समीप आगया ॥ २७ ॥ कायरोंके ऐसे अनेक प्रकारके तीक्ष्ण त्रास दिखानेके लिये असुरोंने अपनी आसुरी माया रची ॥ २८ ॥ असुरोंने जब ध्रुवजी परं अत्यन्त दुस्तर मायाओंका प्रयोग किया, तब ऋषीश्वर और मुनीश्वर अत्यन्त कृष्णभक्त ध्रुवको दुःखी देखकर आकाशसे पुकार पुकार मंगलवाची शब्द कहनेलगे ॥ २९ ॥ सप्त ऋषि बोले कि, हे ध्रुव ! हे उत्तानपादके कुमार ! ! कुछ शंका न कीजिये श्रीगोविन्दके चरणारविन्दसे ध्यान लगाओ, वह शार्ङ्गधन्वा धरनहारे भृत्योंके भय हरनहारे, वासुदेव भगवान् शरणागतप्रतिपालक तुम्हारे शत्रुओंका शीघ्र नाश करेंगे. हे ध्रुव ! जिनका नाम लेनेसे सुननेसे विना परिश्रम विना उपाय इस संसारसे पार होजाते हैं. सो प्रभु कैसे हैं ?

भजन ॥

श्रीगोविन्द परमानन्द संतन हितकारी ॥

दीनबंधुदामोदर, मधुसूदन मुरलीधर । विश्वनाथ विश्वंभर, व्रजपति बनवारी ॥ १ ॥ जनपर जब परत भीर, तुरत धरत नरशरीर । क्षण भरमें हरत पीर, साँवरे बिहारी ॥ २ ॥ हारि हारि जब टेरो गज, धाये झट खगपति तज । धन धन धन गरुडध्वज, भक्तनभयहारी ॥ ३ ॥ करुणाकर कष्टहरण, वीरोत्तम धीरधरण अब तो हूं चरणशरण, हे प्रभू

तुम्हारी ॥ ४ ॥ दुःशासन दुष्टराज, नग्न करन चहत आज । देख रह्यो सब समाज, लाज सब बिसारी ॥ ५ ॥ वेग आय लो बचाय, नातो सब लाज जाय । फिर तुम कहा करहु आय, जब न रहै सारी ॥ ६ ॥ हे गोविंद हे गिरिधर, हे यदुपति हे श्रीधर । ऐसे कह आंसू भर, द्रौपदी पुकारी ॥ ७ ॥ खगपतिपर हो सवार, धाये यशुदाकुमार । बढादिये पट अपार, झटपट असुरारी ॥ ८ ॥ धन धन ध्रुव ज्ञानवान, भक्तनमें अतिसुजान । जगमें को तुम समान, धर्मव्रतधारी ॥ ९ ॥ जो जन हैं परम भगत, हरि हरि दिन रात जपत । तिनको नहिं देख सकत, एक क्षण दुखारी ॥ १० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे ध्रुवस्य यक्षैःसह युद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १०

दोहा-एकादश अध्यायमें, देख यक्षसंहार ।
मनुने वर्जा ध्रुवहिको, हे सुत इनहिं न मार ॥

मैत्रेयजी बोले कि, सप्तऋषियोंका यह वचन सुनतेही ध्रुवजीने आचमन करके धनुषमें नारायणास्त्रका संधान किया ॥ १ ॥ हे विदुर ! नारायणास्त्रका संधान करतेही यक्षोंकी रचीहुई माया क्षणमात्रमें ऐसे विनष्ट होगई, जैसे ज्ञानके उदय होतेही सब क्लेश दूर होजाते हैं ॥ २ ॥ जब ध्रुवजीने नारायणास्त्रका प्रयोग किया उस समय सुवर्णके अन्तभागवाले मनोहर हंसोंके पंखरूपी बाण धनुषसे निकल निकलकर यक्षोंकी सेनामें प्रवेश करनेलगे, जैसे भयंकर शब्दवाले मोर वनमें प्रवेश करते हैं ॥ ३ ॥ कठिन धारवाले शरोंसे मारेहुए पुण्यजन संग्राममें अत्यन्त क्रुद्ध हो शस्त्र उठा उठाकर चारों ओरसे ध्रुवजीपर झपटे, जैसे गरुडके सम्मुख सर्प फणा उठाकर दौडता है ॥ ४ ॥ ध्रुवके बाणोंसे रणस्थलमें जिनके बाहु, ऊरु, जंघा, शीश, अधर, कन्धे, उदर, कट गये थे उनको सूर्यमण्डलसे परे जो परमधाम है, वहां पहुँचा दिया, जहाँ भक्तजन सूर्यमण्डलको भेदकर जाते हैं ॥ ५ ॥ महाबाहु ध्रुवके हाथसे निरपराधी बहुत गुह्यकोंको मरेहुए देखकर करुणासागर मनुजी ध्रुवके पितामह सप्तऋषियोंसहित ध्रुवजीके समीप आनकर ॥ ६ ॥ मनुजी बोले कि, पुत्र ! यह क्रोध पापका रूप और नरकका देनेवाला है इसको छोडदे, वृथा रोष करके इन पुण्यजनोंको तुमने मारा ॥ ७ ॥ हे वत्स ! हमारे कुलके योग्य वह कर्म तुम्हारा नहीं है, निरपराधी यक्षोंका मारना इस कर्मकी सत्पुरुष निंदा करते हैं ॥ ८ ॥ एक यक्षके अपराध करनेसे तैंने सहस्रों यक्ष मारडाले. हे भ्रातृवत्सल ! हे अंग ! ! एक भाईके वध होनेसे तुमने कुपित होकर सब यक्षकुलका विध्वंस करदिया ॥ ९ ॥ हृषीकेश भगवान्‌के भक्तोंका यह मार्ग नहीं है, जो उत्तम शरीर पाकर आत्मज्ञानी होकर; पशुओंके समान जीवोंकी हिंसा करते हो ॥ १० ॥ सब जीवमात्रमें अपने समान भाव जानकर सब जीव जिसमें वसते हैं, ऐसे

हरिका आराधन करनेके प्रतापसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके परमपदको प्राप्त हुआ ॥११॥ और तैंने भगवान्‌का ध्यान भी किया है, और श्रीवैष्णवोंमें श्रेष्ठभी है और महात्मापुरुषोंके वृत्तकी शिक्षाभी पाई है, फिर यह निंदित कर्म क्यों किया ॥ १२ ॥ सहनशीलता, दया, मैत्री, क्षमा, सब जीवमात्रमें करनी योग्य है; क्योंकि सबमें समताभाव रखनेसे विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ जब भगवान् वासुदेव जिसपर प्रसन्न होते हैं तब प्राकृत गुणोंसे वह पुरुष छूटकर जीवन्मुक्त हो ब्रह्मके आनन्दको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ और पञ्चभूतसे यह सब स्त्री पुरुष जन्म लेते हैं और सब जानते है कि स्त्री पुरुषहीके मैथुनकर्म करनेसे इस जगतमें नर नारी उत्पन्न होते हैं, फिर पिता, भ्राता, पुत्रादिक सम्बन्ध सब वृथा है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! परमात्माकी विचित्र माया करके गुणोंके उलटे पुलटे होनेसे इस विश्वकी उत्पत्तिपालन, संहार होता रहता है ॥ १६ ॥ इसमें निर्गुण पुरुष श्रेष्ठ ईश्वर तो केवल निमित्तमात्र है, उसमें कोई गुण नहीं. जैसे चुम्बक पत्थरके निमित्तसे लोहा घूमता रहता है ॥ १७ ॥ संसार करके जिनके वीर्यका विभाग कियागया है, वह भगवान् अपनी कालशक्तिसे आप अकर्ता है, तोभी इस संसारको वारंवार रचता है और आप अहंता होनेपरभी इस संसारका वारंवार संहार करता है. निश्चय है कि, सर्व शक्तिमान् भगवान्‌की चेष्टा कोई जान नहीं सक्ता ॥ चौपाई ॥ हरिचरित्रको जानन हारा । कहां करत कह करन विचारा ॥ १८ ॥ सो अनंत अंत करनेवाला काल अनादि सबकी आदि करनेवाला है, सो जनोंसे जनोंको जन्माता है और मृत्युसे कालरूप होकर मारता है ॥ १९ ॥ वह परमात्मा प्रजाको समान भावसे देखता है; उस मृत्युरूप परमेश्वर कालरूपके न तो कोई अपना है, न कोई पराया है, असमर्थ अनाथ होकर यह सब जीवसमूह कर्मोंके वश होकर कालके दौडनेसे उसके पीछे दौडते हुए चलेजाते हैं, जैसे पवनके प्रसंगसे रजके कण उडे चलेजाते हैं ॥२०॥ जीवकी आयुकी हानि और रक्षा ये दोनों बातें कर्माधीन हैं, और परमात्मा तो स्वय इच्छाचारी है, उसके तो कभी न क्षति है,न कभी वृद्धि है,कभी स्वस्थ कभी अस्वस्थ, ऐसे जीवका भगवान् विधान करते रहते हैं ॥२१॥ हे नृप ! इस संसारकी अद्भुत रीति है, कोई आचार्य तो कर्मको ईश्वर कहते हैं, कोई स्वभाव ईश्वर कहते हैं. कोई कालको ईश्वर कहते हैं, कोई भाग्यको ईश्वर कहते हैं, और वात्स्यायनादि ऋषि कामदेवको ईश्वर कहतेहैं ॥२२॥ उस अप्रमेय, अव्यक्त, शक्तिरुप, महत्तत्त्वादि अनन्त शक्तियोंके उत्पन्न कर्ता भग-वान्‌की इच्छाको कोई नहीं जानसक्ता, तो फिर उनके जन्म कर्मका भेद कैसे जानसक्ता है ? ॥ २३ ॥ हे वत्स ! इन कुबेरके यक्षोंने तुम्हारे भ्राताको नहीं माराहै, हे तात ! जन्म मरण तो पुरुषके भाग्यसे होता है ॥ २४ ॥ वही विश्वका रचनेवाला है वही पालन करनेवाला है और वही नाश करनेवाला है, यद्यपि ऐसा है तोभी अहंकारके त्यागनेसे गुणकर्ममें, लिप्त नहीं होता ॥ २५ ॥ वही कालरूप ईश्वर भूतात्मा भूतोंका ईश, सबका पालक अपनी माया शक्तिसे मुक्त होकर सब जीवोंको रचता है, पालता है, संहार करता है ॥ ॥ २६ ॥ हे तात ! जो अभक्तोंको मृत्युरूप भक्तोंको अमृतरूप है, उस जगत्परायण

सर्वात्माकी शरणमें तू जा, जिसको विश्वके रचनेवाले ब्रह्माजी भी बलि देते हैं, जैसे नथनोंमें पोईहुई रस्सीके वशीभुत हो "बैल" सब स्थानोंमें घूमता फिरता है ॥ २७ ॥ जब तू पांच वर्षका था, तब तैंने अपनी माताको त्याग विमाताके मर्मभेदी वचनोंसे मर्मस्थानमें छिद्र होनेके कारण वनमें जाकर परमात्माके चरणारविन्दका आराधन कर, साक्षात् दर्शन किया और त्रिलोकीके मस्तकपर जो सर्वोत्तम स्थान है वह उच्चपद लिया ॥ २८ ॥ हे अंग ! आत्मासे विरोधको दूर करके आत्मामें स्थित निर्गुण एक अक्षरको आत्मा विमुक्त आत्मदर्शीका अनुसरण कर, जिसमें यह असद्भेद प्रतीत होता है ॥ २९ ॥ जब तू दिव्य दृष्टिकरके परमात्माका अनुसरण करैगा, उस समय पृथक् आत्मरूप, अनंत आनंदमात्र, व्यापक सर्वशक्ति जिसमें प्राप्त ऐसे परमात्मामें पराभक्ति होगी; फिर पीछे धीरे धीरेसे "मम" "अहंकार" जो अविद्याकी ग्रंथि है वह कट जायगी, क्योंकि इस वार्तापर एक पद लिखता हूं ॥ ३० ॥

रागनी भैरवी ।

इस प्राणीको कृष्णभजन ही, परमानंद दिखाता है रे । विना किये हारिभक्ति जगत्में, मुक्ति न कोई पाता है रे ॥ १ ॥ धन दौलत अरु कुटुम कबीला, कोई काम न आता है रे । सब अपने अपने स्वारथके, मुख देखेका नाता है रे ॥ २ ॥ दारा पुत्र पौत्रके ऊपर, फूला नहीं समाता है रे । माया मोह लोभके वश हो, वृथा जन्म गवाँता है रे ॥ ३ ॥ अब भी समझ अरे अज्ञानी, कहै जिन्हैं तू भ्राता है रे ॥ अंत समय कोइ काम न आवै, आप अकेला जाता है रे ॥ ४ ॥ काल आय जब शिरपर गाजत, कफ घटमें घिर आता है रे ॥ आँख फाड तब चहुँदिशि देखत, शिर धुनि धुनि पछताता है रे ॥ ५ ॥ हरि हरि भज राजस तामस तज, जो तेरा सुखदाता है रे ॥ वोही सर्व जगत्का स्वामी, सब दुखद्वंद्व मिटाता है रे ॥ ६ ॥ माया मोह द्रोह ममता तज, जो नर हरिगुण गाता है रे ॥ "शालिग्राम" वोही इस जगमें, पूरण भक्त कहाता है रे ॥ ७ ॥

हे पुत्र ! जैसे औषधिके सेवन करनेसे रोग शान्त होजाता है, इसीप्रकार भगवद्भजनसे इस क्रोधको शान्त कर; जिससे तेरा कल्याण होय, यह क्रोध अमंगलका मूल है, अनेक शास्त्रोंके सुननेका यही फल है, किंचित् जिसमें शान्ति हो ॥ ३१ ॥ और जो पुरुष क्रोधके वशमें होजाता है, उसको ज्ञान नहीं रहता, सबको डराता है, इसलिये जो अपने आत्माका अभय चाहै तो वह प्राणी क्रोधसे बचा रहै; क्योंकि क्रोध बुद्धिका विनाशक है ॥ ३२ ॥ शिवके भ्राता कुवेरका जो तुमने अपमान किया और यह समझकर यक्षोंका वध किया कि, मेरे भाईको मारडाला है ॥ ३३ ॥ हे वत्स ! नम्रतासे मीठे वचनोंसे उनको प्रसन्न करो, क्योंकि महात्मापुरुषोंके तेजसे हमारे वंशका नाश न होजाय ॥ ३४ ॥ इसप्रकार स्वायंभुव

मनुने अपने पौत्र ध्रुवको शिक्षा कर उसकी वन्दनाको स्वीकार करके सप्तऋषियोंको साथ लिये अपने भवनको गमन किया ॥ ३५ ॥

दोहा-भवन वही राधारमन, जहँ नित करत निवास।
हरिविन घरसे वन भलो, पुष्प देत जहँ वास ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे मनुना तत्त्वोपदेशेन यक्षवधनिवारणवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा-द्वादशमाहिं कुबेरने, ध्रुवयश कियो बखान।
तब ध्रुव निजपुर जायकै, कीने यज्ञ महान ॥

मैत्रेयजी बोले कि ध्रुवजीको हिंसा करनेसे निवृत्त देख और क्रोधसे विगत हुआ जान भगवान् कुबेरने चारण, यक्ष, किन्नरोंके साथ हाथ जोडे स्तुति करता ध्रुवजीको देखकर ॥ ॥ १ ॥ कुबेर बोले कि, हे क्षत्रियनंदन ! हे पापरहित !! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं. क्योंकि तैंने अपने दादाकी आज्ञा मानकर दुस्त्यज वैरको त्याग दिया ॥ २ ॥ न तो तुमने यक्षोंको मारा और न यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा, सब प्राणियोंके जीवन मरणका कारण कालही है ॥ ३ ॥ "मैं" और "तू" यह बुद्धि पुरुषकी अज्ञानसे होती है. सो सब स्वप्नवत् है. जैसे असत्पदार्थके ध्यान करनेसे स्वप्नद्रष्टाको सत्‌ही भासे है, यही बंधमोक्षका कारण है ॥ ४ ॥ हे ध्रुव ! तुम्हारा मंगल होय, तुम अपने स्थानको जाओ और भगवान् अधोक्षज सर्व भूतात्मविग्रह परमेश्वरको सर्वभावसे प्राप्त होओ ॥ ५ ॥ भजनीय जिनके चरणकमल, संसारके नाशक, शक्तियुक्त, गुणमयी, आत्ममायासे रहित परमात्माको संसारनिवृत्तिके लिये तुम भजो ॥ ६ ॥ हे नृपनंदन ! जो तुम्हारे मनमें इच्छा होय निशंक होकर सो वर मांगो; क्योंकि तुम वरदानके योग्य हो और हमने यह भी सुना है कि तुम भगवान् कमलनाभके चरणारविन्दके आश्रित हो ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, राजाओंके राजा कुबेरने जब परमात्माके परमभक्त महाविद्वान् ध्रुवजीसे कहा कि वर माँगो तब महाभागवत ध्रुवने यह वर माँगा कि, मेरा मन हरिमेंसे कभी चलायमान न होय; ऐसीही स्तुति सदा भगवत्‌की भक्तिमें बनी रहै जिससे यह पुरुष इस दुरत्यय अंधकारसे विना यत्न किये पार होजाते हैं ॥ ८ ॥ इडविडाके पुत्र कुबेर प्रसन्नमनसे ध्रुवको यह वरदान दे ध्रुवजीके सम्मुखसे अंतर्धान होगये और ध्रुवजी अपने नगरको चलदिये ॥ ॥ ९ ॥ फिर अनेक प्रकारकी दक्षिणा दी, ऐसे यज्ञोंसे यज्ञेशका पूजन कर द्रव्य क्रिया और देवतासंबंधी कर्म करके साध्य जो फलरूप कर्म है और उसके फलदायक यज्ञपति विष्णु भगवान्‌का यजन किया ॥ १० ॥ और सबके आत्मा, सर्वत्र व्यापक, अच्युत देवकी तीव्र वेगवाली भक्ति करते करते अपने आत्मामें और सबजीवोंमें स्थित एक सर्व सामर्थ्यवान् भगवान्‌को देखनेलगे ॥ ११ ॥ और शीलसिंधु, ब्रह्मण्य, दीनदयालु, धर्मकी सीमाके रक्षक सर्वशास्त्र और श्रुतियोंके ज्ञाता, उस ध्रुवको सब प्रजा पिताकी समान

माननेलगी ॥ १२ ॥ इसीप्रकार छत्तीस ३६००० सहस्र वर्षतक उसने भूमंडलमें राज्य किया, भोगोंसे पुण्यको और अभोगोंसे अशुभ पापको क्षय करते रहे ॥ १३ ॥ इसी प्रकार बहुत कालतक जितेंद्रिय हो, त्रिवर्गको व्यतीतकर; अपने पुत्रको राज्यतिलक देदिया ॥ १४ ॥ इस संसारको मायारचित मानकर अविद्या रचित स्वप्न व गंधर्वनगर समान जाननेलगे ॥ १५ ॥ तन, धन, स्त्री, पुत्र, सुहृद्, सेना, ऋद्धि, भंडार, अंतःपुर, रमणीय विहारकी भूमि और समुद्रपर्यन्त भूमंडलका राज्य इन सबको कालसे नाशवान् मानकर ध्रुवजी बदरिकाश्रमको चलेगये ॥ १६ ॥ वहां जा सर्वेंद्रिय विशुद्ध कर शुद्धचित्त हो कल्याणरूप जलमें स्नान कर आसन लगाय पवन, मन, सब इन्द्रियें जीत, भगवान्‌के स्थल विराट्स्वरूपमें मनको लगाया, फिर बहुत कालतक उस स्वरूपका ध्यान करते करते अभेदको प्राप्त हो, समाधिमें स्थितप्रज्ञ हो, स्थूलस्वरूपकोभी तज ब्रह्मरूप होगये ॥ ॥ १७ ॥ श्रीहरि भगवान्‌की निरंतर भक्ति करते करते यह गति होगई कि, आनंदके बाष्पबिन्दुओंके प्रवाहसे वारंवार पीडित हो हृदय द्रवीभूत होगया देह पुलकायमान् हो गया, लिंगशरीरके त्यागनेसे उन्हें अपने आत्माकाभी स्मरण न रहा ॥ १८ ॥ उस समय आकाशसे उतरता हुआ एक अनुपम विमान ध्रुवजीको दिखाई दिया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा दशों दिशाओंको प्रकाशित करता है इसीप्रकार सब दिशाओंमें प्रकाश होगया ॥ ॥ १९ ॥ उसमें देवश्रेष्ठ भगवान्‌के दो पार्षद नंद सुनंद नामक बैठे देखे चतुर्भुजी, श्याम वर्ण, किशोरवय, अरुणांबुज समान नेत्र, पीतपट धारण किये, किरीट, हार, भुजबंद, मकराकृत कुण्डल पहने गदा हाथमें लिये खडे थे ॥ २० ॥ उनको विष्णु भगवान्‌के पार्षद जानकर शीघ्र उठ खडे हुए और चित्तमें संमोह होजानेके कारण पूजाके क्रमकी विस्मृति होगई और भगवान्‌के मुख्य पार्षद समझ भगवत्‌के नाम लेते हुए दोनों हाथ जोडकर दंडवत् प्रणाम करने लगे ॥ २१ ॥ भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दमें जिनका मन लगा, नीची गर्दन किये हाथ जोडे ध्रुवको खडे देख तब सुनंद नंद उनके निकट आये और मंदमंद मुसकाय भगवान् कमलनाभके परमसंमत पार्षदोंने कहा ॥ २२ ॥ सुनंद नंद बोले कि, हे महाराज ! तुम्हारा कल्याण हो सावधान होकर हमारी वाणी सुनो आपने पांच वर्षकी छोटी अवस्थामें महाकठिन तप करके देवताओंको तृप्त करनेवाले भगवान्‌को प्रसन्न किया है ॥ २३ ॥ उन सब जगत्‌के धारण पोषण करनेवाले धनुषधारी श्रीनारायणके हम पार्षद हैं, तुमको भगवान्‌के परमधामको लेजानेके लिये हम यहां आये हैं ॥ २४ ॥ जो महाऋषियोंसे न जीतागया जिसका आजतक विचारही कर रहे हैं, उस स्थानपर चलकर तुम विराजमान होओ । जहां सूर्यचंद्रमादिक ग्रह, नक्षत्र, तारागण आपकी प्रदक्षिणा दिया करेंगे ॥ २५ ॥ हे ध्रुव ! आजतक जिस स्थानमें न तो कोई आपका पुरुष पहुँचा, न कोई और प्राणी पहुँचा, उस जगद्वन्द्य विष्णु भगवान्‌के परमपदमें तुम निवास करो ॥ २६ ॥ इसलिये परमोत्तम विमान, देवताओंके शिरोमणि श्रीविष्णु भगवान्‌ने तुम्हारे लिये भेजा है, सो हे आयुष्मन् ! आप इसपर चढो ॥ २७ ॥ मैत्रेयजी

बोले कि, उरुगाय भगवान्के प्यारे ध्रुवने भगवत्के परम अधिकारी पार्षदोंके सुधारूप वचन सुन स्नान कर नित्य कृत्यसे निश्चिंत हो, मांगलिक अलंकार पहन, मुनियोंको प्रणाम कर, उनसे आशीर्वाद लिया ॥ २८ ॥ फिर उसी विमानकी प्रदक्षिणा कर पूजनके पश्चात् पार्षदोंके चरणोंकी वंदना कर हिरण्मय स्वरूप धारण करके उस उत्तम विमानपर बैठनेकी इच्छा करी ॥ २९ ॥ उसी समय मृत्यु आनकर उपस्थित हुआ और ध्रुवजीको प्रणाम करके बोला कि, कृपानाथ ! मुझे अंगीकार करो. तब ध्रुवजी बोले कि, तू आगया यह बहुत अच्छा किया, परंतु थोडी देर विलम्ब कर, इसप्रकार उसे बैठाय उसके शीश पर चरण धर उस अद्भुत विमानपर बैठ ॥ ३० ॥ उस समय मृदंग, दुंदुभी, ढोल इत्यादिक अनेक प्रकारके बाजे बजनेलगे, बडे बडे मुखिया गंधर्वलोग गीत गानेलगे, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी ॥ ३१ ॥ जब ध्रुव ध्रुवलोकको जानेलगा तब उसको अपनी विमाता सुनीतिका स्मरण हुआ तब उसका अपराध क्षमा कर बोला कि, यह सब सुनीतिकाही प्रभाव है, इस दीन अबलाको अकेली छोडकर कैसे मैं स्वर्गको जाऊं ॥ ॥ ३२ ॥ यह निश्चय ध्रुवजीका जान देवश्रेष्ठ सुनंदनंदने विमानमें बैठी आगेजाती सुनीति को दिखाया ॥ ३३ ॥ जहाँ तहाँ मार्गमें विमानोंपर बैठे देवता ध्रुवजीकी प्रशंसा करते थे और क्रमक्रमसे सब ग्रह और देवता पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ ३४ ॥ देवपंथसे त्रिलोकोंको उल्लंघन कर सप्त ऋषियोंको उल्लंघन किया, फिर सबसे परे अचलगतिवाले विष्णुपदको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ जो विष्णुधाम अपनी कांतिसेही देदीप्यमान है और उसीके प्रकाशसे ये तीनों प्रकाशते हैं और जो मनुष्य मनुष्योंपर दया नहीं करते हैं वे वहां नहीं जासक्ते, क्योंकि दिनरात शुभकर्म करनेवाले वहां जाते हैं ॥ ३६ ॥ और जिनके स्वभाव शांत हैं, समदृष्टि हैं, शुद्धचित्त हैं, सब जीवोंकी रक्षा करते हैं, अच्युत भगवान्कोही अपना प्रियबांधव मानते हैं, वे लोग उस लोकमें जाते हैं, वही लोक ध्रुवजीको प्राप्त हुआ ॥

दोहा–तहँ पहुँचो जब भूप ध्रुव, तब प्रभु निकट बुलाय।
दियो ताहि वह अचलपद, निजमहिमा दरशाय ॥ ३७ ॥

इसप्रकार उत्तानपादका तनय ध्रुव भगवतपरायण होनेसे त्रिभुवनका निर्मल चूडामणि हुआ ॥ ३८ ॥ हे विदुर ! गंभीरवेगका आलस्यरहित, ज्योतिषचक्र जिसमें लगरहा है जिसके घूमनेसे मेढीकी नाईं, बैलोंका समूह भ्रमण करता है उस पदको ध्रुवजी प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ नारदजीने ध्रुवजीकी महिमा देखकर, वीणा बजाते प्रचेताके यज्ञमें भगवन्माहात्म्य गानेके समय ध्रुवजीका चरित्र तीन श्लोकोंमें बनाकर गाया ॥ ४० ॥ श्रीनारदजी बोले कि, पतिव्रता सुनीतिके सुत ध्रुवजीको तपके प्रभावसे जो पदवी मिली उस परमपदवीको भगवद्धार्मिक वेदवादी लोग अनेक यत्न करनेसे भी नहीं पासक्ते, तो और नरेशोंकी तो बातही क्या है ॥ ४१ ॥ जिस ध्रुवने पांच वर्षकी अवस्थामें अपनी विमाताकी वाणीरूप बाणोंसे बिंधे हुए हृदयसे वनमें जाकर जो भगवान् विजयी होकर भक्तोंके गुणोंसे पराजित होजाते हैं उन विश्वविजयी भगवान्को अपने वशमें करलिया ॥ ४२ ॥

और जो क्षत्रबंधु भूमिमें उस पदवीको अनेक वर्ष तप करकेभी नहीं प्राप्त करसक्ते; सो पांच छै ही वर्षकी अवस्थामें थोडे दिनों तप करके ध्रुवजी भगवान्‌को प्रसन्न कर उनके परमपदको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, महाप्रतापी, कीर्तिवान्, महात्मा पुरुषोंका प्रिय ध्रुवजीका चारित्र जो आपने मुझसे पूछा वह सब वृत्तांत मैंने आपके सन्मुख यथावत वर्णन करदिया ॥ ४४ ॥ यह ध्रुवचरित्र धन, यश, पुण्य, आयु, मंगल, स्वर्ग और ध्रुवपदका देनेवाला, आत्माको पवित्र करनेवाला, प्रशंसाको बढानेवाला और सब पापोंका नाशक है ॥ ४५ ॥ जो कोई इस भगवान्‌के प्रिय मनोहर चरित्रको वारंवार श्रद्धासे सुने, उसको भक्ति प्राप्त होती है जिससे सब क्लेशोंके समूहोंका नाश होजाता है ॥ ४६ ॥ इस चरित्रके सुननेवाले अपनी मनोकामनाको प्राप्त होते हैं. बडाईवालेको बडप्पन, शीलवालेको शीलता, तेजकी इच्छावालेको तेज और मनस्वियोंको मानका देनेवाला है ॥ ४७ ॥ परमपवित्र आत्मा ध्रुवजीका यह उत्तम चरित्र प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करके ब्राह्मणोंमें बैठकर सावधानतासे वर्णन करना और सुनना चाहिये ॥ ४८ ॥ पूर्णमासी, अमावास्या, द्वादशीमिश्रित एकादशी श्रवणादि नक्षत्रमें, व्यतीपातयोगमें, संक्रांतिमें और रविवारको पुरुष जो निष्काम होकर भगवान्‌की भक्तिसहित ॥ ४९ ॥ श्रद्धा धारण करनेवाले सज्जन पुरुषोंको यह चारित्र सुनावे, उसकी कोई कामना शेष नहीं रहती वह आप अपने स्वरूपमें हो सिद्धिको पाकर सिद्ध होजाता है ॥ ५० ॥ और जो पुरुष अज्ञानियोंको भगवान्‌के सन्मार्गका प्रदान करता है और ज्ञान देता है उस कृपालु और दीनोंके उद्धारक मनुष्यपर देवता सदा अनुग्रह करते रहते हैं ॥ ५१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जिस ध्रुवजीके पवित्र कर्म आजतक प्रसिद्ध हैं, उसका यह चारित्र तुम्हारे आगे वर्णन किया कि, जो ध्रुव बालकपनेहीमें खेल खिलोने और अपनी माताके घरको त्यागकर भगवत्‌के चरणारविन्दकी शरणागत हुआ था, सो उन भगवान्‌के चरण सदा भक्तोंकी कीर्ति बढानेवाले और सब संशयके मिटानेवाले हैं ॥ ५२ ॥

भजन ।

हरियश सब दुख काटनहारा ।

यह संसार स्वप्नकी माया, जिसको सत्य विचारा ॥ यहां कोइ अपना नहिं दीखै, झूंठा द्वन्द्व पसारा ॥ १ ॥ भाई बंधु औ कुटुंब कबीला, मात पिता सुत दारा ॥ येही तेरे परमशत्रु हैं, जिन्हें कहै तू प्यारा ॥ २ ॥ बिन व्रजचन्द मुकुंद नंदसुत, कोई नहीं हमारा ॥ जिनके चरणकमलसे निकली, श्रीगंगाकी धारा ॥ ३ ॥ तीन लोककी पावनकरनी, सगरवंश विस्तारा ॥ "शालिग्राम" भक्तमनरंजन, क्यों हरिनाम बिसारा ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचारित्रवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा-इस तेरह अध्यायमें पृथुसुत अंग सुजान।
देख पुत्रकी दुष्टता वनको कीन पयान ॥

सूतजी बोले कि, पांच अध्यायोंमें तो ध्रुवचरित्र वर्णन किया और अब ग्यारह अध्यायोंमें राजा पृथुका चारित्र वर्णन करेंगे; ध्रुवजीके विष्णुपद प्राप्त होनेका वृत्तांत मैत्रेयजीके मुखसे सुनकर भगवान् अधोक्षजमें भाव उत्पन्न होनेसे विदुरजीने फिर मैत्रेयजीसे प्रश्न करना प्रारंभ किया ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि, हे सुवृति ! प्रचेता कौन थे और क्या नाम था? और किसके कुलमें विख्यात हुए? और किसके पुत्र थे? और किस स्थानपर यज्ञ किया? सो भिन्न भिन्न सब मुझसे कहो? ॥ २ ॥ महाभागवत देवताओंके समान जिनका दर्शन उन नारदजीको मैं मानताहूं, जिन्होंने भगवतकी परिचर्या विधि योगक्रियाकी रीति जिसप्रकार " पंचरात्र " ग्रंथमें कही है ॥ ३ ॥ स्वधर्म पालक प्रचेतासे पूजित, यज्ञपुरुष भगवान्का वर्णन भगवान् नारदमुनिने किया है ॥ ४ ॥ सो हे ब्रह्मन् ! जो कुछ वहां नारदजीने भगवत्की कथा वर्णन करी है, वह मेरे आगे वर्णन करो, क्योंकि, भगवत्कथा सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, अपने पुत्र उत्कलको ध्रुवजी जब राज्य दे वनको चलेगये, तब उत्कलने पिताकी सब भूमि और राजलक्ष्मीके लेनेकी इच्छा नहीं की ॥ ६ ॥ वह जन्मसे शांतात्मा, संगरहित, समदर्शी और अपनी आत्माको सब लोकमें पूर्ण और जगदात्माको अपनेमें मानता था ॥ ७ ॥ ब्रह्मसुखमें शांत हो अपने देहको भूलगया और ज्ञानरसमें निमग्न, आनंदमय और मोक्षरूप परब्रह्म परमात्माको जानता था ॥ ८ ॥ और अखंडित योगाग्निसे उसके सब पाप और अंतःकरणकी भावना जलकर भस्म होगई थी. अपने स्वरूपका अनुसंधान कर अपनेसे भिन्न और किसीको नहीं देखता था ॥ ९ ॥ वह आत्मज्ञानी अकेला नगरसे निकलकर चलदिया, राखमें दबी अग्निसमान वह तेजधारी उत्कल मार्गमें जाता हुआ, जड, अंध, बधिर, उन्मत्त, मूककेसी आकृति किये बालकोंकी दृष्टि आता था ॥ १० ॥ सचिव और कुलके वृद्ध पुषोंने उत्कलको उन्मत्त और जड समझकर उससे कनिष्ठ भूमिके सुत वत्सरको राज्याधिकार देदिया ॥ ११ ॥ वत्सरकी प्यारी बडी स्त्री स्वर्वीथिके छह पुत्र उत्पन्न हुए-पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय ॥ १२ ॥ पुष्पार्णकी प्रभा और दोषा नाम दो पत्नी थीं, उनमेंसे प्रभाके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, प्रातर् , मध्यंदिन और सायम् ॥ १३ ॥ तीन पुत्र दोषाने उत्पन्न किये प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट और व्युष्टने पुष्पकरिणी नाम भार्यामें सर्वतेजस नाम पुत्र उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ और सर्वतेजसकी आकूति नाम स्त्रीमें चक्षु नाम पुत्र हुआ मनुकी पटरानी नडवलामें ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान्, ऋतव्रत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिबि और उल्मुक ॥ १६ ॥ उल्मुकके पुष्करिणी नाम भार्यामें छह पुत्र उत्पन्न हुए अंग, सुमना, ख्याती, क्रतु, आंगिरा और गाय ॥ १७ ॥ अंगकी सुनीथा नाम पत्नीमें महाभयंकर वेन नाम पुत्र उत्पन्न हुआ कि, जिसकी दुष्टतासे राजर्षि अंग बैरागी होकर नगरसे निकल गया ॥ १८ ॥ हे विदुर

वेनके महापाप कर्म देखकर मुनियोंने वाग्वज्ररूपी शाप दिया, शापके देनेसे उस वेनका प्राणांत होगया, तब मुनीश्वरोंने वेनकी दहिनी भुजाको मथा ॥ १९ ॥ जब पृथ्वीपर कोई राजा नहीं रहा तो प्रजा चोरोंके भयसे अत्यन्त दुःखी होगई, तब मुनियोंने वेनके दाहिने हाथको मथा, जिससे नारायणके अंशसे आद्यराज पृथुने पृथ्वीश्वर अवतार धारण किया ॥ २० ॥ विदुरजी बोले महाशीलवान् साधु, ब्रह्मण्य, सज्जनोंके सन्मान करनेवाले महात्मा अंगके ऐसा अन्यायकारी दुष्टरूप पुत्र क्यों उत्पन्न हुआ कि, जिसका अन्याय देखकर राजा विमन हो वनको चलागया ॥२१॥ और राजा वेणुका क्या ऐसा पाप देखा जो मुनी-श्वरोंने ऐसे दंडधारी राजाको महाघोर शाप दिया ॥ २२ ॥ उत्तम रीति तो यह है कि, प्रजापालक पापात्माभी होय तो भी प्रजाको उसका अनादर करना योग्य नहीं क्योंकि, राजामें आठ लोकपालका अंश होता है और अपनी सामर्थ्यसे लोकपाल देवताओंकी शक्ति धारण करता है ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मण्य ! राजा वेनका चारित्र सम्पूर्ण मुझसे कहो क्योंकि, इस चरित्रके सुननेकी मुझको परम अभिलाषा है और मैं तुम्हारा भक्त हूं ॥ २४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, राजर्षि अंग राजाने महाअश्वमेध यज्ञ किया उसमें वेदवादी विप्रोंके आह्वान करनेसे देवतालोग नहीं आये. तब आश्चर्यमय होकर ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि ॥ २५ ॥ हे राजन् ! आप श्रद्धासहित जो यज्ञके उत्तमोत्तम पदार्थ देतेहो, तोभी तुम्हारा हवि हवनदेवता ग्रहण नहीं करते ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह हवनयोग्य जो है सो सब बहुत शुद्ध ह और श्रद्धा विधियुक्त देते हैं, वेदमंत्रोंका आजतक सार गया नहीं है फिर हवि-पदार्थका अनादर देवताओंने कभी नहीं किया. न जानिये यह क्या कारण है कुछ हमारी समझमें नहीं आता ॥ २७ ॥ कर्मके साक्षी देवतालोग जो अपना भाग नहीं लेते हैं ऐसा तो किंचित् मात्रभी यहां कोई हमसे उनका अपमानभी नहीं हुआ ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब ब्राह्मणोंने यह वचन कहे तो अंगराजाने अति उदास हो ब्राह्मणोंकी आज्ञा-से मौनवृत्तिको तजकर सभासदोंसे पूछा ॥ २९ ॥ कि, हे सभासदो ! न तो देवता बुलायेसे आते हैं और न अपना भाग लेते हैं सो ऐसा मैंने देवताओंका क्या अपराध किया है ? और मुझसे क्या व्यतिक्रम हुआ सो मुझको समझाकर कहो ॥ ३० ॥ सभा-सदोंने कहा कि, हे नरोत्तम ! इस जन्ममें तो आपने कोई पाप किया नहीं है परन्तु यह कोई पूर्वजन्मका पाप है जिससे आप पुत्रहीन हो. कहीं ऐसाभी लिखाहै, एकसमय राजा अंग बालकपनमें मानससरोवरके निकट क्रीडा करनेको गयेथे सो वहाँ एक तरुवरपर किसी राजहंसके बच्चे घोंसलेमें रक्खेथे और हंसहंसिनी कहीं वनमें चले गयेथे. उनमेंसे एक बच्चेको राजाने बालकपनकी चंचलतासे पकडकर मुट्ठीमें दबा लिया और वह बच्चा दबनेके कारणसे मरगया. जब हंस हंसिनी वहां आये और बच्चेको नहीं देखा तब तो अत्यन्त व्याकुल हो नेत्रोंमें आंसू भरकर बोले कि, हाय ! हमारे प्यारे बच्चेको कौन ले गया. हंस हंसिनीकी कुदशा देख किसीने कहा कि, तुम्हारे बच्चेको राजा अंगने मारडाला यह वृत्तांत सुन हंस बोला कि, राजा अंगने जैसा हमारा वंश निर्वंश किया, इसीप्रकार

राजा अंगकाभी वंश निर्वंश होजायगा. हंसिनी बोली कि, हे स्वामी ! हम पशुओंसे क्या होना है, राजासे तो अनेक प्राणियोंका पालन होता है, आपको ऐसा कठिन शाप देना उचित नहींथा. हमारे कर्ममें तो दुःख भोगना लिखाही था परंतु राजाको दुःखी क्यों किया ? हंसिनीकी मृदुल वाणी सुनकर हंसने वर दिया कि, यज्ञपुरुषकी पूजा करनेसे राजा के पुत्र होगा. सो हे राजन् ! तुम यज्ञपुरुषका पूजन करो ॥ ३१ ॥ इसलिये आप पुत्र होनेका कोई उपाय करो और इसी मनोरथसे आप यज्ञपुरुष भगवान्‌का यजनभी करो कि, जिसमें यज्ञपुरुष भगवान् आपको पुत्र देंगे ॥ ३२ ॥ जब ऐसा हुआ तो अपने २ भागभी देवता लेलेंगे, क्योंकि, पुत्रके अर्थ जो आप भगवान्‌का यजन करोगे तो उस यज्ञमें यज्ञपुरुष भगवान्‌के संग देवता आपसे आप आवेंगे ॥ ३३ ॥ पुरुष जिस जिस मनोरथके लिये भगवान्‌का यजन करता है. भगवान् उनकी आशा पूर्ण करते हैं क्योंकि, जो जिस संभावनासे भगवत्आराधन करता है. परमेश्वर वैसाही फल उसको देते हैं॥ ३४॥ इसप्रकार जब सब ब्राह्मणोंने निश्चय किया तब राजाने पुत्रके होनेके लिये सर्वांतर्यामी सर्वव्यापक विष्णु भगवान्‌के पुरोडाशका हवन किया. पुरोडाश उसका नाम है कि, एक स्रुवामें इमरती सोमलताके अमृतमें भीजीहुई देनेसे सर्वेश्वर भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ ३५॥ जब ऐसा पुरोडाश विष्णु भगवान्‌ने पाया, तब उस कुण्डसे सुवर्णकी माला पहरे श्वेत वस्त्र धारण किये कंचनके एक बडे भारी थालमें सुंदर खीर लियेहुए एक पुरुष निकला- उसका सबने दर्शन किया ॥ ३६ ॥ सो राजाने ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे वह खीर उस पुरुषके हाथमेंसे अपने हाथमें लेली और उसे सूंघ उस उदारचित्त राजाने आनंदित होकर अपनी भार्याको देदिया ॥ ३७ ॥ उस पुत्र चाहनेवाली रानीने खीरको पाकर पतिके गर्भको धारणकिया. जब समय पूर्ण हुआ तो पुत्र उत्पन्न करतीहुई ॥ ३८ ॥ वह बालक मृत्यु जो उसका नाना था उसके अनुसार हुआ. मृत्यु अधर्मके अंशसे उत्पन्न हुवाथा इसलिये वह अधार्मिक हुआ उसके जन्मके समय बडा भयानक उत्पात हुआ और ब्राह्मणों ने इसका नाम वेणु रक्खा और उसके सब आचरण नानाकेसे थे, और नानाके अनुहार हुआ ॥ ३९ ॥ वह धनुषबाण धारण किये, वनमें फिरताथा और जो मृग, साधु, दीन सन्मुख आता उसको कभी न छोडता यह निर्दई वेन है.

दोहा-पशु पक्षी जलजीव बहु, औरहु कीट पतंग ।
बिना वधे छोडे नहीं, सहसनको इक संग ॥

जब आखेट खेलकर घर आता, जब पुरवासियोंको और बालकोंको बुलाबुलाकर पकड पकडकर कोठरीमें बंद कर देता और उनको लातमुष्टिकाओंसे मारता और अनेक प्रकारकी गालीदेता जब प्रजागण वेनको देखती तब हाहाकार करके कोसों भागती किसीके घरमें आग लगादेता किसीको पकडकर कुएमें गिरादेता किसीकी स्त्रीको बलात्कार पकडलेता, किसीको कुलसमेत मारडालता, जिस मार्गमें होकर निकलता, हाहाकार मचजाती कि, देखो निर्दई वेन आता है यह संसारमें पुकार पडी रहतीथी ॥ ४० ॥ खेलनेके स्थानमें

अपने समान क्रीडा करनेवाले बालकोंको अतिदारुण निर्दई हठकरके अहेरीकी नाई पकड-पकडकर मारडालता ॥ ४१ ॥ उस महानीच पुत्रका अत्याचार देखकर राजाने उसे अनेक प्रकारसे समझाया, जब शिक्षा करनेकी सामर्थ्य न रही तो अत्यन्त दुःखित होकर आपही आप कहनेलगा ॥ ४२ ॥ कि, जिन पुरुषोंके पुत्र नहीं है, उन्होंने भगवान्‌का पूजन भलीभाँति किया है. क्योंकि, उनको दुष्टसंतानका महाकठिन दुःख तो भोगना नहीं पडता है ॥ ४३ ॥ जिससे अपयश, अपकीर्ति, अधर्म मनुष्योंको होता है और सबको जिससे द्रोह और अनंत व्याधी होती है ॥ ४४ ॥ पुत्र नामक आत्माका मोहका बंधन करनेवाला है सो कौन ऐसा पंडित है, जो इससे अधिक मान करैगा, इसलिये अनेक क्लेशका देनेवाला घर है ॥ ४५ ॥ शोक देनेवाले सुपुत्रसे कुपुत्रको मैं अच्छा समझताहूं, क्योंकि कुपुत्रके घरमें रहनेसे पुरुषके मनमें वैराग्य होजाता है और ग्लानि मान-कर घर छोडदेना पडता है ॥ ४६ ॥ इसप्रकार वैराग्य युक्त हो आधीरातके समय उठकर, फिर सोया नहीं, किसी मनुष्यने देखा नहीं, अपनी पत्नी सुनीथाको सोतीही छोडकर सर्वसमृद्धि सहित गृहको त्याग वनको अकेला चलदिया ॥ ४७॥ जब प्रातःकाल हुआ और राजा अंगको मंदिरमें न देखा, तब तो पुरोहित, सचिव, सुहृदगण आदिकोंने अतिशोकसे कातर होकर सब पृथ्वीपर ढूँढा, परंतु राजा कहीं नहीं मिला. जैसे कुत्सित, योगी हृदयके भीतर अंतर्यामी पुरुषका अनुसरण करतेहैं और नहीं पाते ॥ ४८ ॥ जब राजा अंग इनको कहीं नहीं मिला, तो सब उद्यमसे हार मान नगरमें आये, सबने इकठ्ठे होकर ऋषियोंकी वंदना करी, हे विदुर ! नेत्रोंमें आंसू भरकर बोले कि, राजा अंग आज कहीं घरसे चलेगये. क्योंकि, दुष्टपुत्र सदैव दुःख देनेवाले होतेहैं किसी कविका वचन है-

सवैया-आयसु मातपिताकी न मानत नीति तजै कुलरीति बहावत ॥
आपतो मानगुमान भरे सत संगिनहूंको गरूर गहावत ॥
एकहू कामसरो न कभू निरलज्ज अघी लघु लोभ लहावत ॥
कायर काम कुमारगगामि सु ऐसो कुचालि कुपूत कहावत॥४९॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थ-स्कन्धे वेनसुतदुःखात् अङ्गनृपवनप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा-इस चौदह अध्यायमें, अंगपुत्र भय मान ।
गये विपिन तब वेनको, दियो राज्यसन्मान ॥

मैत्रेयजी बोले कि, भृगुआदि मुनि लोगोंने क्षेमचिंतक विना राजाकी पृथ्वीको देख मनुष्योंकी पशुसमान संज्ञा देखी ॥ १ ॥ उन ब्रह्मवादी ब्राह्मण मंत्रिलोगोंने वेनकी माता सुनीथाको बुलाकर सब प्रजाकी संमतिसे वहांका राज्यतिलक वेनको दिया ॥ २ ॥ अति उग्रशिक्षक वेनको नृपासनपर बैठा देखकर सर्पके भयसे जैसे मूंसे छिपजाते हैं तैसे चोर बटमार जहाँ तहाँ छिपरहे ॥ ३ ॥ राज्यासनपर बैठ आठ लोकपालोंकी विभूतिसे गर्वित,

महा अहंकारी, अपने आपको उत्तम बलवान् माननेवाला, वह महा अभिमानी वेन महात्माओंका तिरस्कार करनेलगा ॥ ४ ॥ और निरंकुश हाथीकी नाईं मदांध अभिमानसे भराहुआ, पृथ्वी आकाशको मानो कंपायमान कररहा है. इसप्रकार रथमें बैठकर समस्त पृथ्वीपर विचरताथा ॥ ५ ॥ उसने सब प्रजाके लिये यह आज्ञा करादी कि, कोई मनुष्य होम, यज्ञ, दान मत करो. नगरमें भेरी और धौंसा बजाकर धर्मका निवारण करदिया ॥ ६ ॥ उस दुराचारी वेनका यह अत्याचार देखकर लोगोंको दुःखी जानकर दयाकरके. सब मुनिलोग एकत्र हो बिचार करनेलगे ॥ ७ ॥ और परस्पर बोले कि, अरे कष्ट ! तू दोनों ओरसे लोगोंको सतानेलगा, जैसे दोनों ओरसे काष्ठमें अग्नि लगजाती है, तो बीचमें चेंटी मरजाती हैं वह दशा अब इस प्रजागणकी होरही है, क्योंकि एक ओर तो चोरोंका भय और दूसरी ओर राजाका भय यह महाकठिन कष्ट इन लोगोंसे कैसे सहा जायगा ॥ ८ ॥ विना राजाके नगरको सूना समझकर तो इस अयोग्यको हमने राज्यका भार सौंपा, अब इसकी ओरसेभी सब देहधारियोंको भय होता है फिर अब हम लोगोंका कल्याण कैसे होगा ॥ ९ ॥ जो भुजंगको दूध पिलापिलाकर पालता है वह अनर्थकारी सर्प प्रथम अपने पालनेवालेहीको काटता है, ऐसेही यह महाक्रूर बुद्धि दुष्टस्वभाव वेन सुनीथाके गर्भमें जन्मा है ॥ १० ॥ हमने अच्छा समझकर प्रजापालक बनायाथा सो यह दुष्ट और उलटा हमारा नाश करताहै, क्या करें ? अब तो हमने इसको अपना राजा बनाही लिया, इसलिये उसको चलकर समझादें फिर हमारे शिर कोई दोष न रहेगा ॥ ११ ॥ हमने जान बूझकर इस अत्याचारीको भूप बनाया है सो अब साम, दानसे समझावेंगे और वह मंदभागी हमारे समझानेसेभी नहीं मानेगा तो जानेंगे कि, यह बडा अधर्मी है ॥ १२ ॥ तब लोगोंकी धिक्कारसे दग्धहुए इस दुष्टको हम लोग अपनी शक्तिके तेजके प्रभावसे लेशमात्रमें जलाकर भस्म करदेंगे ॥ १३ ॥ इसप्रकार परस्पर सोच विचारकर क्रोधको छिपाय सब ऋषि मुनि और प्रजागण उसके पास गये और उसके निकट जाकर साम, दान इत्यादिक उपायोंसे समझाया ॥ १४ ॥ सब मुनिलोग बोले कि, हे राजन् ! हे पुत्र ! ! हे नृपवर्य ! ! ! हम आपसे यह बात कहने आये हैं, जिसमें आपकी आयु बल कीर्ति और लक्ष्मी अधिक हो, हम कुछ आपसे कहना चाहते हैं ॥ ॥ १५ ॥ पुरुषोंको उचित है कि, तनसे, मनसे, वचनसे, बुद्धिसे धर्मके आचरण करते रहैं क्योंकि धर्मके आचरणसे शोकरहित लोककी प्राप्ति होती है, और जहां सर्वत्यागीलोग निवास करते हैं और सदा आनंद रहाता है ॥ १६ ॥ हे वीर ! वहां प्रजाकी कुशलसे अपने धर्मका नाश नहीं होता, इसलिये धर्मका नाश होनेसे राजा धर्म ऐश्वर्यसे नष्ट होजाता है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! दुष्टमंत्री और चौरादिकोंसे राजा अपनी प्रजाकी रक्षा यथावत् करैं और शास्त्रमर्यादाकी अनुसार दंडलेवें तो राजाको इस लोकमें और परलोकमें परमानंद प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ जिस राजाके राज्यमें पुरमें भगवान् यज्ञपुरुष अपने वर्णाश्रम धर्मसे सदा पूजेजाते हैं ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! जो राजा अपनी निज शिक्षासे स्थित हैं,

उन राजाओंके ऊपर भगवान् सर्वधर्मपालक विश्वात्मा अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥ २० ॥ और जब जगत्के राजाओंके भी महाराजा जगदीश्वर श्रीकृष्णचंद्र प्रसन्न हों तो उस प्राणीको कौनसी वस्तु दुर्लभ हैं ? क्योंकि, लोकपालसहित सब लोक उसके भयसे उसका आदर सन्मान कर उसको भेंट देते हैं ॥ २१ ॥ हे राजन् ! सब लोक, देवता, यज्ञ जिसमें सदा निवास करते हैं उन वेदत्रयीमय, द्रव्यमय तपोमय ईश्वरको आपकी कुशलके अर्थ नाना-विधिके विधानोंसे विचित्र यज्ञोंसे सब प्रजा समृद्धिके लिये यजन करती है सो आप उनके यज्ञोंमें सहायता करने योग्य हो ॥ २२ ॥ हे वीर ! आपके देशमें ब्राह्मणलोगोंके यज्ञ करनेसे श्रीनारायणकी कला देवतालोग संतुष्ट होकर सबको मनोवांछित फल देवेंगे, इसलिये उन देवताओंकी अवज्ञा आपको करनी नहीं चाहिये ॥ २३ ॥ वेन बोला कि, तुम सब मूर्ख हो; जो अधर्मको धर्म करके मानते हो, क्योंकि, जो सब समृद्धियोंका दाता है, उस पतिको त्यागकर जारपतिकी उपासना करते हो ॥ २४ ॥ जो मूढ नृपरूपी ईश्वरका अनादर करते हैं वह प्रजागण इस लोकमें और परलोकमें कहीं सुख और कल्याण नहीं भोगते हैं ॥ २५ ॥ और वह यज्ञपुरुष भगवान् कौन हैं ? जिसमें तुम्हारी भक्ति है, अरे मूर्खो ! तुम लोग ऐसे हो, जैसे परकीय स्त्रियां अपने पतिको तजकर जारसे स्नेह करती हैं इसी प्रकार तुम्हारी झूंठी भक्ति है ॥ २६ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्र, उपेंद्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, कुवेर, चंद्र, पृथ्वी, अग्नि, सागर, ॥ २७ ॥ यह और जो वर, शापदायक देवता हैं, वह सब राजाकी देहमें वास करते हैं क्योंकि, सर्व देवमय नरेश होता है ॥ २८ ॥ इसलिये हे ब्राह्मणो ! ईर्षा, वैर त्यागकर सब कर्मोंमें मेरा पूजन करो. और यज्ञरूप मैं हूं, मुझको बलिदान दो. मुझसे अधिक और कौन दूसरा यज्ञपुरुष पूजन करनेके योग्य है ? ॥ २९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार कुमार्गी, कुबुद्धि, पापी, पाखण्डमतमें स्थित सब मंगलसे भ्रष्ट, उस वेनको वहुत समझाया, परन्तु उस दुष्ट नरेशने मुनियोंका उपदेश न माना ॥ ३० ॥ उस अभिमानी अपने आपको पण्डित समझनेवाले वेनने घर आये ब्राह्मणोंका जब अत्यन्त अनादर किया, तब हे विदुर ! वे ब्राह्मण अपना उपदेश व्यर्थ समझकर बडे क्रोधित हुए ॥ ३१ ॥ और उन मुनीश्वरोंने यह निश्चय किया कि, इस पापीका स्वभाव महादारुण है इसलिये इसका मारनाही उचित है क्योंकि जो यह चांडाल जीता रहैगा, तो अवश्य सारे संसारको भस्म करडालेगा ॥ ॥ ३२ ॥ यह अत्याचारी नरदेवोंके योग्य सिंहासनपर बैठने योग्य नहीं है क्योंकि, यह निर्लज्ज यज्ञपुरुष भगवान्की निन्दा करके धर्मका विध्वंस करना चाहता है ॥ ३३ ॥ जिन भगवान्ने अपनी कृपाकरके इसको इसप्रकार विभव और बडाई दीहै, उन भगवान्की इस अशुभ वेनके विना दूसरा कौन निन्दा करसक्ता है ॥ ३४ ॥ इसप्रकार क्रोधमें भरकर उन ऋषियोंने उस अच्युत भगवान्के निन्दा करनेवाले वेनको एक हुंकार शब्दसे मारदिया क्योंकि, यह हुंकारशब्द, मारण प्रयोगमें आता है ॥ ३५ ॥ इसप्रकारसे वेनको मारकर सब ऋषि मुनि अपने अपने स्थानको चलेगये तब उस शोकवती सुनीथाने मन्त्र और औषधियोंके प्रयोगसे पुत्रके कलेवरकी रक्षा कराकर उसको रख छोडा क्योंकि, वह

ऋषियोंका विद्यायोग भलीप्रकार जानतीथी ॥ ३६ ॥ एकसमय सब मुनिजन सरस्वतीजीके जलमें स्नानकर अग्निमें हवनादिकसे निश्चिंत हो, सरिताके तटपर बैठेहुए सत्कथा कह रहेथे ॥ ३७ ॥ इतनेमें संसारको भयदायक उत्पात दृष्टिमें आने लगे, उनको देखकर ऋषिलोगोंने विचारा कि इससमय पृथ्वीपर कोई प्रजापालक नहीं है इसलिये हमको इस अनाथ पृथ्वीपर चोरोंका भय है ॥ ३८ ॥ मुनिलोग यह विचारही रहेथे कि, इतनेमें चोरोंके दलके दल घिर आये और उनके घोंडोंके दौडनेसे चारों ओर धूरि उडती उनके देखनेमें आई ॥ ३९ ॥ राजाके मरजानेसे लोगोंका सब धन चोर लूटकर लेगये और बडा भारी उपद्रव मचा, प्रजामें परस्पर मारपीट होनेलगी तब ऋषियोंने विचार किया और कहनेलगे कि-

चौ०-रह्यो न कोउ अब धरा अधीशा * पालै प्रजा काट शठ शीशा ॥
कहहि परस्पर प्रजाविरोधू * तिनको अब को करै प्रबोधू ॥
महा उपद्रव जगमें माच्यो * काहूको कछु कहू न बांच्यो ॥
चोरहु आपसमें सब लरहीं * इक इक कनधनहितसंहरहीं ४०॥

यदि ऐसाही उपद्रव रहा तो हम लोगोंको बडा दोष लगैगा, क्योंकि, जो ब्राह्मण समदृष्टि और शान्त होनेपरभी उन लोगोंकी रक्षा न करें तो उनका सब ब्रह्मतप क्षीण होजाता है, जैसे फूटे पात्रमें दूध नहीं रहता ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार उनका तेज नष्ट होजाताहै ॥ ४२ ॥ यद्यपि आप इस उपद्रवको शान्त करसकते हैं, तोभी राजर्षि अंगके वंशमें यह स्थित होने योग्य नहीं है, इस वंशमें सब राजा श्रीकृष्णाश्रय होनेवाले परमभक्तही हो आये हैं ॥ ४३ ॥ इसप्रकार निश्चय कर सब ऋषिलोग मिलकर नगरमें आये और मन्त्रोंसे मरेहुए वेन महीपतिकी जंघा शीघ्र मथनेलगे, तब उसमेंसे एक छोटासा पुरुष प्रगटहुआ ॥ ४४ ॥ काकके सदृश काला, अत्यन्त छोटे छोटे हाथ पाँव, ठोडी बडी, गहरी नाभि, लम्बी नाक, लाल नेत्र और लालही शिरके बाल थे ॥ ४५ ॥ वह पुरुष नम्रीभूत दीनकीनाईं हाथ जोडकर मुनियोंसे बोला कि, मेरेलिये क्या आज्ञा है ? हे विदुर ! तब मुनियोंने उससे कहा कि "निषीद" अर्थात् बैठजा, इसलिये उस पुरुषका नाम निषाद हुआ ॥ ४६ ॥ इसके वंशमें निषाद अर्थात् भील लोग हुए.

दोहा-दक्षिण दिशि सो जायकै, गिरिकानन कियो वास।
वंश आपनो करतभौ, बहु विधि जगत प्रकाश ॥
गोंड भिल्ल धीवर गिधी, और निषाद कराल।
बारि व्याध तैलक रजक, कोल किरात कलाल ॥

उस वेन दुष्टके शरीरमें महापाप भराहुवाथा, वही पाप निषादरूप बनकर बाहिर निकला और वेनवंशमें किसी प्रकारका कलंक नहीं रहा, इसीलिये उसके वंशवालोंको नगरमें वास करनेका अधिकार नहीं है, पर्वतोंकी खोहोंमें रहते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे निषादोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा-पंचदशो अध्यायमें, मथे वेनके हाथ।
तातें पृथु प्रगटो तुरत, भयो सो पृथ्वीनाथ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि, फिर उस अपुत्र वेन महीपतिकी भुजाओंको मुनियोंने मथा, तो उसमें एक जोडा अर्थात् एक कन्या और एक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ उस जोडेको जन्मा देखकर वह ब्रह्मवेत्ता ऋषि भगवान्की कला जान अत्यन्त संतुष्ट हो बोले ॥ २ ॥ ऋषि बोले कि, यह परमपुरुष संसारकी रक्षाकेलिये, विष्णु भगवान्की कलासे उत्पन्न हुआ है और यह देवी श्रीनारायणके हृदयमें नित्यप्रति वास करनेवाली श्रीलक्ष्मीजीकी कलासे प्रगटी है ॥ ३ ॥ यह जो पुरुष है, सो सब राजाओंमें आदिराज बडा तेजस्वी और यशस्वी महाराज पृथु नामसे प्रसिद्ध होगा और सब संसारमें अपना यश विस्तार करैगा ॥ ४ ॥ और यह सुन्दर सुदती देवी गुणभूषणोंसे भूषित वरारोहा आर्चिनाम, छबि-की छबि बढानेवाली, अपने पति पृथुकी सेवनीय होगी ॥ ५ ॥ और यह पृथु तो संसारकी रक्षाकेलिये साक्षात् विष्णु भगवान्का अंश प्रगट हुआ है और यह श्रीनारायणके सदा हृदयमें वास करनेवाली, भगवत्परायण, श्रीलक्ष्मीजीने आनकर अवतार लिया है ॥ ६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार ब्राह्मणलोग उनकी प्रशंसा करनेलगे, गंधर्व यश गानेलगे, सिद्धलोग पुष्पोंकी वर्षा वरसानेलगे, और देवांगना नृत्य करने लगीं ॥ ७ ॥ स्वर्गसे शंख, तूर्य, मृदंग और दुंदुभी आदि अनेक प्रकारके वाजे बजाते देवता ऋषि, पितृगण ॥ ८ ॥ सब लोकपाल शिवको साथ लेकर जगद्गुरु ब्रह्माजीभी वहां आये और पृथुके दहिने हाथमें गदाधारी चक्रका चिह्न देखा ॥ ९ ॥ और दोनों पाँवोंमें कमलके चिह्न देखकर ब्रह्माजीने समझलिया कि, यह साक्षात् विष्णु भगवान्की कलासे उत्पन्न हुवा है क्योंकि, जिसके हाथोंमें दूसरी रेखाओंसे मिलाहुवा रेखाका चक्र न होवे, उसको परमेश्वरका अंश जानना चाहिये ॥ १० ॥ ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने उसके अभि-षेकका आरंभ किया, और सब ओरसे अभिषेकके पदार्थ लोग लानेलगे ॥ ११ ॥ नदियें, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, नाग, गौ, खग, मृग, आकाश पृथ्वी और सब जीवमात्र भेंट लेले कर उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ और महाराज पृथुने स्नान करके सुन्दर वस्त्र आभूषण पहन अलंकृत अर्चिपत्नीसे शोभित मानों दूसरा अग्नि विराजमान है ऐसे देदीप्यमान दिखाई देनेलगे ॥ १३ ॥ हे विदुर ! कंचनका सिंहासन तो कुबेरने उसके लिये दिया और वरुणने चंद्रकांति समान छत्र समर्पण किया, जिसमेंसे सदा शीतल जल टपकता रहै ॥ १४ ॥ और अत्यंत विशाल दो चमर वायुने भेंट किये, धर्मने कीर्तिमय माला अर्पण करी, इंद्रने परमोत्तम किरीट दिया और यमराजने संयमन नाम दंड दिया, जो दुष्टोंका विनाश करनेवाला था ॥ १५ ॥ ब्रह्माजीने ब्रह्ममय कवच दिया, सरस्वतीने उत्तम हार समर्पण किया, श्रीहरि चक्रधरने सुदर्शन चक्र अर्पण किया और श्रीलक्ष्मीजी अखंडित ऐश्वर्य देतीहुई ॥ १६ ॥ रुद्रने दशचंद्र नाम खड्ग दिया और शतचंद्र नाम ढाल श्रीपार्व-तीजीने दी. चंद्रमाने अमृतमय घोडे दिये, और अत्यन्त सुन्दर रथ त्वष्टाने दिया ॥ १७॥

अग्निने मेढे और बैलके सींगोंसे बना हुआ धनुष दिया, सूर्यने किरणमय शत्रुके भस्म करनेवाले बाण दिये, भूमिने योगमय पादुका दी कि, जिनको पहनकर जहाँ चाहै वहाँ चले जाओ और आकाश सदा पुष्पोंका हार देता रहा ॥ १८ ॥ और आकाशके विचरनेवाले नभचर लोगोंने नाट्य, सुन्दर गीत, बाजे और अंतर्धान होनेकी शक्ति दी, ऋषिमुनियोंने सत्य आशीर्वाद दिये. समुद्रने अपना पुत्र शंख दिया ॥ १९ ॥ समुद्र पर्वत, नदियोंने उस महात्माके रथको मार्ग दिया. सूत, मागध, बंदीजन उसकी स्तुति करनेलगे ॥ २० ॥ उन स्तुति करनेवालोंको अपने समीप खडा देखकर महाप्रतापी वेनपुत्र पृथुने मेघसमान गंभीर वाणीसे हँसकर यह वचन कहा ॥ २१ ॥ पृथु बोला कि, हे सूत ! हे मागध ! ! हे सौम्य बन्दीजनो ! ! ! अभीतक लोकमें मेरे गुण विदित होते हैं, उसकी स्तुति करनी चाहिये, तुम्हारी वाणी मेरे लिये मिथ्या न होनी चाहिये. हे श्रेष्ठ वाणीवाले पाठको ! इसलिये कालान्तरमें जब हमारे गुण प्रगट दीखनेलगेंग ॥ २२ ॥ तब तुम भले प्रकार हमारे वंशकी प्रशंसा करना, यह तुम नहीं कहसक्ते कि, हम सभ्योंकी प्रेरणासे तुम्हारी स्तुति करते हैं, क्योंकि, उत्तम श्लोक परमेश्वरके गुणानुवादके आगे और मनुष्यके गुण सभासद नहीं गाते हैं ॥ २३ ॥ आत्माके महागुणके सन्मुख स्तावकोंसे असतोंके गुणकी संभावनामात्रसे कौन स्तुति करावे, वह मूर्ख इस बातको नहीं जानते कि, यह गुण मुझमें होंगे इस बातसे वंचित होनेके कारण वे लोग मेरा उपहास करेंगे ॥ २४ ॥ जो सामर्थ्य-वान्, लज्जावंत और कीर्तिवान् पुरुष हैं वह अपनी स्तुति करानेमेंभी निन्दा समझते हैं जैसे विक्रमी ब्राह्मणका वध आदि पुरुषार्थकी निन्दा करते हैं ऐसे परम उदार पौरुषकी सामने स्तुतिकी निन्दा करते हैं ॥ २५ ॥ हे सूतादिको ! हम श्रेष्ठकर्मकरके अभी लोकमें विख्यात नहीं हुएहैं, फिर बालककी नाईं आपसे कैसे अपनी स्तुति करावें ? ॥ २६ ॥

कवित्त–जाने हरि त्यागे ताहि त्यागो सब लोगनने ऐसेही वेणनृपति डरोनाहिं पापसे । आपहीको ब्रह्मा शिव विश्वनाथ कहवायो काहूको अधिक नाहिं समझै हो आपसे ॥ सूर्य और चंद्रमामें मेराही प्रकाश होत देवतोंमें महातेज मेरेही प्रतापसे । बुरो होत शालिग्राम विप्रनको दुःख देनो वेनको विनाश भयो विप्रनके शापसे ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पृथोरवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा–इस षोडश अध्यायमें, पृथुको अति सत्कार ।
लोकपाल अरु सूतगण, कीनो विविध प्रकार ॥

मैत्रेयजी बोले कि, राजा पृथु तो इसप्रकार अपनी बडाईका उनसे निषेध करताही रहा, परन्तु मुनियोंकी प्रेरणासे पाठकगण और गायक अमृतरूपी वाणीसे उसकी सेवा और

स्तुति प्रसन्न मन होकर करनेलगे ॥ १ ॥ देववर्य जो आपने साक्षात् मायासे अवतार लिया है, और वेनके अंगसे उत्पन्न हुएहो, जब आपके पुरुषार्थोंमें बृहस्पत्यादिकोंकीभी बुद्धि भ्रमजालमें आजाती है, तो फिर आपके चरित्र वर्णन करनेकी हमारी क्या सामर्थ्य है ॥ २ ॥ यद्यपि आप ऐसे हैं तोभी उदार यशी और भगवान् विष्णुकी कलावतार पृथुके कथा अमृतमें आहत होकर मुनिलोगोंका जैसा उपदेश है और उन्होंने अपने योगबलसे जैसा हमारे हृदयमें प्रकाश किया है, उसके अनुसार आपकी अनुपम महिमाका विस्तार करते हैं ॥ ३ ॥ आप धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ हैं, और लोगोंको धर्मके मार्गमें चलानेवाले हैं, और धर्मकी सीमाकी रक्षाके लिये सेतु हो, धर्मकी मर्यादारूप सेतुके तोडनेवालोंके नाशक हो॥४॥ केवल आपही अपनी देहसे तन धारण करते हो यही समय समयके यथाभाव्य होना; लोकका हित करते हैं, एक देहमें लोकपालोंके शरीर धारण करते हैं ॥ ५ ॥ उसीप्रकार लोकपालोंके शरीरका पालन, पोषण और यह सुकालमें धन लेवेंगे और दुर्भिक्ष कालमें धन देकर प्रजाकी सहायता करेंगे. सब जीवमात्रमें समान वर्तावकर सब जीवमात्रपर समदृष्टि रखकर अपने प्रतापका प्रकाश बढावेंगे ॥ ६ ॥ जैसे वसुमती सर्व संसारका भार सहन करती है ऐसेही यह कृपालु पृथु पृथ्वीकी गति धारण करके दीन दुःखी जन इसके ऊपर पगभी धरदेंगे तोभी उनका अपराध क्षमा करेंगे ॥ ७ ॥ जो कभी इन्द्र वर्षा नहीं करेगा तो यह नरदेव देहधारी विना प्रयास श्रीहरि देव कृच्छ्रप्राणसे इन्द्रके सदृश वर्षा करके आर्तजनोंकी रक्षा करेंगे ॥ ८ ॥ चंद्रवत् वदन अमृत मूर्तिसे अनुरागी चितवनके देखनेसे मनोहर मंद मुसकानसे सब संसारको तृप्त करेंगे ॥ ९ ॥ यह अप्रगट मार्ग होंगे जैसे वरुणके सब काम गुप्त हैं ऐसेही यह पृथु पृथ्वीनाथ गंभीर बुद्धि रक्षित चित्त होंगे और इसके गमनागमन मार्गको कोई नहीं जानसकैगा और इनके परिणामकी किसीको सुधि न होगी कि, यह क्याकरेंगे और इनके प्रयोजनका भाव कोई नहीं जानसकेगा और यह अनन्त महात्माओंके गुणोंके एक धाम हैं, यह पृथु प्रचेताकी नाईं जितेंद्रिय होंगे ॥१०॥ वेनरूप अरणिसे प्रगट हुए पृथुरूप अग्निका कोई शत्रु शीतल करनेवाला न होगा और सबके निकट रहनेपरभी शत्रुको ऐसे ज्ञात होंगे कि, अत्यन्त दूर बैठा है और कोई पुरुष अपने पुरुषार्थसे इसको जीत न सकैगा ॥ ११ ॥ सब जीवमात्रके बाहिर और भीतरके सब कर्मोंको चारद्वारा देखताहुवा जैसे सब प्राणियोंका अधीश आत्मभूत वायुकी नाईं सदा उदासीनसे रहेंगे ॥ १२ ॥ धर्ममार्गमें ऐसे सत्यवादी होंगे कि, अदंड्यको दंड कभी न देंगे, चाहे पुत्र हो, चाहे शत्रु; न्यायके समय किसीका पक्षपात न करेंगे, जो दंड देनेके योग्य होगा उसीको दंडका भागी करेंगे ॥ १३ ॥ इन पृथुका अखंड शासन मानसाचलपर्वतसे लेकर जहाँतक भगवान् भास्कर अपनी किरणोंसे तपते हैं; वहाँतक राज्य करेगा ॥ १४ ॥ अपनी चेष्टाकरके सब लोकोंको प्रसन्न करेंगे, फिर मनके आनंदकारी मनोहर वाक्योंसे प्रजाको अत्यानंद करेंगे और प्रजा प्रसन्न होकर कहेगी कि, महाराज ! हमारे दुःखभंजन हैं ॥ १५ ॥ दृढव्रत, सत्यवादी, ब्राह्मणोंकी सेवा करने

वाले, वृद्धजनोंके दास, शरणागतवत्सल, सब प्राणीमात्रके मानदाता, दीनदयालु होंगे ॥ ॥ १६ ॥ परस्त्रीको माताके समान माननेवाले अपनी भार्याको अपने अर्द्धांगसदृश मानने वाले; प्रजामें पिताकी नाईं प्रीति करनेवाले ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके किंकर होंगे ॥ १७ ॥ सब देहधारियोंको अपनी आत्माके समान प्रिय सुहृदोंको आनंद बढानेवाले, निःसंग पुरुषोंको संगतिवाले दुष्टोंको दंड देनेवाले होंगे ॥ १८ ॥ यह तो साक्षात् त्रिभुवननायक, निर्वेद भगवान्, त्रिगुणी मायाके अधीश सबमें बसे हैं आत्माकी कलासे अवतार धारण किया है जिसमें अविद्यारचित निरर्थक नानाभाँति प्रतीत होते हैं ऐसे दृष्टि आते हैं ॥ १९ ॥ यह नरदेवोंके नाथ, उदयाचलसे लेकर सब भूमंडलकी जैसे मार्तंड प्रदक्षिणा देता है, इसी प्रकार अकेले जयप्रद रथमें बैठ धनुषबाण लेकर समस्त भूमंडलकी प्रदक्षिणा करेंगे ॥ ॥ २० ॥ आठों लोकपाल सहित सब राजालोग जहाँ तहाँ इनके लिये भेंट देंगे और उन आदिराज चक्रायुधकी स्त्रियें इन आदिराजको श्रीनारायणकी कला समझकर वारंवार यश उच्चारण करेंगी ॥ २१ ॥ यह अधिराज गौरूपधरणीको दुहेंगे और प्रजाकी प्रजापतिकी नाईं वृत्ति करेंगे और लीलाकरके अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंको तोडकर सब पृथ्वी को समान करेंगे, इन्द्रकीनाईं पर्वतोंको भेदकर चूर्ण करेंगे ॥ २२ ॥ जिससमय ये अपने आजगव धनुषका टंकार करके निर्द्वंद्व होकर संग्राममें विचरेंगे, जैसे पूँछ उठाकर पंचानन पृथ्वीपर घूमता है, इसप्रकार विचरेंगे तब सब दिशाओंसे दुष्टलोग भाग जायँगे ॥ ॥ २३ ॥ जहाँ सरस्वती प्रगट हुई है तहाँ यह सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ करेंगे, जब सौ यज्ञ पूर्ण होजायँगे तब अंतमें वर्तमान् होनेपर इन्द्र आकर इनका घोडा चुराकर ले जायगा ॥ २४॥ यह अपने स्थानके समीपके उपवनमें भगवान् सनत्कुमारको इकला पाकर श्रद्धापूर्वक उनका आराधन करके साक्षात् निर्मल वासुदेव भगवान्के ज्ञानको प्राप्त करेंगे कि, जिस ज्ञानके करनेसे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ जहाँ तहाँ प्रजागण महापराक्रमी भूपतिका यश मधुर वाणियोंसे गानकर विख्यात करेंगे तब अपने पराक्रमकी कथा अपने कानोंसे सुनेंगे ॥२६॥ और इनकी आज्ञाको कोई भंग न करसकैगा सब दिशाओंको जीत-कर अपने तेजसे सब लोकके शूलोंको निकालकर सुर असुर इन्द्र इनकी गाथाको गावेंगे और यह महानुभावी भूमिके पति होवेंगे ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे
मुनिप्रयुक्तसूतादिकृतस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा–सत्रहमें सब अन्नको, धरणि बीज गइ खाय ।
जब पृथु कोपे धरणिपर, धरणि शरण ली आय ॥

मैत्रेयजी बोले कि, जब इसप्रकार उस भगवान् पृथुको गुणकर्मोंसे विख्यात किया, तब राजा पृथुने उनकी अत्यन्त सराहनाकर प्रणाम किया, फिर उनका पूजन कर आदरसत्कार सहित उनको संतुष्ट किया ॥ १ ॥ और ब्राह्मणादिक चारोंवर्ण, भृत्य, अमात्य, पुरोहित,

पुरवासी, सब प्रकृतिप्रजाका राजा पूजन करनेलगे ॥ २ ॥ विदुरजी बोले कि, अनेक रूप धरनेवाली धरणीने क्यों गोरूप धारणकिया ? और जब पृथुने उसको दुहा तो उस समय वत्स कौन था और दोहनी क्या थी ? ॥ ३ ॥ और स्वभावसे ऊंची नीची पृथ्वीको समान क्यों किया ? और उसके पवित्र यज्ञके घोडेको इन्द्रदेवता क्यों चुराकर लेगया ? ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे वेदवादियोंमें श्रेष्ठ ! ! भगवान् सनत्कुमारसे परमज्ञानको प्राप्तकर पूर्ण ज्ञानी हो, वह राजर्षि किस गतिको प्राप्त हुआ ? ॥ ५ ॥ और श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद भगवान्का और भी जो कुछ सुन्दर विख्यात यश पुण्यदायक भगवान् पृथुकी कथाके आश्रितहो सो आप वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ आपके चरणारविन्द अनुरागी भगवत्का भक्त जो मैं हूं सो मुझसे आप कहो कि, उस पृथुने वेनके अंगसे उत्पन्न होकर पृथ्वीको किसलिये दुहा ? ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, जब विदुरजीने वासुदेव भगवान्की कथाकेलिये इसप्रकार प्रेरणा की, तब उसकी प्रशंसा कर प्रसन्न मन होकर मैत्रेयजीने कहा ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे अंग ! जब पृथुको राज्यातिलक ब्राह्मणोंने दिया और प्रजापालनका आमंत्रण किया तब सब भूतल अन्नरहित होगया और सब प्रजागण क्षुधार्त हो कृशशरीर होगये तव प्रजापतिके ससीप जाकर बोले ॥ ९ ॥ हे राजन् ! हमको क्षुधा अत्यंत पीडित कररही है जैसे वृक्षमध्यस्थित अग्निसे वृक्ष जलते हैं, ऐसेही जठराग्निसे हम सब जल रहे हैं, हे शरणागतपालक ! हम तुम्हारी शरण हैं और ब्राह्मणोंने आपको हमारा अधिपति बनाया है, आप हमारी सब वृत्तियोंका साधन करो ॥ ॥ १० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! हमारी रक्षा करो, भूखोंके मारे हमारे प्राण प्रयाण किया चाहते हैं, अन्न देनेकेलिये आप कोई ऐसा यत्न करो कि, जिससे हमको अन्न प्राप्तहो. हे नरदेव ! इतनी शीघ्रता करो जो अन्न विना हमारे प्राण न निकलजाँय. क्योंकि, जब हमारा शरीरही न रहा तो फिर अन्न हमारे किस कामका ! चौपाई-"का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूक पुनि का पछताने ॥" आपको यह उपाय शीघ्रही करना चाहिये क्योंकि, परमात्माने आपको जीविकाका पति और लोगोंका पालक बनाया है ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! प्रजागणोंके आर्तवचन सुनकर पृथुने बहुत कालतक विचार किया, तो भलीभाँति दुर्भिक्षके प्रयोजनको समझलिया ॥ १२ ॥ कि, वसुमती सब औषधियोंके बीजको निगलगई है, इसीसे अन्नको उत्पन्न नहीं करसक्ती यह बात अपने चित्तमें निश्चय कर, धनुष बाण ले जैसे त्रिपुरासुरके मारनेकेलिये शिवने धनुष चढायाथा, उसी प्रकार भूमिके भस्म करनेको महाकालकी समान क्रोधित होकर परमप्रचंड बाण धनुषमें संधान किया १३ जब पृथुको क्रोधसे लाल लाल नेत्र किये और चाप चढाये देखा, तो पृथ्वी डरकी मारी थरथर काँपने लगी, और धेनुका रूप धरकर भागी, जैसे वधिकके भयसे मृगी भागती है, ऐसेही वसुंधरा व्याकुल होकर भागी ॥ १४ ॥ भागती हुई भूमिको भूप देखकर रथपर चढ महाक्रोधित हो अरुणनयन कर धनुषबाण चढाय उसके पीछे भागा और जहां जहां पृथ्वी गई वहाँ वहाँ पृथुने उसका पीछा न छोडा ॥ १५ ॥ वह देवी वसुमती दिशा,

विदिशा, अवनि, आकाश, नरपुर, नाकपुर, नागपुर उनके मध्यका अंतरिक्ष जहाँ जहाँ भागकर गई, उन्हीं उन्हीं स्थानोंपर पृथुको शस्त्र लिये आता हुआ अपने पीछे देखा, सब लोकपालोंके लोकोंमें अत्यन्त शोकाकुल हो भागी भागी फिरी.

दोहा-इन्द्र वरुण अरु धनद यम, लोकपाल भूपाल।
राख सकैं नहिं निजभवन, पृथुभय अति विकराल ॥
ब्रह्मलोकलों महिफिरी, अतिभय कंपित गात।
पृथुके भयसे धरणिकी, किनहुँ न बूझी बात ॥ १६ ॥

जैसे प्रजा मृत्युके सन्मुख थरथर काँपती है, और कोई नहीं बचासक्ता, ऐसेही पृथुके सामने किसीकी सामर्थ्य न थी जो विना दीनदयालके दीन पृथ्वीकी रक्षा करें. जब कहीं शरण न मिली तव भागनेसे निवृत्त हो पीछेको लौटी ॥ १७ ॥ और मस्तक नवाकर महाबाहु राजा पृथुसे बोली कि, हे धर्म ! हे शरणागतप्रतिपालक !! हे आपद्रक्षक ! ! ! सब संसारके पालन करनेके लिये आप उत्पन्न हुएहो, तो मेराभी पालन करो ॥ १८ ॥ मुझ दीन निरपराधिनीको क्यों मारतेहो ? आप तो धर्मज्ञ कहातेहो फिर मुझ अबलापर कैसे हाथ डालोगे ? ॥ १९ ॥ यद्यपि स्त्री कोई अपराधभी करें तो साधारण मनुष्यभी उसको नहीं मारते और आप तो आर्तबंधु, प्रणतपाल, दीनवत्सल हो, आपका तो कहनाही क्या है ? ॥ २० ॥ जिसमें सव विश्व स्थित ऐसी दृढ नौकारूप मुझको तोडकर फिर इस संसारको और अपने शरीरके आधारको जलपर किसप्रकार धारण करोगे ? ॥ २१ ॥ पृथु बोले कि, हे वसुंधरे ! तैंने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है, इसलिये मैं तुझको विना मारे कदापि न छोडूंगा, क्योंकि, यज्ञमें तू अपना भाग लेनेको तो उपस्थित होजाती है और धान्यादिक उपार्जन नहीं करती, फिर तू दंडकी भागी न होगी ? ॥ २२ ॥ और सुन, जो गाय सदा घास और दाना तो खाय, और दूध दे नहीं, तो उस दुष्टको दंड देना योग्य है वा नहीं ? ॥ २३ ॥ तैंने मुझे अयोग्य समझकर, ब्रह्माजीके पहिले रचेहुए जो औषधियोंके वीज थे वह अपने उदरमें रोकलिये हैं, उनको तू प्रगट नहीं करती ॥ २४ ॥ चौ०-रे धरणी कुमती दुखदाई। नाहिं जानत मेरी प्रभुताई ॥ यह दीन प्रजा भूंखके मारे व्याकुल हो अत्यन्त दुःखी होरही है सो अब अपने तीव्र बाणोंसे तेरा शरीर विदीर्ण कर तेरी मज्जासे इस आर्त प्रजागणको प्रमुदित करूंगा ॥ २५ ॥ पुरुष, स्त्री, नपुंसक, अपनी बडाई आप करनेवाला, प्रजाको क्लेश देनेवाला, दयाहीन, साधुओंसे द्रोह रखनेवाला और अधम, इतने पुरुषोंका मारना राजाको न मारनेके समान है क्योंकि, इनके मारनेका कुछ दोष नहीं ॥ २६ ॥ अरी गर्वीली ! कुमतिभरी ! दुर्मदवाली धरणी ! तैंने कपट करके गौरूप धारण किया. मैं तिल तिल समान तेरे खंड खंड करके अपने अनुपम योगबलके प्रतापसे प्रजाको जलके ऊपर धारण करूंगा ॥ २७ ॥ क्या तैंने मेरे प्रतापको कुछ नहीं समझा; इसप्रकार क्रोधमयी महाकरालमूर्ति कालकी समान, धारण किये पृथुको देख धरणी नम्र हो थरथराती कांपती हाथ जोडकर बोली ॥ २८ ॥ धरा बोली कि, जय परमपुरुष पथ्वीश नानाप्रकारकी

माया करके शरीर धारण करनेवाले, आत्मा स्वरूपके अनुभवसे दूर हुए हैं, जिन्होंने द्रव्य क्रिया और कारकसंबंधी अहंकार और अहंकार निमित्तक रागद्वेषादिक, ऐसे धर्मज्ञको मैं वारंवार नमस्कार करतीहूं॥२९॥ जिस ब्रह्माने अपने रचेहुए जीवोंके लिये मुझको रचा है और मुझको सब प्राणिमात्रका आधार बनाया है स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज, जरायुज यह चारों प्रकारके जीव मेरे ऊपर वास करते हैं, सोई स्वतंत्र विश्वनाथ आज हाथमें धनुषबाण लेकर मेरे मारनेको उद्यत हुए हैं. अब मैं ऐसे परमात्माको छोडकर और किसकी शरण लूं ? ॥ ३० ॥ आदिमें जो परमेश्वरने अपने अधीन रहनेवाली प्रवर्तक मायासे चराचरको उत्पन्न कियाहै और उसी अपनी मायासे संसारकी रक्षाके लिये हुआ है, सो वह धर्मपरायण परमात्मा मुझको किस लिये मारता है ॥ ३१ ॥ सत्य है कि, परमात्माकी चेष्टा उनकी दुर्जय मायासे विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषोंसे नहीं जानीजाती कि, जिस स्वतः एक होनेपरभी मायासे अनेक रूप और स्वाधीन परमेश्वरने यह जगत् रचा और ब्रह्माके द्वाराभी चराचर विश्वको उत्पन्न करवाया है ॥ ३२ ॥ द्रव्य, क्रिया, कारण, चेतन आत्मा करके अपनी शक्तियोंसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, प्रलय, करता है. अति उत्कट और निरुद्ध शक्तिवाले वेधा परमपुरुषके अर्थ मैं वारम्वार नमस्कार करतीहूं ॥ ३३ ॥ हे विभो ! हे अज !! आप उसी अपनी आत्मासे रचेहुए महाभूत इन्द्रिय अंतःकरणात्मक इस अपने उत्पन्न किये हुए विश्वको उत्तम रीतिसे स्थित करनेके लिये आदिवाराहरूप धर हिरण्याक्ष दुष्टको मार रसातलसे मेरा उद्धार कियाथा ॥ ३४ ॥ और पानीके ऊपर नौकारूपसे स्थापित आधारभूत मेरे ऊपर रही हुई प्रजाओंके पालन करनेके लिये जो आप पृथुरूप धारण करके उत्पन्न हुए हो उसी धरणीके धारण करनेवाले आप उग्र बाण चढाकर मेरे मारनेको उपस्थित हो. क्या कहूं बडे अचंभेकी बात है ॥ ३५ ॥ निश्चय है कि, मुझसरीखे जिनके चित्त परमात्माकी मायासे मोहित हैं वह पुरुष भगवान्के भक्तोंकी चेष्टाभी जब नहीं जानसके तो फिर परमात्माकी चेष्टा जाननी तो महाकठिन है उसको कैसे जानसक्ते हैं ? भगवान्की समान जितेन्द्रिय वीर पुरुषोंके लिये वारंवार मेरा नमस्कार है, कोई कहे कि, पृथुने इतनी बडी पृथ्वीको व्याकुल करदिया तो यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है भगवत्के भक्तोंको सब सामर्थ्य है ॥ ३६ ॥

भजन-कहाँ कमी जाके राम धनी ॥ मनसामाहिं मनोरथ पुरवे, शुभ निधान जाकी बात बनी । अर्थ धर्म कामना मोक्ष फल, चार पदार्थ देत छनी ॥ इन्द्रादिक हैं जाके सेवक, नर बपुरेकी कौन गनी । कहा कृपणकी माया घनी है, करत फिरत अपनी अपनी ॥ खाय न सके खर्च नहिं जाने, ज्यों भुजंगवश रहत मनी। आनंदमगन रामगुणगावत, बिसरत दुख की काट तनी,सूरदास प्रभुको सुमिरत नित तनसों हरिसों सदा बनी॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पृथुधरणीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा-अष्टादश अध्यायमें, धरा वचन प्रिय मान।
वत्सपात्र सब जानके, लगे करन पयपान॥

मैत्रेयजी बोले कि, क्रोधसे होठ जिसके फडक रहे ऐसे पृथुराजकी स्तुति कर भयभीत पृथ्वी बुद्धिसे मनको सावधान करके फिर बोली कि ॥ १ ॥ हे नृपेन्द्र ! क्रोधको शांत करो और मुझको अभयदान देकर मेरी विनय सुनो, जैसे भ्रमर पुष्पका सारसार रस लेलेता है, ऐसेही जो बुद्धिमान् विलक्षण लोग होते हैं वे सब वस्तुका सार ग्रहण कर लेते हैं॥ ॥ २ ॥ इस लोकमें और परलोकमें तत्त्वदर्शी मुनियोंने पुरुषोंके कल्याणकी सिद्धिके लिये योगप्रयोग कृषीआदि उपाय बतलाये हैं और उन्होंने कर्मारम्भ किये हैं ॥ ३ ॥ जो महात्माजनोंने उपाय बतलाये उन प्रयत्नोंको जो लोग श्रद्धासहित अच्छी रीतिसे सावधान हो अनुष्ठान करते हैं, वह प्रतिकूल पुरुषभी उन उपायोंको विना अनायास और सेवा प्राप्त होजाते हैं ॥ ४ ॥ जो अज्ञानी उन प्रयत्नोंका तिरस्कार करके अपने मनसे अथवा और किसी रीतिसे नूतन उपाय करते हैं तो उनके वारंवार प्रारम्भ किये हुए, फल सब नष्ट होजाते हैं ॥ ५ ॥ हे विशांपते ! ब्रह्माजीकी पहली रचीहुई औषधी और जो अन्नादिक था, उनको वेनआदि व्रतरहित कुकर्मी लोगोंको भोगते मैंने देखा ॥ ६ ॥ जब आपसे लोकपाल होकर न तो मेरा पालन किया और न प्रजाका पालन किया और उलटा उसका निरादर किया, जब लोकमें चोरही चोर होगये तब मैंने यज्ञके लिये सब औषधियोंको ग्रसलिया, क्योंकि यह औषधि पापियोंके योग्य नहीं हैं, जो इन औषधियोंको पापी भक्षण करलेंगे तो फिर मुनिलोग यज्ञके समय कहांसे लावैंगे, मैंने अपने मनमें यह विचार कर सब अन्नका भक्षण करलिया, इसी कारण संसारमें दुर्भिक्ष होगया ॥ ७ ॥ निश्चय है कि, वह द्रुम वेली अब अधिक समय व्यतीत होनेसे मेरे देहमें क्षीण होगई हैं सो जो कुछ उपाय महात्माजनोंने बतलाया है, उसी उपायसे और अपने योगबलसे आप मुझसे लेलो ॥ ८ ॥ हे वीर ! प्रथम तो एक वत्स कल्पना करो जिससे मैं तुम्हारी प्यारी रहूं और दूसरे उसी प्रकारकी मेरे अनुसार दोहिनी बनाओ, जिससे मैं आपपर प्रसन्न होकर दुग्धरूपी आपकी सब अभिलाषा पूर्ण करूं ॥ ९ ॥ हे महाबाहो ! हे भूतभावन ! ! जो तुम प्राणियोंके लिये मनवांछित अन्नकी इच्छा करो हो तो किसी दुहनेवालेको स्थापित करो ॥ १० ॥ हे विभो ! हे राजन् ! ! आप मुझको बराबर करदीजे कि जिसमें वर्षाऋतुके समाप्त होजानेपरभी देवका वर्षायाहुआ पानी मेरे उपर सदा नालोंमें भराही रहे॥ ११॥ ऐसे प्रियहितकारी वाक्य पृथ्वीके सुनकर भूपतिने मनुको वत्स बना, हाथोंमें सुन्दर दोहनी ले, धेनुरूप धरणीसे अन्न दुहनेलगे ॥ १२ ॥ उसीप्रकार औरभी ज्ञानी लोग सब ओरसे सारग्रहण करनेलगे. सो औरभी ऋषि मुनि आदिक पन्द्रह जनोंने महाराज पृथुकी वश करीहुई पृथ्वीको अपनी इच्छानुसार दुहा ॥ १३ ॥ हे विदुर ! ऋषियोंने बृहस्पतिजीको वत्स बनाया और इन्द्रियरूप पात्रमें परमपवित्र वेदमय दूधको दुहा ॥ १४ ॥ देवताओंने इन्द्रको वत्स बनाया और कंचनमय पात्रमें अमृत वीर्य्य, ओज, बल, रूप, पय दुहा॥ १५॥

दैत्य और दानवोंने असुर श्रेष्ठ प्रह्लादको वत्स बनाकर लोहेके पात्रमें सुरा, आसवरूप दूध दुहा ॥ १६ ॥ गंधर्व और अप्सराओंने विश्वावसुको वत्स बनाकर कमलमय दोहनीमें मधुरवाक्य और सुन्दरता सहित गानविद्यारूप दूध दुहा ॥ १७ ॥ महाभगवान् श्राद्धदेवताने श्रद्धा करके अर्यमा नाम पितृको वत्स बनाकर कच्चे माटीके बर्तनमें पितृगणके योग्य अन्नरूप क्षीरको दुहा ॥ १८ ॥ सिद्धलोगोंने कपिलदेवजीको वत्स बनाकर, संकल्पमयी नाम सिद्धिविद्याको दुहा और जो विद्याधर आदिक थे उन्होंने आकाशपात्रमें खेचर विद्यारूप दूधको दुहा ॥ १९ ॥ और जो मायावी लोग थे उन्होंने मयदैत्यको वत्स बनाकर गुप्त होजाना इत्यादिक अद्भुत प्रकृतिवाले पुरुषसंबंधी संकल्पमात्रसे प्रगट होनेवाली मायारूप दूधको दुहा ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच जो रुधिरपान करनेवाले थे उन्होंने रुद्रको वत्स बनाकर कपालोंमें रुधिररूप मदिराको दुहा ॥ २१ ॥ तैसेही वृश्चिकादिक सर्प, नागोंने, तक्षकको वत्स बनाकर बिलरूप पात्रमें विषरूप दूधको दुहा जिनके डसनेसे मनुष्य उसी समय मरजाता है ॥ २२ ॥ सब पशुओंने नंदिकेश्वरको वत्स बनाकर वनरूप पात्रमें मृगेंद्रदंष्ट्रि करके घासतृणादिकरूप दुग्ध दुहा ॥ २३ ॥ मांसाहारी जीवोंने सिंहको वत्स बनाकर, अपने शरीररूप पात्रमें मांसरूप दूधको दुहा और पक्षियोंने खगराजको वत्स बनाकर सब पक्षी चर कीटादि अचर फलादिरूप दूधको दुहा ॥ २४ ॥ वृक्षोंने वटको वत्स बनाकर वनस्पति आदि अनेक प्रकारके रसरूप दूधको दुहा. पर्वतोंने हिमाचलको वत्स बनाकर शिखररूप पात्रमें नानाप्रकारकी धातुओंको दुहा ॥ २५ ॥ सब जनोंने अपने अपने मुखियाओंको वत्स बनाकर अपने अपने पात्रमें सब मनोवांछित फल देनेवाली पृथुराजाकी वशीभूत करीहुई पृथ्वीसे अपने २ मनमाना पृथक् पृथक् दूध दुहा ॥ २६ ॥ हे कुरुनंदन ! ऐसे अन्नभोजन करनेवाले पृथु आदिक सर्वत्र पुरुषोंने अपने अपने अभीष्ट अन्नको दुहा, परंतु दोहनी वत्सादि भेद हो जैसे उस दूधमेंभी होगया ॥ २७ ॥ फिर तो राजा पृथु पृथ्वीपर अत्यंत प्रसन्न हुए, और सब कामदात्री पृथ्वीको अपनी प्यारी पुत्री बनाई, और प्रेमसे दुहिताके वत्सल हुए ॥ २८ ॥ फिर राजाधिराज विभु अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंके शिखरोंको तोड फोड कर भूमंडलको इकसार करदिया ॥ २९ ॥ फिर भगवान् पृथु प्रजाओंके जीवनका दाता, पिताके समान आनंद देनेवाले जहाँ तहाँ इस पृथ्वीपर यथायोग्य निवासके लिये उत्तम उत्तम निवासस्थान कल्पना करनेलगे ॥ ३० ॥ ग्राम, नगर, पुर, अनेक प्रकारके दुर्ग, गोशाला, ग्वालियोंके रहनेके लिये स्थान, सेनाओंके रहनेके लिये सैन्य भवन, पर्वतके प्रान्तभागके ग्राम जहाँ तहाँ वसादिये ॥ ३१ ॥ पृथुके राज्यसे पहिले पुरग्रामादिककी रचना कहींभी नहीं थी, जहाँ अपना सुखदेखतेथे, वहाँ निर्भय होकर स्थान बनालेतेथे उन्हीं लोगोंको हम वारंवार धन्यवाद देतेहैं.

कवित्त-वालमीकि नारद वसिष्ठ व्यास विश्वामित्र, भारद्वाज लोमशादि ऋषि जे कहावैंहैं । दिनोंरात भगवत्की महिमामाहिं मग्न रहैं,

जिन्ह यश वेद रु पुरान सदा गावैं हैं ॥ घाम शीत वर्षा सब वनही-
में टेर करी, उनहींको ' शालिग्राम ' पूरण बतावैं हैं । आजकालके
मनुष्य थोरेसे जीवनहेत, अटा औ अटारी न्यारी न्यारी बनावावैं हैं ॥३२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे दोहनवत्सादिभेदेन पृथुराज्ञा पृथ्वीदोहनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा-उन्निसवें अध्यायमें, इन्द्र हरो पृथुवाज।
ताके मारनके लिये, उद्यत भे पृथुराज ॥

मैत्रेयजी बोले कि, फिर राजा पृथुने सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ करनेका संकल्प किया, जहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वती है और ब्रह्मामनुका ब्रह्मावर्त क्षेत्र है ॥ १ ॥ भगवान् इन्द्रने पृथुका यह अभिप्राय समझा कि, जो इसके सौ यज्ञ संपूर्ण होजायँगे; तो यह मेरा इन्द्रासन छीन लेगा, इसलिये उनके महोत्सवको न देखसका ॥ २ ॥ उस यज्ञमें यज्ञपति साक्षात् भगवान् वासुदेव ईश्वर सर्वात्मा सर्व लोगोंके गुरु श्रीभगवान् आनकर प्रत्यक्ष प्रगट हुएथे ॥ ३ ॥ जिसके साथ चतुरानन ब्रह्माजी पंचानन महादेवजी, लोकपाल और लोकपालोंके अनुचरभी उद्यत थे और गंधर्व, मुनि, अप्सरागण, सब आपका यश वर्णन कररहेथे ॥ ४ ॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य. दानव, गुह्यक, आदिक, सुनंद, नंद, मुखिया भगवान् हरिके पार्षद ॥ ५ ॥ कपिलदेव, नारद, दत्तात्रेय, सनकादिक योगेश्वर और जो जिनके मन भगवतसेवनमें थे, वे सब आनकर उपस्थित हुए ॥ ६ ॥ हे भारत ! जहाँ सर्व मनोवांछित देनेवाली भूमी गोरूप धारण कर राजा पृथु यजमानको, सब मनोरथ पूर्ण करनेवाले अर्थको देतीहुई ॥ ७ ॥ क्षीर, दधि, गोरस, सब प्रकारके रस नदियोंमें बहनेलगे, और जिनके विस्तृत देह ऐसे मधुस्रावी वृक्षफलादिक पदार्थ, उत्पन्न करनेलगे ॥ ८ ॥ समुद्रने रत्नोंके समूह दिये. पर्वतोंने चार प्रकारका अन्न भेंट किया भक्ष्य, भोज्य, चोष्य लेह्य और लोकपालसहित सब लोगोंने भेटें दीं ॥ ९ ॥ इसप्रकार भगवान् वासुदेव जिसके रक्षक ऐसे महाराज पृथुराजके अत्यन्त उदयवाले कर्म देखकर भगवान् इन्द्रके मनमें ईर्षा उत्पन्न हुई और पृथुके शुभकर्मका सहन उससे न होसका ! अपने मनमें बहुत दुखी हुआ क्योंकि जहाँ सुना वहाँ पृथुका सुयशही सुननेमें आया और जो सिद्ध, चारण, गंधर्व, पृथुके यज्ञमें गये उन्होंने राजा पृथुहीका यश गाया और परस्पर प्रशंसा करनेलगे कि, आज दिन पृथुकी विभवके आगे इन्द्रलोककी विभव फीकी दृष्टि आती है, आज दिन राजा पृथुही त्रिभुवनपति है; इन्द्र उसके सेवककी समान जान पडता है, इसी लज्जाका मारा यह अभिमानी पृथुके यज्ञमें नहीं गया, जब मुनियोंके मुख से सुरेन्द्रने अपनी निन्दाके वचन सुने, तब तो सुरपति अत्यंत क्रुधित हो कुलिश हाथमें ले लाल नेत्र कर, सभाके मध्यमें महागंभीर वाणीसे बोला.

दोहा—पृथ्वीपति है कौन पृथु, जाकी करहु प्रशंस।
मैंही यक त्रिभुवनधनी, कश्यप कुल अवतंस॥

चौदह भुवनमें मेरे उज्ज्वल यशका मार्तंड प्रकाश कररहा है, आजदिन ऐसा कौन बली है जो मेरे बलकी समता करसके, एक छोटासा क्षुद्र क्षत्रिय क्षितिमें है, उसको मैं भलीभाँति जानताहूँ, कि वह महाअत्याचारी वेनका पुत्र है जिसको ऋषियोंने शाप देकर भस्म करदियाथा, उसके मृतक शरीरसे इसका अवतार है और किंचिन्मात्र प्रभुताई है जिसको तुम पृथ्वीपति बताते हो और एक बात बडी हँसीकी है जिसको कहते मुझे लज्जा आती है, उसी महापापी वेनके अंगसे एक कन्या उत्पन्न हुईथी, उस अपनी बहन को पृथु कुकर्मीने अपनी पत्नी बनाया, प्रजागणने उसके शिरपर छत्र धरकर उसको भूप बनादिया, भला वह निर्लज्ज मेरे समान कैसे होसक्ताहै ? देखो ! मैं आजही उसका यज्ञ विध्वंस कर उसका शिर काटूंगा, देखूं वह नीच मेरे वज्राघातसे कैसे बचसक्ता है ? यह कह एरावतपर चढ, वज्र हाथमें ले, अत्यंत क्रोधवंत हो, पृथुका यज्ञविध्वंस करनेकेलिये चला, उससमय राजा पृथुके निन्यानवें (९९) यज्ञ पूर्ण होचुकेथे, वहाँ सौवां यज्ञ था उससमय इन्द्र यज्ञशालाके निकट आ, यज्ञका प्रबंध देख, अपने मनमें विचार करनेलगा जो मैं इस यज्ञमें अब कुछ विघ्न करताहूं तो यहाँ बडे बडे वीर और योद्धा जो इस मखकी रखवालीके लिये उपस्थित हैं, वे अवश्य पृथुके सहायक हो मुझसे युद्ध करेंगे और ये वीर मेरे वशके नहीं, इसलिये पहले तो यज्ञका तुरंग हरलेना चाहिये जिससे यज्ञही भंग होजाय और जब यज्ञका अश्वही नहीं होगा, तो फिर यज्ञ कहां ? फिर तो महादेव और ब्रह्मा आपही अपने २ भवनको चलेजायँगे, केवल भूपही अकेला रहजायगा, फिर उसका मारना कुछ कठिन नहीं झट उसे मार अपना यश विस्तार करूंगा, ऐसा विचार किया ॥ १० ॥ और यहां अंतके सौवैं (१००) अश्वमेध यज्ञमें पृथु यज्ञपतिकी पूजा करने लगे, तब इंद्र आत्मश्लाघा करके अंतर्धान हो यज्ञके घोडेको चुराकर लेगया ॥ ११ ॥ आकाशमार्गमें भागतेहुए इन्द्रको भगवान् अत्रिऋषिने देखा कि राजा पृथुके यज्ञका अश्व चुरायेलिये जाताहै, जिसने सब स्थानोंमें पाखंड फैला रक्खाहै, जो अधर्मसे धर्मकैसा भ्रम करानेवाला है "उसीसमय मखशालासे यह शब्द सुनाई पडा"

दोहा-लैगयो लैगयो अश्व कोउ, तहाँ भयो यह सोर।
चकितचित्त चितवनलगे, मुनिजन चारों ओर॥ १२ ॥

अत्रिऋषिके संकेत करनेसे महाराजपृथुका पुत्र महारथी महाक्रोधकर उसके पीछे दौडा, और पुकार कर बोला, खडा हो ! खडाहो ! कहां भागा जाताहै ? अरे चोर ! अरे अभिमानी ! किसने तेरा देवराज नाम रक्खाहै, अरे निर्लज्ज ! अरे अधम ! मेरा तुरंग लेकर कहां जायगा मैं अभी पकडकर तेरा शिर काटूंगा, हमारे पिताके यज्ञका अश्व हरलेना तैंने सहजही समझलिया, बस अब आगे न भाग ॥ १३ ॥ जब महारथी पृथुके पुत्र विजिताश्वने समीप जाकर देखा तो तनमें भस्म मले जटा धारण किये, यह तो मूर्तिमान्

धर्म जानपडता है अथवा यह कोई संन्यासी है, यह इन्द्र नहीं ऐसा समझ उसपर बाण नहीं चलाया और उससे पूँछा कि हे तपस्वी ! तुमने इन्द्रको घोडा लियेजाते देखा ? तपस्वीने कहा कि, इंद्रको मैंने तुरंग लिये जाते नहीं देखा. तब जाना कि, माया करके इंद्र अंतर्धान होगया, निदान इंद्रके वधसे निराश होकर विजिताश्व लौटनेको उपस्थित हुआ ॥ १४ ॥ जब अत्रिने समझा कि, पृथुराजका पुत्र इंद्रके वधसे निवृत्त होगया-तव अत्रि ऋषिने फिर उसके वध करनेकेलिये विजिताश्वको भेजा और कहा कि, हे पुत्र ! इस अधर्मीको मार, यही तेरे पिताके मखका विध्वंस करनेवाला है यही सुराधम इंद्र है। यह संन्यासी नहीं है ! इसीने घोडा चुरायाहै ॥ १५ ॥ जब अत्रिने पृथुके पुत्रको इस प्रकार समझाया, तव विजिताश्व अत्रिकी वाणी सुन फिर लौटा और धनुषबाण संधान कर बोला कि, हे नाथ ! मुझे धोखा होगया परंतु अब किसी प्रकार यह नहीं बचसकता. चाहे ब्रह्मलोकमें क्यों न जाय यह कह आकाशमार्गमें होकर उसके पीछे धावमान हुआ.

दोहा-इन्द्रनिकट अतिबेगसों, पहुँचो राजकुमार।
जैसे रावणपै गयो, गृध्रराज ललकार॥ १६ ॥

जब पुरंदरने जाना कि, मैं इसके हाथसे नहीं बचूंगा तब भागा उस समय विजिताश्वने कोदंडपर कठिन प्रचण्ड बाण चढाया, तब, वह इन्द्र अश्व और अपना पाखण्ड रूप त्याग अंतर्धान होगया, वह महारथी अपने अश्वको लेकर पिताकी यज्ञशालामें आया, और दंडवत करके वह अश्व अपने पिताको दिखाया ॥ १७ ॥ बडे बडे वेदवेत्ता महात्मा पुरुष और ऋषि लोगोंने उसके अद्भुत विक्रमको देखकर और सुरेन्द्रका पराजय कर घोडा लेआनेसे इसका विजिताश्व नाम रक्खा ॥ १८ ॥ वह सामर्थ्यवान् पुरंदर फिर वहां आया और घोर अंधकार फैला फिर गुप्तरूप धरा कि, जिसको कोई पहँचान न सके यज्ञके खंभसे जो सुवर्णकी संकलामें तुरंग बँधरहाथा. उससे खोल संकलसमेत घोडेको चुराकर लेगया. " परन्तु यह भेद किसीने न जाना " जब इन्द्र बाजिको कुछ दूर लेगया तब सब अंधकार जातारहा ॥ १९ ॥ फिर अत्रिने आकाशमार्गमें इन्द्रको घोडा लिये जाता हुआ देखा तो, राजकुमारसे कहा कि, हे विजिताश्व ! जिस अश्वको तू इन्द्रसे छीनकर लायाथा, उस अश्वको इन्द्र फिर चुराकर ले गया, विजिताश्वने कहा कि, अब इन्द्रको जीताही न छोडूंगा जो फिर उपद्रव करे यह कह फिर धनुषबाण ले इन्द्रके पीछे हुआ, और अरुण नेत्र कर बोला,

चौ०-रे रे देवराज तैं चोरा * जै है कहाँ अश्व लै मोरा ॥
रे निर्लज्ज अधम अन्याई * अश्व हरत तोहिं लाज न आई ॥
अस कहि इन्द्रनिकट निगचानो* तब तो इन्द्र महाभय मानो ॥
कालहु तैं कराल यह बीरा * अब नहिं बचि हैं मोर शरीरा ॥

यह विचार झट अपनी माया रच अघोरी रूप धारण कर लिया माथे पर मनुजकपाल धारे एक हाथमें मृतकशरीर लिये एक हाथसे बैलकी नाथ पकडे आगे आगे जाता देखा

परंतु कपाल खट्वांग धारण किये देखकर राजकुमारने इसपर बाण प्रहार न किया, फिर विजिताश्वने बूझा कि, इधरको कोई पुरुष घोडा लेकर गया है, अघोरीने कहा कि, हमने नहीं देखा, उससमय विजिताश्व निराश हो फिर अपने भवनको फिरा ॥ २० ॥ अत्रिने फिर प्रेरणा की कि, अरे पुत्र ! यही है देवराज घोडेका चुरानेवाला, तब विजिताश्वने फिर क्रोधित होकर शरसंधान किया, फिर इन्द्र अश्वको और उस रूपको तजकर अंतर्धान होगया ॥ २१ ॥ फिर आगे बढकर विजिताश्वने देखा तो घोडा तो खडा है परन्तु पुरंदर नहीं । वह महाबलवान् तुरंगको लेकर फिर पिताके यज्ञमें आया और महर्षि महात्मा और पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, उससमय सब सिद्ध मुनि और समाजके मनुष्य विजिताश्वकी प्रशंसा करने लगे कि कौन इसकी समता करसकताहै कि, जिसने सुरेंद्रको जीतकर घोडा छुडा-लिया और पुरंदरने जो जो पाखण्डरूप धारण कियेथे, उन्हीं निन्दनीय वेषोंको अज्ञानी और मूर्खलोग धर्म समझकर ग्रहण करते हैं ॥ २२ ॥ घोडेके चुरानेके मनोरथसे वासवने जो जो वेष धारणकिये वही पापके चिह्न खण्डखंडमें प्रगट हुए ॥ २३ ॥ पृथुके मखभंग करनेकी अभिलाषासे अश्वके चुरानेके लिये, जो जो रूप धरकर इन्द्रने अपना पीछा छुटाया उन पाखंडोंमें मनुष्योंकी मति लगीरहती है ॥ २४ ॥ वह पाखण्डधर्म यह है, दिगम्बर अर्थात् नग्न रहनेवाले जैसे जैन, रक्तपट अर्थात् भगौए वस्त्र धारण करनेवाले बौद्ध और कापा लिक शिरपर जटाजूट बांधे शरीरमें भस्म लगाये सेली, सींगि, गलेमें डाले, हाथोंमें झोली खप्पड लिये जैसे गोरखपंथी, और कोई परमहंस कहलाते हैं अनेक प्रकारके जो यह धर्मके समान प्रगट होनेवाले पाखण्डमार्ग प्रसिद्ध हैं इनको धर्मका मार्ग समझकर बहुधा बहुत मनुष्य भ्रांतिमें आकर इनके भ्रमजालमें फँसजाते हैं, क्योंकि यह बाहिरसे देखनेमें बडे शोभायमान, और मनोहर और हेतु वादमें विलक्षण होते हैं, परन्तु भीतर कपट, क्रोध, लोभ, मोहमें लवलीन रहते हैं. हे विदुर ! ऐसे पाखंडी लोगोंका संग विद्वान् लोग नहीं करते, क्योंकि पाखंडियोंका संग सदा पाप और अज्ञानको उत्पन्न करता है ॥ २५ ॥ इन्द्रका यह अनर्थ देखकर और यह अभिप्राय जान भगवान् पृथुने उस अभिमानी इन्द्रपर महाक्रुधित हो धनुष हाथमें लेकर बाण संभाला उस समय ऐसा जान पडताथा कि मानो ब्रह्मांडको अभी खंड खंड करदेगा, दश दिशाओंमें अग्निसी प्रज्वलित होगई, और सब ओर लालही लाल दृष्टि आने लगा, धरणी कँपकँपाने और कूर्म कुलमलाने लगा, उल्का-पात आकाशमें प्रगट होगये, समुद्रने अपनी मर्यादा छोडदी, दिग्गज चिक्कारने लगे, त्रिभुवनमें हाहाकार मचगया, प्रजागण व्याकुल होगये.

दोहा—बाणज्वालकी ज्वालतें, जरनलगे तिहुँ लोक ।
बाढत भो तेहि कालमें, देवनके उरशोक ॥

अब हमको भलीभाँति जान पडता है कि, इन्द्र किसीप्रकार नहीं बचसक्ता, राजा पृथु अभी अपने आसनसे उठा नहीं, बाण हाथसे छोडा नहीं, अब तो यह गति है और जिस समय बाण हाथसे छोडेगा, न जानिये उससमय क्या गति होगी ? हम जानतेहैं कि,

पृथ्वी लोट पोट होजायगी इन्द्रलोक भस्म होजायगा. बडा अनर्थ होगा, ऐसा विचार कर सब देवता और ऋत्विज् पृथुके समीप गये ॥ २६ ॥ जिसके सन्मुख जाना तो क्या ? परंतु देखनाभी अति कठिन हैं, ऐसे असह वेगवाले पृथुकी वासवके वधकी इच्छा जानकर मुनियोंने राजासे कहा कि अहो महाबाहो ! इस यज्ञमें पशुवधके अतिरिक्त और दूसरेका वध करना उचित नहीं ॥ २७ ॥ और यदि इन्द्रके मारनेहीकी आपकी इच्छा है तो हे नृपनन्दन ! हे नृपेन्द्र ! ! तुम्हारे यशसे हतकांति अनर्थनाशक, मनोरथके विध्वंस करनेवाले अभिमानी इन्द्रको हम उन मंत्रोंसे आह्वान करके बुलालेंगे, जिनके सार नहीं गये हैं, फिर हम हठ करके आपके वैरी इन्द्रको इसी अग्निकुंडमें होम करदेवेंगे, आप क्या तुच्छ इन्द्रपर शर चलातेहो इसके पीछे लाखों जीवोंका घात करना यह धर्मात्माओंका काम नहीं. क्योंकि एक अकेला इन्द्रही नहीं मरेगा, सब स्वर्गका क्षय होजायगा ॥ २८ ॥ ब्राह्मणोंका वचन सुन पृथुने कहा कि, जबतक तुम उस अधर्मी इन्द्रको मेरे सन्मुख अग्निमें न होम दोगे, तबलों मैं कदापि धनुष बाण हाथसे न त्यागूंगा, क्योंकि इस पापीने मेरे यज्ञमें विघ्न डाला है. हे विदुर ! पृथुकी आज्ञा मान ऋत्विजोंने रोष करके अपने अपने हाथमें स्रुवा उठा इन्द्रका उद्देश कर अग्निकुंडमें आहुति देनेलगे तब शक्रको गिरता देख उसी समय ब्रह्माजीने आनकर मुनियोंसे कहा ॥ २९ ॥ आप लोगोंके भस्म करनेयोग्य इन्द्र नहीं है, क्योंकि जिस इन्द्रके मारनेकी तुम्हारी इच्छा है, वह यज्ञरूप भगवान् है, उसका यज्ञद्वारा यजन किया जाता है, वह सब देवताओंका स्वरूप है, ईश्वरको परम प्रिय है, और दूसरे यज्ञ यह नाम सातवाँ इन्द्र साक्षात भगवान्का अवतार है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! इन्द्रके वध करनेमें बडा अधर्म है, इसलिये तुम इन्द्रसे मित्रता करो. इन्द्रने जो पृथुके कर्मको विध्वंस करना चाहा और पाखंड वेष धारण किया, केवल अधर्मके लिये अघोरी तन धरा, उसको देखो ॥ ३१ ॥ हे पृथो ! एक कम सौ यज्ञोंसेही आपकी महाकीर्ति है. और पूरेही सौ यज्ञ होगये तो क्या ? आपके भली प्रकार यजन कियेहुए बहुत यज्ञ होगये, अब आप और यज्ञकरके क्या करोगे ? क्योंकि तुम तो मोक्षधर्मके वेत्ता हो क्या तुच्छ इन्द्रपदके लिये इतना परिश्रम करते हो, जिसके सौ यज्ञ पूरे हो जाते हैं, वह इन्द्र होता है, सो आपको इन्द्रासनकी क्या आवश्यकता है, जो कीर्ति आपकी आजदिन संसारमें छारही है वह सुरेशको स्वप्नमेंभी नहीं मिलसक्ती ॥ ३२ ॥ हे पृथुराज ! इन्द्र आपहीका स्वरूप है इसलिये इन्द्र पर आप को कोप करना नहीं चाहिये, आपकी जय हो, आप और सुरेश दोनों भगवत्का स्वरूप हो, यह बात सब संसारमें प्रसिद्ध है ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! अब इस यज्ञमें आप विघ्नकी चिंता मत करो, हमारा वचन आदरपूर्वक सुनो, जिस कार्यका दैव विनाश करता है और जो पुरुष उसका ध्यान चित्तमें करता रहता है, वह क्रोधका मारा अंधा होकर मोहरूपी कूपमें जा पडता है, फिर उसका कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, क्योंकि चित्तपर शांति नहीं रहती और जो पुरुष क्रुधित चित्तसे कार्य करता है, वह नरकमें

जाता है ॥ ३४ ॥ अब इस यज्ञको मत करो, देवताओंके मनमें इसका दुराग्रह होता है, क्योंकि इन्द्रके अनेक प्रकारवाले पाखण्डोंसे महा अधर्म होता है ॥ ३५ ॥ जिस वासवने तुम्हारे यज्ञका घोडा चुराया और यज्ञभंग करनेके लिये अनेक उपद्रव किये उस पुरंदरके रचेहुए नये नये पाखण्डोंसे लोग धर्मको छोड अधर्ममें प्रवृत्त होंगे तो इस पापके भागी आप होंगे, इसलिये आप क्रोधको तज इन दीनजनोंकी ओर देखो ॥ ३६ ॥ वेनके अधर्मसे सब धर्मोंका नाश होगया, सब वस्तु लुप्त होगई और उसीके तनसे आप भगवद्रूप भगवत्की कला उत्पन्न हुएहो. हे वेनवंशोद्भव पृथो ! धर्मकी मर्यादा और महात्मा पुरुषोंकी रक्षाके लिये आपने संसारमें अवतार लिया है ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! हे प्रजापते ! ! इस विश्वकी उत्पत्ति विचार, इस विश्वका मंगल जैसे होसकै वैसाही उपाय करके विश्वरचने वाले प्रजापतियोंके संकल्प परिपूर्ण करो और पाखण्डरूपी इन्द्रकी माया प्रबल प्रचण्ड नवीन मार्ग चलानेवालीका नाश करो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार जब जगद्गुरु ब्रह्माजीने राजा पृथुको समझाया तब राजा पृथुने यज्ञका हठ त्याग वात्सल्यभाव कर इन्द्रसे मिलाप करलिया॥ ३९ ॥जब राजा पृथु यज्ञांतके समय दीक्षान्त स्नानसे निवृत्त होगये तब उस महाकर्मकारी पृथुके यज्ञमें ब्राह्मणोंने जो मांगा वही वस्तु दे उनके मनोरथ पूर्ण किये.

चौ०-भये अयाचक याचक वृंदा * गावत पृथुयश होत अनंदा ॥
सादर विप्र दक्षिणा पाई * हो हो आनँद करत बडाई ॥
बार बार वर देत विप्रवर * अचल राज तुम करहु धरणिपर॥

हे महाबाहो ! हम सब आपके बुलानेसे यहाँ आये और आपने अपने योग्य पितृ, देवता, ऋषि और मनुष्य सबका यथायोग्य दानसे, मानसे, आदरसत्कार किया, जैसे श्रीकृष्णचंद आनंदकन्दने आधीरातके समय वंशी बजाकर सब गोपियोंको बुलालिया था और रासविलास कर उनको प्रसन्न कियाथा, उसी प्रकार आपने हम लोगोंको बुलाकर सुख दिया.

लावनी ।

गोपीवचन-अहो श्रीकृष्णचंद नंदलाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल ॥
सुनी जबसे बंशीकी तान, हमारे तनसे निकलगये प्रान ।
हरघडी यही चित्तमें ध्यान, क्या करैं कहाँ जायँ भगवान ॥
कुञ्ज कुञ्ज वृन्दावन ढूँढी, यमुनाके सब घाट ।
पलको कल नहीं पडै चित्तमें, लगा यही उच्चाट ॥
चलो अब मधुवनको ततकाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल १॥
न फिरते चैन न बैठे चैन, तडफते होगई सारी रैन ।
न मुखसे निकले साबित बैन, छिनको नहिं चैन लैन दे मैन।
जबसे वंशी सुनी भागीहम, छोड छाड सब लाज ।
यही चित्तमें बसी किसी ढब, देखें कृष्णको आज ॥
हमारा किया हाल बेहाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल ॥२॥

कृष्णवचन-सत्य है महापुरुषोंकी बात, सदा मूरख नारीकी जात।
छोड पति पुत्र भ्रात और मात, इकली आई हो आधीरात॥
कपटी कुटिल कुरूप कापुरुष, कैसाही पति होय।
नारिधर्म है यही पियै नित, उसके चरणोंको धोय॥
कहैं सब वेद शास्त्र यह हाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल ३
गोपीवचन-तुम तो हो बडे कपटी महाराज. जरा नहिं कहे सुनेकी लाज।
सदासे किये हमारे काज, करोहो यह बातें तुम आज॥
जब जब विपदा परी आपही, रहे हमारे पास।
तुमसे जादा पति कौन हमारा, जिसकी करें हम आस॥
आपही हैं हमारे प्रतिपाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल॥४॥
कविवचन-समझकर बात नंदनन्द, दिया सबको पूरण आनंद।
धन्य हो श्रीमुकुन्द ब्रजचंद, रचायो रास होके निरद्वंद॥
छैः महीनेकी रात बनाकर, दियो सबको आराम।
चरणशरण नित राखो यही, वर माँगत शालिगराम॥ ५॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थ-स्कन्धे पृथुचरित्र इन्द्रकृतपाखंडमार्गवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥
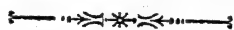
दोहा-पृथुहि बीस अध्यायमें, आये श्रीभगवान।
करी परस्पर प्रीति अति, दीन्ह महावरदान॥

मैत्रेयजी बोले कि, श्रीभगवान् वैकुंठनाथ यज्ञपति यज्ञोंके भोक्ता, विभु, सुरेशको अपने साथ ले यज्ञोंसे प्रसन्न हो राजा पृथुसे कहा ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, इस इन्द्रने आपका सौवां (१००) अश्वमेध यज्ञ भंग करना चाहा था सो अब यह आपकी शरण है और आपसे अपना अपराध क्षमा कराया चाहता है. सो आप इसका अपराध क्षमा करिये ॥ २ ॥ हे नरदेव ! उत्तम बुद्धिवाले साधुपुरुष संसारमें जीवोंसे द्रोह नहीं रखते, क्योंकि वह लोग भलीभाँति जानते हैं कि, देह आत्मा नहीं है ॥ ३ ॥ जब आपसरीखे पुरुष द्रोह करें और देवमायासे मोहित होजाँय तो फिर बरसोंतकका कियाहुआ संतोंका सत्संग शास्त्रोंका प्रीतिपूर्वक श्रवण करना, वृद्धपुरुषोंकी सेवा करनेसे क्या फल हुवा ? केवल वृथा परिश्रम किया ॥ ४ ॥ देखो ! अविद्याजन्य, कामनाकृत कर्मोंसे यह अधम शरीर रचागया है जो ब्रह्मवेत्ता इसप्रकार इस क्षणभंगुर शरीरको समझते हैं, वह आत्मज्ञानी पुरुष इस देहमें कभी आसक्त नहीं होते ॥ ५ ॥ जो इस देहमें आसक्त नहीं हैं, वह महात्मा लोग इस देहसे उत्पादित घरमें, पुत्रमें, धनमें कब मन लगासक्ते हैं ॥ ६ ॥ यह आत्मा शरीरसे अलग है, क्योंकि आत्मा एक है, और शरीर बालक, युवा, वृद्धादि भेदसे अनेक प्रकारके रूप दृष्टि आते हैं । आत्मा शुद्धचैतन्य है, शरीर मलिन है, आत्मा स्वयंप्रकाश है, शरीर

जडवस्तु है, आत्मा निर्गुण है, शरीर सगुण है, आत्मा गुणोंका आश्रय है, शरीर कारण-भूत गुणोंके आश्रित है, आत्मा सर्वव्यापक है, शरीर परिच्छिन्न है, आत्मा आवरणरहित है, शरीर घरद्वारसे आवृत है, आत्मा सबका साक्षी है, शरीर दृश्य है, आत्मा निरात्म है, शरीर स्वात्महै, आत्मा सब जीवोंसे परेहै ॥ ७ ॥ जो पुरुष इसप्रकार सब आत्माओंको आत्मामें स्थित, ऐसे सबमें ईश्वरको जाने हैं, वह मायामें स्थितभी हैं, तौभी मायाके गुणोंमें लिप्त नहीं होसक्ते, क्योंकि वह मुझमें स्थितहैं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! फलकी कामनाको त्यागकर श्रद्धायुक्त स्वधर्मसे जो पुरुष सदा मेरा भजन करता है, उसका चित्त धीरे धीरे प्रसन्न होजाता है ॥ ९ ॥ जब पुरुष विशालहृदय प्रसन्नचित्त होगया, तब सब गुणोंको त्याग, ज्ञानी हो, शांतिको प्राप्त होकर कैवल्यब्रह्मको प्राप्त होजाताहै ॥ १० ॥ उदासी-नकी नाईं-द्रव्य, ज्ञान, क्रिया, आत्माके भीतर स्थित परमात्माको जो जानते हैं, वह पुरुष निस्संदेह मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ इस नाशवान् भिन्नालिंगशरीरका संसार है-द्रव्य, क्रिया, कारक और चेतनके चिदाभासात्मक दीखता है और जो ज्ञानी पुरुष मुझसे स्नेह रखते हैं वे सदा सम्पत्ति और विपत्तिको समान समझकर विकारको प्राप्त नहीं होते ॥ ॥ १२ ॥ हे वीर ! सम, उत्तम, मध्यम, अधम, सुख-दुःखमें समदृष्टि हो, इन्द्रिय और अंतःकरणको जीत अपने रचेहुए लोगोंको लोकयुक्त होकर जो मैंने तुझको सचिवादिकका अधिकारी किया है, उसको अपने संग रखकर सब लोगोंका पालन कर ॥ १३ ॥ राजाका धर्म है कि, प्रजाकी पालना करे, उसीमें उसका कल्याण होता है, जो राजा प्रीतिपूर्वक प्रजाकी रक्षा करता है वह उस सुकृतका छठा भाग परलोकमें पाता है और जो प्रजाका पालन नहीं करता उनसे दंड लेता है, उसका सब पुण्य क्षय होजाता है और प्रजाका पाप भोगना पडता है॥ १४ ॥ इसप्रकार उत्तम ब्राह्मणोंमें ब्रह्मोत्तमोंने जो परम्पराके धर्मको मुख्य रक्खा है, उसमें प्राप्त होकर और और धर्मोंमें आसक्त न होकर इस पृथ्वीकी रक्षा करोगे तो प्रजागण आपसे अत्यन्त प्रसन्न होंगे और कुछ काल व्यतीत होनेपर सनकादिक तुम्हारे स्थानपर आवेंगे और आनंदसहित उनका दर्शन आपको होगा, क्योंकि सब लोग आपसे अनुरक्त हैं ॥ १५ ॥ हे मानवेंद्र ! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूं कुछ तो वर मांगो, क्योंकि मैं आपके गुण और शीलसे वशीभूत होगया हूं न तो मैं यज्ञसे प्रसन्न हूं, न तपसे, न योगसे, मैं तो केवल समदर्शी पुरुषोंसे प्रसन्न हूँ और उन्हींके हृदयमें सदा वास करताहूँ ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब विश्वनाथ भगवान्‌ने इस प्रकार आज्ञा करी तो विश्वविजयी पृथुने विष्णु भगवान्‌की आज्ञा अपने शिरपर धारण की ॥ १७ ॥ और प्रेमसे श्रीगोविन्दके चरणारविन्दकी वंदना करी-

दोहा-यद्यपि विश्वविजयी रह्यो, पृथ्वीपति पृथुराज ।
तदपि कर्म निज देखके, मानी मन अतिलाज ॥

इसप्रकार राजा पृथु नीचे नेत्र कर इन्द्रसे मिला और मनसे सब शत्रुताका परित्याग करदिया ॥ १८ ॥ फिर विश्वात्मा भगवान्‌का राजा पृथुने पूजन किया और अनेक प्रका-

रकी भेंट आगे धरीं, और अधिक प्रेमभरी भक्तिसे भगवान्के पदाम्बुज ग्रहण किये ॥ ॥ १९ ॥ यद्यपि श्रीवैकुण्ठनाथ वैकुण्ठके जानेको उद्यत थे, परंतु अपने प्रियभक्त पृथुपर कृपा करके विलम्ब किया और सज्जन सुहृद् कमलनयन विष्णुभगवान् पृथुकी ओर देखने लगे और निजधामको न गये ॥ २० ॥ सो आदिराज पृथु हाथ जोडे खडे थे परंतु हरिको देख न सके, क्योंकि नेत्रोंमें जल भररहाथा और मुखसे वचन इसलिये न निकलसके कि, पुलकायमान शरीर होनेसे गद्गद कंठ होगया, मुखसे नहीं बोलागया, बैठकर हृदयमें भगवान्का ध्यान करनेलगे ॥ २१ ॥ फिर कुछ कालोपरान्त आंसू पोंछकर आदिराजने आदिपुरुषका दर्शन किया, परंतु हरिकी मनोहर मूर्तिको देखते २ नरेशकी तृप्ति न हुई, यद्यपि देवता धरणीपर पाँव नहीं रखते, परंतु प्रेमके वशीभूत हो भगवान् पदसे पृथ्वीको स्पर्श करे और गरुडजीके ऊंचे कंधेपर करका अग्रभाग धरे दृष्टिगोचर श्रीनारायणके नरनाहने जैसे तैसे कर कहा ॥ २२ ॥ पृथु बोला कि, हे विभो ! सब वर देनेवाले परमात्माको सन्मुख पाकर बुद्धिमान् पुरुष कैसे वर माँगसक्ताहै ? ब्रह्मा होना, इन्द्र होना, यह तुच्छ वरदान देहधारी नरकवासी देहधारियोंकोभी प्राप्त होसक्तेहैं. इसलिये हे कैवल्यपते ! हे विश्वेश ! ! यह वर मैं आपसे नहीं माँगूंगा ॥ २३ ॥ हे हृदयानंद ! वे वर तो अलग रहे, परंतु मुझको तो मोक्षकीभी इच्छा नहीं, क्योंकि वहां महात्माजनोंके अंतरहृदयसे मुखद्वारा निकलाहुआ तुम्हारे पदपंकज मकरंद अर्थात् श्रवणादिक आनंद नहीं है, फिर मैं उस ब्रह्मानंदको लेकर क्या करूं इसलिये हे नाथ ! जो आप मुझपर प्रसन्न हो और मुझको वरदान देना चाहते तो-

दोहा-मम मन आशा यह अहै, दीजे यह वरदान।
कृष्णकथाके श्रवणहित, देहु सहस दश कान॥

वारंवार मैं यही वरदान मांगताहूं ॥ २४ ॥ हे उत्तमश्लोक ! महत्पुरुषोंके मुखारविन्दसे निकलतीहुई आपके पदाम्बुजकी कथारूप सुधाके कणिकासे मिलीहुई पवनभी तत्त्वमार्गकी विस्मृति मार्गमें भूले पडे हैं, उन कुत्सित योगीजनोंको स्पर्श करतेही आत्मज्ञानका ध्यान करातीहै. इसलिये मैं तो आपके भक्तिका सारग्राही हूँ, मुझको और वरदानोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २५ ॥ हे सुश्रव ! महात्मापुरुषोंके सत्संगमें जो मनुष्य एकवारभी आपके मंगलदायक यशको श्रवण करलेताहै, यदि वह गुणज्ञभी होवे परंतु उससे कभी अवसान नहीं पाता और जो पशुही होय तो उसकी गिनती नहीं और श्रीलक्ष्मीजीभी त्रिभुवनकी ठकुरायनी और सब गुणोंको संग्रह करनेकी इच्छासे आपहीके सुयशका वर्णन करती हैं ॥ २६ ॥ इसलिये आप जो सब पुरुषोंमें पुरुषोत्तम और गुणोंके स्थान हो और लक्ष्मीकीनाईं आपके चरणारविन्दसेवन करूंगा यद्यपि एकही कालमें एकही पतिकी एकही प्रकारकी सेवाकरनेसे हम दोनोंमें परस्पर कलह होनेका भय है और जो आप यह कहो कि, सेवा करनेका अपना अपना समय नियत करलो तो क्लेश न होगा सो हे स्वामी ! समयका व्यतीत करना महाकठिन है, हमसे क्षणभरभी आपका वियोग नहीं सहाजायगा, भला

कहीं जीवभी शरीरसे भिन्न हो सक्ता है ? परन्तु इतना मैं मानताहूं कि, लक्ष्मीजीका और मेरा क्लेश न होगा, क्योंकि मेरा और लक्ष्मीजीका चित्त आपके चरणोंमेंही एकाग्र रहेगा, तो फिर उसमें किसी प्रकारका कलहका अंकुर नहीं उत्पन्न होगा ॥ २७ ॥ हे जगदीश ! जंगज्जननी लक्ष्मी जिसके हृदयेशके चरणारविन्दोंमेंसे मेरी भाग लेनेकी इच्छा है, उससे कदाचित् विरोध भी होगा तौभी कुछ सन्देह नहीं, क्योंकि आप दीनदयाल हो, इससे मेरी तुच्छ सेवाकोभी बहुतकरके मानोगे और आप तो अपनेही स्वरूपानन्दमें रमण करतेहो, इसलिये आपके मनमें लक्ष्मीका कुछ पक्ष नहीं आपका नाम तो समदर्शी है ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! जो पुरुष मायाके गुणोंके कार्यसे रहित हैं वे ज्ञानी पुरुष आपका भजन करते हैं, उन सज्जन पुरुषोंको आपके चरणकमलके अनुस्मरणके अतिरिक्त और दूसरा कुछभी अभिप्राय हमको नहीं जानपडता ॥ २९ ॥ आपके भजन करनेवाले जो भक्तलोग हैं, उनसे जो आप कहतेहो कि, वरदान मांगो, यह कहना आपका विशेषकरके विश्वको मोहनेवाला है, यह मैं भलीप्रकार जानता हूँ, क्योंकि आपकी प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप वाणीरूपी डोरीमें यह जन बँधेहुए हैं, और जो यह बँधेहुए न होते तो वारंवार मोहित जीव फिर कैसे कर्म करसक्ते ? ॥ ३० ॥ हे ईश्वर ! साक्षात् आपकी मायाने आपके सत्यस्वरूपसे अलग कर रक्खाहै और अज्ञानीलोग आपके परमानन्दस्वरूपको त्यागकर पुत्र पौत्रादिककी आशा करतेहैं, इसलिये इन मनुष्योंमेंसे मैंभी एक जीव हूं सो मुझे वरदान क्या करना है ? मेरा हित तो आपको इसप्रकार करना चाहिये जैसे पिता बिना प्रार्थना किये अपने पुत्रपर प्यार करता है और कुमार्गसे बचा सुमार्गमें चलाता है ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार आदिराजने विश्वनाथ भगवान्की स्तुति की, तब वासुदेव भगवान् शार्ङ्गपाणि हँस कर बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारी प्रीति मेरे चरणोंमें अधिक है, इसलिये मेरी पूर्णभक्ति तुमको प्राप्त होगी, मुझको बडा आनन्द हुआ जो आपने मेरी भक्ति करनेकी इच्छा करी, ऐसी इच्छासे मेरी दुस्त्यजमायासे जीव तरसक्ता है ॥ ३२ ॥ हे प्रजापते ! मद मोहको त्यागकर जो पुरुष मेरी आज्ञानुसार सावधानतासे चलताहै वह सब ठौर आनन्द पाताहै ॥ ३३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार वेनवंश उत्पन्न पृथुराज ऋषिके गंभीरवचनोंकी सराहना कर पूजन करवाय उसपर अनुग्रह कर वासुदेव भगवान्ने वैकुण्ठ जानेका विचार किया ॥ ३४ ॥ तहाँ देवता, ऋषि, पितृ, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, किन्नर, अप्सरा, मनुष्य, खग और जो अनेक प्राणी ॥ ३५ ॥ यज्ञमें आयेथे उनको यज्ञरूप ईश्वरकी बुद्धिसे राजाने सबको आदरसत्कारसहित वाणीधनसे हाथ जोडकर सन्मान कियाथा, उन सबको भगवद्रूप मान बिदा किया और उनके पीछे भगवान्के पार्षदभी चलेगये ॥ ३६ ॥ और भगवान्भी राजर्षि उपाध्यायसहित अच्युत राजा पृथुका मन हरकर अपने परमधामको चलेगये ॥ ३७ ॥ आत्मरूपके उपदेशक, जिनकी महिमा जाननेमें नहीं आती, सो देवाधिपति देव श्रीवैकुण्ठनाथ इस पदको कहतेहुए अन्तर्धान होगये, तब उनको नमस्कारकर राजा पृथु अपने पुरमें आया और मुरलीमनोहरने यह भजन गाया ॥ ३८ ॥

भजन-भक्त हैं मेरे प्राणाधार ॥ जहाँ भक्त तहँ वास हमारो, जानत सब संसार ॥ १ ॥ जब जब असुर बढत पृथ्वीपर, करत भ्रष्ट आचार ॥ तबहिं धार अवतार असुरहन, हरत भूमिको भार ॥ २ ॥ भक्तसदा मुझको पूजतहैं, निशिदिन विविधप्रकार ॥ मैंभी उनहींको धावतहूँ, चितसों वारम्वार ॥ ३ ॥ साँची भक्ति मोहिं अतिप्यारी, जहँ न कपट व्यौहार ॥ जैसे विदुर सुदामा शवरी, लाई बेर अहार ॥ ४ ॥ द्रुपदसुता-पर भीर परी जब, हरि हरि करी पुकार ॥ तुरत जाय पट अधिक बढाये, नेक करी नहिं वार ॥ ५ ॥ मैं अपने भक्तनहींके हित, लेत सदा अवतार ॥ भक्तसमान और नहिं कोई, जगमें हितू हमार ॥ ६ ॥ अर्जुनको मैं बनो सारथी, बलिको चौकीदार ॥ शालिग्राम करत हित चितसे, भक्तनपै मैं प्यार ॥ ७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे विष्णुना पृथोर्यज्ञे अनुशासनवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥
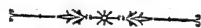
दोहा-इक्किसवें अध्यायमें, आये देव दिनेश ।
राजा पृथुने सबनको, दियो ज्ञानउपदेश ॥

मैत्रेयजी बोले कि, जब राजा पृथु नगरमें गया तो देखा कि, मोती, पुष्पमाला, वस्त्र, सुवर्णके तोरणोंसे सब नगर देदीप्यमान होरहा है और महासुगंधित धूपकी जहाँ तहाँ सुगंध होरही है ॥ १ ॥ चंदन अगरके जलसे बीथी, चौहटे, राजमार्गोंमें छिडकाव होरहाहै. पुष्प, अक्षत, फल, अंकुर, खीलें, दीपमालिकाकी शोभा ऐसी विदित होतीथी मानो मणियोंकी माला तनी है ॥ २ ॥ सुंदर २ सुगंधित पुष्पफलादि लगेहुए केलेके खंभ और छोटे छोटे पूगीफलके वृक्ष थोडी थोडी दूरपर लगादिये गये हैं आम्रपत्रकी वंदनवारें उनमें शोभित हैं, अनेक वृक्षोंके पल्लव और मालाओंकी शोभा ठौर ठौर बनाई गई है ॥ ३ ॥ उज्ज्वल उज्ज्वल मणियोंसे जटित कुंडल कानोंमें पहिरे सुंदर २ कन्याएँ दधि, दूर्वा, फल, फूल, अक्षत, रोली, चंदनादि मांगलिक द्रव्यके थाल हाथोंमें लिये राजा पृथुका शुभागमन सुन-

चौ०-लैन चले पृथुको अगवानी * बालक वृद्ध युवति गुणखानी ।
कनककलश ले विप्रकुमारी * जात सकल मिल आनँदभारी ॥ ४ ॥

शंख, सहनाई और दुंदुभीका शब्द और ब्राह्मणोंकी अखेद वेदध्वनिसे सब नगर पूरित होरहाथा और सब प्रजागण उसकी स्तुति करतेथे परन्तु सब प्रकारका ऐश्वर्य होने परभी राजा पृथुने अपने मनमें किसी प्रकारका अभिमान न मान अपने राजभवनमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ महाकीर्तिवान् पृथुराजने जहाँ तहाँ नगरनिवासियोंसे सन्मान पाकर फिर पीछे सब पुरवासियोंका यथायोग्य आदरसत्कार किया और अत्यन्त प्रसन्न हो उन लोगोंको नाना-

प्रकारके पारितोषिक और प्रियपदार्थ प्रदान किये ॥ ६ ॥ निन्दारहित शुभकर्मकर्ता महात्मा पृथुराजने अनेकप्रकार श्रेष्ठकर्म करके जगत्की रक्षा करी और अपने पूर्णप्रताप-के मार्तण्डका समस्त भूमण्डलमें प्रकाश किया और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणोंमें अनुराग कर मोक्षको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक मुने ! अनेक गुणस-म्पन्न और महात्मा पुरुष जिसकी श्लाघा करते हैं ऐसा आनन्ददायक महाराज पृथुराजका सुयश सुनकर, उस उत्तम यशके वर्णन करनेवाले मैत्रेयजीका आदरसन्मान कर भगवान्के परमप्रिय सभाजित विदुर महाभागवतने कहा ॥ ८ ॥ विदुरजी बोले कि, जब राजा पृथुको ब्राह्मणोंने राज्यतिलक कियाथा और देवता लोगोंने श्रेष्ठ श्रेष्ठ पदार्थ भेंटमें दियेथे और विष्णु भगवान्ने अपना तेज दियाथा, उस तेजको अपनी बाहुओंमें धारण करिकै उन बाहुओंसे वसुधाको दुहा ॥ ९ ॥ ऐसा कौन अभिज्ञ पुरुष है जो उस महाभागवत पृथुकी कीर्तिको न सुने ? क्योंकि, जिनके कियेहुए पराक्रमके उच्छिष्ट सब भूप हैं और उसकेही वसुमतीको दुहनेसे सब लोकपाल और देवताओंकी अबतक प्रतिपालन होती है, इसलिये उसका पावन (पवित्र) चारित्र मुझसे कहो ॥ १० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, गंगा यमुना नदियोंके बीचके क्षेत्रमें राजा पृथु निवास करतेथे सुखकी इच्छाके लिये नहीं, केवल अपने किये पुण्यका त्याग करनेकी इच्छासे अपने भाग्यके भोगको भोगनेलगे ॥ ११ ॥ सात द्वीप नव खण्डमें जिसकी आज्ञाको कोई उल्लंघन न कर सका और सब संसारमें केवल यही एक दंडदाता राजा पृथु था, एकतो ब्राह्मणकुलको कभी दंड नहीं दिया, दूसरे अच्युतगोत्रवाले वैष्णवोंसे दंड नहीं लिया जो कि, भगवत्के पूर्ण भक्त थे ॥ १२ ॥ हे पांडुवंशभूषण ! एक समय राजा पृथुने महायज्ञमें दीक्षा ली, तो वहां सब भूपति, देवता, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, लोगोंका बडा भारी समाज जुडा ॥ १३ ॥ उस समाजमें जो बडे बडे महात्मा पुरुष आये थे उन सबका यथायोग्य आदर सन्मान पूजन करके जब राजा उठा तो ऐसा विदित होता था कि, जैसे तारागणके मध्यमें चन्द्रमा उदय होता है ॥ १४ ॥ अनुपम उसके अंगकी शोभा थी. उन्नत शरीर, पुष्ट और दीर्घ बाहु, गौरवर्ण, कमलवत् अरुण नयन, सुन्दर नाक, चन्द्रमासा मुख, सुधासम मृदुल वाणी, सौम्य स्वरूप, ऊंचे कन्धे, मदनमदहरन रद और मन्द मुसकान मनकी मोहनेवाली थी ॥ १५ ॥ विशाल वक्षःस्थल, दीर्घ कटिपश्चाद्भाग, त्रिवलीसंयुत उदरमें गोल रेखा, गम्भीर नाभि, मानो छविका कूप, महापराक्रमी, कंचनसे उज्ज्वल कदलीवत् ऊरू, उठे अग्रभागवाले चरणार-विन्द थे ॥ १६ ॥ सूक्ष्म कुटिल श्याम और चिकने शिरके बाल, कंबुसम कण्ठ, काम धनुषसी भ्रुकुटी, अर्धचन्द्रसम त्रिपुंड्र भालपर विराजमान, अमूल्य वस्त्र पहिरे और यज्ञो-पवीत धारण कररहेथे ॥ १७ ॥ सब शरीरकी शोभा उन झीने वस्त्रोंमें प्रगट होरहीथी और नियममें सब आभूषणोंको त्याग कृष्णमृगका चर्म धारण करलियाथा और कुशा हाथोंमें लिये श्रीलक्ष्मीवान् अपने यज्ञकृत्यसे निश्चित होकर सभामें बैठेथे ॥ १८ ॥ शरद् ऋतुके प्रकाशवान् तारोंके समान चिकने और दाहके बुझानेवाले प्रेमसरोवर नक्षत्र मानो

पुतलीकी समान शोभायमान नेत्र हैं, ऐसे नेत्रोंसे राजा पृथुने चारों ओरको देखकर सब सभासदोंको हर्ष बढाया, और चार चित्रपद मुनि मन हरनेवाली मनोहर गंभीर वाणीसे सुगम वचन उस समय बोले ॥ १९ ॥ राजा बोले कि, सभासदो ! आपका कल्याण हो । जो जो साधु सज्जनपुरुष यहां आये हों मैं सबकी सेवामें यह वचन निवेदन करताहूं, जिसमें सबके लिये आनन्द हो. केवल मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि, जो बुधवर अपने सब धर्मके जाननेकी इच्छा करे वह अपने विचारको महात्माजनोंके सम्मुख प्रगट करे ॥ २० ॥ प्रजाकी रक्षा करनेको चोर और दुष्टात्माओंके दण्ड देनेको अपनेको आजीविका देनेको सब धर्मके उत्तम धर्मकी मर्यादा पृथक् २ सबको स्थापन करनेको सब कार्योंमें मुझको नियत किया है ॥ २१ ॥ मुझको वह लोक कामदायक प्राप्त होय, जिसकी प्रशंसा ब्रह्मवादी लोग करते हैं, मुझको निश्चय है कि, जिनपर भगवान् संतुष्ट होते हैं, उन वेदवेत्ता पुरुषोंकी सम्पूर्ण कामना सिद्ध करते हैं ॥ २२ ॥ जो राजा प्रजासे दंड लेतेहैं और धर्म नहीं सिखाते वे प्रजाके पापको भोगते हैं और अपने ऐश्वर्य का नाश करते हैं ॥ २३ ॥ इसलिये हे प्रजागणों ! मेरा मगल करनेके लिये भगवान्में चित्त लगाकर तुम अपने धर्मका पालन और अपना कर्तव्य कर्म करो और तुम द्वेष छोड-कर विष्णु भगवान्की भक्ति करोगे तो मैं तुम्हारा अत्यन्त उपकार मानूंगा ॥ २४ ॥ हे देवर्षि, पितृगण, देवता, ऋषि, निर्मल बुद्धिवालो ! तुम भी मेरे कहनेकी सराहना करो, क्योंकि धर्मके विषयमें कर्ता, शिक्षक, आज्ञा देनेवालोंको मेरे उपरांत परलोकमें बराबर फल मिलता है ॥ २५ ॥ हे पूजनीय महात्माजनो ! कोई तो ऐसे हैं, ईश्वरको नहीं मानते, कोई २ ऐसेभी हैं, जो ईश्वरको मानते हैं और कोई ऐसे हैं कि, न आप माने न दूसरेको मानने दें. इन तीनोंको एकही प्रकारका फल प्राप्त होता है. और यह फल सयु-क्तिकभी प्रतीत होता है ॥ २६ ॥ इस लोकमें और परलोकमें कोई तो अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य और आरोग्य देह पाता है, और कोई भिखारी और रोगी दिखाई देता है. इससे विदित होता है कि, कोई जगत्का कर्ता ईश्वर न होता तो इसका होना कैसे होता ? मनु-उत्तानपाद महीपति, ध्रुव, प्रियव्रत राजर्षि, और हमारे पिताका पिता अर्थात् दादा राजा अंगको जो करनेके योग्य था सो किया ॥ २७ ॥ इसीप्रकार ब्रह्मा, शिव, प्रह्लाद, राजा बलि, धर्मकी मर्यादा बांधनेवाले यह सब श्रीभगवान् वासुदेवको अपना इष्टदेव और सुजनहार मानते रहे और यह कहते रहे–

चौ०-श्रीहरि सकल कर्मफलदाता * ऐसेहि करत वेद विख्याता ॥
बिन भगवत दूजो नहिं नाथा * जो त्रिभुवनको करत सनाथा ॥

और इसीप्रकार और सब महात्मा लोगोंनेभी कहा है कि, कर्म जड है, यह कुछ आप फल नहीं देसकता, इसलिये कर्मका फल देनेवाला निश्चय परमेश्वर है ॥ २८ ॥ राजा वेन परमेश्वरको नहीं मानतेथे और धर्मसे विमोहित, इसलिये स्वर्ग और अपवर्गकी निन्दा करने योग्य थे. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मिलनेमें सबका एकसा विचार कियाजाय तो

कर्म, जडहोनेसे उनका दातृत्व नहीं घटता और देवता पराधीन हैं, इसलिये देवताभी फल देनेयोग्य नहीं. इसप्रकार दो पुरुषको कर्म समान होनेपरभी उनके फलमें अंतराय पडताहै और किसीसमय कर्म करनेसेभी उसका फल नहीं मिलता, इसलिये अपने आप सर्व कर्मका कर्ता विकर्ता सर्व सामर्थ्यवान् निश्चय एक परमेश्वरही जानपडता है ॥ २९ ॥ उस परमेश्वरके चरणारविन्दका स्नेह दिनरातका बढाहुआ महात्माजनोंके जन्म जन्मके पापका नाश करताहै, जैसे विष्णुके पदांगुष्ठसे निकलीहुई श्रीगंगा जैसे बुद्धिके मलका नाश करती है ॥ ३० ॥ मनके सकल मल नष्ट होनेसे वैराग्यके लिये विशेष विज्ञानवाला वीर्यवान् भगवान्के चरणकमलके मूलमें जिसका वासहो, ऐसा पुरुष क्लेशको देनेवाले संसारमें नहीं आता ॥ ३१ ॥ सब छल कपट त्याग, तुम सकल कामना सिद्ध करनेहारे चरणारविन्दको अपनी आत्माकी वृत्तियोंकरके तन मन, वचन, काय, गुण, अपने कर्मोंसे भजो यह भली समझ लो कि, जैसे अधिकार है वैसीही अर्थकी सिद्धि होगी, क्योंकि भगवत्के पादारविन्द सब मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ यद्यपि विष्णुभगवान् स्वरूपसे पवित्र अनेक गुणवान् और निर्गुण हैं, तोभी कर्ममार्गमें नाना प्रकारसे यज्ञरूपभी वही हैं, क्योंकि यज्ञरूप सबसे पृथक् विधि है. द्रव्य, गुण, क्रिया, मंत्र, संकल्प, पदार्थ शक्ति उक्तियों करके अर्थ अंतःकरण लिंगनाम करके विशुद्ध ज्ञानस्वरूपसे प्राप्त होते हैं, परंतु सब कर्म भगवत्के ही रूप हैं ॥ ३३ ॥ माया काल अंतःकरण धर्म संग्रहमें यह शरीर चेतनाको प्राप्त होकर क्रिया फलके भावसे विभु भगवान्ही आनंदस्वरूपमें प्रकाश करते हैं, जैसे अग्नि एकरूप होनेपरभी काष्ठकी संगतसे काष्ठहीके सदृश होजाती है. इसी प्रकार परमात्माका विचार है ॥ ॥ ३४ ॥ अहो ! यह सब मुझपर अनुग्रह करेंगे, क्योंकि यज्ञभोक्ताओंके ईश्वर श्रीभगवान् वासुदेव सब गुरुको अपने धर्मके योग्यसे पृथ्वीमें निरंतर दृढव्रतधारी मेरे जन यजन करते हैं सो धन्य हैं ॥ ३५ ॥ अब हरिभक्ति दृढताके लिये ब्राह्मणोंकी भक्ति प्रथम करै यह कहते हैं कि, भगवान् जिनके देवता ऐसे ब्राह्मण देदीप्यमानमें राजकुलसे किसी प्रकार तिरस्कार नहीं होसकता, महाऋषिसे सहनशीलता तपविद्यासे कुछ नहीं होता है ॥ ३६ ॥ ब्रह्मण्यदेव और महत्पुरुषोंमें प्रधान पुरातन पुरुष भगवान् नित्य जिनके पादारविन्दकी वंदना करनेसे अखंडित लक्ष्मी और जगत्का पवित्र करनेवाला यश और सब बडोंमें अग्रण्यताको प्राप्तहुए ॥ ३७ ॥ जिन ब्राह्मणोंकी सेवा करनेसे सर्वान्तर्यामी स्वयंप्रकाश जिनको अत्यन्त प्यारे हैं, उन ब्राह्मणोंके चरणारविन्दोंमें अनुराग देखनेसे बहुत संतुष्ट होतेहैं, इसीलिये उन सर्वधर्म परायणोंके कहेहुए धर्मोंमें मन लगाना और सब प्रकारसे ब्राह्मणोंके कुलकी सेवा करनी उचित है ॥ ३८ ॥ जिनके नित्य संबंध जिनकी नित्यप्रति सेवा करनेसे आपही तत्काल हृदय शुद्ध होजाताहै और उनहींकी सेवासे मोक्षको प्राप्त होजाता है. उनहीकी सेवासे मनको शमता और सुख प्राप्त होजाताहै, ऐसे ब्राह्मणोंसे बढकर और देवताओंका मुख कौनसा है ? नहीं, ब्राह्मणही देवताओंका मुख है ॥ ३९ ॥ यह निश्चय है कि, तत्त्ववेत्ता अपने हाथसे श्रद्धासहित, ब्राह्मणोंको भगवान्की चैतन्यमूर्ति

समझकर जिन जिन देवताओंके नाम लेलेकर, ब्राह्मणोंके मुखमें उत्तम उत्तम भोजन कराते हैं उस उत्तम मिष्टान्नको अनन्त भगवान् प्रसन्न होकर भोजन करतेहैं जिसको कुछ ज्ञान नहीं ऐसा जो अचेतन अग्नि है उसमें हवन करनेसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते, विप्रोंकी सेवा करनेवालोंको परमहंसको जो गति मिलतीहै वह गति उनको प्राप्त होती है ॥ ४० ॥ हे आर्यपुरुषो ! जो ब्राह्मण नित्य, निर्मल, सनातन, श्रद्धा, तप, मंगल, मौन, संयमोंसहित समाधिसे अर्थदृष्टिके निमित्त इस वेदको धारण करते हैं जिसमें यह संसार दर्पणकी सदृश प्रकाश करता है मंगल इसका नाम है ॥ ४१ ॥ उन ब्राह्मणोंकी चरणरजको समस्त आयु-पर्यंत अपने किरीटपर धारण करूं मेरा यह मनोरथ है, इसलिये इस सुन्दर रजको तुम लोगभी अपने शीशपर धारण करो. क्योंकि जो इस रजको अपने शीशपर धारण करते हैं उनके अनेक जन्मोंके पाप नाश होजाते हैं और सब गुण उस जीवको प्राप्त होते हैं ॥ ॥ ४२ ॥ सब गुणोंके स्थान शीलवान्, धनी, वृद्धोंके आश्रमोंकी सब सिद्धि आप उसका वर्णन करतीहैं, जो ब्राह्मणोंके कुलका दास है, उन ब्राह्मणोंका कुल गौवनका कुल सब मुझपर प्रसन्न होओ और जनार्दन अपने पार्षदोंसहित मुझपर प्रसन्न होओ ॥ ४३ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, जब राजाने इसप्रकार मधुर वचन कहे तब राजासे पितृ, देव, द्विजाति, देवता, महात्मा पुरुष, प्रसन्नमनसे धन्यवाद देकर राजाकी स्तुति करनेलगे ॥ ४४ ॥ पुत्रके सुकर्मसे पिता स्वर्गलोग जीतलेता है और यही सत्य सत्य वेदकी वाणी है और ब्राह्मणोंकी शापरूपी दंडसे मराहुआ पापात्मा वेन पृथुके पुण्यके प्रभावसे नरकसे तरगया ॥ ॥ ४५ ॥ देखो ! हिरण्यकशिपु भगवत्की निन्दा करके नरकमें जाताथा, परंतु पुत्रके प्रभावसे नरकसे बच स्वर्गवासी हुआ ॥ ४६ ॥ हे वीरवर्य पितः ! हे पृथ्वीनाथ ! ! भगवान् आपको दीर्घायु करे और तुम सब प्रजाका पालनकरो; क्योंकि आपने त्रिभुवनके स्वामी श्रीनारायणके चरणारविन्दमें दृढभक्ति करी है, आपके समान ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवालोंमें और दूसरा कौन है ? ॥ ४७ ॥ हे पवित्र कीर्तिवाले ! बडे आनंदका समय है कि, तुमसे नाथ पाकर आज हम सनाथ हुए, क्योंकि हम जानतेहैं कि, जो श्रीमुकुंद हमारे नाथ हैं तुम उन परमपवित्र उत्तमश्लोक ब्रह्मण्यदेव विष्णुभगवान्की कथाका उपदेश कराते हो ॥ ४८ ॥ हे नाथ ! सब जीवमात्रको शिक्षा करना, आपको कुछ अतिअद्भुत बात नहीं है. क्योंकि दयालु महात्माओंका प्रजापर दया करनेका स्वभावही होता है॥४९॥ हे प्रभो ! हम अभागी अपने अभावसे नष्टदृष्टि होकर इस संसारसागरमें पडे भटकरहेथे, आपने अपनी वाणीरूप नौकापर चढाय आज हम अज्ञानियोंको पार उतार दिया ॥ ॥ ५० ॥ चारोंवर्णमें प्रवेश करके अपने तेजसे प्रजाको और इस विश्वको धारण करने-वाले और प्रजाके हितकारी सत्त्वगुणोंकी खानि विश्वनाथ विश्वंभरके अर्थ हम वारंवार नमस्कार करते हैं.

भजन-प्रभुजी तुमबिन कौन सहाई ॥
सब अपने अपने स्वारथके, कुटुँब लोग औ भाई ॥ १ ॥

संपतिमें मित्राई राखत, गुण अवगुण न गनाई ॥
विपत पडे कोइ संग न लागत, छाँडत मीत मिताई ॥ २ ॥
घरकी नारी गारी भाषत, नित उठ करत लराई ॥
कर्मरेखको दोष न लावत, निन्दाकरत पराई ॥ ३ ॥
सब विधि भक्त भयो कमलापति, यदुनायक यदुराई ॥
सिंधु अथाह बीजके बोवत, तुम बिन कौन गहाई ॥ ४ ॥
ज्यों गज औ प्रह्लाद उबारे, महिमा ध्रुवहि दिखाई ॥
विपति विदारण पतित उधारण, तुमरो नाम कन्हाई ॥ ५ ॥
कीजे लाज नाम अपनेकी, संकट मेटो आई ॥
सूर पुकारत आरत तेरी, राखि लेहु शरनाई ॥ ६ ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे प्रजानामनुशासने ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा-बाइसवें अध्यायमें, हरिआज्ञा अनुसार।
ब्रह्मज्ञान वर्णन करन, पृथुसों सनत्कुमार ॥

मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार महापराक्रमवाले राजा पृथुकी सब प्रजागण स्तुति कररहेथे उसीसमय वहाँ सूर्यके समान तेजवान् चार मुनि सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार राजा पृथुकी सभामें आनकर उपस्थित हुए ॥ १ ॥ उन सिद्धेश्वरोंको राजा पृथु और उनके भृत्योंने अपने तेजसे लोगोंका पाप नाश करते आकाशसे उतरते देखा और अपने जीमें जानलिया कि, यह तेजपुंज अघभंजन मुनिमनरंजन सनकादिक महाराज हैं ॥ २ ॥ उनके दर्शनसे प्राण गयेहुए मानो फिर पीछेको लौटे इसप्रकार सभासद् और भृत्योंसहित राजा पृथु उठ खड़ा हुवा, जैसे महाउत्कंठासे जीवात्मा गंधादिक विषयोंके सन्मुख जाताहै ॥ ३ ॥ फिर विनती कर शिर नवाय राजा पृथुने गौरवके वशीभूत हो उन ऋषियोंको कनकासन अर्घ्यादि देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा और आदरसन्मान किया ॥ ४ ॥ और उनके चरणारविन्दोंको पखारकर वह चरणोदक अपने शिरपर सींचा, सो उस शीलसिंधु नृपतिका यह वृत्त शीलवानोंका अत्यन्त आदरसत्कार करनेवाला था ॥ ॥ ५ ॥ कंचनके सिंहासनपर बैठे ऐसे शोभायमान दृष्टि आतेथे जैसे वेदीके बीचमें अग्नि प्रज्वलित होती है, नीतिसहित दोनों हाथ जोडकर उन शिवजीके ज्येष्ठ भ्राता सनकादिकोंसे राजाने श्रद्धा संयम संयुक्त प्रसन्न होकर प्रार्थना की ॥ ६ ॥ पृथु बोले कि, हे मंगलायनो ! अहो ! मैंने ऐसा क्या सुकर्म किया है जो मुझको आपका दर्शन हुवा. क्योंकि योगीजनोंकोभी आपका दर्शन महाकठिन है ॥ ७ ॥ उसको इस लोकमें और परलोकमें कौनसी बात दुर्लभ है जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न हैं और जिनपर ब्राह्मणोंकी दयादृष्टि है उनपर महादेव और भगवान् पार्षदों सहित सदा प्रसन्न रहतेहैं ॥ ८ ॥ यद्यपि

आप त्रिभुवनमें पर्यटन करतेहैं और आपको कोई नहीं देखसक्ता संसारके वशीभूत बुद्धि-वाले जैसे सर्वव्यापक परमात्माको नहीं देखसक्ते ॥ ९ ॥ वह निर्धन साधु गृहस्थभी धन्य हैं जिनके घरमें पूज्योंमें श्रेष्ठ लोग जल, तृण, भूमिसे आदरसत्कार पाते हैं, उनको परम श्रेष्ठ और भाग्यवान् जानना चाहिये ॥ १० ॥ जिनके घर तीर्थपादीय श्रीवैष्णवोंके पाद-तीर्थसे वर्जित हैं, वह घर सर्व धनधान्यसे परिपूर्ण हो तोभी साँपोंके बिलके समान हैं, और घरके वासी वृक्षवत् हैं उनकी सम्पदा किसी कामकी नहीं ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिन व्रतोंको मुमुक्षुलोग श्रद्धासे धीर धरकर करते हैं वह नियम आपने बालअवस्थासे कियेहैं सो आपका शुभागमन हमको बहुत अच्छा हुआ ॥ १२ ॥ हे समर्थो ! हम लोग विषयोंकोही स्वार्थ मानते हैं और अपने कर्म करके अनेक व्यसनवाले संसारमें हमसे पतितभी कुशल हैं ॥ १३ ॥ आप सरीखे आत्माराम महात्मा पुरुषोंसे कुशल बूझना उचित नहीं. क्योंकि आप तो जगत्के कुशलदायक हो और सदा भगवान्के प्रेममें मग्न रहतेहो आपके तो कुशल और अकुशल यह सब चित्तकी वृत्ति है ॥ १४ ॥ आप तपस्वी पुरुषोंके मित्र हो, इसलिये आपकी प्रतीत करके मैं आपसे बूझताहूं कि, इस संसारमें बिना परिश्रम किये क्षेम किसप्रकारसे होता है ॥ १५ ॥ निश्चय है कि, आत्मज्ञानियोंकी आत्मरूप आत्मस्वरूपको प्रकाशित करनेवाले आप साक्षात् भगवत्के स्वरूप हो. और आपने अपना अजन्मसिद्धरूप जो धारण कियाहै और पृथ्वीपर पर्यटन करतेहो, यह अपने दासोंपर अनुग्रह करनेका कारण है ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, पृथुकी सुन्दर सारभरी मधुर वाणी सुनकर, प्रीतिसे मंद मंद मुसकाकर सनत्कुमारने कहा ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाराज पृथो ! आप कौनसी बात नहीं जानते, क्योंकि आप सब जीवमात्रका हित करके आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया; हम आपकी प्रशंसा नहीं करसक्ते, महात्मा पुरुषोंकी बुद्धि ऐसेही परोपकारिणी होतीहै ॥ १८ ॥ निश्चय है कि, साधुलोगोंका सत्संग दोनोंके लिये सुखदायक है क्योंकि उनके प्रश्नोत्तर और ज्ञानवैराग्यसे परिपूर्ण कल्याणका विस्तार होता है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! आपने अपने मोक्षका साधन तो ठीक ठीक बनाही रक्खा है, क्योंकि मधुनामक दैत्यके मारनेवाले मधुसूदन भगवान्के पदपंकजके गुणानुवादमें आपकी अलौकिक प्रीति है. यही मोक्षका मुख्य साधन है और यही अत्यन्त कठिन है सो आपने भलेप्रकार साधही रक्खाहै, जिस भगवत्के चरणार-विंदकी रतिसे नैष्ठिकी मति आत्माके भीतर कोमल कामवासनाओंका कषेलापण, और मल नष्ट होजाताहै ॥ २० ॥ मनुष्योंके मंगलके लिये शास्त्रोंने भलीप्रकार विचार कर यही साधन सिद्ध किया है, किसीमें संग नहीं सबसे पृथक् व्यापक आत्मा निर्गुण ब्रह्ममें अच्छी पूर्ण प्रीति होनी, यह सब सिद्धांतोंका सिद्धांत है ॥ २१ ॥ और प्रीति होनेका मुख्य साधनभी यही है कि, श्रद्धा करना भगवद्धर्मका आचरण करना, परमात्माके जानने की इच्छा करना, आत्मविद्यायोगमें निष्ठा रखना, योगेश्वरोंकी उपासना करना, सदा पुण्ययशवाले श्रीमन्नारायणकी पुण्यरूप कथा नित्य प्रसन्नहोकर सुनना ॥ २२ ॥ धन,

इन्द्रिय, वाग, गोष्ठी इनमें तृष्णा न करना, इनके संमत जो कामादिक उनका संग्रह न करना एकांतमें भगवान्के अनुसंधानमें रुचि रखकर अतिसंतुष्ट रहना, श्रीहरिगुणरूप अमृतपान करके अपनी आत्माको प्रसन्न रखना ॥ २३ ॥ जीवमात्रकी हिंसा न करना, परमहंसोंकी नाई सदा मग्न रहना, श्रीमुकुंद आनंदकंदके चरित्रामृतका प्रेमसे पान करना, कामवासना त्यागकर यमनियमकरण करना, किसीके अनुचित कर्म देखकरभी निंदा न करना, किसी वस्तुमें चेष्टा न करना, लाभहानिमें हर्षविषाद न करना, सुखदुःखको समान समझना, शीत उष्ण सदा सहना ॥ २४ ॥ श्रीनारायण भक्तोंके वारंवार कार्य पूर्ण करनेवाले भगवान्के गुण नामोच्चारण करना अर्थात् प्रातःकाल महाभारत, मध्याह्न कालमें रामायण और संध्याकाल श्रीमद्भागवतका श्रवण करै, इसप्रकार अपना सब समय व्यतीत करना और अत्यन्तभक्तिमें मनलगाना, सत् असत्में संग न करना, इसप्रकार साधन करनेसे संपूर्ण कार्य कारणरूप पदार्थसे प्रबल भक्ति और वैराग्य उत्पन्न होता है और अनात्मा निर्गुणब्रह्ममें अनायास प्रीति होती है ॥ २५ ॥ जब ब्रह्ममें अत्यन्त निष्ठाकी बुद्धि होतीहै तब विज्ञानकी अग्नि हृदयमें ज्ञान और वैराग्यके प्रभावसे बढतीहै, वह ज्ञान विना आचार्य और गुरुजनोंको प्राप्त नहीं होसकता, उसके प्रतापसे महापंचभूतात्मक जीवके रहनेका कोश, हृदयकी अविद्याआदि पञ्चक्लेशरूप लिंगशरीरका अंकुर पीछे उत्पन्न न होजाय वह ज्ञानाग्नि सब वासनाओंको भस्म करदेती है, जैसे बढीहुई दावानल काष्ठको भस्म करदेती है, फिर अहंकारका वीर्य उत्पन्न नहीं होता ॥ २६ ॥ जब अंतःकरण दग्ध होगया तब सबविधि गुणोंसे मुक्त आत्माको बाहिर भीतर कुछ अन्तर नहीं जानपडता, उसके कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि सब गुण नष्ट होजातेहैं, फिर परमात्माका और जीवात्माका भेद जो कि, पहले रहता था वह सब निवृत्त होजाता है, फिर वह प्राणी जैसे स्वप्न अवस्थाके भावको स्वप्न व्यतीत हुएपर नहीं देखता. इसीप्रकार अपने स्वरूपसे संसारके घटादिक पदार्थोंको और अंतःकरणके सुखदुःखोंको भी नहीं देखता ॥ २७ ॥ आत्मा इन्द्रियोंके अर्थ जीव ईश्वरमें भेद अंतःकरणरूप उपाधि होनेसे पुरुषको प्रतीत होता है और किसीप्रकारसे नहीं. क्योंकि जाग्रत् और स्वप्नमें अंतःकरणकी उपाधि होनेसे आप देखनेवाला और देखनेकी वस्तु और उनका मेलकर्ता, अहंकार दृष्टिमें आताहै, परंतु सुषुप्तिमें हृदयकी उपाधि न होनेसे कुछभी देखनेमें नहीं आता ॥ २८ ॥ यहां साक्षीके लिये दृष्टान्त है, यह सब संसार जल अथवा दर्पण आदि निमित्त होनेसे पुरुष आपमें और अपने प्रतिबिम्बमें भेद समझता है और कहताहै कि, एक मैं हूँ और दूसरा प्रतिबिम्ब है. परंतु जब जल और दर्पण नहीं रहता तो फिर एकही दृष्टि आता है दूसरा नहीं दिखाई देता. ऐसेही जीवका और ईश्वरका भेद है और किसीप्रकार नहीं ॥ २९ ॥ विषयोंकी ओर ध्यान करनेवाले प्राणियोंका इन्द्रियोंको विषय अपनी ओर खैंच लेताहैं और इन्द्रिय मनको खैंचखांचकर अपने वशीभूत करलेती है और मन बुद्धिकी विचार चेतनाको हरलेता है. जैसे सरोवरके तटपर वीरणमूलका वृक्ष वह अपने मूलद्वारा नीचेही नीचे नीरको खैंचलेताहै इसीप्रकार समझलेना.

परंतु वह गुप्तभेद अज्ञानी पुरुषोंके ज्ञानमें नहीं आता इसीप्रकार इन्द्रियोंकी खिंचावट अज्ञानी लोगोंके ध्यानमें नहीं आती ॥

दोहा--नशै ज्ञान हरिकी सुरति, भूल जात तत्काल ।
हरिके मिलनेमें नृपति, यह अवरोध कराल ॥ ३० ॥

बुद्धिकी चेतनाके अचेत होनेसे सब अगली पिछली वारंवारकी स्मृति नष्ट होजाती है और स्मृतिके नाश होनेसे चित्त ज्ञान दोनों भ्रंश होजाते हैं, उनके रोकनेको महात्मापुरुष आत्माका वश करना कहतेहैं ॥ ३१ ॥ इससे अधिक पुरुषको और कोईभी अपने स्वार्थका नाश नहीं है, क्योंकि, जिस परमात्माको तजकर विषयको प्रिय समझाहै, यह सब अपनीही आत्माकी हानि करनी है ॥ ३२ ॥ अर्थ और इन्द्रियोंका ध्यान करना और रात-दिन विषयवासनाका विचार रखना, यही पुरुषके सब पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है; क्योंकि यह तृष्णा और विषयवासना शास्त्रजन्य ज्ञान और स्वरूपानुभव दोनोंका नाश कर देती है और इनका विनाश होनेसे जीव स्थावरसंज्ञाको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो पुरुष इस गूढ अंधकार नरकसे पार होनेकी इच्छा करे, वह पुरुष कभी विषयवासनाओंका संग न करे, क्योंकि यह विषयवासना धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदार्थोंका अत्यन्त क्षतिका-रक है ॥ ३४ ॥ इन चारों पदार्थोंमें मोक्षही प्रधान समझाजाता है; क्योंकि धर्म अर्थ काममें सदा कालका भय बनारहताहै परन्तु मोक्षमें किसीप्रकारका भय नहीं ॥ ३५ ॥ जगत्में ब्रह्मा शिवादिक जो आपसे उत्पन्न हुए उन सबके अस्मदादिक जो भाव हैं; सो गुणोंके उलट पुलट होनेसे ईश्वरसे सबके आशीर्वादोंका विध्वंस होजाते हैं इसलिये यथार्थ सुख किसीको प्राप्त नहीं होता ॥ ३६ ॥ हे नरेन्द्र ! जगत्के स्थावर जंगम प्राणियोंके देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि और अहंकारसे आवृत जो क्षेत्रजीव है. उनके अंतर्यामी हृदयमें सब प्रकारसे प्रकाशमान् हो प्रत्यक्ष तथा देश, काल तथा वस्तुके प्रमाणसे रहित हो प्रकाशते हैं और अंतर्वृत्तिसे जो ज्ञातभी होतेहैं, वह आदिरूप अविनाशी चिदानंद भगवान् मैं ही हूं इसप्रकार समझते हैं ॥ ३७ ॥ मायाका विवेक जिसमें नहीं है उसमें यह विश्व सत् असत् भावसे प्रकाश करताहै, जैसे मालामें सर्पके समान मायारूप भासे है ऐसे जानो. वह पर-मात्मा जो नित्यमुक्त, शुद्ध, चैतन्य, ज्ञानस्वरूप, सब ओरसे जानागया, तब कर्मोंसे मलिन प्रकृति जिससे दूर होगईहै, उन परमेश्वरकी शरणमें मैं हूं ॥ ३८ ॥ तिनके चरणारवि-न्दकी पल्लवरूप उँगलियोंकी सौन्दर्यताकी भक्ति करके बडे बडे सज्जन पुरुष कर्मआशयरूप हृदयकी ग्रंथियोंको साधुजन दूर करतेहैं, ऐसाही विषयोंकी ओर जातीहुई अपनी इन्द्रियोंको रोककर यतिलोग वासुदेवभगवान्का भजन करते हैं, परंतु-

दोहा--संन्यासी योगी यती, विज्ञानी व्रतवान ।
प्रेमीकी समता कबहुँ, लहै न भूप सुजान ॥
तातें प्रीतिसहित सदा, भजिये नंदकुमार ।
भक्ति प्रेम बाढे अधिक, लहै पदारथ चार ॥ ३९ ॥

इस दुस्तर महासागर संसारमें छः इन्द्रियरूप मगर जिसमें सदा वास करतेहैं, ऐसे महागंभीर संसाररूप समुद्रको जो योगादिक साधनोंसे हरिनामरूपी नाव बिना पार उतरनेकी चेष्टा करतेहैं उन मनुष्योंको अत्यन्त कष्ट उठाना पडताहै, इसलिये आप तो सब बाधाको त्याग, भगवान्के भजन करने योग्य चरणकमलरूप नाव बनाकर इस दुस्तर कष्टरूप संसारसागरसे पार होओ ॥ ४० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, ऐसे ब्रह्माजीके पुत्र आत्मज्ञानी सनत्कुमारने इसप्रकार सुंदर आत्मज्ञानका मार्ग दिखाया, तब राजा पृथु सनत्कुमारकी अत्यंत प्रशंसा करनेलगे ॥ ४१ ॥ राजा बोले कि, हे भगवन् ! आर्तरक्षक हरिने प्रथमही मुझपर अनुग्रह किया था, उसके सिद्ध करनेके लिये हे ब्रह्मन् ! आप लोग यहाँ आये ॥ ॥ ४२ ॥ और आप दयालु धर्मवेत्ताओंने दया करके मेरा सपूर्ण प्रयोजन सिद्ध किया, यह राज्य और मेरा देहादिक जो है सब साधु लोगोंहीका उच्छिष्ट है. हे नाथ ! गुरुदक्षिणामें मैं अब क्या दूं ? ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! प्राण, स्त्री, पुत्र, गृह, सब परिवार, राज्य, सेना, धरणी, भण्डार यह सब साधुलोगोंकाही है, इसीलिये मेरा इनपर कुछ अधिकार नहीं है, अब मैं दक्षिणामें इनको कैसे देसक्ताहूं ? यह तो सब आपहींका है जैसे दास स्वामीकीही वस्तु स्वामीको देता है, इसीप्रकार आपका सर्वस्व आपहीको समर्पण करता हूं ॥ ४४ ॥ सेनापत्य, राज्य, दंड, न्याय और सबको प्राप्त करना, सब लोकोंका स्वामित्व और वेद शास्त्रज्ञ धारण करना, यह सब ब्राह्मण लोगोंहीके अधिकारके योग्य हैं ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण अपनेही पदार्थको आप भोगते हैं, अपनीही वस्तुको आप धारण करते हैं और अपनाही द्रव्य आप लेते हैं और ब्राह्मणोंहीके चरणारविन्दके अनुग्रहसे क्षत्रियादिक विप्रोंके दियेहुए अन्नको नवीन नवीन प्रकारसे भोग लगते हैं ॥ ४६ ॥ निगमागम और ब्रह्मविद्यामें कुशल, वेदके जाननेवाले, आपने जो मुझको अध्यात्मज्ञानका उपदेश किया और हरिके मिलनेका मार्ग दरशाया, उस उपकारका प्रत्युपकार केवल विनय करनेके अतिरिक्त और कुछ मैं नहीं करसक्ताहूं ? और गुरुजनोंमें कोई किसी उपायसे उऋण नहीं होसक्ता और जो उऋण होना चाहै वह सब प्रकारसे शठ और अज्ञानी है इसलिये हे महादयालो ! आपही अपने कियेहुए उपकारसे मुझपर दया करो ॥ ४७ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, जब इसप्रकार उन मुनियोंका राजा पृथुने अत्यन्त आदरसन्मान किया तब वह आत्मयोगके अधिपति, आदिराज श्रीपृथुराजाके शीलस्वभावकी वारम्वार सराहना करते वे ब्रह्मवेत्ता सनकादिक सब मनुष्योंके देखते देखते आकाशमार्गहोकर ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ४८ ॥ पृथुमहाराज महात्मा पुरुषोंमें श्रेष्ठ अध्यात्मविद्यामें स्थित होकर सब कामकीसदृश पूर्ण आत्माको कृतार्थसा मानता हुआ सो राजा कैसा प्रतापवान् था ?

दोहा-धर्म धुरन्धर धरधुरा, धरणि धर्मकी धाक।
धीर धुरीणनको अधिप, पृथु धरेन्द्र धुवसाक ॥ ४९ ॥

उस राजा पृथुने देश, काल, धन, बल और योग्यताके अनुसार जो जो उचित कर्म थे उसी रीतिसे करके ब्रह्मको साक्षात्कार माननेलगा ॥ ५० ॥ और सब कर्मोंका फल ब्रह्ममें समर्पण करके कर्मोंकी आसक्तिको त्याग सावधान होकर, सब कर्मोंका अध्यक्ष आत्माको

प्रकृतिसे परे मान करके राजा पृथु अपने नगरमें राज्य करतारहा ॥ ५१ ॥ यद्यपि वह राजा पृथु घरमें वास करताथा और सब पृथ्वीका चक्रवर्ती राजा था और लक्ष्मीसे सर्वत्र भवन परिपूर्ण था परन्तु तौभी इन्द्रियोंके अर्थमें आसक्त न हुआ और अहंकारको त्याग सूर्यके समान दूरही अपने प्रतापके तेजसे संसारके अंधकारको दूर करतारहा ॥५२॥ इसप्रकार ब्रह्मज्ञानसे कर्मोंको करनेलगा. तब उस राजा पृथुने अर्चिनाम स्त्रीमें अपने समान पांचोंपुत्र उत्पन्न किये ॥ विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण, वृक सब लोकपालोंके गुणोंको राजा पृथु अकेला धारण करता था ॥ ५३ ॥ जैसा जैसा समय आता था राजा पृथु उसीप्रकार सृष्टिकी रक्षा करता था और जगत् सृष्टिकी रक्षाके लिये भगवान्‌के अवतार-रूप राजा पृथुने अपने मन क्रम और शीलस्वभावकी वृत्तियोंसे सुन्दर गुण करके प्रजाका मनरञ्जन करताथा ॥ ५४ ॥ पृथुराजाकी पदवी इनको मिली और सोमराजाकी समान आप होतेहुए जैसे सूर्य आठ महीनेतक पृथ्वीका जल सोखता रहता है और चार महीनेमें सब त्याग देता है, इसी भाँति यह राजा पृथुभी अपने समयपर द्रव्य प्रजासे लेताथा और उनके आवश्यकताके समय उनको देदेताथा ॥ ५५ ॥ तेजसे पावकके सदृश दुर्धर्ष और महेन्द्रके समान दुर्जय क्षमामें क्षितिकी नाईं और स्वर्गके समान मनुष्योंके मनकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला था ॥ ५६ ॥ जैसे घन वर्षा करके सब संसारके जीवोंका मनोरथ पूर्ण करताहै, इसीप्रकार राजा पृथु सबको मनोवांछित वस्तु देदेकर संतुष्ट करताथा, वह समुद्रके समान अगाधबुद्धिवाला और पराक्रममें सुमेरु पर्वतकी नाईं अचल और धैर्यवान् था ॥ ५७ ॥ शिक्षामें धर्मराजकी नाईं, आश्चर्य कर्म करनेवालोंमें हिमाचलके समान, धनमें कुबेरके सदृश धनवान् और अर्थ गुप्त रखनेमें वरुणके समान था ॥ ५८ ॥ बल, विक्रम, और वेगमें पवनवत् पृथ्वीपर भ्रमण करताथा और दुस्सहतामें भगवान् भूतनाथ रुद्रके समान, शत्रुओंको देखताथा ॥ ५९ ॥ स्वरूपमें कामदेवके समान, मनस्वितामें मृग-राजके समान, मनुष्योंपर स्नेह रखनेमें मनुके समान और प्रभुतामें भगवान् ब्रह्माजीके सदृश ॥ ६० ॥ वेदवादियोंमें सुरगुरुके समान स्वाधीनता और आत्मज्ञानियोंमें साक्षात् श्रीविष्णु भगवान्‌के समान-गो, ब्राह्मण, गुरु और हरिभक्तोंकी भक्ति करनेमें मानों लज्जा, विनय, सुशीलता और परोपकारमें सदा अपने आत्माके समान था ॥ ६१ ॥ कीर्तिवान् पुरुषोंमें जहाँ तहाँ त्रिभुवनमें उच्चस्वरसे पृथुराजका यश गाया इसलिये उसका सुयश रामचन्द्रके यशके समान सुरसुन्दरी मधुरवाणीसे वारंवार इस भजनको गातीथीं ॥ ६२ ॥

भजन-धन धन धन पृथुराज पृथ्वीपति, संतनके सुखदायक होजी। याचक किये अयाचक तुमने, गोद्विज साधु सहायक होजी ॥ पुत्रसमान प्रजा सब पाली, राजनमें नृपनायक होजी। सकल देवता करत प्रशंसा, हे प्रभु! तुम सब लायक होजी ॥ महिमा अपरम्पार तुम्हारी, गुणियोंके गुणगायक होजी।

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते सनत्कुमारेण परमाध्यात्मोपदेशो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा-तेइसवें अध्यायमें, जग तज पृथु महिपाल।
नारिसहित आनन्दसे, गयउ स्वर्ग तत्काल॥

मैत्रेयजी बोले कि, एकसमय आत्मज्ञानी राजा पृथुने अपनी आत्माको वृद्ध देखा, जिसमें अपनी आत्मासे सब संसारके पदार्थ बढाये सो प्रजापति हुए ॥ १ ॥ स्थावर, जंगम, जगत्के सब जीवोंको जीविकाके दाता, महात्मापुरुषोंके धर्मधारी, जितेंद्रिय राजा पृथुने जिस कार्यके लिये पृथ्वीपर जन्म लियाथा, परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार वह सब कार्य सिद्ध किये ॥ २ ॥ विरहसे रुदन करतीहुई पृथ्वीको अपने पुत्रोंको सौंपकर, प्रजामें जिसका मन नहीं, सो राजा पृथु अपनी स्त्रीको साथ ले, अकेला तप करनेके लिये तपोवनको चलदिया ॥ ३ ॥ वहांभी दृढतासे सब नियमोंको धारण करके वैखानस आश्रममें संमत हो वानप्रस्थमार्गमें मन लगाय उग्र तप करनेका आरम्भ किया जैसे पहले धरामण्डलके विजय करनेमें बडा परिश्रम कियाथा, वैसेही वानप्रस्थ पुरुषोंके परममान्य तप करनेमें प्रयत्न किया ॥ ४ ॥ कभी तो कन्द, मूल, फल आहार करके दिन व्यतीत करे, कभी सूखेहुए पत्तोंको भोजन किया करे, कितने एक पक्ष जलही पीपीकर रहा, फिर पीछे पवनका भक्षण करनेलगा ॥ ५ ॥ वीर मुनि ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि तापतारहे और चातुर्मासकी वर्षाका जल अपने शिरपर सहतारहे, शीतकालमें गलेगले जलमें खडारहे और सदा पृथ्वीपर सोवे ॥ ॥ ६ ॥ उस सहनशीलने प्रथम वाणी जीती, फिर इन्द्रियोंको जीत ऊपरको वीर्य चढाया, फिर पवनको जीतकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी उपासनाके अर्थ अतिउत्तम तप करनेलगा ॥ ७ ॥ धीरे २ तपकी शक्ति अधिक होनेसे कर्म नष्ट होजानेसे राजाका अन्तःकरण शुद्ध होगया और प्राणायामके प्रभावसे छः इन्द्रियें वश होगईं और सब बंधन छूटगये ॥ ८ ॥ सनत्कुमार भगवान्ने जो परम अध्यात्मकज्ञानकी शिक्षा कीथी, उसी योगमार्गसे परमपुरुष परमेश्वरका वह पुरुषश्रेष्ठ राजा पृथु भजन करनेलगा ॥ ९ ॥ भगवद्धर्मी साधु श्रद्धाके यत्न करनेसे उस महात्मा राजा पृथुकी भगवान् ब्रह्ममें एक ईश्वरकी निष्ठावाली अनन्य भक्ति होगई ॥ १० ॥ सब कर्म शुद्धसत्वात्मा उन भगवान्की वारंवार संस्मरणरूप अनुपूर्तिसे राजाको विरक्त मान ज्ञान हुवा, उस तीक्ष्णज्ञानके प्रभावसे उसने सन्देहके स्थानको तोडकर निज जीवकोशकी ग्रंथियोंको काटदिया ॥ ११ ॥ सब बंधनके छिन्न होजानेसे निजस्वरूपको प्राप्त हुआ और आत्मा गति चेष्टाको त्यागकर धीरे धीरे सब वासनाको त्याग दिया. फिर ब्रह्मज्ञान उदय करके इस शरीरकोभी त्यागतेहुए, परन्तु जबतक योगगतियोंमें प्रमत्त नहीं होता, तबतक योगीकी सिद्धियोंमें रूपके आसक्त होनेकी भूल हुआ करतीहै, इसलिये राजा पृथुका हरिभक्तिमें अनुराग होनेसे सिद्धियोंकी ओर चित्त चलायमान न हुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार वह वीरोत्तम वीर पृथु आत्मामें मन लगाय साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हो दृढ समय पाय उसने अपने कलेवरको त्याग दिया और ब्रह्मोपासना करता हुआ ॥ १३ ॥ पाँवकी एडीसे गुदाको दाबकर मूलाधारसे शनैः शनैः पवनको रोककर नाभिके कोठोंमें स्थित किया, वहांसे हृदयमें, फिर उरःस्थानमें, फिर कण्ठमें, फिर शिरमें चढाते हुए ॥ १४ ॥ सबसे

इच्छा छोड अनुक्रमसे उस वायुको ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचाया. वायुको वायुमें और शरीरके पार्थिव भागको पृथ्वीमें और तेजके भागको तेजमें मिलाया ॥ १५ ॥ आकाशको आकाशमें और जलका अंश जलमें इस रीतिसे अपने अपने विभागसे पाँचों तत्त्वोंको पाँचों तत्त्वोंमें मिलादिया. फिर पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें ॥ १६ ॥ मनको इन्द्रियोंमें और इन्द्रियोंको इन्द्रियोंकी मात्रामें जो जिसमें उत्पन्न हुवाथा उसको उसीमें मिलादिया। फिर आकाशको तामस और अहंकारमें लीनकर अहंकारको महत्तत्त्वमें मिलादिया ॥ १७ ॥ और सब कार्योंके निवासरूप महत्तत्त्वोंको प्रकृतिमें मिलाया उस प्रकृतिको जीवमें धारण किया और जीवको आत्मामें लगाया और आत्माको परमात्मामें लगाकर ॥ १८ ॥ फिर ज्ञान और वैराग्य वीर्यसे परब्रह्म स्वरूपमें स्थित होकर कैवल्यमुक्तिको राजा पृथु प्राप्त हुए. जब सामर्थ्य होजाती है तब प्रसन्न आत्मा जीव वैकुण्ठको जाता है ॥ १९ ॥ अर्चिनाम उनकी महारानी जो कि, अतिसुकुमार छबिकी खानि जिसने कभी चरण पृथ्वीपर नहीं धराथा सो अपने पतिके पीछे चली गईथी ॥ २० ॥ और जिस जिस रीतिसे राजा पृथु जिस धर्मका अनुष्ठान करताथा उसीका अनुष्ठान यहभी करतीथी और ऋषियोंकीसी वृत्ति करके कंद, मूल, फल आदि खाकर अपने स्वामीकी सेवा करतीथी और सेवाके परिश्रमसे उसका शरीरभी बहुत दुर्बल होगयाथा परंतु तो भी उस पीडाको वह नहीं मानतीथी. क्योंकि अपने प्यारे पतिके करस्पर्श और मान मिलनेके सुखसे उस क्लेशको किञ्चित् भी नहीं समझती थी ॥ ॥ २१ ॥ जब सब चेष्टा जिसमेंसे जातीरही, तब अपने प्यारे पृथ्वीके पतिका मृतक शरीर देखकर उस सतीने कुछेक विलाप किया और दुःखित होकर नेत्रोंसे नीर बहाया, फिर मनमें धैर्य धारणकर पर्वतके निकटवर्ति भूमिमें ईंधन इकट्ठा कर चिता बनाय उसमें अपने स्वामीकी देहको धरा ॥ २२ ॥ और फिर उसने आपभी नदीमें स्नान कर चिताके समीप आकर मृतकसंस्कार सब करके उदारकर्म करनेवाले अपने भर्ताको जलांजलि देकर, आकाशमें देखनेको जो देवता आये थे उनको नमस्कार कर अग्निकी तीन पारिक्रमा दे अपने पतिके पादारविन्दका ध्यान करके अग्निमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ अपने भर्ता वीरवर राजा पृथुके पीछे उस महाराजेश्वरी पतिव्रता अर्चिको सतीहुई देख वरदान देनेके लिये सहस्रों देवांगना देवताओंको संग लिये उसकी स्तुति करतीथीं ॥ २४ ॥ उस मंदराचल पर्वतकी चोटीपर पुष्पोंकी वर्षा कर करके देवांगना और देवता आकाशमें दुंदुभी बजाय बजाय परस्पर उसकी प्रशंसा करते थे ॥ २५ ॥ देवांगना बोलीं कि, अहो! यह पृथुपत्नी संसारमें बडी भाग्यवान् और पतिव्रता है। इसके शीलकी प्रशंसा हम नहीं कर सकतीं। क्योंकि श्रीलक्ष्मीजी जैसे यज्ञपुरुष नारायणकी सेवा करती हैं ऐसेही भाग्यशीलाने सब प्रकार अपने स्वामीका सेवन किया है ॥ २६ ॥ सो यह सती निश्चय करके महाराज पृथुके पीछे पीछे जाती है देखो! विचारमें नहीं आसक्ता ऐसे अचिंत्य कर्मके प्रतापसेअस्मदादिकोंको उल्लंघन करके अपने पतिके संग वैकुण्ठको जाती है ॥ २७ ॥

जो मनुष्य इस संसारमें चंचल आयुको पाकर भगवत्पदके पानेवाले आत्मज्ञानका साधन करे. हम तर्क करके कहते हैं कि, उन पुरुषोंको कोईभी पदार्थ दुर्लभ नहीं है ॥ २८ ॥ महाकष्टसे इस मुक्तिदायक मनुष्यदेहको पाकर जो पुरुष विषयोंके वशीभूत होजाताहै उसको आत्मद्रोही और ठगाहुआ जानना चाहिये ॥ २९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, देवताओंकी स्त्रियें इसप्रकार स्तुति कररहीथीं, उस समय आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवद्भक्त पृथु राजाने जिस लोकमें गमन कियाथा उसी लोकमें अर्चिमाने भी गमन किया ॥ ॥ ३० ॥ महाप्रतापी राजा पृथुका पराक्रम था सो उस अत्यन्त श्रेष्ठ चरित्रवाले पुण्यात्माका चरित्र जैसा था वैसा हमने आपसे वर्णन किया ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य सावधान होकर इस महापुण्यरूप चरित्रको एकाग्रचित्त हो श्रद्धासहित पाठ करे और सुने अथवा औरोंको सुनावे वह पृथुकी पदवीको पावेगा ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण तो ब्रह्मतेजस्वी होगा, क्षत्रिय पृथ्वीपति होगा, वैश्य जो पाठ करेगा तो समृद्धिवान् होगा और शूद्र सुने तो शुद्ध होय॥३३॥ जो नर नारी इस चरित्रको आदरसहित तीनबार सुने तो अपुत्रको पुत्र प्राप्त होगा और निर्धनको धन प्राप्त होगा ॥३४॥ अकीर्तिवान्की कीर्ति अधिक होगी, मूर्ख चतुर होगा यह उत्तम चरित्र पुरुषोंको परममंगलदायक और अमंगलका नाश करनेवालाहै ॥३५॥ यह चरित्र धन, यश,आयुका बढानेवाला और परमधामका पहुँचानेवाला है और कलिमलका नाशक है. धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंको सिद्धिदायक है ॥३६॥ और उनको उचित है कि, वह इस उदारचरित्रको श्रद्धापूर्वक सुने, क्योंकि इन चारों पदार्थोंका यह चरित्र मुख्य कारण है परमेश्वरके परमधामका प्राप्त करानेवाला है और मोक्षदायक है ॥ ३७ ॥ जो राजा दिग्विजय करनेके लिये निकले उसको उचित है कि, चलते समय इस उत्तम चरित्रको घरसे सुनके चले क्योंकि जिन राजाओंके देशमें वह जायगा वह राजा जैसे पृथुको भेंट देतेथे ॥ ३८ ॥ उसीप्रकार उस राजाके आगे भेंट रखकर उसकी प्रार्थना करेंगे इसलिये ज्ञानी लोगोंको चाहिये कि, सर्व संग त्याग केवल भगवत्में निष्प्रयोजन भक्ति रखकर यह राजा पृथुका पावन पवित्र पुराणरूप चरित्र सुनें, सुनावें और प्रेम सहित पढें ॥ ३९ ॥ हे विचित्रवीर्यके पुत्र विदुर ! महामाहात्म्यका सूचक यह आख्यान हमने तुमसे कहा सो जो पुरुष इसको मन लगाकर सुनेगा वह राजा पृथुकी गतिको प्राप्त होगा ॥ ४० ॥ प्रतिदिन जो मनुष्य इस चरित्रको आदरसहित सुने अथवा सुनावे वह श्रीकृष्णचंद आनंदकंद जिनके चरणारविन्द भवसागरसे पार उतारनेको नौकारूप हैं, उनकी उत्तम गतिसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ "सो विना भगवद्भजन नहीं" इस वार्तापर एक भजनहै–

भजन–राग खंमाच तिताला।

यातें सब तज भज हरिनाम ॥
बिन हरिभजन त्रिलोकीमाहीं, किन पायो विश्राम ॥ १ ॥

शिव विरंचि नारद जाको यश, गावत आठों याम ॥
सो त्रिभुवननायक सुखदायक, जनपालक घनश्याम ॥ २ ॥
पतित उबारन भवभयटारन, नाम एक श्रीराम ॥
शालिगराम नामही निर्मल, भक्ति मुक्तिको धाम ॥ ३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम- शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पृथुचरित्रवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा-पृथुप्रपौत्र प्राचीनबर्हि, भे महराज सुजान ।
तिनके परचेता भये, रुद्र गीत कियो गान ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, वनगमनके पश्चात् महायशस्वी राजा पृथुका पुत्र विजिताश्व महाराजा हुआ उसने अपने छोटे भाइयोंपर अत्यन्त स्नेह करके सब दिशोंका राज्य उनको दिया. हर्यक्षको पूर्वकी ओरका, धूमकेशको दक्षिणकी ओरका, वृकसंज्ञकको पश्चिमकी ओरका और द्रविणको उत्तर दिशाका राज्य दिया ॥ २ ॥ राजा पृथुने जब अश्वमेध यज्ञ कियाथा तो इन्द्र यज्ञका घोडा चुराकर लेगयाथा उस घोडेको यह इन्द्रके पाससे ले आयाथा तव इन्द्रने इसको अंतर्धान होनेकी विद्या सिखादीथी. तबसे इसका नाम लोग अंतर्धानी कहने लगेथे, फिर शिखंडिनी नाम स्त्रीमें इसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए. पावक, पवमान और शुचि ॥ ३ ॥ यह तीनों अग्नियोंके नाम हैं यह तीनों अग्नि पहिले वसिष्ठजीके शापसे विजिताश्वके घर पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए. फिर यहांसे मोक्ष पाकर अपनी योगगतिको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ अंतर्धानविद्यावाले विजिताश्व राजाने दूसरी नभस्वती नाम स्त्रीमें हविर्धान नाम पुत्र उत्पन्न किया. वह ऐसा प्रतापी था, जिसने अश्व चुरानेवाले इन्द्रको जानभी लिया परंतु तोभी उसको नहीं मारा ॥ ५ ॥ राजाओंकी वृत्ति यही है कि, कर लेना दण्ड देना और विना मूल्य दिये किसीकी वस्तु भय दिखाकर ले लेना यह सब निर्दयकर्म समझकर राजा विजिताश्वने दीर्घकालसे यज्ञके मिसकरके सब कर्म त्याग कर वनमें वास किया ॥ ६ ॥ वहांभी सब भयभंजन भक्तमनरंजन परमात्मा हंसपुरुष सर्वान्तर्यामी भगवान्‌का एकाग्रचित्तसे पूजन करताथा, वह ब्रह्मज्ञानी अपनी समाधिसे विष्णुलोकको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ हे विदुर ! हविर्धानने हविर्धानी अपनी भार्यामें छः पुत्र उत्पन्न किये. बर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत ॥ ८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! उन हविर्धानके पुत्रोंमें ज्येष्ठपुत्र महाभाग्य बर्हिषद राजा बडा उग्रबुद्धि और धर्मपरायण हुआ और कर्मकाण्डमें पारंगत था, योगविद्यामें अत्यन्त विलक्षण था ॥ ॥ ९ ॥ इस महाप्रतापी राजाने समस्त भूमंडलमें कोई स्थान यज्ञविना नहीं छोडा और जिसके देवयजनमें बारम्बार यज्ञ होतेथे और प्राचीनदिशाकी ओर अग्रभाग करके कुशाओंसे इस सब वसुधाको परिपूर्ण करादिया, इसीलिये इस राजाका नाम 'प्राचीनबर्हि' हुआ॥ ॥ १० ॥ इसने ब्रह्माकी आज्ञासे शतद्रुति नाम समुद्रकी पुत्रीसे विवाह किया, यह कन्या

सर्वांगसुन्दरी, नवयौवना, किशोरवय, मनमोहिनी, छबिकी धाम, सोलह शृंगार किये सर्व भूषणसम्पन्न, विवाहमें अग्निकी प्रदक्षिणा कररहीथी, जैसे अग्नि सप्तऋषियोंकी स्त्री शुकीपर मोहित होगयाथा ऐसेही उसकी मनोहर कांति देखकर राजा प्राचीनबर्हि उसपर आसक्त होगया ॥ ११ ॥ उस नवविवाहिता शतद्रुतिने अपने नूपुरोंकी झनकारसे दश दिशाओंके दिक्पाल, देवता, दैत्य, गंधर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नागलोकके नागोंको मोहित करलिया ॥ १२ ॥ यह कथा महाभारतमें इसप्रकार लिखी है कि, "एकसमय सप्तऋषियोंके यज्ञमें सप्तऋषियोंकी स्त्रीको देखकर अग्नि कामाग्निसे संतप्त हो उसपर मोहित होगया और अग्निकी भार्या "स्वाहा नाम सप्तऋषिभार्यारूपधारिणी सती रमयामास" रमाकर उसकी वीर्य शुकीरूप करके अग्नि कामना करतेहुए और वह उसपर अत्यन्त मोहित होगये. इसप्रकार यह सम्पूर्ण कथा समझनी चाहिये." यहाँ इस नवविवाहिता नवोढा शतद्रुतिके नूपुरोंकी ध्वनिने दशों दिशाओंके देवता, दैत्य, गंधर्व, मुनि, सिद्ध, नर, नागादिकोंको जीतलिया ॥ १३ ॥ प्राचीनबर्हिने शतद्रुति नाम भार्यामें दशपुत्र उत्पन्न किये, यह दशों प्रचेता नामसे विख्यात थे और सब एकसे नाम एकसे व्रत धारण करनेवाले और सब धर्मपरायण थे सृष्टि रचनेके लिये पिताने इन सबको आज्ञा दी, तब यह सब तप करनेके लिये समुद्रके तटपर गये वहाँ इन्होंने जलमें खडे होकर दश सहस्र वर्षतक तप करके तपोंके पति श्रीमन्नारायणका पूजन किया ॥ १४ ॥ जब वह तप करनेके लिये घरसे चलेथे उससमय मार्गमें शिवजीने दर्शन देकर प्रसन्नतापूर्वक जिस मंत्र और पूजनका उपदेश कियाथा, उसी उपदेशके अनुसार एकाग्रचित्त हो इन्द्रियोंको जीत वासुदेव भगवान्‌का ध्यान करनेलगे ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! प्रचेतानसे शिवजीका मार्गमें जिसप्रकार समागम हुआ और प्रीतिपूर्वक उनको उपदेश किया वह और जो दिनरातके तप करनेमें प्रसन्न हुए सो सब यथावत् वर्णन करो ॥ १६ ॥ हे विप्रर्षे ! योगसाधनवाले योगीजनभी आठ पहर जिन महादेवका एकाग्रमनसे ध्यान करते हैं परंतु साक्षात् उनका दर्शन नहीं पाते, ऐसे कल्याणरूप ब्रह्मानन्द सदाशिवका दर्शन प्राणियोंको होना महाकठिन है ॥ १७ ॥ भगवान् शिव आप आत्मारामभी हैं तोभी इस लोककी रक्षाकेलिये महाभयानक अपनी शक्तिको संगलिये घूमते फिरा करते हैं ॥ १८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, वह साधु प्रचेता पिताकी आज्ञाको शिरपर धारण कर तप करनेकी अभिलाषासे पश्चिम दिशाको चलेगये ॥ १९ ॥ चलते चलते समुद्रके निकट पहुँचे, तहाँ एक अत्यन्त विस्तृत महागम्भीर सागरके समान एक सरोवर देखा, वह सरोवर सज्जनोंके मनके समान निर्मल जलसे भर रहाथा और जलमें क्रीडा करनेवाले जलजन्तु मच्छकच्छपादिक अत्यन्त प्रसन्नताके साथ प्रीतिपूर्वक आनन्द-सहित रहते थे ॥ २० ॥ नीलकमल, रक्तकमल, उत्पल, अम्भोज, कह्लार, इन्दीवर आदि नानाप्रकारके कमलोंकी खानि थीं, जिसमें हंस, सारस, चकवा, चकवी, कारण्ड पक्षी जहाँ तहाँ मनोहर शब्द कर रहेथे ॥ २१ ॥ मतवाले भ्रमरोंके सुन्दर सुरीले शब्दोंसे

वृक्ष और लताओंके रोम खडे हो रहेथे और कमलोंके समूहोंकी पराग पवनके संग दशों दिशाओंको सुगंधित कररहीथी ॥ २२ ॥ तहाँ दिव्य मार्ग था, गंधर्वोंका मनोहर गान होरहाथा, सुन्दर मृदंग, ढोलका शब्द सुनाई देताथा. उस मनोहर शब्दको सुनकर दशों राजपुत्र विस्मित होगये ॥ २३ ॥ उसी समय उस सरोवरसे पार्षदोंसहित श्रीभगवान् महादेवजीभी निकले तो इन दशों कुमारोंको आनन्दसहित शिवजीका दर्शन हुवा, उनके सम्मुख देवगण गन्धर्वआदि उनकी स्तुति कररहे थे ॥ २४ ॥ तपेहुए सुवर्णके समूहके समान कांतिवान् त्रिनेत्र प्रसन्न होनेमें सुमुख ऐसे नीलकण्ठ भूतनाथको देखकर महाआनन्दसे प्रचेताओंने प्रणाम किया ॥ २५ ॥ तब शरणागत प्रतिपालक, धर्मवत्सल, दीनदुःखहरण, श्रीभगवान् शिवजी धर्मके जाननेवाले शीलसंपन्न प्रीतिसहित मधुरवाणीसे प्रचेतानसे बोले ॥ २६ ॥ रुद्र बोले कि, हे प्राचीनबर्हिके पुत्रो ! जो कुछ तुम्हारी करनेकी इच्छा है से हमने जानली, तुमपर अनुग्रह करनेके लिये मैंने तुमको दर्शन दिया है ॥ २७ ॥ जो कोई वेगसे परे साक्षात् त्रिगुण जीवसंज्ञितसे परे जो भगवान् वासुदेवकी शरणागत है वह मेरा परम प्रिय है ॥ २८ ॥ जो पुरुष अपने धर्ममें निष्ठा रखता है वह सौ जन्ममें ब्रह्मपदको प्राप्त होता है सहस्र जन्म जो पुण्यमें निष्ठा रखता है वह मेरे पदको पाता है और जो परम भागवत हैं वह तो निःसन्देह मायारहित विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं. सब देवता और मैं अन्तमें अविकारी परमेश्वरके लोकको प्राप्त होते हैं अब मैं शिव होकर अधिकारीके समान वर्तमान हूं ॥ २९ ॥ तुम सब भागवत भगवत्‌के भक्त हो इसलिये मुझको अधिक प्यारे हो, भगवद्भक्तोंसे परे और कोई दूसरा मुझको अधिक प्यारा नहीं ॥ ३० ॥ इसलिये यह स्तोत्र परम पवित्र और सर्व मंगलमय मोक्षदायक और सब विघ्नोंका शान्त करनेवाला है सो मैं तुमसे कहता हूँ तुम चित्त लगाकर सुनो और जिसप्रकार होसके उस प्रकार एकान्तमें बैठकर जप करना ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, ऐसे परमदयालु दीनानाथ भगवद्भजनमें परायण भगवान् शिवजी हाथ जोडे खडे देख उन राजपुत्रोंको उपदेश करने लगे ॥ ३२ ॥

श्रीरुद्र उवाच ॥ जितं ते आत्मविद्धुर्य स्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे ॥
भवता राधसाराद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥ ३३ ॥

श्रीरुद्र बोले-कि, हे प्रभो ! आपकी महिमा बडे बडे आत्मज्ञानी पुरुषोंको परमानन्ददायक है तो वह आनन्द मुझकोभी देना चाहिये जो सदा सिद्धिदायक मङ्गलरूप है आपने उसका सेवन किया है इसलिये मैं सबकी आत्माके अर्थ नमस्कार करता हूं ॥ ३३ ॥

नमः पंकजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने ॥
वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥ ३४ ॥

कमल जिनकी नाभिमें है भूतसूक्ष्म और पञ्च महाभूत इन्द्रियोंके आत्मा सर्वान्तर्यामी अपने आप प्रकाशरूप जो वासुदेवरूपसे चित्तके नियन्ता निर्विकार हो सो हे भक्तिरूप ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥ ३४ ॥

संकर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च ॥
नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥ ३५ ॥

संकर्षणरूपसे आप अहंकारके हरनेवाले सूक्ष्म अनन्त और मुखाग्निसे प्रलयके समय लोकको दाह करनेवाले हो और विश्वके ज्ञानदायक यदुकुलके नायक सर्वान्तर्यामी प्रद्युम्नके अर्थ मेरा नमस्कार है ॥ ३५ ॥

नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने ॥
नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥ ३६ ॥

सब इन्द्रियोंके ईश, सब इन्द्रियोंके आत्मा अनिरुद्धके निमित्त मैं बारंबार नमस्कार करता हूं जो आप सूर्यरूप धारण कर समस्त भूमण्डलको अपने तेजसे प्रकाशित करते हो और जो आप परमहंस पूर्ण क्षयवृद्धि रहित हो सो आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥

स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः ॥
नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥ ३७ ॥

स्वर्गमोक्षके द्वाररूप सदा पवित्र हृदयमें निवास करतेहो आपकेलिये नमस्कार है, हिरण्यसम जिसका वीर्य, चातुर्होत्र करनेवाले यज्ञोंके साधनरूप और यज्ञोंका विस्तार करनेवाले अग्निरूप मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥ ३७ ॥

नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ॥
तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥ ३८ ॥

पितृ और देवताओंके अन्नदाता, तीनों वेदोंके पति और यज्ञ वीर्य रूपवाले चन्द्ररूप आपको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ, प्राणियोंके तृप्तिदायक और सब रसमय जलरूप आत्मा मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥

सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे ॥
नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलाय च ॥ ३९ ॥

सब जीवमात्रके शरीररूप, पृथ्वीरूप, स्थूल तनधारी त्रिभुवनके पालनेवाले-इन्द्रिय शरीरके बलरूप पवनरूप ईश्वरको मेरा प्रणाम है ॥ ३९ ॥

अर्थलिंगाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने ॥
नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ ४० ॥

अर्थ, चिह्न, शब्द, गुणोंसे सबको नाम देनेवाले आकाशरूप बाहिर भीतर जिसकी आत्मा पुण्यलोकरूप अत्यन्त तेजस्वी पवित्र स्वर्गरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥ ४० ॥

प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ॥
नमो धर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥ ४१ ॥

प्रवृत्ति, निवृत्ति मार्गरूप पितृदेवरूप कर्मवाले धर्मफलदायक और मृत्युरूपसे अधर्मका फलरूप क्लेश देनेवाले आपको बारंबार मेरा नमस्कार है ॥ ४१ ॥

नमस्ते आशिषामीश मनवे कारणात्मने ॥
नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ ४२ ॥

सब आशीर्वादोंके ईश्वर मनुरूप कारणरूप, जिसकी आत्मा, दीर्घ धर्मवाले अखण्ड ज्ञान रूप आदिपुरुष मंत्ररूप कृष्णमूर्तिको मेरा नमस्कार है ॥ ४२ ॥

पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥
ब्रह्मणे परिपूर्णाय वैकुण्ठपतये नमः ॥ ४३ ॥

पुराणपुरुष सांख्य योगके ईश्वर बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्यरूप परिपूर्ण श्रीवैकुण्ठनाथके लिये मेरा नमस्कार है ॥ ४३ ॥

शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने ॥
चेत आकूतिरूपाय नमो वाचो विभूतये ॥ ४४ ॥

कर्ता, कर्म, कारण, तीनों शक्तियों सहित, रुद्ररूपधारी अहंकारमय आनंद आत्माके लिये मेरा नमस्कार है, अर्थ, चित्त, क्रिया, शक्तिरूप वाणीको नानाप्रकारसे उत्पन्न करनेवाले विभूतिरूपके लिये मेरा नमस्कार है ॥ ४४ ॥

दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ॥
रूपप्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥ ४५ ॥

सब भागवतोंसे पूजित अत्यन्त प्रियतम रूपधारी अपने भक्तोंके लिये सब इन्द्रियें गुण अंजनरूप जो आपका दर्शन है, सो दर्शन कृपा करके हमसे दीन दासोंको दो, क्योंकि, हमारे चित्तमें सदा इस दर्शनकी लालसा बनीरहती है ॥ ४५ ॥

स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम् ॥
चार्वायतचतुर्बाहुं सुजातरुचिराननम् ॥ ४६ ॥

सघन वर्षाकालके मेघवत् श्यामवर्ण सब सुन्दरताकी राशि, सुन्दर विस्तृत चार बाहु शोभायमान, सकल सौंदर्यका मूल अत्यन्त रुचिर मुखकी छवि है ॥ ४६ ॥

पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रुसुनासिकम् ॥
सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥ ४७ ॥

कमलकोशकी कोमल पँखुरी और पलाशपुष्पके समान शोभायमान नेत्र, सुन्दर भ्रू, सुन्दर नाक, सुन्दर दाँत, सुन्दर कपोलवाला मुखारविंद जिसमें सुशोभित समकर्णसहित ॥ ४७ ॥

प्रीतिप्रहसितापांगमलकैरुपशोभितम् ॥
लसत्पंकजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥ ४८ ॥

प्रीतिसे हास्ययुक्त नेत्र और अलकोंसे शोभायमान सुशोभित कमलकी पीली केशरके समान पीताम्बर धारण किये उज्ज्वल उज्ज्वल कुण्डल कानोंमें देदीप्यमान है ॥ ४८ ॥

स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ॥
शंखचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमार्द्धिमत् ॥ ४९ ॥

दमकते हुए किरीट, वलय, हार, नूपुर और क्षुद्रघंटिकासे मण्डित, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये. वनमाल और कौस्तुभ मणिकी अद्भुत सम्पदाओंसे भूषित ॥ ४९ ॥

सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत् सौभगग्रीवकौस्तुभम् ॥
श्रियानपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥ ५० ॥

सिंहके समान कंधोंपर कुण्डलादि भूषणोंकी शोभा धारण किये ग्रीवामें कौस्तुभ मणि सौभाग्ययुक्त विराजमान विश्लेषरहित लक्ष्मीजीके स्वर्णरेखांकित पाषाण कसौटीरूप वक्षःस्थलमें शोभित है ॥ ५० ॥

पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् ॥
प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्तगभीरया ॥ ५१ ॥

पूरक रेचकसे संविग्न कंकणवत् मनोहर पीपल पत्रके समान उदर,श्वास और उच्छ्वासके कारण चलायमान त्रिवलीसे शोभित जलके भ्रमरके समान नाभि, मानो उसीमेंसे विश्वकी उत्पत्ति हुई है और फिर विश्वको उसीमें प्रवेश करनेके लिये उपस्थित हैं ऐसा जान पडता है ॥ ५१ ॥

श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् ॥
समचार्वङ्घ्रिजंघोरु निम्नजानु सुदर्शनम् ॥ ५२ ॥

श्याम कटिपश्चाद्भागपर सुंदर पीताम्बरके ऊपर सुवर्णकी कोंधनी पहिने समान श्रेष्ठ चरण, जंघा ऊरुमें गंभीर जानु शोभित हैं ॥ ५२ ॥

पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ॥
प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरोर्मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥५३॥

शरदकालसंबंधी मनोहर कमलपत्रके समान शोभायमान कांतिवाले, नखोंकी कांतिसे अंतःकरणके अज्ञानका नाश करनेवाले पादारविन्दसे अपने प्यारे ध्रुव प्रह्लादादिक भक्तोंके भय दूर करनेवाले आप अपने मनहरण स्वरूपका दर्शन हमको दिखाओ, हे गुरो ! हमसे तमोगुण सेवियोंको मार्गके दिखानेवाले गुरु आपही हैं ॥ ५३ ॥

एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सता ॥
यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ ५४ ॥

जिस पुरुषको अपनी मलिन आत्माको शुद्ध करनेकी इच्छा हो, उसको चाहिये कि, आपके इस मनोहर स्वरूपका ध्यान करे और अपने धर्मको न छोडे क्योंकि, जो अपने धर्ममें स्थित है उसको आप भक्तियोग और अभयदान देनेवाले हो ॥ ५४ ॥

भवान् भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ॥
स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥ ५५ ॥

स्वर्गवासी देवताभी जिनकी आशा रखते हैं वह और आत्मज्ञानी लोगोंकी आप गति हो और देहधारियोंको दुर्लभ हो, परन्तु तोभी आप अपने भक्तिमान् पुरुषोंको सुलभ हो ॥ ५५ ॥

तं दुराराध्यमाराध्यं सतामपि दुरापया ॥
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥ ५६ ॥
महात्माजनोंकोभी जिस भक्तिका मिलना महादुर्लभ है, उसे एकांतभक्तिसे दुराराध्य आपकी उपासना करके और आपके मनोहर चरणारविन्दोंके मूल छोडकर और किसी वस्तु की चाहना नहीं करते, क्योंकि, यह आनंद स्वर्गादिकमेंभी नहीं मिलता ॥ ५६ ॥

यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते ॥
विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥ ५७ ॥
जो काल अपने तेज और बलवीर्यके प्रभावसे अपनी भ्रुकुटीके चढानेहीसे विश्वका विध्वंस कर सक्ता है, वह भी आपके चरणसेवियोंपर दृष्टि उठाकरभी नहीं देखसक्ता और उनपर अपना अधिकार नहीं चलासक्ता और दंड देना तो बहुत कठिन है ॥ ५७ ॥

क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ५८ ॥
भक्तजनोंका सत्संग करनेवालोंकी संगतिके आगे क्षणके समान तो मैं स्वर्गको समझताहूँ, और मुक्तिको और मनुष्योंके आशीर्वादोंकी और राज्य आदिक सुखकी तो चर्चाही क्या है ॥ ५८ ॥

अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिस्नानविधूतपाप्मनाम् ॥
भूतेष्वनुक्रोशसु सत्त्वशीलिनां स्यात्संगमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥ ५९ ॥
इसलिये पापहारी तीर्थरूप यशस्वी आपके चरणारविन्द हैं, उनके सेवन करनेसे और गंगाजीके स्नानसे जिनके बाहर भीतरके सब पाप नष्ट होगयेहैं, सब जीवोंपर दया करते रहतेहैं, निर्मल अंतःकरण और शीलस्वभाववाले महात्मा पुरुषोंसे हमारा सत्संग बनारहै, यह अनुग्रह मैं आपका चाहताहूँ ॥ ५९ ॥

न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ॥
यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिः ॥ ६० ॥
जब महात्मा पुरुषोंकी सेवा करनेके लिये चित्त विषयोंके विक्षेपसे रहित होजाय. और हृदयका गुप्त तम दूर होजानेसे जब अंतःकरण विशुद्ध होय तब उस चित्तमें योगीजनोंको आपकी अद्भुत गति और आपका मनोहर स्वरूप देखनेमें आता है ॥ ६० ॥

यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ॥
तत्त्वं ब्रह्म परंज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६१ ॥
जिस ब्रह्ममें यह सब विश्व दृष्टि आताहै और सब विश्वमें जो ब्रह्म दिखाई देता है सो तत्त्व परब्रह्म ज्योतिस्वरूप आकाशवत् सबमें आपही व्यापक हो और आपहीका विस्तारहै॥ ६१॥

यो माययेदं पुरुरूपयाऽसृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ॥
यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि ॥ ६२ ॥
बुद्धिमें भेद करनेवाली माया है सो आपके विषय कोई कामभी नहीं करसक्ती, ऐसी

बहु धरणी मायासे जो ईश्वर आप निर्विकार होकर इस विश्वको रचता है, पालता है, नाश करता है जिसमें किंचित् भेद बुद्धि नहीं. सत्यकी समान प्रकाशवान् है ऐसे स्वाधीन ईश्वर की हम शरणागत हैं ॥ ६२ ॥

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ॥
भूतेन्द्रियांतःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ ६३ ॥

यह मुझको भलीप्रकार निश्चय है कि, आप मंदभावसे रहित हो. तोभी पंचभूत इन्द्रिय और अंतःकरणसे जानेजाते हो, सो महात्मालोग श्रद्धासहित नानाप्रकारकी क्रियाओंसे आपके अद्भुतरूपका अनेकविधियोंसे पूजन करते हैं, उन्हीं पुरुषोंको हम वेदशास्त्रमें चतुर कहते हैं. सो ऐसे विलक्षण स्वरूपको त्यागकर केवल ज्ञानमें मनको लगाते हैं उनको हम विचक्षण नहीं समझते ॥ ६३ ॥

त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ॥
महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥ ६४ ॥

आपही एक आद्यपुरुष हो; क्योंकि, प्रलयके समय तो आपकी मायाशक्ति निद्राके वशीभूत होजाती है और विश्वरचनेके समय, उस मायाशक्तिसे जब आप रज सत्त्व तमका भेद करतेहो, तब उन भेदोंसे महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि, जल, देवता, ऋषि, भूतगण और भी अनेक पदार्थोंकी खानि यह विश्व जिनसे उत्पन्न होता है ॥ ६४ ॥

सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं परमात्मांशकेन ॥
अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ॥ ६५ ॥

आप अपनी शक्तिके प्रभावसे अपने रचेहुए विश्वमें प्रविष्ट होकर अपने आत्माके अंशसे उस विश्वरूप पुरमें चार चार प्रकारके जीवको रचतेहो-स्वेदज, अंडज, जरायुज, उद्भिज्ज, इन जीवोंमें आप प्रवेश करतेहो, इसीलिये इस जीवका नाम पुरुष है और ऋषिलोग बाहर भीतर वसके इन्द्रियोंके द्वारा सुखभोग भोगते हैं ॥ ६५ ॥

स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ॥
भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वः घनावलीर्वायुरिवाऽविषह्यः ॥ ६६ ॥

महाप्रचंड जिसका वेग सबको चलायमान करताहै. सो यह काल है; उसको तुमने अपने वशमें कर रक्खाहै; पंचभूतोंसे पंचभूतोंका तत्त्व अनुमान करतेहो; जैसे मेघपंक्तियोंको पवन जहाँ चाहे तहाँ खैंच लेजातीहै इसीप्रकार जीवोंको दूसरे जीवोंसे चलायमान कर आप खैंच लेजातेहो; परंतु यह सब संसारका खैंचनेवाला आपका कालरूप किसीके देखनेमें नहीं आता ॥ ६६ ॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्य चिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥
त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ६७ ॥

प्रमत्त महाचिंतासे प्रवृद्ध जिसको लोभ, विषयोंमें जिसकी लालसा; और विषय प्राप्त होनेपरभी अत्यन्त लोभ करनेवाले प्राणी नित्य सावधानतासे रहनेवाले, कालरूप आप

क्षुधासे गलफुओंको चाटताहुवा सर्प जैसे मूसेको निगलजाताहै, ऐसेही झटपट आप उसको झपट लेतेहो ॥ ६७ ॥

कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ॥
विशंकयाऽस्मद्गुरुरर्चति स्मयद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥ ६८ ॥

ऐसा कौन पण्डित है जो आपके चरणकमलको त्यागेगा जो आप कहें वह अपमानसे व्यथितभी हैं और उनका शरीर जीर्णभी होगया है तौभी आपको कभी नहीं त्यागेंगे, जिसकी शंकासे हमारे गुरु ब्रह्माने आपके चरणारविन्दोंका पूजन किया है, जिनकी प्राप्तिके लिये दृढविश्वाससे चतुर्दश मनुओंने मृत्युके भयसे जिनका भजन किया है ॥६८॥

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन् परमात्मन्विपश्चिताम् ॥
विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः ॥ ६९ ॥

हे ब्रह्मन् ! हे परमात्मन् ! ! सब विश्व रुद्रके भयसे त्रासवान् होरहा है, इसलिये जाननेवाले जो हम हैं, सो आपही हमारे शरणरूप और भयनाशक हैं ॥ ६९ ॥

इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ॥
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥ ७० ॥

महादेवजी बोले कि, हे नृपनन्दनो ! एकाग्रचित्त करके इस रुद्रगीत स्तोत्रका जप करो और स्वधर्ममें निष्ठा रक्खो और अन्तःकरण भगवत्को अर्पित करो, इसीमें तुम्हारा मंगल होगा ॥ ७० ॥

जो सबकी आत्मामें स्थित आत्मा है; और सब प्राणीमात्रमें स्थित हैं, उन्हींका पूजन करो, उन्हींका ध्यान करो, उन्हींकी स्तुति करो, उन्हीं हरिका वारंवार स्मरण करो ॥ ७१॥ इस योग आज्ञाको करके मुनिव्रत धारण करो और चित्तको सावधान करके सवजने आदर सत्कारपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करो और अभ्यास आदरसे इसका जप करो ॥ ७२ ॥ जब हम सब ब्रह्माजीके पुत्र भृगु आदिने सृष्टि रचनेकी इच्छा की, तब प्रथम प्रजापतियोंके पति भगवान् ब्रह्माजीने सृष्टिके बढानेके लिये हमको यह स्तोत्र पढायाथा, हमने इसी स्तोत्रका पाठ करके तमोगुणको ध्वस्त किया और विविध प्रकारकी प्रजा रची ॥७३॥ जो मनुष्य नित्य सावधान होकर इस मंत्रका जप करे तो वह भगवान् वासुदेवमें परायण होगा और थोडेही कालमें कल्याणको प्राप्त होगा ॥ ७४ ॥ इस विश्वमें सब कल्याणोंका कल्याण देनेवाला परमश्रेष्ठ और सबसे प्रधान यह ज्ञान है, जिस पुरुषको ज्ञानरूप नाव प्राप्त होजाती है, वह इस महादुस्तर अपारसंसारसे बेखटक पार होजाताहै ॥ ७५ ॥ जो कोई श्रद्धासहित मेरे गाये हुए इस भगवत्स्तोत्रका पाठ करेगा, वह विना प्रयास दुराराध्य भगवान् वासुदेवका आराधन करेगा ॥ ७६ ॥ परमेश्वरसे जो पुरुष जिस वस्तुकी आशा करता है, वह सब पदार्थ उसको प्राप्त होते हैं और मेरे इस गीतको जो प्रेम और प्रीतिसे गाते हैं, उनसे भगवान् बहुत प्रसन्न होतेहैं और शीघ्र ज्ञान दे अपावनकोभी पावन कर अनेक प्रकारके मंगल देतेहैं ॥ ७७ ॥ जो कोई प्रातःकाल उठकर हाथ जोड श्रद्धापू-

र्वक इस स्तोत्रका पाठ करे, वा सुने; अथवा औरको सुनावै, वह इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेता ॥ ७८ ॥ हे राजकुमारो ! परमपुरुष परमात्माका जो यह स्तोत्र मैंने गाया है इसको जपो और एकाग्रमन करके महातप करो, तो अन्तमें तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध होगा " इसलिये मनुष्यको चाहिये कि, प्रातःकाल उठकर भगवान् वासुदेवका ध्यान इस रीतिसे करे "–

भजन–पूजा इस विधि प्रभुकी करिये ॥
धूप दीप नैवेद्य पुष्प फल, हरिके सन्मुख धरिये ॥ १ ॥
गद्गद कण्ठ अंग पुलकावलि, प्रेमनीर चखभरिये ॥
गाय गाय गुण प्रेमप्रीतिसों, भवसागरसों तरिये ॥ २ ॥
श्रीयदुवरकी चरण शरण गहि, कलिमलतें क्यों डरिये ॥
शालिग्राम दया कर हे हरि, पाप ताप सब हरिये ॥ ३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा–मनबुद्धिके संगते, जन्म मरणको भाव ।
पच्चिसवें अध्यायमें, कथा पुरञ्जन राव ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि, अब राजा पुरञ्जनका उपाख्यान वर्णन करतेहैं आप सावधान होकर सुनिये. जब इसप्रकार शिवजीने राजपुत्रोंको उपदेश किया तब प्रचेताओंने विधिपूर्वक शिवजीकी पूजा की, उस पूजाको अंगीकार कर, राजकुमारोंके देखते देखते हर वहीं अंतर्धान होगये ॥ १ ॥ रुद्रका गाया हुआ भगवत्स्तोत्रका जप करते करते उन सब प्रचेताओंको जलके भीतर खडे खडे दश सहस्र वर्ष बीतगये ॥ २ ॥ हे विदुर ! प्राचीनबर्हि राजाका मन कर्मोंमें अत्यन्तही आसक्त था, इस परमकृपालु वेदांततत्त्वज्ञाता नारदजीने उसको ज्ञानोपदेश किया ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! कर्म कर करके तुम कौनसा कल्याण चाहते हो ? एक कल्याण तो वह होता है कि, जिसमें दुःखकी हानि और सुखकी प्राप्ति हो सो इस यत्नके करनेसे यह प्राप्त नहीं होसकता ॥ ४ ॥ राजा प्राचीनबर्हि बोले कि, हे महाभाग ! मेरी बुद्धि तो कर्मोंमें बिंध रही है; सो मैं कल्याणको नहीं जानता आप मुझे ऐसे निर्मल ज्ञान कहो कि, जिसके प्रभावसे मैं कर्मोंके बंधनसे मुक्ति पाऊं ॥ ५ ॥ जिसमें अनेक प्रकारके छल छिद्ररूप धर्म हैं, ऐसे घरमें पुत्र, दारा धनको मुख्य समझनेवाले अज्ञानी लोग संसारमार्गमेंही घूमते फिरते रहतेहैं और परमेश्वरको नहीं जानते ॥ ६ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे राजन् ! हे प्रजापते ! आपने अपने यज्ञमें निर्दई बनकर सहस्रों पशुओंको मारडाला, उन जीवोंको देखकर तुमको दया नहीं आई ॥ ७ ॥ यह सब पशु तुम्हारा मरण चाहते हैं और तुमने जो जो दुःख इनको दिये हैं उनको स्मरण कर करके अपने मनमें क्रोध उत्पन्न करते हैं जब तुम मरोगे तो यह

लोहेके मढेहुए शृंगोंसे तुम्हारा शरीर विदीर्ण करेंगे ॥ ८ ॥ अब मैं इस विषयमें एक पुरातन इतिहास वर्णन करता हूँ जिसमें राजा पुरञ्जनका चरित्र है, वह आप ध्यान लगाकर सुनिये ॥९॥ हे राजन् ! बडा यशस्वी एक पुरंजन नाम राजा था जिसका अविज्ञात नामक एक सखा था, जो सब चेष्टाओंको जानता था ॥ १० ॥ इस कथाको आगे पचमस्कन्धमें विस्तारसहित वर्णन करेंगे और किसी किसी कठिन शब्दका व्याख्यान जहाँ शब्द आवेगा, उसको वहीं कहेंगे. जैसे "स्वकर्मभिः पुरं शरीरं जनयतीति पुरंजनो जीवः । न विज्ञातं चेष्टितं यस्य स ईश्वरः तस्य सखा" अविज्ञातनामा पुरंजन जीवका नाम है, अविज्ञात व चेष्टित ईश्वरका नाम है, वह पुरंजन राजा अपनी राजधानीके लिये उत्तम स्थानके ढूँढने को समस्त भूमंडलमें फिरा, परंतु अपने समान कोई स्थान नहीं पाया, तब मनमें अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ ११ ॥ विषयसुख भोगनेवाले उस राजाको पृथ्वीपर जितने पुर हैं उनमेंसे एक पुरभी सुखकी प्राप्तिके लिये नहीं मिला, वह पुर कौनसे हैं ? पशु, पक्षी, कीटादिक, जो जो देह हैं, वह सब दुःखोंकी खान हैं, कोई मनोवांछित सुखको देनेवाला नहीं है और है तो मनुष्य देह है सो अनेक जप तप करनेसे प्राप्त होताहै, इसलिये और कोई दूसरा देह उसको सुखकी प्राप्तिके लिये नहीं मिला ॥ १२ ॥ एक समय राजा वह फिरता फिरता हिमाचल पर्वतकी दक्षिणभूमिके नीचे चलागया, वहां उसने एक अद्भुत नगर देखा कि, जिसमें अत्यन्त सुंदर नव द्वार सर्व सुलक्षण संपन्न किसीप्रकारका दोष उसमें नहीं जानपडा, वह मनुष्यदेह था, उसमें मुख, नेत्र, श्रवण, नासिका, गुदा और लिंग, यह नव द्वार हैं, वहां अंधा, लंगडा, लूला, कोईभी अंगवैकल्यरूप दोष नहीं था. हिमाचलके दक्षिण ओर कहनेका कारण यह है कि, भारतखंड हिमाचलके दक्षिणहीकी ओर है, जो भरतखंड कर्मभूमि कहलाताहै ऐसा मनोहर नगर देखा ॥ १३ ॥ यह नगर प्राकार, उपवन, अटारी, खाई, झरोखे, तोरणोंसे अत्यन्त देदीप्यमान था और सोने, चांदी, लोहेके शृंगोंसे चारों ओर सब भवन जगमगा रहेथे, यह जो उस नगरकी शोभा वर्णन की वह जो अष्टांग और देहमें षट्चक्र हैं वही मंदिर अटा अटारी हैं और वह जो राजस, तामस आदिक चित्तकी वृत्तियां हैं, वही स्थानोंपर सोने, चांदी, लोहेकी कलश कलशियां हैं ॥ १४ ॥ इस नगरीके मंदिर, स्थान, नीलमणि, स्फटिक, वैदूर्य, मुक्ता, मरकतमणि और माणिक्यादिरत्नोंके बनेहुए हर्म्यस्थलीसे प्रकाशित हैं, श्रीयुक्त नागपुरी अर्थात् नागलोगोंकी भोगपुरीसे इस नगरकी शोभा कुछ न्यून नहींथी ॥ १५ ॥ कहीं सभा, चौराहे, राजमार्ग, हाटें, कहीं विश्राम स्थान, ध्वजा, पताका और मूंगोंकी वेदियोंसे संयुक्त अत्यन्त शोभायमान थे ॥ १६ ॥ इस पुरीके बाहिरकी ओर एक सुंदर उपवन दिव्य वृक्षलताओंसे सघन चंदनादिसे सुगंधित होरहाथा, तालोंमें कंजोंपर भ्रमरोंका गुंजार और अनेक प्रकारके जहाँ तहाँ कोलाहल होरहेथे ॥ १७ ॥ पुष्प और शीतल जलके झरनोंके कणोंसे लगीहुई पवन त्रयतापकी हरनेवाली बहरहीथी, उससे चलायमान मूँगोंके समान वृक्षोंकी शाखा और पत्तोंकी शोभा सरोवरके जलमें झलक रहीथी उन तालोंमें जो कम-

लिनी खिलरहीथीं उनकी पराग जो उडतीथीं उससे सब भूमि सुगंधित होरहीथीं ॥ १८ ॥ चौ०-"सरसीकर सरसर सरमाहीं। विकसित वारिज बहु दरशाहीं" ॥ अनेक वनके मृग-समूह मुनिव्रत धारण किये, अहिंसा धर्मका पालन कररहेथे और निर्भय एकसंग विचरते फिरतेथे, कोकिला कुंजोंमें जो कूँज रहेथे तो उनकी मधुर वाणियोंसे यह बात ज्ञात होती थी कि, मानों पथिकोंको अपने निकट बुलारहे हैं.

चौ०-ऐसे पुरमें भूप पुरंजन * कियो निवास देख मन रंजन ॥
पुर उपवनमें नृप इकबारा * गये करन मनमुदितविहारा ॥१९॥

वहां क्या देखा ? कि, उस उपवनमें अपनी इच्छासे एक सुन्दर स्त्री दश अनुचरोंको साथ लिये फिरती है और एक एक दासीके संग सौ सौ पुरुष उनके चारों ओर खडे रक्षा कररहे हैं ॥ २० ॥ एक पाँच शीशवाला सर्प उस मनोरमा स्त्रीकी रक्षामें उपस्थित है; वह कामरूप कामिनी जिसकी सोलह वर्षकी अवस्था परमसुन्दरी उस उपवनमें अपने लिये किसी वरको ढूँढती फिरती है ॥ २१ ॥ उस यौवनवती बालाके दाडिम बीजसे दांत, शुककीसी नासिका, आरसीके सदृश गोल कपोल, चंद्रमाके समान श्रेष्ठ मुख और एक प्रकारके दोनों कुण्डल कानोंमें विराजमान हैं ॥ २२ ॥ पीले रंगके वस्त्र पहिरे, सुन्दर कटिपश्चाद्भागवाली श्यामवर्ण अतिसूक्ष्म कटिमें सुवर्णकी कौंधनी धारण किये, चपलाकासा चंचलाहट और चरणोंमें रत्नजटित नूपुरकी झनझनाहटसे ऐसा विदित होता था मानो देवमाया पृथ्वीपर उतर आई ॥ २३ ॥ यौवनकी अवस्थाकी झलकाहटसे कंचनके कलशके समान स्तन प्रगट होरहे हैं; दोनों दूकसार चकवी-चकवाके समान व्यवधान रहित थे; वह मत्तमतंग गतिवाली लज्जाके मारे वारंवार उनको अञ्चलसे ढाँपती थी; बडे कष्ट पाकर अंचल इन कुचाओंपर ढकागया है.

कवित्त-वर्षा और शीत सहि सूखो फिर धूपमाहिं, पुनि तन चरखीमें अपनो उठायोहै। तानकै नितान्त फिर धुनिया निर्मोहीनेहु, धनुहीसे मेरे रोमरोमको उडायोहै ॥ नारिन बिचारिनने कातकूत सूत कियो बुनकै जुलाहेनेहू दुःखको दिखायोहै। धोबीनै आँचपै धर पाटापर पीटो मोहिं एते दुःख सहि दर्श स्तननको पायोहै ॥ १ ॥ २४ ॥

लज्जासहित मंदमुसकानसे अत्यन्त शोभायमान दृष्टि आतीथी; वह चञ्चलाक्षी मनोहर कटाक्षसे और ऊपरकी ओर घूमतीहुई भ्रुकुटीरूप धनुपसे छूटेहुए प्रेमभरे बाणोंसे और नेत्रोंकी अनीरूप भालोंसे, राजा पुरंदरके हृदयमें शाल होगये; तब राजा पुरंजनने बडी चतुराईके साथ उस मृगनयनीसे बूझा ॥ २५ ॥ हे पिकवयनी ! तुम कौन हो ? और किसकी दुहिता हो ? और हे सती ! यहां कहांसे आईहो ? यह पुरी किसकी है ? नगरीके निकटवर्ती इस उपवनमें किसकारण फिरतीहो ? और क्या तुम्हारी इच्छा है ? सो मुझसे कहो ॥ २६ ॥ यह ग्यारह जो महाभट तेरे संग हैं यह कौन हैं ? इनमें ग्यारहवाँ बडा बलवान् जान पडताहै, सो इसका क्या नाम है ? और सौ सौ ललना जो इनके साथ हैं,

यह कौन हैं? और यह जो तेरे आगे आगे रक्षाके लिये सर्प चलता है, यह कौन है? ॥ ॥ २७ ॥ तुम लज्जा तो नहीं हो ? जो धर्म अपने पतिको ढूँढती फिरोहो? वा भवानी हो? जो शिव ब्रह्मज्ञानीको खोजोहो? जैसे सरस्वती ब्रह्माका और लक्ष्मी नारायणका अनुसरण करतीहै, ऐसे मुनिवत् इस एकान्तवनमें किसके अनुसरणमें विचरती फिरतीहो? मैं भले प्रकार जानता हूं कि, तुम्हारा जो प्यारा प्रीतम होगा; उसकी सब अभिलाषा तुम्हारे चरणारविंदके प्रभावसे परिपूर्ण होती होगी, अब मुझको सब प्रकारसे निश्चय होताहै कि, तुम साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी हो परंतु यह बताओ कि, तुम्हारे हस्तके अग्रभागोंमें जो कमलका फूल था, वह कहां गिरा दिया ॥ २८ ॥ हे सुमुखि! मैं भलीभाँति जानताहूं कि, तुम पूर्वोक्त स्त्रियोंमें नहीं हो और यह सब देवांगना हैं मध्यमें भूमिकी छूनेवाली और कोई नहीं है. इसलिये लक्ष्मी जैसे श्रीनारायणके साथ वैकुंठलोकको शोभित करतीहै, ऐसे मैं जो महावीर अनेक कर्मकारी सकल सुलक्षण धामहूं मेरे साथ रहकर तुम इस पुरीको सुशोभित करो, क्योंकि मेरे साथ इस पुरीमें रमण करने योग्य तुमहीं हो ॥ २९ ॥ हे शोभने! तेरी लाजभरी मृदु मुसकान, घूमती भ्रुकुटीसे प्रेरण कियाहुआ मनोभव तुम्हारी दृष्टिकी तिरछी चितवनकी पैनी अनीसे खंडित इन्द्रियवाला मुझको बाधा करता है ॥ ३० ॥ इसलिये हे मृदुहासिनि! तुम्हारा यह मनोहर मुखारविन्द इन्दुका लजानेवाला, जोकि बाँकी भ्रुकुटी और चंचल नेत्रोंसे शोभित, लम्बे लम्बे श्याम पूर्ण अहिशावकसम अलकोंके समूहसे घिराहुआ कोकिलावत् मधुरवाणी बोलनेवाला है सो तुम लाजके मारे इस अपने मुखको मेरे सन्मुख नहीं करती.

चौ०-सो मुख घूँघटको पटडारी * मोहिं दिखाव दुरावन प्यारी ॥
वचनसुधासम मोहिं पियाई * देहु मदन डर ताप नसाई ॥ ३१ ॥

श्रीनारदजी बोले कि, इसप्रकार राजा पुरंजन अधीरवत् उस नारीके सन्मुख याचना कररहेथे, तब वह नारीभी राजाकी छवि देखकर मोहित होगई ॥ ३२ ॥ और अत्यन्त आदर सत्कार करके राजाका वचन मान हँसकर बोली, हे पुरुषसिंह! मैं उसका नाम नहीं जानती कि, किसने मुझे उत्पन्न किया है और यह भी विदित नहीं कि, मेरा क्यानाम रक्खा है और क्या गोत्र है ॥ ३३ ॥ हे वीर! मैं यह भी नहीं जानती कि, कबसे मेरी आत्मा है मुझको तो केवल इतनी सुधि है कि, अभी मैं इस उपवनमें आई हूँ, इससे अधिक और कोई बात मुझको ज्ञात नहीं, मैं इतनाभी तो नहीं कहसकती कि, यह नगरी किसने वसाई और कौन इसका बनानेवाला है ॥ ३४ ॥ हे मानदेनेवाले! यह जो ग्यारह पुरुषहैं सो मेरे मित्र हैं. यह नारी जो हैं यह मेरी सखी हैं और जब मैं सो जातीहूँ तो यह नाग जागता रहताहै और इस नगरकी रक्षा करताहै ॥ ३५ ॥ हे शत्रुनाशक! आपने यह बहुत अच्छा किया जो यहाँ शुभागमन किया मुझको परमानंद हुआ आपका कल्याण होय जो आपको सांसारिक विषयवासनाओंके भोगनेकी चाहना है तो मैं अपने बंधुओंसमेत और इनके साथ जो यह स्त्री हैं, इन सबको साथ लेकर आपकी सेवा करूंगी ॥ ३६ ॥

हे विभो ! यह जो नवद्वारकी नगरी है इसको आप अपनी समझकर इसमें विराजमान हो, सौवर्षतक मेरे संग सुखसे आनंद भोग करो ॥ ३७ ॥ आपसे अधिक रसिक शिरोमणि और दूसरा पुरुष कौन है, जिससे मैं रमणकरूं, जो कि न तो रतिके आनंदको जानताहै, न वह पण्डितहै, न किसी औरही विद्यामें विचक्षण है, सब विषयवासनाओंको त्याग चितवन कर बैठगयाहै, न परलोककी चिंता है, न इस लोककी चिंता है, सो पशु-प्राय है ॥ ३८ ॥ इस गृहस्थाश्रममें धर्म, अर्थ, काम, पुत्र, सुख, मोक्ष, अमृतसम सुयश; शोक और रजोगुण जिसमें लेशमात्रभी नहीं ऐसे निर्मल लोक बहुत मिलते हैं. परंतु संन्यासी लोग इनको कुछ नहीं समझते ॥ ३९ ॥ सब लोग इस गृहस्थाश्रमहीको पितृ, देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु, पक्षी, सब जीवमात्रके आत्माका परमसुख देनेवाला कहते हैं ॥ ४० ॥ वीरोंमें विख्यात, उदार, रूपवान्, प्रियदर्शनदायक आपसरीखे पतिको पाकर मेरे समान कौन ऐसी स्त्री है जो आपसे वरको न वरे ॥ ४१ ॥ हे महाबाहो ! भुजंगदेहसमान लम्बी भुजावाले आपसे पुरुषमें किसका मन आसक्त न होगा. जो आप अनाथ समूहोंके सब दुःखको दयायुक्त मंदहास्यके अवलोकनसेही पीडा दूर करनेके लिये विचरते फिरतेहो ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार वह स्त्री-पुरुष दोनों उस स्थानपर परस्पर रीति प्रीतिकी बातें कर पुरंजनीका हाथ पकड, राजा पुरंजन उस पुरीमें प्रवेश कर सौ वर्षकी अवधि बांधकर आनंदभोग करनेलगे ॥ ४३ ॥ जहाँ तहाँ उस राजा पुरंजनकी उत्तमकीर्ति गायक लोग ललित रागोंमें गारहेथे और स्त्रीसहित पवित्र पुष्कारिणीमें स्नान कर करके जलक्रीडा कररहेथे ॥ ४४ ॥ उसी पुरीमें जो सात द्वार हैं वह पृथक् पृथक् देशोंके जानेके मार्ग हैं, सात द्वार तो ऊपरके हैं, और दो द्वार नीचे हैं, मुख, नासिका २ नेत्र २ कान २ यह सात ऊपरके द्वार हैं और गुदा, लिंग यह दो नीचेके द्वार हैं, यह नवों छिद्र पृथक् पृथक् विषयोंके भोगके लिये बने हैं, इसमें जो सत्यस्वरूप आत्माराम है उसको कोई नहीं जानता ॥ ४५ ॥ उस पुरीमें पांच (५) द्वार तो पूर्वकी ओर हैं एक दक्षिणकी ओर है, एक उत्तरकी ओर और दो पश्चिमकी ओर हैं. हे महीश्वर ! अब इन दशोंके नाम पृथक् पृथक् मैं तुमसे कहताहूँ ॥ ४६ ॥ पूर्वकी ओर खद्योता और अविर्मुखी दो द्वार नेत्र हैं। पटवीजनेकी नाई थोडा प्रकाश करताहै सो वामनेत्र है और अधिक प्रकाश करता है सो दक्षिण नेत्र है। यह दोनों एक सूथपर बनाये गये हैं, इन दोनों द्वारोंमें राजा पुरंजन विभ्राजित नाम देशमें (रूप) द्युमान् नाम (चक्षुइन्द्रिय) मित्रके साथ जाताहै ॥ ४७ ॥ नलिनी और नालिनी नाम (नाक) दो द्वार पूर्वकी ओर हैं। यहभी एकही सूथमें हैं, वाम दक्षिण दोनों नाकके छिद्र हैं, इन द्वारोंसे राजा पुरंजन अवधूत (प्राण) नाम सखाके संग सौरभ नाम (गंध) देशमें जाता है ॥ ॥ ४८ ॥ उसी दिशामें मुख्या (मुख) नाम पांचवाँ द्वार है इस द्वारसे पुरंजन राजा (बोलना) अनेक प्रकारके अन्नका स्वाद लेना, रसज्ञाता, व्यवहारकारी, अन्न नाम देशमें रसज्ञ नाम (रसना) प्रीतमके साथ जाता है ॥ ४९ ॥ इस पुरीमें पितृहू (दक्षिणकर्ण)

दक्षिणकी ओरके पितरोंका बुलानेवाला और देवहू (वामकर्ण) वाम ओरका कर्ण देवताओंका बुलानेवाला है, इन द्वारोंसे राजा पुरंजन दक्षिण पांचालदेश (प्रवृत्तिमार्गवाला कर्मकाण्डविषयक शास्त्र) में श्रुतिधर नाम (श्रोत्रइन्द्रिय) अपने प्यारेके साथ जाता है॥५०॥ इस पुरीमें देवहू नाम (वामकर्ण) यह द्वार उत्तरकी ओर देवताओंका बुलानेवाला है. इस द्वारसे राजा पुरंजन श्रवणसे उत्तर पांचाल नाम (निवृत्तिशास्त्र) देशमें श्रुतिधर नाम (श्रोत्रइन्द्रिय) सखाके साथ जाताहै ॥ ५१ ॥ इस पुरीमें आसुरी नाम (शिश्न) पश्चिमकी ओरका द्वार है, इस द्वारसे राजा पुरंजन दुर्मद नाम (उपस्थइन्द्रिय) मित्रके साथ ग्राम (मैथुनसुख)नाम देशमें जाताहै ॥ ५२ ॥ निर्ऋति नाम (गुदा) पश्चिमकी ओरका द्वार है इस द्वारसे राजा पुरंजन लुब्धक नाम (पायुइन्द्रिय) मित्रके संग वैशस नाम(मल त्याग) देशमें जाताहै ॥ ५३ ॥ इस मनोहर पुरमें नव द्वारोंके व्यतिरिक्त निर्वाक (चर) और पेशस्कृत (हाथ) नाम दो द्वार औरभी हैं, इनपर दो अंधे द्वारपाल सदा बैठे रहते हैं परंतु यह कभी खुलते नहीं, सदा बंदही रहतेहैं, इनमेंसे निर्वाक नाम द्वारसे इन्द्रियोंका राजा पुरंजन चलाताहै, दूसरे द्वारवाला अंधा उससे कार्य कराता है ॥ ५४ ॥ यह राजा विषूचीन (मन) नाम द्रष्टाको साथ लेकर अपने अंतःपुर (हृदय) में जाता है, तब अपनी भार्या (बुद्धि) और पुत्रों (इन्द्रियोंके परिणाम) की संगतिमें मोह (तमोगुणका कार्य) प्रसाद (सत्त्वगुणकार्य) और अत्यन्त हर्ष (रजोगुण कार्य) को प्राप्त होताहै ॥ ॥ ५५ ॥ इसप्रकार कर्मोंके वशीभूत हो कामकी आतुरतासे मोहके जालमें फँस, ठगा-हुआ यह मूर्ख राजा पुरंजन (जीव) अपनी पत्नी (बुद्धि) के आज्ञानुसार कार्य करनेवाला ॥ ५६ ॥ जिससमय वह बाला पुरंजनी मदिरा पीती है तो यह आप मदिरा पीताहै उसके मदमें ऐसा विह्वल होगया कि, जो कुछ वह करती सोही यह करता, जब वह भोजन करती और जल पीती तो उसी समय आप भी भोजन करता और जल पीता ॥ ५७ ॥ जब पुरंजनी गाती तो यहभी गाता, जब वह रोती तो आपभी रोनेलगता, जब वह हँसे तो आपभी हँसनेलगे, जब वह बोलती तो आपभी बोलता ॥ ५८ ॥ जब वह पुरंजनी भागती तो आपभी भागता, वह बैठ जाती तो आपभी बैठजाता, जब वह सोती तो आपभी सोजाता, जब वह उठ बैठती तो आपभी उठ बैठता ॥ ५९ ॥ जो पुरंजनी किसीकी बात सुनती तो यह भी सुनता और पुरंजनी किसीकी ओर देखती तो यहभी देखता, वह कुछ अपनी नासिकासे सूँघती तो यहभी सूँघता, जो वह किसीको छूती तो यहभी उसको स्पर्श करता ॥ ६० ॥ जो उस पुरंजनीको शोकाकुल देखे तो आपभी शोकके समुद्रमें डूबजाय, जो उसको हर्षित देखे तो आपभी हर्षित होजाय, जब वह प्रफुल्लित होती तो आपभी प्रफुल्लित होता॥ ६१॥ जिससे सब प्रकारसे उसकी स्त्रीने उसको ठगकर ऐसा वशमें करलिया, इसलिये उसकी बिना इच्छा वह कोई कार्य नहीं करसक्ताथा.

दोहा-ऐसे नारीके विवश, भयो पुरंजनराज ।
यंत्रीवश जिमि दारुमृग, नाचत तज सब लाज ॥ ६२ ॥

कवित्त-धनीको न जानो धनहीं सों मन मानो विषै-सुख मैं भुलानो शठ तीनों पनहारहै। नारीकी तो आज्ञा मानी इन्द्रिनसों प्रीति ठानी गई जो जवानी त्रिया करत न प्यार है ॥ पुत्रनसों हित धारो नेकहू न कर न्यारो, यत्नन सों पारो सोई अंतमुख जारहै ॥ सुनो मन अंध अब भजो क्यों न दीनबंधु, होयगो उद्धार जभी गोविंद संभार है ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पुरंजनपुरंजनीरमणचरित्रवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा-छब्बिसमें आखेट अरु, जाग्रतस्वप्नवृतांत।
रहो नारिके नेहमें, कियो नाहिं चित शांत ॥

श्रीनारदजी बोले कि, वह महाधनुषधारी पुरंजन राजा (जीव) एकसमय सुवर्णका कवच (रजोगुण) पहन कंचनमय रथ (स्वप्न अवस्थासंबंधी देह) में बैठकर अक्षय तूणीर (अनंत वासनाओंसे भराहुवा अहंकार) पंचप्रस्त नाम (पांचविषय) वनमें मृगया खेलनेके लिये गया. वह रथ अत्यंत वेगगामी और शीघ्र चलनेवाला था; (स्वप्न-अवस्थाका देह जाग्रदावस्थाकी देहके समान नहीं रहाता; इसलिये वेगगामी कहा) अत्यंत तीव्र वेगवाले उसमें पांच अश्व जुते हैं (पंचज्ञानेन्द्रिय) उसमें दो दंडी हैं (अहंता और ममता) दो उसमें चक्र हैं (पुण्य और पाप) एक उसमें जुवा है (माया अर्थात् अज्ञान) जिसमें तीन वेणुकी ध्वजा है (त्रिगुण सत्व, रज, तम) पांच जिसमें बंधन हैं (पंचप्राण) ऐसे शोभायमान रथमें बैठकर राजा पुरंजन वनमें विहारके लिये गया ॥ ॥ १ ॥ जिसमें एक बागडोर है (मन) एक सारथी है (बुद्धि) एकही रथवान्के बैठने का स्थान है (अंतःकरण) और दो धुरे हैं (शोक और मोह) पाँच उसकी विक्रम गति हैं (पंच कर्मेन्द्रिय) सात उसमें वरूथ हैं (सात धातु) पांच प्रकारकी इस रथकी सामग्री है (पांचविषय) प्रक्षेप करनेवाली है ॥ २ ॥ उस पुरंजन राजाने सुवर्णके आभूषण पहन, कंचनका कवच (रजोगुण) अक्षय बाणरूप तरकस (अनंत वासनाओंसे) भराहुवा (अहंकारउपाधि) एक बडा भारी धनुष (कर्ता और भोक्ता मैं ही हूँ ऐसा अभिनिवेश) धारण किये, दश अक्षौहिणी (दश इन्द्रिय) और एक उनका सेनापति (मन) को पुरंजन राजा (जीव) अपने संग लेकर पंचप्रस्थ नाम (पांच विषय) वनको चला ॥ ३ ॥ वह महाअहंकारी राजा पुरंजन धनुष (विषयभोगमें अभिनिवेश) बाण (रागद्वेषादिक) हाथमें उठा अपनी परमप्रिया रानी (बुद्धि) जो त्यागनेके योग्य नहींथी उस विवेकवती बुद्धिको त्यागकर (मृगरूपविषयों) को मारने (भोगने) की इच्छासे निर्जन वनमें जाकर मृगया खेलने लगा. (विषय भोगने लगा) ॥ ४ ॥ वह महा निर्दयी क्रूरचित्त राजा पुरंजन असुरबुद्धि तीक्ष्णशरोंसे वनमें जाकर वनके जीवोंको मारनेलगा ॥ ५ ॥ आखेटके लिये शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है, तीर्थ श्राद्धादिक जब आवे तो राजा पवित्र पशुओंको वनमें

जाकर लुब्धककी नाईं मारलावे परंतु उन्हीं पशुओंको मारना कि, जिनका मांस धर्मशास्त्रमें पवित्र लिखा है, उनकोभी वनहीमें मारना, घरपर उनके मारनेकाभी निषेध है, इसी प्रकार की शास्त्रमें औरभी अनेक विधि हैं. यह कभी न समझना कि, शास्त्रमें इनके मारनेहीकी विधि है, देखो ! जब बालकका चित्त अत्यन्त खेलमें लवलीन हो, तब वह एकाकी किसी प्रकार नहीं रुकसक्ता, उसको शनैः शनैः रोकोगे तो रुकजायगा और कोई विघ्न नहीं होगा, कोई समय उसके खेलनेका नियत करदियाजाय कि, तू पाँच श्लोक कंठाग्र करके फिर अपनी खेल खेलो, परंतु उसमेंभी इतना ध्यान रक्खो कि, कुलीन और सुबोध लड-कोंके साथ खेलना, उसमेंभी इतना और विचार लेना कि, धूप न हो ठण्डका समय देख-लेना, परंतु रातभी न हो जब उसके सब समय छुटादिये केवल एक संध्याका समय शेष रहगया, फिर उसका यज्ञोपवीत करके संध्या पढादी और कहा कि, हे पुत्र ! बिना संध्या तर्पण किये गति-मुक्ति नहीं होती. जब वह संध्या-तर्पण करनेलगा तो उस का संध्याका खेलनाभी छूटगया, ऐसेही शास्त्रभी जो एकाएक लोगोंको रोकता तो लोग कभी नहीं मानते और अनेक विघ्न होते, इसलिये शास्त्रने विषयी लोगोंका मान रखनेकेलिये कुछ कुछ नियम लिखकर हिंसाका निषेध कियाहै कि, जिससे लोग आपसे आपही कुछ दिनों पीछे समझ बूझकर हिंसासे निवृत्त होजांय ॥ ६ ॥ जिसप्रकार शास्त्रमें हिंसामें नियम नियत किये हैं इसी रीतिसे और कर्मोंमेंभी नियम नियत कियेहैं, जो विद्वान् पुरुष इसप्रकार निश्चय करके कर्मोंको करते हैं उन मनुष्योंको अवश्य ज्ञान प्राप्त होता है, और ज्ञानसे वह पुरुष किसीप्रकारके कर्ममें लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ और जो इन नियमोंके विरुद्ध कर्म करे तो उसका हृदय शुद्ध नहीं होता, और हृदयकी शुद्धि विना ज्ञान कहां, तो फिर अज्ञानी बन मदमत्सरताके वशीभूत हो ऐसे कहने लगता हैं कि "मैं कर्ता हूं" इस प्रकार अभिमानमें आरूढ होकर बुद्धिका विनाश करलेता है. जब बुद्धि न रही तो बुद्धिहीनवत् संसारसागर की लहरोंमें पडकर महानीचसे नीच योनिमें जन्म लेताहै ॥ ८ ॥ राजा पुरंजनके उस वनमें चित्र विचित्र पक्षवाले शरासे अनेक जीवोंके अंगभंग हुए और वे दुःख पानेलगे. उन दुःखी जीवोंका नाश हुआ यह बात दयालु पुरुषोंसे नहीं सहीगई ॥ ॥ ९ ॥ शशा, सूकर, अरण्यमहिष, लीलगाय, रुरु, शेहे, पवित्र, अपवित्र, अनेक प्रकारके पशुओंको मारता संहारता राजा पुरंजन अत्यन्त श्रमित होगया ॥ १० ॥ स्वप्राव स्थाका वर्णन तो तुमको सुनाया. अब जाग्रत् अवस्थाका वर्णन करतेहैं, तब भूख–प्याससे अत्यन्त पीडित हो, थकाथकाया लौटकर पुरंजन अपने घरपर आया, श्रम दूरकर स्नानसे निवृत्त हो भोजन करके शय्या पर शयन किया. निद्राके आनेसे शरीरकी सब थकावट दूर हुई ॥ ११ ॥ आँख खुलगई तो सुगंध, चंदन, पुष्प, हारादिकसे शरीरको सुगंधित और सुशोभित कर, सब अंगोंमें सुन्दर सुन्दर आभूषण पहन, स्त्रीके समीप जानेकी इच्छा की ॥ १२ ॥ तृप्तचित्त, प्रसन्नवदन, अभिमानमें भराहुआ, कामाविवश चित्त होकर, रनवासमें गया,वहां श्रेष्ठ बुद्धिवाली,शय्यायोग्य गृहस्थिनी,अपनी सुमुखी भार्याको नहीं देखा॥१३॥

तो उस समय अत्यन्त उदास होकर, उस वरारोहा अपनी प्रियाकी सखियोंसे बूझनेलगा कि, हे स्त्रियो ! तुम्हारी कुशल तो है ? जैसे तुम अपनी स्वामिनी समेत पहले आनंदचित्त विचरती फिरा करतीथीं, ऐसे आज क्यों नहीं विचरती ? इसका क्या कारण है ?

दोहा-जिन बिन यह गृह नहिं लसत, वृथा विभूति लखात।
सो प्यारी कितको गई, सूनो भवन दिखात ॥ १४ ॥

जिस घरमें घरकी शोभा शुभानना स्त्री, वा सर्व सुख देनेवाली माता नहीं होती, अथवा पतिविना स्त्रीही होय तो उस घरकी सम्पदा शोभाको प्राप्त नहीं होती, ऐसे घरमें कौन विद्वान् पुरुष वास करसकता है ॥ १५ ॥ कौन चतुर विना पहियोंके रथमें आरूढ होगा ? कहां है वह मेरी प्राणप्यारी ? जो क्षण क्षणमें उत्तम परामर्श दे और प्यार कर करके मेरे मनको मोहित करतीथी ॥ १६ ॥ वह ललना कहां है ? जो इस व्यसनरूप सागरमें डूबतेहुए उबारती थी और पदपदपर मेरी बुद्धिको सावधान करती रहतीथी, वह कहां चली गई ? ॥१७॥ स्त्रियां बोलीं कि, हे नरनाथ ! हे शत्रुनाशक ! हम नहीं जानतीं कि, स्वामिनीकी क्या इच्छा है, परंतु विना बिछौना बिछाये पृथ्वीमें पडी सोरही है चलकर देखलो ॥ १८ ॥ नारदजी बोले कि, पुरंजन अपनी स्त्रीको पृथ्वीमें पडी देखकर जिसके संगसे इसका सब ज्ञान नष्ट होगया था, अत्यन्त दुःखित हुआ ॥ १९ ॥ राजा पुरंजन मनमें अत्यंत उदास हो मधुरवचनोंसे सांत्वना कर दुःखी चित्तसे अपनी प्यारीके प्रेमको बढानेलगा और जो क्रोधदृष्टि थी, उसको अपने आत्मामें मान लिया, परंतु उसके देखनेमें ऐसा चिह्न और लक्षण कोईभी नहीं जानपडा कि, जानबूझकर यह किस कारणसे कोप कियाहै ॥ २० ॥ फिर प्यारीको प्रसन्न करनेके लिये वह वीर राजा पुरंजन धीरे धीरे उसके समीप गया और उसके चरणारविन्दको छू अपनी गोदीमें बैठायकर इसप्रकार अपनी प्यारीकी प्रार्थना करनेलगा ॥ २१ ॥ पुरंजन बोला कि, हे चन्द्रानने ! निश्चय है कि, तुम्हारे कियेहुए पुण्यरूप ईश्वरसे मेरे समान भृत्य प्रसन्न रहते हैं, और स्वामी उनको अपना समझकर अपराधपर शिक्षा और दंड दे और जो स्वामी दासको दंड नहीं देते तो दासोंको भाग्यहीन जानना चाहिये ॥२२॥ अपने भृत्योंको जो स्वामी दंड देवे तो भृत्योंका अपना अहोभाग्य समझना चाहिये, हे कृशोदरि ! वृद्धोंके दंड देनेका जो बालक दुःख मानते हैं और क्रोध करते हैं वह अत्यन्त मंदभागी हैं क्योंकि, वह बालक अपने वृद्ध पुरुषको नहीं जानते कि, यह हमारे हितकारक हैं ॥ २३ ॥ हे सुदति ! हे सुभ्रु ! ! हे मनस्विनि ! ! ! तेरा मनोहर मुखारविन्द चंद्रवत्, अनुरागभारसे भूषित, लाजसे शोभित, मधुर हास्य युक्त, तिरछी चितवनके अवलोकनके कारणसे अत्यन्त शोभायमान जानपडताहै, जिसमें श्याम वर्ण सर्पिणीसी कपोलोंपर पडी, अमृतके कणोंको चाट रही, सुभग नासिका और मनोहर भाषणवाले मुखपरसे घूँघटपट उठाकर क्यों नहीं अपना चंद्रवदन अपने प्रेमियोंको दिखाती हो ॥ २४ ॥ हे वीरबाला ! ब्रह्मवंश और भगवद्भक्तके व्यति

रिक्त और किसी दूसरेने तेरा अपराध किया हो तो बता, उसे मैं दंड दिये विना कभी न रहूंगा यह तू निश्चय समझलेना, क्योंकि, त्रिभुवनमें अथवा चौदह भुवनमें निरंतर मेरा भय न मानकर प्रसन्न रहनेवाला कोईभी वीर पुरुष मुझको नहीं दिखाई देता ॥ २५ ॥ आजतक तेरा मुखारविन्द विनातिलक, मलीन, हर्षरहित, कोपसे भयानक, प्रेमशून्य, मेरे देखनेमें नहीं आयाथा और यह तेरे मनोहर कुचभी शोकसे चले नेत्रोंके जलके भीगे नहीं देखे और बिंबफलसे लालरंगवाले सुधारस भरे कोमल अधर तांबूलके न खानेसे कुंकुमकेसी कांति जिनमें नहीं दीखती ऐसे अधर कभी मेरे देखनेमें नहीं आये ॥ २६ ॥ इतना अपराध तो मुझसे अवश्य हुआहै कि, तुझसे विना बूझे व्यसनमें आतुर होकर आखेटको चलागया वह अपराध क्षमा कर, कामदेवके बाणोंके वेगसे सब ऐश्वर्यको त्याग धैर्यरहित हो, जिस पत्नीका पति बारंवार उसके चरणोंमें पडे, तो अपनें वशीभूत अपने पतिकी अभिलाष न पूर्ण करनेवाली ऐसी कौन स्त्री है जो अपने पतिको कंठसे न लगावेगी ? जो कुलीन स्त्री हैं वह सदा अपने पतिकी सेवामें तनमनसे उपस्थित रहतीं हैं, उनकी महिमामें एक कवित्तहै—

कवित्त—स्वर्गरूप नारीही है नारीही जीवनप्राण, नारीही जगतमूल सुरयों कहतहैं। नारी तरण तारण निवारण कोटिकष्ट, ब्रह्माशिवविष्णु शोभा नारीसों लहतेहैं ॥ वृंदासी नारीको धारी शीश शालिग्राम गुणी, औरहूं अनारी सब नारीको चहते हैं । नारीही सारी संसारीमें जीवन मूल अंत—समय सबके प्राण नारीमें रहते हैं ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम—शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पुरंजनस्वापराधक्षमापनवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६

दोहा—सत्ताइस अध्यायमें, पुत्रादिककी प्रीत।
भई पुरंजन राजके, कन्याकाल प्रतीत ॥

श्रीनारदजी बोले कि, महाराज ! इसप्रकार पुरंजनको पुरंजनीने अपने मधुर वाक्य और सुन्दर कटाक्षोंसे मोहित करके वशमें किया और उससे विहार करानेलगी और आप भी विहार करनेलगी ॥ १ ॥ हे राजन् ! उस राजा पुरंजनने सुन्दर स्नान करी हुई चंद्रमुखवाली सुन्दर शृंगार करी हुई स्वस्त्ययन जिसका किया हुआ और तृप्त अपने समीप आती हुई अपनी राजमहिषीका बहुत आदर सन्मान किया ॥ २ ॥ दोनों अत्यन्त लिपट लिपट कर मिले, फिर हृदयसे लगाय एकान्तमें गुप्त भाषणसे उस कामिनीका मन अपने वश कर, ज्ञान, ध्यानको तज, उस मनमोहिंनी बालाकोही सर्व साधनरूप समझने लगा और ऐसा आसक्त हुआ कि, दिनरात दुरत्यय कालके प्रचण्ड वेगकोभी भूलगया और उसीके संग रहनेलगा ॥ ३ ॥ सुंदर सुहावनीको रसीली शय्यापर अपनी मनरंजनी पुरंजनीकी भुजाका तकिया लगाये. वह महांध महामनस्वी शयन करता रहा और उसीको सर्वो

त्तम अत्यन्त श्रेष्ठ मान अपने सत्यस्वरूपको भूल गया और अपने परायेकाभी कुछ ध्यान न रक्खा॥४॥हे राजन् ! इसप्रकार जब अत्यन्त कामासक्त हो रमण करनेसे ऐसा बेसुध हुआ कि, उसकी युवावस्था क्षणार्धकी नाईं व्यतीत होगई ॥५॥ तब राजा पुरंजनने अपनी भार्या पुरंजनीमें ग्यारह सौ (११००) पुत्र उत्पन्न किये, (ग्यारह इन्द्रियोंके परिणाम) इतनेमें सम्राट्‌की आधी आयु व्यतीत होगयी ॥ ६ ॥ हे प्रजापते ! उसके एक सौ दश (११०) पुत्रीं उत्पन्न हुईं (बुद्धिकी वृत्तियें) माता पिताका यश और कीर्ति बढानेवाली और सब शीलवान् गुणनिधान उदारतासे युक्त थीं ॥ ७ ॥ अव पौरंजन वंश चला, सो पांचालदेशके (शब्द-स्पर्श आदि विषय) अधीश्वर उस राजा पुरंजनने अपने अपने वंशकी वृद्धि करनेवाले पुत्रोंका अच्छी कुलीन कन्या (हित, अहित, चिंता) के साथ विवाह किया. और कन्याओंकाभी उनके समान वर (योग, विषय, भोग) देखकर करदिया ॥ ८ ॥ राजा पुरंजनके पुत्रोंमेंसे एक एक पुत्रके सौ सौ (१०० । १००) पुत्र उत्पन्न हुए. (अनेक प्रकारके कर्म) जिनसे राजा पुरंजनका वंश पांचालदेशमें बहुत बढा ॥ ९ ॥ घरमें धन अधिक देख, पुत्र पौत्रोंकी प्रीतिके वश हो, मोहपाशमें फँसू विषयके बंधनमें बँध गया. जैसे मर्कट और कीर पिंजरेमें बन्द होजाते हैं ॥ १० ॥ उस राजा पुरंजननेभी तेरे समान पशुमारक अनेक प्रकारकी घोर पशुओंकी दीक्षा लेकर महा भयानक पशुवाले यज्ञोंसे देव, पितृ और भूतपतियोंका यजन किया ॥ ११ ॥ इस प्रकार उस अयोग्य प्रमत्त कर्महीन परिवारमें आसक्तचित्त राजा पुरंजनका वह समय आया (वृद्धावस्था) जो समय स्त्रियोंको अत्यन्त अप्रिय है ॥ १२ ॥ हे महीश्वर ! चंडवेग नाम (वर्ष) गंधर्व लोकका अधीश्वर है और तीन सौ साठ (३६०) महाभट योधा उसके समीप (दिन) रहते हैं ॥ १३ ॥ और उतनीही उनकी भार्या हैं (रात्रि), मैथुनयोग्य सित असित होजाती हैं (कृष्णपक्षकी और शुक्लपक्षकी) नित्यप्रति अपने पतियोंके साथही विचरती रहती हैं, और पुरुष-स्त्री दोनों मिलकर सदा पुरंजनकी शोभायमान पुरिको लूटते रहते हैं. (अवस्थाको) ॥ १४ ॥ जब चंडवेगके अनुचर पुरंजनकी नगरीको अधिक सताते हैं, तब इस पुरीका पुराधीश, रक्षा करनेवाला पंचवक्र साँप (पंचप्राण) उनको रोककर उनसे युद्ध करनेको उपस्थित होता है ॥ १५ ॥ सातसौबीस (७२०) महाबलवान् गंधर्व-गंधर्वनियोंसे पुरंजन नगरके नरेशने सौ वर्षतक युद्ध किया ॥ १६ ॥ अपने सब संबंधी जब क्षीयमाण होगये और आप अकेलेने जब बहुत पुरुषोंसे युद्ध किया तब वह सर्प बलहीन होगया और पुरंजन सब नगरनिवासियों समेत अपने कुटुंबियोंके निकट बैठकर चिंता करनेलगा ॥ १७ ॥ वह मधुभोगी अपने अनुचरों सहित पांचालदेशमें वास करता और जो कुछ उसके पार्षद भेज देते उसीको ग्रहण कर अपने मनको संतुष्ट करता और नारीके वशीभूत हुआ वह राजा पुरंजन देश छिन जाने (मृत्यु) के भयसेभी कुछ भयभीत न हुआ ॥ १८ ॥ हे राजन् ! उसीसमय कालकी पुत्री अपने वरके लिये, सब त्रिलोकीमें ढूँढती फिरी, परंतु उसको किसीने अंगी-

कार नहीं किया ॥ १९ ॥ तब उस दुर्भागिनीका दुर्भगा नाम जगत्में विख्यात हुआ, प्रथम इस दुर्भगाको राजा पुरुने वरा, तब उसने अत्यंत प्रसन्न होकर राजा पुरुको राज्य दिया ॥ २० ॥ एक समयमें ब्रह्मलोकसे मैं मृत्युलोकको आता था और यह कालकन्या चारों ओर पर्यटन करती फिरती थी, मार्गमें मुझे मिली और मुझको देखकर मोहित होगई और मुझसे बोली कि, हे स्वामिन्! मुझको वरलो वह अपने जीमें यहभी जानतीथी कि, यह पूर्ण ब्रह्मचारी हैं परंतु कामके वशीभूत हो फिर हठकर मेरे निकट आई और कहा हे स्वामिन्! मुझको वरनाहीं पडेगा ॥ २१ ॥ जब मैंने उसका कहना स्वीकार नहीं किया तब वह मेरे ऊपर बडी क्रोधित हुई. और मुझको यह दुःसह शाप दिया कि, हे मुने! तैंने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया, अब तू एक स्थानपर वास नहीं करसकेगा ॥ २२ ॥ जब उसकी अभिलाषा पूर्ण न हुई तब वह निराश होनेलगी. तब मैंने उससे कहा कि; तू यवनोंके राजा भयको वर ले, वह मेरी आज्ञा मान भयनरेश के निकट गई ॥ २३ ॥ हे वीर! आप यवननरेश हैं इसलिये मुझे अधिक प्रिय जान पडते हो, इसलिये मेरा मन आपके वरनेको चाहता है, जो स्त्री-पुरुष अपनी जिस कामनाके लिये आपके पास आता है, उसकी मनोकामना पूर्ण होती हैं ॥ २४ ॥ लोक अथवा शास्त्रकी रीतिके अनुसार जो पदार्थ देने योग्य है उस पदार्थकी कोई आकर याचना करे और वह पदार्थ उसको न मिले, अथवा जो पदार्थ लोक और शास्त्र रीतिके अनुसार लेने योग्य है, वह पदार्थ कोई उसको समर्पण करे और वह उसे स्वीकार न करे, वे दोनों जने मूर्ख और अज्ञानी हैं ॥ २५ ॥ हे मंगलरूप; अव आप मुझको अंगीकार करो, क्योंकि, मैं आपके ऊपर मतवाली हूँ आप मुझपर दया करो, दीनोंपर दया करनाही साहसी पुरुषोंका परम धर्म है.

दोहा-तातें मोपर करि कृपा, करहु मोहिं निजनारि।
यही पुरुषका धर्म है, परदुख देत निवारि ॥ २६ ॥

जब कालकन्याने इसप्रकार विनयपूर्वक वचन कहे, तब यवनेश्वर भय जो कि, बात देवताओंकी समझमेंभी आनी कठिन (मरण) है, वह मुसकाकर उससे बोला ॥ २७ ॥ मैंने अपने आत्मज्ञानसे तेरेलिये पति अनुसरण कर लियाहै, सो तू अमंगलरूप श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य नहीं है, यदि तू किसीके सन्मुख जाकर विनय करेगी, तौभी कोई तुझको अंगीकार नहीं करेगा ॥ २८ ॥ इसलिये तू मेरा कहना मान, कर्मसे विनिर्मित लोकको तू अगट गतिसे भोग, यह किसीको विदित न हो कि, कहांसे आई? और कैसी है? कोई तुझको न पहिंचाने, इसप्रकार सब संसार (सब शरीर) जो कि, कर्मोंसे बनेहुए हैं, उनको बलात्कार पकड कर भोग और मेरी सेना अपने संग लेजा, इस रीतिसे एक क्या सब संसारके पुरुष तेरे पति हो सक्ते हैं (सब प्रजा नाशको प्राप्त हो सक्ती है) ॥ २९ ॥ नारदजी बोले कि, हे बर्हिष्मन्! तू यहभी भय मत करना कि, संसारमें मुझको कोई हत्यारी समझकर मारडालेगा, तूही सबको अपने वशमें रक्खेगी और प्रजा

गंधर्व मेरा भ्राता है, और तू मेरी भगिनी बन जा, मैंभी अपनी भयानक सेनाको साथ लिये तुम दोनोंके पीछे पीछे सब संसारमें गुप्त होकर फिरता रहूँगा. परन्तु ऐसे महात्मापुरुषोंको नहीं सताऊंगा.

कवित्त-मानुषको जन्म पाय कीन्हों जिन साधुसंग, गुरुसों लह्यो जु भेव सोई बडभागी है। कुमति विदारयो औ सुमतिसों बढाई प्रीति, वोही है संयोगी जा सुरतशब्द पागी है॥ सोई है संन्यासी जो शून्य-शिखरवासी भयो, कर्मको विनाशी हरिपद अनुरागी है। होमनको त्यागी अनुरागी ईशदरशको, सोई है वैरागी जाकी रामसों लौलागीहै॥ २०॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे कालकन्योपाख्यानवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

दोहा-अट्ठाइस अध्यायमें, वैदर्भी आख्यान।
पुरञ्जनीको जन्म पुनि, मोक्ष परमबलवान॥

श्रीनारदजी बोले कि, हे बर्हिष्मन्! भय नामक यवनेशकी सेनाके जो बलवान योधा (रोग) थे वे प्रज्वार और कालकन्याके संग संसारमें घूमने लगे॥ १॥ हे नरेश! उन्होंने एक दिन वेगसे भूमिके भोगयुक्त जीर्ण प्राणरूप सर्पसे रहित उस पुरञ्जनकी पुरी को आनकर झटपट घेर लिया॥ २॥ कालकन्या पुरञ्जनकी पुरीको बलात्कार भोगने लगी, जिससे तिरस्कृत पुरुष शीघ्र निस्सारताको प्राप्त होते हैं॥ ३॥ सब नगरीके चारों ओरके द्वारोंमें होकर यवनराजके सैनिक, नगरीमें घुस भाँति भाँति पीडा देकर उसे लूटने लगे॥ ४॥ जब इसप्रकार अपनी पुरीमें पुरञ्जनने पीडा देखी तब अभिमानी पुर-ञ्जन, कुटुम्बकी ममतासे व्याकुल हो, अनेक प्रकारके तापोंसे पीडित होने लगा॥ ५॥ उस कालकन्याने जिससे मिलाप किया वह श्रीहीन, कृपण, विषयमें आत्मा बुद्धि नष्ट होगई. और गन्धर्वोंने बलसे सब ऐश्वर्य नष्ट करदिया॥ ६॥ जब पुरञ्जनकी पुरीका सब विभव लूटकर विध्वंस करदिया, तब पुत्र, पौत्र, भृत्य (इन्द्रियें और कार्य कता इंद्रियोंके देवता) को प्रतिकूल चलता देखा, (मनवांछित विषय न देने और अवांछित विषय देनेसे) निरादर करने लगे. (अपने वशमें न रहे) और प्यारी पत्नीनेभी सुहृदता त्याग दी. (बुद्धिभी ठिकाने न रही) स्त्रीभी अपनी नहीं रही॥ ७॥ अपने देहको जरा कन्यासे ग्रसित देख और पांचाल देशको (विषय) शत्रुओंसे (विघ्न) दुःखित देखकर राजा पुरञ्जन मनमें अत्यन्त चिन्ता करने लगा, उसके दूर होनेका कोई यत्न न बनसका॥ ८॥ जब सब विषय कालकन्याके भोगनेसे निःसार होगयेथे और कुटुम्बियोंने भी स्नेह त्याग दियाथा, तोभी वह दीन पुरञ्जन उनकी वांछाही करतारहा, परलोक सम्बन्धी कल्या-णोंसे अथवा इस लोकसम्बन्धी परिवारादिकोंकी प्रीतिके छूटनेपरभी पुत्रदाराका लालन-पालन चित्तमें बनाही रहा॥ ९॥ जब गन्धर्व यवनोंने उस पुरीमें भारी उपद्रव मचाया

और कालकन्याने पुरवासियोंका मर्दन किया और पुरञ्जनको नगरसे बाहर निकालना चाहा परन्तु उस समय पुरञ्जनकी इच्छा निकलनेकी नहीं थी ॥ १० ॥ निदान बेवशीको निकलनाही पडा. उससमय भय (मृत्यु) का बडा भ्राता प्रज्वार (कालज्वर) आनकर उपस्थित हुआ और अपने भाईके हितकरनेके लिये उसने उस नगरीको भस्म करदिया ॥ ॥ ११ ॥ जब सब परिवारसमेत वह पुरी जलकर भस्म होगई तब उस कुटुम्बिनीके साथ वंशसहित अत्यन्त संताप करने लगे ॥ १२ ॥ यवनोंने सब स्थान जब घेरलिये और कालकन्याने पुरीको ग्रसा और प्रज्वारने पुरीको धरकर आग लगादी तब वह पुरपालक (सर्प) भी परिताप करनेलगा ॥ १३ ॥ अत्यन्त दुःखसे थरथर कांपनेलगा और जब नगरीकी रक्षा उससे न होसकी तब उस जलतीहुई आगमेंसे निकलकर भागनेकी इच्छा की, जैसे जलतेहुए वृक्षकी खखोडलमेंसे सांप निकलकर भागता है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जब सब अवयव उसके ढीले होगये और सब पुरुषार्थ गन्धर्वोंने हर शत्रु यवनोंने पुरीको चारों ओरसे घेरा तब वह पुरञ्जन नेत्रोंसे आँसू बहानेलगा ॥ १५ ॥ दुहिता, पुत्र, पौत्र, वधू, जामात, अनुचर, गृह, कोश सब परिवार जिसमें केवल एक स्वत्व मात्र शेष रह-गया कि, यह मेरे हैं यह स्वत्वभाव हुआ ॥ १६ ॥ और उसको मोह-ममतासे अपना समझकर घरोंके भीतर कुबुद्धिसे बँधाहुआ, उस दीन पुरञ्जनका जब भार्यासे वियोगका समय उपस्थित हुआ तब पुरञ्जन मनमें विचारने लगा ॥ १७ ॥ कि, जब मैं इस लोक को त्यागकर परलोकको चलाजाऊँगा तो यह अनाथा कुटुम्बिनी मेरी पत्नी अपने छोटे २ बालकोंका किसप्रकार पालन पोषण करेगी ? ॥ १८ ॥ यह ऐसी शीलवान् और पतिव्रता थी कि, इसने आजतक विना मेरे भोजन कराये कभी भोजन नहीं किया, पहिले मुझको स्नान करादिया, जब पीछे आप स्नान किया, और जब कभी मैंने क्रोध किया, तो थर थर कांपने लगी, और सदा मेरे स्नेहमें परायण रहती थी, जो मैं ललकारता तो नीचेको दृष्टि कर चुप साधलेती ॥ १९ ॥ जब मेरा क्रोध शांत होता, तो यह सुबोधा मुझको बोध करती, जब मैं कभी परदेशको जाता तो यह शोककी मारी आधीभी नहीं रहतीथी, यह पुत्र-पौत्रवतीभी है और गृहस्थीके सब व्यवहारकोभी जानती है, परंतु तौभी मुझे विना मृतकके समान होजायगी ॥ २० ॥ हाय ! यह पराये घरकी धन पुत्री और यह अनाथ छोटे छोटे पुत्र मुझ विना कैसे अपने दिन व्यतीत करेंगे ? मैं भलीभाँति जानता हूँ कि, इनकी वह कुगति होगी कि,जो दुर्दशा समुद्रमें नाव टूटजानेपर बैठनेवालोंकी होतीहै ॥ ॥ २१ ॥ यह अपनी कृपणबुद्धिसे इसप्रकारके सोच करनेलगा परंतु यह ऐसे कठिन शोक करनेके योग्य नहीं (परमात्माका अंश) था उसी समय उसके पकडनेके किये भय-नामक यवनोंका राजा आकर उपस्थित हुआ ॥ २२ ॥ और पशुकी नाईं इस राजा पुर-ञ्जनको जब यवनलोग बांधकर अपने घरकी ओरको लेचले तब उसके अनुयायी अत्यन्त व्याकुल हो, शोकमें डूबेहुए हाहाकार करते उसके पीछे भागे ॥ २३ ॥ उस-समय नागसेभी कुछ उपाय न बनपडा तब वहभी नगरीको छोडकर चलदिया, उनके

जातेही सब पुरी विशीर्ण होकर अपने अपने ठिकानेको चलीगई ॥ २४ ॥ और जब बलवान् यवनोंने पुरंजनको बलात्कारसे पकडलिया और घसीटनेलगे तोभी उस अज्ञानीको अपना पूर्व सुहृदका स्मरण नहीं हुआ ॥ २५ ॥ उस दयालुने यज्ञादिक सकाम कर्मोंमें निर्दई बनकर जिन जिन पशुओंको माराथा; वह सब पशु उसके अपराधको स्मरण कर, महाक्रोधित हो कुल्हाडोंसे उसका शरीर छेदन करनेलगे ॥ २६ ॥ और अपारतमसे स्मृति जिसकी विस्मृति होगई और प्रमदाके प्रसंगसे दूषित होगया ऐसे उस राजा पुरञ्जन ने अनेक वर्षतक पीडाको भोगा ॥ २७ ॥ परंतु मनमें उसी पुरञ्जनीका ध्यान बनारहा, उसी ध्यानसे वह उत्तम स्त्री विदर्भराजसिंहके घरमें जाकर उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ इस प्रसंगसे यह जानलेना कि, स्त्रीके ध्यानमें स्त्रीही होता है, धार्मिक विशुद्ध मलयध्वज नामक भागवतके संग हुआ उस सत्संगके कारण विष्णुभक्ति और वैराग्यके हेतु उसी पतिरूप गुरुकी पतिव्रताके धर्मसे सेवा करते करते भगवत्की कृपासे ज्ञान प्राप्त होनेके कारण स्त्रीजन्म लेनेवाले पुरञ्जनकी मुक्ति हुई. इस विदर्भराजाकी पुत्री (पूर्वजन्ममें जो राजा पुरञ्जन था वह) का स्वयंवर हुआ, उस स्वयंवरमें ऐसा नियम नियत किया गया था कि, जिस नरेशका विक्रम अधिक हो उसको यह कन्या दीजाय (पंडा अर्थात् बुद्धि पांड्य बुद्धिवान्) जो कि शत्रुओंका जीतने वाला, और दक्षिणदेशमें (दक्षिणदेशमें भक्ति अधिक है, इससे ज्ञात होताहै कि, वह परमवैष्णव था) श्रेष्ठ और पराक्रमी गिनाजाताथा, उस राजाने संग्राममें दूसरे शत्रुओंको पराजय कर विदर्भराजाकी पुत्रीका पाणिग्रहण किया (पुरंजनको भगवद्भक्तका सत्संग हुआ)॥ २९ ॥ उस मलयध्वजने उस स्त्रीमें एक मनोहर कन्या श्रीकृष्णअनुरागिणी श्यामकमलसे नेत्रवाली उत्पन्न करी, फिर उस कन्याके जन्म होनेके उपरांत उस राजाके सात पुत्र और उत्पन्न हुए–श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवन, अर्चन, वंदन और दास्यरूप. कि जो द्रविड देशके रक्षक गिने जाते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन्! इन सात पुत्रोंसे एक एकके अनेक सुत उत्पन्न हुए. (श्रवण आदिक भक्तिके सात्विक, राजस और तामसादिक अनंत भेद हैं) जिनके वंशसे (अनेक संप्रदाय) इस पृथ्वीकी मन्वन्तरसेभी कुछ अधिक कालतक रक्षा करेंगे, फिर अज्ञानादिकोंसे बचावेंगे ॥ ३१ ॥ पांड्यराजाकी कन्या कृष्णसेवा रुचि; जो कि उत्तमव्रत धारण करनेवाली थी उसका विवाह अगस्त्य (मन) मुनिके साथ हुआ, अगस्त्यमुनिने इस स्त्रीमें दृढच्युत नाम (वैराग्य) पुत्र उत्पन्न किया दृढच्युतके इध्मवाह नाम पुत्र हुआ, (ब्रह्मज्ञानी गुरुकी शरणागत लेना, ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा लेनेके लिये गुरुके समीप जाना उस समय समिधहाथमें लेनेके लिये वेदमें आज्ञा है, इसकारण इध्म (समिध) को वाह अर्थात् उठानेका यह अर्थ है, सो गुरुकी शरणागत होनेसे सूचित करता है, वैराग्य होनेसे गुरुकी शरणागत जाना बनसक्ता है, इसलिये वैराग्य और इध्मवाहके पिता-पुत्रका संयोग कहा और वैराग्य पिता अगस्त्य अर्थात् मन और माता कृष्णसेवा रुचिको कहा सो यहभी होनाही है) ॥ ३२ ॥ राजर्षि मलयध्वजने अपने पुत्रोंको पृथ्वीके विभाग करके पृथक् पृथक् सबको

बाँटदिये, फिर उस राजाने भगवत् भजन करनेको कुलाचल पर्वतको जानेकी संभावना की ॥ ३३ ॥ मदभरे नेत्रवाली रानी वैदर्भी गृह, पुत्र, भोजनको तजकर ऐसे चलनेलगी जैसे चन्द्रिका चंद्रमाके पीछे पीछे चलती है, ऐसेही अपने स्वामीके पीछे दौडी स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवाही मुख्य है, क्योंकि स्त्रियोंके तो पतिही परमेश्वर हैं ॥ ३४ ॥ वहां चंद्रवसा, ताम्रपर्णी, और वटोदका नाम बडी गंभीर गंभीर नदियां हैं, उनके पावन पवित्र जलसे मज्जन कर दोनों स्त्री-पुरुषोंने अपने अंतःकरणकी शुद्धि और देहके मलोंका विनाश किया ॥ ३५ ॥ कंद, मूल, फल, दल, तृण व जलसे धीरे धीरे निर्वाह किया, फिर शरीर-को कृश कर ऐसा महाकठिन तप करनेलगा ॥ ३६ ॥ कि, शीत, गर्मी, पवन, वर्षा, क्षुधा, प्यास, प्रिय, अप्रिय और सुख, दुःख इन सबको जीत समदर्शी होगया ॥ ३७ ॥ जप, तप, यम, नियमोंके करनेसे सब वासनाएँ भस्म होगईं, तब राजाने इन्द्रियें, पवन अंतःकरण, मनको जीतकर अपने आत्माको परब्रह्ममें लगाया ॥ ३८ ॥ देवताओंके सौ वर्षतक खंभकी नाईं स्थिर होकर, वह राजा एक स्थानपर खडारहा और निरंतर भगवान् वासुदेवमें प्रीति रखनेसे उसको शरीरादिक अनात्मवस्तुओंका कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥ ॥ ३९ ॥ सो आत्माकी व्यापकता मान और आत्मासे भिन्नभी नहीं है यह जान संसार-को स्वप्नसमान समझकर साक्षीसे विरामको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ हे राजन्! जिसका साक्षात् भगवान्रूप गुरुने भलेप्रकार वेदमें विचार किया है, ऐसे विशुद्ध ज्ञान दीपकके चारों ओर प्रकाश होनेसे विश्वमुख ईश्वरकी स्फूर्ति होगई तब जाना कि, जो अनंत ब्रह्म है वह मैंही हूं और जो मैं हूँ वह ब्रह्म है यह तत्त्वज्ञान महात्मा पुरुषोंने यथार्थ वर्णन कियाहै ॥ ४१ ॥ परब्रह्ममें तो सब प्राणियोंको माना और परब्रह्मको सब प्राणियोंमें जाना, इस दृष्टिसे सब विश्वको देखकर अपने शरीरका त्यागन किया ॥ ४२ ॥ विदर्भराजाकी पुत्री जो कि महाश्रेष्ठ पतिव्रता थी, वह सब सुखभोग त्यागकर ब्रह्मज्ञानी पतिको देवतासमान मान मलयध्वजकी प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगी ॥ ४३ ॥ और नियम, धर्म, व्रतोंके कर-नेसे वह अत्यन्त दुर्बल होगई, बालोंकी लटायें बँधगई और वल्कलवसन पहिने ऐसी दिखाई देती थी मानो धूमरहित अग्निकी शिखा अग्निको शांत होजानेपर आपसे आप शान्त और शीतल होजाती है, ऐसे वह शीलवतीभी अपने पतिके निकट रहनेसे शांतस्व-रूप होगई थी ॥ ४४ ॥ और इसने अपने प्रियतमके मरनेका कुछ ध्यान नहीं किया, जैसे नित्य प्रति अपने पतिकी पूजा किया करतीथी उसीप्रकार स्थिर हो आसनपर बैठकर अपने पतिकी सेवा करनेलगी ॥ ४५ ॥ जब पतिकी सेवा करते करते चरणारविन्दोंका स्पर्श किया, तो पद गरम नहीं जान पडे तब तो संविग्नहृदय हो, ऐसी शोकाकुल हुई जैसे मृगपतिसे बिछुरकर मृगी शोकसागरमें डूब जाती है ॥ ४६ ॥ वह अनाथिनी अवला अपने आत्माका सोचकर अश्रुधारासे स्तनोंको सींच अत्यन्त व्याकुल हो, उस महागम्भीर वनमें उच्चस्वरसे रोरोकर विलाप करनेलगी ॥ ४७ ॥ हे राजर्षे! हे प्रियतम! हे भयहरण!!! उठो उठो यह दीन पृथ्वी चोर और अधम क्षत्रियोंके भयसे व्याकुल

हो रहीहै इस दीन दुखियाकी रक्षा कौन करेगा ? बिना आपके इस कार्यका करनेवाला मुझको कोई दृष्टि नहीं आता ॥ ४८ ॥ इसलिये आप समुद्रपर्यंत इस वसुधाकी रक्षा करो. ऐसे विलाप कर करके वह अनाथिनी बाला वनमें पतिका अनुसरण कर फिर अपने स्वामीके चरणोंमें शिर धरकर अश्रुधारा बहानेलगी ॥ ४९ ॥ फिर उसने मनमें धैर्य धारण-कर काष्ठ बटोर चिता रचकर उसपर पतिका देह धर अग्नि लगाय आपभी उस चितामें बैठनेको प्रस्तुत हुई ॥५०॥ हे प्रभो ! उसी समय इसका प्राचीन सखा (ईश्वर) जो कि परम ज्ञानी था, वह विप्ररूप धरकर वहां आया और मनोहर वाणीसे धैर्य देकर उस रोतीहुई वैदर्भीसे यह वचन कहा॥५१॥ ब्राह्मण बोला कि, तू कौन है ? और किसकी कन्याहै ? और यह चितामें जो सो रहा है यह कौन है ? जिसके सोचमें तू मग्न होरही है और तू मुझको भी जानती है कि नहीं ? मैं तेरा प्राचीन सखा हूं और सृष्टिके समय मुझमें स्थित होकर तैंने मेरे संग अनेक प्रकारके सुखविहार कियेथे ॥ ५२ ॥ हे सखे ! आप मुझको जान-तेहोंगे परंतु इतना तो मुझकोभी ध्यान आता है कि, मेरा एक अविज्ञात नामक सखा था, (परमात्मा) और मुझको त्याग भूमिकी इच्छासे विषयवासना भोगनेके लिये आश्रमके खोजनेको गयाथा ॥ ५३ ॥ हे आर्य ! हम तुम तो दोनों मानससरोवर (हृदय) वासी हंस (शुद्ध) हैं सो हम और आप दोनों मित्र सहस्रों वर्षतक विनाही स्थान रहेथे (महा-प्रलय हुआ उस समयतक) जीव तुम हो ईश्वर मैं हूं ॥ ५४ ॥ हे बंधो ! उससमय विषयोंमें आपकी बुद्धि थी, सो मुझको त्यागकर विषयके सुखकी कामनासे तुम पृथ्वीमें गये और किसी स्त्री (माया) की रची हुई पुरी तुम्हारे देखनेमें आई, उसमें तुम विचरनेलगे, ऐसे पृथ्वीपर मैंने तुमको देखा, अब उस पुरीका वर्णन आपसे करतेहैं ॥५५॥ उस पुरीमें पांच तो उपवन थे, और नव द्वार थे, एक उस पुरीका रक्षक था, तीन कोट थे, छःवणिक थे, पांच हाटें थीं, और पांचही मूलकारण थे, और एक स्त्री वहांकी स्वामिनी थी, ऐसी वह पुरी थी ॥५६॥ हे प्रभो ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह तो पांच उपवन समझो, देहमें जो प्राणरूप नव छिद्र हैं उन्हींको नवद्वार समझो, एक जो प्राण है, वही पुरीका रक्षक समझो पृथ्वी, तेज, जल यही तीनों दुर्ग समझो. श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण यह पांच ज्ञानेंद्रिय और छठा मन इन छहोंको वणिक् समझो ॥ ५७ ॥ कर, पद, वाणी, शिश्न, गुदा इन्हीं पांच कर्मेंद्रियोंको हाटें समझो. क्षिति, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंच महाभूतोंको मूलकारण समझो. और बुद्धिको स्वामिनी समझो, उसका पति जो वह आत्मा है, अपनी भार्याके विवश होनेसे अपने निज स्वरूपको भूलजाताहै ॥ ५८ ॥ उस पुरीमें क्रियाशक्तिरूप व्यवहार होताहै जिसका नाश कभी नहीं होता, वह भूत प्रकृति है और इसमें जो पुरुष है, वह शक्तिका अधीश है, वही उस पुरीमें वास करता है परंतु जाना नहीं जाताहै ॥ ५९ ॥ ज्ञात हुआ आप उस पुरीमें जाकर उस स्वामिनीके दास बने और उसके संग रमण करनेलगे, इसकारण तुमको अपने स्वरूपकी स्मृति नहीं रही. हे प्रभो ! उसी कुसंगसे इस पापीय दशाको आप प्राप्त हुए ॥ ६० ॥ न तो तुम विदर्भ-

राजाकी पुत्री हो, और न यह राजा पांडय तुम्हारा स्वामी है, न पुरंजनीके तुम पति हो केवल उस नौ द्वारवाली पुरीमें मोहके वशीभूत होकर रुकरहे हो ॥ ६१ ॥ यह सब माया मेरीही रचीहुई है, जो तुम पूर्वजन्ममें अपने लिये पुरुष मानतेथे और अब अपने लिये सती स्त्री मानतेहो यह यथार्थमें दोनों बातें वृथा हैं, यह माया तो मेरीही रची हुई है, हम तुम तो दोनों शुद्ध हंस हैं अब मैं अपना सत्यस्वरूप वर्णन करताहूँ सो कान लगाकर सुनो. और मेरी गति देखो ॥ ६२ ॥ हे जीव ! हम तुम दोनों एकही हैं, जो तू है वह मैं हूं इस बातको ज्ञानरूपी नेत्रोंसे विचार कर देखले. भिन्न नहीं हैं, जो पंडित हैं वह कभी हमारे तुम्हारे बीचमें भेद नहीं समझते ॥ ६३ ॥ तो अल्पज्ञ सर्व जन भेद कैसे मानतेहैं ! उसका उत्तर यह है कि, जैसे एक देहका प्रतिबिम्ब आदर्शमें देखा जाय तो दीर्घ विमल और स्थित दिखाई देताहै, उसी प्रतिबिम्बको कोई दूसरे दर्पणमें अपनीही आँखसे देखे तो लघु, मलीन और चंचल दृष्टि आताहै, इसमें दर्पणके छोटे बडे होनेका भेद है, प्रतिबिम्बका भेद नहीं इसीप्रकार दोनोंमें विद्या और अविद्यारूप उपाधिके विकारका भेद है. परन्तु वास्तवमें किंचिन्मात्रभी भेद नहीं है ॥ ६४ ॥ इसप्रकार उस मानसहंस जीवको उस मानससरोवरवासी हंस ईश्वरने ज्ञान दरशाया, तब इसने अपने स्वरूपमें स्थित होकर ध्यान किया तो ध्यानके करतेही उसको वह स्मृति हुई कि, मैं ब्रह्म हूँ और ईश्वरके वियोगकी बुद्धिरूप स्मृति जो नष्ट होगयी थी सो फिर प्राप्त होगई.

दोहा-बहु दिनकी भूली सुरति, तुरत गई तेहि आय।
शोक और संताप सब, क्षणमें दियो विहाय ॥ ६५ ॥

हे प्राचीनबर्हि ! मैं तेरे आगे साक्षात् आत्मज्ञानकी कथा कहता तो कभी तू नहीं समझता और न तेरे ध्यानमें आता, इसलिये अध्यात्मज्ञान परोक्ष करके हमने तुझे दिखाया, परोक्ष उसको कहते हैं, जो नेत्रोंसे देखनेमें न आवे. और परोक्षरीतिसे वर्णन करनेका यह अभिप्राय है कि, भगवान् विश्वपालक इस इतिहासके विचारनेसे चित्तमें प्रगट होजाते हैं.

भजन-जाको तू नरतन मानत यह आपरूप भगवान है ॥ अहंकारने जबसे घेरो, कहन लगो मेरो और तेरो ॥ भूलगयो निजरूप अनेरो, तू सर्वज्ञ सुजान है ॥ १ ॥ भली बुरी करनी जब करि है, बंधनमें तबही तो परि है ॥ निष्क्रियको कछु नाहीं डर है, तो को तो कर्मकी आन है ॥ २ ॥ मैं हूँ देह ये देह है मेरी, केवल यह भूल है तेरी ॥ पंचतत्त्वकी यह तो ढेरी, जान क्यों भया अजान है ॥ ३ ॥ सत् चित् आनंद भाव सांवरो, पंचकोशते होजा न्यारो ॥ नाम रूप कछु नाहिं निहारो येही निर्मल ज्ञान है ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने स्त्रीविचिन्तया स्त्रीत्वप्राप्तस्य पुरंजनस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दोहा-उनतिसवें अध्यायमें, करूं स्पष्ट परोक्ष।
नारिसंगसे नरक है, हरिप्रसंगसे मोक्ष॥

प्राचीनबर्हि नृप बोले कि, हे भगवन्! आपका वचन मेरी समझमें अच्छी रीतिसे नहीं आया. क्योंकि, ऐसी महाकठिनार्थ वार्ताको तो वह समझ सक्ते हैं जो वेदान्ती, आत्मज्ञानी, कविजन हैं और मैं तो केवल कर्मकाण्डमें मोहित होरहा हूँ, ऐसी गूढ वार्तोको मैं कैसे समझूं! इसलिये मुझको फिरसे समझाकर कहो॥ १॥ नारदजी बोले कि, जिसको मैंने राजा पुरंजन कहा है उसको जीव समझना चाहिये, क्योंकि जीव अदृष्टरूप द्वारसे अपने आत्माके पुरोंको प्रगट करताहै कि, जिन जीवोंमें कितने तो एक एक पगवाले होते हैं, कितने दो पांवके होते हैं कोई तीन चरणवाले कोई चार चरणवाले कोई अनेक पग वाले होतेहैं, और कोई बिनाही चरणके होते हैं॥२॥और अविज्ञातनामक जो जीवका सखा कहा उसको ईश्वर समझना चाहिये. वह ईश्वर नाम, क्रिया, गुणोंसे किसीके जाननेमें नहीं आसक्ता॥ ३॥ जब संपूर्णतासे पुरुष प्रकृतिके भोगनेकी इच्छा करता है, तब उस शरीरमेंसे नव छिद्र, दो हाथ, दो पांववाले नरदेहको उसने बहुत उत्तम मानकर वास किया॥ ४॥ और जिसको मैंने पुरंजनी कहा वह बुद्धि है, जिसके संबंधसे जीव मैं और मेरा कहने लगता है, और इस देहमें जीव बुद्धिके आश्रित होकर इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको भोगता है॥ ५॥ उस पुरंजनीके जो दश (१०) सखा कहे, वे इन्द्रियां हैं, जिनमेंसे किसी किसी इन्द्रियोंसे विषयोंका ज्ञान होता है, किसी किसी इन्द्रियोंसे केवल कर्मही होताहै इसमें जो पुरंजनीकी सहेलियां कही हैं वे इन्द्रियोंकी वृत्तियां हैं, और पांच शिरका सर्प जो हमने कहा, वह पंचवृत्तिरूप प्राण है (प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान) ॥ ६॥ जिसको मैंने महाबलशाली सेनापति कहा, वह मन है, वह मन ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनोंका नायक है, और पांचालदेश जो कहा, वे पांच इन्द्रियोंके विषय हैं, जिसमें नव द्वारका पुर है॥ ७॥ जिसमें दो नेत्र, दो नासिका, दो श्रवण, एक मुख, एक लिंग, गुदा, वे नव द्वार हैं, इन इन द्वारोंसे जीव इन्द्रियोंको अपने साथ लेकर बाहिर आता है॥ ८॥ दो नेत्र, दो नासिका और एक मुख, ये पांच तो पूर्वके द्वार हैं, दक्षिण कान, दक्षिणकी ओरका द्वार और वाम कान उत्तरका द्वार है॥ ९॥ पश्चिमकी ओर नीचेके दो द्वार एक गुदा और एक शिश्न इस शरीरमें है, खद्योता और आविर्मुखी नाम जो कहे, वे दोनों समासम एक सूथमें निर्माण किये हैं, इनको नेत्र समझना॥ १०॥ इनहीं द्वारोंसे जीवात्मा चक्षुरिन्द्रियकी सहायतासे विभ्राजित नाम देशमें जाकर रूपको देखता है, और नलिनी नालिनी नाम जो दो द्वार कहे वह नासिका है और सौरभ देश जो कहा, वह गन्ध है, जिससे सुगंध ज्ञानगंध होता है॥ ११॥ नाक, मुख दोनोंको कंपायमान करनेवाली व्यवहारकारी वाणी रसज्ञानी, रस आपण व्यवहार यहां है, विचित्र अन्न बहूदन है, वाणी और रसना यह दोनों परम मित्र हैं, बोलना उसका धर्म है और भोजनका निवारण करनेवाला है॥ १२॥

पितरोंका बुलानेवाला दाहिना कान है और देवताओंका बुलानेवाला बांया कान है, दक्षिण पांचालदेश प्रवृत्तिमार्गका शास्त्र है, और उत्तर पांचाल देश निवृत्तिमार्गका शास्त्र है ॥ १३ ॥ पितृयान और देवयान शास्त्र सुन जैसे पितृलोक और देवलोकका बास होता है आसुरी नाम जो पश्चिमद्वार कहा वह शिश्न है, वह नीचेका द्वार है, जिससे मैथुन करते हैं, वह मैथुन करनेवाले ग्रामक लोग हैं ॥ १४ ॥ दुर्मदमित्र जो कहा वह उपस्थ इन्द्रिय है और निर्ऋति गुदाका देवता है, लुब्ध जो कहा वह पायु इन्द्रिय है और वैशसदेश जो कहा वह नरक है, लुब्ध जो अंधीन्द्रिय हैं, सो मैं कहता हूं ॥ १५ ॥ अंधद्वार हाथ पाँव दो हैं, जिनसे यह पुरुष कर्म कर्ता है और चलता है, अंतःपुर कहा वह हृदय है, और उसमें जो द्रष्टा कहा वह मन है ॥ १६ ॥ जिसको सत्त्व, रज और तमसे हृदयमें प्रसाद, हर्ष, मोह उत्पन्न होताहै, और जीवात्मा सब जानताहै, तौभी बुद्धिके उन उन गुणोंकरके गुणोंसे युक्त होकर दर्शन स्पर्शन आदिक जो जो कार्य बुद्धि करती है उन सब कर्मोंको अपना कर्तव्य मानता है, और स्वप्नमें उसीके अनुसार विकारको प्राप्त होताहै, अथवा जागनेपरभी उसी प्रकार इन्द्रियोंको बदलता रहता है ॥ १७ ॥ कभी विकारी होताहै, कभी उसीप्रकार जो उपद्रष्टा जीव है वह उन वृत्तियोंको करता रहता है, रथ जो कहा वह स्वप्नअवस्थाका देह है, इन्द्रियरूप घोडे जिसमें जुतरहे हैं, रथकी उग्रगति जो कही वह संवत्सरका वेग है, जो किसीसमय नहीं रुकता ॥ १८ ॥ और दो पहिये जो कहे, वे पुण्य और पाप हैं, तीन ध्वजा जो कहीं, वह सत्त्व, रज, तम तीन गुण हैं, पांच बंधन जो कहे, वह पांच प्राण हैं, रस्सी जो कही, वह मन है, सारथी जो कहा वह बुद्धि है, बैठनेका स्थान जो कहा. वह हृदय है. जुआ जो कहा वह सुखदुःख आदि द्वंद्व हैं ॥ १९ ॥ सामान जो कहा वह पांच विषय हैं, यवनिका जो कही वह सप्तधातु हैं, आकूति जो प्राणोंकी शक्ति है वह रथका पराक्रम कहा. वह मृगतृष्णाका दौडना है ॥ २० ॥ उसके संग सेना जो कही वह एकादश इन्द्रियें हैं, और आखेट जो कहा, वह पंच ज्ञानेंद्रियों-का आनंद देनेवाला है. और चंडवेग गंधर्व जो कहा, वह महाप्रचंड वेगवाला संवत्सर है, जिससे काल उपलक्षित होता है ॥ २१ ॥ तीनसौ साठ जो गंधर्व कहे, वे संवत्सरके दिन हैं, और तीनसौ साठही सांवली और गोरी जो उनकी स्त्रियां कहीं, वह कृष्णपक्ष और शुक्ल पक्षके वर्षभरकी रात्रि है, यह दिनरात व्यतीत होती हैं और आयुका क्षय करती हैं ॥ ॥ २२ ॥ कालकी सुता जिसका कोईभी सन्मान नहीं करताहै, वह जगत्में वृद्धअवस्थाहै, उस मृत्युको लोगोंका क्षय करनेके लिये यवनेश्वरने अपनी बहिन बनाया ॥ २३ ॥ उस मृत्युके चहुँओर घूमनेवाले सैनिक जो कहे वह आधिव्याधि उस यवनकी सेनाके वीर हैं, और जो प्रज्वार कहा, वह शीतोष्ण दो प्रकारका ज्वर समझना जो मृत्युका भ्राता है और सब प्राणियोंको पीडा देनेमें महाप्रचंड जिसका वेग है, वह प्रज्वार नामक अनेक प्रकारका ज्वर है ॥ २४ ॥ ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके आध्यात्मिकादिक त्रयताप क्लिश्यमान शरीरमें शरीरही तमोगुणमें होकर ज्ञानी स्वयं निर्गुण होनेपरभी अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगता

हुआ ॥ २५ ॥ प्राण इन्द्रिय मनके धर्म आत्मामें निश्चय करके निर्गुणजीव विषयोंकी तृष्णा के लवमात्र सुखका ध्यान कर सोजाता है. मम, अहं, यह कर्म करता है ॥ २६ ॥ स्वयं परमात्मारूप होनेपरभी यह जीवात्मा जो कि, परमात्मा परमगुरु वासुदेव भगवान् हैं उनको जानकरभी अविद्याकी प्रकृतिके गुणोंमें आसक्त होजाता है ॥ २७ ॥ तव गुणोंका अभिमानी जीव परवश होकर सात्त्विक, राजस, तामस कर्म कियाकरता है, और उन कर्मोंके करनेसे महाकष्टदायक लोकोंमें जाता है, अरु उनही कर्मोंके अनुसार वारंवार संसारमें जन्म लेता है ॥ २८ ॥ सात्विककर्म करनेसे महाप्रकाशवान् लोकोंमें जाकर उत्तम कुलमें जन्म पाता है, राजसकर्म करनेसे महादुःखदायक लोकमें परिश्रमसे पूरित मध्यम वंशमें जन्मलेता है ॥ २९ ॥ और तामस कर्म करनेसे महाशोकवाले लोकमें अज्ञान और क्लेशकारी लोगोंके घरमें उत्पन्न होताहै ॥ ३० ॥ यह महाअधम जीवात्मा अपने कर्मोंके गुणानुसार कभी पुरुष, कभी स्त्री, कभी नपुंसक, कभी देवता, कभी मनुष्य, कभी पशु, कभी पक्षीका जन्म धारण करतारहताहै ॥ ३१ ॥ जैसे भूखा, श्वान दीन हो कर घरघरमें भटकता फिरता है, कहीं तो अच्छेसे अच्छा भोजन खाता है, और कहीं मार खाकर आता है, अपने भाग्यके अनुसार भोग भोगता है ॥ ३२ ॥ ऐसेही कामासक्त हृदयवाला जीव स्वर्ग, पृथ्वी और अंतारिक्षमें उच्च नीच जातिमें भ्रमण करताहुआ प्रारब्धानुसार सुखदुःख पातारहता है ॥ ३३ ॥ कष्टके दूर करनेका सच्चा उपाय तो सम्पूर्ण हैही नहीं और जो कियाभी जाय तो भी दैवसे, भूतसे, आत्मासे, हेतुसे, किसी रीतिसेभी जीवका वियोग नहीं होसक्ता ॥ ३४ ॥ जैसे बहुत बोझके भारको मनुष्य शिरपर धरकर चलता है,जव शिर दुखने लगता है,तव उस भारको कंधेपर धरलेता है परंतु वह सब भार शरीरहीपर है, ऐसेही दुःख दूर करनेके जो उपाय हैं वहभी दुःखरूपही हैं,इसलिये यह प्राणी दुःखसे कभी छूट नहीं सक्ता ॥ ३५ ॥ दुःखको जडभूत तो कर्मही ठहरे वे कर्म और कर्म करनेसे कभी नहीं छूटसक्ते, क्योंकि कर्म केवल ज्ञानरहित और वासनासहित हैं; इसलिये जैसे अपने दूसरे कर्मको यथार्थ रीतिसे दूर नहीं करसक्ता,और जैसे एक स्वप्नमें दूसरा स्वप्न दीखता है, तो वह पहला स्वप्न दूसरे स्वप्नको यथार्थ रीतिसे दूर नहीं करसक्ता, इसीप्रकार एक कर्म और उसका दूर करनेवाला दूसरा कर्म यह दोनों अज्ञानजन्य होनेके कारण एक रूप होनेसे उसमेंका एक कर्म दूसरे कर्मको दूर नहीं करसक्ता ॥ ३६ ॥ यद्यपि स्वप्न झूंटा है, तोभी उपाधिरूप मनकी जबतक स्वप्न अवस्था रहे तवतक वह उपाधि मिट नहीं सक्ती, ऐसे यह संसार सम्पूर्ण मिथ्या है तोभी चित्तमें जवलों विषयोंका ध्यान बना रहे है, तवतक वह किसी रीतिसे मिट नहीं सक्ता ॥ ३७ ॥ इसलिये अज्ञान जो महाबलवान् है कि, जिसके हेतु परमपुरुषार्थरूप आत्मा अखंड प्रवाहरूप संसार हुआ है, उस अज्ञानका विध्वंस परमगुरुरूप भगवान्की भक्तिसेही होसक्ता है ॥ ३८ ॥ वासुदेव भगवान्में अत्यंत प्रीतिसे दृढ भक्तियोग किया जाय तो उससे ज्ञान और वैराग्य दोनों उत्पन्न होतेहैं ॥ ३९ ॥ हे राजर्षे ! भक्तियोगका मुख्य कारण केवल अच्युत भगवान्की कथाहै । इसलिये जो पुरुष

श्रद्धासहित भगवान् वासुदेवकी कथा सुनतेहैं, और निरंतर अपने चित्तमें अध्ययन करते हैं उनको स्वल्पकालमें भक्तियोग प्राप्त होजाता है ॥ ४० ॥ हे राजन् ! भागवत साधु निर्मल अंतःकरणवाले भगवत्‌के गुणानुवादश्रवण व कीर्तनमें जिनका चित्त लगरहा है, ऐसे महात्मा सज्जन पुरुष जहां होते हैं वहां मधुदैत्यके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके चरितामृतकी नदियें सब ओर बह रही हैं सो हे राजन् ! इन सुधारूप नदियोंका जल जो पुरुष छल छिद्ररहित होकर सावधानतासे श्रवणद्वारा पान करते हैं और तृप्त नहीं होते, उन भक्त जनोंको क्षुधा, पिपासा, भय, शोक, मोह कोईभी स्पर्श नहीं करसक्ता ॥ ४१ ॥ विना सत्संगके यह जीव सदा दुःखी रहता है, यह बातें सब स्वभावसे होती हैं, जब स्वाभाविक क्षुधा तृषादिक उपद्रवोंसे आलसी पुरुषोंके लिये हरिकथामृतकी प्राप्ति होनी महाकठिन है और अहंकारी पुरुष भगवान् वासुदेवकी कथारूप अमृतके सागरमें पहुँचकर भी प्रेमरूपी सुधाका पान नहीं करसक्ता ॥ ४२ ॥ प्रजापतियोंके पति साक्षात् ब्रह्माजी, भगवान् शिवजी, मनु, दक्षादिक प्रजापति, सनक सनन्दनादिक, नैष्ठिक ब्रह्मचारी ॥ ४३ ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और मैं भगवत्कथामें जो कि ब्रह्मचारी ॥ ४४ ॥ अबतक वेदवाणियोंके वक्ता, तप, विद्या, समाधि करके सबके देखनेवाले परमेश्वरको देख रहे हैं, तौभी उसको जान नहीं सक्ते हैं ॥ ४५ ॥ क्योंकि, वेदका विस्तार और उसकी महिमा अपरम्पार है और कोई अर्थोंकाभी पार नहीं पाता । इसलिये वेदवादी जो महात्मा पुरुष हैं, वे वेदके मन्त्रोंमें कहेहुए चिह्नवाले इन्द्रादिक देवताओंकी कर्मके आग्रहसहित भक्ति करते हैं, उनकोभी परब्रह्म परमात्माका ज्ञान होना महाकठिन है ॥ ४६ ॥ इस लिये हृदयमें चिन्तवन करनेसे जिस समय भगवान् आत्मासे भावित जिसपर अनुग्रह करते हैं, तब वह पुरुष जगत्‌के व्यवहार और कर्मकाण्डको त्याग वेदमार्गमें लगजाता है ॥ ४७ ॥ हे प्राचीनबर्हि ! इसलिये यज्ञादिक सकाम कर्म अज्ञानसे सत्यकी नाईं प्रतीत होते हैं और उनके फलादेश सुननेसे कानोंको प्रिय लगते हैं. ऐसे कर्ममें परमार्थ दृष्टि मत करो. यह कर्म केवल श्रोत्रइन्द्रियस्पर्शि हैं सिद्धान्त वस्तुके स्पर्श करनेवाले ये कर्म नहीं हैं ॥ ४८ ॥ वे लोग अपने लोकको नहीं जानते. जहां भगवान् जनार्दन देव विराजमान हैं. धूम्रसमान बुद्धिवाले लोग कहते हैं कि, वेदका तात्पर्य केवल कर्मोंपर है, वे मूर्ख वेदके तात्पर्यको नहीं जानते, और अकर्मवेदको सकर्म कहते हैं ॥ ४९ ॥ तुझको किंचिन्मात्र अभिज्ञान नहीं. क्योंकि; पूर्वकी ओर जिनके अग्रभाग ऐसे कुशाओंको बिछाकर समस्त भूमंडलपर अनेकयज्ञ किये, और महाअभिमानी बन अनेक पशुओंका वध किया और नहीं जाना, इसीलिये भगवान् तुझसे प्रसन्न नहीं हुए. जिस कर्मसे भगवान् प्रसन्न हों, वही सत्यकर्म है, और जिससे परमात्मामें मन लगे, वही सत्यविद्या है, वही वर्ण उत्तम है, वही कुल श्रेष्ठ है, वही आश्रम शुभ है, जिसमें भगवत्भक्त होते हैं ॥ ५० ॥ ॥ ५१ ॥ नारायणही सब देहधारियोंके आत्मा हैं, आपही प्रकृतिके ईश्वर हैं, इसलिये उनहींके चरणकमलकी शरणागति लेनेसे पुरुषोंको अनेक प्रकारके मंगल और सिद्धियां

होती हैं ॥ ५२ ॥ वह भगवान् सबके प्रियतम आत्मा हैं, और उनकी भक्तिमें किसी प्रकारका अणुमात्रभी भय नहीं होता, जो लोग इसप्रकार परमेश्वरको जानते हैं, वेही जगत्में विद्वान् हैं, और जो पुरुष विद्वान् हैं, वेही गुरु हैं, वेही भगवान् हैं ॥ ५३ ॥ नारदजी बोले कि, हे पुरुषश्रेष्ठ! तैंने मेरे कहेहुए इतिहासका जो स्पष्टार्थ बूझा, वह मैंने भिन्न भिन्न कर तुझसे कहा, अब मैं वह गुह्य गोपनीय सुंदरवार्ता तुझसे कहता हूं जो इस विषयमें पूर्ण निश्चय की हुई है, तुम मन लगाकर सुनो ॥ ५४ ॥ "एक और प्रकारसे जीवका वर्णन करते हैं सो सुनो" तुच्छ पदार्थका चरनेवाला मृग पुष्पोद्यानमें स्त्रीके साथ उसीमें मतवाला होरहाहै, और भ्रमरगणोंके गानसे उसके कान लुभा रहे हैं, सन्मुख भेडियोंके समान दिन, पक्ष, मासादिक कालके विभाग तेरी आयुके भक्षणके लिये उपस्थित हैं, और तू उनको कुछ नहीं समझता, और बैठा आहार विहार कर रहा है, और पीछे व्याधरूप काल, धनुषबाण लिये तेरे हृदयको वेधन करनेके लिये बैठा है, अब तुझको अपने आत्माका विचार करना चाहिये ॥ ५५ ॥ पुष्पोंके समान जिनके धर्म ऐसी स्त्रियोंके शरणरूप पुष्पवाटिकामें पुष्पोंकी मधुगंधके सदृश अत्यंत तुच्छ जो काम कर्मके फलसे उत्पन्न जो कामसुख लवमात्र जीभके स्वाद, शिश्नके विषय भोगादिको ढूंढै, स्त्री पुरुष दोनों उन विषयोंमें मन लगाकर, भ्रमरगणके सुन्दर गीतकी नाईं अतिमनोहर वनिता आदि जनोंके सम्भाषण करनेमें अत्यन्त लोभित जिसका मन, कर्ण ऐसा यह जीव आगे भेडियोंके यूथवत् आपकी आयु हरनेवाले, दिन रात कालके बलविषे उनको कुछ न समझकर घरमें विचरे विहार करे, पीठकी ओरसे नहीं दीखपडे, ऐसे प्रवृत्त एक वधिकरूप यमधर्मराज वह हृदयमें बाणसे जीवको भेदन करता है, ऐसे उस आत्मा जीवको हे राजन्! उसका हृदय भिन्नहुआ ऐसे देखनेको तुम योग्य हो ॥ ५६ ॥ सो तुम इसप्रकार अपनी चेष्टा उस मृगके सदृश विचारो और इस बातका विचार करके अपने मनको हृदयमें आकर्षण कर और सब बहिर्वृत्तियोंका रोध करो, परन्तु इस गृहाश्रमको त्यागकर जिसमें नीच कामी पुरुषोंके यूथकी बातें हैं, और जो कि, भगवान् प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, उनको प्रसन्न करो. इसप्रकार अनुक्रम करके सबसे विराग कर ॥ ५७ ॥ प्राचीबर्हि बोले कि, हे ब्रह्मन्! हे नारदजी!! जो आपने कहा वह मैंने सुना, और विचारा, परन्तु इस बातको यह जो उपाध्याय जो मुझको कर्मका उपदेश करते हैं क्या वह नहीं जानते थे? और जो जानते थे तो मुझसे क्यों नहीं कहा? ॥ ५८ ॥ हे नारद! इन विषयरूप उपाध्यायोंने जो असम्भावना रूप कहा (मैं ईश्वर हूँ वा नहीं) यह मेरे मनमें बडा भारी संशय था, सो आपके अनुग्रहसे सब कटगया, इसीप्रकारका एक दूसरा संदेह और है जहाँ इंद्रियोंकी वृत्ति नहीं जासक्ती है और ऋषिलोगभी उसमें मोहित होजाते हैं, वहां और दूसरेकी क्या सामर्थ्य है? ॥ ५९ ॥ जिस देहसे पुरुष इस जगत्में कर्मोंको करता है, और देहको यहां छोडकर परलोकको चलाजाता है और वहां जाकर दूसरे शरीरसे इन कर्मोंके फलोंको भोगता है, सो मुझको यह संदेह है कि, इस देहसे किये हुए कर्म दूसरे देहसे भोगे

जाते हैं ॥६०॥यह बात वेदवादी लोग सदा कहा करते हैं, और आपभी पहिले कह चुकेहो कि, पुरंजनने जो कर्म किये थे, उनका फल मरनेके पश्चात् उसको अगले जन्ममें मिला, सो आपका कहना सत्य है, परंतु इसमें मुझको बडा संशय है, क्योंकि कर्म करनेवालेको कर्मका फल मिलना चाहिये, परंतु दूसरे शरीरके किये कर्मोंके भोग दूसरा शरीर भोगै यह कहना आपका किसीप्रकार संभव नहीं. जो शरीर कर्मोंको करे, उसी शरीरको उसका फल मिलना चाहिये. और जिस शरीरने कर्म कियेही नहीं, उसको उसका फल मिलना यह महाअन्याय है, और धर्मके विरुद्ध है, फिर मुझे एक संशय और बडा भारी है कि, पुरुष वेदविरुद्ध जो कर्म करताहै वह किंचित् कालमेंही अदृश्य होजाताहै, जैसे कोई अग्निमें हवन करे, और वहां जितनीही देरतक हवन करता रहेगा, वह उतनीही देरतक दृष्टि आतारहताहै, और हवन होनेके पश्चात् वह थोडेही कालमें अदृष्ट होजाताहै, जो कर्म छिप-गया अथवा नष्ट होगया, उसका फल परलोकमें मिले यह बात किसी प्रकारसे मेरी समझमें नहीं आती फिर संदेह किस प्रकार शमन होसक्ता है ? ॥ ६१ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, कर्तृत्व और भोक्तृत्व स्थूल देहको कुछ नहीं है, क्योंकि लिंगशरीर अर्थात् जिसमें मुख्य है वह अंतःकरणहै, सो यह अंतःकरण स्थूलदेहके साथ नष्ट नहीं होता, बरन एक स्थूल देहका नाश होकर दूसरा जो स्थूलशरीर मिलता है, उसमें अंतःकरणने एक स्थूलशरीरमें कर्म कियाथा, वही अंतःकरण दूसरे स्थूलशरीरकर्मका भोग पुरुष भोगता है ॥ ६२ ॥ अब हम लिंगशरीरको स्वप्नदृष्टांतसे स्पष्ट दिखलाते हैं परंतु उसमें वास्त-विक रीतिसे भोक्तृत्व अंतःकरणका है और वह अंतःकरण जाग्रत् अवस्थाके शरीरमें जो था वही स्वप्नके शरीरमें है, इसलिये मैं तुम्हारे सन्मुख वर्णन करताहूँ कि, जैसे अपने जीते जीही पृथक् पृथक् शरीर प्राप्त होतेहैं, परंतु उस शरीर में भोक्ता नहीं फिरता ऐसेंही मरणपश्चात् शरीर बदल जानेपरभी उसमें भोक्ता जो अंतः-करण है वह नहीं पलटता,जाग्रत् अवस्थामें मनके अंतर संस्काररूपसे जो कर्म लगेहुए हैं, वेही स्वप्नअवस्थामें दूसरा शरीर प्राप्त होनेपर भोगने पडते हैं, इसी प्रकार एक जन्ममें अंतः-करणके अंतरसंस्काररूपसे जो कर्म लगेहुए हों, वेही कर्म दूसरे जन्ममें भोगने पडते हैं. सबकी जड तात्पर्य यह है कि स्थूलशरीरको कर्तृत्व नहीं है, क्योंकि अंतःकरण जो कर्म करनेवाला है, उसमें यह स्थूलशरीर केवल द्वाररूप है ॥ ६३ ॥ यह अंतःकरण अनेक पुत्रादिकोंके स्थूलशरीरमें स्नेह रखता है, कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरा पौत्र है, और अपने स्थूल शरीरमें भी ब्राह्मणत्व वा क्षत्रियत्व आदिका घमंड कर बैठताहै, तो इससे यह भलेप्रकार विदित होता है कि, अंतःकरणके केवल अभिमान करनेका जडस्थान स्थूल शरीरहै, परंतु इस बातसे स्थूलशरीरके कर्तापनका निश्चय नहीं होसक्ता, वास्तविक कर्ता अंतःकरणही है, और अंतःकरणने जिस शरीरमें अहंकार किया हो उसी शरीरमें रहकर कियेहुए कर्मसे अंतःकरणकेही कारण पुनर्जन्म होता है. इस बातसे यह निश्चय हुआ कि कर्ताभी अंतः-करणही है ॥ ६४ ॥ पहिली शंकाका समाधान किया, अब दूसरी शंकाका समाधान करते

हैं, कर्मका नाश होजाना यह बात युक्तिसे विरुद्ध है और जन्मका कर्म किसीप्रकार नहीं मिटता यह बात युक्तिसे निश्चय होतीहै, सब इन्द्रियोंके अपने अपने विषयोंके संग एक कालमें मेल होनेपरभी उन विषयोंका ज्ञान अपने आपको एकसंग होसक्ता है इससे यह अनुमान जान पडताहै कि, इन्द्रियोंका अधिष्ठाताभी कोई वस्तु अवश्य है, उसीका नाम मन प्रसिद्ध कर रक्खाहै मनका जबतक इन्द्रियोंके संग मेल नहीं होता तबतक इंद्रियोंका विषयके संग मेल होनेपरभी अपने आपको उस विषयका ज्ञान नहीं होसक्ता, यह बात सबमें प्रसिद्ध है. इसीभाँति चित्तकी वृत्तियांभी एकही कालमें उत्पन्न नहीं होती, परंतु अनुक्रमसे होतीहैं, इसी बातसे अनुमान होताहै कि, चित्तकी वृत्तियोंका उत्पन्न करनेवाला पूर्वशरीरका संबंध कर्म है, जो जो कर्म जिस २ समय भोगनेके होतेहैं उस उस समयमें वह कर्म अपना भोग देनेके अनुकूल चित्तकी वृत्तिको प्रगट करते हैं, इससे पूर्वसंबंधी कर्मका किसीप्रकार विनाश नहीं होसक्ता, परंतु अवशेष रहता है ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! इस वर्तमान शरीरसे किसी कालमें किसी स्थानमें जिस प्रकारका और स्वरूपका पदार्थ अनुभवमें नहीं आयाहो,तथा कभी देखनेमें नहीं आयाहो, और सुननेमें भी न आया हो,उसी प्रकारका और उसी स्वरूपका पदार्थ किसीकालमें स्वप्न और प्रयोजनमें अपने मनमें आता है, यह तो उस बातसे अवश्य मानना पडताहै कि,पूर्वजन्ममें उस पदार्थका वैसा अनुभव अवश्य हुआ होगा॥ ॥६६॥ क्योंकि जिस वस्तुको कभी नहीं देखाहो,वह वस्तु चित्तमें कभी नहीं भासती, इस बातसे भी उसका अनुभव करनेके योग्य पूर्व शरीर होनेका, अथवा पूर्वशरीरका और इस शरीरका चित्त एक होनेका और पूर्वशरीरके कर्मोंका संस्कार मनमें लगेरहनेका, ठीक ठीक निश्चय होताहै ॥ ६७ ॥ वर्तमान समयमें होनेवालाप्राणी पूर्वजन्ममें उच्चयोनिमें था, वा नीचयोनिमें और अब अगला जन्म उच्चयोनिमें होगा अथवा नीचयोनिमें यह बातभी भली बुरी चित्तकी वृत्तियोंसे जानी जासक्ती है. इस बातसेभी जान पडता है कि, पूर्वजन्म था और आगेको जन्म लेना पडेगा, क्योंकि मनुष्यका मन जो है उसीको पूर्वरूप कहते हैं तुम्हारा कल्याण होगा, अथवा न होगा, ऐसे जानलेना ॥ ६८ ॥ इस विषयमें मनुष्य अनेक २ प्रकारके तर्क वितर्क करतेहैं जो पूर्वजन्ममें देखी हुई वस्तु इस जन्ममें स्वप्नके देखनेमें आती हो, तो वह वस्तु किसी कालमें भी देखनेके योग्य नहीं फिर वह वस्तु स्वप्नमें कैसे दीख सक्ती है, ? स्वप्नमें तो कभी पहाडके शिखरपर समुद्र दिखाई देताहै, दिनमें तारे दृष्टि आतेहैं और अपना शीश भुजा कटीहुई देखपडती हैं, सो यह क्या कारण है ? उसका प्रत्युत्तर यह है, कि समुद्र तो पृथ्वीपर है और तारा रात्रिमेंही हैं और आपनी कटीहुई भुजा शीशका प्रतिबिम्ब पानी वा तेलादिकमें देखना यह यथार्थहै, वहां पहाडके शिखररूप स्थलका, दिवसरूप कालका, और संग्रामादिक क्रियाका जो भेद है, वह केवल निद्रा आदिक दोष हैं, यह मानना अत्यंत सुगम है. परंतु पूर्वजन्मको न मानकर इस जन्ममें न हुआहो, वही स्वप्नमें दिखाई देता है, ऐसे माननेवालेकोभी देश, काल और क्रियामें भेद पडनेके हेतु केवल निद्राहीके दोष मानने पडैंगे, इस विषयमें

जिसकी प्राप्ति न हो वह दोनों पक्षोंमें समान है, इसलिये प्रतिपक्षवालेका तर्क करना संपूर्ण अयोग्य है ॥ ६९ ॥ जो पुरुष महादारिद्री हो, वहभी कभी स्वप्नमें अपने आपको चक्रवर्ती राजाके समान देखताहै. परंतु इस बातमें कुछ असंभव नहीं है, क्योंकि सब इन्द्रिय गोचरक्रमके अनुसार मनमें समूहके समूह आते हैं और भोगनेके पश्चात् चलेजाते हैं और सब प्राणी मनसाहितही आतेजाते हैं. यदि कोई भी मनुष्य मनरहित होजाय, ऐसा नहीं होसक्ता, परंतु सब प्राणी मनवाले हैं और जब मनवाले हैं, तो मनमें अनुक्रमानुसार पदार्थोंका प्रवेश होना निश्चय है, इस लिये संपूर्ण जिस वस्तुका अनुभव न हुआहो ऐसी वस्तु कोईभी नहीं है, सबके पदार्थ अनुभवमें आते हैं, केवल इतनाही कहनेसे पूर्ण नहीं होता. क्योंकि किसी किसी समय सब पदार्थ एकसंगही देखनेमें नहीं आते ॥ ७० ॥ केवल एक सतोगुणमें निष्ठा पायाहुआ मन भगवान् वासुदेवके विराट्स्वरूपको मनमें समझता है उस समय सब विश्व मानो मनमें व्याप्त होजाताहै, ऐसे विदित होताहै यद्यपि राहु अदृश्य है,तोभी चंद्रमाके संबंधमें जब आताहै तो स्पष्ट दिखाई देताहै. इसी भांति यद्यपि सब विश्वका दीखना अपने आपको असंभवित है, परंतु शुद्धचित्तमें सब विश्वका संचित दीखना योगीश्वरोंको प्रत्यक्षहै ॥७१॥ इसप्रकार स्थूल शरीर नष्ट होनेपरभी लिंगशरीरका नाश नहीं होता, इसवातसे यह दोष यहां किसी रीतिसे नहीं आता, कि कर्ता और भोक्ता और है. यदि किसीको यह शंका हो कि, लिंगशरीरके कर्तृत्व और भोक्तृत्व स्थूलशरीरके द्वारा है, परंतु स्थूलशरीररहित केवल लिंगशरीरमें कर्तृत्वके भोक्तृत्व हैही नहीं, इसलिये किसीसमय स्थूलशरीर न हो, तब लिंगशरीरमें कर्तृत्वके भोक्तृत्व न रहनेसे मुक्ति अवश्य होनी चाहिये, परंतु सबका सिद्धांत यह है कि बुद्धि, मन, इन्द्रियें और विषयोंका समूहरूप यह अनादि लिंगशरीर जबतक है, तबतक प्राणीके स्थूलशरीरका संबंध किसी भाँति नहीं मिटसक्ता ॥ ७२ ॥ सोना, मूर्च्छा, महाकष्ट, मृत्यु और ज्वरमें इन्द्रियोंका विनाश होनेसे स्थूलशरीरमें मृत्यु प्रज्वारकी समान मैं हूँ, ऐसा अहंकार सदा नहीं प्रकाशता परंतु सूक्ष्म रूपसे बनारहता है, मानो उस समय स्थूलशरीरका लिंगशरीरसे विधान होता है, यह बात कदापि न समझना ॥ ७३ ॥ गर्भमें और बाल्यावस्थामें इन्द्रियें पूर्ण न होनेसे तरुणअवस्थामें जिसप्रकार स्थूलशरीराभिमान एकादश इन्द्रियोंसे स्पष्ट चिह्न नहीं प्रतीत होता, जैसे अमावास्याके चंद्रमाका बिम्ब विद्यमान होनेपरभी चंद्रमा स्पष्ट दिखाई नहीं देता. ऐसेही गर्भ और बाल्यावस्थामें स्थूलशरीरका अभिमान विद्यमान होनेपरभी स्पष्ट दृष्टि नहीं आता इसलिये जबतक स्थूलशरीरका संबंध नहीं मिटता, तबतक संसारभी नहीं मिटसक्ता, यही सबका सिद्धांतहै ॥ ७४ ॥ अर्थके अविद्यमान होनेसे निवृत्ति नहीं होती, क्योंकि स्वप्नमें जैसे अनेक प्रकारका अनर्थ दीखता है और जबतक वह स्वप्न दीखता रहता है, तबतक वह अनर्थ दूर नहीं होता,ऐसेही जीवात्मा जबतक विषयोंके ध्यानमें लगारहता है, तबतक इस असार संसारकी निवृत्ति किसीप्रकार नहीं होसक्ती ॥७५॥ ऐसेही पंचभूतात्मक, त्रिगुणमय, एकादश इन्द्रिय, पंचतन्मात्रारूपसे यह विस्तृत विकारात्मक लिंगशरीर चैतन्यपरमात्माकी

चैतन्यतासे युक्त होनेपर जीव इस नामसे कहाजाता है अर्थात् परमात्माका अंश यह आत्मा जब लिंगशरीरसे युक्त होता है, तब जीव कहलाता है और जब लिंगशरीरको त्यांग देता है तब वह पूर्णब्रह्मरूप होजाताहै ॥ ७६ ॥ यह जीवात्मा इसी लिंगशरीरसे अनेक देह धारण करता, और इसी लिंगशरीरसे सबका त्याग करता है, यह लिंगशरीर जिस स्थूल शरीरको त्यागदेताहै उस स्थूल शरीरकी मृत्यु कही जाती है, और जिस दूसरे स्थूलशरीर को ग्रहण करताहै उस स्थूलशरीरका जन्म हुआ कहलाता है. हर्ष, शोक, भय, दुःख, सुखभी जीवात्माको लिंगशरीरहीके कारण प्राप्त होतेहैं ॥ ७७ ॥ जैसे जोंख पूर्वके तृणको तबतक नहीं छोडतीहै जबतक वह दूसरे तृणको नहीं पकडलेती, ऐसेही मरणके समय जीव जबतक पूर्वदेहके अभिमानको नहीं छोडता, तबतक प्रारब्ध समाप्त होकर दूसरा स्थूलशरीर नहीं मिलता, तबतक उसके पूर्वशरीरका अभिमान नहीं जाता, अर्थात् पहले शरीरकी स्थिति नहीं भूलती ॥ ७८ ॥ जबतक कर्मोंके वियोगसे और दूसरी देहको यह जीव प्राप्त नहीं होता, तबतक हे नरेंद्र ! सब जीवोंका मन जो है सोई केवल इस संसार-का हेतु है ॥ ७९ ॥ जिससमय इन्द्रियोंके आचरण कियेहुए विषयोंका चिंतवन कर करके जो यह पुरुष वारंवार कर्म करताहै, उनही कर्मोंके सवंधसे मन संसारका हेतु है, और आत्मा असंग है तौभी अविद्याके कारण शरीरादिक जडपदार्थके संबंधी कर्ममें आत्माका बंधन नहीं होताहै ॥ ८० ॥ इसलिये सब बंधन दूर करनेके लिये सर्वात्मभावसे सब विश्वको भगवतूरूप जानकर श्रीनारायणका भजन करो कि, जिन नारायणसे इस जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार होता है ॥ ८१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि भक्तोंमें मुख्य भक्त भगवान् नारदजी इसभाँति प्राचीनबर्हि राजाको जीव ईश्वरके खरूपका भेद दरशाकर उस राजासे आज्ञा लेकर वहांसे सिद्धलोकको चलेगये, जिसका नाम सत्यलोक है ॥ ८२ ॥ प्राचीनबर्हि राजर्षि प्रजागणकी रक्षा करनेमें सब पुत्रोंको लगाकर आप तप करनेके लिये गंगासागरपर गया, जहां कपिलमुनिका आश्रम था, और सबका संग त्याग दिया ॥ ८३ ॥ वहां जाकर महावीर एकाग्रचित्त कर, गोविंद भगवान्के पदाम्बुजका भक्तिभावसे भजनकर मुक्तसंग हो वह राजर्षि मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ ८४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे अनघ ! जो इस अध्यात्म-परोक्ष देवर्षिसे वर्णित आत्मज्ञानसंबंधी आख्यानको सुने वा सुनावेंगे वे दोनों लिंगशरीरसे मुक्त होजायँगे ॥ ८५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके यशके प्रभावसे सब विश्वको पवित्र करनेवाला, देवर्षिवर्यके मुखसे निकलाहुआ हृदयका शुद्ध करनेवाला, और श्रेष्ठ श्रेष्ठ फलोंका देनेवाला यह इतिहास है, जो पुरुष इसका कीर्तन करते हैं, वे निस्संदेह ब्रह्मलोकको चलेजाते हैं, और सब बंधनोंसे मुक्त होते हैं इस संसारमें कहींभी भ्रमण नहीं करते ॥ ८६ ॥ यह अद्भुत अध्यात्म-परोक्षज्ञान मैंने तुमसे कहा इससे परलोकमें कोईभी कर्म भोगना नहीं पडता, और देहाभिमान और सब संशय मिटजाते हैं, "जबतक इस प्राणीके संशय मोह दूर नहीं होते, तबतक मोक्ष प्राप्त नहीं होता, क्योंकि महात्मा लोगोंनेभी इस प्रकार लिखा है"

सवैया-अतिदुर्लभ है तनु मानुषको यह पारसज्ञान निहारिये जी।
गुरुमंत्र दियो जो दया करके सोई श्वासनश्वास उचारिये जी॥
सतप्रेमकी ज्वाल प्रचण्ड करो नरपापके बीजको जारिये जी।
दुखभंजन नाम निरंजनको कबहूं मत भूल बिसारिये जी॥ ८७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने अध्यात्मज्ञानसम्पूर्तिर्नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

दोहा-भये तीस अध्यायमें, सुप्रसन्न भगवान।
दई प्रचेतस तरुसुता, और राज्यवरदान॥

विदुरजी बोले कि, हे ब्रह्मन्! प्राचीनबर्हिके पुत्रोंका वृत्तान्त जो आपने कहाथा सो वह रुद्रगीतसे श्रीभगवान् वासुदेवको प्रसन्न करके कौनसी सिद्धिको प्राप्त हुए॥ १॥ हे बार्हस्पत्य! श्रीबृहस्पतिजीके शिष्य मैत्रेयजी! कैवल्यनाथके परमप्रिय, उनके समीपके वासी श्रीशिवशंकर महादेवजीको यदृच्छासे प्राप्त होकर शिवजीके कृपापात्र प्रचेताओंको मोक्ष तो निश्चय मिलाहोगा, परंतु मुक्तिहोनेके पहिले इस लोकमें अथवा परलोकमें उन को क्या प्राप्त हुआ?॥ २॥ मैत्रेयजी बोले कि, वह परमआज्ञाकारी प्रचेता, समुद्रके मध्यमें पिताकी आज्ञाको शिरपर धारण करके रुद्रगीतसे जपरूप यज्ञसे त्रिलोकीके उत्पन्न करनेवाले श्रीनारायणको प्रसन्न करनेलगे॥ ३॥ जब तपस्या करते २ उनको दशसहस्र वर्ष बीतगये, तब सनातन पुरुषने उनको दर्शन देकर अपनी शांतरुचिसे उनके तपका सब कष्ट शमन किया॥ ४॥ जैसे सुमेरु पर्वतके शिखरपर श्यामघटा शोभा देती है ऐसेही श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान् गरुडके कंधेपर विराजमान थे, पीतवसन धारण किये, कौस्तुभमणि कंठमें झलकाये दशों दिशाओंके अंधकारका नाश कर रहेथे॥ ५॥ कनक वर्ण, सुंदर प्रकाशमान् भूषणोंसे कपोल और मुख प्रकाशित होरहाथा, किरीट शीशपर झलक रहाथा, अष्टायुध भुजाओंमें धारण कररहेथे, अनुचर, मुनि, सुरेंद्र और देवता सेवामें उपस्थित थे, गरुडजी किन्नरोंकी भांति अपने पंखोंके शब्दसे उनका यश वर्णन कररहेथे॥ ६॥ पुष्ठ विशाल अष्टभुजाओंके मंडल मध्यवक्षःस्थलमें लक्ष्मीजी और वनमालासे आद्यपुरुष भगवान् सब ओरसे शोभित थे, बर्हिष्मान् राजाके शरणागत पुत्रोंसे मेघनाद सम वाणीसे दयायुक्त अवलोकनसे देख, अपना दास विचार यह कहा॥ ७॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे नृपनंदनो! तुम मुझसे वर मांगो, तुम्हारा कल्याण होगा तुम अपनी सुहृदता से एक हो, एकही धर्मपालन करतेहो, तुम्हारी सुहृदता देखकर. मैं तुमसे अतीव प्रसन्न हूं॥ ८॥ जो पुरुष संध्याकालमें प्रतिदिन तुम्हारा ध्यान करेगा, उसके भ्राता बंधुजनोंमें सदा अत्यंत स्नेह बनारहेगा, जैसा तुम परस्पर स्नेह करतेहो, और सब जीवमात्रमें सुहृद्भाव होगा॥ ९॥ जो पुरुष सावधान होकर संध्याकाल और प्रातःकाल रुद्रगीतके पाठसे मेरी स्तुति करेंगे, उनके सब मनोरथ मैं सिद्ध करूंगा, और सुंदर बुद्धि दूंगा; और

जो कुछ तुमको दूंगा उसका तो कहनाही क्या है ॥ १० ॥ जो तुमने आनंदित होकर पिताकी आज्ञा शिरपर धारण की है, इसलिये तुम्हारी महासुंदर कीर्ति त्रिभुवनमें व्याप्त होगी ॥ ११ ॥ और गुणोंमें ब्रह्माजीको समान सर्वगुणनिधान परमज्ञानवान् महाविख्यात पुत्र तुम्हारे होगा, जो अपनी संतानसे सब त्रिलोकीको पूर्ण करेगा ॥ १२ ॥ हे राजकुमारो ! कंडुऋषिसे प्रम्लोचा नाम अप्सरामें कमललोचना कन्या उत्पन्न हुई. उस कन्याका जन्म होतेही वह अप्सरा उसको वनमें त्यागकर स्वर्गको चलीगई. तब वृक्षोंने उस कन्याका ग्रहण करलिया, उसकी कथा इस भांति है, " एकसमय कंडुऋषि वनमें तप करतेथे, उनका तपभंग करनेके लिये इंद्रकी भेजी प्रम्लोचा नाम अप्सरा कंडुऋषिके समीप रहनेलगी, कुछ दिनपीछे उस अप्सराके कंडुऋषिसे एक कन्या उत्पन्न हुई, तब वह उस कन्याको वृक्षोंमें डाल कर आप स्वर्गको चली गई " ॥१३॥ वह कन्या क्षुधासे व्याकुल होकर रोनेलगी, तो उस समय कन्याको दुःखी देखकर वृक्षोंके राजा चंद्रमाने उसपर दयालु होकर उसके मुखमें अपनी कनअंगुली देदी कि, जिसमेंसे सदा अमृत टपकता रहता है ॥ १४ ॥ प्रजाके रचनेमें सृष्टि करनेवाले पिताने तुमको आज्ञा करी, उस आज्ञाके सफल करनेके लिये, इस श्रेष्ठकन्याका शीघ्र विवाह करो इसमें विलम्ब करना उचित नहीं ॥ १५ ॥ तुम सब एकसेही धर्मशील और स्वभाववाले हो, तुम सबके बीचमें यह एकही स्त्री हो और तुम्हारेही समान शीलवती हो और उसका मन सदा तुममें लगारहै, उस स्त्रीमें तुम मन लगाओ मेरी कृपासे दिव्यसहस्रवर्षपर्यंत महाबली वनभूमिके भोगोंको भोगोगे, वह दिव्य भोग है ॥ १६ ॥ पीछे वियोगरहित भक्ति मुझमें करना, गुण रहित हृदय जब तुम्हारा पुष्ट होजायगा, तो मेरे धामको जाओगे, और इस नरकरूप संसारके सुखोंमें वैराग्य उत्पन्न होगा, उस समय मेरी अखण्डा भक्ति करनेसे सब काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता, दूर होजायगी ॥ १७ ॥ जो लोग घरमें घुसेरहकरभी कर्म करें, वह मुझमें समर्पण करें और मेरीही वार्तामें दिनरात व्यतीत करें. एसे पुरुषोंको गृह बन्धनकारी कभी नहीं होता ॥ १८ ॥ जो मैं साक्षात् ब्रह्म ब्रह्मवादियोंके हृदयमें क्षण क्षणमें नवीन नवीन रूपसे प्रगट होता हूँ और ऐसा उत्तमस्थान उनको देता हूँ कि, जहांके गये न मोहको प्राप्त होते हैं न शोकको प्राप्त होते हैं ॥ ॥ १९ ॥ जो तुम मेरी कथाका दिनरात कीर्तन करते रहोगे तो तुम्हारे घरका किंचित्मात्रभी बन्धन नहीं रहेगा ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार पुरुषार्थके पात्र और अत्यन्त सुहृत्तम, परमोपकारी, जनार्दनके वचन सुनकर प्रचेता, कि जिनका रज, तम, मल, श्रीनारायणके दर्शनसे शमन होगया हैं, वह प्रचेता हाथ जोड गद्गदवाणीसे श्रीहरिकी स्तुति करनेलगे ॥ २१ ॥ प्रचेता सब बोले कि, हे क्लेशविनाशन ! गुणविभासन ! वेदने तुम्हारे उदारगुणनाम निरूपण किये है ऐसे जो तुम हो सो आपके अर्थ नमस्कार है, मनवचनके वेगसे आगे जिनका वेग, सब इन्द्रियोंके मार्गसे जिसका मार्ग नही जानाजाय, ऐसे जो भगवान् हैं उनके लिये वारम्वार नमस्कार है ॥ २२ ॥ अपनी निष्ठाकरके शुद्ध शान्त-

मनमें जिससे प्रकाश होताहै, ऐसे अद्वैतरूपके निमित्त हम प्रणाम करते हैं, विश्वकी उत्पात्ति, पालन और संहारके लिये मायाके गुणोंसे जो ब्रह्मादिक मूर्ति धारण करते हैं, उन भगवान्को वारम्वार हमारा प्रणाम है ॥ २३ ॥ विशेषकरके सत्त्वशुद्ध जिसका स्वरूप, सब दुःखोंको शमन करनेवाला और संसारके मोहको हरनेवाला जिसका ज्ञान, वासुदेव श्रीकृष्ण सब यादवोंके उत्पन्नकर्ता भवभयहर्ता भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ २४ ॥ हे कमलाक्ष हे कमलनाभ ! कमलोंकी माला धारण करनेवाले ! कमलपाद ! भगवन् ! आपको वारम्वार हमारा नमस्कार है ॥ २५ ॥ कमलकी केशरके सदृश निर्मल पीतवस्त्रवाले बाँके विहारीके अर्थ हमारा नमस्कार है सब जीवमात्रके अन्तर्यामी, सबके साक्षी आपको हमारा प्रणाम है ॥ २६ ॥ हम सरीखे क्लेश पानेवालोंको जो आपने सब क्लेशका क्षय करनेवाला स्वरूप प्रगट करके दर्शन दिया, सो बडा अनुग्रह किया, इससे अधिक और कौनसा अनुग्रह होगा ॥ २७ ॥ हे विश्वनायक ! हे दीनदयालो ! समर्थ पुरुषोंको दीनोंपर ऐसेही अनुग्रह करना योग्य है, जो अपनी बुद्धिसे समयसमयपर स्मरण करना, इतनाही दीनवत्सल कृपालुओंका होना वहुत है ॥ २८ ॥ क्योंकि जब कृपालु लोग स्मरण करते हैं तो दीन पुरुषोंके हृदयमें शान्ति हो जाती है जब आप तुच्छ जीवोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामी रूपसे विराजतेहो तव हमलोग जो आपके उपासक हैं उनके मनोरथको कैसे न जानोगे ॥ २९ ॥ हे जगत्पते ! यही वर हम चाहते थे कि, मोक्षमार्गके दर्शनवाले परमपुरुषार्थरूप जो आप हमारे ऊपर प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥ हे नाथ ! परेसे परे जो आप हो और कारणकेभी कारण हो इससे वारंवार यह वर मांगते हैं क्योंकि भक्तजनोंको देनेयोग्य आपकी विभूतियोंका अन्त नहीं है, इसीकारण जगतमें आपका नाम अनन्त विख्यात है ॥ ३१ ॥ अनायाससे भ्रमरको जव कल्पद्रुम मिलजाता है, तव वह और किसी दूसरे वृक्षकी इच्छा नहीं रखता. ऐसेही अब हमको साक्षात् आपका पादमूल प्राप्त होगयाहै अब हम आपसे कौन कौनसा वर मांगें? और माँगनेकी भी इच्छा हो तो क्या मांगें? क्योंकि मनमें अनेक अनेक प्रकारकी कामना उत्पन्न होती हैं और कामनाओंका अन्त नहीं है ॥ ३२ ॥ इसलिये हम इतनाही वरदान मांगते हैं कि, आपकी मायासे और अपने कर्मोंसे जबतक हम इस संसारमें भ्रमण करें, तबतक आपके प्रसंग करनेवाले हमको जन्म जन्ममें श्रीवैष्णव लोगोंका सत्संग सदा बनारहे ॥ ३३ ॥ आपके भक्तलोगोंके लवमात्र सत्संगके समान न तो हम स्वर्गको समझते हैं, न हम मोक्षको तोलते हैं और मनुष्योंके राज्यादि सुखकी तो गणनाही क्या है? ॥ ३४ ॥ जिनके सत्संगसे सुन्दर कथाओंकी स्तुति करीजाती है जिनसे सब तृष्णाओंका नाश होजाता है जहां सब जीवमात्रमें वैर नहीं है, जहाँ किसी प्रकारका उद्योग नहीं है, वही लोग वैकुण्ठगामी हैं, इस विषयमें एक दोहा है.

दोहा-तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इकअंग।
तुलहि न ताहि सकल मिल, जो सुखलव सतसंग ॥ ३५ ॥

सब संन्यासियोंको गति देनेवाले साक्षात् भगवान् श्रीमन्नारायणकी सत्कथाओंमें सब

संग जिन्होंने त्याग दियेहैं. ऐसे मुक्तसंग पुरुष वारम्वार नारायणकी स्तुति किया करते हैं। ॥ ३६ ॥ वह आपके भक्तजन तीर्थोंको पवित्र करनेकी इच्छासे सर्वत्र विश्वमें अपने चरणोंसे विचरते रहते हैं, उनके सत्संगसे संसारसे भयभीत मनुष्यकी आपमें रुचि होती है आपके भक्तोंका समागम ऐसा शुभ है ॥३७॥ हे आद्यपुरुष ! श्रीकृष्णचन्द्र ! प्यारेके सखा सुन्दर चिकित्सक तथा मृत्युके वैद्य भगवान् शिवजीके क्षणमात्रके सत्संगसे जन्म मरण असाध्यरोगके शमनकरनेवाले महावैद्यरूप आपके हम चरणको प्राप्त हुए हैं ॥ ३८ ॥ हे भगवन् ! दूसरा वरदान हम आपसे यह मांगते हैं कि, हमने जो वेद पढा है गुरु, ब्राह्मण, वृद्ध, पुरुषोंकी निरन्तर सेवा करके प्रसन्न किया है सज्जनों, मित्रों और भ्राताओंको नमस्कार किया है और किसी प्राणीमात्रसे वैर नहीं किया है उसका यह उत्तम फल है ॥ ॥ ३९ ॥ हे ईश्वर ! जो हमने अन्न तजकर चिरकालतक समुद्रके भीतर रहकर सुन्दर तप किया है, जलमें सोए सब यह भूमा पुरुषको संतुष्ट करनेके लिये हमने किया है ॥ ४० ॥ मनु, स्वायंभू,भगवान् पितामह, शिव, तपसहित ज्ञानसे विशुद्ध चित्तवाले सतोगुणी महात्मा पुरुष आपकी महिमाका पार न पाकर सदा आपकी स्तुति करते हैं ऐसेहो हमभी अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति करते हैं॥४१॥सब जीवमात्रमें समरूप, शुद्ध,परपुरुष,वासुदेव सत्त्वगुणमय जो भगवान् श्रीमन्नारायण हो,आपको नमस्कार हम वारम्वार करते हैं ॥४२॥ मैत्रेयजी बोले कि,इसप्रकार प्रचेताओंने जब भगवान् वासुदेवकी स्तुति करी तब शरणागत प्रणतपाल हरि भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले कि, "एवमस्तु" ऐसा वचन कहा और दर्शन करते करते नेत्रोंकी तृप्ति न हुई, तो प्रचेताओंने चाहा कि,भगवान् यहांसे किसीप्रकार जाय नहीं तौभी अकुण्ठित प्रभाववाले महावीर्यवान् श्रीवैकुण्ठनाथ अपने वैकुण्ठधामको,चले गये ॥४३॥ तव प्रचेता समुद्रके जलसे बाहर निकलकर चलदिये और वृक्षोंसे ढकी पृथ्वीको मानो सब ओरसे दाब देंगे ऐसे वृक्षोंको देखकर प्रचेता महाकोप करने लगे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! महाक्रोधित हो प्रचेता पृथ्वीको वृक्षविहीन करनेके लिये प्रलयकालकी कालाग्नि रुद्रके सदृश अपने अपने मुखोंसे आगसी उगलने लगे ॥ ४५ ॥ उस कालाग्निसे सब वृक्षोंको जलते हुए देखकर ब्रह्माजी वहां आये और राजा बर्हिष्मान्के पुत्रोंको उन्होंने नीतिवचनोंसे ठंडा किया ॥ ४६ ॥ और उस कालाग्निके जलनेसे जो वृक्ष बचे उन्होंने प्रचेताओंसे डरकर और ब्रह्माजीके उपदेशसे अपनी पुत्री प्रचेताओंको देदी ॥ ४७ ॥ प्रचेताओंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे वृक्षोंकी कन्याके साथ विवाह किया; इस सुदर भार्यामें प्रचेताओंके दक्ष नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, " यह दक्ष पहिले जन्ममें ब्रह्माजीका पुत्र था परंतु शिवजीके निरादर करनेके कारण उसका दूसरा जन्म क्षत्रिय कुलमें हुआ ॥ ४८ ॥ जो शरीर ब्रह्माजीका पुत्र था, वही कालकी गतिसे मृत्युको प्राप्त होकर दूसरे जन्ममें प्रचेताओंके घरमें उत्पन्न होकर यह दक्ष ईश्वरकी प्रेरणासे चाक्षुष नाम मन्वंतरमें जब प्रथम रचनामें प्राप्त हुआ, तब अपने मनके समान प्रजा रचनेलगा ॥ ४९ ॥ इस दक्षने सब तेजस्वियोंके मध्यमें अपनी कांतिसे सब पुरुषोंका तेज हरण किया और जो जन्मा उसको आपने

ग्रहण किया, दक्षतासे, चतुरतासे, सब कर्मोंमें श्रेष्ठ था, इससे इसका नाम सब दक्ष दक्ष कहनेलगे ॥ ५० ॥ प्रजाकी रक्षा करनेमें ब्रह्माजीने इसका अभिषेक करके सबका पति नियत किया, इसलिये वह दक्ष मरीचआदि प्रजापतियोंको अपने अपने काममें सदा आज्ञा करता रहताथा देखो। भगवत्की कृपा ऐसी होती है"।

भजन-सब तज हरिनाम पियारे ॥ दीनदयालु कृपालु दयानिधि, भक्तनके रखवारे ॥ पापी पतित गीध गनिकासे, कोटिन जन निस्तारे ॥ १ ॥ जहँ कहुँ कष्ट परो भक्तन पर, सुनतेही तुरत सिधारे ॥ कनककशिपुरावणसे योधा, महायुद्ध कर मारे ॥ २ ॥ द्रुपदसुताके दुःशासनने, जबही वस्त्र उतारे ॥ जाय बढाय दिये पट लाखन, खैंचनहारे हारे ॥ ३ ॥ कृपानिधान ज्ञानगुण सागर, श्रीनँद नंद दुलारे॥ गावत शालिग्राम रातदिन अद्भुत चरित तुम्हारे ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दोहा-इकतिसवें अध्यायमें, सौंप दक्षको राज।
गये प्रचेता विपिनको, मोक्षमार्गके काज॥

मैत्रेयजी बोले कि, जब राज्यकाज करते करते और संसारके सुख भोगते सहस्रों वर्ष बीतगये तब प्रचेताओंके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न हुआ और भगवद्वचनका शीघ्र स्मरण कर पुत्रोंपर अपनी स्त्रीको छोड संन्यास ले दंड धारणकर घरसे वनको चलदिये ॥ १ ॥ सब प्राणिमात्रमें जिनका आत्मज्ञान है, सो ब्रह्मयज्ञमें दीक्षित होकर पश्चिम दिशामें समुद्रके तीरपर जिस आश्रममें जाजलि नामक, ऋषि सिद्ध हुएथे वहां जाकर तप करना आरंभ किया ॥ २ ॥ प्राण, मन, वचन, जीत, दृष्टिको वशमें कर, दृढ आसन लगाय, शांत-समान विग्रह हो, निर्मल परब्रह्ममें आत्माको निश्चित कर, तहां कुछ काल व्यतीतकिया, तो भ्रमण करते २ नारदजी वहां आये कि जिनकी देवता और दैत्य नित्य स्तुति किया करते हैं ॥ ३ ॥ नारदजीको आता देखकर प्रचेताओंने उठकर दंडवत् प्रणाम किया और आदरसत्कारसे यथायोग्य पूजन करके सुखसे बैठेहुए नारदजीसे प्रचेताओंने कहा ॥ ॥ ४ ॥ प्रचेता बोले कि, हे देवर्षे! आज आपका आना बहुत अच्छा हुआ, धन्य है हमारा भाग्य जो आपने मंगलमय दर्शन हमको दिया. हे ब्रह्मन्! जैसे सूर्यका आगमन अभयके लिये है, ऐसेही आपभी त्रिलोकीका भय दूर करनेके लिये विचरतेहो ॥ ५ ॥ हे प्रभो! शिवजीने और विष्णु भगवानने जो ज्ञान हमको दियाथा, वह सब ज्ञान हम घरके प्रसंगमें आसक्त होकर भूल गये ॥ ६ ॥ इसलिये वह अध्यात्मज्ञान हमसे कहो, जिससे तत्त्वअर्थका दर्शन होय, जिन ज्ञानसे इस महादुस्तर संसारसागरको सहजमें हम पार उतर जाँय ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान्नारदमुनिकी प्रचेताओंने जब इसप्रकार स्तुति की

तब महाकीर्तिवान् भगवान् नारदजी उत्तम श्लोकोंमें जिनकी आवेशित आत्मा, सो प्रचेताओंसे बोले ॥ ८ ॥ नारदजी बोले कि, इस विश्वमें विश्वके आत्मा विश्वनाथ भगवान् वासुदेवकी सेवा जिनसे बनसके उन्हीं पुरुषोंका जन्म, कर्म, आयु, मन, वचन सफलहै.

दोहा-सोइ मन है जो कृष्णपद, छाँडि अंत नहिं जाय।
वचन सफल सोइ जानिये, जिसमें यश यदुराय ॥ ९ ॥

अपने स्वरूपके उत्पन्न करनेवाले ईश्वरकी सेवा और उनका आत्मज्ञान होसके तौ शौक्र (शुद्ध मातापितासे प्रथम जन्म) सावित्र (यज्ञोपवीत होनेसे दूसरा जन्म) और याज्ञिक (यज्ञकी दीक्षा लेनेसे तीसरा जन्म) इन तीन प्रकारके जन्म होनेसे क्या फल हुआ? क्या प्रयोजन निकला? और देवताओंकी समान आयु होनेसे भी क्या लाभ हुआ ॥ १० ॥ अनेक शास्त्र सुननेसे, तप करनेसे, वाणीके वाक्य विलाससे, चित्तकी वृत्तियोंके वश करनेसे, निपुण बुद्धिसे, जितेंद्रिय मनसे ॥ ११ ॥ प्राणायाम आदि योगसे, सांख्य शास्त्रके ज्ञानसे, संन्यासमतके लेनेसे, वेदपाठके करनेसे और श्रेय मांगलीक कृत्य करनेसे, क्या होता है? जो आत्माके प्रसन्न करनेवाले भगवान् वासुदेवही प्रसन्न न हुए तो इन साधनोंसे कुछ नहीं होता ॥ १२ ॥ सबका सिद्धांत यह है कि, सब शुभाचरणोंसे भगवान् प्रसन्न होते हैं और जीवमात्रके हरिही आत्मा हैं और फलोंमें प्रधान और अंतिम, फल केवल आत्माही है और सब पदार्थ आत्माहीके लिये हैं, सब जीवमात्रमें जो आत्मा है, वही परमात्मा है, जो परमात्मा सब अविद्याका विनाश करके निजस्वरूपको प्रकाशित करताहै, वही आनंदका दाता सबका प्रिय है इसलिये परमात्माकी सेवा और आत्मज्ञान होवे तो सब सफल है ॥ १३ ॥ जैसे वृक्षकी जडमें जल सींचनेसे उस वृक्षके गूदे, शाखा, उपशाखा, फूल, फल, पत्रादि सब तृप्त होजाते हैं ऐसे मुखद्वारा भोजन करनेसे प्राणरूप हो सब इन्द्रियोंकी तृप्तिको करताहै, ऐसेही अच्युत भगवान्‌की पूजा करनेसे, सब देवतामात्रकी पूजा होजातीहै ॥ १४ ॥ जैसे वर्षाऋतुमें जल सूर्यसे उत्पन्न होताहै और ग्रीष्मऋतुमें समय पाकर वह जल सूर्यहीमें लय होजाताहै; ऐसेही भूमिमें जितने जीवमात्र हैं, वह और जो स्थावर जंगम हैं, सब संसार श्रीनारायणमें लीन होजातेहैं ॥ १५ ॥ यह जो विश्व है सो परमात्माका सर्व उपाधिरहित स्वरूप है, क्योंकि यह सब जगत् उसी परमात्मासे उत्पन्न हुआ है, इसलिये यह जगत् उससे भिन्न नहीं है, जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्यसे भिन्न नहीं है ऐसेही जगत् परमात्मासे भिन्न नहीं है, जैसे आकाशमें गंधर्वनगर किसी समय दृष्टि आजाताहै, ऐसेही परमात्मामें जगत् किसीसमय स्वरूपज्ञान रहनेसे दीखजाता है, जैसे जाग्रत् अवस्थामें सब प्राण इन्द्रिय स्पष्ट दृष्टिमें आती हैं, परंतु सुषुप्ति अवस्थामें उन सबकी शक्ति निर्बल होजातीहै ऐसेही अज्ञानके समय जगत् दृष्टि आता है परंतु ज्ञान होनेसे उसका किंचिन्मात्रभी चिह्न नहीं रहता, पंचभूत इन्द्रियें और उनके देवताओंका भेद, भ्रम, दिव्य, क्रिया, ज्ञान वह सब भगवान्‌के स्वरूपमेंही उत्पन्न हुए हैं, इसलिये

भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान होनेसे ये सम्पूर्ण भ्रम दूर होजाते हैं ॥ १६ ॥ हे प्रचेताओ ! आकाशमें जैसे मेघमंडल कभी तमरूप कभी प्रकाशरूप दिखाई देते हैं और फिर पीछे उसीमें लय होजाते हैं, इसीप्रकार ब्रह्ममें अज्ञानदृष्टिसे यह रज, तम, सत्त्व, देखनेमें आतेहैं जब ज्ञान दृष्टिसे देखाजाय तो कुछभी दिखाई नहीं देता, इसीप्रकार इस संसारका प्रवाह है, ज्ञानसे लीन और अज्ञानसे फिर भासने लगते हैं ॥ १७ ॥ इसलिये सब जीवमात्रमें एक आत्मा, सब देहधारियोंमें काल प्रधान पुरुष, परेश अपने तेजसे सबके कारण है, जिनके सत्यस्वरूपका ज्ञान होनेसे, संसारका प्रवाह कभी देखनेमें नहीं आता ऐसे परमात्माको दृढभावसे अपना आत्मा समझकर परोक्षरीतिसे साक्षात् उसका भजन करो ॥ १८ ॥ और संकल्प विकल्प अद्वय जिससे दूर होय, द्वय आत्मवाद जिसमें उपराम होय, ऐसे अनादि, मध्य, अंत, निरंतर, आनंदमात्र ज्ञानघन परमात्माको इस दिव्यदृष्टिसे भजो ॥ १९ ॥ सब जीवमात्र पर तो दया करो और जो कुछ मिले उसीमें संतोष रक्खो और सब इन्द्रियोंको शांत रखनेसे, जनार्दन भगवान् शीघ्र प्रसन्न होतेहैं ॥ ॥ २० ॥ लोक, धन और पुत्रकी तृष्णा सब जिस शरीरमेंसे दूर होगई, ऐसे निर्मल अंतःकरणमें निरंतर वर्द्धित भावनासे बुलाये हुए, निज जनोंके वशमें रहे जो व्यापक आत्मा छिद्रवत् अक्षर ब्रह्म भक्तोंके हृदयमेंसे कभी अलग नहीं होते ॥ २१ ॥ जिनकी बुद्धि निंदित है उनकी करीहुई पूजाकोभी भगवान् ग्रहण नहीं करते, वह तो निर्धनके धन दाता, श्रीकृष्णचंद्र गिरिधारी भक्तहितकारी परम रसज्ञ हैं. श्रुत, धन, कुल, कर्मके मदसे जो महानिष्किंचन भगवद्भक्तोंका तिरस्कार करते हैं और उनको त्यागे हैं "जैसे एकसमय दुर्योधन श्रीकृष्णचंद्रका निमंत्रण कर आये और घरपर आनकर रसोई बनानेवालोंसे बोले कि, ऐसा स्वादिष्ठ भोजन बनाना जो श्रीकृष्णने कभी न खाया होय, थोडी देर पीछे श्रीकृष्णको विदुरजी आकर निमंत्रण करगये, तब श्रीकृष्ण दुर्योधनके घर तो न गये परंतु विदुरके घरपर पहुँचे, विदुराणी महाराणीने घरमें बैठाकर बहुत आदर सन्मान किया और वृन्दावनविहारीकी मनोहर छवि देखकर ऐसी मग्न हुई कि, कुछ सुधि न रही और भोजनभी कुछ न बनासकी; परंतु केलेकी फली रक्खीथी उनहीको छील छील खिलाने लगी, बेसुधि तो थीही, केलेकी फलियोंके छिलके छिलके तो श्रीकृष्णचंद्रको खिलाती जातीथी और सुंदर सुंदर गूदा बगेलती जातीथी, विदुरजी देखकर बोले कि, हे प्रिये ! तुझे क्या होगया, जो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण हैं उनको फलियोंके छिलके खिलारहीहै और गूदा पृथ्वीपर डालरहीहै, तब भगवान् बोले कि, हे विदुर ! जो स्वाद छिलकोंमें है वह इन गहलोंमें नहीं क्योंकि तुम तो उपायांतर बुद्धिसे मुझको फली खिलातेहो, और विदुराणीके उपायांतर बुद्धि नहीं है, यह कह आचमन कर बाहिर निकले सो देखे तो सन्मुखसे दुर्योधन आतेहैं और आनकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले कि, पुंडरीकाक्ष ! भीष्म, द्रोण अरु मुझको परित्याग करके विदुर शूद्र दासीपुत्रके घर जाकर फलाहार किया, धन्य है आपको, श्लोकः " भीष्मं द्रोणं परित्यज्य मां चैव मधुसूदन । किमर्थं पुण्डरीकाक्ष कृतं

वृषलिभोजनम्'' यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले कि, भगवद्भक्त शूद्र नहीं होते, विप्र हैं भागवत कहलातेहैं, सब वर्णोंमें वह शूद्र हैं जो जनार्दनके भक्त नहीं हैं श्लोक ''न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः । सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ता जनार्दने'' ॥ २२ ॥ अपनी सेवा करनेवाली श्रीमहालक्ष्मी और लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाले ब्रह्मादिकोंको, राजाओंको, अथवा देवताओंको, सबको त्यागतेहैं, अब अपनेहीसे पूर्ण हैं, निज भृत्यस्वरूपमें प्रसन्न रहते हैं, ऐसे परमेश्वरको कौन कृतज्ञ पुरुष त्यागसक्ता है अर्थात् कोई नहीं त्याग सक्ता ॥ ॥ २३ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि, इसप्रकार चतुराननके पुत्र देवर्षि प्रचेताओंको यह आख्यान और इसके अतिरिक्त औरभी अनेक कथा सुनाकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २४ ॥ और प्रचेताभी नारदजीके मुखसे त्रिभुवनके पापनाशक श्रीनारायणका सुयश सुनकर उनके चरणारविन्दका ध्यान करते करते मोक्षको प्राप्त होगये ॥ २५ ॥ हे विदुरजी ! जिसमें श्रीनारायणका वर्णन है सो प्रचेता और नारदजीका संवादरूप आख्यान जो तुमने मुझसे बूझाथा, सो मैंने प्रीतिसहित तुमसे कहा ॥ २६ ॥ शुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार स्वायंभुव मनुके पुत्र राजा उत्तानपादका वंश तुमको मैंने सुनाया, अब हे नृपसत्तम ! अब राजा प्रियव्रतके बंशका वर्णन करताहूँ सो तुम सुनो ॥ २७ ॥ जो राजा प्रियव्रत नारदजीसे आत्मविद्या सीखकर फिर पृथ्वीपर आये और अंतसमय सब पृथ्वीका राज्य अपने पुत्रोंको विभाग कर परमेश्वरके परमधामको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ श्रीमैत्रेयजीसे वर्णित श्रीकृष्णचंद आनंदकंदकी यह सत्कथा विदुरजी सुनकर भक्तिकी वृद्धिके प्रभावसे अश्रुविन्दु नेत्रोंसे वहानेलगे और मैत्रेयजीके चरणारविंदोंको शिरपर और श्रीकृष्णचंद्रके पदांबुजोंको हृदयमें धारण किया ॥ २९ ॥ विदुरजी बोले कि, हे महायोगिन् ! हे महामुने ! मैत्रेयजी महाराज ! ! हे दीनदयालु ! ! ! करुणाकर ! ! ! ! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, आपने अपना अनुग्रह करके आज यह अंधकारसे पार करनेवाला मार्ग मुझको दिखादिया, जहाँ किसी वस्तुकी कांक्षा नहीं, जिससे विरक्त पुरुषोंको जीवनमूल भगवान् वासुदेवके स्वरूपका मुझे ज्ञान हुआ ॥ ३० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पांडुकुलभूषण ! शांतचित्तवाले विदुरजी इसप्रकार महामुनि मैत्रेयजीको नमस्कार कर, उनसे आज्ञा ले अपने सुहज्जनोंके देखनेकी अभिलाषासे विदुरजी हस्तिनापुरको गये ॥ ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णचंद आनंदकंदके चरणारविन्दमें जिनका चित्त लगाहुआ है, ऐसे राजाओंके चरित्र जो सुनतेहैं वह आयु, धन, यश, कल्याणदायक गति और ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं, क्योंकि वह राजा परमभक्त थे और श्रीभगवान्के नामका निशिवासर ध्यान करतेथे और उसीको वेदका सार समझ, संसारको स्वप्नवत् मानते थे, इसलिये जो हरिके भक्त हैं वही इस संसारमें धन्य हैं.

भजन-धन धन रामभक्त सुखखानी ॥ वाल्मीक नारद घटयोनी, अम्बरीष विज्ञानी । विश्वामित्र व्यास सनकादिक, हरिश्चन्द्रसे दानी ॥

ध्रुव प्रह्लाद सुदामा द्विजने, पायो पद निर्वानी । जगत्माहिं विख्यात आजलों, जिनकी अकथ कहानी ॥ ब्रह्मा शेष गणेश अत्रि शुक, शंकर और भवानी । निशिदिन रटत पार नहिं पावत, थकित भई निजवानी ॥ आदिब्रह्म अद्वैत निरंजन, श्रीधर शारँग पानी । अपने मुख अपने भक्त-नकी, महिमा आप बखानी ॥ भक्तहेत अवतार धार हरि, हरे असुर अभिमानी । शालिग्राम भक्तजन महिमा, भक्तोंहीने जानी ॥

दोहा-वसु वेद ग्रह चन्द्रमा, संवत सरल विचार ।
कार्तिक शुक्ला सप्तमी, सुखदायक शशिवार ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे प्राचेतसोपाख्यानवर्णनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ चतुर्थस्कन्धः समाप्तः ॥

इति चतुर्थस्कंध समाप्त ।

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.

श्रीमद्वेंकटेशो विजयतेतराम् ।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा ।

पंचमस्कन्ध ५.

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस--बंबई.

जडभरत और रहुगणराजा,

सुखसागर ।
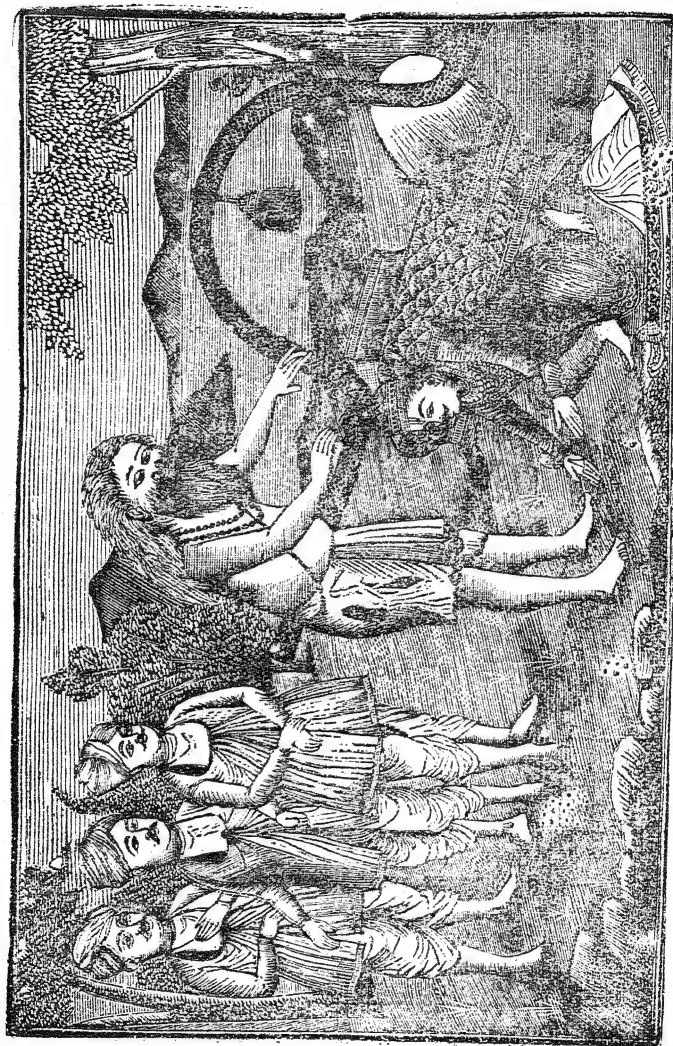
अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

पंचम स्कन्ध ।

दोहा-अजर अमर अव्यक्त अज, अविनाशी अविकार।
अलख अचिन्त्य अनादि अज, आर्त अनीहाधार ॥ १ ॥
सोरठा-हे व्रजेश व्रजचन्द, नन्दनँदन वसुदेवसुत।
यशुमतिके सुखकन्द,हरहु मोर दुखद्वन्द्व सव ॥ १ ॥
श्रीगोविन्द गोपाल, गोपीवल्लभ गोपपति।
कीजे कृपा कृपाल, कंसारी कालीदमन ॥ २ ॥
हे प्रभु सर्वाधार, कनअँगुलीपर धार गिरि।
ज्यों व्रज लियो उबार, ऐसेहिं मोहिं उबारिये ॥ ३ ॥
ज्यों वारनकी वार, वार न कीनी एक पल।
ऐसेहि मोहिं उबार, वारंवार विनती करों ॥ ४ ॥

प्रथमोऽध्यायः ।

प्रियव्रतका राज्यभोग करना और फिर ज्ञानमें निष्ठ होना.

राजा प्रियव्रतका प्रथम आत्मज्ञान, फिर गृहस्थ आश्रममें अनुराग तिसके पीछे सब संगको छोड छाँड कर मोक्षके पानेकी कथा सुनकर राजा परीक्षित् विस्मयचित्त होकर

श्रीशुकदेवजीसे बोले-कि हे मुने ! महात्मा प्रियव्रत परम भागवत थे इससे तो उनकी रति आत्मामें ही हो सक्ती है, सो वह किसप्रकारसे गृहस्थाश्रममें रत हुएथे ? यह आश्रम दोषरहित नहीं है। क्योंकि यह कर्मसे बँधाहुआ है और अपने २ रूपके तिरस्कारका मूल है ॥ १ ॥ और गृहस्थाश्रममें रति उसके विषयमें अभिनिवेश करनेसे होती है। सो मुक्तसंगी भागवत पुरुषोंका तो कभी घरमें अभिनिवेश होही नहीं सक्ता ॥ २ ॥ कुटुंबकी लालसा करनेवाली बुद्धि होनेसे गृहस्थाश्रममें सत्य २ रति होती है, परन्तु जो पुरुष महान् हैं, उनके चित्त सदाही भगवान्के चरणारविन्दोंकी छायामें लगे रहते हैं फिर भला ऐसे पुरुषोंकी कुटुम्वकी ओर लालसा होनेवाली बुद्धि कैसे होसक्ती है ? ॥ ३ ॥ और हे ब्रह्मन् ! राजा प्रियव्रतने पुत्र कलत्र और गृहादिमें अनुरागी होकर जो सिद्धि पाई और भगवान्में उसकी अचल भक्ति हुई, इसका भी मुझे एक बडा भारी संदेह है कि, गृहस्थाश्रममें आसक्त पुरुषको किस प्रकारसे सिद्धि और भगवान्की अचल भक्ति मिल गई थी ? ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सत्य तो यह है कि, भगवान्के चरणारविन्दमकरन्दके रसमें जिन पुरुषोंका चित्त लगा हुआ है, वह भगवत्की कथाको ही अपनी परममंगलकी पदवी समझते हैं। और जो कदाचित् इसमें किसी प्रकारका विघ्न भी पडजाय तो भी वह इसको परित्याग नहीं करते यह बात बहुतही यथार्थ है ॥ ५ ॥ तात्पर्य यह है कि, उन मनुजीने अपने पुत्र प्रियव्रतको राजनीतिमें कहे हुए सब प्रधान २ गुणोंका आश्रय जानकर इसको पृथ्वीका पालन करनेमें नियुक्त करना चाहाथा परंतु इन राजपुत्रने राज्यभारको ग्रहण नहीं किया, हे राजन् ! प्रियव्रतके राज्यभार न लेनेका कारण यह है कि, वह परमभागवत थे । और देवर्षि नारदजीके चरणोंका आराधन करनेसे उनको आत्मतत्त्व भलीभाँति ज्ञात होगया था, उससे उन्होंने मनमें विचाराथा कि, आत्मध्यानरूपकार्य के द्वारा नियम ग्रहण करेंगे और उन्होंने पहले ही चित्तको एकाग्र करके भगवान् वासुदेवको अपनी सब इन्द्रियोंका क्रियाकलाप अर्पण कर दिया था, महाराज ! यद्यपि पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करना बडा अनुचित है, तथापि प्रियव्रतने यह विचार किया था कि, राज्याधिकार मिथ्या है और राज्यके प्रपंचसे पराभव होनेकी संभावना है. इसकारणसे प्रथम उन्होंने राज्यका भार लेना नहीं चाहा था ॥ ६ ॥ परन्तु भगवान् आदिदेव ब्रह्माजी सब मूर्तिमान वेद और मरीचि आदि समस्त निज जनोंके साथ अपने भवन सत्यलोकसे उतरे । हे राजन् ! जैसे राजदूत लोगोंके द्वारा अपने अधीनस्थ मंडलेश्वर राजाओंके अभिप्रायको जानता है, वैसेही गुणमय सृष्टिकी बढानेवाली चिन्ताके द्वारा ब्रह्माजी समस्त जगत्का अभिप्राय निश्चय करते हैं,सो वही ब्रह्माजी प्रियव्रतका वृत्तान्त जानकर नारदजीके निकट जानेको अपने लोकसे उतरकर आनेलगे॥ ७॥सत्यलोकसे उतरनेके समय स्थान२में चंद्रमाकी समान उनकी ज्योति प्रकाशित हुई और मार्गही मार्गमें देवतालोग उनकी पूजा करते हुए और सिद्ध, साधक, गंधर्व, चारण और मुनि इत्यादि यशका बखान करने लगे. ब्रह्माजी इस प्रकार पूजा प्राप्त करते २ अपनी द्युतिसे गन्धमादन पर्वतकी गुफाओंको

प्रकाशित करते प्रियव्रतके पास वहाँ पहुँचे ॥ ८ ॥ उसीसमय गन्धमादन पर्वतकी गुफामें नारदजी प्रियव्रतको आत्मविद्याका उपदेश कररहे थे और मनुजी अपने पुत्र प्रियव्रतको लेनेके लिये वहां आये थे। हंसकी सवारीको देखते ही नारदजीने जानलिया कि, हमारे पिता भगवान् ब्रह्माजीका आगमन हुआ इसलिये मनु और प्रियव्रतके साथ हाथ जोडकर उसीसमय उठ खडे हुए और पूजाकी सामग्री हाथमें लेकर ब्रह्माजीकी स्तुति करनेलगे ॥ ९ ॥ हे भारत ! उसके पीछे पूजाकी सामग्री उनके सामने रखकर फिर मीठे वचनोंसे उनके गुण व यश और सर्वोत्कृष्टताके विषयका वर्णन करते हुए इसलिये ब्रह्माजी दयाप्रकाश करके कुछ एक हँसे और कृपादृष्टिसे प्रियव्रतकी ओर देखकर कहा ॥ १० ॥ ब्रह्माजी स्नेहसहित बोले कि, हे तात ! जो मैं कहूं सो सुनो, सत्यस्वरूप अप्रमेय भगवान्‌में आरोप करके दोष देखना उचित नहीं क्योंकि हे वत्स ! तुम, तुम्हारे पिता तुम्हारे गुरु यह महर्षि नारद और हम सब ही अवश होकर जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं ॥ ११ ॥ कोई देहधारी तपस्या अथवा विद्या वा योगसे अथवा समाधिके बढाये हुए बलसे अपने आप, वा दूसरेके आश्रयसे बरन् किसी प्रकारभी उस परमेश्वरकी आज्ञाको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं है और अर्थ व धर्मसे भी उसके किये कार्यको अन्यथा करनेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ १२ ॥ हे प्रियव्रत ! सब लोकोंमें उत्पत्ति नाश, शोक, मोह, भय, सुख, दुःख इन सबके निमित्त कर्म करनेको परमेश्वरका दियाहुआ यह देह सबही जीव धारण करते हैं उसके अन्यथा करनेमें किसीको भी कुछ सामर्थ्य नहीं है ॥ १३ ॥ हे वत्स ! कर्म करनेमें भी किसीको स्वाधीनता नहीं है, हम परमेश्वरकी वाणीरूपी रस्सीमें सत्त्वादि गुणपूर्वक जो सब कर्म हैं, उनके निबन्धनसे ब्राह्मणादि शब्द-द्वारा बंधकर सब उस परमेश्वरकी ही पूजा करते हैं अर्थात् उनको ही बलि देते हैं इस कारण बैल इत्यादि चौपाये जिस प्रकार नाथके नाकमें पडनेसे द्विपद मनुष्योंकी इच्छासे उनके लिये कर्म करते हैं वैसेही हम सबभी परमेश्वरकी इच्छासे उनके लिये कर्म किया करते हैं॥ १४॥ वत्स ! जैसे आँखोंवाला पुरुष अन्धेको छाया अथवा धूपमें जहां चाहै, लेजाय वहांही उस अंधेको जाना पडता है ऐसेही परमेश्वर हमारा प्रभु है, वह अपनी इच्छासे हमारे लिये पशु, पक्षी अथवा मनुष्यका जो कोई भी देह देदेता है हम लोग उसको ही अंगीकार करके सुख व दुःख भोग किया करते हैं सुख दुःख गुण कर्मके संग हेतुसे वही ईश्वर देता है। अर्थात् बैल इत्यादि जैसे किसानके देनेपरही घास आदि खानेको पाते हैं, अपनी इच्छासे खानेको नहीं पासक्ते. वैसेही हम लोग भी परमेश्वरका दिया हुआ सुख व दुःख भोग करते हैं, हमारी इच्छासे कुछ भी नहीं हो सक्ता ॥ १५ ॥ निद्रासे उठे हुए पुरुषोंको स्वप्नमें देखे हुए पदार्थका केवल स्मरण मात्र रहनेसे अभिमान शून्य होकर प्रारब्धके कर्मभोग करते हुए देह धारण करना पडता है परंतु उनको दूसरी देहके संबंधी गुण वा कर्म अथवा वासना नहीं रहती, क्योंकि ईश्वरकी इच्छामें कर्मोंका भोगना केवल अज्ञानीके लिये ही नहीं बरन् ज्ञानीकोभी उसकी इच्छासे कर्मभोग भोगना पडता है चाहै

जीव मुक्तभी होजाय परंतु जबलों प्रारब्ध कर्म रहेगा, तबलों निज शरीरको तो अवश्य धारण करना पडेगा ॥ १६ ॥ सो उस स्थलमें मनमें ऐसा मत समझ लेना कि, घरमें रहकर इस लोकका भोग करनेपर अभिमानका त्याग वा मोक्षकी संभावना नहीं रहती. अतएव घरका त्याग करनाही ठीक है । वत्स ! जो पुरुष असावधान है और उसने अपनी इन्द्रियें नहीं जीती हैं वह पुरुष यदि संगके भयसे एक बनसे दूसरे वनमें भागा २ फिरे तो उसको वनसेभी भय होसक्ता है क्योंकि वह पुरुष बुद्धि और पांचों इन्द्रियें इन छः दुश्मनोंके साथ मिलाहुआ है, परन्तु जिसने इन्द्रियोंको जीत लिया है और आत्मामेंही जिसको रति उत्पन्न हुई है, उसके लिये गृहाश्रम क्या अनभल कर सक्ता है ? ॥ १७ ॥ वत्स प्रियव्रत ! जो पुरुष इन छैः शत्रुओंको जीतना चाहै तो प्रथम उसको घरमें ही रहकर इन सबकी गति रोककर जयके लिये प्रयत्न करना चाहिये, जब रिपु दुर्बल होजावें तब पीछे घरमें वा और कहीं घूमें क्योंकि मनुष्य किलेका आश्रय करनेहीसे बलवान् वैरीको विजय करते हैं पश्चात् जैसी इच्छासे दुर्गमें अथवा और कहीं निवास करें ॥ १८ ॥ हे वत्स ! यह गृहरूपी दुर्गका आश्रय प्राकृत लोगोंके लियेही जानना, तुम सरीखोंके लिये नहीं है, तुमने भगवान् वासुदेवके चरण कमलरूपी दुर्गका आश्रय कियाहै, तिससे यद्यपि तुमने अपने छैः शत्रुओंको जीत लियाहै, तथापि जबतक देह रहै तबतक ईश्वरके दियेहुये सब भोगोंको भोगकर फिर संग परित्याग करके अपने अपने रूपोंकी भजन करना, अर्थात् आत्मनिष्ठ होजाना ॥ १९ ॥ महर्षि शुकदेवजी इतनी कथा वर्णन करके राजा परीक्षित्से बोले कि, हे महीपाल ! महाभगवद्भक्त प्रियव्रत ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर मनमें विचारने लगे कि, हम एक क्षुद्रप्राणी हैं सो हमको त्रिभुवननाथ ब्रह्माजी ऐसा भला उपदेश देते हैं, उनको शिर झुकाकर बोला "जो आपकी आज्ञा है मैं वही करूंगा" यह कहकर ब्रह्माजीकी आज्ञा मानी ॥ २० ॥ ऐसा होनेसे मनुजीको बहुत ही संतोष प्राप्त हुआ, उन्होंने आनंदित चित्तसे यथाविधि ब्रह्माजीकी पूजा की, ब्रह्माजी उसको ग्रहण करके प्रियव्रत और नारदजीके सामनेही अपने लोकको जो मन और वाणीके अगोचर होनेसे व्यवहारशून्य हैं जानेके लिये अंतर्धान होतेहुये ब्रह्माजीने मनमें समझाथा कि, प्रियव्रतका योगभ्रष्ट होनेसे और नारदजीका एक शिष्य निकल जानेसे, यह दोनों जन जानेके समय हमें क्रोधकी दृष्टिसे देखैंगे परन्तु ऐसा नहीं हुवा बरन् प्रियव्रत व नारदजी एकटक लोचनसे ब्रह्माजीको देखते रहे । प्रियव्रतको योगसे हटाकर ब्रह्माजीका कार्य जब सिद्ध हुवा तब ब्रह्माजीके हृदय निवृत्तिको फिर संसारमें लगा देनेसे विषाद हुवा था ॥ ॥ २१ ॥ मनुजीने अपने मनमें यह अभिलाष किया था कि, पुत्रके हाथमें राज्य का भार सौंपकर वनको चले जायंगे सो भगवान् ब्रह्माजीसे उनका मनोरथ सिद्ध होनेपर वह नारदजीकी संमतिसे समस्त भूमंडलका पालन और रक्षा करनेके लिये अपने पुत्रको अभिषेकित करके विषम विषमय संसारकी भोगवासनासे विरत हुये ॥ २२ ॥ प्रियव्रतने यद्यपि जिन भगवान् आदिपुरुषके प्रभावसे सब जगत्के बंधन कट जाते हैं उनके दोनों

चरणोंका नित्य प्रति ध्यान करनेसे सब रागादिक मलोंको जला डाला था और शुद्धचित्त होगये थे, तथापि आज्ञाका पालन करनेसे ब्रह्माजीका मान बढानेके लिये उन्होंने पृथ्वी-पति होकर पृथ्वीका पालन आरंभ किया, हे महाराज ! यद्यपि प्रियव्रत निवृत्ति मार्गका पथिक था तथापि ईश्वरकी इच्छासे फिर उसको कर्मका अधिकार प्राप्त हुवा ॥ २३ ॥ जब कुछ समय प्रियव्रतको राज्य करते करते बीतगया तो उन्होंने प्रजापति विश्वकर्माकी कन्या बर्हिष्मतीके साथ विवाह किया, इस स्त्रीके गर्भसे दश पुत्र हुए और ऊर्ज्जस्वती नाम एक कन्या उत्पन्न हुई और दशों पुत्र राजा प्रियव्रतकेही समान रूप गुण शील वीर्य और कर्म द्वारा उदार हुये. कन्या उन सबसे छोटीथी ॥ २४ ॥ हे राजन् ! प्रियव्रतकेही इन दश पुत्रोंके यह नाम हुये यथा–आग्नीध्र १ इध्मजिह्व २ यज्ञबाहु ३ महावीर ४ हिर-ण्यरेता ५ घृतपृष्ठ ६ सवन ७ मेधातिथि ८ वीतिहोत्र ९ और कवि १० अग्निके नाम परही इन सबके नाम थे ॥ २५ ॥ इन दश पुत्रोंमेंसे कवि, महावीर और सवन, यह तीन पुत्र तो निष्ठावान् ब्रह्मचारी हुये, उन्होंने बालकपनसे आत्मविद्यामें परिश्रम करके परम-हंस आश्रममें प्रवेश किया था ॥ २६ ॥ वह तीनों जन महाज्ञानी और शांतस्वभाव हुये जो सब जीवसमूहके निवासभूत और भयभीत जनोंके रक्षा करनेवाले उन सच्चिदानंद मुकुन्दके चरणारविंदका स्मरण करके अखंडित भक्तियोगके प्रभावसे अपने अतःकरण भली भाँतिसे शुद्ध कर लियेथे, तब उनके उन अंतःकरणोंमें सब भूतोंके आत्मा भगवान् के प्रतिष्ठित होनेसे देहादि उपाधिसे रहित होकर तादात्म्य (भगवद्रूपता) को प्राप्त हुये ॥ २७ ॥ हे राजन् ! प्रियव्रतके एक और दूसरी रानी थी उससेभी तीन पुत्र उत्पन्न हुये यथा–उत्तम, तामस और रैवत, यह तीनों पुत्र मन्वंतरोंके अधिपति हुये ॥ २८ ॥ इस प्रकार तीन पुत्रोंने जिसके शांति पाई, इसी प्रकार महात्मा प्रियव्रतने ग्यारह अर्बुद वर्षतक पृथ्वीका पालन किया, उस राजामें दौर्दण्ड अखंडनीय बल परिपूर्णथा, वह राजा पूर्णबलसे धनुषकी टंकार करता तो विना युद्धकेही धर्मका विपक्ष करनेवाले सबही पुरुषोंका नाश करदेता, उसका भोग विलासभी थोडा नहीं था. परम प्यारी बर्हिष्मती नारीके साथ प्रतिदिन आमोद प्रमोदादि द्वारा मानो उसने विज्ञान और विवेकको पराजित करदियाथा। इस कारण वह विषयमें आसक्त करनेके लिये भोग विलास करनेके समय ऐसा प्रतीत होता मानो आत्माको भूल गया हो ॥ २९ ॥ एक समय भगवान् सूर्य जब कि, सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करके लोकालोक पर्वततक प्रकाश कररहे थे उनका आधे भूमण्डलमें प्रकाश था और आधी पृथ्वीपर अँधेरा छा रहाथा, तब उस समय इस राजाने सूर्यकी ओर दृष्टि करके विचार किया कि, भगवान् सूर्य सुमेरु पर्वतकी परिक्रमा करके लोकालोक पर्वततक प्रकाश करते आधी पृथ्वीको प्रकाशित कर रहे हैं और आधी धरापर अन्धकार छा रहा है, यह बात तो कुछ भली नहीं इसलिये इस विषयमें अप्रसन्नता प्रकाश करके प्रतिज्ञा की कि, हम अपने प्रभावसे रात्रिकोभी दिन करेंगे । यह विचार सूर्यकी समान वेगवान् अपने ज्योतिर्मय रथपर आरूढ होकर दूसरे सूर्यकी भाँति सातवार सूर्यके चारों

ओर घूमा । हे राजन् ! प्रियव्रतने जो ऐसा आचरण किया सो इसको कोई असम्भव न समझे, क्योंकि भगवान्‌की भक्ति करनेसे उनका अलौकिक प्रभाव वर्द्धित हुवा था । परन्तु जिस समय कि, राजा प्रियव्रत ऐसा कर रहे थे, उसी समय चतुर्मुख ब्रह्माजीने उनके निकट आकर उनको इस कार्यसे निवारण किया और कहा कि, हे वत्स ! यह तुम्हारा अधिकार नहीं है ॥ ३० ॥ पृथ्वीनाथ प्रियव्रतके रथके पहियोंसे जो सात गढ़े पड़गये थे, वही सात समुद्र हुए और उन्हीं समुद्रोंसे पृथ्वीके सात द्वीप हुए ॥ ३१ ॥ उन सात समुद्रोंसेही जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप; यह पृथ्वीके सात द्वीप बने. हे राजन् ! अब इन सब द्वीपोंका प्रमाण सुनो, यह सातों द्वीप क्रमशः एक दूसरेके प्रमाणसे दूने हैं और समुद्रके बाहरी भागमें चारोंओर बनाये गये हैं ॥ ३२ ॥ जिसप्रकार सब समुद्रके बाहरी भागोंमें एक एक द्वीप हैं, इसी प्रकार सब द्वीपोंके बाहर एक एक समुद्र अर्थात् खारी जल, इक्षुरसजल, सुराजल, घृतजल, दधिजल, दुग्धजल और शुद्धजल; यह सात समुद्र सातों द्वीपोंकी माना परिखा होगये हैं । यह सब द्वीप जो कि, समुद्रोंसे घिरेहुए हैं सो इनका प्रमाण ऐसा है कि, उसकेही तुल्य यथाक्रमसे पहिले एक समुद्र, फिर उस एक समुद्रके परे एक द्वीप समुद्रके परिमाणका, यह सब सागर अलग अलग असंकीर्णरूपसे बाहरी भागमेंही व्याप्त हो रहे हैं भीतर नहीं फैले हैं सो राजा प्रियव्रतने यह सात द्वीप अपने तुल्य चरित्रवान् सात पुत्रोंको अर्थात् आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि, वीतिहोत्र नामक सात पुत्रोंको एक एक द्वीपका राजा बनाया ॥ ३३ ॥ उनके ऊर्ज्जस्वती नामक जो एक कन्या थी उसका विवाह शुक्रसे हुआ उसकेही गर्भसे देवयानी नामक शुक्रकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! जो सब पुरुष भगवानके भक्त हैं और उन्होंने भगवान्‌के चरणकी रेणुद्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, उनमें इस प्रकारका पौरुष होना असम्भव नहीं है, क्योंकि अन्त्यज चाण्डाल पुरुषभी भगवान्‌का नाम केवल एकवार उच्चारण करनेसे संसारके बन्धनसे छूट जाता है ॥ ३५ ॥ जो कुछ हो, राजा प्रियव्रत देवर्षि नारदजीके श्रीचरण आश्रय करनेके समय जो राज्यादिक प्रपञ्च आ पडा, उसके सम्बन्धसे अपने आत्माको अनिवृत्त समान मान मनहीमन वैराग्य करता हुआ ग्लानि सहित यह वचन बोला ॥ ३६ ॥ कि, हाय ! मैंने अच्छा नहीं किया, जो अविचारचित विषयरूप विषम अंधकूपमें इन्द्रियोंके वश होकर गिरा, सबही वृथा है अहो ! मैं अपनी स्त्रीका क्रीड़ामृग बना मुझे धिक्कार है यह कहकर राजा अपने आपही अपनी बहुतसी निन्दा करनेलगा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! भगवान हरिके प्रसादसे राजा प्रियव्रतको ज्ञान प्राप्त होगया और वह अपने आज्ञाकारी पुत्रोंके मध्य पृथ्वीका विभाग कर धन संपत्ति सहित अपनी स्त्रीको मृत शरीरके समान परित्याग करके फिर देवर्षि नारदजीके उपदेश किये हुए मार्गके अनुसार वर्तने लगा ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! स्त्री और धन ऐश्वर्यको बहुत दिन तक भोगनेसे फिर उनका त्यागना कठिन होजाता है परन्तु प्रियव्रतका हृदय खेद रहित था और भगवान्‌के विहारकी चिन्तामें मग्न रहनेसे उसका

प्रभाव बहुतही बढ़गयाथा, इसलिये उसको स्त्री और धन संपत्तिका त्यागना कुछ कठिन नहीं हुआ. उसकी महिमाके विषयमें पहिला कहाहुआ एक श्लोक है सो मैं कहता हूँ आप सुनो यथा प्रियव्रत जो कर्म करगया ईश्वरके बिना कौन पुरुष उसके करनेको समर्थ होसक्ता है उसके प्रभावकी कथाका कौन वर्णन करसक्ता है; उसने अन्धकारका नाश करनेके लिये घूमते घूमते अपने रथके पहियोंसे सात समुद्र खोदे थे ॥ ३९ ॥ फिर जिसने विभागपूर्वक द्वीपोंकी रचना करके पृथ्वीकी शांति और सब प्राणियोंका विवाद निवारनेके लिये नदी, पर्वत, वनादि द्वारा प्रत्येक द्वीपकी सीमा नियत करदी ॥ ४० ॥ भगवद्भक्तोंके प्यारे जिस प्रियव्रतने भूमिका, स्वर्गका, मनुष्यका और योग व कर्मके विभवको नरककी समान समझा था, सो उस परमभागवतकी समता कौन कर सक्ता है और किसको सामर्थ्य है ॥ ४१ ॥

कवित्त-आपहू तरे हैं अरु जग सब तार दीनो, नगरके वासिनको पुत्र ज्यों निहारो है ॥ चोर अरु तस्करको नाम नाहिं राखो कहूं, जाको वा निहारो सोई धर्म कर्म वारो है । मनुजीके वंशमें पूरण अवतंस भयो जाके परकाशको त्रिलोकीमें उजारो है ॥ शालिग्राम दीनबन्धु नाम सत्य करबेकों, देखो कैसो प्रियव्रत प्रियव्रत धारो है ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरेशालिग्रामवैश्यकृतपंचमस्कन्धे प्रियव्रतस्य प्रथमवैराग्यपश्चाद्गृहस्थाश्रम पुनर्वैराग्येण मोक्षप्राप्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-या दूसर अध्यायमें, श्रीआग्नीध्र चरित्र ।
वर्णत भाषामें कछुक, सुखद विचित्र पवित्र ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, इसप्रकार राजा प्रियव्रत परमार्थ साधन करनेके लिये चलागया, तब उसका पुत्र आग्नीध्र उसकी आज्ञाको धारणकर धर्मकी ओर दृष्टि रखकर जम्बूद्वीप निवासी प्रजाको अपने पुत्रकी समान लालन पालन करने लगा ॥ १ ॥ उसने एक समय पुत्रकी कामना करके मंदराचल पर्वतकी गुफामें प्रस्थान किया और पुष्पादि विविध भाँतिकी सामग्री एकत्र कर एकाग्र चित्तसे भगवान्की आराधना करने लगा ॥२॥ उसके अभिप्रायको बहुतही शीघ्र श्री आदिपुरुष भगवान्जी जानगये । उन्होंने आग्नीध्रकी तपस्याका कारण जानकर देवताओंकी सभामें जो एक पूर्वचित्ति नामक अप्सरा गारही थी, उसको आग्नीध्रजीके साथ रमण करनेके लिये उन्होंने आग्नीध्रके निकट भेजा ॥ ३ ॥ पूर्वचित्ति अप्सरा आदिपुरुषकी आज्ञानुसार गमन करके आग्नीध्रके आश्रमके समीप जो वन था उसमें घूमने लगी । यह उपवन अतिशय रमणीक था, वहां सघन विविधवृक्षोंकी शाखाओंके समूहोंके ऊपर अनेक अनेक स्वर्णवल्लियें लिपट रहीं थीं उनके ऊपर बहुतसे थलचारी पक्षी मयूर, कीट, कोकिलादि अपने अपने जोड़ोंके साथ षड्जादि मधुर स्वरसे गान कर रहे थे, उनके कण्ठका शब्द सुनकर हंस, कारण्डव आदि जलचारी

पक्षीभी कमलोंकी खानपर सावधान होकर विचित्र भाँतिके शब्द कर रहेथे जिससे बोध होता था कि, मानो वहाँके सब तालावही कोलाहल कर रहे हैं ॥ ४ ॥ यह अप्सरा सुललित गमन करनेके लिये ऐसे हावभाव बताकर पग धरने लगी कि, उससे अद्भुत गीत और विलास प्रगट हुआ और पग पग पर उसके मनोहर चरणोंके गहने खनखन ध्वनी करने लगे, यह नाद नरेश्वर कुमार आग्नीध्रजीने जब सुना, तब उन्होंने अपने दोनों नेत्र (जो समाधियोगमें सब भाँतिसे लगे हुएथे) कुछ एक खोलकर देखा ॥ ५ ॥ तब यह अप्सरा दृष्टि आई उसके देखतेही राजकुमार कामदेवके वशीभूत हुये । हे राजन् ! पूर्वचित्ति अप्सराको देखकर आग्नीध्रका कामके वश होजाना कुछ विचित्र नहीं है ! यह अप्सरा उनके बहुतही निकट मधुकरीकी समान पुष्पोंको सूँघ रही थी, उसकी गति विहार लजीली व विनययुक्त चितवन, मनोहर वचन और नेत्रादि अंग बहुतही मनहरणकारी थे इन नेत्रादिकोंकेद्वारा मानो वह दर्शकगणोंके नसोंमें कामदेवके प्रवेश करनेका द्वार करे देती थी और दूसरे उसके मुखसे अमृतोपम स्वादवाले और आसवतुल्य मादक जो हंसीके वचन झरते थे उनके साथ सुरभी पवनकी तुल्य श्वास निकलनेसे उसकी गंधसे मधुकरोंके झुंडके झुंड अंधे होकर उसके वदनको घेररहे थे, उन भौंरोंके भयसे जो वह शीघ्र शीघ्र चरण उठाती थी, उससे उसके पयोधर और वेणी व किंकिणी मनोहर भाँतिसे डोल रही थी । सो ऐसा हावभाव देखकर, किसको मोद नहीं उत्पन्न होता ? उससे आग्नीध्र मोहित होकर कामदेवके वशहुए । और जड़की समान हो कभी स्त्री कभी पुरुष इस प्रकार उसको पुकार पुकारकर कहने लगे ॥ ६ ॥ आग्नीध्रजी बोले, हे मुनिवर ! तुम कौनहो ? इस पर्वतपर क्या करनेकी वासना करते हो ? तुम क्या भगवान् परदेवताकी माया हो ? फिर उसकी दोनों भ्रुकुटियोंको देखकर कहा सखे ! तुम यह दो प्रत्यंचा रहित धनुष क्या अपने निमित्त धारण करते हो ? इन दोनोंसे क्या कुछ तुम्हारा अपना काम है अथवा मृगतुल्य अजितेन्द्रिय हमसरीखोंको खोजते हुए फिरते हो, इसलिये यह अपने साथ रक्खेहैं ? अर्थात् हमको वश करनेके लिये क्या यह दो धनुष धारण करते हो ? ॥ ७ ॥ फिर उसपर आक्षेप करके कहा कि, भाई ! तुम्हारे यह दोनों कटाक्ष दो बाणरूप हुए हैं ॥

कवित्त–लागतही हृदयको वेध देत ठौर ठौर, पीरको न नाम कहीं ऐसै वे बेपीरहैं ॥ करैं जापै चोट सो तुरत लोट पोट होत, पड़े पड़े ससकरहे जो बडे वीरहैं ॥ कोउ नाहिं छोडो बिना दागी किये पृथ्वीपर, हार मान बैठे जो जो नामी रस धीर हैं ॥ पारथके बाणहू लजाने देख शालिग्राम, प्यारी तेरे नैन हैं कि नावकके तीरहैं ॥ १ ॥

तुम्हारे दोनों कमलनयन इनके दो पलक हैं, अहो दोनोंही विभ्रमके कारण शान्त हो रहे हैं । यद्यपि उनमें पंख नहीं हैं तथापि वह बिनाही पंखोंके अतिशय कठिन दृष्टि आते हैं । और फिर दोनोंकाही अगलाभाग अतिशय तेज है क्या तुम उनके बिना

चलाये शान्त न होंगे, अच्छा किसके ऊपर यह चलाना चाहते हो ? हमारी समझमें कुछ भी नहीं आता और डरकेमारे हम जडकी समान होरहे हैं इसलिये हम केवल तुम्हारी इतनीही प्रार्थना करते हैं कि, आपका यह पराक्रम (घूमना) हमारा मंगल करनेके लिये हो तो अच्छा है ॥ ८ ॥ पीछे उसके शरीरकी सुगंधिसे जो अन्धेहो कुछ भौंरे उसके पीछे पीछे चले आते थे, उनको देखकर बोले हे ईश ! क्या तुम्हारे यह सब शिष्य हैं ? और आपके चारोंओर फिरकर सरहस्य सामवेदका पाठ और गान कररहे हैं ? तुम्हारे मस्तककी शिखासे जो यह सव फूल खसे पड़ते हैं सो यह सब भौंरे इस प्रकार उनका सेवन करते हैं कि, ऋषिलोग जैसे वेदकी शाखाओंका सेवन करते हैं ॥ ९ ॥ फिर नूपुरध्वनि सुनकर कहा ब्रह्मन् ! तुम्हारे दोनों चरणोंमें पहरेहुए, दोनों नूपुररूपी पींजरोंके अन्तर्गत सब रत्नरूपी तीतरियोंका अतीव मनोहर केवल शब्द तो मैं सुनताहूं, परन्तु यह वचन कौन कहता है, उस बोलनेवाली व्यक्तिका मुखारविंद मुझको नहीं दीखता. फिर उसके पीले वर्णवाले पहरनेके वस्त्रको नितम्बकी कांति समझकर बोले कि, तुमने अपने सुन्दर नितम्बमण्डलमें यह कदम्बके फूलोंकी दीप्ति कहाँसे पाई, फिर पीछे मेखला देखकर बोले कि, यह जिसमें अंगारोंकी लंगारकी लंगार दृष्टि आती है और दीपमालिकाका चक्रसा जो वन रहा है यह क्या है और तुम्हारा वल्कल कहाँ गया ? ॥ १० ॥ फिर दोनों स्तन देखकर बोले कि, हे द्विज ! इन दोनों स्तनोंके मध्यमें क्या कोई मनोहर पदार्थ आपने भर रक्खा है, मैं इस कारण देखताहूं कि, तुम मध्यभागमें दुर्बल होकर अतिकष्टसे जिनको आप धारण करते हो, सो भाव देखकर हमको इस बातका अनुमान होताहै और देखो हमारी दृष्टि केवल इन्हीं दोनोंके ऊपर लग रही है. फिर दोनोंके ऊपर कुंकुम लगा हुवा देखकर बोले कि. तुम्हारे दोनों कुचोंके ऊपर यह अपूर्व अरुण रंगका कीचड कैसे लगगया जिससे कि, तुम हमारे आश्रमको आमोदित कर रही हो ॥ ११ ॥ हे सुहृदश्रेष्ठ ! तुम कौनसे स्थानमें रहते हो सो हमको दिखाओ. हमको विदित होता है कि, आपके रहनेका स्थान बहुतही चमत्कृत होगा. अहो वहाँके रहनेवाले लोग छातीपर ऐसा अपूर्व अवयव धारण करते हैं तुम्हारी छातीके इन दो अवयवोंकी सजावट गढावटका क्या वर्णन करूं इनको देखकर हम सरीखे लोगोंका मन अतिशय क्षोभित हो जाता है. बंधो ! तुम्हारे स्थानके रहनेवाले केवल यह अपूर्व अवयवही धारण नहीं करते बरन् उनके मुखमें मधुर आलाप और विलाससहित अद्भुत अधरामृत भी है ॥ १२ ॥ हे सखे ! तुमसे और एक बात पूँछते हैं कि, लोकके मध्यममें तुमने देह धारण करनेके लिये कौनसी वृत्तिका आश्रय लिया है ? हमको जान पडता है कि, भोजनसे तुम्हारी जीवनवृत्ति नहीं है ? बिना भोजनही तुम प्राणधारण करते हो क्योंकि तुम विष्णुजीके अंशहो, विष्णुजी भोजन नहीं करते सो तुम उनके वंशमें हो, फिर भला किस प्रकारसे तुम्हारा भोजन करना संभव है ? सखे ! हम कुछ अपने मनसेही गढके तुम्हें विष्णुजीका अंश नहीं बताते बरन् यह जो देखते है कि, तुम्हारे दोनों कानोंमें विष्णुजीकी नांई

दो मकराकृत कुण्डल दीप्तिमान् होरहे हैं ? फिर उनके निकटही निमेष शून्य दो नयन शोभा विस्तार कररहे हैं। दूसरे तुम्हारा यह वदन मानो ठीक सरोवरकी समान है, क्योंकि इसमें यह दो नेत्र चञ्चल मीन युगलकी सदृश क्रीडा कर रहे हैं और मुखारविन्दके भीतर यह दाँतोंकी पंक्ति राजहंसोंकी कतारकी समान शोभा विस्तार कर रही है और समीपमें यह केश कलाप अलिकुलकी नाईं शोभा फैला रहे हैं ॥ १३ ॥ हे बन्धु ! तुम अपने करकमलसे जो इस गेंदको वारंवार उछालती हो, यह सब ओर घूमती घूमती हमारे दोनों नेत्रोंको चंचल करती है, अली ! तेरे यह वेणी बंधन खसे पडते हैं, सो क्या तुम्हें इनकी सुधि नहीं है ? अरी प्यारी ! अत्याचारी यह धूर्त पवन तुम्हारी नीवींके बंधन को हरण करता है, सो क्या इसका भी तुमको स्मरण नहीं है ? ॥ १४ ॥ हे तपोधन ! तुम्हारा यह रूप रंग तपस्वी लोगोंके तपका नाश करनेवाला है, तुमने किसप्रकार तीव्र तपस्या करके यह अपूर्वरूप प्राप्त किया । हे मित्र ! तुम अनुग्रह करके हमारे साथ तपस्या करो, क्योंकि वह भवभावन ब्रह्माजी हमारे ऊपर प्रसन्न होकर तुमको हमारी स्त्री करदें ॥ १५ ॥ हमको समझ पडताहै कि, भगवान् ब्रह्माजीने तुमको हमारेही लिये भेजा है, इसलिये हम तुमको नहीं छोडेंगे तुममें हमारे नेत्र और मन लगे हुए हैं, सो अब यह किसी प्रकार नहीं छूटसक्ते. इसलिये हे शुभानने ! चतुराननकी प्रदान कीहुई तुमको मैं कभी नहीं बिसारसक्ता, हे श्रेष्ठ शृंगवाली ! जहां तुम्हारा मन चाहै उसी स्थानमें हमको लेचलो, क्योंकि हम तुम्हारेही अधीन हैं और तुम्हारी यह सखियें भी अनुकूल होकर हमारे साथ साथ रहैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! आग्नीध्र राजा देवताओंकी समान बुद्धिमान् और स्त्रियोंके मनानेमेंभी वह अतिविलक्षण और चतुर था इस प्रकार उस आग्नीध्रने ग्राम्य जनोंके भीतर चतुरतावाली परिपूर्ण भाषाके द्वारा उस अप्सरा पूर्वचित्तिका भली भाँति आदर सन्मान करके उसको मनाया ॥ १७ ॥ उसको वीर समूहका पति और उसकी उत्तम विद्या, बुद्धि, वयस, रूप, श्री, उदारता और शीलता देखकर पूर्वचित्तिकाभी चित्त उससे लगा और दश करोड वर्षतक जम्बूद्वीपाधिपति इस पृथ्वीनाथके साथमें पृथ्वी और स्वर्गका दिव्यसुख भोगती रही ॥ १८ ॥ कालक्रमसे उसके गर्भमें राजा आग्नीध्रसे नव पुत्र उत्पन्न हुये—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरुभद्राश्व और केतुमाल ॥ १९ ॥ पूर्वचित्तिने प्रत्येक वर्षमें एक एक संतान उत्पन्न करी, इसप्रकार जब नौ पुत्र उत्पन्न हुए तब वह उन सबको घरके भीतर ही परित्याग करके फिर अपना मन भगवान् ब्रह्माजीकी उपासनामें लगा दिया ॥ ॥ २० ॥ हे राजन् ! आग्नीध्रके यह नव पुत्र जो हुए सो सब माताकी कृपाके स्वभाव सेही बडे हृष्ट पुष्ट और बलवान हुए, इसलिये आग्नीध्रने उनके मध्यमें पृथ्वीके विभाग कर दिये, वह उन विभागोंके अनुसार अपने अपने नामसे जम्बूद्वीपके नौखण्ड कर अपना राज्य भोगने लगे ॥ २१ ॥ आग्नीध्रराजा विषयभोगसे परितृप्त नहीं हुवा, वह सदा विषयके सुखसाधन करनेहीको बडा करके मानतारहा । इसलिये वेदोक्तकर्म करनेसे

जहाँ पितृलोग आमोद प्रमोद करतेहैं और जहाँ कि वह पूर्वचित्ति अप्सरा थी उसी लोकको राजा आग्नीध्र गया ॥ २२ ॥ जब राजा आग्नीध्र परलोकवासी हुए तब उनके नौ पुत्रोंने मेरुकी नौ कन्याओंका पाणिग्रहण यथाक्रम किया, उन सब कन्याओंके यह नाम थे, मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीती ॥ २३ ॥

चौ०-नाभि मेरुदेवीकी ब्याही। प्रतिरूपा किंपुरुष उछाही ॥ उग्रदंष्ट्रिब्याही हरिवरषा । लता इलावृत लई सहरषा ॥ रम्या रम्यक लई ललामा। गही हिरण्यक वामाश्यामा ॥ नारिसंग कीन्हों कुरु काजा। भद्रा भद्र अश्व महराजा ॥ केतुमाल लिये देववीतिको । दीन्ही सगरी रीति प्रीतिको ॥ यहिविधि नव आग्नीध्रकुमारा ॥ ब्याही मेरुसुता सुखसारा ॥ निज निज खंडन कियो निवासा। पालत परिजन सहित हुलासा ॥ नीतिरीतिमहिमाहिं चलाई। अपनी अपनी फेर दुहाई ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे आग्नीध्रचरित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-मंगलमय नृपनाभिको, कहिहौं चरित बखान।
ह्वै प्रसन्न जेहि यज्ञमें, प्रगटभये भगवान ॥ १ ॥
ता पाछे करुणायतन, शोभासिन्धु खरार।
ह्वै तावश ता भवनमें, लीन ऋषभ अवतार ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! तदनन्तर आग्नीध्रके पुत्र नाभिने पुत्रकी कामनाके लिये अपनी भार्या मेरुदेवीके साथ एकाग्रचित्तसे यज्ञानुष्ठान करके भगवान् यज्ञपुरुषकी अराधना की ॥ १ ॥ श्रद्धासहित पवित्र भावसे पूजामें वर्तमान इस राजाका प्रवर्ग नामक यज्ञके कर्म होरहे थे उस समय यद्यपि भगवान् विष्णुजी द्रव्य, देश, काल, मंत्र, ऋत्विक्, दक्षिणा और विधि इन सात उपायोंकी संपत्तिसेभी नहीं प्राप्त होते, तथापि भक्तजनके ऊपर दया करनेके लिये स्वयं सुंदर शरीर धारण करके उसके सामने अपने रूपको प्रगट किया, हे महाराज ! भगवान्का स्वरूप धारणकर प्रगट होनेका यह तात्पर्य है कि, भक्तजनोंकी मनमानी हो जावे, सो ऐसी वासना उनके भक्तने की, तबहीं उनका चित्त आकर्षित होगया था नारायणजीने नाभिके सम्मुख जो अपनी मूर्ति प्रगट की वह स्वतन्त्र थी, उसके सब अंग मन और नेत्रोंके आनन्दवर्द्धनकारी थे, इससे वह मूर्ति अतिशय सुन्दर और सुखदायक थी ॥ २ ॥ हे राजन् ! भगवान्की जो मूर्ति नाभिके सामने प्रगट हुई, उसमें चारभुजा प्रकाशवान् थीं; वह अतिशय तेजवान् और पीताम्बर पहिने, छातीमें श्रीवत्सका चिह्न शोभित होरहा था और शंख, चक्र, गदा पद्म, वनमाला और कौस्तुभमणि इत्यादि आभूषणोंसे अत्यन्त शोभायमान लगती थी, अधिक श्रेष्ठमणि जटित मुकुट, कुण्डल, कटक, कटिमेखला, हार, केयूर, नूपुर,

इत्यादि सब भूषणोंकी मनोहर किरणोंकी झलकसे उस मूर्तिका सब शरीर जगमगा रहा था उससमय ऋत्विक्, सभासद् और यजमान सबने ऐसा मनहरण अद्भुत शृंगार किये हुये विष्णुभगवान्के सुन्दर स्वरूपको देखकर उसका बहुत आराधनकर मस्तक नवा विविध भाँतिके उपहार द्वारा उनकी पूजा करने लगे, जैसे दरिद्री संपदाको देख अति प्रसन्न हो, उसका बहुतसन्मान करता है, इसीप्रकार ऋत्विक् प्रभृतिलोग स्तुति करते करते बोले कि, हे पूज्यतम ! तुम परिपूर्ण होनेसे भी हम सरीखे भृत्यजनोंकी पूजा वारम्वार स्वीकार करनेके योग्य होओ । हे प्रभो ! हम लोगोंमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि, आपकी स्तुति करसकें, आपका स्वरूप जानना महादुर्लभ है, इसलिये हमने सत्पुरुष साधुगणोंके निकट केवल " नमस्कार ! नमस्कार " इतनीही स्तुति करनी सीखी है ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! प्रकृतिपुरुषसे परे जो ईश्वर हैं, उनके जो जो नाम और रूप वह आकार लोग कल्पना किया करते हैं वह सब कभीभी आपको स्पर्श नहीं करसक्ते इसलिये उन सब कल्पित नाम रूप व आकारके द्वारा कौन पुरुष आपका स्वरूप निरूपण करनेमें समर्थ होवे ? इस मनुष्यकी बुद्धि प्रकृतिके गुणसे प्रपञ्चमेंही आसक्त रहनेसे स्वयं अपने ऊपरभी उसका अधिकार नहीं आपके जो सब शिवतम और श्रेष्ठ गुण अपने जनोंके अनन्त पापोंका नाश करते हैं सो उत्तम गुणगणोंके एक देशका अवश्य वर्णन करसक्ता है, इसके सिवाय इस मनुष्यको और किसी प्रकारकी क्षमता नहीं है, अर्थात् ऐसे मनुष्य केवल आपके गुणगणोंका वर्णन करनेमेंही समर्थ हैं ॥ ५ ॥ हे परमेश ! परिजनगण अनुरागके वश होकर गद्गदवचन द्वारा जो आपकी स्तुति किया करते हैं और जल तुलसीदल पत्र दूर्वा पवित्र पल्लवसे आपकी सेवा किया करते हैं, तो आप उससेभी प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ६ ॥ बिना प्रीति हम अनेक अंगोंसे परिपूर्ण जो यह यज्ञ करते हैं, सो इससे आपका कोई प्रयोजनभी दृष्टि नहीं आता ॥ ७ ॥ हे नाथ ! आप सदा स्वतंत्र साक्षात् स्वयंही प्रगट हुये हो संपूर्ण पराक्रमके स्वरूपभूत अर्थात् परमानंद ब्रह्मस्वरूप हो, परन्तु हम कामनावाले भक्तोंके निमित्त केवल आपकी उपासना मात्र बन सकती है । हे प्रभो ! मूर्खपुरुष स्वयं आपकी श्रेष्ठताको नहीं जानते सो उनके निकट परात्यर्थ गुण वाली करुणाके द्वारा अपवर्ग (मोक्ष) नाम अपनी महिमा तथा उनकी अभिलाषा सिद्ध करनेके लिये तुम पूजित न होकरभी और दूसरे सापेक्ष व्यक्तियोंकी समान दृष्टि पड़े हो, इसलिये हमारी पूजासे आपका कोई उपकार नहीं होगा, सो यह हमारेही उपयोगी होकर आपने अपना दास जान हमको दर्शन दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे पूज्यतम ! यद्यपि आप वर देनेकेलिये प्रगट हुये हैं, तथापि हमारे राजाके इस यज्ञमें जब कि, वरदाता आप अपने भक्तजनोंके अर्थात् हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुये, तब तौ बस यही हमारा वर होगया अब हम और क्या वर माँगें ? ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आपका दर्शन अतिदुर्लभ है. जिन सब आत्माराम मुनिलोगोंका वैराग्यद्वारा तीक्ष्णीभूत ज्ञानरूप अग्निमें अनन्त मल जलकर भस्म होगया है उन लोगोंके लिये भी केवल आपका गुणगण परममङ्गलदायी

होता है, इससे वह सदाही आपके गुणसमूहोंकी स्तुति किया करते हैं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! यद्यपि आपके दर्शनसेही हमलोग कृतार्थ होगये, तथापि एक वर माँगते हैं कि, भूख लगने, गिरने, जँभाई लेने, अँगडाई और दुरवस्थाके समय जब कि हम आपको स्मरण करनेमें असमर्थ हों उस कालमें और ज्वर व मृत्युके समयभी आपका गुणसहित नाम हमारी वाणीसे निरन्तर निकलता रहै, हे भगवन् ! आपके सब नामोंके प्रभावका हम क्या वर्णन करैं जिनके उच्चारण करतेही सब कलिमल विध्वंस होजाते हैं कलिकालमें हरिनामकी समान और कोई मोक्षका उत्तम उपाय नहीं है ॥

श्लोक—हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ १२ ॥ (१)

हे देव ! हमारी और भी प्रार्थना है कि, आप स्वर्ग और अपवर्गके स्वामी हैं आपके निकट पुत्रका चाहनेवाला यह राजर्षि आपकी समान पुत्रकी इच्छा करता है, जैसे कोई मनुष्य धनवान्से नाजके ऊपरकी भुस्सी माँगे, ऐसे इस लोकके फल आप समान पुत्रकी प्रार्थना करता है, क्योंकि, यह संतान होनेकोही पुरुषार्थ करके समझता है, इस कारण आपसे यह प्रार्थना की है ॥ १३ ॥ हे नाथ ! दूसरे राजर्षिकी प्रार्थना कुछ असंगतभी नहीं है, क्योंकि आपकी माया अजेय है, उसकी पदवी कोईभी नहीं जान सक्ता उस आपकी अपराजित मायासे किसकी बुद्धि पराजित नहीं होती और महापुरुषोंके चरणोंकी उपासना नहीं करनेसे किसकी बुद्धि विषयरूप विषके वेगसे नहीं घिर जाती है ? ॥ १४ ॥ हे अनेक कार्य करनेवाले नाथ ! हमने अतिलघु कार्यके लिये आपको यहां बुलाया हम लोग बड़े मूर्ख हैं कुछ नहीं जानते, पुत्रकोही परमपुरुषार्थ मानते हैं. हे देवदेव ! आपके प्रति हमारी जो यह अवहेला होती है, सो इसका आप सहन करनेके योग्य होवै, हे नाथ ! आप सबकोही एकसा समझते हैं इससे हम जो कुछ विरुद्ध वर्तावभी करैं तौभी उस्से आपको असंतुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ १५ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! आग्नीध्रसुत नाभि राजाके ऋत्विजोंने इस प्रकार गद्यमय वाणीसे श्रीभगवान्की स्तुति करी उसके पीछे जम्बूद्वीपाधिपति इस नाभि राजाने जिन सब मनुष्योंको वंदना करनेके लिये नियत किया था, जब वह लोग भगवान्के चरणारविन्द वंदन करनेमें नियुक्त हुये तब भगवान् वासुदेव दया प्रगट करके यह वचन बोले ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ऋषिगण ! आप लोगोंके वचन कभी व्यर्थ नहीं होते, परन्तु आपने हमसे बड़ा कठिन वर मांगा कि, उस राजाके हमारी समान पुत्र हो यह आपकी प्रार्थना सरल नहीं है, बड़ी कठिन है, क्योंकि हमसा दूसरा नहीं है, अपने समान हमही हैं तौ फिर इस राजाके किसप्रकार हमसमान पुत्र होसक्ता है ? हम किसप्रकारसे तुम्हारी यह प्रार्थना परिपूर्ण करसक्ते हैं ? और तुमने यह वर माँगाहै जो कुछभी हो, ब्राह्मणोंका वचन मिथ्या होना उचित नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणकुल देवताकी तुल्य है और ब्राह्मण कुल हमारा मुख है वेदमें कहा है ॥ १७ ॥ इसलिये

हमारे समान दूसरा कोई न होनेसे हमको ही नाभिका पुत्र होकर अवतार लेना पडेगा ॥ ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! श्रीभगवान्‌की यह वार्ता नाभिकी स्त्री मेरुदेवी सुन रही थी और राजा नाभिभी उस समय वहां खडे थे इसलिये श्रीभगवान्‌जीने ऋत्विजोंसे जो बात कही, वह राजानेभी सुनी, ऐसी आज्ञा नाभिको कर भगवान् वासुदेव अंतर्धान होगये ॥ १९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे विष्णुदत्त परीक्षित् ! जब महर्षि लोगोंने इस प्रकारसे प्रसन्न किया, तब भगवान् विष्णुजी राजा नाभिको प्रिय करनेकी इच्छा करते हुये, तिसके पीछे नग्न, तपस्वी, ज्ञानी, तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंको उपदेश देनेके लिये राजा नाभिके अंतःपुरमें उसकी रानी मेरुदेवीके गर्भमें शुक्ल शरीर धारणकर ऋषभ देवजीने अवतार लिया ॥ २० ॥

भजन–जन्म लियो ऋषभदेव महाराज ॥ परम अनूप स्वरूप मनोहर सब छबि रही विराज ॥ १ ॥ जगतारण संकष्ट निवारण सारण जनके काज ॥ प्रगटे ऋषभदेव आनँद निधि देवनके शिरताज ॥ २ ॥ दियो पूर्ण उपदेश देश देशान्तरमें सुखसाज ॥ थामलियो झटपट दौड करते बूडत भक्त जहाज ॥ ३ ॥ घर घर आनँद छयो जगत्‌में पाप ताप गयो भाज ॥ शालिग्राम भक्त लोगनके हैं अद्भुत अंदाज ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे नाभिनृपस्य मेरुदेव्यां ऋषभावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–या चतुर्थ अध्यायमें, ऋषभ देव अवतार।
कीन्हों जस कछु राज्यसो, वरणौं मति अनुसार ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! ऋषभदेवजीके उत्पन्न होतेही उनके अंगमें भगवान्‌के लक्षण सब थे, दाहिने चरणमें वज्र और दाहिने हाथमें चक्र और अंकुशादिके चिह्न प्रगट दिखाई देते थे, और सर्वत्र समभाव, उपशम, वैराग्य, ऐश्वर्य और बडी २ संपत्तियोंसे जिनका प्रभाव दिन दिन बढनेलगा यह सब देखकर प्रजा, राजमंत्री, ब्राह्मण और देवताओंके मनमें यही इच्छाथी कि, यही राजा होकर प्रजाका पालन करें ॥ १ ॥ हे महाराज ! ऋषभदेवजीका आकार कविलोगोंके वर्णन करनेके योग्य और अतिशय श्रेष्ठ हुआ और वह स्वयं तेज, प्रभाव, शक्ति, उत्साह, कांति, यश इत्यादि गुणोंमें सर्वप्रधान हुए इसलिये सर्वोपरि होनेसे उनके पिता नाभि राजाने उनका नाम "ऋषभ" रक्खा ॥ २ ॥ हे परीक्षित् ! ऋषभ देवजीके प्रभावका क्या वर्णन करें ? एक समय देवराज इन्द्रने उनकी उन्नति देखकर ईर्षासे उनके राज्यमें जल नहीं वर्षाया, यह योगेश्वर भगवान् इस वार्ताको जानकर कुछेक हँसे और अपनी आत्मयोग मायाके द्वारा अपने अजनाभ खंडमें धूम धामसे जलकी वर्षा की ॥ ३ ॥ जो कुछ हो अभिलाषानुरूप संतान प्राप्त होनेसे राजा नाभि अत्यन्त हर्षमें भरके अतिशय विह्वल हुये और भगवान् पुराण

पुरुष जिन्होंने अपनी इच्छानुसार मनुष्यका अवतार स्वीकार किया, ऐसे भगवान् वासुदेव को पुलकायमान शरीर और गद्गद अक्षरोंवाली वाणीसे उनको, हे वत्स ! हे तात ! इस प्रकारके स्नेहयुक्त वचनसे पुकारकर बडे अनुरागसे उनको लालन पालन करके अतिशय प्रीति करनेलगे । हे राजन् ! राजा नाभिका इस प्रकार आचरण करना असंभव नहीं है, क्योंकि यद्यपि साक्षात् भगवानने उनके गृहमें अवतार लिया, तथापि मायामें मोहनेके कारण " यह हमारे पुत्र हैं " ऐसे बुद्धि करके वह परम आनंदको प्राप्त हुये ॥ ४ ॥ जब कुछ काल व्यतीत हुवा तब नाभिराजाने देखा कि, पुत्र अब सब भाँतिसे योग्य हो गया है, पुरवासी लोग और अमात्यवर्ग भी सब इसके अनुरागी हो रहे हैं, यह समझ धर्मकी मर्यादा रक्षण करनेके लिये ऋषभ देवजीको राज्याभिषेक दे और उनको ब्राह्मणों-की गोदमें रखकर अपनी स्त्री मेरुदेवीके सहित बद्रिकाश्रममें चले गये और वहां जाकर निर्मल व तीव्र तपस्याके प्रभावसे चित्तको सावधानकर नरनारायण नामक भगवान् वासु-देवकी उपासना करते करते कुछ काल उपरांत समय पाकर योगकी समाधिके द्वारा जीव-न्मुक्त होगये ॥ ५ ॥ हे पाण्डवेश ! उन नाभि राजाके विषयमें महर्षि लोग दो श्लोकोंका पाठ किया करते हैं उनका अर्थ यह है भगवान् नाभिके वह प्रसिद्ध कर्म उनके पीछे और कौन पुरुष करनेको समर्थ होगा ? वह क्या साधारण पुरुष थे ? कि जिनके शुद्ध कर्मद्वारा भगवान् हरि स्वयं उनके यहां पुत्र होकर अवतरे थे ॥ ६ ॥ और उन राजर्षि नाभिके सिवाय और कौन ब्रह्मण्य (ब्रह्मतेजसे युक्त) है ? उनके यज्ञमें ब्राह्मणलोग दक्षिणादिसे पूजित होकर मंत्रके बलसे यज्ञेश्वर भगवान्के अर्चन करानेमें समर्थ हुये थे ॥ ७ ॥ जब राजा नाभि पुत्रको राज्यतिलक देकर चले गये तब भगवान् ऋषभदेवजीने अपने अज-नाभनाम राज्यखंडको कर्मक्षेत्र मानकर लोगोंके उपदेशार्थ कुछेक दिन विद्या पढनेके लिये गुरुकुलमें वास किया, फिर गुरुलोगोंकी आज्ञा लेकर घरको आये और लोगोंको धर्म शिक्षा देना और श्रुति स्मृति रूप दोनों प्रकारकी कर्म विधिका अनुष्ठान करनेलगे, फिर इंद्रने उनको जयन्तानामक एक कन्या दी थी, समयानुसार उसी स्त्रीमें उनके एक सौ (१००) पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उन सौ पुत्रोंमेंसे भरत सबसे बडे थे वह महायोगी और श्रेष्ठ गुण सम्पन्न थे उनके ही नामसे लोकमें इस खंडको भारतवर्ष कहते हैं. हे महाराज ! ऋषभदेवजीके और जो निन्यानवे (९९) पुत्र थे उनके मध्यमें कुशा-वर्त, इलावर्त्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक, विदर्भ और कीकट, यह नव नव्वेसे बड़े थे परंतु भरतजीके अनुगत थे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! उन नव पुत्रोंसे छोटे और नव जन अर्थात् कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन, यह सब भगवद्धर्मके बतलानेवाले परम भक्त जन थे; इनका चारित्र भगवानकी महिमामें बढाकर सबका चित्त शांत करनेके लिये पीछेसे (ग्यारहवें स्कंधमें) वर्णन करैंगे । उसमें वासुदेव और नारदजीका संवाद रहैगा ॥ १० ॥ ११ ॥ इन सबमें छोटे जयन्तीके

जो इक्यासी (८१) पुत्र थे वह पिताकी आज्ञाके पालनेवाले अतिशय विनीत वेदोंके जानने वाले, यज्ञशील विशुद्ध कर्म करनेसे ब्राह्मण होगये ॥ १२ ॥ भगवान ऋषभदेवजी यद्यपि हमारे प्रभु अनर्थकी परंपरासे दूर रहनेवाले और शुद्ध आनंद व ज्ञानस्वरूप ईश्वर हैं, तथापि अनीश्वरवादियोंके तुल्य विविध कर्म करते थे, इसका कारण यह था कि, समयानुसार जो धर्म उत्पन्न हुवा है स्वयं आचरण करके उसको वह अज्ञानी लोगोंको शिक्षा देते थे और वह परम दयालु समदृष्टि, शांतचित्त, और सबोंसे सुहृद्भाव रखनेवाले ऋषभ देवजी थे और कारुणिकता प्रयुक्त धर्म, अर्थ, यश, प्रजा, भोग, मोक्ष, संग्रहके द्वारा घरोंमें लोगोंको नियमित करते थे ॥ १३ ॥ संसारकी रीति है कि, जो बडे बडे महात्मा और राजा लोग जैसा जैसा आचरण करते हैं, वैसाही दूसरे लोग भी कर्म किया करते हैं क्योंकि कहाभी है कि " यथा राजा तथा प्रजा " इसही कारणसे भगवान ऋषभदेवजी इस प्रकारके कर्म करने लगे थे ॥ १४ ॥ यद्यपि वह सर्व धर्मोंका बतलानेवाला वेदका रहस्य स्वयं जानते थे, तौभी ब्राह्मणोंके कहने पर जैसा कुछ वह कहते उसीके अनुसार साम, दान, दण्डादिक उपायोंसे सब समूहोंको शिक्षा करते थे ॥ १५ ॥ उन्होंने सब भांतिसे विधिपूर्वक सौ वार अश्वमेध यज्ञ किये। उनके वह सब यज्ञ साधारण नहीं हुये द्रव्य, देश, काल, यौवन, श्रद्धा, ऋत्विक्, अनेक देवताओंके अर्थ इत्यादि द्वारा अतिशय बढ चढ कर हुये थे ॥ १६ ॥ भगवान ऋषभदेवजी इस भारतवर्षके स्वामी होकर सब प्रकारसे इस देशकी रक्षा करने लगे। उस समय किसी पुरुषकी दूसरे किसी पुरुषसे अपने लिये आकाश कुसुमकी नाई कुछभी प्रार्थना करनेकी इच्छा नहीं हुई और कोई भी पुरुष दूसरेकी वस्तुपर दृष्टि नहीं करता था, अधिक क्या कहें? ऋषभ देवजीके राज्यके समय प्रजाओंकी अपने स्वामीके लिये क्षण क्षण वृद्धि, शील, स्नेह, उद्रेकके सिवाय और कुछ चाहना नहीं थी ॥ १७ ॥ यह भगवान् ऋषभदेवजी एक समय सब देशोंमें घूमनेके लिये निकले. चलते चलते ब्रह्मावर्त वर्षमें पहुँचे वहाँ बडे बडे ब्रह्मर्षियोंकी सभामें प्रवेश करके देखा कि, हमारे पुत्रगणभी बैठे हैं; यद्यपि वह संमत चित्त थे, और विनय नम्र व प्रणय द्वारा सुयंत्रित थे तौभी प्रजाके उपदेश करनेके लिये उनको सबके सामने शिक्षा प्रदान करके वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ १८ ॥

कवित्त-ब्रह्मतो वहीहै जौन सच्चिदआनन्दघन निर्विकार निर्विकल्प नितही प्रकाशै है। माया तो वही है जौन रज तम सतगुण धार नाना-नामरूप जनकै विनाशै है ॥ ईश्वर वहीहै निजरूपको न भूले कभी, माया गहै मायासों पृथकही उजासै है। जीव तो वही है जो अविद्याको संयोग पाय, भूलै निज रूप भ्रम फाँसना निकासै है ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवस्य शतसंतानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-ऋषभ देव वर्णन कियो, निज पुत्रन सों ज्ञान।
परमहंस अरु मोक्षपद, सोही कहौ बखान॥ १॥

ऋषभ देवजी बोले कि, हे पुत्रगण! जो सब जीव मनुष्य लोकमें जन्मकर मनुष्य देहको प्राप्त हुए हैं; उनको यह देह दुःखके देनेवाले समस्त विषयोंमें नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि यह सब विषय भोग तो विष्ठाभोगी वराह आदिकोंको भी मिलजाता हैं; इसलिये हे सब पुत्रो! दिव्य तपस्या करो, तपस्या ही श्रेष्ठ वस्तु है क्योंकि इससे अंतःकरण शुद्ध होजाता है, और अंतःकरण शुद्ध होनेसे परब्रह्मानंदकी प्राप्ति होती है॥ १॥ पंडितलोग महात्माजनोंकी सेवाको मुक्तिका द्वार और स्त्री परिवारादिके संगको संसारका कारण कहते हैं। अर्थात् नरकका द्वार है, यह कहते हैं कि, महात्मा जन किसको कहना चाहिये सो तुम सुनो। जो सबको सुहृद हो, शांतचित्त हो, क्रोधरहित हो, सदाचारी हो और जिसका चित्त सब प्राणियोंमें समान है वही महात्माजन हैं॥ २॥ और सब पुरुषोंमें मैं जो ईश्वर हूं, मुझमें प्रीति करके जो पुरुष उसकोही पुरुषार्थ समझते हैं, जिनकी विषयासक्ति सब पुरुषोंमें, तथा पुत्र कलत्र और मित्रादि युक्त गृहमें प्रीति नहीं है। और जो कि, लोकमें देहयात्रा निर्वाह करनेके व्यतिरिक्त अधिक धनमें जिनकी चाहना नहीं है वही मनुष्य महात्माजन हैं॥ ३॥ हे पुत्रो! यह मनुष्य चतुर होकर जब कि, इंद्रियोंकी प्रीतिके लिये परिश्रम करता है, तब निःसंदेह मतवालासा होकर विरुद्ध कर्म (पाप) करता है, एक वारके विरुद्ध कर्म करनेसे आत्माको दुःख देनेवाला यह देह उत्पन्न हुआ है, भला फिरभी उस विरुद्ध कर्मका वारंवार करना अच्छा है? सो हम तो इसको अच्छा नहीं समझ सक्ते॥ ४॥ पुरुष जबतक आत्मतत्त्वके जाननेकी इच्छा नहीं करता तब तकही उसके निकट अज्ञानतासे आत्मस्वरूपका तिरस्कार होता है॥ ५॥ क्योंकि जबतक क्रिया रहती है तबतक यह मन कर्ममें लगा रहता है और वह कर्म स्वभावही शरीरके बंधनका कारण है, उससे पहला किया हुवा कर्मही मनको अपने वशमें अर्थात् फिर भी कर्ममें लगाता है। जबतक अविद्यासे उपाधियुक्त आत्मस्वरूप जो मैं वासुदेव हूं मुझमें प्रीति नहीं करता, तबतक देहके इस संबंधसे जीव नहीं छूटता॥ ६॥ हे वत्सगण! केवल देहसे मुक्ति नहीं होती इतनाही नहीं बरन् और अर्थभी वर्तमान रहतेहैं, क्योंकि स्वार्थके विषयमें प्रमत्त रहनेसे पुरुष जन विवेकयुक्त होकर सब इंद्रियोंकी चेष्टाको मिथ्या नहीं जानता, अर्थात् यह सब आत्मासे संबंध नहीं रखता, ऐसा नहीं निश्चय करता, तब आत्मस्वरूपके भूल जानेसे मैथुनसुख पापगृहको प्राप्त होकर संताप पाता है॥ ७॥ हे वत्सगणो! इस संसारमें स्त्रीके साथ मिलनेसे सुख प्राप्त होताहै, संताप नहीं होता ऐसा जो कहते हैं वह महाभ्रममें पड़े हुए हैं। क्योंकि स्त्री और पुरुष इन प्रत्येकके जन्म लेते ही एक एक हृदयग्रंथि होती है, और फिर जब कि, पुरुष स्त्रीके साथ मिलजाता है, तब और एक एक हृदयग्रंथि हो जाती है, वह बहुत बड़ी और दृढग्रंथि पड़ती है। प्रत्येक हृदयग्रंथिसे केवल देह और सब इन्द्रियोंमें "हम, हमारा"

इस प्रकारके ज्ञानसे मोह उत्पन्न होता है । इस दृढ हृदय ग्रंथिसे गृह, क्षेत्र, पुत्र, कुटुम्बी, धन इत्यादिके विषयमें महामोह जन्मता है, इस कारण संसार आश्रममें स्त्रीके साथ मिलना सुखका कारण नहीं है। बरन् महामोह उपजानेवाला और दुःख दिखानेवाला है ॥ ८ ॥ परंतु ऐसा भी मत समझो कि, पुरुष स्त्रीके साथ मिलनेसे उसका यह भाव कभी नहीं छूटता, जब कि, पुरुषकी कर्मसे बँधी हुई दृढ़ मनरूपी हृदयकी गाँठ उस मिथुनीभावसे निवृत्त हो जाती है, तब संसारका हेतुभुत जो अहंकार है उसको छोड़कर मुक्त और परम, पदवीको वह पहुँच सकता है ॥ ९ ॥ हे पुत्रो ! कोई कहै अहंकारका त्याग करना किसीप्रकारसे नहीं हो सकता ऐसा नहीं, अहंकारके त्यागनेके चौवीस (२४) कारण हैं। परमहंस और शुक्रस्वरूप जो मैं हूं मुझमें भक्ति करना १, मुझमें अनुवृत्ति करना २, तृष्णा-रहित होना ३, सुख दुःखके भारको सहना ४, इस लोक और परलोकमें सब प्राणियोंके दुःखका देखना ५, तत्त्व जिज्ञासा ६, तपस्या ७, काम्यकर्मका छोड़ देना ८, ॥ १० ॥ मेरे निमित्त कर्म करना ९, मेरी कथा कहना सुनना१०, जो सब पुरुष मेरे भक्तोंहीको परम आराधन करनेके योग्य देवता जानते हों उन मेरे भक्तोंका सत्संग करना ११, मेरे गुण कीर्तन करना १२, वैर रहित होना १३, सबको समान समझना १४, उपशम अर्थात् इन्द्रियोंको रोकना १५, आत्मा शरीर और घरमें "यह मेरा, यह अपना ऐसी बुद्धिको छोडनेकी वासना करना १६, ॥११॥ अध्यात्म शास्त्र (वेदान्त शास्त्र) का विचारना १७, निर्जनमें वास करना १८, प्राण इन्द्रिय और मनको भली भाँतिसे जीतना १९, शास्त्रमें श्रद्धा रखना, २०, ब्रह्मचर्य्य धारण करना २१, कर्तव्यकर्मका त्याग नहीं करना २२, वचनोंको नियममें रखना २३, ॥ १२ ॥ सर्वत्र हमारे अनुभव करनेका निपुण अनुभव तत्त्वज्ञान २४, और समाधि, इन सब साधनोंसे धीरज, यत्न और ज्ञानयुक्त होकर अहंकार नामक उपाधिका त्याग करै ॥ १३ ॥ हे पुत्रो ! इस प्रकारसे अहंकार जब दूर होजाय, तब फिर सब कर्मोंका आधार रूप हृदयमें जो ग्रंथीका बंधन जो अविद्यासे पडगया है, उसको सावधान होकर उपायसे जैसा कि, मैंने उपदेश किया है, वैसेही भली भाँतिसे त्यागकर पश्चात् इस उपायसे भी अलग हो जाना ॥ १४ ॥ हे पुत्रगण ! जो हमारे लोकके जानेकी कामना करे, सो हमारा अनुग्रहरूप प्रयोजनका जो आशय है वह पिता पुत्रोंको और गुरु चेलोंको, राजा प्रजाको ऐसी शिक्षा दें । परन्तु उपदेश किये जानेपर भी यदि कोई शिखाया हुआ विषय न करै तो उससे शिखानेवालोंको क्रोध न करना चाहिये । और वह अधिक करकै जो पुरुष तत्त्व नहीं जानते और वह अच्छा समझके कर्म ही करनेमें लगे हुए हैं, उनको फिर सकाम कर्मोंमें न लगाना चाहिये । क्योंकि फिर सकाम कर्मोंमें लगाना अंधोंको कुएँमें डालनेके समान है. फिर उससे क्या परिश्रम हो सकता है ? ॥ १५ ॥ जो पुरुष बहुत ही कामना करता है, और उसकी दृष्टि अच्छा बुरा देखनेमें अंधी है, और धनकी चेष्टा करता है, किंचित् सुखके कारण परस्पर वैर करना चाहता है। वह मूर्ख इस बातको नहीं जानता कि, अंतमें मुझको दुःख प्राप्त

होगा, वह दुःखकोही सुख समझता है ॥१६॥ ऐसे कुबुद्धि व्यक्ति अविद्यामें पडे रहते हैं उनको देखकर कौन सहृदय विद्वान् जान बूझकर इस विषयमें उनको प्रवृत्त करावेगा अर्थात् कोईभी उसमें वियोग नहीं करावेगा! जो अन्धा मनुष्य बुरे मार्गमें पडजाय, तो उसको बुरे मार्गमें जाता हुवा देखकर, क्या कोई विद्वान् और सावधान मनुष्य उस अंधेको उसी मार्गपर जानेका उपदेश देगा? ॥ १७ ॥ परंतु इस प्रकारसे संसारको प्राप्त हुये जीवको भक्तिके मार्गका उपदेश देकरके मुक्त करना आवश्यक है। जो उसको इस संसारसे नहीं छुडाता वह उसका गुरु नहीं, सगा नहीं, पिता नहीं, माता नहीं, देवता नहीं और पति भी नहीं है। बरन् शत्रु कहना चाहिये ॥ १८ ॥ हे पुत्रगण! हमारा यह मनुष्योंका शरीर अतर्क्य अर्थात् अपनी इच्छासे हमने धारण किया है, यह देह साधारण मनुष्योंके योग्य नहीं है और हमारा हृदय जिसमें सत्त्व वर्तमान है, वैसा यह शुद्ध सत्त्व स्वरूप है। क्योंकि हमने अधर्मको पीठपर करके निकाल दिया है. इस कारण श्रेष्ठ पुरुष मुझको ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं ॥१९॥ तुम सब मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदयसे उत्पन्न हुए हो इसलिये द्वेष त्यागकर सब मिलकर स्थिर बुद्धिसे अपने सहोदर इन बडे भ्राता भरतजीकी सेवा करो, हे पुत्रो! इनकी सेवा करनेसे तुम्हारा प्रजापालना और मेरी सेवा भी हो जायगी अर्थात् यह भरत तुम्हारे सबसे बडे सहोदर भाई हैं सो इनकी आज्ञामें रहना तुमको आवश्यक है। बस ऐसा करनेसे तुम्हारे सब ही कर्तव्य कर्म सफल होजाँयगे ॥ २० ॥ ऐसे ब्राह्मणोंकी सेवा करना भी तुम्हारा धर्म है। क्योंकि चेतन अचेतन सब प्राणियोंमें स्थावर श्रेष्ठ हैं स्थावरमें सर्पादि जंगम जीव श्रेष्ठ हैं, जंगमसे ज्ञानयुक्त पशु श्रेष्ठ हैं। पशुओंसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंसे भूत प्रेतादि प्रमथ गण श्रेष्ठ हैं। प्रमथगणसे गंधर्वगण श्रेष्ठ हैं। गंधर्व गणोंसे सिद्ध गण प्रधान हैं। सिद्धोंसे किन्नर गण श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ किन्नरोंसे असुर गण श्रेष्ठ हैं। असुरोंसे देवता लोग बडे हैं। देवताओंमें इंद्र बडे हैं। इन्द्रसे ब्रह्मपुत्र दक्षादि श्रेष्ठ हैं। दक्षादिकोंसे शंकर श्रेष्ठ हैं, यह शंकर ब्रह्माजीके बलसे बलवान् हैं, इस कारण उनसे ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं। ब्रह्माजी हमारी पूजा करते हैं, इस कारण उन ब्रह्माजीसे हम श्रेष्ठ हैं। हम इन ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, इससे ब्राह्मण गण हमसेभी श्रेष्ठ होनेके कारण सबके पूजनीय हैं। इस कारण तुम अवश्य विप्रोंके चरणोंकी सेवा करो ॥ २२ ॥ "फिर वहां बैठे हुए ब्राह्मणोंको पुकार कर बोले" कि, हे विप्रगण! हम किसी प्राणीको ब्राह्मणकी समान नहीं देखते। और ऐसी आशा भी नहीं है कि, किसी प्राणीको ब्राह्मणसे अधिक श्रेष्ठ देखेंगे अर्थात् जब कि, हमारे मतके अनुसार ब्राह्मणकी समान कोई नहीं। तब ब्राह्मणसे अधिक श्रेष्ठ कोई कहाँसे होगा? ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ क्यों हैं सो कहता हूं तुम सुनो, कि, मनुष्यलोग श्रद्धा सहित भली भाँति जो ब्राह्मणके मुखमें अन्नादिका होम करते हैं (अर्थात् उनको भोजन कराते हैं) सो उससे हमारा भोजन होता है, अग्निमें होम करनेसे हमारा वैसा तृप्तिकर आहार नहीं होता ॥ २३ ॥ और जो ब्राह्मण इस लोकमें हमारी वेदरूप प्राचीन मूर्ति धारण किये हुए हैं और जिनमें परम

पवित्र सत्त्वगुण, शम (मनको वशमें रखना) दम (इन्द्रियोंको रोकना) सत्य, दया, तपस्या, तितिक्षा (सहन शीलता) और प्रताप, यह आठ गुण विराजमान हैं, उनसे अधिक श्रेष्ठ मैं किसको समझूं ॥ २४ ॥ हे विप्रगण ! ब्राह्मणोंके संतोषकी वार्ता क्या कहूं । हम जो अनंत और परात्पर विष्णु स्वर्ग और अपवर्गके अधिपति हैं सो हमसे भी तो वह कुछ प्रार्थना नहीं करते, इसलिये उनको अन्य राज्यादि लेनेकी इच्छा कब हो सक्तीहै ? नहीं, कभी संभव नहीं हो सकती । बस वह लोग अकिंचन हैं, केवल मेरी भक्ति करते हैं । फिर भला वह और किसीसे किस पदार्थकी प्रार्थना करेंगे ॥ २५ ॥ हे पुत्रो ! स्थावर जंगम जितने भूत हैं, उनमें सब हमारा निवास जानकर तुम क्षण क्षणमें उनका सन्मान करो । जिससे तुम्हारी दृष्टि मत्सरादि दोषोंसे रहित होजाय; हे वत्सगण ! सर्व जीवोंका सन्मान करना ही हमारी पूजा है ॥ २६ ॥ और हमारी पूजा करना ही मन, वचन, चक्षु, व अन्यान्य इन्द्रियोंके व्यापारका साक्षात् फल है । हमारी पूजाके विना पुरुष महामोहमय यमकी फांसीसे किसी प्रकार नहीं छूट सक्ता ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! महानुभाव भगवान ऋषभदेवजी यद्यपि उनके पुत्रगण सब प्रकारसे स्वयंही शिक्षित थे, तथापि संसारी लोगोंको उपदेश करनेके लिये पुत्रोंका इस प्रकारका उपदेश देकर आप शान्त स्वभाव और कर्मबंधनसे रहित प्रधान मुनियोंको भक्ति, ज्ञान, वैराग्य लक्षण और परमहंस धर्म शिखानेकी वासनासे अपने सन्मुख सब पुत्रोंमें बडा पुत्र महाभागवत और भागवतोंका दास भरत था. उसको पृथ्वीका पालन करनेके लिये राज्यका भार सौंपकर उनका शरीर मात्र परिग्रह बचरहा । सब संसारका मायामोह त्याग उन्मत्तकी नांई दिगम्बर वेष किये खुले बाल रहकर अग्निहोत्रकी अग्निको अपने रूपमें ही आरोपकर संन्यास धारण करनेके लिये ब्रह्मावर्त चल दिये ॥ २८ ॥ लोग उनसे बोलते तोभी वह उनके बीचमें जड, मूक, अंध, बहिरे, पिशाच मतवालेकी समान विना बोले खडे रहते । क्योंकि उन्होंने मौनव्रत ग्रहणकर लिया था और अवधूत अर्थात् संन्यासीके सदृश उनका वेष होरहा था ॥ २९ ॥ वह इस प्रकारसे इकले पुर,ग्राम,खान, किसानोंके ग्राम, पुष्पादि वाटिका, सेना निवासके डेरे, गोशाला, गोपस्थान, यात्रियोंके मिलनेके स्थान, पर्वत, वन और मुनियोंके आश्रम इत्यादि जहाँ जाते, उस स्थानकेही मार्गमें मक्खियें जिसप्रकार वनैले हाथीको व्याकुल करना चाहती हैं वैसेही दुष्ट दुरात्मा लोग इन्हें भय दिखलाते, ताडना करते, शरीर पर पेशाब करदेते, थूँक देते, पत्थर, विष्ठा और धूरि फेंकते, सन्मुख अधोवायु छोडते और दुर्वचन आदिक अनेक प्रकारकी दुष्टता करते थे, परन्तु ऋषभदेवजी इन सब बातोंको कुछभी नहीं गिनते थे, क्योंकि यह शरीर असत्य पदार्थोंका स्थान है । मिथ्यामय जो यह सब संसार नाममात्रका सत्य है, इसमें सत्य और असत्का अनुभव रूप जो अपनी ममता और अहंकारकी स्थिति है । इसके द्वारा उनका, अपना, मेरा इस बातका अभिमान दूर होगया था इसलिये कोई बातभी उनके मनमें किसीप्रकारका विकार न उपजा सकी सदा अकेले पृथ्वीपर विचरते रहते थे ॥ ३० ॥

यद्यपि उनके हाथ, पैर, वक्षस्थल, कन्धे और वदन इत्यादि अंग सब अतिशय कोमल थे और भली भाँति सुडौल होनेसे सबही मनोहर शोभा धारण कर रहे थे और वह आपही स्वभावसे सुन्दर थे और स्वाभाविक हँसनेसे उनका मुख अत्यन्त शोभायमान विदित होता था; दोनों नेत्र नवीन कमलदलकी समान चौडे और लम्बे व अरुणवर्णथे उनमेंके तारे संताप नाश करनेहारे झलक रहेथे और कपोल, कर्ण, कण्ठ, नासिका यह सब अंग बराबर और सुशोभितथे यद्यपि गूढ हास्ययुक्त वदनके महोत्सव निहारकर पुरनारियोंके मनमें मदन उत्पन्न होजाता था. तथापि अग्रभाग पर कपिशवर्ण, जटायुक्त, कुटिल केशभार लम्बा होकर पडा रहनेसे ऐसा जान पडता, मानो उनका शरीर यत्न न करनेसे मलीन होरहा है। इसकारण उस समय वह ऐसे जानपडते थे जैसे किसीको ग्रहने ग्रस लियाहो॥ ॥ ३१ ॥ तिसके पीछे जब उन्होंने विचारा कि, लोग बहुत तंग करते हैं. और ऐसे योगका साधन नहीं होगा, क्योंकि संसारके लोगोंका संग दुःखका मूल है, तब इन सबसे पीछा छुटानेके लिये उन्होंने अजगर नामक व्रत धारण किया अर्थात् एकही स्थानमें रहकर शयन करना, भोजन करना, जल पीना, चर्वण करना, मल मूत्र त्याग करना, इत्यादि क्रियायें करनी उन्होंनें आरम्भ करदीं और विष्ठाके ऊपर लोटने लगे, उससे शरीरके बहुत अङ्गोंमें विष्ठा लगगया ॥ ३२ ॥ परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि, उनके विष्ठामें दुर्गन्धिका नाम नहींथा, बरन् उसकी सुगन्धिसे वहांकी पवन तक अतिशय सुरभि होगई उस पवनसे उस स्थानके निकट दशयोजनलों सौरभ सुवासित होगया ॥ ३३॥ भगवान् ऋषभदेवजी संन्यासाश्रममें प्रविष्ट होकर इस प्रकार गौ, मृग, कागकी तुल्य आचरण करनेलगे, कभी चलते चलते, कभी खडे खडे, कभी बैठे बैठे भोजन, पान और मल मूत्र त्याग करदेते थे, इससे गौ, वा मृग, अथवा कागकी तुल्य उनके समस्त आचरण होगये थे ॥ ३४ ॥ हे राजन्! योगियोंमें श्रेष्ठ ऋषभदेवजी इसप्रकार लोगोंकी भीड निवारण करनेके लिये, योगियोंको किस प्रकार वर्त्तना चाहिये उसके दिखानेके लिये विविध भाँतिकी योगचर्य्या करते थे, किन्तु वह स्वयं भगवान् और अपने स्वरूपभूत केवल परब्रह्ममें देहादिके अनुसन्धान रहित और परम महत् अर्थात् उत्तरोत्तर शतगुण रूपसे बढा हुवा जो आनन्द है वह उनका स्वरूप है । और ऐसे सब प्राणियोंके आत्मा जो वासुदेव हैं, इसकारण उपाधिभाव परित्याग करनेसे स्वतःसिद्ध व समस्त फलोंसे भरपूर थे। इसकारणसे आकाश गमन, मनकी समान शरीरका वेग होना, अन्तर्धान, दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना और दूरकी वस्तुको ग्रहण करलेना, यह जो योगकी सिद्धियें हैं, यह यदृच्छासे प्राप्त होगईं थीं परन्तु ऋषभदेवजीने अपने मनसे उनका आदर नहीं किया॥ ॥ ३५ ॥ इसपर एक कवित्त है ॥

कवित्त—आयेको हरष नहीं गयेकोहु शोक नहीं, कैसो निरद्वन्द भयो समझकी बातहै। देह नेह नेरे नहीं लक्ष्मीकोहू हेरे नहीं, मनको कहूँ न

फेरे पाहन सो गातहै ॥ लोकनकी रीति नहीं काहू सोंहू प्रीति नहीं, हार नहीं जीत नहीं वर्णहै न जातहै । ऐसो जब ज्ञान होत तबै कछु ध्यान होत, ब्रह्मकी समान होत ब्रह्ममें समातहै ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे श्रीऋषभदेवानुचरित्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-गर्व रहित तनु तज ऋषभ, षडध्यायके माहिं ।
जारे दावानलहि जो, देखत देखै नाहिं ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित बोले कि, हे भगवन् ! जिन पुरुषोंकी आत्मामें ही रति है, उनकी योगसे प्रदीप्त हुई ज्ञानरूप अग्निमें कर्मबीज राग द्वेषादिक दग्ध होजाते हैं. उनके पास यदृच्छासे सिद्धियां आवैं, तोभी उनको क्लेशकी देनेवाली तो हो नहीं सक्तीं फिर किसलिये भगवान् ऋषभदेवजीने यदृच्छासे आई हुई सिद्धियोंका अनादर किया ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि हे राजन् ! जो तुमने कहा सो सत्य है परन्तु इस पृथ्वीपर कुछ एक बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार शठ किरात मृग पकड़ लेनेपर भी उसका विश्वास नहीं करता, चंचलता युक्त इस मनके सम्यक् रूपका विश्वास नहीं करते ॥ २ ॥ इस कारण तत्त्वोंके जाननेवालोंने कहा है कि, मन जो चंचल हो तो कहीं किसीके साथ मित्रता करनी न चाहिये । क्योंकि इस प्रकार मनका विश्वास करनेसे शिवजीकीभी बहुत कालसे संचित की हुई तपस्या विष्णुजीके मोहिनीरूपको देखकर क्षणमात्रमें क्षीण होगई थी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इसका कारण यही है कि, जो योगी इस प्रकारके चंचल मनको विश्वास करता है, उसका मन जिस प्रकार विश्वासी पतिकी व्यभिचारिणी स्त्री अपने मित्रोंको अवकाश देकर पतिको मरवा डालती हैं, वैसेही कामदेवको और उसके अनुचर क्रोधादिक रिपुगणोंको उनकी इच्छानुसार कर्म करने देना, अपने भ्रष्ट करनेको अवकाश देना है ॥ ४ ॥ महाराज ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, मद और भयादि और कर्मबंधन यह सब जिसके कारणसे होते हैं, उस मनको कौन ज्ञानी पुरुष अपने अधीनमें मानेंगे ? ॥ ५ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी यद्यपि लोकपालोंके शिरोमणि थे तथापि पीछेसे उनके संगमें कोई अनुचर भी नहीं रहा सब संन्यासीकी समान अनेक वेष; अनेक भाषा और अनेक आचार व्यवहारका अवलम्बन करनेसे उनमें किसी रीतिसे भगवत्का प्रभाव नहीं दीखताथा, वह इसप्रकारसे कुछ कालतक घूमते रहकर फिर यहभी दिखाया कि, किसप्रकारसे देह त्याग करना चाहिये यह योगियोंको सिखलानेके लिये अपने शरीरको त्याग करनेकी इच्छा की, इसलिये आत्मामें हीं साक्षात् ठहराये हुये परमात्माको अपने साथ भेदरहित स्वरूपसे देखकर देहाभिमानका त्याग कर दिया ॥ ६ ॥ यद्यपि उनका देहाभिमान इसप्रकारसे निवृत्त होगयाथा, तथापि योगमाया और वासनाद्वारा उनका देह जिस प्रकार कुम्हारका

चाक एकवार चलानेसे देरतक घूमा करता है वैसेही संस्कारके वश होकर बार २ भ्रमण करते करते कोङ्क, वेङ्कट, कुकट और दक्षिण कर्णाटक देशमें आपसे आपही पहुँच गया। वहां कुटकाचलके वनके निकट उन्होंने किसी वासनासे कुछ छोटे २ पत्थर लेकर अपने मुखमें डालदिये। फिर बावलेकी समान बाल खोलकर नंगी देहसे इधर उधर घूमने लगे ॥ ७ ॥ दैवात् वायुके वेगसे उस वनमें (जहाँ कि, ऋषभदेवजी घूमते थे) बाँस बहुतही कम्पायमान हुए। उन सबके परस्पर रगड़नेसे शीघ्रही भयानक दावानल प्रज्ज्वलित होकर वनको सर्व भांतिसे ग्रास करलिया, उन (ऋषभदेवजीकी) देहको भी साथही भस्म कर दिया और वह अग्निमें ही प्रवेश होगये, क्योंकि अग्निके संस्कारसे शुभगति प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ हे राजन्! भगवान् ऋषभदेवजी पंडितोंकी वर्णन करी हुई अवस्थामें भ्रमण करते करते जिस प्रकारके आचरण किये थे, उसको जानकर कोङ्क, वेङ्कट, कुकटादि देशके अर्हत नामक राजा स्वयं इस प्रकारकी शिक्षा करैंगे और निडरहो अपना धर्म छोड छाँडकर अपनी बुद्धिसे पाखण्डरूप कुमार्ग प्रवृत्त करावेंगे। क्योंकि कलियुगमें अधर्महीकी बढ़वार होगी, इसलिये भवितव्य अर्थात् प्राणियोंके पूर्व संचित किये हुए पापके फलसे इन राजाओंकी बुद्धि विमोहित होजायगी ॥ ९ ॥ इन अर्हत राजाओंसेही कलियुगी मनुष्यगण देवमायासे मोहित होकर अपने अपने शौच आचार परित्याग करके देवताओंका निरादर आचमन न करना शौच न करना, केश नोचना इत्यादिक खोटे कर्म अपनी अपनी इच्छासे धारण करेंगे, उसीसे उन सब पुरुषोंकी बुद्धिका नाश होजायगा, जब बुद्धिका नाश होजायगा तो वह सब सदाही वेद, ब्राह्मण, विष्णु, व सज्जन पुरुषोंकी निन्दा किया करेंगे ॥ १० ॥ यह सब लोग अंधपरम्पराके तुल्य अवेद मूलक इस प्रकारकी इच्छानुसार प्रवृत्तिका विश्वासकर अपने आपही घोर अंधकार नरकमें गोते खायँगे ॥ ११ ॥ यद्यपि भगवान्‌का यह अवतार ही ऐसा अनर्थ करनेवाला हुवा। तथापि जो सब पुरुष रजोगुणमें व्याप्त हैं उनकी मोक्ष किस प्रकारसे हो यह सिखानेके लिये यह अतिप्रयोजनीय हुवा. इस कारण पंडित लोग उस अवतारका गुण वर्णन करते हुये अनेक श्लोकोंको गाया करते हैं ॥ १२ ॥ उन सब श्लोकोंका अर्थ यह है. यथा 'अहो ससागरा' पृथ्वीमें इन सब द्वीपोंमें यह भारतवर्ष अतिशय पुण्यवान् खंड है क्योंकि यहांके जन्मे हुये लोग श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद भगवान्‌के और ऋषभावतार युक्त चौवीस अवतारोंके उत्तमोत्तम कर्म और पवित्र चरित्र गाया करते हैं ॥ १३ ॥ अहो! राजा प्रियव्रतका वंश यश करके आश्चर्यरूपसे पवित्र हुवा क्योंकि पुराण पुरुष भगवान् उनके वंशमें अवतार लेकर मोक्षमूलक धर्मका आचरण करगये हैं ॥ १४ ॥ वह अज हैं जन्म नहीं ग्रहण करते और कोई योगी मनोरथ करके भी उन ऋषभदेवजीके रीतियोंपर चल सकता है? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं होगा। क्योंकि उन्होंने अवस्तु समझकर जिस योगमायाका अर्थात् सिद्धियोंका अनादर किया था और योगिजन तो उनकोही प्राप्त करनेके लिये विविध भाँतिके यत्न करते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन्! भगवान्

ऋषभदेवजी लोक, वेद, देव, ब्राह्मण और गौओंके परमगुरु थे। उनके विशुद्धचारितके मध्य जो कुछ कहा गया है, वह पुरुषोंके सब पापोंका नाश करनेवाला और परममंगल-दायक है। जो पुरुष वृद्धिगत श्रद्धापूर्वक इसको सुने वा सुनावै उन दोनों जनोंमें ही भगवान् वासुदेवजीकी एकांतभक्ति रहा करती है ॥ १६ ॥ जिससे कविगण अपने आत्माको जो अनेक प्रकारके पापरूप संसारके संतापमें निशिदिन तपते रहते हैं और मनको वारम्वार स्नान कराकर उसीके द्वारा परम निवृत्तिको प्राप्त होते हैं और भगवद्भ-क्तिको मंगलमय समझकर अपने आपको कृतार्थ मानते हैं। और वह महात्माजन उसीमें मग्न होकर फिर उससे परमपुरुषार्थरूप जो मुक्ति पदार्थ है, उसको विना प्रार्थनाके श्रीभगवानजीके प्रसादसे आप उपस्थित होनेपरभी उसका आदर नहीं करते। क्योंकि जो भगवान्के भक्त हैं उनको सब पदार्थ आपही मिलगये हैं परंतु वह सब प्रकारसे भगवत्की भक्तिको ही सुख मानते हैं ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! भगवान, हरि तुम्हारे और यादवोंके पति अर्थात् पालन करनेवाले गुरु अर्थात् उपदेशक, दैव अर्थात् उपासना करने योग्य प्रिय अर्थात् सुहृद् और कुलके नियन्ता और कभी कभी दौत्यादि कार्योंमें सेवक भी बन जाते थे, तोभी हे महाराज! भगवान् तुम्हारे प्रति अनुकूल थे और जो लोग उनका भजन करते हैं, उनको तो वह मुक्ति देदेते हैं। परंतु वह भक्तियोग कभी किसीको नहीं देते, जिसको प्रेम लक्षण कहते हैं ॥ १८ ॥ हम भगवान् ऋषभदेवजीको नमस्कार करते हैं। निरन्तर अनुभव किया हुवा जो स्वरूप है, इसके लाभ होतेही उनकी सब तृष्णा दूर होगई थीं। देहादि निमित्त मनोरथ हेतु कल्याणके विषयमें जिन पुरुषोंकी बुद्धि सदा सोई रहती थी ऋषभदेवजीने उनके ऊपर करुणा करके अपने अभय लोकका उपदेश किया था, ऐसे ऋषभदेवजीको वारंवार नमस्कार है वह यह मंत्र सबको देतेथे-

कवित्त-रामहीको नामरटे बुद्धि बल वृद्धि होय, रामहीको नामरटे नीको कुल पावै है ॥ रामहीको नामरटे चक्रवर्ती राज्यमिलै, रामहीको नाम परम् धामको दिखावै है ॥ रामहीको नामरटे ऋद्धि और सिद्धि होत, रामहीको नाम इन्द्रासनपै बिठावै है ॥ रामहीको नामरटे निर्भय नरदेह मिलै, राम राम रटत निर्वाणहू होजावै है ॥ १९ ॥ [१]

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे श्रीऋषभदेवचारित्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-राज्य करत यागादिसों, हरिचरणनमें प्रीति।
करी भरत नृपनेहकर, वरणों सोई नीति ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाभागवत भरतजीने भगवान् ऋषभदेवजी अपने पिताकी आज्ञा मान पृथ्वीकी रक्षा और प्रजाके पालनमें नियुक्त हुये और उनकीही आज्ञानुसार

उन्होंने विश्वरूपकी पुत्री पंचजनीका पाणिग्रह किया ॥ १ ॥ अहंकारसे जिस प्रकार सूक्ष्म भूतोंकी उत्पत्ति होती है, वैसेही इस स्त्रीके गर्भमें उनके पांच पुत्र उत्पन्न हुये वह पाँचों पुत्र संपूर्ण भावसे अपने पिता भरतजीकी समान हुये ॥ २ ॥ उनके नाम यह थे-सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु । हे राजन् ! पृथ्वीके इस वर्षका नाम पहले अजनाभ था, परंतु जबसे भरत राजा हुआ तबसे इसका नाम भारतवर्षहोकर प्रसिद्ध हुआ । राजा भरत सर्वज्ञ थे, पृथ्वीनाथ होकर अपने बाप एवं दादेके तुल्य प्रजाके ऊपर वत्सलता प्रकाश करते रहे अपने अपने कर्ममें रत प्रजागणको लालन पालन करते थे ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ और श्रद्धासहित अनेक अनेक छोटे और बडे यज्ञ करके उनके द्वारा यज्ञ मूर्ति और क्रतुमूर्ति, विष्णुभगवान्‌जीकी पूजा करते रहे, अर्थात् उनको जिस जिस अग्नि-होत्र दर्श पौर्णमास चातुर्मास्य पशुयाग और सोमयज्ञमें अधिकार था, उन सबोंके द्वारा कभी सर्वाङ्ग युक्त, कभी विकलाङ्ग करके दोनों भाँतिसे भगवान् वासुदेवकी पूजा करते थे और चातुर्होत्र विधिसे सदाही उपासना किया करते रहते थे ॥ ५ ॥ और जिनकी अंग-क्रिया नित्य करनेमें आती ऐसे यज्ञ जहाँ होते थे और ऋत्विक् लोग अग्निमें छोडनेके लिये जब हवि ग्रहण करते थे, तब यजमान यह राजा उसका अनुष्ठान करनेके लिये, अपूर्व जो इन सब क्रियाओंका फल है, और जिसका नाम धर्म है । वह परब्रह्म परमात्मा यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवमेंही वर्तमान है, इस प्रकार विचार करके यज्ञका भाग लेनेवाले सूर्यादि देवताओंकोभी भगवान् वासुदेवको चक्षु इत्यादि अवयवमें विचारकर ध्यान करता था । हे महाराज ! महर्षि भरत यज्ञादि क्रियाओंके लिये अपूर्व भगवान् वासुदेवका जो ध्यान करता इसका कारण यह है कि, इनहींसे सब देवताओंमें भगवान्‌ही मुख्य हैं ऐसा माना जाय तोभी वेदके मंत्रोंसे बोधित किये हुये इन्द्रादि देवताओंके नियंता होनेसे सब केही कर्ता नहीं हुये । इस कारण उन्हीं परम देवता यज्ञपुरुष भगवान्‌के अर्थ यज्ञका फल समर्पण करना उचित है, भरतजी इस प्रकारका विचार करके आत्माकी चतुराईसे शीघ्रही रागद्वेषादिक मलसे निवृत्त होगये ॥ ६ ॥ और इन सब विशुद्ध कर्मोंके करनेसे उनका अंतःकरण शुद्ध होने लगा, उससे हृदयके बीचमें स्थित हुआ जो आकाश है । वही है जिनका पहँचाना हुवा स्थान, वहीं परब्रह्म भगवान् वासुदेवका महापुरुष रूपसे दर्शन होता था, जो महापुरुषाकार हैं और श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, शंख, चक्र और गदा इत्यादि धारण करनेसे जो विराजमान होरहे हैं और अपने भक्त नारदादिकोंके हृदयमें विचित्र तुल्य पुरुषरूपसे अपने आपही देदीप्यमान हैं सो उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवमें उन राजा भरतको बडी भक्ति उत्पन्न हुई और उस भक्तिका वेग दिन दिन अधिक बढने लगा ॥ ७॥ महात्मा भरतजीने अपने राज्य संबंधि भोगके प्रारब्ध समयकी समाप्तिका काल सहस्रों वर्षतकका नियम नियत किया था, वह समय जब इस प्रकार व्यतीत होगया तब अन्त-समय आया जान कर उन्होंने अपने पितामह पिताका राज्यबन्धन जिसको अपने अधिकार से भोग रहे थे, उसको शास्त्रानुसार अपने पुत्रोंको यथायोग्य विभाग करके बाँट दिया

और सब ऐश्वर्य सम्पदाओंसे परिपूर्ण भवनको त्याग संन्यास धारणकर पुलस्त्यमुनिके आश्रममें तप करनेके लिये चलेगये, हरिक्षेत्रमें वह आश्रम है, वही विद्याधरकुण्ड है ॥ ८॥ वहांके वास करनेवाले सज्जन पुरुषोंको भगवान् वासुदेव प्रेमके वशीभूत हो आजतक भक्तोंकी इच्छानुसार वात्सल्यतासे दर्शन देते हैं ॥ ९ ॥ उस आश्रममें गंडकी नाम परमोत्तम नदी है जिसको चक्रभी कहा है, वहीं विद्याधरकुण्ड है जिसकी शिलाओंके ऊपर नीचे हिरण्यगर्भ नाभिवाले चक्र उत्पन्न होते हैं, उनहींका नाम शालिग्राम है जो अपने चक्रोंसे आश्रमके ग्राम और प्रदेशको चारों ओरसे पावन और पवित्र करती है-

भजन- ॥ राग भैरों-शालिग्राम कृपाके सागर मन तू क्यों नहिं ध्यावत है रे ॥ सतयुग द्वापर त्रेता कलिमें एक हि रूप पुजावत है रे ॥ १॥ शुद्ध हिमाचल पर्वत भीतर मुक्ति क्षेत्र कहावत है रे ॥ एकबार चरणामृत लेजो सो फिर जन्म न पावत है रे ॥ २ ॥ भक्त होयकर भोग लगावे अन्त स्वर्गमें आवत है रे ॥ हरिप्रसाद देवनको दुर्लभ तनुके पाप नशावत है रे ॥ ३ ॥ जन्म जन्मके पाप कटत हैं पार्षद हो सुख पावत हैं रे ॥ हरिके निकट रहत निशिवासर हरि हरि हरि हरि गावत है रे ॥ ४ ॥ धूप दीप नैवेद्य आरती कर जो शंख बजावत है रे ॥ पुरुषोंमें पुरुषोत्तम सो नर तुलसी पत्र चढ़ावत है रे ॥ ५ ॥

इस प्रकार हरिक्षेत्रके उपवनमें राजर्षि भरत अकेले रहा करते और भाँति भाँतिके कुसुम, कोमल, तुलसी, जल, कन्द, फलादिक चढाकर श्रीभगवान्की सदा शुद्ध मनसे आराधना करते रहतेथे और विषयोंकी तृष्णाको त्याग शान्तिकी वृद्धिकर परमानन्दमें मग्न रहतेथे ॥ १० ॥ ११ ॥ इस प्रकार नित्यप्रति भगवान्का पूजन करनेसे उनका अनुराग बढा और अनुरागके बढनेसे उनका हृदय शिथिल होता जाताथा और हर्षके प्रभावसे उनका शरीर पुलकायमान होगया और उत्कण्ठाके वश होनेसे प्रेमके आँसु निकलकर दोनों नेत्रोंके दृष्टिको रोकने लगे, तो दर्शनशक्ति बन्द होगई भरतजी जब इस प्रकारकी अवस्थाको प्राप्त हुये तब स्वयं भगवान्की आराधना करनेलगे, उसकोभी बराबर स्मरण नहीं रखते, क्योंकि अपने प्रीतम प्यारे भगवान्के अरुण चरणारविन्दका ध्यान करते २ भक्तियोगकी प्राप्ति होगई थी, उससे हृदयरूप हृदमें सर्वत्र परमानन्द ऊफनकर चारों ओरको फैल जानेसे उसमें भरतजीका मन निमग्न होगया था ॥ १२ ॥ वह मृगछाल पहरकर तीनों कालकी सन्ध्या करते नित्यप्रति स्नान करनेके कारण भीनी पिंगल वर्ण और कुटिल जटासमूह सदा गीला रहनेसे उन (भरत) को अतिशय शोभित होते थे, इस प्रकार भाँति भाँतिके भगवद्व्रत धारण करके उदय होते सूर्यमण्डलको सूर्यप्रकाशक ऋक्मन्त्रविशेषसे भगवान् हिरण्मय पुरुषकी आराधना इस मन्त्रसे किया करते थे ॥ १३॥

मन्त्र-परोरजःसवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गोमनसेदं जजान ।
सुरेतसादःपुनराविश्यचष्टेहंसंगृध्राणं नृषद्रिंगिरामिमः ॥

सब जगत्का उत्पन्नकरनेवाला प्रकाशात्मक परमेश्वर रजोगुणसे परे सब कर्मफलदायक जो तेज रूप है सो मनहीसे इस विश्वको उत्पन्न किया, फिर इस विश्वमें अपनी चित्‌शक्ति से प्रवेश करके रक्षाकी इच्छावाले जीवको मनुष्योंमें रहनेवाली बुद्धिकी वृत्तिको उपजाने वाले उन सूर्यनारायणके आत्मरूप वाले तेजकी हम शरण हैं ॥ १४ ॥

भजन-प्रभु टुक मेरी ओर निहारो ॥ विपति विदारण नाम तुम्हारो हमरिहु विपति विदारो ॥ १॥ गणिका, गीध, व्याधसे तुमने, तारे पतित हजारो ॥ वाल्मीकिको भक्त बनायो, वेद पढाये चारो ॥ २ ॥ द्रुपदसुता की लज्जा राखी, जलते गजहि उबारो ॥ हिरनकशिपु, रावण, कंसासुर केश पकरकर मारो ॥ ३ ॥ जब जब भीरपरी भक्तनपर, तब तब नरतनु धारो ॥ शालिग्राम नाम यदुपतिको, सब दुख मेटनहारो ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे श्रीभरतकृतहरिक्षेत्रपूजन-शालिग्रामोत्पत्ति-गण्डकीमाहात्म्यादि वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-हरि सेवत नृप भरत नित, चितसे अष्टाध्याय ।
अन्तरायसे मृग भये, मृगसुत सों मन लाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! एक समय यह भरतजी महानदी गण्डकीमें स्नान और नित्य नैमित्तिक और सब आवश्यककर्म समाप्ति करके तीन मुहूर्तका नियम लेकर नदीके तीर बैठ ओंकारका जप कर रहे थे ॥ १ ॥ हे राजन् ! उस समय एक हरिणी जल पीनेकी इच्छासे अकेली उस नदीके निकट आई ॥ २ ॥ वह हरिणी अधिक प्यास लगनेसे जल पी रही थी कि; इतनेमें निकटही एक सिंह गर्ज उठा, उसका गर्जना लोगोंको भय उपजानेवाला बडा तीक्ष्ण था ॥ ३ ॥ हरिणीका हृदय एक तो स्वभावसेही व्याकुल था और दूसरे सिंहकी गर्जना सुनकर उसके मनमें और भी अधिक भय उत्पन्न हुआ और उसके हृदयको महा व्याकुल करने लगा, इस कारण वह हरिणी इधर उधर घूमकर चकित हो देखने लगी, यद्यपि उसकी प्यास नहीं बुझी थी तो भी डरके मारे सहसा छलांग मारकर नदीके पार होनेको हुई ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वह हरिणी गर्भवती थी, सो महाभयसे उसका गर्भ अपने स्थानसे विचलित होगया, इस कारण जैसेही उसने छलांग भरी कि उसका गर्भ योनिद्वारा निकलकर नदीकी धारमें गिर पडा ॥ ५ ॥ एक तो हरिणीके अन्तःकरणमें महाभय उपस्थित हुवा था, दूसरे गर्भ गिरा और गर्भ किस समय गिरा कि, नदीके पार उछलनेमें छलांग मारती समय, तीसरे वह अपने झुण्डसे बिछुडी हुई थी, इस कारण ऐसा परिश्रम पडनेसे बहुत पीडित होकर एक पर्वतकी गुफामें जापडी और पडतेही शीघ्र उसके प्राण शरीरसे निकल गये ॥ ६ ॥ यहां राजर्षि भरतजीने नदीके तीर बैठे हुए देखा कि, दीन हरिणीके बच्चेकी माता, बच्चेको छोडकर

चलीगई और वह बच्चा नदीकी धारमें बहने लगा, तब बन्धुकी समान दया करके मरी हुई हरिणीके बच्चेको उठाकर भरतजी अपने आश्रममें ले आये। उस हरिणीके बच्चेका क्रम क्रमसे "यह हमारा अपनाही है" ऐसा अभिमान और स्नेह भरतजीको उत्पन्न हुआ। इस कारण वह दिनरात घासादि लाकर उसका पालन पोषण और भेडिया इत्यादि जन्तुओंसे रक्षण, प्रीणन और चुम्बनादिसे प्यार करनेमें लगे रहते थे। इन कार्योंके करनेसे दिनरात उस बच्चेमें अनुरागी रहनेके कारण उनके नियम (स्नानादि) यम (अहिंसादि) और अर्चा (ईश्वरका आराधनादि करना) प्रतिदिन एक २ करके थोडे थोडे कम होने लगे और कुछ दिन पीछे एक साथही सब छूट गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ और वह सदा यही चिन्ता करते रहते कि अहो! यह हरिणीका बच्चा अति दीन है कालकी गतिसे यह अपने संगके बन्धु बान्धवोंसे छूटगया है, अब परमेश्वरने इसको हमारी शरणमें किया है, अब यह हमकोही माता, पिता, भ्राता, जातिवाला और यूथपति जानता है, हमारे सिवाय यह किसीको नहीं जानता और हमाराही बडा विश्वास करता है इसलिये हमकोभी असूया त्यागकरके, अर्थात् इसके वास्ते हमारा स्वार्थ नष्ट होता है यह दोष दृष्टि दूरकरके अपना आश्रय लिये हुए इस हरिणीके बच्चेको घासादि दें। भेडिये इत्यादि जीवोंसे रक्षाकर इसके शरीरको थमकोर और चुम्बनादिसे पालन करना चाहिये, क्योंकि शरणागतको निरादर करनेसे जो दोष होता है, उसको मैं भलीभाँति जानता हूँ, सो इसके पालनेमें ध्यान न देना हमारा कर्तव्य नहीं है ॥ ९ ॥ १० ॥ बडे और महाशील स्वभाववालेही साधु और दीनबन्धु होते हैं, वह लोग ऐसे कार्यके लिये अपने बडे भारी स्वार्थपरभी ध्यान नहीं देते ॥ ११ ॥ इस प्रकारसे उस मृगबालकके साथ बैठना, उठना, शयन करना, भ्रमण करना, स्नानकरना, और भोजनादि कार्योंमेंही भरतजी आसक्त होगये, और उस मृगछौनाहीके स्नेहमें उनका हृदय फँसगया, अपने लिये कुश, कुसुम, समिधा, फल, मूल, जल, लेनेके लिये जब वनमें जाते तब पीछे भेडिया, सिंह आदि आकर इस मृगबालकको खा नजांय, इसलिये उस बच्चेकोभी अपने साथही लेकर वनमें जाते थे ॥ १२ ॥ कोमल स्वभाव उस भोले भाले बच्चेके लिये भरतजीका हृदय स्नेहके भारसे भरगया था, इसलिये मार्गमें जाते जाते मोहके भावसे आसक्त मति होकर स्नेहके मारे उसको कन्धेके ऊपर उठाकर ले चलते और कभी गोदीमें, कभी छातीसे लगा अत्यन्त लाड प्यार व पुचकार कर परमहर्षको प्राप्त होते ॥ १३॥ अपने कर्त्तव्य यज्ञ यज्ञादि क्रिया आरंभ करके समाप्ति न होनेपर बीचमेंही उठ बैठते और जब उस बच्चेको देखे,तब उनका अन्तःकरण स्वस्थहो और उसको पुकारकर आशीर्वाद प्रार्थना करके यह कहैं कि, हे वत्स! तुम्हारा सब प्रकारसे मंगल हो॥१४॥यदि कदाचित् यह बच्चा इधर उधर चला जाता तो कृपण पुरुष धनका नाश होनेसे जिस प्रकार शोक करता है,वैसेही भरतजी अति उद्विग्न चित्त होते और अत्यन्तही उत्सुकताके हेतु उस बच्चेके विरहमें उनका हृदय अतिशय विकल और संतापित होता इसलिये महामोहमें पडकर उसके लिये शोकसे विह्वल हो करुणा कर करके भरतजी

यह वचन कहा करते ॥ १५ ॥ अहह ! यह क्षीण हरिणीका बच्चा मृत जननीका बालक अति दीनहै. यद्यपि मैं अनार्य भाग्यहीन और शठहूं और किरातकी समान मेरी मति छलने वाली और अति टेढी है। तोभी उस हरिणीके बच्चेने मेरा विश्वास कियाहै इसलिये सुजन की समान अपना चित्त, निर्मल होनेसे वह हमारे अपराध (शाठ्यादि) न गिनकर क्या नहीं आवेगा ? ॥ १६ ॥ बोध होताहै कि, मैं उसे इस आश्रमके स्थानमें निर्विघ्न कोमल तृण भक्षण करते हुए देखूंगा, भगवान् उसकी रक्षा करैं ॥ १७ ॥ कोई भेडिया, व्याघ्र अथवा और कोई हिंसक जंतु उसको अकेला जानकर कहीं खा नजाय ? ॥ १८ ॥ जिनके उदय होनेसे सव संसारका मंगल होता है, वह वेदस्वरूप सूर्य देव अस्ताचलको गमन करना चाहते हैं परन्तु अबतक उस मृगवधूका धरोहर स्वरूप वह मृगशावक क्यों नहीं आया ? ॥ १९ ॥ अहो ! वह राजकुमार हरिणीका शिशु देखने योग्य, मनोहर अनेक प्रकारकी वाललीला करके अपने स्नेही जनोंके खेदको दूर करने वाला फिर क्या आकर मुझको सुखी करेगा ? ऐसा मैंने कोई असुकृत नहीं किया फिर किस प्रकारसे मेरे भाग्यमें यह सुख प्राप्त होगा ? ॥ २० ॥ अहो ! खेलनेके समय मिथ्या स्नेहके कोपके मिषके समाधिके छलसे जब मैं दोनों नेत्र मूँदलेता तब वह मृग छौना मेरे चारों ओर फिरता और चकित होकर कोमल सींगोंके अग्रभागसे मुझको स्पर्श करता ॥ २१ ॥ फिर कुशोंके ऊपर जो मैं होम करनेकी सामग्री रखदेता, तव वह हारिणीसुत खेलते खेलते चपलताके वश हो; दाँतोंसे कुश पकडकर यद्यपि उस सामग्रीको दूषित करदेता, परंतु जैसेही मैं क्रोध प्रकाश करता कि, उस क्रोधके करनेसे वह अतिशय भयभीत होकर तत्क्षण ऋषि कुमारकी समान क्रीडा परित्याग करके निश्चल होकर, नीचेको मुख कर लेता ॥ २२ ॥ राजर्षि भरतजी इस प्रकार वहुविध विलाप करके आश्रमसे चलते और आगे उन्हें खुरोंके चिह्न दृष्टि आते तब सम्भ्रांत चित्त होकर फिर आपही आप कहने लगते कि, अहह ! यह पृथ्वी अतिशय भाग्यवती है। न जाने इसने क्या तप किया था, जो स्थान स्थानमें अंकित उस हरिणी छौनाके चरणचिह्नोंकी पंक्तिसे हमारे निकट उसके गमनका मार्ग बतलाती है और अपनेको भी उन चरणचिह्नोंसे भूषित करके ब्राह्मणोंके यज्ञ करनेका स्थान बताती है हम उस मृगशावकके विरहमें अतिशय दुःखित हो रहे थे, सो अब इन खुरोंके चिह्नोंको पृथ्वीमें अंकित हुवा देख कुछ धैर्य आया ॥ २३ ॥ उसके पीछे चंद्रोदय होनेपर चन्द्रमंडल में मृगका चिह्न देखकर उसको ही अपना मृगशावक समझकर कहने लगे । अहो हमारा यह छौना, जब आश्रमसे बाहर निकलकर कहीं चला गया होगा, तब दीनोंका प्यार करने वाले तारापति भगवान् चन्द्रमाजी महाराजने यह समझ कर कि कहीं सिंह इसको भक्षण न करजाय, क्योंकि यह अपने आश्रमका भूला भटका, मृतक जननीका बालक, बांधवोंके समूहसे विछुडा हुवा भोली भाली मनोहर छबि देखकर, दया करके अपने निकट रखकर इसकी रक्षा करते हैं ॥ २४ ॥ फिर चंद्रमाकी किरण जो उनकी देहपर पडी तो उसके स्पर्शका सुख पाकर कहने लगे. अहह ! उस मृगबालकके ढूँढनेसे जो उसके वियोगकी

तपती हुई दावाग्नि की शिखाके समान जो हमारे हृदयरूप स्थल कमलको संतापित करती थी, इसको जानकर भगवान् चंद्रमाजीने दया करके सुशीतल शांतवदनके सलिल रूप अमृतमय किरणसे हमको सुख उपजाया, लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि, मुखकमलके जलसे तापको शांत करते हैं ॥ २५ ॥ हे राजन्! वह योगधारी तपस्वी भरतजी इस प्रकारके असंभव मनोरथसे व्याकुल हृदय हो, मृगशावककी नांई प्रकाशमान अपने आराधक कर्मोंके द्वारा योगानुष्ठानसे और भगवान्जीके आराधना रूप कर्मसे नष्ट भ्रष्ट होगये. महाराज! अपने कर्मसे ही उनकी आराधना व योग नष्ट हुवा. यदि ऐसा न होता तो जिस पुरुषने पहले मुक्तिमें विघ्न जानकर अत्याज्य पुत्रोंको भी परित्याग कर दिया था, उसको फिर दूसरी जातके मृगशावकमें सहसा अपने पुत्रकी समान आसक्ति क्यों होती। जो हो, इस प्रकार विघ्नोंके पडजानेसे योगभ्रष्ट हुये, अपने आत्माकी चिन्ताको जलांजलि दिये हुये राजर्षि भरतजी उस मृगशावककेही लालन पालनमें नियुक्त होगये हैं तो इतनेमें ही सर्प जिसप्रकार मूषकके बिल अर्थात् भड्ढकको प्राप्त होता है, वैसेही तीव्र वेगवाला, जो टालनेसे न टले, ऐसा मृत्युसमय उपस्थित होकर उनको प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ उस समय भी वह ध्यानयोगमें देख रहे थे कि, मानो वह मृगका बच्चा पुत्रकी नांईं बगलमें बैठकर शोक करता है. इस कारण मृगमें ही अनुरागी आसक्त चित्त होनेसे, उस मृगशावकको ही देखते हुये आत्मदेह परित्याग करके साधारण पुरुषोंकी समान मृगशरीरको प्राप्त हुये. परंतु उनके पहले जन्मकी स्मृति देहके संग नाशको नहीं प्राप्त हुई। इसलिये अपने मृग शरीर पानेका कारण स्मरण करके, भगवान्की आराधना करनेके कारण पहले जन्मकी स्मृति उनको बनीथी, सो इससे अत्यन्त अछता पछताकर मृगरूप भरतजी आपही आप कहने लगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ कि, बडा विघ्न हुआ, क्या कष्टहै? मैं उन वीर ज्ञानी जनोंके मार्गसे भ्रष्ट हुआ सब संगका परित्याग करके पुण्य वनमें रहता हुआ, अति धीर भावसे श्रवण, मनन, संकीर्तन, आराधन और भगवान्जीका स्मरण आदि कार्योंमें लगा रहताथा और क्षणमात्रभी वृथा न खोकर बहुत समयमें सब भूतोंके आत्मा भगवान् वासुदेवमें जो मनको स्थापित और स्थिर कियाथा, सो अपने अज्ञानपनसे उस मृगशावकके संगमें एक बारही उस विषयसे निकलगया. हा! मैं कैसा मूर्खहूं ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे उनके मनके बीच महावेदना उपस्थित हुई परन्तु उन्होंने उसको प्रकाश नहीं किया और अपनी मृगी जननीको परित्याग करके जिस कालञ्जर पर्वतपर जन्मेथे, उस स्थानसे फिर हरिक्षेत्रमें पुलहाश्रमपर आये। हे राजन्! यह आश्रम शांत स्वभाववाले मुनिजनोंका प्यारा है, उसके निकट ही जहाँ शालके पेड बहुत थे, ऐसा एक ग्रामथा उस ग्रामका नाम शालवृक्ष सहित होनेसे शालग्राम था ॥ ३० ॥ वहां जाकर संगके भयसे कि, कहीं फिर किसीका संग न होजाय, इसलिये भयभीत मनसे अकेला रहता और सूखी लता, पत्ते और तृणमात्र भोजन करके जीवन धारण करता हुआ जिस प्रारब्धसे मृगशरीर पायाहै वह निमित्त कब पूरा हो चुकेगा, केवल इतनी ही बाट देखता रहताथा। कुछ समय व्यतीत होनेपर जब काल

आया तो वहां गंडकी नदीके प्रवाहके मध्य खडे होकर अपने मृगशरीरको त्यागन कर दिया ॥ ३१ ॥

भजन-वितहि प्रयास भक्त तनु त्यागत, देह गेह सों नेहन करही तजत शरीर वार नहिं लागत ॥ १ ॥ जबहिं प्रसन्न होत हरि तिनपर, तब हरिसों याही वर माँगत ॥ हमहिं न कछु इच्छा है स्वामी, राखहु सदा चरण शरणागत ॥ २ ॥ इसी हेत जप योग यज्ञ व्रत, करत नियम नित निशिदिन जागत ॥ अन्त समय मुखसे हरि निकसत, शालिग्राम सकल भय भागत ॥ ३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे भरतस्य मनुष्यदेहत्यागपूर्वकमृगशरीरप्राप्तिवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा-नवध्याय जड भरतके, नहिं गुण दोष विचार।
देवी ढिग मारन लगे, तबहुँ रहे अविकार ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी मुनि राजा परीक्षितसे कहेहैं कि, हे राजन् ! एक ब्राह्मणके नव पुत्र हुये वह विप्र आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हुआ, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और शम, दम, तपस्या, वेद पढना, दान, संतोष, सहनशीलता, विनय, विद्या, नम्रता, आत्मज्ञान और आनंदमें सदा अनुरागी था, उसके जो पुत्र उत्पन्न हुये वहभी सब अपने पिताकी समान विद्या, शीलता, आचार, उदारता इत्यादिक गुणोंमें भूषित हुए नव पुत्र तो एक स्त्रीसे प्रगट हुए थे और छोटी दूसरी स्त्रीसे पुत्र कन्याका एक जोडा उत्पन्न हुआ था ॥ १ ॥ हे राजन् ! उस जोडेमेंका पुत्र जो था, उसको सबहीं कहते हैं कि, यह पुत्र परम भागवत वही राजर्षि भरतजी थे। उन्होने अब मृग देहका त्यागकर उस देहमें फिर विप्रत्वको प्राप्त हुये ॥२॥ हे राजन् ! राजर्षि भरत विप्रकुलमें जन्मग्रहण करकेभी यह विचारा कि, संगदोषसे फिर न कहीं अपना पतन हो जाय इसलिये भगवान्के युगल चरणारविन्दका स्मरण और गुण वर्णन करनेमें कर्मके बधनोंका नाश होजाता है, यह मनमें भली भाँतिसे विचार करते हुये सब लोगोंके निकट अपनेको पागल व मूर्ख अथवा अंधा, या बहरासा बतलाते थे, हे महाराज ! उनके मनमें आत्मभ्रंश भय उत्पन्न होनेका कारण यह था कि, भगवान्के अनुग्रहसे और देह पाकरभी इनको अपने पूर्व जन्मोंकी याद आती थी ॥ ३ ॥ यद्यपि यह संतान जड हुवा तोभी उस ब्राह्मणका मन संतानके स्नेहमें बँधनेके कारण उसने उन के समावर्तनान्त सब संस्कार यथाशास्त्रकी कहीहुई विधिसे किये। और यज्ञोपवीत देकर, उनके सब नियम शौच आचमनादिक कर्मोंके नियम यद्यपि इस पुत्रको अच्छे नहीं लगते थे तौभी पिताका कार्य पुत्रको शिखानेका है, इस कारण उनको सब शिखाने लगा ॥ ४ ॥ परन्तु यह जडभरतजी पिताके शिक्षा देनेपर उनके समीप आचारादिमें गडबडीका व्यवहार करने लगे, इनके पिताने वेदव्रतादिके आदिमें श्रावणादि मासमें इसको प्रणव सहित

त्रिपदा गायत्री मंत्र पढावेंगे, ऐसा विचार किया । परंतु वसंत और ग्रीष्म ऋतुमें भी चैत्रादि चार मासमें ओंकार और शिर सहित गायत्री मंत्र शिखा देनेकी चेष्टा की, परंतु तो भी उस ब्राह्मणका मनोरथ सिद्ध नहीं हुवा, अर्थात् जडभरत चार महीनेमें भी ओंकार और शिर सहित गायत्री मंत्र नहीं सीखे ॥ ५ ॥ यह ब्राह्मण इस जड पुत्रको अपने आत्माके तुल्य समझते, इस कारण उनके चित्तका अनुराग जडभरतमें बहुत था, "और इससे ही संतानको पढाना सिखाना आवश्यकीय कार्य है" इस असत् आग्रहमें व्यग्र होकर नियमित काल तक ब्रह्मचर्य्य धारण करनेवालोंके कर्तव्य कर्म शौच, पढाना, व्रत, नियम, गुरुकी सेवा इत्यादि करना, यद्यपि उन सब कर्मोंके करनेमें पुत्रकी रुचि नहीं थी तो भी स्नेहके वश होकर सदाही यह ब्राह्मण पुत्रको उपदेश करता रहता था, कि पुत्र किसी प्रकारसे पंडित होजाय, उसके मनमें यह जो वासना थी वह किसी प्रकारसे पूरी न हुई, आशा मात्रही केवल काल व्यतीत करने लगी। यह विप्र इस प्रकारसे असावधान हो, जडभरतके पंडित बनानेकी चिंतामें था, इतनेमें सावधान कालने आकर उसको संहार कर डाला ॥ ६ ॥ जब उस ब्राह्मणकी मृत्यु होगई तब उसकी छोटी स्त्री अपने उदरसे उत्पन्न हुये पुत्र कन्याको सौतके हाथमें सौंप आप पतिके साथ पतिलोकको प्राप्त हुई ॥ ॥ ७ ॥ पिताके मरजानेपर भरतके भाइयोंने उन भरतको जडमति समझकर उपदेश देना, व शिक्षा देनेका प्रबंध एक वारही त्याग कर दिया । हे राजन् ! भरतके भाइयोंकी बुद्धि वेद विद्यामें नहीं थी, केवल कर्मविद्याहीको पुरुषार्थ समझते थे, परंतु ब्रह्मविद्यामें उन्होंने कुछ परिश्रम नहीं किया था, इस कारणसे भरतजीकी महिमाके प्रभावको नहीं समझते थे ॥ ८ ॥ पशुओंकी तुल्य पामर मनुष्य भरतको जड अथवा बहरा गूँगा समझ कर उनके साथ जिस प्रकारसे वार्तालाप करते भरतजी भी उनको वैसाही उत्तर देते और जो कोई जो काम करता तो उसकी इच्छानुसार वही कार्य करदेते, मनुष्य विना वेतनसे कार्यकरानेके लिये इनको पकड लेजानेपर जो कुछ खानेकी सामग्री पाते अथवा वेतनसे वा प्रार्थना करनेसे अथवा आपसे ही जो कुछ अच्छा बुरा अन्न मिलता, उसको भोजन मात्र करलेते, उससे इन्द्रियोंकी प्रसन्नता होगी ऐसा विचार नहीं करते क्योंकि, उत्पादक शून्य, जिसका कोई बनानेवाला नहीं और कोई उसका प्रगट करनेवाला नहीं, ऐसा जो विशुद्ध अनुभव है और उसका स्वरूप जो आनंदमय आत्मा है । उसकी प्रीतिमेंही संतुष्ट रहते. अर्थात् आत्माका ऐसा रूप है, यह ज्ञान उनको प्राप्त होगयाथा दूसरे मान और अपमानादिका जो द्वन्द्व (झगडा) है और उससे होते हुये जो सुख दुःख हैं उसके विषयमें भी उनको देहाभिमान नहीं था ॥ ९ ॥ इस कारण शीत, गरमी, वात वर्षादिमें वह नग्न शरीरसे अकेले बैलकी नाई घूमा करते थे, उनका शरीर बैलकी समान हृष्ट पुष्ट था और अंग प्रत्यंग सब कडे थे, पृथ्वीमें शयन करनेसे, तेलके न मलनेसे, स्नान न करनेसे सदा उनके शरीरपर धूरि उडती रहती, इस कारण ब्रह्मतेज महामणिकी समान मलीन रहकर अप्रकाशित रहताथा, दूसरे कमरमें मैले कुचैले फटे पुराने कपडे और

छातीमें मलीन यज्ञोपवीत पडा रहनेसे कोई उनकी महिमा न जानताथा, कोई उनको "यह पुरुष नीच ब्राह्मण जाति है" कोई "ब्रह्मबंधु" अर्थात् ब्राह्मणोंमें अधम कहकर उनका अपमान करतेथे ॥ १० ॥ जब कि, वह किसीसे उसका कार्य करके वेतन स्वरूप आहारकी प्रार्थना करते हुये फिरने लगे तब उनके भाइयोंने उन्हें आहारका लोभ दिखा कर चावलोंके खेतमें क्यारियोंके बनानेमें नियुक्त किया तब जडभरतजी इस कार्यकोही करने लगे। परन्तु यहां मिट्टी डालनेसे क्यारी बराबर होगी या अधिक वा छोटी होजावेगी इस बातको जडभरतजी नहीं जानते थे।

दोहा-खनन लगे तो खनतही, देते कूप बनाय।
कहूं ऊंच कर देत अति, जाते खेत नशाय ॥ १ ॥

कभी घासके संगमें अन्नकोही काटतेऔर जो कोई पशु खेतमें आता तो उसको अत्यन्त प्रेमसे चराते, कभी पक्षियोंको देखकर कहते "आओरे भाई चुगलो खेत, यहां छोड दो खालीरेत" उनके भ्राता उन्हें चावलोंकी किनकी, खल, तुष, घुने हुए उरद और बटलोईके नीचेका लगाहुआ अन्नादि जो कुछभी देते जडभरतजी उसकोही अमृतके समान जानकर भोजन कर लेते ॥ ११ ॥ हे राजन्! जडभरतजीके यह जो चरित्र वर्णन किये, इनसे स्पष्टही जान पडता है,कि उनमें राग द्वेष व मनकी चंचलता कुछभी नहीं थी, उनके विषयमें एक और कथा वर्णन करताहूं, आप चित्त लगाकर श्रवण कीजिये। " एक समय किसी नगरमें एक सामंतक नाम शूद्रोंका राजा चोराधिपति भद्रकालीका परमभक्त था, उसके कोई पुत्र नहीं था, देवीसे प्रार्थना की कि, हे जगज्जननी! हे आनंदवर्द्धिनी! जो मेरे पुत्र होय तो मैं तुझको नरबलि दूंगा, यह कह उसने अपनी कोठरीमें एक मनुष्यको बंद कर रक्खा था, कुछ कालोपरान्त उसके पुत्र उत्पन्न हुआ,राजाने पुत्रकी कामना पूरी होनेसे भद्रकालीजीकी प्रीतिके लिये मनुष्यका बलिदान देनेकी तय्यारी की ॥ १२ ॥ उसका वह मनुष्यपशु जो कि, यज्ञमें बलिदान देनेके लिये रख छोडा था, दैवात् बंधनसे छूटकर भागगया, तब उस राजाके अनेक अनुचर उस मनुष्य पशुको ढूँढनेके लिये इधर उधर दौडे परंतु कहीं उसका पता नहीं लगा, तब वह अनुचर घूमते घूमते अँधियारी निशामें दो प्रहर रात्रिके समय खेतकी ओर गये, तो वहां वह ब्राह्मणपुत्र जडभरतजी एक निराली भांतिसे खडे होकर अर्थात् वीरासनसे मृग सूकरादिकोंसे खेत रखाते थे, ऐसा उन अनुचरोंने देखा ॥ १३ ॥ और उसको देख सुलक्षण समझ, यज्ञमें बलिदान देनेके योग्य जान परस्पर कहनेलगे कि, इससेही हमारे स्वामीका कार्य पूरा हो जायगा ॥

दोहा-अहैं अंग मोटे सकल, बलिलायक यह नीक।
तातें धरि ले चलहु अब, यह विचारहै ठीक ॥ १ ॥

इस कारण हर्षसे प्रफुल्लित वदन होकर उन जडभरतजीको पकडकर देवीके मंडपमें लेगये ॥ १४ ॥ उसके पीछे चोरोंने अपने विधानके अनुसार जडभरतजीको स्नान कराके

नये कपडे पहराये और गहने, व सुगन्ध, मुक्तमालायें पहरा तिलक आदि लगा अच्छा सजाया, फिर भोजन कराके, धूप, दीप, फूल, हार, चावल, नवीन पत्तोंकी कोंपल और फलादि उपहार दे पूजा करके संगीत स्तोत्र और मृदंग, व ढोलोंके बडे बडे बाजोंके साथ उनको भद्रकालीके समीप ला, शिर झुकाकर बिठलाया ॥ १५ ॥ उसके पीछे तस्करराजको पुरोहितकर्मके करानेमें जो पुरुष नियुक्त था, उसने इस पुरुषरूप पशुके आसनसे भद्रकालीको प्रसन्न करनेके लिये देवीके मंत्रसे अभिमंत्रित की हुई तीक्ष्ण कराल करवाल ग्रहण की ॥ ॥ १६ ॥ इन सब तस्करोंका स्वभाव रजोगुण और तमोगुणसे पूर्ण था और उन लोगोंका मन धनमदके कारण मर्य्यादा रहित होगया था, इसलिये वह लोग भगवान्‌की कलायुक्त ब्रह्मकुलका अपमानकर अपनी इच्छानुसार उलटे मार्गपर चले। इस कारण यह लोग भयंकर कार्य करनेमें लगे, परन्तु भद्रकाली देवी क्या उनकी पूजा ग्रहण कर सक्ती है? वह पहलेही मूर्तिको परित्याग करके बाहर निकल आई। समझो कि, जो ब्रह्मर्षिकी संतान किसीसे वैरभाव न रखनेवाले सब प्राणियोंके मित्र, आपत्कालके समय लौकिकी हिंसामेंभी जिनके मारडालनेकी आज्ञा नहीं होसक्ती, उनका शिर काटकर बलिदान होना, देवीजी सामने रहकर नहीं देख सक्ती। सो इस बातकी तय्यारी होते देखकरही देवीजीका शरीर असह्य ब्रह्मतेजसे बहुतही जलने लगा। इस कारण उन्होंने प्रतिमाका त्याग किया ॥१७॥ अधिक करके देवीजीके शरीरमें दाह होनेके कारण उनमें अतिशय क्रोध और वेग आगया इस वेगके कारण उनकी भ्रुकुटी और कराल डाढें अरुण वर्ण नयन भयंकर होगये वह मानो जगत्‌का नाश कर डालेंगी, इस प्रकारके भावसे क्रोधमें भरकर घोरतर शब्द सहित ठठाय ठठाय हँसने लगीं। और उन पापात्मा दुष्ट तस्करादिकोंके ऊपर झपटकर उनके ही खड्गसे उन लोगोंका शिर काट लिया, शिर कट जानेसे उन सब तस्करोंके गलेसे जो अति-गरम आसव तुल्य रुधिर निकलने लगा, उसको अपनी योगिनी भूतनी पिशाचिनियों सहित जगदम्बाजीने पान किया। इतना पिया कि, विह्वल होकर अपने पार्षदों सहित ऊंचे स्वरसे गाकर नृत्य करने लगीं। और उन मृतक तस्करोंके मस्तकोंको गेंदके समान उछाल उछाल कर उनसे खेलने लगीं ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, हे राजापरीक्षित्! इन सब तस्करोंकी ऐसी दुर्गतिका होना कुछ विचित्र नहीं है। क्योंकि, बडे पुरुषोंके साथ अत्याचार करनेसे वह इसी प्रकारसे बहुधा अपने आपही बुरे पुरुषोंका बुरा हो जाया करता है, यह निश्चय जानो ॥ १९ ॥ हे विष्णुदत्त परीक्षित्! जो सब पुरुष भगवत्‌की उपासना करनेवाले परमहंस हैं, उनकी देह आदिमें आत्मभावरूप हृदयग्रंथि छूट जाती हैं। और वह सब प्राणियोंके मित्र आत्मास्वरूप होजाते हैं। उनका कोई शत्रु नहीं रहता, स्वयं भगवान् सावधान होकर कालचक्ररूप प्रधान आयुधसे उन्हीं भावोंमें अर्थात् भद्रकाली इत्यादि रूपोंमें सदाही अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। इससे जहांपर किसी प्रकारके भयकी संभावना नहीं है, उन भगवान्‌के चरणारविन्दोंकी जो कोई शरण आते हैं उनका यदि

शिरभी कटै तौभी वह बिना संभ्रमके रहैं। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है और उनसे परमेश्वर भी प्रसन्न रहते हैं और यह कहते हैं ॥ २० ॥

भजन ॥ जो कोइ चितसे मोहिं न बिसारे, मैं न बिसारूं प्रण है यही मेरा ॥ धर्मप्रियहो धर्म बढाऊं, सफल कार्य कर अर्थ जताऊँ, मुक्ति चहै तो पार लगाऊं, छिन पल माहिं न लागत बेरा ॥ १ ॥ रोग हरूँ चिन्ता को टारूं, अभयकरूं शत्रुनको मारूं, निर्भयकर जन वेग उबारूं, सेवा करूं आप बन चेरा ॥ २ ॥ भक्तहेत नर देह धरतहूं, संकट माहिं सहाय करतहूं, असुरमार भूभार हरतहूं, भक्तन हृदय करत नितडेरा ॥ ३ ॥ बलिके द्वार रहों नित ठाढो, द्रुपदसुताके अंबरबाढो, बूड़त गजको जलतै काढो, भक्तनको नित करत निबेरा ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे जडभरतस्य बलिदानान्मुक्तत्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-भरत पालकी तर दिये, रहुगण दश अध्याय।
सुन उत्तर निज वचन रहु, उतर गहे निजपाय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजन्! किसी समय एक दिन सिन्धु और सौवीर देशका राजा रहूगण पालकी पर चढाहुआ कहींको जा रहा था! उनका बडा प्रधान वाहक इक्षुमती नदीके तीर उपस्थित होकर जब कि और कहारोंको ढूँढता था तब भाग्यने लाकर इन्हें आगे कर दिया, इस प्रकारसे उस राजाके प्रधान कर्मचारी कहारोंके जमादारने द्विजवर जडभरतजीको वहां देखा। वह इनको देखकर मनहीमन कहने लगा कि; यह मनुष्य बडा लम्बा चौडा और हृष्ट पुष्ट दृष्टि आता है सो ऐसा जान पडताहै कि यह मनुष्य बैल, अथवा गधेके समान बोझ ले चलनेमें समर्थ होगा, इस प्रकारसे विचार करके वह जिन सब कहारोंको बलात्कार पकडकर पालकी लिवाये जाता था उनके ही साथ जडभरतजीको भी पकडकर पालकीमें लगादिया, महात्मा भरतजी यद्यपि पालकी उठानेके अयोग्य थे, तथापि और दूसरे कहारोंके संग पालकीको उठाकर ले चले ॥ १ ॥ किसी जीवकी हिंसा न होवे इस निमित्त भरतजी आगेके बाण छोडनेसे वह जितनी दूर जाकर गिरता, उतना स्थान देखकर तब आगेको चरण धरते थे उनके इस प्रकार चलनेसे, सब कहारोंकी एक प्रकारकी चाल न होसकी और पालकी टेढी होकर गिरनेको हुई तो रहूगण राजाने इसको देखकर बेगारी कहारोंसे तर्ज गर्जकर कहा कि अरे! तुम पालकी बराबर क्यों नहीं चलाते हो? टेढी क्यों हुई जाती है? ॥ ॥ २ ॥ कहार लोग राजाके तर्जन सहित वचन सुनकर दंडके भयसे शंकित हुए। और विनय करके सब वृत्तांत कहने लगे ॥ ३ ॥ कि हे नरदेव! हमारी असावधानता नहीं है। हम सब तो आपके आज्ञानुकारी होकर भली प्रकार पालकीको लेकर चलते हैं। यह

मनुष्य जो इस मुहूर्तहीमें पकडकर लाया गया है, यह शीघ्र नहीं चलता और इसके साथमें हमभी नहीं शीघ्र चल सकते, राजा रहूगण कहारोंके यह वचन सुनकर राजाको निश्चय हुवा कि सत्य ही एक मनुष्यके संगसे सब संगीलोग दोषी हो सकते हैं। यद्यपि यह राजा वृद्धोंकी सेवा करने वाला था, तोभी स्वभावके वश होनेसे उसको कुछ एक क्रोध आगया रजोगुणसे आच्छन्न बुद्धि होकर राखसे ढकी हुई अग्निके समान जिसका ब्रह्म तेज, ढका हुवा था, उन जडभरतजीको धिक्कार देकर उपहासके वचन बोला ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ अहह ! भाई भरत ! हमको निश्चय बोध होता है, कि तुम बहुत थकगये हो, अकेले बहुत दूरसे पालकी उठाकर लायेहो. तुम्हारा शरीर बडा दृढ नहीं है । और तुम्हारे अंगभी पुष्ट नहीं हैं। तुमको बुढापा तो नहीं आगया है? क्यों क्या यह सब मनुष्य तेरे साथी नहीं हैं? रहूगण गर्वित होकर इस प्रकारसे तर्जन गर्जन करता हुवा हाँसीके वचन कहने लगा सो भरतजीने उसको कुछ उत्तर न दिया। मौनी होकर पहलेकी समान पालकीको लेजाने लगे। हे राजन् ! भरतजीके मौनी होनेका कारण यह है कि, वह ब्रह्म-स्वरूप होनेसे अपने चरम कलेवर जिसमें भूत-इन्द्रिय कर्म (पाप पुण्य) और अंतःकरण अविद्या द्वारा रचित हुवा था, उसमें "मैं और मेरा" इस प्रकारके मिथ्या ज्ञानको भरत-जीने त्याग कर दिया था ॥ ६ ॥ इस प्रकार जबभरतजी पालकीमें जुडे जाते थे, तब इतनेहींमें वह पालकी फिर टेढी हुई। तब रहूगण अत्यन्त क्रोध करके बोला कि, अरे यह क्या? क्या तू जीता हुवा मृतकतुल्य है तू मेरी आज्ञाका अपमान करताहे? अरे ! हमको तू अपना स्वामी नहीं समझता, तू बडा मतवाला है रहतो सही, यम जिस प्रकार प्राणी समूहको शिक्षा देते हैं, वैसेही हम तुझ इस मतवालेपनकी शिक्षा करेंगे। जिससे तू अपने आप अपने स्वभावको प्राप्त होगा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार रहूगण राजा अपने को नरदेव और पंडित समझता था और इस बातका उसको अभिमान भी था, इस कारण रजोगुण और तमोगुणके बढे हुए मदमें मत्त होकर इसप्रकार अनेक असंगत वचनोंसे भगवान् वासुदेवके प्रियभक्त भरतजीका तिरस्कार किया। वह भरतजी जो सब प्राणियोंके मित्र सुहृद् और आत्मा तथा परब्रह्म स्वरूप ब्राह्मण हुये थे, वह गर्वको त्यागे हुये कुछेक हँसे। हे परीक्षित् ! योगेश्वर लोगोंका आचार किस प्रकारका होता है? इस बातको रहूगणकी बुद्धि नहीं जानती थी, इसी कारणसे भरतजीका उसने ऐसा तिरस्कार किया। कुछेक हँसकर भरतजी रहूगण राजासे बोले कि, ॥ ८ ॥ हे वीर ! तुमने उपहास करके जो कुछ कहा वह सब कुछ मिथ्या नहीं है । यदि जो वहन कर्ता-का कोई भार होवे और वह भार यदि उठानेवाले देहको लगता होवे और उसके साथ मेराभी कोई संबंध होवे, तो ऐसा होनेसेभी इस समय भार न रहनेके कारण तुम्हारे यह वचन विरुद्ध होसकते हैं, परंतु हमसे इस विषयका कुछ संबंध नहीं है। इस कारण जो जो कहा, वो मिथ्या व असंगत नहीं है। परंतु तुमने हमको "स्थूल नहीं" यह जो वचन कहा, ऐसा वचन पंडित जन चेतनके लिये कभी नहीं कहते, मूर्ख लोगही कहा करते हैं।

क्योंकि इस प्रकारका वचन शरीरके ही ऊपर लग सक्ता है, आत्माके ऊपर कभी नहीं लग सकता, इस कारण यह शरीर पुष्ट है, कुछ मैं पुष्ट नहीं हूं ॥ ९ ॥ और दूसरे जो पुरुष देहके सहित उसके अभिमानद्वारा जन्मा होवे, उसको ही मोटापन, दुबलापन, आधि, व्याधि, क्षुधा, तृषा, भय, क्लेश, इच्छा, जरा, निद्रा, रति, क्रोध, शोक, भय, और अहंकारजनक मद, उत्पन्न होता है। सो हमको देहाभिमान नहीं है। इसलिये इनमें से हममें कुछ भी नहीं है ॥ १० ॥ हे राजन्! और तुमने जो हमको जीवित मृतक कहा, इसमें यह कहनाहै कि, कुछ हमही जीवन्मृत नहीं हैं सब संसारही जीवन्मृतक हैं। विकारी अर्थात् परिणाम शील पदार्थ मात्र ही जीवन्मृतक दृष्टि आते हैं; और विकृत सब ही पदार्थोंका आदि और अंत है. और तुमने जो हमसे कहा कि "स्वामीकी आज्ञाका निरादर करता है" सो इसके विषयमें यह कहना है कि, जिस स्थलमें आपका वह स्वामी भाव अविचल होवे, उस स्थानमेंही आदेशकरना, और मेरा कर्म करना युक्त हो सक्ता है? नहीं तो तुम्हारा राजध्वंस होगया, और हमारा राज्य हुआ, तो इसके विपरीत होने का संभव है। अर्थात् हम आज्ञा करें और आपको कार्य करना पडे ॥ ११ ॥ यद्यपि जबतक तुम राजा हो तबतक अपने आपको स्वामी कह सक्तेहो, तौभी एक मात्र व्यवहार के अतिरिक्त उसमें विशेष बुद्धिका थोडा भी अवकाश दृष्टि नहीं आता, क्योंकि प्रभु कौन है? प्रभुता क्या है? सो जो कुछ हो यदि तुम अपने आपको प्रभु होनेका अभिमान रखते हो तो हे राजन्! आज्ञा दो कि तुम्हारा क्या कार्य करैं, हे राजन्! तुमने जो हमको कहा कि "तू उन्मत्त है" तेरी दया करते हैं, तब फिर तू अपने स्वभावको प्राप्त होजायगा. इस बातमें हमको इतनाही कहना है कि हम उन्मत्त वा मत्त अथवा जडतुल्य हो तो रहे हैं सत्य है। परन्तु वास्तवमें हम ब्रह्मभावको प्राप्त होगये हैं, तुम उपाय करके दंडही दो, अथवा शिक्षाही दो, उससे हमारा कुछ नहीं बनता बिगडता, क्योंकि हम जीवन्मुक्त हैं, जीवन युक्त हैं, हमारा अर्थ वा अनर्थ कुछ भी नहीं होसकता, और यदि हमको तुम जीवनयुक्त नहीं जानते और बौरा, बावला, समझते हो यदि तुम्हारे मतके अनुसार हम वैसेही हों, तौभी हमको दण्ड देना, शिक्षा करना, पिसे हुये को दुबारा पीसना है। क्योंकि वास्तवमें जड स्वभाववाले मनुष्य शिक्षा पाकर भी चतुर नहीं होसक्ते ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! शांत शील वह मुनिवर जडभरतजी इस प्रकारसे रहूगण राजाके वचनोंका उत्तर दे, पूर्व जन्मके कर्म जो प्राप्त हुयेथे, उनको भोगकर, प्रारब्ध कर्मोंका क्षय कर चुकाथा पूर्ववत् इस राजाकी पाल-कीको लेकर चलने लगे। देहमें आत्मबुद्धिके कारण जो अविद्या है, उससे वह छूट गये थे, इसलिये पालकी उठानेमें उन्होंने कुछ क्लेश वा अपमान नहीं समझा ॥ १४ ॥ हे पाण्डवेय परीक्षित्! सिंधु और सौवीर देशका अधिपति, यह रहूगण राजा हृदयकी गांठको तुडानेवाले और अनेक अनेक योगके ग्रंथोंके अनुसरण करनेवाले, भरतजीके यह वचन सुनकर पालकीसे उतर पडा, उत्तम श्रद्धा उत्पन्न होनेसे तत्त्व जिज्ञासामें उसको अधिकार

प्राप्त हुवा, इस कारण " मैं राजा हूँ " इस गर्वको त्यागकर, मुनिवर भरतजीके चरण-कमलोंमें गिरकर अपना अपराध क्षमा कराकर कहने लगा ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके कन्धेमें यज्ञोपवीत देखता हूं, क्या आप ब्राह्मणोंमेंसे कोई हैं ? वा आप दत्तात्रेयादिकोंमें कोई अवधूत हैं ? आप क्यों गुप्तभावसे फिरते हैं ? आप किसके पुत्र हैं ? कहां आपका निवास स्थान है ? आप यहांपर किस कारणसे आयेथे ? यदि हमारे मंगल करनेके लिये आनाहुवा हो तो, क्या आप शुक्रमुनि अर्थात् कपिलदेवजी तो नहीं हो ? ॥ १६ ॥ हे योगिन् ! मैं देवराज इन्द्रके वज्रका भय नहीं खाता, महादेवजीके शूलसे भी शंका नहीं करता, और यमदण्ड देखकर भी मैं नहीं डरता, अग्निके कोपसे, सूर्यके तापसे पवनके वेगसे, कुबेरके पाशसे और सोमके अस्त्रसे, मैं इतना भय नहीं मानता. परन्तु ब्राह्मणजातिका अपमान होनेसे मैं बहुतही डरता हूं ॥ १७ ॥ इस कारण आपसे जो प्रश्न किया, उसका उत्तर दीजिये ? ॥

दोहा-अब न छिपावहु कृपाकर, दीजे मोहिं बताय।
बिचरहु जडमय जगतमें, ज्ञान प्रभाव छिपाय ॥ १ ॥

यद्यपि आप अपने विज्ञान रूपका प्रभाव छिपाकर संगको छोड जड की समान फिरते हैं, तथापि मेरे निकट आपकी अनन्त महिमाका प्रकाश होता है। क्योंकि आपने योगसे गुँथे हुये जो समस्त वचन कहे, सो मैं मनसे भी उन वाक्योंका अर्थ प्रकाश करनेको समर्थ नहीं हूं ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके मुखसे यह वचन सुनकर ज्ञानके विषयमें कुछ प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा होती है, इसलिये महायोगेश्वर और आत्मतत्त्वके जाननेवाले मुनियोंमें प्रधान और ज्ञानशक्तिसे अवतीर्ण, साक्षात् हरि कपिल मुनि जो आप हैं, सो आपको गुरु करके " इस संसारका निस्तार क्या ? है " यह बूझनेको प्रवृत्त होता हूं और हे नाथ ! इसी कारण मैं आपके पास जाताथा ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! मैंने जिस प्रकारसे वर्णन किया, आप वैसेही हैं ! इसमें कोई संन्देह नहीं, सो कदाचित् लोगोंके देखनेके वास्ते अपने चिह्न गुप्त करके आप घूमते हैं ? हाय ! घरमें फँसे मन्दबुद्धि लोग किस प्रकार आपसे योगेश्वरोंकी गति देख सकते हैं ॥ २० ॥ हे प्रभो ! आपने पहले जो मेरे वचनोंके उत्तर दिये सो मुझको ठीक ठीक नहीं जानपडते, आपने कहा कि " हमको श्रम नहीं होता " यह बातभी मेरी समझमें नहीं आती, भला यह किस प्रकारसे हो सकता है ? कि जो पुरुष किसी कार्यको करता है तो उसके करनेसे श्रम उसको अवश्यही होता है. जब कि मैं अपने राज्यकी और युद्धादिककी क्रिया करता हूं तो उसका श्रम अवश्यही मुझको होता है। जब कि मैं अपने प्रभुत्व और युद्धादि क्रिया करनेके समय श्रम देखता हूं, तब सहजसेही अनुमान होता है कि आपको भी भार ले चलनेसे श्रम हुआ है। दूसरे आपने कहा कि " एक मात्र व्यवहारके सिवाय और कुछ दृष्टि नहीं आता " हे ब्रह्मन् ! यह वार्ता भी संगत नहीं हो सक्ती। इस कारण व्यवहार विषय (संसार) झूठा है। ऐसा समझ नहीं पडता, बरन् सत्यसा समझ पडता है, क्योंकि जो

घटादि पदार्थ मिथ्या हो तो उनसे किस प्रकार जलादि लानेके कार्य होसकें ? ॥ २१ ॥ और आपने जो कहा कि " सुख दुःखादि केवल देहके धर्म हैं " सो वास्तवमें हमारे नहीं हैं। इस बातसे भी मेरे मनमें यह संशय होता है कि, यह सब शरीरका धर्म होनेपर भी सत्य क्यों न होगा ? क्योंकि देखता हूं कि, तौलीको आगके ऊपर चढा देनेसे, उस तौलीके तापसे उसके बीचमेंका दूध तप्त अर्थात् गरम होता है। उस दुग्धादिके उत्तापसे उसमेंके पडे हुए चावलोंका बाहिरी भाग तप्त होता है। फिर बाहिरी भागके उत्तापसे चावलका मध्यभाग पकजाता है। यह बात सब प्रकारसे यथार्थ है, किसी भांती मिथ्या नहीं, इस कारण परस्परके अग्निसम्बन्धसे जिस प्रकार चावल पकजातें हैं, वैसेही देह, इंद्रिय, प्राण और मन यह सब शरीर धर्मकी अनुवृत्तिके द्वारा पुरुष संसारमें लग जायगा इसमें क्या असम्भव है ? बस गरमी आदि पडनेके हेतु शरीरको सन्ताप हुवा उससे सब इन्द्रियोंको, उससे प्राणोंको, फिर उससे जब कि मनका सन्ताप पाना दृष्टि आता है, तब देह स्थूल होनेपर भी परस्परताके कारण आत्मा क्यों नहीं स्थूल होगा ? ॥ २२ ॥ और आपने जो कहा कि स्वामीभाव नित्य नहीं है. यह सत्य है, परन्तु नित्य होनेपर भी जब जो पुरुष राजा होता है, तब उस समय तो वह प्रजाका शासन और पालन करताही है। दूसरे आपने कहा कि " असावधान लोगोंको शिक्षा देना. पिसेको पीसना " अर्थात् निष्फल श्रम करना है यह भी मुझको ठीक नहीं जँचता, क्योंकि जो पुरुष भगवान्के दास होते हैं वह कभी निष्फल कर्म नहीं करते। अर्थात् जड पुरुषको शिक्षा देनेसे यद्यपि उसकी जडताको दूर नहीं किया जासक्ता, तथापि सबोंका शासन करनेवाले, परमेश्वरकी आज्ञा पालन करनेसे, उस जडके लिये यत्न करना विफल नहीं होता, परमेश्वरकी आराधना करना ही राजाका धर्म है। आज्ञा पालन करनेके द्वारा उसके लिये चेष्टा करनेसे पापोंके समूहसे छुटकारा होजाता है ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! इस प्रकारसे आपकी कहीहुई सभी बातें मुझको अनुचित जान पडती हैं। इससे आप अनुग्रह करके मुझपर स्नेहदृष्टि कीजिये ! मैंने राजापनके अभिमानसे आप सरीखे साधु पुरुषोंका जो अपमान किया है, सो ऐसा अनुग्रह मेरे ऊपर कीजिये उससे साधुओंके अपमान करनेसे जो पातक लगता है उससे मेरा निस्तार होजाय ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! आप विश्वसंसारके सगे और सखाहो, इसलिये सबमेंही समदृष्टिके हेतु अपनी देहमें भी आपको देहाभिमान नहीं है इससे मैंने जो आपका अपमान किया है, इससे यद्यपि आपको कोई विकार नहीं हुआ है, तथापि मेरे समान पुरुष जो महादेवजीकी समान सामर्थ्य रखतेहों, वहभी महात्मा पुरुषोंके अपमानसे शीघ्रही नष्ट होजाते हैं ॥ " क्योंकि जिसने परमेश्वरके भक्तोंको सताया उसने उसका फल तत्कालही पाया, देखो ! हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके संग अत्याचार किया भगवान्ने उसके बदलेमें उसके प्राण लिये, दुःशासनने द्रौपदीके साथ अधर्म किया. भीमसेनने उसके बदले उसका रुधिर पिया, सब महात्मा पुरुषोंका यही वचन है कि, भक्तोंका सताना किसी प्रकार अच्छा नहीं है" ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पञ्चमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-बूझो जब जडभरतसे, निपुण रहूगण राय।
परम ज्ञान तब ताहि तिन, कहौं ग्यारहाँध्याय ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, हे राजन् ! इस प्रकार रहूगण राजाके वचन सुनकर जडभरतजी कहने लगे, कि हे वीर ! तुम अविद्वान् होकरभी विद्वान् लोगोंकी बातोंके समान बातें कहते हो परन्तु हमको जान पडता है कि तुम श्रेष्ठ विद्वान् नहीं हो, क्योंकि तुम स्वामी भृत्यादि लौकिक व्यवहारको अम्लाने मुखसे सत्य कहते हो, पंडित लोग तत्त्व विचार करके कभी इस प्रकारसे नहीं कहते, बस तत्त्वका विचार न करनेहीसे स्वामी भृत्यादिका व्यवहार प्रगट होता है, इससे वह सत्य नहीं है ॥ १ ॥ हे राजन् ! दूसरे संसारी स्वामी भृत्यादिके व्यवहारकी समान वैदिक कर्म काण्डका व्यवहार भी सत्य नहीं है, कि जिन सब वेद वचनोंमें अनेक अनेक गृह संबंधी यज्ञोंको विस्तार विषयक विद्याओंके प्रतिपादक हैं, परंतु उनमें शुद्ध अर्थात् हिंसादि रहित और साधु रागादि रहित तत्त्ववाद प्रायः निश्चितरूपसे नहीं प्रकाशता, परंतु जो कर्म करै वह नारायणार्पण करदे तो अंतःकरण शुद्ध होजाता है और अंतःकरण शुद्ध होनेसे परमार्थ फलरूप तत्त्वज्ञानका हेतु होजाता है ॥ ॥ २ ॥ तथापि वेदांत सुने हुये किसी किसी पुरुषोंको कर्ममें प्रवृत्ति देखी जाती है। वह कुछ वैदिक धर्मकी सत्यता प्रमाण नहीं हो सक्ती, क्योंकि जिस प्रकार स्वप्नका सुख दिखाया, और अनित्य होनेसे त्याग करनेके योग्य है ऐसे ही गृहस्थीका सुख भी दृश्य और अनित्य होनेसे अग्रणीय है, ऐसा जिसने मनमें निश्चय न किया, उस पुरुषको वेदान्तके वाक्य यद्यपि वह तत्त्वज्ञानके अर्थ बहुत श्रेष्ठ हैं तो भी उसको तत्त्वज्ञान नहीं देसकते॥ ॥ ३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! रहूगण राजाने प्रपंचक जगत्को जो सत्य कहा था। विप्ररूप योगीवर जडभरतजीने इसप्रकार उसके वाक्योंको खंडन किया और फिर उसकी कही हुई संसारकी नित्यता खंडन करनेके लिये बोले, हे वीर ! जबतक पुरुषका मन रजोगुण सतोगुण और तमोगुणके वश रहता है तबतक ही वह निरंकुश रहकर ज्ञानेन्द्रियोंसे और कर्मेन्द्रियोंसे धर्म अधर्मका विस्तार किया करता है ॥ ४ ॥ और यह मनही पाप पुण्यकी वासना युक्त है। और वही आत्माके शरीर धारण करनेका हेतु आत्मस्वरूप है, इससे यह सब विषयोंमें रँग जाता है उससे विषयोंके द्वारा चलायमान और विकृत अर्थात् कामादि परिणामयुक्त होजाता है, परंतु यह मन पंचमहाभूत और इन्द्रियोंकी सोलह कलाओंके बीचमें मुख्य है वहही अलग अलग नाम सहित पशु पक्षी आदि विशेष विशेष देह धारण करता है, और उन देहोंके कारणोंसे ही आत्माकी श्रेष्ठता वा नीचता प्रगट हो जाती है ॥ ५ ॥ दूसरे यह मन संसारचक्रके छलसे मायाद्वारा शरीरोंकी रचना करके अपनी आत्माको आलिंगन करता हुवा, सुख दुःख अथवा मोह जो अपने कर्मकी काल प्राप्तिका अनिवार्य समय है, उसको भी सर्व प्रकार सृजन करता है, यह मनही जीवको अनेक प्रकारकी उपाधि करता है, इससे यही जीवको अपने भीतर मिथ्या अध्यात्म कराकर, "मैं ही मनहूँ" इस प्रकार दरशाकर भवसागरकी लहरोंमें ग्रामकंटककी नाईं

छलकर इधर उधर घूमा करता है ॥ ६ ॥ इसलिये जबतक मन रहता है, तबतक जाग्रत् स्वप्नरूप व्यवहार प्रकाशमान होकर सदा क्षेत्रज्ञ जीवका दृश्य होता है, इस कारण पंडित लोग इस मनकोही गुणोंके अभिमान करनेका रूप अधमता देनेवाला, यह मनही है। ऐसा भी विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ७ ॥ प्राणियोंका मन गुणमें अनुरागी रहनेहीके कारण वह व्यसनका निमित्त होता है । अर्थात् जीवको जन्म मरणादिका कष्ट देता है। और जब वही गुण हीन होजाता है, तब वही कल्याणको देता है, जैसे दीप घृत और बत्तीको जलता रहे, तब तक उसमेंसे धूमयुक्त शिखा निकलती रहती है, किन्तु दूसरे समय जब कि घृत निपट जाता है तब वही दीपक बुझकर तेजरूप धारण करता है। इसी प्रकार मनभी जब गुण कर्मोंमें लगा रहता है, तबहीं अनेक प्रकारकी वृत्तियोंका आश्रय करता है और वही मन जो गुण कर्मोंसे अलग रहै, तो तत्त्वरूप हो जाता है ॥ ॥ ८ ॥ हे राजन् ! सब वृत्तियें एकादश प्रकारकी होती हैं, उनमें पांच क्रियाकार, और पांच ज्ञानाकार, और एक अभिमान; पंडित लोग शब्दादि विषय ग्रहणादि कर्म, और पुरको (शरीरको) इन ग्यारह प्रकारकी वृत्तियोंका विषय कहते हैं ॥ ९ ॥ वह सब विषय यह हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच ज्ञानेन्द्रिय द्वारा ज्ञानाकार सबकी वृत्तियोंके विषय होते हैं, और कभी ग्रहण, गमन मल त्याग, करना और रमण करना, यह पाँच विषय पांच कर्मेन्द्रिय द्वारा कर्माकार सब वृतियोंके विषय होते हैं, और शरीर ग्यारह वृत्तियोंकी भूमि है वह 'मेरा' इस प्रकार भोगाय तनत्व रूपमें अभिमानका विषय हो जाता है, कोई कोई कहते हैं कि इसके सिवाय मूढ जनोंकी बारह वृत्तियें हैं, उनमें भी यह शरीर है शय्या नामग्रहण करके विषय होजाता है. शरीरका नाम पुर है। उसमें जीव अहंकार द्वारा शयन करनेसे पुरुष कहा जाता है ॥ १० ॥ पांच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय रूप शब्द विसर्गादिक पंच कर्मेंद्रियोंके द्वारा कर्माकार वृत्तियोंके विषयमें भोगगति कहना, शिल्प ग्यारहवां स्वीकार करना कि, यह ममकार है, और शय्या अहंकारको बारहवाँ आचार्योंने कहा है ॥ ११ ॥ हे राजन् ! पहले कही हुई ग्यारह प्रकारकी वृत्तियोंका विषय स्वभाव, संस्कार, अदृष्ट और काल इन सबके कारणसे प्रथम शतप्रकार फिर सहस्र प्रकार, उसके पीछे कोटानुकोटि प्रकार हो जाती है. परंतु इन सबके इस भाँतिसे कोटि प्रकार होनेपरभी यह क्षेत्रज्ञसेही होते हैं, और उसकी सत्तासेही सत्ता प्राप्त होती है; परस्परसे अथवा अपने आपसेही नहीं हो जाते ॥ १२ ॥ मनु जो कि माया रचित जीव अर्थात् जीवोपाधि और अविशुद्ध करता यह सब वृत्तियें उसकी माया हैं यह सब नित्य हैं। कभी कभी जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें आविर्भूत होती हैं । कभी सुषुप्ति दशामें तिरोहित हो जाती हैं, क्षेत्रज्ञ आत्मा साक्षी हो इन सबको सबही अवस्थामें देखता रहता है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! क्षेत्रज्ञ दो प्रकारका है; एक जीव दूसरा ईश्वर, जीवका स्वरूप पहले बतला चुके हैं, अब ईश्वरका स्वरूप कहते हैं सो सुनो—वह आत्मा अर्थात् सर्वव्यापी है, पुरुष अर्थात् पूर्ण स्वरूप है। पुराण अर्थात् जीवके कारण भूत है, साक्षात् अप-

रोक्ष है, परन्तु स्वयं प्रकाश दूसरे उसका जन्मादि नहीं और वहांपर जो ब्रह्मादि हैं उनकाभी प्रभु है, वह नारायण अर्थात् जीवसमूह इनके अयन (वास स्थान) और वह भगवान् अर्थात् ऐश्वर्यादि संपन्न हैं। और वासुदेव हैं अर्थात् सब भूतोंका आश्रय,और अपने अधीनमें जो माया है, उसके द्वारा आत्मामें अर्थात् जीवमें नियामक रूपसे वर्तमान रहते हैं ॥ ॥१४॥ हे राजन् ! जिस प्रकार वायु प्राण स्वरूपसे देहमें प्रवेश करके सब चराचर प्राणियोंके ऊपर प्रभुताई करता है वैसेही क्षेत्रज्ञ,आत्मा परम पुरुष भगवान् वासुदेव सब जगत्में व्यापक होकर उसके ऊपर प्रभुता करते हैं ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! यह शरीर ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे जबतक मायाको नहीं छोडता और सब संगको और छैःशत्रुओंको नहीं जीतलेता। और जबतक अपनी आत्माको नहीं जानलेता। तबतक संसारमें इधर उधर घूमता फिरा करता है ॥ १६ ॥ दूसरे जबतक इस मनको आत्माकी उपाधिका कारण और संसारके सब तापोंका क्षेत्र जानकर निश्चय नहीं होता तबतक संसारसे छुटकारा नहीं मिलता. हे राजन् ! मनको संसारके तापका क्षेत्र क्यों कहते हैं ? सो सुनो। शोक, मोह, लोभ, राग, द्वेष, इन सबमें संयुक्त होकर मनही ममताको जन्माता है। और उससेही संसारी ताप होता है। इससे मनही सब संसारी तापोंका क्षेत्र है ॥ १७ ॥ इस कारण तुम अपने गुरु रूप जो हरि हैं, उनके चरणोंकी उपासना रूप जो अस्त्र हैं, उनको चला. कर सावधान हो इस मनका विनाश करो। हे राजन् ! यह मन महापराक्रमी अत्यन्त प्रबल शत्रु है, उपेक्षा करनेसे इसकी अति बढोतरी होगी, और यद्यपि वास्तवमें यह स्वयं मिथ्या स्वरूप हैं, तो भी आत्माको ज्ञान कर सक्ता है। इसलिये इनकी उपेक्षा मत करो इस बातपर एक भजन कहताहूं ॥

भजन-यह मन मायामें लिपटानो, कथा पुराण झूठ सब समझत कुटुम सत्य कर मानो ॥ १ ॥ बारबारसमझावत हूं मैं क्यों तू भयो दिवानो, झूठे घरको सत्य बतावत सांचो गेह भुलानो ॥ २ ॥ अबहूं समझ नाहिं कछु बिगरो, ज्यौंको त्यौं सबजानो, जब उड जाय पींजराते शुक तब परि है पछितानो ॥ ३ ॥ चौरासीमें फिरै भटकता कहुँ नहिं लगे ठिकानो, अंत समय कोउ होत न साथी यमपुर परि है जानो ॥ ४ ॥ शालिग्राम काम नहिं आवत अपनो और विरानो, सब संसार स्वप्नकी माया सांच राम गुण गानो ॥ ५ ॥ १८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पंचमस्कन्धे
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
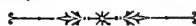
दोहा-बूझो पुनि जडभरत सों, रहु संशय मन लाय।
मेटो सब सन्देह तिन, द्वादशवें अध्याय ॥ १२ ॥

रहूगण बोले कि, हे योगीश्वर ! मैं आपको नमस्कार करता हूं। आपकी यह देह परमेश्वरकी समान सब लोकोंकी रक्षा करनेहीके लिये है। वास्तवस्वरूपमें आप आत्मा

स्वरूप अर्थात् परमानन्दका प्रकाश करके आपने अपनी देहको तुच्छ समझा है । हे प्रभो ! इस द्विजबंधुके वेषसे आप अपने स्वतन्त्र अनुभवको छिपाकर रखनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! ज्वर रोगसे ग्रसित मनुष्यके लिये औषधि जैसे सुखदायक होताहै और ग्रीष्मकी लुओंसे दग्ध पुरुषके लिये शीतल जल जिस प्रकार शांत करता है । सो ऐसेही मेरे लिये आपके यह सब वचन हुये हैं । इस निन्दनीय कार्यके मदरूप भुजंगने जो मेरी दृष्टिको डस लिया था, सो उस दृष्टिको अब आपके वचनरूपी अमृतकी औषधि मिली ॥ २ ॥ इस कारण जिस जिस विषयमें मुझको संशय है । वह तो मैं पीछे आपसे बूझलूंगा, अब पहले जो आपने वेदान्त, अध्यात्म ज्ञान, योगमें सुनेहुये वचन कहे, वे सब अति कठिन हैं । मैं उनको कुछभी नहीं समझसक्ता, सो जिस प्रकार मैं उनको भली भाँति समझसकूं इस रीतिसे आप उनकी व्याख्या कीजिये । इस विषयको जाननेके लिये मेरे चित्तमें अत्यन्त उत्साह होरहा है ॥ ३ ॥ हे योगीश्वर ! आपने जो कहा कि "वहनादि क्रिया और उसका फल श्रम होना इत्यादिक प्रत्यक्ष दीखने परभी कुछ नहीं है अर्थात् कारण होनेपर भी यथार्थ रूपमें तत्त्व विमर्शनार्थ समर्थ नहीं है" सो इस बातसे मेरे मनमें अत्यन्त भ्रांति होरही है ॥ ४ ॥ जडभरतजी बोले कि, हे पार्थिव ! यह सब पृथ्वीका विकारहै, जो पदार्थ पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ है वह किसी कारणसे पृथ्वी पर चलने लगता है, उसको आपने जन अथवा कहारादि नामोंसे प्रसिद्ध कर रक्खा है और जो स्थिर वस्तु है उसको आपने मृत्तिका वा पत्थर अथवा काष्ठादिक समझ लिया है, परन्तु वास्तवमें विचार कर देखिये तो उस जनमें और पाषाणमें कुछ अन्तर नहीं । पाषाण जड होनेके हेतु किंचिन्मात्र भी परिश्रम वा भार आदि नहीं उठासक्ता और न उसमें उठानेकी सामर्थ्य है. इसीप्रकार कहारका भी भार उठाना अथवा परिश्रमादिक कर्म समझना वृथा है, उसकोभी जड समझना चाहिये, क्योंकि जिस वस्तुको परिश्रम होताहै उसका जो सत्य सत्य निरूपण होसक्ता हो तो निश्चय अपने आपको अथवा औरको परिश्रम होना सत्यभी मान लेना परन्तु उसका सत्य होनाही असंभव है, क्योंकि अंगोंके अतिरिक्त अंगोंका निरूपणही किसी प्रकार नहीं होसक्ता, प्रथम यह निश्चय कीजिये कि कहारकी देहमें क्या क्या अंग हैं, देखो ! जो पृथ्वीसे उत्पन्न हुवा कहार है उसके पृथ्वीपरही पांव हैं. और पांवोंपर गुल्फ है, गुल्फपर जंघाहै, जंघाओंपर जानू और जानुओंपर सांथल, सांथलोंपर मध्यदेश, मध्यदेशपर छाती, छातीपर ग्रीवा और शिर है और इधर उधर कन्धें हैं ॥ ५ ॥ कन्धोंके ऊपर कोई अवयव भी हो सोभी नहीं है, उसके ऊपर काठकी बनी पालकी है, उस शिबिकामें भी कोई अंग नहीं है उसमें सौवीर नाम एक राजा पार्थिव विकार (मट्टीका हुआ) बैठा हुआ देखताहूँ, इस पार्थिव विकारमें ही तुम्हारा आत्माभिमान है, (कि मैं सिन्धुदेशका नरेशहूँ) और पालकीमें सवारहूँ, बस इसी गर्वके मदसे तू अन्धा होगया है ॥ ६ ॥ यह सब बोझा ढोनेवाले मनुष्य अधिक कष्ट भोग करके अतिदीन मलीन तनुक्षीण होरहेहैं । जिनको देखकर चित्त महादुःखी होता है,

उनको तैंने बलात्कार बेगारमें पकडकर पालकीमें जोता है, इस कारण तू अतिनिर्दयी और महापापी है और इतनेपर निर्लज्जहो कहता है कि, मैं सबकी रक्षा करताहूं। ऐसा कहकर जो तू अपनी बडाई करताहै, यह सब मिथ्या है। तू अति दुष्ट है, विवेकी जनोंकी सभामें तू शोभाको नहीं पासक्ता ॥ ७ ॥ हे राजा ! ऊपरके अंगोंका भार नीचेके अंगोंको लगता होगा. ऐसा भी निश्चय नहीं होता, क्योंकि जैसे अंग- वाले एक पदार्थका निश्चय नहीं होसक्ता, तैसे अंगोंकाभी निरूपण नहीं हो सक्ता, इस बातको मैं भले प्रकार जानताहूँ, जब कि पृथ्वीसेही चराचर सब पदार्थोंका नाश और उत्पत्ति होतीहै तब पृथ्वी भी अलगका विकार नहीं है, नाममात्रसे अलग है, और कोई वस्तु इन सब व्यवहारोंका मूलहै। और अर्थ क्रिया द्वारा यह ज्ञानमें आवे तो तूही इसको निश्चय कर ॥ ८ ॥ इस प्रकार जिसमें पृथ्वी शब्दका व्यवहार है उसको भी मिथ्या समझना चाहिये! वहभी किसी प्रकार सत्य नहीं है, क्योंकि वहभी अपने कारणीभूत सूक्ष्म परमाणुओंमें लय होजातीहै। हे राजन् ! इससे ऐसा मत समझो कि (परमाणु सब नित्यहै) हे वीर ! मनसे कार्यकी उत्पत्तिके लिये समस्त परमाणु वादियोंने कल्पित कर लिये हैं। उनके समूहसेही अर्थात् पृथ्वी इत्यादिक समझनेके आश्रयमें ही विशेष विशेष पदार्थ रचेगये हैं! हे महाराज ! यह प्रपंच भगवान्की मायामें मिला हुआहै इस कारण समस्त परमाणु भी अविद्यासे कल्पित हो सक्ते हैं, परन्तु किसी प्रकारसे यह परमाणु सत्य नहीं है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! आत्मामें कभी छोटा कभी बडा कभी सूक्ष्म कभी स्थूल, कभी कार्य कभी कारण और कभी जडताका धर्म देखकर जो दूसरा (द्वैत) देख पडता है, वह दूसरा भी मिथ्या है। द्रव्य, स्वभाव, आशय, काल, कर्म इत्यादि यह सब मूल तत्त्व अविद्या प्रयुक्त हैं इनको तू जान, भला फिर सत्य क्या है ॥ १० ॥ हे महाराज ! विशुद्ध जिसके बाहर भीतर दूसरा कुछभी नहीं है परिपूर्ण अपरिछिन्न और निर्विकार जो ज्ञान है वही परमार्थ सत्य है । उसी ज्ञानका नाम भगवच्छब्द है, उस ज्ञानकोही पंडित लोग वासुदेव कहते हैं ॥ ११ ॥ हे रहूगण, वह स्थान जहां परब्रह्म विराजमानहै, मह- त्पुरुषोंकी चरणरजकी सेवा किये विना न तो तपस्यासे न वैदिक कर्म करनेसे, न अन्ना- दिकका विभाग करनेसे, न गृहस्थ धर्ममें रहकर परोपकार करनेसे, न वेदाभ्याससे, न जलसे न अग्निसे, न सूर्यकी उपासना करनेसे, किसी प्रकार प्राप्त नहीं होता। इस कारण बडे पुरुषोंके चरण रजकी सेवा करनेहीसे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! महान्पुरुषोंमें सदाही भगवान्के गुणानुवादोंकी चर्चा रहतीहै. उनके निकट विषय वार्ताका किंचित् भी संबंधी नहीं रहता, उस भगवत् गुणानुवादकी सदा सेवा करनेसे वही भगवद्गु- णानुवाद भगवान्के प्रति मुमुक्षुजनोंको श्रेष्ठबुद्धि प्रदान करता है। अर्थात् भगवत्संबंधी आत्मज्ञान देता है ॥ १३ ॥ हे रहूगण ! संसारका संगतो योगका विनाश करने वाला है; इसको मैं भले प्रकार जानताहूं क्योंकि मैं अपनी गति अपने नेत्रोंसे देख चुकाहूं; मैं पूर्व जन्ममें भरतनाम एक राजाथा, प्रथमही अनेक दर्शन और श्रवण करनेसे संगके

निमित्तका बंधन छूटगया था इसकारण मैं नित्यप्रति भगवान्की आराधना करता, फिर दैवात् एक मृगके संग होनेसे मैं मृगत्वको प्राप्त हुआ और मेरा सब स्वार्थ नाशको प्राप्त होगया ॥ १४ ॥ परंतु हे वीर ! भगवदाराधना भ्रष्ट हो जानेपरभी उद्धार करदेती है। मैंने पूर्व जन्ममें जो भगवान्की आराधना की थी, उससे उत्पन्न हुई जो स्मृति, उसने मुझको मृग देहमेंभी नहीं त्याग किया, अर्थात् पहले जन्मकी याद बनी रही। इसकारण लोगोंका संग होजानेके डरसे मैं सबका संग छोड छाँडकर अकेले घूमा करताहूं ॥ १५ ॥ इसी कारण मनुष्य लोग कुसंग त्याग महापुरुषोंके संगसे ज्ञानरूप खांडा उत्पन्नकर उससे अपने मोहको काट संसार मार्गके परे भगवान् हरिको प्राप्त हो सक्ते हैं, क्योंकि सज्जनोंके सत्संगसे भगवान्के सब कर्म दृष्ट और श्रवणगोचर होजाते हैं। और उसीसे अन्त समय भगवान्के स्वरूपमें लय होजाते हैं ॥ १६ ॥

भजन-संतोंकी महिमा अपरम्पार। सत्संगति सम धर्म न दूजो, कह रहे वेद पुकार। जप, तप, नियम, ध्यान, व्रत, संयम, कीजे वर्ष हजार। कठिनाईसे मिलत परमपद कोटिन विघ्न विकार ॥ १ ॥ सत्संगतिसे तुरत होत नर भवसागरके पार। संगतिकी गति शेष शंभु अज, जानत भली प्रकार ॥ २ ॥ सत्संगतिसे वसिष्ठ नारद, कीन्हों ब्रह्म विचार। लव निमेषकी सत्संगतिको, लग न सकत युगचार ॥ ३ ॥ सत्संगति प्रभावसे धारो, शेष धरणिको भार। "शालिग्राम" भक्तकी संगति, अधम उधारन हार ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पञ्चमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

दोहा-विषयीको वैराग्य दिय, यह तेरह अध्याय।
बनकर बरणो जगतको, सुनिये चित्त लगाय ॥ १३ ॥

जडभरत ब्राह्मण, फिर रहूगण राजासे बोले, कि हे राजन् ! संसारका मार्ग अतिदुर्गम है, उसमें प्रविष्ट होकर रजोगुण, तमोगुण और सतोगुणमें विभाग कीहुई जिसकी दृष्टिहै और कर्म हैं, उन सबकोही कार्य समझकर देखते हुए वेश्याकी समान धनके बटोरनेकी चाहनासे चारों ओर घूमताहै। परन्तु उस चारों ओर घूमनेसे भवाटवी अर्थात् जंगलमें चला जाताहै, और किसी प्रकारसे सुखको प्राप्त नहीं होता ॥ १ ॥ हे नरदेव ! इस जंगलमें बडे बडे छः चोरहैं वह सब बनियोंके झुण्ड वाले नायकोंको अयोग्य देखकर बलात्कार उनका धन लूट लेतेहैं। और वहां पर बडे बडे श्रृगालभी हैं, जो कि वणिकों के बीचमें प्रवेश करके जिस प्रकार भेडिया भेडको उठाकर ले जाता है वैसेही श्रृगाल उन बनियोंको खैंचकर लेजाते हैं ॥ २ ॥ इस अटवीमें अनेक वृक्ष लता और गुच्छोंसे ढके हुये गहरे गढेहैं वणिक लोग वहां बलात्कार विश्राम करके भयंकर डास और मच्छरोंसे बडा उपद्रव पाते हैं। कहींपर यह वणिक् लोग आश्चर्य गंधर्व पुरीको देखते

हैं। किसी किसी स्थानमें अतिशय वेग उल्मुकाकार गृह (पिशाच विशेष का बबूला) देख उसको सुवर्ण आन देखते हैं । और उसके लेनेका लालच करतेहैं ॥ ३ ॥ वास स्थान, जल और धन इन सबमें इन वणिकोंकी आत्मबुद्धि होनेसे उनहीं वस्तुओंके लिये यह सदा उस अटवीमें इधर उधर दौडा करते हैं। कहीं आंखोंमें धूल पड जानेसे पवनसे उडी हुई धूलके द्वारा नेत्रोंमें धुन्ध छा जाती है, तो उन धुंधली आंखोंसे छिपी हुई दिशा विदिशाओंको नहीं देख सक्ता, कहीं झींगर बोल रहे हैं परन्तु देखनेमें नहीं आते, उन झींगरोंकी झनकारसे उनके कानोंमें दर्द होता है, कहीं उल्लुओंके शब्दसे उनका मन अत्यन्त व्याकुल होता है । हे वीर ! यह सब वणिक् इस प्रकारसे खिन्न होकर जब भूखे होते हैं, तब जिनकी छाया भी पापका कारण हैं, ऐसे अपुण्य वृक्षों-का आश्रय ग्रहण करते हैं कहीं कहीं सूर्यको किरणोंको जल समझकर उसी ओर दौडते हैं, कभी मृग मरीचिकाके जलको दौडते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ और कभी वह लोग जल-हीन जलाशयोंकी ओर जाते हैं, परंतु उसमें गिरतेही अंग भंग हो जांयगे; इसकारण जितनी दुःख मिलनेकी संभावना है, उतनी जब मिलनेकी आशा नहीं और कभी जब उनके पास अन्न नहीं रहता तब परस्पर एक दूसरेसे मांगते हैं, कभी दावानलके निकट पहुँचकर, अग्निसे संतापित हो विषाद करते हैं। कभी इसलिये डरते हैं कि कहीं यक्षगण प्राण न लेलें ॥ ६ ॥ किसी किसी स्थानमें और दूसरे लोगोंसे सर्वस्व हरे जानेपर विषाद को प्राप्तहो, उस सर्वस्वके लिये शोक करते करते मूर्च्छित हो जाते हैं ॥ कहीं गंधर्व पुरमें प्रवेश करके एक मुहूर्त भर आह्लाद किया करते हैं ॥ ७ ॥ कहीं कहीं चलते चलते पांवोंमें काटा खोबडादिके लगनेसे पर्वतपर चढनेकी वासना पूरी न होनेसे कुछ उदाससे होते हैं। कहीं कहीं कोई परिवारी पुरुष अन्तर्गत जठरानलके द्वारा पीडित होनेसे भूँखकी ज्वालासे क्षण क्षण भरमें लोगोंके ऊपर क्रोध करते हैं ॥ ८ ॥ कभी इस भवाटवी में अजगर सर्पसे ग्रसा पडासा हुवा जीव वनमें सोता है, कहीं हिंसक प्राणियोंके काटनेसे दुःख पाकर अन्धतामिस्रवत् कुएमें गिरपडता है ॥ ९ ॥ किसी किसी स्थानमें कोई कोई वणिक् क्षुद्ररस अर्थात् शहतके ढूँढनेको जाकर उनकी मक्खियोंके द्वारा काटनेसे अधिक दुःख पाते हैं, यदि कदाचित् बडे कष्टसे इस विषयमें मानभी पाया अर्थात् मधु मिलगया तो भी उसको भोग नहीं कर सकते, क्योंकि उनसे दूसरा बलवान् बलात्कारसे उस शहतको छीन लेते हैं ॥ १० ॥ कहीं कोई लोग शीत, गरमी, वायु, वर्षाकी रोक नहीं कर सक्ते, बैठेही हैं। कहीं कोई लोग लेन देन करके बहुत थोडा धन परस्परसे लेकर धनकी ठगाई करनेसे विद्वेषको प्राप्त होरहे हैं ॥ ११ ॥ किसी किसी स्थानपर कोई २ लोग धनहीन होनेके कारण इस अटवीमें शय्या, आसन, स्थान और विहारसे रहित होकर यहां वस्तु दूसरेसे माँगते हैं। परन्तु औरसे कामना पूर्ण नहीं होती तब पराई वस्तुका अभिलाष करके उसके लिये अपमानको सहते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! भवाटवीमें कोई व्यक्ति परस्पर धनसे, और पदार्थोंका अदलाबदला करनेके कारण दूसरोंसे वैर बढाते हैं।

और कोई उनके साथ परस्पर बडे बडे सम्बन्ध करते हैं। कोई २ लोग बडे बडे परिश्रम और धनका नाश व और और उपद्रवोंके कारण नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ १३ ॥ हे वीर! उन सब नाशको प्राप्त हुये मनुष्योंको जहाँपर कि, वह मरे वहीं वहीं छोडकर, नये जो उत्पन्न हुये उनको साथ लेकर कोई भी अबतक वहांसे नही लौटता। अर्थात् जहाँसे इन्होंने चलनेका आरंभ किया है, वहांपर फिर लौटकर नहीं आते, सब बनियोंके झुण्डमेंसे कोई लोक अबतक इस मार्गके द्वारको प्राप्त नहीं हुवा। अर्थात् इस संसार मार्गका पार जो योग है, उसको कोईभी नहीं पहुँच सक्ता॥१४॥हे वीर जो पुरुष कि शूर हैं और उन्होंने प्रधान प्रधान दिग्पाल हाथियोंतकको जीत लिया है। वहभी इस भवाटवीमें "हमारी भूमि हैं हमारी भूमि हैं" इस प्रकार भूमिके कारण परस्पर वैरभाव करके संग्राम स्थलमें गिरकर शयन करते हैं। इस कारण निर्वैर संन्यासी लोग विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं। वह लोग इस गतिको कभी नहीं प्राप्त कर सक्ते ॥ १५ ॥ हे राजन्! भवाटवीमें भ्रमण करने-वालोंका और भी वृत्तान्त कहताहूँ सो तुम सुनो, कभी कोई पुरुष लता शाखाओंके आश्रयसे उनपर बैठेहुये पक्षियोंके कलरवकी ध्वनि श्रवण करनेके लिये लालसा लगी, इसमें आसक्त होता है। कहीं कहींपर कोई कभी २ (हरि चक्र) (सिंह समूह) से भीत होकर, बगले, कौवे और गिद्धोंसे मित्रता करता है ॥ १६ ॥ परन्तु गिद्धादिकसे ठगे जाकर पीछे आपही हंसोंके कुलमें प्रवेश करता है, पीछे उनकाभी आचार व्यवहार प्रिय न समझकर वानरोंमें मेल करता है और इस जातिके खेल कूदसे अपनी सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करता है, परस्पर एक दूसरेका मुख देखनेसे मोहित होकर अपनी अवधि कितनी है, अर्थात् जीवन समय कितना है उसको भूल जाता है ॥ १७ ॥ कहीं २ कोई २ पुरुष पुत्र, स्त्रीपर स्नेह करके उनके निमित्त सब वृक्षोंमें अर्थात् दृष्टार्थ विषयोंमें क्रीडा करनेके व्यवसायमें अति दीन है ॥ इस कारण अपने बन्धनमें विवश अर्थात् परित्याग करनेमें समर्थ होता है, कहीं वही पुरुष असावधानतासे पर्वतकी कन्दरामें गिर जाता है। और वहांपर हाथियोंके भयसे लता पातोंको पकडकर लटका रहता है ॥ १८ ॥ और वह पुरुष इन विपदोंसे किसी प्रकार छूटकर अपने संगियोंके संगमें पहलेकी समान मिल सकता है, परन्तु संसारी मार्गमें मायासे पटका हुआ भ्रमणकारी कोई लोग अबतक यथार्थ तत्त्व नहीं जानसका है ॥ १९ ॥ हे रहूगण! तूभी मायासे इस संसारी संगमें फँसा हुवा है, इस कारण अपना राज्य कार्य छोड छाँडकर सब प्राणियोंके साथ मित्रता कर। विषयोंमेंसे चित्तकी आसक्तिको उठाकर हरिकी सेवाके द्वारा तेज धारवाली तलवार हाथमें लेकर इस संसारके पार होजा ॥ २० ॥ राजा रहूगण बोला, हे ब्रह्मन्! मनुष्य जन्म सब जन्मोंकी अपेक्षा सुशोभन है तो सत्य, परन्तु स्वर्गीय देवादिकोंकी अपेक्षा यह जन्म श्रेष्ठ नहीं है, परन्तु स्वर्गमेंभी यही आपके समान महात्मा पुरुषोंके साथ समागम न होतो वहांपर देवा-दिजन्म प्राप्त होनेसे भी क्या लाभ है? प्रभो! आप क्या साधारण मनुष्य हैं? भगवान्का यश श्रवण करने और कहनेसे आपका आत्मा पवित्र होगया है ॥२१॥ इस कारण आपके चरणरेणुकी निरन्तर उपासना करनेसे पुरुषकी पापराशि दूर होकर उसको भगवान्की

निर्मल भक्ति प्राप्त होती है। इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। इस बातमें मुझको अपनाही दृष्टांत दृष्टि आता है कि, एक मुहूर्त भर आपका समागम होनेसे मेरे कुतर्कोंका मूलभूत अविवेक विनाशको प्राप्त होगया ॥ २२ ॥ न जानिये ब्रह्मवेत्ता लोग किसरूपसे घूमा करते हैं वह न जाननेके कारण सबकोही नमस्कार करके कहा कि, महत् पुरुषोंको नमस्कार ! बालकोंको नमस्कार ! युवा पुरुषोंको नमस्कार ! खेलमें मग्न विप्र कुमारोंसे लेकर सबही ब्राह्मणोंको नमस्कार करूं हूं और भी जो ब्राह्मणगण अवधूतोंका चिह्न साधारण करके पृथ्वीमें भ्रमण करते हैं उनके लिये भी बहुत बहुत नमस्कार; उन लोगोंका अनुग्रह राजा लोगोंके कल्याणार्थ हो ॥ २३ ॥ शुकदेवजी बोले कि, हे उत्तराके पुत्र परीक्षित् ! सिन्धु देशाधिपति रहूगण राजाने यद्यपि अपमान किया था तोभी ब्रह्मर्षितनय महानुभाव जडभरतजीने परमकरुणासे दया करके उसको ब्रह्मविज्ञानका उपदेश किया, इसके पीछे जब राजा रहूगणने उन ब्रह्मर्षिके चरणोंकी वन्दना की, तब वह तरंग पूर्ण समुद्रकी तुल्य, आनन्दसे पूर्ण होगये परन्तु उनका अन्तःकरण सदाही स्थिर था, जो हो, इसके पीछे जडभरतजीने फिर पहलेकी समान घूमना आरम्भ किया ॥ २४ ॥ सौवीरपति रहूगण राजा भी भरतजीसे तत्त्व सहित परात्मज्ञान प्राप्त करके तत्क्षणही देहमें आत्मबुद्धि (जो अविद्याके कारण देहमें आरोपित होगई थी) त्याग करदी। हे राजन् ! भगवान्‌के आश्रय वाले महात्मा भरतजीका आश्रय ग्रहण करनेसे रहूगण राजाका अहंकार शीघ्रही विनाश होगया ॥ २५ ॥ राजा परीक्षितने पूँछा कि, हे भागवतवर श्रीशुकदेवजी महाराज ! आप सब कुछ जाननेवाले हैं सो आपने अपरोक्ष वचनोंके द्वारा वणिक् सार्थ सहित रूपक करके जो इस संसार अटवी मार्गका वर्णन किया, विवेकी पुरुषोंकी बुद्धिसे इसका विषय कल्पित हो सकता है, अर्थात् वह लोग बुद्धिके बलसे इन्द्रियोंको दस्युतुल्य और पुत्र कलत्रादिकको शृगाल इत्यादिकी सदृश जान करके इस विषयको समझ सकते हैं, परन्तु अल्पबुद्धि मनुष्यको भली भाँतिसे इसे समझना कठिन है इस कारण जो कुछ कि, आपने कहा है उस सबहीके अनुसार अर्थ कल्पना करके इस दुर्गम विषयको समझाकर कहो जो मेरी समझमें सुगम रीतिसे आजाय ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

रेखता-नहीं मैं कुछ समझताहूं तुम्हारी ज्ञानकी बातें ॥ मैं तो मतिमद अज्ञानी, समझमेंहै कठिन आनी, बखानी आपने जो जो मेरे सन्मान की बातें ॥ १ ॥ रहा नित मूरखोंके सँग,चढै क्यों साधुओंका रंग, सदा पी भंग गाफिल हो,करी अभिमानकी बातें ॥ २ ॥ मेरा मन डूबजाता है, समझमें कुछ न आता है, आपने जो कही मुझसे, महा उद्यानकी बातें ॥ ३ ॥ यतन ऐसा निकालो अब, समझमें मेरी आवे सब, लिखी हैं वेदमें जो सहजसी भगवानकी बातें ॥४॥ यह शालिग्राम कहदेंगे,जो सब कुछ जानते होंगे, छुटे जिसमें महाममता,ऐसी कल्याणकी बातें ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा-वन रूपक कर जगत को, कहौं चौदअध्याय।
ताही को अब खोल कर, कहौं प्रगट दरशाय ॥

जो राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजीसे पूछा, वही प्रश्न शौनकने सूतजीसे किया, शुकदेवजीने और सूतजीने दोनोंको एकही प्रकारका उत्तर दिया 'सहोवाच' इसका अर्थ यह है कि, राजा परीक्षित्ने जब इस प्रकार प्रार्थनाकी तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस संसारमें जीवगण धनको उपार्जन करनेमें तत्पर वणिकोंके तुल्य हैं, यह भगवान्की मायासे संसारी मार्गमें गिरे हैं इस कारण गुरु जो भगवान् हरि हैं, उनके चरणारविन्दके सेवकोंकी पदवी, अर्थात् भगवज्जनों करके अनुष्ठित भक्तिका मार्ग अवतक प्राप्त नहीं होता। हे परीक्षित्! संसारीमार्ग सुगम नहीं है जो सब पुरुष देहमें आत्माभिमान करते हैं उनके सत्वादि विशेष विशेष गुणसे विभक्तसे सर्वकर्म मंगल अमंगल दोनोंमेंही मिलजाते हैं उनके द्वारा विविध देहश्रेणी रची जानेसे उनसे संयोग वियोगादि रूप अनादि संसार होता है, बस संसारके अनुभवके द्वाररूप छः प्रकारकी इन्द्रियें हैं। उनकरके यह संसार-मार्ग दुर्गम मार्गकी तुल्य अतिशय कठिन होगया है. हे राजन्! इस प्रकारके दुर्गम मार्गमें पग धरनेको किसीकीभी प्रवृत्ति नहीं होगी, ऐसा हम कह नहीं सकते। भगवान् विष्णुकी मायासे अवश होकर सवही उसमें वास करते हैं और अपनी अपनी देहसे रचे हुये सब कर्मोंका फल वहां (भवाटवीमें भोगा करते हैं) उन प्राणियोंकी चेष्टा कभी सफल होती है, कभी अनेक अनेक विघ्नोंके कारण पूरी नहीं भी होती है। इस प्रकारकी संसार अटवीमें जो विविध भाँतिके ताप हैं सो उनको भगवच्चरणारविन्द सेवकोंकी पदवी विनाश करनेको समर्थ है। परंतु भगवान्की मायाके वश होकर जीवगणोंको वह पदवी सहजसे प्राप्त नहीं होसक्ती, इस संसाररूप अटवीमें छः इन्द्रियें हैं। वही कर्मोंके द्वारा महा प्रबल चोरोंके तुल्य हैं ॥ १ ॥ क्योंकि, संसारमें बडे कष्टसे बटोरा हुआ पुरुषका धन जो धर्मके उपयोगी जितना कुछ प्राप्त करता है. और पंडित लोग जिसको धर्मका स्वरूप कहा करते हैं, सो जहाँ वह जीव असावधान हुआ कि, जिसप्रकार संगी लोग असावधान संगीका धन हरण करलेते हैं, वैसेही यह सब इन्द्रियें जो चोर हैं यह दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, सूंघना और संकल्प, विकल्प इत्यादि गृहसंबंधी तुच्छ पदार्थोंमें लगाकर उसका यह धन हरण करलेती हैं, वह मनुष्य अजितेन्द्रिय और घरमें ग्राम्य वस्तुओंके भोग करनेमें आसक्त रहता है, इससे वह अपने धन लेजानेवाली इन्द्रियोंको कुछभी नहीं जानता ॥ २ ॥ हे राजन्! इस अटवीमें अनेक भेडियें और शृगाल हैं परंतु वह नाम मात्रकेही हैं। वास्तवमें संसारी परिवारमें जो कि स्त्री पुत्रादिक हैं, वही कार्य करनेमें शृगाल और भेडियेकी तुल्य हैं। क्योंकि अतिलोभी कुटुम्बी पुरुष अत्यन्त प्रयत्नसे रक्षा करें, मेढेके समान सुन्दर धनको उसकी विना इच्छा बडे छल बल और चतुराई कर, उसकी आँखोंमें धूल डाल, भेडियोंकी समान, उसके संचय किये हुए धनको लेही जाता है ॥ ३ ॥ दूसरे उस भवाटवीमें अनेक घास बैलोंसे ढके हुये दुर्गम गढेहैं।

इत्यादि जो कहा है उसका तात्पर्य यहहै कि, जिस प्रकार खेतमें प्रतिवर्ष जो हल चलाया जाय तो उस खेतका बीज जल नहीं जाता, परंतु फिर वह अन्न बोनेके समय तृण गुल्म लता इत्यादिके उपजनेसे दुर्गम गढेकी समान हो जाताहै। वैसेही यह गृहस्थाश्रम सब कर्मोंका क्षेत्ररूपहै। इसमेंभी सब कर्म एक बारही नाशको प्राप्त नहीं होते, क्योंकि यह, गृहस्थाश्रम कामनाओंका भंडार हैं देखो जिस प्रकार किसी बर्तनमें कपूर रक्खाहो और वह उडजावे, तोभी उसकी सुगन्धी उस पात्रसे नहीं जायगी, वैसेही कर्म चाहै सब नष्ट होजाँय परन्तु जबतक वासना क्षय नहीं होती तब तक वह उपजते ही रहते हैं ॥ ४ ॥ इस गृहाश्रममें जो पुरुष रत होता है, उसका प्राण अर्थात् धन संपत्ति डाँस मच्छर तुल्य नीच मनुष्य और टीडी, पक्षी, चोर, चूहे इत्यादिकोंके तुल्य तस्कर लोग पीडा देकर छीन लेतेहैं तथापि यह पुरुष गृहाश्रमके मार्गमें घूमनेसे शांत नहीं होता, बरन् मिथ्या दृष्टि होनेसे अविद्या काम और कर्मोंसे रँगेहुये मनके हेतु गन्धर्व नगर तुल्य अघटमान नरलोकको सत्यरूप देखता है ॥ ५ ॥ दूसरे किसी किसी स्थानमें भोजन स्त्रीसंग इत्यादि व्यसनोंका लोलुप होकर मृगतृष्णाके जलकी तुल्य सब विषयोंकी ओर दौडताहै ॥ ६ ॥ और किसी किसी स्थानमें उल्मुकाकार गृह देखकर उनको श्रेष्ठ सुवर्ण समझ उनके लिये ललचाताहै, इत्यादि जो कहाहै, इसका अर्थ यह है कि, जिस प्रकार शीत निवारण करनेके लिये अग्निकी चाहना करने वाले लोग वनमें अग्निके समान चमकते हुये पिशाच विशेषको देखकर उस पिशाचके पीछे पीछे दौडा करतेहैं वैसेही पुरुष इस संसारमें कहीं सुवर्ण प्राप्त होगा, यह इच्छा करके दौडता फिरता है। परन्तु यह वस्तु अशेष दोषोंका स्थान है, पवित्रभी नहीं है, विष्ठा विशिष्टहै। क्योंकि ऐसा सुननेमें आयाहै कि, अग्निकी विष्ठासे सुवर्ण होताहै, पुरुषका उसके लिये बहुत इच्छा करनेका कारण यह है कि, वह सुवर्णवत् लोहित वर्ण जो रजोगुण है, उससेही पुरुषका चित्त घिरा हुआहै ॥ ७ ॥ हे वीर! "निवास, जल, धन, इत्यादि जो कहा" उसका अर्थ यह है कि, निवास, जल, धन, इत्यादि जो समस्त वस्तु अपने निर्वाहके लियेहैं, उनके लिये अभिनिवेश होकर यह पुरुष इस गहन संसारमें इधर उधर भटकता फिरता है ॥ ८ ॥ दूसरे कहीं आँखोंमें धूल पडजानेसे हवा करके उडी हुई धूलिके द्वारा धूंधुली दिशा विदिशाओंको नहीं देखसक्ता "इत्यादि जो कह आये हैं" इसका अर्थ यह है कि, इस संसारके मध्यमें कभी२ पवनकी तुल्य जो स्त्री है, पुरुष उसकी गोदीमें चढ बैठताहै, गोदीमें बैठनेसे उस समय जो अनुराग जन्मता है, उस राजसी धूल पडेहुए नेत्रोंकी समान होकर मर्यादाको छोडदेताहै और रात्रिकालके भूतकी समान दिशाओंके देवता जो कि अच्छे बुरे कर्मके साक्षी हैं उनकोभी नहीं देखता और सब मर्यादाओंको त्याग करदेताहै, जो मर्यादा छोडनेके कारण साक्षिस्वरूप वर्तमान है, वह उसको नहीं जानता ॥ ९ ॥ और कहीं कहीं सूर्यकी किरणोंको जल समझकर उसी ओर दौडते हैं। "इत्यादि जो कहा है" उसका तात्पर्य यह है कि, संसारमें पुरुष कभी कभी आपही आप एकबार ऐसा विचारता है कि, सब विषयों-

को व्यर्थ निश्चय करता है परन्तु देहाभिमानके कारण शीघ्र ही स्मृतिभ्रष्ट होजाता है, इस कारण मृगतृष्णाके जलकी तुल्य, फिर उन सब विषयोंकी ओर दौडती है ॥ १० ॥ हे राजन्! कहीं झिल्लीनामक अनेक नदी देखते हुये कीडोंकी झनकारसे उनके कानोंमें दर्द होता है " यह जो कहा " इसका अर्थ यह है कि, संसारमें कहीं कहीं झिल्ली झनकारकी तुल्य अति कर्कश विषयोंमें उत्साहके लिये प्रत्यक्ष और अपरोक्ष शत्रुपक्षकी ओर राजकुलकी फटकारसे पुरुषके कर्णशूल और हृदयमें व्यथा होतीहै ॥ ११ ॥ " यह सब वणिक् इस प्रकारसे खिन्न होकर जब भूखे होते हैं, तब जिनकी छायाभी पापकी कारण है, ऐसे अपुण्य वृक्षोंका आश्रय ग्रहण करते हैं " इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह है कि, संसारमें जब पुरुषके पहले किये हुये सुकृत क्षीण होजाते हैं, तब विषतिन्दुक इत्यादि अपुण्य वृक्ष लता और विषकूप समान, इस लोक और परलोकके प्रयोजन हित धन खोकर स्वयं मृतककी तुल्य होजातेहैं और जविन मृतलोगोंके निकट दौडते फिरते हैं ॥ १२ ॥ हे वीर! और कभी वह लोग जलहीन जलाशयोंकी तरफ जाते हैं " इत्यादि कहे हुये वचनोंका अर्थ कहता हूं सो श्रवण करो " कि, संसारमें कभी कभी असत्प्रसंगसे पुरुष की बुद्धि ठगी जातीहै इससे निर्जल नदीमें गिरनेसे जिसप्रकार उसी समय शिर फटजाताहै, और क्लेश होता है वैसेही पुरुष पाखंड पंथमें पडजानेके कारण इसकाल और परकालमें दुःख पाताहै ॥ १३ ॥ और " कभी जब उनके पास अन्न नहीं रहता तब परस्पर एक दूसरेसे माँगते है " इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह है कि, जब संसारके मध्यमें पुरुष भूख प्याससे पीडित होनेके कारण बडा क्लेश पाकर अपने पास अन्न नहीं देखता, तब पिताको पुत्रको और जिनके पास पिता वा पुत्रका कुछ थोडाभी लेना देना है उनको दुःख देता है ॥ १४ ॥ हे राजन्! "कभी दावानलके निकट पहुँचकर अग्निसे संतापित हो विषाद करते हैं " इत्यादि जो कहा इसका अर्थ यह है कि, यह जो गृह है यही दावानलके तुल्य है और प्रिय बस्तुके निमित्त संतप्त है अर्थात् घरमें कुछभी प्रिय वस्तु नहीं है, औरजिसमें सुखका लेश मात्रतक नहीं बरन् परिणाममें उसको महा कष्टहै. पुरुष ऐसी दावानलके संतापको प्राप्त हो उस शोकानलमें दग्ध हो महासंतापको पाता है ॥ १५ ॥ कभी इस लिये डरतेहैं कि कहीं यक्षगण प्राण न लेलें, इस उक्तिका यह तात्पर्य है कि, इस संसारमें कभी कभी राजा लोग कालके वशमें पड, प्रतिकूल हो, राक्षसोंकी समान व्यवहार करते हैं प्रियतम धनरूप प्राण हरण करलेते हैं उससे पुरुषोंको मृतककी तुल्य जीवन लक्षण रहित होकर रहना पडताहै ॥ १६ ॥ हे राजन्! "कहीं गंधर्वपुरमें प्रवेश करके एक मुहूर्तभर आह्लाद किया करते हैं " इत्यादिका तात्पर्य यह है, कि पुरुष कभी बाप दादा इत्यादि बीते हुये पुरुषोंकी चिंताको प्राप्त होकर उनको और उनके असत् धनको सन्मानकर कि, वह लोग मानो वर्तमान हैं। इस प्रकारसे मनमें समझता हुवा क्षण भरके लिये स्वप्नकेसा सुख प्राप्त करलेता है ॥ १७ ॥ " कहीं २ चलते चलते काँटा कंकड आदिके लगनेसे पर्वतपर चढनेकी वासना पूरी न होनेसे कुछ उदाससा होता है " इस वचनका भाव यह है कि,

गृहाश्रममें जिन सब कर्मोंकी विधि हैं वह बहुत हैं। इस कारण वह समस्त पर्वत तुल्य अति दुर्गम हैं। उनका अंत प्राप्त करनेकी इच्छा होनेसे पुरुषका मन कभी कभी लौकिक व्यसनोंमें खिंच जाता है इससे कंटक, और कंकडवाली भूमिमें प्रवेश करनेके समान वह दुःख पाता है ॥ १८ ॥ कहीं कहीं कोई परिवारी पुरुष अन्तर्गत जठरानलके द्वारा पीडित होनेसे भूखकी ज्वालामें क्षणभरमें लोगोंके ऊपर क्रोध करता है ॥ यह जो कहा सो इसका भाव यह है कि, बडे परिवारवाला आदमी स्वच्छन्दतासे देहाभ्यन्तर्वर्ती दुःसह जठरानलसे पीडित होनेके कारण निःसार होकर कभी परिवारवाले लोगोंके ऊपर क्रोध प्रकाश किया करता है ॥ १९ ॥ हे राजन्! कभी इस भवाटवीमें अजगर सर्पसे ग्रसा व डसाहुआ जीव वनमें सोता है, " इत्यादि जो कहा " इसका तात्पर्य भी कहता हूं सो तुम सुनो कि, संसारमें पुरुष निद्रारूप अजगरके वश हो जाता है, निद्राके समय निर्जन वनमें सोनेकी समान अंधकारमें मग्न होकर शयन करता रहता है और कुछ भी नहीं जानता। इस कारण वह फेंके हुये मुरदेकी समान जान पडता है । उसे किसी प्रकारका ज्ञान नहीं रहता ॥ २० ॥ " कहीं अंधे लोग अंधे कुएमें गिरकर डूब रहे हैं " इत्यादि वाक्यका अभिप्राय यह है कि, इस संसारके बीच कभी कभी पुरुषकी गर्वरूप डाढ टूट जाती है, और दुर्जन-रूप हिंसक शूकर उसको निद्रा नहीं लेने देते। इस कारण हृदय व्यथित होनेसे उसके ज्ञानका क्षय होजाता है और वह अज्ञानसे अंधा होकर अंधेकी समान उस अंधे कूपमें गिर पडता है ॥ २१ ॥ हे राजन्! इस संसारमें काम शहदकी बूँदके समान है। पुरुष कभी कभी इस कामकी खोज करता हुवा फिरता है परंतु जब पराई स्त्री और पराये धनके ऊपर झपट करता है तब उस स्त्रीके स्वामी अथवा राजासे मारा जाकर अपार नरकमें गिर पडता है ॥ २२ ॥ इस कारण पंडित कहते हैं कि प्रवृत्ति मार्गमें अपना कर्मही इस काल और परकालमें संसारमें जन्म होनेका क्षेत्र है ॥ २३ ॥ वसुसंसार यदि एक जनकी झपटसे छूट जावे; तब दूसरा पुरुष देवदत्त उससे बलात्कार छीन लेता है। और उससे फिर तीसरा जन विष्णुमित्र हरलेता है। इसी भाँतिं धारावाहिक होता रहता है। बस इस कारण उससे अव्यवस्था हो जाती है ॥ २४ ॥ संसारमें कभी कभी शीत वायु इत्यादि बहुत भाँतिके आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक तापोंकी दुर्दशा निवारण कर-नेको असमर्थ होनेसे पुरुष अपार दुःखी हो चिंता करके शोक किया करता है ॥ २५ ॥ कहीं परस्परमें परस्परका धन ब्यवहार करके दूसरेके निकटसे कुछेक अर्थात् कांकिणी मात्र (बीस कौडियें) यह इससे भी कम लेकर ठगता है, फिर इस ठगाई करनेके कारण विद्वे-षको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहै हैं कि, हे परीक्षित्! इस संसार मार्गमें और बडे बडे कष्ट इत्यादि उपसर्ग तो नित्यही रहते हैं,इनके सिवाय सुख,दुःख,राग, द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद,शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्षा, अपमान, भूख, प्यास, आधि, व्याधि, जन्म, मृत्यु, जरा, इत्यादि और भी अनेक बडे बडे उपद्रव हैं ॥ २७ ॥ संसारमें कहीं देव माया रूप स्त्रीकी भुजलताओंसे आलिंगित होतेही पुरुष विवेक और

विज्ञानसे रहित हो जाता है. "ऐसी रची कठिन यह नारी । देवहुको मन मोहन हारी । शिव, अज, नारद, विशिशि कवीको । क्षणमें मोह्यो मन सबहीको" ऐसी स्त्रीके साथ विहार करनेके लिये, घरका आरम्भ करनेके लिये उसका हृदय व्याकुल हो जाता है इस लिये उसके आश्रयमें जो पुत्र कलत्र इत्यादि रहते हैं उनके देखने या मृदुल वचन श्रवण करने और अनेक प्रकारकी चेष्टा अवलोकन करनेमें हृदय हरे जानेके कारण आत्माको अपार घोर अंधकारमें फेंक देता है ॥ २८ ॥ हे राजन्! हरिचक्रका अर्थ भुजावान विष्णु-जीका चक्र, वह परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्ध तक जो काल है, वह उसका स्वरूप है। वह चक्र निरन्तर परिवर्तित होकर अर्थात् भ्रमण करके बालादि अवस्थाओंके फेरफारसे तृण-स्तम्भसे लेकर ब्रह्माजी आदिक समस्त भूतको अपने वेगसे हरण करता है, परंतु कोई भी उस चक्रका प्रतीकार करनेको समर्थ नहीं होता। क्योंकि यह चक्र सर्व भाँतिसे अप्रमत्त अर्थात् अतिशय सतर्क है इसकारण पुरुष काल स्वरूप इस हरिके चक्रसे उठकर, यह काल-चक्र ही जिनका आयुध है। वह ईश्वर जो साक्षात भगवान् यज्ञपुरुष हैं, उनका अनादर करताहुवा, जो कि पाखंडी देवता काक, गिद्ध, वक और बटेर पक्षीके समान श्रेष्ठ जनोंके आचारोंसे वर्जित उनको ही पाखण्ड शास्त्रकी रीतिके अनुसार भजने लगता है ॥ २९ ॥ किन्तु पाखण्डी देवता वह तो स्वयं ही ठगे हुये हैं, इस कारण यह पुरुष जब उनके निकट अतिशय ठगा जाता है तब ब्राह्मणकुलमें जाकर वास करता है। परंतु उस अव-स्थामें उसको ब्राह्मणोंके जो आचार व्यवहार और श्रुति स्मृतिके कहे कार्य जो भगवान् यज्ञ पुरुषजीके आराधना करनेके कर्म हैं, वह सब उसको अच्छे नहीं लगते और वेदान्त आचारोंको जो शूद्र लोग अशुद्ध होनेके कारण पाल नहीं सक्ते। वह पुरुष उनमें ही अनु-रागी होकर शूद्रतुल्य होजाता है, शूद्रको अग्निहोत्रादि तो कुछ कर्म हैं नहीं, वानर जातिकी समान केवल स्त्रीसंग और कुटुम्बका पालन पोषण करना कर्म है ॥ ३० ॥ यह पुरुष शूद्रतुल्य होजानेके कारण रोगरहित इच्छानुसार विहार करता फिरता है, उसकी बुद्धि अतिशय मंद होजाती है। इस कारण वह परस्पर एक दूसरेका मुख देखकर अपने मन-माने काम करता है और पशु कर्मोंमें इसप्रकार लग जाता है कि अपने मृत्युसमयतकको भूल जाता है, हे राजन्! संसारमें कभी कभी यह पुरुष जिस प्रकार बन्दर वृक्षोंपर चढ़कर उछल कूद करते हैं, वैसेही गृहादि इस लोकके विषयमें क्रीडा करनेका अनुरागी होजाता है, और ऐसा होनेसे स्त्री पुत्रादिकोंमें उसकी प्रीति होजाती है, और वह मैथुन करनेहीको परम उत्सव जानता है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार संसार मार्गमें बंद होनेके कारण पुरुष मृत्यु-रूप हाथीके भयसे कभी कभी गिरि गुफाओंके तुल्य घोर अन्धकारमें अर्थात् शोकादि विपत्तियोंमें गिरजाता है ॥ ३२ ॥ कभी शीत वात इत्यादि आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक, विविध भाँतिके दुःख निवारण करनेमें असमर्थ होकर क्लेश पाता है और अशेष विषयवासनाओंमें शोक किया करता है ॥ ३३ ॥ कभी कभी परस्पर एक दूसरेसे लेन देन कर ठगाई करके कुछेक धन इकट्ठा करते हैं, परन्तु उससे भी सुखी न

होकर अपमानादिको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ कभी कभी धन न रहनेसे शय्या आसन इत्यादि उपभोग पदार्थोंके न मिलनेसे मनोरथके द्वारा जो वांछित है। सदुपायसे उनको न पाकर फिर उनको बुरे पापोंकरके लाभ करनेका मनमें विचार करता है, जिससे कि उसको लोगोंसे बहुत ही अपमान मिलता है ॥३५॥ परंतु यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि धनकी आसक्तिसे परस्पर वैर भी बढाते हैं और तो भी पुरुष एक दूसरेसे लेन देन करताही रहता है ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे इस संसार मार्गमें अनेक अनेक क्लेश व अनेक अनेक उपद्रवोंसे बाधित होकर जो पुरुष आपदामें पड़े अथवा नाशको प्राप्त होजावै तो दूसरे मनुष्य उसको उसी स्थानमें त्याग कर नये नये उत्पन्न मनुष्यों को साथकर कभी शोर करते हैं, कभी मोह करते, कभी भय पाते हैं, कभी सिंहनाद करते हैं, कभी विवाह करते हैं, कभी हर्षित होते हैं, कभी गातेहैं, कभी चिल्लाते हैं । इस प्रकार संसारमें अधिक बँध जानेसे साधु पुरुषके सिवाय कोई अबतक इस संसार मार्गसे नहीं लौटा, जिस मार्गमें यह नरलोक समूह बँधा हुआ है पंडित लोग उस मार्गसे पार होनेके लिये सदाही उपदेश किया करते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! साधु लोगोंके सिवाय और पुरुषका इस संसार मार्गसे पीछे न लौटनेका कारण यह है कि, यह मार्ग योगानुष्ठानसे भी नहीं रुक सक्ता, शांतशील और मनको वश रखनेवाले, जिन मुनियोंने दंडतक छोड दिया है वह इस मार्गको जानते हैं, बरन् उन लोगोंमें भी अनेक इस मार्गके रोकनेमें असमर्थ हुए हैं ॥ ३८ ॥ जो सब दिग्विजयी राजर्षि सदा योग यज्ञ किया करते हैं, वे लोग भी इस मार्गके रोक लेनेमें सर्व प्रकारसे समर्थ नहीं हुए. वे केवल रणशायी और इसी वसुधाकी मोह ममतामें फँसकर प्रत्येक मनुष्योंसे अनेक अनेक प्रकारकी शत्रुता ठानी और यही कहानी गाते हैं कि "यह भूमि हमारी" ऐसा समझकर, "सैन जोर नित करत लड़ाई। धरणी हित जिय देत गँवाई" ॥ संग्रामस्थलमें प्राण दे, इस अपनी पृथ्वीको छोडकर अकेले चलेगये ॥ ३९ ॥ कोई कोई लोग अपने कर्मसे सूत्रको पकड करके जैसे तैसे संसारकी आपदासे छूटभी जावें, परन्तु फिर भी संसारी मार्गमें प्राप्त होनेसे नरलोक समूहके ही निकट आजाते हैं, स्वर्गमें गये हुए लोगोंकीभी यही गति होती है ॥ ४० ॥ योगीवर शुकदेवजी महाराज इसप्रकारसे जडभरतजीकी कही हुई भवाटवीकी वास्तविक व्याख्या करके राजा परीक्षितसे बोले कि, हे राजन् ! उन राजर्षि भरतजीके पवित्र चारित्र इसप्रकारसे संक्षेपमें संग्रह करके लोग सदा गाया करते हैं। यथा—जिस प्रकार मक्खियें गरुड़के मार्गका अनुसरण नहीं कर सकतीं, वैसेही और कोई राजा उन ऋषभ पुत्र राजर्षि भरतके मार्गका अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ ४१ ॥ उन भरतजीने भगवान्की भक्तिके हेतु युवा अवस्थामें हीं स्त्री, पुत्र, मित्र, राजत्व इत्यादि विषय जो कि अत्यन्त मनोहर और त्यागनेको योग्य नहीं थे उन सब पदार्थोंका क्षणमात्रमें विष्ठाकी समान त्याग करदिया ॥ ४२ ॥ उनके, चित्तकी वृत्ति भक्तिके निमित्त प्रबल थी, इससे उन्होंने जो अत्याज्य पुत्र कलत्र और धन जन इत्यादि और सुरवरोंकी प्रार्थनीया लक्ष्मी जो दया-

भाजन होनेके निमित्त उनकी ओर दीन भावसे देखती थी, उसमें भी अनिच्छा प्रगट करते हुए यह कर्म उनके योग्यही हुआ, क्योंकि जिन समस्त महापुरुषोंका चित्त भगवान्की सेवामें अनुरागी होरहा है, उनके निकट परमपुरुषार्थवाली मुक्ति भी अति तुच्छ पदार्थ है ॥ ४३ ॥ हे राजन्! जिन्होंने मृग देहका परित्याग करनेके समय जो यज्ञरूप भगवान् इत्यादि फलदाता धर्मानुष्ठान करता अष्टांग योगरूपी ज्ञानही जिनका प्रधान पाल ऐसे योगमूर्ति मायाके नियन्ता इस कारण नार (जीव समूह) जिनको अयन (आश्रय) अर्थात् जो सर्व जीवोंके अंतर्यामी हैं, उन भगवान् हरिको मैं वारंवार नमस्कार करताहूं "यह वचन बड़े शब्दसे उच्चारण किया था" उनके मार्गका अनुसरण करनेको और कौन पुरुष समर्थ होगा? ॥ ४४ ॥ हे राजन्! राजर्षि भरतके गुण और कर्म अतिशय पवित्र थे, प्रत्येक भगवद्भक्त इन दोनोंका सन्मान किया करते हैं इस कारण महात्मा भरतजीका यह चरित्र अतिशय मंगलदायक दीर्घायु करनेवाला, तथा धन, यश, स्वर्ग और मोक्षका साधन करनेवाला है। जो पुरुष भक्ति सहित इस चरित्रको श्रवण करैंगे अथवा पढैंगे और सुनकर हर्षित होंगे वह आप ही आप अपने सब कल्याणोंको प्राप्त होंगे। दूसरोंके निकटसे उनको कल्याण ग्रहण करनेकी अपेक्षा नहीं रहैगी ॥ ४५ ॥ इसपर एक भजन है ॥

भजन-जो जन निशि दिन हरि गुण गावत ॥ निःसन्देह आनन्द सहितसो, भुक्ति मुक्ति फल पावत ॥ काल व्याल दूरहि ते काँपत, यम नेरे नाहिं आवत ॥ सेवा करत पार्षद निशि दिन, ठाढे चँवर डुलावत ॥ सुन्दर सुभग विमान सजाकर, सब मिल ताहि चढावत ॥ शंख मृदंग बजाय धूमसे, परमधाम पहुँचावत ॥ विष्णुरूप हो जात विष्णुपुर, विष्णुदास कहलावत ॥ शालिग्राम भक्तिकी महिमा, शेष कहत सकुचावत ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते
पंचमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा-भरत चरित वर्णन कियो, पञ्चदशो अध्याय।
अब मैं तिनके वंशके, सब नृप कहौं गिनाय ॥ १ ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, भरतका पुत्र सुमति हुवा, कोई २ पाखण्डी लोग इसको जीवन्मुक्त मार्गका अनुसरण करता हुवा देख देखकर अपनी पापीयसी बुद्धिसे "साक्षात् बुद्धका अवतार हुवा" कह कलियुगमें उसकी कल्पना देवतारूपसे करैंगे, किन्तु वेदमें इसके देवता होनेका कहीं प्रसंग भी नहीं है, जो हो इस सुमतिसे बुद्धसेनाके गर्भमें देवताजित नामक एक पुत्र हुवा ॥ १ ॥ २ ॥ देवजितके आसुरी नाम स्त्रीमें देवद्युम्न नाम पुत्र उत्पन्न हुवा, उसकी धेनुमतीके गर्भसे परमेष्ठी नाम पुत्र उत्पन्न हुवा परमेष्ठीकी स्त्री सुवर्चला थी, उससे परमेष्ठीके प्रतीह नामक महात्मा पुत्र उत्पन्न हुवा ॥ ३ ॥

जिस प्रतीहने भूरि २ लोगोंके निकट आत्मविद्याकी व्याख्या करके उसके द्वारा आपभी पवित्र हो भगवान् विष्णुजीके साक्षात् दर्शन किये थे ॥ ४ ॥ इन प्रतीहके सुवर्चला नाम स्त्रीके गर्भमें प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता यह तीन पुत्र उत्पन्न हुये, यह तीनों पुत्र यज्ञानुष्ठान करनेके विषयमें अत्यन्त पण्डित और चतुर थे। उनके बीच प्रतिहर्ताकी स्त्री स्तुतिमें अज्ञ और भूमा यह दो पुत्र हुये ॥ ५ ॥ भूमाके ऋषिकुल्यानाम स्त्रीमें उद्गीथ नामक पुत्र हुवा उद्गीथके देवकुल्यानाम स्त्रीमें प्रस्ताव नाम पुत्र हुवा, प्रस्तावके नियुत्सा नाम स्त्रीमें विभु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुवा विभुके रति स्त्रीमें पृथुषेण, पृथुषेणके आकूति नाम स्त्रीमें नक्त और नक्तके द्रुतिनाम भार्यामें गय पुत्र जन्मा, यह गय राजा बडा यशवान् और राजर्षियोंमें परमोत्तम था और जो कि जगत्की रक्षा करनेकी वासनासे सत्वगुण धारण किया है, साक्षात उन भगवान् विष्णुजीके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण यह राजा ज्ञानीपन आदि लक्षणोंसे महा पुरुषताको प्राप्त हुवा था ॥ ६ ॥ यह राजर्षि श्रेष्ठ राज्यमें अभिषेकित होकर राजधर्म कहकर प्रजागणोंका लालन पालन शासनादि धर्मके कार्य करता, गृहाश्रममें रहनेसे उसको याग यज्ञादि धर्ममें भी आचरण करने होते परन्तु उसके यह दोनों प्रकारके धर्म सब भाँतिसे भगवान्में अर्पण होनेके कारण परमार्थरूप होगये थे. इस कारणसे इन दोनों धर्मोंसे और ब्रह्मज्ञानियोंकी चरणसेवासे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा उसकी बुद्धि संस्कारित और शुद्ध होगई थी और उसके चित्तसे देहाभिमान दूर होगया था. इस कारण वह सदाही स्वयं प्रकाशवान् ब्रह्मानन्दका अनुभव करते थे। परन्तु इस प्रकारसे होकरभी वह अभिमान रहित होकर पृथ्वीका पालन करते थे। हे पाण्डववंशावतंस परीक्षित्! इस कारणसे इतिहासके जाननेवाले पुण्यपुरुष अनेक अनेक गाथायें रचकर उनका यश और पवित्र चरित्र गाया करते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन गाथाओंका अर्थ यह है कि, महात्मा गण यज्ञस्वरूप मनस्वी धर्मरक्षक श्रीमान् साधुजनों की सभाके पति और साधुओंका सेवक है इससे भगवान्के अंशके विना और कौन नृपति कर्मादिकसे उनकी बराबरी कर सकेगा? अर्थात् वह भगवान्के अंश हैं वह अपने आपही अपनी समता करसक्ता है॥९॥(औरभी) जिन साध्वी दक्षकी कन्याओंका आशीर्वाद अव्यर्थ है। ऐसी उन कन्याओंने नदियोंके सहित परमहर्षसे जिनका अभिषेक किया था॥ और जिनके कल्याण विषयमें निराकांक्षी होनेपर भी गुणरूप वत्सद्वारा स्तनपशा (पन्हाव) आनेसे धरणीने जिनकी प्रजागणोंके लिये अनेक अनेक कल्याण स्वयंही दोहन कर दिये थे भला कर्मोंमें उनकी बरावरी करनेको कौन समर्थ होगा? ॥१०॥ (औरभी) जिसके निष्काम होनेपरभी समस्त वेद अथवा वेदोक्त कर्म उसकी मनोवांछित अभिलाषा पूर्ण करते थे और राजालोग समरक्षेत्रमें शरोंसे पूजित होकर जिसको (कर) देते थे और ब्राह्मण लोग पालन और दक्षिणादिक पूजा पाकर अपने अपने धर्म और पुण्यके फलका छठवां भाग जिसको देते थे सो ऐसा कौन पुरुष उसकी समान कार्य करनेको समर्थ होगा? ॥ ११ ॥ (औरभी) जिसके यज्ञमें बहुत सोमपान करनेसे यज्ञमूर्ति भगवान् इन्द्र अतिशय मत्त

होते थे और उससे श्रद्धा सहित शुद्ध और अविचल भक्तियोगसे अर्पण किये हुये यज्ञकी पूजाको पूज्यद्रव्यकी समान श्रीभगवान् प्रत्यक्षरूपसे स्वीकार करते थे, सो उस महाप्रतापी राजाकी बराबरी कौन करसक्ता है ? ॥ १२ ॥ (अथवा) जिन भगवान्के प्रसन्न होनेसे देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, तृण इत्यादिसे लेकर ब्रह्माजी और सब ब्रह्माण्ड प्रसन्न होगया था, सो आप विश्वनाथ विश्वम्भर सर्वान्तर्यामी साक्षात् प्रति स्वरूप भगवान् विष्णु जी गयराजाके यज्ञमें "हम तुम्हारे यज्ञमें प्रसन्न हुये" यह कहकर स्वयं प्रसन्नता प्रकाश करते थे, इस कारण कौन पुरुष इस गयराजाकी समान हो सकैगा ? ॥ १३ ॥ उक्त राजर्षि गयसे गयन्ती नाम स्त्रीके गर्भमें चित्ररथ, सुगति और अभिरोधन, नामक यह तीन पुत्र उत्पन्न हुये । उन तीन पुत्रोंमें चित्ररथकी भार्या ऊर्णा हुई, उसके गर्भसे सम्राट् नामक एक पुत्रने जन्म लिया ॥ १४ ॥ सम्राटने उत्कला नामक स्त्रीमें मरीचिनाम एक पुत्र उत्पन्न किया । मरीचिसे बिंदुमतीके गर्भमें बिंदुमान उत्पन्न हुये, बिन्दुमानसे सरघनाम स्त्रीमें मधु नामक राजर्षिने जन्म लिया, इन मधुकी स्त्री सुमनामें इनसे वीरव्रत उत्पन्न हुये । इन वीरव्रतने भोजा नामिका अपनी स्त्रीके गर्भसे मन्थु और प्रमन्थु यह दो पुत्र उत्पन्न किये । उन मन्थुकी स्त्री सत्या हुई, उससे भौमनका जन्म हुआ, इन भौमनसे दूष्णा नाम स्त्रीमें त्वष्टाने जन्म लिया । उन त्वष्टाकी स्त्री विरोचना हुई, इसके गर्भमें विरज जन्मे, विरज अति महात्मा थे । उनकी स्त्रीका नाम विषूची था, उसके गर्भसे विरजके सौ पुत्र (१००) और एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ इन विरजका गुण कीर्तन करनेके विषयमें एक श्लोक है । प्रियव्रतके वंशमें सबसे पीछे राजा विरजका जन्म हुवा, जिस प्रकार भगवान् विष्णुजी देवताओंको सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार विरजने अपनी कीर्ति और गुणोंसे इस वंशकी शोभाका विस्तार किया ॥ १६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृतं पंचमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा-रचना सकल सुमेरु की, सोलहमें कहौं गाय ।
पृथ्वीरूपी कमल की, जुदे कर्णिका प्राय ॥

अनन्तर श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् कहनेलगे कि, हे ब्रह्मन् ! भगवान् सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे जहांतक प्रकाश करते हैं और जहां जहां निशानाथ चंद्रमा, शुक्र और कृष्णपक्षमें तारागणोंके सहित दीख पडते हैं, वहांतक भूमण्डलके विस्तारका विशेष वर्णन आप करचुके हैं ॥ १ ॥ उतने परिमाणमें भूमण्डलके मध्य राजा प्रियव्रतके रथके पहियेसे खुदकर सात समुद्र बने हैं, दूसरे हे भगवन् ! आपने इन सात समुद्रसेही इस भूमण्डलके मध्यका और सातों द्वीपोंका संक्षेप मात्र ही वर्णन किया है । इन सब द्वीपोंका परिमाण और लक्षण युक्त विशेष विस्तारसहित सब वृत्तान्त सुननेकी हमारी अतिशय अभिलाषा है॥ २ ॥ हे योगिन् ! भगवान्के गुणमय स्थूलरूप (ब्रह्माण्ड) में लगा हुआ मन भी कदाचित्

निर्गुण सूक्ष्मतम स्वयं प्रकाश परब्रह्म स्वरूप जो परम पुरुष वासुदेव हैं उसमें निवेशित होनेको सामर्थ्यवान् होगा, इसलिये हे गुरो ! अनुग्रह करके इस विषयको वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे महाराज ! पुरुष यदि दैवसमान परमायुको प्राप्त होवे तो भी विशेष २ रचनाके नाम और रूप भगवान्की मायाकी विभूतिका अंत मन वचनसे जाननेको समर्थ नहीं होसक्ता । इसलिये प्रधान प्रधान द्वीपोंके नाम, स्थिरता और चिह्न वर्णन करकेही तुम्हारे निकट भूगोलके सब स्थानोंकी व्याख्या करेंगे॥४॥ हे राजन् ! यह भूमण्डल एक बडे भारी कमलका स्वरूप है, सप्तद्वीप उसके कोषहैं इस सप्तद्वीप रूप कोषके मध्यमें मध्यवर्ती कोष जम्बूद्वीपहै. यह द्वीप पहला है, इसकी चौडाई और लम्बाई लक्षयोजनकी है, यह जम्बूद्वीप कमलपत्रकी समान चारोंओरसे गोल है ॥५॥ इस द्वीपमें नौखंड हैं इन नौखंडोंमें भद्राश्व और केतुमाल खण्डके सिवाय प्रत्येकका विस्तार नौनौ सहस्र योजन ह, यह नौखंड आठ सीमा पर्वतोंसे सुंदर भाँतिसे विभक्त किये गये हैं ॥ ६ ॥ इन सब खंडोंके मध्यमें इलावृत नामक खंड है, जो सबके अभ्यन्तर है, उसके मध्यस्थलमें सब कुलाचल पर्वतोंका राजा और सर्व भावसे सुवर्णमय सुमेरुपर्वत स्थित है। इस सुमेरु पर्वतकी उँचाई और इस द्वीपका विस्तार परिमाणके बरावर लक्ष योजन है, यह पर्वत चोटीकी ओर बत्तीस हजार योजन और मूलमें सोलह हजार योजन फैला हुवा है और पृथ्वीमेंभी सोलह हजार योजन गड़ा हुआ है और बाहिरी भागमें चौरासी हजार योजन दिखाई देता है,जो हो यह सुमेरु पर्वत इस प्रकारसे भूमण्डलरूप बडे भारीकमलकी कर्णिका (डंडी) का रूप हुवा है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इलावृत वर्षके उत्तर भागकी उत्तरादि दिशाओंमें बराबर जो नीलगिरी, श्वेतगिरी और शृङ्गवान्गिरि हैं। यह तीनों पर्वत यथाक्रमसे रम्यक वर्ष, हिरण्मय वर्ष और कुरुप वर्षके सीमापर्वत स्वरूप होरहे हैं यह तीनों पर्वत पूर्वकी ओर लम्बे हैं तीनों पर्वतोंकी दोनों कक्षाओं (बगल) में क्षार समुद्र तक सीमा है इनका विस्तार दो हजार योजन है इन पर्वतोंमें प्रथम पर्वतकी अपेक्षा पिछला पर्वत लम्बाईमें दशांशसे कुछ अधिक भागमें कम है । अर्थात् केवल एकादश अंश दीर्घताके परिमाण में छोटे हैं ॥८॥इस प्रकार इलावृत वर्षके दक्षिणमें निषध,हेमकूट और हिमालय नामक क्रमसे तीन पर्वत हैं । यह तीनों पर्वत पहले कहेहुए नीलादि पर्वतोंकी समान पूर्वदिशाकी ओर लम्बायमानहैं और प्रत्येक दश दश हजार योजन ऊंचाहै. हे राजन् ! यह तीनों पर्वत यथाक्रमसे हरिवर्ष, किंपुरुषवर्ष और भारतवर्षके सीमा पर्वत हैं ॥९॥ इसी प्रकारसे उक्त इलावृत वर्षके पूर्व और पश्चिम दिशामें यथाक्रमसे माल्यवान् और गन्धमादन नाम पर्वत हैं, यह दोनों पर्वत उत्तरमें नीलपर्वत और दक्षिणमें निषधाचल तक लम्बे हैं। और दो दो हजार योजन चौडे हैं। यह दोनों पर्वत यथाक्रमसे केतुमाल और भद्राश्व वर्षकी सीमा होरहे हैं ॥ १० ॥ सुमेरुके चारोंओर मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद नामक चार पर्वतरूपी खंभ हैं। इन पर्वतोंमें प्रत्येकका विस्तार और उँचाई दश दश हजार योजन है इन चारों पर्वतोंमें पूर्व और पश्चिम देशके पर्वत पूर्व पश्चिमको फैले हुए

हैं ॥ ११ ॥ इन चारों पर्वतोंपर चारही सुन्दर सुन्दर वृक्ष हैं पूर्व दिशाकी ओर मंदर पर्वत पर तो आम, दक्षिण दिशामें मेरु मंदर गिरिके ऊपर जामुन, पश्चिम दिशाकी लतामें सुपार्श्वभूधरके ऊपर कदम्ब और उत्तर दिशाकी सीमामें कुमुद शैलपर वट, यह वृक्ष पर्वतोंकी ध्वजाकी समान दृष्टि आते हैं और ग्यारह ग्यारह सौ योजन ऊंचे और ग्यारह ग्यारह सौ योजन उनकी शाखाओंका विस्तार है । और सौ सौ योजनकी मुटाई है ॥ १२ ॥ हे भरतकुलश्रेष्ठ ! इन चार वृक्षोंके निकटही चार ह्रद हैं, उनमेंसे एकमें दुग्धजल दूसरेमें मधुजल, तीसरेमें ईखके रसका जल और चौथेमें शुद्ध मीठा जल है । इन चारों-ह्रदोंके जलमें अतिशय चमत्कार है, उपदेवता लोग इन ह्रदोंके जलका सेवन करके स्वाभाविक योगैश्वर्य धारण करते हैं ॥ १३ ॥ इस स्थानमें ऊपर कहे हुये चार ह्रदोंके व्यतीत चार श्रेष्ठ उद्यान भी हैं, इन सबके नाम यथा—नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र हैं ॥ १४ ॥ इन सब उद्यानोंमें प्रधान प्रधान देवता जो देवांगनाओंमें रत्न स्वरूप स्त्रियोंके पति हैं वह अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ मिलकर विहार किया करते हैं इस प्रकारसे विहार करनेके समय उपदेवता गण उनकी महिमा गाया करते हैं ॥ १५ ॥ मन्दर पर्वतके मध्य में देवताओंका जो एक आमका वृक्षहै, वह ग्यारह योजन तो ऊंचा है, उस वृक्षके अग्रभागसे सदा अनेक अनेक अमृत तुल्य बहुत मीठे फल गिरा करते हैं यह सब फल पर्वतोंके शिखरकी समान बडे बडे होतेहैं ॥ १६ ॥ इन सब बडे बडे फलोंकी अति मधुर सुगंधि है और जब यह गिरकर फटते हैं, तब सौरभ सुवासित अरुण वर्णका रूप होनेसे धारा प्रवाह इनका रसही जल स्वरूप होनेसे उसमें अरुणोदा नामक एक नदी हुई है, वह नदी मंदर पर्वतके शिखरसे निकलकर पूर्वकी ओर इलावृत खण्डको धोती हुई, पूर्वकी ओरको चलीगई ॥ १७ ॥ इस जलके सेवन करनेसेही भवानीजीकी अनुचरी यज्ञाङ्गनाओंके अंगमें सुगंधि होजाती है, उनके शरीरको छूकर पवनमें ऐसी सुगंधि होजातीहै कि, चारोंओर दश दश योजन तक वह सुगंधियुक्त पवन आमोदित करती रहतीहै ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे जम्बुवृक्षके समस्त फल जो हाथीकेशरीरके समान बडे बडे और कृष्णवर्ण होतेहैं और जिनकी गुठली अति छोटी होतीहै; जब वह ऊंचेसे गिरते हैं तो फट जाते हैं और उनके रससे जम्बूनाम एक नदी उत्पन्न हुई है, वह नदी मेरु मंदरके शिखरसे, दशहजार योजन ऊंचेसे पृथ्वीपर गिरती है और जिस स्थानमें गिरती है उस स्थानसे अपने दक्षिणमें समस्त इलावृत वर्षमें व्यापकर बह रही है ॥ १९ ॥ इस नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी उसके जलके रससे भीग वायु और सूर्यके संयोगसे भलीभाँति पकजानेपर जाम्बूनद नामक महा मूल्यवान सुवर्ण होजाता है ॥ २० ॥ जिस सुवर्णको देवादि सबही अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ मुकुट, कटक, कटिमेखला, इत्यादि आभरण बनाकर पहना करते हैं ॥ २१ ॥ सुपार्श्व पर्वतकी कक्षामें महा कदम्ब नामक जो बडा भारी कदम्बका पेड है। उसके समस्त कोटरोंसे पांच २ मधुकी धारा उस पर्वतपरसे गिर अपने पश्चिमकी ओरमें इलावृत वर्षको अपनी सुगन्धिसे चारोंओर सौ सौ योजनतक सुवासित

करदेती है ॥२२॥ जो प्रजागण इस पर्वतकी मधुधाराओंका सेवन करते हैं, उनके वदनकी सुगन्धिके स्पर्शसे वायु सुगन्धित होकर सौ सौ योजन तक चारोंओर महका देता है ॥ ॥ २३ ॥ इसी प्रकारसे कुमुद पर्वतपर शतवर्ण नामक जो वटवृक्ष है उसके स्कन्धोंसे नीचे नीचेको दही, दूध, घी, मधु, गुड अन्न इत्यादि और वसन, भूषण, शयन आसनादि समस्त मनोवांछित वस्तु दोहनकारी जो नद इस पर्वतके अग्रभागसे निकलकर अपने उत्तर इलावृत देशको महोपकार करके उत्तरकी ओर समुद्रमें मिलगये हैं ॥ २४ ॥ इन नद नदियोंमें स्नान करनेसे वहांके रहनेवाले प्रजागणोंको कभी अंगकी विकलता, थकावट, खेद, जरा, रोग, अकाल मृत्यु, शीत वा गरमीके कारण विलावन और विघ्न आदि जो सन्ताप विशेष हैं, वह सब कुछभी नहीं होते, वह केवल महा सुख भोगहीमें समय बिताया करते हैं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! कुरंगी, कुरर, कुसुम्भ, वैकंक, त्रिकूट, शिर, पतंग, रूचक, निषध, शिनि, वास, कपिल, शंख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नारद प्रभृति वीस पर्वत सुमेरुके मूलमें चारों और बनेहुये हैं, जिससे कि यह पर्वत कर्णिका अर्थात् कमल पत्रके समान है और सुमेरु पर्वतके केशरकी नाईं है ॥ २६ ॥ सुमेरु पर्वतकी पूर्व ओर जठर और देवकूट पर्वत है। यह दोनों पर्वत प्रत्येक उत्तर दिशाको अठारह २ हजार योजन लम्बे और दो दो हजार योजन चौडे और ऊंचे हैं इसी प्रकार सुमेरुकी पश्चिम दिशामें पवन और पारियात्र दो पर्वत हैं, जो दक्षिण दिशाकी ओर लम्बे हैं, दक्षिण दिशामें कैलास और करवीर गिरि हैं। यह दोनों पर्वत पूर्वकी दिशाको लम्बायमान हैं। उत्तरकी ओर त्रिशृंग और मकर नाम दो पर्वत हैं ये पश्चिम ओर विस्तृत हैं, इस प्रकार मूलसे सहस्र योजन परित्याग करके चारोंओर अग्निकी परिधिके समान इन आठ पर्वतोंसे घिराहुआ काञ्चन गिरि अर्थात् सुमेरु पर्वत चारोंओरसे प्रकाश कर रहा है ॥ २७ ॥ इसके जाननेवाले पण्डित लोग कहते हैं कि, इस सुमेरुके मस्तकके ऊपर सबसे ऊंची मध्यस्थलमें भगवान् आत्मयोनि ब्रह्माजीकी पुरी निर्मित है उसका विस्तार दश हजार योजन है, वह सुवर्णकी बनी हुई है और चारोंओर समान चतुष्कोण है ॥ २८ ॥ इस पुरीके ऊपरी भागमें पूर्वादि सब दिशाओंमें क्रमसे उत्तरादि अष्टलोकपालोंकी आठ पुरी बनी हुई हैं इन सब पुरियोंका वर्ण उनमें रहते हुए लोकपालोंके वर्णकी समान है। और प्रत्येकका परिमाण ब्रह्मपुरीक परिमाणसे चतुर्थ अंश अर्थात् ढाई हजार योजन है॥२९॥और इसमें जो कुछ अन्यथा हो,वह कल्पान्तर जानलेना यथोक्तम्॥

श्लोक-मेरौ नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती।
तेजोवती संयमिनी तथा कृष्णांगना परा ॥ १ ॥
श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया।
यशोवती च ब्रह्मेन्द्रवह्न्यादीनां यथाक्रममिति ॥ २ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-सत्रहवें सब देशनमें, श्रीगंगाको गौन।
इलावृत्तमें शम्भुकृत, संकर्षण व्रत भौन ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस अध्यायमें कलिमल दल हारिणी, परमानन्द कारिणी, सर्वसुखदायिनी, श्रीगंगामहारानीके माहात्म्यकी कथा वर्णन करते हैं आप सावधान होकर श्रवण कीजिये, साक्षात् श्रीभगवान् विष्णुजीने जब बलि राजाके यज्ञमें जाकर अपना विराट्रूपकर तीनों लोकोंको नापा उस समय दहिने चरणसे पृथ्वीको दबाकर जैसे जैसेही बांया चरण ऊपरको उठारहे थे, तैसेही वामचरणके अंगुष्ठ नखसे ब्रह्माण्डके ऊपरका भाग कटनेसे जो छिद्र हुवा था, उस छिद्रमेंसे चरण विहारिणी, भवभय निस्तारिणी, गंगाजीकी जो ब्रह्मधारा, ऊपर स्थितहुये ब्रह्माण्डके भीतर पैठी थी, यह वही धारा स्वर्ग मस्तकसे उतरकर पृथ्वीमें उतरी है। यह जलकी साधारण धारा नहीं है, इसकी धारासे धुलनेके कारण भगवान्के चरण कमलमें लगा हुआ जो कुमकुम अरुण वर्ण होगया था उसके नागकेशर सदृश रंग जानेसे इस धाराने अत्यन्त शोभा धारण की थी, यद्यपि इससे अखिल जगत्का मल विनाशको प्राप्त होजाता है तौभी यह वारिधारा आपही अत्यन्त निर्मल है, और भगवान्के चरणोंसे उत्पन्न हुई इसलिये इनके " जाह्नवी, भागीरथी " इत्यादि पद और नाम रक्खे गये हैं. हे राजन् ! विष्णुभगवान्के चरणकमलसे निकली हुई, यह गंगाजी यद्यपि बलि राजाके यज्ञ समय उपस्थित ब्रह्माण्डके भीतर छिद्रमें प्रवेशित हुई थी तोभी वहांसे सहसा पृथ्वीपर नहीं उतर आई। बहुत बडे काल अर्थात् दो सहस्र युगके पीछे स्वर्ग मस्तकसे पृथ्वीपर गिरी हैं। हे राजन् ! स्वर्गका मस्तक किसे कहते हैं, उसका वृत्तांतभी संक्षेपसे वर्णन करता हूं तुम श्रवण करो पण्डित लोग जिसको विष्णुपद कहते हैं वही स्वर्गका मस्तक है ॥ १ ॥ उत्तानपादके पुत्र परम भागवत वीर व्रत, दृढ संकल्प, ध्रुवजी विराजमान थे, उन्होंने श्रीगंगाजीको देख मनमें परमानंद मान कहा कि, यह हमारे कुल देवता भगवान् हरिके चरणका जल है, ऐसा मनमें समझ प्रीति सहित, अब तक प्रतिदिन परम आदर सन्मानसे अपने मस्तकपर उस वारिधारा (गंगा) को धारण कर रहे हैं, इन महात्मा ध्रुवजीके हृदयका मध्यभाग क्षण क्षणमें बढती हुई भक्तिके योगसे अत्यन्त द्रवीभूत होता है, इस कारण उत्कण्ठासे विवश उनके कुछेक बन्दहुए कमलरूपी युगल नेत्रोंसे अश्रुबिंदु गिरते हैं और सर्व शरीरमें रोमांच हो आता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! गंगाका प्रभाव जाननेवाले महर्षिगण " यही गंगा तपस्याकी परम सिद्धि है इनसे और कोई सिद्धि नहीं है " इस प्रकारका निश्चय करके अपनी अपनी जटाके समूहनमें इन गंगाजीको धारण करते हैं हे भारतवंशावतंस ! सप्त ऋषियोंके इस प्रकारसे निश्चय होनेका हेतु यह है कि, सबके आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेव में ऐकान्तिक भक्तियोग प्राप्त करनेसे और दूसरे पुरुषार्थ व आत्मज्ञानमें जिनकी आस्थामात्र नहीं बरन् उससे दूर रहनेकी इच्छा करते हैं, इसलिये इस प्रकारके निर्लोभी मुमुक्षु जन जैसे मुक्तिको धारण करतेहैं, उनहींकी समान परम

यत्न और आदर सत्कारसहित वह सप्तर्षि गंगाजीको धारण किया करते हैं ॥ ३ ॥ विष्णुजीके चरणसे उत्पन्न हुई यह गंगाजी सप्तऋषियोंके स्थानसे हजारों करोडों विमानोंके समूह जिसमें शोभित हैं, ऐसे आकाश मार्गसे उतरकर चंद्रमण्डलको आप्लावित करती हुई सुमेरु पर्वतपर स्थितहुये ब्रह्माके सदनमें गिरती है ॥ ४ ॥ वहांपर अलग अलग नामसे चार धाराओंमें विभाग होकर चारों ओरको सर्वभावसे बहती हुई सरितपति समुद्रमें मिली हैं । उन चारों धाराओंके नाम यह हैं–सीता, अलकनंदा चक्षु और भद्रा ॥५॥ उन चार धाराओंमें प्रथम ही सीता ब्रह्म सदनसे प्रगट हो, केसराचल आदि पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे उतरती प्रधान प्रधान शिखरोंपर गिरती हैं तिसके पीछे इन सब शृंगोंसे क्रमसे नीचेको बहकर गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर गिर फिर भद्राश्व खण्डके मध्यमें बहकर पूर्वकी ओर लवण समुद्रमें मिल गई हैं ॥ ६ ॥इसी प्रकारसे चक्षु नामक धारा माल्यवान पर्वतके शिखरसे निकल कर महावेगवती केतुमालखण्डके सन्मुख होती हुई पश्चिम दिशाके समुद्रमें जाय मिली ॥ ७ ॥ भद्रा नामक धारा उत्तरदिशामें सुमेरुके शिखरसे गिरकर एक शिखरसे और दूसरे पर्वतके शिखरपर होती हुई कुमुद पर्वतके शिखरसे चलकर नीलगिरि शिखरपर आई वहांसे बहकर श्वेत पर्वतके शृंगपर वहांसे शृंगवानपर्वतपर पहुँच, वहांसे नीचे गिरी, और उत्तरा कुरुदेशमें होकर क्षार समुद्रमें मिलती है ॥ ८ ॥ अलकनन्दा नामक धाराभी इसी प्रकारसे पर्वतोंको तोड़ती फोड़ती ब्रह्मलोकसे गिरती, बहुतसे गिरि शृंगोंको उल्लंघन करती हुई, बडे भारी तीव्रवेगसे लुडकती हेमकूट और हेमकूटमें होती हुई, भारतवर्षमें व्याप्त होकर दक्षिणकी ओर लवण समुद्रमें जा मिली है । इस गंगामें स्नान करनेके लिये आये हुये मनुष्योंको एक एक पगपर अश्वमेध व राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ हे राजन्! औरभी बहुत भांतिके नद नदी सुमेरु इत्यादि पर्वतोंसे उत्पन्न होकर प्रत्येक खण्डमें शत शत धाराओंसे बहती हैं ॥ १० ॥ परन्तु जितने खण्ड हैं, सबमें भारतवर्षकोही कर्मक्षेत्र कहते हैं और जो आठ खण्ड हैं, वह स्वर्गवासियोंके शेष पुण्य भोगनेके स्थान हैं । वह स्वर्ग नामसे विदित भूमिके विभागही हैं ॥ ११ ॥ इन आठ वर्षोंमें जो पुरुष वास करते हैं उनकी आयु दश सहस्र वर्षकी होती है । देवताओंकेसा रूप होता है और दशहजार हाथियोंके समान उनमें बल होता है वज्रतुल्य दृढ़ शरीर होता है, उस शरीरमें ऐसा बल वयस व हर्ष होता है कि,उससे महा सुरत संबंधीय मिथुन(स्त्री पुरुष अतिशय प्रमुदित होते हैं) और संभोग करनेके अंतमें एक वर्षकी आयु जब रह जाती है, तब उन लोगोंकी स्त्रियें गर्भ धारण करती हैं । इस प्रकारसे विषय सुखकी श्रेष्ठताके हेतु इन सब वर्षोंमें पुरुषोंका त्रेतायुगकी समान परम सुखसे समय व्यतीत होता है ॥ १२ ॥ इसलिये इन सब खण्डोंके मनुष्य देवपति हैं, वह अपने अपने योग्य स्थानोंमें अपने अपने मुख्य सेवकोंसे पूजित होकर अपनी अपनी इच्छानुसार बडे बडे महात्मा पुरुष आश्रमोंमें, पर्वतोंमें,कन्दराओंमें और निर्मल जलाशयोंमें अनेक अनेक प्रकारसे जल विहार करते रहते हैं और छहों ऋतुओंमें वहांके वृक्षोंकी शाखाओंमें फूलोंके गुच्छेके गुच्छे फूल रहे हैं.हरे हरे

पत्तोंके समीप कोमल कोमल कोपलें पीली, लाल, हरित, ऐसी शोभा दे रही हैं मानो मनको विना मूल्य मोल लिये लेती हैं और डाली डाली पर फलोंकी छवि निरालीही समृद्धियोंसे भरी पृथ्वीकी ओरको झुँकी पडती हैं जैसे धनी पुरुष धन पाकर नीचा हो जाता है, उनपर भाँति भाँतिके पुष्पोंसे लदी लहलहाती चुहचुहाती हुई लताओंने जिन लम्बे लम्बे द्रुमोंका आश्रय ले रक्खा है, पुष्पोको अधिक भारसे और पवनके संचारसे नीचेको ऐसी झुक झुक जाती हैं, मानो पृथ्वीको अपनी जननी समझकर वारम्वार शिर झुंका झुका कर नमस्कार कर रहीं हैं। और वायुके वेगसे जो सुमन गिरते हैं मानो झरझर अपनी माता वसुंधराको चढाती ही हैं ऐसे सुन्दर सुन्दर शोभायमान वनके वृक्षोंसे आश्रमोंमें जहाँ तहाँ अद्भुत छवि छा रहीहै और वहां जो सुन्दर सुन्दर ताल और सरोवर हैं उनकी शोभा कहाँ तक वर्णन की जाय?

चौ०-सुन्दर नीर झकोलत निशि दिन।कच्छप मीन रहत तहँ श्रम विन।
सरसी सरस सरोवर सोहैं। विकसित वारिज वन मन मोहैं॥ १॥

उन नवीन नवीन भाँतिके विकसित कमल और कलियोंकी सुगन्धसे प्रसन्न हो होकर राजहंस, कलहंस, जल मुर्गावियां, कारण्ड, सारस और चकवे इत्यादि पक्षियोंके कलरवसे और भँवरोंके समुदायकी गुंजार जलाशयमें सुंदर सुंदर सुर सुन्दरी सुन सुनकर मनही मन आनन्द हो, परम पवित्र जल देख देख अनेक अनेक प्रकारकी जलक्रीड़ा कर कर कामदेवसे क्षुभित हास विलासादिकोंसे जिनके मन वशीभूत हो रहे हैं और उनके हावभावको निहार निहार वहांके जलविहार करने वाले देवताओंको मन और नेत्रोंका मकनातीस (लोहचुंबक) पत्थरकी समान परस्पर खैंच तान हो रही थी॥ १३ ॥ इन कहे हुए खण्डोंमें महापुरुष भगवान् नारायण भक्तोंके ऊपर परम अनुग्रह करनेके लिये अपनी मूर्तियोंके समूहमें आजतक सम्यक् प्रकारसे विराजमान हो रहे हैं॥ १४ ॥ इलावृत खण्डमें सदा सहस्र शिरवाले संकर्षणका ही पूजन होता है, और वही महादेवके हृदयमें वास करते हैं, इसलिये इलावृत खण्डमें भगवान् शिवही एक पुरुष हैं, वहां और कोई पुरुष नहीं है, क्योंकि जो लोग श्रीभवानीके शापको जानते हैं वह लोग कभी उस स्थानमें भूल करभी पाँव नहीं रखते और जो कोई पुरुष विना जाने बूझे उस खण्डमें चला भी जाता है तो वह तत्क्षण स्त्री स्वरूप होजाता है, इसका विशेष वृत्तान्त पीछे नवमस्कन्धमें कहैंगे॥ १५ ॥ इस इलावृत खण्डमें भवानी वल्लभ पार्वतीपति भूतनाथकी असंख्यात अर्बुद पार्वतीकी अनुचरी स्त्रीगण दिनरात शिवजीकी सेवा करती हैं,-शिवजी महाराज शेष भगवान्की आराधना किया करते हैं। वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस नामकी चार मूर्ति महापुरुषकी चौथी तामसी अपनी आत्माकी प्रकृति संकर्षण भगवान्का रूप धारकर अपनी समाधि रूप जिससे स्वयं आप प्रगट हुए हैं, उसी प्रतिमासे अन्तर्वर्ति चैतन्य होकर भगवान् महादेवजी इस मंत्रका दिन रात जप करते रहते हैं॥ १६ ॥

श्रीसंकर्षण मंत्र.

ओं नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्याना-
यानन्तायाऽव्यक्ताय नमः।

अर्थ-उत्पत्ति, पालन संहारकर्ता षड्गुण ऐश्वर्यवान् महा पुरुष सर्वगुणप्रकाशक अनन्त, अव्यक्त, श्रीसंकर्षण भगवान्को मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥ १७ ॥ हे भजनीय भगवन्! सम्पूर्ण ऐश्वर्य देनेवाले, भक्तिके परमस्थान, अपने भक्तोंके अत्यन्त आनन्द-दायक, अपने जनोंको अपने मनोहर स्वरूपका दर्शन देनेवाले, संसार नाशक, सब जन जिनकी भावना करैं, ऐसे परमेश्वरके शरणागत रक्षक चरणारविन्दोंका मैं भजन करता हूं ॥१८॥ मायाके गुण चित्तकी वृत्तिसे आप नित्य प्रति देखते हैं तो अपनी दृष्टिको किंचिन्मात्र लिप्त नहीं होती, जैसे हम लोग क्रोधके वेगको जीतनेकी सामर्थ्य नहीं रखते इसलिये हमको इस संसारसागरसे बचना कठिन है, ऐसे आपही अपनी आत्माको जीतकर वशमें रखते हैं इसलिये जो अपनी आत्माको जीतनेकी इच्छा करै अर्थात् मोक्षपदको लिया चाहे, वह कौन सामर्थ्यवान् है जो आपका भजन करे ? ॥ १९ ॥ अज्ञानी, कुबुद्धि मायासे विमोहित असत् दृष्टिवाले मनुष्यको आपके मद भरे लाल लाल नेत्र मतवालेकी सदृश, भयानक रूप मायासे दृष्टि आते हो, देखो ! कि लज्जा की मारी नागवधू विधान-पूर्वक आपकी पूजाभी करती हुई डरती है, और आपके चरणारविन्दोंका स्पर्शभी नहीं करसक्ती, क्योंकि मनोभवसे ग्रसी कामातुर हो रही है, कदापि कोपदृष्टिसे देखकर हम भस्म करदें और दूसरे चंदन और पुष्पादिको कोई इसलिये भी नहीं चढा सक्ती, कि आपके कोमल पदोंमें चंदनके कण और पुष्पोंकी पखुरीं कहीं चुभ न जांय ॥ २० ॥ इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहारके करने वाले अनंत और संत और वेदमंत्र आपको उत्पत्ति, स्थिति प्रलयसे रहित कहते हैं, आपके दश सहस्र मस्तकोंमेंसे न जानिये कौनसे मस्तक पर यह अण्डकटाह सरसोंके दानेकी समान रक्खा है, इस बातकी आपको इतनी भी सुधि नहीं, ऐसे शेष भगवान्के लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ जिनका आद्य महत्तत्त्व और सत्व-गुण जिसका आश्रय है, वह आपके गुण सम्बन्धसे महाविज्ञानरूप सत्व प्रधान भगवान् वासुदेव हुए उनकी नाभिसे भगवान् ब्रह्माजी हुए जिनसे मैं रुद्र होकर त्रिगुणात्मक अपने तेज अहंकारसे देवता वर्ग, भूत वर्ग और इन्द्रिय वर्गको उत्पन्न करता हूं ॥ २२ ॥ जैसे कीट और विहंग रस्सीसे बँधकर पराये वशमें होजाते हैं, इसी प्रकार आपके वशमें होकर यह सब महत्तत्व देवता भूत और इन्द्रिय गण हो रहेहैं, जिनके अनुग्रहसे हम सब ब्रह्माण्डको सृजते हैं, और आपको सृजनहार कहते हैं ॥ २३ ॥ जिनकी रचीहुई माया कर्मोंकी पूर्व रूप धारिणी मायाको गुण सर्गोंसे मोहित होकर जो जन उसको सहज जानते हैं परन्तु इस बातका कुछ भी उपाय नहीं करसक्ते कि, किस रीतिसे हमारा निस्तार होगा जिनकी ऐसी मन मोहिनी अद्भुत माया है ऐसे विश्वके उत्पन्न, पालन, नाशकर्ता भगवान्के अर्थ हमारा वारम्वार नमस्कार है ॥ २४ ॥

भजन-तेरी महिमा अपरम्पार किसीने पार न पायारे ॥ योगी यती संन्यासी अमर है जिनकी कायारे ॥ हरि हरि हरि रटतेही जिन्हों जन्म गमायारे ॥ १ ॥ शेष सहस मुख रटत पंचमुख शिवने गायारे ॥ चार मुख ब्रह्माने चारों वेदोंको सुनायारे ॥ २ ॥ किसीने घरमें बैठ जनक सम योग कमायारे ॥ कोई बनकै वैरागी त्यागी जनमें कहलायारे ॥ ॥ ३ ॥ कोई बिना तंतरी मंत्र मरघटमें जगायारे ॥ किसीने बनके ध्यानी ध्यान रघुवरसे लगायारे ॥ ४ ॥ हरिकी शालिग्राम जगत्में अद्भुत मायारे ॥ सबने खोजा पर खोज किसीके हाथ न आयारे ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पञ्चमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

दोहा-छहों खण्डमें जो वसत, प्रभु अरु प्रभुके दास।
अष्टादशमें सबनके, कहौं चरित्र विलास॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! भद्रखण्डमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा नामक खण्डपति और उसके प्रधान प्रधान सेवक लोग वास करतेहैं, वह साक्षात् भगवान् वासुदेवकी धर्ममयी हयग्रीवजीकी परमप्रिय मूर्तिको उत्तम समाधिसे अपने अपने हृदयमें धारण करके वक्ष्यमाण मंत्रका जप करनेके समय यह स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भद्रश्रवस ऊचुः ॥ श्रीहयग्रीवभगवतो मंत्रः ॥

ओं नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः ॥

भद्रश्रवा बोले कि, उत्पत्ति, पालन, संहारकर्ता, षड्गुण ऐश्वर्यवान्, आत्माके शुद्ध करनेवाले, धर्मस्वरूप भगवान् आपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ २ ॥ अहो! श्रीभगवान्की गति अति विचित्र है कि, लोक प्रत्यक्ष अपने नेत्रोंसे देखते हैं कि, दिन रात प्राणी कालके मुखमें चले जातेहैं तोभी प्राणहरण करनेवाली मृत्युकी चिंता नहीं करते बरन् और अधिक असत् कर्मोंके सेवन करनेका ध्यान करतेहैं और जब बालक संतान व वृद्ध पिताके मरजानेसे उनकी दाहक्रिया करके जानते भी हैं कि, कालकी यह करालगति है तोभी अपने आपको अजर अमर समझकर उस धनको सन्मान भावसे ग्रहण करके उससे अपना जीवन धारण करनेकी इच्छा करते हैं सो यह भी नहीं कि, उस धनसे धर्मको संचय करै, बरन् किंचित् विषयसुखके भोगनेकी लालसासे केवल पाप कर्महीका विचार किया करते हैं ॥ ३ ॥ हे प्रभो! हम ऐसा नहीं कह सकते कि, विद्वान् लोग इस विश्वकी आलोचना नहीं करते. हम प्रगटही देखते हैं कि, पंडित लोग इस संसारको नाशवान् कहते हैं और आत्मतत्त्वके जाननेवाले योगीजन समाधि लगानेके समय जिसको नाशवान् होना प्रत्यक्ष अनुभव करतेहैं तोभी हे अज! वे लोग तुम्हारी मायासे मोहित होजाते हैं, आपकी यह चेष्टा भी साधारण चमत्कारक नहीं है, यह कृत्यभी आपका अत्यन्त विस्मय करानेवाला है इससे अब हम शास्त्रादिक जाननेके लिये वृथा परिश्रम

नहीं करेंगे, सब परिश्रमोंको त्यागकर केवल आपके चरणारविन्दोंहीको प्रणाम करते रहेंगे ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! निवारण और अकर्ता होनेपरभी वेदने इस विश्वका, सृजन, पालन, प्रलयकर्ता आपहींको बनाया है, यही ठीक है, तुममें कुछभी असंभव नहीं है क्यों-कि, तुम मायासे सबके आत्मस्वरूप और कार्यमात्रके पालक हो, इसलिये आपहीकी सब करतूत है । और आप सबसे भिन्नरूपहो इसीसे तुम्हारा अकर्तृत्वभी ठीक हो सक्ता है ॥ ॥ ५ ॥ हे जनार्दन ! उन चारों वेदोंका तामसी शंखासुरने तिरस्कार किया तो विक्षिप्त हो प्रलय कालके समय जलमें डूब गये थे, नव युगांतके समय आपने हयग्रीव शरीर धारण करके पातालसे सब वेदोंका उद्धार किया और ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेपर आपने चारों वेद उनको प्रदान करदिये । तुम वही भगवान् सत्यसंकल्प जगत्हितकारीहो, इस लिये आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! हरिखण्डमें विष्णु भग-वान् नरसिंहरूप धरकर विराजते हैं, हे भरतवंशावतंस ! भगवान्ने जो यह अद्भुत स्वरूप धारण किया इसका कारण सप्तमस्कंधमें कहेंगे, प्रियरूप महापुरुष, गुणभाजन परमभागवत प्रह्लाद जिनके शील और आचार दैत्य और दानव कुलके लिये तीर्थके समान हैं, वह प्रह्लाद इस खंडमें रहनेवाले पुरुषोंसमेत एकाग्र अत्यन्त भक्तियोगसे उस अद्भुत स्वरू-पकी उपासना करके इस मंत्रका उच्चारण किया करते हैं ॥ ७ ॥ प्रह्लाद बोले कि,

ओं नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे, आविरा-
विर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रंधय रंधय तमो
ग्रस ग्रस ओं स्वाहा अभय अभयमात्मनि भूयिष्ठा ओं क्ष्रौं ॥

अर्थ ओंकार सहित भगवान् नरसिंहको वारंवार नमस्कार करताहूं । आप सब तेजोंके तेज स्वरूप होकर प्रगटहो और वज्रसमान नखोंसे और वज्रसमान डाढोंसे कर्मरूप बासनाओंको राँधो रांधो अर्थात् भस्मकरो भस्मकरो, अज्ञानरूप अन्धकारको ग्रसो २ अर्थात् नाशकरो नाश करो, हे भगवन् ! आत्मामें अभयरूप होओ अभयरूप होओ । ॐ क्ष्रौं यह बीज मन्त्रहै ॥ ८ ॥ हे विश्वरूप ! सब संसारका मंगल होय । खल लोग अपनी क्रूरता छोडें । सब प्राणी मात्र अपने २ अन्तःकरणमें परस्पर दूसरेके कल्याणकी चिन्ता करते रहें और उनका मन उपशम आदिका आश्रय करें, हमारी और दूसरे प्राणि-योंकी बुद्धि निष्काम होकर भगवान् वासुदेवमें लगी रहै ॥ ९ ॥ रहै प्रभो ! हमारा किसीका संग न हो और कदाचित् हो तो भगवान्के भक्तोंका ही हो, क्योंकि, वेही भक्ति और मुक्तिका मार्ग दिखाते हैं; और घर, स्त्री, पुत्र, धन और बन्धुजनोंसे हमारा संग किसी प्रकार न हो, क्योंकि, भोजनमात्रसे संतुष्ट होनेवाला जो प्राणी है, वह जैसा शीघ्र सिद्ध होजाता है, तैसेही इन्द्रियोंका प्रसन्न रखनेवाला, गृहमें आसक्त चित्त होने वाला मनुष्य किसी प्रकार नहीं होसक्ता ॥ १० ॥ भगवद्भक्तोंके सत्संगसे पुरुष भग-वान् मुकुन्दके विक्रमको जान जाता है । उस विक्रमके असाधारण प्रभावको श्रवण करके जो पुरुष उनकी सेवा करते हैं, विष्णुभगवान् श्रवणद्वारा उनके हृदयमें प्रवेश

करके उनके मनके मल हरलेते हैं और गंगा यमुना तीर्थादिकमें वारम्वार स्नान करनेसे केवल मनुष्योंके तनुकाही मल छूटजाता है, मनका मल वैसाही बना रहता है, इसलिये भगवद्भक्तोंकी संगति करनेकी किसकी इच्छा न होगी ? और श्रीमुकुन्दके चारित्रको कौन नहीं सुनेगा ? भगवान्की ओर जिनकी निष्काम प्रीति होती है उनका मन आपही शुद्ध होजाता है, एवं मन शुद्ध होनेसे प्राणी आपही हरिभक्त होजाता है, फिर पीछे उन पर भगवान् वासुदेवभी प्रसन्न होजाते हैं भगवान् प्रसन्न होनेसे सब देवता धर्मज्ञानादिक सहित उस पुरुषके हृदयमें नित्यप्रति बास करते, हैं परन्तु जो पुरुष गृहादिक अनुरागी हैं और हरिभक्तिसे रहित हैं, फिर भला उनमें उत्तम गुण, ज्ञान, वैराग्यादिकोंके होनेकी संभावना कहां ? वह सदा केवल विषयके सुखोंको देख मनोरथ बाँधकर दौडता है ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ जैसे जल मछलियोंकी आत्मा है और विना जल मछलियें कभी नहीं जी सक्तीं; क्योंकि, उनका जलही जीवन प्राण है, ऐसेही भगवान् वासुदेव सब शरीर-धारियोंकी आत्मा हैं, इसलिये जो पुरुष महत् प्रसिद्ध है वह यदि हरिको त्यागकर गृहमें आसक्त होजाय तो जैसे शूद्रादिकजाति स्त्री पुरुषोंको केवल आयुसे बडप्पन प्रसिद्ध है वह उसी वडप्पनको धारण करते हैं ज्ञानादिकोंसे पूजनीय स्त्री पुरुषके मध्यमें पुरुषका जो अधिक महत्व है, वैसा महत्व उसमें नहीं रहता ॥ १३ ॥ इसलिये इस गृहस्थाश्रमका परित्याग करके निज नृसिंहजीके चरणोंमें रहो वहां कहींसे किसी प्रकारका भय नहीं है. क्योंकि, वहां तृष्णा, राग, विषाद, मृत्यु, मान, चाह, भय, दीनता और मनकी पीडाका मूल संसार नहीं है, यह सबका डुबानेवाला है और जन्म मरणका कारण है ॥ १४ ॥ केतु-मालखण्डमें भगवान् नारायण कामदेवरूपसे विराजमान रहते हैं और सदा उनकी यही वासना रहती है कि, लक्ष्मीजो प्रसन्न रहैं, तथा संवत्सर और उनकी कन्या, रात्रिके अभिमानी देवता और उनके पुत्र दिनके अभिमानी देवतागण, जो कि, इस खण्डके पति हैं, वह प्रजापतिके पुत्र हैं, सौ वर्षके जितने दिन रात्रि होते हैं उतनीही इन प्रजा-पतिके पुत्रोंकी संख्या है अर्थात्–३६००० सहस्र हैं इनपरभी वह परमहित करते हैं. हे भरतवंशावतंस ! संवत्सरोंके विशेष हितकरनेका हेतु यह है कि, महापुरुष भगवान्के चक्र के, तेजकी तापसे उन कन्याओंके अन्तःकरण अतिशय निर्बल और कम्पायमान होजाते हैं, और उनके गर्भ वर्षके अन्तमें पतित होकर निष्प्राण होजाते हैं, इसलिये उस खण्डमें पुरुषोंकी संख्या अधिक नहीं होनेपाती ॥ १५ ॥ और भगवान् कामदेवके रूपमें ललित गति विलास और मन्द मुसकान सहित अवलोकनकी लीला प्रकाश करते और अपनी भ्रुकुटियोंको कुछ कुछ ऊंचा करते करते मुखारविन्दकी शोभासे रमाको रमण कराकर अपनी इन्द्रियोंको तृप्त करते हैं ॥ १६ ॥ वह रमा देवीजीभी संवत्सरके रात्रिसमय उनकी कन्याओंके अर्थात् इन रात्रिकी अधिष्ठाता देवियोंके साथ और दिनमें इन कन्याओंके स्वामी अर्थात् दिनके अधिष्ठाता देवताओंके साथ, मिलकर भगवान्के इस मायामयरूप की उपासनाकर सदा इस मन्त्रका जप किया करती हैं ॥ १७ ॥ (ॐ, ह्रां, ह्रीं, ह्रूं,

ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसा विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामनाय नमस्ते उभयत्र भूयात्, भगवान् अर्थ-इन्द्रियोंके अधिपति, उन-हृषीकेशको हम नमस्कार करते हैं जिनका स्वरूप सब श्रेष्ठ वस्तुओंसे जाना जाता है ! जो ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय (संकल्प) व (अध्यवसायादि) और उनके सब विषयोंके अधिपति हैं, ग्यारह इंद्रियें और पाँच विषय यह सोलह पदार्थ उनके अंश हैं, वह वेदमय हैं अर्थात् वेदोक्त कर्मद्वारा उनको पाया जाता है, दूसरे उनका देह अन्नसे बढनेवाला है, इस कारणसे अन्नमय है, परमानन्द प्रकाशमय, इस कारणसे अमृत हैं ॥ सबके विषय हैं, इस कारणसे सर्वमय हैं और वैसा हम सामर्थ्य और बल इन सबके कारण हैं इन करके सहित होनेसे यह सब उनके स्वरूप हैं और कान्ति और काम उनकी मूर्ति हैं सो हम उनको नमस्कार करते हैं ॥ वह हमारे लिये दोनों लोकमें (इस लोक और परलोकमें) अनुकूल होवें ॥ १८ ॥ फिर वह स्तुति करके कहते हैं कि, हे प्रभो ! आप स्वयमेवही सब इन्द्रियोंके पति हैं, जो स्त्रियां अनेक प्रकारसे तुम्हारी आराधना करके तुम्हारे सिवाय और पतिकी इच्छा करती हैं, सो उनके वह पतिगण उनकी प्रिय संतान, संतति, अथवा धन व आयुकी रक्षा नहीं कर सक्ते, क्योंकि, वह तो आपही परवश होते हैं ॥ १९ ॥ इस कारणसे वह सब पति पतिही नहीं हैं, पति तो ऐसा होना चाहिये, जो कि, स्वयं निर्भय है, और भयातुरकी सब भाँतिसे रक्षा कर सक्ता है, वही पति है. हे प्रभो ! इसी कारणसे एक आपही सबके पति हैं आपके सिवाय और दूसरा पति नहीं होसक्ता, आप आत्मलाभके अतिरिक्त और किसी वस्तुको अधिक नहीं समझते, इसलिये आपका सुख किसीकेभी आधीन नहीं है. हे प्रभो ! हम जो कुछ कहते हैं सो सत्यही नहीं है, नहीं तो यदि आपकी पराधीनता और नानारूपकी स्वीकारता स्वीकार कीजाय तो मण्डलेश्वरों-की समान आपकोभी परस्परसे भयकी सम्भावना होसक्ती है ॥ २० ॥ हे भगवन् ! जो स्त्री केवल आपके चरणकमलोंकीही पूजा करनेकी कामना करती है और दूसरी वस्तुकी इच्छा नहीं करती वह अतिचतुर है, क्योंकि, उसको सब कामना प्राप्त होजाती हैं । परन्तु जो कोई अबला किसीएक फलकी कामना करके आपकी पूजा करती है उससे अधिक अनसमझ और कोई नहीं, क्योंकि तुम उसको उसका केवल मनोवांछितही फल दान करते हो, उससे अधिक नहीं देते, फिर जब भोगनेसे वह फल नष्ट होजाता है तब पीछेसे उस स्त्रीको अत्यन्त कष्ट भोगना पडता है ॥ २१ ॥ हे अजित ! मैं लक्ष्मी हूँ,इससे सुख सम्पत्तिकी कामना करके कभी कभी सत्य सत्यही ब्रह्मा, शिव, और दूसरे सुर असुर गण भी मुझको प्राप्त करनेके लिये उग्र तप किया करते हैं, परन्तु आपके चरणारविन्दोंकी शरण ग्रहण किये विना वह लोग मेरे विलसित ऐश्वर्यको प्राप्त नहीं होसक्ते । इसका कारण यह है कि, मेरा चित्त आपमें ही लगा हुआ है, और इसीसे मैं आपके अधीनमें हूँ, सो जो पुरुष आपको ध्याते हैं, मैं उनकी ही ओर अवलोकन

करती हूं ॥ २२ ॥ इस कारण हे प्रभो ! आप वही पुरुष हैं कि जिनकी सेवा विना किये हुये कोई कार्य ही सिद्ध नहीं होता, जिस आपके हस्तकमलसे सब कामनाओंकी वर्षा होतीहै और इसीलिये सदा साधु लोग जिसकी स्तुति किया करते हैं और जो कि आप अपने भक्तजनोंके मस्तक पर धरा करते हैं; सो अनुग्रह करके वही हस्तकमल मेरे मस्तकपरभी धरो । हे वरेण्य ! मैं ऐसा नहीं कह सक्ती कि मेरे प्रति आपका आदर नहीं है. मैं प्रगट देखतीहूं किं, लक्ष्मीके स्वरूपमें छातीके ऊपर आप मुझको अपने श्रीअंगमें धारण करते हैं, परन्तु हे प्रभो ! यह वडे आश्चर्यकी बात है कि, मेरा तो केवल आप आदरही करते हैं, परन्तु अपने भक्तोंपर आपका वड़ा अनुग्रहहै, अथवा आप ईश्वर हैं सो आपकी मायाकी चेष्टा कौन जानसके, ऐसी किसकी सामर्थ्य है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! और दूसरे खंडोंका विवरण सुनो । रम्यकखण्डमें विष्णु भगवान् अपने मत्स्यरूपसे विराजे हैं कि, जो स्वरूप इस खण्डके अधिपति मनुजीको पहले दिखाया गया था. श्राद्धदेव मनुजी आजतक अत्यन्त भक्तिभाव और प्रेम प्रीतिसे भगवान्की उस मनोहर मूर्तिके पूजनमें नियुक्त हैं और यह मंत्र निरन्तर उच्चारण करते हैं ॥ २४ ॥ यथा मत्स्यमंत्रः (ॐनमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायोजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः) अर्थ-हम महामत्स्यरूपी उन भगवान्को नमस्कार करते हैं जो सत्त्वगुण प्रधान और सर्व मुख्य प्राणरूप और साहस, वल, व सामर्थ्य इत्यादिके स्वरूप हैं ॥ २५ ॥ और स्तुति करके कहते हैं कि, हे प्रभो ! आप सब भूतोंके भीतर बाहरसे घूमते रहते हैं और इतनेपरभी लोकपालगण तुम्हारे रूपको नहीं देख सक्ते और शेषजीभी आपकी महिमाको नहीं कह सक्ते । परंतु आपका वेदरूप नाद अति बडा है, सो सत्य है, हे भगवन् ! लोग जिस प्रकार काठकी पुतलीको वश करलेते हैं, वैसेही जिन्होंने विधिनिषेधरूप वचनोंसे सब जगत्को अपने वशमें कररक्खा है, सो आप वही ईश्वर हैं ॥ २६ ॥ हे ईश ! इन्द्रादि लोकपालगण मत्सररूप ज्वरमें ग्रसे रहनेके कारण आपको छोड करके अलग रूपसे और फिर मिलकर भी सहाय करनेका उपाय नहीं करसके परन्तु दोपाये, चौपाये, अथवा स्थावर, जंगम, जो जो इस जगत्में दृष्टि आते हैं, उनमेंसे किसी वस्तुकाभी पालन करनेमें समर्थ न हुये । इसलिये आपही प्राणरूपसे सबके पालक और परम ईश्वर हैं ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! यह पृथ्वी सब औषधि और लताओंकी आश्रय है, इस कारणसे आप प्रलयकालकी बडी तरंगें उठते हुये सागरके जलमें डूबीहुई इस पृथ्वीको और हमको धारण करके रक्षा करनेके लिये आपने बडा उत्साह प्रगट किया था, सो हम आपको नमस्कार करते हैं हे प्रभो ! आपही सब जगत्के रहनेवाले प्राणियोंके नियन्ता हैं, सो आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे राजन् ! हिरण्मय खण्डमें भगवान् नाराण कूर्म शरीर धारण करके विराजते हैं । वहां पर पितृगणोंके अधिपति अर्यमा हैं, इसमें रहने वाले पुरुषोंके साथ निरन्तर उनकी उपासना करते रहते हैं, और क्षण क्षण इस मंत्रका जप किया करते हैं ॥ २९ ॥ यथा (ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वतत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मने

नमो भूम्नेऽवस्थानाय नमस्ते) अर्थ-हम कूर्म भगवान्‌को नमस्कार करतेहैं, हे प्रभो ! समस्त सत्त्वगुण आपका विशेषण है, सो ऐसे आपको नमस्कार है।हे भगवन् ! जलमें रहनेके हेतु आपका स्थान कोई देख नहीं सक्ता है, सो आपको नमस्कार है. हे देव ! आप अतिशय वर्त्तमाण हैं, अर्थात् कालसे आपका अवच्छेद नहीं होता, सो आपको नमस्कार है। हे प्रभो ! आप सर्वगत और सबके आधारहैं सो आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! आपने अपनी मायासे जो यह आकृति प्रकाश की है सो दृश्य पृथ्वीसे आदि लेकर सब पदार्थ इसी रूपमें हैं इसी कारण आपसे अलग कुछभी नहीं है. हे भगवन् ! आपका यह रूप अनेक अनेक रूपोंसे निरूपण किया जाता है, परन्तु यह मिथ्या है, तो भी दिखानेके कारण मृगतृष्णाके जलकी समान इसकी संख्या नहीं की जा सक्ती, इसलिये हम आपको नमस्कार करते हैं हे प्रभो ! आपके आकार विशेषको कोई नहीं बतला सक्ता ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! जरायुज (मनुष्यगवादि) अंडज (पक्षि इत्यादि) स्वेदज (जूं इत्यादि) उद्भिज्ज (लतावृक्षादि) स्थावर, जंगम, देवता, ऋषि, पितृ, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र ये सब आपहीके नाम हैं। आप एकही हैं ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! आपके नाम रूप और आकृतियोंके बहुत असंख्य भेद हैं, जिनकी संख्या नहीं की जाती, तथापि कपिलादि विद्वानोंने उनकी चौवीस संख्या कल्पना की है। वही संख्या जो तत्त्वज्ञानसे मिटजाती है, सो आपही उस तत्त्वज्ञानके नमूने हैं, अर्थात् परमार्थ ध्यानरूपी आपको हम नमस्कार करतेहैं ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! उत्तरकुरुखण्डमें भगवान् यज्ञ पुरुष वाराहरूप प्रकाश करके विराजते हैं, वहांपर यह पृथ्वी देवी कुरुगण सहित अविचल भक्ति प्रकाश करके उनकी सेवा करती है और इन परम सिद्धान्त उपनिषद्‌के वाक्योंका उच्चारण करती है ॥ ३४ ॥ यथा (ओंनमो भगवते मंत्रतत्वलिंगाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्म्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते,) अर्थ-हम भगवान्‌को नमस्कार करते हैं। हे प्रभो ! आप मंत्रसे जाने जाते हैं, सयूपयज्ञ, और अयूपक्रतु इत्यादि जो कुछ दिखलाई देता है, यह सब आपकाही स्वरूप है। हे प्रभो ! आप कर्मोंसे शुद्ध अर्थात् यज्ञानुष्ठान करनेवाले; और तीन युगके स्वरूप हैं। सो आपको हमारा वारम्वार प्रणाम है ॥ ३५ ॥ अहो ! काष्ठके भीतर जिस प्रकार अग्नि गुप्त रहती है, उसी प्रकार अग्निके समान जिसका स्वरूप देह और इंद्रिय, आदि पदार्थोंमें गुँथा हुवा है । निपुण विद्वान् लोग विवेकके साधन मन और कर्म व उसके फलसे जिसको दर्शन करनेकी वासनासे सदा खोजते फिरतेहैं और उसी ढूंढ भालसे जिसका आत्मा प्रगट होतहै उन्हीं भगवान्‌को हमारा प्रणाम है ॥ ॥ ३६ ॥ जो कि मायाकार्यके विषय इन्द्रियादि व्यापार, देवता, देह, काल और अहंकार इन सब उपलक्षणोंसे जिनका यथार्थरूप देखनेमें आताहै । और यम नियमादिकोंसे जो साधु लोग निश्चयात्मक बुद्धि युक्तहैं, उनके निकट जिसकी मायासे बनी हुई आकृति दूर हो जाती है, उन्हीं भगवान्‌को हमारा प्रणाम

है ॥ ३७ ॥ जिसप्रकार चुंबकके निकट रहनेसे लोहा स्वयमेव उसके चारोंओर फिरा करता है, वैसेही माया द्रष्टा, परमेश्वरके दर्शनके हेतु जीवके निमित्त वांछा न होने परभी जीवकी वांछित इस विश्वकी सृष्टि स्थिति और प्रलय करतीहै, सो उस गुण कर्म और जीवोंके साक्षी स्वरूप भगवान्‌को हमारा प्रणाम है ॥ ३८ ॥ और जगत्‌के कारणरूप वाराह स्वरूप धारण करके रसातलसे मुझ पृथ्वीको डाढके अग्रभागपर धारण करके हाथी की समान प्रलय समुद्रमेंसे निकलेथे और फिर दूसरे हाथीकी समान दैत्य हिरण्याक्षको संग्राममें क्रीडा करते करते मारकर बाहर निकल आये, उन सर्वव्यापक परमात्माको बारम्बार हमारा प्रणाम है ॥ ३९ ॥ प्रभुकी महिमामें एक भजन है ॥

भजन-प्रभुकी महिमा अपरम्पार ॥ पढत विरंचि वेद नित चारों, तऊ न पावत पार ॥ १ ॥ शेष महेश गणेश शारदा, निशिदिन करत विचार॥ हारमान चुपरहत रटत फिर, उरमें धीरजधार ॥ २ ॥ वाल्मीकि नारद वसिष्ठ भृगु, खोजत बारम्बार ॥ नेति नेतिकर कहत सकल मिल, धन्य धन्य करतार ॥ ३ ॥ बडे बडे सुर सिद्ध मुनी जन, तन मन धन सब वार ॥ शालिग्राम लेत शरणागत, समझ जगत आधार ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा—हरि अनुचर द्वैखण्डके, कहे उनीसाध्याय ।
बहुरो भारतवर्षकी, कहौं अधिकता गाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, किंपुरुषखण्डमें विष्णुभगवान् आदिपुरुष जानकीवल्लभ लक्ष्मण जीके भ्राता श्रीरामचन्द्र महाराजके चरणारविन्दको हृदयमें धारणकर उनके सन्मुख हाथ जोडे हुए भक्त अनुरागी परमभागवत महावीर हनुमानजी किंपुरुषखण्डके निवासियोंके साथ अत्यन्त भक्तिसे उनकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥ और गन्धर्वगण जो कि दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीका मंगलमय चारित्र, चौपाई "वाल्मीकि कृत श्रीरामायण । परम प्रेमसों रामपरायण ॥ मारुतसुत ढिग नित सो गावत । बीण मृदंग सप्रेम बजावत ॥ राम कथा कलि कलुष नशावन । आनँदनिधि भक्तन मन भावन" सो उसको हनूमान्‌जी आर्ष्टिषेणके साथ एकाग्र चित्तसे अपने अधीश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुना करते हैं । और इस मंत्रका निरन्तर आप जप करते रहते हैं ॥ २ ॥

ओंनमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकर्षणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः ॥

उत्पति, पालन, प्रलयकर्ता, भगवान्, उत्तम श्लोकके लिये नमस्कार है । जितने कि श्रेष्ठातुश्रेष्ठ चिह्न और शील व्रत हैं । वह सब उनमें विराजमान हैं, उनका चित्त सदाही

वशमें है, सब लोकोंका विषय उनको ज्ञात है वह कसौटी पत्थरकी समान सज्जनताकी प्रसिद्धके निर्धार स्थान हैं, वह ब्रह्मण्य देव, महापुरुष और महाराज हैं, उनको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥

कवित्त-जाको शुद्ध हियो ताको अनुभौ तुम्हारो होत, नाथ निज तेजहीसे माया गुण नाशी हैं । जगतके व्यापी निज जापीको अतापी करो, नाम रूप आपके अनंत दिव्य भासी हैं ॥ आपके समान नहीं अधिक कहां ते होय अहंकार क्षार होत ध्याये मुदरासी हैं। काल त्रास नाशी ततकाल कर निहाल देत, राजै रघुराज जैसे अवध विलासी हैं ॥

मैं उन परमात्मस्वरूप भगवान् रामचन्द्रजीकी शरण हूं, जिनको वेदान्तके वचनोंसे एक रूप कहकर प्रसिद्ध करते हैं, यह वही हैं शुद्ध अनुभवही उनका स्वरूपहै वह शांत स्वरूपके प्रकाश होनेसे गुणोंकी सब जाग्रत् आदि अवस्था मिट जाती है, वह दृश्य पदार्थोंसे पृथक् नाम रूप रहित और निरहंकार हैं वह केवल शुद्ध चित्तसे परब्रह्मका रूप जाननेमें आता है । ऐसे परब्रह्म श्रीरामचन्द्र अवधेशपति रघुराजको मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥ ४ ॥

कवित्त-नर अवतार नहीं केवल दनुज कुल, नाशनके हेतु ये परम विचार है। जनन सिखायवे को औरहूं दिखायवेको, नारिके अधीन जैसे होत दुःख भार है ॥ अवध निवासी सीता संगही विलासी नित, जगत प्रकाशी कौन उचित खँभार है। तज कै निवेश जाय कानन कलेश सह्यो, धन्य सो धरामें अवधेश को कुमार है ॥

उन सर्वव्यापी राजा दशरथजीके पुत्र होकर मनुज अवतार धारण करनेका तात्पर्य यह है कि, रावणादि राक्षसोंको वध करें, क्योंकि इस घोर राक्षसने मनुष्यके अतिरिक्त और किसीसे न मरूं ऐसा वर पाया था, इस रामचन्द्र अवतार लेनेका केवल इतनाही आश्रय न था, वरन् मनुष्योंकी शिक्षाके लियेथा स्त्रीके संगसे मैं ईश्वरहूं, तोभी इतने क्लेश सहने पडे, और मनुष्यका तो कहनाहीं क्या है अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले, विश्वके आत्मा उनको जानकीजीके विरहका कैसा दुःख ? ॥ ५ ॥

कवित्त-काल मुनि रूप कीनो मन्त्र अस ठानो प्रण, आवैगो जो इतै सोइ ह्वैहै वश कालके । द्वार दुरवास आये कोपित लषण लखो, जाय कहो नाथसो है लाल मुनि पालके ॥ सबके नियन्ता सब लोकनके नाथ सोई, साँचे ईश शक्र करतार शशि भाल के । प्रण पालवेको प्राणप्यारो बन्धुत्याग दियो, स्वामी की समान कौन दशरथ लालके ॥

वह धैर्यवान् धीर पुरुषोंके आत्मा भक्तवत्सल परमप्रिय श्रीरघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी महाराज त्रिलोकीमें किसी परभी आसक्त नहीं हैं इसीलिये उनको धीर पुरुषोंका आत्मा कहा, और उनको स्त्रीमें मोह किसी प्रकार नहीं होसकता और द्वारपर खडे हुए

लक्ष्मणजीका दुर्वासा ऋषिके आनेका संवाद देनेके लिये मंदिरमें प्रवेश करने पर देवपरामर्शसे उनको प्राणसे मारडालनेके लिये उपस्थित होकरभी वसिष्ठजीके वचनोंसे जो लक्ष्मणजीका त्याग किया था, सो यह युक्तिसंगत नहीं हो सकता, परन्तु वह सब कुछ किया, निदान उसका वास्तविक तात्पर्य यही है कि, सब संसारके लोगोंकी शिक्षाके लिये यह काम किये और वह तो आदि पुरुष अविनाशी कमलपत्रकी समान सबसे अलग हैं ॥ ६ ॥

कवित्त-कुलकी बडाई नाहिं धन प्रभुताई नाहिं, जातिकी निचाई सब भाँति अधिकाई है। बुद्धिहीनताई भूरि चित्तमें हू चंचलाई, फल फूल खाई बसैं वनमें सदाई है॥ ऐसेहू छुटाई कछु चित्तमें न लाई प्रभु, आपहिते आइ करी कीशन मिताई है। दीनदीनताई देख नहीं सहिजाई ऐसो लक्ष्मणको ज्येष्ठभाई राम रघुराई है॥

उच्च कुलमें जन्म, सुन्दर स्वरूप, मनोहर वाणी, गंभीर बुद्धि, उज्वल जातिसे श्रीरामचन्द्रजी महाराज प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि, वह केवल एक मात्र भक्तिहीके करनेसे संतुष्ट होतेहैं, देखो नीच कुलमें हमारा जन्म, न हममें कोई सुन्दरताई, न हममें कोई गुण, न कोई ऊंची बात और हमारी चंचलताई सब संसारमें प्रसिद्ध है "प्रात लेय जो नाम हमारा तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा" तोभी केवल भक्तिके वश होकर इन लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचन्द्रजीने हमको अपना सखा बनाया देखो मेरे स्वामी सुग्रीवसे "दो०-पावक साखी देइ कर, जोरी प्रीति दृढाय" वह सुग्रीव कैसा था ॥

दोहा-नहिं कुल नहिं विद्या न तप, नहिं तनकौ छविधाम।
जानत नहिं किस बातसे, हम पर रीझे राम ॥ ७ ॥

कवित्त-सुर नर नाग पशु पक्षी आदि जीवनके, कोटि अपराध निज चित्तमें न लायेहैं। नेक उपकारको सहस्र गुण माने नाथ, केते पतितहू जन पावन बनाये हैं॥ भजो रे भजो रे रघुराज महाराजजीको, सरल स्वभाव ऐसो वेदन बताये हैं। अवधिके नारि नर पशु पक्षी कीट जेते, राम सुखधाम निजधामको पठाये हैं॥

इसलिये देवता व दानव अथवा नर वानर कोई क्यों न हो, सबको चाहिये कि, अनेक प्रकारसे यत्न करके उन मानवरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आराधना अवश्य करैं,क्योंकि, वह बड़े कृतज्ञ हैं। थोड़े भजन करनेकोभी अधिक मानते हैं. उनकी उपासना करनेसे महाफल मिलनेकी आशा है, वह सब अयोध्यावासियोंको अपने संग लेगये थे ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहै हैं कि, हे राजन्! भारतखण्डमें भगवान् नरनारायण बद्रिकाश्रममें गुप्तरूपसे विराजतेहैं, जिनकी गति जानी नहीं जाती, धीर लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये दुष्कर तपस्या करतेहैं तपस्याके समय उनका धर्म, ज्ञान और वैराग्य इस प्रकारसे अधिकताको प्राप्त होताहै और वह इस प्रकार जितेन्द्रिय और निरहंकार होकर रहतेहैं कि, उस-

सेही आत्मस्वरूपका ज्ञान होजाताहै ॥ महात्मा देवर्षि नारदजीके पंचरात्र शास्त्रमें जो भगवान्के अनुभवका वर्णन है,वही पंचरात्र भगवान्के कहेहुये सांख्ययोग सहित सावर्णि मनुको उपदेश करनेवाले हैं ॥ इस कारणसे भारतवर्षकी वर्णाश्रम धर्मवाली प्रजागणोंके साथ परमभक्तिभावसे नारदजी इन भगवान् नर नारायणकी उपासना करते हैं और इस मंत्रको जपते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ (ॐनमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय ॐनमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामायाधिपतये नमोनमः) नारदजी बोले कि, हम ऋषिऋषभ भगवान् नरनारायणको नमस्कार करते हैं । वह शांत स्वभाव निरहंकार वैराग्यवान् पुरुषोंके परमधन, परमहंसोंके परमगुरु, ज्ञानी पुरुषोंके अधिपति उन नरनारायण भगवान्को वारम्वार नमस्कार है ॥ ११ ॥ और फिर यह गान करते हैं,जो इस विश्वके सृष्टयादिका कर्ता होकरभी " मैं कर्ता हूं " ऐसा कहकर अपने मनमें अहंकार नहीं करते " शरीरमें रहकरभी शरीरके धर्म भूख प्यास आदिसे पराभव नहीं पाते, द्रष्टा होनेपरभी जिनकी दृष्टि दृश्य पदार्थोंसे विकृत नहीं होती । उन भगवान्को हम नमस्कार करतेहैं वह किसीमें आसक्त नहीं हैं । इससे उन शुद्ध चैतन्यस्वरूप और सबके साक्षी नारायणको हम नमस्कार करतेहैं ॥ १२ ॥ फिर कहते हैं कि, हे योगेश्वर ! योगी पुरुष जन्मसे लेकर भक्तियोगसे अंतकालके समय देहाभिमानको छोड़कर तुममें जो मन लगातेहैं यही उनके योगकी चतुराई है भगवान् हिरण्यगर्भजीने उसकोही पुरुषयोग कहा है ॥ १३ ॥ परंतु इस लोक और परलोककी कामनाके विषयमें मूर्ख लोग जिसप्रकार स्त्री, पुत्र और धनकी चिंता करते हुये मृत्युके निकटसे भय पाते हैं, वैसेही जो पुरुष विद्वान् होकर भी पाते हैं उनका शास्त्र पढ़ा हुवा केवल परिश्रममात्र है ॥ १४ ॥ हे अधोक्षज ! जिससे कि, विद्वान् पुरुषकीभी ऐसी अवस्था है । इससे आप हमको सहज वासनारूप उस योगका उपदेश कीजिये । जिस आपकी मायासे हमारे इस विदित देहमें 'मैं' 'मेरा' यह ममता लगी हुई है । जो किसी भाँति त्याग न होनेसे उपायद्वारा भी नहीं भेदी जा सक्ती; सो यह हमसे छूटजाय " हे राजन् ! भारतवर्षमें भी बहुत नदियें और पर्वत हैं, अर्थात् मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ,कूटक,कूटल कौल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेङ्कट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्यमान, शक्तिमान, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नीलाचल, गोकामुख, इन्द्रकील, कामगिरि, व और भी सहस्रों पर्वत हैं और इनके तटसे उत्पन्न हुई. नदियें व नद भी असंख्य हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ जिन नदियोंके नाममात्रके लेनेसे पुरुष पावन पवित्र होजाते हैं, फिर भरतखण्डके वासी उन नदियोंके जलमें दिनरात स्नान और क्रीड़ा करते हैं । उन भारतवासियोंकी समता संसारमें आजदिन कौन कर सक्ता है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! इस वर्षमें जन्म प्राप्त करके पुरुषगण अपने अपने सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंके द्वारा यथाक्रमसे अपनी दिव्य मानुष और नारक गतिका विधान करताहै, क्योंकि, यहांपर सब पुरुषोंकी गति सब प्रकारसे कर्मानुसारही होती है । जिस वर्णनका जिस भाँतिका मोक्ष

प्रकार अर्थात् संन्यास वानप्रस्थादि कहा है । उसके उल्लंघन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति भी इसी वर्षमें होतीहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे राजन् ! मोक्ष जिस प्रकारसे होता है सो श्रवणकरो । जब विष्णुभक्त पुरुषोंका श्रेष्ठ संग होताहै तब भगवान् वासुदेव जो सब प्राणियोंके आत्मा, रागादि रहित, वाक्यके अगोचर, अनाधार और परमात्मस्वरूप उनमें जो निष्काम भक्ति होती है । वही मोक्षका स्वरूप है ॥ क्योंकि, शरीरकी अनेक प्रकारकी गति जो अविद्यारूपो ग्रंथि है, सो इस भक्तिसे टूटजाती है ॥ २० ॥ इस कारणसे भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म सब पुरुषार्थोंका साधन कहकर देवतालोग गान करते हैं । यथा अहो ! इन मनुष्यगणोंने क्या कोई अनिर्वचनीय पुण्य कार्य किया था जिससे कि, भगवान् हरि स्वयं विना साधन कियेही इनके ऊपर प्रसन्न हो गये हैं । अथवा इस बातमें आश्चर्य ही क्या है ? इन सब पुरुषोंने भारतभूमिके मध्यमें मुकुन्द गोविन्दकी सेवा करनेके योग्य जन्म पाया है । और हम तो भारतमें जन्म लेनेके लिये केवल लालसा ही लगाये रहते हैं ॥ २१ ॥ हाय ! हमारे यज्ञ, दुष्कर तपस्या, कठिन कठिन व्रतानुष्ठान और दानादिकोंसे क्या हुवा ? और यह जो तुच्छ स्वर्गकी प्राप्ति हुई है, इससे और क्या फल दीखता है ? यहां पर स्वच्छन्दमें भगवान् नारायणके चरणकमलका स्मरण नहीं होता, कदाचित् जो कुछ होता भी वह अधिक इन्द्रियोंकी सेवा करनेसे नष्ट होजाता ॥ २२ ॥ २३ ॥ हमने कल्पांत पर्यंत परमायु प्राप्त होकर जो इस स्थानको जीत लिया है सो इसके पीछेभी जन्मलेना पडेगा, इसलिये हमारे इस स्थानके जय करनेकी अपेक्षा मनुष्य गण अल्पायु होकर जो भारतभूमिको जीत लेते हैं, वे अच्छे हैं । क्योंकि, वे पुरुष मनुष्य देहसे अपना अपना क्रिया कर्म संन्यास लेकर भगवान् श्रीहरिके अभयपदको भली भाँतिसे प्राप्त हो जाते हैं ॥ ॥ २४ ॥ जिस स्थानमें भगवान् हरिकी कथामृतरूप नदी नहीं बहती, जहां हरिकथाश्रय भगवद्भक्त साधुगण नहीं हैं, और जहांपर नृत्यादि उत्सवयुक्त हरिकी पूजा नहीं है वह स्थान यदि ब्रह्मलोककी समान हो तो भी उसकी सेवा नहीं करनी चाहिये ॥ २५ ॥ क्योंकि, जो पुरुष इस भारतभूमिमें ज्ञान और उसके अर्थ क्रिया व द्रव्यसमूहसे परिपूर्ण मनुष्य जन्मको प्राप्त होकर भी इस मोक्षके लिये यत्नकरे, तो वह पक्षियोंकी समान फिर बंधनमें बँध जाते हैं, अर्थात् जालसे बँधे हुये व्याधके हाथसे छूटकरभी फिर जिस प्रकार असावधान होकर वृक्षपर विहार करते हुये बँध जाते हैं वैसेही यह सब पुरुष भारतभूमिमें मोक्षार्थ जन्म प्राप्त करके भी अपने अपने कर्मके दोषसे फिर संसारी बंधनमें बँध जाते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु भारतवासी मनुष्यगण अतिशय, भाग्यवान हैं । क्योंकि यह लोग श्रद्धा भक्ति सहित पुरोडाशादिभेदसे उन देवताओंके उद्देशसे जो हवि छोडतेहैं सो एकही भगवान् इन्द्रादि पृथक् पृथक् नामोंसे आह्वान किये जाकर उस समस्तको ग्रहण करते हैं । यद्यपि वह सब कल्याणोंके प्रभु हैं और स्वयंभी परिपूर्ण स्वरूप हैं तथापि उस हविको त्याग नहीं सक्ते ॥ २७ ॥ यद्यपि भगवान् याचना किये जानेपर याचक पुरुषोंका प्रार्थित विषय देदेते हैं, परन्तु तोभी उनको परमार्थ नहीं देते, क्योंकि, इसप्रकार प्रार्थित विषय

प्राप्तकर फिरभी उनको माँगनेकी संभावना है । परन्तु जो कि, निष्काम हैं, उनको किसी विषयमें प्रार्थना न करनेपरभी भगवान् उन लोगोंको सब अभिलाषाओंके पूर्ण करनेवाले अपने चरणपङ्कज स्वयं दान कर देतेहैं ॥ २८ ॥ इसलिये हमने भली भाँतिसे जो यज्ञ किये हैं, वेदाध्ययन, वा और कोई जो शुभ कर्म किये हैं, जिससे कि, यह स्वर्ग सुखका भोग कर रहेहैं, यदि उस पुण्यमेंसे कुछ बचा हो तो उससे भारत वर्षमें हमारा जन्म हो, जिससे कि, भगवान् हरिही एक सेवा करनेके लायक हैं, यह स्मरण रहेगा, अधिक करके श्रीभगवान् जो इस भारतवर्षमें भजनकारियोंका कल्याण विस्तार किया करते हैं और वहांके वासियोंको परमसुख देते हैं ॥ २९ ॥ यह सात श्लोक किसी किसी पुरानी पुस्तकोंमें लिखे देखे इससे हमभी लिखे देते हैं हे । परीक्षित् ! सब देवता भरतखण्डमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं, यहां महापुण्य संचय करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ हे भारत ! इस भूमण्डलमें कब हमारा जन्म होगा और कब हम महापुण्यसे परमपदको प्राप्त होंगे ? ॥ ३१ ॥ अनेक प्रकारके दान, यज्ञ, तप, करके क्षीरशायी भगवान्की पूजा कर बडे बडे महात्मा पुरुष उनका दर्शन करतेहैं । वह भूमण्डल हमको किस समय मिलेगा ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान् वासुदेवके कीर्तनमें शील करना, भगवत् भक्तोंसें स्नेह करना, महात्माजनोंकी सेवा करना, मनुष्य महात्माओंका वन्दन करना, हमको कौनसे दिन प्राप्त होगा ? ॥ ३३ ॥ वेदके अर्थ सुननेमें हमारी बुद्धि कब लगेगी ? अष्टादश पुराण श्रवणमें जिनका मन है, सत्संगमें जिनका चित्त है, वह हमसे वंदनीयहैं, उत्तम हैं, भरतखण्डमें जन्म पाकर जो सत्कर्मसे रहित हैं, वे अमृतके घटको त्याग विषयवासनाकी इच्छा करते हैं ॥ ३४ ॥ भगवान् वासुदेवके पूजनको छोडकर बुरे कर्मोंमें प्रवृत्त हैं, कामधेनुके दूधको त्याग आकके दूधको पीना चाहते हैं, सो वे महा महामूर्ख हैं ! ! हे राजन् ! ऐसे देवता इस भारतखंडकी प्रशंसा करते हैं, और सदा इस खण्डमें जन्म लेनेकी लालसा बनी रहती है, सो ऐसे उत्तम खण्डमें जन्म पाकर विषयमें आसक्त होय,उसको जानों कि,यह परम अभाग्य है, और भगवान्ने उसकी बुद्धिको ग्रस लिया है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजापरीक्षित् ! कोई कोई ऋपि कहतेहैं कि, जम्बूद्वीपके आठ उपद्वीप हैं । सगर राजाके पुत्रोंने यज्ञीय घोडेके ढूँढनेके समय जब पृथ्वीको चारोंओरसे खोदा तब उन लोगोंने यह सब द्वीप बनाये थे ॥ ३७ ॥ इन सब द्वीपोंके नाम, यथा-स्वर्गप्रस्थ १ चंद्राशुक्ल २ आवर्तन ३ रमणक ४ मंदहरिण ५ पाञ्चजन्य ६ सिंहल ७ और लंका ॥ ३८ ॥ हे भरतवंशावतंस ! इसप्रकार जम्बूद्वीपके खण्डोंका विभाग यथायोग्य मैंने आपसे वर्णन किया ॥ ३९ ॥

कवित्त-कहूं कहूं सूर्यकी किरणोंको प्रकाश होत, कहूँ कहूं चन्द्रमाकी छबि उजियाली है ॥ कहूं कहूं रजनीकी श्यामता दिखाई देत,

कहूं कहूं छाय रही घटा काली काली है । कहूं बृहस्पति कहूं बुधिकी अनोखी छबि, कहूं कहूं मंगलकी मंगलीय लाली है । कहूं मन्द मन्द मन्द चलोजात मारगमें, शालिग्राम शुक्रचाल सबसे निराली है ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पंचमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा-लक्ष आदि छै द्वीपकी, स्थिति बीसे अध्याय ।
बहुरो लोकालोककी, कहूँ कथा समझाय ॥ १ ॥

मुनिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! अब प्लक्ष आदि छैः द्वीपोंका प्रमाण लक्षण और आकारसे सब वर्षोंके विभागका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपके विस्तारका जितना परिमाण है, उतनाहीं अर्थात् लाख योजनके विस्तारवाले लवण सागरसे वह घिरा हुआ है इस कारणसे जिस प्रकार जम्बू नामक द्वीपसे सुमेरु पर्वत घिराहुआ है ऐसा ही प्लक्षद्वीपभी लक्ष योजन विस्तारवाले लवणसागरसे घिराहुआ है यह प्लक्षद्वीप पहले कहेहुए जम्बूद्वीपसे दूना बडा है इस द्वीपसे लवण समुद्र घिरा हुआ है अर्थात् जिस प्रकार बाहिरी भागके उपवनसे खाई घिरी रहती है, वैसेही प्लक्षद्वीपसे लवण समुद्र घिराहुवा है, वहांपर एक बडा भारी प्लक्षका वृक्ष है उसकी ऊँचाईका परिमाण पहले कहे हुए जम्बू वृक्षकी समानहै, अर्थात् लक्ष योजन ऊंचाहै, इस प्लक्ष वृक्षसेही इस द्वीपका नाम "प्लक्षद्वीप" हुआहै ॥ यह वृक्ष सुवर्णके समान रंगवाला है, इस द्वीपमें सात जीभवाला अग्नि रहताहै राजा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व इस द्वीपके अधिपतिने इस द्वीपको सात द्वीपमें विभाग करके अपने सात पुत्रोंको जिनके नाम इन वर्षोंके ऊपरही थे, उनको समर्पण करके आप समाधि लगाकर आत्मयोगसे अपने शरीरको त्याग दिया ॥ २ ॥ इध्मजिह्वके कियेहुए इन सात वर्षोंके नाम--यथा शिव, यवस, सुभद्र, शांत, क्षेम, अमृत, अभय, इन सात वर्षोंमें सातही तो पर्वत अतिशय प्रसिद्धहैं और सातही नदियां विख्यात हैं ॥ ३ ॥ उनमें सात प्रसिद्ध पर्वतोंके नाम यथा--मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसोम, ज्योतिष्मान, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल और प्रसिद्ध सातनदियोंके नाम ये हैं--अरुणा, १ नृम्णा, २ आंगिरसी, ३ सावित्री, ४ सुप्रभाता, ५ ऋतम्भरा, ६ और सत्यम्भरा, ७ इन सब महा नदियोंका जल स्पर्श करनेसे पुरुषोंका राजस, तामस, नष्ट होजाता है । स्थानीय हंस, पतंग उर्द्धायन, और सत्याङ्ग नामक चार वर्ण और यहांके मनुष्य सहस्रवर्षकी आयुवाले होते हैं, उनका दर्शन और स्वरूप देवताओंकी समान होता है, इसलिये वे लोग वेदविद्यासे भगवान् वेदमय सूर्यांतर्यामी आत्मस्वरूप हैं, उनकी वेद त्रयीसे उपासना किया करते हैं और इस मंत्रका जप किया करते हैं ॥ ४ ॥

मंत्र--अस्य विष्णो रूपं च सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः ।
अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहि ॥

हे राजन्! उस समय जो मंत्र पढा जाताहै, उसको अर्थ सहित कहताहूं सो तुम सुनो, यथा पुराण पुरुष भगवान् विष्णुजीके मूर्ति स्वरूप उन सूर्य नारायणकी हम शरण ग्रहण करतेहैं, वह अनुष्ठीयमान धर्म, प्रतीयमान धर्म, ब्रह्मबोधक देव और शुभाशुभ फलके अधिष्ठाता हैं ॥५॥हे भारत श्रेष्ठ! प्लक्ष प्रभृति पांच द्वीपोंमें पुरुषोंकी आयु, इन्द्रिय, सामर्थ्य, साहस, वल,विक्रम,बुद्धि और स्वभावकी सिद्धि,सबमें समान भावसे वर्त्तमान रहतीहै ॥६॥ प्लक्षरूप अपने समान परिमाणवाले ईखरसके समुद्रसे घिराहुवाहै ॥ वैसेही शाल्मलिद्वीप जो प्लक्षद्वीपसे दुगुना बडा है वहभी अपनी समान परिमाणवाले, मदिराके समुद्रसे घिरा हुवा है॥ ७ ॥ हे राजन्! इस द्वीपमें भी प्लक्षवृक्षके तुल्य विस्तारवाला बडा भारी शाल्मलीका पेड है, लोक जिसको भगवान् वेद करके स्तुत पक्षियोंके राजा श्रीगरुडजीका स्थान बतलाते हैं। इसको शाल्मलिद्वीप कहते हैं; शाल्मलिका वृक्ष होनेहीके कारण इस द्वीपका नाम शाल्मलि हुआ ॥ ८ ॥ इस शाल्मलि द्वीपके अधिपति राजा प्रियव्रतके पुत्र महाराज यज्ञबाहुने इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंके मध्यमें जिनके नाम सात वर्षोंके ऊपरही थे बाँट दिये, उन सात खंडोंके नाम यथा--१ सुरोचन, २ सौमनस्य, ३ रमणक, ४ देववर्ष, ५ पारिभद्र, ६ आप्यायन, और ७ अविज्ञात थे ॥ ९ ॥ इन सात खंडोंमें सात नदियें और सात पर्वत अति प्रसिद्धहैं सात पर्वतोंके नाम--यथा-स्वारस, १ शातशृंग, २ वासुदेव, ३ कुंद, ४ मुकुंद, ५ पुष्पवर्ष, ६ और सहस्रश्रुति, ७ हैं. सात नदियोंके नाम-यथा-अनुमती, १ सिनीवाली, २ सरस्वती, ३ कुहू, ४ रजनी, ५ नन्दा, ६ और राका ७ हैं ॥ १० ॥ हे राजन्! इन सब खण्डोंमें रहनेवाले पुरुषोंके श्रुतिधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इक्षुधर इत्यादि चार वर्णहैं वे लोग वेदमय आत्मस्वरूप भगवान् चन्द्रदेवको अपनी किरणोंसे कृष्ण और शुक्ल पक्षमें यथा क्रमसे पितृ और देवताओंके अन्तका विभाग करते हुए हम सब प्रजाके राजा होवें ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन्! सुरोद सागरके बाहिरी भागमें कुशद्वीप है, वह ऊपर वर्णन किये हुए प्लक्षद्वीपके परिमाणसे दूना है और पूर्वोक्त द्वीपकी नाईं समान परिमाण वाले घृतके समुद्रसे घिरा हुवा है। इस द्वीपमें देवताओंका बनाया हुवा एक कुशका स्तम्भ है इससे ही उसका नाम "कुशद्वीप" हुवा है। यह कुशस्तम्भ ऐसा विदित होता है, मानो साक्षात् दूसरा अग्नि है, अपनी कोमल शिखाकी दीप्तिसे समस्त दिशाओंको सदाही प्रकाशमान् करता रहता है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहेहैं कि, हे परीक्षित्! एक कुशद्वीपका अधिष्ठाता प्रियव्रतका पुत्र हिरण्यरेता अपने खण्डके नाम वाले सात पुत्रोंको इस द्वीपके यथायोग्य विभाग करके आप तप करनेको चलागया, उसके सात पुत्र और सात खंडोंके नाम यथा-वसु, १ वसुदान, २ दृढरुचि, ३ नाभिगुप्त ४ स्तुत्यव्रत, ५ विविक्त, ६ और वामदेव, ७ यह सातोंके नाम हैं ॥ १४ ॥ इन सात पुत्रोंके सात खण्डोंमें सात सीमा पर्वत और सात नदियें प्रसिद्ध हैं, इन सात नाम यथा चक्र, १ चतुःशृंग २, कपिल ३, चित्रकूट ४, देवानीक ५, ऊर्ध्वरोमा ६, और द्रविण, ७, सात नदियोंके नाम, यथा रसकुल्या, १ मधुकुल्या, २ मित्रविन्दा ३ श्रुतिविन्दा, ४

देवगर्भा, ५ घृतच्युता, ६ और मंत्रमाला, ७ ॥ १५ ॥ इन सब नदियोंका जल स्पर्शकर पवित्र हो कुशद्वीप निवासीजनगण कुशल, कोविद, अभियुक्त, और कुलक यह चार वर्ण कर्म कौशलसे अग्निस्वरूप भगवान्‌की अर्चना करते हैं और यह मंत्र उच्चारण करते हैं ॥ १६ ॥

मंत्र-परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट्
देवानां पुरुषांगानां यज्ञेन पुरुषं यजेत्

अर्थ--हे जातवेद ! तुम परब्रह्मको हव्य साक्षात् पहुँचा देते हो, इस कारण देवताओंके यज्ञद्वारा परमपुरुष भगवान्‌की अर्चना करते हुए उनके सब अंगोंके नामोंसे दिया हुवा हव्य अग्निमें समर्पण करते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन् ! ऊपर कहे हुये कुशद्वीपके बाहिरी भागमें क्रौञ्चद्वीप है । यह द्वीप कुशद्वीपसे परिमाणमें दूना है जिस प्रकार कुशद्वीप घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है उसी प्रकार यह द्वीप क्षीरसागरसे घिरा हुआ है । इस द्वीपमें क्रौञ्च नामक एक श्रेष्ठ पर्वत है, इस कारणसे ही यह द्वीप "क्रौञ्चद्वीप" के नामसे प्रसिद्ध हुवा है ॥ १८ ॥ यद्यपि स्वामिकार्तिकजीने शक्तिसे इस पर्वतके किनारे और कुंज तोड़ दिये थे, तथापि यह पर्वत चारोंओरवाले क्षीरसागर जलसे सींचे जाने और जलके देवता वरुणजी करके रक्षित होनेसे निर्भय होगया ॥ १९ ॥ इस "क्रौञ्चद्वीपका" अधिष्ठाता प्रियव्रत राजाका घृतपृष्ठ नामक पुत्र हुवा, उसने अपने द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामानुसार सात खंडमें विभाग करके अपने सब खण्डोंमें अपने पुत्रोंको अधिपतिरूपसे स्थापन करके आप ज्ञानी बन जिन भगवान् हरिका परमकल्याण स्वरूप है । और जो सबके आत्मा हैं । उन वासुदेवके चरणारविन्दका आश्रय लेलिया ॥ २० ॥ हे राजन् ! घृतपृष्ठके सात पुत्रोंके नाम यथा--आम, १ मधुरुह, २ मेघपृष्ठ, ३ सुधामा, ४ भ्राजिष्ठ, ५ लोहितार्ण, ६ और वनस्पति ७ इन सात खण्डोंमें सात पर्वत और सातही महानदियें अतिशय प्रसिद्ध हैं, उन सात महानदियोंके-नाम यथा-अभया, १ अमृतौघा, २ आर्यका, ३ तीर्थवती, ४ वृतिरूपवती, ५ पवित्रवती, ६ और शुक्ला ७ ॥ २१ ॥ इन सब नदियोंका जल अति पवित्र और निर्मल है, इन खण्डोंके रहनेवाले पुरुषगण इस जलको पीते हैं, और "पुरुष ऋषभ, द्रविण, देवक" इत्यादि इस खण्डके रहनेवाले चारों वर्ण जल अंजलिसे जलमय वरुण भगवान्‌की पूजा किया करते हैं और सदा यह मन्त्र पढ़ाकरते हैं ॥ २२ ॥

मन्त्र-आपः पुरुषवीर्याःस्थ पुनंती भूर्भुवःस्वः ।
तानः पुनाती मीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुवः ॥

हे समस्त जनों ! तुमने ईश्वरके निकट सामर्थ्य लाभ की है, इसलिये भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक रूप त्रिलोकीको तुम पवित्र करते हो हम तुमको स्पर्श करते हैं, तुम हमारे शरीरको पवित्र करो ! तुम अपने ही रूपसे पापका नाश करनेवाले हो, इसलिये सरलतासे हमको पवित्र करो ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस द्वीपसे आगे शाकद्वीप है, उसका विस्तार बत्तीस (३२०००००) लक्ष योजनका है । यह द्वीपभी अपनी समान परिमाण वाले

दधि सागरसे चारोंओर सब प्रकारसे घिरा हुवा है, इस द्वीपमें शाक नाम एक बड़ाभारी वृक्ष है, इस वृक्षके पत्ते भीतरसे कडे स्पर्शवाले और बाहरसे कोमल स्पर्शवाले हैं इस वृक्ष-सेही इस द्वीपका नाम "शाकद्वीप" हुवा है इस वृक्षकी अतुल सुगन्धि है, जिससे कि, यह द्वीप सर्वदा सुगन्धित रहता है ॥ २४ ॥ इस द्वीपके अधिष्ठाताभी राजा प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि नाम राजा हुये । यह मेधातिथि इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामसे सात खण्डामें विभाग करके उन सब खण्डोंमें यथाक्रमसे पुरोजन, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरुप और विश्वाधार इन नाम वाले सात पुत्रोंको सात वर्णोंमें अधिपति रूपसे स्थापन किया, उसके पीछे आप भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तप करनेके लिये तपोवनमें चले गये ॥ २५ ॥ इन खण्डोंमें सात सीमा पर्वत और सातही महानदियें अतिशय प्रसिद्ध हैं । उन सात सीमा पर्वतोंके नाम यथा-ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर, सहस्रश्रोता, देवपाल और महानस । प्रसिद्ध सात नदियोंके नाम यथा-अनघा, अवुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रपदी और निजधृति है ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इन खण्डोंके रहनेवाले पुरुष "ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, अनुव्रत" इत्यादि वर्णधारी होकर प्राणायामसे, राजस, तामसको दूर करते हुये परमसमाधियो-गसे वायुरूपी भगवान्‌की उपासना किया करते हैं और यह मन्त्र सर्वदा उच्चारण किया करते हैं ॥

मन्त्र-अन्तःप्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतभिः ।
अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे इदम् ॥

जो प्राणादि वृत्तिद्वारा सब प्राणियोंके अन्तरमें प्रवेशित होकर उनका प्रतिपालन करते हैं सो सबके अन्तर्यामी साक्षात् ईश्वर हैं, सब जगत् जिनके अन्तरमें विराजमान है, वह भगवान् वायु हमारी रक्षा करें ॥ २८ ॥ इस प्रकार दधिजल सागरके आगे पुष्करद्वीप है, यह द्वीप शाकद्वीपसे विस्तारमें दुगुना अर्थात् (६४०००००) चौसठ लक्ष योजन है । यह द्वीप चारों ओर अपनी समान परिमाण वाले शुद्ध स्वादु जलसमुद्रसे बाहिरी भागमें सब भाँतिसे घिरा हुआ है इस द्वीपमें एक बड़ा भारी कमल है, उसमें अग्निकी शिखाके समान एक लक्ष निर्मल कनकमय पत्रोंसे सदा दीप्तिमान् रहता है, । वहीं भग-वान् भुवनेश्वर ब्रह्माजीका आसन कल्पित किया गया है ॥ २९ ॥ इस द्वीपमें मानसोत्तर नामक एक पर्वत है । वह पूर्व और पश्चिम खण्डोंका सीमा पर्वत है, इसका विस्तार व ऊँचाई (१००००) दश सहस्र योजन है । इस द्वीपमें इन्द्रादि लोकपालोंकी चार पुरी हैं । इन सब पुरियोंके ऊपरी भागमें सूर्यका रथ, जो कि सुमेरु पर्वतकी सदा चारों ओरसे परिक्रमा किया करते हैं । उसका चक्र देवताओंके अहोरात्र अर्थात् उत्तरायण और दक्षि-णायन इन दो अयनोंपर नियत कालमें भ्रमा करता है ॥ ३० ॥ इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतवंशीय वीतिहोत्र नामक राजा हुये । उनके दो पुत्र रमणक, और धातकी, वीति-होत्र राजा इस द्वीपको दो खण्डोंमें विभाग करके, उनमें अपने दोनों पुत्रोंको खण्डोंका

पति वनाकर, अपने अपने चित्तको अपने बड़े भ्राताओंकी समान भगवान्‌की आराधनामें लगा दिया ॥ ३१ ॥ इन दोनों खण्डोंके पुरुषगण ब्रह्मसालोक्यादि साधनोंसे पद्मासन ब्रह्म स्वरूपक भगवान्‌की आराधना किया करते हैं और इस मन्त्रका जप किया करते हैं ॥ ३२ ॥

मन्त्र–यत्तत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंगं जनोर्चयत् ।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः ॥ १ ॥

जो कि प्रसिद्ध कर्म फलोंके चिह्न रूप हैं,जिनसे ब्रह्म प्रकाश पाता है।और परमेश्वरमेंही जिनकी निष्ठा है इस कारणसे जो अद्वितीय हैं और सबही लोग जिनकी भक्तियोगसे अर्चना किया करते हैं, सो शांत स्वभाववाले षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान् हम वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥३३॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! इस द्वीपके आगे लोकालोक नाम पर्वत लोक अलोकके मध्यमें रचाहुआ है । लोक नाम उसका है जहां सूर्यका प्रकाश रहता है. और अलोक वह, जहां सूर्यका प्रकाश नहीं होता ॥ ३४ ॥ मानसोत्तर और सुमेरु पर्वतके वीचमें जितने परिमाण वाली भूमि है, स्वादुजल समुद्रके आगेभी उतनेही परिमाणकी भूमि है (शिवतंत्रमें कहा है कि, दो करोड़, त्रेपन लाख पचास सहस्रके प्रमाणमें सब द्वीप और सातों समुद्र हैं,) शिव कहैं हैं हे पार्वतीजी ! दशकोटमें सुवर्णमय भूमि है । देवताओंके विहारार्थ लोकालोक पर्वत उससे आगे है वहांपर वहुतसे प्राणी वसते हैं, फिर उसके पीछे स्वर्णमयी भूमि है, वह भूमि दर्पण तलकी तुल्य अतिशय निर्मल है ॥ यदि उसपर कोई पदार्थ रक्खाजाय, तो फिर वह अतिकष्टसे पायाजाता है । इसलिये इस भूमिमें देवताओंके सिवाय और प्राणी नहीं हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इन दो खण्डोंके वीचवाले पर्वतका लोकालोकनाम होनेका यही कारण है कि, इस पर्वतके मध्यस्थानमें रहकर लोक अर्थात् सूर्यादिक लोक विशिष्ट देश और अलोक अर्थात् उनके उजालेसे रहित देश इन दोनों खण्डोंको परस्पर अलग अलग स्थापित करता है । इसीसे इसका नाम लोकालोक हुवा ॥ ३६ ॥ सो त्रयलोकीके अन्तमें सव ओरसे ईश्वरने रचा है, जिस्से कि सूर्यादिक ध्रुवअपवर्ग ज्योतिर्गणोंकी किरणें कदाचित् पीछेकी ओर न पहुँच जावें इतने परिमाणकी इस पर्वतकी चौड़ाई और ऊँचाई है । ऐसा यह पर्वत त्रिलोकीका सीमा स्वरूप है ॥३७॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे पंडित लोगोंने नाम, लक्षण और आकारसे इन सब लोकोंकी रचनाका वर्णन किया है । हे भारतवंशावतंस ! जिन लोकालोक पर्वतोंकी कथा पहले कही, सो पचाश कोटि योजन है । इस भूगोलका चौथाभाग लोकालोक पर्वत है । अर्थात् मेरुसे चारोंओर साढे बारह करोड योजन दूर है ॥ ३८ ॥ इस पर्वतके ऊपरी भागमें चारोंओर सब गजपति, विश्वगुरु ब्रह्माजीने स्थापना किये हैं । इन चारों दिग्गजोंके नाम ये हैं ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित । इन्हीं चारोंसे सब लोकोंकी स्थिति होरही है ॥ ३९ ॥ दूसरे जो भगवान् महापुरुष ऐश्वर्य आदिकोंके पति और सब प्राणियोंके अंतर्यामी हैं । जो कि इन सब दिग्हस्तियोंका और अपने विभूति स्वरूप

इन्द्रादि लोकपालोंका विविध वीर्य बढानेके लिये और सब लोकोंका मंगल करनेके लिये, इस गिरिवर पर विराजमान रहते हैं, वहांपर वह निष्कर्म होकर नहीं विराजते। वह विशुद्ध सत्व जिससे कि, ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य इत्यादि अष्ट महासिद्धि लक्षित होती हैं, उनको प्रकाशित करते हैं। उनको चारों ओरसे विष्वक्सेनादि प्रधान २ पार्षद गण घेरे रहते हैं। यद्यपि श्रीभगवान् इस पर्वतपर रहकर विशुद्ध सत्व प्रगट करते हैं उस समय भी उनके करकमल अस्त्ररहित नहीं रहते। अर्थात् अपने अपने श्रेष्ठ हथियारोंसे युक्त भुजदंड सदाही अतिशय शोभा पाया करते हैं ॥ ४० ॥ हे राजन्! ऊपर भगवान्जीके जिस प्रकार विराजमान होनेकी कथा कह आया अब उसका तात्पर्य कहताहूं सो आप श्रवण कीजिये। यह जो सब विविध भाँतिकी लोकयात्रा हैं, ये सब भगवान्की योगमायासे रची गई हैं। इन सबकी रक्षा करनेके लिये भगवान् अपनी लीलाओंसे इस प्रकारके वेषकी रचना स्वीकार किया करते हैं ॥ ४१ ॥ हे भरत श्रेष्ठ! पहले लोकालोकनामक दोखण्डोंके प्रसंगमें अलोक खण्डका जो मध्यभाग विस्तारवाला कहा है। सो उससेही इसका परिमाण जानलेना, क्योंकि यह खण्ड लोकालोक पर्वतके वाहिरी भागमेंहै इसलिये उसका परिमाण सुमेरुके एक पार्श्वमें साढेवारह करोड योजन है। इस अलोक खण्डके आगे योगेश्वर लोग जासक्ते हैं। ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। द्विजपुत्रके लानेके समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजीने यह स्थान अर्जुनको दिखाया था, इसी कारण वह अतिशय शुद्ध है। और योगेश्वरोंकी गति वहां है ऐसा कहकर प्रसिद्ध हुआ है ॥ ४२ ॥ हे राजन्! विस्तारसे ब्रह्माण्डका परिमाण कहचुका। अब तुमसे चारों दिशाओंका परिमाण कहताहूं। ब्रह्माण्डके मध्यस्थल· में सूर्यभगवान्हैं स्वर्ग और भूमिके बीचमें जितना अंतर है, वही ब्रह्माण्डका मध्यस्थल है सूर्य और अण्डकटाह इन दोनोंके मध्यस्थलका परिमाण पचीस पचीस करोड योजन है ॥ ॥ ४३ ॥ हे राजन्! सूर्यका नाम मार्तण्ड होनेका कारण यह है कि, मृत अर्थात् अचेतन अण्डमें वह वैराजरूपसे प्रवेशित हुए इसलिये उनका मार्तण्ड नाम हुआ और दूसरे वह हिरण्मयाण्डसे उत्पन्न हुए, इसलिये हिरण्यगर्भ इस शब्दकाभी उनके लिये प्रयोग होता है ॥ ४४ ॥ हे भरतवंशावतंस! सूर्यसेही दिशा, आकाश, पृथ्वी व और दूसरोंके विभाग हुयेहैं और भोगस्थान, मोक्षस्थान, व नरक और और अतलादि सर्व प्रकारके लोकोंको सूर्यही परस्परसे अलग करके विभाग करते हैं ॥ ४५ ॥ इसलिये सूर्यरूपी भगवान्कीही उपासना करना कर्तव्यहै, वह देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पेटके वल चलने वाले साँप विच्छू आदि और लता व बीज समूहके आत्मा और तेजके अधिष्ठाता हैं ॥ ४६ ॥

भजन-रविही सकल वस्तु उपजावै ॥ भाँति भाँतिके पुष्पादिकमें, शुभ सुगन्ध महकावै ॥ १ ॥ जो जो वस्तु रची ब्रह्माने, सबमें झलक दिखावै ॥ सबमें भासत तेज सूर्यको, पालै और सुखावै ॥ २ ॥ आठमास-में जो जल शोषत, चारमास बरसावै ॥ उन्हीं जलसे अन्न अनेकन,

वृक्ष लता प्रगटावै ॥ ३ ॥ जेठ मासमें तपतदशो दिश,अग्निरूप दरशावै ॥ शालिग्राम जगत सुखदायक, पूरण ब्रह्म कहावै ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पञ्चमस्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा-कालचक्रकर भ्रमत नित, रवि एक्किस अध्याय।
अपनीही गतिसे बहुरि, सब राशिनमें जाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! भूमण्डलकी रचना इतना परिमाण अर्थात् विस्तारमें पंचाशत कोटि योजनका प्रमाण और लक्षण दिखाकर वर्णन की, स्वर्गमण्डलका वर्णन जाननेवाले शास्त्रकार लोग इस भूमंडलके परिमाणसेही स्वर्गमण्डलका परिमाणभी कहा करते हैं ॥ १ ॥ इस कारणसे जिस प्रकार चने आदिकी दालि कीजाय तो एक दाल दूसरी दालकी समान नहीं हो सक्ती। उसकीही समान भूमण्डलका जितना परिमाण है, उतनाही स्वर्ग मण्डलका परिमाण है। इन दोनोंके मध्यभागमें जो आकाशहै। वह दोनोंसे मिला हुआ है ॥ २ ॥ उस आकाशके मध्यस्थलमें भगवान् सूर्यनारायण त्रिलोकीको ताप (धूप) देतेहैं और अपनी दीप्तिसे त्रिभुवनको दीप्तिमान् करतेहैं सूर्यही उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् नामक अपनी मंद शीघ्र और समान गतिसे यथाकालमें ऊपर जाना नीचे आना, समान स्थानमें चलनेको प्राप्त होकर नियत कालपर आकर मकरादि राशिमें रात दिनको बडा छोटा और समान करदेतेहैं ॥ ३ ॥ अर्थात् जब सूर्य, मेष और तुला राशिमें गमन करते हैं; तब दिन रात प्रायः समान हुआ करते हैं, और जब वृषादि पंचराशिमें गमन करते हैं; तब दिन बढ जाते हैं और महीनेमें रात्रि एक एक घडी कमती होती जाती हैं ॥ ४ ॥ और जब सूर्य वृश्चिकादि पंच राशियोंमें वर्तमान होते हैं, तब दिन रात उलट पलट होजाते हैं । अर्थात् दिन छोटा और रात्रि बडी होजाया करती है ॥ ५ ॥ वास्तवमें जबतक सूर्य दक्षिणायनमें रहते हैं, तबतक दिन बडे रहते हैं और जबतक उत्तरायणमें रहते हैं तब तक रात्रि बडी हुवा करती है ॥ ६ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे दिवाकरकी मंद शीघ्र और समान चालसे मानसोत्तर पर्वत और मेरुके मध्यमें भ्रमण करनेका मार्ग नव करोड इक्यावन लाख योजन है, ऐसा ज्ञानी पण्डित और ऋषिगण कहा करते हैं मानसोत्तरमें सुमेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी पुरी देवधानी है। दक्षिणकी ओर यमकी पुरी संयमनी हैं पश्चिमकी ओर वरुणकी निम्लोचनी नाम पुरी है, उत्तरमें चंद्रमाकी विभावरी नामकपुरी है इन सब पुरियोंमें सुमेरु पर्वतके चारों ओर विशेष विशेष समयमें उदय, मध्याह्न, अस्त और अर्द्धरात्र हुआ करती है। यह चार कालकी सब उदय अस्त इत्यादि प्राणियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके कारण हैं अर्थात् सूर्य भगवान्का उदय अस्त देखकरही, प्राणीगणोंकी चेष्टादि हुआ करती हैं, वहां भी सुमेरु दक्षिणकी ओर बसने वालोंको इन्द्रकी पुरीसे और जो पश्चिमके निवासी हैं उनको यमपुरीसे, जो उत्तरकी ओरके

रहने वाले हैं, उनको वरुणकी पुरीसे और जो पूर्वके रहने वाले हैं, उनको चंद्रमाकी पुरीसे उदयादिक होते हैं। महात्मा पुरुषोंने ऐसा कहा है ॥ ७ ॥ परंतु जो प्राणी सुमेरुपर वसते हैं, उनको सूर्य मध्याह्नकालीन ताप दिया करते हैं यद्यपि सूर्य नारायण बांईं ओरको चलते हैं, अर्थात् नक्षत्रोंके सन्मुख होकर गमन करनेसे यद्यपि सुमेरुको बांई ओर रखकर गमन करते हैं तथापि प्रदक्षिणावर्तके प्रवर्तक प्रवह नामक वायु ज्योतिश्चक्रको भ्रमण करनेसे प्रतिदिन एक एक वार दक्षिण दिशाको जाया करते हैं, इसलिये चक्रगतिको कारण अतिदूरसे सूर्यको वनाय भूमिके निकट ही लगा हुवा देखा जाय इसका ही नाम उदय है, उनको आकाशमें चडा हुवा देखना इसका ही नाम मध्याह्न है भूमि विष्टका देखना अस्त कहाता है, वहांसे अधिक दूरका चलाजाना ही अर्द्धरात्रि है, वेदमें भी समुद्रके तीरकी दृष्टि करनसे कही हुई है कि, दिवाकर प्रातःकालके समय जलमेंसे उदय होता है। और संध्याकालके समय जलमें प्रवेश हो जाया करते हैं। वास्तवमें यह बात कल्पित है कुछ सत्य नहीं है ॥ ८ ॥ परंतु जिस स्थानमें दिवाकर उदित होते हैं, उसके सूत्रपात स्थानपरही अस्त हो जाते हैं, मध्याह्न कालके समय, जहाँके प्राणियोंको पसीना उपजाते हुये धूप देते हैं, उसके सव सूत्रपात स्थानमें अर्द्धरात्रि होनेसे वहांके प्राणियोंको उस समय निद्रित कर देते हैं। इसलिये जो लोग उनका अस्त देखसक्ते हैं वह इस स्थानमें आनेकी जगह (सन्मुख सूत्र पड़नेके स्थानपर) सूर्य नारायणको नहीं देखसक्ते ॥ ९ ॥ जब सूर्य भगवान् इन्द्रपुरीसे चलते हैं, तव पंद्रह घडीमें यमपुरीमें पहुँच जाते हैं, इतने कालान्तरमें सवादो करोड, साडे वारह लाख और पचीस हजार अर्थात् दो करोड सैंतीस लाख पिछत्तर सहस्र (२३७७५०००) योजन मार्ग चलते हैं। फिर सूर्य यमकी पुरीको जाते हैं ॥ १० ॥ इसी भाँति वहांसे वरुणपुरी और चंद्रपुरीको जाते हैं। और वहांसे फिर इंद्रपुरीमें आते हैं। इसी प्रकार दूसरे ग्रह चंद्र आदि भी ज्योतिश्चक्रसे नक्षत्रोंके साथही तो उदय होते हैं और नक्षत्रोंके साथही अस्त हो जाते हैं ॥११॥ हे राजन्! इस प्रकारसे सूर्य भगवान्का वेदमय रथ एक मुहूर्तमें पहली कही हुई चारों पुरियोंके चारों ओर चौंतीस लक्ष आठसौ योजन मार्गको घूम जातेहैं ॥ १२ ॥ इस रथका एक ही पहिया है (उसका नाम संवत्सर है)ऐसा कहते हैं कि,उस पहियेके वारह आरे वारह मास हैं और छःउसकी पुठी हैं और शीत,गरमी,वर्षा यह तीन उसकी नाभि हैं उसकी धुरीका एक भाग सुमेरु पर्वतका मस्तक है और दूसराभाग मानसोत्तर पर्वतपर स्थापित है।उस मानसोत्तरमें सूर्यका रथ स्थापित है, जिसमें पिरोया हुवा कोल्हूके पहिये की समान सूर्यके रथका चक्र मानसोत्तरपर वरावर घूमता रहता है ॥ १३ ॥ हे राजन्! सूर्यके रथमें दो धुरे हैं, प्रथम धुरा तो सुमेरु और मानसोत्तर तक फैला हुवा है, उसका परिमाण एक करोड सत्तावन लक्ष, पचास हजार (१५७५००००) योजन है, दूसरे धुरेका परिमाण इससे चौथाई है अर्थात् उन्तालीस लाख साडे तैंतीस सहस्र (३९३३५००) योजन है, पहला धुरा दूसरे धुरेके पूर्व भागमें बँधा हुआ है और कोल्हूके धुरेकी समान ध्रुवलोकके वायुपाशसे उसका

ऊपरका भाग बँधा हुवा है ॥ १४ ॥ इस रथमें नीड़ अर्थात् बैठनेका स्थान छत्तीस लक्ष (३६०००००) योजन बड़ा और उससे चौथाई अंश अर्थात् नव लाख (९०००००) योजन ऊंचा है और इस रथका जुआ भी नव लक्ष (९०००००) योजनका बड़ा है, इस रथमें गायत्रादि नामधारी सात अपूर्व तुरंग अरुण नाम सारथीके जोते हुये भगवान् मार्तण्डके रथको खैंचकर ले चलते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य महाराजके सारथि कर्ममें नियुक्त होकर अरुण यद्यपि आगे बैठे रहतेहैं परन्तु उनका मुख सूर्यनारायणके सन्मुख ही रहता है ॥ ॥ १६ ॥ और वालखिल्य नामक ऋषिगण जिनके शरीरका परिमाण अंगुष्ठ पर्वमात्र है। और जिनकी संख्या साठ हजार है। वह सब इन सूर्यनारायणके सन्मुख संभाषण करनेके लिये नियुक्त होकर अनेक प्रकारसे सदा उनकी स्तुति किया करतेहैं ॥ १७ ॥ इसी प्रकार औरभी ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस, असुर, देवता इत्यादि कि, जिनकी संख्या एक एक करके चौदह हैं। और जोड़की रीतिसे सात जोड़ हैं। वह प्रत्येक मासमें भिन्न भिन्न नामवाले सूर्य भगवान्की अलग अलग कार्य करनेके द्वारा उपासना किया करते हैं। और इन सबके नामभी पृथक् पृथक् हैं "दोहा-यह सातोंगण संगमें, पृथक् पृथक् कर नाम। स्तुति करत दिनेशकी, गाय गाय गुण ग्राम" ॥ १८ ॥ हे राजन्! दिवाकर इस रीतिसे परिवृत होकर भूमण्डलमें नवकरोड, एक लक्ष, पचास हजार (९०१५००००) योजन गमन करते हुये प्रत्येकक्षणमें दोसहस्र दो योजन मार्ग चलते हैं, सूर्य सबसे बडे देवता हैं, सूर्य ईश्वरहैं दृष्टांत "एक पीपलके वृक्षपर एक उल्लूका घोसला था, उस पीपलको प्रातःकाल आन आनकर मनुष्य जल दिया करैं तब उल्लूके बच्चे अपनी मातासे बोले कि, माता सूर्य तो दीखताही नहीं यह सब मूर्खलोग किसको जलदेतेहैं उनकी माता बोली कि, बेटा! सूर्य तेरे बापने न देखा न दादाने देखा, तू कहाँसे देखेगा, क्योंकि सूर्यके तेजके मारे उल्लूके नेत्र मिच जातेहैं, उनको सूर्य नहीं दीखता, ऐसेही मूर्खोंको परमेश्वर नहीं दीखता और सूर्यनारायण तो नित्य उदय होते हैं ॥ १९ ॥"

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पंचमस्कन्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा-बाइस शशि शुक्रादिको, उत्तर उत्तर थान।
उन्हीं ग्रहोंकी चालसे, नर दुख सुख ले जान ॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे ब्रह्मन्! आपने जो यह वर्णन किया कि, भगवान् सूर्यनारायण सुमेरु और ध्रुवकी प्रदक्षिणा करके घूमते घूमते सब राशियोंके सन्मुखमें विना प्रदक्षिणा किये हुए गमन करते हैं सो यह बात हमारे विचारमें परस्पर विरुद्ध मालूम होती है। सो इस बातका किस प्रकारसे निर्णय किया जाय ॥ १ ॥ तब श्रीशुकदेवजी हर्ष सहित बोले कि, जिस प्रकार घूमते हुये कुम्हारके चाकके साथ उसके ऊपर घूमती हुई चींटियें आदिकी गति दूसरी प्रकारकी जान पड़ती है क्योंकि चक्रके एक

एक भागको त्यागकर वह आते हुये ज्ञात होते हैं, ऐसेही नक्षत्र राशियोंके द्वारा उपलक्षित कालचक्रसे ध्रुव और मेरुकी प्रदक्षिणा करनेसे शीघ्रताके साथ चलनेके कारण उनके आश्रय सूर्यादि ग्रहोंकी गति औरही प्रकारसे नक्षत्रादिके मध्यमें ज्ञात होतीहै ॥ २ ॥ हे राजन्! साक्षात् नारायण वह भगवान् आदिपुरुष लोकोंका मंगल करनेके लिये कर्म शुद्धिकी निर्मित स्वरूप जो अपना वेदमय आत्मा है उसको बारह प्रकारसे विभाग करते हुए वसंत आदि छहों ऋतुओंमें सब कर्मोंके भोगानुसार उन उन ऋतुओंके गुण अर्थात् शीतल उष्ण आदिका विभाग करते हैं। परम पुरुषके इस व्यापारमें आत्मतत्त्वके जानने-वाले विद्वान् लोगभी वेद शास्त्रकी आलोचना करके तर्क वितर्क किया करते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये वह सब पुरुष जो कि, वर्णाश्रम आचारपर चलनेवाले हैं वह लोग वेदमें कहे हुये कर्मोंसे इन्द्रादिरूपी और ध्यानादि योग विस्तार करके अंतर्यामी उन सूर्य भगवान्‌की उपा-सना करके सब यथार्थ कल्याणको प्राप्त कर लेते हैं ॥४॥ यह सूर्यही सब लोकोंके आत्मा हैं स्वर्ग और पृथ्वीके मध्यमें जो आकाश मण्डल है उसके मध्यमें कालचक्रमें स्थित होकर यहाँ सूर्य बारह महीनोंकी राशि भोग करते हैं, मेषादि राशियोंके नामही इन सब मासोंके नाम हैं, यह सब मास संवत्सरके अंग हैं। हे राजन्! सब महीने अलग अलग भाँतिके होते हैं यथा चन्द्रमाकी गतिसे दोपक्षका महीना होता है । सूर्य गतिके हिसाबसे सूर्यके सवा दो नक्षत्र भोग करनेके कालको एक मास कहते हैं। यह एक महीना पितरोंके मही-नेका एक दिन रात होता है अर्थात् इन दोनों कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षमें एक मास होता है वह यथा क्रमसे पितृलोकका दिन और रात्रि होती है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! सूर्यनारायण जितने कालमें संवत्सरका छठा भाग अर्थात् दो राशियोंको भोग करते हैं। वह काल ऋतु कहा जाता है इसलिये यह ऋतु संवत्सरका एक अंग है इसप्रकारसे सूर्यनारायण जितने समयमें पृथ्वीके आधे भागमें घुम जाते हैं । वह उतना काल अयन कहा जाता है ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे सूर्यनारायण जितने कालमें स्वर्ग मण्डल और पृथ्वी मण्डल यह दो मण्डल आकाश मण्डल सहित सम्पूर्ण रूपसे भ्रमण कर भोग करते हैं वही काल संव-त्सर है। इन सूर्यकीही मन्द, शीघ्र और समान गतिसे, संवत्सर परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वासर इन पांच नामोंमें पांच प्रकार होते हैं, ऐसा पण्डितलोग कहते हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! सूर्यमण्डलके ऊपर लक्ष योजनसे चन्द्रमा ग्रह दृष्टि आता है । यह चन्द्रमा दो पक्षमें चलता है सूर्य उतना एक संवत्सरमें चलता है और चन्द्रमा सवादो दिनमें सूर्यके एक मासकी बराबर चलता है। और चन्द्रमा एक दिनमें सूर्यके एक पक्षके चलनेकी बराबर चलता है कि, शुक्लपक्षके पडवाको संक्रांति जब हो तो सौरमास और चान्द्र-मास दोनोंका प्रारम्भ होता है, इस प्रकार वर्षका नाम संवत्सर है, फिर सूर्यकी गणनासे छः दिन बढ़ते हैं और चन्द्रमाकी गणनासे छः दिन घटते हैं। इस प्रकार बारह बारह दिनका अन्तराय होनेसे सौरभ और चन्द्रमा आगे पीछे होजाते हैं तो पांच वर्षके मध्यमें दो अधिक अर्थात् लौंद पड़जाते हैं। छठे वर्ष दोनोंका हिसाब एक होजाता है और फिर

पड़वाके दिनसे संक्राति होनेसे फिर वही छठा वर्ष संवत्सर कहलाता है । और उसी प्रकार प्रथम वर्षका संवत्सर, दूसरेको परिवत्सर, तीसरेको इडावत्सर, चौथेको अनुवत्सर और पांचवेंको वत्सर कहते हैं। कभी कभी चन्द्रमाकी गति अति शीघ्र होनेके कारण यह ग्रह सूर्यकी बराबरीसे भी आगे होजाता है ॥ ८ ॥ चन्द्रमण्डलकी सब कलायें जब अपूर्ण रहतीं अर्थात् बढ़ती हैं तब देवगणोंका दिन होता है । और जब क्रम क्रमसे कलायें क्षीण होतीजाती हैं, तब पितृलोगोंका दिन होता है । हे राजन् ! चन्द्रग्रह इस प्रकारसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष द्वारा पितरोंका दिन रात करते हुए तीस तीस मुहूर्तमें एक २ नक्षत्रको भोग करते हैं । यह ग्रह अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण सब जीवोंका प्राण और सबके जीवनका हेतु है । इसी कारण चन्द्रमाको जीवदाता भी कहते हैं ॥ ९ ॥ इसलिये षोडशकलायुक्त चन्द्ररूपी भगवान् परमपुरुष मनोमय, अन्नमय, व अमृतमय हैं । अधिक करके वह देवता, पितृ, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सर्प, लता, झाड़ इन सबके प्राणोंको तृप्त किया करते हैं । और बुद्धिके देनेवाले हैं । इसलिये ऋषि लोग उसको सर्वमय कहकर वर्णन करते हैं । हे राजन् ! पहले कहे हुए चन्द्रमण्डलसे दो लक्ष योजन ऊपर सब नक्षत्र सुमेरुकी दक्षिण ओर कालचक्रके साथ ईश्वर करके जुड़े हुए होनेके कारण भ्रमण करते हैं ॥ १० ॥ उन नक्षत्रोंके नाम-अश्विनी १ भरणी २ कृत्तिका ३ रोहिणी ४ मृगशिरा ५ आर्द्रा ६ पुनर्वसु ७ पुष्य ८ आश्लेषा ९ मघा १० पूर्वा फाल्गुनी ११ उत्तरा फाल्गुनी १२ हस्त १३ चित्रा १४ स्वाती १५ बिशाखा १६ अनुराधा १७ ज्येष्ठा १८ मूल १९ पूर्वाषाढ २० उत्तराषाढ २१ अभिजित् २२ श्रवण २३ धनिष्ठा २४ शतभिषा २५ पूर्वाभाद्रपदा २६ उत्तरा भाद्रपदा २७ रेवती २८ इन सबकी संख्या अभिजित् नक्षत्रके साथ अट्ठाईस हैं ॥ ११ ॥ हे भारत ! नक्षत्र मण्डलके दो लक्ष योजन ऊपर शुक्र ग्रह है । सन्मुख सूर्यके किसी नक्षत्रको भोग करते हों तैसे, यह ग्रह उनके पीछेकी दिशामें रहता है । और एक संग फिरनेके समय यह अति शीघ्र-गामी होकर क्रमवाले नक्षत्रोंको उल्लंघन करके फिरा करता है ॥ यह शुक्र ग्रह भी सूर्यके समान शीघ्र, मन्द और समान गतिवाला होजाता है । यह सदा लोकोंके अनुकूल रहता है । प्रायः यह वर्षता भी है । और इस कारणसे जो ग्रह कि वृष्टिके रोकनेवाले हैं यह उनकी भी शांति कर देताहै ॥ १२ ॥ हे राजन् ! शुक्रकी जिस प्रकारसे गति और स्थिति है इसीप्रकार बुधकी गति जानना अर्थात् बुधग्रह भी कभी कभी सूर्यके आगे और कभी कभी पीछे रहता है। परन्तु शुक्र ग्रहसे दो लक्ष योजन ऊपर यह बुधका ग्रह दृष्टि आता है । यह ग्रह भी प्रायः लोकोंका शुभकारी है। परन्तु जब सूर्यसे अलग होजाता है. तब बहुधा अतिशय पवन, निर्जल मेघ घटा, और अनावृष्टि इत्यादिका भय यह विस्तार किया करता है ॥ १३ ॥ बुध ग्रहके ऊपर मंगल ग्रह है, वहभी दो लक्ष योजनसे दृष्टि आता है । यह ग्रहभी तीन तीन पक्षमें क्रम क्रमसे बारह राशियोंको भोग करता है । और यदि उसकी टेढी गति न होवे,तब यह बहुत करके अमंगल सूचक अशुभ ग्रहसे होजाता

है ॥ १४ ॥ मंगल ग्रहके ऊपर दो लक्ष योजन पर भगवान् बृहस्पतिजी हैं, उनकी गति यदि टेढी न होवे तो यह एक वर्षमें एक एक राशिको भ्रमण करते हैं। यह बृहस्पतिजी का ग्रह ब्राह्मण कुलपर बहुधा अनुकूलही रहा करता है ॥ १५ ॥ बृहस्पतिजीके ऊपर दो लक्ष योजनपर शनैश्चरका ग्रह प्रकाश पाता है। उसको एक एक राशिके घूमनेमें तीस तीस महीने लगजाते हैं। और उतनेही संख्याके वर्षोंमें अर्थात् तीस वर्षमें उसका सब राशियोंपर घूमना समाप्त होता है, यह ग्रह लगभग सबही प्राणियोंको अशांतिका देनेवाला है ॥

दृष्टान्त--"एक समय रावणने सब ग्रहोंको कारागारमें बन्द कर दिया, परन्तु शनैश्चर नहीं आया, जब रावणने शनैश्चरदेवताको न देखा तब मंत्रियोंको बुलाकर बोला कि, क्या कारण जो शनैश्चर हमारे बन्दीगृहमें नहीं है ? मन्त्रियोंने कहा कृपानाथ ! शनैश्चर क्रूर देवता है और अत्यन्त दुःखदायक है, इसलिये उसको नहीं लाये। क्योंकि दुष्टको घरमें रखना अच्छा नहीं, ऐसा कहा है "दुष्टसंग जनि देय विधाता" रावणके तो खोटे दिन आही गये थे, काल शिरपर गर्ज रहा था बोला कि, उसको अभी पकड लाओ, सो सब मंत्री सेनाको लेकर शनैश्चरके पास गये और जाकर कहा तुमको रावणने बुलाया है शनैश्चरजी बोले कि अच्छा चलो, जबही शनैश्चरने लंकाकी ओर आँख उठाकर देखा, तो दृष्टिके पड़तेही लंकाके कंगूरे गिरने लगे। रावण बोला यह क्या ? मन्त्रियोंने कहा कि, शनैश्चर देवताने लंकाकी ओर दृष्टि उठाकर देखा है, इतनेमें शनैश्चर सन्मुख आनही पहुँचे, तब इनको देखतेही रावणने स्तुति की और कहा कि, अब आप कृपा पूर्वक अपने स्थान को चले जाइये यह सुन शनैश्चर बोले कि, अब घर लौटना कैसा ? अब तो हम घरसे चलही दिये। दुःखम् सुखम्, अब तो साढे सातवर्ष लंकामेंही निवास करेंगे। शनैश्चरके आतेही रावणकी बुद्धि बिगड़ी और जगज्जननी जानकीको हरा, तब कौशलेन्द्र महाराजाधिराज रामचन्द्रजीने कुटुम्ब सहित उस रावणका विध्वंस करदिया। इस कारण यह लिखा हैकि "सर्वेषामशान्तिकरः" ॥ १६ ॥

शनिग्रहसे उत्तरकी दिशामें ग्यारह लक्ष योजनके अंतरमें ऋषिगण दृष्टि आतेहैं। वह ऋषि समस्त लोकोंको शांति देतेहुये भगवान् विष्णुके परमपदकी सदा प्रदक्षिणा करते घूमते रहते हैं ॥ १७ ॥ वह भगवान् कैसेहैं ?

घनाक्षरी—**कवित्त—आदिहै न अंतहै अगमरु अजय महा, पावन असंग औ अलख अप्रमानहै। एक है प्रकाश है पूरण महाकाशविभु, निर्गुण निरंजन है चिदानंद ज्ञान है ॥ नित्य है अमर अविनाशी औ अजर सदा, अव्यक्त निर्विकल्प रु अवाच्य निर्वानहै। विश्वको कर्तार शब्द ओंकारहै वेदरूप पुराण पुरुष विभु एक भगवानहैं ॥ १ ॥**

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पञ्चमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

दोहा-वरणों ध्रुव स्थानको, तेइसवें अध्याय।
पुनि शिशुमार स्वरूपकर, हर्षित कहौं सुनाय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे भरतावतंस! देवर्षिलोगोंका जो स्थान हमने कहा, उससे तेरह लक्ष योजन ऊपर विष्णु भगवान्का प्रसिद्ध स्थान है। जहाँ उत्तानपादराजाके पुत्र महाभागवत ध्रुवजी, अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म इन सबके साथ जब नक्षत्ररूपी हुये थे, उसी दिनसे आजतक प्रदक्षिणा दिया करते हैं। और कल्पभर जीवित रहने वालोंके आधार होकर भगवान्की आराधना करते हैं। इन ध्रुव महाराजकी महिमा प्रथम (चतुर्थस्कन्ध) में वर्णनकी गईहै ॥ १ ॥ छेकनेके अयोग्य और महावेगयुक्त कालकी गति बारी बारीसे ग्रह नक्षत्रादि सब ज्योतिर्गणोंको निरंतर गगनमंडलमें घुमाया करतीहै, सो उसका भी अवलम्ब बनानेके लिये परमेश्वरने इन ध्रुवजीको एक थंभरूप बना दिया है, इसलिये उनका प्रकाश निरंतरही होता रहता है ॥ २ ॥ जिस प्रकार अन्न आदिको गाहनेके लिये मढी स्तम्भ (कीली) में बँधे हुए पशुगण अपने अपने स्थानमें रहकर समय समय पर कीलके आश्रयसे घूमा करते हैं, वैसेही यह ग्रहादि नक्षत्रगणभी कालचक्रके भीतर और बाहरमें बँधकर इस ध्रुवकाही अवलम्बन किये हुए हैं। और पवनके घुमाये हुए कल्पके अंततक चारोंओर घूमते रहते हैं परन्तु जिस प्रकार मेघ और बाजादि पक्षीगण कर्मकी सहायतासे पवनके वशहो आकाश मण्डलमें घूमा करते हैं और गिरते नहीं, वैसेही ज्योतिर्गणभी जिनकी गति कर्मसे बनी हुई है वह सब उन परमपुरुषोंके अनुग्रहसे आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं, परन्तु पृथ्वीपर नहीं गिरते ॥ ३ ॥ कोई कोई कहते हैं यह ज्योतिषचक्र शिशुमार रूपमें भगवान् वासुदेवजीकी योगधारणासे टिका हुवाहै इसलिये इसके गिरनेकी कोई शंकाही नहीं है ॥ ४ ॥ यह शिशुमार नीचेको शिर किये और कुण्डलीभूत शरीर होरहा है। इसकी पूँछके अग्रभागमें तो ध्रुवजी हैं और पूँछके आगे अधोभागमें प्रजापति, इन्द्र और धर्म यह तीन देवता हैं और पूँछके मूलमें धाता, विधाता हैं और कमरमें सप्त ऋषिगण प्रतिष्ठित हैं। इस शिशुमारके दाहिनी ओर कुण्डलाकारवाले शरीरकी दक्षिण बगलमें अभिजित इत्यादि पुनर्वसुतक चौदह नक्षत्र हैं और वाम बगलमेंभी पुष्यादि उत्तराषाढतक चौदह नक्षत्र हैं-इसलिये कुण्डलके विस्तारानुसार इस शिशुमारके सब अवयव दोनों पार्श्वमें समसंख्यावाले हैं और इस शिशुमारके पृष्ठदेशमें अजवीथी और उदरमें आकाशगंगा है ॥ ५ ॥ हे राजन्! ऊपर कहेहुए शिशुमारचक्रकी दक्षिण और वामबगलमें जो सब नक्षत्र हैं, उनके हम विशेष विशेष स्थान बताते हैं, सो तुम श्रवण करो। पुनर्वसु और पुष्य यह दोनों नक्षत्र यथाक्रमसे शिशुमारके दक्षिण और वाम नितम्बपर हैं आर्द्रा और आश्लेषा यथा क्रमसे उसके दक्षिण और वाम चरणमें हैं। अभिजित् और उत्तराषाढ यथाक्रमसे इसकी दक्षिण और वाम नासिकापर हैं, श्रवण और उत्तराषाढ यथाक्रमसे उसके दायें और बायें नेत्रमें हैं, धनिष्ठा और मूल यथाक्रमसे उसके दक्षिण और वाम कर्णमें हैं ॥

और मघा आदि अनुराधा तक दक्षिणायन संबंधीय आठ नक्षत्र उसके वामपार्श्वकी अस्थि में लगे हुए हैं इसीप्रकारसे मृगशिरादि उससे उलटे अर्थात् दक्षिणायन संबंधीय जो आठ नक्षत्रहैं वह सब उसके दक्षिण पार्श्वकी अस्थियोंमें लगेहुए हैं और शतभिषा व ज्येष्ठा यथाक्रमसे उसके दांये और बांये कन्धोंमें स्थापित हैं ॥ ६ ॥ इस शिशुमारकी उत्तर ठोडीमें अगस्त्यजी, अधर ठोडीमें यम, मुखमें मंगल, उपस्थमें शनि, शृंगमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार, प्राण व अपानमें बुध, गलेमें राहु, सर्वांगमें केतु और रुओंमें तारागण लगे हुए हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! यह जो शिशुमारके चक्राकारका वर्णन हुआ यही भगवान् विष्णुजीका सर्वमय रूप है, सब पुरुषोंको सदाही संध्याके समय सावधानहो मौन धारणकर इस चक्रका देखना अवश्य कर्तव्य है और उस समय यह मंत्र पढना चाहिये

मंत्र-नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानि-
मिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि ॥

अहो ! ज्योतिर्गणोंके आश्रय और कालचक्ररूपी देवाधिपति, उन महापुरुषोंको वार-म्वार हमारा नमस्कारहै हम निरन्तर उनकी चिन्तना करते हैं ॥ ८ ॥ यह शिशुमार भगवान् ग्रह व नक्षत्रादिकोंके स्वरूप सर्व देवताओंके अधिपति हैं इसलिये जो लोग त्रिकालमें उनका पहला कहा हुवा मंत्र जपा करते हैं, उनके पापोंको शिशुमाररूप भगवान् नष्ट करदेंगे; जो पुरुष तीन काल की संध्यामें उनको प्रणाम करे,वा उनका स्मरण करेगा उस पुरुषके तत्कालही सब पाप नाशको प्राप्त होजायँगे ॥९॥ क्योंकि, भगवान् बडे दयालु हैं भूलसेभी नाम लेनेसे प्रसन्न होजाते हैं इसके ऊपर एक दृष्टान्त कहते हैं सो तुम सुनों ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे पंचमस्कन्धे
त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा-रविके नीचे ग्रह जिते, ते सब कहूं सुनाय ।
अनलादिक वर्णन करों अब चौविस अध्याय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् ! कोई कोई विद्वान् कहतेहैं कि,सूर्यके नीचेके भागमें दश-सहस्रयोजनके अंतरपर यह राहु नक्षत्रकी समान घूमता है यह राहु सिंहिका राक्षसीका पुत्र, असुरोंमें नीच, किसी प्रकारसे देवभाव और ग्रहभावको प्राप्त होनेके योग्य नहीं था, केवल भगवान्‌की कृपासे इसने देवभाव और ग्रहभाव प्राप्तकर लिया है । इसके जन्म और कर्मका वृत्तान्त फिर (आठवें स्कंधमें) कहेंगे ॥ १ ॥ इस राहुके अधोभाग रहकर सूर्यनारायण तपते हैं, कहते हैं कि, सूर्यमण्डलका विस्तार दश हजार योजन और चंद्र मण्डलका विस्तार बारह हजार योजन है, परन्तु राहु मंडलका विस्तार इन दोनोंसे बड़ा अर्थात् तेरह हजार योजन है, इस राहुने अमृत पीनेके समय सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें बैठकर छल किया था. तब सूर्य व चंद्रमाने उस समय विष्णु भगवान्‌को बतादिया था कि, यह

देवता नहीं हैं दैत्य है, तब विष्णु भगवान्ने इसका शिर काटडाला था, परंतु अमृतके पानकरनेसे वह मरा नहीं और देवभाव व ग्रहभावको प्राप्त हुआ। तबका वैर लेनेको सदा करके यह अबतक पौर्णमासी व अमावास्याके दिन जब सूर्य व चंद्रमाका पूर्ण प्रकाश होता है तब उस प्रकाशको न सहन करके यह इन दोनोंके पीछे दौड़ता है ॥ २ ॥ भगवान् विष्णुजीने इस बातको जानकर चंद्रमा और सूर्यकी रक्षा करनेके लिये सुदर्शन नामक अपना प्रिय अस्त्र अथवा भागवत चक्र नियत किया, इस चक्रका तेज अति असहनीय है और वह सदाही घूमता रहता है, इसलिये उस चक्रको घूमता हुआ देखकर राहु सूर्य अथवा चंद्रमाको पकड़नेके लिये एक मुहूर्त मात्रतक खड़ा होता है और पीछेसे डरकर दूरसेही पीछेको लौट जाता है. इस प्रकार सूर्य और चंद्रमाके अंतरमें जितनी देर राहु खड़ा रहता है उसको ही लोग ग्रहण कहा करते हैं ॥ ३ ॥ राहु ग्रहके इतने ही परिमाण योजन नीचे अर्थात् दशसहस्रयोजन अधोभागमें सिद्ध, चारण और विद्याधरोंके रहनेका स्थान है ॥ ४ ॥ उनके नीचे यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत और पिशाचगणोंके विहार करनेका स्थान अंतरिक्ष है, यह स्थान शून्य मात्र है, वहांपर ग्रहादि कुछ नहीं हैं इस स्थानका परिमाण कहते हैं सो तुम श्रवण करो। जहाँतक मेघमाला दृष्टि आती है और जहाँ तक वायु तीव्रवेगसे बहता है, इस स्थानका विस्तारभी वहींतक है ॥ ५ ॥ हे राजन्! यक्षोंके स्थानोंके नीचे शतयोजन दूर यह पृथ्वी है, इसके ऊपर भागवाले भूर्लोकादिकोंकी सीमा कहते हैं, सो तुम सुनो। जहाँतक पृथ्वीके विकार हंस, भास, बाज, गरुड आदि पक्षीराज उडते रहते हैं, तहाँतक इस भूर्लोककी सीमा है ॥ ६ ॥ हे कौरववंशप्रवीर! पृथ्वीमें जैसी स्थिति और जैसे जैसे सब स्थान हैं, वह मैंने समस्तही आपसे वर्णन किये। हे राजन्! पृथ्वीके नीचे सात विवर हैं, उनमेंसे एक एक दश दश हजार योजनके मध्यमें विस्तारसे रचा हुआ है। इन सात विवरोंके यह नाम हैं—यथा अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ॥ ७ ॥ इन सब नीचेके भुवनोंमें अर्थात् पातालोंमें फुलवाडियाँ, विहार करनेके स्थान; स्वर्गसेभी अधिक रमणीक और कामभोग, ऐश्वर्य, आनंद और विभूतियों करके सुन्दर समृद्धियोंसे पूर्ण, तहाँ मंदिर प्रति मंदिर, वन, उपवन, उद्यान, विहार स्थल, इन सब स्थानोंमें दैत्य, दानव और सर्पगण घरोंके भाँति रहकर परमसुखसे बसते हैं, उनके स्त्री, पुत्र, सुहृद्, मित्र और नौकर चाकर नित्य उनपर अनुरागी और सदा प्रफुल्लित रहा करते हैं। अधिकाईसे ईश्वर नारायणजीसे भी उनका कोई अभिलाष कभी अधूरा नहीं जाता, वह लोग सदा ही मायासे आनंद उत्सव किया करते हैं ॥ ८ ॥ हे महाराज! इन सब पातालोंमें मायासे मयदानवकी बनाई हुई श्री अनेक पुरियें सदा दीप्तिमान् रहती हैं। वहांके भवन, प्राकार, गोपुर, चित्रसारी, अटारी, सुचित्र स्थान, सभा, (पाषाणादि बंध) चौराहे और आयतन इत्यादि बड़े बड़े स्थान मणियोंसे बने हुये शोभित हो रहे हैं, वहां विवरेश्वर गणोंके बड़े बड़े ग्रहोंके भूभाग, नाग, असुर कपोतोंके जोडे, तोते, मैना आदि पक्षियोंसे भरपूर हैं। इस-

लिये यह सब पाताल इन सब वस्तुओंसे मानो सर्व प्रकार सजकर विराज रहे हैं ॥ ९ ॥ वहांकी वाटिका और बागोंमें मालती, मदनबाण, गन्धराज इत्यादि अनेक प्रकारके पुष्प, लतायें पुष्पोंसे पूरित ऊंचे ऊंचे वृक्षोंसे आलिंगन कर रही हैं और उन वृक्षोंकी शाखायें कोमल कोमल हरी, लाल, कोंपलों और फूल फलोंके भारसे नीचेको झुकी जाती थीं, जैसे सज्जन पुरुष समृद्धि पाकर नीचेको झुक जाते हैं. उस अनुपम शोभाको देख देख मन इन्द्रियें आह्लादसे पुलकायमान होती थीं वहांके सब सरोवर निर्मल जलसे परिपूर्ण, जिनमें मछलियोंके क्रीड़ा करनेसे वह जल चंचल होता था. और उन जलाशयोंमें अनेक प्रकारके कमल खिलरहे थे, कुमुद, कह्लार, कुवलय, नीलकमल और लालकमलके फूलोंके बनके वन खिले हुए थे, भाँति भाँतिके पक्षियोंके जोडे, उस स्वच्छ जलमें जहाँ तहाँ पैरते रहते थे, जब वह सब विहार करते थे, और बोलते थे तो ऐसा मनोहर शब्द निकलता था कि, जिसको सुनकर, सुननेवालोंकी इन्द्रियें स्थिर नहीं रहती थीं और चित्त अत्यन्त प्रसन्न होता था यह नगर अमरनगरकी शोभासेभी अधिक शोभायमान है ॥ ॥ १० ॥ इन पातालोंमें सूर्यादिग्रहोंके न रहनेसे वहां दिन रात्रिके कालकाभी विभाग नहीं है । इसलिये कालसे जो भयकी संभावना है, वहभी वहां नहीं ॥ ११ ॥ और यहांपर सब स्थानोंमें बडे बडे सर्पराजोंके शिरकी मणियें अंधकारका नाश करनेको सदाही प्रकाशमान रहती हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इन सब स्थानोंमें जो लोग वास करतेहैं वह सदाही दिव्य औषधियोंसे रसअन्न पिया खाया करतेहैं, इसके पीने खानेसे उनको कभी आधि (मनका दुःख) व्याधि (शरीरमें कुष्ठादिरोग) अथवा जरा आदि अवस्था नहीं प्राप्त होती. उनकी देहमें विवर्णता होनेकी कुछ सम्भावना नहीं । और दुर्गंधि अथवा पसीना परिश्रम अथवा उत्साहरहित होना इत्यादि यह बातें भी वहां कभी किसीको प्राप्त नहीं होती॥ १३ ॥ इसलिये तेजरूप भगवान् नारायणके चक्र बिना उनके ऊपर मृत्यु भी अपनी प्रभुताई नहीं करसक्ती ॥ १४ ॥ हे राजन् ! भगवान्‌का चक्र सब कुछ करनेकी सामर्थ्य रखता है, उसको कुछ भी असाध्य नहीं है, उसका पातालमें प्रवेश करनेसे दैत्योंकी स्त्रियोंके गर्भ पतित होजाते हैं ॥ १५ ॥ इस समय हम अतलादि नीचेके भुवनमें रहनेवालोंका वृत्तांत तुमको सुनाते हैं । अतलनामक प्रथमपातालमें मयदानवका पुत्र बलनामा असुर वास करता है इस बलासुरसेही ९६ छयानवें माया उत्पन्न हुई, कोई २ मायावी उन सब मायाओंकी कुछ कुछ अंश अबतक धारण करते हैं, जब उस बलासुरने जँभाई ली, तब उसके मुखसे स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली यह तीन प्रकारकी स्त्रियें उत्पन्न हुई ॥ हे राजन् ! जो स्त्रियें अपनी जातिके पुरुषोंसे प्रीति करती हैं वह स्वैरिणी, जो अपनी जाति और पराई जातिके सब पुरुषोंसे प्रीति करती हैं वह कामिनी और जो अनियमित हो व्यभिचार करनेवाली स्त्रियें हैं वह पुंश्चली कहलाती हैं । यह सब स्त्रियें पहले कहे हुये पातालोंमें जो पुरुष आता है, सुहाटकनाम सुवर्णरसके पिलानेसे, भोग करनेमें समर्थकर अपने असाधारण विलास सहित अवलोकन, मन्दहास्य अनुरागसहित मीठे बोल और आलिंगन आदिसे

अपनी इच्छानुसार केलि कराती हैं. हे राजन् ! सुवर्णके रसका गुण बड़ाही आश्चर्य देनेवाला है। उसके सेवन करनेसे पुरुष अपनेको "हम ईश्वर हैं, हम सिद्धहैं" इस प्रकारसे समझता है, और दशहजार मतवाले हाथियोंकी समान सामर्थ्यवान् होकर मदान्धकी समान किसीको कुछ न समझकर जहाँ तहाँ निर्द्वन्द्वसा फिरा करता है॥ १६ ॥ अतलनामक पातालके नीचे वितलनामक दूसरा पाताल है। यहां भगवान् हाटकेश्वर शिवजी अपने पार्षदगणोंसहित और प्रजापतिकी सृष्टिको बढ़ानेके लिये भवानीसहित मिथुन भावसे विराजमान हैं॥ हे राजन् ! इस वितलनामक भूमिवरसेही भव और भवानीके वीर्यद्वारा हाटकी नामक नदी उत्पन्न हुई है, हे कौरवकुमार ! एक समय वायुकी उत्तेजनासे अग्नि और शिव पार्वतीजीके वीर्यको पीते थे, जिसको पी फिर उन्होंने हाटक नाम सुवर्ण उगला, इस स्थानके रहनेवाले असुराधिपोंके रनवासमें पुरुषगण स्त्रियोंसहित वही सुवर्णके भूषण धारण करते हैं॥ १७ ॥ हे राजन् ! वितलके नीचे तीसरा पाताल सुतल है वहांपर महायशस्वी पुण्यकीर्ति विरोचननन्दन महाराज बलिजी अबतक वसते हैं. हे महाराज ! भगवान् विष्णुजीने देवराजका प्रियकरनेकी इच्छा करके दितिसे बटु वामनरूप शरीर धारण करके प्रथम इन बलिका त्रिलोकीका राज्य हरण करलिया, परन्तु पीछे फिर अपने आपही कृपाकरके उनको अपने राज्यमें प्रवेश कराया; जिससे राजा बलिके इतनी समृद्धि लक्ष्मी हुई कि, इन्द्रादि देवताओंके पासभी वैसी सम्पत्ति नहीं, इस कारण राजा बलि इस स्थानमें रहकर निरन्तर उन आराधना करने योग्य भगवान्की आराधना कर निर्भय रहते हैं॥ ॥ १८ ॥ हे राजन् ! राजा बलिका सुतल पातालके मध्यमें जो इतना ऐश्वर्य हुवा यह उसको कुछ भूमिके दानका फल नहीं है। हे महाराज ! भगवान् वासुदेव जो सब जीवोंके नियन्ता और आत्माराम हैं। इसलिये साक्षात् परमात्मास्वरूप जो उनको तीर्थकी समान पात्र मिले सो उनको श्रद्धासहित सावधान मनसे परमआदरपूर्वक बलिराजाने उनको भूमिदान की, वही साक्षात् स्वर्गका द्वार हुआ। उसका फल परमपुरुषार्थ मुक्तिपदार्थही होसक्ता है। यह अनित्य विभव किसी प्रकार उसका फल नहीं होसक्ता॥ १९ ॥ दूसरे क्षुधा, छींक, जँभाई, गिरने आदिके समयभी जब पुरुष अवश होकर एकबार जिनके नामको उच्चारण करनेसे वास्तवमें कर्मकी फाँसीसे छूटजाता है। हे राजन् ! कर्मबन्धन कुछ साधारण बंधन नहीं है। मुमुक्षु पुरुष लोग इस बंधनकेही हटानेके लिये योगानुष्ठानादि बड़े कठिन कठिन क्लेश सहा करते हैं॥ २० ॥ इसलिये उन भगवान्में समर्पण कियाहुआ भूमिदानका फल यह ऐश्वर्यमात्र है, यह कभी सम्भव नहीं होसक्ता। विशेष करके भगवान् भक्त लोगोंके प्रिय आत्मज्ञानियोंको ज्ञानके और अपने स्वरूपके देनेवाले वह क्या अपने परमभक्त बलिके लिये किसी और प्रकारका आचरण करसक्ते हैं॥ २१ ॥ इसलिये राजा बलिके पास सुतललोकमें जो इतना विभव हुआ, सो राजा बलिके प्रति यह भगवान्का अनुग्रह नहीं हुआ। क्योंकि भोग विभव केवल मायामय है, इससे तो केवल परमेश्वरका स्मरण छूटजाता है॥ २२ ॥ हे राजन् ! राजा बलिकी ऐकान्तिक

भक्तिका वृत्तान्त कहताहूं सो तुम सुनो। भगवान्‌ने और उपाय न पाकर भिक्षाके छलसे राजा बलिके तीनों लोक हरण करलिये थे। केवल राजाका शरीरमात्र शेष अर्थात् बचरहा था,ऐसा करकेभी उनको संतोष नहीं हुआ और फिर वरुणकी फाँसीसे राजाको भली भाँति बांधा और पर्वतकी गुहाके समान पातालमें डालदिया। परंतु राजा बलिने इतना दुःखपाकर भी केवल इतना कहा था ॥ २३ ॥ यह इन्द्र जिनके बृहस्पतिजी बड़ेही सहायक हैं और जिनकी सम्मति करनेके लिये इन्द्रने वरण कियो था, सो हमको ज्ञात होताहै कि, यह भी पुरुषार्थके विषयको कुछ नहीं जानते क्योंकि इन्होंने उन उपेंद्रको त्याग करके उनके द्वारा हमारे पाससे त्रिभुवन माँगा। और स्वयं उनके दास होनेकी प्रार्थना न की, इसलिये जब भगवान् प्रसन्न होवैं तो वहीं उनके निकट दासभावहीकी प्रार्थना करना उचित है।इस त्रिभुवनके गंभीर वेगवान, कालका मन्वन्तर हैं, उसके सामने यह त्रिलोकीका राज्य क्या पदार्थ है ॥ २४ ॥ इसकारण हमारे दादा (प्रह्लाद) ने भगवान्‌से दासपनकीही भिक्षा माँगी थी, जब प्रह्लादके पिता हिरण्यकशिपु मरे तब भगवान् उनको उनके पिताका कंटकहीन राज्यदेनेको उपस्थित हुए थे और उस राज्यके लेलेनेसे कुछ भयकीभी संभावना नहीं थी, तोभी यह भगवान्‌से अलगहै यह विचार करके हमारे दादा प्रह्लादजीने उस राज्यको ग्रहण नहीं किया ॥ २५ ॥ परन्तु हम सरीखे पुरुष कि, जिनके रागादि क्षीण नहीं हुएहैं इससे भला ऐसे लोग जिनपर भगवान्‌की कृपा न हो, कैसे प्रह्लादजीके मार्गानुसार चलनेकी इच्छा न करें ॥ २६ ॥ योगीश्रेष्ठ शुकदेवजी इस प्रकारसे राजा बलिके कुछेक प्रभावका वर्णन करके बोले कि, हे राजन्! बलिका चारित्र हम आगे (आठवें स्कंधमें) वर्णन करैंगे। हे भरत! राजा बलिकी महिमा क्या वर्णन करैं कि अखिलजगत्‌के गुरु भगवान् नारायणजी हाथमें गदा धारण किये उसके द्वारपर आठों पहर द्वारपालकी समान पहरा दिया करते हैं, एक समय दशकंधर रावण राजा बलिके द्वारपर दिग्विजय करनेके लिये आया, तब भगवान् वामनजीने अपने चरणके अँगूठेसे उसको उठाकर दशहजार योजनपर फेंकदिया। परंतु भगवान्‌का हृदय अपने भक्तजनोंपर सदाही दयासे पूर्ण है ॥ ॥ २७ ॥ हे राजन्! सुतल लोकके नीचे तलातल नामक पाताल लोक है जिस प्रकारसे सुतललोकमें भगवान्‌का भक्त, राजा बलि भगवान् हरिका स्थापित किया हुवा सुखसे वास करता है वैसेही मयनामक दानव मायावी दैत्योंका गुरु त्रिपुरका अधिपति जो महादेवजीसे रक्षित होनेके कारण तलातलमें पूजा जाता है। भगवान् त्रिपुरारीजी जब त्रिलोकीका मंगल करनेकी कामनासे प्रथम तो इसके तीनों पुर दग्ध करदिये थे, और पीछेसे उसके प्रति प्रसन्न होगये, उनके प्रसन्न होनेसे यह दानव फिर उनके चरणकमल प्राप्त करके निर्भयहो पूजा जाने लगा ॥ २८ ॥ तलातल लोकके नीचे महातल पाताल लोक है। वहांपर बहुतसे फण धारण करने वाला कद्रूका पुत्र सरोष सर्पसंघ वास करता है, उन सब सर्पोंके मध्यमें कुहक, तक्षक, कालिय, सुषेण इत्यादि मुख्य हैं, उनकी देह अतिशय दीर्घ है, वह सर्प भगवान्‌के वाहन गरुड़जीके भयसे सदा उद्विग्न चित्त होकर रहते हैं और

कभी २ असावधान चित्त होकर स्त्री, पुत्र, सुहृद् और कुटुम्बियोंके संगमें कहीं कहीं विहार करनेको जाया करते हैं ॥ २९ ॥ महातल लोकके नीचे रसातल पाताल लोक है। वहांपर दितिके पुत्र दानवगण और निवातकवच इत्यादिका मेल असुर कुल जोकि हिरण्यकुलमें वास करनेसे देवताओंके शत्रु विख्यात हुए हैं; वह लोग बिलेशय (सर्प) की समान बास करते हैं, यह सब यद्यपि जन्मसेही महाबलवान् और महासाहसी होते हैं,परंतु जिन भगवान्के तेजसे सब लोक देदीप्यमान हैं उस तेजसेही इनके बलका अभिमान टूटता रहता है। वह अबतक इन्द्रदूती सरमाके उच्चारण कियेहुए मंत्ररूप वाक्यसे, देवराज इन्द्रसे भय पाते हैं. इस विषयमें यह इतिहास वेदमें प्रसिद्ध है कि, एक समय असुरलोगोंने देवताओंकी गायें हरण करके छिपा रक्खी थीं,देवराज इन्द्रने उनको खोजनेके लिये सरमा नामक देवताओंकी कुतियाको भेजा, सरमाको देखकर दैत्यलोगोंके मनमें यह शंका हुई कि, कदाचित् देवराज इन्द्रको गायें छिपानेका वृत्तांत ज्ञात होगया,यह समझ उन्होंने संधि करनेके लिये इस सरमासे कहा कि तेरी क्या इच्छा है ? परंतु सरमाकी इच्छा संधि करनेकी नहीं थी वह इन्द्रकी स्तुतिकर दैत्योंको क्रोधसहित वचन कहने लगी। अरे दैत्यो !तुम देवराज करके मारे जाओगे, इसलिये शीघ्र भागो ! तबसे यह सुनकर असुरगण सदा इन्द्रसे डरा करते हैं॥ ३० ॥इति ॥

महातलके नीचे पाताल लोक है, वहांपर वासुकी इत्यादि नागलोगोंके अधिपतिगण, अर्थात् शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त इत्यादि महाफणधारी और महाक्रोधी सर्प वास करते हैं। रसातलके नीचे पाताल नामक सातवां लोक है। उसमें बडे बडे महाकाय और महारोषवाले सर्प रहते हैं। उनका अधिष्ठाता राजा बासुकीनाम नाग है और महाकुलिश, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त, वासुकी सहित यह दश नाग इसमें प्रतिष्ठित गिने जाते हैं। इन सब नागोंमें किसीके पांच मस्तक, किसीके सात, किसीके दश, किसीके शत और किसीके सहस्र शिर हैं। उनके फणोंमें दीप्तिशाली जो बडी बडी मणियें हैं यह सब मणियें अपनी अपनी ज्योतिसे पातालके घोर तिमिरको दूर कर देती हैं ॥ ३१ ॥

सवैया-ज्ञानको भान प्रकाशतहीं, तम दूर भयो प्रगटो उजियारो ॥
तुम मेरे नहीं मैं तेरहूँ केशव, बात यही भलि भाँति विचारो ॥
पानीकी लहर लहरको पानी, आँखन देख लियो भ्रम सारो ॥
निर्भय रामते भिन्न नहीं कछु, या विधि रामको रूप निहारो ॥ १॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे पंचमस्कन्धे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा-शेष सात पाताल तल, थित पचीस अध्याय।
जितने प्रगटे रुद्र जू, प्रलयकालको पाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! पातालकी जडमें तीस (३००००) सहस्रयोजनकी दूरीपर भगवान्की तामसी नाम कला (अंश) जो है उनका नाम अनंत है, सारतत्व

तंत्र निष्ठावाले, अर्थात् भगवद्भक्त उनको संकर्षण कहा करते हैं, संकर्षण कहनेका यह हेतु है कि 'हम' 'हमारा' इत्यादि अपमान जो मायाका चिह्नहै, उस अहंकारके अधिष्ठान द्वारा वह द्रष्टा और दृश्यको खेंचा करते हैं अर्थात् एकमें मिलादेते हैं ॥ १ ॥ हे राजन् ! सहस्रशिरवाले अनंतमूर्ति जो भगवान् शेषजी हैं तिनके एक शिरपर यह अवनिमण्डल सरसोंके दानेकी समान धराहुवा है ॥ २ ॥ जो प्रलयकालमें इस जगत्के संहार करनेकी वासनासे संकर्षण नामक एकादशव्यूहमें रुद्र होते हैं और क्रोधके वश होनेके कारण भ्रमतीहुई मनोहर दोनों भ्रुकुटियोंको टेढी करते तीनशिखावाला शूल हाथमें उठाते हैं ॥ ॥ ३ ॥ जिनके युगलचरणकमलके अरुणवर्णनख मणिमंडलदर्पण स्वरूप होनेसे उनके मध्यम नागपतिगण बड़े बड़े भक्तोंके साथ एकांत भक्तिके सहित नमस्कार करते करते हर्षित मनसे अपने २ वदनके प्रतिबिम्बको अवलोकन करतेहैं. हे महाराज ! नागपति गणोंका वदन वास्तवमें देखनेके योग्यहै, उनके श्रवणमें अतिउज्वल कुण्डल देदीप्यमान रहनेसे उन कुण्डलोंके प्रभामण्डल द्वारा उनकी ग्रीवाँ अतिशय शोभित होतीहैं ॥ ४ ॥ नागराजोंकी कुमारियें अपने अपने कल्याणकी कामना कर लजीले नेत्रोंसे उनके मुखारविन्दको अवलोकन करती हैं ॥ इसलिये शेषभगवान्के वलय विलसित विपुल धवल सुभग और रुचिर भुजरूप जो दो चाँदीके समान स्तंभ हैं; उनमें नागराजकी कन्यायें, सदा अगर चन्दन और कुंकुमका लेप किया करतीहैं, परन्तु उन भुजाओंके स्पर्श करते ही उनके हृदय मथित होजाते हैं और मनोंमें मनोभव जाग उठता है । उस समयमें उनका मन्द मन्द हँसना अतिशय रुचिर और ललित हुआ करताहै. हे भरत ! नागराज कुमारियें भगवान्के जिस वदनको अवलोकन करतीहैं, वह देखनेही योग्य है, क्योंकि वह अनुराग और मदसे सदाही हर्षयुक्त रहताहै और उसी वदनमेंके करुणावलोकन युक्त, दोनों नेत्र सर्वदा मदसे चलायमान और कुछेक रतनारेसे रहते हैं, कैसे वह नेत्रहैं कि,

दोहा-"अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इकबार"॥ ५ ॥

वह अनंत गुणसागर आदिदेव अनंतजी अपने क्रोधके वेगको रोककर सब लोगोंका मंगल करनेके लिये इस स्थानमें विराजमान हैं ॥ ६ ॥ वहांपर सुर, असुर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, उरग और मुनिगण, निरंतर उनका ध्यान करते हैं और दोनों नेत्र मदसे सदा मुदित, विकृत और विह्वल रहतेहैं, वह सुललित वचनामृतसे अपने पार्षद देवतागणोंको सदा तृप्त किया करतेहैं. उनके वसन नीलवर्ण वस्त्र धारण किये, कानोंमें कुण्डल विराजमान, सुभग और सुन्दर दोनों भुजायें हलके ऊपर रक्खी हुई हैं, देवराज इन्द्रका हाथी जिस प्रकार कांचनमय जंजीर धारण करता है, वैसेही शेष भगवान् वैजयन्तीमाला धारण किये हुये हैं, उस मालाकी शोभा क्या कहैं उसमें विमल सुगंधियुक्त मधुरसमें भ्रमरगण मत्त होनेसे उनके मधुगीती चमत्कारी थी श्रीधारी होजातेहैं । शेष भगवान् इस प्रकार पूजन करनेसे और ध्यान धरनेसे मुमुक्षुजनोंके हृदयमें प्रवेश करके उनके अनादिकाल कर्म वास-

नासे गुँथेहुये और उनका देहाभिमान जोकि त्रिगुणात्मकसे रचागया हृदयसे अविद्यासे पूर्ण है उस विकारकी गाँठको शीघ्र खोल देतेहैं, देवर्षि नारदजीने ब्रह्माजीकी सभामें तुम्बरु गंधर्वके साथ उन भगवान्की महिमा जिस प्रकारसे वर्णन की थी ॥ ७ ॥ ८ ॥ यथा इस जगत्की उत्पत्ति इत्यादिका कारण सत्वादि तीन गुण, जिसके कटाक्षसे अपने अपने कार्य करनेको समर्थ हुये हैं। जिनका स्वरूप अनादि और अनंत है जिन्होंने एकमात्र वस्तु स्वरूप होकर आत्मामें अनेक प्रकारके प्रपंच लगादिये हैं उन शेष भगवान्का तत्त्व यह लोक किस प्रकार जान सक्ता है ॥ ९ ॥ जिनसे सत् असत् प्रगट होताहै और जिन्होंने हमसे भक्तजनोंके ऊपर प्रसन्न होकर विशुद्ध सत्वमूर्ति धारण की है अपने भक्त जनोंका मन वशकरनेके लिये जिनकी करी हुई लीलाओंसे महाबलवान् पराक्रमी सिंह शिक्षा पातेहैं, ऐसे परमोदार अनंत बलवान् सहस्रशिरवाले शेष भगवान्को त्यागकर और किसकी आशा करें ॥ १० ॥ जिनका नाम औरके मुखसे सुनकर आरत अथवा पतित मनुष्य अकस्मात् अथवा हँसीसे एकबारभी उच्चारण करलेताहै उस पुरुषके व और सुननेवाले पुरुषोंके अशेष पापोंका नाश कर देताहै, फिर इसके कहनेकी आवश्यकताही क्या है ? कि नाम शुद्धहै। इसलिये मुमुक्षुजन ऐसे भगवान्को छोडकर और किसी पुरुषका क्यों आश्रय करेंगे ? ॥ ११ ॥ अहो जिनके यह सहस्र शिर हैं और उनमेंसे जिनके एक माथेपर नदियें, समुद्र पर्वतसहित समस्त भूगोल परमाणुमात्र स्थिर होरहा है जिनका बिक्रम अनंत और अथोर है सो कौन पुरुष है जो सहस्रमस्तक प्राप्त करके, उन महाकाय, बहुरूप, महावीर्यवान्, परमेश्वरके वीर्यकी गिनती कर सक्ता है ? ॥१२॥ अहो ! भगवान् अनंतजीका ऐसा प्रभाव है, उनके बल और अनुभवका क्या ठिकाना है। परंतु वह ऐसे होकरभी इस पृथ्वीके नीचे विराजमान हो लोकोंके हितार्थ लीलामात्र धरणीको धारण कर रहे हैं, उनका आधार कोई नहीं है यह अपने आपही अपने आधार हैं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा कह फिर राजा परीक्षित्से बोले कि, हे राजन्। हमने जिसप्रकारका उपदेश पाया था वैसेही यह सब वृत्तांत आपसे वर्णन किया, सब लोकोंकी उनके कर्मानुसार गति बनाई गई है। सो सब मनुष्यगण अपने अपने कर्मानुसार प्राप्त किया करते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये पुरुषगण प्रवृत्ति लक्षण धर्म करनेसे उनके फल स्वरूपमें उनकी यह बडी बडी और छोटी छोटी गति प्राप्त हुआ करती हैं तुमने जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसके अनुसारही सब वर्णन हमने आपसे किया, अब इस समय तुम क्या सुना चाहते हो ? सो हमसे कहो। परंतु इस प्रवृत्तिमार्ग में लक्ष्मीके मदमें सब अन्धे हो जाते हैं॥१५॥

दृष्टांत-एक बनिया रसोंई जीमनेके लिये बैठा, तब मूसा थालीके समीप आकर नित्य कूदै, तब बनिया बोला इसके बिलमें कुछ धन है इससे यह कूदै है उसका बिल खोदा तो बीस सहस्र रुपये (२००००) निकले फिर तो मूसेका कूदना बन्द होगया ऐसे ही धन पाकर सब संसार कूदै हैं, निर्धनसे चला भी नहीं जाता, यह बात प्रसिद्ध है ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालिग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा–नरकनको वर्णनकरूं, अब छब्बिस अध्याय।
धर्म दूत जहँ पापियन, देत दण्ड धमकाय॥

अनन्तर राजा परीक्षित् निकट बैठे हुये श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे महाराज! पुरुषकी ऐसी अलग अलग गति क्यों होती है? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! सत, रज, तम, इन तीन गुणोंके तारतम्यके हेतु जो कर्ता हैं उनको विचित्र होनेसे श्रद्धाकी विभिन्नतासे सब कर्म अलग अलग हो जाते हैं। अर्थात् सात्विकी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको परमानन्द और अनेक प्रकार सुख मिलताहै, राजसी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको केवल सुख दुःख दोनों प्राप्त होते हैं और तामसी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको केवल कष्टही भोगना पडता है, और यदि उन श्रद्धाओंमें भेद होवे तब सब प्रकारकी गतियोंमेंभी भेदभाव हो सक्ता है ॥ २ ॥ इस कारणसे अधर्म करनेवालेके तमोगुणमें भेद श्रद्धाका विपरीताचरण कर्मफल होताहै। इसलिये अनादि अविद्याकृत सब कामनाओंको परिमाण स्वरूप वह सहस्र सहस्र प्रकारकी नरककी गति होती है। सो इस समय उनमेंसे प्रधान प्रधान नरकका वर्णन करता हूं आप ध्यान लगाकर सुनिये ॥ ३ ॥ राजा परीक्षित् पूछने लगे कि, हे भगवन्! क्या सब नरक पृथ्वीके मध्यमें हैं क्या कोई देश विदेशमें हैं। और क्या ब्रह्माण्डके बाहिरी भागमें हैं, या ब्रह्माण्डके आभ्यन्तर पृथ्वीके व्यतिरिक्त कोई स्थान हैं? ॥ ४ ॥ शुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! कोई कोई ऋषि कहते हैं कि, त्रिलोकीके मध्यमें दक्षिण दिशाकी भूमिके नीचे और जलके ऊपर जिस स्थानमें अग्निष्वात्तादि पितृलोग वास करके परम समाधिका आश्रयकर अपने अपने वर्णवाले पुरुषलोगोंकी मंगलकामना किया करते हैं ॥ ५ ॥ अपने अथवा जिस स्थानपर पितृपति यमराज अपने गुणोंके साथ अपने स्थानमें आये हुए मृतकगणोंके कर्मानुसार इनके दोषादोषका विचारकर उनको दण्ड देतेहैं वह सब विषयमें किसी अंशसे भगवान्के शासनका उल्लंघन नहीं करते हैं। यहींपर नर्क हैं उन ऋषियोंके मतसे इनकी संख्या इक्कीस है, हे राजन्! मैं तुमसे इन सब नरकोंका नाम, रूप, लक्षण और वृत्तान्त कहता हूं, सो तुम श्रवण करो। महाराज इन इक्कीस नरकोंके यह नाम हैं–यथा–तामिस्र १, अंधतामिस्र २, रौरव ३, महारौरव ४, कुम्भीपाक ५, कालसूत्र ६, असिपत्रवन ७, शूकरमुख ८, अंधकूप ९, कृमिभोजन, १० सन्दंश, ११ तप्तसूर्मि, १२ वज्रकण्टक शाल्मली, १३ वैतरणी, १४ पूयोद १५, प्राणरोध १६, विशसन १७, लालाभक्ष १८, सारमेयादन १९, अवीचि २०, और अयःपान २१, हैं। इनके सिवाय, १ क्षार कर्दम, २ रक्षो गण भोजन, ३ शूलप्रोत, ४ दंदशूक, ५ अवट निरोधन, ६ पर्य्यावर्तन और ७ शूची मुख यह सात नरक और हैं, इस प्रकारसे अट्ठाईस नरक अनेक प्रकारके कष्टके मूल हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे राजन् जो मनुष्य पराया धन, पराई स्त्री और पराया पुत्र हरण करते हैं उनको भयंकर यमराज के गण घोर कालकी फाँसीसे बाँधकर बलात्कारसे तामिस्र नरकमें डाल देतेहैं, इस नरकमें अंधकार ही अंधकार छा रहाहै। उसमें गिरकर पापी भोजन व जल न पाकर और

दण्डके ताडनसे और तर्जना इत्यादि विविध व्यथाओंसे पीडित होताहै, इसलिये आर्त्त होकर शीघ्रही मूर्च्छाको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ जो मनुष्य किसीको छल करके उसकी स्त्री आदि लेकर आप भोग करतेहैं वह अंधतामिस्र नरकमें गिराये जाते हैं। जिस प्रकार वृक्षको गिरानेके लिये उसकी जडको काटतेहैं, वैसेही यमदूत इसप्रकारके पाप करनेवा-लोंको विविध भाँतिकी पीडा देकर इस नरकमें डाल देतेहैं, जो कि इस नरकमें गिरनेसे मनुष्योंकी बुद्धि, स्मृति, व्यथाके मारे भ्रष्ट और नष्ट हो जातीहै, इसलिये ऋषिलोगोंने इस नरकका नाम अंधतामिस्र रक्खाहै॥९॥हे राजन् ! जो मनुष्य इस संसारमें "यह शरीर मैं हूँ और यह धनादि हमारा है" इस प्रकारके अज्ञानमें मोहित होकर प्राणियोंके ऊपर विद्रो-हाचरण करके प्रतिदिन केवल अपना शरीर और स्त्री पुत्रादि कुटुम्बके भरण पोषण करताहै वह मनुष्य इस देह और कुटुम्बको त्याग करके इस पापके कारण वह रौरव नरकमें गिराया जाताहै ॥ १० ॥ हे महाराज ! इस नरकका रौरव नाम क्यों हुआ, सो इसकाभी कारण कहतेहैं तुम सुनो।इस संसारमें लोग जिस जिस प्रकारसे प्राणियोंकी हिंसा करतेहैं,वह अपने किये हुए कर्मके दोष जबसे यमकी यातनाको प्राप्त होतेहैं तब वह सब प्राणी रूरू होकर अर्थात् उनके किये हुए सब हिंसाकर्म रूरू रूप परिणामको प्राप्त होकर उसी भाँतिसे उनको मारते हैं, इसलिये ऋषिलोगोंने इस नरकको रौरव कहाहै। हे राजन् ! जानते हो कि, रूरू किसे कहते हैं, सर्पसेभी अधिक खल भारश्रृंगनामक एक जीव है उसका नाम रूरू है, ॥ ११ ॥ महारौरव नरकभी इसी प्रकारका है, इस संसारमें जो मनुष्य केवल अपनी देहकाही भरण पोषण करते हैं, वह लोग इस महारौरव नरकमें गिरते हैं, वहांपर क्रव्याद नामक रूरूगण मांस ग्रहण करनेके लिये उसको विविध प्रकारकी पीडा देकर विनष्ट करदेते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य इस लोकमें अतिशय उग्र मूर्ति होकर अपने प्राणोंके पोषणार्थ पशु पक्षियोंको जीवितही पाक करते हैं जो कि, यह कर्म अति निर्दयी है, इस लिये राक्षस लोग भी इस कार्यकी निन्दा करते हैं,जो ऐसा पाप करते हैं उनको परलोकमें यमदूत लोग कुम्भीपाक नरकमें डालकर तते तेलमें भूनते हैं ॥ १३ ॥ जो पुरुष पृथ्वीमें ब्राह्मण, पिता और वेदसे विद्रोहाचरण करता है वह कालसूत्र नामक नरकमें गिराया जाताहै, इस नरककी परिधि दश हजार योजनहै उसमें तांबेकी समान गरम भूमि है। ब्रह्मद्रोही इस नरकमें पड़कर ऊपरसे सूर्यकी किरणोंको और नीचेसे अग्निके उत्तापको पाकर संतापित होते हैं। क्षुधा और प्यासके मारे उनकी देह भीतर और बाहरसे दग्ध होतीहै, वह इस प्रकारकी पीड़ासे पीड़ित होकर, कभी गिरपड़ता है, कभी बैठता है, कभी खड़ा होजाता है, कभी चारोंओर भागता फिरता है, पशुओंकी देहमें जितने रोवें हैं, उतनेही सहस्र बर्षतक इस पापीको यह पीडा भोगनी पडती है यह बात ठीकही है कि "अहिंसा परमो धर्मः" कहाभी है कि, दोहा-"दुर्बलको न सताइये, जाकी मोटी हाय। मुई खालकी श्वाससे, सार भस्म है जाय" इस कारण पशुओंका वध न करना चाहिये ॥१४॥ जो मनुष्य विना विपत्ति आये, इच्छानुसार वेद मार्ग छोड देते हैं, और पाखण्ड धर्म

ग्रहण करलेते हैं, यमके दूत उनको असिपत्रवननामक नरकमें लेजाकर कोडोंकी मार लगाते हैं, यह पापी वहांपर प्रहारकी वेदनासे इधर उधर भागता फिरता है, सो भागनेके कारण तालवन और असिपत्र जिनके दोनों तलवारकी धारके समान अनी बनी है । इनके लगनेसे उस पापीके अंग छिन्न भिन्न होजाते हैं । तब वह पापी हाय ! मैं मारा गया, हाय ! मैं मरगया, कहकर अतिशय यन्त्रणा पाय तीव्र व्यथाके मारे मूर्छित हो जाकर पग पग पर गिर पडता है । हे राजन् ! अपने धर्मका त्याग करनेवाला इस प्रकारसे अपने धर्मको त्याग पाखण्डी मत ग्रहण करनेका फल भोगता है, कहाभी है कि "स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"॥१५॥ जो राजा अथवा राजपुरुष (नगरपाल,कोटपाल, इत्यादि दण्ड देनेवाले)विना दण्डके योग्य पुरुषको दण्ड देते हैं,वा ब्राह्मण जातिको प्राणांतक दण्ड देतेहैं वह राजा और राजपुरुषादि अतिशय पापी होते हैं, वह लोग इस पापके करनेसे परलोकके मध्य शूकरमुखनामक नरकमें गिरते हैं. किसान लोग जिस प्रकार गन्नेको कोल्हूमें पेरते हैं,वैसेही इस नरकमें अतिशय बलवान् यम किंकरगण राजा अथवा राजपुरुषके अंगोंका इसी प्रकारसे पिची करते हैं जिससे यह पापी चिल्ला चिल्लाकर अति नाद करते हैं, जिस प्रकार राजा अथवा राजपुरुष निर्दोषी पुरुषको दण्ड देते हैं और उस समय यह मोहको प्राप्त होकर मूर्च्छित होजाते हैं, वैसेही नरकमें राजा और राजपुरुष मोहित और मूर्च्छित होजाते हैं ॥ १६ ॥ परमेश्वरने जिसका ब्राह्मणादि स्वभाव देखकर विधिनिषेधकी व्यवस्था करदी है और परमेश्वरके दियेहुये विवेकके बलसे औरकी पीडा जाननेको जिनकी सामर्थ्य है, वह मनुष्य यदि उन प्राणियोंको कि, जिनकी वृत्ति मनुष्यरक्त पीनेकी ईश्वरने बनाई है, उन खटमल आदि जीवोंको पीड़ा दे या मारडाले, तो इस पापके, करनेसे परलोकके मध्य वह अंधकूपमें डाला जाता है, यह सब प्राणी अर्थात् पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप, मच्छर, जू, खटमल और मक्खी आदि जिस किसी जीवको जो कोई प्राणी मारता है, वह जीव सब चारोंओरसे इस नरकमें उस पापीको मारते हैं, और अंधकारके मारे उस प्राणीको नींद नहीं आती जीव जिस प्रकार पीड़ित शरीरमें रहकर अनेक दुःख भोगताहै, वैसेही यह मनुष्य अंधकारमें पड़ा तड़फता रहता है और कहीं बैठनेका स्थान नहीं पाता कीडे दिन रात काटते रहते हैं ॥ १७ ॥ जो मनुष्य किसी प्रकारकी भोजन करने योग्य उत्तम वस्तु उपस्थित होनेपर विना बाँटे किसीको न देकर अकेला आप खाजाता है और जो मनुष्य पंचयज्ञका अनुष्ठान करनेसे विमुख होताहै। ऋषि लोग उस वस्तुको लोहनिर्मितवस्तुके समान कहकर वर्णन करतेहैं, वह मनुष्य कृमिभोजन नामक नरकमें पडताहै, इस नरकमें एक लाख योजन विस्तारवाला कृमिकुण्ड है, यह मनुष्य उसी कुण्डमें पड़कर, स्वयं कृमीबन, इन,कृमीको भक्षण करताहै,इस प्रकारसे जबतक,उनके काटने और पंचयज्ञ न करनेके प्रायश्चित्त न करनेवाले पापीका पाप क्षय नहीं होता,तबतक उसकी आत्माको वहाँ कष्ट होता रहताहै ॥ १८ ॥ जो मनुष्य चोरीसे अथवा बलसे ब्राह्मणका सुवर्ण या रत्नादि हरण करलेते हैं अथवा विना आपदा आये, किसी पुरुषकी यह वस्तु चुरा लेते हैं तो यमकिंकर

उसका शरीर लोहेके बने हुये तपाये चीमटोंसे तोडते हैं और सन्दंश नामक नरकमें डाल देते हैं.हे राजन् ! इस लोकमें जो पुरुष अगम्या स्त्रीसे गमन करता है वा स्त्री अगम्य पुरुषको भजती है यमके दूत इन दोनों जनोंको निर्दयी हो बराबर कोडोंकी मार दिया करते हैं और पुरुष लोहेकी बनी तपाई हुई स्त्रीकी मूर्तिसे और स्त्रीको लोहेकी बनी हुई तपाई पुरुष की मूर्तिसे लिपटाते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ जो मनुष्य इस कालमें पशु आदिकोंके संग मैथुन करता है, यमदूत उसको नरकमें डालकर वज्रकण्टकयुक्त शाल्मली वृक्षके ऊपर चढा छिन्न भिन्न कर डालते हैं ॥ २१ ॥ इस पृथ्वीमें जो राजालोग अथवा राजपुरुष अच्छे कुलमें उत्पन्न हो धर्मकी मर्यादाको तोड देते हैं,वह सब वैतरणीमें गिराये जाते हैं, वह वैतरणी सब नरकोंकी खाई स्वरूप है, वहां जलजन्तुगण इधर उधरसे इन पापियोंको भक्षण करते हैं, जिससे कि, उनकी आत्मा वियुक्त होकर प्राण निकल जाते हैं, वह पापी लोग अपने अर्थो अधर्मके किये हुये कर्मोंको स्मरण कर करके विष्ठा, मूत्र,पूय,रुधिर, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस, वसा, बहनेवाली उस नदीमें गिरकर सब प्रकारसे संतापित हुवा करते हैं ॥ २२ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें शूद्रोंके पति होकर अपने अपने शौच, आचार और नियमोंको नाश कर देते हैं और निर्लज्ज होकर पशुकी समान इच्छाचारी होकर फिरते हैं वह परकालमें पूय, विष्ठा, मूत्र, श्लेष्मा और कालसे पूर्ण हुए एक समुद्रमें गिर पडते हैं और अति घृणित इन सब वस्तुओंको भक्षण करते हैं ॥ ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस संसारमें जो ब्राह्मणादि वर्ण कुत्ते और गधोंको पालकर उनके स्वामी बनते और शिकारद्वारा विहार करते हुए, शास्त्रके बिना बताये समयमें मृगोंका वध करते हैं, जब ऐसे जनोंकी मृत्यु होती है तब यमदूत लोग उनके लक्ष्य बना बनाकर बाणोंसे वेधा करते हैं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें दंभयुक्त होकर दंभके अर्थ किये हुए यज्ञोंमें पशुगणोंको मारते हैं, वह परलोकके मध्य, वैश-सन नामक नरकमें पड़ते हैं, यमदूत इस नरकमें ऐसे पापियोंको विविध भाँतिकी पीड़ा देकर उनके अंगोंको छिन्न भिन्न किया करते हैं ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इस लोकमें कामके वशीभूत होकर अपनेसे न ब्याही स्वजातिकी स्त्रीमें वीर्य छोड़ता है अर्थात् मैथुन करता है, तो मरे पीछे यमदूतलोग उस पापात्माको वीर्यकी नदीमें गिरा-कर वीर्यही पिलाते हैं ॥ २६ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें चोरवृत्ति अवलम्बन करते हैं, अथवा गृहोंमें अग्नि लगाते हैं, अथवा प्राणनाश करनेके लिये विष पिलाते हैं और जो राजा अथवा राजसेना ग्राम मेलेको लूट लेते हैं, ऐसे मनुष्योंके मरनेके पीछे सात सौ बीस (७२०) संख्यावाले यमदूत श्वानका रूप धरकर अपनी वज्रतुल्य डाढोंसे उनको फाड़ फाड़कर हड्डियोंसमेत चबा जाते हैं ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें गवाही देनेके समय, अथवा न देनेके समय, वा दान देनेके समय, किसी प्रकारसे मिथ्या बोलते हैं तो उन्हें यमके किंकर नीचेको शिरकरके सौ योजन ऊंचे पर्वतके शिख-रसे अति ओछे अवीचिमतिनाम नरकमें डालते हैं । हे राजन् ! अवीचिनाम नरकका वृत्तांत

कहते हैं-सो तुम सुनो कि जहाँपर पाषाणकी पृथ्वीभी जलकी समान जान पड़ती है इसलिये उस नरकका नाम अवीचि नियत किया है, यमदूत उन पापियोंको उस नरकमें डालते हैं तो उनके शरीरकी किरच किरच होजाती हैं, तोभी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते और फिर उस पापीको पर्वतके उपर लेजाते हैं और वहांसे इसको इस नरकमें डालदेते हैं, इसी प्रकारसे अनेक भाँतिकी पीड़ा देतेहैं ॥ २८ ॥ हे राजन्! इस लोकमें जो ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय सुरापान करे, वा और कोई मनुष्य जो कि नियमसे रहता हो और क्षत्रिय अथवा वैश्य यज्ञार्थ सोमपान करके फिर अज्ञानतासे मद्यको पीता है, यज्ञके देवता लोग ऐसे पापियोंको नरकमें लेजाते हैं और उनकी छातीपर लात मारते हैं और अग्निके संयोगसे पिघलाया हुवा कृष्णवर्णका लोहा उनके मुखमें पिलाकर सब शरीरमें छिड़कते हैं ॥ २९ ॥ हे राजन्! इस लोकमें अधम पुरुष जो अपनेको बड़ा कहकर अहंकार करते हैं. तपस्या, विद्या, सदाचार, वर्ण और आश्रम आदि द्वारा श्रेष्ठपुरुषोंका आदर सन्मान नहीं करता वह जीवितही मृततुल्य रहता है और मरनेके पीछे परलोकमें वह क्षारकर्दममय नरकमें नीचेको शिर करके गिरता है, और अशेष यातना पाता है ॥ ३० ॥ जो पुरुष इस लोकमें और दूसरे पुरुषको मारकरके उसको भैरवादि देवताके यज्ञमें होम देते हैं और जो स्त्री पुरुष उस बलि दिये मनुष्यके वा पशुके मांसको खाते हैं वह निहत मनुष्य और पशु परकालमें तमोरूप राक्षस होजाते हैं और जिस प्रकार इन सव मनुष्योंने पहले इनको भक्षण करके नृत्य कियाथा, वैसेही यह यमसदनमें उन समस्त पुरुष स्त्रियोंको कसाइयोंकी समान इनका शरीर अस्त्रोंसे छिन्न भिन्न करते हैं और हर्षसहित उनका शोणित पान कर करके नृत्य करते रहतेहैं॥३१॥जो मनुष्य इस लोकमें विना अपराध प्राणियोंको ग्राममें अथवा वनमें विश्वासके उपायोंसे विश्वास दिलाकर शूल व डोरी आदिसे बाँधतेहैं और जीवनकी रक्षा चाहनेवाले इन सव प्राणियोंके खिलौनेकी समान समझ कर उनके साथ निर्दयीपनेके खेल करके अनेक प्रकारकी यातना उनको देते हैं, उनको मरनेके पीछे परलोकमें शूलादि यमयातनासे छिन्न भिन्न देह और क्षुधा, तृषासे मरना पड़ता है और कौए, बटेर इत्यादि भयंकर चोंचधारि पक्षिगण उनको इधर उधरसे आघात करते हैं, तब वह पापी जीव विषादित और आर्त होकर अपने किये हुये पापोंका स्मरण करते हुये उसके लिये पछताते हैं ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य राक्षसोंकी तुल्य उग्र स्वभाव हो इस लोकमें प्राणियोंको व्याकुल करते हैं, वह परकालमें दन्दशूकनामक नरकमें गिरतेहैं। हे राजन्! वहाँ पंचमुख और सप्तमुखवाले राक्षस उनको चूहेकी समान धारण करके निगल जाते हैं ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें अंधकारमय गढे, कोठे और गुहादिकोंमें प्राणियोंको वंद करके यातना देते हैं, वह लोग परलोकमें इन ऊपर कहे-हुये सव स्थानोंमें आपही बंद होजाते हैं और विष सहित अग्नि और धुवेंसे महापीडाको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें गृहस्वामी हो, अतिथि और अभ्यागतको

देखकर क्रोध करता है और रोषके वश हो मानों टेढी आँखसे उनको दग्धकरता हुवा देखता है। वह मनुष्य परलोकके विषे नरकमें गिरता है और इस पाप दृष्टिवाले मनुष्यकी दोनों आँखें वज्रतुल्य चोंचवाले कंक, बटेर, गीध इत्यादि पक्षीगण बलसे निकाल लेते हैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें धनके गर्वसे "हम श्रेष्ठ हैं" इस प्रकारका अभिमान-कर टेढी दृष्टि करते हैं और सबकेही प्रति यह शंका करनेते कि, यह धन हरण कर-लेगा, धनको व्यय होनेके कारण नाश होनेकी चिंतासे जिनका वदन सदा शुष्क रहता है। इसलिये वह किसी प्रकारसे सावधान नहीं रह सकते हैं, बरन् वह पहरेदारकी समान धनकी केवल रक्षा किया करते हैं, जो मनुष्य इस प्रकारसे धनके इकठ्ठा करनेमें, बढानेमें और केवल उसकी रक्षाकरनेमेंही अपने मनको लगाता है, सो ऐसा करनेसे वह पापी होकर परकालमें सूचीमुख नरकमें गिरता है, वहाँ उस धनके लालची पापी पुरुष यमके दूत, दरजियोंकी समान सब भाँतिसे सर्वांगको विद्ध करके डोरीमें पोहते हैं ॥ ३६ ॥ हे पृथ्वीपते! यमालयमें इस प्रकारके सहस्रों नरक हैं, यहाँपर जिन जिन पापियोंका वृत्तान्त कहा, वह सबही इन सब नरकोंमें प्रवेश करते हैं। हे भूपाल! जिसप्रकार पापकारी लोग इन ऊपर कहे हुये नरकोंमें गमन करते हैं, वैसेही धर्मके आचरण करनेवाले अपने अपने कर्मोंके अनुसार स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होते हैं, परंतु जिन सब पुरुषोंके भोग धर्म और धर्मका अंत होता है, वह लोग फिर जन्म ग्रहण करनेके लिये मृत्युलोकमें आकर प्रवेश करते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन्! निवृत्ति स्वरूप जो धर्मका मार्ग है, वह पहलेही "दूसरे स्कंधमें" मैंने आपको सुनादियाहै और सब पुराणोंने जो इस भुवनकोषको चौदह प्रकारसे कल्पना कियाहै, वह सब प्रकारसेहैं कि जैसे हम वर्णन कर आये हैं, यही महापुरुष भगवान् वासुदेवकी मायाके गुणोंका स्थूलरूप है, इसका विवरण जो पुरुष आदर सहित पढ़ता और श्रवण करता है, श्रद्धा और भक्तिसे उनकी बुद्धि विशुद्ध होजाती है और वह भगवान् परमात्माके गूढ उपनिषद् संबंधीय विषय जान सक्ते हैं ॥ ३८ ॥ इसलिये यती लोगभी भगवान्के स्थूल सूक्ष्म रूप यथावत् श्रवण करके स्थूल विषयोंकी चिन्ता करते हुए आत्माको जीतकरके फिर बुद्धिद्वारा क्रम क्रमसे सूक्ष्म विषयमेंभी स्थापन कर लेतेहैं॥ ३९॥ शुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! पृथ्वीके मध्यमें द्वीप, वर्ष, पर्वत, नदी, समुद्र. आकाश, दिक्, नक्षत्र, पाताल, नरक इत्यादिकी लोकरचना जिस प्रकारसे हुई है, सो तुमसे सबही हमने वर्णन की, यह समस्त लोकरचना भगवान् ईश्वरका वह स्थूलशरीर है जो सब जीव समूहोंका आश्रय है ॥ इस बातपर एक कवित्त है ॥ ४० ॥

कवित्त-भक्तजन निज निज भावनाके अनुसार, सभी न्यारे न्यारे रूप रामके सँभारैंहैं। मुनिजन सच्चित आनंदरूप रामहीको, प्रगट प्रलय चिन्त्य हदैमें विचारैंहैं ॥ योगीजन प्राणनको धारकै कपाल माहिं, रामको प्रकाश त्रिकुटीमें हू निरारैंहैं। ज्ञानी जन रामहीको रूप लखैं सर्व

और, नाना नाम रूपनकी कल्पना विडारैं हैं ॥ १ ॥ कोटि कोटि यत्ननतें छूटै नाहिं जन्म मृत्यु, एक रामनाम सो तो बन्ध सबै टारै है । कोटि कोटि मंत्रनसे अन्तस न शुद्ध होत, रामहीको नाम एक कलिमलजारै है ॥ कोटि कोटि वस्तु पाय तृष्णा नहिं दूर होत, एक रामनाम सर्व तृष्णाको विदारैहै । कोटि कोटि देवनके ध्याये नहिं राम मिलैं, राम हीके ध्याये निभैं रामको निहारै है ॥ २ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे मुरादाबादनिवासि सुप्रसिद्धविद्वद्वरमाथुरवंशि-श्रीशालिग्राम-वैश्यविरचिताष्टाविंशति-नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इति पंचमस्कंध समाप्त ।

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा।

षष्ठस्कन्ध ६.

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय-बम्बई.
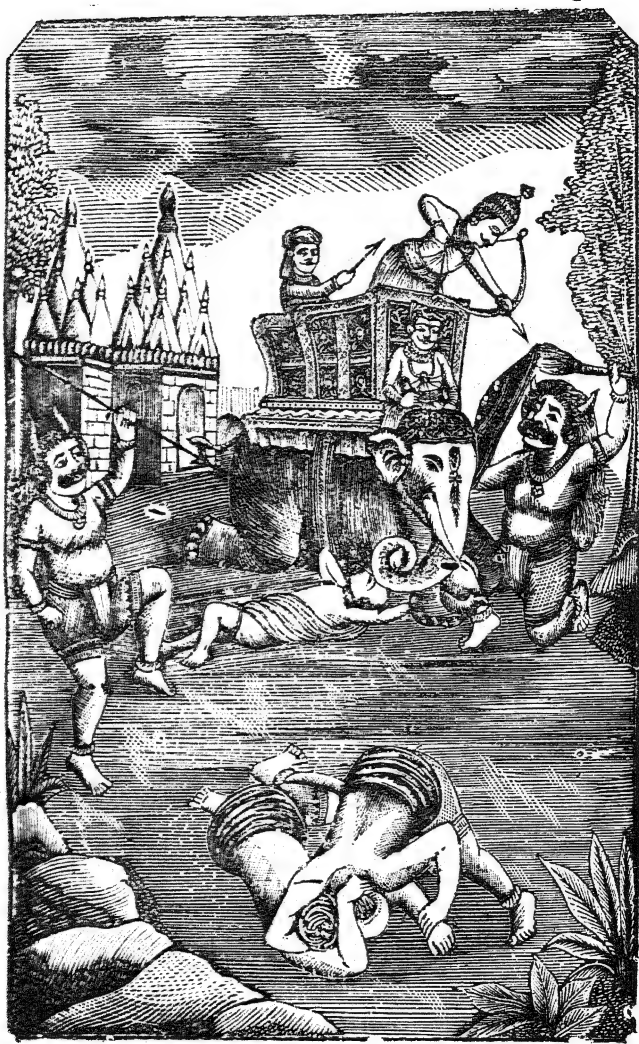
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

षष्ठ स्कन्ध ६.

दोहा-विघ्न हरण मंगल करण, सोहत हाथ त्रिशूल।
विद्यावरदायक सदा, सिद्धि सदन सुख मूल ॥ १ ॥
कृष्ण चरण कोमल अमल, सकल सिद्धि दातार।
तिनकी रज अज शीशधर, रचत भुवन दशचार ॥ २ ॥

कवित्त-लसत अमंद मंद हँसत मुखारविन्द, सोहै पटपीत और उर वनमाल है । बाँये हाथ बाँसुरिया दायेंमें लकुट लिये, पाँयनमें घुँघुरू औ अलबेली चाल है ॥ अलकैं अमोल लोल कुण्डल कपोल गोल, मौलि मोर पंखनको शीशपै विशाल है । कोटि मनमथनके मनको मथनहारो, व्रजमें उत्पन्न भयो नंदजीको लाल है ॥ १ ॥

दोहा-पहिलेमें हरिभृतनने, पापी लीन छुडाय।
यमदूतन यमराजसे, कही कथा सब जाय ॥

राजा परीक्षित् योगिवर श्रीशुकदेवजीसे विनय सहित वाणीसे फिर पूछने लगे कि, हे भगवन् ! आप प्रथम (द्वितीय स्कन्धमें) निवृत्तिमार्ग यथावत् कह आये हैं जिसके क्रमसे

अर्चिरादि लोकको प्राप्ति होकर फिर उससे ब्रह्माके लोककी प्राप्ति होती है और उसीसे ब्रह्माजीके संग मोक्ष होजाताहै ॥ १ ॥ हे मुने ! दूसरा प्रवृत्तिरूप जो मार्ग है स्वर्गादि-सुखही जिसका साधन है और प्रकृतिके लय न होनेसे जो पुरुषका वारंवार भोगार्थ देहारंभ स्वरूप है, वहभी आप पीछे (तीसरे स्कन्धमें) वर्णन कर चुकेहैं ॥ २ ॥ और अधर्म स्वरूप जो अनेक प्रकारके नरक हैं उनकाभी वर्णन आप करही चुकेहैं और मन्वन्तरकी व्याख्या आपने कहीही है; जिसमें स्वायम्भुव मनु प्रथम हुये ॥ ३ ॥ इसके पीछे आपने प्रियव्रत और उत्तानपाद राजाका वंश और उनका चरित्रभी वर्णन किया और द्वीप, खंड, समुद्र, नदी, पहाड, उद्यान, वृक्षादिकोंभी स्थिति आपने कही ॥ ४ ॥ पृथ्वीमण्डलकी स्थिति, भाग, लक्षण, प्रमाण, ज्योतिषचक्र और भूमिके विवर जिस प्रकार ईश्वरने रचे, उन सबकी आपने व्याख्या की ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! अब वह मनुष्यगण जिस उपायसे घोर कठोर विविध भाँतिकी पीडाओंके आधार नरकोंको प्राप्त न हो सकें सो इस समय अनुग्रह करके वही कथा आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जो पुरुष शरीर अथवा मन वचनसे कोई पाप करके इस लोकमें उनका प्रायश्चित्त मनुआदि ऋषीश्वरोंके कहे अनुसार नहीं करतेहैं, तो जिन नरकोंके नाम प्रथम कहेगये हैं और जिनमें घोर पीडा विद्यमान रहतीहैं मरनेके पीछे वह पुरुष निःसंदेह उन नरकोंमें पडतेहैं ॥ ७ ॥ इसलिये मरनेसे पहलेही जीतेपर जितनी विपत्तियोंसे बचा जाय तबतक मनको नियमित रखकर पापोंसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करनेको यत्न करना उचित है, नहीं तो अधिक समय बीत जानेसे दुगुना प्रायश्चित्त करना होगा। जैसे सब रोगोंके निदानका जाननेवाला वैद्य जिसप्रकार रोगका भारी और हलकापन विचारकर वात, पित्त, कफकी न्यूनाधिकता देखकर चिकित्सा करताहै, वैसेही छोटा बडा पाप विचारकर उसके समानही प्रायश्चित्त करना ठीक है ॥ ८ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! पाप करनेसे राजा दण्ड देता है, यह तो प्रत्यक्षही है, इसके अतिरिक्त पाप करनेवाले नरकमें गिरते हैं, यह शास्त्रोंमें सुनाही है, इससे जाना गया कि, स्पष्टही पाप अपना अहितकारी है, परन्तु ऐसा जान बूझकरभी प्रायश्चित्त करनेके पीछे पुरुष विवश होकर फिर पाप करतेहैं, इसलिये द्वादश वार्षिक व्रतादिकोंको किस प्रकार प्रायश्चित्त कहकर गिन सकें. क्योंकि इनसे मूल सहित दोषकी निवृत्ति नहीं होती ॥ ९ ॥ दूसरे कभी प्रायश्चित्त करके पापसे निवृत्ति पाता है, कभी फिर वैसाही पाप करता है । इसलिये यदि एकवारही पाप जड मूलसे न उखड गया तब तो अवश्यही नरकमें गिरना होगा, जब यह प्रमाण पायागया तब फिर प्रायश्चित्त करनेका प्रयोजनही क्या है ? हम समझते हैं कि, ऐसा पाप हाथीके नहानेकी समान व्यर्थ है. क्योंकि हाथी स्नान करने उपरान्त फिर अपनी देहको धूरिसे जैसा मलीनकर लेता है, वैसेही मनुष्य प्रायश्चित्त करकै यदि फिर पाप करै तौ फिर भी उसको नरकमें पडनाही होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कर्मसे कर्मका विनाश नहीं होता और चान्द्रायणादि जो प्रायश्चित्त

हैं उनसे इस प्रकारकी वाञ्छा नहीं की जासकती कि, इनसे एकबारही पापका मूल सहित नाश होजायगा। क्योंकि इन सब प्रायश्चित्तोंके अधिकारी अविद्वान् लोग हैं, उनकी अविद्याका नाश होनेपर प्रायश्चित्तसे एकबार पापका क्षय होनेपरभी संसारके वश फिर वह लोग दूसरे पाप करने लगते हैं. हे राजन्! यदि तुम पूँछो कि, मुख्य प्रायश्चित्त क्या है? तो इसका उत्तर यहहै कि, ज्ञानही मुख्य प्रायश्चित्त है ॥ ११ ॥ परन्तु नित्य सावधान होकर यत्न करनेसे क्रमक्रमसे यह ज्ञान प्राप्तकिया जा सकता है, यह नहीं कि एकबारही प्राप्त होजाय। जैसे कोई नित्यही केवल पथ्यसे अन्नही भोजन करै तो धीरे धीरे उसको सतानेके लिये सब व्याधि असमर्थ होजायँगी ॥ ऐसेही नियम करनेवाला पुरुषभी क्रम २ से ब्रह्मज्ञानके जाननेको समर्थ होजाताहै ॥ १२ ॥ इस कारण धर्मज्ञ वीरपुरुष श्रद्धायुक्त होकर तप (मन और सब इन्द्रियोंकी एकाग्रता) ब्रह्मचर्य शम (मनको रोकना) दम (बाहरी इन्द्रियोंको रोकना) दान, सत्य, शौच, यम, (अहिंसा अथवा नियम जपादि) से मन, वचन, कार्यके किये हुये बडे बडे पापोंकेभी संपूर्ण नाश कर देते हैं। जैसे अग्नि बाँसोंके वनको जला डालतीहै ॥ १३ ॥ इसलिये ऐसाही प्रायश्चित्त मुख्यहै, परन्तु इसके अतिरिक्त औरभी प्रायश्चित्त हैं । अर्थात् वासुदेवपरायण कोई २ जन केवल भक्तिहीसे अपने समस्त पापोंको उखाडकर फेंक देते हैं, जैसे सूर्य भगवान्की किरणोंसे कुहरके अन्धकारका नाश होजाता है ॥ १४ ॥ हे कौरवराज ! यह भक्तिमार्ग ज्ञान मार्गसेभी अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि पापी पुरुष भगवान्में मन समर्पण करके भगवद्भक्त पुरुषोंकी सेवामें मन लगानेसे जिस प्रकार पवित्र होसक्ता है, वह तपस्यादिक करनेसे ऐसा पवित्र कभी नहीं होसक्ता ॥ १५ ॥ इसलिये इस लोकमें भक्तिमार्गही सबसे उत्तम मार्ग है और परमकल्याणदायक है, इस मार्गमें किसी प्रकारके विघ्नादिकीभी सम्भावना नहीं; हे सुशील, दयालु, निष्काम और नारायणपरायण साधु लोग इस मार्गमें नित्य वर्तमान हैं इसी कारण ज्ञानमार्गके समान दूसरा मार्ग नहीं; क्योंकि इस मार्गसे किसी प्रकारका भय और खटका नहीं ॥ १६ ॥ हे राजेन्द्र ! एक भक्तिही निरपेक्ष होकर पवित्र करनेको समर्थ है, कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त भक्तिके विना स्वयं पवित्र नहीं कर सक्ते । जिस प्रकार नदियां मदिराके घटोंको पवित्र नहीं कर सक्तीं। वैसेही बडा भारी प्रायश्चित्त किये जाने परभी नारायणसे विमुखहुये पुरुषको कोई प्रायश्चित्त शुद्ध नहीं कर सक्ता ॥ १७ ॥ भक्ति चाहै बहुत थोडीभी हो परन्तु पवित्र करनेको वहभी भली भाँति समर्थ है। इसका प्रमाण देखो जो पुरुष भगवान्के पादारविन्दोंमें एकबार किंचिन्मात्रभी अपना मन लगा देते हैं। इस एक बारके मन लगानेसे उनका मन भगवान्में केवल अनुरागी होजाता है कुछ ज्ञानयुक्त नहीं होता, तथापि यम अथवा फांसी हाथमें लिये हुये यमदूत स्वप्नमेंभी उस पुरुषको नहीं दिखाई देते। क्योंकि भगवान्में केवल एकबारही मन लगानेसे उन करके सब प्रायश्चित्त आपही होजाते हैं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इस विषयमें अनेक लोग एक पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। विष्णुदूत और यमदूतोंके संवादोंमें यह इतिहास बनाया

गया है, सो हम उसको कहते हैं तुम श्रवण करो ॥ १९ ॥ हे राजन् ! कान्यकुब्ज देशमें अजामिल नामक एक ब्राह्मण दासीका पति हुवा था, सर्वदा दासीकी संगतिसे दूषित होनेके कारण उसके सब सदाचार विनाश हो गये थे ॥ २० ॥ वह ब्राह्मण बंधुओंके पकडने, जुआ खेलने, दाँव लगाने ठगाई और चोरी इत्यादि निंदनीय जीविका क्रिया करता और उससेही अपने कुटुम्बका पालन पोषण करता, इस कारण उस अजामिलसे सदाही मनुष्योंको क्लेश पहुँचा करता था ॥ २१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार निन्दित कर्मोंसे स्त्री पुत्रादिकका भरण पोषण करता रहता, कालक्रमसे उस ब्राह्मणका परमायु संबंधि बडाभाग निकल गया अर्थात् उसकी अवस्था अट्ठासी वर्षकी होगई ॥ २२ ॥ इसलिये उसकी वृद्धावस्थातक उसके दश पुत्र उत्पन्न हुए, उन पुत्रोंमें सबसे छोटेका नाम नारायण था सबसे छोटा बालक होनेके कारण वह पुत्र पिता माताका अति प्यारा हुवा ॥ २३ ॥ वह जरा अवस्थाको प्राप्त हुवा अजामिल मधुर बोलनेवाले उस बालकमेंही प्रेम लगाकर सदा उसका खेल और कौतुक देखकर आनन्द पाता था ॥ २४ ॥ स्नेहके वश होकर भोजनके समम अथवा जल पीनेके समय उस बालकको संग लेकर भोजन पान करता और अनेक अनेक प्रकारके लाड लडाता. इस प्रकारसे सदा छोटे पुत्रमेंही मन लगा रहनेसे कालके वश हो काल जो अपने निकट आता जाता था, उसको वह अजामिल नहीं जान-सका ॥ २५ ॥ हे राजन् ! अज्ञानी अजामिल जीतेहुये इस प्रकारकी दशामें वर्त्तमान था जब उसका मृत्युसमय उपस्थित हुवा तबभी उसने नारायणनामक अपने छोटे पुत्रहीमें मन लगाया और नारायणही नारायण वारम्वार मुखसे कहता ॥ २६ ॥ मृत्युके समय अजामिलने देखा कि अतिशय भयानकरूप, महाभयंकर वदन, रोम जिनके उठेहुये तीन यमदूत भूतकी समान फाँसी हाथमें लियेहुए सामनेसे आरहे हैं उनकी इच्छा यही थी कि, अजामिलको यमपुर लेजाँय ॥ २७ ॥ ऐसे यमदूतोंको देखकर अजामिल अतिशय व्याकुल हुवा और कुछ दूर अपना नारायण नामक जो परमप्यारा दुलारा अपने खिलौनेको लिये हुये खेल रहा था, उसको झीनी वाणीसे पुकारने लगा कि हे नारायण ! हे नारायण ! इन यमदूतोंसे मुझे बचा ॥ २८ ॥ हे महाराज ! अब आश्चर्यका वृत्तान्त सुनो । मृत्युके समय अजामिलके मुखसे नारायण नामका कीर्तन सुनतेही भगवान् विष्णुके पार्षद तुरन्त उसके निकट आनकर उपस्थित हुये । विष्णुदूतोंके अचानक आनेका कारण यह हुवा कि उन्होंने विचारा कि, यह पुरुष अंत समयमें हमारे स्वामीका नाम लेरहाहै ॥ २९ ॥ बस नारायण नाम पुकारतेही विष्णु भगवान्‌के पार्षद अजामिल की आत्मा उसके हृदयसे खैंच ग्रहण करते हुये और यमदूतोंको बलात्कार निवारण करके बोले कि तुम लोग इसको मत छूना ॥ ३० ॥ हे महाराज ! धर्मराजके दूतोंको अजामिलके ग्रहण करनेसे जब रोका तब महाक्रोध करके उन सुन्दर विष्णुदूतोंसे बोले कि, तुम कौन हो जो हमको धर्मराजकी आज्ञा पालन करनेसे रोकते हो ? ॥ ३१ ॥ तुम किसके दूत हो ? यहां कैसे आये ? और किसलिये इस दुराचारी पापीको यमपुरमें लेजानेसे रोकते हो ? तुम देवताहो ? या उपदे-

वता हो ? प्रधान हो ? वा सिद्ध हो ? ॥ ३२ ॥ हम लोगोंने तुम्हारा परिचय नहीं पाया, इसलिये तुम हमारे इन वचनोंको सुनकर क्रोध न करना, हम तुम्हारे सबकेही लोचन कमलदलकी समान देखते हैं, आप सब लोग रेशमीन पीताम्बर धारण किये कुंडल पहिरे और गलेमें फूलोंकी माला विराजमान है ॥ ३३ ॥ सबही नवीन अवस्थावाले, चतुर्भुज धारे धनुष, तूणीर, कृपाण सँभारे, शंख, चक्र, पद्म और गदा हाथमें लिये ॥ ३४ ॥ अपने चमत्कारकी कान्तिसे सब लोकोंकी दिशाओंका अंधकार हरने वाले और संसारमें अपने प्रभावका प्रकाश करने वाले आप धर्मराजके अनुचर होकर हमको क्यों निषेध करते हो और इस पापीको यम पुर क्यों नहीं जाने देते ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब यमदूतोंने ऐसा कहा तब भगवान्के आज्ञाकारी पार्षद विचारने लगे कि, इन लोगोंको दण्डादण्डका ज्ञान नहीं है निःसंदेह यह लोग तस्कर हैं, हमारे भयसे भीत होकर यह अपने आपको यमराजका किंकर बताते हैं इसलिये विष्णुके दूत क्षणकालतक विस्मय रहे फिर हँसकर मेघसम, गंभीर वचनोंसे उनको उत्तर देते हुये ॥ ३६ ॥ विष्णुके दूत बोले कि, हे पाशधारी पुरुष गण ! तुम लोग धर्मराजके कैसे दूतहो ? हम तुमसे धर्मविषयका प्रश्न करते हैं ? बतलाओ तो कि धर्मका लक्षण और प्रमाण क्या है ? ॥ ३७ ॥ और दंड प्राणियोंको किस प्रकार दिया जाता है ? और दंडका वांछित विषय क्या है ? और जो लोग दंडनीय होते हैं,उनके क्या कर्म हैं क्योंकि मनुष्य ही कर्म किया करते हैं पशु आदि तो कर्म नहीं करते, कर्म करनेवाले मनुष्योंमेंसे किस किसको दंड मिलताहै ? ॥ ३८ ॥ यमदूतोंने उत्तर दिया कि, जो वेदविहित है अर्थात् जिसका प्रमाण वेदमें पाया जाता है वही धर्म है और जो उसके अविहित है, अर्थात् वेदोंसे निषिद्ध है, वही अधर्म है।इसलिये विधिनिषेध स्वरूपमें धर्माधर्मका प्रमाण वेदही हुआ है. हे देवगण! वेदका प्रमाण क्या है?ऐसा आशंका नहीं की जा सक्ती,क्योंकि वेद नारायणसे उत्पन्न और साक्षात् नारायण स्वरूप है और यह वेद परमेश्वरके निश्वास मात्रसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये वह स्वयम्भू नामसे सुने जाते हैं ॥ ३९ ॥ यदि कोई कहै कि नारायण कौन है तो सुनो जिन्होंने अपने स्वरूपमें सात्विक, राजस, तामस, गुणमय सब प्राणियोंको शास्त्रत्वादि गुण ब्राह्मणादि नाम अध्ययनादि क्रिया और वर्णप्रमादि रूपसे यथावत् विभाग किया है, वही नारायण है ॥ ४० ॥ हे देवगण ! अधर्मभी नारायण काही किया हुवा है, क्योंकि उन्होंने स्वयं, अग्नि, वायु, आकाश, देवता, चंद्र, सूर्य, संध्या, दिन, रात, दिग्, जल, पृथ्वी और धर्म इन सबको बनाया है । यह सब जीवोंके आचरणोंकी साक्षी देते हैं ॥ ४१ ॥ इसलिये ऊपर कहेहुये सूर्यादिसे जिस प्रकार धर्म जाना जाता है, वैसेही अधर्मभी जान लिया जाता है वह अधर्महीं दण्डका स्थान है, परंतु दंडपानेके योग्य जीव जिनका जैसा जैसा अपराध होता है, उसको यथाक्रमसे वैसा ही दंड मिलता है ॥ ४२ ॥ हे पापरहित देवगण ! कर्मी पुरुषोंसे अच्छे बुरे दोनोंही कर्म होने संभव हैं क्योंकि उनको गुणोंका संग सदा बना रहता है हाँ यदि कोई शरीर सर्व

भाँतिसे कर्मशून्य होय, तवही उससे अशुभकर्म नहीं बन सक्ता परन्तु ऐसा प्राणी कहाँ जो देहधारी होकर कर्म न करता हो ऐसा प्राणी कहीं नहीं है इसलिये समस्त कर्म करनेवालोंको पाप अवश्यही होता है। इससे जाना गया कि सवही कर्म दंडके योग्य हैं ॥ ४३ ॥ फिर जो जीव इस लोकमें जितना धर्म अथवा अधर्म बटोरता है। वह स्वयं परलोकमें उस प्रकारसे ही उतना फल अवश्यही भोग करता है, अर्थात् धर्मानुसार जिस प्रकार उसको सुख मिलता है। वैसेही अधर्म करनेसे दंडको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ हे देवप्रवर गण! इतनाही नहीं कि, केवल सूर्यादिही धर्माधर्मके देखने वाले और प्रकाशक हैं, नहीं वह युक्तिसेभी जानलिया जाता है अर्थात् इस जन्ममें शांत भावसे, घोर भावसे मूढपन अथवा सुखसे वा दुःखसे और सुख दुःखके मेल इत्यादिकसे गुणकी विचित्रताके हेतु सब प्राणियोंको जिस प्रकार त्रिविध देखा जाता है और जन्ममेंभी यह वैसेही हो सकते हैं परन्तु धर्म अधर्मके विना इस प्रकारका त्रिविध संभव नहीं। इसलिये वह अनुमानसे सिद्ध होता है ॥ ४५ ॥ औरभी वर्तमान वसंतादि काल जिस प्रकार अतीत अनागत, वसंतादिकालके समस्त गुणोंके (फूल फलोंके) जताने वाले होते हैं, वैसेही विद्यमान जन्मभी भूत भविष्यत जन्मके धर्माधर्मका बतलानेवाला होताहै ॥ ४६ ॥ हे देवगण! ऊपर लिखे हुए नियमके अनुसार धर्माधर्मका ज्ञान और सब जीवोंको होताहै। परन्तु हमारे स्वामी धर्मराज अपनी पुरीमें बैठे२अपने मनसेही सब जीवोंका पूर्वरूप अर्थात् धर्माधर्म विशेष रूपसे देखलेते हैं, फिर अपूर्व प्रकारसे अर्थात् जो जिसके योग्य होताहै, उसका वैसाही विचार किया करते हैं, वह भगवान् और अज हैं, इसलिये उनका इस प्रकारसे करना कुछ असंभव नहीं है ॥ ४७ ॥ हे महाशयो! जीव अज्ञानी अविद्याओंसे ग्रसा हुआ है। और भाग्याधीन कर्मोंसे लिप्त जो यह वर्त्तमान देहहै यह इसकीही उपासना करताहै अर्थात् इस देहकोही आत्मा समझताहै, पूर्व अथवा अपरको कुछभी नहीं मानता इस कारण उसको पूर्वजन्मोंकी स्मृति भूलजाती है। जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नवाले शरीर कोही सत्य समझताहै जाग्रत् शरीरको वा स्वप्नसे प्रथम शरीरको कुछभी नहीं समझता, वैसेही पूर्व जन्म होनेपर पिछले जन्मका वृत्तान्त यह प्राणी कुछभी नहीं समझता ॥ ४८ ॥ यह जीव हस्तादि पाँच कर्मेन्द्रियोंसे पांच कर्म करताहै और श्रोत्र इत्यादि पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसे शब्दादि पांच विषय जानताहै। अधिक करके षोडशपदार्थ जो मनहै उसके साथ मिलकर सत्रहवाँ स्वयं जीव होताहै, परन्तु यह जीव आपही षोडश उपाधिके अंतरमें हो सब इन्द्रियोंके विषयका खोज करनेसे अकेलाही कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मन इन तीनोंके सब विषयोंका भोग करता है ॥ ४९ ॥ हे देवप्रवरनिकर! सोलह कलायुक्त शरीर और सत, रज, तम, इन तीन गुणोंके कार्यकी तीन शक्ति यह अनादि हैं, यह इस जीवको केवल वह स्मृति उत्पन्न करादेती हैं। जिस्से हर्ष, शोक, भय और पीडाही विद्यमान हो जाती हैं ॥ ५० ॥ हे देवश्रेष्ठ! सकल यह जीव अज्ञानी है और इसने काम क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्षा, यह (६) छैः वर्ग नहीं जीतेहैं, उसको यद्यपि कुछ कर-

नेकी इच्छा नहीं होती, तोभी लिंगशरीर उसको कर्म करताहै, इसलिये कोशकार नामक कीडेकी समान (रेशमका कीडा) जो अपने पूरे हुए रेशममें आपही लिपटकर मरजाता है यह जीवभी अपने किये कर्मोंसे आपही ग्रसकर मुग्ध हो जाताहै अर्थात् अपने निकलनेका कुछभी यत्न उससे नहीं होसक्ता ॥ ५१ ॥ यदि कहो कि इसका प्रमाण क्या है, कि लिंगशरीर जीवको कर्म कराताहै, तो इसका उत्तर यह है कि अनुभवही इसका प्रमाण है क्योंकि प्रगट देखा जाताहै कि कोई पुरुष एक क्षणभरके लियेभी निष्कर्मा होकर नहीं रहसक्ता, सबही बेवश होकर पूर्वकृत कर्मके संस्कारसे उत्पन्न हुए गुण द्वारा अर्थात् गुण कार्य रागादिकसे कर्म करनेको बाध्य होतेहैं, और सब कर्म करा करते हैं ॥ ५२ ॥ उन सब कर्मोंके करनेसे जो भाग्यहै, वही जीवके स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीरका कारण है। अर्थात् जिसका जैसा भाग्यहै, उसको वैसेही वासना होतीहै, वह वासना सबसे अधिक बलवान्है, उसी वासनासे जीवको पिताकी समान अथवा माताकी समान देह प्राप्त होता है वीर्य और रुधिर तो सबका एकसाही है ॥ ५३ ॥ हे देवदूतगण ! प्रकृतिके संग वश होनेके कारणही पुरुषकी इस प्रकारसे उलट पुलट बुद्धि होजाती है, परन्तु यदि पुरुष उसी बुद्धिसे परमेश्वरकी उपासनामें चित्त लगावे तो शीघ्रही माया विलाय जाती है ॥ ॥ ५४ ॥ हे महाशयो ! यह ब्राह्मण प्रथम अवस्थामें शास्त्रसंपन्न, मृदुशील स्वभाव सदाचारी पुण्यव्रतधारी, कोमलचित्त विधिगुणोंका आधार था, यह इन्द्रियोंको रोककर सदा नियमानुसार ईश्वरकी आराधना करनेवाला इसके तुल्य सत्यवादी, मंत्रका जाननेवाला व पवित्र पुरुष और कोई न था ॥ ५५ ॥ यह अहंकाररहित होकर गुरु, अग्नि, अतिथि, वृद्ध जनोंकी सेवा करता सभी प्राणियोंके संग इसकी मित्रताई थी विशेष करके यह अति साधु, अल्पभाषी और किसीकी निन्दा नहीं करता पहिले यह ऐसा भोला भाला था ॥ ५६ ॥ एक समय यह ब्राह्मण पिताकी आज्ञा पालनेके लिये वनमें गया, वहाँसे फल, फूल, समिधा और कुशा ग्रहण करके चला ॥ ५७ ॥ जब यह मार्गमें लौटता हुवा आता था, तो इसने एक कामी शूद्रको एक दासीके संग रमण करते देखा, मधुर मद पीनेसे उस दासीके नेत्र घूम रहे थे ॥ ५८ ॥ और उसके लहँगेका नारा (कमरबंद) ढीला होनेके कारण खुला जाता था, वह कामी शूद्र सदाचारको त्याग इस ब्राह्मणके सन्मुखही निर्लज्ज हो उस दासीको चिपटाकर उसके संग हास्य परिहास्य और एक संग गान व अनेक प्रकारके क्रीडाकौतुक आरम्भ करता हुआ ॥ ५९ ॥ यह ब्राह्मण उस कामीपुरुषकी चंदनादि सुगंधियुक्त भुजाओंसे उस युवतीको लिपटाये देख उसी समय मोहित हो कामके वश होगया ॥ ६० ॥ इस ब्राह्मणमें जितना धीरज और ज्ञान था, इसने उसके बलसे बहुत देरतक अपने मनको बहुतेरा रोका, परन्तु तोभी कामसे कंपायमान मनको यह न रोक सका ॥ ६१ ॥ इसलिये उस दासीके दर्शनके कारण कामरूप महाग्रहके बहानेसे दुष्ट ग्रहने इसको ग्रस लिया जिससे इसकी स्मृति नष्ट होगई, यह उसी तरुणीकी नित्य चिन्तामें चिन्ता करता रहता और अपना धर्म कर्म सब छोडदिया ॥ ६२ ॥ वह दासी

जिस्से प्रसन्न हो, वही वस्तु लाकर उसके आगे धरै। इसी प्रकार अपने पिताका सब धन और मनोहर मनोहर अनेक अनेक भाँतिके पदार्थ देकर उसको सन्तोष उत्पन्न करानेकी चेष्टा करने लगा ॥ ६३ ॥ जो ब्राह्मणी उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई परम सुशील पतिव्रता धर्मपरायण, देवीस्वरूप उस अजामिलकी युवा अवस्थावाली भोली भाली विवाहिता स्त्री थी, परन्तु इस पापात्माने उस स्वैरिणीके नेत्रवाणसे विद्ध हो शीघ्रही उस सतीका परित्याग कर दिया॥६४॥चोरीसे, झूंठसे, ठगाईसे, जुवेसे, न्याय अन्याय करके जहाँ तहाँसे आप जितना धन लाता, वह सब दासीको देकर केवल उसके कुटुम्बका पालन पोषण करता ॥ ६५ ॥ इसलिये हे देवदूतगण! यह अतिशय पापात्मा है. इसकी परमायुभी पापरूप थी इसने जीवित अवस्थामें मलरूप दासीका जूंठा अन्न भोजन किया है, शास्त्रका उल्लंघन करके स्वेच्छाचारी हो चिरकाल बितायाहै ॥ ६६ ॥ इस कारण इस पापीको हम दंडपाणि यमराजके निकट लेजायँगे इस दुरात्माने अपने किये हुये पापोंसे छुटकारा पानेके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं किया है इसलिये यह यमराजसे दंड-पाकर शुद्ध होगा ॥ ६७ ॥

सवैया-दिव दीपक लोय बनी वनिता, जड जीव पतंग जहां परते ॥ दुख पावत प्राण गमावत हैं, बरजे नरहैं हठसों जरते ॥ इस भाँति विचक्षण अक्षणके वश होय अनीति नहीं करते ॥ परती लख जे धरती निरखें, धन हैं धन हैं धन हैं नर ते ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-इस द्वितीय अध्यायमें, हरि भृत्यन धरध्यान।
यमदूतनसों विष्णुको, कहो महात्म्य बखान ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यमदूतोंके ऐसे वचन सुनके न्यायकारी महा विद्वान् विष्णुके दूत विस्मयको प्राप्त होकर उन्हों ने यमदूतोंसे कहा ॥ १ ॥ विष्णुदूत बोले, अहो क्या कष्ट है! धर्मदर्शी साधुलोगोंकी सभाको अधर्मने स्पर्श किया क्योंकि इस सभामें धर्मदर्शी पुरुष लोग पाप रहित पुरुषोंको वृथादंड देते हैं ॥ २ ॥ अहो! जो साधुपुरुष सर्वत्र समदर्शी होकर प्रजाको पिताकी समान पालन करते और शिक्षा देते हैं, उनमेंही यदि अदंड दंडनादि (निरपराधीको दंड) विषम भाव होय तो फिर प्रजा किसकी शरण जाय? ॥ ३ ॥ जब ऐसे लोगही अधर्माचरण करने लगेंगे तब और लोगभी वैसेही होनेके अनुरागी होंगे, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जैसे जैसे आचरण करते हैं और लोग भी उनकेही करनेकी चेष्टा करते हैं और सब सज्जन पुरुष जिसको प्रमाण करलेते हैं, साधारण लोगभी उसकेही पीछे चलते हैं ॥ ४ ॥ क्या आश्चर्य है लोग जिसकी गोदीमें शिर धरकर निश्चिन्त हो सोजातेहैं, आप पशुकी समान हैं, धर्म अधर्मको कुछभी नहीं जानते तो वह आप विश्वासघाती कहलावेगा ॥ ५ ॥ वह

पुरुष सब प्राणियोंका वासस्थान है, उसको यदि दया होवै तो वह किस प्रकारसे इस लोकमें उसका बुरा करनेके योग्य होंगे, जिसने मित्रताके विश्वास हेतु उनमें अपना आत्मा समर्पण कर दिया है, उससे द्रोह करना कभी नहीं चाहिये ॥ ६ ॥ अरे यमके दूतो ! यद्यपि इस पुरुष (अजामिल) ने जन्मसे लेकर कोटि कोटि पापकर अपने परिजनोंका भरण पोषण किया था, तथापि जो नाम इसने पराधीन होकरभी उच्चारण किया है, वह केवल प्रायश्चित्त ही नहीं, परमही स्वस्त्ययन अर्थात् मोक्षका देनेवाला है ॥ ७ ॥ इस पुरुषने अपने प्रिय पुत्रको पुकारनेके मनसे "नारायण यहां आओ" इस प्रकार चिल्लाकर कुछ आभासमात्रसे "नारायण" यह चार अक्षरका नाम उच्चारण किया है, बस इस नामके लेतेही इस पापीके किये हुये सब पापोंका प्रायश्चित होगया ॥ ८ ॥ क्योंकि चोर, मद्य पीनेवाला, मित्रद्रोही, विप्रका घात करनेवाला, ब्रह्मद्रोही, वेदद्रोही, हरिनिंदक, गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला, स्त्रीघातक, राजघातक, गौघातक और दूसरे जो महापातकी नर हैं ॥ ९ ॥ उन सब पापोंका (यह नारायण नामही श्रेष्ठ प्रायश्चित है । इसका कारण यह है कि, नामका उच्चारण करतेही उनके विषयमें भगवन्मय हो जाताहै, अर्थात् भगवान् आप विचार करते हैं कि, यह नामके उच्चारण करनेवाला पुरुष हमारा भक्त है, इसकी सब भाँतिसे रक्षा करना हमारा कर्तव्य है ॥ ॥ १० ॥ हे यमके अनुचरो ! मन्वादि ब्रह्मवादि मुनियोंने पापोंसे छुटकारा पानेके लिये जो व्रतादि प्रायश्चित्त कहे हैं उनसे पापी पुरुष ऐसा शुद्ध नहीं होता जैसा हरि भगवानूके नाम मात्रका उच्चारण करनेसे शुद्ध हो जाता है । दूसरे नामका उच्चारण करनेसे पापनाशके सिवाय और फलभी मिलते हैं, क्योंकि नामका उच्चारण उत्तम श्लोक भगवान्के गुणोंकोभी प्रगट करदेता है । नामका फल, कृच्छ्र चान्द्रायणादि प्रायश्चित्तकी समान पापका क्षय करकेही नहीं जातारहता बरन सदा बना रहता है ॥ ११ ॥ प्रायश्चित्त और व्रतादिकोंके करनेसे पापोंसे छुटकारा होजाताहै, किन्तु यदि असत पापोंमें अर्थात् पापमार्गमें फिर मन दौड़ जाताहै, तो यह प्रायश्चित्त एकबारही पापका शोधक नहीं हो सक्ता, इसलिये जो पुरुष एक बारही पापके क्षय करनेकी इच्छा करतेहैं; उनके लिये भगवान् हरिका गुणकीर्तन करनाही एक उत्तम प्रायश्चित्त है, क्योंकि एक श्रीभगवानूही चित्तके शुद्ध करनेवाले हैं, जब चित्त शुद्ध हो गया तो फिर पाप कहाँ ॥ १२ ॥ यह सब पापोंका यायश्चित्त करचुका, इसलिये तुम लोग इस पुरुष (अजामिल) को पाप करनेवालोंके मार्गपर न लेजाओ, इसके अनन्त पापोंका नाश होगया । क्योंकि इसने मृत्युके समय नारायणका नाम संपूर्ण रूपसे ग्रहण किया था ॥ १३ ॥ हे धर्मराजसेनागण ! पुत्रादिकोंके लाड़ लड़ानेमें हो, हँसीमें हो, गीत आलापके पूर्ण करनेमें हो, अथवा पराधीनतामें लियागयाहो, जिसकिसी प्रकारसेभीहो नारायणका नाम लेनेसे अनेक पापोंका नाश होजाताहै ॥ १४ ॥ अधिक क्या कहें, ऊंचे घर इत्यादिकोंपरसे गिरनेमें अथवा मार्गमें जाते २ गिर पड़नेसे शरीरका कोई

अंग टूटनेसे, अथवा सर्पादिकोंके डसनेके समय अथवा ज्वरादिकसे संतापित होनेमें, दंडादिद्वारा मार पड़नेके समय, अवश होकरभी जो कोई पुरुष यदि " हरि " यह नाम उच्चारण करैगा उसको नरककी पीडा स्पर्श नहीं कर सकेगी ॥ १५ ॥ मन्वादिक महर्षियोंने सब पापोंकी छोटाई बड़ाई विचारकर बड़े पापका बड़ा प्रायश्चित्त और छोटे पापका छोटा प्रायश्चित्त जो कुछ कहाहै, उसकी व्यवस्था वही है। परन्तु हरि नामकीसी व्यवस्था नहीं। इसका स्मरण करतेही सब पापोंका नाश हो जाताहै जैसे वारुणीके एक विन्दु पीनेसे महापापी हो जाता है, ऐसेही नारायणका नाम लेनेसे महापापका क्षय हो जाता है, ॥ १६ ॥ और महर्षियोंके कहे हुए व्रत, दान, तपस्यादिसे पापोंका ही शोधन होजाताहै, परंतु पाप करने वालोंका जो अधर्म करनेके कारण मलीन हृदय, अथवा किये हुये पापको जो सूक्ष्मरूप संस्कार है वह शुद्ध नहीं होसक्ता और भगवान्के चरणकमलकी सेवासे पापकी वासनाकाभी शोधन हो जाता है। इसलिये और और प्रायश्चित्तादिकोंसे हरिनामका कीर्तन करनाही सबसे श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है ॥ १७ ॥ यहांपर इस पुरुषने "पापका प्रायश्चित्त" है,ऐसा समझ करभी कभी हरिनामका उच्चारण नहीं किया, यह आपत्तिभी नहीं होसक्ती,क्योंकि अज्ञानसे हो, अथवा ज्ञानसे हो,उत्तम श्लोक भगवान्का नाम कीर्तन करनेसे पापके समूह भस्म होजाते हैं। जैसे अग्नि, काष्ठके समूहको जलाती है ॥ १८ ॥

कवित्त–नामके प्रभाव वालमीकि आदि ऋषिभये, नामके प्रभाव नन्द कृष्णपुत्र पायो है। नामके प्रभाव टेक राखी प्रहलादजूकी, नामके प्रभाव द्रौपदीको पट बाढयो है ॥ नामके प्रभाव अजामिलसे उधारे खल, नामके प्रतापते वैकुण्ठमें पठायो है। सोई नाम पापनके काटिवेको शालिग्राम, वेदने भी तत्त्वरूप नामको बतायो है ॥ १ ॥

यदि तुम कहो कि इस अजामिलने भगवद्भक्त पुरुषोंके निकट उपदेश नहीं पाया, इसलिये इसका लिया हुआ हरिका नाम किस प्रकारसे प्रायश्चित्त हो पापका नाश करैगा?इसका उत्तर यह है कि, जिस प्रकार कोई न जाननेपरभी इच्छानुसार अतिशय वीर्यवान् औषधि भक्षण करले तो वह औषधी अपना गुण अर्थात् आरोग्यता प्रगट करदेती है। वैसेही हरिनामरूप मन्त्र अजानमें भी उच्चारण करनेसे अपना कार्य अवश्य करताहै इसका कारण यही है कि शक्तिवाली वस्तु श्रद्धादिकी बाट नहीं देखती॥१९॥ हे दूतगण!इस धर्ममें जो सन्देह हो तो तुम अपने स्वामी यमराजसे पूँछलेना, क्योंकि वह धर्मकी परमगुप्त वार्ताओंकोभी भली भांति जानते हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उन विष्णुदूतोंने इस प्रकारसे भागवतधर्मको निर्णयपूर्वक कहकर उस ब्राह्मण (अजामिल) को यमकी फाँसीसे छुडायकर मृत्युकी पीडासे उद्धार किया ॥ २१ ॥ यमदूत लौटकर अपने स्वामी यमराजके निकट आये और जो जो बात हुई थी वह आदिसे अन्ततक समस्त वृत्तान्त यमराजको सुनाया ॥ २२ ॥ इस ओर इस ब्राह्मण (अजामिल)ने यमकी फांसीसे छूट भय त्याग सावधान हो मस्तक नवाकर उन विष्णुदूतोंको प्रणाम किया. और उनके दर्शनसे परमान-

न्दको प्राप्त हुवा ॥ २३ ॥ फिर भगवान् विष्णुके दूतोंने अजामिलका भाव देखकर समझा कि यह हमसे कुछ कहना चाहता है, इसलिये वह उसके सामनेसे उसी समय अन्तर्धान होगये ॥ २४॥ अजामिलने विष्णुऔर यमराजके दूतोंका कथोपकथन सगुण और निर्गुण धर्म सुना ॥ २५ ॥ अर्थात् यमदूतोंके मुखसे तीनों वेदोंका प्रतिपादन किया हुआ सगुणधर्म, और विष्णुदूतोंके मुखसे भगवत् प्रणीत निर्गुण धर्म जाननेसे भगवान्में अतिशय भक्तिमान् हुआ। अर्थात् भगवान्का माहात्म्य सुनकर परमेश्वरमें अजामिलकी शीघ्रही भक्ति होगई, इसलिये वह अपने पहिले किये हुए अशुभ कर्मोंको स्मरण करके बहुतही पछताने लगा ॥ २६ ॥ वह खेद करते करते बोला कि, अहो अजितेन्द्रिय होकर रहनेसे हमको बडा कष्ट हुआ क्या घृणाकी बात है, मैंने दुष्ट स्त्रीके गर्भमें सन्तान उत्पन्न करके अपनी ब्राह्मण जातिका नाश करदिया ॥ २७ ॥ मैंने अत्यन्त कुकर्म किया, मैं अपने कुलका कलंक हूं सज्जनोंमें निन्दाका पात्र हूं मुझको धिक्कार है धिक्कार है, क्या यह मेरा साधारण दुष्कर्म है?कि मैंने अपनी ब्याही तरुणी पतिव्रता स्त्रीको त्यागकरके सुरापान करनेवाली स्त्रीसे भोग करके काल बिताया ॥ २८ ॥ हाय ! मैंने अपने पिता माता अत्यंत वृद्ध तपस्वी और अनाथ अन्य पुत्रादि व बन्धु बान्धवों करके विहीन होनेसे सदा-ही दुःख सन्तापमें रहते सो मैंने नीचकी समान अकृतज्ञ होकर ऐसे समयमें उनको त्यागदिया। हाय ! उस समय मुझपर वज्र न टूटा ॥ २९ ॥ जैसा मैं पापी हूं इससे तो यही स्पष्ट दृष्टि आता है कि मुझको उसी घोर नरकमें पड़ना होगा, जहां धर्मके शत्रु कामी पुरुष यमकी पीडाको प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ३० ॥ अभी थोडी देर पहले यहां मैंने अद्भुत स्वप्न देखा था, क्या वह जागतेमें मुझको दिखाई दिया, क्या वह स्वप्न था ? नहीं नहीं स्वप्न किसी प्रकार ऐसा नहीं हो सक्ता, यह सब चारित्र जागतेमें प्रत्यक्ष मैंने अपनी आँखोंसे देखा कि कई पुरुष हाथमें फाँसी लिये मुझको पकड़कर घसीटे लिये जाते थे इस समय लोग कहाँ चले गये ॥ ३१ ॥ मैं फाँसीसे बँधा हुवा पृथ्वीके बिचले भागमें जारहा था, उस समय एकाएक आनकर जिन्होंने मुझको इस फाँसीसे छुटाया वह चार सिद्ध पुरुष कहां गये ? जिनका अधिक मनोहर दर्शन करके दोंनो नेत्र तृप्त हुये थे ॥ ३२ ॥ यद्यपि इस जन्ममें मैं बडा पापी हुआ तोभी उन देवताओंका दर्शन प्राप्त करनेसे मुझको अनुमान है कि, पहले जन्मका मेरा बडा पुण्य था जिस्से कि उन देवताओंके दर्शनसे इस समय मेरा यह आत्मा प्रसन्न होरहा है ॥ ३३ ॥ जो मेरे प्रथम जन्मका पुण्य न होता, तो भला मुझ अशुचि दासीके पतिकी जीभ मरनेके समय नारायणका नाम लेनेको समर्थ होती ? ॥ ३४ ॥ कहां तो मैं कपटी निर्लज्ज, पापी ब्रह्मद्रोही ब्राह्मणधर्मका नाशक और कहां यह परम मंगलदायक भगवान् "नारायण" का नाम, जो पहला पुण्य न होता तो क्या यह नाम मेरे मुखसे निकल सक्ता था, कभी नहीं ॥ ३५ ॥ अब इस समय प्राण, मन और इन्द्रियोंको रोककर ऐसा यत्न करूं कि जिस्से घोर अन्धकारमें फिर कहीं न पड जाऊँ ॥ ३६ ॥ इस समय अविद्याकार्य कर्मके

बन्धनको छोडकर प्राणीमात्रसे सुहृद्भाव शान्त, दयावान् और आत्मवान् होकर अपनी आत्माको मुक्त करूं ॥ ३७ ॥ इस स्त्रीरूपी भगवान्की मायाने इस मेरे आत्माको ग्रास कर लिया था. हाय ! इस निन्दनीय मायाने शाखामृगकी समान हमको बहुत नचाया ॥ ३८ ॥ अच्छा इस मायाने किया सो किया, परन्तु इससमय सत्यवस्तुमें मेरी बुद्धि उत्पन्न हुई, अब मैं देह इत्यादिमें "अहंता ममता" इत्यदि बुद्धिको छोडकर भगवान्में अपना चित्त लगाऊंगा । उनके नामका कीर्त्तन इत्यादि करके मेरा चित्त शुद्ध होगया है। इसलिये अवश्य उनमें मेरा मन लग जायगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! अजामिलको क्षणभरके लिये साधुसंग आया कि जिस्से उसको इस प्रकारका सुन्दर ज्ञान उत्पन्न हुआ, तिसके पीछे वह अजामिल पुत्रादि स्नेहरूप समस्त बन्धन तोडकर गंगा किनारे हरि-द्वारको चला गया ॥ ४० ॥ और वहाँपर एक देवालयमें योगासन लगायकर योग मार्गमें स्थितहो समस्त इंद्रियोंको विषयोंसे खैंचकर आत्मामें मनको लगादिया ॥ ४१ ॥ उसके पीछे देह, इन्द्रिय इत्यादिसे आत्माको भलीभाँति शुद्धकर चित्तकी एकाग्रतासे आत्माको ज्ञानमय निजस्वरूप परब्रह्ममें लगादिया ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे परब्रह्ममेंही उसका चित्त निश्चल होगया । उस समय उसने कई एक पुरुषोंको देखा, देखतेही पहचान लिया कि पहलेभी इन महात्माओंको कहीं देखाहै, इसलिये देखतेही शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! उनके दर्शन करनेके पीछे अजामिलने इस तीर्थमें अपनी देह गंगाजीके मध्य त्यागकर भगवान्के पार्षदोंका स्वरूप ग्रहण कर लिया ॥ ४४ ॥ वह महापुरुष उन सब देवदूतोंके साथ सुवर्णमय विमानपर बैठकर जहाँ भगवान् श्रीपति विराजमान थे आकाशमार्गमें हो वहाँपर पहुँचा ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! अजामिल ब्राह्मण होकर दासीका पति होनेसे निंदित कर्मोंके द्वारा पतित होगया था, जिस्से कि उसके सब धर्म व स्वदारनियमादि समस्त व्रत नष्ट होगयेथे, इसलिये यमदूत उसको नरकमें डालनेके लिये, लिये जाते थे, परन्तु भगवन्नामकी महिमा देखो कि, अंतकालमें पुत्रको पुकारनेके मनसे "नारायण" नाम लेतेही सब पापोंसे छूटगया ॥ ४६ ॥ इस लिये परम पवित्र भक्तजनोंको मोक्षदायक भगवान्के कीर्तनके सिवाय और कोई पापोंको जडसे उखाडने-वाला दूसरा उपाय नहीं है । इस कारण जितने प्रायश्चित्त हैं, उनमें रजोगुण व सतोगुणसे मन सदा मलीनही रहता है । परन्तु भगवत् कीर्तनसे मन निर्मल हो जाता है । और फिर कर्ममें आसक्त नहीं होता ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! यह इतिहास परमगुप्त और पापका नाशक है, जो पुरुष श्रद्धा सहित इसको श्रवणकरे अथवा भक्तिके साथ औरको सुनावे ॥ ॥ ४८ ॥ वह कभी नरकमें नहीं गिरता, अधिक क्या कहैं, यमके दूत उसकी ओर दृष्टि उठाकरभी नहीं देख सक्ते, वह पुरुष यद्यपि कैसाही दुराचारी अतिशय अमंगल रूप हो तो भी विष्णुलोकमें पूजित होता है ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! अजामिलने मृत्युके समय पुत्रकेही नामसे भगवान्का नाम उच्चारण किया था, जब कि, वह इस नामके लेतेही समस्त पापोंसे छूट नारायणके धामको चला गया तब श्रद्धा सहित उनके नामको उच्चारण

करते उनके पाप छूट जायँ तो संशय क्या है? और जो मनुष्य नित्य हरे कृष्ण ! जय गोविन्द ! ! हे नारायण ! ! ! ऐसाही कहते रहते हैं, उनकी तो महिमा ही क्या है ॥ वे तो परमप्रेमी हैं ॥

भजन-प्रेमी पूरण प्रेम निबाहैं, सोई धन्य प्रेमी जो निशि दिन निज प्रीतमको चाहैं ॥ प्रीतम प्रेम रंगजो राते तिनको सकल सराहैं, जिस मनमें प्रेमाग्नी प्रगटी सकल कल्पना दाहैं, कहैं रघुवीर दास प्रीतमको प्रेम करत उतसाहैं ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

दोहा-तृतीय में यमराज ने, वैष्णव धर्म बखान।
शान्त करदिये दूत सब, कह कर उत्तम ज्ञान ॥

राजा परीक्षितने पूछा कि, हे भगवन् ! धर्मराजके दूतोंको जब भगवान्के दूतोंने निकाल दिया, तब अपने स्वामीके निकट आयकर अवश्यही सब वृत्तान्त कहा होगा। सो सब लोक जिनके वशमें हैं, उन्होंने दूतोंके मुखसे अपनी आज्ञाको भंग सुन उन लोगों-को क्या उत्तर दिया ॥ १ ॥ हे योगिवर ! यमके दंडकाभी भंग होजाता है, यह तो किसी कालमें हमने किसीके मुखसे नहीं सुना, सो इस बातसे सबही लोगोंको बडा भारी संशय होगा, सो आपके सिवाय और कोई इस हमारे संशय को नहीं छुडा सक्ता, यह हमको निश्चय है। इस लिये यह आप मुझे समझाकर कहिये ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! विष्णुके दूतोंने जब यमदूतोंको निकाल दिया, तब वह लोग भग्नचित्त हो अपने स्वामी धर्मराजके निकट गये और समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३ ॥ यमदूतोंने यमराजसे कहा कि हे प्रभो ! जीवलोकोंके शासन करनेवाले कितने हैं, हमतो जानते हैं कि जीव तीन प्रकारके कर्म किया करते हैं, परंतु उनके कर्म फलको प्रगट करनेके कितने कारण हैं? ॥ ॥ ४ ॥ यदि बहुतसे शासन करनेवाले और दण्डधारी हों, तब परस्पर उन सबमें विरोध करनेसे किसी प्राणीको सुख और किसीको दुःख दोनोंही होसक्ते हैं और जो सबका एक मत हो तो किसीको सुख दुःख नही होसक्त ॥ ५ ॥ कर्म करनेवाले पुरुष बहुत हैं, उनके कर्म फलोंके लिये यदि शिक्षाभी बहुतसी हों तो प्रभुत्व होसक्ता है, परंतु इससे सब शिक्षाओंमें मुख्य जो शासन करना है, वह मंडलान्तर्वती शासन करने वालोंकी शिक्षाके समान एक देशमें केवल उपकारकी समान होजाता है। अर्थात् जिस प्रकार चक्रवर्तीही मुख्य शासन करने वाला है, मंडलेश्वर राजाओं की प्रभुताई तो केवल एक उपचार है, वैसेही सर्व शिक्षाओंका शिखावन और शासन कर्ताओंके लिये उपचरित पडता है ॥ ६ ॥ यह समझकर कि शासन करनेवाले बहुतसे नहीं होते हम यही जानते थे कि, एक आपही ईश्वरके सहित प्राणियोंके अधीश्वर शासन करनेवाले और दंडधारी आपही मनुष्योंके शुभाशुभका विचार करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ परंतु आपका किया हुआ दंड

इस समय लोकोंके मध्यमें नहीं चल सक्ता, क्योंकि चार अद्भुत सिद्धपुरुषोंने लीलाहीसे आपकी आज्ञाको भंग करडाला ॥ ८ ॥ हम लोग आपकी आज्ञासे एक पापीको बाँधकर यातनागृहमें लारहे थे, कि उन लोगोंने अचानक आनकर आपकी फाँसी तोडकर बलात्कारसे उस पापीको हमसे छुडा लिया ॥ ९ ॥ सो हे प्रभो ! यदि आप हमारा हित चाहते हैं, तो हमको यह बतला दीजिये कि, वह कौनहैं ? हम आपके निकट उनके जाननेकी इच्छा करते हैं, क्योंकि यदि हम लोगोंने अज्ञानसे उनकी अवज्ञा की तो कहीं उलटा आपकाही बुरा न होजावे ! हे देव ! उन पुरुषोंका बडाही प्रभाव है उस पातकीने "नारायण" इतनाही शव्द उच्चारण किया था कि वह लोग " भय नहीं भय नहीं " ऐसा कहते शीघ्रतासे आगये ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! प्रजा संयमनकारी यमराज अपने दूतोंसे इस प्रकार पूँछकर प्रसन्न हो भगवान् हरिके चरणारविन्दोंको स्मरण करते करते उत्तर देने लगे ॥ ११ ॥ यमराज बोले, कि हे दूत गण ! हमारे सिवाय एक और पुरुष इस जंगम स्थानपर सवकेही सर्वप्रधान अधीश्वर हैं, हमतो उनके किंकर उनके बनानेसेही जंगमपदार्थके ईश्वर हुये हैं । उनमेंभी केवल पापी मनुष्योंके ऊपरही प्रभुताई करनेकी हमैं सामर्थ्य है । जिसप्रकार तागे (डोरे) में वस्त्र टँका हुआ रहता है, वैसेही जिसमें यह विश्व टँका हुआ है, जिसके अंशस्वरूप ब्रह्मा, महेश्वरसे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति, लय होतीहैं, सो यह समस्त लोकही नथेहुये बैलकी समान उसके वशमें चलते हैं ॥ १२ ॥ जिस प्रकार रस्सीमें बैल बँधे रहते हैं, ऐसेही भगवान्ने ब्राह्मणादि नामसे वेदवाक्यरूप अपने सूत्रमें सब लोकोंको बाँधलिया है, अधिक करके यह सब जीव जो नाम और कर्म रूप बंधनसे बँधे हुये हैं । और यही जीव चकित होकर जिसके निमित्त बलि बहन करते हैं, अर्थात् जिसके वश होरहे हैं और कर्म करते हैं ॥ १३ ॥ जिसकी लीला अचिंतनीय है, इसलिये हम महेन्द्र, निर्ऋति, वरुण, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा महेश्वर, विश्वेदेवगण, वसुगण, साध्यगण, मरुद्गण, रुद्रगण और सिद्धगण ॥ १४ ॥ व और प्रधान प्रधान देवता जो कि इस विश्वके रचनेवाले हैं । और भृगुइत्यादि महर्षि जो लोग कदापि रजोगुण और तमोगुणको छूतेभी नहीं हैं, वह सब सतोगुण प्रधान होकरभी जिनकी चेष्टाको नहीं जान सक्ते, हे दूतगण ! इन सिवाय दूसरे पुरुष जो कि मायामें लिपटे हुयेहैं, वह लोग किस प्रकार उन्हें जान सक्तेहैं ॥ १५ ॥ मायामोहमें लगाहुवा कोईभी उनके जाननेको समर्थ नहीं होता और जो इन्द्रिय आदिकोंके भी विषय नहीं हैं, अर्थात् इन्द्रिय, मन, प्राण, चित्त और वाक्य इत्यादि किसी प्रकारसेभी प्राणीगण जिसको नहीं देखसक्ते और जो कि, सब जीवोंके हृदयमें उनके अंतर द्रष्टास्वरूप हो वर्तमान हैं । इसलिये रूपादिकको जिसप्रकार नेत्र प्रकाश नहीं कर सक्ते हैं, वैसेही इन्द्रियादिक उनके प्रगट करनेको असमर्थ हैं, सो इस प्रकारके अधीश्वर केवल एकही हैं ॥ १६ ॥ आत्मतत्त्व, सबके प्रभु परमायाधिपति अतिशय महात्मा हैं, तुम लोग जिनका वृत्तान्त कहतेहो सो हमको निश्चय है कि, वह सब उनहीं भगवान्के दूत

होंगे क्योंकि भगवान्के दूत प्रायः उनकेही तुल्यरूप गुण प्रभाव और स्वभाव युक्त हो मनोहरमूर्ति धारण किये हुये घूमा करते हैं ॥ १७ ॥ हे दूतो ! भगवान्के भृत्यगण देवताओंसे पूजित हैं, जिनका दर्शन अति कठिनतासे प्राप्त होता है इसलिये महाअद्भुत विष्णुके दूत विष्णुके भक्त मनुष्योंकी शत्रुतासे सर्वदा और अग्नि जल इत्यादि सर्व पदार्थसे सब भाँति रक्षा करते हैं ॥ १८ ॥ तुम लोग इस प्रकारकी शंका अपने मनमें मतलाओ कि, उन्होंने विष्णुभक्तहो किस प्रकारसे अजामिलको छुड़ायकर अधर्मका पक्षपात किया क्योंकि साक्षात् भगवत् प्रणीत जो धर्म है उसको क्या भृगु इत्यादि ऋषि, क्या देवता, क्या सिद्धगण, क्या असुर निकर, क्या विद्याधर, क्या चरण, कोईभी नहीं जानता फिर उसको मनुष्य लोग किस प्रकार जान सकैंगे ॥ १९ ॥ केवल स्वयम्भू, शंभु, नारद, सनत्कुमार, मनु, कपिल, प्रल्हाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव और हम ॥ २० ॥ हे दूतो ! बस यह केवल बारह जनहीं भागवतधर्मको जानते हैं, वह धर्म अतिशय गुप्त है अत्यन्त दुर्बोध है । परन्तु इसके जानलेतेही मोक्ष प्राप्त होजाता है ॥ २१ ॥ हे सेनागण ! नाम कीर्तनादिसे भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोगका करना है, वही इस लोकमें पुरुषोंका परमधर्म है, उसकोही भागवत धर्म कहते हैं ॥ २२ ॥ हे सब पुत्रो ! भगवान्के नाम उच्चारण करनेका माहात्म्य देखो कि केवल नामहीको उच्चारण करके पापी अजामिल मृत्युकी फाँसीसे छूटगया ॥ २३ ॥ इसलिये भगवान्के गुण कर्म और नाम इन सबको भली प्रकार कीर्त्तन करनाही मुख्य है, वह सब पापको क्षयकर सकता है, क्योंकि महापापी अजामिलने अपवित्र व मरणावस्थामें नारायण कहा, अपने पुत्रके पुकारनेके बहानेसे उसका पापही नहीं छूटा वरन् वह मुक्तिकोभी प्राप्त होगया ॥ २४ ॥ यदि कहोकि भगवत् नामके स्मरण मात्रसेही जो अशेष पापोंका क्षय होजाता है, तब द्वादशवार्षिक प्रायश्चित्त इत्यादि क्यों हैं ! (उत्तर) इन सब स्मृतिकार महापुरुषोंकी मति दैवी मायासे अत्यन्त मोहित होरही थी इसलिये इस गुप्त नामके माहात्म्यको न जानकर उन्होंने द्वादशवार्षिक व्रतादि प्रायश्चित्त स्मरण कियेहैं । अर्थवादसे मनोहर जो सब वेदकी विधि है उसमेंही उनका चित्त नष्ट होगया था, इसलिये वह स्वयं श्रद्धासहित वेदोक्त अग्निष्टोमादि बडे २ भारी यज्ञादिक कर्म करनेमें लगे रहते थे, जो सब लोग नामके माहात्म्यको जानलेंगे, बारह ऋषियोंसे अधिक और जो स्मृतिकार थे वह सब दैवी मायासे अत्यन्त मोहित होरहे थे, और पुष्पकी समान जिसकी सुगंधि दशों दिशाको पवित्र कर रहीहै और चांदनीकी तुल्य जगत्में छिटक रही है, ऐसी वेदत्रयी परमोत्तम वाणीमें जडबुद्धि बनरहे हैं और इस गुप्त नामके माहात्म्यको कुछभी नहीं जानते और द्वादशवार्षिक व्रतादि बडे बडे प्रायश्चित्त बतलाते हैं और महाभारी यज्ञादिक कर्मोंमें लिपट रहते हैं और भगवान्के नामको छोटा प्रायश्चित्त समझते हैं फिर छोटेलोगोंकी श्रद्धा उनमें कैसे होसक्ती है, इसलिये उन लोगोंने बडे बडे प्रायश्चित्त बताकर संसारी पुरुषोंको भ्रमजालमें डाल रक्खा है ।

परन्तु वाल्मीकि नारदकी कथाको वहभी भली भाँतिसे जानते हैं और रामनामके प्रभावका जानना तो महाकठिन है, परंतु यह जानते हैं कि ,, रामनाम " मोक्षदायक है, इसलिये भी छोटे लोगोंको बडा प्रायश्चित्त बताते हैं, मूर्खोंका चित्त बडी वस्तुपर जमता है क्योंकि छोटी वस्तुको वहुत तुच्छ समझते हैं इसालिये रामनामका जो गूढ मंत्र है, उसकी महिमा मूर्खोंके सामने प्रगट नहींकरते कि, दो अक्षरोंपर उनकी श्रद्धा न होगी, इस करण उन मुनिलोगोंने बडे २ प्रायश्चित्त वताये हैं और यहभी समझा कि जो सभी मनुष्य नामके माहात्म्यको जानलेंगे तो जीवन्मुक्त हो जायँगे जैसे अमृतसंजीवनीको नहीं पहँचानते तव वह वैद्य रोगीकी शांतिके लिये सोंठ, मिर्च, जीरा, इलायची, हींग, पोदिना, सुहागा और सेंधानमकका चूर्ण बतलाते हैं; अथवा निम्बादिक चूर्ण वताते हैं, प्रथम तो संजीवनीका जानना कठिन और जिन्होंने जानरक्खी है वह अमूल्य समझकर किसीको देते नहीं, जैसे मृगराज सिंह अपने वशमें हो तो चतुरलोगोंको उचित है कि श्वान, गीदड, हरिणादिक छोटे छोटे जंतुओंपर उसको कौन छोडे । ऐसेही तुच्छ पापकी निवृत्तिके लिये सर्वानंददायक परममंगलीक रामनामका उपयोग करना ठीक नहीं । क्योंकि किञ्चिन्मात्र पापके लिये ऐसे अमूल्य रत्न रामनामसे प्रायश्चित्त करना नहीं इस बातपर एक दृष्टान्त है ॥ २५ ॥

दृष्टांत—एक मुनीश्वर तप कर रहे थे, इतनेमें कोई कुष्टी (कोढी) उनकी शरणमें आया और कहा कि, हे दीनदयालु ! मेरे कुष्टको आप कुछ उपाय बताइये । परंतु वह तो ध्यानमें थे कुछ उन्होंने न सुना, उसने फिर कहा फिर मुनिने न सुना, फिर उसने तीसरीबार कहा फिर मुनिने ध्यान न किया, जव फिर वह चौथी वार कहनेको हुआ, तव मुनिके चेलेने अपने मनमें विचारा कि जो इसके गंभीर शब्दसे गुरुजीकी समाधि छूटगई तो मेरे ऊपर बड़ाभारी क्रोध करैंगे इसलिये उसने गुरुसे भयमान कुष्टीसे कहा कि तीनवार रामका नाम ले तेरा कुष्ठ सव जाता रहेगा और शरीर शुद्ध हो जायगा । उसने जो तीनवार राम राम कहा तो सब कुष्ठ जातारहा और शरीर कुन्दन लालकी समान होगया । मुनीश्वर जब समाधिसे जागे तो चेलेकी ओरसे मुँह फेर लिया और न बोले, तव तो चेलेने अपने मनमें वडा दुःख माना और मनमें कहने लगा कि, ऐसा मुझसे क्या अपराध हुआ जो गुरुजी क्रोधित होगये फिर चरणोंमें शिर झुका विनतीकर बोला कि हे स्वामिन् ! मुझदीनसे ऐसा क्या अपराध हुआ जो मेरी ओरसे आपने मुख फेर लिया कृपा करके मुझसे कहिये जो मेरे मनका संदेह जाय, तव मुनि बोले कि, अरे मूर्ख ! रामनामकी महिमाको कुछ न जाना जिस रामनामके एकवार कहनेसे करोडों कुष्टी अच्छे हो सक्ते हैं ऐसे रामनामको तीनबार कहलाकर एक कुष्टी तैंने अच्छा किया, तैंने रामनामके प्रभावको तुच्छ समझा अच्छा अव जो किया सो किया फिर कभी ऐसा मतकरना, सो रामनामकी महिमाको शेष, शारदा और ब्रह्मा नारदभी नहीं जानते ॥

हे वत्सगण ! जैसा बुद्धिमान् मनुष्य यह सब विचार करके भगवान् अनंतमें संपूर्ण

अंतःकरणसे भक्तियोगका विधान करते हैं वह कभी हमारे दण्डको प्राप्त होनेके योग्य नहीं हैं। उनमें पाप होही नहीं सक्ता, यदि कदाचित् हो भी जाय तो भगवान्के नाम कीर्तन करनेसे तत्क्षण उस पापका नाश होजाता है ॥ २६ ॥ इस समय तुम सब हमारी आज्ञा और वचन सुनकर मनमें स्मरण रक्खो कि जो साधु नारायणकी शरण हैं, सर्वत्र समदर्शी हैं, देवता और सिद्ध लोग जिनकी पवित्र कथाओंको रात दिन वर्णन किया करते हैं, सो ऐसे साधुओंके निकट तुम लोग कभी मत जाना, क्योंकि उनके निकट भगवान्की गदा सदा सर्वप्रकारसे रक्षा किया करती है। इसलिये उनको दण्ड देनेके लिये हमारा तो क्या सामर्थ्य है कालभी उनका कुछ नहीं करसक्ता ॥ २७ ॥ परन्तु जो मनुष्य असाधु हैं, जोकि निष्किंचन परमहंसोंके सङ्गसे हीन हो सदा उनकी निन्दा किया करते हैं, उन मुकुन्दके पादारविन्द मकरन्दका रस पान करनेमें विमुख नरकके मार्ग स्वरूप जो अपने धर्मका शून्य ग्रह जो है उसमेंही तृष्णा बाँधे रहते हैं, उन लोगोंको हमारे निकट बेखटके ले आया करो ॥ २८ ॥ और जिनकी जीभ कभी भगवान्का गुण वर्णन या नाम उच्चारण नहीं करती और जिनका मस्तक कभी भगवान्के चरणकमलमें नहीं झुका जिन्होंने एकबारभी नारायणका व्रत नहीं किया, उन्हीं सब असक्ती पुरुषोंको हमारे निकट लाना ॥ २९ ॥ धर्मराज अपने दूतोंको इस प्रकार आज्ञा करके फिर भगवान्से अपना अपराध क्षमा कराने लगे और बोले कि, हे नाथ ! इस समय हमारे पुरुष जो अन्यायकर्म कर आये हैं और आपके भक्तोंका तिरस्कार किया है,सो आप पुराण पुरुष भगवान् इस अपराधको क्षमाकरैं। हम लोग तो आपहीके बनाये हैं। सो हम माहात्म्यको न जानकर अपराध करके हाथ जोड रहे हैं। इसलिये हमारा अपराध क्षमा किया जाय ॥ ३० ॥

कवित्त-दूतनसों ऐसे कहि हरि पाद ध्याय उर, कहै यमराज अब दाया रस भीजिये ॥ पुरुषहू पुरातन नारायण लोक नाथ,विनती हमारी चित देके सुन लीजिये ॥ मेरे दूत बिना जाने कियो अपराध आज,कृपा-सिन्धुकृपाकर क्षमाकर दीजिये ॥ क्षमाके करैया क्षमाभारके हरैया, क्षमासिंधुके धरैया मेरो दोष क्षमा कीजिये ॥ ३१ ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि, हे कौरव ! भगवान् विष्णुजीका नाम कीर्तन करना जगत्का मंगलरूप है, निश्चय जान लो कि, इस नामके कीर्तनसे बडे बडे पाप बिलाय जाते हैं ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! भगवान् हरिके उद्यम वीर्य पराक्रमके वार वार श्रवण करने और कहने वाले पुरुषोंका चित्त उत्पन्न हुई भक्तिके द्वारा जिस प्रकार शुद्ध होता है, वैसे व्रतादिकोंसे शुद्ध नहीं होसक्ता ॥ ३३ ॥ इसलिये जो पुरुष भगवान्के चरणारविन्दका स्वाद एक बार प्राप्त करलेता है, उसकी पापाचारमें फिर रति नहीं होती परन्तु इस स्वादसे जो पुरुष वञ्चित हैं, वह कामसे हत हो अपने पापसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्तरूप उस कर्मकेही करनेकी चेष्टा करते हैं, जिससे फिर पाप उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यमके दूत अपने स्वामी यमराजके मुखसे भगवन्ना-

मका माहात्म्य श्रवण करके विस्मित चित्त हुये, उस समयसे नारायणके भक्तको देखतेही "अरे यह पुरुष हम लोगोंका नाश कर देगा" ऐसी आशंका करते उसकी ओरको देखते हुयेभी डरते ॥ ३५॥ हे कौरव ! महर्षि अगस्त्यजीने मलयाचलपर बैठकर विश्वास होनेके लिये वारम्वार भगवान् हरिके चरणारविन्दोंकी पूजा करते करते यह गुप्त इतिहास कहा था इसपर एक पद है ॥

ठुमरी–हरे राम कहो, हरे राम कहो, राम राम कहो हरे हरे ॥ टेर ॥

मीन वराह हरी और कच्छप, रामचन्द्र अवतार धरे ।
परशुराम,नरसिंह, कृष्ण, बल, सनकादिक चारों विचरे ॥ १ ॥
नरनारायण यज्ञ पुरुषहैं, कपिलदेव हयग्रीव तरे ।
दत्तात्रेय, ऋषभ, मन्वंतर, पृथु, मोहिनी अति सुधरे ॥ २ ॥
नारद, वामन, हंस, व्यास प्रभु, बौद्ध होकर ज्ञान करे ।
कल्की, कलियुग, अन्त माहिं भये यह, चौवीसों रूप धरे ॥ ३ ॥
रङ्गनाथजी जगन्नाथजी पुरी द्वारकानाथ वरे ।
गोवर्द्धनके नाथ नाथ जग बद्रीनाथ नरनाथ खरे ॥ ४ ॥
जगदीश्वर परमेश्वर स्वामी सर्वेश्वर सब ठौर लरे
कमलनयन कमलापति केशव कंसकेशकर काल करे ॥ ५ ॥
मनमोहन मथुरा मन मज्जन मन्मथ मुरली मुकुट मुरे ॥ ६ ॥३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे षष्ठस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–चौथे माहिं प्रजान हित, तपे दक्ष परवीन ।
हंस गुह्य स्तोत्रसे, हरि आराधन कीन ॥

राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सुर, असुर, नर, नाग, मृग और पक्षी इत्यादि सृष्टिकी कथा आपने जो संक्षेपसे प्रथम (तीसरे स्कन्धमें) कही है ॥१॥ अब उसको ही विस्तारसे हम आपके मुखसे सुना चाहते हैं । और परमपुरुष भगवान् ब्रह्माजीने प्रत्येक सर्गमें जिस शक्तिके द्वारा जिस प्रकारकी सृष्टि रची है उस शक्ति सहित और जो पीछे सृष्टि रचीगई उसके सुननेकी हमारी अभिलाषा है ॥ २ ॥ इतनी कथा कहनेके उपरान्त पुरणवक्ता सूतजी शौनकादि मुनिगणोंसे बोले कि, हे ऋषिवर्यवर्ग ! महायोगी व्यासपुत्र शुकदेवजी राजा परीक्षितकी इस प्रार्थनासे प्रसन्न हुए और आनन्द प्रकाश करके कहने लगे ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! प्राचीनवर्हिके पुत्र दश प्रचेताओंने समुद्रके भीतरसे निकलकर देखा कि, पृथ्वीमण्डल विविध वृक्ष लताओंसे युक्त होरही है। हे कुरुवंशावतंस! वृक्ष लतादिकोंसे इस प्रकार पृथ्वीके छाया जानेका कारण यहहै कि, नारदजीके उपदेशसे प्रचेता लोगोंने निवृत्तिमार्ग अवलम्बन कर लिया। जिससे कि राजाके विना पृथ्वीपर खेती इत्यादि नहीं हुई ॥४॥ तपस्याके करनेसे प्रचेता लोगोंको

क्रोध उत्पन्न हुआ था। सो पृथ्वीको इस प्रकार लता वृक्षादिकोंसे छाई हुई देख वह लोग वृक्षोंके ऊपर महा कोपित हुए और इन सबको भस्म करके निर्मूल करनेके लिये तत्क्षण उन लोगोंने अपने मुखसे वायु और अग्नि उत्पन्न की ॥ ५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! जब वायु और अग्निसे सब वृक्ष भस्म होने लगे तब वृक्षादिकोंके राजा भगवान् चंद्रमा प्रचेता लोगोंका कोप शांति करनेकी कामनाकर उनसे बोले ॥ ६ ॥ हे महाभागो! वृक्ष अति दीन हैं इनका द्रोह करना तुमको उचित् नहीं। तुम तो प्रजापतिहो इसलिये विशेष रूपसे प्रजाके बढानेकी तुम लोग इच्छा करनेवाले हो। इन वृक्षोंको इस प्रकारसे निर्मूल करना तुम्हारे लिये अति अयोग्य बात है॥ ७ ॥ हे वत्सगण! प्रजापतियोंके पति सर्वान्तर्यामी भगवान्ने पृथ्वीके वृक्ष व औषधियोंको भक्ष्य और अन्नको उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥ इस लिये अचर पदार्थ चर पुरुषोंका खाद्य है अपद पदार्थ पादचारियोंके भक्ष्य हैं, हस्तरहित-प्राणी, हस्त युक्त प्राणियोंके भोजन हैं और चौपाये जन्तु दुपाये जंतुओंके आहार हुये हैं। सो उन भक्ष्य, भोज्य, इत्यादिको भस्म करके निर्मूल करना प्रजापतिलोगोंको उचित नहीं है॥९॥ हे पापरहित वत्सगण! तुम लोगोंके पिता देवदेव प्राचीनबर्हिजीने तुम लोगोंको प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है और इन वृक्षोंसे प्रजाकी जीविका होती है फिर भला इन वृक्षोंको तुम किस प्रकार भस्म करना चाहते हो ॥ १० ॥ तुम लोग स्थिर होओ और साधुपुरुष जिस मार्गपर चलते हैं, उसी पर तुमभी चलो। और यह महा कोप जो तुमको उत्पन्न हुआ है, इसको त्यागदो। हे वत्सगण! हम तुमसे जिस मार्गका अवलम्बन करनेको कहते हैं, उस मार्गका सेवन करो, क्योंकि तुम्हारे पिता पितामह और प्रपितामह जिस मार्गका सेवन करते आयेहैं और कुलमें आजतक ऐसा काम किसीने न किया ॥ ॥ ११ ॥ और विचार करके देखो कि, जिस प्रकारसे बालकोंको पितामाताही रक्षक हैं, आँखोंके पलकही रक्षक हैं, स्त्रियोंके पतिही रक्षक हैं, भिक्षुकोंके गृहस्थीही रक्षक हैं, अज्ञानियोंके ज्ञानीही ज्ञानदायक हैं वैसेही प्रजाके प्रजापतिलोग बंधु हैं सो तुम लोग प्रजापति हो, इसलिये प्रजाकी जीविकाका नष्ट करना, तुमको किसी प्रकार उचित नहीं है ॥ १२ ॥ और सब भूतोंकी देहके भीतर आत्मा स्वरूपमें परमेश्वर भगवान् हरि वर्तमान रहते हैं इसलिये सब जीवोंमें भगवान् हरि का स्थान समझना चाहिये। इस प्रकार कर-नेसेही तुम लोग भगवान्को संतोष करा सकोगे ॥ १३ ॥ हे वत्सगण! जो पुरुष आत्मा-रूप आकाशसे अकस्मात् उत्पन्न हुये महातीव्र क्रोधको ब्रह्मज्ञानसे जीत लेता है, उसने मानो सबही गुणोंको जीत लिया ॥ १४ ॥ इसलिये तुम अब इन दीन हीन वृक्षोंको मत जलाओ जो जलगये सो जल गये, बचे हुये इन सब वृक्षोंको रहने दो तुम्हारा मंगल हो, इन सब वृक्षोंने एक कन्याको प्रतिपालन कर रक्खा है, सो तुमको वही यह कन्या दान करते हैं. यह कन्या अतिश्रेष्ठ है, तुम पाणिग्रहण करके इसको अपनी पत्नी बनाओ ॥ १५ ॥ हे राजन्! चंद्रमाने इसप्रकार समझा बुझाकर आपही उद्योगी हो प्रम्लोचा अप्सराकी वह कन्या प्रचेता लोगोंको देदी उन लोगोंनेभी धर्मसहित उसका

पाणिग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस कन्याके गर्भमें प्रचेताओंसे दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुये जिनकी उत्पन्न की प्रजासमूहसे तीनों लोक परिपूर्ण होगये ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वह दक्ष अपनी बेटियोंको बहुत प्यार करते थे। उन्होंने जिस प्रकार शुक्र और मनके द्वारा सब भूतोंकी सृष्टि उत्पन्न की, अब सावधान होकर यह सब वृत्तांत तुम हमसे सुनो ॥१८॥ हे कौरवश्रेष्ठ ! प्रजापति दक्षने प्रथम सुर, असुर, मनुष्य इत्यादि आकाशचारी, भूमिचारी, और जलचारी, सब प्रजाओंको मनसे उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ परंतु इस प्रजाकी सृष्टि किसी प्रकारसेभी नहीं बढी। यह देखकर दक्ष प्रजापतिने संन्यास धर्म ग्रहणकर विंध्याचलके निकटवाले एक छोटे पर्वतपर जाय अति दुष्कर तपस्या करनी आरंभ की ॥ २० ॥ उस पर्वतके निकटही अघमर्षण नामक एक पापका नाश करने वाला तीर्थ था। चित्रकूटसे बारह (१२) कोश आग्नेयकोणकी ओरको और प्रयागसे वीस (२०) कोश नैर्ऋत्य दिशाकी ओर और रीवाँसे बारह (१२) कोश वायव्य कोणकी ओरको, उसी तीर्थमें तीनोंकालकी संध्यामें स्नान करके दक्ष भगवान् हरिको संतोषित करने लगे ॥ २१ ॥ और हंसगुह्य नामक प्रसिद्ध स्तोत्र पढकर भगवान् अधोक्षजकी स्तुति करने लगे। हे राजन् ! भगवान् हरि जिस प्रकारसे प्रजापति दक्षके ऊपर प्रसन्न हुये वह हम तुमसे कहते हैं सो तुम सुनो॥२२॥ उस हंसगुह्य स्तोत्रकी प्रजापति दक्षजीने इस प्रकार स्तुति की थी,उनकी चिर शक्ति सत्य है इसलिये वह जीव और माया दोनोंके नियामकहैं।परंतु इस प्रकार होने-सेभी जिन समस्त जीवोंके गुणोंमेंही तत्त्वबुद्धि है,वह उनका स्वरूप नहीं देखसक्ते, क्योंकि उनका परिमाण और सीमा नहीं है और वह स्वयं प्रकाश पातेहैं,इसी कारण सिद्ध वस्तु हैं, ऐसे सर्वोत्तम देवको वारम्वार नमस्कार करताहूं॥२३॥गुण अर्थात् विषय जिस प्रकार गुणीके अर्थात् इन्द्रियादि विषयोंके सख्य अर्थात् प्रकाशत्वको नहीं जानता, वैसेही सख्य जीवभी इस देहरूप पुरमें वास करके इस स्थानमें वास करनेवाली जो शाखाहैं उनकी इन्द्रिय प्रवर्त-कत्वादि रूप सख्यको नहीं जान सक्ता,क्योंकि उस जीवकी दृष्टि प्रपंचमेंही बँधी रहती है, ऐसे महाऐश्वर्यवान् ईश्वरको मैं नमस्कार करताहूं ॥२४॥ अहो ! देह, प्राण, इन्द्रिय, अन्तः-करण, पंचभूत पंचतन्मात्रा, यह सब आत्माको अर्थात् अपने स्वरूपको और इन्द्रियवर्गको और इन दोनोंमें श्रेष्ठ देवता वर्गको नहीं जान सक्ते, यद्यपि पुरुष अर्थात् जीव इन तीन और इन तीनके मूलीभूत समस्त गुणोंकोभी जानते हैं, तो वह ऐसे ज्ञात होकरभी सर्वज्ञ भगवान्को नहीं जान सक्ते। ऐसे अनंत भगवान्की मैं स्तुति करताहूं ॥ २५ ॥ जिनके द्वारा नाम रूपका निरूपण होता है वह मनकी दृष्टि, स्मृति, विनाशके हेतु जब उपरम अर्थात् समाधि होजाते हैं उस समय केवल स्वरूप ज्ञानसे जो प्रतीत होते हैं उन शुद्ध हंसको हम नमस्कार करते हैं उनके प्रतीत होनेका स्थानभी अतिशय पवित्र है ॥ २६ ॥ जो प्रकृति पुरुष महत् अहंकार और पंचतन्मात्रा इन नव और तीन गुण और षोडश विकार स्वरूप अपनी शक्तिके द्वारा हृदयके मध्यमें निश्चलहो रहे हैं और जो लोग यज्ञ करनेवाले पंद्रह सामिधेनी मंत्रोंसे प्रकाशित होतेहैं इसलिये अलौकिक अग्निके समान अतिशय

गूढ होनेके कारण विवेकी पुरुष बुद्धिसे विचार और खैंचकर जिनका ध्यान करते हैं॥ २७॥ वह परमात्मा हमपर प्रसन्न होवें, जो ईश्वर सबसे बडा है, जिनके अनंत विशेषण हैं और जिनके मोक्षसुखका अनुभव मायाके द्वारा निषेध नहीं होता, वही भगवान् सर्व नामधारी ईश्वर और विश्वरूपहैं जिनकी आत्मीय शक्तिका कोई वर्णन नहीं करसक्ता है, वह परमात्मा मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ॥ २८ ॥ अहो! जो स्वयंप्रकाश है, इसलिये वचनसे कहनेमें आता है. बुद्धिके द्वारा जिनका व्यवहार होता है, इन्द्रियोंसे जो निरूपित होताहै, मनके द्वारा जो संकल्पित होता है और यह संपूर्णभी जिसका स्वरूप नहीं होसक्ते क्योंकि यह सब पदार्थ गुणोंसे बढ़तेहैं सो परमात्मा इन सबसे अलग है, क्योंकि वह सब गुणोंकी उत्पत्ति और प्रलयसे अलग दृष्टि आतेहैं॥ २९॥ जिस अधिकरणमें, जिस अपादानसे, जिस कारणसे, जिसके सम्प्रदानके, जिस कर्मके और जिसकरके जिस प्रकारसे कौन कर्म कृत अथवा कारित होताहै, वही सबका ब्रह्म है वही सबका कारण है, क्योंकि वह सबके आगे अपने आपसेही सिद्ध हो रहे हैं, वह पर और अपर सबकाही परमकारण है और विजातीय शून्य हैं ॥ ३० ॥ जिनकी शक्ति वाद विवाद करनेवाले वादियोंके विवाद संवादकी भूमि है। और ब्रह्मही अपनी अपनी सब कहते हैं, जब सब पदार्थोंमें ब्रह्मकाही स्वरूप है और सब पदार्थोंका कारण है। फिरभी मीमांसकलोग परस्पर क्यों वाद विवाद करते हैं? कोई कहताहै, यह जगत् सदा ऐसेही चला आताहै, और यह जगत् न कभी उत्पन्न होता है, न कभी नाश होता है और विवादी लोग लोकमें अनेक अनेक प्रकारके वाद विवाद किया करते हैं और मोह ममता जो ब्रह्मकी माया है, उस अविद्या आदिकी शक्तियोंसे मोहित हो चित्तमें भाँति भाँतिके संकल्प विकल्प उठाते रहतेहैं और कहतेहैं कि, ब्रह्मके स्वरूपमें इनमेंका कोई पदार्थभी नहीं, वह परब्रह्म परमात्माका तो सबसे विलग है. और ब्रह्मवादी लोग मीमांसा करके उनको समझाते भी हैं, परन्तु तो भी वह सब अपनी अपनी गाते हैं जिसकी ऐसी अद्भुत माया है उस अनंत गुणरूप भूमा भगवान्को मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ ३१ ॥ कोई कहता है यह वस्तु है, कोई कहता है नहीं है, सबके मतमतान्तरोंमें अंतराय है और परस्पर विरुद्ध है, अहो! जो योग शास्त्रमें "पदादि हैं" कहकर जिसकी उपासना विधि बतलाते हैं और जो सांख्य शास्त्रमें "पदादि नहीं हैं" कहकर जिसकी उपासनाका निषेध करते हैं, परस्पर विरुद्ध उन योग और सांख्य शास्त्रोंके द्वारा जो कुछेक प्रतीत होतेहैं वह बृहद्वस्तु ब्रह्म विवादमें और अविवादमें आस्पद है अर्थात् वही परब्रह्म है, योग और सांख्य शास्त्रोंमें यदि कोई "पदादि हैं" और कोई "पदादि नहीं है" ऐसा कहकर विवाद करनेसे इन दोनोंका धर्म अलग अलग हो तो इन दोनोंका विधिनिषेध एक वस्तुमें निष्ठ होनेसे उनका विषय एकही होगया है। जो कुछ हो, वही वस्तु परम है, क्योंकि विधि और निषेधके विषयमें नहीं है और विना अधिष्ठानके पदादि कल्पना और विधिके निषेध असंभव होनेसे वह वस्तु अनुकूल अर्थात् इन दोनोंके उपपादक रूपमेंभी सिद्ध है ॥ ३२ ॥ अहो!

जो प्राकृत नाम रूप रहित होकरभी पादमूलके उपासनाकारी पुरुषोंके निमित्त अवतारोंके द्वारा विशुद्धसत्व अनेक २ रूप और कर्मोंसे अनेक २ नाम ग्रहण करते हैं, जिनका ऐश्वर्य अचिन्तनीय है, वह अनंत परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न होवैं॥ ३३॥ जिस प्रकार वायु पद्मादि विशेष विशेष पदार्थकी विशेष विशेष गंधका आश्रय करके अनेक अनेक गंधयुक्त हो प्रकाश पाती है और पृथ्वीकी रेणुका आश्रयकार काली, पीली, धुँधली, इत्यादि अनेक रूपवाली होजाती है, वैसेही जो भगवान् अर्व्वाचीन उपासनाके मार्गद्वारा मनुष्य गणोंकी वासनाके अनुसार उन उनही देवताओंके रूपमें विविध प्रकारसे प्रकाश पाते हैं अर्थात् जो एक परमेश्वरही उपासकोंकी वासनाके अनुसार उनकेही इष्टदेवरूप हो विशेष विशेष फल प्रदान कियाकरते हैं, वही परमेश्वर हमारे मनोरथ सफल करैं और किसी देवतासे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुश्रेष्ठ ! प्रजापति दक्षने जब इस प्रकार स्तुति करी तब भक्तवत्सल भगवान्ने उनके ऊपर संतुष्ट और प्रसन्नहो उस तीर्थमेंही प्रगट होकर अति चमत्कार रूपसे उनको दर्शन दिया ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् गरुडपर बैठे थे, आठ विशाल बाहु जानु पर्यंत लंबित हो रहे थे, आठों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, खड्ग पाश यह आठ आयुध शोभायमान थे ॥ ३६ ॥ पीताम्बर पहिरे, श्यामवर्ण, प्रसन्न वदन; कमलवत् नेत्र, सर्वदा प्रसन्न, कंठसे लेकर चरणोंतक वनमाला लटकाये, हृदयमें श्रीवत्सचिह्न, गलेमें कौस्तुभमणि झलकाये ॥ ३७ ॥ मस्तकपर किरीट मुकुट सजाये, कानोंमें मकराकार कुण्डल झलकाये, उन त्रिभुवनेश्वर भगवान्के चरणोंमें नूपुर पडे वह कटिमें किंकिणी, कौंधनी इत्यादि भूषणोंमें हीरेरत्न जडे अँगूठी, बाजूवंद कडे हाथोंमें शोभायमान थे ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे सजे हुये पुरुषोत्तम नामक त्रैलोक्य मोहन रूप धारण करके वह प्रगटे हुए। हे राजन् ! इस प्रकार वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो श्रीभगवान् अकेलेही नहीं प्रगट बरन् नारद, नंद इत्यादि पार्षद और समस्त लोकपाल उनको चारों ओरसे घेरे खडे थे ॥ ३९ ॥ और गान करते हुये सिद्ध, चारण व गन्धर्वगण दोनों ओर खडे होकर उनकी स्तुति कररहे थे. हे राजन् ! इसप्रकारसे अति आश्चर्यरूप देख करके प्रजापतिके अंतःकरणमें परमानंद उत्पन्न हुआ ॥ ४० ॥ मनके द्वार सब पूर्ण होगये, अति हर्षितचित्त होकर भूमिपर शिर नवाय दंडवत् प्रणाम किया, परन्तु प्रेमके मारे कोई बात उनके मुखसे निकल न सकी ॥ ४१ ॥ झरनेवाली नदी जिस प्रकार जलसे भरजातीहै, वैसेही अति भारी हर्षसे प्रजापतिके इन्द्रियोंके द्वार परिपूर्ण होगये थे अर्थात् अतिभारी आनन्दमें परिपूर्ण होनेके कारण उनकी रागादि इन्द्रियोंकी वृत्ति मानो शून्य होगई इसलिये वह वचन कहनेको समर्थ न हुये और पुरुषोत्तमकी केवल वंदनाही की ॥ ४२ ॥ यद्यपि उन्होंने कुछ नहीं कहा, तो भी सर्व भूतोंके चित्तकी जाननेवाले श्रीभगवान्ने उसी भाँति अपने प्रणतपरमभक्त इन प्रजापति दक्षसे कहा ॥ ४३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि,

हे प्रचेतापुत्र महाभाग दक्ष ! मुझमें भावसहित परम श्रद्धा करके तुम तपसे सिद्ध होगये ॥ ४४ ॥ हे प्रजानाथ ! तुम्हारी यह तपस्या विश्वकी बढानेवाली है इससे हम तुम्हारे ऊपर अतिशय प्रसन्न हुएहैं, क्योंकि सब प्राणियोंकी विभूति भलीभाँति बढ़े, यही हमारी कामना है। सो तुम्हारे द्वारा हमारी कामना पूर्ण हुई। इसलिये हम तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हैं ॥ ४५ ॥ हे वत्स ! तुम सब प्रजापति ब्रह्मा, शिव, मनुगण और देवेश्वरगण, यह सब हमारी विभूति और सब प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारण हैं ॥ ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् ! तप अर्थात् यम नियमादि सहित ध्यान हमारा हृदय है, विद्या अर्थात् साङ्गमंत्र जप हमारा शरीर है, क्रिया अर्थात् भावना शब्दवाच्य पुरुष अपार हमारा आकार है, यज्ञ हमारा अंगधर्म है, अर्थात् यज्ञानुष्ठान जनित अपूर्व हमारा मनहै, यज्ञभोक्ता देवगण हमारे प्राण हैं ॥ ४७ ॥ मुझमें अनंत गुणहैं, गुणोंसे गुणका विग्रह होताहै, जब आद्य हमही हैं तब स्वयं ब्रह्माजी हुये ॥ ४८ ॥ हे दक्ष ! आगे केवल हमही थे, हमारे सिवाय कुछभी बाहर भीतर नहीं था अर्थात् केवल चैतन्यमात्र था वहभी इन्द्रियवृत्तिसे जानाजाता इसलिये यह जगत सर्वत्र सोते हुएकी समान था ॥ ४९ ॥ उसके पीछे अनंत गुण जो हम हैं हमसे मायाद्वारा गुणमय विग्रह यह ब्रह्माण्ड जब प्रकाशित हुआ, तब उस समयही आद्य स्वयम्भू अयोनिज होकर उत्पन्न हुए ॥ ५० ॥ वह स्वयम्भू हमारे वीर्यसे वर्द्धित होनेके कारण सृष्टि उत्पन्न करनेको उद्यत हुये थे. परन्तु जब कि, उन्होंने अपनेको इस कार्यमें असमर्थ समझा तब हमने उनको तपस्या करनेका उपदेश दिया जिससे कि, उन्होंने दारुण तपस्या की और उसी तपस्याके प्रभावसे उन्होंने तुम नव (९) विश्व उत्पन्न करनेवालोंको उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ इसलिये हे दक्ष ! प्रसिद्ध प्रजापति पंचजनकी यह कन्या यहांपर है, जिसका नाम असिक्री है, तुम इसको अपनी स्त्री बनाओ ॥ ५२ ॥ स्त्री पुरुषका रति क्रीडारूप जो मैथुन धर्म है, उसी मैथुन धर्मका आश्रय लेकर इस रूपवती और धर्मवती कन्यामें तुम अनेक प्रजा उत्पन्न करोगे ॥ ५३ ॥ हमारी मायाके वश होकर तुम्हारे पीछेकी सब प्रजाभी स्त्रीके साथ मैथुन धर्मसे पुत्रादि रूपमें उत्पन्न होगी और हमारे लिये भेंट देगी ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! विश्वभावन भगवान् इस प्रकार कहकर दर्शनकारी दक्षके सामने स्वप्नमें प्राप्त हुये पदार्थकी नाईं उस स्थानमेंही अन्तर्धान होगये, तब दक्षजीने यह कवित्त कहा ॥

कवित्त-राग उदै भोगभाव लागत सुहावने हैं, विना राग ऐसे लगैं जैसे नाग कारे हैं। राग ही से पागरहै तनुमें सदीव जीव, राग गये आवत गिलानी होत न्यारे हैं॥ रागहीसे जगरीति झूठी सब सत्य जानै, राग मिटे सूझत असार खेल सारे हैं। रागी वीतरागीके विचारमें है बडो-भेद, जैसे भटा पथ काहु काहू को बयारे हैं ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-पञ्चममाहीं देव ऋषि, कूट वचन कहे आप।
दीने पुत्रनि मार सब, दक्ष दियो तब शाप॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि प्रजापति दक्षने विष्णुभगवान्की मायासे बढकर उस पंचजनाकी कन्या असिक्नीके गर्भमें हर्यश्वगण दशपुत्र उत्पन्न किये॥ १ ॥ हे नरेन्द्र! उन सब पुत्रोंका एकसा आचार व्यवहार और एकही प्रकारका स्वभाव हुआ, जब प्रजापति दक्षने उनको सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी तो वह सब पश्चिम दिशाको चले गये ॥ २ ॥ पश्चिम दिशाके उस स्थानमें कि जहां सिन्धु नदी समुद्रके साथ मिली है, उसी स्थानमें नारायणसर नामक एक तीर्थ है, वह अतिशय पुण्यदायक है, बड़े बड़े महात्मा मुनि लोग और सिद्धगण सदा उसकी सेवा किया करते हैं॥ ३ ॥ दक्षके पुत्र हर्यश्वगण उसी तीर्थमें पहुँच और उसका जल स्पर्श करतेही उनके अन्तःकरणोंका अनन्त मल भलीभांति धुलगया और परमहंसधर्ममें उनकी बुद्धि उदित हुई ॥ ४ ॥ तथापि उनके पिताने जो उनको सृष्टिके रचनेकी आज्ञा दी थी, वह सब उसी काममें लगे हुये सृष्टिके उत्पन्न करनेकी कामनासे बड़ी घोर तपस्या करने लगे, एक दिन देवर्षि नारदजी उस स्थानपर होकर जारहे थे, उन्होंने जाते जाते देखा कि यह सब हर्यश्व पवित्र और शुद्ध होकरभी अपने पिताकी आज्ञासे प्रजा उत्पन्न करनेके लिये उद्युक्त होरहे हैं॥ ५ ॥ इसलिये देवर्षि नारदजी उनसे बोले कि, हे हर्यश्वगण! तुम लोग बालक हो, कैसे खेदकी बात है कि तुम सब सृष्टि उत्पन्न करनेके लिये तपस्या करते हो यह बडी मूर्खता है, भला इस पृथ्वीका अन्त विना जाने तुम किस प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न करोगे ॥ ६ ॥ जहाँ इकलाही पुरुष है, वह राज्य और जिससे कभी किसीको निकलते न देखा जाय वह बिल, और जिसके बहुतरूप हों वह स्त्री, जो पुंश्चली स्त्री का पतिहो वह पुरुष ॥ ७ ॥ और वह नदी जो दोनों ओर बहती हैं और वह गृह जो पचीस (२५) पदार्थोंसे अति अद्भुत है और उसमेंहीका वह चित्र विचित्र ध्वनियुक्त हंस जो कठिन कठिन शब्दोंसे और वज्रसे बना है, स्वतन्त्र और अपने आप घूमता है ऐसा तीक्ष्ण चक्र ॥ ८ ॥ इन सबको विना जाने तुम किस प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न करोगे तुम्हारे पिता सर्वज्ञ थे उनकी अनुरूप आज्ञा क्या है उसकोभी भली भाँतिसे पहले जान लेना कर्तव्य है, इन सब बातोंको विना जाने सृष्टि उत्पन्न करनेकी शीघ्रतासे एकाएकी उपस्थित हो जाना किसी प्रकारसे हमको ठीक नहीं जँचता है ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे परीक्षित्! हर्यश्वगण इस बातको सुन अपनी स्वाभाविक बुद्धिसे नारदजीके कहे कूटवचनोंका उत्तर देनेको परस्पर विचार करते २ कहने लगे कि ॥ १० ॥ देवर्षि नारदजीने दश वाक्य कहे। "विनाजाने" इत्यादि जो वाक्य कहे हैं, उनका अर्थ यही है कि भूमि अर्थात् क्षेत्र जो जीव संज्ञक यह लिंग शरीर जो आत्माके बंधनका कारण है, इसलिये देवर्षि नारदजीके इस वाक्यका यही तात्पर्य होगा कि लिंगशरीरके अंत अर्थात् विनाश दर्शन करके मोक्षके विरुद्ध असत् कर्म करनेसे क्या फल होगा ॥ ११ ॥ और देवर्षि नारदजीने जो "जहाँ एक मात्र पुरुष है, वह राज्य"

इत्यादि जो वचन कहे हैं, उनकाभी यह अर्थ है कि एक मात्र ईश्वरही सबके साक्षी हैं, उनका आश्रय और कोई नहीं है वह अपने आपही अपने आधार हैं, उन नित्यमुक्त ईश्वरको विना जाने और उनमें समर्पण विना किये वृथा कर्म करनेसे क्या फल होगा? ॥ १२ ॥ और देवर्षि नारदजीने "जिससे कभी किसीको निकलते न देखा जाय वह बिल विना देखे" इत्यादि जो वचन कहे हैं, उनका तात्पर्य यही है कि पुरुष जहाँ जायकर बिल स्वर्ग अर्थात् पातालमें गये हुए पुरुषकी समान वहाँसे फिर पीछेको न लौटसकै वह परमज्योति स्वरूप परब्रह्म है, उस ब्रह्मको विनाजाने निरर्थक नाशवान् स्वर्गके साधन करनेवाले कर्मोंके करनेसे क्या फल मिलैगा? ॥ १३ ॥ और देवर्षिजीने "जिसके बहु रूपहो वह स्त्री" यह जो कहा इसका अर्थ यह जानपडता है कि अपनी बुद्धि स्वैरिणी-स्त्रीके समान मोहकी करनेवाली और रज इत्यादि अनेक गुणोंसे युक्त है। जो पुरुष उस बुद्धिके अन्तको प्राप्त नहीं होता, उसके अशान्तकर्म करनेसे उसको क्या फल मिलैगा? ॥ १४ ॥ और नारदजीने "पुंश्चली स्त्रीका पति हो वह पुरुष" इत्यादि जो कहा है, इसका आशय यह है कि इस मायाके संगके वश जिसका ऐश्वर्य भ्रष्ट होगया है, इसलिये कुत्सित स्त्रीके स्वामीके समान जो उस मायाके सुखदुःखरूप गतिका पीछा करते हैं उस जीवको जो पुरुष नहीं जानता उसके अविवेकसे कियेहुये कर्मोंके करनेसे क्या फल होगा? ॥ १५ ॥ और मुनिने "वह नदी जो दोनों ओरको बहती है" यह जो बात कही, इसका अर्थ यही है कि, संसारमें सृष्टि और प्रलय करनेवाली जो माया है वही नदी स्वरूप है, क्योंकि प्रलय और सृष्टि, यही दो इसके प्रवाह हैं, जो दोनोंओरको बहते हैं, यद्यपि तपस्या और विद्या इत्यादि इस नदीके कूल अर्थात् निर्गम स्थान हैं, तथापि निर्गमको रोकनेके लिये जो पुरुष उस नदीके तेजको बिना विचारे कर्मोंको करै, उस्से क्या फल होगा? ॥ १६ ॥ और देवर्षिने "वह गृह जो पचीस (२५) पदार्थोंमें अति अद्भुत है" जो कहा इसका तात्पर्य यह है कि अन्तर्यामी पुरुष पचीस तत्त्वके अति आश्चर्यवाले आश्रय हैं, वह कार्य कारण और संघातके अधिष्ठाता हैं, उनको जो पुरुष नहीं जानता उसको मिथ्या और स्वतन्त्रतासे किये हुए कर्मोंसे क्या फल होगा? ॥ १७ ॥ और देवर्षिने "विचित्रकथा युक्त हंस" इत्यादि जो कहा इसका आशय यह है कि, ईश्वरके प्रतिपादक शास्त्रोंमें चित्त और जडरूप वस्तु विशेष रूपसे विचारी जाती है, इस लिये वह हंसस्वरूप है, हंस जैसे दूध और पानीको अलग अलग करदेता है, ऐसे यह शास्त्र अचैतन्य और चैतन्य वस्तुको भिन्न भिन्न कर देता है, किस कर्ममें बंधन और किस किस कार्यमें मुक्ति है इसको दरशाया करता है, इसलिये उसकी सब कथा विचित्र हैं। इस शास्त्रको त्याग करके अर्थात् न जान करके केवल बहिर्मुख कर्म मात्रके करनेसे क्या फल होगा? ॥ १८ ॥ और देवर्षिने "शस्त्र और वज्रादिसे बना हुवा, स्वयं घूमता तीक्ष्ण चक्रका जो वर्णन किया" उसका अर्थ सुतीक्ष्ण कालचक है, वही अपने आप रात-दिन घूमता रहता है, और यही सब संसारको संहार करता है इसलिये वह स्वतंत्र

है, उस कालचक्रकी गतिको विनाजाने असत्कर्मोंके करनेसे क्या लाभ होगा? ॥ १९ ॥ और नारदजीने जो हमसे कहा कि "तुम्हारे पिताकी अनुरूप आज्ञा क्याहै, उसको भली भाँति विना जाने कैसे सृष्टि उत्पन्न करोगे" इसका तात्पर्य यही है कि शास्त्रही हमारा पिता है, क्योंकि वह द्वितीय जन्मका कारण है, निवर्तक होनाही उसकी आज्ञा है, उस निवर्तक आज्ञाको जो पुरुष नहीं जानता वह गुणयुक्त प्रवृत्तिमार्गमें विश्वासवान् हो सृष्टि इत्यादि कार्योंमें किस प्रकार लगसक्ता है? दक्षकूट, "मोक्षेशब्रह्मबुद्धीनां जीवमायांतरात्मनाम् ॥ शास्त्रकालोपदेशानासज्ञाने किमु कर्मभिरिति" ॥ २० ॥ हे राजन्! इस प्रकार निश्चय करनेके पीछे दक्षके पुत्र हर्यश्वगण एकमति करके नारदजीकी बातका प्रमाण और उनकी प्रदक्षिणा कर जिस मार्गसे फिर लौटना नहीं होता उस मार्गमें प्रस्थान करते हुए ॥ २१ ॥ देवर्षि नारदजीभी स्वरूप ब्रह्म भगवान् हृषीकेशके चरणकमलमें अपने मनको संपूर्ण रीतिसे लगाकर अपनी इच्छानुसार भ्रमण करने लगे और यह गाने लगे ॥ २२ ॥

स्वरब्रह्मकी यह सरगम भैरवीकी है, तिताला धीमा टप्पा,

सारे गम धम पगधध पमगम पधम पग ॥ आस्ताई ॥ धधनि सा धनि सागरे सानिध गरे सानी धपमगरे सा सारेगमरे गम पग मग ॥ धमप धनिप धनिसा सानिधप निध पम धप गग पम गरे मगरेसा ॥१॥

कुछ समय बीतनेके पीछे प्रजापति दक्षजीने नारदजीके मुखसेही सुना कि, सब पुत्रगण जो सुशीलतासे सदा शोभा पाते अब अदृश्य हो गये हैं, यह जानकर दक्षजी शोकयुक्त हो अपने पुत्रोंके लिये शोकसंताप करने लगे। अच्छे पुत्रवालाही शोकका स्थान हैं, फिर भला सर्वश्रेष्ठ संतान हर्यश्वगणोंके लिये दक्षजीको शोक क्यों नहीं होगा ॥ ॥ २३ ॥ हे राजन्! जब दक्षजी शोकके मारे व्याकुल हुए तब भगवान् ब्रह्माजी उनके निकट आये और अनेक प्रकारके वचनोंसे उनको समझा बुझाकर चलेगये। प्रजा उत्पन्न करनेकी दक्षके अंतःकरणमें बडी इच्छा थी। जब ब्रह्माजीने उनको समझाया बुझाया तब दक्षजीने फिर प्रजा उत्पन्न करनेके मनसे अपनी स्त्री उसी पाञ्चजनीके गर्भमें सबलाश्व नामक एकसहस्र पुत्र उत्पन्न किये ॥ २४ ॥ प्रजापति दक्षजीने सबलाश्व नामक इन पुत्रोंको भी प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी। यहभी व्रत धारणकर जहाँ इनके पहिले भ्राता तप करके सिद्ध हुए थे, उसी नारायण सरोवरपर गये ॥ २५ ॥ हे राजन्! नारायणसरोवरका पवित्र जल स्पर्श करतेही सबलाश्वगणोंका पाप धुलगया और चित्त शुद्ध होगया। उस परब्रह्म अर्थात् प्रणवका जप करके बडाभारी तप उन लोगोंने आरम्भ किया ॥ २६ ॥ कुछ महीने जल पीकर, कुछ महीने केवल वायु (हवा) भोजन कर इन्होंने बिताये और इस मंत्रका अभ्यास करते उस मंत्रपति भगवान्की अराधना करते थे ॥ २७ ॥

"ॐनमो नारायणपुरुषाय महात्मने विशुद्धसत्त्वधिष्णवे महाहंसाय धीमहि" यथा,- परम पुरुष महात्मा नारायण विशुद्ध सत्वगुणके आश्रय परमहंसरूपी भगवान्का ध्यान

करनेलगे ॥ २८ ॥ हे विदुर ! सबलाश्वगण प्रजा उत्पन्न करनेकी कामनासे इस प्रकार तप करनेमें ध्यान लगा रहे थे कि, एक दिन देवर्षि नारदजी उनके निकट आये और जैसे इन्होंने हर्यश्वोंको कूट वचन कहे थे, उन लोगोंकोभी इसी प्रकार कूट वचन कहे ॥ ॥ २९ ॥ नारदजी बोले कि, हे दक्षनंदन ! सबलाश्वगण हमारे उपदेश किये वचनोंको तुम सुनो, तुम सब भाइयोंको प्यार करनेवाले अपने बडे भाइयोंकी पृथ्वीको देखो ॥ ॥ ३० ॥ जो धर्मज्ञ भ्राता अपने भाईकी गतिको जाता है वही पुण्य बंधु है, भ्राताके चाहने वाले देवतागण उनको लेकर आनंद मनाया करतेहैं ॥ ३१ ॥ हे आर्य राजवर्य ! देवर्षि नारदजी केवल इतनाही कहकर अपने स्थानको चलेगये । उनका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता. इसलिये उनके इन वचनोंसे सबलाश्वगणभी अपने बडे भाइयोंके मार्गकी रीतिपर चले ॥ ३२ ॥ वह लोग बहुत सुंदर प्राचीन परमेश्वरके मार्गको गये जिस प्रकार पश्चिम-की गई राति लौटकर नहीं आती, वैसेही आज वहभी लौटकर नहीं आये ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इस ओर प्रजापति दक्षको अनेक अनेक भाँतिके उत्पात दीखने लगे, उन्होंने थोडेही दिन पीछे सुना कि नारदजीकी सम्मतिसे सबलाश्वनामक पीछे उत्पन्न हुये पुत्रगण भी विनाशको प्राप्त हुये ॥ ३४ ॥ इसलिये दक्षजी पुत्रशोकसे मूर्छितहो महर्षि नारदजी के ऊपर क्रोधित हुये । देवर्षि नारदजीने पहलेही जान लिया था कि, पुत्रोंकी पारमहंस्य धर्ममें निष्ठाकी कथा सुननकर प्रजापति दक्ष क्रोधित होंगे, इसलिये नारदजी अनुग्रह प्रगट करनेके लिये उनके निकट गये । तब दक्षजी क्रोध वेगके मारे अधरों (होठों) को फड-काय नारदजीका अपमान करनेलगे ॥ ३५ ॥ दक्ष बोले कि, अरे असाधु ! तेरा वेषही साधुको तुल्य है, परन्तु वास्तवमें तू साधु नहीं, क्योंकि तैंने हमारे पुत्रोंके ऊपर अतिशय असाधुपनका व्यवहार किया है, हमारे पुत्र निज धर्ममें प्रवृत्त थे, तुमने उनको भिक्षुक मार्गका उपदेश किया, क्या यह साधुका कर्म है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण जन्म लेतेही तीन ऋणोंसे ऋणी होता है, सो तीनों ऋणोंसे विना छूटे कर्मोंकी मीमांसा करेविना हे पापरूप! अभी हमारे पुत्रोंका ऋषिऋण नहीं छूटा । पुत्र उत्पन्न करना और यज्ञानुष्ठान तो पीछे करना होता है, फिर भला इन दो कार्योंकेही करनेसे देवऋण और पितृऋणसे किस प्रकार मुक्ति हुई ? जो हो तू अतिशय पापी है, क्योंकि संसारी सुख छुडाकर तैंने हमारे पुत्रोंका यह लोकही नहीं बरन् परलोकभी बिगाडा । क्योंकि अब उनका मोक्षमें अधिकार नहीं रहा। मनुस्मृतिमें है कि, " ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षे तु सेवमानो व्रजत्यधः " श्रुति " जायमानोवै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारी वासी " इति श्रुतेः ॥ ३७ ॥ तू बडा निर्दयी है, बालकोंकी पुत्रादि उत्पन्न करनेकी गति तैंने बिगाडदी । क्या आश्चर्य है, तू इस प्रकारसे भगवान्का यश नाश करनेवाला होकर किस भाँतिसे उनके पार्षद गणोंके बीचमें फिरा करता है; क्या निर्लज्जता है ॥ ३८ ॥ अरे ! हम देखते हैं कि तेरे सिवाय सब भगवत्भक्त सब प्राणियोंपर अनुग्रह करनेमें उप-

स्थित रहते हैं, परन्तु तू मित्रोंसे द्रोह कराने वाला है और जो वैरी न होय उसे तू वैरी बना देता है, इस प्रकारसे सब प्राणियोंका अप्रिय करनेमें तुझे लज्जा नहीं होती ॥ ३९ ॥ यदि तैंने अपने मनमें ऐसा समझा है कि, वैराग्यसे उपशम और उपशमसे स्नेहकी फाँसी टूट जाती है और विरक्त पुरुषोंकी तीन ऋणोंका दूर करना अनावश्यक है, तोभी ज्ञानके विना मिथ्या इस प्रकारका वेष धारणकर इस प्रकार मति चलायमान करनेसे पुरुषोंको कभी वैराग्य नहीं होसक्ता, जब वैराग्यही नहीं, तब उपशम कहांसे होगा ? जब उपशम नहीं तब स्नेहपाश छूटनेकी क्या संभावना है ? ॥ ४० ॥ जबतक यह किसी बातका अपने आपही अनुभव करता है, तबतक विषयोंकी तीक्ष्णतासे जो आप वैराग्यवान् होय तो ठीक है, औरोंके सिखाने बहकानेसे जो बुद्धि भिन्न कारणसे ज्ञान होता है, वह कुछभी नहीं है ॥ ४१ ॥ जो हो ! हम लोग साधु हैं, कभी किसीका अप्रिय करना नहीं जानते, तैंने जो हमारा यह सहनेके अयोग्य अप्रिय कर्म किया, इसको हमने सहन करलियाथा ॥ ४२ ॥ परन्तु हे अधम ! संतानके नाशकरनेवालेने हमारा जो अभद्र अर्थात् पुत्रगणोंका स्थानभ्रष्ट करके अमंगल किया इसलिये लोकोंके मध्यमें तुझे कहीं स्थान प्राप्त नहीं हो सकेगा । अर्थात् एक स्थानपर बैठेगा तो तेरे मस्तकमें दर्द होजायगा, तेरा जन्म भटकतेही भटकते कटेगा ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! साधु सम्मति देवर्षि नारदजीको जब पुत्रशोकसे व्याकुल हुये दक्षजीने शापदिया तब नारदजीने कुछ न कहकर उस शापको अंगीकार करलिया, क्योंकि प्रति शाप देनेमें समर्थ होनेपरभी उसका सहलेनाही साधुओंका मतहै ॥ ४४ ॥

भजन-मेरा कछु नाहिं प्रभु तेरी प्रभुताई है ॥ तैंनेही विश्वरचा, तूही विश्वरूप हुआ, तेराही तमाशा सब, तूही तमाशाई है ॥ ध्यानहै हर आन तेरा, हरदम है बयान तेरा, जबसे कुछ ज्ञान हुआ, तबसे समझ आईहै ॥ तेराही दास सदा, दर्शनकी आश सदा, कीजिये सहाय सदा, संतन सुखदाईहै ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-साठ सुता उत्पन्न की, दक्ष छठे अध्याय।
भिन्न भिन्न वर्णन करौं, तिनके कुल समुदाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके पीछे दक्ष प्रजापतिने ब्रह्माजीकी आज्ञासे असिक्नी अपनी स्त्रीमें अतिप्यारी साठ (६०) कन्या उत्पन्न करी कारण कि, स्त्रियोंको एकाएकी ज्ञान नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥ उन साठ कन्याओंमेंसे दश धर्मको, तेरह कश्यपजीको, और सत्ताईस चंद्रमाको व्याहदीं, भूतनाथ अंगिरा और कृशाश्व इन तीन मुनियोंको दो दो कन्या व्याहीं और बाकी चार गरुड़जीको देदीं ॥ २ ॥ हे राजन् ! प्रजा-

पति दक्षजीकी सव कन्या पुत्रवती हुई, उनके नाम अलग २ कहताहूं तुम सुनो । उन-केही पुत्र पौत्रादिकोंसे पृथ्वी पारिपूर्ण होगई ॥ ३ ॥ हे महाराज ! भगवान् धर्मने जिन दशकन्याओंका पाणिग्रहण किया उनके यह नाम हैं, यथा भानु, लम्वा, ककुभ, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता और संकल्पा अब इनमेंसे प्रत्येकके वंशका विवरण कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥४॥ हे राजन् ! भानुका पुत्र देवर्षभ, देवर्षभका पुत्र इन्द्रसेन लम्वा नामक जो धर्मकी पत्नी हुई,उसके गर्भमें विद्योतके स्तनयित्नुनाम पुत्र हुए ॥५॥ हे राजन् ककुभ नामक धर्मकी स्त्रीके संकट नामक पुत्र हुआ,इस संकटका पुत्र कीकट हुवा तिस्से पृथ्वीके समस्त दुर्ग अर्थात् दुर्गाभिमानी देवतागण उत्पन्न हुए, जामिका पुत्र स्वर्ग जिस्से नन्दिकी उत्पत्ति हुई ॥ ६ ॥ हे राजन् ! विश्वाके पुत्र विश्वेदेवगण हुए, इनके कोई संतान नहीं हुई, इसीलिये इनको लोकमें अप्रजा कहा करतेहैं इस प्रकारसे साध्याके संतान साध्यगण और उनका पुत्र अर्थसिद्ध हुआ ॥७॥ मरुत्वतीके गर्भमें दो पुत्र हुए । उनके नाम मरुत्वान् और जयन्त उनमें जयन्त वासुदेवके अंशसे,उत्पन्न हुए । इसलिये सव उसको उपेन्द्रभी कहते हैं ॥८॥ हे राजन् ! मुहूर्त्ताके गर्भमें मौहूर्तिक नामक देवगण उत्पन्न हुए, वह लोग प्राणियोंको अपने २ कालका उत्पन्नहुवा फलदान किया करते हैं ॥ ९ ॥ संकल्पाके पुत्र संकल्प और उनका पुत्र काम, हे राजन् ! वसुके पुत्र आठ वसु हुए उनके नाम सुनो ॥ १० ॥ द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु, और विभावसु बस यही आठ वसुहैं इनमें द्रोणकी स्त्री अभिमतिके गर्भसे हर्ष, शोक, भय इत्यादिपुत्र उत्पन्न हुये ॥ ११ ॥ प्राणकी स्त्री ऊर्जस्वती भार्याके गर्भमें, सह, आयु और पुरोजव पुत्र हुए,ध्रुवकी स्त्री धरणीने विविध पुत्र उत्पन्न किये ॥ १२ ॥ अर्ककी भार्या वासनासे तर्ष, भय,आदि अनेक पुत्र उपजे । अग्निकी स्त्रीका नाम वसुधारा इसके गर्भमें द्रवणिक इत्यादि अनेक पुत्र और स्कन्द जन्मग्रहण करते हुए ॥ १३ ॥ यह स्कन्दजी लोकमें कृत्तिकाके पुत्रभी कह-लाये जातेहैं सो जो कुछ उनसेही हो विशाखादिककी उत्पत्ति हुई हे । राजन् ! दोषनामक वसुकी स्त्री शर्वरीमें शिशुमार पुत्र उत्पन्न हुआ यह भगवान् हरिके अंशसे हुआ ॥ १४ ॥ वास्तु नामक वसुकी भार्या अंगिरसीमें विश्वकर्मानामक वह पुत्र उत्पन्न हुए जो देवता लोगोंके शिल्पाचार्य प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! विश्वकर्माजीसे चाक्षुष और मनु पुत्र उत्पन्न हुए जिनके पुत्र विश्वेदेव और साध्यगण जन्मे । हे कौरवश्रेष्ठ ! विभावसु नामक वसुकी स्त्री ऊषाने विभावसुसे व्युष्ट रोचिष, आतप,यह तीन पुत्र उत्पन्न किये । इन तीन पुत्रोंमें आतपसे पञ्चयाम अर्थात् दिवसकी उत्पत्ति हुई जिससे कि सब प्राणी अपने अपने सुकर्मोंमें लगे रहकर जागते रहते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! प्रजापति दक्षजीने जो अपनी दो कन्या भूतको दी थी, इस समय हम उनके वंशको कहतेहैं तुम सुनो । भूतकी स्वरूपा नामक स्त्रीने रुद्रगणको प्रसव किया, उनके नाम यह हैं रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि ॥ १७ ॥ अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान् हे राजन् ! इन ग्यारह रुद्रोंके पार्षद जो प्रेतादि हुये वह इस भूतकी दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न हुये ॥१८॥ हे राजन् !

अङ्गिरा प्रजापतिकी दो भार्या स्वधा व सतीनामक हुईं उन स्वधाने पितृगणको अपना पुत्र मानकर स्वीकार कर लिया और सतीने अथर्वाङ्गिरस नामक एक देवको पुत्र करके मान लिया ॥ १९ ॥ हे राजन् ! कृशाश्व प्रजापतिकी दो भार्या अर्चि और धिषणा नामक थीं, कृशाश्वने इन दो स्त्रियोंमेंसे अर्चिके गर्भमें धूमकेतुको उत्पन्न किया और धिषणाके गर्भमें वेदशिरा, देवल, वपून और मनु, यह चार पुत्र उत्पन्न किये,तार्क्ष्य प्रजापतिकी चार स्त्रियें हुईं,विनता, कद्रू, पातङ्गी और यामिनी, इनमें पातंगीने पतंगोंको प्रसव किया, यामिनीने शलभ (टीडी पुत्र) उत्पन्न किये ॥ २० ॥ विनताने गरुड़ और अरुण नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, उनमें गरुड़जी साक्षात् यज्ञेश भगवान् विष्णुजीके वाहन हुये और अरुण सूर्यनारायणके सारथी हुये, हे राजन् ! कद्रूके गर्भमें अनेक अनेक नाग उत्पन्न हुये ॥ २१ ॥ हे भारत ! चन्द्रमाकी पत्नी कृत्तिकादि नक्षत्र हुये, परन्तु प्रजापति चन्द्रमा सब स्त्रियोंका निरादर करके केवल रोहिणीसेही अतिप्रीति किया करते थे, इसलिये और कन्या ओंका दुःख देखकर दक्षजीने शाप दिया कि, तुम्हें क्षय रोग होजाय, इसलिये चंद्रमासे इनकी किसी स्त्रीके गर्भमें कुछ संतान नहीं हुई ॥ २२ ॥ फिर प्रजापति चंद्रमा क्षयरोग होजानेसे अपने मनमें महादुःखी रहने लगा, तब अनेक विनयसे दक्षको प्रसन्न किया-पीछे दक्षने प्रसन्न होकर यह वर दिया कि, कृष्णपक्षमें जो तेरी कला क्षीण हो जाती हैं वह कला शुक्लपक्षमें पूरी होजाया करेंगी, इस प्रकार कला तो पूरी होने लगीं परंतु तोभी संतान कुछ न पाई, चन्द्रमाकी कला कृष्णपक्षमें क्षय होती है. हे राजन् ! कश्यपजीकी जो स्त्रियें हुईं वह सब लोकोंकी जननी हैं इसलिये उनके कल्याण-कारी नाम सुनो ॥ २३ ॥ २४ ॥ क्योंकि यह सब जगत् कश्यपजीकी स्त्रियोंसेही उत्पन्न हुआ है अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला ॥ २५ ॥ मुनि, क्रोधवन, ताम्रा, सुरभी, सरमा और तिमि यह सब कश्यपकी स्त्रियें हुईं इनमेंसे तिमिके पुत्र यादोगण अर्थात् समस्त जलजंतु उत्पन्न हुये और सरमाके केवल जंतु हुये ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! सुरभीके पुत्र गौ, महिष और खुरवाले और दूसरे जीव जंतु हुये ताम्राके पुत्र श्येन (शिकरा) गीध इत्यादि विहंगमगण और मुनिकी संतान अप्सरायें हुईं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! क्रोधवशाके पुत्र दन्दशूक और सूर्य इत्यादि पेटके बल चलनेवाले हुये, इलाके पुत्र सर्वप्रकारके भूरुह (वृक्ष लतादि) जन्मे और सुरसाके पुत्र राक्षस हुये ॥ २८ ॥ अरिष्टाके गंधर्वगण जन्मे, काष्ठाके संतान एक खुरवाले पशुगण हुये । हे राजन् ! कश्यप-प्रजापतिकी दनुनामक स्त्रीके ६१ इकसठ पुत्र हुये, उनमें १८ अठारह प्रधान प्रधान पुत्रों के नाम सुनो ॥ २९ ॥ द्विमूर्द्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शंकु-शिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, ॥ ३० ॥ पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति और दुर्जय ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इन कहे हुये दानवोंके मध्यमें स्वर्भानुकी सुप्रभा नामक जो एक कन्या हुई, नमुचिने उसका पाणिग्रहण किया और वृष-पर्वाकी शर्मिष्ठा नामक जो एक कन्या हुई, नहुषपुत्र बली ययातिने उसके साथ यथा-

विधिसे विवाह किया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! दनुके पुत्र जो वैश्वानर हुये उनके चार दर्शनवाली कन्या हुई. यथा–उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालका ॥ ३३ ॥ उनमें उपदानवीके साथ हिरण्याक्षने विवाह किया और हयशिरा, क्रतुकी स्त्री हुई । और पुलोमा व कालका इन दोनों दानव कन्याओंके साथ प्रजापति कश्यपजीने ब्रह्माजीके कहनेसे विवाह किया ॥ ३४ ॥ उनके निवातकवच इत्यादि साठ (६०)हजार पुत्र हुये यह सब पुत्र पौलोम और कालक नामसे प्रसिद्ध हुये थे, और वह अनंतवीर्यवान् होनेसे सदा युद्ध (विग्रह) करनेमें लगे रहते और ऋषि, मुनि इत्यादिकोंके यज्ञमें सदा बाधा डाला करते ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इसलिये तुम्हारे पितामह अर्जुनको स्वर्गमें इन्द्रने कहा कि, तुम मेरे परममित्र हो, इनको मारकर मेरा भय दूरकरो, तव इन्द्रके कहनेसे अकेलेही अर्जुनने इन सब दानवोंको मार डाला. हे राजन् ! इस कर्म करनेसे तुम्हारे पितामह अर्जुन देवराज इन्द्रके अतिशय प्यारे हुये थे ॥ ३६ ॥ दितिके सुत हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु हुये और एक सिंहिका नामक कन्या हुई ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! विप्रचित्ति दानवकी भार्या इस सिंहिकाके गर्भमें एक शत एक (१०१) पुत्र उत्पन्न हुये उन सबमें बडा पुत्र राहु हुआ इसके सिवाय शतपुत्र केतु, यह सब ग्रहभावको प्राप्त हुए ॥ ३८ ॥ अब अदितिके वंशका वर्णन करते हैं सो प्रारंभसे सुनो, इसवंशमें भगवान् विभु अपने अंशसे स्वयं अवतीर्ण हुये थे ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरुक्रम यह बारह सूर्य आदितिके पुत्र हुए ॥ ॥ ४० ॥ उनमें विवस्वानसे संज्ञा श्राद्धदेव नामक मनुको प्रसव करती हुई और भाग्यवती यामी, यम यमुना यह दो पुत्र,कन्या उत्पन्न किये, हे राजन् ! इन यामीने ही वडवा होकर अर्थात् घोडीका रूप धारण करके अवनिमंडलमें चरते चरते दो अश्विनीकुमारोंको उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥ और छायाने इन विवस्वान्से शनैश्चर और सावर्णि मनु दो पुत्र और तपती नामक एक कन्या प्रसव की, तपती कन्याने संवरणको पति किया ॥ ४२ ॥ अर्यमाकी मातृका स्त्रीके गर्भमें अनेक २ ज्ञानवान् संतान हुई, इन सब पुत्रोंके मध्यमें विशेष आत्मानुसंधानसे भगवान् ब्रह्माजीने मनुष्यजातिकी कल्पना की है ॥ ४३ ॥ पूषाके कोई संतान नहीं हुई, वह पुत्ररहित और दंतहीन होकर पीसीहुई सामग्रीको भक्षण करता रहा पहिले दक्षजीके ऊपर कुपित भगवान् शिवजीको निहार कर अपने सब दाँत निकालकर यह पूषा ऊंचे शब्दसे हँसा था, इसी कारणसे इसके सब दाँत शिवजीके गणोंसे तोड डाले गये थे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! त्वष्टा प्रजापतिसे भार्या दैत्यकन्या रचना हुई, इसके गर्भमें इन प्रजापतिसे सन्निवेश और विश्वरूपकी उत्पत्ति हुई, यद्यपि यह विश्वरूप शत्रु लोगोंकी भगिनी (बहन) के तनय थे, तो भी जब अंगिरागोत्री बृहस्पतिजीने देवताओंका त्यागकिया था, तब देवतालोगोंने इन्हीं विश्वरूपजीको अपना पति बनाया था और सबने इस प्रकार स्तुति की थी.

सवैया–ध्यान हुताशनमें अरि ईंधन, झोक दियो रिपुरोक निवारी ॥ शोक हरो सब लोकनको वर, केवल भान मयूख उधारी ॥ लोक अलोक विलोक भये शिव, जन्म जरा मृत पंक पखारी ॥ सिद्धन थोक वसैं शिव लोक, तिहींपग धोक त्रिकाल हमारी ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा–सप्तम माहीं देवगुरु, दियो इन्द्र बिसराय।
विश्वरूपको इन्द्र पुनि, कियो पुरोहित जाय ॥

श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखसे यह प्रसंग सुन, शिर नवाय राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! देवतालोग तो बृहस्पतिजीके बडे भारी शिष्य थे, उनको देवगुरु बृहस्पतिजीने किस कारणसे त्यागा बृहस्पतिजीके चेलोंने क्या अपराध किया सो अनुग्रह करके वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! देवराज इन्द्र त्रिभुवन के ऐश्वर्यको पाय एक समय मदोन्मत्त हो सन्मार्गको छोड मरुद्गण ४९ वसुगण ८ रुद्रगण ११ आदित्य गण १२ ऋभुगण विश्वेदेवगण साध्यगण और दोनों अश्विनी कुमारों के साथ बैठे थे ॥ २ ॥ सभाके मध्यमें सिंहासनके समीप सिद्ध, चारण, गंधर्व, ब्रह्मवादी मुनि ॥ ३ ॥ विद्याधर, अप्सरा, किन्नर, पतंग उरगादि खडे होकर इनकी सेवा और स्तुति करते थे ॥ ४ ॥ गंधर्वगण इन्द्रके प्रसन्न करनेको गीत सुललित स्वरसे गाय रहेथे मस्तकपर चन्द्रमण्डलकी समान छत्र लगा हुवा था और दोनों बगलोंमें चामर व्यजन इत्यादि महाराजों के समस्त चिह्न शोभायमान होरहे थे इन सबसे युक्त होकर देवराज इन्द्र अपने आधे आसनपर अपनी प्यारी शचीको बैठाय हुये इसके साथ बैठे थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी अवसरमें देवताओंके और इन्द्रके गुरु बृहस्पतिजी जो एक प्रधान मुनि हैं, वह वहाँपर आन पहुँचे। तब इन्द्रने न तो इनको आसन दिया, न कुछ आदर सत्कार किया ॥ ७ ॥ वाणियोंके पति सुर, असुर, जिनको देखतेही प्रणाम करते, ऐसे बृहस्पतिजीको देख इन्द्र अपने आसनसे नहीं उठा। और न इनको बैठनेके लिये आसनही दिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रके इस व्यवहारको देखकर, देवगुरु बृहस्पतिजी इनको ऐश्वर्यका मद जान उसी समय सभासे लौटे और किसीसे कुछ न कहा मौन साधे अपने आश्रमको सिधार दिये ॥ ९ ॥ हे कौरवश्रेष्ठ ! जब बृहस्पतिजी वहाँसे चले आये तबही देवराज इन्द्रको चैतन्यता आई, वह यह विचारकर अपने आपको बहुत धिक्कार देने लगा, कि, मैंने गुरुजीका बडा निरादर किया, आपही आप अपनी निन्दा करनेलगा ॥ १० ॥ इन्द्र बोले कि, मैंने जो कर्म किया वह अतिशय बुरा है. हाय ! कैसे खेदकी बात है मैं कैसा मन्दबुद्धि हूं जो मेरे गुरुजी सभामें आये और मैंने ऐश्वर्यके मदमें मत्त होकर उनका कुछभी आदर नहीं किया, वरन् और निरादर किया ॥ ११ ॥ मेरे ऐश्वर्य व सम्पत्तिको धिक्कार है। अब आगे कौन ज्ञानी पुरुष स्वर्गाधिपतिकी लक्ष्मीको चाहेगा ? मैं सात्विक देवतागणोंका

ईश्वर हूं, सो मुझकोभी इस लक्ष्मीने इस प्रकारका आसुरीभाव प्राप्त कराया ॥ १२ ॥ जो प्राचीन पुरुष कहते हैं कि सिंहासनपर बैठा हुआ राजा किसीको देखकर न उठे, मैं निश्चय कहताहूं, वह श्रेष्ठ धर्मको नहीं जानते ॥ १३ ॥ यह सब पुरुष निन्दनीय मार्गका उपदेश करनेवाले स्वयंही नरकके अंधकारमें गिरते हैं. और जो लोग उनके वचनोंका विश्वास करते हैं, वह लोग पत्थरकी नावसे पार जानेकी इच्छा किस प्रकार करते हैं, नावके डूवजानेपर आपभी डूब जाते हैं, वैसेही अंधतामिस्र नरकमें अवश्य पडेगा ॥१४॥ जो हो ! अब मैं शठभाव छोडकर गुरुजीके मनानेकी चेष्टा करताहूं, वह सब देवताओंके आचार्य ब्राह्मण हैं, उनकी बुद्धि अति गंभीर है, मैं जाकर मस्तकद्धुका उनके चरणोंमें प्रणाम करूंगा ॥ १५ ॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रका इस प्रकारसे अछताना पछताना बृहस्पतिजी जानकर अति शीघ्रताकर गृहसे बाहरहो अदृश्य गतिको प्राप्त हुये। यह वृत्तान्त उन्हें अध्यात्मविद्यासे ज्ञात हुआ ॥ १६ ॥ अनन्तर महेन्द्र देववृन्दके साथ गुरुजी को ढूँढने लगे। परन्तु सर्वज्ञानके उपाय द्वारा सब जगह देखनेपरभी इन्द्रको उनका पता न लगा, इसलिये यह सब देवताओंके साथ अतिशय दुःखित हुआ और किसी प्रकारसेभी इन्द्रका मन सावधान न हुआ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रजीके विमर्शकी यह वार्ता सुनतेही असुरगण अपने आचार्य शुक्राचार्यका मत ग्रहणकर शस्त्र उठाय देवताओंके साथ संग्राम करनेको उपस्थित हुये और युद्ध होनेलगा ॥ १८ ॥ दैत्यलोगोंके तीक्ष्ण तीक्ष्ण बाणोंसे देवता लोगोंके मस्तक, बाहु, ऊरु इत्यादि अंग छिन्न भिन्न होने लगे, इसलिये देवतालोग कातर होकर देवराज इन्द्रके साथ ब्रह्माजीके निकट गये और शिर नवाय शरणकी प्रार्थना करने लगे ॥ १९ ॥ स्वयम्भू ब्रह्माजी देवेन्द्रको इस प्रकार कातर हो आये देखकर अतिशय दया परवश हुये। और करुणा सहित वचनोंसे समझाते बुझाते हुये उनसे बोले ॥ २० ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे सुरवरगण ! तुमने बडा बुरा कार्य कियाहै कि, जितेंद्रिय ब्रह्मनिष्ठयुक्त ब्राह्मणका आदर सत्कार नहीं किया ॥ २१ ॥ उसी अन्यायके आचरणका फल यह हार है, जिस हारको कण्ठमें धारणकर तुम आये, नहीं तो तुम समृद्धिशाली हो तुम लोगोंके वैरीवर्ग स्वयंही अपने वैरी हैं, अर्थात् हन्ता होकर क्षीण हो रहते थे वह लोग क्या फिर तुम्हारे दंभी होकर तुम्हें जीत सक्ते ॥२२॥ हे इन्द्र गुरुका तिरस्कार और सत्कारही घटती बढतीका कारण है उसका दृष्टान्त देखो। तुम लोगोंके विद्वेषी असुरगण एकबार अपने आचार्यका निरादर करके क्षीण होगये थे, इस समय भक्तिपूर्वक अपने उन आचार्यकी आराधना करनेसे फिर वह कैसे वृद्धिशील होगये हैं ॥ २३ ॥ शुक्राचार्यजीके देवताज्ञान करनेसे इस समय उन दैत्योंका ऐसा प्रभाव है कि, उन्होंने हमारे वासका स्थानभी बलसे हरण कर लिया ॥ २४ ॥ हे देवराज ! शुक्राचार्यके शिष्योंका इस समय अभेद मंत्र क्यों नहीं होगा ? जो ब्राह्मण और भगवान् गोविन्द यह जिस नरेशके ऊपर अनुग्रह करनेवाले हैं उनका कभी अकल्याण नहीं होता और जिनसे यह रूठे हुये हैं ऐसे पुरुषोंका तो पगपगपर अमङ्गल है ॥ २५ ॥

जो होगया सो होगया इस समय तो उपायही नहीं, इस समय तुम लोग एक काम करो त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप ब्राह्मणके पास जाय उसका आदर सत्कार करो, वह जितेन्द्रिय और तपस्वी है आदरमान पाय अवश्य तुम लोगोंकी कामना पूर्ण करेगा । परन्तु कब जब कि, तुम इसके असुर पक्षपाती धर्मको क्षमा करोगे ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! ब्रह्माजीसे इस प्रकारके वचन सुनकर देवतागण त्वष्टाके पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वरूप ऋषिके समीप गये और उसको भेंटकर कहने लगे कि, हम अतिथि तुम्हारे आश्रममें आये है, तुम्हारा मंगल हो. हे तात ! बडे लोगोंकी समयानुसार प्रार्थनाको तुम पूर्ण करो। हे राजन् ! सत्पुरुषोंका बडोंकी सेवा करनाही परमधर्म है । जो पुत्र पुत्रवान् हैं उनकोभी चाहिये कि; पितृसेवा अवश्य करें फिर इसमें ब्रह्मचारियोंकी तो बातही क्या है ? ॥२७॥ हे तात ! उपनयन कराते है वह, आचार्य वेद पढाते हैं वह वेदकी मूर्ति, पिता,प्रजापतिकी मूर्ति है भ्राता मरुद्गणोंकी मूर्ति है और माता साक्षात् पृथ्वीकी मूर्ति है ॥ २८ ॥ बहन दयाकी मूर्ति है अतिथि साक्षात् धर्मकी मूर्ति है अभ्यागत पुरुष अग्निकी मूर्ति और सब प्राणी ईश्वरकी मूर्ति हैं, अर्थात् सर्व प्राणियोंमें आत्मदृष्टि रखना उचित है ॥ २९ ॥ इसलिये हे तात ! हम लोक तुम्हारे पितृगण दानव लोगोंकी उत्पत्तिसे अतिशय आर्त हो रहे है, हमारे वैरियोंसे पराभवरूप पीडा अपनी तपस्यासे निवारण करके तुम हम लोगोंका आदेश पालन करनेके योग्य होओ ॥ ३० ॥ हे वत्स ! तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो, इसलिये गुरु हो, हम लोग तुमको अपना पुरोहित बनानेकी वासना करते हैं क्योंकि तुम्हारे तेजसे हम अपने वैरियोंको सहजही जीत लेंगे ॥ ३१ ॥ हे वत्स ! तुम हमसे छोटे हो, इससे तुमको पुरोहित बनाने और हमारे प्रणाम करनेसे लोकमें निन्दा होगी, ऐसी शंका तुम मत करना; क्योंकि लोकमें अपने प्रयोजनके लिये छोटेके चरणोंमें प्रणाम करनेकी निन्दा नहीं करते । दूसरे मंत्रभिन्न स्थानही वयसमें बडाईका कारण है इसलिये मंत्र देनेसे तुमही हमारे बडे होजाओगे ॥ ३२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् परीक्षित् ! महातपस्वी विश्वरूप इस प्रकार देवताओंसे पुरोहिताईके लिये आदर होकर कोमल वचनोंसे उनसे कहा ॥ ३३ ॥ विश्वरूप बोले कि, हे देवगण ! यद्यपि धर्मशील पुरुष लोग अधर्मका हेतु कहकर पुरोहिताईके कर्मकी निन्दा करते हैं और यह कर्म पूर्वसिद्ध ब्रह्मतेजका क्षय करनेवाला है, तथापि आपलोगोंकी प्रार्थनाके भयसे यह हमको स्वीकार करना पडेगा ॥ ३४ ॥ हे नारायण ! आप लोग लोकोंके ईश्वर हैं, आप लोगोंके चाहनाकी बात हमसरीखे पुरुष किस प्रकारसे न माननेमें समर्थ होंगे हम आप लोगोंके शिष्य अर्थात् शिक्षाके योग्य है,सो आप शिक्षा देनेवालोंका वचन न लौटारनाही शिष्यका स्वार्थ है ॥ ३५ ॥ हे अधीश्वरगण ! जिन पुरुषोंको कुछ चाहना नहीं है, जिन लोगोंके शिला अर्थात् क्षेत्रमें स्वामीका उपेक्षित कणिश (बाल) ग्रहण और उञ्छ अर्थात् हटादिमें गिरा हुआ, धान्यादि ग्रहण करनाही धन है, हम उन लोगोंकी वृत्तिके द्वाराही गृहाश्रममें साधु लोगोंकी समस्त क्रियाओंका निर्वाह किया करते हैं खोटी मतिवाले लोग जो

पुरोहिताईके प्राप्त होनेसे हर्षित होते हैं परन्तु हमारे लिये यह तिरस्कार है । इसलिये यद्यपि पुरोहिताईका कर्म करना हमको कर्तव्य नहीं है ॥ ३६ ॥ तथापि आप लोग हमारे गुरु हैं और आप लोगोंकी यह प्रार्थना बहुतही थोड़ी है, सो इस प्रार्थनाका अंगोकार न करना यह हमको उचित नहीं । हम आप लोगोंकी संपूर्ण बातें प्राण और धनकी आवश्यकता होनेपर भी पूरी करेंगे यह तो बातही क्या है ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! देवतालोगोंको इस प्रकार वचन देकर महातपस्वी विश्वरूप देवतालोगोंकरके पुरोहिताईमें प्रवृत्त हो बड़े उद्योगके साथ पुरोहिताईका कार्य करने लगे ॥ ३८ ॥ शुक्राचार्यकी विद्यासे यद्यपि देवता लोगोंके द्वेषी दानवोंकी लक्ष्मी रक्षित होती थी तो यह महर्षि नारायणकवच स्वरूप वैष्णवी विद्याके बलसे उन दैत्योंके निकटसे उस लक्ष्मीको तोडकर इन्द्रको अर्पण करदी । हे कौरव ! देवराज इन्द्र जिस विद्यासे रक्षित असुर सेनाको जीत लेते हैं विश्वरूपने वही विद्या सहस्राक्ष इन्द्रको दी । इन्द्रका सहस्राक्ष नाम ऐसा हुआ कि, महारूपवती गौतमकी स्त्री अहल्यासे विहार करनेको एक समय इन्द्रका मन चलायमान हुआ तब इन्होंने चंद्रमाको अरुणशिखा अर्थात् मुर्गा बनाय गौतमजीके आश्रमपर बुलवाया । जब गौतम प्रभात हुआ जान स्नान करनेको गये, तब इन्द्र गौतममुनिका वेष धारणकर उनके स्थानपर आये । वहां गौतमजी जब गंगाजीपर पहुँचे तब गंगाजीने कहा अभी तो आधीरात है, स्नान करनेका समय नहीं, तुम्हें किसीने छल तो नहीं लिया, जो अभीसे स्नान करने चले आये, यह सुन गौतमजीने घरपर आयकर सब लीला देखी कि चंद्र, इन्द्र विराजमान हैं, तब चन्द्रमाको धोतीका छींटा मारा कि जिसका उसके हृदयमें कलंक हुआ और इन्द्रको शाप दिया कि, तुम तो एकही भगके लिये यहां आये अब तुम्हारेही शरीरमें हजार भग हो जाँयगी, कि जिस्से फिर तुम्हें आवश्यकताही न पडे, जब इन्द्रने गौतमजीको बहुत मनाया तब इन्होंने कहा कि, जब रामावतारमें इक्ष्वाकुकुलतिलक दशरथ अजिर विहारी दैत्यसंहारी असुरारी श्रीरामचन्द्र अवधविहारी के दर्शन करने जाओगे तब यही हजार भग तुम्हारे हजार नेत्र होजायँगे, इसलिये जब रामावतार हुआ और इन्द्रने त्रिलोकीनाथ जानकीपति दशरथनंदन जगवंदन दुष्टनिकन्दन श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दका दर्शन किया तबही सहस्र भगोंके सहस्र नेत्र हो गये और सहस्र नेत्र होनेसे इनका सहस्राक्ष नाम हुआ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ परन्तु परस्त्रीसे स्नेह करना नरकके जानेकी श्रेणी है ॥

सवैया-जो परनारि निहारि निलज्ज, हँसें विलसे बुध होने बडेरे । जूँठनकी जिमि पातल पेख, खुशी उर कूकर होते घनेरे ॥ जेजनकी यह टेव अहै, तिनकी जगमें अपकीरति हेरे । है परलोक विषय बिजली सुकरै शतखण्ड सुखाचल केरे ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-विश्वरूप जे इंद्रको, दे नारायण वर्म।
सब दैत्यनको जीतके, राखो अपनो धर्म ॥

इसके उपरान्त राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! आपने कहा कि देवराज इन्द्रने नारायणकवचसे रक्षित होकर वाहन सहित शत्रुकी सब सेना सरलतासे जीतकर त्रिलोकीके धन और संपत्तिको भोगा ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह कवच किस प्रकारका है देवराज इन्द्रने उससे रक्षित होकर किस प्रकारसे अस्त्र उठाये हुये शत्रुओंको जीता सो कहिये ॥ ॥ २ ॥ यह सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! विश्वरूपको पुरोहिताईमें वरण करके देवराज इन्द्रने उनसे कवचको पूँछा था, तब विश्वरूपने उनको नारायणनामक कवचका उपदेश दिया । जिस प्रकारका यह कवच है और विश्वरूपने उसको जिस प्रकारसे उपदेश किया सो मैं वह सब प्रसंग कहताहूं, तुम सावधान हो श्रवण करो ॥ ३ ॥ देवराज इन्द्रके पूँछनेपर विश्वरूपने उनसे कहा था कि, हे महेन्द्र ! हाथ पाँव धो, आचमन करके पवित्र धारणकर उत्तरकी ओर मुख करके बैठ फिर अष्टाक्षर 'ॐनमो नारायणाय, बारह अक्षर कहे (ॐनमो भगवते वासुदेवाय) मंत्रोंसे अंगन्यास और करन्यास कर पवित्र हो वाणीको जीते ॥४॥ फिर नारायण कवचको बाँधे, परन्तु जब किसी प्रकारका भय उपस्थित हो तभी इस कवचका बाँधना कर्तव्य है. हे देवेन्द्र ! पाँव, जानु, उर, उदर, आस्य, वक्षःस्थल ॥ ५ ॥ मुख और मस्तक इन्हीं सब अंगोंमें प्रणवपुटित मंत्रका एक एक वर्णका आदिसे लेकर ॐकार आदिका विन्यास करै " ॐनमो नारायणाय " इस मंत्रका विपर्यय अर्थात् उलटा करै अर्थात् पादादि मस्तकान्तमें न्यास न करके मस्तकसे चरण पर्यन्त न्यास करनेसेभी होसकेगा ॥ ६ ॥ हे सुरराज ! इस मंत्रके अतिरिक्त और मंत्रोंसेभी न्यास होसक्ता है। 'ॐ विष्णवे नमः' इस मंत्रके ॐकारको हृदयमें धारण करे, विकारको मस्तकमें, षकारको दोनों भ्रुकुटियोंके मध्यमें, णकारको शिखापर, वेकारको दोनों नेत्रोंमें, नकारको सब संधिस्थानोंमें ॥ ७ ॥ न्यास करके फिर मकारको अस्त्ररूपमें ध्यान करनेसे स्वयं मंत्रमूर्ति होजायगी, तिसके पीछे इसीप्रकारको विसर्ग युक्त और फट् शब्द अंतमें करके सब दिशाओंको निर्देश करै, अर्थात् " मः अस्त्रायफट् " यह मंत्र पूर्वादिदिग्बन्धमें प्रयोग करैं, इस प्रकार क्रिया करनेसे बुद्धिमान् मन्त्ररूप होजाय। हे देवेन्द्र ! वह दूसरा मन्त्र यह है " ॐविष्णवे नमः " ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे सुरराज ! इस प्रकार न्यास करनेके पीछे फिर ध्यान करनेके योग्य ईश्वररूप उस आत्माका ध्यान करै जो ऐश्वर्य आदि छह शक्तियोंसे संयुक्तहै, तिनके पीछे नारायणकवचका वक्ष्यमाण मन्त्र जो आगे कहैंगे। विद्या तेज और तपस्याहो जिसकी मूर्ति है, उस मन्त्रका उच्चार करै ॥ १० ॥ ११ ॥ वह मन्त्र यह है कि, ॐ गरुडजीकी पीठपर जिसके चरण कमल विराजमान हैं, जो अष्ट बाहु युक्त हैं और उन आठभुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, ढाल और पाश धारण किये हुये वह भगवान् हरि अष्टभुजाधारी इस प्रकारसे मेरी अष्टगुणी रक्षा करैं ॥ १२ ॥ औरभी मत्स्यमूर्ति वह भगवान्

जलके मध्यमें जलजन्तु समूहरूप वरुणकी फाँसीसे मेरी रक्षा करैं ॥ १३ ॥ जो मायाके योग्य करके बटु वामन हुए थे, वह स्थलके मध्यमें मेरी रक्षा करैं । जो विश्वरूप और त्रिविक्रम मूर्ति हैं, वह भगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करैं, जिन्होंने असुरके यूथप हिरण्य-कशिपुके मारनेके लिये नरसिंह मूर्ति धारण की और जिनके विकट अट्टहास्यसे सब दिशा प्रतिध्वनित होकर स्त्रियोंके गर्भ गिर गये थे, वह संग्राम व दुर्गम मार्ग इत्यादिमें मेरी रक्षा करैं ॥ १४ ॥ जो अवयवरूप यज्ञसे निरूपनीय होते हैं, और जिन्होंने अपनी कराल ढालसे इस पृथ्वीका उद्धार किया था, वह प्रसिद्ध वाराहजी मार्गमें हमारी रक्षा करैं और पर्वतोंके शिखरमें परशुराम भगवान् हमारी रक्षा करैं और भरतजीके बड़े भाई अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी महाराज प्रभु लक्ष्मणजीके साथ परदेशमें हमारी रक्षा करैं ॥ १५ ॥ और भगवान् नारायणजी अभिचारादिस्वरूप समग्र उग्र धर्म और समस्त अनवधानोंसे हमारी रक्षा करैं, और नररूपी वह प्रभु गर्वसे हमारी रक्षा करैं और दत्तात्रेयरूपी वह भगवान् जो सब यज्ञोंके नाथ हैं, वह योगभ्रंशसे हमारी रक्षा करैं, कपिलमूर्ति वह प्रभु जो सब गुणोंके ईश्वर हैं वह कर्मबन्धनसे हमारी रक्षा करैं ॥ १६ ॥ सनत्कुमाररूपी भगवान् कामदेवसे हमारी रक्षा करैं। हयग्रीवमूर्ति भगवान् मार्गमें देवहेलन अर्थात् देवतालोगोंको नमस्कार न करके गमनरूप अपराधसे हमारी रक्षा करैं । देवर्षिश्रेष्ठ अर्थात् नारदरूपी भगवान् बत्तीस अपराधरूप जो देवपूजाके छिद्र हैं उनसे हमारी रक्षा करैं । कूर्मरूपी हरि अनन्त नरकोंसे हमारी रक्षा करैं ॥१७॥ औरभी धन्वन्तरिरूपी भगवान् अपथ्यसे हमारी रक्षा करैं, जितेन्द्रिय ऋषभमूर्ति भगवान् सुख दुःखादि झगडोंके भयसे हमारी रक्षाकरैं । यज्ञमूर्तिभगवान् लोकापवादसे हमको बचावैं । बलभद्ररूपी भगवान् लोक सम्बन्धी उपघातसे हमारी रक्षा करैं । शिवरूपी भगवान् क्रोधवश सर्पोंके गणसे हमारा उद्धार करैं ॥ १८ ॥ अज्ञानसे वेदव्यासजी हमारी रक्षा करैं, प्रमादको पाखण्डगणसे बौद्ध भगवान् बचावैं और कल्किरूपी भगवान् जिन्होंने धर्मकी रक्षा करनेके लिये इस बड़े अवतारका धारण करना स्वीकार किया है, वह कलिके मंगलस्वरूप कालसे हमारी रक्षा करैं ॥ १९ ॥ हे सुरराज इन्द्र ! तिसके पीछे प्रातर्मध्याह्नादि दिनके छठवें भागमें और रात्रिमें प्रदोषादिके समय इस प्रकारसे प्रार्थना करै, यथा भगवान् केशव प्रातःकालमें गदासे रक्षा करैं भगवान् गोविन्द वेणुधारी होकर संगम कालतक सब प्रकारसे हमारी रक्षा करैं । भगवान् नारायण शक्ति ग्रहण करके पूर्वाह्णकालमें हमारी रक्षा करैं । विष्णु भगवान् चक्र हाथमें लेकर मध्याह्नके समय हमारी रक्षा करैं ॥ २० ॥ भगवान् मधुसूदनजी उग्र धनुष ग्रहण करके अपराह्ण कालमें हमारी रक्षा करैं, त्रिधामा अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपी भगवान् सायंकालमें हमारी रक्षा करैं । भगवान् माधव प्रदोषके समय हमारी रक्षा करैं । और वह एक पद्मनाभ देव जो विषय और इन्द्रियगणोंके ईश्वर हैं वह आधीरातके समयतक हमारी रक्षा करैं ॥ २१ ॥ और वह भगवान् ईश श्रीवत्सही जिसका धाम है वह पिछली रात्रिमें हमारी रक्षा करैं । और भगवान् जनार्दन

जो कि, खड्गधारी हैं, वह प्रत्यूषके समय हमारी रक्षा करैं। भगवान् दामोदर प्रभातके समय हमारी रक्षा करैं। भगवान् विश्वेश्वर जो कालकी मूर्ति हैं, वह प्रति संध्यामें हमारी रक्षा करैं ॥ २२ ॥ अहो! भगवान्के इस चक्रकी नेमि (धार) प्रलय कालके अग्निकी तुल्य अतिशय तीक्ष्ण है. हे चक्र! तुम भगवान् करके प्रयुक्त होकर जिस प्रकार पवनका सखा अनल सूखे हुए तृणोंको जला देता है वैसेही तुम हमारे शत्रुकी सेनाको बहुत शीघ्र भस्म करो ॥ २३ ॥ हे गदे! तुम्हारी चिनगारियोंका छूना वज्रके स्पर्शकी समान है और तुम अजित भगवान्के प्रियहो और हमभी उन्हीं भगवान्के दास हैं इसलिये विघ्न करनेवाले कूष्माण्ड, बैनायक, यक्ष, राक्षस और भूत, प्रेत, व ग्रहगणको तुम पीसडालो, पीसडालो और समस्त शत्रुओंको चूर्णकरो, चूर्णकरो ॥ २४ ॥ हे पाञ्चजन्य-शंख! तुम भगवान् विष्णुजीकी मुखके पवनसे पूरित होकर भयंकर शब्द करतेहुए राक्षस, प्रमथ, भूत, प्रेत, पिशाच, इत्यादिकोंको और ब्रह्मराक्षस व और दूसरे घोर दर्शन दुरात्मा लोगोंको भगादो, भगादो, जिससे कि शत्रुगणोंका हृदय कांपजाय ॥ २५ ॥ हे श्रेष्ठखड्ग! तुम्हारी धार अतितीक्ष्ण है, तुम भगवान् नारायणकरके चलाये जाकर समस्त शत्रुकी सेनाको काटडालो, काटडालो ॥ हे चन्द्रमाकेसे शतमण्डलवाली ढाल! तुझमें मण्डलाकार शतचन्द्रमा देदीप्यमान हैं, तुम पापी विद्वेषियोंकी आंखोंको ढक लो, ढकलो, और उग्रदृष्टिवाले इन सब पुरुषोंकी दृष्टिको हरण करो, हरण करो, ॥ २६ ॥ अहो! जो समस्त ग्रह केतु, सर्प और कराल डाढवाले हिंसकजन्तु पापी भूत प्रेतादिसे हमको अभयकरो। अभयकरो ॥ २७ ॥ सो हे भगवन्! आपके नामरूपी कीर्तनसे वह सब सदाही क्षयको प्राप्त होवें और जो कि, हमारे इष्ट आनन्दमें विघ्न करनेवाले हैं उनकाभी विनाश होजाय ॥ २८ ॥ और भगवान् गरुडजी जो वृहद्रथन्तरादि सामरूप स्तोत्रोंसे स्तुति किये जाते हैं। वेद सब जिनकी मूर्ति हैं, जिनको विष्वक्सेन कहाजाता है। वह अपने सब नामोंकरके अशेष पापोंसे हमारी रक्षा करैं । " स्तोत्रैः-स्तोभ्यत इति स्तोत्रस्तोभः " ॥ २९ ॥ औरभी भगवान्के नाम, रूप, यान, वाहन और अस्त्र, शस्त्र, तथा प्रधान प्रधान पार्षदलोग हम लोगोंकी बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण और मनको अनन्त विपदोंसे बचावें ॥ ३० ॥ अहो! मूर्त्त, अमूर्त्त, यह सबही जगत् वास्तवमें भगवा-न्काही स्वरूप है, ऐसा हमारा निश्चय है। सो इसी सत्यसे हमारे सब उपद्रवोंका विनाश होवे ॥ ३१ ॥ और पुरुष एकात्म्य ध्यान करते हैं, इन लोगोंसे अभिन्न होकरभी जो भग-वान् अपनी मायाके छलसे भूषण आयुध और लिंगादि विविध शक्ति धारण करते हैं ॥ ॥ ३२ ॥ और यही उनकी सत्यताका प्रमाण है, वह अपने शरीरके प्रमाण करनेको सर्वज्ञ भगवान् हरि अपने सब स्वरूपोंसे सदा हमारी सब स्थानोंमें रक्षा करते रहैं ॥ ॥ ३३ ॥ वह और भगवान् नृसिंहजी सब दिशा विदिशाओंमें ऊपर, नीचे, भीतर, बाहर, सर्वभावसे हमारी रक्षा करैं, तिनकी ध्वनिसे सब लोकोंका भय दूर होजाता है और उनके निज प्रभावसे दिग्गज, विष, शस्त्र, जल, वायु और अग्नि इत्यादिका तेज

विनाशको प्राप्त होजाता है ॥ ३४ ॥ हे देवराज ! नारायणमय कवच इस प्रकारका है, सो हमने तुमसे कहा, इसको तुम पहनो तब अवश्यही असुरयूथपति लोगोंको जीत सकोगे ॥ ३५ ॥ हे महेंद्र ! इस कवचका धारण करनेवाला पुरुष जिसको नेत्रोंसे देखै अथवा चरणसे स्पर्श करै, उस पुरुषका प्रायः हुये भयसे छुटकारा होजाय । भला फिर इससे इसके धारण करनेवाले पुरुषको कहांसे भयकी संभावना हो सक्ती है ॥ ३६ ॥ इसलिये जो पुरुष इस विद्याको धारण करताहै उसको राजा, चोर, नवग्रह, व्याधि इत्यादि किसीसेभी कुछ भय नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! पूर्वकालमें कौशिक नामक किसी ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके विना जलवाले मरु देश "मारवाड" में योगकी धारणासे अपने शरीरको छोडदिया था ॥ ३८ ॥ जहाँपर उस ब्राह्मणके शरीरका क्षय हुआ था, उसके ऊपर होकर एक समय चित्ररथ नामक गन्धर्वपति अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर चढाहुआ जा रहा था ॥ ३९ ॥ जैसे ही वह गंधर्वपति इस स्थानके ऊपर आया कि, उसकी गति रुकगई, और वह उसी समय विमानके सहित उलटकर आकाशसे पृथ्वीमें गिरा ॥ ४० ॥ इस बातके होनेसे गन्धर्वपतिके मनमें बडी चिंता उत्पन्न हुई, तब उसने वालखिल्य मुनियोंके उपदेशसे वहांपर पडीहुई उस ब्राह्मणकी अस्थियोंको वीनकर प्राचीवाहिनी सरस्वतीके जलमें डालदिया और फिर इस नदीमें स्नान करके अपने स्थानको चलागया ॥ ४१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जो पुरुष इस नारायण कवचको सुअवसरमें सुनता है, अथवा जो जन आदरपूर्वक इसको यंत्रमें धारण करता है, उसको सभी प्राणी नमस्कार करते हैं और वह पुरुष सर्व प्रकारसे सब भाँतिके भयसे छूट जाता है ॥ ॥ ४२ ॥ अधिक क्या कहैं, देवराज इन्द्र महर्षि विश्वरूपजीसे इस विद्याको प्राप्त होकर समरमें असुर लोगोंका संहारकर त्रिलोकीकी लक्ष्मीका भोग करते हुये ॥ ४३ ॥ उस समय शचीनाथके सन्मुख एक अप्सराने अपने कोयल विनिन्दित स्वरसे इस ठुमरीको गाया ॥

ठुमरी–आनंदकंद ब्रज कुमुद चन्द नंद नंदनही म्हाने हट को ॥ टेर ॥
वो निडर छैल करै फिरत शैल तकि गैल रहै उतही अटको ॥ १ ॥
एक देश अली मैं जात चली उन गली आय गह कर झटको ॥ २ ॥
होगई डराय अंग थर थराय झट धाय खोल घूँघट पटको ॥ ३ ॥
जब दईआवाज आई सखि समाज गये भाज तुरत यमुनातटको ॥ ४ ॥
पनघट न जाय तहू बनत नाहिं हियमाहिं रहै गुरुजन खटको ॥ ५ ॥
संकेत अली छबि देख भली लख चली सुघर नागर नटको ॥ ६ ॥
दधि आप खाय अरु दे लुटाय पीछे फोरत मटकी मटको ॥ ७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा-इन्द्रनवममें कोपकर, विश्वरूपदियो मार।
तब त्वष्टाने पुत्र इक, प्रगटो परमजुझार॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! ऐसा सुनाजाता है कि विश्वरूपजी जो देवता लोगोंके पुरोहित बने उनके तीन शिर थे, वह एक मस्तकसे सुरापान एकसे सोमपान और एकसे अन्नमात्र भोजन करते थे॥१॥ जो कुछ हो, विश्वरूप यज्ञके समय विनीतभाव से देवता लोगोंको प्रगट हव्यका भागदेते, क्योंकि देवतालोग उनके पितृपक्षमें थे॥२॥ परन्तु माताके स्नेहके वश हो, यज्ञ करते करते आप ॐ प्रभावसे असुरलोगोंकोभी छिपा-कर यज्ञका भाग दिया करते॥३॥ उनके अन्यायका यह आचरण एक दिन देवराज इन्द्रने देखलिया, इससे वह वहुतही डरे और रोषके वेगको रोकनेमें असमर्थ होकर विश्वरूपके तीनों मस्तक काट डाले॥४॥ हे राजन्! विश्वरूपका जो मस्तक सोमपान करता था, वह कटकर कपिञ्जल (चातक) हुआ, सुरा पीनेवाला मस्तक कटकर कलविङ्क (चटक) हुआ, और अन्नवाले मस्तकसे तीतर पक्षी हुआ॥५॥ हे कौरववंशावतंस! इन विश्वरूपजीके शिर काटनेसे देवराज इन्द्रको जो ब्रह्महत्या लगी, यद्यपि वह इसके निवारण करनेमें समर्थ थे, तोभी उस ब्रह्महत्याको अंजली फैलायकर ग्रहण किया और एक वर्षतक इस पापसे कलुषित होकर रहे। एक वर्षके पीछे फिर लोकनिन्दासे भीत होकर यह पाप सबके सन्मुख अपनी विशुद्ध अर्थात् कलंक मिटानेके लिये इस पापको चार भागोंमें बाँटकर॥६॥ एक भाग भूमिको दिया, एक जलको दिया, एक वृक्षोंको दिया, एक स्त्रियोंको दिया इस प्रकारसे चार भागमें यह ब्रह्महत्या इन्द्रने बाँट दी। हे राजन्! पृथ्वीने खातसे पूर्ण होनेका वर पायकर अर्थात् जो गढा होगा, वह अपने आपही भरजायगा, इस वरसे मोहित होकर इन्द्रकी ब्रह्महत्याका चौथा भाग ग्रहण किया, वह पाप अबतक ऊषर रूपसे पृथ्वीपर दृष्टि आता है इसीकारणसे ऋषिलोगोंने ऊषर भूमिपर बैठकर अध्ययनादिका निषेध किया है॥७॥ और वृक्षोंने कटजाकर फिर उपजनेका वर पाय मोहित हो चार अंशोंमेंसे ब्रह्महत्याका एक अंश लिया। हे भूपाल! वृक्षोंमेंसे जो निर्यास (गोंद-रस) दिखलाई देता है यही ब्रह्महत्याके पापका अंश है॥८॥ और स्त्रियोंने सदा संभोग करनेका वरपाय इन्द्रकी ब्रह्महत्याका एक अंश ग्रहण किया स्त्रियों को महीनेके महीने जो ऋतु (रजस्वला) होती हैं, वही इस ब्रह्महत्याके पापका चिह्न दिखाई देता है, इस कारणसे यद्यपि इन्द्रके वरसे सब समय और गर्भ धारण करनेपर प्रसवकाल जब तक कि बालक उत्पन्न नहीं होता, स्त्रियोंसे मैथुन करना ठीक है, तथापि ऋतु कालमें स्त्रीसंगका निषेध किया है॥९॥ जो कुछ हो, देवराज इन्द्रकी हत्याका बचा हुआ चौथा अंश जलने ग्रहण कर लिया, इन्द्रने जलको यह वर दिया कि दुग्धादि जिस वस्तुमें तुम मिलजाओगे, वह वस्तु बढ जायगी। यह कह इन्द्रने जलको अपने पापको चौथा अंश समर्पण किया. हे राजन्! जलमें बबूले और फेन सिवारादि जो दीखते हैं, यह उसी ब्रह्महत्याका चिह्न है॥१०॥ हे कौरववंशी! विश्वरूपके मारेजानेपर

उनके पिता त्वष्टाने क्रोध करके इन्द्रको मारडालनेके लिये उसके शत्रुकी उत्पत्ति होनेकी कामनासे होम करना प्रारंभ किया ॥ ११ ॥ किन्तु आहुति दे प्रार्थना करनेके समय जब कि, यह वचन कहने लगा कि, हे इन्द्रशत्रो ! तू वृद्धिको प्राप्त हो और शीघ्र शत्रुका विनाश कर, तब भागके वश "इन्द्रशत्रो" इसका आदि शब्द उदात्त स्वरमें उच्चारण होनेसे इन्द्रका शत्रु इस प्रकारका अर्थ न ज्ञात होकर हे इन्द्र ! हे शत्रु ! यह अर्थ निकलने लगा ॥ १२ ॥ थोडीसी आहुति डालनेपर यज्ञकी दक्षिणाग्निसे युगान्तकालीन कृतान्तके समान भयंकर आकार वाला एक असुर उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ उसका शरीर चलाया हुआ बाण जितने हाथ दूर गिरै मानो दिन २ सर्वभाँतिसे उतना बढ़ता था, उसका वर्ण जलेहुये पर्वतकी समान मलीन था, उसकी दीप्ति संध्यासमयके बादलकी समान अतिभयंकर थी उसकी शिखा व मूँछ तपे हुये ताँबेकी समान रँगवाली थी, दोनोंनेत्र दुपहरियोंके सूर्यकी समान अतिशय उग्र थे ॥ १४ ॥ और प्रकाशमान तीन अनीवाले त्रिशूलोंमें मानो पृथ्वी और अंतरिक्षको छेदे लेता है, सो वारम्वार ऐसा प्रतीत हो रहा था यह असुर पैरोंके आघातसे पृथ्वीको कम्पायमानकर नाच नाचकर गर्ज रहा था ॥ १५ ॥ और पर्वतकी कन्दराके समान गंभीर और मत्त कठिन कराल डाढोंवाले वदनको वारम्वार फैलायकर जँभाई लेरहा था. हे राजन् ! उसका यह वदन मानों पृथ्वीको खानेके लिये और समुद्रके पीनेके लिये उपस्थित था और जीभ मानों नक्षत्रोंको चाटनेके लिये लपलपारही थी, इसलिये यह मानो त्रिलोकीके ग्रास करनेको खड़ा था ॥१६॥ उसका वदन अतिशय वड़ा, उस वदनमेंके दाँत अत्यन्त भयंकर थे, उसको इस प्रकारके वदनसे वारंवार जँभाई त्याग करते देखकर सब लोग डरगये और आबालवृद्धोंको जिस ओर अवसर मिला वह उसी ओर भाग खड़े हुये ॥ १७ ॥ हे कौरवराज ! इस त्वष्टाके पुत्ररूप अंधकारने कि जिसकी मूर्तिका वर्णन किया कि, जिससे उसने तपस्याके बलसे समस्त लोकको अंधकारसे ढक लिया था, इसी कारण इस परमदारुण पापात्माका नाम "वृत्र" हुआ ॥ १८ ॥ जो कुछ हो, देवतालोग इस दानवको देखतेही अपने दल बल सहित अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले उस असुरको मारने लगे, परन्तु किसी प्रकारसे उस राक्षसका संहार न किया गया। बरन् वह देवता लोगोंके सबही अस्त्र शस्त्रोंको लील अर्थात् निगल गया ॥ १९ ॥ यह देखकर सब देवता लोग बहुतही विस्मित और शोकाकुल हुए । और देवताओंका प्रभाव मानों अस्त होनेपर हुआ । उसके पीछे सबने परामर्श करके भगवान् आदिपुरुष जो अंतर्यामी और त्रिभुवनव्यापी हैं, सावधान होकर उसी स्थानमें एकाग्र चित्त हो भगवान्‌की स्तुति करने लगे । हे महाराज ! भयके आय जानेपर नारायणके विना और किसीसेभी उद्धार होनेकी संभावना नहीं, यह विचारकर देवता लोग सावधान होकर भगवान् हरिकी शरणमें गये, " महाभये परित्राणमन्यतो न भवेदिति ॥ हरिमेव प्रपद्यंते सुराः शरणमातुराः " ॥ २० ॥ देवता लोग बोले कि—पवन, गगन, अनल, जल और

पृथ्वी यह पंचभूत और पंचभूतोंसे बने यह तीन भुवन और इन सबके स्वामी ब्रह्मादि-देव और उनसे अर्वाचीन हमलोग सबही सभय होकर जिस कालकी पूजा करते हैं, सो ऐसा कालभी जिनसे डरताहै, उन्हीं परमेश्वरसे हमारी रक्षा की जावै ॥ २१ ॥ यह निरहंकार, शान्त, रागादि शून्य, अपने स्वरूप लाभसेही पूर्ण नाम उपाधि कृत आडम्बरसे हीन, इन परमेश्वरको छोड़कर जो पुरुष और दूसरेकी शरण लेताहै, वह अति अज्ञानीहै, क्योंकि कुत्तेकी पूँछ पकड़ वह समुद्रके उतरनेकी इच्छा करताहै. जिसप्रकार कुत्तेकी पूँछ पकड़कर समुद्रका उतरना असंभव है, वैसेही ईश्वरके सिवाय और दूसरेका आश्रय लेनेसे संसारसागरसे निस्तार नहीं हो सक्ता ॥ २२ ॥ अहो ! महाभयके समयमें हम लोगोंने उनकोही रक्षा करनेवाला देखाहै, क्योंकि महाप्रलयके समयमें सत्यव्रत मनुने उनकेही विशालशृंगमें पृथ्वीरूप अपनी नाव बाँधकर उस कालकी विपदसे बचे थे, इसलिये हम उन जलचर अर्थात् मत्स्यमूर्ति भगवान्की शरणमें जाते हैं. वह आश्रित हुए हम लोगोंकी अवश्यही रक्षा करेंगे ॥ २३ ॥ अहो ! प्रलयकालीन समुद्रके जलमें जब कि, प्रचण्ड पवनसे भयंकर लहरैं उठ रही थीं तिस समय उस तरंगमें नाभि कमलसे गिरनेपर हुए पितामह ब्रह्माजी जिन करके भयसे छूटे वही इस विपदसे हम लोगोंको विना किसीकी सहायताके पार करैं ॥ २४ ॥ जो एक ईश्वर हैं, जिन्होंने अपनी मायासे हम सबको बनाया और उन्हींके अनुग्रहसे हम विश्वसृष्टि रचते हैं जो प्रभु हमसे प्रथमही अंतर्यामीरूपसे चेष्टा करके फिरते हैं, तो भी हम लोग उनका रूप नहीं देखसके. क्योंकि "ईश्वर पृथक् पृथक्" इस प्रकारसे मानते हैं ॥ २५ ॥ अहो ! विपक्षी लोग जब हमको निर्दय होकर मर्दन करतेहैं उस समय जो मायाका अवलम्बन करके देवता, ऋषि, पशु, सब पक्षी और मनुष्योंके मध्यमें अवतार लेकर इन सब लोगोंको अपने अधीनमें करतेहुए युग युगमें पालन करते हैं ॥ २६ ॥ उसी परमात्मारूपी देवताकी शरणमें हम सब प्राप्त हुए हैं. वह विश्वमूर्ति हैं, वह परमपुरुष हैं, वही प्रधान हैं इसलिये चलो हम सब लोग उन्हीं परमेश्वरकी शरण लें उनसे अवश्यही हम सबका कल्याण होगा ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! जब देवता-लोग स्तुति कर रहे थे, कि कुछ देर पीछे प्रथम उनके हृदयमें और फिर पश्चिमदिशाकी ओरसे शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् प्रगट हुए ॥ २८ ॥ उसी समय देवतालोगोंने उनको सन्मुख देखा, अपने सामने (१६) सोलह पार्षद साथ लिये श्रीवत्स कौस्तु-भमणि धारे, शरद्कालके कमलतुल्य नेत्रवाले ईश्वरकी उपासना करने लगे ॥ २९ ॥ उन ईश्वरको देख सब देखनेवाले आनंदसे विह्वल हो दंडकी नाईं भूमिमें साष्टांग दंडवत् करके धीरेधीरे स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! देवतालोग यह कहकर स्तुति करने लगे कि, हे भगवन् ! यज्ञही जिनका वीर्य, अर्थात् स्वर्गादि अवस्थारूप सर्व सामर्थ्यवान्, कालस्वरूप दैत्योंके ऊपर चक्र चलानेवाले और अनेकनामवालेके लिये नमस्कार होवै ॥ ३१ ॥ हे धातः ! तुम तीनों गुणोंके ईश हो, तुम्हारी त्रिगुणात्मिका

तीन गति जो पर अपर अर्थात् निर्गुण स्वरूप हैं उनको अर्वाचीन अर्थात् आजकलके पुरुष किसप्रकार जाननेमें समर्थ होंगे? इसलिये हम तुमको नमस्कार करते हैं. हे भगवन्! हे नारायण! हे वासुदेव! हे आदिपुरुष! हे महापुरुष! हे महानुभाव! हे परममंगल! हे परमकल्याण! हे परमकारुणिक! हे केवल जगदाधार! हे गदाधर! हे लोकनाथ! हे सर्वेश्वर! हे लक्ष्मीनाथ! परमहंस परिव्राजक लोग अष्टांगयुक्त परमसमाधि आत्मयोगसे जो समाधि अर्थात् चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होते हैं। उस समाधिका अनुष्ठान करके जो परिस्फुट परमहंस धर्मका अनुशीलन करते और उससे जब उनके चित्तके तमरूप किवाँड़ खुल जाते और प्रत्यक्ष रूप आत्मलोक प्रकाशमान होते हैं, उस समय जो निज सुख स्वयं प्रत्यक्ष होजाता है, तुम उसके अनुभव स्वरूप हो इसलिये हम सब देवता आपको नमस्कार करते हैं॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे भगवन्! तुम्हारा विहारयोग अर्थात् क्रीडाका उपाय हमारी समझमें नहीं आता है, क्योंकि आपका आश्रय नहीं और शरीर नहीं है और आप स्वयं सगुण हैं तथापि आपकी आत्मा करके इस सगुण विश्वकी सृष्टि स्थिती और प्रलय होती है और आपकी आत्माको किसी प्रकारका विकार नहीं होता. और तिसपर आश्चर्य यह है कि, आप सृष्टयादि कार्योंमें हम लोगोंकी कुछ सहायता नहीं चाहते हो ॥ ३४ ॥ इसलिये देवदत्त (इस नामका कोई पुरुष) जिस प्रकार गृहादि वनायकर उसने अपने कियेहुए शुभाशुभ-कर्मोंका फल पाता है, तुम ब्रह्मस्वरूप होकरभी गुण सृष्टिरूप संसारके वश पडते, या तद्रूप स्वकृत कुशलाकुशल भोग करते हो या स्वयं जो आत्माराम और उपश-मशील तद्रूपही रहकर अप्रचलित सदा रहनेवाली शक्तिके प्रभावसे उस विषयमें उदासीन रहते हो अर्थात् केवल या साक्षी स्वरूपसेही वर्त्तमान रहते हो, इस वातका भेद हम नहीं जान सक्ते हैं॥ ३५ ॥ परन्तु हे प्रभो! आपसे यह दोनोंही अविरुद्ध हैं इसलिये दूसरेका दृष्टान्त देखकर आपमें सन्देह करना ठीक नहीं! क्योंकि आप ईश्वर अर्थात् स्वतंत्र हैं, किसीके वश नहीं, आपमें अपरिमितगुणोंके समूह प्रकाशमान हैं, आपका माहात्म्य तर्क करनेके योग्य नहीं है, इस कारण जिन शास्त्रोंमें विकल्प अर्थात् "इस विषयमें क्या युक्ति है?" इस प्रकारकी चिन्ता विचार अर्थात् "यह इसी प्रकारसे है" विवाद और उसके अनुकूल प्रमाण भास और कुतर्क यह समस्त देदीप्यमान हैं। (परंतु यह सव किसी प्रकारसेभी वस्तुस्वरूपके स्पर्श करनेको समर्थ नहीं है,) इन सब शास्त्रोंमें जिन दुःख ग्राहोंका आश्रम व्याकुलित होता है। ऐसे दुःखग्राहोंका आश्रय लेकर जो पुरुष विवाद करते हैं, आप उन लोगोंके विवादस्थानसे परे हैं, आप समस्त मायामें संसारसे अलग और केवल स्वरूप हैं, मायाको मध्यमें रखकर आपमें कौनसा विषय दुर्घट है? इसकारण वास्तवमें यदि आप कर्तृत्वादि होवे, तबहीं विरोधकी सम्भावना है सो कदापि नहीं, क्योंकि आपके स्वरूप दो नहीं देखे जाते, अर्थात् आपके स्वरूपमें कुछ भेद नहीं ॥ ॥ ३६ ॥ हे प्रभो! यद्यपि आपका अनुग्रह निग्रह नहीं है तोभी मनुष्योंकी मति इस प्रका-

रको नहीं कुछ लोगोंकी बुद्धि समान है और लोगोंकी मति अलग अलग है इसलिये सर्पादि विषयके बुद्धियुक्त मनुष्योंके लिये इन्हींमें जिस प्रकार सर्पभ्रम उत्पन्न होता है, सो आपभी इन समस्त सम विषम युक्त बुद्धिवाले लोगोंके अभिप्रायानुसार होकर अनेकरूप होजाते हो ॥ ३७ ॥ अहो ! जो सब वस्तुओंमें अनेकरूपसे प्रतीयमान हुआ करते हैं, वही समस्त वस्तु अर्थात् सत्स्वरूप सबके ईश्वर, आखिल जगत्कारणके कारण और सर्व जीवोंके अन्तर्यामीपनके हेतु सर्वविषयोंके प्रकाशमें देखे जातेहुए अर्थात् उनके बिना कोई विषय प्रकाशित नहीं होता । परन्तु उनका आकार किसी प्रकारका नहीं, श्रुतिमें " नेति नेति " "यह नहीं" इसप्रकारकी युक्तिद्वारा कहकर जिनको बखानते हैं ॥ ३८ ॥ हेमधुमथन कारण कि, आपही इस प्रभावसे परमेश्वर हैं, इसलिये यह परमभागवत पुरुष आपके चरणकमलकी सेवा किसप्रकार त्यागसक्ते हैं ? यह सब पुरुष पुरुषार्थ विषयमें अतिकुशल होनेके कारण आत्मा जो आप हैं, आपकेही प्रिय और अपना सुहृद समझे हुये हैं, इसलिये यह लोग साधु अर्थात् रागादि शून्य हैं. हे प्रभो ! आपकी महिमाही अमृतका सागर है, उस सागरका एक बूँद जलभी एकबार पी लेनेसे फिर मनमें उस्से जो सुख निरन्तर प्राप्त किया करते हैं, उसको पाकर यह समस्त महापुरुष श्रुति दृष्टि विषयक छोटे सुखको भूल गये हैं, इसकारण आपमेंही इनका मन अत्यन्त अनुरागी होकर लगा हुआ है. हे प्रभो ! यह कोई नहीं कह सक्ता कि, आपकी सेवासे साधारणही फल होता है. हे भगवन् ! बडा फल होता है कि, संसारका आवागमन छूटजाता है ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! आप त्रिभुवनके आत्मा और भवन हैं, आपके तीन विक्रम हैं, आपनेही इस त्रिलोकीको बनाया है, आपका प्रभाव तीनों लोकका मनहरण करनेवाला है. हे प्रभो ! दैत्य दानव इत्यादि सब ही आपकी विभूति हैं. हे दण्डधर ! आपने सब दैत्य दानवोंको " यह उद्योगका समय है" ऐसा विचारकर उनके ऊपर जब दण्ड धारण किया है, यदि इच्छा होवे तो इस समयभी वैसेही दण्डधारण करके इस त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका संहार कीजिये ॥ ४० ॥ हे तात ! हे हरे ! हम सब आपकेही जन हैं. आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं, और निरन्तर ही आपके दोनों चरण कमलका ध्यान करते हैं, और उनमेंही हमारा हृदय अतिगाढरूपसे बँधगया है, और आपनेभी अपनी मूर्ति प्रकाश करके हम लोगोंको अपना भक्त कहकर माना है इस कारण हे अनघ ! अनुग्रह प्रकाश करके सानुराग विशदरुचिवाली मन्द मुसकान सहित अवलोकन तथा मुखारविंदसे निकलेहुए मधुर मनोहर वचनरूप कलासे हमारे अन्तःकरणके तापको शांति देनेके योग्य होवो ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! हम जिस कार्यकी प्रार्थना करते हैं, वहभी आपसे किस प्रकार कहें ? आगकी चिनगारियें अग्निको प्रकाशित नहीं करसक्तीं, वैसेही हमभी आपके निकट अपने अभिलाष प्रगट नहीं करसक्ते, जो विषय माया सब जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारणरूपसे प्रगट होती है उसी मायाके साथ आप विहार किया करते हैं, इसकारण समस्त जीवोंके अन्तःकरणमें ब्रह्म और अन्तर्यामी स्वरूपमें और बाहरी प्रधान स्वरूपमें देश, काल, देह,

अवस्था, विशेष अतिक्रमण करके इन सबके उपादान और उपलम्भकस्वरूपमें अनुभव किया करते हो, इसकारण आप स्वयं समस्त प्रयत्नके अर्थात् बुद्धि इत्यादिके साक्षी समस्त ही जानते हो. हे प्रभो ! साक्षी होनेका कारण यह है कि, आपका स्वरूप आकाशकी समान किसीमेंभी लिप्त नहीं है. हे भगवन् ! आपके शरीरके किसीमें लिप्त न होनेका कारण यह है कि, आप साक्षात् परब्रह्म अर्थात् निरुपाधि और परमात्मा अर्थात् सत्वमूर्ति हैं ॥ ४२ ॥ इसकारण हम जिस कार्यकी कामनासे आपके निकट आये हैं, सर्व तत्त्वोंके जाननेवाले गुणोंसे स्वयं उस कार्यको जानकर आप हमारे उस कार्यको पूर्ण करें । हे भगवन् ! आप परमगुरु हैं, आपके चरणकमलोंकी छाया जो संसारके अनेक परिश्रमोंका नाश करने वाली है, सो हम सबने उसी छायाका आश्रय लिया है ॥ ४३ ॥ हे ईश ! त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका आप संहार शीघ्रही करैं । इस असुरने त्रिलोकीका ग्रास किया है. हे प्रभो ! इस दुष्टने हमारे अस्त्र शस्त्र और तेजको ग्रसलिया ॥ ४४ ॥ अहो ! शुद्ध और सब दुःखके हरनेवाले श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दके अर्थ हम नमस्कार करते हैं, उनका हृदयके आकाशमें निवास है, वह बुद्धि इत्यादिके साक्षी हैं, सदा आनंदमय हैं, उनका यश रुचिर है, आदि रहित हैं, साधुलोग इसका संग्रह करते हैं और वे संसाररूप मार्गमें सदा वर्तमान रहते हैं, जो पुरुष इनकी शरण लेता है वह उसके अर्थ संसारके अन्तमें उत्तम गतिके स्वरूप होजाते हैं, इस कारण वह सब दुःखोंके हरण करनेवाले हैं । "कृषि-र्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते " इस प्रकार निरुक्ति है ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब देवतालोगोंने इस प्रकारसे भक्तिपूर्वक स्तुति की, तब भगवान् हरि इसको सुनकर अत्यन्त संतुष्ट हो उनसे वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे सुरश्रेष्ठगण ! हमारे स्तोत्रसे युक्त तुम्हारे ज्ञानसे हम अत्यन्त प्रसन्न हुये और स्तोत्रके साथ ज्ञानमें पुरुषकी आत्मा ऐश्वर्य अर्थात् संसारकी असारताका स्मरण होगा और मुझमें एकान्तकी भक्ति उत्पन्न होजायगी ॥४७॥ हे विबुधश्रेष्ठ ! हमारे प्रसन्न होजानेपर फिर भक्तोंको कौनसी वस्तु प्राप्त नहीं होती ? अर्थात् सबही वस्तु प्राप्त होजाती है, शेष कुछ प्राप्त करनेको नहीं रहता. इस कारण तत्त्वज्ञानी पुरुष हमकोही एकान्तभावसे अपना चित्त समर्पण कर मतवाले होजाते हैं, और किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करते ॥ ४८ ॥ हे वत्सगण ! जो पुरुष विषयमें तत्त्वोंको देखता है, वह अतिकृपण है वह अपनी भलाईको नहीं जानता, इसलिये विषयमें जो उसकी इच्छा है, उसका पूर्ण करदेना दयावान् पुरुषको उचित नहीं, वरन् उसकीही समान अज्ञानी पुरुष उसको पूर्ण कर दिया करते हैं ॥ ॥ ४९ ॥ जो विद्वान है और अपने भले बुरेको जानते हैं, वह कभी अज्ञानीको प्रवृत्ति मार्गका उपदेश नहीं करसक्ते, क्योंकि रोगीके चाहनेपरभी भला वैद्य क्या उसको अपथ्य देसक्ता है ? अर्थात् नहीं दे सक्ता ॥ ५० ॥ हे राजन् ! इसप्रकार तत्त्वकथनसे अनौ-चित्य हरण करके इन्द्रका अभिप्राय जानकर वह भगवान् कहनेलगे कि हे इन्द्र ! तुम इस

समय अपने स्थानको जाओ, तुम्हारा मंगल होगा दधीचि ऋषिका शरीर विद्या, व्रत. और तपस्या करनेसे अतिदृढ होगया है, वहाँ जाकर तुम उनके शरीरको माँगो, अब विलम्ब करनेका अवसर नहीं है, शीघ्रही जाओ ॥ ५१ ॥ हे देवेन्द्र ! वह मुनि अध्यात्मविद्यामें अतिशय बलवान् हैं, वह शुद्ध ब्रह्मको जानकर दोनों अश्विनीकुमारोंको वह विद्या दानकरते हुये वह ब्रह्म अश्वके शिरद्वारा कहागया था, इस कारणसे अश्वगिरा नामक प्रसिद्ध हुआ है, इसी विद्यासे अश्विनीकुमारोंको जीवन्मुक्तिका लाभ हुआ था. "इस विषयमें यह प्रसिद्ध इतिहास है कि, अश्विनीकुमार दधीचि मुनिको ब्रह्मविद्यामें निपुण व अर्थवक्ता श्रवणकर उनके निकट जायकर बोले कि हे भगवन् ! आप जिस विद्यामें विशारद हुये हैं वह विद्या आप कृपापूर्वक हम लोगोंकोभी पढाइये. जब अश्विनीकुमारोंने यह प्रार्थना कि, तब इन मुनिने उत्तर दिया कि, इस समय हम भगवत्कर्म करनेमें स्थित हैं, अब जाओ, फिर आना, तब पढावेंगे. जैसेही कि अश्विनीकुमार आश्रमसे बाहर आये, वैसेही इन्द्रने उन ऋषिके निकट पहुँचकर कहा कि, हे मुने ! अश्विनीकुमार वैद्य हैं, सो वैद्योंको ब्रह्मविद्याका उपदेश न देना चाहिये, इसकारणसे आप यह विद्या उन्हें न बतावें । यदि हमारे वचनोंका निरादर कर यह विद्या उन्हें बताइयेगा, तो निश्चय ही हम आपका शिर काट डालेंगे, यह कहकर इन्द्र चलेगये । फिर बहुत शीघ्र अश्विनीकुमार विद्यार्थी होकर इन दधीचिके आश्रममें आये और इनके मुखसे इन्द्रकी कही वार्ता सुनकर बोले कि, हम पहले आपका यह शिर काट अश्वका मस्तक धडपर जोडे देते हैं, तब आप इस मुखसे हमको ब्रह्मविद्याका उपदेश दीजिये जब इन्द्र आनकर आपका यह शिर काट डालैगा; तब फिर आयकर हम आपका यह निज मस्तक आपके धडपर लगादेंगे और फिर आपको इस विद्या पढनेकी गुरु दक्षिणा दी जायगी. दधीचिमुनिने यह वार्ता सुनकर अश्विनीकुमारको अश्वमस्तकसे प्रवर्ग्य और ब्रह्मविद्याका उपदेश किया था, इसकारणसे यह विद्या अश्वशिर नामसे प्रसिद्ध हुई" ॥ ५२ ॥ हे इन्द्र ! दधीचि मुनिको मेरी आत्माका श्रीमन्नारायणकवच प्राप्त हुआ और उन्होंनेही त्वष्टाको यह कवच पढाया, त्वष्टासे वह कवच विश्वरूपको प्राप्त हुआ, और विश्वरूपने यह कवच तुमको दिया है । इस कारण दधीचिमुनिका गात नारायणकवचके प्रभावसे अतिदृढ है, सो तुम लोग जायकर उनके अंगकी हड्डी मांगो, हे देवेन्द्र ! यह देह सबकोही अत्यन्त प्रिय होती है, फिर यह मुनि इस देहको क्यों देवेंगे ? श्रीभगवान् कहने लगे कि इस प्रकारकी शंका तुम लोग मत करो, क्योंकि वे परमधर्मज्ञ हैं, तुम्हारे ऊपर विशेष करके अश्विनीकुमारके माँगनेसे शिष्यकी प्रीतिके वश होकर उसी समय वह अपना शरीर दे देवेंगे, उस शरीरकी अस्थिसे विश्वकर्माजी जो आयुध बनावेंगे, वह श्रेष्ठ आयुध बन जायगा, अर्थात् वज्र होजायगा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तुम हमारे तेजसे बढकर इस शस्त्रसे वृत्रासुरका मस्तक काट डालना, हे देवगण ! जब यह दानव मरजायगा, तब तुम फिर अपने तेज अस्त्र और सम्पदाको ॥ ५५ ॥ प्राप्त होंगे यह असुर बडे आकारवाला त्रिभुवनग्रासी तुमको ग्रास कर जायगा ऐसी शंका तुम मत

करना; क्योंकि जो पुरुष हमारे भक्त हैं उनकी हिंसा करनेको कोईभी सामर्थ्य नहीं रखता, तुम बहुतही शीघ्र अपना मंगल देख पाओगे ॥ ५६ ॥

भजन-जो कोइ चितसे मोहिं न बिसारे, मैं ना बिसारूं प्रण है यही मेरा ॥ धर्म प्रिय हो धर्म बढाऊं, सफल कार्य कर अर्थ बताऊं मुक्तिचाहे तो पार लगाऊं, छिन पल माहिं न लागत बेरा । रोग हरूं चिन्ता सब टारूं; अभय करूं शत्रुनको मारूं, अचल भक्तजन वेग उबारूं, सेवा करूं आप बनचेरा । मेरा नाम भक्त सुखदायक, सदा विपतिमें होत सहायक, जो कोइ रटत कृष्ण यदुनायक, ताके हृदय करत नित डेरा ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-मुनि दधीचिकी अस्थिको, रचकर वज्र कठोर ।
वृत्रासुरसे इन्द्रने, कियो युद्ध अति घोर ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! विश्वभावन भगवान् इन्द्रको इस प्रकारकी आज्ञा देकर दर्शन करनेवाले उन देवताओंके सामनेही अंतर्धान होगये ॥ १ ॥ उसके पीछे देवतालोग महान् अथर्वण दधीचि मुनिके निकट जायकर उनके शरीरको माँगने लगे । हे भागवत ! देवतालोगोंके मुखसे इस ऋषिको धर्म सुननेकी बडी अभिलाषा थी, इसलिये मनहमिन आनंदित हो हँसकर बोले ॥ २ ॥ हे वृन्दारक वृन्द ! शरीरधारियोंको मरने पर जो दुःख होता है सो हम जानते हैं, उसको तुम नहीं जानते हे सुरगण ! मृत्युकी पीडा अत्यन्त कठिन होतीहै, वह चेतनाका नाश कर देती है ॥ ३ ॥ जो जीव जो कि, जीवित रहनेकी इच्छा करते हैं, उनको उनका शरीर अतिप्यारा होता है, यदि तुम लोग कहो कि, हम तुम्हारा देह नहीं चाहते, वरन् हम लोगोंके मुखसे भगवान् तुम्हारे शरीरको माँगते हैं. इसका उत्तर यह है कि, अपनी प्यारी देहको भगवान् विष्णुके माँगनेपर भी कौन देसक्ता है ? ॥ ४ ॥ दधीचि मुनिके यह वचन सुनकर देवतालोग बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जो महापुरुष आप सरीखे दयावान् हैं, पुण्यवान् लोग सदा जिनके कर्मोंकी बडाई किया करते हैं, वे लोग परोपकारके लिये कौनसी वस्तुको नहीं दे सक्ते हैं ? ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह ठीक है कि, स्वार्थपर लोग दूसरेके क्लेशका विचार नहीं करते परन्तु ऐसे स्थानपर हमारा यह कहना है कि, याचक पुरुष यदि पराया दुःख समझ सकैं तोभी जिसप्रकार माँगना नहीं छोडता, वैसेही दान देनेमें समर्थ पुरुषभी समझकर "ना" नहीं कहसक्ता, अर्थात् हम लोग जिसप्रकार स्वार्थपर होनेसे आपके कष्टकी ओर नहीं देखते, आपभी वैसेही सूखा उत्तर देकर हम लोगोंकी इस विपदको नहीं समझते ॥ ६ ॥ वे महात्मा ऋषि विनय करके बोले कि, हे देवगण ! आप लोगोंसे धर्म सुननेकी कामना से हमने ऐसा कहा था, यद्यपि हमारा यह देह प्यारा है, तोभी एक दिन यह अवश्य हीं हमको छोडकर चला जायगा. फिर जब कि, आपलोग हमसे इस देहको

माँगते हैं, तव तो अभी हम इसको आपके लिये त्याग किये देते हैं ॥ ७ ॥ हे नाथगण! यह देह नित्य नहीं हैं, इस शरीरसे सव प्राणियोंके ऊपर दया करके जो पुरुष धर्म और यश वटोरनेकी चेष्टा नहीं करता, उसके लिये अचेतन स्थावर तक भी शोक किया करते हैं ॥ ८ ॥ हे प्रभुवर्ग ! जो महात्मा स्वयं प्राणियोंके शोकमें शोकाकुल और उनके हर्षमें हर्षित होते हैं, उसके वह सव अव्यय धर्म पुण्यवान् लोकोंमें उस धर्मी पुरुषकी सेवा किया करते हैं ॥ ९ ॥ अहो ! जो धन, पुत्र शरीरादि पदार्थ दृष्टि आते हैं यह सव कुत्ते और गीदड़ादिके भोजन हैं । यह स्वार्थके कुछभी उपयोगी नहीं और स्थायीभी नहीं वरन् क्षणमें नष्ट होजानेवाले हैं और क्षण क्षणमें नष्ट होते जाते हैं फिर इन सवसे परोपकार करना क्या कष्ट और कैसे कृपणपनका काम है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी वोले कि, हे राजन् ! मुनिवर दधीचिने ऐसा निश्चय करके परब्रह्मके साथ अपनी आत्माको मिलाय शरीरको छोड़दिया ॥ ११ ॥ उनकी इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि यह सव वशमें थीं और यह आपही तत्वोंको देखते थे इसलिये इनके सव वंधन छूटगयेथे इस कारण परमयोगका अवलम्वन करनेसे उन्होंने अपने शरीरका छूटनाभी तो नहीं जाना ॥ १२ ॥ फिर पीछे इन मुनिके शरीरकी अस्थि लेकर विश्वकर्माने वज्र वनादिया, व भगवान्के तेजसे युक्त उस वज्रको धारण करके इन्द्र उठा ॥ १३ ॥ गजेन्द्र ऐरावत हाथीकी पीठपर शोभायमान होनेलगा देवतागण चारों ओरसे घेरकर खड़े होगये और सव ऋषिगण स्तुति करने लगे जिससे कि, समस्त त्रिभुवन मानों हर्षयुक्त होगया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! तिसके पीछे देवराज इन्द्र वृत्रासुरके ऊपर दौडे, यद्यपि वह वृत्रासुर असुर सेनाके यूथपोंसे घिराहुआ था, तोभी क्रोधायमान रुद्रजीने जिस प्रकार अन्तकासुरके ऊपर चढाई की थी, वैसेही सुरराज इन्द्र वलपूर्वक इस असुरपर चढ़े ॥ १५ ॥ फिर असुरोंके साथ देवता लोगोंका परस्पर संग्राम होने लगा, हे राजन् ! सतयुगके अंत और त्रेताके आरंभमें नर्मदा नदीके किनारे यह संग्राम होता हुआ ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें ८ वसु, ११ रुद्र, १२ सूर्य, २ अश्विनीकुमार, ३ पितृ, ३ अग्नि, ४९ पवन, ऋभु, साध्य और विश्वेदेवादिके साथ ॥ १७ ॥ वज्रधारी इन्द्र अपनी श्रीसे अधिक शोभायमान हुए कि, जिसको शत्रुलोग वृत्र इत्यादि असुरगण न सहन कर सकैं ॥ १८ ॥ और नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्द्धा, ऋषभ, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख ॥ १९ ॥ पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल इत्यादि दैत्य और सहस्र सहस्र यक्ष दानव खड़े होकर ॥ ॥ २० ॥ और इल्वल, वल्वल, दंदशूक, वृषध्वज, कालनाभ, महानाभ, भूतसंतापन, वृक ॥ २१ ॥ सुमाली, माली, इत्यादि असुरगण सुवर्णका वख्तर पहरे सिंहनाद करते करते इन्द्रकी सेनाको जो कि, मृत्युसेभी दुरासद थी, उनको रोककर मारडालनेका विचार करते हुये, अतिशय मदोन्मत्त होनेके कारण, उन राक्षसोंको कुछभी भय या भ्रम नहीं हुआ ॥ २२ ॥ अनेक गदा, परिघ, वाण, फांस, मुद्गर तोमर ॥ २३ ॥

शूल, फरसे, खड्ग, शतघ्नी, भुशुण्डी, इत्यादि अस्त्र शस्त्र वर्षायकर देवता लोगोंको सब प्रकारसे और सब ओरसे घेरकर लड़ने लगे ॥ २४ ॥ बाणजालसे सब ओरसे ढकेहुए देवता अदृश्य होगये, बाणोंपर बाण गिरने लगे. राक्षसोंके चलाये बाणोंसे देवता लोग ऐसे ढकगये, जैसे आकाशमण्डलमें बादलोंसे तारे छिपजाते हैं ॥ २५ ॥ परन्तु असुर लोगोंके अस्त्र शस्त्र देवसेनाके ऊपर गिर नहीं सके, क्योंकि लघुहस्तसे देवतालोगोंने आकाशमेंही उनके सहस्रों टुकड़े टुकड़े करदिये ॥ २६ ॥ जब असुरलोगोंके सबही अस्त्र शस्त्र चलगये, तब वह वृक्ष पर्वतोंके शिखर और पत्थरोंकी चट्टाने लेकर देवता-लोगोंपर वर्षाने लगे प्रथमकी नाईं देवता लोगोंने इस सबको काट कूट डाला ॥२७॥ इस प्रकार अनेक अनेक अस्त्र शस्त्रोंके प्रहारसेभी देवसेनाको अच्छिन्न सुखी और वृक्ष, पत्थर तथा विविध पर्वतोंके शिखर चलानेसेभी उनको घावरहित देख वृत्रासुरकी सेनाके असुरगण अत्यन्त भयभीत हुए ॥ २८ ॥ इसके पीछे फिरभी उन्होंने देवतालोगोंके विरुद्ध जो जो कुछ करनेको यत्न किया, सो देवता लोगोंके ऊपर होनेसे वह सबही यत्न उनके निष्फल हुए जैसे छोटे लोगोंके कहे अकल्याणकर कठोर वचन बडे पुरुषके शोभदायक नहीं होते, वैसेही दैत्यलोगोंकी चेष्टासे देवतालोगोंको कुछ भी ग्लानि नहीं हुई ॥ २९ ॥ हे राजन् ! असुर लोगोंकी भक्ति भगवान्में नहीं थी, इसकारणसे युद्धमें उनका समस्त दर्प बहुत शीघ्र टूटगया और उनका धीरज देवतालोगों करके ग्रहण करलियागया। इसकारण यद्यपि वह बडे भारी योद्धा थे, तो भी समरके प्रारंभ होतेही अपने स्वामीको परित्यागकर वह अपने छुटकारेका मार्ग देखने लगे ॥ ३० ॥ वृत्रासुर स्वयंभी महावीर था, जब इसने देखा कि, हमारे अनुचर असुर लोग भागनेको तैयार होरहे हैं और प्रथमही अनेक अनेक सेनाको उसने तेज भयसे छिन्न भिन्न और समरत्याग करके भागते हुए देखा, तब वृत्रासुर हँसकर कहने लगा ॥ ३१ ॥ उसके वह सबही वचन ठीक ठीक इस अवसरके योग्य और मनस्वी लोगोंके लिये मनोहर थे। उसने कहा हे विप्रचित्ते ! हे नमुचि ! हे पुलोमन् ! हे मय ! हे अनर्वन् ! हे शंकर ! हमारे वचन सुनो ॥ ३२ ॥ जन्म लेनेसे मृत्यु निश्चयही होती है किसी प्रकारसेभी वह मृत्यु टल नहीं सक्ती। इससे यदि उस मृत्युसे इस लोकमें यश और परलोकमें स्वर्ग होनेकी संभावना हो, कौन विद्वान् ऐसी मृत्युको न चाहैगा ? ॥ ३३ ॥ हे वीरगण ! इस लोकमें दो (२) प्रकारकी मृत्यु मिलनी अति दुर्लभ है, ऐसी मृत्यु हरेकके भाग्यमें कहां ? वह दो मृत्यु यह हैं, बोधकी धारणाके लिये प्राणादिका जय करके शरीरका छोड़देना एक और दूसरी सेनाके आगे होकर संग्राम भूमिमें परमानंदसे प्राणत्याग कर देना, इसलिये धर्मशास्त्रमेंभी कहा है कि, योगयुक्त परिव्राट् और सन्मुख युद्धमें शरीर देनेवाला वीर यह दोनों पुरुष सूर्यमंडलको भेदन करके गमन करते हैं. स्मृतिः,–"द्वाविमौ पुरुषौलोके सूर्य मंडल-भेदिनौ। परिव्राड् योग युक्तस्तु रणे चाभिमुखे हत ?" यहां पर एक सवैया लिखते हैं ॥

सवैया-इन्द्रिन जीति कै योगविधान सों छोडते देह जो हरिगुण गावत।
कै रणमें तनु लोभको छाँडिकै प्राण तजै अरु सन्मुख धावत।
जय रघुराज कहैं दोउ भाँतिसों निज तनु त्यागत मोह बढावत।
ते रविमंडल भेदि कै हरिपुर, जात चले जग फेरि न आवत ॥ १ ॥

वृत्रासुरभी मरते समय नारायणका अनुसंधान करता हुवा ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-वृत्रासुरसे इन्द्रने, कियो युद्ध अतिघोर।
भक्ति ज्ञान चर्चा करी, ग्यारहमें रणछोर ॥ १ ॥

इतनी कथा वर्णन कर योगीवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित! असुरोंके स्वामी वृत्रासुरने जब इस प्रकारके धर्मयुक्त वचन कहे, परन्तु असुरलोगोंने उनका एक न सुना, वरन् त्रासित हो घबराय २ सब भागनेही लगे ॥ १ ॥ तिसके पीछे देवतालोग उनको खदेडरहे थे कि, जिस्से असुर लोगोंकी सेना अनाथकी समान छिन्न भिन्न होरही थी, क्योंकि उस समय देवता लोगोंका काल अनुकूल था ॥ २ ॥ यह देखकर असुरश्रेष्ठ वृत्रासुरका अंतःकरण अत्यन्त संतापित हुआ, इन्द्रका शत्रु वृत्रासुर इन सब असुरोंके सामने इस अवस्थाको देख इसके सहन करनेको समर्थ न हुआ, वह भयंकर क्रोध करके बलसे देवताओंको रोक और उनकी निंदा करके कहने लगा ॥ ६ ॥ हे देवगण! तुमलोग माताके विष्ठाके मात्र हो वृथा क्यों दौडते हो? भागते हुये दैत्योंको मारडालनेसे क्या होगा? इसमें धर्म व यश किसीकीभी संभावना नहीं, क्योंकि जो लोग अपने आपको शूर कहकर गर्व करते हैं डरेहुएको मारनेकी अभिलाषा उनको स्वर्ग नहीं देगी ॥ ४ ॥ हे क्षुद्र देवगण! यदि तुम लोगोंमें श्रद्धा हो, तुम्हारे हृदयमें धैर्य हो और यदि तुम लोगोंने इस लोकमें भोग करनेका लालच छोडदिया हो तो हमारे आगे रणमें क्षणभर खडे होकर देखो ॥ ५ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे क्रोधित होकर अपने कराल शरीरसे वैरी देवतालोगोंको डराते हुए, इस महाबलवान् असुरने ऐसी घोर सिंहनाद की कि जिस्से त्रिलोकी अचेतसी होगई ॥ ६ ॥ हे महाराज! वृत्रासुरके सिंहनादसे सबही देवता वज्रसे मारेहुएकी समान मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिरपडे. महाअसुर वृत्रासुर संग्राममें दुर्म्मद होकर सुरसेनाको आतुरसे गिरते और भयके मारे उनके नेत्र बंद होते देखकरभी दयावान् नहीं हुआ। वरन् मदमाता यूथपति गज चरणसे जिसप्रकार कमलके वनको मसलताहै, वैसेही शूल उठाकर पृथ्वीको तेजसे कँपाता हुआ, दोनों चरणोंसे उस गिरीहुई देवसेनाको मसलने लगा ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस असुरका ऐसा आचरण देखकर वज्रधारी देवराज इन्द्रका क्रोध प्रज्वलित हुआ, फिर इन्द्रने इस अपने शत्रु असुरको अपनी ओर आता हुआ देखकर उसके ऊपर एक बडी भारी गदा चलाई ॥ ९ ॥ हे राजन्! वृत्रासुरका बल साधारण नहीं था, कहीं गदासे उसको भय होता है? इन्द्रकी गदाको गिरते गिरते उसने

लीला करके अपने बाँये हाथसे पकडलिया और महाक्रोधकर ऊंचा शिर उठाय गर्जकर उसी गदाको देवराजके वाहन ऐरावत महागजके मस्तकमें मारा। यह देखकर विपक्षके लोगभी वृत्रासुरके इस कार्यकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ देवराज इन्द्रका ऐरावत हाथी वृत्रासुरकी गदासे घायल होकर वज्रसे मारेहुये पर्वतके समान घूमने लगा और अत्यन्त आर्त हो मुख टूटजानेसे रुधिर वमन करते करते इन्द्र सहित संग्राम भूमिसे सात धनुष पीछे हटगया ॥ ११ ॥ वृत्रासुर अति महात्मा था, इस कारणसे इन्द्रका वाहन जब व्याकुल होगया, और चित्त भी उसका ठिकाने नहीं रहा, तब फिर वृत्रासुरने उसके ऊपर अस्त्र न चलाया, इसलिये देवराज इन्द्र अपने वाहनके घावका स्थान अमृत झरने वाले अपने हाथसे छूकर उसकी व्यथा दूर करते क्षणकालतक स्थिर रहगये ॥ १२ ॥ हे महीश! जब वृत्रासुरने देखा कि, इन्द्र समर त्याग करके नहीं जाते और फिर समर करनेकी वासनासे खडे हैं, इसलिये वज्रधारी और अपने भाईके मारनेवाले इस देवताके सब क्रूर कर्म जो कि, पापरूप थे, स्मरण करके शोक मोहसे युक्त हो हँसते २ बोला ॥ ॥ १३ ॥ वृत्रासुरने कहा, अहो! जो पुरुष ब्रह्मघाती और विशेष करके अपने गुरु और हमारे भ्राताका मारने वाला, सो वही तुम हमारे शत्रु हमारे सन्मुख खडे हो, यह बडेही भाग्यकी बात है हे प्रधान असत्! तुम्हारा पाषाण तुल्य हृदय शूलसे भेदकर आज हम शीघ्रही अपने भाईके ऋणसे छूटैंगे यह बडेही भाग्यकी बात है ॥ १४ ॥ अहो! हमारा बडा भाई विश्वरूप ब्राह्मण आत्मज्ञानी पापरहित दीक्षित होकर यज्ञ कर रहे थे, वह तुम्हारे और कोई नहीं बरन् परमगुरु थे, करुणारहित होकर स्वर्गकी कामना किये यज्ञ करनेवाला जिस प्रकार यज्ञके पशुओंका शिर काट डालता है, वैसेही खड्गसे तुमने उन महात्माका मस्तक काट डाला ॥ १५ ॥ निश्चय जाना जाता है कि, दया, लाज, श्री, कीर्तिने तुम्हारा त्याग किया है, अपने कर्मके दोषसे तुम राक्षसोंके निकटभी तो निन्दा-पात्र हुये हो, इसलिये हम इस शूलसे तुम्हारे इस हृदयको फाडैंगे, तुम्हारे इस पापमय शरीरको अग्निस्पर्श नहीं करैंगे बस गीधगण इसका भक्षण करैंगे ॥ १६ ॥ वह और दूसरे अज्ञानी देवता जो कि, यहांपर आये हैं, यहभी जो अधम तुम्हारा पक्ष लेकर शस्त्रसे हमारे ऊपर प्रहार करैंगे तो बडे तीखे शूलसे इनकीभी गर्दन उडाकर हम रुधिरकी धारा बहाय गणोंके सहित भूतनाथ शिवका यज्ञ करैंगे ॥ १७ ॥ हे इन्द्र! अथवा हठ करके जो तुमही इस वज्रसे हमारे शिरको काट डालोगे, तोभी कुछ हानि नहीं हम कर्मबंधनसे छूटकर अपनी देहसे सब प्राणियोंको बलिदे धीरजनोंकी गतिको प्राप्त होंगे ॥ १८ ॥ फिर ज्ञानके उदय होनेसें जीनेकी अपेक्षा मरनेहीको श्रेष्ठ जान वृत्रासुर बोला कि, हे सुरेश! हम तुम्हारे शत्रु तुम्हारे सामने खडे हैं, सो हमारे ऊपर तुम अपना वज्र क्यों नहीं चलाते हो? हे देवेन्द्र! यह वज्र अमोघ है, तुम ऐसा संशय मत करो कि, गदाकी समान यहभी निष्फल हो जायगा कि, जैसे कृपणसे किसी प्रकारकी वाञ्छा करना निष्फल होती है ॥ १९ ॥

हे शत्रु ! तुम्हारा यह वज्र भगवान् हरिके तेज और दधीचि मुनिकी तपस्यासे अत्यन्त तीक्ष्ण होगया है; तुम इस वज्रसे शत्रुको वधकरो, तुम विष्णुके भेजे हुये समरमें आये हो, इसलिये तुम्हारे पराजित होनेकी शंका नहीं. क्योंकि जहां नारायण वहीं जय श्री और सकल गुण वर्त्तमान रहतेहैं ॥ २० ॥ हे इन्द्र ! ऐसीभी शंका मतकरो कि, तुम्हारे वज्र की चोटसे हमको कुछ पीडा होगी, हमारे प्रभु शेषजीने हमको जिस प्रकारका उपदेश कियाहै, हम वैसेही उनके चरणारविन्दोंमें चित्त लगायकर देहको त्याग योगी पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होंगे, इस तुम्हारे वज्रसे हमारा अपकार न होगा बरन् विषयभोगरूप ग्राम्य सुखकी फाँसी टूट जायगी ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र ! हम भगवान्‌के जिनके भृत्य हैं सो तुम ऐसी शंकाभी मत करना कि, वह हमको स्वर्गादि संपत्ति देंगे, क्योंकि जो पुरुष एकान्त भावसे भगवान्‌मेंही अपने चित्तको लगाते हैं और जिससे कि, वह उनकेही जन कहकर गिने जाते हैं, उनको श्रीनारायण, स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोककी सम्पत्ति नहीं देते । क्योंकि इन सम्पत्तियोंसे उद्वेग, मनव्यथा, मतवालापन, झगडा, विपद और क्लेश हुआ करता है ॥ २२ ॥ यदि कहो कि, फिर वह भक्तजनोंका क्या विधान करते हैं ? सो हम कहते हैं श्रवण करो-हमारे प्रभु वह भगवान् विष्णुने अपने भक्तके लिये धर्म, अर्थ, काम, इन त्रिवर्ग विषयकी आयासका नाश किया है. हे इन्द्र ! इस आयासकी शान्तिसेही भगवान्‌की प्रसन्नताका अनुमान करलिया जाता है और किसी प्रकारसेभी वह प्राप्त नहीं होसक्ता । अकिञ्चन भिक्षुजन सरलतासे इस प्रकारका भगवत् प्रसाद प्राप्त कर सक्ते हैं । और दूसरे जन इस प्रसादको नहीं पासक्ते, उनके लिये यह अतिशय दुर्लभ है ॥ २३ ॥ हे कौरवराज ! वृत्रासुर इसप्रकार इन्द्रके निकट अपने अभिप्रायको प्रगट करके भगवान्‌को पुकारकर प्रार्थना करने लगा कि, हे भगवन् ! तुम्हारेही चरणकमलका जिनको आश्रय है, सो मैं उन दासोंकाभी दासहूं । मेरा मन आपके गुणोंका स्मरण करै । हमारे वाक्य तुम्हारा गुणकीर्तन करैं ॥ २४ ॥ हे देव ! आपके बिना स्वर्गपृष्ठ, क्या सार्वभौम, क्या पृथ्वीका आधिपत्य, क्या योगसिद्धि, क्या अपुनर्भव अर्थात् मुक्ति, आपके वियोगमें किसीकीभी चाहना मैं नहीं रखता ॥ २५ ॥ हे अरविन्दनेत्र ! जब कि, पंख न जमेहुये पक्षियोंके बच्चे क्षुधा इत्यादिसे पीडित होकर जननीके देखनेकी इच्छा करते हैं. जैसे भूखसे आरत होकर बँधे हुये बछडे थनोंके देखनेके लिये व्यग्र होतेहैं और जिस प्रकार कामबाणसे व्याकुल हुई प्यारी दूर देशमें गये हुये अपने प्यारेके देखनेकी इच्छा करती है, वैसेही त्रिविध तापसे संतापित हुआ मेरा मन सब कार्योंमें बँधाहुआ कामादिसे पीडित होनेके कारण आपकेही देखनेका अभिलाष करता है ॥ ॥२६॥ इसलिये हे प्रभो ! मैं अपने कर्मोंमें बँधकर संसार चक्रमें घूम रहाहूँ, सो इस क्लेशकी शान्तिके लिये तुम्हारे भक्त जनोंकेसाथ मेरी मित्रता होजाय, भगवान् आपकी मायाके वश इस समय जो पुत्र, कलत्र, देह, गेह, आदिमें मेरा चित्त आसक्त हुआ है, सो आप ऐसी कृपा कीजिये कि, जिससे फिर इन बातोंमें मेरा चित्त आसक्त न हो यह मेरी इच्छा है ॥

भजन राग कालिंगडा।

तुम विन कोई न मेरो प्रभुजी तुम बिन कोई न मेरोरे ॥ कृपासिन्धु सेवक सुखदायक मम उर करो बसेरोरे ॥ तात मात अरु भ्रात तुम्हींहो निजसेवकको हेरोरे ॥ काम क्रोध मद लोभ मोहने आन कियो उर डेरोरे ऐसे प्रबल दुष्टगणहूसे को करसकै निबेरोरे ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा-वृत्रासुरसे हारकर, बहुरि भयो उत्साह।
महा युद्ध कर इन्द्रने, मारो निशिचर नाह ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे परीक्षित् ! वृत्रासुर इसप्रकार समरक्षेत्रमें अपने देहके त्यागनेकी इच्छा करता हुआ विजयसे मृत्यु होना श्रेष्ठमान शूल ग्रहणकर इन्द्रके ऊपर ऐसे दौडा जैसे महाप्रलयके जलमें मधुकैटभ दैत्य भगवान् विष्णुजी पर दौडे थे ॥ १ ॥ फिर पीछे जिस शूलके अग्रकी अनी प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर थी उस शूलको अतिवेगसे घुमायकर वृत्रासुरने इन्द्रके ऊपर चलाया, तत्पश्चात् सिंहनाद कर क्रोधमें भरकर बोला कि, अरे पापी ! अब तू मेरे हाथसे किसी प्रकार नहीं बच सक्ता, आज तुझे अवश्य यमपुर भेजूंगा, इस प्रकारके कटु वचन कहने लगा ॥ २ ॥ हे राजन् ! वृत्रासुरका यह शूल उल्कापात ग्रह और उल्काकी समान देखनेमें अयोग्य घूमताहुआ चला आता था, तथापि उसको देखकर देवराज इन्द्र कुछभी व्याकुल न हुए। और उन्होंने शतधार वाले वज्रसे सरलतापूर्वक उसको काटडाला और उसके साथ एक भुजा इस असुरकी जो कि सर्पाकार थी काटकर गिरादी ॥ ३ ॥ जब एक भुजा कट-गई तब वृत्रासुरने महाक्रोधकर दूसरी भुजामें परिघ धारणकर वज्रधारी इन्द्रकी ओर झपटा, और वह परिघ जाकर गजेन्द्रकी और इन्द्रकी ठोडीमें मारी तिससे देवराज इन्द्रका हाथी ताडित हुआ और इन्द्रके हाथसेभी वज्र छूटकर पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ४ ॥ हे महाराज ! वृत्रासुरका यह महाअद्भुत कर्म देखकर सुर असुर सिद्ध चारण और गंधर्वगण अनेक प्रशंसा करने लगे परन्तु इन्द्रके ऊपर बडी विपद पडी देख बहुतही शीघ्र सब ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! हाथका वज्र गिरजानेसे इन्द्र लज्जित होकर अपने शत्रुके सन्मुख फिर उस वज्रको नहीं उठा सका, तब वृत्रा-सुरने हँसकर इन्द्रसे कहा कि, हे इन्द्र ! वज्र उठाकर अपने शत्रुका वध क्यों नहीं करते यह विषाद करनेका समय नहीं है ॥ ६ ॥ हे पुरंदर ! उत्पत्ति स्थिति और प्रलय एक ईश्वर सर्वज्ञ सनातन आदि पुरुषके सिवाय और दूसरेके हाथ नहीं सर्वज्ञ और सदा विजयी तो भगवान् हैं। पराधीनात्मा आततायी युयुत्सु पुरुषोंकी सदा जय नहीं होतीहै कभी जय होतीहै, कभी पराजय होतीहै, फिर तुम शोक किसलिये करते हो ? ॥ ७ ॥ हे देवराज ! लोकपाल सहित यह समस्त लोक जिसके जालसे बँधेहुये पक्षियोंकी समान अवश

होकर अपने अपने व्यापारमें चेष्टा करते हैं, परन्तु जय अजयका कारण वह कालरूप परमात्माही है ॥ ८ ॥ हे देवराज ! वह भगवान्ही सामर्थ्य, साहस, बल, प्राण, अमृत और मृत्युके स्वरूप हैं । परन्तु कैसा आश्चर्य है कि, लोग उसको जया-दिका कारण न जानकर जडरूप वर्त्तमान जो यह देह है, इसकोही सबका कारण मानतेहैं ॥ ९ ॥ परन्तु हे भगवन् ! जिसप्रकार काठकी बनी स्त्री, अथवा जिसप्रकार यंत्रमय मृग स्वाधीनहो स्वयं कोई चेष्टा नहीं करसक्ते जैसे कोई नचाताहै वैसेही नाचता है वैसेही यह सब भूत भगवान्के वशमें हैं, बिना भगवान्की इच्छाके कोई कार्य करनेको समर्थ नहीं ॥ १० ॥ पुरुष, प्रकृति, अव्यक्त, आत्मा, पंचभूत, इन्द्रियें, अंतःकरण यह सब सृष्टिके आदिमें बिना उसकी कृपाके कुछभी नहीं कर सक्ते हैं ॥ ११ ॥ हे देवराज ! कोई २ पुरुष यह कहा करते हैं कि, जीव अपने कर्मोंसे सृष्ट्यादिका हेतु है, यह बात नहीं. कारण कि, देह किसी प्रकारसे स्वतन्त्र नहीं है । अविद्वान् पुरुषही देहको ईश्वर अर्थात् स्वाधीन करके मानते हैं. यदि कहो, पित्रादिसे सृष्टि और व्याघ्रादिसे विनाश दृष्टि आता है. सो उत्तर यह कि, यहभी परवश है बरन् भगवान्ही स्वयम् पित्रादिभूत सबोंसे सब प्राणियोंकी सृष्टि किया करते हैं और वही व्याघ्रादि मृत्योंसे सब भूतोंको ग्रास करते हैं ॥ १२ ॥ हे देवराज ! तुम हमसे पराजित हुए हो सो अब तुम ऐसा मत समझो कि, हमारी जय होगीही नहीं क्योंकि पुरुषोंकी कीर्ति, श्री, ऐश्वर्य, आयु और आशिष यह सब भयादि कालमें अवश्यही होते हैं परंतु इस तत्त्वविषयमें अनिच्छु होनेसे विपरीत अर्थात् अकीर्ति इत्यादि हुआ करती है ॥ १३ ॥ इसलिये हे महेन्द्र ! जब कि, सबही ईश्वरके अधीन हैं तब इसी कारणसे कीर्ति, अकीर्ति, तप, पराजय, सुख, दुःख और जीवन, मरणमें समान अर्थात् हर्ष, विषादसे शून्य होना उचित है ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! सतोगुण रजोगुण और तमोगुण यह तीन-मायाके गुण हैं, कुछ आत्माकेगुण नहीं । जो पुरुष आत्माको इन तीन गुणोंकी साक्षी स्वरूप जानते हैं, वह हर्षादिकमें कभी नहीं बँधते ॥ १५ ॥ हे शक्र ! हर्ष शोक विषादको दूर करनेके लिये इस समय मैंही तुम्हारा गुरु होता हूँ मुझको देखो कि, तुमसे मैं हारभी गयाहूं और मेरे अस्त्र शस्त्रभी टूटगये हैं तोभी तुम्हारे प्राण संहार करनेकी वासनासे यथाशक्ति युद्ध करेही जाता हूं ॥ १६ ॥ हे देवराज ! हमारा यह समर द्यूतस्वरूप है । इसमें परस्परका प्राण लगानाही दाँव है, बाण जो चलाते हैं यही पाशरूप हैं, वाहन रूप इसकी नरदें (गुदे) हैं और पृथ्वीरूप चौपड सो इस समय कोई नहीं जान सक्ता कि, इस द्यूतमें किसकी हार और किसकी जीत होगी ? ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! वृत्रासुरके निष्कपट वचन सुनकर देवराज इन्द्र विस्मित हुए और कपटरहित जानकर उसकी प्रशंसा करने लगे । फिर विस्मय त्याग और वज्र ग्रहणकर हँसकर बोले ॥ १८ ॥ हे दानव ! तुम सिद्ध होगये हो, अहो ! तुममें इस प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न हुई है । जाना जाता है कि, सबके अन्तःकरणमें सबके आत्मा

और सुहृद् जो जगदीश्वर हैं उनकी सेवा तुमने बहुत की है ॥ १९ ॥ और सब जनोंकी मोहनेवाली वैष्णवी मायाकाभी तुमने पार पालिया है, क्योंकि तुममें असुरभाव नहीं पाया जाता बरन् उसके बदले तुममें वह भाव है जो कि, महापुरुषोंके निकट होता है ॥ २० ॥ परन्तु यह अति आश्चर्यकी बात है कि, तुम रजोगुणी होकर किस प्रकार सत्वसम्पन्न भगवान् वासुदेवमें तुम्हारी दृढ मति हुई ॥ २१ ॥ जो कुछ हो जब कि, सबके मोक्ष देनेवाले भगवान् हरिमें तुम्हारी मति लगी है और जब कि, तुमने अमृत सागरमें विहार किया है तब तुच्छ गर्तादिके तुल्य स्वर्गादि जो हैं, इसमें तुम्हारा कुछभी प्रयोजन नहीं है, यह हमने निश्चय जाना है ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! धर्मज्ञानकी वासनासे इस प्रकार कहते कहते इन्द्र और वृत्रासुर दोनों जनोंमें घोर युद्ध होने लगा, दोनोंही महावीर और महायोद्धा थे, इसलिये किसी पक्षकी और किसी भाँतिकी हानि नहीं पाई गई ॥ २३ ॥ हे राजन् ! महा बलवान् पराक्रमी वृत्रासुर लोहेका बना घोर परिघ बाँये हाथमें ग्रहण करके इन्द्रके ऊपर चलाता हुआ ॥ २४ ॥ परन्तु उसका चलाया यह परिघ और उसकी यह परिघतुल्य भुजा दोनोंहींको देवराज इन्द्रने तेजधारवाले वज्रसे एकही वारमें काटडाला ॥ २५ ॥ जब दोनों भुजाओंकी जड कटगई तब उनसे अनिवारित रुधिरकी धारा बहने लगी । तब यह असुर ऐसी शोभा धारण करता हुआ कि मानो इन्द्रके वज्रसे पंख कटा हुआ पर्वत आकाशसे गिरा है ॥ २६ ॥ इसके पीछे वह वृत्रासुर अपनी नीचेकी ठोडी पृथ्वीमें लगाय, ऊपरकी ठोडी आकाशमें छुवाय,आकाशकी समान गम्भीर मुख और सर्पका तुल्य जीभ निकाल ॥ ॥२७॥ मृत्युकी समान कराल डाढोंसे त्रिलोकी ग्रास करनेकेलिये मानो वह असुर उपस्थित हुआ और फिर अपने बडे भारी शरीरके वेगसे मानो पर्वतोंको चलायमान कर देगा, ऐसा प्रतीत होता था ॥ २८ ॥ पर्वतराजकी समान पादचारी हो पृथ्वीको चूर्ण करता हुआ वज्रधारी पुरन्दरके निकट आनकर वह ऐरावत सहित इन्द्रको निगल गया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! महा अजगर सर्प जिस प्रकार हाथीको निगल जाता है, वैसेही यह महा बलशाली महाप्रतापी वृत्रासुर सुरपति इन्द्रको निगल गया ॥ ३० ॥ देवता लोग इन्द्रको वृत्रासुरसे ग्रसाहुआ देख भय और वेदनाके मारे पीले पड गये । और महर्षियोंके साथ "हाय क्या कष्ट है" ऐसा कह कह कर सन्ताप करने लगे । हे राजन् ! इन्द्रको वृत्रासुरने निगल लिया और अपने पेटमें डाल लिया तोभी नारायण कवच बाँधनेके प्रभावसे और योगमायाके बलसे देवराज इन्द्रकी मृत्यु न हुई ॥ ३१ ॥ एक क्षणभरमें वज्रसे इस असुरकी कोखको फाडकर देवराज इन्द्र निकल आये और अपने तेजसे पर्वतके शृंगके समान वृत्रासुरका मस्तक इन्द्रने काट डाला ॥ ३२ ॥ हे राजन् यद्यपि इन्द्रका यह वज्र अतिशय वेगवान् था, तथापि इस असुरके कंधे काटता यह वज्र सब और घूमने लगा और जिस समयको ज्योतिषियोंने वृत्रासुरके मारनेको निर्धारित किया था, उतनेही अहर्गणमें वह उसका शिर कटकर गिरा ॥ ३३ ॥ हे कौरवश्रेष्ठ ! घोर

वृत्रासुरके मारे जाने पर आकाशमें नगाडे बजने लगे, और सिद्ध गंधर्वगण व महर्षियोंके समूह इंद्रके वीर्यका प्रकाश करनेवाले मंत्रोंको पढ पढ कर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३४ ॥ हे शत्रुनाशक राजन् ! उस समय वृत्रासुरके देहसे निकलकर उसकी आत्मज्योति निर्गत होकर दर्शनकारी देवगणोंके सामनेही भगवान्के लोकमें जाकर भगवान्में मिल गई, देखो राक्षस होनेपरभी मोक्ष पाई। क्योंकि वैकुण्ठमें जानेको सबहीकी इच्छा हुआ करती है ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा-वृत्रासुरके वधन की, हत्या मान अगाध।
इन्द्र छिपे वरसों तलक, बहुरि हरी हरि व्याध ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजापरीक्षित् ! वृत्रासुरके मारे जानेपर इन्द्रके बिना लोक परलोकके साथ ब्रह्मादिक शीघ्रही सब ज्वरोंसे मुक्त हुये ॥ १ ॥ देव, ऋषि, पितृ, भूत, दैत्य और देवानुचर, व ब्रह्मा, ईश इत्यादि सबही हर्षसमुद्रमें मग्न होकर स्वयं अपने अपने आश्रमोंको चलेगये ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखारविन्दसे इतनी वार्ता श्रवण करके राजा परीक्षित् हाथ जोडकर बोले कि, हे भगवन् ! जब सबहीको अपूर्व सुख आह्लाद प्राप्त हुआ, तब इन्द्र किसलिये दुःखी हुये ? ॥ ३ ॥ यह सुन संदेहोंके शमन करनेवाले योगिवर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि, हे राजन् ! महर्षियों सहित सब देवता जब वृत्रासुरके विक्रमसे घबराये तब उसका वध करनेके लिये सबने इन्द्रके निकट आनकर प्रार्थना की, परन्तु वृत्रासुरके मारनेसे ब्रह्महत्या होगी, इसलिये प्रथम वृत्रासुरके मारनेको इन्द्रकी इच्छा नहीं थी ॥ ४ ॥ इन्द्र बोले कि, विश्वरूपका वध करके एक बार जो पाप किया था, स्त्री, भूमि, वृक्ष और जल, इन्होंने अनुग्रह करके यह पाप परस्पर बाँटकर ग्रहण कर लिया, सो अब वृत्रासुरका संहार करके यह पाप किसको दूंगा ? क्योंकि यह असुरभी तो ब्राह्मणसेही उत्पन्न हैं ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इन्द्रके यह वचन सुनकर, ऋषि लोगोंने कहा था कि, हम लोग तुझसे अश्वमेधयज्ञ करावेंगे कि, जिससे तुम्हारा मंगल होगा, तुम भय न करो ॥ ६ ॥ हे देवेन्द्र ! अश्वमेधयज्ञसे परमपुरुष परमात्मा नारायण देवकी पूजा करनेपर एक ब्रह्महत्या क्या ? समस्त जगत्को वध करनेके पापसेभी छूटकर मोक्षको प्राप्त हो जाओगे ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! ब्रह्मघाती, पितृघाती, गोघाती, मातृघाती, ऋषिघाती, आचार्यघाती और कुत्तेका खानेवाला, चाण्डाल इत्यादि महापापकारी लोगभी जिनके नामका कीर्तन करके उन पापोंसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हम महायज्ञ अश्वमेधका अनुष्ठान करेंगे तुम उसमें श्रद्धासहित श्रीभगवान् वासुदेवकी पूजा करना, तो उस पूजा करनेसे यदि तुमने चराचर विश्वकोभी संहार करडाला हो तो उसका पाप तुम्हें न चढेगा, फिर भला खलके मारनेका पाप कहीं हो सक्ता है ? एक नारायणका नाम लेनेसे सहस्रों पापका क्षय हो जाता है, एक दैत्यके

मारनेका आपको इतना संताप है ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यद्यपि ऋषि लोगोंके इसप्रकार समझाने बुझाने विश्वासादि दिलानेसे वृत्रासुरका वध किया तोभी ब्राह्मण वृत्रासुरके मरतेही ब्रह्महत्या इन्द्रके ऊपर आई ॥ १० ॥ जिससे कि इन्द्रको बडा शोक संताप हुआ। और देवराज इन्द्र किसीप्रकार उस ब्रह्महत्यासे छुटकारा न पासके। हे राजन्! यद्यपि इन्द्रमें धैर्यादि अनेक शुभ गुण थे तोभी जो कि, निन्दनीय करके लज्जायुक्त होता है उसको समस्त शुभ गुण भी सुखी नहीं करसक्ते ॥ ११ ॥ तब इन्द्रने चाण्डालरूप धारिणी मूर्तिमती भागकर आती हुई वृद्ध अवस्थाके कारण कम्पायमान अंग, राजरोगसे ग्रसित वस्त्रोंमें रुधिर लगाये ब्रह्महत्याको देखा ॥ १२ ॥ वह ब्रह्महत्या अपनी लटकें बाल बिखराये "खाऊँ खाऊँ" शब्द ऊँचे स्वरसे उच्चारण कर रही थी उसके श्वासकी पवन ऐसी दुर्गन्धियुक्त थी कि, मानो मछलियोंकी दुर्गन्धि है कि, जिस्से मार्गभी दूषित हो रहा था ॥ १३ ॥ हे राजन्! इन्द्र देखतेही भीत हो उससे अपना पीछा छुटानेके लिये पृथ्वी, आकाश और सब दिशाओंमें भागे फिरे परन्तु कहीं अपने उद्धारका ठिकाना न पाया, फिर उत्तर और पूर्व दिशामें जायकर वहाँके मानससरोवरमें बडी शीघ्रतासे घुसगया ॥ १४ ॥ और वहांपर एक कमलनालमें घुस बैठे. अग्निदूत अर्थात् अग्निही उनको यज्ञ भाग पहुँचा जाय। परंतु जलके मध्यमें अग्निका प्रवेश करना असंभव है इसकारणसे इन्द्र जब तक उस कमलनालमें बसते रहे, तब तक यज्ञभाग उनको न मिले। हे राजन्! देवराज इन्द्र सहस्रवर्ष तक यहां अलक्षित भावसे बसे हुये यही चिन्ता किया करते थे कि, किसप्रकार इस ब्रह्महत्याके महापातकसे छूटेंगे ॥ ॥ १५ ॥ जब तक इन्द्र यहाँपर छिपेरहे, तबतक विद्या, तप और योगबलके प्रभावसे नहुष राजाने स्वर्गलोकका पालन किया. हे राजन्! मनुष्योंको स्वर्गका राज्य किस प्रकारसे हो सक्ता है ऐसा मनमें समझ शंका मत करना, क्योंकि विदित तपस्या और योगके प्रभावसे नहुषको स्वर्गका राज्य पालन करनेका सामर्थ्य हुवा था, परन्तु कुछही काल पीछे यह राजा इस स्वर्गकी अतुल सम्पदाके मदसे ऐसा मतवाला हुआ कि इन्द्राणीने उपाय करके इस राजाको सर्पयोनि प्राप्त कराई। इसलिये स्वर्गसे यह नहुष गिरगया। "इस विषयमें एक इतिहास है कि, नहुष राजाने स्वर्गमें राज्य करते एक दिन इन्द्राणीसे कहा था कि, इस समय हमहीं इन्द्र हैं, इस कारणसे तुम हमको भजो। नहुषके यह वचन सुन धर्मलोप होनेके भयसे इन्द्राणी बहुत डरीं और उस समय नहुषसे कुछ न कहकर गुप्त भावसे यह वृत्तान्त सुरगुरु बृहस्पतिजीसे जाकर निवेदन किया, देवगुरु बृहस्पतिजी इस दुरात्माके स्वर्गसे गिरनेका उपाय विचारकर बोले कि, हे भद्रे! तुम इस दुरात्मासे यह कहना कि ब्राह्मणोंको पालकीमें जोत, उसमें चढकर हमारे पास आओगे तो हम तुम्हारी भजना करेंगे। ब्राह्मणोंसे पालकी उठवानेके कारण अवश्यही शापसे उसका नाश हो जायगा। तिसके पीछे नहुषने फिर इन्द्राणीसे कहा कि, तुम हमारी भार्या होओ। इन्द्राणीने कहा अच्छा, ब्राह्मणोंको शिबिकामें जोत उसमें चढकर हमारे पास आना, क्योंकि इन्द्र

इसी प्रकारसे हमारे पास आया करते थे. नहुष कामान्ध होकर अगस्त्यादि मुख्य मुख्य ब्राह्मणोंको शिबिकामें लगायकर शीघ्रताके मारे इन सब ब्राह्मणोंसे सर्प सर्प (चल चल) कहकर अगस्त्यजीके चरणप्रहार करता हुआ । इसलिये ब्राह्मणश्रेष्ठ अगस्त्यजीने क्रोधायमानहो " तू सर्प होजा " यह शापदिया, शापके देतेही उसी समय नहुष अजगर सर्प होकर स्वर्गसे गिर पडा " ॥ १६ ॥ तिसके पीछे देवराज ब्राह्मणोंके बुलानेसे फिर स्वर्गमें चलागया, सत्यपालक भगवान् हरिका ध्यान करनेसे इन्द्रकी ब्रह्महत्याका पाप विध्वंस होगया था,हे राजन् ! पहलेभी ब्रह्महत्या इन्द्रके पराजय करनेमें समर्थ नहीं हुई थी, क्योंकि पूर्वोत्तर दिशामें विराजमान दिग् देवता रुद्रने उनकी रक्षा की थी ॥ १७ ॥ हे महाराज ! यद्यपि ध्यान करतेही देवराज इन्द्रका पाप छूट गया था तोभी फिर उनके स्वर्गमें आनेपर ब्रह्मर्षिलोग उनके समीप जाय जिस अश्वमेध यज्ञमें भगवान् हरिकी आराधना करनाही प्रधान कर्म है, उस अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रको दीक्षित करके यथाविधिसे वह यज्ञ उनसे कराने लगे ॥ १८ ॥ हे राजन् ! ब्रह्मवादी मुनिलोगों करके जो यज्ञ कराया गया महेन्द्र उसमें सब देवताही जिनकी मूर्ति उस परमपुरुषकी जब अर्चना करने लगे ॥ ॥ १९ ॥ तब उनकी बहुत बडी ब्रह्महत्या जो कि वृत्रासुरके मारडालनेसे हुई थी, वह हत्या उन परमपुरुषसे संपूर्णतः इस प्रकार नाशको प्राप्त होगई कि, जैसे सूर्य भगवान्के उदय होनेसे तम (अंधकार) का नाश होजाताहै ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मरीचि इत्यादि महर्षियोंके करायेहुये अश्वमेध यज्ञसे यज्ञनाथ पुराणपुरुषकी आराधना कर पापक्षय होनेसे इन्द्र फिर पहलेकी समान फिर अपने उसी बडप्पनको प्राप्त हुये ॥ ॥ २१ ॥ हे महाराज ! यह आख्यान अतिश्रेष्ठ है,क्योंकि इसमें तीर्थ पद भगवान् हरिका कीर्तन, भक्तजनोंका वृत्तान्त और इन्द्रका पापसे छूटना और विशेष करके इन्द्रहीकी जय, इसमें कही गई है इसलिये इससे अनंत पाप धुलजाते हैं और भक्तिका उदय होता है ॥ २२ ॥ इसलिये पंडितगण सदा इस आख्यानका पाठ करते और पर्व पर्वमें इसको श्रद्धा सहित कहते हैं, इससे इन्द्रियें वशमें होती हैं. धन, यश होताहै अखिल पापका नाश होजाता है और शत्रुओंको जीतलिया जाता है । अधिक करके यह आयुका बढाने वाला है, इसलिये इस उपाख्यानका पाठ करना या श्रवण करना परमकल्याणकारी है २३

भजन राग पूर्वी ।

समय न आवत वारम्वार ॥ तू प्रमाद निद्रामें सोयो, अब तो नयन उघार ॥ यह मनुष्य तनु उत्तम पायो, प्रभुको सुयश उचार ॥ वृथा गँवाई इतनी आयुष, क्यों नहिं करत विचार ॥ तब रघुवीर दास पछतावें, जब तनु तजे असार ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

दोहा-अतिदुखसे इक सुत भयो, सोउ लीन विधि छीन ।
चित्रकेतु बिलखत परो, जैसे जल बिन मीन ॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् विनयपूर्वक श्रीशुकदेवजीसे पूँछने लगे कि, हे ब्रह्मन् महापापी वृत्रासुरका स्वभाव रजोगुण और तमोगुणसे परिपूर्ण था, फिर भगवान् वासुदेव में किसप्रकार उसकी दृढमति हुई ? ॥ १ ॥ शुद्ध सतोगुणी देवतागण और निर्मल आत्मावाले ऋषि लोगोंके चित्तमें इस प्रकार मुकुन्द गोपालकी भक्ति नहीं उपजती, फिर पापी वृत्रासुरको किस प्रकारसे उनके चरणोंमें भक्ति उत्पन्न हुई ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस पृथ्वीमें अनंत जीव हैं, उनकी गिनती पृथ्वीके रजःकणोंकी समान अनंत है। परन्तु इतने अनंत मोक्षके जीवोंको, कई एकमात्र मनुष्यादि अपने अपने कल्याणके लिये यत्न किया करते अर्थात् धर्माचरण किया करते हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! इन कई एक मनुष्योंमेंभी सबही अभिलाषी नहीं होते, बरन् उनमेंसेभी कोई एकही मोक्षको चाहते हैं, यह मोक्षार्थी सबही जीव सिद्ध नहीं होते बरन् सहस्रोंमें कभी कोई एकही पुरुष गृह इत्यादिका संग त्याग करके तत्वज्ञानी होताहै जो पुरुष मुक्त और इस प्रकारके तत्त्वज्ञानी होजाते हैं ऐसे करोडों जनोंके मध्यमें नारायण परायण महाशान्त स्वभाववाले पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं और ढूँढनेसेभी नहीं मिलते बहुत कठिनतासे देखनेमें आते हैं ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! वृत्रासुर साक्षात् पापका रूप होकर सब लोककी हिंसा करता फिरता था और सदा संग्राम करनेके लिये तैयार रहता, फिर उसकी मति किसलिये भगवान्में ऐसी दृढ हुई ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! इस बातमें हमको बडा संशय है और इसको सुननेके लिये चित्तमें परमोत्साह होरहा है । सो कृपापूर्वक विस्तार सहित इसका वर्णन कीजिये । हे योगिन् ! वृत्रासुर इन्द्रके भयसे भगवान्की शरणमें आया था ऐसा तो हम नहीं कह सक्ते, क्योंकि उस समय वृत्रासुरने ऐसा विक्रम प्रगट किया कि, इन्द्रभी उससे प्रसन्न होगया था ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे मुनिगण ! श्रद्धावान् महाराज परीक्षित्के यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी प्रसन्नतापूर्वक यह वचन बोले ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस विषयमें एक इतिहास महर्षि व्यासजीके मुखसे तथा नारदजीके व देवलके सन्मुख सुना है। सो हम तुम्हारे सन्मुख वर्णन करते हैं, सो सावधान होकर तुम श्रवण करो ॥ ९ ॥ हे महाराज ! पहले शूरसेन देशमें चित्रकेतु इस नामसे विख्यात एक राजा था उसका ऐसा प्रताप था कि, पृथ्वी उसको मनवांछित वस्तु दिया करती थी ॥ १० ॥ हे महाराज ! इस चित्रकेतुकी करोड रानियां थीं यद्यपि वह राजा पुत्रके उत्पन्न करनेमें समर्थ था तथापि उसके इन सब स्त्रियोंमें एक भी पुत्र कन्या नहीं हुई अर्थात् कुभाग्यसे इसकी सबही स्त्रियें वंध्याथीं ॥ ११ ॥ स्वयं रूप, लावण्य, वयस, विद्या, कुलीनता, ऐश्वर्यता, उदारता, इत्यादिमें संपन्न और सर्वगुणोंसे अलंकृत होनेपरभी बाँझ स्त्रियोंका स्वामी होनेसे चित्रकेतुके अन्तःकरणमें क्रमक्रम से चिन्ताका प्रवेश होताही रहताथा ॥ १२ ॥ इसलिये समस्त सम्पदा सकल कामलोचना महिला और अखिल भूमि किसी वस्तुसेभी इस चक्रवर्ती राजाका मन प्रसन्न नहीं होता ॥ १३ ॥ एक समय भगवान् अंगिरा महर्षि अपनी इच्छानुसार समस्त भूमण्डलमें

भ्रमण करते करते इस राजाके स्थानपर आय पहुँचे ॥ १४ ॥ महर्षिको देखतेही राजा हडवडाकर उठा । और दंडवत साष्टांग कर उनको आसन दिया और अनेक भाँतिसे उनकी पूजाकर अतिथिकी समान उनका आदर सत्कार किया, जव राजाके दिये हुए आसनपर यह महर्षि बैठगये, तव राजाभी नियम सहित उनके निकट आसन बिछाकर बैठ गया ॥ १५ ॥ समीप बैठे हुए राजाको विनय करते पृथ्वीमें झुककर प्रणाम करते देख महर्षि अंगिरा सत्कार करके " महाराज " उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ॥ १६ ॥ तव अंगिराजीने पूँछा कि हे महाराज ! कुशल सहित हो ? तुम्हारे राज्यांग और शरीरका मंगल तो है ? हे राजन् ! जिस प्रकार महदादि सप्त प्रकृतिसे जीव नित्य रक्षित रहता है, तिसके विना क्षणमात्रकोभी नहीं रहसक्ता वैसेही राजाकोभी सप्त प्रकृति अर्थात् स्वामी (गुरु) अमात्य (कर्मसहाय) राज्य, दुर्ग, कोश, दण्ड और मित्र, सलाहका देनेवाला इन सातों में गुप्त रहना पडता है इस प्रकारका सुरक्षित राज्यही आप इन समस्त प्रकृतिका अनुवर्तन करके राज्य सुखभोग कर पाते हैं ॥ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! राजाके सुखी होनेसे प्रकृति अर्थात् राज्यके समस्त अंगोंमें धनकी वृद्धि होती है ॥ १८ ॥ हे महाराज ! हम पूँछते हैं कि स्त्री, पुत्र, मंत्री, अमात्य, भृत्य (नौकर चाकर) तो तुम्हारे वशमें हैं, जो समस्त वणिक् विशेष विशेष नियम कर दल बाँधके रहा करते हैं, वह लोग, पुरवासी, देश परदेशके पति और प्रजा यह सब तो आपके वशमें रहते हैं ॥ १९ ॥ हे राजन् ! जिस पुरुषका मन अपने वशमें रहता है ऊपर कहे हुये यह सब पुरुष उसके वशमें रहते हैं। और यही समस्त लोग लोकपालोंके आलस्य संगरहित होकर राजाको भेंट पूजा किया करते हैं, इसलिये तुमसे हम पूँछतेहैं कि, तुम्हारा मनतो तुम्हारे वशमें है ॥ २० ॥ परन्तु हे राजन् ! हम जान्तेहैं, कि तुम आत्मासे सन्तुष्ट नहीं हो । तुम्हारा यह भाव क्या अपने आपसे हुआ है या किसी औरसे हुआ है इसलिये हम तुम्हारा वदन चिन्तासे गीला और मलीन देखते हैं, इससे प्रगट दिखाई देता है कि, तुमने अपनी वांछित वस्तु नहीं पाई है ॥ २१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! मुनिश्रेष्ठ अंगिरा यद्यपि सब जानते थे, तोभी इस प्रकारसे संशय प्रकाश करके जब उन मुनिने पूँछा तब पुत्रकी चाहनावाले राजा चित्रकेतुने हाथ जोडकर मुनिसे निवेदन किया ॥ २२ ॥ चित्रकेतुने कहा कि, हे भगवन् ! शरीरधारियोंके भीतर और बाहर जो जो कुछ वर्तमान बातें हैं, पापरहित योगीराज तपस्या, ज्ञान और समाधिके बलसे वह किस बातको नहीं जानते हैं और उनसे कौनसी बात छिपी है ? ॥ २३ ॥ तोभी आप हमसे हमारी मानसिक चिन्ताके विषयमें पूँछते हो तो आपकी आज्ञासे मैं सब कहता हूँ ॥ ॥ २४ ॥ राज्य, ऐश्वर्य और संपत्ति, यद्यपि इसकी प्रार्थना लोकपाल गणभी करते हैं, परंतु जिसप्रकार भूँखेको पुष्पमाला चंदनादि सुख नहीं देते, ऐसेही मुझको यह द्रव्यादिक सब प्रकार सुख नहीं देते ॥ २५ ॥ इसलिये हे महाभाग ! इस दुष्कर नरकमें पित्रादि पूर्व पुरुषों सहित पडाहुआहूँ, जिस प्रकार पुत्र उत्पन्न हो और इस नरकके

पार होसकूं, कृपाकरके आप कोई ऐसा उपाय वता दीजिये ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब राजा चित्रकेतुने अंगिरा ऋषिकी इस भाँति विनय की तब ब्रह्माके पुत्र परमदयालु अंगिराजी उसी समय वह त्वाष्ट्र चरु लेकर सिद्धकर त्वष्टाकी पूजा करवाई और यज्ञ किया ॥ २७ ॥ हे भारत ! यज्ञ समाप्त होनेपर राजाकी करोड रानियोंके बीचमें जो सबसे बडी और सबसे श्रेष्ठ कृतद्युति स्त्री थी ब्राह्मण श्रेष्ठ अंगिराजीने उसको यज्ञका शेष अन्न प्रदान किया ॥ ॥ २८ ॥ इसके पीछे वह राजासे बोले कि, इस प्रसादको भोजन करनेसे तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न, होगा, परन्तु उस पुत्रसे तुम्हारे हर्ष और विषाद दोनों होंगे अर्थात वह जन्मसे तुम्हें सुख देगा और मरणसे तुमको शोक उत्पन्न करावेगा। हे राजन् ! ब्रह्मकुमार अंगिराजी यह कहकर वहाँसे अपने स्थानको चले गये ॥ २९ ॥ हे भारत ! यज्ञशेष (चरु) भोजन करनेसे चित्रकेतुकी रानी कृतद्युतिने, कृत्तिकाने जिस प्रकार अग्निकी आत्माको धारण किया था ॥ ३० ॥ हे राजन् ! शूरसेन देशके अधिपति राजा चित्रकेतुके वीर्यसे रानी कृतद्युतिका यह गर्भ शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान दिन २ प्रकाश करने लगा ॥ ३१ ॥ इसके पीछे जब गर्भमास पूर्ण होगये तब एक राजकुमार उत्पन्न हुआ। हे कौरवनाथ ! राजकुमारका जन्म होना सुनकर शूरसेन देशके निवासियोंको परमानंद प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ राजा चित्रकेतु पुत्रका जन्म सुन, आनंदसागरमें मग्न होगया और स्नान ध्यान कर पवित्र हो सुन्दर २ वस्त्र पहरकर ब्राह्मणोंसे यथाविधि आशीर्वाद पाय अपने पुत्रका जातकर्म और संस्कार विधिपूर्वक कराया ॥ ३३ ॥ फिर पीछे राजाने उन सब ब्राह्मणोंको सुवर्ण, चांदी, वसन, आभूषण, हाथी, घोडे, रथ, पालकी, पुर, ग्राम और साठ (६०) करोड़ गायें बच्चोंसहित दान-करके दीं॥ ३४ ॥ और फिर अपने अति बड़े मनसे मेघ जिस प्रकार सब जीवोंके हितार्थ जल वर्षाता है, वैसेही इस उदार चित्त राजाने पुत्रके यश और आयुके बढानेके लिये धन देदेकर सब देश परदेशके मनुष्योंके मनकी अभिलाषा पूर्ण कर दी ॥ ३५ ॥ अधिक करके जिस जिस वस्तुके दान करनेसे कुमारका सौभाग्य बने और दीर्घायु हो, उसके दान करनेमेंभी राजाने किसी बातकाभी संकोच नहीं किया. हे परीक्षित् ! बहुत कालके पीछे महाकष्टसे श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होनेसे जिस प्रकार किसी व्यक्तिको बड़ी कठिनाईसे धन मिले और वह उस्से स्नेह करता है। ऐसेही इस पुत्रके प्रति पिता चित्रकेतुका स्नेह उत्पन्न होकर दिन दिन बढने लगा ॥ ३६ ॥ और माता (कृतद्युतिका) इस पुत्रमें ऐसा वात्सल्य उत्पन्न हुआ कि, जिस्से मोह उत्पन्न होता है, परंतु उसकी जो समस्त सपत्नियें (सौतें) थीं, वह अपनी सौतको पुत्रवती देखकर अपनी अपनी संतानका अभिलाष होनेसे वह पुत्र कामनारूप संतापसे संतापित हुई और सौतियां दाह करने लगीं ॥ ३७ ॥ अधिक करके महाराज चित्रकेतु दिन प्रतिदिन पुत्रका लालन पालन करनेवाली पुत्रवतीस्त्रीमें ऐसी प्रीति दिखाने लगे कि, जिस्से और इनकी रानियोंको

संतोष न हुआ । अर्थात् और रानियोंमें यह ऐसी प्रीति नहीं दिखाते थे ॥ ३८ ॥ इस्से वह और सव रानियें ईर्षाके वश आपही आप अपनी निन्दा करने लगीं और निःसंतान होनेसे राजाके निकट अनादर पाय मनके दुःखसे बहुतही संतापित हुईं ॥ ३९ ॥ वह रानियें बोलीं कि, जिस नारीके संतान नहीं, वह अति पापिनी, उसको धिक्कार है, वह अपने स्वामीके निकटभी भार्या कहकर नहीं गिनी जाती, क्योंकि उसकी जो सौतें पुत्रवती होतीहैं, वह सव दासीकी समान उस निःसंतान नारीका निरादर करतीहैं ॥ ॥ ४० ॥ दासियोंको संताप क्या है स्वामीकी सेवासेही उनको मान मिलताहै, यह बात सत्य है । परन्तु हम दासियोंकी दासियोंसेभी कुभागिनी हैं ॥ ४१ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! कृतद्युतिकी पुत्रसम्पत्ति देखकर उसकी सब सौतें एक एक करके ईर्षामें जल रही थीं, तिसपर निःसंतान होनेसे राजाकीभी प्रीति उनमें कम होगई, इसलिये उस राजकुमारके ऊपर रानियोंको बड़ा शत्रुभाव उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! वैरके मारे इन सब स्त्रियोंकी बुद्धि ऐसी नष्ट हुई और चित्त इस प्रकारका निर्दयी हुआ कि, वह अपने पति नरपति राजा चित्रकेतुका सौभाग्य न सहनकर प्राण संहार करनेकी वासनासे इस राजकुमारको विष देदिया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! अपनी सौतोंका यह पापकर्म कृतद्युति कुछभी नहीं जानती थी, उसने नहीं जाना कि विष देनेसे राजकुमार प्राणान्त होगये । वह यही समझरही थी कि, राजकुमार शयन कर रहे हैं यद्यपि रानी घरमें आईं तोभी इसने समझा कि, कुमार अबतक सोय रहे हैं, इस कारण कुमारके निकट न गई और इधर उधर फिरती रही॥४४॥दूसरे घरमें जाकर कुछ देर पीछे रानीके मनमें यह बात आई कि आज राजकुमार बहुत देरसे सो रहेहैं इस कारण धाईको पुकारकर कहा कि, हे कल्याणकारिणी ! हमारे पुत्रको उठाकर यहाँ पर ले आओ ॥ ४५ ॥ धाई उस घरमें गई जहां राजकुमार सो रहा था देखा कि उस लडकेको आँखोंकी पुतली ऊपरको चढ रहीं हैं, देहमें प्राण और इन्द्रिय व आत्मा नहीं है वह यह देखतेही हाय मरी ! हाय मरी ! ! कह बडे जोरसे आर्त्तनाद करती हुई मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिरपडी ॥ ४६ ॥ दूध पिलानेवालीकी यह आर्त्तवाणी रानी कृतद्युतिके कानमें पडी । इसलिये वहभी अनिष्टकी शंका करती विलापकर छाती पीटती २ उस घरमें आई और समीप आन कर देखा कि, पुत्र अचानक मरा हुआ पडा है ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! देखतेही रानी कृतद्युति पृथ्वीमें गिरपडी और अत्यन्त शोकके कारण उसी समय उसको मोह उत्पन्न होगया, इसलिये मस्तकके केश खुलने और शरीरके कपडे खसकनेकी रानीको कुछभी सुरति नहीं रही ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे राजाके अन्तःपुरचारी नर नारीगण यह बात सुन शीघ्र वहां पर आय अतिदुःखित हो रानीके तुल्य खिन्न होकर रोने लगे । हे राजन् ! कृतद्युति रानीसे जिन सौतोंने यह दुष्कर्म किया था, वह भी सब आय कपटभाव ग्रहण कर रोदन करने लगीं ॥ ४९ ॥ फिर राजा चित्रकेतुने सुना कि पुत्र अचानक मरगया, परन्तु उसके मर-नेका कारण प्रकाशित नहीं हुआ सुनतेही अकस्मात् शोकसे राजाकी दृष्टि जाती रही,

अंधा होगया वह मरे हुए पुत्रके देखनेके लिये उत्सुकहो शोकके मारे गिरता पडता हुआ आने लगा, अति स्नेहके कारण राजाका शोक बराबर बढताही जाताथा राजा वारम्वार मूर्छित होनेलगे। इसलिये मंत्री इत्यादि राजपुरुषगण राजाके संग चले। और ब्राह्मण लोगभी चारों ओरसे घेरकर राजाके संग चले ॥ ५० ॥ बस राजा वहां आकर उस मरे हुये बालकके चरणोंमें गिर पडे। उसके केश खुले और कपडे स्खलित हो रहे थे आँसू और बाफके भर आनेसे राजाका कंठ रुकरहा था, इसलिये वह केवल बडे बडे श्वास लेने लगा, वचन कहनेकी सामर्थ्य राजामें न रही ॥ ५१ ॥ पतिको इस प्रकार शोकसे व्याकुल देखकर और अपने वंशकी आशा जो संतान थी उस मृतकको देखकर रानी कृतद्युतिको बडा दुःख हुआ, वह सब पुरवासियोंके विशेष करके मंत्री इत्यादिकोंके शोक संताप बढातीहुई विचित्र प्रकारसे विलाप करने लगी ॥ ५२ ॥ रानीके दोनों स्तन कुंकुमसे रँगेहुये थे. उनके ऊपर आँसुओंकी धार पडनेसे मानो रानीका अभिषेक होने लगा और रानीने इस प्रकारसे अपने केश छिटकाये कि, जिस्से समस्त मोतियोंकी मालायें खुलगई। तिसके पीछे मृतक बालकको लिये कुररीकी समान शब्दकर रानी आश्चर्यमय विलाप करनेलगी ॥ ॥ ५३ ॥ फिर विधाताके ऊपर दोष लगायकर रानीने कहा अरे विधाता! तू अतिशय मूर्ख है, क्योंकि तू अपनी सृष्टिमें उलटा चाल चलताहै! वृद्धके जीवित रहते बालकका मरना कैसा? वृद्धमें सृष्टिकी सामर्थ्य नहीं उसके जीवित रहने और बालकके मृतक होनेसे सब सृष्टिकाही नाश हो जायगा, अरे विधि! यदि तू इस समय अपनी सृष्टिके विपरीत हो रहा है तब तो तू सबही प्राणियोंको दुःख देनेवालाहै, इसकारण नित्य शत्रु तुमको कृपालु कौन कहताहै? ॥ ५४ ॥ यदि इस लोकमें शरीर धारियोंके जन्म मरणका कोई क्रम नहो, अर्थात् जन्म मरणके कर्माधीन होनेसे पुत्रके जीतेजीते पिताकी मृत्यु होजाय और पिताके जीवित रहतेही पुत्र जन्में ऐसा नियम यदि न हो तब लोगोंके आत्म कर्मद्वाराही जन्मादि होवे, फिर तुझसे किसीका क्या कार्य, यदि कहो कि, कर्म जड हैं केवल कर्मसे जन्म मृत्यु सिद्ध नहीं हो सक्ती (उत्तर) सिद्ध न हो तथापि इस आचरणमें तैंने अपना मार्ग बढानेके लिये तो स्नेहकी फाँसी बनारक्खी थी उसको तैंने आपही तोड डाला था, अब ऐसे दुःख देखकर कोईभी पुरुष अपने पुत्रादिकमें स्नेह न करेगा और सृष्टिके रचनेमें तुझको बखेडा पडेगा ॥ ५५ ॥ फिर मृतक पुत्रको पुकार पुकार विलाप करती हुई रानी कहने लगी कि बेटा! हम अति दीन और अनाथ हैं, सो हमको इस प्रकारसे छोड जाना तुमको उचित नहीं है। हे वत्स! कुछ अपने पिताकी ओर तो निहारकर देखो कि, यह तुम्हारे शोकमें महासंताप पा रहेहैं, हे पुत्र! हमतो सदा यह जानती और आशा करती थी कि, निःसंतान पुरुषको जो नरक होताहै उस नरकके पार हम सरलतासे हो जायँगे ॥ देखो पुत्र! हमको त्यागकर तुम दयाहीन कालके संग दूर न जाओ। हाय हमने बहुत उपाय किये, परन्तु तोभी इस निर्दयी यमराजने नरकसे नहीं छोडा ॥ ५६ ॥ हे तात! उठो, यह तुम्हारे साथके खेलनेवाले तुमको खेलनेके लिये बुलारहेहैं हे राजकुमार! बहुत

देरसे शयन कररहे हो, तुम्हें भूँख लगी होगी. हे लालन ! कुछ खाओ, दूध पियो, भइया, इन सब अपने कुटुम्बियोंके और मइयाके शोकको दूर करो ॥ ५७ ॥ हे प्राणपुत्र ! हम बडी अभागिनी हैं कि; जो प्रथमही हमने यहां आकर तुम्हारे मुखकमलका मनोहर हँसना नहीं देखा, हाय ! अवतकभी बेटेके मनोहर वचन हमको सुनाई नहीं आते, वत्स ! तुम्हारे दोनों नेत्र बंद हो रहे हैं, क्या क्रूर काल तुमको लोकान्तरमें (जहांसे फिर आना जाना नहीं होता) लेगया है। ॥ ५८ ॥ इतनी कथा कह योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कौरववंशावतंसपरीक्षित् ! जब कृतद्युति पुत्रके लिये इस प्रकारसे शोक कर रही थी, तब राजा चित्रकेतु रानीसे अत्यन्त विलापसे महासंतापित हो पुत्र पुत्र पुकार धाड मार मारकर रोनेलगे ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! इन स्त्री पुरुष दोनोंका विलाप देखकर राजाके नौकर चाकर नर नारी सबही रुदन करने लग। और फिर बडे भारी शोकके कारण मोहके वश हो सबही अचेतन होगये ॥ ६० ॥ हे कौरव ! जब चित्रकेतु राजाके ऊपर इस प्रकारका दुःख पडा तब यह वृत्तान्त महर्षि अंगिराजी जानकर नारदजीके साथ वहां पर आये, उस समय राजभवनमें सब मूर्च्छित होकर गिरपडे थे जब किसी जीवपर भगवान् क्रोध करतेहैं, तो ऐसाही हुआ करता है ॥ ६१ ॥

कवित्त-देवी शेष शीतला वराहीकी जगावैं रात, ऊत पितृ मीराकोतो रेवडी चढावैंहैं। क्षेत्रपाल गंगा देव भैरों रु भूपाल आदि, जगतके जेते तेते देवता मनावैं हैं । कोई नग्रकोटको जावैंहैं निज व्याहकाज, कोई कलकत्तेवाली कालीकोहू ध्यावैंहैं ॥ पूजैं नित भूत प्रेत सुमिरै न राम राम, शालिग्राम ऐसे नर बहुत पछितावैंहैं ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

दोहा-देवराज अरु अंगिरा, दियो परम उपदेश ।
तत्त्वज्ञानसे भूपको, मेटो सकल कलेश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! चित्रकेतु राजाको मृतक शिशुकी शवके समीप शवकी समान पडाहुआ और शोकसे व्याकुल देखकर महर्षि अंगिरा और नारदजी बहुत समझाबुझाकर कहने लगे ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम जिसके लिये इस प्रकारसे शोक करते हो,यह पुरुष तुम्हारा कौन है ? और तुमभी या प्रजारूपी सृष्टिमें इसके बंधुओंमें कौन जन हो ? यदि तुम कहो कि, यह हमारा पुत्र है, हम इसके पिता हैं तो इसमें यह कहना है कि, क्या पहलेभी तुम्हारा परस्पर इसी प्रकारका संबंध था ? क्या अभी है ? इसके पीछे क्या होगा ? निदान जो पूर्वजन्ममें जिसके सहित पित्रादि रूपमें संयुक्त रहता है, वह मरणके द्वारा उससे वियुक्त होकर वर्तमान जन्ममें कदाचित् उसका, कदाचित् दूसरेका पुत्रादि हो सक्ता है । और इस समयभी जो जिसके पुत्र कलत्रादि हैं वह भी दूसरे जन्ममें उसके या और दूसरेके पुत्रकलत्रादि वा शत्रुमित्रादि होसक्ते हैं, इसलिये

यह तुम्हारा पुत्र और तुम इसके पिता ऐसा क्या नियम है ? कैसे इसको तुमने अपना पुत्र जाना ? ॥ २ ॥ हे राजन् ! जिसप्रकार जल प्रवाहके वेगसे वालू किसी स्थानसे बहकर किसी दूसरे स्थानमें जाती हैं । इसी प्रकारसे यह जीवभी कालके वेगसे कभी परस्पर मिल जाता और कभी अलग हो जाता है ॥ ३ ॥ हे महाराज ! बीजमें बीज होता तो है, परंतु जिस प्रकार किसी किसी बीजमें बीज नहींभी उत्पन्न होता है, अथवा जन्मकर नष्ट हो जाता है, वैसेही परमेश्वरकी मायाके वश पुत्रादिरूप सर्व प्राणी पित्रादिरूप सर्व प्राणियोंमें कभी नियोजित हो सक्ते हैं, कभी नियोजित नहीं हो सक्ते । इसकारण बीजोंमें जनकत्व सत्व रहनेपरभी जिस प्रकार पितृपुत्रभाव नहीं कहा जासक्ता, वैसेही हम स्थानमेंभी पितृपुत्रभाव हैं फिर इसमें शोक की कौनसी बात है ? ॥ ४ ॥ हे राजन् ! हम, तुम और यह सब चराचर जगत् जो वर्तमान कालमें एकत्र हो रहा है, हम जिस प्रकार जन्मके पहिले नहीं थे, ऐसेही मृत्युके पीछेभी नहीं रहेंगे, इस समयभी वैसे नहीं हैं. इसलिये यह सब यदि प्रथममें और अन्तमें न रहा तो असत् (मिथ्या) और केवल स्वप्नतुल्य है ॥ ५ ॥ और जो कहो कि यदि सबही असत् (मिथ्या) है, तो फिर प्रतीति क्यों होती है और हम इसके पिता हैं ऐसा अभिमान क्यों होता है ? (उत्तर) सब जीवोंके स्वामी मायाके योगसे प्राणियोंका सृजन, पालन और संहार किया करते हैं इसलिये परमेश्वरकी मायासे बननेके कारण सृष्टि प्रतीत होती है और प्राणियोंके इस विषयमें केवल निमित्त मात्र होनेसे उनको अभिमान उत्पन्न हुआ करता है. परन्तु हे राजन् ! परमेश्वरके सृष्टयादि वीर्य देखकर अपूर्णकामना की आशंका मत करना, सर्व भूत आत्मसृष्ट हैं, परन्तु हैं सब पराधीन, दूसरे उनका इन सबमें प्रयोजनमात्रभी नहीं है वह अनपेक्ष होकरभी बालककी समान लीला करके सब जीवोंकी सृष्टयादि किया करते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जिसप्रकार बीजसे बीज उत्पन्न होता है, वैसेही देही जो पित्रादि हैं उनकी देहसे देहकी अर्थात् पुत्रादिक देहमात्राभिमानीकी देहसे उत्पन्न होता है, परन्तु भूम्यादि पदार्थकी समान जीव सदाकालवर्ती है ॥ ७ ॥ यदि कहो कि, देही देहका प्रतियोगी है सो देहको जब नाशवान् देखते हैं, तब देहभी वैसाही हो सक्ता है शाश्वत नहीं हो सक्ता । (उत्तर) जिस प्रकार सामान्य और विशेष यह दो विभाग सन्मात्र वास्तवमें अज्ञानसे कल्पना करलियेजाते हैं वैसेही देह और देहीका परस्पर प्रतियोगी विभाग अनादिकालसे अविवेककृत चला आता है ॥ ८ ॥ नानाभाव, जन्म, नाश, क्षय, वृद्धि, क्रिया, फल यह असत्यपनसे द्रष्टामें भासते हैं, जैसे अग्निकी विक्रिया काष्ठमें ॥ ९ ॥ असत्यपनसे यह जीव देहके संयोगसे आत्मामें भासता है जैसे स्वप्नमें सब भय अभय उपस्थित होता है ॥ १० ॥ सो इसका अहंकार न होनेसे घोर संसारभी प्रकाशमान नहीं होता, ऐसेही जीवित निरहंकारी विमुक्तका जन्म नाश नहीं है ॥ ११ ॥ इस कारण मनका विलासमात्र अहंकार ममतारूप अंधकारका त्याग कर दीजिये । और आत्मा ईश्वर भगवान् वासुदेवमें मन लगाइये ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहे हैं कि, हे राजन् !

उन दोनों ब्राह्मणोंके ऐसे वचन सुनकर राजा चित्रकेतुको प्रबोध हुआ और वह अस्वस्थ होकर अपने मुखको (जो मनकी पीडासे व्यथित होनेके कारण मलीन हो रहा था) हाथसे पोंछकर जोडकर कहा ॥ १३ ॥ राजा चित्रकेतु बोले कि, हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! आप दोनोंजन कौन हो? हम देखते हैं कि, आपलोग ज्ञानसम्पन्न, बडोंसे भी बडे हो. ज्ञात होता है कि, आपलोग अवधूतका वेष धारण करके गुप्तभावसे यहांपर आये हो ॥ ॥ १४ ॥ क्योंकि भगवान्के प्यारे विप्रगण उन्मत्तकी समान स्नेहधारी होकर भूमण्डलपर ग्राम्य बुद्धिवाले हम सरीखे लोगोंको बोध देनेके लिये इच्छानुसार विचरते हैं ॥ १५ ॥ निदान सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अंगिरा, देवल, असित, अपान्तरतम, वेदव्यास जिनका आन्तरिक तिमिर दूर होगया है. मार्कण्डेय, गौतम, ॥ १६ ॥ वसिष्ठ, परशुराम, कपिल; शुक, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण, अरुणि ॥ १७ ॥ रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरी, पतञ्जलि, वेदशिरा, ऋषि, धौम्य, पंचशिरा मुनि ॥ १८ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव, और ऋतध्वज, यह सब और इनके तुल्य और दूसरे सिद्धेश (जो लोग ज्ञानके कारणहैं) सदाही ज्ञानका उपदेश करनेके लिये भ्रमण किया करते हैं ॥ १९ ॥ इसलिये हम ग्राम्यपशुकीतुल्य मूढ व्यक्ति हैं सो दोनोंहीजन हमारे रक्षक होवें, हम घोर अंधकारमें डूबे जातेहैं, अब अनुग्रह प्रकाश करके ज्ञानमय प्रदीपका प्रकाश कीजिये ॥२० ॥ चित्रकेतुके यह मधुर वचन सुनकर वह महर्षि अंगिराजी बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रकी कामना करनेपर हमनेही तुमको संतान प्रदान किया था; हम वही अंगिरा हैं और हमारे साथ जो यह दूसरे हैं, यह ऋषि भगवान् नारद साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हैं ॥ २१ ॥ हमको स्मरण हुआ कि तुम इसप्रकारसे पुत्रशोकमें पड घोर अंधकारमें डूब रहेहो, तुम भगवान् हरिके भक्तहो तुम्हारा इसप्रकारसे अंधकारमें डूबना उचित नहीं इसलिये तुम्हारे ऊपर अनुग्रह प्रगट करनेके लिये हम दोनोंजन यहांपर आयेहैं, हे राजन् ! तुम ब्रह्मण्य और भगवान्के भक्तहो, तुम्हारा इसप्रकारसे व्याकुल होना योग्य नहीं है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे महाराज ! जब कि प्रथम हम तुम्हारे घरपर आये थे, उसी समय तुमको ब्रह्मज्ञान देनेकी हमारी अभिलाषा थी, परन्तु उस समय तुम्हारा चित्त औरही विषयमें लगा हुआ था, सो यह जानकर हम उस समय तुमको पुत्र देगये॥२४॥ परन्तु पुत्रवान् लोगोंको कैसे कैसे संताप उत्पन्न होनेका डर रहता है, उसको तुम स्वयं ही अनुभव कर रहे हो। स्त्री, भवन, धन और विविध ऐश्वर्य, सम्पदा यह सबभी इसी प्रकार संतापकी देनेवाली हैं ॥ २५ ॥ शब्दादिक राज्य विभूतिमें पृथ्वीका राज्य, सेना, कोष, नौकर, चाकर, मंत्री सुहृद् यह सब अपने अपने प्रयोजनके साथी हैं ॥ २६ ॥ हे चित्रकेतु ! यह सब गंधर्व नगरीकी तुल्य अर्थात् कभी आपसे आप आकर उपस्थित होजाते हैं और कभी आपसे आपही चले जाते हैं वास्तवमें स्वप्न, माया और मनोरथ, इत्यादि जिस प्रसारसे कल्पित हैं, वैसेही यह समस्तभी कल्पितही है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! सबही पदार्थ मनसे गढे हुए हैं क्योंकि सात्विक स्वरूपके बिना एक क्षणभर

दृश्यमान होकरभी दूसरेही क्षण अदृश्य होजाते हैं, जो यथार्थ होते तो क्षणभरमें उनका आना जाना किसी प्रकार सम्भव नहीं । इस कारण मनसेही कल्पना किया यह सबही पदार्थ स्वप्नादिकी तुल्य मिथ्या हैं । हे राजन् ! मीमांसक लोगोंके मतसे यद्यपि सब पुण्य पापोंके फल हैं, तोभी कर्मकी वासनाका अनुध्यान करनेहीसे पुरुषके मनसे कर्म हुआ करते हैं इस कारण सब कर्मभी मनसेही उत्पन्न हैं. इस कारण कर्मसाध्य विषयभी मनसेही उत्पन्न कहे जाते हैं ॥ २८ ॥ हे राजन् ! प्राणीका यह देह जो द्रव्य, ज्ञान और क्रियात्मक अर्थात् आधिभूत, आधिदेव और अध्यात्मस्वरूप, यही देहीका अर्थात् "मैं देह" इस प्रकारसे समझनेवाले जीवको अनेक सन्ताप मिलते हैं ॥ २९ ॥ इस कारण एकाग्र मनसे ब्रह्मविद्याका विचार करके द्वैतवस्तुमें "यह वस्तु नित्य है" ऐसा जो तुम्हारा विश्वास है उसको छोंडदो, और शान्तिभावको प्राप्त होजाओ ॥ ३० ॥ महर्षि अंगिराजीने नौ (९) ब्रह्मविद्याका उपदेश किया; सो परमेश्वरकी प्रसन्नताके बिना यह अतिदुर्गम हैं, यह विचारकर परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये अंगिराजीके कह चुकनेपर देवर्षि नारदजी चित्रकेतुके प्रति मंत्रविद्याका उपदेश करनेके लिये बोले कि, हे राजन् ! जो मंत्र उपनिषद् अर्थात् जिससे परमश्रेष्ठ (उपनिषद्) की प्राप्ति होती है उसको तुम सावधान होकर धारण करो । इसके धारण करनेसे निश्चयही सात (७) रात्रिके मध्यमें संकर्षण प्रभुका तुम दर्शन पाओगे ॥ ३१ ॥ हे नरेंद्र ! शर्वादि पूर्वतन देवगण जिनके चरणकमलके मूलमें शरणागत हो द्वैत भ्रम त्याग सद्यः जिनके समान और अधिक नहीं हैं उस महिमाको प्राप्त हुये हैं. इसलिये तुम भी शीघ्रही उसको प्राप्त होगे परन्तु जिस समय इतनी बातको समझ लोगे ॥ ३२ ॥

भजन—सबमें केवल प्रेम प्रधान ॥ प्रेम करत प्रीतम सों निशिदिन, प्रेमी चतुर सुजान ॥ क्यों नर करत परिश्रम अधिकहिं, बहु व्रत तप कर दान ॥ प्रीत करो श्रीव्रजनन्दनसों, यही परम प्रिय ज्ञान ॥ कह रघुवीर मिटै जब आपा, तबहिं मिलैं भगवान ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे षष्ठस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

दोहा–चित्रकेतु सुत वचन सुन, भये मग्न सुखमान ।
नारद पुनि भाषण लगे, शेषनागको ज्ञान ॥

देवर्षि नारदजी चित्रकेतुके पुत्रके मुखसेही पिता पुत्रादिका सम्बन्ध मिथ्या कहलानेके लिये योगबलसे उस मृतक बालकके जीवात्माको उसके जातिवालोंको दिखाया ॥ ॥ १ ॥ उसके पीछे फिर उस जीवात्माको पुकारकर नारदजी बोले कि, हे जीवात्मा ! तुम्हारा मंगल हो, अपने माता पिताको देखो । तुम्हारे यह सुहृद बंधु तुम्हारे शोकमें अत्यन्तही संतापित होरहे हैं ॥ २ ॥ तुम अपनी देहमें फिर प्रवेश करो । अकालमृत्युसे मरे हो अबभी तुम्हारी परमायु शेष है, तुमको तुम्हारे पिता राज्य भोग करने

देंगे। उठो ! और बन्धु बान्धवोंके साथ पिताका दिया धन भोगो और राज्य सिंहासन पर बैठो ॥ ३ ॥ देवर्षि नारदजीके यह वचन सुनकर मृतक राजकुमारका जीव आकाशमें स्थित हो प्रेत शरीरमें रहकर उत्तर देताहुआ कि, यह किस जन्ममें हमारे माता पिता हुये थे ? हम कर्मोंके द्वारा देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य, इन योनियोंमें बार बार भ्रमण करते रहते हैं ॥ ४ ॥ मेरे मरजानेसे पुत्र कहकर यदि इन लोगोंको शोक हुआ हो तो यह मुझको शत्रु समझकर हर्ष क्यों नहीं करते ? क्योंकि सम्बन्ध सदा एक प्रकारका नहीं है। सबही पुरुष बारी बारीसे सबके बन्धु जाति (सपिंड) शत्रु (घातक) मध्यस्थ (न शत्रु न मित्र) मित्र (रक्षक) विद्वेषी (द्रव्यादिके लिये द्वेष करनेवाले अर्थात् ईर्षा करनेवाले) और उदासीन (तद्व्यतिरिक्त) होसक्ते हैं ॥ ५ ॥ जिस प्रकार मोल देने और वेचनेके योग्य सुवर्णादि वस्तु व्यवहार करनेवालोंमें घूमती हैं इसी प्रकार जीव अनेक योनियोंमें घूमता हुआ फिरा करता है ॥ ६ ॥ जन्मान्तरका सम्बन्ध सदा नहीं रहता फिर भला यह तो अधिक बात है, एक जन्ममेंही उसका अनित्य तत्त्व जान पडता है. देख जीवित् पश्वादिके सम्बन्धोंमें सदा नहीं रहता; विक्रियादिसे निवृत्ति पाया करता है और जबतक जिस्से सम्बन्ध रहता है तबतकही उसकी ममता रहती है ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे जीव पित्रादि सम्बन्ध प्राप्त होनेपरभी आप नित्यही रहता है, शरीरके जन्मादि द्वारा जीवके जन्मादि नहीं होते, इस कारण जीव वास्तवमें निरहंकृत अर्थात् मैं " इसका पुत्रहूं " इस प्रकारके अभिमानसे शून्य है, वह पित्रादि सम्बन्धियोंमें अपने कर्मके वश हो जबतक सम्बन्ध बना रहता है तबतकही उसमें पित्रादिका अधिकार है ॥ ८ ॥ नित्य अविनाशी सूक्ष्म अपनी मायाके गुणसे विश्वरूप आत्माकी सृष्टि किया करता है, इसलिये जन्मादि युक्त देहादिका आश्रय है. इसका कारण यह है कि, जीव स्वयं प्रकाशमान है इसलिये वह जन्मादि शून्य है, सूक्ष्मत्व प्रयुक्त अव्यय अपक्षय रहित और अनित्य है ॥ ९ ॥ और इस जीवको प्यारा कुप्यारा कोईभी नहीं है, अर्थात् अपनाभी कोई नहीं और परायाभी कोई नहीं है, वह एक अर्थात सुहृदादिके संगसे रहित है, गुणदोषकारी जो सब मित्रादि हैं यह जीव केवल उन लोगोंकी विचित्र बुद्धिका साक्षी मात्र है। इसलिये हमारे सुहृद न होकर संताप करें और सुहृद बंधुओंके मनको दुःख देना यह बात असंभव है ॥ १० ॥ और " राज्यादिभोग कर " यह युक्तिभी अयुक्ति है, क्योंकि गुण (सुख) दोष (दुःख) और क्रिया फल (राज्यादि) इन सबको जीव ग्रहण नहीं करता, वह सदा उदासीनकी समान है। इसलिये जीव कारण और कार्यका साक्षीमात्र होकर इसका भोगनेवाला नहीं है क्योंकि यही ईश्वर अर्थात् देहादिकी परवशतासे रहित है, इसलिये मेरे और तुम्हारे सबके इसी प्रकार होनेसे किसीके साथ किसीका संबंध नहीं है। फिर इसमें शोक मोह कैसा ? ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सबके सामने इसप्रकार कहकर वह राजकुमारका जीव वहांसे चलागया। उसकी जातिवाले जो शोकसे विलाप कररहे थे, इस बातको सुनकर

उन सबने अत्यन्त विस्मय प्राप्त किया, परन्तु उसके पीछे बहुत शीघ्र सबने प्रेम जंजीर तोडकर समस्त शोक मोह छोड़दिया ॥ १२ ॥ अनन्तर उस जातिका मृतक देह यथाविधि निहार अर्थात् उसका संस्कार करके और यथोचित उसके क्रिया कर्मोंका निर्वाहकर त्यागनेके अयोग्य स्नेहको जो शोक, मोह, भय, और आर्तका कारण था एकवारही त्याग कर दिया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! कृतद्युतिरानी कि, जिस पत्नियोंने विष देकर इस राजकुमारका प्राण विनाशकिया था, लज्जित और बालककी हत्या करनेसे दीप्तिरहित होकर और " पुत्रादि केवल दुःखके कारण हैं " महर्षि अंगिराजीके इन वचनोंको स्मरण करके पुत्रकामना छोड़कर, निर्मत्सर हो, यमुनाके तीरपर चली गईं और वहांपर बैठकर ब्राह्मणोंने जिस प्रकारसे विधि बताई वैसेही वह सब रानियें बालहत्या व्रतका अनुष्ठान करने लगीं कि जिस्से यह पाप छूटै। " राजा चित्रकेतुकी यह रानियें पहले जन्ममें गिजाई होकर एक उपलेके नीचे वैठी थीं और चित्र केतुका पुत्र प्रथम जन्ममें हाथी था, दैवयोगसे उसका पैर पडनेसे यह सबकी सब मरगईं। इस जन्ममें उन्हीं सब गिजाइयोंने रानी होकर इस बालकको विष देकर मारडाला, इसलिये इन सबका बदला होगया और कोई इस कथाको इस प्रकारसे कहते हैं कि पूर्व जन्ममेंभी राजा चित्रकेतु एक राजा था, वह दिग्विजय करता हुवा एक राजाके नगरमें आया, जब इन दोनोंमें युद्ध हुआ, तो एक अपनी सेनाको छोड़ वनमें भागगया और अत्यन्त ग्रीष्म पानेके कारण व्यथाका मारा एक नदीमें स्नान करता हुआ स्नान करके जब यह बाहर किनारेपर आया, तब उसने अपनी धोतीको निचोड़ा, उस धोतीका निचोड़ाहुआ पानी एक बिल (भट्टे) में गया कि, जिसमें करोड़ चीटियाँ रहती थीं, उस पानीके पडनेसे वह सबकी सब मरगईं। इसी कारण दूसरे जन्ममें यह पराजित हुआ, राजा चित्रकेतुको दुःख देनेके लिये उसका पुत्र हुआ। और इन सब रानियोंने अपना वैर साधनेके लिये इसको विष भक्षण करादिया " ॥ १४ ॥ हे राजन् ! राजा चित्रकेतुभी ब्राह्मणोंके वचन सुनकर और इस प्रकारसे प्रबोध पाय जिसप्रकार हाथी तलैयाकी अदनसे निकल जाता है, वैसेही गृह रूपी अंधकूपसे निकल आया ॥ १५ ॥ फिर यमुनाके निकट जाय वहाँ स्नान करके यथाशास्त्र तर्पणादि समाप्त कर मौनी और जितेन्द्रियहो उन ब्रह्मपुत्र नारद व अंगिरा दोनोंकी वंदना करने लगा ॥ १६ ॥ भक्त जितेन्द्रिय राजा चित्रकेतु जब इस प्रकारसे शरणमें आया तब प्रसन्न हो अंगिराके सहित नारदजीने इस स्थानमें आयकर उसको विद्याका उपदेश किया ॥ १७ ॥ वह विद्या यह है, प्रभो ! तुमको हम नमस्कार करते हैं। और भगवान् वासुदेवको मनसे नमस्कार करते हैं और उन प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, व संकर्षणके प्रति वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ वह भगवान् विज्ञानमात्र हैं, केवल आनंदही उनकी मूर्ति है, वे आत्माराम और शान्त और अद्वैत, दृष्टिसे रहित, आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! तुम आत्मानंदके अनुभवसे मायाके निमित्त (कारण) रागद्वेषादिको भगा देतेहो, और स्वयं

विषय इन्द्रियोंके ईश्वरहो अतिवडे और अनंतमूर्ति आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ॥ २० ॥ अहो ! मनके सहित वाक्य, अथवा समस्त इन्द्रियें जिसको प्राप्त नहीं कर-सक्तीं, जो इकलेही प्रकाशित होते हैं; जिनका नाम रूप कुछभी नहीं है और जो चिन्मात्र स्वरूप व कार्य और कारणकेभी कारण हैं, वह संकर्षण हमारी रक्षा करें ॥ २१ ॥ प्रभो ! जिनमें यह कार्य कारण रूप जगत् स्थिर रहता, लयको प्राप्त होता और जिससे यह जगत् उत्पन्न होता है, और मट्टीके समस्त पदार्थोंमें मट्टीके समान चराचर पदार्थोंमें जो दिखाई देते हैं, तुमही वह ब्रह्म हो इसलिये हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ और आका-शकी समान बाहर भीतर फैल रहनेपरभी जिनको मन, बुद्धि, इन्द्रियें, प्राण, इत्यादि क्रिया शक्तिसे स्पर्श करने और ज्ञान शक्तिसे जान नहीं सक्तीं वही ब्रह्म है, उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ देह, इन्द्रियें, प्राण, मन, बुद्धि, यह जिनके अंशसे विंधे हुए, कर्ममें जागते और स्वप्नमें विचरण करते हैं सोते व मूर्छादिके समयमें चैतन्यताका अंश न रहनेपर विना गर्म हुआ लोहा जिस प्रकार नहीं जलाय सक्ता, वैसेही अपने अपने कार्यकरनेको समर्थ नहीं होते, इसलिये जैसे, लोहा अग्निकी शक्तिसे जलानेवाला हो जाता है, परन्तु अग्निको जलानेकी शक्ति उसमें नहीं होती । वैसेही देहादि ब्रह्मगत-ज्ञानभी किया शक्तिसे यद्यपि क्रियावान् और ज्ञानवान् होता है तोभी उसको (ईश्वरको) स्पर्श नहीं कर सक्ता और जानभी नहीं सक्ता, यद्यपि यह बात सत्य है कि जीव द्रष्टा रहता है, तो जीवकोभी जाननेकी संभावना नहीं. क्योंकि जाग्रदादि अवस्थामें इस जीवके निमित्तही वह भगवान् "द्रष्टा" इस नामको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ अहो ! महापुरुष महानुभाव महाविभूतिपति, उन भगवान्‌को हम नमस्कार करते हैं. हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्दयुगल प्रधान प्रधान भक्तसमूहके करकमलमुकुलद्वारा सदा उपलालित होते हैं. हे श्रेष्ठ ! परमेष्ठिन् ! हे सर्वेश्वर ! तुमको हम नमस्कार करते हैं ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कौरवनाथ ! शरणागत भक्त चित्रकेतु राजाको इस प्रकार ब्रह्मविद्याका उपदेश करके भगवान् नारदजी महर्षि अंगिराजीके साथ ब्रह्म-धामको चलेगये ॥ २६ ॥ देवर्षि नारदजी तो इस प्रकार कहकर चलेगये, परंतु राजा चित्रकेतु वैसेही सावधान होकर एक सप्ताहभर केवल जलपान कर उस विद्याको धारण करता हुआ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! सात रात्रिके पीछे इस धारण की हुई विद्याके प्रभाव-से चित्रकेतुको एक बडाभारी अवान्तर फल प्राप्त हुआ कि, उसने अचल विद्याधरोंके राज्यको प्राप्त किया, इस राज्यमें किसी प्रकारका कोई कंटक नहीं था ॥ २८ ॥ उसके पीछे कुछ दिन बीतनेपर इस विद्यासेही उस राजाका मन दीप्तियुक्त हुआ जिस्से कि वह मनके द्वारा गतिशील होकर देवदेव भगवान् शेषजीके चरण समीपमें पहुँच गया ॥ ॥ २९ ॥ और देखा कि प्रभु शेषजी सिद्धेश्वरोंसे परिवेष्टित होरहे हैं, उनका वर्ण मृणाल की तुल्य गौर है, नीलाम्बर पहरे हुए हैं, यथा स्थानमें किरीट, केयूर और कंकणादि गहने सजे हुए अपनी शोभाका विस्तार कर रहे हैं, दूसरे उनका वदन प्रसन्न और लोचन

अरुण वर्ण हैं ॥ ३० ॥ ऐसे श्रीशेषजीका दर्शन करतेही राजा चित्रकेतुके समस्तपापोंका नाश होकर उसका अंतःकरण निर्मल सावधान होगया और प्रेमके मारे आँखोंके कोये अश्रुजलसे परिपूर्ण होगये गद्गद होकर सब शरीरमें रोमाञ्च होगया, बस राजा चित्रकेतु सब छोड छाँड आदि पुरुषकी शरण हुए और अति भक्ति श्रद्धासे उनको प्रणाम किया ॥ ॥ ३१ ॥ परन्तु वह बहुत देरतक उनकी स्तुति न कर सके क्योंकि उत्तमश्लोक भगवान्के पादपद्मरूपी दो आसन प्रेमाश्रुबिन्दुसे राजा चित्रकेतु वारंवार पखार रहा था, इस कारण शीघ्रही प्रेमके वश होनेसे वाष्पसे कंठ रुद्ध होनेके कारण राजामें कुछ कहनेकी शक्ति न रही ॥ ३२ ॥ कुछदेर पीछे जब फिर राजाको बोलनेका सामर्थ्य प्राप्त हुआ, तब वह समस्त इन्द्रियोंकी बाहिरी वृत्ति रोक बुद्धिसे मनको सावधान करके और जिनकी मूर्ति श्रीनारदपंचरात्रमें अथवा भगवद्भक्तोंके शास्त्रका वर्णन करनेवाली है, उन जगद्गुरु भगवान्के प्रति राजा चित्रकेतु निम्न लिखित प्रकारसे निवेदन करने लगा ॥ ॥ ३३ ॥ चित्रकेतु बोला कि, हे अजित ! हे भगवन् ! यद्यपि आप अजित हैं और किसीके जीतनेमें नहीं आते, तथापि समबुद्धि जितात्मा साधुगणोंने आपको जीत करके अपने आधीन किया है क्योंकि अतिशय दयामय हैं, परन्तु यद्यपि वह सब साधु निष्काम हैं, तो वह लोगभी आपके निकट पराजित हुए हैं, आप महात्मा पुरुषोंको आत्मदान दिया करते हैं ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! भक्तके सिवाय किसीसे भी आपके पराजित होनेकी सम्भावना नहीं, क्योंकि जगत्के सृष्टि,स्थिति, प्रलय, प्रवेश नियमादि जो कुछ दिखलाई देते हैं, यह सब आपके विभव अर्थात् महिमा मात्र हैं. हे प्रभो ! आप विश्व रचनेवाले हैं, ब्रह्मादि देवता आपके ईश्वर नहीं हैं, किन्तु आपके अंश जो पुरुष हैं, यह उनके भी अंश हैं. हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो यह सब पुरुष "हम अलग अलग ईश्वर हैं" कहकर वृथा गर्व करते हैं ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! सूक्ष्म मूल कारण जो परमाणु और अन्तिम कार्य जो परम महत हैं, इन दोनोंके ही आदि अन्त और मध्यमें आपही वर्तमान रहते हैं, इस कारण आपका आदि अन्त और मध्य नहीं है, इसलिये आप ध्रुव हैं, जो समस्त कार्य सत् रूपके प्रतीत होते हैं और सबकेही आदि अन्त मध्यमें सुवर्णादिकी नाईं जो रहता है वही ध्रुव है आप इन समस्तके सृष्टिकर्ता हैं, इस कारण यह समस्त किसी प्रकारसे भी ध्रुव नहीं है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! ध्रुव होनेसे आपके जिस प्रकार कालकृत परिच्छेद नहीं वैसेही देशकृत परिच्छेदभी नहीं है, यह ब्रह्माण्डकोष यथाक्रम होकर प्रथम इसेही दशगुण अधिक क्षिति इत्यादि सप्त पदार्थों करके ढक जानेसे वास्तवमें सत्यही सत्य अतिबडा होरहा है, परन्तु ऐसे कोटि २ ब्रह्माण्डभी आपके निकट परमाणुतुल्य होकर घूमा करते हैं, इस कारण आप अनन्त हैं ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! जिन लोगोंकी विषयमेंही तृष्णा लगी हुई है, वह लोग मनुष्योंके आकारवाले पशु हैं. क्योंकि वह लोग अपनी तृष्णाको पूर्ण करनेके लिये आपकी विभूति जो इन्द्रादि देवता हैं, उनकी पूजा किया करते हैं, परन्तु वह लोग परम पुरुष परमेश्वर आपकी पूजा

नहीं करते । परन्तु हे ईश ! यह सब पुरुष अपनी अपनी कामना पूर्ण करनेके लिये इन देवताओंकी पूजा करकेभी अपनी अपनी अभिलाषित वस्तुको बहुत समय तक भोग नहीं कर सक्ते हैं. जिस प्रकार राजकुलके नाश होजानेपर उसके सेवकोंकी भलाईका नाश हो जाता है वैसेही इन लोगोंके पूजनीय देवताओंका नाश होनेपर इनकी कामनायेंभी नष्ट हो जाती हैं ॥ ३८ ॥ हे परमेश्वर ! जिनके चित्त काम वा वासनामें आसक्त हैं वह लोग यदि आपमेंही अपनी २ कामनाकी रचना करे अर्थात् उसको पूर्ण करनेका संकल्प करके यदि आपकीही सेवा करनेमें रति होजाय तो भूने हुये बीजकी समान फिर वह कामना उत्पन्न नहीं होसक्ती, इस कारण फिर देहान्तरोत्पत्तिका प्रभाव होसक्ता है क्योंकि जीवके जो गुणगण हैं, उनसेही सुख दुःखादि द्वन्दोंके समूह उत्पन्न होते हैं, आप निर्गुण हैं, आपकी पूजा कामनाके सहित करनेसे धीरे धीरे निगुण होसक्ता है ॥ ३९ ॥ इस कारण हे प्रभो ! फलकी कामना करनेपरभी आपकी आराधना करनेसे जब कि मोक्षका हेतु होजाता है, तब फिर भागवत धर्मके माहात्म्यकी महिमाका तो वर्णनही क्या करें ? केवल आपकी स्तुति करते हैं हे प्रभो ! जब कि आपने अवद्य भागवत धर्म कहा है. तब सर्व श्रेष्ठमें आप वर्तमान हैं । हे भगवन् ! कौन पुरुष इस धर्मका माहात्म्य कह सकेगा ? जो समस्त मुनि सनत्कुमारादि अकिञ्चन और आत्माराम अपवर्गको प्राप्त करनेके लिये इस धर्मकी सेवा किया करते हैं ॥ ४० ॥ हे प्रभो ! और काम्य धर्ममें जिस प्रकार "तुम हम, तुम्हारा, हमारा" इस भाँतिकी विषय बुद्धि है, भागवत धर्ममें ऐसी विषय मति नहीं है. हे भगवन् ! यद्यपि और सब काम्य धर्मभी वेदोक्त हैं, तोभी विषयबुद्धिसे शत्रु मरणादि कामनामें जो विधान है, राग, द्वेषकी मूलकता होनेसे वह अविशुद्ध है और उसका फल नाशवान् है, इसलिये इन सर्व धर्मोंका क्षय होजाता है और हिंसादिकी अधिकता होनेसे अधर्मका मूलक है ॥ ४१ ॥ इसलिये यह सब धर्म आपके और दूसरेके द्रोह करनेवाले हैं, इसलिये इन धर्मोंसे आपका व दूसरेका क्या मंगल ? और किस कार्यमें आसक्त हैं, किसी कार्यमेंभी नहीं आते । बरन् कार्यक्लेशसे अपने द्रोहके हेतु आपको पीडा और परद्रोहसे अधर्म और आपको क्लेश यह सबही होते हैं गीतामें कहा है कि दूसरेको पीडा देनाही अधर्म है, "कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः । मां चैवांतःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्" ॥ ४२ ॥ इसलिये यद्यपि रागान्ध पुरुषोंको कुछ वेद मार्गमें प्रवृत्ति करानेके लिये आपनेही काम्य धर्म कहा है तोभी वह तत्त्वदृष्टिसे नहीं कहा गया है, इसलिये उस धर्मसे अपना पराया धर्म हुआ करता है, परन्तु भागवत धर्ममें किसी प्रकार-सेभी द्रोहकी सम्भावना नहीं क्योंकि आपकी दृष्टिका कभी व्यभिचार नहीं होता अर्थात् जो कभी परमार्थको त्याग नहीं करता, उसी दृष्टिके द्वारा यह धर्म रचा गया है, इस कारण समस्त भगवद्भक्त मानव, स्थावर, जंगम प्राणी समूहमें समबुद्धि रखते हैं. वही लोग इस धर्मकी सेवा किया करते हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! आप ऐसे भागवतधर्मके प्रचार करने वाले हैं, फिर आपके दर्शनसे मनुष्योंके जो अखिल पाप नाशको प्राप्त होंगे, इसमें विचि-

त्रताही क्या है? स्वामिन्! आपका नाम केवल एकवार मात्र श्रवण करनेसे महानीच-कोभी संसारके वन्धनसे छुटकारा मिलजाता है ॥ ४४ ॥ इस कारण केवल आपका दर्शन करनेहीसे हम लोगोंके अन्तःकरणका मल दूर होगया. हे भगवन्! देवर्षि नारद आपकेही पुरुष हैं. उन्होंने जो कुछ कहा है, वह क्या कभी अन्यथा होसक्ता है ? वरन् देवार्षिकेही उपदेशसे हमने आपके दर्शनका लाभ किया ॥ ४५ ॥ हे अनन्त! आप जगदात्मा, सर्वान्तर्यामी इस कारण कोई पुरुष कोई भी आचरण करै वह सब आपको विदित होजाता है. जैसे पटबीजनेके द्वारा सूर्यके निकट कोई पदार्थ प्रकाशनीय नहीं होसक्ता, पटबीजने की तो क्या सामर्थ्य है जो प्रकाश करे ? वैसेही हे परम गुरु! आपके निकट हम क्या प्रकाश कर सक्ते हैं, हम आपके निकट कुछभी प्रकाशनीय नहीं हैं ॥ ४६ ॥ अहो! हम उन भगवान् परमहंसको नमस्कार करते हैं, जो सब जगत्की सृष्टि स्थिति और प्रलयके ईश्वर हैं; कुत्सित योगीगण भेददृष्टि होनेके कारण उनका निज तत्व नहीं जान सक्ते ॥ ॥ ४७ ॥ अहो! जिनके श्वास लेनेसे विश्वरचनेवाले श्वास लेते हैं जिनको दर्शनशील देखनेसे ज्ञानेन्द्रियें स्वारूढ होकर देखती हैं, जिनके मस्तकपर यह बडा भारी भूमण्डल एक सरसोंके दानेके समान धरा हुआ है उन सहस्र शिरवाले भगवान् शेष अनन्तजी को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुभूषण परीक्षित्! इस प्रकारकी स्तुति करनेसे भगवान् अनन्तजी अत्यन्त प्रसन्न होकर विद्याधर पति राजा चित्र-केतुपर प्रसन्न हुये और उसको सम्बोधन करके इस वक्ष्यमाण वाक्यका प्रयोग किया ॥ ॥ ४९ ॥ अनन्त भगवान् बोले कि, हे राजन्! देवर्षि और नारद अंगिराजीने तुमको हमारे विषयमें जो कुछभी उपदेश किया था, उस उपदेश और उसीविद्याके प्रभावसे तुमको हमारे दर्शन हुये और हमारे दर्शन पाकर तुम सर्व प्रकारसे सिद्ध हुये ॥ ५० ॥ हे वत्स! कारण कि हमही भूतभावन अर्थात् सब जीवोंके प्रकाशक और कारण हैं इसलिये हमही सब जीवरूप और समस्त जीवके आत्मा अर्थात् भोक्ता हैं, इस कारण हमारे सिवाय भोक्ता और भोगात्मक विश्व नहीं है हे राजन्! कोई पुरुष "शब्दब्रह्म प्रकाशक और परब्रह्म कारण" जो कहा करते हैं यहभी सत्य है परन्तु यह दो अर्थात् शब्दब्रह्म और परब्रह्म हमारेही पुराने शरीर हैं॥५१॥ इस कारण तुम लोकमें अर्थात् भोग्य प्रपंचोंमें आत्मा को भोगत्वरूपमें वितत अर्थात् अनुगत और आत्मामें भोग्यत्वरूपसे व्याप्त देख करके इन दोनों कहे कारणात्मा जो हम हैं, हममेंही व्याप्त और हमसेही यह दोनों कल्पित हैं ऐसा स्मरण करो ॥ ५२ ॥ जिस प्रकारसे सोयाहुआ पुरुष गिरि वनादिरूप वृक्ष भिन्न भिन्न देह व्यापी होने परभी आत्मामेंही सब देख पाता है, अर्थात् स्वप्नमें जिस प्रकारसे सोयाहुआ पुरुष स्वप्न देखता है, और जैसे स्वप्नकी अवस्थामेंही उठकर अपने को एक देशमें अर्थात् शयन किया हुआ समझ जाग्रत् अवस्थाका अनुभव करता है ॥ ५३ ॥ इसी प्रकारसे जीवोपाधि बुद्धिकी अवस्था जो समस्त जागरणादि हैं वह सृष्टि आत्माकी केवल मायामात्र है. हे राजन्! इसप्रकार विशेषरूपसे जानकर इन सब अवस्थाके देखने-

वाले और इन सब सहित जो आत्माहै, इसकाही स्मरण करना कर्तव्य है ॥ ५४ ॥ हे राजन्! तुम ऐसा मतजानना कि, स्वप्नावस्थामें दृश्य न रहनेपर द्रष्टाभी नहीं है भली भाँति सोयाहुआ पुरुष अर्थात् जीव जिसे अपनी निद्रा और इंद्रियोंके सुखको जान सक्ता है, वही वस्तु अर्थात् आत्मा उस समयभी वर्तमान रहता है उस कालमें निद्रा और सुख-का ज्ञान नहीं होता ऐसाभी हम नहीं कह सक्ते, क्योंकि मैं सुखसे सोया था, यहांतक कि मुझे कुछ ज्ञान न रहा इस प्रकारसे स्मृति सबकोही अनुभव सिद्ध है. इस कारण स्वप्नादि अवस्थामेंभी आवर्तमान रहता है,वही आत्मा ब्रह्म है और वही ब्रह्म जो है सोई हम हैं,ऐसा तुम जानो ॥५५॥ यदि कहो कि निद्रावस्थामें साक्षी जो वस्तु देखेगा, वह साक्षी उसको जाग्रत् अवस्थामें किस प्रकारसे स्मरण करेगा, एकका देखा हुआ कभी दूसरा स्मरण कर सक्ता है? (उत्तर) निद्रा और जागरण इन दोनों अवस्थाओंका खोज करनेसे निद्रा और जागरण के प्रकाशत्वमें जो कुछ अन्वित हो और एक दूसरेका अपायतसेभी अपाय न होनेपर जो कुछ इन दोनोंसे अलग है, उसी ज्ञानके प्रभावसे ऐसा स्मरण हुआ करता है. वह ज्ञान नहीं परब्रह्म है इस कारण बाल्यावस्थामें दृष्टिविषय जिसप्रकार यौवनमें दृष्टिगोचर होता है वैसेही जागनेमें दूसरी अवस्थाके होनेपरभी निद्रा और आनन्दका स्मरण कर सक्ताहै, यह जो कुछभी हो. फल यह है कि, ऐसे ब्रह्मकोही आत्मा जानना ॥ ५६ ॥ हे राजन्! जो हमारा यह स्वरूप अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं, यह भूलकर आत्माके निकटसे अलग होजाय तब तो फिर पुरुषको अपार संसारमें घूमना फिरना होता है वह संसारका स्वरूप यह है कि इस देहसे दूसरी देह, अर्थात् जन्मान्तर, पुनर्जन्म और मृतकसे फिर मृतक अर्थात् मरणके पीछे फिर मरण होना ॥ ५७ ॥ हे राजन्! मनुष्य जन्ममेंही शास्त्रज्ञान और परोक्ष ज्ञान प्राप्त करनेकी बडी संभावना है, इस मनुष्य जन्मको प्राप्त करके जो पुरुष परमात्माको न जानकर उसके विषयमें ज्ञान नहीं करता उसका कल्याण किसी समयभी नहीं होता ॥ ५८ ॥ इस कारण प्रवृत्ति मार्गमें जैसे क्लेश और तिसके फलभी उलटे हो जाते हैं और निवृत्तिमार्गमें जिस प्रकारका फल जो कि अनिर्वचनीय फल (मोक्ष) प्राप्त हो सक्ता है, उसको याद करके फलके संकल्पसे विमुख होना उचित है ॥ ॥ ५९ ॥ हे महाराज! सुख अथवा दुःखके छुडानेके लिये संकल्प करके मनुष्यगण स्त्री पुरुष दोनों अनेक प्रकारके क्रियाकलाप किया करते हैं. परन्तु उनके क्रियाकलाप करनेसे न तो दुःखसे छुटकाराही होता और न कुछ सुखकी प्राप्तिही होती है ॥ ६० ॥ जिन मनु-ष्योंको अपने ज्ञानका अभिमान है कि " हम उद्यम करनेमें बडे प्रवीण हैं " वह इस उलटी बातको जानकर तीनों स्थानसे आत्माकी विलक्षण सूक्ष्म गति है ऐसा जानते हैं ॥ ॥ ६१ ॥ अपने तेजसे देख सुन शब्दादि तन्मात्रसे छूटकर ज्ञान विज्ञानसे संतुष्ट होकर पुरुष मेरा भक्त होता है ॥ ६२ ॥ हे राजन्! परमात्माका और जीवका जो केवल एक रूपसे दर्शन करता है, उसकोही योगमें निपुण हुये मनुष्यगण सर्व प्रकारसे स्वार्थ कहकर जानते हैं, इस कारण इस्से अधिक और परमपुरुषार्थ नहीं है ॥ ६३ ॥ तुम यदि सावधान

होकर हमारे यह वचन श्रद्धासहित श्रवण करके धारण करोगे तो बहुतही शीघ्र ज्ञान युक्त विज्ञान होकर सिद्ध होजाओगे ॥ ६४ ॥ इतनी कथा वर्णनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान् हरि संकर्षण इस प्रकारसे चित्रकेतुको समझा बुझाकर फिर उसके सामनेही अन्तर्धान होगये ॥ ६५ ॥ चित्रकेतु बोले-

भजन-श्यामसुंदर की अद्भुत शोभा बिसरत नाहिं बिसारी है रे ॥ शीशमुकुट मकराकृत कुण्डल, उरवनमाल सँवारी है रे ॥ नयन विशाल नासिकाकी छबि मनकी मोहनहारी है रे ॥ पीतवसन औ हँसन दशनकी शोभा परम पियारी है रे ॥ शालिग्राम छिपे क्यों हमसे यह अचरज मोहिं भारी है रे ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-चित्रकेतु आकाशमें, घूमत सिद्धी पाय।
हँसी करी जब शम्भुकी, गिरिजा दियो गिराय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! भगवान् अनन्तजी जिस दिशामें अन्तर्धान हुये विद्याधर चित्रकेतुने उसी ओरको प्रणाम किया और फिर आकाशचारी होकर वह इच्छानुसार विहार करनेलगा ॥ १ ॥ उसका बल नहीं घटा था. न उसकी इन्द्रियें क्षीण हुई थीं इस कारण लक्ष लक्ष वर्ष तक वह सरलतासे घूमता रहा और वह महायोगी था, इस कारण मुनि व सिद्ध चारण लोग उसकी स्तुति करते थे ॥ २ ॥ कुलाचल पर्वतकी गुफामें जहाँ कि अनेक संकल्प सिद्ध हो जाते हैं वहांपर यह राजा चित्रकेतु श्रीहरिके गुण गाता हुआ विद्याधरोंकी स्त्रियोंके साथ रमण करने लगा ॥ ३ ॥ एक समय यह राजा चित्रकेतु भगवान् विष्णुजीके दिये हुए दीप्तिमान् विमानमें आरूढ होकर गमन करते २ देखताहुआ कि भगवान् भूतनाथ शिवजी सिद्ध चारण लोगोंसे सेवित होकर ॥ ४ ॥ मुनि जनोंकी सभामें भगवती पार्वतीजीको अंक (गोदी) में लिये भुजाओंसे चिपटाये बैठे हुएहैं. चित्रकेतु श्रीमहादेवजीको इस प्रकार बैठे देख क्षणभरतक खडारहा और कुभाग्यके वशहो उनका उपहास करके यह वक्ष्यमाण वचन उनसे बोला, इन वचनोंको भगवती पार्वतीजीने भी सुना ॥ ५ ॥ चित्रकेतु बोला कि जो समस्त लोकोंके गुरु हैं साक्षात् धर्मके कहनेवाले और शरीरधारियोंमें प्रधान हैं, इनका आचरण देखो । भरी सभाके बीच अपनी भार्याको गोदीमें चिपटायें हुए बैठे हैं ॥ ६ ॥ और फिर यही जटाधारी तीव्र तप करनेवाले, ब्रह्मवादी और इस सभाके पति हैं । कैसा आश्चर्य है कि, यह एक साधारण मनुष्यकी समान एक बारही लाजविहीन होगये हैं, कि सभाके बीचमें इस प्रकार स्त्रीको गोदमें लिये बैठे हैं॥७॥अहो ! साधारण मनुष्यभी एकान्तमेंही स्त्रीको प्यार व आलिंगन करते हैं परन्तु यह बडा भारी व्रत धारण करकेभी सभामें किस प्रकारसे स्त्रीको गोदमें लिये बैठे हैं ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! भगवान् भूतनाथ शिवजीका मन अत्यन्त गंभीर है, वह चित्रकेतुके यह वचन सुनकर कुछेक हँसकर चुप हो रहे, उस सभामें जितने सभ्य लोग बैठेथे, उनमेंसे कोई कुछ न बोला और सबही महाराज भोलानाथके अनुगामी होकर चुप रहे ॥ ९ ॥ परन्तु चित्रकेतुको ऐश्वर्यकी प्राप्ति होनेसे विजातीय गर्व उत्पन्न होगया था, "और मैंने इन्द्रियोंको जीतलियाहै" इस बातका उसको अभिमानभी था, इसलिये भगवान् महादेवजीके प्रभावको न जानकर उसने इस प्रकारके असंगल वचन वारम्वार कहे कि, जिनको भगवती पार्वतीजी न सहसकी और क्रोध प्रगट करके बोलीं ॥ १० ॥ पार्वतीजी बोलीं कि, यह पुरुष क्या इस समय लोकोंका शासन करने वाला है ? या दण्डधारी प्रभु है ? इसको हम अपनी समान लोगोंका अत्यन्तही विरोधी देखती हैं, यह तो कोई बडा दुष्ट और लाजरहित है ॥ ११ ॥ कैसा आश्चर्य है, कमल-योनि ब्रह्माजी धर्मको नहीं जानते हैं, ब्रह्माजीके पुत्र भृगु व नारदादिको धर्मका ज्ञान नहीं । सनत्कुमार और कपिल मुनिभी धर्मके जाननेवाले नहीं महादेवजी महाराज शास्त्रको उल्लं-घन करके चलतेहैं, और क्या यह समस्त मुनि उनको निवारण नहीं कर सक्ते ? इस कारण यह दुष्ट खोटे वचन कहरहा है ॥ १२ ॥ अहो ! जिनके चरणकमल ब्रह्माजीकेभी ध्याने योग्य हैं जो समस्त मंगलोंके मंगल अर्थात् परम धर्ममूर्त्ति हैं, यह नीच क्षत्रिय, विद्या-धर समस्त देवताओंके स्वामी भगवान्‌को कुछ न समझकर शासन करताहै. इस कारणसे यह दण्ड देनेके योग्य है ॥ १३ ॥ साधुलोग सदा जिस वैकुण्ठमें भगवान्‌के चरणके निकट जानेकी इच्छा करतेहैं यह पुरुष उस वैकुण्ठके योग्य नहीं है क्योंकि इसको "मैं बडाहूं" इस प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ है, इसी कारणसे इसमें नम्रताभी नहीं है ॥ ॥ १४ ॥ इस प्रकार भगवती पार्वती स्वयं चित्रकेतुके दंडको विचार उसे पुकारकर बोली कि, हे पुत्र ! तुझको दुर्मति उत्पन्नहुई है, जाओ और पापीयसी आसुरी योनिको प्राप्त होओ ऐसा होनेसे बडे पुरुषोंका अपराध करनेमें फिर तुम्हारा साहस नहीं होगा ॥ ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! चित्रकेतुको जब इस प्रकारसे पार्वतीजीने शाप दिया तब वह उसी समय विमानसे उतरा और मस्तक झुकाकर सतीजीको प्रसन्न करनेके लिये यत्न करने लगा ॥ १६ ॥ चित्रकेतु बोला कि हे अम्बे ! आपने जो शाप दिया उसको मैं दोनों हाथोंसे मस्तकपर चढाताहूं । हे माता ! देवता लोग मनुष्यके प्रति जो कुछ कहते हैं, वह प्राचीन कर्म उस पुरुषको अवश्यही प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ यह संसारचक्रका स्वभावही है इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं जीव अज्ञानसे मोहित होकर संसाररूपी चक्रमें घूमताहुआ सदा सर्वत्र जो सुख और दुःख भोग करता है, स्वयं वा और उस सुखका कर्ता नहीं है जो पुरुष अज्ञानी हैं, वही इस विषयमें अपनेको अथवा दूसरेको कर्त्ता कहकर मानते हैं, इस कारण आपने जो हमको शाप दिया, इस विषयमें आपका व हमारा कोई दोष नहीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ परन्तु माँ ! यह संसार समस्त मायामय गुणोंका प्रवाह स्वरूप है, इसमें शाप क्या है ? अथवा अनुग्रह क्या है ?

स्वर्ग क्या है बरन् सुख दुःख भी क्या है ? ॥ २० ॥ एक परमेश्वरही निमित्तभूत मायासे प्राणियोंके और उनके बंधन मोक्ष व सुख दुःखकी सृष्टि किया करते हैं परन्तु वह स्वयं निष्फल अर्थात् बंधनादि शून्य हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि भगवान्का प्यारा कुप्यारा जाति अथवा बंधु पराया या अपना कोईभी नहीं है. क्योंकि सर्वत्र समान हैं और संगरहित हैं इसलिये उनमें अनुरागभी नहीं है, फिर भला मनमें अनुरागका स्वामी रोष किस प्रकारसे होसक्ता है ॥ २२ ॥ तोभी उनकी मायासे जो समस्त विसर्ग अर्थात् पुण्य पापादिरूप कर्म होते हैं, वही शरीर धारियोंके सुख, दुःख, हित, अहित, बंधन, मोक्ष, जन्म, मृत्यु और संसारके निमित्त समर्थ हुआ करते हैं ॥ २३ ॥ इस कारण हे माता पार्वती ! आप प्रसन्न होवें; केवल यही प्रार्थना है, यह विनती मैं कुछ शाप छुडानेके लिये नहीं करताहूं, माँ ! मैंने तो साधु उक्तिही कीथी, परन्तु उस्से जो आप अपनेको असाधु समझ गई हैं, सो यही मेरा अपराध आप क्षमा करैं ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे शत्रुदमनकारी राजन् ! चित्रकेतुके इस प्रकारसे भवानी और महादेवजीको प्रसन्न करनेके वचन सुन गौरी और गिरीश (महादेव) को अत्यन्त विस्मय उत्पन्न हुआ इसके पीछे चित्रकेतु उन विस्मित देव देवीके सन्मुखही अपने विमानपर बैठकर चलागया ॥ ॥ २५ ॥ तिसके पीछे रुद्राणीसे श्रवणकारी देवर्षि, दैत्य, सिद्ध और पार्षदगणोंके सामने ही भगवान् रुद्र यह वचन बोले ॥ २६ ॥ श्रीरुद्रजी बोले कि, हे सुन्दर कटिपश्चाद्भाग-वाली ! अद्भुत कर्मकारी भगवान् हरिके भक्तगण कैसे महात्मा और कैसे श्रद्धा रहित होते हैं, उनका माहात्म्य अब तुमने प्रत्यक्ष देखा ॥ २७ ॥ हे भार्ये ! जो पुरुष नारायण परायण हैं वह किसीसेभी भय नहीं पाते स्वर्ग, नरक, मुक्ति इन तीनोंमेंही वे कुछ प्रयो-जन देखा करते हैं ॥ २८ ॥ क्योंकि परमेश्वरकी लीलासेही प्राणियोंके देह संयोग और उसके द्वन्द्व अर्थात् सुख, दुःख, जन्म, मरण और शाप, अनुग्रह हुवा करते हैं ॥ २९ ॥ इन सब सुख दुःखादिकोंके बीचमें गुण दोष विकल्प अर्थात् इष्टानिष्ट भेद जो कुछभी प्रकाश पाता है वह पुरुषके आत्मामें सुखादि भेद स्वप्नावस्थामें जिस प्रकार अविवेककृत होतेहैं, वैसेही अज्ञानकृत जानना और मालामें जिस प्रकार सर्प मालादिभेद अज्ञानकृत होता है वैसेही यह अविवेक कृत जानना ॥ ३० ॥ हे देवि ! जो पुरुष भगवान् वासुदेव में भक्ति करते हैं, वह ज्ञान और वैराग्यके वीर्य सम्पन्न हैं उनमें यह अच्छाहै ऐसी बुद्धिमें आश्रय करनेवाला अर्थ नहीं है, अर्थात् उनको किसीके आश्रयकी इच्छा नहीं है ॥ ३१ ॥ यह पुरुष (चित्रकेतु) भगवान्का दास है, इस कारण इसमें ऐसी उदारताका होना विचित्र नहीं है । हे देवि ! भगवान् हरिके माहात्म्यका क्या वर्णन करें ? हम (रुद्र) ब्रह्मा, सनत्कुमार, ब्रह्म सुत नारदादि ऋषि, प्रधान प्रधान देवगण, हम सब लोगभी जब कि उनकी लीलाको नहीं जान सक्ते । फिर भला देवता जो उनके अंश होनेपरभी अपनेको पृथक् पृथक् ईश्वर कहकर मानते हैं, वह लोग किस प्रकारसे उनके स्वरूपको जान सक्ते हैं ॥ ३२ ॥ परन्तु उन भगवान् हरिका न कोई प्यारा है, न कोई

कुप्यारा है न कोई अपना है, न कोई पराया है, यह सर्व प्राणियोंके आत्मा, इस कारण आपही सब प्राणियोंके प्रियहैं ॥ ३३ ॥ परन्तु यह महाभाग चित्रकेतु उन्हीं हरिका प्यारा भक्त है क्योंकि यह पुरुष शान्त और सबको बराबर देखनेवाला है । हे सती! हमभी उन्हीं अच्युतसे प्रेम किये हुयेहैं इस कारणसे इसके ऊपर हमको क्रोध नहीं हुआ ॥ ॥ ३४ ॥ इसकारण हे देवि! तुम विस्मयको छोड दो। यह सब महात्मा पुरुष महापुरुषके भक्त शान्त औरको समदृष्टिसे देखनेवाले हैं, इस कारण इनका स्वभाव एकही रूपका है ॥ ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् भगवान् महादेवजीके यह वचन सुनकर भगवती पार्वती जीने विस्मय छोडकर अपने चित्तको सावधान किया ॥ ३६ ॥ हे महाराज परीक्षित्! यद्यपि वह परम भागवत् चित्रकेतु भवानीजीको भी शाप दे सक्ता था, परन्तु उसने जो भगवती सतीजीका शाप अपने माथेपर चढाय लिया, यही उसकी साधुताका लक्षण था ॥ ३७ ॥ उसके पीछे चित्रकेतु दानवी योनिको प्राप्त होकर त्वष्टाके यज्ञमें उत्पन्न हुये और पीछे ज्ञान विज्ञान सम्पन्न होकर "वृत्र" इस आख्यायिकाके नामसे विख्यात हुये ॥ ३८ ॥ हे राजन्! वृत्रकी असुरभावसे उत्पत्ति और भगवान्में मति होनेका कारण जो आपने पूँछा, वह हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ३९ ॥ हे कौरववंश! महात्मा चित्रकेतुका यह पवित्र चरित्र जो भागवत लोगोंके माहात्म्यसे परिपूर्ण है, इसके सुननेसे मनुष्य लोग बंधनसे छूटकर मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर भगवान् हरिका स्मरण करके वाणीको वशमें कर श्रद्धासहित यह इतिहास पाठ करता है। उसकी परमगति होजाती है वो ऐसे कहने लगते हैं ॥ ४१ ॥

भजन-कल न पडै पलभरको तुम बिन क्या जादू पढ डारा है॥ अपना बिराना कुछ नहिं सूझत, केवल ध्यान तुम्हारा है॥ आठ पहर दिन रैन छिनक पल, दम भरको नहिं न्यारा है॥ सुख सम्पति तन मन सुत दारा, सबको तुम परवारा है ॥ जो कुछ हो तुमही हम नाहीं, अब तो यही विचारा है ॥ निर्भय कौन समझता उसको, जो कुछ हाल हमारा है॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कंधे

सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा-आदित सुतके वंशसे, विश्वरूप अख्यान।

पुनि दितिकेसुत महत गण, तिनको करहुँ बखान॥

श्रीशुकदेवजी कहे हैं कि, हे परीक्षित्! सविताकी स्त्री पृश्नि अपने स्वामीसे सावित्री, व्याहृति, वेदत्रयी, अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य और पंचमहायज्ञ, इन सब संतानोंको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ हे सुव्रत! भव नाम वाली आदित्यकी स्त्री सिद्धिने

महिमा, विभु, प्रभु, यह तीन पुत्र और आशीर्नामक एक उत्तम कन्या उत्पन्न की ॥ २॥ धाताकी संतान कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति, यह चार जनी यथा क्रमसे, सायं, दर्श, प्रात और पूर्णमास नामक संतान उत्पन्न करती हुई ॥ ३ ॥ विधाता नामक आदित्यकी स्त्री क्रिया, उसके गर्भमें इन आदित्यसे पुरीष्या नामक पाँच अग्नि उत्पन्न हुए। वरुणजीकी स्त्री चार्षिणी, जिस्से भृगुजी उत्पन्न हुए जो पहले ब्रह्माजीके पुत्र थे, अब फिर जन्म ग्रहण करते हुए ॥ ४ ॥ हे राजन्! महायोगी, वाल्मीकिजी जो वल्मीकसे उत्पन्न हुए वहभी वरुणजीके पुत्र थे इस कारण वरुणजीके भृगु और वाल्मीकि यह दोनों ही पुत्र असाधारण थे, परन्तु अगस्त्य, वसिष्ठ, यह दोनों ऋषि, वरुणजीके और मित्रके साधारण पुत्र हुए। क्योंकि वरुण और मित्र ॥ ५ ॥ इन दोनों जनोंनेही उर्वशीको देख कामके वशहो उसके निकट एक घडेमें अपना वीर्य डाला, जिस्से कि इन दोनों ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६ ॥ हे राजन्! मित्र नामक आदित्यके लिखे हुए सात पुत्रोंके सिवाय असाधारण पुत्रभी थे, अर्थात् उन्होंने अपनी स्त्री रेवतीके गर्भमें उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल, यह तीन पुत्र उत्पन्न किये थे, हे राजन्! इन्दु नामक आदित्यकी स्त्री पौलाम हुई ऐसा सुनाहै कि, इन्द्रने उसके गर्भमें तीन पुत्र उत्पन्न किये थे, उनके नाम जयन्त, ऋषभ, मीढुष ॥ ७ ॥ उसे क्रमनामक आदित्य जिन्होंने प्रथम अपनी मायासे वामनरूपी बन बडा भारी विक्रम प्रकाश किया और उनकी कीर्ति नामक स्त्रीमें बृहत् श्लोक नाम एक पुत्र उत्पन्न हुवा जिसके पुत्र सौभग इत्यादि कश्यपवंशावतंस हुए। इन महात्माके गुण कर्म और वीर्यादि पश्चात् (अष्टम स्कन्धमें कहेंगे) ॥ ८ ॥ और जिस प्रकारसे अदितिमें अवतीर्ण हुए वहभी समय समयपर वर्णन करेंगे ॥ ९ ॥ हे कौरवेश! कश्यपकी अदिति नामक स्त्रीमें जो (१२) बारह आदित्य उत्पन्न हुए हैं, उनकी सन्तानका वृत्तान्त यह हमने सब कहा, इस समय इन महात्माकी दिति नामक स्त्रीमें दैतेय कहकर प्रसिद्ध जो यह सब दायाद हैं, जिनके मध्यमें श्रीमान् महाभागवत प्रह्लाद और बलिभी थे, उनका विवरण हम कहते हैं तुम सुनो ॥ १० ॥ हे राजन्! दितिके दो पुत्र हुए हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष, यह दोनों जनेही दैत्य दानव लोगोंके वंदनीय हुए थे, उनका वृत्तान्त (तीसरे स्कन्धमें) हम कहही आये हैं ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुकी स्त्री कयाधू नाम दानवी थी, जंभकी बेटी थी वह चार पुत्र उत्पन्न करती हुई ॥ १२ ॥ उनके नाम यथा—संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद, उनकी बहन जो सिंहिका थी विप्रचित्त दानवकी स्त्री हुई, वह अपने स्वामी विप्रचित्ति दानवसे राहुनामक पुत्रको उत्पन्न करती हुई ॥ ॥ १३ ॥ देवता लोगोंके साथमें अमृत पान करनेसे भगवान् हरिने अपने चक्रसे जिसका शिर काट लिया था ॥ ह्लादकी धमनी भार्या इल्वल वातापीको उत्पन्न करती हुई, जो अतिथि अगस्त्यजी इल्वल वातापीको पचाय गयेथे ॥ १४ ॥ जो कुछभी हो अनुह्लाद दानवकी भार्या सूर्म्या उसके गर्भमें बाष्कल और महिष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। प्रह्लादकी स्त्री दर्वी उससे विरोचनने जन्म ग्रहण किया उसका पुत्र बलि हुआ ॥ १५॥१६॥

बलिकी स्त्री अशना इसके गर्भसे राजा बलिके (१००) शतपुत्र उत्पन्न हुए, उनमें बाणासुर सबसे बडा हुआ जिसका प्रताप कि महापुण्यरूप है, जो कि पीछे भली भाँति वर्णन करेंगे ॥ १७ ॥ बलिका सबसे बडा पुत्र बाणासुर भगवान् महादेवजीकी आराधनां करके शिवका मुख्यगण हुआ, उसके पार्श्वमें भगवान् पुरपालक अबतक वर्तमान हैं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! उनचास पवन भी इस दितिके पुत्र हैं, यह सब ही पुत्रहीन हुये । देवराज इन्द्र इन सबको साथ लेकर देवभावको प्राप्त करादेते हुये ॥ १९ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! दितिके गर्भमें उत्पन्न होनेसे मरुद्गण जन्मसे ही असुरभाव युक्त थे, इसमें किसी प्रकारकाभी सन्देह नहीं है सो वह किसप्रकारसे असुर-भाव परित्याग करके इन्द्रकरके सुरभावको प्राप्त हुये ? उन्होंने ऐसा क्या श्रेष्ठ कर्म किया था ? ॥ २० ॥ हे भगवन् ! यह विषय जाननेके लिये यह ऋषिगण हमारे सहित श्रवण करनेको श्रद्धा सहित बैठे हुये हैं, हमारे निकट इसकी व्याख्या कीजिये ॥ २१ ॥ सूतजी इतना वृत्तान्त वर्णन करके महर्षि शौनकजीसे बोले कि हे सत्रायण ! व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीने राजाके यह मिताक्षर और बहु युक्त वचन श्रवण करके मनहीं मनमें उसकी बडाई की, और बोले ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! विष्णुकी सहायतासे इन्द्रने सब पुत्रोंको मारडाला, तब दितिके चित्तमें शोक अत्यन्त प्रबल हुआ और वह मनहीमनमें यह चिन्ता करने लगी ॥ २३ ॥ दुरात्मा इन्द्र केवल इन्द्रियोंके सुखमें लगा हुआ है, उसका हृदय अति कठिन है और उसमें दयाका नामभी नहीं है, आः इस क्रूर भाईके मारनेवाले पापीको नाश करके हम कब सुखी होंगी ॥ २४ ॥ अहो इस समय जो प्रभु कहकर विख्यात हैं, उनके पीछे स्वामियोंका देह मरनेके पीछे दो या तीन दिन रहकर कृमि, विष्ठा और भस्मकी संज्ञाको प्राप्त हुआ है. कारण कि, मृत-देहका संस्कार न होनेसे दो तीन दिन पीछे सडकर वह कृमियुक्त या श्वापदादिके भक्षण करनेसे विष्ठारूपको प्राप्त होता है, और दग्ध होनेसे केवल भस्मही शेष अर्थात् बाकी रहती है, सो स्वदेहकी रक्षाके लिये जो पुरुष प्राणियोंसे द्रोह रखता है, वह क्या स्वार्थको जानताहै ? कभी नहीं. क्योंकि प्राणियोंके साथ वैर करनेसे घोर नरक होता है ॥ २५ ॥ जो कुछ हो, इन्द्र देहादिको नित्य समझकर अतिशय उन्नद्ध होगया है अब हमको ऐसा उपाय करना चाहिये कि, जिस्से उसके गर्वका हरण करनेवाला पुत्र हो ॥ २६ ॥ इस कारण पतिका प्रियाचरण करनाही इस विषयमें सदुपाय है, ऐसा निश्चय करके शुश्रूषा, अनुराग, विनय, इन्द्रियदमन और भक्ति प्रगट करना इत्यादि उपायोंसे दितिजी बारम्वार कश्यपजीका प्रियाचरण करने लगीं ॥ २७ ॥ भावकी जाननेवाली दिति हाव-भावके सहित मनमाना प्रिय भाषण तिरछी चितवन व मन्द मुसकानसे अपने पतिको वशमें करलेती हुई ॥ २८ ॥ हे राजन् ! विद्वान् पुरुष मनमानी स्त्रीसे ऐसेही उसके वशीभूत होते हैं, उसके पीछे स्त्रीके वशमें होकर " तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे " ऐसा उनका कहना कुछ विचित्र नहीं है ॥ २९ ॥ प्रजापति ब्रह्माजीने प्रथम सब प्राणियोंको

सङ्ग रहित देखकर यह विचार करके स्त्री पुरुषके संसर्गसे " सृष्टिके निमित्त " अपनी आधी देहको स्त्री बनाया था जिस करके अनन्तक पुरुषोंकी मति हरीजाती है ॥ ३० ॥ इसलिये हे तात ! दिति एकान्त भाव हो इस प्रकारसे जब शुश्रूषा करने लगी, तब भगवान् कश्यपजी शीघ्रही प्रसन्न होगये और एक दिन आनन्द प्रकाश करके हँसकर दितिके प्रति प्रसन्नताके वचन कहते हुये ॥ ३१ ॥ कश्यपजी बोले कि, हे वामोरु ! हम तुमसे अत्यन्तही प्रसन्न हुये हैं, अब जो तुम्हारी अभिलाष हो वह वर तुम हमसे मांगो। हे सुन्दरि ! पतिके प्रसन्न होनेपर स्त्रियोंका क्या इस कालमें क्या परकालमें कोई अभिलाष अप्राप्त नहीं रहता ॥ ३२ ॥ हे साध्वी ! स्त्रियोंको पतिही परम देवता है. देवताके प्रसन्न होनेसे सबही कामना पूर्ण होजाती है, " नारिनके पति देव वेद नित यही बखाने ब्रह्मा, विष्णु, महेश नारि पतिहीको जाने " ॥ ३३ ॥ हे सुन्दरि ! यद्यपि सर्व प्राणियोंके अन्तःकरणवर्ती भगवान् वासुदेवही लक्ष्मीपति अथवा परम देवता सत्यही सत्य हैं। तथापि पुरुष लोग अनेक प्रकारसे उनकेही इन्द्रादि नाम और वज्र हस्तादिरूप कल्पना करके पूजा करते हैं और वही स्त्रियोंके निकटमें पतिरूपधारी होकर पूजे जाते हैं ॥ ३४ ॥ हे सुमध्यमे ! श्रेयस्कामा पतिव्रता स्त्रियें अनन्य भावसे पतिहीकी सेवा करती हैं. कारण कि, पतिही आत्मा और पतिही ईश्वर हैं ॥ ३५ ॥ हे भद्रे ! हम तुम्हारे वही स्वामी हैं, तुम करके भक्तिभावसे पूजेगये हैं, जो तुम्हारी कामना है सो हम पूर्ण करेंगे. वह असत्यनी स्त्रियोंको महा दुर्लभ है ॥ ३६ ॥ दिति बोली कि, हे ब्रह्मन् ! अनुग्रह करके यदि आप वर देनेको तैयार हुये हैं तो ऐसा वर दीजिये कि, जिस्से हम आपके निकटसे इन्द्रका मारडालनेवाला एक पुत्र चाहती हैं, सो आप मुझको दीजिये. प्रभो ! दुरात्मा इन्द्रने भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर हमारे दो पुत्रोंको मार डाला है कि, जिस्से हम निपूती होगई हैं ॥ ३७ ॥ दितिके यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ कश्यपजी अति विमन हुये और अछताते पछताते कहने लगे कि, आज हमको बडाभारी अधर्म उपस्थित हुआ. कारण कि, भगवत् रूप इन्द्र और असुर यह सबही मुझे एकसे हैं ॥ ३८ ॥ अहो ! विषय और इन्द्रियोंके सुखमें रत होजानेसे स्त्रीरूप मायाने मेरे मनको क्याही अपने वशमें करलिया है ? निःसन्देह हमको नरकमें गिरना पडेगा ॥ ३९ ॥ इस अबलाका क्या अपराध है ? यह तो अपने स्वभावहीके पीछे चली है, मैं जो अपने स्वार्थको नहीं जानता, इस कारण मुझेही धिक्कार है। किस कारणसे हम जितेन्द्रिय नहीं हुये ॥ ४० ॥ स्त्रियोंका वदन शरदकालके कमलकी तुल्य खिला हुआ होता है, वचन इनके दोनों कानोंके लिये अमृत होते हैं, परन्तु हृदय छुरीकी धारका सहोदर भाई है इस कारण ऐसी किसकी सामर्थ्य है ! जो इन स्त्रियोंके मनकी चेष्टा जान सकै ॥ ४१ ॥ जो कि स्वार्थकी कामनासे आत्माकी समान प्रियरूपमें प्रतीयमान होती तो हैं, परन्तु वास्तवमें उनको कोई प्रिय नहीं होता, वह अनर्थके लिये पति पुत्र और अपने भ्राताको भी नष्टकर सकती हैं ॥ ४२ ॥ जो कुछभी हो हमने इस

स्त्रीके (दितिके) निकट वर देता हूँ, ऐसा जो कहा है, यह मेरा कह देना और इन्द्रका वध यह दोनोंही अनुचित हैं. सो इस विषयमें इस समय यही उचित है कि, पुत्रके लिये इसको वैष्णव व्रतका उपदेश करूं जिससे कि इसका चित्त शुद्ध होजानेपर इन्द्रके प्रति जो क्रोध इसको उत्पन्न हुआ है वह कदाचित् छूट भी सकता है और यह व्रत बहुत समयमें पूरा होसक्ता है जो कुछभी इसमें खोट हुई तो इन्द्रका मारनेवाला पुत्र उत्पन्न न हो सकेगा ॥ ४३ ॥ हे कुरुनन्दन ! भगवान् कश्यपजी इस प्रकारसे चिन्ता करके कुछेक कोपायमानकी समानहो फिर अपने आपही अपनी निन्दा करते हुये ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे दितिसे बोले कि, हे भद्रे ! यदि तुम एक वर्षतक यथावत् व्रत धारण कर सकोगी तो तुम्हारे गर्भमें इन्द्रका मारनेवाला और देवताओंका बन्धु एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ॥ ४५ ॥ यह सुनकर दिति हर्षित होकर बोली कि, बहुत अच्छा मैं यह व्रत धारण करूंगी उस व्रतमें जो जो आवश्यक है और जो जो विषय इस व्रतमें हानिके देने-वाले हैं और जो जो उसमें वार्जित नही हैं, बरन् अभ्यनुज्ञात हैं वह समस्त मुझे आप उपदेश कीजिये ॥ ४६ ॥ कश्यपजीने कहा कि, उस व्रतको करके किसी प्राणीकी हिंसा न करै, किसीके प्रति कोपके शाप नदे, झूँठ न बोले, नाखून न कटवावै, रोम न काटे, अमंगल मृतकका कपाल या हड्डी आदि अपवित्र वस्तुको स्पर्श न करै ॥४७॥ नंगाहो जलमें खड़े होकर स्नान न करै, किसीपर क्रोध न करै दुष्टोंके साथमें बातचीत न करै, विनाधुला वस्त्र न पहरे, एकबार धारण कीहुई मालाको फिर दूसरीवार न पहरे ॥४८॥ जूंठा अन्न न खाय, जिस अन्नमें चींटियें पड़ी हों उसको भी न खाय, मांस मिलाहुवा अन्न न खाय, शूद्रोंका लायाहुवा अन्न न खाय और रजस्वलाका छुवा हुवा न खाय और अंजली बाँध-कर जल न पिये ॥ ४९ ॥ हे सुन्दरी ! जिस समय घरसे बाहर निकले उस समय मुख जूँठा नहो, विना कुल्ला किया हुआ मुख नहो, संध्याके समय केश खुले हुये नहों, शरीरको विना श्रृंगार किया न रक्खे, वाणीको जीतले और नंगा होकर भी इस व्रतमें घूमना न चाहिये॥५०॥ हे दिति! इस व्रत करनेवालेके शयनमें आठ विषय निषिद्ध हैं, यथा-इस व्रतमें दोनों पाँवोंको न धोकर अथवा अपवित्र, वा गीले पाँव रखकर शयन नहीं करै, उत्तरको शिर करके या पश्चिमको शिर करकेभी शयन करना कर्तव्य नहीं है और नंगा रहना या किसी दूसरेके साथ शयन करना और दोनों संध्या मिलनेके समय शयन करना यह सब बातें वर्जित हैं ॥ ५१ ॥ हे दिति ! इस व्रतमें जो जो कार्य करने होते हैं, वहभी मैं कहताहूं तुम श्रवण करो. धुलेहुए कपडे पहरकर पवित्र और समस्त मंगलोंसे संयुक्त होकर प्रथम भोजनके पहले गौ, विप्र और लक्ष्मीनारायणकी पूजा करै ॥ ५२ ॥ सुहागन स्त्रियोंको सुगंधि, माला, वस्त्र, भूषण, उपहार देकर पूजा करै और अपने पतिकीभी पूजा करके सेवा करै और उसको अपनी कोखमें बैठाकर रात दिन चिन्ताकरै ॥ ५३ ॥ निर्विघ्न यह व्रत पूरा होजानेपर अभिलषित पुत्रकी उत्पत्ति होती है, तुम यदि एकवर्षभरतक इस व्रतको धारण करसक्तीहो और जो किसी प्रकारसे तुम्हारा यह व्रत लोप न हुवा हो तो

तुम्हारे इन्द्रका मारनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! जब कश्यपजी ऐसा कहचुके, तब मनस्विनी दितिजीने "इस प्रकारसेही करूंगी" ऐसा कहकर इस व्रतको स्वीकार किया और कश्यपजीसे गर्भ धारण करती हुई और कश्यपजीने जिस प्रकारसे व्रत का उपदेश किया था उसको यथार्थ समझकर दिति उसका आचार करनेलगी ॥ ५५ ॥ अपनी सौतेली माताका यह अभिप्राय जानकर देवेन्द्र इन्द्र अपने स्वार्थको विचार आश्रम में बैठी हुई दितिके समीप आये और अनेक प्रकारसे उसकी सेवा करने लगे ॥ ५६ ॥ इन्द्र प्रतिदिन दितिजीके लिये फल, मूल, समिध, कुशा, पत्र, फूल, अंकुर, मही, जल, यह सब वस्तुयें समय समयपर लाने लगे ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! व्याध जिस प्रकार मृगोंको धोखा देनेके लिये कभी २ स्वयंभी मृगका वेष धारण करलेता है, वैसेही व्रतमें छिद्र पानेकी कामनासे इन्द्र कपटी साधुका वेष धारण कर व्रत करती हुई दितिके निकट आये ॥ ५८ ॥ यद्यपि इन्द्र बडे सावधान होकर सदाही देख भाल करते रहे परन्तु शीघ्र उनके व्रतमें कोई भी छिद्र न मिलसका, तब तो इन इन्द्रको बहुतही चिन्ता हुई कि अब किस उपायसे हमारा मंगल होगा ॥ ५९ ॥ इतनेहीमें कुभाग्यसे एकदिन दितिको मोह आया कि वह संध्यासमय जूंठे मुख, व्रतसे कर्षित, विना कुल्ला किये और विना चरण धोये सोगईं ॥ ६० ॥ योगेश इन्द्र यह अवसर पाकर योगमायाकी सहायतासे दिति के उदरमें प्रवेश करते हुए । दिति अचेत होकर नींद ले रही थी, उसने इस बातको कुछ न जाना ॥ ६१ ॥ इसके पीछे इन्द्रने उदरमें प्रवेश करतेही अपने हाथमें लिये हुए वज्रसे दितिके गर्भको (जिसकी प्रभा कनकके तुल्य प्रकाशमान् हो रही थी) सात खण्ड करके काट डाला, तिसके उपरान्त कट जानेपर यह गर्भके सातों खण्ड रोदन करने लगे, तब इन्द्रने उनके प्रति "रोदन मतकरो" इस प्रकारका स्नेहयुक्त वचन कहकर फिर एक एक खण्डके सात सात खंड कर डाले ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! जब इन्द्रने उस गर्भके (४९) खंड करडाले तब वह समस्त खण्ड हाथ जोडकर देवराज इन्द्रसे बोले कि, हे इन्द्र ! क्यों हमारी जान लेनेके लिये तैयार होतेहो ! हम सब मरुद्गण तुम्हारे भ्राता हैं, इस कारण हमें मतमारो ॥ ६३ ॥ तब इन्द्र बोले कि, डरो मत, तुम लोगोंके साथ हमारा दूसरा भाव नहीं है; तुम लोग हमारे पार्षद होगे ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! यद्यपि इन्द्रने वज्रसे काटकर दितिके गर्भको (४९) खण्ड करडाला, परन्तु भगवान्की कृपासे वह गर्भ किसी प्रकार नष्ट नहीं हुवा कि, जिस प्रकारकी भगवान्की दयासे अश्वत्थामाके अस्त्रने तुम्हारा विनाश नहीं किया था ॥ ६५ ॥ हे कौरवेश ! जो भगवान् आदिपुरुषका केवल एक वारही पूजा करता है, वहभी उनका पार्षद हो जाता है । और दितिने तो प्रायः एक वर्षतक उन भगवान् वासुदेव की पूजा की थी, वर्ष पूर्ण होनेमें कुछ थोडेही दिन शेष अर्थात् बाकीरहे थे, फिर भला उसके गर्भका एकही बार नष्ट होजाना कैसे संभव है ॥ ६६ ॥ भगवान्के प्रसादसे वह सर्व मरुद्गण अर्थात् गर्भ सबही इन्द्रके साथ मिलकर (५०) देवता हुए, तिसके पीछे माताका दोष छुडायकर हरि करके उन

लोगोंको सोमपान कराकर देवता करलिया गया ॥ ६७ ॥ जो कुछभी हो, दिति अबतक सोय रही थी जब उसकी निद्रा छुटी और उठकर इसने देखा तो अनलकी समान दीप्तिमान् इन्द्रके सहित (५०) पचास कुमार खडे हैं ॥ ६८ ॥ यद्यपि देखतेही दितिको संतोष उत्पन्न हुआ तथापि उन्होंने कुछ देर पीछे इन्द्रसे कहा कि, हे तात ! हमने आदित्य लोगोंके भय देनेवाले पुत्रकी कामना करके इस अति कठिन व्रतका आचरण किया था ॥ ६९ ॥ अदितिकी संतानका संहारकारी एक पुत्र हो, यही हमारा संकल्प था, फिर (४९) उनचास पुत्र किस प्रकारसे हुए ? हे पुत्र ! इस भेदको यदि तुम कुछ जानतेहो तो यथार्थ २ कहना, हमारे निकट झूंठ न बोलना ॥ ७० ॥ दितिके अकपट वचन सुनकर इन्द्रजीभी कपटरहित होकर बोले कि, हे अम्ब ! हम तुम्हारी यह कामना जानकरही तुम्हारे निकट आये थे, इतने दिनोंसे केवल छिद्र ढूँढ रहे थे, आज अवसर पाकर उदरमें प्रवेश कर तुम्हारे इस गर्भको हमने काट डाला, हे अम्ब ! जिसकी बुद्धि स्वार्थमेंही लगी रहती है, ऐसे पुरुष बहुधा धर्मके प्रति दृष्टि नहीं दिया करते हैं ॥ ७१ ॥ हमने प्रथम तुम्हारे गर्भको सात खंड करके काट डाला सो वह सात पुत्र हुए फिर हमने उन सात खंडोंमेंसे एक एक खंडके सात सात खंड किये कि, जिस्से यह (४९) उनचास पुत्र हुए ॥ ७२ ॥ परन्तु जब कि, हमने देखा इस्सेभी कुछ कुमार नहीं मरे तब हमने परम आश्चर्य देखकर ऐसा निश्चय किया कि, तुमने आदिपुरुष भगवान्‌की आराधना करके कोई आनुषङ्गि सिद्धि पाई है॥ ७३॥ हे माता! जो पुरुष निराकांक्षी होकर भगवान्‌की आराधना करनेका यत्न करते हैं और उस आराधनाके आगे मोक्ष पदार्थकोभी कुछ नहीं समझते, वह अपने स्वार्थमें अत्यन्त कुशल हैं ॥ ७४ ॥ इसलिये जो भगवान् हरि जगत् संसारके जगदीश्वर हैं, वह आराधना किये जानेसे अध्यात्म दिया करते हैं, यह विचार करनेसे बुद्धिमान् कौन पुरुष विषय भोगका वर मांगेगा ? कारण, कि विषय भोग तो नरकमेंभी प्राप्त हो जाता है ॥ ७५ ॥ परन्तु हे महत्तमे मातः ! मुझ मूर्खने जो दुर्जनता तुम्हारे साथ प्रगट की है, उसको तुम क्षमा करो. यहभी बडेही भाग्यकी बात है कि, तुम्हारा गर्भ मृतक होकर भी फिर जी उठा ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके पीछे दिति शुद्ध भावसे प्रसन्न होकर इंद्रको अनुमति देती हुई, तब देवराज इन्द्र उनको वारम्वार प्रणाम करके मरुद्गणोंके सहित सुरपुरको चलेगये ॥ ७७ ॥ हे परीक्षित् ! मरुद्गणोंका जन्मवृत्तान्त जो कुछ तुमने पूँछाथा वह हमने समस्त वर्णन किया, अब क्या श्रवण करनेकी इच्छा है, सो कहो । शीघ्र कहो विलम्ब करनेका समय नहीं है ॥

राग सोरठ-भजन।

भजन-काम पक्का करो अपना तुम्हें परदेश चलना है ॥ बन्धु सुत नारिको तजकर बहुत मुश्किल निकलना है ॥ नेह जिस देहका तुमको इसे इक रोज जलना है ॥ फँसके इस मोह ममतामें जरा मुश्किल सँभलना है॥ यहाँ विन भक्ति शालिग्राम एक पलको कुशल ना है ॥७८॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे षष्ठस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

दोहा-कश्यप जो दितिसों कह्यो, व्रत हरि करन प्रसन्न।
सो भाषत विस्तार युत, करत ज्ञान उत्पन्न ॥

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! आपने जो पुंसवनव्रतको कहा कि जिससे विष्णुभगवान्की प्रसन्नता होती है, उसका वृत्तान्त विस्तारसे जाननेकी हम वासना करते हैं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! अगहनके महीनेमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे पतिकी आज्ञा लेकर स्त्रियां इस व्रतको जो कि आदिसे कामका दाता है, प्रारंभ करै ॥ २ ॥ ब्राह्मण लोगोंसे सम्मति लेकर दंतधावन कर, न्हाय धोय पवित्र हो मरुद्गणोंके जन्मका वृत्तान्त सुन, फिर शुक्ल वस्त्र पहर कर और शृंगार कर प्रातःकालीन भोजनके पहले लक्ष्मीके सहित भगवान् नारायणकी पूजा करै ॥ ३ ॥ हे राजन्! पूजन करनेके समय जिन मंत्रोंके द्वारा नमस्कार करना होता है, वह हम तुमसे कहते हैं सो श्रवण करो । "हे भगवन्! आपही सबमें व्याप रहे हैं" आपको और किसीसे कोई कार्य नहीं है इसलिये आपको हम नमस्कार करते हैं, हे प्रभो! आपको किसीकी चाहना नहीं है आप पूर्णकाम हैं, महाविभूतिके अर्थात् लक्ष्मीजीके पति हैं, आपमें अणिमादिक सर्व सिद्धियें विराजमान हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ हे ईश! आप दया, धैर्य, तेज, सामर्थ्य और महिमा इत्यादिमें व और दूसरे सर्वगुणोंमें यथावत् संतत सेवित हैं इस कारणसे आप सदा भगवान् कहलाये जाते हैं, सो हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे भगवान्को नमस्कार करके फिर लक्ष्मीजीको नमस्कार करै. यथा—हे मायामये! हे विष्णुपत्नी! परमेश्वरके जो समस्त निरपेक्षत्वादि लक्षण तुममें वर्त्तमान हैं । हे महाभागे! हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये । हे लोकमातः! तुमको हम नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सावधान होकर "महानुभाव भगवान् महापुरुषको नमस्कार करते हैं महाविभूतिके सहित उन महाविभूतिपति भगवान्के लिये हम पूजोपहार देते हैं," इन मंत्रोंसे भगवान्का आवाहन करके पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, उपवीत, गंध, पुष्प, धूप, दीपादि विविध भाँतिके उपहार देवै ॥ ७ ॥ तिसके पीछे अग्निस्थापना करके उन सब उपहारोंके जो कुछ बचे हुए द्रव्य रहैं, उनसे अग्निमें बारह आहुति दे । होमका मंत्र यह है "भगवान् महापुरुष महाविभूतिपतिको नमस्कार—स्वाहा" ॥ ८ ॥ हे राजन्! भगवान् विष्णु और महामाया श्री यह दोनों देवताही वरके देनेवाले हैं, इनसेही समस्त आशिष वचनोंकी उत्पत्ति होती है। लोकमें यदि सर्वप्रकारसे संपत्तिका अभिलाष करै तो नित्य भक्तिभावसे इन लक्ष्मी नारायणकी ही पूजा करै ॥ ९ ॥ और भक्तिद्वारा नम्रचित्त होकर पृथ्वीमें झुककर दंडवत प्रणाम करै तिसके पीछे दशवार मंत्र पढकर स्तोत्रका पाठ करै ॥ १० ॥ वह स्तोत्र यह है "हे भगवन्! हे भगवती! आप दोनोंजन विश्वके विभु और जगत्के परमकारण हैं. हे भगवन्! यह प्रकृति जो कि, सूक्ष्म मायाकी महाकठिन शक्ति है ॥ ॥ ११ ॥ आप हमारेभी अधीश्वर हैं, इसलिये आपही साक्षात् परमपुरुष हैं हे प्रभो!

आप ही सर्व यज्ञ हैं, सब यज्ञोंमें यजन पूजारूप महालक्ष्मी हैं. सबके फलको भोगनेवाले एक आपही हैं ॥ १२ ॥ और यह देवी लक्ष्मीजी सत्वादिगुणकी प्रकाशक और भोगने-वाली हैं. हे प्रभो! आपही सर्व प्राणियोंके आत्मा हो. श्री, शरीर, इन्द्रिय और प्राण स्वरूप हो, आपही नाम और आपही रूप हो और आपही इन दोनोंके प्रकाशक और आपही इन दोनोंके आधार हो । हे भगवन्! आपही दोनों जन परमेष्ठी और त्रिलोकीके वर देनेवाले हो. हे उत्तमश्लोक! आपके प्रसादसे हमको नित्य महामहा आशिष मिलें । अर्थात् हमारे मनोरथ सिद्ध हों" ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे महालक्ष्मीजीके सहित वर देनेवाले लक्ष्मीपति भगवान्का स्तोत्र करके निवेदन की हुई सब उपहारकी वस्तुओंको वहांसे हटाले, और फिर आचमन कराय पूजा करावे ॥ १५ ॥ तिसके पीछे भक्तिसे चित्तको नम्र करके फिर स्तोत्रसे स्तुति करै । फिर यज्ञके उच्छिष्टको सूंघे और फिर पूजा करै ॥ १६ ॥ फिर व्रत ग्रहण करनेवाली स्त्री अपने पतिको ईश्वर समझकर उसको प्यारी प्यारी वस्तु देकर पतिकी सेवा करै ॥ १७ ॥ और पतिभी प्रेमवान् होकर स्त्रीके किये हुये ऊँचे नीचे सब कर्मोंका पालन करै ॥ १८ ॥ हे राजन्! इस पुंसवन व्रतको स्त्री पुरुष दोनों जनोंमेंसे एक भी कोई करै तोभी यह दोनोंहीको फल देनेवाला होगा. हे राजन्! स्त्री यदि व्रत करनेके अयोग्य हो तो पतिही सावधान चित्त होकर इस व्रतका अनुष्ठान करै. श्रीविष्णु भगवान्का यह व्रत कभी नाश करनेके योग्य नहीं है ॥ ॥ १९ ॥ हे राजन्! भगवान् विष्णुका यह व्रत धारण करनेसे किसी प्रकारसे संतानका वियोग नहीं रहता अवश्य संतान होतीहै । इस व्रतमें ब्राह्मण और सुहागिन स्त्रियोंको माल्य, चंदन, मिष्टान्न और गहने देकर पूजा करै और नियम धारणकर भक्तिसहित दिनरात श्रीविष्णु भगवान्के चरणकमलोंका ध्यान करता रहै ॥ २० ॥ तिसके पीछे आराध्य देवताको उनके निजधाममें वासार्थ विसर्जन दे । उनके आगे निवेदन किये हुए मिष्टान्न वस्तुमेंसे आत्माकी शुद्धि और सर्व काम समृद्धिके लिये कुछ एक भोजन करै ॥ ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे पूजाका अनुष्ठान बारह मास (एकवर्ष) विताकर कार्तिक मासमें देव उठनी एकादशीसे पूर्णमासी तक ब्राह्मणादि जिमाय इस व्रतका विसर्जन करै। कार्तिक मासके शेष दिनको उपवास करना उचित है ॥ २२ ॥ प्रभात होनेपर आचमन इत्यादिकर प्रथमहीकी समान भगवान्की पूजा करके गरम दूधमें घृत मिष्टान्न मिलाय स्रुवेसे हवन करै ॥ २३ ॥ पाकयज्ञके विधानसे अर्थात् पार्वणीय स्थालीपाक प्रकरणसे दुग्ध पक्व घृत सहित चरु देकर प्रति अग्निमें बारह आहुति प्रदान करनी चाहिये ॥ २४ ॥ फिर ब्राह्मणगण प्रसन्न होकर जो आशीर्वाद दें, शिर चढाय उनको ग्रहण करै । और भक्तिपूर्वक मस्तक नवाय प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर फिर आप भोजन करै ॥ २५ ॥ तिसके पीछे आचार्यको आगे कर वाणीको जीतता हुआ । बंधु बांधवोंके सहित स्त्रीके निकट जाय, उसको वह बचाहुआ चरु (जिससे शत पुत्र उत्पन्न होकर सौभाग्य होता है) दान करै ॥ २६ ॥ हे राजन्! भगवान् विष्णुजीका यह व्रत यथाविधि पुरुषसे किये

जानेपर यह मनवांछित लाभ देता है और स्त्रियां इस व्रतको करनेसे सुहाग, सम्पत्ति, सन्तान, अवैधव्य, यश और गृहको प्राप्त होती हैं ॥ २७ ॥ कुमारीकन्या इस व्रतको करनेके प्रभावसे सर्व लक्षण संपन्न पतिको प्राप्त करती हैं, और विधवा स्त्री जो इस व्रतको करैं तो उनके पाप क्षय हो जाते और वह स्वर्गकी गतिको (मोक्ष) प्राप्त होती है, जिस के बालक मरजाते हों, ऐसी स्त्री जो इस व्रतको करै तो उसके बालक जियें। जो कुभागिनी स्त्री इस व्रतको करैं तो सुभगा होजाँय और कुरूप स्त्री इस व्रतको करैं तो मनोहर रूपवाली हो जाँय ॥ २८ ॥ हे राजन्! इस व्रतके माहात्म्यसे रोगीजन बहुत कालके रोगसे छूट जाते हैं और इन्द्रियोंके सहित समर्थ देहको लाभकर सक्ते हैं। हे राजन्! जो पुरुष शुभकृत्यके समय इस व्रतका वृत्तान्त पढ़े या सुने, तो उसके पितरोंकी और देवताओंकी अत्यन्त तृप्ति हो जायगी ॥ २९ ॥ और होमके अन्तमें अग्नि, श्रीलक्ष्मीजी, और श्रीहरि यह संतुष्ट होकर सब कामना पूर्ण करैंगे। हे महाराज! जो कुछ आपने पूँछा वह मरुद्गणोंका यह पुण्यजनक और दितिके इस महत् व्रतका वृत्तान्त हमने आपके निकट वर्णन किया ॥ ३० ॥ अब भगवान् की कृपासे षष्ठस्कन्ध समाप्त होगया इसलिये एक भजन लिखताहूं ॥

भजन-श्रीभगवान् भक्त सुखदायक, पूजत आश दासके मनकी ॥ दुष्ट भार भूभार उतारत, रक्षा करत रहत मुनिजनकी ॥ भक्त हेत करपर गिरिवर धर, की सहाय गोपी गोपनकी ॥ संतन हित तज अवध पुरीको सैरकरी वरसोंलों वनकी ॥ खर दूषण त्रिशिरादि मारकर, भस्मकरी लंका रावनकी ॥ हरि हरि हरि द्रौपदी पुकारी, राखो लाज आज निज जनकी ॥ कोटिनपट बढाय दिये झटपट, चकित भई मतिदुःशासनकी ॥ जब जब भीर परत भक्तन पर, आय सहाय करत त्रिभुवनकी ॥ शालिग्राम यहीवर माँगत, चरण शरण रहूं ब्रजमोहनकी ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे लालाशालिग्रामवैश्य मुरादाबादनिवासीकृते षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रतवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इति षष्ठस्कंध समाप्त।

इति

शुकसागर षष्ठस्कन्ध

समाप्त.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्
शुकसागर.
अर्थात्
श्रीमद्भागवत भाषा।
सप्तमस्कन्ध ७.
गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित।
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय बम्बई.

नृसिंहावतार.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शुकसागर ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

सप्तम स्कन्ध ७.

सोरठा-गिरिजानन्द गणेश, आनँदनिधि ऋधि सिधि भवन ॥
मंगल करन हमेश, मंगल सुत मंगल करहु ॥ १ ॥
जय श्रीनन्द किशोर, मोर मुकुट मुरली धरे ॥
मुरलीकी मृदु घोर, सुनो चहत मन मोर यह ॥ २ ॥
जय व्रजेश व्रजचन्द, नन्दनँदन गोपन सखा ॥
सुखदीजे सुखकन्द, सुखासीन सुखके भवन ॥ ३ ॥

दोहा-जय जय जय श्रीराधिका, जय श्रीनन्दकुमार ।
जय जय गोपी गोप सब, मम उर करहु विहार ॥ १ ॥
पहिले में द्विज शापसे, कनककशिपुकर क्रोध ।
भक्त पुत्र प्रह्लादसे, राखन लग्यो विरोध ॥ २ ॥

राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! हे ब्रह्मन् ! श्रीभगवान् सब जीवमात्रको समदृ-ष्टिसे देखते हैं और सबके प्रिय और सुहृद्रूप हैं फिर इन्द्रके लिये दैत्योंको क्यों मारा ? इस बातसे विषम भाव ईश्वरमेंभी विदित होता है ॥ १ ॥ साक्षात् सच्चिदानन्दरूप विमल

और दिव्यस्वरूप जिनकी आत्मा, उनको न तो कुछ देवताओंसे प्रीति न कुछ असुरोंसे शत्रुता और कुछ उनसे उद्वेगभी नहीं है क्योंकि वह तो निर्गुण हैं ॥ २ ॥ हे सुमहाभाग ! श्रीनारायणके गुण विचारकर हमको बडा भारी सन्देह उत्पन्न हुवा है, इस मेरे संशयको दूर करदीजे क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे महाराज! भगवत्के अद्भुत चरित्रोंके विषयमें आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, जहाँ भागवतका माहात्म्य है वह वहाँ सदा भगवान्‌की भक्तिका बढानेवाला है ॥ ४ ॥ सो उस पावन (पवित्र) अद्भुत चरित्रको परमपुण्य श्रीनारदादि ऋषियोंने गाया है. सो श्रीवेदाचार्य, वेदप्रवर्तक महामुनि व्यासजीको नमस्कार करके श्रीभगवान् वासुदेवकी कथा वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ जो पुरुष श्रेष्ठजिह्वा पाकर श्रीविष्णुभगवान्‌का कीर्तन नहीं करते और मोक्षकी सीढीको पाकरभी उसपर नहीं चढते, उनको दुष्टबुद्धि समझना चाहिये ॥ ६ ॥ इसलिये श्रीगोविन्दका माहात्म्य आनन्दरस सहित सुन्दर है, जो पुरुष इसको सुनते हैं अथवा कीर्तन करते हैं, वह धन्य हैं और कृतार्थ हैं, इसमें किंचिन्मात्रभी सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ इसलिये बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि, श्रीगोविन्दके चरित्रोंसे परिपूर्ण भरी हुई पुण्यदायक श्रीयदुनायककी कथाको मन लगाकर सुनें. हे नृपसत्तम ! वह महापुण्यकी देनेवाली है ॥ ८ ॥ यद्यपि ईश्वर अपनी प्रकृतिसे परे अजन्मा, निर्गुण, अज, अव्यक्त और सब संसारसे पृथक्‌भी हैं तोभी अपनी मायाके गुणोंमें प्रवेशकर मित्र और शत्रुभावको प्रगटकर, मरनेवाला और मारनेवाला भली भाँति विदित होताहै ॥ ९ ॥ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, यह प्रकृतिके गुण हैं. कुछ आत्माके गुण नहीं हैं और जो यह गुण परमात्मामें होंय तो प्रकृति पुरुषकी नाईं परमात्मामेंभी विषमता होनी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होसक्ता है. हे राजन् ! उनमें कभी कोई गुण बढजाता है, कभी कोई गुण घटजाता है ॥ ॥ १० ॥ जयके समय सतोगुण बढकर देवता और ऋषियोंको बढाता है, पराजयके समय रजोगुण बढकर असुरोंकी वृद्धि करता है, और जब तमोगुण बढता है तब यक्ष राक्षस दोनोंकी अधिकता होती है, जिस २ समय जैसा जैसा होता है उस उस समयके अनुसार भगवान् वैसेही होजाते हैं ॥ ११ ॥ जैसे पावक एक रूप है, परन्तु काष्ठादिकमें अनेक रूपसे दृष्टि आता है, जैसे जलका एकही रूप है, परन्तु रंगोंमें मिलकर अनेक प्रकारका भासने लगता है. ऐसेही भगवान् एकरूप हैं, परन्तु ज्योति आदिकी नाईं प्रकाश करते हैं, किसीके संग पृथक् २ प्रतीत नहीं होते परन्तु देवता, दैत्य, असुरोंमें अलग अलग दिखाई देते हैं, आत्मामें स्थित हो आत्माको मथनकर महात्मा लोग हृदयमें भगवान्‌का दर्शन करते हैं । विना मथन किये दारुसे अग्नि प्रगट नहीं होती, ऐसे विना आत्मा का मथन किये भगवान् प्रगट नहीं होते ॥ १२ ॥ जैसे भूमिके भागोंके संयोगसे पानी मीठा खारा और मैला होजाता है, ऐसेही मायाके संगसे सतोगुण आदिभेदत्रयभाव युक्त परमात्मा परपुरुष होता है ॥ १३ ॥ जिस समय परमेश्वरकी इच्छा प्रजाके रचनेकी होती है, तब वह अलग अपनी माया करके रजसे परे जो देह है, भगवान् उस देहरूप

पुरको रचते हैं जब विचित्र पुरियोंमें रमण करनेकी इच्छा होती है तव सतोगुणकी अधिकता करते हैं, जब शयनकी इच्छा होती है तब तमोगुणको अधिक करते हैं ॥ १४ ॥ हे नरदेव ! प्रधान पुरुषसे सत्यकर्ता ईश्वर सबके आश्रय विचरते हैं और कालको आपही रचते हैं । हे राजन् ! जब यह कालके ईश्वर सतोगुणकी वृद्धिके समय देवताओंको रचकर बढाते हैं ॥ १५ ॥ देवता जिनको परम प्रिय सो महायश ईश्वर देवताओंके शत्रु होकर असुरोंको रजोगुणके समय बढाकर मारते हैं, जो यह ईश्वर निश्चय करके तमोगुण बढाकर यक्ष और राक्षसोंको बढाते हैं और संहार करते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! राजसूययज्ञमें जिस राजा युधिष्ठिरका कोई शत्रु नहीं था उस राजा युधिष्ठिरने ऐसेही प्रश्न किया था तब युधिष्ठिरपर प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्वक श्रीनारदजीने यह इतिहास कहा था ॥ ॥ १७ ॥ राजसूययज्ञमें महाअद्भुत चरित्र राजा युधिष्ठिरने देखा कि चेदिदेशके नरेश शिशुपालको भगवान्‌ने चक्रसे मारा और शिशुपाल भगवान् वासुदेवमें सायुज्य मोक्षको प्राप्त होगया ॥ १८ ॥ उसी समय उस यज्ञमें सब मुनिजनोंके सन्मुख पाण्डुसुत राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त विस्मित होकर, बैठे हुए देवर्षि नारदजीसे पूछा ॥१९॥ युधिष्ठिर बोले कि जो परमतत्त्वरूप भगवान् वासुदेवकी प्राप्ति परमएकान्त महात्मा पुरुषोंको मिलनी अत्यन्त दुर्लभ है सो निरन्तर विद्वेषी शिशुपालको प्राप्त हुई यह बडे आश्चर्यकी बात है ? ॥२०॥ हे मुने ! इस सब बातके सुननेकी मुझको अत्यन्त अभिलाषा है. देखो ! भगवान्‌की निन्दा करनेसे राजा वेणुको ब्राह्मणोंने नरकमें डाल दिया था ॥ २१ ॥ उसी प्रकार इस दमघोषके पुत्र महादुर्बुद्धि शिशुपालको भी नरकमें डालना चाहिये था, देखो ! यह चाण्डाल शिशुपाल और दन्तवक्र जिस दिनसे जन्म लिया उस दिनसे आज तक श्रीगोविन्दसे दुर्भावही रखते थे और उनकी निन्दाकरता रहते थे ॥ २२ ॥ और वारम्वार साक्षात अविनाशी परब्रह्म विष्णु भगवान्‌को गालियें देते रहते थे, फिर जब ऐसे क्रूर कर्मी थे तो उनकी जीभमें कोढ होकर क्यों न गलकर गिरगई ? और नरकमेंभी नहीं गये, इसका क्या कारण ? ॥ २३ ॥ देखो ! जिनके स्वरूपकी प्राप्ति होनी योगीजनोंको भी महा दुर्लभ है, उन भगवान्‌में विना प्रयत्न किये सबके देखते देखते कैसे लीन होगये ? भला यह बात ध्यानमें आनेके योग्य है? ॥ २४ ॥ इस आश्चर्यको देखकर हमारी बुद्धि अत्यन्त चकित हो रही है, जैसे दीपककी शिखा पवनके लगनेसे स्थित नहीं रहती, इस वातका भेद मुझको निश्चय समझाकर कहो जो मेरे चित्तको शान्ति हो, क्योंकि इस बातके जाननेमें तुमही मुख्य कारण हो ॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, श्रीनारदजी राजा युधिष्ठिरका यह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, और सब सभाके सभासदोंके सुनते जो कुछ कथा कहने योग्य थी सो सुन्दर कथा कहने लगे ॥ २६ ॥ श्रीनारदजी बोले कि–निन्दा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार, इत्यादि बातोंके लिये प्रधानपुरुष परमात्माकी देहको जो मानना है वह देह अज्ञानसे कल्पित है ॥ २७ ॥ हे पार्थिव ! हिंसा, अभिमान, दण्ड, कठोर वचन कहने, मेराहै, मैंहूं, यह बातैंतो अभिमानी संसारके जीवोंमें हैं, ऐसी बातें ईश्वरमें

कभी नहीं होसक्ती ॥ २८ ॥ जिस शरीरमें इसने अभिमान मान रक्खा है, उसी शरीरसे प्राणियोंका बन्धन है, वैसेही उसको जान पडता है, कि, मेरा वध हुवा ऐसे परमेश्वरको नहीं होता, क्योंकि परमात्मा आप कैवल्यरूप सबका आत्मा है इसलिये उसके देहाभिमान और विषमता नहीं है, भगवान् सदा दैत्योंको दण्ड देते हैं और उनका वध करते हैं, परन्तु वहभी उनके ऊपर दयाहीहै, कुछ शत्रुभावसे उनका बुरा भला नहीं विचारते और कोई कल्पना करैं कि, ईश्वरको पीडा होतीहै ? नहीं; यह सम्पूर्ण भ्रम है, जब आत्मा ईश्वरमें होय तो मोक्ष होती है, जो सबके दमनकरानेवाले भगवान् हैं वह किसीकी निन्दा नहीं करते और किसीको नहीं मारते इसलिये वैरसे, भक्तिसे, भयसे, प्रीतिसे, कामसे, मुक्तिके यह पाँच उपाय हैं, जैसे होसके वैसे ईश्वरमें मन लगाना, वह सच्चा न्यायकारी है, किसीको दुर्भावसे नहीं देखता, सबको एकसा देखता है. इसीसे उसका नाम समदर्शी है ॥ २९ ॥ ३० ॥ चाहै प्रेमसे चाहै वैरसे चाहै कामसे परमेश्वरको किसी प्रकारसे भजै, परन्तु परमेश्वर शुभ गतिही देता है, और वैर करनेसे प्राणी जैसा परमेश्वरमें लीनहोजाता है ॥ ३१ ॥ ऐसा भक्तियोगसे परमेश्वरमें तन्मय नहीं हो सक्ता, ऐसा हमारा निश्चय मत है, भ्रमरी जिस कीडेको पकडकर अपने छिद्रके भीतर लेगई, वह कीडा क्रोधसे और भयसे भ्रमरीरूपही हो जाता है ॥ ३२ ॥ ऐसेही क्रोधसे भयसे उनहीके समानभावको जीव प्राप्त हो जाता है. इसीलिये विष्णु भगवान्ने माया करके श्रीकृष्ण अवतार धारण किया ॥ ३३ ॥ उनसे वैर बाँधकर पापी पावन और पवित्र होकर मुक्त हुए और उनही श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दमें शिशुपालादिकसे सहस्रों लय होगये इसलिये कामसे, वैरसे, भयसे, स्नेहसे ईश्वरमें मन लगावै ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णमें मन लगाकर अनेक मनुष्य उनकी गतिको प्राप्त हुए, गोपी तो कामसे ईश्वरको प्राप्तहुई, कंस भयसे मुक्त होगया, शिशुपाल आदिक नरेश वैर करनेसे वृन्दावनविहारी कृष्णमुरारीमें लय होगये ॥ ३५ ॥ सम्बन्ध विवाहादिकसे यादव भगवत् लोकको चलेगये, स्नेहमें युधिष्ठिर अर्जुनादिक आप सब मुक्त होगये, विभुकी भक्तिसे हम मुक्त हुए, इन पाँचोंमें राजा वेणु तो कुछभी नहीं था इसलिये वह नरकमें पडा ॥ ३६ ॥ इसलिये कीसी प्रकारसे श्रीकृष्ण बाँकेविहारीमें मन लगाना चाहिये. पाण्डव ! तुम्हारी फूफीका पुत्र शिशुपाल और दन्तवक्र था ॥ ३७ ॥ यह दोनों विष्णुके पार्षदोंमें श्रेष्ठ थे वह विप्रोंके शापसे अपने स्थानसे गिरपडे ॥

दोहा–तातै इन की मुक्तिमें, कौन अहै सन्देह ।
पापिहु हरि सों वैरकर, पावहिं गति तज देह ॥

धर्मराज राजायुधिष्ठिर नारदजीकी वाणी सुन विस्मित होकर बोले, युधिष्ठिर बोले कि, भगवान्के दास तो एकान्तके रहनेवाले हैं उनको शाप किसने दिया ? और किस कारण दिया ? ॥ ३८ ॥ यह बात किसी प्रकार हमारे ध्यानमें नहीं आती, कि हरिके एकान्ती भक्तोंका संसारमें जन्मलेना,हो क्योंकि वैकुण्ठके वासी तो देह इन्द्रिय प्राण रहित और सब

अप्राकृत हैं ॥ ३९ ॥ उनके शरीर मायाके नहीं हैं, तो वह मायाके सम्बन्धी कैसे हुये ? यह सब वृत्तान्त मुझे समझाकर कहो. नारदजी बोले कि, एकसमय ब्रह्माके पुत्र सनकादिकने विष्णुलोकके जानेकी इच्छा की ॥ ४० ॥ त्रिलोकीमें भ्रमण करते करते वैकुण्ठलोकमें गये, सो मुनि कैसे थे ? देखनेमें तो पांच छः वर्षके बालक विदित होते थे परन्तु अवस्थामें मरीचि आदि ऋषियोंसेभी बडे थे ॥ ४१ ॥ उनका दिगम्बर वेष देख और बालक जानकर भगवान्के द्वारपाल जय और विजयने उनको भीतर नहीं जाने दिया, द्वारपरही रोकलिया तब तो उन्होंने महाक्रोध करके जय विजयको शाप दिया कि, तुम वैकुण्ठमें रहनेके योग्य नहीं हो ॥ ४२ ॥ क्योंकि शुद्ध सत्व विष्णु भगवान्के चरणारविन्द, रज तमसे रहित हैं, फिर तुमको तमोगुण कैसे आया ? इसलिये हे मूर्खो ! अभी तुम असुरयोनिको प्राप्त हो मृत्युलोकमें विचरो ॥ ४३ ॥ जब सनकादिकने उनको इस प्रकारका शाप दिया तो पार्षद, वैकुण्ठसे नीचे गिरनेको हुये, उस समय उनपर दयालु हो, उन परमदयालु सनकादिकने कहा, कि हे द्वारपालो !

दोहा-तीनजन्मभर पायहो, असुरयोनि महिमाहिं ।
पुनि ऐहो वैकुण्ठपुर, यामें संशय नाहिं ॥ ४४ ॥

यह दोनों द्वारपाल पृथ्वीपर आनकर, दैत्य और दानवोंके परमपूज्य कश्यपमुनिकी स्त्री दितिके पुत्र हुये, जिनमें ज्येष्ठपुत्र हिरण्यकशिपु, और छोटा हिरण्याक्ष यह दोनों महाबलवान् और बडे पराक्रमी हुये और दैत्योंने अपना अध्यक्ष बनाया ॥ ४५ ॥ इनकी अनीति देख हरिने नृसिंह अवतार धारणकर हिरण्यकशिपुको मारा और पृथ्वीको उद्धार करनेके समय वाराह अवतार धारण करके हिरण्याक्षका वध किया ॥ ४६ ॥ हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको जो कि, सब धर्मोंका मर्यादा और कृपापात्र, श्रीनारायणका परमप्रिय भक्त था, उसके मारनेके लिये नाना प्रकारके कष्ट और त्रास दिखाये ॥ ४७॥ सर्वान्तर्यामी विश्वात्मा भगवान् जिसके हृदयमें स्थित प्रशान्त, समदर्शी और भगवत्के तेजसे स्पष्ट हुये प्रह्लादको मारनेके लिये हिरण्यकशिपुने सहस्रों उपाय किये, परन्तु परमेश्वरकी कृपासे प्रह्लादका बाल भी बाँका नहीं हुवा ॥

दोहा-सभामध्य प्रह्लादपर, करके कोप महान ।
मारनको ठाढो भयो,काढि कराल कृपान॥

ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके शूल दिखाये ॥ ४८ ॥ फिर उन दोनों पार्षदोंने विश्रवा ऋषिकी भार्या केशिनीमें जन्म लिया, और रावण, कुम्भकर्णनामसे संसारमें प्रसिद्ध हुये और अपनी बाहुबलसे त्रिलोकीको जीत देवताओंको भयभीत कर दिया ॥ ४९ ॥ उस समयभी श्रीनारायणने राजा दशरथ की पत्नी कौशल्यामें रामचन्द्र अवतार लेकर शापमोचन करनेके लिये लंकामें जाकर दोनोंका वध किया. हे प्रभो ! मार्कण्डेयजीके मुखसे आप रामचरित्र सुनोगे ॥ ५० ॥ वह दोनोंने अब तीसरे बार क्षत्रियवंशमें जन्मले तुम्हारी माताकी भगिनीके सुत शिशुपाल और दन्तवक्र नामसे विख्यात हुये उनको श्री

द्वारकानाथने चक्र सुदर्शनसे मार निष्पापकर सनकादिकके शापसे मुक्त कर दिया ॥ ५१ ॥ तीव्र वैर करनेसे और रात दिन भगवान्‌के ध्यानमें रहनेसे श्रीनारायणकी समताको प्राप्त हुये और फिर यह दोनों पार्षद हरिके निकट पहुँचे ॥ ५२ ॥ युधिष्ठिर बोले कि, हे भगवन् ! दैत्यवंशमें भगवद्भक्त प्रह्लाद कैसे उत्पन्न हुये ? और ऐसे सुबुद्धि महात्मा अपने प्यारे पुत्रपर हिरण्यकशिपुने किसलिये विद्वेष किया ? और प्रह्लादको हरिकी भक्ति कैसी प्राप्त हुई ? सो प्रह्लादचरित्र कृपा करके मुझसे कहो ॥ ५३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा—इस द्वितीय अध्यायमें, असुर कियो हरि द्रोह ।
भ्राताको सुत देखकर, उपजो मनमें मोह ॥

नारदजी बोले, कि–हे राजन् ! वाराहरूपधारी भगवान्‌ने इन्द्रके सहायके लिये मेरे भाई हिरण्याक्षको मारा, इसलिये हिरण्यकशिपुने अपने मनमें बडा शोक संताप किया ॥ ॥ १ ॥ और क्रोधसे जिसके नेत्रोंमेंसे अग्निकी लपटें निकलने लगीं, दाँतोंसे होठोंको चावने लगा कोपमें जलते हुये नेत्रोंसे, आकाश जो क्रोधाग्निके धुयेंसे धुआँधाड हो रहा था, उसकी ओरको देखकर बोला ॥ २ ॥ महा विकराल कालरूप दाढें, भयानक दृष्टि और वैसेही भयंकर बंक भ्रुकुटी कपालको चढीहुई के कारण उसके भयावने मुखकी ओरको किसीसे भयके मारे देखा नहीं जाता था, इस प्रकार क्रोधमें भराहुवा शूलको उठाय सभामें आय दैत्योंसे ललकार कर बोला ॥ ३ ॥ कि,हे दानवो ! हे दैत्यो ! हे द्विमूर्द्धा ! हे त्र्यक्ष ! हे शंबर ! हे शतबाहु ! हे हयग्रीव ! हे नमुचे ! हे पाक ! हे बिल्वक ! ॥ ४ ॥ हे विप्रचित्ते ! हे पुलोमन् ! हे शकुनादिको ! मेरा वचन सुनो, और जो मैं कहूं सो सुनो और शीघ्रकरो विलम्ब मतकरो ॥ ५ ॥ देखो भाई ! विष्णुभगवान् सबको समान मानते हैं, परन्तु मेरे क्षुद्र शत्रु देवताओंने उनकी बहुत टहलटकोरी करके अपना पक्षपाती बनाया. तब उसने महानीच शूकरका रूप धरकर कपटसे मेरे भाई हिरण्याक्षको मार मुझसे शत्रुता ठानी ॥ ६ ॥ और अपने सुन्दर समदर्शी स्वभावको छोड मायासे निर्दयी वाराहरूप धारण किया और जो उसको भजते हैं उसको वहभी भजता है, बालककी सदृश उसका मन चंचल है ॥ ७ ॥ जब तक उस निर्दयी वनवासी शूकर वपुधारीकी गर्दन मैं अपने त्रिशूलसे निर्मूलकर बहुतसे उसके रुधिरसे अपने रुधिर प्रिय भ्राताको तर्प्पण करके तृप्त न करलूंगा तब तक मेरा मन सब व्यथासे निश्चिन्त नहीं होगा और सब सन्ताप और परिताप नहीं मिटेगा ॥ ८ ॥ जब वह महाकपटी विष्णु नष्ट होजायगा तो जैसे वनस्पतिका मूल कटनेसे उसकी शाखा आपसे आप सूख जाती हैं, ऐसेही विष्णु जिनके प्राण वह देवताभी आपसे आप नष्ट होजाँयगे, क्योंकि इनका जीवनमूल विष्णुही है ॥ ९ ॥ जबतक मैं उसके मारनेका उपाय करूं तबतक तुम ब्राह्मण और क्षत्रिय जिस पृथ्वीपर बहुत बढगये हैं, उस पृथ्वीपर जाकर तप, जप, यज्ञ, वेद पाठ,

व्रत और दान करनेवालोंका वध करो ॥ १० ॥ क्योंकि यज्ञरूप, धर्म और ब्राह्मणोंकी क्रिया, विष्णुका मूल है और देवता, ऋषि, पितृ, भूत और धर्म, इनका परायण विष्णुही है ॥ ११ ॥ और जहाँ जहाँ ब्राह्मण, गौ, वेद, वर्णाश्रम, धर्मके कर्ता और कर्मकाण्डी होय, उन उन देशोंमें आग लगादो और सबको मारडालो ॥ १२ ॥ क्योंकि वह लोग मुझको कुछ नहीं समझते और विष्णुका पूजन करते हैं, इस लिये उन सबको मारनाही उचित है, उसी समय अपने नाथकी आज्ञा शिरपर धारणकर हिरण्यकशिपुसे आदर सत्कार पा, प्रजाका विध्वंस करना जिनको अत्यन्त प्रिय था वह दानव दैत्य प्रजाका विध्वंस करने लगे ॥ १३ ॥ और पुर, ग्राम, व्रज, उद्यान, क्षेत्र, वाटिका, आश्रम, खान, किसानोंके निवासस्थल, पर्वतकी कन्दरा, उनके नीचेके स्थान, घोष और राजधानी इत्यादि सबमें आग लगाने लगे॥१४॥और कोई कोई दैत्य कुदालोंसे सेतु, प्राकार, गोपुर, द्वारोंको तोडने लगे, कोई कोई फरसे हाथोंमें लेकर उन वृक्षोंको काटने लगे कि, जिन वृक्षों से आजीविका होय अर्थात् आम, जामुन, कदली, नासपाती, इत्यादि ॥ १५ ॥ कोई कोई जलती हुई लकडियें हाथमें लिये प्रजागणोंके घरोंको ठोक ठोककर जलाने लगे, वही राक्षस कलियुगमें मनुष्य जन्म धारण करके सद्वैदिक धर्मोंकी निन्दा करेंगे ॥ १६ ॥ दैत्येन्द्रके भृत्योंने जब संसारमें इस प्रकारका उपद्रव मचाया तो देवता लोग अलक्षित हो स्वर्गको त्याग भूमिमें पर्यटन करनेलगे और हिरण्यकशिपु भाईके मरनेसे महादुःखी हो उसकी दाहादिक क्रिया कर तिलांजली दे भाईके पुत्रोंको सांत्वन किया है ॥ १७ ॥ १८ ॥ फिर शकुनि, शंवरासुर, धृष्ट. भूत संतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच ॥ १९ ॥ नाम असुर, भ्रातृज और उनकी माता रुसाभानुको और अपनी माता दितिको समझा बुझाकर देश कालका जाननेवाला सब असुरोंका अधिष्ठाता यह कहनेलगा ॥ २० ॥ हिरण्यकशिपु बोले कि, हे जननी ! हे वधू ! हे पुत्रो ! उस बलशाली महावी-रका शोक मतकरो, क्योंकि जिस वीरका शत्रुके सन्मुख मरण होय वह शूर सराहना करने योग्य है, इस बातको हम बहुत अच्छा समझते हैं ॥ २१ ॥ हे सुव्रते ! भूतोंका जो इस संसारमे सम्बन्ध है कर्मों करके एकत्रित होजाते हैं और अपने कर्मोंसेही बिछुड जाते हैं, इस संसारमें संग ऐसा है, जैसे प्याऊपर पानी पीनेके लिये एकत्रित हो जाते हैं और पानी पीपीकर सब अपने अपने मार्गको चले जाते हैं ॥ २२ ॥ देखो ! इस आत्माका कभी नाश नहीं होता, यह अनेक योनियोंमें निवास करताहै और देहादिकोंसे भिन्न है, इसलिये इसको किसी प्रकारका भय नहीं, क्योंकि यह तो सदा शुद्ध, अविनाशी, अव्यय, सर्वगत, सबका आत्मा, परेसेपरे जो परमात्मा है उसकी माया करके गुणोंका त्यागकर सब-के आत्माओंके स्वरूपोंको धारण करता है ॥ २३ ॥ जैसे कोई पुरुष जलमें नौकापर बैठ-कर चलै तो उसको नदीके तटके सब वृक्ष चलते हुये दिखाई देते हैं, जैसे मनुष्य गोल-चक्र बाँधकर घूमे तो उसके नेत्र घूमने लगतेहैं परन्तु उसको भूमि घूमती प्रतीत होती है,

ऐसेही गुणोंकी उपाधिसे लिंग शरीर विचरता रहता है इसलिये यद्यपि आत्मा सदा शुद्ध-रूप है, तो भी अज्ञानी लोगोंने उसका जीवन मरणमान रक्खा है ॥ २४ ॥ हे भद्रे ! आत्माका और लिंग शरीरका सम्बन्ध नहीं है,मनमें ऐसे गुणोंके घूमनेसे अविकल पुमान् उनकी समान भावको प्राप्त होता है,ऐसेही ईश्वरशरीरसे रहित है ॥ २५॥आत्माका उलट पलट होना जैसे शरीरसे आत्माका कुछभी सम्बन्ध नहीं है, तोभी कहता है, मैं देह हूं, यह देह मेरी है, ऐसे चित्तमें निश्चय कर लेना यही अज्ञानता है प्रिय अप्रियपन अर्थात् प्रिय वस्तुका वियोग और अप्रिय वस्तुका संयोग यही है, इनहींके कारण अनेक योनियोंमें जन्म लेता है ॥ २६ ॥ उत्पन्न होना, नाश होना, अनेक प्रकारका शोक करना, अज्ञान, सोच, विचार, स्वरूपकी चेष्टा, यह सब शरीरके अभिमानहीके विकार हैं ॥ २७ ॥ इस प्रसंगके उदाहरणके लिये एक पुरातन इतिहास यमका और मृतक शरीरके समीप बैठे हुये सम्बधियोंका है वह तुम सुनो ॥ २८ ॥ उशीनरदेशमें सुयज्ञ नामक एक प्रसिद्ध नरेश था शत्रुओंने उसको युद्धमें मारडाला तब उसके सब सम्बन्धियोंने चारों ओरसे उसको घेर लिया और रोने पीटनेलगे ॥ २९ ॥ उसका रत्नजटित कवच टूट गया था, अलंकार और मालाके मोती बिखर गये थे, बाणोंसे हृदय उसका बिंध रहा था, रुधिरमें सब शरीर डूबा पडा था ॥ ३० ॥ बाल शिरके बिखर रहे थे, आँखें खुलीकी खुली रहगईं थीं, होठोंको दाँतोंसे चाबतेका चाबता रहगया था, मुखकमल धूलके उडनेसे मलीनसा होरहा था और समर भूमिमें आयुध और भुजा उसकी कटगई थीं ॥ ३१ ॥ विधाताने जब उसकी यह दुर्दशा करदी तब उसकी रानियें अपने पतिकी यह दुर्गति देख, अत्यन्त दुःखितहो रोरोकर कहनेलगीं कि, हे प्राणनाथ ! हम मरीं फिर दोनों हाथोंसे छाती पीटती पीटती उसके पाँवोंमें जापडीं ॥ ३२ ॥ और उच्च स्वरसे रुदन जो किया तो स्तनोंकी कुमकुम धुल धुलकर आँसुवोंसे जले हुये रक्तकी सदृश जो गिरते थे उनहीं आँसुवोंसे अपने पतिके चरणारविन्दोंको सींचरही थीं, केश और आभूषण उनके बिखर रहे थे, उनके कठिन विलापोंको सुन सुनकर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें शोक उत्पन्न होता था ॥ ३३ ॥ अरे विधाता निर्दयी ! तैंने हमारे स्वामीको दृष्टिसे अगोचर करदिया जो पहिले उशीनरदेशके रहनेवालोंको जीविका देनेवाले थे, हाय ! वह आज उन लोगोंके शोकके देनेवाले हो गये ॥ ३४ ॥ हे महीपते ! तुम सरीखे सुहृद् विना हम जीकर क्या करेंगी ? इसलिये हे प्राणपति ! जहां आपके जानेकी इच्छा हो वहाँ हमकोभी अपने साथ ले चलो, क्योंकि वहाँ आपके चरणोंकी सेवा कौन करैगा ॥ ३५ ॥ इस प्रकार सब रनिवासकी रानियें अपने मृतक पतिका शिर गोदीमें धरके रोरो कर विलाप कर रहीं थीं और उसका संस्कार नहीं करने देती थीं, इसी रोवापीटीमें सूर्य अस्त होगया ॥ ॥ ३६ ॥ तब उस राजाके शवके समीपके बैठनेवालोंका रोना सुन, यमराज बालकका रूप धरकर वहाँ आये और उन लोगोंसे कहा ॥ ३७ ॥ यमराज बोले कि, हे मनुष्यो ! तुम सब मुझसे बहुत बडे हो और सदासे संसारके लोगोंका जीवन मरण देखते आये हो

इतनेपरभी तुम लोगोंको बडा भारी मोह है, यह पुरुष जहाँसे आया था वहाँ चलागया, अब तुम लोगोंका सोच विचार करना वृथा है ॥ ३८ ॥ तुमसे तो हमही बहुत अच्छे हैं जो हमारे माता पिताने इस बाल्य अवस्थामें अकेला त्याग दिया, और हम वनमें मारे मारे फिरे रहे हैं तोभी किसी बातका सन्देह नहीं और सिंह व्याघ्रादिकभी हमें कोई नहीं खाता. हमको निश्चय है कि जिस परमेश्वरने गर्भमें हमारी रक्षा की है वही सब ठिकाने हमारा रक्षक है ॥ ३९ ॥ जो अविनाशी पुरुष अपनी इच्छा करके इस प्राणीको रचता है वही इसकी रक्षा करता है वही संहार करताहै. हे स्त्रियो ! यह सब चराचर जीवात्मक उस परमात्माका खिलौना है. इसलिये सबका मारने जिलानेवाला प्रभु ईश्वरही है ॥ ४० ॥ देखो ! जो मार्गमें पडे हुए हैं उनकी रक्षा परमात्मा करता है. उनको कोई नहीं मार सक्ताहै. और जिनकी आठों पहर अत्यन्त रक्षा होतीहै और घरहीमें बैठे रहते हैं वह मरजातेहैं, जिनका कोई पालन पोषण करनेवाला नहीं और अनाथ है, वनमें अकेले पडेहैं और परमात्माकी उनपर दृष्टि है तो वह सदा आनंद करते हैं, और जिनकी घरमें सब रक्षा करतेहैं और परमात्माकी रक्षा नहीं, वह किसीप्रकार जी नहीं सक्ता ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार जीव अपने कर्मोंके अनुसार समय पाकर जन्मते हैं और कर्मोंही करके मरते हैं यद्यपि आत्मा मायामें स्थित है परन्तु तौभी मायाके गुणोंसे सम्बन्ध नहीं रखता, जीवही बन्धनमें आकर नष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥ जैसे यह देह अज्ञानसे परमात्मारूप दृष्टि आता है, परन्तु विचार करके देखो तो वह आत्मा सबसे भिन्न है जैसे प्राणी मट्टीके घरमें रहता है और वह अज्ञानी उसको अपना मानताहै परन्तु वास्तविकमें वह घर उससे भिन्न है,ऐसे आत्मरूप अनुमान किया हुआ यह देहभी आत्मासे भिन्नहै,जलसे उत्पन्न हुए जलके ववूलेकी नाईं और पृथ्वीसे उत्पन्न हुए घटादिककी तुल्य और सुवर्णसे उत्पन्न हुए कडे कुंडल इत्यादिकी सदृश, कोई समय पाकर बनजाते हैं, जब उनका विकार नहीं रहता तो फिर कुछ कालोपरान्त सब विनश जाते हैं, ऐसेही जीवको जानो, कुछ शरीरके नाश होनेसे आत्माका नाश नहीं होता ॥ ४३ ॥ जैसे अग्नि काष्ठसे भिन्न प्रतीत होता है, और उसीमें व्याप्त रहता है, जैसे पवन देहसे विगत जान पडता है, और देहहीमें स्थित रहता है, जैसे आकाश सर्वगत है परन्तु किसीमें आसक्त नहीं होता ऐसे ही यह अत्मा शरीरमें वास करनेपरभी शरीरादिकके जन्म मरणादिक गुणोंमें आसक्त नहीं होता ॥ ४४ ॥ हे मूर्खो ! यह सुयज्ञ तुम्हारा अधीश तुम्हारे सन्मुख सो रहा है, फिर तुम शोक किसका करते हो ? और जो तुमको यह सन्देह हो कि,अभी तो यह बोलता था और सुनता था और अब नहीं बोलता, इस बातका शोक करते हैं सो इस बातका शोक करना तुम्हारा व्यर्थ है. क्योंकि जो श्रोता और वक्ता इस देहमें है उसको तो तुमने देखाही नहीं था, उसका शोच करना क्या ? ॥ ४५ ॥ न तो इस देहमें कोई सुननेवाला है न कोई बोलनेवाला है,केवल मुख्य इसमें एक महाप्राण है, जो इन्द्रियोंके द्वारा वासनाका ग्राहक आत्मा है सो वह इस शरीरसे सम्बन्ध नहीं रखता ॥ ४६ ॥ भूत, इन्द्रिय, मन, लिंग, उच्च नीच, देहोंको

धारण करता है और त्यागता है और आत्मा सबसे पृथक् है, तोभी प्राण, इन्द्रिय, मनके सम्बन्धसे भिन्न भिन्न देहोंको ऐसे मानता है कि ' मैंहूं, मेराहै ' तवहीं तक क्लेश सहता है और जव इसको ज्ञान हो जाता है तव सब अभिमान तज निष्कलंक होजाता है ॥ ॥ ४७ ॥ जबतक लिंगशरीरके संग आत्मा है तवहींतक उसको कर्मोका बन्धन है और विपर्यय आदि क्लेश माया योग वर्ते है ॥ ४८ ॥ यह सब झूँठा भाव है, गुणोंमें अर्थकी दृष्टिका वचन मानना और सुख दुःखको आत्माका धर्म मानना और उसहीमें लिप्त रहना, यह वृथा मन लगाना है और इन्द्रियसम्बन्धी जो अनित्य पदार्थ आत्मामें प्रतीत होते हैं, वह सब मनोरथ स्वप्नवत् व्यर्थ हैं, इसलिये महात्मा पुरुष आत्मा और शरीरादिके सम्बन्धको अनित्य समझकर किसी बातकी चिन्ता नहीं करते ॥ ४९ ॥ जो लोग नित्य अनित्यका विचार करनेवाले हैं, वह नित्य अनित्यका सोच नहीं करते, क्योंकि जो भवितव्यता है वह किसी प्रकार मिटही नहीं सक्ती, फिर शोक सन्ताप करनेसे क्या प्रयोजन ? इसलिये पुरुषको चाहिये कि, किसी प्रकारका उपाय न करे क्योंकि इसका कोई उपायही नहीं ॥५०॥ शोकग्रस्त मनुष्योंके चित्त शान्त करनेके लिये एक दृष्टान्त कहते हैं. परमेश्वरका रचा हुवा पक्षियोंका मारनेवाला महाभयंकर लुब्धक नाम एक व्याध था, वह जहाँ तहाँ पक्षियोंके फाँसनेके लिये जाल फैला तन्दुलोंका लोभ दिखाकर सदा जीवोंको मारा करता था ॥ ५१ ॥ एकदिन उसने एक कुलिङ्ग पक्षीका जोडा वनमें विचरता देखा और उसकी कुलिङ्गिनीको लुब्धकने उसीसमय लुभाय लिया ॥ ॥ ५२ ॥ कालविवश वह कुलिङ्गिनी उसके जालमें फँसगई, उसको फँसी देखकर वह कुलिङ्ग अत्यन्त व्याकुल हुवा और अनेक प्रकारके विलाप करनेलगा ॥ ५३ ॥ स्नेहसे छुडानेमें असमर्थ कृपण उस अपनी पत्नीको दुःखित देख महाशोक करनेलगा और बोला कि, अहो दैव ! तू बडा निर्दयी है, जो ऐसी दयावाली स्त्रीसे मेरा वियोग करादिया ॥ ॥ ५४ ॥ मुझ कृपण शोक करनेवालेको यह दीन क्या कर सक्ती है, ऐसे कठिन दुःखसे मुझेभी ईश्वर अब उठाले, क्योंकि आधे शरीरसे मेरा क्या प्रयोजन निकलेगा? ॥ ५५ ॥ इस बिचारी दीन दुखियाके दुःख करनेसे क्या होगा, देखो ! अभी इन छोटे छोटे बच्चोंके पंखतकभी नहीं निकले, हाय ! आज वह विना जननीके होगये उन माता विहीन बच्चोंको मैं कैसे रक्खूंगा और कौन उनका पालन करेगा ? ॥ ५६ ॥ अरे मन्दबुद्धि विधाता ! वह कोमल पंखहीन बच्चे घोंसलेमें बैठे हुए अपनी माताकी बाट देख रहे होंगे कि, हमारे खानेके लिये कुछ भोजन लाती होगी सो वह अपनी जननीका मरण सुन क्या करैंगे और कैसे धैर्य धरेंगे ? और मैं विना प्राणप्यारीके कैसे जीऊंगा ? हाय!आज मेरा सब गृहस्थाश्रम नष्ट होगया॥५७॥इस प्रकार अपनी प्यारी पत्नीके वियोगसे आतुर हो विलाप करता और आँखोंसे आँसू बहाता जालके पासको गया, तब कालप्रेरित बाणसे उस वधिकने झट उसकोभी मारकर गिरादिया ॥५८॥ हे मूर्खो ! ऐसेही तुम्हारीभी मृत्यु होगी, इस देहका क्या विचार करो हो ? ज्ञानी बनो इसका सौ वर्षतक शोक करने-

सेभी इसको नहीं पाओगे ॥ ५९ ॥ हिरण्यकशिपु बोले कि, यह बात उस बालककी सुन सब स्त्री पुरुष अत्यन्त विस्मय हुए और सब जातिके मनुष्योंने और राजमहिषियोंने माना कि, सब सम्बन्ध मिथ्या हैं ॥ ६० ॥ इतनी कथा कह यमराज तो अंतर्धान होगये और उस सुयज्ञके सजातीय सब मिलकर उस मृतकका संस्कार करने लगे ॥ ६१ ॥ इसलिये हे जननि ! तुमभी शोक मत करो, आत्मा सबसे परे है. अपना पराया कोई नहीं है. यह सब अज्ञानपनकी भूल है. यहाँ अपना कौन है ? और पराया कौन है ? तुम कौन हो ? और दूसरा कौन है ? ॥ ६२ ॥ यह सब अज्ञानतासे अपना पराया मान रक्खा है, जो तत्वदर्शी ज्ञानी पुरुष हैं वह ज्ञानसे अज्ञानका दर्शन करते हैं ॥ ६३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, इस प्रकार पुत्रवधू दैत्यपतिका दिति यह वाक्य सुन शोक सन्तापको क्षणभरमें त्याग अपना मन परमेश्वरके ध्यानमें लगादिया और यह समझा कि, वही राम सबमें रमरहा है ॥

कवित्त-ऊखमें है मधुराई सेंधमें है नमकाई, तिलोंमें है तैल जैसे शीतलता ओलेमें ॥ नीममें कडुवाई जैसे मिर्चमें है तीक्षणता, दूध माहिं घृत औ सुगन्ध जैसे बेलेमें ॥ आममें खटाई जैसे अग्निमें है उष्णताई, शोरेमैं है खारापन रूई ज्यों विनोलेमें ॥ काष्ठमें है अग्नि जैसे बीज माहिं वृक्ष छिपा, ऐसे ही श्रीराम छिपे प्राणियन चोलेमें ॥ ६४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-इस तृतीय अध्यायमें, कनककशिपु तप कीन्ह ।
ब्रह्माने सुप्रसन्नहो, ताहि महावर दीन्ह ॥ १ ॥

नारदजी बोले कि, हे युधिष्ठिर ! हिरण्यकशिपुने अपने आपको अजर अमर समझकर कहा, आज पृथ्वीपर मेरे समान कोई नहीं ऐसे अपने आत्माको एक बडा राजा मान सब पृथ्वीका राज्य करनेकी इच्छा की ॥ १ ॥ वह हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वतकी कन्दरामें जाकर महा दारुण तप करनेके लिये ऊपरको हाथ उठा आकाशकी ओरको दृष्टिकर, एक पाँवके अँगूठेके सहारेसे खडा हुवा ॥ २ ॥ जब तपस्या करते २ कुछ समय व्यतीत हुवा तो धूप सहित तपकी अग्नि उसकी जटाओंमें कैसे चमकरही थी जैसे प्रलयकालके सूर्यकी किरणोंकी कान्ति शोभायमान होती है, जब वह इस प्रकार महाकठिन तप करने लगा, तब सब देवता अपने २ स्थानोंपर आये ॥ ३ ॥ उसके महाबलका उद्योग देखकर और सुनकर सब देवता डरके मारे घबरागये और जहाँ जिनके सींग समाये वहाँको चल दिया; उस समय हिरण्यकशिपुके शिरमेंसे उत्पन्न हुवा तपोमय धूम सहित अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला, तिरछी बाँकी, उँची, नीची, चारों ओरको फैलकर त्रिभुवनको तपाने लगी ॥ ४ ॥ नदी और समुद्र चलायमान होगये, सातों द्वीप पर्वतोंसमेत भूमि कँपकँपाने लगी, ग्रहों सहित तारागण टूट टूट कर गिरने लगे, दशों दिशा

प्रज्वलित होगई ॥ ५ ॥ उस अग्निकी तपनसे देवता सुर असुरको छोड ब्रह्मलोकमें गये और वहाँ जाकर विनयपूर्वक ब्रह्मासे कहा कि, देव देव ! हे प्रजापते ! ॥ ६ ॥ हे दीनदयाल ! दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुके तपके प्रभावसे तप्त हुए स्वर्गमें हम निवास नहीं करसक्ते, हे समर्थ ! जो लोकका कल्याण चाहो तो उसकी शीघ्र शान्ति करो ॥ ७ ॥ क्योंकि कहीं जब तक बलि देनेवाले भूमिवासी नष्ट न होजाँय, वह उपाय करो और आपके बलि देनेवालेही नष्ट हो गये तो फिर क्या ? आपको यहभी प्रगट है कि नहीं ? महा विकराल तप करके उस दैत्याधीशने जो संकल्प किया है वह किसलिये कर रहा है ? ॥ ८ ॥ यद्यपि आप सब जानतेहैं और कोई बात आपसे छिपी नहीं है परन्तु जैसा हमने सुना वैसा आपके सन्मुख कहते हैं, और हमने पहिलेभी आपसे कहा था ॥

दोहा–कनककशिपुने यह सुना, तपकर विधि पद लीन्ह ।
सो विचार विधि होनहित, दैत्यकठिन तप कीन्ह ॥ ९ ॥

तप, योग, समाधिके बलसे ब्रह्माने सब विश्व और चराचरको रचा है और सब स्थानोंसे श्रेष्ठ स्थानमें जैसे ब्रह्मा आप बैठता है उसी ढंगसे मैं भी कठिन तप करके अपने आत्माको वैसा ही प्रतापी बनाऊंगा, जैसा प्रतापी चतुरानन है ॥ १० ॥ कालात्मा नित्य होनेसे मुझकोभी कालका भय नहीं रहेगा; मैं आप कालरूप होकर अपने पराक्रमसे उसको अन्यथा करूंगा ॥ ११ ॥ और दैत्योंको देवता और देवताओंको दैत्योंकी पदवी दूंगा और पातालके लोकोंको आकाशमें, आकाशके लोकोंको पातालमें बसाऊंगा पापको पुण्य और पुण्यको पाप बनाऊंगा. परन्तु जो चाहै सो होय एक बार विश्वको लौटपौट करके दिखादेना और जिस वैकुण्ठको श्रेष्ठ समझ रक्खा है उसमें नीच लोगोंको बसादेना और नरकका तो नामही न रक्खूंगा और कल्पके अन्तमें वैष्णवादिक कालके कौर मेरा क्या करसक्ते हैं ? मेरा और तो किसी नाशवान् पदवीसे प्रयोजनही नहीं । केवल मुझको तो एक ब्रह्म पदवीकी अभिलाषा है, ऐसी हठ उसकी हमने सुनी है इसलिये वह महा-कठिन तप कर रहा है ॥ १२ ॥ हे त्रिभुवनेश्वर ! पहिले इस कामको करलो और काम पीछे करना. हे जगत्पते ! गौ और ब्राह्मण आपके मुख्य स्थान हैं और आपही भक्त हितकारी हैं ॥ १३ ॥ आपही उत्पत्तिके, कल्याणके, लक्ष्मीके, कुशलके ओर विजयके लिये हैं. इसलिये हे त्रिलोकीनाथ ! जब आपहीका स्थान छीन गया तो फिर हम क्या करसक्ते हैं ? नारदजी बोले कि, हे राजन् ! जब भगवान् स्वयंभूकी देवताओंने इस प्रकार प्रार्थना की ॥ १४ ॥ तब भृगु, दक्ष आदि प्रजापतियोंको संग लेकर ब्रह्माजी हिर-ण्यकशिपुके आश्रममें गये. बँबई तृण और कीचकोंसे वह दैत्य ढकाहुवा देखकर, ब्रह्मा-जीने समझा कि यह मिट्टीका ढेर है फिर समीप जानेसे एक छिद्रमेंको ऐसा प्रकाश दृष्टि आया जैसे घटामें सूर्य चमकता है ऐसे उसके नेत्र चमके देखा, तो चींटी और कीड़ोंने उसकी सब त्वचा, मांस और रुधिरको चाट लिया था, केवल हड्डियें ही हड्डियें रहगई थीं तोभी

वह अपने तपके प्रतापसे त्रिलोकीको भस्म करे डालताथा, मेघसे ढके हुये मार्तण्ड कैसा प्रचण्ड तेज था ॥१५॥१६॥ उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो हंसवाहन ब्रह्मा हँसकर बोले, कि हे कश्यपतनय ! तेरा कल्याण हो उठ उठ, तेरा तप सम्पूर्ण हुवा तेरा सब काम सिद्ध होगा ॥ १७ ॥ हम तेरे समीप वर देनेको आये हैं अब जो तेरी इच्छा होय सो वर मांग, तेरे हृदयका जो अद्भुत सार है वह हमने जान लिया और तेरी समान धैर्यवान् कौन होगा ? तेरे सब शरीरको, डाँसादिक कीडोंने खालिया है केवल तेरे प्राणमात्र हड्डियोंमें रहगये हैं ? ऐसा कठिन तप अबतक न तो किसीने किया और न आगे कोई करैगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ विना जलपान किये देवताओंके दिव्य सौ वर्ष तक कौन ऐसा प्राणी है जो शरीरमें अपने प्राणोंको धारण कर सक्ता है ? यह तेरा निश्चय, और महा-घोरतप, बडे बडे, धैर्यवानोंसेभी होना बहुत कठिन है ॥ २० ॥ हे दितिनन्दन ! तेरा निश्चय देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुवा, क्योंकि तैंने तपमें पूर्ण निष्ठा करके मुझको जीता है. हे दैत्योंमें श्रेष्ठ ! मैं तुझे सत्य आशीर्वाद देकर तेरा सब मनोरथ पूर्ण करूंगा ॥ २१ ॥ तेरा जो देह मरनेसे मुक्त नहीं हो सक्ता और मैं जो मरनेसे मुक्त हो सक्ता हूं, सो तुझको मेरा दर्शन निष्फल कभी नहीं होनेका. नारदजी बोले कि, सबसे प्रथम देहधारी ब्रह्माजीने इतनी बात कहकर हिरण्यकशिपुकी ओर फिर देखा, कि जिसका शरीर चीटि-योंने चाट लिया था ॥ २२ ॥ अत्यन्त दिव्य अमोघ तेजवाले कमण्डलुके जलको छिडका उसके छिडकतेही वह दैत्येन्द्र उस कीचक वल्मीकमेंसे साहस, तेज, बल सहित जैसे काष्ठमेंसे अग्नि उत्पन्न होती है ऐसे उठा ॥ २३ ॥ सब अवयवोंसे सम्पन्न, वज्र समान अंग, युवा अवस्था, चित्तकी सामर्थ्य बढीहुई, तपे हुये सुवर्णकी समान कांतिका झलझलाहट, अग्निके समूहकी नाईं उठकर खडा होगया ॥ २४ ॥ आकाशमें हंसपर विराजमान हंसवाहन देवनके देवको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये उनको शिरसे पृथ्वीपर दण्डवत प्रणा-मकर दर्शन किया और मनमें परमानन्द माना ॥ २५ ॥ उस समय भृगु आदि, प्रजाप-तियोंको ब्रह्माजीके साथ देख, हिरण्यकशिपुके चित्तमें अत्यन्त हर्ष बढा, नेत्रोंसे आँसू निकलने लगे, शरीर पुलकायमान हो गया, गद्गद वाणीसे ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगा ॥ ॥ २६ ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि, कल्पके अन्तमें कालसे रचे हुये अत्यन्त अन्धतमसे ढके हुये इस विश्वको जिन परमात्माने आप अपनी ज्योतिसे प्रकाश किया है उस स्वयं प्रकाश परमात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ २७ ॥ जो आप त्रिगुणात्मक स्वरूपसे इस सृष्टिको उत्पन्न करते हो, पालते हो, संहारते हो, ऐसे रज, सत्व, तम, तेज रूपवाले परमात्माको वारम्वार नमस्कार है ॥ २८ ॥ आद्यबीज ज्ञान विज्ञान मूर्ति, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, रूप, वैकारिक व्यक्तिको धारण करनेवाले परमात्मा. मैं आपको वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥ २९ ॥ आपही स्थावर, जंगम, जगत्के ईश हो, आपही प्रजाओंके प्राण हो, आपही मन इन्द्रियोंके पति हो, आपही चित्तके चित्त हो, आपही आकाशादिक पंचमहा-भूतगणोंके और शब्दादिक पंच विषय वासनाओंके उत्पन्न करनेवाले हो ॥ ३० ॥ आपही

वेदत्रयीको चार होता करके सात यज्ञोंके कर्ता हो, आपही प्राणियोंके आत्मा और आत्मज्ञानियोंके अनादि अनंत अपार अखण्डित पण्डित सर्वान्तर्यामी हो ॥ ३१ ॥ आपही कालके प्रवाह रूप, लव, क्षण इत्यादि करके विभागोंसे जीवमात्रकी आयुको क्षय करते हो आपही कूटमें स्थित आत्मा, ब्रह्मान्तर्यामी, अजन्मा, अविनाशी सबसे बडे, इस जीवलोकके जीवन मूल और आत्मा हो ॥ ३२ ॥ आपसे परे स्थावर जंगम कुछभी चलायमान नहीं है. न आपसे ऊपर है. और जो चलायमान है वह आपसे पृथक् नहीं है, चौदह विद्या, सोलह कला, यह सब आपहीके रूप है, आपहीके उदरमें यह सब ब्रह्माण्ड वास करते हैं ऐसे परब्रह्म और त्रिगुणात्मक आपही हो ॥ ३३ ॥ हे समर्थ! यहभी भली प्रकार विदित है कि, यह स्थूल शरीर कि जिससे इन्द्रिय प्राण मनसे विषयोंको भोगते हो, और अतिगुप्त आत्मा पुरुष पुराण ब्रह्मधाममें आपही विराजमान हो ॥ ३४ ॥ हे अनन्त! अव्यक्तरूपसे जिसने यह सब विश्व विस्तृत किया है और विद्या अविद्या शक्ति युक्त जो आपकी अद्भुत माया है, मन वच क्रमसे नहीं जानीजाती उस परब्रह्म परमेश्वरको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे वरदोत्तम! जो आप मुझको वर देते हो तो मेरे मनोवांछित वर दो, तो मैं यह वर मांगताहूं कि, आपकी सृष्टिके रचे हुये किसी पदार्थ वा किसी जीव मात्रसे मेरी मृत्यु न होय ॥ ३६ ॥ बाहर, भीतर, दिनमें रातमें, आपके रचे हुये शस्त्रोंसे, भूमिमें, आकाशमें, मनुष्यसे, मृगसे ॥ ३७ ॥ प्राणधारी अथवा विना प्राणधारी, सुर, असुर, महासर्प इत्यादिकसे युद्धमें मेरी हार न होय और संसारमें एक राज्य मेराही होय ॥ ३८ ॥ जिसप्रकार सब लोकपाल आपको मानते हैं वैसेही मुझको मानें, तप योग, प्रभाव मेरा कभी क्षीण न होने पावै और मेरा ऐश्वर्य कभी नष्ट न होय। हे नाथ! जो देना है तो यह वर मुझको दीजिये ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा—इस चौथे अध्यायमें, कनक कशिपु वर पाय।
जीत चराचर देव सब, चढ़ो विष्णुपरधाय ॥

नारदजी बोले कि जब हिरण्यकशिपुने इस प्रकार ब्रह्माजीकी विनय की तब उसके तपसे प्रसन्न होकर वह वर ब्रह्माजीने उसको दिये, जो और पुरुषको मिलने महादुर्लभ है ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे तात! यह वर मनुष्योंके लिये महाकठिन है जो तू मुझसे माँगता है, परन्तु तौभी मैंने तुझको दिये, क्योंकि तैंने बड़ा भारी तप किया है॥ २॥

चौ०-ताते मन वांछित वर दीन्हा। अनुचित उचित विचार न कीन्हा॥

नारदजी बोले कि, हिरण्यकशिपुने मनो वांछित वर पाकर परमेष्ठीका पूजन किया तब वह अमोघ अनुग्रही समर्थ सदा प्रजापति जिनकी स्तुति करते हैं, वह भगवान् ब्रह्माजी अपने ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ३ ॥ इस प्रकार जब दैत्येन्द्रको वर मिले; तो

वह कञ्चनकेसा तनु धारण करनेवाला कनककशिपु अपने भाई हिरण्याक्षके मरणका स्मरणकर, विष्णुको अपना वैरी समझकर उनसे वैर करने लगा ॥ ४ ॥ और सब लोक, दशो दिशा, देवता, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गन्धर्व, गरुड, उरग ॥ ५ ॥ सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृपति, मनु, कुबेर यक्षोंके राजा, राक्षस, पिशाच, ईश, भूतेश्वर ॥ ६ ॥ इनके अतिरिक्त और सम्पूर्ण जीवमात्रको और उनके अधीश्वरोंको जीतकर अपने वशमें किया, और फिर उस विश्वविजयी दैत्यराज हिरण्यकशिपुने लोकपालोंके स्थान तेज सहित हरलिये ॥ ७ ॥ देवताओंके उपवनोंकी सौन्दर्यतायुक्त देवलोकमें जाकर तीनों लोकको अपने आधीन कर लिया. और जो महेन्द्रके राज्य भवन विश्वकर्माने अपने हाथोंसे निर्माण किये थे ॥ ८ ॥ वह सुन्दर सुन्दर मन्दिर जो सदा सम्पदाओंसे पूरित, त्रिलोकीकी लक्ष्मी जहाँ सदा विराजमान उस सुरेन्द्रके स्थानमें हिरण्यकशिपु नामक महा बलवान् दैत्येन्द्र निवास करने लगा ॥ ९ ॥ जिस स्थानमें विद्रुमकी सोपान महामरकतमणिकी पृथ्वी, स्फटिक मणिकी भीतें वैडूर्यमणिके खम्भोंकी मनभावनी सुहावनी अद्भुत कान्ति झलक रही थी ॥ १० ॥ जहाँ चित्र विचित्र चंदोवे तन रहे थे, पद्मरागमणियोंके मनोहर आसन बिछ रहे थे दूधके फेनसम श्वेत वर्ण और नाना प्रकारके रंगोंकी कोमल कोमल शय्या शोभा दे रहीं थीं, और उनमें चारोंओर मोतियोंकी झालरें लटक रहीं थीं ॥ ११ ॥ जिनके नूपुरोंकी झनकारसे सब संसारमें हित होजाय, ऐसी २ सहस्रोंदेवांगना कुन्दकली सम दांतोंवाली उस मनोहर रत्नस्थलीमें झन झन करती चारों ओर विचरती फिरती थीं और अपने सुन्दर चन्द्रवदनके प्रतिविम्बको उनहींमें निहार निहार प्रसन्न होती थीं ॥ १२ ॥ ऐसे शोभायमान, सुरेन्द्रके भवनमें, महाबलशाली पूर्णप्रतापी, उदारचित्त, विश्वविजयी, महाप्रचण्ड तेजस्वीके तपके तेजके प्रभावसे सब देवता जिसके चरणोंकी वारम्वार वन्दना करते थे ऐसा वह दैत्येन्द्र पूर्ण प्रतापी अपने प्रतापसे प्रचण्ड शासन करके दिन रात सुरपुरमें रमण करता था ॥ १३ ॥ हे राजन् ! महातीव्र सुगन्धित वारुणीके मदसे विकराल लाल लाल नेत्र जिसके तप, योग, बल और पराक्रमसे सब स्थानोंके अधिकारी और लोकपाल अनेक अनेक प्रकारकी भेटें लिये खड़े रहते थे, केवल ब्रह्मा, विष्णु और शिवहीने तो उसकी सेवा नहीं की ॥ १४ ॥ हे पाण्डव ! इन्द्रके आसनपर अपने पराक्रमसे बलात्कार बैठे हुये, उस हिरण्यकशिपुके सन्मुख, विश्वावसु, तुम्बुरु, अस्मदादिक सदा गाया करते थे, और गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि, विद्याधर और अप्सरा वारम्वार उसकी स्तुति करते रहे थे ॥ १५ ॥ जो कोई वर्णाश्रमी जगत्में यज्ञ करता वह पहिले बहुतसी दक्षिणा देकर उसका पूजन कर लेता पीछे और काम करता वह अपने तेजके प्रतापसे यज्ञका हविर्भागभी लेता था ॥ १६ ॥ सातों द्वीपकी पृथ्वी उसके भयकी मारी विना जोते बोये सब प्रकारके अन्न और फलादिकोंको उत्पन्न करती थी और आकाश सबके मनकी आशा पूर्ण करता था और

अनेक प्रकारकी आश्चर्यमयी सम्पदायें प्रगट होती थीं ॥ १७ ॥ रत्नाकर भाँतिके भाँति रत्न अपनी लहरोंसे वाहर निकाल निकालकर डालने लगा ॥ १८ ॥

चौ०-लवण, मद्य, मधु, दधि, घृत, क्षीरा । बहन लगे सरितनयुत नीरा॥

शैलोंकी कन्दराओंके भीतर महासुखदायक क्रीड़ास्थल आपसे आप बन गये. वृक्ष छहों ऋतुओंमें फूल फलोंसे फलने लगे. सब लोकपालोंके गुण पृथक् २ इसका हिरण्यकशिपु धारण करता था ॥ १९ ॥ इस प्रकार उस दानवराज दिग्विजयीने दिग्विजय कर अपनी इच्छानुसार सम्राट् प्रिय विषयोंका आनन्दपूर्वक भोग भोगने लगा, परन्तु इन्द्रियोंको न जीतनेके कारण मनको सन्तोष नहीं हुआ ॥ २० ॥ इस भाँति ऐश्वर्यसे मदान्ध वह अभिमानसे भरा हुआ पाखण्डी हिरण्यकशिपु महा अनीति करनेवाला जिसके भयसे इन्द्र इकहत्तर ७१ चौकडी तक राज्यसे भ्रष्ट रहा. उस दैत्य ब्रह्म शापसे राक्षस तनु पानेवालेको समस्त पृथ्वीका राज्य करते जब अनेक युग बीतगये ॥ २१ ॥ जब ऐश्वर्य पाकर मनुष्य मदान्ध होजाता है तब सब धर्म कर्मको भूल जाता है. देखो ! ब्रह्माजी उस असुरके सन्मुख आये परन्तु उस अज्ञानीको किञ्चिन्मात्र भी ज्ञान न हुवा, इतनेपर भी मतवाला बनारहा इस बातपर एक दृष्टान्त है ॥ उस हिरण्यकशिपुके प्रचण्ड दण्डसे भयभीत हुए सब देवता और लोकपाल सात द्वीप नौ खण्डमें भागे भागे फिरे जब कहीं कोई रक्षक नहीं देखा तो सब देवता और लोकपाल मिलकर श्रीअच्युत भगवान् वासुदेवकी शरण गये ॥ २२ ॥ जहाँ सर्वात्मा जनार्दन भगवान् हैं. और निर्मल हृदय शान्त स्वभाववाले संन्यासी जहाँ जाकर फिर संसारमें नहीं आते, उस दिशाको हम वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ ऐसे कह मनको सावधानकर, बुद्धिको सुधार, निद्राको तज, इन्द्रियोंको जीत, समाधि लगाकर, पवनके भोजनके आश्रयसे, हृषीकेश भगवान्का भजन करने लगे ॥ २४ ॥ जिसका कोई स्वरूप नहीं, मेघके समान गम्भीर शब्दवाली, सब दिशाओंको गर्जित करती, साधु सन्तोंकी अभयदायक, आकाशवाणी उनको सुनाई दी ॥ २५ ॥ हे देवो ! तुम कुछ भय मत करो,तुम्हारा कल्याण होगा, मेरी वाणी और मेरा दर्शन सब जगत्का मंगलदायक है ॥ २६ ॥ उस दुष्ट दैत्यकी दुष्टता मैं भले प्रकार जानता हूँ, इसकी शान्ति मैं बहुत शीघ्र करूंगा, अभी कुछकाल तुम धैर्य धरो ॥ २७ ॥ जो मनुष्य, देवता, वेद, गौ, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मुझसे वैर करते हैं, वह शीघ्रही नष्ट होजाते हैं ॥ २८ ॥

दोहा-समदरशी अरु शान्त चित, मेरा भक्त उदार ।
नाम जासु प्रह्लाद है, धरा धर्म आधार ॥

ऐसे अपने पुत्र महात्मासे वैर करेगा तो यद्यपि वरभी मैं उसको दे चुका हूं तोभी उसको विनामारे कभी नहीं रहूंगा ॥ २९ ॥ नारदजी बोले कि, श्रीलोकगुरु आदिपुरुष अविनाशीकी यह वाणी सुनकर देवताओंने अत्यन्त सुखमाना, और परमात्माको प्रणामकर सब अपने अपने स्थानोंको चले गये, और उसी दिनसे असुरको मरा समझ लिया॥३०॥

उस दैत्यपतिने महाअद्भुत परम उदार चार कुमार उत्पन्न किये, उनमें प्रह्लाद सबसे छोटा परन्तु गुणमें सबसे बडा और परमेश्वरका पूर्ण भक्त था ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणोंका रक्षक, शील सम्पन्न, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और सर्वत्र जीवमात्रको अपने आत्माके समान माननेवाला और सबका प्यारा सुहृद् था ॥ ३२॥ सज्जन पुरुषोंके चरणोंका दासकी नाईं सेवन करता, पिताकी समान दीनजनोंपर दयालुता करता, अपनी सदृश जो नगर निवासी थे उनको भ्राताकी तुल्य मानता और गुरुजनोंको ईश्वर समान जानकर पूजन करता था ॥ ३३ ॥ कभी मनमें उद्विग्नता नहीं लाता, सब व्यसनोंसे दूर रहता, सुनता देखता सब कुछ, परन्तु इस लोकके और परलोकके पदार्थोंको अनित्य समझता, सदा इन्द्रिय, प्राण, शरीर, बुद्धिको दमन करता रहता मनहीमें सब कामनाओंको शान्त करता रहता था, यद्यपि असुरके घरमें जन्मा था, परन्तु तौभी सुरोंको सुख देनेवाला था ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! जिसके गुणोंको कविलोग बारम्वार ग्रहण करते हैं ईश्वरके गुण जैसे छिपायेसे नहीं छिप सक्ते, ऐसेही प्रह्लादके गुणभी आजतक जगत्में प्रगट होरहे हैं ॥ ३५ ॥ हे नरेन्द्र ! सुर, असुर लोगोंके शत्रु हैं, परन्तु जहाँ कहीं कथा वार्ता और बडे बडे महात्माओंकी गणना होती है वहाँ पहिले प्रह्लादहीकी उपमा देते हैं और आप सरीखे सज्जनोंका तो कहनाही क्या है ! ॥ ३६ ॥ यह तो सब मैंने उसके गुणोंकी और यशकी बडाई की और उसके गुणोंकी तो गिनतीही नहीं, भला फिर उसके गुणोंकी महिमा कान वर्णन करसक्ता है, उसके असंख्य गुण समझने चाहिये, जिसकी वासुदेव भगवान्में स्वाभाविक प्रीति है ॥ ३७ ॥ बालपनमें उसने कोई खेल न खेला और न कोई खिलौना हाथमें लिया केवल शालिग्रामकी मूर्तिहीको खिलौना समझता रहा। और सब संसारके खेलोंको छोड विष्णु भगवान्के चरणारविन्दोंमेंही मनको लगा रक्खा था और भगवान् रूप ग्रहने उसकी आत्माका ग्रहण कर लिया था, केवल जडकी नाईं रहता था और संसारको कुछ नहीं समझता था कि, संसार क्या वस्तु है? ॥ ३८ ॥ बैठते, चलते, खाते, पीते, सोते, जागते, बोलते, बतलाते गोविन्दही गोविन्द कहता रहता था, मानो गोविन्दरूपमेंही लय होगया था. उसको यह सुधि नहीं थी कि, मैं कौन हूं और कहां हूं? ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान्के ध्यानमें ऐसा मतवाला रहता था, कभी रोता, कभी हँसता, कभी उनकी लीलाओंका स्मरणकर पुकार पुकार मनहीमनमें मग्न होता था ॥ ४० ॥ कभी उत्कण्ठितहो, हरे हरे हरे हरे पुकार उठता, कभी लाजको तज नाचने लगता, कभी भगवान्की भावनाकर तन्मयहो अनेक प्रकारके विहार करता ॥ ४१ ॥ कभी भगवान्की मनोहर छबिके ध्यानमें मग्न होकर मौन होजाता. कभी आनन्द हो आंखोंसे आंसू बहाता, कभी नेत्र बन्दकर हृदयमें उस मनमोहनकी मनमोहिनी छबिका दर्शन करता ॥ ४२ ॥ उत्तमश्लोकके चरणोंकी सेवा करनेवाला चाहे वह कुछ न चाहै परन्तु उसकी सेवाका फल उसको अवश्य मिलता है ॥ उस भगवच्चरणकी सेवाके प्रतापसे वह अपने मनमें परमानन्द मानता था और कुसंगसे आरत हुए लोगोंके मनकोभी शान्त करता था ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! ऐसे महाभाग-

वन बड भागी अपने पुत्रसे, वह दैत्यराज अकारण वैर करने लगा ॥ ४४ ॥ युधिष्ठिरने बूझा कि, हे नारदजी ! हे सुव्रतधारी ! इस महासन्देह युक्त बातके सुननेको मेरा मन बहुत चाहता है, कि उस शुद्ध चित्त सत्पुत्रसे उसके पिता हिरण्यकशिपुने वैर क्यों किया ? इस बातका मुझको अत्यन्त सन्देह है सो आप कृपा करके मेरा सन्देह दूर कीजिये॥ ४५ ॥ चाहे पुत्र अपने अनुकूल न होय, तोभी पिता पुत्रपर प्रेम रखताही है, और शिक्षा देनेके लिये क्रुद्धभी होजाय परन्तु तोभी शत्रुकी समान उसको कठिन दुःख नहीं देता ॥ ४६ ॥ और जो कुलमें सत्पात्र पुत्र होय, पिताकी सेवा करे, गुरुको अपना इष्ट देव माने, ऐसे साधु पुत्रसे तो कोईभी शत्रुता नहीं करता, फिर वैर करनेका क्या कारण ? हे ब्रह्मन् ! हे प्रभो ! यह बडे कौतुककी अद्भुत बात सुनकर मेरे मनमें बडा भ्रम है, सो विस्तारपूर्वक आप यह भ्रम मेरा दूर कीजै ॥ ४७ ॥ पिता पुत्रका जो द्रोह हुवा और उसके पिताको भगवान्ने मारा, सो हे विद्वज्जन ! हे द्विज नारद ! इस बातसे मेरे मनमें बडा संकट होता है, विस्तारपूर्वक आप इस इतिहासको वर्णन कर मेरा संशय दूर कीजिये ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-गुरुकी शिक्षा छोडकर, श्रीहरिकी स्तुति कीन्ह ।
दैत्य भक्त प्रह्लादको, महाकठिन दुख दीन्ह ॥

नारदजी बोले कि, एक समय दैत्योंने भगवान् शुक्राचार्यको अपना पुरोहित किया था, उन शुक्राचार्यके शण्ड और आमर्क नाम दो बेटे थे, उनका स्थानभी हिरण्यकशिपुके निकटही था ॥ १ ॥ यह दोनों बालक दैत्यराजके भेजे हुए, प्रह्लाद जो नीति शास्त्रमें अत्यन्त कुशल थे उनको और उनके अतिरिक्त और और जो असुरोंके बालक थे उनको दण्डनीति आदिके ग्रन्थ पढाते थे ॥ २ ॥ प्रह्लादको जो गुरुजी पढाते उसको सुनकर और समझकर गुरुके आगे वैसेही पढलेता, परन्तु पीछे उसपर किञ्चिन्मात्रभी ध्यान न करता, क्योंकि,-

दोहा-नीति शास्त्रमें होतहै, शत्रु मित्रको भेद ।
समदरशी प्रह्लादको, सुनत होत अति खेद ॥

यह अपने, पराये, असत् आश्रय झूठे जगत्से क्या प्रयोजन रखता था ! इसलिये गुरुकी बात इसको अच्छी नहीं लगती थी ॥ ३ ॥ हे पाण्डव ! एक दिन हिरण्यकशिपुने अत्यन्त लालन पालनकर अपने सुत प्रह्लादको अपने निकट बुलाकर गोदीमें बैठाकर बूझा हे पुत्र ! जो वस्तु तुझको अच्छी लगती हो वह मुझसे कह, मैं अभी तुझको मँगादूं ॥ ॥ ४ ॥ यह सुन प्रह्लाद बोला कि, हे असुरोत्तम पिता ! सदा उद्वेग बुद्धिवाले शरीरधारियोंके आत्माका नाश करनेवाला, नरकमें डालनेवाला अंधकूपरूप गृह है, उसको तज, वनमें जाकर हरिभजन करना और उसहीकी शरणमें रहना यही साधु और अतीव उत्तम है ॥ ५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, दैत्यराज अपने पुत्रकी वाणी शत्रुके

पक्षका आश्रय लेनेवाली सुनकर, सभामें हँसकर बोला कि, बालकोंकी बुद्धिभी शत्रुकी ओरको फिर गई ॥ ६ ॥ बालकोंकी बुद्धि स्थिर नहीं होती, दूसरेके धोरे बैठनेसे वैसीही होजाती है, इसलिये गुरुसे कहो कि. इस बालकको अपने घरमें बैठालकर अच्छी रीतिसे पढावें, जिससे इसकी बुद्धि विष्णुके पक्षवाले छिपेहुए भागवत कहीं पाठशालामें जाकर न फेरलें. मुझको विष्णुका यह भारी खटका है कि, वह मेरे घरमें कहीं विखण्ड न डाल दे ॥ ७ ॥ शुक्राचार्यके दोनों लडके हिरण्यकशिपुके घर आये और प्रह्लादको अपने धोरे बैठाल मधुर वाणीसे प्रशंसा और श्लाघाकर सामवाक्योंसे बूझा ॥ ८ ॥ कि हे वत्स ! हे प्रह्लाद ! हे असुरेशकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो, तू सत्यकहु, झूठ मत कहना, सब बालकोंसे श्रेष्ठ तेरी बुद्धि है और इन सब बालकोंकी बुद्धिमें अन्तर न पडा फिर तेरी बुद्धिमें यह विपरीतभाव क्यों पडा ? ॥ ९ ॥ हे दैत्यकुलनन्दन ! तुझे किसी औरने सिखाया कि, तेरी बुद्धि आपसे आप फिर गई इस बातके सुननेकी हमको अभिलाषा है सो शीघ्र कहो ॥ १० ॥ प्रह्लाद बोले कि. जिसपर परमात्माकी मायाने अपना पराया यह भेद मनुष्योंके मनमें डाल रक्खा है, और असत् वस्तुका मोह उत्पन्न किया है. परन्तु वह मोह उनहींके मनको मोहित करता है जिसकी मतिको उसकी मायाने मोह लिया है. उस परमात्माको वारम्वार नमस्कार है ॥ ११ ॥ वह परमेश्वर जब पुरुषोंके अनुकूल होता है. तब पशुवत् बुद्धिवालोंकाभी बुद्धिभेद निवृत्त होजाता है. यह और है. हम और हैं. यह द्विविधा सम्पूर्ण नष्ट होजाती है. इस बात पर एक श्लोक स्मरण हुवा ॥ ॥ श्लोक ॥ "अन्धकः कुब्जकश्चैव त्रिस्तनी राजकन्यका ॥ त्रयोप्यन्यायतः सिद्धाः सन्मुखे च विधातरि " ॥ १ ॥ १२ ॥ सो यह आत्मा अपना पराया जो समझे है यही मूर्खपन है. इसके दूर करनेका कोई उपाय करो. देखो परमेश्वरकी गति कैसी अपरम्पार है, जिसके वादमें वेदवादी ब्रह्मादिकभी मोहको प्राप्त होते हैं.हाय!ऐसे परमेश्वरके भजनको त्यागकर अज्ञानी लोग दूसरेको अपना समझते हैं उसी भगवान्ने मेरी मतिको फेर दिया है और मेरे हृदयमें वासकर वही मुझको शिखा रहा है ॥१३॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे चुम्बक पत्थरकी आकर्षण शक्ति लोहेको अपनीही ओर खैंचतीहै, ऐसेहीं मेरे मनको भगवान् चक्रपाणि अपनी ओरको खैंचतेहैं. परन्तु इस वातको मैं कुछ नहीं जानता कि, भगवान्का ऐसा अनुग्रह मुझपर क्यों हुवा ॥ १४ ॥ नारदजी बोले कि, गुरुसे यह बात कहकर महात्मा प्रह्लाद चुप ह्वे रहा. तब वह कुपित हुवा ब्राह्मण राजाका सेवक महादीन हो, प्रह्लादको धमकाकर कहनेलगा ॥ १५॥ अरे लडको ! बेत तो लाओ,यह सूधे स्वभाव नहीं मानेगा, क्योंकि यह हमारे यशका नाशक.अपनी अपकीर्ति करानेवाला, राजवंशमें अंगारेकी नाईं उत्पन्न हुवा है, इस दुर्बुद्धिको उपायोंमें चौथे उपायका दण्ड देना चाहिये ॥ १६ ॥ हमारे दैत्यवंश चन्दनवनमें यह महाकंटक करीलकेसा वृक्ष कहाँसे प्रगट होगया ? हमको तो ऐसा जान पड़ताहै कि, दैत्यवंशके वनका विध्वंस करनेवाला यह विष्णुरूप कुठारका दण्ड हुवा, जबतक यह हमारे घरका भेदी विष्णुसे न मिलेगा, तबतक कोई हमारा बाल बाँका

नहीं कर सक्ता ॥ १७ ॥ इस प्रकार उन ब्राह्मणोंने अनेक अनेक भाँतिसे प्रह्लादको डराकर धर्म, अर्थ, कामके उपाय सम्बन्धी विद्या शिखानेलगे ॥ १८ ॥ कुछदिन उपरान्त गुरुने अपने मनमें जाना कि, यह साम, दान, भेद, दण्ड चारों बातें अच्छी सीख गया तब प्रह्लादको उसकी माताके द्वारा स्नान कराय, सब शृंगार सजाय, दैत्यराजके समीप प्रह्लादको लेगया ॥ १९ ॥ जातेही प्रह्लाद हिरण्यकशिपुके चरणोंमें गिरगया, दैत्येन्द्रने अशीश दे, आदर सन्मानकर, शिरपर हाथ फेर दैत्य अत्यन्त प्रसन्न हुवा ॥ २० ॥ हे युधिष्ठिर ! उसको गोदमें बैठाय, शिरसूँघ, प्रेमके वशीभूत हो, नेत्रोंके जलकी धारासे स्नान कराय वह दैत्यराज अत्यन्त प्रसन्न हो, कोमल कमलसे मुखवाले प्रह्लादसे कहा ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि,हे प्रह्लाद ! हे पुत्र ! हे दीर्घायु ! इतने दिनोंमें जो कुछ तुमने अपने गुरुसे भलीभाँति पढा हो और जो अच्छा स्मरण हो, वह अपने मुखसे मुझे सुनाओ ॥ २२ ॥ प्रह्लादजी बोले, किः-

श्लोक-श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ १ ॥

टीका-नारायणकी कथा सुने, विष्णुका नाम ले, भगवान्‌का स्मरण करे, जनार्दनकी परिचर्या पूजन करे, चक्रपाणिका अर्चन करे, परमेश्वरकी वन्दना करे, वृन्दावनविहारीका दास बने, श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दसे सुहृद्भाव माने, श्रीविश्वनाथ विश्वंभरकी विनय करे, यह नौप्रकारकी भक्ति है, नौ भक्तिके नौभक्त इस श्लोकमें कहतेहैं ॥

श्लोक-श्रीविष्णोः स्मरणे परीक्षिदभवद्वैयासकी कीर्तने प्रह्लादः स्मरणे तदंघ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ॥ अक्रूरस्त्वभिवंदने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत्कृष्णाप्तिरेषा परा ॥ २३ ॥ यह नौ प्रकारकी भक्ति भगवत्में करनी. यही उत्तम पढनेका सार है और इतने दिनोंमें जो कुछ मुझको गुरुने पढाया उसमें ऐसा उत्तम कोईभी विषय पढनेमें नहीं आया ॥ २४ ॥ नारदजी बोले कि, इस प्रकार पुत्रके मुखसे जब यह वचन सुनातो हिरण्यकशिपुको अत्यन्त क्रोध बढा, होठ फडकने लगे उसी समय गुरुपुत्रोंको बुलाकर कहा ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणाधम ! हे दुर्मते ! तैंने यह क्या किया ? मेरे शत्रुके पक्षकी बातें असार असार शिखा शिखाकर इसलडकेको बिगाड दिया और मेरा इस प्रकार अनादर किया ॥ २६ ॥ आजकल संसारमें शठ साधुओंका वेष बनाये अपना रूप छिपाये बहुत फिरते हैं, परन्तुः-

दोहा-अवशि खुलत कपटिन कपट, कछुक कालको पाय ।
जिमि पापिनको पाय हठ, रोग व्याज दरशाय ॥ १ ॥

कहीं ऐसा भी लिखा हैः-

श्लोक-ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात् सुरापः श्यामदन्तकः ।
स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ १ ॥

ब्रह्महत्यावालोंको क्षयरोग होता है, सुरापान करने वालोंके दाँत काले पड जाते हैं ।

सोना चुराने वालेके नाखून विगड जाते हैं और गुरुतल्पगामीकाभी चमडा विगड जाता है ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र बोले कि, हे इन्द्रशत्रो ! इस तुम्हारे पुत्रको न तो मैंने पढाया और न किसी औरने शिखाया, क्योंकि आपके डरके मारे कोई इसके पासभी नहीं जाने पाता, यह अपनेही मनसे यह बातें करता है, इसकी स्वभावकी बुद्धिही ऐसी है. हे राजन् ! हमारे ऊपर वृथा क्रोध करके हमको दोषी मत बनाओ; इसमें आपका आगम वेदमान हुवा है ॥ २८ ॥ नारदजी बोले कि, जब इतनी बातें गुरुने कहीं. तब दैत्येन्द्रने फिर प्रह्लादसे कहा कि, हे अभद्र ! जो यह बातें तैंने गुरुसे नहीं सीखीं तो फिर यह विपरीत बातें और खोटी बुद्धि तुममें कहांसे आई ? ॥ २९ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको नहीं जीता और पापकी रीतिको नहीं छोडा, अन्ध नरकमें जानेवाले कुटुम्बकी ममतामें वारम्वार चावे हुये चर्वणको चावने वाले अर्थात् भोगे हुयेको भोगनेवाले ऐसे गृहस्थी पुरुषोंकी मति न अपने आपसे, न दूसरेके शिखानेसे और न शत्रु मित्रके कहनेसे, विष्णु भगवान्की ओरको प्राप्त होतीहै ॥ ३० ॥ महाअभिमानी दुष्टहृदयवाले, विषयवासनामें लवलीन, न परमार्थको माने, न विष्णुको जाने, न अपने स्वार्थको पहिचाने परमात्माकी वेदलक्षणा वाणी सकाम कर्म करानेवाली रस्सीमें बँधे हुये ऐसेही पुरुषोंसे गुरुदीक्षा लेने-वाले मनुष्य परमेश्वरको नहीं मानते, वह नरकमें जाते हैं जैसे अन्धा अन्धेको लेकर कुएमें गिर पडता है ॥ ३१ ॥ जो शठ दुर्मति विषयवासनाके मदमाते जबतक निस्पृही महात्मा-पुरुषोंके चरणारविन्दकी रजको अपने शीशपर धारण नहीं करते, तबतक उनका अनर्थ किसी प्रकार दूर नहीं होसक्ता और न कोई मनोरथ सिद्ध होसक्ता है और न श्रीगोविंद भगवान्के पादारविंदमें मनही लगसक्ता है ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! इतनी बात कह प्रह्लाद जब चुप होरहा, तब हिरण्यकशिपुने अत्यन्त कुपित होकर गोदीमेंसे पृथ्वी-पर पटकदिया ॥ ३३ ॥ फिर क्रोधसे रोषावेश हो, विकराल नेत्रकर, महागम्भीरवाणीसे बोला कि हे दैत्यो ! मेरे आगेसे इस दुष्टको लेजाओ और अभी मारडालो, क्योंकि यह अधम वधकरनेहीके योग्यहै ॥ ३४ ॥ यही पापी मेरे भ्राता हिरण्याक्षका हनन करानेवाला है देखो ! अपने सुहृद सम्बन्धियोंको त्याग चाचाके मारनेवाले विष्णुके चरणोंको दासकी नाईं पूजता है ॥ ३५ ॥ देखो ! पुत्रको इस संसारमें अपने माता पिताकी प्रीतिका त्यागना महाकठिन है सो इस दुष्टने पाँचही वर्षकी अवस्थामें माता पिताकी प्रीति क्षणमात्रमें त्यागदी और कुछ आगा पीछा न सोचा, फिर यह निर्मोही विष्णुके साथ क्या भलाई करेगा ? ॥ ३६ ॥ अपना हो वा पराया. उसीको अपना पुत्र समझना चाहिये जो अपना हितकारी हो और अपनेही शरीरसे उत्पन्न हुवा तो क्या ? जो अपना भला न चाहै, उसको रोगकी नाईं दुःखदायी समझना चाहिये. इन दोनोंका काटनाही अच्छाहै, ज्योंज्यों यह बढते हैं त्योंत्यों अधिक दुःख देते हैं पुत्र जो शत्रु होजाय तो उसका कहनाही क्या ? क्योंकि दूसरा देह है, परन्तु शरीरके अंगभी हाथ पाँव आदिक कष्टदायक हों तो निःसन्देह उसी समय काटडालें क्योंकि उनके काटनेसे

और जो देह है उसको तो सुख होगा ? ऐसेही एक पुत्रके मारनेसे और परिवारको तो सुख होगा ? ॥ ३७ ॥ यह विश्वासघाती अपना होकर शत्रुका कार्य करता है इसलिये इसका मारनाही अच्छा है. खाते, पीते, सोते, जागते, उठते, बैठते, अथवा विषदेनेसे, जिस उपायसे बने, उस उपायसे इसको मारो जैसे मुनि दुष्ट इन्द्रियको मारते हैं ॥ ३८ ॥ ऐसी कठोर वाणी हिरण्यकशिपुकी सुनकर, बहुतसे दैत्य त्रिशूल हाथमें लिये, पैने दाँतवाले विकराल मुख, ताम्रवर्ण दाढी मूँछवाले अनेक दैत्य ॥ ३९ ॥ भैरवकी नाई भयंकर नाद करनेलगे. मारो, मारो, काटो, काटो, पकडो पकडो, नजाने दो न जाने दो, ऐसे कह प्रह्लादके मर्म स्थलमें त्रिशूल मारने लगे ॥ ४० ॥ परब्रह्म परमात्मा जो किसीके देखनेमें नहीं आता वह वासुदेव भगवान् सर्व अगोचर सर्वान्तर्यामी जिसके हृदयमें रात दिन वास करें, ऐसे प्रह्लादपर सब दैत्योंके प्रहार वारम्वार निष्फल होते थे ॥

दोहा-जैसे उद्यम करै वह, पुरुष भाग्यके हीन।
मिलत न धन तनको तनक, रहत दीनके दीन ॥

इस प्रकार सब असुर मन मार मार कर रह जाते थे ॥ ४१ ॥ हे युधिष्ठिर . सब परिश्रम राक्षसोंके जब व्यर्थ होगये, तब दैत्येन्द्र अपने मनमें बडा शंकित हुवा और प्रह्लादके मारनेके लिये अनेक अनेक प्रकारके प्रयत्न करने लगा ॥ ४२ ॥ मतवाले हाथियोंसे खुंदवानेके लिये उनके आगे डाल दिया कि, यही इसको पाओंसे खूंदकर मार डालेंगे, परन्तु जो श्रीकृष्ण मुरारी भक्तहितकारीका प्यारा है, उसको कौन ऐसा बली है जो मार सक्ताहै ॥ ४३ ॥ हाथियोंको वह रूप महाभयानक प्रज्वलित अग्निका समूहसा दिखाई दिया, तो जलनेके भयसे चिंघाडकर पीछेको भागे, इस बातको सुनकर ज्ञानी पुरुषोंको तो कुछ आश्चर्यही नहीं, परन्तु मूर्खोंको तो बडाही सन्देह हुआ होगा ? ॥ ४४ ॥ कुंजरोंकी यह दशा देख हिरण्यकशिपु अपने मनमें अत्यन्त व्याकुल हुवा और यह सोच विचार करने लगा कि, अब मैं क्या उपाय करूं जिससे यह दुष्ट माराजाय. इसी सोच सागरमें पडे पडे यह सोचा ॥ ४५ ॥ उस दुष्टबुद्धिने बडे बडे विषधर सर्प्पोंको बुलाया, जो उसके भयके मारे थर थर काँपते थे, और विना उसकी आज्ञा किसीको नहीं काटते थे. उनको आज्ञा दी कि, इसने श्रीनारायणको बहुत प्रसन्न किया है, इसलिये यह अधम अस्त्र शस्त्रसे नहीं मरनेका, अशस्त्रसे वध करनेके योग्य है ॥ ४६ ॥ इसलिये इसको तुम विषरूप शस्त्रोंसे अभी मारकर भस्म कर डालो. हिरण्यकशिपुकी आज्ञाको नागलोगोंने शिरपर धारण किया, क्योंकि वह लोग उसके आज्ञाकारी थे ॥ ४७ ॥ वह महाभयंकर जलते हुए दन्त और कराल फणामणियोंसे चमकते हुए दशसहस्र महाविषवाले सर्प्प जो कि, किसीके मारनेके योग्य नहीं थे, परन्तु ईश्वरकी महिमासे युक्त प्रह्लादके मारनेके लिये नियुक्त हुए और मारे द्वेषके श्रीनारायण प्यारेके ऊपर जा कूदे ॥ ४८ ॥ यद्यपि उनके विषही आयुध थे परन्तु भगवान् वासुदेवके बलका प्रताप ऐसा था कि, नागोंने अत्यन्त परिश्रम किया और उसके मर्म-

स्थानमें काटा परन्तु प्रह्लादके अंगकी किंचिन्मात्रभी खाल न काटसके, क्योंकि हरिके पालन पोषण किये हुए शरीरमें काटकर वे दीन दन्तविहीन होगये ॥ ४९ ॥ और मुखसे रुधिर वहनेके कारण उदासीन मूर्ति और फटे टूटे मस्तकोंवाले विना दाँतोंके सब भुजंग अंग भंग ऊर्ध्वश्वास लेते फण नीचेको किये पीडाके मारे थर थर काँपतेहुये दैत्यराजके सन्मुख जाकर सविनय यह निवेदन किये ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! हमने पर्वतोंकोभी काटा तो उसी समय जलकर उनकी राख होगई और कभी हमारा काटा आजतक कोई नहीं बचा और प्रह्लादको न जानिये कि, आज क्या होगया कि, जिस कामके लिये आपने हमको नियुक्त किया था, उस कामके करनेमें आज हम असमर्थ हुए वरन् महानुभाव तुम्हारे इस पुत्रके मारनेके लिये नियुक्त होनेसे विना दाँतोंके होगये और आगेको किसी कामके न रहे ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सब सर्प अत्यन्त कठिनताका वृत्तान्त कह मनमें हारमान चले गये, तब प्रह्लादकी ऐसी समर्थताका कारण विचार हिरण्यकशिपु अपने मनमें अत्यन्त चकित हुवा कि, अब क्या उपाय करूं ? ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! तब हिरण्यकशिपुने मंत्रियोंको बुलाकर परामर्श की कि, अब इसके लिये क्या यत्न करना चाहिये ? मंत्री बोले कि, हे असुरेन्द्र ! यह प्रह्लाद दण्ड देनेसे साध्य नहीं है, इस लिये अवध्य दण्डसे साधन करना चाहिये, क्योंकि जो समझाने बुझानेसेही मान जाय तो भारी उपाय करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ५३ ॥ मंत्रियोंका यह मंत्र सुन हिरण्यकशिपुने वन्दना करते हुए निर्मल चित्तवाले, प्रह्लादको अपने पास बुलाकर गोदीमें बैठाकर अत्यन्त प्यारसे कहा कि, ॥५४॥ हे प्रह्लाद ! जो अपने अंगसे उत्पन्न हुवा है. अर्थात् पुत्र, जो दुष्टभी हो तोभी वह मारनेके योग्य नहीं है क्योंकि अपने अंगसे जो उत्पन्न हो वहभी अपना अंग है इसलिये हे पुत्र ! तुझको देखकर मेरे हृदयमें दया आती है, और इसी कारणसे तुझको नहीं मार सक्ता, केवल भयही दिखाता रहताहूं ॥ ५५ ॥ हे पुत्र ! मेरा हित वचन सुनो ! राम, गोविन्द, कृष्ण, विष्णु, माधव, श्रीपते, ऐसा जो कहते हैं वे हमारे शत्रु हैं ॥ ५६ ॥ हे पुत्र ! यह बात हमने सबको सिखादी है कि,कोई पुरुष ऐसा वचन मत कहना,फिर तुमने यह वचन कहांसे सीखा? और किसने तुमको शिखाया ? ॥ ५७ ॥ पिताके वचन सुनकर प्रह्लाद धीमान् अभय होकर बोला कि, हे पिता ! हे दैत्यकुलभूषण ! कभी ऐसा मत कहना क्योंकि सब ऐश्वर्यों का भवन और धर्मादिकोंका बतानेवाला, सर्वानन्दका देनेवाला, कृष्णनाम जो पुरुष कहता है, वह अभयपदको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ और कृष्णकी निन्दा करनेका महापाप है इस पापका किसी प्रकार क्षय नहीं हो सक्ता, इसलिये तुमको उचित है कि, अपने शुद्ध होनेके लिये पूर्णभक्तिसे,राम,गोविन्द,कृष्ण,विष्णु, माधव, मुकुन्द ऐसा स्मरण करो, क्योंकि तुमने कृष्णकी बहुत निन्दा की है ॥ ५९ ॥ यह बात सुन असुर फिर एकाएकी तमक उठा अरे नीच ! तैंने फिर हमारे वैरीका नाम लिया ? और मेरे वचनोंपर कुछ ध्यान न दिया, मैं भले प्रकार जानताहूं कि, तेरी मीच निकट आ पहुँची है ॥ ६० ॥ इस बातको सुनकर

बडी शीघ्रतासे राजाके पुरोहित जो शब्द शास्त्रोंमें निपुण ब्राह्मणलोग थे वे सब हाथ जोडकर बोले, कि हे दैत्यराज ! हे दीनदयालु ! अब इस दीन पुत्र पर रोष न कीजिये आप दयार्हा करने योग्य हैं क्योंकि दैवने आपको दयानिधान बनाया है॥ ६१॥ जिस समय आप प्रह्लादके मारनेकी इच्छा करते हो तो तीनों लोक काँप उठतेहैं, फिर इसके ऊपर कोप करनेसे क्या लाभ है? पुत्र चाहे कुपुत्र होजाय परन्तु माता कुमाता और पिता कुपिता नहीं हो सक्ते ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! पुरोहितोंका वचन सुनकर चुप होगया परन्तु मनसे विद्रोह न छोडा जब कुछ वश न चला तो और एक कार्य विचारा जो करनेके योग्य नहीं था ॥ ६३ ॥ एक दिन सब दैत्योंको एकान्तमें बुलाकर आज्ञा दी कि आज रात्रिके समय सोते हुए दुष्ट प्रह्लादको बडे कठिन नाग पाशोंसे बाँधकर समुद्रके बीचमें डुबोइ आओ, उस दैत्येंद्रकी आज्ञा शिरपर धारणकर प्रह्लादके समीप सब दैत्य गये और बैठा देखा ॥ ६४ ॥ उनको तो रात्रि परमप्रिय थी हीं, उस समय एकाग्रचित्त किये श्रीभगवान्‌का ध्यान कर रहे थे, परन्तु सोते हुएकी समान जान पडते थे, जिन्होंने नारायणकी भक्ति करके, राग, द्वेष, लोभ, मोहके कठिन बन्धनोंको काट डाला था उनको ॥ ६५ ॥ उन दुष्ट राक्षसोंने जाकर छोटे छोटे सर्प्प रूप रस्सोंसे बाँधा, परन्तु वे ऐसे मूर्ख और मन्दबुद्धि थे कि, गरुडध्वज गरुडवाहन भगवान्‌के भक्त प्रह्लादजीको सर्पोंके बन्धनोंसे बाँधा ॥ ६६ ॥ और जलशायी श्रीनारायण करुणासागरके प्यारेको लेजाकर सागरमें डुबोया क्योंकि बलवान् तो वह दुष्ट थेही, इसलिये बहुतसे पर्वत लाकर उनको ऊपरसे दबा दिये ॥ ६७ ॥ और उसी समय आकर यह सन्देश हिरण्यकशिपुको सुनाया, उसने सुनकर उन लोगोंका बडा आदर सत्कार किया और यहाँ समुद्रमें वड़वानलके समान ॥ ६८ ॥ श्रीविष्णु भगवान्‌के तेजके प्रतापसे अग्निसमान प्रज्वलित जान प्रह्लादको, भयके मारे मच्छ, कच्छ, घडियाल आदि जन्तुओंने उनको किसी प्रकारका दुःख नहीं दिया । वह प्रह्लाद पूर्ण चिदानन्द समुद्रके मध्यमें, एकाग्रचित्त होकर बैठे हुए आनन्दसे परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे ॥ ६९ ॥ उन्होंने यह नहीं जाना कि, मैं बँधाहुवा हूं. और समुद्रके बीचमें पडा हूं वहां ब्रह्मरूप सुधासागरमें प्राप्त हुए श्री प्रह्लादजीको अपने आपमें स्थित जान ॥ ७० ॥ जैसे दूसरे समुद्रके मिलनेसे एक समुद्र बढता है इसी प्रकार वह क्षीरसागरभी बढा और बडे बडे क्लेशोंसे ऊपरको उछालती हुई लहरें ॥ ॥ ७१ ॥ प्रह्लादजीको ऊपरको लाईं और किनारेपर पहुँचा दिया, जैसे गुरुके श्रेष्ठ वचन शिष्यको लेजाकर भवसागरके किनारेपर करदेते हैं, वैसेही समुद्रकी लहरोंने प्रह्लादको समुद्रके किनारेपर निकालकर डाल दिया ॥ ७२ ॥ ध्यान करनेसे विष्णुभक्त प्रह्लादको तटपर स्थापित करके अनेक २ प्रकारके सुन्दर २ रत्न लेकर समुद्र उनके दर्शनको आया, तबतक श्रीभगवान्‌की आज्ञा पाकर प्रहृष्ट हो गरुडजी ॥ ७३ ॥ सर्व सर्प्परूप बन्धनोंको काट कूट भक्षण करके चले गये, तब प्रह्लादकी ओर देख महागम्भीर वाणीसे वारीश बोला ॥ ७४ ॥ प्रथम तो महादिव्य मनुष्यरूप धारण करके प्रह्लादजीको प्रणाम

किया, तब समाधि लगाये हुए हरिके प्यारे प्रह्लादने न सुना, तब फिर समुद्रने गम्भीर वाणीसे कहा ॥ ७५ ॥ हे भगवद्भक्त पुण्यात्मा प्रह्लादजी ! मैं समुद्र हूं, अपने दोनों नेत्रोंसे देखकर अपने समीप आये हुए मुझ अर्थीको कृतार्थ करो, समुद्रकी मधुर वाणी सुनकर हरिके परमप्रिय महात्मा प्रह्लाद ॥ ७६ ॥ शीघ्रतासे नेत्र खोल ऊपरको देखा तो सन्मुख समुद्र खडा है, समुद्रको नमस्कार करकै प्रह्लाद बोले कि, हे महात्मन् नदीश ! आप कब आये, यह सुन समुद्र बोला ॥ ७७ ॥ हे योगीन्द्र नाथ ! आप इस वृत्तान्तको नहीं जानते, दुष्ट असुरोंने आपका बडा अपराध किया है, हे वैष्णव ! तुमको सर्पोंसे बाँधकर रातको, मुझमें डाल आये थे ॥ ७८ ॥ फिर मैंने आपकी भक्तिका प्रकाश देख अपनी लहरोंसे आपको तीरपर बैठाल दिया और भगवान् गरुडवाहनके भेजे हुए गरुडजीने आनकर सर्पोंको खालिया और नारायणके निकट चले गये ॥ ७९ ॥ हे महात्मा प्रह्लादजी ! सत्संगके अर्थी मुझपर अनुग्रह करो और इन रत्नोंको ग्रहण करो, क्योंकि हमारे जैसे हरि भगवान् पूज्य हैं वैसेही उनके दास आपभी हमारे पूज्य हैं ॥ ८० ॥ यद्यपि इन रत्नोंसे कुछ प्रयोजन आपको नहीं है तो भी मैं आपकी भेट करता हूं, जैसे भक्तिमान् पुरुष सूर्यको दीपदान देकर निवेदन करते हैं परन्तु उनसे सूर्यका कुछ प्रयोजन नहीं निकलता ॥ ८१ ॥ आप तो घोर आपत्तियोंमें विष्णु भगवान्सेही रक्षित होतेहो और आपके तुल्य निर्मल महात्मा दूसरा नहीं है, जैसे सूर्य समस्त भूमण्डलमें प्रकाश करनेवाला एकही है दूसरा नहीं ॥ ८२ ॥ बहुत कहनेसे क्या है ? मैं आपके सम्मुख खडा हूं इसीसे कृतार्थ हूं. और एक क्षणमात्रकीभी आपके संगकी वार्ता करनी इस फलकी उपमा और किसीको नहीं दिया चाहता ॥ ॥ ८३ ॥ जब इस प्रकार मधुर वचनोंसे प्रह्लादजीकी स्तुति की, तो भगवत्प्रिय प्रह्लादजी लज्जित हुए और हर्षितभी हुए ॥ ८४ ॥ प्रह्लादजी रत्नोंको ग्रहण करके समुद्रसे बोले कि, हे महात्मन् ! तुम बडे धन्यभागी हो जो तुममें विष्णु भगवान् शेष शय्यापर नित्य शयन करते हैं ॥ ८५ ॥ और कल्पान्तमेंभी एकार्णवीभूत तुममें सम्पूर्ण जगन्मय श्रीजगन्नाथ सोते हैं ॥ ८६ ॥ हे जलनिधि ! अब मैं अपने नेत्रोंसे श्रीविष्णु भगवान् जगन्नाथको देखा चाहता हूं. तुम तो उनका दर्शन नित्य करते रहते हो, इससे तुम बडे धन्यभागी हो, मुझकोभी दर्शनका उपाय बताओ ॥ ८७ ॥ समुद्र बोला कि, हे योगीन्द्र ! तुमभी तो सदा अपने हृदयमें विष्णु भगवान्को देखते हो ॥ ८८ ॥ जो अब अपने नेत्रोंसे विष्णु भगवान्को प्रत्यक्ष देखना चाहते हो तो उन श्रीनारायणकी स्तुति करो. वह तो भक्तवत्सल हैं आपही आपको अवश्य दर्शन देंगे. यह कह समुद्र अपने जलमें प्रवेश करगया ॥ ८९ ॥ समुद्रके चले जानेपर रात्रिको एकाग्र चित्त हो, अकेले बैठकर उनके दर्शनको असम्भव मानकर भक्तिसे प्रह्लादजी नारायणकी स्तुति करने लगे ॥ ९० ॥ प्रह्लादजी बोले, कि सैकडों वेदान्तके वाक्य पवनोंसे बढे हुए वैराग्य अग्निकी शिखासे परितप्यमान जिसके दर्शनके लिये योगी लोग संशोधन करते हैं, वह भगवान् कैसे मेरे नेत्रोंके सन्मुख होंगे ॥ ९१ ॥

मात्सर्य, रोष, काम, लोभ, मोह, मदादि अति दृढ इन छहोंसे और ऊपरके नाना प्रकारके दुराचारोंसे भले प्रकार बँधा हुआ हमारा मन और कहां हम, बहुत बडा अंतर है ॥९२॥ जिसको ब्रह्मादिक देवतागण नाना प्रकारके भय शान्त करनेकी इच्छासे समुद्रके समीप जाकर उत्तम स्तोत्रोंका पाठकर किसी प्रकारसे दर्शन करही लेते हैं. अहो बडे आश्चर्यकी बात है कि, उनही नारायणके देखनेकी मेरी अभिलाषा है ॥९३॥ यह कह अपने आपको परमेश्वरके दर्शनके अयोग्य समझे, और उनके न मिलनेसे हारमान, उद्वेगके समुद्रमें डूब, आँसुओंकी धारा आँखोंसे बहा प्रह्लाद मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरगया ॥ ९४ ॥ हे नरेन्द्र ! उस समय एक क्षणमात्रमें चार भुजा धारण किये; शंख, चक्र, गदा, पद्म, हाथोंमें लिये, शुभ आकृति बनाये भक्तजनोंके परमप्रिय श्रीविष्णु भगवान्ने वहीं प्रगट होकर दुःखमें पडे हुये अपने भक्तको अमृतमय हाथोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया, तब उनके अंगके स्पर्शसे प्रह्लादकी मूर्छा जातीरही, नेत्र ऊपरको उठाकर देखा तो प्रसन्न वदन कमल नयन, आजानुबाहु, यमुना नदीके जलके समान श्यामवर्ण शरीर ॥ ९५ ॥ परम उदार तेजोमयरूप, प्रणाम करनेके योग्य, गदा, शंख, चक्र, कमलोंसे चिह्नित, प्रभुको अपने सन्मुख स्थित देख, समालिंगन करके, विस्मय भय और हर्ष तीनोंसे काँपनेलगे ॥ ९६ ॥ उसको स्वप्नही मान और यहभी ध्यान किया कि, मैं स्वप्नहीमें कृतार्थ श्रीभगवानको देखताहूं इसी सोच विचारमें महाहर्षके सागरमें मग्नचित्त हो, अपने आनन्दकी मूर्छाको वह फिर प्राप्त होगये ॥ ९७ ॥ तब वैसेही विना बिछौनेकी पृथ्वीपर बैठकर अपनी गोदमें प्रह्लादको बैठाय, दीनबन्धु अपने जनोंके रक्षक श्रीभगवान्ने अपने करपल्लवसे धीरे धीरे पवनकरी और वारम्वार मुख चूमकर माताकी समान हृदयसे लगालिया और फिर बहुत देर पश्चात् प्रह्लादने भगवान्के सन्मुख मुख करके विस्मय युक्त चित्तसे श्रीभगवान्को देखा ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ और जाना कि बहुत देरसे श्रीलक्ष्मीजीके गोदमें शयन करनेवाले श्रीमन्नारायण मुझको अपनी गोदमें लिये खुरी भूमिपर बैठेहैं, उसी समय एकाएकी गोदसे कूदकर भय और भ्रमसंयुक्त हो ॥१००॥ प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर गिरपडे और प्रसन्न हो ओ, प्रसन्न हो ओ, वारम्वार कहने लगे, यद्यपि वेद, शास्त्र और पुराणोंको प्रह्लाद भले प्रकार जानते थे, परन्तु प्रेमके वशीभूत हो दूसरी पूजाकी उक्तिका कुछ स्मरण नहीं किया ॥ १०१ ॥ तब शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये हुये श्रीभगवान् भक्तहितकारी भवभयहारीने अपने अभय देनेवाले हाथसे पकडकर पृथ्वीपरसे उठाय गोदमें बिठाय लिया. दीनदयालु, दुःखभंजन, दयानिधान तो उनका नामहीहै, फिर क्यों न ऐसा करते ? ॥ १०२ ॥ करकमलके स्पर्शके आह्लादसे आँखोंसे आँसू बहाते और काँपते हुये प्रह्लादको समझाते बुझाते आह्लादित करते हुये श्रीभगवान् बोले ॥ १०३ ॥ हे वत्स ! हमारे गौरवसे उत्पन्न भय और संभ्रमको छोडो, भक्तोंमें तुम्हारे समान और दूसरा हमको कोई प्रिय नहीं है. अब अपने अधीन हमको जान प्रार्थना करना ॥ १०४ ॥ नित्य सब कामोंसे पूर्ण तुम विविध

प्रकारके हमारे कीर्तन हमारे भक्तोंको सुनाते रहे हो, बताओ इससे अधिक और आपको क्या प्रिय है ? वहभी दें ॥ १०५ ॥ यह सुन डबडबाते नेत्रोंसे भगवान्का मुखारविन्द देख प्रह्लाद हाथ जोड श्रीनारायणसे बोले ॥ १०६ ॥ हे प्रभो ! यह वरदानके देनेका समय नहीं है बस मेरे ऊपर आपका प्रसन्न रहनाही परमदान है, क्योंकि आपके दर्शनामृतके स्वादको छोडकर और किसी वरदानसे हमारा मन सन्तुष्ट नहीं होगा ॥ १०७ ॥ ब्रह्मादिक देवताओंको बडे कष्टसे दिखाई देनेवाले आपको इसप्रकार अपने सन्मुख विराजमान देखकर मेरा मन जैसा प्रसन्न हुवा है ऐसा सहस्रों कल्पोंतक और किसी समय तृप्त न होगा ॥ १०८ ॥ सन्तापसे तृप्त मेरा चित्त आपको देखकर अब और किसी वस्तुके याचनेकी कांक्षा नहीं रखता, प्रह्लादके प्रेमभरे वचन सुन कुछ कुछ मुसकाते हुये रूप अमृत समूहोंसे अपने प्यारे प्रह्लादजीको प्रिय दृष्टिसे पूरित करते हुये ॥ १०९ ॥ और मोक्ष लक्ष्मीसे योजित कराते हुये जगतपति उनसे बोले कि, हे वत्स ! हमारे दर्शनसे और कुछ तुमको प्रिय नहीं है यह बात सत्य है ॥ ११० ॥ परन्तु हमारा मन तुमको कुछ देनेको चाहता है, इससे हमको प्रसन्न करनेके लिये हमसे कुछ वरदान माँगो, तब धीमान् प्रह्लाद बोले कि हे देव ! जन्म जन्मान्तरोंमें भी ॥ १११ ॥ मैं आपका दास रहूं जैसे गरुडजी आपके भक्त हैं, यह सुन श्रीभगवान्ने कहा कि, तुमने हमको यह बडाभारी कष्टदिया ॥ ११२ ॥ क्योंकि हम चाहते थे कि, तुमको हम अपने आपको देडालें परंतु तुम सेवकही होना चाहते हो. इसलिये हे दैत्यपुत्र ! तुम और वर माँगो ॥ ॥ ११३ ॥ प्रह्लाद फिर भक्तोंके कार्य पूर्ण करनेवाले भगवान्से बोले कि, हे नाथ ! हे दीनवत्सल ! हे भक्तवरदायक ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ और आपकी स्थिर भक्ति सदा मेरे चित्तमें बनी रहे ॥ ११४ ॥ और इसी भक्तिसे सदा आपको नमस्कार करतारहूं और पूर्ण प्रीतिसे आपकी स्तुति करतारहूं इस बातको सुनकर प्रेमसे संतुष्ट हुये प्रिय बोलनेवाले श्रीभगवान् अपने प्रिय भक्तसे बोले कि ॥ ११५ ॥ हे वत्स ! जो जो तुमको अभिलाषा हो वह वह सब मनोकामना तेरे मनकी पूर्ण हों, और सदा सुखी रहो, और हमारे अन्तर्धान होनेपर यहाँ तुम किसी प्रकारके खेदको मत प्राप्त होना ॥ ११६ ॥ हे महामते ! तेरे मनसे हम कभी अलग न होंगे. जैसे क्षीरसागरमें सदा हम वसते हैं, इसी प्रकार तेरे हृदयमें सदा वास करेंगे और तीन दिन पीछे फिर तुम, दुष्ट हिरण्यकशिपुके वध करनेमें उद्यत हमको देखोगे ॥ ११७ ॥ परन्तु इस स्वरूपसे हम दर्शन नहीं देंगे बरन् अपूर्व दैत्योंके भयभीत करनेवाले नृसिंह रूपसे दर्शन देंगे, यह कह प्रणाम करनेवाले और अत्यन्त लालसासे देखनेवाले ॥ ११८ ॥ असंतुष्टही प्रह्लादके सन्मुखसे विष्णुभगवान् अपनी माया करकै अन्तर्धान होगये, जब प्रह्लाद बहुत हठसे देखतेही रहे परन्तु हरि नहीं दिखाई दिये तो प्रह्लाद बोले कि, भगवान् भक्तवत्सल हैं तोभी छोडकर चल दिये ॥ ११९ ॥ ऐसा कह आँखोंसे आँसू बहाकर प्रह्लादने प्रणाम किया, इतनेमें चारों ओरसे मनुष्योंके बोलनेका शब्द सुनाई आने-

लगा ॥ १२० ॥ रात्रि व्यतीत हुई सूर्यनारायणका दर्शन हुवा, प्रह्लाद समुद्रके किनारेसे उठकर नगरकी ओरको चल दिया और गुरुके स्थानपर आनकर निवास किया ॥ ॥ १२१ ॥ जब प्रह्लादको दैत्योंने गुरुके घर बैठा देखा जो उसको समुद्रमें डाल आये थे अत्यन्त विस्मित होकर उन्होंने आकर हिरण्यकशिपुसे कहा ॥ १२२ ॥ यह सुन हिरण्यकशिपु बोला कि, प्रह्लाद समुद्रमेंभी न डूबा ! बडे आश्चर्यकी बात है, अब मैं क्या करूं? मैंने तो अपने बसाते सब उपाय कर लिये परंतु प्रह्लादको किसी प्रकारका भय नहीं हुवा ॥ १२३ ॥ और हिरण्यकशिपु जब सब उपाय करहारा और ढूंढा नाम हिरण्यकशिपुकी भगीनी भी उसको न मारसकी, तब तो दैत्याधीशको अत्यन्तही चिन्ताने घेर लिया कोईभी उपाय न बनसका उस समय प्रह्लादने अपने पितासे कहा कि, हे पिता !

भजन-हरिकी महिमा नेकनिहारो, गिरते गेर सिन्धुमें डारो ॥ अग्निमाहिं पजारो सकल उपाय आप कर हारे, जो वश चलो तुम्हारो ॥ अजहु छाँडि भ्रम मोह दुराशा, हरिचरणन चित धारो ॥ हरिसम को दयालु जगमाहीं, चितदे तनक विचारो ॥ बिगरेहूं सब काम बनत जब, हरि विश्वास सँभारो ॥ जौभार सुंड रही जल ऊपर, तब गजराज उबारो ॥ एकवार सब मिल सप्रेमसे, श्रीहरि नाम उचारो ॥ १ ॥ १२४ ॥

हिरण्यकशिपु बोला इस प्रह्लादके मारनेके लिये मैंने अनेक प्रयत्न अधर्म, निर्मोह, द्रोह, असद्धर्म, भाँति २ के प्रयोग किये तोभी यह चाण्डाल अपने तेजके प्रभावसे बच जाता है ॥ १२५ ॥ देखो ! यह मायावी मेरे सन्मुख निःशंक बैठा है अपने मनमें कुछभी शंका नहीं मानता और अपनी हठको नहीं छोडता, जैसे श्वानकी पूंछको कितनाही सीधा करो परन्तु वह कभी सीधी नहीं होती मैं जानताहूं कि थोडेदिन उपरान्त यह दुष्ट बालक मेरे कर्तव्यको नहीं भूलेगा ॥ १२६ ॥ क्योंकि इस प्रह्लादका अप्रमेय प्रभाव है, मैं जानताहूं कि यह अमर है, इसीलिये किसीसे भय नहीं मानता, मुझको यह निश्चय होता है कि इसीके विद्रोहसे मेरी मृत्यु होगी और किसी प्रकार मेरा देहपात न होगा ॥ ॥१२७॥ इस चिन्तासे किंचित् चित्तमें ग्लानि मान शोभाहीन मन मलीन नीचेको मुखकिये हिरण्यकशिपु शोकाकुल बैठा था, उसीसमय शुक्राचार्यके पुत्र शण्ड और आमर्कने एकान्तमें आनकर यह कहा ॥ १२८ ॥ हे नाथ ! आपने अकेले अपने महाप्रचण्ड तेजके प्रभावसे तीनों लोकका विजयकिया और आपकी किंचिन्मात्र भृकुटीके चढानेसे सब लोकपाल थरथर काँपने लगते हैं फिर आप ऐसे पराक्रमी और त्रिलोकीनाथ होकर अनाथकी नाईं क्यों चिन्ता करतेहो, बालकोंके गुणदोषका कुछ ध्यान नहीं करना चाहिये क्योंकि उनकी बातका कुछ विश्वास नहीं ॥ १२९ ॥ अब इसको वरुणपाशसे बाँधकर एक अन्धेरी कोठरीमें बन्द कर रक्खो जो कहीं भागभी न सके, थोडो देरमें पिता शुक्राचार्यभी आनेहीवाले हैं कभी उनहींके समझाने बुझानेसे कुछ समझजाय, क्योंकि यह बात तो जगतमें

विख्यातही है कि, पुरुषोंकी बुद्धि युवा अवस्थासे और वृद्ध जनोंकी सेवासे बढती है ॥ १३० ॥ हिरण्यकशिपुने गुरुपुत्रोंका उपदेश मान, उनहींसे कहाकि, तुमही इसको अपने घर लेजाओ और जो गृहस्थी राजाओंके धर्म, और भयानक कर्म हैं वह सब सिखाओ ॥ १३१ ॥ हे राजन् ! शण्डामर्क सूधे साधु प्रह्लादको अपने घर लेजाय, संक्षेपसे धर्म, कर्म, अर्थ, काम, और असुरकुलके धर्म, भयानक कर्मोंका विषय पढाना आरम्भ किया ॥ १३२ ॥ जो जो विषय गुरुने प्रह्लादको सिखाये उनमेंसे कोई विषय प्रह्लादके चित्तमें न जमा, क्योंकि संसारके दुःख सुखकी बातें विषयासक्त इत्यादि शिक्षासे भक्तजनोंका क्या प्रयोजन ॥ १३३ ॥ जब गुरु गृहस्थाश्रमके कामोंमें लगजाते. तब उस अवकाशमें प्रह्लाद अपनी बराबरके बालकोंको अपने पास बुला लेता ॥ महाबुद्धिमान् प्रह्लाद मधुर वाणीसे उन बालकोंपर कृपा करके हँसते और उनको ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा करते ॥ १३४ ॥ वह बालक प्रह्लादकी गौरवतासे सब खेल कूदको त्याग, सुख दुःखकी शिक्षावाली बातोंसे किसी बालककी बुद्धि दूषित नहीं होती थी ॥ १३५ ॥ हे राजेन्द्र ! विद्वान् प्रह्लादजीमें सब बालककी हृदय, दृष्टि लगाकर चारों ओरसे घेरकर बैठ जाते, तब वह परम कृपालु सबका सुहृद, महाभागवत प्रह्लाद उन बालकोंको इस प्रकार उपदेश करता, और यह भजन सबको सिखाता ॥ १३६ ॥

भजन–भजो भाई हरिहर हरिहर हरिहर ॥ आदि ब्रह्म अद्वैत निरंजन, भय भंजन धरणीधर ॥ १ ॥ जब भक्तनको असुर सतावत प्रगट होत तेहि अवसर ॥ दुष्टमार भूभार उतारत, विश्वनाथ विश्वंभर ॥ २ ॥ कबहुँ विहार करत भक्तन सँग, धर धर वेष मनोहर ॥ कबहुँ संहार करत सब जगको, धरकर वेष भयंकर ॥ ३ ॥ ऐसे प्रभुको भजन करो तुम, मन लगाय निशिवासर ॥ शालिग्राम वोही बोलतहै, आठ पहर घट भीतर ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे सप्तमस्कंधे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा–छठयेंमें प्रह्लाद नित, बालक सकल बुलाय।
देत ज्ञान उपदेश शुभ, कथा प्रसंग सुनाय ॥

प्रह्लाद बोला कि, चतुर लोगोंको उचितहै कि, बालकपनसे वैष्णवधर्मकी उपासना करैं, क्योंकि प्राणीको मनुष्य जन्म मिलना महादुर्लभ है सोभी स्थिर नहीं परन्तु सब अर्थका देनेवाला यही जन्म है ॥ १ ॥ पुरुषको इस जगतमें आनकर श्रीभगवान् वासुदेवके चरणारविन्दकी शरणागति रहना यही मुख्य है क्योंकि वह परमात्मा सब जीवमात्रका व्यापक और आत्मा है इसीसे सबका प्रिय और सुहृद है ॥ २ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! संसारमें आकर पुरुषको विषयसुखके लिये कोई उपाय नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह तो खग, मृग, मनुष्यको कर्मगतिसे आपही मिल जाताहै, फिर इसमें परिश्रम करके वृथा अपनी आयुको

व्यतीत करनेमें क्या प्रयोजन ? परन्तु भगवान् वासुदेवकी भक्ति करनेसे जैसा आनन्द प्राप्त होता है ऐसा और किसी प्रकार नहीं हो सक्ता ॥ ३ ॥ इसलिये और कामोंमें क्यों अपनी आयुको व्यर्थ क्षय करें; उसीमें परिश्रम न करे जिससे श्रीमुकुंदके चरणारविन्दमें प्रीति बढे, सदा मंगल होय; और आगेका खटका मिट जाय ॥ ४ ॥ जबतक देहमें अच्छा पुरुषार्थ बना रहे और कोई विपत्ति न आवै, मनुष्यको उचितहै कि, पहिले अपने मोक्षके लिये उपाय करें क्योंकि युवा अवस्थामें ही कोई भक्तिका उपाय न किया तो फिर बुढापेमें क्या हो सक्ताहै ? ॥ ५ ॥ महाकठिनतासे विषयानुरागी पुरुषकी अवस्था सौ वर्षकी होती है, उसमें पचास वर्ष तो वृथाही रात्रिमें सोनेसे, जातेहैं कुछ महामोहरूपी निद्रामें व्यतीत होते हैं ॥ ६ ॥ दश वर्ष तो बाल्यावस्थामें गये, दश युवावस्थामें गये बीस बुढापेकी हाय हायमें, शरीरके रोगमें, असमर्थपनमें, समाप्त होगये ॥ ७ ॥ शेष दश रहे वह काम, क्रोध, मोह, लोभादिकके आसक्त होनेमें, और कुटुम्बकी तृष्णामें व्यतीत होते हैं ॥ ८ ॥ ऐसे कौन अजितेन्द्रिय पुरुष हैं जो घरकी ममतामें फँसेहुए और कुटुम्बकी दृढ फांसीमें बँधेहुए, और संसारकी मायामें आसक्त हो अपने मनको अलग नहीं करसक्ते ॥ ९ ॥ जो धन प्राणोंसेभी अधिक प्रिय हैं, और जो तृष्णा किसीसे नहीं त्यागी जाती; जिस धनके लिये प्राणोंकी आश छोडकर चोर चोरी करता है। जिस धनके कारण सेवक अपना तन मन बेंचकर सेवा करताहै। जिस धनके निमित्त व्यापारी देश विदेश विचरता फिरता है, और शरीरका खोना अंगीकार करके पुरुष धनको प्राप्त करते हैं ऐसे धनके मोह त्यागनेकी किसको सामर्थ्य है ॥ १० ॥ फिर परमसुशीला नारी प्यारीके संग रहस्य और सुन्दर एकान्तका परामर्श सुहृदोंका शोक, बालकोंकी मनोहर वाणीसे चित्त मोहित, सो ऐसे स्नेहमें फँसेहुए मनको क्योंकर निकाल सक्तेहैं ॥ ११ ॥ फिर पुत्र, पुत्री, भाई, बहनका स्मरण, अत्यन्त दीन माता पिताकी प्रीति अति रमणीय मनोहर घर उसके सुन्दर सुन्दर पदार्थ कुलपरम्परासे जो चली आवै वह जीविका अनेक प्रकारके पशु, सेवक, मित्रोंकी प्रीति, लोभकी तृष्णा जो नित्य प्रति अधिक होती रहती है भला उसे कौन पुरुष त्याग सक्ता है ॥ १२ ॥ फिर जो पुरुष शिश्नेन्द्रिय और जिह्वाके विषयोंका बहु मान्य करनेवाला अधिक मोहसे निरन्तर दिन रात उसीमें मनको लगाये रखता, जैसे रेशमका कीडा ऐसा घर बनाताहै कि, निकलने मात्रकाभी मार्ग नहीं रखता ऐसा कर्मकारी पुरुष संसारकी मायामें लवलीन होकर भला किसकी सामर्थ्यहै जो ऐसे संसारका त्यागकरै ॥ १३ ॥ देखो ! यह पुरुष परिवारके लालन पालनमें कैसा मतवाला हो रहाहै। यह भी जानताहै कि, नित्य एक एक दिन घटता है परन्तु इतने परभी मदमें ऐसा उन्मत्त हो रहता है कि, आगे पीछेकी कुछ सुधि नहीं, और यह नहीं जानता कि, घडी घडी मेरा पुरुषार्थ घटता जाता है, परिवारके स्नेह रखनेवालेको सदा तीन ताप दुःख देतेहैं. परन्तु यह दुःखको सुख समझताहै ॥ १४ ॥ इन्द्रियोंके वशीभूत हो मनको सदा धनहीमें लगाये रहताहै और पराया वित्त हरने वालोंके दोषोंकोभी

भली भाँति जानता है कि, इस लोकमें और परलोकमें कैसी बुरी गति होती है. तोभी वह कुटुम्बी पुरुष धनकी तृष्णाको चित्तसे शान्त नहीं करता और पराया द्रव्य हरनेकी इच्छा बनीही रहती है ॥ १५ ॥ हे दनुजपुत्रो ! यह सब बातें जानतेहैं तोभी परिवारका पालन पोषण करतेही रहते हैं, और वैकुण्ठके जानेकोभी इच्छा रखते हैं, परन्तु अपने परायेका सब भाव छोडकर वैकुण्ठके बदले नरकमें जाते हैं ॥ १६ ॥ स्त्रियोंके मोहमें ऐसे कामासक्त हो रहे हैं और कामदेवही कामदेव आठ प्रहर जिनकी दृष्टिमें वास रहता है, और उनहीके विहारमें रात दिन मर्कटकी नाईं नाचा करते हैं (लवलीन हो दीन बन) अपने तनुकी रक्षा हो चाहे नहो परन्तु उनके कार्यमें असमर्थ नहीं होते. और पुत्र पौत्रादिकोंकी मोहरूपी ऐसी कडी बेडी हथकडी हाथ पाँवोंमें पडी है इस बन्धनसे मनुष्य किसीसमय अपने आत्माको छुटानेकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥ १७ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! इसलिये इन विषयासक्त दैत्योंका संग छोडो और सब देवोंके देव श्रीआदिपुरुष अविनाशी वासुदेव भगवान्‌का भजन करो, क्योंकि कुसंगका त्यागनाही मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ हे दैत्योंके बालको ! अच्युत भगवान्‌के प्रसन्न करनेमें कुछ अधिक परिश्रम नहीं होता क्योंकि भगवान् तो सब प्राणीमात्रका आत्मा है और सब प्रकारसे सिद्ध है ॥ १९ ॥ पर अवर जीवमात्रमें ब्रह्मासे लेकर पिपीलिकातक सब स्थावर जंगम जो पांच भौतिकसे बने निर्जीव पदार्थमें पाञ्चभौतिक विकारमें नारायणहीका वासहै ॥ २० ॥ गुणोंमें, गुणोंकी समतामें, गुणोंकी उलटपलटमें, पर आत्मा, एकही आदिपुरुष अविनाशी सच्चिदानन्द भगवान् विराजमान्‌है उसी परमात्माका भजन करो, तीर्थ करो, दान करो, ब्राह्मणोंका भोजन कराओ, नवधा भक्ति करो, वेद पढो पढाओ, विद्याका अभ्यास करो; ब्रह्मविद्या सीखो सिखाओ, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, निन्दा, छल, बुराई, मारना, दुष्टता, मान, मद, दर्प, हिंसा, चोरी, जुआ इत्यादिको त्यागो यही मोक्षका उपाय है ॥ २१ ॥ यद्यपि वह सच्चिदानन्द जगदीश्वर आप रूप एकही है तौभी आत्मा स्वरूप सबके देखनेके योग्य व्याप्य है और व्यापक निर्देश योग्य कभी नहीं दिखाई देता और संकल्प विकल्प ब्रह्म है ॥ २२ ॥ केवल अनुभवसे आनन्दस्वरूप परमात्माने मायासे सब ऐश्वर्य छिपा रक्खे हैं, और गुणोंकी रचनेवाली मायाहीसे जाने जातेहैं ॥ २३ ॥ इसलिये सब जीवमात्रमें प्रीति करो; सबसे सुहृदभावसे वर्तो, और असुर भावको छोडो, क्योंकि असुरभावके त्यागनेहीसे भगवान् प्रसन्न होतेहैं ॥ २४ ॥ अब आद्यदेव अनन्त भगवान् प्रसन्न होजाँय तो सब वस्तु प्राप्त होजाती है, जो अपने आप सिद्ध धर्माधिकहैं, उनको इस संसारमें गुणोंके उलटे भावसे निर्गुणको जैसे धर्म, अर्थ, कामसे कुछ प्रयोजन नहीं, इसीप्रकार मोक्षकी इच्छासे हमको क्या प्रयोजन है ॥ २५ ॥ धर्म, अर्थ, काम, जो यह त्रिवर्ग है, सो आत्मविद्यासे वेदत्रयी, नीतिदण्ड, और अनेक प्रकारकी वार्त्ता, सो यह सब वेदके सार हैं, परन्तु इनका भी सार यह है कि, परमपुरुष परमात्माको अपना आत्मा समर्पण करना यह परमश्रेष्ठ तपहै ॥ २६ ॥ यह महाकठिन निर्मल ज्ञान नरके सखा श्रीमन्नारायणने नारदजीसे कहा

था, जो पुरुष भगवत्के सच्चे भक्त और आनन्दरूप हैं उनके चरणकमलकी रजसे जो स्नान करनेवाले हैं, उनहींको यह निर्मल ज्ञान प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ देव समान दर्शन-वाले भगवान् नारदजीके मुखसे विज्ञान सहित यह ज्ञान, धर्म, भागवत, पहिले शुद्ध चित्तसे मैंने सुना था ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्र बोले कि, हे प्रह्लाद ! हम और तुम इन गुरु शण्डामर्कके अतिरिक्त दूसरेको नहीं जानते और उनसे हमने तुमने एक संगही पढाहै, फिर यह निर्मल ज्ञान तुमको कैसे होगया ? और दूसरा गुरु तुमको मिलाही नहीं ॥ २९ ॥ हे प्रह्लाद ! जब तुम बालकपनसे तो रनिवासमें अपनी जननीके पास रहे वहां सज्जन पुरुषों का जाना महाकठिन था, हमारे मनमें यह बडाभारी संशय है, सो हमारा संशय तुम दूर करो जिससे भगवान्की भक्तिमें हमारी श्रद्धा होय और हमारे मनमें विश्वास होय ३० ॥

भजन-विन हरि भजन कौन सुख पायो ॥ हरिका नाम परम सुख-दायक, सब भक्तनने गायो ॥ १ ॥ जिन घर वार मोह ममता तज, हरि-सों ध्यान लगायो ॥ निःसन्देह यह देह त्यागकर, सुरपुर जाय बसायो ॥ २ ॥ सब भक्तनमें भक्त शिरोमणि, पूरण भक्त कहायो ॥ करत पुराण प्रशंसा निशि दिन, त्रिभुवनमें यश छायो ॥ ३ ॥ भक्तहेत भगवान जग-तमें, मनुज रूप धर आयो ॥ दुष्टमार भूभार उतारो, आनँद सबन दिखा यो ॥ ४ ॥ भक्त भावसे शेष शीश पर, भूको भार उठायो ॥ शालिग्राम प्रताप भक्तिको, दुरतो नाहिं दुरायो ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-सप्तममें प्रह्लाद जो, सुनो गर्भमें ज्ञान।
सो लडकनके सामने, लागे करन बखान ॥ १ ॥

नारदजी बोले, कि, जब असुरोंके बालकोंने इस प्रकार दैत्यपुत्र प्रह्लादसे बूझा, तब मेरे ज्ञानोपदेश भाषणका स्मरणकर प्रह्लाद मुसकाकर उन बालकोंसे यह कहने लगे ॥ १ ॥ प्रह्लाद बोले कि, हमारे पिता जब मन्द्राचल पर्वतपर तप करनेके लिये चले गये तब इन्द्रा-दिक देवताओंने दैत्योंको विना नरेशके निर्बल समझ उनके ऊपर युद्धका आक्रमण किया ॥ २ ॥ और परस्पर इन्द्र और देवता कहने लगे, कि, जैसे चींटी सीपका भक्षण करलेती है, ऐसेही मनुष्योंके सतानेवाले हिरण्यकशिपु पापीको उसके पापनेही भक्षण करलिया, हम लोगोंके लिये यह बडा आनन्द हुवा ॥ ३ ॥ उनके बलका अत्यन्त उद्योग देखकर असुरोंके सेनापति, देवताओंके भयके मारे भयभीत हो सब दिशाओंको भागगये, और कोई कोई दैत्य देवताओंके हाथसे मारेभी गये ॥ ४ ॥ तब नारदजी बोले कि, कुटुम्ब, पशु, सम्पत्ति और सब सामग्रियोंको छोड अपने अपने प्राण लेकर देश विदेशको भाग निकले ॥ ५ ॥ तब विजयकी अभिलाषा करने वाले देवताओंने सेना निवास स्थानको लूट लिया. और मेरी माता राजमहिषी कयाधु दानवीको इन्द्र पकडकर लेचला ॥ ६ ॥

जैसे व्याधके पकडनेसे टिटीहरी चिल्लाने लगती है ऐसेही मेरी माता कुररीकी नाईं चिल्लाने लगी, और अनेक अनेक प्रकारके विलाप करके रोती थी. और इन्द्र, बलात्कार उसे पकडे लिये जाता था अकस्मात् दैव इच्छासे उस मार्गमें कहींसे नारदजीभी चले आते थे, और मेरी माताको रोती हुई उन्होंने देखा ॥ ७ ॥ तब नारदजी बोले कि, हे देवराज! इस अबला निरपराधिनीको क्यों लिये जातेहो? इसको कभी नहीं लेजाना चाहिये, हे महाभाग! इस दीन सती स्त्रीको छोडदे, यह तेरे योग्य नहीं है यह महाशीला पतिव्रता परस्त्री है जो इसका पति आवेगा तो क्षणमात्रमें तेरी सब पति खो देगा और तू भागा भागा फिरैगा और इन्द्रलोकमें रहना कठिन होजायगा ॥ ८ ॥ इन्द्र बोला कि, इसके पेटमें हिरण्यकशिपुका गर्भ है सो वह महाभयानक और देवद्रोही होगा, इसलिये जबतक इसका गर्भ बाहर न हो आवेगा तबतक मैं इसको अपने पास रक्खूंगा, और जबतक इसके पुत्र न होगा कभी इसको नहीं छोडूंगा, जब इसके पुत्र होगा उसको मारकर मैं इसको छोडूंगा ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि, इसके उदरमें जो स्थित है वह निष्पाप और भागवतोंमें उत्तम और परम श्रेष्ठ है वह तुमसे किसी प्रकार नहीं मरैगा क्योंकि वह परमात्माका परमभक्त है, और तुम जानते हो कि, ईश्वरके भक्त महाबली और पूर्ण प्रतापी होते हैं, इसलिये क्यों वृथा कलंक लेता है छोडदे ॥ १० ॥ प्रह्लाद बोले कि, नारदजीके वचनोंको सत्यमान मेरी माताको उसने छोडदिया और उसके उदरमें भगवतका भक्त जान मेरी माताकी परिक्रमा की और प्रणामकर इन्द्र अपने लोकको चला गया ॥ ११ ॥ तब नारदजी मेरी माताको अपने स्थानपर लाकर आशा भरोसा देकर बोले कि, हे वत्से! जबतक तेरा स्वामी न आवै तबलों तू यहां निवास कर ॥ १२ ॥ मेरी माता मुनिके मनोहर वचनोंको मान सब भय त्याग निर्भय हो मुनिके आश्रमपर निवास करनेलगी जबतक मेरा पिता घोर तपसे निवृत्त हो लौटकर न आया तबतक ॥ १३ ॥ उस पतिव्रता गर्भवती मेरी माताने अपने गर्भकी कुशलता और इच्छापूर्वक पुत्रके जन्मनेके लिये परमभक्तिसे वह धर्मशीला ऋषिकी सेवा करने लगी ॥ १४ ॥ परमदयालु और सर्व समर्थ मुनिने मुझको भक्त जान धर्मका तत्त्व और निर्मल ज्ञान दोनों मेरी जननीको दिये ॥ १५ ॥ उस ज्ञानको बहुत काल पाकर अधिक दिन व्यतीत होनेसे और स्त्रीपनके स्वभावसे मेरी माता तो भूलगई परन्तु ऋषिकी कृपासे मुझको वह ज्ञान अबतक स्मरण है, मैं उसको किंचिन्मात्रभी नहीं भूला ॥ १६ ॥ हे दैत्यपुत्रो! जो तुमभी मेरे वचनोंको श्रद्धापूर्वक सुनोगे तो तुमकोभी तत्त्वज्ञान उत्पन्न होगा और श्रद्धा होनेसे स्त्री और बालकोंको भी मेरे समान ब्रह्मज्ञान होसक्ता है ॥ १७ ॥ महासमर्थ कालके हेतु होते हैं जन्मता है, बढता है, कुछका कुछ होता है. कभी क्षीण, कभी क्षय, यह छःभाव द्रष्टाको होते हैं, देहके व्यापक आत्माको नहीं होते, क्योंकि छः विकार शरीरहीके होते देखनेमें आते हैं जैसे वृक्ष जब होय तौ तभी उसके फलके यह विकार होते हैं, तैसे आत्माके होनेहीसे

यह विकार देहके होसक्ते हैं ॥ १८ ॥ आत्मा नित्य है, और देह अनित्य है, आत्मा क्षीण नहीं होता और देह क्षीण होजाता है. आत्मा शुद्ध है, और देह अशुद्ध है, आत्मा एक है, और देह अनेक हैं, आत्मा देहादिकको नहीं चाहता है और शरीर जड है. आत्मा सबका आश्रय है, और शरीर आत्माके आश्रय है, आत्मा निर्विकार है, और शरीर सविकार है, आत्मा स्वयंप्रकाश है, और शरीर परप्रकाश है. आत्मा सबका कारण है, और देह कार्य पदार्थ है, आत्मा सर्वव्यापक है, और देह व्याप्य है, आत्मा असंग है, और देह संग है, तथा आत्मा किसीसे आवृत नहीं होता, और देह वस्त्रादिकसे आच्छादित होजाता है ॥ १९ ॥ आत्माके परसे परे यह द्वादश लक्षणका विद्वान अहं मम यह असद्भाव देहादिकमें मोहसे लगा रक्खा है इसका त्याग करना चाहिये ॥ २० ॥ जैसे सोनेको सब प्रकारसे जाननेवाला सुनार कसौटी आदि पत्थरोंमेंसे लगे हुये सोनेको निकालकर अलग करलेता है, इसीप्रकार अध्यात्मको जाननेवाले शरीर मध्यवर्ती जीवके द्वारा होकर आत्मा लक्षरूप योग करके ब्रह्मकी गतिको जान लेते हैं ॥ २१ ॥ माया, महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह आठ प्रकृति हैं, सत, रज, और तम यह तीन मायाके गुण हैं; यह पृथक् नहीं गिने जाते ग्यारह इन्द्रियें और पांच महाभूत मिलकर सोलह विकार हुये, इन षोडशविकारोंके न होनेसे कपिलाचार्यने जीव ब्रह्म एक कहा है, और प्रकृतियां और सोलह विकार मिलकर चौवीस तत्त्व होते हैं, सबके साक्षीपनका सम्बन्ध आत्मा एकही है ॥ २२ ॥ इनहीं चौवीस तत्त्वोंके सम्बन्ध होनेसे शरीर कहलाता है, स्थावर और जंगम इस शरीरके दो प्रकारके भेद हैं सो यह मनुष्यको देहमेंही जीवद्वारा पुरुष परब्रह्मको खोजलेना चाहिये; इस बातमें कुछ कठिनता नहीं है बहुत सहजमें होसक्ती है, क्योंकि ऐसे समझे कि, यह भी आत्मा नहीं है, यह भी आत्मा नहीं, इस प्रकार जड वस्तुओंको अलग करते करते यह आत्मा अपने आप सबसे अलग होजाता है ॥ २३ ॥ देखो अक्षर मसीसे भिन्न नहीं है परन्तु मसी अक्षरोंसे भिन्न है, इसी प्रकार देहादिक आत्मासे पृथक् नहीं परन्तु आत्मा इनसे पृथक् है जैसे मणियोंमें सूत पुहा हुआ है इसका नाम अन्वय है और मणियोंकी डोरीसे पृथक्ता है इसका नाम व्यतिरेक है, ऐसे शुद्ध ज्ञानके जाननेवाले मनसे सृष्टिकी उत्पत्ति पालन, संहारका निश्चय करनेवाले वेदकी श्रुतियोंको धीरे २ विचारनेवाले धीर पुरुषोंके जाननेके योग्य ब्रह्म है ॥ २४ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन वृत्तियां बुद्धिकी हैं, इनका जो अनुभव नहीं करता है वह सबका साक्षी परपुरुष ईश्वर है ॥ २५ ॥ इन तीन वर्णसे बुद्धिभेद करके क्रियासे आत्माके स्वरूपको जानै, सबमें व्यापक होनेसे गन्धके गुणसे वायु जानी जाती है, इसी प्रकार बुद्धिको धर्मरूप तीनों अवस्थाओंको जानने वालेको आत्मा भिन्न प्रतीत होता है ॥२६ ॥ बुद्धिके गुण और कर्मों करके बन्धन होता है यही संसारके द्वार हैं इसका मूल कारण अज्ञान है इसीसे यह मिथ्या है परन्तु मिथ्या होने पर भी पुरुषको स्वप्नवत्

दिखाई देता है ॥ २७ ॥ इसलिये त्रिगुणात्मक कर्मोंका बीज जो अज्ञान है उसके नाश करनेके लिये तुम सब योगका साधन करो ॥

दोहा-तातेतीनों गुणनके, कर्म तजहु सब कोय।
विषय वासना तजेते, बुद्धि विमल यश होय॥

जिससे तीनों अवस्था रूप संसारका प्रवाह दूर हो जाय यही श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ सोई सहस्रों उपायोंसे बढकर यह उपाय भगवान्‌ने गीता आदि शास्त्र और पुराणोंमें अपने मुखसे वर्णन किया है कि, जिस धर्म कर्मसे भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंमें रुचि होय. हे बन्धुगणों! उसी धर्म कर्मका करना मनुष्यको चाहिये ॥ २९ ॥ गुरुकी सेवा करनेवाली जो उत्तम भक्ति है वह सम्पूर्ण लाभोंकी देनेवाली है सो भगवान् वासुदेवके समप्पर्ण करै सत्संगतिसे साधु महात्माजनोंकी भक्तिसे, परमेश्वरका आराधन करै तो भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥ ३० ॥ भगवत्की कथा श्रद्धापूर्वक सुने, ईश्वरके सुन्दर सुन्दर गुण और कर्मोंका कीर्तन करे उनके मनरञ्जन भयभञ्जन पदाम्बुजोंका ध्यान करे,और उनके परमसुखदायक अघघातक अत्यन्त सुहावन मन भावन सुन्दर स्वरूपके दर्शन व पूजन करै ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण आदिपुरुष अविनाशी भगवान् सब जीवमात्रमें और जल थलमें विराजमान हैं, ऐसा निश्चय जान प्रत्येक प्राणीमात्रका तन मनसे पूजन करै ॥

चौ०-देखपरै हरि जल थल माहीं। सब मनकी संशय मिटजाहीं।
जब हरि चरण परमरति होई। पिछलपापरहै नहिं कोई ॥ ३२ ॥

इस प्रकार काम क्रोधादिक छःइन्द्रियोंको जीतकर ईश्वरमें भक्ति करै, जिससे अधिक प्रीति हो जाय ॥ ३३ ॥ भगवत्के अतुल गुण, कर्म, वीर्य और जो जो लीला अनेक अनेक प्रकारके अवतार धारण करके करी है उनको हित चित्तसे सुने, जब अत्यन्त हर्ष बढे और शरीर पुलकायमान हो जाय, नेत्रोंमें आँसू भर आवैं, गद्गदवाणी हो जाय, उच्चस्वरसे कभी गाने लगे, कभी रोने लगे, कभी हँसने लगे, कभी नाचने लगे ॥ ३४ ॥ जब इस प्रकार प्रेमलक्षणा भक्ति, होजाती है तब वह पुरुष ग्रह ग्रहीतका नांई, कभी हँसता है, कभी पुकारता है, कभी ध्यानमें आजाता है, कभी जीवोंको प्रणाम करता है, कभी वारम्वार श्वास लेकर हे हरे! हे जगत्पते! हे मुकुन्द! हे गोविन्द! हे नारायण! कहता है. यह आत्माकी गति होजाती है और कुछ लज्जा नहीं रहती॥३५॥जब ऐसा प्रेम उत्पन्न हो जाता है तब पुरुष सब बन्धनोंसे छूटकर मनमें भगवान्‌की भावनाको कर वैसेही कर्म करने लगता है,महा भक्ति प्रयोग करके काम कर्मके बीज रूप अज्ञानकी वासनाओंको भस्म करके भगवान्‌को प्राप्त होजाता ॥३६॥ अधोक्षज भगवान्‌का जो स्पर्श होता है वही प्राणियोंके सब शरीरोंके अशुभ कर्मोंका नाशक है वही संसारचक्रका विनाश करनेवाला है ब्रह्मका महानन्द सुख उपजानेवाला है,उसीको बुध जन मोक्षरूप जानते हैं हे भ्रातृगणो! इसलिये तुमभी सब मिलकर अपने हृदयमें नारायणको भजो ॥ ३७ ॥ हे बांधवो!

श्रीनारायण तो हृदय छिद्रमें आकाशवत् सदा विराजमान् हैं इस लिये फिर परमेश्वरकी उपासना करनेमें किसी प्रकारका परिश्रम नहीं है भगवान् अपने आत्मामें स्वभावसे सब शरीरके मध्यमें सामान्य भावसे रहते हैं, तुच्छ प्राणियोंकी नाईं विषयोंके सेवन करनेसे क्या लाभ है ! ॥ ३८ ॥ स्त्री, धन, पशु, पुत्रादिक, मन्दिर, वसुधा, हाथी, कोश, विभूति और इनके अतिरिक्त और भी जो वस्तु और मनोअभिलाषा जो अति चंचल है वह क्षणभंगुर आयुषवाले मनुष्यको कुछ प्यार नहीं करसक्ती क्योंकि वह आप चलायमानहै ॥ ३९ ॥ ऐसे यज्ञादिक करनेसे जो स्वर्गादिक लोक प्राप्त होते हैं यहभी अनित्यही हैं क्योंकि यहभी सब नाशवान् हैं, पुण्यकी न्यूनता अधिकता है निर्मल नहीं है, इसलिये जिनमें कभी दूषण देखनेमें और सुननेमें न आवै ऐसे भगवान् वासुदेवको अपने आत्माकी प्राप्तिके लिये तुम सब मिलकर भजन करो ॥४०॥ जिसका संकल्प कर विद्वज्जन पुरुष अपनी विद्याके अभिमानसे फलकी इच्छासे कर्म करतेहैं,उनको इच्छाके विपरीत फल प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ सब जानते हैं,कर्म करनेवाले पुरुषका संकल्प दुःखके दूर करनेको और सुखकी प्राप्तिके लिये होता है, सोई दुःख प्राप्त होता है, और चेष्टा न करनेसे सुख प्रात होता है परंतु सुख तो केवल कर्मोंके त्यागनेहीसे होता है॥४२॥ सकामिक कर्मसे पुरुष जिस सुखके लिये कामोंकी चाहना करताहै सो वह देह तो परायाहै क्षणभंगुरहै,कभी प्राप्त होताहै कभी नाश होजाताहै॥४३॥स्त्री, पुत्र, घर, धनादिक, राज्य, भण्डार, हाथी, मंत्री, भृत्य यह देहसे दूर और ममताके स्थान हैं इनसे होनाही क्या है ? ॥ ४४ ॥ आत्मा जो कि अजय, अव्यक्त, अविनाशी, आनन्दका महासमुद्र रूप है उसको तुच्छ समझना और जो सुख महाअनर्थकारी हैं और विनाशी हैं, और देहसे होते हैं, और भूलसे सुखदायक दृष्टिआते हैं, परमेश्वरके सम्मुख वह सन्तान, स्त्री, वेश्यादिक कुछ वस्तु नहीं ॥ ४५ ॥ इस बातपर एक दृष्टान्त है किसी समाजमें एक वेश्या नाच रही थी और मनोहरतासे यह सवैया गाय गाय रिझाय रिझाय हाथ उठाय उठाय सबकी ओरको बताय रही थी. वहां कोई बुद्धिमान् किसी चतुर पण्डितसे बूझने लगे कि, यह वेश्या हाथ उठाकर किसको बता रही है ? पण्डितजी बोले कि, मित्र तुम नहीं जानते इस बातपर आपको एक सवैया सुनाते हैं ॥

सवैया-पट उज्वल धारकै बैठे सभा, मन काममें लाग रह्यो जिनको ॥
सो मृदंग कहै हरि भक्ति विना, धिकहै धिकहै धिकहै तिनको ॥
मनजीरन बूझ लियो विधिसों, किनको किनको किनको किनको ॥
वह पातर हाथ उठाय कहै, इनको इनको इनको इनको ॥

हे असुरपुत्रो ! देहधारियोंको यहाँ क्या स्वार्थ है ! जन्मसे लेकर मरण पर्यंत जब अपने कर्मोंसे क्रियमान हैं ॥ ४६ ॥ यह जीव अपने आत्माके अनुसार देहसे कर्मोंको आरम्भ करना चाहता है, और कर्मोंसे देह होता है परन्तु सुख भोगनेका इसको कोई समय प्राप्त नहीं होसक्ता, और विचारकरके देखते हैं तो कर्म और देह दोनों अज्ञानपनसे

होते हैं ॥ ४७ ॥ सब जीवमात्रके आत्मा श्रीहरि परमप्रिय भगवान् हैं, और पंचभूतोंके रचे हुये सब प्राणी मात्र हैं ॥ ४८ ॥ तुम अपने मनमें यह न समझना कि, हम दैत्य देह हैं हमको भगवत्के भजन करनेका अधिकार नहीं है, यह बात नहीं. देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व इत्यादि कोई प्राणी क्यों न हो श्रीमुकुन्दके चरणारविंदके भजन करनेसे स्वास्तिमान होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे सुहृद्गण ! ब्राह्मणपन, देवतापन, ऋषिभाव वृत्त, सदाचार, बहुज्ञता, ज्ञान, दान, तप, यज्ञ, पतिव्रत, व्रत कोईभी भगवानका प्रसन्न करनेवाला नहीं दीखता ॥ ५१ ॥ और जो कदाचित प्रसन्न होते भी हैं तो बहुत कालमें होतेहैं और भगवान् तो केवल निष्कपट प्रीति और भक्तिसेही प्रसन्न हो जाते हैं और शेष सब बातें कहने मात्र हैं ॥ ५२ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! इसलिये श्रीभगवान्की भक्ति निष्कपट मनसे तुम सब मिलकर करो, सबको अपनी समान जनकर सब मात्रमें श्रीभगवान् वासुदेवहीको समझो ॥ ५३ ॥ दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियें, शूद्र, व्रजवासी, खग, मृग और दूसरेभी पापी जीव भक्तिके प्रभावसेही मुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ वस इस लोकमें मनुष्यका परमस्वार्थ इतनाही है कि, भगवान्की निश्चल भक्ति हित चित्तसे करनी और सर्वमें भगवान्हीका वास जानना, इससे अधिक और कोई उपाय मुक्ति होनेका नहीं है ॥

भजन–भज मन हरन श्रीयदुवीर ॥ भक्त लोगन पर परत जब, कठिन भारी भीर ॥ १ ॥ करत आय सहाय तुरतहि, धार मनुज शरीर ॥ दुष्ट दुशासनने करी जब, अति अनीति गंभीर ॥ जायकै झट पट बढाये द्रोपदीके चीर ॥२॥ इन्द्रकर जब कोप व्रजपर, अधिक छोडो नीर॥धार गिरि कर तुरत मेटी सब जननकी पीर ॥ ३ ॥ कंसके दुखसे भये जब, दुःखी सकल अहीर ॥ पकर चोटी कंस मारचो जाय यमुना तीर ॥ ४ ॥ पूतनाके प्राण खैंचे, पियो ऐसो क्षीर ॥ सदा शालिग्राम जनके धरन हारे धीर ॥ ५ ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे सप्तमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा–अष्टममें अति कोपकर, दियो पुत्रको त्रास ।
तब हरि नरहरि रूपधर, कियो कशिपुको नाश ॥

नारदजी बोले कि, सब दैत्यपुत्रोंने प्रह्लादका वर्णन सुनकर निर्दोष होनेके लिये उनही बातोंको अंगीकार किया और गुरुकी शिक्षा नहीं मानी ॥ १ ॥ जब सब बालकोंकी बुद्धि इस प्रकार नारायणमें लगी हुई देखी, तब शुक्राचार्यके पुत्र अपने मनमें बहुत डरे और अच्छीरीतिसे सोच समझकर सब वृत्तान्त जैसेका तैसा हिरण्यकशिपुसे जाकर कहा ॥

चौ०–वह सुत शठ प्रह्लाद तुम्हारो । मानत नहिं कछु कहा हमारो ॥
सकल बालकन निकट बुलाई । कहत भजहु हरि हरि यदुराई ॥

वोही भक्ति मुक्तिके दायक। वोही सकल सृष्टिके नायक ॥
हरि हरि हरि दिन रात बखानै। वचन हमार एक नहिं मानै ॥
ताते उऋण होन हम आये। जात सभामें सबहिं सुनाये ॥
इसमें कुछ हमार नहिं दोषू। वृथा न कीजो हमपर रोषू ॥२॥

यह असह्य अप्रिय महाकठिन अत्याचार पुत्रका सुनकर क्रोधमें मतवाला हो लाल लाल नेत्रकर काँपने लगा और पुत्रके मारनेका मनमें विचार किया ॥ ३ ॥ जिस परमेश्वरके भक्तका कोई तिरस्कार नहीं करसक्ता उस प्रह्लादका कठोर वाणी और तिरछी आँखसे निरादर करने लगा. वह जितेन्द्रिय प्रह्लाद नम्रतासे हाथ जोडे खडा था, उस दारुण प्रकृतिवाले ॥ ४ ॥ हिरण्यकशिपुने पाँवसे मसले हुए सांपकी सदृश फूंकार कर प्रह्लादसे इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत ! हे मन्दगति ! हे कुलकलंक ! कुलमें भेद डालनेवाले ! हे अधम ! गर्वी ! तैंने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है, मैं तुझको आज यमलोकमें भेजूंगा ॥ ६ ॥ हे मूढ ! जा मेरे आगेसे चलाजा. अरे नीच ! मेरे क्रोधसे दशों दिक्पाल और सब लोकपाल त्रिलोकी समेत ईश्वर तक काँप रहेहैं और तू निःशंक होकर मेरी आज्ञाका उल्लंघन करताहै, ऐसा तुझको किसका बल है ॥ ७ ॥ प्रह्लाद बोला कि, हे राजेन्द्र ! सब चर अचर जीव जन्तु, ब्रह्मादिकोंको जिसने अपने वशीभूत कर रक्खा है, उसी आदिपुरुष अविनाशीका मुझको और तुमको बल है- वरन् मुझमें और आपमेंही नहीं सब संसारके बलवानोंमें उसीका बल है ॥ ८ ॥ काल, उरु, ओज, क्रम, सह, बल, इन्द्रिय आत्मा और सत्व वही परमेश्वर अपनी शक्तियोंसे सृष्टिको रचैहै, पालैहै, संहारकरै है और वही तीनों गुणोंका ईश है ॥ ९ ॥ अब आप इस अपने असुर स्वभावको छोडदो मनमें सबसे समान भाव रक्खो कोई किसीका शत्रु नहीं है केवल अजित आत्माके और पाखण्ड मतमें स्थित और खोटेमार्गमें चलनेके तुम श्री अनन्त भगवान्का पूजन करो इसीमें आपका भला है ॥ १० ॥ कोई कोई पुरुष आप सरीखे ऐसेभी हुए कि, अपनी छः इन्द्रियोंको विना जीते दशों दिशाओंको जीता मानलिया, परन्तु कुछ न जीता. क्योंकि जिसने अपने वैरियोंकोही नहीं जीता उसने क्या जीता ? खटका तो बनाही रहा, जिसके घरमें शत्रु घुस रहा है, वह बाहरके शत्रुओंको जीतकर कैसे सुखकी नींद सो सक्ताहै और जिनने अपने आत्माको जीत रक्खा है, ऐसे ज्ञानी पुरुष सब देहधारी मात्रमें समान भाव वर्त्तें हैं ऐसे साधुजनोंको अपने मोहसे दुःख नहीं होते औरोंका तो कहनाही क्याहै ? ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, उस प्रह्लादके नीति भरे वचन बाणकी समान लगे, तब तो क्रोधवान् होकर हिरण्यकशिपु बोला कि, अरे अधम ! मुझको भली भांति निश्चय हुवा कि, तू अपने मरनेकी इच्छा करताहै जो ऐसे निर्द्वन्द्व वाक्य बोलता है. हे मन्द आत्मन् ! जिनका काल शिरपर आजाताहै उनकी ऐसीही अयोग्य वाणी निकलती है और सब ज्ञान जाता रहताहै ॥ १२ ॥ अरे कुलकलंक ! मेरे अतिरिक्त तैंने जो जगतका

कर्ता और कोई दूसरा बताया अब बता वह कहाँ है जो तू कहताहै कि, वह परमात्मा सर्वत्र है तो इस खंभमें क्यों नहीं दीखता ?

चौ०-तब प्रह्लाद सभामें बोला। भेद भाव मनका सब खोला॥
पिता मोर प्रभु है सब ठाऊं। जाकेहैं अनन्त गुण नाऊं॥
मुझमें तुममें सभासदनमें। जलमें थलमें शैल नदनमें॥
पिता नहीं ऐसो कोउ ठाहर। जहँ न विराजत श्रीनरनाहर॥
मुझको देख परत सब ठाहीं। तुमको देख परत कहुँ नाहीं॥
देखो सम्मुख कृष्ण विराजत। लख छबि कोटि काम मन लाजत॥

देखो खम्भमें वह दीखता है॥ १३ ॥ हिरण्यकशिपुने जब खम्भमें नहीं देखा तो बोला कि-

छंदभुजं०-अरे मूढ यहतो भली बात बोलै, सबै तोर पाखण्ड हौं देत खोलै॥ जु अब खम्भते ना कढो तोर ईशा, तो मैं काटिहौं खड्गते तोर शीशा॥ प्रथम खम्भ तेहीं निकरनो कठिनहै, तेरी झूठ बातें यहां कौन गिनहै॥ यदपि निकलेभी खम्भते तोर स्वामी, दोऊ संग हुइहौ यमै लोकगामी॥ महेशो गणेशो दिनेशो सुरेशो, सकै तोहि ना राखि शेषो प्रजेशो॥ चहै जो बचायो तुझे काल आजै, तऊ ताहिकी मैं करौंगो पराजै॥ अभीलौं न तू मोहिं जानो कुमारा, कवन भूल फूलौ फिरै तू गँवारा॥ सुनौ रे सभाके सकल वीर प्यारे! कहेदेत हूं आज सबसे पुकारे॥ तनय जान इसको अबैलौं बचायो, बडो खेद इसके लिये मैं उठायो॥ न दीजो कोई आज कुछ दोष मुझको, परै कालके गाल यह बालरोको॥ १४॥

इस प्रकार वह दुष्ट हिरण्यकशिपु वचनोंसे और क्रोधसे महाभागवत प्रह्लाद अपने पुत्रको पीडा दे, खड्ग हाथमें ले, महाक्रोधकर ललकारता फटकारता गर्जता तर्जता झट झपट कर आसनसे उछल कर उठा, कवचकी कडियें तडकने लगीं, भुजायें फडकने लगीं तहां तेलकी समान आँसू आँखोंसे ढलकने लगे योधा क्रोधानल सम रूप देख देख सरकने लगे, उस समय महा गम्भीर नाद कर खम्भमें एक मुष्टिक मारी॥ १५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे अभिमन्युनन्दन!

छन्दनराच-विकुष्ट दुष्ट जोर जुष्ट मुष्ट खम्भमें हन्यो, अतीव गर्व पुष्ट कोप तुष्ट चित्त ना गन्यो॥ तहां अखण्ड अण्ड खण्ड खण्डसो विखण्डते, भयो प्रचण्ड शोर दैत्य दण्ड सम्भ दण्डते॥ धरा धरा धरो अधार छोडकै टरक्कगै, सुमेरु शृङ्ग तुंगहू तुरन्तही तरक्क गै॥ विरञ्चि सञ्चि बैठ चौंक चौंक कै तरक्कगै, सगौरिवे गिरीश ऊशि रीशते खरक्क गै॥ प्रचण्ड मारतण्डको उदण्ड तेज ठण्डभौ गँभीर

नीर थम्भ सात सिन्धुको अखण्डभौ ॥ फणीश कानफूटगै फणो इकठ्ठ जट्टगै. दिशान दिग्गजानके दिशान सान छूट गै ॥ सुरेश शङ्क धार वार वारही चिकारही, कहां भयो महान वज्रपात एक बारही ॥ विना समय अबै कहां समस्तको सँहार भौ, सु यों चितै सँभारको विसारवे अधार भौ ॥ कि धौं प्रलय पयोध एक वारही गराज ही, कि धौं सबै सु पौन जोर शोरकै विराज ही ॥ करैं विचार ऐस हीन नैक ठीक पावही, सवेग उद्भिजात देवतान स्वस्ति गावहीं ॥ सुनो सुखम्भते तबै महा केठोर शोरहै. सुवीर धीरमें अधीरता कि चार औरहैं ॥ कि तान कर्ण फूटगै कि तान शस्त्र छूटगै, महान आसमान तार चन्द्र भानु जूटगै ॥ दिशानके मुखानमें अमान शोर जात भौ त्रिलोकमें तुरन्तही अनन्त गर्व पात भौ ॥ सनंक विश्वमें भरी सबै बली सनंक भै, अशंक ते सशंक भौ जनंक को अनंक भौ ॥ मकान दानवानके गिरे धरा धड़ाक दै, सभा फटी सुवर्णकी किला फटा पड़ाकदै ॥ निसम्य दैत्य हू कडी विश्वंभरा भड़ाक दै, उठो सँभार कोपकै प्रवीर सो झड़ाक दै ॥

अरे वीरो ! आज क्या है ? इस महा भयंकर शब्दके होतेही पृथ्वी लोट पोट होने लगी पहाड़ जड़से उखड़ कर गिरने लगे, दिग्गज चिंघाडने लगे, समुद्रोंने मर्यादा छोडदी, आज सब लोकोंका विध्वंस हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं, मैं जानताहूं कि, आज महाप्रलयका समय आगया ॥ १६ ॥

छन्द दण्डक ॥ आशु तेहि ठौर वर जोर अति शोर बल चोर सुन रौर दानव अधीशा ॥ चितै चहुँ ओर कछु मनहि भौ भोर जेहि जोरे सौं शोरभो सो न दीशा । चकित चित थोर नहिं चौंक चिन्तन लगो कहा यह भयो का रचो ईशा । देख नहिं परत कछु श्रवण महँ रव भरत डरत दानव सर्व बीस बीशा ॥ १ ॥ गुणत अस हिरण्यकशिपुहि की सभामधि कड़ककै फाटि गौ खम्भ भारी । कढी विकराल तहँ कालसी कालकी ज्वालकी माल अति भीत कारी ॥ जरत जहँ असुर बहु धीर उर नहिं धरत भरत उर शोक सुधि बुधि विसारी ॥ करत नहिं बनत कछु भजत एक एक डरत गिरत पुनि परत आरत पुकारी ॥ २ ॥ जरत कहुँ पाग कुहुँ फेंट कहुँ कंचुकौ रंचकौ वंचकौ बचत नाहीं ॥ भभरि भागत फिरत हहरि हारत तुरत दररि दारत दुरत दीनकाहीं । महा भयभीत लख रीति तज नीति तज, भये विपरीत दिति सुवन आहीं ॥ ३ ॥ कटक घट घट

उठी तिहिं घटी सट पटी, तटी सम नटत खिसी सभा माहीं ॥ ४ ॥ १७ ॥ सत्य निज भृत्य प्रह्लादके वचन हित ताहि हठ वधन हित रचत लीला। माधव मास शित चतुर्दशि वार शनि समय गोधूरि हरि दयाशीला ॥ खम्भते प्रगट द्रुत झपट असुरन दपट रपट वहु कपट ह्वै नाहिं ढीला ॥ ४ ॥ भ्रुकुटि अति बंकमनु मीचको अंकदृग तप्त हेमाभ मनु काल काला ॥ शीश की सटा मनो करत खेल दल कटा उड़हिं जेहिं जोर बढ़ि घटा जाला ॥ बिहद विस्तार युत महाविकरार मुख करत संहार मनु जगत हाला ॥ पविहुते पीन पर पैन परचण्ड अति दुष्ट दुत अन्तकर दन्त माला ॥ ५ ॥ भरत चख चौंध चंचलाचंचलासी चपल चलत चहुँ ओर अधरान माहीं। काल करवालसी भीक्षणी तीक्षणी लाल रसनाल सत वदन पाहीं ॥ मेरुके तुंग युग भृंगसे श्रवण दोउ क्षणहि क्षण कोपते कपत आहीं ॥ सुन्दरै मन्दिरै सरिस जगनासिका नासिका रन्ध्र अतिशय सुहाहीं ॥ ६ ॥ परम विकराल पाताल मुख सरिसमुख हरत सुख शठन न दुख दुतहिदाता। नकत त्वन मनहुसर वृन्दके आयतन ग्रीव अति छोट अति मोट गाता ॥ वक्ष वर विशद मनु वज्रके पाट युग क्षीणकटि मुद्रिका वपु विख्याता ॥ सोमकर सरिस तहँ तोमतनरोमहैं जोमसौयुक्त मुख सुच्छ जाता ॥ ७ ॥ परम परचण्ड वरवण्ड भुज दण्ड बहु दैत्य दुत खण्डकर चण्ड भासी। करन कुलकठिन कुटिलानका रेजके नेजसे रेज कर तेजरासी ॥ पुच्छ अति सुच्छ लगि कुच्छ अरि तुच्छ कर, रुच्छ नहिं मुच्छ छविकी प्रकाशी । दीर्घदुर्धर ध्रुवै दीन उद्धतसदा क्रुद्ध तिर शुद्ध भौ युद्ध आशी ॥ ८ ॥

दोहा-निकले नरहरि खम्भते, कोटिन भानु प्रकाश।
देख परो सब सभा मधि, करत शत्रु दल नाश ॥

सब दैत्य खडे परस्पर विचारही रहे थे कि, उसी समय सन्ध्याके समय खम्भको फाडकर श्रीनृसिंह भगवान् प्रगट हुए, अपने भृत्य प्रह्लादने जो कहा था कि, देखो खम्भेमें वह दीखते हैं, इस कारण अपने भृत्यका वचन सिद्ध करनेके लिये तथा सर्वत्र जल थलमें विष्णु व्यापक है, इसको साक्षात् दरशानेके लिये अपने निज भृत्योंको जिनका नाम जय विजय था, सनकादिकोंने शाप दिया फिर उनको निर्दोष समझकर बहुत पछिताये और पश्चात्ताप करके उन्होंने कहा कि, तीन जन्ममें तुम्हारा शापमोचन होगा इस बातको निश्चय करनेके लिये, अपने निज भक्त हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे जो वर माँगा था कि, मैं " आपके रचे हुए जीव,जन्तु, मनुष्योंसे न मरूँ, अथवा,बाहर भीतर,रात,दिनमें

न मरूं" इस वचनको दृढ करनेके लिये अपने निज आज्ञाकारी ब्रह्माजीने हिरण्यकशिपुसे कहा था तथास्तु जैसा तू चाहता है तेरा सब मनोरथ पूर्ण होगा ब्रह्माजीने जो वचन अपने मुखसे कहा था उनके वाक्योंको सच्चा करनेके लिये अपने निज पार्षद हिरण्यकशिपुने कहा था कि, " कहीं मेरी मृत्यु पुत्रके विरोधसे तो न होजाय " इस कहनेको ठीक करनेके लिये अपने निजभक्त नारदजीने जो इन्द्रसे कहा था कि, यह कयाधूके गर्भमें जो बालक है तुझसे नहीं मरेगा और यह बडा " प्रतापी होगा. " इस बातको सत्य करनेके लिये आपने भी अपने सेवकोंसे अनेक बार कहा था कि, अपने प्यारे भक्तोंकी मैं आप रक्षा करता हूँ उस बातको सिद्ध करनेके लिये, अपने प्यारे भक्तोंकी वाणी सत्य करनेके लिये सब स्थावर जंगममें अपनी व्याप्ति दिखानेके लिये और न मनुष्य न पशु,ऐसा अद्भुतरूप धार सभाके खम्भको फाडकर सर्वव्यापक श्रीनारायण वहीं नृसिंह रूप धारणकर सबको दर्शन दिया ॥ १८ ॥

छन्द तोमर–तहँ हिरण्यकशिपु वीर, लख नरहरी रणधीर।
सोचन लगो मन माँहि, कछु ठीक परतो नाहिं ॥
अर्ध उर्द्ध सिंह स्वरूप, और अर्द्ध नरको रूप।
भारी भयंकर भूरि, हिय तेज सब थल पूरि ॥
असकहुँ न कान सुनान, अवलौं न कहुँ दरशान।
धौं रचेउ विधि मम मीच, प्रगटेउ जु अति हिनगीच॥
धौं कृष्ण भ्रात प्रवीन, यह रूप निज कर लीन।
मोसों करन हित युद्ध, आयो दलत रद क्रुद्ध ॥
है है जो सत्य मुकुन्द, तौ चलहि नहिं कछु फन्द।
यह कहा करि है मोर, अबलों दुरेउ डर चोर ॥
मोहि ब्रह्मको वरदान, मोसरिस को बलवान।
मम मीच है कहु नाहिं, जीतेउ भुवनत्रयकाँहि ॥
अस गुनि सुपुनि धर धीर, निज भटन सों कह वीर।
निज कुलहि सुधि बिसराय, कत जाहु सकल पराय॥
नहिं वीर भागन धर्म, करिबो उचित निज कर्म।
नरहरि जो यह भयदीन, प्रह्लाद माया कीन ॥
दोहा–यह धोखो चोखो नहीं, रोषो रे रणधीर।
रूप अनोखो देखकर, भागो मति सम भीर ॥

देखो भाइयो! यह भागनेका समय नहीं है, मैं जानता हूँ कि, तुम इसके विकटरूपको देखकर डरगये, ऐसे पशुओंके सम्मुखसे मुख फेरकर भागना यह बडे आश्चर्यकी बात है, तुम सब अस्त्र शस्त्र बाँधकर चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ, इस पशुका मारना क्या बडी बात है ॥

छन्द तोमर।

सुन कनककशिपु बैन, भट भीत तज भर चैन ॥
सब फिरे एकहिबार, गहि हाथमें हथियार ॥
कोइ परिघ परशु कृपान, कोउ असी तबल कमान ॥
कोउ भल्ल मल्ल तबल्ल, कोउ भिन्दिपाल प्रबल्ल ॥
कोउ मुष्ट जुष्ट न जुष्ट, इमि पुष्ट दुष्टहु रुष्ट ॥
नरहरीपर यकबार, धाये असुर विकरार ॥
जिमि दीप गिरहि पतंग, नहिं जरत जानहि अंग॥
जिमि मशक नयनन माहिं, निज मरण हित घुसजाहिं ॥
तिमि नरहरि पर आय, दिये अग्निशस्त्र चलाय॥
नरसिंहके चहुँ ओर, किये घेर दानव शोर ॥
तहँ लगत नरहरि श्वास, बहु उडहि बिनहिं प्रयास॥
कोउ केश उरझ प्रवीर, मरगये पावत पीर ॥
जहँ लगत नखन कठोर, नशजात दैत्य करोर ॥
बहुगये चरण चवाय, बहु पिसे दंतन धाय ॥
लग पुच्छकी फटकार, कटगये असुर अपार ॥
बहुगये दिशन पराय, बहु रहे अवनि लुकाय ॥

दोहा—दौर दण्डको दण्डधृत, शठ प्रचण्ड बरिबण्ड ।
खण्ड खण्ड तनु खण्डभे, लहि नृसिंह भुजदण्ड॥

छन्द तोमर।

निज सुभट निरख विनाश, तिमि बढ़त नरहरि भास॥
कोपित भयो असुरेन्द्र, जिमि पद दलित भुजगेन्द्र ॥
कर कर गदा वर जोर, करघोर शोर अथोर ॥
नरसिंहके ढिगजाय, अस वचन कहेउ ठठाय ॥
कहँ रहेउ अबलों चोर, नहिं खोज पायों तोर ॥
जानो नहीं तव दम्भ, लुक रहो मेरे खम्भ ॥
प्रथमहि जो लेतो जान, करतो उपाय न आन ॥
इहिं खम्भकाहि विदार, तोहिं तबहिं तुरत निकार॥
राखत मैं बन्धन बाँध, यक कोठरीमें आँध ॥
पुरजन लखत सब आय, यह कौनको चितचाय ॥
तैं अबहुते भय कीन्ह, जो दरश मोको दीन्ह ॥
तोहिं देख गुनि अपराध, मोहिं बढत क्रोध अगाध॥

अब बचब दुस्तर दुष्ट, मैं हेमकश्यप रुष्ट ॥
छलकर हनेउ मम भ्रात, सो दुख न मोहिं सहिजात ॥
सुत नीक यह गुण कीन, जो प्रगट तोहिं कर दीन ॥
अब कर कितेक उपाय, पैहै न अब कहुँ जाय ॥
दोहा-असकहि नरहरिहननको, गिरि गुरु गदा उठाय ।
जात भयो अतिशय निकट, कोपित दानवराय ॥

हिरण्यकशिपु महाघोर शब्दकर बोला अरे पशु ! अरे मायावी ! तैंने छल बल कर बहुत जनोंको छला है परन्तु मैं तेरे वशका नहीं, ले अब सावधान हो ! आज तुझको मारकर तेरेही रुधिरसे अपने भ्राता हिरण्याक्षका तर्पण करूंगा, यह कह गदा लेकर नृसिंहजीके ऊपरको झपटा ॥

छन्द तोटक ।

असुरेश नृसिंहहि संग भिरो, जिमि पावक माहिं पतंग गिरो ॥ लखके नरसिंह प्रकाश महा, नहिं दानव नाथ दिखात तहाँ ॥ जेहि तेज नशात महातमहै, जिनको यह केतिक बात अहै ॥ तहँ दानव वीर खडे बलसों नरकेहरिके शिरमें छलसों ॥ द्रुत मार गदा पुनि तर्क गयो, नरसिंहहिताहि बचाय लयो ॥ पुनि दौर गदा मुख माहिं हन्यो, असुरेश अतीव अमर्ष सन्यो॥लग दन्त गदा गुरुचूर भई,असुरेश तुरत यक पाश लई ॥ नरसिंह गलेबिच डार दियो,प्रभु ताको टूकहि टूक कियो ॥ शठ कुन्तहु एक कराल लयो, यमदण्ड समान प्रकाश छयो ॥ करजोर हनेउ हरिके उरमें, जिमि बालक बाणधरा धुरमें ॥ हैचूरण धूरणके कणमें, मिलगौ नहिं देख परो क्षणमें ॥ करलै सितधार कुठार तबै, तेहि मारनको ढिग जाय जबै ॥ तबही नरसिंह सराजतभौ, करते छुटगौ अतिलाजत भौ ॥ यहि भाँति अनेकन आयुधको, एक बार पवाँरि दियो युधको ॥ न गडे तनुमें सब टूटगये, कितनोहिंको नरहरि घूटगये ॥ लखकै निज शस्त्र न व्यर्थ जबै, कछु शंकित भौ असुरेश तबै ॥

दोहा-बार बार तेहिं वारमें, असुर महा बलवार ।
कछुक वार लग वार लग, किय विचार दितिवार ॥

असुर अपने मनमें कहने लगा कि, हे विधाता ! मैं तो अपने मनमें यही जानता था कि, मेराही शरीर ऐसा है कि किसी अस्त्र शस्त्रसे न कट सकै, परन्तु इस नरहरिका शरीर तो मुझसेभी कठोर निकला ॥

छन्द तोटक ।

नरकेहरिको बहु शस्त्र हन्यो, यह तो नहिं नेकहु चित्तगन्यो ॥ कुलिशैं सरिसैंगिरिछेदनते, नहिं भेद कियो अरि भेदनते ॥ तेहिते कर लै धनु

सायकको, अब नाश करौं मृगनायकको॥ सुनियौं दितिनन्द अमर्षत भौ, सुरनायक पै शरवर्षतभौ ॥ घनज्यौं जलधार धराधर में, तिमि मूँदलियो हरिको शरमें ॥ महि व्योमहि सायक छाय गयो, दिननाथ तहाँ न दिखात भयो ॥ नभचारिनकी गति रुद्धभई, सबदेवनके उर भीत छई ॥ शरजालहि फार नृसिंह कढे, पुनि दानव ओर हि आशु बढे ॥ जरगै मुख ज्वालहिं सायकहैं, दिवि देखपरे दिननायकहैं ॥ हनिबाणनको पुनि मूँदलियो, पुनिकै सुरनायक छार कियो ॥ यहि भाँति दुरात दिखात हरी, जिमि श्रावणमेघन धोस करी ॥ शठ पावकअस्त्र तजो निकटै, नहिं ज्वालगई हरिके निकटै ॥ इहि भाँति अनेकन शस्त्र तजो, करपान हरी अतिजोर गज्यो ॥ असुरेन्द्र तहाँ अति कोपितभो, नरसिंहहि मारन चोपित भो ॥ विधिते यक अस्त्र अखण्ड लियो, प्रभुको तुरते तक छोडदियो ॥ हरिके ढिग जातहि शान्तभयो, असुरेश तहाँ लख भ्रान्त भयो ॥

दोहा-पुनि कोपितह्वै असुरपति, पुनि नरसिंह प्रचण्ड ।
जीतन हित वरवण्ड तहँ, माया कीन्ह अखण्ड ॥

अब विन माया किये इस नृसिंहसे किसी प्रकार विजय नहीं पासक्ता, क्योंकि यह पशुपति मुझको अधिक बलवान् जान पडताहै—

छन्द पद्धरी ।

जलधार तहाँ प्रगटी अपार, हरितेज लखत ह्वैगयो छार ॥ प्रगटी पुनि पावक ज्वालजाल, मनु दहन चहत तिहुँपुर विशाल ॥ मिलगई नाथके तेज माहिं,नहिं दीखपरी पावक तहाँहिं॥तहँ असुर करत भौ अन्धकार, दूरिगये दिनेश रजनीशतार ॥ पुनि रुधिर वृष्टि कीन्हीं अपार, त्वच मांस हाड और पीप वार ॥ पाषाण वृष्टि भइ अति महान, पुनि वृक्ष वृष्टि चहुँ दिशि दिखान ॥ धाये कराल तत्काल व्याल, मुख तजत अग्निकी ज्वाल जाल ॥ पुनि प्रगट भई योगिनि जमात, आभूत भूत आकूत पात ॥ तहँ शारदूल प्रगटे अनन्त, हरिधरन हेत धावत लसन्त ॥ पुनि रचे अपने अमितरूप, नरसिंहके तिमि दैत्य भूप ॥ एक असुर हनत नरसिंह एक, अस देखपरे आउब अनेक ॥ लख देख कियो हाहा पुकार, नहिं रहेउ तनक तनुको सँभार ॥ लैलै विमान भागे सभीत, गुनि लियो कियो शठ अति अनीत ॥ सब असुर अनन्दित भये अपार, निजनाथहिको गुनि विजय वार ॥ तेहि घेर लियो नरहरी कोप, असुरेशन धनकी बढी चोप ॥ एक क्षणहि माहिं माया विदारि प्रगटत प्रकाश ज्यों कुहर फारि ॥

दोहा-जिमि साधन उपदेश बहु ॥ परत मूर्खके कान।
सब निष्फल ह्वैजात है, आवत नेक न ज्ञान ॥

छन्द पद्धरी।

कोपित नृसिंह कह पुनि निहारि, कर गदा धार धायो सुरारि ॥
चहुँ दिशि नृसिंहके फिरन लाग, निज दाउ द्रुतै देखत सराग ॥
जहँ जहँ हिरण्य कश्यप दिखात, तहँ तहँ नृसिंह अति चपल जात ॥
जहँ जहँ नृसिंह धावत प्रचण्ड, तहँ तहँ सुरारि आवत उदण्ड ॥
यहि भाँति करत दोउ युद्ध घोर, चहुँ ओर भरत अति भीम शोर ॥
तहँ असुर वेग कर गदा हाथ, चाही नृसिंहके हनन माथ ॥
नरसिंह तहां अतिकोप छाय, गहि लियो हिरण्यकश्यपहि धाय ॥
जिमि गरुड भुजंगहि विनुप्रयासु, गहि लेत आशु कर भक्ष आशु ॥
जिमि गरुड चोंचसे सर्प छूट, झट झपट उडत कर बल अटूट ॥
कर असुर तहाँ अति छोट रूप, छुटगयो नाथसे असुर भूप ॥
पुनि भीम रूप असुरेश कीन्ह, द्रुत पुच्छ नाथकी पकर लीन्ह ॥
तब ताहि गहनको फिरे नाथ, तब दूर कूद गयो गदा हाथ ॥
प्रभु पाणि छुटो लख असुर काहिं,सुरसब सशंक भये मनहि माहिं ॥
हाहा पुकार यकबार कीन, आधार छोड भये शोकभीन ॥
डर दैत्यकाहि छिप घनन ओट, पुनि लखन लगे धर धीर मोट ॥
नरसिंह करनते छुटो जान, प्रभुको शठ निर्बल लियो मान ॥
तब असुर नाथ करके घमण्ड, धायो प्रचारि कर रव प्रचण्ड ॥

दोहा-गदा हनी हरि शीशमें, करके जोर अथोर।
मार लियो अस मान मन, पुनि कीन्हों अति शोर ॥

छन्द रोला।

टूक टूकह्वै गदा तेही क्षण क्षिति महँ छहरी, मानहु नभते एक बार तारावलि झहरी ॥ तब असुरेश विचार कियो अपने मन माहीं, नरहरि मरन उपाय कियो कौनो अब नाहीं ॥ तेहिते लेकर ढाल कठिन करवाल करालै, काटिलेहु गहि केश शीश नरहरिको हालै ॥ अस विचार तरवार ढाल कर धार प्रचारी, धायो नरहरि ओर घोर कर शोर सुरारी ॥ तब अखण्डबल दोरदण्ड युग परम प्रचण्डा, निकसे नख कुलिशौ कठोर दुति शतमार्तण्डा ॥ भुज ऊरध तहँ नृसिंह धायो विकराला, हनो हस्त असुरेश शीश कर कर कोप विशाला ॥ रोक ढाल हरि हस्त असुर कछु दूर कूदगौ, नरहरिको वर तेज लगत तेहि तेज मूँदगौ ॥ पुनि नर मृगपति दौर कियो तेहि तलहि प्रहारा, सोऊ गयो बचाय रोक ढालै बलवारा ॥ पुनि अकाशमें आशु असुर

उड अति अनखाई, हन कृपाण नरसिंह शीश युग गयो पराई ॥ तासु सँग नभ गये नृसिंह कर वेग अभंगा, करन लगे रण रंग उभय आकाश हि जंगा ॥ कहूं धरणि कहुं शैल मध्य कहुँ सिन्धुनमाहीं, कबहुँ वनहि उपवनहि कूद पुनि भवनन माहीं ॥ करत युद्ध अति क्रुद्ध होय नरहरि अति घोरा, चकित देव जानत न भेव चितवत चहुँओरा ॥ रहेउ न अस कहुँ ठौर जहाँ दोउ युद्ध न कीन्हा, जगत कनककश्यपु नृसिंह में सुर गुन लीन्हा ॥ कियो युद्ध नरसिंह दैत्य सुरवर्ष हजारा, सुर मुनि करैं उचार युद्ध अस कहु न निहारा ॥ पुनि दोउ लरतहि लरत तुरत अवनी महँ आये, निज पद जोरहिं बार बार धरणी दरकाये ॥ होन लगी दिगदाह अवनि बहु लूक निपाता, ग्रसो राहु शशि रविहि काल बिन केतु दिखाता ॥

दोहा-होतभये ऐसे तहाँ, नभ महिमें उत्पात ।
मानहु सुर मुनि नर सहित, भयो त्रिलोक निपात ॥
गर्जत तर्जत दैत्यपति, लिये कर ढाल कृपान ।
बोलो श्रीनरसिंहसे, अब न बचहिं तव प्रान ॥
हरि जानी अब देव सब, मनमें अधिक उदास ।
अट्टहास कर गर्जेऊ, शब्द सर्व गयो भास ॥

महाभयानक अट्टहास शब्द करके अपने पूर्ण तेजसे, उस सिकरेकी समान वेगवाले, अनेक शस्त्रधारी, पृथ्वी आकाशके भ्रमण करनेवाले हिरण्यकशिपुके नेत्र बन्दकर अत्यन्त तीव्र वेगवाले नृसिंहजीने चपलाकी नाईं चमक कर उसको पकड लिया ॥ २९ ॥ जैसे सर्प मूसेको विनाही प्रयास सहजमें पकडलेता है, उस समय दैत्येन्द्र आतुरतासे चारोंओरको तड़फड़ाने लगा और छूटनेके लिये अनेक उपाय किये परन्तु श्रीनृसिंहजीके पंजोंसे न छूट सका. उसकी खाल ऐसी कठोर थी जो वज्रसेभी कभी न कटी, उस हिरण्यकशिपुको अति निःशंक हो अंकमें भर जंघाओंपर धरकर सन्ध्याका समय विचार देहरी पर खडे होकर कहा, अरे प्रह्लादके दुःख देनेवाले जो जो वचन तुझको दिये थे उनमेंसे तो कोई बात नहीं है. देखले ! न दिनहै, न रातहै, न पृथ्वी है, न वज्र है, न आकाश है, न पशु है, न मनुष्य है, न वन है, न शस्त्र है, न घर है, न द्वार है, सब प्रकारसे विचारले, यह कह-

दोहा-महा कुपितह्वै नरहरी, चारों ओर निहार ।
असुर उदर निज नखनते, क्षणमें डारो फार ॥

गरुड जैसे महाविषधर साँपको फाड़कर बगेल देताहै, ऐसेही विना परिश्रम क्रीडामात्रसे नृसिंहजीने हिरण्यकशिपुका पेट फाड़ डाला देखो! भगवत्की अद्भुत गति सन्ध्याका तो समय था न दिन था न रात थी. जंघाओंपर धरकर मारा, न धरती थी न आकाश था

नखोंसे चीरडाला, न कोई अस्त्र था, न कोई शस्त्र था और वह नख न जीवितथे, न मृतकथे और नृसिंह रूप जो धारण किया न कोई पशु था, न पुरुष था॥ ३०॥ क्रोधसे भरा विशाल रूप महाविकराल लाल लाल प्रलयकालकी कृशानुके समान नेत्र, अत्यन्त विस्तारवाला फटाहुआ मुख मृत्यु भवनकी सदृश अपनी जिह्वासे अपने होठोंको चाट रहे और रुधिरके लगनेसे मुख लाल लाल हो रहा, दैत्यकी आँतोंका हार कण्ठमें पहिरे और जहाँ तहाँ रक्तके बुन्द जो शरीरमें लग रहे थे वह ऐसे विदित होते थे. मानो पर्वतपर वीरबहूटी फिर रही हैं. और गलेमें आँतोंका हार ऐसी शोभा देता था जैसे सिंह हाथीको मारकर उसकी अंतडियोंका हार अपने कण्ठमें डाल लेता है ॥ ३१ ॥ श्रीनृसिंहजी महाराजने दैत्येन्द्रके हृदयकमलको नखोंके अंकुरोंसे विदीर्ण किया था, उसको तो बगेल दिया और उसके अनुचर और भृत्यगण जो कि अस्त्र उठाये घूम रहे थे उन यूथपति और पक्षपातियोंको नखोंसे, भुजाओंसे, पावोंसे; चीरफाड मसल मसल सहस्रोंको मारकर चौंढा करदिया, देखिये, वह तो सब अस्त्रधारी और नृसिंहजी केवल भुजाओंसेही सब काम लेरहे थे ॥ ३२ ॥ नृसिंहजीके सघन जटाओंसे कम्पित मेघ सब फट गये गृह नृसिंहकी दृष्टिकी चमकसे छिन्न भिन्न हो नष्ट होगये, उनके श्वाससे मारे हुये समुद्र अपनी मर्य्यादाको छोड़ चलायमान होगये और नृसिंहके दहाडनेका शब्द सुनकर दशों दिशाओंके दिग्गज भयभीत हो चिंघाडने लगे ॥ ३३ ॥ जटाकी लपटसे विमान आकाशमें रह गये थे, उनसे सर्वत्र आकाश व्याप्त होगया और उनके पदोंके भारसे जो वसुधा पीडित हो डामाडोल होगई और उनके तेजके वेगसे पर्वत उखड़ कर गिरने लगे, उनके वेगके प्रभावसे आकाश और दिशायें छबिहीन होगई ॥ ३४ ॥ उस समय सभाके मध्यमें सर्वोत्तम राज्यसिंहासनपर श्रीनृसिंहजी महाराज विराजमानहुए, महातेजसमूहोंसे पूरित जिनके सन्मुख कोईभी सामर्थ्यवान् शत्रु देखनेमें नहीं आता था उन प्रचण्ड क्रोधी महाकरालवदनवाले श्रीनृसिंह भगवान्के समीप कोईभी नहीं जासक्ता था ॥ ३५ ॥ तीनों लोकोंका कष्टदायक, मस्तकके शूलकी सदृश इस दैत्यनायक हिरण्यकशिपुको भगवान् वैकुण्ठनायकने मारा उस समय सब देवांगना उसका मरण सुनकर अत्यन्त हर्षके वेगसे प्रफुल्लित जिनके मुख होरहे थे सो वारम्वार जय जय शब्द पुकार पुकार और भगवान्का अद्भुतरूप निहार निहार आनन्दसे पुष्पोंकी वर्षा कर रही थीं ॥ ३६ ॥ जब कि नृसिंह भगवान्ने दैत्यराजको मारा उस समय नृसिंहजीके दर्शनके लिये सब पुरवासी और देवताओंके विमानोंकी पंक्तियोंसे सब आकाश मण्डल आच्छादित होगया, सब मिलकर दुंदुभी बजाने लगे और मुखिया मुखिया गन्धर्व गानेलगे, अप्सरायें मीठे मीठे स्वरोंसे मनोहर गान करके सबके मनोंको मोहित करने लगीं ॥ ३७ ॥ उस समय वहाँ ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादिक देवता, ऋषि, मुनि, पितृ, सिद्ध किन्नर, महोरग ॥ ३८ ॥ मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किंपुरुष, वेताल ॥ ३९ ॥ और सब वैकुण्ठनाथके पार्षद नन्द, सुनन्द, कुमुद, कुमुदाक्षा-

दिक अंजलियोंके सम्पुट शिरपर धरकर जहां राजसिंहासनपर महातीव्र तेजवाले श्रीनृसिंह भगवान् विराजमान थे ॥ ४० ॥ सब देवता न तो अति दूर और न अति समीप खड़े हो श्रीनृसिंहकी पृथक् पृथक् भावसे संसारी जीवोंके उपकारके लिये यंत्र, मंत्र, कवच, अष्टक स्तोत्रोंसे श्रीनृसिंहजी महाराजकी स्तुति करनेलगे ॥ ४१ ॥

ब्रह्मोवाच।

श्लोक-नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ॥
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैःस्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने॥४२॥

सवैया-जग जन्म औ पालन नाशनहू अपने गुणसों करि लीला करौ ॥ तुव शक्ति दुरन्त अनादि अहो है अनन्त अनन्तहि रूप धरौ ॥ प्रभु आप चरित्र पवित्र बडेहैं पवित्र अमित्र न शोक धरौ ॥ गुण आगर सागर हो करुणा तुमको है नमामि प्रमोद भरौ ॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी बोले कि, हे अनन्त, दुरन्तशक्तिधारी, विचित्रवीर्य, पवित्र चरित्रकारी सृष्टिके उत्पत्ति, पालन, संहार करनेहारे, अपनी सत्वादि गुणोंसे अनेक अनेक प्रकारकी लीला रचनेवारे, अव्यक्त अविनाशी परमात्मा नृसिंहजी आपको वारम्वार मेरा नमस्कार है ॥ ४२ ॥

श्रीरुद्र उवाच।

श्लोक-कोपकालो युगांतस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः।
तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४३॥

दोहा-जगनाशक प्रभु कोपकर, हनेउ अल्प असुरेश।
ता सुतकी रक्षाकरो, तजिये कोप रमेश ॥ ४३ ॥

महादेवजी बोले कि, संसारके अन्तकालके समय आपके कोप करनेका समय है अभी तो आपने इस तुच्छ असुरहीको मारा है, हे भक्तवत्सल ! अब आप अपने कोपको शान्त करके इस शरणागत आये अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा करो ॥ ४३ ॥

इन्द्र उवाच।

श्लोक-प्रत्यानीता परमभवता त्रायता नः स्वभागा
दैत्याक्रांतं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ॥
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते
मुक्तिस्तेषां नहि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥ ४४ ॥

कवित्त घनाक्षरी-असुर प्रचण्डबरिवण्डको विनाशकैकै, यज्ञनको भाग आप हमको दिवायो है। जगत प्रशंस मम संशय की फँसि सारी, ताकोहि विध्वंस मन सुख उपजायोहै ॥ यातोवहि बहुत जनात राव रेको नाथ, मुक्तिहूको दान तूतो लघु ठहरायोहै। दीन निज दासनको दारहु दुरित द्रुत, ताते दयासिंधु यह नाम प्रभु पायोहै ॥ ४४ ॥

वार्तिक-इन्द्र बोले कि, हे परमेष्टनृसिंहजी महाराज ! हे दीनानाथ ! हे जनरक्षक ! आपने महाप्रचण्ड दैत्यका वध करके हमारे भाग हमको दिलवाये और आपके वास करनेका स्थान जो हमारा हृदय कमल सो दुराचारी असुरके डरसे व्याप्त हो रहा था उसको अभय करके हमारा चित्त प्रफुल्लित किया, जो सदा कालके वशीभूत रहै ऐसा त्रिलोकीका राज्य आपके भक्तोंको क्या वस्तु है ? हे नाथ ! वह तो मुक्तिकोभी आपके आगे कुछ वस्तु नहीं समझते, फिर और सुखोंकी तो गिनतीही क्या है ? ॥ ४४ ॥

ऋषय ऊचुः-त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो
येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ॥
तद्विप्रलुप्तममुनाऽद्य शरण्यपाल
रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४५ ॥

छन्द भुजंगप्रयात-रचै विश्वको जो हिये धारि धाता, जेही ते तुम्हारो विभौ जानिजाता ॥ पढाये हमैं आपने वेद सोई, महादुष्ट सो दैत्यने दीन खोई ॥ धरो नारसिंहै स्वरूपै कृपाला, हनो दैत्य दुष्टै रहे जो कराला ॥ दियेहैं हमैं फेरके वेद चारों, निजै दासको आशुही कष्ट टारो ॥ ४५ ॥

वार्तिक-सब ऋषि बोले कि, हे आदि पुरुष ! हे शरणागत रक्षक ! आपके आत्मामें मिलाहुवा जो यह विश्व है इसको रच उसी तेजरूप तप करनेकी आपने हमको आज्ञा दी. सो हे दीनवत्सल ! वह तप अभीतक इस असुरने विनाशकर रक्खा था, सो आज हमारी रक्षाके लिये आपने नृसिंह रूप धरकर फिर तप करनेके लिये हमको आज्ञा दी ॥ ४५ ॥

पितर ऊचुः ।

श्लोक-श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजै-
र्दत्तानि तीर्थसमयेऽपि तिलांबुसभ्यः ॥
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छत
तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥ ४६ ॥

छन्दपद्धरी ।

सुत पितहि दियो जो पिण्डदान, सो लियो खाय यह शठ महान ॥
जो दी तिलांजलि तीर्थ माहिं, यह दैत्य पान करली तहांहि ॥
निज नखन असुरको पेट फार, सो हमहिं दियो निज जन विचार ॥
जय जय नृसिंह जय दीनबन्धु, जय धर्मपाल जय दयासिन्धु ॥ ४६ ॥

वार्तिक-सब पितर बोले कि, हमारे पुत्र पौत्रादिकोंके दिये हुए श्राद्धके पिण्ड यह असभ्य दुष्ट बलात्कार हमसे छीनकर खाजाया करता था और जो कभी किसी तीर्थमें जाकर वह तिलांजलि और जलदान दिये करते थे तो उन तिलोंको वह चाबकर जल

पीलिये करता था, सो आज आपने उस असुरका पेट नखोंसे चीरकर जो हमारे पदार्थ थे सो आपने आँतोंसे और रुधिरसे निकालकर हमको दिये, इसलिये हे सर्वधर्मपालक! आपको हम वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ४६ ॥

सिद्धा ऊचुः ।

श्लोक-यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोवलेन ॥
नानादर्पं तन्नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥४७॥

छन्द त्रोटक ।

अणिमादिक जो गण सिद्ध सबै, तपके वल छीन लियो सु तबै ॥
सतिगर्व भरो नहिं काहु डरो, सब लोकनको अतितंग करो ॥
नखते तेहिको उर फार हरी, सब लोकनकी अति भीति हरी ॥
तुम्हरे पदके हम दास अहैं, नित आप सदा निःशंक रहैं ॥ ४७ ॥

वार्तिक-सव सिद्ध वोले कि, जो हमने अपने योगवलसे अणिमा महिमादिक सिद्धियोंको प्राप्त किया था वह सव इस राक्षसने हरलीं उस अनेक प्रकारके गर्ववाले गर्वी दैत्यका उदर नखोंसे विदीर्ण किया, ऐसे आपके नृसिंहरूपको हम वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ४७ ॥

विद्याधरा ऊचुः ।

श्लोक-विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो वलवीर्यदृप्तः ॥
स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥४८॥

छन्द वामन ।

सव योग विद्या जौन । यह असुर हरलिय तौन ॥ गरवी परम बलवान । जो रहेउ मूर्ख महान ॥ पशु सरिस ताको नाथ । रणमें हनेउ निज हाथ ॥ नरहरी तुमहि परणाम । दायक सदा सुखधाम ॥ ४८ ॥

वार्तिक-विद्याधर वोले कि, पृथक् पृथक् ध्यानसे अनन्त ध्यानादिक विद्या जो हमने सीखरक्खी थीं उन विद्याओंको वलवीर्यसे गर्वित इस आत्मज्ञानीने नहीं करने दियाथा सो आज आपने उस दुष्टको रणमें पशुवत् मारकर विध्वंस करदिया, ऐसी माया करनेवाले श्रीनृसिंहजीको वारम्वार हम नमस्कार करते हैं ॥ ४८ ॥

नागा ऊचुः ।

श्लोक-येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ॥
तद्वक्षःपाटनेनाऽऽसां दत्तानन्द नमोस्तु ते ॥ ४९ ॥

छन्द-इन वैर कियो हमसे भारी, हरली हमारि सम्पति नारी ॥
उत्तम उत्तम सब वस्तु हरी, घरबारहि छीनि अनीति करी ॥
तेहिंको उर फार विनाश कियो, घर बैठेहि आनकै दर्शदियो ॥
सब देवनकी प्रतिपाल करी, जय जय जय श्रीनृसिंहहरी ॥ ४९ ॥

वार्तिक-सब नाग बोले कि, जिस दुष्टने हमारे सब स्त्रीरत्न और उत्तम उत्तम पदार्थोंको हरलिया था सो आपने हमारे उपकारके लिये नृसिंहरूप धार उस पापीका पेट फाडकर हमको और इन सब स्त्रियोंको प्रफुल्लित परमानन्द दिया ऐसे जो आप नृसिंहरूप धारी हैं सो हम आपको वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥

मनव ऊचुः ।

श्लोक-मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ॥ भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किंकरान् ॥५०॥

छन्द रोला ।

हमहैं मनु प्रभु सदा बावरे शासन धारी ।
तिनको यह दितिनन्द दियो दुख अतिशय भारी ॥
ता उर: करजनि फार दर्द हियकी हरिलीनी ।
कहा करैं प्रभु कहो आप आज्ञा सुखभीनी ॥ ५० ॥

वार्तिक-सब मनु बोले कि, हम सब मनु आपकी आज्ञानुसार शास्त्रकी रीतिसे अपने धर्म कर्म जो कर रहे थे, नृसिंहदेव ! उन सब वर्णाश्रमोंकी मर्यादा दुष्ट हिरण्यकशिपुने विनष्ट करदीं, उस महा दुष्टका आपने अपने नखोंसे वध किया यह काम आपने बहुतही अच्छा किया क्योंकि वर्णाश्रमोंकी मर्यादायें बँधीरहीं. हे प्रभो ! हम जो आपके दास हैं सो हमारे लिये क्या आज्ञा है ? हम लोग अब क्या करें ? ॥ ५० ॥

प्रजापतय ऊचुः ।

प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा नयेन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ॥
स एष त्वयाभिन्नवक्षानुशेते जगन्मंगलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥ ५१ ॥

कुण्डली-परजापति हम कहँ रचेउ जगत सृजनके हेतु ॥ ताको सिर जन नहिं दियो. खेचर दानव केतु ॥ खेचर दानव केतु सरिस कीन्हेउ उतपाता ॥ ताको नखन विदार प्रगट यश किय अवदाता ॥ अवदाता हो तुमहिं मोदके नाहिं आचरजा ॥ सत्वमूर्ति अवतार करहुँ मंगल अब परजा ॥ ५१ ॥

वार्तिक-सब प्रजापति बोले कि, हे प्रजेश ! हमको आपने रचा और आपकी प्रेरणासे हम प्रजाको रचते थे, परन्तु उस दुष्टके प्रति खेद करनेसे हम लोग उसको त्याग अपने अपने स्थानोंमें छिप छिपकर बैठ रहे थे, अब उस दुष्ट असुरको आज आपने उदर विदीर्णकर वध किया, सो अब हम प्रसन्नतापूर्वक आपकी इच्छानुसार प्रजा रचेंगे. हे सत्वमूर्ति ! आपका अवतार संसारके मंगलके लिये है ॥ ५१ ॥

गन्धर्वा ऊचुः ।

श्लोक-वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसाकृताः ॥
स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥५२॥

छप्पय–नाचत गावत रहे सबै हम तुव दरबारहि ॥
निरखि आपको लहतरहे आनन्द अपारहि ॥
तिन हमको कर निज अधीन दानव बलवारो ॥
निजहितबाय गँवाय कियो निज सजित अखारो ॥
एहिदोषहिते यह नाशभो कुशलकि कुपथहिंपगदिये ॥
अस कहत सर्व गन्धर्वगण प्रभुहि दण्डवत बहु किये ॥५२ ॥

वार्तिक–सब गन्धर्व बोले कि, हे समर्थ ! हम जो आपके नट नाटक बनाने और गाने वाले हैं, हमको जिस दैत्यने अपने बल वीर्य और पराक्रमसे अपने वशीभूत कर लिया था उस दुष्ट दानवको आज आपने इस गतिको पहुँचाया ऐसाही करना चाहिये, कहीं पाखण्डमें स्थित होनेवालेकीभी कुशल हो सक्ती है ? कभी नहीं ॥ ५२ ॥

चारणा ऊचुः ।

श्लोक–हरे तवांघ्रिपंकजं भवापवर्गमाश्रिताः ॥
यदेष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥ ५३ ॥

छन्द–पदारविन्द रावरो भवार्णवैनकामनो ॥
तेहीं सदाहि धावहीं पुनीत प्रीति छामनो॥
कियो विरोध साधुते अतीव दानवेशहै ॥
कियो विनाश ताहिते कुपंथमें कलेशहै ॥ ५३ ॥

वार्तिक–सब चारण बोले कि, हे नृसिंहजीमहाराज ! भक्तजनोंके दुःख देनेवाले इस पापी दैत्य हृदय भेदीको आपने मारा यह बहुत अच्छा किया. इसलिये हे दीनबन्धु भगवन् ! संसारमें मोक्ष देनेवाले जो आपके मोक्षदायक चरणकमल हैं उन चरणारविन्दोंकी हम सब शरणागत हैं ॥ ५३ ॥

यक्षा ऊचुः ।

वयमनुचरमुख्याःकर्मभिस्तेमनोज्ञैस्तइहदितिसुतेन प्रापितावाहकत्वम् ॥
सतुजनपरितापं तत्कृतंजानताते नरहर उपनीतः पंचतांपंचविंश ॥५४॥

सोरठा–हम तुव अनुचर यक्ष, तिनको यह बाहक कियो ॥
मुनि तनु ताप प्रत्यक्ष, नाशो नरहरि देहधर ॥५४॥

वार्तिक–सब यक्ष बोले कि, हे नृसिंहजीमहाराज ! पचीस तत्वोंके अधीश ! हम लोग आपकी इच्छानुसार कर्म करनेमें आपके मुख्य सेवक थे, सो इस दुष्ट दितिपुत्रने हमको अपना भार उठानेवाला अनुचर बनाकर रक्खा था सो आपने अपने भक्तोंका संताप देखकर इस परिताप देनेवाले दुष्टराक्षसको आज मारकर हमारा ताप दूर किया ॥ ५४ ॥

किंपुरुषा ऊचुः ।

श्लोक–वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ॥
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ ५५ ॥

चौबोला-हम किंपुरुष आप परि पुरुषै यह कुपुरुष भयो तीजो ॥
जाको कियो साधु सब धिक्धिक् निज कर्मनते छीजो॥
ताको मार कोप करियत अति आपहि बडी न बाता ॥
परमातमा परहिं हम पाँयन प्रभु पौरुष विख्याता ॥ ५५ ॥

वार्तिक-किंपुरुष बोले कि, हम किंपुरुष हैं और आप आदिपुरुष पुरुषोत्तम हैं, हमारा अपराध क्षमा कीजे, हम आपकी स्तुति कैसे करसक्ते ? यह कुपुरुष नीच हिरण्यकशिपु तो उसी समय मर चुका था जब कि इसका साधु पुरुषोंने निरादर किया और धिक्कार दिया था ॥ ५५ ॥

वैतालिका ऊचुः ।

श्लोक-सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ॥
यस्तांव्यनैषीद्भृशमेषदुर्जनोदिष्ट्याहतस्तेभगवन् यथाऽमयः॥५६॥

छन्द झूलना-देव दरबार माँहिं गाय तुव अमल यश किये सब लोक शुचि अति सदाहीं । ताहिते पाय सत्कार जेहि पार नहिं रही संसार की भीति नाहीं ॥ हमहि इस असुरने दियो है दुसह दुख जीत सब लोक विन शोक माहीं । धार नरसिंह वपु तासु वध आप किय दियो करदूर मम विथाकाहीं ॥ ५६ ॥

वार्तिक-वैतालिक लोग बोले कि, सभाओंमें और यज्ञोंमें आपका निर्मल यश गानेसे बडी पूजा हम लोगोंको प्राप्त होती थी और यह दुर्जन दुष्ट हमारी पूजाको लेलिया करता था और यशका विनाश करता रहता था, सो आपने इसको मारकर हमारे रोगका नाश करदिया; आपका कल्याण हो । जो सब दिनका ताप आपने हमारा मिटा दिया न जानिये अब कोई और दुष्ट उत्पन्न होजाय इसलिये वारम्वार हमारी यह सबकी विनय है कि सब प्राणिमात्रको अपने परमधामको लेचलो. तव नृसिंहजी बोले कि, लाओ कौन कौन हमारे परम धामको चलै हैं. तब एक वैताल प्राणियोंके बुलानेको बाहर निकला, देखा तो एक शूकरी कीचमें पडी लोट रही है वैतालने कहा हे शूकरी ! तू नृसिंहजीके निकट चल हम तुझको वैकुण्ठ भिजवावेंगे. वह बोली कि, वैकुण्ठमें क्या है ? वैताल बोला कि, अरी मूर्ख ! तू नहीं जानती कि वैकुण्ठमें क्या है ? वैकुण्ठमें बडे बडे सुख हैं, सुन्दर सुन्दर षट्रस प्रकारके भोजन मिलते हैं, पीनेको अमृतकी समान स्वच्छ शीतल जल मिलता है, बैठनेके लिये उत्तमासन, सोनेके लिये दूध फेनसम सुन्दर शय्या, नित्य प्रति श्रीनारायणके दर्शन, दिन रात भगवान्का गुणानुवाद, इसके अतिरिक्त और अनेक अनेक प्रकारके आनन्द भोगनेमें आतेहैं, यह सुनकर वह शूकरी बोली कि, तुमने विष्ठेका नाम तो लियाही नहीं यह तो कहो कि, विष्ठा वहां खानेको मिलता है वा नहीं ? वैताल बोला, अरी नीच ! वहां ऐसी निषिद्ध वस्तुका क्या काम, वहां तो मेवा मिष्टान्न सुन्दर सुन्दर पक्वान्न इच्छानुसार मिलते हैं । शूकरी बोली, कि तो क्या मैं वैकुंठमें आग लगा-

ऊंगी चूल्हेमें जाय मेवा मिष्टान्न, ऐसे वैकुण्ठ जानेकी मेरी इच्छा नहीं वहांसे तो मैं यहीं सुखी हूं भोजन तो भरपेट मिलता है, घरके कुटुम्बमें मिल झुल कर रहती हूं दश बारह बेटे वेटी संग रहती हैं, इससे अधिक और कौनसा वैकुण्ठ है ? शूकरीके रूखे वचन सुन वैतालने नृसिंहजीसे कहा कि महाराज ! शूकरतकभी वैकुण्ठका जाना स्वीकार नहीं करते. नृसिंहजी बोले कि, यह जीव जिस योनिसे जहां जन्म लेताहै उसी स्थानको वैकुण्ठ समझता है ॥ ५६ ॥

किन्नरा ऊचुः ।

श्लोक-वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः। भवता हरे सवृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव॥५७॥

छन्द त्रिभंगी-हम किन्नर सारे दास तुम्हारे पदरति धारे सुखसारे ॥ तिनको खलवारी कोप पसारी भो दुखकारी जयधारे ॥ नरहरि जग भासी ताहि विनासी दिय सुखरासी हमकाहीं॥ यह भाँति सदाही तुव भुज छाहीं भय कुछ नाहीं हमपाहीं ॥ ५७ ॥

वार्तिक-सब किन्नर बोले कि, हे निरंजन ! हे भक्तभयभंजन ! हम सब किन्नरगण आपके अनुचर हैं. इस दुष्ट असुरने हमको भार उठानेवाला अपना किंकर बनाया और हमारी ताडना करता रहा. सो हे हरे ! आपने महाकष्टरूप इस दुष्टका वध किया, हे नराकार शार्दूल ! हे नाथ ! आप हमारा मंगल करो ॥ ५७ ॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः ।

श्लोक-अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ॥ सोयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः॥५८॥

छन्द रूप घनाक्षरी-आजही निहारो रावरेको रूप ऐसो नाथ कबहूं न देखो हम आजतलक अपने नैन ॥ जनके रखवारे और संतनके अति प्यारे दया करनवारे देनवारे विश्वमोद ऐन ॥ आय पारषद यह विप्रवर श्रापहीते भयो असुरेश जीतो लोक मनमें कुछ कियो भैन ॥ ताको अब वधकीनो अहै सत्य तापै कृपा कीनो वैर भाव नैंकहू भी जान परत कछु हमैन ॥ ५८ ॥

वार्तिक-विष्णु भगवान्के पार्षद बोले कि, हे शरणागतप्रतिपालक ! यह नृसिंहरूप महा अद्भुत तो हमको आपने भला दिखाया, जो आजतक कभी नहीं देखा था. सो सब लोकोंका मंगलकारी आनन्ददायक यह स्वरूप है, हे विधिकर ! यह तो वही हिरण्यकशिपु आपका दास था कि, जिसको सनकादिकोंने शाप दियाथा इसका आपने विध्वंस किया. यह तो आपने इसपर बडाही अनुग्रह किया, परन्तु हमने अत्यन्त सुख माना जो इसके द्वारा हमको आपके इस अद्भुत रूपका दर्शन होगया ॥ ५८ ॥

भजन-प्रभु तव नाम कोटि भयहारी ॥ अगणित पुरुष तरे हरि हरि कह निशिदिन रटत शेष त्रिपुरारी ॥ १ ॥ वाल्मीकि नारद सनकादिक, गावत गुण ब्रह्मा मुखचारी ॥ जन प्रह्लाद याद जब कीनो, खम्भ फार भये प्रगट खरारी ॥ २ ॥ गजको ग्राह गह्यो जब जलमें, तब रारा कह गिरा उचारी ॥ इस विरत्तिमें हे रघुनन्दन, तुम विन हरै कौन दुख भारी ॥ ३ ॥ हे मुकुन्द व्रज चन्द्र दयानिधि, यह कह जब द्रौपदी पुकारी ॥ यह दुःशासन दुष्ट सभामें, आज लाज चहै लेन हमारी ॥ ४ ॥ झटपट आ पट अधिक बढाये, अपने जनको जान दुखारी ॥ शालिग्राम शरण तक आयो, राखो चरण शरण वनवारी ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कंधे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा-नव अध्यायमें हरि निकट, भेजो अज प्रह्लाद ।
क्रोध शांत कर विनयकी, हरि की सह आह्लाद ॥

श्रीनारदजी बोले कि, क्रोधके वेगसे अत्यन्त भयंकर श्रीनरसिंहजीको देखकर, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि देवताओंमें कोई सन्मुख न जासका, जो सदा समीप रहते थे वह सब देवता दूरही खडे हुये स्तुति कर रहे थे ॥ १ ॥ निदान सब देवता मिलकर श्रीलक्ष्मीजीके निकटगये और हाथ जोडकर बोले कि, हे जननि ! श्रीनृसिंहजीके तेजसे त्रिलोकी भस्म हुवा चाहती है, आप चलकर उनके क्रोधको शान्त कीजै. यह कह साक्षात् श्रीलक्ष्मीजीको नृसिंहजीके सन्मुख भेजा, उस महाभयंकर रूपको देखकर लक्ष्मीभी पास न जासकी क्योंकि ॥ २ ॥

चौ०-देख कराल भयंकर आनन । जोनलखो दृग सुनो न कानन ।
भयको भय उपजावन हारो । जोन आजलों किनहु निहारो ॥

तब भागवत प्रह्लादको निकट बैठा हुआ देखकर ब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र ! तेरेही कारण तेरो पिता अत्यन्त क्रुद्ध होरह हैं, उनके समीप तूही जा और उनके क्रोधको शान्तकर ॥ ३ ॥ हे नरेन्द्र ! ब्रह्माजीकी आज्ञाको शिरपर धारणकर महाभागवत वह भोला भाला प्रह्लाद हाथ जोड शिरनवाय सहज सहजमें नृसिंहजीके निकट जाकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४ ॥ तब अपने चरणोंमें पडाहुवा उस बालक प्रह्लादको देखकर, श्रीनृसिंहजीने कृपासे परिपूर्ण होके उसको उठा लिया और उसके शीशपर कालरूप सर्पके भयसे डरनेवाले बुद्धिमानोंका अभयदायक अपना करकमल रक्खा ॥ ५ ॥ श्रीनृसिंहजीके हस्तकमलके स्पर्शसे उसकी सब अशुभवासना दूर होगई और उसी समय उसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगया. हर्षितचित्त, रोमावलि खडी होरही, अंग प्रफुल्लित होगया; आँखोंमें प्रेमके आँसू भर आये और अति आनन्दित हो भगवानके चरणकमलका ध्यान करने लगा ॥ ६ ॥ एकाग्रमनसे स्वस्थ सावधान होकर प्रेम भरी गद्गद वाणीसे वह भक्त

प्रह्लाद अपने लोचन और अन्तःकरणको श्रीनृसिंहजीके स्वरूपमें लगा भगवान् वासुदेवकी प्रार्थना करने लगा ॥ ७ ॥ प्रह्लाद बोला कि, ब्रह्मादिक देवताओंके गण, मुनि और सिद्धपुरुष गम्भीर वाणियों करके सतोगुणमें एक विस्तर जिनकी आराधना और प्रार्थना करनेको होकरके अनेक महागुणोंसे आज तक जिनकी आराधना और प्रार्थना करनेको समर्थ नहीं होते, वह उग्ररूपधारी श्रीनृसिंहभगवान् मुझ दानव जाति मन्दबुद्धिपर किस प्रकार संतुष्ट होंगे तोभी उनकी कृपासे उनकी स्तुति करता हूं ॥ ८ ॥ धनमें, जातिमें, रूपमें, तपमें, पाण्डित्यमें, श्रुतमें, ओजमें, तेजमें, प्रभावमें, बलमें, पौरुषमें, बुद्धिमें, योगमें इन सबमें कोईभी उपाय परमेश्वरकी आराधना करने योग्य नहीं, भगवान् तो केवल भक्त भावके भूखे हैं. देखो ! सुदामाके तन्दुलोंहीपर प्रसन्न होगये ॥ ९ ॥ चाहे चार वेदका विभाग कर्ता, अनेक यज्ञोंका करनेवाला, द्वादशगुण सम्पन्न, धनमें कुबेरकी समान और जातिका ब्राह्मण हो परन्तु भगवद्भक्तिसे विरुद्ध हो वह ब्राह्मणोंकी गणनामें नहीं है और जो जन जातिका चाण्डाल महापापी और नित्य सुरापी भी हो, परन्तु अपने मन, वचन, कर्म, तन, धन और अपने प्राणोंको नारायणको समर्प्पणकर दे वह महाश्रेष्ठ है और धन्य है, क्योंकि वह श्वपचभी अपने सब परिवारको संसार सागरसे तार सक्ता है और अधिक अभिमानी और अज्ञानी ब्राह्मणभी आपके चरणकमलसे विमुख रहनेवाला किसी प्रकार अपने परिवारको पावन और पवित्र नहीं करसक्ता और वह धनभी केवल तनुका पालन करनेवाला है कुछ मंगलदायक नहीं है ॥ १० ॥ हे प्रभो ! आपके अज्ञानी जीवोंसे अपने लिये आप कुछ पूजा भेंट नहीं माँगते, आपको तो किसी वस्तुकी आवश्यकताही नहीं, क्योंकि आप अपनेही स्वरूपके भागसे परिपूर्ण और दयालु हो. मनुष्य जो जो पदार्थ भगवान्के अर्थ प्रदान करता है और आदर सन्मानसे भगवान्को चढाता है वह सब अपनाही प्रयोजन सिद्ध करता है, जैसे अपने मुखके तिलकादिककी शोभा अपनेही प्रतिबिम्बकी कान्तिको झलकाती है. ऐसेही जो प्राणी जिस वस्तुको भगवत् अर्पण करता है वह सब उसी प्राणीको मिलजाता है ॥ ११ ॥ इसलिये मैं जो अधम बुद्धि मायाके जालमें फँसरहा हूं, आपकी महिमाका वर्णन नहीं करसक्ता. परन्तु अपनी मति अनुसार जैसी मेरी बुद्धि है आपकी स्तुति करता हूं आपके चरित्र गानेसे मनुष्य पवित्र होजाता है, इसलिये मैं आपकी स्तुति करता हूं ॥ १२ ॥ हे ईश ! मेरे समान सब यह ब्रह्मादिक देवता आपके जो सत्वगुण धाम अवतारोंकी जो मांगलिक क्रीडा है, उसको संसारके मंगलके अर्थ और अपने आत्माके सुखके लिये करते हो कुछ हम लोगोंको भय उपजानेके लिये नहीं करते हो ॥ १३ ॥ इसलिये हे शान्तस्वरूप ! अब आप अपने क्रोधको शान्त करो, क्योंकि हम लोगोंके दुःख देनेवाले असुरको तो आपने मारही लिया फिर अब क्रोध करनेकी क्या आवश्यकता है ? वृश्चिक और सर्पको जब कोई मारडाले तो साधु लोगोंको बडा आनन्द होता है, ऐसेही इस दुष्ट हिरण्यकशिपुके वध करनेसे साधु लोगोंको बडा आनन्द हुआ, अब सब लोग आपके समीप आये हैं, हे नृसिंह !

यह अपना भय दूर करनेके लिये आपका स्मरण करते हैं सो आपके इस अद्भुत स्वरूपका ध्यान करनेहीसे भय दूर होजायगा, फिर अब क्रोध करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ॥ १४ ॥ हे अतीत ! यह आपका रूप जो महाभयंकर मुख, जीभ सिंहकेसी, सूर्यके समान लाल २ नेत्र मानो अग्निकी ज्वाला भडक रही है, वंक भ्रकुटियोंका चढाना और अतिविकराल दाढोंको देख देखकर भय दिखाई देता है, आँतोंकी माला पहिरनेसे और सटाके वाल रुधिरसे भीजेहुए, केलेके पत्रोंके समान कान उँचे २ खडे दिखाई देते हैं, नखोंके अग्रभाग वैरियोंके उदरके विदीर्ण करनेवाले, महागम्भीर, शब्दसे सब दिशाओंको दिक्पाल भयमानकर कम्पायमान होते हैं, इनका तो मुझको कुछ भय नहीं ॥ १५ ॥ परन्तु हे कृपावत्सल ! इस संसारचक्रके दुःसह दुःखसे मैं महादुःखी हूं, सो आपके चरणारविन्दकी कृपासे साधारण संसारचक्रका मुझको कुछ भय नहीं परन्तु अपने कर्मोंके वन्धनमें जो मैं बँधा हिंसक जीवोंमें पडाहुवा हूं इस वातसे मेरा मन बहुत डरता है. हे कृपालु ! मुझपर दयालु होकर आप अपने मोक्षरूप और शरणरूप चरण शरणमें मुझको कव वुलाओगे ॥ १६ ॥ हे भूमन् ! इस प्रिय अप्रिय पदार्थोंके वियोग संयोगसे जो प्रगट हुई शोक रूप अग्नि है उस अग्निसे सब योनियोंमें रात दिन जला करता हूं और संसारमें दुःख दूर होनेके लिये यत्न हैं वहभी सब दुःखरूप हैं, कभी पित्त अधिक हो जाता है, कभी वात वढ जाता है, कभी कफ घेर लेता है, यह देहाभिमान भटका रहा है, इसलिये हे सत्तम ! अव आप दासभाव सजीवन मूल औषधी वताओ जिससे फिर यह दुःख मुझको न व्यापै ॥ १७ ॥ हे प्रभु ! संसारके बन्धनोंसे मोक्ष पाकर आपके चरणशरणमें रहनेवाले महात्मा पुरुषोंके सत्संगसे परम सुहृद और परमगूढ ब्रह्माजीके मुखसे पाये हुए आपके अद्भुत चरित्र सम्बन्धी कथाओंका अभ्यास करते २ इस संसार सागरके महाकठिन दुःखोंसे धीरे धीरे मैंभी पार उतर जाऊंगा अर्थात् आपकी नामरूप नौकापर चढकर पार उतरना क्या वडी वात है ? ॥ १८ ॥ हे नृसिंह ! बालककी रक्षा माता पिता करभी सक्ते हैं और नहीं भी करसक्ते, रोगीको औषधी बचाभी सक्ती है, और मारभी सक्ती है, समुद्रमें डूबते हुएको नाव निकालभी सक्ती है और डुबोभी सक्ती है, परन्तु सर्वोपरि आपकी रक्षा है. रोगियोंके कष्ट दूर करनेके लिये संसारमें अनेक उपाय और अनेक औषधी हैं, परन्तु आपकी इच्छा विना कोई कार्य सिद्ध नहीं होसक्ता. सवका यही तात्पर्य है कि, शरीरधारी तुम्हारी उपेक्षा करैं तो उसको दुःख है और तुम्हारी चाहना करैं तो सुख है ॥ १९ ॥ भिन्न भिन्न स्वभाववाले ब्रह्मादिक देवता अथवा उनसे पीछे जो उत्पन्न हुए पिता परपितादिक जो कोई पुरुष, जिस कालमें, जिस हेतुसे, जिस सम्बन्धसे, जिसके लिये, जिस प्रकारसे, जिसकी प्रेरणासे जो कुछ होता है सव आपकाही स्वरूप है ॥ २० ॥ पुरुषको काल करके प्रेरित जिसके गुण हैं ऐसी यह माया अपने अनुसार काल करके कर्ममय, वेदमय, मनको रचै है और माया करके प्रेरित सोलह विकाररूप जिसमें आरे, ऐसे संसाररूप चक्रवाले मनको

आपकी कृपाविना कौन तार सक्ता है ? ॥ २१ ॥ हे ईश्वर ! हे जगदीश ! अपनी चैतन्य शक्तिसे सदा बुद्धिके गुणोंको जीतनेवाले, अपनी सर्व गुणमयी मायाके प्रेरक, कार्य और साधनोंके साधक, सर्व शक्तियोंको अपने आधीन करनेवाले आप हैं और मैं जो इस मनमोहिनी मायासे सोलह आरेवाले संसारचक्रमें पडा हुवा कोल्हके भीतर गन्नेकी नाईं पिल रहाहूं. अब हे शरणागतवत्सल ! मुझ शरणागत मन्दबुद्धिके मनको मारकर शीघ्र मुझे अपनी ओरको खैंचो, क्योंकि रस निकल चुकाहै कुछ सूक्ष्म रस शेष रहा है जो यह भी निकल गया तो फिर किसी कामका न रहूँगा ॥ २२ ॥ हे विभो ! सब स्थानपालकोंकी आयु, लक्ष्मी, वैभव, स्वर्ग, जिनकी यह प्राणी सदा इच्छा करते हैं, उनको तो मैंने सब प्रकारसे देख लिया, क्योंकि वह सब मेरे पिताके कुपित हास्य और चढीहुई भ्रूभंग मात्रनेही एक क्षणभरमें नष्ट भ्रष्ट करादिया, उस सर्व संहारी मेरे पिताको विना शस्त्र नखोंसे विदीर्ण करडाला ॥ २३ ॥ इसलिये मैं अज्ञानी किसी बातका न जाननेवाला प्राणियोंके आशीर्वादको, ब्रह्मा पर्यन्तकी आयुको, लक्ष्मीको, इन्द्रियोंसे भोगनेवाले सुखको, और संसारके अनेक प्रकारके ऐश्वर्यादिक भोगोंको भोगनेकी मेरी इच्छा नहीं और सिद्धियोंकोभी मैं नहीं चाहता. क्योंकि वहभी आपके कालरूप प्रबल पराक्रमसे खण्डित होनेवाली हैं, इसलिये हे प्रभो ! मुझको तो आप अपने दासोंके दासोंकी चरण शरणमें रखना ॥ २४ ॥ कानोंसे कानोंको सुख देनेवाले अन्तमें मृगतृष्णा रूप इस आशीर्वादसे क्या प्रयोजन है ? अनेक रोग जिससे उत्पन्न होंय, ऐसे शरीरसे क्या प्रयोजन है ? यद्यपि इस बातको सब जानते हैं तोभी लवमात्र मधुर कामरूप अग्निके मुखमें बललीन हैं इसको दूर नहीं करसक्ते, और विद्वान हैं उनको किसी प्रकार वैराग्य नहीं होता, वह पण्डित नहीं हैं मूर्ख हैं. हे प्रभो ! आपकी माया बडी बलवान् है ॥ २५ ॥ हे नृसिंहजी महाराज ! रजोगुणसे उत्पन्न हुवा तो मेरा देह, तमोगुणकी खानेवाले राक्षसवंशमें मेरा जन्म और सदा दैत्योंके बालकोंका संग, फिर कहां तो मैं ? और कहां आपका अनुग्रह ? जिस अनुग्रहसे अभयदायक दुष्ट दमन आपकी भुजाओंकी छाया, जो कि आजतक ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी, अपनी परमप्यारी पत्नीके ऊपर भी नहीं करी थी, सो उन भुजाओंकी छाया आज आपने मेरे ऊपर करी ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! आप समदर्शी हैं, आपके यहां दुर्भाव नहीं है, ब्रह्मादिक देवता उत्तम हैं और यह दैत्य नीच है, यह बुद्धि अधम लोगोंकी है आपकी नहीं. क्योंकि आप तो सर्व जगदाधार और सबके सुहृद् हो, तोभी कल्पतरुकी समान जो जैसी सेवा करता है उसको वैसाही फल मिलता है आपकी कृपा कल्पद्रुमके सदृश है और कल्पद्रुमको सब इकसार है, तोभी जो मनुष्य कल्पवृक्षके नीचे वास करते हैं वह मनवांछित फल पाते हैं,इसी प्रकार आपको सब इकसार हैं परन्तु सेवकोंको सेवाके अनुसार फल देतेहो, आपके यहाँ कुछ दुर्भाव नहीं ॥ २७ ॥ हे नाथ ! जिस प्रकार आपने मुझको संसाररूप कूपमें पड़ा देख अवतार धारण किया और मुझको अपनाया. इसी प्रकार नारदजीने भी मुझे

संसार रूप भयंकर सर्पवाले अँधियारे कूपमें पड़ा देखा और भी यह जाना कि विषयानुरागी लोगोंके कुसंगसे अन्धा होकर इसमें गिरगया और इसके सब अंग भुजंगने डसलिये, उसीके विषसे यह ऐसा बेसुधि होरहाहै कि, उस कूपकोही अपना घर समझ रक्खा है; उस समय उन्होंनेभी मेरे ऊपर दयादृष्टि करके मुझे उस कूपसे बाहर निकाला, सो मैं आपके भृत्य लोगोंकी सेवा कैसे त्यागदूं ॥ २८ ॥ हे अनन्त ! मेरे प्राणोंकी रक्षा करी और मेरे पिताको मारा, अपने भृत्य नारदका वाक्य सत्य करनेके लिये यह अद्भुत अवतार लिया, क्या इस बातको मैं नहीं जानता ? खोटा कर्म करनेकी इच्छा करके मेरा पिता खड्ग हाथमें लेकर बोला कि, तू किसकी आराधना करता है, मुझसे परे कौन ईश्वर है जिसको तू अपना रक्षक बतलाता है उसको मुझे दिखा ? मैं अभी उसको मारूंगा और जो नहीं बतावेगा तो तेरा शिर काट डालूंगा. आपने अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये और अपने भक्तोंको अभय करनेके लिये और मेरा वचन सत्य करनेके लिये उसी समय खम्भ फाडकर प्रगट हुये, क्या इस बातको मैं नहीं जानता ? ॥ २९ ॥ हे जगदाधार ! केवल एक आपही जगदाधार और जगत् रूपहो, क्योंकि इस जगत्के आद्य और अन्तमें एक आपही रक्षकहो और मध्यमें भी आपही हो. अपनी मायाके गुणोंसे इस विश्वको रचके नाना प्रकारसे उन गुणोंको दृष्टि आते हो और अन्तर्यामी रूपसे सब चर अचर रूपमें व्याप्त होरहे हो, मायाके गुणोंसे भिन्न भिन्न रूप आपका प्रतीत होता है. कोई शत्रु समझता है, कोई मित्र समझता है आपक भेद अपार हैं, उन भेदोंको कोई समझ नहीं सक्ता ॥ ३० ॥ हे ईश ! सत् असत् आपही हो और यह सब मायाके गुण हैं, मायासे भिन्न नहीं हैं, आप जगत्से भिन्नभी हो तोभी जगत् रूप आपही हो और यह सब मायाके गुण हैं, यह मेरा है, यह पराया है, ज्ञानदृष्टिसे देखो तो कुछ न अपना है, न पराया है, सब एकही रूप है, वृक्ष जैसे धरामय बीज रूप है, बीज सूक्ष्म बीज रूप है और सूक्ष्म भूत ब्रह्मरूप है, इसी प्रकार यह जगत् पंच महाभूत रूप है, पंचमहाभूत अपने सूक्ष्मभूत रूप हैं और सूक्ष्म रूप ब्रह्मरूप है, जो पदार्थ जिससे उत्पन्न हो वा जिससे प्रकाशित हो, अथवा जिसमें लयहो वह तद्रूप होता है ॥ ३१ ॥ महाप्रलयके जलमें इस विश्वको रखकर आप अपने सुखका अनुभव करते समय अचेष्टा होकर योगसे दृष्टिको मींचकर स्वरूपके प्रकाशसे निद्राका पराभाव करके आत्माकी चतुर्थतुर्या अवस्थामें स्थित होकर तम और सब गुणोंका संयोग त्यागकर शयन करते हो ॥ ३२ ॥ अपनी कालशक्तिसे प्रकृतिके गुणोंकी प्रेरणा करते हो, उन्हींका स्वरूप यह जगत् है, जब आपकी इच्छा होती है तब प्रलय सम्बन्धी जलमें शयन करते करते समाधिसे निवृत्त होकर आपके नाभिकमलके सूक्ष्म बीजमेंसे जैसे बडा बडका वृक्ष उत्पन्न होता है, उसी प्रकार प्रलयके जलमेंसे महाकमल उत्पन्न होता है, जिस समय शेषनागकी शयनसे आप जागते हो ॥ ३३ ॥ उस कमलमेंसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुये तो आँख खोलकर सब ओरको देखा

परन्तु सिवाय कमलके और कुछ देखनेमें नहीं आया, क्योंकि स्वयं बीज रूप आपही अपने आपमें व्याप्त होरहे थे,फिर आपही प्रगट हे विचारकर सौ वर्षतक जलमें ढूँढते रहे तो भी आपका पता नहीं लगा, सत्य अंकुरके निकलनेसे बीज कहां रह सक्ता है? ॥ ३४ ॥ तब ब्रह्माजी अति विस्मित हो पीछे लौटे फिरे और उसी कमलपर बैठकर तपस्या करनेलगे. जब तपस्या करते करते अनन्त काल व्यतीत होगया,तब उसी तीव्र तपके प्रभावसे मनका अति शुद्धभाव होगया तब तो भूत इन्द्रिय और मायामय आत्माहांमें सन्मात्र रूपसे वर्त-मान अतिसूक्ष्म रूपसे अपने अन्तःकरणमेंही ईश्वरको देखपाया, जैसे पृथ्वीसे सूक्ष्म सुगन्ध निकलती है ॥ ३५ ॥ वह मायामय अद्भुत स्वरूप कैसा था कि, जिसमें सहस्र मुख, सहस्र चरण, सहस्र शिर, सहस्र हाथ, सहस्र ऊरु, सहस्र नासिका, सहस्र कान और सहस्र नेत्र थे और सहस्र सहस्र आभूषण और सहस्र २ आयुधोंसे परिपूर्ण थे, परन्तु आपका यह रूप मायामय प्रधान है, क्योंकि पातालादि प्रपंचसे चरणादि रचना हुई थी. हे महापुरुष ! आपके इस साधुओंके देखने योग्य स्वरूपको देखकर ब्रह्माजीको बड़ा हर्ष हुआ ॥ ३६ ॥ हे भूमन् ! उस कालमें इस रूपसे आपने ब्रह्माजीको दर्शन दिया यह उनके ऊपर बडा अनुग्रह किया. क्योंकि हयग्रीवस्वरूप धारण करके वेदद्रोही महाबली वरपानेसे उन्मत्त मधु व कैटभ नामक दोनों असुरोंका वध करके, ब्रह्माजीको श्रुतिगण लाकर रज, तम समर्पण किया, हे प्रभो ! ऋषि लोग कहते हैं कि सतोगुण आपका प्यारा शरीर है ॥ ३७ ॥ हे महापुरुष ! आप इस प्रकार मनुष्य,पशु,ऋषि,देवता और मत्स्यादि अवतार धारण कर सब लोकोंकी रक्षा करते हो और जो संसारके प्रतिकूल होते हैं उनका विध्वंस करते हो, यह युग युगमें आपका धर्म चलाआया है, उसकी रक्षा करते हो और कलियुगमें आप गुप्तरूपसे रहते हो, इसलिये इस युगमें आप ऐसा नहीं करसक्ते आप तीनहीं युगमें अवतार लेते हैं इसीसे आपका नाम संसारमें त्रियुग प्रसिद्ध हुवा है ॥ ३८ ॥ हे वैकुण्ठनाथ ! यह मेरा मन अधर्मसे दूषित है, सदा बाहिरी बातोंसे लगार-हता है जीतनेमें नहीं आता कामसे आतुर है. इसलिये हर्ष, शोक, भय, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तपोंके दुःखसे पीडित हो आपकी कथा वार्त्तामें प्रीति नहीं करता. हे प्रभो ! ऐसा मन होनेपर मैं दीन पराधीन होकर फिर आपके तत्वका विचार कैसे जानसक्ता हूँ ॥ ३९ ॥ हे अच्युत ! जीव तृप्त होकर अनेक ओरको अर्थात् जिस ओर मधुरादि रस हैं उसी ओरको खैंचे है, त्वचा स्पर्शकी ओरको खैंचेहै, पेटकी भेट देनीही कठिन है, क्षुधासे संतप्त होकर जिस प्रकारकी आहारकी वस्तु देखताहै मार मारकर उसी ओरको खैंचता है, जिस ओरसे सारंगी मर्दंगकी ध्वनि और मधुर मधुर स्वरोंसे कोकिलकंठियोंके गानेका शब्द सुनाई आता है, यह कान अज्ञान बलात्कार उसी ओरको खैंचते हैं, नाक अनेक अनेक प्रकारके सुगंधित गंधराज, मालती, मदनबाणादिक पुष्पोंकी गंधकी ओरको खैंचती है, यह चंचल नयन किसीप्रकार चैनही नहीं लेने देते यह पापी ऐसे अधैर्य हैं इनको किसी समय धैर्यही नहीं होता, न जानिये विधाताने किन

दिनोंमें इनको बनाया है कभी तो इतना क्रोधको देखतेही भस्म करदें, कभी इतने दयालु कि जिसकी ओरको देखें वह दिनरात सम्मुखही खडा रहै, कभी ऐसे निर्द्वन्द्व जो बन्द होजायँ तो किसीसे कुछ प्रयोजनही नहीं, किसीने इनकी प्रशंसामें ये दोहा कहेहैं–

दोहा--अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुक झुक परत, जेहि चितवत इकवार॥

फिर कैसेहैं ?

दोहा–समझाये समझत नहीं, पलक देत नहिं चैन।
नीर भरे प्यासे रहैं, निपट अनोंखे नैन॥

फिर कैसेहैं ?

दोहा–अनियारे तीखे कुटिल, अंकुशसे दृगवान।
लागत सीधे आनके, पीछे खैंचत प्रान॥

जिधर रूप रस देखते हैं. उधरहीको खैंचते रहते हैं, सब कर्मेन्द्रियें अपनी अपनी ओरको खैंचरही हैं जैसे एक पतिकी बहुत स्त्रियें होती है और वह अपनी अपनी ओरको खैंचती हैं और घबरालेती हैं ऐसेही यह मेरी इन्द्रियें मुझको व्याकुल कर रही हैं ॥४०॥ हे भगवन् ! जिसप्रकार मेरी कुगति है इसीप्रकार सबकी कुगतिहै और इसी कुगतिमें संसाररूप वैतरणी नदीकी धारमें उछलते डूबते बहे चले जाते हैं, अनेक जन्म लेते मरते खाते डरते डराते अपने परायेके साथ शत्रुता मित्रता करते रहते हैं. हे उद्धारकारक विश्वनाथ ! उन भयभीत जनोंको अपने नेत्रोंसे देख अनुग्रह प्रकाश करके आजही यम-द्वारवाली वैतरणी नदीसे पार उतार कर रक्षा कीजै क्योंकि यह जन मूढ और दीन हैं ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! आप सब जगत्के गुरु हैं और इस संसारकी सृष्टि स्थिति और विनाशके कारण आपही हैं, फिर आपको सब भक्तोंके तार देनेका क्या परिश्रम है। अर्थात् सब भक्तोंका तार देना कुछ आपका दुष्कर कर्म नहीं है, हे प्रभो ! आप जनोंके बन्धु हैं, मूढजनोंके ऊपरभी आपको कितना अनुग्रह है, जो विना भक्ति तार देतेहो, इसीलिये आपका नाम देवताओंने आरतबन्धु रक्खा है, हम लोग आपके भक्तजनोंके सेवक हैं, हम लोगोंका उद्धार करोगे तो क्या कुछ बडी बात है ? यहभी एक आपका तुच्छ कार्य है ॥ ४२ ॥ हे सर्वोत्तम ! आपके गुणगान रूप महान् अमृतधारामें जिनका मन मग्न हो रहाहै, इसलिये वह तो इस दुष्पार संसाररूप वैतरणी नदीकाभी कुछ भय नहीं करते, परन्तु जो मूर्खलोग इस महाअमृत नदीसे विमुख हो इन्द्रियोंके निमित्त जो मायाका सुखहै उसके लिये कुटुम्बादिकका भार होतेहैं, उनको देखकर मुझे अत्यन्त शोक होताहै ॥४३॥ हे देव ! मुनिलोग बहुधा अपनी मोक्षकी कामनाके लिये एकान्तस्थानोंमें मौनी बनकर तप करतेहैं और वन वन घूमते फिरते हैं,परन्तु और दूसरा यत्न हम उनका नहीं देखते हे भगवन् ! यह हमारे संगी असुरोंके बालक अतिशय दीन हैं, इनको अकेला छोडकर मैं अपनी मुक्तिपानेकी इच्छा नहीं रखता, हे नित्यमुक्त ! मैं इन बालकोंके लिये

और किसीके निकट प्रार्थना नहीं करसक्ता, क्योंकि आपके सिवाय और कोई पुरुष इस भ्रान्त लोकका उद्धार करनेवाला नहीं देखता ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! ऐसा नहीं कहा जासक्ता कि ! यह लोग स्त्रीसंग संभोगादिक द्वारा सुख भोग करते हैं दीन नहीं हैं, हे भगवन् ! स्त्रीसंगादि जो गृहस्थधर्म है सोवडा सुखहै उनसे दोनों हाथोंके खुजानेकी समान दुःखपर दुःखही दिखाई देताहै. हे स्वामिन् ! गृहस्थीका सुख इसप्रकार अन्तमें दुःख देनेवालाहै जैसे ओसका सोना, उसमें आसक्त पुरुष बहुतसा दुःख भोग करभी खुजानेकी समान इस सुखसे तृप्त नहीं होते, एक दुःख बीतने नहीं पाता दूसरा आनकर उपस्थित होजाता है. देहमें खुजाहटका रोकना ऐसे वैसे पुरुषोंका काम नहीं, केवल कोई धीर पुरुषही खुजलीकी समान कामदेवके वेगका सहन कर सक्ता है, परन्तु कौन ? जो कोई आपका परम भक्त होगा ॥ ४५ ॥ हे अन्तर्यामिन् ! मौन व्रत,श्रुत,तप,अध्ययन, स्वधर्म, धर्मव्याख्या, एकान्तमें वास, जप, एकादशीव्रत और समाधि यह दश मोक्षके साधन प्रसिद्ध हैं, इनको मैं तो असत्य नहीं कह सक्ता, परन्तु यह बहुधा अजितेन्द्रिय पुरुषोंकी आजीविकाका उपाय है,इसके करनेवालोंको देख देखकर कोई कोई अजितेन्द्रिय लोग हँसते भी हैं और कहते हैं कि,यह सब ठग विद्याके साधनहैं और दम्भका फल सदा एकसा नहीं रहता, इसलिये दम्भी लोगोंके लिये सब मौनादिक कर्म कभी आजीविकाका उपाय होसक्ता है और कभी नहीं भी होसक्ता है ॥ ४६ ॥ देखो ! बीज और अंकुरकी समान यह सत् और असत् अर्थात् कारण और कार्य आपका रूप कहकर वेदने प्रकाशित किया है. वास्तवमें आप प्राकृत रूपादिसे शून्य हैं, इससे तत्त्वादिक रूपकी समान आपका और रूप नहीं है, इसलिये योगीराज लोग भक्तियोगसे काष्ठमें अग्निके समान कार्य और कारण दोनोंहीमें आपका अनुगत देखते हैं. हे भगवन् ! यह (कार्य और कारण) प्रधान अथवा प्रमाण इत्यादिसे नहीं होसक्ते हैं. इसलिये आपही सबके कारण हैं, आपही सब वस्तुमें दिखाई देते हैं. आपके सिवाय और किसी वस्तुसे कार्य और कारणकी उत्पत्ति होती नहीं जानी जाती ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! वायु, अग्नि, धरणि, आकाश, जल, मात्रा, प्राण, इन्द्रियें, हृदय, चित्त, अहंकार, देवता, स्थूल और सूक्ष्म यह सब आपहीके रूप हैं. हे भूमन् ! सगुण निर्गुण आपही हैं, मन वचनसे जो कुछ कहा जाता है वह सब आपही हैं॥४८॥यह गुण, अवगुण, महत्तत्त्वादिक, मन आदिक देवता और मनुष्य जो भले प्रकार आदि अन्तके जाननेवाले हैं उसमें कोईभी आदि अन्तके सिवाय आपके स्वरूपको नहीं जान सक्ता, सब आपही हैं, इससे हे उरुगाय ! बुद्धिमान् पुरुष सब पाठ पूजन छोड केवल समाधिसे आपहीका ध्यान किया करते हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये हे अत्यन्तपूजनीय ! नमस्कार, स्तुति, सब कर्म समर्पण पूजन; चरणारविन्दकी स्मृति और कथाका सुनना, यह षडंग भक्तिकी सेवा, आप जो परमहंसोंके गतिरूप हो सो आपकी भक्ति विना मुक्ति कहां ? इसलिये आप अनुग्रह करके मुझको अपने दासोंका दास बनालो ॥ ५० ॥ नारदजी बोले कि, भगवद्भक्त प्रह्लादने जब इस प्रकार भक्तिसे भगवान्‌के गुण वर्णन किये,

तब अलौकिक गुण विशिष्ट, नृसिंहजीने क्रोध शान्त कर नम्र प्रह्लादपर प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ५१ ॥ भगवान् बोले कि, हे दैत्यकुलभूषण प्रह्लाद ! हे भद्र ! हे असुरोत्तम ! तेरा कल्याण हो, मैं तुझपर अति संतुष्ट हूं, जो तेरी इच्छा हो सो वर माँग, मैं सब मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला हूं ॥ ५२ ॥ हे आयुष्मन् ! मुझको विना प्रसन्न किये मेरा दर्शन होना महाकठिन है और मेरा दर्शन करके फिर यह प्राणी किसी प्रकारका शोक सन्ताप नहीं सहता ॥ ५३ ॥ इसलिये महात्मा पुरुष कल्याणकी इच्छा करनेवाले भाग्यवाली पुरुषोंको सब प्रकारके आशीर्वाद देनेवाला मैं हूं ॥ ५४ ॥ नारदजी बोले कि, सब लोकोंको लुभानेवाले वरदानोंसे यद्यपि प्रह्लादको अनेक प्रकारका लोभ दिखाया परन्तु तोभी उस प्रह्लाद भगवान्‌के परमभक्तने किसी वरदानकी चाहना नहीं की और प्रेममें मग्न होकर यह भजन गाने लगा ॥

भजन– प्रभु मैं सब विधि दास तुम्हारो ॥ अपनी चरण शरणसे मोको, इक पल मत न विसारो ॥ १ ॥ यह विशाल विकराल रूप प्रभु, दुष्ट दल दलनहारो ॥ बसो रहैं दिन रात हृदयमें, यह अभिलाष हमारो ॥ २ ॥ जब गज गह्यो ग्राहने जलमें, कोटी जतनकर हारो ॥ जौ भर सूंड रही जल ऊपर, तब हरिनाम पुकारो ॥ ३ ॥ धाये वेग गरुड पर चढकर, सब दुख द्वन्द निवारो ॥ शालिग्राम भक्तसे बढकर, और न कोई प्यारो ॥ ४ ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे सप्तमस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा–दशवेंमें प्रह्लाद पर, कर हरि कृपा महान ।
शिव अजको समझायकर, हरि भये अन्तर्धान ॥

नारदजी बोले कि, भक्तियोगमें यह सब कामनादिक विघ्नरूप जानकर प्रह्लादने हँसकर श्रीनृसिंहजीसे कहा ॥ १ ॥ प्रह्लाद बोले कि, मैं जन्म जन्मोंसे वरदानका फल जान रहाहूं कि यह विषयकी मूल है और आजतक वरदानरूप विषयोंमें आसक्त हूं; अब मुझको वरदानोंका लोभ दिखाकर मत लुभाओ विषयोंके संगसे तो मैं अत्यन्त डरा हुवाहूं, मुक्तिकी कामनाकर आपकी शरण आयाहूं ॥ २ ॥ हे प्रभो ! दासके लक्षण जाननेकी इच्छाकर मेरी परीक्षा करते हो, संसारके बीजरूप और हृदयकी ग्रन्थिरूप विषयोंमें प्रेरणा करते हो और यह भी देखते हो कि, यह मेरा भक्त हित चित्त है, वा ऊपरके मनसे ? सो हे नाथ ! स्वामीको अवश्य चाहिये कि दासकी परीक्षा करता रहै, मेरा मन यह साक्षी देता है कि, आप विषयरूप मृगतृष्णाकी समान वरदान मुझको कभी न देंगे, क्योंकि आप तो दयानिधान हैं, आपके हृदयमें दया भरी हुई है ॥ ॥ ३ ॥ जो दास अपने स्वामीसे संसारी सुखकी इच्छा रक्खे और उसको बात बातमें लोभ दिखाई देता हो, उसे दास कहना नहीं चाहिये वह कुदास है, क्योंकि जब उसकी

वात वातमें लोभ भरा हुवा है फिर दासभाव कैसा ? वह तो व्यापारी वनिया ठहरा और जो स्वामी दाससे सेवाकी आशा करके उसको अपने पास रक्खे और आशीर्वाद अथवा और कोई मनोवांछित वस्तु दे तो उसको किसी प्रकार स्वामी नहीं कहना वरन् अनुगामी कहना चाहिये ॥ ४ ॥ मैं तो निष्काम आपका भक्त हूं और आप निष्काम मेरे स्वामी हैं और कुछ मेरा आपका प्रयोजन नहीं ॥ ५ ॥ हे वर देने वालोंमें श्रेष्ठ ! जो कामना आप मुझको देते हैं तो आपसे यही वरदान माँगताहूं कि, मेरे हृदयमें किसी प्रकारकी कामनाका अंकुर उत्पन्न न होय ॥ ६ ॥ हे नाथ ! कामनाका अंकुर उत्पन्न होतेही इन्द्रिय, मन, प्राण, आत्मा, धर्म, धैर्य, मति, लाज, श्री, तेज, स्मृति और सत्य यह सब माँगनेके नामसेही नष्ट होजाते हैं ॥ ७ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! जब मनुष्य मनसे कामनाओंका त्याग करता है, तव वह प्राणी भगवत्के भावको प्राप्त होजाता है ॥ ८ ॥ फिर हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगा, "ॐनमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने । हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने" जो कि आप भगवान् महापुरुष परमात्मा, परब्रह्म, हरि और अद्भुत नृसिंह रूप हो, मैं ऐसे अद्भुत स्वरूपको वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥ ॥९॥१०॥श्रीनृसिंहजी बोले कि, हे प्रह्लाद ! तुझ सरीखे जो मेरे एकान्ती भक्त हैं वह इस लोकमें वा परलोकमें सुखकी इच्छा कभी नहीं करते,तोभी तू मेरे कहनेसे एक मन्वन्तरतक दैत्यकुलमें रहकर आनन्दसहित राज्यकर और सुख भोग ॥११॥ मेरे सुन्दर सुन्दर चरित्रोंकी कथाओंका सेवन करना, मैं जो ईश्वर सब पदार्थोंमें व्यापक हूं और यज्ञोंका यज्ञेशहूं मुझको हृदयमें रखकर सदा मेरा ध्यान करना, यजन करना, योगसे कर्मोंका त्याग करना और जो कर्म कर मेरे अर्थ समर्प्पण करना और उन कर्मोंके फलकी कांक्षा न रखना ॥ ॥ १२ ॥ और भोगसे पुण्यका भोग करना, कुशलसे पापको भोगकरना जिसको देवता सदा गातेरहैं ऐसी विशुद्ध कीर्ति विस्तार करके, वन्धनसे मोक्षकर फिर मुझको प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ तेरा गाया मेरा जो स्तोत्र है जो कोई मनुष्य पवित्र चित्तसे उसका कीर्तन करैगा अथवा मृत्युके समय तेरा वा मेरा स्मरण करेगा तो वह निःसन्देह कर्मोंके बन्धनसे छूट जायगा ॥ १४ ॥ प्रह्लाद बोला कि, हे महेश्वर ! हे वर देनेवालोंके स्वामी ! आपकी आज्ञानुसार आपसे मैं यह वर माँगताहूं कि मेरे पिताने आपको जाना नहीं और न आपके तेज व ऐश्वर्यको पहिंचाना इससे आपकी निन्दा की ॥१५॥ और क्रोध अभिमानके मदमें आनकर उन्मत्तकी नाईं बकवाद करता रहता था, कि "मेरे भ्राताका मारनेवाला विष्णुही है और सब दैत्योंको इसीने मारा है" इस कुदृष्टिसे उसने साक्षात् सर्व लोकके गुरु भगवान् आपको तो दुर्वाक्य कहे और आपका भक्त जानकर मुझको भाँति भाँतिके दुःख दिखाये, परन्तु आपके प्रभावको न जाना क्योंकि सदासे क्रूर बुद्धि था ॥ १६ ॥ वह मेरा पिता महादुस्तर पापसे मोक्षहोकर पावन और पवित्र होजाय ऐसा अनुग्रह करना चाहिये, हे भक्तवत्सल ! यह कहनाभी मेरा मूर्खपन है क्योंकि यह तो पवित्र उसी समय होगया था जब कि आपने खम्भ फाड़ कर दर्शन दिया था, परन्तु कठोर

वाक्य जो आपको कहे हैं उनका अपराध क्षमा करना चाहिये ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे साधु ! हे पापरहित ! तेरा पिता इक्कीस कुलसहित पवित्र होगया, क्योंकि जब तुम सरीखे, साधु कुलपावन उसके घर जन्मे ॥ १८ ॥ जिन जिन स्थानोंमें मेरे भक्त प्रशान्त, समदर्शी, साधु और श्रेष्ठाचार करनेवाले हैं वह कीकटदेशको भी पवित्र कर देते हैं ॥ १९ ॥ जो लोग किसी जीवकी हिंसा नहीं करते और छोटे मोटे जीवोंको मेरे भावसे चाहते हैं, हे दैत्येन्द्र ! उनको किसीप्रकारकी इच्छा नहीं होती ॥ २० ॥ जो लोग इस लोकमें वा परलोकमें आपके अनुवर्ती होवेंगे जैसे तू मेरे सब भक्तोंका प्यारा है वैसेही वह सब मेरे प्यारे होंगे ॥ २१ ॥ हे अंग ! सब भाँतिसे तेरा पिता परमपवित्र है उसका तू मृतक कर्म कर, एक तो इसका मेरे अंगसे स्पर्श होगया है, दूसरे इसके तेरे समान सुपुत्रका होना, फिर इसके स्वर्ग जानेमें क्या संदेह है ? ॥ हे तात ! ब्रह्मवादीलोग जिस प्रकार स्मृतियोंमें आज्ञा कर गयेहैं वैसेही मुझपर आसक्त होकर सब कर्मकर और मेरे चरणोंमें मन लगाकर पिताके सिंहासनपर बैठकर राज्य कर ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे महाराज ! जो जो पिताकी मृतक क्रियाथी सो सब प्रह्लादने करी, फिर जैसे भगवान्‌ने कहा पीछे ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक उसका अभिषेक किया ॥ २४ ॥ अपने ऊपर प्रसन्न जानकर सुमुख श्रीनृसिंह भगवान्‌को ब्रह्माजी पवित्र वाणीसे स्तुतिकर सब देवताओंको साथ ले चतुरानन कहने लगे ॥ २५ ॥ हे देवदेव ! हे अखिलाध्यक्ष ! हे भूतभावन ! हे पूर्वज ! सर्वलोक संतापी पापी असुरका आपने वध किया यह बडा मंगल हुवा ॥ २६ ॥ एक तो इसने यह वर मुझसे माँग लिया था कि, आपकी (ब्रह्माकी) सृष्टिमें मैं किसीसे न मरूं, दूसरे तपयोगके प्रभावसे, ऐसा उन्मत्त हो गयाथा कि सब वेदोंका नाश कर दिया था ॥ २७ ॥ सबसे उत्तम काम तो यह आपने किया कि, परमभागवत भगवद्भक्त महासाधु इसके छोटे सुतको मृत्युके मुखसे आपने बचाया और यह बहुतही अच्छा किया कि जो इसके पुत्र प्रह्लादको आपने अपनी शरण में रखलिया ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! इस आपके नृसिंह अवतारका सावधान होकर जो ध्यान करै तो मृत्युके और सब प्रकारके त्राससे मुक्ति पावैगा ॥

दोहा-वचन न मम झूटो भयो, हनो असुर बलवान।
आप सरसको नरहरी, दूजो कृपानिधान॥ २९ ॥

श्रीनृसिंहजी बोले कि, हे चतुरानन ! ऐसा वर राक्षसोंको मतदिया करो, क्योंकि क्रूर स्वभाववालेको वरभी सब उलटे हो जाते हैं जैसे सर्पको दूध पिलानेसे विष बढताहै ॥ ॥ ३० ॥ नारदजी बोले कि, हे महाराज युधिष्ठिर ! ब्रह्माजीसे यह बात कहकर और उनकी पूजा स्वीकार कर सब लोगोंके देखते देखते श्रीनृसिंह भगवान् अंतर्धान होगये "ब्रह्माने कहा कि सबकी मोक्ष कर दो तो अच्छा है. नृसिंह बोले कि, जो कोई अपनी मोक्ष न चाहै तो उसकी मोक्ष हम कैसे कर दें, जिसको मोक्षकी इच्छा हो उसको हमारे पास लाओ. ब्रह्माजी नगरमें गये और जाकर देखा कि, बडाभारी एक सेठ गद्दीपर बैठा

है और चारों ओर असामी उसके हाथ जोडे बैठे हैं, ब्रह्माजीने कहा कि, सेठजी! वैकुण्ठके चलनेका यह समय अच्छा है और इसकी बराबर और कोई दूसरा लाभ नहीं है, क्योंकि अच्छेसे अच्छेतो भोजन जीमनेको मिलेंगे. और दिन रात भगवान्के सन्मुख रहनाहोगा, सब देवताओंसें रीति प्रीति रहैगी. सेठ बोला कि, मैं वैकुण्ठको कभी नहीं जाऊंगा, क्योंकि एक तो वैकुण्ठ पराया गाँव, दूसरे दिनरात सामने खडे रहनेकी नौकरी, तीसरे नये लोगोंसे मेल करना, मुझको ऐसे वैकुण्ठमें जानेकी आवश्यकता नहीं. मुझको तो यहीं वैकुण्ठ होरहाहै, जो सैकडों मनुष्य मेरे आगे हाथ जोडे खडे रहते हैं और अपने घर सेठ बना बैठाहूं, बाल बच्चे हाथ पाँव दाबते हैं और दूधमें मिश्री डालकर पिलाते हैं इससे अधिक कोई वैकुण्ठ और है ? सेठकी यह बातें सुन, ब्रह्माने सब कथा नृसिंहजीसे कही. तब भगवान् नृसिंहजी बोले कि, हे ब्रह्माजी! जो पुरुष जहाँ बसता है वह वहीं सुख पाताहै यह कह भगवान् नृसिंहजी वैकुण्ठको चलेगये" ॥ ३१ ॥ तब प्रह्लादने ब्रह्मा, शिव, प्रजापती और सब देवताओंकी वन्दना करके शिर झुका प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजी उस समय शुक्राचार्यादिक बडे बडे मुनियोंके सामने सब दैत्य दानवोंका राजा प्रह्लादको बनाया ॥ ३३ ॥ महाराज ! सब देवता प्रह्लादकी सराहना कर परमोत्तम आशीर्वाद दे सब पूजा भेंट लेलेकर ब्रह्मादिक देवता अपने अपने स्थानों को चलेगये ॥ ३४ ॥ इस प्रकार यह दोनों विष्णुके पार्षद दितिके पुत्र हुये और दोनोंने भगवान्को हृदयमें धर फिर वैर भाव करके महाघोर युद्ध किया और विष्णु भगवान्केही हाथसे मारेगये ॥ ३५ ॥ फिर यही दोनों सनक सनन्दनके शापसे पुनर्जन्ममें विश्रवाके घरमें रावण और कुम्भकर्ण नामक असुर योनिमें उत्पन्न हुये और उनको दशरथनन्दन दुष्टनिकन्दन श्रीरामचन्द्रजी महाराजने अपने पराक्रमसे मारा ॥ ३६ ॥ जब रामचन्द्रके तीक्ष्ण बाणोंसे उन दोनोंका हृदय विदीर्ण होगया और युद्धस्थलमें शयन करने लगे, परन्तु पिछले जन्मकी तुल्य श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दका स्मरण उनके चित्तमें बनारहा और उसी समय दोनोंने देह त्याग दिया ॥ ३७ ॥ फिर वही दोनों दन्तवक्र और शिशुपाल हुये और श्रीकृष्णचन्द्रसे वैर करते रहे।

दोहा-राजसूय जब रावरी, भई युधिष्ठिर राज।
तब हरि सबके देखते, मारो मध्य समाज॥

और उसी समय दोनोंने सायुज्य मुक्ति पाई ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णसे वैर करनेवाला जो राजा थे और दिन रात भगवान्की निन्दा करते रहते थे परन्तु हृदयसे ध्यान नहीं बिसारते थे उसी ध्यानके प्रभावसे सब मुक्त होगये जैसे भृंगी कीडेके ध्यानसे और दूसरा कीडाभी भृंगीके समान होजाता है ॥ ३९ ॥ भगवान्से अभेद दृष्टि रखनेसे भक्तोंको जो जो परमपदवी मिलती है ऐसेही शिशुपालादिकोंने भगवान्का चिन्तवन करके परमगति पाई ॥ ४० ॥ जो जो इतिहास आपने मुझसे बूझे सो सब मैंने आपके सामने कहे,दमघोषके पुत्र शिशुपालादिकने जिस प्रकार श्रीकृष्णसे

वैर करके मोक्ष पाई ॥ ४१ ॥ महात्मा ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के पुण्यरूप अवतारकी कथा कही कि, जिसमें आदिदैत्य हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके मारनेका वृत्तान्त है ॥ ४२ ॥ भगवद्भक्त प्रह्लादका चरित्र व हरिकी भक्ति, व ज्ञान वैराग्यका लक्षण व विरक्तभाव और त्रिगुणपति भगवान्का तत्त्व ॥ ४३ ॥ सर्ग, स्थिति, संहारके स्वामीके गुण और कर्मोंका अनुवर्णन, पर अवर स्थानोंका कालसे महान् नाश होजाना ॥ ॥ ४४ ॥ भागवतोंका धर्म जिससे भगवान्का निरूपण होय और उनकी प्राप्ति होय, इस आख्यानमें हमने सम्पूर्णतासे अध्यात्मज्ञान पूर्णरीतिसे दर्शादिया है ॥ ४५ ॥ जो कोई इन पुण्यरूप कथाओंका कीर्तन करै और श्रद्धासे सुने कि जिसमें विष्णु भगवान्के वीर्य सहित सम्बन्धित है, वह पुरुष सब कर्मके बन्धनोंसे छूट जायगा ॥ ४६ ॥ वह पुरुष आदिपुरुष भगवान्की नृसिंहलीलाको और हिरण्यकशिपुवधके चरित्रको सावधान होकर पढेगा और महात्मा जनोंमें श्रेष्ठ प्रह्लादके पवित्र चारित्रको सुनेगा वह निःसन्देह परमपदवीको प्राप्त होगा और किसी प्रकारका भय नहीं देखेगा ॥ ४७ ॥ इस मृत्युलोकमें आज कल तुम बडे बडभागी हो कि, त्रिलोकीके पवित्र करनेवाले मुनिजन आपके यहाँ आते हैं और आपके घरमें साक्षात् नराकार रूपधर श्रीकृष्ण परब्रह्म निवास करते हैं, श्रीकृष्ण परमतत्व हैं, ईश्वर हैं, परात्पर हैं, श्रीमन्नारायण हैं, यही सर्वेश्वर हैं, अविनाशी हैं, निरंजन हैं, निराकार हैं, गोपीजन मनमोहन हैं, भक्तवत्सल हैं, सर्वोपास्य हैं, जगदीश्वर हैं, प्रभु हैं, परब्रह्म हैं, निरीह हैं, निष्कलंक हैं, अदृश्य हैं, परन्तु भक्तोंको दृश्य हैं ॥ ४८ नारदजी बोले कि, यह श्रीकृष्ण वही परब्रह्म हैं, महात्मा जनोंके ढूँढने योग्य कैवल्य मोक्षके सुखका अनुभव करनेवाले प्यारे सुहृद्हैं तुम्हारे मामाके पुत्र आत्मा पूजनीय आज्ञानुवर्ती गुरु श्रीकृष्ण हैं,तुम्हारे भाग्यकी बडाई कहांतक कोई करसके ? ॥४९॥जिसका रूप साक्षात् शिव और ब्रह्मादिक देवताओंसेभी नहीं कहा जाता वह श्रीकृष्ण तुमपर आपसे आप प्रसन्नहैं और हम तो उनको मौन भक्तिसे इन्द्रियोंको जीतके शान्त्यादिक अनेक साधनोंसे और वारंवार यह कहते हैं प्रसन्न करते हैं कि, हे भक्तभावन ! भगवान् हमपर संतुष्ट होओ ॥ ५० ॥ हे राजन् ! पहिले रुद्रदेवको अनन्त मायावी मयदैत्यने युद्धमें नष्ट भ्रष्ट कर दिया था, तब इनही श्रीकृष्णने सहाय करके महादेवके यशका विस्तार किया था ॥ ५१॥ युधिष्ठिर बोले कि, कालमूर्ति त्रिकालज्ञ भूतेश्वर महादेवजीके यशको किस प्रकार मायावी मय दैत्यने नष्ट भ्रष्ट कर दिया था और कैसे उनके यशका श्रीकृष्णने विस्तार किया सो हमसे कहो ? ॥५२॥ नारदजी बोले कि, एक समय देवताओंने विष्णुभगवान्की सहायसे संग्राममें उत्तम उपाय करके सब असुरोंको जीता तब सब असुर मायावियोंका परम आचार्य मयदैत्य जो महाबलशाली और परम चतुरथा उसकी शरण गये ॥ ५३ ॥ इस महा पुरुषार्थी मयदैत्यने तीनपुर, सोने, चाँदी और लोहेके ऐसे कठिन बनाये कि, उनके आनेजानेका मार्ग कोई नहीं जान सक्ता था और उसकी ऐसी कठिन सामग्रीथी कि किसीकी सामर्थ्य नहीं जो उनका उपाय करसके ॥ ५४ ॥ हे नृपभूषण ! उन पुरोंसे असुर सेना-

पतिने ईश्वरसहित त्रिलोकीके विनाश करनेकी इच्छा की और अलक्षित होकर पहिले वैरका स्मरण किया ॥ ५५ ॥ तब सब लोकपाल और प्रजागण मिलकर शिवजीके समीप गये और विनयपूर्वक हाथ जोडकर बोले कि, हे विभो ! हे देव ! हमारी रक्षाकरो, त्रिपुरासुरके पुरमें रहनेवाले दैत्य हम लोगोंका नाश करे डालते हैं ॥ ५६ ॥ तब सर्वसमर्थ शिवजीने लोकपालोंपर दयाकरके उनको धैर्य दिया और कहा डरो मत हम तुमको अभय करे देते हैं, यह कह धनुषपर शर चढाय तीनों पुरपर अस्त्र चलाये ॥ ५७ ॥ तब अग्निके समान महातीक्ष्ण बाण धूर्जटी मंत्र पढ पढकर चलाने लगे, जैसे प्रलयकालके मार्तण्डमण्डलसे कालरूप महाविकराल किरण जाल निकलते हैं, ऐसे उन बाणोंके समूहोंसे आच्छादित होकर त्रिपुरासुरके तीनों पुर छिपगये ॥ ५८ ॥ और उन तीक्ष्ण बाणोंके लगनेसे त्रिपुरके असुर घायल होकर पृथ्वीपर गिरने लगे, जो दैत्य मरे वह मायावी दैत्य उस मृतक दैत्यको उसी समय अपने बनाये हुए सुधाकूपके रसमें डालता गया ॥ ५९ ॥ उस कूपके रस लगनेसे सबके सब एक संग जी उठे, वज्रकेसा अंग, महापराक्रमी, मेघमालाकी समान गर्जनेवाले, काले वर्ण, बिजलीकी सदृश तेज कान्तिवाले मानो अग्निकी लपटेंसी जहाँ तहाँ निकलने लगीं ॥ ६० ॥ इस आश्चर्यमयी कौतुकको देख शिवजी अपने मनमें बहुत उदास हुए, कि आज हमारा संकल्प भंग हुवा, अब क्या उपाय किया जाय? मनही मनमें यह कह भगवान्का ध्यान करने लगे, शिवको दुःखी देख उसीसमय इन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने आनकर सहाय की, और एक अद्भुत उपाय किया ॥ ६१ ॥ ब्रह्माजीको वत्स बनाया, आपने तो अपना गोरूप धारण किया. इधर उधर घूमघाम अवसर पाकर सहजमें त्रिपुरके भीतर घुसगये और अमृतमयकूपका रस पीना आरम्भ किया, यद्यपि असुरोंने इनको अमृत पीताहुवा देखभी लिया परन्तु भगवान्की मनमोहनी मायासे मोहित हो ऐसे बेसुधि हुए कि, किसीने उनको नहीं रोका ॥ ६२ ॥ जब सुधाकूपका सुधा निवृत्त होगया, तब रसकूपके रखनेवाले दैत्य अत्यन्त शोकाकुल हो घबराने लगे, तब धैर्यवान् सज्ञानमय दैत्यने इसको दैवगति जान उन दैत्योंसे कहा ॥ ६३ ॥ कि, क्यों वृथा शोक करतेहो, हे शोकपीडितो ! दैव गतिका स्मरण करो, देवता, असुर, नर, किन्नर, कोई, क्यों न हो अपने आत्माको और दूसरेको दैवकी गतिसे कोई नहीं बचासक्ता जो भाग्यमें लिखा है उसका कोई मिटानेवाला नहीं, परन्तु इससमय शिवजी अपनी शक्तियोंसे अपनी प्रधानताको प्रकट करतेहैं ॥ ६४ ॥ उस समय विष्णु भगवान्ने अपनी, धर्म, ज्ञान, विरक्ति, ऋद्धि, सिद्धि, तप, विद्या और क्रियादिक शक्तियोंसे शिवजीने संग्रामके लिये रथ, सूत, ध्वज, अश्व, धनुष, कवच और शर आदि जो जो संग्रामकी सामग्री चाहिये वह सब मँगाकर फिर महादेवजी कटिबद्ध हुए और धनुषबाण हाथमें लेकर रथपर बैठे ॥ ६५ ॥ हे नरेश ! फिर तो शिवजीने धनुषपर शरसंधान उस बाणसे अभिजित् मुहूर्तमें उन दुर्भेध पुरोंको भस्म कर दिया ॥ ६६ ॥ जब तीनों पुर भस्म होगये तब सुरपुरमें दुंदुभी बाजे बजने लगे, सैकडों विमान आकाशमें आन आन-

कर छागये, देवता, ऋषि, पितर, और सिद्धेश जय जय शब्द पुकार पुकार पुष्पोंकी वर्षा करने लगे. गन्धर्व, किन्नर प्रसन्न हो होकर हरका यश गाने लगे और अप्सरायें अनेक अनेक प्रकारके नृत्य करने लगीं ॥ ६७ ॥ हे महाराज ! त्रिपुरारी इस प्रकार तीनों पुर जलाय ब्रह्मादिकोंकी स्तुति स्वीकारकर अपने आश्रमको चलेगये ॥ ६८ ॥ अपनी माया करके भाँति भाँतिकी लीला करते हैं कभी मनुष्य अवतार धरते हैं, कभी नरसिंहरूप धरकर दुष्टोंको मारते हैं, कभी मनुजदेह धरकर भूमिका भार उतारते हैं, इन विश्वरूप विश्वात्मा भगवान्‌के ऐसे ऐसे चरित्र संसारके पवित्र करनेवाले वीर्य ऋषियोंने गायेहैं ॥ ६९ ॥

दोहा-जो जो बूझो धर्म नृप, सो सो दियो सुनाय ।
कहा सुननकी लालसा, सो मोहिं देहु बताय ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-ग्यारहमें वर्णन करौं, चार वर्णके धर्म ।
फिर कछु नारिनके धरम, वरणों सहित सुकर्म ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! साधु सभामें जिसने प्रशंसा पाई ऐसा चरित्र सुनके महात्माओंमें अग्रणीय भगवत्‌में जिनकी आत्मा वह युधिष्ठिर प्रह्लादचरित्र सुनके अत्यन्त प्रसन्न हो फिर नारदजीसे पूँछने लगे ॥ १ ॥ युधिष्ठिर बोले कि, हे भगवन् ! मनुष्योंके सनातनसे जो धर्म चले आये हैं, उन धर्मोंके सुननेकी मेरी अभिलाषा है. वर्ण व आश्रमके आचारसे यह पुरुष परमेश्वरको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! साक्षात् प्रजापतिके सब पुत्रोंमें आप तप, योग, समाधि, करके बडे प्यारे पुत्र हो ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण आपके समान नारायण परायण हैं और परमगुप्त धर्मको जानते हैं; वह दयालु साधु शान्तरूप तुम्हारी सदृश हैं वैसे और दूसरे नहीं हैं ॥ ४ ॥ श्री नारदजी बोले कि, सब लोकोंके धर्मके लिये भगवान् श्रीमन्नारायणको नमस्कार करके जो श्रीमन्नारायणके मुखसे मैंने सुना है वह सनातन धर्म आपके आगे कहता हूं ॥ ५ ॥ जो आपने आत्माके अंशसे दक्षकी पुत्री मूर्तिसे जन्म लेकर धर्मसे सब लोकोंके कल्याणके लिये तप करनेको बदरिकाश्रममें विराज रहे हैं. याज्ञवल्क्यमें लिखा है "श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्" ॥ १ ॥ और मनुस्मृतिमें यह लिखा है, "वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् । आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव चेति" ॥ अर्थ-हे राजन् ! धर्मका मूल भगवान् हैं सर्वदेवमय हरि हैं सो वेदरूप भगवान् ही सब धर्मोंमें प्रमाण हैं, जैसे धर्मके विषयमें वेदोंका प्रमाण है ऐसे ही वेदविद महात्माओंकी स्मृतियां प्रमाणित हैं जिन हरिके स्मरण करनेसे आत्मा शुद्ध और प्रसन्न हो वही धर्म प्रामाणिक है ॥ ६ ॥ ७ ॥ अब सामान्य धर्म कहते हैं, सत्य बोलना १ दया करना २ एकादशी व्रत शौच करना ३

सहनशीलता ४ योग्यायोग्य यह काम करना यह न करना ५ ज्ञान करना ६ मनको जीतना ७ बाह्य इन्द्रियोंको जीतना ८ हिंसा न करना ९ ब्रह्मचर्य रखना १० दानकरना ११ यथोचित वेद पाठ करना १२ सरलता सबसे सीधा रहना १३ ॥ ८ ॥ संतोष जो दैवसे मिले उसमें संतोष करना १४ बडोंकी अर्थात् महात्मा पुरुषोंकी सेवा करना १५ ग्रामधर्मकी चेष्टा त्यागै १६ धीरे धीरे निष्फल क्रियाओंका न करै १७ वृथा बकवाद न करै १८ परमेश्वरका चिन्तवन करै १९ ॥ ९ ॥ हे पाण्डव, यथायोग्य अन्नादिक प्राणीमात्रको देता रहै २० उन प्राणियोंमें परमात्मा व्यापक है यह विचार अन्न, वस्त्र, घर, हाथी, घोडा, शय्या, गौ, पात्र, पुस्तक, औषधि, अभय, पृथ्वी इत्यादि दान करता रहै ॥ १० ॥ भगवान्‌की नवधा भक्ति करै, श्रवण, भगवान्‌की कथा सुने, कीर्तन, नारायणका यश गावै, स्मरण, हरिकी लीलाओंका ध्यान करै, सेवा, महात्मा पुरुषोंकी सेवाकरै, अर्चा देवताओंका पूजन करै नमस्कार करै, सबको नारायणमय समझकर दण्डवत करै, दास, सबसे दासभाव वर्तै, सख्यता, परमात्माको अपना सखा समझै और स्वात्मसमर्प्पण अपना तन, मन, परमेश्वरके अर्पण करै ॥ ११ ॥ हे राजन् ! सब मनुष्यमात्रका यह तीस लक्षणवाला परम धर्म कहलाता है जिसके करनेसे भगवान् सर्वात्मा सन्तुष्ट होते हैं ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीने कहा है कि, वेदमंत्रोंसे जिसका संस्कार किया जाय उसको द्विज कहते हैं और यह संस्कार वेदकी रीतिसे जिसके होने चाहिये उसीके होते हैं, जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य जो जन्मसे औरसे शुद्ध हैं, इज्या, अध्ययन, दान, यह तीन कर्म द्विजन्माके लिये करनेकी आज्ञा है और उनहीको आश्रम सम्बन्धी क्रिया करनेकी आज्ञा है, उनका आश्रम जिसमें होय वह उन क्रियाओंको करै "श्रुतिश्च गायत्र्यां ब्राह्मणमसृजत् त्रिष्टुभा राजन्यम् ॥ जगत्या वैश्यम् न केन चिच्छूद्रम् तथा च स्मृतिः । "विवाहमात्रं संस्कारं शूद्रोपि लभतां सदा ॥ न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिरिति" ॥ १३ ॥ विद्या पढनी, विद्या पढानी; यज्ञ करना, यज्ञ कराना; दान देना, दान लेना; ये छः कर्म ब्राह्मणके हैं, तीन कर्म पिछले ब्राह्मणोंकी आजीविकाके लिये हैं. विद्या न पढावै, दान न ले, यज्ञ न करावै, कोई प्रतिग्रह न ले, प्रजाकी रक्षा करै, ब्राह्मणसे दण्ड न ले, यह कर्म क्षत्रियके हैं ॥ १४ ॥ खेती करै और व्यापारादिसे अपनी आजीविका करै और सदा ब्राह्मणकुलकी सेवाकरै, यह कर्म वैश्यका है. अपने स्वामीसे कुछ धन लेकर अपना निर्वाह करै यह कर्म शूद्रके हैं ॥ १५ ॥ खेतीसे, वृत्तिसे विनामाँगे प्राप्तहो उस धनसे, प्रतिदिन भिक्षा माँगकर लाना और शिलोंछन अथात् खेत काटनेके समय जो अन्न खेतमें गिरपडे उसको बीन कर लाना, बाजारमें बिखरा पडाहुवा अन्न उठालाना, यह चार वृत्ति ब्राह्मण आपत्तिकालमें करै और इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥ नीच वृत्ति क्षत्रिय आपत्तिकालमें भी न करै, जब कोई महाविपत्ति ही आजाय तो भलेही क्षत्रियादि नीच वृत्तिको करै ॥ १७ ॥ ऋतुसे, अमृतसे, मृतसे, प्रमृतसे, वा सत्यानृतसे अपना निर्वाह करना चाहिये परन्तु श्वानवृत्तिसेवासे आजीविका करनी अच्छी नहीं ॥ १८ ॥ खेतमें अथवा

हाटमें स्वामी जो धन अपनी इच्छासे छोडदे उसका बीनलाना इसका नाम ऋतु है. विना मांगे मिलै उस धनका नाम अमृत है. नित्यप्रति भिक्षा माँगकर लाना उसका नाम मृत है. किसानी आदि वृत्ति करै उसका नाम प्रमृत है ॥ १९ ॥ व्यापारादिकका नाम सत्यानृतहै अपने आपसे नीचवृत्तिकी सेवा करना यह श्वानवृत्ति है, ब्राह्मण और क्षत्रियको इस निन्दनीय श्वानवृत्तिका सदा त्याग करना चाहिये, क्योंकि ब्राह्मण तो सर्ववेदमय है और क्षत्रिय सर्वदेवमय है ॥ २० ॥ शम, दम, तप, शौच, संतोष, शान्ति, कोमलता, ज्ञान, दया, भगवद्भक्ति और सत्य यह ब्राह्मणके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ शौर्य, वीर्य, धीरता, तेज, दान, मनोजय, क्षमा, विप्रभक्ति, प्रसन्नता और रक्षाकरनी यह क्षत्रियके लक्षण हैं ॥ २२ ॥ देवभक्ति, गुरुभक्ति, ईश्वरभक्ति, धर्मवृद्धि, धनवृद्धि, सुखवृद्धि, आस्तिक रहना, नित्य उद्यम करना और निपुणता यह वैश्यके लक्षण हैं ॥ ॥ २३ ॥ अपने आपसे उत्तम वर्णको दण्डवत् करना, पवित्र रहना, निष्कपटभावसे अपने स्वामीकी सेवा करनी, विना मंत्र पढे, वैश्वदेवादि पंचयज्ञ करना, चोरी न करना, सत्य बोलना और गोब्राह्मणकी टहल करनी, यह शूद्रके लक्षण हैं ॥ २४ ॥ अपने पतिकी सेवा करनी, पतिके अनुकूल रहना, देवर जेठकी सेवा करना और उनकी आज्ञा मानना, यह चार धर्म पतिव्रता स्त्रियोंके हैं ॥ २५ ॥ घरके सब पदार्थोंको शुद्ध रखना, अर्थात् लीपना, पोतना, बुहारी देना, आँगनमें चौक पूरना, अपना भी सुन्दर शृंगार बनाये रखना. सब घरकी सामग्री पवित्र रखना. वालकोंको नित्यप्रति स्नान कराके अच्छे अच्छे शृंगार कर वस्त्र आभूषण पहिराना, अच्छीरीतिसे उनका लालन पालन करना, सास श्वशुरकी सेवा करना और उनकी आज्ञा मानना ॥ २६ ॥ साध्वी स्त्री छोटे मोटे ऊँचे नीचे घरके सब काम करै, नम्र रहै, इन्द्रियोंको पराजय करती रहै, प्रिय वचनोंसे समय समय पर प्रेमपूर्वक अपने स्वामीकी सेवा करती रहै ॥ २७ ॥ जो कुछ भाग्यसे प्राप्त होजाय उसीपर सन्तोष रक्खै भोगोंमें लोलुपता न करै, आलस्य न रक्खै, सत्य बोलै, मदान्ध न रहै, पवित्र रहै, मधुर वचन बोलै, अपतित पतिकी सेवा करै, और उससे स्नेह रक्खे ॥ २८ ॥ जो स्त्री पतिको हरिभाव करके लक्ष्मीके समान तत्पर रहै और अपने पतिको परमेश्वर समझकर उसकी सेवा करै, वह स्त्री विष्णु रूप अपने पतिके संग लक्ष्मीकी सदृश विष्णुलोकमें आनन्द सहित अपने पतिके सम्मुख बैठी पतिका मुख ताकती रहती है, कि न जानिये कि किस समय क्या आज्ञा करैं॥ २९॥ अपने कुलकी आजीविकासे अपना निर्वाह करै ॥

चौ०-नट बेडी अरु रजक चमारा। केवट, गौडहु, कोल, कहारा ॥
यह आठो हैं डोम समाना। परसत इन कहँ पाप महाना ॥

हे राजन् ! वहुधा वहुत धर्म ऐसे हैं कि युग युगमें मनुष्योंके स्वभावके समान होते हैं. यह वेद पुरुष भगवान्ने कहा है, पराये धर्मके अनुसार अपना धर्म नीच भी हो तो भी वही धर्म अपने लिये सुखदायक है, जो जो धर्म धर्मशास्त्रके वेत्ताओंने कहा है वही धर्म इस

लोक और परलोकमें सुखका देनेवाला है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्वभाव करी हुई वृत्तिसे जो वर्तमान है वह स्वकर्मकर्ता स्वभावजन्य कर्मको त्याग धीरे धीरे निर्गुणताको प्राप्त हो जाता है ॥ ३२ ॥ वारम्वार जिस खेतमें बीज बोया जाता है, वह खेत आपसे आप निर्वीर्य होजाता है, फिर उस खेतमें धान्य उत्पन्न नहीं होसक्ता, वरन् जो बीज बोया जाता है वह भी सब नष्ट होजाता है ॥ ३३ ॥ हे राजन्! जब कामनाओंसे मन परिपूर्ण होकर तृप्त होजाता है, तब उसको किसी प्रकारके भोग भोगनेकी इच्छा नहीं रहती; फिर आपसे आप वैराग्य उत्पन्न होजाता है, जिस प्राणीकी कामना अधिक बढी हुई होती है फिर उससे एकाएकी वासनाओंका त्याग नहीं होसक्ता, इससे उस पुरुषको चाहिये कि वेदोक्त-रीतिसे विषयोंको भोगें परन्तु नित्यनैमित्तिक कर्मोंको दिन दिन बढाता रहै. देखो! कर्म करते करते विषयोंमें दोष देखनेसे राजा ययाति और सौभरि ऋषिको धीरे धीरे आपसे आप वैराग्य होगया, जैसे अग्निमें थोडा थोडा घृत डालनेसे शान्त नहीं होता वरन् उसकी लपटें और अधिक निकलती हैं, ऐसेही इस चित्तकी वृत्ति है थोडा थोडा विषयोंके भोगनेसे शान्त नहीं होता अधिक विषयोंके भोगनेसे आपसे आप शान्त होजाताहै ॥ ३४ ॥ जिस पुरुषके वर्णका जो लक्षण कहा है, वह लक्षण उसके सिवाय और दूसरे पुरुषमें दिखाई दे तो उस पुरुषकोभी उसी वर्णका जानना चाहिये ॥

दोहा-जौन वृत्ति जेहि होत है, ता अनुगति तेहि नाम।
लेत नाम सब कर्मका, जाति न आवत काम॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

दोहा-वर्ण धर्म सब कह चुको, अब कछु आश्रम धर्म।
कहत अहों सुनि लीजिये, धर्म कर्मको मर्म॥१॥

नारदजी बोले कि, ब्रह्मचारी गुरुके कुलमें जितेन्द्रिय बनकर वास करै और गुरुका हित आचरण करता रहै, दासकी नाईं नीच बना रहै, गुरुमें अत्यन्त दृढतासे सौहृद करै ॥ ॥ १ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल गुरु, अग्नि, सूर्य, और सब देवताओंकी उपासना करै, साँझ सवेरे वाणीको जीत सावधानीके साथ गायत्री मन्त्रका जप करै ॥ २ ॥ जब गुरु पढनेको बुलावै तब वेद पढै और पाठके प्रारम्भमें और अन्तमें जब उठै तब गुरुके चरणार-विन्दकी शिरसे वन्दना करै ॥ ३ ॥ शास्त्रकी आज्ञानुसार मेखला, मृगछाला, जटा, वस्त्र, दण्ड और कमण्डलु धारण करै, कुशा हाथमें ले और यज्ञोपवीत धारण करै ॥ ४ ॥ सायं-काल और प्रातःकाल जो भिक्षा माँगकर लावै वह सब पदार्थ गुरुकी भेंट करै, और जो गुरु आज्ञा करै तो उस भिक्षाके अन्नको भोजन करै, गुरु आज्ञा न करै तो उपवास करै ॥ ५ ॥ शील स्वभाव रक्खै, थोडा भोजन करै, और जो सावधान रहै, श्रद्धा रक्खै जितेंद्रिय रहै, स्त्रियोंमें और स्त्रीसंग करनेवाले पुरुषोंमें जितना प्रयोजन होय उतनाही रक्खै अधिक व्योहार न रक्खै ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके मुखसे कथा न सुनै,

ब्रह्मचर्य व्रत धारण करें, भारी व्रत धारें, यह इन्द्रियें बडी बलात्कार हैं, बडे बडे यतियोंको जीत लेती हैं ॥ ७ ॥ बाल बहुत मल मल कर न धोबै, उबटन अंगमें न लगावै, बहुत मल मलकर स्नान न करें, नेत्रोंमें अञ्जनादिक न लगावै, जो गुरुकी स्त्री तरुण होय तो उससे बात न करै ॥ ८ ॥ यह निश्चय है कि स्त्री अग्निरूप है और पुरुष घृतके कुंभके समान है. इससे एकान्तमें अपनी पुत्रीके साथभी नहीं बैठे, केवल प्रयोजन मात्र बात करै ॥ ९ ॥ अपने आत्माका जबतक आभास कल्पना न करै तबतक भगवान् इसका द्वैतभाव और मिथ्याभाव दूर नहीं करसक्ते, और जबतक द्वैतभाव दूर न होय तबतक विषयवासनाकी ओर मन चलायमान होजाय तो सन्देह नहीं, इसलिये महात्मा पुरुषोंका वचन है कि जहाँतक होसके वहाँतक स्त्रियोंसे अलगही रहना अच्छा है ॥ १० ॥

यह धर्म ब्रह्मचारियोंके कहे परन्तु गृहस्थियोंको भी मानना चाहिये गृहस्थी ऋतुकालमें स्त्रीसंग करें, परन्तु गुरुकी वृत्ति विकल्प करके करै ॥ ११ ॥ आँखोंमें अंजन, शिर धोना, तेल लगाना, मर्दन करना, स्त्रीको वा स्त्रीके चित्रको भूलकर न देखना, मद्य, मांस, हार, चन्दन, लेप, अलंकार, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी लोगोंको नहीं चाहिये ॥ १२ ॥ द्विज गुरुके यहां रहकर इस प्रकार वेदत्रयी सांगोपनिषद् अपनी शक्तिके अनुसार जितना प्रयोजन होय उतना अभ्यास बढावै ॥ १३ ॥ जो अधिक समर्थ होय तो गुरुको गुरुदक्षिणा देकर फिर गुरुसे आज्ञा लेकर इच्छानुसार घरमें रहे अथवा वनमें वा संन्यास लेकर वा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करके वा गुरुकेही स्थानपर वास करै ॥ १४ ॥ अग्नि, गुरु, आत्मा, सब जीवमात्रमें विष्णुभगवान्का चिन्तवन करै, अर्थात् अग्नि आदि सब भगवान्रूप होनेसे फिर किसी वस्तुमें दोष नहीं आता ॥ १५ ॥ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी अथवा गृहस्थी इसप्रकार विचरनेसे विज्ञानपनमें होकर तब परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ अब मुनियोंकी सम्मत वानप्रस्थके धर्म कहते हैं, इस संसारमें जिस वानप्रस्थधर्ममें स्थित होनेसे ऋषि लोगोंको विना प्रयास प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ जोतने बोनेसे जो अन्न उत्पन्न हो उस अन्नको न खाना और जो विना समयका फल अथवा अन्न हो उसका खाना भी वर्जित है, जो फल वा अन्न आपसे उत्पन्न हो अथवा सूर्यकी किरणोंके तेजसे पके उसको खाय ॥ १८ ॥ वनमें उत्पन्न हुये नीवार आदि पदार्थोंसे शास्त्रने जिस समयमें यज्ञादिक करनेको कहाहै उस समयमें चरु व पुरोडाश कालप्रेरित त्याग करै और नवीन नवीन अन्नादिक प्राप्त हों तो पुरानी वस्तुका परित्याग करदे ॥ १९ ॥ अग्निकी रक्षाके लिये पर्णशालामें रहे, वा पर्वतकी कन्दरामें वास करै हिम, वायु, अग्नि, वर्षा और ग्रीष्म यह सब आप सहै ॥ २० ॥ बाल, रोम, नख, दाढी, मूंछ, जटा, कमंडलु, मृगचर्म, दण्ड, छालके वस्त्र. अग्नि और अग्निहोत्रकी सामग्री यह सब रक्खै ॥ २१ ॥ इसप्रकार वनमें बारह वा आठ वा चार वा दो अथवा एक वर्षतक रहै, तपके कष्टसे बुद्धिका विनाश न होजाय तबतक वह पक्ष धारण करै जिसमें ज्ञान शीघ्र होजाय ॥ २२ ॥ जब शरीर वृद्ध होजाय और व्याधिके आजानेसे क्रिया कर्मकी सामर्थ्य न रहै, और वेद विद्यामेंभी असमर्थ हो

जाय तब अनशनादि वृत्ति धारण करै ॥ २३ ॥ फिर अहंकार ममकारको त्यागकर आत्मामें अग्निको धारणकर उनके कारणोंमें रक्खे, जैसे जैसे उनके योग्य स्थान हैं तहाँ तहाँ अग्निको लगावे ॥ २४ ॥ उत्पत्तिके अनुसार शरीरके छिद्रोंको आकाशमें, श्वासको वायुमें, गर्मीको तेजमें, रुधिर, श्लेष्मा, थूक, पीबादिको जलमें, अस्थि आदि जो विकार पृथ्वीसे उत्पन्न हुये हैं, उनको पृथ्वीमें लीन करै ॥ २५ ॥ वाणी और उसके कर्मकारक वक्तृता सहितका अग्निमें लय करै, कर और शिल्पता सहित उसके कर्मरूपका इनमें, गति सहित पद और उसके कर्मरूपका विष्णुमें, रति उपस्थ और उसके कर्मरूपका प्रजापतिमें लय करै ॥ २६ ॥ गुह्यद्वार और उसके कर्मरूप मलोत्सर्गको मृत्युमें, नाद सहित श्रोत्र, इन्द्रिय, दिशाओंमें, स्पर्श सहित त्वचाको वायुमें लीन करै ॥ २७ ॥ चक्षु सहित रूपको ज्योतिमें. प्रचेता सहित जिह्वाको जलमें, नाक और अश्विनी कुमारोंको पृथ्वीमें लीन करै ॥ २८ ॥ मनोरथ सहित मनको चन्द्रमामें, ज्ञानसे बुद्धिको ब्रह्मामें, अहंकार और उसके कर्मोंको जिनसे अहंकार ममतापूर्वक क्रिया होती है उनको रुद्रमें अध्यात्मज्ञानसहित क्षेत्रज्ञ गुणोंसे वैकारिक देवताओंको परब्रह्ममें लीन करै ॥ २९ ॥ पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्वमें, महत्तत्त्वको मायामें, मायाको परब्रह्ममें लीन करै ॥ ३० ॥ इस प्रकार अक्षरता करके आत्माका जो चिन्मात्र शेषरहै उसको अद्वितीय ब्रह्म समझकर विराम करै, जैसे सब काष्ठको जला कर अग्नि अपने स्वरूपमें लय होजाती है, वैसेही अग्निके समान अपने आप विरामको प्राप्त होना चाहिये, क्योंकि अग्नि साक्षात ईश्वरका स्वरूपहै ऐसा ऋग्वेदमें लिखा है "अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्न धातमम्" अंगानि नयतीत्यग्निः ॥ अग्निही सब अंगोंको बनाती है, सब अग्निमय हैं, अग्निके उपासक सब सुखोंको भोगते हैं, "अग्न्युपासकः सर्वं सुखमेति" अग्निमें हवन करनेसे सब देवताओंको भाग पहुँचताहै ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा-वानप्रस्थ असमर्थकी, देहत्याग विधि भाष ।
अब समरथकी विधि कहौं, सुनहु सहित अभिलाष ॥

नारदजी बोले कि, जो पुरुष ब्रह्मविचारमें प्रवृत्त हो, उसको चाहिये कि संन्यास धारण करके शरीरमात्र शेष रक्खै और सब वस्तुका त्याग करदे और किसी प्रकारकी अपेक्षा न रक्खै, पृथ्वीपर विचरता रहाकरै और नगरमें वा वस्तीमें एक रात्रिसे अधिक वास नहीं करै ॥ १ ॥ जो संन्यासीको वस्त्र धारण करनेकी इच्छा हो तो उतना वस्त्र धारण करै कि जिससे कोपीन देखनेमें न आवै और जटी, कमण्डलु, दण्डादिक चिह्नको आपदामेंभी न त्यागै, इनके सिवाय और कुछ वस्तु रखनी नहीं चाहिये ॥ २ ॥ जब भिक्षाकी इच्छा हो तो अकेला भिक्षा माँगै, अपने आत्मामें आप रमैं, किसीका आश्रय न रक्खे. सब जीवमात्रसे सुहृद् भाव वर्ते, शान्त स्वभाव रहै, श्रीनारायणमें परायणरहै ॥ ३ ॥ परपुरुष

परमेश्वरमें इस विश्वको और अपने आत्माको देखै और कार्य कारणमय सब विश्व परब्रह्ममें विराजमान है इसप्रकार विचार करता रहै ॥४॥सुषुप्ति अवस्थामें तमोगुणका कारण आत्मस्वरूप ढका रहताहै,जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें विक्षेप होनेके कारण उसका प्रकाश नहीं होता,परन्तु यह बात है कि जब अवस्थाओंकी सन्धि होतीहै तब तमोगुणका विक्षेप नहीं होता,ऐसे समयमें आत्मस्वरूपका लक्षण करके आत्माका अवलोकन करना॥५॥इस शरीरका नाश जो कि अवश्य होनेवाला है उसके मृत्युकी चाहना न करै,ऐसे ही जो सदा जीवित न रहैगा उसके जीनेकी आशा न करै, जो सब प्राणीमात्रका नाशक पालक काल है,उसकी प्रतीक्षा करता रहै ॥ ६ ॥ यह संन्यासियोंका धर्म है, असत् शास्त्र अर्थात् अनात्मक प्रतिपादक नाटकादि शास्त्रसे आसक्त न हो किसी आजीविकाके ग्रन्थका पक्षपात न करै, जैसे ज्योतिष, वैद्यक, इन्द्रजालादिक ग्रन्थ हैं, तर्क और अयोग्य वादविवादका परित्याग करै, किसी पक्षका आश्रय न ले ॥ ७ ॥ बहुतसे चेले न करै; बहुतसे ग्रंथोंका अभ्यास न करै, सभा जोडकर किसी ग्रन्थकी व्याख्या न करै, अपने रहनेके लिये किसी स्थानके बनानेका आरम्भ न करै ॥ ८ ॥ जबतक चित्तमें ज्ञान उत्पन्न न हो तब तक संन्यासीको चाहिये कि, संन्यस्तके चिह्न धारण न करै, और आत्माकी शुद्धिके लिये संयम नियम करके ज्ञान प्राप्त करै, परंतु ज्ञान होनेके उपरान्त उन नियमोंके करनेका कुछ प्रयोजन नहीं, और संयमभी आपसे आप प्राप्त हो जाते हैं. इसलिये उस समयके शांतचित्ती संन्यास धर्मके चिह्न धारण करै चाहै न करै चिह्नोंके रखनेसे किसी प्रकारका धर्म नहीं होता और न रखनेमें कुछ हानि नहीं,उनको चिह्नोंका रखना और न रखना दोनों इकसार है ॥ ९ ॥ ऊपरके चिह्न रखनेसे कुछ प्रयोजन नहीं निकलता भीतरसे अन्तःकरणका शुद्ध रखना अवश्य चाहिये कि,विद्वान् होनेपर भी उन्मत्त और बालकोंकेसी वृत्ति न रक्खै, और कवि होनेपरभी मूकके समान बनारहै, अपनी बुद्धिको सावधान रक्खै और समदृष्टिसे सबको देखै ॥ १० ॥ परमहंस धर्मका एक इतिहास लिखते हैं प्रह्लाद और अजगर वृत्तिवाले एक मुनि (दत्तात्रेय) का एक सम्वादरूप प्राचीन एक इतिहास कहते हैं ॥ ११ ॥ जब बहुत दिन राज्य करते करते व्यतीत होगये तब प्रह्लादजी एक दिन लोकोंकी रीति भाँति देखनेके लिये कुछ एक अमात्य गणोंको साथ लेकर देशान्तरोंका पर्यटन करनेके लिये निकले ॥ १२ ॥ घूमते घामते दक्षिण दिशामें कावेरी नदीके निकट प्रहुँचे, देखा तो पृथ्वीपर सोयेहुए और शरीरके सब अवयव धूरिसे अटरहे थे और उनका निर्मल तेज छिपा हुवा था, यह महायोगी न जान पडे ॥ १३ ॥ कर्मसे, आकृतिसे, वाणीसे, चिह्नोंसे, वर्णाश्रमके चिह्नोंसे किसीने पहिचाना नहीं कि, यह दत्तात्रेय हैं ॥ १४ ॥ उस योगिराजको नमस्कार करके विधिवत्पूजन कर पश्चात् चरणोंपर शिर धरकर जाननेके लिये महाभागवत असुरबंशावतंस प्रह्लादजीने पूछा ॥ १५ ॥ प्रह्लाद बोले कि, जो उद्यम करनेवाले भोगी हैं उनके सदृश आपका शरीर पुष्ट है क्योंकि उद्यम करनेवालोंको धन प्राप्त होताहै और धनवालोंको सुख भोग प्राप्त होताहै भोगियोंका शरीर

पुष्ट होताहै, परन्तु विना सुखभोगके शरीर ऐसा पुष्ट नहीं हो सक्ता ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप तो निरुद्यमी हो, सदा शयन करते रहते हो और विना उद्यम किये धन कहाँ ? और धन विना भोग करनेकी कोई सम्भावना नहीं और विना धन शरीरका पुष्ट होना कठिन है । इसलिये मैं आपसे विनयपूर्वक निवेदन करता हूं, कि, अभोगी यह आपका शरीर किसी प्रकार पुष्ट है । सो हे विप्रवर ! जो यह वात कहनेके योग्य हो तो कृपा करके कहिये, और न कहनेके योग्य हो तो मेरा अपराध क्षमा कीजे ॥ १७ ॥ धन उपार्जन करनेके लिये असमर्थ लोगभी अनेक उद्यम करते हैं; और आप समर्थ होने-परभी कोई उद्यम नहीं करते, यह क्या कारण ? आप तो कवि, समर्थ, चतुर, विद्वान्, निपुण दृष्टिवाले, वार्त्तालापसे लोगोंका चित्त प्रसन्न करनेवाले, इतने परभी सोते रहते हो और लोग अपने अपने काम करते हैं उनको देखते रहते हो और किसीकी देखादेखीभी कोई काम नहीं करते न किसीकी भलाई करनी न किसीकी बुराई करनी, आप तो कोई योगी जन जान पडते हो ? ॥ १८ ॥ नारदजी बोले कि, दैत्यपति प्रह्लादने जब इस भाँतिका प्रश्न किया तव उसकी अमृतरूप वाणीसे वशीभूतहो योगिराज हँसकर बोले ॥ ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयजी बोले कि हे असुरश्रेष्ठ ! जो वडोंकी सम्मति है वह सब तुम जानते हो और ज्ञानियोंमें आप प्रशंसनीय हैं, प्रवृत्ति और निवृत्तिमें पुरुषोंको कैसा फल प्राप्त होताहै, उसको तुम अन्तर्दृष्टिसे भली भाँति जानते हो ॥ २० ॥ जिसके हृदयमें नारायण देव भगवान् सदा वास करते हैं उसके हृदयसे सम्पूर्ण अज्ञानका नाश हो जाता है जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकारका नाश हो जाता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जो जो प्रश्न आपने हमसे किये उन उन प्रश्नोंका उत्तर हम आपको देंगे, क्योंकि आत्माकी शुद्धि करनेवालोंसे आप प्रशंसनीय हैं, आपका अवश्य सत्कार करना चाहिये ॥ २२ ॥ इस संसारमें भ्रमानेवाली और जन्म मरणके प्रवाह चलानेवाली तृष्णा है, जो योग्य कर्म हैं उनको भी पूरा नहीं करने देती और विषय कर्म करा कराकर मुझको अनेक योनियोंमें तृष्णाही घुमाती है ॥

दोहा-स्वर्ग नरक अपवर्गका, दाता मनुज शरीर।
करैं कर्म तस फल लहैं, यहि तनुते मतिधीर ॥

अपने कर्मोंसे भ्रमता हुवा यदृच्छासे इस लोकमें जन्म लेता है यह लोक स्वर्ग अपवर्गका द्वार है कभी पशु बना, कभी पक्षी बना, इसी तृष्णा करके अव दैवगतिसे इस मनुष्य योनिमें डाला गया हूं मनुष्य देहके पुण्यसे स्वर्गका, और पापसे नीच योनिका, पाप पुण्यके मिश्रितहोनेके पीछे मनुष्य देहका और निवृत्तिसे मोक्षका द्वार है ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ इस संसारमें मनुष्यजन्म पाकर सुख पानेको और दुःख मिटानेके लिये अनेक प्रकारके कर्म लोग लुगाई किया करते हैं, परन्तु उनकी इच्छानुसार फल उनको नहीं मिलता, उनकी इच्छाके प्रतिकूल फल मिलता है, इस तृष्णाका कौतुक देखकर मैं सब कर्म करनेसे निवृत्त होकर यहां एकान्तमें आ बैठाहूं ॥ २५ ॥ इस मनुष्यके आत्माके

अनुलन सुख जब होय कि चेष्टाओंको यह देह त्याग दे और मन स्पर्शजन्यभोगोंको देखकर चुप चाप होरहे, यह सुख इस जीवका स्वरूप है और जब उसकी सब क्रिया बन्द हो जाती हैं, तब वह आपसे आप प्रकाशता है, अनेक प्रकार भोगोंको और मनकी कल्पनाओंको अवास्तविक समझकर सब उद्यमोंको छोड बैठाहूं, और जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाताहै उसीमें सन्तोष कर लेताहूं ॥ २६ ॥ अपना सुखरूप पुरुषार्थ अपने आपहीमें है सो यह पुरुष भूलकर चित्र विचित्र असत् द्वैत पदार्थ अवास्तविक होनेपरभी घोर ससारके प्रवाहमें भटकता फिरताहूं ॥ २७ ॥ जैसे कोई प्राणी जलकी कामना करके कोई आदिसे छिपे हुये जलको छोडकर मृगतृष्णाको दौडताहै, ऐसे अपने स्वरूपमें परमेश्वरको छोडकर विषयोंकी ओर दौडताहै और परमात्माको नहीं भजता ॥ २८ ॥ परमेश्वरके आधीन देहादिक हैं इनसे आत्माके सुखकी इच्छा करनेवाला मूर्ख है, दुःखका नाश समझकर निष्फल क्रियाओंको करता रहै है परमेश्वरका भजन करता नहीं, इसीसे सदा दुःख पाता है, इसलिये ईश्वरको भजो और सबका त्याग करो यही हमारी आज्ञा है, षड्विधि शरणागति करै, परमहंस वृत्ति धारै, क्रोध, लोभ, मोह, निन्दा, छल, कपट, तृष्णा, निर्लज्जता, दुष्टता और क्लेश जो इनका त्याग करैगा वह निःसन्देह वैकुण्ठधामको जायगा ॥ २९ ॥ यह निश्चय जानो कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंसे जो कभी मुक्त नहीं हुवा है और जिसके शिरपर सदा काल घूम रहा है, ऐसा पुरुष अत्यन्त कठिनतासे भी द्रव्य अथवा सुख प्राप्तभी कर लेवे फिर उससे उसको क्या ? ॥ ३० ॥ लोभी अजितेन्द्रिय, धनी मनुष्योंको नित्य क्लेश और चिन्ताहीमें पडा देखता है, और इतने भयभीत रहते हैं कि, मारे भयके रातको नींदतक नहीं आती, और सब ओरसे शंका बनी रहै है ॥ ३१ ॥ राजासे, चोरोंसे, शत्रुओंसे, स्वजनोंसे, पशु पक्षियोंसे, भिखारियोंसे, कालसे और निजसेभी नित्य प्राणोंसे अधिक धनका भय बना रहता है ॥ ३२ ॥ शोक, मोह, भय, क्रोध, राग, दीनता और परिश्रमादिक सब धनके मूल हैं, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि, प्राण और धनकी चाहना न करे ॥ ३३ ॥ इस जगत्में दो हमारे परमगुरु हैं. मधुकी माखी और अजगर, जिनकी शिक्षा पाकर हम वैराग्य और परितोषको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३४ ॥ मधुमक्षिकासे तो मैंने सब कामसे विराग होना सीखा है, सहतकी नाईं महाकष्टसे धनवान् लोग धन इकट्ठा करते हैं, और चोर बटमार उनको मारकर उनका धन लूटकर ले जातेहैं, जैसे मुहालकी मक्खियोंको मारकर वधिक लोग सहत लेजातेहैं ॥ ३५ ॥ सन्तोषमें मेरा गुरु अजगर सर्प है, विना उद्यम किये भाग्यसे जो कुछ प्राप्त होजाता है उसीमें सन्तोष करलेताहूं, कोई समय ऐसाभी होजाता है कि महीनोंतक कुछ नहीं मिलता, उस समय किसी प्रकारका उद्योगभी नहीं करता, अजगरकी तुल्य धैर्य धारण किये विना खाये पिये पृथ्वीपर पडा लोटता रहताहूं न किसी बातकी चिन्ता की, न किसी बातका हर्ष किया ॥ ३६ ॥ कभी थोडा, कभी बहुत, कभी स्वाद, कभी बेस्वाद, कभी बहुगुण युक्त, कभी गुणहीन, जो कुछ भोजन मिल जाता है वही खा पीकर अपना उदर पूर्ण

करलेताहूं ॥ ३७ ॥ कहीं कोई श्रद्धासे भोजन करादेता है तो कर लेताहूं, अश्रद्धासे करादेता है तो करलेताहूं, कभी दिनमें कुछ फल अन्नादि मिलजाता है, कभी रातको मिल जाता है, जिस समय मिलगया उसी समय खाकर अपना चित्त प्रसन्न करलेना ॥ ३८ ॥ रेशमका वस्त्र वा सूतका वस्त्र, मृगचर्म वा चीर, वल्कल अथवा भोजपत्र, जैसा मुझको प्रारब्धसे मिलजाता है उसीको संतोष करके पहन लेताहूं ॥ ३९ ॥ कभी धरणीपर सो रहताहूं कभी घासपर, कभी पत्तोंपर, कभी पाषाणकी शिलापर सो रहता हूं, कभी राखमेंही लोटता रहता हूं, और कभी कोई आदर सत्कार करके अपने घर लेजाता है उसकी प्रसन्नताके लिये ऊँचे ऊँचे अटा अटारियोंमें सुन्दर सुन्दर शय्याओंपर सो रहताहूं॥४०॥हे राजन्! कभी न्हाताहूं कभी शरीरपर मट्टी लगा लेताहूं, कभी सुन्दर सुन्दर वस्त्र धारण कर लेताहूं, कभी माला और कण्ठी समेत भाँति भाँतिके गहने पहन लेताहूं, कभी रथपर कभी घोडेपर कभी हाथीपर चढजाताहूं और कभी दिगम्बर होकर ग्रहकी नाईं घूमता फिरताहूं ॥ ४१ ॥ न तो मैं किसीका निन्दक और न किसीकी स्तुति करनेवाला; यह जीव स्वभावसे विषम वर्त्ते है, परन्तु सब जगत्का कल्याण और भगवत्में लय होना चाहताहूं ॥ ४२ ॥ जाति भेदको मनकी वृत्तियोंमें, मनकी वृत्तियोंको पदार्थ रूप चंचल मनमें होमैं, मनको अहंकारमें होमैं और अहंकारको महत्तत्व द्वारा मायामें होमैं ॥ ४३ ॥ सत्य द्रष्टा मुनि आत्माके अनुभवको मायामें होमैं, तब निश्चेष्ट होकर मुनि अपने अनुभवमें स्थित होकर विचरै ॥ ॥ ४४ ॥ मेरा जो गुप्त सिद्धांत था सो सब तुम्हारे सामने वर्णन किया कि, तुम भगवान्के भक्त हो और मूर्ख लोग तो इन बातोंको शास्त्रके विरुद्ध समझते हैं ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले कि, श्रीप्रह्लादजी इस प्रकार दत्तात्रेयजीके मुखसे परमहंस धर्म सुनिके अत्यन्त प्रसन्न हुये और दत्तात्रेयजीका पूजन कर मस्तक नवाय, आज्ञा ले अपने घरको चलने लगे, तब दत्तात्रेयजीने यह कवित्त पढा कि, इस प्रकार संसारका त्याग करना ॥

कवित्त-जैसे फल झरेको विहंग छाँडि देत रूख, भुवा देख सुवा छोडे सेमरकी डारको ॥ सुमन सुगन्ध विन जैसे अलि छाँडि देत, मोती नर छाँडि देत विना आवदारको ॥ जैसे सूखेतालको कुरंग छाँडि देत पंथ, मन फाटे छाँडिदेत मानसहू यारको॥ जैसे चक्रवाक देश छाँडिदेत पावसमें, ऐसे ज्ञानी छाँडिदेत झूठ या संसारको ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

दोहा-चौदहमें गृह धर्म सब, सुखदायक आचार ।
भिन्न भिन्न वर्णन करों, सज्जन लेहिं विचार ॥ १ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि, हे देवऋषि ! मुझसरीखा गृहस्थ मूढबुद्धिवाला पुरुष, संन्यास धर्मकी पदवी विनाप्रयास जिस विधिसे मोक्षको प्राप्त हों सो कहो ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि, हे राजन् ! गृहस्थी मनुष्यको चाहिये कि, घरमें बैठा हुवा जो कुछ वेदविहित कर्म है

उनको करता रहै, परन्तु उन कर्मोंको भगवान् वासुदेवके अर्पण करता रहै, और साक्षात् महामुनियोंकी उपासना करै ॥ २ ॥ भगवान्के अवतार सम्बन्धी कथामृतको वारम्वार श्रद्धा सहित सुनै, और नित्यप्रति महाशान्त महात्माजनोंका सत्संग करै ॥ ३ ॥ स्त्री और पुत्र आदि जिनसे एक दिन विछोहा होनेवाला है उनकी संगति धीरे धीरे छोडै, जैसे स्वप्नसे जगाहुवा पुरुष स्वप्नमें अपने सुहृद पुत्रादिकोंसे अधिक स्नेह और लालन पालन करता है और जागनेपर सवको छोड देता है, इसी प्रकार अपने आप उनसे रीति प्रीति और सव सम्वन्ध त्यागदे ॥ ४ ॥ ज्ञानी लोगोंको चाहिये कि देह गेहमें उतना प्रयोजन रक्खै कि, जितनेमें कार्य सिद्ध हो अधिक न रखना चाहिये, चित्तमें वैराग्य धारण करले, ऊपरके मनसे गृहस्थी पुरुषोंके समान पुरुषार्थ करता रहै ॥ ५ ॥ जातिके लोग, माता, पिता, पुत्र, भ्राता और मित्र जो कुछ कहैं अथवा जो कुछ उनकी इच्छा हो वह काम करै परन्तु ममता और मोहको त्यागदे ॥ ६ ॥ स्वर्गका, पृथ्वीका, आकाशका, जो भगवत्का दिया हुवा धन है, उसको यह समझै कि, भगवान्ने मुझको सव कुछ दिया है आनन्दसे उसे भोगै. परन्तु बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि, भगवान्में दिन रात मन लगाये रहै ॥ ७ ॥ जितनेमें उदर पूर्णहो उतना धन तो प्राणी अपना समझै और उससे अधिक जो धन हो, उस धनका अभिमान न करै और जो उसको अपना समझेगा वह चोरके समान दण्ड देनेके योग्य है ॥ ८ ॥ मृग, ऊंट, गर्दभ, बन्दर, मूसा, साँप, विच्छू, पशु, पक्षी और मक्खी इनमें और अपने पुत्रमें कुछ भेद न समझै ॥ ९ ॥ गृहस्थी पुरुषको चाहिये कि, अर्थ, धर्म, काममें सदा लगा रहै. जैसा देश काल हो और जो कुछ प्रारब्धसे मिलजाय उसीमें अपना निर्वाह करै ॥ १० ॥ कुत्ते, विल्ली और श्वपच इत्यादि पर्यन्त सव जीवमात्रकोभी अपनेमेंसे यथायोग्य अन्नादि देता रहै. जो कि मुख्य अपनी पत्नी है और अपनी सेवा करनेके लिये है. जिसमें लोगोंका (यह स्त्री हमारी है. इसके स्वामी हम हैं) ऐसा उस अपनी प्यारी नारीकोभी धर्मशास्त्रकी आज्ञानुसार साधु सेवामें लगादें ॥ ११ ॥ जिस स्त्रीके लिये अपने प्राणभी तज देते हैं. और अपने पिता और गुरुकोभी मारडालते हैं, कुलकी लाज तज देते हैं, उस स्त्रीसे अपना स्नेह और ममताको जिसने छोड दिया, ऐसे अजित पुरुषोंको भगवान्का वश करना क्या बडी बात है ? ॥ १२ ॥ कहाँ तो तुच्छ यह शरीर, जिसके अन्तकालमें विष्ठा राख और कीडे होजाते हैं और कहाँ वह स्त्री, शरीरके सुखके लिये जिससे रीति प्रीति करते हैं, और कहाँ वह आदिपुरुष अविनाशी सर्वव्यापक परमात्माका स्वरूप ! इसलिये सबसे अनुराग त्याग भगवान्में मन लगावै ॥ १३ ॥ जो कुछ अन्न फलादि भाग्यसे मिलजाँय उससे पञ्चमहायज्ञ करै, जो कुछ उसमेंसे बचै उससे अपना उदरपूर्ण करै और उदरपूर्णसे जो कुछ अवशेष रहै वह साधु सन्तोंको बांटदे, संग्रह करना अच्छा नहीं।

दोहा-अधिक भोज्यको देत हैं, चकोर सज्जन त्याग।
जो चकोर संग्रह करैं, परमें लागै आग ॥ १४ ॥

अपनी वृत्तिसे जो धन प्राप्त होय उस धनसे देवता, ऋषि, भूत, पितर और बहुतसे जीवोंका आदर सत्कार करै और अपनाभी पालन करै, इस भाँति पूजा सत्कार करनेसे अन्तर्यामी परमात्माकाही पूजन होता है ॥ १५ ॥ जो आत्माके अविकाराधक हैं, वह सब यज्ञ सम्पदा होते हैं, वैतानिक विधि करके अग्निहोत्रादिसे यजन करे ॥ १६ ॥ यज्ञ पुरुष भगवान् सर्वयज्ञोंके भोक्ता हैं, सो अग्निमुखसे भोगते हैं. परन्तु हे राजन् ! ब्राह्मणके मुखद्वारा हवन करनेसे अर्थात् ब्राह्मणोंको अच्छे अच्छे मिष्टान्न, लुचई, मोहनभोग, लड्डू अमृती, पेडे, वैकुण्ठी आदि भोजन करानेसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं, ऐसा घृतादिक पदार्थोंका अग्निमें हवन करनेसे कभी प्रसन्न नहीं होते ॥ १७ ॥ इससे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण देवता हैं इनका यथायोग्य पूजन करै, यही सब कामनाओंके सिद्ध करनेवाले हैं, यही परमपूजनीय हैं, यहाँ सर्वजीव मात्रके क्षेत्रोंके जाननेवाले हैं, इनहीको अन्तर्यामी जान दान सन्मान देना चाहिये, क्योंकि अन्तर्यामी भगवान्का मुख्य मुख ब्राह्मणही हैं ॥ १८ ॥ द्विज वर्णोंको चाहिये कि भादोंमासकी पूर्णमासीसे लेकर कुआरकी अमावास्या-तक माता पिताका कुटुम्ब सहित श्राद्ध करै और जिस जिस तिथिमें जिन जिनका देहान्त हुआ हो, उनहीं उन तिथियोंमें उनका श्राद्ध करै और जिसके मरनेकी तिथि स्मरण न हो उसका श्राद्ध अमावास्याके दिन करदे ॥ १९ ॥ दक्षिणायन अर्थात् कर्कके सूर्यमें, उत्तरायण अर्थात् मकरके सूर्यमें विषुवत् अर्थात् मेष और तुलाके सूर्यमें व्यतीपातमें, क्षय तिथिमें, सूर्य ग्रहणमें, चन्द्र ग्रहणमें,श्रवण द्वादशीमें ॥ २० ॥ वैशाख शुक्ल तृतीया अर्थात् अक्षय तीजमें, कार्तिक शुक्ला नवमी अर्थात् आमला नवमीमें, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें, चार अष्टका नाम तिथिमें ॥

दोहा-श्रवण द्वादश भाद्रसित, अक्षय तृतियासोय।
नवमी कार्तिक मासकी, चार अष्टका होय ॥ २१ ॥

माघ शुक्ल सप्तमीमें, मघायुक्त अमावास्यामें, माघ शुक्ल पूर्णमासीमें और दूसरे महीनों-की अपने अपने नक्षत्रोंवाली राका और अनुमति नाम पूर्णमासियाँ जैसे चैत चित्रा, वैशाख विशाखा, ज्येष्ठ ज्येष्ठा, आषाढ पूर्वाषाढ अथवा उत्तराषाढ, श्रावण श्रवण, भाद्रपद पूर्वाभाद्रपद अथवा उत्तराभाद्रपद, आश्विन अश्विनी, कार्तिक कृतिका, मार्गशिर मृगशिर, (इसका नाम अगहनभी है) पौष पुष्य और फाल्गुन पूर्वाफाल्गुनी अथवा उत्तराफाल्गुनी ॥ २२ ॥ द्वादशी तिथिमें अनुराधा,श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र हो उस तिथिमें, जन्म नक्षत्रमें और वामनद्वादशीमें विधिपूर्वक श्राद्ध करै ॥ २३॥ यह श्रेष्ठ दिन केवल श्राद्ध करनेहीके लिये नहीं हैं, पुरुषके कल्याणकोभी बढानेवाले हैं इसीलिये इस पुण्यकालकी तिथियोंमें शुभ कार्य करना व्रत, देव द्विजकी पूजा लिखा है क्योंकि पुण्य करना आयुकी वृद्धि करना है ॥ २४ ॥ इन श्रेष्ठ तिथियोंमें स्नान, जप, हवन, व्रत, देव द्विज पूजा, जो कुछ शुभ कार्य होता है, वह सब अक्षय होजाता है ॥ ॥ २५ ॥ हे राजन् ! अपनी अर्द्धांगिनी भार्याका अपना पुत्र पौत्रके अथवा अपने संस्का-

रके समय, प्रेतकी दाह क्रियाके समय. संवत्सरके श्राद्धके समय और कल्याणकारी कार्य करनेका समय हो उस समय पुण्य करना चाहिये ॥ २६ ॥ धर्मादिक मङ्गलके देनेवाले पुण्यतमदेशोंके नाम तुमसे कहता हूं, जहाँ जहाँ चराचरके निवास स्थान वासुदेव भगवान्‌की मूर्ति विराजमान हैं और सत्पात्रोंका समागम है ॥२७॥ वह देश परमपुनीत जानना. जहाँ विद्यावान्, तपस्वी और दयावन्त ब्राह्मण लोग निवास करते हैं जहाँ जहाँ बाँके-बिहारी कृष्णमुरारीकी मोहनी मूर्ति विराजमान है वह देश कल्याणका स्थान है, जहाँ पुराणोंमें प्रसिद्ध गङ्गा आदि नदियोंका प्रवाह होरहा है वह अत्यन्त पुण्यतम देश है ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ पुष्करादि सरोवर जहाँ महात्मा पुरुषोंका निवास क्षेत्र है,कुरुक्षेत्र,गया, प्रयाग, पुलह, ऋषिका आश्रम ॥ ३० ॥ नैमिषारण्य, फाल्गुनतीर्थ, सेतुबन्धरामेश्वर, प्रभासक्षेत्र, द्वारकापुरी, काशी, मथुरा, पंपासर, विन्दुसरोवर ॥ ३१ ॥ नारायणाश्रम, नन्दा और सीतारामके आश्रमादिक हैं. हे राजन्! सब कुलाचल, महेन्द्र, मलयगिरि आदि बडे बडे पर्वत हैं ॥ ३२ ॥ वह पुण्यतम देश हैं. श्रीहरिकी अर्चा विग्रहरूप होके वसे हैं, जो मनुष्य अपना मंगल चाहै वह वारम्वार इन देशोंका सेवन करै. इन श्रेष्ठ देशोंमें जो पुण्यकर्म किया जाता है, वह सहस्रगुण फल देनेवाला है ॥ ३३ ॥ हे महाराज युधिष्ठिर! अच्छे पात्रवेत्ता पण्डितोंने पात्र यहाँ कहे हैं, परन्तु सबसे अधिक श्रीनारायणही एक परमपात्र हैं क्योंकि सब चराचरमय वासुदेव भगवान् हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन्! अन्तःपुरमें अग्रपूजाके सयम जब देवटा ऋषि महात्मा ब्रह्माजीके पुत्रादिक सब थे, परन्तु वहाँ अग्रपूजनीय श्रीकृष्णचन्द्र महाराजको समझकर पहिले पूजा द्वारकाधीशकीही हुई थी ॥ ३५॥ सब जीवराशियोंसे भरा यह ब्रह्माण्ड एक बडा वृक्षरूप है और उसकी मूल भगवान् हैं इसलिये भगवान्‌की पूजा करनेसे सब जीवात्माओंकी तृप्ति होजाती है,जैसे वृक्षकी जडको सींचनेसे सब शाखा और पत्ते हरे होजाते हैं ॥ ३६ ॥ सब पुर अर्थात् शरीर भगवान्‌नेही रचे हैं. मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता और ऋषि, यही श्रीकृष्ण भगवान् जीवरूप धर धरके सब प्राणियोंके शरीररूप पुरमें शयन करते हैं, इसीलिये इसका नाम पुरुष रक्खा है ॥ ३७ ॥ हे राजन्! इन सबमें भगवान् न्यूनाधिक भावसे वर्ते हैं, इसलिये पात्र परमेश्वर हैं,जैसी जिसकी आत्मा है वैसेही वर्तमान हैं,तपसे, पूजासे,प्रार्थनासे जिसमें भगवान्‌का अंश अधिक पायाजाता है उस उस मनुष्यको उत्तमपात्र जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ जब मनुष्य पात्र और भगवद्भक्त थे तब मनुष्योंके शरीरमेंही भगवान्‌की पूजा किया करते थे, जब मनुष्योंके मनमें विकार आगया और परस्पर भेद समझने लगे और एककी एक अवज्ञा करने लगे तब त्रेतायुगके प्रारम्भमें कवियोंने भगवान्‌की अर्चा मूर्तियोंमें करनी आरम्भ करदी ॥ ३९ ॥ वहुतेरे लोगोंने समझ रक्खा है कि, मूर्तिमेंही भगवान् हैं, यह समझकर जो मूर्तिका पूजन करते हैं उनके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं और जो मनुष्य परस्पर द्रोह करते हैं उन लोगोंको वह प्रतिमा फल नहीं देती ॥ ४० ॥ हे राजन्! पुरुषोंमें वही ब्राह्मण सत्पात्र हैं जो तपसे, विद्यासे, सन्तोषसे, भगवान्‌के शरीर-

रूप वेदको धारण करते हैं, उनहींको उत्तम पात्र महात्मालोग वतलाते हैं ॥ ४१ ॥ यह ब्राह्मणोंहीका सामर्थ्य है जो अपने चरणोंकी रजसे त्रिलोकीको पवित्र करसक्ते हैं. यह ब्राह्मण जगत्के आत्मा श्रीकृष्णभगवान्के परमप्रिय देवता हैं जैसे सुदामा ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे सप्तमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा-वर्णाश्रमकी रीति सब, मोक्ष धर्मको सार।
भिन्न भिन्न वर्णन करौं, पन्द्रह माँहिं विचार ॥ १ ॥

नारदजी बोले कि, हे युधिष्ठिर! किसी ब्राह्मणकी तो कर्मोंमें निष्ठा है, किसीकी तप करनेमें निष्ठा है, किसीकी वेद पढनेमें निष्ठा है, किसीकी वेदपढानेमें निष्ठा है, किसीकी ज्ञानमें निष्ठा है और किसीकी योगमें निष्ठा है ॥ १ ॥ जो मनुष्य देव पितृ सम्बन्धी कर्मोंमें अनन्त फलकी अभिलाष करै तो उसको चाहिये कि ज्ञाननिष्ठावाले ब्राह्मणको श्राद्ध अन्न दे, जो ज्ञाननिष्ठावाला कहीं नहीं मिलै तो और कोई ब्राह्मण होय उसको यथा-योग्य भोजन कराया जाय ॥ २ ॥ जिन ब्राह्मणोंका निमंत्रण श्राद्धमें अथवा देवकार्यमें कियाजाय वह विप्रवर सब प्रकारसे श्रेष्ठ और शुद्ध होने चाहिये देवकर्ममें दो ब्राह्मण जिमाने चाहिये और पितृकर्ममें तीन ब्राह्मणको जिमावे, वरन् श्रद्धापूर्वक एक एक ब्राह्मणका जिमानाभी अच्छा है और जो अधिक धन होय तोभी विस्तार नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ देशकालके योग्य श्रद्धा, द्रव्य, पात्र, पूजन यह सब बहुत विस्तार कर-नेसे श्राद्धमें स्वजनोंके जिमानेकी इच्छासे श्राद्ध श्रद्धापूर्वक नहीं हो सक्ता ॥ ४ ॥ देश काल सुन्दर प्राप्त हो जाय तो श्रीभगवान् वासुदेव जिनके देवता ऐसे मुनि अन्न जो मूँग, भात, पूरी, कचौरी, अमृती इत्यादिसे श्रद्धाकरके सुपात्रको जिमावै तो वह अन्न कामना-ओंका पूर्ण करनेवाला है और अक्षय फलका देनेवाला है ॥ ५ ॥ देवता, ऋषि, पितर, जीवमात्र अपना देह और स्वजन लोगोंको वह अन्न विभाग करके दे तो ईश्वरहीकी समान हैं ॥ ६ ॥ धर्मके तत्त्वको जाननेवाले तत्ववेत्तापुरुषोंको चाहिये कि श्राद्धमें मांसको नहीं दे और न आप खाय मुनियोंके अन्नसे परमेश्वर प्रसन्न होतेहैं कुछ पशुओंकी हिंसासे परमेश्वर प्रसन्न नहीं होते ॥ ७ ॥ सद्धर्मकी इच्छा करनेवाले पुरुषको इससे परे कोई और कठिन धर्म नहीं है कि, तन मन वचनसे किसी जीवको कष्ट देना ॥ ८ ॥ आचार्य यज्ञवेत्ता ज्ञानी कर्ममय यज्ञोंको आत्माके, संयम करनेवाले ज्ञानी दीप्त मनमें सब चेष्टाओंको होम देतेहैं ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञोंसे जब यज्ञ किया जाताहै, उन यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको देखकर सब जीव थरथर काँपतेहैं कि, यह निर्दयी प्राणपोषक अज्ञानी इन सब जीवोंको मारैंगे ॥ १० ॥ इसलिये विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि देवान्न जो ऋषि-योंका संतुष्ट करनेवाला है, वही तन्दुलादिक अन्नसे अपनी नित्य प्रति नित्य नैमित्तिक क्रिया करै और संतुष्ट रहै ॥ ११ ॥ विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा, छल, यह पाँच अधर्मकी शाखा हैं सो धर्मके जाननेवालोंको चाहिये कि, अधर्मकी नाईं उनको

त्यागदे ॥ १२ ॥ धर्मको बाधाको विधर्म कहे हैं. पराये धर्मको परमधर्म कहे हैं, मनुष्योंने आश्रमकी पद्धति जो अलगधर्म अपनी इच्छासे चलाया हो उसको आभास कहते हैं, जो पाखंडका धर्महो उसको उपमा कहतेहैं दम्भ अथवा धर्मशास्त्रके वाक्योंका उलटा अर्थ करे उसको छल कहते हैं ॥ १३ ॥ धर्मशास्त्रके वाक्योंसे जो निश्चय हो और तत्ववेत्ताओंके स्वभावके अनुसार हो, वह धर्म, मनुष्योंको शांति देनेवाला है ॥ १४ ॥ निर्धन पुरुष धर्म अर्थ यात्राके लिये धनकी कोई अपेक्षा न करै, क्योंकि अजगर वृत्तिवालेको सब यात्रा और धर्मोंका फल घर बैठेही मिल जाताहै ॥ १५ ॥ सन्तोषी, अचेष्टावान्, आत्माराम और निरीहपुरुषको प्राप्त होता है वह आनन्द लोभसे धनकी चेष्टा करनेवाले को और सब दिशाओंमें घूमनेवालेको कब मिल सक्ताहै ? ॥ १६ ॥ जो सदा संतुष्ट चित्त है उसको सब दिशाओंमें परमानन्द है, जैसे कांटा कंकर आदि बचानेवाले पाँवमें जूतेका जोडा सुखदायक है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वह कौनसी वस्तु है जिस वस्तुसे सन्तोषी पुरुष अपना कार्य सिद्ध नहीं करसक्ता ? और पदार्थोंको तो कहनाही क्या है ? केवल जलका पात्रही लेकर जो उसके सामने उपस्थित हो तो उसीसे अपना कार्य सिद्ध कर लेता है और असंतोषी पुरुष उपस्थ इन्द्रिय और जिह्वाके भोगार्थ श्वानकी समान घर घर अपना अपमान करता फिरता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण संतोष नहीं करता उसकी इन्द्रियोंकी चपलताके मारे तेज, विद्या, तप, यश, सब नाश होजाता है और ज्ञान तो किंचिन्मात्रभी नहीं रहता ॥ १९ ॥ कामका अन्त भूख प्यासके मरनेसे होजाताहै क्रोधका अन्त शत्रुओंके जीतनेसे हो जाता है, परन्तु लोभका अन्त किसीप्रकार नहीं होसक्ता. चाहे कुबेरका धन और उदय अस्त तक सब पृथ्वीका राज्य मिलजाय ॥ २० ॥ हे राजन् ! बडे बडे ज्ञानी गूढ सन्देहोंके मिटानेवाले सभाओंके पति, षट्शास्त्री पंडित सन्तोष न करनेसे घोर नरकमें चले गये ॥ २१ ॥ मनुष्यको चाहिये कि संकल्प विकल्पको त्यागकर कामनाओंको जीतै कामनाओंका त्याग करके क्रोधको जीतै, धनको अनर्थ समझकर लोभको जीतै और तत्वविचारसे भयको जीतै ॥ २२ ॥ ब्रह्मविद्यासे शोक मोहको जीतै, महात्मा पुरुषोंकी उपासनासे दम्भको जीतै, मौनवृत्ति धारणकर योगके विघ्नरूप मिथ्या वार्तालापको जीतै, शरीरकी चेष्टाओंको त्यागकर हिंसाओंको जीतै ॥ २३ ॥ जिन जीवोंसे भय उत्पन्न हुवा हो उसहीसे स्नेह करके भूतज दुःखोंको जीतै, दैवकृत क्लेशोंको समाधिसे जीतै, योगबलसे जीवात्माके कष्टको जीतै, और सात्विक भोजनादिकी उपासनासे निद्राको जीतै ॥ २४ ॥ सतोगुणसे रज तमको जीतै, शान्तिसे सतोगुणको जीतै, यह तो प्रत्येक पदार्थके जीतनेके लिये भिन्न रीतिके साधन कहे, परन्तु संसारमें गुरुभक्तिही ऐसी बलवान् है कि, पुरुष उससे विना प्रयास त्रिलोकीको जीत सक्ता है ॥ २५ ॥ हृदयमें ज्ञान रूप दीपकके प्रकाश करनेवाले साक्षात् गुरुभगवान्को जो मनुष्य अपने अज्ञानसे मनुष्यके समान जानकर उनसे जो जो ज्ञान सुना वह सब हाथीके स्नानकी समान है ॥ २६ ॥ गुरुरूप साक्षात् भगवान् प्रधान पुरुष ईश्वर हैं और योगेश्वर जिनके

चरण कमल कोमल अमलको खोजते रहतेहैं गुरुको लोग संसारी मनुष्यकी समान मानतेहैं और परस्पर अज्ञानतासे कुतर्क करते हैं कि, गुरुभगवान् कैसे हैं इनके तो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, सुहृद, बन्धु सब हैं, जैसे हम हैं वैसेही वह हैं परन्तु एक विद्याही अधिक समझ लो ॥ २७ ॥ षड्वर्ग अर्थात् छैः इन्द्रियोंके जीतनेके छः ही उद्देश तत्ववेत्ताओंने कहे हैं इन्द्रियोंके जीतनेके पीछेभी जो उनसे ज्ञान,ध्यान, धारणा और समाधिका साधन न बनसका तो सब परिश्रम करना वृथा है और देहको दुःख देना है ॥ २८ ॥ जैसे वार्तादिक योगके अर्थको सिद्ध नहीं करसक्ती, वह सब वार्ता अनर्थ हो जाती है. पूर्त, इष्ट इत्यादि जो अनर्थबुद्धि करै तो ॥ २९ ॥ जो पुरुष मनको जीतनेकी इच्छा करै तो सब परिग्रहसे संग त्यागै, एकान्तमें बैठे, अकेलारहै और भिक्षा माँगनेसे जो कुछ थोडा बहुत अन्न मिलजाय उसीमें अपना निर्वाहकरै ॥ ३० ॥ हे राजन् ! पवित्र और सम भूमिमें आसन बिछावे और उसपर ःल अंग करके बैठे और ॐ कारका जप करे ॥ ३१ ॥ प्राण अपान, वायुको जीतै, पूरक, कुम्भक, रेचक करके जबतक मन सब कामनाओंको न त्यागै, तब तक अपनी नाकके अग्रभागको देखता रहै ॥ ३२ ॥ महत् विषयोंके द्वारा घूमताहुआ मन जहाँ जहाँ जाय, उन उन स्थलोंसे उसको लौटाकर लावे और धीरे धीरे उसको रोकके फिर धीरे धीरे बुधजन मनको रोकै ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अभ्यास करनेवाले यती पुरुषोंको थोडेसे कालमें निरन्तर सुखही प्राप्त होजाता है, जैसे विना काष्ठ अग्नि शान्त हो जाती है ॥ ३४ ॥ कामके बन्धनोंसे छूटकर, सब वृत्तियोंसे शान्त होकर, ब्रह्मानन्दको जो प्राप्त होगया, फिर ऐसा चित्त कभी ईश्वरसे पृथक् नहीं होता ॥ ३५ ॥ जो नर त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, कामको प्रथम तो त्यागकर संन्यासी होजाय, फिर पीछे उस त्रिवर्गका सेवन करै उस संन्यासीको ऐसे समझो कि, पहिले उगलकर पीछे फिर खालेना. मानो थूकके चाटना ॥ ३६ ॥ जिन पुरुषोंने अपने देहमें आत्माको स्मरण नहीं किया और यह देह कृमि, विष्ठा भस्म समझा और वही फिर पीछे अज्ञानी बनकर इस शरीरको अपना मान और अभिमानमें आन उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३७ ॥ जो गृहस्थ अपने क्रिया कर्मको त्यागदे, ब्रह्मचारी होकर ब्रह्मचर्य धर्मको छोड दे, वानप्रस्थ होकर नगरमें वास करै और संन्यासी होकर इन्द्रियोंके भोगको भोगै, वह लोग दोनों लोकोंसे जाते रहते हैं, वह कहींके नहीं रहते उनको पाखण्डी समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ वह लोग सब आश्रमोंके नाशक हैं और सच्चे आश्रमोंका अनुकरण करतेहैं और उनसे शत्रुता रखते हैं. नारदजी बोले कि, हेपांडुकुलमुकुटमणि! देवमायासे मोहित इन मूर्खोंपर दया करके इनके मनकी अभिलाषा पूर्ण करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ जो जन अपने आपको परब्रह्म समझकर विषयवासनाओंसे निवृत्त होते हैं, फिर वह किसलिये लोलुप लम्पट बनकर शरीरका लालन पालन करते हैं? ॥ ४० ॥ मुनिलोग शरीरको रथरूप कहते हैं, उसमें इन्द्रियें घोडे हैं और चंचल मन उसकी बागडोर है शब्दादिक मात्र उस रथके चलनेका मार्ग है, विषयवासना उसके पहुँचनेके देश देशान्तर हैं, बुद्धि

उसको हाँकनेवाली सारथी है और चित्त सबका बन्धन है, यह अद्भुत रथ ईश्वरका बनाया हुवा है ॥ ४१ ॥ दश प्राण अक्षय धुरीरूप हैं, धर्म और अधर्म दो पहिये हैं, जीव अभिमानी उसमें चढनेवाला है, प्रणव धनुष है, बाण शुद्ध जीव है, परमेश्वर लक्ष्य है ॥ ॥ ४२ ॥ राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, निन्दा, माया, हिंसा, मत्सरता ॥ ४३ ॥ रजोगुण, प्रमाद, भूख और निद्रा आदि रजोगुण तमोगुण प्रकृति तो इसके वैरी हैंही, परन्तु किसी समयपर परोपकारी सतोगुणकी प्रकृतिभी वैरभाव करने लगे हैं ॥ ४४ ॥ जिस समयतक इस नर शरीर रथके इन्द्रियादिक अंग और आत्मा अपने वशमें है उस समयतक गुरु महात्माके चरणारविन्दकी कृपासे तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग लेकर और भगवान्का बल लेकर, सब वैरियोंको मारकर प्रसन्न और शान्त हो परमात्माकी शरण लेकर मोक्षरूप यशका प्रकाश करै ॥ ४५ ॥ और जो परमात्माका आश्रय न लिया हो तो उस रथके इन्द्रिय रूप घोडे और मतिरूप सूत, असावधान रथमें बैठनेवालेको कुपन्थमें अर्थात् प्रवृत्ति मार्गमें खेंचकर लेजाते हैं और विषयरूप लुटेरोंकी सेवामें जा डालतेहैं, जब इन तस्करोंके फन्देमें फँसा फिर कब निकलने देते हैं उसी समय घोडे और सारथी समेत उस पुरुषको महाअन्धतम जहाँ मृत्यु और भय मुखपसारे बैठे हैं उस संसाररूप कूपमें गिरा देतेहैं ॥ ४६ ॥ वैदिक मतवालोंने दो प्रकारके धर्म कहे हैं, एक तो प्रवृत्ति मार्ग है और दूसरा निवृत्ति मार्गहै प्रवृत्ति मार्गसे तो संसारमें आना जाना होता है और निवृत्तिमार्गसे मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ ४७ ॥ हिंसक यज्ञ, काम्यक यज्ञ, द्रव्यमय यज्ञ, अग्निहोत्रादिक यह सब अशान्तिके करनेवाले हैं, अमावास्या, पूर्णमासी, चातुर्मास्य, पशुयाग, सोमयाग ॥ ४८ ॥ वैश्वदेव और बलिदानादिक जो कर्म हैं, वह सब पदार्थोंके उपयोगसे होते हैं उनहींको इष्टकर्म कहते हैं और देवालय, बाग, कूप, तडाग, आदि जो कर्महैं उनको पूर्त कहते हैं, यही कर्म वाँछित होकर किये जायँ तो प्रवृत्ति कहलाते हैं ॥ ४९ ॥ द्रव्ययज्ञका सूक्ष्म फल होताहै, द्रव्ययज्ञ करनेवाला मनुष्य चरु और पुरोडाशादिकके किञ्चिन्मात्रसे उत्पन्न हुये शरीरको धारण करके धूमके देवके समीप जाता है, वहाँसे रात्रिके देवके सन्मुख जाता है, वहाँसे कृष्णपक्षके देवके निकट जाता है, वहाँसे दक्षिणायनके देवके पास जाताहै, वहाँसे सोमके लोकमें जाता है ॥ ५० ॥ इन इन स्थानोंमें जाकर जब पुण्यका क्षय होताहै, तब पुण्यके क्षय होनेसे शोकाग्नि उत्पन्न होती है फिर अत्यन्त दुर्बल होकर वृष्टिरूप तथा चन्द्रमाकी किरणोंके द्वारा औषधी, लता और अन्नमें आता है फिर वीर्यमें क्रम क्रमसे आकर इस संसारमें आजाता है ॥ ५१ ॥ जन्मसे लेकर मरण पर्यंत संस्कार जिसके हुयेहों ऐसा विप्र, क्षत्रिय और वैश्यको प्रवृत्ति कर्म, करनेका यह फल मिलता है, अब निवृत्ति कर्मकी गति कहते हैं, महात्मा लोग इन्द्रियोंके व्यापाररूप इष्टापूर्तादिक कर्मोंको विज्ञानसे दीप्तवाली इन्द्रियोंमें हवन करदेते हैं यह इष्ट धर्म इन्द्रियोंसे भिन्न नहीं है ऐसे समझते हैं ॥ ५२ ॥ मनके वेगमें इन्द्रियोंको लीन करते हैं, वेदवाली वाणीमें वैकारिक मनको लीन करते हैं; वाणीको वर्णोंके समूहमें

लीन करते हैं और अक्षर वर्णोंके समूहोंको तीन अक्षर (अ, उ, म्,) वाले ॐकारमें लीन करते हैं ॐकारको बिन्दुमें; बिन्दुको नादमें; नादको प्राणमें और प्राणको ब्रह्ममें लीन करतेहैं ॥ ५३ ॥ इस प्रकार निवृत्त कर्म करके ज्ञाननिष्ठावाला मनुष्य पहिले अग्निदेवके पास फिर सूर्य देवके पास; वहाँसे दिवस देवके समक्ष, वहाँसे दिनके अन्तमें होकर शुक्लपक्ष देवके निकट वहाँसे शुक्लपक्षके अन्तमें हो उत्तरायण देवके सम्मुख फिर वहांसे ब्रह्माजीके सामने जाताहै, वहांपर कुछ दिन भोग भोगकर फिर स्थूल देहके उपाधिवाले विश्वमें जाता है; उस स्थूल देहको सूक्ष्ममें लीनकर सूक्ष्म उपाधिवाले तैजसमें जाता है; फिर सूक्ष्म को कारणमें लय करके; कारणको शरीरकी उपाधिवाले प्राज्ञमें, कारण शरीरको तीनों शरीरोंमें व्यापक साक्षी स्वरूपमें लीन करके चौथा शरीर सबसे अलग होजाता है. सब दृश्य पदार्थोंका लयहोनेसे शुद्ध चित्त होकर मोक्ष होजाता है ॥ ५४ ॥ जिस मार्गमें पूर्वोक्त कर्मानुसार प्राप्त होता है, उस मार्गको ब्रह्मज्ञानी लोग देवयान कहतेहैं। आत्माका ही यजन करनेवाला आत्मज्ञानी आत्माहीमें बसा हुआ और महाशांति पाया हुआ जो इस मार्गमें आगया वह फिर लौटकर नहीं जाता, क्योंकि परमात्मामें लय होजाता है ॥५५॥ वेदके कहेहुये देवयान और पितृयान यह दो मार्ग हैं शास्त्ररूप नेत्रोंसे दृष्टि आते हैं, परन्तु जबतक ज्ञानरूपी चन्द्रमाका हृदयमें प्रकाश नहीं होता तबतक मार्गोंका कंकर काँटा देखनेमें नहीं आता, फिर वह आत्मज्ञानी पुरुष देहमें स्थित होनेपर मोहित नहीं होता ॥ ५६ ॥ जनोंके आदि अन्तमें वास करनेवाला भोग्य, भोक्ता, ऊंच, नीच, ज्ञान ज्ञेय, शब्द, अर्थ, अन्धकार और प्रकाश इन सबको ज्ञानी पुरुष अपने आपसे भिन्न नहीं समझते कि जिससे मोह और ममता हो ॥ ५७ ॥ वृक्षकी छाया कुछ वृक्ष नहीं है तर्कना करनेसे आभास सब प्रकारसे अवास्तविक पाई जाती है, तो भी जसे कोई पदार्थ रूपसे माना जाता है ऐसे संसारभी किसी इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आता, जैसे वृक्षकी छाया देखनेमें आती है परन्तु वह कुछ वस्तु है नहीं केवल मनका विकार है, क्योंकि कभी वृक्षके नीचे होती है और कभी वृक्षसे दूर होती है; ऐसे संसारभी किसी प्रकार निश्चय नहीं हो सक्ता, तोभी मानो कोई एक पदार्थ है ऐसे कल्पना की जायगी ॥ ५८ ॥ हे राजन्! पृथ्वी इत्यादि पंचमहाभूतोंकी छाया (ऐक्यावलम्बन) देहादिक संघात आरम्भ परिणाम इनमेंसे एकभी नहीं हो सक्ता, जैसे वृक्षोंके संघातसे वन होताहै वैसे पंचभूतोंके संघातसे देह नहीं है, क्योंकि एक देशके आकर्षणसे सब देश आकर्षित नहीं होते, एक वृक्षके खैंचनेसे सब वन नहीं खिंचता ऐसा विकार अर्थात् आरब्ध अवयवी अथवा परिणामभी नहीं है, क्योंकि वह अवयवसे अत्यन्त अलग नहीं है और किसीसे मिलकरभी नहीं रहता है, इससे देहादिकके सब पदार्थ मिथ्याही जानना ॥ ५९ ॥ हे राजन्! देहादिक जिस प्रकार मिथ्या हैं, उन सबके हेतु स्वरूप पृथ्वी आदिभी वैसेही मिथ्या हैं, क्योंकि समस्त पंच महाभूत अवयवी पदार्थ हैं, इससे अवयवों विना उनका कुछ भिन्न निरूपण होसके ऐसाभी नहीं होसक्ता, इस लिये यह अवयवी कारणसे कुछ अलग

पदार्थ नहीं है यही निश्चय हुवा, इसप्रकार अवयवीके असत् और मिथ्या होनेपर निदान अवयवभी असत् और मिथ्या होगये तो किसीप्रकार सिद्ध नहीं हो सक्ते यद्यपि सत्य रीतिसे जो विचार किया जाय तो परमकारणरूप अतिरिक्त परमात्माके और कोई पदार्थ सत्य नहीं है, जब सब पदार्थ असत् माने गये तो उनमें भेद माननाभी वृथा है, क्योंकि उससमय तक भेद है जबतक अविद्याकी निवृत्ति नहीं होती ॥ ६० ॥ यह कहो कि अवयवीकी सत्ता स्वीकार करनेपर आगमस्थायी बाल्यादि अवस्थामें " यह वही देवदत्त है" ऐसा प्रत्यभिज्ञान किसप्रकार हो सक्ताहै ? उत्तर अविद्याका विकल्प रहनेसे पहिले पहल आरोप सादृश्यके हेतु "यह वह नहीं है" इसप्रकार संभ्रम होसक्ता है, परन्तु जबतक अविद्या नहीं छूटती तबहींतक यह भ्रम रहताहै फिर नहीं. हे राजन् ! जो सबही मिथ्या हुवा तो शास्त्रकी विधिनिषेधिता किस प्रकारसे रहसक्ती है, ऐसी आशंका मत करना, स्वप्नमें जिस प्रकार कभी कभी जाग्रत् और निद्राकी व्यवस्था होतीहै, वैसेही न्यायशास्त्रकी विधिनिषेधिता हो सक्तीहै ॥ ६१ ॥ इसलिये मननशील योगी भावनाका अद्वैत,क्रियाका अद्वैत,द्रव्यका अद्वैत विचार करके आत्मतत्त्वके अनुभवसे जाग्रत् इत्यादि तीन अवस्थाओंका निवारण किया करताहै ॥६२॥ भावनाका अद्वैत किसको कहते हैं सो सुनो, जैसे वस्त्र कोईपदार्थ नहीं है उसका मुख्य पदार्थ सूत है, ऐसे ही जाग्रत् अवस्था कोई पदार्थ नहीं परब्रह्मही मुख्य पदार्थ है. इस वस्त्र और सूतकी समान कार्य औरको जो एक वस्तुरूपसे विचारना है, उसको भावना अद्वैत कहते हैं ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! मनसे, वाक्यसे और शरीरसे साक्षात् परब्रह्ममें जो सब कर्मोंका समर्पण करना है उसका नाम क्रिया अद्वैत है; फल प्राप्त होनेकी इच्छासे जो फलोंका संकल्प करते हैं, उनकी भिन्नतासे क्रियाओंकी भिन्नता होजाती है, परन्तु परमात्माको समर्पण करनेसे फलोंकी भिन्नता नहीं रहती, इसीलिये इसका नाम क्रियाद्वैत है ॥ ६४ ॥ पुत्र, स्त्री, आप और सब देहधारियोंमें जो अपने हैं और पराये हैं वह सब पंचभूतात्मकतासे एकरूप हैं और सबका भोक्ताभी एक परब्रह्म परमेश्वर है, उन सबके अर्थ और काम भी एकरूपका जो एक देखना है उसको द्रव्याद्वैत कहते हैं ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! पहिले आश्रम सम्बन्धी धर्म संक्षेपतासे कहते हैं, जिस यत्नसे, जिसके पापसे जिस स्थानपर, जिस द्रव्यका, जिस मनुष्यके लिये शास्त्रने निषेध नहीं किया, उसयत्नसे, उसके पापसे, उस स्थानपर, उस द्रव्यसे वह मनुष्य यह कर्म करे और जबतक आपत्तिकाल न हो तबतक कर्मोंको न छोडै ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! पहिले कहेहुए कर्म और वेदोक्तकर्म अथवा भगवद्भक्ति करनेसे मनुष्य घरमें बैठाहुवाभी परमपदवीको पा सक्ताहै ॥ ६७ ॥ हे नृपेन्द्र ! यह बात सर्वसाधारणके लियेहै और भक्तजनोंके तो भक्तिही सब काम सिद्ध करती है, देखो ! आप कैसी कैसी महाकठिन विपत्तियोंके समुदायोंसे बचे, यह सब वैकुण्ठविहारी कृष्णमुरारीहीका अनुग्रह था और उनहींके चरणसरोरुहकी सेवाका प्रताप था, जो आपने अनेक दिग्विजय किये और सब दिशाओंमें अपनी जीतका डंका बजा, दिग्गजोंको जीत, बड़े भारी

यज्ञ किये ॥ ६८ ॥ अभिमान और महात्मा पुरुषोंका अपमान करनेसे भगवान्की सेवा छूट जातीहै और उनहीके अनुग्रहसे सब कान सिद्ध होजाते हैं. पिछले जन्मका मुझको अच्छा स्मरण है कि गत महाकल्पमें मैं उपवर्हण नामक एक गन्धर्व था और सब गन्धर्व मेरा अत्यन्त आदर सन्मान करते थे ॥ ६९ ॥ रूप, सौन्दर्यता, माधुर्यता और सुगंधिके कारणसे सब मनुष्योंको मेरे दर्शनकी अभिलाषा रहती थी और स्त्रियोंको परमप्रिय और कामोद्दीपन करनेवाला थाही, परन्तु मुझसे वढकर संसारमें कोई लम्पट और लवार नहीं था ॥ ७० ॥ एकसमय देवताओंके समाजमें भगवान् वासुदेवकी गाथा गानेके लिये प्रजापतियोंने अनेक गन्धर्व और अप्सराओंके समूहके समूह बुलाये ॥ ७१ ॥ उस समय मैंभी सुन्दर सुन्दर स्त्रियोंको अपने संग लेकर गाता वजाता वहाँ पहुँचा, मुझको देखकर प्रजापति महा कुपित हुए और अपनी शक्तियोंसे मुझको शाप दिया और यह कहा कि तैंने हमारी अवज्ञा करी तू वडा निर्लज्ज है, इसलिये तू नष्ट होकर अभी शूद्रयोनिमें जाकर जन्म ले ॥ ७२ ॥ शापके देतेही मैं तनु त्यागकर दासीपुत्र हुवा, और जन्महीसे महात्माओंकी सेवा और उनकी सत्संगतिके प्रभावसे तीसरे जन्ममें आकर मैंने ब्रह्माजीके घरमें जन्म लिया॥ ७३ ॥पापका विनाश करनेवाला गृहस्थी लोगोंका धर्म मैंने आपके सामने वर्णन किया, जिस धर्मके करनेसे गृहस्थीलोग विनापरिश्रम परमपदवीको पहुँचैं. जिस पदवीको संन्यासी लोग जाते हैं ॥ ७४ ॥ हे राजन्! मृत्युलोकमें तुम वडे भाग्यशाली हो, क्योंकि तुम्हारे घर त्रिलोकीके पवित्र करनेवाले महात्मालोग चारों ओरसे आते हैं और मनुष्य अवतार धरकर साक्षात् आदिपुरुष अविनाशी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द विराजते हैं॥ ७५ ॥सो यह आदिपुरुष अविनाशी जिनको मुनिजन समाधि लगाकर खोजते रहेते हैं और उनके ध्यानमें नहीं आते, वह श्रीकृष्ण आपके परममित्र ममेरे भाई, आत्माराम, परमपूज्य, जगद्गुरु, आपकी इच्छानुसार कार्य करनेवाले, आपके साथ दिन रात ररते हैं, सो वह मोक्ष सम्बन्धी आनन्दके सुखका अनुभव करनेवाले यही हैं ॥ ७६ ॥ शिव ब्रह्मादिक देवता जिनका साक्षात् स्वरूप किसी प्रकार वर्णन नहीं करसक्ते कि, भगवान्का स्वरूप कैसा है, निदान मौन होकर इन्द्रियोंको शान्त करके भक्तिसे भगवान्का पूजन करते हैं. सो यह भक्तवत्सल परमकृपालु श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावन विहारी हम सबपर प्रसन्न होओ ॥ ७७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि इसप्रकार राजा युधिष्ठिर देवऋषि नारदजीके वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, और प्रेमसे विह्वल होकर नारदमुनि सहित श्रीकृष्ण महाराज की सबने मिलकर पूजा की ॥ ७८ ॥ पूजा सन्मान पाकर नारदजी महाराज, श्रीकृष्ण भगवान् और युधिष्ठिरसे विदा माँगकर वहाँसे चल दिये, और राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण देवकीनन्दनको परब्रह्म परमात्मा सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए॥ ७९ ॥ यह सब दक्षप्रजापतिकी पुत्री दाक्षायणीके वंश पृथक् पृथक् मैंने आपसे वर्णन किये कि जिन वंशोंमें देवता, दैत्य और मनुष्य आदि सब चराचर लोक उत्पन्न हुए धन्य हो प्रभुजी आपकी

महिमा कौन वर्णन कर सक्ता है, जब सहस्र मुखवाले शेषजीही नेति नेति कहते हैं फिर औरका क्या सामर्थ्य है ? ॥ ८० ॥

स्तुति–छन्द नाराच ।

नमो नमो निरंजनं शरण्य पाप भंजनं, नमो नमो गुणाग्रजं सु भक्त हेत आग्रजं ॥ नमो नमो सुराधिपं जगत्तके नराधिपं, नमो नमो विरंचतं महेन्द्र रुद्र वंदितं ॥ नमामि शेष शायिनं अखण्ड भक्तिदायिनं, नमो अरी सँहारणं सुश्याम रूप धारणं ॥ नमो नमो मनोहरं सुवेषधार भूधरं, नमो नमो चतुर्भुजं सुनाशते जगत् रुजं ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालिग्राम वैश्यमुरादाबादनिवासी-कृत सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारदसम्वादे सदाचारनिर्णयो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बंबई.

श्रीमद्वेंकटेशो विजयतेतराम् ।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा ।

अष्टमस्कन्ध ८.

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बंबई.

विराट्रूप श्रीनारायण और बलि राजा.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

अष्टम स्कन्ध ८.

सोरठा–अहो विहारी लाल, भयहारी आनँदभवन ॥
जयति जयति नँदलाल, गोपेश्वर राधारमण ॥ १ ॥
हे ब्रजेश ब्रजराज, ब्रजवल्लभ ब्रज लाडिले ॥
राखी ब्रजकी लाज, धर करपर गिरिधर अधर ॥ २ ॥
अहो लडते लाल, कीजै कृपा कृपायतन ॥
गोप सखा गोपाल, गोपीवल्लभ गोपपति ॥ ३ ॥
जटा जूट अर्द्धङ्ग, संग विराजत रात दिन ॥
कुन्द इन्दु सम अङ्ग, करहु दया दायालदन ॥ ४ ॥

दोहा–स्वायंभुव स्वारोचिष, उत्तम तामस चार।
मनुओंका वर्णन करूं, प्रथमाध्याय विचार ॥ १ ॥

महाराज परीक्षित् योगिवर श्रीशुकदेवजीसे पूँछने लगे कि, हे भगवन्! स्वायम्भुव मनुके वंशका वृत्तान्त तो हमने विस्तार सहित सुना, इस मन्वतरमें ही मनुकी कन्याओंमें विश्वके रचनेवाले मरीचादि पुत्र पौत्रादि रूपसे उत्पन्न हुये थे, सो अब आप कृपा करके

मनु लोगोंका वृत्तान्त कहना आरंभ कीजिये ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! उन सब मन्वन्तरोंमें हरिका महत्तर जन्म और कर्मका विवरण जो पंडित लोग कहा करतेहैं, मैं उसके सुननेकी इच्छा करताहूं, सो आप सब मुझसे कहिये ॥ २ ॥ भगवान् विश्वभावनने पिछले पिछले मन्वन्तरोंमें जो जो चारित्र किये और आगेको जो जो करेंगे और वर्तमान मन्वन्तरमें जो कुछ लीला करते हैं, वह सब आप कहैं ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस कल्पमें स्वायम्भुव मनु आदि छः मनु तो होचुके हैं इस मन्वन्तरमें जिस स्वायम्भुव मनु इत्यादिकी उत्पत्ति हुई, उसका वृत्तान्त हम तुमसे कह चुके हैं ॥ ४ ॥ भगवान् विष्णुजीने धर्म ज्ञानोपदेशके लिये स्वायम्भुव मनुकी आकूति और देवहूती नामक दो बेटियोंमें कपिल और यज्ञरूपमें जन्म ग्रहण करके उनके पुत्रत्वको प्राप्त हुये ॥ ५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवान् कपिलजीका कार्य प्रथम वर्णन कर आये हैं । और यज्ञ भगवान्ने जो कुछ कहा वह पीछे कहेंगे ॥ ६ ॥ शतरूपाके पति यह प्रभु (मनु) कर्मयोगसे विरक्त हो, राज्य भोगको छोड तप करनेके लिये अपनी स्त्रीको साथ ले वनमें चलेगये ॥ ७ ॥ उन्होंने सुनन्दा नदीके किनारे एक पाँवसे खडे होकर सौ वर्षतक निरंतर अति कठोर तप करके विस्मितकी समान हो यह वक्ष्यमाण वचन कहे थे ॥ ८ ॥ मनुजीने कहा था कि, स्वतः चित्स्वरूप और इसी करके प्रयुक्त जो चिदात्मा है, उससे विश्व चैतन्ययुक्त होताहै, परन्तु यह विश्व सचेतन करनेको समर्थ नहीं है और इस पुरुषके (जीव) शयन करनेपर जो जाग्रत् अर्थात् सार्थ स्वरूप वर्तमान रहते हैं । क्या आश्चर्य है कि, यह जन उसको नहीं जानता परन्तु वह इसको जानते हैं ॥ ९ ॥ लोकमें जो कुछ प्राणियोंके सहित दिखाई देता है, वह सबही ईश्वरकी सत्ता और चैतन्यतासे व्याप्त है इसलिये ईश्वरने जो कुछ दान कियाहै, उस्सेही सब भोगोंको भोगो । और अपने लिये पराये दानकी वांछा न करो । अथवा और किसीके पास हैही क्या धन, जो उसकी वाञ्छा करोगे ? ॥ १० ॥ इसके अतिरिक्त वह सबको देखते हैं, परन्तु लोक अथवा किसीकेभी नेत्र उसको नहीं देखसक्ते, क्योंकि वह नेत्रादिकके विषय नहीं हैं परन्तु घटादिके नाशसे देवदत्तादिका तद्विषयक चाक्षुषज्ञान नाशको प्राप्त नहीं होता और वैसे आकारोंकी उत्पन्न हुई वृत्तिही नाशको प्राप्त होती है । स्वतःसिद्ध ज्ञानका विनाश नहीं होता । क्योंकि प्रकाश वस्तुके विनाशसे सूर्यके प्रकाशका नाश कभी नहीं होता, इसलिये सर्व भूतोंके अंतर्यामी असङ्ग उन ईश्वरका भजन करो ॥ ११ ॥ जिसका आदि, अन्त, मध्य, अपना, पराया और भीतर, बाहर कुछ नहीं है । परन्तु जिससे विश्वके यह सब आदि अंत प्रभृति होते हैं और यह विश्व जिसका यह स्वरूप है, वही सत्य और परिपूर्ण ब्रह्म है ॥ १२ ॥ वही ईश, अज, सत्य, स्वयंप्रकाश और निर्विकार है, यह विश्व उसीका शरीर है, उसके नाम बहुत हैं, वह अपनी मायासे विशेष जन्मादि विधान करते और नित्य सिद्ध विद्याके हेतु इस मायाको त्यागकर निष्क्रिय होरहेहैं ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे ईश्वर कर्म करके फिर उनको छोड कर्मरहित होनेसे ऋषिलोगभी अकर्म्मार्थ अर्थात् मुक्तिके लिये पहले यत्न

करतेहैं, क्योंकि जो पुरुष चेष्टा करते रहतेहैं, वह प्रायः निश्चेष्टताको पाते हैं ॥ १४ ॥ चेष्टाकारी पुरुष कर्मोंके द्वारा घिर जाते हैं, वा वह कोषकार कीडेकी समान बंधनसे बँध जाते हैं। इस प्रकारकी शंका नहीं की जासक्ती। क्योंकि भगवान् ईश्वर चेष्टा करते हैं और उसमें आसक्त नहीं होते, इसलिये जो पुरुषभी उनकी अनुवृत्ति करते हैं वहभी आत्मलाभ होनेसे चरितार्थ होजाते हैं और कभी उसमें आसक्त नहीं होते ॥ १५ ॥ इसलिये जो राम कृष्णादि नाना अवताररूप निज मार्गमें भली भाँति अवस्थित हो वेदोक्त कर्माचरण करते हैं और स्वयं पूर्ण निराशी, अहंकाररहित, स्वयं प्रभु हैं, इस कारण किसी दूसरेसे वह नियुक्त नहीं होते और जो अखिलधर्मका प्रचार करनेके लिये अपने आचारसे मनुष्योंको शिखावन देते हैं, हम उन्हीं ईश्वरकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! शतरूपाके पति यज्ञमें समाधि लगाय उपनिषद्के मंत्र उच्चारण करते थे, असुर और राक्षसगण उनको देखकर अवशकी समान समझ, भूँख लगनेसे उनके खानेको दौडे ॥ १७ ॥ वह यज्ञ स्वयं सर्वगत हरि उन असुर और राक्षसोंका ऐसा कर्म जानतेही अपने पुत्र याम नामक देवताओंके साथ उनको मारकर आप स्वयं इन्द्र हो स्वर्गका पालन करने लगे ॥ १८ ॥ हे राजन्! अग्निका पुत्र स्वारोचिष दूसरा मनु हुआ. उसके द्युमत्, सुषेण और रोचिष्मान प्रभृति इस मनुके पुत्र हुए। इस मन्वन्तरमें रोचन नाम इन्द्र और तुषितादिक देवता हुए। और ऊर्ज्वस्तम्भादि ब्रह्मवादी सप्तऋषि हुए ॥ १९ ॥ २० ॥ इस मन्वन्तरमें वेदशिरा ऋषिके तुषिता नाम जो पत्नी थीं, उसके गर्भमें इस ऋषिके विभु नाम विख्यात भगवान् उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ इस विभुका चरित्र कहते हैं तुम सुनो। जब इन विभुने कौमार ब्रह्मचारी व्रत ग्रहण किया, तब अट्ठासी सहस्र (८८०००) व्रतधारी मुनियोंने उनके निकट व्रतकी शिक्षा पाई ॥ २२ ॥ प्रियव्रतका पुत्र तीसरा उत्तम नाम मनु हुआ, उसके पुत्र पवन, सृञ्जय और यज्ञहोत्रादि हुए ॥ २३ ॥ इस मन्वन्तरमें प्रमदादि, सप्तऋषि हुए। वह वसिष्ठजीकी संतान हुए. सत्या, देवश्रुता और भद्रा यह देवता हुए और सत्यजित इन्द्र हुए ॥ २४ ॥ और इसी मन्वन्तरमें धर्मकी सूनृता नामक भार्यासे भगवान् पुरुषोत्तम सत्यव्रतगणोंके साथ उत्पन्न हो सत्यसेनके नामसे विख्यात हुए ॥ २५ ॥ उन्हीं सत्यसेनने इन्द्रके मित्र होकर झूंठ बोलनेवाले दुःशील, असत, यक्ष, राक्षसोंको और भूतद्रोही प्राणियोंको मारडाला ॥ २६ ॥ तीसरे मनु उत्तमके भ्राता तामस चौथे मनु हुए। उनके पृथु, ख्याति, नरकेतु प्रभृति दश पुत्र हुए ॥ २७ ॥ इस मन्वन्तरमें सत्यक, हरि और वीर नामक देवगण व त्रिशिख नाम इन्द्र और ज्योतिर्धामादि सप्त ऋषि हुए ॥ ॥ २८ ॥ हे राजन्! तामस मन्वन्तरमें ऊपर कहे हुए सत्यकादिके अतिरिक्त अतिपराक्रमी वैधृतिगणभी देवता हुए थे, जो कि, विधृतिके पुत्र थे. हे महाराज! जब कालके वश होकर वेद नष्ट होरहे थे, तब इन्हीं सब देवताओंने अपने अपने तेजसे उन सबको धारण किया था ॥ २९ ॥ जिन्होंने ग्राहके मुखसे गजेन्द्रको छुडाया था, उन भगवान्

विष्णुनेभी हरिमेधाकी हरिणी नाम स्त्रीके उदरसे इसी मन्वन्तरमें जन्म लिया और वह हरि नामसे विख्यात हुए थे. राजा परीक्षित् बोले कि, हे व्यासनन्दन ! ग्राहसे पकडे हुए गजेन्द्रको भगवान् हरिने किसप्रकारसे छुडाया था, उस कथाको मैं आपके मुखसे विस्तार सहित सुना चाहता हूं ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! जिसमें उत्तम श्लोक भगवान् हरि गाये जाते हैं, वह कथा अतिशय पवित्र, धन्य, शुभदायक और मंगलकारी है ॥ ३१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणगण ! जब इसप्रकार प्रायोपविष्टव्रत धारण कर राजा परीक्षित्ने योगिश्रेष्ठ शुकदेवजीसे भगवत्कथा कहनेके लिये प्रार्थना की । तब उन व्यासपुत्रजीने श्रवण करने वाले मुनियोंकी सभामें राजा परीक्षित्के वचनोंपर आनन्द प्रगट करके कथाका आरम्भ किया ॥ ३२ ॥

सवैया-स्थावर जङ्गम रूप जिते बस भाँति अनेकन रूप धरे हैं ॥
सच्चितआनँदरूप महा प्रभु आतम एक प्रकाश करे हैं ॥
सो बिनु जानेते सिन्धु समान औ जानेते गोपद बिन्दु तरे हैं ॥
वन्दित ताहि सदा शुकदेवजी ब्रह्म चराचर रूप परे हैं ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-दूजेमें कर करति युत, जलमें करत विहार ।
जब पकडो गज ग्राहने, तब गज करी पुकार ॥

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, हे राजन् ! त्रिकूट नामक एक प्रधान पर्वत है, वह पर्वत अतिशय श्रीमान् और चारोंओर क्षीरसागरसे घिराहुआ है और दशसहस्र योजन ऊंचा है ॥ १ ॥ और चारों ओरको उसका विस्तारभी दशसहस्र योजनका है; वह पर्वत अपने चाँदी सोने और लोहेके तीन बडे २ शृंगोंसे समुद्र और सब दिशाओंको शोभायमान कररहा है, इसीलिये उसका नाम त्रिकूट हुआ है ॥ २ ॥ त्रिकूट पर्वतके और दूसरे शिखर अनेक भाँतिके रत्न और धातुओंसे चित्रित हैं । उन शिखरोंसे और विविध भाँतिकी लता, बेल, झाडी और वृक्षोंसे झरनोंके गिरते हुए जलके शब्दसे सब दिशाओंकी शोभा होरही है ॥ ३ ॥ और जलकी तरंगसे इस पर्वतका मूलभाग धुलनेसे पलाशकी समान रंगवाली मर्कत मणिसे निकटकी भूमि मानो श्यामवर्ण होरही है ॥ ४ ॥ इस पर्वतकी कन्दरामें क्रीडा करते हुए सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, बडे २ नाग, किन्नर और अप्सराओंसे सदाही परिपूर्ण रहती है ॥ ५ ॥ इस पर्वतकी जो कंदरामें ऊपर कहे हुए किन्नर इत्यादिके संगीत शब्दसे शब्दायमान है । इसीस्थानके रहनेवाले प्रति मद गर्वित सिंहोंके झुण्ड दूसरे सिंहोंकी आशंकासे उस शब्दको न सहकर गर्जन करते हैं ॥ ६ ॥ और इस पर्वतकी सब गुफायें विविध भाँतिके बनैले पशुओंके समूहसे सदा भरपूर और उनके व्याप्त रहनेसे मानो स्वयं (आपही) सज रही हैं । त्रिकूट पर्वतके ऊपर जो देवता लोगोंकी फुलवाडियें हैं, उनके भाँति भाँतिके चित्र विचित्र पुष्पोंके वृक्ष लग

रहे हैं। उनपर बैठे हुए रंग रंगके विहंग निरन्तर मधुर २ बोलियें बोल रहे हैं ॥ ७ ॥ यह पर्वत अनेक निर्मल नदी और सरोवरोंसे भूषित हैं, उन सब नदी और सरोवरोंके किनारे मणिमय बाल बाँधा हुआ है। देवताओंकी स्त्रियें जब उन नदी और सरोवरोंमें स्नान करती हैं, तब वहां अति सुगंधि फैलजाती है कि, जिससे वहांके जलमें और पवनमें सुगंधि होजाती है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उस पर्वतकी गुफामें महात्मा वरुणजीका एक उपवन है, उसका नाम ऋतुमत् है । और वहां देवता लोगोंकी स्त्रियें क्रीडा करती हैं और वहांके वृक्षोंमें सब दिन फल फूल लगे रहते हैं कि, जिस्से यह उद्यान (बाग) सदा सब प्रकारसे शोभायमान् रहता है ॥ ९ ॥ हे महाराज ! इस त्रिकूटपर्वतके ऊपर कितने वृक्ष हैं उन सबका वर्णन मैं नहीं करसक्ता । मन्दार, पारिजात, पाटल, अशोक, चम्पा ॥ १० ॥ आन, चिरौंजी, कटहर, आम्र, आम्रातक, सुपारी, नारियल, खजुर, दाडिम ॥ ॥ ११ ॥ महुआ, साल, ताल, तमाल, पीतसाल, अर्जुन, रीठा, गूलर, पिलखन, बड, डाक, चन्दन ॥ १२ ॥ नीम, कचनार, पिचुमन्द, कोविदार, स्वरूषा, देवदारु, दाख, किसमिस, ईख, केला, जामुन, बेरी, बहेडा, हड, आमला, कपित्थ ॥ १३ ॥ बेल, जंभीरी और भिलावे आदि असंख्य वृक्षोंसे यह पर्वत शोभायमान् है ॥ १४ ॥ इस त्रिकूट पर्वतपर एक बडा भारी सरोवर है, उसमें सुवर्णके कमल सदा प्रकाशमान रहते हैं और अगणित कुमुद (बबूले) कह्लार, कमल और शतपत्रकी शोभासे वह अति उद्दीप्त है। और यह सरोवर मतवाले भौंरोंके शब्दसे शब्दायमान है ॥१५॥ और मधुर बोली बोलनेवाले विशेष करके हंस, कारंडव, चक्रवाक और सारसोंसे व्याप्त था, व जलमुर्गावी, पपीहे, दादुर, इनके समूहभी वहां गूँज रहे हैं ॥ १६ ॥ और मच्छ व कछुए इस प्रकारसे पैरतेहैं कि, जिनसे कमलके फूल हिलजाते हैं और उनके परागसे सरोवरका जल विभूषित होजाता है. उसके चारोंओर कदम्ब, वेंत, नरसल, लोटन, कदम्ब, धूलिकदम्ब, दाडिसी, बेल ॥ १७ ॥ कुन्द, कुरबक, अशोक, शिरस, कुटज, गौन्दी, अर्जक, स्वर्णजुही, नागकेसर, पुन्नाग, इस जातिके ॥ १८ ॥ जाही, जुही, चँबेली, कमल, माधवी, मालती, गन्धराज, मदनबाण, चाँदनी, कनेर, सेवती, गुलाब, मोतिया, गेंदा, हारसिंगार ऐचक, पेचक, मौलसिरी, जालक अनेक अनेक लताओंके रहनेसे वह सरोवर चारों ओरसे घिराहुवा है इनके अतिरिक्त और जो पेड किनारेपर हैं, उन सब पर सदा फल फूलोंके रहनेसे वहां सब ऋतुयें नित्य वर्त्तमान हैं, इस कारण इन वृक्षोंके लगे रहनेसे वह सरोवर अत्यन्तही शोभायमान है ॥ १९ ॥ वहां पर एक दिन पर्वतके वनमें रहनेवाला हाथियोंके यूथका पालन करनेवाला बडे बलवाला हाथी हथिनियोंके सहित विचरण करता हुआ. प्याससे पीडित अपने यूथको साथ जल पीनेको सरोवरके निकट आया, वह कांटोंके सहित कीचक, ठांसबाँस और बेतोंसे युक्त बडी बडी लताओंके समूह और बडे बडे वृक्षोंको तोडता चला आता था ॥ २० ॥ उसका ऐसा प्रताप था कि, उसकी गंध पातेही सिंह, गजेन्द्र, व्याघ्रादि और गैंडे, कृष्ण साँप, शलभ, कूल और चमरगाय भयके मारे

मारने लगे ॥ २१ ॥ परन्तु भेडिया, सुअर, भैंसे, रीछ, मेह,लंगूर,कुत्ता, बन्दर, हरिण, खरगोश आदि जो क्षुद्र जीव हैं, यह उसकी दृष्टि बचाकर उसके अनुग्रहसे निर्भय होकर विचरण करने लगे हैं॥२२॥ यह गजेन्द्र ग्रीष्मसे संतापित हो प्यासका मारा अपने यूथको साथलिये अतिवेगसे इस सरोवरके निकट आया।उसके साथमें बहुत हथिनियें थीं और मद चुआतेहुए बहुत सारे बच्चेभी दौडकर पीछेसे आरहे थे, वह गजेन्द्र ऐसे बडे भारी दलको साथ लेकर निकला कि, उसके भयसे त्रिकूट पर्वत सब प्रकारसे कम्पायमान होगया इसकी गण्डस्थलसे जो मद चू रहा था, उसमें मदका जल पीनेवाले भौंरे उसकी सेवा कर रहे थे ॥ २३ ॥ इस सरोवरकी वायु जो कमलकी परागसे सुवासित होकर आती थी, उसकी सुगन्धिको पाकर उस गजेन्द्रके दोनों नेत्र मदके मारे विह्वल होरहे थे ॥ २४ ॥ यूथपति सरोवरपर जा स्नानकर अपने ऊपर जल छिडक छिडक थकावटको मिटाकर फिर कांचन कमल और उत्पल रेणुसे सुगन्धित निर्मल और मीठा जल शुण्डमें भरकर पीने लगा ॥ २५ ॥ उसके उपरान्त शुण्डमें भरे शीतल जलसे वह दयावान् गृही पुरुषोंकी नाईं अपनी हथिनियों और बच्चोंको स्नान कराने लगा और जलभी पिलाया, वह गजेन्द्र अतिशय दुर्मद और परमेश्वरकी मायासे मोहित था, इसकारण इस कार्यके करनेसे दूसरे किसीको जो बडाभारी कष्ट होता था उसको वह नहीं जानसका ॥ २६ ॥ परन्तु हे राजन्! इसी सरोवरमें एक बलवान् ग्राह (नाक) रहता था, थोडीही देरके पीछे उसने देव प्रेरितकी समान आय विजातीय क्रोधसे इस गजेन्द्र (हाथी) के पैरको झपटकर पकड लिया, यह यूथपतिभी अति बलवान् था, जब यह इस प्रकारकी विपदमें पडा, तब अपने छुटकारेके लिये यथासाध्य विक्रम प्रकाश करने लगा ॥ २७ ॥ ग्राहमेंभी थोडा बल नहीं था, इसनेभी उत्तेजित हो महावेगसे गजेन्द्रके चरणको खैंचना आरम्भ कर दिया, यह देखकर हथिनियें हीनमन हो केवल हाहाकार करने लगीं, व और जो हाथी थे वह इस गजेन्द्रको पकड रहे थे, परन्तु उस ग्राहके बलसे इसको छुडानेके लिये समर्थ न हुये ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार गजेन्द्र और ग्राह दोनोंका महाघोर युद्ध हुवा । वह दोनों एक दूसरेको जलके बाहर भीतरको खैंचते थे, इस प्रकारसे एक सहस्र वर्ष बीतगये । परन्तु इस बीचमें किसीकेभी प्राण न गये, हाथीभी जीवित रहा और ग्राहके प्राणभी न निकले, तब देवतालोग यह बात देखकर अति आश्चर्यंकरनेलगे ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त बहुत कालके पीछे गजेन्द्रका उत्साह, शारीरिक बल, शक्ति और इन्द्रियोंका वीर्य घटने लगा इससे ग्राहसे जलमें खैंचे जानेपर वह गजेन्द्र व्याकुल होने लगा, परन्तु उस नाककी उत्साहशक्ति क्रम २ से बढतीही जाती थी ॥ ३० ॥ यह यूथपति देहधारी इस हेतुसे जब इस प्रकार प्राणोंके संकटको प्राप्त हुआ और किसी प्रकारसे अपनेको नहीं छुडासका तब बहुत देरतक चिन्ता करतारहा, इसके पीछे उसके मनमें यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥ ३१ ॥ कि मैं अत्यन्त व्याकुल होगया हूं और मेरी जातिवाले हाथीभी मुझको छुडानेको समर्थ नहीं हैं और मैं स्वयंभी समर्थ नहीं हूं फिर इसकी क्या आशा कीजाय

कि, यह हथिनियें मुझे छुडावेंगी ? मैं ग्राहरूप विधाताकी फाँसीसे बँधगयाहूं ! इस फाँसीसे यद्यपि मुझको कोई नहीं छुडा सक्ता, तथापि जो ब्रह्मादिक देवगणोंके आश्रय हैं, उन शुद्ध सच्चिदानंद परब्रह्म परमेश्वरकी मैं शरण होताहूं ॥ ३२ ॥ वह अनिर्वचनीय ईश हैं,अत्यन्त प्रचण्डवेगसे दौडते हुये बलवान् मृत्युरूप सर्पसे डरकर जो उनकी शरणमें आते हैं, वह उनकी रक्षा करते हैं, उनके भयसे मृत्युभी भागती है, मैं उनकीही शरणमें जाताहूं ॥ ३३ ॥

सवैया-ह्वै अति आरत मैं विनती बहु वार करी करुणा रसभीनी।
कृष्ण कृपानिधि दीनके बंधु सुनी असुनी तुम काहे को कीनी ॥
रीझते रंचक ही गुणसों वह बान बिसारि मनो अब दीनी।
जानि परी तुमहूं प्रभुजी कलिकालके दानिनकी गति लीनी ॥ १॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-जिन हरिकी स्तुति करी, जब गजेन्द्र बहुवार।
तिसरेमें गजराजको, उन हरि लियो उबार॥

अब श्रीशुकदेवजी कहेहैं कि, हे राजा परीक्षित् ! उन गजेन्द्रने बुद्धिसे इस प्रकार निश्चय करके हृदयमें अपने मनको सावधान किया और पूर्वजन्ममें जो इन्द्रद्युम्न नामक राजा था और यह स्तोत्र अपना सीखा हुवा था उसका उसने जप करना आरंभ किया ॥ १ ॥ गजने कहा कि मुझको ग्राहने पकडा है, इस कारण ऐसी शक्ति नहीं कि मैं कायिक प्रणाम करसकूं इसलिये उन भगवान्‌के प्रति केवल प्रशांतिका ध्यान करताहूं । मैं उनके विषयमें अनजान नहीं हूं । उनसेही यह समस्त देहादि सचेतन हुये हैं, क्योंकि वह पुरुष अर्थात् देहरूप पुरमें कारणस्वरूपसे प्रविष्ट हैं । और वही प्रकृतिपुरुषरूपी और परम ईश्वर हैं ॥ २ ॥ और जिसमें यह विश्व अधिष्ठित है और जिससे यह उत्पन्न है और जिस करके यह स्पष्ट और जो स्वयं इस विश्वके रूप हैं, कार्य और कारणसे भिन्न हैं, उन स्वतःसिद्ध विभुकी मैं शरण ग्रहण करता हूं ॥ ३ ॥ जिसकी निज माया उसमें ही (ईश्वरमें) अर्पित है, यह विश्व कभी लीन होता है, कभी प्रकाशमान् होता है जो साक्षी होकर कार्य और कारण दोनोंहीको सदा देखते हैं. क्योंकि उनकी दृष्टि अलुप्त है, वह स्वयंप्रकाश परात्पर अर्थात् प्रकाशक जो चक्षुरादि हैं, उनकेभी प्रकाशक हैं, वह परमेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥ कालके वश समस्त लोक और सबके कारण लोकपाल संपूर्ण रूपमें विनाशको प्राप्त होनेपर उस समय जो दुर्भेद्य अनन्त अंधकार मात्र थे, विभु उस अंधकार राशिके पार रहकर विराजमान होते हैं ॥ ५ ॥ देवगण और ऋषिगण भी जिसके स्वरूपको नहीं जानते, फिर आज कलका और कौन प्राणी उसके जानने वा कहनेको समर्थ होगा ? वह नटकी समान अनेक आकार धारण कर चेष्टा किया करता है उसका चरित्र जानना अतिदुर्लभ है, वह मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥

सब प्राणियोंके सुहृद सुसाधुगण चित्तके मंगलकारी चरणोंका दर्शन करनेकी वासनासे सब प्राणियोंमें समान दृष्टि कर बनमें अक्षत ब्रह्मचर्य व्रतका आचरण करते हैं, वही परमात्मा हमारी गति होवें ॥ ७ ॥ और जिसका जन्म कर्म नहीं नाम रूप नहीं, गुण दोष नहीं, तथापि लोकको उत्पत्ति और विनाशार्थ जो अपनी मायासे समय समयमें यह समस्त (जन्मादि) स्वीकार करते हैं, मैं उन भगवान्को नमस्कार करताहूं ॥ ८ ॥ वह अरूप ब्रह्म हैं और वही बहुरूपी व अनन्त शक्तिमान् हैं । क्योंकि उसके सब कर्म अति आश्चर्य-कारी हैं, इसलिये मैं उन परमेश्वरको नमस्कार करताहूं ॥ ९ ॥ वह सबका प्रकाशक है, इसलिये वह आप दूसरे प्रकाशके विषय नहीं है और वह परमात्मा अर्थात् जीवका नियन्ता है, उसको मेरा नमस्कार है, वह वाक् मन और चित्तकी वृत्तिमें आनेके योग्य नहीं है; उनको मैं बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥ १० ॥ परन्तु वह इस प्रकारके होकरभी निर्गुण और शुद्ध संन्यास योगमें प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ करते हैं, उन कैवल्यनाथको मैं नमस्कार करताहूं, उनका स्वरूप मोक्षके आनन्दका अनुभव करनेवालाहै ॥ ११ ॥ और वह शान्त घोर, मूढ और सत्वादि धर्मानुकारी हैं, उनका विशेष नहीं है । वह समस्तरूप और ज्ञानघन हैं,मैं उनको नमस्कार करता हूं. ॥१२॥हे भगवन् ! आप क्षेत्रज्ञ (आत्मा) सर्वा-ध्यक्ष और सर्वसाक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करताहूं हे प्रभो ! आप क्षेत्रज्ञ सबके मूल हैं। और मूलकेभी (प्रधानकेभी)उत्पन्न होनेके हेतु हैं क्योंकि आप पूर्ण स्वरूप हैं, इससे मैं आपको नमस्कार करताहूं ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! आप सब इन्द्रियोंके विषय देखनेवाले हैं, और सब इन्द्रियोंकी वृत्ति आप जानते हैं, असत् जो अहंकार प्रपंच है, उस करके असत् रूप छायाद्वारा आप कहलाये जाते हैं अर्थात् प्रतिबिम्बद्वारा बिम्बकी समान सुकड जाते हैं क्योंकि विषयमें आपका सद्रूप आभास विद्यमान रहता है, इसलिये मैं आपको नमस्कार करताहूं ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! आप सर्वकारणरूपी हैं इसलिये स्वयं निष्कारण हैं । परन्तु कारण होनेपरभी मृत्तिकादिकी समान आपको विकार नहीं होता, अर्थात् आप अद्भुत कारण हैं । और पंचरात्रादि आगम और वेद हैं, यह सबके महासागर अर्थात् सोतेहैं, सबकी समान पर्यवसान स्थान और मोक्षरूपी हैं, इसलिये उत्तम साधु जनोंके आश्रय आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आप गुण रूप अरणिसे ढके हुए हैं ज्ञानाग्नि स्वरूप हैं, परन्तु उन सब गुणोंका कार्य आपके मनकी वृत्ति मात्र नहीं है । जो लोग आत्मतत्त्वके विचारसे विधिनिषेधरूप आगम छोडते हैं उनके बीचमें आप स्वयं प्रकाश पाते हैं, सो आपको मेरा नमस्कार है ॥ १६ ॥ प्रभो ! मेरी समान शरण आये पशुकी त्रास (अविद्या) आपके सन्मुख छूट जाती है क्योंकि आप मुक्त और आपकी करुणा अपार है, अधिक करके करुणा बाँटनेके विषयमें आपको आलस्य नहीं है, इसलिये मैं आपको नमस्कार करताहूं । हे प्रभो ! समस्त देहधारियोंके अंतरमें प्रस्थान जो ज्ञान है, आप अंतर्यामीरूपसे उसके स्वरूप हैं और सब प्राणियोंके प्रतीत करानेको समर्थ हैं और शरीर धारियोंके अन्तःकरणमें जो स्थित होरहे हैं, इससे परिछिन्न नहीं हैं, सो

आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं, तथापि देह, पुत्र, गृह, वित्त, सेवक इत्यादिमें आसक्त पुरुष आपको नहीं पासक्ते, क्योंकि आप गुणसंगवर्जित हैं इसलिये देहादिमें अनासक्त मनुष्य लोगही आपकी चिन्ता किया करते हैं आप ज्ञानात्मा ईश्वर हैं मैं आपको नमस्कार करताहूं ॥ १८ ॥ अहो ! धर्म, अर्थ, मुक्ति, कामीपुरुष जिनकी भजना करके केवल अपने अपने अभिलाप किये धर्मादिकोंको प्राप्त नहीं होते, उनके अकामना किये हुए उनके अतिरिक्त और आशिष और अव्यय देहभी जो स्वयं प्रधान किया करते हैं, वह भगवान् महाशय दयावान् जो हैं वह केवल मुझको इस ग्राहसे छुडावे, और मैं कुछ कामना नहीं करता ॥ १९ ॥ मैं भक्तिके सुखको नहीं जानता । इसलिये मैंने केवल इतनीही प्रार्थना की और जो लोग उसके एकान्त भक्त हैं मुक्त पुरुषोंकी सेवा करके कामना रहित होगयेहैं, इसलिये केवल उसका सुमंगल चरित्र गान करके आनंदके समुद्रमें मग्न रहते हैं, वह किसी अर्थकी वांछा नहीं करते ॥ २० ॥ वह परेश, अक्षर, अव्यक्त, परब्रह्म, आध्यात्मिक योगसे गम्य, सूक्ष्मपदार्थकी समान इन्द्रियोंकी दृष्टिमें न आनेवाले बाहिरी दृष्टिमें सबसे अति दूर अनन्त आद्य और परिपूर्ण स्वरूप जो हैं मैं उनकी स्तुति करताहूं ॥ २१ ॥ जिसके अति छोटे अंशमें समस्त वेद, ब्रह्मादि देव और चराचर लोग पृथक् पृथक् नामवाले होकर बने हुये हैं ॥ २२ ॥ और जिस प्रकार अग्निसे लपट और सूर्यसे किरण समूह उत्पन्न होती हैं और उसमेंही लीन होजाती हैं वैसेही जिससे गुणप्रवाह अर्थात् बुद्धि, मन और शरीर उत्पन्न होते हैं और उसीमें लीन होजाते हैं ॥ २३ ॥ वह देव नहीं, दानव नहीं, मनुष्य नहीं, पशु नहीं, पक्षी नहीं, स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, नपुंसक नहीं और लिंगत्रय शून्य प्राणि मात्रभी नहीं है और गुण नहीं, कर्म नहीं, सत् नहीं, असत् नहीं, सब पदार्थोंके निषेधका अविधित्व रूपमें जो बचा रहताहै, वह परन्तु मायासे अशेषात्मा होते हैं, वह भगवान् मेरे छुडानेके लिये शीघ्र प्रगट होवे ॥ २४ ॥ मैं इस ग्राहसे शरीरके छुडाने और इसके बचानेकी इच्छा नहीं करता क्योंकि भीतर बाहरमें व्याप्त इस गज जन्मसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है आत्माके प्रकाशका ढकना जो अज्ञान है, मैं उस अज्ञानसे मोक्षकी इच्छा करताहूं क्योंकि कालसे मोक्षका नाश कभी नहीं हो सक्ता, अथवा देहके नाशसे देहका बंधन अवश्यही नाश होगा, फिर मोक्षकी प्रार्थनाका क्या प्रयोजन है ? आत्मप्रकाशका ढकना जो कालसे भी नष्ट नहीं होता, जो केवल ज्ञानको नाश करनेवाला है, उससेही छुटकारा होवै ॥ ॥२५॥ जिसके निकट यह प्रार्थना करताहूं, उसको मैं नहीं जानता. वह संसारको रचनेवाला विश्वरूप और विश्वके अतिरिक्त है ॥ विश्व (वेद) उसके उपकरण हैं, वह विश्वकी आत्मा हैं और अज ब्रह्म और परमपद स्वरूप हैं, मैं केवल उस योगेश्वर भगवान्को नमस्कार करताहूं ॥ २६ ॥ और भगवद्धर्मरूप योगसे जिनके समस्त कर्म भस्म होगये हैं, ऐसे योगी मनुष्य योगसे शुद्ध हुये हृदयमें जिनको देखते हैं । मैं उन योगेशको प्रणाम करता हूं ॥२७॥ हे भगवन् ! आपको नमस्कार ! नमस्कार ! ! आपकी तीन शक्तियोंका वेग अर्थात्

रागादि अतिशय असह्य हैं आप सब इन्द्रियोंमें शब्दादि विषय स्वरूपसे प्रतीयमान होते हैं, इस कारण जिसकी इन्द्रियें कुत्सित हैं, वह आपके मार्गको नहीं पासक्ते हैं ॥ २८ ॥ अहो ! जिनकी मायाके वश अहं बुद्धिसे आवृत अपनी मायाको यह पुरुष नहीं जानता है, उनका माहात्म्य अति दुरंत है, उन्हीं भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! वह गजेन्द्र इस प्रकारसे मूर्तिभेद न करके परम तत्त्वकी वर्णना करता रहा. ब्रह्मादि देवगण पृथक् २ मूर्तिके अभिमानी इस कारण उसके छुडानेको जब वहां न गये, तब अखिलके आत्मा अकारण सर्व देवमय भगवान् हरि स्वयं प्रगट हुये ॥ ३० ॥ जगन्निवास भगवान् उस गजेन्द्रको इस प्रकार आरत देखकर और स्तुति करनेवाले देवता लोगोंके समूहके साथ उसकी कीहुई स्तुति सुनकर चक्रायुध धारण किये और गरुडपर सवार हुये जहाँ वह गजेन्द्र व्याकुल होरहा था, वहांको अति शीघ्रतासे चले ॥ ३१ ॥ गजेन्द्र सरोवरके भीतर महा बलवान् ग्राह (नाक) से अतिशय आर्त होरहा था, वह आकाशमें गरुडके ऊपर चक्रधारी भगवान्‌को देखकर कमलके फूलके साथ अपनी शुण्डाको उठाता हुआ और अति कष्टसे, " हे नारायण ! हे अखिलगुरो !! हे भगवन् !!! आपको मेरा नमस्कार है " यह वाक्य कहने लगा ॥ ॥ ३२ ॥ भगवान् उसको अत्यन्त पीडित देखकर दयाके कारण अपने मनहींमन कहने लगे कि " गरुडतो धीमी चालवाला है " इस कारण ऊपरसे सहसा उतर पडे, और वहाँ वेगसे गजेन्द्रके निकट जाय, नाक सहित उनको सरोवरसे निकाल लिया, उसके पीछे दर्शनकारी देवता लोगोंके सामने चक्रसे उस ग्राहका वदन विदारण कर गजेन्द्रको छुडा दिया ॥ ३३ ॥

भजन-एक यही अचरज मुझे आवै । नाथ कैसे गजके फंद छुडाये ॥ गज और ग्राह लडे जल भीतर लडत लडत गज हारे ॥ जौ भर शुण्ड रही जल ऊपर तब हरि नाम पुकारे । नाथ कैसे गजके फंद छुडाये ॥ ॥ १ ॥ शबरीके बेर सुदामाके तंदुल रुचि रुचि भोग लगाये । दुर्योधनकी मेवा त्यागी साग विदुर घर खाये ॥ नाथ कैसे गजके फंद छुडाये ॥ २ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा-चौथेमें गंधर्व बन, ग्राह गयो निज धाम ।
गजको अपने संगले, परमधाम गये राम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उस समय ब्रह्मा, महेश इत्यादि देवगण, ऋषिगण, गन्धर्वगण भगवान्‌के इस कार्यकी प्रशंसा करते करते फूल वर्षाने लगे ॥ १ ॥ स्वर्गमें नगाडे बजनेलगे, गंधर्व नाचने गाने लगे । ऋषि और चारण व सिद्धगण उन पुरुषोत्तम भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ हे राजन् ! हूहू नामक जो गन्धर्व था,

वह देवल मुनिके शापसे यह ग्राह हुआ। जैसेही भगवान्‌ने चक्रसे उसका हृदय विदारण किया वैसेही वह आयुरहित हो अति शीघ्र पापसे छूटकर अपना परमआश्चर्य गंधर्वरूप धारण करता हुआ ॥ ३ ॥ और उत्तम श्लोक अव्यय अधीश्वर भगवान्‌को मस्तक झुका प्रणाम करके उनके गुण गान करने लगा. हे राजन्! भगवान् विष्णु परमयशके आश्रय हैं, इसलिये उनका गुण कीर्तन करनेके योग्य व उनकी सब कथायेंभी श्रेष्ठ और कहनेके योग्य हैं ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त भगवान्‌के कृपा करनेपर उस गंधर्वने उनको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा करके निष्पाप होगया और दर्शनकारी सब लोगोंके सन्मुख अपने गंधर्वलोकको चला गया ॥५॥ और यह गजेन्द्र श्रीनारायणके स्पर्श करनेसे अज्ञान स्वरूप बन्धन छूट, पीतवसन और चार भुजा धारण करके भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ * हे राजन्! यह गजेन्द्र पूर्वजन्ममें इन्द्रद्युम्ननामक विख्यात पाण्डुदेशका राजा था, यह नरनाथ विष्णुव्रत परायण होकर अपना समय व्यतीत करता था ॥ ७ ॥ एक समय जितेन्द्रिय, मौनवृत्ती जटाधारण किये तपस्वी हो मलयाचलमें जाय, वहां आश्रम बनाय वास करने लगा और उपासनाके सहित यत्नसे भगवान् हरिकी पूजा करने लगा ॥ ८ ॥ उसी समय महायशवान् अगस्त्याजी शिष्योंके सहित उनके आश्रममें आनकर उपस्थित हुये परन्तु राजा इस प्रकारसे आराधनामें मग्न था कि, उसने अगस्त्यजीका कुछभी आदर सन्मान न किया, न कुछ पूजाही करी। निर्जनमें जिसप्रकार बैठा था, वैसेही बैठ रहा। यह देखकर अगस्त्यजीने इस राजर्षिके ऊपर महाकोप किया ॥ ९ ॥ और उसी समय यह कहकर शाप दिया कि, यह दुरात्मा अतिशय असाधु है, इसकी बुद्धि सुशील नहीं, यह ब्राह्मणका अपमान करता है, यह इसी समय तामिस्रमें प्रवेश करे. जैसे हाथी बैठा रहता है, यह दुष्टभी वैसेही बैठा रहा, इस कारण यह हाथीका जन्म ग्रहण करै ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! महर्षि अगस्त्यजी इस प्रकार शाप दे अपने शिष्योंके साथ चले गये, राजा इन्द्रद्युम्न इस घटनाकी होनहार जान हाथीकी योनिको प्राप्त हुआ, इस कारण नारायणके विषयमें जो उसकी स्मृति थी, वह शीघ्रही जाती रही, परन्तु उसने बहुत कालतक भगवान्

---

* एक समय यह गंधर्व अपनी स्त्रियोंको साथ लिये हुए सरोवरमें क्रीडा करता था, उसी समय उस सरोवरमें देवल ऋषि स्नान करने लगे तब गन्धर्वने जलमें गोता लगाया, इन मुनिका चरण पकडकर खैंचा, तब मुनिने क्रोध कर शापदिया कि, अरे दुष्टात्मा! कुमति! तैने विना अपराध मुझको खैंचा, इसलिये ग्राह होजा तब गन्धर्वने बडी स्तुति करी, तब देवलऋषिने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि, जब तू गजराजका चरण पकडेगा और उसे छुडानेको विष्णु भगवान् आवेंगे तो सुदर्शन चक्रसे वह तुझे मारेंगे और तेरा उद्धार हो जायगा ॥

हरिकी पूजा की थी,इस कारण हाथीकी योनि प्राप्त होनेपरभी उसकी कुछ स्मृति ठीक थी ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन्! भगवान् पद्मनाभने इस प्रकारसे गजयूथपतिको छुडाय, पार्षद बनाय, अपने साथ लेलिया। मुरलीधरके इस कर्मसे गंधर्व, सिद्ध और देवता लोग गान करने लगे, तिसके पीछे भगवान् अपने अद्भुत लोकको चलेगये ॥१३॥ हे महाराज! यह गजेन्द्रमोक्षरूप श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदका प्रभाव मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया। हे कुरु-श्रेष्ठ! जो इस वृत्तान्तको श्रवण करते हैं, उनको स्वर्ग और यश होता है और कलिमल नष्ट होकर दुःस्वप्न बन्द होजाते हैं ॥ १४ ॥ इस कारण श्रेष्ठकामनावाले द्विजातिगण प्रातः कालही उठ पवित्रहो, बुरे स्वप्नोंकी शान्तिके लिये यथाविधिसे इस स्तोत्रका पाठ करते हैं ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! सर्व भूतात्मा भगवान् हरिने प्रसन्न होकर श्रवणकारी सब प्राणि-योंके सामने शापसे छूटे उस गजेन्द्रसे ऐसे वचन कहे थे. श्रीभगवान् बोले कि, हे अंग! जो पुरुष हमको और तुमको स्मरण करेंगे और इस सरोवर गिरिकन्दर वन बेंत कीचक (खुक्खलबाँस जिसमें बाँसुरीकेसा शब्द हुवा करता है) ऐसा झोपडियोंको और कल्पवृक्ष इन सबका ॥ १६ ॥ १७ ॥ शृंग और ब्रह्मका और शिवका इन स्थानोंका और हमारे प्रियधाम क्षीरसमुद्र और दीप्तिमान श्वेतद्वीपको स्मरण करेंगे, वह सब पापोंसे छूट जायँगे ॥ १८ ॥ और हमारे श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभमणि, वनमाला, कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शंख, पक्षिराज गरुड ॥ १९ ॥ शेषनाग और हमारी सूक्ष्मकलारूपिणी और हृदयमें रहनेवाली श्रीदेवी, महेश, देवर्षि नारद, प्रह्लाद ॥ २० ॥ और मत्स्य, कूर्मादि अवतार द्वारा हमारे किये कर्म, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि ॥ २१ ॥ प्रणव (ॐकार) सत्य, माया, गौ, ब्राह्मण, भक्ति, लक्षण, धर्म, धर्मपत्नी, सोम और कश्यपकी स्त्रियें (जो कि हमारी वेटी हैं) ॥ २२ ॥ गंगा, सरस्वती, नन्दा और कालिन्दी, यह पुण्य-मयी नदी, ऐरावत हाथी, ध्रुव, सप्तर्षि और पुण्यश्लोक मानवगण, यह सब हमारी विभूति-यें हैं ॥ २३ ॥ इसलिये जो लोग रातके पिछले प्रहर उठकर नियम सहित, एकाग्रचित्त हो इन सबका स्मरण करेंगे, वहभी सब पापोंसे,छुटकारा पावेंगे ॥ २४ ॥ हे अंग! जो पुरुष रात्रिके पिछले प्रहर जागकर इस वृत्तान्तको पढेंगे, अथवा हमारा स्मरण करेंगे, उनको हम मृत्युके समय निर्मलचित्त कर श्रेष्ठ गति देंगे ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! भगवान् हृषीकेश उस गजेन्द्रको इस प्रकारसे आज्ञा दे और शंखध्वनि करते हुए, अपने स्थानको जानेके लिये देवता लोगोंके साथ हर्ष करते हुए अपने वाहन (सवारी) गरुडजीपर आरूढ हुए और यह कहते हुए चलेगये ॥ २६ ॥

कवित्त–पाय प्रभुताई कछु कीजिये भलाई यहाँ, नाहै थिरताई वन मानिये कविनके ॥ यश अपयश रहिजात बीच पुहुमीके, मुलक खजाना रूप साथ गये किनके ॥ और महिपालनकी गिनती गिनावै कौन, रावण से ह्वै गये त्रिलोकी वश जिनके ॥ चोपदार चाकर चमूपति चँवरदार, मन्दिर मतंग ये तमाशे चारदिनके ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे अष्टमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-पँचयेमें पँचयें छठे. मनुको करूं बखान।
विप्र शापसे निधन वन, धरो कृष्णको ध्यान ॥

इतनी कथा राजा परीक्षित्को सुनाय, श्रीव्यासपुत्र शुकदेवजी कहने लगे कि, हे कौरववंशावतंस! भगवान् हरिका चरित्र गजेन्द्रमोक्षनामक पापोंका नाश करनेवाला है, सो आपसे मैंने कहा, अब रैवत मनुका वृत्तान्त कहते हैं सो सुनो ॥ १ ॥ पञ्चम रैवत मनु चौथा मनु तामसका सगा भाई था, रैवत मनुके पुत्र अर्जुन, बलि और विंध्यादि हुए ॥ २ ॥ हे राजन्! इस मन्वन्तरमें विभुनाम इन्द्र भूतरयादि देवतालोग हुए । और हिरण्यरोम, वेदशिरा और ऊर्ध्वबाहु इत्यादि सप्त ऋषि हुए ॥ ३ ॥ और सुभ्रकी विकुण्ठा नामक जो पत्नी थी, उसके गर्भमें सुभ्रके औरससे भगवान् वैकुण्ठनाथ स्वयं वैकुण्ठवासीने देवतालोगोंके साथ अपने अंशसे जन्मग्रहण किया ॥ ४ ॥ इसी वैकुण्ठमें लक्ष्मीजीकी प्रार्थनासे उनका प्रिय कार्य करनेकी वासनासे लोकनमस्कृत वैकुण्ठलोक बनाया गया ॥ ॥ ५ ॥ उसका प्रभाव ब्रह्मण्यतादि गुण और बडी भारी ऋद्धियोंका विवरण (तीसरे स्कन्धादिमें) कुछेक वर्णन कियागया है. हे राजन्! भगवान् विष्णुजीके सब गुणोंका वर्णन करनेको किसमें सामर्थ्य है ? जो पुरुष उनके सब गुणोंका वर्णन करसके, वह पृथ्वीपरके धूरि कणोंकी भी गणना (गिनती) करलेगा ॥ ६ ॥ अब छठे मनुका वृत्तान्त सुनो । चाक्षुष नामक छठा मनु हुवा पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि उसके पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ७ ॥ हे राजन्! इस मन्वन्तरमें मन्त्रद्युम्न इंद्र, आधादिगण देवता, हविष्मत् और वीरकादि ऋषि हुए ॥८॥ उक्त (ऊपर कहे हुए) मन्वन्तरमें वैराजके औरससे और देवसम्भूतिके गर्भसे जगतपति भगवान् विष्णुजी अपने अंशसे जन्म ग्रहण करके अजित नामसे विख्यात हुए ॥ ९ ॥ जिन्होंने समुद्र मथकरके देवतालोगोंके लिये अमृत निकाला और कूर्मरूप धारण करके जलके बीच भ्रमण करके मन्दराचल पर्वतको धारण किया ॥ १० ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! भगवान् विष्णुने किस प्रकार क्षीरसमुद्रको मथा ? और किस कारण उन्होंने कूर्मरूप होकर मन्दराचलको धारण किया था ? सो सब आप मुझसे कृपाकरके वर्णन कीजिये और देवतालोगोंने जिस प्रकार अमृतको प्राप्त किया और उनसे औरभी जो जो कार्य हुए, वह समस्त कार्य अवश्यही अद्भुत होंगे, इस लिये उनको आप विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ ११ ॥ हे योगिन्! आप भक्तवत्सल भगवान्की जितनी महिमा कहते हैं । उस्से मेरा चित्त किसी प्रकार सन्तुष्ट नहीं होता, बरन् निरन्तर सुननेको चित्त चाहता है, क्योंकि मेरा हृदय अत्यन्त सन्तापित होरहा है ॥ ॥ १२ ॥ यादवपति भगवान्की विविध तापकी नाश करनेवाली जो महिमा है उन भगवान्की कथा सुननेसे मेरा मन तृप्तही नहीं होता ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि, हे द्विजगण! द्वैपायनतनय शुकदेवजीसे जब इसी प्रकार राजा परीक्षितने पूँछा तब राजाकी प्रशंसा और आनन्द प्रगट करके श्रीशुकदेवजी भगवान् हरिके सामर्थ्यका वर्णन करने लगे ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहे हैं कि, हे परीक्षित्! जिस समय दानवलोग समरमें अस्त्र शस्त्र चलाय

देवताओंका वध करने लगे । तब वहुत देवतालोग निर्जीव होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और फिर जीवित नहीं हुए ॥ १५ ॥ और जब दुर्वासा मुनिके शापसे "किसी समय दुर्वासा ऋषि मार्गमें चलेजाते थे, उन्होंने मार्गमें इन्द्रको देखकर अपने कण्ठकी माला उन्हें देदी, इन्द्रने लक्ष्मीके मदसे गर्वित हो उस मालाको कुछ न समझ ऐरावत हाथी के मस्तकपर डाल दी । तब उस उन्मत्त हाथीने शुण्डासे उठाय उस मालाको पैरोंसे मसल डाला, तब दुर्वासा ऋषिने शाप दिया कि, तुम तीनों लोकोंसहित सम्पत्तिहीन होजाओ" इन्द्र सहित त्रिभुवनकी श्री नष्ट होगई, और यज्ञ यागादिभी लोप होगये ॥ १६ ॥ और महेन्द्र व वरुण इत्यादि देवगण यह देखकर जब स्वयं मंत्रसे कोई उपाय न पाते हुए ॥ १७ ॥ तब इकट्ठे हो परस्पर अर्थात् आपसमें सम्मति कर सुमेरुपर्वतके ऊपर ब्रह्माजीकी सभामें गये और शिर नवाय विनीतभावसे पितामहके निकट सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १८ ॥ इन्द्र, चन्द्र, वायु इत्यादि निःसत्व और प्रभारहित सब लोकोंका अमंगल और असुरोंको बलवान् देख ब्रह्माजीको अति विस्मय प्राप्त हुवा ॥ १९ ॥ कितनी एक देरके पीछे सावधान मन हो भगवान् पुरुषोत्तमको स्मरण कर प्रफुल्लित मुख हो ब्रह्माजी सब देवताओंसे कहने लगे॥२०॥हे देववृन्द! मैं (ब्रह्मा) महेश (महादेव) तुम असुर और मनुष्य तिर्यक् (पशु पक्षी) द्रुम इत्यादिक कर्मज जाति अर्थात् जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज यह सबही जिसके अवताररूप पुरुषके अंश जो ब्रह्मा है, उसकी कलासे सृष्टि अर्थात् पुत्र पौत्रादि द्वारा उत्पन्न हुए हैं, चलो हम उसी अव्यय परब्रह्म परमेश्वरकी शरणमें चलैं ॥ २१ ॥ उसको कोई वध्य नहीं,रक्षणीय नहीं, यज्ञको योग्य नहीं और आदरणीय पक्षभी नहीं. तथापि वे सृष्टि,स्थिति, प्रलयके निमित्त उसी उसी कालमें सतोगुण, तमोगुण और रजोगुणको धारण करते हैं ॥२२॥वह शरीरधारियोंके पालन करनेको सतोगुणकी सेवा करते हैं यह उनकी स्थिति और पालनका काल है इसलिये इस समय उन जगत् गुरुकी शरण लेनेसे वह आत्मीय जो अस्मदादि हैं अवश्य हमारा कल्याण करैंगे ॥ २३ ॥ हे परीक्षित् ! ब्रह्माजी देवता लोगोंसे इस प्रकार सम्मति कर उन सबके साथ जिस क्षीरसागरमें अजित भगवान् हरि वास करते हैं, उसी परमस्थानको गये ॥ २४ ॥ वहाँपर पहुँच सावधान हो एकाग्र चित्तकर वेदवाक्योंसे नहीं देखाहै स्वरूप जिनका परन्तु पहले श्रवण किया है, उन भगवान् हरिकी सब देवगण स्तुति करने लगे ॥२५॥ ब्रह्माजीने कहा कि, हे देव ! आप सर्व श्रेष्ठ हैं, आपको नमस्कार करताहूं । भगवन् ! आपको विकार नहीं है, आप सत्य, अनंत, अनादि, सर्वान्तर्यामी हैं, निरुपाधि हैं, और तर्क करनेके अयोग्य हैं आप मनकेभी आगे चलते हैं, वचनद्वारा आपको निर्गतचित्त नहीं किया जासक्ता, सो आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ अहो ! जो प्राण, मन, बुद्धि और आत्माको जानते हैं और विषय व इन्द्रियें इन दोनों रूपमें प्रकाश पाते हैं और स्वप्न देखनेवालेकी समान अज्ञानरहित हैं और जिनमें देह नहीं है, जो अक्षर और आकाशवत् सर्वव्यापी

है और जिसमें जीवोंका पक्ष करनेवाली अविद्या अथवा उनमें लीन करनेवाली कुछभी नहीं रहती, जो तीनों युगोंमें प्रगट होते हैं, हम उन्हींकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥ और इस जीवका चक्र अर्थात् चक्रवत् घूमतेहुए देहादि जो माया करके प्रेरित होते हैं जो उसके अक्ष अर्थात् अधिष्ठान हैं हम उसी सत्यस्वरूप परमेश्वरको शरण जाते हैं, जीवका जो मनोमय चक्र है, दश इन्द्रिय और पंच प्राण यह पंद्रह उसके अक्ष आलसत्वादि तीक्ष गुणोंकी समान उसमें वर्तमान हैं, वह विजलीकी समान चंचल है और यथार्थ धुरीकी समान उसका आवरण है ॥ २८ ॥ जो भक्तलोगोंकी रक्षा करनेको गरुडपर आरूढ (सवार) है, परन्तु ज्ञानके स्वरूप और प्रकृतिसे परे है. अदृश्य, अव्यक्त, देश, काल, जिसका परिच्छेद नहीं होता और धीर पुरुष योगरूप उपायसे जिसकी भजना किया करते हैं, हम उसी परमेश्वरको प्रणाम करते हैं ॥ २९॥ जिसकी मायाका कोई पुरुष उल्लंघन नहीं कर सक्ता वह माया साधारण नहीं है उससे पुरुष मोहित होता है. और अपने स्वरूपको नहीं जान सक्ता, हम उन्हीं परमेश्वरको प्रमाण करते हैं, उन्होंने माया और मायाके गुण दोनोंको जीत लिया है और सब प्राणियोंमें समानरूपसे वर्तमान हैं ऐसे जो परमेश्वर हैं, उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥ हम देवता और ऋषि हैं, जिसके प्रियमूर्ति स्वरूप सतोगुणके द्वारा सृष्टि उत्पन्न हुई है. वाहर अन्तरकी सत्ता और प्रकाशसे जिसकी सूक्ष्मगति अर्थात् निरुपाधि स्वरूप नहीं जानसके, उसे रजोगुण तमोगुण प्रधानपुरुष लोग किसप्रकारसे जान सक्ते हैं. इसलिये हम उसको प्रणाम करते हैं ॥ ३१ ॥ अहो ! जिस पृथ्वीपर जरायुजादि चार प्रकारके प्राणी उत्पन्न होते हैं, यह पृथ्वी जिसके दो चरण वैराजरूपी वही महापुरुष हमारे ऊपर प्रसन्न होवें, यद्यपि उसके चरणादि हैं, तथापि वह सबके वश नहीं है, क्योंकि उसका स्वरूप कभी विच्युत नहीं होता और महदाश्चर्यशाली है ॥ ३२ ॥ उसका जिस जलसे समस्त लोक और लोकपाल उत्पन्न होते हैं जीते रहते हैं और वृद्धि पाते हैं, वह उदार शक्तियुक्त जल जिसका वीर्य है, वह महाऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥ जो उदार चंद्रमा देवता लोगोंके अन्न बल व आयु स्वरूप हैं और जो सब वृक्षोंके अधिकतासे बढानेका कारण है, पण्डितलोग उसी सोमको जिसका मन कहते हैं, वह महाविभूतिशाली महेश हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ जिनसे वेदरूप धन उत्पन्न होता है और वेदोंके प्रतिपाद्य कर्मोंके लिये जिसका जन्म है और जो अंतःसमुद्र अर्थात् उदरमें जठराग्निरूपसे भोजन और अन्नादि पाक किया करते हैं, वही अग्नि जिसका मुख है, महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ॥ ३५ ॥ जो सूर्य देवयान अर्थात् अर्चिरादि मार्गके देवता वेदत्रयीमय ब्रह्मके उपासनाका स्थान हैं और देवयान तत्त्वके हेतु मुक्तिके द्वार हैं और पुण्य लोकोंके हेतु हैं अमृतस्वरूप और परकाल रूपत्व होनेसे मृत्युरूप हैं; वह सूर्य जिनकी आँख हैं वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्नहों ॥ ३६ ॥ जिनके प्राणसे वह वायु

उत्पन्न हुई है, जो चर अचर सब प्राणियोंका तेज बल व सामर्थ्यादि धर्मयुक्त प्राण हैं, सेवक लोग जिसप्रकार महाराजाधिराजके पीछे पीछे चलते हैं, वैसेही हम लोग बुद्धि इत्यादिके अधिष्ठाता देवता जिनका अनुसरण किया करते हैं, वह महाऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ जिनके श्रवणोंसे दिशा, जिनके हृदयसे दो गति छः इन्द्रियें और नाभिसे आकाश उत्पन्न हुआ, जो पंचप्राण, इन्द्रियें, मन, नाग, कूर्मादि वायु और शरीरका आश्रय है. वह महासंपन्न विभु हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ जिनके लवसे महेन्द्र, प्रसन्नतासे सुरगण, क्रोध (गुस्से) से गिरीश, बुद्धिसे ब्रह्मा, छिद्रसे समस्त वेद, मेढ्रसे ऋषि और प्रजापतिगण उत्पन्न हुये हैं, वह महाऐश्वर्यशाली पूर्णब्रह्म भगवान् हरि हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ जिनकी छातीसे लक्ष्मी, छायासे पितृगण, स्तनसे धर्म, पीठसे अधर्म, मस्तकसे स्वर्ग और विहारसे अप्सरागण उत्पन्न हुई, वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४० ॥ जिसके मुखसे ब्राह्मण और परमगुप्त वेद, दोनों भुजाओंसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य एवं चतुरता और चरणोंसे शूद्र और सेवा उत्पन्न हुई है वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ जिनके अधरसे लोभ, (नीचेके) ओष्ठसे प्रीति, नासिकासे कान्ति उत्पन्न हुई है और स्पर्शसे पशुओंका हितकारी काम और दोनों भौंहोंसे यम, पालकोंसे कालका जन्म हुवा है, वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४२ ॥ और पंचभूत, काल, कर्म, गुण, लौकिक, प्रपंच, इन सबको ज्ञानीलोग जिनकी अहिता योगमाया कहा करते हैं और उसी मायासे द्रव्य, काल, कर्म, गुण भौतिक प्रपंच, यह उत्पन्न हुये हैं, ऐसा कहते हैं और फिर पृथक् २ विद्वान् लोग इन सबका खण्डन किया करते हैं, वह महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ४३ ॥ अहो ! हम लोग उन परमेश्वरको नमस्कार करतेहैं उनकी शक्ति उपशान्ति है, स्वर्गका राज्यलाभ करनेके लिये आत्माको परिपूर्ण करतेहैं, परन्तु दर्शनादि द्वारा मायारचित गुणोंमें आसक्त नहीं होते ॥ उनकी लीला पवनके समान है. हम उनको नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! हम शरणापन्न होकर आपके स्मित मुखारविन्दका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं,सो तुम हमारी इन्द्रियोंके गोचर हो अपना स्वरूप दिखाओ ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! आप भक्तजनोंकी इच्छाके अनुसार रहा करते हैं, इसके भूरि प्रमाण हैं, जिन कर्मोंके करनेमें हम अशक्य होते हैं, आप काल कालमें इच्छानुसार अवतार लेकरके उनसे स्वयं उन कर्मोंको सम्पन्न किया करते हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! जो शरीरधारी समान हैं, विषयके लिये आर्त हैं, उनके कर्म जैसे अनेक क्लेश और अति थोडे फलके देनेवाले हैं, सो आपके भक्तोंके अर्पित हुये कर्म ऐसे नहीं हैं ॥ ४७ ॥ अति थोडा जो कर्माभास है, वहभी परमेश्वरमें अर्पण कियेजानेपर विफल नहीं होता, क्योंकि ईश्वर पुरुषोंका आत्मा है,दयावान् और हितकारी है सो प्रिय और हितकारी आत्मामें जो कुछ अर्पण किया जाता है, वह क्या निष्फल हो सक्ता है ? ॥ ४८ ॥ जैसे पेडकी जडमें जल देनेसे शाखा, चोटी, सबका सींचना हो

जाता है, वैसेही विष्णु भगवान्‌की आराधना करनेसे सबकी आराधना हो जाती है ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! हम आपके भक्त हैं, जो कोईभी कर्म करते हैं सो आपको समर्पण कर देते हैं हम लोगोंको यह क्लेश जिस कारणसे हुवा है, वह आप स्वयं ही जानते हैं, क्या निवेदन करें ? आप अनन्त, निर्गुण, गुणेश और सत्वस्थ हैं आपका स्वभाव और चेष्टा तर्क करनेके योग्य नहीं है, सो हमलोग केवल आपको नमस्कार करते हैं ॥ ५० ॥

सवैया-जाप जप्यों नहिं मंत्र थप्यों नहिं वेद पुराण सुन्यों न बखानो ।
बीतिगये दिन योंहीं सबै रस मोहन मोहनके न बिकानो ॥
चेरो कहावत तेरो सदा पुनि और न कोई मैं दूसर जानो ॥
कै तो गरीबको लेहु निवाज न छोडो गरीबनिवाजको बानो ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-छठवेंमें प्रगटे हरी, असुर प्रार्थना कीन्ह ।
दैत्यनको धोखादिया, देवन अमृत दीन्ह ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब सब देवता लोगोंने इसप्रकारसे स्तुति की, तब श्रीभगवान् हरि उनके सामनेही प्रगट हुये । सहस्र सूर्यके उदय होनेसे जिस प्रकार दीप्ति होती है, उस समय श्रीनारायणजीकीभी वैसीही दीप्ति प्रकाशित होने लगी ॥ १ ॥ उस द्युतिसे सब देवताओंकी दृष्टि तिलमिला गई कि, जिससे देवता लोग आकाश, दिशा, पृथ्वी और अपने आपकोभी नहीं देखसके । फिर उन विभुको किस प्रकार देख सकें ? ॥ २ ॥ बहुत देरतक ब्रह्माजीने भली भाँति देखकर महादेवजीके सहित उनकी स्तुति करनी आरम्भ की । श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! भगवान्‌की मूर्ति मरकतमणिकी समान श्यामवर्ण और स्वच्छ थी, तिससे पद्मगर्भके समान अरुण वर्ण उनके दोनों नेत्र शोभायमान हो रहे थे ॥ ३ ॥ और वह मूर्ति तपायेहुए सुवर्णकी समान पीतवर्ण पिताम्ब धारण किये हुये थी, श्रीभगवान्‌के समस्त अंग प्रसन्न और अतिशय मनोहर थे और भ्रुकुटीकी शोभाभी अत्यन्त सुंदर थी ॥ ४ ॥ मस्तकपर महामणियोंसे जडाहुआ मुकुट था, दोनों भुजाओंमें भुजबन्द और नौरतन विराजमान् थे, कानोंमें कुण्डलोंका हिलना अति मनोहर था, उन कुण्डलोंके द्वारा कपालोंकी दीप्ति होनेसे मुखारविन्दपर अनिर्वचनीय ज्योति प्रकाशित हो रही थी ॥ ५ ॥ और काञ्ची कलाप, कंकण हार, नूपुरसे वह मूर्ति विशेष शोभायमान हो रही थी, वह कंठमें कौस्तुभ मणि और वक्षस्थलमें लक्ष्मीजीको धारण कियेहुये थे और उनका हृदय वनमालासे शोभायमान हो रहा था ॥ ६ ॥ अधिक करके सुदर्शनादि अपने अस्त्रोंसेभी वह शोभायमान हो रहे थे, यह सुदर्शनादि उनके अस्त्र अपनी अपनी मूर्तियाँ धारणकर चारोंओर खडे उनकी उपासना कर रहे थे, यह मूर्ति देखकर देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, शिव और सब देवता लोग उनको प्रणाम करने लगे ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, भगवन् श्रीमूर्तिका आविर्भाव मात्र हम लोगोंकी समान आपके जन्मादि

नहीं है, क्योंकि आपको जन्म स्थिति संयम यह तीनों उत्पन्न नहीं होते. इसका कारण यह है कि, आप निर्गुण हैं इसीलिये ज्ञानी लोग आपको निर्वाण सुखका समुद्र कहा करते हैं, परन्तु आप इसप्रकार जाननेके योग्य न होनेसे सूक्ष्मसेभी सूक्ष्म हैं, वास्तवमें तुम्हारी मूर्तिकी सीमा नहीं है. हे प्रभो ! हमने जो कुछभी कहा यह कुछभी असंभव नहीं हैं, क्यों कि आपका स्वभाव अचिन्तनीय है, इसलिये आपको नमस्कार ! नमस्कार !! नमस्कार !!! है ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! हे धातः ! कल्याणके चाहनेवाले पुरुष लोग वैदिक और तान्त्रिक उपायसे आपकी इस मूर्तिको सदा पूजा करते हैं. हे भगवन् ! हम देवतालोग पूज्यरूपसे प्रसिद्ध हुएतो हैं, परन्तु आपमें त्रिभुवनसहित हम सब कुछ देखते हैं आपकी यह मूर्ति ब्रह्माण्डका आधार है इसलिये आपका यह रूप परिच्छिन्न नहीं है ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! आप स्वतंत्र हैं, यह जगत् प्रथम आपमेंही था. मध्यमेंभी आपमेंही रहा है और अंतसमयभी आपमेंही रहैगा । मट्टी जैसे घडेकी आदि अन्त और मध्य है. वैसेही आप इस जगत्के आदि मध्य और अवसान हैं, क्योंकि आप प्रधानसेभी पर (श्रेष्ठ) हैं ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आप निजाश्रित स्वाधीन मायाद्वारा इस विश्वकी सृष्टि करके पीछे इसमें प्रविशे हैं,इसलिये शास्त्रके जाननेवाले विवेकी योगी लोग सबके परणाममेंभी आपको निर्गुण देखते हैं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! जैसे काष्ठमें अग्नि,गौमें घृत, पृथ्वीमें अन्न और जल और पुरुषार्थमें जीविका वर्तमान है, मनुष्यगण उपायसे इन सबको प्राप्त होते हैं, अर्थात् मथे जानेपर काष्ठसे अग्नि, दुहे जानेसे गौमें घृत और खोदनेपर पृथ्वीमें अन्न और जल, वाणिज्य इत्यादि करनेपर पुरुषार्थसे जीविका प्राप्त होतीहै सो ज्ञानी लोग कहतेहैं कि, आपभी वैसेही गुणमें वर्त्तमानहैं और वह बुद्धिके योगसे आपको उससे प्राप्त कर लेते हैं ॥ १२ ॥ हे नाथ ! हे पद्मनाभ ! आप हमारे बहुत दिनोंके वांछा किये हुए अर्थ हैं, आप योगगम्य होकरभी स्वयं प्रगट हुए । दावानलसे पीडित हुए हाथी गंगा जलको देखकर जैसे आनंद पाते हैं,वैसेही हम लोग आज आपका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर परम आनंदको प्राप्त हुए हैं॥१३॥इस समय इन सब लोकपालोंके सहित हम जो मानस करके आपके चरणकमल कोमल अमलकी शरण आये हैं, उस कार्यको आप पूर्ण कीजिये। हे अन्तरात्मन्!आप अनन्त पदार्थोंके साक्षी हैं,फिर भला हम क्या बतावैं ? आप सभी कुछ जानते हैं॥१४॥हे भगवन्! मैं (ब्रह्मा) महादेव और देवता, दक्षप्रजापति हम सबही अग्निकी चिनगारीकी समान, आपसे अलग प्रकाशमान होते हैं. हम नहीं जानते कि, आपमें क्या श्रेष्ठता है ? इसलिये आपही द्विज और देवता लोगोंकी मंत्रणा कहिये, अर्थात् "यह करो" ऐसी आज्ञाकर उपाय बताइये ॥ १५ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी मुनि कहनेलगे कि, हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! जब ब्रह्मादिक देवतालोगोंने इस प्रकार भगवान्की स्तुति करी तब श्रीभगवान् उनके मनके अभिप्रायको जान मेघकी समान गंभीर वाणीसे बोले हे राजन् ! उस समय सब देवतालोगोंने अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लिया था ॥ १६ ॥ यद्यपि भगवान् देवताओंके उस कार्यको अकेले कर सक्ते थे, तोभी समुद्रमथनादि विहार

करनेकी इच्छा कर उनसे यह वक्ष्यमाण वचन बोले॥ १७॥ श्रीभगवान् कहने लगे कि, कैसी खेदकी बात है अहो ब्रह्मन् ! अहो शंभो ! हे देवगण ! हे गंधर्वगण ! तुम सब सावधान होकर हमारे वचन सुनो । हे देवसमूह ! जिस प्रकारसे तुम्हारा भला हो, वही हम कहते हैं, तुम सुनो ॥ १८ ॥ दैत्य, दानव, सबहीपर शुक्राचार्यजीने अनुग्रह किया है, तुम लोग उनके पास जाकर उनसे तबतक संधि (मेल) करलो कि, जबतक अपने आपसे तुम्हारी वृद्धि न होजाय ॥ १९ ॥ हे देवगण ! कार्य और अर्थके गौरवसे अर्थ साधनमें तत्पर पुरुष कभी साँप और चूहेकी समान शत्रुके साथभी संधि अर्थात् मेल कर लेते हैं, जैसे पिटारीमें रुका हुआ सर्प उसमेंसे निकलनेके लिये चूहेसे मेल करताहै, और जब वह चूहा छेद कर लेताहै, तब वह सर्प बाहर निकल कर चूहेको भक्षण कर लेताहै, इसी भाँतिसे तुम दैत्यों से मिलाप करलो ॥ २० ॥ तुम दैत्योंके साथ सन्धि करके शीघ्र अमृत निकाललेनेका यत्न करो । क्योंकि अमृत पीनेके प्रभावसे मृत्युसे ग्रसाहुआभी मनुष्य अमर हो जाता है ॥ २१ ॥ जाओ ! क्षीरसमुद्रमें शीघ्र, तृण, लता और औषधियोंको डालो । फिर उस में मंदराचलकी रई और वासुकिनागकी डोरी करके ॥ २२ ॥ मेरी सहायता लेकर आलस्यरहित हो समुद्रको मथो । हे देवगण ! यद्यपि दैत्यलोग तुम्हारे साथ मिलकर समुद्र मथेंगे, तोभी उन लोगोंको क्लेशही मिलेगा और मथनेका फल तुम्हीं पाओगे ॥ ॥ २३ ॥ हे सुरगण ! बलवान् साथीके द्वारा जो कोई कार्य सिद्ध करना हो तो उसकी इच्छानुसार कार्य करना चाहिये । इसलिये असुरलोग जो कुछभी इच्छा करें, तुम उसमें ही प्रसन्न होना । जिस प्रकार शान्तिके मार्गसे शीघ्र अर्थकी सिद्धि होती है, वैसी क्रोधके मार्गसे नहीं होती ॥ २४ ॥ हे देवगण ! समुद्रके मथनेसे कालकूट उत्पन्न होगा, उससे कुछ भय न करना और मथते मथते और जो कुछ श्रेष्ठ वस्तु निकलेगी, उसके लिये लोभ न करना । और इस लोभके वश होकर क्रोधभी मत करना ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! भगवान् पुरुषोत्तम देवता लोगोंको इस प्रकार आज्ञा करके उनके सामनेही अंतर्धान होगये । हे राजन् ! वह ईश्वर हैं, उनकी गति स्वाधीन है ॥ २६ ॥ श्रीभगवान्के अन्तर्धान होनेपर ब्रह्मा और महादेवजी इन आदिपुरुषको प्रणाम करके अपने स्थानको चले गये, फिर देवता लोग सन्धि करनेका विचार कर राजा बलिके स्थान-पर गये ॥ २७ ॥ दैत्यराज बलि संधि (मेल) और विग्रह (लडाई) का अवसर भली भाँति जानते थे, इसी कारण वह यशस्वी थे, इसलिये इन्द्रादि देवता शत्रुओंको असाज्वित देखकरभी युद्ध करनेके लिये निषेध करा भेजा ॥ २८ ॥ परन्तु देवता लोगोंने एक न सुनी और वह देवतालोग वहाँ जाय पहुँचे कि जहाँ विरोचनका पुत्र त्रिलोकीको जीत असुर यूथपोंकरके रक्षित हो सुन्दरी रमणियोंसे सेवित हो विराजमान थे ॥ २९ ॥ उनमें महामतिवाले इन्द्र मनोहर वचनोंसे समझाते हुए राजा बलिके निकट भगवान् पुरुषोत्तम-जीने समुद्र मथनेके विषयमें जो कुछभी सिखादिया था वह सबही बतलाने लगे ॥ ३० ॥ इन्द्रके वचन राजा बलिको बहुत प्यारे लगे और वहाँ पर शम्बर अरिष्टनेमि इत्यादि और

जो असुर त्रिपुरवासी जो जो दानव थे, उन सबनेभी इन वचनोंको माना ॥ ३१ ॥ हे परन्तप ! तिसके पीछे दानव और देवतालोगोंने परस्पर मिलाप किया और अमृतके निकालनेको शपथ कर उसके लिये अत्यन्त यत्न करने लगे ॥ ३२ ॥ दानव लोग बलपूर्वक मंदराचलको उखाडकर लाये और सिंहनाद करते करते उस पर्वतको क्षीर समुद्रकी ओर लेचले ॥ ३३ ॥ यद्यपि इन्द्रादिक देवगण और बलि इत्यादि दानव अतिशय शक्तिमान् थे उनकी भुजायें परिघकी समान थीं, तोभी दूरसे बडा भारी बोझ लानेके कारण देवता और दैत्य दोनों शीघ्रही थक गये और इस पर्वतके बोझको जब न सँभालसके तो मार्गमेंही रख दिया ॥३४॥ इन्द्र और बलि आदि देवता व असुरोंने जब उसको लाते समय मार्गमें छोड दिया जब वह पर्वत गिरा तब अपने भारी बोझसे अनेक देवता व असुरोंको चूर्ण करके पृथ्वीपर गिरा ॥ ३५ ॥ देवता और दानवोंकी जब इस पर्वतके लानेमें बाँहें टूट गईं जाँघे कट गईं और उनके मन मलीन होगये तब भगवान् गरुडध्वज यह बात जानतेही उसी समय वहाँ आनकर उपस्थित हुये ॥ ३६ ॥ और पर्वतके गिरनेसे देव दानवोंको पिसा हुवा देख, उन्हें अपनी दृष्टिसे सावधान करके फिर जिला दिया ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे लीलापूर्वक एक हाथसे उस पर्वतको अपने वाहन गरुडजीपर रख और स्वयं उसके ऊपर चढ समुद्रकी ओर चले और सुर, असुरभी चारों ओरसे घेरेकर उनके पीछे पीछे चले ॥ ३८॥ समुद्रके निकट पहुँचे गरुडजीने अपने कंधेपरसे आपही उस पर्वतको उतार दिया तब श्रीभगवान्ने जलके समीप भेज दिया. तात्पर्य यह है कि, जहाँ गरुडजी हों वहाँपर वासुकी नाग नहीं आसक्ता ॥ ३९ ॥ जिन हरिके वाहनकी तो ऐसी महिमा है, फिर हरिकी महिमाका क्या ठिकाना है.

कवित्त–तारो प्रह्लाद रु निषादको सुखाद कियो, सादर अहल्याकरी पादरज लायकै । कहै जगन्नाथ हाथधारि गिरी व्रजनाथ, पालो व्रज पन्थते पुरन्दर लजायकै ॥ वार नकरी है नेक वारनके तारनमें, कारण कहा है जगतारन कहाय कै । जोवत इतै हौ नाहिं सोवत कितैहौ प्रभु, ऐसेही बितैहौ कि चितैहौ चित लायकै ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा–सप्तममें सागर मथ्यो, प्रगट्यो गरल कराल ।
डर कर सब शिव पहगये, कीजे दया दयाल ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुवंशावतंस परीक्षित् ! " समुद्रके मथनेसे जा अमृत निकलेगा. उसमें तुम्हाराभी भाग रहेगा" यह कह देवता व असुर लोगोंने वासुकी नागको मथानीकी डोरी बनाकर उनको मंदराचल पर्वतसे लपेटा, फिर आनंदपूर्वक समुद्रको मथन करने लगे ॥ १ ॥ वासुकी नागका मुख विषके दाँत रहनेसे अत्यन्त तीव्र था, इसलिये चतुरतासे भगवान् हरिने प्रथम मथनेकी डोरी वासुकीके मुखकी ओरका सिरा थामा, व

और देवता लोगभी उसी ओर गये। दैत्यपति लोग यह देखकर समझे कि, मुखकी ओर पकडना विक्रमका कार्य है,इसलिये उन्होंने इच्छा की कि,देवतालोग मुखकी ओर नहीं पकडे ॥ २ ॥ इसलिये उन्होंने उसमें बाधा देकर कहा कि, हम वेदपाठ करते हैं और शास्त्र सुने हुये हैं जन्म और कर्मद्वारा सर्वत्र विख्यात हैं, सर्पकी पूँछका भाग अमंगल है. हम उसको ग्रहण नहीं करेंगे ॥ ३ ॥ दैत्य लोगोंके यह वचन सुन भगवान् हरि मनमें मुसकाये और उसी समय वासुकी नागके शरीरका अग्रभाग छोड देवता लोगोंके सहित पुच्छ भाग ग्रहण किया ॥ ४ ॥ हे राजन्! कश्यपनन्दन दानवगण इसप्रकार स्थानका विभाग करके मथनेकी डोरी पकड परमयत्नसे अमृत प्राप्त करनेके लिये समुद्रको मथने लगे ॥ ५ ॥ यद्यपि महाबलवान् और पराक्रमी देवता व असुरोंकरके मन्थान दण्ड मन्दर पर्वत पकडा गया था, तो भी मथन करते यह मन्दर आधार शून्य हो समुद्रके जलमें डूबने लगा ॥ ६ ॥ हे राजन्! बलवान् भाग्यके वश इस प्रकारसे अपने २ पौरुषका नाश देखकर उन देवता व असुर लोगोंके अन्तःकरण अतिशय क्षुभित हुये और मुख अत्यन्त मलीन होगये ॥ ७ ॥ नारायणका वीर्य अत्यन्त दुरन्त और उनका संकल्प अत्यन्त सत्य है, उन्होंने उस समय अमृत निकालनेमें यह विघ्न हुआ देख उसी समय बडाभारी अद्भुत कच्छरूप धारण किया और समुद्रमें प्रवेश करके पीठमें भली भाँति उस पर्वतको उठाय अपने ऊपर धारण कर लिया ॥ ८ ॥ कुलाचल मन्दरके फिर उठनेपर देवता और दानव लोग महाहर्षित हुये और फिर सबने समुद्र मथनेका उद्यम किया, कूर्मशरीरधारी भगवान् हरिने अपनी पीठका विस्तार लाख योजनका करलिया। तिसमें एक भले द्वीपकी समान वह मन्थानदंड मन्दर गिरिको धारण करे रहे ॥ ९ ॥ हे राजन्! देव दानवोंके भुजा वीर्यसे यह पर्वत कम्पायमान होकर सब प्रकारसे भ्रमण करने लगा, अप्रमेय आदिकूर्म प्रशस्त पीठकर धारण करके उस पर्वतके घूमनेको खुजली-की समान समझते हुये कि, मानो कोई पीठपर खुजा रहा है ॥ १० ॥ फिर श्रीनारायणने असुराकारसे असुरोंमें प्रवेशकर उनके बल वीर्यको बढा दिया और देवाकारसे देवता लोगोंमें प्रवेशकर उनको चैतन्य किया और अबोधरूपसे नागेन्द्र (वासुकी) में प्रवेशकर उसको सबल किया ॥ ११ ॥ तिसके पीछे हजार भुजा धारण करके दूसरे पर्वतकी समान अपने हाथके द्वारा ऊपरसे मन्दराचलको दाबकर स्थित रहे, यह आश्चर्य देख देवतालोकमें ब्रह्मा, इन्द्रादि देववृन्द फूल वर्षाय वर्षाय श्रीनारायणकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ हे राजन्! भगवान् हरिके ऊपर नीचे और आत्मामें अर्थात् देव दानवोंमें और पर्वतमन्था-नरज्जु वासुकीमें प्रवेशकर जानेपर मदोत्कट देव दानव गण उत्कण्ठित हो, मन्थानरूपी मन्दराचलसे ऐसे वेगसे मथने लगे कि, एक क्षणमें समुद्रके वास करनेवाले सब ग्राह क्षुभित होगये ॥ १३ ॥ और वासुकी नागके सहस्रों विकराल फण और श्वासोंसे अग्नि और धुआँ निकलने लगा कि, जिस्से पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल आदि असुर लोगोंका तेज रहित होगया, इसलिये वह अति शीघ्र दावानलसे भस्म हुये सरकण्डेकी समान

प्रभाहीन होगये ॥ १४ ॥ देवतागणभी वासुकीके श्वाससे निकली हुई अग्निकी शिखासे प्रभाहीन होते थे और उनके वदन, वसन, भूषण कंचुकादि धूम्रवर्ण होरहे थे, परन्तु भगवान्के वश हुये मेघोंने उनके ऊपर जल वर्षाया और समुद्रकी तरंगोंके संयोगसे आयाहुआ शीतल वायु उनके ऊपर चलने लगा। इसलिये वह असुर लोगोंके समान व्याकुल न हुये॥ ॥ १५ ॥ देवता असुर लोगोंके समूह करके मथे हुए समुद्रसे जब अमृत निकला तब भगवान् हरि अजित अपने आपसे समुद्रको मथने लगे ॥ १६ ॥ मेघसमान श्यामवर्ण श्रीनारायण सुवर्णकी समान पीताम्बर धारण किये, बिजलीकी दमकके समान चमकीले कुण्डल पहिरे जिनके मस्तकपर अलकें छिटकरहीं माला पहिरे लाल २ नेत्र किये, अपने अभय देनेवाले हस्तकमलोंसे मन्दराचल द्वारा समुद्रको मथने लगे. उस समय ऐसी शोभा होरही थी कि, मानों एक पर्वत दूसरे पर्वतको मथ रहा है ॥ १७ ॥ जब इसप्रकारसे समुद्र मथा गया तब उसमेंके मत्स्य, मकर, कछुए, सर्पादि अतिशय व्याकुल हुए और तिमि, जलहस्ती, नाके और तिमिंगल सब घबराय गये, तिसके पीछे उस समुद्रसे प्रथम हलाहल नाम महोल्बण विष निकला ॥ १८ ॥ अति उग्र वेगवाले, दशों दिशाओंमें ऊपर नीचे उफनकर आनेवाले प्रतीकार रहित विषको देखकर देवता लोग विष्णु भगवान्सेभी रक्षा न पाकर अत्यन्त भीत हो वह सब भूतनाथ भगवान्की शरणमें गये ॥ ॥ १९ ॥ उस कालमें देवदेव महादेवजी त्रिलोकीके उद्भवार्थ भगवती पार्वतीजीके सहित कैलास पर्वतपर विराजमान थे और जो मुनिलोगोंको मोक्षकी देनेवाली है, उस तपस्याको श्रीभोलानाथ कर रहे थे प्रजापतिलोग समीप जा प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ हे देवदेव ! हे महादेव ! हे भूतात्मन् ! हे भूतभावन ! हम लोग आपकी शरणमें आये हैं, समुद्रसे निकलाहुआ यह कालकूट विष त्रिलोकीको दग्ध करे डालता है, इससे हम लोगोंकी रक्षा कीजिये ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! आप सब जगत्के बन्धन करनेके और मोक्ष देनेके ईश्वर हैं, निपुण ज्ञानीलोग आपहीकी पूजा किया करते हैं. आप परमगुरु और शरण आये उनकी आर्तिके हरनेवाले हैं ॥ २२ ॥ हे विभो ! आप गुणमयी अपनी शक्तिसे जब कि, इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं. तब हे भूमन् ! आपका ज्ञान स्वयं सिद्ध है, आपही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर- यह तीन संज्ञा धारण करते हैं ॥ २३ ॥ आपही परमगुह्य ब्रह्म हैं, आपसेही देव, तिर्यगादि सत् और असत् समस्त पदार्थ प्रकाशित होते हैं, बस आपके अतिरिक्त और उत्पन्न करनेवाली वस्तु नहीं है, आत्मरूपी आपही अनेक शक्तियोंसे जगत् रूप हुये हो, इसलिये आपही ईश्वर हैं ॥ २४ ॥ हे भगवन् ! आपही वेदकी योनि हैं, अर्थात् समस्त वेद आपसेही उत्पन्न हुये हैं इस कारण आपका ज्ञान स्वतःसिद्ध है, आप जगत्के आदि अर्थात महत्तत्त्व हैं और जिनके गुण, प्राण,इन्द्रिय और द्रव्यके कारणीभूत हैं, वह राजसादि त्रिविध अहंकारभी आपही हैं और आपही स्वभाव,काल,संकल्प और सत्य, व ऋत जो धर्म है, यहभी सब आपही हैं क्योंकि त्रिगुणात्मक जो प्रधान ज्ञानी लोग हैं

वह आपको आश्रय कहा करते हैं ॥ २५ ॥ हे लोकभावन ! समस्त देवता स्वरूप अग्नि आपके मुख हैं, पृथ्वी आपकी चरण है, काल आपका चलना है, सब दिशायें आपके कान हैं, वरुण आपकी रसना (जीभ) है, सो हम आपकी शरण हैं ॥ २६ ॥ आकाश आपकी नाभि है, पवन आपका श्वास है,सूर्य आपके नेत्र हैं, जल आपका वीर्य है, ज्ञानी लोग आपके अहंकारको पर और अपर जीवोंका आश्रय कहा करते हैं. इसलिये हे भगवन् ! चन्द्रमा आपका मन और स्वर्ग आपका मस्तक है॥२७॥हे प्रभो ! तीनों वेद आपकी मूर्ति हैं, समस्त समुद्र आपकी कोख है; समस्त पर्वत आपकी हड्डियें हैं, सब प्रकारकी औषधि और लतायें आपके शरीरके रोम हैं, छंद वेद तुम्हारे सात धातु हैं और प्रसिद्ध धर्म आपका हृदय है ॥ २८ ॥ हे ईश ! पंच उपनिषद् अर्थात् तत्पुरुष अघोर, सद्योजात, वामदेव, ईशान, यह पांच मंत्र आपके मुख हैं, इन मुखोंसे (३८) अड़तीस मंत्र वर्ग होते हैं अर्थात् प्रथम कहे हुये पांच मंत्रोंके पदच्छेदसे अड़तीस शकलात्मक मंत्र होते हैं. हे देव ! शिवनामसे प्रसिद्ध जो परमात्म तत्त्व है, वह आपही हैं, आपकी उपरतावस्था स्वयंज्योति है ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! आपकी छाया अधर्मकी उर्मिमें अर्थात् दन्त लोमादिमें वर्तमान है, जिससे संहार हुआ करता है, और सत्व, रज व तम, यह तीन गुण आपके तीन नेत्र हैं. हे प्रभो ! आप शास्त्रकारी हैं सांख्यज्ञान आपकी आत्मा है. हे देव ! छंदमय पुराण ऋषि अर्थात् वेद आपकी दृष्टि हैं ॥ ३० ॥ हे गिरीश ! आप परमज्योति अखिललोकपाल ब्रह्मा, विष्णु और सुरेन्द्रइंद्रके गम्य नहीं हैं, इस ज्योतिमें रज अथवा तम वा सत्व कुछभी नहीं है वह निरन्तर भेद परब्रह्म स्वरूप है ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! आपने कन्दर्प्प (कामदेव) दक्ष यज्ञ त्रिपुर कालकूट इत्यादि बहुतेरे प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले प्राणियोंका विनाश किया तो है, परन्तु वह सब कर्म तुम्हारे स्तुत्यर्थ नहीं हो सक्ते । आपकेलिये तो यह कार्य अति छोटे हैं, क्योंकि प्रलयकालमें आपके नेत्रकी चिनगारीसे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान यह वडा भारी ब्रह्माण्ड जो भस्म होजाता है, उसकोभी तो आप अनदेखा करते हैं ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! आत्माराम और विश्वके हितोपदेशक ज्ञानीलोग अपने अपने हृदयमें आपके दोनों चरणोंका ध्यान किया करते हैं. आप ऐसेही हैं और सदा तपकरनेमें लगे रहते हैं, जो लोग पार्वतीजीके साथ घूमता हुआ देखकर उनपर नितान्त अनुरागी जान आपको कामी कहा करते हैं और श्मशानमें फिरते देखकर आपको कठोर और हिंसक कहकर प्रलाप करते हैं, वह क्या आपकी लीलाको जानतेहैं ? हम निश्चय कहतेहैं कि; वह कुछभी नहीं जानते इस कारणसे निर्लज्ज हो विचार न करके ऐसा प्रलाप करते हैं. अहो ! जिनके चरणोंकी आत्माराम लोग सेवा करते हैं, क्या उनको कामदेव उत्पन्न हो सक्ता है ? जो सदा तप किया करते हैं वह शान्त मूर्तिही हो सक्ते हैं उनमें हत्यापन वा कठोरपन किस प्रकार सम्भव हो सक्ता है ? ॥ ३३ ॥ इसलिये हे देव ! सत् और असत्से परे और परम पुरुष जो आप हैं आपका यथार्थ स्वरूप ब्रह्मादिभी जाननेको समर्थ नहीं हैं फिर भला

वह आपकी स्तुति करनेको समर्थ होंगे ? हे प्रभो ! हम इन ब्रह्माजीकी सृष्टिमें अत्यन्त नये हैं, फिर हमभी आपकी स्तुति कैसे कर सक्ते हैं ? तथापि यह स्तुति जो कि, यह केवल आत्मशक्तिका परिमाण है॥ ३४॥सो हे महेश्वर ! यद्यपि हम सबने आपके अतिरिक्त और जो श्रेष्ठ रूप है, वह नहीं देखपाया,तथापि इसहीको देखकर कृतार्थ होगये । क्योंकि आप अव्यक्त कर्मकारी हैं, आपका इसरूपसे प्रगट होना लोककी रक्षाही करनेके लिये है ॥ ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहै हैं कि, हे परीक्षित् ! भगवान् भूतनाथ (शिव) सब प्राणियोंके सुहद हैं प्रजागणोंका दुःख देखकर करुणानिधान करुणाके वशहो अत्यन्त दुःखित हुए और निकट बैठी हुई अपनी प्रिया सतीजीसे बोले ॥ ३६ ॥ कि, हे प्यारी ! देखो ! देखो ! क्षीरसागरके मथ जानेसे उसके मध्यसे यह कालकूट निकला और फिर इससे प्रजा लोगोंको कैसा दुःख उपस्थित हुआ है ॥ ३७ ॥ यह सब प्रजा प्राणोंकी रक्षा करनेको अत्यन्त व्याकुल हुई है, इनको अभय देना हमारा कर्तव्य है । क्योंकि दीन जनोंका पालन करनाही सामर्थ्यवान् पुरुषोंका कर्तव्य है, इसलिये साधुलोग क्षण-भंगुर विचारकर अपने प्राणोंसेभी दूसरेकी रक्षा करते हैं॥३८॥ हे भद्रे ! जो पुरुष परमात्माकी मायासे मोहित होकर परस्पर वैर बाँध हिंसा करतेहैं,उनके ऊपर जो पुरुष दया दिखाते हैं, उनके प्रति सर्वात्मा हरि प्रसन्न होतेहैं॥ ३९॥हे देवि!भगवान् हरिके प्रसन्न होनेसे चराचर सहित हमभी प्रसन्नताको प्राप्त होते हैं. इसलिये हम यह विष भक्षण करते हैं, हमारे द्वारा प्रजापुंज सुखसे जीवन धारण करैं ॥४०॥ हे परीक्षित् ! भवानीसे इसप्रकार कह भगवान् वृषवाहन (महादेवजी) उस विषको भक्षण करनेके लिये प्रस्तुत हुए, भगवती पार्वतीजी महादेवजीके प्रभावको जानती थीं. इसलिये वह हर्षित हुई ॥ ४१ ॥ तिसके पीछे करुणाहेतु भूतभावन महादेवजीने सब दिशाओंमें व्यापेहुए उस हलाहल विषको ग्रहण कर हथेली पर रखके भक्षण कर गये॥४२॥परन्तु हे राजन् ! उस कालकूटने महादेवजीकोभी अपना पराक्रम दिखाया, क्योंकि उससे श्रीमहादेवजीका कण्ठ उसी समय नीलवर्ण होगया, परन्तु वह करुणामय ईश्वरका भूषणस्वरूप हुवा ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! साधु पुरुषगण और थूसेरेके सन्तापसे संतापित हुआ करते हैं, इसलिये अखिलात्मा परमपुरुषकी आराधना करनाही श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥ देवदेव महादेवजीका यह आश्चर्यमय कार्य देखकर व सुनकर प्रजागण, व दाक्षायणी, ब्रह्मा, वैकुण्ठनाथ सबही बडाई करने लगे ॥ ४५ ॥ महाराज ! उसी हलाहलके पीनेके समयमें जो महादेवजीकी हथेलीसे खसककर विष गिर पडा था, वह बिच्छू, साँप, विषमय औषधि व और दंदशूकरगणोंने ग्रहण किया था इसीलिये यह सब तीव्र हुए हैं, जब यह इतने अधिक तीव्र हुए, तब इसका विचारभी सहजसेही किया जा सक्ता है कि, वह कालकूट कितना तीव्र विष होगा ॥ ४६ ॥ सिवाय शिवके उसको और दूसरा कौन ग्रहण कर सक्ता है, वह शिव कैसेहैं—

छप्पय-जय महेश भुजगेश शेश वर हार विभूषण।
जय त्रिलोक भट अजित विजित कामादिक दूषण ॥

जयति बालविधु सकल कलित अति ललित भालतल ।
जय मृकण्ड मुनि तनय विनय वश हलित कालबल ॥
जय जय लीला लव तुहिन गिरि कुँवर मनोहर मन हरण ।
जय जयति वशीकृत करण मम इच्छा पूरण करण ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे अष्टमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा–अष्टम प्रगटी लक्ष्मी, वरे विष्णु भगवान ।
सुधालिये धन्वन्तरी, पुनि प्रगटे सज्ञान ॥

अनन्तर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे कि, हे परीक्षित् ! जब भगवान् वृषवाहनजीने कालकूट पान किया, तब देव और दानवगण अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर अतिशीघ्रतासे समुद्रको मथने लगे, तब समुद्रमेंसे सुरभी गाय निकली ॥ १ ॥ ब्रह्मवादी ऋषि लोगोंने ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाले जो यज्ञ हैं, उनके पवित्र हविके लिये इस गायका ग्रहण किया ॥ २ ॥ तिसके पीछे उच्चैःश्रवा नामक चन्द्रमाकी समान श्वेतवर्ण एक घोडा निकला, उसके लेनेकी इच्छा दैत्यराज बलिने की, इसलिये ईश्वरकी शिक्षासे देवराज इन्द्रने उसके लेनेका अभिलाष न किया ॥ ३ ॥ तिसके पीछे ऐरावत नामक गजेन्द्र निकला इस हाथीके चार दाँत पर्वतके शिखरकी तुल्य, और वह चन्द्रमाकी तुल्य श्वेत वर्ण था और वह अपनेही समान श्वेत वर्णवाले चार वदनोंसे कैलास पर्वतकी महिमा को हरण कर रहा था हे राजन् ! तिसके पीछे ऐरावतादि आठ दिग हस्ती, और अभ्रमादि आठ दिग हस्तिनी निकलीं ॥ ४ ॥ तिसके पीछे समुद्रसे कौस्तुभ नामक महामणि निकला, भगवान् हरिने उसकी दमक देखकर उससे अपनी छातीके सजानेका अभिलाष किया ॥ ५ ॥ तिसके पीछे पारिजात (कल्पवृक्ष) निकला, यह वृक्ष देवलोकका भूषण हुआ. हे परीक्षित् नृपोत्तम ! जैसे आप अर्थ देदेकर याचकोंकी प्रार्थना पूर्ण करते हो, वैसेही वह वृक्ष निरंतर समस्त काम देकर याचनेवालोंकी प्रार्थनाको पूर्ण करता है ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सब अप्सरायें निकलीं, कण्ठमें मणियें धारण किये हुए और अत्यन्त शोभायमान वस्त्राभूषण पहर रही थीं, वह मनोहर चाल ढाल, और कटाक्षकी अवलोकनसे स्वर्गवासियोंको रमण कराती थीं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! तिसके पीछे साक्षात् लक्ष्मीजी मूर्ति धारणकर प्रगट हुईं, यह भगवत् परायण समुद्रसे प्रगटहो स्फटिकादि माणिमय पर्वतके शिखरपर चमकती हुई बिजलीकी समान अपनी कान्तिसे सब दिशाओंको रँगने लगीं ॥ ८ ॥ उनका रूप, उदारपन, वयस, रंग और महिमाको देखकर सुर, असुर, मानव, सबहीका हृदय खिँचा, इसलिये सबनेही उनके प्राप्त करनेकी अभिलाषा की ॥ ९ ॥ लक्ष्मीजीको देखतेही देवराज इन्द्रने अभिषेकके लिये उनके अर्थ बडाभारी अद्भुत आसन लादिया, और बडी बडी नदियें मूर्तिमान होकर सुवर्णके कलशोंमें पवित्र जल भरलाईं ॥ १० ॥ अभिषेक करनेमें जिन औषधियोंकी आवश्यकता होती है,

उन सबको पृथ्वीने लादिया और गायोंने पवित्र पञ्चगन्ध और वसन्तऋतुके चैत्र महीनेका उत्पन्न हुआ मधु (शहद) ले आई ॥ ११ ॥ फिर ऋषि लोगोंने शास्त्रके अनुसार अभिषेकके लिये विधिका विचार किया । तिसके पीछे गन्धर्व लोगोंने मीठे मीठे स्वरोंसे गाना आरम्भ किया और समस्त नदी नृत्य करने लगीं ॥ १२ ॥ और मेघोंके समूह, मृदंग, ढोल, मुरज, नगाडे, सहनाई, शंख, अलगोजे आदि जिन बाजोंकी बडी ध्वनि होती है, उन सबको बजाने लगे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! तिसके पीछे दिग्गजोंने पूर्ण कलश और ब्राह्मणोंके उच्चारण किये वेद मन्त्रोंसे कमल हाथमें लिये उन लक्ष्मीजीका अभिषेक किया ॥ १४ ॥ तिसके पीछे समुद्रने लक्ष्मीजीके पहिरनेको पीतवर्णके दो दो रेशमी वस्त्र दिये वरुणजीने मतवाले भौंरे जिसके चारोंओर घूमते हैं, ऐसी वैजयन्ती माला दी ॥ १५ ॥ विश्वकर्माने विविध विचित्र भूषण, सरस्वतीजीने हार, ब्रह्माजीने पद्म और सब सागरोंने कुण्डल, लाकर दिये ॥ १६ ॥ तिसके पीछे स्वस्तिवाचन की हुई लक्ष्मीजी, नाद कर रहेहैं भौंरे जिसमें ऐसी कमलकी माला हाथमें लेकर चलनेकी इच्छा करती हुई उनका वदन कपोलोंपर लटकते हुये दो कुण्डलोंसे और सलज्ज हास्यसे अतिशय शोभायमान होरहा था ॥ १७ ॥ और दोनों उरोजोंपर चन्दन और कुंकुम लगा हुआ था, वह कृशोदरी, रमा, मनोहर नूपुरोंकी झनकार करती हुई, इधर उधर चरण धरती हुई चञ्चल हेमलताकी नाई महान् शोभाको पारही थी ॥ १८ ॥ हे राजन् ! तिसके पीछे वह अपने दोषरहित आश्रयके लिये चारों ओर देखने लगी परन्तु जिसमें नित्य सद्गुण विराजते हों, ऐसा आश्रय गन्धर्व, सिद्ध, असुर, यक्ष, चारण, वा स्वर्गके रहनेवाले देवता इन सबमें किसीको न पाया, इन सबोंमें एक न एक दोष लक्ष्मीजीको जान पडने लगा ॥१९॥ बस उन्होंने विचारकर देखा किसी पुरुषमें किसी (दुर्वासादिमें) तपस्या तो है, परन्तु क्रोधका जीतना नहीं है, किसी किसी पुरुषमें (शुकादिमें) ज्ञान तो है, परन्तु संगका त्याग नहीं है, कोई कोई पुरुष (ब्रह्म सोमादि) महान् तो हैं, परन्तु कामजयी नहीं हैं व और जो पुरुष (इन्द्रादिक) हैं, वे पराई राह तकनेवाले हैं, फिर भला वे ईश्वर कैसे हैं? ॥ २० ॥ और किसी किसी पुरुषमें (परशुरामादिमें) धर्म तो है, परन्तु सब प्राणियोंके ऊपर दया नहीं है, किसी राजामें (शिबिप्रभृतिमें) त्याग है तो सही, परन्तु मोक्षार्थका त्याग नहीं है, किसी किसी पुरुषमें (कार्तवीर्य्यार्जुनादिमें) वीर्य तो है, परन्तु कालका वेग उनसे नहीं रुक सक्ता, जो लोग (सनकादि) गुणसंगसे रहित हैं, वह समाधिपरायण हैं, इसलिये यहभी विवाहने योग्य नहीं ॥ २१ ॥ कोई कोई पुरुष (मार्कण्डेयादि) चिरञ्जीवी तो हैं,परन्तु उनमें मंगल शील नहीं है,किसी किसी पुरुषमें(हिरण्यकशिपु आदिमें) मंगल शीलताहै परन्तु उनलोगोंकी आयुको स्थिरता नहीं जानी जाती, एक पुरुषमें (रुद्रमें) शील,मंगल और आयुका स्थिरपन दोनों बातें हैं और कोई दोषभी नहीं है, परंतु तोभी वह स्वयं अमंगल हैं, उनका श्मशानमें सदा वासादि करना अमंगलहीकी चेष्टा है । लक्ष्मीजी यह विचार करके फिर श्रीमुकुन्दजीको निहारकर बोलीं कि,यहाँपर कोई पुरुष सब भाँतिसे

सुमंगल हैं, परन्तु वे आत्माराम हैं, इसलिये जी नहीं चाहता कि, हम इनको वरैं और अपना प्राणेश्वर बनावैं ॥ २२ ॥ हे राजन्! लक्ष्मीजीने इस प्रकारसे विचार करके देखा कि, भगवान् मुकुन्द अव्यभिचारी धर्मज्ञानादि सद्गुणशाली और अपनेही नित्य आश्रय हैं, इसलिये सर्वोपेक्षा उत्तम जाननेपर यद्यपि उन्होंने (लक्ष्मीजीने) इनको (श्रीनारायणजीको) दृष्टि उठाकर नहीं देखा, तोभी इनको प्राणेश्वर बनानेकी अभिलाषा की अधिक करके भगवान् मुकुन्द प्रकृतिके गुणसे परे हैं। विशेष करके अणिमादि गुण सब उनमें वर्त्तमान हैं यह देखकर लक्ष्मीजीने इनके वरनेकी दृढ प्रतिज्ञा की। अर्थात् लक्ष्मीजीने कहा कि "यद्यपि भगवान् स्वयं आत्माराम होनेके कारण और की कुछ अपेक्षा नहीं करते तथापि इनका आश्रय जो अणिमादि सिद्धि किये हुए हैं, और इन सबकोभी यह जैसे उपेक्षा नहीं करते। वैसेही जब मैं इनका आश्रय लूंगी, तब ये मेरी उपेक्षा नहीं करैंगे। तिससे मैं इनकी सेवाकर कृतार्थ हो सकूंगी, फिर और प्राकृत देवादिकोंसे क्या होगा?" यह विचार कर श्रीनारायणजीकोही वरण किया ॥ २३ ॥ इन लक्ष्मीजीके हाथमें जो कमल फूलोंकी कमनीय माला थी जो कि, मतवाले भौंरोंके गुंजार करनेसे शब्दायमान होरही थी लक्ष्मीजीने प्रथम वह माला श्रीवैकुण्ठनाथके गलेमें डालदी और उनके अनुग्रहकी बाट देखती हुई चुप चाप हो अलग खडी होगई। परन्तु उनका भाव देखकर भली भांति जाना गया कि, सलज्ज हास्यसे विकासमान नमन योगसे मानो भगवान्का वक्षस्थल जो निजधाम हैं, उस अपने धामको लक्ष्मीजी प्राप्त हुई हैं बस वह लजीले नेत्रोंसे भगवान्के वक्षस्थलकी प्रतीक्षा करने लगीं ॥ २४ ॥ फिर शीघ्रही रमानाथने अपने वक्षस्थलको जगज्जननी अतिविपुल विभवशालिनी उन लक्ष्मीजीका वास स्थान निश्चय कर दिया। हे राजन्! भगवान्के वक्षस्थलमें स्थान प्राप्त होकर लक्ष्मीजी करुणा सहित चितवन द्वारा अपनी प्रजा और लोकपालों सहित त्रिलोकीको वर्द्धित करने लगीं ॥ २५ ॥ यह देखकर देवता गणोंके सेवक लोग अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ नाचने लगे, और शंख, तुरही मृदंगादि सबका पृथक् पृथक् शब्द हुआ ॥ २६ ॥ और ब्रह्मा, रुद्र अंगिरादि यह सब विश्वके उत्पन्न करनेवाले फूल वर्षाय वर्षाय विष्णु प्रतिपादक यथार्थ मन्त्र उच्चारण करके श्रीभगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ देवतागण और प्रजापति समूह लक्ष्मीजीकी दृष्टिसे देखे जानेपर शीलादि गुण सम्पन्न हुए। और उन सबको मानो परम निवृत्ति प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ परन्तु लोलुप दैत्य व दानवगण लक्ष्मीजीसे उपेक्षित होनेपर सत्व रहित और निरुद्यम होने लगे ॥ २९ ॥ तिसके पीछे कमललोचना कुमारीरूपसे वारुणीदेवी अर्थात् अन्नमयी सुरा उस समुद्रसे निकली भगवान् हरिकी अनुमति (सलाह) से असुर लोगोंने इस कन्याको ग्रहण किया ॥ ३० ॥ तिसके पीछे फिर देवता व दैत्यगण समुद्रको मथन करने लगे। हे राजन् तब समुद्रसे एक परम आश्चर्यमय पुरुष निकला ॥ ३१ ॥ उसकी भुजायें लम्बी और पुष्ट थीं, गर्दन शंखकी नाभि समान तीन रेखाओंसे अंकित और सुन्दर गोलथीं, उसका रंग श्याम था और अनेक प्रकारके आभूषण धारण कर रहा था ॥ ३२ ॥ उसके सब वस्त्र

पीले थे, छाती चौडी थी और दोनों कानोंमें मणिजटित कुण्डल पहरे हुए था, उसके केश अति सुन्दर प्रान्तभागतक चिकने और घूँघरवाले दृष्टि आते थे और उसका विक्रम सिंहकी समान था ॥ ३३ ॥ वह भुजाओंमें कंकणपहर कर अमृतका पूर्ण कलश धारण किये हुए था. हे राजा परीक्षित् ! वह पुरुष कोई और था, वह साक्षात् श्रीभगवान् वैकुण्ठनाथके अंशसे उत्पन्न हुवा था ॥ ३४ ॥ इनका नाम धन्वन्तरि था, आयुर्वेदके पारदर्शी और यह यज्ञभागके पानेवाले थे. इन धन्वन्तरिजीके हाथमें अमृतका भराहुआ कलश देखकर असुर लोगोंने सब अमृत पानेकी वासना करके बलपूर्वक उस कलशको छीन लिया ॥ ३५॥ जब अमृतका कलश लेकर असुर भागनेको उपस्थित हुए तब देवता लोग अत्यन्त शोकाकुल हो श्रीभगवान् हरिकी शरणमें गये ॥ ३६ ॥ अपने सेवक लोगोंकी मनोकामनाको पूर्ण करनेवाले श्रीभगवान् देवता लोगोंकी ऐसी दीनता देखकर उनको समझाकर बोले कि, हे देवगण!हम योगमायासे तुम्हारे अर्थकी सिद्धि करेंगे। तुम लोग शोक मत करो ॥ ३७॥ हे राजन् ! तिसके पीछे असुर लोगोंमें परस्पर क्लेशका आरम्भ हुवा । अमृतके लिये सबही अभिलाषी होकर कहने लगे कि"प्रथम हम" "प्रथम हम" "तुम नहीं "तुम नहीं"॥ ३८॥ और जो दानव लोग बल नहीं दिखासके, तब वह लोग जातिमत्सर हो यह कहकर कलश धारी बारम्बार रोकने लगे कि, देवता लोगोंने भी अमृत निकालनेमें बराबर श्रम किया है, इसलिये सचाईसे जो जिसका अंशहो सो उस अंशको देवता लोगभी पावें, जिसको जो भाग लेना है, उसको वह देनाही सनातन धर्म है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे परीक्षित् ! इस समयमें सब उपायोंके जाननेवाले भगवान् विष्णुने परम आश्चर्यमय अनिर्वचनीय स्त्रीका रूप धारण किया ॥ ४१ ॥ यह रूप देखनेमें नील कमलके फूलकी समान श्यामवर्ण, दोनों कर्ण समान और मनोहर कर्ण फूलोंसे भूषित, कमलकेसे नेत्र, और सुन्दर नासिका ॥ ४२॥ और नये यौवनके वेगसे जो उरोजोंका भाग हुआ था इसलिये उदर अतिकृश हो रहा था हे राजन् ! उसके मुखकी सुगन्धिसे भ्रमरगण अनुरागी हो रहे थे कि, जिससे उसके दोनों नेत्र चकित हो रहे थे ॥ ४३ ॥ उसके केशोंमें चँबेलीके फूल गुँथे हुये थे, सुन्दर कंठपर मनोहर भूषण लटक लटककर चटक रहे थे दोनों भुजाओंमें भुजबन्द देवता दैत्योंके बन्द बन्द ढीले कर रहे थे ॥ ४४ ॥ उसके नितम्बस्वरूपदीप निर्मल वसनसे ढके हुये थे, उनमें कमनीय काञ्ची (तगडी) पडी थी चलनशील चरणोंमें नूपुर झनकारते थे ॥४५॥

दोहा-मुख द्युति ज्यों रतिपति गढी, लिखी न सो छबिजाय ।
यह सुन्दर शोभा निरखि, चन्द्र गयो शरमाय ॥ १ ॥
रहत न मन वश ऋषिनके, प्यारी देख चितौन ।
मृगछौना खंजन लखत, ठिठक रहे गहिमौन ॥ २ ॥
ठुमकि ठुमकि पगधरत है, इत उत नैन चलाय ।
मनहुँ मदन विषयी नये, बाण रह्यो बरसाय ॥ ३ ॥

मन्द हँसनि बोलनि मधुर, अधर सधर रसखानि।
गढेमार निज करनसों,मनमोहन जियजानि ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहेते हैं कि, हे महाराज ! वह कामिनी लजीले शरमीले हास्यसहित जो कटाक्ष कर रही थी, उसकी विलाससहित अवलोकनसे बारम्वार दैत्यलोगोंके मनमें मार मार मारकर रहाथा ॥ ४६ ॥

दोहा-कामबाण जाके हिये, लागत तिरछो आय।
लोटपोट सो होत हैं, चोट सही नहिं जाय ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा-मोहित होकर दैत्य सब, सुधाकलश देदीन्ह।
सब असुरोंको मोहनी, नवमें वंचन कीन्ह ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! असुर लोग परस्पर सुहृदपन त्याग उस अमृत पूर्ण कलशको छीन चोरोंकी समान आचरण कर धक्कम धक्का करने लगे कि, इतनेहीमें उन्होंने देखा कि, एक मनमोहिनी सोहिनी तरुणी स्त्री उनके निकट चली आती है ॥ १ ॥ यह दैत्यलोग उसको देखतेही कामदेवके वश होकर कहने लगे कि, अहो ! यह क्या मनोहर सुन्दरता है ? कैसी अद्भुत कान्तिहै कैसा अनुपमवाला यौवन है. इस प्रकारसे कहते कहते उन कामातुर दैत्योंने उसके निकट जायकर पूँछा कि ॥ २ ॥ हे कमलदलनयनी ! तुम कौन हो ? और कहाँसे आई हो ? क्या करनेकी इच्छा है ? तुम किसीकी वधू अथवा सुता हो ? सो कहो । हे सुन्दरजंघाओंवाली ! तुमको देखकर हमारा मन मोहित होगया है ॥ ॥ ३ ॥ हे सुन्दरि ! हम लोगोंको निश्चय जान पडता है कि-देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, चारण अथवा लोकपाल इनमेंसे किसीने भी अभीतक तुमको नहीं छुआहै फिर इसकी क्या संभावना है कि, मनुष्य गण तुम्हें स्पर्श कर सकें ? ॥ ४ ॥ हे सुभ्रु ! हम जानना चाहते हैं कि,शरीरधारियोंको सब इन्द्रियें और अंतःकरणमें प्रीति उपजानेके लिये दयावान् होकर क्या विधाताने तुमको यहाँ भेज दिया है ? या अपनी इच्छानुसार यहाँ आई हो ? हम तो जानते हैं कि, विधाताने तुमको भेजा होगा ॥ ५ ॥ हे भामिनि ! हमारी यह सब जाति, एक वस्तुकी चाहना कर परस्पर झगडाकर वैर बाँधे हुये हैं,सो तुम हमारा सबका झगडा निपटाय हम लोगोंका मंगलकरो ॥ ६ ॥ हम कश्यपजीकी सन्तान हैं. परस्पर भाई भाई हैं, सबहीने पौरुषप्रकाश किया है, यह अमृतका कलश लेकर तुम न्यायानुसार हम सबको बाँट दो कि, जिसमें हम लोगोंके बीच परस्पर फूट न पडै ॥ ७ ॥ हे राजन् ! मायाके द्वारा स्त्रीका रूप धारण किये हुये भगवान् विभु इस प्रकार दैत्यलोगोंकी प्रार्थना सुनकर हँसे और मनोहर कटाक्षसे देखते देखते वक्ष्यमाण वचन कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि, हे कश्यपपुत्रगण ! हम व्यभिचारिणी हैं, सो तुमने किस प्रकारसे हमारा विश्वास किया ? पण्डित लोग कदापि स्त्रियोंका विश्वास नहीं करते ॥ ९ ॥ हे देव !

रिपुगण ! शालावृक (कुत्ता) और व्यभिचारिणी स्त्री इनकी मित्रता अनित्य है यह दिन दिन नये ढूंडते हैं ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! असुरलोग इस मोहिनी नारीके ऐसे परिहास वचनोंको सुन उसका विश्वास कर किसी अभिप्रायसे गंभीरतापूर्वक हँसनेलगे। और तिसके पीछे वह अमृतका कलश उसको सौंप दिया ॥ ११ ॥ मोहिनी-रूप हरि अमृतका कलश हाथमें लेकर मन्द मुसकानसे मुखको शोभायमानकर कहने लगीं कि, हम जो कुछ करैं, वह भला हो चाहे बुरा हो, उसको जो तुम अंगीकार कर लो तो हम इस अमृतको बाँट सक्ती हैं उनके यह वचन सुन प्रधान प्रधान असुर लोग " अच्छा ऐसाही होगा " यह कह कर सम्मत हुए। और उन मोहिनी रूप श्रीनारायण की इच्छाको नहीं जाना ॥ १२ ॥ १३ ॥ तिसके उपरान्त असुरोंने उपवास करके स्नान किया और हव्यसे अग्निमें होम कर गौ, ब्राह्मण और सब प्राणियोंको नमस्कार करनेलगे. फिर ब्राह्मणलोगोंने उनके मंगलके लिये स्वस्तिवाचन किया ॥ १४ ॥ फिर वह असुरलोग अपने अपने मनमाने नये नये वस्त्र पहरकर सबही सुन्दररूपसे विभूषित हो पूर्वकी ओरको बिछे हुए कुशापर जाकर बैठ गये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जिस गृहमें अमृत बाँटना नियत हुआथा, वह गृह धूप दीपसे सुगंधित और मालाओंसे सजाया गया था. देव, दानवलोग उसमें पूर्वकी ओरको मुखकरके बैठे ॥ १६ ॥ फिर वह मनमोहिनी नारी लचक मचक अमृतका कलश हाथमें ले उनके बीचमें गई, उसकी दोनों जाँघ केलेके समान चिकनी, श्रोणीतक रेशमसे ढका हुआ है, नितम्बोंके भारसे चाल मंद मंदहै, दोनों नेत्र मदसे मतवाले हैं, दोनों कुचाएँ अनारकी समान हैं, वह कनकमय नूपुरोंकी ध्वनि व झनकारसे मानो अव्यक्त ध्वनि कररही थी ॥ १७ ॥ कानोंमें रत्नजटित कुण्डल धारण किये, मनोहर कपोल, चन्द्रमासा मुखारविन्द, मनहरण नासिका, पर देवता नाम लक्ष्मीजीसा थन, जिसके स्तनोंपरका झीना वस्त्र वारंवार पवनकी झकोलसे गिर गिर पड-ताथा और वह सँभालतीजाती थीं इसलिये उस मोहिनी सोहिनी प्यारी नारीको देखकर देवता व असुर सबकोही मोह उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ हे महाराज ! जब इस प्रकार देव दानव दोनों दल मोहित होगये तब मोहिनी रूप श्रीभगवान्ने विचारा कि, सपोंको दूध पिलानेकी समान असुर लोगोंको अमृतका पिलाना अन्याय है, दैत्य लोगोंने हमारे किये बुरे भले कर्म सब स्वीकार कर लिये हैं इससे हम देवतालोगोंकोही अमृत पिलावैं अधिक करके दैत्योंने न्यायानुसार बाँट बाँट लेनेको कहा है और इन दैत्योंकी सबही जाति क्रूरहै, इसलिये इनको अमृतका अंश देना ठीक नहीं। यह विचारकर मोहिनीने दैत्योंको अमृतका भाग देनेकी इच्छा नहीं की ॥१९॥ तिसके पीछे उस मनमोहिनीने देवता व दैत्योंकी पृथक् पृथक् पंक्ति करके उनको अलग अलग अपनी अपनी पाँतिमें बैठाया ॥ २० ॥ तिसके पीछे कलश ग्रहण करके बहुत मान और प्रिय भाषणादिसे धोखादे, दैत्योंको उलंघन कर देवता लोगोंके दूर रहनेपर भी उनको ही जायकर अमृत पिलाने लगी कि, जिस सुधा (अमृत) से न कभी जरा आवै, न बुढापा सतावै ॥ २१ ॥ हे राजन् ! असुर लोगोंने

स्वयं मोहिनीका करना धरना सब स्वीकार कर लिया था, इसलिये अपने किये समन्वको चुप चाप पालन करते रहे कभी मोहिनी भगवान् कनखियोंसे दैत्यलोगोंके ऊपर कटाक्ष करते जाते थे, इसलिये वह असुर यह विचार करते थे कि, इस स्त्रीके साथ विवाद करना ठीक नहीं, यह समझ चुप चाप रहे ॥ २२ ॥ अधिक करके मोहिनीमें दैत्योंका प्रेम अत्यन्त बढगया था, सो वह प्रेम कहीं छूट न जाय, इसलिये वे दैत्यलोग कुछ अप्रिय वचन भी न कहसके और मोहिनी मान पाय फिर अप्रिय वचन कहनेकी उनकी सामर्थ्यभी न हुई, इसलिये चुप चाप रहे। धन्यहै प्रेम! हजारों लक्षों अभागे तेरी कुहुकिनो मायामें पडकर अपना तन, मन, धन, खो बैठते हैं प्रेमकेही वश होकर कितनेही विद्वानोंने ठक्करें खाई हैं, यह प्रेम क्या मोहिनी शक्ति रखताहै? इसको आजतक कोईभी न समझ सके। जो लोग शत्रुके बाण, खड्ग, कटारी आदि अस्त्र, शस्त्रोंसे नहीं मरते, वही लोग अपने प्यारेके क्रोधित होनेसे और उसके अपमान करनेसे बहुतही डरते हैं; डरनाही क्या वरन् उनको लोक परलोककाभी कुछ ज्ञान नहीं रहता ॥ २३ ॥ हे राजन्! दानवगणोंमेंसे राहु देवताओंका वेष बनाय देवताओंकी पंक्तिमें चंद्रमा और सूर्यके मध्यमें बैठा हुआ अमृत पी रहाथा कि, उसीसमय चन्द्रमा और सूर्यने उसको जान कर श्रीभगवान्से कहा कि, महाराज! यह राहु दैत्य है, इसे अमृत न पिलाइये ॥ २४ ॥ तब छुरकी समान तेज धारवाले सुदर्शन चक्रसे भगवान् हरिने उसका शिर काट डाला उसके शरीरमें अमृत नहीं छुआगया था इसलिये वह कट गया ॥२५॥ और शिरसे अमृत छुवा गया था, इसकारण वह अमरताको प्राप्त हुआ. इसलिये ब्रह्माजीने सूर्यादिकी तुल्य उसकोभी ग्रहपदका अधिकार दिया, वह राहु इसी वैरके कारण अवतक पौर्णमासी और अमावास्याके दिन सूर्य चंद्रमाको ग्रहण कर लेताहै ॥ २६ ॥ जब देवतालोगोंने सब अमृत पी लिया, तब लोक-भावन श्रीभगवान् हरि दर्शनकारी उन प्रधान प्रधान असुर लोगोंके सामनेही मोहिनीरूप छोड फिर अपना वही रूप धारण कर लिया ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! देव दानवोंका समुद्र मथना देश, काल, हेतु (नन्दरात्रि) अर्थात् (लतादि) कर्म और बुद्धिमें यद्यपि समानथा, तथापि फल विचित्र हुआ, अर्थात् किसीको सम्पूर्ण फल हुआ, किसीको कुछ न मिला, इसलिये देवदानवोंने देवगणोंने जिसका चरण पृष्ठ परागका आश्रय लिया था इस्से वह यथार्थ अद्भुत रूप फलको प्राप्त हुये और दैत्य लोग जिन करके ठगे गये वही सेवनीय हैं ॥ २८ ॥ हे महाराज! मनुष्य लोग धन, प्राण, कर्म, मन और राज्यसे देह और स्त्री पुत्रादिके लिये जो कुछ करते हैं,सो भेदाश्रयसे मूल त्याग करके शाखाके सींचनेकी समान वह व्यर्थ होताहै; परन्तु इन्हीं धनादि द्वारा ईश्वरके लिये जो कोई कर्म करें तो भेदभाव छोड देनेके कारणसे, जडके सींचनेके समान वह फलदायक होता है, क्योंकि ईश्वर सबमेंही अनुगत है, बस जैसे जडके सींचनेसे फूल व शाखा सबका सींचना होजाता है, वैसेही ईश्वरके अर्थ कर्म करनेसे और भी सब प्रसन्न होजाते हैं ॥ २९ ॥

कवित्त-पूरण पुराण पर्मानंद तू परेशप्रभु, पारावार हूते परे प्रकृति प्रधानमें ॥ घट घट तेरो बास सदा तू स्वयं प्रकाश, तेरी चिदाभाससो नवन तव खानमें ॥ विधि औ निषेध भावाभावते रहत तू है, शुद्ध बुद्ध तू है धाता ध्येय और ध्यानमें ॥ तू है निहसंग तोमें गुणके प्रसंग ऐसे, जैसे रंग देखियत फटिक पषानमें ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-दशवेंमें लडने लगे, दैत्य महा बलवान् ।
तब घबराये देव सब, प्रगट भये भगवान् ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी वोले कि, हे राजन् ! यद्यपि दैत्य, दानवगण कर्ममें योग्य और सावधान थे तोभी श्रीभगवान्से विमुख होनेके कारण उनको अमृत न मिला ॥ १ ॥ श्रीभगवान् विष्णु अमृतको सिद्धकर और वह अपने भक्त देवता लोगोंको पिलाय दर्शन करनेवाले सब प्राणियोंके सामनेही अपने स्थानको चलेगये ॥ २ ॥ उसके पीछे अदितिके पुत्र ईर्षाके मारे अपने शत्रु (वैरी) देवता लोगोंका कार्य सिद्ध देखकर न सहसके और अस्त्र शस्त्र उठाय देवता लोगोंके साथ युद्ध करनेको उपस्थित हुये ॥ ३ ॥ अमृतके पीनेसे देवतालोग सब प्रकारसे समृद्धवान् हुये थे, वे लोग भी श्रीभगवान्के चरणोंका आश्रय करके अस्त्र शस्त्र ग्रहणकर संग्राम करने लगे ॥ ४ ॥ उस समुद्रके तीर सुर असुर लोगोंका महाघोर कठोर दारुण संग्राम हुआ कि, जिसका वृत्तान्त सुननेसे रोयें खडे होते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! देव दानवगण संग्राम करनेमें अपना मन लगाय परस्पर एक दूसरेको ताककर खड्ग वाण व और दूसरे विविध आयुधोंसे मारने लगे ॥ ६ ॥ वहाँपर शंख, तुरही, मृदंग, भेरी, डमरू और हाथी, घोडे, रथ, पैदल, इन सबका महा-घोर शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ घोडोंके समूह घोडोंसे और हाथियोंके यूथ हाथियोंसे संग्राम करने लगे ॥ ८ ॥ और कितनेही योद्धा ऊंटोंपर चढके, कितनेही वार हाथियोंपर सवार हो और कितनेही सैनिक गधोंपर आरोहणकर अपने अपने शत्रुओंके सम्मुख युद्ध करने लगे । हे राजन् ! कोई कोई वीर गौर मुख (वानर विशेष) को ले, कोई कोई अनुचर रीछोंको ले, कोई कोई व्याघ्र ले और कोई कोई सिंहोंको ले लडनेके लिये रणस्थलमें आन-कर उपस्थित हुये ॥ ९ ॥ कोई कोई वीर गिद्धोंपर, काकोंपर, बगलोंपर, सिकरोंपर और कोई भैंसोंपर चढकर झपटे । कोई मछलियोंपर, कोई शरभोंपर, कोई गैंडोंपर, कोई बलों-पर चढकर आये ॥ १० ॥ कोई कोई रोजोनपर, कोई गीदडोंपर चढकर आये। कोई कोई चूहोंपर कोई २ खरगोशोंपर, कोई मनुष्योंपर, कोई बकरोंपर, कोई कर्सारियोंपर, कोई कोई हरिणोंपर और कोई कोई शूकरोंपर चढकर आये ॥ ११ ॥ और कुछेक योद्धालोग जलचारी व थलचारी पक्षी व विकटाकार और दूसरे प्राणियोंपर चढकर आये । हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकारके वीरगण दोनों ओरकी सेनाओंके आगे आगे आनकर रणभूमिमें

विराजमान हुये ॥ १२ ॥ हे राजन्! चित्र विचित्र ध्वजा पताका, स्वच्छ निर्मल और वडे मोलके रत्नोंसे जडी हैं डंडियें जिनकी, ऐसे चमर और व्यजन ॥ १३ ॥ पवनसे कम्पायमान उपरने, पगडी, जामा, पटका, कवच, इनसे व तेजसे प्रकाशित और सूर्यकी किरणोंसे अतिशय प्रकाशमान निर्मल शस्त्र और वीरश्रेणी ॥ १४ ॥ इन सबसे देवदानवोंका वल अर्थात् दोनों ओरकी सेना इस प्रकारसे दीप्तिमान् होने लगी कि, जैसे दो समुद्रोंमें जलजन्तु शोभायमान होते हैं ॥ १५ ॥ हे महाराज! विरोचनका पुत्र बलि इस संग्राममें सेनापति हुआ, वह वैहायस नामक विमानमें आरूढ (सवार) हो, उदय गिरिके शिखरपर विराजमान हुये चन्द्रमाकी समान दीप्तिमान् होने लगा। यह वैहायस नामक विमान मयदानवने बनाया था ॥ १६ ॥ यह विमान इच्छानुसार चलनेवाला था और इसमें युद्धकी सब सामग्री भरी हुई थी, यह विमान आश्चर्ययुक्त था और तर्कसेभी निश्चय नहीं किया जा सक्ता था यह कभी दिखलाई देता था और कभी छिपजाता था ॥ १७ ॥ हे महाराज! जब उस सर्वश्रेष्ठ विमानपर राजा बलि सवार हुवा, तव समस्त सेनापतियोंने उनको चारोंओरसे घेरलिया और इधर उधर चामर व्यजन और मस्तकपर छत्र लगाया गया, तब उदयाचलपर विराजमान हुए चंद्रमाके समान उसकी शोभा होने लगी ॥ १८ ॥ पृथक् पृथक् यूथके अध्यक्ष असुर लोग अपने विमानोंके सहित सेनापति राजाबलिके साथ गमन करने लगे ॥ १९ ॥ हे राजन्! नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, विमूर्च्छा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्ताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन ॥ २० ॥ हयग्रीव, शंकुशिरा, कपिला, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्रजित, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल ॥ २१ ॥ अरिष्ट, अरिष्टनेमि, मय, त्रिपुराधिप, व और पौलोम, कालेय, निवात कवच इत्यादि लेकर ॥ २२ ॥ जिन असुर लोगोंने अमृतके न मिलनेसे क्लेश पाया था, वह सबही क्रोधित हो सिंहनाद करते करते महाशब्दसे शंखकी ध्वनि करने लगे कि, जिसकी ध्वनिसे सब दिशायें परिपूर्ण होगई ॥ २३ ॥ हे राजन्! असुरलोगोंको इस प्रकार बलसे उन्मत्त देखकर स्वर्गनाथ राजा इंद्रको बडा क्रोध उत्पन्न हुवा ॥ २४ ॥ वह देवराज इन्द्र गगनमण्डलमें मंदजल भरण करते हुए ऐरावत हाथीपर इसप्रकार चढ बैठे कि, जैसे झरना झरते हुए उदयाचल पर्वतपर सूर्य भगवान् आरोहण करते हैं, उस समय ऐसीही शोभा देवराज इंद्रकी हुई ॥ ॥ २५ ॥ हे महाराज! जब इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ हुए तब देवता लोग विविध भाँतिके वाहन आयुध और ध्वजाओंसहित वायु, अग्नि, वरुणादि लोकपाल अपने अपने गणोंको साथले इन्द्रके चारों ओर आनमिले ॥ २६ ॥ इसके पीछे द्वन्द्वयुद्ध करनेवाले वह देवता और दैत्यगण परस्पर एक दूसरेके साथ हो अपना अपना नाम सुनाय एक दूसरेकी भर्त्सना करके पुकारने लगे और आगे बढकर युद्धारम्भ करते हुए ॥ २७ ॥ अर्थात् महाराज इन्द्रके सन्मुख राजा बलि आनाभिडा, तारकासुरके संगमें स्वामिकार्तिकजीका

संग्राम हुआ, हेतिके संग वरुणजीने युद्ध किया, प्रहेतिके साथ मित्रका संग्राम होने लगा ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहते हैं कि, हे पाण्डुनन्दन ! इसी प्रकार कालनाभके साथ यमराज, मयदानवसे विश्वकर्मा, त्वष्टाके साथ शम्बर और विरोचनके साथ सूर्यभगवान् जा भिडे ॥ २९ ॥ अपराजितके संग नमुचि, वृषपर्व्वाके साथ अश्विनी-कुमार राजा बलिके बाण इत्यादि शत पुत्रोंके साथ एक सूर्यदेवका संग्राम हुआ॥ ३०॥और राहुके साथ भगवान् चन्द्रमाने युद्ध किया,पुलोमाके साथ वायुका समर हुआ. हे अरिन्दम ! निशुम्भ और शुम्भके साथ वेगवती भद्रकाली देवीका संग्राम हुआ॥ ३१॥ जम्भासुरके साथ वृषाकपि, महिषके साथ विभावसु (अग्नि) वातापि और ब्रह्मपुत्रके साथ इल्वल॥ ३२॥काम देवके साथ दुर्मर्ष, मातृगणोंके साथ उत्कल, शुक्रके साथ बृहस्पति, नरकासुरके साथ शनिने युद्ध किया ॥३३॥ कालेय नामक असुरलोगोंके साथ वसुगण संग्राम करने लगे । पौलोम असुरोंके साथ विश्वेदेवगण जाय जुटे और क्रोधवश असुरोंके साथ रुद्रगणोंने संग्राम किया ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकारसे दानव और दैत्यवृन्द प्रत्येक पृथक् पृथक् पुरुषके विरुद्ध हो युद्ध करते करते परस्पर जीतनेकी इच्छा किये तीक्ष्ण बाण खड्ग और तोमरादि अस्त्र शस्त्रोंको उठाय महावेगसे चोट चलाने लगे ॥ ३५ ॥ और भुशुण्डी, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टे, शक्ति, लट्ठर, पाश, फरसा, खड्ग, भाले, गदा, मुद्गर, भिंदिपालसे बराबर शत्रुओंके शिरोंको काटते थे ॥ ३६ ॥ और हाथी, घोडे, रथ, पैदल, व सवारोंसहित विविधवाहन विविध भाँतिके शस्त्रोंके प्रहारसे खण्ड खण्ड होगये. उनकी भुजायें, जांघे,कंधे,चरण, कटगये और ध्वजा, धनुष, कवच, भूषणादि छिन्न भिन्न होगये ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इन दैत्यलोग गोंके चरणघातसे और रथके पहियोंसे रणभूमिमें वडी धूरि उडी कि, जिसने प्रथम गग-नमण्डल और सूर्यभगवान्को ढक लिया, तिसके पीछे वह धूरि रुधिरके गिरनेसे गीली हो इस कार्यसे निवृत्त हुई। अर्थात् फिर आकाशको न उडी ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! वह रणभू-मि अनेक योद्धाओंका भूषण भूषित छिन्न भिन्न भुजाओंसे, शुण्डोंकी समान जांघोंसे और बडे बडे मस्तकोंसे ढककर वडी शोभाको प्राप्त हुई, संग्रामस्थलमें जो मस्तक कटे हुए पडे थे, उन सबके किरीट और कुण्डल गिर पडे थे, उन शिरोंके नेत्र मारे क्रोधके लाल लाल होरहे थे और दाँतोंसे ओठोंको चबाय रहेथे ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे गिरे हुए अपने अपने शिरोंकी आँखोंसे देखते देखते अनेक अनेक कबन्ध उठने लगे । वह कबन्ध अपने अपने हाथोंमें विविध भाँतिके आयुध उठाय उठाय सेनाके ऊपर धावमान होनेलगे ॥ ४० ॥ तिसके पीछे महासुर राजा बलिने दश वाणोंसे इन्द्रको,तीन बाणसे उसके वाहन ऐरावतको चार बाणसे ऐरावतके चार रखवालोंको और एक बाणसे हाथींके महावतको बींधडाला ॥ ४१ ॥ परन्तु राजा इन्द्रने हँसकर इन वेगवान् वाणोंको अपने ऊपर गिरनेसे पहलेही अपने तेज भालेसे काटडाला ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! देवराज इन्द्रका यह प्रशंसा करने योग्य कर्म देख राजा बलि ईर्षाके मारे इसको न सहसका और उसने महाक्रोधकर अति-वेगवान् शक्ति ग्रहण की । परन्तु वह शक्ति राजा बलिकेही हाथमें रहकर जब उल्काकी

समान प्रज्वलित होरही थी, उसी समय देवराज इन्द्रने अपने अस्त्रसे उसको काटडाला ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे दैत्यराज बलिने शूल ग्रहण किया, फिर पाश ली (अस्त्र विशेष) फिर तोमर (अस्त्र विशेष) और इसके पीछे ऋष्टि ली, परन्तु राजा बलि जिस अस्त्रको ग्रहण करता था, शचीनाथ इन्द्र उसको ही काट डालते थे ॥ ४४ ॥ तिसके पीछे यह असुर राजा बलि अचानक अन्तर्धान होगया, और आसुरी माया प्रगट की कि, जिससे अकस्मात् देवताओंकी सेनाके ऊपर एक बडा भारी पर्वत गिरा ॥ ४५ ॥ तिसके पीछे बहुतसे वृक्ष दावानलसे भस्म होकर गिरने लगे और टाँकीकी समान पैनी अनीवाली बहुतसी शिलायें गिरकर शत्रुकी सेनाको चूर्ण करने लगीं ॥ ४६ ॥ और दन्दशूक बडे बडे सर्प, विच्छू और सिंह, व्याघ्र, वाराह व भागते हुए बडे बडे हाथी गिरने लगे और नंग घडंगी शूल धारण किये सैकडों सहस्रों निशाचर और बहुतेरे राक्षस प्रकाशमान हो "मार मार काट काट" कहकर भयंकर कुलाहल करनेलगे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इसके पीछे आकाश मण्डलमें बडाभारी मेघ उदय हो गम्भीर और कठोर ध्वनि करनेलगा. व और दूसरे बादर पवनसे टकराय अंगारोंकी वर्षा करनेलगे ॥४९॥ महाअसुर बलिने जो मायासे अग्नि उपजाई थी उसका सारथि पवन प्रलयकी आगके समान भयंकर हो देवता लोगोंकी सेनाको भस्म करनेकी इच्छा करनेलगा ॥ ५० ॥ फिर चारोंओरसे समुद्र उफना-हुआ दिखाई दिया, प्रचण्ड पवनके चलनेसे जो तरंगें उछलने लगीं और भँवरे पडने लगे, तिससे रणभूमि अत्यन्त ही भयंकर दिखाई देनेलगी ॥ ५१ ॥ व और मायावी दानवगण अदृश्य रहकर इस प्रकारसे जब रणभूमिमें विविध भाँतिकी माया उत्पन्न करनेलगे, तब देवता लोगोंकी बहुतसी सेना नाशको प्राप्त हुई ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! जब इन्द्रादि देवता लोगोंने इस मायाका कोई उपाय न देखा तब श्रीभगवान्का ध्यान किया, जैसेही ध्यान किया कि, उसी स्थानमें भगवान् विश्वभावन प्रगट होगये ॥ ५३ ॥ उस समय पीतवसनधारी नवीन कमलकी समान नेत्रवाले भगवान् गरुडके कन्धेपर चरण पल्लव धेरे. आठ भुजाओंमें आयुध धारणकिये सबको दिखाई दिये। अपने वाहन गरुडजीके दोनों कन्धोंपर उनके दोनों चरण रक्खे हुए थे और श्री कौस्तुभ, बडे मोलका किरीट और दोनों मनोहर कुण्डल यथायोग्य अंगोंपर धारण किये जानेसे अत्यन्त शोभा विस्तार कर रहेथे ॥ ५४ ॥ जैसे जाग्रद्दशाके आनेसे स्वप्नावस्था भाग जाती है, वैसेही मुरलीमनोहरके रणक्षेत्रमें आतेही असुर लोगोंके मंत्रोंसे उत्पन्न हुई माया शीघ्रही नाशको प्राप्त होगई. हे राजन् ! श्रीभगवान् हरिकी महिमा ऐसीहीहै कि, उनके स्मरण करतेही सब दुःख नाशको प्राप्त होजाते हैं, फिर उनके आनेसे देवता लोगोंका दुःख दूर होनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ५५ ॥ कालनेमि नामक जो असुर सिंहपर चढा हुआ शूरवीरता प्रगट कर रहाथा वह रणभूमिमें गरुडजी पर चडे हुए भगवान् नारायणको घायल करनेकी इच्छासे शूल चलानेलगा, उस शूलको गरुडजीके मस्तकपर गिरता हुआ देखकर त्रिगुणाधीश भगवान् हरिने लीलासेही पकड़ लिया और उस शूलसेही वाहन सहित उस कालनेमिका शिर

काट लिया ॥ ५६ ॥ तिसके पीछे अतिबलशाली सुमाली युद्धमें आये, तब श्रीभगवान्‌ने चक्र चलाय दोनोंके शिर काटलिये। तब माल्यवान् अति पैनी गदा लेकर गरुडजीके संहार करनेको दौडा कि, तुरन्तही भगवान्‌ने चक्रचलाकर उसका भी मस्तक काटलिया ॥ ५७ ॥ भगवान्‌के सम्मुख कौन लड सक्ता है ॥

कवित्त-बैर प्रीति करबेकी मनमें न राखै शंक, राजा रंक देखते न छाती धकधाकरी ॥ आपकी उमङ्ग की निबाहिबेकी चाह जिन्हैं, एकसो दिखात तिन्हैं बाघ और बाकरी ॥ ठाकुर कहत मैं विचारके बिचार देखो, यहै मरदाननकी टेव बात आकरी ॥ गही तौन गही जौन, छोडी तौन छाँडि दई, करी तौन करी बात नाकरी सो नाकरी ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-ग्यारहमें सब देवतन, हने असुर बलवान।
मरे परे लख शुक्रने, सबहिं दीन्ह जिवदान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! तिसके पीछे इन्द्र वायु आदि देवता लोग परमपुरुष भगवान्‌की कृपासे सावधान हो उन असुर लोगोंके ऊपर अतिवेगसे आघात करने लगे कि, जिन राक्षसोंने पहले उनको मारा था॥१॥तब देवराज इन्द्र क्रोधित होकर विरोचनके पुत्र राजा बलिके मारनेको वज्र उठाकर दौडे तब सब प्रजा हाहाकार करने लगी ॥ २ ॥ मनस्वी राजा बलि प्रस्तुत हुआ महारणमें घूम रहा था कि, इतनेमें वज्र हाथमें लिये देवराज इन्द्रने सम्मुख खडे हुए उस दानवका तिरस्कार करके कहा ॥ ३ ॥ कि, अरे मूढ! कपटवृत्तिवाले चोर लोग जैसे बालकोंके नेत्र व कान बंदकरके उनके धन हर लेते हैं, वैसे ही तूभी माया कर हम लोगोंके जीतनेकी वासना करता है, परन्तु यहां तेरी कामना पूरी नहीं होगी, क्योंकि हम मायाके ईश्वर हैं ॥ ४ ॥ अरे! तू हमारा प्रभाव सुन; जो लोग मायासे स्वर्गमें चढनेकी वांच्छा करते हैं, वा जो लोग स्वर्गका उल्लंघन करना चाहते हैं, अर्थात् मोक्षकी इच्छा करते हैं, हम उन सब चोरोंको उनके पदसे भी नीचे पटक देते हैं ॥ ५ ॥ अरे मन्दात्मन्! हम इस शतधारवाले वज्रसे अभी तेरा शिर काट डालते हैं तू अपनी जातिवालोंके साथ युद्ध करनेका यत्न कर ॥ ६ ॥ राजा बलिने कहा कि, हे इन्द्र! इतना गर्व क्यों करते हो? सब पुरुष कालसे प्रेरित होकर संग्राम करते हैं। उन सबको क्रमसे कीर्ति, जय, पराजय और मृत्यु प्राप्त हुआ करती है ॥ ७ ॥ इस कारण पण्डित लोग इस जगत्‌को कालसे बँधा हुआ समझते हैं, बस इससे इन सब बातोंके लिये हर्ष अथवा शोक कुछ नहीं करते. परन्तु तुमने यह विचार नहीं किया, क्योंकि तुम इस विषयमें चतुर नहीं हो ॥ ८ ॥ इसलिये इन सब कीर्ति-योंको जयादिमें अपना कारण समझकर तुम मर्मके पीडा देनेवाले वचन कहते हो परन्तु हम तुम्हारे इन वचनों पर कान नहीं देंगे, क्योंकि तुमको कुछ भी बोध नहीं है,

बरन् तुम्हारे लिये हम शोक करते हैं ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, वीर मर्दनकारी राजा बलिने इस प्रकार इन्द्रका निरादर कर कानतक धनुष खैंच देवराजके बाण मारे। हे राजन्! एक तो शचीनाथ राजा बलिसे तिरस्कार पाय घायल हुएहीथे और दूसरे बाणोंके लगनेसे फिर घायल हुए ॥ १० ॥ यद्यपि इन्द्र इस प्रकारसे यथार्थ कहनेवाले अपने शत्रुसे तिरस्कारित किये गये तो भी अंकुशखाये हुए हाथीकी समान इन्होंने राजा बलिके तिरस्कारको नहीं सहा ॥ ११ ॥ और उसी समय अमोघ (जो कभी व्यर्थ ही न हो) वज्र हाथमें लेकर राजा बलिपर चलाया कि, जिसके लगनेसे दानव राजा बलि पंख कटे पर्वतकी समान विमानसे गिरकर भूतलमें पतित हुआ अर्थात् पृथ्वीपर गिरा ॥ ॥ १२ ॥ राजा बलिका भाई जम्भासुर अपने सखाको संग्रामस्थलमें गिरता हुआ देखकर यद्यपि सुहृद हत हुआ तो भी सुहृदपनका आचरण करनेके लिये धावमान हुआ ॥ १३ ॥ और सिंहवाहके साथ मिलकर समीपजा वेगसे गदा उठाय इन्द्रके और उनके वाहन ऐरावत हाथीके कन्धेमें जहाँ जोड होता है, वहां मारी ॥ १४ ॥ देवराजका हाथी गदाके प्रहारसे अत्यन्त व्यथित होगया, उसने आगेके दोनों घुटने पृथ्वीमें टेक दिया और बडे मोहको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ हे पाण्डुकुलभूषण परीक्षित्! यह देखकर इसका सारथी मातली ऐसा रथ लेकर आन पहुँचा कि, जिसमें एक सहस्र घोडे जुडे हुएथे, तब देवराज इन्द्र हाथीको छोड कर उस रथमें बैठगये ॥ १६ ॥ जम्भासुर देवराज इन्द्रके सारथीका यह कार्य देखकर प्रशंसा करने लगा परन्तु दूसरे क्षणमें ही गर्व प्रगट करके संग्रामके बीच उसने प्रदीप्त शूल चलाय मातलिको मारा ॥ १७ ॥ देवराज इन्द्रके सारथी मातलिने अपने बलका आश्रय करके उस शूलके प्रहारकी दुःसह व्यथाको सहन किया। तब स्वर्गनाथ इन्द्रने क्रोधित होकर वज्र चलाय जम्भासुरका मस्तक काट डाला ॥ ॥ १८ ॥ हे राजन्! जम्भासुरके मारे जानेका समाचार देवर्षि नारदजीके मुखसे सुन उसकी जातिवाले नमुचि बल और पाक ये तीन दानव बडी शीघ्रताके साथ वहाँ आये ॥ ॥ १९ ॥ और विविध भाँतिके कठोर वचनोंसे इन्द्रका मर्म भेदन करने लगे, जैसे मेघ जलकी धारा वर्षाय कर पर्वतको ढक लेते हैं, वैसेही बाण वर्षाय इन तीन राक्षसोंने देवराज इन्द्रको रूंध लिया ॥ २० ॥ बल नामक असुर बडी शीघ्रताके साथ बाण छोड-ताथा उसने रणक्षेत्रमें दशसौ बाण चलाय देवराज इन्द्रके एक हजार (१०००) घोडोंको मारा ॥ २१ ॥ पाक नामक असुरने दो बाण देवेन्द्रके सारथिके और रथके मारे। केवल एक बारहीके चढाने और छोडनेसे इन दोनों बाणोंमें एक ऊपर और एक नीचे लगा इस कार्यके प्रकाशित होनेसे समर भूमि अद्भुत जान पडने लगी ॥ २२ ॥ तिसके पीछे नमुचिने सुवर्णकी फोंक लगे हुए बडे भारी पंद्रह बाणोंसे देवराज इन्द्रको बींधडाला और रणक्षेत्रमें जल भरे बादलकी समान भयंकर गर्जना करने लगा ॥ २३ ॥ अम्बुद पटल (मेघगण) जिसप्रकार शरद कालके सूर्य भगवान्को ढकलेते हैं, वैसेही असुर लोगोंने बाणोंके समूहसे रथ और सारथीके साथ इन्द्रको ढकलिया ॥ २४ ॥ तब देवता लोग

इन्द्रको न देखकर अपने अनुचरोंके साथ विह्वलहो इस प्रकारसे चिल्लाने लगे कि, जैसे समुद्रमें जहाजके फटजानेसे, बनिये व्याकुल हो हाय हाय करतेहैं उन सब देवता लोगोंने जाना कि, आज हम स्वामीरहित हुये ॥ २५ ॥ तिसके पीछे देवराज इन्द्र असुर लोगोंके द्वारा बाणोंसे बाँधे पिंजरेमेंसे ध्वजा, अश्व, रथ और सारथी सहित निकलकर रात्रि बीत जानेपर सूर्य भगवान्‌की समान अपने तेजसे पृथ्वी,आकाश व समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुये उदित हुये ॥२६॥और सेनापति लोगोंको समरमें शत्रुलोगोंसे पीडित देख वज्र धारणकर वैरियोंको नाश करनेके लिये क्रोधके मारे अपना शस्त्र उठाने लगे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रने अपने अष्टधातुवाले वज्रसे एकही समयमें बल और पाक दो असुरोंका मस्तक काट लिया, यह देखकर इन दोनों दानवोंके जातिवाले भयसे अत्यन्त व्याकुल होगये ॥ २८ ॥ परन्तु बल और पाकका नाश देख दानवश्रेष्ठ नमुचि शोक और अमर्ष युक्त हो क्रोधसे परिपूर्ण हुआ और इन्द्रका वध करनेकेलिये प्रतिज्ञा करके अनेक यत्न करने लगा ॥ २९ ॥ वह धनयुक्त और सुवर्णसे भूषित लोहेका शूल ग्रहणकर महाक्रोधसे "मार लिया" "मार लिया" कह गर्जता हुआ देवराज इन्द्रके ऊपर झपटा ॥ ३० ॥ और सिंहकी समान गंभीर गर्जना करते करते देवराज इन्द्रके ऊपर इस राक्षसने यह शूल चलाया । हे राजन् ! इस महाशूलको आकाश मार्गमें उछलता देखतेही स्वर्गाधिपति इन्द्रने अपने बाणोंसे काट हजार टुकडे कर डाला । और फिर क्रोधकर नमुचिका शिर काटनेके लिये उस दानवकी गर्दनमें बडे जोरसे वज्र मारा ॥ ३१ ॥ यद्यपि इन्द्रने महावेगसे तेजस्वी वज्र चलाया तथापि वह उस दानवकी खालको भी तो न काट सका । जिस वज्रने अतिवीर्यवान् वृत्रासुरको भी छिन्न भिन्न कर डाला था, वही वज्र नमुचिकी गर्दनपर लगकर खुटला होगया । सत्य है "समयके फेरसे सुमेरु होत माटीको" यह बडेही आश्चर्यकी बात हुई ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जिससे इन्द्रके वज्रका अति तिरस्कार होता था, देवराज उससे महाभय करते थे इसलिये इस व्यापारको देखकर देवराज इन्द्र विस्मित हो आपही आप कहने लगे कि; दैवयोगसे यह क्या विमोहन हुआ॥ ॥ ३३ ॥ अहो ! जब जब प्रजा लोगोंपर दुःख हुआ है कि, पर्वत बोझसे भारी हुये पंखोंसे उडते उडते प्रजा लोगोंके ऊपर गिर पडते, तब जिस वज्रसे हमने उनके पंख काटे हैं ॥ ३४ ॥ और त्वष्टाके तपके सारसे जो उत्पन्न हुआ वह वृत्रासुर जिससे मारागया है, वह और बलवान् शूर कि जिनकी खाल किसी वज्रसे नहीं कटी, व लोगभी जिससे मारेगये, सो वही वज्र इस क्षुद्र असुरपर चलाया और लगाभी, परन्तु इसके घावभी न आया ॥ ३५ ॥ आः डंडेके समान इस वृथा वज्रको हम अब धारण नहीं करेंगे, कैसे खेदकी बात है कि, द्विजश्रेष्ठ दधीचिकी सामर्थ्य भी व्यर्थ होगई ॥३६॥ हे राजन् ! जब देवराज इन्द्र इस प्रकार शोक कर रहे थे कि, अशरीरिणी वाणीने उनसे कहा कि, हे देवेन्द्र ! यह दानव सूखी व गीली वस्तुसे नहीं मारा जायगा ॥ ३७ ॥ क्यों कि मैंने इसको वर दिया है कि, सूखी व गीली वस्तुसे तेरी मृत्यु नहीं होगी, इसलिये

इसके मारनेका कोई दूसरा उपाय सोचिये ॥ ३८ ॥ आकाशवाणीको सुन देवराज इन्द्रने सावधान रीतिसे ध्यानकर गीला और सूखा उभयात्मक उपाय देखलिया ॥ ३९ ॥ कि जलको फेन यह न सूखा है न गीला है, यह विचार उसीको वज्रमें लपेटकर नमुचिका मस्तक काट लिया। हे राजन्! नमुचिके मारे जानेपर मुनिलोग देवेन्द्र इन्द्रकी भली भाँति स्तुति करनेलगे और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४० ॥ गन्धर्वोंमें मुख्य विश्वावसु और परावसु गाने लगे, देवता लोग दुन्दुभी बजाने लगे, अप्सरायें आनंदके मारे नृत्य करने लगीं ॥ ४१ ॥ हे महाराज! इन्द्रने जिस प्रकार नमुचिका शिर काट डाला वायु, अग्नि, वरुणादि देवता लोगोंने भी उसी प्रकार असुर लोगोंका प्राण संहार किया कि, जैसे केशरी सिंह मृगोंका वध करते हैं ॥ ४२ ॥ परन्तु उसी समय ब्रह्माजीके भेजे हुये देवर्षि नारद देवतालोगोंके निकट आगये और दानवोंका नाश देखकर उनको निवारण करने लगे ॥ ४३ ॥ श्रीनारदजी कहने लगे कि, हे देववृन्द! तुम लोगोंने श्रीभगवान्‌की भुजाओंका अमृत प्राप्त किया है और सर्व सम्पत्तियोंसे युक्त हुयेहो अब फिर युद्ध क्यों करते हो, इस युद्धसे अलग हो जाओ ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, नारदजीके वचनको मानकर देवता लोगोंने उसी समय अपना अपना क्रोध छोड दिया और अपने अनुचरोंके साथ स्वर्गको चले गये ॥ ४५ ॥ रणभूमिमें दानव लोगोंके जो बचे बचाये वीर थे वह नारदजीकी सम्मतिसे मरे हुये राजा बलिको साथ ले अस्ताचल पर्वत पर चले गये ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत! रणभूमिमें मरकर गिरेहुये जिन दानवोंके अंग सम्पूर्णतः नहीं हुये थे और जिनकी गर्दनें विद्यमान थीं, उनको दैत्यगुरु शुक्राचार्यने संजीविनी विद्याके बलसे फिर जिला दिया ॥ ४७ ॥ दैत्यराज बलि शुक्राचार्यके हाथका स्पर्श पाय फिर इन्द्रिय और स्मरण शक्तिको प्राप्त होगया, यह राजा बलि लोकतत्त्वको भली भाँति जानता था, इसलिये पराजित होकर भी उसने खेद नहीं किया ॥ ४८ ॥ देखो अच्छे लोग अच्छेही काम करते हैं और यह संसार की माया तो जीते ही जी है ॥

कवित्त-हेम हय हाथी हथियार हू न भये साथी, सुन्दरी न मुन्दरी जडाऊ खटा छपरा ॥ आड धन गाढधरे मोहरें भँडारनमें, धधाधूरी छायवेते बँधगये धपरा ॥ कहै देवदत्त काहू खायो न खवायो अरु, खायो तीन पाव चून पहिरे तीन कपरा ॥ हो नहीं अचेत भये रेत खेत पर रहे, देखो दुष्ट लोगनकी खोपरीको खपरा ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा-द्वादशमें भगवानने, धरो मोहिनी रूप।
मोहितकर शिवको बहुरि, दीन्हों ज्ञान अनूप ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजापरीक्षित्! श्रीभगवान्‌ने स्त्रीरूप धारण करके दानवोंको मोहित कर देवता लोगोंको अमृत पिलाया था ॥ १ ॥ यह सुन उस रूपको देखनेके लिये

वृषभध्वज गिरीश महादेवजी अपने वाहन नंदी गणपर चढकर समस्त भूतगण और पार्वतीजीके साथ उस स्थानमें गये कि, जहाँ भगवान् मधुसूदन विराजमान थे ॥ २ ॥ श्रीपार्वतीजीके साथ महेश्वर महादेवजीको आया हुआ देखकर श्रीभगवान्ने उनका यथोचित आदर सत्कार किया और यथायोग्य पूजा करके बैठनेके लिये आसन दिया । महादेवभी आनंदपूर्वक बैठे और श्रीभगवान्की पूजा कर विस्मययुक्त वचन उनसे कहने लगे ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे देवदेव ! जगद्व्यापिन् ! हे जगन्मय ! हे जगदीश ! आप सब पदार्थोंके हेतु होनेसे ईश्वर हैं ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! जिससे इस जगत्का आदि अन्त और मध्य होताहै और अव्यक्त होनेसे जिसमें यह आदि अन्त और मध्य नहीं है और जो "यह" शब्दके आस्पद दृश्य पदार्थ और "हम" इस शब्दके आस्पद द्रष्टा और " बहिः" इस पदके वाच्य, भोज्य और भोक्ता हैं, वही सत्य स्वरूप चिद्रूप ब्रह्म आप हैं, इससे यद्यपि आपको जगन्मय कहकर सम्बोधन किया तोभी आपमें विकारादिकी शंका नहीं है ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! आप जो ऐसे हैं, इसमें मुमुक्षु जनोंका आचारही प्रमाण है, क्योंकि श्रेयस्काम निरासी मुनि लोग इस कालमें और परकालमें संग छोड आपके चरणकमलकी वंदना किया करते हैं ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! यद्यपि आप साक्षात् ब्रह्म हैं, तथापि उदासीन नहीं हैं, आप इस जगत् प्रपंचके सृष्टि स्थिति और प्रलयके कारण हैं और प्रपंचोपाधि सब जीवोंके ईश्वर हैं, अर्थात् वैसेही फलके दाता हैं, किन्तु आप राजा लोगोंकी समान कुछ अपेक्षा करके सेवकोंको फल नहीं देते अर्थात् दूसरेमें तत् तत् (उन उन) आत्माके द्वारा तत्तत् फल दानार्थ जैसी अपेक्षा की जाती है सो फल देनेके विषयमें आपको वैसी अपेक्षा नहीं है, फलतः आप पूर्ण सुखस्वरूप, नित्य,आनंदमय अगुण और अशोक हैं आपसे अलग दूसरा पदार्थ नहीं है और आप सब पदार्थोंसे भिन्न हैं. हे भगवन् ! आप ऐसे सुखात्मक ब्रह्मस्वरूप हैं, इसलिये आपको किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है. आपका ऐश्वर्य केवल भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये है, आत्मार्थ नहीं है ॥७॥ हे देव ! जैसे कुण्डलादि रूप सुवर्ण, और केवल-सुवर्ण यह दोनों एकही वस्तु हैं,वैसेही सत् और असत् अर्थात् कार्यकारण रूप,रूपद्वय (दो) हैं और परमकारणरूप अद्वय एक आपही हैं अज्ञानके वश होकर लोक आपमें भेद कल्पना किया करते हैं, वास्तवमें आप निरुपाधि हैं, गुणद्वाराही आपका भेद होता है स्वयं कोई भेद नहीं है ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! अज्ञानके वश होकर लोग अनेक भाँतिसे आपका वर्णन किया करते हैं परन्तु कोईभी तत्त्व नहीं जानता, कोई पुरुष (वेदान्ती लोग) आपको ब्रह्म मानते हैं, कोई कोई (मीमांसक) आपको धर्म कहते हैं. कुछ लोग (सांख्यके जानने वाले) प्रकृति पुरुषसे परे आपका वर्णन करते हैं और दूसरे (पंचरात्रज्ञ पुरुष) नवशक्तियुक्त परमपुरुष कहकर आपको बताते हैं और कुछ (पातंजल दर्शन जाननेवाले) अव्यय स्वतंत्र महापुरुष आपको कहते हैं ॥ ९ ॥ हे ईश ! ब्रह्मा, मैं (महेश्वर) और मरीचि प्रभृति मुनि जो कि सत्वगुणसे उत्पन्न हुये हैं । सो आपकी माया करके चित्त हरे जानेपर जब यहभी आपके रचित ब्रह्माण्डके तत्त्वको नहीं जानते

तब दैत्य मनुष्यकी जितनी उत्पत्ति और वृत्ति राजस, तामससे हुई हैं; वह आपको क्या जानेंगे? अर्थात् वह आपको नहीं जानते ॥ १० ॥ परन्तु आप जगत्का जन्म, स्थिति, सब प्राणियोंकी चेष्टा, जगत्के भव बंधन और मोक्ष सबहीको जानते हो, वायु जिस प्रकार चर अचर देवसमूह और आकाशमें व्यापरहे हैं, वैसेही आपभी आत्मत्वरूपसे सब चराचरमें व्यापरहे हैं, आप ज्ञानस्वरूप हैं इस कारण सबके आत्मा हैं ॥ ११ ॥ हे भगवन्! आप गुणद्वारा क्रीडा करके जो जो अवतार धारण करते हैं मैं उन सबको देखता हूँ; इसलिये अब जो आपने मोहिनीरूप धारण किया है, मैं उसे देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥ १२ ॥ जिस मोहिनीरूपसे आपने दुर्मद दानवोंको मोहित किया और देवताओंको अमृत पिलाया मैं वही मोहिनीरूप देखनेके लिये यहाँ आया हूं क्योंकि इसके लिये मुझे बडा कौतूहल हुआ है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब शूलपाणि महादेवजीने ऐसी प्रार्थना कि, तब श्रीभगवान् मुसकायकर गंभीरवाणीसे कहने लगे ॥ १४ ॥ कि, हे देव-देव! जब अमृतका पात्र देवता लोगोंके हाथसे छीनकर असुर लोगोंके पास गया तब मैंने विचारा कि, "स्त्रीका रूपही धारण कियेसे देवता लोगोंका कार्य सिद्ध होगा" अर्थात् उन्मत्त दैत्योंको ठगकर देवताओंको अमृत पिलाया जायगा परन्तु बिना दूसरा रूप धारण किये यह कार्य नहीं हो सक्ता इसलिये दानव लोगोंके कौतूहलार्थ ठगाई और मोहनादिका सार स्वरूप यह कामिनी रूप हमने धारण किया ॥ १५ ॥ हे सुरश्रेष्ठ! आप हमारे उस मोहिनीरूपके देखनेकी इच्छा करते हैं, अच्छा आपको दिखाया जायगा; उस रूपको कामीपुरुष बहुतही मानते हैं. उससे मीनकेत (कामदेव) का उदय हो जाता है ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, भगवान् इसप्रकार कहते कहते वहाँही अन्तर्धान होगये। तब उस समय महादेवजी अपनी भार्या पार्वती सहित चारों ओरको नेत्र चलाय उस रूपके देखनेको उत्कण्ठित रहे ॥ १७ ॥ कुछ देरके पीछे उपवनमें कि, जहाँपर वृक्षोंमें चित्र विचित्र कुसुम और अरुण वर्णके पल्लव शोभायमान हो रहे थे, वहाँपर परमसुन्दर एक स्त्री श्रीमहादेवजीने देखी; उसके नितम्ब उज्वल रेशमीन वसनसे ढक रहे थे उसमें मेखला (जंजीर) की लडियें ऐसी दीप्तिमान् हो रही थीं कि, मनुष्यका मन उसकीही कडियोंमें हिलझारहे, वह स्त्री गेंद उछालकर देखनेवालोंके मनभी इसके साथही उछालती थी ॥ १८ ॥ गेंदके ऊपर नीचे उछालनेके कारण उसके शरीरके झुकने और ऊंचे होनेसे उसकी दोनों छातियें (स्तन) व मनोहर हार बार बार कम्पायमान होता था; उस समय ऐसा जान पडाता था कि, मानों उनके भारी भारसे उसकी कमर लचकती थी कि, तिससे वह अपने मूँगेकी तुल्य लाल कोमल चरण इधर उधर धरती थी ॥ १९ ॥ सब दिशाओंमें गेंदके उछलनेसे उसके चंचल भावसे उद्विग्न हुए तारेकी समान विशाल नेत्र कि, जो अपने कानोंमें प्रकाशित होते हुए कुण्डलोंसे शोभायमान उसके कपोल होरहे थे; वह अत्यन्तही शोभायुक्त थे और इधर मुखपर छिटकी हुई अलकें अलगही अपना जाल फैलाय रही थीं कि, जिससे आश्चर्यमय शोभा हुई कि,

मानो अमृतके लोभसे अमृत पीनेको चन्द्रमाके पास छोटे २ नागोंके बच्चे आये हैं ॥ ॥ २० ॥ शरीरसे खसके हुये दुपट्टेको और मस्तकसे खुली हुई वेणीको अपने बाँयें हाथसे जो इन दोनों बन्धनोंको सँभाल दाहिने हाथसे गेंद उछाल रही थी; इस भावसे ऐसी शोभा हो रही थी कि, मानों यह अपनी मायासे जगत्को मोहित कर लेगी। अहो इसके रूप लावण्यताका क्या ठिकाना ? मानो जगत् जीतनेके लिये कामदेवने यह पताका प्रस्तुत अर्थात् तैयार करी है। अब केशोंकी शोभा सुनिये ॥ केशोंको देख महाप्रलय-कालकी अँधेरी अंधी होगई, कज्जलगिरने मुख नयन नीचेको कर लिये । और सावन भादोंकी घटा सटपटाकर फट गई।

कवित्त–कारे सटकारे केश मृदुता भरी है वेश, मखतुल श्याम कैधों काहूके अधेरे हैं। शालिग्राम वैश्य यह कहत विचार बात, कैधों तम धार आप चंद्रमाको घेरे हैं ॥ जम्बुफल हारे देख कालिया अनूप छवि, कैधों अम्बु यमुनाके शीशपै वसेरेहैं।निविड पयोद चहुँ कोद ऋतु पाव-ससी, छूट कुच अंगरछै छविलो लटकेरहैं ॥ १ ॥ बाला बाल छोडिकै निवारत है बार बार तार तार फैल रहे चौग्रीद मुखेन्दुके । लहरत ऐडिनलों छहरतही चूमे भूमि, समझकै मोतीपरे पुंजन जलिन्दुके॥भनै शालिग्राम किधौं जानिकै सुधाके बिन्दु,जात चले मुदित मनोहर मलिन्दुके ॥ मानों चंद्रमण्डलपै, कुण्डमें अमीके हेतु, धाय गये छोना छाय लाखन फणिन्दुके ॥ २ ॥

चोटीकी छवि देखकर नागिनी लौटी लौटी फिरती थी और बारम्बार कहती थी, कि हे परमेश्वर ! हमसे क्या अपराध हुआ जो हमारे प्राणघात करनेको यह प्राणघातिनी उत्पन्न कर दी ॥

कवित्त–अतर फुलेल मेल हेम ककईसों ओंछ,पोंछकै सयान दई केसर तरौटी है। नाइन सिवारसे सम्हार बार बार बार, त्रिलर सुधार गुंथ कीन्ही एक सोटी है। भनै शालिग्राम किधौं आनँद अँगोटी रस,राज-सों रगोंटी रति चोटी कर खोटी है। कैधों व्याल जोटी युत पन्नगी सुमोटी बाल, कैधों तुम भालपे सुहाई लसी चोंटी है ॥ ३ ॥ मोहर ज्यों मुकताकी युगुल विकारी दई, लोचन तरंग कैधों चाबुक मसन्दको। लहकि लहकि टेढी वेढीसी अलक दोउ, वहँकि वहकि करें चरचा अनंदको ॥ लटकि कपोलन कपोलन करत झूमि, फैली फहरानो कैधों ध्वजा कामफन्दको। विषम कटो है अयसो हयसे कुशल सिंह, नागिनके छौनापै बिछौना कियो चन्दको ॥ ४ ॥

सिंदूरसे भरीहुई माँगका वर्णन ।

वारों काम कामिनी करोड कामिनी तनु पै,सुरभ चपावने सुगन्धता चमेलीकी। सौतिनको गरभ गमावनी गुमान भरी, शोभा निवटावनी

सुजात रूप वेलीकी ॥ भनैरघुनाथ दिव्य दागिनी दुरावनी, सुचांदिनी चरावनी है द्युति अलवेलीकी । निज छवि छावनी छिपावनी छपाकी छवि, प्यारे मनभावनी सुहावनी नवेलीकी ॥ ५ ॥

भालको देखकर अष्टमीका चन्द्र मतिमन्दहो मुख बन्दकर बैठगया कुछ कह न सका ॥

सवैया-सोहत कंचन पत्र किधों, कलि कीधों सु अष्टमिचन्द्र विशालहै ॥ काम कलानिके सीखिबेको किधों, कामके वामकी पाटी रसाल है ॥ भाखे मुनी रघुराज किधों, रसराजकी राजे सभा छवि जाल है ॥ कीधौं वशीकर मन्त्रके यंत्रकी, पीठिलसै किधों मोहिनी भाल है ॥ ६ ॥

वार्तिक-उस चञ्चलाक्षीके चञ्चलनेत्र देख, खञ्जन और मृग मौन साध वनमें जा छिपे और मीन दीन हो जलमें डूब गये और पानीमें पडेही पडे कभी कभी यह कह उठते थे कि, हे दई ! यह नई नवेली अलवेली कहाँसे प्रगट करी, जो कविलोग हमारी नेत्रोंकी उपमा दिया करते थे वहभी आज छीनगई ॥ ६ ॥

कवित्त-अलक अमोल अलवेलीकी अनोखी आँखि, अति अलसात ओप अजव अमेजेमें ॥ मन्द मुसकान भांग मोती मोहिनीके नीके, मोद मदमाती मन मदन मजेजेमें ॥ यौवन जलूस ज्योति जोयकै नारायण जू, सकल शृङ्गार नख शिखते सहेजेमें ॥ चन्द्रमुखी चञ्चल चलाक चञ्चलासी चारु, चसक लगायगई कसक करेजेमें ॥ ७ ॥ मीन ह्वै कमीने परे पानीमें निहारे हारि, हारिकै चकोर ताते चुगत अँगारे हैं ॥ भूपति भनत मञ्ज कञ्जनके खञ्जनके, गञ्जन गरब करि डारेकै निकारे हैं ॥ डारे रतनारे तारे कारे औ सितारे सेत, उपमा सितासित तरंगिनमैं भारे हैं । प्यारी तेरे मान द्दग पानिपर सान धरे, कैवर कसीसवैं कमान वारे वारे हैं ॥ ८ ॥

कपोलोंकी कोमलता देख कमलके फूल कुम्हला गये गुलाब मुरझा गया कि,, यह तो हमारे मनको मोल किये लेते हैं, यह कपोल हैं या कुण्डलोंके कलोल करनेके परम रमणीक गोल गोल स्थान हैं ।

कवित-मुकुरसे मंजुल झलकि रहे माणिक ज्यों, हँसत परत गाड अमल अमोलयें । कमलकी कोमलाई लागत ना नेक जामें, रस भरे चीकने लटे‍ते बने गोलयें ॥ गदगदे गोरे भोरे कठनई थोरे थोरे, अरुणाई वोरे चोरे चितहि विलोलयें । अधनके प्यारे कैधों मानहूके तारे, शिवनाथ छविवारे चन्द्र निरखि कपोलयें ॥ ९ ॥

नासिकाका रंग ढंग देख कीर अधीर होगये शरीर छोडनेको उपस्थित होगये, तिलके फूल लज्जित हो शिरमें धूरि डालने लगे और सब सुधि बुधि भूलगये कि, यह शुकका दर्द परमेश्वरने कहाँसे उत्पन्न करदिया ?

कवित्त-सुरपतितीकी द्युति फीकी होत जाहि देख, रहत रतीक ना गरूरता रनीकी है ॥ तीन लोकी की कहौं जीकी होय यातें अति, नाहिंमें निकाइ द्रौपदीकी नाक नीकी है ॥ भने रघुनाथ चारु अमल सुढार वेष, अति सुखदान जान प्राण पतिहीकी है। वर शुकनाशाते बुलाक नथ वासा मंजु, परमप्रकाश पुंज नाशा मोहिनीकी है ॥ १० ॥

अधरोंको देख विद्रुम अपना हृदय विदीर्ण करनेलगे, बिम्वाफल लताओंमें ऐसे लटकने लगे कि जैसे कोई लाजका मारा फांसीपर लटक जाता है बन्धूक लाजके मारे मुख छिपाने लगी.

कवित्त-गुल गुले कन्दके सुमन्द कर दाखनको, देखहु दुचन्द कला-कन्दकी कमाईसी । कहैं पदमाकर त्यों साहिबी सुधाकी सबै, ब्रज वसु-धामें धौं कहाँ धौं परी पाईसी ॥ खरक खरीको मधुहुंकी माधुरीको शुभ, सारदा सिरीको मिसिरीको लूटि लाईसी । साँवरी सलोनीके सलोने अधरानमें, सुमन्द मुसिकान भरी मंजुल मिठाईसी ॥ ११ ॥

उस मनोरमाके दाँतोंकी पाँति देखकर दाडिमीके दाँत खट्टे होगये और हृदय फटगया, हारकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें जा दुबके, मोतियोंकी लडी व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पडीं और मनमें वडी ग्लानि मानी कि, अव हम क्या मुख दिखावेंगी ? क्योंकि परमेश्वरने हमको जगत्में मुख दिखाने योग्य नहीं रक्खा घडी घडी यह पछितावा कर कर रोती थीं ॥

कवित्त-कैधौं पद्मरागनकी पंगति विशाल कैधौं, हीरनके जालके प्रवाल अलबेलीके । कुंद कालिका हैं पुंज कुसुम जपा हैं कैधौं, दाडिमके वीज कैधौं पुहुप चमेलीके ॥ भने रघुनाथ शुभ्र स्वच्छ शुचि शोभावान, तापै लसै पान लाल रंग रस रेलीके । मोहति है कंत यों दुरन्ति द्युति-सौतिनके, अति द्युतिवंत दंत निरखि नबेलीके ॥ १२ ॥

मुखको देख चन्द्रमा चकित हो चारोंओरको देखने लगा कि. पृथ्वीपर दूसरा चन्द्रमा कहाँसे आया ? जव दूसरा चन्द्रमा प्रगट होगया तो मुझे कौन बूझेगा ? करवाचौथ और जन्माष्टमीको मेरे देखनेकी अभिलाषा कौन करेगा ? इस क्लेशमें थकित होकर उदय होना छोड दिया, पन्द्रह दिन पीछे निकला सो फिर छिपगया ॥

कवित्त-आनन अनूप छवि छलकी छटासी होत, ज्योति जोन्ह निदै निशिकर चंद नीको है ॥ देखत चकोरसे न मुरत सुनेशमन, ममता मदादि तम करै खण्डनीको है ॥ व्यास सनकादि वेद विदित विरंचि हरि, शम्भुसे विवेकी जासु करैं वंदनीको है ॥ कामताप्रसाद कला सोरहों अखण्ड मुख, चन्द्र हूतें यह रूप नीको मोहिनीको है ॥ १३ ॥

वाणी सुनकर मोर और कोकिला बोलना भूल गये कि, अब हमारी बोली कौन सुनेगा ? बाँसुरीने जाकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी शरणली कि, हे नाथ ! मुझे संसार-से मत खोओ ॥

कवित्त-केकी पिक कोकिला अवाजनपै गाजपरो, कैलिया लजाय छोडि सौरभ पराई हैं ॥ भनत दिवाकर तिलोत्तमान ढूढे कोउ, रूरे राग सुने सबसरी शरमाई हैं ॥ कैधौं आय शारदा निवास कियो रस-नामें, बातनके व्याज बोलि झरत मिठाई है ॥ मोहिनीकी वाणी कैधौं सानी हैं पियूष रस, देते वर दानी ऐसा वेद मुनि गाई है ॥ १४ ॥

शीतलाके दाग वर्णन ।

कवित्त-चन्द्रकी मरीचिकान तोरि विधुराय दीन्हों, कैधौं हीरा फो-रिकै कनूकाधरिधरिगये॥कैधौं काममन्दिरकी झंझरी बनाई विधि,कैधौं सोन जुहीके पुहुप झरि झरि गये ॥ कामिनी मनोरथ है आलवाल शिव नाथ, मैनक मतङ्गमाते वेली चरि चरि गये ॥ अमल कपोलनपै दाग नहीं शीतलाके डीठि गडि गडि गई दाग परि परि गये ॥ १५ ॥

ग्रीवाकी लटक देख कपोत लज्जाके मारे मौनहो बैठा और बोलना छोड दिया ॥

कवित्त-सब सुर तीन ग्राम रागनको धाम धन्य, मूर्च्छना सुताने श्रुति ग्रहमति पैनीको ॥ कैधौं चन्द्रमण्डलको परम अधार शुद्ध, उज्ज्वल अनूप स्वच्छ दच्छ पिकबैनीको ॥ भनै रघुनाथ शील शोभा को निवास यही, प्रीतमकी प्रीतिकी प्रतीतकर देनीको ॥ कम्बुते सुढार रम्भ चार है कपोतहूते, रंभारती कण्ठते सुकण्ठ मृगनै-नीको ॥ १६ ॥

भुजाओंको देख कमलनाल पानीमें छिप गये ॥

कवित्त-कैधौं अर्थ धर्म काम मोक्षफल दाता वृक्ष, स्वच्छ दक्ष दान भृत्य पक्षको अथोरीके ॥ रम्भासे सुढार चारु उज्ज्वल मृणाल हूते, पंकज गुलाबरंग रतिमदमोरीके ॥ भनै रघुनाथऋद्धि सिद्धिके निवास कैधौं, परम प्रकाशमान पियचित्त चोरीके ॥ सुकृत :जरूरे पति पदरत रूरे यह, दीपति प्रपूरे कर नवल किशोरीके ॥ १७ ॥

कुचाओंको देखकर अनार शिर मार मार रोने लगे और सोचके मारे ठंढे होगये ॥

कवित्त-सुन्दर सजीले परलम्ब सहजीले याके, परम लजीले शुभ काजन कजीले हैं ॥ बेलन बसीले अलि बेलिन हँसीले आदि, रसमें रसीले रूप यशमें यशीले हैं ॥ नेह रस शीले परनेह परशीले अनु नयन वह कीले चटकीले मटकीले हैं ॥ तेरे कुच नीले छटि छविसे छबीले मानों, पन्नग रँगीले मैन मंजुवतकीले हैं ॥ १८ ॥

हृदय वर्णन ।

कवित्त-कुमति सुशील अम्बु सर वर शोभावान, कैधौं प्रिय प्रेमको पयोनिधि सुनीत है ॥ बिम्बकुचबीच रोम राजि अति शोभति है, मेरुतै प्रकाशी मनो भानुजापुनीत है ॥ भनैं रघुनाथ चारु हरिनको हार गंग, लालनकी माल वहै शारदा प्रतीत है ॥ तेरेतनु तीरथ प्रयागमें त्रिवेणी तट, प्यारी उर माधवको मन्दिर पुनितहै ॥ १९ ॥

पीठकी छवि देख कदलीके पत्र अत्यन्त व्याकुल होते थे ॥

कवित्त-सुखकी नदीमें कैधौं परत गंभीर भौंर, धराको तखत पियलोचन अरथकी॥कैधौं वर्षामें रोम राजिरहे पन्नगकी, कैधौं खानि खुली है जवाहिरके गथकी ॥ घासीराम कैधौं सोति सुखनकी भाकसीसी, मानभई खिरकी उरज गढ पथकी ॥ ऐरीमेरी वीरतेरी नाभी रसभरी कैधौं, दोतकरताकी कै मथानी मनमथकी ॥ २० ॥

कटिको देख मृगराज वनको चलागया और झाडियोंमें जा छिपा इसीलिये मनुष्योंको खाता है ।

कवित्त-छहरति छवि छिति छोरनलों छटि छटा, वश किये छैलन छकाये हिरलति है ॥ छीरदकी छोहरीसी छयासी प्रवीणबेनी, छपामे छपाक रकी छातीमें लसति है ॥ छलाछाप छाजत छराके छोर छिटकत,छवनि छुवत छनछूतिसी लसति है ॥ छीन कटि छोटीसी छबीलीने छटा कभरी, छाई छल छन्द छितिपालहि छलति है ॥ २१ ॥

नितम्ब वर्णन ।

कवित्त-कैधौं खरी खीन कटि निकसी नितम्ब पीन,कैधौं रति समर प्रहारताके छालसी ॥ भनत दिवाकरकी मदन तमूरधरे, मेखलाके रवसोइ बाजत है झालसी ॥ कैधौं जातरूप युग हण्डिका उलटिराखे, होत जगमग ज्योति सभा वर जालसी॥हरूवे वदन ताके थम्भन लगी यों मानो, सौति उरशालत है पेखि पेखि सालसी ॥ २२ ॥

जंघाओंकी शोभा देखकर कदली कपूरको खागई ।

कवित्त-हाटक समान रम्भ खम्भसी लसत जानु, केलिमें निधानु मानो मानु राते प्रातके ॥ भनत दिवाकर वितुण्ड शुण्डगोल रोल, उपमा अतोल रसराजकान्ह घातके ॥ घनसार स्वच्छता सुवासता धसीसी जामें, एतो मैन मानवोतो देव वृन्द जातके॥कौन कौन बातकी बडाई करौं खोजि खोजि, कामिनीके जंघ युग डारि पारिजातके ॥२३॥

मुरवा वर्णन ।

सवैया-लख लाजत जाहि मराल गते गजराज तजै गत आतुरवा ॥
द्युति देखत दामिनी हू सकुचै दुरजात घने घनके कुरवा ॥

रघुनाथ भनै मृदु चाल चलै अति प्यारे लगै सकरी चुरवा ॥
मनमोहत हैं जग मोहनको मनमोहनीके पगके मुरवा ॥ २४ ॥

पाँवोंको देख कमलके फूलोंके पाँव फूलगये ॥

कवित्त-सुन्दर सुरंग नैन शोभित अनङ्ग रङ्ग, अंग अंग फैलति तरङ्ग परिमलके ॥ बारनके भार सुकुमारको लचत लंक, राजे पर्यंकपर भीतर महलके ॥ कहैं पद्माकर बिलोकि जन रीझे जाहिं, अम्बर अमलके सकल जल थलके ॥ कोमल कमलके गुलाबनके दलके, सुजात गडे पाँयन बिछौना मखमलके ॥ २५ ॥

कथा आरंभ।

अब अधिक उस मोहिनीके मोहनरूपकी शोभा कहाँतक कही जाय? ॥ २१ ॥ हे राजन्! इस मोहिनीके रूपको निहारतेही महादेवजी अपने आपको भूल गये. गेंदको उछालते हुए जो वह कामिनी कुछेक लाज प्रगट कर रही थी, तिससे मन्द मुसकान सहित उसके छोडेहुए कटाक्षसे यह महादेवजी एकहीवारमें मोहित होगये. इसकारण उसको देखनेसे और उस करके देखे जानेसे इन दो क्रियाओं करके विभुका मन अत्यन्त विह्वल हुआ. इसलिये उन्होंने अपने निकट न अपने सेवकोंको और न पार्वतीजीको जाना ॥ २२ ॥ वह मोहिनी जिस गेंदको उछाल रही थी, सो एक बार वह गेंद उसके हाथसे उछलकर दूर गिर पडा, उस गेंदके लेनेको जब वह बाला दौडी तब वायुके वेगसे काञ्ची सहित उसका कटिवसन उडगया। सो देवदेव महादेवजी खडे होकर एकटक उसको देखने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे जैसेही महादेवजीने उस मनोरमा रमाको देखा कि, वैसेही वह भामिनी कुञ्चित कटाक्ष चलायकर उनको देखने लगी; तब महादेवजीका मन उसपर अनुरागी होगया ॥ २४ ॥ मोहिनीके भावसे देवदेव महादेवजीका ज्ञान शून्य होगया और वह उस कामिनीके किये हुए कामविलाससे ऐसे विह्वल हुए कि, पार्वती सामने खडी होकर देखती रही और वह निर्लज्ज होकर उस सुन्दरीके समीप चलेगये ॥ २५ ॥ यह मोहिनी कामिनी वस्त्र रहित थी, सो महादेवजीको निकट आते हुए देखकर लजाई और हँसती हँसती वृक्षोंकी आडमें जाने लगी, वहाँ खडी न हुई ॥ २६ ॥ भगवान् महादेवजीकी इन्द्रियें प्रबल होगई कि वह पंचबाणके वश हो उस स्त्रीके पीछे पीछे दौडने लगे कि, जैसे यूथपति हाथी हाथिनियोंके पीछे पीछे दौडता है ॥ २७ ॥ जब वह साधारण चालसे महादेवजीके हाथ नहीं आई, तब यह अति वेगसे दौड और उस स्त्रीको अपने संगकी इच्छा न करते देख केश पकड दोनों भुजाओंसे उसको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ २८ ॥ हाथी जिस प्रकार हथिनीको आलिंगन करता है, वैसेही वह मनमोहिनी बाला, भूतेश्वर भगवान् भवानीपतिके हृदयसे लिपटी हुई इधर उधर दौडने लगी कि, जिससे उसके केश छूटगये ॥ २९ ॥ हे राजन्! तिसके पीछे देवमायाकी बनाई बडे बडे नितम्बोंवाली वह स्त्री अति कष्ट करके महादेवजीकी भुजासे अपनेको

छुडायकर दौडी ॥ ३० ॥ हे राजन् ! अद्भुत कथा श्रवण करो श्रीभगवान् विष्णुही माया विस्तार करके यह स्त्री हुये थे जब श्रीभगवान् स्त्री बनकर दौडे, तब भूतनाथ (शिव) अपने सदाके वैरी कामदेवसे पराजित हो फिर उसकी पदवीका अनुसरण करने लगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! वासिताके (ऋतुमती हथिनीके) पीछे पीछे दौडते हुए कामी हाथीका वीर्य जिस प्रकार गिर जाता है,वैसेही उस मोहिनीके पीछे पडे हुए अमोघ वीर्यवान् भगवान् शिवजीका वीर्य गिरगया॥३२॥हे कुरुवर ! देवश्रेष्ठ महादेवजीका वह वीर्य पृथ्वीके जिस जिस स्थानमें गिरा उन उन सब स्थानोंमें सुवर्ण और चांदीकी खाने होगई ॥ ३३ ॥ देवदेव महादेवजी इस प्रकारसे मोहिनीके पीछे दौडते, दौडते नद, नदी, सरोवर, गिरि, वन, उपवन और जहाँ जहाँ ऋषिलोग रहते थे, उन सबही स्थानोंमें पहुँचे ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जब वीर्य गिरगया, तब भगवान् भवने जानलिया कि, हम देवमायासे मोहित हुए हैं, तब वह इस व्यापारसे निवृत्त हुए ॥ ३५ ॥ जिस जगदात्माका वीर्य जाननेके योग्य नहीं है, इसके माहात्म्यका महादेवजीने स्मरण किया और उनकी मायाकरके अपनेको मोहित होजानेकाभी कुछ आश्चर्य नहीं माना ॥ ३६ ॥ तिसके पीछे मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् मधुसूदन अपना पुरुषरूप धारण करके फिर प्रगट हुए और उन देव देव महादेवजीको क्षोभ रहित व लज्जारहित देखकर प्रसन्न हो यह वचन कहने लगे॥३७॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे देवश्रेष्ठ ! आप हमारी स्त्रीरूप मायासे मोहित होकर भी जो फिर अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुए यह बडे भाग्यकी बात है. आप निःसन्देह अपनी आत्मामें स्थित हैं ॥ ३८ ॥ हे देव ! आपके विना ऐसा कौन पुरुष है, जो अनुरागी होकर फिर हमारी मायासे पार पासके हमारी माया अनिर्वचनीय भावप्रकाश किया करती है, कच्चा बुद्धिवाले पुरुषकी क्या सामर्थ्य है जो इससे पार होवे ॥ ३९ ॥ भला जो हुआ सो हुआ, अब यह गुणमयी माया सृष्टयादि निमित्त कालके वश होनेसे कालरूपी हमारे साक्षात् रजोगुण प्रभृति अंशसे मिलिहुई है अर्थात् मेरे अधीनमें है, अब यह कभी आपको न सता सकेगी ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! श्रीवत्साङ्क भगवान् विष्णुने जब इसप्रकार कहा और नमस्कार किया, तब देवदेव महादेवजीने सम्भाषण कर उनकी प्रतिष्ठा की और फिर श्रीभगवान्की अनेक प्रकार स्तुति कर और उनसे बिदा हो अपने भूतगणोंके साथ कैलासको चलेगये ॥ ४१ ॥ फिर अपनी अंशरूपिणी उन मायारूपी भवानीसे, जिनको प्रधान प्रधान मुनि लोग मानते हैं, उनसे प्रीति प्रकाश करके भगवान् महादेवजी प्रियवचन कहने लगे ॥ ४२ ॥ हे प्यारी ! परदेवता परपुरुष भगवान्की मायाको देखनेसे मोहित हो जाते हैं, मैंभी उसके वशमें पड मोहित होगया था, फिर पराधीनको मोहित होना क्या आश्चर्य है ? ॥ ४३ ॥ हे सति ! सहस्रवर्षके पीछे योगसे निवृत्त होनेपर तुमने जिनकी कथा हमसे पूँछी थी, यह वही साक्षात् पुराणपुरुष हैं, उनमें कालभी प्रवेश नहीं करसक्ता और दैवकाभी उनपर वश नहीं चल सक्ता ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! भगवान् शार्ङ्ग-

धारी जिन्होंने समुद्र मथनेके समय अपनी पीठपर महापर्वत मन्दराचलको धारण किया था, उनके विक्रमका वृत्तान्त तो तुमसे कहा ॥ ४५ ॥ जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस कथाको कहेंगे, अथवा सुनेंगे, उनका उद्योग कभी निष्फल नहीं होगा। क्योंकि उत्तम श्लोक भगवान्‌के गुणानुवाद कीर्त्तन करनेसे समस्त क्लेशों और पापोंका नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥ जिन्होंने कपटतापूर्वक मोहिनीरूप धारण कर दानवलोगोंको मोहित कर, समुद्रमथन करनेसे उत्पन्न हुआ अमृत, अपने चरणोंकी शरण आयेहुए देवता लोगोंको पिलाया था उनके चरणकमल असज्जन लोगोंके ध्यानमें नहीं आते, केवल उपासनासे प्राप्त होते हैं, वह आश्रित जनोंका अभिलाष पूर्ण करनेवाले जो विष्णु भगवान् हैं, हम भक्तिसहित उनको नमस्कार करते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे अष्टमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

दोहा-तेरहवे अध्यायमें, सप्तममनुविस्तार।
षडविधि मन्वन्तर कथा, कहिहौं सहित विचार ॥ १ ॥

इतनी कथा सुनाय महामुनि श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे कि, हे नृपश्रेष्ठ! विवस्वानके पुत्र श्राद्धदेव नामक सप्तम मनु हुए जो वर्त्तमान हैं, उसकी सन्तानका वृत्तान्त कहता हूँ तुम सुनो ॥ १ ॥ हे परंतप! स्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्य्याति, नारिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥ २ ॥ करुष पृषध्र, और वसुमान यह दश वैवस्वतमनुके पुत्र हुए ॥ ॥ ३ ॥ हे राजन्! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, दो अश्विनी-कुमार और भृगु देवता हुए पुरन्दर इन सब देवताओंका इन्द्र हुआ ॥ ४ ॥ और कश्यप, अत्रि, बसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज, यह सप्तऋषि हुए ॥ ५ ॥ इस मन्वन्तरकोभी प्रजापति कश्यपजीसे आदितिके गर्भमें भगवान् विष्णुका अवतार हुआ, विवस्वान, अर्य्यमा, पूषा इत्यादि जो द्वादश (१२) आदित्य हैं, सबके पीछे उनके बीच जन्म लेकर यह विष्णु भगवान् वामन रूप हुए थे ॥ ६ ॥ सो सात मन्वन्तरोंकी कथा तो मैं तुम्हारे निकट वर्णन कर चुका हूं. अब भगवान्‌के अवतारोंसे युक्त जो मन्व-न्तर आयेको होंगे, उनकी कथा कहता हूं सो आप सावधान होकर सुनिये ॥ ७ ॥ हे राजन्! विवस्वान (सूर्य) की दोस्त्रियें हुईं, उन दोनोंको विश्वकर्माने बनाया था, और छाया उनके नाम थे। कि जिनका वृत्तान्त पहले कह चुका हूं ॥ ८ ॥ कोई ऋषि कहते हैं कि, विवस्वानके तीसरी स्त्रीभी थी कि, जिसका नाम वडवा था, परन्तु हमारे मतसे तो संज्ञाहीका नाम पीछे वडवा हुवा। जो कुछभी हो, इन स्त्रियोंमें संज्ञाके तीन सन्तान हुए यथा-यम, यमी (यमुना) और श्राद्धदेव। अब छायाकी सन्तानका वृत्तान्त कहते हैं, सो तुम सुनो ॥ ९ ॥ छायाके एक पुत्रका नाम सुवर्ण हुआ और तपती नामक एक कन्या जो कि, सम्वरणकी स्त्री हुई इस कन्याके शनैश्चर नामक एक तीसरा पुत्र हुआ था विवस्वानके वडवा नामक जो तीसरी स्त्री थी उससेही दोनों अश्विनीकुमारोंका जन्म

हुआ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे परीक्षित्! आठवें मन्वन्तरके आनेपर सावर्णि नामक मनु होंगे, निर्मोक, विरजस्क, इत्यादि इस सावर्णि मनुके पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ उसके समयमें सुतपा, विरजा और अमृतप्रभा यह देवता और विरोचनका पुत्र बलि इन्द्र होगा ॥ १२ ॥ यह राजा बलि कोई साधारण पुरुष नहीं है स्वयं भगवान् विष्णुने इसके द्वार-पर जायकर तीन चरण पृथ्वी माँगी थी, जब राजा बलिने समस्त पृथ्वी दान करदी और सातवें मन्वन्तरमें भगवान्के प्रसादसे पायेहुये इंद्रपदको त्याग यह सिद्धिको प्राप्त होंगे ॥ ॥ १३ ॥ हे राजन्! प्रथम तो वामनजीने राजा बलिको बाँधा, फिर प्रसन्न होकर पातालमें स्थापन किया, सो राजा बलि वहाँ स्वर्गसेभी श्रेष्ठ उस स्थानमें इन्द्रकी समान वास करता है ॥ १४ ॥ इस मन्वन्तरमें गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृप, ऋष्यश्रृंग और हमारे पिता भगवान् बादरायण (व्यास) जी महाराज ॥ १५ ॥ यह सप्तऋषि होंगे। यह लोग इस समय योगावलम्बन करके अपने अपने आश्रमोंमें वास करते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! इस आठवें मन्वन्तरमें देवगुह्यसे सरस्वतीके गर्भमें भगवान् उत्पन्न होकर सार्वभौम नामसे विख्यात होंगे, वह ईश्वर पुरन्दरसे स्वर्ग छीनकर फिर राजा बलिको देदेंगे ॥ १७ ॥ अब नवम मनुका वृत्तान्त कहते हैं दक्षसावर्णि नवमें मनु होंगे वरुणसे उनकी उत्पत्ति होगी। इन्द्रके पुत्र भूतकेतु, दीप्तकेतु, इत्यादि होंगे ॥ १८ ॥ इस मन्व-न्तरमें पार, मरीचिगर्भ इत्यादि देवता होंगे। अद्भुत इनके इन्द्र और द्युतिमान प्रभृति ऋषि होंगे ॥ १९ ॥ और आयुष्मानसे अम्बुधाराके गर्भमें साक्षात् भगवान् विष्णु जन्म लेकर उस ऋषभदेवजी नामसे विख्यात होंगे। तत्कालीन अद्भुत नामक इन्द्रको सर्वसम्पत्ति और समृद्धिवान् त्रिलोकीको भोग करावेंगे ॥ २० ॥ हे नृप! दशवाँ मनु उपश्लोकका पुत्र दक्षसावर्णि होगा। भूरिसेन प्रभृति इस मनुके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान् प्रभृति ब्राह्मण होंगे अर्थात् हविष्मान्, सुकृत, सत्य, जय, मूर्ति इत्यादि ऋषि और सुवासन अविरुद्धादि देव और शम्भु देवराज होंगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ दशवें मन्वन्तरमें भग-वान् विभु अश्वसक् ब्राह्मणके घर विशूचिके गर्भमें अंशांशसे जन्म ग्रहणकर विष्वक्सेनके नामसे प्रसिद्ध होंगे और उसी समयके देवराज शम्भुके साथ उनकी मित्रता होगी ॥ २३ ॥ ग्यारहवाँ मनु धर्मसावर्णि होगा, उसके सत्य धर्मादि दश पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ इस मन्व-न्तरमें विहंगम, कालगम और निर्वाण, रुचि, प्रभृति देवता होंगे, वैधृत उनका इन्द्र होगा अरुणादि ऋषि होंगे ॥ २५ ॥ और भगवान् हरि एकांशसे वैधृताके गर्भसे जन्मले आर्य-कके पुत्र हो, धर्मसेतु नामसे प्रसिद्ध होंगे। हे राजन्! उस समय भगवान् हरिका यही अंश त्रिलोकीको धारण करेगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ फिर बारहवें रुद्रसावर्णि मनु होंगे कि, जिनके पुत्र देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठादि होंगे ॥ २८ ॥ और भगवान् हरि अंशसे सत्यसह विप्रकी सुव्रता नामक कन्यामें उत्पन्न होंगे, वह भगवान् सुधामा नामसे विख्यात होंगे। जिसके कारण इस मनुका समय अत्यन्त प्रसिद्ध होगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ तेरहवाँ मनु देवसावर्णि होगा, चित्रसेन, विचित्रादि उसके पुत्र होंगे ॥ ३१ ॥ इस

मन्वन्तरमें सुकर्मा सुत्रामादिदेवता दिवस्पति देवराज और निर्मोक तत्त्व दर्शादि ऋषि होंगे ॥ ३२ ॥ इस मन्वन्तरके समय भगवान् हरि बृहतीके गर्भमें एक अंशसे अवतार लेकर देवहोत्र होंगे और योगेश्वर नामसे प्रसिद्ध हो तत्कालिक दिवस्पति नामक इन्द्रका कार्य सिद्ध करेंगे ॥ ३३ ॥ फिर इन्द्रसावर्णि नाम चौदहवाँ मनु होगा, उरु,गम्भीर, बुध्न प्रभृति उसके पुत्र होंगे ॥ ३४ ॥ इस मन्वन्तरमें पवित्र चाक्षुष प्रभृति देवता शुचि नायक देवराज और अग्निबाहु, शुचि, शुद्ध, मागध प्रभृति ऋषि होंगे ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! इस कालमें भगवान् हरि विनताके गर्भसे अवतार धारण करके सत्रायणके पुत्र होंगे और बृहद्भानु नामसे प्रसिद्ध हो क्रियाकलापका विस्तार करेंगे ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! वर्त्तमान, भूत, भविष्य, इन तीनों कालोंके अनुगत चौदह (१४) मनुका वृत्तान्त हमने आपके सामने वर्णन किया, इन चौदह मन्वन्तरोंके समयका प्रमाण एक सहस्र युगका है ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा-पृथक् पृथक् मनुकी कथा, यह चौदह अध्याय।
वर्णन करिहौं यथामति, भिन्न भिन्न समझाय ॥

श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखसे इतनी कथा श्रवणकर राजा परीक्षित् हाथ जोड बोले कि हे भगवन् ! इन मन्वन्तरोंके लोग जिस प्रकारसे जिस करके जिस कर्ममें नियुक्त होते हैं, सो अनुग्रह करके आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग ! समस्त मनु, मनुके पुत्र, मुनि, इन्द्र और सब देवता यह परमपुरुष ईश्वर करके यज्ञादि अवतार द्वारा नियोजित हुआ करते हैं ॥ २ ॥ इन सब मन्वन्तरोंमें यज्ञादि जो पौरुषी मूर्ति अर्थात् ईश्वरके अवतार लेनेकी वर्णन की गई है उन समस्त मूर्तियों करके नियोजित हो मनु आदि लोग जगत्का कार्य निर्वाह किया करते हैं ॥ ३ ॥ हे महाराज ! चैायुगीके अंतमें श्रुति गण कालग्रस्त हुये थे. सो इन मन्वन्तरोंमें ऋषिलोग अपने अपने तपसे उन सबका दर्शन किया करते हैं उन श्रुतियोंकेही द्वारा सनातन धर्म फिर प्रगट होता है ॥ ४ ॥ भगवान् हरिसे प्रेरित कियेहुये मुनिलोग चारों पाँवके धर्मको साक्षात् अपने अपने समयके बीच पृथ्वीपर फैलाते हैं ॥ ५ ॥ प्रजापाल अर्थात् मनुके पुत्रगण जबतक कि मन्वन्तर अन्त नहीं होता. तबतक पुत्र पौत्रादिके कर्मसे उस धर्मको पालन करते हैं और देवतालोग यज्ञभाव ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥ भगवान्की दी हुई त्रिलोकीकी बडी सम्पत्तियोंको भोगते हुए इन्द्र देवता तीनों लोकका पालन करते हुए जलकी वर्षा करते हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! भगवान् हरि प्रत्येक युगमें सनकादिक सिद्धरूप धारण करते ज्ञानोपदेश करते हैं. याज्ञवल्क्यादि ऋषिरूप धारण करके योगोपदेश करते हैं मरीच्यादि ॥ ८ ॥ प्रजापतिरूपी होकर

प्रजासृष्टि, राजमूर्ति होकर चोरोंका वध और कालरूपी होकर समस्तका संहार किया करते हैं उस कालमें उनके शीतोष्णादि गुण अलग अलग होजाते हैं ॥ ९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! लोग अनेक शास्त्रोंके साथ उन हरिके तत्त्व निरूपण करनेका यत्न करते हैं परन्तु नाम रूपात्मिका माया करके उनके आत्माके मोह जानेकेलिये वहुत यत्न करकेभी उनको नहीं देख पाते ॥ १० ॥ हे महाराज ! कल्प और अवान्तरकल्पका प्रमाण यह आपके सामने मैंने कहा कि, जिसको पुरावृत्तके जाननेवाले चौदह मन्वन्तर वर्णन किया करते हैं ॥ ११ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥

दोहा-कियो यज्ञ बलि नृपति जिमि, जब कीन्हों सुरलोक।
सो पन्द्रह अध्यायमें, सुनकर होहु विशोक॥

यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्राह्मण ! भगवान् वासुदेव सब प्राणियोंके ईश्वर हैं, उन्होंने दीनकी समान बन तीन चरण पृथ्वी राजा बलिसे किसलिये मांगीथी ? और मुँह माँगी वस्तु पाकर फिर राजा बलिको किसलिये बांधा ॥ १ ॥ हे योगिन् ! हम इस वृत्तान्तके सुननेकी अभिलाषा करते हैं इस बातको जाननेके लिये हमको बडा कौतूहल हुआ है, क्योंकि पूर्णस्वरूप ईश्वरकी याचना और निरपराधी राजा बलिको बाँधना, यह दोनों बडेही आश्चर्यकी बात है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! युद्धमें राजा बलिकी पराजय और इन्द्रसे प्राणनाश हुआ तो था, परन्तु शुक्राचार्यके अनुग्रहसे यह दानव (बलि) उसयुद्धके पीछे उन (शुक्राचार्य) का चेला हो, सब तन, मन,धन, अपना उनके अर्पण कर सब यत्नोंकरके शुक्रादिकी उपासना करता था ॥ ३ ॥ राजा बलिकी सेवासे शीघ्रही भृगुवंशी ब्राह्मण प्रसन्न होगये, वह महान ब्राह्मण यह जानकरके राजा बलि स्वर्गके जीतनेकी इच्छा करता है, संतुष्ट हुए और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंमेंके प्रसिद्ध महाभिषेक द्वारा यथाविधिसे राजा बलिका अभिषेक कर उसको विश्वजित् यज्ञकी विधिसे यज्ञ कराने लगे ॥ ४ ॥ जब उस यज्ञकी अग्निमें उचित हवि होम दी गई तब अतिशीघ्र उस अग्निमेंसे सुवर्णके पटसे बँधाहुवा एक रथ इन्द्रकेरथके घोडोंकी समान हरे वर्णके कुछ घोडे और सिंहकी मूर्ति जिसपर विराजमान् ऐसी एक ध्वजा ॥ ५ ॥ सुवर्णके बन्दोंसे बँधा हुआ दिव्य धनुष, अक्षय बाणोंसे परिपूर्ण दोतूण (तरकस) और दिव्य कवच यह वस्तु निकलीं । तव राजा बलिने यज्ञाग्निसे इन सब सामग्रियोंको पाया. तब उनके दादा परमभक्त प्रह्लादजीने उनको एक फूलोंकी मालादी कि, जिसके गुँथे हुए फूल कभी नहीं कुँभलाते थे और शुक्राचार्यने एक शंख दिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! भृगुवंशीय ब्राह्मणोंने राजा बलिको इस प्रकारसे रणकी सामग्रियें दिलवाई और फिर उसका स्वस्त्ययन करते हुए. तब राजा बलिने प्रणामकर उन सबकी प्रदक्षिणा की, फिर चरण छूकर अपने दादा प्रह्लादको प्रणाम किया ॥ ७ ॥ फिर भृगुजीके दियेहुए दिव्य रथपर सवारहो शोभायमान माला पहन कवच धारण किया, फिर धनुष और कवच ग्रहण करके पीठमें तरकस कसा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! सुवर्णके भुजबन्दोंसे राजा बलिकी दोनों भुजायें दीप्तिमान् होरही

थीं, दोनों कानोंमें मकराकार कुण्डल दमक रहे थे, इस प्रकार राजा बलि रथारूढ हो कुण्डमें विराजमान अग्निकी समान शोभायमान होने लगा ॥ ९ ॥ जिनका बल और ऐश्वर्य राजा बलिहीकी समान था, और जो गगनमण्डलको अपनी दृष्टिसे पान कर और दिशाओंको मानो भस्महो कर देते थे ॥ १० ॥ ऐसे दैत्य यूथपतिगण अपने अपने यूथोंके साथ जाकर राजा बलिके साथ मिलगये। राजा बलि उन सब असुरोंकी बडी भारी सेनाको संगले सब सम्पत्तियोंसे भरी पुरी अमरावतीकी ओर चला राजा बलिके चलनेके समय मानों पृथ्वी स्वर्ग दोनों कम्पायमान होरहे थे ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इन्द्र पुरीके विभवका क्या वर्णन किया जाय? यह पुरी शोभायमान नन्दनादि उपवन व उद्यान समूहोंसे युक्त होकर अतिशय रमणीय हो रही थी, उन उपवनोंमें उद्यानोंमें पक्षियोंके जोडे कलरव कर रहे थे, और मतवाले भौंरे मीठी गुंजारसे अपूर्वसेही गान कर रहे थे ॥ १२ ॥ वहाँ जो देवताओंके वृक्ष हैं उन सबकी शाखायें प्रवाल और फल फूलोंके भारी बोझसे झुकरही थीं और वहाँके सब सरोवरोंमें सुरसेवित स्त्रियें परमकौतूहलसे विहार कररहीं थीं उन सरोवरोंमें जो कमलनी खिल रही थीं, वह हंस, सारस, चक्रवाक, और कारंडव आदि जलचर पक्षियोंसे व्याप्त थीं ॥ १३ ॥ हे राजन्! उस इन्द्रपुरीके चारों ओर आकाशगंगा हैं, मानो यही अमरावतीकी खाई है. इस इन्द्रपुरीके चारों ओर अतिऊंची छहर दिवारी है उस छहरदिवारीके ऊपर सामरीक अड्डे (बुर्ज) बने हुये हैं ॥ १४ ॥ यह पुरी विश्वकर्माजीकी बनाई हुई थी, वहाँके द्वारोंके कपाटोंपर सुवर्णके पत्ते जडे हुये थे वहाँके गोपुर (फाटक) स्फटिक मणिके बने हुये थे और उस पुरीमें बडे २ सुन्दर राजमार्ग बने हुये थे ॥ १५ ॥ वह पुरी, सभा, चौक गली इनसे सम्पन्न थी, दश करोड गन्धर्व और अप्सरा वहाँपर रहते थे, अनंत विमान वहाँपर धरे थे; हीरा मूँगा मोतीभी वहाँ ढेरके ढेर थे, बाजार समस्त सम्पत्तियोंसे भरे हुये थे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इन्द्रपुरीकी सब स्त्रियें रूपवती थीं, जिनका यौवन और सुकुमारता कभी नष्ट न होती, जिनके श्यामवर्ण थे और वसनभी निर्मल थे वह इस प्रकार शोभायमान होते थे कि, जैसे शिखासहित अग्नि प्रकाशमान होती है ॥ १७ ॥ उस अमरावती पुरीमें देवता लोगोंकी स्त्रियोंके केशोंसे गिरी हुई सुगंधित मालाओंकी सुगंधि ग्रहण कियेहुये पवन प्रत्येक मार्गमें बह रहा है ॥ १८ ॥ सुवर्णके झरोंखोंसे निकले हुये श्वेत अगरके धुयेंसे ढके हुके राजमार्गमें देवताओंकी प्यारी अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड उस पुरीके राजमार्गमें चले जाते थे ॥ १९ ॥ यह पुरी मुक्तामय वितान (चंदोवा) सुवर्णमय ध्वजा और विविधपताकाओंसे सजे धजे हुये विमानोंके अग्रभागसे (छज्जासे) व्याप्त थी और मोर, कबूतर, भौंरे आदिके शब्दसे शब्दायमान थी और विमानमें बैठीहुई स्त्रियोंके मनोहर गीतोंसे मंगलस्वरूप होरही थी ॥ २० ॥ अधिक करके यह पुरी मृदंग, शंख, ढोल, दुन्दुभी इत्यादिकी ध्वनि और ताल सहित वीणा, मुरज, वंशीकी नाद, गन्धर्वोंके गीत, नृत्य आदिकोंसे अति मनोहर होरही थी, उसमें ऐसी

प्रभा प्रकाश होती थी कि, मानों इससे सबकी कान्तिको जीत लिया है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! इस पुरीमें अधार्मिक भूतद्रोही, खल, अभिमानी, कामी, लोभी जन नहीं जासक्ते। जिनमें यह दोष नहीं होते वही लोग वहाँपर जाते हैं ॥ २२ ॥ सेनापति बलि इस देवपुरीमें जाकर सेनाके द्वारा उस पुरीका बाहरी भाग चारों ओरसे घेर लिया और देवता लोगोंकी स्त्रियोंको भय दिलानेके लिये शुक्राचार्यका दिया हुवा शंख बजाने लगा ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे राजा बलिका उद्यम जान देवराज सब देवता लोगोंको साथ ले अपने गुरु बृहस्पतिजीसे जाकर कहने लगे ॥ २४ ॥ कि, हे भगवन् ! हम अपने वैरी राजा बलिका फिर बडाभारी उद्यम देखते हैं. हम अनुमान करते हैं कि उसका यह उद्यम हमलोग नहीं सहसकेंगे। हे गुरो ! किसलिये राजा बलिका ऐसा तेज बढगया ॥ २५ ॥ हमको जान-पडता है कि, कोई किसी उपायसे इस दैत्यराज बलिको यहाँसे दूर नहीं कर सकेगा. क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि, यह बलि मुखसे मानों सब जगत्को पिये लेता है और जांभसे दशों दिशाओंको चाटता है। नेत्रोंसे दशों दिशाओंको भस्मकरे देता है। निःसन्देह ऐसा ज्ञात होता है कि यह दानव प्रलयके अग्निकी समान उठा है. हे गुरो ! यह हमारा शत्रु इस प्रकार दुर्द्धर्ष कैसे हुआ ? इस शत्रुमें इस प्रकारकी सामर्थ्य कैसे हुई ? और ऐसा तेज व साहस किस प्रकार हुआ ? क्योंकि सामर्थ्यादिके होनेसेही युद्धकी सामग्रियें होरही हैं, इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ २६ ॥ २७ ॥ यह सुनकर श्रीबृहस्पतिजी महाराज कहने लगे कि, हे देवराज इन्द्र ! तुम्हारे इस वैरीकी उन्नति होनेके कारणको हम जानते हैं, यह दानव ब्रह्मादि भृगुवंशियोंका शिष्य (चेला) है, उन ब्राह्मणोंने स्नेहके वश होकर अपने शिष्यका तेज बढा दिया है ॥ २८ ॥ इसलिये स्वयं हरिके अतिरिक्त तुम अथवा तुम्हारेही समान कोई पुरुष, तेजस्वी राजा बलिके जीतनेको समर्थ नहीं होगा. अब ब्रह्मतेज सन्मुख आया है उसको कौन जीत सक्ता है. जिस प्रकार लोग कालके सामने खडे नहीं होसक्ते उसी प्रकार कोई उस ब्रह्मतेजके आगे खडे होनेको समर्थ नहीं होगा ॥ २९ ॥ बस अब हम आपको यही सम्मति देते हैं कि, जबतक शत्रुका विनाश हो तबतक कालकी प्रतीक्षा कर स्वर्गको छोड तुम अदृश्य होआओ ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोंकेही बलसे बलिका बल बराबर बढगया है, कि, जिससे यह अब महाविक्रमशाली होगया है, ब्राह्मणोंका अपमान करनेसे यह स्वयं अपने वंशके साथ नाशको प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ३१ ॥ अर्थ और कामके जाननेवाले गुरु बृहस्पतिजीने जब इस प्रकारसे करने योग्य कार्य बताय श्रेष्ठ सम्मति दी. तब सब कामरूपी देवतालोग स्वर्गको छोडकर अन्तर्धान होगये ॥ ३२ ॥ शुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् । जब सब देवतालोग अदृश्य होगये तब विरोचनका पुत्र राजा बलि स्वर्गमें विराजमान हुआ और तीनों लोकोंको अपने वशमें करलिया। ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! शिष्योंपर स्नेह करनेवाले भृगु लोगोंने अपने आज्ञाकारी शिष्य विश्वविजयी बलिका इन्द्रत्व स्थिर करनेके लिये उससे शत अश्वमेध यज्ञ कराये ॥ ३४ ॥

शत अश्वमेध यज्ञ करनेके प्रभावसे राजावलिकी कीर्ति दशों दिशाओंमें फैल गई और वह नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान विराजमान हुआ ॥ ३५ ॥ और ब्राह्मण लोगोंने जो वडी सम्पत्ति प्राप्त करादी, इसलिये राजा बलि अपनेको कृतार्थ मानकर उस सम्पत्तिको भोगने लगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

दोहा-सोलहवें सुत दुर्दशा, देख अदिति भयमान।
कश्यपकी विनती करी, कश्यप दीन्हों ज्ञान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! जब देवतालोग इस प्रकारसे छिपगये और दैत्योंने स्वर्गपुरीको छीनलिया, तब इन्द्रकी माता अदिति अनाथकी समान हो परितापको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ इनके पति कश्यपजी बहुत कालके पीछे समाधि विसार एक दिन उत्सवहीन व आनन्द रहित अदितिके आश्रममें आये ॥ २ ॥ और यथाविधि पूजित हो आसनपर बैठ अपनी स्त्रीका मलीन मुख देखकर वह पूँछने लगे कि ॥ ३ ॥ हे भद्रे! लोकमें ब्राह्मण लोगोंका तो कोई अमंगल नहीं हुआ? अधर्म तो प्राप्त नहीं हुआ? और मृत्युके वशमें पडे लोकोंका तो कोई अशुभ नहीं हुआ ॥ ४ ॥ अथवा तुम्हारे गृहमें धर्म, अर्थ, कामकी तो कोई अकुशल नहीं हुई? हे गृहिणी! गृहस्थाश्रम साधारण नहीं है। तिस गृहस्थाश्रमसे अयोगी लोगभी स्वधर्मादि करके योगके फलको पालेते हैं ॥ ५ ॥ हे सति! इतनी मलीन क्यों हो अथवा तुम्हारे कुटुंबके विषय अनुरागी रहनेपर कोई अतिथि विना पूजा और आदर पाये तुम्हारे घरसे तो नहीं उठगया? ॥ ६ ॥ गृहसे अतिथिका विमुख होकर चला जाना वास्तवमें क्षोभकी बात है, जिस घरमें केवल जलसेभी अतिथिका सत्कार नहीं होता, वह गृह शृगालराजके भट्टेकी समान है ॥ ७ ॥ हे साध्वि! तुम्हारे अनमने होनेका क्या कारण है? हमारे परदेशमें चले जानेपर उद्विग्न चित्त हो क्या किसी दिन यथा समयपर तीनों अग्नियोंमें हवि देना तो नहीं भूलगई? ॥ ८ ॥ गृहस्थी पुरुषको तीनों अग्नियोंमें अवश्य होम करना उचित है क्योंकि ब्राह्मण और अग्नि सर्व देवमय विष्णु भगवानका मुख है, अग्निकी पूजा करनेसे पुरुषगण कामनाओंके पूर्ण करनेवाले लोकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ हे मनस्विनि! तुम्हारे पुत्र तो सब मंगलसे हैं? मुख मलीनादि लक्षणोंको देखकर जान पडता है कि, तुम्हारा अंतःकरण सावधान नहीं है. बताओ तो सही ऐसी अनमनी किसलिये हो रही हो? ॥ १० ॥ यह सुनकर अदितिने कहा कि, हे स्वामिन्! गो, ब्राह्मण, धर्मादि सबकाही मंगल है. हे गृहमेधिन्! जो गृह, धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंका उद्भवस्थान है वह भी कुशलसे है अर्थात् धर्मादि त्रिवर्ग भी यथारीतिसे निर्वाह होते हैं ॥ ११ ॥ और मैं जो आपका ध्यान करती हूं, उसके प्रभावसे अग्नि, अतिथि, भिक्षुक, प्रभृति जो कोई भी हैं, वह सबही बलि (भोजन) की वासना करते हैं और अघाये हुये हैं ॥ १२ ॥

आप हमारे प्रजाध्यक्ष हैं और ऐसाही धर्मोपदेश करते हैं; फिर भला हमारे मनकी कामना पूर्ण क्यों नहीं होगी ? ॥ १३ ॥ हे प्रजेश ! सब प्रजा आपकेही मन और शरीरसे उत्पन्न हो सत, रज अथवा तमोगुणका अवलम्बन करती है. सुरादि सब प्रजाओंमें यद्यपि समान भाव है तो भी महेश्वरगण भक्त पुरुषके प्रति विशेष अनुग्रह करते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये मैं भक्ति करके आपको भजती हूँ, सो आप मेरी भलाईका विचारकरें. हे प्रभो ! मेरी सौतके पुत्र दैत्य लोगोंने हमारे पुत्रकी लक्ष्मीको हरण किया और स्थानभी छीन लिया सो आप मेरे पुत्रोंकी रक्षाकरैं और दितिके पुत्रोंने हमको निकाल दिया है, इसी कारण मैं दुःखके समुद्रमें डूब रही हूं ॥ हे ब्रह्मन् ! दानवोंने प्रबल होकर हमारे पुत्रोंका ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी और स्थान जो जो वस्तु थीं वह सब हरण करली हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ सो हे कल्याण-कारिन् ! हमारे पुत्र उन सबको जिस प्रकार फिर प्राप्तहों, वैसाही कल्याण आप अपनी बुद्धिसे विचारें ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब अदितिने इस प्रकारसे कश्यपजीकी प्रार्थना की, तब महर्षि कश्यपजी विस्मित होकर बोले कि, अहो ! भगवान् विष्णुकी माया कैसी बलवान् है । कैसा आश्चर्य है, यह जगत् स्नेहकी फाँसीमें बँध रहा है ॥ १८ ॥ हे भद्रे ! कहाँ तो पंचभूतका बना हुआ देह और प्रकृतिसे परवर्ती आत्मा और कौन किसीका पतिहै और कौन किसका पुत्र है ? केवल मोहही इन सबका कारण है ॥ ॥ १९ ॥ हे राजन् ! महर्षि कश्यपजीने जब इस प्रकारसे तत्त्वज्ञानका उपदेशकर देखा कि, इससे अदितिको संतोष न हुआ तब फिर बोले कि, हे भद्रे ! सब प्राणियोंके अन्तर्यामी जगत्के गुरु, आदिपुरुष, वासुदेव भगवान्की तुम पूजा करो ॥ २० ॥ वह दीनदयालु दीनपर दया करनेवाले अवश्यही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करैंगे. हम भलीभाँति जानते हैं कि, भगवत्सेवाही अमोघ है, इसके सिवाय और कुछ अमोघ नहीं हैं ॥ २१ ॥ यह सुन अदिति प्रसन्न मन हो कहने लगी कि, हे ब्रह्मन् ! मैं किसविधानसे जगद्गुरु भगवान् की उपासना करूं, जिस प्रकारसे वह सत्य संकल्प हमारा मनोरथ पूर्णकरैं ॥ २२ ॥ और पुत्रोंसहित दुःखी हुई मेरे ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो जावें, सो आप मुझको वैसेही पूजा करनेकी विधि बतला दीजिये ॥ २३ ॥ यह सुनकर कश्यपजीने कहा कि, हे भद्रे ! हमने पहले पुत्रकी इच्छाकरके पद्मयोनि ब्रह्माजीसे यह बात पूँछी थी, तो उन्होंने मुझको केशव तोष-णनामक जिस व्रतका उपदेश कियाथा वही व्रत हम तुमसे कहते हैं, सो तुम सचेतहो मन लगाय सुनो ॥ २४ ॥ फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें बारह दिनका पयोव्रत करै, तिस व्रतमें भक्तियुक्त होकर कमललोचन भगवान्की पूजाकरै ॥ २५ ॥ हे सति ! जो मिलसके तो शूकरकी खोदी मट्टी शरीरमें लगायकर नदीके जलमें स्नान करै और स्नान करनेके समय इस मंत्रको पढै ॥ २६ ॥

मंत्रः-त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥ २७ ॥

अर्थ-देवी स्थानकी इच्छा करके आदि वराहजीने तुमको रसातलसे उद्धार कियाथा, सो

हे पृथ्वी ! तुमको नमस्कारहै । तुम हमारा पाप दूरकरो ॥ २७ ॥ " तिसके पीछे नित्य नैमित्तिक नियमोंका पालनकर सावधान चित्तसे मूर्तिमें, पृथ्वीमें, सूर्यमें, जलमें अथवा अग्निमें वा गुरुमें, जहाँ इच्छा हो वहां करै ॥ २८ ॥ " पूजाके समय नव मंत्रोंको पढकर भगवान्का आवाहनादि करना होताहै, वे नव मंत्र यहहैं-

मंत्रः-नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९ ॥

अर्थ-हे भगवन् वासुदेव ! आप बडेसे बडे पुरुषहैं, सर्व प्राणियोंके निवास स्थानहैं, सब के साक्षी हैं सो आपको नमस्कारहै ॥ २९ ॥

मंत्रः-नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥ ३० ॥

अर्थ-आप चौवीस तत्त्वोंके जाननेवाले हैं सांख्ययोगका विस्तार करनेवालेहैं सो ऐसे अव्यक्त सूक्ष्म प्रधान पुरुषको नमस्कारहै ॥ ३० ॥

मंत्रः-नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृंगाय तंतवे ।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥ ३१ ॥

अर्थ-वह विष्णुभगवान् यज्ञके फलका विस्तार करनेवाले हैं और यज्ञरूपी हैं उनके दोशिर (प्रायणीय और उदयनीय) हैं तीन चरण (सवनत्रय) हैं चार शृंग (चारों वेद) हैं, सात हस्त (सात छंद) हैं त्रयी विद्या आत्मा है उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥

मंत्रः-नमःशिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥

अर्थ-शिव और रुद्ररूपी उन भगवान्को नमस्कार है. वह शक्तिधरहैं, सर्वविद्याओंके पति हैं. और प्राणियोंके अधिपति हैं उनको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

मंत्रः-नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥ ३३ ॥

अर्थ-उन हिरण्यगर्भको नमस्कार है, वह जगत्के आत्मा योगेश्वर्य हैं जिनका शरीरही योगके कारण है, उनको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

मंत्र-नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥ ३४ ॥

अर्थ-हे भगवन् ! आप आदिदेव हैं, सबके साक्षीरूप हैं, नारायण नर और हरिहैं, सो आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥

मंत्र-नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ ३५ ॥

अर्थ-हे भगवन् ! आप केशवहैं, आपका शरीर मरकत मणिके समान श्यामवर्ण है, आप पीताम्बर धारण किये हुये हैं आप श्रीको प्राप्त हुए हैं सो आपको नमस्कारहै ॥ ३५ ॥

मंत्रः-त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ।
अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥

अर्थ-हे वरेण्य ! हे वरद श्रेष्ठ ! ! आप पुरुषोंको सब वर देते हैं, इस कारण वीरलोग कल्याणके लिये आपको चरणरजको पूजतेहैं ॥ ३६ ॥

मंत्रः-अन्ववर्तंत यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः।
स्पृहयंत इवामोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-अहो ! देवता लोग और लक्ष्मीजी जिनके चरणकमलके सौरभकी चाहना करतेहैं वह भगवान् हमारे ऊपर प्रसन्नहों ॥ ३७ ॥

इन मंत्रोंसे आवाहन कर सन्मान करै, इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान्को श्रद्धायुक्तहो पाद्य व आचमनादिकसे गंध मालादिकसे पूजकर स्नान करावे और "ॐनमो भगवते वासुदेवाय" इस बारह अक्षरके मंत्रसे विद्याद्वारा पूजन करै ॥ ३८ ॥ गंध, पुष्प आदिसे पूजनकर भगवान्को दूधसे स्नान करावे फिर वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पाद्य, आचमन, गंध, धूप, नैवेद्यादि उपचारोंसे द्वादशाक्षर मंत्रको पढ पढकर हित चितसे पूजन करै ॥ ३९ ॥ हे सति ! जो आपसे वसाय तो दूधमें खीर बनाय उसका श्रीनारायणको भोग लगावै फिर घृत और गुडके सहित उस खीरको निवेदन करके मूल विद्या अर्थात् बारह अक्षरके मंत्रसे होमकरै ॥ ४० ॥ फिर निवेदन किये हुए भगवद्भक्तको भोजन कराय. अथवा स्वयं भोजन करले। हे भद्रे ! पूजा करनेके पीछे आचमन कराय फिर ताम्बूल निवेदन करै ॥ ॥ ४१ ॥ फिर एकशत आठ (१०८) वार द्वादशाक्षर मंत्र जप करके पहले कहे व और दूसरे मंत्रोंसे भगवान्की स्तुति करै. उसके पीछे परिक्रमा करके भूमिपर गिर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करै और निर्माल्य ग्रहण करके फिर देवताको विसर्जन करै ॥ ४२ ॥ फिर खीरसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै कि, जिनकी गिनती दोसे कम नहो ॥ ४३ ॥ फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञाले बंधु बांधवों सहित अपने आपभी भोजन करै, फिर रात्रिमें ब्रह्मचारी रहकर प्रभातको प्रथमदिन ॥ ४४ ॥ प्रातःकाल स्नान कर पवित्र होजाय; फिर गायके दूधसे भगवान्को स्नान करावे और पूजा करे, जबतक व्रत समाप्त नहो तबतक ऐसेही करना चाहिये ॥ ४५ ॥ हे देवि ! केवल दूधही पान करके विष्णु भगवान्का पूजन करनेसे आदर पाता हुआ इस प्रकारसे व्रत करै और पहलेहीकी समान अग्निमें होम करै और ब्राह्मण भोजन करावै ॥ ४६ ॥ इसप्रकार बारह दिनका पयोव्रत करै अर्थात् पडवा तिथिसे शुक्ला त्रयोदशीतक होम, पूजन और ब्राह्मण भोजनादिसे भगवान् वासुदेवकी आराधना करै ॥ ४७ ॥ इन बारह दिन तक ब्रह्मचर्यका पालन करना, पृथ्वीमें शयन करना और तीनों संध्याओंमें स्नान करना आवश्यकहै ॥ ४८ ॥ असाधु लोगोंसे संभाषण न करै, सर्व प्राणियोंमें हिंसा हर्ष न करै, सबको वासुदेवपरायण देखे, त्रयोदशीके दिन पंचामृतसे विष्णु भगवान्को विधिके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी बताई विधिसे शास्त्रानुसार स्नान करावै ॥ ४९ ॥ और धनादिकी काँक्षा छोडकर बडीभारी पूजा करै, फिर दूधसे

चरु तैयार कर भगवान् विष्णुको निवेदन करै ॥ ५० ॥ और अच्छे प्रकार पवित्र व सावधानहो पिछले कहेहुए मंत्रोंसे पूजाकरे, जिससे परमपुरुष प्रसन्न होजाँय वैसे गुण-युक्त नैवेद्यका भोग लगावै ॥ ५१ ॥ फिर वस्त्र, भूषण और गोदान करके ज्ञान संपन्न आचार्य और पुरोहित लोगोंको संतुष्ट कर हे सति ! इन सबके प्रसन्न करनेसे भगवान्की आराधना अपने आप होजाती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इन सब पुरुषोंको व और जो ब्राह्मण वहाँपर उस समय आजाँय, उन सबको अपनी सामर्थ्यके अनुसार उत्तम भोजन भक्षण करावे, फिर ऋत्विक् और गुरुको यथायोग्य देकर और जो पुरुष आगये हों उनको अन्नादि देकर तृप्त करै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ दीन, अंधे, कृपण,इन लोगोंको भोजन करानेसे भगवान् हरिका प्रसन्न होना जानकर इनको भोजन करावे और फिर आप जाति भाइयों सहित भोजन करै ॥ ५६ ॥ हे भद्रे ! व्रतके समय प्रतिदिन गाना, बजाना, नाचना, स्तुति पठन, स्वस्तिवाचन और भगवत् कथा इत्यादिसे भगवान्की पूजा करै ॥ ५७ ॥ हे महाभाग ! इसका नाम पयोव्रत है, इसेहीसे परमपुरुषका आराधन होताहै, पितामह ब्रह्माजीने हमको यह व्रत बताया था, सो हमने प्रीतिके वशहो तुम्हारे आगे वर्णन किया ॥ ५८ ॥ श्रीकश्यपजी बोले कि, हे महाभाग ! तुम इस व्रतको भलीभाँति करके इससे जितेन्द्रिय होकर भजनेके योग्य अव्यय भगवान्की आराधना करो ॥ ५९ ॥ इस व्रतका नाम सर्वज्ञ, यही सर्व व्रत, यही तपका सार है, यही बडाभारी दान, और यही ईश्वरका तर्पण है ॥ ६० ॥ हे भद्रे ! जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं वही उत्तम संयम, वही तप, वही दान, वही व्रत और वही यज्ञ है ॥ ६१ ॥ इसलिये तुम नियमसहित और श्रद्धापूर्वक इस व्रतको करो इससे भगवान् शीघ्रही प्रसन्न होकर तुमको मनोवांछित वरदान देंगे ॥ ६२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-व्रत करनेसे अदिति पर, ह्वै प्रसन्न भगवान।
सो सत्रह अध्यायमें, धारो तन सुखदान ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे परीक्षित् ! अपने स्वामी महर्षि कश्यपजीके इस प्रकार कहनेपर अदितिने श्रद्धापूर्वक आलस्य त्याग इस बारह दिनके व्रतको आरंभ किया ॥ १ ॥ वह अपनी बुद्धिको सारथी बनाय इन्द्रियरूप दुष्ट घोडोंको वशमें कर एकाग्र-चित्तसे परमपुरुष ईश्वर-चिन्तामें मग्न हुई ॥ २ ॥ और एकाग्र बुद्धिसे अखिलात्मा वासुदेव भगवान्में मन लगाय बराबर पयोव्रतको करने लगी॥ ३॥हे राजन् ! व्रतके करनेसे भगवान् आदिपुरुष शीघ्रही पीताम्बर धारण कियेहुये हाथमें शंख,चक्र,गदा,पद्म धारण किये अदि-तिके सामने आनकर प्रगट हुये॥४॥ उनको निहारतेही आदिति आदरपूर्वक शीघ्रतासे उठी और प्रीतिसे विह्वल हो पृथ्वीमें गिरकर दण्डकीसी नाईं प्रणाम करती हुई॥ ५ ॥ हे राजन् !

फिर प्रीतिसे विह्वल होनेके कारण फिर अदिति हाथ जोडेहुये उठी और केवल स्तुति करने-
हीको असमर्थ न हुई बरन् उनके मुखसे वाततक न निकली, उनके दोनों नेत्रोंमें आन-
न्दके आँसू भर आये, शरीर पुलकायमान होगया और उत्सवरूपी भगवान्का दर्शन पाय
सब शरीर कम्पायमान होने लगा ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! उन यज्ञपति, जगत्पति,
रमापतिको देखकर कश्यपजीकी स्त्री अदिति नेत्रोंसे मानों पान करते बहुत देरके पीछे
प्रीतिके भरे गद्गद वचनोंसे श्रीभगवान्की स्तुति करने लगी ॥ ७ ॥ अदितिने कहा कि, हे
यज्ञेश! हे यज्ञपुरुष! हे अद्भुत! हे तीर्थपारद! हे तीर्थकीर्ति! आपका नाम श्रवण होतेही
मंगलकारी है. आपका उदय शरणमें आये भक्त लोगोंके पापोंका नाश करनेवाला है. हे
आद्य! हे भगवन्! आप हमारा कल्याण करनेमें मन लगावें। हे प्रभो! आप दीनानाथ
हैं ॥ ८ ॥ हे भगवन्! यद्यपि आप विश्वस्वरूप हैं और विश्वके सृष्टि, स्थिति और
प्रलयके कारण हैं, इच्छानुसार मायाके गुणोंको ग्रहण करते हैं, तथापि आप स्वस्थ हैं,
अर्थात् आपका स्वरूप अप्रच्युत है, नित्य बढता हुआ जो पूर्ण बोध है तिससे आपने
परमात्मामें मायारूप तम नित्य निरस्त किया है, सो मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥
॥ ९ ॥ तुम्हारे प्रसन्न होनेसे मनुष्योंको ब्रह्माकेसी आयु, सुन्दर रूप, अतुल लक्ष्मी,
स्वर्ग, पृथ्वी सर्वयोगके गुण धर्म, अर्थ, काम, ज्ञान, यह सब प्राप्त होजाते हैं. फिर वैरि-
योंपर विजय पानेका आशीर्वाद जो आपसे मिलेगा, इसमें कुछ बडी बात थोडेही है ॥
॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब अदितिने इस प्रकारसे स्तुति की तब
सब प्राणियोंके अंतर्यामी कमललोचन भगवान् उनसे यह वचन कहने लगे ॥ ११ ॥
श्रीभगवान् बोले कि, हे देवजननि! तुम्हारी सौतके पुत्रोंने जो पुत्रोंकी सम्पत्ति हरण
करली है और स्थानभी छीन लिया है उन अपने पुत्रोंके लिये अनेक दिनसे तुम जो
चिन्ता करती हो, वह हम जानते हैं ॥ १२ ॥ तुम्हारी वासना यह है कि दुर्मद
दानव लोगोंको समरमें पराजित कर तुम्हारे पुत्रगण विजयको प्राप्त होवें और तुम
उनके सहित एक जगह रहो ॥ १३ ॥ और इन्द्रादि तुम्हारे पुत्रगण विद्वेषियोंको जब
संग्राममें मारडालें तब उन शत्रुओंकी स्त्रियें जो दुःखसे रोदन करें उन्हें तुम देखो ॥
॥ १४ ॥ और तुम्हारा अभिलाष यहभी है कि, तुम्हारे पुत्रगण अपनी जय
लक्ष्मीको पाकर भलीभाँति वृद्धिको प्राप्त होवें और पहलेकी समान स्वर्गमें विहार करें
कि, जिनको देखकर तुम प्रसन्न होओ ॥ १५ ॥ परन्तु हे देवि! हमको जान पडता-
है कि, असुर यूथप लोगोंके ऊपर सहसा आक्रमण नहीं किया जासकेगा, क्योंकि
सामर्थ्यवान् ब्राह्मणलोग अनुकूल होकर उनकी रक्षा करते हैं, फिर जहाँपर ऐसी बात है
वहाँपर विक्रम प्रकाश करनेसे सुख नहीं मिलेगा ॥ १६ ॥ किन्तु हे देवि! तुमने
पयोव्रत करके हमको बहुत संतोषित किया है, सो अब हम अवश्य इस विषयका उपाय
करेंगे हमारी पूजा करनेसे निश्चय इच्छानुसार फल मिलता है,हमारी पूजाका विफल होना
उचित नहीं है ॥ १७ ॥ हे देवि! तुमने सन्तानकी रक्षा करनेके लिये जो पूजा की और

पयोव्रत करके हमारी स्तुति की,इससे हम परम प्रसन्न हुये हैं मैं स्वयं अपने अंशसे तुम्हारा पुत्र होकर कश्यपजीके तपमें स्थित हो तुम्हारे पुत्रोंका पालन करूंगा ॥ १८ ॥ इसलिये तुम इस समय अपने पापरहित पति प्रजापति कश्यपजीके समीप जा उनकी सेवा करो और हमकोभी इसी प्रकारसे अपने पतिमें अवस्थित हुआ चिन्ता करना ॥ ॥ १९ ॥ हे देवी ! यह बात किसी औरके निकट किसी प्रकारसेभी प्रकाश मत करना क्योंकि देवता लोगोंका रहस्य भली भाँति छिपाये रहनेहीसे सिद्ध होता है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! अदितिसे यह सब वचन कहकर भगवान् वासुदेव उसी स्थानमें अंतर्धान होगये, उसके पीछे अदिति अपने गर्भमें दुर्लभ भगवान्का वास होना सुन, मनमें कृतार्थ होगई और परमभक्तिके साथ पतिके निकट गई ॥ २१ ॥ महर्षि कश्यपजीकी अव्यर्थ दृष्टि थी, उन्होंनेभी योगकी समाधिमें देख लिया कि भगवान् हरिका अंश हममें प्रविष्ट है ॥ २२ ॥ सावधान मनवाले वह मुनि यद्यपि सब पुत्रोंको समान देखते थे, तोभी जैसे सब कहीं रहनेवाला वायु काष्ठकी रगडसे वनकी जलानेवाली अग्निको उत्पन्न करता है वैसेही आदितिजीके गर्भमें दैत्योंको क्षय करनेवाला, बहुत-कालसे संचय किया हुआ वीर्य धारण किया ॥ २३ ॥ हे राजन् ! भगवान् सनातन-विष्णुको अदितिके गर्भमें विराजमान हुआ जानतेही हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी गुह्यनामसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि, हे उरुगाय भगवन् ! आपकी जय हो । हे उरुक्रम ! आपको नमस्कार है । प्रभो ! आप ब्रह्मण्यदेव हैं आपको नमस्कार है । हे त्रियुग ! आपको वारम्वार नमस्कार है नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे भगवन् पूर्व जन्ममें इन अदितिका नाम पृश्नि था, आप उनके गर्भमेंभी अर्भक होकर जन्मे थे सो आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! आप विधाता हैं, सब देवताओंमें प्रकाशमान हैं, सो आपको नमस्कार है। हे भगवन् ! स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, यह तीनों लोक आपकी नाभिमें वर्तमान् हैं और आप त्रिलोकीके ऊपर स्थित हैं, सब जीवोंमें अन्तर्यामी रूपसे प्रविशे हुए हैं. सो हे सर्वव्यापी ! मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥ हे ईश ! आप इस भुवनके आदि अन्त और मध्यहो, आपही अनन्त शक्ति पुरुष कहे जाते हैं, जैसे गंभीर प्रवाह-जलमें गिरेहुए तृणादिको आकर्षण करता है, वैसेही कालरूपी जो आप हैं सो प्रलयकालमें इस विश्वको आकर्षण किया करते हैं, ॥ २७ ॥ हे भगवन् आप ! स्थावर जंगम सब प्रजा और प्रजापति लोगोंके उत्पन्न करनेवाले हैं आपके जन्मादि नहीं हैं. हे देव ! जलमें डूबते हुए मनुष्यके लिये जैसे नाव प्राण बचानेका अवलम्बन है, वैसेही आप स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंके परमआश्रय हैं, इसलिये निःसंदेह आपका यह अवतार देवतालोगोंका कार्य साधन करनेके कारण हुआ है । सो आप बहुत शीघ्र स्वर्गसे निकाले-हुए देवतालोगोंको फिर स्वर्गमें स्थापित कीजिये ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा-अष्टादश अध्यायमें, बलिका यज्ञ मँझार।
श्रीवामनजो जिमि गये, सो सम्वाद उदार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान्के कार्य और वीर्यकी स्तुति की तब जन्म मृत्यु हीन वह भगवान् आदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए, उनके नेत्र कमलदलके समान बडे थे, चार भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, आयुध देदीप्यमान हो रहे थे और कमरमें पीताम्बर पडा हुआ था ॥ १ ॥ उनका शरीर श्याम और गौर वर्ण था, मकराकारकुण्डलोंकी श्री उनके वदनारविन्दको प्रकाशमान कर रही थी वक्षःस्थलमें श्रीवत्स विराजमान था और वलय व अंगद (बाजु) सहित उनका किरीट और काञ्ची व मनोहर नूपुर यथास्थानमें शोभायमान हो रहे थे ॥ २ ॥ और अत्यन्त सुन्दर वनमाला जो कि वहुतसे भ्रमरगणोंकी गुंजारसे शब्दायमान होरही थी, श्रीनारायण इससे विराजमान् हो अपने शरीरकी प्रजापतिजी (कश्यपजी) के गृहके अंधकारको दूर कर रहे थे; और उनकी गर्दनमें प्रसिद्ध कौस्तुभमणि पडी हुई थी ॥ ३ ॥ जैसेही श्रीभगवान् इस प्रकारसे उत्पन्न हुये कि, वैसेही सब दिशायें और जलाशयोंने निर्मल रूप धारण किया. प्रजा हर्षित हुई और समस्त ऋतु अपने अपने गुणसे (फल पुष्पादिसे) शोभायमान हुए। स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी और सब पर्वतोंपर मनोहर शोभा हुई। देव, द्विज, गायें, इन सबहीके मनमें परमहर्ष हुआ ॥ ४ ॥ हे राजन्! भगवान् किस समयमें उत्पन्न हुये सो तुम सुनो। भादोंमहीनेकी शुक्ला द्वादशी जो कि श्रवण द्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है, उसी तिथिको श्रवण नक्षत्रमें प्रथमांशके मध्य अभिजित् मुहूर्तमें श्रीभगवान्ने जन्म लिया, उस कालमें अश्विनी आदि सब नक्षत्र और गुरु शुक्रादिक सब ग्रहोंने अनुकूल रहकर उनका जन्म उदार किया था, अर्थात् उनके जन्मनक्षत्रमें ग्रह नक्षत्रादि सबही शुभ पडे थे ॥ ॥ ५ ॥ हे महाराज! जिस द्वादशीमें भगवान् वामनजीने जन्म लिया सो प्राचीन कविलोग कहते हैं कि, उस द्वादशीके दिवा भागमेंही श्रीनारायणका जन्म हुआ था, उस समय सूर्यभगवान् मध्याह्नमें स्थित थे, अर्थात् भलीभाँति दुपहर होगयाथा, इस द्वादशीका नाम विजया है ॥ ६ ॥ जिस समय श्रीभगवानने जन्म लिया उस समय शंख, नगाडे, भेरी, ढोल, आनक, तुरही, व और अनेक बाजोंका बडा भारी शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ अप्सरायें प्रसन्न होकर नाचने लगीं और गन्धर्वलोग गाना आरंभ करने लगे, मुनि लोगोंने स्तुति करनी आरंभ की, फिर देववृन्द, मुनिवर्ग, पितृगण, सब अग्नियें ॥ ८ ॥ सिद्ध, विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, देवतालोगोंके सेवक व आदित्यगण नाच नाचकर गुण गाने लगे ॥ ९ ॥ और प्रशंसा करकर फूल वर्षाय वर्षाय कश्यपजीके आश्रमको छाय लिया ॥ १० ॥ हे राजन्! अपने गर्भसे उन परमपुरुषको उत्पन्न हुआ देखकर अदितिको विस्मय और हर्ष एक साथ हुआ। प्रजापति कश्यपजी योगमायासे अवतार लिये हुये उन श्रीभगवान् हरिको देखकर विस्मययुक्त हो यही वचन बोले कि, हे भगवन्! तुम्हारी जय हो। हे राजन्! भगवान्

हरिने जो यह अवतार मनुष्यका धारण किया कि, जिससे चित्त अव्यक्त था. अपनी द्युति, भूषण व आयुध सहित उस शरीरमें नटकी नांई दर्शनकारी माता पिताके सामनेही वामन बटुकरूप होगये, उनकी गति दिव्य थी, ऐसा होना कुछ विचित्र नहीं है ॥ ॥ ११ ॥ इन वामनजीका दर्शन करके महर्षि लोग आनंदप्रकाश करते करते कश्यपजीके स्थानपर गये ॥ १२ ॥ और उनको आगेकर नारायणका जातकर्म संस्कार कराने लगे ॥ ॥ १३ ॥ तिसके उपरान्त जब इन वामनजीका यज्ञोपवीत हुआ, तब सूर्यनारायणने स्वयं इनको गायत्री सिखाई, बृहस्पतिजीने यज्ञसूत्र (जनेऊ) दिया और कश्यपजीने मेखला पहराई ॥ १४ ॥ भूमिने मृगचर्म दिया, सब वनोंके पति चन्द्रमाने दण्ड दिया, माताने कौपीन दी और उन जगत्पतिको स्वर्गने छत्र दान किया ॥ १५ ॥ अधिक करके वेदगर्भ ब्रह्माजीने कमण्डलु, सप्तर्षियोंने कुशा और सरस्वतीने अक्षमाला लेकर उन अविनाशीको उपहार दी ॥ १६ ॥ हे राजन् ! जब वामनजीका जनेऊ हो गया, तब वेदोंने उनको भिक्षापात्र दिया और साक्षात् सती अम्बिकाजीने उनको भिक्षा दी ॥१७॥ यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचारी वामनजी इस प्रकार आदर सत्कार पा अपने तेजसे ब्रह्मर्षियोंकी सभाकोभी अतिक्रमण करके शोभायमान होने लगे ॥ १८ ॥ अग्निके परिसमूहके द्वारा कुशोंको बराबर कर समाधान करके होम करने लगे ॥ १९ ॥ तिसके उपरान्त वामनजीने सुना कि, भृगुवंशियोंके प्रवर्तन कियेहुये अनेक अश्वमेध यज्ञोंसे राजाबलि यज्ञ कर रहा है, इसलिये अखिल बलसे पूर्ण हो अपने भारसे पग पगपर पृथ्वी मण्डलको कम्पायमान करते हुये राजा बलिके यज्ञस्थानमें वामनजीने गमन किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! नर्मदाके उत्तर किनारेपर भृगुकच्छ नामक क्षेत्रमें बलिके श्रेष्ठ ऋत्विजोंने जो इन यज्ञोंको करा रहे थे; उन्होंने अपने उदय हुये सूर्यनारायणकी समान इन वामनजीको देखा ॥ २१ ॥ श्रीवामनजीके तेजसे सब ऋत्विक सभासद्गण और यजमान असुरश्रेष्ठ राजाबलि यह सब तेज रहित होगये और यह कहकर परस्पर तर्क वितर्क करने लगे कि, " क्या यज्ञ देखनेकी इच्छासे सूर्य भगवान् आरहे हैं ? वा अग्नि हैं वा सनकादि ऋषियोंका आगमन हुआ " ? ॥ २२ ॥ शिष्योंके सहित भृगुगण करके इसप्रकार विविध भाँतिसे वितर्कित हो भगवान् वामनजी छत्र, दण्ड, जलसे भरा कमण्डलु लिये हुए राजा बलिके अश्वमेध मण्डपमें आये ॥ २३ ॥ मूंजकी मेखला पहिरे मृगके चर्मकी उत्तरीय जो जनेऊकी समान बाँयें कंधेपर पडी थी, ऐसे जटिल विप्र मायारूपी वामन उन हरिको ॥ २४ ॥ यज्ञशालामें प्रवेश करता हुआ देखतेही उनके तेजसे व्याकुल हो शिष्योंके सहित भृगुलोग उठ खडेहुए और उनका आदर सन्मान करने लगे ॥ २५ ॥ दर्शन करने योग्य मनोहर रूपवाले अनुकूल अंग युक्त श्रीवामनजी महाराजको देखकर प्रसन्न हो राजा बलिने अपने हाथसे आसन दिया और कहा कि, " भले आये महाराज विराजिये " यह कह चरणकमल कोमलअमलको पखार उन सुकुमार मनोहर हरिकी पूजा करनेलगा ॥ २६ ॥ हे राजन् ! भगवान्‌के मंगलकारी चरणोदकको जो कि, कलिमल नाश करनेवाला है, राजा बलिने

अपने मस्तकपर चढाया. हे महाराज ! आप इस बातको कुछ विचित्र न समझें । क्योंकि चन्द्रमौलि देवदेव गिरीश भूतेश्वर महादेवजीनेभी परमभक्तिसे इस चरणामृतको अपने मस्तकपर चढाया था ॥ २७ ॥ तब राजा बलि भक्तिके प्रकाशित होनेसे कुतूहलके मारे कहनेलगा कि, हे ब्रह्मन् ! आप सुखसे तो आये ? मैं आपको नमस्कार करताहूं, मैं आपका कौनसा कार्य करूं सो आज्ञा कीजिये । हे श्रेष्ठ ! हमको जान पडता है कि, आप ब्रह्मर्षि लोगोंके मूर्तिमान् तप हैं. आज मैं कृतार्थ हुआ ॥ २८ ॥ आप जो मेरे स्थानपर आनकर सुशोभित हुए इस कारण आज हमारे पितृगण तृप्त हुए । आज मेरा कुल पवित्र हुआ । और आज मेरा यह यज्ञ भलीभाँतिसे पूर्ण हुआ ॥ २९ ॥ आज हमारा अग्नियोंमें भलीभाँति होम करना सफल हुआ । हे ब्राह्मणकुमार ! आपके चरणोदकसे सब पाप धुलगया और आपके छोटे छोटे चरणोंके पडनेसे यह भूमि पवित्र होगई ॥ ॥ ३० ॥ हे विप्रनन्दन ! हम अनुमान करते हैं कि, आप कुछ माँगनेके लिये आये हैं, सो जो इच्छा हो आप मुझसे लीजिये । हे पूज्यतम ! गौ, सुवर्ण, श्रेष्ठ गृह, मीठा अन्न, कन्या ऋद्धि सिद्धिसे भरे हुए ग्राम, अश्व, हाथी वा रथ जिसकी आपको आवश्यकता हो सो मुझसे माँगो मैं प्रस्तुत हूँ ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा-ऊनविंशमें तीन पग, धरणी माँगी ईश ।
कियो शुक्रने मने जिमि कहों सुमिरि जगदीश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! ऐसे धर्मयुक्त सुन्दर राजा बलिके वचन सुन श्रीभगवान् प्रसन्न होकर और सन्मान करके राजा बलिसे यह वचन कहनेलगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे नरदेव ! तुम्हारे यह वचन अत्यन्त सुन्दर धर्मयुक्त यशके देने-वाले और कुलके योग्य हैं, क्यों न हो भृगुगण और अपने दादा कुलके बढानेवाले प्रशान्त प्रह्लादजीको तुमने पारलौकिक धर्ममें प्रमाण पायाहै ॥ २ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे इस कुलमें ऐसा निःसत्व अथवा कृपण पुरुष कोई नहीं हुआ कि, जिसने प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंका कार्य न किया हो, अथवा कुछ देनेको कहकर न दिया हो ॥ ३ ॥ हे नृप ! दानके अवसरमें, वा युद्धके कालमें याचकके मांगनेपर न देनेवाला अमन स्त्री पुरुष तुम्हारे कुलमें नहीं है इसका प्रमाण देखो आकाशमें जिस प्रकार नक्षत्रनाथ चन्द्रमा दीप्तिमान् होते हैं वैसेही तुम्हारे कुलमें निर्मल यशसे युद्ध होकर प्रह्लादजी प्रकाशमान हैं ॥ ४ ॥ और तुम्हारे इस विख्यात वंशसे महावीर हिरण्याक्षने जन्म ग्रहण किया जो कि गदा धारण किये दिग्विजय करनेको अकेलेही समस्त पृथ्वीमें घूमे, परन्तु उन्हें कहींभी कोई युद्ध करनेवाला बली न मिला ॥ ५ ॥ श्रीभगवान् विष्णुने जब पृथ्वीका उद्धार किया था उससमय वह महावीर हिरण्याक्ष वहाँ आया था अति कठिनाईसे उस हिरण्याक्षको हराय

व उसके पुरुषार्थको दमनकर भगवान्‌ने अपने आपको विजयी नहीं माना ॥ ६ ॥ और इस हिरण्याक्षके सगे भाई हिरण्यकशिपुने जब उसके (हिरण्याक्षके) वधका वृत्तान्त सुना तब यह भ्राताके मारनेवालेका प्राणसंहार करनेको क्रोधकर भगवान् विष्णुके स्थानको गया ॥ ७ ॥ माया जाननेवालोंमें श्रेष्ठ व कालको पहँचाननेवाले इस दानवको शूल धारण किये कालकी समान आताहुआ देखकर भगवान् विष्णुने यह चिन्ता की ॥ ८ ॥ कि, जहाँ जहाँ पर हम जाते हैं, वहीं वहीं पर प्राणियोंकी मृत्युके समान हम इस दानवको अपने साथही देखते हैं, इसकी दृष्टिके बहिर्भागमें रहाहै, ऐसा जो इनका हृदय है में उसमें प्रवेश करताहूं ॥ ९ ॥ हे राजन्! भगवान् वासुदेव इस प्रकारसे विचार करके दौडते हुये उस शत्रुकी नासिकाके छेदसे उसके हृदयमें घुसगये, तथापि उनका चित्त विशेष उद्विग्न और श्वासकी अग्निसे अन्तर्हित होरहा था ॥ १० ॥ हे राजा बलि! जब हिरण्यकशिपुने विष्णु भगवान्‌को न देखा, तब उनके सूने स्थानमें घूमघामकर सिंहनाद करनेलगा और पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, विवर, समुद्र सबमें उसने खोज किया, परंतु विष्णु भगवान् तो उसके अंतरमेंही बैठगये थे, इससे कहीं नहीं दीखपडे ॥ ११ ॥ विष्णुके दर्शन न पाकर हिरण्यकशिपुने यह कहा था कि मैंने सब संसारको ढूँढा, परन्तु अपने भाईके मारनेवालेका कहीं पता न पाया, हमको जान पडता है कि हमारा भ्रातृवध तो उस स्थानमें चला गया है कि, जहाँसे पुरुष फिर नहीं लौटता ॥ १२ ॥ हे राजन्! देहाभिमानी पुरुषोंका मरनेतक वैरभाव और अहंकार अभिमानसे बढाहुआ क्रोध इसी प्रकारसे हुआ करता है, क्योंकि उनकी उत्पत्ति अज्ञानसे है बस अज्ञानसे निवृत्ति होनेसे पहिले पौरुषका छोडना केवल मूर्खता है इसीलिये हिरण्यकशिपुने अपने शत्रुकी खोज नहीं छोडी ॥ १३ ॥ हे असुरराज! तुम्हारे पिता प्रह्लादनन्दन विरोचन ऐसे ब्राह्मणवत्सल थे कि, अपना वैरी जान लेनेपरभी माँगनेपर द्विजवेषधारी देवता लोगोंने उन्होंको अपनी परमायु देदी थी ॥ १४ ॥ तुमने भी गृहमेधी ब्राह्मण और पूर्वज शूरगण और उद्यम युक्त यशवान् महात्माओंके धर्मका आचरण किया है ॥ १५ ॥ इसलिये हम तुमसे कुछ भूमिकी भिक्षा माँगते हैं। हे दैत्येन्द्र! हम इस अपने चरणके प्रमाणकी तीन पग पृथ्वी चाहते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! तुम वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हो और इस जगत्के सत्य सत्य ईश्वरभी हो, परन्तु हम आपसे इसके अतिरिक्त और अधिक कुछ नहीं माँगते, क्योंकि विद्वान् पुरुष उतनाही लेते हैं जितना कि, उनको प्रयोजन होता है और इतनेके ग्रहण करनेसे किसी प्रकारका पापभी नहीं होता ॥ १७ ॥ राजा बलि यह सुनकर अति विस्मित होकर बोले कि, बडा आश्चर्य है अजी विप्रकुमार! तुम्हारी यह बातें वृद्ध लोगोंकी समान हैं, तुम बालक हो। तुम्हारी बुद्धि अनजानकी समान है, तुम अपने स्वार्थको कुछ नहीं जानते " राजा बलिके इस बातका यह तात्पर्य है कि तुम बालककी समान हो, वास्तवमें बालक नहीं हो। तुम्हारी बुद्धि पण्डितोंकी बुद्धिके समान है, तुम अपना स्वार्थ नहीं जानते अर्थात् भक्तोंके अर्थकोही समझते हो, क्योंकि स्वयं परिपूर्ण हो, भक्तके

अर्थ पूर्ण करनेके अतिरिक्त स्वयं आपका स्वार्थ अप्रसिद्ध है" ॥ १८ ॥ कैसे खेदकी
बात है ? हम सब लोकोंके ईश्वर हैं, एक द्वीपको भी दान कर सक्ते हैं, बहुत वचनोंसे
आराधना करके फिर तुम हमारे पाससे अज्ञानकी समान केवल तीन पग भूमिका दान
माँग्ते हो ॥ १९ ॥ हमसे प्रार्थना करके फिर किसीको दूसरेका याचक नहीं बनना
चाहिये इसलिये आप हमसे बहुतसी भूमि लेलीजिये। राजा बलिके वचन सुनकर श्रीभग-
वान् वामनजी कहने लगे कि ॥ २० ॥ जो पुरुष अजितेन्द्रिय हैं, जिसने अपनी तृष्णाको
नहीं जीता है उसको त्रिलोकीमें जो कुछभी श्रेष्ठ वस्तुयें हैं वह सबभी तृप्त नहीं कर सक्तीं
॥ २१ ॥ जो पुरुष तीन चरण भूमिसे असंतुष्ट है, उसकी तृष्णा एक द्वीप पानेपरभी नहीं
छूटेगा, जब ऐसे पुरुषको एक द्वीप मिलजायगा तब वह सात द्वीपोंके पानेका अभिलाष
करेगा ॥ २२ ॥ और ऐसा सुनाभी है कि, राजा वेणु और गयादि नृपगणने सप्तद्वीपोंके
अधिपति होकरभी अर्थ और कामके द्वारा तृष्णाका अंत नहीं पाया ॥ २३ ॥ यदृच्छा
करके मिलेहुय द्रव्यसे जो संतुष्ट हैं वही सुखी हैं, असन्तुष्ट और जिसने अपनी आत्माको
नहीं जीता है; वह तीनोंलोक पाकरभी सुखी नहीं होसक्ता ॥ २४ ॥ इसलिये कविलोगोंने
कहा है कि, अर्थ और कामकेलिये जो असन्तोष है यही पुरुषके संसारका कारण है और
इच्छानुसार पायेहुएसे संतोष करनाही मुक्तिका हेतु है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इच्छानुसार
वस्तुको पाकर संतोष करलेनेसे ब्राह्मणोंका तेज बढ जाता है, नहीं तो जलके पडनेसे
जिस प्रकार अग्नि बुझ जाती है वैसेही असंतोषी ब्राह्मणका तेज शान्ति होकर नाशको
प्राप्त होजाता है ॥ २६ ॥ इसलिये हे वरदश्रेष्ठ ! हम तुमसे केवल तीन चरण भूमिहीकी
प्रार्थना करते हैं और इससेही हमारा कार्य सिद्ध होजायगा, क्योंकि प्रयोजनानुसार वित्त-
ही सुखका देनेवाला है, शेष धन क्लेशका कारण होता है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले
कि, हे पाण्डुनन्दन ! जब वामनजीसे इस प्रकार कहा, तब राजाबलि हँसकर बोला कि,
"तब जो आपकी इच्छा सो ग्रहण कीजिये" यह कहकर भूमि दान करनेके लिये राजा
बलिने जलका पात्र हाथमें लिया ॥ २८ ॥ कि, इतनेहीमें दैत्योंके गुरु शुक्राचार्यजी
विष्णुके कपटको जानगये । इस कारण उनको भूमिदान करनेकी सम्मति देख अपने
शिष्य राजाबलिपर क्रुद्धहोकर शुक्राचार्यजी यह वचन कहने लगे ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य
बोले कि, हे विरोचननन्दन ! यह साक्षात् सनातन विष्णु भगवान् हैं, कश्यपजीके औरस
से अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुये हैं और यह अवश्यही देवतालोगोंका कार्य सिद्ध करेंगे ॥
॥ ३० ॥ यह तुमने किया क्या ? कि विना अनर्थके विचारे इनको भूमिदान देनेकी प्रतिज्ञा
करली । हम जानगये कि अब मंगल नहीं दैत्यलोगोंके लिये बडा अनर्थ आपहुँचा ॥३१॥
हे राजन् ! यह तुम्हारा स्थान, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, तेज, यश और विद्या सब छीनकर इन्द्रको
देदेंगे यह मनुष्य नहीं हैं यह भगवान् विष्णु मायाके योगसे वामनरूप हुए हैं ॥ ३२ ॥
तुमने वास्तवमें तीन चरण भूमिका देना स्वीकार तो कर लिया है, परन्तु यह तीन चरण
में ही सब लोकोंको नापलेंगे क्योंकि यह विश्वमूर्ति हैं फिर क्रोध करके कहने लगे कि अरे

मूढ ! विष्णुको सर्वस्व देकर फिर तू कहाँ रहैगा ? ॥ ३३ ॥ यह एक पैर (चरण) से सब पृथ्वीको नाप लेंगे, दूसरे चरणसे स्वर्गको नाप लेंगे, इनका विशाल शरीर आकाश-मण्डलमें व्याप्त होजायगा, फिर तीसरे चरणकी गति कहाँसे होगी, सो बता ॥ ३४ ॥ जब तू वचन देकर फिर न देगा, तब हमको जान पडता है कि, तेरा नरकमें वास होगा क्योंकि तू अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सकेगा ॥ ३५ ॥ अरे मूढ ! जिससे अपनी जीविका जाती रहे, वह दान प्रशंसाके योग्य नहीं होता, क्योंकि संसारमें जीविकावाले पुरुषके यहाँही यज्ञ, दान, तप और पुत्रादि कर्म हुआ करते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष धर्म, यश, अर्थ, काम और सुजन इन पांचोंके लिये अपने धनका विभाग कर देताहै, वह इस लोक और परलोक दोनोंमें सुखी होताहै ॥ ३७ ॥ अरे ! अब तू इस विचारको छोडदे कि "वचन देकर अब किस प्रकारसे मिथ्या बोलूं" सत्य मिथ्याकी व्यवस्थाके लिये बहवृच श्रुतिमें जो कहा है, उसको तू हमसे सुन, "हां" बोल स्वीकार करके जो कहा जाता है उसका नाम सत्य है और "ना" जो वचन है, यह मिथ्या है ॥ ३८ ॥ यह सत्य देह रूप वृक्षका पुष्प फल है, क्योंकि श्रुतिमें भी ऐसाही कहा है । परन्तु जब यह देहरूप वृक्षही जीवित न रहेगा, तब यह पुष्प फल कैसे होंगे ? इसलिये अनृत देहका मूल है, बस अनृतसेही देहकी रक्षा होती है ॥ ३९ ॥ अतएव जिस प्रकार जडके उखडनेसे वृक्ष सूख जाता है और शीघ्र गिरजाता है, वैसेही झूंठके नष्ट होनेसे देह शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥ और सदा सत्य कहनेसे देहकी यात्राका निर्वाह होना असंभव है इस कारण सत्यके दोष और मिथ्याके गुण तुम हमसे श्रवण करो ॥ " हां " अक्षर जो है, यह सम्पत्तिको दूर लेजाता है और पुरुषको धन शून्य कर देता है अथवा अपूर्ण किये रहता है अर्थात् याचककी आशाका अंत नहीं है, क्योंकि किसीने कहाभी है कि, "याचक कहां न मांगही, दाता कहां न दे" इसलिये वह पूर्ण नहीं होसक्ती। बस याचकसे "हां" कह स्वीकार करलेना अच्छा नहीं । देनेसे पुरुष धनमें न्यून होजाता है, अधिक करके जो पुरुष याचकसे "सब दूंगा" अंगीकार कर उसको देभी देता है । उस दाताका अपना कार्यभी सिद्ध नहीं होता, अर्थात् उसको अपने भोगकाभी उपाय नष्ट होजाता है परन्तु "ना" यह जो अनृत वाक्य है धनका व्यय न करानेके हेतु पूर्णस्वरूप है और अपनी ओरको दूसरेका खैंचनेवाला है, क्योंकि जो पुरुष नित्य कहता है कि हमारे पास कुछ नहीं है, वह अपने अनृतसे दूसरेके धनको खैंच सक्ता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे दैत्यराज ! हमारी इस बातसे तुम यह न समझ लेना कि अमृतकी समान सदाही अनृत सेवन करने के योग्य है, क्योंकि जो सबही समय "ना" कहकर जो झूंठ बोलता है वह अत्यन्त अकीर्तिका भागी होता है और जीवित रहतेभी मृत्युकी समान रहता है ॥ ४३ ॥ केवल इन सब बातोंमें अर्थात् स्त्रियोंके वश करनेमें, परिहासमें, विवाहके समय वरादिकी प्रशंसा करनेमें, जीविकाकी रक्षा करनेमें, प्राणके संकटमें, इन अवसरोंमें

और गौ, ब्राह्मणके हितार्थ किसीकी हिंसा उपस्थित होनेपर झूंठ कभी दोषका देनेवाला नहीं है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधे
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा-बलिसे जिमि संकलपले, बडे भये भगवान।
कथा विंश अध्याय की, सो बरणों सुखदान॥

श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षितसे कहने लगे कि, हे श्रेष्ठ ! दैत्यगुरु शुक्राचार्यके इस प्रकार से कहनेपर गृहपति राजाबलि कुछ देरतक चुपचाप रहे । और फिर सावधान होकर अपने गुरुजीसे यह वचन कहने लगे कि ॥ १ ॥ राजाबलिने कहा कि, हे गुरो ! आपने जो कुछभी आज्ञा की, वह सब सत्य है, जिससे किसी कालमें भी अर्थ, काम, यश और जीविकाका व्याघात न हो गृहस्थोंका वही धर्म है ॥ २ ॥ परन्तु मैं महात्मा प्रह्लादका पोता "दूंगा" कह सब अंगीकारकर फिर साधारण बनियेकी समान धनके लोभसे ब्राह्मण से किसप्रकार कहूं कि "अब मैं नहीं दूंगा" ॥ ३ ॥ असत्यकी समान बडा अधर्म और कोई नहीं है क्योंकि इस पृथ्वीने कहा है कि जान पडता है कि झूंठ कहनेके सिवाय और सबका भार हम अपने ऊपर सम्हार सक्ती हूं ॥ ४ ॥ हे गुरुजी महाराज ! जितना मैं ब्राह्मणोंके वचनोंसे डरता हूं, उतना तर्कसे, दुःखके समुद्रसे, दरिद्रसे, स्थानके भ्रष्ट होनेसे और मृत्युसेभी उतना नहीं डरता ॥ ५ ॥ और इस लोकमें पृथ्वी आदि जो कुछ वस्तुयें दिखाई देती हैं; यह सब मृत पुरुषको अवश्यही त्याग करेंगी । फिर जीतेही क्यों न दान किया जाय ? यदि कहो कि; सर्वस्व दान करनेसे जीविकाके विषयमें संकट होगा तब जीविका का संकट दूर करनेके लिये आधा दो, पर इसमें यह कहना है कि, जो आध घडीमें उस दानसे ब्राह्मणको संतोष न हो, तो फिर उस दानके देनेका फलही क्या हुआ ? बस इसी कारणसे जितना माँगा है, उससे थोडा देनेपर इन ब्राह्मण कुमारको सन्तोष न होगा, जिससे हमारा दान व्यर्थ जायगा, इसलिये जो कुछभी इन्होंने माँगा है, हम वही सब देंगे ॥ ६ ॥ हे गुरो ! दधीचि, शिबि, आदि साधु पुरुषोंने त्यागके अयोग्य प्राण देकर भी साधु लोगोंका उपकार किया है, फिर भला भूमि आदि साधारण वस्तुका क्या विचार किया जाय ? ॥ ७ ॥ युद्धमें विमुख न होकर जिन दैत्येन्द्रोंने इस पृथ्वीको भोग किया था, सो कराल कालने इनका इसलोक व परलोक दोनोंमें संहार किया, परन्तु जो कुछ यश वे इस पृथ्वीपर इकट्ठा करगये हैं, उसको कालभी नहीं संहार करसक्ता । इसलिये यशका इकट्ठा करनाही ठीक है ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! देह त्याग करनेसे धनके त्याग करनेमें अधिक यश मिल सक्ता है । क्योंकि युद्धमें जिस प्रकार देह त्यागी अनेक पुरुष साधारणही देखे जाते हैं, परन्तु ऐसे पुरुष बहुत थोडे देखनेमें आते हैं कि, जो सत्पात्रके आनेपर उसको श्रद्धा सहित धन देवें ॥ ९ ॥ हे महाराज ! साधारण

याचककी अभिलाषा पूर्ण करनेमें जो दरिद्रता आजाय; तो मनस्वी दयावान् पुरुषका इसमेंभी कल्याण है। इससे आपकी समान ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणका अभिलाष पूर्ण करनेमें जो हमें दरिद्रता आजाय तो यह दरिद्रता भलाई क्यों नहीं गिनी जायगी? अतएव जो कुछ इन ब्राह्मणने माँगा है, वह हम अवश्य इनको दान देंगे ॥ १० ॥ हे मुने! आपलोग वेद विद्यामें चतुर हैं, आप आदरपूर्वक योग यज्ञ द्वारा जिनकी पूजा किया करते हैं, यह ब्राह्मण वही वरदानी विष्णुजी हों, या हमारे शत्रुही हों, हम इनकी माँगीहुई भूमि अवश्य इसको दान करेंगे ॥ ११ ॥ हम निरपराध हैं, जो अधर्म करके हमको बाँधभी लें, तोभी हम इन भीत ब्राह्मणरूपी शत्रुकी हिंसा न करेंगे ॥ १२ ॥ जो यह उत्तमश्लोक विष्णु भगवान् हैं और अपने यशको त्यागनेकी इच्छा नहीं करते हैं, तब तो यह युद्धमें हमारा नाशकर इस सब भूमिको लेलेंगे, अथवा हम करके माँग जाँय तो पृथ्वीमें शयन करेंगे ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! अपना शिष्य राजा बलिको श्रद्धारहित हो अपनी आज्ञाके प्रतिपालन करनेसे विमुख देखकर भाग्यके भेजे हुएकी समान दैत्यगुरु श्रीशुक्राचार्यने क्रोध करके सत्यप्रतिज्ञा, इस असुरश्रेष्ठ राजा बलिको यह शाप दिया ॥ १४ ॥ श्रीशुक्राचार्यजी बोले कि, अरे अज्ञानी! तू अपनेको पण्डित मानता है, हमारी उपेक्षा करके तैंने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया इसलिये तू शीघ्रही श्रीभ्रष्ट होजायगा ॥ १५ ॥ हे महाराज! महात्मा बलि अपने गुरुजीसे इस प्रकार शापित होकरभी अपने सत्यसे विचलित नहीं हुआ। उसने वामनजीको पूज, कुशको स्पर्श कर पृथ्वी दान दी ॥१६॥ तिसके पीछे राजा बलिकी रानी विंध्यावली मोतीजडे हुये आभूषण पहर और मालायें धारण कर एक जलसे भरा हुआ कलश लाकर अपने स्वामी के निकट स्थापित किया ॥ १७ ॥ यज्ञ करनेवाले राजा बलिने स्वयं इस जलसे परम-हर्षके साथ श्रीवामनजीके दोनों चरण पखारे। फिर संसारके पवित्र करनेवाले उस जलको अपने मस्तकपर धारण किया ॥ १८ ॥ हे राजन्! इस समय स्वर्गमें देवता लोग और गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर व चारणादि सवही राजा बलिके इस कर्मकी प्रशंसा कर परम हर्षके साथ उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। और बारम्बार हजारों नगाडे बजानेलगे ॥ १९ ॥ और गन्धर्व, किन्नर, किंपुरुषगण यह कहकर गानेलगे कि, राजा बलिने अति दुष्कर कर्म किया कि, सब जानबूझकर भी अपने शत्रुको त्रिभुवन दान करदिया। हे परीक्षित्! राजा बलिने पहले "जो इच्छा हो सो ग्रहण कीजिये" यह जो कहा था, तब भगवान्का वह वामनरूप आश्चर्यरूपसे बढा। इस मूर्तिकी आत्मामें त्रिगुणके रहनेसे पृथ्वीपर आकाश, दिक्, स्वर्ग, विवर, समुद्र, पशु, पक्षी, देव और ऋषि सम्पूर्ण उसमें अवस्थित थे ॥ २० ॥ २१ ॥ ऋत्विक, आचार्य और सभासदोंके सहित असुरराज बलि महाऐश्वर्यशाली हरिके त्रिगुणात्मक कलेवरमें पञ्चभूत सब इन्द्रियें, गन्धादि आशय चित्त और जीवोंके सहित त्रिगुण विश्व देखनेलगे ॥ २२ ॥ अर्थात् इन्द्रकी सेनाही जिसकी सेना थी। वह राजा बलि इन विश्वमूर्ति हरिके चरणोंके

नीचे रसातल, दोनों चरणोंमें धरणी, दोनों जंघाओंमें पर्वत घुटुओंमें सब पक्षी, और दोनों ऊरुमें मरुद्गणोंको देखा ॥ २३ ॥ भगवान् विभुके नेत्रोंमें सन्ध्या, गुह्यमें प्रजापति, जघनमें आप जिनके प्रजापति हैं, ऐसे बहुतेरे असुर, नाभिमें आकाश, कोखमें सातों समुद्र और छातीमें नक्षत्रमाला विराजमान देखी ॥ २४ ॥ और वीरजवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलिने उन मुरारिके हृदयमें धर्म, दोनों स्तनोंमें ऋतु और सत्य मनमें, चंद्रमा वक्षस्थलमें, कमलका फूल हाथमें लिये कमला (लक्ष्मी) कण्ठमें सामवेद और समस्त वेद ॥ २५ ॥ चारों भुजाओंमें इन्द्रादि देवता लोग, दोनों कानोंमें सब दिशायें, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघ, नाकमें पवन, दोनों नेत्रोंमें सूर्य, शरीरमें अग्नि ॥२६॥ वाणीमें चारों वेद, रसनामें वरुण, दोनों भौंवोंमें विधि और निषेध, दोनों नेत्रोंके पलकोंमें दिन और रात्रि माथेमें क्रोध, अधरोंमें लोभ ॥ २७ ॥ स्पर्शमें काम, वीर्यमें जल, पीठमें अधर्म, चरण धरनेमें यज्ञ; छायामें मृत्यु, हँसनेमें माया, सब रोमावलीमें औषधियें ॥ २८ ॥ सब नाडियोंमें नदियें, नखोंमें शिला, बुद्धिमें ब्रह्मा, सब इन्द्रियोंमें देवता और ऋषिगण और गातमें स्थावर, जंगम, सब प्राणी राजा बलिने देखे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सर्वात्मा वामनजीके शरीरमें इस प्रकार त्रिभुवनको देखकर सारे असुर लोग विस्मयको प्राप्त हुए परन्तु असह्य तेजवाला सुदर्शन चक्र, मेघकी समान गंभीर ध्वनिसे युक्त शार्ङ्ग धनुष ॥ ३० ॥ बादलकी समान शब्दायमान पाञ्चजन्य शंख, कौमोदकी गदा, विद्याधर नामक शत चन्द्रयुक्त असि; उत्तम दो तरकस कि, जिनमें अक्षय सायक थे ॥ ३१ ॥ इन सबके ईश्वर उन ईश्वरको घेरकर सुनन्दादि बडे बडे पार्षदगण लोकपालोंके सहित इस विराट रूपकी स्तुति करने लगे । और श्रीभगवान् किरीट, बाजू व मकराकार कुण्डलोंसे अलंकृत और रत्नोत्तम श्रीवत्स, मेखला और वस्त्रोंसे शोभित हो ॥ ३२ ॥ भँवर जिसपर गुंजार करैं ऐसी वनमालासे व्याप्त हो अत्यन्त दीप्तिमान् हुये । तिसके उपरान्त वामनजीने एक चरणसे राजा बलिकी समस्त भूमि शरीरसे आकाश और दोनों भुजाओंसे सब दिशाओंसे रोक लिया ॥ ३३ ॥ श्री-शुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उन वामनरूपी भगवान्ने जब दूसरा चरण धरा तब स्वर्ग उनके लिये कुछ थोडासा स्थान हुआ, परन्तु उस तीसरे चरणके लिये कुछभी शेष न बचा । इसलिये यह चरण स्वर्गके ऊपर गमन करता हुआ, महर्लोक, जनलोक, तपलोक के ऊपर सत्यलोकमें जा पहुँचा ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

दोहा-जिमि बाँधो प्रभु नृपतिको, एक चरणके काज ।
सो इकिस अध्यायमें, कहौं सुमरि यदुराज ॥

अनन्तर योगीवर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहे हैं कि, हे नरदेव ! वामनजीका तीसरा चरण सत्यलोकमें पहुँचा हुआ देख पद्मयोनि ब्रह्माजी व मरीचि प्रभृति व्रतधारी

बडे बडे ऋषि और सनन्दनादि योगीगण उस चरणके निकट गये हे राजन्! उनके नखरूप निशाकरकी किरणसे ब्रह्माजीकी द्युतिभी क्षीण होगई और वह उस तेजसे ढक गये ॥ १ ॥ तिसके उपरान्त वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, शिक्षादि वेदाङ्ग, पुराण संहिताके जाननेवाले आये कि-जिनकी योगरूपी पवनमें ज्ञानाग्नि उद्दीप्त और उससे कर्मके मल भस्म होगये थे, वहभी वहाँ आये ॥ २ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! यह सब भगवानूके चरणारविन्दोंका स्मरण करनेके लिये ब्रह्माजीके स्थानपर आये थे इस लिये सबही इस चरणकमलकी वंदना करने लगे। यह चरण अत्यन्त दुर्लभ है, समस्त कर्मोंके द्वाराभी प्राप्त नहीं होता ॥ ३ ॥ तिसके उपरान्त पद्मयोनि ब्रह्माजी जो कि, स्वयं नारायणकी नाभिके उत्पन्न हुये कमलसे जन्मे थे, उन्होंने हर्षित होकर उन वामनजीके चरणको धोया और भक्तिपूर्वक पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे। हे नरेन्द्र! ब्रह्माजीके कमण्डलुका जल इन वामनजीके चरण धोनेसे पवित्र स्वर्गकी नदी हुई; वह नदी अवतक भगवानूकी अमलकीर्तिस्वरूप होकर आकाशसे गिरती हुई त्रिभुवनको पवित्र करती है ॥ ४ ॥ तिसके पीछे ब्रह्माजीसे आदि लेकर समस्तलोकपाल अपने अपने सेवकगणोंके साथ आदरपूर्वक अपने स्वामी उन विष्णुभगवानूके लिये जिन्होंने अपने विस्तारको सकोड वामनरूप धारण किया था, भेंट देने लगे ॥ ५ ॥ अर्थात् सुशीतल जल, सुन्दर माला, सुगंधित चंदन व उबटन, सुवासित धूप, दीप, खीलैं, अक्षत, फल, अंकुर, इनसे भगवानूकी पूजा करने लगे ॥ ६ ॥ और स्तुति, भगवानूके पुरुषार्थकी महिमा, जयध्वनि अधिक करके नृत्य, गीत, वाद्य और शंख दुन्दुभीका शब्द इन सबसे वह देवतालोग स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ हे राजन्! फिर ऋक्षराज जाम्ववान् भेरी वजायकर सब दिशाओंमें इस विजयमहोत्सवको पुकारने लगा ॥ ८ ॥ हे राजन्! इस ओर असुरलोग तीन चरण भूमि माँगनेके मिषसे अपने प्रभु यज्ञदीक्षित राजा बलिकी समस्त पृथ्वी हरीहुई देख महाक्रोधसे कहने लगे ॥ ९ ॥ कि, अरे! यह ब्रह्मबन्धु विष्णु नहीं है, यह कोई बडी भारी मायाका जाननेवाला है, यह दुष्ट ब्राह्मणरूपसे अपनेको ठग देवताओंका कार्य करनेको आया है ॥ १० ॥ वटुकरूपी इस शत्रुने भिक्षुक होकर हम लोगोंका सर्वस्व हरण कर लिया, हमारे स्वामी सदा सत्यव्रतवाले हैं, विशेष करके इस समय यज्ञमें दीक्षित हुये हैं ॥ ११ ॥ सदा सत्य बोलते हैं. ब्राह्मणहितैषी हैं, दयावान् हैं और कभी मिथ्या नहीं बोल सक्ते हैं ॥ १२ ॥ और इसको हम लोग यदि मारडालैं, ऐसा करनेसे हमें धर्म होगा और स्वामीकी सेवाभी हो जायगी, इस प्रकारसे कह राजाबलिके अनुचर लोगोंने अस्त्र शस्त्र ग्रहण किये ॥ १३ ॥ यह लोग शूल पटा हाथमें लेकर श्रीभगवान् वामनजीके मारडालनेको क्रोधसहित दौडे, परन्तु राजाबलिकी ऐसी इच्छा नहीं थी ॥ १४ ॥ हे महाराज! इन दानवसेनापतिलोगोंको आताहुआ देखकर विष्णु भगवानूके सेवक हँसे और अपने अपने शस्त्र उठाय उन लोगोंको रोकने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन्! नंद, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन और गरुड ॥ १६ ॥ जयंत,

श्रुतदेव, पुष्पदंत, सात्वत, यह विष्णुके अनुचर जिनमें एक एकका बल दश दश हजार हाथियोंकी समान था, यह लोग अतिवेगसे असुरकी सेनाका नाश करने लगे ॥ १७ ॥ राजाबलिने देखा कि, इन महापुरुषके सेवक हमारी सब सेनाका नाश किये डालते हैं, इसलिये शुक्राचार्यके शापकी बात स्मरण कर अपने सब सेनापतियोंको रोका ॥ १८ ॥ और यह कहा हे विप्रचित्ति ! हे राहु ! ! हे नेमि ! ! ! हमारी बात सुनो और युद्ध मत करो इसमें प्रवृत्त न हो क्योंकि यह समय हम लोगोंके लिये अनुकूल नहीं है ॥१९॥ जो सब प्राणियोंको सुख देनेके स्वामी हैं।हे दैत्यगण! पौरुषके उसको अतिक्रमण करनेकी किसीमें सामर्थ्य नहीं है ॥२०॥ हे भाइयो ! जो भगवान् पहले हमारा मंगल और देवता लोगोंको अमंगल करते थे, वही भगवान् इस समय हमसे प्रतिकूल होगये हैं॥ २१ ॥ और सुनो ! मंत्री,सेना,बुद्धि,दुर्ग,मंत्र,औषधादि और शमादि उपायसे कैसेभी कोई कालको उल्लंघन नहीं करसक्ता ॥ २२ ॥ इन हरिके सेवक देवतालोगोंको तुमने बारबार रणभूमिमें पराजित किया है, परन्तु इस समय यह भाग्यके बलसे बलवान् हो गये हैं, इसलिये हमको युद्धमें जीतकर गर्जरहे हैं ॥ २३ ॥ हम लोगोंके ऊपर जब काल फिर प्रसन्न होगा, तब फिर हम इन लोगोंको जीत लेंगे, इससे जो काल हमको जितावेगा; अब तुम लोग उसी समयकी राह देखो ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! अपने स्वामीकी यह बात सुनकर दैत्य दानव लोग विष्णुजीके सेवकोंसे मार खानेके डरसे पातालमें घुसनेको प्रस्तुत हुये ॥ २५ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज गरुडजी श्रीभगवान्के अभिप्रायको जान यज्ञमें सोमाभिषेकके दिन वरुणकी फाँसीसे राजाबलिको बाँधने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! त्रिभुवनशील भगवान् विष्णुजीने जब इस प्रकारसे राजा बलिको बँधवाया, तब पृथ्वीकी सब दिशाओंमें महा हाहाकार मचने लगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार वरुणपाशमें बँधनेसे जब राजा बलि श्रीभ्रष्ट हुआ, तब स्थिरबुद्धि और महायशस्वी उस महात्मा राजाबलिसे विष्णु भगवान् यह वचन कहने लगे कि, ॥ २८ ॥ हे असुरश्रेष्ठ ! तैंने हमको तीन चरण पृथ्वी दान दी है सो हमारे दोही चरणमें सब पृथ्वी नप गई, अब तीसरे चरणकी भूमि कहाँ है ? सो शीघ्र बता ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सूर्यनारायणकी किरणें जहाँतक पडती हैं, जहाँतक निशानाथ चंद्रमा तारागणोंके सहित अपनी चांदनी फैलाते हैं और जहाँतक मेघ जल वर्षाते हैं, तहाँतक तुम्हारी सम्पूर्ण पृथ्वी है ॥ ३० ॥ हमने एक चरणसे समस्त भूलोकको नाप लिया, मेरे शरीरसे आकाश और सब दिशायें व्याप्त हो गईं । देखता नहीं कि, तेरे सामने ही दूसरे चरणसे स्वर्ग लोकको नाप लिया; इस प्रकारसे हमने तेरा सर्वस्व नापा ॥ ३१ ॥ परन्तु यह सब लेनेसेभी तेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई । इसलिये तुमको नरकमें वास करना चाहिये । अब तुम अपने गुरु शुक्राचा-र्यजीकी आज्ञा लेकर नरकमें प्रवेश करो ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मणसे यह कहकर कि "दूंगा" और फिर नहीं देता, वह उस याचकके संग ठगाई करता है उसका मनोरथ वृथा,

उसको स्वर्ग अति दूर है और वह नीचे गिरता है ॥ ३३ ॥ तैंने देनेको कहकर फिर हमको नहीं दिया और कपट किया, इसलिये इस झूँटका फल यही है कि आप कुछ दिन नरकमें भोग कीजिये ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा-सुतल लोक पठयो बलिहि, प्रभु दीनो वरदान।
सो बाइस अध्याय की, कथा सकल जगजान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार अंगीकार किये हुये राजा बलिको इस प्रकार भगवान्ने चलायमान भी किया,तथापि अविचलित चित्तसे यह राजा बलि वक्ष्यमाण अविह्वल वचन बोला ॥ १ ॥ राजा बलिने कहा कि, हे उत्तमश्लोक भगवन्! मेरी कही हुई प्रतिज्ञा असत्य नहीं है, आपनेही पहले कपटका आश्रय ले वामनरूप बनाय मुझसे भिक्षा माँगी और इस समय दूसरा रूप धारण किया, अच्छा जो इस प्रकारसेभी आप मेरी (प्रतिज्ञा) बातको झूंठ मानै, तौभी मैं अपना वचन पूर्ण करता हूँ हमारा वचन ठगाईका वचन नहीं हो सक्ता, आपने दो चरण तो नापही लिये तीसरे चरणका स्थान नहीं पाया सो मैं अपना मस्तक झुकाता हूं, इसपर यह अपना चरणकमल रखिये, क्योंकि मैं सब लोकोंका राजा हूं, तब क्या मेरा शरीर एक चरणकी बराबर भी न होगा? ॥ २ ॥ हे महाराज! जिस प्रकार मैं अपकीर्तिसे डरताहूं, वैसा नरकसे, वरुणकी फाँसीसे, अत्यन्त भयंकर विपत्तिसे नहीं डरता और धनके कष्टसे अथवा राज्यभ्रष्ट होनेसेभी मैं वैसा नहीं डरता ॥ ३ ॥ हे भगवन्! आपका किया हुआ यह दण्ड अपकीर्तिका कारण नहीं है क्योंकि माननीय पुरुष जो दण्ड देते हैं, वह तो वाञ्छनीय है, क्योंकि माता अथवा पिता वा भ्राता किम्वा सुहृद् लोग ऐसा दण्ड नहीं देसकते इस कारण आप हमारे हितैषी हैं, सो यह दण्ड जो दिया, इससे तो मैं बडाईकेही योग्य हुआ ॥ ४ ॥ हे भगवन्! आप वास्तवमें शत्रुके रूपसे प्रगटे हैं, परन्तु यथार्थमें आप शत्रु नहीं हैं, नहीं तो हम असुरलोगोंकेभी आपही परम गुरु हैं क्योंकि हम लोग महामदसे अंधे होरहेथे, सो आपने हमारी ममताका नाश करनेके लिये हमारे ज्ञानके नेत्र खोल दिये ॥ ५ ॥ अहो! जिनसे वैर बाँधकर अनेक असुरगण सिद्धिको प्राप्त होगये और जिनको केवल एकान्त योगी लोगहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ अनेक कर्मकारी उन्हीं परमगुरु करके हमको दंड मिला और वरुणकी फँसीसे बँधे, फिर इससे हमको लाज अथवा दुःख क्या हो सक्ता है? बस इस बंधनसे न मैं दुःखी हूं न लज्जित हूं ॥ ७ ॥ हे भगवन्! मेरे ऊपर जो आपने दण्डरूप यह अनुग्रह किया, सो मैं इसका अधिकारी नहीं था, आपने अपने भक्तका पोता जानकर मुझपर यह अनुग्रह किया, हमारे पितामह प्रह्लादजी आपके परम प्रीतिपात्र हैं उनके साधुपनको सबही जानते हैं आप उनके परमाश्रय थे। यद्यपि वह आपके शत्रु अपने पिता

हिरण्यकशिपुकरके आश्चर्य हिंसाको प्राप्त हुये थे ॥ ८ ॥ तोभी यह विचार करके कि, आयुके शेषमें आत्मीय नामधारी चोररूपी जो पुत्रादि हैं, वह जो देहको छोडकर आजाँयगे, सो उस देहसे क्या फल ? और स्त्री संसारकी हेतुभूत है, इससेभी कुछ फल नहीं । और घरसेभी क्या प्रयोजन है ? इससे केवल आयुका क्षय होता है । सुख कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ हे सत्तम ! अगाध बोधसम्पन्न हमारे पितामह प्रह्लादजी ऐसा निश्चय करके, यद्यपि आप उनके पक्ष (पितादि निशिचरों) के क्षयकारी थे, तथापि स्वजनसे भीत होतेहुए जहाँ पर कि, किसी ओरसे भयकी सम्भावना नहीं और जो ध्रुव हैं, ऐसे आपके चरणकमलकी शरणको प्राप्त हुये थे ॥ १० ॥ हे भगवन् ! इस समय दैवकरके मैं भी अपने शत्रु आपकी शरण आया हूं, यह दैव हमसे अति अनुकूल है, क्योंकि बलात्कार इसने हमसे उस सम्पत्तिका त्याग कराया है जिस सम्पत्तिसे पुरुष स्तब्धमति हो, मृत्युके निकटहुए इस जीवनको अनित्य नहीं समझताहै ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुश्रेष्ठ ! असुरश्रेष्ठ राजाबलि इसप्रकार कहरहाथा कि, इतनेहीमें भगवद्भक्त प्रह्लादजी पूर्ण चंद्रमाके समान आकाशसे उदय हो दैत्यराज बलिके निकट आनकर उपस्थित हुये ॥ ॥ १२ ॥ श्रीप्रह्लादजीके दोनों नेत्र कमलदलके समान बडे बडे थे, श्यामवस्त्र धारण किये हुए थे, दोनों भुजायें अत्यन्त लम्बायमान थीं. वह अति ऊंचे थे. रंग श्याम था, अपनी कांतिसे विराजमान होरहेथे, इस प्रकारसे पितामह महात्मा प्रह्लादजीको राजा बलिने देखा ॥ १३ ॥ परन्तु वरुणजीकी फाँसीमें बँधनेके कारण पहलेकी समान भेंट देकर राजाबलि उनकी पूजा नहीं कर सका आँखोंमें आँसू भरकर और शिर झुका केवल प्रणाम करने लगा हे राजन् ! उस समय ऐसा जान पडा कि, राजा बलिको अपने कियेहुये अहंकारादि अपराधका स्मरण हुआ कि, जिससे वह लाजके मारे चुप चाप मस्तक नवाकर रहगया ॥ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! सुनन्दादि पार्षदोंसे पूजित जगत्पति भगवान् हरिको राजा बलिके निकट बैठा हुआ देखकर प्रह्लादजीने विचारा कि, इसके ऊपर निःसंदेह भगवान्का अनुग्रह हुआ है. इसलिये यह महात्मा पुलकावलीसे पूर्ण व अश्रुजलसे पूर्णहो मस्तक झुकाकर बारम्बार नमस्कार करते करते भगवान्के निकट गये और निकट जाय शिर झुकाय प्रणामकर बैठगये ॥ १५ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि, हे भगवन् ! आपनेही बलिको इन्द्रपदवी दी और आपनेही लेली, सो आपने इसके इन्द्रपदको हरण नहीं किया. बरन् अपना पद फिर ग्रहण कर लिया, सो यह अच्छा नहीं हुआ. मैं अनुमान करताहूं कि, इसपर आपका बडा ही अनुग्रह हुआ है, क्योंकि ऐश्वर्य और सम्पत्ति आत्माको मोह करनेवाली है, सो यह इनसे छूटगया ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! ऐश्वर्य व सम्पत्तिके मोहकी वार्ता क्या कहूं ? इससे विद्यावान् पुरुषभी मोहित होजाते हैं, इसलिये सम्पत्ति रहते कोई पुरुष भलीभाँति आत्मतत्त्वको नहीं देख सक्ता, सो आपने बलिकी सम्पत्ति लेकर इसपर बडा अनुग्रह प्रकाश किया. आप महा करुणाकर हैं, जगदीश्वर अखिल लोकके साक्षी नारायण हैं, सो मैं आपको बारम्बार नमस्कार करताहूं, श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! इसके पीछे हिरण्यगर्भ

ब्रह्माजी हाथ जोडकर खडेहुये उन प्रह्लादजीके सामनेही उन वामनरूपी मधुसूदनसे कुछ कहनेकी इच्छा करने लगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे राजन् ! उसी समय राजा बलिकी स्त्री विंध्यावली भगवान्से कुछ कहनेके लिये आई, इस कारण ब्रह्माजी उसका सन्मान करनेके लिये कुछ देर चुपचाप रहे बलिकी स्त्री विंध्यावली पतिको बँधाहुआ देखकर भयके मारे व्याकुल होगई, फिर हाथ जोड नीचेको मुखकर यह वचन कहनेलगी ॥ १९ ॥ विंध्यावली बोली कि, हे ईश ! आपने अपनी क्रीडाके लिये यह त्रिजगत् बनाया है, परन्तु दुर्बुद्धि लोग इसमें अपना अपना स्वामीपन कल्पित किया करते हैं, हे भगवन् ! आप त्रिजगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके करनेवाले हैं, सो कोई दूसरा आपको इस जगत्में क्या देगा ? जो लोग कहते हैं कि "हमने आपको समर्पण किया" उनको लज्जा नहीं है, "हम स्वतंत्र हैं" उनमें केवल यही वाद अपने अवरोपित किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! विंध्यावलीके इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि, इस हमारे स्वामीने आपसे जो यह कहा कि, हमने आपको तीनोंलोक अर्पण करदिये हैं और तीसरे चरणके पूरा करनेको अपनी देहका देना कहा, सो इन्होंने देहादिमें अपना स्वामीपन जानकर जो कुछ कहा, तिससे निर्लज्जताही प्रकाशित होती है क्योंकि आप सर्वव्यापी हैं, इसलिये मन्दबुद्धिवाले इस राजाको आप कृपा करके छोड दीजिये ॥ २१ ॥ यद्यपि भगवान्जी प्रह्लाद और रानी विंध्यावलीके दीन वचनोंसे प्रसन्न होगये, तथापि ब्रह्माजीने लोभ दिखावेके लिये बहुत सारी विनती और प्रार्थना करके कहा कि, हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगन्मय ! आपने राजा बलिका सर्वस्व हरण कर लिया अब इसको दण्ड न देकर छोड दीजिये ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह असुरवर श्रेष्ठ बुद्धिवाला है और इसने अपने कर्मसे प्राप्त किये सब लोकोंको दान करदिया है. जिसने अकातर होकर प्रथम सर्वस्व और पीछे अपना देहतक अर्पण कर दिया, वह फिर दण्ड पानेके योग्य नहीं हो सक्ता । हे भगवन् ! लोकोंमें शठताईको छोड जो आपके चरणामृतको पान करता है और दूबके अंकुरोंके दान करनेसे भी उत्तम गतिको पाता है, फिर यह राजा बलि कि, जिसने कातर रहित होकर आपको त्रिलोकीका दान कर दिया । फिरभी क्या यह दण्ड पानेके योग्य होसकता है ? ॥ २३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! हम जिसके ऊपर अनुग्रह करते हैं, प्रथम उसके धनका नाश कर देते हैं क्योंकि धनसे ममता उत्पन्न होती है, तिससे पुरुष नम्रतारहित हो सब लोकोंको और मुझकोभी कुछ नहीं समझता, इसकारण मदके दूर करनेके लिये सब धनका हरण करनाही अनुग्रह है ॥ २४ ॥ और जीवात्मा सदा परवश होकर अपने कर्मोंकरके कृमि कीटादि अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ फिर पौरुषी गतिको प्राप्त होताहै अर्थात् पुरुष होकर जन्मताहै ॥ २५ ॥ जो उस पुरुष जन्ममें जन्म, कर्म, वयस, सत्य, विद्या, ऐश्वर्य और धनादिसे उसको स्तंभ (ममता) न हुआ तो मेरा बडाही अनुग्रह है ॥ २६ ॥ हमने ध्रुवादिकोंको जो सम्पत्ति दान की है, उसमें एक कारण है, जो हमारे भक्त हैं वह अनम्रतादिके लिये भूत

और सर्व प्रकार भलाईके प्रतिकूल जन्मादिके होनेपरभी कभी मोहित नहीं होते, इसलिये हम भक्तको इच्छासे सम्पदा देते हैं, अभक्त सम्पदासे मोहित होजाता है, इसलिये उसपर अनुग्रह हम सबसम्पदा हरण करके करते हैं ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन्! यह दानव (बलि) दैत्यलोगोंका अगुआ और कीर्तिका बढानेवाला है, इसने दुर्जय मायाको जीत लिया है, इसलिये यह खेदको प्राप्त होकरभी मोहित नहीं होता है ॥ २८ ॥ यह निर्धन होगया स्थानसे भ्रष्ट होगया, शत्रुसे बाँधागया, झिझकारागया और इसके जातिवालोंने इसको छोडदिया. व इसने अनेक प्रकारकी यातनाभी पाई, अधिक करके इसके गुरु शुक्राचार्यजीनेभी इसको बहुत धमकाया शापभी दिया, तोभी इसने अपने संकल्पको नहीं छोडा ॥ २९ ॥ मैंने छलकरके जो धर्म उसको बताया उसकोभी यह नहीं छोडता इससे यह पुरुष अतिशय भक्तिमान् और सत्यवादी है ॥ ३० ॥ ऐसी निष्ठा रखनेके लिये मैंनेभी इसको ऐसा स्थान दिया है कि, जो देवतालोगोंकोभी नहीं मिलसक्ता, अब हमने इस बलिका आश्रय लिया, यह बलि सावर्णि मन्वन्तरमें इन्द्र होगा ॥ ३१ ॥ जबतक वह सावर्णि मन्वन्तर न आवै, तबतक तुम विश्वकर्माजीके बनाये सुतल लोकमें जाकर वास करो। यह स्थान साधारण नहीं है, जो लोग यहाँपर वास करते हैं, हमारी दृष्टिके पडनेसे उनको आधि व्याधि और न कभी थकावटकी अवाई होती है ॥ ३२ ॥ हे राजन्! ब्रह्माजीको इस प्रकारसे उत्तर देकर भगवान् फिर करुणापरायण होकर राजा बलिसे बोले कि, हे इन्द्रसेन! हे महाराज! तुम्हारा मंगल हो! तुम अपने सब जातिवालोंके साथ सुतललोकको चलेजाओ कि, जिसे स्वर्गके रहनेवालेभी चाहते हैं ॥ ३३ ॥ इस स्थानमें लोकपालगणभी तुमको पराभव नहीं कर सकेंगे। फिर दूसरोंकी तो बातही क्या है? जो दैत्यलोग तुम्हारी आज्ञाको न मानेंगे, उनका संहार हमारे चक्रसे होजायगा ॥ ३४ ॥ सब सामग्रीके साथ और सब सेवकोंके साथ तुम्हारी रक्षा करेंगे हे वीर! क्या हमारे वियोगके मारे तुम वहाँ नहीं जानेकी इच्छा करते? हम सत्यही सत्य कहते हैं कि, हमको तुम सदा उस स्थानमें देखोगे ॥ ३५ ॥ वहाँ दैत्य दानवोंके संग रहनेसे असुरभाव मेरे प्रभावको देखकर उसीसमय नष्ट हो जायगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कन्धे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा-सुतललोकको बलिगये, इन्द्र लियो सुरलोक।
तातें इस अध्यायमें, पढ़कर होहु विशोक॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम! पुरातनपुरुष भगवान्ने जब इसप्रकारसे कहा, तब समस्त साधु सम्मत महानुभाव राजा बलिके दोनों नेत्र आसुओंकी कलाओंसे आकुल होगये! वह भक्तिसे उत्कंठितहो हाथ जोड गद्गद स्वरसे श्रीभगवान्से कहनेलगा ॥ १ ॥ राजा बलि बोला कि, अहो! आपके प्रति नमस्कार करनेकी कैसी आश्चर्यमय महिमा है।

इसके लिये उद्यम करतेही भक्तजनोंके कार्य सिद्ध होजाते हैं, आपको नमस्कार करनेके उद्यमने इस अधम असुरकोभी उस अनुग्रहका दान किया कि, जो लोकपालोंकोभी नहीं मिलसक्ता. हे भगवन् ! आप परमेश्वर हैं, मैं अति अवस्तु हूं, सो मैं भला क्या आपको त्रिलोकीका दान दूँगा ? वरन् मैंने तो आपको भलीभाँति प्रणाम भी नहीं किया, केवल प्रणाम करनेको उद्यम किया है, सो इतनेही उद्यमका ऐसा माहात्म्य है कि, करोडों तप और दान करनेसे जो अनुग्रह प्राप्त नहीं होसक्ता,वह मुझको मिलगया । हे महाराज ! आपके प्रणाम करनेका माहात्म्य अतिआश्चर्यमय है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहे हैं कि हे परीक्षित् ! असुरश्रेष्ठ राजा बलिने इसप्रकार कहकर भगवान् वामनजीको और महेश्वरके साथ ब्रह्माजीको प्रणाम किया, तिसके पीछे प्रीतिमें भर प्रफुल्लित चित्त हो असुरसमूहके साथ सुतललोकको चलागया ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे भगवान् हरिने इन्द्रको फिर त्रिलोकी समर्पणकर अदितिकी कामनाको साध स्वयं इन्द्र व सब जगत्का पालन किया था ॥ ४ ॥ इधर अपने वंशधर पोते बलिको छूटते हुए और भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करता हुआ देख प्रह्लादजीने भक्तिसे गद्गद हो यह बचन कहे ॥ ५ ॥ प्रह्लादजीने कहा कि, हे भगवन् ! जिन लोगोंकी वन्दना सम्पूर्ण विश्व करता है, वह समस्त लोग आपके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं, आप " सर्वप्रकारसे रक्षा करेंगे" यह कहकर जो हमारे दुर्गपाल हुएको आपका यह प्रसाद अति दुर्लभ है. ब्रह्मा, महेश्वर और लक्ष्मी कोईभी इस प्रसादको प्राप्त नहीं हुए; फिर दूसरेकी तो बातही क्या है ? ॥ ६ ॥ हे आश्रयप्रद ! आपके पदारविन्द मकरन्दका सेवन करके ब्रह्मादि देववृन्द विभूतियोंको भोग करते हैं, सो हम खलयोनि किस प्रकारसे आपकी कृपादृष्टिकी पदवीको प्राप्त होवें ? ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! आपकी चेष्टा अतिशय आश्चर्यकी है, यह तो कुछ बातही नहीं है ? आप अचिन्त्ययोगमायासे लीलापूर्वक त्रिभुवनकी रक्षा करते हैं और सर्वात्मा व सर्वज्ञ होनेके कारण आप सबको समभागसे देखते हैं, आपका ऐसा विषमस्वभाव है । परन्तु भक्तके ऊपर स्नेहवश हो आपका ऐसा कल्पतरुस्वभाव हुआ है ॥ ॥ ८ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो । तुमभी सुतललोकमें चलेजाओ । और अपने पोते बलिके साथ आनन्द करते हुए अपने जातिवालोंको सुख दो ॥ ९ ॥ हम वहाँपर गदा हाथमें लिये खडे रहेंगे । और वहां तुम नित्य हमको देखोगे, हमारे दर्शन करनेसे आनन्द पाओगे । और तुम्हारा ज्ञानभी नष्ट नहीं होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! निर्मलमतिवाला प्रह्लाद अपने पोते राजाबलिके साथ, "यही करता हूं" कह भगवान्की आज्ञाको स्वीकार करता हुआ फिर सब असुर और सेनापति ॥११॥ हाथ जोडकर महात्मा आदि पुरुषकी परिक्रमा दे और प्रणामकर उनकी आज्ञा ले उसी समय सुतललोकको चले गये कि,जो बडा भारी पाताल था ॥१२॥ इसके पीछे भगवान् वामनजी अति धीरे ब्रह्मवादियोंकी सभामें ऋत्विक् लोगोंके बीच आसीन महर्षि शुक्राचार्यजीसे बोले ॥ १३ ॥ कि, हे ब्रह्मन् ! आपके शिष्य राजा बलिके यज्ञमें

जो कुछ त्रुटि रहगई है, उसको आप स्वयं पूर्ण कीजिये. यदि तुम कहो कि, यजमानके विना यज्ञ किसप्रकार पूरा होसक्ता है ? से बात नहीं । क्योंकि ब्राह्मण करके देखे जाते ही सब कर्मोंकी विषमता समताको प्राप्त होती है, सो आपके करनेसे इस यज्ञके पूर्ण होजानेमें क्या संदेह है ? ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् वामनजीके ऐसे वचन सुनकर शुक्राचार्यजी बोले कि, हे भगवन् ! आप कर्मके प्रवर्तक यज्ञफल दाता और यज्ञपुरुषहैं, आप जिस करके सर्व प्रकार पूजित हुए उसको फिर कर्मोंकी वैषम्यता कहाँ रही ? ॥ १५ ॥ मंत्रसे स्वरादिभ्रंशद्वारा तंत्रसे क्रमकी विपरीतता द्वारा और देश, काल, पात्र, वस्तुसे दक्षिणादि द्वारा जो जो न्यूनता होती है, आपका नाम लेतेही उन सब छिद्रोंको दूर करता है ॥ ॥ १६ ॥ तथापि आप जो कुछ आज्ञा करते हैं, उसको मैं अवश्य पालन करूंगा, क्योंकि आपकी आज्ञा पालन करनेसेही पुरुषोंका कल्याण होता है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शुक्राचार्यजीने इस प्रकारसे भगवान्‌की आज्ञापर हर्ष प्रगटकर सब ब्राह्मणों सहित राजा बलिके छिद्रको अछिद्र किया अर्थात् यज्ञ पूर्ण करदिया ॥ १८ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! श्रीभगवान् वासुदेवने वामन अवतारले इस प्रकार राजा बलिके सन्मुख भूमिकी भिक्षा माँग, दानव लोगोंने जिसको हरण कर लिया था वह स्वर्ग फिर अपने भ्राता इन्द्रको देदिया ॥ ॥ १९ ॥ तिसके उपरान्त कश्यप अदितिजीको प्रसन्न करनेके लिये और सर्व प्राणियोंके हितार्थ देवऋषि, पितृगण, मनुवर्ग, दक्ष, भृगु, अंगिरादि मुनिगण और कुमार व भोलानाथ (शिव) के साथ प्रजापति ब्रह्माजीने उन वामनजीको लोक व लोकपालोंका अधीश्वर किया ॥ २० ॥ २१ ॥ यद्यपि इन्द्र सब लोकोंके पति हैं, तोभी समस्त वेद, सर्व देव, धर्म, यश और सब प्रकारसे मंगल व्रतादिके पालन करनेमें निपुण वह वामनजी सर्वप्राणियोंका ऐश्वर्य बढानेको इन्द्रके ऊपर उपेन्द्र बनाये गये, इसलिये उस समय सब प्राणियोंको बहुतही आनंद प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तिसके पीछे इन्द्र विमानपर चढाय आगेकर उन वामनजीको स्वर्गमें लेगये यह देखकर लोकपालोंके और ब्रह्माजीके मनमें परमानंद हुआ ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार इन्द्र त्रिलोकीको प्राप्त हो उपेन्द्रजीके बाहुबलसे उसको पालन करने लगा और परम श्रीसम्पन्न व निर्भय होकर सुख सम्भोगमें निमग्न हुआ ॥ २५ ॥ इस ओर ब्रह्मा, महेश्वर, कुमार, भृगु आदि मुनि पितृलोग और सर्व प्राणी, सिद्ध व वैमानिक सवही भगवान्‌के इस अद्भुत कर्मकी प्रशंसा करते करते अपने अपने स्थानोंको चलेगये । और सब स्थानोंमें कश्यपजीकी स्त्री अदितिजीकी बडी प्रतिष्ठा हुई ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे कुरुनन्दन परीक्षित् ! श्रीभगवान्‌के यह पवित्र चरित्र श्रोता लोगोंके पापोंको नाश करनेवाले हैं सो हमने आपके सन्मुख सब वर्णन किये ॥ २८ ॥ जिसपुरुषने बलसे, अनेक भाँतिके विक्रम करनेवाले भगवान् विष्णुकी महिमाका पार देखलिया है, वह पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्याभी करसक्ता है, अर्थात् जिस पृथ्वीके रजकणोंकी संख्या नहीं होसक्ती, वैसेही भगवान्‌के चरित्रोंको गाते गाते, कोई पार नहीं पा सक्ता । इसलिये मंत्र और मंत्रदर्शी पुरुषलोगोंने स्पष्ट कहा है कि, उत्पन्न

हुये और उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंकी जातिमें कोई पुरुष पूर्णस्वरूप पुरुषकी महिमाको प्राप्त हुआ है ? अर्थात् कोई नहीं हुआ और न आगेको होगा ॥ २९ ॥ हे राजन् ! अद्भुत कर्मकारी देवदेव भगवान् वासुदेवके वामनावतार विषयक चरित्र जो मनुष्य गावेंगे. वा सुनेंगे अथवा सुनावेंगे वा लिखेंगे, उनको परम श्रेष्ठगति प्राप्त हो जायगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं कि, हे परीक्षित् ! देवता अथवा पितरोंमें अथवा लौकिककर्म करनेके समय जिस जिस कार्यमें इस चरित्रका गान होगा, वह समस्त कार्य यथावत् पूर्ण होंगे, इस बातको पण्डितगण भलीप्रकार जानते हैं ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे अष्टमस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

दोहा-कथा मत्स्य अवतारकी, चौविसवें अध्याय।
रक्षा सत्यव्रतकी करी, सो कहिहौं समुझाय ॥

राजापरीक्षित् व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे भगवन् ! आपने जो अनुग्रह करके वामन अवतारकी कथा मुझे सुनाई सो मुझे अत्यन्त प्रिय लगी, अव कृपापूर्वक मुझे वह कथा सुनाइये कि, जिसमें अद्भुत कर्मकारी भगवान्ने प्रथमावतारकी माया जिसमें उन्होंने मायाके द्वारा मत्स्यरूप धारण किया था, मैं श्रवण करनेकी इच्छा करताहूं ॥ १ ॥ क्योंकि मत्स्यरूप लोकमें निन्दित है और तमोगुणी स्वभाववाला होनेके कारण सहनेके अयोग्य है, सो ईश्वरने कर्मग्रसितकी समान होकर इस रूपको किस कारण धारण किया था ? ॥ २ ॥ वह सब वृत्तान्त आप मुझसे यथार्थ २ कहिये ॥ हे योगिन् ! भगवान् उत्तम श्लोकके चरित्र सबकोही सुखके देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, जब राजा परीक्षित्ने इस प्रकारसे प्रार्थना की, तव व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी वह सब लीला कहने लगे, जो कि विष्णु भगवान्ने मत्स्यरूप धारण करके की थी ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे कि, हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु, धर्म और अर्थकी रक्षा करनेको समय समयपर विष्णुभगवान् अवतार लिया करते हैं ॥ ५ ॥ बुद्धिके गुण करके ऊंचे नीचे प्राणियोंमें पवनके समान आदिपुरुष भगवान् विचरण करते हैं। परन्तु निर्गुण होनेके कारण ऊंच नीचको नहीं भजते और मत्स्यावतारका जो प्रयोजन है वह भी सुनो ॥ ॥ ६ ॥ अतीत कल्पके अंतमें जब ब्रह्माजीकी निद्राके लिये प्रलय हुई; तब भूरादि सब लोक समुद्रके जलमें डूबगये ॥ ७ ॥ तब समयके वश होकर ब्रह्माजी सो रहे थे, तब उस समय उनके वदनमेंसे सब वेद निकले कि, जिनको दानवेंद्र हयग्रीवने हरण कर लिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जब दानवश्रेष्ठ हयग्रीवका यह कर्म भगवान् वासुदेवने जाना, तब वह इस दैत्यको दमन करनेके लिये शफरीरूप (मत्स्यरूप) धारण करते हुये ॥ ९ ॥ उसी समय कोई सत्यव्रत नामक नारायणपरायण राजर्षि ! जलपर बैठकर तप करते थे ॥ ॥ १० ॥ वही राजर्षि इस महाकल्पमें विवस्वत (सूर्य) के पुत्र हो श्राद्धदेवके नामसे विख्यात और भगवान् हरिकरके मन्वन्तरके पदपर अभिषेकित हुए ॥ ११ ॥ एकदिन

यह राजर्षि सत्यव्रत कृतमाला नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे. कि, इतनेहीमें उनकी अंजलीके जलमें एक मछली दिखाई दी ॥ १२ ॥ हे भारत ! यह देखकर दयावान् द्रविडराज सत्यव्रत अंजलिके जलसहित इस मछलीको नदीके जलमें डालनेको प्रस्तुत हुये ॥ १३ ॥ राजर्षि सत्यव्रतकी करुणा देखकर वह मछली करुणाके वचन कहने लगी कि, हे महाराज ! आप दीनवत्सल हैं और मैं दीन हीन क्षीण मीन हूँ नदीके जलमें जातिका घात करनेवाले अनेक जन्तु हैं; सो उनके हाथमें हमको आप किस प्रकार छोडते हैं ? हे महाराज ! हम भीत होकर शरण आई हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ ॥ १४ ॥ राजर्षि सत्यव्रत यद्यपि यह नहीं जानते थे कि, हमारेही ऊपर अनुग्रह करनेको स्वयं भगवान्ने यह मत्स्यरूप धारण किया है, तोभी प्रीतिपूर्वक उस मछलीकी रक्षा करनेको मन स्थिर करलिया ॥ १५ ॥ दीनवचन सुनतेही राजर्षिके मनमें दया उत्पन्न होगई और वह जलपूर्ण कलशमें रखकर मछलीको अपने आश्रममें ले आये ॥ १६ ॥ हे राजा परीक्षित् ! कलशमें रह एकही रातके बीच वह मछली इतनी बढी कि, वह फिर उसमें न समाय सकी । इसलिये अपने सुभीतेके लिये उन राजर्षिसे कहने लगी ॥ १७ ॥ कि, हे राजन् ! इस गगरीमें मेरा शरीर नहीं समाता, इसमें कष्टके मारे मैं वास नहीं कर सक्ती । सो आप मुझे कोई ऐसा स्थान बता दीजिये कि, जहाँ मैं सुखसे रहसकूं ॥ ॥ १८ ॥ यह सुनकर राजा सत्यव्रतने उस मछलीको जलसे निकाल एक बडे भारी कमण्डलुमें डालदिया । हे राजन् ! उस कमण्डलुमें गिरतेही एक क्षणके बीच वह मछली तीन हाथ बढगई ॥ १९ ॥ तब वह मछली कहने लगी कि, इस कमण्डलुके बीचभी मैं सुखसे नहीं रह सक्ती । अनुग्रह करके मुझको आप किसी बडे भारी स्थानमें रखवादें ॥ क्योंकि मैं आपकी शरण आईहूं इस लिये सब प्रकार आपको मेरी रक्षा करना उचित है ॥ ॥ २० ॥ तब राजर्षिने इस मछलीको कमण्डलुसे उठाकर एक सरोवरमें डाल दिया । परन्तु डालतेही वह मछली अपने शरीरसे उस सरोवरको छाय बडी मछलीकी समान बढ गई और फिर राजर्षि सत्यव्रतसे निवेदन करने लगी कि, हे महाराज ! मैं जलवासी हूं । सो मुझको नहीं जान पडता कि, सरोवरका जल मेरे मंगलार्थ होगा ॥ २१ ॥ महाह्रदको पानेके प्रथम विना जलके जिससे मेरा नाश न होजाय ऐसा उपाय करके तुम मुझको किसी ह्रदमें स्थापित करो, क्योंकि ह्रद स्वभावसेही गंभीर नीरवाले होते हैं; उनका जल शीघ्र नहीं घटता ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जब उस मत्स्यने इस प्रकारसे कहा तब राजर्षि सत्यव्रतने उसको लेकर जिसका जल कभी क्षय न हो ऐसे अगाध जलाशयमें डाल दिया । परन्तु एक दिनमेंही वह मछली इतनी बढी कि, वह जलाशय भरगया; राजा सत्यव्रतने जब देखा कि, इस मछलीका शरीर जलाशयमेंभी नहीं आता, तो उसको समुद्रमें डालनेके लिये चला ॥ २३ ॥ जब उस मीनने दीन भावसे राजर्षिके प्रति कहा कि, हे राजन् ! यहाँपर अति बलवान् मकरादि जन्तु हैं, सो वह हमको भक्षण करलेंगे । इसलिये आप हमको इस स्थानमें न छोडिये ॥ २४ ॥ जब उस मत्स्यके ऐसे वचन

सुनकर राजर्षि सत्यव्रत अतिशय मोहित होगये और मत्स्यसे बोले कि "आप कौन हैं" ? और मत्स्यके रूपसे हमको क्यों मोहित करतेहैं ॥ २५ ॥ हमने कभी इस प्रकारका जलचर न देखा सुना आपने एक दिनमें अपना शरीर बढायकर शत योजनके विस्तार-वाले समुद्रको ढकलिया ॥ २६ ॥ हम निश्चय जानते हैं कि, आप नारायण अथवा हरि हैं प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जलचररूप धारण किया है ॥ २७ ॥ हे पुरुष-श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है । आप सृष्टि स्थिति और प्रलयके अधीश्वर हैं । हे प्रभो ! हम आपके भक्त हैं और शरणागत हैं, आप हमारे आत्मा और आश्रय हैं ॥ २८ ॥ आपके समस्त लीला अवतार प्राणियोंकी विभूतिके अर्थ हैं तो सही पर इस रूपके धारण करनेका क्या कारण है ? सो मैं जानना चाहताहूँ ॥ २९ ॥ हे अरविन्दलोचन ! देहाभिमानी पुरुषोंकी उपासना जिस प्रकार व्यर्थ होतीहै, वैसेही सर्वसुहृद् और प्रिय आत्मा आपके चरणोंकी जैसा करना वैसे व्यर्थ नहीं हो सक्ता. क्योंकि हम लोग केवल आपके भक्त हैं तोभी आपने ऐसी अनिर्वचनीय दया प्रकाश करके हमको यह अद्भुत मूर्ति दर्शन कराई ॥ ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब राजा सत्यव्रतने इसप्रकारसे कहा, तब जगतपालक मत्स्यरूपी भगवान् प्रलयके समुद्रमें विहार करनेकी इच्छासे अपने मनकी बात उस राजासे कहने लगे, क्योंकि भक्तजन उनको अत्यन्त प्यारे होते हैं ॥ ३१ ॥ मत्स्यरूपी भगवान् बोले कि, हे अरिन्दम ! आजसे सातवें दिन प्रलय होगा और उस प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूब जायगी ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जब प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूबने लगेगी, तब उस समय हमारी भेजी हुई एक बडी नाव तुम्हारे निकट आवेगी ॥ ३३ ॥ तुम उसको देखतेही सब प्रकारकी औषधियें और छोटे बडे समस्त बीज ग्रहण करके सप्तऋषियोंको लेकर सब प्राणियोंके साथ ॥ ३४ ॥ उस नावपर अति शीघ्रताके साथ चढजाना । उस नावमें चढकर विना खेदके तुम सब जगह घूमसकोगे । हे राजन् ! जब सब जलहीजल होगा, तब उजेला नहीं रहेगा, परन्तु तुम ऋषिलोगोंके तेजसे सब कुछ देखनेको समर्थ होंगे ॥ ३५ ॥ फिर प्रलयपवनके लगनेसे जब वह नाव कम्पायमान होने लगेगी; तब हम भी तुम्हारे समीप आजाँयगे, तब तुम बृहत् सर्परूप रस्सीसे हमारे सींग में नावको बाँध देना ॥ ३६ ॥ जबतक ब्रह्माजीकी रात रहेगी तबतक हम उस नावको ऋषि लोगोंके सहित प्रलयके समुद्रमें खैंचते फिरेंगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! परब्रह्मपदवाच्य जो हमारी महिमा है वह हम उसी समय तुम्हारे प्रश्न करनेपर कहेंगे । तुम हमारी प्रसन्न-तासे उस महिमाको अपने हृदयमें जान सकोगे ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान् इसप्रकार सत्यव्रतको आज्ञा दे उसी स्थानमें अंतर्धान होगये इसके उपरान्त यह राजर्षि सावधान हो भगवान्के आज्ञा दियेहुए कालकी राह देखनेलगे ॥ ३९ ॥ अर्थात् सत्यव्रत राजा मत्स्यरूपी भग-वान्के चरित्रका स्मरण करताहुआ पूर्वकी ओरको है अग्रभाग जिनके ऐसे कुशोंको बिछाय पूर्ण उत्तरकी ओरको मुखकर बैठगया ॥ ४० ॥ कुछ कालके पीछे दिखाई दिया कि, समुद्रका नीर तीरको तोड सर्व प्रकारसे पृथ्वीको डुबाता हुआ

बढने लगा और भयंकर मेघके आनिवारित जलधारा वर्षाने लगे ॥ ४१ ॥ राजा सत्यव्रतने भगवान्‌की आज्ञाका विचार करते करते देखा कि, एक नाव निकट आपहुँचो । मत्स्यमूर्ति भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण कर वह सत्यव्रत सब प्रकारकी औषधि व लतादि लेके सप्तऋषियोंके साथ उस नावपर आरूढ होगया ॥ ४२॥ जब यह सत्यव्रत राजर्षि नौकापर चढे तब मुनिलोग बोले कि. हे राजन् ! भगवान् केशवका ध्यान करो । वही हम लोगोंको इस संकटसे बचाय मंगल करेंगे ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जब राजा सत्यव्रतने ध्यान किया तब एक शृंग धारण किये मत्स्य भगवान् साक्षात् समुद्रमें प्रगट हुये । इनका यह शृंग सुवर्णका था और देहकी लम्बाइ एक लाख योजनकी थी ॥ ४४ ॥ राजर्षि सत्यव्रत भगवान्‌की आज्ञानुसार अहिडोरसे इस मत्स्यके शृंगमें नौका बाँध प्रसन्नचित्त हो भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करनेलगे ॥ ४५ ॥ राजर्षि सत्यव्रतने कहा कि, हे भगवन् जिनपुरुषोंका अंतःकरण अनादि अविद्यासे ढकाहुआ है, इस कारण जो अविद्यारूप संसारके परिश्रमसे आतुर हैं वह लोगभी इस संसारमें जिसके अनुग्रहके लिये आश्रित हों जिसको प्राप्त होते हैं । आप वही पुरुष हैं । हम लोगोंको मुक्तिके देनेवाले आप परमगुरु हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! यह जन अत्यन्त अबोध है, अपने कर्मोंसेही इसका बंधन हुआ है, यह सुखकी इच्छासे असुरोंकेसे कर्म करनेकी चेष्टा करता फिरताहै परन्तु जिनकी सेवा करनेसे वह सुखकी इच्छा छुटजाती है वह हमारे हृदयकी गाँठको खोलदें, वही भगवान् हमारे परमगुरु हैं ॥ ४७ ॥ अहो ! चाँदी जिस प्रकार अग्निकी सेवा करके अपनी मलीनताको छोड अपने पहले रूपको प्राप्त होजाती है और हीनबल हो अपने रंग अर्थात् स्वरूपकी भजना करती है, वही अव्यय ईश हमारे गुरु होवें, क्योंकि वही गुरुकेभी परमगुरु हैं ॥ ४८ ॥ अहो ! देवता, गुरु व सब श्रेष्ठ जन एकत्र होकरभी जिसके प्रसादके दश हजार भागकेभी एक किनकेको प्राप्त करनेके लिये समर्थ नहीं होसक्ते । हे भगवन् ! आप वही ईश्वर हैं, हम आपकी शरण हैं ॥४९॥ हे प्रभो ! अंधा जिस प्रकार अंधेको आगे करके चलै, वैसेही अविद्वान पुरुष अबोधको अपना गुरु बनाता है । हम वैसे नहीं हैं । आपके जाननेकी इच्छा करते हैं । इसलिये आपकोही गुरु बनाते हैं, आपका ज्ञान सूर्यके प्रकाशकी समान स्वयंसिद्ध है और आपही सब इन्द्रियोंके प्रकाशक हैं ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! प्राकृत गुरु केवल अनर्थके हेतु हैं, वह पुरुषको कामादिककी मतिका उपदेश करते हैं । तिससे मनुष्य तरनेके अयोग्य संसारको प्राप्त होजाता है, सो आप इस प्रकारके नहीं हैं, आप यथार्थमें अव्यय और अव्यर्थ ज्ञानका उपदेश दिया करते हैं तिससे सर्वसाधारण अर्थात् सब कोई आपके पदको प्राप्त होजाते हैं ॥ ५१ ॥ हे देव ! यद्यपि आप सब पुरुषोंके सुहृद, प्रिय, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञान और अष्टसिद्धिस्वरूप हैं, तोभी अनेक दूसरी बुद्धि और कामके वशहोकर अपने हृदयमें स्थित हुये आपको नहीं जानसक्ते ॥ ५२ ॥ परन्तु हम ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपकी शरणमें आये हैं । आप देवताओंमें श्रेष्ठ, वरेण्य और ईश्वर हैं । हे भगवन् !

आप परमार्थप्रकाशक वचनोंसे हमारे हृदयमें उत्पन्नहुई अहंकारादिकी गाँठ खोलिये और आज्ञा स्वरूप प्रकाश करनेकी आज्ञा हो ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब राजर्षि सत्यव्रतने इस प्रकारसे स्तुति की तब मत्स्यरूपी भगवान् आदि पुरुषने प्रलयके महासमुद्रमें विहार करते करते उस राजर्षिको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया था ॥ ५४॥ और सांख्ययोग व क्रियाविशिष्ट दिव्य पुराणसंहिता, अर्थात् मत्स्यपुराण और अतिगुप्त करने योग्य आत्मतत्त्वकोभी बडी भारी व्याख्याके सहित कहा था ॥ ५५ ॥ ऋषि गणोंके सहित सत्यव्रत राजर्षि नावमें बैठकर ब्रह्मा और श्रीभगवान्के कहेहुए उस समस्त आत्मतत्त्वको विशेष करके सनातन धर्मकी कथा श्रवण करने लगा और कुछ संदेहभी कथाके श्रवण करनेमें नहीं हुआ ॥ ५६ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि राजा परीक्षित्से कहने लगे कि, हे भारत ! पहले प्रलयके अंतमें जब ब्रह्माजी सोकर उठे तो उन मत्स्यरूपी भगवान्ने हयग्रीव असुरका संहार कर फिर सब वेद ब्रह्माजीको दे दिये ॥ ५७ ॥ और यह सत्यव्रत राजा भगवान्के प्रसादसे ज्ञान विज्ञानसम्पन्न हो इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुआ है ॥ ५८॥ हे राजन् परीक्षित् ! सत्यव्रत राजर्षिके और मायामत्स्यरूपी भगवान् विष्णुके इस अवतारका बडा पवित्र आख्यान श्रवण करनेसे सब पाप छूट जाते हैं ॥ ५९ ॥ श्रीभगवान् वासुदेवके इस अवतारको जो मनुष्य दिन प्रतिदिन कहैं सुनैंगे उनके सब कार्य सिद्ध होजाते हैं और अंतमें परमगतिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ६० ॥ अहो ! प्रलयसमुद्रके जलमें शयन करते हुए और शक्ति रहित विधाताके वदनसे निकलेहुए सब वेदोंको जिस दानवने हरण करलिया और जिन्होंने मत्स्यरूपी होकर उस हयग्रीव राक्षसको मार सब वेद सत्यव्रत और सप्तर्षियोंसे कहे थे; उन अखिल कारण मायामत्स्यरूपी भगवान्को हम बारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ६१ ॥

छप्पय-जय जय नटवर वेष तरणि तनया तट लम्पट।
जय जय अट पट लटक चटक सूषित वंशीवट ॥
जय जय मणिगण जटित सुहाटक घटित मुकुट धर।
जय जय उत्कट शकट विपाटक वेणु लकुट कर ॥
जय जयति चटुलतर पीतपट धर अघटित घटना चरण।
जय जयति निपट पटु करण मम इच्छा पूरण करण ॥१॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे माथुरवंशीय सुप्रसिद्ध वैद्यवर शालिग्राम वैद्य मुरादाबाद निवासी कृत अष्टमस्कंधे मत्स्यावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इति अष्टमस्कंध समाप्त ।

इति

शुकसागर अष्टमस्कन्ध

समाप्त.

श्रीमद्वेंकटेशो विजयतेतराम्।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा।

नवमस्कन्ध ९.

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.
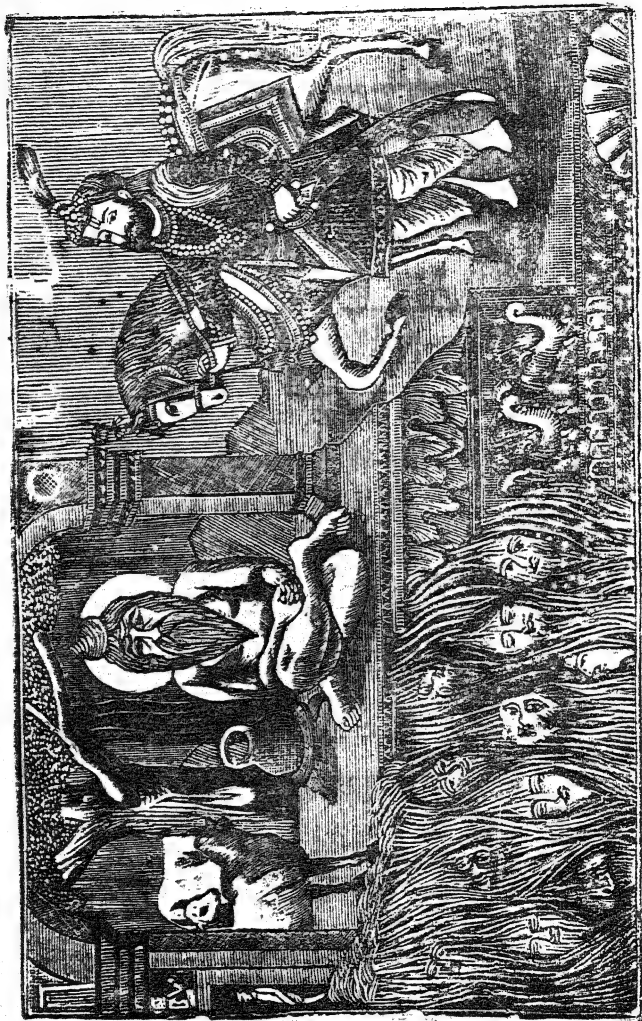
कपिल मुनीका आश्रम.

शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

नवम स्कन्ध ९.

सोरठा—जय वृंदावन चन्द, जय मुकुन्द गोविन्द हरि।
जय प्रभु आनँदकन्द, जगवन्दन दुष्टन दलन ॥ १ ॥
जय त्रिभुवन आधार, जय जय जीवन जगतपति।
मम उर करहु विहार, करमुरली शिरमुकुटधर ॥ २ ॥
हे वृन्दावन चन्द, यह वर दीजे दयाकर।
श्रीव्रजको आनन्द, नित्यप्रति निरखत रहौं ॥ ३ ॥
शीश मुकुट उरमाल, सँग राधा बाधा हरण।
इहि छवि सों नँदलाल, वसहु सदा मेरे हिये ॥ ४ ॥
श्रीयमुनाके तीर, गाय चरावत सखन सँग।
ता छविसों यदुवीर, वास करहु मेरे हृदय ॥ ५ ॥
अहो मदन गोपाल, रास रसिक राधा रमण।
हरहु जगत जंजाल, करहु दया जन जानकर ॥ ६ ॥
कर त्रिशूल शशिभाल, शशि गंग मन्मथ दहन।
गलमें गरल कराल, आठपहर झलकत रहत ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! सब मन्वन्तरोंका वृत्तान्त और मन्वन्तरोंमें अनन्तवीर्यवान् भगवान् हरिने जो वीर्यप्रकाश किया, वह सम्पूर्ण आपके अनुग्रहसे मैंने सुना ॥ १ ॥ हे योगिन्! अतीत कल्पके अन्तमें द्रविडाधिपति सत्यव्रत नामक राजर्षिने भगवान्की सेवा करके जो ज्ञान प्राप्त किया ॥ २ ॥ और वह वैवस्वतके पुत्र मनु हुए थे इसकोभी मैंने सुना और उन वैवस्वत मनुके पुत्र जो इक्ष्वाकु आदि राजा हुये, उनका वृत्तान्तभी आप कहही चुके हैं ॥ ३ ॥ हे महाभाग! इन इक्ष्वाकु आदिका पृथक् पृथक् वंश और वंशोंके चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ, सो कृपापूर्वक आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग! इस वंशमें जो पुरुष होगये हैं और जो आगेको होंगे, जो अब वर्तमान हैं। पुण्यकीर्तिवाले उन सब मनुष्योंका विक्रम आप यथार्थ यथार्थ मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंकी सभामें राजा परीक्षित्ने जब इस प्रकारसे पूँछा, तब परमधर्मज्ञ श्रीशुकदेवजी कथाका आरंभ करने लगे ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! मनुके वंशका वृत्तांत हम कहते हैं, तुम श्रवणकरो। परन्तु इनका विस्तारसे वृत्तान्त तो हम सहस्रों वर्षतक नहीं कह सक्ते ॥ ७ ॥ हे राजन्! जो परमपुरुष पर अपर भूतोंके आत्मा हैं, आगे केवल वही थे, कल्पके अन्तमें उनके अतिरिक्त विश्वमें और कुछ वस्तु नहीं थी ॥ ८ ॥ उन परमपुरुषकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमल उत्पन्न हुआ। हे महाराज! उस कमलसे चतुर्मुख ब्रह्माजीका जन्म हुआ ॥९॥ इन ब्रह्माजीके मनसे मरीचि जन्मे, उनके पुत्र कश्यपजी हुये इन कश्यपजीकी भार्या दक्षकी बेटी अदितिके गर्भ और कश्यपजीसे सूर्यका जन्म हुआ ॥ १० ॥ हे भारत! इन सूर्यनारायणसे संज्ञाके गर्भमें श्राद्धदेव मनु उत्पन्न हुए। इन श्राद्धदेवकी भार्या श्रद्धा हुई कि, जिनके गर्भसे इन महात्माके दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ उनके नाम यह हैं यथा इक्ष्वाकु, नृग, शर्य्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ॥ ॥ १२ ॥ हे राजन्! इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंकी उत्पत्तिके पहले मनुजी निःसन्तान थे, इस लिये महर्षि वशिष्ठजीने उनको मित्रावरुणका यज्ञ कराया ॥ १३ ॥ हे राजन् मनुकी भार्या श्रद्धा उस यज्ञमें केवल दूधही पीकर नियमसहित होताके निकट गई और प्रणाम करके यह प्रार्थना करी कि, आप ऐसा होम करैं कि, जिससे मेरे कन्या उत्पन्न हो ॥ १४ ॥ श्रद्धाकी प्रार्थनासे "अहे यज्ञकर" इसप्रकार अध्वर्य्युसे प्रेरित हो, होताने होमके ग्रहण होजानेपर मनमें इस प्रकारका ध्यान और मुखसे "वषट्" शब्द उच्चारण करके मनु भार्याकी प्रार्थनाको पूर्ण किया ॥ १५ ॥ हे राजन्! जब होताने इस प्रकारसे आचरण किया तब मनुके इलानाम एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्रकी चाहना होनेके कारण पुत्रीके होनेसे मनुको संतोष नहीं हुआ। इसलिये वह असंतुष्ट हो वशिष्ठजीसे बोले कि ॥ १६ ॥ हे भगवन्! आप! ब्रह्मवादी हैं। आप लोगोंका यह विपरीत कर्म कैसे हुआ? हा! कैसा कष्ट है? इस प्रकारसे मंत्रका उलटा होना उचित नहीं है ॥ १७ ॥ आपलोग ब्रह्मज्ञ और योगी हैं। तपकी अग्निसे आपके अनन्त पाप भस्म होगये हैं, देवता लोगोंमें अमृतकी समान आप

सब लोगोंमें इस प्रकार संकल्पकी विषमता कैसे हुई? ॥ १८ ॥ हे राजन् ! मनुके यह वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठजी होताके व्यभिचारको समझ गये और मनुसे बोले कि ॥ ॥ १९ ॥ हे वत्स ! यद्यपि तुम्हारे होताने अन्यथाचरण किया है तौभि हम तुमको सुन्दर पुत्रही देंगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! वशिष्ठजी इस प्रकारसे कह मनुकी कन्या इलाको पुत्र बनानेकी कामनासे भगवान् आदि पुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ वशिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् शीघ्रही प्रसन्न होगये और संतुष्ट हो वशिष्ठजीको मनमाना वरदान दिया उस वरके प्रभावसे मनुकी कन्या इला सुद्युम्ननामक श्रेष्ठ पुत्र होगई ॥ २२ ॥ हे महाराज ! यह सुद्युम्न एक दिन सिंधु देशके उत्पन्नहुये घोडेपर चढकर और कुछेक मंत्रियोंको साथले आखेटके लिये वनमें विचरण करने लगा ॥ २३ ॥ उसके हाथमें रुचिर धनुष और विचित्र बाण था और शरीरमें दृढ बख्तर पहरे हुए था, इसलिये वह मृगोंके पीछे निर्भय दौडता हुआ उत्तर दिशामें पहुँचा ॥ २४ ॥ यहाँ सुमेरु पर्वतकी तलैटीमें सुकुमार वन है, जहाँ भगवान् भूतनाथ भूतेश्वर सदा पार्वतीजीके साथ रहकर विहार किया करते हैं, मनुका पुत्र सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ उसी वनमें पहुँचा। उसने वहाँ पहुँचतेही अपने आपको स्त्री देखा और अपने घोडेको घोडी रूप पाया ॥ २५ ॥ २६ ॥ और उसके सब सेवक अकस्मात् अपने अपने पुरुषपनमें विकार हुआ देख परस्पर एक दूसरेको निहार विस्मित हुये ॥ २७ ॥ यह सुन राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! यह स्थान ऐसे गुणवाला कैसे हुआ ? और किस पुरुषने इस स्थानको ऐसा करदिया ? इस बातको सुनकर हमको बडा कौतूहल हुआ है, सो आप कृपा करके इस प्रश्नकी व्याख्या कीजिये ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे नृपश्रेष्ठ ! एक समय श्रेष्ठ बुद्धिवाले ऋषिलोग भगवान् गिरीश (महादेव) जीका दर्शन करनेकी वासनासे सब दिशाओंका अंधकार दूर करते और प्रकाशको रहित करते केवल अपना प्रभाव प्रकाशित करते हुये इस वनमें गये थे ॥ २९ ॥ उस समय भगवती अम्बिकादेवी विवसना अर्थात् वस्त्र रहित थीं, इसलिये मुनि लोगोंको देखकर अत्यन्त लज्जित हुई और घबराय पतिकी गोदी से उतर झटपट कटि वसन पहर लिये ॥ ३० ॥ हरगौरीका विहार देखकर उन सब ऋषिगणोंका मनभी स्त्री प्रसङ्गसे कलुषित हुआ। और वह उसी समय वहाँसे लौटकर नर नारायणके आश्रमको चलेगये ॥ ३१ ॥ तिसके पीछे भगवान् भूतनाथ अपनी प्राणप्यारी का प्रियकार्य करनेको समझाते बुझाते हुये बोले कि, आजसे जो कोई इस स्थानमें आवेगा वह उसी समय स्त्री होजायगा हे राजन् ! तबसे सब पुरुषोंने इस वनको छोड दिया कोई उस दिशाकोभी तो नहीं जाता था ॥ ३२ ॥ राजकुमार सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ इस वनमें प्रवेश करनेके पीछे वन वनमें भ्रमण करने लगे ॥ ३३ ॥ सखी सहेली नारियोंके साथ उस सुद्युम्नको अपने आश्रमके समीप भ्रमण करता हुआ भगवान् बुधजीने देखा ॥ ३४ ॥ देखतेही बुधके मनमें कामदेवका संचार हुआ । और वह सुद्युम्न जो

कि, मनोहर स्त्रीके रूपमें थे, चन्द्रमाके पुत्रको देख उनको पति बनानेकी अभिलाष की ॥ ३५ ॥ इसलिये बुधने उसका पाणिग्रहण किया और उसके गर्भसे बुधको पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! ऐसा सुना गया है कि, मनुके पुत्र सुद्युम्नने इस प्रकार स्त्रीपनको प्राप्त हो अपने कुलाचार्य महर्षि वशिष्ठजीको स्मरण किया था ॥ ३७ ॥ स्मरण करतेही महर्षि वशिष्ठजी इनके समीप आये और इनकी यह दशा देख दयासिंधु दयाके मारे अति दुःखित हुये । और फिर उनको पुरुष करनेकी इच्छासे श्रीमहादेवजीके निकट जाय उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! वशिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् उनके प्यारे कार्यको और अपने वचनको सत्य करनेके लिये यह बोले कि तुम्हारे गोत्रमें उत्पन्न हुआ सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री रहेगा । इस व्यवस्थासे यह सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे कुला-चार्य वशिष्ठजीकी कृपासे यद्यपि सुद्युम्न पुरुषत्व पाय व्यवस्थापूर्वक पृथ्वीका पालन करता था परन्तु महीनेके महीने स्त्री होजानेसे छिपकर सभामें न आता, इसलिये प्रजा उनसे असंतुष्ट थी ॥ ४० ॥ इस राजा सुद्युम्नके तीन पुत्र थे, उत्कल, गय और विमल यह तीनों जन धर्मपरायण थे और दक्षिण देशका राज्य करते थे ॥ ४१ ॥ प्रतिष्ठान पुरीका (जो अब प्रयागमें गंगाजीके पार झूसी नामसे प्रसिद्ध है) पति सुद्युम्न वृद्धावस्थाको प्राप्त हुआ देख अपने पुत्र पुरूरवाके हाथमें राज्यका भार सौंप वनको चलागया ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-मनु द्वै सुत वैराग्यसे, रहे असुत वन जाय।
करुषादिक पँचसुतनकी, कथा द्वितीय अध्याय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षित्से बोले कि, हे नृपोत्तम ! जब सुद्युम्नकी इस प्रकारसे अवस्था हुई तब वैवस्वत मनुने पुत्रकी कामना करके शतवर्षतक यमुनामें तप किया था ॥ १ ॥ तिसके पीछे सन्तानके अर्थ भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया, तिस यज्ञके करनेसे उन्होंने अपने योग्य दश पुत्र पाये । इन दश पुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे बडे थे ॥ २ ॥ हे राजन् ! मनुके पृषध्रनामक जो पुत्र हुआ था, उसको मनुजीने गोपालक बनाया, इस-लिये वह पुत्र वीरासन व्रत धारण करके रात्रिके समय सावधान होकर गायोंकी रक्षा करता था ॥ ३ ॥ एक दिन रात्रिके समय जल वर्षरहा था कि उसी समय एक सिंह आनकर गोठमें घुस गया । उसके घुसतेही गोठमें जितनी गायें सो रही थीं सब डकरायकर इधर उधर दौडने लगीं ॥ ४ ॥ गोठमें घुसा हुआ सिंह अतिशय बल-वान् था, वह एक गायको जब पकडकर भागने लगा, तब वह एक गाय अति आर्त होकर पुकारी, उस गायका डकराना सुनकर पृषध्र उस शार्दूलके पीछे दौडा ॥ ५ ॥ एक तो रात ऐसी अँधियारी थी, कि अपना देहभी नहीं दिखाई देता था, दूसरे घनघोर घटासे

औरभी अंधकार हो रहा था, कि जिससे कुछ नहीं दीखता था, इसलिये पृषध्रने खड्ग ग्रहण करके समीप व्याघ्र समझ अज्ञानतासे एक गायका शिर काट डाला ॥ ६ ॥ इस खड्गके चलानेसे सिंहकाभी कान कट गया वह अत्यन्त भीत हो मार्गमें रुधिर गिराता हुआ भाग-गया ॥ ७ ॥ पृषध्रने मनमें समझा था कि सिंह मरगया, परन्तु जब प्रभात हुआ तो देखा कि, कपिला मारी गई,तब बहुतही दुःखित हुआ ॥ ८ ॥ हे राजन्! यद्यपि राजकुमार पृषध्रने यह अपराध अनजानमें किया था, तौभी कुलपुरोहितने गायके शोकसे व्याकुल हो उसको यह शाप दिया कि,रे पापिष्ठ! तू क्षत्रियोंका बंधुभी नहीं हो सकेगा बरन् इसी जन्ममें क्रमसे शूद्र होगा ॥ ९ ॥ जब इस प्रकारसे आचार्यने शाप दिया,तब पृषध्रने हाथ जोडकर उसको अंगीकार किया, फिर ब्रह्मचर्य धारणकर मुनियोंके प्यारे व्रतको ग्रहण किया ॥ १० ॥ तिसके पीछे सर्वात्मा निर्मल परमपुरुष भगवान् वासुदेवमें भक्ति करके एकान्तताको प्राप्त, सर्व प्राणियोंका सुहृद और सबको समान अर्थात् बराबर देखनेवाला हुआ। उसने संग छोड दिया, उसकी आत्मा शान्त होगई, दोनों नेत्र जिसके वशमें होगये संग्रहको त्याग अपने आपसे जो कुछ मिल जाता था, उसीसे अपनी जीविका करता था ॥ ११ ॥ और परमात्मामें आत्माको लगाकर ज्ञानसे तृप्त हो जड, अंध, अथवा बहरेकी समान पृथ्वीपर घूमने लगा ॥ १२ ॥ हे राजन्! इसप्रकार आचार्य व्यवहार युक्त हो पृषध्रने वनमें प्रवेश करके अपने शरीरको भस्म कर दिया और परब्रह्मके पदको प्राप्त हुआ ॥ ॥ १३ ॥ हे महाराज! मनुका छोटा पुत्र कवि विषयका लालच छोड बंधु बांधवों सहित राज्यको छोडनेके पीछे परमपुरुषको हृदयमें धारण करके किशोर अवस्थाके समयमेंही वनको चला गया। इसलिये उसका भी वंश आगेको न चला ॥ १४ ॥ परन्तु मनुके करुष नामक जो पुत्र था, उससे कारुष आख्यासे विख्यात क्षत्रिय जातिकी उत्पत्ति हुई; वह जाति ब्रह्मनिष्ठ, धर्मरक्षक और उत्तर मार्गके देशकी राजा हुई ॥ १५ ॥ इस प्रकार धृष्ट नामक मनुके पुत्रसे धार्ष्ट नामसे प्रसिद्ध क्षत्रियोंकी जाति उत्पन्न हुई। वह इस पृथ्वी मण्डलपर ब्राह्मणपनको प्राप्त हुई है। हे राजन्! नृगनामक जो मनुका पुत्र था,उसका पुत्र सुमति, उसका पुत्र भूतज्योतिः और उसका संतान वसु हुआ ॥ १६ ॥ वसुका पुत्र प्रतीक उसका पुत्र ओघवान हुआ,इस ओघवानके औघवान नामक एक पुत्र और औघवती नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई। उस औघवती कन्याके साथ राजा सुदर्शनने विवाह किया॥ १७ ॥ हे राजन्! नरिष्यन्त नामक जो मनुका पुत्र था,उसका पुत्र चित्रसेन,उस चित्रसेनका पुत्र ऋक्ष उसका पुत्र मीढ्वान् और मीढ्वान्से पूर्ण उत्पन्न हुआ उस पूर्णसे इन्द्रसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ १८ ॥इन्द्रसेनका पुत्र वीतिहोत्र और वीतिहोत्रसे सत्यश्रवाने जन्म ग्रहण किया इस सत्यश्रवाका पुत्र उरुश्रवा और उरुश्रवासे देवदत्तकी उत्पति हुई ॥ १९ ॥देवदत्तके पुत्र आग्निवेश्य हुए। यह स्वयं भगवान् अग्नि उत्पन्न हुए थे; यह अग्निवेश्यही कानीन और जातुकर्ण नामसे विख्यात महान् ऋषि हुए थे और उससेही अग्निवेश्यायन नाम प्रसिद्ध ब्रह्मकुलकी उत्पत्ति हुई है ॥ २० ॥ हे नृप! नरिष्यंतके वंशका वर्णन हुआ, अब दिष्ट-

वंशका वर्णन करता हूं सो आप मन लगाय एकाग्र चित्त हो सुनिये ॥ २१ ॥ दिष्टका पुत्र नाभाग, पीछे जिस नाभागकी कथा कहेंगे वह यह नाभाग नहीं है, यह और है जो कर्मद्वारा वैश्यपनको प्राप्त हुआ था, इसका पुत्र भलन्दन और भलन्दनसे वत्सप्रीतिकी उत्पत्ति हुई ॥ २२ ॥ वत्सप्रीतिका पुत्र प्रांशु, उसका पुत्र प्रमति, प्रमतिका पुत्र खनित्र तिससे चाक्षुषने जन्म ग्रहण किया । चाक्षुषका पुत्र विविंशति ॥ २३ ॥ तिसका पुत्र रम्भ, रम्भका पुत्र खनिनेत्र, जोकि परमधार्मिक हुआ, इस खनिनेत्रके पुत्र करन्धम राजा हुये ॥ २४ ॥ करन्धमके पुत्र अविक्षित अविक्षितके मरुत्त जो कि, चक्रवर्ती हुए । जिनको अंगिराके पुत्र महायोगी सम्वर्तने यज्ञ कराया था ॥ २५ ॥ इस मरुत्तके यज्ञकी समान किसीका यज्ञ प्रसिद्ध नहीं है । उनके यज्ञके मध्य सब पात्र सुवर्णके बने हुए शोभायमान थे ॥ २६ ॥ जिनके यज्ञमें सोमपान करके सुरेन्द्र प्रसन्न हुये बहुत सारी दक्षिणा पाय ब्राह्मणोंको हर्ष होता था, इस यज्ञमें मरुद्गण परोसनेवाले और विश्वेदेवा गण सभासद हुए थे ॥ २७ ॥ इन मरुत्तके पुत्र दम, तिनके पुत्र राजवर्द्धन, तिनके सुत सुधृति, सुधृतिका पुत्र नर ॥ २८ ॥ तिनका पुत्र केवल, तिससे धुन्धुमान उत्पन्न हुए । धुन्धुमानके पुत्र वेगवान्, तिनके पुत्र बुध, तिनके संतान तृणबिन्दु राजा हुये ॥ २९ ॥ यह राजा अति उत्तमोत्तम गुण विभूषित था, श्रेष्ठ अप्सरा अलम्बुषा देवी उन गुणोंपर मोहित हो, पुत्रके संग हुई । इस अलम्बुषा अप्सराके तृणबिन्दुसे कई एक पुत्र और इल्विला नामक एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३० ॥ हे राजन् ! योगीश्वर विश्रवाजी ऋषिने अपने पिताजीसे परमविद्याको प्राप्त होकर इस इल्विलाके गर्भमें कुबेरको उत्पन्न किया॥ ३१॥ अब तृणबिन्दुके पुत्रोंका वृत्तान्त सुनो । विशाल, शून्यबंधु और धूम्रकेतु यह तीन जन धूम्रकेतुके पुत्र हुए। उनमें विशालही वंशकारी राजा हुआ । और उसने वैशाली नामक एक पुरीभी बनाई ॥ ३२ ॥ इस विशालका पुत्र हेमचन्द्र हेमचन्द्रका पुत्र धूम्राक्ष और इसका पुत्र संयम हुआ संयमके देवल और कृशाश्व यह दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥ उनमें कृशाश्वका पुत्र सोमदत्त हुआ कि, जिसने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपति परमपुरुषकी पूजा कर योगीश्वर लोगोंकी आश्रित उत्तमगति प्राप्त की ॥ ३४ ॥ सोमदत्तका पुत्र सुमति सुमतिका पुत्र जन्मेजय हुआ; श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! विशालवंशमें यह राजागण उत्पन्न हुये यह सब राजा तृणबिन्दुका यश धारण करनेवाले थे ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-मनुसुत वंश शर्यातिके, भई सुकन्या एक ।
तिसरे में रेखनकथा, वरणौं सहित विवेक ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! मनुका पुत्र शर्य्याति ब्रह्मनिष्ठ राजा हुआ उसने अंगिरागणोंके यज्ञमें दूसरे दिवसका कर्तव्य कर्म उपदेश किया ॥ १ ॥ इस राजाके कमलके समान नेत्रवाली सुकन्या नाम एक कन्या हुई । एक समय राजा उसको

साथले वनमें गया, जहाँ कि च्यवन मुनिका आश्रम था ॥ २ ॥ उस वनमें यह राजकुमारी अपनी सुकुमारी सखियोंके साथ फूल पत्तोंको एकत्र करते करते एक स्थानमें गई और उसने उसी वनके मध्य बँबईकी मट्टीके छेदमें पटबीजनेकी समान दो प्रकाशवान् वस्तु देखी ॥ ३ ॥ यह देखकर राजकुमारी सुकन्याको अतिकौतूहल उत्पन्न हुआ, उसने भाग्य प्रेरितकी समान हो, उसी समय एक काँटा ग्रहणकर मोहसे उन प्रकाशित छिद्रोंको फोडदिया। हे राजन्! विद्ध होतेही उस बँबईके छिद्रोंमेंसे बराबर रुधिरकी धार निकलने लगी ॥ ४ ॥ राजा शर्यातिके साथ जो सेना थी, उन सब वीरोंका मल मूत्र रुक गया, यह देखकर राजा शर्याति विस्मित हुआ और अपने साथी पुरुषोंसे पूँछने लगा॥५॥ क्या तुममेंसे किसीने महर्षि च्यवन ऋषिका कुछ अपराध किया है? हमको भली भाँति जान पडता है कि, हम लोगोंमेंसे किसीने महर्षिके आश्रमको दूषित किया होगा॥६॥ यह सुनकर सुकन्याने भीत हो अपने पितासे निवेदन किया कि, हे पितः! मुझसे कुछ अपराध हुआ है। मैंने न जानकर एक काँटेसे दो प्रकाशित पदार्थोंको वेध डाला है ॥ ७ ॥ बेटीके यह वचन सुन राजा शर्यातिको बडा भय हुआ। बँबईमें मुनि अंतर्हित हुए हैं। उनके निकट जा विविध भाँतिकी स्तुतिसे प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त महर्षिका अभिप्राय जान राजाने अपनी कन्या उनको देदी। हे राजन्! इसप्रकार राजा शर्याति विपदसे छूट, मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीसे सम्भाषण करनेके पीछे सावधान चित्तसे अपने स्थानको लौट गया ॥ ९ ॥ इस ओर अपने पति परमक्रोधी च्यवन ऋषिके योग्य चित्तकी जाननेवाली सुकन्या सावधान होकर सदा चित्तको देखकर उनकी सेवा करती थी ॥ १० ॥ कुछ कालके बीतनेपर एक दिन दोनों अश्विनीकुमार उनके आश्रममें आये। मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीने भली भाँति उनकी पूजा करके कहा कि, आप दोनों जन बडे वैद्य हैं, सो कृपा करके हमको आप युवा कर दीजिये ॥ ११ ॥ स्त्रियें जिसरूप और जिसवयसको चाहती हैं। वही तुम हमको देदो । तुम सोमपानरहित हो, कभी सोमपान नहीं कियाहै। सो हम सोमयज्ञ करके तुमको सोमपूर्ण पात्र देवेंगे ॥ १२ ॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ च्यवनजीके यह वचन सुनकर दोनों अश्विनीकुमारोंने कहा कि "यही करते हैं" यह कह फिर आनन्द प्रकाशकर बोले कि, अच्छा तो पहले सिद्धोंके बनाये इस सरोवरमें स्नान करनेको चलिये ॥ १३ ॥ हे राजन्! इस प्रकार कहनेसे जरासे ग्रसित है देह जिनका, नसें दिखाई देती हैं; कुप्यारे पकेहुए केशवाले महर्षि च्यवनजी इन दोनों देववैद्योंके साथ सरोवरमें घुसे। अर्थात् दोनों अश्विनीकुमार इनको लेकर सरोवरमें घुसे ॥ १४ ॥ कुछ देर पीछे उस सरोवरसे सुडौल शरीरवाले, रमणीप्रिय, तीन पुरुष निकले. तीनों जनोंके गलोंमें कमलकी मालायें पडी हुई थीं, कानोंमें कनक (सुवर्ण) कुण्डल विराजमान थे, तीनोंका स्वरूप अनुपम था और वस्त्रोंकी शोभा एक अपूर्वही भाव को धारण किये हुई थी ॥ १५ ॥ तीनों जनेही सूर्यके समान तेजस्वी, समानरूप और समान अवस्थावाले देख पतिव्रता सुकन्याको अति विस्मय प्राप्त हुआ और वह नहीं

पहँचान सकी कि, हमारे पति कौनसे हैं ! इसलिये दोनों अश्विनीकुमारोंकी शरण गई अर्थात् उसने यह प्रार्थना करी कि, आप लोग पृथक् होकर हमारे पतिको हमें दिखादें ॥ ॥ १६ ॥ सुकन्याका पातिव्रत्य देख अश्विनीकुमारोंको संतोष हुआ और अपने आप अलग हो उसे उसके पति च्यवन ऋषिको देदिया. तिसके पीछे महर्षि च्यवनजीसे सम्भाषण कर वह दोनों अश्विनीकुमार विमानपर बैठ स्वर्गको गये ॥ १७ ॥ हे राजन् ! कुछेक कालके पीछे शर्याति राजाने यज्ञ करनेके लिये च्यवन ऋषिके आश्रममें जाकर देखा कि, कन्याके धोरे सूर्यकी समान एक तेजस्वी पुरुष बैठा हुआ है ॥ १८ ॥ सुकन्या पिताको देखकर शीघ्रतासे उठी और उनके चरण छुए । राजा शर्यातिने आशीर्वाद दिया, परन्तु यह विचार वह प्रसन्न न हुए कि, हम जरा जीर्ण च्यवन ऋषिको अपनी कन्या देगये थे, वह आश्रममें नहीं हैं । वरन् उनके बदलेमें स्वरूपवान् एक और युवापुरुष बैठाहुआ है. यह सोचकर उनको बडी शंका हुई । तब वह अप्रसन्न होकर अपनी बेटीसे बोले ॥१९ ॥ कि, यह क्या करनेकी वासना की है ? अरी असत्यन तेरे पति लोकोंके नमस्कार करने योग्य हैं, उनको तैंने क्यों ठगा ? जराग्रसित होनेके कारण तू उनसे प्रसन्न न हुई । इससेही इस पथिकको उपपति बनाय तू भजती है ॥ २० ॥ अरे कुलकलंकिनि ! तू अति बुरे कुलमें उत्पन्न हुई ऐसी बुद्धि करनेका किस प्रकारसे साहस किया ? हा ! हमारे कुलको दूषित किया, निर्लज्ज होकर उपपतिकी पूजा करती है । पिता और पतिके कुलको तैंने एकबारही डुबायदिया ॥ २१ ॥ पिताजीके यह वचन सुन मन्द मुसकानवाली सुकन्या विस्मित हो कहने लगी कि, हे पिताजी ! यही आपके जमाई हैं, यही भृगुनन्दन च्यवनजी हैं ॥ २२ ॥ फिर जिस प्रकारसे इनको रूपयौवनकी प्राप्ति हुई थी, वह भी सब वृत्तान्त पिताजीको कह सुनाया । यह सुन राजा शर्याति विस्मित और प्रसन्न होकर अपनी सुकन्याको हृदयसे लगाया ॥ २३ ॥ हे राजन् ! तिसके पीछे महर्षि च्यवनजीने शर्याति राजाको सोमयज्ञ कराय सोम पीनेके योग्य न होनेपरभी अश्विनीकुमारोंको सोम पीनेको दिया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इन्द्रको तत्कालही क्रोध हो आता है, उसने यह देख च्यवन ऋषिका विनाश करनेके लिये वज्र हाथमें लियाथा. परन्तु भृगुनन्दनने अपने ब्रह्मतेजसे वज्र सहित इन्द्रका हाथ स्तम्भित करदिया ॥ २५ ॥ यद्यपि पहले चिकित्सक होनेके कारण अश्विनीकुमार सोमयज्ञसे बाहरथे, तथापि तबसे सब देवताओंने उनको यज्ञ सोम देनेके लिये अंगीकार किया ॥ २६ ॥ इन शर्य्यातिके तीन पुत्र उत्पन्न हुये उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिसेन । इन तीनोंमें आनर्तके रेवत नाम एक पुत्र हुआ ॥ २७ ॥ हे अरिन्दम ! यह रेवत सागरके बीचमें कुशस्थली नामक एक नगरी बसाय उसमें विराजमान् हो आनर्त्तादि देशोंका पालन करता था ॥ २८ ॥ उसके शत पुत्र जन्मे, उनमें ककुद्मी बडा और गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था ॥ २९ ॥ यह ककुद्मी रेवती नामक अपनी कन्याको साथ ले उसके लिये वर ढूँढनेको ब्रह्माजीके पास गया ॥ ३० ॥ उस समय ब्रह्माजीकी सभामें गन्धर्वोंका गाना होरहा था, इसलिये अवसर न पायकर ककुद्मी वहां

क्षण कालतक ठहरा। और फिर अवकाश पाय प्रणाम करके अपना सब अभिप्राय निवेदन किया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ यह सुन ब्रह्माजी हँसकर बोले कि, हे राजन्! तुमने जिन पुरुषोंको विचारा है, उन सबको कालने संहार कर डाला। इस समय उनके बेटे पोते और नातियोंका गोत्र व नाम मात्रभी नहीं सुना जाता ॥ ३३ ॥ मूल बात यह है कि, तुमको यहाँ सत्ताईस चौकडी युग बीतगये ॥ ३४ ॥ इसलिये जाओ। देवदेवके अंशसे जो महा बलवान् बलदेव हैं, उन नररत्नको तुम यह अपनी कन्यारत्न समर्पण करो ॥ ॥ ३५ ॥ हे राजन्! जिनके कहने सुननेसे पुण्य होता है, वह भूतभावन भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे अवतार लेचुके हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे आज्ञा पाय ककुद्मी ब्रह्माजीको प्रणाम करके अपने पुरमें आया। इनके भ्राता लोग यक्षोंके भयसे इस पुरीको छोडकर सब दिशामें भाग गये थे ॥ ३७ ॥ इसके पीछे दूषण रहित अंगवाली अपनी बेटीको बलवानोंमें श्रेष्ठ बलदेवको इस राजाने देदिया और आप तप करनेके लिये नारायणके स्थान बदरिकाश्रमको चलागया ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा-चतुर्थ मनुसुत नभग की, कहौं सहित विस्तार।
अम्बरीष ताके तनय, भये भक्त आधार॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, नभगका पुत्र नाभाग हुआ इस नाभागने जब बहुत काल तक गुरुकुलमें वास किया, तब नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भ्रातालोगोंने झगडा करनेके समय इनके लिये पिताके धनका अंश नहीं रक्खा ॥ १ ॥ जब नाभाग ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके गुरुकुलसे अपने घरपर आया, तब उसके भाइयोंने पिताकोही उस भागमें रक्खा, अर्थात् जब नाभागने आनकर भाइयोंसे पूछा कि, तुमने हमारे लिये क्या रक्खाहै? तब भाइयोंने कहा कि, हमने तुम्हारे अर्थ पिताकोही अंश स्वरूपकर रक्खा है। इसलिये तुम पिताको ग्रहण करो। यह सुन नाभागने पिताजीके निकट जायकर कहा कि, हे पितः! हमारे बडे भाइयोंने आपको किसलिये हमारा भाग बनाया है? तब पिताजी बोले कि, हे वत्स! तुम उनकी बातका विश्वास मत करो, क्योंकि हम भागकी समान भोगने योग्यवस्तु नहीं हैं ॥ २ ॥ परन्तु तुम्हारे भ्राताओंने जो हमको तुम्हारा भाग बताया है इसलिये हम तुम्हारी जीविकाका उपाय बतलाये देते हैं. हे विद्वन्! अंगिरा मुनि लोग यज्ञ कर रहे हैं, वह लोग यद्यपि सुबुद्धिमान् हैं, तौभी वह विहित षडयज्ञ उपस्थित होनेपर प्रत्येक षष्ठ दिवसमें कर्मको प्राप्त होकर ज्ञानके अभावसे उनके अनुष्ठानमें मोहित होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ तुम जाकर उन महात्माओंको विश्वदेव सम्बन्धीय दो सूक्त पढाओ। कर्मके समाप्त होनेपर जब वह स्वर्गमें गमन करेंगे, तब यज्ञका

बचाहुआ धन अवश्य तुमको देदेंगे, जाओ विलम्ब न करो। इसी समय उनके निकट चले जाओ हे राजन्! जब इस प्रकार नाभागने अपने पितासे सुना, तो उन्होंने ऐसाही किया और वह सब अंगिरा भी अपने यज्ञका बचा हुआ धन इस नाभागको देकर स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ५ ॥ जब नाभाग वह धन अंगीकार करनेके लिये प्रस्तुत हुआ, तब इतनेहीमें श्यामवर्ण शरीरवाले एक पुरुष (रुद्र) ने उत्तरकी ओरसे आनकर कहा कि यज्ञभूमिमें रक्खाहुआ यह सब धन हमारा है ॥ ६ ॥ तब नाभाग बोले कि, यह कैसे? यह धन तो हमको अभीही ऋषिलोग देगये हैं। नाभागके यह वचन सुन उस पुरुषने कहा "भाई झगडा क्यों करते हो? तुम जाकर अपने पितासे तो पूँछो। उस पुरुषके यह वचन सुनकर नाभागने अपने पिताके निकट जाय यथाविधिसे पूँछा ॥ ७ ॥ यह सुन उसके पिता मनुने कहा कि, वत्स दक्षके यज्ञमें जो वस्तु बची थी, ऋषि लोगोंने उन सबको भगवान् रुद्रका भाग बताया था, अधिक करके वह ईश्वर सबही कुछ पाने योग्य हैं। फिर यज्ञमें बचे हुएकी तो बातही क्या है ॥ ८ ॥ यह सुनकर नाभाग फिर उस पुरुष (रुद्र) के निकट आय शिर नवायकर बोला कि, हे ईश! यज्ञभूमिमें पडेहुए सब धनके आप अधिकारी हैं यह बात हमसे हमारे पिताने कही है। इसलिये प्रसन्न होकर आप हमारा अपराध क्षमा कीजिये, हम मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करते हैं ॥ ॥ ९ ॥ नाभागकी विनती सुनकर रुद्रजीने कहा। "तुम्हारे पिताने धर्म वाक्य कहा है। और तुमभी धर्म वाक्य कहते हो इसलिये तुम मंत्रके जाननेवालेको हम ज्ञानरूप सनातन ब्रह्म देतेहैं ॥ १० ॥ और यज्ञका बचा हुआ जो धनहै इसको भी तुम ग्रहण करो। क्योंकि हमने यह तुमको दिया।" हे राजन्! धर्मवत्सल भगवान् रुद्रजी इस प्रकारसे कहकर वहीं अंतर्धान होगये ॥ ११ ॥ जो पुरुष भली भाँतिसे सावधानहो संध्या और प्रातःकालके समय इस उपाख्यानको सुनेगा, वह इसके प्रभावसे विद्वान् और मंत्रका जाननेवाला हो अभिलाषा किया हुआ धन पावेगा ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित्! इसी नाभागसे अम्बरीषकी उत्पत्ति हुई, जो ब्रह्मशाप कहींभी निष्फल नहीं होता, वहभी अर्थात् ब्राह्मण (दुर्वासा)की बनाई कृत्यारूप अग्निभी जिनको स्पर्श न करसक्ती, इसलिये वह परमभक्त और अतिशय बुद्धिमान् हुए ॥ १३ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! बुद्धिमान् राजा अम्बरीषके चारित्र सुननेकी मुझे बडी अभिलाषा है, बडे आश्चर्यकी बात है कि, ब्रह्मनिर्मित कृत्यानल जो अति दुरत्यय है, वहभी राजा अम्बरीषको ठहरानेके लिये सामर्थ्यवान् न हुई ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग! राजा अम्बरीष सप्त द्वीप पृथ्वी, अक्षय सम्पदा और पृथ्वीके अतुल ऐश्वर्यको पायकर यद्यपि यह सब पदार्थ और पुरुषोंको अति दुर्लभ हैं, स्वप्नकी समान झूंठे समझने लगा, क्योंकि विभवके नाशका न जाननेवाला पुरुषभी विभवमें अथवा उसके अंशसे मोहको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ और इस राजाने भगवान् वासुदेवमें और उनके भक्त सब साधुओंमें उस परमभाव (भक्ति) को प्राप्तहुआ था,

जिससे यह विश्व अति तुच्छ जानपडताहै ॥ १६ ॥ अधिक करके उन्होंने श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचंद्रजीके पादारविन्दमें अपने चित्तको अर्पण करदिया था । और अपने वचनोंको वैकुण्ठके गुणवर्णनमें लगाया था, अपने दोनों हाथ हरिमंदिरके मार्जनादिमें लगादिये थे, अपने कानोंको अच्युत सत्कथाओंके श्रवण करनेमें लगादिया था, नेत्रोंको मुकुन्दके रूप देखनेमें लगा रक्खा था अंग संगको भगवत् सेवकोंके शरीरस्पर्शमें नासिकाको भगवच्चरण कमलके संयोगसे श्रेष्ठ तुलसीका जो सौरभ है उसके ग्रहणमें और रसनाको भगवान् के प्रति निवेदित अन्नादिके स्वाद देखनेमें तत्पर कर रक्खा था और चरण हरिके क्षेत्रमें जानेके लिये नियतकर रक्खे थे.इन्होंने अपना मस्तक हृषीकेशके चरणोंमें लगा दिया था. चन्द्रमा आदिकी सेवा दासभावसे करता था, कुछ विषयकी इच्छासे नहीं. उत्तम श्लोक भगवान्के जन जिस प्रकार इन वस्तुओंमें प्रीति रखते थे ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे सब कर्मकलापोंको राजाने यज्ञपति भगवान्के अर्पण कर दिया था और भगवद्भक्त ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार राज्यका पालन करता था ॥ १८ ॥ और अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवान्की आराधनामें सदा लगा रहता था. इन यज्ञोंके अंग और दक्षिणामें बहुत धन लगाता था, और यह सब यज्ञ वसिष्ठ, असित, गौतमादि ऋषियोंके कारणसे विस्तारित होते थे. हे राजन् ! धन्वदेश (मारवाड) में जहाँ सरस्वतीजी बहती थी वहाँपर राजा अम्बरीषने इन यज्ञोंको कियाथा ॥ १९ ॥ उनके यज्ञमें सदस्य और ऋत्विकादि वसन भूषणादि द्वारा सज धजकर देवतालोगोंकी समान रूपवाले दिखाई देते थे, आश्चर्य देखनेकी उत्कण्ठासे उन सभासदोंके पलक तलकभी नहीं लगते थे. इसलिये वह सबप्रकारसे देवतालोगोंकी समान होजाते थे ॥ २० ॥ और राजा अम्बरीषकी प्रजाभी देवताओंके प्यारे स्वर्गलोककी चाहना नहीं रखती थी. केवल भगवच्चारित्र श्रवण और कीर्तन करनेमें लगी रहतीथी, फिर इससे उनके संबंधमें क्या कहाजाय ? बस जो पुरुष अपने हृदयमें भगवान् मुकुन्दको देखता है और स्वरूप सुखके द्वारा जो अतिशय आनन्द पाता है । इससे सिद्ध लोगोंको भी दुर्लभ जो समस्त विषय हैं वह सब इस पुरुषको आनन्द नहीं उपजाय सक्ते । वा हर्षित कराय सक्ते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ अधिक करके इस प्रकार राजा अम्बरीषने स्त्री, पुत्र, मित्र, हाथी, घोडे, रथादि व अक्षयरत्न भूषणादि व अनंत कोषकोभी वृथा समझा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यद्यपि राजा अम्बरीष इस प्रकार विरागी होगया था तौभी अपने शत्रुओंके जीतनेको असमर्थ नहीं हुआ, भगवान् वासुदेवने इस राजर्षिके भक्तिभावसे प्रसन्न हो जिससे शत्रुकी सेनाको भय होवै और भक्तोंकी रक्षा होवै, ऐसा सुदर्शन चक्र उनको देदिया था ॥ २४ ॥ हे राजन् ! यह राजा अम्बरीष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करनेकी इच्छासे अपनी भार्या जो कि, शीलतामें अपनेहीं समानथी, उसके साथ मिलकर एक वर्षतक अखंड एकादशीके व्रतको धारण करने लगे ॥ २५ ॥ एक समय मथुरामें जाय व्रतके अंतमें कि, जब कार्तिक महीनेके तीन दिन उपवास किया था । कालिन्दीमें स्नानकर मधुवनमें श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा

करी ॥ २६ ॥ महाभिषेककी विधिसे सब सामग्रियोंकी सम्पातिसे वस्त्राभूषण, गंध, फूल, मालाके द्वारा एकाग्रचित्तसे मुरलीमनोहरकी पूजा करने लगे तिसके उपरान्त बडे भाग्य-वाले सिद्धकाम ब्राह्मणोंकी भक्तिभावसे पूजा करने लगा ॥ २७ ॥ जिनके सींग और खुर चांदीसे मढेथे शरीरमें शोभायमान वस्त्र पहर रहीं थीं, दुधारी, थीं, स्वर्णलता, वयस रूप और वत्सादि श्रेष्ठ सम्पत्तियोंसे भूषितथीं, ऐसी साठ करोड (६००००००००) गायें राजा अम्बरीषने साधु ब्राह्मणोंको दक्षिणामें देदीं इसके पीछे ब्राह्मण लोगोंको षड्रस भोजन कराय ॥ २८ ॥ उनकी आज्ञा ले आपभी व्रत पारण करनेको तत्पर हुआ। हे राजन्! राजा अम्बरीष व्रत पारणा करनेको जाताही था कि, इसी अवसरमें दुर्वासा मुनि अतिथिकी भाँति उन राजा अम्वरीषके स्थानमें आये ॥ २९ ॥ दुर्वासा मुनिको देखतेही राजा अम्बरीषने व्रत पारणा नहीं किया और उसीसमय आकर प्रणाम व पूजा करके उनका भली भाँतिसे आदर सन्मान किया. फिर विनीतभावसे चरणोंके निकट खडा होकर भोजन करनेके लिये उनसे प्रार्थना की ॥ ३० ॥ राजाकी इस प्रार्थनासे दुर्वासा ऋषि हर्षित हो भोजन करना स्वीकार कर बोले कि, अभी नियमित मध्याह्नके नित्यकर्म हमने समाप्त नहीं किये हैं, यह कहकर नित्यकर्म करनेको यमुनाके तटपर गये। तिसके पीछे ब्रह्मचिन्ता करते करते यमुनाके पवित्र जलमें स्नान किया ॥ ३१ ॥ हे राजन्! जब दुर्वासा मुनि मध्याह्न कालकी क्रिया करने गये तो वह बहुत विलम्ब होनेपरभी वहाँ नहीं गये इस ओर द्वाद-शीका केवल अर्द्ध मुहूर्त शेष रहगया, इस मुहूर्त्तमें पारणा न करनेसे व्रतमें विकारहोजायगा धर्मज्ञ अम्बरीष राजा धर्मसंकटमें पड ब्राह्मणों सहित विचार करने लगे ॥ ३२ ॥ राजाने कहा कि, जो दोष, ब्राह्मणके अतिक्रममें है, द्वादशीमें पारणा न करनेसेभी वही दोष है, अब हम क्याकरें क्या करनेसे मेरा भला होगा? और अधर्म मुझको न स्पर्श कर सकेगा ॥ ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंके सहित इस प्रकार विचार करके राजाने फिर यह निश्चय किया कि, केवल चरणामृत पीकर व्रत समाप्त किया जायगा क्योंकि केवल जल पान करनेको मुनि लोगोंने भोजन अभोजन दोनों कहा है ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! राजा अम्बरीषने इसप्रकार विचार मनमें भगवान् वासुदेवका स्मरणकर जैसेही चरणामृत पिया वैसेही द्विजागमन देखा ॥ ॥ ३५ ॥ अर्थात् उसी समय दुर्वासाजी नित्यकर्म समाप्त करके यमुनाके किनारेसे राजा अम्बरीषके स्थानपर आन पहुँचे। यद्यपि राजाने उन मुनिको देखकर आनन्द प्रकाशित किया और हाथ जोड उनके सम्मुख खडेहुए तौभी इस राजा अम्बरीषका आचरण दुर्वासा ऋषिने ध्यान धरकर जानलिया ॥ ३६ ॥ इसलिये क्रोधसे कम्पित शरीरहो, भौंहें टेढीकर हाथ जोडे खडे हुए राजा अम्बरीषसे कहने लगे कि ॥ ३७ ॥ अहो! यह पुरुष कैसा निर्लज्ज है, धन सम्पत्तिके मदसे अत्यन्त मतवाला होरहा है, अपने आपको ईश्वर मानता है, इसके धर्मव्यतिक्रमको तो देखो ॥ ३८ ॥ हम इसके आश्रममें अतिथि आये हैं; इसने आपही पहुनई करनेके लिये हमको निमंत्रण दिया परन्तु हमारा भोजन होनेसे प्रथमही यह इच्छानुसार भोजन करके बैठगया। इसका फल इसको अभी दिखाता-

हूं ॥ ३९ ॥ इसप्रकार कहते कहते क्रोधायमान हो मस्तकसे एक जटा उखाड उस राजाके सामने कालाग्निकी समान एक कृत्या बनाई ॥ ४० ॥ हे राजन्! वह कृत्या खड्ग हाथमें ले अपने चरण धरनेसे पृथ्वीको कम्पायमान करती हुई प्रकाश पूर्वक आई राजा अम्बरीष उसको अपने सन्मुख आता हुआ देखकरभी अपने स्थानसे चलायमान नहीं हुए ॥ ४१ ॥ राजा अम्बरीष विष्णु भगवान्‌के परमभक्त थे, उन्होंने अपने भक्तपर यह भीर पडी देख अपने चक्रको आज्ञा दी, परम पुरुष भगवान्‌की आज्ञा पातेही अपने तेजसे इस कृत्याका भस्म करने लगा जिसप्रकार दावानल वनमें रहते हुए क्रोधित सर्पोंको दग्ध करे ॥ ४२ ॥ जब दुर्वासा ऋषिने देखा कि, हमारा किया यत्न विफल हुआ और अब यह चक्र हमारीही ओरको चला आता है, इसलिये भीत हो प्राणोंकी रक्षा करनेको त्रासके मारे सब दिशाओंमें भागने लगे ॥ ४३ ॥ हे राजन्! जैसे लपट युक्त उठी हुई दावानल बनैले सर्पोंके पीछे दौडती है, वैसेही भगवान्‌जीका चक्र इन ऋषिके पीछे पीछे दौडा। दुर्वासा मुनि इस चक्रको इसप्रकारसे अपने पीछे आता हुआ देखकर सुमेरुकी गुफामें प्रवेश करनेकी इच्छाकर महावेगसे दौडने लगे ॥ ४४ ॥ दौडते दौडते दिक्, आकाश, भूमि, विवर, सागर और लोकपालसहित सब लोकोंमें और स्वर्गमेंभी दुर्वासा गये परन्तु जहाँ वह जाते थे उस उस स्थानमें दुर्द्धर्ष चक्रभी उनके पीछे लगाही चला जाता था ॥ ४५ ॥ इसप्रकार शरण ढूँढते ढूँढते सब जगहमें भ्रमण करके यह कहींभी अपने किसी रक्षकको नहीं पासके तब त्रासित हो पद्मयोनि ब्रह्माजीके निकट गये और कातरता प्रकाश करके बोले कि, हे भगवन्! हे आत्मयोने!! इस दुःसह हरिके चक्रसे आप मेरी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, परार्द्धनामक कालक्रीडाके अन्तमें कालस्वरूप जो विष्णु भगवान् हैं, वह जब सबके दग्ध करनेकी वासना करते हैं, तब उनकी भ्रुकुटी टेढी होजाती है, ब्रह्माण्ड समेत हमारा यह स्थानभी भस्म हो जायगा और हम (ब्रह्मा) शिव, दक्ष, भृगु आदि और प्रजापति, भूतपति, सुरपति इत्यादि जिनकी आज्ञाको प्राप्त होकर जिस प्रकारसे लोकहित हो, उसीप्रकार अपने मस्तकपर सब नियमोंको रखते हैं सो तुमने उनकेही भक्तसे द्रोह किया है। इसलिये तुम्हारी रक्षा करनेकी सामर्थ्य हममें नहीं है ॥ ४७ ॥-४८ ॥ हे राजन्! जब ब्रह्माजीनेभी शरण नहीं दी, तब दुर्वासा कैलासके शिखरपर गये और विष्णुचक्रसे अति सन्तापित होनेके कारण कातरता प्रगट कर भगवान् महादेवजीकी शरण हुये ॥ ४९ ॥ महादेवजी बोले कि, हे तात! उन महान् परमेश्वरके सन्मुख हमारी प्रभुताई कुछ नहीं चलेगी, उनसे ब्रह्मादि रूपका उपाधिभूत यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और इस प्रकारसे दृश्यमान ब्रह्माण्डका प्रमाण व और पदार्थ भी जिनमें कल्पित हैं; लोकपालाभिमानी हम हजार हजार वार भ्रान्त हुआ करते हैं. हे वत्स! सनत्कुमार, नारद, भगवान्, ब्रह्मा, कपिल (जिनके अन्तका अंधकार दूर हो गया था) देवल, धर्म, आसुरि और मरीचि आदि और भी सिद्धगण, सर्वज्ञ होकरभी जिनकी मायाको नहीं जान सके बरन् स्वयं उनकी

मायासे घिरे हुए हैं, उन्हीं विश्वेश्वरका यह शस्त्र (चक्र) है, सो हमलोग किसी भाँति इसे नहीं सहसक्ते इसलिये तुम उन्हीं विष्णु भगवान्‌की शरण जाओ वही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ ५० ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकारसे दुर्वासाजीको महादेवजीनेभी शरणमें न रक्खा और कोरा जवाब दिया तब वह भगवान्‌के धाम वैकुण्ठको गये कि, जहाँ भगवान् श्रीनिवास लक्ष्मीजीके साथ विराजमान् थे ॥ ५१ ॥ यह ऋषि कम्पायमान होकर श्रीभगवान्‌के चरणोंपर गिरपडे और कहने लगे कि, हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे साधुजनोंका भय हरनेवाले ! हे प्रभो ! मैंने वडा भारी अपराध किया है. हे विश्वभावन ! मेरी रक्षा करो ॥ ५२ ॥ हे प्रभो ! आपके परमप्रभावको न जानकर मैंने आपके प्रियभक्तका अपराध किया है. सो हे प्रभो ! अब इस अपराधका आप प्रायश्चित्त बताइये कि, जिस्से मेरा छुटकारा हो. हे भगवन् ! जो आपके भक्तका द्रोह करता है उसका छुटकारा नहीं हो सक्ता । यह बात ठीक नहीं. क्योंकि जिनका नाम लेतेही नरकमें पडाहुआ पुरुष मुक्तिको प्राप्त होजाता है, उसकेलिये असाध्य क्या है ? ॥ ५३ ॥ यह वचन सुनकर श्रीभगवान् बोले कि, हम भक्तके वश हैं, इसलिये परवश हैं. भक्तजन हमारे प्रिय हैं, इससे साधुगण हमारे हृदयको ग्रसेहुये हैं ॥ ५४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिन मनुष्योंकी गति एक मुझसेही होती है, उन सब साधु पुरुषोंके सिवाय अपनी आत्माको और अत्यन्त लक्ष्मीकोभी प्यार नहीं करते ॥ ५५ ॥ जो पुरुषगण, स्त्री, पुत्र, गृह, स्वतन, धन, प्राण और इसलोक व परलोक सबको छोडकर हमारी शरणमें आये हैं, हम उनको त्याग करके किस प्रकार उत्साहित होसक्ते हैं ? ॥ ५६ ॥ हे मुनि महाराज ! सर्वत्र समदर्शी साधुपुरुष लोग हममें अपने अपने हृदयको बाँध हमको अपने वश किये हुये हैं कि जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने श्रेष्ठपतिको वश करलेती है ॥ ५७ ॥ और वह भक्तगण साधुसेवा द्वारा सालोक्यादि चारों पदार्थोंके सन्मुख आनेपरभी उनके ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करते, वह साधुसेवासेही परितृप्त होजाते हैं इसलिये कालसे नाश होनेवाली और किसी वस्तुमें उनकी अभिलाषा होनेकी क्या सम्भावना है ॥ ५८ ॥ और जिन २ पुरुषोंने हमको अपना हृदय अर्पण करदिया, है हम उनके हृदयको जानते हैं, वह हमारे अतिरिक्त और किसीको नहीं जानते । और हमभी उनके अतिरिक्त और किसीको नहीं समझते ॥ ५९ ॥ इसलिये हे मुने ! जिससे कि, यह तुम्हें हिंसा उत्पन्न हुई है उसकेही निकट तुम विना विलम्ब किये चलेजाओ. हे मुने ! क्या तुम यह नहीं जानते हो कि, साधुलोगोंके ऊपर चलाया हुआ तेज प्रहार करने वालेकाही अमंगल करता है ॥ ॥ ६० ॥ ब्राह्मणोंकी तपस्या और विद्या यह दोनों भला करनेवाली तो हैं परन्तु, दुर्विनीत स्वामीके लिये यह दोनों विपरीत फल देनेवाली है, परन्तु इस समय अपनी तप-विद्याको मनमें लाय इस अनर्थ घटनापर विस्मय करना आपको योग्य नहीं है ॥ ६१ ॥ इस समय तुम महाभाग नाभागपुत्र राजा अम्बरीषके निकट जाओ । जिससे तुम्हारा मंगल हो,उस पृथ्वीपतिसे क्षमा माँगनेका यत्न करो।तब इस उत्पातकी शान्ति होगी॥६२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-अम्बरीष हरिचक्रकी, विनय करी शिर नाय।
ब्राह्मणकी रक्षा करी, इस पंचम अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण! चक्रकी अग्निसे संतापित हुये दुर्वासा ऋषि विष्णु भगवान्‌की आज्ञासे उसी समय राजा अम्बरीषके यहाँ गये और दुःखित हो इस राजर्षिके चरण पकडनेको झपटे ॥ १ ॥ जब यह चरण छूने लगे, तब राजर्षि अम्बरीष अत्यन्त लज्जित और दुर्वासाजीको ऐसा व्याकुल देख व्यथा पाय भगवान्‌के चक्रकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ राजा अम्बरीष बोले कि, हे सुदर्शन! तुमही भगवान् सूर्य हो और तुमही सब नक्षत्रोंके स्वामी चंद्रमा हो, तुमही जल, तुमही भूमि, तुमही आकाश, तुमही पवन, तुमही मात्रा और तुमहीं सब इन्द्रिय हो, अर्थात् तुम्हारीही शक्तिसे अग्नि आदि अपना अपना कार्य करते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये तुम्हें नमस्कार है। हे अच्युतप्रिय! तुम्हारी हजार धार हैं हे सर्वघातिन्! हे पृथ्वीनाथ! इस ब्राह्मणकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे सुदर्शन! ब्राह्मणकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य कर्म है। क्योंकि तुम साक्षात् धर्म, अमृत, सत्य, यज्ञमूर्ति और सब यज्ञोंके भोगनेवाले हो, अधिक करके तुमही लोकपाल और ईश्वरके परम सामर्थ्य हो। हे चक्र! तुम्हारा नाम सुदर्शन है, इसका अर्थ भगवान्‌के शोभायमान दर्शन, भगवान्‌के दर्शनसेही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, इसलिये तुमही सर्वात्मा हो ॥ ५ ॥ और तुम अद्भुतकर्मकारी हो, क्योंकि अखिल धर्मके सेतुस्वरूप हो, इस लिये तुमही अधर्म करतेहुये असुर लोगोंको धूमकेतु अर्थात् दाहक हो, तुम्हारा तेजसमूह अतिउज्ज्वल है, तुम त्रिलोकीके रक्षक हो, तुम मनकी समान वेगवान् हो तुम्हारी स्तुति करनेको सामर्थ्य किसमें है? इसलिये मैं तुम्हारे प्रति केवल नमः शब्दका प्रयोग करता हूं ॥ ६ ॥ हे सुदर्शन! तुम्हारे धर्ममय तेजसे अंधकार दूर होता है और महात्मा लोगोंकी दृष्टि प्रकाशित होती है। हे वाणीनाथ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। सत्, असत्, पर, अपर, इत्यादि समस्त पदार्थ तुम्हारेही स्वरूप हैं। क्योंकि सूर्यादिका प्रकाश भी तुमहीसे होता है ॥ ७ ॥ हे अनन्त अनञ्जन भगवान्‌के करसे जब तुम छोडेजाते हो, तब दैत्य दानवोंके बीचमें प्रवेश कर उनकी भुजायें, पेट, जाँघें, चरण और कन्धोंको काटतेहुए समरमें विराजमान होतेहो ॥ ८ ॥ हे जगत्त्रातः! तुम ऐसे गुणोंसे युक्त हो कि, भगवान् गदाधरने खलपुरुषोंके मारनेको तुम्हें नियुक्त किया है। इसलिये हमारे कुलका सौभाग्य करनेको तुम इस विपद्‌में पडेहुए ब्राह्मणका मंगल करो। ऐसा करनेसे तुम्हारा बडाभारी अनुग्रह मेरे ऊपर होगा ॥ ९ ॥ हे सुदर्शन! यदि हमारे किसी दान करनेसे वा किसी यज्ञ करनेसे कुछ पुण्य हुआ हो। यदि मैंने अपने धर्मका भली भाँतिसे अनुष्ठान किया हो, यदि मेरे कुलदेवता ब्राह्मण हों, तो मेरी यही प्रार्थना है कि, इस धर्मके प्रभावसे यह मुनिजी शीघ्र निष्कण्टक होजाँय ॥ १० ॥ और अनुपम वह सब प्राणियोंके प्रति आत्मभावके हेतु सर्वगुणोंके आश्रय भगवान् यदि हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो उनके प्रसादसे यह ब्राह्मण शीघ्र संतापरहित हों ॥ ११ ॥ हे राजन्! जब

राजा अम्बरीषने इस प्रकार स्तुति की, तब भगवान्का सुदर्शन चक्र, जो ब्राह्मण श्रेष्ठ दुर्वासाजीको जलाये देता था, इन राजर्षिकी प्रार्थनासे शान्त होगया ॥ १२ ॥ इसलिये दुर्वासाजी अस्त्राग्निके तापसे छुटकारा पाय कल्याणवान् हुए। फिर दुर्वासा मुनि राजाको आशीर्वाददे अनेक अनेक प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥ दुर्वासाजी बोले, अहो! भगवद्भक्तोंकी अद्भुत महिमा आज हमने देखी हे राजन्! यद्यपि हमने अपराध किया तौभी तुमने हमारी भलाईही चाही ॥ १४ ॥ अथवा जिन पुरुषोंने सात्वतपति भगवान्को अपने वश किया है उन महात्माने साधु पुरुषोंके लिये कौन बात दुस्त्यज वा दुर्लभ है? ॥ १५॥ जिनका नामश्रवण करतेही पुरुष निर्मल होजाताहै, तीर्थपद भगवान्के उन दासोंसे कौनसा कार्य बचरहा है ॥ १६ ॥ हे राजन्! तुम अतिकरुणात्मा हो, हमपर आपने बडाभारी अनुग्रह किया क्योंकि हमारे अपराधकी ओर न निहार कर हमारे प्राणोंकी रक्षा की ॥ ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! अबतक राजा अम्बरीषने भोजन नहीं किया था इस राजाने फिर कभी इनके आनेको प्रार्थना की। और वारम्वार इनके चरण कमलोंकी वन्दना करके भोजन कराया ॥ १८ ॥ आदर सहित आये हुए सर्वाभिलाषकी पूर्ण करनेवाली पहुनईको मानकर महर्षि दुर्वासाजीको अति सन्तोष उत्पन्न हुआ. दुर्वासाजी आहार करनेके उपरान्त राजासे बोले कि, हे महाराज! तुमभी भोजन करो ॥ ॥ १९ ॥ हे महिपाल! तुम परम भागवतहो। हमारे ऊपर तुम्हारा बडा अनुग्रह हुआ तुम्हारे दर्शनकर और तुम्हारे सम्भाषण करनेसे जिससे कि, आत्मामें बुद्धि होती है ऐसा आतिथ्य जो तुमने किया इससे हमको बहुतही प्रीति उत्पन्न हुई है ॥ २० ॥ स्वर्गवासी देवता लोगोंकी स्त्रियें इस निर्मल कर्मको सदा गावेंगी और पृथ्वीके रहनेवाले सदा तुम्हारी परमपवित्र कीर्तिको गावेंगे ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! महर्षि दुर्वासाजी सन्तुष्टसे इस प्रकार कहकर राजर्षि अम्बरीषके साथ वार्तालाप करके आकाश मार्गसे हो, ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २२ ॥ परन्तु वह गमन करके जबतक न आये थे, तबलों एक वर्ष समय तकके बीतनेपरभी राजा अम्बरीष उनके दर्शनकी इच्छासे केवल जलही पीकर रहे थे ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त एक वर्ष पीछे जब वह ऋषि आये, तब राजा अम्बरीषने ब्राह्मण भोजनसे जो पवित्र हुआ आहार सो भोजन किया और ऋषिकी विपद व उद्धारकी बात स्मरण करके अपने धैर्यादि रूप वीर्य और भगवान्के प्रभावको आधार मानने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन्! अम्बरीष राजामें इस प्रकारके अनेक गुण हैं, वह अपने क्रिया कर्मसे परमात्मा भगवान् वासुदेवके प्रति परमभक्ति दिखलाते थे उसी भक्तिके प्रभावसे ब्रह्मपदके सहित सब प्रकारके भोग इनके सन्मुख सदा प्राप्त रहते थे, परन्तु यह सब उनको नरककी समान जानते थे ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! तिसके उपरान्त यह वीर अपनी समान वीर्यवान् पुत्रको राज्य भार सौंप वनमें चला गया। जब कि इस राजर्षिने अपना मन व आत्मा भगवान्में लगादी थी,

इसलिये उनका गुण प्रवाह विध्वंस होगया। अर्थात् आवागमनसे इनका छुटकारा होगया ॥ २६ ॥ हे राजन् ! राजा अम्बरीषके इस पवित्र चरित्रको जो मनुष्य सुनेंगे और ध्यान करेंगे, सो भगवान्‌के भक्त होंगे। और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन महाराज अम्बरीषके चरित्रको गान करैंगे वह समस्त. भगवान् विष्णुके प्रसादसे सरलतापूर्वक मुक्तपदवीको प्राप्त होंगे ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-अम्बरीष अध्याय षट, अरु शशाद इतिहास।
मानधात इक्ष्वाकु कुल, सौभरि ऋषी विलास ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! राजा अम्वरीषके विरूप, केतुमान और शम्भु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए तिनमें विरूपका पृषदश्व और इसका पुत्र रथीतर हुआ ॥ १ ॥ रथीतरके पुत्र वा कन्या कुछ नहीं हुआ, वह निःसन्तान था, जब इसने सन्तानके लिये महर्षि अंगिराजीसे प्रार्थना की, तब महर्षि अंगिराजीने उनकी भार्यामें ब्रह्मतेजसे युक्त कई पुत्र उत्पन्न कर दिये ॥ २ ॥ हे राजन् ! अंगिराजीसे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, वह रथीतरके क्षेत्रमें उलटा होनेके कारण यद्यपि रथीतर गोत्री हुये थे तौभी अंगिराजीके वीर्यसे उनकी उत्पत्ति होनेके कारण अंगिरस नामसे विख्यात हुए। अधिक करके इनके क्षेत्रोपेत ब्राह्मण होनेपर रथीतरकी दूसरी सन्तानमें मुख्य थे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! " मनुके दश पुत्रोंमें पृषध्र और कवि संसारत्यागी हुए थे, इसलिये उनका वंश नहीं हुआ। रुरुषादि सप्त पुत्रोंका वंश प्रथम कहा गया है इक्ष्वाकुका वंश बहुत बडा है। इसलिये पहले नहीं कहा, अब कहते हैं " छींकें लेतेहुए मनुकी नासिकासे मनुपुत्र इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति हुई। इन इक्ष्वाकुके शत पुत्र हुए। तिनमें विकुक्षि, निमि और दण्डकादि श्रेष्ठ थे ॥ ४ ॥ इन शत पुत्रोंमें पचीस जन विंध्याचल और हिमालय पर्वतके मध्यमें पूर्वकी ओर आर्यावर्त्तकी सम्मुख समुद्र तक एक एक मण्डलके राजा हुए। इसी प्रकार पश्चिममेंभी इनमेंसे पचीस पुत्र एक एक मण्डलके राजा हुए। परन्तु मध्यस्थलमें ज्येष्ठ तीन पुत्र और दक्षिण उत्तरादि भागमें और पुत्रगण राजसिंहासनपर बैठे ॥ ५ ॥ एक दिन राजा इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्ध करनेके लिये विकुक्षिको निकट बुलायकर कहा हे वत्स ! शीघ्र वनमें जाय श्राद्धके लिये पवित्र माँस लाओ ॥ ६ ॥ विकुक्षि " बहुत अच्छा " कह उसी समय वनमें चलागया और श्राद्धके योग्य अनेक पशुओंको मारने लगा। तिसके उपरान्त जब विकुक्षि थककर भूखा होगया, तब इसने भूलकर मारेहुए पशुओंमेंसे एक खरहे (खरगोश) का माँस भूनकर खालिया ॥ ७ ॥ फिर अवशिष्ट माँस लेकर पिताके निकट आया और सब उनको देदिया। इक्ष्वाकु राजाने उस माँसका श्राद्धोचित संस्कार करनेके लिये कुलगुरु वसिष्ठजीको बुलाया तब वशिष्ठजीने कहा कि, यह माँस दूषित होगया, इसलिये श्राद्ध कर्मके योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ जब महर्षि वशिष्ठजीने

सब ब्योरा भलीभाँति कह सुनाया । तब राजाने अपने पुत्रके कर्मको जानकर उसको अपने देशसे निकाल दिया, क्योंकि श्राद्धके योग्य माँसका प्रथम भाग ग्रहण करलेनेसे उसका सदाचार छूटगया था ॥ ९ ॥ तिसके पीछे राजा इक्ष्वाकु वसिष्ठजीके साथ ब्रह्मज्ञानका विचार करने लगे फिर राज्यभोगसे विरागी होगये और योगके द्वारा शरीरको छोड परमतत्त्वको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ जब पिता वनको चले गये, तब विकुक्षि अपने देशमें आय शशाद नामसे विख्यात हो पिताके राज्यको ग्रहणकर उसको पालने लगा, इस शशादने यज्ञोंको करके भगवान् वासुदेवकी पूजा की. इस राजाने शशका माँस जो खालिया था इसलिये इसका नाम शशाद प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ शशादका पुत्र पुरञ्जय हुआ, यह पुत्र इन्द्रवाहन नामसे भी विख्यात था और कोई २ इसको ककुत्स्थभी कहते हैं जिन कर्मोंके करनेसे इनके यह कई नाम हुए, हम उनको कहते हैं । तुम श्रवण करो ॥ १२ ॥ पहले समयमें जब दानवोंका देवता लोगोंके साथ विश्वविनाशन संग्राम होरहा था, उस समय देवताओंने दैत्योंसे पराजितहो इस वीरका अपना सहायक बनाया ॥ १३ ॥ इसने कहा कि जो इन्द्र हमारे वाहन बनें तो हम अवश्य दैत्योंको वध करेंगे यह कहकर इन्होंने इन्द्रको अपना वाहन बनाया था । पहले तो इन्द्रने लाजके मारे इस बातको नहीं माना फिर विश्वात्मा देवदेव विष्णुके कहनेसे पुरञ्जयका वाहन होनेके लिये महावृषभ हुए । " जब इस प्रकारसे इन्द्र वाहन हुए तब इन पुरञ्जयका नाम इन्द्रवाह हुवा " ॥ १४ ॥ तिसके पीछे राजा पुरञ्जय बख्तर पहर दिव्य धनुष और बहुत सारे तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके उस बैलकी पीठपर जाय विराजे । यह देखकर देवता लोग उनकी पूजा करने लगे ॥ १५ ॥ फिर महात्मा पुरञ्जय परमपुरुष विष्णुजीके तेजसे बढकर देवतालोगोंके द्वारा पश्चिम दिशासे दैत्योंकी पुरीको घेरा ॥ १६ ॥ तिसके उपरान्त इन पुरंजयके साथ दैत्यलोगोंका घोर संग्राम हुआ । जो दैत्य संग्राममें इनके सन्मुख आया,सबकोही इस नरनाथने यमराजके भवनको भेज दिया ॥ १७ ॥ प्रलयाग्निके समान इन महाराजके उज्वल बाणोंका उत्पात देख सब बचे बचाये दैत्य पातालको भागगये ॥ ॥ १८ ॥ दैत्योंके भागनेपर इस राजर्षिने स्त्रियोंके सहित समस्त धन और पुर जीतकर देवराज इन्द्रको देदिया । इन कार्योंके करनेसे इन महाराजका पुरञ्जय नाम हुआ ॥ १९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! इस पुरञ्जयका पुत्र अनेना था,इसका पुत्र पृथु, तिससे विश्वगन्धिने जन्म ग्रहण किया,तिसका पुत्र चन्द्र; तिसका युवनाश्व हुआ ॥२०॥ युवनाश्वके पुत्र शावस्त हुआ शावस्तके शावस्ती हुआ जिसने श्रावस्ती पुरी बसाई, इस शावस्तीका पुत्र बृहदश्व, उसका पुत्र कुवलयाश्व हुआ ॥ २१ ॥ इस महाबलवान् राजाने उत्तंक ऋषिका प्रिय कार्य करनेको अपने इक्कीस सहस्र (२१०००) पुत्रोंको साथ ले धुन्धु नामक असुरको मार डाला था ॥ २२ ॥ इससे इसका नाम धुन्धुमार हुआ । परन्तु इनके समस्त पुत्र धुन्धुकी मुखाग्निसे भस्म होगये ॥ २३ ॥ केवल तीन बचे थे अर्थात् दृढाश्व कपिलाश्व और भद्राश्व ॥ २४ ॥ इन तीनोंमें दृढाश्वका पुत्र हर्यश्व और हर्यश्वका पुत्र

निकुम्भ हुआ। निकुम्भका पुत्र बाहुलाश्व कि, जिससे कृशाश्व उत्पन्न हुआ, इस कृशाश्वका पुत्र सेनजित्नामक हुआ ॥ २५ ॥ उसका पुत्र युवनाश्व हुआ। यह युवनाश्व सन्तान रहित था, इसलिये वनको चलागया। इसके सौ १०० स्त्री थीं, संतान न होनेसे वनमें जाकर यह सब अपनी भार्याओंके साथ सदा शोकाकुल रहा करताथा, यह देख वनवासी ऋषि लोगोंने राजापर दया की और पुत्रके लिये सावधानहो उस राजासे इन्द्रदैवत्य यज्ञ करानेलगे ॥ २६ ॥ हे राजन्! अब आश्चर्यकी बात सुनो जब यज्ञ होहीरहा था कि, तब युवनाश्व एकदिन रात्रिके समय प्यासा हो जलके लिय यज्ञशालामें गया, उस समय यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण सोरहे थे, तब राजाने उस जलको उठायकर पीलिया कि जो राजाकी स्त्रीको देनेके लिये मंत्रसे पढकर रक्खागयाथा ॥ २७ ॥ जब पुरोहित लोग जागे तो उन्होंने देखा कि, कलशमें जल नहीं। इसलिये विस्मित होकर पूँछा कि "यह कर्म किसकाहै, पुत्रके उत्पन्न करनेवाले जलको कौन पी गया?" ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त जब ज्ञात हुआ कि, ईश्वर प्रेरित होकर राजाने यह जल स्वयंपान करलिया है। तब "अहो! भाग्य बडा बली है" पुरुषका बल किसी कामका नहीं। यह वाक्य उच्चारण करते हुये ईश्वरको वारम्वार नमस्कार करनेलगे ॥ २९ ॥ इसके पीछे जब समय पूर्ण होगया, तब युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाडकर चक्रवर्ति लक्षणोंसे युक्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ यह देखकर ब्राह्मणलोग दुःखित हो यह कहकर चिल्लाने लगे कि, हा! यह कुमार दूध पीनेको बहुत रोरहा है; सो अब क्या पियेगा तब देवराज इन्द्र वत्स! रोवै मत "मांधाता अर्थात् मुझे पानकर" यह कहा। और अपनी अंगुली पीनेको दी इसीलिये इनका नाम मान्धाता हुआ ॥ ३१ ॥ मान्धाताके पिता युवनाश्व देव ब्राह्मणोंके प्रसादसे मरे नहीं वरन् उन्होंने तप करके कुछ दिनों पीछे उसी स्थानमें सिद्धि प्राप्त की ॥ ३२ ॥ रावणादि चोरगण इस मान्धाताके प्रतापसे कम्पायमान हो त्रासित हो तेथे इसलिये इन्द्रने मान्धाताका दूसरा नाम 'त्रसद्दस्यु' रक्खा था, तिसके उपरान्त युवनाश्वका पुत्र सम्राट् हो भगवान् वासुदेवके तेजसे अकेलाही सप्तद्वीपोंको पालता था ॥ ३३ ॥ आत्मवान् होकरभी अनेक अनेक दक्षिणा दे, अनेक यज्ञ करने लगा, उनसे यज्ञरूपी सर्व देवमय सर्वात्मक सब इन्द्रियोंसे परे उन देवताकी पूजा करने लगा ॥ ३४ ॥ कि द्रव्य, मंत्र, बलि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विक्, धर्मोपदेश और काल यह सब जिसके स्वरूप हैं ॥ ३५ ॥ हे महाराज परीक्षित्! जहाँसे सूर्य भगवान् उदय होते हैं और जहाँ अस्त हुआ करते हैं। इतनी दूरतक सब स्थान युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके क्षेत्र कहे जाते थे ॥ ३६ ॥ इस राजा मान्धाताके, शशविन्दुकी पुत्री इन्दुमतीके गर्भसे पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचुकुन्द यह तीन पुत्र हुये ॥ ३७ ॥ इन तीन पुत्रोंकी (५०) पचास बहने थीं, अर्थात् तीन पुत्रोंके अतिरिक्त मान्धाताके पचास ५० कन्या हुई थीं और वह सब सौभरि ऋषिको व्याही गई ॥ ३८ ॥ हे राजन्! सौभरि यमुनाके जलमें बैठे तप कर रहे थे, तब उन्होंने मीनराजाके मैथुनका आनन्द देखा कि,

जिससे इनके भी विवाह करनेमें बडा भारी अनुराग हुआ, इसलिये तप करना छोड मान्धाताके निकट जाय अपनी स्त्री बनानेको एक कन्या माँगी ॥ ३९ ॥ मान्धाताने इन ऋषीश्वरकी प्रार्थना सुनकर कहा कि, हमारी कन्याका स्वयंवर होगा सो जो कन्या तुम्हें वरै; उसको तुम लेना ॥ ४० ॥ यह सुनकर सोभरिने मनमें समझा कि, हम जरा (बुढापा) से जीर्ण होगये हैं और हमारे केश श्वेत होगये हैं, बडी अवस्था होजानेसे मस्तक कम्पायमान होता है, तिसपर हम तपस्वी हैं, यही जानकर राजा हमें कन्या देनेको सम्मत न हुये। इन्होंने हमें स्त्रियोंका कुप्यारा जान छलसे हमको लौटाय दिया, अच्छा अब हम अपनी चेष्टा ऐसी वनाते हैं कि, जिससे मनुष्य स्त्रियोंकी तो बात ही क्या ? सुरसुन्दरीभी देखकर चाहनाकर वैठे। यह सोच विचार इस कार्यके करनेको निश्चय किया ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त तप प्रभावसे इनका रूप वैसाही होगया जैसा कि इन्होंने सोचा था, एक समय राजपुरीका प्रतिहारी इनको राजकन्याओंके अंन्तःपुरमें लेगया। तिससे पचासों कन्याओंने इनको अपना पति वरण किया ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! मान्धाताकी कन्याओंमें प्रथम परस्पर बडा प्रेम था. परन्तु सौभीर ऋषिसे व्याह करनेके लिये उनमें चित्त लगाय सबकी सब परस्पर क्लेश करने लगीं और बोलीं कि, "यह हमारे योग्य वर हैं, तुम्हारे योग्य नहीं है" बस इन ऋषिके लिये उनमें बडा क्लेश मचने लगा। तव सौभरि ऋषि बोले कि, तुम सवही हमसे विवाह करलो ॥ ४३ ॥ सौभरि ऋषि तपःसामर्थ्यसम्पन्न थे उनके कठिन तपप्रभावसे उसी समय प्रत्येक भवनमें अनमोल सामग्री प्रस्तुत हुई। और अनेक प्रकारके वन, उपवन, शोभायमान होने लगे सरोवरोंमें सुगन्धित कुमुद, कह्लारके वन फूल उठे। जितने गृह थे, सब दास दासियोंसे भलीभाँति शोभायमान होगये और सब कहीं भ्रमर गुंजार करने लगे ॥ बन्दियोंने मधुर स्वरसे गाना आरम्भ किया। वे ऋषि महामोलकी शय्या, आसन, वसन, भूषण, स्नान व उबटनादिसे सम्पन्न हो सब गृह व उपवनादिमें अपनी सब स्त्रियोंसहित सदा विहार करने लगे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! सौभरीका गृहस्थाश्रम देखकर सातद्वीप पृथ्वीके राजा मान्धाताजी अति विस्मित होगये। उन्होंने अपने राज्य और सम्पत्तिका गर्व छोडदिया ॥ ४५ ॥ सौभरि ऋषि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें रहकर भोग विलासके सुख भोगने लगे परन्तु तौ भी उनको किसी प्रकारसे तृप्ति नहीं हुई कि, जिस प्रकार घीकी बूँद गिरनेसे अग्नि बढती है घटती नहीं ॥ ४६ ॥ किसी समय ऋग्वेदाचार्य यह सौभरि ऋषि एकान्तमें बैठ अपने आपेकी चिन्ता करने लगे। तब वह उस तपस्याकी हानिको समझे। जो उनको मत्स्यके संसर्गसे प्राप्त हुई थी ॥ ४७ ॥ इसलिये अछताय पछतायकर आपही आप बोले कि, हाय ! हम साधु चरित्र व्रत और तपस्वी थे, हमारा यह नाश देखो। जलमें जलचरके संगमें रहनेसे सदाका इकट्ठा किया तपस्या रत्न खो दिया ॥ ४८ ॥ मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि, दाम्पत्य धर्मवान् पुरुषोंका संग त्याग करैं और इन्द्रियोंकी अग्नि उत्पन्न करनेको रोकना भी उनका आवश्यकीय कार्य है। अकेले निर्जन वनमें

भ्रमण करके अनन्त परमेश्वरमें चित्त लगाना उचित है। जो कहीं प्रसङ्ग आजाय तो ईश्वरके लिये केवल धर्मवान् साधुका संग करना चाहिये ॥४९॥ हम अकेले जलमें तप कररहे थे, वहाँ मत्स्यसंसर्गवश भार्या ग्रहण करनेकी हमारी अभिलाषा हुई और एकके बदले(५०)पचास करी और एक एक स्त्रीके गर्भसे सौ सौ पुत्र उत्पन्न हुए कि जिससे सब पाँच हजार हुए। तौ भी हम इस लोक व परलोकके मनोरथका अंत नहीं पाते, क्योंकि मायाके गुणसे मेरी मति हरी गई। इसलिये मैं विषयमें ही पुरुषार्थ समझताहूँ ॥५०॥ हे राजन्! जब सौभारि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें वास करते करते विरक्त हुए तब संग छोडनेको वानप्रस्थ धर्म धारणकर वनको चले गये। उनकी पतिपरायण सब स्त्रियें उनके संग संग चलीं ॥५१॥ आत्मज्ञानके जाननेवाले यह मुनि जिससे परमात्मा मिलजाय ऐसी तीक्ष्ण तपस्या करके तीनों अग्नियोंके साथ आत्माको परमात्मामें मिला देते हुए ॥ ५२ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि, हे कुरुकुलभूषण! अपने पतिकी ऐसी आध्यात्मिक गति अर्थात् परब्रह्ममें लीन देख उनकी सब स्त्रियें उनके प्रभावसे उनके पीछे गईं जैसे अग्निके शान्त होजाने पर उसकी लपट उसके संगही बुझ जाती है ॥ ५३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-सप्तम मान्धाता कुलहि, पुरुकुत्स हरिचन्द।
भये सत्यव्रत जगतमें, पूरण परमानन्द ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! मान्धाताके श्रेष्ठ पुत्र अम्बरीषको युवनाश्वने पुत्रभावसे गोद लिया, अम्बरीषका बेटा हारीत हुआ सो मान्धाताके गोत्रमें श्रेष्ठ हुआ ॥१॥ हे राजन्! उरगोंने अपनी बहन नर्मदाको पुरुकुत्ससे विवाह दिया, शेषजीके कहनेसे यह नर्मदा अपने स्वामी पुरुकुत्सको पातालमें ले गई ॥ २ ॥ विष्णुशक्ति धारण करके वध करनेके योग्य अनेक गन्धर्वोंको निहत किया और पीछे आपने नागराजसे अनुपम वर प्राप्त किया। वह वर यह था कि, नर्मदाका यह समस्त रसातलके आनेका व्यापार जो पुरुष स्मरण करैंगे, उनको सर्पसे भय नहीं होगा ॥ ३ ॥ पुरुकुत्सका पुत्र त्रसद्दस्यु, इनके पुत्र अनरण्य, तिनके हर्यश्व, जिनसे वरुणजीने जन्म ग्रहण किया। वरुणका पुत्र त्रिबन्धन हुआ ॥ ४ ॥ त्रिबन्धनका पुत्र सत्यव्रत, जो कि "दुःखके हेतु तीन दोषोंके रहनेसे त्रिशंकु नाम हुआ। हरिवंशमें यह तीन दोष प्रकट हैं; यथा पिताको असंतुष्ट रखना, गुरुकी दुधारी गायका वध करना, विना धुली वस्तुका सेवन करना" यहाँपर एक इतिहास है। कि, "विश्वामित्र मुनिसे राजसूय यज्ञ कराय इस त्रिशंकुने ब्राह्मणकी कुमारी कन्याको हरण कर लिया था इसलिये इनके पिताने क्रोधित होकर शाप दिया कि, तू चाण्डाल होजा इसलिये यह चाण्डालपनको प्राप्त हुए थे, फिर विश्वामित्र मुनिके प्रभावसे शरीरके सहित स्वर्गको गये और अब तक आकाशमें टिके हुए हैं, देवतालोगोंने

इनको अवाक् शिरा होकर स्वर्गसे गिराना चाहा था, परन्तु महर्षि विश्वामित्रने इनको अपने बलसे वहीं थाम दिया ॥ ५ ॥ इन त्रिशंकुके पुत्र सत्यव्रतधारी महात्मा हरिश्चंद्र हुए कि, जिनका यह वचन प्रसिद्ध है ॥

दोहा-चन्द्र मिटै दिनकर मिटै, मिटै त्रिगुण विस्तार।
पै दृढ़ श्रीहरिश्चन्द्रको, मिटै न सत्य विचार ॥

इनही राजर्षिके निमित्त वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी परस्पर शाप देकर आडी और बक (बगला) पक्षी हुए । और इन दोनोंने एक वर्ष तक घोर युद्ध किया था । यहाँ पर एक इतिहास प्रसिद्ध है कि "विश्वामित्र मुनिने राजसूय यज्ञ कराय उसकी दक्षिणामें सर्वस्व हरण कर राजा हरिश्चन्द्रको आर्त किया यह सुन महर्षि वसिष्ठजी कोधित हो विश्वामित्रके पास जाय यह शाप दिया कि अन्यायाचरण करनेके हेतु तुम आडी पक्षी होजाओ विश्वामित्रने बदलेमें यह शाप दिया कि "तुम बगला हो जाओ" फिर इन दोनोंने परस्पर आडी और बगला हो घोर युद्ध किया था" ॥ ६ ॥ इन हरिश्चन्द्रके प्रथम कोई पुत्र न था, इसलिये सदा अनमने रहते थे, एक समय देवर्षि नारदजीके उपदेशसे जलाधिपति वरुणजीकी शरण जायकर प्रार्थना की कि, हे देव ! आप हमें यह वर दें कि हमारे एक पुत्र हो. हे प्रभो ! जो हमारे वीर पुत्र उत्पन्न होवे तो हम उसी पशु पुरुषसे आपका यज्ञ करैं ॥ ७ ॥ वरुणजीने कहा कि, ऐसाही होगा । तव राजा हरिश्चन्द्रके रोहित नामक एक पुत्र हुआ । पुत्रके उत्पन्न होनेपर वरुणजी राजाके निकट आनकर बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र होगया, अब कहनेके अनुसार तुम हमारा यज्ञ करो कि, जिसमें यह तुम्हारा पुत्रही पशु बने । तव राजा हरिश्चन्द्र बोले कि, हे देव ! दश दिनकी आयु न होनेसे पशु पवित्र और यज्ञके योग्य नहीं होता, इसलिये मैं दशदिन बीतनेपर आपका यज्ञ करूंगा ॥ ८ ॥ हे राजापरीक्षित् ! दश दिनके बीततेही वरुणजी फिर आय कर बोले कि, अब यज्ञ करो तव महाराज हरिश्चन्द्रने कहा कि, दाँत निकलेपर यज्ञ किया जायगा ॥ ९ ॥ दाँत निकलनेपर वरुणजीने आनकर कहा कि, दाँतभी निकल आये अब तो यज्ञ करो । तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि, दाँत गिरनेपर यह महा पवित्र यज्ञ भली भाँति सम्पूर्ण होगा ॥ १० ॥ कुछ दिन पीछे रोहितके दाँत गिरगये तव वरुणजी फिर राजाके निकट आनकर बोले कि, हे राजन् हमारे पशुके दाँत गिरगये । अब तो यज्ञ अवश्यही करना चाहिये । हरिश्चन्द्रने कहा कि, दाँत गिरकर जबतक फिर न उपजें तबतक पशु पवित्र नहीं होता, यह सुनकर वरुणजी अपने स्थानको चलेगये ॥ ११ ॥ और कुछ समय उपरान्त फिर आनकर बोले कि, तुम्हारे पुत्रके दाँत दूसरीबार उत्पन्न हो आये, अब तो यज्ञकरो । तव राजर्षि हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया कि, हे वरुणदेव ! जब क्षत्रिय पशु कवच बख्तर पहरने योग्य होताहै, तब वह पवित्र कहा जाताहै । सो हमारा पुत्र अभी इस योग्य हुआ नहीं । सो भला हम कैसे यज्ञ करदें ? ॥ १२ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! राजा हरिश्चन्द्रका चित्त स्नेहके वश होगया था, उन्होंने पुत्रानुरागके वश यज्ञ

करनेके लिये वरुणजीको जो जो समय बताये, वह वरुणजी उसी समयकी राह देखनेलगे ॥१३॥ कि, इतनेमें रोहित पिताका अभिप्राय अर्थात् अपनेको पशु बनाकर वरुणजीके यज्ञ करनेकी इच्छाको जानगया इसलिये वह अपने प्राण बचानेको धनुष ग्रहणकर वनको चला गया॥१४॥ इससे वरुणजीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रको सताया, इसलिये राजा हरिश्चन्द्रका पेट अति बडा होगया। इसके पीछे रोहितने सुना कि, पिताजीको वरुणदेवताने पीडा दीहै इसलिये अपनी पुरीमें जानेकी इच्छा की, परन्तु देवराज इन्द्रने वहाँ आय रोहितको जानेसे रोका ॥ १५ ॥ और कहा कि, तीर्थोंकी सेवा करतेहुए पृथ्वीपर विचरण करना अत्यन्त पुण्यदायक है। सो तुम ऐसाही करो। यहाँ रोहिताश्वने एक वर्षतक वनमें वास किया था ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें वर्षमें जब रोहितने पिताजीके पास जानेकी इच्छा की उसी समय देवराज इन्द्र ब्राह्मणरूपसे उनके निकट आय इस प्रकारसे कहते थे कि, "पुण्य तीर्थोंमें विचरण करो" ॥ १७ ॥ इसलिये रोहित राजकुमारने छःवर्षतक वनमें विचरण किया. इस प्रकार जब रोहितको छठा वर्ष वनमें रहते बीतगया और पुरीमें आने लगा, तब यह रोहित अजीगर्तके मध्यम पुत्र शुनःशेपको उसके पितासे मोल लेआये ॥ १८ ॥ और इस शुनःशेपको अपने पिता राजा हरिश्चन्द्रको देकर प्रणाम किया ॥ १९ ॥ तिसके पीछे महायशस्वी प्रसिद्ध महात्मा महाराज हरिश्चन्द्रजीने नरमेध यज्ञकी विधिसे वरुणदेवताका यज्ञ प्रारंभ किया। तब वरुणजीने राजा हरिश्चन्द्रकी उदरपीडा शान्त कर दी ॥ २० ॥ इस यज्ञमें विश्वामित्रजी होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा और आयास्य मुनि सामग हुए ॥ २१ ॥ हे राजा परीक्षित्! इस व्यापारसे देवराज इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रके ऊपर प्रसन्न हो उनको एक सुवर्णका रथ दिया। हे महाराज! शुनःशेपका माहात्म्य (विश्वामित्र उपाख्यानके प्रसंगमें) आगे वर्णन करेंगे ॥ २२ ॥ हे महाराज! भार्यासहित राजा हरिश्चन्द्रका सत्य सामर्थ्य और धैर्य देखकर महामुनि ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुये थे, इसलिये उन्होंने महाराज हरिश्चन्द्रको अविहत अर्थात् परम ज्ञान दिया था ॥ २३ ॥ तब इन राजर्षि हरिश्चन्द्रजीने अन्नमय मनको अन्न शब्द वाच्य पृथ्वीमें धारण अर्थात् पृथ्वीके साथ मिलाकर फिर उसको जलके साथ मिलाया. इसके उपरान्त उस जलको तेजके साथ एक करके उस तेजको वायुके साथ मिलाया, तिसके पीछे पवनको आकाशमें धारण करके इस आकाशको अहंकारमें मिलादिया फिर उस अहंकारको महत्तत्वमें मिलाय, विषयाकार हटाय, ज्ञानांशका आत्मस्वरूपमें ध्यानकर तिससे आत्माके आवरण अज्ञानको भस्म कर डाला. फिर निर्वाण सुख सम्पत्तिसे ज्ञानांशको छोड मुक्त हो बंध अनिर्देश्य और अप्रत्यक्ष स्वरूपमें स्थित हुआ ॥ २४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-अष्टम रोहित वंशमें, प्रगटे सगर भुवाल।
तिनके सुत ऋषि शापसे, भस्म भये तत्काल ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! रोहितका पुत्र हरित हुआ इस हरितसे चम्पाने जन्म लिया कि, जिसने चम्पापुरी बसाई. चम्पाका पुत्र वसुदेव और वसुदेवको पुत्र विजय हुआ ॥ १ ॥ विजयका पुत्र भरूक उसका पुत्र वृक और वृकसे बाहुकने जन्म लिया. जब शत्रुओंने इस बाहुकका राज्य छीन लिया तब यह अपनी स्त्रियोंको साथ ले वनमें चला गया ॥ २ ॥ उसी स्थानमें वृद्ध होकर वह मृत्युको प्राप्त हुआ। उसकी स्त्री उसके साथ सती होनेको जातीथी कि, महर्षि और्वने उसको गर्भवती जानकर मरनेसे निवारण किया ॥ ३ ॥ रानीकी सौतें उसको गर्भवती जानकर ईर्ष्याके वश हुई और उसके गर्भका नाश करनेको अन्नके सहित गरल (विष) मिलाकर उसे खानेको दे दिया, परन्तु वह गर्भ विष देनेसे विनाश नहीं हुआ. तब इस गरके सग उत्पन्न होनेसे उस गर्भसे उपजे पुत्रका नाम सगर हुआ ॥४॥ हे महाराज परीक्षित् ! यह सगर बडा प्रतापी और चक्रवर्ती राजा हुआ इसी राजाने अपने गुरु और्व ऋषीश्वरके कहनेसे तालजघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर, इन जातियोंको मार नहीं डाला बरन राजा सगरने प्रत्येक जातिको पृथक् २ प्रकारसे विकृत किया था अर्थात् किसी जातिके केश सम्पूण मुँडवादिये, किसीके डाढी मूँछै रखवादीं किसी जातिको खुले केश किया और किसीको अर्धमुण्डित किसी जातिको अन्तर्वासविहीन करके केवल बहिर्वासधारी किया और किसी जातिको बहिर्वास हीन करके केवल कौपीनधारी किया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! महाराज सगरने महर्षि और्वके बताये हुए उपायसे अश्वमेध यज्ञ करके सर्व देव और सर्वदेवमय परमात्मा परमेश्वर भगवान् हरिकी पूजा की, जब उस पृथ्वीपर भ्रमण करनेको घोडा छोडा ॥ ६ ॥ तब उसको देवराज इन्द्रने हरण करलिया ॥ ७ ॥ हे कुरु प्रवीर ! सगर राजाके दो स्त्री सुमति और केशिनी थीं राजाने यज्ञका घोडा ढूँढनेके लिये सुमतिके साठ हजार ६०००० पुत्रोंको आज्ञा दी. इस आज्ञाको पाय सुमतिके पुत्र अहंकार करके यज्ञके घोडेको खोजनेके लिये सारी पृथ्वी खोजने लगे ॥ ८ ॥ जब पृथ्वीपर घोडा नहीं मिला तो चारों ओरसे पृथ्वीको खोद डाला, कुछ दिन पीछे यह सगरके पुत्र उत्तर पूर्वके कोनेमें जहाँ महर्षि कपिलदेवजीका आश्रम था वहाँ पहुँचे ॥ ९ ॥ और वहाँपर उस घोडेको बँधा हुआ देख " इसने हमारे घोडेको चुराया है, यही चोर है देखो कैसी आँखें बन्द करली हैं इस दुराचारी पापीको अभी मारडालो " इस प्रकारसे कहकर यह साठ हजार सहोदर भाई अस्त्र शस्त्र उठाय महात्मा कपिलदेवजी पर दौडे, भगवान् कपिलदेवजी उस समय समाधिमें स्थित थे, उन्होंने कुलाहल सुनकर समाधि त्याग दी और नेत्र खोले ॥ ॥ १० ॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रकी मायासे सगरके पुत्रोंकी बुद्धि नाशको प्राप्त होरहीथी इसीलिये वह महर्षि कपिलदेवजी पर ऐसा अत्याचार करनेको प्रस्तुत हुये परन्तु इस महाकुकार्य करनेके हेतु अतिमहान् अग्नि जो कि, महर्षि कपिलदेवजीके शरीरसे निकलती

थी उससे यह सबके सब क्षणमात्रमें भस्म होगये ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! कोई कोई यह कहते हैं कि, कपिलदेवजीके क्रोधाग्निसे सगरके पुत्र भस्म हुए, यह साधुवाद नहीं क्योंकि भगवान् कपिलदेवजी शुद्ध सत्यमूर्ति हैं उनकाभी आत्मा जगत्को पवित्र करनेवाला है,सो आकाशमें पार्थिव धूरिकी समान उन कपिलदेवजीमें किस प्रकारसे क्रोध-रूपी तमोगुणका उदय होसक्ता है ॥ १२ ॥ और जिन कपिल देवजीने इस संसारमें सांख्य शास्त्रकी अति दृढ नौका चलाई है, जिस नौकापर चढकर मुमुक्षु लोग दुरन्त मृत्युके पन्थ रूप संसारके पार होते हैं उन सर्वज्ञ सर्वात्मस्वरूप महामुनिमें शत्रु-मित्रादि भेददृष्टिका होना किस प्रकारसे सम्भव है ? ॥ १३ ॥ सगर राजाके एक पुत्रका नाम असमंजसथा (केवल अज्ञानी लोगही इनको असमंजस कहते थे, पर वास्तवमें यह समंजसही थे) जो केशिनी रानीके गर्भसे उत्पन्न हुये थे उस असमंजसका पुत्र अंशुमान् सदा अपने दादाके हितकारी कार्य करता था ॥ १४ ॥ हे राजन् ! यह असमंजस पहले जन्ममें योगी था, संग करनेके हेतु योगसे भ्रष्ट हुआ इसलिये अपनी जातिका स्मरण कर दूसरे जन्ममेंभी संगके छोडनेको निन्दनीय कार्य करनेवाली जातिकी भाँति निन्दनीय कर्म करता था अर्थात् लोगोंको उद्वेग जन्माय लोगनिंदित आचार और अपनी जातिके अर्थ विप्रिय कर्म करता हुआ खेलहीखेलमें बालकोंको सरयूके जलमें डाल देता था ॥ ॥ १५ ॥ इस प्रकारके कर्म देख इनके पिता राजा सगरने पुत्रपनका स्नेह छोड इनको त्यागदिया, तब यह अपने योगके प्रभावसे मृतक बालकोंको फिर जिलायकर सबको दिखाया और फिर उस पुरीसे निकलकर चलेगये ॥ १६ ॥ हे राजन् ! अयोध्यावासी प्रजा लोग असमंजसके मारेहुये अपने अपने बालकोंको सजीव देखकर महाविस्मित हुए और राजा सगरने फिर असमंजसके लिये महासन्ताप किया ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि, हे कुरुकुलभूषण ! अब इथरकी कथा सुनिये कि, जब सुमतिके सब पुत्र मारे गये तब राजा सगरने यज्ञके घोडेको खोजनेके लिये असमंजसके पुत्र अंशुमानको भेज दिया, तब अंशुमान उसीमार्गसे चले जो कि उनके चाचा लोगोंने खोदकर बनाया था और फिर बहुत दूर जाकर भस्मकी ढेरके समीपही घोडेको बँधा हुआ देखा ॥ १८ ॥ हे राजन् ! उस स्थानमें कपिलमुनि साक्षात् भगवान्रूप बैठे थे उनको बैठा हुआ देख महात्मा अंशुमान सावधान चित्तसे हाथ जोडकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १९ ॥ हे देव ! जो ब्रह्मा जन्मसे रहित हैं, उन्होंनेभी अबतक अपने परे जो परमेश्वर आप हैं, आपको समाधि लगाकरभी नहीं देख पाया, न वह युक्तिसे आपको जान सके । फिर दूसरे अर्वाचीन पुरुष आपको कैसे देख सकते हैं ? ब्रह्माजीके मन शरीर और बुद्धिसे जो विविध देव तिर्यक् नर सृष्टि होती है, वह लोग उसमेंही उत्पन्न हुये हैं, फिर तिसपर हम उनसे भी मूर्ख हैं, इसलिये हमको आपके दर्शन पानेकी कुछभी सम्भावना नहीं है ॥ २० ॥ हे देव ! जो पुरुष देहधारी हैं यद्यपि वह लोग आपकी आत्मामें भली भाँति विराजमान हैं तो भी आपको नहीं जानते, केवल सब गुणोंको देखते हैं, अथवा

गुणभी उनको दिखाई नहीं देते, केवल तुमही देखते हैं, क्योंकि उनमें त्रिगुण बुद्धिही प्रधान है. इसलिये बादरमें उनका ज्ञान है, अर्थात् वह बुद्धिके वश हैं, इसलिये जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें विषय देखते हैं और सुषुप्ति अवस्थामें केवल तुमही देखते हैं, आप निर्गुण हैं, इससे आपको किसी अवस्थामें नहीं देख पाते, क्योंकि उनका चित्त आपकी मायासे मोहित होरहा है ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! आप ज्ञान घन स्वभाव अर्थात् शुद्ध सत्वा मूर्ति हैं, इसलिये जिन पुरुषोका माया गुण निमित्त भेद ध्वंसको प्राप्त होगया है, ऐसे सनक सनन्दनादि मुनि जनोंके भी आप विचारने योग्य हैं, मैं मूढ विचार करके भी किसप्रकार आपको जान सक्ता हूं ? फलतः आप ज्ञानघन स्वरूप हैं, इसलिये ज्ञानगम्य नहीं है, यद्यपि आप विचारके विषय हों तोभी मैं मायाके गुणोंमें लिपटा हुआ हूं इससे विचार करनेको समर्थ नहीं हूं ॥ २२ ॥ हे प्रशान्त ! मायाके गुणसेही आपके विश्व सृष्ट्यादि कर्म हैं. आपका लिंग ब्रह्मादि रूप हैं आप कार्य कारणसे परे हैं, आपने केवल ज्ञानका उपदेश देनेके लिये इस शुद्ध सत्व मूर्तिको प्रगट किया है, इसलिये आप पुराण पुरुष हैं, सो मैं आपको केवल नमस्कार करता हूं ॥ २३ ॥ हे विभो ! यह लोक आपकी मायासे बना हुआ है इसमें वस्तु बुद्धि करके काम, लोभ, ईर्षा और मोहसे जिन मनुष्यों-का चित्त भ्रान्त है, वह सबही गृहादिमें भ्रमण करते हैं ॥ २४ ॥ हे सर्वात्मन् ! परन्तु आपकी कृपासे और आपका दर्शन होनेसे आज हमारा काम कर्म और इन्द्रियोंका आश्रय रूप अतिदृढ मोहपाश छिन्न होगया, अर्थात् आपके प्रसादसे हम कृतार्थ होगये ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे महाराज ! इस प्रकारसे स्तुति करके कपिल-देवजीका प्रभाव गाया, तब वह कपिल भगवान् अनुग्रह कर सगरपुत्र अंशुमानसे यह वचन बोले ॥ २६ ॥ भगवान् कपिलदेवजी बोले कि, हे वत्स ! अपने दादाके यज्ञपशु इस घोडेको लेजाओ जब अश्व पाकर भी अंशुमान आकांक्षाके साथ खडे रहे तब महर्षि कपिलदेवजी इनके मनका अभिप्राय जानकर बोले-तुम्हारे चचालोग जो कि, भस्म होगये हैं, गंगाजल पानेके योग्य हैं, औरजलसे इनकी गति नहीं होगी ॥ २७ ॥ यह सुनकर अंशुमान्ने मुनिको शिर झुकायकर प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके यज्ञका घोडा ले राजा सगरके पास आया, सगर राजाने उस घोडेको पाय यज्ञका शेष कार्य समाप्त किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ फिर राजा सगर निस्पृह होगये और अंशुमानके हाथमें राज्यका भार सौंप बन्धनोंसे छूट और मुनिके बताये योगमार्गमें उत्तम गतिको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कंधे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा-अंशुमानका वंश सब, कहों खट्वांग समेत ।
गंगा लाये नवममें, भागीरथ श्रुति सेत ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! जिस प्रकार राजा सगर अपने पोतेको राज्यका भार दे तपस्या करनेको चले गये, अंशुमान्भी उसी प्रकार अपने पुत्रको राज्यदे गंगा-

जीके लानेकी कामनासे बहुत दिनोंतक तपस्या करते रहे, परन्तु उनके मनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई। कुछ समय पीछे राजा अंशुमान् कालवश हो मृत्युको प्राप्त हुये ॥ १ ॥ अंशुमान्के दिलीप नाम पुत्रादिभी गंगाजीके लानेमें असमर्थ होकर काल कवरमें गिरे, इनके पुत्र भगीरथने गंगाके लानेके लिये बडी तपस्या की ॥ २ ॥ तब गंगाजी इनको दर्शन देकर बोलीं कि, वत्स ! हम तुमपर प्रसन्न हो वर देनेके लिये आई हैं, यह सुनकर भागीरथजीने अपना अभिप्राय निवेदन किया ॥३॥ तब श्रीगंगाजीने कहा कि, हे राजन् ! जब हम आकाशसे गिरेंगी तब किसी पुरुषको हमारा वेग अवश्य धारण करना पडेगा नहीं तो हम पृथ्वीको फोडकर पातालको चली जायँगी सो कहो कि, कौन हमारा वेग धारण करेगा ? ॥४॥ हम पृथ्वीपर नहीं जा सकैंगी क्योंकि मनुष्य लोग हममें अपवित्र पदार्थ धोवेंगे सो उस अपवित्रताको हम कहाँ धोवेंगी सो बताओ ॥ ५ ॥ तब श्रीभगीरथजी बोले कि, हे जननि ! संसारत्यागी ब्रह्मनिष्ठ साधुलोग अपने लोकपावन अंगोंसे आपकी अपवित्रता हर लेंगे, क्योंकि उनके हृदयोंमें सर्व अघहारी भगवान् नित्य विराजमान रहते हैं, इसलिये वे लोग पापका विनाश करनेको समर्थ हैं ॥ ६ ॥ और भगवान् रुद्र जो कि, सब शरीरधारियोंके आत्मा हैं और जिस प्रकार साडी सूतमें पोही हुई रहती है, वैसेही वह शिवजी इस संसारमें ओतप्रोत हो रहे हैं वही तुम्हारे इस पवन वेगको धारण करैंगे ॥ ७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! राजा भगीरथ गंगाजीसे इस प्रकार कहकर तपस्या करके देवदेव महादेवजीको प्रसन्न करनेके लिये यत्न करने लगे। शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवजी इस राजर्षिपर बहुत शीघ्र प्रसन्न होगये ॥ ८ ॥ महात्मा भगीरथजीने जो कुछ प्रार्थनाकी उसको लोकहितैषी भगवान् महादेवजीने तथास्तु कहा और सावधान होकर गंगाजीको धारण किया. हे राजन् ! गंगाजीके माहात्म्यका वर्णन कैसे करैं ? उनका जल भगवान् वासुदेवके चरण स्पर्शसे पवित्र हुआ है ॥ ९ ॥ राजर्षि भगीरथजी भुवनपावनी गंगाजीको उस स्थान पर ले आये कि, जहाँ उनके चचा लोगोंकी भस्म ढेर पडी थी भगीरथजी पवन की समान वेगगामी रथपर सवार हो आगेआगे चलने लगे और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगाजी उनके पीछेपीछे बहती हुई सब लोकोंको पवित्रकर भस्महुए सगरके पुत्रोंपर अपना पवित्र जल डालने लगीं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे राजन् ! सगरके पुत्र ब्राह्मणका अपराध करके भस्म हुए थे, जब कि उनकी राखके ऊपर गंगाजीका जल पडा और वह स्वर्गको चले गये, तब उन लोगोंको कैसा फल मिलेगा जो कि श्रद्धापूर्वक श्रीगंगामहारानी जगत् सुखदायिनीकी सेवा करते हैं ॥ १२ ॥ सगरके पुत्र अपनी राखपर गंगाजीका जल पडनेसे जब पवित्र होगये और स्वर्गको सिधारे तब जो पुरुष गंगाजीका व्रत धारण करेंगे और श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करेंगे, उनका स्वर्गमें जाना कुछ विचित्र बात नहीं है ॥ ॥ १३ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! यहाँपर यह गंगाजीकी महिमा जो हमने वर्णन की, यह कुछ बडे आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि यह भगवान्के चरणसे उत्पन्न हुई हैं और संसारका

नाश करनेवाली हैं अर्थात् इनकी सेवा करनेसे संसारका आना जाना छूट जाता है ॥ ॥ १४ ॥ हे परीक्षित् ! अमल मुनिलोग श्रद्धासहित जिनमें मन लगाय छोडनेके अयोग्य देहका सम्बन्ध त्याग शीघ्रही उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवके रूपको प्राप्त हो जाते हैं, उनके चरणसे उत्पन्न हुई गंगाजीका प्रभाव अवश्यही अनिर्वचनीय है ॥ १५ ॥ इन राजा भगीरथके पुत्र श्रुत, तिनके पुत्र नाभ, तिनसे सिंधुद्वीप उत्पन्न हुए और तिनके अयुतायु जन्मे ॥ १६ ॥ तिन अयुतायुके ऋतुपर्ण हुए जो कि नलके सखा थे, इन ऋतु-पर्णने राजा नलको चौपडकी विद्या शिखाय उनसे अश्वविद्या सीखी थी, इन ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम हुआ ॥ १७ ॥ तिसका पुत्र सुदास, तिसका बेटा सौदास हुआ जो मदयन्तीका पति था, जिसको कोई कोई मित्रसह और कोई कोई कल्माषपाद कहते हैं, इसके कोई सन्तान नहीं हुई । यह अपने कर्मदोष और वसिष्ठजीके शापसे राक्षस योनिको प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! महात्मा सौदासको वशिष्ठजीने शाप क्यों दिया था ? इस कथाके श्रवण करनेकी मेरी बडी अभिलाषा है, सो कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १९ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! एक समय राजा सौ-दासने मृगयाके लिये वनमें जाय घूमते घूमते एक राक्षसको मारडाला और उसके भाई को छोडदिया इसलिये यह निशाचर राजासे बदला लेनेकी खोजमें रहा, यह निशाचर इस राजाका बुरा चाहने लगा, रसोइयेका रूप बनाय घरमें रहनेलगा, एकदिन राजपुरो-हित वसिष्ठजीने आयकर भोजनकी इच्छा प्रकाश की, तब इसी कपट वेषधारी राक्षसने भोजन बनाया और उस भोजनमें मनुष्यका माँस भी मिला दिया ॥ २० ॥ २१ ॥ जब वह भोजन परोसा गया तब उससमय भगवान् वसिष्ठजीने दिव्य नेत्रोंसे देख लिया कि, भोजनमें अभक्ष्य वस्तु मिलाई गई है; इसलिये महाक्रोधित होकर राजाको शाप दिया कि "मनुष्यका मांस व्यवहार करनेसे तुम राक्षस योनि पाओगे" ॥ २२ ॥ परन्तु तिसके पीछे महर्षि वसिष्ठजीने जाना कि, यह कर्म राक्षसका किया हुआ है, तब वशिष्ठ-जीने शापका क्षय करनेको बारह वर्षका व्रत किया ॥ २३ ॥ राजाभी विना अपराध शाप पाकर क्रोधित हो हाथमें जल लेकर गुरुजीको शाप देनेके लिये प्रस्तुत हुआ, परन्तु उसकी स्त्री मदयन्तीने उसको निवारण किया, तब राजाने रोषसे तीव्र हो वह जल अपने पैरोंपर डाल लिया, इस राजर्षिने यह जल इसलिये अपने पैरोंपर डाला कि दिग्, आकाश पृथ्वी, यह सबही जीवमय हैं ॥ २४ ॥ यह राजा कल्माषपाद राक्षस भावको प्राप्त हो एक समय वनमें विचरण कर रहाथा । हे राजन् ! इसप्रकार वनमें घूमते हुए उसने एक ब्राह्मणको ब्राह्मणीके साथ रति करता हुआ देखा ॥ २५ ॥ उस समय इस राजाको बडी भारी भूख लगी थी, तब इसने क्षुधासे पीडित हो उसमेंसे ब्राह्मणको भक्षण करनेके लिये पकड लिया । ब्राह्मणके पकड लेनेसे ब्राह्मणी अत्यन्त दीन तनुछीन मनमलीन होकर बोली कि ॥ २६ ॥ हे राजन् ! तुम राक्षस नहीं हो, इक्ष्वाकुवंशियोंमेंसे एक महारथी वीर हो । मदयन्तीके पति हो, आपको अधर्म करना उचित नहीं है । यह ब्राह्मण हमारा

पति है, हम सन्तानकी इच्छा करके इनकी सेवा कर रही थी अबतक इनकी रति समाप्त नहीं हुई है, इसलिये आप अनुग्रह करके हमारे पतिको छोड दीजिये ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इस मनुष्य देहसे अखिल पुरुषार्थ होते हैं, इसलिये देहका नाश सब अर्थोंका नाश कहा जाता है ॥ २८ ॥ अधिक करके यह ब्राह्मण विद्वान् ! तपशील और गुणयुक्त है और महापुरुष नामवाले जो परब्रह्म गुणयोगसे सब प्राणियोंमें अंतर्हित हैं "सर्व भूतके आत्मा" इसप्रकारकी चिन्तासे यह उनकी आराधना करना चाहते हैं ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! हे धर्मज्ञ ! तुम राजर्षियोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये पितासे पुत्रकी समान तुम्हारे हाथसे यह ब्राह्मण मारे जानेके योग्य नहीं हैं. हे राजन् ! कर्म, मन और वचनसे सब प्राणियोंके प्रति जो सुहृदाचरण करता है उसको ही विद्या-विवेकसम्पन्न पण्डित लोग सुशील कहा करते हैं ॥ ३० ॥ हे धर्मज्ञ ! आप साधुजनोंके सम्मत हैं, सो आज आप किस प्रकार गोवध की समान इस निष्पाप और तीन वेदोंके वक्ता ब्राह्मणका वध सम्मत समझते हैं ? ॥३१॥ हे राजन् ! हम इनके विना एक क्षणभी नहीं जीसकेंगी । सो इन हमारे पतिको यदि तुमने अवश्यही अपना भोजन करना विचारा है, तो मृतकतुल्य हमको भी तुम पहले भक्षण कर लो ॥ ३२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्राह्मणकी भार्याने इस प्रकार अनाथकी समान हो करुणाके वचन कहे, परन्तु तो भी शापमोहित सौदासने उस ब्राह्मणको भक्षण करही लिया कि जैसे व्याघ्र पशुको भक्षण कर जाता है ॥ ३३ ॥ जब ब्राह्मणीने देखा कि, गर्भाधानकारी ब्राह्मणको राक्षसने भक्षण करही लिया, इसलिये अपने निमित्त शोक करते२ क्रोधित हो इसने उस राजाको यह शाप दिया कि-॥ ३४ ॥ अरे पापात्मा! तैंने हमारे पति को रतिसे अलग करके भक्षण कर लिया है, इसलिये तेरी मृत्युभी रति करते होगी ॥३५॥ हे राजन् ! पतिलोगपरायण उस ब्राह्मणीने इसप्रकार इस सौदास राजाको शाप दे पतिकी अस्थि जलती हुई अग्निमें डाल और स्वयंभी उसी चितामें बैठ स्वामीकी गतिको प्राप्त हुई, और इस ओर जब बारहवर्ष बीतगये तब राजा सौदास शापसे छूटा. तिसके पीछे जब यह राजा एक दिन मैथुन करनेको प्रस्तुत हुआ तब इस राजाकी भार्याने ब्राह्मणीका शाप कहकर राजाको निवारण किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! तबसे राजा सौदास स्त्रीके सुखसे अलग हुआ और अपने कर्मदोषसे निःसन्तान रहा, कुछ कालके पीछे वसिष्ठ मुनिने राजाकी अनुमतिसे उसकी स्त्री मदयन्तीको गर्भाधान किया ॥ ३८ ॥ परन्तु यह अबला सात वर्षतक इस गर्भको धारण किये रही, किसी प्रकारसे इसको प्रसव नहीं किया । तब वसिष्ठजीने आनकर अश्म (पत्थर) रानीके पेटमें मारा, इसलिये इस गर्भसे उत्पन्न हुये पुत्रका नाम अश्मक हुआ ॥ ३९ ॥ इस अश्मकसे बलिक राजाकी उत्पत्ति हुई, जब परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया उस समय उसकी स्त्रियोंने चारों ओरसे घेरकर परशुरामजीके कोपसे रक्षा की थी, इसलिये इसका एक नाम नारीकवच हुआ और पृथ्वी जब क्षत्रियहीन हुई तब यही क्षत्रियवंशके मूल हुये थे, इससे मूलकभी कहलाते थे ॥ ४० ॥ इन अश्मकसे राजा दशरथका जन्म हुआ, दशरथका पुत्र ऐड-

विडि, तिसका पुत्र राजा विश्वसह तिसके पुत्र चक्रवर्ती महाराज खट्वांग हुये. यह राजा खट्वांग अति अजित थे, जब देवतालोगोंने प्रार्थना की, तब इन्होंने युद्धमें राक्षस लोगोंका वध किया फिर जब प्रसन्न होकर देवता लोगोंने इनसे वरदान माँगनेको कहा तब इन्होंने कहा कि, प्रथम तो यह बताओ " हमारी परमायु कितनी है " तब देवता लोगों ने कहा कि, आपकी परमायु दो घडी शेष है। यह जानकर खट्वांग राजा देवतालोगोंके दिये हुये विमानमें बैठकर अति शीघ्र अपने नगरमें आये और परमेश्वरमें मन लगाया ॥ ॥ ४१ ॥ फिर पीछे उनको यह निश्चय हुआ कि कुलदेव जो ब्रह्मकुल है, उनसे अधिक प्राण, पुत्र, धन, सम्पत्ति, पृथ्वी, राज्य और स्त्री, भी प्यारी नहीं है ॥ ४२ ॥ और हमारी मति कदाचित् थोडे अधर्ममेंभी रत नहीं हो और उत्तमश्लोक भगवान्‌के अतिरिक्त और किसी वस्तुको हम नहीं देखसके ? ॥ ४३ ॥ इसलिये त्रिभुवनेश्वर देवतालोग प्रसन्न होकर जो हमसे कहते हैं कि, " अभिलषित वर माँगो " परन्तु भूतभावन हरिमें अपनी भावना रहनेसे हम उनसेभी कुछ वर नहीं चाहते ॥ ४४ ॥ जिन पुरुषोंकी इन्द्रियें चलायमान और बुद्धि विक्षिप्त है वह देवता होकरभी अपने हृदयमें स्थित प्रिय आत्माको नित्य नहीं देख पाते, फिर और किसीके देखनेकी क्या सम्भावना है ॥ ४५ ॥ इसलिये गन्धर्वपुरकी समान ईश्वरकी मायासे रचे हुये जो गुण हैं, तिनमें वह संग जो कि, स्वभावसेही आत्मामें आरूढ होरहा है, विश्वकर्ताके भावसे छोडकर हम केवल उनकी ही शरण जाते हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! राजा खट्वांग नारायणसम्बन्धिनी बुद्धिके योगसे इस प्रकार निश्चयकर देहादिके अभिमानरूप अज्ञानको छोड फिर अपने भावमें स्थित हुआ ॥ ४७ ॥ जो सूक्ष्म परब्रह्म और रागादिसे परे हैं, इसलिये शून्यकी समान कल्पित होते हैं और अशून्य स्वरूप हैं और जिनके प्रति भक्तजन भगवान् वासुदेव शब्दका प्रयोग किया करते हैं, क्योंकि परब्रह्मही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये शक्तिप्रकाशित करके वासुदेव होते हैं ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-दशवेंमें खट्वांगकुल, उसमें रामअवतार।
रावणवध वर आवनो, राज्यकाज व्यवहार ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् परीक्षित् ! खट्वांगराजाका पुत्र दीर्घबाहु हुआ, तिससे रघुने जन्म लिया, रघुके पुत्र महायशस्वी अज हुये। हे महाराज परीक्षित् ! इन्हीं अजसे महात्मा दशरथजी उत्पन्न हुये ॥ १ ॥ ब्रह्ममय हरि साक्षात् भगवान् देवतालोगोंकी प्रार्थनासे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त हो इन्हीं दशरथजीके पुत्र हुये थे ॥ २ ॥ हे राजन् ! वाल्मीकादि तत्त्वदर्शी ऋषि लोगोंने इनही सीतापति रामचन्द्रजीका वर्णन किया है, यद्यपि यह चरित्र आपने बारंबार सुना है, तो भी हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं तुम सुनो ॥ ३ ॥ जो पिताजीका सत्य पालन करनेको राज्य

छोड प्यारी सीताजीका स्पर्शभी जो नहीं सहारते थे, ऐसे कमलकी समान सुकुमार दोनों चरणोंसे वन वनमें घूमे थे, वानरेन्द्र हनुमान अथवा सुग्रीव और अनुज लक्ष्मण जिनके मार्गकी थकावट दूर करते थे, शूर्पणखाके कान नाक काटनेसे विरूप करनेके कारण उसने रावणके निकट जाय उनकी स्त्रीका लोभ दिखाया, तब रावण आकर जिनकी प्यारी सीताजीको हरके लेगया था, प्रियाका विरह होनेसे जिनकी भ्रुकुटीमें समुद्र त्रसित होगया. इसके उपरान्त उसी समुद्रके कहनेसे जो समुद्र पर सेतु बाँध रावणादि खलगणरूप गहनवनके वँधे, वहीं कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि विश्वामित्रजीके यज्ञमें मारीचादि प्रधान २ राक्षसोंको अकेलेही मारडाला था, धोरे खडे होकर देखते हुये लक्ष्मणजीकी कुछ सहायता नहीं चाही ॥ ५ ॥ उन्होंने सीताजीके स्वयंवर गृहमें वीर पुरुष समूहके बीचमें जिन्होंने महादेवजीके धनुषको गन्नेकी समान उठाय लिया था और ज्यों चडालेनेके उपरान्त खेंच कर बीचमेंसे तोड दिया. हे राजन् ! वह धनुष अति भारी था कि, जिसे तीनसौ वाहक खेंचकर लाये थे परन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी लीला वालगजतुल्य अद्भुत है कि, जिन्होंने एकखेलमेंही उस धनुषको तोड डाला ॥ ६ ॥ तिसके उपरान्त जिन सीताजीने उनके हृदयमें वास किया था, जिन सीताजीमें गुण, शील, वयस और अंगोंका गडन सब गुण श्रीरामचन्द्रजीकीही समान थे, उनको धनुष तोड सीताजीको लेजानेके समय धनुष टूटनेकी महाध्वनि सुनकर क्षुभित हुये परशुरामजीने जब धमकाया तब श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें गमन करते करतेही उनका गर्व चूर्ण कर दिया, हे महाराज ! आप तो परशुरामजीको जानते हैं ! यह वही महात्मा परशुरामजी हैं कि, जिनके बाहुबलसे यह पृथ्वी इक्कीसवार क्षत्रियोंसे हीन हो गई थी ॥ ॥ ७ ॥ किसी समय रानी कैकेयी पर प्रसन्न होकर राजा दशरथजीने यह वचन दिया था कि, जब कोई वरदान तुम मांगोगी, हम तुम्हें अवश्य देंगे. जब श्रीरामचन्द्रको अभिषेक होनेकी तैयारियां हुईं, तब इस कैकेयीने भरतजीका युवराज होना और श्रीरामचन्द्रजीका बन जाना यह दो वरदान माँगे । यद्यपि महाराज दशरथजी स्त्रैण थे, तो भी यह जानकर कि, वचनभंग होनेसे इनको महापाप होगा. श्रीरामचन्द्रजीने अपने पिताकी आज्ञाको मस्तकपर चढाकर ग्रहण किया. कहा भी है कि " रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्राण जाहिं अरु वचन न जाई " फिर जिस प्रकार योगीलोग त्यागनेके अयोग्य प्राणोंको छोडदेते हैं वैसेही राज्य, श्री, प्रणय, सुहृद् और रहनेका स्थानभी छोडकर श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये ॥ ८ ॥ वनके बीच कामातुरा शूर्पणखाके नाक, कान, काट खर, दूषण, त्रिशिरादि उस शूर्पणखाके मुख्य बान्धवोंसहित चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला, फिर महा कठिन धनुष हाथमें लेकर बराबरही विचरण करते हुये अतिकष्टसे वनमें वास करने लगे.इसी बीचमें जनककुमारी जानकीजीकी सुन्दरता सुनकर राक्षस रावणके हृदयमें कामाग्नि बलनेलगी और सीताजीका हरण करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे दूर करनेके लिये उस दुरात्मा रावणने मारीच नाम राक्षसको नियुक्त

किया. तव मारीच अद्भुत मृगका रूप धारण करके श्रीरामचन्द्रजीको आश्रमसे बहुत दूर-तक भागता हुआ लेगया "प्रगटत दुरत करत छल भूरी। यहि विधि प्रभुहि गयउ ले दूरी" जब श्रीरामचन्द्रजी उस कपट मृगके पीछे बहुत दूरतक चलेगये, तब उन्होंने हारिणरूपी निशाचरको अति तीक्ष्ण बाण चलायकर मारडाला कि, जैसे भगवान् रुद्रजीने मृगरूप धारण करके दौडते हुए ब्रह्माजीको बाण मारा था ॥ ९ ॥ १० ॥ इसी समयमें राक्षसोंमें नीच रावणने, भेडिया जैसे चुप चाप भेडको उठाकर लेजाता है, वैसेही श्रीराम-चन्द्रजीके पीछे उनकी भार्या सीताजीको हरण करलिया; तब श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्राणप्यारीसे अलग हो स्त्री रखनेवालोंका पारिणाम अति दुःखितरूपी गतिको प्रकाशित करते हुए दीनकी समान अपने परमप्रिय भाई लक्ष्मणको संगलिये वन वनमें घूमने लगे ॥ ११ ॥ और घूमते २ देखा कि, उनकेही लिये कर्म करके अर्थात् रावणके साथ संग्राम करके जटायु गिद्ध मरगया है, उसका देह पडा है, शास्त्रोक्त संस्कार अर्थात् दहनादि संस्कार कुछभी नहीं हुए थे, इसलिये इस पक्षीके मृतक देहको जलाय दिया और आगे चले। फिर उनके ग्रहण करनेको जो एक कबन्ध बाँहैं फैलाये मुख बायेहुए आरहा था, उसका प्राण संहार किया, फिर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे मित्रता करके वालिनाम वानरका वधकर, उनकी सेनासे अपनी भार्याका खोज कराया, फिर उनका पता जानकर समुद्रके तटपर गये, इन श्रीरामचन्द्रजीने यद्यपि मनुष्यावतार धारण किया था, परन्तु महे-श्वर और ब्रह्माजीभी उनके चरणोंकी वन्दना करते थे ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके तटपर पहुँच तीन रात उपवासकर समुद्रके आनेकी बाट देखी, जब ऐसा करनेपरभी समुद्र न आया, तब श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त कुपित हुए। क्रोधके कारण श्रीरामचन्द्रजीकी भ्रुकुटियें ऐसी टेढी होरहीं थीं कि, उनकी दृष्टि समुद्रमें पडतेही जलधिके रहनेवाले नाके आदि जलजन्तु अत्यन्त व्याकुल होगये तब समुद्र अपने शब्दको निवारण करके मूर्ति धार और मस्तकपर अर्घ्यादि पूजा उपहार लिये हुए श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके निकट आनकर कहने लगा ॥ १३ ॥ हे भूमन्! हम जडमति हैं इसलिये अबतक आपको नहीं जानसके, आप निर्विकार आदिपुरुष और जगत्के अधीश्वर हैं, अधिक करके जिनके वश हुए सतोगुणसे देवतालोग, रजोगुणसे प्रजापतिगण और तमोगुणसे भूतपति उत्पन्न होते हैं, सो आपही गुणेश्वर हैं ॥ १४ ॥ हे प्रभो! जो आपकी इच्छा हो तो हमारे जलको लाँघकर चले जाओ, विश्रवाके विष्ठाकी तुल्य दुरात्मा रावण त्रिभुवनको क्लेशका देनेवाला है, उसका शीघ्र वध करके अपनी भार्या सीताजीको ग्रहण कीजिये, हे प्रभो! यद्यपि हमारा जल आपके गमन करनेमें बाधा नहीं देसक्ता, तोभी इसमें पुल बाँध दीजिये, सेतुके बाँधनेसे सदाही आपकी कीर्ति स्थिर रहेगी, क्योंकि इस सेतुके समीप आयकर यह दुष्करकार्य देख निःसन्देह राजालोग आपके यशको गावेंगे ॥ १५ ॥ हे राजन्! समुद्रके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने विविध भाँतिके पर्वत शिखर और वृक्षोंसे उनके ऊपर सेतु बाँधा, उन पर्वतोंके शिखरोंपर बहुतसे पेडभी लगे हुये थे, उन

वृक्षोंकी शाखा वानरेन्द्रोंकी भुजाओंसे अत्यन्त कम्पायमान हुई थीं, जब सेतु बाँधलिया गया, तब विभीषणके परामर्शसे सुग्रीव, नील, हनुमानादि सेनाके साथ श्रीरघुनाथजीने लंकापुरीमें प्रवेश किया, श्रीरामचन्द्रजीके प्रवेश करनेसे प्रथमही सीताजीके खोजनेके समय हनुमान्‌जीने लंकापुरीको जलाय दिया था ॥ १६ ॥ जैसेही श्रीरामचन्द्रजी सेनाके साथ लंकापुरीमें पहुँचे, वैसेही लंकापुरी घूमनेसी लगी जिसप्रकार हाथियोंके समूहसे नदी चलायमान होजाती है, क्योंकि वानरेन्द्रोंकी सेनाने वहाँके विहारस्थान, खजाने, कोषगृहादिके द्वार, पुरद्वार, सभा, वलभी महलकी अग्रभागाच्छादनी (छज्जा) और कपोतपालिकादि स्थान घेर लिये और इस सेनाने वेदी (चबूतरे) पताका, स्वर्णकलश और चौराहे आदि सब तोड फोड दिये ॥ १७ ॥ राक्षसराज रावणने यह देखकर निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, सम्पूर्ण अनुचर और इन्द्रजीत, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पादि पुत्रोंको और पीछेसे अपने भाई कुम्भकर्णको भेजा ॥ १८ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! यद्यपि सब राक्षसोंकी सेना, असि, शूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, शर, तोमर, खड्गादि विविध भाँतिके शस्त्रोंसे अतिशय दुर्द्धर्ष थी, तो भी वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने माला पहिरेहुये, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्, गन्धमादन, नील, अंगद, जाम्बवान् और पनसादि सेनापतियोंके साथ उनके ऊपर चढाई की थी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! श्रीरामचन्द्रजीके इन सेनापतियोंने रावणके हाथी घोडोंसेयुक्त जितनी सेना आईथीं उनमें जिसप्रकारसे द्वन्द्वयुद्ध हो वैसाही कार्यकरने लगे अर्थात् उनके ऊपर झपटने लगे और पर्वत, गदा, बाण, चलायचलायकर उन राक्षसोंका संहार करने लगे । हे महाराज ! राक्षसोंकी सेनाका संहार क्यों न हो ? जब कि, बलात्कार जगज्जननी जानकीजीका अंगस्पर्शकरनेवाला रावण जिनका स्वामी था कि, जिसका सब मंगल नाशको प्राप्त होगया था ॥ २० ॥ इस प्रकारसे अपनी सेनाका नाश होता हुआ देखकर दुरात्मा रावण सहसा पुष्पकविमानपर आरूढ होकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर दौडा, इसी समय इन्द्रका सारथी मातलि दीप्तिमान् देवराज इन्द्रका रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट आया—

चौ०—तेजपुंज रथ दिव्य अनूपा ॥ बिहँसि चढे कोशलपुर भूपा ॥

श्रीरामचन्द्रजीको रथारूढ देखकर दुरात्मा रावण तीक्ष्ण २ छुरेवाले वाण श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर चलाने लगा ॥ २१ ॥ तब सीतापति पाखण्डी रावणको ललकार कर बोले कि, अरे दुष्ट ! तू राक्षसोंमेंभी विष्ठाकी समान है, कुत्ता जैसे गृहस्वामीके पीछे घरमें प्रवेश करके किसी सामग्रीको चुरायकर ले जाता है, वैसेही हमारे पीछे हमारी भार्याको तू हरण कर लेआया है, तू अति निर्लज्ज है क्योंकि नीच कर्म किया है, हमारा वीर्य अमोघ है, देख ! हम कृतान्तकी समान अभी तेरे किये इस नीच कर्मका फल देते हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार रावणको धिक्कार देकर वह बाण जो कि, धनुषपर चढाहुआ था, श्रीरामचन्द्रजीने छोडा, इस बाणने निशाचरराज रावणके ऊपर गिरकर उसके हृदयको फाड डाला—

चौ०–सायक एक नाभि सर शोषा। अपर लगे भुज शिर करि रोषा॥

दशमुख रावण दशों मुखोंसे रुधिर बहाता हुआ पुष्पकविमानसे नीचे गिर पडा–

चौ०–डोली भूमि गिरत दशकन्धर। क्षुभित सिन्धु सहदिग्गज भूधर॥
परेउ भूमि युग खण्ड बढ़ाई। चाँपि भालु मर्कट समुदाई॥

हे राजन्! इसप्रकार रावण पुष्पकविमानसे नीचे गिर पडा कि, जैसे क्षीण पुण्य होकर पुण्यवान् स्वर्गसे नीचे गिरता है, रावणको गिरता हुआ देखकर सब लोक हाहाकार करने लगे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे सहस्रों राक्षसियें लंकाके बाहर आय मन्दोदरीनामक रावणकी स्त्री सहित रोती हुई रणभूमिमें घूमने लगीं ॥ २४ ॥ इन राक्षसियोंके बान्धव वीर्यवान् लक्ष्मणजीके बाणोंसे मारे गये थे. यह राक्षसियें उनको अपने हृदयसे लगाय लगाय शिर पीट पीट और छाती कूट कूट आर्त वाणीसे रोने लगीं ॥ २५ ॥ राक्षसियें कहने लगीं कि, हा नाथ! हम मर मिटीं। हे रावण! तुम लोकोंके रुलानेवाले थे, हमारी लंकापुरी तुमसे विहीन हो शत्रुसे पीडित होरही है, सो इस समय हम किसकी शरण जाँय ?॥२६॥हे महाभाग! तुम कामके वश हो एकवारही बुद्धिहीन होगये थे,जनकनन्दिनीके प्रभाव और तेजको नहीं जाना इससेही तुम्हारी यह दशा हुई ॥ २७ ॥ हे रावण! तुम्हारे मारेजानेसे हम और यह लंकापुरी दोनों पतिहीन हुईं, तुमने अपनेही दोषसे अपनी देहको शृगालोंका भक्ष्य किया और आत्माको नरकभोगी बनाया ॥ २८ ॥

चौ०–रोदन करहिं अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिंबारा॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित्! इसके उपरान्त राक्षसेन्द्र विभीषणने महात्मा रामचन्द्रजीकी आज्ञा पाय अपने ज्येष्ठभ्राता रावणके मृतककर्म किये ॥ २९ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी अशोकवनमें गये, वहीं शीशमके वृक्षके नीचे बैठीहुई अतिक्षीण विरहके दुःखसे दुःखी जानकीजीको महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने देखा ॥ ३० ॥ प्रियतमा जानकीजीको अत्यन्त दीन हीन देखकर श्रीरामचन्द्रजीके कोमलहृदयमें दया आगई ॥ ३१ ॥ परन्तु पतिके दर्शनसे आनन्द पाय जनकनन्दिनी जानकीजीका वदनारविन्दभी विकसित होने लगा, फिर महात्मा लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीको विमानपर बैठाय फिर हनुमानजीके साथ आपभी उसपर बैठे ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त विभीषणको राक्षसोंका राज्य दे लंकाका स्वामी बनाया और एक कल्पभरकी आयु देदी, फिर चौदह वर्षका वनवास समाप्त करके विभीषणके साथ अयोध्यापुरीको चले; मार्गमें जातेहुए श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर लोकपालगणोंके हाथोंसे छूटी हुई फूलोंकी मालोंकी वर्षा होने लगी और शतधृत आदि गंधर्वगण परमानन्दसे श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र गाने लगे ॥३३॥ श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें जातेहुये सुना कि,भ्राता भरत अयोध्यासे बाहर भद्रसामें आय अपना डेरा किये हुये हैं, वह कुशोंपर सोते और वल्कल पहरते हैं, प्राण धारण करनेके लिये गोमूत्रमें पका केवल यवान्न खाते हैं, यह सुन रामचन्द्रजीका हृदय भर आया, रूँवे खडे हो गये और विलाप कलाप करते हुये विभीषणसे बोले॥३४॥

दोहा–तोर कोष गृह मोर सब, सत्य वचन सुन तात।
दशा भरतकी सुमिरि मोहिं पलक कल्पसम जात ॥
तापस भेष शरीर कृश, जपैं निरन्तर मोहिं।
देखों वेग सो यत्न करि, सखा निहोरों तोहिं ॥
जो जैहो बीते अवधि, जियत न पाऊं वीर।
प्रीति भरतकी सुमिरि प्रभु, पुनि पुनि पुलक शरीर ॥

महात्मा रामचन्द्रजी इसप्रकार विभीषणसे कहते विलाप करते चले जाते थे, हे महाराज परीक्षित्! जबसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये, तबसे भरतजी अयोध्यामें न जाय नन्दिग्राम (भदरसाही) में रहते थे, अब भरतजीने सुना कि–

चौ०–रिपु रणजीत सुयश सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥
सुनत वचन विसरे सब दूषा। तृषावन्त जिमि पाय पियूषा॥

तब भरतजी मंत्री, पुरोहित और पुरवासियोंके साथ उनको लिवालानेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके निकट चले.

चौ०–सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुशल भरत समुझाईं॥
समाचार पुरवासिन पाये। नर अरु नारि हर्षि उठि धाये॥
जो जैसे तैसहि उठि धावहिं। बाल वृद्ध कोउ संग न लावहिं॥
भरि भरि थार हेम वर भामिनि। गावत चलीं सिंधुरागामिनि॥
एकएक सन पूछहिं धाई। तुम देखे दयालु रघुराई॥
अवध पुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल शोभाकी खानी॥
भा सरयू अति निर्मल नीरा। बहै सुहावनि त्रिविध समीरा॥

उस समय अनेक बाजे बजने लगे, गीत सुनाई आये और वेदपाठी ब्राह्मणोंके वेद पढनेका शब्द अतिजोरसे होनेलगा और सुवर्णमय अनेक पताकायें और चित्रमय ध्वजाओंसे शोभायमान असंख्य सुवर्णमय रथ, बख्तर पहिरे हुये–बहुतसी सेना और पदाति सेवकभी बहुत सारे संग गये ॥ ३५ ॥

दोहा–हर्षित गुरु पुरजन अनुज, भूसुर वृन्द समेत।
चले भरत अतिप्रेमसे, सन्मुख कृपानिकेत ॥ १ ॥
बहुतक चढीं अटारिह्न, निरखहिं गगन विमान।
देखि मधुर स्वर हर्षित, करहिं सुमंगलगान ॥ २ ॥
आवत देखे लोग सब, कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु आयऊ, उतरे भूमि विमान ॥ ३ ॥

चौ०–आये भरत संग सब लोगा। कृशतनु श्रीरघुवीर वियोगा॥
वामदेव वसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनुसायक॥
धाय धरे गुरु चरण सरोरुह। अनुज सहित अति पुलकि तनूरुह॥

भेंटे पूछि कुशल मुनिराया। हमरे कुशल तुम्हारी दाया ॥
सकल द्विजनको नायउ माथा। धर्म धुरन्धर रघुकुल नाथा ॥
गहे भरत पुनि प्रभुपद पंकज।नवहिं जिनहिं शंकर सुर मुनि अज ॥
परे भूमि नहिं उठत उठाये। बलकर कृपासिन्धु उर लाये ॥
श्यामल गात रोम भये ठाढे। नव राजीव नयन जल बाढे ॥

दोहा-सघन चोर मग मुदित मन, धनी गही जिमि फेंट।
तिमि सुग्रीव विभीषण, प्रभुहि भरत की भेंट ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार जब राजाके योग्य चँवर, छत्र और सब सामग्री लेकर जब भरतजी अपने बडे भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंपर गिरपडे, तब उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी कि, जिससे उनके नेत्र व हृदय भीग गये. तब हाथ जोड दोनों करसे खडाऊँ आगे रखदीं और फिर नेत्रजलसे स्नान कराते कराते वहुत देरतक भुजाओंसे पकड श्रीरामचन्द्रजीको अपने हृदयसे लगाये रहे-तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रसे सीता और लक्ष्मणजीके साथ मिलकर ब्राह्मण और कुलवृद्ध पुरुषोंको नमस्कार किया ॥ ३६ ॥

दोहा-पुनि प्रभु हर्षित शत्रुहन, भेंटे हृदय लगाय।
लक्ष्मण भेंटे भरत पुनि, प्रेम न हृदय समाय ॥

चौ०-भरत अनुज लक्ष्मण तब भेंटे। दुसह विरहसम्भव दुख मेटे ॥
सीताचरण भरत शिरनावा। अनुज समेत परम सुख पावा ॥
प्रभु विलोकि हर्षे पुरवासी। जनित वियोग विपति सब नाशी
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी ॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। यथायोग्य मिलि सबहिं कृपाला॥
कृपादृष्टि सब लोग विलोका। किये सकल नर नारि विशोका॥
क्षणमहँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मर्म यह काहु न जाना ॥
यहि विधि सबहिं सुखी कर रामा। आगे चले शीलगुणधामा॥
कौशल्यादि मातु सब धाईं। निरखि वत्स जनु धेनु लवाईं ॥

दोहा-भेंटेउ तनय सुमित्रा, रामचरण रति जानि।
रामहिं मिलत कैकयी, हृदय बहुत सकुचानि ॥ १ ॥
लक्ष्मण सब मातन्ह मिले, हर्षे आशिष पाय।
कैकेयी कहँ पुनि मिले, मनकर क्षोभ न जाय ॥ २ ॥

तिसके उपरान्त सब प्रजाने श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ और उत्तर कोशलाके सब रहनेवाले बहुत कालके पीछे अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको आया हुआ देखकर आनंदके समुद्रमें स्नान करने लगे और अपने अपने दुपट्टे कँपातेहुए हर्षित

हो फूलोंकी मालायें वर्षाय कर नाचे ॥ ३९ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जब महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें आये उसकालमें भरतजीने उनकी खडाऊ धारण करलीथीं. विभीषण, सुग्रीवने चामर और व्यजन लिया था पवनकुमार हनुमान्‌जी श्वेत-छत्र धारण किये हुए थे ॥ ४० ॥ शत्रुहनजीने धनुष और तरकश लिया, और जगज्जननी जानकीजीने तीर्थोंके जलसे भराहुआ कमण्डलु ग्रहण कियाथा और युवराज अंगदजी खड्ग और ऋक्षराज जाम्बवान् सुवर्णमय बख्तर ले आये ॥ ४१ ॥ पुष्पकविमानमें जब वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हुए; तब नारियोंने उनकी प्रशंसा की, वन्दीजनोंने यश बखाना । उस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार शोभायमान होरहे थे कि, जैसे तारागणोंके साथ निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है ॥ ४२ ॥ अपने भ्राताओंसे सन्मानित होकर श्रीरामचन्द्रजीने उत्सवयुक्त पुरीमें प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ तिसके उपरान्त राजभवनके भीतर जाय कैकेयी इत्यादि गुरुपत्नी, अपनी माता और गुरुजनोंकी पूजा श्रीरामचन्द्रजीने की. फिर अपने सखा और छोटे जनोंसे पूजित हो सबका यथोचित सन्मान किया ॥ ४४ ॥ इसके पीछे सीता और लक्ष्मणजी भी जायकर यथा नियम इन सब गुरुजनोंसे मिले ॥ ४५ ॥ प्राणोंको पायकर जिस प्रकार देह उठ खडी होती है उसी प्रकार अपने अपने पुत्रोंको पाय सब मातायें सहसा उठ खडी हुईं । और उनको गोदीमें बिठाय नेत्रजलसे उनका अभिषेक कर अपना शोक सन्ताप दूर करने लगीं ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीकी जटा छुडवाय कुलवृद्ध पुरुषोंके साथ मिलकर समुद्रके व और सब तीर्थोंके जलसे उनका अभिषेक किया ॥ ४७ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार शिरसे स्नानकर प्रथम शोभायमान वस्त्र धारण किये । फिर हार और अलंकारोंसे सजकर वसन, भूषण, पहरे, भाइयों और सीताजीके साथ दीप्तिमान् हो विराजमान् होने लगे ॥ ४८ ॥ तिसके पीछे महात्मा भरतजीने प्रणाम कर जब श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न किया तब उन्होंने राज्यसिंहासन ग्रहण किया ॥ ४९ ॥

चौ०–प्रथम तिलक वशिष्ठ मुनि कीन्हा । पुनि सब विप्रन आयसु दीन्हा॥

स्वधर्मनिरत और वर्णाश्रम गुणोंसे युक्त प्रजापुंजको पिताकी समान पालन करने लगे ॥ ॥ ५० ॥ हे राजा परीक्षित् ! सब प्राणियोंको सुखके देनेवाले धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी जब राजा हुए उस समय यद्यपि त्रेतायुग वर्त्तमान था, तो भी वह काल सतयुगकी समान जान पडनेलगा ॥ ५१ ॥ समुद्र, नद, नदी, पर्वत, वन, द्वीप, खण्ड सबही प्रजाका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हुए ॥ ५२ ॥ कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके राजत्वमें राज्यके वीच आधि, व्याधि, जरा, शोक, दुःख, भय, ग्लानि, अथवा थकावट कुछ भी न रही, जवतक इच्छा न होती, तवतक मृत्यु किसीको नहीं दवा सक्ती थी ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजी पवित्र और एकपत्नीव्रतधारी होकर सब लोगोंको राजर्षियोंका अनुष्ठान कियेहुये गृहमें धैर्य धर्म उपदेश करके उसका स्वयं भी पालन करने-

लगे ॥ ५४ ॥ और भावकी जाननेवाली देवी सीताजी अपने स्वामीका आश्रयले प्रेम, सेवा, शीलता, भय और लाजसे उनके चित्तको हर लेती थीं ॥ ५५ ॥

दोहा-विधुमहि पूर पियूषन, रवि तप तेज न काज ।
मांगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्रके राज ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-ग्यारहमें श्रीरामने, अवध पुरीमें आन ।
यज्ञ किये भाइन सहित, सो सब कहौं बखान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! तिसके पीछे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने आचार्य लोगोंके साथ उत्तमोत्तम यज्ञ करके सर्व देवमय परमदेव जो आप हैं, सो अपनी ही पूजा करने लगे ॥१॥ यज्ञके अन्तमें पश्चिमदिशा होता और ब्रह्माजीको दक्षिणदिशा, अध्वर्युको पूर्वदिशा, और सामगान करनेवालोंको उत्तरदिशा श्रीरामचन्द्रजीने देदी इन दिशाओंके बीचकी जितनी भूमि थी, "इसको ब्राह्मण ही पानेके योग्य है" यह विचार निस्पृह श्रीरामचन्द्रजीने अवशेष पृथ्वी आचार्यको देदी ॥ २ ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे दानशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीसे जब सब दान करदिया तब केवल उनके पास वसन भूषण बचरहे और राजराजेश्वरी श्रीमती जानकीजीके पास भी केवल वसन भूषण ही रहे, अर्थात् इसके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्रजीने सब कुछ दान कर दिया ॥ ४ ॥ परन्तु ब्राह्मण देवता श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी वत्सलता देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करके सब वस्तु श्रीरामचन्द्रजीको लौटायदी * और बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! हे भुवनेश्वर ! आपने हमको क्या नहीं दिया है ? अर्थात् आपने हमको सब कुछ दिया क्योंकि, आपने हम लोगोंके हृदयमें प्रवेश करके अपनी प्रभा विस्तार कर हमारे अन्धकारको दूर किया है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! आप ब्राह्मणदेव अकुण्ठ बुद्धिमान् हैं, सो हम आपको नमस्कार करते हैं। हे भगवन् ! आप उत्तमश्लोकोंमें आगे गिने जाने योग्य हैं,मुनिलोग भी अपने अपने चित्तमें

---

* **शंका**-जो कुछ वस्तु रामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको दान करके दी थी, वह वस्तु ब्राह्मणोंने दान लेकर कुछ घडी अथवा कुछ दिन पीछे उसी दानवाली वस्तुको ब्राह्मणोंने फिर पीछे प्रीतिसहित रामचन्द्रको देदी, तब रामचन्द्रने अपनी दान कीहुई वस्तु ब्राह्मणोंसे क्यों ली ? क्या कारण यह बडे सन्देहकी बात है ।

उत्तर-ब्राह्मणलोग प्रसन्न होकर अपना प्रसाद तुलसीदल पत्र आदि लेकर तथा तीन लोकका सुखपर्यंत जब क्षत्रियोंको देते हैं, तब उसी समय क्षत्रियलोग ब्राह्मणोंका दिया हुआ प्रसाद प्रीतिपूर्वक ले लेते हैं जब कोई राजा नहीं ले तो शीघ्रही ब्राह्मणलोग उस राजाको शाप दे देते हैं. ऐसा रामचन्द्रने मनमें विचारकर अपनी दी हुई वस्तु प्रसाद समझकर ग्रहण करते थे, कुछ लोभ समझकर नहीं लेते थे ॥

आपके दोनों चरणकमलकी सदा चिन्ता करते हैं ॥ ७ ॥ बहुत दिन गये पीछे किसी समय श्रीरामचन्द्रजी गूढ वेष धारण कर यह जाननेके लिये कि, हमारे राज्यमें लोग हमारी निन्दा करते हैं वा स्तुति, रात्रिकालमें गुप्तभावसे घूमने लगे, एकदिन अकेले घूम रहे थे कि, एक पुरुषने अपनी स्त्रीसे कुछ कटुवचन कहे कि,जिनको वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने सुना ॥ ८ ॥ वह पुरुष अपनी स्त्रीसे कहरहा था कि, तू पराये घर जाया करती है, तू अतिदुष्टा असती है, मैं अब तुझे खाने पहरनेको नहीं दूंगा, रामचन्द्रजीका ही स्त्रियोंपर अनुराग है कि, पराये घरमें बहुत दीनोंतक रही सीताको फिर अपने घररख पालन कररहे हैं । मैं रामचन्द्र नहीं हूं । चली जा तेरा मुख नहीं देखनेका ॥ ९ ॥ अज्ञान अवाच्य, बहुमुख पुरुषके मुहंसे यह वचन सुनते ही श्रीरामचन्द्रजीको अत्यन्त भय हुआ । और उन्होंने स्थानपर आय अपनी प्रियतमा जनकनन्दिनी जानकीजीको त्याग दिया भीत पतिसे त्यागी हुई जानकीजी गर्भावस्थामें महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें आई ॥ ॥ १० ॥ कुछ दिनोंमें जानकीजीके समय पूर्ण होनेपर दो पुत्र उत्पन्न हुये यह दोनों कुश, लव नामसे विख्यात हुए. महर्षि वाल्मीकिजीने उन दोनों पुत्रोंका जातकर्म और संस्कार किया ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! इधर अयोध्यापुरीमें वीर्यवान् लक्ष्मणजीके दो पुत्र उत्पन्न हुये । उनका नाम अंगद और चित्रकेतु हुआ । महात्मा भरतजीके भी तक्ष और पुष्कल नामक दो पुत्र हुये । और शत्रुहनजीके पुत्रोंका नाम सुबाहु और श्रुतसेन हुआ ॥ १२ ॥ उसी समय भरतजी दिग्विजय करनेके लिये गये और करोडों गन्धर्वोंका संहार किया और उनका सब धन लाकर राज्यको देदिया ॥ १३ ॥ शत्रुहनजीने मधुके पुत्र लवणासुरका प्राणसंहार करके मधुवनमें मथुरापुरी वसाई ॥ १४ ॥ जनकनंदिनी जानकीजीका जब रामचन्द्रजीने त्याग करदिया तब कुछ दिन पीछे अपने पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीको सौंप अपने पति श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई पृथ्वीके विवरमें समाय गई ॥ १५ ॥ यह बात श्रीरामचन्द्रजीने भी सुनी । यद्यपि इन महाराज स्वयं ईश्वरने अपनी बुद्धिके बलसे शोक निवारण किया, तो भी प्राणप्यारीके गुणगण बारम्बार याद आने लगे कि, जिनके याद आनेको यह किसी प्रकार न रोक सके ॥ १६ ॥ हे राजा परीक्षित् ! स्त्री पुरुषोंका अनुराग सब कालमें इसी प्रकार भयका देनेवाला है । जब कि, यह अनुराग अवतारोंको भी भयदाई हुआ । तब गृहस्थीमें चित्त लगाये ग्राम्य पुरुषोंकी तो क्या बात है ॥ १७ ॥ तिसके उपरान्त श्रीरामचन्द्रजी अखण्डित ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अग्निहोत्र करते रहे । तिसके पीछे दण्डकवनके काँटोंसे जिनके चरणकमल बीधगये थे उन्हीं चरणोंके स्मरणकारी भक्तजनोंके हृदयमें स्थापित करके अपने धामको चले गये ॥ १८ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका समुद्रमें पुल बाँधना और अस्त्रसमूहसे राक्षसादिका वध कार्य यद्यपि कवि लोगोंने आश्चर्यमय वर्णन किया है तो भी इन कार्योंसे उनका कुछ यश नहीं हो सक्ता, क्योंकि उनका यश बहुत है साम्यसे छुटा हुआ है, सो बैरीको मारनेके समय बन्दर बिचारे क्या उनकी सहायता कर

सके हैं, इसलिये जिस प्रकार सुग्रीवादिके निकट इन श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय लेना केवल लीलामात्र है। वैसाही राक्षसोंका वधादि कार्य भी लीलाही है ॥ १९ ॥ २० ॥ हे महाराज ! आप ऐसा न समझ लेना कि, हमारे यह वचन अयुक्त हैं । देवतालोगोंकी प्रार्थनासे लीला करनेके लियेही भगवान्‌ने यह अवतार धारण किया था ॥ २१ ॥ अहो! जिनका निर्मल यश दिग्दिगन्तरमें व्याप्त होकर दिक्पाल हस्तियोंका आच्छादनपट-स्वरूप हुआ है, इसलिये अवतक जिसको युधिष्ठिरादि नृपतियोंकी सभामें ऋषिलोग निरन्तर गान करते हैं और जिनके चरणकमल देवता और नृपति लोगोंसे सेवित हैं। हम उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें जाते हैं. अयोध्यानिवासियोंने जिन पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रजीको स्पर्श किया, वा दर्शन किया, अथवा जिन्होंने उनको बैठाला था, किंवा जो लोग उनके अनुमत हुये थे, वह सब पुण्यात्मालोग उस स्थानमें जायँगे जहाँ कि, योगीलोग जाया करते हैं ॥ २२ ॥ हे परीक्षित् ! जो पुरुष श्रवणोंके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके इस आख्यानको धारण करेंगे, वह उपशम निष्ठ हो निःसंदेह कर्म बंधनसे छूट जायँगे ॥ ॥ २३ ॥ तिसके उपरान्त राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे कहने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्वयं किस प्रकार वर्तमान थे। उन्होंने अपने भ्राताओंसे जो कि, उनके अंशरूपही थे कैसा व्यवहार किया था और साक्षात् परमेश्वरस्वरूप जो श्रीरामचन्द्रजी थे, उनसे उनके भ्राता और प्रजाके लोग कैसा व्यवहार करते थे ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षित्का प्रश्न सुनकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजा परीक्षित् ! त्रिभुवनके ईश्वर श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्यामें आय राजसिंहासनपर बैठनेके पीछे अपने भ्राताओंको दिग्विजय करनेके लिये आज्ञा दी, फिर अपनी जातिवाले लोगोंके साथ बन्धुत्व, प्रकाशितकर अपने मित्रोंके साथ निरन्तर पुरीकी देखभाल करने लगे, जबसे श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक हुआ, तबसे अयोध्यापुरीके सब मार्गोंपर बरावर सुगन्धिका जल और हाथियोंके मदका जल छिडका जाता था, यह अयोध्यापुरी अपने स्वामीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे समृद्धिसंपन्न हुई थी, वहाँके महल, पुरके द्वार, पत्थरसे बने हुये थे और द्वार द्वारपर जलसे भरे हुये सुवर्णके कलश सदा रक्खे रहते थे, सर्व स्थानोंमें सदाही पताका फहराती थीं. गुच्छोंके साथ सुपारियें, केला और शोभायमान वसन, पाट और कौतुक बनानेके योग्य वस्त्र, माला, इत्यादिसे स्थान स्थानमें मंगलके तोरण बनाये गये थे ॥ २५ ॥ और जहाँ जहाँपर श्रीरामचन्द्रजी गमन करते थे उसी उसी स्थानमें पुरवासी लोग भेंट साथ लेकर आते थे और यह कहकर आशीर्वाद देते थे कि, हे देव ! आपने प्रथम वराहरूप धारण करके इस पृथ्वीका उद्धार किया था, अब इसका आप प्रतिपालन कीजिये ॥ २६ ॥ राज्यकी प्रजा बहुत समयके पीछे अपने राजाके आनेका समाचार पाकर उनके दर्शन करनेकी वासनासे स्त्री पुरुष सबही अपने अपने घर छोडकर महलोंकी छत्तपर चढे हुये थे और अपरितृप्तलोचनसे राजीवलोचन श्रीराम-

चन्द्रजीको अवलोकन करके उनके ऊपर फूल वर्षाय रहे थे ॥ २७ ॥ जिस समय श्री-रामचन्द्रजीने अपने गृहमें प्रवेश किया उस समय श्रीरामचन्द्रजीका धनागार अत्यन्त अखिल रत्नादिसे परिपूर्ण और अनेकानेक महामोलकी सामग्रियोंसे सुशोभित था. यद्यपि इस धनागारको पहले श्रीरामचन्द्रजीके सम्बन्धीलोग भोगकर चुके थे, परन्तु तो भी यह पूर्ण था वहाँके द्वारोंकी देहलियें मूंगोंकी बनी हुई थीं थम्भ वैदूर्य्यमणिके बनेहुये थे, गृहोंके आँगन मरकतमय होनेके कारण अतिस्वच्छ थे और स्फटिकमणिकी बनी हुई भीतें अत्यन्त दीप्तिमान् होरहीं थीं, विचित्र पुष्पोंके हारोंसे श्रेष्ठ पट्टिकाओंसे और वस्त्र व रत्नोंकी किरणोंसे यह भवन दीप्तिमान् होरहा था और चैतन्यतुल्य उज्ज्वल मुक्ताफलोंसे व कामनीय भोगसाधनद्रव्य समूहोंसे यह भवन सबप्रकार सुसज्जित था. सुगन्धित धूपसे सुगन्धित पुष्पमण्डलसे मण्डित और सब अलंकारोंके अलंकारस्वरूप देवताओंकी समान स्त्री पुरुषोंसे यह भवन सेवित हो रहा था, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि आत्माराम मुनिलोगोंके अग्रगण्य थे, तो भी उस भवनमें अपनी प्राणप्यारी श्रीजानकीजीके साथ विहार करते थे. इन रामचन्द्रजीने बहुत वर्षोंतक यथाकालमें सब अभिलषित भोगोंका भोग किया था, उसके सब मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका ध्यान करते थे ॥ ॥ २८ ॥ आत्माराम और धैर्यवानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने कालानुसार धर्मको विना पीडा दिये रमण किया था ॥ २९ ॥

चौ०-पुनि लव कुशको दीन्हेउ राजू। गये लोक साकेत समाजू॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे

एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा-द्वादशमें कुशवंशकी, कहूँ कथा समझाय।
पुनि इक्ष्वाकु सुत वंशकी, सकल कथा कहौं गाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजापरीक्षित्! श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशजीके तिथिनामक जो पुत्र उत्पन्न हुये थे। उनसे निषध उत्पन्न हुये निषेधका पुत्र नभ,तिसका पुत्र पुण्डरीक और तिसका सुत क्षेमधन्वा हुआ ॥ १ ॥ क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक, तिसका पुत्र अनीह, अनीहके पारिजात, पारिजातका पुत्र बलस्थल, तिसका पुत्र वज्रनाभ, यह सूर्यवंशमें उत्पन्न हुये ॥ २ ॥ वज्रनाभका बेटा सगुण और तिसका पुत्र विधृति जन्मा ॥ ३ ॥ विधृतिसे हिरण्यभेरकी उत्पत्ति हुई।यह हिरण्यभेर महर्षि जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था, इसकेही निकट याज्ञवल्क्य ऋषिने उस अध्यात्मयोगको सीखा जिससे महान् सिद्ध होकर हृदयकी गाँठ खुलजाती है॥४॥इस हिरण्यभेरका पुत्र पुष्य और इस पुष्यसे ध्रुवसंधिकी उत्पत्ति हुई. तिसका पुत्र सुदर्शन, तिसका सुत अग्निवर्ण और अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र उत्पन्न हुआ। इस शीघ्रसे राजा मरु जन्मे॥५॥यह मरु योगमें सिद्धि प्राप्त करके कलापनामक ग्राममें विराज-मान हैं ॥ जब यह कलियुगके अंतमें सूर्यवंशका नाश होता हुआ देखेंगे। तब यह फिर

अपने वंशको उत्पन्न करेंगे ॥ ६ ॥ इनके पुत्र प्रसुश्रुत, तिनके संतान संधि, तिनका पुत्र अमर्षण, अमर्षणका पुत्र सहस्वान् और सहस्वान्के विश्वबाहु हुआ ॥ ७ ॥ विश्वबाहुके प्रसेनजित, प्रसेनजित्से तक्षक तक्षकसे युत, तिसके बृहद्बल उत्पन्न हुआ कि, जिसका तुम्हारे अभिमन्युने संग्राममें संहार किया था ॥ ८ ॥ हे परीक्षित्! ऊपर कहेहुये राजा इक्ष्वाकुवंशमें होगये हैं अब उनका वृत्तान्त सुनो. जो कि, आगेको होंगे ॥ ९ ॥ इसके पीछे बृहद्बलके बृहद्रणनामक पुत्र होगा तिसका पुत्र वत्सवृद्ध ॥ १० ॥ इस वत्सवृद्धसे प्रतिव्योम, तिसके भानु और इस भानुसे सेनापति दिवाकरका जन्म होगा. तिसका पुत्र सहदेव, तिसका पुत्र वीरबृहदश्व तिसका पुत्र भानुमान् होगा ॥ ११ ॥ इस भानुका पुत्र प्रतीकाश्व, तिससे सुप्रतीक जन्मग्रहण करेंगे. तिससे मरुदेव, तिसके सुनक्षत्र और सुनक्षत्रसे पुष्करनामक पुत्र उत्पन्न होगा॥१२॥तिसके अन्तरिक्ष, तिसका पुत्र सुतपा, तिसके पुत्र अमित्रजित् तिसका पुत्र बृहद्राज बृहद्राजके बर्हि और बर्हिसे कृतञ्जयका जन्म होगा॥ ॥१३॥कृतञ्जयका पुत्र रणञ्जय और तिससे संजयकी उत्पत्ति होगी। सञ्जयका पुत्र शाक्य, तिसका पुत्र शुद्धोद और तिसका पुत्र हंगल होगा ॥ १४ ॥ हंगलसे प्रसेनाजत् तिससे क्षुद्रकसे कनक और कनकसे सुरथ जन्म लेगा ॥ १५ ॥ हे महाराज परीक्षित्! तिसके यहाँ सुमित्र जन्म ग्रहण करेगा और यह सब राजा बृहद्बलके वंशमें उत्पन्न होंगे ॥ १६ ॥ हे राजन्! इक्ष्वाकुके वंशमें सुमित्र तक यह सब राजा होंगे और सबसे पीछे सुमित्रके राजा होनेपर कलियुगमें यह वंश ध्वंस होजायगा ॥ १७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कंधे
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा-तेरहमें इक्ष्वाकु सुत, निमिका वंश बखान।
तिसमें प्रगटे जनकसे ज्ञानी परम सुजान॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने यज्ञ आरम्भ करके वसिष्ठ महर्षिजीको अपना ऋत्विज वरण किया, तब वसिष्ठजी बोले कि, यज्ञ करनेके लिये देवराज इन्द्र हमको वरण कर चुके हैं ॥ १ ॥ इस कारण विना इन्द्रका यज्ञ समाप्त किये हुये हम तुमसे यज्ञ नहीं करा सक्ते हैं जबतक इन्द्रका यज्ञ समाप्त हो तबतक ठहरे रहो। यह सुनकर महाराज निमि कुछ न बोले चुपचाप रहे। और महर्षि वसिष्ठजी देवराज इन्द्रका यज्ञ करने लगे ॥ २ ॥ वसिष्ठजीके जानेपर महाराज निमिने विचारा कि,इस जीवनका क्या ठिकाना है? यदि इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेके प्रथमही हमारी मृत्यु होजाय, तो फिर यज्ञ न हुआ, इसलिये जबतक कुलगुरु वसिष्ठजी न आवैं तबतक किसी औरही ऋत्विक्से यज्ञ आरम्भ कराऊं। यह विचार निमिराजाने यज्ञारम्भ किया ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त महर्षि वशिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ समाप्त कराय राजा निमिके स्थानपर आये, शिष्यका अन्याय देखकर मुनिको क्रोध उत्पन्न हुआ और क्रोध-

करके यह शाप दिया कि, पण्डिताभिमानी इस निमिका देह शीघ्र छूट जाय ॥ ४ ॥ जब कुलगुरु वशिष्ठजीने इस प्रकार अधर्मवर्ती होकर शाप दिया, तब राजा निमिभी उनको यह शाप देने लगा कि, " तुमने लोभके वश होकर धर्मकी ओरको नहीं देखा इसलिये तुम्हारा देहभी छूटजाय" ॥ ५ ॥ यह कहकर राजा निमिने अपने देहको छोड़दिया । उसी समय वशिष्ठ ऋत्विक्का भी देह छूटगया, परन्तु कुछ कालके पीछे मित्रावरुणके यज्ञमें उर्वशीके गर्भसे वशिष्ठजीने फिर जन्मलिया. अर्थात् यज्ञ करते करते उर्वशीको देखकर मित्रावरुण-जीका जो वीर्य गिरा. उस वीर्यको उन्होंने कलशमें रक्खा था, तिससेही फिर वशिष्ठजी उत्पन्न हुये ॥ ६ ॥ इधर जब यज्ञ करते करते राजा निमिका देह छूटगया, तब मुनि-लोगोंने सुगंधित वस्तुमें (उत्तम तेलमें) उनके शरीरको रखदिया, इसके उपरान्त जब यज्ञ समाप्त होगया तो आयेहुए देवता लोगोंसे बोले कि " आप लोग यदि प्रसन्न हों और सामर्थ्य रखतेहों तो राजाका यह देह सजीव हो उठे " देवतालोगोंने कहा ऐसाही हो । तब राजा निमिका शरीर गंध वस्तुमेंसे ही बोला कि, हे प्रिय ! हमें कभी देहका बन्धन न होवे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हरिसेवक मुनिलोग वियोगके भयसे कातर हो कदापि देह-धारण करनेकी वाञ्छा नहीं करते । वह केवल मुक्तिके लिये भगवान्के चरणकमलकी सदा वन्दना किया करते हैं ॥ ९ ॥ और दुःख, शोक, भयके देनेवाले मनुष्यके शरीरकी मैं इच्छा नहीं करता, क्योंकि इस देहको सर्वत्र मृत्यु है, जैसे मछलियोंकी जलमें सर्वत्र मृत्यु है ॥ १० ॥ तब देवतालोगोंने कहा कि, यह निमि विनाही देहके सब प्राणियोंके नेत्रोंपर इच्छानुसार वास करें ॥ इसका तात्पर्य यह है कि, ऐसा होनेसे मुनिलोग जिसलिये राजाके जीवनकी प्रार्थना करते हैं; वह प्रार्थना सिद्ध होजायगी और राजाको देहका संबं-धभी नहीं होगा. हे राजन् ! इसी वाक्यके अनुसार निमि जीवित हुए थे, नेत्रोंपर पलक-का उघडना और पडना इन्हीं राजा निमिके कियेसे होता है ॥ ११ ॥ परन्तु तिसके पीछे महर्षियोंने विचारा कि, विना राजाके राज्य सदा प्रजाका भय दिलानेवाला है । इस-लिये सबने राजकुमारकी कामना करके इन निमिके देहको मथा, मथनकरनेसे राजा निमिके मृतक देहसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ उस निमिके पुत्रका असामान्य जन्म होनेके कारण जनक नाम हुआ । इस शब्दका अर्थ उत्पादक है । और विदेहसे जन्म ग्रहण करनेके कारण इनका एक नाम विदेह हुआ और मथनेसे जन्म होनेके कारण एक नाम मिथिल हुआ । अथवा मिथिलापुरीके निर्माणकर्ता होनेके कारण मिथिलाधिपति कहलाते थे ॥ १३ ॥ इन जनकके पुत्र उदावसु, इनके पुत्र नन्दिवर्द्धन हुए. नन्दिवर्द्धनका पुत्र सुकेत और सुकेतका पुत्र देवरात हुआ ॥ १४ ॥ देवरातसे बृहद्रथका जन्म हुआ, तिसका पुत्र महावीर्य महावीर्यका, पुत्र सुधृति, तिसका सुत धृष्टकेतु, तिसका पुत्र हर्यश्व और तिससे मरुकी उत्पत्ति हुई ॥ १५ ॥ मरुका बेटा प्रताप, तिससे कृतरथने जन्म लिया तिसका पुत्र देवमीढ और तिससे विधुत उत्पन्न हुआ और उससे महाधृतिने जन्म लिया ॥ १६ ॥ महाधृतिका पुत्र कृतरात, तिसका पुत्र महारोमा और महारोमाका बेटा

स्वर्णरोमा हुआ तिससे ह्रस्वरोमाने जन्म ग्रहण किया ॥ १७ ॥ तिसके सीरध्वज जन्मा, ह्रस्वरोमा राजा यज्ञके लिये भूमि जोतरहे थे, उसी समय उसकी सीरा अर्थात् हलके अग्रभागसे इस पुरुषका जन्म हुआ, इस कारणसे यह सीरध्वज कहलाता था ॥ १८ ॥ सीरध्वजका पुत्र कुशध्वज तिसका पुत्र धर्मध्वज धर्मध्वजके कृतध्वज और मित्रध्वज नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ तिनके कृतध्वजसे केशीध्वजने जन्म लिया और मित्रध्वजसे खाण्डिक्य जन्मा ॥ २० ॥ हे राजन्! कृतध्वजका पुत्र आत्मविद्यामें विशारद हुआ और कर्मोंका भली भाँति जाननेवाला था. एक समय यह किसी कारणवश केशीध्वजके डरसे भाग गया ॥ २१ ॥ इस केशीध्वजका पुत्र भानुमान् हुआ, तिसका पुत्र शतद्युम्न. तिसका पुत्र शुचि और इस शुचिसे सनद्वाज हुए ॥ २२ ॥ सनद्वाजका पुत्र ऊर्ध्वकेतु तिसका पुत्र पुरुजित्, पुरुजित्का पुत्र अरिष्टनेमि, उसका पुत्र श्रुतायु, तिसका सुपार्श्व ॥ २३ ॥ सुपार्श्वसे चित्ररथ इससे क्षेमाधि क्षेमाधिका पुत्र समरथ तिसका पुत्र सत्यरथ उत्पन्न आ ॥ २४ ॥ सत्यरथका पुत्र उपगुरु और तिससे अग्निके अंशसे उपगुप्तने जन्मग्रहण किया, उपगुप्तका पुत्र वस्वनन्त वस्वनन्तका पुत्र युयुधान और तिसके सुभाषणने जन्मग्रहण किया ॥२५॥ सुभाषणका बेटा श्रुत, तिसका पुत्र जय, तिसका पुत्र विजय और तिसके ऋत उत्पन्न हुआ। ऋतका पुत्र शुनक, तिसके वीतिहव्य, तिसके धृति धृतिका पुत्र बहुलाश्व और तिसका पुत्र कृति हुआ। यह बडाही जितेन्द्रिय था ॥ २६ ॥ हे राजा परीक्षित्! यह सब भूपाल मिथिलवंशके कहे गये. यह सब आत्मविद्यामें पण्डित और याज्ञवल्क्यादि योगेश्वरोंकी कृपासे घरमें रहते हुए भी सुख दुःखादिके द्वन्द्वसे छूटेहुये थे ॥२७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे नवमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

दोहा–चौदहमें गुरु नारिसे, चन्द्र प्रगट कियो बुद्ध।
छः सुत प्रगटे बुद्धसे, आयु आदि चित शुद्ध ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ! अब अनन्तपावन सोमवंशका वर्णन करते हैं सो आप सचेत हो चित्त लगायकर सुनिये ॥ १ ॥ इस वंशकेही पुण्यकीर्ति ऐलप्रभृति राजा विख्यात हैं। हे महाराज! सहस्रशीर्षा परमपुरुष भगवान्के नाभिकमलसे जगतपिता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। तिनके पुत्र अत्रि, यह अत्रिजी गुणोंमें अपने पिताकी समान थे ॥ ॥ २ ॥ इन अत्रिजीके नेत्रोंसे अमृतमय सोम (चन्द्रमा) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। भगवान् ब्रह्माजीने इन चन्द्रमाको विप्र औषधि और सब नक्षत्रोंका अधिपति किया था ॥ ३ ॥ इन चन्द्रमाने त्रिभुवनको जीतकर राजसूय यज्ञ किया था इन्हीं चन्द्रमाने गर्व करके बृहस्पतिजीकी स्त्री ताराको हर लिया था ॥ ४ ॥ हे राजन्! देवदानवोंके बीच संग्राम होनेका कारण तुम जानते हो? जब चन्द्रमाने ताराको हरलिया, तब देवगुरु बृहस्पतिजी अनेकवार चन्द्रमाके निकट गये और उनसे अपनी भार्याको माँगा, परन्तु मदमत्तताके कारण चन्द्रमाने अपनी गुरुभार्याको नहीं त्यागा। बस

इसीलिये दैत्य व सुरोंमें महा संग्राम हुआ था ॥ ५ ॥ बृहस्पतिजीसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य डाह रखते थे इसीलिये उन्होंने अपने शिष्य असुर लोगोंके साथ चन्द्रमाको ग्रहण किया अर्थात् चन्द्रमाका पक्ष लिया और भूतेश्वर (महादेव) अंगिराजीके निकट विद्या पानेसे सब भूतोंको साथ ले अपने गुरुपुत्र बृहस्पतिजीकी ओर हुए ॥ ६ ॥ देवराज इन्द्रभी अपने सब देवताओंके संग मिल अपने गुरु बृहस्पतिजीकी ओर गये। तिसके पीछे ताराके लिये सुर और असुरोंका नाशकारी महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ७ ॥

चौ०-माचत भयो युद्ध अति घोरा। पूरि रहे आयुध चहुँ ओरा ॥
रुधिर धार तहँ बहत गँभीरा। कच्छ मच्छ सम तिरत शरीरा॥

हे राजन् ! जब कुछ दिनोंतक युद्ध हुआ । तब देवगुरु बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीसे जाकर यह सब वृत्तान्त कहा । यह सुन महात्मा ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बुलाकर बहुत डाटा और तारा बृहस्पतिजीको दिला दी ॥ ८ ॥ बृहस्पतिजी अपनी भार्या ताराको पायकर जानगये कि, यह अबला अन्तर्वत्नी अर्थात् गर्भवती हुई है । इसलिये ताराके ऊपर घृणा प्रकाश करके कहने लगे । अरे दुर्म्मति रमणि हमारे क्षेत्रमें औरका गर्भ धारण किया। इसे शीघ्र गिरादे । अरे असति ! तू ऐसा समझकर न डरना कि, गर्भगिरानेके पीछे हम तुझे मार डालेंगे, यद्यपि हमारे क्रोधकी अग्नि बहुत भडक रही है तोभी तुझ स्त्री जातिको हम क्या भस्म करेंगे? और अधिक करके हम सन्तानकी इच्छा करते हैं ॥ ॥ ९ ॥ पतिके यह वचन सुनकर तारा अतिलज्जित हुई और अपने गर्भसे तत्कालही कनकप्रेम सुकुमारको छोड दिया । हे राजन् ! इस परम कुमारको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंने लेना चाहा ॥ १० ॥ और दोनों परस्पर कहने लगे कि, यह बालक तुम्हारा नहीं है हमारा है इसलिये इन दोनों जनोंमें बहुत झगडा हुआ, पुत्रके लिये इन दोनोंमें झगडा होताहुआ देखकर ऋषि और देवतालोगोंने तारासे कहा कि, यह वास्तवमें किसका पुत्र है? परन्तु तारा लाजके मारे कुछ भी न कहसकी और चुप होरही ॥ ११ ॥ इसलिये वह बालक अलीक लाजसे कोपायमान हो अपनी मातासे बोला "अरी अशुभे बोलती क्यों नहीं? शीघ्र मेरे सामने अपना दोष वर्णन कर"॥१२॥ तिसके पीछे ब्रह्माजीने एकान्तमें ताराको बुलाय समझाया बुझाया और कहा हे वत्से ! बतलाओ यह किसका पुत्र है? तब तारा नीचेको शिर झुकाय लाजसहित धीरेसे बोली कि "पुत्र तो यह चन्द्रमाजी का है" ताराके मुखसे यह वचन निकलतेही चन्द्रमाने उस पुत्रको लेलिया ॥ १३॥ भगवान् ब्रह्माजीने इस बालककी गंभीर बुद्धि देखकर इसका नाम "बुध" रक्खा है. हे राजन्! चन्द्रमा पुत्रको पाकर परम हर्षित हुआ ॥ १४ ॥ इसबुधसे इलाके गर्भमें पुरूरवाका जन्म हुआ यह पुरूरवा अत्यन्त विख्यात हुआ ॥ १५ ॥ एक समय देवर्षि नारदजी देवराज इन्द्रकी सभामें पुरूरवाके रूप, गुण, धन, उदारता, शीलता और विक्रमका गान कर रहे थे। देववेश्या उर्वशी यह गुण सुनकर कामके वश होगई और राजाके निकट स्वयंही आई ॥ १६ ॥ हे परीक्षित् ! तुम ऐसी शंका मत करना कि. उर्वशी स्वर्गकी अप्सरा होकर

मनुष्यके निकट क्यों गई ? यह अप्सरा मित्रावरुणके शापसे इस समय मनुष्यभावको प्राप्त हुई थी इसलिये पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाको कामदेवकी समान स्वरूपवान् सुनकर यह अधीर हो उनके निकट जाकर खड़ी होगई ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र आनन्दके मारे खिलगये । राजाने पुलकित हो मधुर वचनसे कहा ॥ ॥ १८ ॥ हे सुन्दरि ! हमारे साथ विहार करो । बहुत वर्षोंतक हमारा दोनोंका परम सुखसे रमण होगा और मैं यही चाहताहूं कि, मेरा तुम्हारा स्नेह ऐसाही बनारहे ॥ १९ ॥ उर्वशी बोली कि, हे सुन्दर ! तुम्हारे प्रति किसके नेत्र और मन अनुरागी न होंगे ? तुम्हारे हृदयको प्राप्त हो रमण करनेकी इच्छासे कोई इस हृदयसे दूर होनेकी इच्छा न करेगी ॥ २० ॥ तिसके उपरान्त शापके अंतमें प्रतिज्ञा भंग करनेके छलसे जानेके लिये कहने लगी कि, हे प्रियवर ! मैं प्रथमही आपसे यह वचन माँगे लेतीहूं कि, मेरे यह दोनों भेडोंके वच्चे तुमको धरोहरकी समान रखने पडेंगे और हमारे साथ तुम रमण करो । क्योंकि जो पुरुष बड़ाईके योग्य है । उसकोही स्त्रियें वरण करती हैं । इसलिये विजातीय होनेपरभी तुम्हारे वरण करनेमें हमें कोई दोष नहीं है ॥ २१ ॥ हे वीर ! परन्तु मैं तुम्हारे निकट रहकर अमृतभक्षण करूंगी और मैथुनके अतिरिक्त किसी समय तुमको वस्त्ररहित न देखूं । जबतक इतनी बातें आप मेरी स्वीकार न करलेंगे तबतक मैं आपके संग कदापि प्रसंग न करूंगी. राजा पुरूरवाने उसकी सुन्दरताई-पर मोहित होकर यह सब बातें अंगीकार करलीं ॥ २२ ॥ और कहा कि, हे सुन्दरि ! तुम्हारा आश्चर्यमय रूप और आश्चर्यमय भाव देखतेही मनुष्यका हृदय मोहित होजाता-है । तुम स्वर्गवासी देवी अपने आप यहाँ आई हो । फिर कौन मनुष्य तुम्हारी सेवा न करेगा ? ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यह कहकर पुरुषप्रधान पुरूरवा उर्वशीके साथ देवतालो-गोंके विहारस्थल चैत्ररथादि वनोंमें विहार करनेलगे । और उर्वशीभी यथायोग्य उस नृपालको आनन्द देने लगी ॥ २४ ॥ इस देवी उर्वशीके शरीरमें कमलके परागकी समान सुगंधि निकलती थी । उर्वशीके साथ विहार करके राजा इसके वदनकी सुगन्धिसे बहुत दिनतक हर्ष पातेरहे ॥ २५ ॥ इसओर पुरमें देवराज इन्द्रने उर्वशीका दर्शन न पायकर गन्धर्वोंको आज्ञा दी कि, वह उर्वशी जहाँपर हो वहाँसे शीघ्र ले आओ । क्योंकि विना उर्वशीके हमारे स्थानकी शोभा नहीं होती ॥२६॥ आधीरातके समय जब महाअन्धकार हुआ।उस समय वह इन्द्रके भेजे गन्धर्व मृत्युलोकमें आये और उन मेढ़ोंको हरण करके चल दिये जिनको धरोहरकी भाँति उर्वशीने पुरूरवाके निकट सौंपा था ॥२७॥ उन दोनों मेढोंको उर्वशी पुत्रकी समान मानती थी,जब उन मेढोंको गन्धर्वगण हरण करके लेजाने लगे तब वह अति आरत वाणी चिल्लाये । उस चिल्लानेके शब्दको सुन उर्वशी देवलोकमें जानेकी वासनासे खेदसहित राजा पुरूरवासे कहने लगी “ हा ! मैं इस कुत्सित स्वामीसे मारी पडी, इस नपुंसकमें कुछ भी पुरुषार्थता नहीं है । बरन् यह अपने आपको वृथाही वीर जानकर अभिमान करता है । इसके ऊपर विश्वास करनेसे मेरा नाश होगया हाय ! मेरे पुत्रसमान

मेढोंको चोर हरण करके लिये चले जाते हैं। अरे! यह पुरुष कैसा? कि जो नारीकी समान भीत रहकर दिन रात घरमें पडा रहता है. हे राजन्! जिस प्रकार हाथी अंकुशसे विद्ध होता है उसी प्रकार उर्वशीके वचन बाणकी समान राजाके हृदयमें बिंधगये और उसी समय खड्ग ग्रहण करके क्रोधके मारे वस्त्र रहित मेढोंके हरनेवालोंपर झपटा ॥२८॥ गन्धर्वोंने देखा कि, राजा हमारे पीछे आता है। तब गन्धर्वगणोंने मेढोंको छोडदिया। और द्युतिमान् होकर वहां प्रकाश करने लगे। तब राजा उन मेढोंके बच्चोंको लेकर वहाँ आया, परन्तु उस समय उर्वशीने उनको नग्न देखलिया। हे कुरुश्रेष्ठ! "मैथुनके अतिरिक्त नंगा न देख सकूँगी" इस बातको विचार वह अप्सरा वहाँसे चली गई। इसके उपरान्त राजा पुरूरवा सेजपर उर्वशीको न पायकर अत्यन्त विमन हुआ। और उसीमें चित्त लगाय कातरता प्रकट करके शोकके वेगसे उन्मत्तकी नाईं पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ कुछ दिनों पिछे कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तीर वह अप्सरा पाँच सखियोंके साथ राजा पुरूरवाको दिखाई दी; तब राजाने सिटपिटायकर हर्षित हो यह वचन कहे ॥ ३१ ॥ हे प्यारि! हे निर्दयि बाले! रहो रहो। हे सुमुखि! मैं अबतक सावधान नहीं हूं। प्राणेश्वरि! आओ तो दोनों एक स्थानपर बैठकर बात चीत करें ॥ ३२ ॥ हे देवि! हमारा यह कमनीय शरीर तुमसे दूर किया हुआ जो यहाँ आया है। अभी यहाँ गिरता है और देखो तुम्हारी प्रसन्नताका पात्र न होनेसे भेडियें और गिद्ध इसको भक्षण कर जायँगे ॥ ३३ ॥ राजाके यह वचन सुनकर उर्वशी बोली कि, हे राजन्! मरो नहीं। तुम पुरुष हो धैर्य धारण करो। यह भेडियें अथवा प्रसिद्ध इन्द्रियें तुमको भक्षण न करें अर्थात् तुम इन्द्रियोंके वश मत होओ. हे राजन्! कहीं भी स्त्रियोंकी मित्रता नहीं स्थिर होती क्योंकि इनका हृदय भेडियेंकी समान होता है ॥३४॥ स्त्रियोंको स्वभावसेही करुणा नहीं होती. यह क्रूर और शान्तिरहित कहलाती हैं। अपने प्रीतमके लिये साहस करतीहैं।थोडीसी बातके लिये यह विश्वासघातिनी पति अथवा भ्राताको प्राणोंसे मार डालती हैं।अधिक करके जो पुंश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी हैं।इच्छानुसार घूमती हैं। वह तो सौहार्दको एक सायही छोड देती हैं,वह अज्ञानी पुरुषके सामने बाहरी और अलीक प्रेम प्रकट करती हैं ॥ ३५ ॥ जब राजाने बहुत बिनती की, तब उर्वशी बोली कि, वर्षके अन्तमें तुम मेरे साथ एक दिन विहार कर सकोगे। और उससेही तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त राजा पुरूरवा देवी उर्वशीको गर्भवती देख उसके वचन मान अपने नगरको चला आया ॥ ३७ ॥ परंतु वर्षके व्यतीत होनेपर फिर वहाँपर आया जहाँ कि, पहले उर्वशीसे भेंट हुई थी वीरप्रसविनी उर्वशीको देखकर राजाको परम हर्ष हुआ। और प्रमुदित चित्तसे उर्वशीके पास एक रात वास किया ॥ ३८ ॥ फिर वियोगके भयसे राजाका चित्त व्याकुल हुआ। उर्वशी दीन राजाको विरहातुर देखकर कृपा करके बोली हे राजन्! हमारे लिये शोक क्यों करते हो? गंधर्वलोगोंकी विनय करो। वह गंधर्वगण प्रसन्न होकर हमको सदाके लिये तुम्हें देदेंगे ॥ ३९ ॥ हे परीक्षित्! उर्वशीके यह वचन

सुनकर राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी बडी स्तुति की कि,जिससे गंधर्वगण बहुत ही शीघ्र प्रसन्न होगये उन्होंने प्रसन्न होकर राजाको अग्निस्थाली (टोकनी)दी।उसके देनेका तात्पर्य यह था कि, जब इससे अग्निकर्म किया जायगा, तबहीं उर्वशी प्राप्त हो जायगी। परंतु राजा पुरूरवाने उस अग्निस्थालीकोही उर्वशी समझा और उसको काँखमें दबाये वन वनमें घूमता फिरा। परन्तु फिर राजाका भ्रम दूर हो गया, अर्थात् यह समझलिया कि, यह उर्वशी नहीं किन्तु अग्निस्थाली है ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त उस अग्निस्थालीको वनमें डालकर घर आया और घरमें आय नित्य रात्रिके समय उर्वशीका ध्यान करने लगे। तिससे त्रेता-युगके आरंभके समय राजाके हृदयमें कर्मबोधक तीन वेद उत्पन्न हुए ॥ ४१ ॥ उसके पीछे राजा फिर वहींपर गया कि, जहाँ अग्निस्थाली पडी थी। और देखा कि, शमीवृक्षके गर्भमें एक चलद्रोणीका पेड जमा है उसमें अग्निका होना भली भाँतिसे देख उर्वशी लोककी कामनासे राजाने उस चलद्रोणी पेडसे दो अरणी बनाई और उस अग्निको मथा, हे राजन्! राजा पुरूरवाने किसप्रकारसे अरणियोंसे अग्नि निकाली, सो तुम सुनो। मंत्रके अनुसार नीचेकी अरणीको उर्वशी और उत्तरकी अरणीको आत्मा समझकर और इन दोनोंमें जो काठका टुकडा था, उसका यह राजा पुत्रकी भाँति ध्यान करने लगे ॥ ४२ ॥ जैसेही वह अरणी मथी गई कि, उनमेंसे अग्नि निकली यह अग्नि साधारण नहीं । इससेही भोज्य धन जन्म लेता है उसके पीछे वह अग्नित्रयीविद्याकी विधिके अनुसार कहे हुए संस्का-रसे त्रिवृत अर्थात् आहवनीयादि त्रिरूप हुई। फिर राजाने उस त्रिवृत अग्निको अपना पुत्र कहकर माना ॥ ४३ ॥ और उर्वशी लोककी कामना करके उस अग्निसे सर्वदेवमय यज्ञेश भगवान् वासुदेवका यज्ञ इस राजाने किया ॥ ४४ ॥ हे राजन्! पहले सतयुगमें सब प्रकारके वाक्योंका बीजभूत ओंकारही एक मात्र वेद था, नारायणही अकेले देवता थे। अग्निही अकेला लौकिक था वर्णभी एकही था और अग्निभी एकही था ॥ ४५ ॥ फिर त्रेतायुगके आरम्भमें पुरूरवासे तीन वेद उत्पन्न हुये। इसलिये इस युगमें राजा अग्निरूप प्रजाद्वारा गंधर्वलोकको प्राप्त होकर उर्वशीके साथ विहार करने लगा। सत्ययुगमें सबही पुरुष सतोगुण प्रधान थे, इसलिये सबही ध्याननिष्ठ हुआ करते थे, उसके पीछे रजोगुण प्रधान त्रेतायुगमें वेदादिके विभागसे कर्ममार्ग प्रकाशित हुआ है ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कंधे
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा-पुरूरवाके वंशमें, भये गाधि गम्भीर।
ता दौहित्रके पुत्र भये, परशुराम रणधीर ॥

इसके उपरांत श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! राजा पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे ६ पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम यह हैं। आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय, और जय ॥ १ ॥ इनमें श्रुतायुके वसुमान, सत्यायुके श्रुतञ्जय हुआ, रयका पुत्र एकनामा

हुआ। जयकी संतान अमित और विजय का पुत्र भीम हुआ भीमका पुत्र काञ्चन और काञ्चनके होत्रक जन्मा इस होत्रकके उन जह्नुका जन्म हुआ कि जिन्होंने एकही घूंटमें सब गंगाजीका जल पान कर लिया ॥ २ ॥ जह्नुके पुरु जन्मा उसका बलाक तिसका बेटा अजेक और अजेकके यहाँ कुशने जन्म लिया। कुशके कुशाम्बु, मूर्तय, वसु और कुशनाभ यह चार पुत्र हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनमेंसे कुशाम्बुके महोगाधिने जन्म ग्रहण किया। इन गाधिके सत्यवती नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। ब्राह्मण ऋचीकने राजा गाधिसे उस कन्याको माँग लिया था। तब राजा गाधिने कन्याके योग्य यह वर न विचारकर निवेदन किया ॥ ५ ॥ हे महाराज! जिनका दाँया अथवा बाँया एक ओरका कान श्यामवर्ण हो और जिनके सब अंगोंमें चन्द्रमाकी समान ज्योति हो ऐसे एक सहस्र घोडे तुम हमें इस कन्याके मूल्यमें दो तब हम तुम्हें यह कन्या दें। कुछ इन हजार घोडोंको आप अधिक न समझें, क्योंकि हम कुशिकके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! ऋचीक मुनि राजाके ऐसे वचन सुनकर सब अभिप्राय जान वरुणजीके निकट उसी समय चलेगये और वहाँसे एक हजार घोडोंको लाकर उस श्रेष्ठ मुखवाली कन्यासे विवाह किया ॥ ७ ॥ कुछ कालके पीछे ऋचीक मुनिकी भार्या और सासने पुत्रकी कामना करके इन ऋचीकसे प्रार्थना की, तब यह ऋषि अपनी भार्याके लिये ब्रह्ममन्त्रसे और सासके लिये क्षत्रिय-मन्त्रसे चरु पकाय स्नान करनेको गये ॥ ८ ॥ उसी सत्यवतीकी माताने मनमें विचारा कि, भार्याके ऊपर पतिका अधिक स्नेह हुआ करता है, जामाता मेरी कन्याके लिये जो चरु बनायकर गये हैं. वह अवश्यही हमारे चरुसे श्रेष्ठ होगा। यह सोच विचार इसने अपनी कन्यासे वह चरु माँगा जो कि ऋषि इस अपनी भार्याके लिये बनागये थे। सत्य-वतीने माताकी प्रार्थनासे ब्रह्ममन्त्रयुक्त अपना चरु उसको देदिया और आपने क्षत्रियम-न्त्रका पढा हुआ चरु भक्षण किया ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त जब मुनिने आकर यह बात जानली। तब अपनी स्त्रीसे बोले। "बडा नीचकर्म किया, चरुका अदल बदल करनेसे तुम्हारा पुत्र घोर दण्डधारी होगा। और तुम्हारा भ्राता ब्रह्मचारी होगा" ॥ १० ॥ यह सुन सत्यवती अत्यंत भीत हो अनेक भाँतिकी अनुनय विनयकर ऋषिसे बोली कि "महाराज! ऐसा न हो" तब भार्गव प्रसन्न होकर बोले कि, तुम्हारा पौत्र भयंकर होगा। हे राजन्! तिसके पीछे सत्यवतीके जमदग्नि नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ हे राजन्! उसके वह सत्यवती अबला लोकपावनी महापुण्यमय कौशिकी नदी होकर बही ॥ १२ ॥ हे परीक्षित्! इन महर्षि जमदग्निने रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया। उस रेणुकाके गर्भसे इन ऋषिके वसुमानादि बहुत पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ इनके सब पुत्रोंमें छोटे परशुराम हुए। प्राचीन कविलोग इनको भगवान् वासुदेवका अंश और हैहय नाम क्षत्रिय कुलका अन्त करनेवाला कहते हैं। इन परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीसवार क्षत्रियहीन किया था ॥ १४ ॥ पहले क्षत्रियजातिके लोग रजोगुणसे व तमोगु-णसे परिपूर्ण हो गर्वकारी और वेदविरुद्धाचारी हुए। इसलिये यह पृथ्वीपर भारकी नाईं

होगये थे, यद्यपि अपराध इनका थोडा था, तौभी परशुरामजीने इनको मारही डाला ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अजितेन्द्रिय क्षत्रिय जातिने भगवान् परशुरामजीका ऐसा क्या अपराध किया था कि, जिससे उनका क्रोधानल वारम्वार क्षत्रियकुलके ऊपर पडा था ॥ १५ ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षित्का प्रश्न सुनकर सहर्ष श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! हैहयोंके अधिपति क्षत्रिय श्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनने सेवाके कर्म्मसे नारायणके अंशके अंश भगवान् दत्तात्रेयकी पूजा करके सहस्र भुजा प्राप्त की और इनकेही बलसे यह शत्रुओंपर दुर्द्धर्ष हुएथे। दत्तात्रेयकी सेवासे राजाको अव्याहत इन्द्रिय सामर्थ्य, सम्पदा, प्रभाव, वीर्य, बल, योगेश्वरत्व और जिससे अणिमादि गुण विराजमान् रहे ऐसा ऐश्वर्य भी उन्होंने पाया था ॥ १७ ॥ इसलिये यह राजा पवनकी समान अव्यर्थगतिवाला हो सब लोकोंमें विना बाधाके भ्रमण करने लगा ॥ १८ ॥ एक समय यह सहस्रार्जुन वैजयन्ती माला धारणकर बहुतसी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीके जलमें क्रीडा करने लगा। मदोन्मत्तताके कारण केलि करते करते इसकी हजार बाँहोंसे अचानक नर्मदाकी धार रुकगई ॥ १९ ॥ उसी समय राक्षसराज रावण दिग्विजय करनेके लिये बाहर हो माहिष्मती पुरीके समीप डेरा डाल शिवलिंग स्थापित कर इस नदीके किनारे उनकी पूजा करता था, जब कार्तवीर्यार्जुनकी भुजाओंसे जलकी धार रुक गई। तब नदीकी धार प्रतिकूल हो नदीके किनारेको डुबाती हुई दूसरी ओरको लौटी। नदीकी धारके जलसे अपने डेरेको डूबता हुआ देखकर अर्जुनके वीर्यको वीर्याभिमानी रावण नहीं सहसका ॥ २० ॥ तब रावणने विहार करतेहुए सहस्रार्जुनके पराजित करनेका उद्योग किया। हे राजन् ! जब स्त्रियोंके सामने रावणने इस प्रकार का ढीठपन किया तब सहस्रार्जुनने क्रोधित हो उसको पकड लिया और अपने नगरमें बाँधकर ले आया और बंदरकी समान कुछ दिन अपने घरमें बाँधा और फिर अवज्ञा कर छोड दिया ॥२१॥ जिस प्रकार कार्त्तवीर्यार्जुन अपराधी होकर परशुरामजीके हाथसे मारागया उसकाभी वर्णन हम करते हैं तुम सुनो। एक समय सहस्रार्जुन मृगयाके लिये विजन वनमें घूमता घूमता अकस्मात् जमदग्निजीके आश्रममें आय पहुँचा ॥ २२ ॥ मंत्री, सेना, सामन्त और अश्वादि वाहन सहित इस राजाको अपने आश्रममें आयाहुआ देखकर जमदग्निऋषिने अपनी कामधेनु गायके द्वारा भली भाँति इनका अतिथि सत्कार किया ॥ २३ ॥ मुनिकी इस धेनु रत्नको अपने ऐश्वर्यमें श्रेष्ठ देखकर इस पहुनईसे सहस्रार्जुनको सन्तोष न हुआ। उसने हैहय लोगोंके साथ परामर्श करके इस गायके ले जानेका अभिलाष किया ॥ २४ ॥ इस लिये दर्प करके अपने पुरुषोंको आज्ञा दी कि, ऋषिके अग्निहोत्रकी गाय लेलो। यह आज्ञा पाय सहस्रार्जुनके सेवक रोती और डकराती हुई बच्चे सहित उस गायको बलात्कार (जबरदस्ती) पकड कर माहिष्मती नगरीको लेगये ॥ २५ ॥ जब राजा गायको लेकर माहिष्मती पुरीको चला आया तब जमदग्निजीके पुत्र परशुरामजी आश्रममें आये। वह इस राजाकी यह दुष्टता सुनकर चोट खायेहुये

सर्पकी समान क्रोधाग्निसे जल उठे ॥ २६ ॥ उसी समय परशुरामजी घोर परशा हाथमें ले तूणसहित धनुष बाणले बख्तर पहरकर महाक्रोधित हो उस राजाके पीछे दौडे जैसे सिंह यूथपति हाथीके ऊपर झपटता है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! कार्तवीर्यार्जुन जब अग्निहोत्रकी गाय लेकर अपनी माहिष्मती पुरीमें प्रवेश करनाही चाहता था कि, इतनेहीमें उसने देखा कि, भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी मृगचर्म पहरे बाणादि आयुधसहित धनुष धारण किये महावेगसे आय रहेहैं और सूर्यकी समान प्रकाशमान इनकी जटा इधर उधर छिटकरही हैं ॥ २८ ॥ यह देखकर सहस्रार्जुनने भीतहो अपने वचनेके लिये हाथी, घोडे, रथ, पैदल और गदा, असि, बाण, ऋष्टि (अस्त्र विशेष) शतघ्नी और शक्ति सहित सत्रह अक्षौहिणी भयंकर सेना भेजदी । परन्तु परशुरामजीने अकेलेही उन सब सेनाओंका संहार कर डाला ॥ २९ ॥ महात्मा परशुरामजीका वीर्य और मन पवनकी तुल्य, इस कारण शत्रु सेनाको नाश करनेके लिये वह अग्निकी समान थे । वह अपना परशा चलाते हुए जहाँ जहाँ गये उसी उसी स्थानमें शत्रुसेनाके वीरगण छिन्नबाहु, छिन्नजंघा और छिन्नमुण्ड होकर पृथ्वीपर गिरने लगे । और उनके अश्व सारथि सबही मारे गये ॥ ३० ॥ हैहयपति अर्जुन रणभूमिमें रुधिरकी धारासे कीच उठी देख और परशुरामजीके कुठार व बाण प्रहारसे वर्म, ध्वजा, धनुष, बाण और शरीर छिन्न भिन्न होनेसे प्रायः सबही सेना युद्धमें गिर पडी है । यह देख क्रोधित हो सहस्रबाहु आपही संग्राममें चला आया ॥ ३१ ॥ और परशुरामजीका संहार करनेको अपनी सब भुजाओंसे एकबारही पाँचसौ (५००) धनुष ग्रहणकर पाँचसौपर पाँचसौ तीक्ष्ण बाण चढाकर चलाने लगा । हे राजन् महातेजस्वी परशुरामजी अस्त्रधारियोंमें आगे गिनने योग्य हैं । यद्यपि वह एक धनुष चढा रहे थे तो भी उसी धनुषसे अगणित बाण चलाकर एक साथ अर्जुनके पाँच सौ धनुष काट डाले ॥ ३२ ॥ धनुषोंको कटजाने पर अपनी भुजाओंसे समर करनेके योग्य अनेक अनेक पर्वत और वृक्ष लेकर महावेगसे रणभूमिमें खडे हुए परशुरामजीके ऊपर दौडा ॥ ३३ ॥ यह देख परशुरामजीने अति पैनी धारवाले कुठारसे सर्पके फणोंकी समान उसकी सब भुजायें काटडालीं और पीछेसे पर्वतके शिखरकी समान सहस्रबाहुका मस्तकभी काटदिया । हे राजन् ! सहस्रबाहुके मारेजानेपर उसके दश सहस्र पुत्र भयके मारे भागगये ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त परशुरामजी बछेसहित उस गायको लेकर आश्रममें आये और शत्रुके हाथमें जानेसे क्लेशित हुई उस गायको लाकर अपने पिताजीको सौंप दिया ॥ ३५ ॥ परन्तु जिस समय परशुरामजीने अपना किया हुआ कर्म पिता और भ्राताओंसे वर्णन किया, तब मुनिश्रेष्ठ जमदग्निको संतोष नहीं हुआ और संबोधित विराग दिखायकर बोले ॥ ३६ ॥ हे राम ! हे महाबाहु ! तुम पापकर आये कैसी खेदकी बात है ? नरदेव राजा सर्वदेवमय स्वरूप है उसको तुमने वृथाही मारडाला ॥ ३७ ॥ हे तात ! हम ब्राह्मण क्षमागुणसेही पूजित हुए हैं । यह गुण साधारण नहींहै । इसी गुणसे ब्रह्माजी लोकगुरुहो परमेष्ठी पदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३८ ॥ हे महा-

राजन् ! जमदग्नि फिर बोले कि, हे वत्स ! क्षमासेही सूर्यसम्बधिनी प्रभाकी समान ब्रह्मसम्बन्धिनी श्री शोभायमान होती है। और क्षमाशील पुरुषके ऊपर भवगान् वासुदेव शीघ्रही प्रसन्न होजाते हैं ॥ ३९ ॥ हे अंग ! चक्रवर्ती राजाका वध ब्रह्मवधसेभी भारी है। इसलिये तुम भगवान् हरिमें मन लगाय तीर्थसेवा और यम नियमादि द्वारा अपने पापोंका नाश करो ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा-सोलहमें जमदग्नि वध, युत सुत कियो हजार।
परशुराम तासों करत, क्षत्रिनको संहार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! पिताके उपदेशसे परशुरामजी "बहुत अच्छा" कह वनको चलेगये और एक वर्षतक तीर्थयात्रा करके आश्रममें लौट आये ॥ १ ॥ किसी समय जमदग्निकी स्त्री रेणुकाने गंगाजीपर जाय वहाँ पद्ममणिनाम गन्धर्वराजाको अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ देखा ॥ २ ॥ रेणुका जल लानेके लिये गंगाजीपर गई थी, विहार करतेहुए गन्धर्वराजाके देखनेसे रेणुकाने उनकी चाहना की और होमका समय व्यतीत होगया इसको भी रेणुकाने न जाना ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कालको बीतजाताहुआ देख, मुनिसे शापकी आशंका कर वह अत्यन्त भीत हुई। और शीघ्र आय जलकलशको मुनिके आगे रख खडी होगई ॥ ४ ॥ इधर अपनी भार्याके मानसिक व्यभिचारको जान महर्षि जमदग्निको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ उन्होंने प्रज्वलित अग्निके समान तीक्ष्ण हो अपने पुत्रोंको पुकारकर यह आज्ञा दी कि, तुम इसी समय अपनी पापिनी माताको मारडालो। परन्तु इन पुत्रोंने पिताका वचन नहीं सुना ॥ ५ ॥ परन्तु परशुराम अपने पिताकी समाधि और तपस्याके प्रभावको जानते थे, जब इनसे मुनिने कहा कि, तुम अपने इन भाइयोंको और अपनी माताको मारडालो तव उन्होंने विचारा कि, जो पिताकी आज्ञा उल्लंघन कर इनको नहीं मारता तो पिताजी क्रोधित होकर हमको शाप देदेंगे और जो हम इनको मारडालेंगे तो कदाचित् हमारे ऊपर प्रसन्न हो यह हमारी माता और भ्राताओंको जिलाभी सक्ते हैं ॥ इसलिये जैसे ही पिताने आज्ञा दी वैसेही महात्मा परशुरामजीने माताके सहित अपने भ्राताओंका संहार किया ॥ ६ ॥ यह देखकर सत्यवतीके पुत्र जमदग्निमुनि परशुरामजीपर अत्यन्त प्रसन्न हुये। और परशुरामजीसे बोले कि, इच्छानुसार वर माँगो। तब परशुरामजीने यह वरदान चाहा कि, हमारे भ्राता और माता फिर जी जाँय ? और यह इस बातको भी भूलजाँय कि, हमने इनको मारा है ॥ ७ ॥ वैसेही जमदग्नि मुनिने वर देकर कहा कि "ऐसाही हो" वैसेही इन मरे हुओंमें प्राण आगया और जैसे सोयाहुआ पुरुष नींदसे उठ बैठता है ? वैसेही यह सब उठ बैठे ॥ हे राजन् ! यह

शंका मत करना कि, परशुरामने ऐसा निन्दित कर्म क्यों किया ? यह परशुरामजी अपने पिताके तपबलको भलीभाँति जानते थे । इसीलिये उन्होंने अपने सुहृदोंको मारडाला था ॥ ८ ॥ हे महाराज ! इधर कार्तवीर्यार्जुनके दशहजार पुत्र परशुरामजीके वीर्यसे पराभव पाय अपने पिताके वधको याद करके कहीं भी सुख स्वच्छन्दता पानेके लिये समर्थ नहीं हुये ॥ ९ ॥ एक समय परशुरामजी भ्राताओंसहित वनको गये थे । तब कार्तवीर्यार्ज्जुनके यह सब पुत्र अवसर पाय पिछला वैर लेनेकी इच्छासे परशुरामजीके आश्रममें आये ॥ १० ॥ इन सबने वहाँ आकर देखा कि, परशुरामजीके पिता जमदग्निमुनि भगवान्‌में चित्त लगाये हुये अग्निशालामें बैठे हुये हैं। यह अवसर पाय इन पापात्माओंने उसी समय इन मुनिको मार डाला ॥ ११ ॥ परशुरामजीकी माता रेणुका अपने पतिको माराहुआ देख अतिदीन हो अपने पतिके प्राणोंकी भिक्षा चाहने लगी परन्तु तोभी इन निठुर क्षत्रियोंको दया न आई और बलपूर्वक रेणुकाके केश पकडकर ले गये ॥ १२ ॥ तब परशुरामजीकी माता पतिशोकसे आर्त हो अपनी छाती पीटती हुई " हा राम ! हा राम ! ! हा तात ! हा तात ! ! " कह बडे जोरसे रोने और विलाप करने लगी ॥ १३ ॥ दूरसे " हा राम ! " की पुकार और आर्तवाणी सुनकर वीर्यवान् परशुरामजी भ्राताओंसहित अतिशीघ्र अपने आश्रममें आये और वहाँ देखा कि, पिता मृतक हुये पडे हैं ॥ १४ ॥ पिताको मृतक देख सब भाइयोंको ऐसा दुःख, शोक, झुंझलाहट और पीडा उत्पन्न हुई कि, सबके वेगसे सब मोहितसे हो गये ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त महात्मा परशुरामजी " हा तात ! हा साधो ! हा धार्मिक ! " हमको छोड़कर आप स्वर्गको चले गये इस प्रकार विलाप करने लगे । और पिताके मृतक देहको अपने भाइयोंके निकट रखकर भयंकर परशा लिये मनमें विचारने लगे कि, अब हम क्षत्रियोंके वंशको ध्वंस करदेंगे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! परशुरामजीने अतिशीघ्र माहिष्मती पुरीमें जाय उसके बीचमें अर्ज्जुनपुत्रोंके मस्तक काट काटकर एक बडा भारी पर्वत बनाया । जब वह सहस्रार्ज्जुनके पुत्र ब्रह्महत्या कर आये थे तबही इस माहिष्मती पुरीकी शोभा जाती रही थी। मध्यस्थानमें मुण्डमय पर्वतके होनेसे वह पुरी औरभी भयानक होगई ? फिर तेजस्वी परशुरामजीने उस कार्तवीर्यार्ज्जुनके पुत्रोंके रुधिरसे एक नदी उत्पन्न की, वह नदी ब्रह्मद्वेषियोंको अत्यन्त भयकी देनेवाली हुई ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त क्षत्रियजातिको अन्यायके वश हुआ देख पिताके वधका हेतुकर परशुरामजीने इक्कीसवार पृथ्वीको क्षत्रिय हीन किया और स्यमन्तपञ्चक स्थानमें रुधिरके नौ कुण्ड भरदिये । हे राजन् ! परशुरामजीने इक्कीस वार क्षत्रियोंको क्यों मारा था, सोभी श्रवण करो । रेणुकाने सहस्रार्ज्जुनके पुत्रोंकी दुष्टता देख दुःखके मारे इक्कीस वार अपनी छातीको कूटा था इसीलिये महात्मा परशुरामजीने इक्कीसवार क्षत्रियोंका नाश किया ॥ १८ ॥ उसके पीछे परशुरामजीने अपने पिताका शिर उनकी देहसे लगाय, कुशोंको ऊपर रख विविध यज्ञोंसे सर्व देवमय आत्मा ईश्वरकी पूजा की ॥ १९ ॥ उस यज्ञमें होताको पूर्वदिशा, ब्रह्माको दक्षिणदिशा, अध्व-

र्युको पश्चिमदिशा और उद्गाताको उत्तरदिशा दक्षिणामें देदी। अवान्तर दिशायें और दूसरे ऋत्विक्लोकोंको देदी। मध्यस्थल कश्यपजीको दान करदिया। फिर उपद्रष्टाको आर्यावर्त देश दक्षिणामें देकर सभासदोंकोभी यथायोग्य भूमि दक्षिणामें देदी ॥ २० ॥ उसके पीछे महानदी सरस्वतीमें जाकर यज्ञान्तका स्नान कर अनन्तपापोंको दूरकर बादल-रहित सूर्यके समान आकाशमें विराजमान् होने लगे ॥ २१ ॥ इस ओर महामुनि जम-दग्नि परशुरामजीसे पूजित होनेके कारण स्मृतिही जिसका शरीर है ऐसे अपने शरीरको प्राप्तकर सप्तर्षि मण्डलमें जाय सप्तऋषि हुये ॥ २२ ॥ हे राजन्! कमललोचन जम-दग्निके सुत भगवान् परशुरामजीभी आगामी मन्वन्तरमें वेदका प्रचार करेंगे अर्थात् वहभी वेदका प्रचार करनेवाले सप्तर्षियोंमेंसे एक होंगे ॥ २३ ॥ वह परशुरामजी दण्ड-छोड शान्तचित्तसे अवतक महेन्द्रपर्वतपर विराजमान् हैं। सिद्धचारण और गंधर्वगण सदा उनके विचित्र चरित्रको गाया करते हैं ॥ २४ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे भगवान् विश्वात्मा ईश्वर हरिने भृगुकुलमें अवतार ले अनेकवार क्षत्रियोंका संहार कर भूमिका भार उतार दिया ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! अब आगे सुनो। गाधिके प्रकाशमान् अग्नितुल्य महातेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए। हे राजन्! यह तपके प्रभावसे क्षत्रीपन छोड ब्राह्मण होगये ॥ २६ ॥ हे महाराज! इन तेजस्वी विश्वा-मित्रजीको एक शत पुत्र उत्पन्न हुए। तिनमें यद्यपि केवल मध्यमपुत्रका नाम मधुच्छन्द था, तोभी सव पुत्रही मधुच्छन्दस कहेजाते थे ॥२७॥ महर्षि विश्वामित्रजीने अजीगर्त-के पुत्र शुनःशेफको भृगुवंशीय देवरात नामक पुत्र करके अपने सब पुत्रोंसे कहा था कि, तुम सब इनको अपना बडा भाई समझना ॥ २८ ॥ हे राजन्! इस शुनःशेफके पिता अजीगर्तने महाराजा हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पशु बनानेके लिये मध्यस समझ, ममता छोड वेचदिया था परन्तु यह पुरुषपशु (शुनःशेफ) प्रजेशादि वरुणादि देवता लोगोंकी स्तुति करके पाशबंधनसे छूट गया ॥ २९ ॥ वह देवतालोगोंको रात (प्रदत्त) होनेसे गाधि-वंशमें देवरात नामसे प्रसिद्ध हुआ परन्तु भृगुवंशमें उसका नाम शुनःशेफ था ॥ ३० ॥ विश्वामित्रके मधु मधुच्छन्द नामक जो पचास पुत्र वडे थे, उन्होंने शुनःशेफको वडा माननेमें अपना भला न समझा, इसलिये क्रोधित होकर विश्वामित्रजीने अपने पुत्रोंको यह शाप दिया कि, तुम अतिदुर्जन हो आजसे म्लेछ होजाओगे ॥ ३१ ॥ इसके उप-रान्त मध्यमपुत्र मधुच्छन्दने अपने पचास छोटे भाइयोंके साथ पिताके पास आनकर कहा कि " आप हमारे पिता हैं " हमको बडाई अथवा छुटाई जिसकी भी आज्ञा देंगे हम वही स्वीकार करेंगे ॥ ३२ ॥ कहकर इन्होंने मंत्रदर्शी शुनःशेफको अपना बडा भ्राता वनाया और सव एकवचन होकर बोले कि " हम सवही तुम्हारे अनुगामी अर्थात् छोटे भाई हुए " यह सुनकर विश्वामित्रजी प्रसन्न हो अपने इन पुत्रोंसे बोले कि, तुमने हमारे मानको रखकर हमको पुत्रवान् किया इससे हमको बहुत सन्तोष हुआ और हम सन्तुष्ट होकर तुमको यह वर देते हैं कि, तुम लोग पुत्रवान् होगे ॥ ३३ ॥ हे कुशिक-

गण ! यह देवरात भी तुम्हारा कौशिक गोत्री है, क्योंकि यह हमारा पुत्र हुआहै। इसलिये तुम इसके अनुगामी होओ। हे राजन् ! इन पुत्रोंके अतिरिक्त विश्वामित्रजीके अष्टक, हारीत, जय, क्रतु, मानादि और भी अनेक पुत्र हुए थे ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार अनुग्रहीतहुए और एक पुरुषको पुत्र माननेनेसे विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक अनेक प्रकारका होगया अर्थात् कुछ अभिरात और कुछेक प्रवरान्त प्राप्त हुए। बस देवरातको सबसे बडा माननेहीका यह बीज हुआ ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे–उपनाम शुकसागरे नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा–सत्रहमें पुरूरवाको, ज्येष्ठ पुत्र भयो आय।
ताके पाँचों सुतनको, सकल वंश कहों गाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! पुरूरवाके+ आयु नामक जो पुत्रहुआ था उसके पाँच पुत्र हुए,नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजी, रम्भ और अनेना इनके नाम थे। उनमें क्षत्रवृद्धके वंशका वृत्तान्त अब कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ क्षत्रवृद्धके पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रके काश्य, कुश और गृत्समद यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए तिननेंसे गृत्समदके शुनक उत्पन्न हुआ। उस शुनकसे ऋग्वेदियोंमें श्रेष्ठ शौनकमुनि हुए ॥ २ ॥ काश्यका पुत्र काशी, उसका पुत्र राष्ट्र और बेटा तिसका दीर्घतमा दीर्घतमाके पुत्र धन्वन्तरी हुए कि, जिन्होंने आयुर्वेदका प्रचार किया यह धन्वन्तरी यज्ञभोगी भगवान्के अंश स्मरण करतेही रोग क्लेशका भय नाश करते हैं ॥ ३ ॥ इन धन्वन्तरीजीका पुत्र केतुमान्, केतुमानका पुत्र भीमरथ उससे दिवोदासकी उत्पति हुई, इनके पुत्र द्युमान जो कि, प्रतर्दन भी कहाये जाते थे। और शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व भी यही कहाते थे ॥ ४ ॥ इस द्युमानके अलर्कादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ उननेंसे अलर्कने साठ सहस्र साठसौ अर्थात् छासटसौ (६६०००) सहस्रवर्षतक युवा अवस्था रखकर राज्यभोग किया था। हे राजन् ! अलर्कके अतिरिक्त किसी युवाने इतने कालतक पृथ्वीका भोग नहीं किया ॥ ६ ॥ इस अलर्कसे संतति नामवाले राजाकी उत्पत्ति हुई. उसका पुत्र सुनीथ, सुनीथका पुत्र निकेतन, निकेतनका पुत्र धर्मकेतु और धर्मकेतुसे सत्यकेतुने जन्म ग्रहण किया ॥ ७ ॥ सत्यकेतुके पुत्र धृष्टकेतु, उसके कुमार उत्पन्न हुए। उनका पुत्र वीतिहोत्र, इनके सुत भर्ग और इनके पुत्र भार्गभूमि हुए ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,

---

+ इस स्थानमें श्रीकृष्णावतारका प्रस्ताव करनेके लिये संक्षेपसे वंशका वर्णन किया जाता है। जिसके वंशमें स्वयं भगवान् अवतार लेंगे। इस वंशका वर्णन पीछेसे विस्तार सहित किया जायगा। इसलिये पुरूरवाके पाँच पुत्रोंमेंसे छोटे पुत्रका वर्णन करके अब ज्येष्ठके वंशका वर्णन करते हैं ॥

हे राजा परीक्षित् ! यह सब नरेश काशिवंशीय हुये यह काशिके परदादा क्षत्रवृद्ध वंशके अनुगामी थे ॥ ९ ॥ हे परीक्षित् ! अब रम्भके वंशका वर्णन करते हैं आप सावधान हो चित्त लगाय सुनिये । रम्भका पुत्र रभस, उसका पुत्र गम्भीर उससे अक्रियकी उत्पत्ति हुई । अक्रियका पुत्र ब्रह्मवित् हुआ । अब अनेनाके वंशका वर्णन करते हैं॥१०॥ अनेनाका पुत्र शुद्ध हुआ उसके शुचि उत्पन्न हुआ । शुचिके त्रिककुद, उनसे धर्मके सारथि चित्रकुर उत्पन्न हुये चित्रकुरके पुत्र शान्तरय जो कि,बडे जितेन्द्रिय और ज्ञानी थे। इसलिये उन्होंने कोई पुत्रभी उत्पन्न नहीं किया ॥ ११ ॥ हे महाराज ! रजीके अत्यन्त बलशाली पाँच सौ ५०० पुत्र हुए । एक समय जब देवतालोगोंने प्रार्थना की तब इस रजीने दैत्योंका संहार करके इन्द्रपुरी देवतालोगोंको देदी ॥१२॥१३॥ राजा रजीकी मृत्यु होनेपर देव-राज इन्द्रने जब उनके पुत्रोंसे स्वर्गपुरी माँगी, तब उनके पुत्रोंने नहीं दी । और आपही स्वर्गपति होकर यज्ञका भाग लेने लगे ॥ १४ ॥ इसीलिये देवगुरु बृहस्पतिजीने रजीके पुत्रोंकी बुद्धिका नाश करनेके लिये अविचार विधानसे अग्निमें होम किया । उससे शीघ्रही रजीके सब पुत्र नीतिमार्गसे भ्रष्ट होगये । और फिर देवराज इन्द्रने सरलतासे उन सबको मारडाला, कोई शेष न रहा ॥ १५ ॥ हे राजन् ! शत्रुवृद्धका पोता कुश, उसका पुत्र प्रति, प्रतिका पुत्र संजय, संजयका पुत्र जय, जयका पुत्र कृत और उसका पुत्र हर्यवन राजा हुआ ॥ १६ ॥ हर्यवन राजाका पुत्र सहदेव उसका पुत्र अहीन और अहीनका पुत्र जयसेन हुआ, जयसेनका पुत्र संस्कृति उनका पुत्र जय जयके क्षत्रधर्म और क्षत्रधर्मके महारथ हुआ ॥ १७ ॥ यह सब भूपाल क्षत्रवृद्धके वंशमें उत्पन्न हुये थे । अब आगे नहुषके वंशका वृत्तान्त हम तुमसे वर्णन करते हैं तुम चित्त लगाय सावधान होकर श्रवण करो ॥ १८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे-उपनाम शुकसागरे नवमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

दोहा-अष्टारहमें नहुष सुत, भयो ययाति जुझार ।
षट् पुत्र तिनके भये, तिनमें छोट उदार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जैसे शरीरके छः इन्द्रियें होती हैं, इसी प्रकारसे नहुष राजाके यति-ययाति-संयाति-आयति-वियाति और कृति नामक छः (६) पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ इनमेंसे यति राजाका परिणाम अर्थात् राज्यको अनर्थका हेतु जान गया था । इसलिये पिताके राज्य देनेपर इसने राज्यग्रहण नहीं किया, क्योंकि राज्यकार्यमें लगा हुआ पुरुष अपनी माताको नहीं जानता था ॥ २ ॥ इससे इन्द्राणीके ऊपर ढिठाईका व्यवहार करनेके हेतु पिता (नहुष) के स्वर्गभ्रष्ट और अगस्त्‍-यादि विप्रोंके शापसे अजगर होनेपर मध्यम पुत्र ययाति ही राजा हुआ था ॥ ३ ॥ राजा ययातिने राजगद्दीपर बैठ अपने चार छोटे भाइयोंको चारों दिशामें राज्य कर-नेकी आज्ञा देदी । व आप शुक्राचार्य और वृषपर्वाकी दो कन्याओंसे विवाह कर पृथ्वीकी

रक्षा करने लगा ॥ ४ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्राह्मण ! भगवान् शुक्राचार्यजी ब्रह्मर्षि और नहुष पुत्र ययाति क्षत्रिय था । सो यह ब्राह्मण क्षत्रियका प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ था ? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! ईश्वरकी इच्छासे प्रतिलोम विवाह दोषदायी नहीं है । एकसमय दानवराज वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नामक कन्या सहस्रसखी और गुरुकी कन्या देवयानीके साथ पुरके समीपही एक उद्यानमें विहार करनेको गई । यह उपवन अत्यन्त मनोहर था । वृक्ष फूलोंके भारसे झुके हुए थे । और वहाँ निकटही एक नलिनीकी रेतीमें भ्रमरगण कलवाणीसे गान कर रहे थे ॥ ६ ॥ शर्मिष्ठाने सखियोंके साथ घूमते घूमते बागमें एक सरोवर देखा । यह सब कन्यायें किनारेपर अपने वस्त्र उतार परस्पर जलको उडायकर एक दूसरेके ऊपर जल डाल खेल करने लगीं ॥ ७ ॥ उसी समय अचानक देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमहादेवजी पार्वतीके साथ नंदीश्वरपर चढे इस ओरको आये । यह इनको देखकर सब कन्यायें अत्यन्त लज्जित हो झटपट सरोवरसे बाहर निकलकर अपने वस्त्र पहरने लगीं ॥ ८ ॥ घबडाहटके मारे भूलमें गुरुकन्याके वस्त्र शर्मिष्ठाने अपने समझकर पहर लिये । यह देख देवयानी अति क्रोधित होकर बोली ॥९॥ अरे ! इस दासीका अन्याय कर्म तो देखो।जिस प्रकार कुतिया यज्ञके हविको खाजाती है । वैसेही इन दुष्टाने मेरे पहरनेके कपडे पहर लिये ॥ १० ॥ देखो जिन ब्राह्मणोंने तपस्या करके इस जगत्की उत्पत्ति की है, जो लोग परम पुरुषके मुख अर्थात् ब्रह्ममुखसे उत्पत्तिके हेतु सर्व श्रेष्ठ हैं । जो कि, ब्रह्मको धारण किये हुये हैं । जिन्होंने वेदका शुभ मार्ग बताया है और सब लोकोंके नाथ सुरेश्वरगण भी और भगवान् विश्वात्मा पावन श्रीनिवास भी जिनकी पूजा किया करते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ वह ब्राह्मण जाति सहजसेही माननीय है । और उनमें फिर हम महाप्रभावशाली भृगुवंशमें उत्पन्न हुये हैं । इस दासीका पिता जो असुर है । वह भी हमारे पिताका शिष्य है । इस असत्यनकी चाल तो देखो कि,इसने हमारे पहरनेके वस्त्र पहर लिये हैं।जैसे शूद्रजाति वेदोंको धारण करै ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जब गुरुकन्या देवयानीने इस प्रकार तिरस्कार किया तब शर्मिष्ठा धर्षित हुई सर्पिणीकी समान वारम्वार लम्बे लम्बे श्वास लेने लगी । और क्रोधके मारे होठ चबाय २ कर कहने लगी कि, ॥ १४ ॥ अरी भिखमंगी ! अपने आचरणको विना जानेही कटुवचन कहने लगी ? काककी समान क्या तुम हमारे गृहको सुख नहीं देखती रहती हो ? ॥ १५ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकारके कठोर वचनभी गुरुकन्यादेवायनीको कहकर शर्मिष्ठाका क्रोध शान्त नहीं हुआ, बरन् इसके वस्त्र उतार नङ्गीकर एक कुएँमें धक्का देदिया ॥१६॥ देवयानीको कुएँमें ढकेलकर शर्मिष्ठा अपने घरपर चली आई । भाग्यसे शिकार खेलकर घूमते घूमते राजा ययाति भी उस वनमें आय पहुँचे और प्यासके मारे जल भरनेके लिये जैसेही इस कुएँके समीप गये कि, वैसेही उन्होंने देवयानीको कुएँमें देखा ॥ १७ ॥ शुक्राचार्यकी कन्याको कुएँमें नङ्गी गिरी हुई देखकर राजाको अत्यन्त दया आई और तत्काल अपना दुपट्टा राजाने उसे

पहरनेको देदिया और अपने हाथसे उसका हाथ पकडकर उस दयावान् राजाने उसको कुएसे वाहर निकाल लिया ॥ १८ ॥ देवयानी कुएँसे निकलकर प्रेम भरे वचन राजा ययातिसे बोली ॥ १९ ॥ हे महाराज ! आपने अनुग्रह करके हमारा हाथ पकडा है, अब यही प्रार्थना है कि, जिस हाथको एकवार आपने मेरा पाणिग्रहण किया उसको कोई दूसरा ग्रहण न करने पावे ॥ २० ॥ हे वीर ! यद्यपि प्रतिलोम विवाह ठीक नहीं तोभी मैं कुएँमें डूबकर मरती थी। इसी अवसरपर आपका दर्शन हुआ तव हमारा दोनों जनोंका यह वानक परमेश्वरने वनाया है। यह किसी पुरुषका वनाया नहीं है और हे नरेश ! ब्राह्मणके साथ मेरा विवाह नहीं होगा ॥ २१ ॥ क्योंकि पहले मैंने वृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दिया था तव उन्होंने भी हमको शाप दिया था इसमें यह दृष्टान्त है कि " वृहस्पतिके पुत्र कच जव शुक्राचार्य मुनिके निकट मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करते थे उस समय एक दिन शुक्रकी पुत्री देवयानीने उनके साथ विवाह करना चाहा था, तव कच बोले कि, तुम हमारी गुरुकन्या होनेसे पूजने योग्य हो फिर हम किस प्रकारसे तुम्हारा पाणिग्रहण करें ? तव देवयानीने कुपित हो यह शाप दिया कि, तुम्हारी विद्या प्रभाहीन होगी तव कचनेभी यह शाप दिया कि, तुम्हारा ब्राह्मणके साथ विवाह नहीं होगा " इसलिये ब्राह्मण हमसे विवाह नहीं कर सकेगा ॥ २२ ॥ शास्त्रके प्रतिकूल और इच्छानुसार न होनेपरभी भाग्यसे जान प्राप्त हुआ और अपने अन्तःकरणको भी उसके प्रति सकाम देख यह निश्चय करके कि, मेरा मन अधर्ममें नहीं प्रवेश करता देवयानीके वाक्यको राजा ययातिने अंगीकार किया ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त जब राजा ययाति चले गये। तव देवयानी उस स्थानसे रोती रोती पिताके निकट गई और सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया। अर्थात् शर्मिष्ठाने जो भीखमंगी कहा था। और कुएमें डालकर जो कुकर्म किया था, यह सब विस्तारपूर्वक इसने अपने पितासे कहा ॥ २४ ॥ यह सुनकर शुक्राचार्यके मनमें बडा दुःख हुआ पुरोहिताईकी निन्दा करते और भिक्षावृत्तिकी प्रशंसा करते यह दैत्यराजाकी पुरीसे अपनी कन्या-सहित वाहर चले ॥ २५ ॥ यह सुनकर राजा वृषपर्वाने जाना कि, गुरुजी अप्रसन्न होकर देवताओंकी जीत करेंगे। इसलिये शीघ्रही मार्गमें जायकर उनके चरणोंमें गिर पडा। और शिर नवायकर प्रसन्न करने लगा ॥ २६ ॥ एक क्षणभरमें शुक्राचार्यका आधा क्रोध शान्त होगया और वह शिष्यसे बोले कि, हे राजन् ! हमारी कन्या जो कुछ कहै सो इसकी अभिलाषको तुम पूर्ण करो। क्योंकि हम इस अपनी कन्याको छोडकर रह नहीं सक्ते ॥ २७ ॥ गुरुजीके यह वचन सुनकर गुरुकन्याकी प्रसन्नता चाहता हुआ राजा वृषपर्वा खडा रहा। तव देवयानी अपने मनकी बात प्रकाशित करके वोली कि, हमारे पिता जहाँ हमारा विवाह करें ? यह शर्मिष्ठा तुम्हारी कन्या-उसी स्थानमें अपनी सव सखियोंके साथ जायकर हमारी दासी होवे ॥ २८ ॥ वृषप-र्वाने विचारा कि, गुरुजीके चले जानेसे हमारे ऊपर घोर संकट आन पडेगा। और यहाँ

रहनेसे हमारे कार्य सिद्ध होंगे । यह सोच विचार राजा वृषपर्व्वाने गुरुकन्या देवयानीके हाथमें सखियों सहित शर्मिष्ठाको सौंपदिया । जब पिताने शर्मिष्ठाको देदिया, तब यह हजार सखियोंके साथ देवयानीकी सेवा करने लगी ॥ २९ ॥ इसके पीछे दैत्यगुरु शुकाचार्यजीने शर्मिष्ठा सहित देवयानीका राजा ययातिके साथ विवाह करदिया और भलीभाँतिसे कह दिया कि, यद्यपि हम अपनी कन्याके साथ शर्मिष्ठाभी तुमको देते हैं तो भी तुम किसी समय इसको अपनी शय्यापर न ग्रहण कर सकोगे ॥ ३० ॥ हे महाराज परीक्षित् ! किसी समय शर्मिष्ठाने देखा कि देवयानीने स्वामीके सहवाससे परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया है। इसलिये ऋतुकाल आन पहुँचनेपर अपनी सखीके पति ययाति राजाको एकान्तमें बुलाय पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ राजा ययाति अत्यन्त धर्मात्मा थे । ऋतुकालमें राजकुमारी शर्मिष्ठासे संतानके लिये प्रार्थित होकर विचारने लगे कि, इसकी कामना पूरी करनेसे धर्म है । इसलिये शुकाचार्यजीका वचन स्मरण आनेपरभी उन्होंने दैवप्राप्त पितृयज्ञसे शर्मिष्ठाके साथ विहार किया । राजा ययातिने धर्म समझकरही शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूर्ण की थी. कुछ कामके वश होकर नहीं की, उसके उपरान्त देवयानीने यदु और तुर्व्वसु, दो पुत्र उत्पन्न किये और शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु अनु और पुरु इन तीन पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अरे महाराज ! अपने स्वामीसे शर्मिष्ठाके गर्भकी उत्पत्ति जानकर देवयानी अभिमानसे परिपूर्ण होगई और क्रोधके मारे मूर्च्छितसी हो तत्काल पिताके घरको चली गई ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! राजा ययाति अत्यन्त कामी थे । वह प्यारीका क्रोध देखकर विनती करके प्रसन्न करते करते अपनी प्रियभार्याके पीछे पीछे चले गये परंतु चरण दाबनेसे भी तो वह देवयानीको प्रसन्न न कर सके ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! इस ओरको कन्याके मुखसे सब वृत्तान्त जानकर दैत्यगुरु शुकाचार्यजी महा क्रोधित हो कृपायुक्त वचनोंसे जामाताको पुकारने लगे । तू स्त्रीकामी होकर अन्यायके कर्म करता है । अरे मतिमन्द ! इस अपराधसे मनुष्योंको विरूप करनेवाली जरा (बुढापा) तेरे शरीरमें प्रवेश करै ॥ ॥ ३६ ॥ यह शाप सुनकर राजा ययातिका चित्त अत्यंत दुःखित हुआ । और निवेदन किया कि, ब्रह्मन् ! आपकी बेटीके काम भोगसे हम अबतक भी सब प्रकारसे तृप्त नहीं हुए हैं । तब शुक्राचार्यजी बोले कि हाँ जो कोई पुरुष तुम्हारी जरा ग्रहण करले तो उसकी वयस अवस्थासे तुम इच्छानुसार काम भोगकर सकोगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार राजा ययाति जराके उतरनेकी व्यवस्था पाकर पहले अपने बडे पुत्र यदुको बुलाकर बोले । हे तात यदो ! हमारी यह जरा अवस्था ग्रहण करके अपनी वयस हमको दो । बेटा ! तुम्हारे नाना शुक्राचार्यने हमको जराग्रस्त किया है । परंतु हम अबतक विषय भोगसे तृप्त नहीं हुए हैं । इसलिये यह जरा तुम लो और तुम्हारी युवा अवस्था लेकर कुछ वर्षोतक में विहार करूंगा ॥ ३८ ॥ यह सुनकर यदु बोले कि; पिता ! आप मध्यम समयमें जराको प्राप्त हुये हैं आपकी इस जराके लेनेको हमारा चित्त नहीं चाहता

क्योंकि विना ग्राम्य सुखोंके भोगे कौन पुरुष उससे (काम भोगसे) तृष्णारहित होजाता है ॥ ३९ ॥ हे भारत ! तिसके पीछे तुर्वसु और द्रुह्यु इन दो पुत्रोंसे राजाने युवा अवस्था माँगी परंतु उन्होंने भी कोरा जबाव दिया । हे राजन् ! इन लोगोंको धर्मज्ञान नहीं था। यह अनित्य पदार्थकोही नित्य मानते थे । फिर भला इन लोगोंसे पिताकी आज्ञा मानी जानेकी क्या सम्भावना ? ॥ ४० ॥ परंतु राजा ययातिका सबसे छोटा पुत्र यद्यपि वयसमें छोटा, तथापि गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था सबसे पीछे उसको बुलाकर राजा ययातिने जरालेनेके लिये बोले कि, हे वत्स ! तुम अपने बडे भ्राताओंकी समान हमसे " नहीं " कहने योग्य नहीं हो ॥ ४१ ॥ जब इस प्रकार राजा ययातिने कहा, तब पुरुने कहा कि, हे मनुष्येंद्र ! इस लोकमें कोई पुरुषभी पिताका प्रत्युपकार नहीं करसक्ता है । पिता क्या साधारण पुरुष है ? क्योंकि उनसे देहका सम्बंध है । और उनकी प्रसन्नतासे पुरुष परमगतिको प्राप्त होजाता है ॥ ४२ ॥ तो भी जो पुत्र पिताका विचारा हुआ कार्य अपने आपही कर देता है वह उत्तम कहलाता है और जो आज्ञा पाकर कार्य करता है वह मध्यम है और जो आज्ञा पाकरभी उस कार्यको नहीं करता है, वह पुत्र नहीं किंतु पिताका विष्ठा मात्र है । और नीच कहलाता है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार कह हर्ष प्रकाश करके उसने पिताकी जरा अवस्था ग्रहण करली । राजा ययातिभी अपने पुत्रकी युवा अवस्था पाकर भली भाँति सुख भोगने लगा ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! राजा ययाति सप्तद्वीपका राजा था । वह भलीभाँति पुत्रकी समान प्रजाका पालन करने लगा । और इच्छानुसार विषय भोग भोगने लगा । पुत्रकी युवा अवस्था पानेसे इस राजा ययातिकी सब इन्द्रियें प्रबल और अनिवारित होगईं ॥ ४५ ॥ और देवयानी भी मन, वचन कायसे व और भी सब भाँति एकान्तमें दिनपर दिन अपने प्राणेश्वरको अत्यन्त प्रसन्न करती रहती थी ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! राजा ययाति भी अनेक अनेक दक्षिणा देकर अनेक यज्ञकर सर्ववेदमय सर्वदेवस्वरूप, यज्ञ पुरुष भगवान् वासुदेवका भजन करने लगे ॥ ४७ ॥ अर्थात् आकाशमण्डलमें जलदावलि (बादरोंकी पंक्ति) की समान जिस्से प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत् विरचित होकर यावत् इन्द्रियवृत्ति, तावत् विचित्ररूपसे प्रकाश पाता है और इसी इन्द्रियवृत्तिके उपरममें स्वप्न और मायासहित मनोरथ पाय प्रकाशहीन होते हैं ॥ ४८ ॥ राजा ययातिने विरागी होकर उन्हीं अन्तर्य्यामी परमसूक्ष्मरूप भगवान् वासुदेवके अनेक यज्ञ किये ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार सहस्र वर्षतक अपराङ्मुख पञ्चइन्द्रिय और छठे मनसे सदा विषयभोग करकेभी सर्वभूमीश्वर राजा ययाति सब भाँतिसे तृप्तिको प्राप्त नहीं हुआ ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कंधे
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा-नृप ययाति निज प्रियाको, अज सम चरित सुनाय।
बहुरि मोक्षभागी भया, उन्निसवें अध्याय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे राजा परीक्षित! राजा ययाति इस प्रकार विषयभोग करते करते अकस्मात् एक दिन अपने आपको स्त्रैण समझकर अपनी आत्माका विकार जान, वैराग्ययुक्त हो, अपनी परम प्यारी देवयानीसे यह वर्णन करने लगे ॥ १ ॥ कि, हे भार्गवि! हमारी समान कोई कामी एक गाँवमें रहता था, वनवासी वीरगण उसके आचरणोंपर अवतक कभी कभी शोक किया करते हैं। सो उस पुरुषकी अनुष्ठान की हुई गाथा मैं तुमसे वर्णन करता हूँ, श्रवण करो ॥ २ ॥ " एक छागने (पुरुष) वन (संसार) अपने प्रिय विषयको ढूँढते ढूँढते अचानक एक छागीको कर्मके वशसे कुएँमें गिरी हुई देखी ॥ ३ ॥ इस अत्यन्तकामी छागने उस बकरीके निकालनेका उपाय सोचा और कुएँके किनारे, अपने सींगोंसे मट्टी खोदकर उसके निकलनेका मार्ग कर दिया ॥ ॥ ४ ॥ इस मार्गसे वह कान्तियुक्त छागी कुएसे निकल उसी छागका अभिलाष करने लगी. जब उस बकरीने इस बकरेको वरण करलिया तो और बहुत सारी छागी भी मोटे, ताजे रति करनेमें समर्थ, वीर्यके सींचनेवाले और मैथुन करनेमें चतुर समझकर इस छागको चाहने लगीं ॥ ५ ॥ इसलिये वह एकही बकरा इन बहुत सी बकरियोंकी रति बढाता हुआ इनके साथ केलि करने लगा वह छाग कामरूप गृहमें ऐसा फँसगया कि, अपनी आत्माको भी न जान सका ॥ ६ ॥ परन्तु जो छागी कुएँमें गिरी थी, वह और छागियोंको अपनेसे अधिक प्यारी और उनके साथ अपने प्रियतमको सदा रमण करताहुआ देख अत्यन्त क्रोधित हुई और उस छागका यह कर्म बहुत नहीं सहसकी ॥ ७ ॥ इसलिये वह सुहदरूपी, वास्तवमें दुर्हद क्षणसौहृद इन्द्रियासक्त और कामुक उस छागको छोड दुःखित हो अपने स्वामीके पास चली गई ॥ ८ ॥ यह छाग तो बहुतही स्त्रैण था, इसलिये कातर हो शब्द करता हुआ उसको मनानेके लिये उसके पीछे २ जानेलगा, परन्तु मार्गमें वह उस बकरीको किसी प्रकारसे भी प्रसन्न न करसका ॥ ९ ॥ उस स्थानमें इस छागीके स्वामी एक ब्राह्मणने क्रोध करके इस छागके दोनों लम्बायमान अण्डकोश काटडाले । अर्थात् उसको भोग करने योग्य न रक्खा। परन्तु वह ब्राह्मण उपायभी जानता था, इसलिये अपनी बकरीके काम भोगार्थ फिर इस छागके अण्ड जोड दिये अर्थात् फिर उस छागको मैथुन करनेकी सामर्थ्य देदी ॥ १० ॥ हे भद्रे! इस प्रकारसे यह छाग सन्नद्ध वृषण अर्थात् रतिशक्ति युक्त हो कुएँसे निकाली उस छागीके साथ बहुत कालतक विषयभोग करता रहा । परन्तु कामकी सेवासे अबतक उस बकरेको सन्तोष नहीं हुआ " ॥ ११ ॥ हे सुभ्रू! इस छागकी समान हमभी तुम्हारे प्रेममें बँधकर अत्यन्त दीन होगये हैं। तुम्हारी मायासे मोहित होनेके कारण हम अपने आपको भी तो भूल गये हैं ॥ ॥ १२ ॥ हे भद्रे! पृथ्वीमें जितना धान्य, सुवर्ण, जितने पशु, जितनी स्त्री और जो जो वस्तु हैं सो यह सब भी कामसे हते हुए पुरुषके मनको सन्तुष्ट नहीं कर सक्ती हैं ॥ १३ ॥

भोग विलासके द्वारा कामकी किसीप्रकार शान्ति नहीं होती। वरन् घृतद्वारा अग्निकी समान विषय भोग बढताही जाता है। जैसे घृत डालनेसे अग्नि ॥ १४ ॥ परन्तु जिस समय पुरुष सब प्राणियोंसे अमंगलभाव अर्थात् राग द्वेषादिकी विषमताका त्याग कर देता है और सबमें समदृष्टि कर लेता है, तब उसको सब दिशा सुखदाई हो जाती है ॥ १५ ॥ इसलिये दुर्म्मति पुरुष जिसको नहीं छोड सक्ते और प्राचीन पुरुषके पाससी जो पुरानी नहीं होती और जो दुःखकी राशिके लिये रहती है सुख चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि, उस तृष्णाको शीघ्र छोडदे ॥ १६ ॥ और स्त्रीका संग तो सब प्रकारसे त्यागना आवश्यक है. क्योंकि माता, बहन अथवा कन्याके संग इकलेमें एकासन पर बैठना ठीक नहीं। क्योंकि इन्द्रियें अतिशय बलवान् हैं। विद्वान् पुरुषको भी खैंच लेती हैं ॥ १७ ॥ हे भद्रे! विचार करके देखो बारम्बार विषयकी सेवा करते हुए इसको पूरे एक सहस्र वर्ष बीतगये। तोभी दिन दिन तृष्णा बढतीही जाती है ॥ १८ ॥ इसलिये मैं पहले तृष्णाको छोडकर फिर ब्रह्ममें मन लगाऊंगा। फिर सुख दुःखादि द्वन्दरहित और निरहंकार हो मृगगणोंके साथ घूमूँगा ॥ १९ ॥ हे प्रिये! जो पुरुष देखे सुने संसारको भी आत्मनाशक और असत् जानकर उसका अनुध्यान वा भोग छोड देते हैं! वही देखे सुने विषयके अनुध्यानादिमें पण्डित और आत्मदर्शी हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! राजा ययातिने इसप्रकार अपनी स्त्रीको समझाय छोटे पुत्र पुरुको उसकी युवा अवस्था लौटाय उससे अपनी जरा अवस्था ग्रहण करली। फिर पीछे राजा ययातिको कुछ चाहना न रही ॥ ॥२१॥ पूर्वदिशा द्रुह्युको, दक्षिण दिशा यदुको, पश्चिम दिशा तुर्वसुको और उत्तर दिशाका अनुको राजा बनाया ॥२२॥ फिर सब भूमण्डलका राज क्षत्रियोत्तम प्यारे पुत्र पुरुको देकर और बडे बेटोंको इस पुरुकी आज्ञामें रखकर आप वनको चले गये ॥२३॥ हे राजन्! राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक शब्दादि विषय समूहमें छः इन्द्रियोंके द्वारका सुख भोगा था। परन्तु उसने इस प्रकारसे स्पृहा छोड एक क्षणभरमें इन्द्रियोंके सुखको छोडदिया जैसे पंख जम आनेपर पक्षियोंके बच्चे घोंसलेको छोड जाते हैं ॥ २४ ॥ राजा ययाति संगको छोडकर आत्मानुभवसे त्रिगुणात्मकरूपलिंग निरस्त होगया और भली भाँति विख्यात हो निर्मल परब्रह्म वासुदेवमें शीघ्रही भगवत् गतिको प्राप्त होगया ॥ २५ ॥ हे महाराज! स्त्री पुरुषका परस्पर स्नेह हेतु परिहासकी समान जो इतिहास कहागया देवयानी इसको सुनकर अपने प्रस्तोभ अर्थात् निवृत्तिमार्गमें उत्साहित हुई ॥ २६ ॥ और वह अबला प्याऊ पर जाने वालोंकी समान ईश्वरपरतंत्र सुहृद्गणोंका वास मायाविरचित समझी और स्वप्नकी समान उपमा देकर सबको मिथ्या जान सर्वत्र संग छोडकर भगवान्में मन लगाय अपने शरीरको भी छोडदिया ॥ २७ ॥ हे राजन्! अब यह बतलाते हैं कि, देवयानीने किस प्रकारसे भगवान् वासुदेवमें अपना मन लगाया था, सो तुम सुनो। हे भगवन्! आप विधाता वासुदेव, सर्वभूतोंके निवासस्थान, परमशान्त और अतिबृहत् हो इसलिये मैं आपको नमस्कार करतीहूँ ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागर नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः १९॥

दोहा-ययाति सुत पुरुवंशमें, भये नृपति दुष्यंत।
भरत पुत्र तिनके भये, भक्त शिरोमणि संत ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! अव पुरुके वंशका वर्णन करते हैं, सो तुम सुनो ! इसी वंशमें तुमने जन्म लिया है। अनेक राजर्षि इस पुरुवंशमें उत्पन्न हुये हैं ॥ १ ॥ पुरुसे जन्मेजय उत्पन्न हुये। जन्मेजयका पुत्र प्रचीन्वान् और उससे प्रवीरने जन्म ग्रहण किया, प्रवीरका पुत्र मनस्यु और उससे चारुपदका जन्म हुआ, चारुपदके यहाँ सुद्युम्नने जन्म लिया, उससे वहुगव उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र संयाति, संयातिका पुत्र अहंयाति और अहंयातिके यहाँ रौद्राश्व जन्मा ॥ २ ॥ ३ ॥ इस रौद्राश्वने घृताची अप्सरासे दश पुत्र उत्पन्न किये, इनके नाम यह हैं-ऋतेयुं, कक्षेयु, स्थंडलेयु, कृतेयु, जलेयुं, सन्नतेयु, धर्मेयुं, सत्येयु, व्रतेयु और सवसे छोटा अवनेयु, हुआ। हे राजन् ! जिस प्रकार इन्द्रिय गण जगत्के आत्मभूत मुख्य प्राणके वश रहते हैं, वैसेही यह दशपुत्र रौद्राश्वके वशमें रहते थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ इन रौद्राश्वके दश पुत्रोंमेंसे ऋतेयुका रन्तिभार नामक एक पुत्र हुआ। उसके तीन पुत्र हुये. यथा सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ इन तीनोंमेंसे अप्रतिरथ-के पुत्र कण्ठ हुये ॥ ६ ॥ कण्ठके मेधातिथि और तिनसे प्रस्कण्वादि द्विजातिगण उत्पन्न हुये. हे राजन् ! रंतिभार नामका वडा बेटा सुमति और उसका पुत्र रैभ्य और इन रैभ्यकेही पुत्र राजा दुष्यन्त हुये ॥ ७ ॥ एक समय यह राजा दुष्यन्त आखेट करते करते वनमें प्रवेशकर महर्षि कण्वके आश्रममें आय पहुँचे, वहाँपर एक स्त्री वैठी हुई लक्ष्मी की समान अपने शरीरकी प्रभासे आश्रमको शोभायमान कररही थी ॥ देवमायाकी समान उस तरुणीको देखतेही राजा दुष्यन्त मोहित होगया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त कुछ सेनाके सिपाही लेकर निकट जाय उस वरारोहाके साथ राजाने सम्भाषण किया. हे राजा परीक्षित् ! उस सुन्दरीको देखतेही राजा दुष्यन्तको अनिर्व्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ था। और मानो उसको देखकर जंगलमें घूमनेसे जो थकावट हुई थी वह भी सव जातीरही ॥ ॥ ९ ॥ कामपीडित हो हँसते हँसते मधुर वचनसे राजाने पूँछा कि, हे कमलपत्राक्षि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? ॥ १० ॥ और इस निर्जन वनमें क्या करनेकी वासना किये हुये हो ? हे सुमध्यमे ! पुरुवंशीय लोगोंका चित्त कभी अधर्ममें नहीं लगता है. इस-लिये स्पष्ट जान पडता है कि, तुम किसी क्षत्रिय वंशकी वेटी हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर शकुन्तलाने उत्तर दिया कि, हे राजन् ! मैं विश्वामित्रकी पुत्री हूं मेनका नामक अप्सरा मेरी माता है। स्वर्गमें जानेके समय माता मुझको इस निर्जन वनमें अकेली छोडकर चली गई। इसलिये वास्तवमें मैं क्षत्रियकी कन्या हूं इस वातको भगवान् कण्वऋषि भली भाँति जानते हैं. हे वीर ! हम आपका कौनसा कार्य करैं ? सो आज्ञा कीजिये ॥ १२ ॥ हे महा-राज ! आसन ग्रहण कीजिये और हमारी पूजा भी आप अंगीकार करैं यहाँ निवारांके चावल हैं। भोजन कीजिये और यदि रुचि हो तो रात्रिको भी यहाँही रहिये ॥ १३ ॥ राजा दुष्यन्त बोले कि, हे सुन्दरि ! तुमने कुशिकके वंशमें जन्म लिया है वास्तवमें तुम्हारा

आचरण ठीक है, क्योंकि राजकन्यायें समान स्वयम् वरको वरण करलेती हैं ॥ १४ ॥ शकुन्तलाने राजाकी यह बात सुनकर कहा कि, 'हाँ' तब देशकालके जाननेवाले इस राजाने शकुन्तलासे गन्धर्व विवाह किया ॥ १५ ॥ हे भारत ! अमोघवीर्यवान् राजा दुष्यन्त भार्या शकुन्तलामें वीर्याधान करके दूसरेदिन हस्तिनापुर जानेके लिये शकुन्तलासे कहनेलगे ॥

हमको सिधारने दे प्यारी ॥ हस्तिनापुरहै जाना जरूरी। कामहै घर पर भारी ॥ १ ॥ हम० ॥

शकुं०-ऐसीही जल्दी थी जो विछड़ना, काहेको की थी यारी ॥ २ ॥

याद मेरी तुम भूल नजाना, वरना मेरी है ख्वारी ॥ ३ ॥ हम० ॥

दुष्यं०-जल्द तुझे बुलवावेंगे हम, हाय न कर तूजारी ॥ ४ ॥

देताहूं तुझे अपनी निशानी, यहले अँगूठी हमारी ॥ ५ ॥ हम० ॥

शकुं०-खैर सिधारो वश नहिं अपना, जाओजी हे लाचारी ॥६॥हम०

इसके उपरान्त राजा अपने नगरको चलेगये। तब यथायोग्यसमयमें शकुन्तलाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ महर्षि कण्वऋषीश्वरने वनमेंही यथायोग्य उस बालककी संस्कारादि क्रिया करदी। हे राजन् ! यह कुमार बालकपनसेंही अपने बलसे सिंह पकड करके उनके साथ खेला करता था ॥ १७ ॥ इसलिये महाविक्रमशाली देखकर प्रमदोत्तमा शकुन्तला भगवान् हरिके अंशसे उस पुत्रको ले अपने स्वामीके निकट गई ॥ १८॥ परन्तु राजा दुष्यन्तने अनिन्दित इस स्त्री और पुत्रको ग्रहण नहीं किया । परन्तु जिस समय राजा दुष्यन्तने शकुन्तलाका निरादर किया तब श्रवणकारी सब प्राणियोंके सम्मुख आकाशसे अशरीरिणी वाणी प्रगट हो राजाको पुकारकर बोली कि ॥ १९ ॥ हे राजा दुष्यन्त ! माता भस्त्रा अर्थात् चर्मपात्रवत् आधार मात्र पिताकाही पुत्र है। क्योंकि आत्मा ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। इसलिये अपने पुत्रको ग्रहण करके पालो और शकुन्तलाका अपमान न करो ॥ २०॥ हे नरदेव ! जो पुरुष वीर्य डालता है। पुत्र उसकाही यमालयसे निस्तार करता है। और शकुन्तला यह सत्य कहती है तुमनेही इस पुत्रको गर्भमें धारण किया था ॥ २१ ॥ हे भारत ! आकाशवाणीको सुनतेही राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको अंगीकार किया। कुछ कालके पीछे महाराज दुष्यन्त स्वर्गवासी होनेपर राजाके महायशस्वी यही भरतजी सिंहासनपर बैठकर चक्रवर्ती राजा हुए थे. महाराज भरत श्रीभगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न हुए थे इसलिये उनकी महिमा समस्त भूमण्डलमें गाई जाती है ॥ २२ ॥ उनके दाहिने हाथमें चक्र और दोनों चरणोंमें पद्मकोषका चिह्न विराजमान था। उन्होंने महाभिषेक कराय राजाधिराज हो गंगाजीके किनारेपर पचपन (५५) अश्वमेध यज्ञ करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा की ॥ २३ ॥ यह राजा भरत ममताके पुत्र मामतेय ऋषिको अपना पुरोहित बनाकर यमुनाके तीरपर अश्वमेध यज्ञके अठत्तर (७८) पवित्र अश्व (घोडे) यथाक्रमसे बाँधे। इन यज्ञोंके समय राजर्षि

भरतजीने बहुतसा धन ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दिया था ॥ २४ ॥ हे राजन् ! श्रेष्ठगुण-वाले देशमें महाराज भरतजीकी अग्नि प्रणीत थी । उस अग्निप्रचयन कालमें हजारों ब्राह्मणलोग उन महराज भरतजीकी दी हुई गायोंको एक एक बद्धमें भाग करके लेगये थे एक बद्ध तेरह सहस्र चौरासी १३०८४ का होता है ॥ २५ ॥ और महाराज भरत-जीने एक बारहीमें एक सौ तैंतीस १३३ यज्ञीय घोडे बाँध राजा लोगोंके विभवकोभी विस्मितकर देवतालोगोंका आक्रमण किया था उनका ऐसा कर्म करना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि वह भगवान् हरिको प्राप्त हुए थे ॥ २६ ॥ यह महाराज भरत मस्नार नामक कर्मसे श्वेतदन्त और कृष्ण रंगके चौदह लाख १४००००० हाथी सुवर्णसे सजे हुए दान किये ॥ २७ ॥ महाराज भरतजीने जो कर्म किये, उन कर्मोंको पहिले हुए नृपतिगणभी प्राप्त नहीं करसके और आगेको जो राजा होंगे वह भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे । जैसे भुजाओंके बलसे स्वर्ग प्राप्त नहीं होसक्ता॥२८॥२९॥इन महाराज भरतजीने दिग्वि-जय करनेको जाकर किरात,हूण, यवन,पौण्ड्र, कंक, खश,शक और दूसरे अब्रह्मण्य राजा-ओंको और सब म्लेच्छजातिका संहार करडाला ॥३०॥ पूर्वसमयमें जिन दानवोंने देवतालो-गोंको जीतकर जिन रसातलादि स्थानोंमें वास किया था और बली दानव लोग देवता लोगोंकी स्त्रियोंको भी पातालमें लेगये थे । महात्मा भरतजीने उन सब देवाङ्गनाओंका उद्धार किया था ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! महाराज भरतजीके समयमें स्वर्ग और पृथ्वीसे प्रजालोगोंकी सब अभिलाषा पूरी होती थी । इस राजा भरतने सत्ताईस हजार वर्षतक राज्य करके सब दिशाओंमें अपनी सेना भेजी थी ॥ ३२ ॥ इस प्रकार राज्य भोग करनेके पीछे महाराज भरतजीने लोकपालोंका विभव अधिराज्यकी सम्पत्ति, अस्खलित सेना और आत्मप्राणादि सबहीको मिथ्या विचार कर विषयसे मुँह मोडा ॥ ३३ ॥ इन भरतजीके विदर्भ देशके राजाकी बेटी सुसम्मत तीन स्त्रियें थीं । एकसमय राजाने कहा कि "यह पुत्र हमारे अनुसार नहीं है" इसलिये यह तीनों ऐसी शंका करने लगीं कि, वारम्वार अनु-हारका विचार कर कहीं यह राजा हम पर व्याभिचारकी शंका न कर बैठे और हमको त्याग दे । इसलिये अपनी अपनी संतानको मारडाला ॥ ३४ ॥ इस प्रकार वंशके व्यर्थ होनेसे महाराज भरतजीने पुत्रार्थ वायु और सोमका यज्ञ किया । इस यज्ञके मरुद्गणोंने प्रसन्न हो राजाके हाथमें भरद्वाज नामक एक पुत्र समर्पण किया ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित् ! अब भर-द्वाजके जन्मका वृत्तान्त और समर्प्पणकी कथा कहते हैं । अपने भ्राता उतथ्यकी स्त्री मम-तासे एक दिन छिपकर बृहस्पतिजीने भोग करना चाहा था । परन्तु उस समय गर्भके बीच एक और बालक था, फिर उस समय गर्भके मध्य दूसरे गर्भका स्थान कैसे हो ? इसलिये, गर्भके बालकने बृहस्पतिजीको वीर्य डालनेके अर्थ निवारण किया परन्तु बृहस्पतिजी कामान्ध हो रहे थे । उन्होंने क्रोधित होकर बालकको यह शाप दिया कि, "तू अंधा होजा" और अपना वीर्य ममताके पेटमें डाला ॥ ३६ ॥ बृहस्पतिजीके शापसे उतथ्य तनय दीर्घ-तमा हुये थे परन्तु उन्होंने अपनी एडीके प्रहारसे बृहस्पतिजीके वीर्यको योनिके बाहर

निकाल दिया। परन्तु उस भूमिपर गिरेहुये वीर्यसे उसी समय एक कुमार उत्पन्न हुआ। पीछे स्वामी हमको व्यभिचारिणी जानकर छोड न दें। इस भयसे भीत होकर जब उतथ्यकी स्त्री ममताने उस कुमारको त्याग करनेकी इच्छा की, तब उस समय देवतालोगोंने बृहस्पति और ममताके विवाद रूप इस कुमारका नाम धरनेके लिये यह वचन कहे ॥ ३७ ॥ यथा--पुत्रको त्याग करके जाता हुआ देख बृहस्पतिजीने ममतासे कहा अरी मूढ स्त्री! यह बालक एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे होनेका कारण इसका दो जनोंसे जन्म हुआ। इस लिये यह तुम्हारे स्वामीका भी पुत्र है। स्वामीसे कुछ भयकी शंका नहीं तुम इस बालकको पालो; तब ममताने उत्तर दिया कि; तुमभी इसका पालन पोषण करो। हम दोनों जनोंसे अन्यायके द्वारा यह बालक उत्पन्न हुआ है सो मैं इकली क्यों इसका पालन पोषण करूंगी? पिता माता अर्थात् बृहस्पति और ममता इस प्रकार कह झगडा करते करते इस बालकको छोडकर चले गये इसीलिये इसका नाम भरद्वाज हुआ क्योंकि भर (पोषण) और द्वाज (दोनोंसे उत्पन्न) इन दोनों शब्दोंके मिलानेसे भरद्वाज नाम हुआ ॥ ३८ ॥ हे राजा परीक्षित्! देवता लोगोंके इस प्रकार कहते रहते पर भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुये उस बालकको व्यर्थ समझकर उतथ्यकी भार्याने इस बालकको त्याग दिया। तब उस बालकको मरुद्गणोंने लेकर पालन किया था। जब भरतवंशके वितथ होनेका उपक्रम हुआ। तब उस समय मरुद्गणोंने इस पुत्रको लेकर महाराजाधिराज भरतजीको देदिया ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥
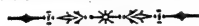
दोहा-भरत वंश इक्कीसमें, रंतिदेव अजमीढ।
तिनके कुलकी कीर्ति सब, वरणों सहित सपीढ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित! वंशके वितथ होनेपर भरतजीको मरुद्गणोंने यह बालक दिया इसलिये इन भरद्वाजका नाम वितथ हुआ। इन वितथका पुत्र मन्यु उनसे बृहत्क्षेत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुये ॥ १ ॥ उनमें नरका पुत्र संकृति हुआ। तिसका पुत्र गुरु और रन्तिदेव हुआ। हे राजन्! इन रन्तिदेवकी महिमा इस लोक और परलोक दोनोंमें गाई जाती है ॥ २ ॥ इस राजाका चित्त निरन्तर व्ययमें नियुक्त था। वह आप भूखे रहकर भी जो कुछ मिलता तत्काल दान कर देते। यह धीर नरपति सब कुछ दान करके निष्किञ्चन हो सपरिवार क्षुधाके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥ ३ ॥ और विना जलपान किये राजाको अडतालीस दिन व्यतीत होगये। सब परिवार विना आहारके कष्ट पारहा था और आप भी भूँख प्यासके मारे कम्पायमान हो रहे थे। उसी समय घृत, खीर और थूली भोजन करनेके लिये राजाको प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ उसको पाय राजा प्रातःकाल भोजन करनेको चले जाते थे। उसी समय कोई ब्राह्मण अतिथि आजाता ॥ ५ ॥ तो राजा श्रद्धापूर्वक सर्वदेवमय भगवान्

हरिको देखते हुये आदर पूर्वक उस ब्राह्मणको भी उस सब अन्नमेंसे विभाग करके देते। और वह ब्राह्मण भोजन करके चला जाता ॥ ६ ॥ तिसके पीछे उस बचे हुये अन्नादिको अपने सब परिवारको बाँट चूंट आप स्वयं भोजन करने जाते। उस अवसरपर यदि और कोई शूद्र अपनेको अतिथि बताकर आता तो यह रन्तिदेव भगवान् हरिका स्मरण करके उस बचेहुये अन्नमेंसे उस शूद्रकोभी भाग देते ॥ ७ ॥ एक समय इसीप्रकारसे एक शूद्र अतिथि आयकर विदा हो चलागया कि, इतनेहीमें और एक जन बहुतसारे कुत्तोंको साथलिये अतिथि बनकर वहाँ आया और आनकर बोला कि "मैं इन सब कुत्तोंके साथ बहुतही भूंखा हूँ" सो इस यूथके सहित मुझको तुम आहार दो ॥ ८ ॥ राजाने उसका बहुतही आदर किया और सन्मान करके वह बचा हुआ अन्न कुत्तोंके यूथको और उनके स्वामीको खानेके लिये देकर उनको नमस्कार किया ॥ ९ ॥ उसके पीछे सब कुछ देकर एक जनकी तृप्तिके योग्य जो जल वहाँ बचा-था। उसकेही पीनेका राजाने उद्योग किया कि, इतनेहीमें एक पुल्कस (चाण्डाल) आया और करुणा सहित यह वचन बोला कि, हे महाराज ! मैं बहुत थक गया हूँ सो मुझे अशुभ पुरुषको कुछ जल दीजिये ॥ १० ॥ इस चाण्डालके ऐसे करुणायुक्त वचन सुनकर राजा रन्तिदेवको अत्यन्त दया हुई । और दुःखित हो यह अमृतमय वचन बोले कि ॥ ११ ॥ हम परमेश्वरसे अणिमादि अष्टसिद्धियुक्त गति अथवा मुक्तिकी भी कामना नहीं करते । हमारी यही प्रार्थना है कि, हम सम्पूर्ण देहधारियोंके दुःखको भोक्तारूपसे भीतर स्थिर होकर प्राप्त हों और हमसे सब प्राणियोंका दुःख दूर होजावे ॥ १२ ॥ यह दीन जन जीवन धारण करनेकी वासना करता है। इसके जीवनके लिये जल अर्पण करतेही हमारी क्षुधा, तृष्णा, थकावट, अंगोंका घूमना, कातरता, क्लान्ति, खेद, विषाद, मोह सबही निवृत्त होगये ॥ १३ ॥ इसप्रकार कहकर स्वभावसेंही दयालु महाराज रन्तिदेवने स्वयं प्यासके मारे म्रियमाण होनेपरभी उस चाण्डालको अपने पीनेका जल देदिया ॥१४॥ हे राजन् ! त्रिभुवनाधीश जो ब्रह्मादि देवता फलाकाँक्षी पुरुषोंको फल दान किया करते हैं यह सब महाराज रन्तिदेवके धैर्य और धर्मकी परीक्षा करनेके लिये विष्णुकी बनाई हुई मायासे अपने अपने स्वरूपको दिखाते हैं ॥ १५ ॥ परन्तु महाराज रन्तिदेवने इन सब देवताओंको नमस्कार किया । और निःसंग व स्पृहा रहित होकर केवल भगवान् वासुदेवको अर्पण कर दिया ॥ १६ ॥ इसलिये उन्होंने ब्रह्मादि देवताओंसे कुछभी नहीं चाहा ॥ १७ ॥ हे राजन् ! रन्तिदेवके ईश्वरातिरिक्त और किसी फलकी इच्छा न करने पर अपने चित्तको ईश्वरावलम्बित करनेसे उनके निकट गुणमयी माया स्वप्नकी समान आत्मामेंही विलीन हुई थी ॥ १८ ॥ उनके अनुगामी जनगण इन राजा रन्तिदेवके संसर्गप्रभावसे सबही नारायणपरायण योगी होगये ॥ १९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! मन्युके पुत्र नरका वंश कहा गया । अब गर्गके वंशका वृत्तान्त कहते हैं सो तुम सुनो । गर्गसे शिनि उत्पन्न हुए । शिनिसे गार्ग्य यह ब्रह्मकुलके प्रवर्तक हुए ॥ २० ॥ अब महावीर्यके

वंशका विवरण सुनो. महावीर्यसे दुरतिक्षय उत्पन्न हुआ। उनका पुत्र त्रयारुणि, कवि और पुष्करारुणि, यह तीनोंजने क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न होकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुये थे। अब मन्युके पाँच पुत्रोंमेंसे सबसे बडेका वंश सुनो। बृहत्क्षेत्रका पुत्र हस्ती + हुआ कि, जिसने हस्तिनापुर बसाया ॥ २१ ॥ इस हस्तीके * अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ, यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए. इनमें अजमीढके वंशसे प्रियमेधादि ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ और इस अजमीढसे बृहदिषु नाम और एक पुत्र जन्मा, उसका पुत्र बृहद्धनु हुआ। बृहद्धनुकी सन्तान बृहत्काय, इसका पुत्र जयद्रथ हुआ ॥ ॥ २३ ॥ जयद्रथका पुत्र विषद, उसका पुत्र सेनजित, सेनजितके पुत्र रुचिराश्व, दृढ, हनुकास्य और वत्स यह चार पुत्र हुए उनमें रुचिराश्वका पार हुआ। उसका पुत्र पृथुसेन हुआ। हे राजन्! पारका दूसरा पुत्र नीप और नीपके सौ (१००) पुत्र हुए ॥ २४ ॥ और इसी नीपने शुक्रकी कन्या कृत्वीके गर्भसे ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया इस योगी ब्रह्मदत्तने अपनी भार्या सरस्वतीके गर्भसे विष्वक्सेन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ जिसने जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्र प्रणयन किया था। इस विष्वक्सेनसे उदक्सेनने जन्मलिया।इनसे भल्लाद नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित्! यह सब महीपाल बृहदिषुके वंशमें उत्पन्न हुए थे ॥२६॥ द्विमीढका पुत्र यवीनर, यवीनरका पुत्र कृतमान, उसके यहाँ सत्यधृति नामक पुत्र जन्मा। सत्यधृतिका पुत्र दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ ॥ २७ ॥ सुपार्श्वसे सुमतिने जन्म लिया उसका पुत्र सन्नति नाम, उसका पुत्र कृति, जिसने हिरण्यनामसे योगविद्या सीखकर प्राच्य सामकी छः संहिताओंका विभाग करके उनको पढाया ॥ २८ ॥ इस कृतिके नीप हुआ और नीपसे उग्रायुधकी उत्पत्ति हुई. उग्रायुधके क्षेमा,उसका पुत्र सुवीर; सुवीरका पुत्र रिपुञ्जय, उसका पुत्र बहुरथ हुआ हे राजन्! हस्तीके पुत्र पुरुमीढ निःसन्तान रहा ॥ २९ ॥ अजमीढकी " अजमीढके वंशमें प्रिय मेधादि कई एक ब्राह्मण और बृहदिषु प्रभृति क्षत्रिय उत्पन्न हुए थे, उन दोनों वंशोंका वर्णन किया गया है। यह उनका वंशान्तर है" नलिनी नाम जो भार्या थी। उससे नीलनामवुक पुत्र उत्पन्न हुआ। और नीलका पुत्र शान्ति जन्मा ॥ ३० ॥ शान्तिका बेटा सुशान्ति सुशान्तिका पुत्र पुरुज और उससे अर्कने जन्म ग्रहण किया। अर्कका पुत्र भर्म्याश्व और उसके मुद्गलादि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ अर्थात् मुद्गल, यवीनर, बृहदश्व, कम्पिल्य और संजय यह पाँच पुत्र जन्मे। भर्म्याश्वने इन पुत्रोंको देखकर एक समय कहा था कि, हमारे यह पाँच पुत्र

+ वही 'हस्तिनापुर' है जो अवतक गंगा भागीरथीके किनारे पर उपस्थित है.

* इसी अजमीढने 'अजमेर' बसाया, जो आजकल पुष्करजीके निकट वर्तमान है और वास्तवमें इसका नाम 'अजमेढ' था जो आजकल अजमेर नामसे विख्यात है.

पाँच विषयके रक्षा करनेमें समर्थ हैं ॥ ३२ ॥ यह पाँच देशका पालन कर सक्ते हैं, इसी कारण इन पुत्रोंकी पाञ्चाल संज्ञा हुई । और पाञ्चाल देश इनहीके नामसे प्रसिद्ध हुवा और मुद्गलसे मौद्गल्य गोत्री ब्रह्मकुल हुआ ॥ ३३ ॥ मर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे शुभ-नरा मिथुनने जन्मलिया । इनमें दिवोदास नर और अहल्या नाम नारी थी । उसी अह-ल्यामें गौतमजीसे शतानन्दकी उत्पत्ति हुई ॥ ३४ ॥ शतानन्दका पुत्र क्षत्यधृति हुआ। यह धनुर्वेदको भलीभाँतिसे जानता था । उसका पुत्र शरद्वान कि, जिसका वीर्य उर्वशीके दर्शनसे शरकण्डके समूहमें गिरा था । और फिर इसी वीर्यसे एक शुभ जोडा उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ जब शन्तनु राजा मृगया करनेको गया तब उसने दैवात् इस जोडेको देखा । और दयाके वश हो अपने घरपर ले आया उस नर मिथुनमेंसे बालकका नाम कृप और बालिका का नाम कृपी हुआ जो कि, द्रोणाचार्यकी स्त्री हुई ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे एक-विंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा-दिवोदासकी वंश कह, ऋक्ष वंश बाईस ।
जरासन्ध और धर्मसुत, दुर्योधन धनईस ॥

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ ! दिवोदासका पुत्र मित्रायु, उसका पुत्र च्यवन, च्यवनका पुत्र सुदास, सुदासका सुत सहदेव और उसकी सन्तान सोमक हुआ. इस सोमकके सौ १०० पुत्र थे, उनमें जन्तु बड़ाथा ॥ १ ॥ और प्रषत छोटा हुआ । इस प्रषतके सर्वसम्पद् युक्त राजा द्रुपदने जन्मलिया । इन्ही राजा द्रुपदसे द्रौपदीका जन्म हुआ ॥ २ ॥ और इनके पुत्र धृष्टद्युम्नादि हुए । धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु हुआ । यह सब धर्म्याश्वके पाञ्चाल वंशमें हुए और पंजावके राजाथे ॥ ३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! अब अजमीढके वंशका वृत्तान्त कहते हैं सो आप सुनिये । अजमीढका दूसरा पुत्र जो ऋक्ष था, उसका पुत्र संवरण हुआ । इस संवरणसे सूर्यकी कन्या तपसीके गर्भसे कुरुक्षेत्रपति कुरुने जन्म ग्रहण किया, इन कुरुके परीक्षित, सुधनु, जन्हु और निषेधाश्व यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ इनमें सुधनुका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र च्यवन और इनके कृती हुआ । कृतीका पुत्र उपरिचरवसु नाम पुत्र हुआ। उससे बृहद्रथ प्रभृति उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ और पुत्रोंके यह नाम हैं यथा-कुशांब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप इत्यादि । यह सबही चेदिप अर्थात् चंदेलीके राजा थे ॥ ६ ॥ बृहद्र-थसे कुशाग्रका जन्म हुआ उसका पुत्र ऋषभ, उसका सुत सत्यहित सत्यहितका पुत्र पुष्य-वान, तिसका बेटा जन्हु हुआ । हे राजन् ! बृहद्रथकी दूसरी भार्यासे एक पुत्र दो खण्ड होकर जन्माथा ॥ ७ ॥ उसकी माताने उस बालकको ऐसा देखकर बाहर फेंकवादिया । फिर जरा राक्षसीने उसको देख " जीवितहो, जीवितहो " यह वाक्य उच्चारणपूर्वक क्रीडा करते करते उन दोनों खण्डोंको जोड दियाथा उससेही यह बालक सर्वांवयव

सम्पन्न हो जरासंध नाम हुआ ॥ ८ ॥ इस जरासन्धका पुत्र सहदेव, उसका पुत्र सोमापि उससे श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई, हे राजन्! कुरुपुत्र परीक्षित्के सन्तान नहीं थी ; जन्हुका पुत्र सुरथ ॥ ९ ॥ इस सुरथसे विदूरथका जन्म हुआ । उसका पुत्र सार्व्वभौम, उसका पुत्र जयसेन, जयसेनका पुत्र राधिक राधिकसे आयुतायुने जन्मलिया ॥ १० ॥ आयुतायुके क्रोधन, क्रोधनके देवातिथि उनके ऋक्ष और ऋक्षसे दिलीपने जन्म ग्रहण किया । और दिलीपके प्रतीप नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ इन प्रतीपके देवापि, शन्तनु और वाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए । तिनमें बडा पुत्र देवापि पितृराज्यको छोड-कर वनमें चला गया था ॥ १२ ॥ इसलिये मध्यम पुत्र शन्तनु राजा हुए । पूर्वजन्ममें इनका नाम महाभिषकथा । यह शन्तनु अपने हाथसे जिस किसी वृद्ध पुरुषको स्पर्श करते वही युवा हो जाता ॥ १३ ॥ और शान्ति प्राप्त कर लेता था. इस कर्मके ही करनेसे इनका शन्तनु नाम हुआ । इन शन्तनुजीके राजा होनेपर देवराज इन्द्रने बारह वर्षतक पानी न वर्षाया ॥ १४ ॥ तब राजाने उद्विग्न होकर ब्राह्मणोंसे इसका कारण पूँछा तब ब्राह्मणोंने इस विषयमें केवल इतनाही कहा कि; महाराज ! बडे भाईके रहते जो पुरुष राजसिंहासनपर बैठता है वह अपनी समान पुरुष होनेपर भी परिवेत्ताही हो जाता है, आप परिवेदन दोषसे दूषित हुये हैं. सो इस दोषको दूर करनेके लिये शीघ्र अपने बडे भाईको बुलाकर उनको राज्यभार देदो तब देवता जल वर्षावेंगे । और राष्ट्रोंकी वृद्धि होगी ॥ १५ ॥ ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर राजा शन्तनु उसी समय वनको चलेगये । और " प्रजापालन करनाही राजाका परमधर्म है । आप राज्यको स्वीकार कीजिये " यह कहकर अपने बडे भ्राताओंसे राज्य ग्रहण करनेके लिये विनय करने लगे । परन्तु इससे पहले शन्तनुके मंत्री अश्ववारने देवापिको पाखण्ड करके राज्यके अयोग्य करनेके लिये उनके पास कुछेक ब्राह्मणोंको भेज दियाथा. ब्राह्मणलोगोंके पाखण्ड मतानुयायीकथा द्वारा जब देवापि वेदमार्गसे परिभ्रष्ट हुये तब इन्होंने शन्तनुकी प्रार्थना न मानी और वेद शास्त्रकी निन्दा करने लगे । तब वेदोंकी निन्दा करनेसे नीचता पानेके कारण राज्यके योग्य देवापि न रहे । फिर उसके उपरान्त शन्तनुके राज्य भोग करनेमें और कोई दोष नहीं रहा । फिर यथाकालमें वर्षा होने लगी तबसे देवापि योगमार्गका अवलम्बन कर कलाप ग्राममें रहते हैं । जब कलियुगमें चन्द्रवंशका नाश होजायगा । तब सतयुगके पहले यह देवापि फिर चन्द्रवंशको स्थापित करेंगे ॥ १६ ॥ शन्तनुके पुत्र बाह्लीकसे सोमदत्तकी उत्पत्ति हुई । इस सोमदत्तके भूरिश्रवा और शल यह तीन पुत्र उत्पन्न हुये । हे परीक्षित् ! इन शन्तनुके गंगाजीके गर्भसे भीष्मजीका जन्म हुवा था । यह भीष्मजी धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महा भागवत ॥ १७ ॥ विद्वान् और वीर गणोंके अगुएथे, उन्होंने संग्राममें परशुरामजीको भी प्रसन्न कियाथा । हे राजन् ! इन शन्तनुसे दास कन्यामें " उपरिवसुके वीर्य द्वारा मत्स्य गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुईथी और केवट लोगोंने उसका पालन पोषण कियाथा । इसीलिये यह दास कन्याके नामसे विख्यात

हुई वास्तवमें इसका नाम सत्यवतीथा '' चित्रांग और विचित्रवीर्यनामक दो पुत्र जन्मे ॥ १८ ॥ उनमें छोटा विचित्रवीर्य हुआ बडा पुत्र चित्राङ्ग जिसको चित्रांगद नामक किसी गन्धर्वने मारडाला शंतनु राजाके ग्रहण करनेसे पहले इस दासकन्या -(सत्यवती) में महर्षि पराशरसे साक्षात् भगवान् हरिके अंशसे कृष्णद्वैपायन मुनि (श्रीव्यासजी) का अवतार हुआ ॥ हे परीक्षित् ! उनके जन्म होनेसे पहिले समस्त वेद गुप्त होगयेथे और उनसेही हमनेभी श्रीमद्भागवत शास्त्र पडाथा जो कि, इस समय आपको सुना रहेहैं ॥ ॥ १९ ॥ इन भगवान् बादरायणके पैलादि अनेक शिष्यथे । परन्तु वह सब शिष्योंको छोडकर हम जो उनका स्वभाव जानकर परमगुह्य श्रीमद्भागवत शास्त्रकी व्याख्या करते-थे. क्योंकि मैं उनका शान्त पुत्रथा ॥ २० ॥ इन विचित्रवीर्यने काशिराजकी दो कन्या अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया, इन दोनों कन्याओंको महा बलवान् भीष्म स्वयंवरमेंसे लडकर छीन लायेथे ॥ २१ ॥ इन दोनों स्त्रियोंमें विचित्रवीर्य अत्यन्त अनुराग करते थे इसीलिये अल्प कालमेंही यक्ष्मारोगसे ग्रसित हो मृत्युको प्राप्त हुए ॥ ॥ २२ ॥ इनके कोई सन्तान नहीं हुई तब इनके सहोदर भगवान् वेदव्यासजीने अपनी सत्यवती माताके कहनेसे अपने भाई विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर यह तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ २३ ॥ इनमें धृतराष्ट्रकी स्त्री गान्धारी हुई, इस धृतराष्ट्रके गान्धारीसे सौ (१००) पुत्र जन्मे इन पुत्रोंमें दुर्योधन सबसे बडा था और दुःशला नाम एक कन्या हुई ॥ २४ ॥ हे राजन् ! पाण्डु राजा एक समय वनमें शिकार खेलनेको गये थे, वहाँ इन्होंने मैथुन करते हुए एक मृगका वध किया. तब मृगने इनको शाप दिया कि जब तुम मैथुन करोगे तबही तुम्हारी मृत्यु होजायगी । इन राजा पाण्डुकी स्त्री कुन्तीमें धर्म, पवन और इन्द्रके वीर्यसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन, यह तीन पुत्र महारथी उत्पन्न हुए । और इन्हीं राजाकी माद्री नामक दूसरी भार्यामें अश्विनीकुमारसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ ॥ २५ ॥ इन पाँचों पाण्डवोंकी भार्या द्रौपदी हुई द्रौपदीके गर्भमें युधिष्ठिरादि पाँच पाण्डवोंसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो कि तुम्हारे पितृव्य थे ॥ २६ ॥ अर्थात् युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसे श्रुतसेन और अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा उत्पन्न हुआ ॥ हे राजन् ! इन पाँच पाण्डवोंसे इनकी दूसरी भार्याओंमें इन पुत्रोंके अतिरिक्त (सिवाय) और-भी पुत्र उत्पन्न हुएथे ॥ २७ ॥ युधिष्ठिरकी पौरवी नामक जो दूसरी भार्याथी । उससे देवक नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ भीमसेनकी हिडम्बा नामक वनितामें घटोत्कचने जन्म ग्रहण किया ॥ इन भीमसेनके कालीनामक एक और भी भार्याथी, जिससे सर्वगत नामक एक सन्तानने जन्मलिया ॥ २८ ॥ सहदेवकी विजया नामक दूसरी भार्या पर्वतकी बेटीने सुहोत्र नाम एक पुत्र उत्पन्न किया । नकुलकी करेणुमती नामक वनितामें निर्मित नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ. हे राजन् ! अर्जुनने नागराजकी कन्या उलूपीके गर्भसे इरावन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न किया और मणि-

पुराधीशकी बेटीमें अर्जुनने बभ्रुवाहन नाम पुत्र उत्पन्न किया था । परन्तु यह पुत्र अर्जुनका बेटाथा । पर नाना के गोद लेनेसे मणिपुरपतिका पुत्र कहाया था ॥ २९ ॥ इन फाल्गुनकी सुभद्रा नामक और एक भार्या थी, उससे तुम्हारे पिता अभिमन्युने जन्म लिया । यह अभिमन्यु समस्त अतिरथी वीरोंके जयकारी और महावीरथे । हे महाराज परीक्षित् ! उनकेही औरससे उत्तराके गर्भमें आपने जन्म लिया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! अश्वत्थामाके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रके तेजसे कुरुवंशका जब नाश होरहाथा, तब तुमभी उससे नष्ट होते । परन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुरली मनोहरके प्रभावसे मृत्युके हाथसे तुम छूट गये ॥ ३१ ॥ हे तात ! तुम्हारे इस समय, जन्मेजय, श्रुतसेन, भीमसेन, और उग्रसेन यह चार पुत्रहैं ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! तुम्हारे इन पुत्रोंमेंसे जन्मेजय तक्षक (सर्प) से तुम्हारी मृत्युका होना सुनकर रोषकेमारे सर्पशत्रुयज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञाग्निमें सब सर्पोंको होम देगा ॥ ३३ ॥ और तुम्हारे यह पुत्र समस्त पृथ्वीको जीत अश्वमेध यज्ञ करेंगे और कावषेयवंशके "तुर" नामक ऋषिको पुरोहित बनाकर और भी बहुतसे अश्वमेध यज्ञ करेंगे ॥ ३४ ॥ हे परीक्षित् ! तुम्हारे पुत्र जन्मेजयके शतानीक नाम एक पुत्र होगा यह शतानीक याज्ञवल्क्य मुनिसे तीन वेद पढ़ेगा और शौनक मुनिसे ब्रह्मविद्या और आत्मज्ञान सीखेगा और कृपाचार्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेगा ॥ ३५ ॥ शतानीकका पुत्र सहस्रानीक होगा, उससे अश्वध्वजकी उत्पत्ति होगी । उनका पुत्र असीमकृष्ण और उनका पुत्र नेमिचक्र होगा ॥ ३६ ॥ इस नेमिचक्रके राजकालमें हस्तिनापुर गंगाजीमें डूबेगा । तब यह राजा कौशांबी नगरीमें वास करेगा। इस नेमिचक्रके उप्त नामक सन्तान होगा । उसका पुत्र चित्ररथ और उससे कविरथ जन्मेगा ॥ ३७ ॥ कविरथका पुत्र वृष्णिमान और उनका पुत्र सुषेण नामक राजा होगा। सुषेणके सुनीथ नामक पुत्र जन्मेगा उसका पुत्र नृचक्षु होगा और उससे सुखीनल जन्म लेगा ॥ ३८ ॥ सुखीनलका पुत्र परप्लव होगा उससे सुनय जन्म धारण करेगा, उसका पुत्र मेधावी, मेधावीका पुत्र नृपञ्जय और उससे दूर्व जन्म लेगा और उसका पुत्र तिमि होगा ॥ ३९ ॥ तिमिसे बृहद्रथकी उत्पत्ति होगी इसका पुत्र सुदास और सुदाससे शतानीक जन्म धारण करेगा ॥ ४० ॥ शतानीकका पुत्र दुमन, इसका पुत्र वहीनर, वहीनरका पुत्र दंडपाणि इस दंडपाणिका पुत्र नेमि और इस नेमिसे क्षेमक नाम पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४१ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! देवर्षि सत्कृत ब्रह्म क्षत्रियवंश इस क्षेमकको राजा पाकर कलियुगमें समाप्तिको प्राप्त होजायगा ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा सुनाय कर नृपश्रेष्ठ परीक्षितसे बोले कि, हे कुरुवंशावतंस ! अब मगधवंशमें जो राजा होंगे उनका वृत्तान्त कहताहूं । आप सचेत हो मन लगायकर सुनिये । बृहद्रथके पुत्र जरासन्धके सहदेव नामक पुत्र होगा. सहदेवके मार्जारि और इस मार्जारिसे श्रुतश्रवा जन्म ग्रहण करेगा ॥ ४३ ॥ इसका पुत्र युनायु उसकी सन्तान निरमित्र इसका पुत्र सुनक्षत्र, इस सुनक्षत्रसे बृहत्सेनकी उत्पत्ति होगी इस बृहत्सेनका पुत्र कर्मजित उसके

सुतञ्जय और उससे विप्र नाम एक नरेश उत्पन्न होगा। उसका पुत्र शुचि शुचिका पुत्र क्षेम उससे सुव्रत जन्मेगा। सुव्रतका पुत्र धर्मसूत्र और इस धर्मसूत्रके समनाम पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इस समसे दृढसेनकी उत्पत्ति होगी, दृढसेनका पुत्र सुमति होगा। इस सुमतिका पुत्र सुवल उत्पन्न होगा, सुवलका सुनीथ, सुनीथका पुत्र सत्यजित, सत्यजितका पुत्र विश्वजित और विश्वजितका पुत्र रिपुञ्जय उत्पन्न होगा ॥ ४६ ॥ हे राजा परीक्षित्! हजार वर्ष तक यह सब राजा उत्पन्न होंगे और इनके उपरान्त जो समस्त राजा होंगे वह पीछे (द्वादश स्कन्धमें) कहे जायँगे ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कन्धे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा-ययाति सुत अनु द्रुह्यु पुनि, वरणों तुर्वसु वंश।
पीछे ज्यामघ राज्य तक, यदुकुल कहौं प्रशंक्ष॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण! पुरुका वंशतो आपसे कहा, अब राजा ययातिके चौथे पुत्र अनुके वंशका वर्णन करते हैं, अनुके सभानर, चक्षु और परेक्षु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सभानरका पुत्र कालनर, उसका पुत्र संजय और उसका पुत्र जन्मेजय हुआ. जन्मेजयका पुत्र महाशाल और महाशालका पुत्र महामना हुआ ॥ ॥ १ ॥ महामनाके उशीनर और तितिक्षु यह दो पुत्र उत्पन्न हुए इन दोनोंमें उशीनरके शिवि, बल, शमी और दक्ष यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ इनमें शिविसे वृषादर्भ, सुवीर, मद्र, कैकय यह चार पुत्र जन्मे। तितिक्षुका पुत्र रुषद्रथ, इसका पुत्र होम, उसका पुत्र सुतप और सुतपसे बलि नाम पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ इस बलिके क्षेत्रमें दीर्घतमासे अंग, वंग, कलिङ्गादि और सुह्म, पुंड्र और अन्ध्र नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ यह सब अपने अपने नामसे छः जन पद और छः प्राच्य देशमें अङ्ग वंग कलिङ्ग सुह्म और पुण्डरीक और अन्ध्र आदिने बसाये ॥ ५ ॥ अंगसे खलपान नामक जो पुत्र जन्मा था उसका पुत्र दिविरथ उसकी सन्तान धर्मरथ और उससे चित्ररथ जन्मा. चित्ररथके कोई सन्तान नहीं हुई। रोमपाद नाम करके यह राजा विख्यात था, उसके सखा दशरथ राजाने उसको पुत्रार्थ शान्तानामक अपनी कन्या दान करदी थी, इस कन्याका पाणिग्रहण ऋष्यश्रृङ्ग मुनिने किया ॥ ६ ॥ हे राजन्! रोमपाद राजाके राज्यमें किसी कारणसे कुछ कालतक देवता लोगोंने जल नहीं वर्षाया। तव राजाकी अनुमतिसे वराङ्गनागण तपोवनमें जाय गीतगाय बाजे बजाय बजाय नाचने लगीं और हाव भाव कटाक्ष आलिङ्गन और अर्हण योगसे इन ऋष्यश्रृङ्गको ले आई ॥ ७ ॥ ऋष्यश्रृङ्गके आतेही जल वर्षा इसके उपरान्त इन मुनिने राजाको निःसन्तान देख यज्ञ कराय पुत्रका मुख दिखाया ॥ ८ ॥ इन रोमपादसे चतुरंग उत्पन्न हुआ। उसकी सन्तान पृथुलाक्ष, पृथुलाक्षसे बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु यह तीन पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ९ ॥ इनमें बृहद्रथसे बृहन्मना जन्मा,

उसका पुत्र जयद्रथ, जयद्रथका पुत्र विजय हुआ। इस विजयकी सम्भूति नामक भार्या-से धृतिने जन्म ग्रहण किया ॥ १० ॥ धृतिका पुत्र धृतव्रत, उसका पुत्र सत्कर्मा, उससे अधिरथि उत्पन्न हुआ। इस अधिरथिने श्रीगंगाजीके किनारेपर क्रीडा करते हुये कुन्ती-जीके वहाये संदूकमें एक बालक पाया पर यह अधिरथि सन्तानहीनथा। इसीलिये इसने संदूकसे पाये हुये बालकको अपना पुत्र बनालिया। हे राजन्! बालकका नाम कर्ण था और इससेही वृषसेनकी उत्पत्ति हुई ॥ ११ ॥ ययातिसुत द्रुह्युका पुत्र बभ्रु हुआ, बभ्रुका पुत्र सेतु, सेतुका पुत्र आरब्ध, उसका पुत्र गान्धार, उसका वेटा धर्म और उससे धृत जन्मा ॥ १२ ॥ धृतका पुत्र दुर्मद और उससे प्रचेताकी उत्पत्ति हुई। इस प्रचे-ताके सौ १०० पुत्र हुये जो कि, उत्तर दिशामें विराजमान् होकर म्लेच्छाधिपति हुये हैं ॥ १३ ॥ तुर्व्वसुका पुत्र वह्नि उसका सुत वर्ग, उससे भानुमान्का जन्म हुवा, भानु-मान्का पुत्र त्रिभानु, उसका पुत्र उदारमति करन्धमजन्मा ॥ १४ ॥ करन्धमका पुत्र मरुत्त इन्होंने पुत्र रहित होनेसे कुरुवंशीय राजा दुष्यन्तको गोद लिया,यह दुष्यन्त राज्या-भिलाषी होकर फिर अपने कुरुवंशको प्राप्त हुयेथे ॥ १५ ॥ हे नरश्रेष्ठ! अब राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करते हैं। यह अतिपवित्रवंश मानवमण्डलीके अनन्त पापोंका नाश करनेवाला है ॥ १६ ॥ इस यदुवंशका वृत्तान्त सुननेसे मनुष्यमात्र पापोंसे छुटकारा पाते हैं। क्योंकि इसी वंशमें भगवान् वासुदेव नराकारसे अवतीर्ण हुये थे ॥ १७ ॥ यदुके सहस्रजित, क्रोष्ट, नल और रिपु यह चार पुत्र उत्पन्न हुये उनमें सहस्रजितका पुत्र शताजित हुआ ॥ १८ ॥ इसके महाहय, रेणुहय और हैहय यह तीन पुत्र हुये ॥ १९ ॥ इनमें हैहयका पुत्र धर्म, उनका पुत्र नेत्र और नेत्रका पुत्र कुन्ति हुआ। कुन्तिसे सोहञ्जि जन्मा, इसका पुत्र महिष्मान और महिष्मानका पुत्र भद्रसेन हुआ ॥ २० ॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक दो पुत्र हुये। इनमें धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतोजा, यह चार पुत्र उत्पन्न हुये ॥ २१ ॥ इनमें कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ। जो कि, सप्तद्वीपका अधीश्वर था। और जिसने श्रीभगवान्के अंश दत्तात्रेयजीसे योग गुण प्राप्त किया था ॥ २२ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि कोई राजा यज्ञ, दान, तप, योग, वेदाध्ययन और शूरता, वीरता, व दयादिसे इन महात्मा अर्जुन-की गतिको नहीं प्राप्त होसकता ॥ २३ ॥ इस राजाने अव्याहत पराक्रमसे पचासी ८५००० हजार वर्ष तक अक्षय छःइन्द्रियोंके सुखको भोगा था। इस राजाकी स्मरण-शक्ति आश्चर्यमय थी कि, जिससे कदापि वित्तका नाश नहीं होता था ॥ २४ ॥ इन अर्जुनके हजार पुत्र थे, इनमेंसे केवल पाँच परशुरामके संग्राममें मरनेसे शेष बचे थे। जिनके नाम यह हैं। जय, ध्वज, शूरसेन, वृषभमधु और उर्जित् ॥ २५ ॥ इनमें जय-ध्वजका पुत्र तालजंघ और इस तालजंघके शत पुत्र हुये तालजंघनामवाले इन सबको क्षत्रियोंके संग्राममें सगरने संहार किया था ॥ २६ ॥ जो कुछ भी हो, तालजंघके इन सब पुत्रोंमें बडा वीतिहोत्र था। हे राजन्! महात्मा वृष्णि तो मधुका पुत्र था। इस

मधुके शत १०० पुत्र उत्पन्न हुये थे । यद्यपि वृष्णि और यदुके कारणसे मधुका कुल माधव, वृष्णि और यादव इन तीन नामोंको प्राप्त हुआ था । परन्तु तो भी वृष्णि ही इस कुलमें श्रेष्ठ था ॥ २७ ॥ यदुका पुत्र क्रौष्ठ, उसका पुत्र वृजिनवान् ! वृजिनवान्का पुत्र स्वाहित, उसका पुत्र विषदगु, उसका सुत चित्ररथ और उससे महायोगी महायोगीसे महाभाग शशिविन्दुकी उत्पत्ति हुई । यह प्रत्येक जातिके श्रेष्ठ चौदह महारत्नोंका (हाथी, घोडे, रथ, स्त्री, बाण, निधि, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, माल्य, मणि, छत्र और विमानादिका) स्वामी और अपराजित चक्रवर्ती था ॥ २८ ॥ हे परीक्षित् ! इसके दश हजार १०००० स्त्रिये थीं । इनमेंसे प्रत्येक स्त्रीके लक्ष लक्ष १००००० पुत्र उत्पन्न हुये । जिससे सब मिलकर दशलाख हजार पुत्र जन्मे अर्थात् एक अर्व १०००००००० इन सब पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पुण्ययशा इत्यादि छः पुत्र विख्यात हुये ॥ २९ ॥ इन छः पुत्रोंमें पृथुश्रवाका पुत्र धर्म हुआ कि, जिस धर्मके उशना पुत्रने सौ १०० अश्वमेध यज्ञकिये ॥ ३० ॥ उशनाका पुत्र रुचक हुआ । इस रुचकके उरुजित, रुक्म, रुक्मेषु-पृथु और ज्यामोघ यह पाँच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ इनमें ज्यामोघकी भार्या शैव्याथी इस ज्यामोघके कोई सन्तान नहीं थी । भार्याके डरसे और विवाह नहीं किया यह एकसमय इन्द्रभवनसे भोजा नामक कन्याको हरण करके लारहाथा ॥ ३२ ॥ कि, इस कन्याको रथपर बैठे देखकर शैव्या अत्यन्त क्रोधित हुई । और अपने पतिसे बोली कि, यह कौनहै ? जिसको मेरे बैठनेके रथपर चढाकर लारहेहो ॥ ३३ ॥ तब ज्यामोघने भयके मारे उत्तर दिया कि, यह तेरी पतोहूहै । शैव्या विस्मित होकर बोली कि, मैं तो बाँझहूं और मेरे कोई सौत भी नहीं कि, यह कन्या जिसके बेटेकी बहू होवे । फिर यह हमारी पतोहू कैसे हुई ॥ ३४ ॥ ज्यामोघने कहा कि, प्राणेश्वरी ! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी यह उसकी ही बहू होगी. हे राजन् ! विश्वदेव और पितृ लोगोंने ज्यामोघके इस दीन वचनपर आनन्द प्रकाश किया, क्योंकि, ज्यामोघने पहिले उनकी बहुत दिनोंतक पूजा की थी । तो उन्होंने कृपा करके वरदान दिया ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त शैव्याके गर्भाधान हुआ और यथायोग्यकालमें इस रानीने एक श्रेष्ठ कुमार उत्पन्न किया इस कुमारका नाम विदर्भ हुआ फिर कुमार विदर्भने इस पतिव्रता कन्याका पाणिग्रहण किया कि, जिसको पिता हरण करलाये थे ॥ और इसी राजा विदर्भने अपने नामसे विदर्भ देश वसाया ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे नवमस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा-चौबिस माहिं विदर्भके, भये तीन सुत वीर ।
राम कृष्ण तक वंश सब, कहौं सहित विस्तीर ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कुमार विदर्भने अपनी स्त्रीके गर्भसे कुश और क्रथ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, इनका तीसरा पुत्र रोमपाद हुआ ॥१॥इस रोमपादका

पुत्र बभ्रु और बभ्रुसे कृतिने जन्म ग्रहण किया। कृतिका पुत्र उशिक, उससे चेदी और चेदीसे दमघोष राजाकी उत्पत्ति हुई॥ २॥ हे राजन्! विदर्भात्मज कथका पुत्र कुंत हुआ। उसका धृष्टि, धृष्टिका पुत्र निवृत्ति उससे दशार्ह नाम पुत्र हुआ दशार्हके व्योम ॥ ३॥ व्योमका पुत्र जीमूत जीमूतके भीमरथ.इनसे नवरतने जन्म ग्रहण किया इनके पुत्र दशरथ हुए॥ ४॥ इनके शकुनि, शकुनिके करम्भि करम्भिके देवरात देवरातके देवक्षेत्र, उनके मधु, मधुसे कुरुवंश उत्पन्न हुआ और कुरुवंशका पुत्र अनु ॥ ५ ॥ उसका पुत्र पुरुहोत्र, उसका पुत्र आयु और उससे सात्वतकी उत्पत्ति हुई। हे आर्य ! सात्वतके भजमान १, भजिय २, दिव्य ३, वृष्णि ४, देवावृध ५, अन्धज ६, और महाभोज ७, यह सात पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ६ ॥ इनमें भजमानके दो स्त्रियें हुई। एक स्त्रीसे निम्रोचि, किङ्कन और धृष्टि, यह तीन और दूसरी स्त्रीमें भी शतजित, सहस्रजित और अयुतजित. यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे राजन्! देववृधकी सन्तान बभ्रु हुआ, इन पिता पुत्रके प्रसंगमें कविलोग एक श्लोक गाया करते हैं। तिस श्लोकका अर्थ यह है। "हम दूरसे जैसा सुनते हैं। निकटसे वैसा देखते भी हैं ॥ ९ ॥ महात्मा बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवावृध राजा देवताकी समान है। इस वंशमें पाँच ५ षष्टि ६ षट् सहस्र ६००० और आठ ८ जो यह ६०७३ पुरुष हुये यह सब बभ्रु और देववृद्धके उपदेशसे मोक्षको प्राप्त हुये थे" ॥ १० ॥ सान्त्वतके महाभोज अति धर्मात्मा थे। इनके वंशमें भोजगणोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ११ ॥ हे परन्तप! सान्त्वतके चौथे पुत्र वृष्णिके सुमित्र और युधाजित् नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। उनमें युधाजित्के पुत्र शिनि और अनमित्र हुये। उनमें अनमित्रका पुत्र निम्न हुआ ॥ १२ ॥ इस निम्नके सत्रजित और प्रसेन दो पुत्र हुये। हे राजन्! अनमित्रके शिनिनामक एक दूसरा पुत्र जो था उसके यहाँ सत्यक जन्मा ॥ १३ ॥ सत्यकका पुत्र युयुधान (सात्यकी) युयुधानका पुत्र जय, जयका पुत्र कुणि,इस कुणिसे युगधरका जन्म हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ ! अनमित्रके वृष्णि नामके दूसरे पुत्रसे ॥ १४ ॥ फल्क और चित्ररथने जन्म लिया; फल्कसे गाँदिनीके गर्भमें अक्रूरजीके सिवाय औरभी बारह पुत्र जन्मे जो कि बडे विख्यात हुये ॥ १५ ॥ यथा–आसंग १; सारमेय २; मृदुर ३, मृदवित ४; गिरि ५; धर्मवृद्ध ६; सुकर्मा ७; क्षेमोपेक्ष ८; अरिमर्दन ९; ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न १०; गन्धमादन ११; और प्रतिबाहु १२; यह बारह और अक्रूर मिलकर तेरह पुत्र हुये और इनके सुचीरा नामक एक बहनभी हुई थी। अक्रूरजीके देववान् और उपदेव दो पुत्र हुये चित्ररथका पुत्र पृथु इसके अतिरिक्त विदूरथादि बहुतसे पुत्र हुये॥ १७॥ १८॥ दूसरे कुकुर; भजनमान; शुचि और कम्बलबर्हिष यह चार अन्धकके पुत्र हुये, उनमें कुकुरका पुत्र वृष्णी और वृष्णीका पुत्र विलोमा ॥ १९ ॥ उसका पुत्र कापोतरोमा। उसकी सन्तान तुम्बरु गन्धर्व इस अनुका सखा था; इस अनुका पुत्र अन्धक उससे दुन्दुभि उत्पन्न हुआ उसका पुत्र अद्द्योत और तिसका पुत्र पुनर्वसु हुआ ॥ २० ॥ पुनर्वसुके आहुक पुत्र और आहुककी कन्या हुई आहुकके देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुये ॥ २१॥ देवकके

देववान् १, उपदेव २, सुदेव ३, देववर्द्धन ४,यह चार पुत्र उत्पन्न हुये। इन चार पुत्रोंके धृतदेवादि सात बहनें थीं ॥ २२ ॥ यथा धृतदेवा १,शान्तिदेवा २, उपदेवा३, श्रीदेवा४, देवरक्षिता ५, सहदेवा ६, और देवकी इन सात कन्याओंके साथ वसुदेवजीने विवाह किया ॥ २३ ॥ हे परीक्षित्! उग्रसेनके पुत्र कंस १, सुनाम २ न्यग्रोध ३, कंक ४, शंकु ५, सुहु ६, राष्ट्रपाल ७, धृष्टि ८, और तुष्टिमान् ९, यह नौ पुत्र उत्पन्न हुये ॥ २४ ॥ और कंसा १, कंसवती २, कंक ३, शरभू ४, राष्ट्रपालिका ५, यह पाँच कन्यायें वसुदेवजीके छोटे भाई जो देवभागादि थे इनकी भार्या हुई ॥ २५ ॥ हे राजन्! पहले चित्ररथके बेटे विदूरथका जो वर्णन कर आये हैं उन विदूरथसे उत्पन्न हुये उसका पुत्र भजमान, उससे शिनिका जन्म हुआ, शिनिका पुत्र भोज और उसका हृदीक नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ उससे देवमीढ़ १, शतधनु २, और कृतवर्मा ३, यह तीन पुत्र उत्पन्न हुये ॥ २७ ॥ उनमें देवमीढ़का पुत्र शूर हुआ. उसके मारिषा नामक एक पत्नी थी। मारिषाके गर्भसे शूरने दश पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम यह हैं, यथा वसुदेव, १, देवभोग २, देवश्रवस ३, आनक ४, ॥ २८ ॥ सृञ्जय ५, श्यामक, ६, कंक ७, शमीक ८, वत्सक ९, और वृक १०, हे राजन्! जिस समय वसुदेवजीका जन्म हुआ उस समय स्वर्गसे देवतालोगोंने नगाड़े और ढोल बजाये थे ॥ २९ ॥ इसीलिये इन वसुदेवजीका एक नाम आनकदुन्दुभी था क्योंकि यह भगवान् हरिकी उत्पत्तिके स्थान थे। शूरसेनके इन पुत्रोंसे अतिरिक्त पृथा १, श्रुतदेवा २, श्रुतकीर्ति ३, श्रुतश्रवा ४, ॥ ३० ॥ और राजाधिदेवी नामक पांच कन्या हुई यह इन दश पुत्रोंकी बहनें थीं. राजा शूरसेनने अपने सखा कुन्तिराजको निःसन्तान देखकर अपनी पृथा कन्या उसको देदी ॥ ३१ ॥ किसी समय हे परीक्षित्! दुर्वासा ऋषिके गृहमें आनेपर पृथाने भली भाँति सेवाकर उनको संतुष्ट किया और दुर्वासा मुनिने प्रसन्न होकर पृथाको देवाह्वान विद्या सिखादी। इसके उपरान्त पृथाने उस विद्याके बलकी परीक्षा करनेके लिये सूर्य भगवानको बुलाया ॥ ३२ ॥ परन्तु इन सूर्य भगवान्को तत्काल आता हुआ देखकर पृथा अति विस्मित हुई। और विनयसहित यह वचन कहने लगी हे देव! हमने केवल परीक्षाके लिये मन्त्र पढ़ा था इस समय आपसे कोई विशेष काम नहीं है इसलिये आप क्षमा करें ॥ ३३ ॥ यह सुनकर सूर्य भगवान् बोले कि, देव दर्शन व्यर्थ नहीं होता हम तुममें गर्भाधान करेंगे, पृथा बोली कि, मैं कन्या हूं संसारमें दूषित हूंगी. सूर्य नारायणने कहा कि, तुम कन्या समझकर अपने मनमें कुछ संकोच मत करो, हम ऐसा करेंगे कि, जिस प्रकारसे तुम्हारी योनि दुष्ट नहीं होगी ॥ ३४ ॥ हे महाराज परीक्षित्! इस प्रकार गर्भाधान करके सूर्य भगवान् स्वर्गको चलेगये, उसी समय दूसरे दिवाकरकी समान पृथाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ तो पृथाने लोकापवादसे डरकर उस पुत्रको सन्दूकमें रखकर नदीमें बहादिया, इसके उपरान्त पृथाको देखकर तुम्हारे परदादा महाराज सत्यविक्रम पाण्डु विवाह करनेके लिये लेगये ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि;

हे राजा परीक्षित् ! शूरसेनकी कन्या श्रुतदेवा कुरुवंशीय वृद्धशर्माकी भार्या हुई। उसमें दितिसुत दन्तवक्रने सप्तऋषि सनकादिके शापसे जन्म लिया ॥ ३७ ॥ और केकय वंशीय धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण किया, उससे सन्तर्द्दनादि पांच पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ॥ ३८ ॥ और अवन्तीके राजा जयसेनने राजाधिदेवीका पाणिग्रहण करके उस्से विन्दु अरिविंदु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। हे राजा चेदिराज ! चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ इसका पुत्र शिशुपाल उत्पन्न हुआ कि, जिसका वृत्तान्त पहले वर्णन करचुके हैं। अब वसुदेवजीके भ्राताओंका वृत्तान्त कहते हैं। देवभागकी भार्या कंसाके चित्रकेतु और बृहद्बल यह दो पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ४० ॥ देवश्रवसकी भार्या कंसवतीके गर्भसे सुवीर और इषुमानने जन्म ग्रहण किया। कंककी वनिता कंकासे बक, सत्यजित और पुरुजित् यह तीन पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ४१ ॥ सञ्जयकी भार्या राष्ट्रपालीके गर्भसे दुर्म्मर्षादि उत्पन्न हुये। श्यामककी वनिता शरभूमिसे हरिकेश और हिरण्याक्षने जन्म लिया। वत्सकने मिश्रकेशी नामक अप्सरादिसे वृकादि पुत्र उत्पन्न किये। वृककी पत्नी दूर्वाक्षीसे तक्ष, पुष्कर, माला, प्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए। शमीक वनिता सुदामिनीने शमीकसे सुमित्र, अर्ज्जुन और पाल इत्यादि पुत्र उत्पन्न किये। आनकने अपनी स्त्री कर्णिकारके गर्भसे ऋतुधामा और जयनामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४२ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! वसुदेवजीकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि अनेक पत्नियें थीं ॥ ४३ ॥ इन स्त्रियोंमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥ पौरवीसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूतादि बारह पुत्र जन्मे। मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक और शूरादि पुत्र उत्पन्न हुए। भद्राने कुलका आनन्द देनेवाला केवल केशीनामक एकही पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४५ ॥ रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमांगद, प्रभृति जन्मे । और इलामें उरुवल्कसे आदि लेके यदु जिनमें मुख्य ऐसे पुत्र हुए ॥ ४६ ॥ धृतदेवाके वसुदेवसे विपृष्टने जन्म ग्रहण किया। शान्तिदेवामें प्रथम, प्रथित, प्रभृति पुत्र हुए ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार उपदेवासे राजन्यकल्प, वर्षादि दशपुत्र उत्पन्न हुए। श्रीदेवाके वसु, हंस सुवंशादि छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ देवरक्षितके गद प्रभृति नव पुत्र उत्पन्न हुए जैसे साक्षात धर्मने आठ वसु उपजाये। वैसेही वसुदेवजीने सहदेवा, प्रवरस्वस्त, मुख, प्रभृति आठ पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उनके देवकीने आठ पुत्र उत्पन्न हुये। यथा कीर्तिमान् १, सुषेण २, भद्रसेन ३; ऋजु ४; सम्मर्दन ५, भद्र ६, और संकर्षण ७, अहीश्वर ८, यह आठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४९ ॥ हे परीक्षित् ! वसुदेव देवकीके अष्टम पुत्र स्वयं विष्णु भगवान् हुए। और तुम्हारी दादी महाभागा सुभद्राजी भी उनसेही उत्पन्न हुई ॥ ५० ॥ अधिक क्या कहैं ? जिस जिस समय धर्मका क्षय और अधर्मकी वृद्धि होती है। उसी समयमें भगवान् वासुदेव अपना अवतार लिया करते हैं ॥ ५१ ॥ नहीं तो जो लोग मायाके नियन्ता, संगविहीन; सर्वसाक्षी और सर्वगत हैं। उनका मायाविनोदके अतिरिक्त

(सिवाय) जन्म अथवा कर्मका और क्या हेतु होसक्ता है ॥ ५२ ॥ जिसकी माया चेष्टा जीवके लिये अनुग्रह स्वरूप है. क्योंकि यह मायाही सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी निदान है. इसलिये जो सर्व जीवोंके अनुग्राहक हैं। फिर उनको कर्मादिके वश पडकर जन्मादि संबंधकी क्या सम्भावना ? इनके मायाचेष्टित श्रूयमाण होनेपर उसके द्वारा सृष्टि प्रभृतिक निवृत्ति होनेपर वही जीवके मोक्ष होनेका कारण होते हैं ॥ ५३ ॥ हे परीक्षित् ! वहुतसी अक्षौहिणीके राजा नृपरूपी असुरगण जब पृथ्वीको आक्रमण करते हैं और अपने बोझसे पृथ्वीको दवालेते हैं तव भूमिका भार उतारनेके लिये भगवान्‌का यह अवतार होता है। क्योंकि जिन कर्मोंको सुरेश्वर लोग मनके द्वारा तर्क करके भी नहीं करसक्ते। भगवान् मधुसूदन संकर्षणके साथ उन सब कर्मोंको लीलाहीसे कर डालते हैं ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं यद्यपि वह संकल्पही करके पृथ्वीके भारको हरण करनेमें समर्थ थे परन्तु तो भी कलियुगमें जो भक्त होंगे, उनके प्रति अनुग्रह प्रगट करनेके लिये दुःख शोक और तमोगुणका नाशक यह पुण्य यश भगवान्‌ने विस्तारित किया है यह श्रेष्ठ यश साधुपुरुषोंके लिये कर्णामृत और श्रेष्ठ तीर्थस्वरूप है केवल एकवार कर्णरूप अञ्जलिसे पान करनेपर पुरुष कर्मवासनाके त्याग देनेको समर्थ होता है ॥ ५५ ॥ इसलिये भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दाशार्ह, कुरु, सृञ्जय और पाण्डुवंशीय सब मनुष्यगण भगवान्‌के चरित्रकी वडाई किया करते हैं। उन्हीं भगवान्‌ने सुन्दर मनोहर मुसकानके दर्शन, उदार वचन, विक्रमलीला; समस्त शरीर और रमणीक मूर्तिके द्वारा सव मनुष्य लोकको प्रमुदित किया था ॥ ५६ ॥ मकराकार कुण्डल, मनोहर कर्ण, चमकते दमकते हुए कपोल, इन सबसे श्रीभगवान्‌का वदन अनुपम शोभायमान था, विलासयुक्त मुसकान मानो उसमें लगी हुई थी, इसलिये मानो सदाही उत्सव होता उस वदनको दृष्टिके द्वारा पान करके नर नारी परितृप्त नहीं हुए। वह सब आनन्दित तो हुए थे परन्तु नेत्रोंके वारंवार पलक मारनेको न सहकर निमेषक बनानेवाले राजा निमिके ऊपर वारंवार कोप करते थे ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने अपने रूपसे जन्म ग्रहण किया; उसके पीछे मनुष्याकार हो पिताजीके घरसे व्रजको चले गये। वहाँपर शत्रुओंका नाश कर व्रजवासियोंकी अभिलाष पूर्ण कर धन संपत्तिको वढ़ाया। फिर बहुतसी सुन्दरियोंसे विवाह कर उनसे सहस्रों पुत्र उत्पन्न किये। फिर लोकसमाजमें स्वकृत वेदमार्गका विस्तार करके अनेक यज्ञोंको कर, आपने अपनीही पूजा की ॥ ५८ ॥ फिर उन्होंने कौरव और पाण्डवोंमें द्वेष उपजाय पृथ्वीका भारी भार उतार दिया। और दृष्टिसे ही युद्धभूमिमें खडे हुए राजाओंको कम्पायमान कर दिया, फिर जब अर्ज्जुनने रणमें जय पाई तव उसकी कीर्तिका विकास कर उद्धवजीको परमतत्त्वका उपदेश किया। और अन्त समय अपने उसी स्वरूपसे परमधामको चले गये ॥ ५९ ॥ अव इसको समाप्त कर एक भजन लिखते हैं॥

राग मालकौंस।

कृपासिंधु गोविन्द दयानिधि, काम हमारो शीघ्र सँवारो ॥
तुम तो परमधामको धाये, भयो अनाथ आज ब्रज सारो ॥
अवसे कौन रह्यो या ब्रजमें, गोप गायोंका पालन हारो ॥ १ ॥
कौन बचावै वृत्रासुरसे, नाथै कौन नाग अति कारो ? ॥
कौन धरेगो कर पर गिरिवर, ऐसो कौन हमारो प्यारो? ॥ २ ॥
ऐसो कोउ न दीखत ब्रजमें, जाको अब हम तकैं सहारो ॥
तुम बिन शून्यो परचो सकल ब्रज, छाय रह्यो घर२अँधियारो॥३॥
चलती समय बात नहिं बूझी, कियो हमें नैननसों न्यारो ॥
यह दुख हमसों सह्यो न जैहै, यकायकी तुम नेह बिसारो॥ ४ ॥
प्रथमहि प्रभु मीन तनु धर कर, उदधि मध्य शंखासुर मारो ॥
दूजे कच्छप रूप धारकर, मधुकैटभ दानव संहारो ॥ ५ ॥
तृतिय वेष वाराह बनाकर, भूमि भार दन्तन पर धारो ॥
वामन बन बलि छलो क्षणकमें, तीन लोकमें देह पसारो ॥ ६ ॥
धर नृसिंहको रूप भयंकर, हिरनाकुशको उदर विदारो ॥
छठवे परशुराम तनु धर कर, क्षत्रि वंशको क्षय कर डारो॥ ७ ॥
सप्तम रामचन्द्र जगपावन, रावण हत भक्तनको तारो ॥
कृष्ण रूप धर सखन दियो सुख, कंसमार भूभार उतारो ॥ ८ ॥
बौध रूप धर धर्म संवारो, सर्व जगत्को संशय हारो ॥
कलिके अंत होयगो प्रभुजी, निष्कलंक अवतार तुम्हारो ॥ ९ ॥
भक्त कष्ट नहिं देख सकत तुम, तारे पामर पतित हजारो ॥
गीध, व्याध, गज, गाय, अजामिल, नरसी धना भक्तको तारो ॥१०॥
नाथ कृपाकर एक वार फिर, ब्रजमें आय अमिय पग धारो ॥
शालिग्राम यही वर माँगत, सब संकट भ्रम मोर निवारो ॥ ११ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे श्रीयुतलालाशालिग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धे विदर्भवंशवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा।

दशमस्कन्ध १०. (पूर्वार्ध.)

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय बम्बई.

श्रीकृष्णजन्म और यमुना उतार.

॥ श्रीशेषशायिने नमः ॥

शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

दशमस्कन्ध १०(पूर्वार्ध.)

सवैया–जाकी कृपा शुक ज्ञानीभये, अतिध्यानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी॥
जाकी कृपा विधि वेद रचे, भये व्यास पुराणनके अधिकारी ॥
जाकी कृपाते त्रिलोकधनी, सुकहावत श्रीव्रजचन्द्र विहारी ॥
मेरेहू काज करैंगी सोई, श्रीकृष्णप्रिया वृषभानु दुलारी ॥ १ ॥

कवित्त–काहूको भरोसोहै गणेश शेष शारदाको, काहूको भरोसो है कालिकाजु मशानीको ॥ काहूको भरोसो उमा रमा सिया लक्ष्मीको, काहूको भरोसो महादेव ब्रह्मज्ञानीको ॥ काहूको भरोसो गंग यमुन हनुमानूजीको, काहूको भरोसो सिंहवाहिनी भवानीको ॥ तन मनसे यों कहैं बार बार शालिग्राम, मोको तो भरोसो एक राधा महारानीको॥१॥

दोहा–हे मुकुन्द गोविंद हरि, नन्दनन्दन घनश्याम ।
चरणशरण मोहिं राखिये, कृपासिन्धु सुखधाम ॥

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि, हे दीनदयालु ! आपने प्रथम नवमस्कन्धमें चन्द्रवंश और सूर्यवंशमें जो नामी राजा हुए उन दोनों वंशोंके सब राजाओंका अति-

विचित्र चारित्र विस्तारसहित वर्णन किया ॥ १ ॥ हे मुनिवर! धर्मशील महाराज यदुका वंशभी विस्तारपूर्वक आपने अच्छी रीतिसे कहा, परन्तु अब दयाकरके वह कथा कहो जो महाराज यदुके वंशमें बलरामजीके साथ परिपूर्ण रूपसे अवतार धारण करके संसारके सुख देनेको जो जो अद्भुत लीला भगवान् वासुदेवने की, उनको विस्तार सहित हमारे सामने वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ सब प्राणियोंके प्रतिपालक भगवान् भूतभावनने यदुकुलमें जन्म लेकर जो जो आश्चर्ययुक्त चारित्र किये वह भी सब यथावत् हमारे आगे कथन करो ॥ ३ ॥

भजन-कहो कृष्णके चरित मनोहर। कैसे कंस बंदिमें राखे श्रीवसुदेव देवकी गहिकर ॥ १ ॥ कैसे भये देवकीके सुत कैसे गये यशोदाके घर। कैसे नंदभवनमें प्रगटे कैसे बजी बधाई घर घर ॥ २ ॥ कैसे कृष्ण दशको आये नंदमहरके घर शिव शंकर। कैसे हनी पूतना हरिने केशी कंस बकासुर निशिचर ॥ ३ ॥ कैसे दान लियो गोपिनसों यमुना निकट विकट पनघटपर। कैसे लूट लूट दधि खायो, दियो सखनको दोना भरभर॥४॥कैसे रासरचो गोपिन सँग मुरली अधर धरी मुरलीधर। कैसे मान इन्द्रको मारो, कन उँगलीपर धरकर गिरिवर ॥ ५ ॥ कैसे हरेजाय यमुनापर ग्वालनियोंके तनुके वस्तर। कैसे कालीदहमें कूदे, नाथो नाग जाय जल भीतर ॥ ६ ॥ कैसे जाय द्वारका छाये, ग्वालबाल गोपिन सँग तजकर। शालिग्राम श्यामसुन्दरके, कहो चरित्र विचित्र सविस्तर ॥ ७ ॥

इस संसारमें तीन प्रकारके पुरुष हैं-एक तो ज्ञानी, दूसरे मुमुक्षु, तीसरे विषयी इन तीनों प्रकारके मनुष्योंको उत्तमश्लोक भगवान्के चारित्र परमप्रिय हैं, सो दिन रात उनको गाते रहते हैं और ज्ञानी लोगोंको परमेश्वरके चारित्र सुननेसे संसारकी सब वासना छूटनेका उत्तम उपाय दिखाई देता है और जिन मुमुक्षु जनोंको मोक्षकी इच्छा है ऐसे नारद, उद्धवादिकोंको संसाररूपी रोगोंके दूर करनेको सजीवन मूल औषधि है और विषयमें जिनका मन है ऐसे मनुष्योंके मनको और कानोंको परमानन्दका देनेवाला यही विषय है, सिवाय आत्मघातीके और पशुघातीके ऐसा कौनसा मनुष्य है जो परमेश्वरके गुणानुवादको सुनकर आनन्दित न होगा! ॥ ४ ॥ चाहे कुछ हो परन्तु हमको तो वृन्दावनविहारी भक्तहितकारीका गुण दिन रात गाना और उनके उत्तम उत्तम चारित्रोंकी कथा नित्य प्रति सुननी, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र तो हमारे कुलपूज्यही थे, संग्राममें देवताओंकोभी पराजय करनेवाले पितामह भीष्म और दुर्योधन आदि महारथी रूप जिसमें वडवानल सौबल और दुःशासन रूप महागम्भीर नीर, भारी भीड वीर और योद्धाओंकी जहाँ तहाँ घूम रही थी वही उसमें तरंगे, शल्य, द्रोण, कर्ण आदिक महारथा रूप ग्राह थे, मर्यादारूप राजाओंकी कतार थी, उस कौरवरूपी अत्यन्त गम्भीर समुद्रमें जो द्रौप-

दीका चीर हरा वही उस समुद्रका विस्तार था, ऐसे दुस्तर महासागरको मेरे पितामह युधिष्ठिर आदिकोंने भक्तिरूप नौकाका आश्रय लेके बछडेके खुरको सदृश समझकर बेखटका पार उतर गये ॥ ५ ॥ इतनाही मत समझना कि, भगवान्ने कृष्ण अवतार केवल पाण्डवोंकोही सहायताके लिये धारण किया था, मेरे भी प्राणोंकी रक्षा श्रीकृष्ण-जीनेही की थी, कौरव और पाण्डवोंकी सन्तानका बीजरूप जो मेरा देह अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रकेतेजसे दग्ध होनेकोथा,उसी समय मेरी माता उत्तराने महादुःखी हो श्रीकृष्णकी शरणागत ली. उत्तराको दुःखी जानकर भगवान्ने चक्र ग्रहण कर मेरी माताकी कुक्षिमें प्रवेश करके मेरे तनुकी रक्षा करी ॥ ६ ॥ हे विद्वन् ! सब जगत्के प्रकाश करनेवाले प्राणियोंमें परमपुरुष कालरूप, संसारको मोक्ष देनेवाले और उसीरूपसे दुरात्मा लोगोंको मृत्युके देनेवाले, जिन्होंने भक्तोंके ऊपर दया करके नरशरीर धारण किया, उन श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला हमारे आगे कहो, हमको उनके पराक्रमोंके सुननेकी बडी लालसा है ॥ ७ ॥ बलदेव संकर्षणको आपने पहिले तो देवकीका पुत्र कहा था अब दूसरी बार रोहिणीका पुत्र कहा, यह बडे आश्चर्यकी बात है कि, दो माताओंसे एक पुत्र कैसे उत्पन्न हुवा ॥ ८ ॥ भक्तभावन भगवान् अपने माता पिता वसुदेव देवकीको छोडकर व्रजमें नन्द यशोदाके घर क्यों गये ? और भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी जातिवालोंको संग लेकर कहाँ निवास किया ? ॥ ९ गोपसखाओंके संग नन्दकुमार भगवान्ने व्रजमें नन्द यशोदाके घर रहकर कौन कौनसे उदार चरित्र किये । और मथुरामें जाकर अपने मामा कंसको अपने हाथसे कैसे मारा ? मामाको मारना किसी प्रकार योग्य नहीं फिर उसका वध क्यों किया ? ॥ १० ॥ हे प्रभो ! मनुष्यदेह धारण करके भगवान् वासुदेवने यादवोंके साथ मथुरापुरीमें कितने दिनतक वास किया ? और श्रीकृष्ण महाराजके कितनी स्त्री थीं ॥ ११ ॥ हे सर्वज्ञ ! जो जो प्रथम मैंने आपसे बूझा उसके सिवाय और जो कुछ चरित्र मेरे बूझनेसे शेष रहगये हैं वह सब मेरे सामने वर्णन करने चाहिये क्योंकि मेरा चित्त श्रीकृष्णके गुणानुवादके सुननेको अधिक चाहता-है और इस विषयमें मेरी बडी श्रद्धा है ॥ १२ ॥ हे मुनिवर ! यद्यपि यह क्षुधा पियास जगत्में परम दुःसह है. तोभी मैंने उसको त्याग दिया, परन्तु आपके मुखारविन्दसे जो भगवान्की अमृतरूपी कथाका अमृत टपकता है उसको पीताहूं, परन्तु उसके पीनेसे मुझको भूख प्यासकी कुछ बाधा नहीं ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि, हे भृगुनन्दन शौनक-जी इस प्रकार भागवतोंमें मुख्य श्रीशुकदेवजीने महाराजने यह उत्तम प्रश्न सुनके राजा परीक्षित्की प्रशंसा करके कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र कहना आरम्भ किया ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजर्षियोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! आपकी बुद्धिने अच्छा निश्चय किया है कि, जिस बुद्धिसे आपकी कृष्णकथामें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रीति हुई है ॥ १५ ॥ भगवान् वासुदेवकी कथा तीन जनोंको पवित्र करै है, श्रोताको, वक्ताको और प्रश्न कर्ताको, जैसे श्रीगंगाजीका जल तीन जनोंको पावन

करे है, पुरोहितको, यजमानको और ग्रहण करनेवालेको ॥ १६ ॥ हे राजन् ! अभिमानी राजा जिनका सदा दैत्योंकासा स्वभाव है उनकी अधिक सेनाओंके भारसे पृथ्वी अत्यन्त दुखी होकर गायका रूपधर ब्रह्माजीके निकट गई ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शरीर जिसका क्षीण, मनमलीन, जिसको देखकर सबके मनमें दया उपजे, इस प्रकार रँभाती, डकराती, आँखोंसे आंसू वहाती हुई ब्रह्माजीके समीप जाकर खडी हुई और अपना सब दुःख उनसे कहा ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी पृथ्वीका दुःख सुनकर सब देवताओंको और शिवजीको अपने संग लेकर क्षीरसागरके समीप गये, वहाँ विष्णु भगवान् शेषशय्यापर शयन कररहे थे ॥ १९ ॥ वहाँ जाय समाधि लगाय, जगदीश्वर भगवान् सम्पूर्ण अर्थियोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले देवोंके देव विष्णु भगवान्की पुरुषसूक्तके इन षोडश मंत्रोंसे "सहस्र शीर्षा पुरुषः" स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ समाधिहीमें ब्रह्माजीको आकाशवाणी हुई, उस वाणीको सुनकर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि, हे देवताओ ! मुझको श्रीनारायणकी आज्ञा हुई है उसको तुम सब लोग सुनो और सुनकर विलम्ब मत करो शीघ्र वैसेही करो ॥ २१ ॥ हमारी प्रार्थनासे पहिलेही भगवान्ने इस पृथ्वीका दुःख दूर करनेका विचार करलिया है, अब जबतक सब देवपति भगवान् अपनी कालशक्तिसे वसुंधराका भार उतारनेके लिये धरणीपर मनुज अवतार धारण न करें, तबतक तुम सब अपने अपने अंशोंसे यदुकुलमें जाकर जन्म लो ॥ २२ ॥ वसुदेव देवकीके भवनमें साक्षात् आदिपुरुष भगवान् आनकर प्रगट होंगे उनके संग विहार करनेके लिये और हितके हेतु देवपत्नीभी व्रजमें जन्म धारण करें ॥ २३ ॥ और सहस्र मुखवाले स्वयंप्रकाश विष्णु भगवान्की अनंत कलासे शेषनागजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रके संग लीला करनेके लिये बलभद्रनामसे प्रथमही वसुदेवजीके घर जन्म धारण करेंगे ॥ २४ ॥ फिर देवकीके गर्भको खैंचनेके लिये और यशोदाको मोह करनेके लिये परमेश्वरकी माया सब संसारके मनको मोहनेवाली, वह भी भगवान्की आज्ञाको मानकर अपने अंशोंसहित यशोदाके भवनमें उत्पन्न होगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने देवताओंको आज्ञा दी और पृथ्वीको समझाय बुझाय आप अपने ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २६ ॥ प्रथम यदुवंशियोंमें एक बडा राजा भजमानथा, जिसके पुत्र राजा पृथिकु, पृथिकुके विदूरथ, विदूरथके पुत्र राजा शूरसेन, जिन्होंने नौखण्ड पृथ्वीको जीत मार्तण्डके समान संसारमें अपना प्रकाश फैलाया, वह राजा शूरसेन मथुरा पुरीमें वासकर माथुरदेश और शूरसेन देशका राज्य करता था, उनकी रानीका नाम मरिष्या जिनके दश पुत्र और पाँच कन्या थीं, उनमें ज्येष्ठ पुत्रका नाम वसुदेव जिनकी स्त्री देवकीके आठवें गर्भमें श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने जन्म लिया, जिस समय वसुदेवजीका जन्म हुवा था तब देवताओंने सुरपुरमें परमानन्द मानाथा, वसुदेवजी जब समर्थ हुए तब पहिले तो राजा रोहिणकी कन्या रोहिणीके साथ विवाह किया, इसी प्रकार सत्रह पटरानी वसुदेवजीकी हुई, फिर उन्होंने अठारहवाँ विवाह राजा देवककी पुत्री देवकीके साथ किया, जो कि, कंसकी

चचेरी बहनथी, जब देवकीको विदा कराकर वसुदेवजी अपने घरको चले उस समय आकाशवाणी हुई कि, इसके आठवें गर्भमें कंसका विध्वंस करनेवाला प्रगट होगा, यह सुन कंसने वसुदेव देवकीको कारागारमें बन्द करदिया और वहीं श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने जन्म लिया, इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि, हे कृपासिन्धु ! कंस कौन था ? और किस प्रकार उसका जन्म हुआ । और किसके प्रतापसे ऐसा महाप्रतापी और तेजवान् हुआ! और कैसे वसुदेव देवकीके घर देवकीनन्दन जगवन्दनने अवतार लिया! और किसप्रकार नन्द यशोदाको सुख दिया, सब विस्तार सहित मुझे समझाकर कहो. राजा परीक्षित्की मधुरवाणी सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! वृष्णिवंशमें एक आहुक नाम मथुरापुरीका राजा था, तिसके दो पुत्र, एकका नाम देवक, दूसरा, उग्रसेन, देवकके मरनेके पीछे उग्रसेन वहाँका राजा हुवा, जिनकी एकही स्त्री उसका नाम पवनरेखा, वह परम सुन्दरी और बडी पतिव्रता थी सदा अपने स्वामीकी सेवामें रहती और विनापतिकी आज्ञा कोइ काम करती न थी. एकदिन रानी पवनरेखा मासिक धर्मसे शुद्ध हो, अपने पतिसे आज्ञा ले, सखीसहेलियोंके साथ रथपर चड वनविहार करनेके लिये वनको गई, जहाँ अनेक प्रकारके घने घने वृक्षोंपर सुन्दर सुन्दर फल लटकरहे, रंगरंगके फूल फूलरहे, मन्द-मन्द, लहरोंसे ठण्डी ठण्डी पवन वह रही, जिसके संचारके सुगन्धकी लपटोंकी लपटें चली आती थीं, और जहाँ तहाँ मोर, कोकिला, कीर, कपोत, मनभावनी सुहावनी बोलियें बाल बोलकर कलोल कररहे थे और एक ओर पहाडको धोती यमुना न्यारीही लहरें लेती हुई चलीजाती थी, ऐसी मनोहर शोभा देखतेही पवनरेखा रथसे उतर वनमें इधर उधर घूमने लगी, और सखी सहेलियोंसे विछड अचानक एक ओर अकेली महा भयंकर वनमें चलीगई, दैवयोगसे द्रुमलिक राक्षस भी घूमता घामता वहाँ आगया, इसके यौवनकी छटा देख मोहित हो कहने लगा कि, किसी प्रकार मैं इससे भोग करूं, यह विचार उग्रसेनका रूप धार पवनरेखाके सन्मुख जाकर बोला कि, हे मनमोहनी ! मुझसे भोगकर. इस समय भोग करनेको मेरा चित्त अत्यन्त चाहता है, रानी बोली कि, हे स्वामिन् ! दिनमें प्रसंग करनेका महादोष है. क्योंकि इसमें शील और धर्म कर्म सब जाता है, क्या तुम ऐसे ज्ञानवान् होकर इसबातको नहीं जानते जो ऐसे कुसमयमें भोगकी इच्छा करते हो, पवनरेखाने बहुत समझाया परन्तु उस द्रुमलिकराक्षसकी समझमें कुछ न आया और बलात्कार पवनरेखाका हाथ पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया और अपना मनोरथ पूरा किया जब उसकी अभिलाषा पूर्ण होगई तब उसने वहां अपना राक्षसी रूप प्रकट करके दिखा दिया, तब तो पवनरेखा अति दुःख पाय अकुलायकर बोली, अरे दुष्टात्मा ! पापी ! चाण्डाल ! तैंने यह क्या छल किया जो मेरा पातिव्रत धर्म विगाड दिया, धिक्कार है तेरे इस कुकर्मके सिखानेवाले गुरुको और तेरे जनक जननीको जिन्होंने तुझसा कुपूत उत्पन्न किया; ऐसे अन्यायी

पूतके जन्मनेसे तो बाँझही भली थी. अरे पापी ! जो मनुष्यदेह पाकर किसीका सत्व बिगाडता है, वह जन्मजन्मान्तर नरकमें जाता है "अपना किया भोग तू आप, अब मैं तुझको देहूं शाप" द्रुमलिक बोला कि, हे सती ! तू क्रोध मतकर और मुझको शाप मत दे, मैंने तुझको अपने धर्मका फल दिया है, क्योंकि तुझको असंतान देखकर मेरे मनमें अत्यन्त शोक हुआ सो अब परमेश्वरने मेरा शोक दूर करदिया, "अबसे तुझे रहा आधान, होगा पुत्र महा बलवान्" वह ऐसा प्रतापी और तेजस्वी होगा कि, अपनी भुज दण्डके बलसे नौखण्ड पृथ्वीको जीत निःकंटक राज्य करेगा और आद्य-पुरुष पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रके हाथसे मरेगा, पूर्वजन्ममें मेरा नाम कालनेमि था, हनुमानके हाथसे मेरी मृत्यु हुई थी, अब जो जन्म लिया तो मेरा नाम द्रुमलिक हुआ। अब, तुझको पुत्र देदिया किसी बातकी चिन्ता मत करना यह बात कहकर द्रुमलिक तो चलागया और पवनरेखाने देखा कि, अब शोक सन्ताप करनेसे क्या होता है भगव-त्की इच्छा ऐसेही थी, क्योंकि भगवानकी गति किसीसे जानी नहीं जाती, परमेश्वरको जैसा करना होता है वैसाही संयोग बनादेता है प्रारब्धका लिखा किसी प्रकार मिट नहीं सक्ता, मेरी प्रारब्धमें ऐसाही लिखा था, ऐसे विचार अपने मनमें धैर्यधार आगेको चली, तो देखा कि, सखियें खड़ी हैं, पवनरेखाको देखकर बूझने लगीं कि, हे प्यारी ! इतनी देरसे तुम कहाँ थी ? और यह तुम्हारी क्या गति होगई ? हृदय धकधकाता है शरीर कँपकँपाता है, श्रृंगार बिगड़ रहा है, मुख पीला पीला पड़ रहा है। पवनरेखा बोली जब तुमने मुझे वनमें अकेली छोड़दी तब मैं भूली भटकी रोती फिरती थी इतनेमें एक बन्दर कहींसे आगया और उसने मुझको देखकर मुँह फैलाया और मेरी ओरको देखकर घूरा, उसके डरसे मैं बेसुधि होकर पृथ्वीपर गिरगई, जब वह चलागया तो मैं इधरको भागी अभीतक मेरा कलेजा धकधक करता है और इसीसे मेरा शरीर पीला पड रहा है यह बात सुन सबकी सब हकीचकीसी रहगई और घबराकर बोली अरी शीघ्र चलो, यह कह रानीको रथपर चढ़ाय राजभवनमें लेआई, जब दश महीने व्यतीत हुए तो पूरे दिनोंमें एक लडका उत्पन्न हुआ, उस समय ऐसी महाप्रलय कालकेसी भयंकर आँधी आई कि, दशों दिशाओंमें अँधियारा होगया, लाखों वृक्ष जड़से उखड उखडकर कोसोंतक उडे चले गये, दिनसे रात होगई, तारे टूटटूटकर पृथ्वीपर गिरने लगे, भूमण्डल डगमगाने लगा, कूर्म कुलमुलाने लगा, बादल गर्जने लगा, बिजली तडकने लगी, इस प्रकार माघसुदि तेरस बृहस्पतिके दिन रानीको पुत्र हुआ, उस समय जब शांति हुई तब राजा उग्रसेनने अति प्रसन्न होकर सब नगरके मंगलमुखियोंको बुलाय मंगलाचार कराय याचकोंको इतना धन दिया कि, उनको अयाचक करदिया, फिर ब्राह्मण और ज्योतिषियोंको बुलाकर अत्यन्त आदर सत्कारसे उनको उंचे आसन देदेकर बैठाले तब सब पण्डितोंने अपने अपने पुस्तक पत्रे खोल मुहूर्त विचार लग्न साध कुण्डली धरकर ब्राह्मण बोले कि, हे पृथ्वीनाथ ! मृगशिरा नक्षत्रके तीसरे चरणमें राजकुमारका जन्म

हुवा है इसलिये इस बालकका नाम कंस रखना चाहिये और इसकी जन्मकुण्डली खैंचकर देखी तो मेषलग्न है, दूसरे स्थानमें बृहस्पति, तीसरे घरमें चन्द्रमा और राहु, सातवेंमें शनैश्चर, नवमें स्थानमें बुध और केतु, दशमें राज्य भवन और पिताके घरमें मंगल शुक्र और सूर्य हैं बहुत अच्छे ग्रह पडे हैं. यह लडका आपके वंशमें ऐसा बलवान् और तेजनिधान होगा कि, सब पृथ्वीके राक्षस इसके अधीन रहेंगे और साधु सन्त हरिभक्तोंको अधिक दुःख देगा और देवताओंको होम, यज्ञ, पूजा, तप नहीं करने देगा.
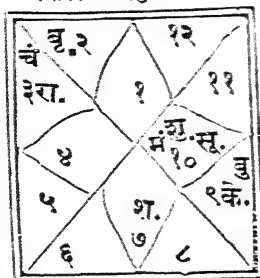
कंसकी जन्मकुण्डली ॥

बृ.२ १२ चं ३रा. १ ११ मं शु. सू. १० बु ४ ५ ९के. श. ७ ६ ८

आपका राज्य छीन तुमको अपने अधीन रक्खेगा और प्रजाके लोगोंको सदा सताता रहेगा. जब इसके अधर्म करनेसे संसारमें हाहाकार मचेगा और पृथ्वी महादुःख मानकर पुकार करेगी कि, हे नाथ ! यह महापापका भार मुझसे सहा नहीं जाता, तब वसुधाकी पुकार सुन विष्णुभगवान् अवतार लेकर इसको अपने हाथसे मारेंगे, ब्राह्मणोंका यह वचन सुन राजा उग्रसेन पहिले तो अपने मनमें बहुत दुःखी हुये, फिर कहने लगे कि, हरिइच्छा बलवान् है इसमें किसीका क्या वश है। यह समझ ज्योतिषियोंको द्रव्य और वस्त्र आभूषण दे बिदा किया और कंस दिन प्रतिदिन बढने लगा, जब पाँच वर्षका हुआ तब नगरनिवासियोंके बालकोंको अनेक प्रकारके दुःख देने लगा और छोटे २ बालकोंको पकड़कर वनमें लेजाता और उनको मार मारकर उनकी लोथें पर्वतोंकी गुफाओंमें डाल आता और जो बड़े२लडके मिले उनको वृक्षोंमें रस्सी डाल डालकर फाँसी देदेता इस भयसे सब अपने अपने बालकोंको दुराते छिपाते रहे और घरसे बाहर नहीं निकलने देते थे कि, कंस अन्यायी कहीं इनको पकडकर न लेजाय,यह दुष्ट कंस, राजा उग्रसेनका बिन्दु नहीं है किसी दुष्ट राक्षसने हमारे सतानेको इस भोले भाले साधु पुण्यात्मा राजाके घरमें आनकर जन्म ले लिया है. ऐसा विचारकर सब प्रजाने मिलकर राजा उग्रसेनसे निवेदन किया कि, हे नाथ ! यह कंस हमको कहीं तिष्ठने नहीं देता हमारे बालकोंको मार मार कर यमुनामें बहादेता है, आपके सिवाय अब हम किसकी शरण ले ! प्रजाका दुःख सुन राजा उग्रसेनने कंसको बुला, उनके सामने उसे बहुत बुरा भला कहा और समझाया, परन्तु उस पापी चाण्डालके चित्तमें कुछ न समाया, बरन् और दूना दूना उन लोगोंको सताया, तब तो राजा मनमें अत्यन्त दुःखी होकर कहने लगा कि, हे पूत ! तुझसे पूत होनेसे तो मैं निपूताही भला था. अरे दुष्टात्मा ! तैंने नहीं सुना कि, जिसके घरमें दुष्ट सन्तान उत्पन्न होती है उसका यश और धर्म एकाएकी संसारसे उड जाता है, परन्तु वह नीच किसकी सुनता था. उग्रसेन अपने मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता करते रहते और कहते कि, यह निर्लज्ज

उसी समय मरजाता तो मैं इतना क्लेश क्यों पाता ? इसी भाँति दिन रात राजा सोच संकोच अपनी अवस्था व्यतीत करते, परन्तु कंसपर कुछ वश न चलता, जब कंस आठ वर्षका हुआ तब अकेला मगध देशपर चढ़गया, वहांका राजा जरासन्ध बड़ा प्रतापी और बलवान् था, उससे मल्लयुद्धकर उसको परास्त किया, जरासन्धने कंसेका बलवान् जानकर अपनी दोनों पुत्री कंसको विवाह दीं, जब दोनों स्त्रियोंको लेकर घर आया तो पिताको शिर झुकाया और क्रोध करके बोला कि, तुम नित्यप्रति क्या राम राम कहा करते हो ? राम राम कहना छोड़ दो ? और महादेवका नाम सदा लिया करो, क्योंकि शिवही सब कल्याणके कर्ता हैं और वही सबके मनोरथ पूरे करते हैं ॥

कवित्त-श्रेष्ठ गुण ज्ञान जाके कण्ठ वेद वाणी और भौनमें भवानी सुख सम्पति रहा करै ॥ कालकूट कण्ठ जाके चन्द्रमा ललाट जाके वासुकि सो दास जाके दारुण दहाकरै ॥ चारवेद वन्दी जाके द्वारपाल नन्दी गण वरुण कुवेर यमराजहू हाहाकरै ॥ जगत रिसाय यमराजकी कहा वसाय शंकर सहाय तो भयंकर कहाकरै ॥ १ ॥

यह सुनकर उग्रसेन बोले कि, हे पूत ! आज तू हमारा नया गुरु शिक्षा देनेवाला उत्पन्न हुवा मेरे तो कर्ता और दुःखहर्ता वही राम हैं; उनको छोडकर इस अन्धकार संसारसे कैसे पार उतरूंगा ? यह बात सुन कंसने उग्रसेनसे कहा तो अब राम राम कहना नहीं छोडोगे ? यह कह महाक्रोधकर एक लात मारी और राजसिंहासनसे उग्रसेनको नीचे धकेल, उसपर आप बैठा और सब नगरमें यह डौंडी पिटवा दी कि, कोई मनुष्य जप, तप, दान, पुण्य, यज्ञ, होम और रामका नाम न लेने पावे और जो कोई मनुष्य हमारी आज्ञा न मानेगा उसको यथायोग्य दण्ड दियाजायगा, फिर तो संसारसे शुभकर्मोंका नाम उठगया, गौ, ब्राह्मण, हरिभक्त महादुःख पानेलगे, जहाँ तहाँ अधर्म होने लगा, इस अत्याचारको पृथ्वी न सहसकी बोझकी मारी दबने लगी, जब सब पृथ्वीके राजाओंको कंसने जीतलिया तब एकदिन अपना सब कटक ले बेखटक राजा इन्द्रपर चढगया, उस समय मंत्रियोंने कहा महाराज ! विना सौ १०० अश्वमेध यज्ञ किये इन्द्रासन किसी प्रकार आपको नहीं मिल सक्ता, आप यहाँ अपने बलका अभिमान न कीजिये क्योंकि विना तप और यज्ञकिये इन्द्रासनकी इच्छा वृथा है, देखो अभिमानने रावण और कुम्भकर्णको कैसा खोदिया कि, जिसके वंशमें कोई नाम लेवा और पानी देवाभी नहीं रहा, इस प्रकार मंत्री रात दिन समझाते थे परन्तु वह अहंकारी दुराचारी किसीकी न मानता था, सत्य है जब दिन बुरे होते हैं तो वैसेही बुद्धि होजाती है ॥ २७ ॥ यह मथुरा पुरी सदासे यदुवंशियोंकी राजधानी थी और इसी मथुरापुरीमें श्रीकृष्णभगवान् सदा विराजमान रहतेथे ॥ २८ ॥ कंसकी अनीतिसे उग्रसेन अत्यन्त दुःखी रहतेथे और उग्रसेनका भ्राता जो देवक था उसकी कन्या देवकी जब विवाहने योग्य हुई, तब उसने

उग्रसेन और कंससे बूझा इस लडकीका विवाह किसके साथ करें? कंस बोला आजकल यदुवंशियोंमें शूरसेन बडा तेजस्वी और प्रतापी राजा है उनके पुत्र वसुदेवके साथ इसका विवाह कर दो तो अच्छा है, देवकने उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाय शुभ लग्न ठहराय राजा शूरसेनके घर टीका भेजदिया, शूरसेन बडी धूमधामसे बरात सजाय सब देशके नरेश संग ले सब यदुवंशी मिल मथुरापुरीमें वसुदेवजीको विवाहनेके लिये गये, जब बरात मथुराकेसमीप आई तव उग्रसेन देवक और कंस अपनी सेना संग ले आगे बडे आदरसत्कारसे अगौनी कर बरातको नगरमें लाये और सुन्दर जनवासा दिया, फिर सब जनोंको अच्छे अच्छे भोजन जिमाय मंडपमें बैठाय वेदविधिसे देवकने वसुदेवको कन्यादान दिया और बरातको विदा किया; शूरसेनका पुत्र वसुदेव अपनी विवाहिता स्त्री देवकीके साथ अपने घर जानेको रथपर बैठे ॥ २९ ॥ और उग्रसेनका पुत्र कंस अपनी भगिनी देवकीके प्रसन्न करनेके लिये घोडोंकी रास पकडकर रथ हाकनेको बैठा, उसके संग सैकडों रथ रत्नजडित स्वर्णके और भी थे ॥ ३० ॥ अपनी कन्यापर अत्यन्त प्रीति करनेवाले देवकने देवकीको विदाके समय स्वर्णकी माला और रत्नजटित अम्बारीवाले चारसौ ४०० हाथी, दशसहस्र १०००० घोडे, अठारहसौ १८०० रथ ॥ ३१ ॥ और शृंगारसहित सुन्दर सुकुमार दोसौ २०० दास दासी वर कन्याकी सेवाके लिये दीं ॥ ३२ ॥ दूलह दुलहनकी यात्राके समय मंगलके लिये, शंख, भेरी, मृदंग, दुन्दुभी आदि सब बाजे बरातके बजने लगे और शूरसेन देवक आदि सब बरातके पहुँचानेको संग चले ॥ ३३ ॥ जब मथुरासे थोडी दूर बाहर बरात निकली और देवकीके रथके घोडोंकी बागडोर पकडे जो कंस हाँक रहाथा उस समय कसको आकाशवाणी हुई अरे मूर्ख! जिसको हर्ष सहित तू पहुँचाने जाता है इसी देवकीके आठवें गर्भमें तेरा मारनेवाला उत्पन्न होगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार आकाशवाणीको सुन वह अधम पापी भोजवंशियोंके कुलको कलंक लगानेवाला कंस, बहनको मारनेके लिये उपस्थित हुवा और खड्ग हाथमें ले केश पकड देवकीको रथसे नीचे खैंच लिया और क्रोधसे दाँत चबाय चबाय होठोंको काट काट कहने लगा कि, जिस वृक्षको जडसेही उखाड डाले तो फिर उसमें फल फूल क्यों लगेगा? इसलिये इसीको न मारूं जो पुत्र होनेकी संशय ही न रहै, फिर निर्भय होकर अपना निःकंटक राज्य करूं ॥ ३५ ॥ यह गति देख, उस निन्दनीय कर्म करनेवाले महामूर्ख निर्लज्ज कंसको बडे ऐश्वर्यवान् वसुदेवजी स्तुति और युक्तियोंसे और करुणा भरे मधुर वचनोंसे उसको शान्त करके बोले कि, हे कंस! तुम बडे शूरवीर और योद्धाओंमें प्रशंसनीय गुणज्ञ और भोजवंशका सुयश फैलानेवाले हो, देखो! इस समय, एक तो विवाहका उत्साह, दूसरे यह सीधी साध्वी जाति स्त्रीकी अबला, तीसरे तुम्हारी प्यारी बहन, फिर इस विचारी दीन अबलाको मारना कौन धर्म है बली कभी अबलापर हाथ नहीं डालते क्योंकि स्त्रियोंके मारनेका शास्त्रमें महा पाप लिखाहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जो मृत्युके भयसे इस विचारी दीनको मारो हो तो मृत्यु तो किसी प्रकार मिटतीही नहीं क्योंकि मृत्यु तो

जन्मधारी मनुष्योंके संगही लग रही है, जिस दिन मनुष्यका जन्म होताहै, उसी दिन मृत्यु भी संग जन्मती है और जो अधिक जीवनके लिये इसको मारते हो तो मृत्यु आज अथवा सौ १०० वर्षके अनंतर देह धारीका मरण निःसन्देह होगा ॥ ३८ ॥ और मनुष्यको उस समय पाप करना भी उचित है, जो यह शरीर छोडकर दूसरा शरीर धारण करना न पडे, सो यह कदापि होना नहीं क्योंकि मरणसमयभी यह प्राणी अपने वशमें नहीं होता, वहाँभी कर्मोंके अनुसार प्रथम दूसरे शरीरको प्राप्त करलेता है तब पीछे इस शरीरको त्यागै है ॥

मृत्युने सब जग लीनो जीत । इससे जगमें बचा न कोई, योगी यती अतीत ॥ १ ॥ रावण, कुम्भकरण, हरनाकुश, जो जो भये अजीत । सो सब गये कालके मुखमें, गर्व गयो सब बीत ॥ २ ॥ कबहूँ तो बनजात पित्त कफ, कबहूँ बनकर शीत । कबहूं बन विषूचिका मारत, सब परिवार समीत ॥ ३ ॥ इससे कोऊ बच न सकत है, पापी और पुनीत । शालिग्राम न राखत जगमें, काहूसे यह प्रीत ॥ ४ ॥ ३९ ॥

जैसे चलनेके समय मनुष्य अपना अगला पाँव सँभालकर रखलेता है तब पिछले पाँवको उठाता है, जैसे जोंक चलते समय पहिले अगले तृणको पकड लेती है तब पिछले तृणको छोडती है ऐसेही यह देह जिसमें अनेक प्रकारके संस्कार लग रहे हैं जीबात्मा दूसरे शरीरको प्रथम ग्रहण करलेता है पीछे पिछली देहको छोडता है ॥ ४० ॥ स्वप्नमें मनुष्य जैसे देखेहुए और सुनेहुए देह जिसमें अनेक प्रकारके संस्कार लग रहे हैं और मन उनके वशमें है वह मन उसीमें बस देहका चिन्तवन करता रहता है और वह मनुष्य स्वप्नमेंभी वैसाही देखता है और उसी देहको अपनी समझकर कहता है 'मै हूं यह मेरा देह दुःखी है' ऐसे अपने आपको राजा और इन्द्रादिककी समान मानकर अभिमान करता है और जाग्रत् देहकी सम्पूर्ण स्मृति भूलजाता है,फिर उसी संस्कारवाले मनसे मनोरथ देहको भूलकर जाग्रत्‌मेंभी उसी प्रकारके देहको देखता है और थोडी देरमें कहने लगता है 'मैं हूं, शरीर मेरा है' ऐसा मानता है और स्वप्नके देहकी स्मृति कुछभी नहीं रहती. इसी प्रकार कर्मोंके अधीन होकर पूर्वदेहको छोडदेता है और वैसाही और देह प्राप्त करलेता है ॥ ४१ ॥ फलके देनेवाले कर्मोंसे प्रेरित विकारोंसे भराहुवा जो मन है, सो मायारचित महापंचभूतोंके बने हुए मनुष्य पशु, पक्षी इत्यादिक जो शरीर हैं, जिस जिसकी ओरको दौडता है और अभिमानको बाँधता है उसी उस शरीरमें जीवको संग लेकर जन्म लेताहै, यह मनही सब बातका कर्ता हर्ता ठहरा तो मनहीको जन्म लेना चाहिये, परन्तु अकर्ता आत्मा क्यो जन्मता है ? आत्मा उस मनको यह करके मानता है कि, 'मैं हूं' इस कारण आत्मा उस मनके साथ जन्म लेताहै ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य चन्द्रमादिकोंकी ज्योति जलके भरे घटादिक पात्रोंमें प्रतिबिम्बरूप होकर पवनके वेगसे कंपायमान प्रतीत होते हैं, ऐसेही पुरुष अपनी अविद्यारचित देहमें रोगके कारण प्रविष्ट आत्मा अभिमान करके मोहको

प्राप्त होता है, आत्मामें देहादिककी भ्रान्ति होनेसे जैसे सूक्ष्म और स्थूल देहादिकके धर्म आत्मामें दिखाई देतेहैं, वैसेही देहादिकमें आत्माकी भ्रांति होनेसे प्रेमपात्रत्व आदि आत्माके धर्म देहादिकमें प्रतीत होतेहैं, इसलिये इन्द्र और गर्दभादिके तनुमें प्रीति समान होनेसे मृत्युसे बचनेका प्रयत्न करना वृथा है ॥ ४३ ॥ इसलिये अपने आत्माका कल्याण करनेवाले प्राणीको चाहिये किसीसे शत्रुभाव न रक्खै,क्योंकि शत्रुता करनेवाले पुरुषोंको दूसरे शत्रु और यमसे भी भय होता है ॥ ४४ ॥ इसीलिये हे राजन्! यह तुम्हारी छोटी बहिन है और अभी बालक है, दीन है, अबला है, देखो काठकी पुतलीकी नांई तुम्हारे आगे खडी है और तुमको परमेश्वरने दीनहितकारी और स्वजनभयहारी बनाया है, यह मंगलरूपिणी आपके मारने योग्य नहीं, क्योंकि दीनको और पराधीनको मारने का बडा दोष है ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशी राजा परीक्षित्! ऐसे प्रियवचन कहकर वसुदेवजीने साम और भेदसे समझाया, तो भी एक तो आपही दुष्ट, दूसरे राक्षसोंका साथी, तीसरे आकाशवाणीका भय, उस महा क्रूर कंसने वसुदेवजीकी बात एक भी न मानी ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने समझा कि, यह हठीला अपनी हठको कभी नहीं छोडेगा, ऐसा विचारकर और देवकीकी मृत्यु निकट आई जानकर, समय वितानेके लिये अपने मनमें यह विचार किया ॥ ४७ ॥ चतुर लोगोंको उचित है कि, जहाँतक अपना बल, विद्या, बुद्धि पहुँचे वहाँतक मृत्युको दूर करनेका उपाय करै, जब इतने प्रयत्नोंसेभी मृत्युसे न बचै तो फिर पुरुषका कुछ दोष नहीं है ॥ ४८ ॥ इसलिये पहिले तो इस मृत्युरूप कंसको देवकीके जो पुत्र होंगे उनके देनेका वचन बन्धकर किसी प्रकार पहिले तो इस दीन देवकीके प्राण बचाऊं, कदाचित् कोई कहै कि, पुत्र देके देवकीके प्राण बचाये यह तो बडी अनीति है ? नहीं, समयका टालदेना बडे चतुरोंका काम है, जब देवकीके पुत्र होगा उससमय देखा जायगा, अब तो किसी प्रकार यह जीती बचै,न जानिये बालकके जन्मनेसे पहिले यह दुष्ट कंसही मरजाय तो फिर कुछ किसी बातका खटकाही न रहै, कदाचित्‌इसके पुत्रही न होय और जो पुत्र होय ही और कंस दया करके उसको न मारै, तो अवश्यही मेरा पुत्र कंसको मारेगा और जो यह उलटी बात न होय और कोई कहै कि, तुम्हारा पुत्र बालक इस तरुण कंसको कैसे मारसक्ता है ? तो आप ही वसुदेवजी अपने वचनका समाधान करते हैं कि, विधाताकी गति किसीके जाननेमें नहीं आती, जो प्राणी मरनेके योग्य हैं वह नहीं मरते और जो मरनेके योग्य नहीं हैं वह मरजाते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ देखो जब वनमें आग लगती है तो जो वृक्ष जलनहार नहीं हैं वह समीपके बच जाते हैं और जो जलनहार दूरके होते हैं वह जल जाते हैं। जैसे गाँवमें अग्निके पासके घर जलनेसे रहजाते हैं और दूरके जल जाते हैं श्रीशुकदेवजी बोले * कि, हे राजा परीक्षित्! जहाँतक अपनी बुद्धि पहुँची वहाँतक वसुदेवजीने विचार

---

* इस बातपर एक मनोहर दृष्टान्त है ॥ एक सेठजी मन्दिरमें बैठे हनुमानजीकी पूजा कररहे थे, उसी समय नगरमें आग लगी और सैकडों घरोंको फूंकती फांकती सेठ-

करके बडे प्यारसें कंसका आदर सत्कार किया ॥ ५१॥५२ ॥ कंसको विश्वास दिखानके लिये वसुदेवजी लोकरीतिकी सदृश प्रफुल्लित मुखकमलसे, महाक्रूर निलेज्ज कंसके सामने मुसकाकर बोले, परन्तु मन तो अत्यन्त ही दुःखी था ॥ ५३ ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे सौम्य ! जो भय आपके चित्तमें आकाशवाणीने उत्पन्न किया है वह भय तुम किंचिन्मात्र भी मत मानो, क्योंकि देवकीसे आपको कुछ भय है ही नहीं, परन्तु इसके पुत्रोंसे कुछ भय है सो वह भय मैं आपका दूर करे देताहूं, जो पुत्र इसके होगा उसको मैं उसी समय आपको समर्पण कर दूंगा ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! वसुदेवजीके वचनको सत्य मानकर कंसने अपनी बहिनको मारनेसे छोड दिया और वसुदेवजीभी प्रसन्न हो कंसकी बडाई करके बरात समेत देवकीको लेकर अपने घर आये ॥ ५५ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवान्की पूजनेवाली देवकीने समय पाकर आठ पुत्र और एक कन्या एक एक वर्षके उपरान्त उत्पन्न किये ॥ ५६ ॥ प्रथम कीर्तिमान पुत्र हुवा, उसको वसुदेवजी बडे कष्टसे कंसके पास लेगये, क्योंकि मिथ्या बोलनेसे वसुदेवजी बहुत डरते थे ॥ ५७ ॥ अपने वचनोंका निर्वाह करनेवाले पुरुष ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका सहन नहीं कर सक्ते। देखो वसुदेवजीने अपने पुत्रको अपने हाथसे मृत्युके मुखमें देदिया एक परमेश्वरके सिवाय कोई पदार्थ

-जीके घरके निकट पहुँच गई, तब तो सब लोगोंने सेठजीसे जाकर कहा कि, आग आपके घरके समीप आगई शीघ्र पूजा छोड छाडके चलो कुयेंसे पानीके दश बीश घडे भरकर रखलो जब घरपर आग आगई तो पानी कहां ? सेठजी बोले कि, जिसकी हम पूजा करते हैं क्या आग वह नहीं बुझासक्ता ? और वह हमारे घरको नहीं बचासक्ता ? हमको कुछ प्रयोजन नहीं, जिसका घर होगा वह आप बुझालेगा, जब उसका, नाम पवनपुत्र है तो क्या अपने पिताको नहीं समझा सक्ता ? जिसके लिये हम वरसोंसे तन मन लगा रहे हैं क्या वह एक घडीको भी हमारा काम नहीं कर सक्ता मुझको पूर्ण विश्वास है कि, वह मेरा कार्य सिद्ध करैगा-

कवित्त-लंकको जरायो और सीताको बचाय दियो आँचनाहिं आई विभीषणके मकानको। लगतेही शक्ति जब लखन गिरे पृथ्वी पै औष-धिको भेजो राम हनुमत वीरको॥ मिली ना सजीवन तो पर्वत उठाय लाये लखन जिवायो शिर नायो भगवानको। दुष्टनके भक्षक रक्षक हरि भक्तनके मोको तो भरोसो उन वीर हनुमानको ॥

उसीसमय पुरवाई पवनसे पछादिया पवन होगई और सेठजीका घर छोडकर पवन पीछेको लौटी और सेठजीका घर छोडकर और सैकडों घर फूंक दिये, देखो किस किस-की आशा थी और कौन कौनसे घर जलगये, ऐसेही प्राणियोंके जन्म मरणका कारण भी विचारमें नहीं आता ॥

सत्य नहीं है, ऐसे समझनेवाले मनुष्योंको किसी बातकी अभिलाषा नहीं रहती इस-लिये वसुदेवजीने पुत्रके लाड प्यारको पहिलेसे पहिलेही त्याग दिया। क्योंकि विद्वान् पुरुषोंको सिवाय सत्यके और किस वस्तुकी अपेक्षा है? और वसुदेवजीने यहभी नहीं समझा था कि, मैं पुत्रको आप ले जाऊंगा तो कंस दयाकरके न मारेगा, यह बात वसुदेवजीके मनमें सैकडों कोसतकभी नहीं थी, क्योंकि दुष्टजन कौनसी बात नहीं कर सक्ता? कंससे दुष्टके मनमें दया कब आसक्ती है. कोई कहै पहिली पहिलका तुरतके जन्मा पुत्र देवकीने कैसे दे दिया? देवकीने समझा कि, जिसका काल नहीं उसको मारनेवाला कोई नहीं और जो मारभी डाले तो ऐसे पुत्र बहुत होंगे. मेरे सच्चे पुत्र तो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वैकुण्ठविहारी भक्तहितकारी हैं, यह समझकर कंसको दे दिया ॥ ५८ ॥ हे राजन्! वसुदेवजीकी समता और सत्यता देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे कंस बोला कि ॥ ५९ ॥ इस बालकको अपने घर फेरकर ले जाओ, क्योंकि इससे मुझको कुछ भय नहीं है तुम्हारे आठवें पुत्रसे मेरी मृत्यु निश्चय रची है ॥ ६० ॥ ऐसाही होगा, वसुदेवजी यह कह पुत्रको लेकर अपने घरको चलदिये, परन्तु कंसके वचनका कुछ विश्वास नहीं किया क्योंकि कंस क्षणिकबुद्धि है उसका मन उसके वशमें नहीं है, अब फेरदिया है थोडी देरमें फिर मँगाले, जब यह बात नारदजीने सुनी कि, वसुदेवजीका पुत्र कंसने फेरदिया उसी समय कंससे आनकर कहा ॥ ६१ ॥ व्रजमें नन्दजीसे आदि लेकर जो गोप ग्वाल हैं और वसुदेवजी आदि लेकर वृष्णि यादव और देवकीसे आदि लेकर यादवोंकी स्त्री ॥ ॥ ६२ ॥ यह जो तुम्हारे समीपवर्ती हैं सो हे कंस! यह सम्पूर्ण वसुदेवजी और नन्द-जीके वंशमें, जाति, बन्धु, सुहृद्, यह सब देवताही आनकर प्रगट हुये हैं ॥ ६३ ॥ पृथ्वीपर जो दैत्यलोगोंका भार बढ़ा है, उसके उद्धारके लिये भगवान्ने अवतार लेनेके लिये यह उपाय रचा है, सो तू जान लेना, फिर आठ लकीरें पृथ्वीपर खैंचकर दिखाई इधरसे गिनी तो आठ आई और उधरसे गिनी तो आठ आई और बीचमेंसे गिनी तो आठ आई, तब नारदजी बोले कि, आठवाँ गर्भ इनमें कौनसा समझना चाहिये॥ ६४ ॥ इस प्रकार समझा बुझाकर नारदजी तो चले गये, तब कंसने यादवोंको देवता समझकर और देवकीके आठवें गर्भमें विष्णु भगवान् अवतार धारण करके मुझको मारेंगे यह निश्चय समझके ॥ ६५ ॥ देवकी और वसुदेवको बन्दीघरमें बन्दकर पांवोंमें बेड़ी और हाथोंमें हथकड़ी डालदी और जो जो इनके पुत्र हुये विष्णुभगवान्की शंका मान मँगवा मँगवाकर मारता रहा ॥ ६६ ॥ संसारमें अपने प्राणोंकी रक्षा करनेवाले अभिमानी घातकी और लोभी राजा, माता, पिता, भ्राता और मित्रोंकोभी मारडालते हैं ॥ ६७ ॥ और कंस यह भी जानता था कि, मैं पहिले जन्ममें कालनेमि नाम एक बड़ा राक्षस था और विष्णुने मुझको अपने हाथसे मारा था, सो अब मैं इस जन्ममें कंस हुवा हूं, यही समझकर उसने यादवोंसे वैर किया ॥ ६८ ॥ यदुवंशी, भोजवंशी, अंधक वंशियोंके

राजा उग्रसेन अपने पिताको कारागारमें डालकर महावली कंस आपही शूरसेन देशका राज्य करने लगा ॥ ६९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-इस द्वितीय अध्यायमें, कंसहतनहित देव।
गर्भान्तर्गतदेवकी, विनवतविष्णु अभेव ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! प्रलम्वासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद,पूतना, केशि, धेनुकासुर॥१॥असुरोंके राजा बाणासुर और भौमासुरको संग लेकर मगध देशके राजा जरासंध आदि अपने सम्वन्धियोंकी सहायतासे महाबली कंस याद, वोंको अत्यन्त दुःख देनेलगा ॥२॥ यादवलोग कंसके भयसे दुःखित होकर कुरुदेश, पांचाल-केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह, कौशलादि देशमें जा जाकर वास करने लगे॥३॥और वहुतसे अक्रूरादिक यादव कंसके आज्ञाकारी बन दिन रात उसकी सेवा करने लगे,जब कंसने देवकीके छः बालक मार डाले ॥ ४ ॥ तब विष्णुभगवान्की कला शेषजी जिनका नाम कहते हैं सो देवकीके गर्भमें स्थित हुये, यह गर्भ देवकीको हर्ष और शोकका बढ़ानेवाला हुवा क्योंकि आनन्दरूप भगवान्का अवतार होगा इस वातका तो हर्ष और पहिलेके वालकोंकी समान इस वालकको भी कंस मार डालेगा इस वातका शोक दिन रात रहता था ॥ ५ ॥ तब विश्वभावन भगवान्ने जाना कि, मेरे प्रिय यादवोंको कंस बहुत दुःख देता है उस समय अपने नेत्रोंसे योगमायाको प्रगट करके उसको आज्ञा की ॥ ६ ॥ कि, हे भद्रे! हे देवि! हे कल्याणरूपिणि! जो ग्वाल और गौओंसे शोभित व्रजभूमि है, तू वहाँ जाकर वसुदेवजीकी स्त्री रोहिणी नन्दरायजीके घर गोकुलमें है ॥ ७ ॥ और दूसरी वसुदेवजीकी स्त्रियें कंसके भयसे गुप्त स्थानमें वास करती हैं और देवकीके उदरमें मेरी कलारूप शेषनागजीने प्रवेश किया है, उनको वहाँसे निकालकर रोहिणीके उदरमें पहुँचादे कि, इस बातको कोई दूसरा न जाने और सव लोक तेरा यश वखाने ॥ ८ ॥ हे मंगलरूपिणि! जब तू गर्भको खैंचेगी तो पीछे मैं परिपूर्णरूपसे देवकीके पुत्रभावको प्राप्त हूंगा और तू नंदरायजीकी भार्या यशोदाके उदरमें उत्पन्न हो ॥ ९ ॥ हे कल्याणि! तू पुत्रादिकोंकी कामना करनेवाले मनुष्योंकी सब मनोकामना पूर्ण करनेवाली है और सब संसारके मनुष्य धूप, दीप, फल, फूलादि सामग्री और बलिदान, भेंटकर कलियुगमें तेरा पूजन करेंगे और तू उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करेगी ॥ १० ॥ पृथ्वीपर मनुष्य तेरे स्थान, भवन और सुन्दर सुन्दर मन्दिर बनावेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी ॥ ११ ॥ कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका यह नाम धरेंगे ॥ १२ ॥ गर्भके खैंचनेसे संसारके लोग उस बालकका नाम 'संकर्षण' कहेंगे और जगत्को रमानेसे उसको 'राम' कहेंगे और

महाबलशाली होनेसे उनको 'बलभद्र' कहेंगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार भगवान्की आज्ञा पाते ही उनकी परिक्रमा दे, वचनोंको स्वीकार करके पृथ्वीपर आनकर वही कार्य किया और मोहनीरूप वन मथुरामें वसुदेवके घर आई " और जो गर्भ छिपाकर लाई थी वह रोहिणीके उदरमें प्रवेश किया " और सब गोकुलवासियोंने यही जाना कि, पहिलाही आधान है, योगमायाका भेद किसीको प्रगट न हुवा, जब पूरे दिन हुए तो श्रावण सुदी चौदस बुधवारको बलदेवजीने गोकुलमें जन्म लिया और योगमायाने वसुदेव देवकीको स्वप्न दिया कि, मैंने तुम्हारे पुत्रको गर्भसे लेजाकर रोहिणीको देदिया है अब तुम किसी बातकी चिन्ता मत करना, यह बात सुनतेही अचानक वसुदेव, देवकी चौंककर सोतेसे जाग उठे और देवकी अपने पतिसे कहने लगी कि, यह काम तो भगवान्ने बहुत अच्छा करदिया, परन्तु कंसको इसी समय जाकर जतादेना चाहिये, न जानिये कि, पीछे वह दुष्ट क्या उपद्रव मचावै, यह सोच समझकर रखवालोंको बुला सब वृत्तान्त कह दिया, उन्होंने ज्योंका त्यों कंसको जा सुनाया कि, हे महाराज ! आज देवकीका गर्भ पतित होगया,बालक पूरा नहीं हुवा,यह बात सुनतेही कंस अकुलाकर बोला कि, जो कुछ हुवा सो हुवा परन्तु अब आगेको तुम आठवें गर्भको अच्छी चौकसी रखना, क्योंकि मुझको आठवेंही गर्भका बड़ा खटका है ॥ १४ ॥ और वह योगमाया देवकीके उदरसे बालकको ले रोहिणीके उदरमें रख आई,तब सब पुरवासी मनुष्य पुकार पुकार कर कहनेलगे कि,अबकी बार कंसने अपनी बहिन देवकीको ऐसा धमकाया कि,उसका गर्भ अधूराही गिरगया,बालक पूरा नहीं होने पाया ॥ १५ ॥ अपने भक्तोंको अभयदान देनेवाले विश्वात्मा भक्तभावन भगवान् अपने परिपूर्ण रूपसे वसुदेव देवकीके मनमें आनकर प्रगट हुए ॥ १६ ॥ वसुदेवजीके मनमें भगवान् आनकर उपस्थित हुए, तब सूर्यके तेजकी समान वसुदेवजीमें तेज होगया, उस समय कोई मनुष्य तेजके प्रकाशके मारे वसुदेवजीके सन्मुख न आवै, ऐसे तेजवान् वसुदेवजी होगये ॥ १७ ॥ फिर विश्वके कर्ता सर्वात्मा मूर्तिमान् भगवान् जो कि देवकीमें पहिलेहीसे विराजमान् थे, उनको वसुदेवजीने अपने मनसे देवकीके मनमें विराजमान किया, तब देवकीने भगवान्को भले प्रकार अपने मनसे अपने शरीरमें धारण करलिया जैसे पूर्वदिशा सर्वसुखदायक चन्द्रमाको परमप्रेमसे अपने हृदयमें धारण करती है ॥ १८ ॥ जैसे घटके भीतर छिपे हुए दीपकका प्रकाश नहीं होता और ज्ञानवंचक पुरुषोंमें छिपी हुई विद्या दूसरे लोगोंको आनन्द नहीं देसक्ती, ऐसे भगवान् अपनी कांतिसंयुक्ता देवकीके उदरमें निरन्तर आनन्द होता है, वैसेही देवकी शोभाको प्राप्त न होती थी ॥ ॥ १९ ॥ अजित भगवान्के देवकीके उदरमें रहनेसे कुछ २ कांति झलकी, उस कांतिने बन्दीगृहको प्रकाशवान् करदिया और सुन्दर रूपवाली देवकी मन्द मन्द मुसकाकर वसुदेवजीसे कुछ कह रही थी, उसी समय वहाँ कंस आपहुँचा और गर्भका प्रकाश देखकर कंस अपने मनमें कहने लगा कि मेरे प्राणोंको हरनेवाला हरिरूप सिंह निश्चय इसी उदररूप यमगुफामें आनकर बैठा है, क्योंकि पहिले इस देवकीका इतना तेज नहीं था ॥ २० ॥

फिर तो कंस अपने मनमें अनेक प्रकारके विचार करने लगा कि, अब मैं शीघ्र इसके लिये क्या उपाय करूं ? यह तो देवताओंका कार्य करनेको आही पहुँचा. अब सब प्रकारसे मुझको निश्चय होता है कि, यह अवश्य मुझको मारेगा, अब जो इस समय देवकीको मैं मारता हूं तो संसारमें बडा अपयश होगा, क्योंकि एक तो स्त्रीकी जाति, दूसरे मेरी बहिन और उसपरभी फिर गर्भिणी, जो मैंने इसको मारडाला तो सब संसारमें मेरी अपकीर्ति होगी, दूसरे लक्ष्मी और आयुका नाश होजायगा; महात्माओंके मुखसे मैंने ऐसा सुना हैः-

दोहा-गर्भवती पर जो पुरुष, खैंचत हैं तरवार।
सात जन्म लों नरकमें, जाय सहित परिवार॥ २१॥

जो मनुष्य संसारमें दुष्टता करता है, वह जीतेही जी मृतककी समान है और उनके सन्मुखही लोग बुरा कहते हैं और बारम्बार धिक्कार देते हैं, निश्चय वह मनुष्य घोर नरकमें जाता है ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवसे वैर बाँधकर पापरूप कंस आप मरनेको समर्थ था तोभी इस घोरतम भावसे आपही निवृत्त हो भगवान्‌के जन्मकी बाट देखता रहा ॥ ॥ २३ ॥ जब बैठते, उठते, सोते, जागते, भोजन करते और पृथ्वीपर विचरते, इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान्‌हीकी चिन्तामें रहै और सब जगत्‌को भगवत् रूपही देखता था ॥ ॥ २४ ॥ इतनेमें ब्रह्मा, महादेव, नारदादिक मुनि और ऋषियोंसमेत देवता और गन्धर्व, लोग वहाँ आनकर गर्भहीमें सर्व कामनाओंके पूर्ण करनेवाले भगवान् वासुदेवकी मधुर वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ आप सत्य संकल्प और सत्य परायण हो, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें पृथ्वी, जल, तेज, पवन, आकाश, इन पञ्चभूतोंके कारण रूप हो और पंचभूतोंके विनाश होनेके समय आपही अवशिष्ट रहते हो, समदृष्टि और मनोहर वाणीप्रवर्तक और ज्ञानियोंके प्रेरणा करनेवाले सत्यरूप आपही हो, सो हे नाथ ! हम सब आपकी शरण आये हैं ॥ २६ ॥ यह देह ब्रह्माण्डरूप आदि वृक्ष आपकी मायासे उत्पन्न होकर आपहीके आश्रय रहता है और इसकी रक्षाके लिये आप अनेकरूप धारण करते हैं, उस वृक्षका आधार एक माया है। उसमें दो फल हैं, सुख और दुःख। उसकी तीन जड हैं, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। उसमें चार रस हैं-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। उसमें पांच अंकुर हैं, जिनसे ज्ञान होता है, नेत्र, मुख, नाक, कान, शिश्न। उसके छः स्वभाव हैं, राग, द्वेष, क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह। उसमें सात प्रकारकी छाल हैं; लोहित, मेद, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा, रेत। उसकी आठ शाखा हैं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, उसमें नौ खखोडल अर्थात् छिद्र हैं. नेत्र, मुख, कान, नाक, उपस्थ और गुदा, उसमें दश पत्ते हैं, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय, उसपर दो पक्षी रहते हैं, जीव और ईश्वर यह देहरूप वृक्ष है, कभी उपजै है, कभी कटै है, ऐसेही यह देह कभी जन्मे है, कभी मरै है ॥ २७ ॥ इस संसारके उत्पत्ति पालन संहार करनेवाले आपही हो, यह जगत्

आपसे भिन्न नहीं है, आपकी मायाके वशीभूत हो जिनके चित्त भूल रहे हैं वह लोग जगत्को आपसे भिन्न देखते हैं और आपको नानाप्रकारका जानते हैं और जो ज्ञानी पुरुष हैं वह आपको एकही रूप मानते हैं ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! एकरूप जो आप हो, सो ब्रह्मा बनकर जगत्को उत्पन्न करते हो, विष्णु बनकर रक्षा करते हो और शिव बनकर संहार करते हो. सतोगुणसे संयुक्त सत्पुरुषोंको सुख देते हो और अधर्मियोंको दण्डदेनेवाले जो रूप हैं उनके लिये उनको धारण करते हो ॥ २९ ॥ हे कमलदललोचन ! समस्त जीवोंके जीवन आधार आपही हो, इसीसे आपके विषे ज्ञानीपुरुष समाधिद्वारा चित्तको लगाकर महत्पुरुषोंकी सिद्ध करी हुई आपके चरणकमलरूप नौकाके आश्रयसे इस संसाररूप महासागरको अवगाहन करके बछडेके खुरकी समान समझकर पार उतर जाते हैं ॥ ॥ ३० ॥ हे स्वयंप्रकाश ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं इस महाभयंकर दुस्तर संसार समुद्रको पार उतरनेके लिये भजन भावना और सम्प्रदाय यह जो आपके चरणकमलरूपी नौका है उसको दूसरे महात्माओंके पार उतरनेको छोडगये और आपभी पार उतरगये, हे प्रभो ! आप अपने भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले हो ॥ ३१ ॥ हे कमलनयन ! जो ज्ञानी पुरुष अपने आपको जीवनमुक्त मानते हैं वह आपके चरणारविन्दके विषे भावना नहीं रखते, उसीसे अशुद्ध बुद्धि बने रहते हैं और बडे२ कष्ट सहकर उच्च पदको प्राप्त होते हैं, सो वह उच्चपद किसको समझते हैं ? उत्तम कुलमें जन्म होना और परिश्रम करके शास्त्रोंका पढना, इनहीको उच्चपद जानते हैं. आपके चरणारविन्दकी भक्तिका निरादर करते हैं और फिर पीछे विघ्नोंसे पराभव होकर नीच योनियोंमें जन्म लेते हैं ॥

कवित्त–बने हैं अचारी कोई धर्मधुरधारी ध्रुव कोई उपकारी बडे कोइ निर्विकारी हैं ॥ कोई बडे पण्डित विरागसे न खंडित अदण्डित अवानिमें उदण्डित विचारी हैं ॥ कोई षट शास्त्र पढे वाद औ विवाद बढे कोई कुलकाव्य गढे दया मढे भारी हैं ॥ छाके नाहिं सीकेपीके प्रेम रस पीके नीके कहाकिये जीके जीके फीके सुखकारी हैं ॥ ३२ ॥

हे माधव ! जो पुरुष आपहीके चरणोंमें प्रीति रखते हैं और आपके दास कहलाते हैं, इन लोगोंको उन उच्चपद कहने वालोंकी नाई किसी प्रकारका विघ्न नहीं होता. बरन् हे प्रभु ! आपके भक्त निर्भय होकर बडे २ भारी भयंकर विघ्नोंके माथेपर पाँव धरकर सदा संसारमें घूमते रहते हैं ॥ ३३ ॥ हे प्रभु ! आप विश्वकी रक्षा करनेके समय सब प्राणियोंके पालनके लिये और शुभकर्मोंके फल देनेके लिये शुद्ध सतोगुण स्वरूप धारण करते हो. जिस स्वरूपसे ब्रह्मचारी वेदपाठसे, गृहस्थी कर्म योगसे, वानप्रस्थ तपस्यासे, संन्यासी समाधिसे, सब अपनी अपनी प्रीतिसे आपका पूजन करते हैं. हे प्रभु ! जो आप संसारमें अवतार न लेते तो आपका पूजन बननाभी कठिन था. क्योंकि आपके सुन्दर स्वरूपकी मूर्तिमें भक्तोंका मन लगा रहता है ॥ ३४ ॥ हे विधाता ! आपका सत्त्वगुण मूर्तिमान् सुन्दर स्वरूप प्रगट न होता तो अज्ञानका नाशक विज्ञान जो आपका प्रेरण

किया हुवा बुद्धयादिक गुणोंको प्रकाशे है और आपही सब प्रकारसे उन गुणोंके साक्षी है और ऐसेही इन्द्रियोंके प्रकाशसे आपके स्वरूपका अनुमान होता है, परन्तु आपका स्वरूप नेत्रोंके द्वारा प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशमान् ! इस विश्वके परिपूर्ण साक्षी आपही हो और आपके नाम, गुण, कर्म, जन्म, वर्णन करनेमें नहीं आते, मन वाणीके निरूपणसे आपके स्वरूपका वर्णन नहीं होता. हे प्रभु ! तो भी जो आपके भक्त-जन हैं सो ध्यान और उपासनामें आपके मनोहर स्वरूपका साक्षात् दर्शन करते हैं ॥ ॥ ३६ ॥ हे मंगलरूप ! आपके जो मंगलरूप नाम हैं उनको कानोंसे सुनते हैं जिह्वासे उच्चारण करते हैं और दूसरे मनुष्योंको सुन्दर सुन्दर आपकी कथा सुनाते हैं, स्मरण करते हैं और पूजनादिक क्रियाओंमें और आपके चरणारविन्दोंमें जिन मनुष्योंका मन लग रहा है फिर संसारमें उनका जन्म मरण नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे ईश ! आपके अवतार लेनेसे और आपके चरणारविन्द पृथ्वीपर रखनेसे भूमिका भार सब एकवारही दूर हो जायगा, यह बडे आनन्दकी बात है कि, आपके छोटे छोटे चरणारविन्द पृथ्वीपर जब पडेंगे और उनका हम दर्शन करेंगे तो आप अपने वैकुण्ठधामको जानकर पृथ्वी और स्वर्गपर कृपा दृष्टि करोगे और उसको हम अपने नेत्रोंसे देखेंगे उस समय महामंगल होगा ॥ ३८ ॥ हे भगवन् ! आप जो जन्मरहित हो, सो आपके जन्म लेनेका कारण सिवाय क्रीडा और विनोदके दूसरा और कोई हमारी समझमें नहीं आता. हे नित्यमुक्त ! प्राणियोंका भी जन्म मरण और पालन केवल आपके स्वरूपको न जाननेसे होताहै, यह अविद्याही जन्म मरणका मुख्य कारण है ॥ ३९ ॥ हे भक्तवत्सल ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, वाराह नृसिंह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम, वामनादिरूप धरकर आपने जिस प्रकार त्रिलोकीकी और हम लोगोंकी पहिले रक्षा की थी, उसी प्रकार अब सब पृथ्वी का भार उतारो. हे वैकुण्ठविहारी ! हमारा आपको बारम्वार नमस्कार है ॥ ४० ॥ अब सब देव देवकीसे कहते हैं कि, हे माता ! हमारा कल्याण करनेके लिये साक्षात् परमपुरुष भगवान् अपने परिपूर्ण रूपसे तुम्हारी कोखमें आये हैं, यह बडा आनन्द हुवा, अब कंसभी इनहीके हाथसे मारा जायगा, हमको निश्चय है, तुम किसी प्रकार मत डरो तुम्हारा पुत्र सब यादववंशकी रक्षा करनेवाला होगा ॥ ४१ ॥

कवित्त-फेर देवकीसों सबै देव अस बोले बैन, आदिपुर्ष विश्वआत्मा धाम है अशोकको ॥ जगको निवास सो निवास्यो तेरी कुक्षीमाहिं, त्रास नाशवेको सब देवनके थोकको ॥ हे जननि जग मात धीर धरो, धीर धरो, कंसकाल आयगयो कामनाहिं शोकको ॥ यदुवंशपालक रु दुष्टकुल घालक सो, ह्वै है तुव बालक जो मालक त्रिलोकको ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जिनका स्वरूप कहनेमें नहीं आवे ऐसे जो परम-पुरुष भगवान् हैं उनकी इस प्रकार यथास्तुति करके ब्रह्माजी और महादेवजीको आगे करके सब देवता स्वर्गको चले गये ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

दोहा-इस तृतीय अध्यायमें. प्रगट भये व्रजचन्द ।
हरिको ले वसुदेवजी. गे गोकुल गृहनन्द ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके प्रगट होनेका समय आया, वह समय सर्वगुणसम्पन्न परमशोभायमान होगया और सुधाकर रोहिणी नक्षत्रपर आगया, शान्त युक्त शुभ ग्रहण तारागण होगये ॥ १ ॥ दशों दिशा प्रसन्न-चित्त होगईं, आकाश निर्मल होगया. समस्त तारागण उज्ज्वल उदित हुये, पृथ्वी परम मंगलरूपिणी होगई. पुर, नगर, ग्राम, व्रज, आकर, वन, वाटिका, अत्यन्त रमणीक शोभायमान दृष्टि आनेलगे ॥ २ ॥ नद नदियोंका जल स्वच्छ और शीतल होगया, तालोंमें कमल कमलिनी खिलने लगे, भ्रमर उन सुन्दर सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंकी सुगन्धि सूंघ सूंघकर उन्मत्त हो गुंजारने लगे, वृक्षोंकी शाखाओंपर पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियें बोलने लगे ॥ ३ ॥ सुखदायक शीतल, मन्द, सुगन्ध, सनी पवन वहने लगी, ब्राह्मणोंके होमकी अग्नि शान्त प्रज्वलित होगई ॥ ४ ॥ सिवाय कंसादिक राक्षसोंके सब महात्माओंके मन प्रसन्न होगये, स्वर्गमें भगवान् अवतार सूचक दुन्दुभि बजने लगे ॥५॥ किन्नर, गन्धर्व, भगवान्का यश गान करने लगे. सिद्ध, चारण, स्तुति करने लगे, विद्या-धरोंकी स्त्रियें और अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ ६ ॥ मुनि और देवता व्रजपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, समुद्र आनन्दमें भरकर लहरें लेने लगा, मेघ मन्दमन्द शब्दसे गर्जने लगे, चपला क्षण क्षणमात्रमें चमकने लगी ॥ ७ ॥ इस प्रकार भादों बदी अष्टमी बुध वार रोहिणी नक्षत्रमें आधीरातके समय देवरूपिणी देवकीके कोखमें सर्वान्तर्यामी भक्त-भावन भगवान् साक्षात् अपनेरूपसे प्रगट हुये जैसे आधीरातके समय पूर्वदिशामें पूर्ण-मासीका चन्द्रमा उदय होता है ॥ ८ ॥

छन्द-सरसिज युगनैना, सुखमाऐना, दायकचैना, अनियारे कछु अरुणारे ॥ भुज चारविशाला, उर वनमाला,मनहु रसाला, करधारे आ-युध चारे॥श्रीवत्सललामा,जलधरश्यामा, तनु अभिरामा, दुखभारे. नाश-नहारे ॥ मणिमुकुटविराजै, कुण्डलराजै. अलक समाजै,मदहारे, अहिसु-तकारे॥९॥ कंकण कर माहीं अतिहिसुहाहीं. अरु भुज पाहीं.छविखासी. कटिचौरासी ॥ पटपीत सुहावन, तडित लजावन. मुनिमन भावन, छविरासी अंगदभासी ॥ सोहत नख श्रेणी, मुनिमुददेनी, शशिछविलेनी. अघनाशी सुरसरितासी ॥ मंजुलमंजीरा, जटित सुहीरा, छवि गंभीरा. पदवासी. जो समकासी ॥ १० ॥

विष्णु भगवान्को अपना पुत्र जान आश्चर्यसे वसुदेवजीके नेत्र प्रफुल्लित होगये और मनमें धैर्यधर, उसी समय दशसहस्र गोदानका मानसिक संकल्प ब्राह्मणोंको देनेके लिये किया ॥ ११ ॥ हे भारत ! हे अभिमन्युकुमार ! उस बालककी कांतिसे प्रसूतिकागार ऐसा प्रकाशमान् हो रहा था कि, किंचिन्मात्र भी अन्धकार नहीं रहा, तो वसुदेवजीने

पुत्रको परब्रह्म परमात्मा समझकर उनके प्रभावको देख शुद्ध बुद्धिसे हाथ जोड, शिर झुका निर्भय होकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ हे भगवन्! आपको मैंने भलीभांति जाना, आप मायासे परे साक्षात् परमपुरुष हो केवल अनुभव और आनन्द ही आपका स्वरूप है और सम्पूर्ण जनोंकी बुद्धिके द्रष्टा हो ॥ १३ ॥ मैं भलीभांति जानताहूं कि, आप वही हैं जो पहिले अपनी मायासे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणरूप यह विश्व रचा है, आप उसमें प्रविष्ट नहीं होते और सद्रूपसे प्रवेशसदृश देखनेमें आते हो ॥ १४ ॥ जैसे महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह सातों पदार्थ, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन पंच महाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन सोलह विकारोंके संग मिलकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको रचते हैं और पृथक् पृथक् ब्रह्माण्डको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥ १५ ॥ और उत्पन्न होनेके उपरान्त ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट होकर जैसे जाननेमें आते हैं यथार्थरीतिसे और प्रथम कारण-रूपसे प्रविष्टही थे, इसकारण उत्पन्न हुए कार्यमें उनका पीछेसे प्रवेश होना सम्भव नहीं होसक्ता तैसेही आपका प्रवेश पीछेसे सम्भव नहीं ॥ १६ ॥ ऐसेही आपके रूप बुद्ध्यादिक इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आते, विषयोंमें अपार हो परन्तु विषयोंके साथ आप ग्रहण करनेमें नहीं आते जैसे एक दूधमें शब्द, स्पर्श, यह पांचों वस्तु हैं नेत्रोंसे रूपही देखनेमें आता है रसका ज्ञान नेत्रोंसे किसी प्रकार नहीं होसक्ता, ऐसे विषयोंके ग्रहणमें आपका ग्रहण नहीं हो सक्ता, अपरिछिन्न पक्षीका घोसलेमें प्रवेश होताहै, आप अपरिछिन्न हैं इसलिये आपके स्वरूपमें बाहिर भीतरका भेद नहीं है, गर्भमें आप कब रह सक्ते हो, आवरण करके रहित हो, सर्व स्वरूप हो, सर्वात्मा हो, सर्वव्यापक हो और परमार्थ वस्तु रूप हो ॥ १७ ॥ आत्माके जो दृश्य गुण देहादिक हैं उनको आत्माके विना जो पुरुष सत्य मानते हैं वह निरे अज्ञानी हैं, विचारके देखो तो कथनमात्र विना देहादिक सब झूँठही है, इसलिये झूँठे देहादिकोंको जो पुरुष सत्य मानते हैं वह अज्ञानी हैं ॥ १८ ॥ हे विभो! निरीह, निर्गुण, निर्विकार, आपही हो, आपहीसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार, होताहै आपही ईश्वर और ब्रह्मस्वरूप हो, इसीलिये आपमें कुछ विरोध नहीं है, आपका आश्रय लेकर तीनों गुणही विश्वको रचते हैं इसीलिये आपका नाम कर्त्ता है ॥ १९ ॥ आप अपनी मायासे सृष्टिके पालनके लिये सतोगुणी शुक्लवर्ण विष्णुरूप धारण करते हो और जगत्की उत्पत्तिके समय रजोगुणी रक्तवर्ण ब्रह्मारूप धारण करते हो और विश्वके संहारके समय तमोगुणी कृष्णवर्ण रुद्ररूप धारण करते हो ॥ २० ॥ हे सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण! हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर! आप इस विश्वका पालन करनेके लिये मेरे घरमें उत्पन्न हुये हो और क्षत्री जिनका नाम, ऐसे करोडों असुरोंके समूह जहाँ तहाँ चलायमान हो रहेहैं उनका विध्वंस करोगे ॥ २१ ॥ हे देवेश! उस दुष्ट कंसने तुम्हारे जन्मका वृत्तान्त हमारे घरमें सुनके आपके बहुत भ्राता मारडाले हैं अभी जो कोई मनुष्य उस दुष्टसे कहदेगा कि, आपका अवतार हुआ तो वह सुनतेही शस्त्र हाथमें लेकर यहाँ चला

आवेगा ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब इस प्रकार वसुदेवजी स्तुति करचुके तब पीछे देवकी पुत्रमें महापुरुष भगवान्के सब लक्षण जानकर और मधुर मुस-कान देख कंसके भयसे धीरे धीरे पुत्रकी स्तुति करनेलगी ॥ २३ ॥ अनादि व्यापक ज्योतिस्वरूप निर्गुण निर्विकार सत्तामात्र दिव्यगुणराशि निर्विशेष और चेष्टा रहित जो तुम हो सो वह स्वरूप किसीके जाननेमें नहीं आता, वेद आपके स्वरूपका वर्णन करते हैं, सो तुम ज्ञानके प्रकाश करनेवाले साक्षात् विष्णु भगवान् हो ॥ २४ ॥ जिस समय ब्रह्माजीकी सौ १०० वर्षकी अवस्था होती है उस समय प्रलयकालमें सब लोक नष्ट हो जाते हैं. पंच महाभूत अपनी अपनी तन्मात्राओंमें मिल जाते हैं और तन्मात्रा प्रधानमें लय हो जाती हैं, प्रधानके जाननेवाले उस समय केवल एक आपही अजन्मा अवशिष्ट रहजाते हो ॥ २५ ॥ हे मायाप्रेरक! यह जो काल है इसको आपकी माया वर्णन करै है. इसी कालसे विश्व होता है, पलसे आदि लेके जिसकी वर्षतक गणना है यह परार्द्धरूपसे बडा है. ऐसे आप निर्भयरूप हो, सो मैं आपकी शरणागत हूं ॥ ॥ २६ ॥ हे आदिपुरुष! सब मनुष्य मृत्युरूपी सर्पके भयसे सब लोकोंमें भागे भागे फिरते हैं और उनको बैठनेके लिये निर्भय स्थान कहीं नहीं मिलता, जब किसी पूर्वपुण्यके प्रभावसे आपके चरणारविन्दका आश्रय मिल जाता है तब उस निर्भय स्थानको प्राप्त करके निर्भय होकर सो रहता है, फिर मृत्युभी उसके निकट नहीं आती, दूरसे दूर भागती है ॥ २७ ॥ महा भयानकस्वरूपवाला उग्रसेनका पुत्र जो कंस है, उससे हम अत्यन्त भयभीत हैं, सो उस दुष्टसे आप हमारी रक्षा करो, भक्तोंके भय दूर करनेवाले और जाननेवाले ध्यान करनेके योग्य आप भगवान् स्वरूप हो अब आप अपने इस श्यामसुन्दर स्वरूपको चर्मचक्षुवालोंको मत दिखाओ ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन! आपका जन्म जो मेरे यहां हुवा है यह मत जानो, क्योंकि अधीरचित्तवाली स्त्री जाति जो मैं हूं सो आपके कारण उस कंसके भयसे अत्यन्त भयभीत हूं ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मक! शंख, चक्र, गदा, पद्मसे शोभायमान जो यह आपका चतुर्भुज और अद्भुत स्वरूप है इसको छिपा लो ॥ ३० ॥ यह जो जगत् प्रत्यक्ष कालमें दृष्टि आता है प्रलयकालके समय विना परिश्रमही सब सृष्टिको अपने उदरमें धारण कर लेते हो, सो आप मेरे गर्भमें प्राप्त हुए हो, यह बडे हास्यकी बात है ॥ ३१ ॥ यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र मुसकाकर बोले कि, अहो मातः! तुमको अपने पूर्वजन्मकी सुधि नहीं है सो सुनो स्वायंभुव मन्वन्तरमें पहिले तुम पृश्नि नाम थी और वसुदेवजी उस समय पापरहित सुतपा प्रजापति थे ॥ ३२ ॥ तब तुम दोनोंको ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी, तब आपने इन्द्रियोंको रोककर बडा भारी तप किया ॥ ३३ ॥ वर्षा, वायु, धूप, गर्मी, शीत इन सब कालोंके गुणोंका ग्रहण किया और श्वास रोककर मनके मैलको दूर कर दिया ॥ ३४ ॥ सूखे पत्र और पवनका भोजन करके वर्षोंतक रहे और मुझसे वरदान प्राप्त करनेके मनोरथसे, आपने शान्तचित्त हो मेरी आराधना करने

लगे॥ ३५॥ हे मातः ! तुम दोनों जनोंने मुझमें चित्त लगाकर बड़ा भारी तप किया, तप करते करते देवताओंके बारह सहस्र वर्ष बीतगये ॥ ३६ ॥ हे निष्पाप ! जब तुमने तप करनेके समय श्रद्धा भक्तिसे हृदयमें मेरा ध्यान किया, उसी समय इस देहसे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुवा ॥ ३७ ॥ तुम दोनोंके मनकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये मैं उसी समय इसी शरीरसे आपके सम्मुख आनकर प्रगट हुवा और आपसे कहा कि, 'वर मांगो' 'वर मांगो' 'वर मागो' तब आपने यह वर माँगा हे भगवन् ! जो आपके मनमें वर देनेकी इच्छा है और हमपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजै कि, तुम्हारे समान हमारे पुत्र होय ॥ ॥ ३८ ॥ संसारके विषयसुख आपने नहीं भोगे और कोई सन्तानभी नहीं, सो आपने मेरी मायासे मोहित होकर मुक्ति नहीं माँगी ॥ ३९ ॥ उस समय मैंने तुमको मनवांछित वर दिया कि, तुम्हारे मेरीही समान पुत्र होगा, तुमको यह वर देकर मैं अन्तर्द्धान होगया और तुम अपना मनोरथ करके विषयोंका सुखभोग भोगने लगे ॥ ४० ॥ जब मैंने शील उदारता इन गुणोंयुक्त अपनी सदृश दूसरा कोई पुरुष कहीं नहीं देखा, तब पृश्निगर्भ नामसे विख्यात होकर मैंही आपका पुत्र हुवा ॥ ४१ ॥ फिर पीछे दूसरे जन्ममें आप कश्यप और अदिति हुए, वहाँभी मैंने उपेन्द्र, नामसे आपहीके घर आनकर फिर जन्म लिया, हे जननि ! उस अवतारमें मेरा शरीर बहुत छोटा था, इसलिये मेरा नाम वामन विख्यात हुवा ॥ ४२ ॥ फिर अब तीसरी बार उसी रूपसे आपके घरमें जन्म लिया है हे मातः ! मेरा वचन सत्य मानो, देखो तुमने एक वार वर माँगा मैंने तुम्हारे घर तीन-वार जन्म लिया ॥ ४३ ॥ पहिले जन्मका स्मरण करानेके लिये मैंने तुमको यह रूप दिखाया है जो और प्रकार मनुष्यके बालकका रूप धर कर प्रगट होता तो तुम क्या जानते ? और तुमको कैसे विदित होता कि, परमेश्वरने हमारे घर आनकर अवतार लिया ॥ ॥ ४४ ॥ अब आपकी इच्छा है चाहे पुत्रभावसे मेरा सन्मान करो, चाहै ईश्वर जानकर मेरा ध्यान करो, मुझसे स्नेह करोगे तो परमभक्तिको प्राप्त होगे ॥ ४५ ॥ और जो तुमको कंसका यह भय है कि, मेरे इस पुत्रकोभी वह दुष्ट मार डालेगा, तो तुम मुझको गोकुलमें नन्दरायजीके घर पहुँचा दो और यशोदाके गर्भसे प्रगट हुई मेरी योगमाया है उसको इसी समय अपने घरको लेआओ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह सब बातें समझा बुझाकर भगवान् चुप होगये और अपनी मायासे माता पिताके देखते देखते साधारण बालक होगये ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीसे भगवान्‌ने यह जो कहा था कि, जो तुमको कंसका भय है तो मुझको गोकुल पहुँचा देना और यशोदाकी कन्या जो मेरी मायारूप है उसको यहाँ ले आना, पुत्रकी अद्भुत छवि देखकर इस बातका कुछ ध्यान न रहा देवकीसे कहने लगे कि, हे प्रिये ! अब मैं क्या उपाय करूं ? और ऐसे मनोहर पुत्रको कहाँ छिपाऊँ चाहे मेरा धर्म न रहै परन्तु इस पुत्रको तो मैं कंसको कभी न दूंगा देवकी बोली कि, स्वामी मेरी भी यही इच्छा है, परन्तु इस समय कोई ऐसा उपाय करो जो उस हत्यारे कंसके हाथसे इस बालकके प्राण बचैं, इसको कहीं और ठौरही

पहुँचादो, वसुदेव बोले कि, हे प्रिये ! इस समय ऐसा कौन हमारा हितकारी है जो इस हमारी भारी विपत्तिमें आनकर सहाय करै, यहाँ तो कोई बात मुखसे निकालने डर लगता है, क्योंकि नंगीतलवारें लिये रखवाले शिरपर जाग रहे हैं, पावोंमें बेडी पडी है, प्रथम तो यहाँसे निकलनाही कठिन है और जो किसी प्रकार यहाँसे निकलभी गया तो उस दुष्टके सन्मुख ऐसा कौन सामर्थ्यवान् है, जो हमारे बालकको अपने घर रखले, सत्य है विपत्तिमें कोई किसीका नहीं होता, यह कह वसुदेव आँखोंमें आँसू भरलाये, देवकी बोली कि, हे पते ! यह समय रोनेका नहीं है धैर्य बाँधो और जो अब इतना दुःख मानते हो उस समय कंसके हाथसे मुझे क्यों बचालिया, काहेको ऐसा कठिन दुःख देखना पडता, अब सावधान होकर कटिबद्ध हो, इस बालकको गोकुल पहुँचाओ कि, इस समय मुझको एक बातका स्मरण हुवा जिस दिन मुझको तुमको कंस दुष्टने बन्दीगृहमें डाला था उससे एकदिन पहिले कार्तिककी पूर्णमासीका जो पर्व था, उस दिन मैं यमुनाजीमें स्नान करनेके लिये गई थी, दैवयोगसे वहां नन्दजीकी स्त्री यशोदाभी आगई, जब मैंने सब विपत्ति अपनी उसे सुनाई, तो वह सुनकर आंखोंमें आंसू भरलाई और मुझसे कहा हे बहन ! तू घबराय मत, तेरे पुत्रको मैं रखलूंगी और अपना बालक तुझको देदूंगी, इस प्रकार उसने मुझको वचन देदिया है, सो इस बालकको लेकर शीघ्र गोकुल जाओ, स्त्रीकी और भगवत्की प्रेरणासे वसुदेवजीने प्रसूतिका घरमेंसे पुत्रको लेकर बाहिर निकलनेकी इच्छा की उसी समय गोकुलमें नन्दरायजीकी स्त्री यशोदाके उदरसे योगमायाने जन्म लिया ॥ ॥ ४७ ॥ उस समय योगमायाने सब पुरवासी और द्वारपालोंका ज्ञान हरलिया, उसी समय सब निद्राके वशीभूत होगये, पावोंकी बेडी गिरपडीं, जब श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी चले तब द्वारोंके बडे बडे जो किवाँड थे ॥ ४८ ॥ उनमें जो लोहेकी भारी भारी संकलें पडी थीं और ताले लगरहे थे, वह सब आपसेआप खुलगये, जैसे सूर्यनारायणके उदय होनेसे सर्वत्र अन्धकार दूर हो जाता है ॥ ४९ ॥ और मन्द मन्द शब्दसे मेघ गर्जगर्ज कर बरसने लगे, आधीरात, सांय साँय कररही थी, अँधेरी झुक रही थी, मार्ग दखनेमें नहीं आता था, कभी कभी बीच बीचमें बिजली चमक जातीथी उसके आश्रयसे धीरे धीरे चले जाते थे, परन्तु वर्षा इनके ऊपर नहीं होती थी क्योंकि, पीछे पीछे शेषजी महाराज फणरूप छत्रछायासे जलका निवारण करते थे ॥ ५० ॥ उस समय मेघोंके वर्षनेसे यमुना ऐसी चढरही थी कि, कोसोंतक जल ही जल दिखाई देता था, पवनके वेगसे जलमें ऊंची ऊंची तरंगें उठती थीं और जलके घरघराहटका शब्द दूर तक सुनाई आताथा उस गम्भीर नीरमें महाभयानक सैकडों भँवर पडते थे, वसुदेवजी मनमें विचारने लगे कि, पीछेको लौटताहूं तो सिंह दहाडरहा है और आगे अथाह यमुना बहरही है, हे विधाता ! मुझे किस विपत्तिमें डालदिया, इस समय मेरी वही कहावत हुई कि "घरका रहा न घाटका" अब मैं क्या करूं ? कहाँ जाऊं ? फिर पुत्रके मोहके वशीभूत हो कुछ आगापीछा न शोच भगवान्का ध्यान कर जलमें घुसही पडे, यमुनाने जाना कि, आज मेरे स्वामीका

जन्म होगया और वसुदेवजी लेकर मेरे समीप आगये, वहभी उत्साहित हो, उमंगमें भर चरण छूनेको उमडी, ज्यों ज्यों वसुदेवजी श्रीकृष्णको ऊपरको उठाते थे त्यों त्यों यमुनाजी ऊपरको प्रवाह लेती थी, जब नाकतक जल आगया तब तो वसुदेवजी औरभी अधिक घवराये, वसुदेवजीको व्याकुल देख कृष्णचन्द्रने अपनाचरण नीचेको लटका हूंकार दिया, चरणारविन्दके परसतेही जल गुल्फपर्यंत होगया जैसे लंकाकी चढाईके समय श्रीरामचन्द्र महाराजको समुद्रने मार्ग दिया था, उसी प्रकार यमुनाने वसुदेवजीको मार्ग दिया ॥ ५१ ॥ जैसे तैसे कर वसुदेवजी गोकुलमें पहुँचे और नन्दजीके द्वारपर जाकर देखा तो किवांड खुले पडे हैं. भीतर घुसकर देखा तो सब नींदमें मतवाले पडे हैं और यशोदा माय कि मोहसे ऐसी बेसुधि पडी थी कि, उसको कन्याके उत्पन्न होनेकाभी ध्यान नहीं था; उसको सोता देखकर वसुदेवजीने श्रीकृष्णको तो यशोदाकी शय्यापर सुलादिया और उसकी कन्याको उठाकर अपनी राह ली. वहाँ देवकी प्रेमविवश अतिव्याकुल हो अकुलाने लगी कि, हाय ! मुझ अभागिनीने क्या किया जो महा अँधियारी भयकारी आधीरातके समय इस वर्षामें अपने पति और पुत्रको परदेश भेजदिया ।

सोरठा-बैठत उठत अधीर, व्याकुल सूनी शेजपर ।
मोचत नयनन नीर, रोय सकत नहिं कंस भय ॥

मनहीमन देवताओंको मना मनाकर यह कहती थी कि, हे विधाता ! इस भेदको कोई जान न जाय और तुम ऐसी कृपा करो जो यह रखवारे अभी न जागें और कोई दुष्ट मार्गमें न मिलजाय और मुझको इस बातका बडा भारी शोच है कि, उस पुत्रका जो मुखारविन्द चन्द्रमाके समान है उसकी उजियालीको कौन छिपा सक्ता है, दूसरे मार्गमें यमुना महा गम्भीर चली जाती होगी, उसको किस प्रकार पार उतरेंगे. क्योंकि इस समय रातमें नाव बेडाभी न होगा. यह मुझे बडा भारी संशय है कि, गोकुलमें पहुंचे वा नहीं क्या कारण जो अबतक स्वामी न आये ! इस प्रकार शोच संकोचमें पडी थी और एक २ क्षण कल्प कल्पकी समान कटता था, फिर अकुलाकर कहने लगी कि, मुझको निश्चय होता है मेरे स्वामीको कहीं कंसके रखवालोंने पकड लिया, न जानिये वह दुष्ट कंस अब मेरी क्या दुर्दशा करे, इससे पहिलेही प्राणोंका खोदेना अच्छा है, यह कह जबहीं प्राण खोनेको प्रस्तुत हुई उसी समय कन्याको लेकर वसुदेवजी अपने घर आये ॥ ॥ ५२ ॥ और उसी बन्दीगृहमें आनकर कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और आपने उसी प्रकार पांवोंमें बेडी और हाथोंमें हथकडी पहन ली और उसी भांति बैठगये ॥ ५३ ॥ वसुदेवजीको देख देवकी बूझने लगी कि, स्वामी ! कुशलपूर्वक गोकुलमें पहुंचे ? पुत्र तो आनन्दसे है ? वसुदेवजीने कहा सब नारायणकी कृपा है, उसी समय यहां गोकुलमें नन्दरायके घर यशोदाजीके मनसे जब माया हटी तो जाना कि, मेरे कुछ बालक हुवा, परन्तु कुछ परिश्रम और कष्ट न पडा, क्योंकि योगमायाने पहिलेही स्मृति भुलाकर नींदके वश करदिया था और यहभी कुछ ज्ञान नहीं रहा कि, मेरे पुत्र हुवा या कन्या ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा चौथे चण्डीवचन सुन अतिलभीन भयो कंस।
मंत्रिन सहित विचारकर. कियो बालकनि-ध्वंस॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! बाहिर भीतरके द्वार उसी प्रकार बन्द होगये, कन्या रो उठी बालकका रोना सुन सब रखवाले सावधान हो नींद तन्द्राको छोडने लगे; हाथी चिघाडने लगे, सिंह दहाडने लगे, भादोंकी अँधेरी झुकरही, मेघ बरस रहा था ॥ १ ॥ सब चौकीदार और द्वारपाल पुकारते हुए उसी समय कंसके पास दौडगये और जातेही देवकीके बालक होनेका समाचार सुनाया, जो कंस उद्विग्न मनसे इसी आठवें गर्भका मार्ग जोहरहा था ॥ २ ॥ सुनते ही कंस घबराकर यह कहता उठ खडा हुवा क्या मेरा काल-रूप बालक उत्पन्न होगया ? खुलेबाल, गिरता पडता, ठोकरें खाता, कांपता हुवा खड्ग हाथमें ले प्रसूतिका भवनकी ओरको दौडाहुवा बहनके पास गया ॥ ३ ॥ देवकी कंसको देख दीन होकर करुणा वचन बोली कि, जिसके सुननेसे सबके मनमें अत्यन्त दया उत्पन्न हो, हे भ्राता! हे कल्याणरूप! यह पुत्र नहीं है, यह देवी रूप कन्या है, इसको मत मार, क्योंकि यह तेरी भानजी है और जो कदाचित् यह जीती रहेगी तो मैं तेरेही पुत्रके संग इसका विवाह कर दूंगी ॥ ४ ॥ हे भ्राता! अग्निके समान तेजवाले मेरे सात पुत्र जो तैंने मारे हैं, वह ताप मेरे हृदयसे अभी नहीं गया, परन्तु उसमें तेराभी क्या दोष है दैवने तेरी बुद्धिभी वैसेही करदी. अब यह कन्या तो मेरा हृदय ठण्डा करनेको मुझे छोडदे ॥ ५॥ हे सामर्थ्यवान्! तैंने बहुत पुत्र मेरे मारे, अब दयाकर मैं तेरी छोटी बहन हूं, महादीन हूं, मन्दभागिनी हूं, यह मेरी अन्तकी पेटपोंछनी कन्या है इसको तू मुझे अपनी करके देदे जो मेरा थोडा बहुत धैर्य बँधा रहे ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! देवकी इस प्रकार कंससे विनती कर, कन्याको छातीसे लगाकर अति दीनकी नाई रुदन करने लगी. देवकी दीन तो नहीं थी, क्योंकि मनमें अत्यन्त प्रसन्न थी कि, मेरा पुत्र तो और स्थानपर पहुँचही गया और यह कन्या योगमाया है यह इस दुष्टसे किसी प्रकार मरही नहीं सक्ती, तोभी देवकीके हाथसे उस दुष्टने कन्याको छीनही लिया, देवकीने नम्र होकर बहुतेरी प्रार्थना की परन्तु उस दुष्टने न माना और कहा कि, इस कन्याको मैं कभी जीता न छोडूंगा, जो इस कन्याके साथ विवाह करेगा वह मुझको मारेगा ॥ ७ ॥ यह कह अपने स्वार्थके सिद्ध करनेके लिये तुरन्तकी उत्पन्न हुई अपनी भगिनीकी कन्याका चरण पकड घुमाकर शिलापर ज्योंही पटकनेको हुवा ॥ ८ ॥ उसी समय वह कन्या कंसके हाथसे छूट उसके माथेपर पाँवधर उछलकर आकाशको चली गई और वहां प्रत्यक्ष देवीका दिव्यस्वरूप देखनेमें आया ॥ ९ ॥ अतिविशाल लाल लाल नेत्र, ललाटपर चन्दनका तिलक, कण्ठमें पुष्पोंकी माला, सुन्दर शोभायमान वस्त्र, रत्नजटित आभूषण, आठभुजा जिनमें धनुष, त्रिशूल, ढाल, कृपाण, गदा, पद्म, शंख, चक्र, आयुध लिये ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नाग यह बारम्बार बलिदान देते थे और प्रार्थना करते थे ॥ ११ ॥ अरे अधम कंस! मेरे मारनेसे तेरे हाथ क्या आया ? तेरे पूर्व जन्मका

वरं जो कि, तेरा मारनेवाला है वह पहिलेही और कहीं दूसरे स्थानमें जन्म लेचुका, अरे मूर्ख ! बालकोंको मारकर और मुझको पटककर वृथा तैंने अपने शिरपर पापका भार धरा, तेरा मारनेवाला सर्पकी समान है और तू दादुरकी सदृश है, दादुरको इतनी सामर्थ्य कहाँ है जो सर्पको निगलनेकी इच्छा करै, अब तू सावधान रहना अब वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर भूमिका भार उतारेगा ॥ १२ ॥ इस प्रकार भगवान्की दैवी योगमाया कंससे कहकर बहुत स्थानोंमें दुर्गा, भद्रकाली, भगवती, भवानी, महामाया नामसे संसारमें विख्यात हुई ॥ १३ ॥ इस प्रकार योगमायाका वचन सुनकर कंस अत्यन्त विस्मित हुवा और वसुदेव देवकीको कारागारसे उसी समय छोडदिया और बेडी हथकडी उनके हाथ पांवोंसे निकलवादीं और विनय करके बहन बहनोईसे बोला कि ॥ १४ ॥ अहो भगिनी ! अहो भाम ! मैं आपका बडा अपराधी हूं, मुझ पापी अधर्मीने तुम्हारे संग बडा अनर्थ किया और अपने शरीरके सुखके लिये तुम्हारे छः बालक मारे जैसे कोई राक्षस अपने पुत्रोंको अपने हाथसे मारै है और मेरा मनोरथ भी पूरा नहीं हुवा ॥ १५ ॥ देखो ! मैं कैसा निर्दयी और हत्यारा हूं, अपने जातिवाले हितकारी और सम्बन्धियोंका संग मैंने छोड दिया, हाय ! मैं महा पापी नीचबुद्धि न जानिये कौनसे नरकमें जाऊंगा, ब्रह्मघातीकी नाईं मैं जीताही मृतककी समान हूं, यह कलंक मेरा कैसे छूटेगा और मैं किस जन्ममें उद्धरूंगा ॥

सैवया–कीजै क्षमा अपराध मेरो यह कह्यो नृप देवकीसों शिरनायकै ॥
तेरा कियो अपराध घनो तोहिं नाहक दुःख दियो घबरायकै ॥
वैसो उपाय वनै भगिनी विधिकी मरजी जस होत है आयकै ॥
यों नृप कंस विचारत शोचत शत्रुभयो कहूं अन्तहि जायकै ॥१६॥

कोई कहै कि, मनुष्यही झूठ बोलते हैं, परन्तु देवताभी झूठ बोलते हैं जिन्होंने कहा था कि, देवकीके आठवें गर्भमें पुत्र होगा सो कन्या उत्पन्न हुई, हाय ! मैंने झूठी आकाशवाणीके कहनेसे अपनी बहनके बालक मारे मेरी क्या गति होगी ? ॥ १७ ॥ हे महाभागियो ! तुम अपने पुत्रोंके मरनेका शोक मत करो, यह प्राणी अपने किये हुए कर्मोंका भोग भोगता है और दैवाधीन है सर्वदा एकत्र नहीं रहसक्ते. तुम समझना कि, हमारे पुत्रोंकी आयु इतनीही थी ॥ १८ ॥ जैसे पृथ्वीके विकार घटपट इत्यादिक पदार्थ उत्पन्न होतेहैं और फूटजाते हैं, इनके होनेमें पृथ्वीका विकार नहीं आता, ऐसेही यह देह जन्मता और मरता है कुछ इसके संग आत्मा नहीं मरता जीता ॥ १९ ॥ मूर्ख लोग ऐसे नहीं जानते वह देहकोही आत्मा मानते हैं और देहको आत्मासे "मैं हूं" "तू है" यह अनेक प्रकारके बुद्धि भेद उत्पन्न होते हैं, इस भेदसे पुत्रादिकके देहसे योग वियोग होता है, इसीसे उनके अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती ॥ २० ॥ हे मंगलरूपिणी ! मैंने तेरे पुत्रोंको मारा है तो भी तू उनका शोक सन्ताप मत कर, क्योंकि सब प्राणियोंको परतंत्रतासे अपने अपने किये हुये कर्मोंका भोग भोगना पडता है ॥ २१ ॥ जब तक

प्राणी अपने स्वरूपको नहीं जानै और यह कहै कि, मैं मारता हूं और मैं मरता हूं, तब-तक वह देहाभिमानी अज्ञान पुरुष मरता है और मारता है ॥ २२ ॥ हे दीनदयालु! हे सत्यवक्ताओ! अब आप मेरा अपराध क्षमा कीजै, क्योंकि साधुजन दीनोंपर सदा दयाही करते हैं, यह कह आँखोंमें आँसू भरकर कंस वसुदेव देवकीके चरणोंमें गिरपडा ॥ ॥ २३ ॥ और योगमायाने जो यह वचन कहा था कि, तेरा मारनेवाला कहीं उत्पन्न होगया, इस वाणीपर विश्वास आकर वसुदेव और देवकीके पाँवोंकी बेडी कटवादी और सुहृदता और मित्रता अपनी जतानेलगा ॥ २४ ॥ हे देवकी! अब मेरा अपराध क्षमा-कर, देवकी अपने भ्राता कंसको अत्यन्त व्याकुल देखकर बोली कि, हे भय्या! मैंने तेरा सब अपराध क्षमा किया तू मत डरै, यह कह उसकी आँखोंसे आंसू पोंछने लगी और वसुदेवजीभी उससे शत्रुता तजकर मुसकराकर बोले ॥ २५ ॥ हे महा-भाग कंस! जैसे तुम कहते हो वैसेही है. देहधारियोंको अज्ञानसे अहंकार होता है, इसी अहंकारने मेरा तुम्हारा परस्पर भेद कर दिया ॥ २६ ॥ शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह, जिनको लग रहे हैं वह मनुष्य इन चारोंसे आपही मरते हैं, उनको कौन मारता है, वह उन्मत्त पुरुष यह नहीं जानते कि, परमेश्वरही पदार्थोंसे पदार्थोंका परस्पर नाश करता है और उस परमात्माको नहीं देखते और अज्ञानी पुरुष मैं मरताहूं मैं मारताहूं, ऐसे मानते हैं ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजापरीक्षित्! इस प्रकार प्रसन्न हो शुद्ध अंतःकरणवाले वसुदेव देवकीसे आज्ञा लेकर कंस अपने राजभवनको गया ॥ २८ ॥ और जैसे तैसे करके रात काटी प्रातःकाल होतेही कंसने अपने सब मंत्रियोंको बुलाय और जो कुछ योगमायाने कहा था कि, तेरा मारनेवाला उत्पन्न होगया है, यह सब वृत्तान्त मंत्रियोंके सामने ज्योंका त्यों कह सुनाया ॥ २९ ॥ कंसके वचन सुनकर देवताओंके शत्रु अविवेकी देवताओंपर क्रुद्ध होनेवाले जो अघासुर, तृणावर्त आदिक मंत्री थे वह कंससे बोले कि ॥ ३० ॥ हे यादवेन्द्र! जो ऐसा भी है तो क्या चिन्ता है? आप कुछ सन्देह न कीजै केवल इतना काम करो कि–पुर, ग्राम, खिरक इत्यादि जितने स्थान हैं, उनमें दश पांच दिनके भीतर जो बालक उत्पन्न हुएहैं उनको मारनेकी हमको आज्ञा देदीजै हम आजही सब बालकोंको बीन बीन कर मार आवेंगे उनमें जो आपका शत्रु होगा वहभी मारा जायगा ॥ ३१ ॥ और जो देवता संग्रामके नामसे थरथर काँपते हैं वह आपके सामने क्या पराक्रम करेंगे? आपके धनुषकी टंकारही सुनकर निरन्तर व्याकुल रहते हैं ॥ ३२ ॥ जिस समय आप धनुषपर बाण चढाकर चारोंओरको प्रहार करते हो. उस समय देवता अपने अपने प्राणोंको लेकर रणस्थलसे भाग जातेहैं और भागजाना ही उनका अच्छा है ॥ ३३ ॥ उनमें कोई कोई तो शस्त्र त्याग, दीन बन, हाथ जोडकर खडा होजाताहै और कोई निकच्छ होकर शरणमें आता है और कहताहै हम हारगये हम हारगये हमको मत मारो ॥ ३४ ॥ आपके सामने रथ जिनके टूटगये, शस्त्र हाथोंमेंसे छूटगये, भयभीत हो भाग गये, युद्धसे विमुख धनुष जिनके हाथोंसे

गिरगये और जो संग्राम छोडकर बैठरहे उनको तो आप मारते ही नहीं हो ॥ ३५ ॥ जहां कोई शूरवीर और युद्ध करनेवाले योद्धा नहीं होते उस निर्भय स्थानमें बैठकर झूठा बकवाद करनेवाले देवताओंसे और जो क्षीरसागरमें शेषशय्यापर पडा दिन रात लक्ष्मीसे भोगविलास करता रहता है उसीके ध्यानमें नित्य मतवाला हो आलस्यके मारे कोई काम नहीं करता उससे युद्ध कब होसक्ताहै? जो आपके डरसे क्षीर समुद्रमें छिपाहुआ पडा है उस लक्ष्मीकी आशा करनेवाले विष्णुसे इलावृतखण्डका रहनेवाला जहां जातेही पुरुष स्त्री होजाय, दिन रात पार्वतीके संग क्रीडा करनी और उसीके मोहजालमें मग्न रहनेवाला विषके पीनेसे जिसका चित्त नित्य उद्विग्न रहे ऐसे बावले बहुरंगे शिवसे ॥ ३६ ॥ तुच्छ पराक्रमी, किंचिन्मात्र विपत्ति पडनेसे देवताओंको साथ ले भगवान्के पास जाकर पुकार मचावै. आपने सुनाही होगा कि, हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु और रावणादिक अनेक असुरोंने उसकी कैसी २ दुर्दशा की और बताओ आजतक किसको जीता, सदा घरबैठाही वज्र घुमाता रहता है ऐसे असमर्थ इन्द्रसे, रहा ब्रह्मा वह दिन रात पूजा पाठमें लगा रहता है उसको अपनेही कामोंसे पलभरको सावकाश नहीं? फिर बताओ कि, इन लोगोंसे हमको क्या भय है और कौन इनमें हमसे युद्ध कर सक्ता है? परन्तु तोभी वैरीही हैं न जानिये कलको क्या उपद्रव कर उठावैं, क्योंकि शत्रुको और सर्पको छोटा न समझे, इसीलिये इन लोगोंका छोडना अच्छा नहीं, इस समय तो इनकी जड उखाडनेको हम उपस्थित हैं, हम लोगोंको आज्ञा दीजिये ॥ ३७ ॥ जैसे बिना उपाय किये शरीरका रोग जड पकड जाता है फिर पीछे उपाय करनेसे कुछ नहीं हो सक्ता, जैसे योगीजन पहिले इन्द्रियोंसे विषयभोग करके फिर पीछे उनको रोकना चाहैं तो फिर वह नहीं रुकसक्तीं, ऐसेही शत्रुको छोटा समझकर जो छोड देते हैं, फिर पीछे प्रबल होकर वह शत्रु जीतनेमें नहीं आता और जो कदाचित् जीत भी लिया तो बडी विपत्ति उठानी पडती है और बहुत दाँत खट्टे होते हैं ॥ ३८ ॥ सब देवताओंकी जड विष्णु है और विष्णुकी जड सनातन धर्म है और सनातनधर्मकी मूल गौ, ब्राह्मण, तप, यज्ञ और दक्षिणा है ॥ ३९ ॥ हे राजन् कंस! इसलिये वेदपाठी, तपस्वी, याज्ञिय, ब्राह्मण, यज्ञके उपयोगी और दूध देनेवाली गायोंको हम अवश्य मारेंगे ॥ ४० ॥ गो, ब्राह्मण, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और यज्ञ सब विष्णु भगवान्के अंग हैं ॥ ४१ ॥ वह विष्णु सब देवताओंमें मुख्य, दैत्योंका द्रोही और सबके हृदयमें वासकरनेवाला और ब्रह्मा, महादेव, सब देवता और ऋषियोंका मूलभी वही है, इसलिये ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंका मारना, यही विष्णुके मारनेका ठीक उपाय है ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! दुष्टबुद्धि कंस कालके फन्दमें फँसे हुयेने इस प्रकार दुष्ट मंत्रियोंके साथ, सम्मतिकरके ब्राह्मणोंको मारकर अपना कल्याण चाहा ॥ ४३ ॥ महापुरुषोंका कष्ट जिनको प्रिय, इच्छापूर्वक रूप धारण करनेवाले असुरोंको सब देश विदेशोंमें साधु संतोंके मारनेके लिये आज्ञा देकर भेज दिया और आप अपने राज्यमन्दिरको चलागया ॥ ४४ ॥ राजस, तामस

स्वभाववाले दुर्बुद्धि, अज्ञानसे जिनका अन्तःकरण आच्छादित हो रहा, मृत्यु जिनके शिरपर खेल रहा, ऐसे ऐसे दैत्य साधुओंके विद्रोही होकर उनसे वैर करनेलगे ॥ ४५ ॥ सत्पुरुषोंसे द्वेष रखनेवाले पुरुषकी आयु, धन, यश, धर्म, परलोक, सुख, महात्माओंका आशीर्वाद और मंगल इन सबका नाश हो जाता है इसलिये सब छल छन्दको छोड कृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्दका ध्यान करना चाहियेः-

भजन-मन जो तू करै हरिपद निवास. तव शीघ्र होय सब दुखनाश ॥ तेरी चंचलता नाहिं रहै एक. उपजै विराग जो पुनि विवेक. किंचित न रहै जग सुखकी आश । क्यों जान बूझकर रहा भुलाय. क्या बारबार यह समय आय. मत उरझ तुच्छ विषयन विलास । मैं बारबार करहूं पुकार. कहना नहीं मानत तू गँवार. विनती राखिये किमि बूझ प्यास । अब करले तू प्रभु माहिं प्रेम. इससे न परै कोई और नेम. सब छलतज बन रघुवीरदास ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-पंचममें उत्सव अधिक भयो नन्दके भौन ।
मथुराको वसुदेवने, किये मिलन हित गौन ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब नन्दरायकी वृद्ध अवस्था होगई और कुछ सन्तान न हुई तब तो नन्दरायको बडा संदेह हुआ और सब व्रजवासियोंके मनमें अति संताप बढा, एक दिन नंदरायजी अपनी अथाईमें बैठे थे, कहींसे दश बारहएक ज्योतिषी ब्राह्मण आये थे, वह सब उनके सन्मुख होकर निकले, उनको देख कर नन्दरायजीने नमस्कार किया, ब्राह्मणोंने नन्दरायको आशीर्वाद दिया कि महाराजाधिराजकी जय हो, धनवान् हो पुत्रवान् हो इस प्रकार नन्दजी ब्राह्मणोंका आशीर्वाद सुनकर बोले कि, महाराज मेरी हँसी किसलिये करते हो ? तब ब्राह्मण बोले कैसी हँसी तब नन्दजीने कहा कि, आपने मुझको आशीर्वाद दिया कि, धनवान् हो, पुत्रवान् हो सो आपके चरणारविन्दकी कृपासे धन तो है परन्तु पुत्र कहाँ ? यह सुन सब ब्राह्मण सभामें आनकर बैठगये और यह कहने लगे कि, आपने यह क्या कहा, हमको ऐसा ब्राह्मण मत समझो कि, जो हम झूठ बोलें ॥

श्लोक-दैवाधीनं जगत्सर्वं मंत्राधीनाश्च देवताः ।
ते मंत्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद्ब्राह्मणदेवता ॥

परमेश्वरके वशमें तो सब संसार है और मंत्रोंके वशमें सब देवता हैं, वह मंत्र ब्राह्मणोंके आधीन हैं और हमारे मंत्रोंके आधीन सब देवता हैं. ऐसा मत जानो कि, हम पेट भरनेवाले ब्राह्मण हैं, महाराज हमको किसी वस्तुकी इच्छा नहीं केवल वरणही हमको

करदो सो हम सर्व मंत्रका जप करेंगे, जिससे इस वर्षके भीतर ही भीतर आपकी मनोकामना सिद्ध होय नहीं तो विद्याकी जीविकाही करनी छोडदेंगे, क्योंकि जिस विद्यामें सिद्धिही नहीं तो वह विद्याही क्या ? ऐसी कठिन प्रतिज्ञा जब उन ब्राह्मणोंने करी तव नंदरायजीने कहा हम आपके वरण भी करे देते हैं उसी समय नंदजीने स्नान करके सव ब्राह्मणोंके चरण धोये और वह चरणोदक सव मंदिरमें छिडकदिया और सुन्दर सुन्दर ऊनी, गलीचे, बनाती आसन बिछवा दिये, उनपर ब्राह्मणोंको बैठायके केशर, कपूर, कुंकुमादि सुगन्ध मलयागिरि चन्दनमें मिलाय सबके माथेपर तिलक कर दिये और सुन्दर डहडहे कमलके फूलोंकी माला और मालती, मदनबाण, चम्पा, चँमेली, कुन्द, केतकीके हार बनाय बनायके सबके कण्ठमें पहराय दिये और वरणकी सामग्री थालोंमें धर धर एक एकका क्रम क्रमसे पूजन कर, संकल्प कराय पुष्पोंकी वर्षा की. फिर रोली, अक्षत, जनेऊ, पान, सुपारी, बतासे, धोती, अँगोछा, उपरना, माला, सुन्दरी, गोमुखी, आसन, छत्री, पादुका, थाली, लोटा, घंटी, आचमनी, दक्षिणा इत्यादि सामग्री देकर संकल्प किया, सब ब्राह्मण वरण लेकर बोले कि, महाराज ! अब जप करनेके लिये स्थान बताओ, तब नंदरायजी बोले यमुना मैयाके तटसे अधिक और कौनसा उत्तम स्थान है, सब ब्राह्मण सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी सामग्री लेके यमुनाजीके निकट जाय परमेश्वरका ध्यान कर जप करने लगे, उसी समय नन्दजीने अनुचरोंको बुलाय अन्नकी गठरी बँधवाय बँधवाय और उत्तम उत्तम वस्त्र मँगाय सब ब्राह्मणोंके घर भिजवाय दिये, जिससे उन ब्राह्मणोंके बाल बच्चोंको कुछ परिश्रम और संकोच न होय और बहुत बहुतसी दूधवाली गायें सबके घर बँधवाय दीं चुगनेके लिये गाँव देदिये जिन धरतियोंमें बडी बडी ऊँची दूब और खोलने बाँधनेको ग्वालिये नियत करदिये और नित्य दूध दुहाजाय और औटाय औटायके मिश्री इलायची डाल डालकर नारायणके आगे भोग धरके ब्राह्मणोंके सन्मुख लावैं, सो वह उस अधौटे दूधको पीपीकर आनन्दसे रातको शयन करैं और प्रातःकाल उठ, देहकृत्य कर; सन्ध्यावन्दन पाठ पूजनसे निश्चिन्त हो, मिश्रीपडा छनाहुआ कच्चा दूध पीपीकर श्रीयमुनामहारानीके निकट जाय आसन बिछाय बिछाय ध्यान लगाकर दोपहर जप करैं इसी प्रकार जब दोचार मास बीते, तो महारानी यशोदाजीको गर्भ ज्ञात हुआ, जो गोपी नन्दरायके घर आवैं तो व्रजरानीजीका स्वरूप देखकर परस्पर बातैं करैं, अरी वीर ! हमारी व्रजरानीका मुख हमको कुछ पीला पीला दिखाई देताहै, कुचाग्र तुंग हो रहेहैं, कुछ कुछ कटिभी भारी सी दृष्टि आतीहै, शरीरभी शिथिल हो रहाहै, यह तो सब लक्षण पाँवभारीकेसे जान पडै हैं, ऐसे कान कानमें बात फैलने लगी, तब नन्दजी यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, नन्दरानी जो जो अपेक्षा करें नन्दजी उसी समय पूरी करतेथे और ज्योतिषी ब्राह्मणोंकी बातोंका प्रभाव नेत्रोंसे देख उनको बुलाया और उनको विशेष दक्षिणा दी, तब वह पण्डित प्रसन्न होकर ज्योतिषके बलसे विचार कर बोले कि, महाराज ! इस गर्भका प्रसव अष्टमासमें होगा, ब्राह्मणोंका यह वचन सुन नन्दजीने आठवें महीनेके लगते सुनन्दानामा अपनी बहनको

बुलालिया और अपने दास दासी सेवकोंको आज्ञा दी कि, सब अपने काममें सावधान रहो और शांडिल्य नाम अपने पुरोहितको बुलायके सब वृत्तान्त सुनादिया कि, जिस समय हम किसीको भेजें उसी समय कृपा करना, फिर सब सेवकोंको बुलाय राज्य-भवन सजवाया, जहाँ स्फटिकमणिकी भीत, वैदूर्य मणिके खम्भ, मूँगोंकी देहरी, हीरोंके सिरगोल, नील मणिके कंगूरे पुखराजकी छत, पन्ने फीरोजोंसे जडी हुई पृथ्वी, भीतोंमें पद्मरागमणि प्रकाश कर रहे, सुनहरी कमलके वेलवूटोंसे छत्ते तन रहीं, द्वारोंपर हरी, लाल, पीली, मखमल, अतलसके परदे पडे हैं, बाहिर सुन्दर चौक, रत्न जडित भूमि, ऊपर जरीके चंदोवे तने, उनमें सुन्दर सुराहीदार मोतियोंकी झालर लटक रहीं, गंडेदार समियाने रेशमके रस्सोंसे खिंचे हुए, सोने चाँदीके फूल जिनमें लगे हुए, चत्तोंमें हांडी झाड लटक रहे, भीतोंमें सुन्दर सुन्दर फानूस लगरहे, मणि माणिक आलोंमें धरे विराज रहे, भांति भांतिकी चित्रपटी लगरहीं, ऐसे मनोहर मन्दिरमें व्रजरानीजीका पलँग बिछाय दिया और नन्दरायजी राजभवनमें सोते परन्तु खटका व्रजरानीजीकी ओरका घडी घडी लगा रहै कि, परमेश्वर वह घडी कौनसी करैगा जिस समय बधाईकी बात अपने कानोंसे सुनूंगा, श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! भादोंका महीना आया व्रज-रानीजीका प्रकाश और अह्लाद वढा, जैसे स्फटिकमणिके घटमें धरा दीपक भीतर और बाहिर प्रकाश करता है, ऐसेही श्रीव्रजरानीजीके उदरमें श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द भीतर और बाहिर प्रकाश कररहे थे, इतनेमें परम सुखदायक भादोंवदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र आनकर उपस्थित हुवा, उस दिन यशोदाजीकी विशेष शिथिलता देखकर नन्द-रायजीने जो जो नान्दीमुख श्राद्ध और पितरोंके पूजनकी सामग्री जो जो पुराणोंमें लिखी है ब्राह्मणोंसे बूझकर पहिलेही परातोंमें धरके पुजारीजीको सौंपदीं, न जानिये किस समय प्रसव होगा तब देवपितरोंके पूजनमें देर होनी अच्छी नहीं, सब ब्राह्मण बोले हम अपने अपने घरही हैं, जब बुलाओगे उसी समय चले आवेंगे, यह कह ब्राह्मण तो अपने अपने घरको चले गये और नन्दजी सभामें जा बैठे. श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! आधी रातका समय आया और चन्द्रमाभी सम्पूर्ण कलाओंसे उदय हुवा, राजा परीक्षित् बोले कि, हे व्यासनन्दन! अष्टमीके दिन तो आधाही चन्द्रमा उदय होवे है फिर पूर्णचन्द्रमा कैसे उदय होगया? श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! चन्द्रमाने अपने मनमें विचारा कि, आज मेरे वंशमें परमपुरुष भगवान्‌ने जन्म लिया और मेरा मान रक्खा, यह आनन्द मानकर सम्पूर्ण प्रगट हुवा, दूसरे यह दरशाया कि, प्रथम रामावतारमें तो मर्यादापुरुषोत्तम हुए तो अनेक प्रकारकी आपत्ति भोगनी पडी, इसलिये कृष्णावतारमें कुछ मर्यादा नहीं रखनी चाहिये. इसलिये चन्द्रमाने मर्यादा छोडी कि, मेरे वंशमें जो श्रीकृष्ण उत्पन्न होंगे वहभी इसी प्रकार मर्यादाको त्याग देंगे भगवान्‌ने जिस समय पूर्ण चन्द्रमाको देखा उसी समय आप, पृथ्वी और ब्रह्मा रुद्रादिक सब देवता, नारदादिक ऋषि, व्यासादिक ब्रह्मर्षि, मुचुकुन्दादिक राजर्षि, उग्रसेन, अक्रूर, उद्धवादिक यादव,

युधिष्ठिरादिक पाण्डव, श्रीवसुदेव देवकीनन्द यशोदादिक मथुरा, गोकुलवासी, द्वारकावासी, इन्द्रप्रस्थवासी, ऊर्ध्वाधोमध्य त्रिलोकवासी सबके ऊपर कृपादृष्टि करके कोटिकन्दर्प लावण्य नराकृति रूप धारण कर परब्रह्मचिदानन्द भगवान् आनकर प्रथम देवकीके घर प्रगट हुए, फिर कुछ कालोपरान्त भगवान्‌की योगमाया कन्यारूप धारणकर यशोदाके घर उत्पन्न हुई जिसने यशोदापर मोहनी डाल उसको सुलादिया, उस समय वसुदेव कंसके भयसे पुत्रको लेके नन्दके घर आये यशोदाकी कन्याको तो उठा लिया और अपने पुत्रको उनके समीप सुलादिया । उसी समय यशोदाजीकी आँखें खुलगई तो उठ बैठीं और अपने पुत्रको देखा. तहां उत्प्रेक्षा करने लगी कि, हे विधाता! यह कैसा अद्भुत स्वरूप है? क्या श्याम कमलकी माला है? क्या नीलमणियोंका जाल है? क्या सौभाग्य सम्पत्तिका सिद्धांजन है? उस समय मणिमय जितने दीपक थे सो सब श्याम होगये. श्रीकृष्णने उस समय कहा कि, आज मैं सबका श्यामवर्ण कर दूंगा. सिवाय यशोदाके यह आनन्द और किसीके हाथ, न आया, क्योंकि सब पडे सो रहे थे, उस समय जैसे तुरन्तका हुवा बालक रोवै है भगवान् ऐसे रोने लगे तब ॐकार ॐकार शब्द मुखसे निकला मानो इस उत्सवका मंगलाचरण करने लगे, उस शब्दको सुनकर नन्दजीकी बहन सुनन्दा जागी, उसने उठकर एक कांसीकी थाली बजादी और मन्दिरके द्वारपर जाकर सांकल खडकाय दी तब नन्दराय सुनकर बोले कि, बीबी क्या है? तबहीं सुनन्दा बोली कि, भय्या तुमको बधाई है. शब्द सुनतेही नन्दराय तो आनन्द पूरित होगय, जैसे बहुत कालसे सूर्यका तपाहुवा सरोवर सूख जाताहै और आनन्दघन अमृतके वर्षनेसे पूरित होजाता है, ऐसेही बहुत दिनोंसे पुत्र न होनेसे नन्दरायजीका हृदय सूख रहा था, सो नन्दजीका हृदयसरोवर हर्षवर्षासे उमंग चला, उस शब्दसे ऐसा प्रिय आनन्द हुवा मानो आनन्द-मन्दाकिनीकी धारा हृदय सरोवरमें आनमिली, उसी समय नन्दरायजी सरोवरके घरके द्वारे आय अपने पुत्रकी उपेक्षा कर हैं, यह नेत्रोंका निर्मल फल है, वा निजवात्सल्य नीलसरोवरका नीलकमल है, वा व्रजेश्वरीके सौभाग्यका सार है वा जगन्मंगलोदयका आधार है वा किसी सिद्धजनलताका फूल है, वा आनन्दघनका मूल है वा सकल उपनिषद्‌कल्पलताका फल है. वा कालिन्दीका श्यामरूप जल है, ऐसा सुन्दर स्वरूप देखके नन्दजीके हृदयमें आनन्द भरआया. हे राजन्! पुत्रका जन्म होनेसे आनन्द सहित उदार चित्त नन्दरायजीने उसी समय स्नान कर पवित्र हो पीताम्बर पहन, शृंगार कर, आसनपर जा विराजे ॥ १ ॥ ज्योतिषी ब्राह्मणोंको बुलाय स्वस्तिवाचन कराय, मोतियोंसे चौक पुराय, उसपे सुवर्णका कलश स्थापन कर, गणेश, गौरी, वरुण इत्यादि देवता, पितृ, लोकपाल, दिक्‌पाल इन सबका संस्थापन करके जातकर्म संस्कारसे निश्चित हो, ब्राह्मण बोले कि, महाराज अब पूजन करो, तब नन्दजीने कहा पण्डितजी महाराज! हमारी ओरसे पूजन तुमहीं करदो, तब ब्राह्मण नन्दरायके हाथसे छुवाय छुवायके अर्घ्यादिक चन्दन, अक्षत, माला, पान, फूल पूगीफल, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा, नमस्कारपर्यन्त

षोडशोपचार सहित सब देवताओंका पूजन किया और नान्दीमुखसंज्ञक पितरोंका पूजन करके ब्राह्मण नन्दरायसे बोले कि, पूजन तो होचुका अब अपने हाथसे ब्राह्मणोंके तिलक करो, नन्दरायने केशर, कपूर, मिलाय मलयागिरिचन्दनसे सब ब्राह्मणोंके तिलक कर फूलोंकी माला पहिराय पीछे रत्न आभूषण दक्षिणा दे देके विनय की कि, इस समय मेरा मनोरथ तो अधिक दान देनेका है. तब ब्राह्मण बोले कि; महाराज ! आपके समान कौन धर्मज्ञ है. यह समय दान करनेहीका है, इतनेमें सुनन्दा भीतरसे बोली कि, नाल काटनेको बडी देर हुई जाय है, तुम शीघ्र पूजन करलो तो नाल छेदा जाय, सुनन्दाके वचन सुनतेही नन्दजी नारायणके मन्दिरमेंसे बाहिर निकल आये, वह सुन्दर नन्दालयका जो मणिजडित आँगन था उसके चारों ओर ऊँचे ऊँचे कदलीके वृक्ष आरोपण हो रहे थे, आम्रपात और पुष्पनकी बन्दनवार उनमें लटक रहीथीं ऊपर सुंदर जरीका चंदोवा तन रहा था, बीच बीचमें मोतियोंकी झालरें शोभा देरही थीं, उसके नीचे सुन्दर वेदी बन रही थी और सब मंगलीक सामग्री उसके समीप धरी थीं, तहां सोनेके पटे बिछेहुए उनपर भाँति भाँतिके आसन शोभा देरहे थे, जिनपर पण्डित, पुरोहित, गुरुजन, वृद्धजन, महात्मालोग विराजमान थे और चांदनीके बिछौनेपर बराबरके भाई बन्धु, गोप, ग्वाल, आन आनके बैठने लगे, उस समय उत्साह भरे नन्दरायभी वेदीपर आन बैठे और दान करने लगे ॥ २ ॥ दो लाख गायें रत्नसमूहसहित ब्राह्मणोंको दान करके दीं, स्वर्णसे जिनके सींग मढे हुये. तांबेसे पीठ, चांदीसे खुर, पूँछोंमें रत्न गुंथेहुए, जरीकी झूलें पडीं, बछडे जिनके संग सबकी सब दूध देनेवाली दूसरे ब्यांन और पहिलोन ब्यांनकी थीं और नन्दरायजीने तो इतना काम और भी अधिक किया कि, गायोंके चरनेके लिये तो गांव और चरानेके लिये ग्वालिये और दुहनेवाले निरालेही नौकर रखदिये. तब दान करते करते नन्दरायजी बोले कि, जो आज मैं चक्रवर्ती राजा होता तो सुमेरुका भी दान करदेता, तब ब्राह्मण कहने लगे कि, महाराज ! तिलपर्वत भी सुमेरुकीसम तुल्य होते हैं, उसीसमय सेवकोंको बुलाकर नन्दजीने आज्ञा दी कि, सात पर्वत तिलके बनादो उन्होंने उसी समय सातपर्वत बनाय ऊपरसे सुनहरी रंगका वस्त्र उढाय दिया. उनके भी-तर मणि, माणिक, मोती, हीरे और अनेक अनेक प्रकारके रत्न भर भरके सातों पर्वत ब्राह्मणोंको दान कर दिये ॥ ३ ॥ कालसे तो पृथ्वी पदार्थ शुद्ध होताहै, स्नान करनेसे शरीरशुद्धि होतीहै, धोनेसे वस्त्रादिक शुद्ध होता है, संस्कारसे गर्भादिक शुद्ध होताहै, तप करनेसे इंद्रियोंकी शुद्धि होतीहै, यज्ञ करनेसे ब्राह्मणोंकी शुद्धि होती है, दानकरनेसे धनकी शुद्धि होतीहै, संतोषसे मनकी शुद्धि होती है और आत्मविद्यासे आत्माकी शुद्धि होतीहै. यह विचार नन्दरायजीने अनेक प्रकारके दानदिये ॥ ४ ॥ ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढनेलगे, पुराणवक्ता पुराण बाँचने लगे, गायक वंशावली बखानने लगे, भाट बन्दीजन यश वर्णन करने लगे, गायक गुण गाने लगे और भेरी नगाडे जहां तहां बजने लगे, जब नन्दरायने बहुत दान दिये तब ब्राह्मणलोग आशीर्वाद देने लगे तब नन्दजी बोले कि, महाराज !

मुझको आशीर्वाद दिया सो सफल हुवा अब इस बालकको आशीर्वाद दो, तब सब ब्राह्मणोंने मिलकर यह आशीर्वाद दिया॥श्लोक॥"मार्कंडेयाचेरायुरस्तु सुखदस्तेजस्तु भानोरिव कल्पद्रोरिव कामदत्वमवितः कान्तिः सुधांशोरिव ॥ त्वत्पुण्यैर्व्रजवासिभाग्यनिचयादाशीर्वचोभिस्तुते नन्द श्रीव्रजराज संततमयं पुत्रस्तवास्तां सुखी" अर्थ-हे व्रजराज नन्दराय ! आपके पुत्रकी मार्कण्डेय ऋषिकेसी तो आयु होय, सूर्यकेसा तेज होय, कल्पवृक्षकेसा इच्छापूरक स्वभाव होय, चन्द्रमाकेसी कान्ति होय, तुम्हारे पुण्यके प्रभावसे, सब व्रजवासियोंके भाग्य समूहसे और हमारे आशीर्वादसे तुम्हारा पुत्र सदा सुखी रहै, ॥ ५ ॥ व्रजमें द्वार द्वार आंगन आंगन घर घर सब झाड बुहार रहेहैं और बजारोंमें गलियोंमें घाटोंमें बाटोंमें, रजवाहोंमें, चौराहोंमें, बुहारी लगाकर गुलावके जलसे केवडेके जलसे, सेवतीके जलसे, खसके जलसे चन्दनके जलसे, छिरकने लगे. सब गोकुल और महावन नन्दगाँव सुगन्धसे सुगन्धित करदिया, सब अपने अपने भवनोंकी शोभा निराले ही निराले ढंगकी बनादी सुन्दरस्फटिक मणिके द्वार, सुवर्णके किवाँड, वैडूर्यकी देहरी, मूंगोंकी चौखट, जिनमें पुष्प विखररहे, आमके पत्ते और फूलोंकी बन्दनवारें जहां तहां लटकरहीं, सुवर्णके कलश कलशियें द्वार द्वार पर विज्जुछटासी चमक रहीं, ध्वजास्तंभ गडरहे हैं, जिनमें चित्र विचित्र रंग ध्वजा पताका फहराय रही हैं मोतियोंकी माला जहाँ तहाँ लटक रही हैं; मानो भवन भवनमें पुत्रजन्मोत्सव हो रहा है ॥ ६ ॥ जबही ग्वालियें गाय बछडोंको लेलेकर वनको चले, उसी समय एक गोपने वृक्षपर चढकर पिछौरिया घुमाकर बोला, अरे भैया ! आज कोई व्रजवासी वनको मत जाना हमारे नन्दरायजीके पुत्रका जन्म हुवाहै, यह बात सुनके सब ग्वाल बाल आनन्दमें मग्न होगये और सब अपनी अपनी गायोंका शृंगार बनाने लगे पहिले तो छोटी छोटी गाय, बछडे, बछियाओंको हलदी तेल लगाकर उबटन किया. फिर गेरू, मेंहदी, लाख, हरतालसे रँगा और बीच बीचमें हलदी और रोलीके थापे लगाये, जंगाल और सिंगरफसे उनके सींगरँगे और मोरछल जिनमें लटक रहे ऐसी शोभायमान झूलें उढायदीं, मोरछलका कलँगी न्यारीही पहिराय दीं, गलेमें घण्टोंकी मालाका शब्द निरालाही सुनाई आता था और कोई २ गोप अपने अपने घरोंसे सुनहरी आभूषणोंके डिब्बे और उत्तम उत्तम वस्त्रोंकी गठरी उठालाये, मोहनमाला, चन्दनहार, हमेल, पचलडी, चम्पाकली,धुकधुकी,बछडे, बछियाओंके गलेमें डालदिये, पाँवोंमें पावटे, धुंघरू, कडे झाँझन, पहराय दीं और ऊपरसे शाल दुसाले जरीकी ओढनी उढायदीं । इसप्रकार सबने अपनी अपनी गायोंका शृंगार किया ॥ ७ ॥ सब गोप ग्वाल सुन्दर सुन्दर सूही वैजनी ऐंठदार पागें बांध बांध और दोचार पेंच गलेमें डाल सुन्दर सुन्दर जामें पहरलिये किसी किसीने काछ बांध लिये किसीकी लटकवां धोती, रेशमी दुपट्टे ओढालिये और भांति भांतिके आभूषण सज सुन्दर शृंगार बनाये यमुनाकी रज मस्तक चढाये, कन्धोंपर तलवारें धरे, कानोंमें फूलोंके तुर्रे उरसे हुए,शिरमें मोरके पंखोंकी कलंगी धरे,भारी भारी लट्ठ लिये,पानसे मुख लाल करे, थालोंमें भेंटें लिये गायोंको आगे आगे नचाते कुदाते गाते

बजाते हँसते हँसाते,नन्दरायजीको बधाई देनेके लिये चले । उस समय नन्दजीके द्वारपर बडी भारी भीर हुई, उस छबिको देख छबिभी लज्जाकी मारी एक कोनेमें छिपी हुई उस आनन्दको देख रही थी. इस उत्सवको देखनेके लिये स्वर्गसे ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेरादिक अनेक देवता अपनी अपनी स्त्रियोंको संगलिये मनुष्यरूप धारण किये गोप ग्वालोंमें आनमिले और सब नन्दके द्वारपर पुकार २ बार २ यह कहते थे कि, आज नन्दघर बधाई है. उस समय नन्दजी ऐसे मग्न थे कि, अंगमें फूले नहीं समातेथे और सबके हाथ पकड़ पकड़ अत्यन्त आदर सत्कारसे कुशलक्षेम बूझबूझ मखमलके बिछौनोंपर बिठातेजाते थे और बारबार सबको पान मिठाई दे देकर यह कहते थे कि, यह सब आपहीका प्रताप है दूसरे दिन यह शुभ सम्वाद समीप समीपके सब ग्रामोंमें भी पहुँच गया कि, नन्दजीके पुत्रका जन्म हुवा. यह शुभसमाचार सुन सब व्रजवासी परमानन्द हो होकर इन इन ग्रामोंसे हाथौरा, रीठा, कारब, सवल, लौहवन, महावन, राधाकुण्ड, बरसाना, गोपालपुर, विसौली, जसौली, विजौली, रसौली, मांठ, आंट, आढस, सुनर, बसई, छटीकरा, नरी, सेमरी, परासौली, कोठवन, मधुबन, बढैन, करहैला, नन्दीश्वर, नन्दगांव,बनेई,ऊंचा गांव,चिकसौली,सुमहरा,कामवन,वृन्दावन,दीघम,होली,इत्यादि और अनेक गांवोंसे भेंट लेलेकर चले तो वृद्ध वृद्ध जो गोप थे उन्होंने भी अपना अपना शृंगार किया और युवा बालकोंका तो कहनाही क्या है, सुवर्णके थालोंमें हीरे, मणि, रत्न, पन्ना, पुखराज,हँसली,खंडुवे, कण्ठी, माला, कुरते, टोपी, रोली, चन्दन,पान, मिठाई,मेवा,श्रीफलधर धर कर सब व्रजवासी ढप, ढोल, झांझ, मृदंग, चंग, मुहचंग, उपंग, बजाते और गीत गाते धूम धाम मचाते नन्दरायजीके द्वारपर आये और उनको दण्डवत् प्रणाम कर करके भेंटैं उनके आगे धरीं. उस समय नन्दराय उनको देख देख प्रसन्न हो हो बड़े बड़े गोपोंसे मिल मिल सबको आदर सन्मानसे आसन दे देकर बैठालते थे. सब गोप बोले कि, नन्दरायजी हम आपके भाग्यकी बडाई नहीं कर सक्ते आज आपका पूर्वपुण्य उदय हुवा, तुम बडे धन्यभागी हो, तुमने हमारे मनके मनोरथ सिद्ध किये और आज हमारे मनकसा समाज सजा है, नन्दरायजी बोले कि, भैया ! यह सब तुमही लोगोंके पुण्यका प्रभावहै, नहीं तो बुढापेमें मेरा ऐसा भाग्य कहांथा जो यह परमानन्द प्राप्त हुवा । कोई केवडा छिडक रहा है, कोई गुलाब छिडक रहाहै, कोई पुष्पोंकी माला पहिरावै है, कोई केशर और चन्दन लगावै है, मानो त्रिलोकीका आनन्द नन्दकेही घर छाय रहा है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब व्रजबालाओंने सुना कि, हमारी व्रजेश्वरीके पुत्र उत्पन्न हुवा है तब सब गोपियांने सुन्दर सुन्दर शृंगार बनाय, मेहँदी, महावर, रचाय नवीन नवीन केशर कस्तूरी मिलाय, मस्तकपर तिलक लगाये, फिर पीछे रेशमी वस्त्र आभूषण पहन नेत्रोंमें अंजन आंज नखशिखसे अलंकृत हुई ॥ ९ ॥ केशर मुखारविन्दपर मली हुई हैं कटि लचकरही है, नितम्ब जिनके पुष्ट हैं, कुच चलायमान है, भेंटें लेलेकर नन्दरायजीके मन्दिरको चलनेकी सब सुन्दरी अभिलाषा कर रहीं थी ॥ १० ॥ उज्ज्वल मणियोंके

मुझको आशीर्वाद दिया सो सफल हुवा अब इस बालकको आशीर्वाद दो, तब सब ब्राह्मणोंने मिलकर यह आशर्वाद दिया॥श्लोक॥"मार्कंडेयाचिरायुरस्तु सुखदस्तेजस्तु भानोरिव कल्पद्रोरिव कामदत्वमवितः कान्तिः सुधांशोरिव ॥ त्वत्पुण्यैर्व्रजवासिभाग्यनिचयादाशीर्वचोभिस्तुते नन्द श्रीव्रजराज संततमयं पुत्रस्तवास्तां सुखी" अर्थ-हे व्रजराज नन्दराय ! आपके पुत्रकी मार्कण्डेय ऋषिकेसी तो आयु होय, सूर्यकेसा तेज होय, कल्पवृक्षकेसा इच्छापूरक स्वभाव होय, चन्द्रमाकेसी कान्ति होय, तुम्हारे पुण्यके प्रभावसे, सब ब्रजवासियोंके भाग्य समूहसे और हमारे आशीर्वादसे तुम्हारा पुत्र सदा सुखी रहै, ॥ ५ ॥ ब्रजमें द्वार द्वार आंगन आंगन घर घर सब झाड बुहार रहेहैं और बजारोंमें गलियोंमें घाटोंमें बाटोंमें, रजवाहोंमें, चौराहोंमें, बुहारी लगाकर गुलावके जलसे केवडेके जलसे, सेवतीके जलसे, खसके जलसे चन्दनके जलसे, छिरकने लगे. सब गोकुल और महावन नन्दगाँव सुगन्धसे सुगन्धित करदिया, सब अपने अपने भवनोंकी शोभा निराले ही निराले ढंगकी बनादी सुन्दरस्फटिक मणिके द्वार, सुवर्णके किवाँड, वैडूर्यकी देहरी, मूंगोंकी चौखट, जिनमें पुष्प बिखररहे, आमके पत्ते और फूलोंकी बन्दनवारें जहां तहां लटकरहीं, सुवर्णके कलश कलशियें द्वार द्वार पर विज्जुछटासी चमक रहीं, ध्वजास्तंभ गडरहे हैं, जिनमें चित्र विचित्र रंग ध्वजा पताका फहराय रही हैं मोतियोंकी माला जहाँ तहाँ लटक रही हैं; मानो भवन भवनमें पुत्रजन्मोत्सव हो रहा है ॥ ६ ॥ जबही ग्वालियें गाय बछडोंको लेलेकर वनको चले, उसी समय एक गोपने वृक्षपर चढकर पिछौरिया घुमाकर बोला, अरे भैया ! आज कोई ब्रजवासी वनको मत जाना हमारे नन्दरायजीके पुत्रका जन्म हुवाहै, यह बात सुनके सब ग्वाल बाल आनन्दमें मग्न होगये और सब अपनी अपनी गायोंका शृंगार बनाने लगे पहिले तो छोटी छोटी गाय, बछडे, बछियाओंको हलदी तेल लगाकर उबटन किया. फिर गेरू, मेंहदी, लाख, हरतालसे रँगा और बीच बीचमें हलदी और रोलीके थापे लगाये, जंगाल और सिंगरफसे उनके सींगरँगे और मोरछल जिनमें लटक रहे ऐसी शोभायमान झूलें उढायदीं, मोरछलकी कलँगी न्यारीही पहिराय दीं, गलेमें घण्टोंकी मालाका शब्द निरालाही सुनाई आता था और कोई २ गोप अपने अपने घरोंसे सुनहरी आभूषणोंके डिब्बे और उत्तम उत्तम वस्त्रोंकी गठरी उठालाये, मोहनमाला, चन्दनहार, हमेल, पचलडी, चम्पाकली, धुकधुकी, बछडे, बछियाओंके गलेमें डालदिये, पाँवोंमें पावटे, घुंघरू, कडे झाँझन, पहराय दीं और ऊपरसे शाल दुसाले जरीकी ओढनी उढायदीं । इसप्रकार सबने अपनी अपनी गायोंका शृंगार किया ॥ ७ ॥ सब गोप ग्वाल सुन्दर सुन्दर सूही वैजनी ऐंठदार पागें बांध बांध और दोचार पेंच गलेमें डाल सुन्दर सुन्दर जामें पहरलिये किसी किसीने काछ बांध लिये किसीकी लटकवां धोती, रेशमी दुपट्टे ओढालिये और भाँति भाँतिके आभूषण सज सुन्दर शृंगार बनाये यमुनाकी रज मस्तक चढाये, कन्धोंपर तलवारें धरे, कानोंमें फूलोंके तुर्रे उरसे हुए, शिरमें मोरके पंखोंकी कलंगी धरे, भारी भारी लठ लिये, पानसे मुख लाल करे, थालोंमें भेंटें लिये गायोंको आगे आगे नचाते कुदाते गाते

बजाते हँसते हँसाते, नन्दरायजीको बधाई देनेके लिये चले । उस समय नन्दजीके द्वारपर बडी भारी भीर हुई, उस छबिको देख छबिभी लज्जाकी मारी एक कोनेमें छिपी हुई उस आनन्दको देख रही थी. इस उत्सवको देखनेके लिये स्वर्गसे ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेरादिक अनेक देवता अपनी अपनी स्त्रियोंको संगलिये मनुष्यरूप धारण किये गोप ग्वालोंमें आनमिले और सब नन्दके द्वारपर पुकार २ बार २ यह कहते थे कि, आज नन्दघर बधाई है. उस समय नन्दजी ऐसे मग्न थे कि, अंगमें फूले नहीं समातेथे और सबके हाथ पकड़ पकड़ अत्यन्त आदर सत्कारसे कुशलक्षेम बूझबूझ मखमलके बिछौनोंपर बिठातेजाते थे और बारबार सबको पान मिठाई दे देकर यह कहते थे कि, यह सब आपहीका प्रताप है दूसरे दिन यह शुभ सम्वाद समीप समीपके सब ग्रामोंमें भी पहुँच गया कि, नन्दजीके पुत्रका जन्म हुवा. यह शुभसमाचार सुन सब व्रजवासी परमानन्द हो होकर इन इन ग्रामोंसे हाथौरा, रीठा, कारब, सबल, लौहवन, महावन, राधाकुण्ड, बरसाना, गोपालपुर, बिसौली, जसौली, बिजौली, रसौली, मांठ, आंट, आढस, सुनर, बसई, छटीकरा, नरी, सेमरी, परासौली, कोठवन, मधुबन, बढैन, करहैला, नन्दीश्वर, नन्दगांव, बनेई, ऊंचा गांव, चिकसौली, सुमहरा, कामवन, वृन्दावन, दीघम, होली, इत्यादि और अनेक गांवोंसे भेंट लेलेकर चले तो वृद्ध वृद्ध जो गोप थे उन्होंने भी अपना अपना शृंगार किया और युवा बालकोंका तो कहनाही क्या है, सुवर्णके थालोंमें हीरे, मणि, रत्न, पन्ना पुखराज, हँसली, खंडुवे, कण्ठी, माला, कुरते, टोपी, रोली, चन्दन, पान, मिठाई, मेवा, श्रीफल धर धर कर सब व्रजवासी ढप, ढोल, झांझ, मृदंग, चंग, मुहचंग, उपंग, बजाते और गीत गाते धूम धाम मचाते नन्दरायजीके द्वारपर आये और उनको दण्डवत् प्रणाम कर करके भेंटें उनके आगे धरीं. उस समय नन्दराय उनको देख देख प्रसन्न हो हो बड़े बड़े गोपोंसे मिल मिल सबको आदर सन्मानसे आसन दे देकर बैठालते थे. सब गोप बोले कि, नन्दरायजी हम आपके भाग्यकी बडाई नहीं कर सक्ते आज आपका पूर्वपुण्य उदय हुवा, तुम बडे धन्यभागी हो, तुमने हमारे मनके मनोरथ सिद्ध किये और आज हमारे मनकसा समाज सजा है, नन्दरायजी बोले कि, भैया ! यह सब तुमही लोगोंके पुण्यका प्रभावहै, नहीं तो बुढापेमें मेरा ऐसा भाग्य कहांथा जो यह परमानन्द प्राप्त हुवा । कोई केवडा छिडक रहा है, कोई गुलाब छिडक रहाहै, कोई पुष्पोंकी माला पहिरावै है, कोई केशर और चन्दन लगावै है, मानो त्रिलोकीका आनन्द नन्दकेही घर छाय रहा है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब व्रजबालाओंने सुना कि, हमारी व्रजेश्वरीके पुत्र उत्पन्न हुवा है तब सब गोपियांने सुन्दर सुन्दर शृंगार बनाय, मेहँदी, महावर, रचाय नवीन नवीन केशर कस्तूरी मिलाय, मस्तकपर तिलक लगाये, फिर पीछे रेशमी वस्त्र आभूषण पहन नेत्रोंमें अंजन आंज नखशिखसे अलंकृत हुई ॥ ९ ॥ केशर मुखारविन्दपर मली हुई हैं कटि लचकरही है, नितम्ब जिनके पुष्ट हैं, कुच चलायमान है, भेंटें लेलेकर नन्दरायजीके मन्दिरको चलनेकी सब सुन्दरी अभिलाषा कर रहीं थी ॥ १० ॥ उज्ज्वल मणियोंके

जडाऊ कुण्डल कानोंमें शोभायमान हैं, अतिसुन्दर मुक्ताओंके हार कुचोंके वीचमें लटक-रहे हैं, मानों दो पर्वतोंके बीचमें गंगाकी धार वह रहीहै. हाथोंमें कंकण, चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये, कमलसेभी कोमल जिनके चरण उनमें अनवट, विछुवे, नूपुर पगपान, पहिनरहीं, जव एक संग सव मिलकर पग उठावें उस समय पायल और नूपुरोंकी झन-कार इस प्रकार हो मानों आनन्दमय घन गर्जै हैं, उस शब्दसे दशों दिशाओंका असंगल दूरहोता चलाजाताहै और क्षीणकटिकी लचकसे जो शरीर कम्पायमान होताथा तो जूंडसे मालती और मदनवाणके फूलोंके हार खसिखसिकर उनके चरणोंमें गिरतेथेसो वह हार आपके आपहीं गिरते थे केश उन चरणोंकी अद्भुत शोभा देख देखकर रीझते थे और बार बार प्रसन्न हो होकर पुष्पोंके हार उनपर चढ़ाते थे और दूसरा प्रयोजन यह भी था कि, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ थे यही हमको श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करा-नेके लिये चलतेहैं, ऐसी २ गोपियोंके झुण्डकेझुण्ड नन्दजीके घरको चले जाते हैं उस समयकी शोभाको कौन कवि वर्णन करसक्ता है ॥ ११ ॥ तब सब गोपिका नन्दरायजीके आँगनमें आनकर श्रीकृष्णचन्द्रको आशीर्वाद देने लगीं. हे कृष्ण ! तुम चिरंजीव रहो चिरंजीव रहो और हमारी वहुतदिनोंतक रक्षा करो. इस प्रकार बालकको आशीष देकर हलदीके चूर्णमें तैल पानी मिलाय परस्पर छिडकती छिडकाती गीत गाती आँगनमें केशर और चन्दनके रंगकी झारी और पिचकारी लिये धूम धाम मचारहीं थीं ॥ १२ ॥ विश्वे-श्वर विश्वभावन भगवान्के व्रजमें आतेही मनुष्योंके मनमें परमोत्सव बढ़ा और मन्दिर मन्दिरमें भाँति भाँतिके वाजे बजने लगे, सव गोपिका श्यामसुन्दरका मुखारविन्द देख देख आनन्द हो हो न्योछावर कर नन्दरानीसे कह रहींथीं कि, हे यशोदा ! तेरे पुत्रके तो चक्रवर्तीकेसे लक्षण हैं, चक्रादिक चिह्नोंके छिपानेके लिये अपने हाथोंकी मुट्ठी बांधलीहै, तैंने पूर्व जन्ममें भगवान्की बडी सेवा करी है जो ऐसा मनोहर पुत्र पाया है. यशोदा सवके पाओं पड पड कर कहती थी कि, इसमें मेरा क्या है यह सब तुम्हाराही पुण्य है, सब गोपी आशीस देतीहैं कि, सदा सुहागन रहु और तेरा पुत्र युग युग जिये ॥ १३ ॥ व्रजवासियोंने उस दिन अत्यन्त प्रसन्न हो होकर घी, दूध, दही, माखन, जल, हलदी, मिला मिलाकर दधिकांदोंका प्रवन्ध किया, प्रथम नन्दरायको बुलाकर उनके ऊपर छिड़का फिर परस्पर ऐसा खेल मचा कि, जहां देखो तहां दधि माखनहीकी रेल पेल होरही थी, इस आनन्दको देवता विमानोंपर बैठे देख देखकर कहरहे थे कि, गोकुलवासियोंका धन्य भाग्य है, जिन परमपुरुष परमात्माका दर्शन शिव सनकादिकके ध्यानमें महाकठिनतासे आता है वह नन्दके घर जन्म लेकर व्रजवासियोंको आनन्द दिखारहे हैं और देवांगना पछिताय पछिताय कहरहीं थीं कि, हाय आज हम नन्दरायके घरकी दासीभी न हुई जो इस उत्सवके सुखको समीपसे देखकर अपनेमनको प्रसन्नकरतीं, इसप्रकार दधिकांदोंके उत्स-वमें सव व्रजवासी विह्वल होरहे थे ॥ १४ ॥ अतिउदारचित्त नन्दरायजीने सूत, मागध, बन्दीजन और जो जो गुणीजन गानेवजाने वाले थे सबको वस्त्र, आभूषण, गाय द्रव्यदान

दिया और नन्दरायसे सब वृद्धवृद्ध जनोंने कहा हे मित्र नन्द ! आज तो नाचनेका दिन है हमारे संग नाचलो, सो सबने नन्दजीका हाथ पकडकर इनको उठाया और सब व्रजवासी मग्न हो होकर नन्दकेसंग नाचने लगे और गोपियें बाजे बजायकर गीत गाने लगीं उस समयकी शोभाको देखकर सरस्वती हकीवकीसी हो चित्रकी समान होगई, फिर और कवियोंका क्या सामर्थ्य है जो उस मनभावनी सोहावनी शोभाका वर्णन करसकें ? ॥ १५ ॥ नन्दरायजी उदारचित्त पुत्रके कल्याणके लिये विष्णु भगवान्‌की आराधना करते थे और बारम्बार यह वरदान मांगतेथे कि हे नाथ ! मुझपर प्रसन्नहो और यह मेरा बालक चिरंजीव रहै इसीलिये नन्दजीके समीप जो जो गुणीजन आन आन कर जिस जिस वस्तुकी कामना करते थे, उनको वही वस्तु देदेकर उनकी अभिलाषा पूर्ण करते थे और यथायोग्य उनका पूजनभी करते थे, नन्दजी उठनेको थे इतनेमें एक सूत आया, नन्दजी बोले कि, तुम कौन हो ? वह बोला कि, मैं आपके घरका सूत हूं आपको आशीर्वाद देनेके लिये आया हूं,

श्लोक-अनाघ्रातं भृङ्गैरनपहृतसौगंध्यमनिलैरनुत्पन्नं नीरे ह्यनपहतमूर्मीगणशरैः ॥ अदृष्टं केनापि क्व च न च दिवानंदसरसि यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत् ॥

अर्थ-महारानी यशोदाजीकी गोदमें एक अद्भुत श्यामरंगका कमल उत्पन्न हुवा है, वह कमल कैसा है जिसको भौरोंने अभीतक नहीं सूंघा और पवनसे उसकी सुगन्धिभी नहीं हरीगई और वह कमल जलसे उत्पन्न नहीं हुवा आनन्दसरोवरसे प्रगट हुवा है और लहरोंसे भी कभी ताडित नहीं हुवा और न अभीतक किसीने देखा, सो वह अद्भुत श्याम कमल श्रीयशोदामहारानीकी गोदमें है ॥ यह सुन नन्दरायजीने बहुत प्रसन्न होकर उसका मनोरथ पूर्ण किया और हाथीपर चढाकर बिदा किया; उसीसमय एक याचक और आया उसको देख नन्दजीने बूझा भाई तुम कौन हो ? कहांसे आये ? याचक बोला कि, महाराज ! मैं गोवर्द्धनवासी आपके घरका दास हूं, नन्दजी बोले कि, तुमको जिस वस्तुकी इच्छा होय सो माँगो. याचक बोला क्या माँगू !

दोहा-जो कुछ धन पायो यहाँ, सो सब दियो लुटाय ।
धनकी कुछ इच्छा नहीं, कृष्णदर्शकी चाय ॥

नन्दरायजी बोले कि, फिर क्या इच्छा है ? याचक बोला कि, मेरा मनोरथ तो यह था कि, जिसदिन नन्दलाल घुटनो घुटनो चलकर मेरे समीप आनकर मुझको दर्शन देंगे उसदिन मेरी अभिलाषा पूर्ण होगी, यह सुन नन्दजीने प्रसन्न होकर अपने सेवकोंसे कहा कि, राजभवनमें इनके ठहरनेको स्थान दे दो, अनुचरोंने उनकी आज्ञानुसार उसको स्थान बताया और जो कोई कृष्णदर्शनाभिलाषी वहां आया, उसकोभी उसी मन्दिरमें ठहराया। यह रहस्य देख महादेवजीनेभी विचार किया कि; हमारे चलनेकाभी यही समय है, आज नन्दरायजी सबके मनकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं सो आज हमारीभी अभिलाषा पूर्ण करेंगे, यह विचार योगीका वेष धार, नन्दीपर सवार हो नन्दके द्वारपर नन्दनन्दनके दर्श-

नको आये, अंगपर विभूति चढी हुई है, मूंजकी कौंधनी कटिमें कसी हुई है हाथमें त्रिशूल धारण कियेहैं एक हाथमें डमरू लिये हैं, चारों ओरसे गोप घिर आय दंडवत् प्रणामकर हाथ जोडकर बोले कि, बाबाजी महाराज ! कहांसे आना हुवा ! किस वस्तुकी इच्छा है ? मौनव्रत धारण किये खडे रहे ! इनका अद्भुत स्वरूप देखकर सब गोप ग्वाल उनका हाथ पकर भीतर राजभवनमें लेगये जहां सब गोपी बैठा थीं और नन्दरानी अपने पुत्रको खिला रहीं थीं, कोई कोई गोपिका तो शिवका वेष देख डरकी मारी भाग गईं और कुछ गोपिकाओंने उनको घेरघार नन्दरानीके द्वारपर लेजाकर खडा कर दिया, नन्द-रानी उनके रूपको निहार सुनन्दादिक गोपियोंसे पुकारकर बोलीं:-

भजन-देखोरी एक बाङ्का योगी द्वार मेरे आया हैरी ॥
अंग विभूति गले मृगछाला शेषनाग लिपटाया हैरी ।
माथे जाके तिलक चंद्रमा शिर पर जटा बढाया हैरी॥
लेभिक्षा निकली नँदरानी मुतियन थाल भराया हैरी ।
लेभिक्षा योगी जाओ आसनको मेरा गोपाल डराया हैरी ॥
नाचहिये तेरी दौलत दुनिया नाचहिये तेरी माया हैरी ।
अपने सुतका मुख दिखलादे योगी दर्शनको आया हैरी ॥
लेगोपाल निकली नंदरानी योगीने दर्शन पाया हैरी ।
पाँचबार परिक्रमा करके सींगीनाद बजाया हैरी ॥

उस समय ऐसा प्रेम बढा कि, नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली, गद्गद कण्ठ हो-गया, रोमांच हो आये और बारम्वार अपनी जटाओंको उस बालकके पाओंसे लगा लगा कर नाचनेलगे और प्रेममें मग्न हो उस आँगनमें लोटने लगे. इनकी यह दशा देख ब्रज-वासी आन आन कर नन्दरायजीसे कहने लगे:-

कवित्त-अहो ब्रजराज कोउ योगी वेषधारे आज, सुन सुतजन्म आयो यशुमाति भौन है ॥ मोती मणि माणिक रु कंचन ना रत्न लेत हय गज भूमि ग्राम लेत हमसों न है ॥ नगर अहोटे नाहिं भूमिमाहिं लोटै परो, अलख उचारे नाम बूझौतौ है मौनहै ॥ बालकके पांवसे जटानको लगायनाचै, योगी तीन आँखको कहांसे आयो कौनहै ॥

यह सुन नन्दराय भवनमें जाय योगीको मनाय लाये और सभामें बैठाय सबको सुनायदिया कि, यह हमारे स्वामी शिवजी महाराज हैं, आज हमारा घर पवित्र करनेके लिये आये हैं, नन्दके भाग्यकी बडाई बखान शिवने यह आशीर्वाद दिया:-

श्लोक-जयतिजयतिपुत्रस्ते सदानन्दमूर्तिर्जगदघहरकीर्तिः
सौख्यसौभाग्यमूर्तिः ॥ सकलरसरसालः प्रेमपीयूष-
जालो ब्रजजनसुखपालो नन्दगोपालबालः ॥

अर्थ-सदा आनन्दकी मूर्ति, जगत्के पाप दूर करनेकी कीर्तिवाले साक्षात् सुख और सौभाग्यका स्वरूप, सम्पूर्णरसकी खान, प्रेमामृतके निधान, ब्रजवासियोंके पुण्यपालक नन्दगोपालजी तुम्हारे पुत्रकी जयजयकार हो यह कह चलदिये. इतनी देरमें और बहुत से याचकोंकी भीर होगई, तब नन्दरायने भण्डारीसे कहा कि, आज सब याचकोंको अयाचक करदो जो फिर कहीं माँगनेकी इच्छा न करैं, भण्डारीने कोपका धन लुटाना आरम्भ किया, उस समय संख्यादिक द्रव्यने कुबेरका आश्रय लिया सुमेरुने सब देवताओंकी शरण ली, डरके मारे कामधेनु 'कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, स्वर्गको चले गये, और नारायण अपनी लक्ष्मीको लेके क्षीरसागरमें जा छिपे कि,कहीं मेरी लक्ष्मीको नन्दरायजी दान न करदें, श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! नन्दराय ऐसे दानमें मग्न होगये कि, जिनको अपने तनुकीभी सुधि न रही सर्वस्वही दान कर दिया ॥

सवैया-पूतसपूत जन्यो यशुदा, इतनी सुनकै वसुधा सब दौरी ।
देवनके सु अनन्द भयो, सुन धावत गावत मंगल गौरी ॥
नन्द कछू इतनो जु दियो, घनश्याम कुबेरहुकी मति बौरी ।
ब्रज देखतही जु लुटाय लियो, न बची बछिया छछिया न पिछौरी ॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि, हे कृपासिन्धो ! नन्दजीने इस प्रकार दान क्यों किया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब नन्दजीके घर जगदाधार श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दने आनकर अवतार लिया तब नन्दजीने अपने मनमें विचारा कि त्रिलोकीकी सम्पदा तो मेरे घर आगई फिर मुझको संसारके धनसे क्या प्रयोजन ? इसलिये नन्दजीने उदारता करके सब संसारका धन दान करदिया और अपने मनमें कुछ अभिमान न किया और अपनी सामर्थ्यकी समान सबका आदर सन्मानभी किया, परन्तु इसी प्रयोजनसे कि सर्वान्तर्यामी विष्णु भगवान् प्रसन्न हांय और इस बालककी दीर्घायु करें ॥ १६ ॥ नन्दरायजीके घर सब ब्रजकी बहू और बेटी आई परन्तु रोहिणीजी नहीं आई क्योंकि इनके पति मथुरामें थे, लिखा है कि, जिस स्त्रीका पति परदेशमें हो उसको शृंगार करना नहीं चाहिये और पराये घर न जाय, इसलिये नन्दजीके घर न गई तब नन्दजीने रोहिणीसे जाकर कहा कि, तुमही तो बडभागिनी ठहरी सोई हमारे घर न आई हमारे घर बधाई होरही है तुमको अवश्य चलना पडेगा, वह घर तो आपहीकाहै तुम हमको ऊपरी मत समझो, वह तो सोवरमें बैठी है,केवल एक सुनन्दा है उसको ऊपरहीके काम बहुत हैं, आई गई गोपियोंका आदर सत्कार करो, रोहिणी बोलीं कि, इतने तुम चलो तुम्हारे भतीजेको दूधपिलाकर मैंभी आऊं हूँ, तब नन्दराय बोले कि, मेरे संगही तुमको चलना पडेगा क्योंकि वहां कामका कारीधारी सिवाय आपके कोई दृष्टि नहीं आता। नन्दजीकी आज्ञानुसार सुन्दर सुन्दर वस्त्र, आभूषण, मुक्तामाला, कण्ठाभरण, पहन बलदेवजीको गोदमेंले प्रसन्न होती हुई नन्दजीके संग चली और दासीके हाथमें पान फूल सेवा मिठाईकी थाली देदी और यशोदाके समीप आय कृष्णका मुख देख नौछावर कर

नायनको दी और आंगनमें जो जो गोपी कुरता टोपी लिये बैठी थीं उनके हाथसे लेकर मन्दिरमें धरने लगीं और यथायोग्य उनका आदर सन्मान करने लगीं और सब गोपी यह आशीष देती थीं कि, सदा नन्दालयमें ऐसाही उत्सव बना रहै ॥ १७ ॥ जिस दिनसे व्रजमें कृष्णजन्म हुआ उस दिनसे सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे नंदजी परिपूर्ण होगये, नंदरायजी नित खजानेको लुटाते थे परन्तु फिर भाण्डागारको जैसेका तैसाही भरा पाते थे, क्योंकि वैकुण्ठनाथकी भार्या लक्ष्मी सो व्रजमें आय मालिनीका वेष बनाय द्वारद्वार बन्दनवार बांधती फिरती थीं तहां और सम्पत्तियोंकी क्या गिनती है ? ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलदीपक ! एकदिन नंदरायजीने गोकुलकी रक्षा करनेके लिये बहुतसे गोपोंको सब प्रकारसे नियुक्त किया और आप कुछ ग्वालोंको संग ले और दूध, दही, माखन मटकियोंमें भरभर कर गाडियोंमें लाद और वार्षिक कर लेकर मथुराको कंसकी भेटके लिये लेगये ॥ १९ ॥ अपने परमहितकारी नन्दरायजीका आगमन सुनकर वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए कि, आज हमारे मित्र नन्दजी कंसकी बरसौली देनेके लिये आये हैं, जब नंदजी कंसको कर दे चुके और किसी स्थानपर आनकर विश्राम किया, उस समय वसुदेवजी कुछ भोजनादिक लेकर नन्दजीसे मिलनेको गये ॥ २० ॥ जैसे मृतक देहमें प्राण आनेसे देह उठ खडा होताहै ऐसेही वसुदेवजीको आये देख नन्दजी अकुलाकर शीघ्र खडे होगये और अपने प्यारे सुहृदका हाथ पकडकर प्रेममें विह्वल हो हृदयसे लगाकर मिलने लगे ॥

चौ०-प्रेम विकल नयनन जल छाये । मिलत दोउ छूटत न छुटाये ॥
पुनि जल तस कर छूटे दोऊ । धन धन कहैं दोउन सब कोऊ ॥ २१ ॥

हे राजन् ! नन्दजी वसुदेवका पूजनकर सुखपूर्वक आसनपर बैठाय कुशल क्षेम बूझने लगे और अपने परम पियारे पुत्रोंमें जिनका मन अत्यन्त लग रहा था सो वसुदेवजी आदर सत्कार कर बोले ॥ २२ ॥ अहो भ्राता नन्दजी ! तुम्हारे सन्तान नहीं होती थी और आपने पुत्र होनेकी आशाभी छोड दी थी क्योंकि बहुत वृद्धावस्था होगई थी, सो परमेश्वरकी कृपासे अब आपको पुत्र हुआ, यह सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥ इस संसारमें रहकर पुनर्जन्मकी नाई आपका मिलना हुआ यह बडे आनन्दका दिन है, सब मिलते हैं परन्तु संसारमें मित्रका मिलना बहुत दुर्लभ है ॥ २४ ॥ अहो प्यारे ! नदीके प्रवाहसे काष्ठ और तृणादिक बहते हैं कभी स्थिर होते हैं परन्तु एक स्थानपर संगम नहीं होता. ऐसेही जो अपने प्यारे सुहृद् हैं उनका एक स्थानपर रहना नहीं होता ॥ २५ ॥ हे नन्दजी ! बहुत जल, तृण और गुल्मलतायुक्त पशुओंका हितकारी जो अत्यन्त रमणीक महावन है तहां अपने सम्बन्धियों सहित आप निवास करते हो वह महावन निरोग तो है ? इस वचनसे यह ध्वनि निकली कि, हमारे पुत्र जो आपके निवास स्थानपर वास करते हैं वह तो अच्छे हैं ? जहाँ जल, तृण अधिक होगा तो वहां गायोंकी अच्छी उदरपूर्णता होगी और दूधभी अधिक होगा और निरोग होगा तो उस दूधको हमारे पुत्र पियेंगे तो वह भी

निरोग रहेंगे ॥ २६ ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे मित्र ! मेरा पुत्र अपनी जननीके संग आपके व्रजमें रहताहै और आपहीको अपना पिता समझताहै और आपही उस बालकके प्रतिपालकहैं, सो वह अपनी मातासहित प्रसन्न है ? ॥ २७ ॥ जो पुरुष अपने प्रियतम प्यारोंको संग लेकर धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पदार्थोंको करतेहैं और जो अपने प्यारे स्नेहियोंको छोडकर अकेले धर्म करते हैं,वा द्रव्यका भोग भोगतेहैं, अथवा काम विषयका भोग करते हैं तो यह त्रिवर्ग उनको सुखदायक नहीं होते ॥ २८ ॥ वसुदेवजीके मधुर वचन सुनकर नन्दजी बोले कि, अहो मित्र ! सब व्रजमें परमेश्वरकी कृपा है और आपके पुत्र बलरामजी भी अच्छे हैं उनके उत्पन्न होनेके पीछे मेरेभी एक पुत्र उत्पन्न हुआ है वहभी आपकी कृपासे अच्छा है,परन्तु आपकी ओरका हमको बडा दुःख बना रहता है ॥

चौ०-हाय देवकी पुत्र तुम्हारे। पापीकंस छहों हतिडारे ॥
पीछे भई सुता इक जोई। गगनपन्थ गमनत भइ सोई ॥
भाल लिखी जो लिखत विधाता।और न होत होत सोइ भ्राता॥२९॥

हे मित्र ! प्रारब्धही सर्वोपरि है, जिस समय पुत्रादिकोंका देनेवाला भाग्यहीन होजाता है उस समय वहै पुत्रादिकभी नहीं होते हैं, सब बिछुड जाते हैं और जब प्रारब्ध अच्छा होताहै तो फिर सब आन मिलते हैं. हे भ्राता ! प्रारब्धही सुखका देनेवाला है और प्रारब्धही दुःखका देनेवाला है जो पुरुष इस प्रकार जानते हैं वह कभी मोहको प्राप्त नहीं होते. इस वचनसे यह सूचित किया कि, अहो वसुदेव ! अपने मनमें पुत्रोंका सोच संको-च मत करो किसी समय आपके पुत्रोंकाभी संयोग होजायगा, हमसे वियोग हो जायगा ॥ ३० ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे नन्दरायजी ! विधाताने जो हमारे भाग्यमें लिखा है उसको कोई नहीं मेटसक्ता और इस संसारमें आनकर ऐसा कौन है जो कष्ट नहीं भोगता ? और आपकी समान अपना मित्र हम किसीको नहीं देखते, देखो हमनेकंसके भयसे अपनी गर्भवती स्त्रीको आपके यहां निःसन्देह भेज दिया और जब उसके पुत्र हुवा तो आपने अपने पुत्रकी समान उसका लालन पालन किया, यह परमोपकार आपका मैं कैसे भूल सक्ता हूं ? जन्म जन्मांतरभी आपकी सेवा करूं तोभी उऋण नहीं हो सक्ता. जब सुना कि, आपके यहां पुत्रका जन्म हुवा तो मैने परमसुख माना, हे मित्र ! मैं अपने पुत्रोंमें और आपके पुत्रोंमें कुछ भेद नहीं समझता, परन्तु इनदिनों कंसने बडा उपद्रव मचा रक्खाहै छोटे छोटे बालकोंको मारनेकी आज्ञा देरक्खी है और आज एक पूतनानाम राक्ष-सीको गोकुलमेंभी भेजा है, अब तुम वार्षिक कर कंसको देचुके और हमसे भी मिलचुके अब यहाँ रहना तुम्हारा बहुत दिनतक अच्छा नहीं, न जानिये गोकुलमें पूतनाने क्या उत्पात मचाया होगा ? ॥ ३१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीके वचन सुन नन्दरायने सब गोपोंको आज्ञा दी कि, शीघ्र गाडी जोतो, यह कह वसुदेवजीसे आज्ञा लेकर नन्दजी मथुरापुरीसे गोकुलको चल दिये ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-छठयेमें नँदरायजी शोच करत मन जाहिं ।
मरी परी इक राक्षसी, देखी मारगमाहिं ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! नन्दरायजी मार्गमें यह विचार करते हुए जारहे थे कि, वसुदेवका वचन तो मिथ्या होही नहीं सक्ता उत्पातके भयसे भगवान्का स्मरण करने लगे कि, ऐ जनप्रतिपालक ! जो यह दो बालक आपने दियेहैं तो इनकी रक्षाभी आपहीको करनी पडैगी ॥१॥ महाघोर रूपवाली बालघातिनी पूतना नाम राक्षसी कंसकी पठाई हुई, जितने ब्रजमें पुर, ग्रामादिक थे सबमें बालकोंको मारती फिरती थी ॥ २ ॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्के मनमें शंका हुई तो श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि, वह पूतना नन्दजीके मन्दिरमें गई वा नहीं गई ? और गई, तो क्या किया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! चिन्ता मत करो जहाँ परमेश्वरका यश और यज्ञादिक कर्म नहीं होते वहीं राक्षसी जा सक्ती है और अपना पुरुषार्थ करती है, और जिन स्थानोंमें भगवा-न्का स्मरण होता रहता है वहाँ राक्षसलोग क्या कर सक्ते हैं ! और नन्दजीके भवनमें तो साक्षात् अनन्त भगवान् विराजमान हैं फिर वहाँ पूतना विचारी क्या कर सक्ती है ? आप ही मारी जायगी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! अनेक राक्षस गांव गांवमें बालकोंको मारनेके लिये फिरते थे परन्तु तोभी कंसके मनमें धैर्य नहीं था और आठोंपहर इसी सोचमें व्याकुल रहता था कि, उसी अवसरमें पूतना नाम राक्षसीको बुलाकर अपना सब वृत्तान्त कहा कि और किसीसे तो हमारा कार्य पूरा न हुवा परन्तु मुझको विश्वास है कि, तुझसे हमारा काम सिद्ध होगा और बालकोंका तो मुझको थोडाही खटका है परन्तु गोकुलमें नन्दके जो पुत्र हुवा है उसका मुझको बडा भय है सो तू गोकुलमें जा और उसको किसी प्रकारसे मारके आ, मैं तुझको पूरा पारितोषिक दूंगा, यह बात सुनतेही पूतना कंसकी आज्ञा शिर-पर धारणकर गोकुलको चलदी और मार्गमें यह विचार करती जाती थी की किसप्रकार नन्दकुमारको मारना चाहिये ? फिर सोचा कि और किसीप्रकार नहीं होगा गोपीका वेष बनाकर बधाई देनेके मिष नन्दके घर जाऊं और छलबल कर उस बालकको मार आऊँ:-

दोहा-यह विचारकर पूतना, धार मोहिनी रूप ।
विष लगाय दोउ कुचनमें, कियो शृंगार अनूप ॥

इस प्रकार बन ठन गोकुलमें पहुँची ॥ ४ ॥ उसकी चोटीमें मालतीके फूल गुँथे हुये थे, बडे बडे नितम्ब और छोटे छोटे स्तनोंके भारसे कटि जिसकी नीचेको झुकी आती थी सुन्दर सुन्दर वस्त्र धारण कररही थी, कानोंमें कर्णफूल, कुण्डलोंकी छबि शशिको लज्जित कररही थी और केशोंसे जिसका मुख शोभायमान होरहा था ॥ ५ ॥ मन्द मन्द मुसकान और बाँकी चितवन ब्रजवासियोंके मनको मोहित करने वाली, बेखटक राजभवनमें चली गई और द्वारपालोंपर ऐसी मोहिनी डाली कि, किसीने उसको नहीं रोका और उसके हाथमें एक कमलका फूल था उसको देखकर सब गोपियोंने कहा कि, यह लक्ष्मी अपने पति नारायणके दर्शनके लिये आई है और यशोदा रोहिणीने भी यही जाना, कोई गोपी बोली॥

चौपाई-रमा नहीं यह है इन्द्राणी । कोउ कह उमा कोऊ कह वाणी ॥
कोउ कह यह मनोजकी बाला । आई लखन नन्दको लाला ॥
अबलों सखी न ऐसी कामिनि । भामिनि है कै है यह दामिनि॥६॥

बालकोंको ग्रहरूप जो पूतना है सो छोटे छोटे बालकोंको खोजतीहुई नन्दजीके मन्दिरमें आई जहाँ दुष्टोंके मारनेवाले भगवान् भस्ममें दबीहुई अग्निके समान बालकरूपमें अपने तेजको छिपाये शय्यापर पडे सोरहेथे उनको देखा ॥ ७ ॥ स्थावर जंगम प्राणियोंके अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने उस बालघातिनी पूतनाको देखकर आंखें मीचली और हँसकर चुप होरहे, उस दुष्टाने आतेही कालरूप भगवान्को गोदीमें उठालिया, जैसे कोई अज्ञानीपुरुष रस्सी समझकर सोतेहुए साँपको उठालेता है ॥ ८ ॥ जैसे मखमलके म्यानकी तलवार ऊपरसे मनोहर और भीतरसे महातीव्र तीक्ष्णधारवाली होती है, ऐसी पूतनाको देख चकित होकर रोहिणी और कोमल यशोदा देखती रही मुखसे कुछ न कहा, तब एक गोपी बोली कि, तू कौनहै ? तब उस कपटिन पूतनाने कहा कि, मैं देवांगना हूं तुम्हारे यहां बधाई देने आई हूं. इस मनोहर बालकको देखकर जी खिलानेको चाहा इसलिये गोदमें लेलिया, परमेश्वर करै यह बालक करोड वर्ष जीतारहै ॥ ९ ॥ ऐसी रीति प्रीति भरी बातचीत कर उस कपटरूप पूतनाने चुमकारके कृष्णको गोदमें ले लिया और भयानक विष लगा हुवा अपना स्तन उनके मुखकमलमें दे दिया, तब तो कुपित होकर कृष्णचन्द्रने दोनों हाथोंसे स्तन उसके पकड़के प्राणसहित स्तनको औषधि समझकर पीगये ॥ १० ॥ तब पूतना बोली, अरे लाल ! छोड़दे छोडदे मेरे प्राण चले बस रहनेदे मेरा अपराध क्षमाकर मेरे शरीरमें अत्यन्त पीडा होती है, जब नेत्र फटने लगे तो पुकारा अरी यशोदा ! अरी यशोदा ! अपने लालासे मुझको छुटा, मैं मरी, यह तेरा बालक मनुष्य नहीं है, यह तेरी कोखमें कोऊ महाबलवान् देवता उत्पन्न हुवा है, यह कहतीही कहती हाथ पांव पीटकर मरगई ॥ ॥ ११ ॥ महागम्भीर पूतनाके शब्दसे पर्वतोंसहित पृथ्वी कम्पायमान होगई, ग्रहतारागणसहित सब आकाशमण्डल चलायमान होगया, रसातल और दिशाओंमें घोर शब्द पूरित होगया, इन्द्रके वज्रपातहोनेकी शंकासे मनुष्य पछाड खाखाकर पृथ्वीपर गिरगये ॥ १२ ॥ स्तनोंकी व्यथासे प्राण जिसके निकलगये और मरतीसमय कपटरूप जिसने अपना त्यागदिया, राक्षसीरूप प्रगट करलिया, जैसे मरनेके समय वृत्रासुर कपट तजकर भूतलपर गिरा था, इसीप्रकार पूतना भी हाथ पांव पसारके पृथ्वीपर गिरी ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जिस समय पूतना मरकर पृथ्वीपर गिरी उस समय छः कोशके बीचमें जो वृक्ष थे उनका चूर्ण होगया॥१४॥ उस महाभयानक रूपवाली पूतनाके मुखमें हलकी समान दाढें और पहाड़की कन्दराकी समान जिसकी नाक, पर्वतके शृंगकी सदृश जिसके स्तन और महाभयंकर लोहित रंगके जिसके बिखरे हुए केश थे ॥ १५ ॥ अन्धकूपकी नाई गम्भीर गम्भीर जिसके नेत्र, जैसे पुल बँधा होय तैसे हाथ पांव जंघा जिसके, सूखे सरोवरके समान जिसका उदर है॥१६॥

ऐसा महाभयानक पूतनाका देह देखकर गोप, गोपी अत्यन्त भयभीत हुए, क्योंकि उसके गम्भीर शब्दसे पहिलेही उनके हृदय, कान, मस्तक, फटगये थे ॥ १७ ॥ उस पूतनाकी छातीपर निःशंक श्रीकृष्णचन्द्र क्रीडा कर रहे थे, सब गोपी जो हड़बड़ाई हुई व्याकुल फिरती थीं झटपट उस राक्षसीके ऊपरसे उठाकर हृदयसे लगालिया ॥ १८ ॥ सब गोपी और यशोदा रोहिणी व्रजानन्दनका गायकी पूँछसे झाडा देकर फूंक मारने लगीं और अनेक विधियोंसे रक्षाकर उतारे उतारे ॥ १९ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेको गोमूत्रसे स्नान कराय गोरजसे लुटाय गोवरलगाय द्वादश अंगोंमें केशवादिक द्वादश नामोंसे रक्षा करने लगीं ॥ २० ॥ सब गोपियोंका मन जो व्याकुल हो रहा था इसलिये पहिले कुछ श्रेष्ठ उपाय न करसकीं. फिर सावधान हो स्वस्थचित्तकर सब गोपी स्नानकर आचमन ले अपने अंगोंमें तथा करनमें पृथक् पृथक् अंगन्यास और करन्यास करके फिर नन्दनन्दनके शरीरमें बीजन्यास किया ॥ २१ ॥ हे यशोदानन्दन! अजन्मा भगवान् तुम्हारे चरणोंकी रक्षा करैं, अणिमान् भगवान् तुम्हारे ऊरुओंकी रक्षा करैं, यज्ञ भगवान् तुम्हारी जंघाओंकी रक्षा करैं, अच्युत भगवान् तुम्हारी कटिकी रक्षा करैं, हयग्रीव भगवान् तुम्हारे उदरकी रक्षा करैं, केशव भगवान् तुम्हारे हृदयकी रक्षा करैं, विष्णु भगवान् तुम्हारी भुजाओंकी रक्षा करैं, उरुक्रम भगवान् तुम्हारे मुखारविन्दकी रक्षा करैं, ईश्वर भगवान् तुम्हारे माथेकी रक्षा करैं ॥ २२ ॥ चक्रधारी भगवान् तुम्हारे अग्रभागकी रक्षा करैं, गदाधर भगवान् तुम्हारे पश्चाद्भागकी रक्षा करैं, धनुष्धारी मधुनाम दैत्यके हन्ता भगवान् और खड्गधारी अजन्मा भगवान् यह दोनों तुम्हारे दाहिने और बायें पार्श्वकी रक्षा करैं, शंखधारी उरुगाय भगवान् चारों कोनोंकी रक्षा करैं, उपेन्द्र भगवान् तुम्हारे ऊपरकी रक्षा करैं, तार्क्ष्य भगवान् नीचे पृथ्वीमें रक्षा करैं, हलधर भगवान् सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करैं ॥ २३ ॥ हृषीकेश भगवान् तुम्हारी इन्द्रियोंकी रक्षा करैं, नारायण भगवान् तुम्हारे प्राणोंकी रक्षा करैं, श्वेतद्वीपाधिपति भगवान् तुम्हारे चित्तकी रक्षा करैं, योगेश्वर भगवान् तुम्हारे मनकी रक्षा करैं ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ भगवान् तुम्हारी बुद्धिकी रक्षा करैं, परम भगवान् तुम्हारी आत्माकी रक्षा करैं, विहारके समय गोविन्द भगवान् तुम्हारी रक्षा करैं, शयनके समय माधव भगवान् तुम्हारी रक्षा करैं ॥ ॥ २५ ॥ वैकुण्ठनाथ भगवान् चलने फिरनेके समय तुम्हारी रक्षा करैं, लक्ष्मीपति भगवान् बैठनेके समय तुम्हारी रक्षा करैं और सर्व ग्रहोंके भयके दूर करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् भोजनके समय तुम्हारी राक्षा करैं ॥ २६ ॥ डाकिनी, शाकिनी, यातुधान, कूष्माण्ड, बालग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायकगण ॥ २७ ॥ कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा पूतना, मातृकादिक जो राक्षसी हैं सो और उन्माद, अपस्मारादिक जो जो रोगके करनवाले देह, प्राण, इन्द्रियोंके द्रोहीहैं ॥ २८ ॥ और जो जो स्वप्नमें देखनेके उत्पात हैं वृद्धग्रह, बालग्रह, योगिनी, वैताल, जो समस्त विष्णुभगवान्के नाम लेनेसे डरते हैं सो सब नष्ट होजायँ ॥ २९ ॥ इस प्रकार हाथ जोड गोपियोंने विष्णु भगवान्की प्रार्थनासे रक्षा

करके श्रीयशोदानन्दनको यशोदाको सौंपदिया, तव यशोदाजीने मनमोहनप्यारेको दूध पियाय घरमें छिपायके शय्यापर सुलायदिया ॥ ३० ॥ उसी अवसरमें नन्दादिक ब्रजवासीभी मथुरासे आगये, तव मार्गमें मरीहुई पूतनाको पडी देखकर वडा आश्चर्य माना ॥ ३१ ॥ नन्दजी कहनेलगे कि, वसुदेवजी तो निश्चय कोई ऋषि वा योगेश्वर जान पडते हैं, क्योंकि जो कुछ उन्होंने हमसे कहा था वही हुवा, हमसे कहा था कि, तुम शीघ्र मथुरासे गोकुलको जाओ वहां कोई नया उतपात होनेवाला है. सो आंतिही नेत्रोंसे देखलिया ॥ ३२ ॥ पीछे सव गोकुलवासियोंने पूतनाके देहको कुल्हाडोंसे काट काट कर घरोंसे दूर लेजाकर चितामें धर उसको फूंकदिया ॥ ३३ ॥ जिस समय पूतनाका शरीर जलने लगा तो उसकी चितामेंसे अगरकीसी सुगन्धिका धुवाँ निकलने लगा. श्रीकृष्णचन्द्रने उसके स्तन जो पान किये थे इससे सव पाप उसके दूर होगये ॥ ३४ ॥ जगत्के वालकोंकी मारनेवाली और रुधिरकी प्यासी पूतनाने भगवान्को स्तन पिलाकर मारनेकी इच्छा की परन्तु भगवान्ने तोभी उसको मोक्ष दी ॥ ३५ ॥ फिर श्रद्धा और भक्तिकरके श्रीकृष्णचन्द्र भगवानको माता अत्यन्त प्रिय पदार्थोंकी देनेवाली मुक्तिको पावें तो क्या आश्चर्यकी वात है? ॥ ३६ ॥ अपने जनोंके हृदयमें वास करनेवाले और लोकवन्दित देवताओंके भी पूजनीय ऐसे जो देवताधिपति ब्रह्मा जिनको प्रणाम करें ऐसे चरणारविन्दोंसे पूतनाका अंग दावकर श्रीकृष्णचन्द्रने स्तन पान किया ॥ ३७ ॥ माताकी गति स्वर्गहै उस गतिको पूतना राक्षसीने प्राप्त किया और जिन गायों, गोपियोंका दूध श्रीकृष्णचन्द्रने पिया है जो वह सुन्दर गतिको प्राप्त होयँ तो क्या आश्चर्य है? ॥ ३८ ॥ मोक्षको आदिलेकर समस्त पदार्थोंके देनेवाले देवकीके पुत्र भगवान्ने पुत्रके स्नेहसे गाय और गोपियोंका दूध परिपूर्ण होकर पिया ॥ ३९ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रमें पुत्रभाव माननेवाली उन माता और गोपियोंका अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला संसार न होगा ॥ ४० ॥ ब्रजवासी लोग पूतनाकी चिताके धुवेंकी सुगन्धी सूँघकर परस्पर कहने लगे यह आज क्याहै? और यह सुगन्धि कहांसे आतीहै? यह कहते हुए नन्दादिक गोकुलमें आये ॥ ४१ ॥ तव ग्वालवालोंके मुखसे पूतनाका आना और उसका मरना और कुशलपूर्वक वालकका वचना सुनकर नन्दादिक ब्रजवासी वडा आश्चर्य माननेलगे ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी वोले कि, हे परीक्षित्! उदारबुद्धि नन्दजीने मथुरासे आनकर पुत्रको गोदमें लेकर परमानन्दको प्राप्त हुए और वारंवार उसके शिरको सूंघ सूंघ मनहीमनमें प्रसन्न होते थे और चूम चूमकर प्यार करते थे ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित्ने बूझा कि, हे भगवन्! यह पूर्वजन्ममें पूतना कौन थी? जिसको श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने ऐसी उत्तम गति दी। श्रीशुकदेवजी वोले कि, प्रथम जन्ममें यह राजा वलिकी कन्या थी और रत्नमाला इसका नाम था, जिस समय वामनजीके स्वरूपको इसने देखा तो मनहीमनमें यह कामना करी कि, जो ऐसा सुन्दर सुत मैं पाऊं तो हृदयपर रखकर स्तनपान कराऊं. श्रीभगवान् वासुदेव सर्व घटघटके वासी उसके हृदयकी गति जानकर भगवान्ने कहा कि, कृष्णअव-

तारमें तेरी मनोकामना पूर्ण करूंगा. दैत्यकुलमें जो इसका जन्म था इसलिये तामसी देहके कारण राक्षसकेही घरमें जन्म लिया और पूतना नाम हुवा ॥ ४४ ॥ यह श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनका अद्भुत चरित्र पूतना मोक्षका जो कोई श्रद्धापूर्वक सुनेगा तो वह निश्चय गोविन्द भगवान्का स्नेही होगा ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-इस सप्तम अध्यायमें, शकटासुरहि गिराय।
माताको मुखमें दिये, तीनों लोक दिखाय॥

राजा परीक्षित् बोले कि, हे प्रभो ! छः प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सब प्राणियोंके दुःखोंके दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने जिन जिन अवतारोंको धारण करके जो जो लीलाकरी हैं वह सब मेरे कानोंको और मेरे मनको प्रिय लगती हैं ॥१॥ जो मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्रोंकी कथा दिनरात सुनते हैं उनके मनकी ग्लानि जाती रहती है और अनेक प्रकारकी तृष्णाभी दूर होजाती है, शीघ्रही सम्पूर्ण अन्तःकरणकी शुद्धि होजातीहै, भगवान्में भक्ति और प्रेम बढताहै और हरिभक्तोंसे मित्रता होतीहै इसलिये अनुग्रह करके श्रीकृष्णके मनोहर चरित्र मुझको सुनाओ ॥ २ ॥ इसलिये अनन्त मनुष्य देह धारणकर मनुष्योंकेसी लीला करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रका मनोहर अद्भुत बालचरित्र हमारे सामने वर्णन करो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब बहुत दिन व्यतीत हुए तो श्रीकृष्णकी वर्षगाँठके उत्सवका दिन आया और उसी दिन जन्मनक्षत्रका योगभी आगया तो उस दिन महामंगल हुवा और सब गोपिकाभी बधाई लेलेकर आईं, नन्दरानी यशोदाजीने बाजे बजवाये, गीत गवाये, ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन पढवाये और श्रीकृष्णचन्द्रको अभिषेकस्नान कराने लगीं ॥ ४ ॥ जब स्नान करवाया तो बालमुकुन्दके नेत्रोंमें निद्रा आगई, तब सहजसे श्रीकृष्णको गाडेके नीचे पालनेमें ब्रजरानीने थपकोरके सुलादिया ॥ ५ ॥ भगवान्की बधाई लेनेसे जिनके मनमें अत्यन्त हर्ष बढरहा था, वह यशोदारानी उदारचित्त घर आईहुई गोपियोंका आदर सन्मान कर रहीथी और ऐसी मग्न होरही थी कि, अपने पुत्रके रोनेका शब्दभी नहीं सुनसकी, कृष्णको भूख लगी तो दूध पीनेकी इच्छा हुई तब रोते २ पाँव ऊपरको उठा लिये ॥ ६ ॥ गाडेके नीचे पालनेमें श्रीकृष्णके अति छोटे २ कोमल कमलसे चरणारविन्द लाल लाल मूंगोंके रंग उन चरणोंकी ठोकरसे गाडा गिरपडा और अनेक प्रकारसे रसोंसे भरे तांबे, पीतलके बासन गिरपडे, पहिये न्यारे न्यारे उखडकर गिरगये, धुरी निकलगई, जुआ टूट गया ॥ ७ ॥ यशोदा आदि लेकर जो जो ब्रजकी स्त्रियें थीं और जो जो भेंटें लेकर वसुदेवके घर उत्सवमें आई थीं वह और नन्दजीसे आदि लेकर जो जो ब्रजवासी थे. सो सब उस आश्चर्यको देखके व्याकुल होगये कि, आपसे आप गाडा किस प्रकार टूट पडा ॥ ८ ॥ कोई कुछ कोई कुछ

परस्पर विवाद करके कहने लगे और मनहीं मनमें व्याकुल थे परन्तु किसीको कुछ निश्चय नहीं हुवा तब नन्द यशोदासे समीपके खेलनेवाले बालकोंने कहा कि, तुम किसी बातका सन्देह क्यों करते हो, हमने अपनी आँखसे देखा कि, रोते रोते श्रीकृष्णने पाँवकी ठोकर मारी इससे यह शकट उलटकर गिरपडा, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं ॥ ९ ॥ बालक समझकर श्रीकृष्णके अनन्त बलको किसीने नहीं जाना, इसलिये उन बालकोंकी बातका किसीने विश्वास नहीं माना और कहनेलगे कि, कहां श्रीकृष्णके कोमल कमलसे चरण और कहां यह महा कठोर शकट, छोटेसे बालककी ठोकरसे कैसे टूट सक्ताहै ? भाई हमको तो किसी प्रकार विश्वास नहीं आता ॥ १० ॥ यशोदाने रोते हुये अपने पुत्रको उठाकर हृदयसे लगालिया और कहनेलगीं आज कोई बडा खोटा ग्रह हमारे ऊपर आगया था परन्तु तुम पंचोंके प्रतापसे मेरा बालक बचा, उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाय बहुतसा दान पुण्यकर स्वस्तिवाचन पढवाकर ब्रजभूषण प्यारेको दूध पिलाया और बारबार यही विचार करती रहीं कि, कहीं डर न गयाहो ॥ ११ ॥ परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको न जाना और ब्राह्मणोंके कहनेसे आठों दिशाओंमें बलिदान करके और सम्पूर्ण वस्तु धरके गाडा रखदिया और ब्राह्मणोंने नवग्रहादिकोंका पूजन होम कराय, दधि, अक्षत, फल, फूल, कुश, चन्दन मँगाय जलसे गाडेका पूजन किया, देखो ! प्रेमी ब्रजवासियोंका धान्य खाखाकर ब्रजके ब्राह्मणभी प्रेमी हो गये जो गाडेका पूजन किया ॥ १२ ॥ निन्दा, झूठ, पाखण्ड, ईर्षा, हिंसा, अभिमान नहींहै जिन पुरुषोंके उन सत्यवादी ब्राह्मणोंका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता ॥ १३ ॥ यह बात मनमें विचार कर नन्दरायजी श्रीकृष्णको गोदमें लेकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मंत्रोंसे शुद्ध और पवित्र औषधियोंके पानीसे पुत्रका अभिषेक कराया ॥ १४ ॥ फिर स्वस्तिवाचन और अग्निमें होम कराय नन्दरायजी और सब गोप गोपी सावधान होकर श्रेष्ठ गुणकारी अन्नका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥ १५ ॥ सर्वगुणवाली गायोंको सुन्दर सुन्दर वस्त्रोंकी झूलें उढाय, स्वर्ण, चांदी और पुष्पोंकी माला आभूषण पहिराय, कञ्चनसे सींग मढाय पुत्रके कल्याणके लिये दी और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लिया ॥ १६ ॥ वेद मंत्रोंके जाननेवाले योग्य ब्राह्मणोंने जो जो आशीर्वाद दिये सो सो उसीप्रकार होंगे, क्योंकि ब्रह्मवाक्य किसी समय निष्फल नहीं होते यह बात शास्त्र और पुराणोंसे प्रकट है ॥ १७ ॥ एकदिन नन्दरानी श्रीकृष्णको लाड लडा लडा कर प्यार कर रही थीं, उसी समय श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतके समान अपने शरीरका भार बढाया कि, वह भारी भार यशोदाजीसे सम्हारा न गया, बोझ बढानेका कारण यहहै कि, श्रीकृष्णने जाना कि, जो मैं माताकी गोदमें रहा तो यह जो मेरे सम्मुख तृणावर्त्त उपस्थित है सो यह मेरी मातासहित मुझको उठाकर लेजायगा, इसलिये मुझको कष्ट होय तो होय परन्तु मेरे कारण मेरी माताको कष्ट न होय ॥ १८ ॥ यशोदाने श्रीकृष्णमें भारी भार समझकर बडा आश्चर्य माना और बोझसे अति पीडित होकर त्रिलोकीनाथको पृथ्वीपर बैठाल कर परमेश्वरका ध्यान करने लगी और मनहींमनमें

विचार करने लगी कि, आज मेरे कन्हैयामें इस प्रकार बोझ क्यों होगया ? इसी शोच विचारमें घरके कार्यमें लगगई ॥ १९ ॥ कंसका अनुचर जो तृणावर्त्त महाबलशाली था, कंसने कृष्णके मारनेके लिये उसको भेजा, वह पवनके बबूलेका रूप धरकर आया और पृथ्वीपर खेलते हुए कृष्णको उडाकर लेगया ॥ २० ॥ सब गोकुल धूरिसे आच्छादित होगया और ऐसी धूरि उडी कि, सबकी आँखें मिचगई और अन्धकार होगया, उसके घोर शब्दसे दिशा विदिशाओंमें सन्नाटा होनेलगा ॥ २१ ॥ दो घडी तक गोकुलमें अन्धकार छायरहा, यशोदा ब्रजभूषणके उठानेको आँगनमें दौडीआई देखा तो वहाँ कृष्णका पता भी नहीं ॥ २२ ॥ तृणावर्त्तने कंकरी, ठीकरियोंकी बडी भारी वर्षा करी जिससे सब गोकुलवासी मोहको प्राप्त होकर अपनेही आपको न देखसके. फिर दूसरेका देखना तो महा कठिन था ॥ २३ ॥ इस प्रकार महाकठिन धूरिकी वर्षा होनेसे और आँधीके चलनेसे यशोदाने ढूँढते ढूँढते कहीं भी ब्रजभूषण प्यारेको नहीं पाया, तब अत्यन्त व्याकुल हो मरेहुए बछडेवाली गायकी नांई निर्बल होकर पृथ्वीपर गिरपडी और करुणाभरे वचन कह कह कर शोच करने लगी ॥ २४ ॥ उससमय यशोदाका रुदन सुन सुनकर पशुपाक्षियोंकाभी हृदय विदीर्ण होताथा, अत्यन्त पीडित और महाव्याकुल हुई नेत्रोंमें आंसू भरे गोपियें श्रीकृष्णके विनादेखे रोरोकर प्राणत्यागनेको प्रस्तुत थीं ॥ २५ ॥ इतनेमें धूरि वर्षा, आँधी तो थमगई और बबूलेका रूप धरनेवाले तृणावर्त्त दैत्यका वेग,सब धरणीके धारणकरनेवाले विश्वनाथ भगवान्के उठालेजानेसे आकाशको न उडागया तो उसका वेग शान्त होगया, इसी कारण उस दैत्यसे अधिक भारी भारलेकर ऊपरको न उडागया ॥ २६ ॥ जब तृणावर्त्तको बहुत बोझ ज्ञात होने लगा तब यह जाना कि, मैं किसी बडे पत्थरको उठालायाहूं क्या कोई वज्र मेरे हाथमें है ? यह कह श्रीकृष्णसे छूटनेकी इच्छा करने लगा परन्तु श्रीकृष्णने उसका कण्ठ ऐसा गहिकर पकडा था कि, वह किसी प्रकार न छूटसकै ॥ २७ ॥ कण्ठके घुटनेसे उसकी चेष्टा हत होगई, नेत्र निकलपडे, मुखसे शब्द न निकल सका, प्राणहीन होकर वह तृणावर्त्त दैत्य श्रीकृष्णसमेत गोकुलमें गिरा ॥ २८ ॥ जैसे महादेवके बाणका मारा त्रिपुरासुर पृथ्वीपर गिरा था, ऐसेही आकाशसे वह विकराल दैत्य शिलाके ऊपर गिरा जिसके सब अंग टूटकर चूर होगये, यह महाभयानकरूप उस तृणावर्त्तका रोती हुई ब्रजबालाओंने देखा ॥ २९ ॥ उस तृणावर्त्तकी छातीके ऊपर निर्भय खेलता हुवा श्रीकृष्णको भी देखा, सो तुरन्त गोपियोंने दौडकर श्रीकृष्णको उठा,यशोदाकी गोदमें दे दिया और बडा आश्चर्य मानकर सब गोपी यह कहने लगीं कि, बालकको उठाकर यह राक्षस आकाशमें लेगया था, सो यह बालक मृत्युके मुखमेंसे फिर निकलकर आया है ॥ ३० ॥ नन्दादिक गोप और गोपिका श्रीकृष्णको पाकर परमानन्दको प्राप्त हुए और परस्पर कहने लगे कि, बडे आश्चर्यकी बात है कि, देखो इस राक्षसने इस बालकके मारनेमें कुछभी कसर नहीं रक्खी, परन्तु भगवान्ने इसको बचाया और यह दुष्ट अपने पापसे आपही मरगया और यह बालक साधुकी समान है, इसलिये इस दुष्टके हाथसे छूट आया,

साधु पुरुष अपनी समताके भयसे छूटजाते हैं ॥३१॥ देखो हमने ऐसा कौनसा भारी तप किया है ? क्या भगवान् वासुदेवका पूजन कियाहै ? क्या कुआँ,बावडी, ताल,खुदवाये हैं ? क्या पंचयज्ञ कियेहैं ? क्या कोई बडाभारी दान किया है ? अथवा भूखे नंगे प्राणियोंपर दया करीहै ? जिन पुण्योंके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हुवा हमारा बालक अपने माता पिता बन्धुओंके सुख देनेके लिये लौटकर आगया ॥ ३२ ॥ नन्दजीने गोकुलमें बहुतसे उत्पातोंको देखकर अपने मनमें बडा आश्चर्य माना, हमसे मथुरामें वसुदेवजीने पहिलेही कह दिया था कि, गोकुलमें बडाभारी उत्पात होगा, सो आज हमको वसुदेवजीके वचनका पूरा विश्वास हुवा ॥ ३३॥ एक समय यशोदाजी मनमोहन प्यारेको अपनी गोदमें बैठालकर मोहमें अति निमग्न होकर जिन स्तनोंसे दूध टपकताथा सो स्तन पिलाने लगीं, देखो यशोदाके कैसे उत्तम भाग्य हैं-

दोहा-हलरावत गावत मधुर, लख हारे बाल विनोद।
जो सुख सुर मुनिको अगम, सो सुख लेत यशोद ॥
कबहुँ झुलावत पालने, कबहुँ खिलावत गोद।
कबहुँ सुवावत सेजपर, यशुमति सहित विनोद ॥

कुछ एक स्तन पिया पीछे यशोदाजी अपनी मंदमुसकान सहित श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्दके ऊपर अँगुली धरकर दूध पिलाने लगीं, इतनेहीमें हे राजन् ! श्रीकृष्णने जम्भाई ली उस समय उनके मुखमें यह सब संसार देखा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारागण, दिशा, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन, स्थावर, जंगम, जीव इन सबको देखा ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! सब विश्वको तत्काल यशोदा श्रीकृष्णके मुखमें देखकर डरके मारे कम्पायमान होकर अपने मृगकेस नेत्र बन्द करलिये और बडा आश्चर्य माना कि, इस बालकके मुखमें मैंने क्या जाल जंजाल देखा * ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-अष्टममें श्रीगर्गमुनि, नन्दराय गृह आय।
नामकरण उत्सव कियो, मुखमें विश्व दिखाय ॥

---

* राजा परीक्षित् बोले कि हे प्रभो ! पूर्वजन्ममें यह तृणावर्त्त कौन था,जो इसने राक्षसका शरीर पाया, यह सब कथा मुझको समझाकर कहो ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह तृणावर्त्त पाण्डुदेशका राजा था और विश्वविजय इसका नाम था, दुर्वासा ऋषिके शापसे यह राक्षस होगया, परीक्षित्ने बूझा कि, क्या ऐसा खोटा कर्म उसने किया जो यह शाप दुर्वासाने दिया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि, पाण्डुदेशका नरेश विश्वविजय था और एक सहस्र इसकी स्त्री थीं, एक दिन उन सब स्त्रियोंसमेत वनविहारके हेतु बनका गया-

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! बडे तपस्वी और यादवोंके पुरोहित श्रीगर्गाचार्य वसुदेवजीके भेजेहुए मथुरापुरीसे गोकुलमें नन्दरायजीके घर आये ॥ १ ॥ गर्गाचार्यको देखकर नन्दजी बहुत प्रसन्न हुये और उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और भगवान्‌की समान जानकर पूजन किया ॥ २ ॥ गर्गाचार्यजीको सुंदर आसनपर बैठालकर षट्रस भोजन कराया और मधुर वाणीसे नन्दरायजी बोले कि, अहो ब्रह्मन्! आप तो परिपूर्ण हो आपका पूजन हम किस प्रकार करसक्तेहैं ॥ ३ ॥ हे भगवन्! दीन गृहस्थ लोगोंके कल्याण करनेके लिये आपसरीखे महात्मा अपने आश्रमसे गृहस्थोंके घर जातेहैं और उनसे अपना कुछ प्रयोजन नहीं रखते ॥ ४ ॥ और जो देखने और सुननेमें नहीं आता उस ज्ञानका प्रगट करनेवाला और सूर्य चन्द्र नक्षत्रादिकोंका प्रतिपादन करनेवाला ज्योतिषशास्त्र साक्षात् आपने कथन कियाहै, जिसके पढ़नेसे पुरुष भूत, भविष्य, वर्तमान कालका वृत्तान्त जान सक्ताहै ॥ ५ ॥ ज्योतिषशास्त्रके कर्त्ता और वेदवादियोंमेंभी आप परिपूर्ण हो, इसलिये तुम हमारे दोनों पुत्रोंका नामकरण और संस्कार करो. तव गर्गाचार्यजीने कहा कि, जो तुम्हारे गुरु आचार्य होयँ उनसे नामकरण क्यों नहीं करालेते. तब नन्दजी बोले कि, हे महाराज! आपके सम्मुख और कौन है? क्योंकि ब्राह्मण जन्मसेही सबके गुरु हैं ॥ ६ ॥ फिर गर्गाचार्यने कहा कि, मैं यादवोंका पुरोहित हूं और सव जगत्में विख्यात हूं, जो मैं तुम्हारे पुत्रोंका नामकरण और संस्कार करूंगा तो वह दुष्टात्मा कंस इन बालकोंको देवकीके पुत्र समझेगा ॥ ७ ॥ और आपकी और वसुदेवजीकी परम मित्रता है यह बात भी कंस भलेप्रकार जानता है और दूसरे कंसको यहभी सन्देह है कि, देवकीके गर्भमें कन्या न होनी चाहिये, कहीं अपने पुत्रका पहुँचा न दिया हो यह समझे क्योंकि कंस दिन रात सैकडों विचार किया करताहै ॥ ८ ॥ और अब तो उसने देवकीके गर्भसे कन्या उत्पन्न हुई समझही रक्खी है, और जो दूसरी यह बात सुनेगा कि, गर्गाचा-

---

–वहां ऊंचे ऊंचे वृक्ष आकाशसे बातें कररहे, सुन्दर सुन्दर फल फूल खिलरहे, मोर, कीर, कोकिला, बोलरहे, एक ओरको गन्धमादन पर्वत निरालाही शोभा देरहा, उसके नीचे पुष्पभद्रानदी न्यारीही लहरें लेती चली जाती थी ऐसा शोभायमान निर्जन वन देखकर उसी नदीमें स्त्रियें और आप नंगा होकर जलक्रीडा करनेलगा, मद पीपी कर स्त्रियें और राजा ऐसा मतवाला होगया कि, सम्पूर्ण लज्जा त्याग निर्लज्ज बन जलविहार करनेलगा, उसी समय एकलाख शिष्योंको साथ लिये दुर्वासाऋषि भी उसी आश्रममें आगये, देखा तो सव स्त्रियोंके संग राजा नंगा केलि कर रहा है, मुनिने कोपकरके शाप दे दिया कि, रे दुष्ट! मेरे वचनके प्रतापसे तू असुर होजा, भारतखंडमें एक लाख वर्षतक भ्रमता फिरेगा, जब ब्रजमें श्रीकृष्णचन्द्र अवतार लेंगे तू उनके हाथसे मृत्यु पावेगा तब तेरी मोक्ष होगी, राजा यह शाप सुन बहुत उदास हुवा और अग्निकुण्ड बनाय सव स्त्रियोंसहित अपना शरीर भस्म कर दिया ॥

र्यने नन्दजीके घर जाकर बालकोंका नाम रक्खा है, इससे निश्चय यह जानेगा कि यह वसुदेवजीके पुत्र हैं और कंस तो विनाही जाने इन बालकोंके मारनेका उपाय कर रहाहै और जो सत्य समझकर इन बालकोंको मरवादिया तो बडा अनर्थ होगा ॥ ९ ॥ नन्दजी बोले कि, हे गर्गाचार्यजी! वह उपाय करो जो हमारे साथी ब्रजवासीभी नहीं जानें इसप्रकार एकान्त स्थान जहाँ गायोंका खरिका था वहां बैठकर स्वस्तिवाचन पढ़कर दोनों बालकोंका संस्कार किया. जो कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको करना योग्य है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस प्रकार नन्दरायजीने जब प्रार्थना करी तो एकान्तमें गर्गाचार्यजीने छिपकर नामकरण किया. क्योंकि नामकरण करनेकी इच्छासे तो गर्गाचार्यजी आयेही थे॥ ॥ ११ ॥ गर्गमुनि बोले कि, यह रोहिणीका पुत्र अपने गुणोंसे सुहृदोंको रमण करावेगा इसलिये इसका नाम 'राम' रखनाचाहिये और बल अधिकहोगा इसलिये इसका नाम 'बलदेव' रखना चाहिये और बिछुरे यादवोंको मिलावेगा इसलिये इसका नाम 'संकर्षण' होगा ॥ १२ ॥ और यह जो तुम्हारा दूसरा पुत्र है सो यह युग युगमें अवतार धारण करता है और इसके तीन रंग हुए श्वेत, लाल, पीला, सो सतयुगमें शुक्लवर्ण हुवा, त्रेतामें लाल वर्ण हुवा और द्वापरमें पीतवर्ण हुवा. अब इन्द्रनीलमणिकी सदृश श्यामसुन्दररूप धारण किया है, इसलिये 'कृष्ण' नाम रखना चाहिये ॥ १३ ॥ किसी समय यह तुम्हारा महाभाग पुत्र वसुदेवजीके घर जन्मा था, इसलिये ज्ञानीपुरुष इसका नाम वासुदेव भी कहेंगे, तुम्हारे पुत्रके गुणकर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं और रूपभी अनेक हैं, उनको मैं नहीं जानता और कोई दूसरा पुरुषभी नहीं जानता। क्योंकि यह बालक परब्रह्म परमेश्वरका अवतार है, इसलिये इसका भेद ब्रह्मा, शिव, सनकादिकभी नहीं जानसक्ते ॥ ॥ १४ ॥ गाय गोप, गोपी और तुमको आनन्द देनेवाला यह तुम्हारा पुत्र होगा और नन्दरायजी तुम्हारे ऊपर बडे बडे कष्ट आनकर प्राप्त होंगे उन कष्टोंको इनकी कृपासे सहजमें तर जाओगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे व्रजराज! पहिले जब कोई राजा नहीं था, तब इस बालकने पृथ्वीपर सब दुष्ट चोरोंको पीड़ितकर परमात्माओंकी रक्षा करी और चोरोंको पराजय किया ॥ १७ ॥ और जो महात्मा पुरुष इस तुम्हारे पुत्रसे स्नेह रखते हैं उनका शत्रुलोग कुछ तिरस्कार नहीं कर सक्ते. जिसप्रकार विष्णुके सहायक रहनेसे देवताओंका दैत्यलोग कुछ नहीं करसक्ते ॥ १८ ॥ हे नन्दरायजी! यह तुम्हारा पुत्र गुण, कीर्ति, लक्ष्मी और प्रतापमें विष्णुभगवान्‌की समान जान पड़ता है, सावधान होकर तुम इसकी रक्षा करना ॥ १९ ॥ और ज्योतिषशास्त्रकी रीतिसेभी मैंने तुम्हारे पुत्रकी जन्मपत्री बनाई है वह भी सुनलो ॥

श्लोक-स्वस्ति श्रीसौख्यदात्री सुतधनजननी पुष्टितुष्टिप्रदात्री मांगल्योत्साहकर्त्री गतभवसदसत्कर्मणां व्यंजयित्री। नानासम्पद्विधात्री धनकुलयशसामायुषोवर्द्धयित्री सर्वापद्विघ्नहंत्री गुणगणसहिता लिख्यते जन्मपत्री ॥ १ ॥

श्रीशुभसंवत्सरेऽस्मिन् भगवत्पूजनविशिष्टधर्मयुक्ते श्रीद्वापराख्ये युगे गताब्दाः८६३८८० आठलाख त्रेसठसहस्र आठसौ अस्सी तदंतर्गतसंध्यांशसमये भोजवंशावतंसस्य राज्ये दक्षिणायने रवौवर्षासंज्ञकर्तौ भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे शुभतिथौ अष्टम्यां बुधवासरे, रोहिणी-नामनक्षत्रे, आयुष्मान् योगे कौलवनामकरणे, एवं पञ्चाङ्गशुद्धौ, सिंहार्कगतांशाः ०७। ०३ तत्र दिनमानम् ३२ तत्रेष्टम् ४६ तत्समये वृषलग्नोदये, शुक्रक्षेत्रे, सूर्यहोरायां बुधद्रेष्काणे, शुक्रनवांशे, भौमद्वादशांशे, गुरुत्रिंशांशे, ग्रहषड्वर्गबलोपपन्ने लग्ने शुभग्रहांकितवेलायां यदुकुलावतंसस्य वरीयसो गोपस्य पञ्चप्राणतुल्येषु पंचसुतेषु मुख्यतमस्य नन्दरायाभि-धस्योढा धर्मपत्न्युभयकुलानन्दकर्त्री इन्द्रनीलमणिमरकत इव मौक्तिकमणिशुक्रपुट इव
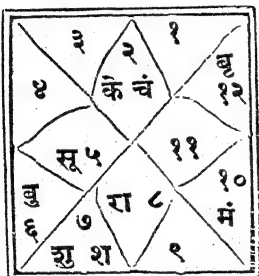
परमानन्दजनकं व्रजजननयनचन्द्रचकोरसमं स्वमात्मजं स्वकुक्षेर्जनयामासः तस्य रोहिणीनाम नक्षत्रस्य तृतीयचरणे बकाराक्षरे इकारस्वरे प्रसिद्धनाम विपिनविहारी प्रतिष्ठितम् वृषलग्न, चन्द्रमा, मंगल, बुध, शनि यह चार ग्रह उच्चके पड़े हैं वृषके चन्द्रमा और केतु लग्नमें, सिंहके सूर्य चौथे सुखस्थानमें, कन्याके बुध पांचवें विद्याके भवनमें, छठे शुक्र और शनैश्चर शत्रुके घरमें, वृश्चिकके राहु सातवें स्त्रीके घरमें, मकरके मंगल नवें भाग्यस्थानमें, मीनके बृहस्पति ग्यारहवें लाभस्थानमें। हे नन्द ! तुम्हारे पुत्रके ऐसे शुभग्रह पड़े हैं कि, यह त्रिलोकीका राजा होगा और दुष्टोंको मार भूमिका भार उतारैगा यह साक्षात् पूर्णब्रह्म है. हे नन्दजी ! नामकरण तो होगया, अब इनका अन्नप्राशन भी करलो क्योंकि आजका दिन बहुत श्रेष्ठ है, माघका महीना है, चौदश तिथि है, बृहस्पतिवार है, शुक्लपक्षहै, रेवती नक्षत्र है, परम पुनीत मीनलग्न और शुभयोग ऐसा उत्तम मुहूर्त्त मिलना बहुत दुर्लभ है, यह उत्सव शीघ्र करना चाहिये, यह वचन सुन नन्दजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर सेवकोंको आज्ञा दी कि, शीघ्र पूजाकी सब सामग्री इकट्ठी करो आज बलभद्र और कृष्णका अन्नप्राशन उत्सव होगा, बातकी बातमें सब सामग्री लाकर रखदी और सब ब्राह्मण भी आन आनकर अपने अपने आसनोंपर बैठगये और सब पूजाकी सामग्रियोंको देखने लगे ॥

दोहा-दधि मधु घृत नवनीतके, बासनधरे अपार।
दूध शर्करा तैल गुड, राजत विविध प्रकार ॥

तन्दुल, धान, मूँग, यव, गेहूँ, तिल, उडद, मिष्टान्न, लड्डू, पेडे, वैकुंठी, अमृती, जलेबी, धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, अगर, कपूर, केशर, देवदारु, मृगमद, सुवर्णके कलश, झारी, लोटे, थाली, परात, कटोरे, छोटी छोटी कटोरी, नाना प्रकारके रत्नोंकी माला, मोतियोंकी माला मूँगोंकी माला, कमलोंकी माला, चन्दनकी माला, भाँति भाँतिके भूषण, वसन, रोली, चन्दन, पूगीफल, पान, श्रीफल इत्यादिक अनेक पदार्थ नन्दजीने पृथक् पृथक् गर्गाचार्यको

दिखाये फिर जहाँ तहाँ कदलीके खम्भ गडवादिये, उनपर आम्रके नवपल्लवोंकी बंदनवारें, बीचबीचमें तुलसीके बृन्द, चांदनी, चमेली, गन्धराज, मदनबाणके पुष्पोंके हार द्वार द्वार पर लटकादिये सब मार्ग चन्दन और केवडेके जलसे छिडकवादिये, मंगलकलश और गंगाजलके कुम्भ भरवा भरवाकर रखवादिये, सब नगरमें निमंत्रण भेजदिया और जहाँ जहाँ अपने सुहृद मित्र थे सबके पास पत्र भेज दिये यशोदाने नायनको भेजकर सब गोपियोंको बुला लिया, मंगलाचार होनेलगा, बधाई बजने लगी, ढोलक, मजीरे बजाय बजाय गोपियें गाने लगीं, बाहर जहाँ तहाँ दुंदुभी, ढोल, रणसिंहे बजने लगे और ठौर ठौर विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर अप्सरा, देवांगना घूम घूमकर नृत्य करने लगीं, गायन गाने लगे उस मनोहर गानको सुन सुनकर गोप गोपी आनन्दमें मग्न थे उस समय स्वजन, मित्र सुहृद, सम्बन्धी जो जो आते थे, नन्दजी सबकी कुशल बूझ बूझ आदर सन्मान सहित, हाथ पकड पकड सबको यथायोग्य उत्तम उत्तम ऊर्नी और रेशमी आसनोंपर बिठाते जाते थे और जो ऋषि मुनि महात्मा लोग आते उनको दण्डवत् प्रणाम कर बडे आदर सत्कारसे कुशासनोंपर पधराते जाते थे, लाखों याचक द्वारपर पुकार कर रहे थे, उस समय नगरमें ऐसा कुलाहल मचरहा था कि, किसीकी बात किसीको कठिनाईसे सुनाई आती थी, उस अद्भुत उत्सवको देख देख देवता आकाशसे फूल बरसा रहे थे, सबके मनमें उत्साह अधिक बढरहा था उस समय कुबेरने आनकर स्वर्ण और रत्नोंकी तीन मुहूर्त्त तक ऐसी वर्षाकरी कि, सब याचक अयाचक करदिये. जब सब आगये तब नन्दजीने स्नान कर पीताम्बर पहर पवित्र हो आसनपर बैठे और एक रत्नजटित सुवर्णकी चौकीपर गर्गाचार्यको बिठाया, प्रथम गणेश और नवग्रहका पूजन करवाय फिर पितृकर्म और देवकर्म जो जो गर्गाचार्यजीने बताये वह सब कार्य करके फिरः-

सोरठा-पीत झंगुलि पहिराय, शीश मुकुट धर अति सुघर।
लियो गोद बैठाय, नन्दराय घनश्यामको ॥

थोडासा मिष्टान्न श्रीकृष्णके मुखमें दिया, फिर जो जो मित्रगण वहाँ आये थे सबको षट्रस भोजन जिमाय वस्त्रालंकार पहिराय, ताम्बूल नारियल दे देकर सबको बिदा किया और ब्राह्मणोंको उत्तम उत्तम रेशमी वस्त्राभूषण, मणि, रत्न, दक्षिणा दे देकर आशीर्वाद लिया और गर्गाचार्यको इतना दान दिया कि, जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सक्ता. हे राजन् ! उस समयके दानका वर्णन शेष शारदा भी नहीं कर सक्ती. फिर और किसी कविकी क्या सामर्थ्य है? श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब सब बिदा होगये और गर्गाचार्य चलनेको हुए तो श्रीकृष्णको गोदमें लेलिया और पुलकायमान हो नेत्रोंमें जल भरकर बोले कि, हे प्रभो ! मुझको तो आपके दर्शनकी अभिलाषा थी सो पूरी होगई और यह जो द्रव्य नन्दरायजीने मुझको दिया इससे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं मुझको तो एक आपके चरणारविन्दकी अविरल भक्ति चाहिये और अणिमादिक सिद्धियोंसे, योगसे मुक्तिसे, परमतत्त्वसे, इन्द्रसे, स्वर्गसे और सालोक्यसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं, मुझको तो

केवल आपके चरणारविन्दकी भक्तिही परमपद है. हे प्रभो ! जो सर्वज्ञ और सर्वत्रगामी शंकरके समान हो और तुम्हारे चरणकमलोंमें रति न हो तो वह क्या ? तुम्हारेही चरणोंकी भक्तिके प्रतापसे शिवने मृत्युको जीता, ब्रह्मा जगत्‌का कर्ता हुवा. धर्मने संसारमें साक्षी पाई, शेषजीने दुर्जयकालका पराजय कर सर्वत्र पृथ्वीको शीशपर धारण किया, लक्ष्मी सर्वसिद्धियोंकी धात्री हुई जो दिन रात आपके पदसरोज पै लोटती रहती हैं. पार्वतीने महादेवसे पति पाये, सरस्वतीको कैसा उत्तम पद मिला और राधिकाजीको अद्भुत पदवीका तो वर्णनही क्याहै ? जिनको आपने हृदयमें निवास देरक्खाहै, हे नाथ ! मुझपर यही अनुग्रह रखना कि, मेरे हृदयमें आपके चरणारविन्दकी भक्ति बनीरहै. नन्दजी बोले कि, हे स्वामी ! आपने जो राधाका नाम लिया सो राधा ऐसी भगवान्‌की परम भक्तिनी कौनहै ? नन्दजीके परमगूढ वचन सुनकर गर्गमुनि बोले कि, हे ब्रजेश ! तुम्हारा पुत्र और राधिका दोनों गोलोकके वासी हैं, श्रीदामा, इनके परममित्र थे, एक दिन किसी बातपर श्रीदामा और राधिकामें क्लेश होगया; तब राधिकाने श्रीदामाको शापदिया कि, तू भूमण्डलमें जाकर असुर होजा श्रीदामाने राधाको शापदिया कि, तू भूमण्डलमें गोपिका होगी और वृषभानु तेरे पिताका नाम और कीर्ति तेरी माताका नाम होगा. सो हे नन्द ! कृष्ण अर्द्धांशा राधाका समान भवबाधा हरनेवाली श्रीगोलोकवासिनी, अयोनिजन्मा, मूलप्रकृति ईश्वरी कौन है ? जो ब्रजमें श्रीवृषभानुके घर आनकर प्रगट हुई है और दिन २ शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी नाईं बढती है; सो हे नन्दजी ! एक मूर्तिकी दो मूर्ति होगई हैं इसीलिये इनका नाम "राधा-कृष्ण" संसारमें विख्यातहै, जब राधा वरसानेमें आनकर गोपी हुई तो श्रीकृष्णकोभी आपके घर जन्म लेना पडा, क्योंकि अपनी प्रिया बिन अकेले कैसे रहते, जो सदासे एकही संग रहे हैं उनका बिछोहा कसे होसक्ताहै ॥

चौ०-राधाहेत मनुज तनु धारो । राधापति राधाको प्यारो ॥
कंसासुर भय वृथा जतायो । राधाहित गोकुलमें आयो ॥
भयके ईश इनहिं भय काको । केवल राधाहितहै जाको ॥

हे ब्रजनाथ ! इसी राधाके साथ आपके पुत्रका विवाह होगा और यही राधा तुम्हारे कुलकी बाधा हरनेवाली होगी; यह कह सबको आशीर्वाद दे गर्गाचार्य बिदा होकर चल दिये, पीछे नन्दजीने परमानन्द हो अपने मनोरथको सब प्रकारसे परिपूर्ण समझा ॥२०॥ जब कुछ और थोडे दिन व्यतीत हुए तब बलदेवजी और श्रीकृष्ण दोनों भैय्या हाथ टेक २ कर घुटनोंसे चलने लगे ॥

भजन-सिखवत चलन यशोमति मैया । अरबराय करपानि गहावत, डगमगात धरणीपर पैया ॥ १ ॥ कबहुँक ठाढी मुखतन हेरत आनँदकर हरिलेत बलैया । कबहूं कुल देवता मनावत चिरजीवहु मम बाल कन्हैया ॥ २ ॥ कबहूँ बलको टेर बुलावत इहिं आँगन खेलो दोउ भैया । सूरदास प्रभु सुखनिधि दाता, हरि बलभद्र नन्दके छैया ॥ ३ ॥ २१ ॥

जिस समय कृष्ण और बलभद्र दोनों भाई ब्रजकी कीचमें विचरते थे उससमय उनके पावोंकी पैंजनी और कटिकी किंकिणीकी झनकारका सुन्दर शब्द सुनकर यशोदा और रोहिणी मनहीं मनमें आनन्दित होती थीं और जो पथिक मार्गमें जाते उनहींके पीछे घुटनों घुटनों थोडी दूर चले जाते, जब वह पुरुष इनकी ओरको देखते तब डरकर अपनी माताके पासको भागते ॥ २२ ॥ तब माता यशोदा और रोहिणी अपने पुत्रको उठाय हृदयसे लगाय उनके अंगोंको देखें हैं, कहीं तो ब्रजकी कीचमें लिपटरहेहैं और कहीं प्रमादकी केशर अंगमें लगी हुई है. जिनके स्तन दूधसे खसि आयेहैं उनको खिलाय खिलाय दूध पिलाय पिलाय उनकी ओरको देख २ प्रेममें मग्न हो रही हैं और उनके मुखकी भोली भोली मुसक्यान और छोटी २ दँतुरियोंकी छबि निहार निहार बारम्बार प्रसन्न होती थीं ॥

दोहा-सोहत कठला कंठमें, उर हरिनख छबिराश।
मनहु श्याम घनमें किया, नव शशि विमल विकाश ॥

बहुतसे गोपोंके बालकोंके संग जब कृष्ण और बलदेव खेलते कभी दौड दौड कर द्वार पर जाते कभी फिर भागकर घरमेंको आते, उस समय यशोदा और रोहिणी उनकी ओरको देखतीही रहती, कहीं यह बालक गिर न जायँ क्योंकि इनको अभी पाँव पाँव चलना नहीं आता दिन रात उनहीके पीछे पीछे फिरती घरका कुछ काम धन्धा नहीं होसक्ता था, उसी अवसरमें एक अपूर्व ब्राह्मण नन्दजीके घर कहींसे आगया कि, श्रीयशोदाजी उसको देखकर बहुत प्रसन्न हुई और मन्दिरमें लेजाय चौका लगवाय दूध चावल मँगाय ब्राह्मणसे बोलीं कि, आप भोजन बनाओ और घी, चून, मीठा और मेवा देदी तब उस ब्राह्मणने भोजन बनाया, थालीमें परोसा और भगवान्‌को भोग लगाया और नेत्र मूँदकर श्रीकृष्णका ध्यान किया कि, हे विश्वम्भर ! यह भोजन पाइये उसी समय श्रीकृष्ण उसकी थालीमें जाकर भोजन करने लगे उस ब्राह्मणने आँख खोलकर देखा तो यशोदाका बालक थालीमेंकी खीर खारहा है, ब्राह्मणने उस थालीका भोजन नहीं पाया और यशोदासे कहने लगा कि, तुम्हारा बालक बडा चंचल है हमारा भोजन जूँठा कर दिया, यशोदाने उस ब्राह्मणको मनाय परचाय और दूध मँगाय खीर बनवाई, उस ब्राह्मणने फिर थालीमें परोसी भगवान् वासुदेवको भोगलगाय नेत्र मूँदकर ध्यान किया फिर यशोदानन्दन उसकी थालीपर जाकर खीर खाने लगे, फिर उसने नेत्र खोलकर देखा तो वही लडका थालीमें भोजन कर रहाहै, तब ब्राह्मण क्रोध करके बोला अरी यशोदा ! तेरा बालक बडाही कुकर्मी है फिर मेरा भोजन छूलिया तो हम बारबार भोजन नहीं बनानेके होगये ॥

सोरठा-महरि जोरि युगपान, विनय करी द्विजराजसों।
बालक अति अज्ञान, बहुरि पाकविधि कीजिये ॥

फिर यशोदाने ब्राह्मणकी विनती करकराके प्रसन्न किया और फिर दूध मिष्टान्न मँगाकर

भोजन बनवाया और ब्राह्मणने फिर थालीमें परोसकर नारायणको भोग लगाया और आँखें मींचकर ध्यान किया तो फिर श्यामसुन्दर थालीमेंकी खीर खाने लगे और फिर ब्राह्मणने देखा कि, नन्दलाल थाली में भोजन कर रहेहैं, तब तो ब्राह्मण परशुरामकी नाईं उछलपडा और कुपित होकर बोला कि, यशोदा तेरा लाल बडा नटखट है, भूखके मारे मेरे तो प्राण निकले जायँहैं जबहीं भोजन बनाता हूं तबहीं यह जूंठा कर देता-है, अब हम जाते हैं, रहने दे अपना भोजन छाजन, यशोदाने हाथ पाँव जोडकर ब्राह्मणको तो ठण्डा किया और कृष्णसे कहा क्यों रे ! तू नहीं मानता मैं तो प्रीतिसे ब्राह्मणको भोजन कराती हूं और तू जूंठा कर २ देता है,यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले कि,हे माता ! तू मुझको वृथा दोष मत लगा इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं जब यह ब्राह्मण बारम्बार मेरी विनती करके भोजनके लिये मुझको बुलाताहै तब मैं इसकी भक्तिको देखकर भोजन करने लगताहूं नहीं तो मुझको इसके भोजनसे क्या प्रयोजन ? यह यशोदानन्दनके गूढ-वचन सुनकर ब्राह्मणके हृदयके नेत्र खुलगये, यही हैं साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर, जिनके दर्शनके लिये शिव ब्रह्मादिक देवता भटकते फिरतेहैं वह दिन रात नन्दके आँगनमें विहार करते फिरते हैं ॥

दोहा-धनि धनि गोकुलनन्द धनि, धन्य यशोदा माय ।
धनि ब्रजवासी धन्य ब्रज, जहँ प्रगटे हरि आय ॥

हे प्रभो ! आज मेरा जन्म सफल है और मेरे सब सुकृतका फल आज प्रगट होगया जो मुझ दीनको आपने दर्शन दिया,हे दीनदयालु ! मेरा अपराध क्षमा करना,मैंने अनजाने यह कठोर वचन कहा,मेरी रसोई जूँठी करदी, मैंने आपकी महिमाको नहीं जाना आपकी मायाने ऋषि मुनियोंको भुला रक्खाहै मेरी क्या सामर्थ्य है? जिसने आपकी शरण ली,भवसागर पार होगया,आप सबके घट घटमें वास करते हैं और पतित उधारन आपका नाम है, मेरा भी उद्धार कीजिये. हे दीनदयालु ! हे भक्तवत्सल ! हे गोपाल ! मैं आपकी "शरणहूं शरणहूं शरणहूं " यह कह नन्दरायके आँगनमें लोटने लगा, भगवान्ने उसको पूर्ण-प्रेमी समझकर अपनी निश्चलभक्ति उसको दी, ब्राह्मण प्रेममें मग्नहो बारम्बार यह कहने लगा कि " हे नन्दकुमार,तुम्हारी जयहो ! हे नन्दकुमार,तुम्हारी जय हो ! हे नन्दकुमार ! तुम्हारी जयहो, " यह आशीर्वाद देता हुवा चला, उससमय यशोदा यह चरित्र देख-कर अत्यन्त चकित हुई और ब्राह्मणके चरण पूज बहुतसे रत्न, मणि दक्षिणा देकर बिदा-किया. यशोदाने फिर श्यामसुन्दरको गोदीमें उठाय खिलाने लगी और उस मनोहर छवि पर बलिहारी हो होकर मनहीमनमें आनन्द होती थी. इसी प्रकार कृष्णचन्द्र नई नई लीला कर करके नन्द यशोदाको सुख देतेथे. एक दिन यशोदा रात्रिके समय कृष्णको आँगनमें खिला रही थीं और शरदपूनोंका चन्द्रमा उदय हुवा यशोदा कृष्णचन्द्रको दिखाने लगी कि, हे तात ! इस समय चन्द्रमाकी शोभा कैसी अद्भुत है, अपनी किरणोंसे अमृत बरसा रहा है और शीतलताई कैसी सुन्दर है जो प्राणियाके हृदयकी तापको दूर करैहै,

मनमोहन इकटक चन्द्रमाकी ओरको देखकर बोले कि, माता यह क्या है ? मीठाहै कि, खारा मुझको बडा प्यारा लगैहै, किसी प्रकारसे मुझे मँगादे क्योंकि मुझे बडी भूख लगी है मैं इस मनोहर फलको खाऊंगा. अरी माता ! तू तो विलम्ब करैहै और भूखके मारे मेरे प्राण निकले जाते हैं यह कह गोदसे उतर पाँव पटक २ रोने लगे, यशोदा मनहीमनमें पछितावा करनेलगी कि, मैंने क्यों इसको चन्द्रमा दिखा-दिया, यह तो विना जाने रोवै है, अब चन्द्रमा कैसे आवै जो यह मानै ? उस समय यशोदा कभी कुछ दिखाती थी, कभी कुछ दिखाती थी कि, किसी प्रकार यह इस बातको भूल जायगा, अब मैं क्या उपाय करूं ? कैसे इसको समझाऊं. फिर बोली कि, हे पुत्र ! यह खानेकी वस्तु नहीं है यह तो जगत्का खिलौना है, यही हमको माखन नित्य दिया करता है जो मैं तुझको थोडी थोड़ी देरमें देतीहूँ, जो तुम माखनके देनेवाले चन्द्रमाकोही खा जाओगे तो फिर माखन कहांसे आवेगा? हे मनमोहन ! हठ मत करो, इसको दूरसे देखतेरहैं हैं खाते नहीं हैं, खानेके लिये तो मेवा, पकवान, मिठाई बहुत रक्खी है जो तेरी इच्छा होय सो खा ले और हठ मतकरै. मैं अपने लाला-पर बलिहारी जाऊं, फिर कृष्ण विचलगये और बारबार यही कहने लगे कि, मैं तो इसी चन्द्रमाको लूंगा, कैसेही मँगा मैं तो इसी चन्द्रमाको लूंगा. यशोदा अपने मनमें कहने लगी कि,अब क्या उपाय करना चाहिये इसके लिये मैं चन्द्रमा कहांसे लाऊं, इतनेमें एक गोपी आकर बोली अरी ! तेरा लाला बहुत देरसे क्यों मचल रहाहै? यशोदाने कहा चन्द्रमाको माँगरहाहै मैं बहुतेरा समझाऊंहूं एक नहीं मानता भला चन्द्रमा कैसे आसक्ताहै? गोपी बोली चन्द्रमाको मैं अभी बुलाय दूंहूं, तू सन्देह मतकरै, घरजाय एक परात लाय आँगनमें धर उसमें पानी भरदिया और ब्रजभूषणसे बोली बेटा रोवै मत अब चन्द्रमा आया, यह कह परात ऊपरको उठा पुकारने लगी कि अरे चन्द्रमा ! शीघ्र आव, तुझे मोहन प्यारा बुलावै है तू इसी पानीमें अपना रूप धरकर आजा जो हमारे श्रीकृष्ण तुझको देखकर प्रसन्न हों, यह कह जलके पात्रको पृथ्वीपर धरदिया और कहने लगी कि, चन्द्रमा इसमें आगया मैंने बुला लिया लो देख लो, इतनीही बातके लिये रोवा पीटी मचा रक्खी थी, सो देखो ! इस भाजनमें चन्द्रामा विराजमान है जो तुम्हारी इच्छा-हो सो करो. जलमें चन्द्रमाकी परछाईं देखकर दोनोंहाथ पानीमें डाल उसको पकडने लगे परन्तु उसमें कुछ होय तो हाथ आवै. फिर जलका पात्र उठवाकर उसके नीचे देखा वहाँ वह प्रतिबिम्बभी दृष्टि न आया, इस कौतुकको देख देख ब्रजनारी और यशोदा हँसरहीं-थीं, माताको हँसती देख श्यामसुन्दर फिर लोटगये और सुसक सुसक कहने लगे मैं तो चन्द्रमाको अपने हाथमें लूंगा जब मानूंगा, यह तो पानीहीमें भागा २ फिरता है मेरे हाथ क्यों नहीं आता? ऊपर मुझको दिखाई दे रहाहै तू कह तो मैं पकडलाऊं, यशोदा बोली कि, हे मनमोहन तेरे मनोहर मुखको देख चन्द्रमा तेरे सन्मुख नहीं आता, अपने मनमें लज्जित होताहै कि, कहाँ मैं मन्द चन्द और कहाँ श्रीबालगोविन्दका मुखारविन्द

इसलिये सकुचका मारा भागा भागा फिरताहै रोतेही रोते श्रीकृष्ण सोगये, यशोदाने उठाय हृदयसे लगाय शय्यापर पौढाय दिया और सहज सहजमें थपकोरने लगी कि, आज मेरा मनमोहन प्यारा बहुत रोया है, यह कह यशोदा कृष्णचन्द्रका मुखारविन्द देखकर ॥

सोरठा-होत मनहि आनन्द, मधुरेस्वर गावत कछुक।
उठबैठे ब्रजचन्द्र, हडबडाय अति चौंककर ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब कृष्णचन्द्र सोतेसे चौंक पडे तब यशोदा फिर घबराई कहीं चन्द्रमाको न माँगने लगै, परन्तु श्यामसुन्दरको चन्द्रमाका कुछ भी ध्यान न रहा यशोदा बोली बेटा ! सो जा मैं तुझको एक पुराणी कहानी सुनातीहूं, श्रीकृष्ण सोरहे तब यशोदा बोली कि, अवधपुर नाम एक महारमणीक नगर था वहां बड़े बड़े ऊंचे मंदिर और अटारी थीं और अत्युत्तम बाजार चन्दन और केवडेके जलसे छिड़का हुवा दिन रात सुगंधित रहता था, अनेक प्रकारकी हाटैं जिनपर भाँति भाँतिकी वस्तु क्रय विक्रय होती रहती थीं, तहाँ राजा दशरथकी राजधानी थी, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, उनकी तीन पटरानी थीं, उनसे चार कुमार उत्पन्न हुए, राम, लक्ष्मण भरत, शत्रुहन. चारों महातेजस्वी, बलशाली, प्रतापवान् और सर्वगुणानिधान थे, उनमें रामचन्द्र परमव्रतधारी भक्तहितकारी जनमनरंजन भक्तभयभंजन और दुष्टदलगंजन थे और उनके गुरु एक विश्वामित्र ऋषि थे उनको राक्षस दिन रात सताते रहैं और पूजा पाठ होम यज्ञ नहीं करने दें. ऋषीश्वरने अपनी रक्षाकेलिये राजा दशरथसे दो पुत्र माँग लिये राम और लक्ष्मण, जब राम लक्ष्मण उनके मखकी रक्षामें तत्पर हो राक्षसोंका विध्वंस करने लगे, तब तो विश्वामित्रने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनको विद्या पढ़ाई और बहुत प्रसन्न होकर विद्याका आशीर्वाद दिया ॥

सोरठा-तहँ जनक इकभूप, धनुषयज्ञ ताने रचो।
कन्या परम अनूप, जुरे तहाँ भूपति अधिक ॥

विश्वामित्र उन दोनों राजकुमारोंको अपने संग लेकर राजा जनकके स्वयम्बरमें गये, राजाजनकने विश्वामित्र और इन दोनों भ्राताओंका बड़ा आदर सत्कार किया और सभामें खड़े होकर राजाजनकने प्रण किया कि, जो कोई इस शिवके धनुष्को उठालेगा उसके साथ मैं अपनी कन्याका विवाह करूंगा, इस बातको सुन जितने राजा आये थे सबने धनुष्को उटाया परन्तु धनुष् तिलभर भी भूमिसे न उठसका और जब सब नरेश उठा उठा कर हार गये, तब जनकजीने कहा कि, अबतक तो मैं जानता था कि, पृथ्वीपर वीर हैं परन्तु आज मैं जाना कि, पृथ्वी वीरविहीन होगई. यह बात सुनकर लक्ष्मणसे न रहा गया और कहा कि, हे जनकजी ! जहाँ कोई रघुवंशी होगा वह इस वचनको न सुनैगा. लक्ष्मणकी बात सुनकर उसी समय रामचन्द्रने बाँये पाँवके अँगूठेसे धनुष्को उठाकर दो खण्ड करके सभासे बाहर बगल दिया और जनककी कन्या सीताके साथ अपना

विवाह किया. फिर उन तीनों भ्राताओंका विवाह भी जनकने अपनी कन्याओंके साथ कर दिया, जब रामचन्द्र विवाह करके अवधपुरमें आये तब राजा दशरथने राज्य अधिकार रामचन्द्रको देना चाहा, उस समय कैकेयीको मन्थरादासीने बौरा दिया राजा दशरथसे कैकेयीने वर मांग कर राम लक्ष्मणको वनवास दिलवादिया,पिताके वचन सुन रामचंद्र लक्ष्मण और सीतासमेत वनको चलदिये; रामचन्द्रके जातेही दशरथजीने भी प्राण तजदिये, जब भरत शत्रुहनने सुना कि, हमारी माताने बड़ा अयोग्य कर्म किया जो हमारे भ्राता राम लक्ष्मणको वनवास दिलादिया और पिताके प्राणलिये, हाय! विना राम लक्ष्मणके हम राज्य करें, ऐसा कभी नहीं होगा, यह कह सब नगरनिवासियोंको संग ले भगवान्से मिलनेको चित्रकूट गये तब रामचन्द्रने उनको निष्कपट देख चरणपादुका दी और अयोध्याको लौटा दिया और राजीवलोचन परमोदार रामचन्द्रने सीताके कहनेसे कपटमृग मारीचको मारा तब पीछे रावण सीताको हरकर लेगया उस समय सीताने पुकारा कि, हा राम! हा लक्ष्मण! यह सुनतेही श्यामसुन्दर नींदको बिसार चौंककर उठबैठे और कहने लगे कि, हे लक्ष्मण! हे लक्ष्मण! मेरा धनुष शीघ्र ला, मोहनकी यह बात सुन यशोदा घबड़ागई कि, आज मेरे कन्हैयाको क्या होगया जो अचानक चौंकपड़ा, क्या इसने स्वप्नमें कुछ देखा? जो यह डरगया, यह विचारकर प्रथम तो राई नोंन उतारा, फिर कुछ यंत्र मंत्रभी किया, आज सांझहीसे चन्द्रमाके लेनेकी हठसे रोरोकर आँखें लाल करी थीं, मैं जानूं उसी चन्द्रमाका ध्यान इसके हृदयमें बसारहा, यह कह फिर कृष्णको पालनेमें झुलाने लगीं ॥

सोरठा-बड़भागिनि नँदनारि, महिमा वेद न कहिसकैं।
हरि मुख चन्द निहारि, बिसरावति त्रयताप उर ॥

एक दिन श्रीकृष्ण शय्यापर सो रहे थे नन्दजी उठकर उनके निकट आये और सहजमें मुखपरसे वस्त्र उघाडकर कृष्णचन्द्रके मुखारविन्दकी शोभा जो देखी तो कैसी अद्भुत छवि दिखाईदी, मानो दूधके मथनके समय फेनको फोडकर चन्द्रमा निकल आया, नन्दादिक ब्रजके जो ग्वाल बाल चतुर चकोररूप थे वह चारों ओरसे घिरकर इकटक निहारने लगे और यशोदा कुमुदिनीकी समान फूलकर बोली कि,हे पुत्र! उठो प्रातःकाल होगया॥

प्रभाती-जागिये गोपाल लाल, आनंदनिधि नन्दबाल, यशुमति कहै बार बार, भोर भयो प्यारे ॥ नयन कमलदल विशाल, प्रीति वापिका मराल, मदन ललित वदन उपर कोटिवारि डारे ॥ उगत अरुण विगत शरद, शर्वरीशशांक किरण, हीन दीप मलिन क्षीण, द्युति समूहतारे ॥ मनहुँ ज्ञानघन प्रकाश, बीते सब भव विलास, आशत्रास तिमिर तोष, तरणि तेजजारे ॥ बोलत खग मुखर निकर, मनो वेद बन्दीजन, सूत वृन्द मागध गण, विरद बदत जय जय जय जयति कैटभारे ॥ विकसत कमलावलीक, चल प्रफुल्ल चंचरीक, गुंजत कल कोमल धुनि, त्याग

कञ्जन्यारे ॥ मनु विराग पाय सकल, शोककूप गृह विहाय, प्रेम मत्त फिरत भृत्य, गुणत गुण तुम्हारे ॥ सुनत वचन प्रिय रसाल, जागे अति-शय दयाल, भागे जंजाल जाल विपुल द्वन्द्व टारे ॥ त्यागे भ्रम कन्द द्वन्द, निरखिकै मुखारविन्द, सूरदास अतिअनन्द, मोह मन्दभारे ॥

हे बेटा ! माखन रोटी पकवान मिठाई तेरे लिये रक्खीहै, जो इच्छा हो सो कलेऊ कर ले, सबमाखन और मिश्री लाकर मोहनके सम्मुख रक्खी और कुछ खवाय पियाय तप्त जलसे उनका मुख धोया श्यामसुन्दरका सुन्दर मुखारविन्द देखकर नन्दरानी नन्द-जीसे कहने लगी कि, हे स्वामी ! अब मदनमोहनका कर्ण छेदन करदीजै,क्योंकि कुण्डल सहित मुखारविन्दकी शोभा देखनेको चित्त चाहताहै, नन्दजीने उसी समय ब्राह्मणको बुलाय शुभमूहूर्त ठहराय सब सुहृद सम्बन्धियोंको निमंत्रण भेजदिया, कुलकी रीति करने लगे. गोपियें आँगनमें बैठ ढोलक मृदंग बजाय मंगलाचार करने लगीं. देवता हर्षित हो होकर पुष्पोंकी वर्षाकरने लगे, प्रथम तो कृष्णचन्द्रका मुण्डन किया, फिर पानके ऊपर पूगीफल धरकर और भेली देकर कृष्णचन्द्रके मुखमें बतासे दे दोनों कान छेद दिये ब्रह्मा शिव देवगण सहित उस कौतुकको देख देख कर हँस रहेथे और यशोदाका हृदय धक-धक कर रहाथा, अत्यन्त कोमल कानोंको छेदनेके समय अपना मुख सम्मुख न करसकी, कृष्णको रोता देखकर झट मंदिरमें लेगई, नन्दजी हँसने लगे सब स्त्रियें बधाई देने और निछावर करने लगीं. उस समय देवताओंकी स्त्रियाँ परस्पर कहतीथीं कि, धन्यहैं व्रजकी स्त्रियाँ हम उनकी किंकरीकी समान भी नहीं, देखो व्रजकी स्त्रियोंका भाग्य कि, जिन श्रीकृष्णका दर्शन ब्रह्मादिक देवताओंको भी दुर्लभ है उन श्रीकृष्णपर व्रजबाला धन, मणि भूषण, वसन, न्योछावर कर कर याचकोंको देरही हैं, और वह आनन्द उनके हृद-यमें नहीं समाता चारों ओरको उमडा चला जाताहै, उनके यहाँ आनन्द और मंगल रात दिन क्यों न रहै । कि, जिनके घर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी मंगलमूर्ति आय प्रगट हुईहै, जिस प्रकार माता पिता सुख पावैं वह सुखनिधान नित्य वही काम करतेथे जिसका भेद वेदतक नहीं पासक्ते क्या वह नन्दके घर नाक कान छिदावें ? नहीं, यह पूर्वजन्मका प्रताप है, जो अपने भक्तोंके लिये नरशरीर धारण कर अनेक अनेक प्रकार-की बाललीला करते हैं, श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! नन्दके भवनमें इसी प्रकार एक न एक लीला करतेरहैं कभी तोतली बोलीसे गीत गावैं, कभी छोटे छोटे बालकोंको निकट बुलावैं, कभी छोटे छोटे चरणोंसे थिरकथिरक नाचैं, जब मन्द मन्द गतिसे नूपुरों-का शब्द होय तथा और अंगोंके भूषणोंका शब्द होय, उस समय आपही आप रीझ कर प्रसन्न होतेथे ॥ २३ ॥ जिस समय व्रजमें गोपियोंके देखनेके योग्य श्रीकृष्ण और बलराम बाललीलाओंको करने लगे और दौड दौडकर बछरोंकी पूँछ पकड पकडकर खैंचे, जब बछडे भागते तो यह उनके पीछे पीछे खिंचे चले जातेथे, इस प्रकारकी लीला वह गोपी देख घरोंके कामको छोड छोड हँस हँस कर हर्षको प्राप्त होती थीं ॥ २४॥ माता यशोदा

और रोहिणी, अतिचंचल खेलमें लगेहुए श्रीकृष्ण बलदेवको देखकर गाय, बैल, डाढवाले जीव, बन्दर, अग्नि, जल, सांप, पक्षी कांटोंसे रोक २ बचाती फिराकरती थीं और घरके काम धन्धे सब छोडदियेथे, जब रोहिणी और यशोदा फिरती फिरती हारजातीं तब श्रीकृष्ण बलभद्र माताओंके मनकी गति जानकर आँगनमें खेलने लगते ॥ २५॥ हे राजन्! व्रजमें रामकृष्ण दोनों भाई थोडेही दिनों पीछे घुटनोंहीके बल नहीं वरन् चरणोंसे अनाया सपूर्वक चलने लगे ॥ कभी घरमें जाते कभी बाहर आते कभी भुजा उठा उठा कर बालकोंको बुलाते कभी धौरी, धूमरि, गोरा, काली नाम लेले कर गायोंको गुहराते कभी माखन मिश्री मातासे माँग माँगके खाते कभी मुकुरमें जो अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता तो उससे कहते ले भैय्या तू भी माखन खाले जब वह प्रतिबिम्ब न लेता तो दोनों हाथोंसे आधा आधा कर एक भाग उसको देते, जब माखन पृथ्वीपर गिर जाता तो कहते कि, भैय्या अब क्यों नहीं लेते वह बात भी बताओ इन अद्भुत चरित्रोंको, यशोदा मय्य छिप छिपकर देखती और अपने मनही मनमें प्रसन्न होती और झट आनकर गोदमें उठाय मुख चूम लेती, उस परमानन्दके सुखको कौन वर्णन कर सक्ता है ?

सोरठा-कौतुक निधि भगवान्, करत चरित नित नित नये।
सुन्दर श्याम सुजान, व्रजवासिनके प्रेमवश ॥ २६ ॥

एक दिन मदनमोहन व्रजवासियोंके बालकोंके संग अपनी सिंहपौर पर खेल रहेथे, सबकी एक अवस्था भोली भोली सूरत, कृष्णकी प्रीतिमें मतवाले अनेक अनेक प्रकारकी लीला कर रहेथे, कभी गाते, कभी हँसते, कभी किलकारी मारते, कभी अपनी माताको पुकारते, धन्य यशोदाके भाग्यको, मदनमोहनकी उस मनोहर छविको देख २ व्रजवासी लोग स्त्री पुरुष मनहीं मनमें कहतेथे कि, कोटि कामदेवभी इस शोभाकी समताको नहीं पासक्ते, देखो बलराम और घनश्याम अपनी समान अवस्थावाले व्रजवासियोंके बालकोंको संग लेकर नई नई क्रीडा कर हमलोगोंको कैसा कैसा आनन्द देते हैं ॥ २७ ॥ गोपी श्रीकृष्णचन्द्रकी बाललीलाकी चपलता देखकर सब जुड मिलकर आई और श्रीकृष्णकी माता यशोदाको सुना सुनाकर यह कहने लगीं ॥ २८ ॥ अहो यशोदा! तुम अपने पुत्रको वर्जलेना हमारे घरोंमें आनकर द्वन्द्व मचावे हैं, हम तो गायोंको दुहने नहीं पातीं वह पहिलेसे पहिले बछडोंको खोलदेते हैं, बछडे दूध पीजाते हैं, दुहनेवाले ग्वाले शिरमार मारकर चले जाते हैं, यशोदा बोली, अरी तुम्हारे घर जब यह जाय तो इसको डाट दिया करो, यशोदाजीका वचन सुनकर गोपिका कहने लगीं कि, जब हम इसको डाँटे हैं तब यह हँस देता है, इसकी हँसी देखकर हमकोभी हँसी आजाती है और यह चोरीका उपाय करके दूध दही और जो कुछ मीठे मीठे पदार्थ हमारे घरोंमें रक्खे होते हैं उनको स्वादसे चुरा चुराकर खा जाता है और जो कुछ बचरहता है उसको बन्दरोंको खिला देता है और जो बन्दर भी नहीं खाते तो जान बूझकर दूध दही घीके चिकने बासनोंको फोड डालता है और जो कदाचित् माखन दूध इसके हाथ नहीं लगता तो

क्रोध करके गालियें देता है और यह कहता है कि, इनके घरोंमें आग लग जाओ फिर पालनेमें सोते हुए हमारे बालकोंको रुआकर भाग जाता है ॥ २९ ॥ और ऊंचे २ छींकोंपर धरती हैं कि, इसके हाथ न आवै, तब पीढा, पट्टा, ऊखली इत्यादि धरकर चोरीका उपाय करता है और किसी किसी छींकेके बासनमें छेदकरदेता है और नीचे सब बालक मुख लगाकर सब गोरस पी जाते हैं और जो मीठा दही होता है तब तो खाजाते हैं और जो खट्टा होताहै तौ गिरा देते हैं और जो मेवा मिष्टान्न होताहै उसको बालकोंके कन्धेपर चढकर खा लेताहै और जो हम अन्धेरेमें घरमें दही माखन कहीं छिपाकरभी धरें हैं, तो इसके आभूषणोंमें जो रत्न, मणि, माणिक, हीरे जडेहैं, उनका प्रकाश हो जाताहै, दूसरे इसका जो चन्द्रमासा मुख है उसकी उजियालीका चांदना होजाताहै तब हमारा धरा ढका सब निकाल लावै है, तबतक हम घरमें बैठी रहे हैं उस समय आवै है तो हमको देखकर भाग जाता है और जब हम अपने घरके काम धन्धेमें लग जाती हैं उस समय घरमें आन घुसताहै ॥ ३० ॥ और जब कभी हम आनकर इसको देख पाती हैं और कहती हैं कि, अरे चोर ! तो यह लौटकर कहताहै कि, तुमहीं चोर हो मैं तो घरका स्वामीहूं, ऐसी हँसीकी बातोंमें बातको टाल देताहै, हमारे लिपे पुते घरोंको बिगाड देताहै, सब दिन सखाओंको संग लिये चोरीकी चिंतामें फिरता रहता है, यह कन्हैया तुम्हारा बडा ढीठहै और पेटमें इसके सैकडों छल भरेहैं, परन्तु मुहँका मीठाहै, जो तुमको विश्वास न आवै तो हम पकडके दिखादें कभी किसीके कपडे फाडताहै कभी किसीको मारता है सब ब्रजमें धूम धाम मचारक्खी है ॥

दोहा-तेरी हँसी करावतो, गलिन गलिन ब्रजगाँव।
नन्दरायको पूतह्वै, चोर धरायो नांव ॥

सवैया-भोरहिते ब्रज छोरनको लिय, छोरनको बछरा अरु गैया ॥
धावत गावत है घरहीघर, मानतहै न कहो कछु मैया ॥
हो तुमहीं ब्रजकी ठकुराइनि, जो तुम्हरो अस हैगो कन्हैया ॥
तो यह बात कहो तुमहीं अब कैसे बसै ब्रज लोग लुगैया ॥१॥
देव मनाय मनाय थकी तब नामी भयो यह नन्दबबाके।
श्याम सलोनो हरे मनको शुभ अंग हैं याके सबै उपमाके।
बोलैं महा मधुरी बतियां सुनिकै उपजै नहिं आनंद काके।
चंचल चोर जो होतो नहीं तो अमोल रहे गुण तेरे ललाके॥२॥

अब देखो ! तुम्हारे आगे कैसा भोला भाला बना खडा है मानो कुछ जानताही नहीं, इसप्रकार जब गोपियोंने डराया तो उस समय भयसंयुक्त नेत्र उनमें श्रीमुखकी शोभा देखनेके लिये श्रीयशोदाजीसे आनके गोपियोंने उलाहना दिया तब श्रीयशोदाजी हँसके मनमोहन प्यारेको गोदीमें उठालिया और पुत्रसे कुछ कहा नहीं ॥

सवैया-प्रीति प्रमोद हिये यशुदा, हँसि लीन्हो गोविंदहि अङ्क उठाई ॥
चूमकै आनन काननमें, लगवैन कह्यो बहु भाँति बुझाई ॥
दूध दही अरु माखनकी निधि, तेरहि भौनमें है अधिकाई ॥
काहेको जात चवायनके घर, हैं मदमत्त यहाँकी लुगाई ॥

फिर यशोदा गोपियोंसे बोली कि, तुम मेरे बालकको वृथा तो चोरी लगाओ मत क्योंकि, आज तक तो मेरा कृष्ण घरसेभी नहीं निकला और दही दूधकी मेरे घर क्या कमी है ?जो तुम्हारा दही दूध चुराने जाता, देखो तुम मेरे पुत्रका नाम मत निकालो ॥

कवित्त--पुत्रकी बुराई मेरे कसके करजे माहिं, मेरो प्राणप्यारो तेरो कहो कर आयोहै ॥ मोसों कहो कोटि कोऊ कान्हाको न कछु कहो, जाने कैसे करकें मैंन एक पूत पायोहै ॥ माखनको माटले के द्वारपै यशोदा बैठी, दूनो दूनो लेव वीरजाको जेतो खायोहै ॥ गोद में पसारतहूं गोरसके काज आली; गारी मत देव मो, गरीबनीको जायो है ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण बोले कि, हे माता ! मैं इनका दूध दहीं क्यों खाता, क्या मेरे घर दूध दहीका घाटा है ? यह गोपियां मुझको वृथा कलंक लगाती हैं, मैं नहीं जानता कौन इनका दूध दही खा जाताहै मेरा नाम वृथा बदनाम कर रक्खा है, जब इनका जी चाहता है तब चली आती हैं और तुमसे झूंठ सच लगा जाती हैं, भला तुम इतना तो समझो कि, मैं छोटे छोटे हाथोंसे किसप्रकार इनके छींके परसे कोई वस्तु उतार सक्ताहूं? हे माता ! ये गोपी बडी झूठी हैं,जब मैं कहीं जाताहूं तो बलात्कार मुझको मार्गमेंसे पकडकर अपने घर लेजाती हैं और मेरी दुर्दशा बनाती हैं कोई तो मेरा मुख चूमती है, कोई मेरे वस्त्र उतारतीहै, कोई मेरे गालोंपर गुलचे मारतीहैं, कोई मुझको नाच नचातीहै, कोई मुझको स्त्रियोंके कपडे पहरातीहै, यह मुझको किसी प्रकार चैन नहीं लेने देतीं, तुम इस गोकुलको छोडकर और कहीं अन्ते चलरहो क्योंकि, किसी प्रकार इन निर्लज्जोंसे मेरा पीछा तो छूटे,ऐसी मीठीमीठी बातें ब्रजभूषण प्यारेकी सुनकर यशोदाजीको गोपिकाओंकी बातका किंचिन्मात्रभी विश्वास न आया, उलाहना देनेवाली ब्रजयुवती मनमोहनकी बनावटवाली बातें सुनकर मनहींमन प्रसन्न होतीं अपने अपने घरोंको चलीगई और यशोदाके इस प्रकार समझाने पर भी नन्दकुमारने दही माखनकी चोरी करनी नहीं छोडी और जिस घरमें अन्धेरा भी होता तो अपने चन्द्राननके प्रकाशसे दही दूध खोजकर लेले आते, आप खाते और सखाओंको खिलाते और जब कोई गोपी यशोदाके पास उलाहना देने आती, तो यशोदा कहती कि, तू झूठी है, मेरा श्यामसुन्दर ऐसा नहीं, इस बातको तुमहीं विचारो कि, छोटासा बालक तुम्हारे इतने ऊँचे छींके परसे दूध दही क्योंकर उतार सक्ताहै ? यह तुम्हारा दही दूध चुराना किसी बडी अवस्थावाले पुरुषका काम है, इस फुलवासे बालकसे यह काम किसी प्रकार होही नहीं सक्ता ? तुम मेरे बालकको वृथा कलंक मत लगाओ क्योंकि, क्वारे कन्हेका

मेरा घरहै जितने दामोंका तुम्हारा दधि माखन है तुम उससे दूने दाम मुझसे लेलो और आगेको अपने घरका प्रबन्ध ठीक रक्खो और यह रात दिनका उलाहना मुझको अच्छा नहीं लगता और जो तुम सच्ची हो तो चोरी करते समय मेरे बालकको पकडकर मेरे पास क्यों नहीं लाती ? यशोदाकी यह बात सुनकर सब गोपियाँ अपने अपने घरोंको चलीगई ॥

दोहा-घर घर प्रगटी बात यह, सखावृन्द लिय साथ।
माखनकी चोरी करत, नन्दसुवन ब्रजनाथ ॥
पकडो तुम नँदनंदको, काहू विधिसों आज।
फिर यशुमत पै ले चले, छोंड छाँड सब लाज ॥

फिर एक गोपी कहने लगी कि, अरी ! श्यामसुन्दरको दही माखन खानेको कोई मत बर्जो क्योंकि हम उसकी मोहिनी मूर्ति पर मतवाली होरही हैं, जो मनमोहनप्यारा हमारे घर न आया तो हम किसको देखकर जीवेंगी ? आली ! यह बात तो तेरी सत्य है परन्तु हम यशोदाके सम्मुख मुख कैसे करेंगी जबतक उसके छौनाको पकड़कर उसके सामने न ले जाँय,अब तो जो चाहै सो होय कृष्णको विना पकड़े कभी न छोडेंगी एक बोली पकडकर क्या होगा?हम तो यह चाहैं हैं किसी प्रकार उस मनमोहनप्यारेका दर्शन होजाया करै,एक बोली, जो अबके पकड पाऊं तो कण्ठसे लगाकर अपना हृदय शीतल करूँ, एक बोली जो श्यामसुन्दरको मैं पकड़ पाऊं तो बहुतही नाच नचाऊं क्योंकि नित्य मेरा माखन खाकर मुझको अँगूठा दिखाजाता है, एक बोली, आज हमारे घर आयाथा मुझको देखकर दूरसे दूरही भागगया, इस प्रकार ब्रजबाला प्रेममग्नहोकर दिन रात नन्दलालाहाके ध्यानमें रहतीथीं और पलभरको मनसे न बिसारतीं, मिलनेके सैकड़ों उपाय विचारतीं यह बातें करतीं २ गोपिका तो अपने अपने काम धन्धोंमें लगगई और कृष्णने उनके सूने घर पाय अब तो घरमें घुसगये और सखाओंको द्वारपर खडा कर दिया ॥

दोहा-सद माखन देखो धरो, हरषे श्यामसुजान।
सखा बुलाये सैनदे, लेले लागे खान ॥
डरके मारे मनहिंमन, इत उत चितवत जात।
उठ उठ झांकत द्वारको, बाँट बाँट दधिखात ॥

और वह ग्वालिनी ओटमें खड़ी खडी झाँकरही और परोसनोंको बुलाकर दिखानेलगी कि, देखो श्यामसुन्दर कैसा आनन्द कर रहे हैं, अपने हाथसे अपने प्यारे सखाओंको खिला रहेहैं, यह कह सब ग्वालिनी छिप छिप कर कनअँखियोंसे उस शोभाको देखरहींथीं कि, देखो मनमोहन प्यारे किस प्रकार दधि बाँट बाँट कर खा रहे हैं, हे राजन् ! उस समय मुखके समीप माखन सहित हाथ कैसा शोभायमान दिखाई देता था, मानो चन्द्रमासे वैर छोडकर कमल माखनकी भेंट लेकर मिलनेको जाता है और दही मुखसे टपक टपक जो हृदयपर गिरता है, मानो चन्द्रमा मोतियोंके हार उपहारमें देरहाहै और सुधाकी बूँदे,

बरसा रहा है, उस समय श्यामसुन्दरके मुखारविन्दकी छवि देख मौन होगई और शरीरकी सुधि भूलगई और मनमोहनके वर्जनेको वाणी मुखसे न निकली वह चतुर बाला मनहीं मनमें विचार करनेलगी कि, क्या कहूँ? ऐसी मोहनी मनमोहनने उनके ऊपर डालदी थी. श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! विश्वके पालन पोषण करनहारे विश्वम्भर कल्पवृक्ष और कामधेनु सदा जिनके सम्मुख हाथ जोडे खडे रहें सो भगवान् किंचित् दहीके लिये गोपियोंकी चोरी करते फिरैं, यह सब प्रेमकाही प्रभाव है ॥

सोरठा--नित उठ करत विहार, ब्रजमें घर घर साँवरो ॥
ब्रजजन प्राणाधार, चोरी कर कर खात दधि ॥

एक दिन ब्रजभूषण चोरी करनेके लिये एक ग्वालिनीके घरमें घुसे और चोरी करते हुए उस ग्वालिनीने उनको पकड लिया और यह कहने लगी कि,अरे लाला! तुमने मेरे संग बडी नटखटी करी है, आज बहुत दिनोंमें मेरे फन्दमें फँसेहो, रात दिन मेरा दही खाते थे और मुझको खिझात थे दोनों हाथ पकड कर खडी होगई और कहने लगी कि, मेरा जितना दही माखन खायाहै जब सब देजाओगे तब छूटने पाओगे, यह बात सुन श्रीकृष्ण उसके मुखकी ओरको ताकने लगे, फिर हँसकर बोले कि, तेरी सौगन्ध मैंने इसमेंसे एक रत्ती भर भी नहीं खाया इन ग्वाल बालोंने खाया भी है और गिरायाभी है, श्यामसुन्दर की भोली भोली बातैं सुन मनसे सब रोष जाता. रहा और हाथ छोडकर हृदयसे लगालिया और कहा कि, हे प्यारे! हमारे घरसे मत जाओ मैं तुम्हारे लिये मीठा दही मिष्टान्न लातीहूं, तुम आनन्द सहित पेटभरके खाओ वह ब्रजबाला दधि मिष्टान्न लेनेगई मदनमोहन वहाँसे हँसकर भाग निकले, उस ग्वालिनीने जब मनमोहनको न देखा तो हकी बकी सी रहगई और रोरो कर कहने लगी कि, हाय मैं क्या करूं! नन्दका छौना मेरा मन चुराकर लेगया, कृष्ण झट दूसरी ग्वालिनीके घर पहुचगये, जाकर देखा तो घर सूना पडा है, कोई घरके भीतर नहीं है, निश्शंक होकर काढि काढि उसका माखन खानेलगे, इतनेहीमें ग्वालिनी भी आगई इनको भागनेका तो उपाय न बन सका उसके घरहीमें छिपरहे ग्वालिन मथनीके निकट आनकर खडी हुई तो दूध दहीके बासन रीते पडे हैं और दूध दही औंधा पडा है, चकित होकर इधर उधर देखने लगी, अभी तो मैं गई थी और इनहीं पाँवों चली आऊं हूं इतनी देरमें दधि माखन चुराने कौन आगया! जब भीतर कोठरीमें गई तो देखा कि, बालमुकुन्द एक कोनेमें खडे हैं, जातेही हाथ पकड लिया अपने मनमें कहने लगी कि, भगवान्ने आज तो मेरे मन चीते कार्य कर दिये, अरौस परौसकी सब ग्वालिनियोंको बुलाकर मदनमोहनकी बाँह पकड कर यशोदाके पास लेगई और जाकर बोली कि, हे यशोदा! जो तुम अपने पूतकी बातें सुनोगी तो बहुत हँसोगी, आज तुम्हारा पुत्र मेरे घर चोरी करनेको गया माखनकी कमोरी भरी धरी देखकर कुछ खाया कुछ लुटाया, इतनेहीमें मैं भी आगई, यह तुम्हारे कुलतारा मुझे देखकर कोठरीमें जा छिपे जब मैंने कहा घरके भीतर कौनहै? तब अत्यन्त मधुर वाणीसे कहा कि, मैं नन्दका

छौना श्यामसुन्दर हूं यह कह नेत्रोंमें आंसू भरकर रोने लगे, तब मैं तुम्हारे डरके मारे कुछ न कह सकी, इतनेमें नन्दजीके द्वारपर ग्वाल बाल इकट्ठे होगये और कृष्णको माखनचोर माखनचोर कहकर पुकारने लगे, यशोदा बोली आज मैं इसे रस्सीसे बाँधकर अपने घर रक्खूंगी, उस समय रोहिणीने आनकर गोदीमें लेलिया कि, कौन हमारे लालाको बांध सक्ताहै? जाओ री! ऐसा उलाहना मत लाया करो, सब ग्वालिनी अपने अपने घरोंको चलीगई, यशोदा श्यामसुन्दरके मुखपर हाथ फेर चूम कर बोली कि, पुत्र ऐसा काम मत किया करो इसमें नाम निकलेहै. हे राजन्! श्रीकृष्ण यशोदाको धोखा दे घरसे बाहर निकल गये और सखाओंको संग ले फिर किसी ग्वालिनीके घर पहुँचे और सूना भवन देख बेखटके उसमें चलेगये मानो अपनाही घर है, ढूंढ भालकर रातका जमाया हुवा गोरस निकाला और ऐसे निस्सन्देह होकर खाने लगे मानो आपही जमाकर रखगये थे, बासनोंके धरने उठानेका शब्द सुनकर वह ग्वालिनी घर आई और आभूषणोंसे झलकताहुवा मन्दिरमें श्याम सुन्दरको देखा, झट मनमोहन एक कोनेमें छिपरहे दहीकी मटकी निकट रखली ग्वालिनी इधर उधर ढूंढने लगी परंतु श्यामसुन्दर अँधियारेमें हाथ न आये, कहने लगी कि, अभी तो आभूषण पहने मैंने ब्रजभूषणको देखा था, अभी कहां चले गये, ढूँढते ढूँढते मथनीकी ओटमें बैठा देखलिया और हाथ पकड कर कहने लगी कि, पहँचानलियाहै, पहँचानलिया है, मेरी ओरको देखो, नीचे नाड मत करो, कहो अँधियारे घरमें क्या करते फिरो हो?

सोरठा-दधि मथनीमें हाथ, अब कह बात बनायहौ।
सखा नहीं कोउ साथ, कहिये अब कैसी बनी॥

तब मदनमोहन बोले कि, मैं धोखेमें अपना घर समझकर यहां चला आयाहूँ और दहीको जो देखा इसमें चींटी पडगई थी, सो चींटियोंको मैं निकाल रहाहूं, यदुनन्दनके मधुर वचन सुनकर ग्वालिनी हँसपडी कि, हे मोहन प्यारे! तुम बात बनानेमें बडेही चतुर और विज्ञानी हो, यह कह हृदयसे लगाय मुख चूम कहने लगी, हे मनमोहन प्यारे! मेरा मन रात दिन तुमहीमें पडारहै, हे राजन्! जब श्रीकृष्ण चले गये तो वह गोपी बहुत व्याकुल हुई और मनहीं मनमें कहने लगी कि, किस प्रकार उस नन्दकुमारका दर्शन हो, तब इसने यह उपाय निकाला कि, उलाहनेके मिष यशोदाके पास जाऊं यह विचार नंदरानीसे जाकर कहा कि, हे ब्रजेश्वरी? तुम्हारे सुतकी करणी क्या कहूं कुछ कहने योग्य नहीं, नित्यप्रति दूध और माखन गिराकर चला आता है कहां तक मैं चुप बैठी रहूं और आपसे न कहूं, मैं अपने घरमें अँधियारेमें माखन छिपा २ कर रक्खू हूं यह किसी न किसी प्रकार जाकर बिगाड करदेताहै, आज मैंने पकड लिया कि, लाला यह क्या करो हो? तो उत्तर दिया कि, मैं अपना घर जानकर आगया और दहीमेंसे चींटियें निकाल रहा हूं, ग्वालिन की यह बात सुनकर यशोदाने हँसकर क्रोध किया और कृष्णसे कहा अरे तू क्यों पराये घर जा जा कर उलाहने लाता है मुझसे तेरे रात दिनके उलाहने

नहीं सुने जाते, अव तुम मेरी आँखोंके आगे सदा खेला करो और अपने सखाओंको भी यहीं बुलालिया करो, जो तुम्हारे खेल देख २ कर मेरा हृदय भी ठण्डा होय, मुझसे लीजे जो तुमको मेवा, मिठाई, दूध, दहीकी इच्छाहो सब संसारके पदार्थ तो तेरे घर उपस्थित हैं फिर तू पराये घर नाम रखानेको क्यों जायहै? श्रीकृष्ण बोले अच्छा मैय्या तो थोडा माखन तूही लादे, यशोदा प्रसन्न होकर उसी समय ले आई और आँचल की ओट करके मनमोहन प्यारेको खिलाने लगी श्रीकृष्ण बोले कि, माता! मैं अपने हाथसे खाऊंगा, यशोदाजीने एक दोना भरकर हरिके हाथपर धर दिया, खाते हुए चलदिये और सखाओंके संग खेलने लगे, यमुनाजल भरनेके लिये एक ग्वालिनीको जाते देखा तो ये सब उसके घरमें जाघुसे देखा तो दो बालक पडे हैं और कोई नहीं है, इधर उधर देखा तो गोरस भी नहीं है, ऊपरको देखा तो छींके पर धरा है, एक सखाके कन्धे पर चढकर उसका दही दूध सब उतार लिया और जितना खायागया उतना खाया बचेहुएको पृथ्वीपर गिरा दिया और बछरे सब खोल खोल कर वनकी ओरको हाँक दिये, इतनेमें ग्वालिनी आगई, ग्वालिनीको देखकर सखा तो सब भागगये परन्तु मोहन घरमें रहगये और उस ग्वालिनीने पौंर रोंक ली और चिल्लाकर बोली अरे नंदलाल! भागकर कहाँ जासक्ता है ? आज बहुत दिनोंमें हाथ आयाहै, अत्यन्त क्रोधकर दोनों हाथ पकड यशोदाके पास लाई और कृष्णको आगे खडा करके बोली कि, हे महारि! तुम्हारे पूतने गोकुलमें बडा उत्पात मचा रक्खाहै मैंने माखन छींके पर रखदियाथा इसने एक ग्वालके कन्धेपर पाँव धरकर माखन उतारकर खालिया और मेरे बालकोंके ऊपर मही छिडक कर उन्हें रुआया और बहुतसी बातें कहते हुए, मुझको तुम्हारे सामने लज्जा आती है और अपना शरीर खोलकर मैं तुमको कैसे दिखाऊं, तुम्हारे श्यामके गुण मैं कहाँतक कहूं तुम्हारे आगे यह बालक बनके आंसू ढलकाने लगेहै, तुम अपने पुत्रको क्यों नहीं बरजकर रखतीं, एक दिनकी होय तो देखी जाय, नित्यकी हानि भला कोई कैसे सहै? जो वस्तु मैं जहांकहीं छिपाकर रक्खूं हूं वहांसे चुराकर लेजाता है और बछरोंको खोलदेता है वह वनमें मारे मारे फिरै हैं, यह बडा छलीक है इसके गुणोंको मैंही जानूंहूं तुमने तो इसे सूधा समझ रक्खा है इसलिये तुम कुछ नहीं कहती, जबतक तुम इसको ताडना नहीं दोगी तब तक यह नटखट कभी नहीं मानेगा, यशोदा ग्वालिनीके वचन सुनकर कृष्णकी ओरको देखा तो आँखें डबडबाये भयभीत खडा है, तब तो यशोदा झुँझलाकर बोली ॥

सोरठा-चोर बतावत लोग, झूंठहिं मेरे श्यामको।
कब भयो चोरी योग, पांच वर्ष को तनक सो॥

मदमाती ग्वालिनी चोरीके बहानेसे मेरे मनमोहन प्यारेको देखने आवै हैं, मेरे फुलवासे बालकमें इतना पौरुष है जो छींकेपैका धरा दधि माखन तुम्हारा उतार ले, क्या मेरे पुत्रको कुछ डिठबन्द आवैहै जो तेरे घर जाकर बडा होजाता है और मेरे घर आकर छोटा हो जाताहै, चल मेरे बालकको झूँठ मतलगा॥

चौ०–हाथ नचावत आवत दौरी। जीभ न करहिं समझकर बौरी॥
घरही माखन भरी कमोरी। कबहूँ न लेत अँगुरिया बोरी॥

ग्वालिनी यशोदाकी बात सुन ब्रजभूषणकी ओरको देखती चुप चाप कान दबाकर चलदी और यशोदा कृष्णको समझाने लगी कि, हे पुत्र! मैं तेरे ऊपर बलिहारी जाऊं मैंने अपनेही घरमें तेरे लिये भाँति भाँतिके षट्रस भोजन बनारक्खे हैं फिर, तू पराये घर जाकर किंचित् दही माखनके लिये इतने उपाय क्यों करता है? देखो! हाट बाटकी गोरस बेचनेवाली कुजाति ग्वालिनी न कुछ लाज न कान यहाँ आनकर जो जीमें आता है सो मुँह फाडकर बकने लगती हैं और झूँठा दोष लगाकर ऐंडी बेंडी बातें बना निश्शंक हो सम्मुख विवाद करती हैं, उन गवाँरियोंके घर कभी मत जायाकर, नौ लाख गायें तो मेरेही घर दूध देती हैं जितना और माखन तुझको चाहिये खा और लुटा, यहाँ किसने तेरा हाथ पकड रक्खा है, जो तू दूसरेके घर जाता है और दुदकारें खाता है, तू इन बातोंको छोडदे, क्योंकि सब गाँवके लोग मुझको नाम धरैंहैं कि, तू अपने बालकको पेटभर रोटी भी नहीं देती, इसी लिये यह सबके घरोंका दूध दही चुरा चुराकर खाता है और उस समय मुझको बडी लज्जा आती है, जब गोकुलके लोग लुगाई तुझको माखनचोर कहके पुकारते हैं, तेरी इन बातोंसे मुझको ब्रजमें मुख दिखाना भारी पड़गया, तू बड़े बापका बेटा होकर अपना नाम चोर धरावैहै, यशोदाकी बात सुनकर श्यामसुन्दरने कहा कि, हे मैय्या! अब मैं ऐसी छल छन्दवाली ग्वालिनियोंके घर कभी नहीं जानेका, झूँठ सच्च बोलकर उससमय तो माताको ठण्ढा किया, परन्तु दूध दहीका चुराना खाना नहीं छोड़ा, तब तो सब गोपियोंने मिलकर परस्पर परामर्श किया कि, एक दिन इस माखनचोरको माखन समेत पकड़कर नंदरानीके पास ले चलना चाहिये यह ऐसे नहीं मानैगा यह सम्मति कर एक दिन सब इधर उधर झाँकती रहीं और श्रीकृष्ण भी अपना दाँव लगाकर एक गोपीके घरमें घुसकर दही माखन खाने लगे और कई एक गोपियोंने आनकर इनको पकड लिया और संगके ग्वाल बाल सब भागगये, तब सब गोपी श्यामसुन्दरको पकड़कर नंदरानीके पासको ले चलीं, उस समय यशोदानन्दनने अपनी मायाकी प्रेरणासे ऐसा छल किया कि, जो गोपी श्रीकृष्णका हाथ पकडे लिये जाती उसीके पुत्रका हाथ दही मुखमें लगाकर उसको पकड़वा दिया और आप वहांसे अन्तर्द्धान होकर बालकोंके साथ खेलने लगे और उस गोपीने और उसकी साथनोंने भी यह भेद नहीं जाना कि, मैं अपनेही पुत्रका हाथ पकडे लिये जातीहूँ, उस ग्वालिनीने सब ग्वालिनियों समेत यशोदाके समीप जाकर कहा कि, हे नंदरानी! तेरे लालके मारे सारे ब्रजमें दही और दूध नहीं ठहरसक्ता, हम सैकडों उपाय कर करक हारगईं और बहुतेरा दुबका छिपाकर रक्खा परन्तु तुम्हारा पुत्र चुराये विना न माना और जब माखन खाते समय इनको कोई पकडता है तब कहते हैं कि, तुमने बलात्कार मेरे मुखमें दही लगादिया है मैं अपनी मातासे जाकर कहूंगा, इस बातपर धमकाता है. सबके बछडे खोल खोलकर दूध पिला देता है, रानीजी इसके गुण सुनोगी

तो भूल रहोगी इसके पेटमें सैंकडों चारित्र भरे हैं, यह नहीं कि, दही माखनही खाकर हमारा पीछा छोडदे, सारी उतार लेता है, अँगिया फाड डालता है और जो जो कुलक्षण करता है हम आपसे कहाँतक कहैं, हमको तो कहते भी लाज लगतीहै, सबके घरोंमें उत्पात मचाता रहता है और जो हम कुछ कहती हैं तो सूधेही गाली देता है और जब हम तुम्हारे पास उलाहना देने आतीं हैं तो तुम हमहींको झूठा ठहराती हो, इसलिये डरकी मारी हम तुम्हारे पास नहीं आतीं, आज हमने इसको माखन चुराते और खाते पकडलिया इसलिये तुम्हारे पास लाई हैं, जब ग्वालिनी इसी प्रकारकी सैकडों उलाहनेकी बातें कहचुकी तब यशोदा हँसकर बोली कि,आज तुमको क्या होगया? विजया खाय आई हो?वा उन्मत्त होगई हो? तुम किसे पकड़के लाई हो? यह मेरा मोहन प्यारा है? आखें खोलकर देखो, दीपक हाथमें लेकर पहिचानो,तुम्हारा झूठ सच सब अभी प्रगट हो जायगा;अरी बौरियो! मेरा श्यामसुन्दर तो कलसे घरसे बाहरभी नहीं गया, यशोदाकी यह बात सुन सब गोपी बड़बडाकर जिस चोरको पकडकर लाई थीं उसके मुखकी ओरको देखने लगीं, तब तो वह अपनाही पुत्र निकला, यह अद्भुत चरित्र देखतेही गोपियोंने उसका हाथ छोड दिया और अपने मनमें लज्जित होकर नीचेको आँखें करलीं और कुछ उत्तर ग्वालिनियोंसे न बन पडा हारकर अपने अपने घरोंको चली गईं, तब यशोदा कृष्णप्यारेसे कहने लगी कि, हे बेटा! मैंने तुझे इतना समझाया परन्तु तैंने चोरी करनी न छोड़ी और जो ऐसेही तू रात दिन चोरी करता रहैगा तो इस व्रजमें कौन बसेगा? मैं बकती बकती हार-गई परन्तु तेरे ध्यानमें अबतक कुछ न आया॥

दोहा-सुन सुन लाजन मरत मैं, तू नहिं मानत बात।
अब तोहिं राखौं बाँधिकै, जानी तेरी बात॥

अब तू बिना पीटे नहीं मानेगा और जो गोपी तेरा उलाहना लेकर मेरे पास आवैगी मैं उससे भी कहदूंगी कि, जब तुम्हारे घरजाय बिना मारे कभी मत छोडियो और बांध-कर अपनेही घर डाल रखना, जब वह तुझको बाँध रक्खेंगी तब मैं तेरे बापको दिखाउंगी कि; तुम्हारा पूत ऐसे कौतुक करता फिरैहै, जब वह तेरे हाथ पाँव बाँधेंगे तब चैनसे बैठेगा, माताको कुपित देखकर मदनमोहन तुतलाकर बोले कि, हे जननी! तुमको इन छल्लों छिनालोंकी बातको किसीप्रकार विश्वास करना नहीं चाहिये, क्योंकि यह छल्लों छिनालें छलकी पुतली हैं यह सदा झूँठी सच्ची सैकडों बातें बनाती रहतीहैं और यह सब मेरे पीछे पीछे फिरा करती हैं मुझको पकड़कर अपने घर लेजातीहैं और सैकड़ों काम कराती हैं और मुझसे ऐसी ऐसी बातें करती हैं जो मुझे तेरे आगे कहते हुए भी लज्जा लगतीहै और तेरे सामने औरही और बातें बनाकर मुझे चोर बनाती हैं, यह कह आंखोंमें आंशू भरलिये और कहा कि, मैय्या! अब मैं कहां जाऊं और क्या करूं घर रहूं तो तू बुराभला कहे और बाहर जाऊं तो गोपियें न चैन दें अब मैं किसका होकर रहूं? तू कहै

तो मैं कहींको चला जाऊं? श्यामसुन्दरप्यारेको रोता देख यशोदाने हँसकर गोदीमें उठा-लिया और चुमकारकर बोली कि, बेटा! तेरी बलाय कहींको जावै, मैं अपने छौनापर वलिहारी जाऊं तू इन निर्लज्ज गोपियोंके घर जाकर अपनी दुर्नामता करावै है तेरे घर किस वस्तुकी कमी है आनन्दसे खा और लुटा, यह सुनकर कृष्णने कहा कि माता! अब मैं किसीके घर नहीं जानेका तेरेही पास खेला करूंगा मुझे अच्छे अच्छे खिलौने मँगादे, देखो! जो आदि पुरुष अविनाशी ब्रह्मादिक देवताओंके ध्यानमें नहीं आते वह आज यशोदासे खिलौने माँग रहे हैं और ग्वालिनी अनेक अनेक प्रकारके नाँच नँचाती हैं, उनकी अद्भुत लीला किसीसे जानी नहीं जाती ॥ ३१ ॥ एक समय बलभद्रादिक गोपि-योंके बालकोंमें क्रीड़ा कररहे थे, वहां श्रीकृष्णचन्द्र मट्टी खाने लगे, तब सब बालकोंने कहा आज कृष्णको कृष्णकी मातासे पिटवावेंगे और जाकर यह कहेंगे कि, आज श्यामसु-न्दरने मट्टी खाई है, तब यह विचार कर सब बालक और श्रीदामा यशोदाजीके पास गये और जाकर कहा कि, आज श्रीकृष्णने मट्टी खाई है ॥ ३२ ॥ तब परमहितकी कर-नेवाली श्रीकृष्णकी माता यशोदाने क्रोधितहो श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर धमकाया और भययुक्त चंचल नेत्र मोहनप्यारेसे यह कहा ॥ ३३ ॥ हे चपलगात चंचल! तैंने अकेलेमें जाकर मट्टी क्यों खाई? अरे अन्याई! जो यह बात गाँवके लोग सुनेंगे तो घर घर यह जबाब होगा कि, नंदरानी ऐसी जोडा (कंजूस) हुई है कि, अपने बालकको पेटभर रोटीभी नहीं देती, इसलिये वह मट्टी खाखाकर दिन पूरे करैहै. यह बात सुनकर श्याम-सुन्दर डरते काँपते बोले कि, हे माता! यह झूँठ बात तुझसे किसने कही? कदाचित् कोई बालक तेरे पास आकर मुझको झूंठा कलंक लगा दे तो उसमें मेरा क्या अपराध है? तब यशोदाने कहा कि, तेरे मित्र श्रीदामाने मुझसे कही है और तेरे ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊने कही है ॥ ३४ ॥ हे मैय्या! मैंने मट्टी नहीं खाई और श्रीदामाको ओरको खडी दृष्टिसे देखकर बोले क्यों रे श्रीदामा! मैंने तेरे सामने मट्टी कब खाई थी? श्रीदामा बोला मैंने तेरी मातासे कुछ नहीं कहा, तब यशोदाने छडी लेकर कहा सच्चावता? श्रीकृष्ण बोले कि, मैय्या! जो तुझको विश्वास नहीं हो तो मेरा मुख देखले ॥ ३५ ॥ यह बात सुनकर यशोदा बोली मुझको तेरी झूँठी बातोंका किसीप्रकार विश्वास नहीं आता, जो तू सच्चा है तो अपना मुख फैलाकर दिखलादे? यशोदाकी यह बात सुन अनेक दुःखोंके दूरकरनेवाले अखण्ड ऐश्वर्यवान् भगवान् क्रीडा करनेके लिये मनुजतनुधारी बालकरूप श्री-कृष्णचन्द्रने अपना मुखारविन्द फैलाकर यशोदाको दिखला दिया॥ ३६॥ तब यशोदाजीने श्रीकृष्णके मुखमें स्थावर, जंगम, विश्व, अन्तरिक्ष, दिशा, पर्वत, द्वीप, समुद्र, भूगोल, प्रवाह, वायु, अग्नि, चन्द्रमा, तारागण ॥ ३७ ॥ ज्योतिषचक्र, जल, तेज, आकाश, इन्द्रियोंके देवता, इन्द्रिय, मन, शब्दादिक और इनके विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह पांचों, सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ॥ ३८ ॥ जीव, काल, स्वभाव, कर्म, अन्तःकरण और उसके होनेवाले चराचर और सम्पूर्ण प्राणियोंके भेद सहित चित्र विचित्र संसारको

श्रीकृष्णचन्द्रके मुखमें देखा और उसमेंही व्रजभूमि और अपने देहको देख यशोदाके मनमें भ्रम उत्पन्न हुवा ॥ ३९ ॥ और अपने मनहीं मनमें कहने लगी कि, मैं जो देख रही हूं क्या यह स्वप्न है ? नहीं नहीं, यह स्वप्न नहीं है, क्योंकि स्वप्न तो सोतेमें दिखाई देता है, तो क्या फिर परमेश्वरकी माया है ? नहीं नहीं, यह माया भी नहीं है, क्योंकि माया होती तौ और लोगभी देखते, क्या जैसे मुकुरमें मुख दीखता है ऐसे दिखाई दिया ? क्या यह मेरी बुद्धिकाही भ्रमजाल है ? नहीं नहीं, ऐसा भी नहीं होसक्ता, क्यों कि ऐसा होता तो दर्पणमें जैसे दर्पण दृष्टि नहीं आता तैसे इस पुत्रके मुखमें यह पुत्र भी दीखना अनुचित है और बाहर तथा भीतर एकरूपसे जगत्की प्रतीति किसी प्रकार न होनी चाहिये, अथवा मेरे पुत्र श्रीकृष्णका यह स्वाभाविक ऐश्वर्य है ? ॥ ४० ॥ जो ध्यान करके देखाजाय तो यह अंतिम पक्षही बलवान् जान पडता है, क्योंकि यह संसार जो किंचित्, मन वाणी और वचनसे अनायासपूर्वक भले प्रकार विचारमें नहीं आसक्ता, वह किसके आश्रय है और किस रीतिसे प्रतीत हो सक्ता है, उस अचिन्तनीय स्वरूपको मैं बारम्बार नमस्कार करती हूं ॥ ४१ ॥ इन व्रजराजके सम्पूर्ण धनकी अधिष्ठाता मैंहूं यह व्रजनाथ नन्दजी मेरे स्वामी हैं यह श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है और यह सब गोप गोपिका तथा गाय बछडे मेरे हैं, मायासे जिसकी ऐसी कुबुद्धि होरही है, सो अब हे भगवन् ! तुम्हारी शरण हूं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार यशोदाजीको कृष्णमें ईश्वरकी बुद्धि होगई तब श्रीकृष्णने विचार किया कि, माता तो परमगतिको पहुँची अब मेरा लालन पालन कौन करेगा. तब पुत्रने स्नेहरूपा अपनी वैष्णवीमाया यशोदापर फैलादी ॥ ४३ ॥ उस समय यशोदाजीके मनसे श्रीकृष्णचन्द्रकी ईश्वरबुद्धि अलग करदी और पुत्रभाव मानिके श्रीकृष्णको गोदमें बैठाल प्रेममें मग्न होकर पहिलेकी समान वात्सल्यभाव करनेलगी ॥ ४४ ॥ ऋग्, यजु, साम, यह तीनों वेद, सांख्य, योग, समस्त निरन्तर जिन वासुदेव भगवान्की महिमाको रातदिन गाते हैं उन श्रीकृष्णको यशोदा पुत्रभावसे मानती है ॥ ४५ ॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि, हे ब्रह्मन् ! नन्दरायजीने ऐसा क्या पुण्य किया था ? जिसके प्रभावसे उनका ऐसा भाग्य उदय हुवा और यशोदाजीने ऐसा कौनसा श्रेष्ठ पुण्य किया था ? जिससे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने उनका स्तन पान किया ॥ ४६ ॥ और सब लोकोंके पापका दूर करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका बालचरित्र आजतक जिसे कवीश्वरलोग वर्णन करते हैं सो उस बाललीलाका सुख देवकी और वसुदेवजीको प्राप्त नहीं हुवा और नन्द यशोदाको प्राप्त हुवा इसका क्या कारण ? ॥ ४७ ॥ यह गूढ वचन राजापरीक्षित्का सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! आठ वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण नाम वसुने अपनी धरा नाम स्त्रीको साथ लेकर ब्रह्माजीकी आज्ञा शीशपर धारणकर परमेश्वरका तप किया, तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर चतुराननसे कहा कि, मेरे भक्त जो वर माँगें सो देना, ब्रह्माने इन दोनोंके सम्मुख आनकर कहा कि, वर माँगो, तब वह स्त्री पुरुष बोले कि, हे प्रभो ! जो हमपर प्रसन्न हो तो यह वर दो ॥ ४८ ॥ हमारे जन्म

मृत्युलोकमें होयँ परन्तु विश्वेश्वर देवोंके देव हरि भगवान्में हमारी भक्ति बनी रहै, जिससे अनायास इस संसारसागरसे पार उतर जाँय ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजीने वर दिया कि,जाओ पृथ्वीहीमें तुम्हारा जन्म होगा और तुमको भगवान्की भक्तिभी होगी, तब तो बडे यशस्वी और तेजस्वी द्रोण वसु ब्रजमें जन्म धारण कर नन्दनामसे प्रसिद्ध हुए और वह धरा यशोदा नामसे विख्यात हुई ॥ ५० ॥ हे भारत ! जितने गोप गोपी थे सबमें भगवान्की भक्ति थी, परन्तु नन्द यशोदामें अधिकही भक्ति थी, जिनके घर पुत्र होकर वास किया, यह ब्रह्माके वरदानका प्रभाव था ॥ ५१ ॥ परमात्मा विष्णुभगवान् ब्रह्माजीकी आज्ञा करनेके लिये बलदेवजीके साथ नन्द यशोदाके घर वासकर अपनी लीला करके गोप गोपियोंको आनन्द दिया ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा-नवमेमें श्रीकृष्ण प्रभु, बालचरित शुभ कीन्ह ।
दधि लुटात यशुमति लखे, ऊखल बंधन लीन्ह ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! एक दिन घरकी सब दासी तो काम धन्धेमें लगरहींथीं, इसलिये यशोदाही प्रातःकाल उठकर अपनेहाथसे दही मथने लगी, उस समय दहीके मथनका ऐसा गम्भीर शब्द होनेलगा जैसे मेघ गर्जता है ॥ १ ॥ दधि मथनेके समय जो जो लीला बाल चारित्रकी इस संसारमें श्रीकृष्णने की है उनको स्मरण कर करके गाने लगीं ॥ २ ॥ सूत्रसे बँधी रेशमी सारी कटि मेखलासे लपेटे पुत्रकी प्रीतिसे स्तनोंमें दूध भर रहा था. और नेती खींचनेके अतिश्रमसे हाथोंमें चूडियोंका शब्द होता था और भुजाओंमें कंकण और कानोंमें कुण्डल कर्णफूल बिजलीसे चमक चमक जाते थे, मुखारविन्द पर पसीनेकेकण आ रहे थे, गुथीहुई वेणीमेंसे जूहीके पुष्प गिर रहे थे और भ्रुकुटी ऐसी शोभायमान थी मानो इन्द्रने धनुष् तान रक्खा है, इस अद्भुत छविसे यशोदाजी दही विलो रहीं थीं ॥ ३ ॥ इतनेमें श्रीकृष्णकी आँख खुली तो रोरोकर माँ,माँ,पुकारने लगे. जब उनके रोनेका शब्द किसीने न सुना तब आपही माताके समीप आये और सुसक सुसक ठिनक ठिनक आँखैं मल मल तुतला तुतला कर कहने लगे कि, मा ! तुझे सैकडों पुकारें दीं और तू मुझे दूध पिलाने न आई यह कह मथनिया पकडली कि, पहिले मुझको दूध पिलादे ॥ ४ ॥ यशोदा दूधसे भरा स्तन श्यामसुन्दरको गोदमें लिटाय आंचलकी ओट करके पिलाने लगी और हरिकी, मन्द मन्द मुसकान देख यशोदा मनहीं मनमें आनन्द होती थीं, इतनेमें चूल्हेपर जो औटानेको दूध धरा था उसको उफनता देख ब्रजभूषणको भूखाही गोदसे उतार दूध उतारनेको दौडी ॥ ५ ॥ उस समय श्रीकृष्णको बडा क्रोध आया और लाल२बिम्बफलसे होठोंको दाँतोसे काट सब दहीमहीके बासन फोड डाले, झूँठे आंसू बहाय, माखनकी कमोरी उठाय अपने सखाओंमें जा बैठे

और परस्पर बाँट बाँटकर खाने लगे ॥ ६ ॥ उस उफनते हुए दूधको यशोदाने चूल्हेसे नीचे उतारके दही मथनेको आई,देखा तो सब घरमें दही मही बहरहा है और सब बासन फूटे टूटे पडे हैं और माखनके बासनका कहीं पता ही नहीं,जब मनमें विचारा तो समझा कि, यह सब कौतुक श्यामसुन्दरहीके हैं, उसके विना ऐसा और कौन है और वह छलिया यहां है भी नहीं. तब यशोदा हँसके कहने लगी कि, देखो कामका काम बिगाड़ और माखनकी मटकी लेकर कहींको सटकभी गया ॥ ७ ॥ बाहर निकलकर देखें तो घरके पिछवारे उलूखलको औंधा करें उसके ऊपर बैठे और चारोंओर सखामण्डलीको वैठाये माखन बाँट बाँट कर खारहे हैं और कहीं माता न आजाय इस भयसे इधर उधरको देख देख लेते हैं, इतनेमें ढूंढ़ती ढूंढ़ती यशोदा भी वहाँ जा पहुँची ॥ ८ ॥ छड़ी हाथमें लिये माताको आती देख उसी समय उलूखलसे कूद डरकेमारे घवराकर भाग निकले,यशोदाभी उनके पीछे हुई और चिल्लाकर बोलीं खडा तो रह तैंने बडा शिर उठायाहै, परन्तु यशोदाके हाथ न आये, देखो एकाग्रचित्तकर योगीराज उनका ध्यान करनेवाले भी उनकी गतिको नहीं पहुँचसक्ते और तप करके तपस्वियोंका मन जिनकी गतिको नहीं जान सक्ता, फिर यशोदा उनको कैसे पकड सक्ती थीं ॥ ९ ॥ मनमोहनके पीछे यशोदाजीकी गति नितम्बके भारसे शिथिल होगई दौडनेसे शीशके केशोंके बन्धन खुलगये और चोटीमें जो मालतीके फूल गुँथ रहे थे वह पुष्प आगे आगे गिरते जाते थे और यशोदा उनपर पाँव धरती चली जाती थी, क्योंकि पुष्पोंकी सुगन्धसे चित्त व्याकुल नहीं होता, इसप्रकार यशोदाने महा कठिनतासे श्यामसुन्दरको पकडा॥१०॥अपराधी तो थे ही पकडते ही विह्वल होगये,रोरोकर काजल लगेहुये नेत्रोंको मलने लगे और हाहाकार कर यशोदासे कहने लगे कि, मैय्या मुझे छोडदे मैं नहीं जानता दही मही किसने गिराया, तोभी कृष्णका हाथ पकड छडी उठाकर यशोदाने धमकाया और कहा कि, सिवाय तेरे और दधिमाखनका चोर मेरे घर कौन आगया ॥ ११ ॥ पुत्र पर हितकरनेवाली और भगवत्की गति न जाननेवाली यशोदाने मनमोहनप्यारेको व्याकुल समझकर छडी हाथमेंसे डालदी और पुत्रके पराक्रमको न समझकर रस्सीसे बाँधनेको प्रस्तुत हुई ॥ १२ ॥ जिस आदिपुरुष अविनाशीके बाहर, भीतर, आगे, पीछे कुछभी नहीं है और जो पूर्ण अवतार है, जगत्के अन्तर, बाहर, तथा आगे, पीछे रहता और जो जगत्रूप है ॥ १३ ॥ इन्द्रियोंकी जिनमें गति नहीं ऐसे अव्यक्त भगवान्को पुत्र मानकर यशोदाजी रस्सी लेकर उलूखलसे बाँधने लगी; जैसे कोई साधारण बालकको बाँधताहै ॥१४॥ अपराधी समझकर जब यशोदा अपने मनमोहन प्यारेको बाँधने लगी, उस समय वह रस्सी दो अंगुल ओछी रहगई, तब यशोदाने उसमें दूसरी रस्सी और जोडी ॥ १५ ॥ जो उसमें और रस्सी जोडी थी वह भी दो अंगुल ओछी रहगई, तब तीसरी और जोडी तो वह भी दो अंगुल ओछी होगई, इस प्रकार जितनी रस्सी जोडी परन्तु पूरा न पडसका ॥ १६ ॥ तब तो यशोदाने सब घर भरकी रस्सीं इकट्ठी करके जोडी और श्यामसुन्दर न बँधे, तब तो सब

गोपी आश्चर्यमान हँसने लगीं और मुसकाकर यशोदा भी विस्मित होनेलगी ॥ १७ ॥ सब शरीर पसीनेमें डूबगया, माला कण्ठसे टूटपडी, शिखासे शीशफूल खिसकगया, तब यशोदाको श्रमित देखकर करुणामय श्रीकृष्णचन्द्र आपही कृपाकरके बन्धनमें बँधगये ॥ ॥ १८ ॥ हे राजन्! ऐसे कष्ट हरनेवाले भगवान् ब्रह्मासहित सर्व विश्व जिनके आधीन है उन श्रीकृष्णचन्द्रने अपने भक्तोंको भक्तवश होना दिखाया कि, जो मेरे भक्त मुझको बाँधना चाहै तो बँधभी जाताहूं. मैं इस प्रकार भक्तोंके वशमें हूं * ॥ १९ ॥ हे राजन्! भक्तिके देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्से पुत्रके सम्बन्धसे प्रसाद गोपियोंने पाया सो प्रसाद ब्रह्माको न मिला और शिवजी जो भगवान्की आत्मा हैं उनकोभी प्राप्त न हुवा और लक्ष्मी सदा हृदयमें विराजमान और भार्या है, तोभी उनको यह प्रसाद हाथ न आया, जो प्रसाद यशोदाने ले रक्खा है ॥ २० ॥ यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द भगवान् जैसे भक्तोंको सहजमें प्राप्त होते हैं, ऐसे देहाभिमानी तपस्वी आदिकोंको और देहाभिमानरहित आत्मज्ञानियोंको सहज नहीं मिल सक्ते ॥ २१ ॥ इसको बाँध यशोदा तो घरके काम धन्धेमें लगगई इतनेमें सर्व सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् कुवेरके पुत्र जो प्रथम जन्ममें गुह्यक थे और अब आनकर यमलार्जुन वृक्ष हुए, उनका समय जान भगवान्ने उनकी ओरको देखा ॥ २२ ॥ प्रथम यह दोनों अत्यन्त शोभायमान नलकूबर, मणिग्रीव, नामसे विख्यात थे, कुवेरके पुत्र प्रथम जन्मके मदसे नारदके शापसे वृक्षयोनिको प्राप्तहुए ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-यमलार्जुन वृक्ष दोउ, दीन्हें कृष्ण गिराय।
प्रगटे देव शरीर धर, परे चरणमें जाय॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन्! नलकूबर, मणिग्रीवके शापकी कथा वर्णन कीजिये कि, उन दोनोंने ऐसा क्या निन्दित कर्म किया था कि, जिससे नार-

---

* **शंका**-श्रीकृष्णचन्द्रने यशोदा माताको पहिले तो बहुत दुःखी किया फिर पीछे रस्सीसे बँध गये और पाहिलेसे अनेक उपायोंसे नहीं बँधे इसका क्या कारण?

उत्तर-जब श्रीकृष्ण भक्तभयहारी, जगत् हितकारीने मृत्युलोकके आनेकी इच्छा की, तब सब गोलोककी गायें श्रीकृष्णके संग ब्रजको आने लगीं, तब गोलोककी सेवा करनेवाली दासी रस्सी बनकर गायोंके चरणोंमें और कण्ठमें बँध कर चली आई, भगवान्ने विचारा कि. गोलोककी गायोंकी सेवा करनेवाली तो नन्दबाबाके घर आगई अब नन्दकी गायोंकी दासी जो यहांपर रस्सी बनगई हैं इनको गोलोकमें भेजना चाहिये, ऐसा विचारके उन गायोंकी दासियोंका संसारसे मुक्त करनेके लिये फिर गोलोकको भेजनेके लिये एक रस्सीसे नहीं बंधे, एक रस्सीसे बँध जाते तो यशोदा सब घरभरकी रस्सी क्यों इकट्ठी करके ले आती ॥

दजीके मनमें क्रोध उत्पन्न हुवा और उन दोनोंको ऐसा कठिन शाप दिया ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, शिवजीके अनुचर यह दोनों अत्यन्त अभिमानी मद्य पीनेसे मत- वाले कुवेरके पुत्र, मन्दाकिनीके तटपर कैलासकी पुष्पवाटिकामें घूम रहेथे ॥ २ ॥ वारुणी मदिराको पान करनेसे उनके नेत्र मदसे चलायमान होरहे थे और उपवनमें विचर रहे थे, उनके पीछे पीछे परमसुन्दरी स्त्रियें भी फिर रही थी ॥ ३ ॥ और कमलोंके समूहोंसे सुशोभित श्रीगंगाजीके मध्यमें जाकर स्त्रियोंको संग लेकर विहार करने लगे, जैसे हथिनियोंके संग हाथी विहार करतेहै ॥ ४ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! अनायासपूर्वक देवर्षि भगवान् नारदजी भी वहाँ आगये और उनको अत्यन्त क्रीडा करता देखकर मतवाला समझा ॥ ५ ॥ नंगी स्त्रियोंने नारदजीको देखकर लज्जा मानी और शापके भयसे काँपने लगीं उसी समय शीघ्रतासे अपने अपने वस्त्रोंके समीपको झपटीं, परन्तु नलकूबर, मणि- ग्रीवने वस्त्र नहीं पहिरे, नंगे ही खडे रहे ॥ ६ ॥ तब नारदजी कुवेरके पुत्रोंको मतवाला देखकर मद उनका दूर करनेके लिये और श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दके दर्शनके निमित्त शाप देतेहुए गान करने लगे ॥ ७॥ तब नारदजीने कहा कि,प्रिय विषयोंके भोग करनेवाले पुरुषकी बुद्धिको धन मदके विना हास्य हर्षणादिके कुलीनता पण्डिताई आदिसे हुवा मद अथवा रजोगुण नाश नहीं करसक्ता, परन्तु धनका मदही बुद्धि भ्रष्ट करदेताहै, क्योंकि लक्ष्मीका मद जिसको होताहै तो वह स्त्रीप्रसंग करता है अथवा जुआँ खेलताहै और वारुणीका पान करताहै ॥ ८ ॥ इस क्षणभंगुर शरीरको लक्ष्मीके मदसे अजर और अमर माननेवाले अजितेन्द्रिय मनुष्य निर्दयी होकर पशुओंको मारते हैं, ॥ ९ ॥ राजाके देहकीभी मरनेके पीछे तीन गति होतीहैं गाड़नेसे अथवा पृथ्वीपर डालनेसे कृमि होजाते हैं, जो पशु आदिक खाजाते हैं तो विष्ठा होजाताहै और अग्निमें जलानेसे भस्म होजाती है, इस कारण इस तुच्छ शरीरके लिये प्राणियोंसे विरोध करना अच्छा नहीं है, क्योंकि जीवोंके द्रोहसे तो नरकही प्राप्त होता है ॥ १० ॥ फिर यह देह किसका कहना चाहिये ? क्योंकि जो अन्न देकर इसका पालन पोषण करता है वह पुरुष कहता है कि, यह मेरा है उसका कहनाभी सत्य है माता पिता कहते हैं कि, हमारा है, हमारे वीर्यसे और हमारे उदरसे उत्पन्न हुआ है, उनका कहनाभी सत्य है. नाना कहता है कि, यह मेरा दौहित्र है मेरी कन्याके पेटसे उत्पन्न हुआ है इसका दिया पानी और इसका किया श्राद्ध मुझको प्राप्त हो सक्ता है मेरा पुत्र न होनेके पीछे मेरे धनका अधि- कारी यही है, इस रीतिसे नानाका कहनाभी सत्य है. मोल लेनेवाला कहता है कि, मेरा है, उसका कहना भी किसी प्रकार असत्य नहीं है. कोई बलवान् पुरुष अपना दास वा चाकर बनाकर रक्खै और यह कहै कि, मेराहै तो उसका कहना भी वृथा नहीं. अग्नि क- हेहै कि, यह मेरा है क्योंकि मेरेही तेजसे यह सब काम करताहै, उसका कहना भी सत्यहै. पृथ्वी आदिक कहते हैं कि,हमाराहै अन्त समय हमारे सिवाय और कहीं जाही नहीं सक्ता,

उनके कहनेमें भी कुछ संशय नहीं और श्वानादिक कहते हैं हमारा है एक दिन हम इसको खायँगे, उनका कहना भी झूँठ नहीं ॥ ११ ॥ इस प्रकार यह तुच्छ शरीर मायाहीसे उत्पन्न होता है और मायाहीमें लय हो जाता है और पाँच सात विवादी उसमें विवाद करैं कि, यह हमारा है, ऐसे झगडेके देहको पाकर केवल अज्ञानियोंके सिवाय ऐसा कौन ज्ञानी पुरुषहै जो जीवोंकी हिंसा करै? ॥ १२ ॥ जो अज्ञानी पुरुष धनके मदसे अन्धे हो जाते हैं उनकेलिये दरिद्रही श्रेष्ठ अंजन है, दरिद्री पुरुष सब प्राणियोंको दुःख सुखमें अपनी समान देखता है, क्योंकि अपने मनमें निर्धन विचार लेता है कि, मुझको दुःखने इसप्रकार बाधा करी थी, ऐसेही औरोंको भी बाधा करता होगा, जैसे मुझको सुख होता है ऐसे औरकोभी सुख होता है ॥ १३ ॥ जिस पुरुषके पाँवमें काँटा लगैहै वह पुरुष दूसरेके पाँवमें भी काँटा लगना नहीं चाहता, वह अपने मनमें विचार करता है कि, जैसे मुझको काँटा लगनेसे पीडा हुईहै ऐसेही सबको होती होगी और जिसके काँटा लगा नहीं वह काँटेकी पीड़ाको कैसे जान सक्ताहै कि, काँटा लगनेसे इतना कष्ट होताहै ॥ १४ ॥ दरिद्री पुरुषका अहंकार, मद और सम्पूर्ण प्रकारका अभिमान नष्ट होजाता है और जो कष्ट आनकर प्राप्त होताहै तो वह कष्टही उसको तपस्याकी समान हो जाता है, तपमें व्रत हो जाता है, क्योंकि दरिद्री अन्नके विना भूखा प्यासा रहता है, जब दरिद्रीको अन्न न मिले तो निःसन्देह वह भूखा प्यासा रहेगा तो वही व्रत होगया ॥ १५ ॥ अन्नकी आकांक्षा करनेवाले दरिद्रीके घर नित्य कडाके होतेहैं, इससे उसका शरीर सूख जाताहै, इन्द्रियें शिथिल होजाती हैं, फिर उससे हिंसाभी नहीं होती, जो आपही मरताहै वह दूसरेको कैसे मारसक्ता है? ॥ १६ ॥ दरिद्री मनुष्य सबको समान देखताहै और दरिद्रीका साधु महात्मा पुरुष भी मिलजाते हैं, जिस समय दरिद्री क्षुधित होकर अन्न अन्न पुकारता है, तब साधु महात्मा उससे कहते हैं कि, अरे! कृष्ण कृष्ण पुकार जो सब संसरका पालन पोषण करनहार है; इसप्रकार वह साधु महात्मा लोग उसके अन्नकी तृष्णाको दूर करदेते हैं, तब शीघ्र उसका संताप छूटजाता है ॥ १७ ॥ समचित्त और परमेश्वरके चरणानुरागी साधु महात्मा पुरुषोंको दरिद्रीही प्यारा होता है, उनको लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त दुष्ट लोगोंसे प्रयोजनही क्या? ॥ १८ ॥ इस-लिये मैं इन दोनोंको जो कि वारुणीके मदसे मतवाले, लक्ष्मीके मदसे अन्धे, स्त्रियोंके लम्पट और अजितेन्द्रिय हैं, इनसे अज्ञान हुए मदको मैं दूर करूंगा, क्योंकि इससमय यह अन्धे होरहे हैं ॥ १९ ॥ देखो! यह कुबेरके पुत्र हाकर अज्ञानमें डूबरहे हैं, यह नहीं जानते कि, हम नंगे हैं, इनको कुछ भी अपने तनुकी सुधि नहीं अत्यन्त मतवाले होरहे हैं ॥ २० ॥ इसलिये यह दोनों स्थावर होनेके योग्य हैं जो फिर आगेको इन्हैं ऐसा मद न होय और वृक्षयोनिमें भी मेरी कृपासे इनको सुधि बनीरहै ॥ २१ ॥ और भगवान् वासुदेवका दर्शन पाकर पीछे फिर स्वर्गमें जाकर देवता होयँ, परन्तु पहिले देवताओंके सौ १०० वर्ष वृक्षयोनि भोगनी पडेगी तदनन्तर इनको भक्ति प्राप्त होगी ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! देवर्षि नारदजी इसप्रकार कहकर नारायणके आश्रमको चलेगये, अब नलकूबर, मणिग्रीव, दोनों यमलार्जुन वृक्ष हुए ॥ २३ ॥ अपने भक्तोंमें मुख्य श्रीनारदजीके वचन सत्यकरनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र महाराज यमलार्जुन वृक्षोंके निकट हौले हौले चलेगये ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें विचार किया कि, श्री नारदजी मेरे प्रिय भक्त हैं और यह कुवेरके दोनों पुत्र हैं, सो नारद महात्माने इनके विषयमें जो कुछ कहाहै सो सब सत्य करूंगा ॥ २५ ॥ इसप्रकार विचार करके यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें होकर निकले और वृक्षोंके बीचमें आनकर उलूख-लको तिरछा करादिया ॥ २६ ॥ रस्सीसे उदरमें बँधे हुए उलूखलको बालकरूप श्रीकृष्ण दामोदरने झटका मारकर खींचा, उस समय दोनोंवृक्ष जडसे उखडकर पृथ्वीपर गिरपड़े, श्रीकृष्णके पराक्रमसे गुद्दे, शाखा, डाली और पत्ते, सब काँपने लगे बडाभारी शब्द हुवा ॥ २७ ॥ जैसे संघर्षणके होनेसे अग्नि निकलतीहै, ऐसेही अति-शोभायमान दशो दिशाओंको प्रकाशमान करते दोनों पुरुष निकले, तब भगवान् त्रिलो-कीनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको शिर झुकाकर प्रणाम किया और मदको त्याग हाथ जोड इसप्रकार प्रार्थना करने लगे ॥ २८ ॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगिन्! तुम बालक नहीं हो, परमकारणरूप हो, और स्थूलसूक्ष्मरूप जो आप हो उस रूपको ब्रह्मवेत्ता जानते हैं॥२९॥ सब प्राणियोंके देह, प्राण, इन्द्रिय, अहंकारके आपही एक ईश्वर हो और सम्पूर्णमें व्यापक भगवान् कालरूप आपही हो ॥ ३० ॥ आपही महान्‌रूप हो रजोगुण, सत्वगुण, तमोगुण और सूक्ष्म मायारूप सब तुमही हो, देहोंके विकारके जाननेवाले साक्षीपुरुष आपही हो ॥ ३१ ॥ आप प्रकृतिके गुण, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियादिकोंसे ग्रहणकरनेमें नहीं आते हो उत्पत्तिसे पहिलेही स्वयंप्रकाश जो आप हो तिनको कारण गुण आच्छादित जीव कैसे जानसक्ताहै ॥ ३२ ॥ वासुदेव सबके कर्त्ता और स्वयंप्रकाशित किये हुए गुणोंसे जिनकी महिमा ढकरही है ऐसे जो आप ज्ञानस्वरूप हैं सो हम आपको बारम्बार नमस्कार करतेहैं ॥ ३३ ॥ हे भगवन्! आप सबके शरीरोंमें रहकर भी शरीरके सम्बन्धसे रहित हो और यद्यपि आपका शरीरभी नहीं है परन्तु जब आप अवतार धारण करते हो, तब और प्राणियोंसे न होनेवाले जिनकी तुल्य वा अधिक कोई नहीं करसक्ता, ऐसे ऐसे चरित्रोंसे आपके अवतार जाने जाते हैं ॥ ३४ ॥ सब लोकोंके ऐश्वर्य और मोक्षके लिये निरन्तर परिपूर्ण रूप होकर अपने अंशोंसहित प्रगट हुए हो ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याण रूप! हे मंगलरूप! आपको नमस्कार है, आपके शान्तरूपको नमस्कार है. हे वासुदेव! यदुकुलके रक्षा करनेवाले आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे परिपूर्ण भगवन्! हम आपके दासोंके दास हैं, हमने भगवान् नारदजी महाराजकी कृपासे आपका दर्शन पाया है और आपको परिपूर्ण रीतिसे जाना, अब हमको आप आज्ञा दीजिये ॥ ३७ ॥ हमारी वाणी आपके गुणानुवादोंको निरन्तर गायाकरै, कान आपकी कथाओंको सदा सुन-तेरहैं. हाथ आपकी सेवा और पूजनमें लगेरहैं, हमारा मन सदा आपके चरणारविन्दोंमें लगा-

रहे, हमारा मस्तक आपके निवासरूप जगत्को प्रणाम करतारहै, और हमारी दृष्टि तुम्हारी साधु मूर्तियोंका नित्यप्रति दर्शन कियाकरै. हे दीनबन्धु ! हम बारम्बार आपसे यह वर मागते हैं ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब इसप्रकार नलकूबर, मणिग्रीवने गोकुलनाथ भगवान्की स्तुति करी, तब रस्सासे उलूखल जिनके उदरमें बँधरहा ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन मुसकाकर बोले ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे यक्षो ! करुणामय श्रीनारदजीने लक्ष्मीके मदसे तुमको अन्धा देखकर शाप दिया और तुमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट करके तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, इस सब इतिहासको मैं पहिलेहीसे जानता था ॥ ४० ॥ समानचित्त, ब्रह्मज्ञानी, सनातनधर्ममें तत्पर, उनमें भी मुझमें निरन्तर मन लगानेवाले महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे ऐसे पुरुषोंका बन्धन कटजाताहै जैसे सूर्यके दर्शनसे नेत्रोंका अन्धकार दूर हो जाता है ॥ ४१ ॥ हे नलकूबर ! हे मणिग्रीव ! तुम मेरे भक्त होकर अपने स्थानको जाओ, तुम्हारी मेरे विषे सर्वदा भावना रहेगी और तुम्हारा जन्म मरण रूप संसार मुझमें प्रेम करनेसे छूट गया ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्के वचन सुनकर नलकूवर, मणिग्रीव बारम्वार परिक्रमा करके प्रणाम करने लगे और उलूखलसे बँधेहुए श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा लेकर उत्तर दिशाको चलेगये ॥ ४३ ॥

भजन राग देश-उत्तर दिशा परम सुखदाई । तपो भूमि अति परम सुहावने, चहुँ दिशि देत पहाड दिखाई ॥ १ ॥ पावन परम पवित्र मनोहर, सुन्दर गंगोत्तरी सुहाई । जहाँ बद्रिकाश्रम मन रंजन, भयभंजन त्रयताप नशाई ॥ २ ॥ गिरि कन्दरा खोह अति अद्भुत, जहाँ वसत मुनिजन अधिकाई । शीतल पवन बहत निशिवासर, त्रिभुवनकी शोभा तहँ छाई ॥ ३ ॥ चन्दन अगर वृक्ष अति सुन्दर, देवदारु तरुवर समुदाई । शालिग्राम वसत जहँ सब सुर, ता दिशिकी को करै बडाई ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे पू॰ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-ग्यारहवें बछरन सहित वृन्दावन हरि आय ।
वत्सासुर अरु बकासुर, हने कहूँ सो गाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, हे कुरुकुलभूषण ! वृक्षोंके गिरानेका शब्द सुन यशोदा अत्यन्त व्याकुल होकर दौडी और जिस उलूखलसे कृष्णको बाँधा था वहां न तो कृष्णको पाया और न उलूखलको देखा, तब तो एकाएकी घबराकर हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! हा मोहनप्यारे ! कह कहकर चिल्ला चिल्ला रोने लगीं, यशोदाकी चिल्लाहट सुनकर नन्दादिक समस्त गोप कहने लगे कि, यह कोई वज्र गिरा वा कोई और नया उत्पात हुवा ? इस भयसे भयभीत हो सब गोप वहां आये जहां वृक्ष गिरेथे ॥ १ ॥ देखा तो पृथ्वीपर यमलार्जुन वृक्ष उखडे

हुये पडे हैं, गिरनेका कारण विद्यमान है, परन्तु गोपोंके मनमें भ्रम हुवा कि, आंधी भी नहीं आई, वज्रभी नहीं टूटा, फिर यह वृक्ष आपसेआप कैसे उखडपडे ॥ २ ॥ रस्सीसे बँधे बालक श्रीकृष्णको उलूखल खैंचते देखा तो भी व्रजवासियोंने न जाना और परस्पर कहने लगे कि, यह किस राक्षसका कामहै, कहांसे यह आश्चर्यरूप उत्पात हुवा, ऐसे कह व्रजवासी डरने लगे ॥ ३ ॥ वहां जो छोटे छोटे बालक खेल रहे थे उन्होंने कहा कि, यह श्रीकृष्ण उलूखलको खैंचे वृक्षोंके बीचमें आगया, तब यह उलूखल तिरछा होकर इन दोनों वृक्षोंके बीचमें अडगया. तब इसने झटका मारकर खींचा, इससे यह दोनों वृक्ष गिर पडे इनमेंसे दिव्यरूप दो पुरुष निकले उनको भी हमने देखा ॥ ४ ॥ बालकोंकी बातका किसी किसी व्रजवासियोंने तो विश्वास न माना और परस्पर कहने लगे कि, तनकसे बालकने इतने इतने बडे वृक्षोंको कैसे उखाड डाला ? और कोई कोई व्रजवासी कहने लगे कि, इस बालकने जन्मसेही ऐसे औटपाय कियेहैं, जब बहुतही छोटासा था तो पूतनाको मारा, तृणावर्त्तको मारा और गाडा पटकदिया, फिर यह दो वृक्ष उखाड डाले तो क्या अचम्भा है ? ॥ ५ ॥ उलूखलको उदरमें बँधा देखकर नन्दरायजी बोले कि, तुझको ऊलूखलसे किसने बाँधा है? तब श्याममुन्दरने कहा कि,मेरी प्यारी मैय्याने, कृष्णके तुतलाते मधुरवचन सुन नन्दरायने उलूखलसे खोल हृदयसे लगालिया और हँसके बोले कि, चल बेटा तेरी मैय्याको मारेंगे, श्रीकृष्ण बोले पिताजी ! मेरी मातासे कुछ मत कहना, क्योंकि उसका कुछ दोष नहीं सब अपराध मेराही है ॥ ६ ॥ तब गोपियें बोलीं कि, हे मनमोहनप्यारे ! हम तो ताली बजावें और तुम नाँचो, हम तुमको बहुतसा माखन खिलावेंगी, यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कभी बालककी नाईं नाचते थे और कभी भोले बनकर गाते थे, जैसे काठकी पुतली बाजीगरके हाथमें होती है और जिधरको फेरताहै उधरको फिरती है, ऐसेही गोपियोंके प्रेमके वशमें परब्रह्म परमेश्वर हो रहेहैं ॥

सवैया-शंकरसे सुर जाहि जपैं, चतुरानन ध्यानन धर्म बढावैं।
नेक हिये में जो आवतही, रसखान महाजड़ मूढ़ कहावैं ॥
जापर सुन्दर देव वधूनहीं, वारत प्राण अवार लगावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ, छछिया भर छाँछपै नाच नचावैं ॥७॥

कभी यशोदाजी कहै हैं कि, हे बेटा ! पीढ़ा लेआव, कभी कहती बाबाकी खड़ाऊँ ले आव, तब तुरन्तही पीढ़ा ले आवैं और तुरन्तही खड़ाऊं ले आवैं और जब कोई वस्तु नहीं उठती तब माता माता पुकारतेहैं, इसप्रकार व्रजवासियोंको लीलाकरके आनंद देते हैं ॥ ८ ॥ संसारमें पण्डित लोगोंके दिखानेको कि, "मैं इसप्रकार भक्त लोगोंके वशमें हूं, जैसे नँचाते हैं वैसे नाँचता हूं" इसप्रकार बाललीला करके व्रजवासियोंको प्रसन्न करते हैं और व्रजवासी आनन्दित होते हैं ॥ ९ ॥ (एक समय फल लो, ऐसा मालिनीका शब्द सुनकर, सम्पूर्ण फलोंके देनेवाले श्रीकृष्णभगवान् धान्य लेकर फल लेनेको चल ॥ १ ॥ मालिनीने उनके धान्य डाल देनेके उपरान्त मनमोहन प्यारेकी परमप्यारी छवि

देख उनके दोनों हाथ फलोंसे भर दिये, तब ब्रजरत्नने उसकी डलिया रत्नोंसे भरदी ॥ ॥ २ ॥) यमलार्जुन वृक्षोंको उखाडके श्रीकृष्ण यमुनाके तीरपर बालकोंके संग बलभद्रसहित खेल रहे थे, इनको रोहिणीजीने पुकारा ॥ १० ॥ दोनों भाई खेलमें ऐसे मग्न हो रहे थे कि, रोहिणीके बुलानेसे भी न आये, तब पुत्रसे प्रेम करनेवाली यशोदाजीको रोहिणीने बुलानेके लिये भेजा ॥ ११ ॥ बालकोंके संग कृष्ण बलदेव खेलते खेलते जब बहुत दिन चढ़ गया, तब यशोदाके पुत्रके स्नेहसे स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा तब यशोदाजी श्रीमनमोहन प्यारेको बुलानेलगीं ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! हे कमलदललोचन ! हे पुत्रप्यारे ! स्तनपान करले, तू खेलते खेलते थकगया होगा. हे तात ! तुझको भूख बहुत लगी होगी, अब खेलको रहनेदे, संध्याको फिर खेलना ॥ १३ ॥ हे राम ! हे मोहन ! हे नंदलाल ! हे कुलभूषण ! शीघ्र छोटे भाईको अपने साथ लेकर घरको आओ, प्रातःकालही कलेऊ कर लिया है अब आनकर भोजन करले ॥ १४ ॥ अरे खेलके मतवाले ! ब्रजनाथ तुझ बिना भोजन करनेको बैठे हैं, तेरे आनेकी बाट देखरहे हैं, तुझको बूढ़े बाबाकी दया नहीं आती, तू आनकर हमको प्रसन्न कर, इस बातको सुनकर कृष्ण आये तब बालक बोले कि, जैसे तैसे करके तो खेल जमा है अब श्रीकृष्ण जाते हैं, इसको कभी नहीं खिलानेके, यह बात सुनकर श्रीकृष्ण फिर खेलने लगे, तब यशोदा बोली कि, अरे बालको ! तुम्हारे घरवार हैं कि नहीं, क्यों नहीं अपने घरोंको जाते ॥ १५ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारा शरीर धूलिमें सनरहाहै अब तुम चलकर स्नान करो और आज तुम्हारा जन्मनक्षत्र है, इससे पहिले तो स्नान करके ब्राह्मणोंको अच्छी अच्छी दूधकी गायें दान करके दो ॥ १६ ॥ जब मोहन प्यारे बुलानेसे न आये तब कहने लगी कि, तेरी बराबरके बालकोंको उनकी माताओंने उनको स्नान कराकराके सुंदर सुन्दर वस्त्र और आभूषण भी पहिरादिये, देख तो ले तू उनके सामने कैसा बुरा लगै है, इससे तू भी शीघ्र स्नानकरके भोजन करले. फिर मैं तुझे अच्छे अच्छे वस्त्र और गहने पहिराय, नेत्रोंमें काजर लगाय चन्दनकी ऐसी सुंदर खौर लगाऊंगी मानो तेरे मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्रमा उदय हुवाहै ॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! प्रेममें मतवाली यशोदाजी ब्रह्मादिकोंके मुकुटमणि श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र मानकर बलदेवसमेत श्रीकृष्णको हाथ पकडके मन्दिरमें ले आई और शरीरमें उबटन मल, गरम जलसे न्हवाय, वस्त्र आभूषण पहिराय, अच्छी अच्छी दूधकी गायें मँगाय, उनके हाथसे दान कराई, इस प्रकारका उत्सव किया ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब ब्रजमें बड़े बड़े उत्पात होने लगे तब नन्दादिक वृद्ध वृद्ध ब्रजवासियोंने विचार किया कि, महावनमें तो नित नये उत्पात होते हैं. अब गोकुलके हितका कोई विचार करना चाहिये ॥ १९ ॥ जो कि, ज्ञान और अवस्था करके अधिक देश कालके तत्त्वको जाननेवाले और बलभद्र व कृष्णचन्द्रसे अतिहित करनेवाले उपनन्द नाम गोप तहाँ बोले ॥ २० ॥ गोकुलके हितकी इच्छा करके उपनन्दन कहने लगे कि, हम यहाँसे उठके और स्थानपर वास करेंगे, यहां बालककोंके विघ्न करनेवाले बहुतसे

उत्पात होते हैं ॥ २१ ॥ बालकोंकी घातिका पूतना राक्षसीके हाथसे जैसे तैसे कर यह बालक बचा और एक समय शकट इसके ऊपर गिरा उस विपत्तिसेभी भगवान्की कृपासे बचा ॥ २२ ॥ एक समय तृणावर्त बबूलेका रूप धरके इस बालकको आकाशमें उडाकर लेगया और वहाँसे उसने शिलाके ऊपर पटक दिया, वहाँभी देवताओंने इसकी रक्षा करी ॥ २३ ॥ यह बालक उलूखलमें बँधाहुवा दोनों वृक्षोंके बीचमें फँसगया और मरनेसे बचा, वहाँ उस समय और बालक भी कोई नहीं था, वहाँ भी इस बालककी परमात्माने रक्षा करी ॥ २४ ॥ अब परमेश्वर और कोई दूसरा उत्पात ब्रजमें न खड़ा करदे, इससे पहिलेही बालकोंको यहांसे लेकर और दूसरी ठौर कहीं चल बसें ॥ २५ ॥ पशुओंका हितकारी और नये बाग बगीचे और पुष्पवाटिकावाला श्रीवृन्दावन नाम बनहै और वहीं अतीव उत्तम गोप, गोपी, गायोंके रहने योग्य स्थान हैं और महापवित्र जहाँ गोवर्धन पर्वत है, यमुनाजीका किनारा है, वहां तृण, जल, लता और उत्तम उत्तम सब प्रकारके वृक्ष हैं ॥ २६ ॥ उस वृन्दावनका वास सदैव अच्छा है, आपकी इच्छा हो तो गाडोंको जोतो और गायोंको आगे हाँकलो, अब विलम्ब करनेका समय नहीं है ॥ २७ ॥ इस प्रकार उपनन्द गोपने नन्दजीसे कहा ॥

चौ०-जहँ उत्पात रात दिन होई । तहँ बसकर सुख लहै न कोई ॥
सुदिन बूझकर चलहु ब्रजेशा । अब न रहन लायक यह देशा॥

उपनन्द गोपके वचन सुनकर सब वृद्धजनोंने कहा धन्य है आपकी बुद्धिको आपने बहुत अच्छा कहा, हे ब्रजराज ! उपनन्दका कहना बहुत ठीकहै, हमारी भी सम्मति यहीहै कि, वृंदावनमें वास कीजिये, नन्दजीने कहा हमारी भी यही इच्छा थी परन्तु आपके कहनेसे और पक्की बात होगई. नन्दजीकी बात सुन सबने अपनी अपनी गाडियोंको जोत घरकी सब सामग्री लादकर चलदिये ॥ २८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! प्रथम सब सामानको गाडियोंमें भरकर ऊपर वृद्ध, बालक, स्त्रियोंको बैठालकर, धनुष् बाण हाथोंमें लेलेकर ॥ २९ ॥ सब ब्रजवासी सावधान हो गायोंको आगे कर, चारों ओर बडे बडे रणसिंग बजाते और तुरहीका शब्द करते पुरोहितको संग लेकर सब गोकुलवासी वृन्दावनको चलदिये ॥ ३० ॥ गाडियोंमें बैठीं गोपीं नवीन केशर कुचाओंमें लगाये, कठला धुकधुकी कण्ठमें पहिरे, रथ और गाडियोंमें बैठीं कृष्णकी लीला गातीं जाती थीं ॥ ३१ ॥ उसीप्रकार रोहिणी और यशोदा भी एक गाडीमें श्रीकृष्ण और बलदेवजीको साथ लिये बैठी थीं और उनकी लीला और चरित्रोंको सुन सुनकर आनन्दको प्राप्त होती थीं ॥ ३२ ॥ सर्वानन्दको देनेवाले वृन्दावनमें आनकर गाडियोंको बराबर खडा करके अर्द्धचन्द्रमाकी समान गायोंके रहनेके लिये एक खिरक बनाया ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! वृन्दावन, गोवर्द्धन और यमुनाजीका अत्यन्त रमणीक तट देखकर श्रीकृष्ण और बलराम बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३४ ॥ इस प्रकार बाललीला और तोतली मधुरवाणीसे ब्रजवासियोंको आनन्द देने लगे और जब दोनों भाई बछरे चरावने योग्य हुए तब

वत्सपालक कहलाये ॥ ३५ ॥ ब्रजभूमिके निकटही गोपालोंके बालकोंको संग लेके श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई बछरोंको चराने लगे और भाँति भाँतिकी क्रीडा नित्य प्रति करने लगे॥

दोहा-बछरन नित्य खिलावहीं, अतिशय प्रीति बढाय।
कहुँ खोलहिं कहुँ बाँधहीं, कहुँ जल देहिं पियाय ॥ ३६ ॥

कभी बाँसुरी बजाते थे और कभी आमलोंको गोफनमें धरधरकर चलाते थे कभी पावोंमें घूँघुरू बाँधकर ऐसा नाच नचाते थे कि, अप्सराओंको लजाते थे. कभी परस्पर युद्ध करते थे. कभी कम्बल उढाय कृष्ण बलदेव दोनों भैय्या ग्वालोंको बैल बनाते थे और उनके संग आप भी बैल बनकर गंभीर शब्द करते थे ॥३७॥ कभी पक्षियोंकी बोली बोल बोलकर कहतेहैं कि, हम हंस हैं कोई कहते हम मोर हैं, जैसे प्राकृत बालक खेल खेलते हैं वैसेही दोनों भाई वनमें जाकर नये नये खेल खेलते थे ॥ ३८ ॥ एक समय यमुनाजीके तीरपर श्रीकृष्ण और बलराम बछेरे चरानेको गये और वहाँ कंसने सुना कि, नन्दादिक गोप गोकुल छोडकर वृन्दावनमें जा बसे हैं, तब कंसने अपने साथी वत्सासुरको बुलाकर विनयपूर्वक अपने दुःखका सब वृत्तान्त कहा कि, भाई नन्दके पुत्रने मुझको बडा दुःख देरक्खा है, कोई ऐसा उपाय करो जो वह बालक माराजाय. कंसकी यह बात सुन वत्सासुर बछेरेका रूप बनाकर वृन्दावनमें गया ॥ ३९ ॥ और जो बछरे कृष्ण और बलराम चराते थे उनहीं बछरोंमें मिलकर यह भी चरने लगा और उसका भयानकरूप देख सब बछरे डरकर जहाँ तहाँको भागगये. तब श्यामसुन्दरने उस राक्षसको पहँचानकर आँखकी सैनसे बलदेवजीको जताया कि, देखो भाइ ! यह दुष्ट राक्षस कंसका भेजाहुवा बछरेका रूप धरकर मेरे मारनेके लिये यहां आया है, तुम भी इसका ध्यान रखना ॥ ४० ॥ वत्सासुर भी घूसता घामता अपनी घात लगाताहुवा धीरे धीरे वृन्दावनविहारीके समीप आ पहुँचा, तब श्रीकृष्णचन्द्रने उसका पिछला पैर पकडकर एक कैथाके पेडकी जडमें घुमाकर ऐसा मारा कि, उसका प्राण निकलकर परमधामको सिधारा. बडे भारी शरीरवाला वत्सासुर दैत्य कैथाके वृक्षसहित पृथ्वीपर गिरा ॥ ४१ ॥ उसको गिरा देखकर सब बालक अत्यन्त विस्मित हो धन्य धन्य कहने लगे और अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंने आकाशसे फूल बरसाये ॥ ४२ ॥ समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भ्राता बछरोंके वत्सपाल होकर प्रातःकालका कलेवा लेकर वनमें जाय बछरोंको चराते और अनेक अनेक प्रकारकी लीला विहार करते थे ॥ ४३ ॥ जब कंसने वत्सासुरके मारे जानेका वृत्तान्त सुना तो बडा शोच किया ? और उसके भाई बकासुरसे जाकर कहा कि, तू अपने भाईका बदला ले और उस दुष्ट कृष्णको मारकर मेरी छाती ठण्ढी कर, यह बात सुनकर बकासुर बगलेका रूप धारण कर वृन्दावनमें आया और कालिन्दीके किनारे पर्वताकार हो, मुँह फैलाकर इस घातमें जा बैठा कि, श्यामसुन्दर यहाँ आवै तो निगल जाऊँ उस दिन सब बालक अपने अपने बछरोंके समूहोंको यमुनाजीके निकट जल

पिलानेके लिये गये, वहाँ जाय बछरोंको जल पिलाया और आपभी पिया ॥ ४४ ॥ और वहाँ उन बालकोंने वज्रसे टूटे गिरे पर्वतके शिखरके तुल्य बडे मुखवाला एक पक्षी देखा और उसको देखकर अत्यन्त भयभीत हुए ॥ ४५ ॥ यह महाबली तीक्ष्णचोंचवाला बगलेका रूप धारणकिये बकासुरनाम दैत्य था, वह बकासुर बलवान् आनकर श्रीकृष्णको शीघ्रही निगल गया और कहा कि, मैंने आज अपने वत्सासुरका बदला ले लिया ॥ ॥ ४६ ॥ जब श्रीकृष्णको बकासुर लीलगया तब सब बालक बिना प्राणोंके इन्द्रियकी समान अचेत होगये और रोरोकर कहने लगे कि, हाय ! हम सब यशोदाको जाकर क्या उत्तर देंगे ? जिसने अपना प्यारा पुत्र हमको सौंपदिया था, सब दौडे हुए बलदेवजीके पास आये और वृत्तान्त सुनाया कि, हमने बहुतेरा वर्जा परन्तु श्यामसुन्दरने हमारा कहना एक भी न माना, अब हम क्या करें और क्या न करें ? बलदेवजी बोले कि, तुम घबराओ मत, उस दैत्यको मारकर मनमोहनप्यारे अभी आते हैं, उसी समय गायनके पालनकरनहारे, नन्दके दुलारे, ग्वाल बालोंके प्यारे, यशोदाके नेत्रोंके तारे, जगतके गुरु, ब्रह्माके पिता, श्रीकृष्णचन्द्रने अग्निके अंगारकी समान उसके तालूको जलाना आरम्भ किया, उस बकासुरने कृष्णको तुरन्तही उगलदिया और उनके शरीरमें कुछ भी कष्ट न हुवा, तब तो अत्यन्त क्रोध करके फिर बकासुर ब्रजविहारीके ऊपरको धाया ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ सज्जनोंके सहायक, देवताओंके आनन्ददायक, श्रीकृष्ण यदुनायक, कंसके सखा बकासुरको फिर आता देख दोनों हाथोंसे उसकी चोंच पकडके सब बालकोंके देखते देखतेही तृणकी समान चीरकर बगेल दिया ॥ ४९ ॥ उस समय सुरपुरनिवासी देवता बकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके ऊपर नन्दनवनके मालतीके पुष्पोंकी वर्षा करके दुंदुभि और शंख बजाय बजाय उनकी स्तुति करने लगे, इस कौतुकको देख देखकर ग्वाल बाल आश्चर्य मानते थे ॥ ५० ॥ जैसे इन्द्रियें प्राण आनेसे आनन्द होती हैं तैसे बलभद्रादिक सब बालक बकासुरके मुखसे निकलेहुए श्यामसुन्दरप्यारेको देखकर आनन्दित हुए और छातीसे लगाकर सब बालक उनसे मिले और सब बछरोंको इकट्ठा करके संध्या समय जान-

दोहा-बल मोहन घरको चले, जान साँझकी बेर।
लीन्ही गय्याँ घेर सब, मुरलीकी धुनि टेर ॥

सोरठा-चले बजावत बेन, ग्वालवृन्दके मध्य हरि।
अंग अंग छबिऐन, ब्रजमनमोहन साँवरो ॥
राँभत आवत गाय, वत्ससुरतिकर पय स्रवत।
हर्षयशोदामाय, कहत श्याम अब आवहीं ॥

सब ब्रजवासियोंके बालक और राम कृष्ण घर आये, यशोदाने देखतेही दौड़कर हृदयसे लगालिया, तब सब बालक कहने लगे कि, हे नंदरानी ! तुम्हारा पुत्र बड़ा बलवान् है इसकी हमसे प्रशंसा नहीं होती, आज जो हम गाय चराने गये वहां यमुनाके

निकट एक असुर मुँह पसारे बैठा था, उसकी एक चोंच तो पृथ्वीमें थी और दूसरी आकाशमें थी, हमारे मने करते २ कृष्ण उसके मुखमें चला गया, उसने चोंच बन्दकरली, हम रोते पीटते बलदेवजीके पास आये और सब वृत्तान्त सुनाया, इतनेहीमें कृष्ण उसकी चोंचको चीरकर बाहर निकलगये, न जानिये इन्होंने क्या उपाय किया, इस भेदको हम अबतक नहीं जाने और कल भी इन्होंने ऐसाही कौतुक किया था, एक असुर बछरा बनकर हमारे बछरोंमें आन मिला था, इन्होंने उसकी टाँग पकड घुमाकर दे मारा था, यह बात सुनकर नन्द यशोदा अत्यन्त विस्मित हुए और वृद्धजनोंको बुलाकर कहनेलगे कि, अब क्या उपाय करना चाहिये, जिस लिये गोकुल छोड़ा वह विपत्ति यहां भी उपस्थितहै, जिस दिनसे कृष्णका जन्म हुवा है उस दिनसे एक न एक नित्य ऐसाही उत्पात होता रहता है ॥ ५१ ॥ यह सुनतेही गोप और गोपी बहुत संशय करने लगे और गोप गोपी बडे आदर सत्कारसे श्रीकृष्णको देखनेलगे जैसे कोई मृतक होकर घर आजाताहै और सब कुटुम्बियोंका चित्त उनको देखते २ तृप्त नहीं होता ॥ ५२ ॥ सब गोप कहने लगे कि, इस बालकके ऊपर बड़ी बड़ी विपत्तियें पडीं, परन्तु जो मारनेको आया वह आपही मारागया, क्योंकि पहिले उन्होंने औरोंको भय दिखाया ॥ ५३ ॥ महाभयंकर रूप धर धरकर अनेक असुर और राक्षस कृष्णके मारनेको आये, परन्तु परमेश्वरकी दयासे इनका कुछ कर न सके, आपही मरनेके लिये इसके पास आये, जैसे अग्निमें आकर पतंग जल जाते हैं, तैसे आपही आनकर मरजाते हैं॥५४॥अहो ! वेदवादियोंकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती जो जो बातें गर्गाचार्य कहगये थे, वह सब बातें अब सत्य होती जाती हैं, यशोदा बोली बेटा यहाँ तो दिन दिन नये नये उत्पात होते हैं और तू अभी बालक है वनमें गायें चरानेको मत जायाकर, मनमोहनने कहा मैय्या मै भी यही कहनेको था क्योंकि, सब ग्वाल बाल मुझसेही कहैं हैं कि, तू गायोंको घेर कर ला और जो मैं नही जाता तो मुझसे बलात्कार गायें घिरवाते हैं, मैय्या जब दौड़ते दौड़ते मेरे पाँव पिराने लगैं हैं तब मैं वृक्षकी छायामें जा बैठूं हूं, परन्तु यह बालक वहाँभी मुझको चैन नहीं लेने देते और जो मेरी बातका पतियारा न होय तो अपनी सौगन्ध दिलाकर भैय्या बलदेवजीसे बूझ देख यह बात सुन यशोदा बोली मैंने तो श्यामसुन्दरको तुम्हारे संग खेलनेको भेजदिया था कुछ गायें घिरवानेके ताईं थोड़ेही भेज दिया था ॥

दोहा-जानै कहा चरायबो, अबहीं मोहन गाय ।
अति बारो मेरो सुवन, मारत ताहि थकाय ॥ ५५ ॥

इस प्रकार कृष्ण बलरामकी रसभरी बातें कह कहकर आनन्द होते थे और सुख पाते थे, जिन्होंने भवसागरकी वेदनाको कुछ न समझा ॥ ५६ ॥ इस प्रकार आँख मिचौनी, पुल बांधने, बन्दरोंकी समान कूदना, यह कौमार अवस्थाके खेल कर करके श्रीकृष्ण बलराम कौमार अवस्था व्यतीत करते थे ॥ ५७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

दोहा-द्वादशमें धर सर्प वपु, निगल ग्वाल अरु बाल।
तासु अघासुरको हन्यो, कृपासिंधु गोपाल ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि. हे राजन्! एक दिन व्रजभूषण वस्त्र आभूषण पहन सुन्दर शृंगार बनाय यमुनाके निकट खेलनेको गये, वहाँ नटनागर जगत्उजागर नटवरवेष किये मुरली हाथमें लिये एक सखाके संग खड़े थे वहाँ दैवयोगसे वृषभानुकी दुलारी जो कि, साक्षात् श्रीलक्ष्मीजीका अवतार थीं, जब सात आठ वर्षकी अवस्था हुई तब वह विशालनयनी पिकनयनी सुन्दर शृंगार किये नील कमलका फूल हाथमें लिये, सखियोंके संग उमंगमें भरी यमुनाजीमें स्नान करने आई, जब श्रीकृष्णचन्द्रने देखा कि, आज यह मनमोहनी छविकी छवि क्षीण करनेवाली, मुनियोंका मन हरनेवाली, कहाँसे आगई, जब व्रजविहारी और राधाप्यारीकी आँखसे आँख मिली उसी समय पिछली प्रीतिका स्मरण करके मनमोहन तो राधापर मोहित होगये और श्यामा श्यामसुन्दरपर मोहित होगई. तब दोनोंके हृदयमें प्रीति बढ़ी उससमय श्रीकृष्णने राधासे बूझा कि, तुम्हारा नाम क्या है? और कौनसे गोपकी बेटी हो, हमने आजतक तुमको इस व्रजमें कभी नहीं देखा? ऐसी रीति प्रीति-सनी बातें सुन राधानें कहा कि, यहाँ हमारे आनेका क्या काम है, सदा अपने गाँवमें खेलती रहती हूं, कभी घरसे बाहर निकलनेका कामही नहीं पड़ता, फिर तुम मुझको कहाँसे देखते मैं तो यहां कभी आई ही नहीं और नाम मेरा राधिका है और राजा वृष-भानुकी पुत्री हूं. चाहे तुमने सुना हो वा न सुना हो, परन्तु मैंने तुम्हारा नाम भली-प्रकार सुन रक्खाहै कि, बाबानन्दका ढोटा ग्वालिनियोंका दही माखन चुरा चुराकर खाताहै और अब मैंने नेत्रोंसेभी आपको देखलिया कि, नंदलाल आपहीका नाम है, यह वचन सुनकर श्यामसुन्दरने कहा कि हे सुन्दरी! हमने तुम्हारा तो कुछ नहीं चुराया, फिर तुम हमको चोर कैसे बताती हो? राधा बोली महाराज! हमारे पास चुरानेको है ही क्या? और जिसका जो नाम होगा वही कहा जायगा, श्यामसुन्दर हँसकर बोले कि, अब तो तुमने व्रज देखलिया कभी कभी यहाँ भी खेलने चली आया करो, व्रजमो-हनकी प्रेमभरी बातें सुनकर श्यामा भी तन मनसे श्यामसुन्दर पर मोहित होगई परन्तु सखियोंके सामने अपने प्रेमका भेद न खोला फिर श्यामसुन्दर बोले कि, हे श्यामा! तुमको बाबा वृषभानुकी सौगन्ध है दोचार घडीको हमारे घर नित्य होजाया करो और जब बाबा नन्द गायें गिननेको तुम्हारे घर जाया करेंगे तो उनके संग हम भी आया करेंगे और जब तुम दूध दुहानेके लिये आया करोगी तो खरकमें मुझको भी बुला लिया करो, यह गूढ़वचन श्रीकृष्णके सुनके राधा मनहीं मनमें मुसकाई और फिर पराधीन हो ॥

सोरठा-चली सदन सुकुमार, उरमें उरझो साँवरो।
हो गइ बहुत अवार, मात त्रास मनमें अधिक ॥

राधा ऊपरके मनसे सखियोंसे कहने लगी कि, हे सखियो शीघ्र चलो माता बाट देखती होगी और यह जो कृष्णने कहा कि, हमारे घर खेलनेको आजाया करो, भला हमारे घर

खलनेवालोंकी क्या कमी है, जो मैं इतनी दूर आऊं और अपने पाँव थकाऊँ. परन्तु मनमें कृष्णही कृष्ण खटक रहे थे, जब घर गई तो माताने बूझा कि, हे पुत्री ! इतनी देरसे कहाँ थी, मैं तुझे गायोंके खरकमें भी देख आई राधा बोली हे माता ! मैं गायोंको देखने चली गई थी, यह कह माताको तो बहला दिया परन्तु आप कृष्णमय होगई ॥

कवित्त-बाटनमें घाटनमें वीथिनमें बागनमें, वृक्षनमें वेलिनमें वाटिकामें वनमें । दरनमें दिवारनमें देहरी दरीचिनमें, हीरनमें हारनमें भूषणमें तनमें ॥ काननमें कुञ्जनमें गोपनमें गायनमें, गोकुलमें गोधनमें दामिनिमें घनमें । जहाँ तहाँ देखें तहाँ कृष्णही दिखाई देत, शालिग्राम छायरह्यो नैननमें मनमें ॥

परन्तु माता पिताकी त्राससे कुछ न कहसक्ती मनमें यही आश कि, किसीप्रकारसे वृन्दा बनविहारीका दर्शन हो, जैसे तसे करके दिन काटा सन्ध्या होतेही मातासे बोली कि, मुझको दोहनी देदे मैं खरकमें गाय दुहानेको जाती हूं, मातासे दूधका बहाना कर श्यामसुन्दरप्यारेके पासको चली,

सोरठा-मन में शोचत जाय, कित देखूं उन श्यामको ।
जिन मन लियो चुराय, खरक मिलन मोसों कह्यो ॥

वहां जाकर देखा तो मनमोहनका पता भी नहीं, तब तो राधिका अपने मनमें बहुत चकित हुई और कृष्णको इधर उधर ढूँढने लगी. परन्तु प्रेमके वशीभूत हो नेत्रोंमें आंसू भरलाई. हे प्रभु ! प्रथमहीं झूठ, हारकर घरको फिरी सामनेको देखा तो श्रीकृष्ण भी नन्दजीके संग आरहे हैं देखतेही फूलगई मानो कृपणको धन मिलगया उधरसे कृष्णनेभी देखा राधाप्यारी खडी है अपने निकट बुलालिया नंद राधिकाको देखकर बहुत आनन्द हुए और कहा आओ बेटी खेलो, फिर कृष्णचन्द्रसे कहा यह वृषभानुदुलारी तुम्हारे संग खेलनेको आई है इसको भी अपने संग खिलाओ परन्तु कहीं दूर मत जाना घरही खेलियो और इसकी ओरको देखते रहना कोई गाय बछडा न मार दे कृष्णने राधाका हाथ पकडलिया कि, अब मैं तुमको कहीं नहीं जाने दूँगा मेरे पिताने तुमको मुझे सौंपदिया है और जो कहीं जाओगी तो मैं तुमको पकडके मँगा लूँगा, फिर श्यामसुन्दर ऊपरके मनसे कहने लगे कि, राधे मेरा हाथ छोडदे राधा बोली मैं तुम्हारा हाथ कभी न छोडूंगी, क्योंकि नन्दबाबाने तुम्हारा हाथ मुझको पकडवा दिया कदाचित् जो कहीं तुम चले गये तो नन्द बाबा मुझे खैंचे खैंचे फिरेंगे. फिर मैं उनको क्या उत्तर दूंगी ॥

दोहा-परम नागरी राधिका, अति नागर ब्रजचन्द ।
करत आपनी घात दोउ, बँधे प्रेमके फन्द ॥

सनातन की प्रीति समझकर और ब्रजमें विहार करनेके लिये राधा और कृष्णने अवतार धारण किया है श्रीकृष्णने अपने मनमें बिचार किया कि, किसीप्रकार राधा

हमारे घर चलै, अकस्मात् श्रीकृष्णने ऐसी माया की कि, चारों ओर घटा घिर आई, मेघ गर्जने लगे पवन झकोर लेने लगी, बिजली चमकने लगी, सब पृथ्वीपर अन्धकार छागया, दूसरे सघन वनकी अँधियारी, उस समय श्रीकृष्णने बालकोंकी नाई नन्दजीसे कहा कि, इस समय मेरा जी डरता है मुझको किसीप्रकार घर पहुँचाओ, नन्दजीने राधिकासे कहा कि, हे पुत्री ! श्यामसुन्दरको घर पहुँचा दे, राधिकाने मनमोहन प्यारेका हाथ पकडकर कहा चलो मैं तुमको पहुँचादूंगी, नवलकिशोर और नवलकिशोरी आनन्द होतेहुए घर आये, परन्तु व्रजविहारीने अपना पीताम्बर तो प्यारीको उढादिया और प्यारीकी सारी आप ओढलीं, जब घर आगये तो घटा बादली सब दूर होगई यशोदा देखकर चकित होगई कि, आज कृष्णने किसकी सारी शीशपर ओढलीं. फिर मनमें विचारा कि, आज किसी गोपीने मेरे मनमोहनको मोहनी डालकर मोहलिया ऐसा समझ कृष्णसे हँसकर बोली कि, हे पुत्र । पीत पिछौरी कहां बिसारी और यह लाल सारी किसकी ओढ आये ? कृष्ण बोले मैय्या ! मैं गायोंको पानी पिलानेके लिये यमुनापर गया था वहां पनिहारी पानीभर रही थीं, मेरी गाय भाजी मैं अपना पीताम्बर यमुना किनारेपर छोडकर गाय फेरनेको गया उस गोपीने भूलकर मेरे पीताम्बरको ओढलिया और अपनी ओढनी छोडदी, मैंने तेरे डरके मारे उसकी ओढनी ओढली कि,तू यह न कहै कि, अपना पीताम्बर कहाँ खोइ आया, मैं उसका नाम तो जानता नहीं परन्तु सूरत पहिचानताहूं, तू कहै तो मैं जाकर बदल लाऊं. माताने सूधे स्वभाव कहदिया जा बदल ला व्रजविहारीने बाहर जाकर कुछ ऐसी माया करी कि, लालसारीका पीताम्बर बनाकर मातासे कहा कि, ले माता मैं बदल लाया यशोदाने कहा बहुत अच्छा किया, वहां राधिका श्रीकृष्णका पीताम्बर ओढे हुए अपने घर गई और जातेही माता माता पुकारने लगी, कीर्तिने राधाकी गद्गदवाणी सुन घबराकर बोली कि, राधा ! अभी तो अच्छी नीकी गई थी इतनेहीमें तुझको क्या होगया राधाने कहा कि, मेरे संग एक गोपकुमारी और थी, उसको मार्गमें साँपने काटखाया, सो वह बेसुधि होकर पृथ्वीपर गिर गई, तब तो मैं भी डरकी मारी काँपने लगी और रोम खडे होगये, उसी समय मनमोहन नन्दका कुमार कहांसे आगया, तब उसने एक मंत्र पढकर कुछ ऐसा झारा दिया कि, वह सचेत होकर बैठगई और उसका सब विष उतर गया, तब वह अपने घरको गई और मैं अपने घरको चली आई, उसी घडीसे मेरा कलेजा धकधक करता है और जी घबराता है कीर्तिने राधाको चुमकार कर हृदयसे लगाया और मुखपर हाथ फेरकर कहनेलगी कि, आज भगवान्ने बडा अनुग्रह किया जो तू कालके मुँहसे बची, न जानिये कानसे जन्मका पुण्य इस समय आनकर सहाय होगया, नहीं मरनेमें तो कुछ सन्देहही नहीं था. इसीलिये मैं वारंवार तुझसे कहा करती थी कि, अबेर सबेर तू दूध दुहाने मत जायाकर परन्तु तैंने मेरी एक बातभी नहीं सुनी कभी खरकमें जाकर दूध दुहाती है, कभी अकेली यमुना नहाने जाती है, देखती कहींको है, चलती कहींको है, कहनेसे बुरा मानै है, इन तेरी बातोंके मैं अच्छा नहीं

समझती, जो कुछ नेकी बदी होजाती तो मैं कैसे धैर्य धरती मुझको तो सौ बेटोंकी समान तू एक बेटी है, तुझको तो मुझसेही जगत्में उजियाला है, यह कह कीर्तिने राधा को तुरन्त ठण्ढे पानीसे स्नान कराय नये वस्त्र पहिरायकर कहा कि, तुझे गये बहुत देर हुई अब भूखलगी होगी कुछ भोजन करले और अब कहीं बाहर खेलने मत जायाकर पासपरोसकी लडकियोंके संग खेलती रहाकर, राधिका अपने मनहीं मनमें कहने लगी कि, आज तो मेरी माता छलमें आगई परन्तु कलको क्या ? और बिना ब्रजचन्द्रका चन्द्रमुख देखे इस चित्तचकोरको धैर्य कैसे होगा ? फिर समझ शोच उस मनमोहनकी मनमोहनी मूर्तिको हृदयमें धारण कर, माताके बचनोंकी लज्जासे कहा कि, मैं अब घरसे बाहर खेलने कहीं नहीं जाऊंगी परन्तु वनमालीके ध्यानमें ऐसी मतवाली थी कि, किसी प्रकार श्यामसुन्दरका दर्शनहो, ज्यों त्यों करके रात काटी प्रातःकाल होतेही दूध दुहानेके बहाने मनमोहनके घर गई और द्वारपर जाकर मनमोहन ! मनमोहन ! पुकारने लगी और यशोदाकी लज्जाके मारे मन्दिरमें न गई, राधाकी मनोहर वाणी सुनतेही ब्रजविहारीने जाना कि; राधाप्यारी आगई मातासे बोले कि, हे माता ! यह द्वारपर मनमोहन मनमोहन कौन पुकार रहाहै ? तू जानै है, मैय्या ! कल मैं यमुनाजीसे आता था मुझे कुछ ऐसा भ्रम हुवा कि, मैं घरका मार्ग भूलगया और दूसरे मार्गको हो लिया यह मेरा हाथ पकडकर मुझे यहाँ पहुँचा गई, जो मुझको यह घर न पहुँचाती तो न जानिये मैं कहाँका मारा कहाँ चला जाता, सो आज यह वही गोपी मेरे घर आई है, परन्तु लज्जाके मारे मन्दिरके भीतरको नहीं आती, तू उसको भीतर बुलाकर देख तो सही, वह कैसी चतुर और विलक्षण है,यह कह कृष्णने मातापर ऐसी मोहनी डाली कि, यशोदाके हृदयमें भी राधाकी ओरका प्रेम उत्पन्न होगया, तब यशोदा कृष्णसे बोली कि, उसे घरमेंको बुलाला, विपिनबिहारी बाहर आके प्यारीकी ओर देख ऐसे आनन्द होगये जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर प्रफुल्लित होजाता है और हँसकर राधासे कहा, हे राधा ! चलो तुमको मेरी माता बुलावै है, यह कह राधाका हाथ पकडकर घरको लिवागये यशोदा उसकी मनोहर छबि देख मोहित होगई और बडे आदर सत्कारसे अपनी गोदीमें बैठालकर उससे बूझा कि, बेटी तू कौनसे गांवमें रहै है, मैंने आजतक तुझको कभी नहीं देखा, तू किसकी बेटी है ? और तेरा क्या नाम है ? कल मेरा गोपाल मार्गमें बँहक गया था, तैंने हमारे संग बडा उपकार किया जौ मेरे कृष्णको यहाँ पहुँचागई, तब नीची नारकरके वृषभानुनन्दिनी बोली कि, मैं वृषभानुकी कन्या हूं और राधा मेरा नाम है और मेरी माताका नाम कीर्ति है. वह तुमको भलीभाँति जानती है, अनेक बार तो यमुनापर भेंट हुई है, बरन दो चार बार तो मैं भी संग थी, यशोदा बोली वही है तेरी माता ?

सोरठा-मैं अब लीनो जान, वह तो है कुलटा बडी ।
हैं लंगर वृषभान, कौन नहीं जानत उन्हैं ॥

राधा बोली मेरे पिताने तुम्हारे संग क्या लँगराई करी, इस प्रकार राधाके मधुर वचन सुन यशोदाने उठकर राधाको हृदयसे लगालिया और राधाकी भोली भोली बातें सुन मनहीं मनमें विचार करनेलगी कि, यह कन्या तो मेरे कन्हैयाके योग्य है. जो इसके संग कन्हैयाका विवाह होजाय तो मेरा मनोरथ पूर्ण होय, क्योंकि ऐसी मनोहर जोडी मिलनी महादुर्लभ है, इस समय परमेश्वरने छवि और शृंगारको एकस्थानपै इकट्ठा कियाहै, यह विचार यशोदाने राधाकी चोटी गूँथ सुन्दर शृंगार किया और अच्छे अच्छे आभूषण पहनाय, गोटेकी ओढनी उढाय, मस्तकपर विन्दी लगाई, गोरे बदनपर ईंगुरकी विन्दी ऐसी शोभायमान जान पडती थी मानो चन्द्रमाके ऊपर मंगल, ऊपरसे पानचबाय मेवा, मिठाई, खानेको दी और कहा कि, जा, अब तू श्यामसुन्दरके संग खेल, यशोदाकी बात सुनकर राधिका अत्यन्त प्रसन्न हो श्यामसुन्दरके संग खेलने लगी, उस समयकी शोभाको वर्णन करते हुए शेष और गणेशकी बुद्धि थकित होती थी फिर और किसीकी क्या सामर्थ्य है, परन्तु ऐसा जान पडता था मानो छवि और शृंगार दोनों परस्पर बिहार कररहे हैं नन्दरानी उनके खेलको देख देख मनहीं मन प्रसन्न होती थी और राधासे कहती थी कि, बेटी ! तू नित्य यहां आनकर कृष्ण प्यारेके संग खेल जाया कर। फिर व्रजविहारी राधाप्यारीसे मुसकाकर कहने लगे कि, अब तुम सकुच मत किया करो और हमारे घर नित्यप्रति खेलने आया करो. तुम्हारे संग खेलनेसे मेरा मन बहुत प्रसन्न होताहै, श्यामसुन्दरकी प्रेम रसभरी बातें सुनकर राधाप्यारी हँसती हुई मोहनके निकट आनकर बोली कि, अब मैं घर को जाऊंहूं यहां बहुत देर होगई कृष्ण अपनी मातासे बोले कि, मैय्या! यह वृषभानुदुलारी अपने घरको जातीहै, यशोदाने मेवा और तिलचावली उसकी गोदीमें भर दी और हृदयसे लगाकर कहा, कल सवेरे खेलनेके लिये हमारे घर आना, राधा मदनमोहनकी ओरको देखकर अपने घरको चली गई परन्तु मनकी अदल बदल होगई, कृष्णका मन तो आप लेगई और अपना मन कृष्णको दे गई, राधा जब नवीन वस्त्र और आभूषण पहिने हुए अपने घरगई तो कीर्तिने उससे बूझा कि, इतनी देरसे आज तू कहाँ गई थी, और यह नये नये वस्त्र और गहने तुझे किसने पहिरायेहैं राधा बोली मैय्या ! मैं यशोदाजीके घर गई थी, उन्होंने बडे लाड प्यारसे मुझको अपनी गोदीमें बैठालकर मेरा नाम बूझा, फिर बाबाका और तेरा नाम बूझा, तब हँसकर कहा कि, कीर्ति जैसी है वैसी मैं जानूहूं, यह कहकर तुझको गाली दी और फिर बाबाको गाली दी, तब तो मैंने कहा कि, मेरे पिताने तुम्हारा क्या ठगलिया ? मेरी यह बात सुनकर मुझको हृदयसे लगालिया, फिर मुझको गोदीमें बैठालकर मेरी चोटी गुही और नई सारी मँगाकर मुझको उढाई जब मैं घरको चलने लगी तो मेवा, मिठाई और तिलचावलीसे मेरी गोदभरी और मुझसे कहा कि, बेटी ! हमारे घर नित्य खेलनेको आयाकर और तुझको फिर गाली दी. राधाकी यह बात सुनकर कीर्ति अत्यन्त प्रसन्न हुई और राधासे कहा कि, बेटी ! तैंने बहुत अच्छा उत्तर दिया, परन्तु जैसा उन्होंने मुझको और बाबाको बताया, वैसे वह आपही हैं ॥

**चौ०-हँस हँस कीरति कहत सुभाये। मनमें अति आनन्द बढाये ॥
फेर फेर यशुदाकी बातें। बूझत है जननी राधातें ॥**

यह बात जब बरसानेकी गोपियोंने सुनी, तो वह भी यशोदाको गालियें देने लगीं और वृषभानुकी रानी मनहीं मनमें आनन्द होती थी और कहती थी कि, मैं यशोदाके मनकी सब बात जानगई, मेरी पुत्री चपलाकी समान और श्यामसुन्दर श्यामघटाकी तुल्य हैं, दोनोंकी जोडी अत्यन्त श्रेष्ठ है, यह उत्तम बानक विचार कीर्तिने यह सब वृत्तान्त वृषभानुसे कहा कि, दोनों अत्यन्त स्वरूपवान् घन और दामिनी समान हैं ऐसा बानक मिलना बहुत कठिन है और पण्डितोंके मुखसे भी सुना है "नित्य दूलह श्याम श्यामा" वेद भी यही कहते हैं, वृषभानु कीर्तिकी बात सुन बहुत प्रसन्न हुए और कहा बानक बहुत अच्छा है, नन्दजीके पुत्रको मैंने अपनी आंखोंसे देखा है, इसी प्रकार परस्पर वार्तालाप कर रहे थे, श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यहां ब्रजबिहारी अपनी मातासे बोले कि, तैंने मेरे खिलौने जहाँ तहाँ डाल रक्खे हैं मुझको एक भय है कि, कहीं मेरे कोई खिलौना राधा चुराकर न लेजाय क्योंकि वह साँझ सबेरे नित्य हमारे घर आती है, तब मैं अपनी मुरलीकी ओरको देखता रहताहूं, क्योंकि मेरे प्राण सदा मुरलीहीमें वसते हैं, यह मुरली मेरी जीवन प्राण है, परन्तु तेरे भाये कुछ भी नहीं, चाहै, मेरी मुरली रहै चाहै न रहै और तो किसमें है, मुझको बलदाऊतककी भी प्रतीति नहीं, तू मेरी सब वस्तु उठाकर रखदे, यशोदा हँसकर बोली कि, हे मेरे लाल ! कौन ले सक्ता है? तेरे खिलौने, इसप्रकार कृष्णको समझादिया और राधिकाभी नित्य प्रति यशोदाके घर आनेलगी, एक दिन राधिकासे यशोदा बोली कि, हे वृषभानुदुलारी ! तैंने मेरे श्यामसुन्दरपर क्या मोहिनी डालदी है ? दिन रात तेरेही ध्यानमें रहैहै, मेरी बातही नहीं सुनता और उसको अपने तन मनकी भी सुरत नहीं, सूधे सूधे खेला खेलकर और कृष्णकी ओर बहुत मत देखाकर, तेरे देखनेसे मनमोहन सब सुधि बुधि भूल जाता है फिर गायोंके दुहनेमें भी विघ्न पडताहै.यह बात सुन राधा बोली कि, मेरे ऊपर तो तुम रिसवाती हो अपने पूतको नहीं समझाती जो बारंबार मेरे घर बुलाने जाता है और तुम भी मुझसे कहती हो कि, विना तेरे देखे मेरा मन मलीन रहता है और आज तुम यह बातें करती हो, इन बातोंको सुनकर मुझको बडा क्षोभ लगताहै और मैं अपने मनमें बडी लज्जित होतीहूं ॥

**चौ०-सुख पावत आवत मैं तातें। तुम कछु लावत औरहिं बातें ॥
अब न कबहुँ आवहुँ मैं मैय्या। सुतको वर्जि दुहावहु गैय्या ॥**

यशोदा सकुचाकर बोली कि, मैंने तो भोले भाय तुझसे यह बात कही थी, तू बुरा मान गई, यह कह राधाका हाथ पकडकर यशोदाने हृदयसे लगा लिया और कहा वेटी ! सब रोषको थूकडालो, मैंने तो तुझसे हँसकर शिखावनकी रीतिपर कहा था और जैसी तेरी कीर्ति माता है वैसीही मुझको समझना, मैंने तो तेरेही भलेकी बात कही थी कि, बेटीकी जातिको निमानी होकर रहना चाहिये. यशोदाने बहुत समझा बुझाकर राधाके

मनका क्षोभ मिटादिया राधा बोली कि, अब मैं घरको जाऊँ हूँ बहुत देर होगई प्रातः कालकी आई हूँ माता रिसियायगी, यशोदाने उसके मुखपर हाथ फेर कहा अच्छा बेटी जाओ कलको सवेरे आना और मेरी विनय अपनी मातासे भी कहदेना, राधा घरको जाती थी, मार्गमें मदनमोहन मिलगये देखतेही प्रेमविवश होगई. मोहनने दोहनी राधाके हाथमेंसे लेली कि, प्यारी आज तुम्हारी गायें हम दुहेंगे, राधा बोली अहो भाग्य !

दोहा-धेनु दुहावत लाडली, दुहत नन्दको लाल।
सो सुख कापै जाय कह, देखत सब ब्रजबाल ॥
सोरठा-बछरा पद अटकाय, गोथन लीनो हाथहारे।
प्रियावदन दृग लाय. दूध धार छाँडत धराणे ॥

मदनमोहन एक धार तो दोहनीमें डालते और एक धारसे प्यारीका शरीर पखारते-थे,सो वह दूधकी धारोंके बिन्दु राधाके मुखारविन्दपर कैसी शोभादेते थे मानो घनश्याम मयंकके कलंकको धो रहे हैं और नील सारीकी छवि कौन कवि वर्णन करसक्ता है मानो शरदपूर्णमासीके चन्द्रमाको घटाने चारों ओरसे घेर रक्खा है, इस प्रकार मोहन प्यारे दूध दुह रहे थे और राधाप्यारी दुहा रही थी, जब नन्दलाल गाय दुहचुके और राधा दुहनी माँगने लगी ॥

दोहा-दुही कुँवर नँदलाडले, श्रीराधाकी गाय।
दुहनी देत न हँस प्रिया, माँगत हाहाखाय ॥
सोरठा-ज्यों ज्यों हँसत कन्हाय, त्यों त्यों प्रिय हाहाकरत।
सोसुख वरणि न जाय, उरझे दोऊ प्रेमरस ॥

कृष्ण राधासे बोले कि, फिर हाहाकर, बाबानन्दकी सौगन्ध अबके अवश्य देदूंगा, फिर राधा हँसकर कहने लगी, तब हँसकर ब्रजविहारीने अपनी प्यारी मनमोहनीको दूधकी दोहनी देदी, तब वृषभानुनन्दिनी माता पिताकी लाजसे घरको जाना चाहती थी परन्तु पाँव पीछेको कढते थे, फिर फिरकर पीछेको देखती जाती थी और बार बार यह कहती कि, धिक्कार है इस लाजको जो आज मनमोहन महाराजको नहीं देखने देती. ऐसे शोचती सोचती घर पहुँची, राधाको देख सब सखी दौडी आई कि, राधे ! आज तुम्हारे ग्वाल कहां गये ? जो मदनगोपालसे गाय दुहाकर लाई हो. मदनगोपालका नाम सुनतेही राधा चकित हो पछाड खाकर पृथ्वीपर गिरगई. दूधकी दोहनी शिरसे ढलकगई सब सखीं इधर उधरसे दौडपडीं और राधाको हाथों हाथ उठालिया और परस्पर कहने लगीं कि, राधाको क्या होगया ? और अभी तो अच्छी नीकी आरही थी अभी कैसे मुरझाकर गिरगई ? और दूधकी दोहनीभी हाथसे लुढक गई,एक सखी बोली गिरते समय यह शब्द उसके मुखसे मैंने सुना था, मुझको काले विषधरने डसलिया, ललितादिक सखी कहने लगीं कि, इसको तो तन मनकी भी सुरत नहीं अब क्या उपाय किया जाय? एक सखी बोली अभी अच्छी नीकी शिरपर दूधकी दोहनी धरे हुए आरही थी कालेने

कहाँ डसा ? मुझको तो ऐसा जान पडता है कि, यह तो काले नन्दकुमारकी डसी हुई है, उसने एक बार हमपरभी फुंकार मारी थी उसकी मन्दमुसकानका विष इसके रोम रोममें फैल गया है और मन मोहनमें बसरहा है, इसीसे सब देह गेहकी सुधि भूलरही है, सब सखियोंने यह विचार करके जैसे तैसे राधाको घर पहुँचाया और सबने मिलकर कहा कि, हे कीर्ति ! अपनी लडैतीकी तो दशा देखो, कहीं मार्गमें इसको काले साँपने डसा है और इससमय इसकी सुधि बुधि भी ठिकाने नहीं, कहींसे गारुडिओंको बुलाओ और इसका शीघ्र उपाय करो क्योंकि क्षण क्षणमें इसका शरीर कुम्हलाता चला जाता है ज्यों त्यों करके इसको हम यहां लाई हैं, यह सुन कीर्ति एकाएकी घबराकर बोली क्या राधाको सर्पने काट खाया ? कि इतनेमें मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरगई, कुछ कालो-परान्त चैतन्य हो, बोली अरी बेटी राधा ! अरी बेटी राधा ! ! तुझको क्या होगया ? मुझ अभागिनी अपनी माताको अकेली छोडकर कहां जातीहै? अरी ! बेटी मुझे माता कहनेवाला और कोइ संसारमें नहीं दिखाइदेता, बेटी ! अब कौन मुझे माता माता कहकर पुकारेगी, मैं किसका मुख देखकर अपने नेत्रोंको ठण्डा करूंगी, किसको हृदयसे लगा कर अपने हृदयको शान्त करूंगी. हे पुत्री ! इस भाग्यहीन जननीकी गोद सूनी करके तू कहींको जायहै ? अब मैं अकेली जीवित रहकर क्या करूंगी ? बेटी ! देख तो तेरी माता कबसे तेरे पास बैठी रोरही है, तू उठकर मेरे आँसू क्यों नहीं पोंछती, बेटी ! अब तू माता माता क्यों नहीं पुकारती,हाय पुत्री ! हाय पुत्री ! ! यह मेरा कुलिशसम कठोर हृदय क्यों नही फटता ? वक्षस्थलमें कराघात कर, हाय! यह पत्थरका हृदय मेरा क्यों नहीं फटता ? अरी यह पापी प्राण क्यों नहीं निकलते ! हे मेरे नेत्रोंकी पुतली क्यों बेसुधि पडी है उठकर अपनी माताको धैर्य दे. हे बेटी ! जो मैं यह जानती कि, तू अपनी माताको विलपती छोडकर चली जायगी तो मैं पहिलेही विष खा लेती,अरी ! मैंने तो तुझे बार बार बरजा परंतु तुझ हठीलीने मेरा कहना एक न माना,तू स्वप्नके रत्नकी नाईं मुझको दिखाई देकर कहाँको जायहै, हे प्राणेश्वरी ! आज मुझे सब संसार शून्यमय जान पडता है, हे विधाता ! इस भारी विपत्तिमें तूभी कुछ सहाय नही करता आज मेरी प्राणप्यारी मेरे आगेसे उठी जायहै, हे उमानाथ !हे भूतेश्वर !हे त्रिपुरारी ! तुम्हारी जय होय. तुम मेरी प्राणप्यारी राधाको अच्छी करदो, क्योंकि सर्प तुम्हारे वशीभूत हैं मैं राधाके प्राणार्थ बारम्बार तुम्हारी प्रार्थना करूं हूं, हे गरुड ! विष्णुभगवान्के वाहन और विनताके पुत्र ! तुमही मेरी रक्षा करो; सर्प तुम्हारे नामसे भयभीत होकर भागते है; हे देवि ! सर्वानन्दप्रकाशिनि ! चण्डमुण्डविनाशिनि ! मैं नवरात्रियोंमें तेरा पूजन और व्रत करूंगी तूही मेरी रावाको अच्छी करदे. यह कह फिर विलाप कर करके रोने लगी, हाय राधा ! हायराधा ! कीर्तिके विलापोंको सुनकर ललिता और विशाखा बोलीं महारानी ! तुम इतना रुदन क्यों करतीहो ? किसी गारुडीको बुलाय इसका उपाय करो अभी राधाका बिगडाही क्या है ? जो तुम रो रोकर वृथा अपने प्राण खोती

हो. कीर्ति बोली प्रथम तो मैं किसी गारुडीको जानतीही नहीं दूसरे मेरी सुधि बुधि ठिकाने नहीं, यह भी काम तुमहींसे होगा, अरी मैं कैसे धैर्य धरूं ? प्रातःकाल घरसे अच्छी नीकी गईहै, हाय ! इस हठीलीने मेरी एक बात भी न मानी, अरी अब इसके जीनेकी क्या आशा है सब शरीरका रंग पीला पडगया ? हाथ पाँव ओला हो रहेहैं उसी समय वृषभानुने पुत्रीको साँपसे काटनेका वृत्तान्त सुनकर बडे बडे गारुडी लोगोंको बुलाया सब अपने २ यंत्र मंत्रकर झाडा देने लगे, परन्तु किसीका यंत्र मंत्र उस कालेके सामने न चल सका, जब सब गारुडोंने हार मानी तो वृषभानुकी रानी अत्यन्त व्याकुल हुई, फिर राधाके संगकी सखियोंसे कहा कि, कैसे कैसे इसको सर्पने डसा मुझे बता तो दो, सखी बोलीं कि, इतना तो हम जानतीहैं कि, अकस्मात् घूमकर पृथ्वीपर गिरी और दूधकी दोहनी भी शिरसे ढलक गई, उस समय यही शब्द इसके मुखसे निकला कि, मुझको कालेने डँस लिया, सो उस काले नागको हमने भी देखा था उसकी परछाईंसे विष चढता था और फुंकारका तो क्या ठिकाना है,सो उसके विषको ऐसा वैसा गुणी कोई नहीं उतार सक्ता उसके विषको तो कोई पूरा गुणी उतारेगा ॥

दोहा-सो अब हम तुमसों कहैं, मानलेहु यह बात।
बडो गारुडी आजकल, नन्दरायको जात॥
देखतही विष जायगो, लावहु ताहि बुलाय।
हमको पूरण आश है, तुरतहि लेहि जियाय॥

हमने अपनी आँखोंसे देखा है कैसाही साँपका विष होय वह एक मंत्रसे उतार देताहै आज कल नन्दके पुत्रकी समान त्रिलोकीमें तो दूसरा कोई नही है, कीर्ति बोली कि यह तुम्हारी बात सत्य है, राधाने भी मुझसे एक दिन कहा था कि, एक गोपीको साँपने काटा था तो नन्दकुमारने अच्छा कर दिया था, जो तुम कहो तो मैं नंदरानीके पास जाऊं ? ललिता बोली मेरी समझमें भी यही आता है, यह सुन कीर्ति यशोदाके पास दौडीगई, कि, हे महारि ! मैंने सुनाहै कि, तुम्हारा पुत्र बडा गारुडी है, मेरी बेटी राधाको साँपने काटखाया है वह बेसुधि पडी है, तनक अपने सुतको मेरे संग भेज दो वह मंत्र पढकर उसको अच्छी कर देगा तो आपका बडाभारी यश होगा और मेरी बेटीके प्राण बच जायँगे. यशोदा बोली कि, बहन तुमको किसने बहँका दिया है, मेरा कान्ह छः वर्षका अज्ञान वह अभी यंत्र मंत्रको क्या जाने ? बरन् तुम्हारा वचन सुनकर मुझको आश्चर्य आता है कि, कृष्ण किस दिनसे गारुडी होगया ! आजतक यह बात मैंने किसीके मुखसे नहीं, सुनी सिवाय तुम्हारे, कीर्ति बोली कि,मुझसे कई जनियोंने कहा और राधाने तो अपनी आँखसे देखा कि, एक लडकीको साँपने काटा और श्यामसुन्दरने अच्छा करदिया इसीलिये मैं दौडी आई हूं, तुमको बडा पुण्य होगा, नेक श्यामसुन्दरको बुलादो,यह बात सुन यशोदा मनही मनमें मुसकाकर कहने लगी अभी तो राधा मेरे घर आई थी इतनेहीमें क्या होगया ? इसमें कुछ न कुछ कारण अवश्य है, यह समझ मोहन

प्यारेको बुलाने गई और यहाँ ललिता विशाखाने राधाके मनकी गति जानली कि, उसको वंशीधरने चितवनके फणसे इस मुसकानका विष चढादिया और प्रेम प्रीतिकी दावाग्निसे हृदयको संतप्त करदिया है, इसलिये कोई यंत्र मंत्र नहीं लगता सब अपना अपना उपाय करके हारगये, इस विषको सिवाय मनमोहनके और कौन उतार सक्ताहै ? यह समझ ललिताने ऊपरसे ऊपर एक सखीको श्यामसुन्दरके पास भेजा, तब उसने जाकर व्रजविहारीसे कहा कि, हे नंदलाल ! हे छली !! हे अनोखे गाय दुहैय्या !!! ऐसी गाय दुहनी कबसे सीखे हो ? आज प्रातःकाल जिसकी गाय तुमने दुही थी जाकर तो देखो, उसकी क्या दशा है, घर भी नहीं जाने पाई बीचहीमें अचेत होकर धरणीपर गिर गई और गिरती समय मुखसे यह शब्द निकला कि, मुझको कालेने डँसा, वृषभानुने दूर दूरके गुणी बुलाये परन्तु किसीसे कुछ न हो सका, सो अब वह बेसुधि पडी है आँख भी नहीं उघाडती, एक चतुर सखीने यह बात निश्चय करके मुझको तुम्हारे पास भेजाहै कि, यह विष मनमोहनकी मुसकानका है, अब जो तुम उसके प्राण बचाने चाहो तो शीघ्र दया-दृष्टि करके उसका विष उतारदो और जो वह मरगई तो संसारमें तुम्हारी बडी दुर्नामता होगी, क्योंकि गारुडीका धर्म है कि, पहिले सर्पके काटनेवालेकी सुधि ले, पीछे और काम करै और जो गारुडी न जाय और सर्पका काटनेवाला मरजाय तो वह हत्या गारुडीको लगती है और हे घनश्याम ! मैं यह भी जानती हूं कि, तुम्हारेही श्यामरंगका विष उसको चढा है और जबतक तुम न जाओगे वह कभी अच्छी न होगी ॥

चौ०-अतिहि विकल वह विरह अधीरा । दरशदिखायहरहुतनुपीरा ॥
तुम अश्विनीकुमार कन्हाई । बेग चलहु तेहि लेहु जिवाई ॥

और जो तुम उसको न जिलाओगे तो वह मरही जायगी परन्तु हम भी सब नन्दके द्वारपर अपने प्राण तजदेंगी, अब उसकी माता कीर्ति, यशोदाके पास तुमको बुलाने आई है, तुमको उचित है कि, उसके संग जाओ उस सखीकी बात सुनतेही व्रजभूषण प्यारेने कहा कि, जो राधाप्यारीको महाकाले विषधरने डँसाहोगा तो भी मैं अपनी प्राणप्यारीका विष दूर कर दूँगा, यह कह सखीसे बोले कि, तू जा जो कुछ होगा वह सब देखा जायगा, सखीको विदाकर आप अपने घर गये, यशोदा बोली अरे मैं तुझे ढूँढ आई तू कहाँ था मेरे समीप तो आ, कृष्ण बोले क्यों माता ! यशोदा बोली कि, बेटा मैंने सुना है कि, तू कुछ सांपका मंत्र भी जाने है ? यह कीर्तिजी तुमको बुलाने आई हैं, कहीं राधाको सर्पने डँस लियाहै जो तू कुछ यंत्र मंत्र जानता हो तो शीघ्र इनके संग जाकर कुँवरी राधिकाको प्राणदानदे और जगत्में भलाई ले परन्तु यह तो मैंने आजही सुना है कि, तू गारुडीभी है, कृष्ण बोले कि, हे मैय्या ! तेरी सौगन्ध एक मंत्र मुझपै ऐसा आवै है कि, सांपके डसेको तो मैं 'हूं' भी कर दूं तो अच्छा होजाय, यशोदा बोली कि, बेटा तू इनके संग जा, माताका वचन सुन श्रीकृष्ण कीर्तिके संग प्रसन्न होकर चलदिये, तब कीर्ति श्यामसुन्दरको लेकर अपने घर पहुँची और राधिकाको अत्यन्त व्याकुल देखकर

कीर्तिने हृदयसे लगालिया, फिर कुँवरीको लेकर श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें शिर धरकर बोली कि, हे मंत्राधीश! राधाको अबकी किसी प्रकार अच्छी कर दो देखो! इसको तन मनकी कुछ सुरत नहीं, कृष्ण बोले कुछ सन्देह मत करो शीघ्र अच्छी होजायगी, किसी सखीने राधाके कानमें पुकारकर कहदिया कि, मोहनप्यारे आगये, मनमोहनका नाम सुनतेही हृदयमें ठण्ढक पडगई, आँखोंसे प्रेमके आँसू बहनेलगे, तब ब्रजविहारीने कुछ मंत्रसा पढकर अपनी बाँसुरी राधाके अंगसे छुवा दी, तब वृषभानुललीने नेत्र खोलकर देखा तो मनमोहनप्यारा वंशी हाथमें लिये, मोरमुकुट शिरपर धारण किये, सम्मुख खडा है, झट सावधान हो वस्त्रसे अपना शरीर ढँकदिया और अपनी मातासे पुकार कर कहा कि, माता आज हमारे घर क्या है? जो बहुतसे लोग इकट्ठे होरहे हैं. कीर्ति बोली कि, आज तू सर्पके डसनेसे मृतकसमान होगई थी, तुझको नन्दलालने आनकर जिलाया है इनसे तू क्या लाज करै है, फिर नन्दकुमारका अत्यन्त आदर सत्कारकर बोली कि, तुमने मेरा बड़ा उपकार किया जो मेरी मरती हुई पुत्रीको जिला दिया. फिर कीर्ति श्यामसुन्दरको हृदयसे लगाय, मुख चूम, बलायें लेनेलगी और कहनेलगी कि, धन्य है कोख यशोदा महरिकी जिसमें तुमसे गारुड़ी उत्पन्न हुए. फिर कुछ मेवा, पकवान, मिठाई, खिलाकर ऊपरसे पान खवाकर घनश्यामको विदा किया. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज! जब नंदलाल चलनेलगे तब वृषभानु और कीर्ति परस्पर कहने लगे कि, कृष्ण और राधिकाकी जोड़ी परमेश्वरने भली सुन्दर मिलाई है इन दोनोंका विवाह होजाय तो बहुत ही अच्छाहै, ललिता और विशाखा बोली आजसे तुम्हारा नाम गारुडी रक्खा जायगा, क्योंकि आज तुमने बडा भारी राधाका विष किंचित्कालमें उतार दिया. ऐसा तत्काल कार्य सिद्ध करनेवाले मंत्रको कभी मत भूलना, तुमने राधा मनमोहिनीपर मोहिनी डालकर उसको अपने आधीन कररक्खा है, ललिताकी मनोहर बातें सुनकर व्रजविहारी मुसकाते हुए अपने घरको चलेगये, यशोदानें आतेही श्यामसुन्दरसे बूझा कि, राधिका अच्छी होगई? कृष्णने कहा परमेश्वरकी दया है. यशोदा सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और गोपीवल्लभको गोदीमें लेकर बहुत लाडप्यार किया इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! श्रीकृष्णने एक दिन वनमें भोजन करनेके विचारसे प्रातःकाल उठकर सुन्दर शृंगी बजाकर अपने प्यारे ग्वालबालोंको जगाय कलेवा बाँध बछरोंको आगेकर श्रीकृष्णचन्द्र घरसे निकले ॥ १ ॥ उन श्रीकृष्णके संग स्नेही ग्वालोंके सहस्रों बालक उत्तम उत्तम छींके, बेंत, शृंगी और बाँसुरी लेलेकर सहस्रसेभी अधिक संख्यावाले अपने बछरोंके समूहोंको आगे करके आनन्द सहित घरसे चले ॥ २ ॥ असंख्यात श्रीकृष्णके बछरोंमें मिलाकर चराते चराते बाललीला करकरके ये बालक जहाँ तहाँ विहार करते थे ॥ ३ ॥ मणियोंसे जडाऊ सुवर्णके गहने पहने हुए थे, तो भी वनमें जाकर फलोंके, कोंपलोंके, चौंटलियोंके, गुच्छोंके, फूलोंके, मोरपुच्छके और खडियामटी, गेरूके तिलक लगा लगाकर अपना

अपना श्रृंगार कररहे थे ॥ ४ ॥ परस्पर छींका बेंत आदि चुराते, जब जान लेते तो दूसरे बालकके पासको फेंक देते थे, वह बालक फिर औरके पासको फेंक देते थे, तब वह छींकेवाले बालक रोने लगते, तब श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर उनके छींके बेंत दिलादेते थे ॥ ॥ ५ ॥ सुन्दर वनकी शोभा देखनेके लिये जब श्रीकृष्ण दूर चलेजाते तब बालक परस्पर होड़ वदबदकर दौडते थे और कहते थे कि, पहिले मैं छुऊँ, वह कहते थे कि, पहिले मैं छुऊँ, इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको छूते थे और आनन्द हो होकर खेलते थे ॥ ६ ॥ कोई बालक बाँसुरी बजाते थे, कोई शृंगी शब्द सुनाते थे, कोई २ बालक भौरोंके संग गाते थे और कोई कोकिलाकी वाणीमें वाणी मिलाते थे ॥ ७ ॥ कोई आकाशमें उडते हुए पक्षियोंकी छायाके संग दौडते, कोई बालक हंसोंके संग धीरे धीरे चलते, कोई बालक बगलोंकी पाँतिके पास चुपके चुपके जा बैठते और कोई बालक मोरोंके सँग नाँचते थे ॥ ॥ ८ ॥ कोई बालक बन्दरोंकी पूँछ पकड पकड कर खींचते थे, कोई पूँछ पकडेही पकडे उनके संग कूदकर वृक्षोंपर चढ़ जाते थे और कोई बालक अपने कान दबाकर आंखें फैलाकर बन्दरोंके सम्मुख खडे हो घुडकी बताते थे, कोई वृक्षोंपर चढ़ चढ़ नीचेको कूदते थे ॥ ९ ॥ कोई कोई मेंढकोंके संग फुदकते थे, जब वह पानीमें डुबकी मारें तब आप भी उनके संग डुबकी (गोता) मारते हैं कोई बालक अपनी परछाईं पानीमें देखकर उसकी हँसी करते थे कोई बालक कुएँ बावडीमें अपनी प्रतिध्वनिको सुन उनको गाली देते थे ॥ १० ॥ ब्रह्मज्ञानियोंको ब्रह्मस्वरूप करके जाननेमें आते हैं दासभावके करनेवाले भक्त जिनको परम दैवतरूप स्वामी जानते हैं और मायासे मोहितहुए पुरुष उनको मनुष्यका बालक मानतेहैं जिनकी जैसी भावना है उनको वैसेही दिखाई देतेहैं, धन्य भाग्य है ग्वाल बालोंका, देखो ब्रह्मज्ञानियोंको केवल भगवान्‌का अनुभवही होताहै, भक्तोंके केवल भजनही सर्वानन्द है, परन्तु ग्वालबालोंकी ओरको देखिये कि उन्होंने कैसे उग्र तप किये हैं कि, दिनरात भगवान् वासुदेव जिनके संग आहार विहार करतेहैं देखो, यह सखाभावका प्रभाव है ॥ ११ ॥ योगीजनोंको भी अनेक जन्म महाकष्ट सहकर तप करनेसे जिनके चरणारविन्दकी धूरि मिलनी अत्यन्त दुर्लभ है, सो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी वासुदेव भगवान् जिनके सम्मुख प्रत्यक्षविराजमान रहैं उन व्रजवासियोंके भाग्यकी कहाँतक बडाई करें ॥ १२ ॥ इन ग्वालबालोंकी सुखपूर्वक लीलाको न सहन करके अघासुरनाम दैत्य उस वनमें आया, अमृतपान करनेवाले देवता भी अपने जीनेकी इच्छासे नित्यप्रति जिसके मरनेकी राह देखते थे ॥ १३ ॥ वह अघासुर कंसका भेजा हुवा, पूतना और बकासुरका छोटा भ्राता, कृष्णादिक छोटे छोटे बालकोंको देखकर मनमें विचार करने लगा कि, इसी कृष्णने मेरे भाई और बहिनको मारा है, उन दोनोंके बदले आज ग्वालबाल बछडे और बलदेव समेत इस कृष्णको मारूंगा ॥ ॥ १४ ॥ और अपने भैय्या बहनको भी इन बालकोंके संगही तिलांजलि दूंगा, तब सब व्रजवासी मृतक समान होजायंगे, प्राण गये पीछे देहोंकी क्या चिन्ता है ? क्योंकि प्राण

धारी पुरुषोंको तो पुत्रही जीवनप्राण हैं ॥ १५ ॥ ऐसा विचारकर चार कोश लम्बा पर्वतकी समान मोटा अजगर साँपका अद्भुतरूप धारणकर गुफाकी सदृश मुख पसार बछरे और बालकोंके निगलनेके लिये मार्गमें बैठगया ॥ १६ ॥ नीचेका होठ तो पृथ्वीपर और ऊपरका होठ बादलतक फैलारक्खा था, पर्वतकी गुफाके समान जिसका मुख पहाडके शिखरकी सदृश जिसकी दाढें, गूड कन्दराकी तुल्य मुखमें अन्धकार, बडे लम्बे चौडे मार्गकी नाई, जिसकी जीभ, कठोर पवनके समान जिसका श्वास और अग्निकी तुल्य जिसकी दृष्टि थी ॥ १७ ॥ सब बालक उस अजगरको देखकर वृन्दावनकी शोभा समझकर खेलते खेलते फैले हुए उस अजगरके मुखकी लीलासेही उत्प्रेक्षा करने लगे ॥ १८ ॥ और परस्पर कहते थे कि, अहो मित्रो ! यह तो कहो कि, यह जो हमारे सम्मुख दिखाई देताहै कोई पक्षी है वा मनुष्य है ? हमारे निगलनेके लिये सर्पकी समान मुख पसाररहा है कि,नहीं ? ॥१९॥ सत्यहै सूर्यकी किरणोंसे लाल लाल बादल ऐसे दृष्टि आते हैं मानो सर्पका ऊपरवाला होठहै और सूर्यकी परछाईंसे सब पृथ्वी ऐसी लाल लाल दिखाई देती है मानो सर्पके नीचेकी टोड़ी है ॥ २० ॥ इधर उधर पर्वतकी कंदरासी महागम्भीर अँधियारी ऐसी जान पडती है मानो सर्पके मुखका अन्त है ऊंचे २ पर्वतके शिखरसे हमको ऐसे दिखाई देते हैं मानो साक्षात् सर्प अजगरकी डाढ़ें हैं, तुम ध्यान करके देखो ॥ २१ ॥ यह लम्बा चौडा मार्ग हमको ऐसा दृष्टि आता है मानो साँपकी जिह्वा है और इन शिखरोंके भीतर हमको ऐसा अन्धकार दीखता है मानो सर्पके मुखके भीतरका भाग है ॥ २२ ॥ दावानलसे उष्ण उष्ण महातीक्ष्ण पवन ऐसा लगता है मानो महा विषवाले सर्पका श्वास है और यह विचारकर देखो कि, अग्निमें जैसे जीव जलें हैं ऐसी दुर्गन्धि आती है यह सर्पके डसे हुए मानों मांसकी दुर्गन्धि है? ॥ २३ ॥ इस सर्पके मुखमें जो हम घुस भी गये तो क्या यह हमको निगल जायगा? और जो यह हमको निगल भी गया तो श्रीकृष्ण इसको बकासुरकी नाईं क्षणभरमें मार सक्ते हैं वा नहीं ? इस प्रकार परस्पर कहते सुनते बकासुरके विध्वंस करनेहारे श्रीकृष्णका सुन्दर मुखारविन्द देख हँसते हँसाते ताली बजाते सब ग्वालबाल आगेको चले, "ताली बजानेका कारण यह था कि, जो सर्प होगा तो सरक जायगा और वृन्दावनकी यह अद्भुत शोभा होगी तो खेलेंगे" ॥ २४ ॥ श्रीवृन्दावनबिहारी भक्तहितकारीने विचारा कि, वास्तवमें तो यह सर्पही है और सर्पका देह धारण कियेहुए कोई दैत्य है और हमारे साथी बालकोंने इसे वृन्दावनकी शोभा समझकर फिर सर्पके भी सब लक्षण वर्णन किये यह अजान हैं और परस्पर भूलसे बातें कर रहेहैं, ऐसा समझ सब प्राणियोंके हृदयमें वास करनेवाले भगवान्‌ने उन भोले बालकोंके वचन सुनकर जबतक उनके निषेध करनेको चाहा कि, इसमें मत घुसो ;कि ॥ २५ ॥ इतनेमें वह सब बालक बछरों समेत उस अघासुर दैत्यके मुखमें घुसगये परन्तु अघासुरने अपने मरेहुए भाई बहनकी सुधि करके उन बालकोंको निगला नहीं, क्योंकि मनमें विचार किया कि, बकासुरका मारनेवाला

मेरा वैरी कृष्ण तो अभी आयाही नहीं ॥ २६ ॥ सबके अभयदाता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अनाथकी समान दीन बालकोंको अपने हाथसे छूटेहुए जान और अघासुरके उदरमें घासकी सदृश देखकर दयासे पीडित हुये और आश्चर्यसे कहने लगे कि, दैवकी कैसी अद्भुत गति है ॥ २७ ॥ कि, अब इस समय क्या उपाय करना चाहिये? कि, यह दुष्ट तो माराजाय और मेरे जीवन प्राण परम प्रिय ग्वाल बाल बच जायँ, यह दोनों बातें एक बारमें कैसे होयँ यह विचारकरके उन दोनोंको जानकर सब संसारके द्रष्टा भगवान्ने अघासुरके मुखमें प्रवेश किया, क्योंकि मित्रताका यह धर्म नहीं है कि, मित्र तो अघासुरके मुखमें चलेगये और आप बाहर खडे खडे कौतुक देखें, यह नहीं! जो कुछ मित्रोंकी गति होगी वह हमारी भी होगी, यह समझ आपभी घुसगये ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंकी ओटमें देवता खडे होकर हाहाकार करने लगे और नैर्ऋतवंशी अघासुरके भाई बन्धु कंसादिक राक्षसोंको परमानन्द हुवा ॥ २९ ॥ अविनाशी श्रीकृष्ण भगवान् देवताओंका हाहाकार शब्द सुनकर ग्वालबाल बछरों समेत अपने आत्माको चूर्ण करनेकी इच्छा करनेवाले उस अघासुरके कण्ठमें बढे ॥ ३० ॥ तब उस बड़े शरीरवाले राक्षसका घट घिरगया आँखें बाहरको निकल आई इधर उधर छटपटाने लगा, देहमें श्वास रुकगया बाहर निकलनेको मार्ग नहीं मिला, पवन उसके ब्रह्मरन्ध्रको छेदन करके बाहर निकलगया ॥ ३१ ॥ अघासुरके श्वासके संगही प्राण बाहर सटक गये, तब सब बालक और बछरोंको मरा देखकर अपनी संजीवन दृष्टिसे अमृतकी वृष्टिकरके जिलादिया और उनको साथ लेकर फिर श्रीमुकुन्द भगवान् अघासुरके मुखसे बाहर निकले ॥ ३२ ॥ उस दुष्ट अघासुरके देहमेंसे बड़ी अद्भुत ज्योति निकलके अपने तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करके आकाशमें स्थित हो श्रीकृष्णचन्द्रके बाहर निकलनेका पन्थ जोहता रहा, जब श्रीकृष्ण उसके मुखसे बाहर निकले तब सब देवताओंके देखतेही देखते श्रीकृष्णके शरीरमें प्रविष्ट होगया ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओंने प्रसन्नहोकर आकाशसे फूल वर्षाकर श्रीकृष्णकी पूजा करी, अप्सराओंने नृत्य किया, गन्धर्व गानेलगे, बाजेवाले बाजे बजाने लगे, ब्राह्मण जय जय शब्द करके स्तुति करगे लगे ॥ ३४ ॥ वह अद्भुत स्तोत्र और गीत, वाद्य, जय आदिक अनेक उत्सव मंगल शब्दोंको सुनकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे शीघ्रही चले आये और श्रीकृष्णकी महिमा देखकर आश्चर्यमय हुये ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! उस अजगरका सूखा हुवा अद्भुत खखोड़ल वृन्दावनमें बहुत दिनतक ब्रजवासियोंके बालकोंके खेलनेके लिये एक गुफा होगई, मुखके मार्गको घुसे और नेत्रोंके मार्गसे निकल आवें, नेत्रोंके मार्गको घुसें तो मुखके मार्गको निकल आवें; इस प्रकार दिनरात विहार करते रहें ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्ने बालकोंको और अपने आपको मृत्युसे छुडाना और अघासुरकी मोक्षका करना यह सब काम पांच वर्षकी अवस्थामें किये परन्तु इसका आश्चर्य मानके सब बालक ब्रजमें श्रीकृष्णकी पौगंड अवस्था अर्थात् पांचवे-वर्षके व्यतीत होने उपरान्त छठे वर्षके मध्यमें, यह अद्भुत लीला भगवान्ने करी और सब

व्रजवासियोंको आनन्द हुवा ॥ ३७ ॥ मायासे मनुष्य बालकरूप धारण कियेहुए सम्पूर्ण स्थावर जंगमके आदिकारण परमात्मा श्रीकृष्णभगवान्‌के स्पर्शसे महापापी अघासुर पवित्र होगया, जो बात असत्पुरुषोंको महादुर्लभ है, ऐसे भगवद्रूपमें वह लय होगया, यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है ॥ ३८ ॥ क्योंकि जिसकी मनोहर मूर्ति प्रह्लादादिक भक्तोंने एक बारही बलात्कार मनमें धारण की और उसीके प्रभावसे उन लोगोंने मोक्ष पाया तो सदैव अपने आत्मानन्दके अनुभवसे और माया करके रहित श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्‌के शरीरमें अघासुरका प्रवेश होनेसे उसकी मुक्ति हुई तो इसमें क्या आश्चर्य है ॥ ३९ ॥ शौनकादिक ऋषीश्वरोंसे सूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार अपनी माताके गर्भमें यदुकुलके देव श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित हुए राजा परीक्षितने अपनी रक्षाकरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके विचित्र-पवित्र चरित्र सुनकर व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीसे फिर उसी प्रसंग सम्बन्धी प्रश्न किया, क्योंकि उन चरित्रोंके सुननेसे राजा परीक्षित्‌का मन परीक्षाके वशमें होगया ॥ ४० ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्ण महाराजने कुमार अवस्थामें जो लीला करी वह बालकोंने पौगंड अवस्थामें गाई, यह एक वर्षका अन्तर बीचमें कैसे पडगया? ॥ ४१ ॥ हे बडे योगिराज ! हे गुरु ! यह बात मुझको समझाकर कहो, मेरे मनमें बडा आश्चर्य है, क्योंकि यह निश्चय भगवान्‌कीही माया है और कुछ नहीं है ॥ ४२ ॥ हे गुरो ! हैं तो हम क्षत्रियवंशी परन्तु तोभी हम संसारमें अतिशय धन्य हैं, क्योंकि जिस दिन ब्राह्मणका शाप हुवा उस दिनसे और भी धन्य हैं जब तुम्हारे दर्शन किये तबसे धन्यतर हुए और अब जो तुमसे वारम्वार कृष्णकथारूप अमृतपान करते हैं, इसलिये अतिशय करके आज हम धन्य हैं ॥ ४३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे हरिभक्तो ! इस प्रकार राजाने प्रश्न करके अपनी श्रद्धा दिखाई दूसरे हरिका स्मरण करतेही प्रथम तो श्रीशुकदेवजीकी समस्त इन्द्रियें नारायणमें लय होगई, तब व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने बडे कष्टसे फिर नेत्र खोलकर भक्तोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित्‌से कहा ॥

दोहा-सोई पुरुष पुरुषारथी, जिनका हरिसों नेह ।
भक्ति जगतमें सार हैं, देह खेहकी खेह ॥
भक्ति मिलावत कृष्णसों, भक्ति देत धन धाम।
ताते कीजे भक्ति नित, भाषत शालिग्राम ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
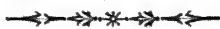
दोहा-तेरहमें अज मोहवश, हरे ग्वाल अरु बाल।
उसी रूपके कृष्णने, रचे बहुरि ततकाल ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! हे बडभागी ! हे भक्तिभूषण ! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया, क्योंकि ईश्वरकी कथाको श्रद्धासहित वारम्वार सुनो हो इससे तुम

परमश्रेष्ठ हो ॥१॥ सार वस्तुके ग्रहण करनेवाले सज्जनोंका यही स्वभाव है, क्योंकि जिन पुरुषोंकी वाणी, कान और मन, यह सब भगवान्‌की कथामें लगे रहते हैं, वे वाणीसे कृष्णचन्द्रके गुणवर्णन करते हैं, कानोंसे नित्य नयी कथा सुनते रहते हैं, मनसे श्यामसुंदरके स्वरूपका ध्यान करते रहते हैं॥इस प्रकार भगवान्‌की वार्त्तामें क्षण क्षण प्रति ध्यान लगाये रहते हैं और वह कथायें ऐसी प्रियलगती हैं मानो कभी नहीं सुनी हैं, जैसे विषयी पुरुषों-को स्त्रियोंकी बातें प्यारी लगती हैं ॥ २ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यह कथा परमगूढ है तो भी मैं आपसे कहता हूँ, क्योंकि कैसीही गुप्त वार्त्ता हो गुरुको चाहिये कि, अपने प्यारे शिष्यके सामने सब कहै, सो आप सावधान होकर सुनिये ॥ ३ ॥ अघासुरके मुखमेंसे मृतक बालक और बछरोंको जिवायकर यमुनाके किनारे अत्यन्त रमणीक रेतीमें उनको लायकर श्रीकृष्ण भगवान् यह कहने लगे ॥ ४ ॥ हे परमप्यारे मित्रो ! यह अत्यन्त रम-णीक रेती है और विहार करनेके लिये परमश्रेष्ठ और शोभायमान स्थान है, देखो कैसे सुन्दर और स्वच्छ बालूके कोमल कोमल बिछौने बिछरहे हैं, रंग रंगके कमल फूल रहे-हैं उनपर सुगन्धके लोभसे भौंरे गुँजार रहे हैं और जलपक्षियोंके शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे चारों ओरके वृक्ष शब्दायमान हो रहे हैं ॥ ५ ॥ यहाँ बैठकर कलेवा करलो, दिन भी बहुत चढ गया है और भूख भी अधिक लग रही है, बछरोंको भी जल पिलाकर यहीं चरनेके लिये छोड दो, सहज सहजमें घास चरते रहैंगे ॥ ६ ॥ सब बालकोंने श्रीकृष्णके वचनोंको मान बछरोंको पानी पिला हरी हरी घासमें चरनेको छोड दिया और सब अपने अपने छींकोंको खोल खोल छाक परोस परोस श्रीकृष्णके संग सब भोजन करनेको बैठे ॥ ७ ॥ ब्रजवासियोंके बालक श्रीकृष्णचन्द्रके चारों ओर अनेक पंक्तियोंकी मण्डली बनाकर एकसाथ बैठ यदुनाथके सन्मुख मुख करनेसे जिनकी दृष्टि प्रफुल्लित हो रही थी, जैसे कमलकी कलीके चारों ओर पखुरियोंकी छबि दिखाई देती है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र तो कलीकी समान थे और ग्वाल बाल पखुरीकी समान, इसप्रकार यमुनाकी रेतीमें शोभाय-मान जान पडते थे ॥ ८ ॥ किसी बालकने फूलोंकी पत्तल बनाइ, किसीने पखुरियोंकी पत्तल बनाई, किसीने पत्तोंकी पत्तल बनाई, किसीने अंकुरोंकी पत्तल बनाई और किसीन फलोंकी पत्तल बनाई, और किसीने वृक्षोंकी छाल छीलकर पत्तलें बनाईं और उनपर भाँति भाँतिके भोजन परोसे, किसीने छींकेहीमें भोजन करनेकी ठहरादी कोई शिलाहीपर अपना भोजन परोसकर खानेको बैठ गया ॥ ९ ॥ सब बालक अपने अपने भोजन पृथक् पृथक् प्रकारके आप खाते अरु औरोंको स्वाद दिखाते और चखाते परस्पर हँसते हँसाते ठट्ठे उडाते श्रीकृष्णके साथ भोजन कर रहे थे ॥ १० ॥ फेंटमें वासुरी उरस रहे थे, शृंगी बेतकी छडियोंको काँखमें दाब रहे थे, दही भातसे लिपटाहुवा ग्रास बाँयें हाथमें ले रहे-थे और बेर, आमले, नींबू, आम, जामुनादि फल अँगुलियोंमें धर लिये थे, यज्ञभोक्ता भगवान् चारों ओर अपनी मित्रमण्डलीमें बैठे उनसे हँसीकी बातें कह कह कर उनको हँसाते जाते थे और धीरे २ भोजन खाते जाते थे इस बालचरित्रको स्वर्गमें देवता देख

देखकर आश्चर्यमय हो मनहीं मन कहते थे कि, देखो यज्ञभोक्ता भगवान् किसप्रकार आनन्द हो होकर ब्रजवासियोंके बालकोंकी जूंठन छीन छीन कर खारहे हैं, पूर्वजन्ममें इन्होंने पूर्ण पुण्य किये हैं ॥ ११ ॥ भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इसप्रकार श्रीकृष्णमें मन लगाये ग्वालवाल भोजन कर रहे थे और बछरे हरी हरी घासके लोभसे बहुत दूर वनके भीतर चले गये ॥ १२ ॥ जब बछरे दूर चले गये तब सब बालक अपने मनमें घबराये, उस समय उनकी घबराट दूर करनेके लिये भगवान् भयहारी उनसे बोले कि, हे मित्रो ! तुम भोजन करते रहो उठो मत क्योंकि ऐसी सुन्दर मण्डली फिर न बँधेगी, मैं अभी बछरोंको लिये आताहूं ॥ १३ ॥ इसप्रकार सबका धैर्य बँधाय दहीभातका ग्रास हाथमें लिये श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफाओंमें, वनमें, कुंजोंमें, गह्वर स्थानोंमें, अपने बछरोंको ढूँढते ढूँढते दूर चले गये ॥ १४ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! उसी अवसरमें कमलोद्भव ब्रह्माजी जो कि, प्रथम मायासे बालकरूप श्रीकृष्णका किया अघासुरका मोक्ष होना देखकर, अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हो आकाशमें खडे २ देखरहे थे अब वह फिर श्रीकृष्णकी यह दूसरी माया देखनेके लिये यहांसे तो बालकोंको और वनमेंसे बछरोंको चुराकर दूसरे स्थानमें लेजाय, अन्तर्धान होगये * ॥ १५ ॥ जब वनमें बछरोंको न देखा तब लौटकर फिर यमुनातीरपर आये तो यहाँ बालकोंको भी न पाया, उस समय बालकोंको और बछरोंको वनमें चारों ओर ढूँढते फिरे ॥ १६ ॥ जब वनमें कहीं बछरोंको और बालकोंको न पाया तब विश्वभावन भगवान् सब विश्वकी गतिके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें जान लिया यह सब ब्रह्माका कौतुक है ॥ १७ ॥ यह समझ जगदीश्वर भगवान्ने विचार किया कि, जो मैं चुप होकर बैठ रहूं तो बालकोंकी माता रोवेंगी और जो ब्रह्माके पाससे छीनकर ले आऊंगा तो ब्रह्मा अपने मनमें लज्जित होगा और उसके मनका मोह दूर न होगा, बालकोंकी माताओंको आनन्द देनेके लिये और ब्रह्माका मोह बढानेके लिये विश्वके सृजनहारे श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने अपने ही अनेक रूप बनाये, बछरे भी आपही बने और ग्वालबाल भी आपही बने ॥ १८ ॥ जैसा जिसके बछरोंका और बालकोंका छोटा अथवा बडा देह और जैसे जिनके हाथ पाँव थे, किसीके छै अंगुली थीं, जैसी जैसी उनके पास छडी, श्रृंगी, बाँसुरी, छींके थे, जैसे जिसके आभूषण, वस्त्र, कुसुम्भी, हरी, पीली, गुलाबी पगडी

---

* **शंका**–भगवान्के अनेक अवतार हुए परन्तु किसी अवतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न नहीं हुवा यह बात शास्त्र और पुराणोंके वक्ता और आचार्यलोगोंसे सुनरक्खी है, परन्तु कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह क्यों उत्पन्न हुवा ?

उत्तर–ब्रह्माने नारदजीको मायामें ग्रसित हुवा देखकर उनकी हँसी करी; तब नारदने ब्रह्माको शाप दिया कि, हे पिताजी ! आपको भी माया ग्रसित करेगी, किसीदिन श्रीकृष्णको भोजन करते देखकर उनकी मायामें ग्रसित होओगे, हे पिताजी ! श्रीनारायणकी माया सर्वोपरि बलवान् है, इस नारदके शापसे कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न हुवा.

थी, जैसा जिसका स्वभाव था वैसाही स्वभाव, रूप, गुण, नाम, अवस्था, आहार, व्योहार और लक्षणथे उसी प्रकारके सर्वात्मा भगवान् आप बने॥ १९॥ सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् आपही बछरे बने, आपही उनको घेर घेर कर अपने खेलोंसे खेलनेलगे, उसी प्रकारका विहार करते हुए आपही व्रजमें पधारे ॥ २० ॥ हे राजन्! जिन २ ब्रजवासियोंके बछरे थे समूहमेंसे अलग२होकर उन उनके खिरकोंमें घुसगये और जिन जिन ब्रजवासियोंके बालक थे वह अपने अपने घरोंको चले गये ॥ २१ ॥ उन बालकोंकी माता बाँसुरियोंका शब्द सुनकर शीघ्रतासे उठ उठकर अपने अपने घरोंसे बाहर निकलकर बालकोंके हाथ पकड पकड कर हृदयसे लगाने लगीं, स्नेहसे स्तनोंमें दूध भर आया, वही अमृतकी तुल्य स्वादका दूध परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रको अपने पुत्र मान कर पिलाने लगीं ॥२२॥ फिर पीछे उबटन करके मज्जन (स्नान) कराय चन्दन केशर लगाय गहने पहराने लगीं, फिर मस्तकपर तिलक लगाय भोजन कराय इस प्रकार सब गोपी श्रीकृष्णचन्द्रको लाड लडातीथीं और वृन्दावनविहारी अपने सुन्दर सुन्दर चरित्र दिखाकर उनको आनन्द देते थे, उस समय खेलका नियम साधकर सन्ध्याकाल ब्रजमें आते थे ॥ २३ ॥ इस प्रकार गोपियोंका मोह कहकर अब गौओंका मोह कहते हैं. गायें दौड दौडकर रम्भाय रम्भाय ब्रजमें आती हैं और अपने अपने बछरोंको बुलाती हैं जब बछरे आते हैं तब अपने अपने बछरोंको प्रेमसे अयनमें संचित हुये दूधको उन्हें पिलावैं हैं, वारम्वार हित मानकर उनको चाटती जाती हैं ॥ २४ ॥ इस कृष्णचन्द्रमें सब गोप गोपियोंकी मैत्रीभाव पहिले केसी नाईं होगया, परन्तु पहिले इतना नहीं था अब पहिलेसे अधिक स्नेह बढगया, गाय गोपियोंमेंभी श्रीकृष्णकी बालभावना पहिलेकी समान रीति प्रीति होगई परन्तु मैं इसका पुत्र हूँ और यह मेरी माता है यह मोह नहीं रहा ॥ २५ ॥ ब्रजवासियोंकी अपने बालकोंमें स्नेहरूपी लता एक वर्षतक धीरे धीरे ऐसी बढी जिसकी वृद्धिका पारावार नहीं जैसे पहिले देवकीनन्दनमें बढी थी ॥ २६ ॥ इस प्रकार सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बछेरे और बालकोंके बहानेसे आपरूप बछरोंको आपरूप ग्वालोंको बनाय बछरे चराकर वनमें ब्रजमें एक वर्षतक क्रीडा करते रहे ॥२७॥ जब कि, एक वर्ष पूराहोनेमें पांच सात दिन शेष रहगये तब एक दिन भगवान् बलभद्र भैय्याको संग लेकर वनमें बछरे चरानेको गये थे वहाँ बलभद्रजीको ऐसा कुछ देखनेमें आया ॥ २८ ॥ बहुत दूर जो गायें गोवर्धन पर्वतके ऊपर चर रही थीं, उन्होंने ब्रजके निकट अपने बछरोंको चरता देखा ॥ २९ ॥ बछरोंको देखतेही प्रेमके वश हो, अपने तन मनकी सब सुधि भूल गई और उनके थनोंसे दूध टपकने लगा, गोपोंके निवारण करने और विषम मार्गका कुछ भी ध्यान नहीं किया और ऐसी भागीं मानो दोहीं पाओंसे चल रही हैं, मुख और पूँछ ऊपरको उठाये बडे वेगसे हुंकार शब्द करतीं बछरोंके समीप पहुँचीं ॥ ३० ॥ यद्यपि इन गायोंके और छोटे छोटे दूसरे बछरे भी थे तौ भी वह गायें गोवर्द्धनपर्वतसे नीचे आय इन बछरोंसे मिल, उन बछरोंको दूध पिलाने लगीं और ऐसे उनके शरीरको चाटने लगीं मानो निगल

जायँगी ॥ ३१ ॥ अब गोपोंका मोह कहते हैं, जब गोपोंने गायोंको घेरा तब गायें नहीं घिरीं तब लज्जित हो अपने मनहीं मनमें कहने लगे कि, हम वानेत गोप कहलाते हैं, परन्तु आज हमसे गायेंभी नहीं रुकीं, तब अपने मनमें बडा क्रोध करने लगे और उन कठिन २ मार्गोंसेभी बडी कठिनतासे नीचे आये, वहां बलदेवजीके संग बछरोंको लिये अपने पुत्रोंको देखा ॥ ३२ ॥ उनको देखतेही वह गोप अत्यन्तही प्रेमरसमें मग्न होगये, इससे सब क्रोध शान्त हुवा और प्रेम वढा. तब तो बालकोंको हाथ उठा उठाकर हृदयसे लगालिया और उनके माथेको सूंघकर ब्रजवासी वडे आनन्दित हुये ॥ ३३ ॥ फिर पीछे वृद्ध वृद्ध गोप बालकोंको हृदयसे लगाकर वडे प्रसन्न हुये और महाकठिनतासे सहज सहजमें बालकोंको छोडके बाहर निकले बालकोंकी सुधिसे उनके नेत्रोंमें जल भरआया ॥ ॥ ३४ ॥ यद्यपि उन बालकोंने दूध पीना छोड दिया था और बडे भी होगये थे, तोभी उन बालकोंमें ब्रजवासियोंके प्रेमकी ऐसी वृद्धि देख और उसके कारणको न समझकर बलरामजी अपने मनमें विचार करने लगे ॥ ३५ ॥ कि, सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर जैसा प्रेम प्रथम था वैसाही अपूर्व प्रेम अब बालकोंपर भी बढता जाता है और यहीं नहीं मेरे हृदयमें भी वत्स और बालकोंपर क्षण क्षणमें अधिक प्रेमकी वृद्धि होती चली जाती है यह बडी अद्भुत बात है न जानिये यह क्या कारण है ? ॥ ३६ ॥ यह क्या है ? देवताओंकी माया है, वा मनुष्योंकी माया है, अथवा राक्षसी माया है, ? मैं नहीं जानसक्ता यह कहाँसे आई और कैसी अलौकिक माया है ? क्योंकि इसने मुझको भी मोहित करलिया, इससे मुझको यह जान पडता है कि, जो यह माया मेरे स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी हो तो आश्चर्य नहीं ! क्योंकि और दूसरेकी माया मेरे मनको मोहित नहीं करसक्ती ॥ ३७ ॥ इस प्रकार शोच विचारकर दाशार्हवंशोद्भव बलदेवजीने अपनी ज्ञानदृष्टिसे देखा तो सब बछरे और बालक सर्वात्मा श्रीकृष्णरूपमें दिखाई दिये ॥ ३८ ॥ कि, सब देवता ग्वालग्वाल बने हैं और ऋषि मुनियोंने बछरोंका रूप धारण किया है, यह मैं जानता हूँ, परन्तु यह बालक अब तो देवता नहीं हैं और यह बछरे ऋषिभी नहीं हैं, अब तो मुझको सबमें श्रीकृष्ण दृष्टि आते हैं, जब यह भ्रम हुवा तो श्रीकृष्णसे बूझा कि, हे प्रभु ! इस भेदको प्रकाशो यह क्या भेद है ? सो तुम सम्पूर्ण भेद भिन्न भिन्न संक्षपसे समझाकर कहो ? जो मेरे मनका सन्देह दूर हो ? जब इस प्रकार बलदेवजीने श्रीकृष्णसे कहा तब श्रीकृष्णने सब वृत्तान्त समझाकर कहा कि, हे भैय्या ! तुमको आज सुधि हुई है जब ब्रह्माको मोह हुवा और बछरे और बालकोंको चुराकर लेगया तब मैंने बालक और बछरोंका वैसाही रूप धारण किया और उनके कुटुम्बियोंको क्लेश न होने दिया. इस प्रकार श्रीकृष्णके कहनेसे बलदेवजीने सब भेद जाना ॥ ३९ ॥ देखो यहां तो एक वर्ष बीत गया, परन्तु ब्रह्माका एक पलही बीता था तब ब्रह्माने फिर आनकर देखा तो पहिले कैसी नाईं बछरे और बालकोंको संग लिये श्रीवृन्दावनविहारी नये नये ढंगके खेल खेल रहेहैं ॥ ॥ ४० ॥ यह अद्भुत कौतुक देख ब्रह्माजी अपने मनमें विचार करने लगे कि, गोकुलमें

जितने बछरे और बालक हैं वह सब मेरी मायारूपी शयनमें पडे सोरहे हैं और अभीतक उठे नहीं ॥ ४१ ॥ फिर यह मेरी मायासे अलग जो यह ग्वालबाल और बछेर चररहे हैं और अनेक प्रकारके विहार कर रहेहैं, सो यह यहां कैसे आगये? जितने मैं हरकर लेगयाहूं उतनेही उसी स्थानपर यहाँ वर्षदिनसे भगवानके संग विहार कर रहेहैं ॥ ४२ ॥ आपही मोहित हो ब्रह्माजी बहुत देरतक विचार करते रहे कि, इनमें कौनसे बालक और बछेर सत्यहैं और कौनसे असत्य हैं? मैं जो हरकर लेगया वे सत्य हैं वा यह जो ब्रज-विहारीके संग विहार कर रहेहैं ये सत्य हैं, दोनों एकसे दिखाई देतेहैं, क्या करूं? मैं किसी प्रकार इस भेदको नहीं जानसक्ता? ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! कभी वनमें कभी ब्रह्मलोकमें एक वर्ष तक चकईके समान ब्रह्मा दिन रात घूमते फिरे। देखो! इस प्रकार ब्रह्माजी विश्वके मोह करनेवाले और आप मोहरहित विष्णुभगवान्को अपनी मायासे मोहित करना चाहते थे परन्तु आपही मोहित होगये ॥ ॥ ४४ ॥ जैसे अँधेरी रातमें कुहर अन्धकारसे अपना पृथक् आवरण नहीं करसक्ता. क्योंकि उसी अन्धकारमें आप भी लय होजाता है, जैसे दिनमें खद्योत (पटवीजना) अपना प्रकाश पृथक् नहीं कर सक्ता, ऐसेही ऐश्वर्यवान् पुरुषोंपर कोई साधारण पुरुष अपनी माया करना चाहै तो उस अधमकी माया उत्तमपुरुषका कुछभी नहीं कर सक्ती, बरन् चलानेवाले-हीकी सामर्थ्यका विनाश करती है ॥ ४५ ॥ देखो! ब्रह्माके देखतेही देखते क्षणमात्रमें और एक अद्भुत आश्चर्य हुआ सब बछरे और बालक मेघवत् श्यामवर्ण, पीताम्बर पहिरे ॥४६॥ चतुर्भुजरूप धारे, हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, लिये मस्तकपर करीट, मुकुट, धारण किये, कानोंमें कुण्डल विराजमान, कण्ठमें मोतियोंके हार और वनमाला पहिरे ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सकी कान्तिसे शोभायमान, भुजाओंमें भुजबन्द पहिरे, रत्नजटित शंखके समान तीन रेखावाले कंकण करमें धारण किये, नूपुर, कटक, कमरमें तगडी और मुन्दारि-योंके धारण करनेसे शोभायमान ॥ ४८ ॥ बडे पुण्यवान् सज्जनोंसे समर्पण की हुई तुल-सीकी नवीन और कोमल मालाओंसे शिरसे पाँवोंतक परिपूर्ण ॥ ४९ ॥ चन्द्रिकाकी सदृश स्वच्छ मन्दहास्यसे मानो अपने दासोंको सतोगुणसे पालन करते और अरुणाईयुक्त कटाक्ष भरी चितवनसे अपने भक्तोंके मनोरथोंको मानो रजोगुणसे उत्पन्न करते विदित होतेथे ॥ ५० ॥ ब्रह्मासे आदिलेके तृणपर्यन्त स्थावर जंगम समस्त प्राणी मूर्तिमान होकर एक एक बछेरके सन्मुख नाच और गान आदिक अनेक अनेक प्रकारसे उनकी पूजा और शिष्टाचार करते थे ॥ ५१ ॥ और अणिमादिक अष्टसिद्धि, मायासे लेकर महदादिक विभूति चौबीस तत्त्व चारों ओर देदीप्यमान थे ॥ ५२ ॥ काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह रूप धारण कर प्रत्येकको सेवा करते थे, इन सबकी स्वतंत्रता श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमाके आगे नष्ट होगई थी ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञान-रूप आनन्द मात्र एकरस जो ब्रह्ममूर्तिवाले तथा जिनकी चक्षु आत्मज्ञान हैं ऐसे महात्मा

पुरुषभी जिनकी महिमाके माहात्म्यको नहीं जान सक्ते, ऐसा रूप ब्रह्माजीने सबका देखा ॥ ५४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ समस्त बछरे और बालकोंको परब्रह्ममय देखा जिसपर ब्रह्मकी कान्तिसे सम्पूर्ण स्थावर, जंगम और यह विश्व प्रकाशमान होरहा है ॥ ५५ ॥ उसके पीछे फिर बडे आश्चर्यसे ब्रह्माजीकी सब इन्द्रियें शिथिल होगई और उनके तेजसे ब्रह्माजी चुप होगये जैसे ग्रामकी रक्षा करनेवाली पुतलीके आगे चार मुखकी सुवर्णकी प्रतिमा खडी होय इस प्रकार खडा हुआ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार सरस्वतीके स्वामी तर्कना रहित स्वप्रकाश सुखनिधान प्रकृतिसे परे और ब्रह्मसे पृथक् वस्तुके मिथ्या ज्ञान जिनका प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदोंसे होसक्ता है उस अलौकिक रूपको देखकर और उस महिमाको विचारकर यह क्या है ऐसे शोचतेहुए ब्रह्माजी मोहित होगये और उनकी अवलोकन करनेकी शक्ति भी जाती रही. तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्माजीकी यह दशा देखकर मायाका आवरण उनके हृदयसे दूर कर दिया ॥ ५७ ॥ तब तो ब्रह्माजीकी सब इन्द्रियें चैतन्य होगई जैसे मृतक पुरुष जी उठै है ऐसे बडे कष्टसे नेत्रोंके खोलकर अपनी आत्मासहित ब्रह्माजीने जगत्को देखा ॥ ५८ ॥ जब ब्रह्माजीने चारों ओरको दृष्टि उठाकर देखा तो सन्मुखही चारों ओर प्रियपदार्थोंसे परिपूर्ण और मनुष्योंकी जीविकाके लिये वृक्षोंसे भरापुरा वृन्दावन है ॥५९ ॥ जिस वृन्दावनमें स्वाभाविक वैर करनेवाले सिंह मृग और मनुष्य परस्पर परममित्रके समान रहते हैं, श्रीवृन्दावनविहारीके संग रहनेसे सब प्राणियोंका क्रोध और तृष्णा दूर होगई है ॥६०॥ उस वृन्दावनमें गोपालवंशके बालकपनका आचरण करनेवाले अनन्त अगाध ज्ञानस्वरूप बछरे और ग्वालबालोंको पहिलेकी समान ढूँढते फिरते थे और हाथमें दहीभातका ग्रास लिये अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र मुरलीमनोहरका दर्शन ब्रह्माको हुआ ॥ ६१ ॥ इस प्रकार वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको देख उसी समय ब्रह्माजी अपने वाहन हंससे नीचे उतर कञ्चनके दण्डकी तुल्य अपनी देहसे साष्टांगकर चारों मुकुटोंका अग्रभाग चरणारविन्दोंसे लगाय दण्डवत् कर आनन्दरूप आंसुओंके जलसे श्रीकृष्णको अभिषेक किया ॥ ६२ ॥ प्रथम जो भगवान्की अद्भुत महिमा देखी थी उसको वारंवार स्मरण कर करके श्रीगोविन्द भगवान्के चरणारविन्दोंमेंसे उठे और फिर गिरपडे इस प्रकार बडी देर तक ब्रह्मा पाओंमें पडेरहे ॥ ६३ ॥ फिर पीछे कुछ कालोपरान्त सहज सहजमें उठ आंसू पोंछ भगवान्की ओर निहार लज्जाके मारे नीची नार कर हाथ जोड शरीर कम्पायमान मुखसे कुछ कुछ अक्षर निकले इसप्रकार गद्गद वाणीसे ब्रह्माजी स्तुति करनेलगे कि, हे नाथ ! ॥ ६४ ॥

दोहा-मैं अपराधी हीन मति, परो मोहके जाल।
ममकृत दोष न मानिये,हे प्रभु दीनदयाल ॥

कवित्त-यदुकुल कमल दिवाकर क्षमाके खान, देव द्विज गऊ साधु उदधि मयंक जे। परमप्रचंड जो पखण्ड सो अखण्ड तरु,दोरदण्ड परशु

विखण्डन निशंक जै ॥ छिति छल छन्दोंके सु छयके करनहार,भूमिके हरन भार खल गण बंक जै । कोटिन कलप मेरी कोटिन प्रणाम तुम्हें भानु आदि देवनते बन्द अकलंक जै ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा–चौदहमें हरिके चरित, अद्भुत अलख लखाय ।
हरि अस्तुति अज्ज ज्यों करी,कहौं कथा सो गाय ॥

ब्रह्माजी बोले कि, हे स्तुतिकरने योग्य ! श्यामघटाकी समान तुम्हारा शरीर, बिजलीसम पीताम्बर धारण किये, गुंजाओंके कर्णभूषण, मयूरपुच्छके मुकुटसे शोभायमान मस्तक, कण्ठमें वनमाल पहिरे, दहीभातका ग्रास, बेतकी छडी, शृंग बाँसुरीके चिह्नोंसे सुशोभित, अतिसुंदर कोमल चरणारविन्दोंसे विचरते हो. हे गोपाल नन्दलाल ! आपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥ हे देव सच्चिदानन्द ! मेरे ऊपर कृपाकरनेवाली और भक्तोंकी इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाली पंचभूतरहित यह आपकी मनोहर मूर्ति शुद्धसत्वयुक्त है, इस आपके अवतारकी भी महिमाको मैं [ब्रह्मा] क्या किसीमें भी जाननेकी सामर्थ्य नहीं है आप जो साक्षात् आत्मसुखके अनुभव रूप अवतारधारी हो तुम्हारी महिमाको समाधि लगाकर भी कौन जान सक्ता है? अथवा पंचभूतमय विराट्रूपकीही कोई महिमा जाननेमें समर्थ नहीं होता. मेरे ऊपर आपने अनुग्रह करके दर्शन दिया ॥ ॥ २ ॥ हे अजित! आप किसीके जीतनेमें नहीं आते, परन्तु जो मनुष्य ज्ञान प्राप्त करनेके परिश्रमको त्यागकर महात्मा पुरुषोंके मुखसे निकली हुई आपकी कथाको श्रवणद्वारा पान करके अपने घर बैठे बैठे मनसे, वाणीसे, देहसे, आपका अर्चन, वन्दन करके तुमको जीते हैं उन लोगोंको त्रिभुवनमें कोई नहीं जीत सक्ता और वह लोग आपको अपने वशमें करलेते हैं ॥ ३ ॥ हे विभो ! भुक्ति मुक्ति देनेवाली आपकी भक्तिको त्यागकर जो लोग केवल ब्रह्मज्ञानी होनेकेलिये अधिक क्लेश और खेद करते हैं, उनलोगोंको केवल क्लेश और खेदही शेष रह जाता है और कुछ नहीं मिलता. जैसे जो मनुष्य थोथे तुषनको कूटता है उसको दुःखके सिवाय अन्न किसीप्रकार नहीं मिल सक्ता ? ॥ ४ ॥ हे व्यापक! हे भूमन् ! इस संसारमें पहिले बहुतसे योगीश्वरोंको जब योगसे ज्ञान नहीं मिला तो अपनी सब क्रिया और कर्म आपको समर्पण करनेसे और कथा सुननेसे भक्तिको प्राप्त हो उससे आत्मज्ञानकी प्राप्ति कर फिर अनायासही आपके पदको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ हे परिच्छेदरहित ! इस प्रकार आपके सगुण और निर्गुण दोनों रूपोंका ज्ञान होना कठिन है और भक्तिसेही आप जाननेमें आते हैं, तोभी निर्मल अन्तःकरणवाले जितेन्द्रिय महात्मा पुरुष आत्माकार अन्तःकरणके साक्षात्कारतासे निर्विकारतासे अरूपतासे अनन्यबोधसे कुछ कुछ आपकी महिमाको जान सक्ते हैं, परन्तु और किसी प्रकारसे आप जाननेमें नहीं

आते ॥ ६ ॥ हे गुणात्मन् ! आप गुणोंके आधार हो इस विश्वका मंगल करनेके लिये आपने इस संसारमें अवतार लिया है, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन गुणोंके तुम साक्षी हो, आपके इतने गुण हैं जिनके गिननेके लिये कौन पुरुष सामर्थ्यवान् होसक्ता है ? कोई चतुर पुरुष वहुत दिनोंमें वहुतसे जन्म धारण करके पृथ्वीरेणुकी गिन्ती कर ले, आकाशके हिमकणकी गिन्ती करले और स्वर्गके नक्षत्रादि किरणोंके परमाणुओंको भी गिन सक्ता हो परन्तु गुणोंका पार कोई किसी प्रकार नहीं पासक्ता ॥ ७ ॥ बहुतेरे भक्त जगत्में ऐसे भी हैं, और रात दिन यही कहते रहते हैं आप किस समय कृपा करेंगे इसकी बाट देखते, आसक्त रहित हो अपने किये कर्मफल दुःख सुखको सहते शरीरसे, मनसे, बाणीसे जो पुरुष आपको प्रणाम करते हैं वह प्राणीभी मुक्तिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! मेरी दुष्टता तो देखो ! कि आप जो समस्त मायावियोंके मोहित करनेवाले अनंतरूप परमात्मा हो, आप पर भी मैंने अपनी माया फैलाकर अपना वैभव देखनेकी इच्छा की सो इससे क्या हो सक्ता है ? जैसे अग्निके सामने स्फुलिंग (चिनगारी) तुच्छ है कुछ नहीं करसक्ता ऐसेही आपके सन्मुख मैं तुच्छ हूं, कुछ नहीं करसक्ता ॥ ९ ॥ हे अच्युत ! हे अखंडरूप ! मैंने रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण आपके स्वरूपको नहीं जाना आपसे भिन्नहीं भगवान्को जाना मैं अजन्मा जगत्का कर्ता हूं इस अभिमानसे अंधा होरहाहूं आप मेरे स्वामी हो मुझे अपना दास जानकर कृपा करिये, क्योंकि मैं आपकी कृपाके योग्य हूं ॥ १० ॥ यदि आप मुझको ब्रह्मांडका नाम कहो तो हे भगवन् ! माया महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वीसे बने ब्रह्मांडमें सात बिलादिकी देहवाला मैं कहां और आपके रोमकूपरूप झरोखोंमें ऐसे अनंत ब्रह्मांडरूप परमाणु घूमते फिरते रहते हैं, ऐसी आपकी अद्भुत महिमा कहां ? मुझमें और आपमें बड़ा अंतर है, इसलिये मुझको अत्यन्त तुच्छ जानकर मुझपर अनुग्रह कीजिये और यह भी समझना चाहिये कि, यह ब्रह्मा यद्यपि और लोकका अधिष्ठाता है तो भी हमारा अनुचरही है ॥ ११ ॥ हे अधोक्षज ! [इन्द्रियोंसे जाननेमें न आवे] जो अनजान बालक अपनी माताकी गोदमें बैठकर पाँव उछाले अथवा लात मारे तो क्या माता उसको अपराधी माने ? "कोई कहै कि ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता कैसे कहा ? ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता इस प्रकार कहा" कि स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणरूप सम्पूर्ण विश्व आपके उदरमें विद्यमान हैं जो शब्दसे कहनेमें नहीं आता जब सब विश्व आपके उदरमें ठहरा, तो विश्वमें रहनेसे मैंभी आपके उदरमें हुवा. इसलिये मुझे अपना पुत्र समझकर मेरा अपराध क्षमा करो ॥ १२ ॥ हे नारायण ! प्रलयकालमें जब भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक इन तीनों लोकोंका नाश हो जाता है तब चारों ओरसे समुद्रका जल उमड़ै है, उस जलके भीतर नारायणकी नाभिसे एक कमल उपजै है उस कमलनालसे ब्रह्मा उत्पन्न होता है, क्या यह बात झूंठ है, क्या यह देववाणी नहीं है ? क्या मैं आपसे उत्पन्न नहीं हूं ? क्या तो कह दो यह बात झूंठ है और जो कहो कि झूंठ नहीं है तौ मैं आपका पुत्रही हूं

तो मेरा अपराध सब प्रकारसे क्षमा करना चाहिये क्योंकि ॥ चौपाई ॥ "बड़े दया छोट-नपर करहीं । गिरि निज शिरन सदा तृण धरहीं" ॥ १३ ॥ क्या तुम नारायण नहीं हो नहीं ! तुमही नारायण हो ! और तुमहीं सम्पूर्ण देहधारियोंके आत्मा हो हे अधीश ! सबके प्रेरणा करनेवाले समस्त लोकोंको साक्षात् देखोहो. नार जो जीवसमूह और जल जो आपका अयन [वास, आश्रय] है, इसलिये नारायण नाम आपका प्रसिद्ध है सो आपकी मूर्ति है और जो विचार करके देखिये तो यह भी सत्य नहीं है क्योंकि मुझको सब माया-रूपही जान पड़ते हो ॥ १४ ॥ हे जगदीश्वर ! जगत्का आश्रयभूत आपका रूप जलके भीतर सत्य है तो जिस समय मैंने कमलनालके भीतर बैठकर सौ [१००] वर्षतक आपको ढूँढ़ा तब आप क्यों नहीं दिखाई दिये ? और हृदयमें भी क्यों नहीं प्रगट हुए ? फिर तप करनेसे तुरन्तही क्यों आपका रूप दिखाई दिया ? इसलिये यह सब आपकी मायाही है, तुम्हारी मूर्तिमें किसी देशकालका परिच्छेद नहीं बनसक्ता ॥ १५ ॥ हे मायाके करनहारे ! बाहर भीतर समस्त विश्वके प्रकाश करनेवाले यदि यह जलादि प्रपञ्च तुमसे पृथक् होय तो इससे तुम्हारा परिच्छेद होना सम्भव है परन्तु यह मायासे उत्पन्न है यह बात अपने इस अवतारमें यशोदा मैय्याको अपने उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दिखाकर प्रत्यक्ष कर दिया, इससे यह प्रपञ्च मायाहीका किया हुवा है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार आपके उदरके भीतर आप समेत यह विश्व प्रकाशमान् है वैसाही बाहर प्रकाशमान् है और तुम्हारे साथ इसका प्रकाश होना मायाके विनाही बनसक्ता है जो बाहरके जग-त्का तुममें प्रतिबिम्ब पड़े तो वह बाहरकी वस्तु उलटी दीखनी चाहिये और यदि आपको दर्पणस्थानमें माना जाय तो आपका दर्शन उसमें नहीं होना चाहिये, इस कारण यह सब मायाही है ॥ १७ ॥ केवल आपके विना यह सब संसार मायारूप है, क्या यह मायाही दिखाई है ? क्योंकि, प्रथम आप अकेले थे, पीछे सम्पूर्ण ब्रजके बछरे और ग्वालरूप हो गये, फिर कुछ कालोपरान्त सबके सब चतुर्भुजरूप होगये, फिर एक एक रूपके आगे मैं [ब्रह्मा] शिव, इन्द्र सहस्रों दृष्टि आये और एक एकने एक एक रूपकी स्तुति करी फिर आप ब्रह्मरूप होगये, फिर पीछे प्रणाम करनेमें भी नहीं आये, इस प्रकार अद्वितीय ब्रह्मरूप अवशेष रहगये ॥ १८ ॥ सर्वव्यापक आपके स्वरूपको मायामें स्थित हुये जो प्राणी नहीं जानते हैं उन पुरुषोंके ऊपर मायाको फैलाकर स्वतंत्रतासे आप प्रकाशो हो जगत्के उत्पन्न करनेके समय ब्रह्माका रूप धारण करलेते हो, पालनके समय विष्णुरूप धारण करलेते हो और संहारके समय तीन नेत्रवाले रुद्ररूप बनजाते हो ॥१९॥ हे ईश ! हे प्रभु ! हे जन्मरहित विधाता ! देवता, ऋषीश्वर, मनुष्य, पशु, पक्षी और जलके जीवोंमें आप साधु लोगोंपर कृपा करनेके लिये और दुष्टोंके अभिमान हरनेके लिये जन्म लेते हो ॥ २० ॥ हे व्यापक ! हे भगवन् ! हे परात्मन् ! हे योगेश्वर ! आप जो अपनी योगमायाको विस्तार करके जिस समय विहार करते हो उन लीलाओंको त्रिलो-कीमें कौन जाननेवाला है ? कि कहाँ हैं, कैसी हैं, कौन हैं और कितनी हैं ॥ २१ ॥ इस

लिये यह मिथ्या स्वरूप स्वप्नकी समान प्रकाशमान दुःखरूप यह सब संसार केवल आपके नित्यसुख चैतन्यमय अनन्त स्वरूपमें मायासे उत्पन्न होनेके कारण नित्यसुख और चैतन्यस्वरूपके समान भासै है परन्तु वास्तविकतासे असत्स्वरूप, स्वप्नतुल्य, प्रतिभास रहित, कष्टसेभी अधिक कष्टरूप मानो कष्टमयही है ॥ २२ ॥ केवल सत्यस्वरूप तो एक आपही हो, क्योंकि आत्मा हो जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, जहाँतक मन जाता है वह सब मायाहै, आत्मा द्रव्य नहीं. इसलिये सत्य है आपमें कोई विकार नहीं इसलिये सत्यस्वरूप हो, आप सबके कारण स्वरूप हो,सबके व्यापक होनेसे पुरुष कहलाते हो, तुम सदा पूर्ण हो, नित्य सुखस्वरूप हो, अक्षर हो, अमृतहो, इस लिये आपका कभी विनाश नहीं होता, तुम अनंत और अद्वैत हो इसलिये आपके देशकालका परिच्छेद नहीं, आप स्वयंप्रकाश उपाधिरहित असंग हो, इसलिये ज्ञानके साधनसे आपकी प्राप्ति नहीं होती, आप निरञ्जन हो, इसलिये आपके स्वरूपमें किसी प्रकारका संस्कार भी नहीं है, आप नित्यमुक्तरूप हो अमृत हो ॥ २३ ॥ इसलिये आप सदा आत्मारूप हो और समस्त जीवोंके आत्मा हो, जिन पुरुषोंने सूर्यरूप गुरुसे उपनिषद्के ज्ञानरूप नेत्र प्राप्त किये हैं वह महात्मा आत्माहीसे आपका दर्शन करके संसारसागरके पार हो जाते हैं ॥ २४ ॥ जब तक प्राणी आपके आत्मस्वरूपको आत्मरूप नहीं जानते तवतक उनको अज्ञानसे यह सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रगट भासता रहता है और वही प्रपञ्च आत्मरूपको जाननेसे लय होजाता है, जबतक अज्ञान है तबतक रज्जु सर्परूप भासै है, जब ज्ञान होजाता तब रज्जु रज्जुही जाननेमें आता है, अज्ञानसे रज्जुमें सर्प जानना अध्यास है और ज्ञानसे रज्जुही जानना अपवाद है ॥ २५ ॥ संसारमें बन्धन और मोक्ष केवल अज्ञानसे है सत्य ज्ञानरूप आत्मासे भिन्न नहीं है निरन्तर चैतन्यरूप आत्मा परमेश्वर आपही हो ऐसा विचार करनेसे आत्मामें अज्ञान वा बन्धन कुछ भी नहीं है, जैसे सूर्यके सन्मुख रात दिन नहीं है, सदा प्रकाशही रहता है ॥ २६ ॥ आत्मस्वरूप परब्रह्म आपको देह मानकर और देहादिकको आत्मा मानकर यही खोयेहुए आत्मरूपी पदार्थको देखो ? वाहर खोजना यह मूर्खोंकी कैसी मूर्खता है, क्योंकि घरकी खोई वस्तु कोई वनमें खोजने नहीं जाता ॥ २७ ॥ बिना जाने झूठ भी सत्यहीकी समान विदित होता है, हे अनन्त ! ज्ञानीपुरुष तो इस देहमेंही आपको खोजते हैं, " यह भी आत्मा नहीं, यह भी आत्मा नहीं " ऐसे जड पदार्थोंका त्याग करते हैं, क्योंकि अपने निकट यद्यपि सर्प नहीं भी है परन्तु उसका निषेध किये विना सत्य रज्जु जाननेका ज्ञान नहीं होता सर्पके निषेध होनेके उपरान्त रज्जु जाननेमें आती है ॥ २८ ॥ हे देव ! जब ज्ञानसेही मुक्ति हो जाती है तो मुक्तिकी क्यों बडाई की, ब्रह्मा कहै हैं यद्यपि ज्ञान प्राप्त होना बहुत सुगम है तो आपके चरणारविन्दोंके प्रसादके कणिकाके कणिकका अनुग्रह जिसपर होगया वही तुम्हारी महिमाके स्वरूपको जानता है और जिसपर तुम्हारे चरणारविन्दोंकी कृपाही नहीं है चाहे वह कितनाही विचार किया करै और वर्षोंतक ढूँढा करे तोभी आपकी महिमाको नहीं जान सक्ता शुद्धभक्तिसेही आपकी महिमा जानी-

जाती है ॥ २९ ॥ हे नाथ! इस ब्रह्माके जन्ममें, अथवा और कोई जन्म होय उसमें अथवा पशुपक्षियोंमें जन्म होय तो मैं अपना बडा भाग्य मानूंगा जब तुम्हारे ब्रजवासियोंमेंसे किसीके चरणारविन्दकी सेवा करूंगा ॥ ३० ॥ देवताके जन्मसे अथवा और किसीके जन्मसे जिसमें आपकी भक्ति होय वही जन्म श्रेष्ठ है, इस प्रकार उत्कण्ठापूर्वक सात श्लोकसे स्तुति करते हैं अहो आश्चर्य ! ब्रजकी गाय गोपी धन्य हैं, हे प्रभु ! जिन गोपियोंके स्तनोंका दूधरूप अमृत बछरे बन आपने आनन्दसे पेट भरकर पिया, आपकी तृप्तिके लिये अबतक यज्ञ भी पूर्ण नहीं हुये क्या यज्ञोंमें भी आपका पेट नहीं भरता है ! भगवान्‌के सखाओंकी महिमा किसीके कहनेमें और जाननेमें नहीं आती ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, नन्दरायजीके ब्रजवासियोंका आश्चर्य रूप अहो भाग्य है परमानन्द पूर्णब्रह्म सनातन जिन ब्रजवासियोंका सर्वदा मित्र होरहा है ॥ ३२ ॥ इन ब्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कहनेको किसकी सामर्थ्य है,इन्द्रियोंके अधिष्ठाता यज्ञदेवता महादेव बुद्धिके अधिष्ठाता मैं [ब्रह्मा] ऐसे ग्यारह देवता महादेवसे आदि लेकर हम सब बडभागी हैं, कोई ब्रजवासी इंद्रियरूप दोनोंसे आपके चरणारविन्दका मकरन्द अमृतकी तुल्य मधुर२पीते हैं,जिस समय ब्रजवासी तुम्हारा दर्शन नेत्रोंसे करते हैं,उस समय नेत्रोंका अधिष्ठाता सूर्य कृतार्थ होजाता है और कानोंसे तुम्हारी बात सुनते हैं, तब कानोंके देवता दिशा कृतार्थ होजाती हैं,नाकसे तुम्हारा प्रसाद तुलसीपत्र सूंघे हैं,तब नासिकाके देवता अश्विनीकुमार कृतार्थ होजातेहैं,जब हाथोंसे तुम्हारी सेवा करतेहैं तब हाथोंके देवता कृतार्थ होजातेहैं, इसी प्रकार सब इन्द्रियोंके सेवनसे सब देवता कृतार्थ होजाते हैं, सम्पूर्ण पदार्थोंके सेवा करनेवाले ब्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कैसे कही जाय ॥ ३३ ॥ इस लोकमें कदाचित् मेरा जन्म होय तो वृन्दावनमें होय उसपरभी गोकुलमें, यह मैं नहीं कहता मनुष्यही योनिमें जो चाहे जिस योनिमें हो, परन्तु गोकुलमें हो, तो मैं पूर्ण भाग्यशाली होऊं और मेरे धन्य भाग्य होय, तब श्रीकृष्ण बोले कि, हे ब्रह्माजी ! सत्यलोकको छोडकर यहाँ जन्म लेनेसे तुमको क्या लाभ होगा ? तब ब्रह्मा बोले, जिस जन्ममें ब्रजवासियोंके चरणारविन्दकी रज मेरे मस्तकपर पडेगी वही मुझको परमलाभ होगा, तब श्रीकृष्ण बोले कि, ब्रजवासी लोग काहेसे धन्य हैं ? तब ब्रह्मा बोले कि, इन ब्रजवासियोंका पूर्ण जीवन ब्रज है, क्योंकि जहां श्रीमुकुन्दपरायण हैं जिनके चरणारविन्दकी रजको नित्यप्रति वेद खोजते रहतेहैं उस वृन्दावनकी रजका मिलना अहोभाग्य है ॥ ३४ ॥ इन ब्रजवासियोंकी कृतार्थताका क्या वर्णन करूं ! जिनकी भक्तिसे तुम भी ऋणीसे होरहे हो ? तब श्रीकृष्णचन्द्र कहेहैं कि, मैं किस वस्तुके देनेमें असमर्थ हूं ? जो ऋणी रहूं । तहाँ ब्रह्माजी बोले कि, हे देव ! जगत्में प्रकाशमान् समस्त फलरूप तुम हो इसलिये और फल ब्रजवासियोंको क्या दोगे ? यह जब विचार करताहूं तब मेरा मन मोहित हो जाता है, तब श्रीकृष्ण बोले कि, मैं अपने आपका ऋणी होजाऊंगा. तब ब्रह्माजी बोले कि, नहीं माताका स्वरूप धर कर पापिनी पूतना आई थी उसको आपने सर्वस्व अपनपौ दिया, तब श्रीकृष्ण बोले ब्रजवासियोंको परिवार सहित

सर्वस्व और अपनपौ दूंगा, तब ब्रह्माजी बोले कि, पूतनाका कुटुम्ब अघासुर बकासुरको आपने सर्वस्व और अपनपौ दिया. तब कृष्ण बोले कि, मेरे पास तो यहीं पदार्थ देनेकोहै, तब ब्रह्माजी बोले कि, जिन व्रजवासियोंने धाम, धन, सुहृद, प्रिय, देह, पुत्र, प्राण और अन्तःकरण आपमें अर्पणकर रक्खे हैं, फिर क्या ऐसे व्रजवासियोंको और वैरियोंको क्या बराबरही रक्खोगे ? आप परमेश्वरहैं तो क्याहै ? परन्तु आपकेयहां न्याय नहीं,कहां बापुरी पूतना ? और कहां परमहितकारी व्रजवासी ? आपको अपनेही मनमें न्याय करना चाहिये ॥३५॥ हे कृष्ण ! जबतक रागादिक चोर इस शरीरमें उपस्थित हैं तबतक घर कारागार (बन्दीखाना) रूप है मोह भी तबहींतक पाओंकी बेडी है जबतक प्राणी तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण नहीं आता,आपकी शरण लिये पीछे रागादिक जो चोर हैं वह भी चोरसे साह होजाते हैं और जो घर हैं वह भी सुन्दर मन्दिर होजाते हैं और सम्पूर्ण मोह दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! तुम संसाररहित हो तो भी संसारमें शरणागत भक्तोंको आनन्द देनेके लिये संसारमें वारम्वार अवतार धारण करो हो ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! हे प्रभो ! जो पुरुष आपको जानते हैं वह जानते होंगे, परन्तु मैं बहुत क्या कहूं ? मनसे, वचनसे, देहसे, आपका वैभव मेरे जाननेमें किसी प्रकारसे नहीं आसक्ता ? ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! अब मुझपै अनुग्रह करके मुझको सत्यलोकके जानेकी आज्ञा दीजे, आप सब जानते हो, अर्थात् अपनी अपार महिमा मेरा ज्ञान, बल, पराक्रम, सबके देखनेवाले हो, आपही इस जगत्के अधिष्ठाता हो, मैंने ऐसा ब्रह्मापना छोडा यह जगत् आपहीकी भेंट है ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! यदुकुलकमलपर स्नेह करनेवाले (दिवाकरकी सदृश) इसमें सूर्यकी उपमा दी है. हे पृथ्वीके देवता ! ब्राह्मण, पशु, समुद्र, इनके वृद्धि करनेवाले, (सुधाकरकी समान) इसमें चन्द्रमाकी उपमा दी. हे पाखण्डरूप ! अन्धकारके विनाश करनेवाले इसमें सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी उपमा आई, पृथ्वीपर कंसादिक राक्षसोंके मारनेवाले, इसमें फिर सूर्यकी उपमा आई, हे सूर्य ! हे अर्हन् ! सबके पूज्य भगवान् ! अर्थात् छःप्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण तुमको मेरा दण्डवत् है और नमस्कार है ॥ ४० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सर्वव्यापक श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति कर, कल्पपर्यन्त तीन प्रदक्षिणादे, चरणारविन्दोंको नमस्कार कर, जगत्के विधाता ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ४१ ॥ तब पीछे श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार बछर और बालकोंको ले आये, प्रथमकी समान ग्वालमण्डलीको उसी यमुनाकी रेतीमें ले आये जहां पहिले बैठे भोजन कररहे थे और इस भेदको किसीने न जाना यह बात सुनकर राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे बूझा कि, इतने दिनतक बालक कैसे यमुनाके किनारेपर बैठे रहे और भोजनपान कुछ न किया ? ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! जब अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णचन्द्र विना एक वर्ष बीत गया, तो भी भगवान्की मायासे मोहित हुए उन बालकोंको वह समय आधे पलकी समान जान पडा ॥ ४३ ॥ भगवान्की मायासे मोहितचित्तवाला पुरुष इस संसारमें क्या क्या नहीं भूलसक्ता ? सो सम्पूर्ण जगत् भगवत्की मायासे मोहित होकर

बारम्बार अपने आत्माको भूल रहाहै ॥ ४४ ॥ सब ग्वालबालोंने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा कि, भैय्या ! तुम तो बहुत शीघ्र आये, हमने तो तुम विना एक ग्रास भी अभी नहीं खाया अब आओ पहिले शीघ्रतासे भोजन कर लो ॥ ४५ ॥ सब इन्द्रियोंके प्रेरणा करनेवाले श्रीकृष्णभगवान् बालकोंकी बात सुनकर हँसे और बालकोंके संग भोजन करके मार्गमें जो सूखा हुआ अघासुरका देह पडा था उसको दिखाते वनसे लौटकर ब्रजमें आये॥४६॥

सवैया-बरही पखको वनफुलनके शिर मौर महा छबि छावतहैं।
बहु धातुन रंगते रंगित अंग हिये वनमाल सुहावत हैं ॥
लकुटी करमें कटिमें कसि शृंग मनोहर वेणु बजावत हैं।
लै नाम बुलावतहैं बछरा नँदनन्दन यों ब्रज आवतहैं ॥
दोहा-गावहिं मधुरे स्वर सखा, हरि चरित्र सुखखान ।
जहँ तहँ ठाढी देखती, ब्रजवनिता सुखमान ॥ ४७ ॥

वनसे आनकर सब बालक अपने माता पिताओंसे कहने लगे कि, आज यशोदानंदने वनमें एक बडा भारी सर्प मारा और उससे हमारी रक्षा करी ॥ ४८ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! ब्रजवासियोंका इतना प्रेम श्रीकृष्णमें कैसे हुआ ? जो कि पराया पुत्र था, अपने पुत्रोंमें इतना प्रेम पहिले नहीं था यह बात मुझे समझाकर कहो ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! श्रीकृष्णका नाम सर्वात्मा है, इसलिये श्रीकृष्ण सब प्राणियोंके साक्षात् आत्मा ठहरे, फिर सब प्राणियोंको अपना आत्माही परमप्रिय है, इस लिये श्रीकृष्णमें सन्तानसे बढकर अधिक प्रेम था, स्त्री, पुत्र, धन आदिक और जो पदार्थ हैं सो सब आत्माहीके सुखके लिये हैं ॥ ५० ॥ इस लिये हे राजा परीक्षित् ! देहधारियोंको जितना अपने आत्मामें प्यार है उतना ममताके स्थान अपने पुत्र, धन, घर आदि लेकर जो वस्तु हैं उनमें नहीं है ॥ ५१ ॥ हे क्षत्रिवंशोत्तम राजा परीक्षित् ! जो पुरुष देहको आत्मा कहते हैं उनको भी देह अत्यन्त प्रिय है और जो देहके अनुवर्ती स्त्री, पुत्र, धन आदिक हैं वह देहकी समान प्यारे नहीं लगते ॥ ५२ ॥ और देहको भी इस प्रकार मान ले कि, यह मेरा देह है, अर्थात् यह देह जब ममताका स्थान होजाता है तब यह देह आत्माकी समान प्यारा नहीं रहता. क्योंकि जिस समय यह देह जीर्ण होजाता है अर्थात् अब यह देह किसी प्रकार स्थिर न रहैगा तौ भी जीनेकी आशा बलवान् रहती है कि, किसी उपायसे दोचार दिन और बचरहूँ ॥ ॥ ५३ ॥ इस बातसे यह निश्चय होता है कि, सब देहधारियोंको अपना आत्माही अधिक प्यारा है. उस आत्माहीके लिये सब स्थावर जंगम आदि संसारपर जो प्रीति होती है सो सब आत्माहीका कारण है॥५४॥ हे राजन् ! सब प्राणियोंके आत्मा जगत्के कल्याण करनेके लिये मनुष्य देह धारण कर अपनी मायासे प्रकाश करनेवाले श्रीकृष्णचन्द आनन्द-कन्द यशोदानन्दनही हैं इस कारण उनपर प्रेम होना सम्भव है ॥ ५५ ॥ यही न समझना कि, श्रीकृष्णचन्द्र केवल देहधारियोंहीके आत्मा हैं नहीं वह सब जड़ पदार्थोंके भी आत्मा

हैं वास्तवमें इस सब विश्वके आदिकारण श्रीकृष्णचन्द्रही हैं. इस प्रकार माननेवाले पुरुषोंको सब स्थावर जंगममें भगवान्‌काही रूप भासै है कोई वस्तु इस संसारमें भगवान्‌से भिन्न नहीं है ॥ ५६ ॥ समस्त पदार्थोंको परमार्थरूपसे विचारकर देखिये तो कोई भी वस्तु अपने अपने कारणोंसे पृथक् नहीं है और जो जो कारण हैं वह भगवान्‌से पृथक् नहीं. इससे सिद्ध हुवा कि, कारणोंके भी मुख्य कारण श्रीकृष्णभगवान् हैं फिर कौनसी वस्तु श्रीकृष्णसे पृथक् रही तुमही बाताओ ? ॥ ५७ ॥ पवित्र वंश निर्मलकीर्तिवाले श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरण कमल रूप नौका जो परमप्रेमी सज्जनोंका आश्रय है जो पुरुष उन चरणारविन्दरूपी नौकाका आश्रय करते हैं, उनको संसाररूपी समुद्र बछरेके खुरके जलकी समान है और परमधामका उनको बास मिलताहै कभी कोई विपत्ति नहीं होती ॥ ५८ ॥ जो जो लीला भगवान् व्रजविहारीने पांच वर्षकी अवस्थामें की, सो बालकोंने पौगण्ड-अवस्थामें अपने अपने घर आन कही. उसका कारण जो तुमने हमसे पूछा सो सम्पूर्ण हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ५९ ॥ मुर नाम दैत्यके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रने मित्रोंके-संग यह चारित्र किया अघासुरको मारा यमुनाकी रेतीमें ग्वालबालोंके साथ भोजन किया जड़ प्रपञ्चसे भिन्न शुद्ध सतोगुणीरूप ब्रह्माको दिखाया, बछरे और ग्वालबालोंका तद्रूतरूप धारण किया, ब्रह्माने प्रेममय हो बड़ी स्तुति की. इस अद्भुत चरित्रको जो कोई मनुष्य कहेगा अथवा सुनेगा उस पुरुषके सब पुरुषार्थ सफल होंगे और श्रीकृष्णचन्द्रमें पूर्ण भक्ति होगी ॥ ६० ॥ इस प्रकार आँखमिचौनीके खेलमें ठौर ठौर छिपना, नदियोंके पुल बाँधने, बन्दरकी समान वृक्षोंपर चढ़ना और कूदना और अनेक अनेक प्रकारके बाल्या-वस्थाके और कौमार अवस्थाके विहारकरके श्रीकृष्ण और बलदेवजीने कौमारअवस्था पूर्ण करी ॥ ६१ ॥

सोरठा–दैत्य अघासुर मारि, मित्रनको आनँद दियो।
धन धन कृष्ण मुरारि, दया दृष्टि नित राखियो ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कंधे
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा–पन्द्रहमें धेनुक हनो, लीनी गाय बचाय।
मित्रनको आनँद दियो, धन धन श्रीयदुराय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब कौमार अवस्था व्यतीत हुई और पौगण्ड अवस्था का आरम्भ हुवा तब ब्रजमें गाय चरानेके योग्य कृष्ण बलदेव दोनों भाई हुए. तब ग्वालबालोंको साथ ले श्रीव्रजनाथ वृन्दावनको अपने कोमल चरण कमलसे अत्यन्त पवित्र किया ॥ १ ॥ मधुवंशके प्रकट होनेवाले श्रीश्यामसुन्दर बाँके विहारी कृष्णचन्द्र अपने यश गानेवाले ग्वालबालोंको संग लेकर बलदेव भ्राता सहित बाँसुरी बजाते, बछरोंको

कुदाते गायोंको आगे आगे कर, क्रीड़ा करनेके मनोरथसे पशुहितकारी अनेकप्रकारकी फुलवारी जहां फूल रहीं उस वृन्दावनमें विहार करनेके लिये गये सो वृन्दावन कैसा है ॥

चौ०-जहँ बसंत ऋतु रहत सुहावन । जो अतिशय आनँद उपजावन ॥
फूलैं फलैं वृक्ष चहुँ ओरा । बोलहिं कुंजन कुंजन मोरा ॥
कानन कलरव करहिं विहंगा । विहरहिं जहँ तहँ सकुल कुरंगा ॥
सज्जन मनसम निर्मल नीरा । यमुनाको सोहत गम्भीरा ॥
बहत रहत जहँ त्रिविध समीरा । हरत सकल प्राणिन की पीरा ॥
निर्मल जल, बहु ताल तलाई । विकसत अरविन्दन समुदाई ॥ २॥

मधुर मधुर वाणीवाले भौंरे, मृग, अनेक प्रकारके पक्षी जहाँ वासकरैं, महत्पुरुषोंके मनकी सदृश निर्मल जलसे सुन्दर सरोवर भरेहुए, जिनका स्पर्श करके कमल कमलिनी नित्य प्रफुल्लित रहते हैं, उनकी सुगन्धसे युक्त पवन दिन रात चलती रहती हैं, ऐसे मनोहर वृन्दावनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान्‌ने विहार करनेकी इच्छाकी ॥ ३ ॥ जहाँ तहाँ अरुण वर्णके पल्लव निकल रहे हैं उनकी अद्भुत शोभा होरही है फल फूलोंके भारसे झुकके जिनकी शाखाओंके अग्रभाग चरणोंमें लग रहे थे ऐसे ऐसे सुन्दर वृक्षोंको देखकर परमानन्दितहो मुसकायके आदिपुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बडे भ्राता बलदेवजीसे कहा ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे देवताओंमें श्रेष्ठ बलदेवजी ! देखो यह बडा आश्चर्य है ! यह वृन्दावनके देवताओंके पूजन योग्य, अपने पापोंके नाश करनेके लिये मौन साध आपके चरणारविन्दोंको फल फूल भेंट ले लेकर अपनी शाखाओंसे झुक झुक कर प्रणाम करते हैं किसलिये कि, जिस अज्ञानसे हमारा वृक्षजन्म हुवा है वह अज्ञान दूर होजाय, एक ग्वाल बोला कि, यह बात सत्य सत्य हमसे सुनो ॥

चौ०-परशि परशि वृन्दाबन धरणी । वृक्ष सराहत आपनिकरणी ॥
जाविधि हमहिं यहाँ उपजायो । तो हम दर्श कृष्णको पायो ॥
सखा वचन सुन कह यदुराई । मित्र बात यह सत्य बताई ॥

इसलिये झुके हैं ॥ ५ ॥ हे आदिपुरुष, ! सब लोकोंका पवित्र करने वाला आपका यश है उसको निरन्तर यह भौंरे गान कर करके आपका भजन करते हैं, ऐसा जान पडता है कि, यह भौंरे आपके मुख्य भक्त मुनिजन हैं ? हे पापरहित ! आप अपने दैवतरूपको छिपाये मनुजवेष बनाये इन ग्वालबालोंमें क्रीडा कर रहे हो तो यह मुनि भी भौंरेके रूपसे गुप्त होकर आपकी सेवा और भजन करते हैं. हेसर्वात्मन् ! इन्होंने यहां भी आपका पीछा नहीं छोडा ॥ ६ ॥ हे स्तुतिकरनेयोग्य ! देखो ! यह मोर आपके समीप कैसा सुन्दर नृत्य कररहे हैं और यह हरिणी गोपियोंकी नाईं चितवनसे भोली भोली सूरत बनाये आपके ऊपर कैसा प्यार कररही हैं ॥

दोहा-ब्रजवनितन सम धन्यहैं, पीवहिं प्रेम पियूख ।
तुम्हरे दर्शन हेत इन, तजी प्यास अरु भूख ॥

और देखो ! यह कोकिलाओंके समूह कैसी कैसी मधुरवाणीसे शुश्रूषा कररहे हैं, यह वनवासी भी धन्य हैं क्योंकि अच्छे पुरुषोंका यही स्वभाव है जो कोई अतिथि अपने घर आवै तो जो कुछ अपने पास फल फूल होय सो उनकी भेंट करै ॥ ७ ॥ आज यह भूमि, तृण, लता आपके चरणारविन्दोंको स्पर्श करके आनन्द पावै हैं,धन्य हैं नदी, पर्वत, पक्षी वनके पशु भी धन्य हैं जो आप दयापूर्वक चितवन करै हैं, जिस वक्षस्थलकी लक्ष्मी इच्छा करती हैं उसका स्पर्श गोपियोंको होता है, इसलिये यह भी धन्य हैं:—

चौ०–धन धन वृन्दावनकी धरणी। तुव पद परस भई मुद भरणी॥
धन वृन्दावन धन लतिकाली। तुवपदरज परसे वनमाली॥
धन वृन्दावन तरुगण कुञ्जैं। तुव कर परस लहत सुख पुञ्जैं॥
धन धन गोवर्द्धन गिरिराजू। जहँ विहरहु युत सहित समाजू॥
धन यमुना सरिता सुखदाई। जहँ तुम नित मज्जहु यदुराई॥
धन वृन्दावन विहँग कुरंगा। करहिं जो तुव दर्शन इकसंगा॥
धन गोपी जो तुव तनु परसैं।जेहिं उर लागि रमा नित तरसैं॥८॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलमुकुटमणि ! ऐसी अद्भुत वृन्दावनकी शोभा देख प्रसन्नमन श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतके समीप यमुना नदीके तीरपर गायनको चराते ग्वालबालोंके संग विहार करते थे ॥ ९ ॥ मदोन्मत्त भौंरे जिस समय गुंजार करते थे, तब श्रीकृष्ण और बलराम आप भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गाते थे, वनमाला पहिरे बलदेवजीके साथ ग्वालबाल जिनके चरित्रोंको गाते थे ॥ १० ॥ कभी राजहंसोंकी मधुरवाणी सुन उनके संग वैसी ही मधुरवाणी बोलते थे, कभी अपने साथी मित्रोंको हँसानेके लिये मोरोंको नाचता देखकर उनके सम्मुख आप भी जामा फैलायके नाचते थे ॥ ११ ॥ कभी जो कोई गाय चरती २ दूर निकलजाय तो मेघकी समान गम्भीर शब्दसे प्रसन्न हो उनके नाम लेलेकर बुलाते थे ॥ १२ ॥ कभी चकयी, चकोर, क्रौञ्च, चकवा, भारद्वाज चातक, कीर, कपोत, सारिका, मोर उनके शब्द सुन आप भी उसी प्रकारका शब्द उच्चारण करते थे. कभी व्याघ्र, सिंहको देख डरकर और पशु भागते, वैसेही गायोंको देख भयभीत हो आप भी भागतेथे ॥ १३ ॥ किसी समय खेलते खेलते बलदेवजीको परिश्रम होजाता तब किसी मित्रकी गोदीमें शिरधर उसकी जंघाकी तकिया बनाकर सो जाते, तब श्रीकृष्णचन्द्र आप उनके चरण दबाय पंखा करके उनकी थकावट दूर करतेथे * ॥१४॥ किसी समय कृष्ण बलदेव परस्पर अद्भुत रीतिसे नृत्य करते, गाते,

---

* **शंका**–श्रीकृष्ण विष्णु भगवान् होकर अपने अंश शेषजीको अपनेसे बडा क्यों किया ? उलटा श्रीकृष्णको बलदेवजीका सेवन करना पडा ?

उत्तर–त्रेतामें लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत सेवा की थी और बिना रामचन्द्रकी आज्ञा लक्ष्मणजीने कोई कार्य नहीं किया,तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर लक्ष्मणको वरदान–

कूदते, लडते, भिडते और फिर ग्वालबालोंकी भुजा पकड हँसकर कृष्ण बलदेव दोनों भाई कहते देखो कैसा नाच नाचा, कैसा गाना गाया, इस प्रकार अपनी अपनी बडाई करते थे ॥ १५ ॥ किसी समय मल्लयुद्ध करते करते जब हार जाते तब श्रीकृष्ण वृक्षकी जडके सहारेसे, पत्तोंकी शय्यापर, गोपोंकी गोदीकी तकिया बनाकर सो जाते थे ॥१६॥ हे राजन् ! कोई ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके चरण दाबते, कोई पापरहित ग्वाल बाल पत्तोंके और पुष्पोंके पंखे बनाकर श्यामसुन्दरकी वयार करते थे ॥ १७ ॥ कोई ग्वाल स्नेहभरी बुद्धिसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी नींद किसी प्रकार न उचट जाय इससे ऐसे ऐसे मनोहर मलारोंके पद सहज सहजमें गाते थे ॥ १८ ॥ इस प्रकार अपनी मायासे अपना ईश्वररूप छिपाये नई २ लीला करके गोपोंके बालकोंको अनुकरण करते, लक्ष्मी जिनके चरणोंमें लोटें वह श्रीकृष्ण सुखधाम ग्रामके रहनेवाले ब्रजवासियोंके संग उनकी इच्छा-नुसार खेल खेलते थे. बीच बीचमें कभी ईश्वरपनकीभी लीला दिखला देते थे ॥ १९ ॥ बलराम श्यामसुंदरके मित्र श्रीदामानाम गोप, सुबल, सतोक, आदिक गोप प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे ॥ २० ॥ हे राम ! हे राम ! हे दीर्घबाहो दुष्टोंके दलनहारे श्रीकृष्ण !

चौ०–हमको अतिशय क्षुधा सतायो । घरहूते भोजन नहिं आयो ॥
क्षुधा मिटनकी जौन उपाई । सो हम तुमको देहिं बताई ॥

यहांसे थोड़ीसी दूर पर तालके वृक्षोंका एक बड़ा गम्भीर वन है ॥ २१ ॥ उस ताल-वनमें बहुतसे तालनके फल वृक्षोंके नीचे टूटे पड़े हैं और भी टूट टूटकर बहुतसे गिरते-हैं परन्तु धेनुकासुर दैत्य वहां रहता है उसने वह फल वहां रोंक रक्खे हैं, न वह आप खाताहै और न किसी दूसरेको खाने देताहै ॥ २२ ॥ हे राम ! हे कृष्ण ! वह दैत्य बड़ा पराक्रमी और बलशाली है, सदा गधेका रूप धारण किये रहता है और उसके समीप उसीके समान बड़े बड़े योद्धा उसीकी जातिके बहुतसे असुर उसके संग रहते हैं और उनके बीचमें वह मंडली बनाये बैठा रहता है ॥ २३ ॥ हे दुष्टदमन ! वह दुष्ट जहां कहीं मनुष्यको देखता है उसको खाजाता है, इस डरसे कोई मनुष्य उस वनमें नहीं जाता और पशु पक्षियोंने भी उसके भयके मारे वह वन छोड़दिया है ॥ २४ ॥ आजतक किसीने नहीं खाये वह ऐसे सुगन्धित और मधुर फल हैं, न मानो तो चारों ओर उनकी सुगन्ध फैल रही है सूँघके देखलो ॥२५॥ हे कृष्णचन्द्र ! उनकी सुगन्धसे हमारे मन लुभायगये हैं तुम वह फल लाकर हमको दो उन फलोंके खानेको हमारी बड़ी इच्छा है,जो आपकी भी इच्छा हो तो उस वनको चलैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार मित्रोंके वचन सुन उनको प्रसन्न करनेके लिये सब मित्रोंको अपने संग ले दोनों भाई हँसकर ताल वनको चलदिये॥ २७॥ वहां

–दिया कि, हे भैय्या लक्ष्मण ! द्वापरमें हम तुमको अपना बडा भाई बनाकर हम तुम्हारी सेवा करेंगे, तुम्हारा नाम बलदेव होगा और हमारा नाम विपिनविहारी होगा, इसलिये शेषजी विष्णुसे बडे हुए ॥

जाकर बलदेवजीने ताल बजाकर हाथसे तालके वृक्षोंको हिलाया तो फलोंके ढेरके ढेर पृथ्वीपर होगये, जैसे मतवाला हाथी वृक्षोंको हिलाकर फलोंके ढेरके ढेर नीचे डाल देता है ॥ २८ ॥ पृथ्वीपर फलोंके गिरनेका शब्द सुनकर वह गर्दभरूप धेनुकासुर पर्वतोंसमेत पृथ्वीको कम्पायमान करता दौड़कर बलरामजीके सन्मुख आया ॥ २९ ॥ उस महाबलवान् धेनुकासुरने शीघ्रतासे आनकर दोनों पिछले पावोंसे बलदेवजीके हृदयमें एक दुलत्ती मारी और गम्भीर शब्दसे रोंकने लगा ॥ ३० ॥ हे राजन् ! क्रोधमें भरकर धेनुकासुरने फिर आनकर मुख फेर बलदेवजीके पिछले पावोंकी एक दुलत्ती और मारी ॥ ३१ ॥ तब तो बलदेवजीने उसकी दोनों टाँगें एक हाथसे पकड़ कर ऐसे घुमाया जैसे लड़के गोफन घुमाते हैं जब उसके प्राण निकल गये तो फिर फिराकर एक तालके वृक्षके ऊपर फेंक दिया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जब धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उसके फेंकनेसे वह अत्यन्त भारी तालका वृक्ष टूटकर पृथ्वीपर गिरगया, उसके गिरनेसे चारों ओरके वृक्ष टूट टूट कर पृथ्वीपर गिर गये, एककी चपेटसे एक, इस प्रकार अनेक वृक्षोंका चूरा होगया ॥ ॥ ३३ ॥ बलदेवजीने लीला करके जो धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उस गर्दभदेहकी चपेटसे सर्वत्र ताल बनके वृक्ष काँपने लगे, जैसे महावेगकी आँधीसे सब पृथ्वीतलके वृक्ष कम्पायमान होजाते हैं ॥ ३४ ॥ बलदेवजीके इस पराक्रम करनेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि वह अनन्त और जगदीश्वर हैं और यह विश्व उनमें ओतप्रोत होता रहता है जैसे वस्त्रके तानेबानेमें ओतप्रोत होता रहता है ॥ ३५ ॥ जब धेनुकासुर मरगया, तब उसके भाई बन्धु जातिवाले सब गधे क्रोधित होकर श्रीकृष्ण बलदेवके ऊपरको झपटे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भाइयोंके सामने जो जो गधे आये, उनकी टाँगे पकड़ पकड़ घुमाय घुमाय वृक्षोंके ऊपर फेंक दिये ॥ ३७ ॥ उस कालमें लाल लाल तालके फलोंके समूहसे, श्वेत श्वेत मरेहुए गधोंकी लोथोंसे, हरी हरी तालके वृक्षोंकी शाखा-ओंसे और काली काली उन वृक्षोंकी जड़ोंसे, पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी, जैसे लाल, श्वेत, हरी, काली घटाओंसे आकाश शोभायमान दिखाई देता है ॥ ३८ ॥ ऐसे अद्भुतचरित्र कृष्ण बलदेवके देख देख देवतालोग प्रसन्न हो होकर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करतेथे और अनेक प्रकारके बाजे बजाय बजाय स्तोत्र पढ़ते थे ॥ ३९ ॥ जब धेनु-कासुर मारागया तो फिर मनुष्य निःसन्देह होकर उन तालवृक्षोंके फलोंको खाने लगे और गायेंभी निर्भय होकर घास चरने लगीं ॥ ४० ॥ और अनुचर गोप जिनकी स्तुति करते, कमलपत्रसे जिनके विशाल नेत्रोंको देखते और परमपवित्र जिनकी कथा और चारित्रोंको सुनते, सब ग्वालबाल श्रीकृष्ण बलदेव सहित व्रजमें आये ॥ ४१ ॥ गायोंके खुरोंकी जो धूरि उड़ती थी उसके पड़नेसे जिनके केश धूसर वर्ण हो रहे हैं, मोरपुच्छोंके मुकुट शीशपर धारण कर रहे हैं, वनके पुष्पोंके तुर्रे कानोंमें लटक रहे हैं, तिरछी चित-वनसे मनोहर मुसकानसे, इधर उधरको देखते, बाँसुरी बजाते, ग्वाल बाल जिनका यश गाते, उन श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द यशोदानन्दके देखनेके लिये सब गोपी जुड़ मिलकर

आई ॥ ४२ ॥ ब्रजबालाओंने नेत्ररूपी भौरोंकी श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलके रससे दिन दिनकी तृष्णा और श्यामसुंदरके विरहकी तापको शान्त करके लाज भरी मुसकानसे और कटाक्ष भरी चितवनसे जो आदर सन्मान किया उसको स्वीकार करके ब्रजमें आये ॥ ॥ ४३ ॥ पुत्रोंमें जिनका परमस्नेह वह यशोदा और रोहिणी अपने पुत्रोंकी इच्छानुसार सब पदार्थ उपस्थित रखती थीं ॥ ४४ ॥ ब्रजविहारीने ब्रजमें आनकर उबटन स्नान किया तो मार्गका सब श्रम दूर होगया उस समय दोनों भाइयोंने सुन्दर सुन्दर पीताम्बर पहिर सुगन्धित पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण कर चन्दन चोवा लगाकर ॥ ४५ ॥ जो निश्चित हुए तो बड़े प्रेम प्रीतिसे माता माखन, मिश्री, मिष्टान्न और षट्रस भोजन परोसकर लाई, उसको बड़ी प्रीतिसे भोग लगाया और आनन्दपूर्वक सुन्दर शय्यापर जाकर शयन करने लगे ॥ ४६ ॥ हे राजन्! इस प्रकार वृन्दावनविहारी भक्तनहितकारी श्रीकृष्णभगवान् नित्य प्रति वृन्दावनमें विहार किया करते थे. एक दिन बिना बलरामको संग लिये अकेलेही ग्वाल बालोंको साथ ले यमुनाके तीरपर धेनु चराने गये ॥ ४७ ॥ मार्गमें ग्रीष्मकी धूपसे अत्यन्त व्याकुल होकर गाय और ग्वालबाल बहुत तृषित हुए, तब सब प्यासके मारे कालीदहमें जाय विषसे दूषित यमुनाजीका जल पिया ॥ ४८ ॥ हे राजन्! उस जहरीले जलके पीनेसे ऐसे अचेत हुये कि, तन मनकी कुछ सुधि बुधि न रही, मृतककी समान निष्प्राण हो, मुरझाकर यमुनाके किनारे पर गिरगये और यहाँ श्रीकृष्ण वंशीवटकी छाँहमें पड़के सोगये जब आँख खुली तो ग्वाल बालोंका कहीं पता नहीं, तब इधर उधर देखभाल मनहीं मनमें कहने लगे कि, अभी तो सब ग्वालबाल मेरे साथही गायें चरा रहे थे, न जानिये अब कौनसे वनको चले गये. कहींसे गायोंके रम्भानेका और ग्वालोंके गानेका शब्द भी सुनाई नहीं आता, क्या कारण? तब एक वृक्षपर चढ़कर इधर उधरको देखा जब दूर तक दिखाई न दिये तो गायों और ग्वालोंका नाम लेले कर पुकारने लगे ॥

दोहा-काली, धौरी, धूमरी, खैरी, गोरी, लाल।
श्रीदामा दामा, सुबल, कहाँ अहो हो ग्वाल ॥

इतनेमें कालीदहकी ओर गायोंके खुरोंके चिह्न दिखाई दिये, उनको देखते देखते, वन, कैर, ढूँढ़ते ढूँढते श्रीकृष्ण कालीकुण्डके निकट पहुँचे, वहां ग्वालबालोंको गायोंसमेत अचेत पड़ा देखा तो मनमें विचार किया कि, इन्होंने कालीदहका जल पिया इसालिये मूर्च्छित होगये और कोई कारण नहीं परन्तु अब मैं क्या करूं? और घर पर जानेसे इनके माता पिता मुझसे बूझेंगे कि, हमारे बालक कहां हैं तो मैं उनको क्या उत्तर दूंगा? और जो मैंने पहिले ब्रह्माके चुरालेजानेसे दूसरे बछेरे और बालक रचेथे, अब जो फिर उसी प्रकार रचता हूं तो ब्रजके लोग यहां आनकर इनको देखेंगे तो कहेंगे, यह तो सब बालक और बछेरे यहां मरे पडे हैं ब्रजमें यही बालक और बछेर कहांसे आये ऐसा विचार ॥ ४९ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णभगवान् अपने मित्र ग्वाल बाल और गायोंको

मूर्च्छित देख, अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर सबको जिला दिया ॥ ५० ॥ जब सब गायें और ग्वालबाल जी उठे और श्रीकृष्णको अपने सम्मुख खडा देखा, तब तो एकाएकी सबके सब रोकर श्यामसुन्दरके गलेसे लिपट गये और कहने लगे कि, हे प्राणप्यारे ! हमारे जीवनआधार तुम विना हमारी यह दुर्दशा हुई तब श्रीकृष्ण भगवान् भक्तभयभञ्जन मुनिमनरंजन बोले कि, तुम मुझे सोतेको छोडकर यहां चले आये और इस कालीकुण्डका विषैला जल पिया इसीसे तुम सब मूर्च्छित होगये थे अव तुम सव लोगों पर परमेश्वरने अनुग्रह किया जो तुम्हारे प्राण बच गये, मदनमोहनके मधुर वचन सुन सब बालक बोले कि, हे जीवनआधार ! कालीदहका जहरीला जल पीनेसे हमारी यह दुर्दशा हुई जो आप हमारे संग होते तो क्यों यह हमारा बेढँग होता. हे प्राणनाथ ! अब तुमने आनकर हमको प्राणदान दिया पहलेहीसे आप व्रजकी रक्षा करते आये हो जहाँ जहाँ हम लोगोंपर भीर परीहै वहीं वहीं आनकर आपने हमारी रक्षा करी, जब सन्ध्या हुई तो श्रीकृष्ण सबसे बोले कि, अब सब घरको चलो अन्धेरा होता आवे है, श्रीकृष्णका वचन मान सब ग्वालबाल गायोंको आगे कर. हेर देते, हरिगुण गाते, वंशी बजाते, वृन्दावनकी ओरको चले. मुरलीकी धुनि सुन सब व्रजबाला अपने अपने घरोंके काम धन्धेको छोड श्यामसुन्दरके दर्शन करनेके लिये मृगीकी समान धाईं और उनकी मनोहर छबि देख अपने हृदयको शीतल किया और एक एकको उँगलीसे बतलाने लगीं किः—

चौ०–वह देखो आवत हैं मोहन। सुवल सुदाम सुदामा गोहन ॥

कवित्त–मोरनके मुकुट माथे हाथमें लकुट राजै साजै गुञ्जमाल गले ललित तरनते। सुन्दर कपोल श्रुति कुण्डलोंकी झलक राजे जुलफ अमोल भरे गोजर परनते ॥ गायनके आछे पाछे काछे काछनीको काछ गौरी राग गावत गवावत सखनते। आनँदके कन्द व्रजलोचन चकोर चन्द मन्द मन्द आवत गोविन्द वृन्दावनते ॥

गायोंको घेरोंमें बाड़, सब बालक अपने अपने घर गये और कृष्णचन्द्रका यश अपने माता पिताओंसे कहने लगे और फिर नंदरानीके सम्मुख जाकर सब ग्वालबाल बोले कि, आज हम विना कृष्णके बूझे धोखेसे कालीदहमें चले गये वहाँ जल पीतेही हम और सब गायें मूर्च्छित होकर यमुनाके किनारे गिर गये. तब कृष्णचन्द्रने जाकर अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे हम सबको देखकर जिला दिया ॥ ५१ ॥ अब हमने श्रीकृष्णकी कृपादृष्टिका प्रभाव देख लिया, जिनके विष पीकर प्राण निकल गये थे और फिर जी उठे, हम सब इसको अपने परमप्यारे कृष्णकी कृपादृष्टि मानते हैं ॥

दोहा–अब हमको कुछ भय नहीं, मन चाहै तहँ जायँ।
जब हमपर हरिकी दया, तब हम काहि डरायँ ॥

सोरठा–परत गाढ जब आय, तब तब होत सहाय हरि।
चिरजीवहु दोउ भाय, यशुमति यह तेरे कुँवर॥

बालकोंके मनोहर वचन सुन यशोदा अत्यन्त प्रसन्न हो मनहीं मनमें कहने लगी कि, गर्गमुनि जो जो कह गये थे वह सब बातें अब सत्य होती हैं, इन दोनोंके नित्य नये नये चरित्र सुननेमें आते हैं, यह कोई परमपुरुष हैं, इन्होंने हमारे पूर्वजन्मके पुण्यसे ब्रजमें आनकर अवतार लेलिया है. धन्य हैं हमारे भाग्य जो हमने इनको पुत्र करके पाला है, यह कह यशोदा और रोहिणीने राम श्यामको हृदयसे लगा लिया और गरम जलसे स्नान कराय षट्रस भोजन जिमाय शय्यापर सुलादिया, उस समय शय्यापर पडे पडे अपने मित्रोंके शुभचिंतक भक्तोंकी चिन्ता मिटानेवाले कालीनागकी चिन्ता करने लगे कि, गायें चरानेके लिये ग्वालबाल तो नित्य वनमें जाहींगे और मैं कभी संग गया कभी न गया और मेरे सखाओंको फिर कष्ट हुआ तो अच्छा नहीं, इसलिये॥

चौ०–विषधरको रहनो जल माहीं। वृन्दावन ढिग नीको नाहीं॥
काली निकस यहाँते जाई। अब कछु ऐसो करूँ उपाई॥

ऐसा विचार करतेही करते श्यामसुन्दर निद्राके वश होगये, देखो! शिव, ब्रह्मा, सनकादिक जिनको रात दिन ध्यावते हैं और दर्शन नहीं पाते वह अचिन्त्यरूप परब्रह्म सच्चिदानन्द नन्दके भवनमें अत्यन्त आनन्दसे शय्यापर सोतेहैं और नन्दजी भी अपना पलँग बिछाये उनके धोरे सो रहेथे और यशोदा घरके काम धन्धेमें लग रही थी, इतनेमें:–

चौ०–जाग परे नँदकुँवर कन्हैय्या। कहाँ गई मो ढिग ते मैय्या॥
इत उत चितवत अति अकुलाई। मैय्या मोहिं बचावहु आई॥
मैय्या मोहिं लगत डर भारी। वेग आव तू करत कहारी॥

मनमोहनकी यह बात सुन नंद और यशोदा अचानक चौंक कर उठ बैठे और दौड़कर कृष्णको गोदीमें उठालिया और घबराकर कहने लगी कि, बेटा! क्या हुआ? कृष्ण बोले कि, मैय्या मैंने ऐसा दुःस्वप्न देखाहै कि, परमेश्वर कुशल करैं. किसीने मुझको यमुनामें ढकेल दिया, यशोदा बोली मैं तुझको रात दिन वर्जती रहती हूं और तू यमुनापर जाये विना नहीं रहता, जानै तेरा वहाँपर क्या धरा है, परन्तु तू इस बातका शोच मत करै खेलकी बातका तुझको ध्यान रह गया है कुछ चिन्ता नहीं बालकोंका ध्यान आठोंपहर खेलहीमें लगा रहताहै इस प्रकार कृष्णको समझा बुझाकर एक ब्राह्मणको बुलाय कृष्णके हाथसे कुछ दान पुण्य करादिया और स्वप्नकी बात झूठी समझकर अपने मनमें धैर्य किया॥५२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः॥१५॥

दोहा–इस सोरह अध्यायमें, कालीदहमें जाय।
नाथो काली नागको, पीछे करी सहाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! कालिन्दीको कालियसर्पके विषसे बिगरी देखकर

प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाके जलको शुद्ध करनेके लिये उस कालिय सर्पको वहाँसे निकालदिया ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्ने बूझा कि, हे ब्रह्मन्! भगवान्ने महागम्भीर जलके भीतर कैसे कालियनागको दण्ड दिया और वह किसकारण कालिन्दीके महागम्भीर जलमें वास करता था सो कृपाकर विस्तार सहित वर्णन कीजिये? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी जो अपने भक्तोंको दिखानेके लिये अनेक अनेक प्रकारके चरित्र करते हैं, सो उन भक्तभावन भगवान्के गोपालनादिक परमोदार प्राणाधार चरित्रामृतको श्रवणद्वारा पान करनेसे कौन पुरुष तृप्त हो सक्ता है? ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, कालिन्दी (यमुना) में कालिया नागका एक कुण्ड था, जिसमें विषकी अग्निसे नित्य जल औटता रहता था और आकाशके उड़नेवाले पक्षी उस गरलकी तापसे जलकर उस जलमें गिर पड़ते थे॥ ४ ॥ और उस विषैले जलकी लहरोंके जलकणोंसे मिली पवन जो चलती थी उसके लगनेसे किनारेके वृक्ष और घास सूख जाती थी और जो जीव उस कुण्डके तटपर भूलसे चले जाते तो उसीसमय उस जलकी झलसे जलकर तड़फ तड़फ मरजाते थे ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें कहा कि, इस कुण्डमें ऐसे विषशाली सर्पका रहना अत्यन्त दुःखदायक है, क्योंकि जो कोई पशु पक्षी वा पुरुष इस जलको पीताहै वह एक क्षणभरभी नहीं जीता, उसी समय अकुलाकर मर जाताहै और दूसरे यमुनाके जलको दोष लगता है, इसलिये ऐसे दुष्टका यहाँसे निकालनाही अच्छा है, यह जो यहां रहा तो लाखों जीवोंकी हत्या करेगा, जिसके विषकी लपटसे चार कोशतक जल भदकता रहता है, ऐसा कोई सामर्थ्यवान् नहीं जो उस कुण्डके पास जासके जब इस प्रकार श्रीकृष्णने विचार किया, तब नारदजी उन्हींकी प्रेरणाके अनुसार कंसके पास गये, कंस उनको देखतेही खड़ा होगया और दंण्डवत् प्रणामकर बड़े आदरसत्कारसे ऊँचा आसन देकर बैठाला, तब नारदने कंससे बूझा कि, हे राजन्! कुशल तो है? आपका तन क्षीण और मलीन क्यों है? कंस हाथ जोड़कर कहने लगा, हे नाथ! आपके चरणारविन्दोंके प्रतापसे सदाही कुशल रहती है परन्तु एक शोच बड़ा भारी है कि, गोकुलमें नन्दके यहाँ दो बालक बड़े उत्पाती और घाती उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने पूतना, तृणावर्त प्रभृति दैत्योंको एक पलमें मार कर गिरा दिया, उनके पराक्रमको देख देखकर मुझको अपने प्राण बचनेमें सन्देह जान पड़ता है ॥

चौ०-यह दोउ बन्धु महाबलधारी। जान परत है कोउ औतारी ॥
देखन माहिं अवस्था थोरी। इने अघासुर धेनुकधोरी ॥
अब कोउ ऐसो करो उपाऊ। मारे जायँ कृष्ण बलदाऊ ॥
जो यह जियत रहे दोउ भाई। मोर मरण जानहु मुनिराई ॥

कंसकी बात सुन मुनि मनहीं मनमें मुसकाकर बोले कि, हे पृथ्वीनाथ! आपका कहना सत्य है वह दोनों बालक अवतारही हैं और यह भी मैं जानता हूं कि, यह तुम्हारे प्राणोंके भी ग्राहक हैं, ऐसा उपाय करना चाहिये जो यह पृथ्वीपर न रहैं. एक यत्न तो मैं बतला-

ताहूँ जो आपसे होसके, कंस बोला क्या ? नारदजीने कहा कि, जहाँ कालियनाग यमुनामें रहताहै, वहां अनेक प्रकारके कमल फूल रहे हैं, उन कमलके फूलोंके मँगानेके लिये नन्दके पास एक दूतको भेजो, नन्द यह बात सुनकर अपने मनमें बहुत भयभीत होगा, क्योंकि वह फूल उसको किसीप्रकार नहीं मिलसकेंगे, या तो वह गोकुल छोड़ कहीं अन्तको भाग जायँगे और या वह अपने बालकोंसे फूल मँगावेंगे, मैं यह भी जानताहूँ कि, वह बालक निश्चय फूल लेने जायँगे वहां कालियनाग उस कुण्डमें रहताही है उसी-समय दोनोंको डसलेगा, तुम्हारा पीछा सहजमें छूटजायगा. यह सुन कंस अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगा कि, हे मुनिराज ! आज आपने यह अच्छा उपाय बताया, यह कह नारदमुनि तो हरिगुण गाते वीणा बजाते चलदिये और कंसने उसी समय एक दूतको बुला नन्दको यह पत्र लिखा-एक करोड कमल कालीदहके कल प्रातःकालही हमारे पास भेज दो और जो कल कमल न भेजोगे तो तुमको पूरा दण्ड दिया जायगा तुम्हारा घरवार खोदकर बगेल दिया जायगा. तुमको देशनिकाला होगा और तुम्हारे पुत्रोंको बन्दीगृहमें बन्द कर दिया जायगा. दूत पत्र लेकर गोकुलमें नन्दजीके पास गया परन्तु श्रीकृष्ण सर्वांतर्यामी इस बातको पहिले जानकर उस दिन गायें चरानेके लिये बनको नहीं गये और वहीं बालकोंके संग बालक्रीड़ा करते रहे. उसी समय दूतने आकर नन्दरायको पत्र दिया और सब सन्देशा सुनाया, नन्दजी पहिले तो सुनतेही घवरागये फिर कुछ मनमें धैर्य धरकर सब गोपोंको बुलाकर कंसके दूतका कहा हुवा सब वृत्तांत सुनाया, सुनतेही सब शोच करने लगे कि,बैठे बैठाये परमेश्वरने किस विपत्तिमें डालदिया बड़ी कठिनाई आनकर लगी क्या उपाय करना चाहिये एक करोड कमल कालीदहके कौन लासक्ता है ? ऐसी किसकी सामर्थ्य है ? और उसने यह भी कहला भेजा है कि, जो कलको कमल न पाऊँगा तो तेरे दोनों पुत्रोंको पकड मँगाऊँगा अब इस समय हमको कोई सगा नहीं जान पडता, जो दोचार दिनके लिये उसीके यहाँ अपने पुत्रोंको भेज देते किसी किसीने कहा चलो कंसहीको हाथ पाँव पडकर मनावें जो वह मान जाय तो बहुतही अच्छा है, नन्दजी बोले कि, जो वह मानता तो ऐसा उपद्रव क्यों मचाता ? भाई जो कोई रक्तका पियासा होता है वह पानीसे तृप्त नहीं होता ॥

दोहा-मेरे सुत दोउ नृपति उर, खटकत हैं दिनरात ।
आज कह्यो ऐसो वचन, बल मोहनपर घात ॥
काल्ह कंस अति कोप कर, चढ़िहैं व्रज पर धाय ।
को राखै कित जाइये, भयो मरण अब आय ॥

और मुझको अपने मरनेका कुछ शोचभी नहीं है वडा भारी शोच तो कृष्ण बलदेवका-है वह मुझको और मेरे प्राणको, घर बारको, चाहै अभी लेले, परन्तु मेरे प्राणाधार कृष्ण बलरामसे कुछ न कहै, नन्दके वचन सुनकर सब ब्रजवासियोंके नेत्रोंमें जल भर आया और कोई कुछ न कहसका; उधर नन्दरानी और रोहिणी अत्यन्त व्याकुल हो रोरो कर

कहने लगीं कि, हे विधाता! तैंने हमें किस विपत्तिमें डाल दिया? भला कालियदहके कोटि कमल कैसे हम कंसको देसक्ते हैं. हे राजन्! नन्द यशोदा रोहिणी इत्यादि सब गोप गोपी शोच कररहे थे जब वृन्दावनविहारीने जाना कि, मेरे माता पिता पर इस समय बड़ा भारी कष्ट है यह विचार मंदिरमें आये सबको उदास और रोता देख मातासे बूझा कि हे मैया! आज क्या हुवा जो सब रो रहेहैं, कृष्णको हृदयसे लगाकर यशोदा बोली कि, मेरे रोनेका वृत्तान्त अपने पितासे बूझो माताकी बात सुनतेही श्यामसुन्दर पिताके पास गये और उनसे बूझा कि पिताजी! आज सब लोग क्यों घबरा रहेहैं और माता भी बहुत उदास बैठी है मुरलीमनोहरके मधुर वचन सुन नन्दजीने कहा कि:-

चौ०-जबते जन्म भयो सुत तेरो। करते कंस उत्पात घनेरो॥
केती करवर टरी तुम्हारी। कुलदेवन कीन्ही रखवारी॥

उस दुष्ट कंसने तुम्हारे मारनेके लिये सैकडों उपाय किये, कभी पूतनाको पठाया कभी तृणावर्त्त आया जहाँतक उससे बसाया वहांतक उसने सताया परंतु परमेश्वरने तुम्हारे ऊपर अनुग्रह रक्खा. परंतु अब क्या किया जाय?

दोहा-कालीदहके फूल अब, फठये भूप मँगाय।
तबसे यह गाढी परी, को करसकै सहाय॥
लिखो कंस मोहिं डाटिकै, जो नहिं आवैं फूल।
बाँध मँगाऊँ सुत सहित, करौं ब्रजहि निर्मूल॥

हे पुत्र! जिस कालीदहके जलकी विषाग्निसे चार चार कोसके पशु पक्षी तक जलकर भस्म होजाते हैं फिर भला वहाँ किसकी सामर्थ्य है जो फूल लासकै इस कठिन कार्यसे मेरा चित्त उदास होरहाहै, श्रीकृष्ण बोले कि, हे पिता! तुम वृथा इतना सन्देह क्यों करते हो जिस देवताने पहिले आपकी रक्षा की थी उसी देवताका स्मरण करो वही देवता अब आपकी रक्षा करेगा और कंसको फूल पहुँचावेगा और वही आपका शोच मिटावेगा, वही कंसके केश पकडके मारेगा, वही असुरोंको मार कर भूमिका भार उतारेगा, आप कुछ सन्देह मत करो श्रीकृष्णकी बात सुनकर सब ब्रजवासियोंको धैर्य हुवा, और सब अपने अपने इष्टदेवको मनाय मनाय विनती करनेलगे॥

चौ०-हे मुकुन्द गोविन्द मुरारी। दुष्ट निकन्दन जन हितकारी॥
शरण शरण प्रभु शरण तुम्हारी। अबहूं करहु सहाय हमारी॥

इस प्रकार सबको समझाय बुझाय आप ग्वालबालोंका संगले यमुनाके निकट जाय सुदामासे गेंद मँगाय गेंदका खेल खेलने लगे, एक एकको मारता था, कोई रोकता था, कोई पुकारता था कि, एक टोल और लेजाता, कोई रोरो कर भागता था, कोई ऊपरको उछलता था, कोई किलकारी मारकर उछलजाता था, कोई चलते गेंदको बीचकी बीचमें रोंकलेता था, महाअद्भुत कौतुक होरहा था इसीप्रकार खेलते खिलाते कालीकुण्डके निकट

पहुँचगये क्योंकि उन भक्तभावन भगवान्‌को तो अपना कार्य सिद्ध करनाही था, श्यामसुन्दरने एक लडकेके मारनेके बहानेसे गेंद कालियदहमें फेंकदिया, जब गेंद जलमें जापडा तो खेल बन्द होगया और श्रीदामाने दौडकर श्यामसुन्दकी फेंट पकडली कि, मेरा गेंद तैंने जान बूझकर दहमें डालदिया है मैं अपना गेंद जब तक न लेलूँगा तब तक तुझको कभी न जाने दूंगा, तुम मुझको और सखा मत समझना मैं बडा बैंडा हूँ मेरे सामने एक ढिठाई आपकी नहीं चलनेकी, मैंने अच्छे अच्छोंका मुँह बिगाड दिया है, सब संगके सखा ताली बजा बजा कर हँसने लगे कि, पहिले तो उसका गेंद यमुनामें डालदिया, अब हम भी तो देखें कहाँसे दोगे. श्रीकृष्ण बोले कि, अरे श्रीदामा ! मेरी फेंट छोडदे, एक गेंदके लिये इतना क्रोध करना अच्छा नहीं, उसके बदलेका दूसरा गेंद मुझसे लेले, परन्तु मेरी फेंटको छोडदे और मेरी बराबरी मतकर श्रीदामा बोला सुनो भाई ! मैं जानताहूँ कि, तुम नन्दरायके ढोटा हो, परन्तु मैं किसी प्रकार तुमसे छोटा नहीं और लेन देनमें क्या छुटाई बडाई मेरा गेंद देदो और अपने घरको चले जाओ और मेरे आगे बातें बनानेसे काम नहीं चलानेका. देख ! बहुत बकवाद मतकर जिह्वाको रोककर बात कह । कृष्ण बोले क्योंरे ! मैंने तेरे सामने क्या बात बनाई ? क्या तू नहीं जानता हमारी बातको:—

कवित्त-पूतना बकासुरको मारके विध्वंस कियो तृणावर्त्त मारो जाकी जगमें अवाई है। शकटासुर दैत्यको आकाशमें पछारो जाय ताको मरण सुनके पछार कंस खाई है॥ अघासुर अजगरबन आन परो मुख पसार अग्निरूप धार ताकी जिह्वा जराई है। सच्च ही बताना तुझे कसम शालिग्राम जीकी तेरे आगे बात मैंने कौनसी बनाई है ॥ १ ॥

श्रीदामा बोला तुमने कागासुरको और बत्सासुरको मारा यह मैं जानताहूँ फिर क्या मुझेभी मारडालोगे ? यह बातें आजही हैं कलको सब चतुराई और बीरपन देखा जायगा जब कंस कमलके फूल माँगेगा, जिसके कारण सबेरेहीसे घरमें रोना पीटना पड रहा है और नन्दजी कहते फिरै हैं क्या करैं ? कहाँ जायँ पुत्रोंको कहाँ छिपावें ? पिताकी तो यह गति और पुत्रोंका यह अभिमान ? धन्य है आपकी बुद्धिको, मदनमोहन बोले, अरे श्रीदामा ! तू क्या कंस कंस कहकर मुझे डरारहा है कंस बिचारा क्या वस्तु है ? उसी कंसकी छातीपर चढ, चोटी पकड, मुष्टिक मार मारकर प्राण निकाल दूँगा, जिसको तुमने बडा बलवान् और बुद्धिनिधान समझ रक्खा है, मैं इसलिये यहाँ आया हूँ अभी तेरे देखते२ एक करोड कमल कंसके पास भेजता हूँ और ब्रजवासियोंका सब शोक अभी निवारण करता हूँ. यह कह अत्यन्त क्रोधित हो श्रीदामाको एक धक्का दिया और झटपटकर वहाँ एक बडा ऊँचा कदमका वृक्ष था उसपर जा चढे तब सब ग्वालबाल ताली बजाकर कहने लगे कि, देखो श्रीदामाके डरके मारे श्रीकृष्ण भागकर कदमपर चढगये, यहाँ श्रीदामा रोकर बोला कि, मैं अभी तेरे माता पितासे जाकर कहता हूँ कि, मेरा

गेंद कालियदहमें बगेल आप कूदकर कदमके पेडपर जा चढा, श्यामसुन्दर बोले कि, हे श्रीदामा ! घबराय मत, मैं अभी तेरा गेंद लाता हूँ. यह कह वृन्दावनविहारी अपने प्रियभक्तोंके कार्य सिद्ध करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान्‌ने महावली विपके अभिमानी कालिय नागको देखकर और उसके विषसे विगडीहुई यमुनाको देखकर,दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये जिन्होंने अवतार लिया है. वह श्रीकृष्ण महाराज काँछ बाँध पीताम्बरसे कमर कस, उस महाऊँचे कदम्बके रूखसे ताल ठोंककर कालियकुण्डमें कूदपडे ॥ ६ ॥ पुरुषोत्तम भगवान् जिस समय जलमें कूदे उस समय उनके भारके झटकेसे और सर्पके गरलकी गर्मीसे कालियदहका जल बहुत ऊपरको ऊछला और विपकी लपटोंके प्रभावसे अत्यन्त खारी और महा भयानक तरलतरंगें जलमें उठने लगीं और चारों ओरसे यमुनाका जल सौ सौ धनुषतक फैलगया,भगवान्‌का अनन्त वल है,इस कार्यमें कोई आश्चर्यकी बात नहींहै॥

दोहा-कोमल तनु अति साँवरो, साजे नटवर साज।
जल भीतर पैठे तहाँ, जहँ सोवत अहिराज ॥ ७॥

हे राजन् ! महाबलवान् हाथीके समान जिनका पुरुषार्थ जिस समय कालियदहमें जाकर गिरे, उस समय बलशाली भगवान्‌के भुजदण्डसे ताडित जल शब्दको सुनकर और श्रीकृष्णसे अपने गरका विनाश समझकर कालीनाग और उसकी पत्नी अपने मनमें कहने लगी कि. ऐसा कौन बलवान् है जो मेरे घरमें आनकर धूम मचा रहाहै, जब उससे न सहारागया तब झटपट श्रीकृष्णके सम्मुख धाया (ई) ॥ ८ ॥ दर्शन करनेके योग्य सुन्दरस्वरूप, सुकुमार अवस्था, मेघवर्ण, हृदयमें भृगुलताका चिह्न विराजमान, पीतवसन धारण किये, मन्दहास्य सहित जिनका मुखारविन्द, निर्मल खिलेहुये कमलसे जिनके पद-पंकज, श्रीकृष्ण भगवान्‌को निश्शंक उस विषले जलमें विहार करता देख, अत्यन्त क्रोधित हो वक्षस्थलमें डसनेको दौडा (डी) परन्तु उस मोहनीमूर्तिको निहारकर मोहित होगया (ई) ॥ ९ ॥ जब जलमें कोलाहल पडा और हालाहलकी झरें तरंगोंके संग उठीं और श्रीकृष्णको जलके भीतर बहुत विलम्ब हुवा तब तो सब-ग्वालवाल घबराये और रोरोकर कहने लगे कि, हे मनहरण प्यारे ! तुमने किञ्चिन्मात्र गेंदके लिये इतना परिश्रम क्यों किया ? इस अधम श्रीदामाने तुमको इतना दुःख दिया गेंद मिले वा न मिले परन्तु तुम शीघ्र निकल आओ. क्योंकि इस कालियदहमें कालि-यका बड़ा भय है कहीं तुमको काट न खाय, शीघ्र निकलो; हमको तो एक एक पल तुम विना कल्प कल्पके समान जान पड़ता है, तुम जलसे बाहर क्यों नहीं चले आते, हमसे अकेले नहीं रहाजाता, जब जलशायी जलसे न निकले, तब तो ग्वालबाल व्याकुल होकर शिर पीटने लगे कि, हाय ! हम यशोदा माताको क्या ऊत्तर देंगे, कृष्ण कृष्ण पुकारते थे और मनमें विचारते थे निदान दो लडकोंको वृन्दावनकी ओर भेजा कि, यह सब समाचार नन्द यशोदासे जाकर कहो कि, श्यामसुन्दर जलमें कूदपडे वह दोनों

बालक श्रीदामाको गालियें देते हुये वृन्दावनकी ओरको चले और यहाँ सब बालक मूर्च्छित होगये ॥ १० ॥ तब गाय, बैल वत्स, छोटी छोटीं बछियें, महादुःखी होकर रम्भाने लगीं और टक टकी बाँधकर मनमोहन प्यारेकी ओर देखने लगीं और डरके मारे ऐसे सुस्त होरहे थे मानों रोरहे हैं ॥ ११ ॥ हे राजन् ! यहाँ यशोदाने शोचा किः—

सोरठा—बलदाऊ यदुराय, भूखे होंगे प्रात के।
खेलतते अब आय, मोते भोजन माँगिहैं ॥

यह विचार यशोदा रसोई चढ़ानेके लिये चली, उसी समय सामनेसे एक ग्वालिनीने छींका, यशोदा वहीं ठिटक रहीं और मनहीं मनमें कहने लगी कि, सम्मुखकी छींक विपत्तिकी मूल है, उस छींकका दोष मिटाकर थोडी देर पीछे फिर चोकेकी ओरको चली तो मंजारी बाट काट गई, तब तो यशोदा बहुत उदास हुई और कहने लगी कि, न जानिये आज परमेश्वरको क्या करना है जो बारंबार मुझको ऐसे अशकुन होते हैं, यह कह घबराकर घरसे बाहर निकल आई और कहने लगी कि, न जानिये आज मेरे रामकृष्ण प्यारे कहाँ हैं ? इतनेमें बाईं ओर काग बोला, दाहिनी ओरसे खरका शब्द सुनाई आया तब तो यशोदा और भी व्याकुल हुई, कभी बाहर आती थी कभी घरमें जाती थी और बारंबार मुखसे यही शब्द निकलता था, हे राम ! हे कृष्ण ! यशोदाका रोना सुन नन्दजी दौडे दाहिनी ओरसे किसीके रोनेका शब्द सुना, श्वानने कान फट फटाये, मस्तकपर कौआ आन बैठा तब तो नन्द अत्यन्त व्याकुल हुये और कहने लगे कि, आज कुछ न कुछ विघ्न अवश्य होगा, क्योंकि कलसे तीन प्रकारके उत्पात ब्रजमें होरहे हैं, पृथ्वी डामाडोल होरही हैं आकाशसे तारे टूट टूटकर गिररहे हैं, पुरुषोंकी बाईं भुजायें और बायें नेत्र फडकरहे हैं यह उत्पात विपत्तियोंको सूचित करते हैं ॥ १२ ॥ नन्दप्रभृति उन उत्पातोंको देखकर अत्यन्त भयभीत हुये कि, आज बिना बलदेवको संग लिये कृष्ण अकेले गायें चरानेको गये हैं ॥ १३ ॥ उन खोटे उत्पातोंसे श्रीकृष्णको निधन मानकर और उनके प्रभावको कुछ न जानकर श्रीकृष्णमें जिनका तन, मन, धन लग रहा था, वह इन कठिन उत्पातोंके भयसे अत्यन्त पीडित हो कहने लगे कि, कहीं यशोदाने यही वृत्तान्त न सुनाहो जो इस प्रकार रुदन कररही हैं, घर अनकर देखा तो यशोदा अति घबराई हुई कुररीकी नाईं कृष्ण कृष्ण पुकार रही है, नन्दजी रोकर बोले कि, हे प्रिये ! क्यों ऐसा विलाप कर रही हो ? क्या सुना ? यह तो कहो कृष्ण बलराम तो कुशल हैं ? यशोदा बोली स्वामी ! मुझे कुशल नहीं जान पडती, आज मैं जिस कामको हाथ उठाती हूँ, अशकुनही अशकुन होते हैं ॥

दोहा—चली रसोई करन जब, छींक भई मोहि आज।
आगे होय बिलारि पुनि, गई दूसरे भाज ॥

एक तो कंसकी पाती सुनकर छातीमें दाहसी लग रही थी और दूसरे इन कुशकुनोंको

देख देखकर और भी हृदय भडकने लगा, न जानिये रामकृष्णको कहीं उस दुष्टने पकड मँगाया, वा और कहीं चलेगये? नेत्रोंमें जल भरकर नन्दजीने कहा कि,हे सुभद्रे! आज मुझकोभी बुरे बुरे शकुन हुए हैं ॥ १४ ॥ उस समय नन्द यशोदादिक सब व्रजवासी बाल, वृद्ध, स्त्री, अत्यन्त व्याकुल हो रोते पीटते पशुकी नाईं राम कृष्णके खोजनेको गोकुलसे बाहर निकले, क्योंकि पूर्ण प्रेमसे जिनके मन श्रीकृष्णमें लग रहे थे ॥ १५ ॥ "मधुवंशी भगवान् बलदेवजी किसी वनमें बालकोंके संग विहार कर रहे थे, उनसे-भी किसीने कहा कि, आज श्रीकृष्ण खोय गये हैं, उनके ढूँढनेके लिये नन्द यशोदादिक सब व्रजवासी अति अधीर रोते चिल्लाते फिरते हैं और तुम्हारा भी नाम लेलेकर पुकारते हैं" "बलदेवजी उनको अधीर व्याकुल समझकर हँसे" परन्तु कुछ मुखसे न कहा, क्योंकि वह तो अपने छोटे भ्राता श्रीकृष्णकी महिमाको अच्छी रीतिसे जानते थे कि, वह किसीके वशके नहीं ॥१६॥ वह सब व्रजवासियोंने कृष्णप्यारेको ढूँढते ढूँढते मार्गमें कृष्ण-चन्द्रके चरणचिह्न देखे, उन चरणचिह्नोंको देखकर सब पुकार कर कहने लगे कि, देखो भाई और ग्वाल बालोंकेभी चरणचिह्न पृथ्वीपर लग रहे हैं और गाय बछड़े भी उनके संग हैं, विदित होता है कि यमुनाकी ओरको गये हैं, यह कह सब व्रजवासियोंने कुछ कुछ धैर्य धारण किया ॥१७॥ हे राजन्! वह लोग गायोंके मार्गमें और ग्वालोंके पदोंके बीचमें श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् जगदीश्वरके चरणोंके चिह्न कमल, यव, अंकुश, वज्र, ध्वजाकी रेखा देखते देखते बहुत शीघ्र चले,जिस प्रकार योगीजन वेदमार्गमें परमतत्त्वको ढूँढनेके लिये परिश्रम करते हैं, "दूरसे देखो तो सामनेसे दो लड़के रोते चिल्लाते दाढ़ें मारते कृष्ण कृष्ण पुकारते कालीकुण्डकी ओरसे चले आते हैं" नन्द यशो-दाको देखकर कहने लगे कि, हे यशोदामैय्या! आज हमारे मनहरण प्यारे, नेत्रोंके तारे यमुनामें डूबगये ॥

चौ०-सुनतहि परीं धरणि गिरि मैय्या। कीन्हों स्वप्नो सत्य कन्हैय्या॥
तलफत दोउ मीनसम धरणी। प्रगटी कौन जन्मकी करणी॥
यह दुख देख कठिन अति भारे। तऊ न निकसत प्राण हमारे॥

अरे निर्दयी देव! क्या इससेभी कठिन कोई और दुःख अभी हमारे दिखानेको शेष रहा है? जो हमारे प्राण नहीं निकलते? यह हमारा हृदय ऐसा कठोर वज्रका होगया जो ऐसे ऐसे दुःख देखकर भी नहीं फटता, यह कह मूर्च्छित होगई; इधर यह समाचार जब और व्रजवासियोंने सुना तब रोहिणी और सुनन्दादिक स्त्री, पुरुष बरसानेसे वृषभानु और कीर्ति सब कुटुम्ब सहित हाय हाय करते रोते चिल्लाते नन्दजीके पासको दौडे आये, इधर नन्दजी यशोदाको कन्धेपर डालकर आगेको बढ़े॥ १८ ॥ सब स्त्री पुरुष कालीदहके किनारे पहुँचे जाकर देखा तो दहके भीतर कालीनाग श्यामसुंदरके शरीरमें लिपट रहा है, और उनकी चेष्टा विहीन होरही है, किनारे पर जड़बुद्धिहुए ग्वाल बाल पछाड खाये पडे हैं, चारों ओर गाय बछड़े रम्भाते फिरैहैं, उन सबकी यह

दशा देखकर सब महादुःखी हुए ॥ १९ ॥ जिन गोपियोंका मन अनन्त भगवान्में लय हो रहा है वह गोपी मनमोहनमें मन लगानेवाली श्रीकृष्णचन्द्रका प्यार मन्दमुसकान तिरछी चितवन मधुर वचनोंकी सुधि करके अतिशय प्यारे श्यामसुंदरको सर्पसे ग्रसितहुआ देखकर अत्यन्त व्याकुल होगईं और तीनोंलोक सूने दिखाई देने लगे, "आपसमें मिलकर कहने लगीं कि,हे आली ! हमारे देखते वनमाली इतना कष्ट सहैं ? हाय !इस कालीनागको मृत्युभी नहीं आती,जो हमारे प्राणप्यारेको इतना दुःख देरहा है,इस प्रकार विलाप कर करके गोपियें कालाको गाली दे रही थीं" ॥ २० ॥ इधर यशोदाको मूर्च्छित पडी देख सब ग्वालबाल और गोपोंने उठाया और धैर्य देकर समझाया हे ब्रजरानी ! इतनी व्याकुल क्यों होती हो ? सचेत हो इधर उधर देख अभी कृष्ण नहीं आया ? फिर कहने लगीं हा कृष्ण प्यारे ! कहाँ हो ? यशोदाके विलापोंको सुन नन्दजी बोले कि, हे प्रिये ! कहाँ हैं कृष्ण, कृष्णको तो कालीदहमें कालीनागने पकड रक्खा है, हाय कृष्ण प्यारे ! तुम पर यह दुःख और हम अपने नेत्रोंसे देखें, यह कह अचानक काली कुण्डमें डूबनेको दौडे जैसे तैसे करके लोगोंने उनको पकडा, परन्तु यशोदा बलात्कारसेः-

दोहा-रानी घबरानी अधिक, विन सुखदानी श्याम ।
पानीमें कूदी परैं, लोग रहे सब थाम ॥

परन्तु यशोदा बार बार यहीं कहती थी कि, इस ससय मुझे मत पकडो डूबही जाने दो. हाय ! जब मेरा धीरका धरैय्या और मुरलीका बजैय्या कन्हैयाही न रहा तो अव मैं जीकर क्या करूंगी धिक्कार है मेरे ऐसे जीवन परः-

दोहा-को कहि है मंजुल वचन, कानन सुधासमान ।
को कानन गायन सहित, करि है प्रात पयान॥
को पालहि ब्रजराजकी, यह गायें नौलाख ।
को पूरण करि है कहो, मम मनकी अभिलाष॥

हे राजन् ! नन्दरानी श्यामसुन्दर बिना ऐसी बौरानी कि, तन मनकी सुधि बुधि भूल गई और अज्ञानियोंकी नाईं जो मनमें आया सो कहने लगी. कभी कहती, हे कृष्ण प्यारे! तुम्हारे लिये भोजन मिष्टान्न बना रक्खा है, शीघ्र आनकर भोग लगाओ. भैय्या बलदेवकोभी साथ लेते आना किस कार्यमें फँस गये, क्यों इतना विलम्ब किया ? तुमको भूख लगी होगी शीघ्र आओ आज ऐसा कैसा खेल खेलते हो जो अवतक सावकाश न हुआ भोजनको सन्ध्या होगई, प्रातःकालके गये हो आज कलेऊ भी नहीं किया, हे प्राणाधार! हे जीवनमूल ! मुझे अपनी साँवलीसूरत मोहिनमूरत क्यों नहीं दिखाते ? और अपनी मधुरवाणीसे मुझे क्यों नहीं बुलाते, मैंने तो बेटा तुमको कुछ कहा भी नहीं फिर तू क्यों बुरा मान गया ? और जो कुछ मैंने तुझको कहा भी हो, तो तुझको क्रोध करना नहीं चाहिये, क्योंकि माता पिताका धर्महो है पुत्रोंपर क्रोध करनेका, बेटा ! अब तुम क्रोधको थूक डालो, कलेऊ करलो ॥

दोहा-व्रजयुवती सुन महरिके, वचन प्रेम आधीन।
अकुलानी रोवत सबै, बडी कठिन उर पीर॥
सोरठा-बर्जत यशुदहि ग्वाल, केहि कूकत हरि हैं कहाँ।
सुतवियोग विकराल, जो मन चाहत सो कहत॥

यह बात सुन एकाएकी चौंकपडी, तव तनकी सुधि आई तो देखा जहाँ तहाँ सहस्रों स्त्री, पुरुष रोरहेहैं तब देखा कि, हाय! मोहन प्यारा तो दहमें पडाहै और मैं इधर उधर कन्हैया कन्हैया कूकती फिरूँ हूँ, हाय! यहाँ तो सबही व्रजके लोग लुगाई कन्हैया प्यारेके लिये इकट्ठे हो रहेहैं और सखा विलाप कर करके कह रहे हैं॥

दोहा-हाय मित्र कैसी करैं, कैसे बाँधैं धीर।
तुम विन सही न जात यह, कठिन विरहकी पीर॥
अब को हमहिं बचावही, को करि है रखवार।
अस कह कह रोवत सखा, कर कर हाहाकार॥
माखन कौन चुरावही, काहि पकर लेजायँ।
यह कह कह सब गोपिका, खडी पछारैं खायँ॥
जब हमपर संकट परो, तबहीं लियो बचाय।
अब इस भारी विपतिमें, क्यों नहिं होत सहाय॥

हे व्रजभूषण प्यारे! जलमें क्या कररहे हो, क्यों नहीं बाहर निकल आते? आपके होते यह सब व्रजवासी और तुम्हारे माता पिता इतना दुःख पाते हैं और आपको किंचिन्मात्र भी ध्यान नहीं बडे आश्चर्यकी बात है? हे प्यारे मोहन! हमारे प्राण तो तुम्हारेही सहारेसे थे,जो तुम जलसे न निकले तो हम भी सब जलमें डूब डूबकर मरजायँगे तुम विना यह सब व्रज हमको सूना सूना दिखाई देता है, हमको तो वही व्रज है जहाँ आप हैं यशोदा बोली कि, हाय! यह सब व्रजवासी मेरेही प्राणवल्लभके कारण इतना विलाप कर रहे हैं और मुझको कुछ सुधि नहीं, तुम चुप होजाओ मैं बुलाऊँ, अरे कन्हैया! यह तेरे सब सखा विलाप कररहे हैं, तू इनकी नहीं सुनता और तुझको अकेले जलमें डर भी नहीं लगता,यह कह एकाएकी चिल्ला उठीं हाय! मेरे श्यामसुन्दरको डर लगता होगा मैं भी उसीके पासको जाती हूँ॥

कवित्त-हे हे सुत सुखदानी अपनीही हठ, ठानी एकनाहिं मानी तोहिं हारी समझायके। घर राजधानी जान व्रजमें तू दानी बनो, नये नये खेले खेल मन उपजायके॥ इकलो मत रहै वीर मैय्याकोहू लेले संग यह कह कर बौरी दौरी घबरायके। सबै समझायो पर काहूकीहू मानी नाहिं, पानीमाहिं रानी अररानी अकुलायके॥

यशोदाकी यह दशा देख नन्दादिक सब व्रजवासी दहमें डूबनेको दौडे, उसीसमय बलदेवजीने आनकर सबको रोक झपटकर यशोदाका हाथ पकड लिया कि, माता!

क्यों इतनी अधीर होतीहै कृष्ण अब आतेहैं बलरामका बोल सुनकर नन्दरानी नेत्र खोलकर बोली कि, हे भैय्या ! कन्हैयाको तैंने अकेला कैसे छोड दिया, कन्हैयाने तो एक क्षणको भी अकेला तुझे नहीं छोडा, आज तू कहाँ चलागया था ? क्या तुझे अभी भूख नहीं लगीं ? आज तो सबेरेसे तैंने कुछ खाया भी नहीं यह माखन मिश्री ऐसेही धरी विराजै है, कन्हैया कहाँ है उसको बुला तो ला क्योंकि उसने भी आज सबेरेसे कुछ नहीं खाया, मेरा फोलुआसा कन्हैया भूखा होगा, यह कह फिर यशोदा मोहमें मग्न हो पुकारने लगी हे ब्रजभूषण ! हे श्यामसुन्दर ! हे गोपीवल्लभ ! हे अपनी जननीके प्राण आधार ! अरे ! यह माखन मिश्री तो खाजा, पीछे खेलता रहियो. अरे कन्हैय्या ! तू मेरी सुनता नहीं ? अरे बालको ! तुम इसका पीछा नहीं छोडते भैय्या ! इसको कलेऊ तो करलेने दो, ऐसा भी क्या खेल ? भैय्या ! तुमने तो कन्हैयाको खेलका मतवाला करदिया, अब तू न सुनगा ? क्या छडी लेकर आऊँ ज्यों उठनेको हुई, त्योंही मूर्छित हो पृथ्वीपर गिरगई,यशोदाके इन विलापोंको सुन सुनकर पशु पक्षी भी रोते थे और मनुष्योंको तो कहनाही क्या है ?

चौ०-बारबार निज निज शिर धुनहीं। कोउ काहूकी बात न सुनहीं ॥
ब्रज गोपी नँदनन्दन प्यारी। हरि सनेह अस गिरा उचारी ॥
प्रीति रीति अब कौन निबाहैं। कौन हमैं हित चितसे चाहै ॥
को करिहै कटाक्ष सुखदाई। कौन लेयगो हमहिं लुभाई ॥
को ब्रजमें दधि दूध चुरै है। कौन दान गोपिनसों लै है ॥
कौन हमहिं अब लाड लडावै। कौन माधुरी वेणु बजावै ॥
गिरहिं उठहिं पुनि भ्रमहिं दुखारी।तनमनकी सुधि सकल बिसारी॥
छूटे केश न वसन सँभारैं। हाय हाय चहुँ ओर पुकारैं ॥
कबहुँ हृदयमें मारत हाथा। कबहूँ भूमि सों पटकत माथा ॥
उपजत क्षण क्षणमें दुख दूना। हरिविन हमहिं सकल ब्रजसूना॥
चलो सकल डूबहिं दहमाहीं। जहाँ कृष्ण हम रहैं तहाँहीं ॥

बलदेवजी उनकी दशा देख कहने लगे कि, हे गोपियो ! तुम ऐसी चतुर होकर इतना विलाप करती हो, एक तो माताको समझानेसे गई, दूसरे और शोकके समुद्रमें डुबोती हो, इसप्रकार गोपियोंको समझाय बुझाय थोडासा जल मँगाय माताके मुखपर छिडका तो सचेत हो इधर उधर देखा, अरे बलराम ! तू अभी कृष्णको बुलाकर नहीं लाया ? क्या तुझको कन्हैयाका कुछ भी मोह नहीं ? दोनों हाथ जोडकर बलदेवजी बोले कि, हे माता ! मुझको कृष्णका ध्यान न हो । मेरे तो तन, मन, धन, जीवन मूल श्रीकृष्णही हैं, परन्तु इस समय इसलिये ध्यान नहीं है कि, मैं अपने प्यारे भ्राताके प्रभावको भले प्रकार जानता हूँ यशोदा बोली कि, हे पुत्र ! तू प्रभावही प्रभावमें रहा, और मेरे प्राणोंसे बनरही है ॥

चौ०-दिन सब गयो भयो अँधियारा। अबहुँ न निकसो मोर कुमारा ॥
अब फँसकर कालीकी फाँसी। नशत हाय ममसुत सुखराशी ॥
कहा करौं को देव मनाऊँ। हाय कौन विधि पुत्र बचाऊँ ॥
बिना कृष्ण मम जीवन नाहीं। दुतिय अधार परत लखि नाहीं ॥
केहि मनसे भूषण पहिरैहौं। केहि रुचि व्यञ्जन विविध खवैहौं॥
केहि लखि मैं जीहौं ब्रजमाहीं। अब दूसर अधार मोहिं नाहीं ॥
दियो वृद्धपन सुत प्रभुमोहीं। हाय बहुरि अब करत बिछोहीं॥

बलदेवजी बोले कि, हे माता! तुम किसलिये इतना क्लेश करती हो ? वह विश्वविजयी कृष्ण प्यारा तो अब कोई घडीमें आता है. माता! तू मत घबराय कृष्णको कहीं भी भय नहीं. कंसने कमलोंके लिये जो पत्री भेजी थी उसको देखकर तुम सब उदास हुये. तो तुम्हारी उदासी उनसे देखी न गई, उसी समय कमलके फूल लेनेके लिये कालीदहमें गये हैं, तुम इस बातकी कुछ चिन्ता मत करो कि, कृष्ण यमुनामें डूब जायँगे कि, काली सर्प उनको डसलेगा और तुम तो उनके चरित्रोंको पहिलेही अपनी आंखोंसे देखचुकी हो. पूतनाको मारा, अनेक दैत्योंको संहारा तो भी तुमने उनके प्रभावको नहीं जाना ? माता! मुझको त्रिलोकीमें कोई ऐसा बलवान् दृष्टि नहीं आता जो कृष्णको जीत सकै, फिर घबरानेका क्या कारण ! ॥

दोहा-मोहिं दुहाई नन्दकी, अबहीं आवत श्याम।
नाग नाथले आवहीं, तौ कहियो बलराम ॥
यशुमति मन धीरज भयो, सुन हलधरकी बात।
फिर भी मन मानत नहीं, क्षण क्षणमें अकुलात ॥

बलरामका हाथ पकडकर यशोदा बोली कि, बेटा! मैं क्या नहीं जानती, परन्तु जिस मनमें वह मनमोहिनी मूर्ति बसी हुई है वह मन तो नहीं मानता, अच्छा तेरे कहनेसे बलात्कारकर मनको दो घडी और रोकती हूं, उस समय यशोदा और सब गोप गोपी काली दहकी ओरको टकटकी बांधके देखनेलगे कि-वह कौनसा समय होगा कि, हमारे प्राणप्यारे कृष्णचन्द्र दहसे निकलेंगे और उनके चन्द्रमुखका दर्शन हमको होगा ! ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! उस दिन जितना शोक सन्ताप नन्द यशोदादिक ब्रजवासियोंको हुवा, उसका वृत्तान्त मैं किसी प्रकार नहीं कह सक्ता, क्योंकि श्रीकृष्ण तो यमुनाहीमें डूब रहे थे, परन्तु यह सब वियोगके समुद्रमें डूबरहे थे और वहाँ जिस समय नटवर वेषधरकर वनमाली कालीदहमें कूदे थे, उस समय काली नागकी नारी बाँकेबिहारीकी मनमोहनी छबि देखकर तन मनसे बलिहारी हो श्रीकृष्णसे कहने लगी हे कोमलांग! हे मदनमोहन! हे शशिवदन! तुम ऐसे अद्भुत स्वरूपवान् होकर यहाँ कहाँ आगये, तुमने नहीं सुना कि, यह कालीदहका स्थान है, यहाँ बडे बडे बलशाली भस्म होगये न जानिये यह क्या कारण है जो आप अबतक बच रहे, और नहीं तो

दूसरा अबतक कभीका जल बलकर भस्म होगया होता, परन्तु मैं जानती हूँ कि, तुम्हारा भाग्य अच्छा है जो इस समय नागनाथ सो रहे हैं जो तुमको भागना है तो भाग जाओ, क्योंकि मुझको तुम्हारी भोलीभाली सूरत देखकर दया आती है नागिनीके यह वचन सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे सर्पिणी ! तू अपने स्वामीको शीघ्र जगादे, क्योंकि हमको अहिराजके पास राजा कंसने भेजा है और एक करोड कमलके फूल कालीदहमेंके मांगे हैं, सो मैं उनके कहनेसे आया हूँ कि, इसी समय फूल लेकर मेरे संग चलै. नागिनी बोली कि, अरे लल्ला ! तेरी क्या सामर्थ्य है जो उसके सन्मुख मुख उठाकर देखै, देवता भी उसकी फुंकारके सामने हुंकार नहीं निकाल सक्ते, हे चन्द्रवदन ! मुझको तेरी मृदु मुसकान और शोभायमान सूरत देखकर मोह उत्पन्न होता है, जो तू अपना भला चाहै तो अभी भाग जा; मैं जानती हूं कि, तू अपने माता पितासे विना बूझे कंसके कहनेस यहां चला आया है और उस मरीलिये कंसने यह न सोचा कि, ऐसे कुँवर कन्हैया विश्वमनमोहनको सर्पके मुखमें कैसे भेजदूँ, हाय ? उस अन्यायीको कुछ भी दया न आई जो पराई माके पूतको मरनेके लिये यहाँ भेज दिया और तू विना विचारे जान बूझकर कालके मुखमें चला आया, अरे ! यह तो कहु तेरी उसकी कुछ शत्रुता तो नहीं है ? तेरी इस बाल्यावस्थाको देखकर मुझको दया आती है कि, जो ऐसा मनोहर बालक मरगया तो इसके माता पिता कैसे जीवेंगे ! मैं बारम्बार तुझको समझाती हूँ और तेरे ध्यानमें कुछ नहीं आता जा अब भी कहना मान, क्यों वृथा अपना प्राण खोता है ? इन प्राणोंको लेकर कुशलसे अपने घर चला जा नागिनीकी बात सुनकर वृन्दावनविहारी बोले कि:-

दोहा-अरी बावरी सर्पसे, कहा डरावत मोहिं।
जैसा मैं बालक प्रगट, अबहिं दिखाऊं तोहिं ॥
सोरठा-क्यों नहिं देत जगाय, देखू तेरे नागको।
उसपर कमल लदाय, लैं जैहौं अहि नाथ ब्रज ॥

हे सर्पिणी ! इस नागको मैं मार तो अभी डालता परन्तु सोतेको मारना महापाप है, इसलिये तू इसको जगानेमें विलम्ब मतकर, श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुनकर नागिनी अत्यन्त क्रोधित होकर बोली कि, इस छोटे मुखसे बडी बात तुमको कहनी नहीं चाहिये, क्यों वृथा बकवाद करता है जा कुशलपूर्वक अपने घर जा, जिस नागने बरसोंतक गरुडजीसे संग्राम किया और हार न मानी, अरे अज्ञानी ! तू उस नागनाथके नाथनेकी इच्छा करता है, अरे मूर्ख ! यह बातें तू नहीं कहता, तेरा काल यह बातें तुझसे कहलाता है, उसकी एकही फुंकारसे इस साँवले शरीरकी जलकर छार हो जायगी, तू बपुरा अहिराज-के सामने क्या वस्तु है ! ब्रजनाथ बोले कि, अरी गँवारिन् सर्पिणी ! तू हमको बपुरा बताती है ! इस विषैले मुखसे सँभालकर नहीं बोलती तू कह तो तुझे अभी बपुरा कहनेका फल दिखादूँ और एक लातसे तेरे इस नागको मारकर यमपुरी पहुँचादूं, परन्तु सोते हुएको

मारनेका महादोष है इसलिये मैं तुझसे बारम्बार कहताहूं कि, तू इसके जगानेमें देर मत कर, मैं भी तो देखलूं तेरा नाग कैसा बलवान् है, नागिनी बोली कि, तेरी मृत्युही तेरे शिरपर गाज रही है तेरा कुछ दोष नहीं,जो तुझको यह अभिमान है तो तू जगा क्यों नहीं लेता,मुझे क्यों वृथा कलंकका भागी करेहै;तब श्रीकृष्णने कहा अच्छा मैंही जगाये लेताहूं, यह नागकी पूंछ अपने चरणकी अंगुलीसे दबाकर अरे अभिमानी! ऐसी नींद! उठ सीधा होकर बैठ,उसी समय नाग अकुलाकर एकाएकी उठ बैठा और अपने मनमें कहने लगा कि,आज खगराज यहाँ आन पहुँचे, अब क्या उपाय करूं ! नेत्र खोलकर देखा तो एक कुमार अवस्थावाला बालक मेघवर्ण अद्भुतस्वरूप भृगुलताका चिह्न धारण किये पीताम्बर पहिने मन्द मुसकानयुक्त शोभायमान मुख निर्भय खिले कमलके समान चरणारविन्दवाले श्रीकृष्ण भगवान्को जलमें विहार करता देख वह विपुलबलशाली काली अत्यन्त क्रोधसे वनमालीके मर्मस्थानोंमें काटकर उनके शरीरसे लिपट गया और अपने मनमें यह भी विचार करने लगा कि, यह बडे आश्चर्यकी बात है कि मेरे हालाहलके सामने किसी-प्राणीकी क्या सामर्थ्य है जो ठहर सके ! यह गरुडही तो कहीं बालकका रूप धरकर न आगया हो ! फिर कुछ धैर्य धरकर पूँछ पटक रोषमें भरकर श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगा॥

दोहा-दाँव घात लागो करन, सहसन फण फटकार।
बार बार फुन्कार कर, डारत विषकी झार॥
जरत यमुनको नीर, जात फेन उतरात विष।
परशत नाहिं शरीर, अहि मदमोचन श्यामके॥

जब दोनोंमें अत्यंत भारी युद्ध मचा और श्यामसुंदरको कुछ विष न व्यापा तब तो नागिनीने समझा कि, यह बालक कोई बडा बलवान् और पुरुषार्थी है और ऐसा भी विदित होता है कि, यह कुछ मंत्र यंत्र भी जानता है. जो कि, यमुनाका जल विषाग्निसे अदहनकी नाई भदक रहाहै और इसके शरीरमें एक छाला तक भी नहीं पडता, इसमें कुछ न कुछ कारण है ! और इधर अहिराजने भी विचार किया कि, देखो ! मैं अपनी सौफणोंसे इसके अंगोंमें काटता हूँ परन्तु इस बालकके कुछ भी भाये नहीं. जब कुछ उपाय चल न सका, तो हारकर मदनमोहनके शरीरको अपने शरीरसे पावोंतक कसके बांध लिया, हे राजन् ! उस समय सुर, मुनि, गन्धर्व, अत्यन्त व्याकुल हो हाहाकार करते व्रजमें आये और रक्षाके स्तोत्र पढने लगे, इधर नागपत्नी श्यामसुंदरकी सुहावनी मनभावनी छवि देखकर अपने मनमें पश्चात्ताप करने लगी कि, देखो ! मैंने इस मूर्खको इतना समझाया परंतु इसके ध्यानमें कुछ न आया यह आपसे आप आनकर अहिराजके बन्धनमें बँध गया; अब इसका बचना अत्यंत दुर्लभ है, सत्य है जब जिसका काल आता है, उसको चोटी पकडकर लेजाता है उस अवसरमें कालीने भी जान लिया कि, यह बालक मेरे वशमें आगया तब भगवानकी ओर देखकर कहने लगा कि, अरे अज्ञानी तू मुझे नहीं जानता कि, मैं अहीश हूँ, अब तेरे प्राणोंकी इतिश्री हुई, अब यह प्राण लेकर

घरको जाना बहुत कठिन है, जो अपने इष्टमित्रका ध्यान करना हो तो करले, तब अभिमान भंजन भगवान्ने जाना कि, इसको अभिमान बढा और इधर अपने गोकुलको अनन्यगति देखकर और कोई उनके क्लेशका मिटानेवाला नहीं यह जानकर और स्त्री, बालक समेत सब व्रजवासी मेरे लिये अत्यन्त दुःखी है यह विचारकर, मनुष्योंकी सदृश लीला करनेवाले गर्वप्रहारी भगवान्ने दोघडी उस सर्पकी कुण्डलीमें रहकर फिर उस बन्धनसे छूटनेकी इच्छा की ॥ २३ ॥ तब श्रीकृष्णने अपना इतना देह बढाया कि, उसके अंगके सब बन्द बन्द ढीले होगये नस नस दुखनेलगीं हड्डियोंके जोड जोड टूटनेलगे, तब तो वह नाग कृष्णचन्द्रको छोड महा क्रोधकर फणोंको उठा उठाकर लम्बे लम्बे श्वास लेनेलगा और नथनोंमेंसे विषकी झलें निकलनेलगीं,आँखोंकी पलक खुलीकी खुली रहगई और मुखसे विषानलकी ज्वाला भडकनेलगी, विषीली लकडीकी नाईं कृष्णकी ओरको देख रहाथा ॥ २४ ॥ दो दो फाँकवाली जिह्वाओंसे अधरोंको क्षण क्षणमें चाट चाटकर क्रोध करता था, उस विकराल विषानलभरी चितवनवाले कालीनागके चारोंओर फिर फिर कर व्रजविहारी विहार करते फिरते थे जैसे गरुड सर्पके चारोंओर फिरता है और वह कालीभी अपना अवसर देखता हुआ भगवान्के चारोंओर घूमता फिरता था, श्रीकृष्ण अपना दाँव विचारते थे, काली अपना दाँव बिचारता था, श्रीकृष्णकी इच्छा तो यह कि, मेरा दाँव लगै तो कालीके फणोंपर चढकर नृत्यकरूँ और कालीके मनमें यह विचार कि, किसी प्रकार एक बार तो वनमालीको फिर लिपट जाऊँ दोनों अपना २ दाँव तक रहे थे ॥ २५ ॥ जब फिरते फिरते कालीका पराक्रम घट गया तब कालीके ऊपरको उठे हुये फणोंको नीचे नवाय श्रीकृष्णने झट झपट कर उसका फण पकड चरणतलसे दाब उसकी नाकमें नाथ डालदी और उसके शीशपर जा चढे ॥

क०-शीशपर मुकुटधृत भ्रकुटी विकटकटि पीतपट बांधे बलिहारी हौं बननपर। ठम ठम ठुमकत उठत मृदुल गति देव रति निसुसत निपुनी झनन पर॥ कुण्डल छजत मुख मुरली बजत उर माल हुलसत हरि बांके तनन पर॥ व्याली पति छाजै मुखबाजै करैं थेइ थेइ नाचै वनमाली आली कालीके फनन पर॥

वह रसिकविहारी उनके फणोंपर चढ़े आनन्द कर रहे थे और उसके शिर चलायमान भी थे, परन्तु तोभी उनपर थिरक थिरक कर नृत्य कररहे थे, क्योंकि वह तो नाटक विद्यामें परमप्रवीण और चौसठ कलाओंके जाननेवाले थे, उससमय कालीके फणोंमें जो मणि रत्नलगे थे उनके स्पर्शसे कृष्णके चरणारविन्द अरुण होगये, देखो ! कोई तरवारकी धार पर नाचता है, कोई बाँस पर चढ़कर नाचता है, देखो ! श्रीकृष्ण ऐसे नाचनेवाले कि, सर्पके फणोंपर चढ़कर नाच किया ॥ २६ ॥ जिस समय नटनागर नटवरवेष धरकर कालीके फणोंपर नाचनेको खडे हुए, उसको देखनेके लिये गन्धर्व, सिद्ध, सुरगण, चारण, देवांगना यह सब अत्यन्त प्रसन्न होकर मृदंग ढोलक नगाड़े आदि अनेक प्रकारके बाजे

बजाते, गीत गाते, पुष्प वर्षाते, भेंट ले लेकर आये और भगवान्‌की स्तुति करनेलगे ॥ ॥२७॥हे राजन्! जिस कालीके एक सौ एक मस्तक थे उसने जो मस्तक ऊपरको उठाया उसको दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रने उसीसमय पाँवकी ठोकरसे नीचेको दवा दिया और जब वह क्षीणअवस्थावाला इधर उधर घूमने लगा तव मुखसे नासिकासे रुधिरकी धारा निकलने लगीं, शरीरके वन्द ढीले होगये, इसप्रकार कालीको दुष्टदमन भगवान्‌ने मर्दन किया ॥ २८ ॥ तोभी उस कालीनागने महाक्रोध करके लम्बे लम्बे श्वास लिये और मुखसे विष उगला और फिर शिर ऊपरको उठाये परन्तु भगवान् शत्रुदमनने नृत्यकरकरके चरणोंकी ठोकरोंसे उसके मस्तकोंको नीचेको झुकादिया, उस समय गन्धर्व और देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर, शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले नारायणकी समान जानकर यशोदानन्दन भगवान्‌की पुष्पोंसे पूजा करी, उस समय व्रजवासियोंको आदि पुरुषकासा दर्शन हुवा ॥ २९ ॥ हे राजन्! नटनागर भगवान्‌ने जो चित्र विचित्र ताण्डव नृत्य किया उससे कालीके फणरूपी छत्र टूट गये और सब शरीरकी नस नस ढीली होगई, मुखसे रुधिर बहने लगा, तब श्रीकृष्णको स्थावर जंगमका गुरु पुराणपुरुष नारायण समझकर मनसे उनकी शरण ली ॥ ३० ॥ समस्त ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें विराजमान हैं ऐसे विश्वभावन भगवान मुरलीधरने त्रिलोकीका भार अपने देहमें धारणकर कालीके मस्तकपर मुरली बजाय बजाय उछल उछल कर ताण्डवनृत्य किया, उस समय मुरलीमनोहरका कौतुक देखनेके लिये देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरादिक अपने अपने विमानोंपर बैठकर आये और अनेक प्रकारके बाजे बजा बजाकर श्रीवैकुण्ठविहारीके उत्तम उत्तम चारित्र गाने लगे, अप्सरायें भाँति भाँतिके नृत्य करनेलगीं, देवता आकाशसे पुष्प वर्षानेलगे, उस समय देवता गन्धर्व जो ताल स्वर सहित गाते थे, उसीमें मुरली मनोहर अपनी मुरलीकी तान मिलाते थे और जब कालीके शिरोंपर ठुमक ठुमक पग धरते थे और नूपुरोंका शब्द सब बाजोंमें मिल रहा था उन नूपुरोंकी झनकारकी ध्वनि सुनकर पवन पानी भी बहनेसे बन्द होगये, उससमयका आनन्द वर्णन करनेमें ब्रह्मादिक देवताभी चकित होते हैं, फिर और किसी दूसरेकी क्या सामर्थ्य है जो उस आनन्दका वर्णन करसकै, जब त्रिभुवनपतिने त्रिभुवनका भार कालीके शिरपर रक्खा तब उसके सब अंग शिथिल होगये, मुखोंसे रक्तकी धारा निकलनेलगीं देह थककर जब मृतक समान होगया और सब अभिमान जाता रहा, उस समय अपने जीवनकी आशा छोड फणोंको पृथ्वीपर पटकने लगा, मस्तक पर चरणारविन्दोंके चिन्ह होगये उस समय कालीकी दुर्दशा देखकर वस्त्र आभूषण जिनके अस्तव्यस्त होगये, केश खुलगये, ऐसी कालीकी पत्नी पतिके शीशोंको छत्रकी समान टूटते देखकर हृदयमें कराघात करती नारायणकी शरण आई ॥ ३१ ॥ अत्यन्त व्याकुल जिनके मन अपने अपने छोटे छोटे बच्चोंको आगे करके नागकी पतिव्रता स्त्रियें अत्यन्त पीड़ित हो प्रथम पृथ्वीपर पडकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और अपने पतिके पाप छुटानेके लिये श्रीकृष्ण भगवान्‌के

चरण शरणमें आई ॥ ३२ ॥ नागपत्नियें बोलीं, कि हे नाथ ! इस अपराधीको आपने दण्डदिया सो अच्छा किया, क्योंकि आपका अवतार दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये है शत्रु और मित्रको आप एकसा समझते हो, इसीलिये आपका नाम समदर्शी है, दुष्टको विचारकर दण्ड देतेहो और मित्र समझकर उनपर अनुग्रह करते हो, दुष्टोंको दण्ड देते हो यह आपकी कुछ बिषमता नहीं है ॥ ३३ ॥ इस सर्पको आपने दण्ड दिया सो इसके ऊपर बड़ा अनुग्रह किया क्योंकि आपके दण्ड देनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं, जिस अपराधसे इसकी सर्पयोनि हुई वह अपराध दूर होगया, इसलिये आपका क्रोध भी कृपारूपही है ॥ ३४ ॥ इस हमारे पतिने पूर्व जन्ममें ऐसा क्या तप किया है ? जिससे सब प्राण दानदेनेवाले आप इसपर संतुष्ट हुए हो, इस मानरहित हमारे पतिने अपना मान तजकर औरोंका मान किया और सब लोगोंपर दयाहीं करता रहा, नहीं तो ऐसे क्रूर बुद्धि सर्पपर आप क्यों अनुग्रह करते ? ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशवान् ! यह सर्प आपके चरणारविन्दकी रजके स्पर्श करनेका अधिकारी हुवा, सो कौनसी तपस्याका ऐसा श्रेष्ठ फल है ? यह हम नहीं जानतीं, जिन चरणारविन्दके स्पर्शके लिये लक्ष्मीजीसी उत्तम स्त्रीने सब कामनाओंको तजकर व्रतको धारण करके बहुतवरसों तक तप किया ॥ ३६ ॥ जिन पुरुषोंने आपके चरणारविन्दकी रजकी शरण ली है, वह पुरुष न तो स्वर्गकी, न चक्रवर्ती राज्यकी, न शिवलोककी, न इन्द्रलोककी, न ब्रह्मलोककी, न पातालकी, न योगकी, न सिद्धियोंकी और न मोक्षकी चाहना करते हैं ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! लक्ष्मीसे आदि लेकर बड़े बड़े ऋषि मुनियोंको आपके चरणारविन्दके रज महादुर्लभ हैं, उस रजको क्रोधके वश तमोगुणसे उत्पन्न विषवाले सर्पोंका राजा काली बिना उपायही प्राप्त होगया क्योंकि अपने कर्मोंके वशसे संसारचक्रमें भ्रमते तुम्हारे चरणारविन्दके रजकी शरण चाहनेवाले शरीरधारियोंको मनमानी सम्पत्ति मिलती है ॥ ३८ ॥

श्लोक–नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥
भूतवासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥

छंद–जय जय परम कारण महा प्रभु सर्व जगत निवास ॥
जय आदि पुरुष पुराण श्रीभगवान परम प्रकाश ॥

छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त सर्व देहोमें अन्तर्यामी रूप करके रहित उनमें विराजमान रहते हो, तोभी उनमें छिप नहीं जाते हो, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंच भूतोंके आश्रयरूप, सबके आदि कारण, आप कारणसे रहित ऐसे परमकारण परमात्माको हम बारम्बार नमस्कार करती हैं ॥ ३९ ॥

श्लोक–ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ।
अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥ ४० ॥

छंद–जय ज्ञान निधि विज्ञान निधि जय ब्रह्म शक्ति अनंत ॥
जय अगुण अप्राकृत विकार विहीन कमलाकंत ॥

आप ज्ञान विज्ञान कहिये चैतन्य शक्ति करिकै परिपूर्ण हो, व्यापक हो, अनन्त शक्तिमान, विगुण, निर्विकार, मायाके प्रवर्त्तक हम वारम्वार आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४० ॥

श्लोक-कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥

छन्द-जय काल जय जय काल नभ त्रयकाल साक्षी सत्य।
जय विश्वरूपी विश्वस्रष्टा विष्णु कारण नित्य ॥

आप कालरूप हो, कालशक्तिके आश्रयहो, कालके अंगोंके देखनेवाले हो, विश्वरूप हो, विश्वके देखनेवाले हो और विश्वके कर्त्ता हो और विश्वके कारण हो, तुमको वाम्वार नमस्कार है ॥ ४१ ॥

श्लोक-भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने।
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥

छन्द-जय भूत मात्रा प्राण इन्द्रिय मनो चित्त बुधि नाथ।
जय अहंकार अदृश्य रूप स्वरूप नित मुदगाथ ॥

पृथ्वी, जल,तेज, वायु, शब्द, आकाश, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और दश इन्द्रिय प्राण, मन, बुद्धि, चित्त इनके रूपहो, त्रिगुण अहंकारसे अपने अंशरूप जीवोंके स्वरूपका आच्छादन करनेवाले आपको वारम्वार नमस्कार है ॥ ४२ ॥

श्लोक-नमोऽनंताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥

छन्द-जय सूक्ष्म जय कूटस्थ जय सर्वज्ञ जयति अनंत।
जय विविध वाद प्रवृत्ति कारण शब्द अर्थ लसंत ॥

आप अहंकारसे आच्छादित नहीं, इससे अनन्त हो, दृष्टिगोचर नहीं इससे सूक्ष्म हो, उपाधियोंका विकार नहीं इससे विर्विकार हो, कोई कहता ह सर्वज्ञ हो,कोई कहता है सर्वज्ञ नहीं हो, कोई कहता है अचिन्तनीय हो, कोई कहता है बद्ध हो, कोई कहता है मुक्त हो, कोई कहता है एक हो, कोई कहता है अनेक हो इत्यादिक जो अनेक प्रकारके बगडे हैं तिनमें मायासे जो जैसे कहें हैं उस समय वैसेही होजाते हो,नाम नामी यह जो शक्तिका भेद इससे अनेकरूप करके प्रतीक्षा करने योग्य जो तुम हो ऐसे आपको वारम्वार हमारा नमस्कार है ॥ ४३ ॥

श्लोक-नमःप्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमोनमः ॥ ४४ ॥

छन्द-जय वेद शास्त्र पुराण कवि जय प्रवृत्ति निवृत्ति स्वरूप।
जय जयति निगमागम प्रवर्त्तक उद्धरन भव कूप ॥

आप नेत्रोंसे आदि लेकर सब इन्द्रियोंके प्रकाश करनेवाले हो,स्वतःसिद्ध ज्ञानके विषयी

हो, वेदके कारण हो, वेद आपके श्वासोंसे हुए हैं, प्रकृतिके प्रतिपादक वेदरूप आपको हम नमस्कार करती हैं ॥ ४४ ॥

श्लोक-नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥

छन्द-जयकृष्ण जय बलराम जय वसुदेवसुत अरिकंस ।
प्रद्युम्न जय अनिरुद्ध जय यदुवंशके अवतंस ॥

शुद्ध अंतःकरणके प्रकाश करनेवाले भक्तोंके रक्षक रामकृष्णरूप वसुदेवतनय प्रद्युम्न संकर्षण अनिरुद्ध रूप आपको हमारा नमस्कार है ॥ ४५ ॥

श्लोक-नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छेदनाय च ।
गुणवृत्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

छन्द-जय गुण प्रदीप गुणावरण गुण वृत्ति दृश्य गुणेश ।
जय ज्ञान रूप विहार विमल वितर्क महिमा महेश ॥

सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणके प्रकाशक, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके प्रकाश करनेवाले अर्थात् इनके अधिष्ठाता हो, इसीसे चाररूप हो, तीनगुणोंसे उपासनाको चित्र विचित्र फल देनेके लिये अपने आत्माको ढककर अनेक रूपसे भासो हो, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारसे चैतन्यनिश्चयको आदि लेकर वृत्तिसे जाननेमें आओ हो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके साक्षी व अगोचर आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४६ ॥

श्लोक-अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥

छन्द-जय सब प्रकाशिनके प्रकाशक हृषीकेश गोविन्द ।
जय आत्मराम मुनीश ज्ञाता परअपर गति वृन्द ॥

आपकी महिमा विचारनेमें नहीं आती परन्तु सम्पूर्ण विश्वको उत्पत्ति प्रकाश करनेके कारण जाननेमें आते हो, इन्द्रियोंके प्रेरक आत्मामें रमण करनेवाले सत्स्वभाव आपको नमस्कार हम वारम्वार करती हैं ॥ ४७ ॥

श्लोक-परावरगतिज्ञान सर्वाध्यक्षाय ते नमः ।
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥

छंद-जय जगपति जय जग विलक्षण जगतवपु जगदीश ।
जय जगत् सिरजन हरण पालन काल शक्ति अधीश ॥

स्थूल सूक्ष्म सबकी गतिके जाननेवाले हो, सम्पूर्ण विश्वके साक्षीहो, विश्व आपके स्वरूप में नहीं और विश्वके स्वरूपमें आप नहीं आप विश्वके निषेधकी अवधिहो, जैसे सर्पके प्रकाशका आश्रय रस्सीहै वैसे आप विश्वप्रकाशनेके आश्रय हो, आरोप और निषेधके साक्षी आप हो, विश्वका आरोप और निषेधके ज्ञान अज्ञानके कारण हो, जहाँतक ज्ञान है

वहाँतक विश्व माननेमें आवैहै अर्थात् विद्यासे और अविद्यासे अपवाद और अध्यासके हेतु आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥

श्लोक-त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक्॥
तत्तत्स्वभावान्प्रति बोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे॥४९॥
छन्द-जय सत्त्वरजतम गुण स्वभाव प्रकाशकारी एक ॥
जय जय अमोघ विहार कारक दलन खलन अनेक ॥ ४९॥

हे प्रभो ! आप चेष्टासे रहित हो ! कालशक्तिको धारण करके सत्त्वगुण, रजोगुण,तमोगुणसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन, संहार करोहो, हे अमोघविहार ! अर्थात् सफलविहार क्रीडावाले अपनी इच्छासे उन उन संस्काररूपसे रहे स्वभावोंको प्रतिबोधन करते हुए क्रीडा करते हो ॥ ४९ ॥

श्लोक-तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्याः शांता अशांता उत मूढयोनयः ॥
शांताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥
छंद-तुवशांत मूढ अशांत लीला हेतु वपु हैं तीन ॥
अब शांत तुमको प्रिय करहु नित धर्म रक्ष प्रवीन ॥ ५० ॥

त्रिलोकीमें शांतस्वभाव, अशान्तस्वभाव, घोरस्वभाव, मूढस्वभाव, इसप्रकार सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणकी प्रधानतासे तीन स्वभावके प्राणी आपके खेलनेके लिये खिलौना हैं साधुओंकी रक्षा करनेके लिये कटिबद्ध होकर अवतार धारण करते हो, इसलिये आपको शांत स्वभावही प्राणी प्रिय हैं. क्योंकि, सज्जनोंके धर्म पालनकी इच्छासे प्रवृत्ति करते आपने अभी उनकी रक्षाके लिये अवतार लिया है ॥ ५० ॥

हे भगवन् ! अब हम अबलाओंपर कृपा कीजिये नहीं तो यह काली सर्प प्राण छोडे देताहै, सत्पुरुषोंके शोचनीय हम दीन अबलाओंपर अनुग्रह करके पतिरूप प्राणदान दीजिये ॥ ५१ ॥ स्वामीका यही धर्म है कि, एकबार जो अपनी प्रजासे अपराध होजाय उस अपराधको क्षमा करदें, हे शान्तस्वरूप ! अनजान इस अज्ञान कालीके अपराध अब क्षमा करो ॥ ५२ ॥ हम आपकी दासी हैं कुछ आज्ञा करनी हो सो आज्ञा कीजिये, हम आपकी आज्ञाको श्रद्धापूर्वक करेंगी. हे नाथ ! जो आपकी आज्ञाको हितचित्तसे करते हैं उनके सम्पूर्ण भय छूट जाते हैं ॥ ५३ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जब इसप्रकार नागपत्नियोंने श्रीकृष्णचन्द्र महाराजकी स्तुति की, तब भगवान्ने मूर्च्छित पडे हुए उस भग्नमस्तक कालीनागको चरणकी ठोकरसे प्रहार कर छोडदिया ॥ ५४ ॥ सहज सहजमें वह दीन काली सचेत होकर लम्बे लम्बे श्वास लेने लगा और हाथ जोडकर भगवान्से निवेदन करने लगा ॥ ५५ ॥ हे नाथ ! जबसे हम उत्पन्न हुएहैं तबसेही हम दुष्ट हैं तामसी हमारा स्वभाव है, बडा भारी हमारा क्रोध है, लोगोंका खोटा आग्रहरूप स्वभाव नहीं छूटता ॥ ५६ ॥ हे सम्पूर्ण जगत्के रचनेवाले ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे अनेक प्रकारका विश्व आपने रचा है और जिसके स्वभाव

शक्ति, बल, योनि, बीज, संस्कार और आवृत्तियें, यह सबकी पृथक् पृथक् प्रकारकी है, यह विश्व आपहीका रचाहुआ है ॥ ५७ ॥ हे भगवन्! उस विश्वमें हमें सर्प बनाये. जन्मसेही हमारे हृदयमें अधिक क्रोध बढा और हम आपहीकी मायासे मोहित होरहेहैं सो आपसे मोहित हुए हम आपकी मायाको कैसे छोड सक्तेहैं ॥ ५८ ॥ सम्पूर्ण भेदोंको जाननेबाले जगत्के ईश्वर आपही हो, सो आपही मायाके छुटानेके कारण हो, जो काम आपने हमको सौंपा, उसपै हम ऐसे दुष्ट रहे सो आपसे भी न चूके यह मानकर चाहे हमारे ऊपर कृपा करो, चाहे दण्ड दो, आप परमेश्वर हो, सब काम करने योग्य हो ॥ ॥ ५९ ॥ हे राजन्! जब दीनदयालु दीनानाथने व्यालको अत्यन्त बेहाल देखा तब उसका श्रम दूर कर चतुर्भुज रूप दर्शन दिया, उस अचिंत्यरूप भगवान्का दर्शन करतेही सब चिन्ता जाती रही और अति प्रसन्न हो मनहींमनमें कहने लगाः-

सोरठा-किये बहुत फण घात, बारबार पछितात मन।
अस्तुति करत लजात, रह्यो दीन हों सकुच अति ॥
सम्मुख होत न नैन, अपराधी हौं आपको।
अब कुछ और बनै न, क्षमा कियेही बनैगी ॥

हे कृपासिन्धु! जो कुछ अपराध मुझसे हुवा सो अनजानमें हुवा, मैंने जानकर नहीं किया, अब कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कीजै, आप क्षमाके समुद्रहैं, मैं पामर कीट सर्पयोनी विषकी खान तामसी स्वभाववालाहूँ, किसप्रकार आपकी महिमाको जानसक्ताहूँ? ब्रह्मादिक देवताभी आपकी महिमाको नहीं जानसक्ते, फिर मैं अज्ञानी आपकी महिमाको कैसे जानसक्ता, आपने मुझको दर्शन देकर सनाथ किया, हे नाथ! अनाथ जो शरणके योग्य नहीं उसको आप शरणमें ले लेतेहो और तुम सदा अनाथोंको सनाथ करतेहो, इस बातमें वेद और पुराण आपके साक्षी हैं, आप सच बूझो तो मेरा कुछ भी अपराध नहीं क्योंकि, विधाताने हमारी जातिका स्वभावही ऐसा बना दिया है, जो कोई हमको दूध पिलाता है तो वह अपनेही लिये विष बढ़ाता है जैसा जिसमें गुण होता है वह किसी प्रकार बदल नहीं सक्ता, देखो गायको कैसेही कडुवे पत्ते खिलाओ परन्तु जब दूध देगी तो मीठाही होगा, सो इसमें मेरा कुछ दोष नहीं मैंने अपने स्वभावके अनुसार आपके ऊपर फणोंकी चोट की अब अनुग्रहकी दृष्टि करके मुझे अपने चरण शरणमें रक्खिये और यह मेरा मस्तक धन्य है जिसपर आपके चरणारविन्द रक्खेगये अब इन चरणोंके स्पर्शसे मेरे जन्म जन्मके पातक नष्ट होगये, जिन तुम्हारे चरणारविन्दोंको लक्ष्मी निशिदिन हृदयमें धारण करे रहती है और शिव ब्रह्मा सनकादिक, देवता और योगीजन रात दिन ध्यान करते रहते हैं, उनहीं चरणोंके चरणोदकका नाम सुरसरिता श्रीगंगामहारानी हुवा जो त्रिभुवनकी पावनकरणी और भवभय रुज हरणी है, जिसने सगरके सुतोंको तारा और भगीरथका निस्तारा किया, ऐसी गंगा जिन चरणोंसे निकलीं वह चरणकमल आज मेरे शिरोंपर शोभायमान हैं, शेषजीके एक फणपर आप शयन किया करते हैं, सो उस

शेषनागकी इतनी प्रशंसा है कि, सब देवताओंमें अग्रगण्य हैं और मेरे एकसौ एक मस्तकोंपर आपने चरण धरकर नृत्य कियाहै, फिर मैं अपने समान भाग्यवान् और सुखनिधान दूसरेको कब समझताहूँ, क्योंकि, जो मुनिमनरंजन भक्तभयभंजन आपके चरणारविंद मेरे मस्तकपर इस समय विराजमान हैं ॥

दोहा–जिन पद पंकज परशते, गति पाई ऋषिनार ।
सुर नर मुनि वन्दत जिन्हैं, सन्तन प्राण अधार ॥
श्रीवृन्दावन जे चरण, फिरत चरावत गाय ।
व्रजवासी जन दुख हरण, भक्तनके सुखदाय ॥

ऐसे अमल कोमलकमलसे चरण विनाहीं जप, तप, यज्ञ, दान किये सहजहीमें पा लिये, मैं गरुड़के भयसे भागकर यहाँ आयाथा परन्तु गरुड़ने मेरे संग शत्रुता नहीं की. मित्रता की, क्योंकि जो गरुड़ मुझको न सताता तो मैं यहाँ क्यों आता और क्यों आपका दर्शन पाता, यह गरुड़हीके प्रतापसे आपका दर्शन मुझको हुवा, आज मैं सनाथ होगया क्योंकि जो त्रिलोकीनाथने अपना चरण मेरे माथेपर रखदिया, कालीकी मीठी-वाणी सुनकर दीनवन्धु भगवान्‌ने कहा कि, मैंने तेरे मस्तकसे अपने चरणसरोज छुवादिये अब तुझको किसीप्रकारका शोक सन्ताप न होगा परन्तु अब तू इस कुण्डका वास छोड-कर रमणकद्वीपको चलाजा ॥ ६० ॥ और अपनी जातिके सर्प और बाल बच्चे स्त्रियोंको भी साथ लेजा, क्योंकि अब मैं यहाँ जलक्रीडा किया करूंगा और गाय बछड़े और ग्वालबाल यहाँका जल पिया करैंगे आजसे इसका नाम कालीकुण्ड हुवा, जो पुरुष प्रातःकाल उठकर अथवा संध्यासमय इस चरित्रका पाठ करेगा उसको सर्पका भय न होगा ॥ ६१ ॥ यह कालीदह स्थान मेरे विहार करनेका है जो पुरुष इसमें स्नानकर इस जलसे पितृदेवताका तर्प्पण करेगा वा व्रत और मेरा पूजन करैगा उसको अश्वमेधयज्ञका पुण्य होगा और अन्तसमय परमधामको जायगा, फिर इस असार संसारमें जन्म न लेगा ॥ ६२ ॥ और हे काली ! जबतक यमुना जल रहेगा तबतक संसारमें तेरा नाम विख्यात रहेगा. मैं तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हूं मैं तुझको अपना व्रज दिखाऊँगा, कंसने करोड़ कमल जो कालीदहके माँगे हैं सो तू अपने ऊपर लादकर शीघ्र व्रजमें राजा कंसके पास पहुँचादे कालीनागने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि, स्वामी मैं कमल कंसके पास अभी पहुँचाये देताहूँ परन्तु मुझको अपने चरणोंसे अलग करके रमणकद्वीप मत भेजो और दूसरे मुझे वही गरुड चैन नहीं लेने देगा. श्याम सुन्दर बोले कि, हे काली ! तू किसी प्रकारका भय मतकर, अब गरुड तुझसे कुछ नहीं कहनेका क्योंकि, मेरे चरणचिह्न तेरे मस्तकपर दूरसे चमक रहे हैं यह कह व्रजविहारीने अपने मनमें विचार किया कि, जो आज कंसके पास कमलके फूल न पहुँचे तो कलको प्रातःकालही व्रजपर चढ़ि आवैगा, इसप्रकार सोच विचार कर कालीपर कमलके फूल लाद आह्लादपूर्वक श्रीकृष्ण कंसके पासको चलदिये ॥

दोहा-काली अहिकी पीठपर, लाद कमलके फूल ।
आप चढ़े तेहि शीशपर, यशुमति जीवनमूल ॥
उरगनारि सब जोरि कर, प्रभुके सम्मुख आय ।
करति विनय अति दीन ह्वै, पतिहित हरिहि सुनाय ॥
सोरठा-इत यशुमति उरमाहिं, उठी लहर अति प्रेमकी ।
कान्हर आयो नाहिं, कहति रोय बलदेवसों ॥

बलदेवजी बोले कि, माता ! क्यों इतना अधैर्य होती हो थोडी देर और ठहरो, हमारे प्राणप्यारे तुम्हारे नेत्रोंके तारे श्यामसुन्दर अभी आया चाहते हैं, यशोदा बोली कि, भैय्या ! तू झूठ बोलबोल कर मुझे बारबार समझाताहै और मेरा धैर्य बँधाता है, अब मेरा किसी प्रकार धैर्य नहीं बँधसक्ता, यह कह हृदयमें कराघातकर एकाएकी पुकार उठी, हे मेरे बालकृष्ण मनमोहन प्यारे ! मुझे मेरी वृद्धावस्थामें तैंने धोखा दिया मैं अपने लालको कैसे देखूँ, कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ, कहाँ ढूँढूँ, हाय हाय इस समय कोई भी ऐसा हमारा हितकारी ब्रजमें नहीं जो मेरे कन्हैयाको दहमेंसे निकालकर मुझको दिखादे, अब धिक्कार है मेरे यहाँ रहनेको मैंही अपने जीवनमूलको काली कुण्डमेंसे निकालूँगी जब पानीमेंको दौड़ी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरगई. ब्रजरानीकी यह दशा देख सब ब्रजवासी व्याकुल होकर कहने लगे कि, हे ब्रजराज ! आज तुम विन हमारे प्राण सिधारे चाहतेहैं अब शीघ्र आनकर हमें बचाओ. हे प्यारे ! प्रातःकालसे यमुनाजलमें घुसेहुए क्या कररहेहो ? शीघ्र क्यों नहीं निकलते हमको तुम्हारे देखे विना दो प्रहर दो युगकी बराबर बीते हैं, तुमको हम लोगोंका कुछभी ध्यान नहीं ? और यह भी सुधि नहीं कि, नन्द यशोदाकी हम विना क्या गति होगी ? इस समय वह दोनों ऐसे घबरा रहे हैं जैसे मणिविना सर्प व्याकुल होकर अपना फण पृथ्वीपै देदे मारता है यशोदा बार २ यमुनामें डूबनेको दौडतीहै और ब्रजबाला बलात्कार पकड पकड कर रखती हैं, इतनेमें यशोदा फिर सचेत होकर रोरो कर कहने लगी अभी कृष्ण नहीं आया ? अरे बलदेव ! झूँठ बोल बोल करही मुझको रक्खा ? अब तेरी बातकाभी मुझको विश्वास नहीं रहा ।

दोहा-कहत यशोदा नन्दसों, धृग धृग वारंवार ।
अब केतिक दिन जियोगे, मरत नहीं मोहिं मार ॥
सोरठा-हे पति गुणगणधाम, सुनी नहीं दशरथ कथा ।
इधर निकलगे राम, उधर प्राण तनते गये ॥
कर देखो मन ज्ञान, ऐसे दुखमें मरण सुख ।
नन्द भये विन प्राण, मूर्च्छि परे सुनि तिय वचन ॥

जब नन्दजी अचेत होकर पृथ्वीपर गिरे, उसी समय बलरामजीने झपटकर उनको उठालिया कि, हे पिता ! आप किसलिये इतना शोच संकोच करके अपने प्राण खोते हो, तुम यह नहीं जानते कि, आजदिन संसारमें ऐसा कौनसा बलवान् है जो भगवान् श्रीकृ-

ष्णको पराजय करै ? वह आदिपुरुष अविनाशी अन्तर्यामी आनन्दरूप सदा लक्ष्मी सहित क्षीरसागरमें निवास करते हैं, फिर किञ्चिन्मात्र कालीदहमें कूदनेसे आप क्यों इतने अधैर्य होते हो, श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! बलदेवजी नन्द यशोदा और व्रजवासियोंको इसप्रकार समझा बुझाही रहे थे कि, उसी समय यमुनाका जल उछलने लगा झकझोर तरंगें उठनेलगीं, तब गम्भीर शब्दसे पुकारकर बलदेवजी बोले कि, देखो ! अब वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी कुण्डसे बाहर निकलना चाहते हैं, बलदेवजीका वचन सुनतेही सब व्रजवासी एकबारही यमुनाकी ओरको निहारने लगे, उसीसमय-

चौ०-प्रगट भये जलते तेहि काला । व्रज जन जीवन नँदके लाला ॥
कमल भार काली शिर लीन्हें । नटवरवेष मनोहर कीन्हें ॥
भये सुखी सब व्रजके वासी । लख हरिवदन परम सुखरासी ॥

हे राजन् ! कृष्णचन्द आनन्दकन्दको देखकर नन्द यशोदा व्रजवासियों समेत ऐसे आनन्दित हुए जैसे मृतक शरीरमें प्राण आजाते हैं, डूबतेको नौका मिल जातीहै, सबके शरीर पुलकायमान होगये, मनोंमें ऐसा हर्ष बढा कि, कण्ठ गद्गद होगये, प्रेमका जल नेत्रोंसे बहनेलगा, चकित होकर इकटक भगवान्की ओरको देखते हुए सबके सब मिलनेको दौडे, देखा तो श्यामसुन्दर कालीनागके फणोंपर नृत्य कररहे हैं, मुरली अधरोंपर धरी है माथेसे चन्दनकी खौर लग रही है ॥

छंद-श्रवण कुण्डल लोल लोचन चारु मुकुट विराजहीं ।
मनहुँ मरकत गिरि शिखर मणि मोर तापर राजहीं ॥
पीतपट कटिकाछनी उर माल मणि भूषण सजै ।
नृत्य ताण्डव करत फण प्रति व्योम दिव दुन्दुभि बजै ॥
भई जयध्वनि गगन वर्षहिं सुमन सुर आनँद भरे ।
गन्धर्व गुण गण गगन गावत तान तालन अनुसरे ॥
उरग नारी श्याम सन्मुख करत अस्तुति आवहीं ।
नाथ अब अपराध क्षमिकर कर कृपा पति पावहीं ॥
राखे चरण निज शीश याके अति बडाई इन लई ।
ऐसी बडाई औरको प्रभु नाहिं तुम कबहूँ दई ॥
शेष इक ब्रह्माण्ड भर शिरराख मन गर्वित कियो ।
कोटि कोटि ब्रह्माण्ड तुव तन अधिक इन यह भरलियो ॥
सुर असुर नर नाग खग मृग कीट जन सब रावरे ।
क्षमिय अब अपराध अढिके सुभग सुन्दर साँवरे ॥

दोहा-सुन अहिनारिनके वचन, करुणामय यदुराय ।
उतर परे अहिशीशते, यमुनाके तट आय ॥

सोरठा-तटपर कमल धराय, कालीको आयसु दियो।
उरगद्वीप अब जाय, करहु वास निर्भय वहाँ ॥ ६३ ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, अद्भुत लीलावाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब यह बात कही तब नाग और नागकी स्त्रियें अत्यन्त आनन्द सहित श्रीकृष्णभगवान् की पूजा करनेलगीं ॥ ६४ ॥ दिव्यवस्त्र, माला, मणि, अमूल्य आभूषण और दिव्य सुगन्ध, केशर, कस्तूरी, चन्दन आदिका लेपन और बडी बडी कमलकी मालाओंसे ॥ ॥ ६५ ॥ गरुडध्वज भगवान्की पूजा करी और कालीसर्पने भगवान्की आज्ञामान उसी समय परिक्रमा दे दण्डवत् प्रणाम कर, अपने कुटुम्ब समेत अपने उरगद्वीपको चलागया, उससमय सब देवता आकाशमें जय जय ध्वनिकर कहने लगे कि, हे शरणागतवत्सल! धन्य है आपको जो कालीको अपने चरणशरणमें रखलिया और उसके फणपर चरणचिन्ह लगाय गरुडकी कठिन त्राससे बचा दिया ॥

दोहा-धन्य धन्य प्रभु धन्य कहि, मुदित सुमन बरषाय।
गये देव निज निज सदन, हृदय परम सुखपाय ॥ ६६ ॥

वृन्दावनविहारी, विहारार्थ मनुजरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे यमुनाजीका जल अमृतके समान निर्मल होगया लेशमात्र भी विष न रहा ॥ ६७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-सत्रह काली नागको, भेजो रमणकद्वीप।
बंधु बचाये अग्निते, भेजे कमल महीप ॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित्ने पूँछा कि, हे भगवन्! ऐसे परसोत्तम रमणकद्वीपको छोडकर, कालीनाग यमुनामें क्यों आया? और क्या कारण जो अकेले कालीहीने गरुड-का अपराध किया, इसका सब वृत्तान्त विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाबाहु! राजा परीक्षित् सुनो। " ब्रह्माजीके पुत्र कश्यपजी थे, उनकी कई स्त्री थीं, उनमें एक कद्रू, और दूसरी विनता नाम्नी थी, सो कद्रूसे काली सर्पादिक बहुतसे पुत्र उत्पन्न हुय और विनताके दो पुत्र उत्पन्न हुए एक गरुडजी भगवान्के वाहन और दूसरा अरुण सूर्यनारायणका सारथी, सो गरुडजी और काली सर्पादिक, द्वीपमें वास करते थे, कद्रू और विनता दोनों अत्यन्त प्रेम प्रीतिसे रहती थीं और परस्पर किसीप्रकारका विद्रोह भी नहीं था, एकदिन दोनों सौतें परस्पर बैठी वार्तालाप कररही थीं, कद्रूने विन-तासे बूझा कि, सूर्यके रथमें जो घोडे जुते हैं वह किस रंगके हैं? विनताने कहा श्वेत रंगके और कद्रूने कहा काले रंगके, इसी बातपर परस्पर दोनोंने होड बदी और प्रतिज्ञा की कि, जिसकी बात सत्य होगी वह दूसरीको अपनी दासी बनालेगी और उसको दासी बनकर सत्यवालीके पास रहना पडेगा. देखो फिर किसी प्रकारका झगडा रगडा न हो?

दोनोंने स्वकिार किया जो हारेगी वह निस्सन्देह दासी होगी, इस बातको जब सर्पोंने सुना तब अपनी माता कद्रूसे कहा कि, हे जननी ! तुमने हमसे विना बूझे ऐसी कठिन प्रतिज्ञा करली यह अच्छा न किया क्योंकि, सूर्यके रथमें तो श्वेत घोडे जुते हैं, अब तुम विनतासे किसी प्रकार नहीं जीत सक्ती, पुत्रोंकी यह वात सुनकर कद्रू कहनेलगी कि,बेटा ! जो चाहे सो हो, अब तो मैं उसको वचन दे चुकी, भगवदिच्छा ऐसी ही थी, परन्तु अब कोई ऐसा उपाय भी है जो मैं जीत जाऊँ ? नहीं तो निदान मुझको विनताका दासी बनना पडेगा, तव सर्प बोले कि, हमने एक उपाय तो विचारा है जो होसके तो कद्रू बोली क्या ? सर्पोंने कहा हम सब काले काले सर्प जाकर सूर्यके घोडोंको लिपट जाते हैं, इससे वह अश्व श्यामवर्ण दिखाई देगें तब तू निश्चय जीत जायगी. कद्रू बोली उपाय तो बहुत ठीक है,तब काले काले सर्प मिलकर सूर्यनारायणके रथके घोडोंकी देहसे जा लिपटे इसलिये वह घोडे काले काले दृष्टि आने लगे, तव तो कद्रूने विनताको बुलाकर वह घोडे दिखाये, वह तो काले दीखतेहीथे क्योंकि प्रथमही सैकडों कालेनाग उनको जा लिपटे थे इसीलिये कद्रू जीती और विनता हार गई ॥

कवित्त–धोखेहूमें रावणने सीताको हरण कियो,धोखेहूमें कौरवोंने जीत लियो दाँवको । धोखेहूमें राजाबलि छलो जाय वामननै, धोखेहूमें हनो बालि जानके प्रभावको॥ धोखेमें विष्णुने डिगायो सत्य विन्दाजुको शालिग्राम जानो नहीं सतीके स्वभावको। ऐसी भोली भालीको तैं धोखेहूसे छललीनो, कहा है ठिकानो भला ऐसे अनियावको ॥

जब कि, यह वृत्तान्त गरुडजीने सुना कि, कद्रूके पुत्रोंने हमारी माताके साथ धोखा किया, उसी समय गरुडजीने जाकर कद्रूसे कहा कि, यह तुमने अच्छा नहीं किया जो छल करके हमारी माताको अपनी दासी बनानाचाहा ऐसा अन्याय करना तुमको नहीं चाहिये, अब जो कुछ हुवा सो हुवा परन्तु अब इतना काम करो कि, उसके बदलेमें जो वस्तु कहो सो हम तुमको लादें. परन्तु माताको अपनी दासी मत बनाओ, क्योंकि, इसमें हमारी तुम्हारी दोनोंकी निर्लज्जता है, गरुडजीके वचन सुनकर सर्पोंने परस्पर परामर्श करके गरुडजीसे कहा कि, तुम हमको अमृतका एक घट भरकर लादो तो हम तुम्हारी माताको दासी नहीं बनावेंगे गरुडजीने सर्पोंका कहना स्वीकार किया और उसीसमय उनको अमृतका घट भरकर ला दिया और अपनी माताको उनसे छुटाकर अपने घर ले आये, जब कि, यह समाचार देवताओंने सुना कि, अमृतका कलश भरकर गरुडने नागोंको देदिया तब तो मनमें दुःखी होकर अत्यन्त शोच विचार किया कि, जो यह अमृत सर्पोंने पालिया और अमर होगये तो सैकडों जीवोंकी हत्या करेंगे और हमको भी बहुत दुःख देंगे, उस समय हमको और मर्त्य लोकवासियोंका प्राण बचाने कठिन पडेंगे, यह सम्मति कर सब देवता गरुडजीके पास गये और उनसे कहा कि, भाई ! अपने वचनानुसार अमृतका घडा नागोंको देकर अपनी माताको छुडाकर ले आये पीछे जैसा छल

करके आपकी माताको उन्होंने दासी बनाया वैसाही कोई छल तुमभी उनके साथ करो वहभी तो जाने कोई चतुर हमको मिला ऐसेही तुम भी अपना कार्य सिद्ध करके अमृतका घडा उनसे कोई यत्न करके लेलो, गरुडजीने यह सम्मति देवताओंकी स्वीकार कर ली और जब नागोंको गरुडजीने अमृतका कलशा दिया तो देवताओंको दिखादिया कि,देखो! अमृतका घडा वह है तब नाग सब मिलकर अमृतका घट सरोवरके तटपर रख आप स्नान कर ध्यानमें लगगये कि,पवित्र होकर अमृत पियेंगे, उसी समय गरुडजी वहांपर गये और अमृतका घट सहजमें उठालाये और देवताओंको देदिया, देवताओंने अमृतका घट ले देवलोकको पयान किया, जब नागोंने देखा कि, अमृतका घट यहाँसे कोई उठाकर लेगया परन्तु यह समझा कि, यह सब कौतुक गरुडहीका है और किसी दूसरेकी सामर्थ्य नहीं जो हमारे बीचमेंसे अमृतका कलशा उठाले जाता, उसी दिनसे साँपोंने गरुडजीसे वैर बाँध लिया और गरुडको सताने लगे, निशिदिन गरुडको सर्पोंका भय रहने लगा, तब गरुडने हार-कर एकदिन वासुदेव भगवान्‌की बहुत प्रार्थना की और कहा कि, हे भगवन्! मुझको सर्पोंने बहुत दुःख दे रक्खा है; भगवान् बोले कि, फिर तू क्या चाहता है? गरुड बोले कि, हे जगन्नाथ! मेरा यह निवेदन है कि, आजसे कोई सर्प हमको युद्धमें न जीत सके और नित्य प्रति सर्पोंका भोजन हम किया करैं और उनका विष हमारे शरीरको न व्यापै. हे राजन्! उसी समय गरुडध्वज भगवान्‌ने गरुडको इच्छानुसार वरदान दिया,तब तो गरुडजी अत्यन्त प्रसन्न होकर नित्य प्रति नागोंको पकड पकड खाने लगे जब गरुडजीके सामने सर्पोंका कुछ बल न चल सका तब सब मिलकर ब्रह्माजीके पास गये और विनयपूर्वक प्रार्थना की कि, हे पुरुषोत्तम! जगत्कर्त्ता! हमको और गरुडको आपहीने उत्पन्न किया है वह गरुडजी वरदानके पानेस हमको भक्षण करलेते हैं बड़ा अन्याय है कि, बलात्कार गरुड़ हमको पकडकर निगल जाताहै, आपके सामने ऐसा अन्याय करना उसको नहीं चाहिये,ब्रह्माजीने सर्पोंका वृत्तान्त सुनकर गरुडको बुलाया और उनको समझाकर इस प्रकार दोनों जनोंका हेल मेल करादिया कि, महीनेके महीने एक सर्प गरुड़जीको खानेके लिये प्रसन्नातपूर्वक देदिया करो रातदिन तुमको क्लेश भोगना नहीं पडेगा, तब सर्प और गरुड़जी दोनों इस बातपर प्रसन्न होगये और सर्पोंने परस्पर सम्मत करके पारी नियत करली, प्रत्येक पौर्णमासीको एक सर्प पीपलके पेडपर टाँग दिया करें॥ २॥ सब सर्प अपनी अपनी पारीसे पीपलके वृक्षपर गरुडजीके भेंट रखदिया करतेथे कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत होगये ॥ ३ ॥ अपने विषके और पराक्रमके घमण्डमें अभिमानी कद्रूका पुत्र काली, गरुडको कुछ वस्तु न समझकर सर्प्पान्न गरुडके भागको एक दिन आपही खागया ॥ ४ ॥ हे राजन्! भगवान्‌के प्यारे भगवान् गरुडजीने जब यह बात सुनी कि, हमारे भागका भोजन कालीनाग खागया, उसी समय क्रोधित होकर कालीके मारनेके लिये अत्यन्त वेगसे कालीके पीछे झपटे ॥ ५ ॥ विषही जिसके शस्त्र वह कालीनाग ऊपरको फण उठा दौडकर गरुड़जीके सन्मुख आया,दन्तआयुध भयानक

जीभ पलक जिनमें लगे नहीं, ऐसा भयंकर नेत्रवाला काली दाँतोंसे गरुडको काटने लगा ॥ ६ ॥ तब तो वासुदेव भगवान्के वाहन तार्क्ष्यके पुत्र गरुडजीने बडे क्रोधसे अपने अंगसे छुटाया और सुवर्णकेसे प्रकाशवाले अपने पंखोंसे और चोंचसे कद्रूके पुत्र कालीको मार कर गिरा दिया ॥ ७ ॥ गरुड़जी जिस समय पंख प्रहार करतेथे तब पंखोंमेंसे वेदोंके स्वरोंकी ध्वनी निकलतीथी, उनके प्रहारसे और स्वरोंकी गुंजारसे सर्प व्याकुल होते चले जातेथे और काली भी अत्यन्त व्याकुल हो गया तो मनमें विचार करने लगा कि, अब गरुडसे मैं किसी प्रकार न जीतूंगा, हारकर यह शोचा कि, अब वहाँ चलना चाहिये जहाँ सौभरि ऋषिने गरुड़को शाप देरक्खा है कि, यहाँ गरुड़ न आसके, दूसरे जलमें गरुडका पराक्रम भी न चल सकै, इस प्रकार अपना बचाव समझ वृन्दावनके निकट यमुनाके कुण्डमें जाकर निवास किया ॥ ८ ॥ क्योंकि, उस दहमें एक समय गरुड़जी मछलियाँ खानेकी इच्छासे आये, तब सौभरिऋषिने गरुड़को रोका कि, भाई यह हमारे तपस्या करनेका स्थान है यहाँ मछली मत मारो, परन्तु क्षुधार्थी गरुड़ने ऋषीश्वरका वचन न माना ॥ ९ ॥ जब मछलियोंका पति एक बड़ा मत्स्य गरुडजीने मारा तब मछलियोंको दीन और व्याकुल देखकर उनके बचानेके लिये सौभरिऋषिने महा क्रोधित होकर यह शाप गरुड़को दिया ॥ १० ॥ इस दहमें गरुड़ आनकर जो मछलियोंको खायगा तो उसी समय गरुडका देहान्त हो जायगा, यह बात मैं सत्य कहूँहूँ इस प्रकार प्राणिमात्रकी रक्षाकरनेवाले सौभरिऋषिने गरुड़को यह शाप दिया ॥ ॥ ११ ॥ यह बात काली भलीभाँति जानता था और किसीको यह सुधि नहीं थी कि, गरुडको सौभरिऋषिका शाप है, इस भयसे उस कुण्डमें काली वास करता था, सो श्रीकृष्णचन्द्रने उस कुण्डसे निकाल कर उसके प्राचीन स्थान रमणकद्वीपको भेज दिया ॥ ॥ १२ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन कण्ठमें सुन्दरमाला पहरे केशर चन्दन चर्चित वस्त्र धारण किये, मणि रत्नोंसे दीप्त सुवर्णके गहने पहने दहमेंसे निकले ॥

सोरठा-ब्रजपति दीनदयाल, जनरंजन भंजन कलह ।
आये निकस गुवाल, ब्रजवासीजन सुखकरन ॥ १३ ॥

तब ब्रजविहारीको देखकर सब ब्रजवासी खड़े होगये जैसे मृतक शरीरमें प्राण आनेसे सब इन्द्रियें चैतन्य हो जाती हैं उसप्रकार आनन्दसे पूर्णचित्त हो दौडकर सब ब्रजवासी हृदयसे लगा लगा कर मिले और विरहानलकी जो ताप हृदयमें भड़क रही थी वह सब शान्त होगई ॥ १४ ॥ माताने दौडकर कंठसे लगा लिया, शरीरके रोम खड़े होगये, मुखसे शब्द न निकल सका, नेत्रोंसे आसुँओंकी धारा बहन लगी, वारंवार हृदयसे लिपटाय तनुकी पीरको मिटाने लगी ॥

चौ०-कहि कहि मेरो कुँवर कन्हैय्या । दुहूँकरन सों लेत बलैय्या ॥
दौरि नन्द उरसों लिपटाये । गये प्राण मानहुँ फिर आये ॥
प्रेमाकुल देखी बल माता । मिले रोहिणीसे सुखदाता ॥

निरखि वदन कह यशुमति मैय्या। मैं बरजो नित तोहिं कन्हैय्या॥
यमुना तीर लाल मति जाहू। तुम बरजो मानो नहिं काहू॥

कृष्ण बोले कि, हे मैय्या! मेरा क्या दोष है होतव्यता किसीसे मिटी है? अब मेरा अपराध क्षमा कर अब आगेको तुझसे और पितासे विना बूझ कोई काम नहीं करूँगा. मैय्या! जो स्वप्न मैंने रात देखाथा उसका फल तत्कालही प्रगट होगया फिर मैय्या मेरा दोष तैंने कैसे वताया? दूसरे जव कंसने कालीदहके कोटि कमल माँगे तो सब ब्रजवासी घवराये और पिताजीके भी प्राण सूख गये. हे मैय्या! तब मैं भी डरका मारा गाय चरानेके वहाने ग्वाल बालोंको संग ले यमुनातीरको भाग आया॥

दोहा-मैं गेंदहि खेलन यहाँ, आयो यमुना तीर।
मोहिं डारि काहू दियो, कालीदहके नीर॥

हे जननी! जव मैं महागम्भीर जलमें गिरगया तो नीचेहीको चलागया वहां जाकर

सोरठा-देख्यो उरग विशाल, जाय तहाँ मैं अति डरो।
तब पूँछी मुहिं व्याल, किन पठयो तोकों यहाँ॥

तब मैंने डरते काँपते उस सर्पसे कहा कि, मुझको राजा कंसने कमलके फूल लेनेके लिये तुम्हारे पास भेजा है,तब उस सर्पने कंसका नाम सुना तो वह डरगया और मुझको अपने मस्तकपर चढा लिया और कमलके फूल अपनी पीठपर लादकर मुझको यहाँ पहुंचा गया, श्यामसुन्दरकी भोलीभाली बातें सुन पुचकारकर नन्द और यशोदाने हृदयसे लगा-लिया और कहने लगे कि, आज हमारे कन्हैय्याका दूसरा जन्म हुआ है, फिर सब सखाओंको प्रीति सहित कंठसे लगा लगा मिले और सबकी कुशल बूझी.सब ग्वालवाल प्रसन्न-होकर बोले कि, भाई! हमको तो तुम्हारा दर्शनही कुशलरूप है, फिर श्रीकृष्णने बूझा कि, श्रीदामा कहाँ है? सखाओंने कहा कि, वह मुहँ छिपाये लज्जाके मारे ओलटमें दुवके खडे हैं, श्रीकृष्णने झट झपट उसका हाथ पकडलिया॥

दोहा-हे भैया क्यों छिपेहो, मुख तो देहु दिखाय।
तुम हमपर रिसकर गये, सो अब देहु भुलाय॥

हृदयसे लगाकर कहा हे भाई! हमारी तुम्हारी क्या लडाई जो कुछ मैंने रिसमें आन कर आपसे कहा वह सब अपराध मेरा क्षमा कीजिये, मैंने तो सखाओंहीके सहारेसे सारे काम किये नहीं तो मैं किस योग्य था, यह कह अपने प्यारे श्रीदामाको हृदयसे लगालिया, श्रीदामा बोला कि, हे ब्रजराज! आज मेरी आँखें आपके सन्मुख नहीं होसक्तीं, क्योंकि मैंने तुच्छ गेंदके लिये आपको सैकडों कटु वचन कहे और यहाँतक मैं कलंकी हुवा कि, मेरेही गेंदके लिये आप कालीदहमें कूदे और हाय मुझ पापीने आपको न रोंका अब मैं किसीके सामने मुख दिखानेके योग्य नहीं आप इतनेपर भी मुझसे मिले और मेरे कुवा-क्योंका किंचिन्मात्रभी ध्यान न किया सत्य हैः-

दोहा-बडे बडाई नातजत, लहत निचाई नीच।
सुधासराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ॥

बाँकेविहारी हँसकर बोले भाई! तुम क्या समझ रहे हो? इन बातोंको आप दूरकरो मुझको तो कमलके फूल लेनेके लिये दहमें जानाहीथा फिर इसमें आपका क्या अपराध? श्रीदामा बोला भय्या! तुम्हारी माया तुमही जानो ॥

चौ०-कहत सखा सब धन्य कन्हैय्या। जो तुम कहो कियो सोइ भैय्या॥
तुमहो सब ब्रजके सुखदानी। कंसमारि हौ तुम हम जानी॥
कहा भयो जो तुम हौ बारे। हैं तुम्हरे गुण सबते न्यारे ॥१५॥

श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलरामजी घनश्यामको छातीसे लगाकर हँसकर मिले और गाय, बछेरे, बैलोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुये और जो वृक्ष सूख गयेथे वह सब हरे होगये तब सब ब्रजवासी बोले कि, भाई बलराम! तुम भी अपने वचनके पूरेही निकले जो तुमने कहा था वैसाही हुवा अब घर चलनेकी क्या इच्छा है? ॥ १६ ॥ उसी समय गुरु, पुरोहित, ब्राह्मण अपनी अपनी पत्नियों सहित नन्दरायजीसे आनकर कहने लगे कि परमेश्वरने बडा अनुग्रह किया जो कालीनागका डसाहुवा तुम्हारा पुत्र बचगया. यह बडे मंगलका समय है ॥ १७ ॥ इनके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको मणि रत्न आभूषण सहित गोदान दीजिये उससमयकी बधाईमें नन्दरायजीने प्रसन्न होकर हे राजन्! गायें और सुवर्णका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥ १८ ॥ धर्मशीला यशोदा भी बडी भाग्यवान् है जिसका पुत्र कालके गालेमें जाकर लौट आया, उसने अपने पुत्रको पाय हृदयसे लगाय गोदमें बैठाय बारम्वार नेत्रोंसे आंशू बहाने लगी ॥ १९ ॥ हे राजन्! भूख प्याससे पीडित ब्रजवासी और सब गायोंको देखकर,(परन्तु उनको भूखका नाम भी नहीं था)*

---

* एक वैद्य किसी राजाके पास एक डिबिया भरकर परमोत्तम कालकूट रस लेकर आये और कहा कि,इस रसमें यह परम श्रेष्ठ गुणहै कि,जो एक सींकभरकर हाथीको भी सुंघादो तो वह उसी समय मरजाय और मनुष्यका तो कहनाही क्या है? यह बीस बाईस तोले दशहजार रुपयेकाहै. राजाने विचार किया कि, उत्तम वस्तु सदा नहीं मिलती इसलिये मंत्रीको आज्ञा दी कि, इसको दशसहस्र रुपये देदो और वह औषधि लेकर एक नौकरको सौंपदी, एक दिन राजकन्याको उस नौकरने कहीं खिडकीमें बैठी देख ली और उसपर मोहित होगया और फिर अनेक उपाय किये परन्तु उस राजकन्याका दर्शन नहीं हुवा तो उस नोकरने राजकन्याके वियोगमें वह औषधि खाली, परन्तु वह मरा नहीं, जब एक वर्ष बीतगया तो उस राजाने अपने नौकरसे उस रसकी डिबिया मांगी, राजाने देखा कि, डिबिया खाली है और उँगलियोंके चिह्न रसमें लग रहे हैं. राजाने उससे बूझा कि, औषधि कम क्यों है? उसने उत्तर दिया कि, मैंने खाली, परन्तु मैं मरा नहीं, राजाने वैद्यको बुलाकर सब वृत्तान्त कहा वैद्यने नौकरको एकान्तमें लेजाकर-

तब ब्रजभूषण नन्दादिक सब ब्रजवासियोंसे कहने लगे कि, मेरे वियोगका आपको बडा क्लेश हुवा और भोजनतकभी नहीं किया इसलिये आज यमुनाहीके तीरपर वास करना चाहिये. क्योंकि यहाँकी अतिरमणीक सुहावनी भूमि सुगन्धसनी त्रिविध समीर बहरही है, यहीं भोजन करके प्रातःकाल अपने अपने घरोंको चलेंगे श्रीकृष्णकी आज्ञामान सब ब्रजवासियोंने वहीं वास किया और नन्दरायने वृन्दावनसे षट्रस भोजन मँगाकर सबको आनन्द सहित जिमाया. फिर श्रीकृष्ण बोले कि, पिताजी ! मेरा यह विचार है कि कमलके फूलभी कंसको अभी पहुँचा दो और ग्वालबालकोंको साथ करदो और जो फूलोंके भेजनेमें विलम्ब होगा तो कलको वह निस्सन्देह ब्रजपर चढाई करदेगा यह बात सुन नन्द और उपनन्द बहुत प्रसन्न हुये और बहुतसी गाडियें मँगाकर एक करोड़ कमलके फूल उनमें लदवादिये और बडे बडे दूध दही माखनके बर्तन अहीरोंके शिरोंपर रख चतुर चतुर गोपोंको उनके संग कर कंसके पास भेजदिया ॥

दोहा-बहुत विनयकर कंसको, दीन्हों पत्र लिखाय।
कहियो मेरी ओरते, नृपसों ऐसे जाय॥
सोरठा-गयो कमलके काज, कालीदह मेरो सुवन।
तुव प्रतापते राज, आप गयो पहुँचाय अहि॥

हे महाराज ! आपने एक करोड कमलके फूलोंके लिये आज्ञाकी थी सो हमने तीन करोड फूल मँगालियेहैं, उनपर पानी छिडककर बहुत स्वच्छ स्थानमें रखवा दियेहैं, जो आज्ञा होय तो वह भी फूल आपकी सेवामें भेजदिये जायँ. तब बीचमें श्रीकृष्ण हँसकर बोल उठे कि, कंससे मेरा नाम कहना कि, यह सब काम श्यामसुन्दरने कियाहै, कमलके फूल और माखनके भार गोप लोग लेकर राजा कंसके द्वारपर पहुँचे और राजद्वारपर गाडियोंको थामकर पौरियेके हाथ राजाको समाचार भेजा, पौरियेने उसीसमय सब समाचार कंसको सुनादिया सुनतेही पसीना आगया और घबराकर राजद्वारपर आया, देखा तो गाडियोंकी लंगारेकी लंगारें लगरहीं हैं, देखतेही चकित होगया और सब सुधि बुधि

–सब सत्य २ वृत्तान्त बूझा, तब उस नौकरने जो कुछ बीता था सब सच्चा सच्चा वृत्तान्त कह दिया, तब वैद्यराज राजासे बोले कि, हे राजन् ! इस रसमें किसीप्रकारका दोष नहीं यह रस बहुत सच्चा है, उसी समय वह रस एक सींक भर कर कुत्तेको सुंघाया और वह सूँघतेही मरगया, तब राजाने कहा हमारा नौकर क्यों नहीं मरा ? वैद्यराज बोले कि, क्षणमात्रको राजकन्याको खिडकीमें बैठाल दो तो अभी परीक्षा हो जायगी और इस नौकरको भी यहीं पर खडा रहने दो, राजाने वैद्यकी आज्ञानुसार वैसेही काम किया, राजकन्याकी दृष्टि पडतेही नौकर तडफडायकर मरगया, क्योंकि उसके प्राण राजकन्यामें थे वैसेही ब्रजवासियोंके मन कृष्णमें अटक रहे थे, जब उनसे निकले तो उनको भूख प्यास लगै इस कारण न कोई मरा और न किसीको भूख प्यास लगी ॥

विसरगई, वह कमलके फूल उसके हृदयमें शूल सम खटकने लगे, गोपोंने नन्दकी ओरसे विनय सुनाया पत्र हाथमें दे भेंट आगे रख दी और गोपोंने फिर कहा कि, हे पृथ्वीनाथ नन्दके पुत्र श्यामसुन्दरने यह कहदिया है ॥

दोहा-हम कालीदह जायकर, कियो तुम्हारो काम।
नृप हमको जानत नहीं, कहियो मोर प्रणाम ॥

सोरठा-सुनत श्याम सन्देश, देख कमल अतिभो विकल
भीतर गयो नरेश, चितचिन्ताबाढी अधिक ॥

पत्रको बाँचकर मनहींमन यह कहने लगा कि, इससे अब मेरा किसी प्रकार उबार न होगा यह आदिपुरुष अविनाशी परब्रह्मका अवतार है, क्योंकि जिस जिस दैत्यको मैंने भेजा उसको उसने विनमारे न छोडा देखो कालीदह महाकठिन स्थान उसमेंसे कमलके फूल लेकर मेरे पास भेजदिये, निश्चय वह पूरा पराक्रमी है यह कह अत्यन्त उदासहो शोचने लगा कि, अब क्या उपाय करूं ? कभी कहता कि, इन गोपोंको मारडालूं फिर भयमानकर घबराता कि, न जानिये कि वह नन्दकुमार क्या उत्पात करे, इसी शोच विचारमें चारघडी बीतगई फिर कुछ धैर्य करके गोपोंको राजभवनमें बुलाया और ऊपरके मनसे उनका आदर सत्कार कर नन्दजीके लिये शिरोपाँव दिया और कहा कि, मेरी ओरसे नन्दरायसे जाकर कहना कि, आपने बडा काम किया और जो तुम्हारे पुत्र बलराम और कृष्ण हैं उनको एक दिन अपनी सभामें बुलाकर देखूंगा, उन्होंने मेरा बडा उपकार किया जो कमलके फूल मेरे पास भेजदिये यह कह उनको बिदा किया, परन्तु हृदयमें महाशोक सन्ताप हुवा तब कंसने अपने मित्र दावानलको बुलाकर अपना सब वृत्तान्त कहा आज मैं तुम्हारे बल और वीर्यको देखना चाहताहूं, तुम अभी जाकर ब्रजको और ब्रजवासियोंको फूँकदो,

सोरठा-जारि करो सब छार, ब्रज सब ब्रजवासिन सहित।
बचहिं न नन्दकुमार, ऐसो यत्न विचार उर ॥

अनल कंसकी वाणी सुन बडे घमण्डके साथ महा क्रोधित होकर बोला, आप कुछ सन्देह मतकरो एक क्षणमात्रमें सम्पूर्ण ब्रजको गोप गोपाल सहित भस्म कर दूंगा जो मैं सबको एक स्थानपर पाऊं तो आपका कार्य एक पलमें कर दिखाऊं. इधर सब गोप ग्वाल कंसको कमलके फूल पहुँचाकर यमुनाजीके किनारे आये जहाँ नन्दादिक सब गोप ग्वाल पडे हुयेथे और कंसने जो जो कुछ उनसे कहाथा वह सन्देशा कहा, उस बातको सुनकर नन्द उपनन्द और सब ब्रजवासी बहुत प्रसन्न हुए परन्तु नन्दरानी अपने मनमें डरी कि, न जानिये कि-मेरे पुत्रोंको बुलाकर वह पापी कंस क्या करै ?

दोहा-कहत श्याम बलरामसों, हँस हँसकर यह बात।
नृप हम तुम देखन लिये, कह्यो बुलावन तात ॥

ब्रजवासी अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए. क्योंकि एक प्रसन्नता तो यह कि, कृष्णचन्द्र

कालीनागसे बचे और दूसरी प्रसन्नता यह कि, कंसको कमल देकर उसकी त्राससे छूटे, परन्तु दिनभरके हारे थके भूख प्यासके मारे सब ब्रजवासी यमुनाके किनारेपर उस रातको रहगये थे ॥ २० ॥ गरमीकी ऋतु थी, आधी रातका समय था ठण्ढी ठण्ढी पवन जो लगी तो सब ब्रजवासी पडके सोगये, तब सूखेवनको उस दावानल दैत्यने अग्निरूप बनकर जलाना आरम्भ कर दिया" और महा क्रोध करके सब ब्रजवासियोंको चारोंओरसे घेर लिया, उस समय पवनके वेगसे अनलकी ऐसी ज्वाला भडकने लगी मानों चारों ओर सुमेरु पर्वत दिखाई देरहा है" ॥ २१ ॥ सब पृथ्वी और आकाश लाल लाल दीखने लगा, पशु पक्षी व्याकुल होकर भागने लगे जब महा कुलाहलपडा तो सब ब्रजवासी घबराकर जाग उठे और पुकार पुकारकर कहनेलगे कि, भाई यह तो बडी भारी आग लगी, अब क्या उपाय करें ? किसी ओर मार्गभी नहीं दिखाइ देता ? भाग कर किधरको जाँय ? जब कहीं निकास न देखा तो लम्बे लम्बे श्वास भरकर कहने लगे कि, अब तो दव निकट ही आगइ, यह कहते हुए सब यमुनाके तटपरको भागे कि, अब किसी प्रकार हमारा उबार न होगा, क्योंकि अग्नि महाअपार बढती चली आती है और अग्निकी झार चार चार बाँस ऊँची ऊपरको उठी चली जाती है, अब सबकी जल कर यहीं ढेरी होगी ॥ २२ ॥ " यह कहकर सब अत्यन्त व्याकुल होगये " ॥

छन्द–अति विकल सब डरे ब्रजजन देख अनल भयावनो ।
भई घर नभ ज्वाल पूरण धूम धुन्ध डरावनो ॥
लपट झपटत जरत तरुवर गिरत महि भहरायकै ।
उठत शब्द अघात चहुँदिशि बढत झर झहरायकै ॥
फटत फल फूटत पटक दल जरत बरत लता घनी ।
काँस चटकत बाँस पटकत लूक उचटत नभ तनी ॥
हरिण मोर वराह वनपशु विकल पन्थ न पावहीं ।
जरत जहँ तहँ जीव खग मृग विपुल जित तित धावहीं ॥

दोहा–दावानल अति क्रोधकर, लई दशहु दिशि घेर ।
उठी अनलज्वाला प्रबल, मानहुँ अचल सुमेर ॥

सोरठा–धूम धुन्ध विकराल, भयो अँधेरो गगन सब ।
बिच बिच चमकत ज्वाल, तडित माल जनु सघन घन ॥

जब ऐसी महाभयंकर प्रलयकालकेसी अग्निको देखा तब सब हाहाकारकर पुकारे कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे राम ! हे अत्यन्त पराक्रमी ! आप शीघ्र हमारी सहाय कीजे यह महाभयानक कृशानु हमको भस्म कर डालता है हे संकटमोचन ! शीघ्र हमारी सहाय कीजे जब जब हमलोगोंपर भारी भीर पडती है तब तब तुमहीं सहाय किया करते हो, तृणावर्त, शकटासुर, बकासुर, अघासुरको मार हमारी रक्षा करी वैसेही अब भी हमारी रक्षा करो, हम सब आपहीकेहैं ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! इस महाघोर

कालरूप अग्निसे हम लोगोंको बचाओ, हे मित्र ! हम इस भयंकर अग्निमें जलनेसे भी नहीं डरते केवल आपके चरणारविन्दके वियोगसे डरते हैं, सो आपके निर्भयपदको हम नहीं त्याग सक्ते ॥ २४ ॥

चौ०-यशुमति सबसों कहत पुकारे। दई परो है ख्याल हमारे ॥
रूप अनेक असुर धर आये। कोउ बग कोउ पशुरूप बनाये ॥
आयो कोउ वपुधर भयदायक। भयो तहाँ कोउ पुण्य सहायक ॥
आज उरगसों बचो कन्हाई। कमल भेज नृप त्रास मिटाई ॥
अब यह बाढी अग्नि अपारा। करन चहत ब्रजको संहारा ॥
किमि बचि हैं यह बालक दोऊ। मोहिं लखे परत उपाय न कोऊ ॥

माताके भयभीत वचन सुन और सब ब्रजवासियोंको व्याकुल देख, बाँकेविहारी बोले कि, भाई ! कोई मतडरो उसी देवताका ध्यान करो जिसका प्रथम पूजन कियाथा जिसने पहिले रक्षाकीथी वही अब भी आपलोगोंकी रक्षा करेगा, अब तुम सब अपने २ नेत्र बन्द करलो जब सबने अपने अपने नेत्र बन्द कर लिये तब जगन्नाथ जगदीश्वर अनन्तशक्तिधर अनन्तरूप भगवान् सब अग्निको पान करगये और धुन्धकराक्षसका विध्वंस कर डाला और दशोंदिशाओंमें शांति होगई पशु पक्षी जहाँ तहां आनन्दसे विचरने लगे, वृक्षादिक हरे भरे दिखाई देनेलगे तब वृन्दावन विहारीने सब ब्रजवासियोंसे कहा अपने अपने नेत्र खोलदो जब सब ब्रजवासियोंने अपने अपने नेत्र खोलकर देखा तो कहीं उनको अग्निकी एक चिनगारी भी दृष्टि न आई, यह अद्भुत चरित्र देख सब ब्रजवासी परस्पर कहने लगे कि, पृथ्वीसे आकाश तक अग्निही अग्नि दिखाई देतीथी और ठौर ठौर महा विकराल लाल लाल लपटें निकलती थीं, जल भी नहीं बरषा, और किसीने बुझाया भी नहीं, फिर यह महाभयंकर ज्वाला किस प्रकार बुझगई ? इस बातका भेद हमने अब तक नहीं जाना ? फूसकी आग पहिले तो बहुत भडक उठती है फिर बुझ भी बहुत शीघ्र जाती है ॥

सोरठा-ज्यों ओलेको प्याग, पलमें पल्की बढत है।
घटत न लागे बार, तैसेहि अग्नि बिलागई ॥
जाके रक्षक श्याम, कौन मार ताको सके।
जहाँ नित्य विश्राम, तहाँ कमी किस बातकी ॥
जो प्रभु अलख अपार, दुर्लभ शिव सनकादिको।
धन्य नन्दकी नार, ताको सुत को मानही ॥

जब सब शोक सन्ताप मिटगया और प्रातःकाल हुआ तब सब ब्रजवासी अपने अपने घर आये और मंगलाचार करनेलगे और ब्रजनायकको अपना सहायक समझकर उनसे अत्यन्त प्रेम प्रीति करने लगे ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे सप्तदशोऽध्याय. ॥१७॥

दोहा-अष्टादशमें ग्रीष्मसे, लक्षित सुखद वसंत।
हरिकी पाय सहाय कछु, हत्यो प्रलम्ब अनंत ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे नरेन्द्र ! फिर श्रीवृन्दावनविहारी मनमें प्रसन्न होकर अपनी जातिके सब ब्रजवासियोंको साथ लिये, अग्निका पान किये पीछेपीछे ब्रजवासी जिनके चरित्र गाते चले आतेथे,ऐसे श्यामसुन्दर गायोंके समूहोंसे शोभित ब्रजको ओरको पधारे ॥ १ ॥ गायोंके चरानेके बहानेसे अनेक प्रकारकी माया करके दोनों भाई ब्रजमें विहार करतेथे, उसी अवसरमें ग्रीष्मऋतु आई, परन्तु वह समय देहधारियोंके लिये सुखदायक नहीं है॥२॥परन्तु वह ग्रीष्मऋतु भी वृन्दावनके गुणोंसे वसन्तऋतुकी समान जान पडती थी क्योंकि जहाँ साक्षात् श्रीवृन्दावनविहारी कृष्णचन्द्र भगवान् बलरामजीके साथ विराजते थे फिर भी वहाँ वसन्त न रहैं, बड़े आश्चर्यकी बात है ? वहाँ तो सदा वसन्त रहना चाहिये, वृक्षोंपर बारहोंमास फल फूल खिलते रहैं, त्रिविध बयारि झकोलती रहैं, आमोंकी डालियोंपर कोकिला कूकती रहैं, भाँति भाँतिके पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियें बोलते रहैं, मोर शोर कर कर चारोंओर झिंगारते रहैं और अनेक अनेक प्रकारकी शोभा नित्य-प्रति बनी रहै तो क्या आश्चर्य है ? क्योंकि जहाँ त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी विहारकरैं वहाँ भी यह शोभा न हो तो फिर कहां हो ? ॥ ३ ॥ जहाँ जलके झरनोंका ऐसा गम्भीर शब्द हो रहाथा उस शब्दके सामने झींगरोंका शब्द सुनाई नहीं देताथा और सदा झरनोंकी छींटोंसे हरे हरे वृक्षोंके समूहोंसे वृन्दावन अत्यन्त शोभायमान हो रहा था॥ ॥ ४ ॥ वहाँ हरी हरी घास ऐसी शोभायमान जान पडती थी मानों हरी मखमलका बिछौना बिछ रहाहै, उस वृन्दावनमें कल्हार, कंज और उत्पल यह जो भाँति भाँतिके कमल हैं उनकी सुगन्धयुक्त नदी, सरोवर, झरनोंसे स्पर्श करके जो ठण्ढी ठण्ढी पवन आती थी. इससे वृन्दावनवासियोंको ग्रीष्मकी अग्नि और मार्त्तण्डकी प्रचण्ड ताप नहीं सताती थी ॥ ५ ॥ जहाँ अनेक नदियें हैं जिनके तट पर पहुँचतेही जलकी तरंगोंसे टापु-ओंकी और किनारोंकी भूमिमें सजलताई आती है, उस पृथ्वीकी सजलताई और हरियालीको विषकी समान भयंकर सूर्यकी किरणें नहीं सुखा सक्ती ॥ ६॥ अनेक प्रकारके फूल जहाँ तहाँ फूल रहे हैं, नानाप्रकारके जीव जन्तु,पक्षी मीठी मीठी बोलियें बोल रहेहैं॥

चौ०-कुसुमिततरु अवली जेहि कानन। सो वृन्दावन परम सुहावन ॥
कीर कपोत केकि कल मोरा। बोलत पिक चकोर चहुँ ओरा ॥
कोकिल पिक चातक सुखदानी। मुनि मन हरण सारिकावानी॥
विहरत ब्रजवन तिय सुत संगा। चरत नवीने तृणन कुरंगा ॥
मत्त मधुप तहँ कुञ्जनि कुञ्जनि। भ्रमरी संग करत कलगुञ्जनि ॥
वृन्दावन समान नहिं दूजो। ताकी छबिनन्दन नहिं पूजो॥७॥

उस अनुपमवनमें श्रीकृष्णचन्द्रभगवान् बलदेवजीको और ग्वालबालोंको साथ लेकर बाँसुरी बजाते विहार करनेके लिये गाय बछडों सहित वृन्दावनको चले ॥ ८ ॥ बलराम

श्रीकृष्णादिक ग्वाल बाल पत्र, मोरपुच्छ, गुच्छक, माला, धातु अर्थात् गेरू खडिया, मनशिल, हरतालसे शृंगार करके कभी नाचतेथे, कभी गातेथे और कभी परस्पर युद्ध मचातेथे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र जब युद्ध करतेथे और नृत्य करतेथे, उस समय कितने बाँसुरी, करताल और शृंगी बजातेथे और कितने नई नई राग रागिनी गातेथे, कितने उनके नाचकी बडाई करतेथे ॥ १० ॥ हे राजन्! देवता लोग गुप्त हो गोपोंका रूप धारणकर कर श्रीकृष्ण और बलरामकी वारम्वार इसप्रकार प्रशंसा करतेथे जैसे नट नटकी बडाई करते हैं॥११॥ सब शिरपर बाल धारणकिये श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई कभी चाईमाई खेलते, कभी कूदते, कभी धक्का मुक्की करते, कभी खम्भ ठोंकते, कभी खेंचातानी करते और कभी मल्लयुद्ध करते इसप्रकार एकसे एक अद्भुत लीला करते थे ॥ १२ ॥ हे राजन्! कभी और दूसरे ग्वालबाल नाचतेथे तो कृष्ण बलदेव दोनों भाई आप गाते थे और बाँसुरी बजाते थे और फिर उनकी प्रशंसा करते थे कि, तुमने भला नृत्य किया ॥ १३ ॥ कभी बेलके फल हाथमें लेकर दो दो चार चार एक साथही उछालते, कभी कुंभी वृक्षके फलोंको फेंकते थे. कभी आँवलेके फल मुरलीनमें रख रखके बगेलते थे, कभी छोटे छोटे फल हाथमें लेकर बूझते थे जो बतलादेते तो फल लेलेते और जो नहीं बतला सक्ते थे तो वह फल हार जाते थे ॥

दोहा–सबहिं सखा कहुँ आयके, भाषहिं हरि बलपाहिं ॥
खेल आँखमिचौहली, अस हमरे मन माहिं ॥

पहिले तो बलरामने श्यामसुंदरके नेत्र बन्द किये, सब सखा भागकर चारोंओर छिपगये तब बलदेवजीने कृष्णको छोड़दिया और उनकी आँखें खोलदी. जिसको कृष्ण पकड़कर लाते थे बलदेवजी उनहीकी आँखें मीचते थे. कभी कुरंगके संग दौड़ने, कभी विहंगके ढंग पर चलते ॥ १४ ॥ कभी सरिताओंके सोतोंमें मेंडककी नाईं कूदते और जो कोई कूदनेके समय पानीमें रपटकर गिर पड़ता तो सब सखा मिलके उसका हास्य करते थे, कभी वृक्षोंकी शाखाओंको पकड़ पकड़कर झूलते थे और सुंदर सुंदर पुष्पोंके आभूषण बना बनाकर पहनते थे. कोई कोई सखा कहते भाई! हमारी तो यह इच्छा है कि, बलरामको तो राजा बनावें और घनश्यामको मंत्री बनावें और हम सब प्रजागण बनें और श्रीदामादिक ग्वालवालोंको सिपाही बनावें और जो ग्वालिनी इस मार्गको दधि लेकर निकले उनसे दान लें ॥ १५ ॥ इसप्रकार राम कृष्ण दोनों भाई जगत्में जो जो खेल विख्यात हैं उन उन खेलोंको खेलकर प्रसन्न होते थे, कभी यमुनाजी न्हाते, कभी गोवर्द्धनकी कन्दाराओंमें घुसजाते कभी कुञ्जोंमें विचरते फिरते. कभी काननमें आन ढक ढकका विचरते, कभी, सरोवरोंमें जलविहार करते और कभी कमल कुमोदिनीके फूल तोड़ तोड़ कानोंमें धरते थे ॥ १६ ॥ इसप्रकार दोनों भाई ग्वाल बालोंके संग वृन्दावनमें गायें चराते थे, तहाँ कृष्ण बलदेवके हरनेके लिये कंसने प्रलम्बासुरको भेजा उसने इनको सखाओंके साथ खेलताहुवा देख अपना रूप भी गोपहीका बनाकर उन ग्वालोंमें आन

मिला॥१७॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जानलिया कि, यह असुर आया और अपने मनमें उसके मारनेका विचारभी किया परन्तु तोभी उसको मित्र बनाकर उसकी प्रशंसा की और कहा कि, मित्र! आप भले खेलके समय आगये ॥ १८ ॥ आप तो सब खेल जानतेही हो ? फिर सब सखाओंको बुलाकर कहा कि, हे मित्रो ! हम बराबरकी दो टोली बनाकर खेल खेलेंगे ॥ १९ ॥

चौ०-एक ओर बलराम प्रधाना। एक ओर मैंश्याम सुजाना॥
दोउ ओर द्वै थोक बनाये। आधे आधे दोउ दिशि आये॥

बलराम और घनश्यामको दोनों टोलियोंका मुखिया बनाया और सबको यह वचन पुकारकर सुनादिया कि, जो जीतै सो हारेकी पीठपर चढ़े और हाराहुवा उसको अपनी पीठपर चढ़ाकर वटभाण्डीरतक उसी समय पहुँचादे ॥ २० ॥ इस प्रकार चढने चढ़ानेवाले कई खेलोंका प्रारम्भ किया और परस्पर दोनोंने स्वीकार कर लिया ॥ २१ ॥ इस प्रकार चढते चढ़ाते गायोंको चराते श्रीकृष्ण अपने थोकको लेकर वटभाण्डीरकमें पहुँच ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जब बलरामजीकी ओर श्रीदामा और वृषभादिक जीतगये तब श्रीकृष्णचन्द्रकी ओरके उनको अपनी पीठपर चढ़ाकर लेगये ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब हारे तब श्रीदामाको अपनी पीठपर चढाया, भद्रसेनने वृषभको चढ़ाया और प्रलम्बासुरने रोहिणीनन्दन बलरामजीको अपनी पीठपर चढ़ालिया ॥ २४ ॥ जब कि, उस प्रलम्बासुरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बलवान् समझा तो बलदेवहीको लेकर वटभाण्डीरक वनकी ओरको लेकर अत्यन्त शीघ्रता सहित झपटा चलागया॥२५॥जब उस असुरसे पर्वतके समान बलदेवजीका भारी भार न उठसका और पराक्रम उसका शिथिल होगया तब इसने अपना असुरदेह धारण करलिया, उस समय वह दैत्य सुवर्णके गहने पहने ऐसा शोभायमान दिखाई देता था जैसे चन्द्रमासहित बादलमें बिजली दमक जातीहै और बलदेवजी उस दैत्यके काले शरीरपर कैसे दिखाई देतथे जैसे कालीघटामें चन्द्रमा, बलदेवजीके कानोंके कुंडल कभी कभी दामिनीके समान दमक जाते थे, गलेका दुपट्टा जो झटका खाकर नीचेको लटक गयाथा वह ऐसा जान पडता था मानो इन्द्रका धनुष तन रहा है, गरमीके मारे उसकी देहसे प्रस्वेद जो टपकताथा वह ऐसा ज्ञात होता था मानो आकाशसे बुन्दधारा पडरही है, ॥ २६ ॥ आकाशतक प्रकाशमान ऊंचे जिसके महाविकराल कालके काल समान लाल लाल नेत्र मानो तत्कालही ज्वालाको उगलेंगे, महाभयंकर दाढें मानो बाढें धरीहुई बरछी बाल तांबेके सदृश लाल लाल भयकारी दोनों भुजदण्ड मानों ब्रह्माण्डके तोडनेवाले हैं कानोंमें कनककुण्डल मस्तकपर मुकुटकी अद्भुत शोभा और उस असुरकी मनोहर कान्ति देखकर हल मुशलके धारण करनेवाले बलदेवजी अपने मनमें कहने लगे कि, यह कैसा गोप ? मेरा जी डरता है ॥ २७ ॥ पहिले तो कुछ भय माना परन्तु पीछे सुधि आगई कि, यह तो असुर है, फिर तो भय त्याग बलदेवजीने जाना कि, हमारे गोपोंको छुटाकर बलात्कार हमको लिये जाता है, तब तो अविनाशीने महा

क्रोध करके उसके शीशमें एक मुष्टिक मारा, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतको मारता है ॥२८॥ मुष्टिकके लगतेही उसका शिर फूटकी नाई फूट गया, दाँत टूट गये, मुखसे रक्तका वमन होने लगा, मानो रुधिरकी धारा बहरही है जिह्वा और नयन निकलकर बाहर आपड़े हाथ पाँव पसार दिये और बड़ा घोर शब्दकर मुख फैलाय पृथ्वीपर गिरा, जैसे इन्द्रके वज्रके मारे पहाड पृथ्वीपर गिरते हैं ॥ २९ ॥ महाबलवान् बलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरको मराहुवा देखकर–

दोहा–ग्वालबाल चकित भये, भे प्रसन्न नँदलाल।
धाय धाय बलरामसे, मिले सकल तेहि काल ॥

सोरठ–धन्य धन्य बलराम, धन्य तुम्हारे मातु पितु।
बडो कियो यह काम, कपट रूप मारो असुर ॥

हे भाई! तुम दोनों बडे वीर हो, हमसे तुम्हारी बडाई नहीं होसकी, जहां जहां हमपर विपत्ति पडती है वहीं वहीं आप सहाय करतेहैं जो भाई तुम इस समय न होते तो यह एक न एक लडकेको पकड कर अवश्य लेजाता एक ग्वाल बोला कैसे लेजाता!

चौ०–यही सदा हमरे रखवारे। वनके दुष्ट सकल इन मारे ॥
ताहि कहो काको डर भैया। जासु मीत बलराम कन्हैया ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, उस समय सब ग्वालबाल और नंदलाल मिलकर बलदेवजीको आशीर्वाद देने लगे कि, चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो, फिर प्रशंसा योग्य बलदेवजीकी प्रशंसा करने लगे और जैसे कोई मरकर लौट आता है ऐसे बलदेवजीसे मिलकर प्रेममें मग्न होगये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ पापी प्रलम्बासुरके मरनेसे देवताओंको बडा आनन्द हुवा बलदेवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की और धन्यवाद देने लगे ॥

दोहा–पुनि आनँद अति पायके, देव गये निज धाम।
गोपनयुत विहरन लगे, वृंदावन बल श्याम ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कन्धे
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, मुञ्ज विपिनमें जाय।
गोप गाय सब अग्निसे, क्षणमें लियो बचाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! जब सब ग्वालबाल खेलमें लगगये तब उनकी गायें बछरे अपनी इच्छासे चरते चरते हरी हरी घासके लालचमें आनकर सघन वनमें चले गये ॥ १ ॥ वह अजा अर्थात् ओसर गायें भैंसे उस वनसे चरती चरती आगे धेनुकवनमें चलीगई उसके आगे महाघोर मुंज है तहाँ चलीगई क्योंकि वनमें चारोंओर दवँ जो लगरही थी उसकी गर्मीसे प्यासकी मारी घवरा रही थीं ॥ २ ॥ जब बलराम कृष्णादिक ग्वालबालोंने पशुओंको नहीं देखा तो मनमें अत्यन्त दुःखी हुये और जहाँ तहाँ

खोजने लगे परन्तु पता कहीं नहीं लगा ॥ ३ ॥ और उनकी जीविकाकाभी विनाश होगया तो उनके चित्त स्थिर नहीं रहे और सब सुधि बुधि जाती रही और पुकार पुकार कर कहने लगे ॥

चौ०-लेले नाम तिनहिं गुहरावैं। वेणु शृंगके शोर मचावैं॥
कहाँ गई सब धेनु हमारी। अस कहि कहि अतिहोत दुखारी॥

फिर परस्पर विचार सब ग्वालबाल गायोंके खुरोंके चिन्हको और जो गायोंके दांतोंसे कटा हुवा घास था, उसको देखते देखते जहाँ जहाँ होकर गायें गई थीं वहाँ पहुँचे ॥ ॥ ४ ॥ मुंजवनमें घुस गये वहां जाकर मार्ग भूलगये, सीधा मार्ग अग्निसे रुकगया था, तब दुःखित हुई कुछ थोडीसी गायोंके समूहोंको देखा, भूखे और प्यासे ढूँढनेके खेदसे और भी घबरारहे, उन हारे थकोंने अपनी गायोंको घेरकर पीछेको लौटे ॥ ५ ॥ जो गायें इधर उधर रहगई और दूर दूर चरती थीं, उनको मेघकी समान गम्भीर वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उनका नाम लेलेकर बुलाई ॥

चौ०-कारी, काजरि, धूसरि, धौरी। हंसिन, वंसिन, वासिन, बौरी॥
पीरी, कबरी, भूरी, गोरी। गई कौन बनको कित ओरी॥

तब सब गायें अपने अपने नाम सुनकर, हर्षित होकर रम्भाई, इससे यह सूचित किया कि, हम तुम्हारी मनोहर वाणीको, सुनती तो हैं परन्तु मार्गमें आग जो लगी है इसलिये तुम्हारे समीप आ नहीं सक्तीं मार्ग बडा विकट है ॥ ६ ॥ वहाँ बडी धूमधामसे धूमध्वजवाला अग्नि चारों ओर वनवासी जीवोंका जलानेवाला लगरहा था और पवनके वेगसे प्रचण्ड होरहा था और महाप्रबल लपटोंसे चराचरको भस्म करता चला जाता था और धुयेंके धुन्धकारसे सर्वत्र वनमें महाघोर अन्धकार छागयाथा ॥ ७ ॥

दोहा-चट चटात तहँ बाँसगण, फूट फूट फट जात।
पटपटात तृण गण जरत, आरत पशु अकुलात॥

जीव, जन्तु, पशु, पक्षी धुँएसे अन्धे हो २ जहाँके तहाँ जल जलकर रहजाते थे कोई किसीको बूझै नहीं था,

चौ०-मनहुँ प्रलय पावक वन आयो। सिगरे जगको चहत जरायो॥
लपटैं झपटैं बिकटैं भारी। चटकहिं शिला अग्निकी झारी॥
ज्यों ज्यों अग्नि निकटको आवत। त्यों त्यों ग्वाल अधिक भय पावत॥
गायें मरत प्यासकी मारी। मिलत न नीर पीर तनुभारी॥

तब सब ग्वाल मृत्युके भयसे दुःखित हो बलदेवजीसहित श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर विनय करने लगे ॥ ८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबलवान् ! हे राम ! हे अनंतपराक्रमवाले ! यह वनकी अग्नि हमको भस्म करे डालती है, अब शरणागतोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हम तुम्हारे मित्र हैं, हमको ऐसा कठिन कष्ट दिखाना नहीं चाहिये, क्योंकि हम इतने कष्ट सहने योग्य नहीं हैं. आपही हमारे अधिष्ठाता हो और

आपहीका हमको आश्रय है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मित्रोंके दीन वचन सुनकर कहने लगे कि, हे मित्रो ! भयभीत मत हो, अपनी अपनी आँखें मीच लो ॥ ११ ॥ उसी समय श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार सबने अपने अपने नेत्र मूंद लिये तब योगेश्वर भगवान्‌ने उस महाभयंकर अग्निको पानकर अपने प्यारे मित्रोंको महाकष्टसे बचाया ॥ १२ ॥ जब उन्होंने नेत्र खोले तो फिर भाण्डीरवनमें आगये और अपने आपको और गायोंको अग्निसे छुटा देखकर बहुत विस्मित हुए कि, यह क्षणमात्रमेंही क्या अचम्भा होगया ॥ १३ ॥ योगमायाका प्रभाव प्रगट दिखानेवाली अग्निके बचानेसे श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको देखकर सब गोप कहने लगे कि, श्रीकृष्ण हमारे समान मनुष्य नहीं हैं देवता जान पडते हैं ॥ १४ ॥ जब जाना कि, सन्ध्यासमय हुई तब बलरामजीसहित श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द यशोदानन्दन मन्दमन्द चालसे गायोंको लिये बाँसुरी बजाते गोपोंसे स्तुति कराते ब्रजमें आये ॥ १५ ॥ जब ग्रामके समीप आगये तब मुरलीधरने मुरली बजाई; मुरलीकी ध्वनि सुनतेही सब ब्रजनारी अपने अपने घरोंका काम तजकर मार्गमें आन खडी हुई और गोपीवल्लभका दर्शन करतेही गोपियोंको परमानन्द प्राप्त हुवा और हृदयमें ठण्ढक होगई. क्योंकि बिना श्यामसुन्दरके देखे एक एक क्षण सौ सौ युगकी समान व्यतीत होता था सदासे उन गोपियोंका नियम था कि, जबतक मनमोहनी मूर्तिका दर्शन नहीं करती थीं तबतक अन्न पानी नहीं खाती थीं व्रतही रहती थीं, जब संध्यासमय होता तब मनमोहनकी मनोहर मूर्ति देखकर व्रतका पारण किया करती थीं, जब श्यामसुन्दर और बलराम अपने घरपर आये तब यशोदा और रोहिणीने उनको गोदमें लेलेकर अत्यन्त प्यार किया और ग्वालबालोंसे बूझा कि आज क्या कारण हुवा जो तुमको वनमें इतनी देर लगी ? तब उन्होंने सब वृत्तान्त प्रलम्बासुरके मारनेका और मुंजवनमें अग्निके लगनेका कहा, तब यशोदा और रोहिणी इस बातको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और नन्दजीने यह समाचार सुनकर बडा सन्देह किया कि, देखो कृष्ण बलदेवको हमने इतना समझाया परन्तु इन्होंने गायोंका चराना और वनका जाना न छोडा और यह भी जानते हैं कि, कंस हमारा पूरा बैरी है परन्तु इन बालकोंको कुछ ध्यान नहीं. जब यह समाचार घर घर फैल गया तो सब व्रजवासी बलराम और घनश्यामके देखनेको आये और दोनों भाइयोंको समझाने लगे कि, देखो इतनी दूर वनमें खेलनेके लिये तुम कभी मत जाया करो, यहां नित्य नये नये उत्पात होते हैं और आपहीकी दयासे हमारे बालक भी इस महाघोर पावकसे बचगये नहीं तो मरनेमें तो कुछ सन्देहही न था, परन्तु परमेश्वरने बडा अनुग्रह किया जो कुशलपूर्वक सब अपने अपने घर आये. उस समय यथाशक्ति सबने अपने अपने बालकोंपर पुण्य दान कराया और ईश्वरकी माया ऐसी विश्वमोहनी है कि, यह भेद किसीने नहीं जाना कि,यह कर्त्तव्य श्रीकृष्णके हैं,इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन् ! इसी प्रकार नित्य नये नये चरित्र करकरके श्रीवृन्दावनविहारी सब वृंदावनवासियोंको नये नये

सुख देते थे और सब ब्रजबाला नन्दलालापर ऐसी मतवाली होरही थीं कि, उनको किसी न किसी प्रकार ब्रजभूषणका दर्शन करना, कभी दहीही बेचनेके बहानेसे आतीं, कभी पानीही भरनेको उधर होकर जाती, जब श्यामसुन्दर उनका न मिलते तो सैकडों उपाय करतीं क्योंकि विना मनमोहनके देखे उनका तो हृदयही ठण्ढा न होता था, उनके सास श्वसुर और माता, पिता बहुतेरा समझाते थे परन्तु उनकी समझमें कुछ न आती थी क्योंकि उनके मन तो मनमोहनने पहिलेही मोह लिये थे परन्तु नन्दलालाभी यह जानते थे कि यह तन मन धनसे मेरे ऊपर मोहित हैं,इसलिये वह सर्वान्तर्यामी नयनपथगामी हो दिनमें एक वार मधुर मुसकान सहित अपनी बाँकी झाँकी दिखाकर उनका चित्त साव-धान रखते थे कि, कहीं मेरे दर्शन विना अपने प्राण न खो बैठें, एक दिन मदनमोहनने अपना नटवर वेष बनाय सब सखाओंको संग ले कालिन्दीके किनारे कदमकी छायामें जाकर खडे हुए, उस समयकी मनोहर छबि देखकर कोटि काम लज्जित होतेथे, शीशपर मुकुटकी लटक, माथेपर केसर और चन्दनकी खौर, घूँघरवाली अलकें, कानोंमें कुण्डलोंकी झलक, कण्ठमें वनमाला मुक्तामाल, हृदयमें भृगुलताका चिन्हः—

चौ०-अरुणअधर दशनन द्युति नीकी। मुरि मुसकान मोहनी जीकी ॥
चटकीला पटपीत विराजै। कटि तट क्षुद्रघंटिका राजै ॥
भुज विशाल भूषण शुभ सोहैं। कर मुद्रिका जटित कण मोहैं ॥
तनु घनश्याम रसीले नैना। हँसि हँसि कहत सखनसों बैना ॥

देखो भाइ ! आज कैसा आनन्दका समय है,गगनमें घटा छारही है चपला चमकरही है, महीन महीन फुहारे पडरहे हैं,कोकिला कूकरही हैं, मोर शोर कर रहे हैं,झिल्ली झिंगार रहीहैं, दादुर बोलरहेहैं, हरी हरी भूमि चारोंओर दिखाई देरही है, मानो कामदेवने हरे मखमलका बिछौना विछा दिया है और कैसी सुगन्धसनी समीर चलरही है कि, जिसके स्पर्शसे कामी पुरुषोंके चित्त चलायमान होतेहैं और यमुना न्यारीही लहरें लेती चली जातीहैं और बीच बीचमें जो भवँर पडतेहैं उनकी कैसी उत्तम शोभा है. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस मनमोहनी छबिसे नागरनट पनघटपर खडे बाँसुरी बजारहे थे और ग्वालबाल इधर उधर खडे थे उसी समय वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा अपनी सब सखियोंको संग लिये पानी भरनेके बहाने मनमोहन प्यारेको देखनेके लिये यमुनापर आई, समीप आकर देखा तो सखाओंको संग लिये मनमोहनप्यारा खडा है, राधा बोलीं कि, आली ! वह महा खोटा नन्दका ढोटा मार्गमें खडा हमारीओरको तक रहा है, ऐसा जान पडताहै कि, वह अवश्य हमको रोकेगा, सर्वान्तर्यामी श्यामसुन्दर राधाके मनकी गति जान ग्वालबालों सहित मार्गमेंसे हट दूसरी ओरको चलेगये तब वृष-भानुदुलारीने जाना कि, ब्रजविहारी हटगये तब आगेको सिधारी और यमुनजल भरकर अपनी अपनी गागरें शिरोंपर धर धर कर जब घरकी ओरको चलीं उस समय वृषभानु-

नन्दिनी सखियोंके समूहमें ऐसी शोभायमान जान पडतीथीं जैसे गयन्दियोंके झुण्डमें राजगयन्दिनी मन्द मन्द चालसे झूमती चली जारही है ॥

सोरठा-चली भवनकी ओर, शिरपर सोहत गागरी।
पीछेते चितचोर, घट लै दियो लुढाय महि ॥

ग्वालिनीने झट हाथ पकडकर लकुटिया हाथमेंसे छीन ली और कहा कि, अरे माखन-चोर ! औरहीकी गागरफोरकर रहगया होगा मैं तेरे बहुत दांत खट्टे करूंगी. तब नटनागर हँसकर उस नागरीको गागर देनेलगे तब वह रूप उजागरी बोली कि, मैं खाली गागर न लूंगी, जब तुमहीं भरकर मेरे शिर पर धरदोगे तो लकुटिया दूंगी, जो तुम कहो कि, मैं नन्दका पुत्र हूं तो मैं भी बडे महरकी बेटी हूं, मेरा तुम्हारा एक ग्रामका वास है मैं किसी प्रकारका भय नहीं सहूँगी जो तुम एक कहोगे तो दश सुनोगे मुझको तुम्हारा किसी प्रकारका भय नहीं है, यह सुनकर श्यामसुन्दर हँसदिये और कहा कि, प्यारी ! तुम हमारी लकुटिया देदो, मैं तुम्हारी गागर भरकर तुम्हारे शिरपर धर दूंगा, बांकी चितवन और मन्द मुसकान देख राधासहित सब सखियोंने तनमनकी सुरत बिसार दी, मन तो श्यामसुन्दरके फन्देमें फँसगया, तनमें मदनके बाण लगने लगे, ऐसी बेसुधि हुई कि, लकुटिया हाथसे गिरनेकी भी सुधि न रही ॥

दोहा-तब घट भर हरि भावसे, दीन्हो शीश उठाय।
नेकहुँ सुधि तनुकी नहीं, चलीं ब्रजहिं समुदाय ॥

सोरठा-कियो दृगनमें धाम, सुन्दर नट नागर सुखद।
जित देखो तित श्याम, पन्थ मोहिं दीखत नहीं ॥

उधरसे और एक सखी जल भरनेके लिये आती थी, राधाको देखकर कहने लगी कि, हे राधा! तुमको क्या होगया तेरे मनमें क्या सोच है? जो तू उलटी २ मार्गमें जा रही है, राधा बोली कि, आली! क्या कहूं उस वनमालीने मेरे ऊपर कुछ ऐसी मोहनी डाली है कि, सिवाय श्यामसुन्दरके मुझे और कुछ दृष्टि नहीं आता, राधाकी मधुरवाणी सुन उसको भी मनमोहनके दर्शनकी अभिलाषा हुई और झटपट वंशीवटके निकट पहुँची, परन्तु मनमोहन प्यारेको वहाँ न देखा और कृष्ण एक वृक्षकी ओटमें खड़े खड़े देखते रहे, परन्तु विरहानलने उसके तनुको ऐसा तपाया कि, तप्त तवेके समान होगया और श्यामसुन्दर न मिले तब-॥

दोहा-चली नीर भर भवनको, बार बार पछिताय।
भरत धरत शिर गागरी, रीती है है जाय ॥

सोरठा-मनके जाननहार, देख ग्वालिनीको विकल।
प्रगटे नन्दकुमार, आय अचानक निकटही ॥

हे प्रिया ! क्यों व्याकुल हो रही है ? यह कह उसको हृदयसे लगालिया और उसके हृदयकी सब ताप बुझादी और उसके मुखारविन्दकीओरको देखकर कहने लगे कि, हे मृगनयनी ! तू कौन है ? मैने आजतक तुझको कभी नही देखा । ग्वालिनी बोली

कि, हे जीवनमूल ! तुम मुझको क्या देखते, पहिले तो रूप दिखाकर हमारा मन हरलेते हो और फिर तरुकी ओटमें छिपकर हमारे प्रेमकी परीक्षा करते हो, हे चित्तचोर ! यह तो बताओ कि, यह चित्त चुरानेकी विद्या तुमको किसने सिखाई, यह बात सुन तिरछी चितवनकर मनमोहन मुसकाये, वह सखी तिरछी चितवन और मन्द मुसकानको देख सब सुधि बुधि भूलगई और यह सुरत न रही कि, कौन हूं और कहां हूं, शिरपर गागर तो धर ली परन्तु इधर उधर घूमती फिरै और एक ब्रजबाला उधरसे आती थी उसने इसकी कुदशा देखकर निकट बुलाकर बूझा कि, क्या भूली भटकीसी फिर रही है परन्तु उसने कुछ नहीं सुना जब फिर उसने कहा क्योंरी बतलाती नहीं कि, तेरी क्या गति है ? फिर तो एकाएकी अचानक चौंक पड़ी जैसे कोई स्वप्नसे जाग उठता है,आली ! मेरी दशा कुछ मत बूझो श्यामवर्ण किशोर अवस्थावाला एक कुमार मुझको मिला, न जानिये उसने मेरे ऊपर क्या टोना करदिया, उसकी बाँकी चितवन देखतेही मेरी सुधि बुधि बिसरगई और ऐसी विरहाग्निकी ताप मेरे हृदयमें उठी कि, जबहीं जलकी गागर शिरपर धरकर चलती थी थोंडीही देरमें वह जल सूख जाता था, मैं फिर भरकर शिरपर धरती जबभी सूख जाता है, इसी प्रकार सैकडों बार शिरपर धरा, परन्तु घट सूखही सूखगया, तब मेरे मनकी लगन जानकर वह चित्तचोर मेरे समीप आनकर उपस्थित हुवा और मुझसे कहने लगा तेरा घर कहाँ है, मैंने तुझे आजतक ब्रजमें कभी नहीं देखा ।

दोहा-ऐसे कहि चितयो बिहँसि, मैं लख रही भुलाय ।
तबहीं ते वह लेगयो, मेरो चित्त चुराय ॥

वह सखी उसको सावधान करके आप यमुनाकी ओरको चलदी, देखा तो मुरलीधर मुरली हाथमें लिये एक वृक्षकी ओटमें खड़े हैं मैंने जबहीं जाकर यमुनामें गागर भरी और शिरपर धरी झट आनकर मेरे निकट खडा होगया और मेरी लट पकडली और कहने लगा कि, हे चन्द्रानने ! कहाँ चली ? फिर मेरे छातीपर हाथ रक्खा, तब मैं क्रोध-करके बोली कि, मुझको और ग्वालिनी मत समझना मैं बडे गोपकी जाई हूँ, तुमको मेरे कुचोंपर हाथ रखते लज्जा नहीं आती, तब वह मुझसे कहने लगा कि, नकुछ बात पर तू रिसाय गई,मैंने तुझको पहिचाना नहीं था इसलिये तेरा मुख देखने लगाथा,मैंने तेरे हृदय-पर हाथ कुछ पाप समझकर नहीं रक्खा मैंने तो यह समझा था कि, यह किसी बागमेंसे अनार तोडकर लाई है और इसने अपने वस्त्रोंमें छिपा रक्खे हैं यह कह मेरी लट छोडदी और मुसकादिया.जब मैं घरकी ओरको थोडीही दूर चली फिर आगे जाकर मार्ग भूल गई और वहीं बैठगई जब कुछ कुछ सचेत हुई तो घरका और गुरुजनोंका स्मरण हुवा तो मैं अत्यन्त लज्जित हुई और जैसे तैसे कर घर पहुँची परन्तु हृदयसे वह साँवली सूरत और माधुरी मूरत क्षणमात्रको भी नहीं बिसरती थी और वह मुसकान मनसे नहीं उतरती थी, उस ग्वालिनीकी बात सुनकर सब सखियोंको उत्साह हुवा कि, किसीप्रकार श्यामसुंदरका दर्शन हम भी करैं उस समय सब ऐसी मतवाली होगई कि, विना वनमाली एक क्षण

काटना कठिन होगया सब अपनी अपनी गागरें शिरपर धरकर यमुनाकी ओरको चलीं देखा तो मार्गमें मनमोहन कदमके नीचे खडे हैं ॥

चौ०-मोर मुकुट कटि कछनी सोहै। कुण्डल चटक लटक मन मोहै ॥
पीत वसन लख तडित लजाई। नयन विशाल अधर अरुणाई ॥

सब सखी बोलीं कि, अहो मनमोहन! तुम बडे ठग हो जो पराई स्त्रियोंको ठगते फिरो हो ? श्रीकृष्ण बोले कि, तुमने मुझको ठग कैसे समझा और मैंने तुम्हारा क्या ठग लिया. ठगके लक्षण मुझे बताओ क्योंकि तुमने मुझे कैसे ठग ठहराया ? गोपी बोलीं घबराओ मत हम ठगोंके लक्षणभी तुमको बतलाती हैं, ठगोंपर फाँसी होती है सो आपकी मृदुमुसकान फाँसी है, ठगोंपर धनुष वाण होते हैं सो आपकी भृकुटीकी मटकही धनुष है और चितवन बाण हैं रूपकी ठगोरी डालकर ब्रजबालाओंके मन, धन और प्राण ठगते हो, सब ब्रजकी युवती लोकलाज कुलकान तजकर बौरी बावलीसी बनवन भटकती फिरें हैं और उनको नन्दके लालने ठग लिया है यह बात सब संसारमें विख्यात है. श्रीकृष्ण बोले कि, अपने लक्षण मुझको लगाती हो और तुम जैसे लोगोंका चित्त चुराती हो वैसाही हमको बाताती हो, यह बातभी सब संसारमें प्रगट है कि, ब्रजकी स्त्रियोंने नन्दके पुत्रको ठग लिया है, तुम नहीं कहती तो क्या है परन्तु सब संसार पुकार रहा है, बरन् सुर, नर, मुनि और देवतातक यह बात कहतेहैं कि, जो ब्रह्मा, शिव, सनकादिककेभी ध्यानमें नहीं आते उन त्रिलोकीनाथको आजकल ब्रजवनिताओंने अपने वशमें कर रक्खा है, श्यामसुंदरकी यह बात सुन ग्वालिनी हँसकर बोलीं, हे नागरनट! तुम बड़े नटखट हो, सब बातोंमें उलट फेर कर देतेहो, तुम्हारी नागरताको हम अच्छी रीतिसे जानतीहैं, तुम इस ढिठाई और लँगराईको छोडदो इसमें तुमको बहुत बुराई है, किसीकी गागर ढलका देते हो, किसीकी लट पकड लेतेहो, किसीको अंकमें भरलेतेहो, किसीको मार्गमें रोक लेते हो, कोई तुम्हारे डरके मारे घरसे नहीं निकलती, यमुनाका पानी भरना बन्द होगया, इस नटखटपनको छोडदो और जो न मानो तो हम यशोदासे जाकर कहैं जो फिर तुमको ऊखलसे बांधे।

दोहा-यह सुन हरि रिसकर उठे, इँडुरी लई छिनाय
कहो जाय सब मातसों, लीजो मोहि बँधाय ॥
सोरठा-मोहिं कहत ठग चोर, आप भई साहनि सबै
डारी गागर फोर, कहत जाहु चुगली करहु ॥

यह बात कहकर इँडुरी यमुनामें बगेल दी, तब तो गोपी बोलीं कि, महाराज! हमारे वस्त्र भीग जायँगे हमारी इँडुरी जलमेंसे लादो, श्रीकृष्ण बोले कि, जलमें जायँ हमारी बलाय, तुमको निकालनी है तो निकाल लाओ, एक ग्वालिनी बोली आज तुम ऐसे होगये उस दिनको भूलगये, तनक तनक दहीके कारण हमारे आगे हाथ पसारते थे और तुमको पकडकर यशोदाके पास लेगईथीं और तुमको ऊखलमें बँधाया था और अबभी तुम बडे बापके

बेटे हो तो खडे रहो हम अभी यशोदाको बुलाकर लाती हैं, तब गोपियोंने यशोदाके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा कि, तुमने ऐसा उत्पाती पुत्र उत्पन्न किया है जो किसीकी गागर पटकता है, किसीकी बाँह पकडकर झटकता है, किसीको गाली देता है, किसीकी इँडुरी छीन लेताहै और बहुतसी बातें ऐसी करताहै उनको कहतेभी आपके सामने सकुच लगैहै ॥

चौ०-अब न होय ब्रजवास हमारो। करत अचगरी पुत्र तुम्हारो ॥
नेकु नहीं सकुचत मन माहीं। महारि सुतहि तुम वर्जत नाहीं॥

गोपसुताओंकी कोपभरी वाणी सुन यशोदा बोलीं कि, मैं क्या करूं? यह मैं भी जानतीं हूं कि, यह बडा ढीठ होगया, जो तुम उसको पकडकर मेरे सामने लाओ तो तुमको मैं अभी दिखाऊं. देखो! पहिले तुम्हारे सन्मुख उसको ऊखलसे बांधा, सांटी लेकर मारनेको दौडी, तब तुमहीको दया आई तो मुझको वर्जा और उसको छुटाया, अच्छा उसको घर आनेदो, आज मैं उसको ऐसा पीटूंगी कि, फिर कभी तुमसे आधी बात न कहै और जो मैं अब उसको पकडनेको भी जाऊं तो क्या वह मेरे हाथ आवेगा, क्योंकि वह तो मेरे नामसे कोसों भागता है, तुम अबकी बार तो मेरे ऊपर कृपा करके यह अपराध क्षमा करो, इसप्रकार उन गोपियोंको समझा बुझाकर उनके घर भेजा, वे ग्वालिनी अपने अपने घरोंको जाती थीं, उधरसे श्यामसुन्दर आगये, मार्गमें भेंट होगई, ब्रजभूषणने लज्जित होकर आँखें नीचेको कर ली, तब गोपियोंने कहा कि, माता बुलावेहै घरको तो जाओ, हम तुम्हारी बहुत बडाई कर आई हैं, श्रीकृष्ण बोले कि, तुम कुछ सन्देह मत करो, मैं माताको समझा लूंगा, गोपियोंसे यह बात कहकर वृन्दावनविहारी सकुचते सकुचते डरते कांपते घर आये और द्वारेहीसे इधर उधरको देखा कि, माता कार्यमें तो लगरही हैं, परन्तु गोपियोंके उलाहनेका कोप चित्तमें भर रहाहै और जो जो बातें गोपी कह गई थीं वह सब बातें रोहिणीको सुनारही थीं कि, कन्हैया ऐसा ढीठहोगया कि, पनघटपर किसीको पानी नहीं भरने देता बेटी बहुओंको गाली देता है, किसीकी बाँह मरोडता है, किसीकी गागर फोडता है, यह पाप कैसे भराजाय? जैसे तैसे उनसे पीछा छुटायाहै अब घर आवै तो सांटीसे उसकी बात बूझूं, माताके क्रोधभरे वचन सुन श्याम-सुन्दर बोले कि, माता मेरे ऊपर क्रोध करती हो ग्वालिनियोंके कर्त्तव्य अभी तुमने नहीं सुने, जो कुछ झूंठी सच्ची बातें तुम्हारे सामने आकर बनागई उन बातोंका तुमकोभी विश्वास आगया, इस बातको न विचारा कि, वह बीस और मैं अकेला, उनको कैसे घेर सक्ता हूं? मैय्या! मैं सत्य कहूंहूं वह सब मिलकर बरजोरी मुझको पकड लेती हैं और ताली बजा बजाकर नचाती हैं और जो मैं नहीं नाचता तो मेरे गालोंपर गुलचे मारती हैं और जब सटककर चलतीं हैं तो शिरपरसे गागर गिरपडती है तो सब मेरा नाम लगातीहैं और फिर तेरे सामने आन झूंठी बातें बनाती हैं, मुरलीमनोहरके मनोहर वचन सुन और चन्द्रवदन देख यशोदा ठण्ढी होगईं और सब क्रोध जातारहा और कहने-

लगी कि, मदमाती ग्वालिनी मेरे कान्हाको वृथा दोष लगावैहैं मेरे आगे जोड जोडकर बातें बनावै हैं, मैं उन सबके गुण जानती हूं कि, मेरे श्यामको बरजोरी अठलावै हैं झूठे लाने लगावै हैं ॥

दोहा-कहाँ श्याम मेरो तनक, ये सब यौवनजोर।
अब उरहन लै आवहीं, तब पठवहुँ मुखमोर ॥

सोरठा-तू क्यों उन ढिग जात, मैं बर्जत मानत नहीं।
लावत झूठी बात, ये सब ढीठ गवालिनी ॥

यह बात कह यशोदाने श्यामसुन्दरको गोदमें उठाय मुख चूमलिया और बहुतसा प्यार किया, अब ब्रजमें घर २ यह बात प्रगट होगई कि, पनघटपर नागरनटने बडी धूम मचारक्खी है कि, यमुनापर कोई जल नहीं भरने पातीं, कदम्बके वृक्षपर बैठकर मुरली बजाता है और सबके चित्त चुराता है, किसीकी गागर पटकता है किसीकी बय्यां झटकता है, हे राजन्! इस प्रकार नन्दकुमार नित्य नई नई लीला करके ब्रजवासियोंके मनको मोहित करते थे और बाँसुरी बजाय बजाय सब ब्रजयुवतियोंके मन हरते थे और जो जिस भावसे श्यामसुन्दरको भजते थे उनको वैसाही फल प्राप्त होता था जैसे-

सोरठा-चिन्तामणि जिहि नाम, चिन्तितफलदायक जनन।
सबहीको सब ठाम, जैसेको तैसे सदा ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! वृषभानुदुलारी राधिका पूर्वजन्मके प्रभावसे श्रीकृष्ण प्यारेपर अत्यन्त स्नेह रखती थी और बिना श्यामसुन्दरके देखे आठोंपहर व्याकुल रहती थी, जब सुना कि, पनघटपर मनमोहन प्यारा पनिहारियोंको रोकता है तब सब सखियोंको बुलाकर वृषभानुकुँवरी बोली कि, सखी यमुनाजल भरनेके लिये फिर चलो, जो मुरलीमनोहरको देख देखकर मेरे नेत्रोंमें ठण्डक होय और हृदयकी दाह बुझै,यह बात सुनकर सब सखी अत्यन्त प्रसन्न हो शिरोंपर गागर धरधरकर यमुनाकी ओरको चलीं, देखा तो श्यामसुन्दर मुरली हाथमें लिये नटवर वेष किये यमुनाके किनारे पनघटपर खडा है, मुरलीमनोहरकी छवि देखकर राधाके मनमें बडा हर्ष उत्पन्नहुवा इधर राधा प्यारीको देखकर वृन्दावनविहारीके मनमें परमानन्द बढा राधा मनमोहनपर मोहित होगई और मनमोहन राधापर रीझगये मन तो मनमोहनके फन्दमें फँसही गया, परन्तु कुलकान और गुरुजनोंकी लाजकी मारी जल भरकर और गागर शिरपर धरकर घरकी ओरको चली तब ब्रजभूषणभी वृषभानुललीके पीछे २ हो लिये. कभी आगे बढजाते, कभी पीछे रहजाते, कभी पीताम्बर घुमाते, कभी बाँसुरी बजाते, थोडी दूर निकल गई तब हँसकर बोले कि, प्यारी! आज हमारी ओरको देखतीभी नहीं यह कह ॥

दोहा-प्रेम ठगौरी डारिकै, चितवन बाण चलाय।
मन हर लीन्हों सघनको, दियो काम उपजाय ॥

सोरठा-भई विवश सुकुमार, अंग उमग अँगिया दरक।
मोहीं नन्दकुमार, सुधि बुधि बिसरी देहकी ॥

जैसे तैसे करके सखियोंके संग गिरती पडती घर आई और सब सखीभी अपने अपने घर गागर धरधर कर राधाके पास आकर बोलीं कि, प्यारी! अब क्या उपाय करैं चित्त तो हमारा नन्दकिशोर चित्तचोरने हरलिया अब हम यहाँ कैसे रहैं विना बाँकेविहारीकी मनमोहनी मूर्ति देखे एक पलमात्रको कल नहीं पडती, क्योंकि तन यहाँ और मन वहाँ, कैसे निर्वाह हो? यह लाज दई मारी हमारी पूरी वैरन होगई. राधा बोली आली! बिना वनमाली मेरी भी यही दशा है, माता पिताके डरकी मारी कुछ भी नहीं कर सक्ती और यह मन तो वारंवार यही कहता है कि, जिस प्रकार हो सके उसप्रकार नन्दकिशोरकी ओरको चल मैं इस मनको बहुतेरा रोकतीहूँ, परन्तु वह पापी मेरे रोकनेसे नहीं रुकता, अब मेरी यह इच्छा है कि, सब लोकलाजको त्याग मनमोहन प्यारेसे सच्ची प्रीति करूं, क्यों अपने शरीरको दुःख दूं?

चौ०-कहा लाभसो कहो सयानी। जामें होय प्राणकी हानी ॥
सोना कहा कान जेहि टूटैं। अञ्जन कहा आँख जेहि फूटैं ॥

प्यारी! जब प्राणप्यारेके वियोगमें प्राणही न रहे तो लाजको लेकर क्या चूल्हेमें डालूंगी? इससे तो मेरी समझमें यही आता है कि, मनमोहन प्यारेको अपना प्राणनाथ बनाकर अपने मनकी अभिलाषा पूरी करूं इस बातमें तुम्हारी क्या सम्मति है? राधा प्यारीकी बात सुनकर सब गोपकुमारी कहने लगीं कि, प्यारी! जो गति तुम्हारी है वही हमारी भी समझनी चाहिये हमभी बहुतेरे उपाय कर हारीं परन्तु उस मनमोहनप्यारेकी मनोहर छबि हमारे बिसारेसे नहीं बिसरती ॥

दोहा-बसीरहत नित चित्तमें, मोहनकी मुसकान।
कापै न्यारो होत रँग, हलदी चूना सान ॥

सोरठा-मेट लोक कुलकान, पतिव्रत राखैं श्यामसे।
यही लई अब ठान, बुरो भलो कोऊ कहै ॥

एक गोपी बोली आली! यह बात तो मैंने तुम्हारी मानली, परन्तु बिना तप किये श्रीकृष्णभगवान्का मिलना बहुत कठिन है, सखी! ऐसा भाग्य हमारा कहाँ है? जो नन्ददुलारा हमारा पति हो,इससे मेरी यह इच्छा है कि,जो वृन्दावनविहारीको अपना पति बनाया चाहो तो सब मिलकर तप करो, फिर पार्वती भवानीसे यह वर मांगो कि, मनमोहनप्यारा हमारा वर हो, मैंने महात्मा पुरुषोंके मुखसे ऐसा सुना है;-

दोहा-जप तप संयम नेमते, प्रभु प्रगटत पाषान।
ताते जप तप कीजिये, और उपाय न आन ॥

सोरठा-कीजै यह दृढ़ नेम, प्रात जाय यमुना नदी।
पूजहिं सब कर प्रेम, तौ पावहिं पति श्यामको ॥

देखो! तप करके योगीजन हरको ध्यावै हैं और मनोवांछित फल पावै हैं और शिव

पार्वती सब कामनाओंकी दाता हैं, यह भी मैंने बड़े बड़े सज्जन पुरुषोंके मुखसे सुना है, सखी ! हमको यही मनोवांछित फल है जो नन्दकुमारके चरणारविन्दमें प्रीति बनी रहै, सखीकी प्रीतिभरी वाणी सुनके वृषभानुनंदिनी बहुत प्रसन्न हुई और यह बात सबके चित्तमें चुभगई और राधासमेत सब सखी कहने लगीं कि, धन्य है प्यारी ! तेरी बुद्धिको तू बडी चतुर है. हे राजन् ! ब्रह्मादिक देवता भी बारम्बार यही कहते हैं कि, धन्य हैं गोपकुमारी कि, जिन्होंने वृन्दावनविहारीको अपना प्रीतम बनाया ऐसी भाग्यशीला और कौन होगी कि, आठों पहर जिनके हृदयमें कृष्णभगवान् विराजमान रहते हैं और जो कुछ नियम, धर्म, जप, तप, दान, पुण्य, व्रत करती हैं वह सब हारिहीके हित करती हैं ॥ १६ ॥

दोहा–जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त व्रत, व्रज युवतिन मन माहिं ।
मोहन रँगराची सकल, तन मन श्याम बसाहिं ॥
सोरठा–ऐसो कौन प्रवीन, कान्ह प्रेम फंद न फँस्यो ।
हरि छबि जल मन मीन, बिछुर सकत नहिं एक पल ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कंधे
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९॥

दोहा–कहौं बीस अध्यायमें, पावस शरदानन्द ।
जो जो कुछ लीला करी, राम गोप नँदनन्द ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र बलरामने अग्निसे जो सब ग्वालबालोंको बचाया और प्रलम्बासुरको मारा, यह अद्भुतकर्म गोपोंने स्त्रियोंसे कहा ॥ १ ॥ और बडे बडे वृद्ध गोप, गोपी, यह बात सुनकर आश्चर्य करने लगे और श्रीकृष्णको मुख्य देवता समझा ॥ २ ॥ जब २ ग्रीष्मऋतुने संसारके जीवोंको अधिक सताया, तब २ संसारी जीवोंको दुःखी देख पावस प्रचण्ड अपने बलके घमंडमें भरा, मार्तण्डके प्रकाशको दबाता, चारोंओर धूमधाम मचाता, मेघोंका धौंसा बजाता, बादलका दल संग लिये, युद्धका सामान किये चढि आया, काली काली घटा जो घिर रहीं थीं, वही महारणधीर वीर योद्धाओंके समूह थे, बीच बीचमें चपला जो चमकती थी वही मानो शस्त्र चमक रहे थे, बगलोंकी पाँतिकी पाँति जो आकाशमें उडती थीं वह ऐसी दिखाई देती थीं कि, मानो भाँति भाँतिकी ध्वजायें फहराय रही हैं, दादुर, मोर, पपीहे जो चारों ओर झिंगार रहे थे उस समय ऐसा विदित होता था कि, विरदावल पुकार पुकार कर यश वर्णन कर रहे हैं, इन्द्रका धनुष जो दृष्टि आता था, वह ऐसा ज्ञात होता था, मानो पावस नरेशने शत्रु सेनाके संहार करनेको महाकठोर धनुष तान रक्या है और बुन्दधार जो बार बार पड़तीं थीं वही मानो तीक्ष्णबाणोंकी मार थी और नदियोंका जो उमड़ना था वही मानो रेलपर जलके दलकेदल चले आते थे, ऐसी कटीली और सजीली सेनाको देखतेही

ग्रीष्मराज हार मान रणभूमि छोड़ अपने प्राण ले भाग निकला, मेघराजने अपनी प्राणप्रिया पृथ्वीको जल वरसाकर परमसुख दिया और सब जीव जन्तुओंको उत्पन्न करनेवाली और प्राणियोंको अनेक अनेक प्रकारके आनन्द देनेवाली वर्षाऋतुने अपना अधिकार किया; सूर्य चन्द्रमाके चारोंओर मंडल होगया, आकाशमें गड़गडाहट शब्द होने लगा ॥ ॥ ३ ॥ दामिनी दमकने लगी, बादल गर्जनेलगे, घनमें श्यामघटा छागई, सूर्य चन्द्रमा तारागणोंका प्रकाश आच्छादित होगया, उस समय आकाश ऐसा शोभायमान जानपड़ता था जैसे सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जीव आच्छादित होरहाहै यह त्यागनेके दृष्टान्त है, प्राणीको ऐसा नहीं चाहिये कि, जो गुणोंसे आवृत होजाय।

दोहा-करत शोर दामिनि सहित, घन लीन्हे नभ छाय।
जिमि अज्ञान आवरणते, सगुण ब्रह्म छिप जाय ॥ ४ ॥

जैसे आठ महीने तक पृथ्वीका जलरूप द्रव्य सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे सोखै हैं और वर्षाऋतु आनेपर वरसावै हैं ऐसेही राजाको भी चाहिये कि, सुकालमें प्रजासे करलेवै और अकालमें उनको अन्न धन देकर पालन करै यह ग्रहण करने योग्य दृष्टान्त है, राजाको ऐसाही करना योग्यहै,

दोहा-आठ मास निज किरणसों, जो जल सोखत भान।
चारिमास वर्षत सोई, ज्यों भूपति कर दान ॥ ५ ॥

जैसे प्रवल पवनकी झकोरसे बडे बडे मेघ बिजली जिनमें चमके विश्वको तप्त देख पुष्ट करनेवाले जीवन (जल) वरसाने लगे जैसे दयावान् पुरुष दुःखी जनोंको देखकर उनको सुखी करनेके लिये दया करके अपने प्राणतक देते हैं, तैसेही बडे मेघ अपने बिजलीरूप नेत्रोंसे संतप्त विश्वको देखकर पवनसे चलायमान हो जल बरसाते हैं, यह ग्रहण करने योग्य दृष्टान्त है महात्मा पुरुषोंको ऐसाही करना चाहिये ॥

दोहा-जल वरसै चपला सहित, घन लहि पवन झकोर।
द्रवहिं साधु जिमि दीन पर, प्राण देत तेहि ओर ॥ ६ ॥

पृथ्वी ग्रीष्मऋतुकी धूपसे अत्यन्त तप्त होकर जो सूख गई थी, इन्द्रने जल वर्षाकर जब उसको सींचा तो फिर वर्षाऋतुमें फूली और वृक्षोंपर भाँति भाँतिके फूल खिले और फल लगे. ऐसेही सकामपुरुष धनकी अथवा पुत्रकी इच्छा करके तप करता है, तब पहिले तो उसका देह दुर्बल होजाता है फिर तपका फल मिलनेसे उसका शरीर जैसेका तैसा होजाता है, यह त्यागनेयोग्य दृष्टान्त है. पुरुषको उचित है कि, सकाम तप न करै ॥

दोहा-ग्रीषमताप तपी धरणि, लहि घनमें सुखभीन।
जिमि तप फल लहि तप कृशित, तपी होत तनु पीन ॥ ७ ॥

वर्षाऋतुमें सन्ध्या समय खद्योत (पटवीजने) प्रकाश करते हैं तारागण प्रकाश नहीं करते, जैसे कलियुगमें पापके प्रभावसे पाखण्डमार्ग चमकते रहते हैं और वेदमार्ग अस्त

होजाते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्त है, चतुर पुरुषोंको ऐसा नहीं चाहिये जो पाखण्ड मार्गमें प्रवृत्त हों ॥

दोहा-नसत न भासित होत निशि, जो गुण भास अपार।
जिमि कलियुगमें वेद नहिं, होत पखण्ड प्रचार ॥ ८ ॥

वर्षाऋतुमें मेघकी गर्जना सुनकर मेंडक बोलने लगते हैं, जैसे विद्यार्थी गुरुके सम्मुख मुख बन्द किये चुप बैठे रहते हैं. जब गुरु नित्य नैमित्तिक कर्मसे निश्चित होकर बोलते हैं, तब आपभी शिष्य अपना पाठ लेकर बैठते हैं. यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, विद्यार्थियोंको यही चाहिये कि, गुरु जब अपने कार्यसे निश्चिन्त होजाय और वह कहें तब आप अपना पाठ पढें ॥

दोहा-घनकी गर्जन घोर सुनि, दादुर कीन्हे शोर।
नेम समापन वेद जिमि, भाषत विप्र किशोर ॥ ९ ॥

क्षुद्रनदी जिनका जल थोडेही दिनोंमें सूखजाताहै वर्षाऋतुमें जब अधिक जल वर्षताहै तब अपनी मर्यादाको छोड छाडकर क्षुद्रनदी चारों ओरको उफनने लगती हैं, जैसे अजितेन्द्रिय पुरुषका मन धन और ऐश्वर्य पाकर खोटे मार्गोंकी ओरको चलता है और सब ठारको पाँव फैलाता है, यह त्याज्य दृष्टान्त है, ऐसा नहीं चाहिये जो मार्गमें अपने मनको चलावें ॥

दोहा-क्षुद्र नदी बाढी विपुल, कीन्हे वेग विशाल।
धन लहि चलत कुचाल ज्यों, जन्म केर कंगाल ॥ १० ॥

वर्षाऋतुमें हरी हरी घास उत्पन्न होनेसे, लाल लाल बीरबहूटियोंके फिरनेसे, उच्छिलीन्ध्र (छत्रिका, जो चौमासेमें छत्रके आकार पृथ्वीमें उत्पन्न होती हैं, बालक उनको साँपकी छत्री कहा करते हैं) उनके फूलनेसे और सुन्दर सुन्दर वृक्षोंसे पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पडतीथी जैसे राजाकी सेना चित्र विचित्र रंगसे सजी हुई छत्र छायावाली दिखाई देती है यह ग्राह्य दृष्टान्त है, राजाओंको ऐसाही चाहिये, जो हरे लाल मखमलके नये नये बिछौने बिछावें और श्वेत श्वेत डेरे तम्बू तान दें ॥

दोहा-अरुण चांदनी हरित तृण, युत छत्राकबलाक।
जनु पावस आवत सदल, छाजत छत्र पताक ॥ ११ ॥

वर्षाऋतुमें हरे हरे धानोंके खेतोंको देख देख कर किसानोंका चित्त आनन्दित होताथा और लाभ हानि दैवाधीन है, इस बातको असत्य समझकर जिन लोगोंने अन्न संग्रह किया था, उनको क्लेश हुआ, यह त्याज्य दृष्टान्त है, ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये जिसमें सबका बुरा चिन्तवन करना पडे ॥

दोहा-कृषिक कृषी बाढत निरखि, हर्ष लहत दिन दून।
जैसे लोभी धन निरख, मानत कबहुँ न ऊन ॥ १२ ॥

वर्षाऋतुमें जलाशयके रहनेवाले मनुष्य नये जलके सेवन करनेसे सुन्दर स्वरूपवान् होजाते हैं, जैसे हरि भगवान्का सेवनकरनेसे हरिजन सुन्दर स्वरूपको पाते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, मनुष्यको ऐसाही चाहिये ॥

दोहा-जलथल वासी जीव लहि, नवजल भे सुखरूप।
जिमि हरि भजन प्रभावते, होत रुधिर वपु भूप ॥ १३ ॥

वर्षाऋतुमें समुद्रमें नदी आनकर मिली और पवनके चलनेसे तरंगें उठने लगीं उस समय समुद्रका जल चलायमान होगया, जैसे चित्त विषय वासनामें और काममें चलायमान हो जाता है. यह त्याज्य दृष्टांत है योगियोंको ऐसा नहीं चाहिये जो विषयवासनामें चलायमान होजाय ॥

दोहा-मिलैं नदी सागर उठैं, पवन प्रसंग तरंग।
विषय लहै योगी यती, जिमि मणि कर बहु रंग ॥ १४ ॥

वर्षाऋतुमें मेघोंकी बुन्दाधार पडनेसे पर्वत किञ्चिन्मात्र भी दुःख नहीं मानते बरन् धुल धुल कर उनकी शिलायें स्वच्छ और उज्ज्वल होजाती हैं, जैसे जिन मनुष्योंके मन भगवान्में लग रहे हैं उनके ऊपर कैसाही कष्ट पडै अर्थात् पुत्र मरजाय, धन लुटजाय, तनु दुर्बल होजाय, परन्तु वह कष्टको कुछ नहीं मानत, बरन् यह कहते हैं कि, विपक्षियोंसे पीछा छूटा, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, मनुष्यको चाहिये कि, विपत्तिमें व्याकुल न होय ॥

दोहा-हनेजात जल धार गिरि, पै नहिं करत खँभार।
जिमि हरिजनको विषयकी, बाधा नहिं संसार ॥ १५ ॥

वर्षाऋतुमें तृण और घासके बढ जानेसे मार्ग ढकगये और सन्दिग्ध (सन्देह युक्त) होगये यह न जान पडता था कि, किस ग्रामका कौनसा मार्ग है, जैसे ब्राह्मण एकबार वेद पढके पुस्तक बांधकर रखदेते हैं और उसका अभ्यास छोड देते हैं, फिर बहुत दिन उपरान्त पुस्तकको खोलकर देखते हैं, तो उनको अनेक प्रकारके सन्देह उत्पन्न होते हैं, यह त्याज्य दृष्टांत है कि, ब्राह्मणोंको ऐसा नहीं चाहिये जो पढनेका अभ्यास छोडदें, नहीं प्रातःकाल उठकर अपना नित्य कर्म करें ॥

दोहा-जान परत मारग नहीं, तृण संकुल जलधार।
विन अभ्यास जिमि वेदको, द्विज मुख नहिं संचार ॥ १६ ॥

लोगोंके परमहितकारी मेघ हैं उनमें चलायमान चपला क्षणमात्रको स्थिर नहीं रहती कभी किसी बादलमें जा चमकै है, कभी किसी बादलमें जा चमकै है जैसे ज्ञानी पुरुषोंमें व्यभिचारिणी स्त्री स्थिर होकर नहीं बैठती, कभी किसीके घर कभी किसीके घर, एक पुरुषके घर नहीं ठहरती, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, कभी भूलकर भी व्यभिचारिणी स्त्रीका विश्वास न करै ॥

दोहा-सुखकर घनमें क्षण छिपत, क्षण छहरत क्षणजोति। *
गुणहुँकन्त कुलटानिकी, जिमि थिर प्रीति न होति ॥ १७॥

वर्षाऋतुमें गर्जन शब्दके गड़गडाहटवाले बादल आकाशमें प्रत्यञ्चा (रोंदा) बिना इन्द्रका धनुष शोभायमान दिखाई देता है, जैसे गुणोंके गम्भीर शब्दवाले प्रपञ्चमें आत्मा निर्गुण है तोभी अत्यन्त शोभायमान जानपड़े है, यह ग्राह्य दृष्टान्त है कि, पुरुषको चाहिये कि, ऐसे सुन्दर निर्गुण पुरुषका ध्यानकरै ॥

दोहा-इन्द्रधनुष आकाशमें, विनगुण अस छवि देत।
विनगुणके बहु पुरुष जस, यहि जगमें यशलेत ॥ १८ ॥

वर्षाऋतुमें अपनी चांदीसे प्रकाशमान जो मेघ हैं, उनसे आवृत होकर चन्द्रमा शोभायमान नहीं दीखता, मलिनसा दिखाई देता है, जैसे आत्मासे प्रकाशमान अभिमानसे आच्छादित पुरुष अपने मनमें कहता है कि, मैंही दाना हूं, मैंही शूरवीर हूं, मैंही रणधीर हूं मैंही पण्डित हूं, मैंही सर्वज्ञ हूं, वही उसमें मलिनता है, यह त्याज्य दृष्टान्त है, पुरुषको चाहिये कि, अहंकार न करै ॥

दोहा-जिनकर शोभित घननसों, छपित शशी न सुहाय।
अहंकार शबलित पुरुष, जिमि न छजत नृपराय ॥ १९॥

वर्षाऋतुमें ग्रीष्मके तपेहुये जो मोर मेघोंका शुभागमन देख, उनकी प्रशंसामें मनोहर शब्द करतेथे, जैसे घरमें संतप्त हुये वैराग्यवान् पुरुष महात्मा पुरुषोंके आनेसे हर्षित हो मनोहर वाणीसे उनका आदर सत्कार करतेहैं. यह नहीं कि, हमहीं भूखे मरेहैं, इनके लिये कहाँसे लावैं ॥

दोहा-देख उठी घनकी घटा, नचत मोर चहुँ ओर।
दुखित गृही जिमि साधुको, लहि मुद लहत अथोर ॥ २०॥

वर्षाऋतुमें गरमीसे तपेहुये देवतालोग वृक्षरूप धारण किये अपनी मूलसे जल पीपीकर प्रफुल्लित हो, हरे हरे लाल लाल नवीन पल्लवोंसे समृद्धिमान होरहे हैं जैसे तपस्या करनेसे मनुष्योंका देह प्रथम तो दुर्बल होजाता है फिर सुन्दर सुन्दर सुख भोग करनेसे और

---

* शंका-संसारमें जो गुणी जन हैं सो सब अपनी स्त्रियोंके संग दुःख सुख गृहस्थीमें भोगते हैं परन्तु ऐसा किसी गुणीको नहीं सुना कि, उसकी स्त्रीने उसको त्याग दिया हो फिर शुकदेवजीने क्यों कहा कि, गुणी प्राणामें स्त्री बहुत समयतक नहीं ठहरती जैसे आकाशमें बिजुली अधिक कालतक नहीं ठहरती यह शंका है ?

उत्तर-"स्थैर्यन्न चक्रुः कामिन्यः" इस श्लोकमें शास्त्रके जाननेवाले मुनियोंने कामिनीका स्त्री अर्थ नहीं किया, संसारके सुखकी जो तृष्णा है कि, जो अधिक प्रीति है सोई कामिनी है सो तृष्णाकी बहुत प्रीतिरूप कामिनी गुणी पुरुषोंमें बहुत कालतक नहीं ठहरती, बहुत कालतक मूर्खोंमें ठहरतीहै, ऐसा अर्थ श्रीशुकदेवजीने कियाहै.

पुष्टिकारक भोजन मिलनेसे उनका शरीर लाल होजाता है, यह त्याज्य दृष्टान्त है. मनुष्यको चाहिये कि, खाने पीनेके लिये तप न करै ॥

दोहा-नवजल लहि वनके विटप, भये सपत्र सशाख।
तपी कृषित फल पाय जिमि, पूरहि सुख अभिलाष ॥ २१ ॥

वर्षाऋतुमें कांटे और कांचमें संयुक्त किनारेवाले सरोवरोंमें चकवी चकवे और सारस वास करते थे, जैसे अनेक प्रकारके कर्म करनेकी पीडासे घरोंमें विषयी पुरुष वास करते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्त है, मनुष्यको ऐसा नहीं चाहिये कि, जो सदा घरहीमें शिर दिये पडारहै नहीं, कुछ कुछ भगवान् वासुदेवका भी भजन करै, जिसमें लोक और परलोक दोनों सुधरें ॥

दोहा-सरतट कण्टक कीच बिच, कहुँ वस सारस कोक।
जिमि कुमती लहि दुख अधिक, तजहिं न आपन ओक ॥२२॥

वर्षाऋतुमें जैसे इन्द्रके जल बरसानेसे नदियोंके जलका प्रवाह पुलोंको तोड़ता फोड़ता चलाजाता है और खेतोंकी मर्य्यादा भी टूटगई, जैसे पाखण्डियोंके शब्द सुनके कलियुगमें वेदमार्ग टूट जातेहैं और धर्म कर्म दूर हो जाते हैं यह त्याज्य दृष्टान्त है मनुष्य पाखण्डियोंके शब्द सुनकर वेदमार्गको न त्यागदे ॥

दोहा-सलिल धारके जोरसों, टूट गये बहु सेत।
वेदोंकी मर्य्याद जिमि कलिपखण्ड हरिलेत ॥ २३ ॥

वर्षाऋतुमें मेघगण प्राणियोंपर पवनकी प्रेरणासे अमृतकी तुल्य जल वर्ष रहे थे, जैसे समय समयपर राजा पुरोहितकी प्रेरणासे दान पुण्य करते रहते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, पुरोहित गुरुजनोंको ऐसाही चाहिये कि, जो प्रेरणाकरके यजमान और शिष्योंसे दान करावे और दीनपुरुषोंको दिलावे।

दोहा-मारुत प्रेरित जलद जिमि, जीवन जीवन देत।
द्विज प्रेरित नृपसों यथा, प्रजा मनोरथ लेत ॥ २४ ॥

इस प्रकार जहाँ चारोंओर आम, जामुन, खजूर जिस वृन्दावनमें पकरहे थे और उनकी शाखायें पृथ्वीकी ओर ऐसी झुकरही थीं जैसे परोपकारी पुरुष धन पाकर नीचेको झुकते हैं और फूल जो टपक टपक कर सुधासम वसुधापर गिरते थे ऐसा जान पडता था मानो दानी द्रव्यका दान कररहे हैं और खजूरके वृक्ष ऊँचे ऊँचे ऐसे विदित होते थे जैसे रणभूमिमें शूर खड़े हैं, ऐसे शोभायमान वनकी शोभा देखकर श्रीकृष्ण बलरामसमेत ग्वाल बालोंको संग ले उस वनमें गायें चरानेके लिये गये ॥ २५ ॥ बडे बडे अयनोंके भारी भारी भारसे हौले हौले चलनेवाली गायें जब श्रीकृष्णचन्द्रने नाम लेलेकर प्रीतिसे बुलाई, तब स्तनोंसे जिनके दूध टपकरहा वह सब गायें दौड दौडकर वृन्दावनविहारीके सन्मुख आनकर खडी होगई ॥ २६ ॥ वनवासियोंको श्रीकृष्णने देखा, मधु और मकरन्द टपकनेवाली वृक्षोंकी लताओंसे रस टपकता था, गोवर्द्धन पर्वतसे जलकी धारायें बहती थीं.

कहीं कहीं झरनोंसे पानी जो गिरता था उस पानीके शब्दसे ऐसा ज्ञात होता था मानों वृक्ष परस्पर बातें कर रहे हैं, निकटही गुफायें थीं उनको देख देख ग्वालबाल और नंद-लाल प्रसन्न होते थे ॥ २७ ॥ कहीं कहीं ऐसी वृक्षोंकी खखोडल और पर्वतकी कन्दरा थीं कि, जिनमें पानीकी बूंदभी नहीं जाती थी, जब भारी वर्षा होती थी तो उनहींमें घुसकर बैठ जाते थे और वनके फल फूल खा खाकर प्रसन्न होतेथे ॥ २८ ॥ इतनेमें यशोदाने दुपहरका समय देख अपने मनमें समझा कि, मोहन प्यारेको भूख लगी होगी यह विचार कई एक ग्वालिनियोंके हाथ दही, भात, माखन, मिश्री और अनेक प्रकारके व्यञ्जन थालोंमें धर धरकर श्रीकृष्ण बलरामके पास भेज दिये, सो श्रीकृष्ण सखाओंसमेत यमुनाके निकट ऐसे रमणीक घाटपर गये जहां ॥

दोहा-मृदुल शिला छाया घनी, बहत धार चहुँ फेर।
तहँ हरि बल बैठत भये सकल सखनको घेर ॥

शिलाके ऊपरही भात भरकर भोजन करनेयोग्य गोपोंको और बलदेवजीको संग लेकर भोजन करनेलगे और उसके स्वादकी सराहना कर करके कभी सखाओंको देते थे और कभी उनके हाथमेंसे लेलेते थे ॥ २९ ॥ उस समय बैल बछरे पेट भरजानेसे हरी हरी घासपर बैठे आंखें मींचे जुगाल कर रहे थे और गायें भी दूधके भारसे थक कर बैठी जुगाल कर रही थीं. राम, कृष्ण उन गायोंको देख देखकर प्रसन्न होते थे और भोजन करते जाते थे और वारम्वार परस्पर कहते थे कि, पावसकी समान संसारमें सुख देनेवाली और दूसरी ऋतु नहीं है ॥ ३० ॥ सब प्राणियोंकी आनन्दकारी और प्रेम प्रीतिकी बढानेहारी पावसमें वृन्दावनकी शोभा और अपनी शक्तिसे युक्त वर्षा ऋतुको देखकर वृन्दावनबिहारी वृन्दावनकी प्रशंसा करने लगे कि, देखो ! वृन्दावनमें वर्षा ऋतु कैसी अनुपम शोभा दे रही है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार व्रजमें श्यामसुन्दर और बलरामके वास करते करते बादलोंसे रहित निर्मल जल बहानेवाली और मन्द मन्द त्रिविध पवन चलानेवाली परम सुखदाई शरदृतु आई ॥

कवित्त-मन्द भयो मारुत अमन्द भयो चन्द अरविन्दके वृन्द वे अनन्द भरे विकसे ॥ मत्त भे मतङ्ग औ कुरंग औ विहंग बहु त्योंहीं है अमत्त मोर दुर दैव निकसे ॥ पुलिन देखावती घटावती सलिल यों सोहावती सरित आये खंजन पथिकसे ॥ रघुराज मेघनके मण्डल मयं-कके मयूखको डराय नभमंडलते निकसे ॥ ३२ ॥

शरदृतुमें कमल उत्पन्न होनेसे जल निर्मल और शीतल होगया, जैसे योगिजनोंके चित्त भ्रष्ट होकर फिर योगका अभ्यास करनेसे शुद्ध होजाते हैं यह प्राप्त दृष्टान्त है कि, योगियोंको यही चाहिये कि, चित्तको शुद्ध करके योगाभ्यास करैं ॥

दोहा-शरद पाय जल अमल भो, फूले कंज प्रसिद्ध।
योगभ्रष्टपुनि योगकर, जिमि सुधरत हैं सिद्ध ॥ ३३ ॥

वर्षाऋतुमें आकाशमें मेघ रात दिन गर्जते रहते हैं, शरदृतुमें सब उनकी गर्जना बंद

हो गया, वर्षाऋतुमें बहुतसे मनुष्य मिलकर एक स्थानमें रहते हैं, शरदृतुमें सब अलग अलग होगये, वर्षा ऋतुमें ठौर ठौर कीच होती है, शरदृतुमें सब भूमि सुहावनी होगई, वर्षाऋतुमें जल गदला और मैला होजाता है. शरदृतुमें जल स्वच्छ और शीतल होगया जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमोंका भगवान्‌की भक्ति होनेसे सब क्लेश दूर होजाते हैं, ब्रह्मचारियोंके लिये शिष्य तबहींतक जल भरा करते हैं, जबलों भक्ति प्राप्त नहीं होती भक्ति होनेके पीछे जल भरनेका परिश्रम नहीं रहता, जब शिष्यको भक्ति प्राप्त हो जाती है तब उससे गुरुभी सेवा नहीं कराते, इसप्रकार बादल-का गर्जना शरदृतुमें बन्द होगया, गृहस्थके हृदयमें जबतक भक्ति उदय नहीं होती तबलों अपनी सन्तानादिकमें मोह ममता रखता है, भक्ति होनेके पीछे एकान्त बास करनेकी इच्छा करता है और सबका संग छोड़ देता है. ऐसेही प्राणियोंका एक स्थानपर वास है, सो छूट गया. वानप्रस्थको जबतक भक्ति प्रकट नहीं होती तबलों उसका मन मलीन रहता है. भक्ति होनेके पीछे जैसे उसकी मलीनता दूर होजाती है ऐसे पृथ्वीकी कीच सूख गई और सुहावनी होगई. संन्यासीका कामवासनारूप मल श्रीकृष्ण वासुदेवमें भक्ति होनेसे दूर होजाता है. ऐसेही शरदमें जलका मल दूर हो गया ॥

दोहा-नभके घन जन जुरि रहत, जल मल पुहुमी पंक ।
शरद हन्यो जिमि कृष्णका, पद रति हरति कलंक ॥ ३४ ॥

शरदृतुमें मेघ अपना सर्वस्व त्याग श्वेत श्वेत रुईकेसे पहले दिखाई देते हैं. जैसे धन, दारा, पुत्र और विषयवासनाके दूर होनेसे शान्त स्वभाव मुनीश्वरलोग शोभायमान जान पड़ते हैं. यह ग्राह्य दृष्टान्त है, मुनिलोगोंको यही चाहिये कि, सब वासनाओंको दूर करैं ॥

दोहा-विग्रहरण विन वारिके, विलसत वारिद सेत ।
जिमि जग मुनि निर्द्वन्द्व ह्वै लसत संत मति चेत ॥ ३५ ॥

पर्वत अपना कल्याणरूप निर्मलजल कहीं कहींको तो झरनोंसे बहाते हैं और कहीं कहींको नहीं भी बहाते, जैसे ज्ञानीपुरुष समय समय पर अपना ज्ञानरूप अमृत सुपात्रको देखकर देते हैं और कुपात्रको नहीं देते. यह ग्राह्य दृष्टांत है कि, विवेकी पुरुषको यही चाहिये कि, सुपात्र कुपात्रको देखकर उपदेश करै ॥

दोहा-कहुं ढारत जलधार गिरि, कहुं ढारत है नाहिं ।
देत कबहुं नहिं देत जिमि, ज्ञानी ज्ञानहिं काहिं ॥ ३६ ॥

शरदृतुमें सरोवरोंमें थोडे जलके रहनेवाले जीव जन्तु नित्य नित्य घटते जलको नहीं जान सके, जैसे अज्ञानी कुटुम्बी पुरुष घरोंमें रहकर अपनी नित्य क्षीण होती हुई आयुर्बलको नहीं जानते. यह त्याज्य दृष्टान्त है कि, कुटुम्बीलोगोंको चाहिये कि, अचेत न हो कुछ परमेश्वरकी ओरका भी चिन्तवन करै ॥

दोहा-दिन दिन सूखत क्षुद्र जल, जानत हैं नहिं मीन।
जिमि क्षण क्षण आयुष घटत, गणत न जन मतिहीन ॥३७॥

शरदतुमें थोडे जलके रहनेवाले जलचर सूर्यके तेजसे जल गरम होनेसे दुःखी होगये, जैसे कुटुम्बी पुरुष इन्द्रियोंको वशमें न करनेसे दरिद्रता और कृपणतामें रहकर कष्ट भोगते हैं. यह त्याज्य दृष्टान्त है जो घरमें क्लेश होय तो उस घरको त्यागदे ॥

दोहा-होत दुखी लघुसरनके, जिय लहि तरणि प्रताप।
कृपण कुटुम्बी दारिदी, जिमि पावत बहुताप ॥ ३८ ॥

शरदतुमें सहज सहजमें सब स्थानोंकी कीच सूख गई, लताओंका सब कचापन जाता रहा. जैसे मिथ्या देह गेहमें सज्जनपुरुष सहज सहजमें मायाकृत अहंता ममताको त्याग देते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है. ज्ञानी पुरुषको यही चाहिये कि, अभिमानका त्याग दें ॥

दोहा-क्रम क्रमसों कर्दम सुख्यो. पीनलता तरु डारि।
जिमि क्रम क्रम ममता तजैं, धीर धीरता धारि ॥ ३९ ॥

शरदतुके आनेसे समुद्रका जल निर्मल होगया, जैसे आत्मज्ञान होनेसे महात्मा मुनियोंका पठना लिखना सब छूट जाताहै, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, आत्माके जाननेके पीछे लिखने पढनेका क्या प्रयोजन ॥

दोहा-रवि जब कम करि अचल जल, सिन्धु भयो सब ठाम।
परहंस जन होत थिर, तज सिगरे जगकाम ॥ ४० ॥

शरदतुमें खेतवाले किसान लोगोंने जहाँ तहाँ भारी भारी मेंडे बाँध बाँधकर पानी रोंक लिया है जैसे योगीराज इन्द्रियरूप द्वारसे जातेहुये ज्ञानको रोकलेतेहैं, इन्द्रियोंको रोककर फिर मनको रोकते हैं. यहग्राह्य दृष्टान्त है, योगियोंको यही चाहिये कि, ज्ञानको हृदयसे निकलने नहीं दें इन्द्रियोंको रोककर रक्खैं ॥

दोहा-बाँध सेतु सींचत कृषी, लावत सलिल किसान।
जिमि विषयनते खैंचमन, थिर राखत मतिमान ॥ ४१ ॥

शरदतुमें सूर्यकी किरणोंके तापको रात्रिके समय चन्द्रमाने उदय होकर दूर कर दिया, जैसे ज्ञान होनेके पीछे देहके अभिमानरूप तापको शान्तरूप चन्द्रमा उदय होकर हरलेता है, ऐसही ब्रजवासियोंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र मुकुन्दने दूर कर दिया ॥

दोहा-तरणि ताप दिनकी हरत, जीवनकी निशिचन्द।
जिमि विज्ञान अभिमान अरु, ब्रजतिय ताप मुकुन्द ॥ ४२ ॥

शरदतुमें मेघ दूर होगये, आकाश निर्मल होगया, तारागणोंके प्रकाशसे आकाश शोभा पाने लगा, जैसे वेदके अर्थको दिखानेवाले सत्त्वगुणी चित्त शोभायमान जान पडते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, वही चित्त सुन्दर और शोभायमान है जिसमें वेदके अर्थका ज्ञान है ॥

दोहा-अमलतार निर्मल गगन अतिशय शोभित होय।
वेद अर्थ धारा सत, गुणयुत मन जस सोय॥ ४३॥

शरदृतुमें समस्त मण्डलसे चन्द्रमा आकाशमें तारागणसहित शोभा देताहै, जैसे पृथ्वीमें यदुपति श्रीकृष्णचन्द्र यादवोंसमेत शोभायमान जान पडते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, मनुष्यको चाहिये कि, जैसे चन्द्रमा आकाशमण्डलको प्रकाशित करता है ऐसेही शान्तरूप चन्द्रमासे हृदयको प्रकाशित करें॥

दोहा-आखण्डल मण्डले, सोहत उडुयुत चन्द।
जिमि यदुनगरी यदुनयुत, सोहत श्रीयदुनन्द॥ ४४॥

शरदृतुमें पुष्पवाटिकाओंके पुष्पोंका स्पर्श करके जो पवन चलता है उसके स्पर्श करनेसे सब प्राणियोंके तनुका ताप दूर होजाता है, जैसे गोपिकाओंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके स्पर्शसे दूर होजाता है, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, मनुष्यको यही चाहिये कि, भगवान्‌का स्पर्श करके सांसारिक तापोंको त्याग दें॥

दोहा-ताप रहित सब जन भये, परशत त्रिविध समीर।
पै विन हरि हियरें लगे, मिटी न गोपिन पीर॥ ४५॥

शरदृतुमें गायें, हरिणी, पक्षिणी और स्त्रियें पुष्पवती हुई, उनको पति उनको पीछे पीछे कामातुरहो फिर रहे थे जैसे ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये पुरुष योग, यज्ञ, जप, तप करतेहैं, उनके पीछे फल आपसे आप लगे फिरते हैं॥

दोहा-भे सगर्भ गो खग मृगी, तिन पीछे पति जाहिं।
जिमि कीन्हें हरि भक्तिके, सिगरे फल पछिआहिं॥ ४६॥

शरदमें कुमुदिनीके सिवाय और सब प्रकारके कमल सरोवरोंमें फूलते हैं जैसे चोरोंके सिवाय सब प्रजागण राजाके उदय होनेसे प्रफुल्लित रहते हैं यह ग्राह्य दृष्टान्त है, ऐसा कौनसा मनुष्य है जो अपने स्वामीको देखकर प्रसन्न न हो॥

दोहा-भानु उदय कुमुदिन विना, विकसहिं कंज अथोर।
जिमि धर्मी लहि नृपतिको, प्रजा सुखी विनचोर॥ ४७॥

शरदृतुमें ग्राम और नगरोंमें नवीन अन्नके भोजनका वैदिक उत्सवसे और इन्द्रियोंके पुष्टका कारक विवाहादिक लौकिक उत्सवसे और अन्न पकनेसे और श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके क्रीडा करनेसे पृथ्वी अत्यन्त शोभायमान दृष्टि आती थी॥

दोहा-पकी कृषी ग्रामन पुरन, सचरो अन्न नवीन।
घर घर उत्सव होत जिमि, हरि लहि महि सुखभीन॥४८॥

वर्षाऋतुके थँभनेसे वणिक, मुनीश्वर, राजा, ब्रह्मचारी यह शरदृतुमें अपने अपने कार्यमें लगगये बनियें अपने अपने व्यवहारके लिये देश देशांतरोंको जाने लगे, साधु संन्यासी तीर्थयात्राओंके जानेका प्रवन्ध करने लगे, राजा लोग अपनी चतुरंगिनी सेना ले शत्रुओंके विजयकरनेको चलदिये, ब्रह्मचारी विद्या पढनेके लिये पाठशालाओंको चलने

लगे, जैसे मंत्र और योगादिसे सिद्ध महात्मा, आयुके बन्धनसे रुकरहे हों, वह समय आनेपर दिव्यदेह पाते हैं ॥

दोहा–व्रती वणिक नृप अर्थ हित, गमन किये तजि ओक ।
जिमि सुकाल लहि सिद्धजन, तनतजि जिन जस लोक॥४९॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कन्धे
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा–इक्किसमें वृन्दाविपिन, गये श्याम सुखधाम ।
वेणु गीत गोपीनको, वर्णत शालिग्राम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! शरदतुमें निर्मल कमलोंकी सुगन्धयुक्त पवनवाले वृन्दावनमें गाय बछडे और ग्वालबालोंको संग ले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनमें गये ॥

कवित्त–पन्नासम पूरे नीर परम गँभीर सर विकसी जलजभीर करै उर पीरहैं । शीतल सुगन्ध धीर बहत समीर तहाँ तीर तीर तरुनमें बोल रहे कीरहैं ॥ मुनि मतिधरिहू विलोकत अधीर होत मदन अभीर उर बेधे तीखे तीर हैं ॥ क्षीरदा चरावनको सहित अहीर वृन्द वृन्दावन पैठे बलवीर यदुवीर हैं ॥ १ ॥

फूली हुई वनकी पंक्तियोंके सौरभसे मतवाले भौंरे और पक्षियोंके समूहके शब्दसे सरोवर, नदी, पर्वत, गूँजरहे थे, ऐसे सुन्दर मनोहर वृन्दावनमें बलराम और ग्वालबालोंसहित जाकर श्रीकृष्ण मुरली बजाने लगे और गायें बछरे चरनेको छोड दिये ॥

कवित्त–फूल रहे फूल बहु फैल रही लोनी लता, फबिरही फटिकके फरससी धरनी ॥ शीतल सघन कुंज गुंज तहाँ भौंरनके, पुंजनकी कुंज छाई अति मुदभरनी ॥ रघुराज रंगरंगके विहंग बोल रहे, आनंद उमंग भरे संग निज धरनी ॥ मोहनजु मुरली बजाई तहाँ माधुरी सो व्रज वनितान जो मनोजवश करनी ॥ २ ॥

प्रमदात्मक कामका प्रकाश करनेवाला वंशीका शब्द सुनके कई एक व्रजबाला श्रीकृष्णके पीछे अपनी सखियोंके सामने उनकी प्रशंसा करनेलगीं ॥

कवित्त–बाँसुरीकी टेर व्रजबालनके काननमें, कानन सा आप सुधा धारहीसी ढरकी ॥ चौंक चौंक चारों ओर चितय चकित ह्वैकै, चातुरी बिसारी भूल गई सुधि घरकी ॥ रघुराज दौर दौर आई जुरि एक ठौर छूटीं अलकान सारी सँभरें न धरकी ॥ आननमें आनरंग नयन कलेवरमें, प्राणनमें पूरी प्रीति नन्दके कुँवरकी ॥ ३ ॥

हे महाराज ! जिस समय कुछ कहनेका प्रारम्भ किया, उसीसमय मनमोहिनी मनमोहनकी

छबिका स्मरण होगया, उस छबिका स्मरण होतेही कामदेवने उनके मन व्याकुल करलिये इसलिये उनसे श्यामसुन्दरकी कान्तिका कुछ वर्णन नहीं होसका ॥

कवित्त–कान्हर कलाको कछु कहनको चाही चित्त, पै न कढ़ी नेसुकहू बदनते वानी है ॥ नन्दजूके नन्दनकी मन्द विहँसन चितवन औ चलन चारु सुधिकै लुभानी है ॥ मदन महीपने दुहाई तन फेरदीनी कहै रघुराज ब्रजबाल बडरानी है ॥ पलकैं परत नहीं ललकै ललन लगीं ललना लगन लागीं लाजहू परानी है ॥ ४ ॥

मोर पुच्छोंका मुकुट शीशपर धरके काछनी काछके कानोंमें कनेरके पुष्प धारण करके सुवर्णकी सदृश पीतपट ओढकर कण्ठमें वैजयन्ती और वनमाल धारणकर नटवररूप बनाकर बाँसुरीके छिद्रोंको अपने अधरामृतसे पूर्ण करते गोपोंके समूह जिनकी कीर्ति वर्णन करैं, वह श्रीवृन्दावनविहारी अपने चरणारविन्दोंके चिह्नसे रमणीक वृन्दावनमें गये, नटवर वेष बनानेका आशय यह है कि, तुमको नृत्य दिखानेके लिये मैंने यह वेष वनाया है और कनेर पुष्प कानमें धरनेका कारण यह है कि, जब गोपियोंकी बात कानमें सुनाई न आवै तो कानोंमें अत्यन्त सन्ताप होगा तब कानोंको शीतल करनेके लिये पुष्प धारण किये हैं और पीताम्बर धारण करनेका कारण यह है कि, राधा प्यारीका शरीर ऐसाही पीतवर्ण है इसको देखकर प्रीतमप्यारीके शरीरकी सुधि आती रहेगी दूसरे प्यारी कैसा पीतरंग मेरे हृदयसे लगा रहेगा और वैजयन्ती और वनमाल हृदयपर पडे रहनेका अभिप्राय यह है कि प्यारीके वियोगकी जो विरहानल है उसे शान्त करती रहैं गोपियोंके चरणचिह्नयुक्त मनोहर वृन्दावन जानकर वृन्दावनमें प्रवेश किया ऐसा सुन्दर मनमोहनका मनमोहन रूप देख धैर्य धर जैसे तैसे कर एकसे एक कहने लगीं ॥

कवित्त–काननमें सोहैं कर्णिकारके कुसुम आली, माथे मोर पंख मोर छबिको छवैया है ॥ पुरट प्रभाको पट कटिमें बिराज रह्यो, उर वैजयन्तीमाल मनको हरैया है ॥ वंशी वेध आँगुरी दै तानमें प्रमोद भरे, रघुराज ग्वालनमें आगे किये गैया है ॥ निज पद वृन्दावन धरणी करत धन्य, नटवरवेषवारो साँवरो कन्हैया है ॥ ५ ॥

हे राजन् ! इसप्रकार सब जीवोंके मनकी मोहनेवाली मनमोहनकी बाँसुरीकी टेर सुनकर ब्रजबाला परस्पर उसकी प्रशंसा करने लगीं, प्रशंसा करती ही करती परमानन्द रूपके सागरमें मग्न हो मुरलीमनोहरका मनसे आलिंगन करती थीं ॥

दोहा–यहि विधि कहि कहि ब्रजबधू, सुनि सुनि बंशी टेर ।
लगीं करन वर्णन सबै, इक एकन सों फेर ॥ ६ ॥

गोपी कहने लगीं हे सखियो ! उनहीं नेत्रवान् पुरुषोंके नेत्र संसारमें धन्य हैं और हम दूसरेको धन्यवाद नहीं देसक्तीं, जिन्होंने सखाओं समेत गायोंको चराते मुरली बजाते प्रेम भरे कटाक्ष चलाते श्रीकृष्ण बलदेवका मुखारविन्द देखा है वही धन्य हैं ॥

सवैया-संग सखाले चलैं तुलसी वन धेनु चरावनको अनुरागी।
भौंह कमानको तानके नैनन बानको मार करैरी विरागी॥
श्रीव्रजराज बजायकै बाँसुरि देत सबै ब्रजको सुखपागी।
ता नँदनन्दनके मुखकी छवि जे दृग पीवैं तेई बड़भागी॥ ७॥

दूसरी सखी बोली कि, आमकी पल्लव मोरपुच्छ फूलोंके गुच्छे उत्पल कमलोंकी मालाओंसे देदीप्यमान नीलाम्बर पीताम्बरोंसे चित्र विचित्र वेष धारण किये, श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई ग्वाल मण्डलोंमें गाते हुए ऐसे शोभायमान जान पडते थे जैसे रंग-भूमिमें दो नट नाटक कर रहे हैं॥

सवैया-लाल रसाल रसालके पल्लव नीरज मोरके पंख लगाई।
सो पहिरे पटपीतके ऊपर लाल हिये वनमाल सुहाई॥
श्रीरघुराज शृंगार किये अनुरागन सों रह्यो रागनगाई।
कुंजकदम्ब तरे नटनागर सोहत ग्वालन मध्य कन्हाई॥ ८॥

तीसरी गोपी बोली कि,हे सखियो! इस बाँसुरीने ऐसा कौनसा तप किया है कि,जिसके पुण्यके प्रभावसे हमारे पीने योग्य अधरामृतके रसको यह आपही अपनी इच्छापूर्वक पीरही है जिन सरोवरोंके जलसे इस बाँसुरीके बाँसोंको सींचा है उन सरोवरोंमें कमल नहीं फूलते मानो आनन्दसे रोमांच हो आये हैं और जिन वृक्षोंके वंशमें इस बाँसुरीके बाँस उत्पन्न हुए हैं उन उन वृक्षोंमें मद नहीं टपकता मानो आनन्दके आंसू बहते हैं क्यों? वह अपने आपको धन्यवाद देते हैं कि, धन्य हमारे भाग्य जो हमारे वंशके बाँसोंमें ऐसी बाँसुरी उत्पन्न हुई कि, जो आठों पहर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके मुखारविन्दसे लगी रहती है, जैसे श्रेष्ठ मनुष्य अपने कुलमें सुपुत्रको भगवान्‌का भक्त देखकर आनन्द मान नेत्रोंसे आँसू बहाते हैं, इस समय मुझको एक भजन स्मरण हुवा।

भजन-मुरलियाने कियो है कठिन तप भारी। मुरलिया याही ते हरिने मुख धारी॥ जन्मतही कीनी मत गाढी। वनमें रही एक पग ठाढी॥ वर्षा शीत उष्णता बाढी। सो सहि तनपर सारी॥ मुरली निज तपके फल लीन्हे। ब्रह्मा रुद्र इन्द्र वश कीन्हें॥ चेतन थे ते जड कर दीन्हें। अधरन चढी विहारी॥ एक मन्त्र विधि हरिसों पावें। ताते इतनी सृष्टि उपजावें। याको हरि नित मन्त्र सुनावें॥ अचरज भयो कहा री॥ हरि ब्रजमें नित वेणु बजावें। तीन लोक धुनि सुनि सुख पावें॥ झब्बीलाल मनावें। ब्रजको वास मिले बनवारी॥

सवैया-जो सिगरी ब्रजनारिनको रघुराज क्षणै क्षण देत हुलासु री।
पीवतही जिहिं होत भई विरहागि विथाका विशेष विनासु री॥
पूरी भई यह सौति हमारि करै नित लालनके मुख बासुरी।
पानकरै हरिको अधरामृत कौन कियो तप बाँसकी बाँसुरी॥९॥

चौथी सखी बोली कि, हे आली ! यह वृन्दावन सुरपुरसे भी अधिक पृथ्वीका यश विस्तार कर रहा है, धन्य है यह पृथ्वी जिसपर ऐसा परमानन्ददायक वृन्दावन परमधाम है, जिसमें देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्द धरनेसे जिसको और भी अधिक शोभा प्राप्त हुई और इस वृन्दावनमें जिस समय मुरली मनोहरकी मुरलीका शब्द होता है, उसको मन्द गर्जनेवाली श्यामघटा जानके मोर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं, उनका अनुपम नाच देखकर सब जीव जन्तु निश्चल होकर बैठ जाते हैं, ऐसा परमानन्द किसी और दूसरे लोकमें भी सुना है ? कहीं नहीं यह पूर्णानन्द वृन्दावनमेंही है ॥

सवैया–जिनकी रज पावन देह अरी जय योगी अनेकन योग करैं ।
विरहानल ताप बुझावनको हमहूँ हठके कच बीच धरैं ॥
नँदनन्दनके पद पंकजसों ब्रजमें घरही घरमें विचरैं ।
तुलसी बनसों रघुराजसभीढिग दूसरे देश न देख परैं ॥ १० ॥

पाँचवीं सखी बोली कि, हे सजनी ! यह पशु जाति मूर्ख हरिणी भी धन्य हैं कि, जो मुरली का शब्द सुन अपने पतिको संग विचित्र वेष किये, वृन्दावनविहारीका स्नेहकी चितवनसे सन्मान करे हैं और हमारे पति तो ऐसे निर्दयी हो गये कि, हमको उनका दर्शन भी नहीं करने देते ॥

स०–मनमोहनि वा ध्वनिको सुनिकै घनश्याम हिको घनश्यामगनै ।
मनमोह महा मतवारे मयूर नगीचहिं नाचैं क्षणैं हीं छनैं ॥
तिनको लख नाचत औरहु जन्तु रहैं सब ठाढे ठगे से बनैं ।
रघुराज कहो सखी कौन बनाय गहाय दई मुरली मोहनैं ॥ ११ ॥
जो मतिमन्द कहैं ब्रजकी हरणीनको सो मतिमन्द अभागी ।
साँवरेकी छबिमें छकिकै ढिग ठाढी रहै पतिलै अनुरागी ॥
श्रीब्रजराज ललाको कटाक्षनसों सतकार करैं बडभागी ।
ते हरिके हिय लागवेको हमैं रोकत गोप गँवार कुरागी ॥ १२ ॥

छटी सखी बोली कि, हे प्यारी ! यह तो अद्भुत बात सुनो ! स्त्रियोंके आनन्दका देनेवाला श्यामसुन्दरका मनोहर रूप देखकर और उनकी बजाई बाँसुरीकी मनोहर ध्वनि सुनकर विमानोंमें बैठ गमन करती हुई देवताओंकी स्त्रियें यद्यपि अपने पतियोंकी गोदीमें बैठी हैं, तो भी कामदेवके बाणोंके लगनेसे ऐसी व्याकुल होगई कि, उनके शिरके बालोंमेंसे पुष्प गिरे जाते हैं और नीवी खुली जाती हैं, जब देवांगनाही मनमोहनके स्वरूपको देखकर मोहित होगईं तो फिर हम मोहित होगईं तो क्या आश्चर्यकी बात है ? ॥

सवैया–बालनवृन्द अनन्दकोदायक शील भरो नँदनन्दन रूप है ।
ठाढो कदम्बकी कुंजथली आलि बाँसुरिकी ध्वनि छाई अनूप है ।
सो सुनि व्योम विलासिनि वाम विमानमें मोहैं विशाल स्वरूप है ।
ढील भै नीवी खसै सुमकेश ते यद्यपि संग सुरासुर भूप है ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण प्यारेके मुखसे निकलते हुए बाँसुरीके गीतरूप अमृतको गायें बछडे कानरूप पात्रोंसे ऊपरको उठाउठाकर पीते हैं और श्रीकृष्णचन्द्रको दृष्टिसे आलिंगन करते, प्रेमके आँसू बहाते, चित्रकी समान लिखेसे खडे हैं, बछडोंके मुखमें दूधके थन और गायोंके मुखमें घासके तृण मुखके मुखमेंही रह जाते हैं ॥

सवैया-वा मुरली धुनि मंजु गोपालकी गायन कान सुधासी ढरैं हैं ॥
चौंककै कौन उठायकै धाय समीपमें गोगण आय अरैं हैं ॥
त्यों बछरा सुरभी मुख कौर लिये नहिं लीलहिं नाहिं झरैं हैं ॥
श्रीरघुराज निवारनिमेष निहार ललाको प्रमोद भरैं हैं ॥ १४ ॥

हे माता ! इस वनमें जो पक्षी हैं सो सब मुनीश्वर हैं, जो मनोहर पत्रवाले वृक्षकी शाखाओं पर बैठकर नेत्रोंको मूँद, मौन साध, श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेका दर्शन करे हैं और बाँसुरीके मनोहर गीतोंको सुने हैं, क्योंकि मुनिलोग भी भगवान्के दर्शनके लिये काम्य कर्मको त्याग वेदकी शाखाओंके आश्रित हो, उनके विशालरूप कर्मोंका गुण ग्रहण कर सुखी हो, मौन साध, भगवान्के गुणानुवाद सुना करते हैं, इससे उसकी समतावाले यह पक्षी भी मुनिजनहीं जान पडते हैं ॥

सवैया-बाँसुरिकी धुनि श्रौनके हेत लगायकै श्रौगन नेमसों खाँचैं ॥
बोलन बन्द कै कुन्द कदम्बनि शाखनि बैठ आनन्दसों राँचैं ॥
नैनन मूँदि अचंचल है पियें बेनु सुधा मनके नहिं काँचैं ॥
श्याम सनेही विहंग सबै तुलसी वनके ये विहंग हैं साँचैं ॥ १५॥

चैतन्य जीवोंकी दशा जो कुछ थी सो तो थी ही, परन्तु मुकुन्द भगवान्की बाँसुरीकी टेर सुनकर नदियोंमेंभी भ्रमर पडते हैं, उनसे यह सूचित होता है कि, यह भ्रमर नहीं पडते, हमारे हृदयमें कामदेवके गढे पडते हैं, मानो जल स्तम्भित हो आलिंगन करके आच्छादन करता है, ऐसेही लहररूप हाथोंसे कमलके पुष्प भेंट लेलेके मुरारि श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दको समर्पण करे हैं यहां पर एक दृष्टान्त है ॥

सवैया-माधवकी अति माधुरिया मुरली धुनिको सुनि आग अमन्दी ॥
कामसों काँप उठो हियरो भई ताही समै अति वेगते मन्दी ॥
बाँसुरि तान महान नदी सखियाँ हिय डारत कामकमन्दी ॥
श्रीरघुराज तरंग भुजानि सों कंजनके गहि पुञ्ज अनन्दी ॥ १६ ॥

और गोपी तो अमोल कृष्णका प्रेमामृत पी रही थीं जो कृष्णरूपका प्रबन्ध बांध-दिया तो क्या बडी बात है. बलदेवजीको और ग्वालबालोंको संग लेकर धूपमें ब्रजकी गायोंको चराते, मुरली बजाते अपने प्यारे मित्र घनश्यामको देख श्याम घन उनपर छत्र छाया कर नन्ही नन्ही बूँदोंकी वर्षा करने लगे, क्योंकि सखा मित्र श्यामसुन्दरका मेघ ही है, देखो कृष्णका भी श्याम रंग और मेघोंका भी श्याम रंग, कृष्णके भी पीत वस्त्र और मेघोंके पीत बिजली, कृष्णके मुक्तामाल और मेघोंके बगपाँति, कृष्णकी मुरली गर्जे,

मेघ आपही गर्जें, कृष्ण अमृतकी वर्षा करें और मेघ जलकी वर्षा करें, कृष्ण वनमें घूमै और मेघ आकाशमें घूमैं, कृष्णपर भौंहोंके धनुष हैं, मेघों पर इन्द्रका धनुष है, कृष्णके और मेघके सब लक्षण एकसे मिलते हैं ॥

सवैया-ग्वालन बालन संग लिये बिचरैं सुरभीनके पीछे कन्हाई ॥
चेतनको तौ अचेत करैं औ अचेतन चेतन वेणु बजाई ॥
श्रीव्रजराज प्रमादित ह्वै घन आतप बारन हेत तहाई ॥
छत्रसे छाय रहे नभमें कल कुन्दसे बुन्दनकी झरिलाई ॥ १७ ॥

और सखी बोली आली ! हमसे तो यह वनकी भीलनी भी धन्य हैं, क्योंकि प्रियाके स्तनोंमें जो कि, चर्चित केशर कस्तूरी जब रतिके समय कृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगी और वह चरण अरुणाई लिये जब वनमें विहार करते समय घासमें लगे हैं, उनको देख कामातुर भीलनी उस केशर और कस्तूरीको घासपरसे लेलेकर अपने मुख और स्तनोंपर लगालगाकर कामाग्निके तापको शान्त करती हैं, हे सखी ! हमारे भाग्यमें तो इतना भी नहीं जो किसी प्रकार अपनी कामाग्निको शान्त कर लें ॥

सवैया-कमला कुच कुंकुम मंडित मंजुल कञ्जसे कोमल पायनिसों ॥
तुलसी वनमें सुरभीनके पीछे चलैं हारि चौगुणी चायनिसों ॥
रघुराज लग्यो तृणसों अँगराग पुलिंदी उठाय उडायनिसों ॥
बिरहागी बुझावै लगाय हिये धनि तैं हम ऐसी लुगायनिसों॥ १८॥

एक गोपी और बोली कि, हे अवलाओ ! हे सहेलियो ! यह गोवर्द्धन पर्वत भगवान् के भक्तोंमें कोई परमभक्त जान पडता है, क्योंकि इसके ऊपर बलराम और घनश्यामके चरणारविन्द लगनेसे तृणादिक जो उपजते हैं वह तृणादिक नहीं होते. मेरी समझमें ऐसा आता है कि, उसके रोम खडे हो रहे हैं और अपने आनन्दमें मग्न है, कृष्ण बलरामको अपने ऊपर आता देख, उनको शीतल, जल हरी घास, कन्द,मूल, फल भेंट करके उनका आदर सत्कार करता है ॥

सवैया-नँदनन्दनके अरविन्द पदै तिनही लहि मोद उरै भरतो ॥
फल फूलनसों झरना जलसों सतकार सखानि जुतैं करतो ॥
धनि है धनि है धरणीधर जो मुरली सुन धीरज ना धरतो ॥
हम हाय तहांकि शिलौ न भई कवहूँ हरिको पग तो परतो॥ १९॥

एक और बोली, हे सखियो ! ग्वालबालोंको संग लेकर कृष्णचन्द्र बलराम जब वृंदावनमें गायें चराते हैं और सब त्रिलोकीके मोहनेवालीको मधुर ध्वनिसे बजाते हैं, तब उस मनोहर बाँसुरीका शब्द सुनके सब जंगम स्थावरकी नाईं स्थिर होजाते हैं अर्थात् जहाँके तहाँ खडेके खडे रहजाते हैं और अपने आनन्दमें मग्न होते हैं और वृक्षोंकी जंगमों कीसी गति है, अर्थात् उनके रोमांच होजाते हैं. हे सखी ! यह अद्भुत आश्चर्य है, न आजतक कहीं आखोंसे देखा और न कानोंसे सुना, परंतु इतने परभी बलराम और

नन्दलाल अपना ग्वालपन दर्शा रहे हैं, कैसे ! गायदोहनके समय गायोंके बाँधनेकी रस्सी शिरसे बाँध रहे हैं और पांशी कन्धेपर धर रहे हैं उस समयकी कुंजविहारीलालकी शोभा वर्णन करनेकी किसको सामर्थ्य है ? ॥

कवित्त-जबते गोपाल निज मुखते लगाय लीन्ही, तबहीते बंशी ऐसी शानको सँभारती। जडते प्रगट पुनि जात जडकेरी तानें, चेतनको जडसो बनावनो विचारती ॥ रघुराज जातिहीकी मित्रता विचार सब जडनको चेतनके आनँद पसारती ॥ भुवनते भिन्न नई रीतिको चलावती है छिन छिन ब्रजमें उछिन्न किये डारती ॥ २० ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! इसप्रकार वृन्दावनमें विहार करनेवाले वृन्दावनविहारीके चरित्रोंको गोपी परस्पर वर्णन करती २ कृष्णमय होगईं ॥ २१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा-बाइसवें अध्यायमें, वरणों चीरचरित्र
गोपिनको वरदान दै, कीन्हो यज्ञ पवित्र ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! हेमंत ऋतुमें पहिला जो अगहन है उसमें सोलह सहस्र गोपकुमारी कन्याओंने मूंगभातका भोजन करके कात्यायनी देवीका व्रत करना आरंभ किया और व्रत करके सूर्योदयके समय यमुनाजलमें स्नानकर तटपर बैठ, बालूकी कल्याणी देवीकी प्रतिमा बनाकर ॥ १ ॥ २ ॥ चन्दन, सुगंध, फूल, फल, धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत और छोटी बडी सामग्रियोंसे देवीकी पूजा किया करती थीं ॥ ३ ॥

श्लोक-कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ (इति मंत्रः)

सवैया-मज्जन कै यमुना जलमें कात्यायनि देवीके ध्यान लगायो ॥
जिन बालूकी मूरति लीनी बनाय यथाविधिसों अन्हवान करायो ॥
फूल औ पान मिठान्न औ चन्दन अक्षत लै नैवेद्य चढायो ॥
कर जोर सबै वर माँगैं यही पति होय हमारो यशोदाको जायो ॥

हे कात्यायनी देवी ! हे महामाये ! हे महायोगिनी ! हे अधीश्वरी ! हे देवी ! नन्दरायगोपके सुतको हमारा पति बना, हम वारम्वार तुमको नमस्कार करती हैं ॥ ४ ॥ वह सब गोपकुमारिका इस मंत्रका जप करके पूजा किया करतीं, इसी प्रकार उनको पूजन करते करते एक महीना व्यतीत होगया श्रीमनमोहनमें मन उनका दिनरात लगा रहता था ॥ ५ ॥ और नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर यही वर माँगती थीं कि, हमको नन्दकुमार श्यामसुन्दर वर मिलै. इसप्रकार एक एकका नाम ले पुकार पुकारकर परस्पर हाथ पकड पकडकर ॥ ६ ॥ उच्च स्वरसे अपने प्राणप्यारे यशोदानन्दनका नाम लेतीं और

गुणानुवाद गातीं यमुनाजीपर स्नान करनेकों जाया करतीं ॥ ७ ॥ एक दिन पहिले की नाईं यमुनाके किनारेपर अपने अपने वस्त्र उतारकर सबने धर दिये और श्रीकृष्णचन्द्रके गुण गान कर करके यमुना जलमें बिहार करने लगीं, तब योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके मनोरथ जानकर ॥ ८ ॥ अपनी मण्डलीके सखाओंको संग लेकर उनकी मनोकामना सिद्ध करनेके लिये यमुनाके किनारेपर पहुँचे और उन कन्याओंके वस्त्र लेकर झटपट कदम्ब पर चढगये ॥ ९ ॥ और बालकों समेत आप ठट्ठे मारमारकर हँसने लगे और अनेक प्रकारकी मसखरीकी बातें करने लगे कि, हे अबलाओ ! हमारे समीप आओ और अपने वस्त्र लेजाओ ॥ १० ॥ इस समय मैं ठठोलीसे नहीं कहता, सत्य कहताहूं तुम व्रत करनेसे बहुत दुर्बल होगई हो इस बातको मेरे सखा सब प्रकारसे जानते हैं ॥ ११ ॥ मुझे कुछ दुर्भाव और आग्रह नहीं है, तुम एक एक मेरे सन्मुख आती जाओ और अपने अपने वस्त्र लेतीजाओ, चाहें सब मिलकर एकबार लेजाओ और जबतक तुम ऐसा न करोगी मुझे अपने बाबा नन्दकी सौगन्द है तुम्हारे वस्त्र कभी न दूंगा॥ ॥ १२ ॥ मनमोहन प्यारेकी मीठी मीठी बातें सुनकर गोपियें प्रेममें मग्न होगईं और लज्जित हो, परस्पर देख देखकर हँसने लगीं कि, विना वस्त्र नंगी किस प्रकार जलसे बाहर निकलें ? यह शोच विचार कण्ठतक शीतल जलमें जाडेकी मारी खडी खडी काँप रहीं थीं जब बहुत देर होगई तब गोपिका बोलीं कि हे नाथ ! अब हमको अत्यन्त जाडा लगता है और हमारे प्राणान्त हुये जाते हैं, तुमको हमारी दीनतापर कुछ भी दया नहीं आती ? ॥ १३ ॥

दोहा-तन मन धन अर्पों तुम्हैं, जो हो हमरे पास।
अब अम्बर देदीजिये, जान आपनी दास ॥
हम दासी बिन मोलकी, अहैं तुम्हारी श्याम।
लाज जाय जामें प्रभू, करो न ऐसो काम ॥
सोरठा-तब हँस कह्यो कन्हाय, जो तन मन मोको दियो।
लेहु बसन यहँ आय, जो मानो मेरो कह्यो ॥

मनमोहन प्यारेके मनोहर वचन सुनकर गोपी बोलीं कि, हे मनहरण प्यारे ! ऐसी अनीति मत करो, तुम नन्दरायके पुत्र ब्रजमें प्रशंसा करने योग्य हो, तुमको हमारी इतनी दया नहीं आती कि, यह जलमें खडी खडी ठिठर रही हैं, अब कृपा करके हमारे वस्त्र देदीजिये. हे सर्वान्तर्यामी ! हम तरुण अबला नंगी आपके सामने कैसे चली आवें, क्या हमको नंगी देखकर तुमको लज्जा नहीं आवेगी ? हे प्यारे ! आज तुम किसके सिखाने बहकानेसे यह बातें करने लगे, हमको नंगी देखकर क्या तुम नन्दके पुत्रसे किसी औरके पुत्र होजाओगे ? ॥ १४ ॥

दोहा-ब्रजभूषण दूषण हरण, सुनिये चतुर सुजान।
राखो धर्म अधर्मकी, हिरदयमें पहिचान ॥

छाँडि देहु यह टेक हारि, वर भूषण तुम लेहु।
शीत मरत हम नीरमें, वसन हमारे देहु ॥
सोरठा-दूषण होत अपार, जो त्रिय अँग देखै पुरुष।
तातें नन्दकुमार, नंगी नारि न देखिये ॥
लगत हमें अति लाज, तुव सन्मुख आवत नगन।
मनमोहन ब्रजराज, वस्त्र हमारे दीजिये ॥

हे श्यामसुन्दर प्यारे ! हम तुम्हारी दासी हैं, जो तुम कहोगे सोई करेंगी, परन्तु हमारी लाजके ग्राहक मत बनो जब लाजही जाती रही तो फिर शेष क्या रहा ? हम आपके सामने निर्लज्ज होना नहीं चाहतीं, अब भी कुछ नहीं बिगडा, वस्त्र हमारे देदो नहीं तो हम नन्दरायसे अथवा राजा कंससे जाकर कहेंगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ गोपियोंकी रोष भरी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि, जो तुम मेरी दासी हो और मेरा कहना तुमको अंगीकार है तो हे मन्दमुसक्यानवालियो ! तुम यहाँ आनकर अपने वस्त्र लेजाओ ॥

दोहा-सिगरी मिल आवहु इतै, वसन लेन इकबार।
चाहे इक इक आवहू, जैसे होय विचार ॥

मनमोहन प्यारेकी हठीली बात सुनकर ॥

दोहा-कहत सखी सब परस्पर, हरि हठ छाँडत नाहिं।
चीर बिना कैसे बनै, कौन भाँति घर जाहिं ॥
सोरठा-चलो लीजिये चीर, इनहींकी हठ राखिये।
मनमोहन बल वीर, जो कुछ कहैं सो कीजिये ॥

फिर सब मिलकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोलीं कि, हे ब्रजभूषण प्यारे ! ॥

दोहा-जो कुछ तुम कहिहो लला, हम करि हैं सब सोय।
कृपा करहु पीडा हरहु, जामें हँसी न होय ॥

जब कुछ उपाय न चलसका तब हारकर शरदीकी मारी काँपती हुई संकोच करती सम्पूर्ण गोपिका दोनों हाथोंसे अपने कुच और योनिको ढक जलसे बाहरको आईं, तब श्यामसुंदर बोले कि, " दोनों हाथ जोडकर सूर्यनारायणको प्रणाम करो " ॥ १७ ॥ क्योंकि, तुमने व्रतमें विना वस्त्र स्नान करके सूर्यनारायणको अंजुलियोंसे जल दिया है सो नंगी होकर सूर्यको जल देनेका बडा दोष है, मुरलीमनोहरके मनोहर वचन सुन गोपी बोली कि, हे ब्रजविहारी ! हम सूधी साध्वी ब्रजनारी गँवारी इन बातोंको क्या जानें अब हम तुम्हारे वशमें हैं जैसे कहोगे वैसे करेंगीं यह बात कह कुचोंपरका हाथ ऊपरको उठाकर सूर्यको प्रणाम करने लगी तब श्यामसुन्दरने कहा कि, एक हाथसे प्रणाम करनेका बडा अपराध है दोनों हाथ जोडकर नमस्कार करो। गोपी बोलीं हे नंदलाल ! वनमाली ! हम भोली भाली अबलाओंको जैसा चाहो वैसा नाच नचा लो ॥

दोहा-जो कहिहौ करिहैं सभी, हँसि बोली ब्रजबाल ।
लेहैं पलटो हम कभूँ, सुनहु श्याम नँदलाल ॥

उनके शुद्धभावको देख श्रीकृष्णमहाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनको शुद्धकन्या कुमारी देखकर उनके वस्त्र कन्धोंपर धर मन्दमन्द मुसकाय प्रीतिपूर्वक बोले ॥ १८ ॥ कि, हे शशिवदनियों ! तुमने जो व्रत करके नंगी हो यमुनाजलमें स्नान किया यह वरुण देवताका अपराध हुवा, उस पापके दूर करनेके लिये हाथ जोड माथेसे लगाय पृथ्वीमें प्रणाम करके अपने अपने वस्त्र पहन लो ॥ १९ ॥ ब्रजबालाओंने भगवान् श्रीकृष्णकी यह बातें सुन सब कुमारिका वस्त्र त्यागके नग्न स्नान करनेका व्रतखण्डकरनेवाला मानके उसके पूर्ण करनेके लिये व्रतके और सब कर्मोंके फलदायक श्रीकृष्णभगवान्को नमस्कार किया क्योंकि,वही सब पापोंके दूर करनेवाले हैं ॥ २० ॥ देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अधीनता करनेवाली गोपियोंको देखकर उनके वस्त्र देदिये ॥ २१ ॥ उनके संग बहुत छल किया, लाज उनकी छुटाई हँसी उनकी करी, खिलौनेकी नाईं उन्हें खिलाया, वस्त्र उनके चुरालिये, तौ भी उन गोपियोंने कृष्णको दोष नहीं दिया, क्योंकि उनको अपना प्राणनाथ समझकर उनके संग परमानंद मान रही थीं ॥ २२ ॥ अपने अपने वस्त्र पहिर प्यारेके संग ऐसी वशीभूत होगईं और उनके चित्त हरगये, श्रीकृष्णकी ओर खडी खडी देखतीही देखती ऐसी विह्वल होगईं कि, वहांसे चलने तककी सामर्थ्य न रही ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र सर्वान्तर्यामी भगवान् दामोदरने उन अबलाओंके व्रतका संकल्प जानलिया कि, इन गोपिकाओंने मेरे चरणस्पर्शकी चाहनासे यह व्रत किया है ॥ ॥ २४ ॥ तब श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, हे सुशीलाओ ! जिसलिये तुमने मेरा व्रत किया है उस मनोरथको लाजकी मारी तुम नहीं कहतीं, परन्तु तौ भी मैंने तुम्हारे मनोरथको जानलिया और मैंने तुम्हारे मनोरथका अनुमोदन किया, इसलिये तुम्हारा मनोरथ सत्य होगा ॥ २५ ॥ हे मनोरंजिनी ! तुम अपने अपने घर जाओ, मुझमें मन लगानेवालोंकी कामना विषय भोगके लिये नहीं होती, जैसे भुनाहुवा अन्न दूसरी बार उपजनेके योग्य नहीं रहता ॥ २६ ॥ हे पूर्णव्रत करनेवालियो ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा, हे पतिव्रताओ ! जिस प्रयोजनके लिये तुमने यह व्रत किया और कात्यायनीदेवी-की आराधना की सो मैंने जाना, अब जब शरदृतुकी रात्रि आवैगी तब तुम सब मेरे संग विहार कीजियो, अब तुम इस समय अपने २ घरको जाओ ॥ २७ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, जिन गोपियोंकी मनोकामना पूर्ण होगई वह गोपी भगवान्की आज्ञा मान और उनके चरणकमलका ध्यान करती हुई अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने अपने घरोंको चली गईं और उसी दिनसे आठोंपहर यही मानती थी कि, वनमालीके संग परमसुख देनेवाली शरदृतु कब आवैगी ॥ २८ ॥ तब देवकीनन्दन श्रीकृष्णभी ग्वालबा-लोंको संग ले गायें चराते बलदेवजी सहित वृन्दावनसे भी और आगे बढगये ॥ २९ ॥ बडी तीक्ष्ण ग्रीष्मकी धूपमें अपनी छायासे छाया करनेवाले सघनवृक्षोंको देखकर श्रीकृष्ण-

चन्द्रने अपने मित्रोंसे कहा कि ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण ! हे अंशो ! हे श्रमिन् ! हे अर्जुन ! हे विशाल ! हे ऋषभ ! हे तेजस्विन् ! हे देवप्रस्थ ! हे वरूथप ! ॥ ३१ ॥ इन बड़भागी वृक्षोंको देखो तो यह कैसे भाग्यशाली हैं और सदा परोपकारके लिये एकान्तमें वास करते हैं, पवन, वर्षा, शीत, घाम आप सहते हैं और हमको इनसे बचाते हैं ॥ ॥ ३२ ॥ अहो इन वृक्षोंका जन्म धन्य है, जिनसे हम सब लोग सुख पातेहैं और इनसे प्राणियोंकी जीविका है जैसे किसी मनुष्यके पाससे याचक विमुख नहीं जाता ऐसेही इन वृक्षोंके समीप आनकर प्राणी विमुख नहीं जाता ॥ ३३ ॥ इस संसारमें यह पत्र, फल, फूल, छाया, जड, वल्कल, लकडी, सुगन्ध, गोंद, भस्म, कोयला, कोंपल, आदि से सब प्राणियोंकी मनोकामना पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ इस संसारमें उन्हीं देहधारियोंका जन्म सफल है, जो कि, प्राण, धन, बुद्धि और वाणीसे परायेका भलाही करते रहते हैं ॥ ॥ ३५ ॥ इसप्रकार हरे हरे पात, गुच्छे, फल, फूल, कोंपलोंके समूहोंसे जिनकी शाखा झुँकरही हैं, उन वृक्षोंके बीचमें होकर श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाकी ओरको गये ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! उस यमुनाके तीर ग्वालबालोंने निर्मल जल मंगलरूप गायोंको पिलाया और आप भी पिया ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! उस यमुना महारानीके किनारे पर गायोंको चराने और ग्वालोंको जब क्षुधा लगी तब घनश्याम बलरामजीके पास आनकर यह बात कहने लगे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा-तेइसवें अध्यायमें, माँगो हरि यश जन्य।
विप्रोंने दीनों नहीं, दियो नारिते धन्य ॥

हे राम ! हे राम ! हे महापराक्रमी ! हे कृष्ण ! हे दुष्टोंके संहारकरनेवाले ! यह भूख हमको बहुत सताती है आप इसके शान्त करनेका कोई उपाय करो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! गोपोंने जब श्रीकृष्णसे इस प्रकारकी प्रार्थना की तब देवकीनन्दन भगवान्ने अपनी भक्तवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके ऊपर प्रसन्न होकर यह कहा ॥ २ ॥ हे सखाओ ! वेदके पढनेवाले मथुरावासी ब्राह्मण स्वर्गकी इच्छा करनेके लिये आंगिरस नाम यज्ञ कररहे हैं, देवताओंका पूजन जहाँ होरहाहै वहां जाओ ॥ ३ ॥ हे गोपो ! वहाँ उस यज्ञमें जाकर भात माँग लाओ और जो तुमको भात माँगते लज्जा लगती हो तो तुम मेरा और मेरे भाई बलरामका नाम लेना कि, उनके भेजे हुए हम तुम्हारे पास भोजन माँगने आये हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णभगवान्की आज्ञा मानकर वह गोपलोग वैसेही भोजन माँगनेलगे और ब्राह्मणोंको हाथ जोड पृथ्वीमें पडकर दण्डवत्कर ॥ ५ ॥

सोरठा-गोपन कियो प्रणाम, विप्रनको कर जोर कर।
हमैं पठायो श्याम, माँगत हैं भोजन कछुक ॥

अहो विप्र महाराज, भोजन हमको दीजिये ।
माँगत हैं ब्रजराज, भूख लगी उनको अधिक ॥

हे भूमिदेव ! हमारी बात सुनो ! श्रीकृष्णमहाराजकी कृपासे सदा आपके यहाँ ऐसाही मंगल होता रहै, हम श्रीकृष्णके आज्ञाकारी हैं और जातिके गोप (अहीर) हैं श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार बलदेवजीके भेजेहुए हम आपके पास आये हैं सो आप उनको जानतेही होंगे ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई गायें चरानेको आपके निकटही आये हैं और इस समय उनको भोजनकी इच्छा है और अधिक भूखे हैं; इसलिये आपसे भातकी चाहना है. हे ब्राह्मणो ! हे धर्मके जाननेवालोंमें उत्तम ! तुम्हारे यहां भात है, यद्यपि आपकी श्रद्धा हो तो माँगनेवाले कृष्ण बलरामको भोजन देदीजे ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठब्राह्मणों ! तुम चुप क्यों होरहे ? जो तुम कहो कि, हम यज्ञके करनेवाले दीक्षित हैं उनको हमारा भोजन करना नहीं चाहिये तो वहाँ यह विचार है कि, दीक्षाके आरम्भसे लेकर पशुके हिंसने पहिले सौत्रामण्य यज्ञसे और ठौर दीक्षावालेके अन्न खानेसे कुछ दोष नहीं लगता. सो पशुका हिंसन तुम्हारे यहाँ हो चुका है, सौत्रामण्य यज्ञ आपके हैही नहीं, सो आपका अन्न भोजनमें हमको किसी प्रकार दोष नहीं है ॥ ८ ॥ इस प्रकार गोपोंने उनको शास्त्रानुसार समझाया भी, परन्तु तौ भी वह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी बातको सुनी अनसुनी करगये क्योंकि वह ब्राह्मण क्षुद्रफलवाले स्वर्गके जानेकी इच्छा कर रहे थे, वह क्लेशकारी कर्ममें अपनी मूर्खतासे लग रहेथे और अपने आपको बड़ा ज्ञानी और महात्मा जानतेथे ॥ ९ ॥ देश काल अलग अलग, चरु पुरोडाशादिक सामग्री मंत्र, तंत्र, ऋत्विज्, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ, धर्मफल, यह सब कृष्णमय हैं ॥ १० ॥ सो इन्द्रियोंसे परे साक्षात् परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको उन कुत्सित बुद्धिवाले मूर्ख देहाभिमानी देहकोही आत्मा माननेवाले ब्राह्मणोंने अज्ञानवश हो उनको कुछ भी नहीं पहिचाना मनुष्यही जानके अवज्ञा करी ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परंतप ! उन ब्राह्मणोंने चुप साध ली, न तो अपने मुखसे हाँ की और न ना की, तब गोप निराश होकर लौट आये और श्रीकृष्ण, बलरामके पास आनकर कहा कि, भले ब्राह्मणोंके पास भेजा, उन्होंने कुछ भी नहीं दिया, देखो हमारा अपमान भी हुआ और भोजन भी नहीं मिला, अब क्या उपाय करें ? भूखके मारे तो प्राण निकले जाते हैं ॥ १२ ॥ जगदीश्वर श्रीकृष्णभगवान् इस बातको सुनकर हँसे और फिर गोपोंसे कहा कि, कार्यवालेको निराश होना नहीं चाहिये और माँगनेवालेको मान कहाँ ? क्योंकि, उनका मान तो सदैवही भंग रहता है ॥

दोहा-मान बड़ाई, प्रेमरस, गरुवाई अरु नेह ।
ये पाँचों तबहीं गये, जबहिं कह्यो कछु देह ॥

लौकिकरीति दिखलानेके लिये फिर श्रीकृष्णचन्द्रने गोपोंसे कहा कि ॥ १३ ॥ अब तुम फिर जाओ और उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे कहो कि, कृष्ण बलदेव दोनों भाई गायें

चराते चराते यहाँ आगये हैं और भूखे हैं. वह तुमको मुँह माँगा भोजन देकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगी, क्योंकि, वह शरीरसे तो घरमें बास करै हैं, परन्तु उनका मन मुझमेंही लगा रहै है, इसीसे मुझमें उनका बड़ा प्यार है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर ग्वाल फिर गये, देखा तो पत्नीशालामें सब ब्राह्मणी शृंगार किये बैठी थीं उनके पास जाकर गोपोंनें नमस्कार कर अधीनतासे यह वचन कहा ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणकी भार्याओ ! तुमको नमस्कार है, तुम हमारी एक बात सुनो, श्रीकृष्णचन्द्र आपके समीपही आगये हैं, उन्होंने हमको तुम्हारे पास भेजा है ॥ १६ ॥ ग्वाल बाल और बलदेवजीको संगलेके गायें चराते चराते इतनी दूर चले आये हैं, इस समय भूखे हैं और उनके मित्र हम भी भूखे हैं, सो कुछ भोजन चाहते हैं तुम कृपा करके हमको दो ॥ १७ ॥ नित्य श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहनावाली और कृष्णचन्द्रकी कथामें तन, मन, धन लगानेवाली वह ब्राह्मणोंकी स्त्रियें व्रजभूषणका आना सुनकर अत्यन्त हर्षमानती हुई, क्योंकि, उनका मन तो पहिलेही श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लग रहा था ॥ १८ ॥ बड़े बड़े थालोंमें सुंदर सुगन्धयुक्त चारप्रकारका भोजन भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य, (चने, चबैना, रोटी, पूरी, यह भक्ष्य) (दाल, भात, इत्यादि भोज्य) (कढ़ी, क्षीर, इत्यादि लेह्य) (ऊख, आम, नींबू, इत्यादि चोष्य) सब ब्राह्मणोंकी स्त्रियें अपने मनमोहनप्यारेके लिये भोजन लेलेकर ऐसे धाईं जैसे नदियें समुद्रमें जाती हैं ॥ १९ ॥ उनके पति, भाई, बन्धु, पुत्रोंने बहुतेरा रोका परन्तु वह न रुकीं. क्योंकि, उनके मन तो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें बरसोंसे लग रहे थे और दिनरात यही मनाती थीं कि, देखिये विधाता वह दिन कौनसा करेगा ? जो कृष्ण प्यारेका दर्शन होगा ? सो दैवयोगसे वही समागम बनगया, जब चलते चलते कुछ दूर पहुँचीं तो कृष्ण सखाओंसे बूझने लगीं कि, अब मोहनप्यारे कितनी दूर रहे ? शीघ्र चलो, क्योंकि, मनमोहनप्यारे भूखे होंगे उनकी प्रेम प्रीति सनी मधुरवाणी सुन गोप बोले कि, हे देवि ! हमारे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाके किनारे और थोड़ीसी दूर हैं, इसप्रकार बूझती बूझातीं वृन्दावनविहारीके दर्शनकी अभिलाषाके आनन्दमें मतवाली हुई चली जाती थीं, देखा तो ॥

दोहा-कालिन्दीके कूलपर, नव अशोककी कुञ्ज ।
बहुत त्रिविधि मारुत सुखद, गुंजत भृंगनि पुञ्ज ॥

उसी अशोक वृक्षके नवपल्लवोंसे शोभायमान यमुनाके निकट उपवनमें ग्वालबालोंको संग लिये भाई बलराम समेत मनमोहनप्यारेको फिरते देखा ॥ २० ॥ श्यामस्वरूप, पीतवसन धारण किये, वनमाला पहिरे, मोरपुच्छका मुकुट शीशपर धरे, खरिया, गेरूके छाप लगाये, धातु मूँगा पहिरे, नटवर वेष बनाये, सखाके कण्ठमें भुजा डाले, दूसरे हाथमें कमलके फूलको घुमाते कानोंमें कमलके फूल लपकाये, कपोलोंपर अलकें छिटकाये, मन्दमन्द मुसकाते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जैसे जैसे गुण कृष्ण प्यारेके अपने कानोंसे सुनके देखनेकी अत्यन्त अभिलाषा थी वैसेही प्रत्यक्ष जाकर अपने

नेत्रोंसे देखे और अपने आपको परम बड़भागी समझकर उस ब्रजराजके अनूप स्वरूपको नेत्रोंके द्वारा हृदयमें लेजाकर बहुत देरतक आलिंगन किया और मनमोहनप्यारेको वहीं रहनेको स्थान दे सर्वत्र तापको त्याग दिया, जैसे अहंकार वृत्तियाँ सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षी हैं उनको आलिंगन करके और उनहींमें लीन होकर सब तापको त्याग देती हैं ॥ ॥ २२ ॥ पुत्रादिक गृहादिककी सब आश छोड़कर मेरा दर्शन करनेके लिये आई हैं उन ब्रह्मपत्नियोंको देखकर सबकी बुद्धिकी परीक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र मुसकराके बोले ॥ ॥ २३ ॥ कि, हे बड़भागिनीयो ! तुमने बहुत अच्छा किया जो यहाँ आई आओ हमारे समीप बैठो ! इस समय हम तुम्हारी क्या शुश्रूषा करैं? हमारे लिये क्या आज्ञा है? हमारा दर्शन करनेके लिये आई हो सो तुमको योग्य है तुम हमको भूखा समझकर इस महानिर्जन वनमें भोजन लेकर आई इससे अधिक और कुछ दया है ? इसके बदलेमें हम तुम्हें क्या दें ? जो इस समय हमारा घर भी धोरे होता तो कुछ पान फूल तुम्हारे आगे धरते सो वृन्दावनभी हमारा यहाँसे बहुत दूर है, हमसे आपकी कुछ भी सेवा न बन पडी, इस बातका बडा पछतावा है और हमारा मुख नहीं जो आपके प्रेमकी और परिश्रमकी प्रशंसा करसकैं, इस समय हम सब प्रकारसे लाचार हैं ॥ २४ ॥ अपने स्वार्थके देखनेवाले ज्ञानी पुरुष आत्मारूप प्रिय जो मैं हूँ, सो मुझमें फलकी अनिच्छा करके निरन्तर यथार्थ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥ २५ ॥ परन्तु आत्मा सबसे अधिक प्रिय है. विचार लो प्राण, बुद्धि, मन, तनु, धन, स्त्री, पुत्र आदिक सब वस्तु जिस आत्माके सम्बन्धसे प्रिय लगते हैं फिर भला उस आत्मासे बढकर और कौनसी वस्तु प्रिय है ॥ २६ ॥

चौ०-ता आतमके आतम हम हैं । सो को और जु प्रिय मो सम हैं ॥२७॥

इसलिये हे सुशीलाओ ! अब तुम अपनी यज्ञशालामें जाओ तुम कृतार्थ होगई पति तुम्हारे गृहस्थ हैं. जबतक तुम न जाओगी तबतक यज्ञ पूर्ण न होगा, क्योंकि, बिना स्त्रीके यज्ञ पूरा नहीं होता इसलिये वह लोग यज्ञको तुम्हारे साथही पूरा करेंगे ॥ २८ ॥

सोरठा-तब बोलीं कर जोरि द्विजनारी हरि छबि छकी ।
बहुविधि हरिहि निहोरि, बैन विनय रसमें सने ॥

हे नाथ ! आपको अपने कोमल मुखारविन्दसे ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिये क्योंकि आपहीने गीतामें कहा है, (न मे भक्तः प्रणश्यति) अर्थात् मेरे भक्तोंका नाश नहीं होता (न स पुनरावर्तते) अर्थात् मुझमें प्राप्त होकर फिर लौट नहीं आता, यह आपहीकी आज्ञा है, फिर अपनी प्रतिज्ञाको सत्य क्यों नहीं करते ? इधर उधर क्या देख रहे हो ? तुमने अपने चरणसे जो तुलसीकी माला ठुकरादी है उसको बडे आदर सत्कारसे शिरपर चढानेके लिये अर्थात् आपके चरणारविन्दकी सेवा करनेके लिये आपकी शरण आई हैं, अब सब बन्धुजनोंको त्यागकर आपके चरण शरण हैं ॥२९॥ हे नाथ ! अब हम

घर जाकर क्या करें ? हे ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, भयादिक शत्रुओंके दण्ड देनेवाले ! हम अपने घर कैसे जा सक्ती हैं ? क्योंकिः—

कवित-पति पितु तात मात भ्रात मित्र बन्धु जेते राखैंगे न भौन यह दोषको लगायकै। ऐनहींकी ऐसी दशा बाहरकी कौन कहै, सूझत न और ठौर आपको विहायकै ॥ पदअरविन्द मकरंदकी पियासी दासी काहे दुख देहु निठुराई दरशायकै। मनकी क्षुरण हारी मूरत तुम्हारी त्याग, कौन दइमारेके समीप वसैं जायकै ॥

हे दीनदयालु ! हम यही चाहती हैं कि, आपहीके चरणारविन्दमें हमारे देह पडे रहैं, स्वर्गादिकका सुखभोग हम नहीं चाहतीं. हमको तो अपना दासभावही अच्छा है ॥ ३० ॥ द्विजपत्नियोंकी प्रेम (प्रीति) भरी मधुर वाणी सुनकर मनहरण प्यारे स्नेहयुक्त मनोहर वचन बोले कि, तुम निःसन्देह अपने घर जाओ, तुम्हारे पति, पिता, तात, माता, भ्राता, पुत्र तुम्हारी कुछ निंदा न करेंगे और संसारमें भी कोई मनुष्य तुमको दोष न लगावेगा, देवताओंको साक्षात् दिखलाकर कहा कि, सब देवता और मनुष्योंको मेरा कहना स्वीकार है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें शरीरके स्पर्श होनेसे प्रीति नहीं रहती और अनुराग भी नहीं बढ़ता, इसलिये, तुम घरमें रहकर मुझमें मन लगाओ तो बहुत शीघ्र मुझको पाओगी ॥ ॥ ३२ ॥ मेरा स्मरण, दर्शन, ध्यान, कीर्त्तन करनेसे जैसा भाव मुझमें होता है वैसा समीप रहनेसे नहीं होता. इसलिये तुमको उचित है कि, शीघ्र अपने मखभवनको जाओ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इसप्रकार जब श्रीकृष्णने द्विजपत्नियोंको समझाया ॥

दोहा-ऐसे सुन हरिके वचन, द्विजनारी सुखमान।
गवन कियो मखभवनको, हरि यश विमल बखान ॥

वह द्विजांगना यज्ञशालामें पहुँचीं और उन ब्राह्मणोंने कुछ अपराध उनको न लगाया निर्दोष समझकर अपनी स्त्रियोंके साथ आनन्दपूर्वक यज्ञ समाप्त किया ॥ ३४ ॥ जिस समय सब स्त्रियें श्रीकृष्णके पासको भोजन लेकर चलीं उस समय एक स्त्रीके पतिने अपनी स्त्रीको जानेसे रोक लियाथा, उसने जैसा श्रीकृष्णका रूप, रंग, स्वभाव कानोंसे सुन रक्खाथा उसी रूपका ध्यानकर हृदयमें आलिंगन करके कर्मोंके अधीन जो देह था उसको त्यागकर चैतन्यस्वरूप भगवद्रूपमें लय होगई ॥ ३५ ॥ और जो जो पकान्न मिठाई द्विजपत्नियोंने लाई थीं उन चार प्रकारके व्यंजनोंको यमुनाके निकट कुंजोंकी छायामें बैठ, अतिप्रसन्न हो श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी अपने हाथसे भोजन करातेथे और सब सखा उन भोजनोंकी प्रशंसा कर करके प्रेमसे भोग लगारहे थे. जब सब सखा भोजन कर चुके तो पीछे अपने आप भी भोजन करके ब्राह्मणियोंकी बडी सराहना की ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ " जब ब्राह्मणी यज्ञकर्मसे निश्चिंत हुई तो कोठरीमें जाकर देखा तो एक स्त्रीकी लोथ पडी है जिस ब्राह्मणकी स्त्री थी उससे बूझा कि, तेरी स्त्री कब मर

गई ? अभी थोडी देर हुई हमने इसको श्रीकृष्णके पास बैठे देखा था, द्विजनारियोंका यह वचन सुन वह ब्राह्मण बोला कि, मुझ मन्दभागीकी तुम क्यों हँसी करती हो ? जो मैंभी अपनी प्राणप्यारीको तुम्हारे साथ चली जाने देता तो क्यों अपने प्राण खोती ? यह कह वह ब्राह्मण रोने लगा, ब्राह्मणी बोलीं अरे मूर्ख ! तू हँसी समझता है हम सत्य कहती हैं ? हम अभी तेरी स्त्रीको श्रीकृष्णके पास बैठी छोडकर आई हैं यह सुन वह श्रीकृष्णके पास भाग गया और उसने अपनी आँखोंसे अपनी स्त्रीको श्यामसुन्दरके सन्मुख बैठी देखा, तब तो ब्राह्मण आदिपुरुष अविनाशी समझकर श्रीकृष्णभगवान्के चरणोंमें झुककर गिर पडा और रोरोकर कहने लगा कि, हे सर्वान्तर्यामी ! मेरा अपराध क्षमा कीजै तब वृन्दावनविहारी बोले कि, तेरी स्त्रीकी भक्तिके प्रभावसे तेरी भी मोक्ष होगई, तूभी मेरे लोकको चला जा इसप्रकार दोनों स्त्री पुरुष चतुर्भुजरूप धरकर परमधामको चलेगये, इन स्त्री पुरुषोंके वैकुण्ठ जानेकी संसारमें चर्चा फैली " तब जिन ब्राह्मणोंने गोपोंको भोजन नहीं दिया था वह श्रीकृष्णचन्द्रको साक्षात् भगवान् परब्रह्म परमेश्वर जानकर बहुत पछिताये कि. देखो ! हमसे बडा अपराध हुवा जो यज्ञकर्त्ता भगवान्ने हमसे भोजन माँगने भेजा और हम मूर्खोंने न जाना, हम तो यही समझते रहे कि, श्रीकृष्ण बलदेव मनुष्य हैं और हमने कथा पुराणोंमें सुन भी रक्खा था कि. नंद यशोदाने पूर्व जन्ममें पुत्रके लिये बडा तप किया था तब भगवान्ने उनको यह वर दिया था कि, तुम गोपकुलमें जन्मलो मैं तुम्हारे यहां आनकर पुत्रका सुख दूंगा उसी आदि पुरुष अविनाशीने आनकर नन्दरायके घरमें पुत्रभाव दरशाया है और हमने यहभी सुना कि, पूतना अघासुर आदि राक्षसोंको मारा परन्तु तो भी हम मूर्खोंने इस बातका कुछ ध्यान न किया ॥ ३८ ॥ उन अपनी पत्नियोंकी श्रीकृष्ण भगवान्में अलौकिक प्रीति देख कर और अपने आपको भक्तिहीन समझकर, अत्यन्त दुःखी हो बारम्बार अपने आपको धिक्कार दे देकर अपनी निन्दा करते थे ॥ ३९ ॥ शुद्ध माता, पितासे सावित्री यज्ञोपवीत हुएसे, यज्ञकी दीक्षा लियेसे यह तीन प्रकारका हमारा जन्म है, इसको हमारी विद्याको हमारे कर्मको और हमारी चतुराईको बारम्बार धिक्कार है, हमारे व्रत करनेको धिक्कार है, हमारे अनेक शास्त्रके पढनेको धिक्कार है, हमारे कुलको धिक्कार है, क्योंकि हम जगदीश्वर भगवान्से विमुख हुए धिक्कार है, धिक्कार है, इस हमारी अधम बुद्धिको ॥ ४० ॥ निश्चय है कि, भगवान् वासुदेवकी माया योगियोंको मोह उपजानेवाली है, इस मायासे मनुष्योंमें गुरु ब्राह्मण जो हम हैं सो स्वार्थमें मोहित होरहे हैं हाय !

चौपाई-हम लोगनके गुरू कहावैं। सबको बहु उपदेश सुनावैं ॥
मानै सब जग वचन हमारा। हमको सबने सिद्ध विचारा ॥
डूब गई अब सब सिद्धाई। जो न लखे त्रिभुवनपति राई ॥ ४१ ॥

अहो बड़े आश्चर्यकी बात है देखो ! जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रमें स्त्रियोंकी कैसी अलौकिक भक्ति है, देखो जिस भक्तिने गृहरूप मृत्युकी फाँसियोंको काटदिया ॥ ४२ ॥ विचार

तो करो यह स्त्रीकी जाति कैसी अशुद्ध है, न तो इनके उपवीत संस्कार है, न गुरुके समीप वास है, न तप है, न जप है, न आत्माका विचार है, न पवित्रता है, न सुकर्म है ॥ ४३ ॥ तौ भी योगेश्वरोंके ईश्वर परपुरुष श्रीकृष्णभगवान्में जैसी इन अवलाओंकी अचल भक्ति है ऐसी हम स्नान, सन्ध्या, जप, तप करनेवालोंकी भी नहीं है, धिक्कार है हमारे इस संस्कार और यज्ञ व्यहारको ॥ ४४ ॥ हम लोग कुछ भी अपने अर्थको नहीं पहिचानते, घरके व्योहारमें भूल रहे हैं और ऐसे अचेत हैं कि आगे पीछे कुछ भी सुधि नहीं, महात्माओंके आनन्ददेनेवाले श्रीकृष्णभगवान्ने गोपोंके वचनोंसे हमें सचेत किया, हाय ! तोभी हम मूर्ख न चेते, इसमें किसीका कुछ दोष नहीं यह सब हमारे कर्मोंका फल है ॥ ४५ ॥ पूर्ण जिनका मनोरथ, मोक्षादिक सब मनोरथोंके अधीश्वर श्रीकृष्णभगवान् हैं, उनको हमसे मायाके वशीभूत पामर जीवोंसे क्या प्रयोजन था ? केवल भातका मांगना तो ईश्वरका कौतुक था ॥ ४६ ॥ देखो ! त्रिभुवनेश्वरी लक्ष्मी ब्रह्मादिक देवता और सब संसारको छोड़कर चरणारविन्दके स्पर्शकी चाहना करके अपना चंचलपना और दोष दूर करनेके लिये जिनका दिन रात भजन करती है उन श्रीकृष्णका माँगना केवल हम लोगोंको मोहका उत्पन्न करनेवाला है ॥ ४७ ॥ देशकाल अलग अलग, चरु पुरोडाशादिक, द्रव्य, मंत्र, तंत्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ, धर्म यह सब श्रीकृष्णका रूप है ॥ ४८ ॥ सो साक्षात् श्रीकृष्णभगवान् विष्णु योगेश्वरोंके ईश्वरने यदुकुलमें आनकर जन्म लिया है, यह बात हमने पण्डितलोगोंके मुखसे सुनी थी, परन्तु तौभी हम जान बूझकर मूर्ख अज्ञानी होगये ॥ ४९ ॥ कोई कोई ब्राह्मण कहने लगे कि, अहो हम बड़े धन्य हैं क्योंकि हमारी ऐसी भक्तिमती स्त्री हुई कि, जिनकी भक्तिके प्रभावसे कृष्णभगवान्में हमारी भी दृढ़ भक्ति हुई ॥ ५० ॥ अकुण्ठ बुद्धि जो आप श्रीकृष्ण भगवान् हैं सो आपके लिये बारम्बार नमस्कार है, जिसकी मायासे मोहितबुद्धि हो हम कर्म मार्गमें भटकते फिरते हैं ॥ ५१ ॥ संसारकी मायसे जो हमारा चित्त मोहित हो रहाहै और आपकी महिमाको हम नहीं जानते, ऐसे जो हम अज्ञानी लोगहैं सो हे दीनदयालु ! हमारा अपराध क्षमा कीजे ॥ ५२ ॥ हे श्रीकृष्णचन्द्र भगवन् ! हम जो आपके अपराधी ब्राह्मण हैं, अपने अपराधको स्मरण करके हमारी कृष्ण बलदेवके दर्शनकी इच्छा हुई परन्तु कंसके भयके मारे नहीं जासके ॥ ५३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा-चौबिसवें अध्यायमें, इन्द्र यज्ञको त्याग।
गोवर्द्धन पूजन कियो, सबन सहित अनुराग ॥
यहि विधि आनँद देत हरि, व्रजमें करत विलास।
बीत गयो कछु काल पुनि, लाग्यो कार्तिक मास ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पृथ्वीनाथ ! यशोदा नन्दादिक सब गोपोंको बुलाकर कहने

लगी कि, तुम तो सब दिवालीकी धूम धाममें लग रहेहो और कलको इन्द्रकी पूजाका दिन है उसका किसीको ध्यान भी नहीं ? जिसकी कृपासे हमारे घर किसी बातकी कमी नहीं, उसीकी कृपासे दूध और दहीकी नदी बह रही है और मथनियोंका शब्द मेघकी समान गर्जता रहता है, उसीकी कृपासे दो पुत्र पाये हैं, उसीने हमारे सैकडो विघ्न मिटाये हैं उसीकी कृपासे सम्पूर्ण ब्रजमें हमारी बडाई होरही है और वह सुरपतिही हमारा कुलपूज्य और गोप गायोंकी रक्षा करनेवाला है, वड़े आश्चर्यकी बात है जो उसीको भूलगये ॥

दोहा-भली दिवाई मोहिं सुधि, कहत महरिसों नन्द ।
भूलगये हम देवको, काज मोह वश मन्द ॥

हे प्रिये ! मुझसे जो यह अपराध हुवा सो अनजाने हुवा, परन्तु यह बात अच्छी है अभी वह दिन नहीं आया तुम कुछ सन्देह मतकरो मैं सुरपतिको प्रसन्न करलूंगा हे राजन् । सब काम छोड नन्दजी ॥

सोरठा-हाथ जोरि शिरनाय, विनय करत सुरराज सों ।
तुमको गयो भुलाय, क्षमा कीजिये मोहिं प्रभु ॥

इसप्रकार इन्द्रकी विनयकर, बड़े बड़े गोपोंको बुलाकर कहा कि, इन्द्रके यज्ञके दिन समीप आगये और मैं मोह ममताके वशमें ऐसा लीन हुआ कि, किसी बातकी सुधि बुधि न रही परन्तु आप भी मुझसेही होगये जो कुछ भी ध्यान न रहा,अब शीघ्र सब मिलकर इन्द्रपूजाका प्रबन्ध करो, नन्दजीके वचन सुन सब गोप अपने अपने घर पकवान मिठाई बनानेलगे और इधर यशोदा भी अपने घर पूरी, कचौरी, लुचई, मोहनभोग, अमृती, पेडे, पूए, पपडी, पायस, लपसी, मोदक, वैकुण्ठी, मालपुए कतरी, गूँझा आदिक अनेक प्रकारके षट्रस व्यंजन बनाने लगी और छिपा छिपाकर रखने लगी ॥

दोहा-सैंत सैंत अति नेमसों, धरत अछूते जात ।
श्याम कहूँ परसैनहीं, यह मनमाहिं डरात ॥
सोरठा-शंक करत मनमाहिं, सुरपति पूजा जान जिय ।
यशुमति जानति नाहिं, सब देवनके देव हरि ॥

खेलते खेलते कहीं बाहरसे श्रीकृष्ण और बलरामजी भी वहाँ आगये देखा तो सब गोप ग्वाल अपने अपने घर पकवान मिठाई इत्यादिक भाँति भाँतिकी सामग्री इकट्ठी कर रहेहैं ॥ १ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा भगवान् सर्वव्यापक सब बातोंके जाननेवाले,जानते भी थे कि, इन्द्रके यज्ञका प्रबंध होरहा है, तौ भी नंदरानीसे बूझने लगे कि, माताजी ! आज क्या है ? जो घर घर पकवान मिठाई बन रही है और तुम भी बडी धूमधाममें हो ? मुझे समझाकर कहो कि, यह क्या भेद है ? जो मेरे मनका संशय मिटै ? यशोदा बोली कि, पुत्र ! इस समय मुझको सावकाश नहीं यह सब वृत्तान्त तुम अपने पितासे जाकर बूझो वह तुम्हारा सब सन्देह दूर करदेंगे. यह सुन नन्दजीके पास जाकर श्रीकृष्ण बोले ॥ २ ॥ कि, पिता ! आज क्या है ? जो सब ब्रजमें कड़ाही खटक रही है और

अनेकानेक प्रकारके व्यञ्जन बन रहे हैं, सब ठौर ठौर कोलाहल मचरहा है और ग्वाल-बाल चारों ओर भागे भागे फिरते हैं, क्या उत्सव है ? किस देवताके नामका यज्ञ है ? क्या इसका फल है? कौनसे देवताका पूजन है ? क्या क्या उसमें गुण हैं ? कौन इसका अधिकारी है ? किस किस वस्तुसे यज्ञ होताहै ॥ ३ ॥ हे पिता ! मुझे इस बातके सुननेकी बड़ी अभिलाषा है. सज्जनपुरुष सब प्राणियोंमें और स्थानोंमें आत्माको देखते हैं उनसे कोई कर्म छिपा नहीं है और छिपानेके योग्य भी नहीं है ॥ ४ ॥ साधु पुरुष अपना बिराना कुछ नहीं समझते, उनकी समदृष्टि है, मित्र उदासीन वा वैरी भी उनका कोई नहीं होता, उदासीन तो शत्रुकी सदृश वर्जित है, सुहृद् आत्माके समान मानना चाहिये, इससे उसको अवश्य सम्मतिमें साथ करले ॥ ५ ॥ यह प्राणी जानकर भी कर्म करता है और बिना जाने भी कर्म करता है परंतु जानकर जो करता है उसका फल तत्काल मिलता है और जो बिना जाने कर्म करता है उसका कार्य किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता ॥ ६ ॥ आपने जो यह यज्ञका अनुष्ठान कर रक्खा है सो शास्त्रकी रीतिसे किया है ? अथवा लोकरीतिसे किया है ? और यह रीति आपके यहाँ परम्परासे चली आई है वा आज किसीने नई बताई है, यह आपसे मेरा निवेदन है कि आप कृपाकर मुझसे कहो ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णके गम्भीर वचन सुनकर नन्दरायजी बोले कि, बेटा ! क्या यह वृत्तान्त तुमने आजतक नहीं सुना ? मेघरूप भगवान् इन्द्र हैं और मेघही उनकी प्यारी मूर्ति है वही प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवालाहै और संतोष देनेवाले जलकी वर्षा करता है ॥ ॥ ८ ॥ मेघोंका राजा भगवान् इन्द्र है उसको हम भी और संसारके दूसरे पुरुषभी उसी मेघपतिके वरसाये जलसे उत्पन्न हुआ जो अन्न है उसीसे यह यजन करते हैं, उसके करनेसे देवता, पितृ, प्रसन्न होते हैं. अनेक प्रकारकी ऋद्धि सिद्धि उत्पन्न होती हैं बन उपवन फूलते हैं, तृण, घास उत्पन्न होता है, उससे सब पशु, पक्षी, जीव जन्तु आनन्द पाते हैं और उस यजन करनेके उपरान्त जो शेषान्न रहजाता है उसीकी प्राप्तिके लिये अपनी जीविका करके धर्म करते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका सेवन करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

दोहा-अन्न शेष ले पुनि सबै, कुलयुत करैं अहार।
अर्थ धर्म अरु कामहू, ताते होत अपार ॥

हे पुत्र ! यह इन्द्रयज्ञकी रीति हमारे यहाँ परम्परासे चली आई है, कुछ आज ही किसी पण्डितने नई नहीं बताई, जो धर्म परम्परासे चला आया है और जो मनुष्य काम, लोभ, भय, द्रोहसे उसको छोड़ देते हैं उन पुरुषोंका कभी कल्याण नहीं होता ॥ ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! नंदराय और वृद्ध वृद्ध ब्रजवासियोंके ऐसे वचन सुनकर इन्द्रके ऊपर अत्यन्त क्रोध करके उसका मान घटानेके लिये श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने पिता नन्दादिकसे कहा ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे पिताजी !

कर्महीसे प्राणी जन्म लेता है और कर्महीसे देहका त्याग करता है, सुख, दुःख, भय, कल्याण, कुशल वह सब कर्महीके अधीन हैं ॥ १३ ॥

दोहा-भीति क्षेम सुख दुख सकल, होत कर्मते तात ।
बिना कर्मते होत नहिं, कबहु नई कोइ बात ॥
कर्महि ईश्वर कर्म गुरु, कर्महि जगत प्रधान ।
ताते पूजहु कर्मको, अहै ईश नहिं आन ॥

कोई कोई मतवाले ऐसा कहते हैं कि, ईश्वर प्राणियोंके कियेहुए कर्मोंके फलका देनेवाला है. इससे तो यह सिद्ध हुवा कि, ईश्वर कर्मोंके वशीभूत हैं जैसा कर्म जिसने किया वैसाही फल मिला ईश्वर अपनी ओरसे कुछ नहीं करसक्ता, इस बातसे यह निश्चय हुवा कि, फलकी सिद्धि देनेवाला कर्मही प्रधानरहा. इसलिये कर्मही जब मुख्य पर ठहरा तो फिर ईश्वर क्या वस्तु है? उसे तो ऐसा समझो कि, जैसे बकरीके कण्ठके स्तन ॥ १४ ॥ जब कर्मही प्रधान ठहरा तो इन्द्रसे क्या प्रयोजन? जब सब प्राणी अपने अपने कर्मोंके अनुसार भोग भोगते हैं, पूर्वजन्मके संस्कारजन्य जो कर्म हैं उनको इन्द्रभी किसीप्रकार नहीं घटा बढ़ासक्ता ॥ १५ ॥ प्राणी स्वभावहीके वशीभूत हैं और स्वभावहीको वर्तें हैं देवता, असुर, मनुष्य, यह सब स्वभावहीके वशमें हैं और कर्मकी प्रवृत्ति भी स्वभावहीके अधीन है तो फिर उस प्रवृत्तिमें ईश्वरकी कुछ आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ यह जीव कर्महीसे छोटे बड़े देहको पाता है और त्यागता है. कर्मही शत्रु है, कर्मही मित्र है, कर्मही गुरु है कर्मही ईश्वर है ॥ १७ ॥ इसलिये स्वभावमें स्थित होकर अपने कर्मोंका अनुष्ठान करै. यही मुख्य है. यद्यपि देवताके नामसे यज्ञ, व्रत, पूजन, हवन, किया बस उस करनेहीका नाम कर्म है. यद्यपि तुमको यह सन्देह हो कि, विना देवताके हमारा कार्य सिद्ध नहीं होसक्ता, देवताही हमारा कार्य करता है, तो भी देवता कर्मकेही अधीन ठहरा, देखो ! तुम किसी देवताका नाम लेकर अग्निपर दूधका पात्र रखदो, वह दूध औटजायगा और देवताका नाम नहीं भी लो तोभी औटजायगा, परन्तु बिना अग्निपर धरे किसी प्रकार नहीं औटसक्ता, तो मुख्य कर्मही ठहरा, क्योंकि विना कर्म कुछ नहीं होसक्ता अनायासपूर्वक कर्मकी पूजा करै और जिससे जिस पुरुषका निर्वाह हो वही उसका देवता है ॥ १८ ॥ जो पुरुष एकपदार्थका सेवन करके दूसरे पदार्थका सेवन करते हैं, वह पुरुष कभी कल्याणको नहीं पाते. जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषका सेवन करके कल्याणको नहीं पाती ॥१९॥ हे पिता ! चारों वर्णोंको चाहिये कि, अपने अपने धर्मपर आरूढ रहैं, ब्राह्मणको चाहिये कि, वेद पढ़ै और उसीसे अपनी आजीविका करै; क्षत्रियको चाहिये कि, पृथ्वीकी रक्षा करै; वैश्य व्यापारादिकसे अपना उदर पूर्ण करै; और शूद्रको चाहिये कि; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवा करके अपना प्रतिपाल करै ॥ २० ॥ खेती, वाणिज्य, गोरक्षा और ब्याजलेना यह चार प्रकारकी वैश्यकी जीविका है, इन चारोंमें हमारे तो सदा गायोंसेही जीविका है, जब गायें

हमारे पुरुषाओंके अधिक हुई तो यह गोकुल हुवा, इसीसे हमारे कुलका नाम गोप हुवा. फिर इन्द्र बपुरा कौन है? इन्द्रका पूजन करना तो जान बूझकर धर्मका मार्ग छोड़ देना है, इन्द्रके पूजनसे कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सक्ता. क्योंकि वह मोक्षदायक और विपत्तिमें सहायक होने लायक नहीं. अच्छा तुमही बताओ कि, इन्द्रने किसकी मुक्ति की? और किसको उसने परमपदवी दी? हाँ इतनी बात है कि, जो सौ यज्ञ करता है वह इन्द्र हो इन्द्रासनका भागी बन सुरपति कहलाता है, इन बातोंसे कुछ ईश्वर नहीं बनसक्ता, जब दैत्योंसे हारता है तब न जानिये कहाँ भागा भागा फिरता है और कौन कौनसी गुफाओंमें छिप छिपकर अपनी विपत्तिके दिन पूरे करता है ॥ २१ ॥ हे पिता! ऐसा कभी मत समझना कि, हमारी गायोंकी वृद्धि और आजीविका इन्द्रहीके अधीन है, क्योंकि सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन्हीं तीन गुणोंसे विश्वका पालन उत्पत्ति नाश होता है. इस रजोगुणसे स्त्री पुरुषसे मिलके त्रिविध जगत् उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ रजोगुणकी प्रेरणासे मेघ सर्वत्र स्थानोंपर जल वर्षाते हैं, उसी जलसे प्रजाका जीवन होता है, इन्द्र इसमें क्या करसक्ता है:—

दोहा—ताते जीवन प्रजनको, होत सिद्ध सब काज।
पिता वृथाही पूजकर, का करिहौ सुरराज ॥ २३ ॥

हमारे तो पुर, देश, नगर, ग्राम, घर, कुछ भी नहीं हैं. हे तात! केवल वनही हमारा घर है और सदा वन और पर्वतोंमें हमारा वास है ॥ २४ ॥ इसलिये गौ, ब्राह्मणकी सेवा करनी उचित है और पर्वतोंका पूजन करना चाहिये जिससे हमारी गायोंका और हमारा पालन पोषण हो. सो हमारे समीप सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोवर्द्धनपर्वत है उसीके यज्ञका प्रारम्भ करो, जो इन्द्रके यज्ञके लिये सामग्री इकट्ठी करी है उसी सामग्रीसे गोबर्द्धनके यज्ञका प्रारम्भ करो ॥ २५ ॥ खीरसे आदि लेके दालतक अनेक अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाओ, गेहूंकी पूरी, कचौरी, उड़द, मूंगकी दाल, कढ़ी, पकौरी, रायता, चुनौरा शाक, बासमतीके चावलोंका भात, दूध, दही, रबड़ी, मलाई और सब गायोंका दूध इकट्ठा करो ॥ २६ ॥ वेदके पढनेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर हवनकी सामग्री मँगाकर, अग्निमें होम कराओ और उन ब्राह्मणोंको भांति भाँतिके अन्न, गोदान, दक्षिणा और अलंकार पहिराओ ॥ २७ ॥ और जो दीन भिखारी, कुत्ते चांडालसे आदि लेकर पतिततक, सबको यथायोग्य भोजन कराओ, गायोंको घास दो, गोवर्द्धनपर्वतको बलिदान दो ॥ २८ ॥ अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण पहिर चन्दनका तिलक लगाय, नये नये वस्त्र धारण करके, शृंगार बनाओ. गौ, ब्राह्मण, अग्नि, पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥ २९ ॥ हे पिता! मेरा तो यह मत है, आगे आपकी इच्छा हो सो कीजे, यह गौ, ब्राह्मण और गोवर्द्धनपर्वतका यज्ञ मुझको तो अत्यन्त प्रिय है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इन्द्रका गर्व दूर करनेके लिये कालरूप भगवान्‌का वचन सुनकर नन्दादिक गोपोंने

और सब ब्रजवासियोंने परस्पर कहा कि, यह बालक देखनेको तो छोटा है परन्तु इस की बुद्धि बड़ी गम्भीर है ॥

दोहा-पुनि हरिको मुख चूमकर, हँसि बोले नँदराय।
लाल कही जो बात तुम, सोई करहु उपाय ॥

हे पुत्र ! मैं तेरा वचन किसीप्रकार नहीं फेरसक्ता और न कोई और फेर सकै जो बात तुझको अच्छी लगै हम सब उसीमें प्रसन्न हैं. इस बातको सुनकर बडे बडे जो वृद्ध गोप थे वह कहने लगे कि, कृष्ण सत्य कहता है, हमारा इन्द्रसे क्या प्रयोजन है? हमको तो नदी, पहाड, बन सदा बने रहैं ॥ ३१ ॥

दोहा-अहो नन्द सोइ कीजिये, कान्ह कहैं जो बात।
सब ब्रज जन मिलि पूजिये, गोवर्द्धन चल प्रात ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जैसे २ मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा उसीप्रकार सब ब्रजवासियोंने स्वीकार किया ॥ ३३ ॥ नन्दरायने एक दूतको बुलाय सब ब्रजमें कहला भेजा कि, कल प्रातःकाल गोवर्द्धन पर्वतकी पूजा होगी, जिस जिसके घरमें इन्द्रकी पूजाके लिये जो बनाई गई वह सब सबसामग्री लेकर प्रातःकालही गोवर्द्धनपर चलना होगा. अगले दिन सब ब्रजवासी प्रातःकालही उठ, यमुनापर जाय स्नान ध्यान कर सन्ध्या तर्पणसे निश्चिंत हो नन्दजीकी आज्ञानुसार सब अपनी अपनी पूजनकी सामग्री बडे बडे थालों परातोंमें धर धरकर ढोल दमामें बजाते शंखध्वनि करते सब अपने अपने मन्दिरोंसे निकल निकलकर यमुनाके तटपर इकट्ठे होतेगये और अच्छे अच्छे वेद-पाठी ब्राह्मणोंको बुलाय, गायोंको आगेकर, स्वस्तिवाचन कराय, नन्दरायजी भी सब पूजाकी सामग्री हाथोंमें फूलोंकी माला लिये बडी धूमधामसे भाँति भाँतिके बाजे बजाते गोविन्दगुण गाते गोवर्द्धन पर्वतके निकट पहुँचे. प्रथम ब्राह्मणोंका पूजन कराय, गायोंको हरीहरी दूब डलवाये पर्वतके चारोंओर सोहिनी दिवाय, ठौर ठौर पाटम्बर बिछवाय दिये प्रथम ब्राह्मणोंसे पूजन कराय वेदविधानसहित पंचामृतसे अन्हवाय भाँति भाँतिके वस्त्र आभूषण पहिराय, अगर, तगर, चन्दन, कपूर, केशर, कस्तूरी, जलमें मिलाय गिरि-राजपर छिडकवाय, फिर मालती, मदनबाण, गेंदा, गन्धराज, इत्यादि अनेक प्रकारके फूलोंके हार आभूषण बनाकर गिरिराजपर अर्पण किये ॥

दोहा-खुले फूल भर टोकरन, औरहु दिये चढाय।
शैलनाथके मध्य जनु, सुमनशैल दरशाय ॥

फिर धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, अक्षत, पान, सुपारी गिरिराजके आगे धर आरतीकर मिष्टान्नके ढेरके ढेर चढाने लगे, इतनी मिठाई चढी कि, सम्पूर्ण पर्वत ढकगया और दूध, दही, घृत इतना चढाया कि, नदियें बहनेलगीं और जहाँ तहाँ अनेक रंगके थानके थान तान दिये, उससमय गिरिराज ऐसे शोभायमान जान पडते थे मानो भगवान् विराट् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलनेको आये हैं. उस अद्भुत शोभाको देखकर ब्रजवासी प्रसन्न

हो होकर गिरिराजकी प्रदक्षिणा देनेलगे ॥ ३४ ॥ उस समय सुन्दर गोपोंकी स्त्रियें कोमलाङ्गी जिनसे पाँवों नहीं चला जाता था. वह गाडियोंमें रथोंमें विराजमान थीं और और बडे बडे चलानेवाले बैल उन रथ और गाडियोंमें जुत रहे थे और वह श्रीकृष्णचन्द्र के चारित्र गाती चली जाती थीं और जहाँ कहीं मार्गमें ब्राह्मण मिल जाते थे उनको दक्षिणा दे देकर आशीर्वाद लेतीं थीं और गिरिराजकी परिक्रमा देती थीं ॥ ३५ ॥ वहाँ ब्रजवासियोंके प्रतीति करानेकेलिये श्रीकृष्णने नया कौतुक एक और किया, अपना दूसरा रूप और प्रगट किया कि, मैंही हूं गोवर्द्धन पर्वत, अतिशय बृहत् शरीर, बडी लम्बी लम्बी भुजायें बडा चौडा लम्बा मुख, अखण्ड प्रकाश, महास्थूल जंघा और जानु शैलके शिखरकी समान शीश रत्नजटित मुकुट धरे आभूषण पहिरे, कण्ठमें बनमाला पीताम्बर धारण किये गिरिराजकी कन्दरामेंसे निकल कर बोले ॥

चौ०-भयो यज्ञ सब सफल तुम्हारा। देखो रूप प्रत्यक्ष हमारा ॥
असकहि अपना हाथ पसारा। लाओ भोजन विविध प्रकारा ॥

फिर तो सब गोप गोपी भोजनके थाल और परातें उठा उठा गिरिराजको पकडाते जाते थे और वह प्रसन्न हो हो खाते थे और प्रत्येक भोजनकी प्रशंसा भी करते थे, निदान जो कुछ पकवान मिठाई नंदादिक ब्रजवासी लेगये थे, उस सबको निवार प्रसाद मात्र छोड दी तब तो श्रीकृष्णचन्द्र सबसे पुकारकर कहनेलगे कि, हे पिता ! भ्रातृगण ! देखो गिरिराजने आज कैसा प्रत्यक्षरूपसे दर्शन दिया और तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया देखो आपने गिरिराजका कौतुक, कभी इन्द्रनेभी इस प्रकार प्रगट होकर दर्शन दिया था ? और अपने हाथसे इसप्रकार भोजन किया था ? ॥ ३६ ॥ यह गोवर्द्धननाथ अपने पूजने वालोंपर सदा दयादृष्टि रखते हैं और जो कोई बनवासी इनका तिरस्कार करनेवाले हैं उनको सिंह सर्पादिक रूपसे कालकौर करलेते हैं, इसलिये अपने और गायोंके मंगलार्थ इनको बारम्बार नमस्कार और दण्डवत करो ॥ ३७ ॥

दोहा-देख प्रत्यक्ष गुवाल सब, गोवर्द्धनको रूप।
धन्य धन्य लागे करन, कौतुक देख अनूप ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! नन्दादिक सब ब्रजवासी छोटे बडे एकबार जय जय शब्द उच्चारण कर उठे और शिर झुकाझुकाकर सबने दण्डवत् प्रणाम किया और परस्पर कहने लगे कि श्रीकृष्ण बालक नहीं हैं कोई अवतार हैं, हमने ऐसा प्रत्यक्ष रूप कहीं नहीं देखा और न आजतक कानोंसे सुना जो अपने हाथसे प्रसाद कोई देवता खाता हो, ललिता और विशखाने जाकर राधासे कहा सखी ! गोवर्द्धनने प्रगट होकर सब ब्रजवासियोंका भोजन किया, इस बातको देखकर सब नर नारी चकित होगये, परन्तु आली ! यह सब कौतुक उसी छलिया बनमालीके हैं वह तो सदाका बहुरूपिया है अपना दूसरा रूप गोवर्द्धनमें प्रगट करके ऐसी गढत लगाई कि, सब ब्रजवासियोंकी पकवान मिठाई

चाट बैठा और भोजन करके फिर अन्तर्धान होगया, सखी ! मैंने सब लक्षण मिला लिये यह सब कर्म उसी ठगियेके हैं ॥

चौ०-जैसो कान्ह श्याम तनु सोहै। तैसोही गिरिवर मनमोहै ॥
तैसेहि कुण्डल तैसिहि माला। तैसेहि चंचल नयन विशाला ॥
तैसोहि मुकुट पीत पट तैसो। नख शिख रूप श्यामको जैसो ॥
जैसो है मनमोहन प्यारो। सोइ लक्षण गिरिमाहिं निहारो ॥
आपहि करी श्याम चतुराई। खान हेत पकवान मिठाई ॥
यह लीला सब वही बनावै। आपहि जेंवत आप जिमावै ॥

राधा बोली आली ! हमारा मनमोहनप्यारा ऐसा गुणवान् और विद्यानिधान है ? विशाखा बोली कि, तू ऐसीही भोली है कुछ जानतीही नहीं राधा इस बातको सुन हँसकर चुप होगई कुछ न कहा, यहां नन्दरायजीने प्रथम तो होम किया, फिर गोवर्द्धनकी परिक्रमा दे, गौ ब्राह्मणोंको भोजन कराय, पीछे सब ब्रजवासियों सहित आपने भोजन किया, दीन और भिखारियोंको बहुतसा द्रव्य और भोजन दिया और एक रात्रि वहीं वासकर प्रातःकाल वहांसे चल दिये ॥

दोहा-सब लोगनको संग ले, ब्रजपति पूरणकाम।
मन्द मन्द आवत भये, अपने घर घनश्याम ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा-पच्चिसमें ब्रजपर चढो, इन्द्र खाय कर खार।
हरि ब्रजकी रक्षा करी, करपर गिरिवर धार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इन्द्रने ब्रजमें अपनी पूजाका लोप देखकर श्रीकृष्ण भगवान्ही जिनके नाथ हैं उन नंदादिक ब्रजवासियोंको अपना शत्रु समझ अत्यंत कोप किया कि, क्या कारण मेरी पूजा छोडकर गोवर्द्धनकी पूजा की * ॥ १ ॥ "उसी समय प्रलय करनेवालेंमें मुख्य सांवर्तक नाम गणको बुलाकर आज्ञा दी (मैंहीं इन्द्र हूं)

---

* **शंका**-इन्द्रकी विनयसे भगवान्ने पृथ्वीमें अवतार लिया था सो इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों की ?

उत्तर-भगवान्की प्रिया जो देवी थी उसका अनादर इन्द्र अपने अभिमान और अज्ञानसे नित्य किया करता था, उस अपने इन्द्रके किये अनादरको देवीने स्मरण करके और अपना पक्षपाती श्रीकृष्णको समझकर प्रथम इन्द्रका उपद्रव देवीने नहीं किया, उससमय तो सहन कर लिया फिर पीछे श्रीकृष्णका पक्षपात कर देवीने इन्द्रको मोहित कर लिया, मोहको प्राप्त होकर इन्द्र उन्मत्त हो भगवान्को भूलगया और ब्रजके ऊपर प्रलयके करनेवाले मेघोंको भेजकर मूसलधार जल वर्षाया यह कारण था ॥

ऐसे अभिमानी इन्द्रने महाक्रोध करके अत्यन्त कठोर वचन कहा ॥ २ ॥ अहो बडे आश्चर्यकी बात है, वनके रहनेवाले गँवार गायोंके चरानेवाले, जातिके ग्वालियोंको लक्ष्मी का कैसा मद हुआ है जिन्होंने मनुष्य कृष्णका आश्रय लेकर (मैं सुराधीश इन्द्र हूँ) मेरा अपराध किया और कुछ आगा पीछा न विचारा, सत्य है मूर्ख कहीं ज्ञान सिखानेसे ज्ञानी हो सक्ता है ? ॥ ३ ॥ जो दृढनाम करके नौकाकी सदृश यह कर्ममय यज्ञ है, इससे आत्माका कल्याण होताहै, उस आत्मविद्याको छोडकर हठका करनीपर बैठ इस संसार-समुद्रके पार होना सहजमेंही चाहता है ॥ ४ ॥ वह वाचाल, मूर्ख, अज्ञानी किसीकी बातको नहीं मानता और अपने आपको बडा पण्डित और ज्ञानी जानता है, और ऊंच नीचको कुछ नहीं पहिचानता, ऐसे छोटी अवस्थावाले मूर्खमनुष्य श्रीकृष्णका आश्रय ले उन गँवार ग्वालिनियोंने सब संसारमें मेरी अवज्ञा की ॥ ५ ॥ लक्ष्मीके मदके मतवाले गोप कृष्णके सिखाने बुझानेसे हमैं इन गँवारोंने कुछ न समझा और हमारा तिरस्कार करके यज्ञभाग पर्वतको दिया, उस नाचनेवाले कृष्णका भरोसा करके अपने प्राणोंकी कुशल चाहैं तो कब हो सक्ती है और मैं जानता हूँ कि, उनके धन बहुत बढ गया है. उसीका उनको अभिमान भी बहुत है" ॥

चौ०-सो मैं आजहि करहुँ विनाशा। देखत हौं अब कृष्ण तमाशा ॥
राख चार गैया घर माहीं। आप सरिस मानत कोउ नाहीं ॥

हाय ! इस समय मुझको बड़ा क्रोध है, क्योंकि यह कृष्ण बलदेव नई तौंतीके कोई नया काम कर उठाते तो मुझको कुछ पश्चात्ताप नहीं था परन्तु वह नन्द वृद्ध होकर शठ होगया कि, जिसने बालकोंकी बातको मानकर मेरा अपमान किया, फिर मुझको क्यों न पश्चात्ताप हो ॥

दोहा-जलधर धावहु अबहि तुम, वर्षि घोर जलधार।
बोरहु ब्रज गिरिवर सहित, करहु धेनु संहार ॥ ६ ॥

और ठौर वर्षनेका कुछ काम नहीं केवल चौरासीकोस ब्रजपरही ऐसी वर्षा करो कि गोवर्द्धन पहाड़का खोजमात्र भी न रहै अरु गाय बछडोंका तो ऐसा विनाश करना कि, उनका कोई नाम लेवा और पानी देवा भी न रहै, लाख वह हाय हाय करैं परन्तु तुम कुछ दया चित्तमें मत लाना, क्योंकि जैसा उन्होंने किया है उस अपनी करणीका फल तो भोगैं, तुम किसीप्रकारका संदेह मत करना मैंभी तुम्हारे पीछे पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़ देवताओंकी सेना समेत और सब प्रलय करनेवाले मेघोंको और उनचास ४९ मरुद्गण पवनोंको भी साथ लाऊँगा ब्रज तो क्या ? वहांकी भूमितक बहादूंगा फिर देखूं जगतमें किसकी सामर्थ्य है जो ब्रजवासियोंकी रक्षा करै ॥

दोहा-कृष्ण बचावन हेत जो, ऐहैं विधि हर आज।
तो उनहूँको जीतके, मारहुं सहित समाज ॥ ७ ॥

मेघ बोले कि, महाराज ! आप इतना परिश्रम क्यों करते हो ? हमारे आगे ब्रज क्या

वस्तु है तुमको थोड़ीसी बातके लिये क्रोध करना नहीं चाहिये; महाराज ! क्या आप नहीं जानते ? हमारेही पानीसे प्रलय होजाती है केवल एक अक्षयवटही रहजाता है, आप क्षमा कीजिये उनके खोज खोनेको तो हमहीं बहुतेरे हैं, यह सुन इन्द्रको कुछ कुछ धैर्य हुआ और मान बड़ाईकर पानका बीड़ा दे बिदाकिया और सब मेघोंका बन्धन खोलकर उनके संग करदिया फिर उनूचास पवनोंको बुलाकर आज्ञा दी कि, तुम भी मेघोंके साथ जाओ और मातलिको बुलाकर कहा कि, मेरा ऐरावत हाथी सजाकर लाओ, आज्ञा होतेही मातलिने हाथीको लाकर सन्मुख खडाकर दिया, सुरराजने वज्रका धनुष हाथमें ले लाल लाल नेत्रकर कोपकी दृष्टिसे चारोंओरको देखा, तो दिग्गज काँपने लगे, भूमि डोलने लगी इस प्रकार देवताओंकी तेतीस कोटि ३३००००००० चतुरंगिनी सेनाको संग ले साम्वर्त्तादिक जो प्रलय करनेवाले मेघ थे उनको भी संग लिया ॥

दोहा-साजिसेन यह भाँति सब, मेघन पवन समेत।
चलो शक्र अति वक्र ह्वै, ब्रज नाशनके हेत॥

उस समय इन्द्रका शरीर कम्पायमान होरहा था, नेत्रोंसे अग्निकी लपटैं निकलती थीं होठोंको वारम्वार दाँतोंसे काटता था ॥

छंद-

संख्यानारी-चले मेघ आगे। महाकोप पागे॥ भयो अन्धकारा। नभैमेंअपारा॥
हले सिन्धु सातो। भरेते अघातो॥ करैं शोर भारी। जगै भीतिकारी॥
भरे घोर ओरा। गिरे हैं करोरा॥ महावेग धाये। द्रुतै व्योम छाये॥
व्रजै खण्ड खण्डा। करैं को प्रचण्डा॥ भरे अतिघमण्डा। बली हैं अखण्डा॥
दशोहू दिशानै। तमो भो महानै॥ भई यामिनीसी। दिपै दामिनीसी॥
भई भीतिभारी। कँपै भूमि सारी॥ कहै देव राजा। करो शीघ्र काजा॥
ब्रजै बोरि दीजै। विलम्बै न कीजै॥ हनों गोप ग्रामा। मिलैगा इनामा॥
बचै एक नाहीं। कहू जो पराहीं॥ करै कृष्ण रक्षा। बली जो प्रत्यक्षा॥

दोहा-यहि विधि भाषत घननसों, ब्रज चौरासी कोश।
घेर लियो सुरपति कुमति, कर मनमें अति रोष॥ ८॥

चारों ओरसे घटा घिर आई, बिजली चमकने लगीं, बादलोंके गर्जनेका गम्भीर शब्द होनेलगा, तीव्र मरुद्गणोंने मेघोंको चलायमानकर ओलोंकी झडी लगादी और मूशलधार वर्षा होने लगी ॥

छंद-अति ही भयानक घटाकारी कज्जलहु पटतर नहीं।
घेर लीन्हों ब्रज चहूँ दिशि पवन प्रबल झकोरहीं॥
गर्जत गगन घनघोर तड़पत तडित बारहि बारहीं।
होत शब्द अघात ब्रज नर नारि चकित निहारहीं॥

गये बन जे गाय ले ते धाय ब्रज फिर आवहीं।
अन्ध धुन्ध अपार खोजत धाम पन्थ न पावहीं॥
सतत जहँ तहँ वस्तु सब नर नारि मन शोचत महा॥
वैर सुरपतिसों कियो अब होन धौं चाहत कहा॥
दोहा-उमड घुमड घहरात घन, परन लगे जल जोर।
टेरत सुतको मातु पितु, ब्रज गलियन चहुँ ओर॥
छन्द नाराच-जहाँ जलधजोरसों कियो कठोर शोरहै।
प्रलय समान भोर ह्वै गयो सुचार ओर है॥
क्षणै क्षणै प्रकाशको करै दमंक दामिनी।
मनो महा भयंकरी कराल कालयामिनी॥
प्रचण्ड वेग कै तहाँ पवन्न उन्नचासहू।
चलै दिशान चारते तजे निजै निवासहू॥
ब्रजै धरा सुछैगई महान धूरि धार है।
न देख नैंकहू परै निजै भुजा पसारहै॥ ९॥

वर्षाकी धारा हाथीके शुण्डकी समान मोटी बादलोंमेंसे अखण्ड गिरती थी, जिससे समस्त ब्रजमण्डल जलमें डूबगया और चारों ओरसे बादलोंके समूहके समूह उमडते चले आते थे, ऊँचे नीचे गाढ़ गढ़ोले और पृथ्वी कहीं नहीं दिखाई देती थी॥

छन्द नाराच-तजन लगे अकाश ते जलध्र वारिधार हैं।
अतीव आतुरैं वितुण्ड शुण्डके अकार हैं॥
गिरन्लगे करोर घोर और चार ओर ते।
महान् शैलके समान ते अतीव जोरते॥
अघात सोरते ब्रजै अनेक वज्र पात भे।
झकोर पौन तेज तक्ष तक्ष व्रात घातभे॥
न दीखती दिशा निशा न दिवसहू गुनो परै।
न नैकहू नगीच कान बैनहू सुनो परै॥
गँभीर ह्वै नवीन नीरधार धावती धरा।
परै अवर्तहू उठै तरंग शोरभर्भरा॥
परै न ऊंच नीच ठौर जान गोकुलै मही।
कालिन्दिजा करारको विहाय ऊपरै बही॥
बनै न जान आवनो कहूँ ब्रजै पगै भरै।
खड़े न होतहू बनै कछू निहार ना परै॥
कुरंग औ विहंग चीतकार जो करै लगं।
कहूँ भ्रमैं कहूँ थिरैं कहूँ चलैं कहूँ भगैं॥

अनेक जीव गाजकी गराज सों अप्रानभे ।
अनेक तासु ज्वाल लागि भस्मके समानभे ॥
अनेक तासु ज्योतिको विलोकि अन्ध ह्वै गये ।
अनेक जात नीर धार मध्य बूड़ते भये ॥
पराय वच्छ वाछि धेनु बैल गोष्ठ में गिरे ।
तहाँ शिला प्रहारते न बैठनो बनै थिरे ॥
गुवाल औ गुवालिनी करैं हहा पुकार है ।
न देहकी न गेह की तिन्है कछू सुमार है ॥

दोहा-यदपि घुसे घरमें सबै, तद्यपि पौन झकोर ।
रहत बनत नहिं नेकहू, लागत और करोर ॥ १० ॥

बडे वेगकी वर्षासे और महाप्रचण्ड पवनसे पशु सब थर थर काँपने लगे और गोप गोपी जाडेकी मारी अत्यन्त दुःखी हो, हाय हाय ! करती थर थर काँपती श्रीगोविन्द कृष्णकी शरणमें जाय ॥

छन्दतोमर-बिलखात गोपी ग्वाल । सब कहहिं आयो काल ॥
अब बचन दीखत नाहिं।हम भागि केहि थलजाहिं॥
नहिं नीक कीन्हो नन्द । कियो शक्रको मख बन्द॥
निजसुत कह्यो उर आन।दुख दियो गिरिमखठान॥
अब होत ब्रजको नाश । सब तजो जीवन आश ॥
अस कहत रोवत गोप। कियो कठिन वासव कोप॥
कोउ सुतनको उरलाय । गोपी रही शिरनाय ॥
कोउ कहैं नारिन पासु । भजि आवरी इत आशु ॥
लग ओल घात कराल । गिरती विशाल दिवाल ॥
छप्पर उडत लग पौन । टूटत शकट घृत भौन ॥
फट फट फटत घट बृन्द। तड तड टुटत तरु कंद ॥
कबहूं न भोजिन सोग। ते अति दुखी ब्रज लोग॥
भाषहिं परस्पर बात । जेहि हित भयो उतपात ॥
सो नन्दसुवन नजीक। अब चलब सबको नीक ॥
करि हैं अवशि सो रक्ष। समरत्थ कान्ह प्रत्यक्ष ॥
बचि हैं न और हि ठौर। गे जहाँ नन्द किशोर ॥

दोहा-अस कह गोपी ग्वाल सब, हाहा करत पुकार ॥
इक एकनको पकर कर, गे जहँ नन्दकुमार ॥ ११ ॥

मूसलधार जो जल वर्षा तो उससे पीडित होकर गायें अपना शिर नीचे किये, बछडोंको नीचे लिये, थर थर काँपती थीं और गोपियें गिरती पडती भगवान् श्रीकृष्ण-

चन्द्रके निकट जाकर बोलीं ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे सामर्थ्यवान् ! हे भक्तहितकारी ! हे गोकुलनाथ ! इस महाक्रोधी इन्द्रसे अपनी गोकुलकी और हमारी रक्षा करो. यह कह चरणोंमें गिर पडीं. फिर गोप गोपियें हरिके चरणोंमें गिरकर कहने लगीं, हे गोपाल ! हे नन्दलाल ! हे गोविन्द ! हमने आपहीके कहनेसे इन्द्रकी पूजा छोडदी और गोवर्धन पूजा, इसीसे इन्द्र अत्यन्त कोपकर ब्रजका लोप करना चाहता है, अब आप खडे खडे क्या देखते हो, क्या जब हमारा प्राणान्त होजायगा तब रक्षा करोगे ?

चौ०-राखि लेहु अब हे ब्रजनायक। तुमहीं यह दुख मेटन लायक॥
दावानल सों राखो जैसे। अब जलसों राखौ हरि तैसे ॥
बकी विनाशन शकट सँहारन। तृणावर्त्त वत्सासुर मारन ॥
अघमर्दन बक वदन विदारन। तुमहीं ब्रजजनके दुख टारन॥
कीजै अभय वेगि नँदलाला। वर्षत मेघ महा विकराला ॥
राखि लेहु बूडत ब्रज खेरो। महा कठिन यह कष्ट निबेरो ॥

एक गोपी बोली कि, महाराज ! अब अपने गिरिराजको क्यों नहीं बुलाते क्या पकवान मिठाई ही खानेके लिये थे ?

चौ०-जोपै बडे देव गिरिराजू। तौ किन आय बचावत आजू ॥
घन गर्जत तर्जत अतिभारी। देख डरत सब ब्रज नर नारी ॥
मूसलधार परत जलभारी। कीजै रक्षा शीघ्र हमारी ॥

एक गोपी बोली ! आली तू क्यों बकबक कर रही है, इसकी बातका क्या विश्वास ! यह तो जन्मका छली है, यह किसका मित्र ? इसने राधाहीको सैकडों धोखे दिये,जो इन की परमप्यारी थी, फिर और किसका होगा ? और एक ग्वालिनी बोली कि, सखी ! तू राधा ही राधा करती फिरे है, मुझे इस कपटीके सात जन्मका भेद विदित है, पहिले तो इसने मीनरूप धरकर शंखासुरको मारा, दूसरे कच्छप तनु धरकर मधुकैटभको संहारा, तीसरीवार वाराहरूप बन हिरण्याक्षको पछाडा, चौथेमें नृसिंहरूप धारणकर हिरण्यकशिपुका पेट फाडा पाँचवें वामन बन विना अपराध राजाबलिको छला, छठेमें परशुराम नाम धर सम्पूर्ण क्षितिके क्षत्रियोंको दला, सातवें रामचन्द्र अवतार ले वालिको मार रावणका वध किया, अब आठवींवार इस अवतारीने नन्दजीके घर अवतार लिया है, गोकुलका संहार करेगा, एक और गोपी बोली, बहन ! एक बातको तू भी भूल गई,नन्द यशोदाका पूत नहीं है यह तो वसुदेव देवकीके घर जन्मा था, जब जन्मभर वह कंसके यहाँ कारागारमें पडेरहे,तब हारकर नन्द यशोदाके घर पहुँचाया, जब इसने अपने माता पिताहींकी विपत न टाली तो फिर किसका मित ? एक बोली, सखी ! यह तो सुखका साथी था, इसको किसीकी दुःख पीडासे क्या प्रयोजन ?

राग बिहाग-विपतिमें कोउ न बूझत बात॥ सब अपने अपने स्वारथके तात मात अरु भ्रात॥ विपति परेपर शत्रु मित्र अरु, प्यारे जाने जात॥ जस कीन्हों भोगो फल तैसो, अब काहे पछितात॥ इक दिन वह हो यह हमरे घर, माँग माँग दधिखात॥ आज हमारी ओर न देखत, हम ठाढी डकरात॥ जान बूझ जो करै शत्रुता, तासों कहा बसात॥ शालिग्राम इससमय हमको, अपनो कोउ न दिखात॥

आली! हमारे भाग्यमें विधाताने ऐसाही लिखा था, एक और बोली सखी! यह सब गोवर्द्धनके पूजनेका फल है॥

चौ०-दीन्हो गिरिवर यह फल भारी। लेहु सखी सब गोद पसारी॥
होत कहा है अब पछिताये। विधिके अंक न मिटत मिटाये॥

एक बोली, आली! ऐसे बातों बातोंमें तो गोकुलका नाश हो जायगा और हमारे प्राण भी चले, दूसरी बोली फिर और क्या? तीसरी बोली फिर क्या होता? इसी छलियाने यह नया कर्त्तव्य कराया था सो उसका फल हाथका हाथ मिलगया, अब चलो यशोदासे चलकर कहैं, एक बोली, चलना है तो चलो, फिर कब चलोगी? यहाँ तो ओलोंके मारे प्राण निकले जावैं हैं, चलना है तो शीघ्र चलो सब गोपियोंने यशोदासे कहा, महारानी! यह सब तुम्हारे ही पूतके कर्त्तव्य हैं सदासे सुरपति हमारे कुलमें पूजता चला आवै था, आज इस तेरे कुवँरने सबको सिखा बहँकाकर गोवर्द्धन पुजवाया॥

चो०-चढ़ो कोपि गिरि ऊपर सोई। अब सहाय गिरि काहि न होई॥

कहो अब किसके पास जायँ? उसको बताओ? यशोदाने कहा जो तुम्हारी गति है सोई मेरी गति है, परमेश्वरका स्मरण करो, जिसने गजको ग्राहसे छुटाया, प्रह्लादको अग्निसे बचाया, वही तुम्हारी भी सहाय करेगा सिवाय धैर्यके और इस समय कोई उपाय नहीं। यशोदाका यह वचन सुनकर गोपी फिर पुकारने लगीं, हे जगदीश्वर! हे भक्तवत्सल! हे दीनानाथ! इस वर्षासे हमैं बचाओ॥ १३॥ जब बड़ी बडी शिलायें ओलोंकी आकाशसे गिरनेलगीं, उनसे बेसुधि और व्याकुल गोकुलवासियोंको देखा, तब सबके दुःख दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने जाना कि, यह सब कौतुक उसी महाक्रोधी इन्द्रके हैं॥ १४॥ विना वर्षाऋतुके जो यह महाभयानक शिलाओंकी वर्षा हो रहीहै और महाप्रलयकेसा प्रचण्ड पवन चल रहाहै, केवल इसका यही कारण है कि, मैंने जो इसके यज्ञको भंग करदिया और इसकी पूजा ब्रजसे उठा दी, इससे इन्द्र हमारे विनाशके लिये मूसलधार पानी वर्षा रहाहै॥ १५॥ इसकारण अब मैं अपनी सामर्थ्यसे इस महाघोर वर्षाका उपाय करूंगा और उन अज्ञानी लोकपाल और अभिमानी इन्द्रादिक देवताओंको जो लक्ष्मीका मद होगया है उस मदको हरूंगा॥ १६॥ मेरी भक्ति अथवा सत्त्वगुण जिन देवताओंके हृदयमें व्यापरहाहै और मैंहीं उनका ईश्वरहूं

इसलिये उन देवताओंको अपने पराक्रम और बलका गर्व किसी प्रकार होना नहीं चाहिये क्योंकि अभिमानमें भक्ति और प्रेम कहाँ? इसलिये जबतक उन अभिमानियोंका मान खण्डन न होगा तबतक वह मेरा मान न करेंगे और मेरा मान किये बिना उनका कल्याण कहाँ? ॥ १७ ॥ इससे वह उपाय करूं जो वह मेरी शरण आवें क्योंकि मेरा नाम गोकुलनाथ है जब मैंही गोकुलका नाथ होकर गोकुलकी रक्षा न करूंगा तो और कौन रक्षा करने आवेगा? क्योंकि सब गोकुलवासी मुझहीको अपना प्राण आधार समझते हैं मुझहीको अपना तन,मन,धन जानते हैं. यह सब मेरेही दर्शनकी अभिलाषा करते रहते हैं मेरे समान और किसी दूसरेको नहीं मानते, हाय! जो मैंने इनहींकी रक्षा न करीतो पृथ्वीको उत्पन्न करके मैंने क्या किया? औरोंकी तो क्या सामर्थ्य है? मेरे दासोंको ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं सतासक्ते और यह क्षुद्र इन्द्र तो क्या वस्तु है जो मेरे जीवनमूल ब्रजवासियोंको आँख उठाकर देखसके, अब यह मेरी शरण हैं तो मैं अपने योगबलसे इनकी रक्षा करूंगा, यह मैंने अपने मनसे संकल्प कर रक्खा है कि जो कुछ हो, परन्तु अपने शरणागतकी रक्षा मैं अवश्य करूंगा यह मेरा सदासे नियम है, यह कह गोप और गोपियोंसे सब अपने बाल बच्चे और गायोंको लेकर मेरे संग चलो, हे राजन् यह कह ॥

दोहा–सबको अपने संगले, जितने गोपी ग्वाल।
गये गोवर्द्धन निकट, गिरि धारण गोपाल ॥ १८ ॥

कवित्त–महा मदमत्त मघवाके भेजे महामेघ, महादुःख देन हेत महा जल डारो है। गौवनको गोपनको गोपिनको ताही समै, दूजो नहिं त्राता तीनों लोकमें निहारो है॥ ब्रजराज एक हाथही सों अति आतुरीसों, क्षितिधर क्षणमें छत्राक सो उखारो है। इन्द्र गर्व गारिबेको गोकुल उधारिबेको अति भारी गोवर्द्धन कृष्णकर धारो है ॥

यह कह नटवर रूपधर लीलामात्र एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड बायें करकी कन अँगुलीपर धर, ऊपरको उठा ब्रजमण्डलपर छत्रीकी समान तान दिया, जैसे कोई बालक छत्राकको उखाडकर ऊपरको उठा लेता है (यह वह छत्राक है जिसको बालक साँपकी छत्री कहते हैं) ॥ १९ ॥ जब भगवान्‌ने पर्वतको उठा लिया तब पीछे गोपोंसे कहा कि, हे भय्या! हे पिता! हे ब्रजवासियो! अपनी २ गाय बछड़े बाल बच्चों समेत सुखसे इस पर्वतके नीचे आजाओ ॥ २० ॥ हे ब्रजवासियो! अपने मनमें यह मत समझना कि, कृष्णके हाथसे गिरि गिरजायगा, यह सब बाबा नन्दका प्रभाव है, इसमें मेरा कुछ पराक्रम नहीं है, यहाँ पवन पानीका कुछ खटका नहीं, अपने मनमें पूर्ण विश्वास करके गिरिकी छायामें चल आओ, मैंने तुम लोगोंकी रक्षा करनेके लिये गोवर्द्धनको हाथपर उठा लिया है; जबलों बहुत वर्षा होय तबलों इसके नीचे सुखसे बास करो ॥ २१ ॥ जिन लोगोंको श्रीकृष्णके बलवीर्यका पूरा भरोसा था उन्होंने गाय बछड़े

गाड़ी पुरोहितादिक जिसका पाया उसको नन्द उपनन्द अपने संग ले आनन्दपूर्वक पर्वतके नीचे गढ़ेलेमें घुसगये; उससमय सब श्रीकृष्णके मुखकी ओरको निहार रहे थे, न किसीको भूख थी न प्यास थी ॥

दोहा-लाखन गौवें बाछरे, अरु ग्वालिहू अनंत ।
गोवर्द्धन तरमें रहे, नहिं संकेत सहंत ॥

हे राजन्! जब पानी पहाड़के नीचेको आनेलगा तब वृन्दावनविहारीने चक्रसुदर्शनको आज्ञा दी कि, तुम गोवर्द्धनके ऊपर चारोंओर घूमते रहो फिर तो चक्रसुदर्शन पर्वतपर घूमा तो पानीकी जो जो बूंद गिरती उसी समय भस्म हो जाती, जैसे गरम तवेपर बूँद गिरतेही भस्म होजाती है. एक बूंद भी ब्रजमें न गई और गिरिवरके नीचे श्रीकृष्णचन्द्रके मुखचन्द्रका ऐसा प्रकाश होरहाथा, जैसे शरद पूर्णमासीके चन्द्रमाका प्रकाश होता है, उससमय श्यामसुन्दरके ऐश्वर्यको देख ब्रजवासी लोग परस्पर कहने लगे कि, हम जानते हैं कि, श्रीकृष्ण साक्षात् विष्णुके अवतार हैं, नहीं तो मनुष्यकी क्या सामर्थ्य थी जो पर्वतको कमलके फूलकी नाईं बायें हाथकी कनअंगुलीपर उठालेता, देखो हमारे मनमोहनप्यारेको पर्वतका कुछ भी भार नहीं जान पड़ता, आनन्दसहित अपनी मधुरस्वरसे मुरली बजा रहेहैं ! हे राजन् ! मुरलीमनोहरकी मुरलीकी ध्वनि सुन ब्रजवासी सब दुःख और पीड़ाको भूलगये और अतिप्रसन्न हो वृन्दावनविहारीके गुण गाने लगे, परन्तु यशोदाका चित्त उस समय अत्यन्त व्याकुल था और कृष्णकी ओरको निहार निहार अपने प्राण आधार नन्दजीसे यह कहती थी, हे स्वामिन् ! देखो तो, कहाँ तो मेरा फुलवासा सात वर्षका कोमल कुमार और कहाँ करोडों मन गोवर्द्धन पर्वतका भार; सब खडे खडे तमाशा देख रहेहैं, इतना भी नहीं जो कोई नेक सहारा लगा दे, बडे आश्चर्यकी बात है ! परमेश्वर ऐसा न करै और जो कदाचित् यह गिरि मेरे पूतके ऊपर गिरजाय तो मैं किसके पूतको पूत कहूंगी, देखो चार दिन होगये इसीप्रकार पहाड इसके हाथपर धरा है यह अवश्य हारगया होगा ! क्योंकि अन्नका एक दानातक इसके मुखमें नहीं गया ॥

चौ०-ऐसहि खडे भये दिनचारी । धरे हाथपर गिरिवर भारी ॥
हरिको कर पिरात अति होई। इक इक दिन धारो सब कोई ॥
को अस योधा धीर धरैया । धारै गिरि जो धरे कन्हैया ॥
दाबत भुजा यशोदा मैय्या । बारबार मुख लेत बलैया ॥
दुखती ह्वैहैं भुजा तुम्हारी । धर राख्यो है गिरिवर भारी ॥
हे गिरिराज भक्त सुखदायक । तुमहीं हो पूजनके लायक ॥
इतनो दान नाथ मोहिं दीजै । इस बालककी रक्षा कीजै ॥
धर पकवान मिठाई मेवा । बहुरि पूजिहों तुमको देवा ॥

फिर बलभद्रकी ओरको देखकर कहने लगीं कि, यह तुम्हारा छोटा भैय्या कन्हैया

बात बातमें तुम्हारा सहायक होता था अव तुमको भी उचित है कि, इससमय इसकी कुछ सहायता करो, फिर थोडी देर पीछे नंदरानी शिव और भवानीको मनाने लगीं कि, तुमहीं मेरे पुत्रकी सहायता करो, क्योंकि लेदेके मुझ गरीबिनीके यही एक इकलौता बालक है, इसको किसीप्रकारका कष्ट न हो यह वरदान दो, जब बलरामने माताको अत्यन्त दुःखी देखा तो श्रीदामादिक ग्वालोंसे कहा कि, भाई तुम श्रीकृष्णके प्रभावको तो जानते ही हो कि, एक गिरि क्या कोटी गिरिका भार भी भगवान्‌के भाये नहीं, परन्तु माताका चित्त सावधान करनेके लिये ॥

चौ०-लेले मुकुट राखि गिरि लेहू। मेटहु माता कर सन्देहू ॥
कोऊ लकुट कोउ हाथ लगायो। काहू शीश लगाय उठायो ॥
जब हलधर अस मता उपायो। तब यशुमति उर धीरज आयो॥

उस समय गोपी हँस कर बोलीं, हे मदनमोहनप्यारे! तुमने बहुतसा दही और माखन चुरा चुरा कर खाया था उसीके बलके प्रभावसे यह गोवर्द्धन उठाया है, सो हे महाराज! आज बरसोंमें जाकर उस दूध माखनका बदला हमको आपने दियाहै, एक गोपीने गिरिवर हाथपर धरे जो श्रीकृष्णको देखा तो उसकी मनोहर छवि सखियोंसे वर्णन करने लगी ॥

कवित्त-तारनपै कंज कंजहूपै रंभ खंभ राजै, रंभ खंभहू पै सिंह तापै एक वापी है। वापी पै भुजंग हैं भुजंग पै कपाट त्यों, कपाट पै कपोत तापै बिंदु द्युति थापी है ॥ तापै शुक तापै मीन तापै अहिबाल कारे, तापै अर्द्धचन्द्र तपै सूरज प्रतापी है। मध्यते उठो मृणाल तापै छत्र छाया किये, रघुराज ऐसी छवि मेरे दृग व्यापी है ॥

एक और सखी बोली, कि, आली! और एक नया कौतुक देखो, मुझे कहते भी लज्जा लगै है ॥

कवित्त-सनमुख साँवरेके आय ब्रजवाल कोऊ, ताको तिरछोहें चख चंचल चलायके। ताही समैं कान्हकर काँपतही काँपो गिरि, ब्रज जन जाने गिरि गिरते बनायके ॥ रघुराज राम तहाँ ऐसी दशा देखतही, बन्धुको बिलोको नेक मन्द मुसकायकै।अवलोक अग्रजको आनन नवाय नैन शैलको सँभारो फेर लालन लजायकै ॥ २२ ॥

दोहा-गिरिवरको गिरि कर धरे, बीत गये दिन सात।
ब्रजवासी आनँद सबै, लगी न वर्षा वात ॥

उस दिन ब्रजवासी भूँख प्यास तज चकोरकी नाईं श्रीकृष्णचन्द्रके चन्द्रमुखकोही देखते रहे और श्यामसुन्दर भी सातोंदिन तक पर्वतको धारण किये एकही ठौर जहांके तहाँ खडे रहे, एक तिलभरभी चरणको नहीं सरकाया ॥ २३ ॥ और मेघ उसीप्रकार मूसलधार जल बरसातारहा ओले पडते रहे चपला चमकती रही ॥

दोहा-बार बार चपला चमक, चख चौंधत चहुँ ओर।
अरर अरर आकाश ते, जल वर्षत घन घोर ॥

और उधर चक्रसुदर्शन इस धूमधामसे पर्वतके ऊपर घूम रहा था और अपने तेजसे जलको ऐसे भस्म कर रहा था, जैसे गर्म तवा पानीको जलाता चला जाता है, एक बूँद ब्रजमें न पहुँची, जब सब प्रलयका पानी समाप्त होगया और मेघ वर्ष वर्ष कर हारगये, परंतु ब्रजमें एक बूंद भी न गई, यह बात सुन इन्द्र चकित होगया और कृष्णके योगबलका प्रभाव देख अपने मनमें बडा आश्चर्य मानने लगा और अपनी प्रतिज्ञाकी अवज्ञा देख अत्यन्त व्याकुल हुवा और सब अज्ञान अभिमान धूलमें मिलगया, मेघोंको बर्जने लगा कि अब यहां तुम्हार बल नहीं चलैगा ॥२४॥ जब आकाशमें बादल छिन्न भिन्न होगये सूर्यनारायण उदय हुए भयानकवर्षा और पवन चलनेसे बन्द होगई, तब गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्ण मुरारीने गोपोंसे कहा कि.॥२५॥ हे गोपो ! स्त्री, बालक, गाय, बछडोंको लेकर तुम इस पर्वतके नीचेसे बाहर निकलो डरो मत, अब पवन वर्षा थमगई, नदियोंका जल भी उतर गया ॥ २६ ॥ तब बांकेविहारीकी मधुरवाणी सुन सब गोप अपने अपने बाल बच्चे और गायोंके समूहोंको लेलेकर और गाडियोंमें सब वस्तु धर धरकर स्त्री बालक वृद्ध सब सहज सहजमें निकले ॥ २७ ॥ सर्व सामर्थवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सब ब्रजवासियोंके सन्मुख पर्वतको जहांका तहां रखदिया ॥ २८ ॥ प्रेममें प्रफुल्लित हो सब ब्रजवासी परस्पर आनकर यथ योग्य मिलने लगे और स्नेहभरी गोपियें आनन्दपूर्वक दही, अक्षत, जलसे पूजनकर मांगलिक अशीषें देने लगीं ॥

चौ०-परो लाल तुमको श्रम भारी। ह्वैहैं भुजा पिरात तुम्हारी ॥
अस कह हरि भुज दाबन लागीं। बोलहिं वचन प्रेमरस पागीं॥२९॥

यशोदा. रोहिणी, नन्दराय और बलियोंमें बलवान् श्रीबलदेवजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर, स्नेहमें मग्नहोकर वारम्वार आशीर्वाद देते थे ॥ ३० ॥ इतना कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! अन्तरिक्षमें देवताओंके समूह, साध्यगण, सिद्ध, गंधर्व, चारण, सन्तुष्ट हो हो, स्तुति पढ़ पढ़ फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! स्वर्गमें देवता शंख और दुन्दुभी बजानेलगे, तुम्बरू आदि गन्धर्वपति श्रीमुकुन्दभगवान्‌के गुणानुवाद गानेलगे ॥ ३२ ॥ नन्दजीने यशोदासे कहा कि, जो आज गिरिराज हमारी सहायता न करते तो इस समय न जानिये हमारी क्या दुर्दशा होती अब सबको उचित है कि, उसी प्रकार फिर गिरिराजका पूजन करो ॥

दोहा-अब गिरिको पूजो बहुरि, सबको कह्यो सुनाय।
बूड़तते राखो ब्रजहि, कीन्हीं बहुत सहाय ॥
सोरठा-यह सुन हर्ष बढ़ाय, गिरिवरको पूजो सबन।
अति हर्षित नँदराय, दियो दान विप्रन बहुत ॥

फिर नंद उपनंद बलराम सहित मनमोहनप्यारे मित्रोंको संग ले ब्रजमें आये और

गोपी परमानंद देनेवाली वनमाली श्रीकृष्णकी मनोहर मनोहर लीला गाती चली आती थीं, इसप्रकार आनंद सहित सब अपने अपने घर आये ॥

दोहा-घर घर व्रज आनँद भयो, गावत मंगलचार।
आये सुरपति जीतकै, गिरिधर नन्दकुमार ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा-छब्बिसमें हरिके चरित, विस्मय युक्त निहार।
नन्द गर्गके वचन कह, बरणों यश विस्तार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परिक्षित्! गोपोंने गोवर्द्धन उठाना और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अनेक कर्म और प्रभाव देख बड़ा आश्चर्य मान नंदरायजीके पास आनकर कहा ॥१॥ कि, इस बालकके बड़े अद्भुत चरित्र हैं इ हें देखकर हमको संदेह होता है कि, अपने स्वरूपके और इस ग्रामके रहनेवाले पुरुषोंमें इनका जन्म होना कैसे संभव है? ॥ ॥ २ ॥ क्योंकि जा सात वर्षके बालकने एक हाथसे लीलापूर्वक जिसप्रकार हाथी कमलको उठा लेता है, उसीप्रकार पर्वतको उठा लिया ॥ ३ ॥ और नेत्र मूंदे हुए अति छोटी अवस्थामें इस बालकने बडे वेगवाली पूतनाके स्तनोंको प्राण सहित पान किया था जैसे कालीदह जीवन अथवा आयुर्बलको पीते हैं ॥ ४ ॥ देखो! तीन महीनेके गाड़ियोंके नीचे पालनेमें सोतेहुए रोते रोते जो इस बालकने ऊपरको पाँव उछाले, तो चरणकी ठोकर लगकर गाड़ी उलटकर कैसी गिरी थी? ॥ ५ ॥ और देखो! जब एकही वर्षका कृष्ण आँगनमें बैठा खेल रहा था, तब आकाशमें दैत्य तृणावर्त्त इसे हरकर लेगया, उस दैत्यका गला घोटकर इसने कैसा मारा ॥ ६ ॥ और देखो! कभी जब कृष्णने माखन चुराया था, तब यशोदाजीने इसे ऊखलसे बाँध दिया इसके उपरान्त इसने वृक्षके बीचमें आय, हाथोंसे उनको कैसा उखाड़ डाला? ॥ ७ ॥ और देखो जब बनमें बलदेवजीसाहित बछड़े चराते थे उस समय बकासुर इनके मारनेको आया, उसको दोनों हाथोंसे चोंच पकड कैसे चीरडाला? ॥ ८ ॥ देखो बछडोंमें बछडेका रूप धरकर मारनेकी इच्छासे आये हुए वत्सासुरको मार उसकी देहको लीलापूर्वक कैथके वृक्षपर कैसा पटका था? और लीलासेही वह वृक्ष भी गिर गया ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त बलदेवजीसहित धेनुकासुरको मार और उसके संगियोंको भी मार फल जिनमें पक रहे, उन तालोंको निभय कर दिया ॥ १० ॥ फिर महा बलवान् बलदेवजीसे अत्यन्त भयानक प्रलम्बासुर दैत्यको मरवाय और व्रजमें जो अग्नि लगी थी, उससे पशु तथा गोपोंको छुडादिया ॥ ११ ॥ फिर देखो! इसी कृष्णने अतिभयानक विषवाले कालीनागको दंड द, उसके मदको दूरकर बलात्कार दहमें से निकाल यमुनाको निर्विष करदिया ॥ १२ ॥ हे नंद! हम सब व्रजवासियोंको इनमें बडा अनुराग है. अर्थात् इतना प्यार होगया है

कि, छुटायेसें छूटना अत्यन्त कठिन है और इन श्रीकृष्णका भी हममें स्वाभाविक प्यार है अर्थात् यह श्रीकृष्ण सबकी आत्मा हैं, यह शंका होती है ॥ १३ ॥ क्योंकि सात-वर्षका बालक इतना बड़ाभारी पर्वत उठावै? इसलिये हे ब्रजनाथ! तुम्हारे पुत्रमें हमको शंका उत्पन्न होती है कि, कदाचित् परमेश्वर न हों? इसकारण हम इसका विचार करेंगे कि, तुम्हारे कैसा पुत्र हुआ है ॥ १४ ॥ इसप्रकार गोपोंकी बातें सुनकर नंदजी बोले कि, संदेह करनेकी कुछ बात नहीं है मैं इस बालककी जन्मपत्री लाताहूँ, जो कि, गर्गाचार्यने बनाई है, यह कहकर जन्मपत्री ले आये और बोले कि, हे गोपो! मेरी बात सुनो, जिससे इस बालकमेंसे तुम्हारी शंका मिट जायगी, गर्गाचार्यने इस बालकका नाम धरकर मुझे जो जो गुण बताये हैं, सो श्रवण करो ॥ १५ ॥ इस बालकके तीन वर्ण हैं और युग युगमें देह धारण करता है, प्रथम इसका श्वेतवर्ण था, फिर रक्त और श्यामवर्ण हुआ और अब इसने कृष्णरूप धारण किया है, ॥ १६ ॥ इस तुम्हारे पुत्रने पहले कभी वसुदेवके यहाँ जन्म लिया है, इसलिये जाननेवाले इसको श्रीमान् वासुदेव कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके नाम और रूप बहुत हैं, इसलिये जैसे जैसे इसमें गुण होंगे वैसे वैसे कर्म करेगा और उन्हींके अनुसार नाम होंगे ॥ १८ ॥ यह तुम्हारा कल्याण करेंगे और गोप तथा गायोंको आनंद देंगे, अधिक क्या कहैं? इस कृष्णकी सहायतासे तुम संपूर्ण कष्टोंसे सहजमेंही छूट जाओगे * ॥ १९ ॥ हे ब्रजराज! पहले तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्णने राजारहित पृथ्वीमें चोरोंसे पीडित साधुओंकी रक्षा की थी, तब साधुओंने वृद्धिको प्राप्त हो चोरोंको जीत लिया था ॥ २० ॥ जो बडभागी पुरुष इन श्रीकृष्णमें प्रीति करते हैं, उनको वैरी सन्ताप नहीं देते! जिस प्रकार विष्णुभगवान्से रक्षित देवताओंको असुर नहीं सता सक्ते ॥ २१ ॥ इस कारण हे नंद! तुम्हारा यह पुत्र गुण, शोभा, कीर्त्ति, प्रभाव इत्यादिमें नारायणके समान है इसके कर्मोंमें आश्चर्य मत मानना ॥ २२ ॥ इसप्रकार साक्षात् गर्गाचार्य मुझसे कहकर अपने घरको चले गये, उसी दिनसे बड़े बड़े कार्य करनेवालोंमें श्रीकृष्णको मैं नारायणका अंश मानताहूँ ॥ २३ ॥ इसप्रकार ब्रजवासियोंने गर्गाचार्यका वचन नंदरायजीसे सुन प्रसन्न हो

---

* **शंका**–नन्दजीसे गर्गमुनिने कहा कि, श्रीकृष्णके कर्मको हम जानते हैं संसारमें और कोई भी नहीं जानता, यह बडे सन्देहकी बात है इससे यह ज्ञात होता है कि, गर्गमुनि तो परमज्ञानी थे इनके सिवाय और जो ऋषि मुनि थे वह सब ब्राह्मण नहीं थे, गर्गमुनिकी बातोंसे ऐसा जान पड़ता है?

उत्तर–सब ऋषि मुनियोंका निरादर करके गर्गमुनि ऐसी बात कभी नहीं कहसक्ते गर्गमुनिने (अहं) पदका यह अर्थ किया कि, हमारी जाति जितनी है संसारमें मुनि, ऋषि, गृहस्थ, किसान, सब श्रीकृष्ण भगवान्के कर्मको जानते हैं यह अर्थ अहंपद का किया, कुछ अपने अकेलेके लिये नहीं कहा ॥

नंदजीकी पूजा करी और श्रीकृष्णचन्द्रमेंसे उनकी शंका दूर होगई ॥ २४ ॥ यज्ञके नाशसे क्रोधित हो इन्द्रने सात दिन रात जब ब्रजपर मूशलधार वर्षा की उस समय ब्रज पत्थर पवनसे पीडित ग्वाल बाल पशु और स्त्रियोंको अपनी शरण आये देख जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दया आगई और मुसकाकर जिसप्रकार बालक सर्पकी छत्रीको उखाड डालता है, उसीप्रकार एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड धारण कर ब्रजकी रक्षा की, वही इन्द्रके मदको दूर करनेवाला गौवोंके इन्द्र भगवान् वासुदेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों * ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दोहा-सत्ताइस अध्यायमें, लख श्रीकृष्ण प्रभाव।
गाय इन्द्र अभिषेक पुनि, वरणों सहज स्वभाव ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर जो ब्रजकी रक्षा की थी, सो देवराज इन्द्रने जाकर सब बात कमलयोनि ब्रह्मा जीको सुनाई, तब ब्रह्माजी बोले कि, इन्द्र ! तैने बडा अपराध किया, पहले मैं भी उनके गोप, ग्वाल, बछडे इत्यादि हरकर अपनी बूढी दाढीपर धूल डाल चुका हूं, इसके उपरान्त स्वर्गलोकसे सुरभी गौ और इन्द्रलोकसे इन्द्र आये ॥ १ ॥ और अपराध करनेके कारण अत्यन्त लज्जित हो इन्द्रने एकान्तमें आय सूर्यके समान तेजवाले किरीटको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंसे लगाया ॥ २ ॥ अमिततेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्रका प्रभाव जिस प्रकार कानोंसे श्रवण किया था, उसी प्रकार नेत्रोंसे देखा और उस समय " त्रिलोकीका ईश्वर मैं हूं " यह मद भी जातारहा, तब देवराज इन्द्र हाथ जोडकर

---

* शंका-सौ १०० यज्ञ करनेवाले राजा इन्द्रका तिरस्कार करके सुरभी जो गायें हैं उन्होंने अपना इन्द्र श्रीकृष्णको क्यों किया, इन्द्र तो तीनलोकमें एकही है हमने आजतक दूसरा इन्द्र नहीं सुना फिर उन्होंने दूसरा इन्द्र क्यों किया ?

उत्तर-इन्द्रने गायोंका नाश करनेके लिये गोकुलमें बडी वर्षा की, गायोंको मारना विचारा, इसलिये इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका विनाश होगया, इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका नाश होनेसे सुरभियोंने अपना इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बनाया, क्योंकि गायोंने विचारा कि, इन्द्र ऐसा चाण्डाल है कि, जिसने अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये अधर्म नहीं देखा और गोहत्यासे भी नहीं डरा, तो और दूसरे कामसे क्या डरेगा, अबकी बार तो श्रीकृष्णचन्द्रने बचालिया यह दुष्ट ऐसा कर्म फिर कभी करेगा तो हमारी बछिया बछरे सब विध्वंस हो जायँगे और वंशका नाश होजायगा, इसलिये कृष्णभगवान्को अपना इन्द्र बनाया ॥

बोले ॥ ३ ॥ इन्द्रने कहा कि, तुम्हारा स्वरूप शुद्ध सत्त्वगुणी है, अर्थात् एक रूप है, शांत सर्वज्ञ है, रजोगुण तमोगुणसे रहित है और मायाका जो कार्य अज्ञानसे जीवोंको लगरहा है, सो संसार है, यह तुम्हारे स्वरूपमें नहीं है ॥ ४ ॥ हे ईश ! देह संबंध तुमको नहीं है तो उस देहसंबंधसे करेहुए और अन्य देहके कारण जो काम लोभादिक हैं सो कहाँसे होंगे बहुधा ऐसे काम लोभादिक तो अज्ञानी पुरुषोंको होते हैं, तुम्हारे काम लोभादिकके तो नहीं हैं. परन्तु तोभी धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका मद दूर करनेके लिये तुम दंड देते हो ॥ ५ ॥ तुम जगत्के पिता, गुरु और ईश्वर हो, नाश रहित दंडके ग्रहण करने वाले कालरूप हो, जीवोंका हित करनेके लिये और अपनेको ईश्वर माननेवालोंके मान दूर करनेके लिये अपनी इच्छापूर्वक रूप धरकर लीला करते हो, तुम्हारी लीलामेंही हमारे मान दूर हो जाते हैं, लोकोंकी बाहवाहमें जीवोंका सत्यानाश हो जाताहै ॥ ६ ॥ जो मुझ सरीखे अज्ञानी भी आपको जगत्का ईश्वर मानते हैं, वे भयके समय भी निर्भय आपका दर्शन कर शीघ्र ही ईश्वरत्वका मद त्याग करदेते हैं और गर्वको छोडकर सत्पुरुषोंकी और तुम्हारी भक्तिको करते हैं, तुम्हारी सहजकी चेष्टा हैं, सोइ दुष्टोंको दण्ड रूप हैं ॥ ७ ॥ हे समर्थ ! ऐश्वर्यके मदमें डूबेहुए तुम्हारे प्रभावको न जान तुम्हारा अपराध करनेवाले मूढ़चित्त मेरे ऊपर क्षमा करो, हे ईश्वर ! फिर मेरी ऐसी बुद्धि न हो; यही मैं प्रार्थना करताहूं ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज ! इससंसारमें तुम्हारा अवतार और बडा भार जिनसे हो ऐसे सैन्यपालन करनेवाले मुख्य सेनापतियोंको मारनके कारण और तुम्हारे चरणोंका सेवन करनेवाले भक्तोंका कल्याण करनेके लिये है॥ ॥ ९ ॥ ऐसे जो तुम भगवान् महात्मापुरुष हो, सो तुम्हारे लिये नमस्कार है, शुद्ध अंतःकरणके प्रकाशक भक्तोंके रक्षक, वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ १० ॥ अपने भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये देह धरनेवाले और शुद्ध ज्ञानमूर्ति सर्वरूप सबके कारण सब प्राणियोंके आत्मा तुमको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जब मेरा यज्ञ नाशको प्राप्त हुवा तब बड़ा क्रोध कर मुझ अज्ञानी अभिमानीने ब्रजका नाश करनेके लिये वर्षा और पवन चलाकर करनेके अयोग्य कार्य किये ॥ १२ ॥ यह आपने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया जो मेरा गर्व दूर कर दिया, उद्यम भी वृथा गया, तुम सबके ईश्वर आत्मा हो, इसलिये मैं तुम्हारी शरण प्राप्त हुवा हूं ॥ १३ ॥ इस प्रकार जब देवराज इन्द्रने स्तुति करी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर मेघके समान गंभीर-वाणीसे उससे बोले ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले, कि हे इन्द्र ! मैंने, तेरे ऊपर अनुग्रह करनेहीके लिये यज्ञका विध्वंस किया है, क्योंकि तुम देवताओंका राज्य पाकर अचेत हो गये थे, सो अपना स्मरण करानेके लिये यह मैंने किया ॥ १५ ॥ क्योंकि ऐश्वर्यमद और धनमदसे अंधे हुए पुरुष दण्ड हाथमें लिये मुझे नहीं देखते और जिसके ऊपर मैं कृपा करनेकी इच्छा करताहूं, उस पुरुषकी प्रथम संपत्ति हरलेताहूं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, अहंकार त्यागकर मेरी आज्ञाका

पालन करना और सावधान होकर, अपने अधिकार पर रहना ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त जब इन्द्र स्तुति कर चुका तब उदारचित्त सुरभी गौने अपनी संतान सहित आकर गोपरूपी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार और संबोधन देकर कहा कि, ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वके उत्पन्न करनेवाले ! हे अच्युत ! हे अखण्डरूप ! इन्द्रने तो हमें माराही था परन्तु हे लोकोंके नाथ ! आपने बचाया ॥ १९ ॥ हे जगत्पति ! तुम हमारे श्रेष्ठ देवता हो और तुम्हीं गौ ब्राह्मणके देवताहो और जो साधु हैं, उनके कल्याणार्थ हमारे इन्द्र होओ ॥ २० ॥ ब्रह्माजीकी हमें आज्ञा हुई है, इस कारण इन्द्रपदवी देनेके लिये हम तुम्हारा अभिषेक करेंगी । हे विश्वके आत्मा ! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये तुमने अवतार लिया है ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इसप्रकार कहकर श्रीकृष्णचन्द्रका यह कामधेनु अपने दुग्धसे अभिषेक करनेलगी और ऐरावत हाथीकी सूंडसे लाये आकाश गंगाके जलसे अभिषेक किया ॥ २२ ॥ और इन्द्रने भी देवमाताओंकी प्रेरणासे देवर्षियोंके सहित भगवान्का अभिषेक किया और गोबिन्द नाम धरा ॥ २३ और दाशार्हबंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उससमय तुंबुरु, नारदादि, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण आनकर लोगोंके पापोंको दूर करनेके लिये भगवान्का यश गाने लग और अति आनंदित होकर देवांगनायें नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त देवताओंमें मुख्य देवता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति और अद्भुत फूलोंकी वर्षा करनेलगे, उस समय तीनोंलोक परम-आनंदको प्राप्त होगये । फिर गौ दूधसे पृथ्वीको भिजानेलगी ॥ २५ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविंदाभिषेक किया, उससमय नदियें अनेक प्रकारके रसोंकी बहनेवाली होगई और वृक्षोंमेंसे मदकी धारा चूने लगी, बिना जोते खेत भी आपही पकने लगे और पर्वतोंने अपनी गुफाओंमेंसे मणियोंको बाहर निकालकर धर दिया ॥ ॥२६॥ हे कुरुकुलके आनंददाता परीक्षित् ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविन्दाभिषेक हुआ, उससमय क्रूरस्वभाववाले सिंहादिक जीवोंका भी वैरभाव दूर होगया॥२७॥ इस प्रकार गोकुलके रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको गोविंदाभिषेक कर वह इन्द्र देवताओंको संग ले स्वर्गको चलागया ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा-अट्ठाइसमें नन्दको, लाये कृष्ण छुटाय।
गोपोंको वैकुण्ठ सब, हितकरि दियो दिखाय ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! नन्दजीने एकादशीका निराहार व्रत करके भगवान्का पूजन किया, दूसरे दिन द्वादशी दो घडी थी उससमय पारण करनेके लिये अरुणोदयसे पहले रात्रिमें धर्म सत्रके बलसे स्नान करनेके कारण यमुनाको गये, तब नंदराय-

जीने आसुरीवेलाको न जानकर यमुनाजीमें प्रवेश किया *॥ १ ॥ इसलिये वरुणका एक दैत्य सेवक उन्हें पकड वरुणके पास लेगया ॥ २ ॥ नंदरायजीको न देख जो गोप संग गये थे वह हे कृष्ण ! हे राम ! इसप्रकार पुकारनेलगे, उससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, पिताको वरुण लेगया यह बात सुन अपने भक्तको अभयके देनेवाले वरुणके पासगये॥ ३॥ श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेसे बडा आनंद पाय लोकोंके पालन करनेवाले वरुणजीने इन्द्रियोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आये देख, बडी पूजा की सामग्रियोंसे पूजा करके कहा ॥ ४ ॥ वरुणजी बोले कि, आज तुम्हारे दर्शन करनेसे मेरा जन्म सफल हुआ और आजही मेरे मनोरथ भी सफल हुये, हे, भगवन् ! तुम्हारे चरणारविन्दोंका जो भजन करते हैं, वह संसारके पार हो मोक्षको प्राप्त होजाते हैं ॥ ५ ॥ परिपूर्ण रूप, संपूर्ण, जीवोंके साक्षी जिनके समान किसीका ऐश्वर्य नहीं, ऐसे भगवान्को नमस्कार है और जिनके स्वरूपमें लोकोंकी रचना करनेवाली माया नहीं सुनी जाती ॥ ६ ॥ धर्मकी महिमा और कार्यको नहीं जाननेवाला मूढ मेरा अनुचर तुम्हारे पिताको ले आया, सो अपराध क्षमा करो ॥ ७ ॥ हे श्रीकृष्ण ! मेरे ऊपर तुम अनुग्रह करनेके योग्य हो, हे गोविंद हे पितृवत्सल ! अपने पिताको तुम ले जाओ॥ ८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसप्रकार ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जब वरुणजीने प्रसन्न किया,तब अपने पिता और बंधु बांधवोंको आनंद देते वहाँसे चले ॥ ९ ॥ जो प्रथम कभी देखनेमें न आया, ऐसा वरुणका ऐश्वर्य और श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी प्रीति देख नन्दारायजी अति आश्चर्यमान अपनी जातिके गोपोंसे कहने लगे कि, प्रथम मुझे लेजाकर एक कोनेमें बैठाय दिया, इसके उपरान्त यह कृष्ण गया, तब इसे देख वरुणने नमस्कार करके पूजा की ॥ १० ॥ हे राजन् ! उत्कण्ठायुक्त बुद्धिसे ब्रजवासी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ईश्वर मान विचारकर कहने लगे कि, श्रीकृष्णचन्द्र क्या हमको वैकुण्ठधाम प्राप्त करोगे ? ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रह्मस्वरूपका दर्शन करावेंगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार सबके देखनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रजवासियोंका मनोरथ जान उसे पूर्ण करनेके लिये कृपाकरके यह विचार करनेलगे ॥ १२ ॥ कि, इस संसारमें प्राणी देहमें अहंकार, काम, कर्म इत्यादिसे देवता, पशु, पक्षी आदि जो जो योनिहैं, उनमें भटकता फिरता है और

---

* **शंका**—भागवतमें लिखा है कि, नन्दजी एकादशीका व्रत करके जब चार घडी पिछली रात रही तब भगवान्की पूजा करके यमुनामें स्नान करने गये, इसमें यह शंका होती है कि, बिना स्नान किये भगवान्का पूजन कैसे किया क्योंकि जो प्राणी विना स्नान किये भगवान्का पूजन करताहै तो महादोष होताहै ।

उत्तर—महात्मा पुरुष भगवान्का पूजन ऐसे नहीं करते मानसिक पूजन करते हैं, मानसिक पूजनमें भगवान् प्रसन्न भी होते हैं, इसलिये नन्दजी मानसिक पूजन भगवान्का करके पीछेसे स्नानको गये ॥

अपना स्वरूप नहीं जानता ॥ १३ ॥ इसप्रकार करुणानिधान भगवान्‌ने विचारकर गोपादि-सब व्रजवासियोंको ब्रह्मरूप दिखाया और इसके उपरान्त मायासे परे जो वैकुण्ठधाम है उसका दर्शन कराया ॥ १४ ॥ अब ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करते हैं, सत्य अर्थात् बाधारहित ज्ञानस्वरूप है अनंत अर्थात् देखनेमें न आवै, ज्योति अर्थात् स्वतंत्रप्रकाश है, गुणोंके निषेधमें सावधान मुनीश्वर रूप उस रूपको देखते हैं ॥ १५ ॥ वह संपूर्ण व्रजवासी ब्रह्म स्वरूप देहमें प्राप्त होते ही मग्नहोगये, फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कृपा कर वहाँसे निकाल वैकुण्ठलोक दिखाया, जहाँ प्रथम महात्मा अक्रूरजी गये थे, यहाँ शंका है कि, ब्रह्ममें डूबे को वैकुण्ठलोकका दर्शन नहीं बनता तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे पहले अक्रूरजीने दर्शन कियाथा, उन्हीं श्रीकृष्णकी कृपासे इन लोगोंने दर्शन किया, क्योंकि अचिन्त्य ऐश्वर्यमान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें कुछ यह बात अनुचित नहीं है ॥ १६ ॥ हे नृप ! वहाँ वेदोंसे होती हुई भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति देख और नंदादि सब व्रजवासियोंने वैकुण्ठधामका दर्शन कर परमानंदसे सुखी हो बडा आनन्द प्राप्त किया ॥ १७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे अष्टाविंऽशोध्यायः ॥ २८ ॥

दोहा-उनतिसमें हरिने कियो, रास विलास बनाय।
अन्तर्धान भये तुरत, सबन वहीं छिटकाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृगोत्तम परीक्षित् ! गोपकन्याओंसे जिन रात्रियोंकी प्रतिज्ञा की थीं जब वही शरदृतु आनकर उपस्थित हुई कि, जहाँ तहाँ चमेली खिलरही थी उन रात्रियोंको देख योगमायाका आश्रय ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रमण करनेका मनोरथ करने लगे ॥ १ ॥ और उसी समय सुखदायक किरणोंसे पूर्वदिशाके मुखको अरुण करते भगवान् चन्द्रमा उदय हुए जैसे परदेशसे बहुत दिनोंमें पुरुष आकर अपनी प्यारीके मुखको केशर लगाकर लाल करता है ॥ २ ॥ परिपूर्ण मंडल और लक्ष्मीके मुखके समान कान्ति नवीन केशरकी तुल्य अरुण चन्द्रमाको देख और राकाकी कोमल किरणोंसे रंगे वृन्दावनको देख भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्त्रियोंके मनहरण करनेवाले कलरवसे गीत गानेलगे, इस कलरवमें से ही बीजमंत्र 'क्लीं' निकलता है ॥ ३ ॥ प्रेमात्मक कामके बढानेवाले गीतको श्रवण कर श्रीकृष्णचन्द्रने जिनके मन हरलिये हैं वह स्त्रियें जहाँ पति श्रीकृष्णचन्द्र थे वहाँ आई और अरी किशोरी चलरी, इस प्रकार परस्पर अत्यन्त कह शीघ्रतासे चलीं, चलती समय उनके कानोंके कुण्डल हिलते जाते थे ॥ ४ ॥ कितनीही गोपियें उत्कण्ठाके मारे दूहतीहुई गायोंको छोडकर चलीआई और दूसरी चूल्हेपर चढेहुए दूधको वैसाही छोडकर चलीं, बहुत गोपियें गेहूंका पकाहुआ पदार्थ चूल्हेपरही छोडकर चलदीं ॥ ५ ॥ कितनीही एक पत्तल परोसती थीं सो वंशीकी ध्वनि सुनतेही छोडकर चलीं आई और कितनी एक

गोपी अपने देवर जेठके बालकोंको दूध पिलातीथीं, उनको छोड आईं, कोई कोई गोपी अपने पतिकी सेवा करनेसेही चलीं और कोई कोई भोजन करनेसेही चली आईं ॥ ६ ॥

कवित्त-बाजी बोरानी बाजी देखिबेको धाई बाजी, बाजी अकुलानी सुनि बंशी बंशीधरकी। बाजीनासम्हारें चोर बाजी नहिं धरें धीर, बाजिनके उठी पीर विरहानल दवकी ॥ बाजी नहिं बोलैं बाजी संग लागी डोलैं, बाजी बाजिनको विसरगी सुधि बुधि घरकी। बाजी कहैं बाजी बाजी बाजी कहैं कहाँ बाजी, बाजी कहैं वन बाजी वंशी गिरधरकी ॥

कोई २ गोपी घरोंको लीपतीं, कोई नेत्रोंमें अंजन लगातीं, कोई पाँवोंके गहने हाथोंमें पहर और हाथोंके पावोंमें पहर, लहँगा ओढ, ओढनी पहर, भगवान् मुरली मनोहरके पास आईं ॥ ७ ॥ "यद्यपि गोपियोंके श्रृंगार उलटे पुलटे थे, परन्तु तो भी योगमाय ने सुधार दिये थे"+ यद्यपि पति, पिता, माता, भ्राता और जातियोंने मनभी किया परन्तु तो भी भगवान् केशवमूर्तिने जिनके मन हरालेये थे, उन गोपियोंने किसीका कहना नहीं माना ॥ ८ ॥ किसी गोपीको उनके पुरुषोंने घरमें बन्द करदिया, जब निकलनेका मार्ग न मिला. तब उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इच्छाकर आँखें मूँद उनका ध्यान किया ॥ ९ ॥ सहन न किया जाय, ऐसे प्यारेके विरहरूप तापसे पाप जिनके दूरहोगये और ध्यानमें प्राप्त हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करके, सुखके पुण्यसे बंधन उनके दूर होगये,ऐसे अत्यन्त विरहके दुःख और श्रीकृष्णका अत्यन्त प्राप्तिके भोगसे एक संगही सब प्रारब्धकर्म क्षीण होजानेसे मुक्त हुईं ॥ १० ॥ जारबुद्धिसे परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको पाय बंधन जिनके कटगये, ऐसी गोपियोंने गुणोंके बने देहको तत्कालही त्याग दियाऔर दिव्य देह धारण कर सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं ॥ ११ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे महाराज ! वह गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको केवल जार मानतीं थीं, ब्रह्मपनसे उनको किंचित् भी भाव नहीं था, फिर गुणमय बुद्धिवाली उन गोपियोंके गुणोंका प्रभाव संसारसे कैसे छूटगया ? ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह बात मैंने आपसे प्रथमही वर्णन की थी कि, जब शिशुपाल, भगवान्

+ **दृष्टान्त**-जैसे आठ छैल शैर करनेको निकले बागमें जाकर कहा कि,भांग बनाओ सो मीठीही छानी और मिठाईके लालचसे तीन २ लोटे गडगप्प करगये अर्थात् पीगये, एक मित्र उनमें चतुर था, तो इसने मनमें विचार किया कि, अभ्यास तो है नहीं और तीन तीन लोटे चढागये हैं, जब यह बेसुधि होजायँगे तो इन्हें कोन संभालैगा ? उसने एक चुल्लूभरही पी थी, अब चढ़ा जो नशा तो किसीकी तो पाग गिरगई, किसीका पटका खुलगया, किसीकी धोती खुलगई और जिसको नशा नहीं था उसने सबको सँभाल लिया इसी प्रकार योगमायाने सबको सुधार दिया ॥

श्रीकृष्णचन्द्रसे शत्रुभाव रखताहुआ भी मुक्तिको प्राप्त हुआ, तब प्रीति करनेवाली गोपियोंके तरनमें क्या आश्चर्य है? ॥ १३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियन्ता श्रीकृष्णचन्द्रका जो प्रगट होना है, सो पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये है, इस कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जीवकी समान कहना संभव नहीं ॥ ॥ १४ ॥ काम, क्रोध, भय, स्नेह, एकभाव सौभद्र जो पुरुष नित्य भगवान् वासुदेवमें करते हैं, वह पुरुष तन्मय हो जाते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन्! अजन्मा योगीश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें तुम आश्चर्य मत करो,क्योंकि उनमें प्रेम करनेसे स्थावर भी संसारसे छूट जाते हैं ॥१६॥ * बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजकी स्त्रियोंको अपने पास आई देख वाणियोंके विलाससे मोहित करके कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे बड़भागिनियो! भली आई आओ मैं तुम्हारा क्या आदर करूं? व्रजमें तो कुशल है और यहां कैसे आई इसका कारण कहो ॥ १८ ॥

वृन्दावनमें रात समय तुम क्यों आई हो।
दीजो मोहिं बताय फिरत क्यों घबराई हो ॥ ३० ॥

क्योंकि यह भयानक रात्रि है, सिंह व्याघ्रादि घोर प्राणी यहाँ फिरते हैं, इसकारण तुम अपने घरको जाओ, हे सुमध्यमे! स्त्री जाति होकर यहाँ मत रहो ॥ १९ ॥

दोहा-तजकर पति अपने सखी, अर्द्धरात्रिके माहिं।
आई वनके भीतरे, ऐसी चहिये नाहिं ॥

देखो तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भ्राता, पति. तुमको विना देखे ढूंढते होंगे इसलिये बन्धुओंको घबराहट मतकरो ॥ २० ॥ क्योंकि फुलवारी जिसमें फूल रही चन्द्रमाकी किरणोंसे रँगाहुआ यमुनासे लग मंद पवनसे हिलनेवाले वृक्षोंके पातसे शोभायमान तुमने भली भाँति देख लिया ॥ २१ ॥ इस कारण तुम व्रजमें जाओ, अब विलम्ब मत करो, तुम पतिव्रता हो, पतियोंकी सेवा करो, क्योंकि वहाँ बछड़े रम्भाते होंगे, बालक रोते, होंगे, जाओ; बालकोंको दूध पिलावो और गायोंको दुहो ॥ २२ ॥ अथवा मेरे स्नेहसे वशीभूत अंतःकरणसे तुम आईहो, सो तुमको योग्यही है क्योंकि सब जीव मुझमें प्यार करते हैं, ॥ २३ ॥ हे मंगलरूपिणियो! निष्कपट होकर पतियोंकी सेवा-

---

* दृष्टान्त-कहीं श्रीमद्भागवतकी कथा बैठी थी, किसीने कहा लालाजी सुनोको चलो लालाजीने उत्तर दिया कि, जब दशमस्कन्ध प्रारंभ होगा तब चलैंगे, फिर जब दशमस्कन्ध होने लगा तो लालाने कहा कि, पंचाध्यायीमें चलैंगे जहां श्रीकृष्णने, लाखों गोपी बुलाकर उनके संग विहार किया,हम भी वैसाही करैं,जैसे चार पुरुष कहैंसे सुनकर आगे बढ़ते हैं, उसी प्रकार विषयी विषयसे और जगह जो भाव बिगडे तो ठिकाना लग भी जाय और जो साक्षात् कृष्णकांता त्रैलोक्य जननीमें भाव बिगडा तो उसका सत्यानाश ही हो जाता है ॥

करो देवरोंकी सेवा करो और पुत्रोंका पोषण करो, यही स्त्रियोंका परमधर्म है ॥ २४ ॥ यदि कदाचित् अपना पति खोटे स्वभावयुक्त हो, दुर्भाग्य हो, अथवा वृद्ध हो, मूर्ख हो, रोगी हो, दरिद्री हो, तोभी स्वर्गकी जिनको चाहना है, ऐसी स्त्रियोंके त्यागनेयोग्य नहीं है और जो पतित हो तो त्यागने योग्य है ॥ २५ ॥

नारिनके पति देव वेद नित यही बखानै ।
ब्रह्मा विष्णु महेश नारि पतिहीको मानै ॥

कलियुगकी स्त्रियोंको उपपतिके सेवन करनेसे स्वर्ग नहीं मिलता बरन यश जाता है, इसलिये उपपतिका सेवन तुच्छ है दुःखका देनेवाला है और सर्वत्र निंदाके योग्य है ॥ २६ ॥ जिसप्रकार भाव मुझमें श्रवण दर्शन ध्यान कीर्त्तनसे रहता है, वैसा पास रहनेसे नहीं होता इसलिये अपने घरको जाओ * श्रीकृष्णचन्द्रने इसकारण गोपियोंसे जाओ जाओ कहा कि, जो मैं इनसे कहूंगा तुम मेरे साथ विहारकरो तो यह गालिये देंगी और निकट भी न आवेंगी इससे प्रथमही इनके मानखंडन करूं तो फिर यह आपही मेरा पल्ला पकडेंगी × ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! इसप्रकार गोपियें गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवणकर अत्यन्त दुःखित हुईं और मनोरथके सिद्ध न होनेसे बड़ी चिन्ता करनेलगीं ॥ २८ ॥ चिन्ताके श्वाससे कुँदुरूके फलके समान उनके अरुणहोठ सूख गये और अपने अपने मुखोंको नीचाकर चरणके अँगूठेसे धरतीपै लिखनेलगीं और रुदनके कारण नेत्रोंसे कज्जलसहित जो आँसू निकलरहे थे उनसे कुचोंकी केशर धुलगई

---

* **दृष्टान्त**–देखो स्त्रियोंको पतिव्रतधर्म पालन करना चाहिये, पतिव्रताओंकी बडी महिमा है । एक स्त्रीकी गोदीमें उसका पति शिर धरे सो रहा था, उसका बालक खेलते खेलते अग्निमें जा पड़ा, स्त्रीने यह देख पतिकी निद्रा भंग न हो, यह विचार अपना घटुआ न उठाया और अग्नि पतिव्रताके शापके भयसे शीतल होगई,

श्लोक–सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधमायास पतिं पतिव्रता ॥ अभूत्तदानीं व्रतभंगशंकया हुताशनश्चंदनपंकशीतलः ॥ १ ॥ इस कारण हे सखियो ! अपने पतियों पर जाओ ॥

× **दृष्टान्त**–श्रीकृष्णने वंशी बजाते तो बजादी पर जब लाखों गोपियोंने आनकर घेरलिया, तब बुद्धि विहारी होगई, जैसे किसीके बालक घरमें रुईका फोहा जलातेहैं और फिर प्रसन्न होतेहैं, सो बाजारमें किसी साहूकारकी दूकानमें लाख रुपयेकी रुईका ढेर लगा देख उन्होंने मनमें विचार किया कि, इसमें बडा तमाशा होगा सो ढेरमें आग लगा दी जब वह ढेर थोडा २ जला तबतक तो ताली बजाते रहे और जिस समय आग भडककर ऊँची ऊँची लपटें निकलीं तब घबरागये, इसीप्रकार श्रीकृष्णकी दशा हुई, जब एकाध गोपीको कहीं देखपाते, तब तो प्रसन्न होते अब लाखों गोपियोंको देखा घबराकर घर जानेको कहा ॥

तब अतिदुःखके बोझसे गोपी चुपचाप होकर खडी होगई ॥ २९ ॥ जिनके लिये गोपियोंने सब घरबार छोडदिये, उन अपने परमप्रीतम श्रीकृष्णचन्द्रके कठोर वचन सुन प्रेमभरी गोपियें रोनेके कारण आंसुओंसे पूर्ण नेत्रोंको पोंछ कुछेक क्रोधित हो गद्गद कंठसे बोलीं ॥ ३० ॥ कि, हे समर्थ !

दोहा-अरे ! निर्दयी साँवरे, बोलत वचन कठोर।
हम सबके मन हर लिये, मुरलीकी घनघोर ॥

"जाओ जाओ" ऐसे कठोर वचन मत कहो, क्योंकि हम सब विषयोंको त्यागकर केवल तुम्हारे ही चरणोंका सेवन करतीहैं. हे दुराग्रही ! हमको मत त्यागो, जैसे आदिपुरुष भगवान्‌की शरण सर्व त्यागनकर मुमुक्षुलोग जातेहैं तो मुमुक्षुपुरुषोंको वह भजतेहैं. उसीप्रकार तुम्हारे लिये सर्वस्व त्यागकर हम आई हैं, इसलिये हमारा सेवन करो, त्यागो मत ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण धर्मवेत्ता ! तुमने कहा, पति, पुत्र, सुताओंकी सेवा करो, यह स्त्रियोंका परमधर्म है जो कहा, सो हमारी धर्म सुननेकी इच्छा नहीं है, क्योंकि हमें चाहना नहीं है, तुम धर्मके उपदेश करनेवाले नहीं हो किन्तु देहधारियोंके प्यारे हो आपने कहा पति आदिकोंकी सेवा करना धर्म है, सो आत्मासहित पति आदिक प्रिय लगतेहैं स्त्रीको पति प्यारा लगताहै आत्मासे लगता सो आत्मा जब निकल जाताहै, पीछे इस देहको बांधकर लेजाते हैं और जला देते हैं, सो सबके आत्मा तुम हो, तुम्हारे सेवन करनेसे ही हमें सब धर्म स्वयं प्राप्त होजायँगे, क्योंकि सब उपदेशवाक्य ईश्वरकी सेवा करनाही परमधर्म बतातेहैं, इसकारण तुम सब जीवोंके आत्मा होनेसे परमबंधु ईश्वर हो, तुमसे जो जीव बहिर्मुखहैं सो दग्ध होनेके योग्य हैं ॥ ३२ ॥ अपना आत्मा नित्य प्यारे तुम हो तिनमें विवेकीपुरुष प्रीति करते हैं दुःखके देनेवाले पति पुत्रादिकोंसे क्या प्रयोजन है ? इसकारण तुम हमपर प्रसन्न हो, हे ईश्वर ! कमलदललोचन ! बहुत दिनोंसे तुममें आशारूपी लता लगाईहै, उसे " जाओ जाओ " ऐसे कुठार रूप वचनसे कैसे काटते हो ? देखो ! विषके वृक्षको भी आप बढाकर विवेकी नहीं काटते हैं ॥ ३३ ॥ तुमने कहा, जाओ सो हम कैसे जायँ ? क्योंकि जो चित्त सुखपूर्वक घरमें लगरहा था, सो तुमने हर लिया और जिन हाथोंसे घरका काम करती थीं, सो तुमने हर लिये, तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हे गोपियो ! अब तुम जाओ; परसोंके दिन तुम सबके चित्तविचार कर देंगे, तो गोपियोंने कहा कि, तुम्हारे चरण छोडकर हमारे पाँव एक पग भी नहीं चलसक्ते ब्रजमें कैसे जायँ ? और जाकर हम क्या करें ? ॥ ३४ ॥ हे सखे ! आपके हास्य, दर्शन और मधुरगीतसे उत्पन्नहुई हमारी कामाग्निको तुम अपने अधरामृतरूप पिचकारीसे शान्तकरो, नहीं तो हम एक तो कामकी अग्नि और दूसरी विरहकी अग्नि इन दोनोंसे दग्धशरीरहो योगीजनोंकी नाईं तुम्हारे ध्यानसे ही तुम्हारे चरणोंके निकट पहुँच जायँगी * ॥ ३५ ॥

---

* शंका-जैसे कामदेवसे पीडित होकर मनुष्योंकी स्त्री ओष्ठचुम्बन करनेके लिये-

तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, तुम अपने पतियोंके पास जाओ, वही तुम्हारी कामाग्नि बुझावेंगे, इसके उत्तरमें गोपी कहती हैं कि, हे कमलदललोचन ! वनवासी जिन्हें प्रिय हैं, ऐसे तुम हो और लक्ष्मीजीको किसीसमय ही जिनकी सेवा प्राप्त होतीहै, ऐसे तुम्हारे चरणोंके तलुए हमने जबसे स्पर्श किये, उसी दिनसे उनका सुख अनुभव किया और उसी दिनसे औरके सन्मुख भी खडी नहीं होसक्तीं ॥ ३६ ॥ यद्यपि लक्ष्मीजी सदा वक्षस्थलमें रहती-हैं परन्तु तो भी जिसका भक्तलोग सेवन करते हैं, ऐसी तुम्हारे चरणकी रेणुको तुलसीने सौत सहित चाहना की, जिस लक्ष्मीजीकी चितवनके लिये और देवता तप करके परिश्रम करते हैं, उन्हीं लक्ष्मीकी समान हम भी तुम्हार चरणकी रजको प्राप्त हुई हैं, अर्थात् शरण ली हैं ॥ ३७ ॥ हे दुःखके काटनेवाले ! तुम्हारे भजनेमें आशा लगाये, हम घर छोडकर तुम्हारे चरणोंके पास आई हैं तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होओ, तुम्हारी सुन्दर मुस-कान चितवनसे बढ़े कामदेवसे तापित देह हमको अपनी दासी करके स्थान दीजिये ॥ ३८ ॥ अलकावली जिसपर छूट रहीं और कुण्डलोंकी कान्तिसे युक्त कपोल अमृतभरे ओष्ठमें हास्य सहित चितवनवाले तुम्हारे मुखको देख और भक्तोंको अभयदान देनेवाले तुम्हारे दोनो भुजदण्डोंको देखकर लक्ष्मीको एकही प्रीतिके उपजानेवाले तुम्हार वक्षस्थ-लको देख हम तुम्हारी दासी होती हैं, हे कृष्ण ! मनोहर पदवाले वडे बाँसुरीकी गीतिसे मोहित होकर त्रिलोकीमें ऐसी कौन स्त्री है जो अपने धर्मसे चलायमान न हो, त्रिलोकीमें सुन्दर इस तुम्हारे रूपको देख गौ, पक्षी, मृग यह भी रोमांचित होजाते हैं, फिर हम इस मनमोहनरूपसे मोहित होगई तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? तुम्हारा प्रकाशक शब्द सुनकर भी अपना धर्म त्यागना उचित है और तुम्हारे रूपके अनुभवसे त्याग करनेमें क्या आश्चर्य-है ? ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और आपने निश्चय व्रजके भय पीडा दूर करनेके लिय अवतार लिया है जैसे आदिपुरुष श्रीनारायण स्वर्गकी रक्षा करते हैं, इस कारण हे दीनबंधु ! हम तुम्हारी दासी हैं; हमारे कामदेवसे तप्त स्तन और शिरोंपर अपने हस्तकमलको धरो ॥ ४१ ॥

दोहा–अब तुमको यह उचित है, सुनो श्याम सुखराश।
मन हमरो अपनायकै, अब तुम करत निराश ॥

—मनुष्योंकी विनती करती हैं और गोपी तो मोक्षका रूप थीं परन्तु कामकी शांति करनेको पूर्ण ब्रह्म जो श्रीकृष्ण हैं उनसे ओष्ठ चुम्बनकरनेके लिये याचना क्यों की ?

उत्तर–गोपियोंने विचार किया कि, हम कुछ पढी नहीं और श्रीकृष्णकी जैसे विद्वान्-लोग स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, वैसी स्तुति हम भी किया चाहती हैं, परन्तु विना विद्या हम कैसे स्तोत्रोंसे स्तुति करैं ? परन्तु हमने ऐसा भी सुना है, कि, श्रीकृष्णके ओष्ठोंमें सर-स्वतीका वास है, जो हमारे सबके ओष्ठोंसे श्रीकृष्णके ओष्ठ छू जायँ तो हम सब विद्यावती होजायँगी, तब अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भगवान्की स्तुति हम भी विद्वानोंकी सदृश किया करैंगी, कामदेवकी पीडासे कृष्णके ओष्ठोंका चुम्बन करना नहीं चाहती थीं ॥

सोरठा-पाप पुण्य कह नाथ, यह तो हम जानैं नहीं।
बिकीं तुम्हारे हाथ, अधरामृतके लोभते॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित्। इसप्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंका विलाप सुन हँसकर दया प्राप्त हो, आत्माराम भी हैं, तो भी गोपियोंके संग रमण करनेलगे ॥ ४२ ॥ प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवनसे प्रफुल्लितमुख, वाली इकट्ठीहुई गोपियोंके सहित उदार जिनकी चेष्टा और उदार जिनकी हँसनि दाँतोंमें कुंदकलीकी समान कान्तिवाले श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे शोभायमान दीखनेलगे जैसे तारागण सहित चन्द्रमा शोभायमान दीखता है ॥ ४३ ॥ गोपियें जिनका गान करें और स्त्रियोंके सैकडों यूथका पालन करे ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं गान करते वैजयन्ती माला पहरे, वनको शोभायमान करते विहार करनेलगे॥४४॥शीतल वालूके बिछानेवाले यमुनाजीके पुलिनमें गोपियें सहित आकर रमण करनेलगे, वहाँ यमुनाजीकी लहरका आनन्द और कमलोंकी सुगंधसनी वायुसे अत्यन्त प्रसन्न हुए॥४५॥भुजाओंका पसारना,आलिंगन करना कर,अलक, उरू, नीवी, स्तन इनका स्पर्श करना, परिहासके वचन कहना, नखोंके चिह्न, क्रीडा, चितवन और हँसियोंसे व्रजसुन्दरियोंको भगवान् काम उद्दीपन कराय रमण करनेलगे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रसे मान जिन्होंने प्राप्त किया ऐसी गोपियें मानवती होकर पृथ्वीकी स्त्रियोंमें अपनेको अधिक मानने लगीं ॥ ४७ ॥ ब्रह्मा और महादेवके वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंको सौभाग्यके मदसे अपने आधीन देख; उनका गर्व दूर और कृपा करनेके लिये उस रासमंडलमेंही अंतर्धान होगये, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि, अभी तो कुछ रासका प्रारंभही हुआ है सेरमें पौन भी नहीं और इन्हें मान हुआ, जो ऐसे लाखों गोपियोंके पांव पडता फिरैं तो वर्षों लगजाय. फिर रास कैसे होगा? इसकारण उनका मानभंग करनेको अंतर्धान होगये, अथवा जो प्यारी थी. उनका मानघटने लगा कि, देखो हमकोभी कृष्ण सबकी बराबर देखते हैं और साधारणको मान बढा कि, प्यारी गोपी हमारे आधीन है, सो दोनोंका मान समान करनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अंतर्धान हो गये ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा-तीस माहिं सब ग्वालिनी, भई हाल बेहाल।
वन वन फिरत विरह दही, कहाँ गये नँदलाल॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित्! जिससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रासमंडलमेंसे अंतर्धान होगये, उससमय तत्कालही व्रजकी स्त्रियें तथा गोपियें, उनके देखे विना अत्यन्त व्याकुल होगईं ॥ १ ॥ जिसप्रकार हाथीके देखे विना हथिनियें व्याकुल हो जाती हैं, श्रीकृष्णचन्द्रकी चलनि, स्नेहभरी मुसकान, विलासपूर्वक चितवन,

मधुर बोलनेकी क्रीड़ाओंमें मन जिनके पकड़े गये; ऐसी गोपियें तन्मय होगईं, उनकी लीलाका अनुकरण करने लगीं ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका गमन हास्यभरी चितवन और मधुर वाणियोंके विहारपर प्यारेमें आरूढ़ हो श्रीकृष्णचन्द्रका रूप बनकर कहने लगीं कि, "मैं कृष्ण हूं, मैं कृष्ण हूं" इसप्रकार चेष्टा करने लगीं ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण गोपियें मिल श्रीकृष्णचन्द्रका ऊंचे स्वरसे गान करतीं मतवालेकी समान वन वनमें ढूँढने लगीं सब प्राणियोंमें आकाशकी तुल्य व्यापक जो श्रीकृष्णचन्द्र हैं, उनको वृक्षोंसे पूँछने लगीं ॥ ४ ॥

दोहा-हे बड़ पाकर ढाक अरु, पीपल दाडिम बीर।
देहु बताय गये कहाँ, सुन्दर श्याम शरीर ॥ १ ॥
चंपा मरुवा मालती, सुनिये टेर अशोक ।
सत्य करो निज नामको, हरो हमारे शोक ॥ २ ॥

हे पीपरके वृक्ष! हे वटके वृक्ष ! नंदका पुत्र श्रीकृष्ण प्रेमभरी चितवन और हँसी करके हमारा चित्त चुराकर ले गया है, यदि आपने देखाहो तो हमको अत्यन्त दुःखी जान कृपापूर्वक बता दो, कोई बोली, अरी ! यह क्या बतावेंगे, यह तो अश्वत्थ हैं, इनकी जड़ थोड़ीसी ऊपर रही है, सो यह ऐसी चिन्ता किया करते हैं कि कहीं ऐसी पवन न आजाय जो हमैं उखाड़कर फेंकदे, कोई बोली अरी ! यह पीपल नारायणका रूप है, नारायण भक्तोंके कार्यमें मग्न रहते हैं, सो हमैं क्या बतावेंगे ? न्यग्रोध शिवका रूप है सो यह योगमें मग्न रहते हैं, हमको क्या बतावेंगे* ॥ ५ ॥ हे कुरबक ! हे अशोक ! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे केशर ! हे चम्पे ! हे मालती ! गर्व हरनेवाली जिसकी मुसकान ऐसा बलरामका छोटा भाई (कृष्ण) कहीं तुमने देखा ? फिर रामानुजियोंसे कहा कि, कहीं बड़ेभाईका प्रसाद भाँगके चुल्लूमें तो न पीगये ? जो हमारी यह रक्षा करते फिरते, कोई बोली अशोकसे क्या पूँछती हो यह तो आप अशोच है. सो पराये शोचको क्या जाने ॥ ६ ॥ कोई वनमें कहती है कि, हे तुलसी ! कल्याणरूपिणी ! गोविंदके चरणोंकी अत्यन्त प्यारी और भौंरे जिसमें गुंजार करें, सो तुम्हारी मालाको पहरे, तुमने अपने अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको कहीं देखा होय तो बता

---

* **शंका**-वृक्षोंसे गोपियोंनें श्रीकृष्णचन्द्रजीको बूझा और वृक्ष जानते थे कि, इसी मार्ग होकर श्रीकृष्णचन्द्र गये हैं, फिर वृक्षोंनें गोपियोंसे क्यों नहीं कहा कि, हमने श्रीकृष्णको देखा अथवा नहीं देखा, चुप क्यों होगये ?

उत्तर-जैसे कृष्णके प्रेममें गोपी उन्मत्त हो रही थीं, ऐसे ही कृष्णके ध्यानमें वृक्षभी मतवाले हो रहे थे वृक्षोंको तो अपनी देहका अथवा और किसी दूसरी वस्तुका ध्यान भी नहीं था और कुछ स्मरण भी नहीं था भगवान्‌में मन लगा रहे थे, इसलिये उत्तर नहीं दिया, दूसरे वृक्षोंमें बोलनेकी शक्तिभी नहीं होती ॥

दो ॥ ७ ॥ हे मालती ! हे मल्लिके ! हे यूथिका ! हे जाति ! क्या आपने कहीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ? क्या हाथके छूनेसे तुम्हारी प्रीति उत्पन्न करते, इसी मार्गसे गये ॥ ८ ॥ हे आम ! हे चिरौंजी ! हे कटहर ! हे विजयसार ! हे कचनार ! हे जामन ! हे वेल ! हे मौलसिरी ! हे सफरी ! और हे लोटन कदम्ब ! तुम परोपकारी यमुनातीरवासी हो इसकारण हमैं बता दो कि, तुमने कहीं श्रीकृष्णचन्द्रको जाते देखा ? ॥ ९ ॥

हे कदम्ब हे अम्ब, तुम्हैं सौगंध हमारी ।
साँची कहो कहीं तुम, देखे जात मुरारी ॥

जब किसीने उत्तर न दिया तो एक गोपी बोली कि, पृथ्वीसे बूझो कि, हे पृथ्वी ! ऐसा तैंने क्या तप किया, जो केशवभगवान्का चरण स्पर्श हुवा, जिससे तुझे आनंद सहित रोमांच हुवे हैं, जिसके कारण तू सुन्दर लगती है, यह आनन्द प्यारेका चरण लगनेके कारण हुआ है अथवा वामनजीने तुझे तीन पैग नापी है, अथवा उससे पहले वाराहजी तुझे दाढ़पर रखकर ले आये हैं, तबका आनन्द है, परन्तु वह आनंद तो पुराने पड़गये, अभी प्यारेका चरणारविन्द तैंने स्पर्श किया है और तैंने उन्हें निश्चय देखा है सो हमैं बता दे ॥ १० ॥ हे सखी हरिणकी स्त्री ! अच्युत श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीको संग लिये अपने अंगोंसे तुम्हारी दृष्टिको आनंद देने यहाँ आये हैं ? क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रकी प्यारी जो अंगके संग है, इसीकारण कुचोंकी केशरसे रँगीहुई कुन्दकी मालाकी सुगंध यहाँ आती है " हे मृगनयनी ! हमारी बातका ऐसा अनादर ! कि, इस ओरसे दृष्टिभी फेर ली, फिर बोलीं कि, तुम्हारा कुछ अपराध नहीं," जब विधाता बाम होता है तो सब ठौर अपमानही अपमान होता है" ॥ ११ ॥ आगे बढ़कर वृक्षोंसे कहने लगीं कि हे वृक्षो ! प्यारीके कंधेपर भुजाको धारण किये और दूसरे हाथमें कमल लिये, यहाँ फिरते तुलसी संबंधी मदोन्मत्त भौंरे जिनके पीछे जाया करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्नेहभरी चितवनसे क्या तुम्हारी दण्डवत् यहाँ आनकर करली है ॥ १२ ॥ कोई बोली कि, हे वीर ! यह लतायें श्रीकृष्णचन्द्रसे अवश्य मिली होंगी, क्योंकि यह अपने पति वृक्षकी शाखारूप बाँहोंका आश्रय कर रही हैं इससे ज्ञात होता है कि, अवश्य हमारे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रके नख इनमें लगे हैं, इसी कारण रोमांच हो आये हैं, वृक्षोंकी समागममें ऐसे रोमांच नहीं होते हे वृक्षो ॥ १३ ॥

चौ०-हे कदंब जामन कचनारा । तुम कहिं देख्यो प्राणपियारा ॥
हे पाकर पीपर वर छौंकर । कहाँगये चितचोर मनोहर ॥
हे अनार कचनार रसाला । गये कहाँ मोहन नँदलाला ॥
हेअशोक सब शोक नशावन । मन लै इतै गये मनभावन ॥
साल तमाल वेल शुकसागर । गये कहाँके श्रीनटनागर ॥
हे मृगगण हे सघन सरोवर । तुमहिं बतावहु खोज कृष्ण कर ॥
मौन कौन कारण तुम साधी । कै तव जीभ विरह दौं दाधी ॥

दोहा-एहो श्रीफल सदा फल, सब फलके दातार।
कितै गये प्रिय सबनके, मोहन नन्दकुमार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार मतवालेकी भाँति पूँछतीं श्रीकृष्णमें तन्मय और उनके ढूँढनेसे विह्वल होकर गोपियां भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ * इसके उपरान्त कोई गोपी पूतना बनी, कोई गोपी कृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी और कोई गोपी बालक बन रोती हुई कोई शकटासुर बनी वह जो कोई गोपी है उसके पाँवकी ठोकर मारनेलगी ॥ १५ ॥ एक गोपी तृणावर्त्त दैत्य बनकर कृष्णके बालक रूपको धरे जो और गोपी हैं उसे दूसरी दैत्यरूप बन हरकर लेगई और एक गोपी घुंघरू बाँध पाँवोंको घसीटती घुटुओं चलने लगी ॥ १६ ॥ दो गोपियाँ कृष्ण बलदेव बनी और कोई गोपी गोप बनी और कोई वत्सासुर बन उसको मारनेलगी, एक गोपी बकासुर बनी, उसे और गोपीने मारदिया ॥ १७ ॥ जैसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूर चरतीहुई गायोंको बुलाते थे, उसीप्रकार एक गोपी गायोंको बुलाय श्रीकृष्णका अनुकरण करनेलगी, बाँसुरीको बजाकर क्रीडा करती थीं और गोपियें धन्यवाद देती थीं ॥ ॥ १८ ॥ एक गोपी गापीके कंधेपर हाथ धरकर कहनेलगी कि, मेरी मनोहर नृत्यलीलाको तुम देखो,इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जाकर उनका मन लगगया ॥ १९ ॥ कोई गोपी पवन वर्षासे भय मतकरो "मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा" इसप्रकार कह एक हाथसे यत्नकर जैसे गोवर्द्धन पर्वत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उठाया था, उसी प्रकार अपनी ओढनीको ऊंचा उठालिया ॥ २० ॥ हे नृप ! एक गोपी और गोपीके ऊपर चढ पाँव शिरऊपर धर एक गोपीसे कहनेलगी कि, हे दुष्टसर्प ! तू यहाँसे निकलजा, क्योंकि मैं दुष्टोंका दण्ड देनेवाला उत्पन्न हुआहूं ॥ २१ ॥ उससमय एक गोपी बोली कि, हे गोपियो ! इस वनमें अत्यन्त भयानक अग्नि लगी है, इसे देखो और शीघ्र नेत्र बंद करलो मैं इस अग्निको बुझाऊंगा, तथा अनायास देखे बिना कल्याण करूंगा ॥ २२ ॥ कोई एक दुर्बल अंगकी गोपी मालासे ऊखलमें बाँध दी; तब वह डरकर सुन्दरनेत्रवाले मुखको ढक डरनेका अनुकरण करनेलगी, जब लीला करते करते रासलीला करनेलगीं, तब ज्योंही श्रीकृ

---

* **दृष्टान्त**-एक बडा गवैया था, सो वह अपनी खुसीसे गाता और किसीके कहनेसे नहीं गाता था एक भले आदमीका मन उसका गाना सुननेको चाहा, तो उसने क्या चतुराई करी कि, मैं उसीकी तानमें गाऊं क्योंकि मुझसे ठीक बनैगी नहीं,इस कारण यह अपनी तान सुधारनेको आपही गावैगा, सो गाने लगा तो तान वैसी न आई, तब गवैयेने अपने मनमें कहा कि, यह मेरी तान गा रहा है परन्तु बिगडी जाती है, तब आप भी गानेलगा और उस्से कहा कि ऐसे गावो, इसी प्रकार गोपियोंने विचारा कि, हम श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला करैं सो हमसे ठीक बनैगी तो हैही नहीं, इसकारण उसके बनानेको श्रीकृष्ण स्वयंही आजायँगे ॥

ष्णचन्द्रके अंतर्द्धान होनेकी लीला आई, तभी श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरणकर व्याकुलहृदय हो ढूँढने लगीं ॥ २३ ॥ इसप्रकार वृन्दावनकी लता और वृक्षोंसे पूँछती पूँछती आगे वनमें जाकर परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका खोज देखा ॥ २४ ॥ ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश आदि इन चिह्नोंसे महात्मा नंदजाके बेटेका यह चरण निश्चय है, इस प्रकार खोज लगाता है ॥ २५ ॥

रेतबीच यह चरण चिह्न कैसे झमके हैं।
तामें अंकुश ध्वजा कमल रेखा चमके हैं ॥

इसप्रकार अबला गोपी चरणोंके खोजसे श्रीकृष्णचन्द्रके जानेका मार्ग ढूँढने लगीं, आगे जाय श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके खोजमें प्यारीके चरणोंका खोज देख दुःखी हो यह कहने लगीं॥ २६॥ कि, श्रीकृष्णचन्द्रके संग यह कौन गई है, किसके चरण हैं जिसने श्रीकृष्णके कंधेपर अपना हाथ धराहै जिसप्रकार हाथी हाथिनियोंके ऊपर सूंडधर लेताहै ॥ २७ ॥ निश्चय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका इसने आराधन किया है जिसकारण हम सबको त्याग प्रसन्न हो श्रीगोविंद इसे एकान्तमें लेगये ॥ २८ ॥ हे सखियो ! यह गोविंदकी चरण रेणुको ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी, संपूर्ण अपने पाप दूर करनेके लिये माथेपर चढाते हैं यह बडी धन्य है, जो इसे शिरपर धारण करोगी तो भगवान् मिलजायँगे ॥ २९ ॥ उस प्यारीके पाँवके खोज हमको अत्यन्त व्याकुल करते हैं देखो ! हम सबको त्याग अकेली एकान्तमें लेजाय श्रीकृष्णचन्द्रका अधरामृत भोग करती है ॥ ३० ॥ आगे बढकर बोली कि यहाँ तो उसके चरण नहीं दिखाई देते, परन्तु इसका कारण यह विदित होताहै कि, जब तृणके अंकुरोंसे उसका कोमल चरणतल पीडित होगया है, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी प्रियतमाको कंधेपर चढाया ॥ ३१ ॥ (हे वीर ! जिससमय श्रीकृष्णने प्यारीको उठाया, तो उन कामके रसिया श्रीकृष्णचन्द्रके चरण पृथ्वीमें धसगये. देखो ! यह फूलोंके लिये अवश्य सखीका उठायाहै) हे सखी ! यह देखो ! प्यारेने प्यारीके कारण फूल तोडे हैं, इस स्थानमें चरणोंको उचकाकर खडे होनेसे थोडा चिह्न दिखाई देताहै ॥ ३२ ॥ कामासक्त श्रीकृष्णचन्द्रने कामिनीके इस स्थानमें केश बांध कर सुधारे हैं, फिर प्यारीको बैठाय केश गुहे, जो प्यारा है सो इस स्थानमें निश्चय बैठाहोगा ॥ ३३ ॥

कवित्त—विरहानल डाहीं सब ठाढीसी गिरी हैं भूमि, गाढी पीर बाढी निज हाथ धुने माथही। मोहनके हेतसे अचेत है पुकार उठीं, अब सुधि लेत ना हमारी प्राणनाथही ॥ कैसी गति कीन दीन सुखद प्रवीण कान्ह, कहैं बलदेव मीन जैसे विन पाथही। दुःसह समोई दोउ दीननते खोई अति, विरहमें मोई गोपी रोई एक साथही ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र आत्मरत आत्माराम स्त्रियोंके विलासोंसे अखण्डित हैं. परन्तु तोभी उन्होंने कामी मनुष्योंकी दीनता और स्त्रियोंका दुष्टपन दिखलानेके लिये उनके साथ रमण किया ॥ ३४ ॥ इसप्रकार वह सब

गोपियें अचेत हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ढूँढनेका विचार करने लगीं, अब श्रीकृष्णचन्द्र और स्त्रियोंको वनमें त्याग जिस स्त्रीको संग लेगयेथे ॥ ३५ ॥ वह गोपी सब स्त्रियोंमें अपने आपको श्रेष्ठ मानने लगी कि, देखो चाहना करनेवाली गोपियोंको छोड श्रीकृष्णचंद्र मेरे संग सेवन करते हैं ॥ ३६॥ इसके उपरान्त वह गोपी गर्वित होकर केशव श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगी कि, मुझपै चला नहीं जाता, जहाँ तुम्हारा मनहो वहाँ लेचलो, तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, प्यारी ! दश पैग और चलो किशोरीजी बोली, हाँजी जैसे तुम चार पहर गायोंके पीछे फिरते हो उसी प्रकार सबको जानते हो, हम तो कभी महलके बाहर भी नहीं निकलीं, सो कैसे चलूं ॥ ३७ ॥ इसप्रकार जब प्यारीने कहा तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥

दोहा-श्रीराधे चढ लीजिये, मेरे काँधे आय।
अपने काँधेपर प्रिये, लेचलुँ तोहिं चढाय ॥

यह सुनकर ज्योंही राधिका चढ़ने लगी कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अंतर्धान होगये, तब तो यह अत्यन्त घबराई ॥ ३८ ॥

दोहा-हाहा हरि कितको गये, मोहिं अकेली छोड़ ।
हाय पिया केहि बात पर, गये मुझसे मुख मोड़॥

और कहनेलगीं कि, हा नाथ ! हे रमणकरानेवाले ! हे महाभुज ! तुम कहाँ हो ? कहाँ हो ? हे सखे ! तुम्हारी ऐसी कृपण मैं हूं, उसको समीप आनकर अपना दर्शन दो ॥ ३९ ॥

तुम विन मेरा पिया नहीं कोई हितकारी।
कहाँ गये मुझ छोड़ अकेली कुञ्जविहारी ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उन सब इकट्ठी गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दूरसे मार्ग ढूँढ़ते ढूँढ़ते प्यारेके वियोगमें मोहित और अति दुःखित इस स्त्रीको देखा ॥ ॥ ४० ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रथम मान मिला गर्व होनेसे अपमान मिला, यह बात उस स्त्रीके मुखसे श्रवण कर सब गोपियाँ बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुईं ॥ ४१ ॥ और निशानाथ चन्द्रमाकी चाँदनीका प्रकाश जहाँतक तो गोपियोंने वनमें ढूँढा, आगे वृक्षोंकी छायाका अँधेरा देखकर लौट आईं ॥ ४२ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये कृष्ण संबंधी बातें और उन्हींकी लीला करतीं तन्मय हो उन्हींके गुण गानकर रहींथीं कि, कृष्णवियोगमें उन्हें अपने घरकी भी सुधि न रही ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त सब लौट यमुनाजीके पुलिनमें आय भगवान्में जिनकी भावना लग रही उनके आनेका पैंड़ा देख सम्पूर्ण गोपियाँ मिलकर श्रीकृष्णचन्द्रके गुण गानेलगीं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दोहा-इकतिस माहिं निराश हो, बहुरि यमुन तट आय।
करत प्रार्थना प्रेम सों, प्रगट होहु यदुराय॥

इसके उपरान्त सम्पूर्ण गोपी कहने लगीं कि, प्रीतम! तुम्हारे जन्म लेनेसे यह व्रज अत्यन्त शोभायमान् लगता है और आपके प्रगट होनेके कारण यहां लक्ष्मीजी सदा वास करती हैं, इस प्रकार सब व्रजमें आनन्द होरहा है. हे प्यारे! तुम्हारेही लिये प्राण धारण किये तुम्हारी दासियाँ तुम्हें ढूँढ़ती फिरती हैं ॥ १ ॥ हे सुरतनाथ! शरदृतुके सरोवरोंमें भलीप्रकार उपजे श्रेष्ठ कमलके भीतरकी शोभाको चुरानेवाली तुम्हारी दृष्टिके विना मोलकी हम दासी हैं सो उनको तुम क्यों मारते हो, यदि तुम कहो कि,हम क्या मारते! तो क्या शस्त्रहांसे मारते हैं, दृष्टिसे नहीं मारते? क्या इसीसे तुमने दृष्टिसे हमारे प्राण हर लिये हैं,उनके देनेके कारण शीघ्र हमें दर्शन दो॥२॥* इसीप्रकार हमारे नेत्रचोर तेरी रूप माधुरीकी लूटमें पड़े हैं, पैर आपही बँध गये, कपोलोंको देख फिर उससे भी सुन्दर नासिकामें लगे. फिर अधर चिबुकमें गये, सब अंग एकसे एक सुन्दर हैं, हम भलीप्रकार देखने भी न पाईं, अब तो हमारे नेत्र तुम्हारे रूपमें बँध गये हैं, इस कारण छूट नहीं सक्ते. हे लाल! आपने वारम्वार मृत्युसे रक्षा करी अब क्यों कामदेवको भेजकर दृष्टिसे मारते हो क्योंकि विषके जलसे मृत्यु थी, उससे रक्षा करी, फिर अघासुरसे बचाया इन्द्रने महाघोर वर्षा और पवन चलाया उससे रक्षा की, बिजलीकी आग तथा वृषासुरसे बचाया, मयके पुत्र व्योमासुरसे और समस्त भयसे बचाया. फिर अब किसलिये हमको छोड़ते हो ॥ ३ ॥ तुम यशोदाके पुत्र नहीं हो क्योंकि यशोदाके पुत्र होते तो 'मापर पूत पितापर घोड़ा। बहुत नहीं तो थोड़ाथोड़ा' कुछ तो अपनी जातिका पक्ष आता सब देहधारियोंकी बुद्धिके साक्षी हो, ब्रह्माने विश्व रचनेको जब प्रार्थना करी तब हे कृष्ण! तुम यादवोंके कुलमें प्रगट हुए और जब ब्रह्माजीने आपको रक्षा करनेके लिये कहा तब आपने यह कह दिया होगा कि, सबकी तो रक्षा करनी और गोपियोंको जला जलाकर मारना सो ब्रह्मा तो ब्राह्मण है इसकारण वह ऐसा अधर्म क्यों बतावेगा? ॥ ४ ॥ हे यादवश्रेष्ठ कान्त! संसारके भयसे तुम्हारे चरणसेवन करनेवाले जो पुरुष हैं, उनको अभयदाता कामनाओंके देनेवाले और लक्ष्मीका हाथ पकडनेवाला जो तुम्हारा हस्तकमल है, सो हमारे माथेपर धरो ॥ ५ ॥ हे सखे! हे वीर! हे व्रजवासियोंका दुःख हरनेवाले! अपने जनोंका गर्व दूर करनेवाली तुम्हारी मुसकानकी हम दासी हैं, उनका

दृष्टान्त-एक चोर किसी साहूकारके घरमें चोरी करनेको घुसा जो जाकर देखा तो रुपयोंके ढेर लग रहे हैं तब इसने रुपयोंकी गठरी बांधी, जब दूसरे कोठेमें अशर्फी देखी तो, रुपयोंको छोड़ अशरफियोंकी गांठ बांधी, तीसरेमें अशरफी छोड़ मोती बाँधे, चौथेमें हीरे जवाहर देख चकित होगया, विचारने लगा अशरफी लूं वा मोती? वा जवाहर यह विचारतेहीमें प्रातःकाल होगया, मुस्कें बँध गईं ॥

सेवन करो क्योंकि पहली स्त्रियाँ हम हैं उनको अपना मुखकमल दिखाओ ॥ ६ ॥ प्रणत अर्थात् नम्र देहधारियोंके पापोंको दूर करनेवाले गायोंके पीछे पीछे चलनेवाले शोभाके स्थान, कालीके फणपर नृत्य करनेवाले आपके चरणकमल हैं, उनको कृपापूर्वक हमारे कुचोंपर धरकर कामकी व्यथा दूर करो * ॥ ७ ॥ हे कमलदललोचन ! हे वीर ! सुन्दरवाक्यवाली गम्भीर बाणीसे मोहित हुई हम दासियोंको अधरामृत पिलाकर जीवदान दो ॥ ८ ॥ आपके विरहमें हमारे प्राण जाचुके हैं परन्तु तुम्हारे कथामृतको पान करते-हुए सुकृती जनोंने हमैं बचालिया, क्योंकि संसारमें तृप्त पुरुषको जिलानेवाले ब्रह्मादिक जिसकी स्तुति करैं, ऐसे पापोंको दूर करनेवाले मंगलरूप शान्त तुम्हारी कथारूप अमृतको जो पुरुष पृथ्वीमें कहते हैं वह बड़े दाता हैं, जब तुम्हारी कथा कहनेवाले धन्य हैं, तो जो तुम्हारा दर्शन करते हैं, उनका तो कहनाही क्या है ? इससे अब दया करके दर्शन दो ॥ ९ ॥ हे सौम्य ! हे कपटी ! तेरा मुसकानसहित मुख, प्रेमभरी चितवन और ध्यानमें मंगलरूप तुम्हारा विहार, हृदयको स्पर्श करनेवाली एकान्तकी बातैं हमारे मनको क्षोभ करती हैं ॥ १० ॥ हे नाथ ! जिससमय गौ चरानेको आप ब्रजसे जाते हो, तब तुम्हारे कमलके तुल्य सुन्दर चरण काँकरी, तृण, अंकुर लगकर कष्ट पाते हैं, इसलिये हे कन्त ! हमारा मन चंचल होता है, सो इसप्रकार प्रेम रखनेवाली दासियोंपरभी आप दया नहीं करते ? ॥ ११ ॥ संध्यासमय नील केशसे ढके गोरजसे धूसरित कमलके समान मुखको धारणकर बेर बेर दिखाके, हे वीर ! हमारे मनमें कामदेवको उत्पन्न करते हो, परन्तु संग नहीं देते यही तुम्हारा निश्चय कपट है ॥ १२ ॥ नम्र देहधारियोंको कामनाओंके देनेवाले, जिनका ब्रह्माजीने पूजन किया, पृथ्वीको शोभा-

---

* **शंका**–स्त्रियोंके स्तनोंको पुरुष हाथसे स्पर्श करता है तो स्त्रीको सुख होता है, कुछ पुरुषके चरणस्पर्शसे सुख नहीं होता ? तब गोपियोंने कृष्णके चरण अपने स्तनपर स्पर्श होनेकी क्यों याचना की ? महाराज आप अपने चरण हमारे सबके स्तनोंपर अर्पण करो जो कोई कहै गोपी प्रेममें आतुर थी उनको पदका और हाथका स्मरण न रहा ? इसलिये चरणकी याचना की थीं, तो फिर कृष्णके दूसरे अंगकी याचना क्यों नहीं की? अकेले चरणोंहीकी सब देहमें याचना क्यों की ?

उत्तर–गोपियोंने सुना था और देखा भी था कि, श्रीकृष्णके चरणोंके स्पर्शसे कालीनागका जहर नष्ट होगया, कालीनाग निर्विष होगया जो इससे हमारे सबके स्तनोंपर श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श हो जाय तो हम सबके कामदेवका नाश हो जाय. क्योंकि कालीके गरलसे काम बड़ा नहीं है. कामदेवका नाश होनेसे सब संसारकी बाधासे छूट जाँयगी इसलिये गोपियोंने श्रीकृष्णके चरणोंको अपने स्तनोंसे स्पर्श करनेकी याचना की थी, क्योंकि गोपी तो वेदोंकी ऋचा हैं ॥

यमान करनेवाले आपत्तिमें घ्यानसेही पीडा दूर करनेवाले, सेवामें सुखरूप, ऐसे अपने चरणकमलोंको, हे कामकी पीडाका दूर करनेवाले ! हमारे कुचोंपर धरो ॥ १३ ॥ हे वीर ! कामको बढानेवाला, शोकको दूर करनेवाला, स्वरभरी बजतीहुई बाँसुरी भलेप्रकार चुम्बित, मनुष्योंके चक्रवर्ती आदि सुखका भुलानेवाला सुखदायक तुम्हारा अधरामृतहै सो हमारे रोग शान्त करनेको दीजिये. हे कृष्ण ! यह औषधि मिलनेसे हम भली हो जावेंगी और यदि जो तुम दवाका मोल माँगो तो दमडीकी बाँसकी वंशी, जिसे दिन रात मुखपर धरे रहते हो, वह तुम्हें क्या मोल देती है ? और जो तुम कहो कि, तुम-कुपथ्य करो हो कुपथ्यको दवा न देनी चाहिये तुम अभी गैय्या, मैय्या, भाई और पत्या-दिकोंकी वासनाका कुपथ्य करती हो सो प्यारे ! तुम्हारी औषधी यह सब दूर कर देगी, तुम हमें पिलाओ तो सही ॥ १४ ॥ जब तुम दिनके समय बनमें जाते हो तब तुम्हारे देखे विना आधाक्षण युगकी समान व्यतीत होता है, यह तो बिना देखेका दुःख कहा और जब घूमघुमारे केशोंसे युक्त तुम्हारे मुखकमलका दर्शन करती हैं, उससमय पल-कोंका बनानेवाला ब्रह्मा हमें मूर्ख विदित होता है, क्योंकि पलकोंसे दर्शनमें बाधा होती है, यह दर्शनमें दुःख है और छःवर्षकी हमारी ननँद जब अपनी मासे जाकर कहती है कि, देखरी मा ! भावी उस नंदके पुत्रको देखने गई है, तब सास त्रास दिखाती है,दूसरे ब्रह्मा वैर पडा है, अपनी आठ आँखै बनाई, हमारी दोही और उसपरभी पलक लगा दिये हैं ॥ १५ ॥ पति, पुत्र और वंशके बंधु बांधवोंका त्याग, तुम्हारे गीतसे मोहित हम तुम्हारे पास आई थीं और गानेकी गतोंको और हमारे आगमनको जाननेवाले,हे अच्युत! हम तुम्हारे निकट आई हैं, सो हे कपटी ! रात्रिमें आई स्त्रियोंको तुम बिना ऐसा कौन है जो त्यागेगा ? ॥१६ ॥ कामदेवका प्रगट करनेवाला एकान्तका संकेत देख और हँसी सहित मुख तथा प्रेमकी चितवन देख और लक्ष्मीके रहनेका स्थान तुम्हारा वक्षस्थल देखकर हमको बडी चाहना हुई है, एवं हमारा मन भी मोहित होगया है ॥ १७ ॥ अंग अर्थात् हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारा प्रगट होना व्रजवासी और वनवासियोंके दुःखका दूर करनेवाला है तथा अतिशय करके विश्वका मंगलरूप है, इसकारण तुम्हारे दर्शन विना व्याकुल हमें अपने भक्तजनोंके मनकी पीडा दूर करनेवाली गुप्त औषधि दो, कृपणता मत करो, यह हम जानती हैं कि, इस औषधिको तुमहीं जानते हो ॥ १८ ॥

दोहा-श्याम निठुरता छोडिके, दर्शन दीजे आन।
तुम बिन अब सब खखिनके, निकसन चाहत प्रान ॥

कठोर स्तनोंपर तुम्हारे चरणकमलोंको हम भयसे, धीरे धीरे धारण करती हैं, क्योंकि कहीं कोमल चरणोंमें गडे न पडजायँ और तुम उन चरणोंको वनमें उठा उठाकर फिरते हो, क्या चरणोंमें काँटे कंकडी लगकर खेद नहीं होता ? जब यह विचार करती हैं, तो तुम्हें अपना जीवनधन माननेवाली हमारी बुद्धि मोहित होजातीहै, परन्तु अब

पुकारकर इतना तो कह दो कि, अरी गोपियो ! तुम कहां हो मैं तो पुलिनमें लताआके नीचे सुखपूर्वक बैठा हूँ ॥ १९ ॥

दोहा–तजतीहैं सब प्राणको, तुम बिन ब्रजकी बाल ।
दर्शन आकर दीजिये, वेग हमैं नँदलाल ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कन्धे रासक्रीडायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दोहा–बत्तिस विरह वियोगते, द्रवीभूत भयो हीय ।
प्रगट भये तुरतहि हरी, अति प्रसन्न भईं तीय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! इसप्रकार गान और चित्रविचित्र विलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी इच्छासे वह गोपियें बडे स्वरसे रोदन करने लगीं ॥ १ ॥ उसी समय मुसकानयुक्त मुखकमल, पीताम्बर धारण किये वनमाला पहरे साक्षात् कामदेवका मन मोहित करनेवाले दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके बीचमें प्रगट होकर बोले ॥ २ ॥

दोहा–मेरे कारण जनि तजो, प्यारी अपनी देह ।
देखलियो सब सखिनको, सुंदर प्रेम सनेह ॥

कवित्त–राखैंगी न प्राण यह जानिकै कुमार कान्ह, प्रगटे सुजान बीच तानबान मारे हैं । लखतहि गोपिनके वृन्दमें आनंद बढो, मंद मुसकात ब्रजचंद यों निहारे हैं ॥ भनैं बलदेव यह वानी सुधा सानी सुनो, सकल सयानी तुम सबै दुःख भारेहैं। गले माल डारे मुख पीतपट धारे पिया, कहत पुकारे हम ऋणियाँ तुम्हारे हैं ॥ १॥

तब प्रीतिपूर्वक प्रसन्न और प्रफुल्लित संपूर्ण अबलायें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया देखकर इसप्रकार उठकर खडी होगईं कि, जैसे देहमें प्राण आनेसे हाथ पाँव एक संग उठते हैं ॥ ३ ॥ और किसी गोपीने तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका बडे आनन्दपूर्वक हस्त कमल पकडलिया और कोई चन्दनसे शोभायमान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको कंधेपरही धरने लगीं ॥ ४ ॥ “ काचित् करांबुज” यहां शुकदेवजीने “काचित्” कहा, नाम नहीं लिया इसका कारण यह है कि, नाम श्रीशुकदेवजीका परम इष्ट है, द्वै अक्षर मंत्ररूप है, सो जप मंत्रका प्रकाश करना भला नहीं, अथवा भगवान् महादेवजीने शुकदेवजीसे तत्त्वज्ञान कहा, परन्तु नामके दो अक्षर प्रकाश नहीं किये, रा रा कहा करते हैं, दूसरा अक्षर नहीं कहते, कदाचित् कोई चुराकर लेजाय ? एकबार तो तत्त्वज्ञान खोया जिसकी कथा वर्णन करते हैं, एकसमय नारदजीने कैलासपर आनकर विचारा कि, यहाँ कुछ आग लगानी चाहिये, सो पार्वतीजीसे कहा, तुम्हैं महादेवजी कुछ प्यार भी करते हैं ? पार्वती बोली कि, कुछ अंतर नहीं रखते, तब नारदजी बोले तो तुम यह पूँछियो कि, आपके गलेमें

मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है, यह कह नारदजी चले गये, जब वर्ष दिन पीछे महादेवजी समाधिसे जागे तो पार्वती बोलीं कि, महाराज! यह मुण्डोंकी माला क्या वस्तु है? बताओ, यह सुनकर शिवजी बोले कि, जब तुम्हारा शरीर छूट जाता है, तब धारण कर लेताहूं, पार्वती बोलीं मेरे तो सैकडों जन्म हुए और तुमने ऐसी क्या अमरोती खाई है, जो तुम अमर हो? शिवजीने अपने मनमें कहा कि, किसीने भली आग लगाई, फिर बोले मुझे तत्त्वज्ञान है, पार्वतीने कहा, वह तत्त्वज्ञान मुझे बताओ. तब शिवजीने स्नेह हटाय एक चुटकी बजाई कि, उसस्थानके सब पक्षी उडगये. फिर एक चुटकी बजाई बच्चोंके पंख जमिआये, फिर बजाई, सब बच्चे उडा दिये. उसी समय शुकीके गर्भमें शुकदेवजी आये थे, सो एक चुटकीसे बाहर आये, दूसरीसे अंडा फूटा और तीसरीसे पर निकले, सो एक वृक्षकी डालीपर जा बैठे, तब महादेवजी पार्वतीसे तत्त्वज्ञान कहने लगे, पार्वती हुंकारा देती सोगई, यह तोता हूं हूं करने लगा और महादेवजी ब्रह्मानंदमें मग्न, नेत्र मीचे संपूर्ण कथा कहगये, जब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती सोगई और हूं हूं तोतेने करी, यह जान झट उसके मारनेको त्रिशूल चलाया और पीछे दौडे, तोता भाजा, सो व्यासजीकी स्त्री कोठेपर खड़ी थी उसने जो जँभाई ली, सो शुकदेवजी उसके उदरमें प्रवेश करगये, शिवजीने व्यासजीसे कहा कि, तुम्हारी स्त्रीमें हमारा चोर है, उसे निकालो, व्यासजी बोले कि, आपके पास क्या? जो इसने चुराया है, शिवजी बोले कि, तत्त्वज्ञान जिससे अमर होते हैं, वह इसने चुराया है, व्यासजी बोले कि इसीसे आप भोलानाथ कहलाते हो. भला विचारो तो सही कि. जिसने तत्त्वज्ञान सुना वह त्रिशूलसे कैसे मरेगा? महादेवजी हँसकर कैलासको चलेगये और उसीदिनसे रा रा कहते हैं, पूरा नाम नहीं लेते शुकदेवजी संपूर्णही गुप्त रखते हैं, इसी कारण राधिकाका कहीं नाम नहीं लिया" और किसी कृश अंगवाली गोपीने श्रीकृष्णचन्द्रके मुखमेंसे तांबूलका बीडा अपने हाथमेंसे लेलिया और कामसे कम्पायमान कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमल अपने स्तनोंपर धरनेलगी ॥ ५ ॥ एक गोपी अपनी भौहैं चढाय कोपसे आवेशसे विकल हो अपने ओष्ठोंको दाँतोंसे दाब कटाक्षरूपी बाणोंसे मारतीसी देखनेलगी ॥ ६ ॥ हे राजन्! और गोपियें निमेषरहित दृष्टिसे श्रीकृष्णचन्द्रका मुखकलम भले प्रकार देखती भी है, परन्तु तौ भी बेर बेर देखकर तृप्त नहीं हुई, जिस प्रकार साधुपुरुष श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेसे तृप्त नहीं होते ॥ ७ ॥ और कोई गोपी नेत्रोंके छिद्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयमें लेजाय नेत्रमूंद उन्हें आलिंगनकर रोमांचित शरीर हो योगी जनोंके समान महान् आनन्दमें मग्न होगई ॥ ॥ ८ ॥ और केशवमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करके आनन्दसे सुखी हो संपूर्ण गोपियोंने विरहके तापको त्यागदिया, जैसे ईश्वरको पाकर मुमुक्षुजन ताप छोड देते हैं, अथवा सुषुप्ति अवस्थाके साक्षीको पीकर जाग्रतरूप अवस्थावान् जीव जैसे तापको छोडदेतेहैं ॥ ९ ॥ हे परीक्षित्! उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन दुःखरहित

गोपियोंके मध्यमें इसप्रकार शोभायमान् लगनेलगे जैसे परमात्मा सब शक्तियोंसे और उपासक पुरुष ज्ञान बल वीर्यादि जो शक्ति हैं, उनसे शोभायमान लगता है ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन गोपियोंको संग ले फूलेहुए कुंद और मंदारकी सुगंधयुक्त पवनके कारण जहां भौंरे गुंजार कर रहे थे, ऐसे यमुनाके पुलिनमें सबको लेगये ॥ ११ ॥ कैसे पुलिन हैं कि, शरदृतुके चन्द्रमाकी किरणोंके समूहसे रात्रिका अंधकार जिनमेंसे दूर होगया है और यमुनाजीका भी उसीके समान तरंगोंसे कोमल बालूके बिछौने जिसमें बिछरहे हैं ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण आनंदपूर्वक हृदयके रोग दूरकर गोपियोंने अपने मनोरथोंके अंतको प्राप्तकिया अर्थात् उनके मनोरथ पूर्ण हुए, जैसे ज्ञानकाण्डमें श्रुति परमेश्वरको देख आनंदसे परिपूर्ण हो कामके संपूर्ण बंधनोंका त्याग करतीहै और कुचोंकी केशरयुक्त अपनी ओढनियोंको उतार उतारकर गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रके बैठनेकी तकियां बनाने लगीं * ॥ १३ ॥ योगेश्वरोंके भीतर जिनका कल्पित आसन है, वह ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तीन लोककी शोभाका एकही स्थान क्या तीनों लोककी शोभा जिसमें आरही उसी प्रकार रूप धारण कर उस आसन पर बैठ गोपियोंसे पूजित हो, उनकी सभामें शोभायमान लगने लगे ॥ १४ ॥ कामदेवके बढानेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी हास लीलापूर्वक चितवनसे चलायमान भ्रुकुटी से सत्कारकर गोदमें धरेहुए श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंको हाथोंसे दाबती और स्तुति करतीं कुछेक क्रोधसे गोपियां बोलीं ॥ १५ ॥ सब गोपी बोलीं कि, महाराज! एक पुरुष तो भजतेहुएको भजता है, वह कौन है, और एक ऐसे हैं कि, जो नहीं भजता उसको भजते हैं, वह कौन है? एक भजतोंको और न भजतोंको दोनोंको नहीं भजते हैं, वह कौन हैं? सो हे कृष्ण! यह हमारे आगे भली प्रकार समझाकर कहो ॥ १६ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि. हे सखियो! जो पुरुष परस्पर भजते हैं अर्थात् जितना वह उनको चाहैं, उतनाही वह उनको चाहैं, वह पुरुष तो अपस्वार्थी हैं, उस भजनमें स्नेह. सुख, धर्म कुछ भी नहीं है, वह तो केवल अपनाही भजन है ॥ १७ ॥ और जो नहीं भजतोंको भजते हैं, वह पुरुष दो प्रकारके हैं, एक तो करुणावान् दूसरे स्नेही जैसे माता पिताको पुत्र नहीं चाहता है, परन्तु वह उसके ऊपर कृपा करते हैं और इस भजनमें निर्दोष धर्म

---

*शंका-जिन गोपियोंके मित्र श्रीकृष्ण सो सब गोपी अपने पहिरेहुए वस्त्रोंका आसन श्रीकृष्णके बैठनेको क्यों देती थीं? क्या गोपी दरिद्रिनी थीं? नया वस्त्र मँगाकर भगवान्‌के बैठनेको आसन क्यों नहीं दिया?

उत्तर-जो प्राणी अपने काममें उन्मत्त होजाता है, उसको कुछ नहीं जानपडता कि यह काम अच्छा है कि यह काम बुरा है; इसीप्रकारसे कृष्णके चरणोंमें गोपी उन्मत्त होरही थीं, उनको ज्ञात न हुवा कि, वस्त्र हमारा पहिरा हुवाहै वा विना पहिरा है इसालिये गोपी भगवान्‌को अपने पहिरे वस्त्रका बैठनेको आसन देने लगीं ॥

है, हे सुमध्यमाओ ! दयालु होकर भजनेमें सत्य धर्म है और स्नेहसे भजनेमें सत्य प्रेम है ॥ १८ ॥ " पर भजन विश्वाससे ही करना योग्य है " इसमें एक दृष्टान्त * कहतेहैं कि विश्वासमें ही भगवान् हैं और कहीं नहीं, और जो पुरुष भजतोंहींको नहीं भजते तो अभजतोंको कहाँसे भजेंगे, वे चार प्रकारके हैं, एक तो आत्मामेंही रमण कररहे हैं और एक पूर्णमनोरथ हैं जिनको किसी बातकी चाहना नहीं है, और एक अकृतज्ञ हैं जो उपकारको नहीं समझते, और एक गुरुद्रोही हैं अर्थात् जो उपकार करे उसीस द्रोह करते हैं ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे सखियो ! मैं इनमेंसे कोई नहीं, केवल दयालु और स्नेही हूं. जो कोई प्राणी मेरा भजन करता है, उसको अपनी ओर ध्यान लगानेके लिये मैं नहीं भजता हूं जैसे दरिद्री पुरुषको धन मिले और वह धन जाता रहै तब वह उसीकी चिन्ताके मारे भूख प्यास नहीं जाचता ॥ २० ॥ हे बालाओ ! मेरे लियेही लोकमर्यादा वेदमर्यादा पति पुत्रादिक तुमने त्यागदिये, सो तुम्हारी चित्तवृत्ति लगानेके लिये, तुमको देखनेके लिये नहीं आया, तुम्हारे पासही छिपरहा था, कुछ दूर नहीं गया था. हे प्रियाओ ! यह कृष्ण बुरा है, ऐसे मुझमें दोष मत लगाओ ॥ २१ ॥

दोहा-प्रीति परीक्षा लई है, करो न जियमें रोष।
अपने मनसे त्यागदो, सखी हमारो दोष॥

तुम निर्दूषित तुम्हारे संग उपकारका बदला मुझपर यदि देवताओंकी समान अवस्था हो, तो भी नहीं होसक्ता, जो छोड़ी न जायँ ऐसी घररूप बेड़ियोंको काटकर तुमने मेरी सेवा की, इसलिये तुम्हीं कहदो कि, कृष्ण हमारा ऋणिया नहीं है, तो मेरा छुटकारा है, मुझपै तुम्हारे उपकारका बदला नहीं होसक्ता, "कृष्णने ऋणिया कहा" इसका कारण

दृष्टान्त—एक मनुष्य किसी कार्यवश भगवान्का पूजन करता था, परन्तु मनमें वहाँ विचारता कि, यह पत्थरकी मूर्ति हमारा कार्य कैसे साधन कर सकेगी ? इसप्रकार चलविश्वास होनेसे उसका कार्य नहीं हुआ, तब किसीने कहा कि, तू भगवती दुर्गा देवी का पूजन कर तुरन्त काम सिद्ध होगा,वह मनुष्य ऊपरके आलेमें श्री ठाकुरजीकी मूर्तिरख नीचे दुर्गादेवीका पूजन करनेलगा, एकदिन धूप देतीसमय मनमें विचारा कि, सीधी ऊपरहीको जाती है सो नारायणको पहुँचती है इसकारण दुर्गादेवीको पीछे मिलनेसे वह प्रसन्न नहीं होती, इसका यत्न करूं, यह विचार रुई ठूँड भगवत्मूर्तिकी नाकमें भरनेलगा जिससे कि, सुगंध न जाय, भगवान् तत्कालही मूर्तिमें प्रसन्नहोकर और हँसकर बोले कि, भाई रुई मत ठूंस-वर मांग-क्या चाहिये ? वह बोला कि, महाराज ! मुझे क्या खबर थी कि, रुई ठूंसनेसे प्रसन्न होते हैं, यह विधि किसी पद्धतीमें भी नहीं लिखी, भगवान् बोले पहले तुझे विश्वास नहीं था, मूर्तिको पाषाण अर्थात् पत्थर जानता था, आज वह बात जाती रही आज ईश्वरही जाना, नहीं तो पत्थरमें सूंघनेकी शक्ति कहां ? आज तेरा विश्वास ईश्वररूपका था ॥

यह है-किसीके एक मित्र दरिद्री होगये, सो वह महादुःखी हो अपने करोड़पति मित्रके पास गये, उसने उन्हें देखतेही हजामत बनवाय अच्छी पोशाक और मोती गहने पहराय लाख रुपये दे बिदा किया, अब जो यह दरिद्री अपने मित्रका बदला उतारना चाहै तो जब वह करोड़पति दरिद्री हो तो बदला दियाजाय इससे यह बात कुछ नहीं जिसमें मित्रका सत्यानाश होजाय, इस कारण ऋणियाही रहना भला ॥ २२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दोहा-नारि मण्डलीके विषे, ठाढ़े श्रीयदुराय।
करत विहार प्रियान सँग, तेतिसवें अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसप्रकार उन श्रीकृष्णचन्द्रके हस्त चरण आदि अंग स्पर्शकर मनोरथ पाय गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अति कोमल वचन श्रवण कर विरहके तापको छोड़ दिया ॥ १ ॥ और इसके उपरान्त गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र भी वहाँ अपनी आज्ञा करनेवाली, प्रसन्नमन, परस्परमें हाथ पकड़े खड़ीहुई स्त्रियोंमें रत्न गोपियोंको संग ले रासक्रीडाका आरंभ करनेलगे ॥ २ ॥ फिर गोपियोंके समूहसे शोभायमान रासका उत्सव योगके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्र रचने लगे और मण्डलाकार खड़ीहुई दो दो गोपियोंके बीचमें अपने अनेक रूप धारणकर कण्ठमें गलबाहीं डाल गान करते श्रीकृष्ण आपभी खड़े हुए ॥ ३ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रको सब गोपियें 'प्यारा मेरे पास है' कोई बोलीं 'मेरे पास हैं' इसप्रकार अपने अपने पास जानने लगीं और रासदेखनेकी इच्छासे देवतालोगभी अपनी अपनी स्त्रियोंको लेकर आये, उनके विमानोंसे आकाश छारहा था॥४॥ देवताओंके आनेके उपरान्त नगाडे बजनेलगे, फूलोंकी वर्षा होनेलगी और मुख्य मुख्य गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियोंको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका निर्मल यश गानेलगे ॥ ५॥ और प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रके संग जो स्त्रियें, उनके कंकण नूपूर तथा किंकिणियोंका रासमण्डलमें बड़ा झनकार शब्द होनेलगा ॥ ६ ॥ जैसे दो दो मणियोंके बीचमें एक एक नीलमणि सुन्दर लगती है, उसीप्रकार उस रासमंडलमें दो दो गोपियोंके बीचमें एक एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ७ ॥ पाँवोंका धरना, भुजाओंका हलना, मुसकान सहित भ्रुकुटियोंका चढ़ना, कमरका लचकना, कुचों और वस्त्रोंका हिलना, कपोलोंपर कुण्डलोंकी हलन, उनसे जिनके मुखपर पसीना आगया, चोटियोंके नारोंकी गाँठि जिनकी खुलगई, ऐसी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी वधू गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रके गुणानुवाद गान करतीं, जैसे मेघमंडलमें बिजली शोभायमान लगती है, उसी प्रकार शोभायमान लगने लगीं ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके रंगोंसे कंठ जिनके रँगरहे, रतिही जिनको प्यारी और श्रीकृष्णचन्द्रका स्पर्श जिनको हो उनसे बडा आनन्द जिनको, वह गोपियें नृत्य करते ऊँचे स्वरसे गाने लगीं, जिनका गीत इस विश्वमें छारहा है॥ ९ ॥

और कोई गोपी मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रके संग उच्चस्वरोंकी आलापोंकी गतिको उठाने लगी, कैसे स्वरोंकी जाति ली कि, श्रीकृष्णचन्द्रने जो स्वर उठाया, उनमें मिलतीथी. तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो धन्यहै २ इसप्रकार बड़ाई करने लगे. इसलिये जिन स्वरोंकी जातें लीं थी उनको ध्रुवतालमें बाँधकर गातीहुई गोपियें प्रशंसा करने लगीं तब गोपियोंको श्रीकृष्णचंद्रने बहुत मान दिया ॥ १० ॥ कोई गोपी रासमें श्रमित हो गदा धारण करने वाले पासमें खडे हुए श्रीकृष्णचन्द्रके कंधको हाथसे पकडने लगी, चूरी तथा फूलोंके हार जिनके शिथिल होगये. यहाँ गदा वंशीकोही जानना. क्योंकि गोपियोंके हृदयको चूर करती है ॥ ११ ॥ इसके उपरांत एक गोपीने रोमांच जिसके हो आये कमलोंकी समान सुगंधवाली चन्दनसे चर्चित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको अपने कंधेपर धरकर चुम्बन किया ॥ १२ ॥ और फिर नृत्यसे चलायमान कपोलोंको श्रीकृष्णके कपोलोंपर लगाती हुई गोपीको श्रीकृष्णचन्द्रने बीरीका जूँठन दिया ॥ १३ ॥ और किसी गोपीने नूपुर करधनी जिसके बजैं नृत्य व गान करते हुए श्रम पाय पास खडे हुए मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हस्तकमल अपने स्तनोंपर धारण किया * ॥ १४ ॥ लक्ष्मीके अत्यन्त प्यारे अच्युत श्रीकृष्णको सुंदर पति पाय उनकी भुजाओंसे कंठमें गलबाहीं डाल गोपियें श्रीकृष्णचन्द्रको गाती विहार करने लगीं ॥ १५ ॥ उस रासमण्डलमें स्त्रियों सहित गंधर्व और किन्नरादिक जो बाजे बजारहे थे, तथा गवये बनकर गा रहे थे, वह सब रासरसमें मोहित होकर नृत्यकरने लगे, उससमय कंकण और नूपुर बाजेका कार्य और भौंरे गवैयोंका काम कररहे थे, रास मण्डलमें ब्रजवनिता कृष्णके संग नृत्य करतीहुई अत्यन्त शोभा पारही थीं, उनके कानोंके कमल अलकोंसे युक्त कपोल और पसीनेके बूँदोंकी शोभा मुखपर छा रहीथी और नृत्य समयमें जो फूलोंकी माला गिरती थीं, उनसे ऐसी शोभा हो रही थी कि, मानों तालोंकी गतिसे प्रसन्न होकर केश शिर हिलाय चरणोंपर फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ १६ ॥ इसप्रकार लक्ष्मीपति भग-

---

* **शंका**–गोपीने श्रीकृष्णका हाथ अपने हाथसे पकडकर अपने स्तनोंपर क्यों रक्खा? जैसे मनुष्यकी स्त्री कर्म करती हैं, ऐसा कर्म क्यों किया ?

उत्तर–गोपीने विचार किया कि, इनहीं श्रीकृष्णभगवान्ने अपने हस्तकमलोंको प्रह्लादके और ध्रुवके मस्तकपर रक्खाथा तब प्रल्हाद और ध्रुव संसारके दुःखसे छूटकर भगवान्के भजनमें मग्न होगये इसलिये मैं भी अपने कुचोंपर भगवान्का हाथ धरके इन दोनोंको भक्तजन बनाऊंगी क्योंकि कामदेव जब कुपित होकर पुष्पधनुष संधान कर मेरे ऊपरको चढ़ता है, तो स्तनोंमें अधिक बाधा होती है, अब जो यह भक्त होजायँ तो संसारके सब दुःखोंसे निवृत्त होजाऊंगी और कामदेव भी मुझको नहीं सतावेगा उसकी बाधासे भी छूट जाउंगी; पुरुषकी ममता शिरपर बहुत होती है और स्त्रीकी ममता स्तनोंपर अधिक रहती है ऐसा विचार करके गोपीने कृष्णका हाथ अपने कुचपर रक्खा ॥

वान् श्रीकृष्णचन्द्र आलिंगन, हाथोंका स्पर्श, स्नेह भरी चितवन और बड़े विलास हास्यसे जैसे बालक अपनी परछाहींसे खेलता है, उसी प्रकार ब्रजसुंदरिओंके संग रमण करनेलगे ॥ १७ ॥ हे कुरुकुलको आनन्द देने वाले राजा परीक्षित् उससमय श्रीकृष्णके अंगमें जो आनन्द उससे जिनकी इन्द्रियें बिवश होरहीं और जिन ब्रजकी स्त्रियोंके माला गहने खिसल रहे थे, वह अपने केश, शरीर, कुच और वस्त्रोंके सम्हारनेको भी समर्थ न हुई ॥ ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी रासक्रीडा देख आकाशमें देवांगनायें भी कामसे पीडित होकर मोहित होगई और तारागण सहित निशानाथ चन्द्रमा भी आश्चर्य मानकर चलना भूल गया. तब और ग्रह भी जहाँके तहाँ रह गये, उससे राति जो बढ़ गई उससे सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥१९॥ जितनी गोपोंकी स्त्रियें थीं, उतनेही अपने रूपधर आत्माराम भगवान श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंके संग लीला करने लगे॥२०॥फिर अत्यंत विहारसे जिनको श्रम प्राप्तहुआ ऐसी गोपियोंके मुखका पसीना देख करुणाको प्राप्त हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे उनका मुख पोंछने लगे॥२१॥ वे मानवती गोपियें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हस्तकमल नख स्पर्शसे महासुख पाय प्रकाशमान सुवर्णके कुण्डलसे कान्तिमान् कपोल तथा रसभरी चितवन और मुसकान युक्त श्रेष्ठ गुणभरे श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके सुन्दर चरित्र गाने लगीं ॥ २२ ॥ मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब रासविलास करते करते थकगये, तब उन गोपियोंको संगले श्रम दूर करनेके लिये जलमें घुसे, कुचोंकी केशर जिसमें लगी अंग अंगसे रगडीं मालाकी सुगंधसे गंधर्वोंके समान भौंरे गातेहुए उनके पीछे चले जातेथे, जैसे हथिनियोंको संग लेकर हाथी जलविहार करनेको जाते हैं ॥ २३ ॥ हे अंग ! इधर उधरसे जलमें स्त्रियोंको छींटी देते हैं, उस जलविहार करते समय व्यंग वचन बोले कि, "उत्तिष्ठारात्तारिमें तरणि मम तरौ शक्तिरारोहणे का मुग्धे प्रस्तौमि चारुं तरणिमथ रवौ का वधूर्गन्तुमीष्टे । वार्तेयंनौ प्रसंगेकथमपि भविता नावयोः संगमायां वार्तापीति स्मितास्यं जितगिरमजितं राधया राधयामि" हे तरुणि ! उत्तिष्ठारात् इत्यादि वाक्यको व्यंग्यार्थ सुनकर प्रसन्नमुख हो जित अजितकी वाणी राधाने जीतली है, उनका मैं आराधन करताहूं (आरात्) समीपमें (तारिः) नौका है अस्मिन् तरौ उसमें (आरोहणं कुरु) चढो, यह तो कृष्णने कहा ॥ तब राधा बोली (तरौ आरोहणे मम का शक्तिः) वृक्षके चढनेमें मेरी क्या शक्ति है ? कृष्ण बोले, हे मुग्धे ! (तरणिं प्रस्तौमि) तुम्हें तरणि कहताहूं, राधा बोली तरणि नाम सूर्यका है, सो (रवौ का वधूर्गन्तुमीष्टे) सूर्यके पास कौनसी वधू जानेकी इच्छा करती है, कृष्णने कहा (वार्तेयं नौ प्रसंगे) यह तो नाव प्रसंगकी वार्त्ता है, राधिका बोली (नावयोः संगमायां) हमारे आपके नूतनसंगकी वार्ता कैसे न हुइ ! इस प्रकार राधासे जित हुये कृष्णका आराधना करताहूं। और प्रेमपूर्वक कृष्णको देखकर हँसती हैं और भगवान्को जलसे भिजोती हैं विमानोंपर बैठे देवता स्तुति और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं, हाथीके समान जिनकी लीला, ऐसे आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तहाँ जलमें अथवा गोपियोंके मंडलमें क्रीडा करने-

लगे ॥२४॥जलक्रीडा करनेके उपरान्त जल स्थलके पुष्पोंकी सुगंधभरी पवन जिसके सब दिशाओंमें व्याप्त होरही है, ऐसे जो जमुनाजीके बागमें भौंरे रूप गोपियोंके संग श्रीकृष्ण चन्द्र विहार करनेलगे, जैसे मदस्रावी हाथी हथिनियोंके संग विहार करताहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार सत्यसंकल्प भगवान् चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभायमान उस शरदकी रात्रियोंमें साहित्य काव्योंमें जो करनेकी विधि लिखीहै, उसीप्रकार वह स्नेहभरी गोपियोंके संग वीर्यको धारण करनेलगे और जितनी गोपी उतनेहीं श्याम उतनीहीं कुंजोंमें फूलोंकी शय्यापर लेटे हँसते हँसाते कोमल बातें करते थे ॥ २६ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे श्रीशुकदेवजी ! धर्मके स्थापन और अधर्मका नाश करनेके लिये जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने परिपूर्ण रूपसे अवतार लियाहै ॥ २७ ॥ फिर धर्मकी मर्यादाके रक्षा करने वाले श्रीकृष्णचन्द्रने पराई स्त्रीका स्पर्श करना, यह अधर्म क्यों किया ? ॥ २८ ॥ पूर्ण काम यादवोंके पति श्रीकृष्णने यह निंदित कर्म कैसे किया ! इसका क्या अभिप्राय है ! हे सुन्दर व्रतवाले शुकदेवजी ! यह हमारा संदेह शमन करो ॥ २९ ॥ यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले, कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! समर्थवानोंको धर्मका उलांघना और साहस भी देखाहै, जैसे अग्निमें भली बुरी वस्तु डालदो, उसको भस्म कर दे और उसे दोष नहीं लगता, उसी प्रकार सामर्थ्यवान् तेजस्वी पुरुषोंको भी दोष नहीं लगता, कहा भी है, "समरथको नहिं दोष गुसाँई" ॥ ३० ॥ बडोंकी रीति न करै उसमें पीछे पछताना पडताहै* सामर्थ्यवान पुरुषोंके करे कर्मको मनसे भी न करै और जो कदाचित् अज्ञानसे करै तो माराजाय, जैसे रुद्र (शिव) के विना और कोई समुद्रके विषको पान नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥ ईश्वरके वचनोंको सत्यमानै, और उनके आचारणोंको भी सत्यमानै, जैसा उन्होंने कहाहै, उसीके अनुसार बुद्धिमान पुरुष करै राम-कृष्ण दोनों अवतार हुए हैं श्रीरामचन्द्रजीने जैसा कहा वैसाही किया, इसलिये उनका कहना करना दोनों करै और श्रीकृष्णचन्द्रने जो गीतामें कहाहै, उसे करै और जो उन्होंने लीला करीहै उनको

---

* दृष्टान्त-एक राजा रानीने सम्मति करी कि हमारे यहाँ भी अनेक युद्ध हुए हैं इसकारण ऐसा महाभारत बनाना चाहिये, यह विचार पंडितोंको बुलायकर कहा कि,एक हमारे नामका भी महाभारत बनाओ परन्तु वह व्यासजीके महाभारतसे किसीप्रकार न्यून न हो चाहै बढती हो, नहीं तो तुम्है देशसे निकालदूंगा ब्राह्मण आपसमें सम्मति कर राजाके पास आनकर कहने लगे कि, महाराज ! महाभारत बनानेकी सामग्री सब प्रस्तुत है सब बातैं अधिकही करैंगे पर एक बात आप बताइये राजाने कहा क्या ! ब्राह्मण बोले महाभारतमें द्रौपदीके पाँच पति थे, आपकी रानीके उससे अधिक कितने लिखे सो बताइये और उनके नाम वर्णन कीजिये ! सुनतेही राजाकी बुद्धि लोप होगई और घबरा कर बोला, महाराज क्षमाकरो, मुझे महाभारत लिखानेकी सामर्थ्य नहीं, इसलिये बडोंके चरित्रपै शंका नहीं करनी चाहिये ॥

नकरे किन्तु ध्यानकरै ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! इस संसारमें जिनको अहंकार नहीं है, ऐसे सामर्थ्यवान पुरुष जो अच्छा कर्म करैं, उससे उनको पुण्य और निकृष्ट कर्म करनेसे पाप नहीं होताहै, क्योंकि पुण्य पाप तो देहमें अहंकारके वशसे लगेहैं, इसकारण अहंकार रहित पुरुषको कुछ दोष नहीं है ॥ ३३ ॥ जब और महात्माओंको भी पाप पुण्य नहीं लगता तब समस्तप्राणी, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता, जीव इनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पाप पुण्य नहीं लगताहै, इसमें कहनाही क्याहै ! ॥ ३४ ॥ जिनके चरणारविंदका पराग अर्थात् मकरंदका सेवन करनेसे तृप्तहोकर भक्तजन और योगप्रभावसे संपूर्ण कर्मबंधन दूरकर मुनीश्वर ज्ञानी बंधनोंसे रहित हो अपनी इच्छापूर्वक विचरतेहैं, तो इच्छासे शरीर धारण करनवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बंधन कहाँसे हो ! ॥ ३५ ॥ गोपी और उनके पतियोंके व संपूर्ण देहधारियोंके साक्षीरूप होकर जो देहके भीतर रहते हैं, उन श्रीकृष्ण-चन्द्रने क्रीडा करनेके लिये देह धारण किया है, इसकारण उनमें कुछ दोष नहीं होसक्ता क्योंकि सर्वत्र वही रमण करते हैं और बाहर भीतर व्याप्त हैं ॥ ३६ ॥ संपूर्ण प्राणियों-पर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्य देह धारण करके ऐसी मनुष्य लीला करीं हैं कि, जिन लीलाओंको श्रवण करनेसे मनुष्य कृष्णपरायण होजाताहै ॥ ३७ ॥ उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित ब्रजवासियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको कुछ दोष नहीं लगाया और अपनी अपनी स्त्रियोंको अपने अपने पास जाना ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त ब्राह्म मुहूर्त्त अर्थात् चार घडी रात रहे, श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार घर आनेकी जिनके इच्छा नहीं, ऐसी प्यारी गोपियें अपने अपने घर आईं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका परम कौतुक जो ब्रजवधू गोपि योंके संग रासलीला है इसे जो पुरुष श्रद्धा सहित श्रवण और कथन करैंगे, वह पुरुष भगवान्में परमभक्ति प्राप्त कर थोडेही दिनोंमें धीर होकर शीघ्रही हृदयके कामरूप रोगोंका त्याग कर देते हैं ॥ ४० ॥ परमेश्वरके चरित्र बडे भाग्यसे सुननेको मिलते हैं ॥ *

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

दोहा-चौंतिसमें नंदरायको, निगल गयो इक नाग।
शंखासुरको वध कियो, कृष्ण सकल भय त्याग ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! एकसमय अत्यन्त उत्साहसे सब ब्रजवासी देवकी यात्रा करनेके लिये बैलोंको जोत गाडियोंपर बैठकर देवीके बनमें गये ॥ १ ॥ हे राजन् ! वहाँ पहुँच सरस्वती नदीमें स्नान कर फिर महादेवजीका भली भाँति पूजनकर अम्बिका

* दृष्टान्त-एक बुढिया बडी कहा सुनीसे कथा सुनने गई पीछेसे कटोरा जाता रहा दूसरे दिन कथामें न आई, लुगाइयोंने कहा, बुढिया तू कथा सुननेको न आई बोली कि, भैना ! खर्च बहुत पडता है पहलेदिन गई तो कटोरा गया, अबकी सुनूंगी तो थाली लोटे परात सब खो बैठूंगी इसकारण मेरी तो कथाको दूरसेही दंडवत् है ॥

देवीका पूजन किया ॥२॥ सम्पूर्ण ब्रजवासियोंने, महादेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों, इसलिये मधुयुक्त मधुर अन्न और गौ, ब्राह्मणोंको दान किया ॥३॥ और बडे भाग्यवान् नन्दादि और सब ब्रजवासियोंने उसदिन रात्रिको जलका आचमन कर तथा तीर्थ व्रत करके सरस्वतीके किनारेही वास किया ॥ ४ ॥ हे नृप! उस वनमें कोई अत्यन्त भूँखा सर्प रहता था, उसने अकस्मात् आनकर नन्दरायजीको ग्रसा * ॥ ५ ॥ सर्पसे ग्रसित होकर नन्दजी पुकारने लगे कि, हे कृष्ण! हे कृष्ण!! यह अत्यन्त भयानक सर्प मुझको निगले जाता है, हे पुत्र! मैं तेरी शरण हूँ, तू मुझे छुडा ॥ ६ ॥ इसप्रकार नन्दजीकी पुकार सुन घबराहटसे ब्रजावासी शीघ्रही उठे, देखा कि, नंदजीको सर्प निगले जाताहै तो सुलगती लकडियोंसे उसको मारने लगे ॥ ७ ॥ यद्यपि ब्रजवासियोंने सुलगती लकड़ियोंसे उसे मारा परन्तु तोभी उस सर्पने नंदजीको न छोड़ा, तब भक्तोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस सर्पको अपने चरणकी ठोकर मारी ॥ ८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी ठोकर लगतेही उसके सब पाप दूर हो गये और उस सर्पने सर्पदेहको त्यागकर विद्याधर जिसका पूजन करें, ऐसे स्वरूपको धारण किया ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त प्रकाशमान रूप धारण किये सुवर्णकी माला पहरे उस खडेहुए पुरुषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूंछने लगे कि ॥ १० ॥ परमशोभायमान अद्भुतदर्शन तुम कौन हो? और विवश होकर यह सर्पकी योनि तुमको कैसे मिली ॥ ११ ॥ यह सुनकर वह सर्प बोला कि, महाराज! मैं सुदर्शन नाम करके विख्यात कोई गंधर्व था, संपत्ति और शरीरकी सुन्दरतासे गर्वित हो विमानमें बैठकर दिशाओंमें विचरता था ॥ १२ ॥ तब एक समय मैंने रूपके मदसे मत्त होकर कुरूप अंगिरादि ऋषियोंकी हँसी करी, तब उन्होंने मुझे शाप दिया, जिससे मेरी सर्पयोनि होगई ॥ १३ ॥ करुणावान् ऋषीश्वरोंने कृपा करनेहीके लिये मुझे शाप दिया था, जिसकारण त्रिलोकीके गुरु आपके चरणारविन्द स्पर्श करनेसे सब पाप छूटगये, और यदि वे शाप न देते तो तुम्हारे चरण मुझे कैसे लगते? ॥१४॥ संसारसे डरकर शरण आये, पुरुषका भय दूर करनेवाले आप हैं, सो मुझसे क्या पूंछते हो. हे पापनाशक! तुम्हारे चरणस्पर्शसे मेरे सब पाप दूर होगये ॥१५॥ हे महायोगिन्! हे महापुरुष! हे महासाधुओंके पति! हे प्रकाशमान! हे सबलोकोंके ईश्वर! हे ईश्वरके ईश्वर! तुम्हारी मैं शरण आया हूँ, सो मुझे आज्ञादो ॥ १६ ॥ हे अच्युत! तुम्हारा

---

* **शंका**–सब सर्प प्राणियोंको काटते हैं परन्तु अपनी भूँखकी शान्तिके लिये नहीं काटते केवल प्राणियोंको डसना (काटना) सर्पोंका स्वभाव है, भागवतमें लिखा है कि, भूँखे सर्प्पने नन्दजीको दंश लिया ऐसा क्यों लिखा?

उत्तर–जिस सर्प्पका भागवतमें इतिहास है, वह सर्प्प पूर्वजन्मका देवता था. जब मुनीश्वरने उसको शाप दिया था तब इससे कह दिया था कि, जिससमय श्रीकृष्णका चरण तेरी देहसे छू जायगा तब तेरी मोक्ष होगी, उस सर्प्पको वही आशारूपी क्षुधा थी, उसीसे दुःखी होकर सर्प्पने नन्दजीको काटा ॥

दर्शन करके मैं शीघ्रही ब्राह्मणोंके शापसे छूट गया, क्योंकि जिनका नामहीं उच्चारण करके वक्ता, श्रोता और अपनेको पवित्र करते हैं ॥ १७ ॥ फिर तुम्हारे चरणोंसे मैं पवित्र हुवा तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? इस प्रकार दाशार्ह वंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रकी आज्ञाले, परिक्रमादे, प्रणामकर वह सुदर्शन स्वर्गको चलागया, और नंदजी कष्टसे छूटगये ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वैभव देख आश्चर्यको प्राप्त हो ब्रजवासी तीर्थमें नेमको पूर्णकर बड़े आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रका चारित्र कहतेहुए ब्रजमें आये ॥१९॥ किसी समय एक यात्राके उपरान्त गोविंद और अद्भुत पराक्रमवाले बलराम दोनों भाई वनके बीच रात्रिमें ब्रज स्त्रियोंके मध्यमें विहार करते थे ॥ २० ॥ स्नेहसे बद्ध होनेके कारण ललित स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णके चारित्र गारहींथीं और दोनों भाई सुन्दर आभूषण धारण किये, केशर चंदन लगाये, वनमाला और निर्मल वस्त्र पहरे ॥ ॥ २१ ॥ रात्रिके प्रारंभ होनेसे तारागण और चन्द्रमाका उदय होरहाथा, चमेलीकी सुगंधसे मत्त होकर भौंरे गुंजार कर रहे थे, फूली कुमुदिनीसे लगकर पवन चल रहाथा ॥ ॥ २२ ॥ उसकी सराहना करते सब प्राणियोंके मन और कानोंको आनंददायक संगीत स्वरके मंडलोंकी मूर्च्छना करते गाने लगे ॥ २३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! श्रीकृष्ण बल-देवका गाना सुनकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गोपियोंके वस्त्र ढीले पड़गये और चोटियोंकी गाँठें खुलगईं कि, जिनसे फूलोंकी माला गिर गई अधिक क्या कहैं, उन्हें अपने २ आनेकी भी सुधि न रही ॥ २४ ॥ हे नृपोत्तम ! इसप्रकार कृष्ण बलदेव दोनों भाई मतवालेके समान क्रीड़ा और गान कररहे थे कि, इतनेमेंही शंखचूड़ नाम कुबेरका टह-लुआ आया ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! कृष्ण बलदेवके देखते निर्भय हो शंखचूड जब उन गोपियोंके समूहको जिसके स्वामी श्रीकृष्ण बलदेव हैं,लेकर उत्तरकी ओर चला, उस समय वह गोपियें पुकारने लगीं ॥ २६ ॥ जैसे सिंहकी पकड़ी गौ पुकारती है, उसी प्रकार हे कृष्ण ! बलदेव ! इस प्रकार पुकार करती गोपियोंको देख कृष्ण बलदेव दोनों भाई शंखचूडके पीछे दौडे ॥ २७ ॥ मतडरो ऐसे भयके दूर करनेवाले वचन कह शालका वृक्ष हाथमें लिये शीघ्रतासे कृष्ण बलदेव दौड़ गुह्यकगणमें अधम शंख चूड़के पीछे गये ॥ २८ ॥ काल मृत्युके समान पीछे दौड़े चले आते श्रीकृष्ण बलदेवको देख, स्त्रियोंको छोड मूढ़ शंखचूड अपने प्राण बचानेके लिये भागा ॥२९॥ जहाँ जहाँ शंखचूड़ भागकर गया, वहाँ वहाँ गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र उसके शिरकी मणि लेनेके लिये उसके पीछे दौडे और बलदेवजी स्त्रियोंकी रक्षाके लिये वहीं रहे ॥ ३० ॥ हे राजा परीक्षित् ! थोडी दूर पर जाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दुष्टमनवाले शंखचूड़को मुष्टिक मार शिर सहित उसके माथेकी मणि लेली ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इसप्रकार शंखचूड़ दैत्यको मार प्रकाशमान मणि लेकर संपूर्ण स्त्रियोंके देखते प्रसन्नतापूर्वक अपने बडे भाई बलदेवजीको देदी ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३४

दोहा-पैंतिसमें हरि वन गये, पीछे गोकुल नारि।
वेणु गीतही गायकर, दियो कष्ट सब टारि ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वनमें गये तब श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये गोपियें विरहमें उनकी लीलाको गाय अत्यन्त कष्टसे दिन व्यतीत करनेलगीं * ॥१॥ गोपियें परस्पर बोलीं कि, हे सखियो! बाई भुजापर बायें कपोलको धर भ्रुकुटियोंको चढाय, मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी अधरके ऊपर बाँसुरीको धर और अपनी कोमल अँगुलियोंसे उसके छिद्रोंको दाब जिससमय बजाते हैं ॥ २॥ उससमय आकाशमें गमन करनेवाली देवताओंकी स्त्रियें अपने पतियोंसहित बाँसुरीको सुन प्रथम आश्चर्यमान लाज सहित कामके बाणोंसे परवश हो मन हरजानेके कारण नारोंकी भी जिनको सुधि न रही इसप्रकार मोहको प्राप्त होगईं ॥ ३ ॥ हे अबलाओ! यह आश्चर्य सुनो हारके समान निर्मल जिसकी हँसनि, बाँसुरी बजाती समय नीचा मुख करके जो हँसते हैं, तो उसकी हारोंमें प्रकाशित हँसनि होती है, अथवा हारकी तुल्य छातीमें शोभायमान जिसकी हँसनि है और छातीमें बिजलीके तुल्य प्रकाशमान स्थिर लक्ष्मी जिसके हृदयमें वास करती है पीडितजनोंको सुख देनेवाला यह नंदका पुत्र जिस समय बाँसुरी बजाताहै ॥४॥ तब दूरसे बाँसुरीका शब्द सुन हरगये हैं मन जिनके ऐसे गौ, बैल और हिरणोंके समूहके समूह दाँतोंसे कौर काटकर उसे पकडने लगे, कानोंको ऊंचाकर सोतेसे चित्र लिखेके समान खडे होगये, बडा आश्चर्य है कि, पशु, पक्षियोंकी यह दशा है ॥ ५ ॥ हे सखी! मोरपुच्छ, खडिया, गेरु, मनसिल, पात, इनसे मल्लोंके समान स्वरूपसे कभी बलदेव भाई सहित और गोपियों सहित जो मुकुन्द जिससमय बाँसुरी बजाकर गौओंको बुलाते हैं, उससमय बाँसुरीका शब्द सुनकर नदियोंका प्रवाह बहनसे रुकजाता है और पवनसे उड कर गई उनके चरणोंकी रजको हमारे तुल्य आकांक्षा करते हैं और हमारी तुल्य उनके भी उत्कृष्ट पुण्य नहीं हैं, इसलिये वह नदियोंको नहीं मिलती, प्रेमसे जिनकी लहर काँपती

---

* शंका-श्रीशुकदेवजीने परीक्षितसे कहा था कि, हे राजन् श्रीकृष्ण जिस दिन गौवें चराने जाते थे, तब विना कृष्णको देखे अलग होकर गोपी बहुत दुःखसे दिन काटती थीं, इस वचनसे जानपडता है कि सब गोपी गोकुलमें रात्रिके समय श्रीकृष्णके पास सभा बनाकर रहती होंगी? प्रातःकाल होतेही ब्रज विहारी फिर गाय चरान चले जाते होंगे, तब फिर सब गोपी उसीप्रकार व्याकुल होजाती होंगी?

उत्तर-व्याकरणके पढनेवाले जो विद्वान्पुरुष हैं वह (निन्युर्दुःखेन वासरान्) इस श्लोकमें वासरका अर्थ दिनका नहीं करते. वास, सब वस्तुके प्रमाणका नाम है उसी वासको जो ग्रहण करे, उसका नाम वासर है, व्याकरणके पढनेवाले विद्वानोंने वासरका अर्थ निमिषका किया है, इसी निमिषको गोपी बडे दुःखसे बिता थीं, आँखोंके पडने उघडनेका नाम निमिष है ॥

है, जल जिनके निश्चल होजाते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ गोप, ग्वाल और देवता जिनके निर्मल यशको गाते हैं, नारायणकी तुल्य सदा स्थिर लक्ष्मीवाले वनके विचरनेवाले कृष्ण जिस-समय गोवर्द्धन पर्वतके शिखरपरसे चरतीहुई गौओंको बाँसुरी बजाकर बुलाते हैं, उस समय फूल, फल जिनमें लगे उनके बोझसे शाखा जिनकी झुकरहीं, प्रेमसे हर्षित चित्त, वनके लता, वृक्ष, अपनेमें विष्णुको प्रगट करते मकरंदकी धारा बहाते हैं॥८॥९॥ सुन्द-रोंमें अतिसुन्दर अथवा सुन्दर देखने योग्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्याम ललाटमें केशरका तिलक लगाये वनमाला पहरे जिसकी दिव्य गंध और तुलसीके मकरंदसे मत्त हो, भौंरे उनके उच्च और अनुकूल गानको मान देते हैं, ऐसे भगवान् जब अधरके ऊपर बाँसुरीको धरके बजाते हैं उससमय सरोवरोंमें सारस, हंस और पक्षी गानसे मोहितचित्त हो उस स्थानमें आँखें मूंदे मौन धारण करे चित्त रोके कृष्णके निकट बैठे रहते हैं ॥ १० ॥११॥ हे गोपियो ! मालाओंसे कानोंमें कुण्डलसे शोभायमान, आनन्दको प्राप्त बलदेव भाई सहित कृष्ण जब सब विश्वको आनन्द दे बाँसुरीके शब्दसे पूर्ण करते हैं, उससमय इस महान् कृष्णका अपराध न हो, इस प्रकार मेघ मनमें शंका मान मुरलीके शब्दके पीछे मंद मंद गर्जते हैं और अपने मित्र श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षाकरते हैं, छत्रसे छाया करते हैं, सो वह मेघ इसका सच्चा मित्र है क्योंकि यह भी साँवरा और वह भी साँवरा ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे यशोदा ! अनेक प्रकारके गोपोंके खेलोंमें निपुण तुम्हारा पुत्र अधरके ऊपर बाँसुरी धरकर अपने आपही सीखगये, क्योंकि षड्ज, निषाद,ऋषभ, गांधारादि स्वरोंके आलापनेके, भेद वह स्वयंही उठालेता है ॥ १४ ॥ उससमय इन्द्र, शिव, ब्रह्मा यह जिनमें मुख्य हैं, ऐसे बुद्धिमान देवता मंद मध्यतारसे बाँसुरीको सुनकर मोहित होगये और नीचेको मुखकरके कौन स्वरका गाते हैं यह भी निश्चय नहीं करसके ॥ १५ ॥ ध्वजा,वज्र, अंकुश, कमल इनके चित्र विचित्र चिन्हवाले अपने चरण कमलसे ब्रजभूमिको गायोंके खुर पडनेसे जो खेद है उसको शाँत किया और मतवाले हाथीके समान चलनेवाले श्रीकृष्ण बाँसुरीको बजाकर जिससमय चलते हैं उससमय विलासपूर्वक चिन्तवनसे कामदेवके वेगमें भरी हमैं वृक्षोंकी तुल्य जड होकर चोटी और वस्त्रोंकीभी सुधि नहीं रहती है ॥ १६ ॥ १७ ॥ प्यारी सुगंधिवाली तुलसीकी मालाको पहरे माणि-योंकी सुमिरणी हाथमें लेकर गायोंको गिनतेहुए, प्यारे मित्रके कंधेपर हाथ रखकर जिस समय गाते हैं उससमय बजतीहुई बाँसुरीका शब्द सुन चित्त हरजानेसे हिरणोंकी स्त्रियें हिरणी गुणोंके समुद्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास आनकर गोपियोंके समान घरकी आशाओंको त्याग सेवन करनेलगीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे यशोदे ! गोपियोंको आनन्द देनेके लिये कुंदकी मालाओंसे आनंदपूर्वक शृंगार किये, स्नेहियोंको आनंद देनेवाला यह तेरा पुत्र नंदकुमार गोप गौओंको संग लिये जिस समय यमुनामें विहार करता है, उससमय चंद-नकेसी सुगंधिवाला शीतल स्पर्श पवन श्रीकृष्णका सन्मान करता अनुकूल मन्द मन्द चलता है और गंधर्वादिक तथा बंदीजनोंकी नाईं बाजे बजाता गाता फूलोंकी वर्षा करके

सेवा करता है ॥ २० ॥ २१ ॥ देखो ब्रजमें गायोंका हित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, जब इन्द्रने वर्षाकीथी, तब गोवर्द्धन उठाकर रक्षा करी और बडे बडे ब्रह्मादिक आनकर उनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं और सन्ध्यासमय जब गायोंको इकट्ठाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बाँसुरी बजाते और मित्रोंसे अपनी कीर्ति श्रवण करते श्रमभरा शोभाये आनन्द देते गायोंकी रज मालामें लग रही चन्द्रमाके समान प्रकाशमान देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए श्रीकृष्णचन्द्र जो हैं सो हमारा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आते हैं ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ कुछेक मंदमंद नेत्र जिनके घूम रहे. अपने स्नेहियोंको मान देनेवाले वनमाला पहरे पके बेरके समान श्याममुख और कुण्डलोंकी कान्तिसे कोमल कपोलोंको शोभायमान करते, मतवाले हाथीके समान जिनका विहार, प्रसन्न मुख, इस प्रकार यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने संध्यासमय जिसप्रकार चन्द्रमा उदय होता है,उसी प्रकार उदय होकर ब्रजकी गायरूप हमारा बहुत दिनोंका ताप दूर करदिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमेंही जिनका जीवन और वृद्धिको प्राप्त हुआ उत्सव,ऐसी ब्रजबालायें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला गा गाकर दिन व्यतीत करने लगीं ॥ २६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दोहा-कंस सुनो छत्तीसमें, मरो अरिष्ट विसूर।
रामकृष्णके लेनको, भेजो जन अक्रूर ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! इसप्रकार देवता गंधर्वादिक जिनका गान और नृत्य करें,बाजे बजाकर फूलोंकी वर्षा करें ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर परम उत्सव हुआ, इसके उपरान्त उसीसमय ब्रजमें बैलका रूप बनाकर अत्यन्त विशाल देह और खुरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण और कम्पायमान करताहुआ अरिष्टासुर आया ॥ १ ॥ अत्यन्त रँभाता, खुरोंसे धरती खोदता, पूंछ उठाता, खेतोंकी मेंडोंको तोडता ॥२॥ बीच बीचमें गोबर और मूत्र करता,अत्यन्त भयानक आँखवाला इसप्रकार अरिष्टासुरके रम्भानेका शब्दसुनकर गाय और स्त्रियोंके बिना समयही गर्भ गिरगये, जैसे टाँटके ऊपर पर्वत जानकर मेघ आन बैठते हैं *॥३॥४॥ हे परीक्षित्! इसप्रकार अत्यन्त पैने सींगवाले अरिष्टा-

*शंका-वृषभासुरके शब्दसे गायोंका और स्त्रियोंका गर्भ गिरजाता था, ऐसा भागवतमें लिखा है. तब वह दुष्ट वृषभासुर तो नित्य शब्द करता रहता होगा तब गायोंकी और स्त्रियोंकी सृष्टिका नाश क्यों नहीं हुआ? गायोंका और मनुष्योंका वंश नष्ट होना चाहिये था, सो क्यों नहीं हुआ? ऐसी बात न तो हमने आजतक आंखसे देखी न कानोंसे सुनी ॥

उत्तर-वृषभासुरके प्रभावको जानकर भगवान्ने सुग्रीव और सुरपालक दोनों देवताओंको आज्ञा दी कि, जब दुष्ट शब्द करनेलगे तब तुम दोनों उसका कंठ रोक लो, ऐसी

सुरको देखकर सब गोप और गोपी अत्यन्त भयभीत होगये, पशु खिरकोंको छोड़कर डरके मारे भागगये, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ! इसप्रकार पुकारनेलगे और संपूर्ण ब्रजवासी गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी शरणमें आये, इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने डरके मारे गोकुलवासियोंको भागता देखकर "भय मतकरो" इसप्रकार कह अरिष्टासुरको निकट बुलाकर कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे मूर्ख ! हे असाधो ! ग्वाल गायोंके डरानेसे तुझे क्या मिलेगा ? मेरे सन्मुख आ, क्योंकि तुझ सरीखे मतवाले दुष्टोंका बल और मद दूर करनेको मैंने अवतार लिया है ॥ ७ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कह, खम्भठोक और अरिष्टासुरको क्रोध उत्पन्न कराय, मित्रके कंधेपर सर्पाकार भुजा पसारकर खडे होगये ॥ ८ ॥ इसप्रकार क्रोधको प्राप्त हुआ अरिष्टासुर पूँछ उठाय खुरोंसे धरती खोदताहुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके सन्मुख आया ॥ ९ ॥ सींगोंका अग्रभाग आगे किये, पलक विसारे लाल लाल आँखैं किये, अरिष्टासुरको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र देवराज इन्द्रके छोड़े वज्रसे भी शीघ्र उसके सम्मुख आनकर उपस्थित हुए ॥१०॥ और आतेही उसके शींग पकड़ जैसे हाथीको हाथी धक्का देता है, उसीप्रकार उलटे पाँव करके उसे धकियानेलगे ॥ ११ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अरिष्टासुरको ढकेल दिया, तब फिर वह उठकर पसीनेमें चुचियाता अत्यन्त क्रोधित हो बड़े बड़े श्वास लेताहुआ दौड़कर आया ॥ १२ ॥ आतेही भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने उसके शींग पकड़कर पृथ्वीमें दे मारा और पाँवसे छाती दाब कर जैसे गीले कपड़ेको निचोड़ते हैं, उसी प्रकार उमेठ दे, शींग उखाड़ उसका प्राण संहार किया ॥ १३ ॥ उस समय उसके नेत्र चलायमान होगये, रुधिरकी वमन और गोबर करता पाँवोंको पटकता अरिष्टासुर मरगया; तब देवतालोगोंने फूल वर्षाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति की ॥ १४ ॥ इस प्रकार अरिष्टासुरको मार, मित्रोंसे सन्मानित हो, गोपियोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्रजमें आये ॥ ॥ १५ ॥ अद्भुत कर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब अरिष्टासुरको मारदिया, तब देवताओंके समान देवर्षि नारदजीने सब वृत्तांत कंससे जाकर कहा ॥ १६ ॥ कि, हे राजन्! यशोदाके कन्या हुई और देवकीके कृष्ण हुआथा, बलदेव रोहिणीके पुत्र हैं, तुम्हारे भयके मारे वसुदेजी अपने मित्र नंदजीके घर रातों रात पहुँचा आयेथे और प्रत्यक्ष देखलो कि, जितने दैत्य आपने भेजे वह सब कृष्ण बलदेवने मारडाले, यह वचन नारदजीका श्रवण कर क्रोधके मारे कंस विकलेन्द्रिय होगया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब वसुदेवजीके मारनेके लिये कंसने अत्यन्त पैनी तलवार ग्रहण की. परन्तु नारदजीने निवारण करदिया, इसके

भगवान्की आज्ञा पाकर वे वृषभासुरके पास रहने लगे जब वृषभासुर गर्जन शब्द करता, तब वह दोनों देवता उसके कण्ठको रोकलेते थे. इसी प्रकार सब अवस्था व्यतीत होगई, वृषभासुरको शब्द नहीं करनेदिया, जिसदिन मरनेका समय आया उसदिन महागम्भीर शब्द करके भगवान्के हाथसे मारागया, इसलिये नित्य शब्दकरने नहीं पाया ॥

उपरान्त कृष्ण बलदेवसे अपनी मृत्यु जान ॥ १९ ॥ देवकी सहित वसुदेवके पैरोंमें बेडी डालदी, नारदजीके चले जानेपर फिर कंसने केशि नामक राक्षसको बुलाकर ॥ २० ॥ कहा कि, तुमहीं रामकृष्णको मार आओ और फिर मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल, आदि मल्ल थे, उन्हें बुलाया ॥२१॥ इसके उपरांत मंत्रियों और हाथियोंके महावतोंको बुलाकर भोजवंशियोंका राजा कंस बोला कि, हे वीर ! हे चाणूर ! हे मुष्टिक ! मेरी बात सुनो ॥२२॥ नंदजीके गोकुलमें वसुदेवके पुत्र जो कृष्ण, बलराम रहते हैं उन्हींके हाथसे निश्चय नारदजीने मेरी मृत्यु बताई है ॥ २३ ॥ इसलिये वह जिस समय आवें उसीसमय पाँवोंसे दाब मल्ललीलाकरके मारडालना और मल्लोंकी जो रंगभूमि है, उसमें अनेक प्रकारके मचान बनाओ ॥ २४ ॥ क्योंकि पुरवासी और देशवासी संपूर्ण उनपर बैठकर मल्लोंकी कुस्ती देखेंगे, इसके उपरांत मंगल रूप कुवलयापीड हाथीको रंगभूमिके द्वारपर खड़ा करदो ॥ ॥ २५ ॥ बस ज्योंही कृष्ण बलदेव आवें त्योंही उन्हें हाथीसे मरवाडालना और चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक धनुषयज्ञकी तैयारी करो और संपूर्ण कामनाओंके देनेवाले महादेवजीका पूजन करनेके लिये पवित्र २ पशु लाओ ॥२६॥ हे राजन् ! अपने अर्थके तत्त्वके जाननेवाले राजा कंसने अपने सेवकोंको इसप्रकार आज्ञा दी. इसके उपरांत यादवश्रेष्ठ अक्रूरको बुला हाथ पकडकर कहा ॥ २७ ॥ हे दानपति अक्रूर ! तुम एक हमारी मित्रताका कार्य करो, क्योंकि इससमय भोजवंशियोंमें तुम्हारे अति रेक मेरा अतिशय हितकारी कोई नहीं है ॥ २८ ॥ हे साधो ! हे सौम्य ! जैसे इन्द्रने विष्णु भगवान्का आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त किया था, उसीप्रकार अब मैं तुम्हारा आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त हूंगा, इसलिये मैंने तुम्हारा आश्रय लियाहै ॥ २९ ॥ अब तुम व्रजमें जाकर वसुदेवात्मज कृष्ण और बलदेवको शीघ्रही रथमें बैठाल कर लेआओ ॥ ३० ॥ क्योंकि विष्णुका आश्रय लेकर देवता लोगोंने मेरे मारनेके कारण कृष्ण बलदेवको उत्पन्न किया है, इसलिये तुम नन्दादिक संपूर्ण व्रजवासियों सहित कृष्ण बलदेवको यहां ले आओ और मेरी ओरसे कहना कि, चलकर राजा कंसको भेंट दो ॥ ३१ ॥ बस जहाँ कृष्ण बलदेव आये कि, तहाँहीं कालके समान कुवलयापीड हाथी उन्हें मारडालेगा और यदि हाथीसेभी छूट जायँगे तो बिजलीके समान मेरे मल्लमार डालेंगे ॥ ३२ ॥ फिर जहां कृष्ण बलदेव मारे गये, तव उसी समय उनके शोकसे व्याकुल वसुदेवादि बंधु बांधवोंको भी मार डालूंगा और इसके उपरांत वृष्णि, भोज, दाशार्हवंशमें उत्पन्न हुए यादवोंको भी मारूंगा ॥३३॥ यद्यपि उग्रसेन मेरे वृद्ध पिताहैं, परन्तु तोभी उनकी राज्यकी चाहना विद्यमान है, इसलिये इनको भी मारूंगा, अधिक कहनेसे क्या, जितने मेरे वैरी हैं सबकोही मारूंगा ॥ ॥ ३४ ॥ हे अक्रूर ! इसके उपरांत यह सब पृथ्वी कंटकरहित होजायगी, फिर जरासन्ध है सो मेरा श्वशुर है और द्विविद मेरा प्यारा मित्र है ॥ ३५ ॥ शंबरासुर, नरकासुर, बाणासुर इत्यादिकोंने मुझमें स्नेह बढाही रक्खाहै बस इनको संग लेकर जितने देवताओंकी ओरके राजा हैं, सबको मारकर आनन्दपूर्वक पृथ्वीका राज्य करूंगा ॥ ३६ ॥ यह बात

अपने मनमें गुप्त रखकर कृष्ण बलदेवको शीघ्रही लिवालाओ और मेरी ओरसे कहना कि तुम्हारे मामाने धनुषयज्ञ किया है, उसको चलकर देखआओ, इसमें तुम्हें यादवोंकी पुरी मथुराकी शोभा भी देखनको मिलजायगी ॥ ३७ ॥ यह सुनकर अक्रूरजी बोले कि, हे राजन्! तुमने भला विचारा तुम्हारी मृत्युका दूर करनेवाला यही उपाय है, परन्तु होने और न होनेमें मनुष्य समता करै, क्योंकि जो प्रारब्ध है सोही फलका दाता है ॥ ३८ ॥ यह पुरुष बड़े बडे मनोरथ करताहै, परंतु जब दैव हत कर देताहै तो दुःखी होता है; जो मनोरथ पूर्ण होजाय तब तो मनमें हर्ष माने और न हो तो शोक करे. इसमेंसे क्या ध्वनि निकली कि, तुम कहते हो कि, कृष्ण बलदेवको मरवाऊंगा. क्या जाने वेही तुम्हें मार डालैं पर तो भी तुम्हारी आज्ञा करूँगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार राजा कंस अक्रूरजीको आज्ञा दे, मंत्रियोंको बिदाकर अपने महलमें चलागया और अक्रूरजी भी अपने घरको चले गये * ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे षड्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दोहा-सैंतिस केशी मरणको, नारद कियो बखान।
व्योमासुर मारो यथा, सो सब मनो सुजान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि, हे कुरुकुलभूषण राजा परीक्षित्! मनसे भी अधिक वेगवान् कंसका भेजा केशी दैत्य बडे घोडेका रूपधर टापोंसे पृथ्वीको खोदता फुरहरी लेता अपने कंधोंसे इधर उधर विमानको चलायमान करता और हींसनेसे संपूर्ण विश्वको डराता हुआ आया ॥ १ ॥ कठोर हींसनेसे गौओंके समूहको विडराता, पुच्छ हिलाता, बादर चलायमान करता, युद्ध करनेकी इच्छासे, श्रीकृष्णचन्द्रको ढूंढता हुआ आया, तब केशी दैत्यको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आगे निकलकर अपने पास बुलाया, तब वह दैत्य इनको देख

---

* **दृष्टान्त**-यदि कोई कहै कि अक्रूरजी कंसके पास रहनेसे महात्मा कैसेरहे उसपर यह दृष्टान्त है कि, महात्मा कुसंगतिसे भी महात्मापन नहीं त्यागते एक बाबाजी आधीरातको कहीं जा रहे थे मार्गमें चोर मिले चोर बोले कौन? बाबाजी बोले जो तुम सो हम, चोर बोले कहाँ जाते हो? बाबाजीने कहा जहाँको तुम जाते हो, चोरोंने जाना यह चोर है, संग लेलिया बाबाजीने भी जाना कि, यह चोर हैं- चोरोंने किसीके घरमें सेंध किया और चोरी करनेलगे, बाबाजी भी घुसे एक बरतन जो उघाडा तो इमरती रक्खीथीं, बाबाजी सारे दिनके भूखे थे झट ठाकुरजीका बटुआ निकाल ठाकुरजीके सामने भोग रख शंख बजाया, शंख बजतेही घरके लोग जाग गये और चोरोंके संग बाबाजी भी पकडे गये, बाबाजी तो वृत्तान्त सुनाकर छूटगये चोरोंको दंड हुआ सो साधु पुरुषोंको कुसंगतिका फल नहीं व्यापता, इसीप्रकार अक्रूरजीको कुसंगति अर्थात् कंसका संगतिका फल न व्यापा चोरोंकी नाईं मरवाया ॥

सिंहके समान गर्जनेलगा ॥ २ ॥ केशीदैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर मुखसे मानो आकाशको पी जायगा, इसप्रकार मुख फाडता और दौडताहुआ सन्मुख आया, जो किसीके जीतनेमें न आवे, अत्यन्त वेगवान् ऐसा केशी दैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पिछले पाँवोंको दुलती मारने लगा ॥ ३ ॥ जिनमें इन्द्रियोंकी पहुँच नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस दैत्यकी दुलत्ती बचाय अत्यन्त क्रोधित हो, अपने हाथोंसे उसके दोनों पाँव पकड घन्न फिराकर जैसे गरुड सर्पको फेंकदेता है, उसी प्रकार अवज्ञा करके सौ (१००) धनुषपर फेंककर आप खडे रहे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त जब चेतहुआ तब केशी दैत्य फिर उठकर मुख फाडता क्रोधयुक्त दौडकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हँसकर उस दैत्यके मुखमें अपना बायाँ हाथ जैसे सर्प बिलमें घुसता है, उसी प्रकार डालदिया ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगतेही केशीके दाँत ऐसे गिरगये, जैसे तपहुए लोहेके लगनेसे गिर जातेहैं और औषधी न करनेसे जैसे जलंधर रोग उदरमें बढता है, उसी प्रकार केशी दैत्यके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजा बढने लगी * ॥६॥ बढती हुई श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजसे उसका श्वास रुकगया, अंगमें पसीना आगया, नेत्रके तारे निकल आये, इसप्रकार केशी दैत्य पाँओंको पटकता, लीद करता, प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ ७ ॥ प्राणमुक्त उस दैत्यके पककर फटीहुई काकडीके समान शरीरसे महाभुज श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी बाँह निकाललली, यद्यपि इन्होंने शत्रुको अनायास मारा, परन्तु तो भी भगवान्ने कुछ, गर्व न किया, तब आश्चर्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूल बर्षाकर देवतालोग स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसके उपरान्त भक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजीने, क्लेशरहित कर्मवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास आनकर कहा कि ॥ ९ ॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे अप्रमेयात्मन्! हे योगके ईश! हे जगत्के ईश्वर! हे वासुदेव! हे जगदीश्वर! हे विश्वके साक्षी! हे अखिलावास! हे सात्वतों प्रवर! हे प्रभो! ॥ १० ॥ तुम जैसे काष्ठमें ज्योति रहती है, उसीप्रकार सब प्राणियोंमें व्यापक गूढ अर्थात् सबमें रहते हो परन्तु उनको दिखाई नहीं देते, क्योंकि बुद्धिके परे हो, साक्षी हो और आपका स्वरूप देखनेमें नहीं आता, महापुरुष ईश्वर हो, इसकारण जीव आपके स्वरूपको नहीं जानसक्ते ॥ ११ ॥ तुम स्वतंत्र हो, इसलिये तुम्हें साधनकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि

---

* शंका-शत्रुके मारनेके लिये शास्त्रमें और लोकमें अनेक उपाय लिखे हैं, परन्तु केशीको मारनेके लिये सब उपाय त्यागकर श्रीकृष्णने अपनी भुजा केशीके मुखमें क्यों दे दी?

उत्तर-केशीको ब्रह्माने यह बरदान दिया था कि, हमारे हाथकी बनाई सृष्टिसे तेरी मृत्यु न होगी, जब श्रीकृष्ण अपनी बाहु तेरे मुखमें प्रवेश करेंगे तब तेरी मृत्यु होगी, इसलिये केशीके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजा प्रवेश करदीथी ॥

तुम तो अपनी मायाशक्तिसेही गुणोंको सृजते हो, व उन्हींसे सत्य संकल्प ईश्वर आप इस जगत्को रचते हो, पालते हो और फिर संहार भी करदेते हो ॥ १२ ॥ सो तुमने राजारूप दैत्य और राक्षसोंका नाश करनेके लिये और धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेके लिये अवतार लिया है ॥ १३ ॥ यह वहुतही उत्तम हुआ जो इस घोडेरूप दैत्यको लीला-पूर्वकही आपने मारडाला, जिसके हींसनेका शब्द सुनतेही भयके मारे देवता क्षणमें स्वर्ग त्याग कर भाग जातेथे ॥ १४ ॥ हे विभो ! परसोंको तुम्हारे हाथोंसे चाणूर, मुष्टिक और मल्लोंको तथा कुवलयापीड हाथी व राजा कंसको मराहुआ देखूँगा ॥ १५ ॥ कंसके मारनेके उपरान्त शंखासुर, कालयवन, मुर दैत्य, नरकासुर, उनका बध और स्वर्गसे देवराज इन्द्रको जीतकर जो कल्पवृक्ष लाओगे, उसे देखूँगा ॥ १६ ॥ जिनका पुरुषार्थही मूल्य है ऐसी राजकन्याओंका विवाह और हे जगत्पति ! द्वारकामें जाकर जो नृग राजा-को पापसे छुडाओगे,सो देखूँगा ॥ १७ ॥ जाम्बवतीके साथ स्यमंतकमणिका पीछे लाना और सांदीपन गुरुके महाकालपुरसे मरेपुत्र सजीव लाकर दोगे, सो देखूँगा ॥ १८ ॥ फिर मिथ्यावासुदेवका मारना, काशीपुरीको जलाना, दंतवक्रका मारना और राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें शिशुपालका मारना देखूँगा ॥ १९ ॥ और भी द्वारकामें वास करके तुम जो जो लीला करोगे, उन लीलाओंका कवि लोग पृथ्वीपर गान करेंगे ॥ २० ॥ इसके उपरान्त कालरूप तुम इस पृथ्वीका बोझ उतारनके लिये अर्जुनके रथवान होकर सेना-ओंका संहार कराोगे,सो सब हम देखेंगे ॥ २१ ॥ केवल ज्ञानमूर्त्ति अपनी पूर्णानन्द स्थितिसे पूर्णकाम सत्यसंकल्प और अपनी चैतन्य शक्ति अपने तेजसे नित्य मायासे निवृत्त और छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त हम तुम्हारी शरण प्राप्त होतेहैं ॥ २२ ॥ ईश्वर स्वतत्र अपनी मायासे सब प्रकार के विशेषोंकी कल्पना करनेवाले, क्रीडाके लिये अभी मनुष्यदेह धारण करनेवाले, यदु, वृष्णि, सात्त्वतोंमें अग्रणी मैं आपको नमस्कार करता-हूँ ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! भक्तोंमें श्रेष्ठ, मननशील भग-वान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनसे प्रसन्न हो, नारदजी इसप्रकार यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रको नम-स्कार कर और आज्ञाले चलेगये ॥ २४ ॥ ब्रजवासियोंको सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र युद्धमें केशीको मारकर ग्वालबालों सहित पशुओंका पालन करनेलगे ॥ २५ ॥ एक-समय गायोंके पालनकर्त्ता ग्वालबाल गोवर्द्धन पर्वतके शिखरपर गायोंको चराते और पालनका मिसकर छिपा छिपी खेल करने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! उस खेलमें कितने ही बालक चोर बने और कितनेही रखवाले बने. कितने ही भेड़ बने, इसप्रकार निर्भय होकर खेलने लगे ॥ २७ ॥ इतनेहीमें मयदैत्यका पुत्र अत्यन्त मायावी व्योमासुरनामक दैत्य ग्वालका रूप धारणकर, चोर बने जो बालक चोर बने थे, उनको चुराकर लेजानेलगा ॥ २८ ॥ वह बड़ा दैत्य उनको लेलेजाकर पहाड़की गुफामें डाल शिलासे गुफाका मुह बन्द कर-देता जब केवल चार पाँच ग्वाल शेष रहगये ॥ २९ ॥ तब साधु पुरुषको शरणदेनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें विचार किया कि, हमने तो खेल किया है, यह सचाही

चोर आनपहुँचा, इसप्रकार उस दुष्टका छल जान गोपोंको लेजाते व्योमासुरको, जैसे सिंह बलपूर्वक व्याधको पकड़ लेता है, उसी प्रकार पकड़ लिया ॥ ३० ॥ उस बलवान् दैत्यने अपना शरीर पर्वतके समान धारण किया और अपने छुड़ानेके लिये बहुतेरा यत्न किया परन्तु पकडनेसे आतुर होगया, इसलिये कृतकार्य न हुआ ॥३१॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्योमासुरकी दोनों भुजा पकड पृथ्वीमें पटककर देवताओंके देखते देखते श्वास घोटकर मार डाला ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त गुफाका ढकना तोड गोपोंको कष्टसे बाहर निकाल देवता और गोप जिनकी स्तुति करैं ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोकुलमें आये ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

दोहा-अडतिसमें अक्रूर मन, जैसो कियो विचार।
तैसोही अक्रूरको, कियो कृष्ण सत्कार ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! बडे बुद्धिमान् अक्रूरजीभी उस रात मधुपुरीमें बासकर प्रात होते ही रथमें चढकर नंदजीके गोकुलको चले ॥ १ ॥ महाभाग अक्रूरजी मार्गमें जाते कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परम भक्तिको प्राप्त हो यह विचार करनेलगे ॥ २ ॥ कि, मैंने ऐसा कौन मंगलकर्म, अथवा तप, वा सत्पात्रोंको दान किया था, जिसके प्रभावसे ब्रह्मा, महादेवके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका आज दर्शन करूंगा ॥ ३ ॥ मैं जानता हूँ कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होना अत्यन्त दुर्लभ है, जैसे विषयोंमें मन, शूद्रकुलमें जन्म, ऐसे पुरुषको वेदका उच्चारण दुर्लभ है, * ॥ ४ ॥ अथवा ऐसे नहीं मुझ अधमको भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन होजांय कारण कि, जिसप्रकार नदीमें बहतेहुए तृणसे कदाचित् कोई तीरपर भी पहुँच जाय तैसेही

---

* शंका-वेदका कीर्त्तन करना, श्रवण करना और पढना शूद्रके लिये वर्जित है, चाहे विरक्त होवै चाहे गृहस्थी होवै, तो फिर अक्रूरने क्यों कहा कि विषयमें रमित शूद्र उसको वेदका कीर्त्तन आदि महादुर्लभ है, इस वाक्यसे विदित होता है कि गृहस्थ शूद्रके लिये वेदका कीर्त्तन आदि दुर्लभ है तो भी विरक्त शूद्रको दुर्लभ नहीं है. पुण्य है यह भ्रम है॥

उत्तर- (शूद्रजन्मा) इस शब्दका शूद्र अर्थ कभी भी मत समझना. शूद्रजन्मा इसका अर्थ यह है कि, शूद्र सरीखे जिसका जन्म होय उसका शूद्रजन्मा जानना चाहिये. जन्म तो हुवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके कुलमें परन्तु भ्रष्ट लोगोंकी सदृश काम करै, सज्जनो! जान लेना इस अर्थको मैं गुप्त लिखूं हूं एक भ्रष्ट दूसरे विषयसे निन्दनीय लक्षणों करके संयुक्त जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, उनको वेदका कीर्तन आदि महादुर्लभ है ऐसा अक्रूरजीने कहा था, शूद्रको नहीं कहा था ॥

कर्मवशसे कालसे लेजायेहुए जीवोंमेंसे भी कभी कोई तिर जाय ॥ ५ ॥ मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिवानेको चलाहूं, इसलिये अब मेरा मंगल हुआ, जन्म सफल हुआ, क्योंकि योगी जन जिनका ध्यान धरते हैं उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंमें आज नमस्कार करूंगा ॥ ६ ॥ अहो ! बडा आश्चर्य है, दुष्ट कंसने आज मेरे ऊपर बडा अनुग्रह किया, जिसके भेजनेसे मुझको अवतार धरेहुए हरि भगवान्का दर्शन होगा ! जिनके नखमंडलकी कांतिसे अंबरीष आदि सब दुरत्यय सागरको तरगये ॥७॥ जो चरणारविंद ब्रह्मा महादेवादि देवता लोगोंने प्रकाशमान लक्ष्मी तथा मुनीश्वरोंने और भक्तोंने पूजे हैं और गाय चरानेके लिये जो चरणारविन्द ग्वालबालोंके संग वनमें फिरे हैं और जिन चरणारविन्दोंमें गोपियोंके कुचोंकी केशर लगी है, उन्हीं चरणारविन्दोंका आज दर्शन करूंगा ॥ ८ ॥ सुन्दर कपोल, नासिका और मुसकान युक्त चितवन, लाल डोरे जिनमें आरहे, घूमघुमारी अलकोंसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका आज निश्चय दर्शन करूंगा क्योंकि हिरणभी मेरे दाहिनी ओर आये हैं ॥ ९ ॥ पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपनी इच्छासे अब मनुष्यरूपधारण करनेवाले, शोभाके धाम, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमानरूपका जब दर्शन करूंगा, तब मेरे नेत्र सफल होंगे ॥ १० ॥ तीन लोकके कार्यरूप जगत् और कारण रूप महदादिक तत्त्वको यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चितवनसे ही करते हैं, परन्तु तो भी उनको अहंकार नहीं है अपने तेजसे अज्ञानके भेद भ्रमसे रहित हैं, अपने आधीन मायाकी ओर चितवन करके अपने रचे जीव वृन्दावनके वृक्षोंके नीचे और गोपियोंके घरोंमें लीलापूर्वक वृद्धिसे दिखाई देते हैं ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके अहंकार नहीं है, जो आत्माराम हैं, उन्हें लीला करना कैसे संभव है? तो कहते हैं कि, भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये लीला करते हैं, सबके पापोंको दूर करनेवाले सुन्दर मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गुण, जन्म, कर्मसे मिली वाणी जगत्को जिलानेवाली है और शोभायमान करती है, पवित्र करती है और जिन वाणियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला, गुण, जन्म, कर्म नहीं गाये गये हैं, उनको जो कहते हैं और श्रवण करते हैं, सो अपवित्र हैं, जैसे मृत्युको प्राप्त हुआ शरीर अपवित्र है ॥ १२ ॥ यादवोंके कुलमें जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार लिया है, वह अपनी मर्यादाओंका पालन करनेवाले, लोकपालोंको सुखदेनेवाले लीलापूर्वक यश विस्तार करते व्रजमें रहते हैं और सबको मंगलकारी, उनके यशको देवता लोग गाते हैं ॥ १३ ॥ महत् पुरुषोंको सुन्दर गति देनेवाले गुरू त्रिलोकीमें सुन्दर नेत्रवाले पुरुषोंको आनंददेनेवाले, लक्ष्मीके निवासस्थान, सुन्दररूप धारण किये श्रीकृष्णचन्द्रका आज मैं निश्चयही दर्शन करूंगा, क्योंकि आज प्रातःकालके समय मुझे श्रेष्ठ शकुन हुए हैं ॥ १४ ॥ दर्शन करने उपरान्त उसीसमय रथमेंसे उतर इन प्रधान पुरुष कृष्ण बलरामके चरणकी जिनका योगी पुरुष भी स्वरूपकी प्राप्तिके लिये केवल बुद्धिसेही ध्यान करते हैं उनको मैं साक्षात् प्रणाम करूँगा और फिर इन सहित व्रजवासी सखाओंको भी प्रणाम करूंगा ॥ १५ ॥ चरणामें पडेहुए मस्तकपर समर्थवान् अपना हाथ धरेंगे, जो

हाथ कालरूप सर्पके वेगसे डरेहुए व शरण चाहनेवाले मनुष्योंको अभयका देनेवाला है ॥ ॥ १६ ॥ जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके इन्द्रने इन्द्रता पाई और ऐसेही राजा बलिने संकल्प करके त्रिलोकीकी इन्द्रता प्राप्त करी और रासक्रीडामें ब्रजकी श्री गोपियोंके श्रमके पसीनेको श्रीकृष्णने जिस हाथसे पोंछा था और जिन हाथोंमें कमलके समान सुगंधि आती है, वही हाथ मेरे मस्तकपर धरेंगे ॥ १७ ॥ यद्यपि मैं राजा कंसका भेजाहुआ दूत हूं, परन्तु तोभी श्रीकृष्णचन्द्र मुझपर यह शत्रुका दूत है, ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे, क्योंकि वह अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र मेरे चित्तकी बाहर भीतरकी चेष्टाको नित्य ज्ञानसे देखते हैं मैं ऊपरसे तो कंसका भेजाहुआ जाताहूं, परन्तु भीतरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकाही ध्यान लगारहा है इस बातको नित्य ज्ञानसे भलीभाँति श्रीकृष्णचन्द्र जानते हैं ॥ १८ ॥ * चरणारविंदमें गिरा, हाथ जोडे मुझे मुसकाकर करुणाभरी दृष्टिसे जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र देखेंगे, उसी समय पाप और भय दूर होजानेसे आशंकाओंसे रहित हो मैं परमानंदको प्राप्त हूंगा ॥ १९ ॥ जिनके अत्यन्त हितकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और कोई देवता नहीं, वह भगवान् जिस समय अपनी जाति और कुटुम्बी जान मुझे भुजा पसार छातीसे लगावेंगे उसी समय यह देह परमपवित्र होजायगा और कर्मरूप बन्धन भी इस देहके छूट जायँगे ॥ २० ॥ जब मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिल, मस्तक झुका हाथ जोड खडा हूंगा, तब हे काका अक्रूर! इसप्रकार बडे यशस्वी श्रीकृष्ण मुझसे कहैंगे; उस समय हमारा जन्म सफल होगा और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिस पुरुषका आदर सन्मान नहीं करते, उस पुरुषको धिक्कार है ॥ २१ ॥ यद्यपि उनको न तो कोई प्रिय है, न सुहृद है, न कुप्यारा है और न उदासीन है परन्तु तोभी भगवान् भक्तको भजतेहैं, जैसे कल्पवृक्षकी जो सेवा करे, वह उसीको फल देताहै ॥ २२ ॥ जब मैं नमस्कारकर, हाथ जोडूंगा, तब मेरी भुजा पकड, हास्यपूर्वक छातीसे लगा, गृहमें लेजाय भलीभाँति आदर सत्कारकर फिर बडे भ्राता बलरामजी अपने बंधु यादवोंमें कंसके कर्त्तव्यको पूछेंगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! इस प्रकार श्वफल्कके पुत्र अक्रूर मार्गमें श्रीकृष्णकी चिन्ताकरते रथमें बैठहुए गोकुलमें पहुंचे कि, इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ समस्त लोकोंका पालन करने वाले ब्रह्मादिक देवता अपने मुकुटोंके ऊपर जिनके चरणोंकी रेणुको धारण करते हैं,

---

* **दृष्टान्त**—कृष्ण अन्तर्यामी है, इसकारण कपट प्रीति सबकी जानते हैं। एक बडे भारी ठगथे सो एकदिन बडी ऐंठमा पाग बांधकर चले, लोगबोले कहाँचले! तो उत्तर दिया कि, सबको तो हमने ठगा परन्तु जो परमेश्वरको ठगकर लावैं तो हमारा नाम ठग है ऐसे कह चले परन्तु थोडेही दूरजाय लौट आये, लोग बोले क्यों भाई! लौट कैसे आये? यह बोले कि, भाई क्या कहैं ठगते तो सही परन्तु वह तो अन्तर्यामी हैं हमारे मनका कपट जान जायँगे उनपर हमारा छापा नहीं लग सकता ॥

ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके चरणोंके चिन्ह महात्मा अक्रूरजीने ब्रजमें देखे, जो पृथ्वीके गहनेरूपथे और जिनमें कमल, यव, अंकुश आदि चिन्ह प्रतीत होतेथे ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणचिह्नके दर्शनके आनंदसे संभ्रम और प्रेमसे रोमांच हो आये, नेत्रोंमें आंसू भरिआये, सो अक्रूर जी रथसे उतर अहो ! यह मेरे प्रभुके चरणोंकी रज है, इस प्रकार कहते कहते चरणोंके चिह्नोंमें लोटने लगे ॥ २६ ॥ देहधारियोंका इतनाही पुरुषार्थ है, जो कंसका संदेशा ले, दंभ, भय, शोच त्याग श्रीकृष्णचन्द्रके चिह्न दर्शन व श्रवणादिकसे अक्रूरको प्रेम उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ इसके उपरांत ब्रजकी गोशालामें गाय दुहनेको जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीको महात्मा अक्रूरजीने देखा, जो पीताम्बर और नीलाम्बर धारण कर रहे हैं और जिनके शरदृतुके कमलसे नेत्र हैं ॥ २८ ॥ किशोर अवस्था श्याम और गौर स्वरूप लक्ष्मीके शोभाके स्थान लम्बीभुजा, सुंदरमुख स्वरूपवानोंमें अत्यन्त शोभायमान हाथीके बालकके समान पराक्रमवाले ॥ २९ ॥ ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुशके चिह्नवाले चरणोंसे भूमिको शोभायमान करते महात्मा अनुकंपाजन्य जो मंद मुसकान व चितवन ॥ ३० ॥ उदार रुचिर जिनकी क्रीडा है, मोतियोंके हार और वनमाल पहरे, पवित्र चंदन और केशर लगाये, स्नान किये निर्मल वस्त्र पहरे ॥ ३१ ॥ प्रकृति पुरुषरूप आदिकारण जगत्के पालन करनेवाले पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलराम केशव मूर्ति दो रूप धरके अवतार लिये हैं ॥ ३२ ॥ हे राजन्! अपने तेजसे दिशाओंका अंधकार दूर करते हुए, जैसे सुवर्णसे नीलमणिका पर्वत अथवा रूपेका पर्वत जगमगाता है, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीके रूपको निहार ॥ ३३ ॥ स्नेहमें विह्वलहो महात्मा अक्रूरजीने शीघ्र रथमेंसे उतर राम कृष्णके चरणोंमें दण्डवत करी ॥ ३४ ॥ हे महाराज परीक्षित ! श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनके आनन्दसे आँखोंमें आंसू आगये, उत्कण्ठासे अंगमें रोमांच होगये और प्रेमके मारे अपना नाम बतानेको भी समर्थ न हुए ॥ ३५ ॥ हित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरका अभिप्राय जान, चक्रकी रेखा वाले अपने हाथसे अक्रूरके हाथ पकड, प्रसन्न हो छातीसे लगाकर मिले, यहाँ मिलनेका तात्पर्य यह है कि, श्रीकृष्णने कंसके मारनेकी सामर्थ्य जताई ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत उदारमन बलरामजी दंडवत् करते हुए अक्रूरजीको छातीसे लगाय, अपने हाथोंसे उनके दोनों हाथ पकड श्रीकृष्ण सहित घरमें लिवाकर लेगये ॥ ॥ ३७ ॥ और "भले आये" इस प्रकार कुशल पूँछ अक्रूरजीके लिये आसन बिछाय, विधिपूर्वक चरण पखार, मधुपर्क (दधि, घृत, मधु,) दे पूजा करनेलगे ॥ ३८ ॥ विधिपूर्वक पूजाकर गोदान अक्रूरजीको दी, फिर मार्गमें परिश्रम पाये अक्रूरजीके चरणारविन्द आदर सहित दाबके गुणभरी पवित्र अन्नकी सामग्री भोजनार्थ अति श्रद्धासे अक्रूरजीके आगे निवेदन करी ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त जब अक्रूरजी भोजन करचुके तब परम धर्मके जाननेवाले बलदेवजी बीरी, चन्दन, केशर, अतर और फूलोंके हार इत्यादिकोंसे उन्हैं प्रसन्न करनेलगे ॥ ४० ॥ सन्मान करनेके पीछे अक्रूरजीसे नंदरायजी

कहने लगे कि, निर्दयी कंसके जीते हे अक्रूर ! तुम्हारा जीवन किस प्रकार होताहै, कसा ईंके घर रहती भेडके समान तुम कैसे रहते हो ? ॥ ४१ ॥ प्राणोंका पोषण करनेवाले दुष्ट कंसने विलाप करती, जब अपनी बहिनकेही पुत्र मारडाले, उस दुष्टकी प्रजा तुम हो सो तुम्हारी क्या कुशल पूछें ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जब मधुर वचनसे पूंछ नन्दरायजी ने सत्कार किया तब महात्मा अक्रूरजीने मार्गके श्रमको त्याग दिया ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दोहा-उनतालिसमें नन्दसुत, मथुरा कियो पयान ।
यमुनामें अक्रूरने, लखो भवन भगवान् ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! शय्याके ऊपर आनन्द पूर्वक विराजमान श्रीकृष्ण बलदेवसे बडा सत्कार पाय, अक्रूरजीने मार्गमें जो जो मनोरथ किये थे सो सो सब पूर्ण हुए ॥ १ ॥ क्योंकि छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त परिपूर्ण शोभाके स्थान भगवान् श्रीकृष्ण ही जब प्रसन्न होगये तब किस वस्तुकी प्राप्ति न हुई, हे राजा परीक्षित् ! कृष्णपरायण भक्त किसी वस्तुकी चाहना नहीं करते ॥ २ ॥ इसके उपरांत देवकीनंदन भगवान् श्रीकृष्णचंद्र संध्यासमयका भोजन कर अपने यादवोंसे जैसा कंसका वर्त्ताव है, सो अक्रूरजीसे पूछने लगे ? और जो कुछ करनेका विचार है, उसको भी पूंछा ॥ ३ ॥ श्रीभगवान बोले कि, हे सौम्य ! भला तुम्हारा आगमन कुशल क्षेमसे तो हुआ है ? तुम्हारा कल्याण हो जातिके बंधु बांधव तो सुखसे और आरोग्यहैं ? किसीको कुछ दुःख तो नहीं है ? ॥ ४ ॥ हे अक्रूरजी ! मामा कंस तो हमारे कुलका रोग बडा है, फिर अपने बंधु बांधव और प्रजाकी क्या कुशल पूछें ? ॥ ५ ॥ देखो हमारे निरपराध माता पिता को अत्यन्त कष्टहुआ, हमारे लिये उनके पुत्र मारेगये और हमारे ही लिये वह बन्दी हुये ॥ ६ ॥ हे साधु ! बहुत दिनोंसे तुम्हारे दर्शनोंकी अभिलाषा लगरही थी सो आप ने आनकर हमको दर्शन दिया, यह बडाही अनुग्रह किया, अब यह बताइये कि, आपका आना कैसे हुआ ? ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके इसप्रकार पूछनेपर महात्मा अक्रूरजीने सब वृत्तान्त वर्णन कर दिया कि, कंस यादवोंसे शत्रुभाव रखता है और वसुदेवजीके मारनेका भी उद्योग उसने कियाथा ॥ ८॥ और जो संदेशा लायेथे, व जिसलिये स्वयं उनको दूत बनाकर भेजा था और देवर्षि नारदजीने जो कहा था कि, श्रीकृष्ण वसुदेवके पुत्र हैं ! सो सब कह सुनाया * ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

* शंका-व्रजमें नन्दादिकोंने अक्रूरसे बूझा कि, आप किस कामके लिये व्रजमें आये हो ? तब अक्रूरने कृष्णचन्द्रसे कहा कि आपको और बलदेवजीको मारनेके लिये यज्ञ देखनेके बहानेसे कंसने बुलाया है, तब स्वामीका विश्वासघातकपनका पाप अक्रूरको

और बडे २ शत्रुओंको पराजय करनेवाले बलरामजीने महात्मा अक्रूरजीका वचन श्रवण-कर कुछेक मुसकातेहुए नन्दजीसे राजा कंसका संदेशा कहा ॥ १० ॥ यह सुनतेही उन्होंने गोप लोगोंको आज्ञा दी ॥

चौ०-दही दूध अरु माखन मेवा। जोरहु सबै करन नृप सेवा ॥
औरहु भेंट देनके साजू। सबै समेट लेहु निशि आजू ॥

और गाडियें जोडो ॥ ११ ॥ कल मथुराको चलकर राजा कंसको गोरस देंगे और बडा भारी उत्सव देखेंगे, देखो ! यह सब देशवासी जाते हैं, इस प्रकार नंदजीने गोकु-लमें ढंढोरा पिटवा दिया ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त संपूर्ण गोपियें जिस समय अपने जीवन श्रीकृष्ण बलरामको मथुराको लेजानेको ब्रजमें अक्रूर आये हैं, यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखी हुईं ॥ १३ ॥ बहुत गोपियोंकी तो यह दशा हुई कि, उसके सुननेसे जो हृदयमें ताप हुआ उससे गोपियोंके मुख कुम्हलागये और वस्त्र, चूरी, कंकण, केशोंकी ग्रंथ यह सब शिथिल होगईं ॥ १४ ॥ और बहुत स्त्रियोंकी यह दुर्दशा हुई कि, श्रीकृ-ष्णचन्द्रके ध्यानसे सब इन्द्रियोंकी वृत्तियें जातीरहीं,व मुक्त होनेपर जैसे देहका भान जाता रहता है. वैसेही देहका भान भूलगईं ॥ १५ ॥ बहुतसी गोपियें स्नेहसे मुसकाय हृदयको आनन्ददायक चित्रविचित्र बोलनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके वचनोंका स्मरण कर मोहित

-लगैगा, क्योंकि वह बात गुप्त करके कंसने अक्रूरका विश्वास मानके कही थी कि, अक्रूर किसीसे नहीं कहेगा और जो कंस सरीखे कपट करके कहैं कि, महाराज आपका मामा है और कंस राजा भी है, सो यज्ञका कौतुक देखनेको बुलाया है, तब भगवान्‌की ओर कपटका पाप भोगैंगे ॥

उत्तर-जब श्रीकृष्णने अक्रूरसे बूझा कि, आपका आना ब्रजमें कैसे हुवा ? तब अक्रूरने अपने मनमें बडा दुःख माना कसा दुःख माना ? जैसे एक लकडी दोनों ओरसे जलती हो उस लकडीको कोई पुरुष हाथसे नहीं छूसक्ता, क्योंकि जो उस लकडीको पकडता है तो दोनों हाथ जलते हैं और हाथके बचानेका उपाय करता है तो लकडी हाथसे जाती है, ऐसेही अक्रूर होगये, कंसका पक्ष करते हैं तो भगवान्‌का द्रोही होना पडता है और भगवान्‌का पक्ष करते हैं तो कंसका द्रोही होना पडता है, तब प्राण त्यागनेका विचार किया फिर श्रीकृष्णभगवान्‌का ध्यान किया. उस ध्यानमें श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरको आज्ञा दी कि तुम क्यों इतना कष्ट सहते हो, कंसका कपट हो सो आप प्रगट मत करो, हमारी ओरसे कप-टमें तुमको कुछ दोष नहीं होगा, फिर भगवान्‌ने कहा हमारी ओरसे कपटकी त्रास त्याग दो, क्योंकि हम सब संसारका कर्म जानते हैं, मनुष्योंकी नाईं हम नहीं हैं,इसप्रकार भगवा-न्‌की आज्ञा पाकर अक्रूरने कंसके कपटरूप वचन कृष्णसे कहे, भगवान् तो सब जानतेही हैं, फिर क्यों गुप्त रखकर दोषका भागी बनूं, इसलिये कह दिया कि, तुम दोनो जनोंको यज्ञ देखनेके लिये कंसने बुलाया है ॥

होगई॥१६॥बहुतसी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मनोहर चलन स्नेहभरी चितवन, शोककी दूर करनेवाली बोलन इत्यादि चेष्टा और बडे बडे चरित्रोंको स्मरण करनेलगीं ॥ १७॥ यह अवश्यही जायंगे इस भयसे विरहमें कातर आँसू बहातीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये हजारों गोपियोंके झुण्डके झुण्ड मिलकर संपूर्ण परस्पर यह कहने लगीं ॥ १८ ॥ गोपियें कहने लगीं कि, हे विधाता ! तुझे कुछ भी दया नहीं है, क्योंकि जीवोंका परस्पर मिलाप व प्रेम बँधाय, उनके पूरे सुख न भोगनेपर भी वृथा वियोग कर देता है. इसीसे तेरी क्रीडा बालकोंके समान है. अर्थात् तू मूर्ख है ॥ १९ ॥ जो तू श्याम अलकोंसे आच्छादित, सुन्दर कपोल, ऊंचा नासिकावाला, शोच मिटानेवाले मंद हास्यके लेशमात्रसे भी शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका एक वार दर्शन कराय,पीछे छिपा लेता है, हमने तेरा क्या अपराध किया है ? ॥ २० ॥ दान करके लेता है, इसलिये तू बडा कठोर है, (अक्रूर लिये जाता है मैं तो नहीं लेजाता यदि विधाता यह कहै तो इसके उत्तरमें गोपियें कहती हैं कि.) अरे विधाता ! निर्दयी अक्रूर नाम धर कर तूही आया है सो अपने दियेहुए कृष्णरूप नेत्र अज्ञानीके समान हरके लिये जाता है, जिस तेरी दी हुई आँखसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके एक एक अंगमें तेरी संपूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता हम देखती हैं ॥ २१ ॥ अरे ! रे ! ! क्षणभंग स्नेहवाले नंदके पुत्रकी मुसकानसे मोहित हुई घरमें बंधु और पुत्र पतियोंको छाड हम साक्षात् उनकी दासी हुई परन्तु बडे आश्चर्यकी बात है कि, वह हमारी ओरको दृष्टि उठाकर देखता भी नहीं जान पडता है कि, उसे नित्य प्रति नये नये प्यारे लगते हैं ॥ २२ ॥

दोहा-नँदनंदन नहिं नेहकी, जानत नेकहु रीति।
सबसों राखत है कपट, मुख देखेकी प्रीति ॥

मथुराकी स्त्रियोंको इस रातका सवेरा अच्छा होगा,क्योंकि उनके मनोरथ निश्चय सबै होंगे, देखो जो स्त्रियें मथुरामें पधारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मुख कि, जो कटाक्षसे दृष्टि गत और मुसकान रूप जिसमें रस ऐसे सुन्दर रसका पान करेंगी ॥ २३ ॥ हे बालाओ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि माता, पिता, आदिके पराधीन हैं और धीर हैं, परन्तु तो भी उन स्त्रियोंके मदके समान माठे भाषणोंसे इनका चित्त हरण होजायगा, व उन स्त्रियोंके लजील मंदहास्य व विलासोंसे भ्रम जायँगे, इसलिये जो अपने गाँवकी रहने वाली हैं, उनके निकट पीछे किस प्रकार आवेंगे ॥ २४ ॥ आज तो मथुरामें दाशा र्हवंशी, भोजवंशी और अंधकवंशी यादवोंकी आँखोंको निश्चय आनन्द होगा, क्योंकि लक्ष्मीके संग रमण करनेवाले संपूर्ण गुणयुक्त देवकीनंदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जो पुरुष मार्गमें देखेंगे, उनके नेत्रोंको निश्चयही बडा आनन्द होगा ॥ २५ ॥ ऐसे क्रूर कर्मकरने वाले निर्दयीका अक्रूरनाम किसने रक्खा है, जो यह निर्दयी बहुत दुःखित हमारे बिना पूँछे प्राणोंसे प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हमारी आँखोंसे दूर लिये जाता है ॥ २६ ॥ देखो ! यह कठोरबुद्धि कृष्ण रथमें जाबैठे, तिसपर यह अभागे ग्वाल गाडीको शीघ्रही

हाँकनेकी चेष्टा करते हैं, ऐसी अनीतिको होतीहुई देखकर कोई बडा बूढा भी मनें नहीं करता, इससमय किसी गोपके विघ्न होजाता तो बुरा शकुन विचारकर श्रीकृष्ण नहीं जाते, हाय! हाय!! आज दैवही हमारे प्रतिकूल चेष्टा करता है ॥ २७ ॥

दोहा-हाय दई कैसी भई, ब्रजमें यह अनरीति।
एक बार नँदवारकी, छोडदई सब प्रीति ॥

फिर गोपियें बोलीं कि, सखी? हम सब चलकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मने करेंगी और उनके रथके आगे जाय, आडी पडकर कहेंगी कि, यदि आप जातेही हैं तो हमारी छातीपर रथका पहिया उतारकर चले जाओ और हमारे कुलके बडे बुढे भी क्या करेंगे क्योंकि जो आधे क्षणको भी नहीं छूट सक्ते, उन्हीं मुकुन्दका वियोगकर दैवने हमारे चित्त दीन कर दिये हैं ॥ २८ ॥ हे गोपियो! और देखो सखी! उन्हीं कृष्णकी स्नेह-भरी मनोहर मुसकान मनोहर लीलापूर्वक चितवन आलिंगनसे रासकी सभामें अत्यन्त बडी रात्रियें एक क्षणके समान बीत गईं थीं, अब बिना श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके विरहरूपी दुःखके समुद्रको कैसे तरेंगी?॥२९॥ संध्यासमय बलदेवजीके संग ग्वालबालोंसे वेष्टित हो बाँसुरी बजाते, जिनके बाल और माला गायोंके खुरोंकी धूरिसे परिपूर्ण रहते थे, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वनमें आनेके समय कुछेक हँसते एक कटाक्ष सहित दृष्टिसे हमारे चित्तको हरते थे, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना अब हम किसप्रकार जीवन धारण करेंगी? ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित्! इसप्रकार अत्यन्त विरहमें व्याकुल भगवान श्रीकृष्णचन्द्रमें मनलगाये, गोपियें लज्जा त्याग हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! इसभाँति पुकार पुकारकर रोनेलगीं ॥३१॥ हे राजन्! इस प्रकार गोपियें विलाप कर रही थीं कि, इतनेहीमें भगवान् सूर्य उदय होगये, इसके उपरान्त महात्मा अक्रूरजीने संध्योपासनकर रथ हाँका तब गोपियें हाहाकारकर रोतीहुई कहने लगीं ॥ ३२ ॥

चौ०-मोहन इधर देख तो लीजे। बिछुरत लाल हमैं कछु दीजे ॥
लेहु निहार बिरजको खेरो। बहुरो ब्रजमें होत अँधेरो ॥
बार बार यशुदा यों भाषै। कोऊ चलत गोपालहि राखै ॥
सुफलक सुत वैरी भयो आई। हरे प्राण धन बाल कन्हाई ॥

केशवमूर्तिके वियोगमें यशोदा व गोपियें इस प्रकार व्याकुल हो हाहाकार करने लगीं, इसके उपरान्त नंदादिक संपूण ब्रजबासी ग्वालबाल दूध दही माखनसे भरे कलशोंको ले गाडियोंमें बैठकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके संग चले ॥ ३३ ॥ और श्रीकृष्णमें आसक्त मन गोपियें श्रीकृष्णके पीछे जाय कदाचित् श्रीकृष्ण लौट आवें, इस प्रकार पैंडा देखने लगीं जब हरिके निकट गई तब तो घबराकर ॥

चौ०-धाई कहत हाय! घन श्यामा। कहाँ जात तजिकै ब्रज धामा ॥
बालपनेकी प्रीति कन्हाई। तोरि चले तिनकाकी नाई ॥

कहत हते हमसों हे प्यारे !। तुम समान कोउ प्रिय न हमारे॥
भूल गये रतियाँकी बतियाँ। सो सुधि करत फटत अब छतियाँ॥
विरह वारिनिधि कतब्रजबोरत। लालन लगन लता कत तोरत॥

अरे निर्दयी ! जो यही इच्छा थी तो उसी समय क्यों नहीं डूबजाने दिया, यह दुःख क्यों देखनेमें आते ? ॥

चौ०-होत दया नहिं कत मन तेरे। रे कपटी कान्हा नँद केरे ॥
तुम तो चले मधुपुरी प्यारे। हमको काहे जात न मारे ॥
यहि विधि कहत विविध विध वानी। चलीं जात रथसे लिपटानी॥
गिरहिं परहिं पुनि उठहिं भामिनी। छूटी वेणी खुली दामिनी ॥
रजरंजित ह्वैग सब अंगा। भो करदम महि आँशु प्रसंगा ॥

रथकी धूरि जो उडती थी सब अंग उससे रँग गये और नेत्रोंसे जो आँसुओंकी धारा छूटी तो सब पृथ्वीपर ऐसी कीच होगई कि, पाँव उठायेसे नहीं उठते थे वहीं खडी हो, हाय ! हाय ! ! करने लगीं ॥

चौ०-हाय ! हाय ! ! माचो चहुँ ओरा। दुखित युवा जरठहु अरु छोरा॥
काहू तनु नहिं तनक सम्हारा। देखहिं दृग भर नन्दकुमारा ॥
ब्रजवनितन कर लखकर शोका। गये शोक मढि तीनहुँ लोका॥
हरिणी हरिण हेरि हरि रोवैं। रहे अचलतरु हरि मन जोवैं ॥
बोल रहे वन विहँग चिरैया। मनहुँ कहत कहँ जात कन्हैया ॥

दोहा-जिनके तन धन प्राणते, अति प्रिय नन्दकुमार।
तिन ब्रजनारिनको विरह, को कहि पावत पार ॥ ३४ ॥

यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चलनेके समय उन गोपियोंको व्याकुल देख "शीघ्रही आऊंगा" ऐसे प्रेम सहित वचन दूतसे कहलाकर शान्त किया ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित् ! जहांतक रथकी ध्वजा देखी, तहाँ तक तो रथकी धूल उडती देखी और तब तक गोपियें भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये चित्रकी नाई लिखीसी खडी रहीं ॥ ३६ ॥ परन्तु जब जाना कि, अब मुरलीमनोहर नहीं आवेंगे, तब वह गोपियें अत्यन्त व्याकुल हो लौटीं और शोक प्रकाशकर परस्पर कहनेलगीं ॥ ३७ ॥

दोहा-भयो ओट जब दृगन ते, मुरछि परीं बिलखाय।
कहति गयो रथ दूर अब, धूरि न परत लखाय ॥

हे राजन् ! इस भाँति वह गोपियें विलाप करतीहुई ब्रजमें लौट आईं और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंको गाय गाय, शोक त्यागती दिनोंको बिताने लगीं, उधर पवनकी तुल्य वेगवाले रथमें बैठ बलदेव अक्रूर सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, संपूर्ण पापोंके नाश करनेवाली यमुनाके निकट पहुँचे ॥ ३८ ॥ वहाँ पहुँच हाथ पाँव धो आचमन कर, निर्मल मीठा जल पी, फिर बगीचेमें आनकर बलराम सहित रथमें बैठ

गये ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महात्मा अक्रूरजी भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलरामजीको रथमें बैठाल और उनसे आज्ञा माँग विधिपूर्वक स्नान करनेलगे ॥ ४० ॥ और जलमें गोता मारकर गायत्रीका जप करते २ महात्मा अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको देखा ॥ ॥ ४१ ॥ फिर अक्रूरजीको भ्रम हुआ कि, रामकृष्णको तो मैं रथमें बैठालकर आया था, सो यहाँ कैसे आये ? कदाचित् रथमेंसे उतर तो न आये हों, इसलिये निकलकर देखूं, इस प्रकार विचार करने लगे ॥ ४२ ॥ फिर अक्रूरजीने निकलकर देखा कि, पहलेके समान कृष्ण बलदेव रथमें विराजमान हैं उससमय अक्रूरजी महाविस्मयको प्राप्त होकर कहने लगे कि, जलके भीतर जो मुझे दर्शन हुआ, सो मिथ्या है, इस प्रकार बुद्धिसे निश्चयकर फिर गोता मारा, तो सिद्ध, चारण, गंधर्व, देवता, नर्त्तक, स्तुति कर रहे हैं और भगवान् शेषजी विराजमानहैं ऐसा देखा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जिनके सहस्रशिर मुकुटोंसहित सहस्रही फण, नीले वस्त्र धारण किये कमलनालकी तुल्य श्वेतवर्ण कैलासके समान प्रकाशमान शेषजीको देखा ॥ ४५ ॥ कुंडलसे विराजमान उनके ऊपर श्याम और पीतवस्त्रोंको धारण किये चार भुजा शांतस्वरूप पुरुष कमलके पत्तोंके समान अरुण नेत्र ॥ ४६ ॥ सुन्दर प्रसन्न मुख सुन्दर हास्यभरी चितवन, सुन्दर भ्रुकुटी और शोभायमान नासिका, सुंदर कर्ण सुन्दर कपोल और अरुण ओष्ठ ॥ ४७ ॥ लम्बी मोटी भुजा विशाल हृदयमें लक्ष्मी विराजमान, गोल शंखसी, ग्रीवा, तीन बलि जिसमें पड रहे ऐसी शोभायमान जिनकी नाभि पीपलके पत्तेके समान चिकना उदर ॥ ४८ ॥ पतली कमर और बृहत श्रोणीसे शोभायामान दोनों जंघा ॥ ४९ ॥ लम्बायमान दोनों गुल्फ, लाल नखोंके समूहकी कान्तिसे वेष्टित, कोमल अंगुली, सुन्दर चरणकमल ॥ ५० ॥ बहुत मोलके मणियोंसे जटित किरीट कडे, बाजुबन्ध और कमर कर्धनी, यज्ञोपवीत, मोतियोंके हार, चरणोंमें नूपुर तथा कानोंमें कुण्डल जो पहर रहे हैं, उनसे अत्यन्तही प्रकाशमान हैं ॥ ५१ ॥ कमल और शंख, चक्र, गदाको धारण किये भृगुलताका चिह्न जिनकी छातीमें प्रकाशमान, कौस्तुभमणिकी जिनके धुकधुकी ॥ ५२ ॥ सुनंद नंदन जिनमें मुखिया ऐसे पार्षद सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और ब्रह्मा महादेवादि देवता मरीच्यादि जो ब्राह्मण प्रह्लाद, नारद, वसु जिनमें मुख्य इसप्रकार उत्तम भक्त अलग अलग भावसे उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और श्री, पुष्टि वाणी, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि इला, ऊर्ज्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति, माया, जिनका निरंतर सेवन करती हैं ॥ ५५ ॥ ऐसे परिपूर्ण रूप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो, परम भक्तिको प्राप्त हो, देहमें रोमांच होगये और भक्तिके कारण नेत्रोंमें आँसू भरिआये, ऐसे महात्मा अक्रूरजी मस्तक नवाय प्रणाम कर, सावधान हो, हाथ जोड, धीरेसे सत्त्वगुणका आश्रय ले गद्गदवाणीसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

दोहा-चालिसमें अक्रूरने, लख हरि चरित अपार।
सगुण निगुणकी भक्तिसे, बिनवत वारंवार ॥

अक्रूरजी बोले कि, हे कृष्ण ! संपूर्ण कारणोंके कारण नारायण आदिपुरुष अविनाशी जिनकी नाभिमें उत्पन्न हुए कमलसे ब्रह्मा हुए और उस ब्रह्मासे यह लोक उत्पन्न हुआ, तुमको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, पुरुष, मन, इन्द्रिय, समस्त इन्द्रियोंके लिये विषयसे संपूर्ण देवता यह जो जगत्‌के कारण हैं सो तुम्हारेही अंगसे हुये हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मासे आदि लेकर जड जो सम्पूर्ण तत्त्व हैं, सो अपने स्वरूपको नहीं जानते और जीव हैं सो तत्त्वोंको जानते हैं, अपने स्वरूपको नहीं जानते, मायाके गुणोंसे बँधे हुए जीव गुणोंसे अलग तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते ॥ ३ ॥ ब्रह्माके उपास्य महापुरुष ईश्वर तुम होवे. तुम्हारी ही पूजा करते हैं और इन्द्रिय पंचभूत, देवता, इनके साक्षी अंतर्यामी तुम हो, इसीलिये तुम्हारी साधुलोग पूजा करते हैं ॥ ४ ॥ और कोई एक कर्मोंमें निष्ठावाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदसे यज्ञोंका विस्तार करके अनेक रूप देवताओंका नाम लेलेकर पूजा करते हैं ॥ ५ ॥ और कोई कोई ज्ञानी पुरुष संपूर्ण कर्मोंको त्याग, समाधिमें आनकर ज्ञानरूप तुम्हारा पूजन करते हैं * ॥ ६ ॥ और दूसरे पुरुष विष्णुकी दीक्षा लेकर नारदपंचरात्रमें कही पूजाकी विधिसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन भेदोंसे बहुत रूप और नारायण रूपसे एकरूप आपकोही पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ और कोई कोई पुरुष शिवजीके कहे शैवमार्ग और पशुपतमार्गसे शिवरूप तुमको हे भगवन् ! अनेक प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हे सर्वदेवतारूप ! हे समर्थ ! जो पुरुष और देवताओंके भक्त हैं और देवताओंमें उनके मन लग रहेहैं, वह सबके ईश्वर तुम्हारीही पूजा करते हैं, क्योंकि आप सब देवताओंके रूप हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! जैसे पर्वतोंसे निकली मेघके जलसे परिपूर्ण हो, नदियें चारों ओरसे वह बहकर समुद्रमें जा मिलती हैं, उसी-प्रकार सब देवताओंके मार्ग अंतमें तुमहीं में आनकर मिलजाते हैं ॥ १० ॥ सत, रज, तम, यह तुम्हारी प्रकृतिके गुण हैं, इन गुणोंमें ब्रह्मा आदि स्थावर तक सब जीव पोहेहुए हैं, वे गुण प्रकृतिमें और प्रकृति तुममें ॥ ११ ॥ संसारमें अलिप्तबुद्धि जिसके आत्मा सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी तुम हो, सो मैं आपको नमस्कार करता हूं अविद्यासे हुआ गुणका प्रभाववाला संसार देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, इनकी देहमेंही प्रवृत्त होता है, इसलिये इनमें और आपमें बडा अंतर है ॥ १२ ॥ अग्नि तुम्हारा मुख

---

* **शंका**-योगमें बड़े चतुर, ऐसे योगीजन सब संसारके सुखको त्यागकर जिस ब्रह्ममें मिल जाते हैं सो श्रीकृष्णचन्द्र हैं, यह शंका हमको वारंवार होतीहै ?

उत्तर-जिस ब्रह्मको मुमुक्षु लोग जाते हैं, उस ब्रह्मको योगीजन नहीं जासक्ते, वह ब्रह्म बडा कठिन है, परन्तु संसारमें अपने अपने इष्टको ब्रह्मके स्वरूपकी नाई बड़ाई करके सब प्राणी वर्णन करते हैं, इसलिये अक्रूरभी कृष्णका ब्रह्मस्वरूप करके वर्णन करते हैं ॥

है, पृथ्वी तुम्हारा चरण है, सूर्य नेत्र, आकाश नाभि, दिशा कान, स्वर्ग मस्तक, देवता भुजा और समुद्र काँख हैं, पवन प्राणरूप तथा बलरूप कल्पना किया है ॥ १३ ॥ वृक्ष औषधि देहमें रोम, मेघ तुम्हारे केश, पर्वत तुम्हारे हाड और नख हैं, रात्रि दिन पलकोंका खोलना तथा बंद करना है, प्रजापति तुम्हारा मेढ़् है और वर्षाको तुम्हारा वीर्य कहते हैं ॥ १४ ॥ तुम अविनाशी पुरुषमेंही लोकपालों सहित लोक स्थित है और वह बहुत जीवोंसे व्याप्त है, जैसे जलमें छोटे कीडे चलते हैं, गूलरमें भुनगे उडते हैं, उसीप्रकार मनकी वृत्तिसे जाननेमें आओ जो तुम हो, तिनमें अनंत ब्रह्माण्ड फिरते हैं ॥ १५ ॥ इस संसारमें लीला करनेके लिये आप जो जो रूप धारण करतेहो उनसे शोक दूरकर लोग आनन्दसे तुम्हारे यशको गाते हैं ॥ १६ ॥ सत्यव्रतको माया दिखानेके लिये मत्स्यरूप धरकर प्रलयके समुद्रमें विचरनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, मधुकैटभ दैत्यको मारनेके लिये हयग्रीवरूप धरनेवाल आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ मंदराचल पर्वतके धारण करनेवाले बडे कच्छपरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, पृथ्वी लानेके लिये वाराहरूप आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ साधुपुरुषोंका भय दूर करनेवाले अद्भुत नृसिंहरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है, वामनरूप होकर तीनो लोक नापनेवाले तुम्हें नमस्कार है ॥ १९ ॥ गर्वीले क्षत्रियरूप वनको काटनेवाले भृगुवंशियोंके पति परशुराम तुमको नमस्कार है, रावणके मारनेवाले रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्ररूप आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ वासुदेवरूप तुमको नस्मकार है, संकर्षणरूप तुमको नमस्कार है, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप तुमको नमस्कार है, भक्तोंके पति तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ दैत्य दानवोंके मोहित करनेवाले शुद्ध बुद्धरूप तुमको नमस्कार है, म्लेच्छ क्षत्रियोंको मारनेवाले कल्कीरूप तुमको नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह जीव तुम्हारी मायासे मोहित हो अहंता ममतारूप दुराग्रहसे कर्ममार्गोंमें भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ हे विभो ! मैंभी स्वप्नके समान आत्मा, पुत्र घर, स्त्री, धन, भाई, बंधु इत्यादि हैं, उनमें मूर्खतासे सत्यबुद्धि कर भ्रमण करताहूं ॥ ॥ २४ ॥ अनित्य आत्मा दुःखरूप हैं,उनको नित्य आत्मा सुख रूप जानताहूं और सुख दुःखमें क्रीडा करनेवाला अज्ञानसे भरा मैं अपने प्रिय तुमको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष स्यवारसों ढके जलको छाड सूर्यकी किरणोंसे बालू चमकते जलके लिये जाते हैं उसी प्रकार मायासे ढके तुमको त्याग देहादिकोंमें मेरा मन लगरहाहै॥२६॥कृपणबुद्धि अर्थात् विषयोंमें बुद्धिलगनेसे काम्य कर्मसे क्षुभित हुए मनको रोकनमें असमर्थ नहीं हूं परन्तु बलवान् इन्द्रियें मनको इधर उधर चलायमान कर देती हैं॥२७॥ हे परमेश्वर! हे पद्मनाभ विषयी पुरुषोंको दुर्लभ मैं आपके चरणारविन्दोंकी शरण आया हूं और तुम्हारी शरण आना यह भी आप केही अनुग्रहसे हुआ है, ऐसे मानताहूं, क्योंकि जब पुरुषका संसार छूटनहार होता है, तब हे कमलनाभ ! साधुओंकी सेवा करते हैं, उस सेवासे तुममें आनकर बुद्धि लगती है, परन्तु तुम्हारी कृपा बिना साधुओंकी सेवा भी नहीं बनती और तुममें बुद्धि भी नहीं लगसक्ती है॥२८॥विज्ञानमूर्त्ति समस्त ज्ञानके कारण पुरुष काल माया

इनरूप ब्रह्म तुम हो इसलिये हे अनन्त शक्ति ! मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥ २९ ॥ हे समर्थ ! हे इन्द्रियोंके प्रेरणेवाले ! चित्तके अधिष्ठाता सब प्राणियोंके आश्रय ! तुमको मैं नमस्कार करताहूं तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुए मेरी रक्षा करो ॥ ३० ॥

दोहा-तव गुण रूप अनन्त प्रभु, हौं अजान जगदीश।
यों स्तुति अक्रूर करि, नायो पदपर शीश ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दोहा-इकतालिस अध्यायमें, मथुरा कियो प्रवेश।
रजकवधो माली दियो, शुभ वरदान ब्रजेश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्तुति करते हुए अक्रूरजीको जलके भीतर अपना स्वरूप दिखलाकर फिर जैसे नट अपने स्वांगको दिखलाकर समेट लेता है, उसी प्रकार समेट लिया ॥ १ ॥ अक्रूरजी भी श्रीकृष्णचन्द्रको जलमेंसे अन्तर्धानहुआ देख अत्यन्त शीघ्रतासहित जलमेंसे निकल सम्पूर्ण सन्ध्योपासन कर आश्चर्य मान रथके निकट आये ॥ २ ॥ इनको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे अक्रूर ! पृथ्वीमें, जलमें, आकाशमें, तुमने ऐसी आश्चर्य वस्तु क्या देखी है, क्योंकि तुम आश्चर्यरूप चकितसे दिखाई देतेहो ॥ ३ ॥ तब अक्रूरजी बोले कि, इस संसारमें, पृथ्वीमें, जलमें, जितने आश्चर्य हैं वह सब आश्चर्य विश्वरूप आपमें विद्यमान हैं सो तुम्हारा मैंने दर्शन किया ॥ ४ ॥ जो तुममें सब आश्चर्य भरे हैं जब तुम्हारा दर्शन मैंने कर लिया फिर हे परमेश्वर ! पृथ्वी, आकाश और इस संसारमें क्या आश्चर्य देखना शेष रहगया ? ॥ ५ ॥ ऐसे कह गांदिनीके पुत्र महात्मा अक्रूरजीने रथ हांका और तीसरही पहरतक मथुरापुरीमें राम कृष्णको पहुँचादिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मार्गोंमें ग्रामोंके मनुष्य जहाँ तहाँ इकट्ठे हो कृष्णबलदेवका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके रूपमेंसे अपनी दृष्टिके हटानेको भी समर्थ न हुए ॥ ७ ॥ हे महाराज ! इसी बीचमें नन्दादिक समस्त ब्रजवासी आगे आनकर मथुराके बागमें कृष्ण बलदेवके आनेका पैंडा देखनलगे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रने उन ब्रजवासियोंके पास आय, नम्र हो कुछेक मुसकान सहित अक्रूरसे कहा कि ॥ ९ ॥ हे अक्रूर ! तुम आगे रथको लेजाय पुरीमें प्रवेश करो और अपने घर जाओ, हम यहां कुछ देर विश्राम लेकर मथुरापुरीको देखेंगे ॥ १० ॥ तब अक्रूरजी बोले कि, हे प्रभो ! तुम बिन अकेला मैं मथुरा पुरीमें नहीं जाऊंगा, हे नाथ ! हे भक्तोंपर हित करनेवाले ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, इसलिये मुझे मत त्यागो ॥ ११ ॥ तुम आओ हम तुम घर चलैं, हे अधोक्षज ! हे सुहृदोत्तम ! आज अपने बडे भाई बलदेवजी और ग्वालबालों सहित मेरे घर चलकर मुझे सनाथ करो ॥ १२ ॥ अपने चरणोंकी रजसे मुझ गृहस्थके घरको पवित्र

करो और तुम्हारे चरणोंकी धोवनसेही मेरे पितृ, अग्नि, देवता, तृप्त होजायँगे ॥ १३ ॥ देखो ! तुम्हारे युगल चरण धानेसे राजा बलिका कैसा पवित्र यश हुआ कि, जिससे अत्यन्त दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्तहुआ और अनन्य भक्तोंको जो गति मिलती है, वहा गति उसने पाई ॥ १४ ॥ हे देवदेव ! हे ज न्नाथ ! तुम्हारा कथा श्रवण और गुणकथनसे भक्त पवित्र हो जाते हैं, ऐसे तुम पवित्र गुणयुक्त हो, सो हे नारायण ! आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे चरणारविन्दको धोवन जल गंगारूप होकर त्रिलोकीको पवित्र करता है, उसी जलको शिवजीने अपने मस्तकपर धारण किया है और उसी जलके स्पर्शसे साठहजार सगरके पुत्र स्वर्गको चले गये ॥ १६ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि यादवोंसे द्रोह करनेवाले कंसको मार सुहृदोंका प्रिय करूंगा, इसके उपरान्त बडे भाई बलदेवजीको संगले मैं तुम्हारे घर आऊंगा ॥ १७ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अक्रूरजी विमन हो पुरीमें जा " राम कृष्णको ले आया " ऐसे कह अपने घरको चले गये ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त तीसरे पहरके समय बडे भाई बलराम सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोप ग्वालोंको संगले मथुरापुरी देखनेके लिये चले ॥ १९ ॥ उस पुरीकी कैसी शोभा है कि, स्फटिक मणियोंके ऊँचे शहरपनाहके और घरोंके द्वार बन रहे हैं, उनमें बडे बडे सोनेके किंवाड चढ रहे हैं और ठौर ठौर बन्दरवारें टँग रही हैं, अन्न भरनेके लिये ताँबे तथा पीतलके कोठे बने हैं चारों ओर चौडी खाई बन रही हैं, उद्यान और उपवन आदिसे यह पुरी अत्यन्त शोभायमान हो रही है ॥ २० ॥ सुवर्णके चारों ओर मार्ग, साहूकारोंके महल और बढे २ कारीगर मनुष्योंके मकानोंसे यह पुरी शोभायमान हो रही है, वैदूर्यमणि, हीरे, निर्मल नीलमणि, मूँगे, मोती इनके काम जिनमें हो रहे, ऐसे शोभायमान छज्जे हैं ॥ २१ ॥ जाली झरोखोंमें बैठेहुए मोर जहाँ तहाँ शोर कर रहे हैं राजमार्ग व गलियोंमें छिडकाव हो रहा है, उनमें पुष्पोंकी माला अंकुराधानकी खीलें और चावल यह मंगल द्रव्य फैल रही हैं ॥ २२ ॥ चंदन दहीसे छिड़के फूल जिनपर धरे, उपर दीपकोंकी पंक्ति धरी, आमकी डाल जिन पर धरी ध्वजा जिनपर फहरा रही है, दरियाईके कपडे जिनकी नारेसे बँधे गहिर सहित केले व सुपारीके वृक्ष जिनके निकट लग रहे ऐसे जलके भरे कलश दरवाजोंपर रक्खे हैं, जिनसे वह पुरी बहुतही शोभायमान होरही है ॥ २३ ॥

दोहा-ध्वज पताक तोरण कलश, जहँ तहँ ललित वितान ।
मुक्ता झालर झलमलै, को करिसकै बखान ॥

बराबरके मित्रोंको संगले मथुरा पुरीके बीच बाजारमें हो जिस समय वसुदेवनन्दन कृष्ण बलदेव निकले, उस समय इनको देखनेके लिये पुरीकी बहुत स्त्रियें दौड आईं और बहुतेरी स्त्रियें देखनेकी इच्छासे महलोंपर चढ गईं ॥ २४ ॥

कवित्त-कोई सारी घाँघरेकी घाँघरो कै सारी कोई, हार किंकिणीके किंकिणीको कोइ हार है। कोइ एक कर्णफूल धारो हैं चरणहूमें, कुण्डल

औ कंकण हू नूपुर शृंगार है ॥ परखो न कोऊ एक एकनको रघुराज, कीन्ही नाहिं कोऊ एक एकन पुकार है । वाम मथुरामें खडीं ऊंचन अटापै चढीं, बार बार गावैं आयो नंदको कुमार है ॥

कोई कोई स्त्री उतावलके मारे ओढनियोंको पहर, लहँगेको ओढ, हाथोंके गहने पांवोंमें पहरकर चली आई, कोई एक स्त्री एक हाथ और एक पांवमेंही गहना पहरकर चली आई और कोई स्त्री एक कानमें कर्णफूल व एक पाँवमें पायजेब पहरकर चली आई, कोई स्त्री एकही आँखमें काजल लगाकर चली आई ॥ २५ ॥

कवित्त-एक दृग खंजनमें अंजन लगाय चली, कोई एक कौर मुख खाती उठ धाई है। कोई अंगराग आधे अंगन लगाय चली, कोई पुर नारी चली आधे ही नहाई है ॥ रघुराज कोई गृहकारज बिसार चली, कोई बाल अधप्यायो बालक बिहाई है। चहर पहर माचो शहर पहर दिनै, डहर डहर डोलै कुँवर कन्हाई है ॥

दोहा-पर्यो शोर मथुरा नगर, आवत नंदकुमार ।
सुनि धाये नरनारि सब, गृहको काज बिसार ॥

कोई कोई स्त्री भोजन करतेहीसे चली आई और कोई कोई स्त्री अंगनमें तेल मलरही थी, वह विनाही स्नान किये चली आई, कोई सोतेही चली आई, कोई स्त्री अपने बालकोंको दूध पिला रही थी, सो सुना कि, कृष्ण बलदेव आये हैं सो बालकोंको रोताही छोडकर चली आई ॥ २६ ॥

कबित-तकिकै तिरिछै नैंन बाण सम बेधि सैंन, देत है परम चैन भ्रुकुटी नचायकै । सुषमा निकाय देखे काम बिकजाय ऐसो, रूप दरशाय कीन्हो विवश बनायकै ॥ रघुराज आलिन समजते परानी लाज, देखे यदुराज प्यारी पलकैं बिहायकै ॥ मन्द मन्द गौनत गयन्द गति मोह्यो मन मथुराके मगमें मुकुन्द मुसकायकै ॥

मतवाले हाथीके समान पराक्रमवाले कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रनें लीलापूर्वक कही हँसनि चितवनिसे उन स्त्रियोंका मन चुरालिया और लक्ष्मीको रमण करानेवाले अपने रूपसे उन स्त्रियोंकी आंखोंको आनन्द देनेलगे ॥ २७ ॥

कवित्त-साजिकै शृंगार संग रोहिणी कुमार सखा, सोहैं रघुराज मुरि मोदहि भरत जात॥ फरकै कटाक्षनि मृगाक्षिनि छकावे छैल, धाम धाम धूमधाम पुरमें करत जात ॥ केती भई कायलैं परीं भूमें बायलसी, केती बाल बायली जिगरो जरत जात ॥ जौनही डहर हैके कान्हरो कढ़ो तहां, तो नहीं डगरमें कहर सो परत जात॥ १ ॥ निमिष निवार घनश्यामको निहार चित्र, पूतरीसी ठाढी पुरनारी आनँदै भरी । मोहनकी तकनि त्योंहीं हँसनि सुधाकी सींची, पायकै सुहाग अनुराग युत

हैं खरी ॥ रघुराज प्यारो प्रेम वेडी पाँय नाय दीन्हो, ताप हरि लीन्ही भई पुलक घरैं घरी ॥ माधवकी मूरतिको मथुराकी नारिनने, पलक कपाट देकै पाटी उर कोठरी ॥

वारम्वार बातें सुनकर उन कृष्णमें लगे हैं चित्त जिनके और उनकी चितवन मुसकानरूपी अमृतका जो सींचना है उससे सत्कार पानसे रोमाञ्च हो आये, ऐसी स्त्रियें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देख, नेत्र द्वारा हृदयमें लेजाय आनंदरूप श्रीकृष्णको आलिंगनकर हे काम लोभादिकोंके दंड देनेवाले राजा परीक्षित्! श्रीकृष्णके विना मिलेही कामकी पीडाको त्यागदिया ॥ २८ ॥

दोहा-चढिकै उच्च अटारिपर, विकसत मुख जलजात ।
बरषहिं हरि बल पर सुमन, हरषहिं पुलकित गात ॥
विन व्याही व्याही नही, व्याही लेत उसास ।
गौनेकी मौने रहीं, देख कृष्ण मृदुहास ॥

इसके उपरान्त प्रफुल्लित नेत्रवाली स्त्रियें, महलोंके शिखरपर चढीं कृष्ण बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर कर कहनेलगीं ॥ २९ ॥

दोहा-मणि कञ्चनके शिखर दोउ, किधौं मानसर हंस ।
कै प्रगटे ब्रज देन सुख, त्रिभुवनके अवतंस ॥

चौ०-इहि विधि जहाँ तहाँ नर नारी । प्रभुहि बतावैं हाथ पसारी ॥
नील वसन गोरे बलराम । पीताम्बर पहने घनश्याम ॥
सुनत हूतीं पुरुषारथ जिनके । देखहु रूप नैन भरि तिनके ॥
अति अभिराम श्याम छविधारी । इनहीं प्रथम पूतना मारी ॥

इसप्रकार परस्पर कहने लगीं, फिर दही, अक्षत, जलके भरे पात्र और माला चंदन भेंट लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रसन्न होकर कृष्ण बलदेवका पूजन करनेलगे ॥ ३० ॥ और संपूर्ण मथुरावासी अत्यन्त आश्चर्यमान यह कहने लगे कि, गोपियोंने ऐसा क्या उत्कृष्ट तप किया है, जो गोपी मनुष्य लोकको बडे उत्सवरूप श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करती हैं ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वस्त्रोंको धोनेवाला और रँगनेवाला मार्गमें आताहुआ एक धोवी देखा और अतिनम्रता सहित उससे अति उत्तम धुलेहुए वस्त्र माँगे ॥ ३२ ॥ और कहा कि, हे धोवी ! हमको हमारे योग्य वस्त्र दे. कारण कि, हम इन वस्त्रोंके योग्य हैं और हमें वस्त्र देनेसे तेरा कल्याण होगा इसमें संदेह नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन्! जव इस प्रकार सब ओरसे परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धोबीसे वस्त्र माँगे तब अत्यन्त क्रोधित हो, कंसका सेवक अति घमण्डी डाटकर बोला कि ॥ ३४ ॥

चौ०-वन वन फिरत चरावत गैय्या । अहिर जाति कामली उढैय्या ॥
मुख तो देख लेहु तुम अपने । पहिरे वसन कबहुँ अस सपने ॥

हो तुम गाय चरावन हारे। पी पी छाछ भये मतवारे ॥
नृपके वस्त्र लेन अभिलाषो। अपनी जाति सुरति नहिं राखो ॥
सूधे चले जाहु जहँ जाते। कस बढ़बात बहुत बतराते ॥
जानों तुम मूरख दोउ भाई। अनुचित उचित न परत जनाई ॥
अबहूं मोरि सिखावन गहियो। काहू सों अस वचन न कहियो ॥
नटको वेष साजिके आये। नृप अम्बर पहरन मन भाये ॥

नित्य पर्वत और वनके फिरनेवाले ऐसेही कपडे पहरते हो, हे उद्धत! तुम राजाके वस्त्रोंपर क्यों मन ललचाते हो ॥ ३५ ॥ हे मूर्खो! यदि अपना जीना चाहो तो तुम शीघ्र ही यहाँसे निकल जाओ, फिर मत माँगना क्योंकि राजा कंसके बहुत सेवक फिरते हैं और जो धूम मचाता है, उसे वह मारते हैं, लूटते हैं, बाँधते हैं तुम तो यह वस्त्र माँगोहो और मुझे यह दीखे है कि, कोई तुम्हारे वस्त्र भी न उतार ले ॥ ३६ ॥

चौ०-जाहु चले ह्यासे अब नीके। कै हैहो अबही विनु जीके ॥
नेक आश जीवनकीजोऊ। खोवन चहत अबहिं पुनि सोऊ ॥

हे राजन्! इसप्रकार बकबाद करतेहुए उस धोबीका शिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने महा क्रोधित हो अपने हाथके थापसे काटडाला ॥ ३७ ॥ जब मुख्य धोबी मारागया, तब उसके टह लुए धोबी वस्त्रोंको पटक पटक चारों ओरको भाग गये, उस समय श्रीकृष्ण और बलरामजी मनमानते वस्त्रोंको पहिर बाकी जो रहे सो गोप ग्वालोंको देदिये और जो रहे सो वहीं छोड दिये * ३८ ॥ ३९ ॥

चौ०-रजक मारि सब वस्त्र लुटाये। आप पहरि ग्वालन पहराये ॥
विविध रंग बहुभांति नवीने। निज निज रुचि ग्वालन सबलीने ॥

हे महाराज! इसके उपरान्त जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और ग्वालबाल सब वस्त्र पहरकर चले, उसी समय प्रसन्न मन एक दर्जी आया उसने आतेही रामकृष्णके लाल, हरे, पीले जो वस्त्र थे उनके माला, चंपकली बाजूबंद और अनेक प्रकारके आभूषण बना कर शोभायमान पोशाक बनाई ॥ ४० ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी दोनों भाइ अनेक प्रकारसे दर्जीके बनाये वस्त्रोंके आभूषणोंसे ऐसे शोभायमान लगने

---

* **शंका**-तीन लोकके पति भगवान् दूसरे दुष्टजीवोंका उच्छिष्ट अर्थात् पहिरा कपडा आप क्यों पहिरतेहुए, यह बडी शंका है? ॥

उत्तर-धर्मशास्त्रमें यह लिखा है कि, मामाका पहिरा वस्त्र तथा कुमारी लडकीका पहिरा वस्त्र तथा ब्रह्मचारीका पहिरा वस्त्र, इनके पहिरे हुए वस्त्रोंको कोई पहिरलो उनका किसीको दोष नहीं और कटिभागसे नीचेका पहिरा वस्त्र मामा, कन्या, ब्रह्मचारीका भी धारण न करना और दूसर पुरुषकी तो क्या बात है? श्रीकृष्णने अपने मामाका वस्त्र जानकर उच्छिष्ट वस्त्र धारण किया ॥

लगे, जैसे पर्वमें साँवरे, गोरे शृंगार किये हाथीके छौना शोभायमान लगते हैं ॥ ४१ ॥ फिर उस दर्जीके ऊपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी सारूप्य मुक्ति दी और इस लोकमें सम्पत्ति, बल, ऐश्वर्य, स्मरण, तथा हाथ, पाँव, नाक, कान, आँख, अच्छे बने रहें, इनकी चतुराई दी ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम सुदामा मालीके घर गये, इनको देखतेहीं उसने पृथ्वीमें शिर लगाय प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ और आसन दिया पाद्यार्घ्य इत्यादि पूजाकी सामग्रियोंसे दोनों भाइयोंका पूजन किया, फिर पीछे पानकी बीडी और चंदन इत्यादि अर्पण किया ॥ ४४ ॥ फिर माली बोला कि, हे प्रभो ! आज तुम्हारे आनेसे हमारा जन्म सफल तथा कुल पवित्र हुआ और हमारे पितृ, देवता, ऋषिभी संतुष्ट होगये ॥ ४५ ॥ तुम निश्चय इस संसारके परमकारण हो और जगत्के कल्याण और वृद्धिके लियेही आपने अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ जगत्के हितकारी आत्मा तुमहीं हो, तुम्हारी विषमदृष्टि नहीं है, सब प्राणियोंमे समवर्ती हो और जो तुम्हारा भजन करता है, उसको तुम भी भजते हो ॥ ४७ ॥ अब तुम दासको आज्ञा करो मैं तुम्हारी क्या पूजा करूं ? क्योंकि पुरुषोंको जो तुम्हारा दर्शन होता है, यही बडा अनुग्रह है ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्रसन्नमन सुदामा मालीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको शोभायमान सुगंधित फूलोंकी माला समर्प्पण करी ॥४९॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस मालाको पहर मित्रोंसहित प्रसन्न हो, सुदामा मालीको वरदान दिया ॥ ५० ॥ और सुदामा मालीने भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यही वर माँगा कि, सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति रहै और तुम्हारे भक्तोंमें स्नेह और जीवमात्रमें दया रहै ॥ ५१ ॥

दोहा-सुनि सप्रेम ताके वचन, रीझे श्याम सुजान ।
माली पूरण कामकरि, दियो भक्ति वरदान ॥

इसप्रकार उस मालीको मनवांछित वरदान दे और उसके वंशमें सदा रहनेवाली सम्पत्ति दे, तथा बल, आयु, यश, शोभा दे, बलदेवजीको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके घरमेंसे निकले ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

दोहा-कुब्जाको सीधो कियो, कियो शरासनभंग ।
देखो मखोत्सव तहाँ, बयालीस भूरंग ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इसके उपरान्त सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजमार्ग बाजारमें आयकर ग्रहण किये चन्दनका पात्र, शोभायमान मुखवाली सामने तरुण कुबरी स्त्रीको देख हँसकर पूंछा ॥ १ ॥ कि, हे सुन्दर जंघावाली ! तू कौन है ? और यह चन्दन किसका है यह हमारे सन्मुख भलीप्रकार समझा

कर कहो, क्योंकि जो यह उत्तम चन्दन हमको दो तो तुम्हारा अभी कल्याण होगा ॥ ॥ २ ॥ यह सुनकर कुबरी बोली कि, हे सुन्दर ! मेरा नाम कुबरी है और कंसकी दासी हूं और नित्यप्रति चंदनघिसना यही मेरा काम है, क्योंकि मेरा घिसा चन्दन राजा कंसको अच्छा लगता है, परन्तु अब तुम्हारे विना इस चन्दनके लगानेका कोई पात्र नहीं है ॥ ३ ॥ इसप्रकार सुन्दररूप सुकुमारता और रसिकता, हँसाने बोलने तथा चितवन से मोहित हो कुबरीने श्रीकृष्ण बलदेवके चन्दन लगाया ॥ ४ ॥ केशर मिलाहुआ चन्दन साँवरे अंगमें जिससमय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लगाया और कस्तूरी मिलाहुआ चन्दन गोरे अंगमें जिससमय बलदेवजीने लगाया, उससमय दोनों भाई अत्यन्तही शोभायमान लगनेलगे ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त प्रसन्न हो अपने दर्शनका फल दिखानेके लिये सुन्दरमुखी तीन स्थानसे टेढी कुबरीको सूधी करनेका विचार किया ॥ ६ ॥ और फिर कुबरीके पाँवोंको अपने चरणोंसे दाब दो अँगुली जिसमें ऊंची करी, ऐसे हाथको ठोडीके नीचे लगाय, श्रीकृष्णने कुब्जाके देहको सूधा कर दिया ॥ ॥ ७ ॥ उस समय सूधे बराबर हैं अंग जिसके, बडे नितम्ब और स्तनवाली, ऐसी कुब्जा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हाथका स्पर्श होनेसे एक सुन्दर स्त्री होगयी ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त आपही रूप, गुण, उदारता यह सब कुब्जामें आगये, तब कामदेवसे पीडित हो वह कुब्जा दुपट्टेका छोर पकड भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगी ॥ ९ ॥ कि, हे वीर ! हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम मेरे संग चलकर मेरा भवन पवित्र करो, क्योंकि अब मैं तुम्हें छोड नहीं सक्ती और तुमने मेरा मन चलायमान किया है इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ॥ १० ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इसप्रकार जब कुब्जाने कहा, तब उसी समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी और अपने मित्रोंका मुख देख कुछेक मुसकातेहुये कुब्जासे बोले ॥ ११ ॥ कि, हे सुन्दरभ्रुकुटियोंवाली ! तुम्हारी भ्रुकुटी हमारे मनको खैंचती है, तुम हमारा दुपट्टा क्यों खैंचती हो, मैं कंसको मार, अपने सुहृदोंका कार्य सिद्धकर मनका दुःख दूर करनेवाले तुम्हारे घर आऊंगा, क्योंकि मैं तो बाल ब्रह्मचारी हूं, किसीसे जान पहिचान नहीं और हमारा यहाँ घर नहीं, हमें तो केवल तुम्हाराही आश्रय है, जब तुम्हारेही यहाँ न आवैंगे तो और जायँगे कहाँ ? ॥ १२ ॥ इस प्रकार मीठे मीठे वचन कह और कुब्जाको वहीं छोड आगे चले. तब बनियोंने पान, माला, चन्दन इत्यादि भेट ले बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ १३ ॥ हे महाराज ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके कारण उत्पन्न हुए कामदेवके क्षोभसे स्त्रीयोंने अपनेकोभी नहीं जाना, वस्त्र खुलगए, चोटी खुलगई चूडी खिसल आई और जैसे कोई चित्र खैंचकर खडाकर देता है, उसीप्रकार खडी रह गई *॥ १४ ॥ इसके उपरान्त अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मथुरावासियोंसे पूँछते

---

* शंका—बडे आश्चर्यकी बात है कि, मथुराकी स्त्रियें कृष्णको देखकर कामदेवसे विह्वल होगई और ऐसी विह्वल होगई कि, तन मनकी अपने शरीरकी कुछ भी सुधि बुधि

पूँछते धनुष शालामें गये और वहाँ जाकर इन्द्रके धनुषकी समान धराहुवा धनुष देखा ॥ ॥ १५ ॥ हे महाराज ! यद्यपि बडे बडे बलवान् पुरुष उसकी रक्षा कर रहे थे, पूजा हो रही थी, अत्यन्त जिसकी शोभा थी, परन्तु तो भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लोगोंके मने करनेपर भी उसे उठाया ॥ १६ ॥ और लीलापूर्वकही एक हाथसे उठाय पलभरमें मनुष्योंके देखते देखते, बीचमेंसे खैंच जैसे मतवाला हाथी गन्नेको तोड डालता है, उसी प्रकार तोड डाला ॥ १७ ॥ हे राजन् ! जिस समय धनुष टूटा, उस समय महा-गम्भीर शब्द हुआ, उस शब्दसे पृथ्वी आकाश स्वर्ग और सब दिशायें व्याप्त होगईं और उस शब्दको सुनकर कंसका हृदयभी अत्यन्त भयभीत हुआ ॥ १८ ॥ इसके पीछे उस धनुषके रक्षकोंने अत्यन्त क्रोधित हो अपने अपने अनुचरों सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको "पकड लो पकड लो" इस प्रकार कहते चारों ओरसे घेर लिया ॥१९॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी इन असुरोंको अपने मारनेके लिये आया देख क्रोधित हो धनुषका एक एक टुकडा हाथमें ले इन पुरुषोंको मारने लगे ॥ ॥ २० फिर कंसकी भेजी हुई संपूर्ण सेना मार, धनुषशालासे बाहर निकल, मथुरा-पुरीकी सम्पदा देख हर्षित होकर घूमनेलगे ॥ २१ ॥ मथुरावासी नरनारियोंने भगवान् कृष्णबलदेवका अद्भुत कर्म, धृष्टता और पराक्रम देख अपने मनमें जाना कि, यह कोई उत्तम देवता हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! इसप्रकार कृष्ण बलदेव विचररहे थे कि, इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्त होगये और संध्या होगई, तब भगवान् श्रीकृष्ण बलदेव गोपों सहित मथुरापुरीसे बाहर निकले और जहाँ गाडियें छूटी थीं वहाँ पहुँचे ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ब्रजसे चलती समय गोपियोंने विरहमें व्याकुल होकर जो जो बातें कहीं थीं, वह सबही श्रीकृष्णचन्द्रके अंगकी शोभा देख मथुरावासि-योंने सत्य जानी, क्योंकि लक्ष्मीजी भी अपने भजनेवाले ब्रह्मादिकोंको छोड इसी रूपकी चाहना करती हैं ॥२४॥ इसके उपरान्त चरण धो, रामकृष्ण दूधभातका भोजन कर कंसका विचार जान उस रात्रिको सुखपूर्वक वहीं रहे ॥ २५ ॥ कंस धनुषका टूटना, रक्षकोंका मरना और अपनी सेनाका वध सुनकर कि, यह कृष्णका केवल खेल है, कुछ पराक्रम नहीं है ॥ २६ ॥ ऐसा विचारकर मारे भयके उसे नींद नहीं आई महाभयभीत हुआ तब वह दुष्टबुद्धि कंस मृत्युके जतानेवाले जागतेमें सोतेमें बहुतसे खोटे स्वप्न देखने

—न रही, परन्तु परपुरुषको देखकर विह्वल होजाना यह गृहस्थस्त्रियोंका धर्म नहीं, यह धर्म तो व्यभिचारिणी स्त्रियोंका है ।

उत्तर—व्रजमें कृष्णने गोवर्द्धनको उठाया उस सरीखे और बहुत कर्म किये उन सब कर्मोंको सुनकर स्मरण करके व्यापक ब्रह्म मानकर स्वपतिबुद्ध्या विह्वल हुई परपुरुष जान विह्वल नहीं हुईं मथुराकी स्त्रियाँ ऐसी नहीं जो पर पुरुषको देखकर कामदेवसे विह्वल हो जातीं ॥

लगा ॥ २७ ॥ दर्पण और जलमें मुख देखनेपर भी उसको अपना शिर नहीं दीखे, चन्द्रमा सूर्य दो दो रूप नहीं हैं, परन्तु उसे दोदो दिखाई दिये ॥ २८ ॥ अपनी परछाहीमें छिद्र दीखे, अँगुली देकर कानमें देखा तो घूं घूं शब्द भी सुनाई नहीं आया, वृक्ष सोनेके दिखाई देने लगे और कांच व रेतमें अपने पाँवके चिह्न भी न देखे ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त यह स्वप्न देखा कि, भूत प्रेत छातीसे लगालगाकर मिलते हैं और गधेपर चढा, गुडहरके फूलोंकी माला पहरे अकेला, तेलमें भीजा जहर खाता, नग्न वेष किये मैं दक्षिण दिशाको चला जा रहा हूँ ॥ ३० ॥ इसप्रकार स्वप्नमें और जागतेमें खोटे२शकुन देख मृत्युसे डरे कंसको रातभर चिंताके मारे नींद न आई ॥ ३१ ॥ हे कुरुवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इस भाँति ज्यों त्यों कर वह रात्रि व्यतीत हुई, प्रातःकाल हुआ जलमेंसे सूर्य निकला उस समय राजा कंसने मल्लोंकी कुश्ती लडवानेके लिये बडा उत्सव कराया ॥ ३२ ॥ पुरुष रङ्गभूमिकी पूजा करनेलगे, उसीसमय भेरी बजने लगीं, माला, पताका और वस्त्रोंकी बन्दनवारोंसे मंचान सजायेगये ॥ ३३ ॥ और उन मंचानोंके ऊपर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जिनमें मुख्य मुख्य पुरवासी तथा देशवासी थे, सुखपूर्वक आनकर बैठगये ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त राजा कंस भी अपने प्रधानमंत्रीको संग ले, खण्डमण्डलवाले राजाके बीचमें एक राजमंचान था, उसके ऊपर आन बैठा, परन्तु भयके मारे हृदय काँप रहा था ॥ ३५ ॥ नगारोंके बजतेही झटपट मल्ल खम्भ ठोक जाँघिये पहर सिंदूरकी बिंदी लगा धूरी मल, छोटी छोटी चुटियें, बडे गर्व भरे, अपने अपने उस्तादोंको संग लेकर रङ्गभूमिमें आये ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल यह आखाडेमें आये और मनोहर बाजोंका शब्द सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त कंसके बुलाये नंद आदिक संपूर्ण गोपभी राजा कंसको भेंट दे, एक मंचान पर आनकर बैठगये ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

दोहा-मार कुवलयपीड गज, रंगभूमि हरि जाय।
वचन कहे चाणूर सों, तेंतालिस अध्याय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! श्रीकृष्ण भगवान्ने विचार किया कि, यद्यपि हमने धोबीको मार धनुष तोड, अपना ऐश्वर्य जताया, परन्तु तोभी हमारे माता पिताको नहीं छोडता और हमको मारना चाहता है इसलिये इस मामाके मारनेमें हमें कुछ दोष नहीं है, इस प्रकार दोषके दूर करनेका विचार कर कृष्ण बलदेव दोनों भाई, जहाँ मल्ल खम्भ ठोक रहे थे, नगाडे बजरहे थे, उनका शब्द सुन देखनेको गये ॥१॥ फिर श्रीकृष्णने रङ्गभूमिके द्वारपर जाकर देखा कि, कुवलयापीड हाथी खडा है और महावत उसे आगेको पेल रहा है ॥ २ ॥ यह देखतेही शूरवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र फेंट

बाँध, मुखपर छुटीहुई कुटिल अलकोंको सँभाल गलेकी लम्बी मालाको जनेऊके समान कंधेपर डाल मेघकी तुल्य गर्जकर, अत्यन्त गंभीरवाणीसे बोले ॥ ३ ॥

चौ०–सुनहु महावत बात हमारी। लेहु द्वार ते गज तुम टारी ॥
जान देहु हमको नृप पासा। नातर ह्वैहै गजको नाशा ॥

कि, रे महावत ! हाथीको हटाकर हमको शीघ्र मार्ग दे और जो नहीं हटावेगा तो अभी हाथी सहित तुझको मार यमलोकको भेजदूंगा ॥ ४ ॥

चौ०–यह सुनि गज गजपाल चलायो। झटकि शुंड बहुरो गज धायो ॥

हे महाराज ! यह सुनतेही कालमृत्युके समान क्रोधित हो महावतने हाथीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर हूल दिया ॥५॥ हाथीने अत्यन्त शीघ्रतासे आतेही भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रको अपनी सूंडमें पकड लिया, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्र भी उसकी सूंडमेंसे खिसल और उसके मस्तकमें मुष्टिक मार पिछले पाँवोंमें छिपगये ॥६॥ और फिर जिस समय श्रीकृष्ण-ष्णको देख क्रोधित हो, सूंघा साँघीकी दृष्टिवाले हाथीने इनके पकडनेको सूंड चलाई, उस समय सूंड पकड भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके पिछले पाँवोंमेंसे निकल गये, ॥ ७ ॥ अत्यन्त बलवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हाथीकी पूँछ पकड. जैसे गरुड सर्पको घसीटता है, उसी प्रकार पचीस धनुषतक लीलापूर्वकही घसीटा ॥ ८ ॥ पूँछ पकडे श्रीकृष्णच-न्द्रको पकडनेके लिये जब दाहिनी ओर हाथी आता, तब श्रीकृष्ण उसे बाँई ओर लेजाते और बाँई ओर आता तो दाहिनी ओर लेजाते, अधिक क्या कहैं, जैसे गायोंके बछडोंके संग बालक फिरते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हाथीके पीछे फिर रहे थे ॥ ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सन्मुख आय थप्पड मार, दौडकर उस हाथीको पटक दिया ॥ १० ॥ जब उसे गिरा दिया, श्रीकृष्णचन्द्र भी लीलापूर्वक पृथ्वीपर गिरके अत्यन्त शीघ्रतासे खडे होगये, तब श्रीकृष्णचन्द्रको गिरा जान वह हाथी दाँतोंसे पृथ्वीको खोदने लगा ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जब हाथीका बल घटगया तब हाथीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और महावतने जिससमय उसके अंकुश मारा, तब वह हाथी श्रीकृष्णचन्द्रपर झपटा ॥ १२ ॥ मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सन्मुख आते हाथीकी सूंड पकड पृथ्वीमें पटक दिया ॥ १३ ॥ और सिंहके समान गर्जतेहुए हाथीको पाँवोंके नींचे दाब लीलापूर्वक उसके दाँत उखाड भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन दाँतोंसे महावतको मारा ॥ १४ ॥ जब हाथी मर गया, तब श्रीकृष्ण बलदेव उसे वहीं छोड हाथमें हाथीके दाँत ले कंधेपर धारणकर वहाँसे आगे चले, उस समय रुधिर और मदकी बूँदें उनके लग रहीं थीं * ॥ १५ ॥ और कुछेक पसीना भी उनके मुखकमल

---

* **शंका**–जो कोई दरिद्री भी राजाकी सभामें जाता है, तब अपने वित्तानुसार वस्त्रा-भूषण पहिर जाता है और शास्त्रमें तथा लोकमें इसको भी बहुत निन्दित कर्म कहते–

पर आ रहा था, हे राजन् ! इसप्रकार शोभायमान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव दोनों भाई गोप ग्वालोंको संग लिये हाथीदाँतके शोभायमान शस्त्र धारण किये रंग भूमिमें पहुँचे ॥ १६ ॥

चौ०-चले जहाँ सब मल्ल गुपाला। द्विरद दंत धरिकंध विशाला ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मल्लोंको मल्लोंके समान दृष्टि आये, मनुष्योंको अत्यन्त सुंदर जानपडे और स्त्रियोंने साक्षात् कामदेव स्वरूप समझा, दुष्ट राजाओंको कालके समान दिखाई दिये वसुदेव देवकीने पुत्रके समान देखा, भोजपति कंसने तो यही देखा कि, साक्षात् मेरी मृत्यु चली आती है, अज्ञानियोंको भयंकर रूप दृष्टि पडे और ज्ञानियोंको परम तत्वरूप दृष्टि आये, यादवोंको परम देवता रूप जानपडे, अधिक क्या कहैं जैसी जिसकी भावना थी, उसे उसी प्रकार दिखाई दिये ॥

चौ०-यहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ यदुकुल राऊ ॥

इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीको संग लेकर रङ्गभूमिमें पहुँचे ॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! कुवलयापीड हाथीको मरा देख जो किसीके जीतनेमें न आवै, ऐसे कृष्ण बलदेवको देख अत्यन्त धैर्यमान् राजा कंस भी डर गया ॥ १८ ॥ बडी भुजा विचित्र वेष आभूषण माला इत्यादि वस्त्रोंको धारण किये भगवान् कृष्ण बलदेव रंगभूमिमें जाकर ऐसे शोभायमान लगनेलगे जैसे उत्तम रूप धारण करनेवाला नट शोभायमान लगता है, इसप्रकार अपनी कान्तिसे देखनेवाले पुरुषोंके मनको चुराते थे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! मंचानोंके ऊपर बैठे पुरवासी देशवासी जन पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बलदेवको देख आनंदके वेगसे प्रफुल्लित मुख होगये और अपने नेत्रोंसे उनके मुखकी शोभा देखकर तृप्त न हुए ॥ २० ॥ इस प्रकार नेत्र चलानेलगे कि, मानों रूपको पीजायँगे जीभ ऐसी चलाते थे मानो चाट जायँगे नासिका ऐसी चलावें मानो सूंघलेंगे भुजा ऐसी चलावें मानो लिपट जाँयगे जैसा श्रीकृष्णचन्द्रका रूप कानोंसे सुना था, उसीप्रकार आँखोंसे देखकर उनके रूप, गुण, माधुर्य्य, ढिठाईसे बुद्धि जिनकी होगई, ऐसे पुरुष जैसा सुना, वैसाही आपसमें कहने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ कि, यह जो कृष्ण बलदेव हैं सो साक्षात् भगवान् हरि नारायण हैं और अपने अंश सहित इस संसारमें वसुदेवके घर अवतार लिया है ॥ २३ ॥ देखो यह जो साँवरा बालक है, इसने देवकीसे जन्म लिया था. अबतक छिपा रहा, क्योंकि

-है कि, रक्त देहमें लगाकर राजाकी सभामें जाना,सो श्रीकृष्ण जगत्के ईश्वर होकर अपने देहमें रक्तके बिन्दु लगाकर कंसकी सभामें क्यों आये ? ॥

उत्तर-सत्य है जिसके शरीरमें रक्त लगारहता है, उस पुरुषको लोकमें, शास्त्रमें और वेदमें भ्रष्ट कहते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण कंसका नाश करनेके लिये विचारके उन्मत्त प्रमत्तकी नाई मथुराको चलेगये और शूरवीरोंको शरीरमें रक्त लगाकर सभामें जाना कुछ दोष नहीं है, इसलिये जगदीश्वर शरीरमें रक्त लगाकर सभामें गये ॥

पिताने गोकुलमें पहुँचादिया था, इसलिये नन्दजीके घर वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इसी कृष्णने पूतना मारी और बगलेका स्वरूप धरे हुए बकासुर दैत्यको मारा, यमलार्जुन वृक्ष उखाडे और केशी अघासुर इत्यादिक बहुतसे दानव मारे ॥ २५ ॥ देखो जब वनमें अग्नि लगी थी, तब, इसी कृष्णने गौ, ग्वाल बचाये थे, काली सर्पको दंड दिया और इन्द्रका मद दूर किया ॥ २६ ॥ यही सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको हाथमें लिये रहा, वर्षा, पवन, वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा करी ॥ २७ ॥ गोपियें इस कृष्णका नित्य प्रसन्न हँसन चितवन युक्त श्रमरहित मुख देखकर अनेक तापोंको दूर करतीं थीं ॥ ॥ २८ ॥ अधिक क्या कहैं, इस कृष्णसे यह यदुवंश बहुत विख्यात हो, सम्पत्ति, यश, बडाई पावैगा और इसी कृष्णसे रक्षा होगी इस प्रकार वे मनुष्य परस्पर बात चीत करनेलगे ॥ २९ ॥ कमलके समान नेत्र स्वरूपवान् इस कृष्णके बडे भाई बलरामजीने प्रलम्बासुर धेनुकासुर मारे, क्यों जी ! मारे तो कृष्णने बलदेवका नाम क्यों लेते हो ? देखी सुनी बातोंमें भी भेद होजाता है ॥ ३० ॥ हे महाराज ! सब मनुष्य इस प्रकार कहही रहे थे और नगाडे बजही रहे थे कि, इतनेमें चाणूर नामक बलवान् श्रीकृष्ण बलदेवको संबोधन देकर बोला ॥ ३१ ॥ कि हे, नंदके पुत्र ! हे राम ! तुममें बल अधिक है और कुश्ती लडनी भी भलीप्रकार जानते हो, यही सुनकर राजा कंसने तुम्हें बुलायाहै ॥ ३२ ॥ क्योंकि प्रजा, मन कर्म वचनसे राजाका प्रिय करै तो कल्याण प्राप्त होताहै और जो विपरीत करते हैं उनका कल्याण नहीं होता ॥ ३३ ॥ और यह बात भी प्रगट है कि, प्रतिदिन बछडोंके चरानेवाले गोप प्रसन्न होकर व्रजमें कुश्तीका खेल करके गाय चराते हैं ॥ ३४ ॥ इसकारण हम तुम कुश्ती लडकर राजा कंसका प्रिय करें तो राजा कंस प्रसन्न होंगे और फिर सब प्राणी हमारे ऊपर प्रसन्न होंगे ॥ ३५ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चाणूरका वचन सुनकर और कुश्ती लडना अपने योग्य जान बडाई करके उस समयके उचित वाक्य कहने लगे ॥ ३६ ॥ कि, जिस कंसकी तुम प्रजा हो उसी कंसकी हम वनमें रहनेवाली प्रजा हैं इसलिये राजा कंसका नित्य प्रिय करैं इसीमें हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥ परन्तु देखो हम बालक हैं इसलिये हम अपने समानके बालकोंसे कुश्ती लडैंगे जैसा उचित हो उसी रीतिसे कुश्ती लडो, क्योंकि मल्लोंकी सभामें अधर्म न हो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर चाणूर बोला कि, तुम बालक नहीं हो और बलियोंमें बलवान् बलदेव भी बालक नहीं है, किशोर नहीं हो क्योंकि हजार हाथियोंका बल रखनेवाला कुवलयापीड हाथी तुमने लीलापूर्वकही मारडाला ॥ ३९ इसलिये हमारे संग तुम कुश्ती लडो, यह अनीति नहीं है, हे वृष्णिवंशमें जन्मे कृष्ण ! मेरी तुम्हारी और बलराम मुष्टिककी कुश्ती हो ॥ ४० ॥

चौ०–तब चाणूर कह्यो पुनि ऐसे । तुमको बालक कहिये कैसे ॥
जे किये कर्म व्रजमें तुम जैसे । देखे सुने नहीं कहुँ तैसे ॥
गिरि गोवर्द्धन करपर धार्‌यो । जलतें कालीनाग निकार्‌यो ॥

औरो असुर महाबल भारे। सुनियत खेलतही तुम मारे ॥
सो बल आज देख हम लैहैं। आगे जान तुम्हैं तब दैहैं ॥
दोहा-लौण नृपतिको मानकर, नन्दसुवन सों आज।
लडि मरिहैं कैमारि हैं, करैं कंसको काज ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

दोहा-कंसादिकको वध कियो मौंइन ज्ञान बताय।
दर्श कियो पितु मातुको, चौंवालिस अध्याय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित्! इसप्रकार निश्चय संकल्प कर नीलाम्बर पीताम्बरके कच्छे बाँध खंभे ठोंककर खडे होगये इसके उपरान्त मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण तो चाणूरके सन्मुख हुये और रोहिणीनन्दन बलरामजी मुष्टिकसे जुटे ॥ १ ॥ हाथोंसे हाथ, पाँवोंसे पाँव मिलाय परस्पर जीतनेकी इच्छासे एक एकको बलात्कार खैंचनेलगे ॥ २ ॥ अरत्निमें अरत्नि[1] मिलाय, घुटुओंसे घुटुएँ मिलाय, शिरसे शिर, छातीसे छाती मिलाकर कृष्ण और चाणूर दोनों परस्पर कुश्ती लडनेलगे॥३॥

दोहा-शिरसों शिर भुज सों भुजा, दृष्टि दृष्टि सों जोरि।
चरण चरण गहि झपटिकै, लपटि झपटि झटझोरि ॥
सोरठा-गहन न पावत घात, छूटि जात लपटात पुनि।
शिव विधि पै न गहात, तिन्हैं मल्ल चाहत गहन ॥

चारों ओर घुमाना, धक्का देना, परिरम्भण अर्थात् हाथसे विडारना, अपवर्तन अर्थात् नीचे पटक देना, उत्सर्पण अर्थात् छोडकर पीछेसे आगे तक जाना, अपसर्पण अर्थात् पीछे जाकर खडा होना इस प्रकार दांव पेंच कर करके लडनेलगे ॥ ४ ॥ उत्थापन अर्थात् पाँव और घुटुएँ मिलाकर गिरते हैं, उनका उखाडदेना चालन अर्थात् बँधे दाँवको दूर करना, स्थापन अर्थात् हाथ पाँव पकडकर मिलादेना, इसप्रकार परस्पर देहको पीडा देने लगे ॥ ५ ॥ इस प्रकार इनका युद्ध देखकर वहांकी बैठी हुई स्त्रियें परस्पर कहने लगीं कि, देखो! यह कृष्ण तो निर्बल है और चाणूर सबल है, यह विचार वह स्त्रियें अत्यन्त दयाको प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥ इन राजसभामें बैठनेवालोंकोभी महाअधर्म होगा क्योंकि राजाके देखनेको कहीं निर्बल सबलके कुश्ती कराई जाती है? ॥ ७ ॥ भला विचारो तो सही कि, कहां तो वज्रसे कठोर अंगवाले पर्वतके समान ऊंचे ऊँचे सब मल्ल और कहाँ अति सुकुमार कोमल अंग जिनकी यौवन अवस्था भी अभी प्राप्त नहीं हुई ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र॥८॥ इस सभामें इस समय निश्चय धर्मनाश होरहा है इसकारण इस सभामें बैठना उचित

१ अरत्नि-समुष्टिहस्त अर्थात् कोहनीसे बीचकी अंगुलीतक।

नहीं, क्योंकि जहाँ धर्मका नाश हो वहां कभी न बैठे ॥ ९ ॥ विवेकी पुरुषको ऐसी सभामें जाना योग्य नहीं है क्योंकि दोषोंको स्मरणकर बातको जानकर जो चुप बैठा रहै तो दोष लगै और किसीकी झूँठी सची कहै तो भी दोष लगै, अथवा हम किसीकी भली जाने न बुरी ऐसे कहै तो भी दोषका भागी हो इसकारण सभामें जाना योग्य नहीं है॥१०॥ सत्य बोलनेवालेको दुःख नहीं होता सत्ययुक्त पुरुषको कोई विघ्न दोष नहीं सता सक्ते * शत्रुके चारों ओर दौड धूप करते श्रीकृष्णके मुखकी शोभा देखो, कुश्तीमें जोर करनेसे इनके मुखपर पसीनेकी बूंदें आय रही हैं, जैसे कमलकोशके ऊपर ओसकी बूंदें पडती हैं ॥ ११ ॥ अरुण नेत्र बलदेवजीके मुखकी शोभा देखो, मुष्टिकके ऊपर क्रोध आय रहाहै तोभी मुसकान सहित हैं, इसलिये सुन्दर लगते हैं ॥ ॥ १२ ॥ भूमिमें ब्रज भूमि पर मपवित्र है, क्योंकि जिसके बनके चित्र विचित्र फूलोंको धारण किये पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी सहित मनुष्य रूपमें छिपकर गौओंको चराती समय बांसुरी बजाते खेलते फिरते हैं जिनके चरणोंका महादेव और लक्ष्मीजी भी पूजन करती है ॥ १३ ॥ बडा आश्चर्य है कि, गोपियोंने ऐसा क्या तप किया है, जिस कारण इनसे श्रेष्ठ कोई नहीं और जिनके समान कोई नहीं इनसे अधिक कोई नहीं देखा जा आभूषण वस्त्र विनाही सुन्दर लगता है, यश लक्ष्मी ऐश्वर्य इनको एकान्त स्थान, अर्थात् सर्वदा जिनमें वास करै ऐसे प्यारेके स्वरूप को दृष्टिसे देखते हैं ॥ १४ ॥ हे सखियो ! ब्रजबालायें धन्य हैं, जो गोपी गाय दुहानेके समय, धान्य छरती समय, दूध विलोती समय, बालकोंको झुलाती समय और चुपाती समय, घरोंका काम काज करती समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त होकर उनके गुण गाती हैं, उस समय उनका मन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमेंही लगजाता

---

* **दृष्टान्त**—एक राजाने एक बाजार बनवाया और कहा कि जो वस्तु यहाँ बेचनेको लावेगा और संध्यातक न विकैगी, उसे मैं स्वयं ले लूंगा इसप्रकार वह बाजार विख्यात होगया. एक दिन एक लुहार लाहेकी शनैश्चरकी मूर्त्ति बनाकर लाया, एक लाख रुपया उसका मोल मांगा और कहा कि, जिसके यहां यह मूर्ति रहेगी उसके यहाँ द्रव्यादि कुछ न रहेगा, अब उस अनिष्टकारक मूर्तिको किसीने न लिया. सन्ध्यासमय राजाने देखा कि बढी भीड होरही है, कारण पूँछतेही राजाने विचारकर उस मूर्तिको ले लिया और लाख रुपये उसे देदिये, जब राजाने घरमें मूर्त्ति रक्खी तो पहले लक्ष्मी राजासे बोली महाराज! मैं जातीहूं राजा बोला क्यों ? लक्ष्मीजी बोली जहाँ शनैश्चर देव रहैं वहा हमारा क्या काम ? राजाने कहा जाओ. इसीप्रकार नीति, साम, दान, दण्ड, भेद, सब रूप धरकर आये और राजाने जाने दिया पीछेसे जब सत्यदेव आये तो राजासे कहकर जब जानेलगे तब राजाने हाथ पकडकर कहा कि, आपके रखनेको तो हम शनैश्चर देवको लाये हैं. तुम कैसे जाते हो ? सत्यदेवसे कुछ उत्तर न बन पडा और रहगये सत्यके रहनेसे नीति, लक्ष्मी आदि सब लौट आये और सत्यके प्रभावसे शनैश्चर राजाका कुछ न कर सके ॥

है और प्रेमानंदसे उनके नेत्रोंमें आंसू आजाते हैं ॥ १५ ॥ प्रातःकाल जब ब्रजसे गौ चरानेको जाते हैं और संध्यासमय जब गायोंको ले बांसुरी बजातेहुए आते हैं, उस समय वह महाभाग गोपियें बांसुरीका शब्द सुन शीघ्र अपने घरसे निकल, मार्गमें आय, सुंदर मुसकान दयापूर्वक चितवनयुक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका दर्शन करती हैं हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इधर तो स्त्रियें परस्पर इस प्रकार बातें कर रही थीं और उधर योगके ईश्वर सबका दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शत्रुओंके मारनेका विचार करने लगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ भय सहित स्त्रियोंकी बातें सुनकर, पुत्रोंमें स्नेहके शोकसे व्याकुल और पुत्रोंके बलको नहीं जाननेवाले माता पिता वसुदेव देवकी अत्यन्त दुःखित हुए * ॥ १८ ॥ अनेकप्रकार कुश्तीके दावें पेंचोंसे जैसे श्रीकृष्ण और चाणूर लडते थे उसी प्रकार महात्मा बलदेव और मुष्टिक लडने लगे ॥ १९ ॥ वज्रपातके समान कठोर भगवान्के अंगके प्रहारसे चाणूरका अंग चुरकुट होगया, जिससे वह बहुत दुःखित हुआ ॥ २० ॥ इसके उपरान्त शिकरेके वेगके समान चाणूरने दोनों हाथकी मुष्टि बाँध क्रोधमें भर, ऊपरको उछल, भगवान् वासुदेवकी छातीमें एक घूंसा मारा ॥ २१ ॥

चौ०-करके कोप मुष्टि इक मारी। फूल समान श्याम उर पारी ॥
भयो वेग अति हर्षि नियारो। कहन लग्यो मुरि अहिर पछारो ॥
देख्यो हँसत गुपालहिं ठाढो। परचो शोच प्राणन अति गाढो ॥
नंदसुवन महिमा तब जानी। इनते मीचु आपनी मानी ॥
तब मोहन करि कोप हँकारो। जनु गजको मृगराज पुकारो ॥
सुनत हाँक सब दावँ भुलानो। थरथराय चाणूर डरानो ॥
धरो धाय तब झपटि कन्हाई। पटक्यो महिगहि भुजा फिराई ॥

हे महराज ! जिस प्रकार हाथी फूलोंकी मालाके लगनेसे नहीं चलायमान होता, वैसेही श्रीकृष्णचन्द्र उसके मुष्टिसे चलायमान न हुए,इसके उपरान्त अत्यंत क्रोधित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चाणूरके दोनों हाथ पकड,बहुत घुमाय बडे वेगसे पृथ्वीमें पटक दिया गिरतेही उसके प्राण निकलगये और गहने, केश, माला इत्यादि सब बिखरगई गिरतेसमय ऐसे शब्द हुआ कि, मानो इन्द्रध्वज गिरा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसी प्रकार मुष्टिक कि, जिसने पहले बलदेवजीके मुष्टिप्रहार किया था, उसे बलदेवजीने थाप मारकर गिरा

---

* **शंका**-जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रगट हुए उसी समय वसुदेव देवकीको ज्ञान दिया और वसुदेव देवकी श्रीकृष्णके समुद्र सरीखे चरित्र और कर्मोको जानते थे और सुन भी रक्खा था, फिर वसुदेव देवकी जानबूझकर क्यों अज्ञानी होगये?

उत्तर-श्रीकृष्णके माता पिता अज्ञानी नहीं हुए, पुत्रके मोहमें व्याकुल होगये, पुत्रका मोहरूप अग्निसे भस्म होगये, इसलिये अज्ञानियोंकी नाईं होगये, क्योंकि संसारमें पुत्रका मोह बडा भारी है पुत्रके मोहमें बुद्धि ठिकाने नहीं रहती ॥

दिया ॥ २४ ॥ मुष्टिक कंपित हो, मुखसे रुधिरको वमन करता, पीडित हो, प्राण निकल जानेसे जैसे पवनका मारा वृक्ष उखडकर गिरपडता है, उसी प्रकार गिरगया ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित्! इसके उपरान्त दौडतेहुए कूट मल्लको मारने वालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने लीलापूर्वक तिरस्कार कर बाई मुष्टिसे मारडाला ॥ २६ ॥ शल तोशलने अपने मनमें विचार किया कि, दण्डवत्के बहाने चरण पकडकर पटक देंगे, परन्तु भगवान् तो सबके बाहर भीतरकी जाननेवाले हैं, यह जिस समय दण्डवत् करनेको आये? उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एक लात ऐसी मारी जिसके लगनेसे शिर फटगया, इसप्रकार शल तोशल दो खण्ड विदीर्ण होकर दोनों पृथ्वीपर गिरगये ॥ २७ ॥

दोहा-जब मारे हरि मल्ल सब, परो कटकमें शोर।
जिमि तारागण रवि उदय, छिपे असुर चहुँ ओर ॥

चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, इत्यादि मुख्य मल्ल जब मारेगये, तब वहाँ और जो मल्ल उपस्थित थे, वह अपना प्राण बचानेके लिये भागगये ॥ २८ ॥ बराबरके गोपोंको अखाडेमें खैंच श्रीकृष्ण बलदेव उनके संग विहार करने लगे, उस समय बाजे बज रहे थे और श्रीकृष्णचन्द्रके नूपुर नृत्य करनेसे परम सुहावन बज रहे थे ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीके चरित्र देख कंसके बिना मथुरावासी प्रसन्न होगये, मुख्य २ ब्राह्मण तथा सज्जन पुरुष "साधु साधु" ऐसे कह कह स्तुति करनेलगे ॥ ३० ॥

सोरठा-सखन सहित दोउ वीर, रङ्गभूमि राजत खडे।
हरण भक्त भयपीर, ब्रजवासी प्रभु नन्दके ॥

जब बडे बडे मल्ल मरगये, कितनेही भागगये, तब भोजवंशियोंके राजा कंसने नगारे थमादिये ॥ ३१ ॥ और क्रोधित होकर कहने लगा कि, कुटिलकर्मा वसुदेवके पुत्रोंको पुरसे बाहर निकाल दो और इनका धन छीन लो, कुटिलबुद्धि वसुदेवको बाँध लो ॥ ३२ खोटी बुद्धिवाले वसुदेवको जल्दी मारो और इसके उपरान्त शत्रुसे मिलनेवाले पिता उग्रसेनको भी अनुचरों सहित बाँधलो ॥ ३३ ॥

चौ०-बहुरो उग्रसेनको मारो। पितादोष कछु हृदय न धारो ॥
ऐसे पुनि पुनि वचन उचारे। कंपित रिसन खड्ग कर धारे ॥
क्षण बैठत क्षण उठत अधीरा। मारे असुर सकल दोउ वीरा ॥
अति बलवन्त नंदके बारे। तब सकोप नृप ओर निहारे ॥

इस प्रकार जब राजा कंस बकने लगा, तब अत्यन्त क्रोधित हो अव्यय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र धीरेसे उछल ऊंचे मंचानपर चढ गये ॥ ३४ ॥

चौ०-गये मँचान चकित चढि दोऊ। बाज झटप देखत सब कोऊ ॥
ह्वैगयो चकित नृपति भयमान्यो। आयो काल निकट यह जान्यो ॥

तब धीरजवान् अत्यन्त अभिमानी राजा कंसने अपनी मृत्युको आता हुआ देख

आसनसे उठकर ढाल तलवार ग्रहण की ॥ ३५ ॥ तलवार हाथमें ले आकाशमें जैसे शिकरा पक्षी फिरता है, उसी प्रकार दाईं बाईं ओर जल्दी जल्दी फिरनेवाले कंसको असह्य और उग्रतेजवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने तार्क्ष्यका पुत्र गरुड जैसे सर्पको पकड-लेताहै, उसी प्रकार पकडलिया ॥ ३६ ॥ फिर उसकी फेंट तथा केश पकड ऊँचे मंचा-नपरसे रंगभूमिमें पटक दिया और इसके ऊपर सर्व जगत्के आश्रय और स्वतंत्र कमल-नाभ भगवान् स्वयं कूदपडे, केश पकडनेका कारण यह है कि, कंसने देवकीके केश पकडे थे, इसलिये उसका बदला लिया ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त सिंह जैसे हाथीको खैंचता है, उसीप्रकार सब जगत्के देखते मृतकहुए कंसको पृथ्वीमें घसीटनेलगे. हे नरेन्द्र ! उस समय समस्त प्रजामें बडा भारी हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३८ ॥ कंस प्रतिदिन चलायमान चित्तसे जल पीते, बात कहते, चलते, सोते और श्वास लेते चक्र आयुधवाले भगवान्काही शत्रुभावसे ध्यान करता था इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरू-पको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥

दोहा–जब पृथ्वीपर आनकर, पर्यो उतानो भूप ।
उर ऊपर दर्शन दियो, श्याम चतुर्भुज रूप ॥

इसके उपरान्त उस कंसके कंक, न्यग्रोधसे आदि लेकर छोटे आठ भाई अत्यन्त क्रोधित हो कंसका बदला लेनेके लिये दौडकर आये ॥ ४० ॥ उसी समय रोहिणीके सुत बलरामजीने क्रोधित हुए हाथोंमें शस्त्र लेकर आयेहुए कंसके भाइयोंको सिंह जैसे पशुओंको मारता है, उसी प्रकार परिघ उठाकर मारडाला ॥ ४१ ॥ उस समय आका-शमें नगारे बजनेलगे और भगवान्की विभूति जो ब्रह्मा महादेवादिक देवता हैं, सो प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा करनेलगे, स्त्रियें नृत्य करनेलगीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! इसके उपरान्त पतिके मरणसे अत्यन्त दुःखित हो नेत्रोंमें आँसू भर कंसकी स्त्रियें शिर पीटती जहाँ उसकी लोथ पडी थी, वहाँ आईं ॥ ४३ ॥ वीरशय्यामें पडे पतिको आलिंगनकर शोकातुर स्त्रियें वारम्वार नेत्रोंसे आँसू बहाय बहाय पुकार पुकारकर विलाप करनेलगीं ॥ ४४ ॥ हा नाथ ! हे प्राणपति ! हे धर्मके जाननेवाले ! हे करुणा-नाथ ! दीनवत्सल ! तुम आप मरकर घरबार सहित और बालकों सहित हमको क्यों मारगये ? ॥ ४५ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम बिना हम विधवा होकर शोभायमान नहीं लगतीं उसी प्रकार तुम्हारे बिना मथुरापुरी भी शोभा नहीं पाती क्योंकि संपूर्ण मंगल उत्सव इसमेंसे दूर होगये ॥ ४६ ॥ निरपराध प्राणियोंसे तुमने बडा द्रोह किया, इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई जो मरे पडेहो, प्राणियोंसे वैर करके कौन पुरुष सुख पाता है ॥ ४७ ॥ क्योंकि इस संसारमें समस्त प्राणियोंके उत्पत्ति, पालन और नाशकर्त्ता भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रही हैं. इसलिये जो इनकी अवज्ञा करता है. वह कभी सुख नहीं पाता ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! लोकोंके पालन करनेवाले

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा कंसकी स्त्रियोंको समाधान कर कंसकी दाहादिक क्रिया कराई ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त माता, पिता देवकी वसुदेवको कंसके बंदीखानेसे छुडाया और रामकृष्ण दोनों भाइयोंने माता पिताके चरणोंमें शिर लगाकर प्रणाम किया ॥५०॥ माता, पिता, देवकी वसुदेव प्रणाम करते पुत्रोंको जगत्के ईश्वर जान, भयभीत होकर उनसे नहीं मिले ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

दोहा-पितुनंदादिक शान्तकर, उग्रसेन दियोराज।
बहुरि गये गुरुके भवन, पैंतालिस सुखसाज ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने माता पिताको ज्ञान प्राप्तहुआ जान विचारा कि, यह ज्ञान अभी ठीक नहीं इसलिये सब लोगोंको मोहित करनेवाली अपनी माया फैलाई ॥ १॥ यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीको संग लेकर माता, पिताके पास आये और विनयपूर्वक नम्र हो, हे मातु ! हे पिता ! इस प्रकार आदरपूर्वक प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ २ ॥ हे पिता ! सर्वदा तुम्हें चाहनाही बनीरही और हम पुत्रोंसे बाल्य अवस्था, पौगण्ड अवस्था, तथा किशोर अवस्थाका सुख कभी तुमको न हुआ ॥ ३ ॥

दोहा-सबै जीव सन्तानसों, सुख पावत दिनरैन।
तुम्हैं हमारे जन्मतें, बहुतहि भये कुचैन ॥
यद्यपि हम अगुण भरे, प्रकटे महा असाध।
तद्यपि सुतहित जानिकै, क्षमा करो अपराध ॥

दैवके मारे हम तुम्हारे निकट वास भी न करसके, पिताके घर बालक रहते हैं और उनका लालन पालन होताहै, तथा आनन्द पाते हैं हमको कुछभी प्राप्त न हुआ ॥४॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सर्व पदार्थ जिससे हों ऐसा यह देह जिस माताने उत्पन्न किया उनकी यह मरणधर्मा मनुष्य सौवर्षतक सेवा करै, परन्तु तोभी उनसे उऋण नहीं होसक्ता ॥५॥ जो पुत्र समर्थ होकर देहसे अथवा धनसे माता, पिताको जीविका नहीं देते, उसे परलोकमें यमके दूत उसका मांस उसेही काट काट कर भक्षण कराते हैं ॥ ६ ॥ माता, पिता, वृद्ध, सुशीला स्त्री, पुत्र, बालक, गुरु, ब्राह्मण अथवा और जो कोई शरण आवैं इनका जो मनुष्य भरण पोषण न करै तो वह मृतकके समान है * ॥ ७ ॥ असमर्थ और कंसके

* शंका-श्रीकृष्णने कहा कि, वृद्ध पिताका सेवन करना चाहिये, परन्तु शास्त्रमें ऐसा कहां नियम कहा है कि, वृद्ध पिताकी सेवा करना और युवा पिताकी सेवा न करना, श्रीकृष्णके वचनसे ऐसा जानपडताहै कि, समर्थ भी होवै तोभी युवा पिताकी सेवा न करना,

भयके मारे नित्य चंचलमन होनेके कारण तुम्हारी सेवा विना किये हमारे इतने दिन व्यर्थ बीतगये ॥ ८ ॥ हे पिता ! हे मातु ! पराये अधीन होनेके कारण हमसे तुम्हारी सेवा न बनी और दुष्टहृदय कंससे अत्यन्त दुःखित रहे, इसलिये अब हमपर तुम क्षमा करनेके योग्य हो सो क्षमा कीजिये ॥ ९ ॥ इसप्रकार मायासे मनुष्यरूपधारी विश्वके आत्मा हरिके वचनसे मोहित होकर देवकी वसुदेव पुत्रोंको गोदमें बैठाय परमानंदको प्राप्तहुए ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! स्नेहके पाशसे बँधे मोहित देवकी वसुदेव आँसुओंकी धारोंसे कृष्ण बलदेवको भिजोते कुछ भी न बोले ॥ ११ ॥ देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार माता पिताको सावधान कर नाना उग्रसेनको यादवोंका राजा बनाया ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे महाराज ! हम तुम्हारी प्रजा हैं सो हमें तुम आज्ञा करनेके योग्य हो और यदुवंशियोंको ययातिका शाप है, इसकारण यादवोंका सिंहासनपर बैठना और राज्य करना योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ मैं सेवकके समान तुम्हारे निकट सदा उपस्थित रहूंगा, बडे बडे देवादिक तुमको भेंट देंगे, और राजे देंगे, इसमें तो कहनाही क्या है ? ॥ १४ ॥ और कंसके डरके मारे जो अपनी जातिके यदु, वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह, कुकुरादिक भागगये थे ॥ १५ ॥ उनको बुलाकर और विदेशमें बसनेके कारण जो यादव कृश हो रहे थे, उनका सत्कारकर बहुतसा धन दे तृप्तकर सब विश्वके कर्त्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने अपने घरोंमें बसाया ॥१६॥ कृष्ण बलदेवकी भुजासे रक्षित हो, पूर्ण मनोरथ पाय, पापोंको दूर कर, वह यादव घरोंमें रमण करनेलगे॥१७॥और नित्य आनंदसे पूर्ण शोभायुक्त दयासहित मंदहास्यपूर्वक चितवन युक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलका दर्शन करके परमानंद होते थे ॥१८॥ भगवान् मुकुन्दके मुखकमलके अमृतको पीकर उस समय वृद्ध भी तरुणावस्थाको प्राप्त हो अत्यन्त बलवान् होगये ॥१९॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजी नंदरायजीके पास आय मिल यह वचन बोले ॥ २० ॥ हे पिता ! तुम स्नेहियोंने हमारा पोषण किया बहुत लाड लडाया, अधिक क्या कहें, माता पिताको अपने पुत्रोंमें अधिक प्रीति होती है, सो तुमने उससे भी अधिक प्रीति करी ॥ २१ ॥ वही पिता है, वही माता है जो पराये पुत्रको अपने पुत्रके समान पोषण करे और पोषण करनेमें जिनकी सामर्थ्य न हुई ऐसे

—समर्थ होवे वा असमर्थ होवे तब वृद्ध पिताका सेवन करना, ऐसा भगवान्के वचनसे विदित होताहै, फिर भगवान्ने ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर—"मातरं पितरं वृद्धम्" इस श्लोकमें वृद्धका अर्थ बूढेपनका नहीं है, वृद्ध बूढेका नाम है वृद्धका अर्थ श्रीकृष्णने ऐसा किया है कि, सर्वधर्मसे पिता वृद्ध कहिये श्रेष्ठ, अथवा पण्डित और धर्मशास्त्र भी सब धर्मोंसे पिताको बडा कहते हैं, पितासे माता बडी है, ऐसा धर्मशास्त्रका मत जानकर श्रीकृष्णचन्द्रने वृद्ध पिताका पूजन करनेके लिये कहाथा. यह नहीं कहा था कि, बूढे पिताका सेवन करना और युवा पिताका सेवन न करना ॥

हमारे माता पिताने हमको बालकपन सेही छोडदिया ॥२२॥ हे पिता ! अब तुम ब्रजको जाओ हम भी बंधु बांधवोंका प्रिय करके स्नेहसे दुःखी जातिवाले और तुम्हारे देखनेको पीछेसे आवेंगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रजवासियों सहित नंदरायजीको समझाकर और अनेक भाँतिके वस्त्र, आभूषण तथा सोने, चांदीके बर्त्तन देकर बडे आदरपूर्वक उनका पूजन किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुन, नंदरायजी कृष्ण बलदेवको छातीसे लगा, प्रेमसे व्याकुल हो, नेत्रोंमें आँसू भर, संपूर्ण ब्रजवासियोंको संग ले ब्रजको चले ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त हे राजन् ! शूरसेनके पुत्र वसुदेवजीने ब्राह्मण पुरोहितको बुलाय पुत्रोंका यथायोग्य द्विजन्म-संस्कार कराया ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त शृंगार करी हुई रेशमी झूल व सुवर्णकी माला पहरे अनेक गायें बछडों सहित ब्राह्मणोंको दान कीं ॥ २७ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने राम कृष्णके जन्मनक्षत्रके समय जिन गायोंका मनमें संकल्प किया था और कंसने अधर्मसे हर ली थीं, उतनीही गौ स्मरण करके ब्राह्मणोंको दान करीं ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त सुव्रती कृष्ण बलदेव द्विजन्मसंस्कार पाय यदुकुलके पुरोहित गर्गाचार्यसे गायत्रीका उपदेश ले ब्रह्मचर्य व्रतमें रहनेलगे ॥ २९ ॥ यद्यपि संपूर्ण विद्या जाननेवाले सर्वज्ञ अर्थात् सब बातके जाननेवाले कृष्ण बलदेव सब जगत्के ईश्वर थे परन्तु तो भी स्वतःसिद्ध निर्मल ज्ञानको मनुष्योंके समान चेष्टा करनेके कारण गुप्त रखतेथे ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त कृष्ण बलदेव गुरुकुलमें वास करनेकी इच्छासे कश्यपगोत्री उज्जैनपुरीके वासी सांदीपनि गुरुके पास गये, जो काश्यपनामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ ॥ ३१ ॥ जितेन्द्रिय कृष्ण बलदेव भले प्रकार गुरुके पास आय, बडे आदर-सत्कारसे भक्तिपूर्वक जैसे नारायणकी सेवा करते हैं, उसीप्रकार गुरुकी सेवा करनेलगे ॥ ॥ ३२ ॥ शुद्ध भक्तिपूर्वक सेवासे संतुष्ट हुए द्विजन्माओंमें श्रेष्ठ गुरुजीने श्रीकृष्ण बलदेवको शिक्षादिक छः अंग और उपनिषदों सहित समस्त वेद पढाये ॥३३॥ इसके उपरांत मंत्र और देवताके ज्ञानसहित शस्त्र चलाना, धनुर्वेद और धर्मशास्त्र, राजनीति, मीमांसादिक, तर्कविद्या तथा शत्रुसे मिलाप करना, युद्ध करना, उसके ऊपर चढ़जाना, निकट जाकर रहना, अपनी ओर तोडलेना, मेल करना, यह छःप्रकारकी राजनीति पढाई ॥ ३४ ॥ सब मनुष्योंमें तथा उत्तमोंमें उत्तम सब विद्याओंके चलानेवाले सावधान कृष्ण बलदेवने हे राजन् गुरुके बिना बतायेही संपूर्ण विद्या सीख लीं॥३५॥ चौंसठ रात्रियोंमें गाना, बजाना, नृत्य करना-आदि चौंसठ कला सीखीं, जब विद्या पढ चुके तब हे राजन् ! कृष्ण बलदेव दोनों भाई गुरुजीसे गुरुदक्षिणाकी आज्ञा करो इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३६ ॥ तब सांदीपनिने कृष्ण बलदेवकी अद्भुत महिमा देख कि, मनुष्योंमें ऐसी चमत्कारी कहां? स्त्रीसे परामर्शकर प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें डूबकर जो पुत्र मरगये थे सो स्त्रीके कहनेसे उनकोही मांगा ॥ ३७ ॥ तथास्तु, इस प्रकार कह अत्यन्त पराक्रमी, बडे रथी, कृष्ण बलदेव रथमें बैठ प्रभासक्षेत्रमें पहुँच समुद्रके किनारे जाय एक क्षण बैठगये, तब समुद्र

कृष्ण बलदेवको आया जान उनकी पूजा लेकर आया ॥३८॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस समुद्रसे कहनेलगे कि, जो हमारे गुरुका बालक तैंने यहां बडी लहरोंसे डुबा लिया है वह गुरुका पुत्र लादे ॥ ३९ ॥ तब समुद्र बोला कि हे देव ! मैंने तो तुम्हारे गुरुका पुत्र नहीं डुबाया, बरन् मेरे भीतर रहनेवाला शंखरूप धारणकिये एक बडा दैत्य है वह हर लेगया है और निश्चय उसके पास है, यह सुनतेही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त शीघ्रतासे जलमें घुस पंचजन दैत्यको मारडाला परन्तु उसके पेटमें बालक नहीं देखा ॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इसके उपरांत उस दैत्यके अंगमेंसे शंख ले श्रीकृष्णचन्द्र रथपर आये और वहाँसे यमराजकी अति प्यारी संयमनी पुरीमें आये ॥ ४२ ॥ और वहाँ आकर बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शंख बजाया, तब प्रजाको दण्ड देनेवाला धर्मराज शंखका शब्द सुन ॥ ४३ ॥ कृष्ण बलदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेलगा और सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे हाथ जोडकर बोला कि, हे विष्णु भगवान् ! लीलापूर्वक आपने मनुष्यका रूप धारण किया है; सो तुम्हारी क्या सेवा करूं ? ॥ ४४ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे महाराज ! यहाँ जो आप गुरुपुत्र ले आये हैं सो लादीजिये,तब यमराजने कहा कि,वह अपने कर्मोंसे बँधे पडे हैं कैसे लाऊं ? तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, उन्हें मेरी आज्ञा हुई है, कुछ मेरी आज्ञासे कर्म बलवान् नहीं है ॥४५॥ तब "जो आज्ञा" ऐसा कहकर यमराजने गुरुपुत्र ला दिये,इसके पीछे यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्ण बलदेव उन्हें ले अपने गुरुको देकर बोले कि, और कुछ मांगो ॥ ४६ ॥ तब गुरु कहने लगे कि, हे पुत्र ! तुमने गुरुसेवा भलीभांति करी और तुम सरीखोंका जब मैं गुरु हुआ तब मेरे कौन बातकी चाहना शेष रही ? ॥ ४७ ॥ हे वीर ! अब तुम अपने घरको जाओ इस लोक और परलोकमें तुम्हारी पवित्र कीर्ति होवे, तुम्हारे वेद नवीन पढे हुओंका स्मरण बना रहै ॥४८॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार गुरुसे आज्ञा पाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भाई पवनके समान शीघ्रगामी मेघकी तुल्य गर्जनेवाले रथमें बैठ अपने घरको आये ॥ ४९ ॥ बहुत दिनोंसे नहीं देखनेके कारण राम कृष्णका दर्शनकर प्रजा बडे आनन्दको प्राप्त हुई, जैसे गया हुआ धन मिलनेसे आनन्द होता है ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

दोहा-छियालीस अध्यायमें, उद्धव व्रजहि पठाय।
शोक यशोदा नन्दको, मेटयो ज्ञान सिखाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णके प्रिय मंत्री सखा अर्थात् बृहस्पतिके शिष्य बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, जो उद्धवजी थे ॥ १ ॥ उन्हें शरणागतोंका

दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एकान्तमें बुला हाथ पकडकर कहा ॥ २ ॥ हे उद्धव ! हे साधु ! तुम ब्रजको जाओ हमारे माता पिताको प्रसन्न करो और गोपियोंको जो मेरे बिछुडनेमें कष्ट हुआ है सो उसे मेरा संदेशा लेजाकर दूर करो ॥ ३ ॥ मुझमें जिनके मन और प्राण लग रहे है; मेरेलिये पति पुत्रादिक त्याग दियेहैं, मैंही प्यारा जिनके आत्मा हूँ, सो मुझमें मन लगाकर रहती हैं, मेरे लिये जिन्होंने इस लोक तथा परलोकके जितने सुखके उपाय हैं, सब त्यागदिये हैं, उनको मैं सुख देताहूं ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! उनका प्यारा मैं जबसे दूर आयाहूं तबसे वह गोकुलकी स्त्रियें मेरी सुधि करके विरहसे मेरी चाहके कारण विवश हो मोहित होजाती हैं *॥५॥ क्योंकि जब मैंने उनसे कह दिया था कि मैं शीघ्र ही आऊंगा, इस कारणसे किसी प्रकार वे गोपियें प्राण धारण किये रहीं सो भी महाकष्टसे, यदि उनका आत्मा उनके शरीरमें रहता तो दग्ध होजाता, वह तो मुझमें लीन है, इसीलिये वह प्राण धारण कर रही हैं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब उद्धवजी बडे आदरपूर्वक स्वामीके संदेशेको ले रथमें बैठ नंदरायजीके गोकुलको चले ॥ ७ ॥ और सूर्यके छिपते ही शोभायमान नंदरायजीके गोकुलमें पहुँचे, तब संध्यासमय आतीहुई गायोंके खुरोंकी रेणुसे उद्धवजीका रथ ढकगया ॥ ८ ॥ पुष्पवती गायोंके लिये चारों-ओरसे मतवाले बैलोंके युद्धका शब्द वहाँ होरहा था और ऐनोंके भारसे व्याई हुई गायें

---

* **शंका**–ब्रज गोकुलसे मथुरापुरीका चारकोशका अन्तर है और मथुरासे ब्रजभी चारही कोश है, परन्तु ब्रजको श्रीकृष्ण कभी नहीं गये और गोपी भी मथुराको कभी नहीं गईं गोपियें दही, छाँछ, माखन बेचनेको भी मथुरापुरीको कभी नहीं गईं, छाँछ बेचनेको आतीं तो भी मोहन प्यारेकी मुलाकात होजाती, हे स्वामिन् ! परस्पर मित्रसे मिलनेके लिये स्त्री वा पुरुष हजारों कोश चले जाते हैं और कृष्ण और गोपियोंकी ऐसी परम मित्रता थी फिर चार कोशके अन्तर मिले भेटे क्यों नहीं इसका क्या कारण ? इधर तो कृष्णके मनमें मोहकी ज्वाला भडकरही थी और उधर गोपियोंके हृदयमें मोहकी ज्वाला भडक रही थी, फिर क्या कारण जो कोई न तो मथुरासे गया, न कोई गोकुलसे आया। यह बडा सन्देह है ?

उत्तर-श्रीकृष्ण लोकनिन्दासे डरे, ब्रजमें जो लीला हमने करी तब हम बालक थे अब हमारी युवा अवस्था हुई जो गोपी ब्रजसे हमारे पास आवेंगी अथवा ब्रजको हम जायँगे तो पहिलेकी समान चरित्र मथुरामें तथा ब्रजमें करने पडेंगे और वह चरित्र हम यहाँ करें तो संसारमें हमारी निन्दा होगी, इस बातका डर करके मायासे गोपियोंको मोहित कर दिया जब गोपी मोहको प्राप्त होगई तो मन हीं मनमें बिना कृष्ण प्यारेके मनमें परिताप तो किया परन्तु मथुराकी ओरको पाँव न रक्खा और भगवान् लोकला-जसे गोकुलको नहीं गये ॥

दौड दौडकर अपने बछडोंके पास आती थीं ॥९॥ जहाँ तहाँ सफेद गायें गायोंके बछडे कूदते फाँदते फिरते हैं, गायोंके दुहनेका शब्द जहाँ तहाँ होरहाहै, कोई कहता था "लाओ" कोई कहता था "देओ" ऐसा कुलाहल जहाँ तहाँ मचरहा था और बाँसुरी बजनेका भी शोर होरहाथा ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीके मंगलरूप कर्मोंको बनी ठनी गोपियें गातीहुई अत्यन्त शोभायमान लगती थीं ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, अभ्यागत, गौ, ब्राह्मण, पितर, देवता इनके पूजनकी सामग्री जहाँ तहाँ धरी थी, धूप होरही थी, दीपक बलरहे थे, फूल धरे थे, गोपोंके घरोंमें पूजा होनेसे यह ब्रज मनोहर होरहा था ॥ १२ ॥ सब ओरसे फुलवारी फूल रही थी, पक्षी बोलरहे थे, भौंरे गुंजार रहे थे, राजहंस और कारंडवपक्षी जहां बैठे थे, ऐसे कमलोंके समूहसे वह ब्रज शोभायमान हो रहाथा ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्रियमित्र उद्धवजीको आया जान नंदरायजी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मिले और श्रीकृष्णचन्द्रके पाससे आये हैं यह जानकर ईश्वर बुद्धिसे पूजन किया ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त श्रेष्ठ सामग्रियोंका भोजन कराय, शय्यापर सुख पूर्वक पौढाय, चरण दाब मार्गका खेद मिटाय, उद्धवजीसे नंदरायजी बोले ॥ १५ ॥ हे बडभागी उद्धव ! कहो शूरसेनके पुत्र हमारे सखा वसुदेवजी पुत्रोंसहित कुशलपूर्वक हैं ? कंसके बंदीखानेसे छूटे हैं ? भाई बन्धु हितकारियोंसहित प्रसन्न हैं ? ॥ १६ ॥ और पापी कंस समस्त सेवकोंसहित मारागया यह बडाही मंगल हुआ क्योंकि वह कंस धर्मस्वभाववाले यादवोंसे सदा वैर करता था ॥१७॥ हे उद्धवजी ! और यह भी कहो कि, वह कृष्ण भी कभी हमारी और अपनी माताकी सुधि करते हैं, तथा सुहृद सखा गोपियोंकी सुधि करते हैं और जिसके आपही रक्षक हैं ऐसे ब्रजकी भी कभी सुधि करतेहैं और गौ, ब्राह्मण, गोवर्द्धनपर्वतकी भी कभी सुधि करते हैं ? ॥ १८ ॥

दोहा-"सुरत हमारी करत हैं, कछु उद्धव बलवीर।
पुलकि गात लोचन सजल, पूछत नन्द अधीर ॥ १ ॥
वह ग्वालन सँग खेलिबो, वह गोपिन सँग हास।
कबहुँक लालन सुधि करत, मातुपितहि सुखरास ॥ २ ॥
बहुविधिसों रक्षा करी, ब्रजवासिनकी जौन।
अब उद्धव उत्पात हो, तो उद्धारै कौन" ॥ ३ ॥

गायोंका हित करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र जब कभी अपने भाई बंधुके देखनेके लिये आवेंगे तब सुंदर नासिका सुन्दर मुसकान चितवनयुक्त उनके मुखका दर्शन करेंगे ॥ १९ ॥ दावाग्निसे, पवनसे, इन्द्रकी वर्षासे, विषयुक्त सर्पसे, अघासुरसे और बडी २ मृत्युओंसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने हमारी रक्षा करी ॥ २० ॥ हे उद्धवजी ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रम और लीलापूर्वक कटाक्षभरी चितवन, हँसन और बोलनेकी सुधि करतेहैं, तब हमारी संपूर्ण क्रिया शिथिल होजातीहैं ॥ २१ ॥ मुकुंदके चरणोंके चिह्न पर्वत, नदी, वनके स्थान और उनके खेलनेके स्थानोंको जब देखते हैं, तब हमारा मन कृष्णमय हो-

जाताहै ॥ २२ ॥ देवताओंका कार्य करनेके लिये इस संसारमें कृष्ण अवतार लेकर आये हैं उन्हें मैं देवताओंमें उत्तम मानताहूँ और मैंने बडा गंभीर गर्गाचार्यका वचन भी ऐसेही सुना है ॥ २३ ॥ दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाले कंस और मल्लोंको वैसेही कुवलयापीड हाथीको सिंह जैसे पशुओंको मारता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वकही मारडाला ॥ २४ ॥ फिर बडा भारी तीन तालके समान धनुष एक हाथसे उठाकर जैसे हाथी लठियाको तोडताहै उसी प्रकार तोडडाला और सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको बांयें हाथकी अँगुलीपर धारण किया ॥ २५ ॥ प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, तृणावर्त्त, बकासुर, आदि और भी जो सुर असुरोंके जीतनेवाले दैत्य थे, सो श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वकही मारडाले ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! कृष्णमें प्रेमबुद्धिवाले नन्दरायजी इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सुधि करके आँखोंमें आँसूभर गद्गद कण्ठ प्रेमके भावमें व्याकुल होकर चुप होगये ॥ २७ ॥ यशोदाने जो ऐसे वर्णन कियेजाते श्रीकृष्णके सुन्दर चरित्र श्रवणाकिये, तो स्नेहसे स्तनोंमें दूध उमडि आया और नेत्रोंसे आँसू बहने लगे ॥ २८ ॥

चौ०-उद्धव कह्यो कुशल दोउ भैया। नीको है मम लाल कन्हैया ॥
फाटत नहीं वज्रकी छाती। अब यह समुझि हृदयप छिताती॥
ऐसो भाग्य कभी अब पैहौं। बहुरि श्यामको गोद खिलैहौं ॥
दोहा-ग्वाल सखा सँग जोरि अब, को गैयन लेजाय।
को आवै संध्यासमय, वनते गाय चराय ॥ १ ॥
उद्धव यद्यपि हमैं सब, समुझावत ब्रजलोग।
उठत शूल तद्यपि निरखि, माखन प्रभु मुखयोग ॥ २ ॥
लाड लडाये विविध विध, दूध पियाय पियाय।
लालाने ऐसी करी, छोडी बूढी माय ॥ ३ ॥

इस प्रकार नंदराय और यशोदाका भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परम अनुराग देख उद्धवजी नंदजीसे बोले ॥ २९ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे मानदेनेवाले नंदजी ! इस संसारमें देहधारियोंके मध्यमें निश्चय तुम प्रशंसाके योग्य हो, क्योंकि जो सबके गुरु नारायण हैं, उनमें ऐसी बुद्धि लगाई है ॥ ३० ॥ यह जो कृष्ण बलदेव हैं, सो विश्वके लिये उपादान कारण हैं इसीसे पुरुष प्रकृति रूप हैं, सब प्राणियोंमें प्रवेश करके अनेक प्राणियोंके अनेक प्रकारके ज्ञानके साक्षी और अनादि हैं ॥ ३१ ॥ प्राण छूटती समय यह पुरुष क्षणभर शुद्ध मनको जिन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें लगा शीघ्रही कर्मोंकी वासनाओंको छोड सूर्यके समान प्रकाशमान ब्रह्मरूप होकर परमगतिको प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥ जब सबके आत्मा कार्य और कारणसे मनुष्यरूप धरे परिपूर्ण नारायणमें अतिशय करके तुम भक्ति करते हो, तो फिर तुमको क्या करना शेष रहा ॥ ३३ ॥ अच्युत भगवान् श्रीकृ-

ष्णचन्द्र शीघ्रही व्रजको आवेंगे क्योंकि वह भक्तोंका पालन करनेवाले हैं इस लिये तुम्हें और यशोदाको वह थोडेही दिनोंमें आनकर आनंद देंगे ॥ ३४ ॥ सब यादवोंके बैरी कंसको रंगभूमिमें मार तुम्हारे पास आनकर श्रीकृष्णचन्द्रने जो वचन कहा था, उसे अवश्य सत्य करेंगे ॥ ३५ ॥ हे बडभागियो ! अब तुम कुछ खेद मत करो, कृष्णको अपने पास ही देखोगे, क्योंकि जैसे लकडीमें ज्योति रहती है उसी प्रकार सब प्राणियोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रहते हैं ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रको न कोई प्यारा है न कोई कुप्यारा है, न कोई उत्तम है, न कोई अधम है, न कोई समान है, न कोई विषम है और न उन्हें अभिमान है, वह तो समदृष्टि हैं ॥३७॥ न उनके माता है, न पिता है, न स्त्री है, न पुत्रादिकहैं, न उनके देहहै और उनका जन्म भी नहीं है ॥३८॥ इन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्मभी नहीं हैं क्योंकि वह तो संसारमें देवादिक,मनुष्यादिकोंका नृसिंहादिकोंका जो योनि हैं, उनमें खेलनेके लिये और साधुपुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये प्रकट होते हैं ॥ ॥ ३९ ॥ निर्गुण भगवान् सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीन मायाके गुणोंको अंगीकार करते हैं और निर्गुणसे अलग अजन्मा भगवान् क्रीडा करके विश्वका उत्पन्न, पालन तथा संहार करते हैं ॥४० ॥ जैसे बालक चांडे मांडे फिरता है, तब उसकी दृष्टि फिरती है और उससे पृथ्वी फिरतीसी दिखलाई देती है, इसी प्रकार चित्त जो कर्त्ता है उसमें अहंकारसे आत्मा भी कर्तासा दिखाई देता है ॥ ४१ ॥ यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारेही पुत्र नहीं हैं, बरन् सबके पुत्र हैं, आत्मा हैं, पिता हैं, माता हैं और ईश्वरोंके ईश्वर हैं ॥ ४२ ॥ जो कुछ दीखता है और जो कुछ होचुका और जो होताहै और जो होगा और जो स्थावर जंगम हैं, जो कुछ बडा छोटा है, सो सब श्रीकृष्णचंद्रके विना अतिशय करके कहनेके योग्य नहीं है. परमार्थ रूप श्रीकृष्ण हैं सोई सर्वरूप हैं ॥४३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इसी प्रकार बातें करते करते सब रात्रि बीतगई और गोपियें प्रातःकालको उठ, दीवे बाल, देहलियोंका पूजनकर, दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥ दीवोंसे प्रकाशमान मणियोंके जडाऊ गहनोंसे उस समय वह गोपियें अत्यन्त शोभायमान लगनेलगीं, नेतियोंके खैंचनेसे भुजाओंके चूरी कंकण हिलते रहे हैं, नितम्ब हिलते जाते हैं, स्तनोंपर हार भी हिलता है, कुण्डलोंसे प्रकाशमान कपोल और अरुण केशरकी खौर मुखपर लगी है ॥ ४५ ॥ कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रका चरित्र जब व्रजबालाओंने गाया, तब वह गीत स्वर्गतक पहुँचा और दहीके मथनेका शब्द भी उस गीतमें मिल रहा था, उन गोपियोंके गीतोंसे दिशाओंके सब अमंगल दूर होजाते हैं ॥ ४६ ॥ भगवान् सूर्यके उदय होनेपर नंदरायजीके दरवाजेपर सुनहरी साजका रथ खडा देखकर "यह किसका रथ है" इस प्रकार कहते व्रजवासी नर नारि कहने लगे ॥ ४७ ॥ कि, क्या कंसके कार्यका साधक अक्रूर आया है ? जो कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मथुरा लेगया है फिर अपने स्वामीको मरवाकर

अब क्यों आया ? अब क्या हमैं लेजाकर हमारे मांसके पिंड बनाकर देगा ! इस प्रकार गोपियें आपसमें बातें करही रहीथीं कि, इतनेहीमें उद्धवजी संध्योपासनादि नित्यकर्म करके आये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

दोहा-उद्धव सैंतालीसमें, पाय कृष्ण आदेश।
गोपिनको जाके दियो, तत्त्वज्ञान उपदेश॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! लम्बी भुजा, नवीन कमलसे नेत्र, पीताम्बर पहरे, कमलकी माला धारण किये, प्रकाशमान मुखारविन्द, स्वच्छ कानोंमें कुण्डल पहरे, कृष्णके अनुचर उद्धवजीको देख ब्रजकी स्त्रियोंको परम आश्चर्य प्राप्त हुआ और परस्पर कहने लगीं ॥ १ ॥ कि, सुन्दर रूप यह कौन है, कहाँसे आया है ? भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकेसा बेष है, वैसेही गहने पहर रहा है, इस प्रकार सब गोपियोंने श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविन्दका भक्त जान उद्धवजीको चारोंओरसे घेर लिया ॥ २ ॥ और अत्यन्त आधीनतासे नम्र हो, लाजभरी हँसन, चितवन तथा मीठी वाणीसे सत्कारकर एकान्त आसनपर बैठे उद्धवजीको श्रीकृष्णचंद्रके पाससे संदेशा लेकर आये जान, वह गोपियें पूंछनेलगीं ॥ ३ ॥ कि, हमैं जान पडता है तुम श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक हो और माता पिताके प्रसन्न करनेको तुम्हें श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है ॥ ४ ॥ क्योंकि इस ब्रजमें और कोई ऐसा नहीं है, जो उन्हें स्मरण आवै और माता पिताको तो स्नेह बडे वैराग्यवान् पुरुष पर भी नहीं छूट सक्ता इसी कारण औरोंसे यहां अपने कार्यके लिये मित्रता जनाई, जबतक काम पडा, तबतक मित्रता रक्खी, जैसे पुरुष स्त्रियोंसे प्यार करता है और भौंरा फूलोंसे प्यार रखता है, यह स्वार्थहीकी प्रीति है ॥ ५ ॥ ६ ॥ यद्यपि उन श्रीकृष्णचन्द्रने हमसे प्रीति करी थी. परन्तु तोभी दरिद्रीपुरुषको जैसे वेश्या त्याग देती है, प्रजा असमर्थ राजाको त्यागदेती है और दक्षिणापाकर पुरोहित जैसे यजमानको त्याग देता है ॥ ७ ॥ पक्षी जैसे फलरहित वृक्षको छोड देते हैं, अभ्यागत भोजन करके जैसे गृहको त्याग देते हैं, जारपुरुष भोग करके जैसे स्त्रीको त्यागदेताहै. उसीप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्र हमको त्यागकर चलेगये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके दूत उद्धवजी जिस समय ब्रजमें आये, उसीसमय गोपियोंकी वाणी, देह, मन, इत्यादि गोविंदमें जायलगे, अधिक क्या कहैं, लौकिकव्यवहार खानपानादिक भी सब छूटगये ॥ ९ ॥ अपने प्यारेके कर्मोंको गानेलगीं और भगवान् केशवमूर्तिके बाल अवस्था तथा तरुण अवस्थाके जो चरित्र थे, उनको याद कर, लाज त्याग, रोतीहुई उद्धवजीसे पूँछनेलगीं और कोई एक गोपी उद्धवजीका स्वरूप देख, श्रीकृष्णके संगका ध्यान कर भौंरेको देख, उसे प्यारेका भेजाहुआ दूत जान यह

वक्ष्यमाण वचन कहनेलगीं, अर्थात् भौंरेके बहाने उद्धवजीसे कहनेलगीं ॥ १० ॥ ११ ॥ गोपी बोली कि, हे मधुप ! हे कपटी मित्र ! हमारे चरणोंका स्पर्श मत कर, क्योंकि भौंरेका देह तो काला और मुख पीला होता है और तेरे तो सौतके कुचोंसे मीठी पुष्पोंकी मालाकी केशर डाढी मूछोंमें लगीहै, जो तू स्पर्श करेगा तो हमें स्नान करना पडेगा, यदि कहो कि, मुझे तो तुम्हारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है, सो तुम जाकर मथुराकीही स्त्रियोंको प्रसन्न करो, जैसे तू हमारे पास आया है, इसी प्रकार यादवोंकी स्त्रियोंके पास भी गयाहोगा, परन्तु यादवोंकी सभामें इस बातकी हँसीहुई होगी कि, कृष्णका दूत ऐसा निर्लज्ज है ॥ १२ ॥ जैसा तू है वैसाही तेरा स्वामी है. जैसे तू फूलोंकी सुगंधि ले उसी समय उनको छोडदेताहै, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने भी मोहित करनेवाला अपने अधरोंका अमृत एकबार पिलाय हमको त्यागन करदिया, परन्तु बडे आश्चर्यकी बात है कि, लक्ष्मी उनके चरण कमलका कैसे सेवन करतीहैं, अनुमान होता है, कि, श्रीकृष्णके मीठे मीठे वचनोंसे उसका चित्त हरगया होगा, इसीलिये वह पडी रहती है ॥ १३ ॥ हे भ्रमर ! तू हमारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचरित्र क्यों गाता है, क्योंकि हमने तो घर इत्यादि भी त्याग दिया है. श्रीकृष्णकी सखी मथुराकी जो स्त्रियें हैं उनके आगे उनका प्रसंग गा. जिनकी कामाग्नि वह शान्त करतेहैं, वह प्यारी सखियें तुझे रीझकर कुछ देंगी ॥ १४ ॥ हे कपटी ! कपटभरी रुचिर हाँसीवाले श्रीकृष्णचन्द्रकी भ्रुकुटीकी मरोर ऐसीहै कि,स्वर्ग,पृथ्वी और पातालकी स्त्रियेंभी उन्हें दुर्लभ नहीं हैं,लक्ष्मीजी जिनके चरणरजकी सेवा करती हैं, वहाँ हमारी क्या चलसक्ती है. परन्तु तौभी हमने भगवान् श्रीकृष्णचंन्द्रका उत्तमश्लोक नाम सुनाहै, सो जब हम गरीबनियोंकी सुधिलेंगे. तब वह नाम रहेगा, नहीं तो जाता रहेगा ॥ १५ ॥ अपने शिरको मेरे पाँवोंमेंसे उठाले क्योंकि मैं तेरी संपूर्ण बातें जानतीहूं, तू मुकुंद श्रीकृष्णचंद्रसे दूतकर्म सीखकर चतुर होगया है, देखो हमने इस संसारमें श्रीकृष्णचन्द्रकेलिये पति, पुत्र, लोक, परलोक, सब छोड दिया और वह हमें छोडकर चलेगये, अब उससे हमें क्या मेल मिलाप करना ? इस प्रकार गोपियें कहनेलगीं ॥ १६ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पहले कर्मोंकी सुधि करके कहनेलगीं कि, हमको, श्रीकृष्णसे भय लगता है क्योंकि पहले अयोध्यामें राजादशरथके पुत्र रामचन्द्र हुये, तो सुग्रीवकी ओर होकर बधिक समान वालिको मारा, व्याध तो मांस खानेके लिये मारे है परन्तु इन्होंने तो व्यर्थही मारा, बंदरका कोई मांस नहीं खाता है, दूर्वादलश्यामके सुन्दर रूपपर रीझकर रावणकी बहन शूर्पणखा आई, तो लक्ष्मणसे अपने स्त्रीके वश हो उसके नाक कान कटालिये फिर वामन अवतार लेकर काकके समान आचरण कर राजा बलिकी भेंट पूजा ले उसीको बाँधदिया इस कारण हम इस कालेकी मित्रतासे रुखायगईं, अब कभी भूलकर भी कालोंसे मित्रता न करैंगी, तब उद्धवजी बोले, कि, मैं जिस समयसे आयाहूं तुम उनकाही बातें कररही हो, तो गोपी बोलीं कि, जैसे उनमें और गुण हैं उसी प्रकार यह

अवगुण हैं, यद्यपि उनको दुःखदायी जानती हैं, परन्तु तौभी उनकी बातोंका छूटना तो हमसे महाकठिन है ॥ १७ ॥ जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके लीलाचरित्ररूपी अमृतका कानोंमें एक कणका भी स्वाद लेलियाहै, वह राग द्वेष त्याग असत्यके तुल्य हो दुःखरूप पुत्र पौत्रादिकोंको त्याग भोगोंको छोड पक्षीके समान घर घर भीख माँगते फिरते हैं ॥ १८ ॥ जैसे अज्ञानी कृष्णसार हरिणकी स्त्री हरिणी वधिकके गीतसे मोहित होकर घायल होजाती है उसी प्रकार हमने कपटी श्रीकृष्णका वचन सत्य मानकर यह देखा, जिनके नखोंके स्पर्शसे हमैं भी कामदेवकी पीडा उत्पन्न हुई, इसलिये हे दूत! उस कपटीकी बात जानदे और बात कहु ॥ १९ ॥ हे प्यारेके सखा! क्या तू फिर आया तुझे प्यारे कृष्णने भेजा है, इस कारण हे दूत! तू पूजा करनेके योग्य है और जो तुझे इच्छा हो सो वर माँग, क्या लक्ष्मीका संग न छोडनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास हमैं लेच-लना चाहता है परन्तु कैसे लेजायगा, क्योंकि उनके वक्षस्थलमें तो लक्ष्मीजी संगही रहती हैं इसलिये हमारा क्या प्रयोजन है ॥ २० ॥ हे सौम्य! भला श्रीकृष्णचन्द्र तो अभी मथुरामें वास करते हैं, कभी उन्हैं अपने माता पिता नन्द यशोदा आदिकका भी स्मरण आता है और कभी अपने बंधु बांधवोंकीभी याद करते हैं, कभी गोपियोंका भी स्मरण करते हैं और कभी हमारी बात भी चलाते हैं; अगरके समान सुगंधवाली भुजा कभी हमारे शिरपर भी आनकर धरैंगे ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहना गोपियोंकी सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके संदेशेको समझानेलगे ॥ २२ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे गोपियो! तुमने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाया है इसलिये तुम निश्चय कृतार्थ होगईं और संपूर्ण लोकोंमें तुम्हारा यश होगा ॥ २३ ॥ क्योंकि दान, व्रत, तप, होम, जप, यज्ञ, वेदपाठ, इन्द्रि-योंका रोकना और अनेक प्रकारके कल्याणके उपाय सब करनेका फल यही है, जो भग-वान् श्रीकृष्णचंद्रमें भक्ति हो ॥ २४ ॥ बडे मुनीश्वरोंको दुर्लभ भक्ति तुमने उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें करी, यह बडा मंगलहै * ॥ २५ ॥ पति, पुत्र, देह, भाई, बंधु,

---

* **शंका**–गोपियोंने क्या बडी भक्ति कृष्णमें की थी कि, जिस भक्तिकी प्रशंसा उद्धवजीने करी, क्या ऐसी भक्ति योगीलोग नहीं करसक्ते यद्यपि कोई कहै कि, पति आदि सब परिवारसे कपट करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रीति गोपियोंने करी, तो कुटुम्बसे कपट करना यह कौनसा उत्तम कर्महै, कपटको तो मुनिलोग क्या सबही लोग बुरा कहते हैं ॥

उत्तर–कपट करके जो ऊपरसे नवधा भक्ति भी करै सो भक्ति नहीं, वह तो धर्मके काटनेके लिये कतरनी है मनुष्यके ऊपर तो भक्तिका लक्षण एक भी नहीं दीखपडे और मनमें सब भक्तिके लक्षण होंय वह भक्ति मुक्तिकी देनेवाली है, गोपियोंने ऊपरसे तो निन्दारूप कर्म किये और मनमें भक्तिका सब लक्षण करतीं थीं, इसलिये उद्धवने कहा कि, गोपियोंने जो भक्ति भगवान् की की है सो भक्ति मुनिजनोंको दुर्लभ है ॥

और अपने घरोंको त्याग परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको तुमने अपना पति किया, यह बहुत बडा मंगल हुआ ॥ २६ ॥ हे बडभागियो ! इन्द्रियोंकी जिनमें गम नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें विरहसे एकान्त भक्ति तुम्हें उत्पन्न हुई, यह तुमने मेरे ऊपर बडा अनुग्रह किया ॥ २७ ॥ हे मंगलरूपिणियो ! तुमको सुख देनेवाले प्यारेका संदेशा कहता हूँ, सो सुनो श्रीकृष्णचन्द्रके रहस्यकार्यके करनेवाले संदेशेको लेकर मैं आया हूँ ॥ २८ ॥ उद्धवजी गोपियोंसे भगवान्ने श्रीमुखसे जो वचन कहे थे, सो कहने लगे, श्रीभगवान्ने उपदेश किया है कि, सबका उपादान कारण मैं हूँ सो मुझसे तुम कभी दूर नहीं हो जैसे आकाश, पवन, जल, पृथ्वी, तेज ये पंचतत्त्व समस्त प्राणियोंकी देहमें रहते हैं ॥२९॥ उसी प्रकार मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय और गुण इनका आश्रय मैं हूं, अपनेमें अपनेसे अपनेको उत्पन्न करता हूं और अपनी मायाके प्रभावसे पंचभूत इन्द्रियें तीनोंगुण इनरूप जो अपनपो है, इसलिये सृष्टिको उत्पन्न, पालन और नाश करता हूं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यहाँ यह शंका है कि, आत्मा पंचभूत रूप होय तो उसे पंचभूतोंके संग दोष लगता है, इसका उत्तर देते हैं कि, आत्मा तो शुद्ध है, क्योंकि मायाके गुणोंमें जाता है सबसे अलग और ज्ञानरूप है, अहंकारके कारण जाननेमें नहीं आता, आत्माकी न्यारी अवस्था है, शुद्धता कैसे ? तो कहतेहैं सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत यह जो मनकी वृत्ति हैं, शुद्धता उनसे प्रतीत होती है ॥ ३२ ॥ जैसे जागताहुआ मनुष्य स्वप्नको झूंठाही जानता है, उसीप्रकार पण्डितजन जिनको झूंठा मान्ते हैं, ऐसे विषयोंका जिनसे चिंतवन कियाजाता है और चिंतवन करते इन्द्रियोंपर असर होता है, उस मनको आलस्य त्यागकर रोकना चाहिये ॥ ३३ ॥ जब जिस मनुष्यका मन रुक जाता है तब वह पुरुष कृतार्थ होता है, और यह कहते हैं कि, वेद पढनेका, अष्टांगयोग करनेका, अनात्माके विचार करनेका त्याग, सब इन्द्रियोंका जीतना, सत्य बोलना, इत्यादि कर्मोंसे विवेकी पुरुषोंसे मन रुकता है यही फल है, जैसे नदियोंका अंत समुद्रमें होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ जैसे दूर रहे प्यारेमें स्त्रीका मन लगा रहता है और जो सदा नेत्रोंके आगे रहे उसमें चित्त नहीं रहता ॥३६॥ यदि संपूर्ण वृत्ति त्याग मनको मुझ (कृष्ण) में लगाये नित्य मेरा ध्यान करती रहोगी तो शीघ्र मुझे प्राप्त होगी ॥३७॥ हे मंगलरूपिणियो ! जिस समय मैंने रात्रिके समय वृन्दावनमें रासक्रीडा करी थी, उस समय जिन गोपियोंको उनके स्वामियोंने रोकलिया था और इसी कारण वह रासक्रीडामें न आसकीं तब, वह मेरी लीलाओंका ध्यान करके मुझेही प्राप्तहुई ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार अपने प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उपदेशको सुनकर व्रजकी गोपियें प्रसन्न हो उनका स्मरण कर उद्धवजीसे बोलीं ॥ ३९ ॥ सब गोपियें कहनेलगीं कि, यादवोंका दुःख देनेवाला अपने भृत्योंसहित राजा कंस मारागया, यह बडा मंगल हुआ और पूर्ण मनोरथको प्राप्त हो अपना हित करनेवालोंसहित श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हैं, यह भी बडा मंगल है ॥ ४० ॥ हे साधु

उद्धव ! रामका छोटाभाई कृष्ण हमसे जो प्रीति करता था, सो प्रीति क्या अब मथुराकी स्त्रियोंसे करताहै ? वह लाजभरी हँसानि और उदारभरी चितवनिसे उनका सत्कार करते हैं ? ॥ ४१ ॥ रतिविशेषके जाननेवाले प्यारे कृष्ण मथुराकी स्त्रियोंके वचनोंसे विलासोंसे सब सत्कार करैंगी, तब कैसे न बँधेंगे ॥ ४२ ॥ हे साधु उद्धव ! भगवान् गोविंद प्रसंग पाय मथुराकी स्त्रियोंकी सभामें बैठ जब कभी बातैं करतेहैं, तब ग्रामकी स्त्रियें हमारा भी कभी स्मरण करते हैं ? ॥ ४३ ॥ हे उद्धवजी ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको कभी उन रात्रियोंका भी स्मरण आताहै कि, जिनमें कुमुदिनी कुंद फूल रहे थे और चन्द्रमाकी चाँदनीसे रमणीय वृन्दावनमें पाँवोंमें नूपुर बजते जाते थे और हमारे संग रमण करते थे और हमने उनकी स्तुति की अब वह कभी हमें याद करतेहैं या नहीं ॥ ४४ ॥ जैसे ग्रीष्मऋतुसे दग्धवनके सींचनेको इन्द्र आता है, उसीप्रकार उन कृष्णके दिये शोकसे जलीहुई हमको हाथके स्पर्शसे जीवन देते दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र कभी यहाँ आवेंगे या नहीं ? ॥ ४५ ॥ अब श्रीकृष्णचन्द्र यहाँ क्यों आवेंगे, क्योंकि अब उन्हैं राज्य मिल गया, शत्रु मारेगये राजाओंकी कन्या ब्याहलीं सब मित्र उनके पास हैं, इसलिये वह वहाँहीं प्रसन्न हैं यहाँ आनकर क्या करैंगे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मीके पति पूर्णकाम श्रीकृष्णको वनकी रहनेवाली हमसे और राजाओंकी कन्याओंसे क्या प्रयोजन है ॥ ४७ ॥ आशाका त्यागही बडा सुख है, यह पिंगलावेश्याने (एकादश स्कन्धमें) कहा है कि, निराशाके समान सुख नहीं है, यद्यपि यह जानती हैं, परन्तु तोभी हमारी आशा छूटनी अत्यन्त कठिन है ॥ ४८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एकान्तकी बातें त्यागनेको कौन समर्थ है, यद्यपि उनके रखनेकी इच्छा नहीं, परन्तु तौभी लक्ष्मी अंगसे अलग नहीं होती है ॥ ४९ ॥ हे उद्धव ! बलदेवजीके संग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिनमें विचरण करते थे, वह नदियें, पर्वत, वनके प्रदेश, गौ, बाँसुरीका शब्द ॥ ५० ॥ यह सब बेर बेर श्रीकृष्णके चरित्रोंकी याद दिलाते हैं, लक्ष्मीके आस्पद उनके चरणचिह्न देख हमभी बिस्मरण नहीं करसक्तीं ॥ ५१ ॥ मनोहर चलन, उदार हँसनि, लीलापूर्वक चितवनि, मनोहर वचन इनसे जिन्होंने हमारी बुद्धि हरली, उन श्रीकृष्णचन्द्रको हम कैसे भूलसक्ती हैं ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त वे सब गोपियें मथुराकी ओरको हाथ उठाय पुकारनेलगीं कि, हे रमानाथ हे ब्रजनाथ ! हे दुःख हरनेवाले ! हे गोविन्द ! यह नाम तो गायोंका पालन करोगे तभी रहेगा, नहीं तो इस नाम से हाथ धोबैठो और आपको स्मरण होगा कि, इन्द्रने जब वर्षा करी थी, तो तुमने संकल्प किया था कि, मैं अपने ब्रजकी रक्षा करूंगा सो अब तो तुम्हारेही विरहरूपी समुद्रमें संपूर्ण गोकुल डूबाजाता है, इसका शीघ्र आनकर उद्धार करो ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! श्रीकृष्णके संदेशेसे विरह ताप मिटाय उन गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको परमेश्वर जान और परमेश्वरको अपना आत्मा निश्चय कर उद्धवजीकी पूजा करी ॥ ५४ ॥ गोपियोंका शोक दूर करनेके लिये कितनेही मास उद्धव

जीने व्रजमें वास किया और श्रीकृष्णकी लीला कथाओंको गाय गाय व्रजवासियोंको परमानंद दिया ॥ ५५ ॥ जितने दिनोंतक उद्धवजीने व्रजमें वास किया, वह दिन व्रजवासियोंको श्रीकृष्णकी लीलासे क्षणके समान् बीतिगये ॥ ५६ ॥ नदी, पर्वत, वन, गुफा, पुष्पित वृक्ष इत्यादिकोंको देख हरिदास उद्धवजी व्रजवासियोंको श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण करानेलगे ॥ ५७ ॥ गोपियोंके चित्तको इस प्रकार श्रीकृष्णमें लीन होनेसे व्याकुल देख परमप्रसन्न हो गोपियोंको दण्डवत् करके कहनेलगे ॥ ५८ ॥ इन गोपोंकी स्त्रियोंका पृथ्वीपर जन्म सफल है क्योंकि सबके आत्मा गोबिन्दमें इनका अत्यन्तप्रेम हुआ है जिस प्रेमको संसारसे भयभीत मुमुक्षु पुरुष और मुक्त और हम भक्त इच्छा करते हैं. अनंत श्रीकृष्णचन्द्रकी कथामें जिसका अनुराग है उसे ब्रह्म जन्मसे क्या प्रयोजन है. अथवा एक तो शुद्ध माता पितासे, द्वितीय गायत्री उपदेशसे, तृतीय यज्ञदीक्षासे जो ब्राह्मणके तीन जन्म हैं, उनसे क्या प्रयोजन है ॥ ५९ ॥ वृन्दावनकी विचरनेवाली व्यभिचार दृष्टिसे दूषित गोपी स्त्रियें कहाँ और परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें आरूढभाववाले मन कहाँ क्योंकि निरंतर भगवान्‌को स्मरण कर अज्ञानी पुरुष भी कल्याण प्राप्त करता है, जैसे अमृतका सेवन करनेवाला पुरुष अमर होजाता है ॥ ६० ॥ सर्वकाल अंगमें रहनेवाली लक्ष्मीपर भी यह प्रसन्नता न हुई और कमलके गन्धकीसी कान्तिवाली देवांगनाओंको भी जो प्रसाद नहीं मिला, सो रातके उत्सवमें श्रीकृष्णचन्द्रके भुजदण्डोंमें गलबाही डाल व्रजसुन्दरियोंको मिला ॥ ६१ ॥ इन गोपियोंके चरणरजका सेवन करनेवाले वृन्दावनमें गुल्म, लता औषधियोंमें कुछ मेरा जन्म हो, जो गोपियें दुस्त्यज अपने भाई, बंधु बडोंके मार्गको त्याग वेदगम्य मुकुंद श्रीकृष्णचन्द्रके मार्गका सेवन करती हैं ॥ ६२ ॥ जिन्होंने लक्ष्मीसे पूजित पूर्णकाम ब्रह्मादिक देवता और योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिंतवन करते, उन श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंको राससभामें स्तनोंके ऊपर धर आलिंगन करके इन गोपियोंने तापको दूर किया ॥ ६३ ॥ नंदके व्रजकी स्त्रियोंके चरणकी रजको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं, जिन गोपियोंकी गाई हरिकथा तीनों लोकोंको पवित्र करती है ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इसके उपरान्त उद्धवजी गोपियोंसे, यशोदासे और नंद आदिक सब व्रजवासियोंसे आज्ञा माँग गमनसमय अपने रथमें जा बैठे ॥ ६५ ॥ उद्धवजीके बिदा होनेके समय नंद आदिक सब व्रजवासी अनेक प्रकारकी भेंट हाथमें ले उद्धवजीके पास आय स्नेहसे नेत्रोंमें आँसूभर कहने लगे ॥ ६६ ॥ कि, हमारे मनकी वृत्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारबिन्दमें लगी है और हमारी वाणी उनका नाम लिया करती है और हमारा शरीर उन श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करता है ॥ ६७ ॥ अपने कर्मानुसार ईश्वरेच्छासे जिस किसी योनिमें हम जायँ, तो जो कुछ हमने मंगलरूप कर्म करे हैं अथवा दान करे हैं उनका फल यही माँगती हैं कि, श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति बनी रहै ॥ ६८ ॥

चौ०-उद्धव हरिसों कहियो जाई। यशुदाकी आशीश सुनाई॥
कमलनैन सुन्दर सुखदाई। कोटि युगन जीवहु दोउ भाई॥
कहियो बहुरि इतो समुझाई। तुम बिन दुःखित यशुदामाई॥
इतनी दया मातुपर कीजै। एक बार फिर दर्शन दीजै॥
दोहा-नन्द दोहनी भर दई, दह्यो नैन भर नीर।
वा धौरीको दूध यह, भावत हो बलवीर॥
सोरठा-दई यशोदा माय, मुरली ललित गुपालकी।
उद्धव दीजो जाय, प्यारीही अति लालकी॥

हे महाराज! इस प्रकार गोपियोंने श्रीकृष्णकी भक्तिसे उद्धवजीका सत्कार किया, तब उद्धवजी उनसे विदा हो कृष्णपालित मथुरापुरीमें आये॥ ६९॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम कर ब्रजवासियोंकी भक्तिकी अधिकता वर्णन करी, इसके उपरान्त वासुदेव और बलदेवजीको प्रणाम करके राजा उग्रसेनको भेंट दी॥ ७०॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

दोहा-अडतालिस अध्याय हरि, कुबरी रमण कराय।
हस्तिनपुर अक्रूरको, दीन्हों कृष्ण पठाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इसके उपरान्त सबके आत्मा और सबके देखने, वाले छः प्रकारके ऐश्वर्य युक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कामसे पीडित कुब्जाका प्रिय करनेके लिये उसके घर गये॥ १॥ कैसा वह घर है कि जहाँ अनेक प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुयें धरी हैं, कामके उद्दीपन करनेवाले जिसमें चित्र लिखे हैं, मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं, पताकायें फहरा रही हैं, चंदोवे तन रहे हैं, शय्या तथा शोभायमान आसन बिछ रहे हैं, सुगंधकी धूप लगरही है, दीपक प्रज्वलित हो रहे है, और माला, अतर, अरगजा आदिसे वह घर अत्यन्त शोभायमान हो रहाहै॥ २॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने घरमें आया देख कुब्जा अति शीघ्रतासे आसनपरसे उठ, घबराहटको प्राप्त हो सखियोंको संगलिये श्रीकृष्णचन्द्रके पास आय सुन्दर आसन बिछाय चरण धो सत्कार करनेलगी॥ ॥ ३॥ उसी प्रकार भलीभाँति पूजित हो, उद्धवजी आसन स्पर्शकर पृथ्वीमें बैठ गये और लौकिक लीलाओंके करनेवाले श्रीकृष्णचन्द शीघ्रतासे सुन्दर बिछीहुई शय्यापर पहुँचे॥ ४॥ इसके उपरान्त कुब्जा भी स्नान कर, चन्दन लगाय, वस्त्र पहर, गहने, माला अतर, अरगजा, ताम्बूल, और अमृतके समान मादकवस्तुसे अपनेको बनाय, ठनाय लाजभरी लीलापूर्वक मुसकान, कटाक्षभरी चितवनसे मोहित हुई श्रीकृष्णचन्द्रके पास आई॥ ५॥ नवीन समागमकी लज्जासे शंकासहित कुब्जाको बुलाकर कंकणसे

शोभयमान हाथको पकड़ शय्यापर बैठाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके साथ रमण* करने लगे, अहो ! कुब्जाका भाग्य. जिसने चंदन लगानेके अतिरिक्त दूसरा कोई पुण्य नहीं किया था॥ ६॥कामदेवसे पीडित कुच और छाती तथा नेत्रोंके तापको अनन्त श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें लगाय और उन चरणारविन्दको सूँघि स्तनोंके मध्यमें प्राप्तहुए सुन्दर आनंदमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रको भुजाओंसे आलिंगनकर बहुत दिनोंसे बढे तापको त्याग दिया॥७॥ चन्दनके अर्पण करनेसे मोक्षके देनेवाले दुर्लभ श्रीकृष्णचन्द्रको पाय अभागिनी कुब्जाने यह मांगा॥८॥ अहो प्यारे ! कुछ दिनों रहकर मेरे संग रमण करो हे कमलनेत्र मैं तुम्हें त्याग नहीं सक्ती ॥ ९ ॥ "एकबार तुम्हारे यहाँ नित्य आया करूंगा" इस प्रकार कुब्जाको कामवर दे उसका सन्मानकर. मान देनेवाले, ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥ १० ॥ संपूर्ण ईश्वरोंके ईश्वर, दुःखसे आराधन करनेमें आवें ऐसे विष्णु भगवान्को प्रसन्न करके जो पुरुष विषयोंका वर मांगे वह बडा कुबुद्धि है, क्योंकि विषय तुच्छ हैं ॥ ११ ॥ बलदेव उद्धवजीको संग लेकर समर्थ श्रीकृष्णचंद्र कुछ कार्य करानेके लिये और अक्रूरका भला करनेके लिये उसके घर आये॥१२॥ अक्रूरजी मनुष्योंमें श्रेष्ठ अपने बंधु श्रीकृष्ण बलदेवको दूरसे देख प्रसन्न हो मिलकर अत्यानंदको प्राप्तहुए ॥ १३ ॥ तब कृष्ण बलदेव और उद्धवजीने उन्हें नमस्कार किया, इसके उपरांत अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको प्रणाम कर और आसनपर बैठाय उनकी पूजा करी ॥ १४ ॥ हे राजन् ! फिर कृष्ण बलदेवके चरणोंको धोकर उस जलको अपने मस्तकपर चढाया और दिव्य चंदन, माला, वस्त्राभूषण इत्यादि भेंट दे नमस्कार किया और गोदमें चरणोंको धरके दाबनेलगा, इसके उपरांत अधीनतापूर्वक नम्र हो अक्रूरजी कृष्ण बलदेवसे कहनेलगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ कि, मंत्रियोंसहित पापी कंसको मार बडे कष्टसे

---

* **शंका**–कुबरी और कृष्णका रमण सुनि हमारे मनमें बडा भ्रम हुवा, क्या कारण जो जगत्के ईश्वर होकर कुब्जाके संग रमण किया ?

उत्तर–चाहे संन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ होवे चाहे गृहस्थ होवे चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, होवै, चाहे स्त्री पतित होवे चाहे नपुंसक होवे चाहे सब कर्ममें भ्रष्ट होवे चाहे पुरुष होवे परन्तु भगवान्की सेवा करे वही भगवान्को प्यारा है, सब कर्ममें नीच होवे तो कुछ भगवान् बुरा नहीं मानते और बडा उत्तम होवै और भगवान्की प्रीति न करे तो उसको भगवान् शत्रुसमान मानते हैं, भगवान् भक्तजनोंकी प्रेमरूप रस्सीमें बँधेहुए हैं जैसा नाच भक्तजन भगवान्को नचाते हैं, वैसा नाच भगवान् नाचते हैं, जैसे काष्ठकी पुतली नचानेवाले पुरुषके आधीन है, ऐसेही भगवान् भी भक्तोंके अधीन हैं और जैसे बैलकी नाकमें नाथ डालके मनुष्य जहाँको चाहे वहाँको लेजाताहै और वेदरूप कृष्ण, वेदकी ऋचारूप कुब्जा भगवान्की दासी,इसलिये जैसी कुब्जाने इच्छा करी वैसी भगवान्ने उसकी अभिलाषा पूर्ण करी– ॥

तुमने इस अपने कुलका उद्धार किया और कुलकी वृद्धिका, यह बडाही मंगल हुआ ॥ ॥ १७ ॥ तुम प्रकृतिरूप हो जगत्के कारण हो, जगन्मय हो, तुमसे पृथक् कुछ कार्य कारण नहीं है ॥ १८ ॥ तुम अपने विश्वमें अपनी शक्तियों सहित प्रवेश करके हे ब्रह्मन्! श्रवण करनेमें देखनेमें बहुत प्रकारके प्रतीत होतेहो ॥ १९ ॥ जैसे स्थावर, जंगम देहमें पृथ्वी आदि पंचभूत हैं, उनमें अनेक प्रकारसे प्रकाशते हो, उसी प्रकार अपने आधीन अकेले तुम आपही अपने कार्य पंचभूत और पंचभूतोंके बने देहमें बहुत रूपसे प्रकाशते हो ॥ २० ॥ रजोगुण तमोगुण और सत्त्वगुण तुम्हारी शक्ति हैं, उनकेही द्वारा विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करते हो, गुण और उत्पत्यादिक कर्मोंसे बँधे नहीं हो, ज्ञानरूप हो, तुम्हें बाँधनेवाली कोई अविद्या नहीं है ॥ २१ ॥ तुम्हारे तो बंधनकी शंका संभवही कहाँ? पर विद्योपाधि जीवात्माके भी वस्तुतः जन्म तथा जन्ममूलक भेद नहीं है क्योंकि देहादि उपायका किसीप्रकार निरूपण होना संभव नहीं, अविद्या रहित होनेसे न तो आपके बंधन है और न मोक्ष है, जो हमें बंध मोक्ष दिखाई देते हैं, वह केवल हमारे अज्ञानसेही हैं ॥ २२ ॥ जगत्का कल्याण करनेके लिये तुम्हारा कहा सनातन वेदमार्ग जिस समय असाधुओंके पाखण्डमार्गसे बाधित होता है, उस समय सगुणरूपको धारण करते हो ॥ २३ ॥ हे प्रभो! तुमने इस संसारमें पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंश बलदेवसहित वसुदेवजीके घर जन्म लिया है, जिससे दैत्योंके अंशरूप राजा ओंकी अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करोगे और यदुकुलके यशको बढाओगे ॥ २४ ॥ हे ईश! आज हमारा घर निश्चय बडभागी है. सब देवता, पितृ, मनुष्य, प्राणी, देवरूप तुम्हारे चरणारविन्दका धोवन जल गंगारूप होकर तीनों लोकोंको पवित्र करता है सो तुम जगत्के गुरु अधोक्षज भगवान् हमारे घरमें आये हो इसलिये हमारा घर

–कहीं ऐसा भी लिखा है, कि, पुष्पांगी नाम एक वेश्या थी परन्तु भगवान्की बडी भक्तिनी थी, उसने यह सुना कि, रामचन्द्र वनको गये पीछे पीछे यह भी चलदी, वनमें जाकर उसको भगवान्का दर्शन हुआ और देखकर मोहित होगई और यह चाहा कि, रामचन्द्रके साथ रमण करूं एकसमय रामचन्द्रको अकेला पाकर उनकी कुटीमें जा बैठी, पीछेसे सीता भी वहां आगई और उस वेश्याको वहाँपर बैठी देखा तो बडा क्रोधकर सीताने शाप दिया कि, अगले जन्ममें तेरे सब अंग भंग होंगे, और तू कुबरी होगी, और राक्षसकी दासी होगी तब श्रीरामचन्द्रजीने वेश्यासे कहा कि, जब मैं कृष्णावतार लूंगा तो तेरा मनोरथ पूरण करूंगा, अब तू जा तब तो उस पुष्पांगी वेश्याने शापके भयसे बडी स्तुति की, तब भगवान्ने वर दिया कि जिस समय मेरा दर्शन तुझको होगा, उसी समय तेरा देह परमोत्तम होजायगा और एक दिन तेरे घरमें वास करूंगा, उस समय तेरी सब मनोकामना पूरी होगी ॥

बडभागी है॥२५॥हे प्रभो! आप भक्तवत्सल, सत्यवक्ता, सबके हितकारी, कृतके जाननेवाले उनको त्याग कर कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो औरकी शरण ले, भजन करनेवालेको तुम संपूर्ण कामना देतेहो और अपना आत्मातक भी देते हो और तुम्हारे यह उत्तम है, यह नीच है, यह भेद नहीं है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन! आपने मेरे घर आनकर दर्शन दिया यह बडा मंगल हुआ, योगेश्वर और देवता भी तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते हैं। पुत्र, स्त्री, धन, हितकारी और देहादिकोंमें मोहकी रस्सीरूप जो तुम्हारी माया है सो हमें लिपट रही है, इसे शीघ्रही काटो ॥ २७ ॥ भक्त अक्रूरने इस प्रकार जब पूजन और स्तुति करी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वाणीसे मोहित करतेहुये मुसकाकर बोले ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, आप हमारे गुरु हो, इस कारण नित्य स्तुति करने योग्य हो बन्धु हो, हम तुम्हारे लडकेबाले हैं, हमारी रक्षा करो, पोषण करो, और हमपर कृपा करो ॥ २९ ॥ हे पूज्योंमें श्रेष्ठ! तुम्हारे समान बडभागी कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंकी नित्य सेवा करने योग्य है, देवता आपस्वार्थी हैं, साधु महात्मा आपस्वार्थी नहीं होते ॥ ३० ॥ कहीं जलमय तीर्थ नहीं हैं? और मृत्तिका शिलानके देवता नहीं हैं? किंतु वह सब बहुत दिनतक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं और साधुपुरुष तो दर्शनसेही पवित्र करते हैं ॥ ३१ ॥ हे अक्रूरजी! तुम हमारे सुहृदोंमें उत्तम हो इस कारण पाण्डवोंका कल्याण करनेके लिये हस्तिनापुरको जाओ ॥ ३२ ॥ पिता पाण्डुके मरनेके पीछे माता कुन्तीसहित दुःखित पाण्डव बालकोंको धृतराष्ट्र अपने पुरमें ले आया है, वह उसकेपास रहते हैं ॥ ३३ ॥ लुब्धबुद्धि अम्बिकाका पुत्र राजा धृतराष्ट्र भाईके पुत्र पाण्डवोंमें समता नहीं रखता और दुष्ट दुर्योधनादिके वशमें होरहाहै और उसकी दृष्टि भी अंधेरी होरही है ॥ ३४ ॥ इसलिये तुम अब हस्तिनापुरको जाओ और बुरी भली उनकी सब खबर लाओ, जब हमें वहाँका भेद विदित होजायगा, तो जिसमें पाण्डवोंको सुख होगा, वही उपाय करैंगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अक्रूरजीसे कह छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव और उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

दोहा-उनश्वास अक्रूरजी, हस्तिनपुरमें जाय।
विषमदृष्टि लखि भ्रात सुत, फिरे धरो नहिं पाँय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! पुरुवंशी राजाओंके यशसे शोभायमान् हस्तिनापुरमें जाकर अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको अक्रूरजीने देखा और भीष्मपितामह, विदुर, कुन्ती, तथा सोमदत्त, पुत्रसहित बाह्लीक, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाँचों पाण्डव और भी जो सुहृद् थे उन सबको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ गांदिनीके पुत्र अक्रूरजी बन्धु बांधवोंके संग यथायोग्य मिलकर, वे बन्धु सुहृदोंकी वार्ता अक्रूरजीसे

पूँछनेलगे और अक्रूरजी भी उनसे कुशल क्षेम पूँछनेलगे ॥ ३ ॥ दुष्ट पुत्र और अल्प-बुद्धि दुष्ट कर्णादिकोंके कहनेमें रहनेवाले धीरता रहित राजा धृतराष्ट्रका वृत्तान्त जाननेके लिये कितने एक महीनेतक अक्रूरजीने वहाँ बास किया ॥ ४ ॥ तेज अर्थात् प्रभाव ओज-बल, अर्थात् शस्त्र चलानेकी निपुणता, वीर्य अर्थात् शूरता पाण्डवोंमें प्रजाका स्नेह वीरता आदि जो अच्छे गुण हैं उन्हें न सहकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी और जो कुछ आगे करनेकी इच्छा है उसे ॥५॥ और धृतराष्ट्रके पुत्रोंने विष देना आदि जो कुछ अन्याय किया था सो सम्पूर्ण वार्त्ता विदुरजीने अक्रूरजीसे कहदी ॥६॥ कुन्ती भाइअक्रूरको आया सुन मिलकर और अपने जन्मस्थानका स्मरण कर नेत्रोंसे आँसू बहाती अक्रूरजीसे बोली ॥ ७ ॥ हे सौम्य मेरे माता पिता कभी मेरा स्मरण करते हैं? और मेरे भाई, बहन, भतीजे, स्त्री, सखी यह सब कभी मेरी सुधि करते हैं? * ॥ ८ ॥ शरणागतोंके पालक, भक्तोंके हितकारी भाईके पुत्र श्रीकृष्ण कभी अपनी फूफीके पुत्रोंकी भी सुधि करते हैं? कमलके समान नेत्रवाले बलरामजी भी कभी हमारा स्मरण (याद) करते हैं? ॥ ९ ॥ मैं तो जैसे व्याघ्रोंके बीचमें हरिणी घिर जाती है, उसी प्रकार वैरियोंके बीचमें गिरकर शोच करती हूं, सो, क्या मुझे और पिताहीन मेरे बालकोंको श्रीकृष्ण तुम्हारे वचनोंसे क्या समझा-वैंगे? ॥ १० ॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगिन्! हे विश्वके आत्मा! हे सबके अंतर्यामी! हे विश्वके पालनकर्त्ता! हे गोविन्द! बालकोंके सहित दुःखित होकर मैं तुम्हारी शरण आई हूं, सो मेरी रक्षा करो ॥ ११ ॥ मृत्युरूपी संसारसे भयभीत मनुष्योंके ईश्वर तुम हो और मोक्षके देनेवाले तुम्हारे चरणकमलके विना मुझे और कोई शरण देनेवाला नहीं दीखता ॥ १२ ॥ शुद्ध अर्थात् धर्मात्मा ब्रह्म अपरिछिन्न अर्थात्

---

* **शंका**—बडे आश्चर्यकी बात है, वसुदेवजी बन्दीगृहसे छूटगये और अनेक प्रकारके मंगल वसुदेवजीके घर हुये, तो भी कुन्तीको न बुलाया, लोकशास्त्रकी रीति है बहिन अथवा लडकीको माता, पिता, भाई अपने घर वर्ष दोवर्षमें बुलाते रहते हैं परन्तु अपने घर उत्सवमें अथवा उसके दुःखमें तो अवश्यही बुलाते हैं, वा आप जाकर लेआते हैं, क्योंकि पिताके घर आनेसे बेटीका चित्त सावधान होजाता है, फिर वसुदेवजीके घर उत्सव भी हुआ और पुत्रभी हुआ और बन्दीसे छूटे, फिर वसुदेवजीने कुन्तीको अपने घर क्यों नहीं बुलाया इसका क्या कारण?

उत्तर—कुन्ती सातद्वीपके राजा पाण्डुकी स्त्री थी और पतिके वियोगसे महादुःखी थी तो भी कुन्तीको वसुदेवजी अपने घर लेआनेको समर्थ न हुये, क्योंकि वसुदेवजी दीन और द्रव्यहीन थे और वह कुन्ती दुःखी भी थी तो भी सात द्वीपके नरेशकी रानी थी, इसलिये वसुदेव कुन्तीको अपने घर न लाये क्योंकि हजारों तो दासी उसके संग आतीं और सेनाका तो ठिकानाही क्या था, फिर कुन्तीको अपने घर रखनेकी वसुदेवकी सामर्थ्यही क्या थी?

ढकनेमें नहीं आवै, परमात्मा अर्थात् जीवके सखा, योगेश्वर अर्थात् अणिमादिक शक्ति-युक्त, योग अर्थात् ज्ञानरूप ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र तुम हो, सो तुम्हें नमस्कार है और तुम्हारीही मैंने शरण ली है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ! परीक्षित्! इसप्रकार जगत्के ईश्वर अपने भर्ताजे श्रीकृष्णकी याद करके तुम्हारी, परदादी कुन्ती दुःखित होकर रोनेलगी ॥ १४ ॥ अक्रूर और बडे यशवान् विदुर कुन्तीको समझाने लगे कि, तुम्हारे पुत्र धर्म, पवन, इन्द्र इत्यादिकोंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, तुम इतना शोच क्यों करती हो, इस प्रकार समझाने लगे ॥ १५ ॥ चलते समय अपने पुत्रोंमें स्नेह और भर्ताजोंमें विषमता करनेवाले राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर सुहृदोंके बीचमें जो रामकृष्णने वचन कहे थे वह अक्रूरजी कहने लगे ॥१६॥ अक्रूरजी बोले कि, हे धृतराष्ट्र! कौरवोंकी कीर्तिके बढानेवाले भाई पाण्डुके मरनेके उपरान्त अब तुम राजसिंहासनपर बैठे हो, अर्थात् राजा पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिरादिक बैठे और तुम्हारा राज्यपर बैठना उचित नहीं है ॥ १७ ॥ बहुत उत्तम राज्य करो, धर्मसे प्रजाका पालन करो, क्योंकि अपनी प्रजाको सुखपूर्वक आनंद रक्खोगे, अपने बांधवोंमें समान दृष्टि रक्खोगे तो तुम्हारा कल्याण और जगत्में यश होगा ॥ १८ ॥ और जो विषमता रक्खोगे तो संसारमें निन्दा होगी और अंतमें नरकको जाओगे, इस कारण पांडवोंमें और अपने पुत्रोंमें समता रक्खो ॥१९॥ हे राजन् धृतराष्ट्र! इस संसारमें सदा किसीका सत्संग नहीं रहता है और अपना देहभी सदा नहीं रहता, विचार करके देखो कि, स्त्री पुत्र यह सदा नहीं रहेंगे ॥ २० ॥ जीव अकेलाही जन्म लेता है और अकेलाही मृत्युको प्राप्त होता है, अकेलाही पुण्यके फल सुखको भोगता है और अकेलाही पापका फल दुःख भोग करता है ॥ २१ ॥ अज्ञानीपुरुषोंने जो पाप करके धनसंचय किया है, उसे स्त्री, पुरुष, भाई, बंधु होकर लेते हैं, जैसे जलकी रहनेवाली मछलियोंका जीवन जल है और जब उसको उसके पुत्र पीलेते हैं तब उसे कष्ट होता है ॥ २२ ॥ पाप करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है और जिन्हें अपना समझ अधर्मसे पोषण करता है, वह प्राण, धन और पुत्रादिक उस पोषण करनेवाले मूर्ख पुरुषको भोगका सुख प्राप्त न हुआ हो, तब उसे पहलेही त्याग देते हैं ॥ २३ ॥ जब स्त्री पुत्रादिक इसको त्याग देते हैं, तब यह सबै स्वार्थको न जानकर और प्रयोजन नष्ट होनेसे निज धर्मसे विमुख हो, सबके पापको अपने शिरपर धर वही पूर्ण नरकमें गिरता है ॥ २४ ॥ इस कारण हे समर्थ राजा धृतराष्ट्र! स्वप्न और बाजीगरकी माया तथा मनका विचार यह सब तुमको मिथ्याभूत दिखाई देता है, उसी प्रकार इस संसारको मिथ्याभूत समझ आपभी अपने मनको रोककर समता रक्खो और शान्त हो ॥ २५ ॥ तब राजा धृतराष्ट्र बोले कि, हे अक्रूर! यह जो तुमने कल्याणकारक श्रेष्ठ वचन कहे, उनको श्रवण करते करते मेरा मन तृप्त नहीं हुआ, जैसे मनुष्य अमृत पीनेसे तृप्त नहीं होता ॥ २६ ॥ परन्तु तो भी हे अक्रूर! मेरा चंचल पुत्रोंमें स्नेह है, इसलिये विषमहृदयमें तुम्हारी प्यारी बात नहीं ठहरती जैसे स्फटिकमणिके सुदा-

मापर्वतपर बिजली चमककर स्थिर नहीं रहती ॥ २७ ॥ भगवान्की इच्छाको कौन पुरुष खंडन करसक्ता है, अर्थात् उसकी इच्छाके प्रतिकूल कुछ नहीं होता, सब उसकी इच्छानुसारही होता है जिस ईश्वरने पृथ्वीका भार उतारनेके कारण यदुकुलमें आनकर अवतार लिया है ॥ २८ ॥ जो ईश्वर विचारनेमें न आवै, ऐसी अपनी मायासे इस विश्वको उत्पन्न कर और उसमें प्रवेश कर कर्म तथा कर्मोंके फलको अलग अलग कर जीवोंको देते हैं, जाननेमें न आवै ऐसी लीलोंसे रचेहुए संसारचक्रके घुमानेवाले उस परमेश्वरको मैं बारम्बार नमस्कार करताहूं ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इसप्रकार यदुवंशोत्पन्न अक्रूरजी धृतराष्ट्रका अभिप्राय जान सुहृदोंसे आज्ञा ले मथुरापुरीमें आये ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! बलदेव श्रीकृष्णने आप जिस कारण अक्रूरजीको पाण्डवोंके पास भेजा था सो अक्रूरजीने सब धृतराष्ट्रजीकी कही वार्त्ताका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीसे कह दिया ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे माथुरवंशीय सुप्रसिद्ध विद्वद्वर श्रीयुतशालिग्राम वैश्य मुरादाबाद निवासिकृत दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

दोहा-पूर्वार्द्ध हरिकी कथा, सुखसागर सुखखान।
मैं निजमति अनुसार कछु, भाषा करी बखान ॥ १ ॥
हरि लीलामृत जानकर, जहँ तहँ किय विस्तार।
तासु दोष नहिं दीजिये, सज्जन परमउदार ॥ २ ॥
सोरठा-दशम अंशको आज, पूर्वार्द्ध पूरण कियो।
सुमिरि कृष्ण व्रजराज, हरिजन शालिग्रामने ॥ ३ ॥
दोहा-यदपि मूल सम रचनको, मैं मन कियो विचार।
वर्णत वर्णत बढगयो, कृष्णचरित्र अपार ॥ ४ ॥
सोरठा-कृपा करी व्रजचन्द, जब जन शालिग्रामपर।
भयो परमआनन्द, ऋद्धि सिद्धि बाढीं अधिक ॥ ५ ॥

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा।

दशमस्कन्ध १०. (उत्तरार्द्ध.)

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय बम्बई.

॥ श्रीशेषशायिने नमः ॥

शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

दशमस्कन्ध १०(उत्तरार्द्ध.)

दोहा–उत्तरार्द्ध प्रारम्भमें, ब्रजपति चरित ललाम ।
कह्यो पचाशाऽध्यायमें, जरासन्ध संग्राम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अब पूर्वार्द्धके उपरान्त इकतालीस (४१) अध्यायमें जो कथा है, सो हम वर्णन करते हैं कि, जरासन्धके भयसेही मानो समुद्रमें किला बनाकर श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको उसमें लेगये, व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हेभरतवंशावतंस परीक्षित् ! अस्ति और प्राप्ति यह दोनों कंसकी रानी अपने पति कंसके मरनेसे अत्यन्त दुःखी होकर अपने पिताके घर चली गईं ॥ १ ॥ अपने स्वामीके मरनेसे शोकाकुल अस्ति, प्राप्ति दोनों बहनोंने अपने पिता मगधदेशके राजा जरासंधसे जाकर सब वृत्तान्त कहा ॥ २ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यह बात सुनतेही जरासन्ध अतिक्रोध कर अपने जामाताका शोक न सह पृथ्वीको यादवरहित करनेका उपाय करने-लगा ॥ ३ ॥ और तेईस अक्षौहिणी सेनाको साथ लेकर जरासंधने यादवोंकी राजधानी-मथुरापुरीको चारोंओरसे घेरलिया ॥ ४ ॥ जिसप्रकार अपनी मर्यादा त्यागकर समुद्र

उमडता चला आता है, उसी प्रकार जरासन्धकी सेनाको आतीहुई देखकर और सेनासे मथुरापुरीको ग्रसित जान, अपने सुहृद् यादवोंको व्याकुल देख ॥ ५ ॥ दुःखोंके नाशक भूभार उतारनेवाले श्रीकृष्णचंद्र उस समय देशकालक योग्य अपने अवतारका कारण देखकर विचार करनेलगे ॥ ६ ॥ कि, पहले इस समस्त सेनाका संहार करूं, या जरासंधको वधकर इसकी सब सेना अपने अधीनमें करूं अथवा सैन्यसहित जरासंधका प्राण संहार करूं, ऐसे तीन प्रकारके मनमें संकल्प विकल्प कर प्रथम विचार सैन्यवधका निश्चय किया, क्योंकि पृथ्वीका भाररूप यह सेनाही है, इसलिये प्रथम इसकाही मारना उचित है और इस समय यह सम्पूर्ण राजाओंकी सेनाओंको इकट्ठीकर लेआया है, फिर बारबार ऐसा अवसर नहीं मिलेगा ॥ ७ ॥ पहिले पैदल, अश्व, हस्ती और चतुरंगिणी अनेक अक्षौहिणी * सेनाकोही मारना योग्य है, जरासंधका मारना योग्य नहीं, क्योंकि इससे अभी बहुत कार्य सिद्धहोगा, यह सम्पूर्ण राक्षसोंको समेट कर ले आवेगा, मैं कहाँ कहाँ ढूंढता फिरूंगा ॥८॥ भूमिका भार उतार साधुपुरुषोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाश करनेके लियेही मैंने अवतार लिया है ॥ ९ ॥ जब जब पृथ्वीपर अधर्म बढता है, तब तबही उस अधर्मके नष्ट करने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये मैं अवतार लेताहूं॥१०॥इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विचार करही रहे थे कि, उसी समय सूर्यके समान, ध्वजा कवचसे सुसज्जित, सारथी सहित दो रथ शीघ्रही आकाशसे उतरे ॥ ११ ॥ तब अकस्मात् आये दिव्य शस्त्र देखकर हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदेवजीसे बोले कि ॥ १२ ॥ हे आर्य ! हे श्रेष्ठ ! तुम जिनकी रक्षा करते हो, आज उन्हीं यादवोंको आनकर दुःख उपस्थित हुआ है और इसीलिये यह रथ और वीरघाती शस्त्र आयेहैं ॥ १३ ॥ रथमें बैठ, सब सेनाका संहारकर अपने यादवोंका कष्ट दूर करो , हे ईश ! साधुलोगोंके कल्याणार्थही संसारमें आपका जन्म हुआ है ॥ १४ ॥ तईस अक्षौहिणी सेना आनकर उपस्थित हुईहै और इसीका पृथ्वीपर बोझ है, इसको दूर करो, इस प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीने विचारकर, कवच पहर, सुन्दर शस्त्रोंको ले और कुछ थोडीसी सेनाके साथ, पुरके बाहर निकल दारुक सारथीका लिये शंखध्वनि करी ॥ १५॥ १६॥ "निकसे दोउ यदुराय, पहुँचे सुदल में जाय" इसके उपरान्त जरासन्धकी सेनाके हृदय भयभीत हो कम्पायमान होने लगे, तब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीको रणभूमिमें खडा देख, जरासन्ध कहनेलगा ॥ १७ ॥ हे अधम ! मुझे तेरे साथ युद्ध करनेमें अत्यन्त लाज आती है, क्योंकि तू बालक है इसलिये तेरे संग युद्ध नहीं करूंगा हे मूर्ख ! तू गुप्त रहनेवाला अत्यन्त छली है, इस कारण तेरे साथ युद्ध करना उचित्त नहीं ॥ १८ ॥ हे राम!

---

* अक्षौहिणीका प्रमाण। इक्कीससहस्र आठसौ सत्तर २१८७० रथ, इक्कीससहस्र आठसौ सत्तर २१८७० गजपति, पैंसठ सहस्र छःसौ दश। ६५६१० अश्वपति, एकलाख नौ सहस्र तीनसौ पचास १०९३५० पैदल, इसका नाम "अक्षौहिणी" है ॥

जो तुझमें सामर्थ्य होय तो धीरज धरके युद्ध कर और मेरे बाणोंसे कटेहुए देहको त्याग स्वर्गको जा, या संग्रामके बीचमें मेरा प्राण ले ॥ १९ ॥ हे परीक्षित् ! ऐसे जरासंधके वचन सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे जरासन्ध ! शूरवीर व्यर्थ बकवाद न कर अपने पुरुषार्थको दिखाते हैं और तुम्हारी मृत्यु निकट आगई है, इसलिये मैं तुम्हारे वचनोंपर अधिक ध्यान नहीं देताहूं ॥ २० ॥ जैसे पवन, बादल, धूरि, यह सूर्य और अग्निको घेर लेतेहैं, इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र व बलदेवजीके निकट जाकर जरासंधने उनको अपनी बलवान् सेना, प्यादे, रथ, ध्वजा, घोडे और रथवानों सहित घेर लिया ॥ २१ ॥ जब गरुड और तालकी ध्वजाके चिहवाले रामकृष्णके रथ युद्धमें नहीं दीखे, तब पुरीकी नारी अटारी महल और द्वारोंपर खडी हुई शोकसे व्याकुल हो मोह करने लगीं ॥ २२ ॥ शत्रुकी सेनारूप बादलोंमेंसे वारंवार बाणोंकी भयंकर वर्षासे अपनी सेनाको पीडित देखकर श्रीकृष्णचन्द्र देवता व असुरोंसे पूजित उत्तम शार्ङ्गधनुषमें टंकार करनेलगे ॥२३॥ तरकससे तीर निकालकर शीघ्र प्रत्यंचामें लगाय प्रत्यंचाको खैंचकर तीक्ष्णबाणोंके समूहों से रथ, घोडे, हाथी, पैदल मारकर जैसे सुलगती लकडीके घुमानेसे चक्र बनजाता है, उसी प्रकार बाणोंके पीछे बाण मारनेलगे ॥ २४ ॥ मस्तक कटनेसे हजारों हाथी, नारी कटनेसे घोडे, पृथ्वीपर गिरने लगे रथोंकी ध्वजा कटगई और रथवान् गिरगये भुजा, नाडी कटनेसे पैदल गिरगये ॥ २५ ॥ युद्धमें पैदल, हाथी कटकर गिरनेलगे, तब उनके शरीरसे लोहूकी नदियें बहने लगीं, जिनमें भुजाएँ सर्पकी सदृश दृष्टि आती थीं, मनुष्योंके शिर कच्छपसे जान पडते थे. मृत्युको प्राप्तहुए हाथी टापूके समान दीखते थे और रुधिरकी नदीमें घोडे ग्राहसे पडेथे ॥ २६ ॥ भुजा व ऊरु मछलीके समान मनु ष्योंके केश सिवारके समान थे और नदीमें जो तरंगे उठती हैं, वही रुधिरकी नदीमें धनुष तरंगके समान हैं। नदीमें झाड झंखाड होते हैं रुधिरकी नदियोंमें शस्त्र हैसाई झाड झंखा-डके समान हैं, नदीमें भँवर पडते हैं तिनसे अति भयंकर होकर रुधिरकी नदियोंमे ढाले मानो भयंकर भँवर पडते हैं नदियोंमें कंकर पत्थर इत्यादि होते हैं रुधिरकी नदियोंमें माण गहने कंकर पत्थरके तुल्य हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! महातेजस्वी बलदेवजीने संग्रामके बीच मतवाले शत्रुओंको मुसलायुधसे मारमारकर रुधिरकी नदियें बहाईं, जो कि कायर पुरुषोंको भयकी देनेवाली और वीर पुरुषोंको आनंदकी देनेवाली हैं ॥ २८ ॥ हे परीक्षित् दुर्मद वैरियोंको मूसलसे मार सागरके समान दुस्तर और भयंकर उस जरासन्धपालित सेनाको महापराक्रमी श्रीकृष्ण बलदेवने मार मार कर नाश करदी. वसुदेवके पुत्र जग-त्के ईश्वर कृष्णबलदेवको सेनाका नाश करना एक साधारण बात है, कुछ पराक्रम नहीं है ॥ २९ ॥ अनंतगुण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीलासेही तीनों लोकोंको उत्पन्न पालन और संहार करते हैं, उन श्रीकृष्णचंद्रको जरासन्धकी सेनाका मारना कुछ आश्च-र्यकी बात नहीं है, तो भी मनुष्योंके अनुकरण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म आश्चर्यमय तुमसे वर्णन करता हूं ॥ ३० ॥ सेनाके नष्ट होने और रथ टूट जानेसे जब प्राणमात्रही

अवशेष रहे; तब बलवान् जरासन्धको जैसे सिंह सिंहको पकडता है, उसीप्रकार बलपूर्वक बलदेवजीने पकडकर ॥ ३१ ॥ शत्रुओंके मारनेवाले जरासन्धको वरुणपाश और मनुष्यपाशसे जब बलदेवजी बाँधनेलगे, तब श्रीकृष्णचन्द्रजीने उसको छुडादिया और कहा कि अभी जरासन्धसे और कुछ काम लेना है ॥ ३२ ॥ शूरवीरोंके माननीय जरासंधको त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण बलदेवने जिस समय छोडदिया, तब यह मनमें लज्जित होकर विचार करने लगा कि, वनमें जाकर तप करना उचित है, घर जाकर क्या करूंगा तब मार्गमें जातेहुए राजाओंने निवारण किया ॥ ३३ ॥ धर्मके उपदेश करनेवाले पदयुक्त नीतिके तुष्टिकारक वचन कहकर जरासन्धको समझाने लगे कि, हे राजन्! कोई तुम्हारा बडाही दुष्कर्म आनकर प्राप्त हुआ जो तुच्छ यादवोंने तुम्हैं परास्त किया अब तुम कुछ लाज मत करो ॥ ३४ ॥ जिस समय समस्त सेना नष्ट होगई और श्रीकृष्णचन्द्रने छोड दिया, तब वह बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध अत्यन्त उदास होकर मगधदेशको चलागया ॥ ॥ ३५ ॥ शत्रुकी सेनारूप सागरसे तरकर और अपनी अक्षत सेना संग लिये जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने मथुरापुरीमें प्रवेश किया, तब देवताओंने आकाशसे फूल वर्षाये और प्रशंसापूर्वक उनकी स्तुति करी ॥ ३६ ॥ तब श्रीकृष्णचंद्र अपनी मथुरापुरीमें आकर खेदरहित प्रसन्नमन पुरवासियोंसे मिले सूत, मागध, बन्दीजन, जिनकी विजयके यश गान करनेलगे ॥ ३७ ॥ हे राजन्! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र मथुरापुरीमें आये तब शंख, नगारे, अनेक भेरी, तुरही, वीणा, बाँसुरी और मृदंग यह सब बाजे बजनेलगे ॥ ३८ ॥ मार्गमें छिरकाव हो रहा है, पताकायें लगाई गई हैं, और वेदध्वनिसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके शुभागमनसे घर घर बन्दनवारोंसे परिपूर्ण इस प्रकार मथुरापुरीकी शोभा हुई ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर स्त्री, पुरुष; पुष्प, दधि, अक्षत और अंकुरोंकी वर्षा करनेलगे, स्त्रियें स्नेहसे प्रफुल्लित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखनेलगीं ॥ ४० ॥ शूरवीर राजाओंकी शोभा करनेवाले, रणभूमिमें पडे बहुत धन लाकर श्रीकृष्णचन्द्रने यादवराज उग्रसेनको दे दिया ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार जरासंध उतनीही अक्षौहिणी साथ लेलेकर सत्रहवार चढि आया और श्रीकृष्णचंद्रसे रक्षित यादवोंसे उसने युद्ध किया ॥ ४२ ॥ हे राजा परीक्षित! यादवगण श्रीकृष्णचन्द्रके तेजसे जरासन्धकी समस्त सेनाका संहार करनेलगे, सम्पूर्ण सेना जब कटगई और शत्रने छोड दिया, तब जरासन्ध फिर अपने देशको चलागया * ॥ ४३ ॥ अठारहवीं बार जरासंध तो आनेवाला थाही, उसके बीचमेंही देवर्षि नारदजीका भेजा वीर कालयवन आनकर दिखाई दिया ॥ ४४ ॥ संसारमें जिसके समान कोई योद्धा नहीं, ऐसा कालयवन यादवोंको अपने समान जान, उसने तीन करोड महाम्लेच्छ अतिभयावने इकट्ठे किये ऐसे कि जिनके मोठे भुजा, बडे गले, मैले

---

* **शंका**-तेईस अक्षौहिणी सेनाको जरासन्ध अपने संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये चढि आया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनाको मार-

दाँत, भूरे वेष, घूंघचीसे नयन लाल तिन्हें साथ ले डंका दे, मथुरापुरीपर चढ आया और चारोंओरसे घेरलिया, क्योंकी देवर्षि नारदजीने इससे कहा था कि, यादवलोग तुम्हारे समान हैं, इसलिये उनसे युद्ध करो ॥ ४५ ॥ उस समय श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजी सहित इस दुरात्मा कालयवनको आयाहुआ देखकर विचार करने लगे कि, यादवोंको दोनों ओरसे कष्ट आनकर उपस्थित हुआहै, बडेही आश्चर्यकी बात है ॥ ४६ ॥ क्योंकि अब तो यह महाबली कालयवन हमको घेर रहाहै और फिर जरासन्ध आज या कल अथवा परसोंतक अवश्यही आवेगा ॥ ४७ ॥ यदि इस समय हम इससे युद्ध करें और बीचमें जरासन्ध आगया तो अवश्यही हमारे बांधवोंका प्राण संहार करेगा और जो न मारेगा तो बांधकर अपने पुरमें लेही जायगा, क्योंकि वह बलवान् है ॥ ४८ ॥ इसलिये जहाँ मनुष्य न प्रवेश करसके ऐसा एक किला बनाय, उसमें अपने जातिके यादवोंको रख फिर कालयवनका वध करूं ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने इसप्रकार मनमें विचार कर अडतालीस कोश (बारह योजन) का समुद्रके बीचमें एक दुर्ग (किला) और उस किलेके बीचमें एक महा अद्भुत आश्चर्यमय नगर बनाया ॥ ५० ॥ इस नगरीमें सब विश्वकर्माकी कारीगरी दिखाई देती है, राजाओंके जाने योग्य बडे बडे बाजार गली और चौक बन रहे हैं ॥ ५१ ॥ बीच बीचमें स्थान बनानेके लिये जगह छोड दीगई है, कल्पवृक्ष और लतावाले फूलोंके बगीचे, चित्र विचित्र फुलवारी, सुवर्णके शिखरसे आकाशको स्पर्श करनेवाले, ऊँचे ऊँचे स्फटिकमणिके अटा बनरहेहैं और ऊँचे ऊँचे किलेके द्वार बनरहेहैं ॥ ५२ ॥ घोडोंके बाँधने और अन्न भरनेके लिये लोहे और पीतलके स्थान बनेहैं तिनके ऊपर सुवर्णके कलश विराजमान हैं, जिनसे इस नगरकी अत्यन्तही मनोहर शोभा होरही है, जिनके पद्मरागमणिके शिखर और महामरकतमणिकी जिसमें

–डाला, बडे आश्चर्यकी बात है कि, इतनी सेना जरासन्ध कहाँसे लेआया? पृथ्वीपर सेना तो बहुत थी परन्तु दुष्ट सेना इतनी किधर थी जिसको जरासन्ध सत्रह १७ बार बटोर बटोर कर लेआया और तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना सत्रहवार श्रीकृष्णने मारडाली, सब जोडकर तीनसहस्र आठसौग्यारह ३८११ अक्षौहिणी हुए, परन्तु बडे अचम्भेकी बात है कि इतनी सेनामें कोई भी शूरवीर नहीं था ? जब श्रीकृष्णने मारा तो क्याजान पडा क्योंकि श्रीकृष्णके सामने शूरवीरोंकी क्या सामर्थ्य थी और मर्यादा पालन करनेवाले श्रीकृष्णका अवतार भी हुवा फिर वीरोंकी मर्यादा क्यों विनाश करी !

उत्तर–जरानामक राक्षसीने जरासन्धको वरदान दिया था कि, तू जितनी सेना बनाया चाहेगा, उतनी सेना बनालेगा इसलिये जरासन्ध तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना बनायके श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये लेआया, मर्यादापुरुषोत्तम मर्यादाके पालन करने-वाले श्रीकृष्णने विचार लिया कि, इस सेनामें शूरवीर नहीं है, इसलिये जरासन्धकी सेनाका विनाश किया, मर्यादाका नाश नहीं किया ॥

पृथ्वी, इस प्रकार शोभायमान सुवर्णके गृह जहाँ तहाँ बनरहे हैं ॥ ५३ ॥ देवताओंके मन्दिर और चित्रविचित्र चित्रसारी बन रही है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह वर्ण जिसमें वास करते हैं यादव और देवराज उग्रसेनके महल तो अत्यन्तही शोभायमान हैं ॥ ५४ ॥ देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिये सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष भेजा, जो मनुष्य इस सभामें वास करता है, उसको भूख, प्यास, शीत गरमी, शोक और मोह इत्यादि कुछ नहीं सताते ॥ ५५ ॥ श्यामकर्ण श्वेतवर्ण मनके समान वेगवान् वरुणने घोडे भेजे पालन करनेवाले कुबेरजीने पद्म, महापद्म, मकर, कूर्म, कुन्द, नील, मुकुन्द, शंख, खर्व यह नौ बिभूति भेजीं ॥ ५६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुश्रेष्ठ परीक्षित् ! भगवान् वासुदेवने इन देवता लोगोंको अपने अपने अधिकारकी सिद्धिके लिये जो कुछ सम्पदायें दी थीं, वह सब वस्तु जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीपर आये, उन्होंने लाकर अर्पण करदीं ॥ ५७ ॥ उस द्वारकापुरीमें योगके प्रभावसे सब यदुवंशियोंको पहुँचाकर श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीसे कहनेलगे कि, हे वीर ! तुम यहाँ मथुरापुरीमें रहकर शेष प्रजाकी रक्षा करो, इस प्रकार बलदेवजीसे आज्ञा कर कमलनयन भगवान् कमलोंकी माला धारणकिये शस्त्ररहित मथुरापुरीके दरवाजेसे बाहर निकले ॥ ५८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे
पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

दोहा-कालयवन मुचुकुन्दकी, दृष्ट परत भो छार।
जब हरिकी विनती करी, फिर इक्यावनवार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण ! जिससमय श्रीकृष्णचन्द्रजी रेशमी वस्त्र पहरे, पुरसे बाहर निकले, तो उनकी ऐसी शोभा हुई कि, मानों निशानाथ चन्द्रमा उदय हुए ॥ ॥ १ ॥ छातीमें भृगुलताका चिह्न, कण्ठमें कौस्तुभमणि धारणकिये, चतुर्भुज, नवीन कमलके समान अरुण नेत्र ॥ २ ॥ नित्य प्रसन्न, शोभायमान और सुन्दर मुसकान, मकराकृत कुण्डलसे देदीप्यमान मुखारविन्द ॥ ३ ॥ इस प्रकार मनोहर मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्र की देखकर कालयवन अपने मनमें विचार करनेलगा कि, ठीक कृष्ण यही है ॥ ४ ॥ क्योंकि देवर्षि नारदजीने जो जो लक्षण बताये थे, सो सब इसमें पाये जाते हैं, इसके अतिरिक्त और कोई वासुदेव नहीं है और यह अकेला शस्त्ररहित चला जाता है, इसलिये मैं भी शस्त्ररहित पैदलहोकर इसके संग युद्ध करूं ॥ ५ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार कालयवन मनमें निश्चयकरके पराङ्मुख होकर भागतेहुए, योगीजनोंके भी हाथ न आवें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रके पकडनेको पीछे दौडा * ॥ ६ ॥ पग पग पर 'अब पकडा' 'अब पकडा'

---

* **शंका**-यवनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान् क्यों भाग गये, इसका क्या कारण ?

उत्तर-एकसमय यदुवंशी अपनी सभामें अपने कुलकी कन्याके वचनोंको स्मरणकर गर्गाचार्यको हँसनेलगे, गर्गाचार्य तो श्रीभगवान्की पूजनमें रात दिन रहतेथे और स्त्रीसे

ऐसे अपने आपको दिखाते दिखाते म्लेच्छराज कालयवनको श्रीकृष्णचन्द्र बडी दूर पर्वतकी गुफामें लेगये ॥ ७ ॥ यादवोंके कुलमें तू जन्मा है, इसलिये तेरा भागना उचित नहीं है, इसप्रकार आक्षेप करता हुआ महावेगसे दौडनेलगा, परन्तु पापी होनेके कारण श्रीकृष्णको न पकड सका, क्योंकि विना पाप नष्टहुये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ ८ ॥ हे परीक्षित् ! जब म्लेच्छराज कालयवनने श्रीकृष्णचन्द्रपर दुर्वाक्यरूपी बाणोंका आक्षेप किया, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफामें घुसगये, कालयवन भी दौडता हाँफता इनके पीछे पीछे उस गुफामें घुसगया, वहाँ एक पुरुष और सोरहा था, उसे देख कालयवन विचार करने लगा ॥ ९ ॥ कि, यह दुष्ट मुझे इतनी दूर लाकर यहाँ साधुकी नाई शयन कर रहाहै, इस प्रकार कालयवन निश्चय कर, उस सोतेहुये पुरुषको कृष्ण जानकर एक लात मारी ॥ १० ॥ वह पुरुष बहुत दिनोंका सोयाहुआ था, इसलिये धीरे धीरे नेत्र खोल, चारों ओरको देख; कालयवनको देखा ॥ ११ ॥ हे भारतवंशी राजा परीक्षित् ! उसी समय क्रोधी मुचुकुन्दके देखनेसे उनके शरीरसे ऐसी अग्नि प्रगट हुई कि, जिससे उस कालयवनका शरीर क्षणभरमें जलभुनकर भस्म होगया ॥१२॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् ! पूँछने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! जिसने अपनी क्रोधाग्निसे कालयवनका प्राण संहार किया, उसका क्या नाम और वह कौन पुरुष है ? किसके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, क्या उनका प्रभाव है, किनके पुत्र हैं ? और किसलिये इस गुफामें सोते थे ? सो सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मुझे सुनाइये ॥ १३ ॥ तब श्रीशुकदेवजी कहनेलगे कि, हे राजा परीक्षित् ! इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न मान्धाताका पुत्र गुणवान् ब्राह्मणोंका भक्त मुचुकुन्दनाम राजा था ॥ १४ ॥ एक समय असुरोंसे भयभीत होकर इन्द्रादिक देवताओंने अपनी रक्षा करनेके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की तो इन्होंने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा की ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त स्वर्गके पालन करनेवाले स्वामिकार्तिकजीको आयाहुआ देखकर सब देवता इनसे कहने लगे कि, हे राजा मुचुकुन्द ! हमारी रक्षा करनेमें जो कुछ कष्ट आपको हुआ है इससे निवृत्त होकर आराम करो ॥ १६ ॥ हे वीर ! तुमने मनुष्यलोकके निष्कंटक राज्यको त्यागकर हमारी रक्षा की है, इससे तुम्हारे विषयके भोग छूटे ॥ १७ ॥ और तुम्हारे पुत्र, रानी, जातिके बन्धु, बांधव, प्रधान, दीवान, मंत्री, राज्यकी प्रजा इनमेंसे अब कोई शेष नहीं हैं, सबको कालने संहार करदिया ॥ ॥ १८ ॥ काल बलवान्से बलवान् है, भगवान्की शक्तिहै समर्थ अविनाशी है और जिस

–प्रीति कम रखतेथे इससे उनकी स्त्रीने अपने यादवोंसे कहा कि गर्ग मुनि नपुंसक हैं इससे यदुवंशी उक्त मुनिकी हँसी किया करते थे इसलिये गर्ग यादवोंका नाश करनेके लिये एक पुत्र उत्पन्न करके उसी पुत्रको वरदान दिया कि, हे पुत्र ! युद्धमें यदुवंशी तेरे कुलके सामने अथवा तेरे सामने जो खडे होंगे तो उसी समय भागजायँगे श्रीकृष्ण इस बातको जानकर भाग गये ॥

प्रकार पशुओंका पालन करनेवाला ग्वालिया पशुओंको चलाता है, उसीप्रकार आप क्रीडा करके सब प्रजाको इधर उधर चलाता है ॥ १९ ॥ सब देवता कहने लगे कि, हे राजा मुचुकुन्द ! तुम्हारा कल्याण हो, मोक्षके अतिरिक्त और जो इच्छा हो सो वर मांगो क्योंकि मोक्षके दाता तो केवल एक विष्णु भगवान् ही हैं ॥ २० ॥ हे परीक्षित् । जब इसप्रकार देवता लोगोंने कहा, तब महायशस्वी राजा मुचुकुन्दने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा करनेसे श्रमित होनेके कारण यह वर मांगा कि, मैं सोताही रहूं और जो कोई मेरी निद्रा भंग करै, वह उसी समय भस्म होजाय, यह वर मांगा, देवताओंने कहा कि, ऐसाही होगा, तब राजा मुचुकुन्द देवताओंकी आज्ञा पाय पर्वतकी गुफामें जाकर सो रहा ॥ २१ ॥ २२ ॥ इससे देवताओंने कह दिया था कि, जो तुम्हारी निद्रा भंग करेगा,वह तत्कालही जलके भस्म होजायगा ॥ २३ ॥ जब कालयवन जलके भस्म होगया, तब चतुर्भुजरूप होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया ॥ २४ ॥ मेघके समान श्यामवर्ण पीतवस्त्र धारणकिये हृदयमें प्रकाशमान भृगुलताका चिह्न और कौस्तुभमणि धारण करनेसे अत्यन्तही देदीप्यमान होरहेथे ॥ २५ ॥ चतुर्भुज, वैजयन्ती-मालासे सुशोभित और दमकते हुये मकराकृत कुण्डलोंसे शोभायमान होरहे थे ॥ २६ ॥ देखनेयोग्य प्रेमभरी मुसकान सहित विलक्षण और नवीन अवस्थायुक्त मतवाले सिंहके समान पराक्रमी ॥ २७ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका तेज देखतेही भयभीत होकर राजा मुचुकुन्द धीरे धीरे पूँछनेलगा ॥ २८ ॥ राजा मुचुकुन्द बोला कि, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कौनहो ? कमलके समान आपके कोमल चरण हैं और इस पर्वतकी गुफामें किसलिये आयेहो ? जो काँटोंके बनमें विचरते फिराहो ॥ २९ ॥ क्या आप तेजवान् भगवान् अग्नि हैं वा सूर्य हैं,अथवा चन्द्रमा हैं या इन्द्रहैं किंवा समस्त लोकपालोंके कर्त्ता या देवता हैं ? ॥ ३० ॥ अथवा ब्रह्मा, विष्णु,महेश,इन तीनों देवताओंमेंसे कोई हो ? मुझे जान पडताहै कि, आप विष्णु भगवान् हैं, क्योंकि जैसे दीपक अपने प्रकाशसे अंधकारका नाश करदेता है, वैसेही आपने अपने तेजसे इस गुफाका अंधकार नाश करदिया ॥ ३१ ॥ यह सुन श्रीभगवान् बोले कि, हे वीर ! हमें आपका जन्म, कर्म व गोत्र सुननेकी अत्यन्त अभिलाषा है, सो प्रसन्नतापूर्वक हमे सुनाइये ॥ ३२ ॥ तब मुचुकुंदने कहा कि, हे पुरुषसिंह ! मैं इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुआहूँ, मान्धाताका पुत्र और मुचुकुन्द मेरा नाम है ॥ ३३ ॥ मैं बहुत दिनोंमें जागा हूं इसलिये मुझे खेद प्राप्त हुआ है और नींदके मारे मेरी इंद्रियें चलायमान होरहीं हैं, क्योंकि मैं इच्छानुसार इस वनमें सो रहाथा और अभी किसीने आकर जगादिया ॥ ३४ ॥ और जिसने मुझे आनकर जगाया, वह पुरुष उसीसमय जलकर भस्म होगया उसके पीछे आपके दर्शन हुए ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा असह्य तेज बहुत कालतक हम नहीं देखसक्ते, क्योंकि आप देहधारियोंके माननीय हैं ॥ ॥ ३६ ॥ इसप्रकार जब राजा मुचुकुंदने प्रार्थना करी, तब संपूर्ण प्राणियोंके पालनकरने-वाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्र मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहनेलगे ॥ ३७ ॥ कि, हे

मुचुकुंद ! मेरे जन्म, कर्म और नामका अंत नहीं है, इसलिये मैं भी उनकी गणना नहीं करसक्ता ॥ ३८ ॥ अनेक जन्म धारण करके कदाचित् मनुष्य पृथ्वीके रजकणोंकी तो गणना करसक्ता है परन्तु मेरे गुण, कर्म, जन्म नामकी गिनती नहीं करसक्ता ॥ ३९ ॥ हे राजा मुचुकुंद ! भूत, भविष्य, वर्त्तमान, मेरे जन्मोंकी गणना करते करते बडे बडे ऋषि, मुनि भी पार न पासके ॥ ४० ॥ तोभी हे अंग ! अभीके जो मेरे नाम कर्म हैं सो मैं कहताहूं, तुम श्रवण करो पृथ्वीका भार उतारने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्रथम कमलयोनि ब्रह्माजीने मेरी प्रार्थना की थी ॥ ४१ ॥ इसकारण यदुवंशमें वसुदेवके गृह मैंने जन्मलिया और इसीलिये मेरा नाम वासुदेव प्रसिद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ हे मुचुकुंद ! साधुद्वेषी कालनेमि कंस इत्यादिका मैंने वध किया और यह जो कालयवन है, सो तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टिसे भस्म होगया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! पहले तुमने मेरी प्रार्थना की थी, इसीलिये मैं तुमपर अनुग्रह करनेकेलिये इस गुफामें आयाहूं ॥ ४४ ॥ हे मुचुकुन्द ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्नहूं वरमांगो, क्योंकि मेरी शरण आनेसे मनुष्यको फिर किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने कहा, तब प्रसन्न हो गर्गाचार्यके वचन स्मरणकर उन्हें साक्षात् परिपूर्ण भगवान् जान प्रणाम करके राजा मुचुकुन्दने कहा ॥ ४६ ॥ कि हे ईश ! तुम्हारी मायासे यह लोग मोहित होकर अनर्थ (जगत्) की ओर दृष्टि लगाय, सुखके लिये दुःखके दुःखमूल घरोंमें रहकर क्या स्त्री क्या पुरुष सभी ठगकर मोहित होजातेहैं ॥ ४७ ॥ जैसे कच्चा घडा क्षणभरमें फूटजायहै, बालूकी भीत (दीवार) जैसे क्षणभरमें टूटजाय है, ऐसेही इस शरीरका भी विश्वास नहीं, इस शरीरका मैंने इतना अभिमान किया है कि, रथ, घोडे, हाथी, पैदल, सेना और मुख्य मुख्य सेनाध्यक्षको साथ लेकर पृथ्वीपर विचरतारहा परंतु कालरूप तुम्हारा स्मरण कभी न किया इसलिये मेरा इतना समय व्यर्थ गया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अमुक अमुक कार्य इस रीतिसे करना, ऐसे सन्देहोंमें प्रमत्त रहनेवाले, मनोरथ पूर्ण होनेसे भी इच्छावाले और इच्छानुसार कार्य पूरा होनेपर भी लोभ जिसका बढ जाता है, ऐसे मनुष्यको मुखसे जिसप्रकार गलाफू चाटता सर्प उंदर (मूसा) को पकड लेताहै, उसी प्रकार अप्रमत्त (सावधान) कालस्वरूप आप झपट लेतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मनुष्य देव अर्थात् राजा यह नाम धरकर जो सुवर्णके बने रथोंपर बैठकर चलते हैं,सो देह दुरत्ययकाल करके मरे पीछे कुत्ते सियार यदि भक्षण करलें तो विष्ठा होजाय, पडा रहे तो कृमि पडजांय और अग्निसे जला दिया तो भस्म होजाय, इस प्रकार तीन नामोंको धारण करते हैं ॥ ५२ ॥ हे भगवन् ! जिस पुरुषने सम्पूर्ण दिशाओंको जीतलिया है, जिसको संग्राममें कोई शत्रु शेष नहीं रहा और जिसे सब बराबरके राजा प्रणाम करते हैं, ऐसे उत्तम सिंहासनपर विराजमान चक्रवर्त्ती राजा भी मैथुन करनेके लिये घरोंमें क्रीडामृगके समान स्त्रियोंसे नाच नचाये जाते हैं, जैसे बाजीगर बंदरको नचाता है ॥ ५३ ॥

चौ०-नारि विवश नर सकल गुसाईं । नाचहिं नट मर्कटकी नाईं ॥

प्रथम यह पुरुष सब विषयोंका त्यागके, तबमें बड़ी श्रद्धाकर पृथ्वीमें शयन करता है और ब्रह्मचर्य रहकर विषय भोगनके लिये दान पुण्य करताहै और फिर विचार करताहै कि, इस जन्मसे तपकर चक्रवर्ती राजा हो तपस्याके प्रभावसे फिर इन्द्र होजाऊंगा इसप्रकार तृष्णाके बढनेसे उस पुरुषको कभी सुख नहीं होता ॥५४॥ हे भगवन् ! इस संसारमें जन्म मरण प्राप्तहुए जीवको जिस समय तुम्हारे अनुग्रहसे संसारका अंत होताहै, उस समय तुम्हारे भक्तोंका सत्संग हो तो सब संगको त्यागकर कार्य कारणके नियन्ता आपमें भक्ति करते हैं,वह संसारके बंधनोंसे छूट जाते हैं ॥५५॥ हे ईश्वर ! यह आपने बडाही अनुग्रह किया, जो मैं अकस्मात् राज्यबंधनोंसे छूटगया, यह मैं मानताहूं, राज्य छूटनेके लिये अकेला होकर वनमें जानेकी इच्छा करनेवाले चक्रवर्ती राजा भी प्रार्थना करते हैं कि, हमारा किसीप्रकार राज्यबंधन छूट जाय जिससे स्वाधीन होकर वनमें जा बैठें ॥ ५६ ॥ हे समर्थ निष्किंचन साधुओं पूजित ! तुम्हारे चरणारविन्दोंका सेवन करनेसे मैं और किसी वरकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि साक्षात् मोक्षके देनेवाला तुम्हारा आराधन करके ऐसा कौन विवेकी पुरुष है, जो आत्माका बंधनरूप वर मांगेगा ? ॥ ५७ ॥ हे ईश ! इसीलिये सतोगुण रजोगुण, तमोगुण इनके बंधन और ऐश्वर्य,अथवा शत्रुका विनाश और धर्मादिक मनोरथ त्याग ज्ञानघन निरंजन, उपाधिरहित, निर्गुण, अद्वैत, ईश्वर मैं आपकी शरण आया हूं ॥ ५८ ॥ हे अच्युत ! मैं इस संसारमें बहुत दिनोंसे कर्म फलोंके कारण दुःखी हूं और कर्मोंकी वासनाओंसे पीडित हूं और तृष्णा सहित जो यह छः इन्द्रियरूप शत्रु मेरे पीछे पड रहे हैं, इसलिये मुझे किसी प्रकारसे शांति नहीं है, अब मैं जैसे तैसे शोकरहित भयके दूर करनेवाले तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण आगया हूं, सो मेरी रक्षा करो॥५९॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारी बुद्धि बडी निर्मल और उदारहै, क्योंकि मैंने वर देनेके लिये कहकर तुम्हें लोभ उत्पन्न किया, तो भी कामना करके तुम्हारी बुद्धि चलायमान न हुई ॥ ६० ॥ मैंने वर देनेके लिये कहकर जो लोभ उत्पन्न किया, सो तुझे सचेत किया है और हे राजन् ! यह तू निश्चय जान कि, मेरे भक्तोंको कदाचित् दुःख आनकर प्राप्त हो तो भी उनकी बुद्धि चलायमान नहीं होती है ॥ ६१ ॥ हे मुचुकुन्द ! जो मेरे भक्त नहीं हैं, वह प्राणायामादि साधनासे मनको वश करते हैं, तो भी उनका मन विषयोंके लोभमें जाता हुआ दीखता है, क्योंकि उनकी वासना क्षीण नहीं हुई ॥ ६२ ॥ हे रि ! मुझमें मन लगाकर जहाँ आपकी इच्छा हो, तहाँ विचरण करो और तुम्हारी भक्ति नित्यप्रति मुझमें होवे ॥ ६३ ॥ क्षत्रिय वंशमें रह शिकार खेलकर जो तैने जीवोंकी हिंसा की है सो अब सावधान होकर मेरा आश्रय लेकर तप कर जिससे तेरे सब पाप छूट जायँ ॥ ६४ ॥ हे राजा मुचुकुन्द ! दूसरे जन्ममें सब प्राणियोंके हित करनेवाले द्विजरूप होकर मुझे प्राप्त होगे ॥ ६५ ॥

दोहा-करत गूढ़ तप जो पुरुष, मनुज जन्मके माहिं।
पावत सो मेरा दरश इसमें संशय नाहिं ॥
इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
उ० एकपचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दोहा-बावनवें अध्यायमें, रुक्मिणिको संदेश।
द्विजवर लेगो द्वारका, जहँ श्रीकृष्ण ब्रजेश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इसप्रकार कृष्णसे अनुग्रहीत होकर इक्ष्वाकुनन्दन मुचुकुन्द श्रीकृष्णकी परिक्रमा दे, नमस्कार कर गुफासे बाहर निकल आये ॥ १ ॥ राजा मुचुकुन्द मनुष्य, पशु, लतादिक और छोटे छोटे वृक्षोंको देखकर " अब कलियुग आगया" इस प्रकार निश्चय कर उत्तर दिशाको चलेगये * ॥ २ ॥ वहाँसे फिर श्रद्धापूर्वक सब संग त्याग, संदेह रहित हो राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाय गंधमादनपर्वतपर चले गये ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम ! फिर नरनारायणके स्थान बदरिकाश्रममें जाकर समस्त द्वन्द्व अर्थात् सुख दुःख, भूख प्यास, शीत उष्णादि सहकर शान्त स्वरूप मुचुकुन्द तप करके भगवान् वासुदेवकी आराधना करने लगा ॥ ४ ॥ फिर इसके उपरान्त श्रीकृष्णचंदने म्लेच्छोंसे घिरी मथुरापुरीमें आकर म्लेच्छोंकी सब सेनाका संहार किया और उनका सब धन लेकर द्वारकापुरीको भेज दिया ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा पातेही मनुष्य बैलोंके ऊपर धन लादकर जब ले चले, तब जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर फिर चढिआया ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी शत्रुकी सेनाको देख मनुष्यावतारके कारण शीघ्रही उठकर भागे ॥ ७ ॥ यद्यपि इन्हें किसीका डर नहीं था, तो भी बहुत भयभीत होगये, इसलिये बहुतसे धनको मार्गमें छोड कमलसे कोमल चरणोंसे बहुत दूरतक कोशों भागे चलेगये ॥ ८ ॥ तब जरासन्ध बोला " काहे डरके भागे

---

* शंका-श्रीकृष्णजी मर्त्यलोकमें विराजते थे, फिर उनके सामने पृथ्वीपर मनुष्य, पशु, वृक्ष, पर्वत आदि लेके जो सब वस्तु प्रथम बडी बडी थीं, सो वस्तु छोटी छोटी क्यों होगई ? यह बडा आश्चर्य है ? क्योंकि कृष्ण भगवान् मृत्युलोकसे वैकुण्ठको चले जाते तब बडी बडी वस्तु छोटी छोटी हो जातीं, तो शंका न होती श्रीकृष्णके सामने विपरीत होनेका क्या कारण !

उत्तर-द्वापरयुगमें जैसी प्रजा ब्रह्माने बनाई थी, वैसीही प्रजा मर्त्यलोकमें उस समय थी, न तो तिलसमान कम और न तिलसमान अधिक, परन्तु राजा मुचुकुन्दने श्रीकृष्णके दर्शनकी प्रीतिसे प्रसन्न होकर पर्वतको भी छोटा समझा और पदार्थोंकी तो क्या बात है इसका यह अर्थ है कि, कृष्णके दर्शनसे सब वस्तुको राजाने छोटा समझा, एक कृष्णके स्नेहहीको बडा समझा ॥

जाते ठाढे रहो करो कुछ बातें । परत उठत कम्पित अतिभारी आई है ढिग मीचु तुम्हारी" मगध देशका राजा जरासन्ध कृष्ण बलदेवको भागता हुआ देख हँस कर आप भी उनके पीछे दौडने लगा ॥ ९ ॥ बहुत दूरतक भागनेके कारण श्रमित होकर श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी प्रवर्षणनाम पर्वतपर चढगये, जिसपर देवराज इन्द्र नित्य जल वर्षाते रहते थे ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! जरासन्धने कृष्ण बलरामको पर्वतपर चढा जान उनको बहुत ढूँढा परन्तु कहीं पता न लगा, तब उस पर्वतके चारोंओर आग लगादी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जब पर्वत जलने लगा, तब श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव दोनों भ्राता उस ४४ चवालीस कोश ऊँचे पर्वतके शिखरसे उछलकर पृथ्वीपर कूद पडे ॥ १२ ॥ हे महाराज ! सेवकों सहित जरासन्धसे अलक्षित यादवोंमें श्रेष्ठ कृष्ण बलराम समुद्रकी खाईसे युक्त द्वारकापुरीमें आये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जब समस्त पर्वत जलकर भस्म होगया, तब मगधदेशके जरासन्धने विचारा कि, कृष्ण बलदेव भी इसके संगही भस्म होगये, इसलिये अपनी सब सेना साथ लेकर मगधदेशको चलागया ॥ १४ ॥ यद्यपि अब श्रीकृष्णचन्द्रके विवाहकी कथा कहनेके लिये प्रथम (नवमस्कन्ध) में बलदेवजीके विवाहकी कथा वर्णन कर आये हैं, तो भी फिर एक श्लोकमें वर्णन करते हैं, हे परीक्षित्! आनर्त्तदेशके राजा रेवतने, कमलयोनि ब्रह्माजीके कहनेसे अपनी पुत्री रेवतीका बलदेवजीसे विवाह कर दिया, यह पहले कहचुके हैं ॥ १५ ॥ हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! भगवान् वासुदेव भी स्वयंवरमे जाकर लक्ष्मीजीके अंशसे विदर्भ देशमें उत्पन्न हुई भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको विवाह लाये ॥ १६ ॥ शाल्व और शिशुपालादिक राजाओंकी सेनाको जीत, सब लोकोंके देखतेहुये जैसे देवताओंको जीतकर गरुडजी अमृत लेआते हैं उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीजीको लेआये ॥ १७ ॥ इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अत्यन्त स्वरूपवान् राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको युद्धमेंस हरके श्रीकृष्णचन्द्रने ब्याहा, यह वार्त्ता हमने आपकेही मुखसे सुनी है ॥ १८ ॥ हे व्यासनन्दन ! जरासन्ध शाल्व इत्यादि राजाओंको जीतकर जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीको लाये, वह चारित्र सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है, सो प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णचन्द्रकी कथा अत्यन्त पवित्र और मनोहर है और समस्त लोकोंके पापोंका नाश करनेवाली है, नित्य नवीन सुननेके सारको जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष है, जो ऐसी कथायें सुनकर तृप्त हो ? ॥ २० ॥ जब राजाने यह बचन कहे, तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! विदर्भदेशका पालन करनेवाला, महायशस्वी भीष्मक नाम राजाथा, इसके पाँच पुत्र और परमस्वरूपवती एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ इन पुत्रोंमें सबसे बडा रुक्मी, इससे छोटा रुक्मरथ, इससे छोटा रुक्मबाहु, इससे छोटा रुक्मकेश और रुक्मकेशसे छोटा रुक्ममाली, यह पाँच पुत्र उत्पन्न हुये और पाँचोंकी बहन परमसुशीला पतिव्रता रुक्मिणी हुई॥२२॥ घरमें आये हुये देवर्षि नारदजीके मुखसे श्रीकृष्णचन्द्रका गुणानुवाद सुनकर श्रीरुक्मिणी-

जीने अपने समान जान, विवाह करनेके लिये मनमें प्रतिज्ञा की ॥ २३ ॥ और इधर सुन्दर बुद्धि, उदारता, रूप, पराक्रम, शोभायुक्त रुक्मिणीके गुण सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने समान स्त्रीके व्याहनेका अभिलाष किया ॥ २४ ॥ हे राजन्! माता, पिता, भ्राता आदि सबकी यही इच्छा थी कि, रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णचन्द्रसे करेंगे, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रका शत्रु रुक्म "हम अपनी बहनका विवाह कृष्णके साथ नहीं करेंगे" इस प्रकार निषेधकर "रुक्मिणीके योग्यवर शिशुपाल है" यह मनमें निश्चय किया ॥ २५ ॥ सुन्दर नील कटाक्षवाली विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीने सुना कि, श्रीकृष्णके साथ मेरा भाई व्याहनेको निषेध करता है, यह जान बहुत उदास होकर उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाय श्रीकृष्णचन्द्रके लिवालानेके लिये भेजा ॥ २६ ॥ हे राजन्! यह ब्राह्मण जिस समय द्वारकापुरीमें पहुँचा, उसी समय द्वारपालोंने इसे भीतर पहुँचाया, वहाँ इसने सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान आदि पुरुष भगवान् वासुदेवके दर्शन किये ॥ २७॥ गौ ब्राह्मणोंका पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उस ब्राह्मणको देखतेही सिंहासनपरसे उतरपडे और ब्राह्मणको सिंहासनपर बिठाय, जिस प्रकार कोई अपने देवताकी पूजा करता है उसी प्रकार पूजा करनेलगे ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित्! जब ब्राह्मण भोजन करचुका और मार्गकी थकावट दूरहोगई, तब सत्पुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके निकट जा अपने हाथोंसे उसके चरण दावते दावते यह पूँछा ॥ २९ ॥ कि, हे द्विजश्रेष्ठ! वृद्ध संमत तुम्हारा धर्म बहुत कठिनता पूर्वक तो नहीं चलता है? सदा तुम्हारे मनमें संतोष तो बर्त्तमान है? ॥ ३० ॥ जिस किसी प्रकारसे ब्राह्मण संतोष होकर वर्त्ते अर्थात् जो वस्तु मिले उसीमें संतोष रक्खे, स्वधर्मसे च्युत न हो तो यही उसको समस्त फलके देनेवाले हैं ॥ ३१ ॥ और जिसके मनमें संतोष नहीं है वह ब्राह्मण यद्यपि इन्द्र होजाय तो भी सब लोकोंमें घूमता फिरता है, तृष्णाके मारे एक स्थानपर स्थिर नहीं रहता, हे ब्राह्मण! प्रारब्धही तो मनुष्यको राजा रंक करता है * और जिसके पास कुछ भी

---

* **दृष्टान्त**–एक घोडोंके व्यापारीके घोडेसे राजाके पुत्रका कोई रोग जाता रहा राजाने व्यापारीसे कहा कि, इस घोडेकी कीमत ले लो, व्यापारीने कहा, महाराज! यह घोडा कुमारके चढनेको मैंने ऐसेही दिया और मुझे द्रव्यलेनेकी इच्छा नहीं, जब उसने ऐसा कहा, तब राजाने उसका बहुत आदर सन्मानकर विदा किया और कहा कि, यहाँ आते जाते रहियो अब कुछ वर्ष उपरान्त व्यापारीका प्रारब्ध बिगडा धन सब चोरी होगया, घोडे मरगये और जब कुछ उपाय न चला तो राजाके पास आया, राजाने यह समाचार सुन, उसे एक मकानमें टिका दिया और कुछदिन पीछे उससे भेंटकर पूछा कि, तुमको क्या बनाना आता है? व्यापारी बोला कि, मैं चाबुक बनाना जानताहूं, राजाने उसीसमय पाँच रुपये देकर कहा कि, इसके चाबुक बनाओ और बेचो, रहनेके लिये मकान तुम्हें देहीदिया है, तो व्यापारी चाबुक बनानेलगा, कुछ दिन उपरान्त उनमें भी घाटा हुआ–

नहीं है और मनमें सन्तोष है, वह ब्राह्मण सब खेदको त्यागकर आनन्द पूर्वक सोता है ॥ ३२ ॥ जो द्विज आपही मिली वस्तुमें सन्तोष करता है, अपने धर्ममें निष्ठ है और समस्त जीवोंकी रक्षा करता है शान्तस्वभाव अहंकार रहित है उसको मैं भी बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस राजाके देशमें तुम वास करते हो, वह राजा तो तुम पर प्रसन्न है ? क्योंकि जिस राजाके देशमें भली भाँति गौ ब्राह्मणका पालन होता है, वह राजा मुझे अत्यन्त प्यारे लगते हैं ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तम ! समुद्रको उल्लंघन कर जिस कार्य करनेकी इच्छासे आप यहाँपर आये हैं, जो कहने योग्य वार्त्ता होय तो हमारे सन्मुख कहो, जिससे उस कार्यके करनेका उपाय कियाजाय ॥ ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! श्रेष्ठ आसनपर विराजमान् लीलासेही जिन्होंने मनुष्यदेह धारण किया है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पूछनेपर वह ब्राह्मण बोला कि ॥ ३६ ॥ हे मधुसूदन ! रुक्मिणीने आपको एकान्तमें यह पत्री दी है, तब श्रीकृष्णचन्द्रजीकी आज्ञासे उस प्रेमके चिह्नवाली पत्रीको खोलकर वह ब्राह्मण सुनानेलगा, रुक्मिणीने लिखा है कि, हे त्रिलोकीमें सुन्दर ! हे अच्युत अर्थात् अखण्डरूप जबसे श्रवण करनेवाले पुरुषोंके कर्णोंके छिद्रोंद्वारा, हृदयमें प्रवेश कर शोकसन्ताप दूर करनेवाले आपके गुण और दृष्टिवालोंकी दृष्टिके सकल मनोरथोंका लाभरूप श्रीमान्का रूप सुना है, तभीसे मेरा मन आपमें लग रहा है ॥ ३७ ॥ हे मुकुन्द ! हे पुरुषशार्दूल ! कौन कुलवती उदारगुणयुक्त धैर्यवती कन्या तुम्हें जो कि, मनुष्यलोकके अतिप्रिय कुल-शील, रूप, विद्या, अवस्था, धन, घर इन सबमें तुम्हारी ही समान हो, तिन्हें विवाहके समयमें पति स्वीकार न करे ॥ ३८ ॥ हे समर्थ ! इस कारण मैंने अपना पति आपको

-और पाँचों रुपये व्यय होगये, तो राजाने फिर पाँच रुपये देदिये और फिर घटगये, इसी प्रकार पांच पाच रुपये, सात वर्षतक राजाने दिये, परन्तु जमा घटतीही गई, जब आठवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ तो एक रुपया बढा अर्थात् पाँच रुपयेके छः रुपये होगये तब यह देखकर राजाने दश रुपये दिये, फिर अधिक उन्नति हुई और द्रव्य बढनेहा लगा राजाने फिर घोडे लिवादिये उसमें बहुत द्रव्य उपार्जन किया, जब पहलेके समान द्रव्य होगया, तब व्यापारीने विचारा कि, जितना कुछ राजाका द्रव्य हमने लिया है, सो देदेना चाहिये, यह अपने मनसे निश्चय कर राजासे मिलने गया, उस दिन राजाने उसका बहुत सत्कार किया और कहा कि, मेरा आधा राज्य तू लेले, तब व्यापारी क्रोध करके बोला कि, जब मेरे पास कुछ नहीं था तो पाँच, रुपयेसे अधिक नहीं दिये; न मुझसे अच्छी प्रकार मिले और अब आधाराज्य देते हो तब राजा बोला कि, उस समय तेरा प्रारब्ध बिगड रहा था यदि मैं अपना सारा राज्य भी तुझको देदेता, परन्तु तोभी तेरे पास कुछ नहीं रहता, इसलिये थोडेही द्रव्यसे तेरा ग्रह टाल दिया, प्रारब्धके बली होनेसे और बल हीन होजाते हैं ॥

वरण किया है और अपनी देह अर्पण करदी है, मुझे अपनी दासी अर्थात् भार्या बनाओ. हे कमलदललोचन ! मैं आपका भाग हूँ, उसे जैसे सिंहके भागको सियार ग्रहण नहीं कर सक्ता, इसी प्रकार शिशुपाल आनकर मुझे स्पर्श न करे ॥ ३९ ॥ बावली, कुआँ, तालाव, बाग, यज्ञ, दान, नियम, तीर्थ, देवता, ब्राह्मण, गुरु इनकी पूजा करनेसे भगवान् वासुदेव प्रसन्न होते हों तो श्रीकृष्णचन्द्र मेरा हाथ पकडके लेजायँ और शिशुपालादि कोई राजा न आने पावैं ॥ ४० ॥ हे अजित् ! कल्हही विवाहका दिन है, इसलिये तुम गुप्त रूपसे विदर्भदेशमें आओ, परन्तु अकेले मत आना, पीछे सेना भी साथमें लेते आना शिशुपाल और मगधदेशके राजा जरासन्धकी सब सेनाको मथनकर उस पराक्रमके मोलमें मुझ अपनी दासीके संग आसुरविधिसे विवाह करलो ॥ ४१ ॥ कदाचित् कहो कि, तुम तो पुरके भीतर रहती हो, तुम्हारे बंधु बांधवोंके मारे विना कैसे विवाह करूं यह सन्देह मनमें कभी मत करो, क्योंकि हमारे कुलमें विवाहसे प्रथम दिन बडी कुलदेवी अम्बिकाकी यात्रा होती है, सो यात्रा करनेके लिये और देवीकी पूजा करनेको नववधू कन्या बाहर जाती हैं, वहाँसे मेरा लेजाना अति सहज है, जैसे पार्वतीको महादेवजी लेगये ॥ ॥ ४२ ॥ जिनके चरणारविंदोंकी रजसे स्नान करनेको बडे बडे साधु महात्मा अपना महान् अज्ञान दूर करनेके लिये इच्छा करते हैं, हे कमलदललोचन ! जो तुम मेरे ऊपर प्रसन्न न होगे, तो व्रत करके प्राण त्यागन कर दूँगी, यदि, कहो कि, प्राण त्यागनेसे क्या होगा, तो उत्तर यह है कि, वारम्वार त्याग करूंगी तो सौ जन्ममें तो प्रसन्न होगे ? ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोला कि, हे द्वारकानाथ ! यह जो मैं गुप्त संदेशा लेकर आया हूं यदि यह करने योग्य कार्य हो तो शीघ्रता करनी चाहिये, विलम्ब करना उचित नहीं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवत महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

दोहा-तिरपनमें निज प्रियाहित, हरि विदर्भ पग दीन ।
छीन लीन वैरीनसों, अपनी प्रिया प्रवीन ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यदुवंशियोंको आनन्दके देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीका इस प्रकार संदेशा सुनकर ब्राह्मणका हाथ हाथमें पकडकर कहनेलगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, जैसा रुक्मिणीका चित्त मुझमें लगा है, ऐसाही मेरा चित भी रुक्मिणीमें लग रहाहै और चिन्ताके मारे रातको नींद भी नहीं आती, मैं जानता हूँ कि रुक्मने द्वेष करके मेरे विवाहका मने कर दिया है ॥ २ ॥ दुष्ट राजाओंको जीतकर दोषरहित अंगवाली अनन्यगति रुक्मिणीको ॥

दोहा-जैसे घितके काष्ठते, काढहिं ज्वाला जारि ।
तैसे सुन्दरि लाइहौं, दुष्ट असुरदल मारि ॥

जिस प्रकार काष्टके मथनेसे मनुष्य अग्नि निकाल लेते हैं, वैसेही ले आऊंगा ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! मुर दैत्यके मारनेवाले भगवान् रुक्मिणीके विवाहका नक्षत्र जान रथवान्से बोले कि,रथवान् ! शीघ्रही रथ जोतकर लाओ ॥४॥ शैब्य,सुग्रीव, मेघपुष्प,बलाहक नामक घोडोंको रथमें जोत श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख ला सारथी हाथ जोडकर कहने लगा रथ उपस्थित है ॥ ५ ॥ रथको देखतेही शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र प्रथम ब्राह्मणको चढाय पीछे आप चढ शीघ्रगामी घोडोंके द्वारा आनर्त्तदेशसे चलकर एकही रातमें विदर्भदेश पहुँचे ॥ ६ ॥ अपने पुत्र रुक्मके स्नेहवश होकर और उसकी आज्ञानुसार चलनेवाला कुंडिनपुरका राजा भीष्मक शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये पुरकी शोभा और पितृ, देवताओंके पूजनादि कर्म करानेलगा ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त राजा भीष्मकने अपने पुरको शोभायमान करनेके लिये राजमार्गमें झाडू बुहारी दिलवाकर छिडकाव कराया, चित्र विचित्र ध्वजा पताका और बन्दनवारोंसे अपने पुरको अत्यन्त शोभायमान किया ॥ ८ ॥ माला, चन्दन, फूलोंके गहने और स्वच्छ वस्त्रोंसे शोभायमान स्त्री, पुरुष धाराप्रवाहकी भाँति इधर उधर फिर रहे थे और सब मन्दिर अगरकी सुगन्धसे सुगंधित थे ॥ ९ ॥

चौ०–झारैं गली चौहटे छावैं। चोवा चन्दनसों छिरकावैं ॥
पान सुपारी झोराकिये। बिच बिच कनक नारियलदिये ॥
हरे पात फल फूल अपारा। ऐसी घर घर बंदनवारा ॥
ध्वजा पताका तोरण तने। सुभग कलश कंचनके बने ॥
सुरपुर मन लजातहै सोछवि। शोभा बरणि सकै अस को कवि ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! पितृ, देवताओंका पूजन करके और विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन जिमाय राजा भीष्मकने रुक्मिणीका यथावत् स्वस्तिवाचन कराया ॥ ॥ १० ॥ फिर कन्याको भलीप्रकार स्नान कराय, कौतुकसे हाथमें विवाहका कंकण बाँध उत्तम नवीन वस्त्र पहराय अनेक अलंकारोंसे सुशोभित किया ॥ ११ ॥ तब द्विजोत्तम ब्राह्मण सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मंत्रोंको पढकर श्रीरुक्मिणीजीकी रक्षा करनेलगे और अथर्व वेदके मंत्रोंको जाननेवाले पुरोहितने सूर्यादि ग्रहोंकी शान्ति करनेके लिये होम किया ॥ १२ ॥ हे राजन्! विधि जाननेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको सुवर्णरूपी वस्त्र और तिल मिलाकर गुड व दूधवाली बहुतसी गायोंका दानदिया ॥ १३ ॥ जिस प्रकार राजा भीष्मकने अपनी कन्याका मंगल कराया उसी प्रकार चंदेलीके राजा दमघोषने अपने पुत्र शिशुपालके सब मंगलकर्म मंत्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे कराये ॥ ॥ १४ ॥ मतवाले हाथियोंका समूह, रथ, पैदल, घोडे इत्यादि चतुरंगिणी सेनाको साथ लेकर राजा दमघोष कुंडिनपुरमें पहुँचा ॥ १५ ॥ समाचार सुनतेही विदर्भदेशके राजा भीष्मकने अगौनीकर एक सजेहुये स्थानमें उन्हें जनवासा दिया ॥ १६ ॥ तहाँ शाल्व, जरासंध, दंतवक्र, विदूरथ शिशुपाल और पौंड्रक आदि सहस्रों राजा शिशुपालकी ओरके आये ॥ १७ ॥ यह समस्त कृष्ण बलदेवके शत्रु सजकर शिशुपालको कन्या दिलानेके

लिये आये थे और मनमें प्रथमही निश्चय करलिया था कि, कदाचित् बलदेव व समस्त यदुवंशियोंको साथ ले कृष्ण आनकर रुक्मिणीको हरेगा तो उसके संग युद्ध करैंगे इस प्रकार मनमें विचार अच्छे २ बलवान् सिपाही घोडे हाथियोंको संग लेकर संपूर्ण राजा आये ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलदेवजीभी शत्रु शिशुपालकी ओरके राजाओंका साहस सुनकर कहने लगे कि, "रुक्मिणीके लेनेके लिये भाई श्रीकृष्ण अकेला गया है, इस कारण लडाई अवश्य होगी" यह मनमें निश्चय कर वह भी श्रीकृष्णके स्नेहसे हाथी, घोडे, रथ, प्यादे इत्यादि समस्त चतुरंगिणी सेनाको लेकर कुंडिनपुर पहुँचे ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रेष्ठ जंघाओंवाली भीष्मककी कन्या रुक्मिणी श्रीमोहनप्यारेका पैंडा देख देख "ब्राह्मण पत्रीलेकर गया है वह अभी लौटकर नहीं आया" इस प्रकार चिन्ता करनेलगी ॥ २२॥ मुझ मंदभागिनीके विवाहमें अब एकही रात्रि शेष रही है और कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अभीतक न आये और ब्राह्मण जो मेरा सन्देशा लेगया है, वह भी अभीतक लौट नहीं आया। नहीं जान पडता कि, इसका क्या कारण ॥ २३ ॥

चौ०-बिलख वदन चितवै चहुँओर। जैसे चंद्र मलिन भये भोर ॥
अति चिन्ता सुन्दरि जियबाढ़ी। देखैझुकी अटापर ठाढ़ी ॥
चढ़ि २ उझकै खिरकी द्वार। नयननते छाँड़त जलधार ॥
दोहा-बिलखि वदन अति मलिन मन, लेत उसाँस निसास।
व्याकुल वर्षा नयनजल, मोचति कहत उदास ॥

फिर कहने लगी कि, निर्दोष श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे पाणिग्रहणका उपाय तो निश्चय किया होगा, परन्तु "कन्या अभीसे पत्री लिख लिखकर भेजती है" यह दोष विचारकर नहीं आये ॥ २४ ॥

दोहा-मेरा दोष विचारकर, नाहिं आये भगवान।
जो न मिलैं मनभावते, तो देहों तज प्रान ॥
कहाँजाऊँ कैसी करूं, धरत नहीं चित धीर।
दासी प्यासी दरशकी, कब ऐहैं यदुवीर ॥
चौ०-लै बरात आयो शिशुपाला। कैसे बिरमें दीनदयाला ॥

मुझ अभागिनीको विधाता ईश्वर और देवी पार्वती अनुकूल नहीं हैं ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके न आनेसे दुःखी मन समयकी जाननेवाली रुक्मिणी आँसुओंसे व्याकुल हुए नेत्रोंको बंद करके बैठगई ॥ २६ ॥ हे परीक्षित्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजीके आनेका मार्ग जोहती जोहती रुक्मिणीके बायें अंग ऊरु, भुजा और नेत्र यह फडनेलगे, क्योंकि स्त्रियोंके बायें अंग फडकैं तो शुभदायक और प्यारीबातके जनानेवाले हैं ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्णचंद्रने कहा कि. हे द्विजोत्तम! तुम आगे जाकर खबर करो, श्रीकृष्णचंद्रकी आज्ञासे ब्राह्मणने अंतःपुरमें व्याकुलतासे दौडती हुई राजकुमारी रुक्मिणीको देखा ॥ २८ ॥ पतिव्रता रुक्मिणीप्रसन्नवदन और स्वस्थरीतिसे

ब्राह्मणको आताहुआ देखकर अपने मनमें "यह कार्य कर आया है" ऐसा निश्चय कर और उसके लक्षणोंसे पहँचान पूँछनेलगी ॥ २९ ॥ हे राजन्! तब रुक्मिणीजीसे "श्रीकृष्णचंद्र आये हैं" यह ब्राह्मणने कहा और श्रीकृष्णचंद्रने जो कहा था कि "राजाओंको जीत कर रुक्मिणीको ले आऊंगा" यह भी सब वृत्तान्त उनको सुनाया ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णचन्द्रको आयाहुआ जान हर्षित मनसे राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी विचार करनेलगी कि, इस समय ब्राह्मणको सर्वस्व दूं, तौ भी थोडा है, जब ब्राह्मणके देनेयोग्य कोई वस्तु न देखी, तब केवल प्रणाम करके बहुतसा धन्यवाद दिया * ॥ ३१ ॥ कन्याका विवाह देखनेके लिये श्रीकृष्ण बलदेवको आया सुन, नगाडे बजाता हुआ और बहुतसी पूजाकी सामग्री लेकर राजा भीष्मक श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख गया ॥ ३२ ॥ मधुपर्क लाकर आगे धर सुन्दरवस्त्र और अनेक प्रकारकी भेंट देकर विधिपूर्वक राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवका पूजन करनेलगा ॥ ३३ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवको उत्तम स्थानमें टिकाय सेना सेवकों सहित यथायोग्य आतिथ्य करनेलगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जो राजा इकठ्ठे हुएथे उनमें जैसा जिसका पराक्रम, अवस्था, बल और धन था उसके अनुसार सब राजाओंका सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भनगरके पुरवासी श्रीकृष्णचन्द्रका आगमन सुनकर नेत्ररूप अंजलियोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलको पान करने लगे ॥ ३६ ॥ और सब नर नारी विचार करनेलगे कि, दोषरहित रुक्मिणी श्रीकृष्णचन्द्रकेही योग्य हैं, एवं श्रीकृष्णचन्द्र भी रुक्मिणीके पति होने योग्य हैं इसप्रकार परस्पर कहनेलगे ॥ ३७ ॥

दोहा–मकराकृत कुण्डल श्रवण, उर भुज नयन विशाल।
मन्दहँसनि चितवन सुभग, उर वैजन्ती माल ॥

---

* शंका–ब्राह्मणको देनेके योग्य कोई वस्तु त्रिलोकीमें रुक्मिणीने नहीं देखी कि यह वस्तु ब्राह्मणको देनी चाहिये, इसीलिये हार मानकर केवल नमस्कारही किया, यह बडी शंका है, क्योंकि वह ब्राह्मण मुनि तो थाही नहीं उसको तो जो वस्तु देती सो लेलेता फिर क्यों नहीं दी? उस ब्राह्मणको तो धनादिक लेके जो वस्तु संसारमें है, सब वस्तुके लेनेकी इच्छा थी, फिर रुक्मिणीने धनादिक वस्तु क्यों नहींदी कोरा नमस्कार क्यों किया?

उत्तर–लक्ष्मीका पिता जो समुद्र था उसको ब्राह्मणने पान करलिया (पीलिया) और लक्ष्मीका पति जो भगवान् उनको ब्राह्मणने लातसे मारा और लक्ष्मीका छोटा-भाई कमल, उसको ब्राह्मणोंने देवताओंके पूजनके लिये तोडलिया, ब्राह्मणोंका ऐसा कुकर्म देखते लक्ष्मी ब्राह्मणोंसे रुष्ट होगई, ब्राह्मणोंको धनादिक वस्तु नहीं देती हैं इसलिये लक्ष्मीका रूप रुक्मिणीने ब्राह्मणको धन नहीं दिया, कोरा नमस्कार किया ॥

योग्य रुक्मिणीके यही, वर है अतिसुकुमार।
जहाँ तहाँ मिलि कहहिं सब, पुरके नर अरु नार॥
हमरे पुण्यप्रभावसे, रुक्मिणि ब्याहैं श्याम।
यही लालसामें मगन, पुजिहैं विधि सब काम॥

कि, जो कुछ हमने पुण्य किये हैं, उसके प्रभावसे प्रसन्न होकर ईश्वर हमारे ऊपर अनुग्रह करें कि, जिससे श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीका पाणिग्रहण करें ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्रेममें मग्न होकर जिस समय सब पुरवासी कहनेलगे, उसी समय बहुतसी सखियोंके साथ श्रीरुक्मिणीजी पुरसे बाहर अम्बिकादेवीका पूजन करनेके लिये चलीं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका भलेप्रकार ध्यान करते करते श्रीरुक्मिणीजी अम्बिकादेवीका दर्शन करनेके लिये परोंही गईं ॥ ४० ॥ हे परीक्षित् श्रीरुक्मिणीजीके संग मौन धारण किये पुरोहितानी और सखी सहेली जिस समय चलीं, उसी समय कवच पहर पहर और अस्त्र हाथोंमे ले महाबलवान् राजाके सिपाही उसकी रक्षाके लिये संग होलिये और उस समय मृदंग, शंख, ढोल, तुरही, भेरी, रणसिंहादिक अनेक प्रकारके बाजे बजनलगे ॥ ४१ ॥ संगीत विद्यामें अतिनिपुण सहस्रों वेश्या संगमें नाचती हुई चली जाती थीं और माला, चन्दन, वस्त्र आभूषणोंसे श्रृंगार करके और अनेक प्रकारकी सामग्री भेंट लेके ब्राह्मणोंकी स्त्रियें संग गईं ॥ ४२ ॥ गाने और बजानेवाले सूत, बन्दीजन श्रीरुक्मिणीजीके बीचमें करके, चले जा रहे थे ॥ ४३ ॥ हाथ, पाँव धोय, आचमन कर, पवित्र हो, देवीके मन्दिरमें जाय रुक्मिणी अम्बिकादेवीके निकट गईं, ॥ ४४ ॥ विधिपूर्वक वृद्ध ब्राह्मणोंकी स्त्रियें रुक्मिणीजीसे महादेवजीसहित भवानीकी पूजा करानेलगीं ॥ ४५ ॥ जब पूजा कर चुकीं, तब रुक्मिणीजीने मनमें कहा कि, हे अम्बिकापार्वती ! तुम्हारे सन्तानसमेत मंगलरूपिणी मैं तुम्हें बारम्बार प्रणाम करके यही वर माँगती हूं कि, श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों, इस प्रकार मस्तक नवायकर रुक्मिणीजीने प्रार्थना की ॥ ४६ ॥

दोहा–जो विधिसों पूजों तुम्हैं, जगजननी मनलाय।
तो यह वर दीजे शिवे, वर पाऊँ यदुराय॥
चौ०मोपर गौरि कृपा तुम करो। यदुपति पति दे मम दुःख हरो॥

हे राजन् ! इसके उपरान्त जल, चन्दन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, फल, आभूषण और अनेक प्रकारकी भेंटसे अलग अलग दीपकोंकी पंक्तियोंसे देवीकी पूजा करने लगीं ॥ ४७ ॥ इसके पीछे उसी प्रकार रुक्मिणी नमकीन पूए, पान, लावा; सुपारी. गन्ने आदिसे सौभाग्यवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका पूजन करनेलगीं ॥ ४८ ॥ फिर श्रीरुक्मिणीने अम्बिकादेवी और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको नमस्कारकर उनसे प्रसाद और आशीर्वाद लिया ॥ ४९ ॥ फिर मौनव्रतको त्याग, जडाऊ मुँदरीसे शोभायमान श्रीरुक्मिणीजी अपनी

दासीका हाथ पकड मन्दिरसे बाहर निकलीं ॥ ५० ॥ ईश्वरकी मायाकी तुल्य बडे बडे शूरवीर राजाओंको मोहित करनेवाली, सुन्दर कटिवाली, कुण्डलोंके समान शोभायमान मुखवल्ली रुक्मिणी रत्नजडित जडाऊ, करधनी नितम्बोंमें पहरे स्तनोंकी प्रगटता और केशोंकी शंकाके चलायमान नेत्रवाली ॥ ५१ ॥ सुन्दर मुसकान, कुन्दरूके फलकी तुल्य अव्रण और होठोंकी कान्तिसे कुन्दकी कलीके समान दंतपंक्ति पर अरुणाई छाईहुई राजहंसके समान गतिसे और झनकार शब्द करते, नूपुरोंकी प्रभासे शोभित चरणोंसे गमन करती हुई, रुक्मिणीको देख, संगमें जो बडे बडे तेजस्वी शूरवीर योद्धा आये थे, वह सबके सब कामदेवसे पीडित हो मोहित होगये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! उन रुक्मिणीजीकी उदार हँसनि और लज्जापूर्वक चितवनसे समस्त राजाओंके मन हरेगये और वह अस्त्रशस्त्रोंको छोडकर रथ घोडे इत्यादिसे मूढ होकर पृथ्वीमें गिरपडे ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार चलायमान कमलकोशके समान कोमल चरणोंसे धीरे धीरे चली, उस समय श्रीकृष्णचन्द्रके आनेका मार्ग देखती हुई रुक्मणीजीने बायें हाथके नखोंसे अलकोंको उठाय सब आयेहुये राजाओंको देख सन्मुख खडे हुये वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दको देखा॥५५॥

दोहा-पूजि गौरि जबहीं चली, एक कहति अकुलाय ।
सुन रुक्मिणि आये हरी, देख ध्वजा फहराय ॥

चौ०-कम्पित गात सकुच मनभारी । छाँडि सबै हरिसंग सिधारी ॥
ज्यों वैरागी छाँडै गेहू । कृष्णचरण सों करै सनेहू ॥

हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी ज्योंही रथपर चढने लगी, त्योंही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे हरण कर अपने गरुडचिह्नवाले रथमें चढाय क्षत्रियोंकी सेनाका तिरस्कार कर उसे इस प्रकार निकालकर लेगये ॥

दोहा-ज्यों बहु झुंडन स्यारके, परै सिंह बिच आय ।
अपनो भक्षण लेइकै, चलै निडर घहराय ॥

जैसे सियारोंके बीचमें अपने भागको लेकर सिंह बेधडक होकर चला जाता है फिर बलरामादि सब यदुवंशियोंसहित रुक्मिणीको लेकर धीरे धीरे चलनेलगे ॥५६॥ हे नृपोत्तम ! महाअभिमानी जरासन्धादि राजा यशका नाश करनेवाला यह अपना अपमान न सहसके और बोले कि अहो ! हमको धिक्कार है, जिस प्रकार केशरीके भागको कुत्ता चुराकर लेजाता है, वैसेही हम धनुषधारियोंके यशका नाश कर यह गँवार ग्वालिया राजकुमारी रुक्मिणीको चुराकर लिये जाता है. इससे हे सुभटो ! ॥

कवित्त-धावहु रे धावहु रे धरहु रे, धरहु रे, होहु न अधीर धीर वीर ऐसे काजमें । मारहु रे मारहु रे वेग बांध धारहु रे, सुयश पसारहु रे सुभट समाजमें ॥ भाषै रघुराज क्षत्रधर्मको न छोड़हु रे, आगे बढि आडौ युद्ध-

माडौ सुखसाजमें । कहँ सब राज चोरराजका कियो अकाज जियैं कैसे आज शूर लोग ऐसी लाजमें ॥

दोहा-सुनत नृपनके वचन अस, सुभट हिये हरषाय ।
तमकि तमकि तकि तकि चले, तुरतहि जहँ यदुराय॥५७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे
त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

दोहा-चौवनमें रिपुपक्षके, सब राजनको जीति ।
रुक्मिणिको लै द्वारका, करी व्याहकी रीति ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सब राजा अत्यन्त क्रोधित होकर कवच पहर, अपने वाहनोंपर चढकर श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे दौडे ॥१॥ हे परीक्षित् ! जब यादवोंके सेनाध्यक्षने इनकी सेनाको आता हुआ देखा, तो वह लोग भी अपने धनुषकी टंकार करके उनके सन्मुख उपस्थित हुए ॥ २ ॥ युद्धविद्यामें अत्यन्त प्रवीण वह राजा लोग घोडे, हाथी और रथोंपर बैठकर जिस प्रकार मेघ पर्वतोंपर जल वर्षाते हैं, उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३ ॥ सुन्दर कटिभागवाली रुक्मिणी अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रकी सब सेनाको बाणोंसे ढकाहुआ देख, अति भयभीत और विह्वल-नेत्र हो लाज सहित श्रीकृष्णचंद्रका मुख देखनेलगी * ॥ ४ ॥ तब भगवान् वासुदेव रुक्मिणीको डराहुआ जान कहनेलगे कि, हे वामलोचने ! हे सुनयनी ! तुम कुछ भय मत करो, क्योंक हमारे ओरके यादव इनकी समस्त सेनाको क्षणभरमें विध्वंस करदेंगे ॥ ॥ ५ ॥ हे राजन ! गद, संकर्षणादि शूरवीर उन राजाओंका पराक्रम न सह सके और उनके घोडे हाथी और रथोको महा तीक्ष्ण बाणोंसे नाश करनेलगे ॥ ६ ॥ रथी. घुडचढे और हाथियोंपर विराजमान योद्धाओंके पगड्यिोंसहित सहस्रों शिर कटकर गिरने लगे ॥ ॥ ७ ॥ तलवार, गदा और धनुषमे हाथ कट कटकर गिरने और करभके समान जंघायें कट कटकर गिरनेलगीं, अनेक घोडे, खच्चर, हाथी, गधे, मनुष्य इनके शिर कटकर पृथ्वीमें गिरगये ॥ ८ ॥ हे भारत ! जीतनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंने जब इसप्रकार शत्रुसेनाका संहार किया तब अत्यन्त डरकर जरासन्धादि राजा रण छोडकर भागगये ॥ ॥ ९ ॥ जब स्त्री हर जानेसे व्याकुल तेजहीन, उत्साहरहित शिशुपालका मलीनमुख

---

* शंका-श्रीकृष्णकी स्त्री रुक्मिणी श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाली फिर रुक्मिणी युद्ध देखकर दुःखी क्यों हुई ? यह बडे अचम्भेकी बात है ।

उत्तर-युद्धमें बडे बडे शूरमाओंका और वीरलोगोंका नाश हुवा, यह कलंक अपने ऊपर विचार कर रुक्मिणी बहुत दुःखी हुई कि, यह कलंक मुझको जन्म जन्मको लगा और संसारके लोग कहैंगे कि, रुक्मिणीके विवाहमें बहुतसे शूरवीर मारेगये ॥

होगया, तब सब राजा उसके पास आनकर समझानेलगे ॥ १० ॥ कि हे पुरुषसिंह ! तुम अपने मनकी उदासीको छोडदो क्योंकि, देहधारण करनेवालोंको सुख और दुःख सर्वदा नहीं रहते हैं ॥ ११ ॥ जिस प्रकार काठकी पुतली नचानेवालेकी इच्छासे नाचती है ऐसेही ईश्वरके अधीन जीवको सुख दुःख होताहै ॥ १२ ॥ जरासंध बोला कि हे शिशुपाल ! देखो ! इसी कृष्णसे मैंने सत्रहबार तेइस तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध किया, परन्तु मेरी हारही हुई और कुछ शोच न हुआ, केवल एक बार जीता, उसका कुछ हर्ष भी न हुवा, दैवके वश कालने समस्त जगत् चलायमान किया है, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! यद्यपि बडे बडे शूरवीर यूथनाथोंके पतियोंके भी हम पालन करनेवाले थे, तो भी थोडी सेनावाले कृष्णपालित यदुवंशियोंसे हारगये ॥ १५ ॥ जानपडता है कि, इस समय उनके दिन अच्छे हैं, इसी कारण उन्होंने हम ऐसे बलवान् शत्रुओंको जीत लिया, जब हमारे दिन भले आवेंगे तो हम भी जीतेंगे ॥ ॥ १६ ॥ हे महाराज ! जब इसी प्रकार अनेक राजाओंने शिशुपालको समझाया तब अपने बचे बचाये नौकर चाकर और सेनाको लेकर शिशुपाल अपने देशको चला गया और मरनेसे बचे बचाये राजाभी अपने अपने स्थानोंको चलेगये ॥ १७ ॥ इधर एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्णका शत्रु रुक्मी अपनी बहनके हरनेका अपराध न सहकर श्रीकृष्णके पीछे दौडा ॥ १८ ॥ और अत्यन्त क्रोधित हो कवच पहर, धनुष ग्रहण कर, सब राजाओंके सुनानेको महाबलवान् रुक्मीने यह प्रतिज्ञा की ॥ १९ ॥ कि, युद्धमें श्रीकृष्णके मारे विना और रुक्मिणीको लाये विना, मैं कुंडिनपुरमें न आऊंगा ॥ ॥ २० ॥ इस प्रकार रुक्मी प्रतिज्ञा कर और रथमें चढ सारथीसे बोला कि, जहाँ कृष्ण है वहाँ शीघ्रही घोडोंको हांककर ले चलो क्योंकि, मुझ उनसे युद्ध करना है ॥ २१ ॥ मैं आज उस मन्दबुद्धि ग्वालके पराक्रमका मद अपने तीक्ष्ण बाणोंसे चूर्ण करूंगा, जो मेरी बहन रुक्मिणीको बलात्कार हरके लेगया है ॥ २२ ॥ खोटी बुद्धिवाला रुक्मी, भगवान् श्रीकृष्णचद्रके बलको न जान कटुवाक्य कहता हुआ अकेला रथ दौडाकर ॥

दोहा-अरे चोरटा ठाढ़ रहु, लीन्हेसि भगिनि चुराय।
ताको फल आजुहि अबहिं, देहौं तोहिं दिखाय॥
सोरठा-देहौं तोहिं पठाय, आजु अवशि यमलोकमें।
लेहौं भगिनि छुडाय, यदुवंशिनको मोरि मद॥

"खडा रहु खडा रहु" इस प्रकार भगवान् वासुदेवको पुकारने लगा ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त अपने दृढ धनुषको खैंचकर रुक्मने श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा कि, हे यादवकुलकलंक ! एकक्षणमात्र खडा होकर मुझसे युद्धकर ॥ २४ ॥ अरे दुष्टबुद्धि ! जिस प्रकार होमकी सामग्रीको कावा लेजाता है इसी प्रकार तू मेरी बहनको कहाँ चुराकर लिये जाता है? अरे कपटयुद्ध करनेवाले छली ! तेरे घमंडको मैं अभी चूर्ण करता हूँ ॥ २५ ॥ और तेरे भले दिन हैं तो मेरे बाणोंसे पीडित होकर युद्धक्षेत्रमें मत सोवै और

रुक्मिणीको छोडकर जहाँ तेरे सींग समायँ वहाँ चला जा, तब श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें मुसकाय, उसके धनुषको काट छः बाणोंसे रुक्मीको छेदन किया ॥ २६ ॥ आठ बाणोंसे रथके घोडोंको, दो बाणोंसे रथवान्‌को बींधडाला और तीन बाणोंसे ध्वजा काटडाली कि, इतनेहीमें रुक्मने और धनुष लेकर पाँच बाण श्रीकृष्णके शरीरमें मारे ॥ २७ ॥ तब भगवान् वासुदेवने उसका वह धनुषभी काट डाला, फिर रुक्म और धनुष ले आया, उसकोभी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय काट दिया ॥ २८ ॥ रुक्मने जो जो परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल, तलवार, बरछी, भाले हाथमें लिये वह सब भगवान् देवकीनन्दनने काट गिराये ॥ २९ ॥ हे महाराज ! इसके उपरान्त रथसे कूदकर और हाथमें तलवार लेकर मारनेकी इच्छासे, जिस प्रकार पतंग अग्निके सन्मुख झपटता है, उसी प्रकार रुक्म श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर झपटा ॥ ३० ॥ झपटते हुए उस रुक्मकी ढाल तलवारको तिल तिलभर बाणोंसे काटकर पैनी धारकी तलवार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मका प्राण संहार करनेको उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ भाईके मारनेकी इच्छा देख, भयसे व्याकुल होकर पतिव्रता रुक्मिणी नेत्रोंमें आँसू भरके श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंपर गिर यह करुणाभरे वचन कहने लगी ॥ ३२ ॥

चौ०-देवदेव तुम जगपति यदुपति। दीनबन्धु हो कृपासिंधु अति ॥
तुम तो करुणासिन्धु खरारी। मोहिं कलंक लागि है भारी ॥
मारो मत भैया है मेरो। छाँडो नाथ तुम्हारो चेरो ॥
बंधुभीख प्रभु मोको देऊ। इतनो यश तुम जगमें लेऊ ॥
दोहा-यद्दपि कियो अपराध बहु, मेरा बन्धु तुम्हार।
तद्दपि छाँडिये नाथ अब, मेरी ओर निहार ॥

कि, हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे देवेश ! हे जगत्पालक श्रीकृष्णचन्द्र ! हे महाभुज ! मेरे भाईको तुम मत मारो, क्योंकि यह तुम्हारे मारने योग्य नहीं है ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! त्राससे कम्पायमान सब अंग शुष्क मुख, गद्गद कण्ठ कि, जिसकी व्याकुलतासे सुवर्णकी माला गिरी जाती थी, इस प्रकार रुक्मिणीको अपने चरणोंपर गिरीहुई देख करुणावश हो श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ३४ ॥

दोहा-कह्यो रुक्मिणी सों बहुरि, विहँसि रुक्मिणीनाथ।
प्यारी तेरी प्रीतिवश, अब न हरहुँ यहि माथ ॥

बरन् उस दुष्ट कर्म करनेवाले रुक्मको वस्त्रसे बाँध और मूछों सहित शिर मूंड, अभद्र कर अपने रथके पीछे बाँधलिया कि, इस बीचमें ही सब यदुवंशियों सहित बलराम सुखधामने रुक्मकी सेनाको जिस प्रकार हाथी कमलिनियोंका मर्दन करता है, उसी प्रकार मर्दन किया ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त रुक्मकी समस्त सेनाका संहार कर बलदेवजीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आनकर रुक्मको देखा कि, उसका शिर मुंडगया है और मृतकके

समान रथके पीछे बँधाहुआ देखकर सामर्थ्यवान् बलभद्रजीने उसे छोड दिया ॥ ३६ ॥ और अत्यन्त झुँझलाकर कहा कि, हे कृष्ण ! आपने यह बडा निन्दित कर्म किया, जो सालेको पकड बाँधा, हमारी इसमें बहुत निन्दा होगी, क्योंकि शिर, मूछ, दाढी मुँडवाकर विरूप करदेना यही अपने नातेदारका मारना है ॥ ३७ ॥

चौ०-भये सयान नहिं गइ लरकाई । करहु रणहुमें तुम चपलाई ॥
हँसी होयगी सब जगमाहीं । करिहै कोउ सगाई नाहीं ॥
बांधो याहि करी बुधि थोरी । यह तुम कृष्ण सगाई तोरी ॥
अरु यदुकुलको लीक लगाई । अब हमसों को करै सगाई ॥

फिर रुक्मिणीसे बोले कि, हे सुशीले ! तुम्हारे भाईके कुरूप होनेमें हमारा कुछ दोष नहीं है, क्योंकि यह पुरुष अपने कर्मोंका फल भोगता है, सुख दुःखका देनेवाला और कोई नहीं है ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त बलदेवजी श्रीकृष्णचंद्रको समझानेलगे कि, हे भाई ! अपने नातेदारका मारना अपराध करनेपर भी उचित नहीं, उसको अपराधी जान कर छोडदे, क्योंकि वह तो अपने पहलेही दोषोंसे मररहा है, फिर उसके मारनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले हे सुमुखि ! क्षत्रियोंका यही धर्म विधाताने बनाया है कि, जिस धर्मके कारण भाई, भाईका प्राणसंहार कर देता है, फिर साले श्वशुरोंकी तो बातही क्या है ? इसलिये हमारा क्या दोष है ? ॥ ४० ॥ तिसके पीछे श्रीकृष्णसे बोले कि, हे कृष्ण ! राज्य, पृथ्वी, धन, स्त्री, प्रतिष्ठा, तेज और और वस्तुके हेत श्रीमदान्ध अभिमानी राजा लडते हैं परन्तु हमको यह बात उचित्त नहीं ॥ ४१ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि, सब प्राणियोंमें दुष्टहृदय अर्थात् सब बातका बुरा विचारनेवाला जो शिशुपाल उसका बुरा और अपने भाईका भला चाहती हो, यह बात तुमको उचित नहीं, हे रुक्मिणी ! तुम्हारी विषम बुद्धि है, जैसी कि, अज्ञानी पुरुषोंकी होती है इसीलिये तुम्हारा भाई जो सब जीवोंका शत्रुरूप है, उसका तुम अज्ञानी पुरुषोंके समान भला चाहती हो, सो यह तुम्हारी बुद्धिकी भूल है, क्योंकि उसका भला चाहनेसे और सम्बंधियोंका बुरा होगा ॥ ४२ ॥ यह हमारा मित्र, यह शत्रु और यह समान है, इस प्रकार देहाभिमानी पुरुषोंको मोह उत्पन्न होजाता है ॥ ४३ ॥ जैसे जलभरे घडेमें एकही सूर्यके अनेक प्रतिबिम्ब दीखते हैं, आकाश एकही है, परन्तु तो भी घट आदिमें बहुतसे दीखते हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण देहधारियोंमें एकही शुद्ध आत्मा है, उसीको अज्ञानी पुरुष अनेक रूपसे मानते हैं ॥ ४४ ॥ यह जो द्रव्य अर्थात् अधिभूत, प्राण, इन्द्रिय और अध्यात्मक गुण, अधिदैव इतने स्वरूप आत्माके अविद्याने रचे हैं, वह देहधारियोंको संसारमें भटकाते हैं ॥ ४५ ॥ हे पतिव्रता रुक्मिणी ! मिथ्या देहसे आत्माका संयोग नहीं है और इस देहसे वियोग भी नहीं है, यदि कोई कहै कि, देह मिथ्या कैसे हैं ? तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाशक सूर्य है, उसी प्रकार देहका प्रकाश आत्मासे होता है ॥ ४६ ॥ जन्म मरणादि छः विकार देहके हैं, आत्माके कदा-

चित् भी नहीं हैं, जैसे चन्द्रमाकी कला घटती बढती है, चन्द्रमा कभी नहीं घटता बढता, क्योंकि वह तो पूर्णरूप है और जैसे अमावास्याके दिन चन्द्रमाकी कला घटनेसे चन्द्रमाका नाश मानते हैं, उसी प्रकार देहके नाश तिरोभावसे आत्माका नाश कहनेमें आता है ॥ ४७ ॥ जैसे स्वप्नावस्थामें पुरुष अपने आपको विषयके भोगनेके सुखको मिथ्या भोग करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष संसारको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ हे सुहासिनी ! इस लिये तुम अज्ञानसे उत्पन्नहुये आत्माको शेष और मोह देनेवाले शोकका तत्त्वज्ञानसे त्यागन करो और स्वस्थ होओ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् बलदेवजीने जब समझाया, तब सुकुमारी श्रीरुक्मिणीजीने मनकी उदासी त्याग बुद्धिसे मनको सावधान किया ॥ ५० ॥

दोहा-सुनि सुन्दरि मन समझके, किये जेठकी लाज ।
सैन माहिं पियसों कहति, हाँकहु रथ ब्रजराज ॥
चौ०-घूँघट ओट वदनकी करै । मधुरवचन हरिसों उच्चरै ॥
सन्मुख ठाढे हैं बलदाऊ । अहो कन्त रथ वेग चलाऊ ॥

हे राजन् ! शत्रुसे छूटा, हतसैन्य, केवल प्राणही जिसके शेष रहेहैं, प्रभाव और मनोरथ हीन, मुण्डित शिर, दुष्टबुद्धि रुक्म विचार करनेलगा कि, मैं प्रतिज्ञा करके आया था कि, कृष्णको विना मारे और विना रुक्मिणीको लाये कुंडिनपुर नहीं आऊंगा, सो अब क्या करूं ? यह विचार वहाँही भोजकट पुर बसाकर रहनेलगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार समस्त राजाओंको जीतकर राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीको द्वारकापुरीमें लाकर विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ५३ ॥

चौ०-पण्डित तहाँ वेद उच्चरैं । रुक्मिणि सँग हरि भाँवरि फिरैं ॥

हे महाराज परीक्षित् ! उस समय द्वारकापुरीमें घर घर बडा उत्सव होने लगा, क्योंकि यदुवंशियोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी अनन्यभक्ति थी ॥ ५४ ॥ आनन्दमें मग्न, उज्ज्वल उज्ज्वल मणियोंके जडाऊ गहने पहरेहुये स्त्री पुरुष चित्र विचित्र वस्त्र धारणकिये कृष्ण रुक्मिणीके देनेके लिये सुन्दर सुन्दर वस्तु लानेलगे ॥ ५५ ॥ ऊँची ऊँची ध्वजा और चित्र विचित्र माला, वस्त्र रत्नोंकी वन्दनमालाओंसे और द्वार द्वारपर धानकी खीलैं, अंकुर, फूल और जलके भरे कलश और अगर व धूप दीप इत्यादिकोंसे द्वारकापुरी अत्यन्त शोभायमान होनेलगी ॥ ५६ ॥ स्थान स्थानपर छिडकाव होरहाहै, दरवाजोंपर केले सुपारियोंके घने वृक्ष लग रहेहैं और जो सुहृद् राजा बुलायेगयेहैं, उनके मद झरते हाथियोंसे ऊंचे उठाये सुपारी और केलोंके वृक्षोंसे बडी शोभा होरही है ॥ ५७ ॥ अत्यन्त प्रसन्नताके मारे द्वारकावासी दौडे दौडे फिरते हैं और उनके बीचमें कुरुदेश, सृंजयदेश, केकयदेश और विदर्भदेशके राजा भी विवाहमें मिलकर आनन्द प्राप्त करनेलगे ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! इसी प्राकर जहाँ तहाँ रुक्मिणी हरके

लजानेके चरित्रको श्रवण कर राजा और राजाओंकी कन्या बडा आश्चर्य माननेलगीं ॥ ॥ ५९ ॥ हे राजा परीक्षित्! द्वारकापुरीमें पुरवासियोंको लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचंद्रको लक्ष्मी सहित दर्शनकर बडा आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

दोहा-पचपनमें प्रद्युम्नको, भयो जन्म उत्साह।
शंबरसुर हरले गयो, ताहि मारि किय व्याह ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! वासुदेवका अंश जो कामदेव सो प्रथम महादेवजीके क्रोधसे भस्म होगया था, वही अब फिर देह पानेके लिये वासुदेवके यहाँ आया ॥ १ ॥ और वही कामदेव श्रीकृष्णचंद्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें जन्म ले प्रद्युम्न-नामसे विख्यात हुआ, जो कि, अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रसे किसी प्रकार न्यून नहीं था ॥ २ ॥ हे राजन्! एक शंबर नाम दैत्य उसे अपना वैरी जान दशदिनके भीतर कुमार प्रद्युम्नको हरण कर समुद्रमें डाल अपने घरको चलागया * ॥ ३ ॥ एक बडा बलवान् मत्स्य इस बालकको निगलगया, उस मत्स्यको धीमरोंने बडा जाल डालकर और मछलियों सहित पकडा ॥ ४ ॥ उस बडे मत्स्यको लाकर धीमरोंने शंबरासुरकी भेंट किया और शंबरासुरने रसोई बनानेवालोंको दिया उन्होंने रसोईमें लाकर छूरीसे इस अद्भुत मत्स्यका हृदय विदीर्ण किया ॥ ५ ॥ तो उस मत्स्यके पेटमें बालकको निकार उन्होंने मायावतीको देदिया जब मायावतीको अत्यन्त शंका हुई तब देवर्षि नारदजीने आनकर उससे सब वृत्तांत कहा कि, यह बालक तेरा स्वामी कामदेव है और श्रीकृष्ण-चंद्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें उत्पन्न हुआ है. इसप्रकार उत्पत्ति और शंबरासुर जैसे समुद्रमें

---

* **शंका**-श्रीकृष्णचंद्रकी बसाई हुई द्वारकापुरीमें कपट करके कोई प्राणी वहाँ नहीं जासक्ता और कपटवेषधारी जो कोई द्वारकाके भीतर चलाभी जाय तो वह उसी समय भस्म होजाता है.क्योंकि क्षण क्षणमें द्वारकापुरीके चारों ओर सुदर्शनचक्र घूमता रहता है, वही द्वारकापुरीकी रात दिन रक्षा करता रहता है, ऐसी कठिन द्वारकापुरीमें शंबरनाम दैत्य कैसे चलागया ? और भगवान्‌के पुत्रको कैसे लेगया यह महा आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर-जिस समय श्रीकृष्णचंद्रने द्वारकापुरीको बसाया था उस समय यह आज्ञा दी थी कि, हे सुदर्शनचक्र! तुम रात दिन द्वारकापुरीके चारोंओर घूमते रहना और रक्षा करते रहना, परन्तु ब्राह्मण वंश चाहे तो उसको पुरीमें जानेके लिये मत रोकना और ब्राह्मण कपटरूप धारण करके आवै तो उसको भी मत रोकना इस प्रकारकी श्रीकृष्णकी आज्ञाको शंबरासुर जानकर ब्राह्मणका रूप बनाकर द्वारकापुरीमें चलागया और श्रीकृ-ष्णके पुत्रको चुराकर ले आया ॥

डाल आया था वहाँ जिस प्रकार इसे मत्स्य निगलगया सो सब कह सुनाया ॥ ६ ॥ "शिवजीने जब कामदेवको भस्म किया था, तब रतिके विलाप करनेपर उसे समझाकर कहा था कि, तू शंबरासुरके यहाँ जाकर वास कर वहाँ तेरा पति तुझे रसोईघरमें मिलेगा तू उसे पाल लीजियो मछलीके उदरसे प्राप्त होगा. तबसे रति रूप छिपाये वहाँ रहती थी" वह जो कामदेवकी स्त्री थी, सो बडी पतिव्रता और उसका नाम रति था, अपने पति कामदेवका जो देह भस्म होगया था, सो उसके उत्पन्न होनेके लिये प्रतीक्षा कर रही थी ॥ ७ ॥ वह मायावती कामदेवकी स्त्रीको शंबरासुरने मूँग भात करनेके लिये अपने पास रक्खा था, सो वह उस बालकको कामदेव जान उसपर अत्यन्त स्नेह करनेलगी ॥ ८ ॥ हे राजा परीक्षित्! थोडेही दिनोंमें यौवन अवस्थाको प्राप्त होकर श्रीकृष्णचंद्रका पुत्र प्रद्युम्न देखनवाली स्त्रियोंको मोह उत्पन्न करनेलगा ॥ ९ ॥ कमलदलसे बडे नेत्र, लम्बी भुजायें, मृत्युलोकमें सुन्दर ऐसे अपने पति प्रद्युम्नको लाजभरी मुसकान और उठी भ्रुकुटीसे देख प्रीति करके सुरतसम्बन्धी जो भाव हैं, उनसे वह रति सेवन करनेलगी ॥ १० ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीने कहा कि, हे माता! जान पडता है कि, तुम्हारी मति और प्रकारकी होगई है, इसलिये मातृभावको त्याग कर स्त्रीके समान आचरण करती हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर रतिने कहा कि, तुम भगवान् वासुदेवके पुत्र हो, शंबरासुर तुम्हें चुराकर ले आया है मैं तुम्हारी स्त्री हूं रति मेरा नाम है. आप कामदेव हो ॥ १२ ॥ तुम जब दशदिनके भी नहीं थे, तब शंबरासुर समुद्रमें डाल आया था और वहाँ तुम्हें एक मत्स्य निगलगया, हे प्रभो! यहाँ आप मत्स्य के पेटमेंसे आयेहैं ॥ १३ ॥ तुम्हारा शत्रु शंबरासुर बडा मायावी है, सैकडों माया जानता है इसलिये असह्य और दुर्जय है उसको मोहनादि मायासे आप मारिये ॥ १४ ॥ क्योंकि तुम्हारे ढूँढनेके लिये स्नेहसे अति व्याकुल परम दीन तुम्हारी माता टिटिहरीके समान शोच कर रही है और बिना बछडेके गौकी समान आतुर है ॥ १५ ॥ इस प्रकार मायावती स्त्रीने कह सब मायाओंको नाश करनेवाली महामाया महात्मा प्रद्युम्नजीको दी ॥ १६ ॥ तब प्रद्युम्नजीने शंबरासुरके पास आकर और उसका असह्य वचनोंसे तिरस्कार कर कलह उत्पन्न करके युद्ध करनेके लिये बुलाया ॥ १७ ॥ हे राजन्! खोटे वचनोंसे तिरस्कार पाय शंबरासुर जिस प्रकार ठोकर लगनेसे सर्प फुफकार मारता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधित हो लाल लाल नेत्र किये और गदा हाथमें लेकर निकला ॥ ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त शंबरासुरने गदाको फिराय महात्मा प्रद्युम्नजीके ऊपर डालकर वज्रपातके समान कठोर शब्द किया ॥ १९ ॥ हे परीक्षित! भगवान् प्रद्युम्नजीने अपने ऊपर आती हुई उस गदाको चूर्णकर और महाक्रोधित हो एक गदा शंबरासुरको मारी ॥ २० ॥ तब शंबरासुर मय दैत्यकी बताई मायाका आश्रय ले आकाशमें जाकर श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ उन पत्थरोंकी वर्षासे पीडित होकर कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने सब मायाओंको नाश

करनेवाली अपनी सत्त्वगुणी मायाको बुलाया ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त शंबरासुरने गुह्यक, गंधर्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंकी सहस्रों माया छोडी परन्तु कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने उसी समय सब मायाओंको नाश कर दिया ॥ २३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! महात्मा प्रद्युम्नजीने महातीक्ष्ण पैनी धारकी तलवार लेकर कुण्डल, किरीट और दाढी मूछों सहित शंबरासुरका मस्तक काट लिया ॥ २४ ॥ तब आकाशसे देवतालोगोंने फूल वर्षाये और स्तुति करी और फिर आकाशमें विचरनेवाली स्त्रियोंने आकाशमार्गमें होकर महात्मा प्रद्युम्नजीको द्वारकापुरीमें पहुँचादिया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! सहस्रों स्त्रियोंसे सुशोभित अंतःपुरमें आकाशसे उतरकर बिजली सहित जैसे मेघ आता है, उसी प्रकार आये ॥ ॥ २६ ॥ वर्षाकी घटाओंके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीतवस्त्र धारण किये लम्बी भुजा अरुण नेत्र. सुन्दर मुसकान मनोहर मुख, नीली टेढी अलकावलीसे शोभायमान मुखारविन्दवाले प्रद्युम्नजीको देखकर " श्रीकृष्ण आये " यह जान स्त्रियें लज्जित होकर जहाँ तहाँ छिपगई ॥ २७ ॥ २८ ॥ और कुछ एक स्त्रियें कोई न्यूनाधिक बात देखकर " यह कृष्ण नहीं हैं " यह निश्चयकर प्रसन्न हो आश्चर्यमान स्त्रियोंमें श्रेष्ठ रतिसहित कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीके पास आई ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त स्नेहसे जिसके स्तनोंसे दूध चुवे, नीले कटाक्ष और मनोहर वचनवाली, राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी अपने नष्ट हुये पुत्रको स्मरणकरके कहने लगी ॥ ३० ॥ कि, मनुष्योंमें श्रेष्ठ कमलकी समान नेत्रवाला यह बालक किसका है ? और किस स्त्रीने इसे गर्भमें धारण किया है ? और इसे यह स्त्री किसकी मिली है ? ॥ ३१ ॥ मेरा भी पुत्र नष्ट होगया है और सूतिकागृहमेंसे ही उसे कोई लेगया है, जो कदाचित् जीवित होगा तो इसीके समान बडा और ऐसाही उसका स्वरूप होगा ॥ ३२ ॥ परन्तु बडा आश्चर्य है कि [शार्ङ्ग] धनुषधारी श्रीकृष्णचन्द्रके समान रूप इसने कैसे पाया इसका स्वरूप और हाथ पाँवका चलाना, बोलना, हँसना चितवन इत्यादि भी सब श्रीकृष्णचन्द्रकेही समान हैं ॥ ३३ ॥ जान पडता है कि, जो बालक मैंने गर्भमें धारण किया था, वह निश्चय यही है, क्योंकि प्रतिक्षण इसमें मेरी प्रीति बढतीही जाती है और मेरी बाँई भुजा भी फडक रही है, ॥ ३४ ॥ हे राजा परीक्षित् ! विदर्भदेशके राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी बैठीहुई इस प्रकार चिन्ता कर रही थी कि, इतनेहीमें उत्तम यशवाले भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र वसुदेव देवकीको संग लेकर वहाँ आये ॥ ३५ ॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र यह स्वयं जानते थे कि, पत्नीसहित पुत्र आया है, परन्तु तो भी चुपचाप रहे, इतनेहीमें देवर्षि नारदजीने आन कर जिस प्रकार इनको शंबरासुर चुराकर लेगया और समुद्रमें डाल आया, वहाँ मछली निगल गई वह सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ३६ ॥ कृष्णके अंतःपुरमें वास करनेवाली स्त्रियें बहुत कालके पीछे जैसे मृतकशरीरमें प्राण आते हैं, उसी प्रकार प्रद्युम्नजीको आयाहुआ श्रवण कर बडा आश्चर्य मान उनकी बडाई करनेलगीं ॥ ३७ ॥ परीक्षित् वसुदेव देवकी

और कृष्ण बलदेव तथा रुक्मिणीजी व और स्त्रीपुरुष प्रद्युम्नजीसे मिलकर आनन्दमें मग्न होगये ॥ ३८ ॥ उस समय सब द्वारकावासी प्रद्युम्नको आयाहुआ सुन " अहो ! बडा आश्चर्य है ? " मृतककी तुल्य यह बालक आया है, इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३९ ॥ अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रके समान स्वरूपवान्, प्रद्युम्नजी हमारे पुत्र हैं यह विचार एकान्तमें अत्यंत प्रेमसे प्रद्युम्नजीकी माता रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी रानी भ्रान्त हो प्रद्युम्नजीकी सेवा करनेलगीं, सो यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र कामदेवका स्मरण करतेही मन चलायमान होजाता है, फिर साक्षात् मूर्तिका दर्शन करतेही यदि स्त्रियें सेवा करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥

स०-रूप अनूपम जासु विलोकत मोहि गई सिगरी महतारी ।
कृष्णको नंदन दुष्टनिकन्दन है जगवंदन आनँदकारी ॥
जो विन अंग प्रभाव पसारि विमोहत है तिहुँलोककि नारी
कौन अचर्य अहै रघुराज जो मोहिं गईं तेहिं सांग निहारी ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

दोहा-छप्पनमें हरिको वृथा, मणिको लगो कलंक ।
सत्राजितको मणि दई, लई सुता सुमयंक ॥

इसके उपरान्त श्रीशुकदेवजी कहनेलगे कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! अब सत्राजित्की कथा वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर श्रवण कीजिये कि, प्रथम अपराध करके सत्राजित्ने अपने पापकी निवृत्तिके लिये पीछे अपनी कन्याको स्यमंतकमणिके साथ श्रीकृष्णचन्द्रको देनेका उपाय किया था ॥ १ ॥ तब राजा परीक्षित् कहने लगे कि, हे योगीश्वर शुकदेवजी ! सत्राजित्ने श्रीकृष्णचन्द्रका क्या अपराध किया और स्यमंतकमणि उसने कहाँसे पाई ? और पीछे किसलिये अपनी कन्या श्रीकृष्णचन्द्रको दी, यह सब हमारे आगे विस्तारसहित वर्णन करो ॥ २ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! सत्राजित् भगवान् सूर्यनारायणका परमभक्त और मित्र था, इसलिये प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने सत्राजित्को स्यमंतकमणि दी ॥३॥ हे महाराज ! सत्राजित् उस मणिको कण्ठमें पहर सूर्यके समान प्रकाशमान् हो द्वारकापुरीमें आया उस समय उसके तेजसे यह भी ज्ञात नहीं होता था कि, यह सत्राजित् आरहा है ॥४॥ तेजकी चकचौंधाके कारण दृष्टि चौंधजानेसे मनुष्य सत्राजित्को दूरसे आताहुआ देखकर उग्रसेनकी सभामें चोपड खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे " यह सूर्यभगवान् आरहे हैं " इस प्रकार कहनेलगे ॥ ५ ॥ हे नारायण ! हे शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण करनेवाले ! हे दामोदर ! हे कमलनेत्र ! हे गोविन्द ! हे यादवोंके आनन्ददायक ! आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे जगत्पति !

तुम्हारे दर्शन करनेके लिये सूर्य भगवान् अपनी तीक्ष्ण किरणोंके समूहसे मनुष्योंके नेत्रोंको चुरातेहुये चले आते हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! त्रिलोकीके देवताओंमें श्रेष्ठ देवताभी आपका मार्ग ढूँढते हैं और इसीलिये यादवोंमें छिपा जान आपके ढूँढनेको सूर्य भगवान् आरहे हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! कमलदलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अज्ञानी पुरुषोंकी यह बात सुन हँसकर कहनेलगे कि, यह सूर्यदेव नहीं हैं, मणि करके प्रकाशमान सत्राजित् आरहा है॥९॥ इसके उपरान्त सत्राजित्ने अपने घरमें मांगलिक कर्म करवाय और देवमन्दिरमें ब्राह्मणोंसे पूजा कराय वहां उस मणिको स्थापित किया*॥१०॥ हे भारत ! वह मणि नित्यप्रति(चार मनका भार)आठ भार सुवर्णउगलती थी,उस मणिमें एक यह भी प्रभाव था कि, जहाँ वह मणि रहै, उस देशमें कभी दुर्भिक्ष न पडै, अकालमृत्यु तथा अरिष्ट न हो, सर्प नहीं काटै, मनुष्यके देहमें दुःख न हो, अशुभ दृष्टि न आवै और मायावी पुरुष अर्थात् माया जाननेवाले भी उस देशमें वास नहीं करसक्ते हैं॥११॥ एक समय श्रीकृष्णचन्द्रने वह मणि राजा उग्रसेनके लिये सत्राजित्से माँगी, परन्तु सत्राजित्ने लोभके वश होकर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रको नहीं दी और अपने मनमें "श्रीकृष्णको कैसे मना करूं" यह भी विचार न किया ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त कुछ समय व्यतीत होनेपर सत्राजित्का भाइ प्रसेन उस महाप्रकाशशाली मणिको कण्ठमें पहर घोडेपर चढकर वनमें शिकार खेलनेको गया ॥ १३ ॥ कि,इतनेहीमें एक सिंह घोडे सहित प्रसेनको मार मणि लेकर पर्वतकी कन्दरामें जानेलगा, उसी समय मणि लेनेकी इच्छासे जाम्बवान् ऋच्छने उसे मारडाला ॥ १४ ॥ और अपने बिलमें जाकर उस मणिको पुत्रका खिलौना किया, इधर सत्राजित् अपने भाई प्रसेनको शिकार खेलकर वनसे न आयाहुआ जान चिन्ता करने लगा ॥ १५ ॥ कि, मणि कण्ठमें धारण करके मेरा भाई वनमें शिकार खेलनेको गयाहै और उस मणिपर कृष्णका दाँत है इसलिये जान पडता है कि, भाईको श्रीकृष्णने मारडाला, इस बातको सत्राजित्ने अपनी स्त्रीसे कहा तो उसके मुखसे सुनकर

---

*शंका–सत्राजित् यादव देवताके मन्दिरमें ब्राह्मणोंसे मणिको क्यों स्थापन कराया ? देवमन्दिरमें उस मणिका आपही आप क्यों स्थापन नहीं किया ?

उत्तर–सूर्य सत्राजित्को मणि देके पीछेसे सत्राजित्से कहा कि,इस मणिको रात दिन धारण मत करना जो तुम्हारी अग्निहोत्र कोठरी है उसमें इस मणिको रखदेना, सत्राजित् सूर्यका ऐसा वचन सुनके अपने घरको आया और विचार किया कि, विना दूसरा स्नान किये देवमन्दिरमें कैसे जाऊं ऐसा विचार करके जबतक स्नान करनेकी तयारी की, तवतक ऋषिलोगोंसे मणिको रखायके आप स्नान करके तब अग्निहोत्रकी कोठरीमें होम करनेके लिये गया, इसलिये देवमन्दिरमें ब्राह्मणों करके सत्राजित्ने मणिको स्थापन किया ॥

मनुष्य गुप्त रीतिसे बातें करनेलगे * ॥ १६ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यह यशका नाश करनेवाला कलंक लगा सुन और बहुतसे द्वारकावासियोंका संग ले प्रसेनके ढूँढनेको चले ॥ १७ ॥ हे राजन्! वनमें सिंहसे मारे प्रसेन व घोडेको देख और आगे पर्वतके ऊपर ऋच्छसे मारेहुये सिंहको सब द्वारकावासी देखनेलगे ॥ १८ ॥ बडी अंधेरी भयानक ऋच्छराज जाम्बवान्के बिलपर सब प्रजाको बाहर खडा करके आप अकेलेही उसके भीतर गये ॥१९॥ तहाँ उस मणिसे बालकको खेलताहुआ देख मणि लेनेकी इच्छासे आप भी बालकके समीपही खडे होगये ॥ २० ॥ प्रथम कभी न देखनेके कारण मनुष्य श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर डरपोककी नाई धाई पुकारने लगी तब महाबलवान् जाम्बवान् धाईका पुकारना सुन क्रोधित हो सामने दौडकर आया ॥ २१ ॥ क्रोधी जाम्बवान् श्रीकृष्णके प्रभावको न जान और उनको साधारण पुरुष जान, अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करने लगा ॥ २२ ॥ परस्पर जीतनेकी इच्छासे, श्रीकृष्ण और जाम्बवान्का शस्त्र, पत्थर, वृक्ष और भुजाओंसे महाघोर संग्राम होनेलगा, जिस प्रकार मांसके लिये दो शिकारी पक्षी लडते हैं ॥ २३ ॥ वज्रपातके समान कठोर दृष्टिसे खेदरहित अट्ठाईस दिन रात परस्पर युद्ध हुआ ॥ २४ ॥ जब श्रीकृष्णके मुष्टिकके प्रहारसे उसके सब अंग शिथिल होगये, बल घट गया और पसीना आगया, तब जांबवान् महा आश्चर्य मानकर कहने लगा ॥ २५ ॥ कि, समस्त प्राणियोंके प्राणमें जो बल है और सहोबल अर्थात्, इन्द्रिय, हृदय, देह इत्यादिकोंका बल आपही हो और विष्णुभगवान् पुराणपुरुष कृपालु सबके ईश्वर आपही हो ॥ २६ ॥ विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकके तुम निश्चय निमित्तकारण हो और उत्पत्तिके योग्य पदार्थके उपादानकारण हो और समस्त प्रेरणावालोंके ईश्वर तुम कालरूप हो, तथा आत्मा जीवके उत्कृष्ट आत्मा हो ॥ २७ ॥ विष्णु पुराण हो, इसीलिये मेरे इष्टदेव रघुनाथ हो, जिन रघुनाथजीके कुछेक क्रोधित भृकुटि कटाक्षपातसे मगर और बडे बडे ग्राह दुःखित होगये, तब समुद्रने मार्ग दिया और जिन श्रीरामचन्द्रजीने अपना यश प्रगट करनेके लिये

---

* दृष्टान्त—सत्राजित्ने स्त्रीसे कहा कि, घरकी बात किसी स्त्रीसे नहीं कहना (दृष्टान्त) एक बनियाँ था सो दिशाको गया, वहां उसने दोनों धोंटोंके बीचमें नीचे कौवेका पंख पडा था, देखकर यह वहम हुआ कि, यह हमारे पेटसे निकला है, सो घर आय अपनी घरवालीसे बोले कि, आज हमारे पेटसे कौवेका पंख निकला, जाने क्या रोग हुआ उसने टहलनियोंसे कही, टहलनियें औरके घर जाकर बोली कि, फलाने साहजीके पेटमेंसे पांच कौवे निकले! यह हमने अपनी आंखोंसे देखा, उस स्त्रीने औरसे कहा कि, साहजीके पेटमेंसे पचास कौवे रोज निकला करतेहैं उसने औरसे पांचसौ कहे कहाँतक कहैं, जब वह लाला बाहर निकले तो लोग कहने लगे कि, जब यह लाला दिशाको जाते हैं, तो इनके पेटमेंसे दो हजार कौवे निकलते हैं, स्त्रीसे बात कहनेमें यह दोष है कि, निकली होठों चढगई कोठों ॥

पुल बाँधा, लंका जलाई, महा तीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसराज रावणके शिर काटकर पृथ्वीमें डाले सो मुझे निश्चय विदित होता है कि, आप मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥ २८ ॥ हे परीक्षित्! जब इस प्रकार जाम्बवान्‌को ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उससे कहने लगे ॥ २९ ॥ कमलनेत्र श्रीकृष्णचन्द्र सुखके देनेवाले अपना हाथ परम कृपाकर अपने भक्त जाम्बवान्‌के ऊपर धर प्रेमगर्भित वाणीसे कहने लगे ॥ ३० ॥ हे ऋच्छराज जाम्बवान्! हम मणि लेनेके लिये यहाँ तेरे बिलमें आये हैं, क्योंकि हमें एक मिथ्या कलंक लगा है, उसे मणि लेजाकर दूर करेंगे ॥ ३१ ॥ यह वचन सुनतेही जाम्बवान्‌ने बडे आनन्दपूर्वक मणिसहित अपनी कन्या जाम्बवती सेवा करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ ३२ ॥ हे राजन्! जिन द्वारकावासियोंको श्रीकृष्णचन्द्र बिलके बाहर खडा कर गये थे, उन्हें श्रीकृष्णका मार्ग देखते जब बारह दिन होगये, तब उन्होंने जाना कि, श्रीकृष्ण अब नहीं निकलेंगे इसलिये सब दुःखित होकर द्वारकापुरीको चलेगये ॥ ३३ ॥ बिलमेंसे श्रीकृष्णचन्द्र नहीं निकले, यह बात द्वारकावासियोंके मुखसे श्रवणकर देवकी, रुक्मिणी, वसुदेव और सुहृदजन तथा जातिके मनुष्य सबही अत्यन्त चिन्ता करनेलगे ॥ ३४ ॥ और सब द्वारकावासी दुःखित होकर सत्राजित्‌को दुर्वाक्य कहते श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनेकेलिये महामाया दुर्गादेवीकी पूजा करनेलगे ॥ ३५ ॥ जब देवीकी पूजा करनेसे "श्रीकृष्णको देखोगे" इसप्रकार द्वारकावासियोंको देवीने आशीर्वाद दिया तब उसी समय सिद्धमनोरथ श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकावासियोंको आनन्द देते स्त्री सहित आये ॥ ३६॥ हे राजन्! जिसप्रकार कोई मृतक पुरुष फिर लौट आवे, उसी प्रकार मणि पहरे स्त्रीको लिये श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख समस्त द्वारकावासी परम आनंदित हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त सभामें राजा उग्रसेनके पास सत्राजित्‌को बुलाकर "जाम्बवान् ऋच्छपै से मणि लाये हैं" यह कहकर वह मणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्‌को दे दी॥ ३८ ॥ सत्राजित् मणि ले अत्यन्त लज्जित हो और मुख नीचाकर पछताताहुआ घरको चलागया ॥ ३९ ॥ महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे विरोध हुआ जान व्याकुल हो, सत्राजित् अपने पूर्व अपराधको वारंवार स्मरण करके यह पाप कैसे दूर हो! और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कैसे प्रसन्न हों! इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥ ४० ॥ अब मैं क्या कर्म करूं कि, जिससे मेरा कल्याण हो! क्योंकि, मैंने विना विचारे श्रीकृष्णचन्द्रको दोष लगाया है, मैं अत्यन्त कृपण मंदबुद्धि और द्रव्यका लोभी हूं, इसलिये अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि, जिससे मनुष्य मुझे बुरा न कहैं ॥ ४१ ॥ हे भरतवंशावतंस! इसप्रकार सत्राजित्‌ने विचार करके यह निश्चय किया कि, श्रीकृष्णचन्द्रको मैं अपनी कन्या दूंगा और पीछेसे दहेजमें मणि भी देदूंगा यही अच्छा उपाय है, इसके अतिरिक्त और उपायसे मेरा अपराध दूर न होगा, इस प्रकार बुद्धिसे स्थिर करके सत्राजित्‌ने मंगलरूप अपनी कन्या और मणिको स्वयं ही उपाय करके श्रीकृष्णचन्द्रके अर्पण करी ॥ ४२॥ ४३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने भी सुन्दर स्वभाव रूप उदारतादि गुणयुक्त सत्यभामाका पाणिग्रहण किया, जिसको पहले कृतवर्मादि

कई यादव माँग चुके थे॥४४॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! तब श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्से कहा कि,यह मणि हमको नहीं चाहिये क्योंकि तुम सूर्यके भक्तहो, इसलिये यह मणि तुम्हारेही पास रहेगी और इससे जो सुवर्ण होगा सो हमारे यहाँ भिजवादेना कारण कि, तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है इस कारण तुम्हारा जो धन है सो हमाराही है, यह भगवान् श्रीकृष्णचंद्रका गूढ अभिप्राय था ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे
षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

दोहा-शतधन्वाके हतनको, जो कुछ लगो कलंक।
मणि मँगाय अक्रूरसे, मेटो सतवन अंक॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ ! यद्यपि पांडवगण बिलमें होकर, लाक्षा भवनसे बाहर निकल गये यह बात आप भली प्रकार जानते थे परन्तु तोभी पांडव और कुन्तीको जलाहुआ सुन कुलोचित व्यवहार करनेके लिये बलरामजीको संग लेकर श्रीकृष्णचंद्र कुरुदेशको गये ॥ १ ॥ भीष्म पितामह, विदुरसहित कृपाचार्य, गान्धारी द्रोणाचार्य इनसे श्रीकृष्णचंद्र कहनेलगे कि, हाय ! पांडव जलगये और बडाही कष्ट उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ हे राजन् ! कुछ दिनोंके पीछे अक्रूर और कृतवर्मा यह दोनों अवसर पाय शतधन्वासे कहनेलगे कि, इस समय सत्राजित्से मणि क्यों नहीं छीन लेता, क्योंकि जिस सत्राजित्ने अपनी कन्यारत्न हमको देनी स्वीकार कर फिर कृष्णको व्याहदी, वह सत्राजित् अपने भाई प्रसेनके पीछे क्यों न जाय अर्थात् मरे क्यों नहीं ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसप्रकार अक्रूर और कृतवर्माके बहँकानेसे बुद्धिहीन और क्षीणजीवन हो पापी असाधु शतधन्वाने शयन करते हुए सत्राजित्का शिर काटलिया ॥ ५ ॥ कसाई जिस प्रकार पशुका वध करता है, ऐसेही सत्राजित्को जब शतधन्वा मारकर चलागया तब सत्राजित्की स्त्री अनाथके समान पुकार पुकार कर रोदन करने लगी ॥ ६ ॥ इसके पीछे अपने पिता सत्राजित्को माराहुआ देख सत्यभामा "हाय पिता ! हाय पिता ! !" कहकर अत्यन्त विलाप करनेलगी ॥ ७ ॥ फिर मृतक पिताकी देहको तेलकी कोठरीमें रखकर सत्यभामा हस्तिनापुरको चलीगई, यद्यपि शतधन्वाने सत्राजित्को मारा है यह बात अंतर्यामी श्रीकृष्णचंद्रने प्रथमही जानली थी परन्तु तोभी सत्यभामा "मेरे पिताको शतधन्वाने मारा है" यह बात दुःखित होकर कहने गई ॥ ८ ॥

चौ०-देखतही उठ बोले हरी। घरहै कुशल क्षेम सुन्दरी॥
सतभामा कहि जोरे हाथ। तुमविन कुशल कहाँ यदुनाथ॥
शतधन्वा मेरो पितु मारो। बुरो भलो तुम आप विचारो॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजी सत्राजित्का मरना सुन और अपने मनुष्यावतारका कारण जान "हमको महाकष्ट उपस्थित

हुआ है" इसप्रकार कह और आँखोंमें आँसू भरकर विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त सत्यभामा और अपने भाई बलदेवजीको साथ लेकर श्रीकृष्णचंद्र हस्तिनापुरसे द्वारकापुरीमें आनकर शतधन्वाके मारने और उससे मणि लेनेका उपाय करनेलगे ॥ ॥ १० ॥ यहाँ शतधन्वाने सुना कि, श्रीकृष्णचंद्रने मेरे मारनेका उपाय किया तब वह अत्यन्त भयभीत होकर प्राण बचानेके लिये कृतवर्मासे सहायके निमित्त कहा तब कृतवर्माने उत्तर दिया ॥ ११ ॥ कि, भाई ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेवजीका अपराध मैं कभी न करूंगा, क्योंकि उनका अपराध करके किसका कल्याण होगा ॥ १२ ॥ देखो इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे द्वेष करके कंस लक्ष्मीसे भ्रष्ट होकर अपने भाइयों सहित मारागया और मगधदेशके राजा जरासन्धने तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर सत्रहवार युद्ध किया परन्तु युद्धमें हार अंतको विरथ होकर चलागया ॥ १३ ॥ जब कृतवर्मासे कोरा जवाब पाया तब यह निपट उदास हो, अक्रूरजीके पास जाकर कहने लगा, तब अक्रूरजीने कहा कि, भाई ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पराक्रम जानलेनेपर कौन पुरुष उनसे विरोध करेगा ? ॥१४॥ जो ईश्वर लीलापूर्वक इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करता है, उसकी मायासे मोहित होकर उसकी चेष्टाको ब्रह्मादिक भी नहीं जानते ॥ ॥ १५ ॥ देखो सातवर्षकीही अवस्थामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन पर्वतको उखाडकर जिस प्रकार बालक छत्राकको उठाता है, उसी प्रकार उठालिया ॥ १६ ॥ उन्हीं अद्भुतकर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिये नमस्कार है और जो सबके आदि कारण, निर्विकार सबके आत्मा हैं, उन्हें हम केवल नमस्कार करते हैं ॥ १७ ॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार जब अक्रूरजीने भी सूखा उत्तर दिया, तब शतधन्वा अति घबराय मणि अक्रूरके पास रख, चारसौ कोस चलनेवाले घोडेपर चढकर भागगया ॥ ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार शतधन्वा भागा, तब राम कृष्ण गरुडध्वजावाले रथमें बैठ शीघ्रगामी घोडोंसे श्वशुरके मारनेवाले शतधन्वाके पीछे दौडे ॥ १९ ॥ जब शतयोजनसे अधिक घोडेसे न चलागया और मिथिलापुरीके बागमें गिरपडा, तब शतधन्वा उस घोडेको छोड भयभीत हो पाँवप्यादे भागनेलगा और श्रीकृष्ण भी अत्यन्त क्रोधित होकर उसके पीछे दौडनेलगे ॥ २० ॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्णचन्द्रने शतधन्वाको पकड और अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका शिर काट वस्त्रोंमें मणि ढूँढने लगे ॥ २१ ॥ जब शतधन्वाके वस्त्रोंमें मणि न निकली तब श्रीकृष्णचन्द्रने बलदेवजीसे आनकर कहा कि, देखो भाई ! शतधन्वाको वृथाही मारा और उसपर मणि न निकली॥ ॥ २२ ॥ इसके पीछे बलदेवजी कहनेलगे कि, शतधन्वा और किसीके पास मणि धर आया है, इस कारण उस पुरुषको ढूँढनेके लिये तुम द्वारका जाओ ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र सब बातको जानते हैं परन्तु तो भी " मणिका मुझसे छिपाव किया है, यह मनमें निश्चयकर बलदेवजी क्रोधकरके कहने लगे, तात्पर्य यह है कि, द्रव्य ऐसा निषिद्ध पदार्थ है जिसके लिये कृष्ण बलदेवका भी मन बिगडगया, फिर मनुष्योंकी तो बातही

क्या है ? " कि, मेरा परमप्यारा विदेह देशका राजा बहुलाश्व है, उसके देखनेको मेरा चित्त बहुत भटकरहा है, इसलिये मैं वहाँ जाऊँगा, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रसे कह यादवोंके आनंददायक महात्मा बलदेवजीने मिथिलापुरीमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥ प्रसन्न मन मिथिलापुरीका राजा बलदेवजीको आये देख शीघ्र उठ, पूजन करनेके योग्य बलदेवजीकी पूजन करनेकी सामग्रियोंसे पूजा करनेलगा, तब सामर्थ्यवान् बलदेवजी कितने एक वर्षतक वहाँ रहे ॥ २५ ॥ प्रीतियुक्त महात्मा जनकजीसे सत्कार पाय धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन वहाँ आय महात्मा बलदेवजीसे गदा चलानेकी विद्या सीखनेलगा ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त प्रियकार्य करनेवाले सामर्थ्यवान् भगवान् केशव मूर्तिने द्वारकापुरीमें आनकर शतधन्वाका नाश और मणिका न मिलना अपनी प्यारी भार्या सत्यभामासे कहा ॥ २७ ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने सुहृदोंको संग लेकर मृतक सत्राजितके परलोकसाधनकी क्रिया कराने लगे ॥ २८ ॥ सत्राजितसे मणि छीन लेनेकी शिक्षा देनेवाले अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वाका मरना सुन श्रीकृष्णचन्द्रसे अत्यन्त भयभीत होकर भागगये ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! जब द्वारकापुरीसे अक्रूरजी चले गये तब द्वारकावासी मनुष्योंके मनमें ताप और अरिष्ट वारंवार होने लगे ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कितने एक ऋषि जिन्होंने प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमा वर्णन की है, वह श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूलकर ऐसा कहते हैं, क्योंकि मुनियोंके निवास श्रीकृष्णचन्द्रके विद्यमान रहते अरिष्ट किस प्रकार होसक्ते हैं ? ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दूषित करके फिर और ऋषियोंका मत वर्णन करते हैं, कोई कोई ऋषि कहते हैं कि, एक समय जब इन्द्रने जल नहीं वर्षाया तब काशीके राजाने अपनी कन्या गांदिनीको ले, पुरीमें आयेहुए श्वफल्कको दी, तब काशीके सम्पूर्ण देशोंमें खूब वर्षा हुई ॥ ३२ ॥ पिता श्वफल्कके समान प्रभावशाली अक्रूरजी जहाँ वास करते हैं उस देशमें खूब वर्षा होती है और महामारी इत्यादि किसी प्रकारका खेद प्राणियोंको नहीं होता है * ॥ ३३ ॥ इसप्रकार वृद्ध पुरुषोंका वचन सुनकर "केवल

---

* **शंका**–बडे बडे आश्चर्यकी बातें भागवतमें सुनी जाती हैं कि, जिस जिस गाँवमें अक्रूर वास करता है, उसी उसी गाँवमें इन्द्र जलकी वर्षा करता है, फिर उस गाँवमें महामारीकी बीमारी नहीं होती, तब अक्रूर तो मथुरामें जन्में मथुरा छोडके दूसरे गाँवको नहीं गये, फिर मथुरा छोडके द्वारकामें वास किया दूसरे गाँवमें वास नहीं किया, फिर सातद्वीपमें तो अक्रूर नहीं है, तब सात द्वीपमें इन्द्र जलकी वर्षा क्यों करता है ?

उत्तर–अक्रूरकी माता गांदिनी ब्रह्माका तप करके ब्रह्मासे यह वरदान लिया कि, जिस स्थानपर तू (गांदिनी) वा तेरा पति, अथवा तेरा पुत्र निवास करैगा और अपने मनमें जब वर्षनेकी इच्छा करेगा उसी समय जिस स्थानपर चाहैगा वर्षा बहुत होगी और जब अपने मनमें अभिमान करके प्रजाकी बुराई विचारेगा, वा वर्षा होनेकी इच्छा नहीं करेगा–

अक्रूरही यहाँसे गया है और मणिकोभी वही लेगया है, यह बात निश्चय करके अक्रूरको काशीसे बुलानेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ ३४ ॥ उसके पीछे आपही अक्रूरकी पूजा कर हे काका अक्रूर ! इस प्रकार सम्बोधन देकर प्यारी प्यारी बात कह सब विश्वके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरके मनकी बात जान मुसकाकर कहने लगे ॥ ३५ ॥ कि, हे दाननकेपति अक्रूर ! हम निश्चय जानते हैं कि, स्यमंतकमणि शतधन्वा तुम्हारे पास रखगया है और वह तुम्हारे पास है ॥ ३६ ॥ सत्राजितके कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उसे पिंड जलदान और ऋण चुकाकर जो शेष धन रहेगा, उसे शास्त्रानुसार उसकी कन्याके पुत्र लेंगे ॥ ३७ ॥ हे अक्रूर ! यद्यपि तुम हमसे कहो मत, परन्तु तो भी हम जानते हैं कि, मणि तुम्हारे अतिरिक्त और किसीपर नहीं रह सक्ती, क्योंकि आप सुन्दर व्रत धारण करनेवाले हैं, तब अक्रूरजीने कहा कि, अच्छा मेरेही पास सही, तुम्हें क्या प्रयोजन है, यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, बडे भाई बलदेवजी इस मणिके पीछे मेरा विश्वास नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥ हे बडभागी अक्रूर ! तुम मणि दिखाकर शीघ्रही मेरे भाईको शान्त करो और मेरे पास मणि नहीं है यह मत कहो, यदि कदाचित् मणि तुम्हारे पास न होती तो सुवर्णकी वेदी बनाकर काशीमें जाकर अखण्ड यज्ञ काहेसे करते? ॥ ३९ ॥ जब इस प्रकार साम भेदन कर समझाया, तब अक्रूरजीने सूर्यके समान तेज-वाली, वस्त्रसे ढकीहुई वह मणि निकालकर श्रीकृष्णचन्द्रको देदी ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्यमंतकमणि अक्रूरजीसे लेकर जातिके बन्धु बांधवोंको दिखाय अपना मिथ्या कलंक दूरकर फिर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरजीको समर्पण करदी ॥ ४१ ॥ परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका कहा हुआ मनुष्योंके दुःखोंका हरनेवाला, सुन्दर मंगलरूप इस स्यमंतक मणिके प्रसंगको जो कोई पुरुष पढे वा श्रवण करे अथवा स्मरण करे वह कुत्सित पापोंके कलंकको दूर कर कल्याणको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

दोहा-जो भादोंकी चौथका, चांद निहारे कोय।
मणि प्रसंग श्रवणन करै, ताहि कलंक न होय ॥
ताके दुख नशि जात सब, अपकीरति नहिं होय।
सब प्रकार मंगल लहै, करहु न संशय कोय ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

दोहा-सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा, मित्रविन्दकालिन्द।
अट्ठावन अध्यायमें, वरीं सकल गोविन्द ॥

-उसी समय तुम्हारा प्राण छूट जायगा, इसलिये बुद्धिमान् अक्रूर रात दिन प्रजाको सुख देनेके लिये अपने मनमें रात दिन वर्षा होनेकी इच्छा करते थे ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! लाक्षागृहमें पाण्डव जलगये यह बात होनेपर फिर द्रुपदराजाके यहाँ पीछे दिखाईदिये, इस प्रकार पाण्डवोंकी खबर पाय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदि यादवोंको संग ले एक समय इन्द्रप्रस्थ गये ॥ १ ॥ सबके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखतेही जिस प्रकार मृतकशरीरमें प्राण आनेसे इन्द्रिय चैतन्य हो जाती हैं, उसी प्रकार बलवान् पाण्डव उठखडेहुये ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलकर पापरहित होनेके कारण वीर पाण्डव स्नेहभरी मुसकान सहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द देखकर परमानन्दको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्र बडे युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें नमस्कार करके फिर अपने समान अर्जुनसे मिले इसके उपरान्त छोटे नकुल और सहदेवने श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार किया ॥ ४ ॥ फिर इसके उपरान्त श्रेष्ठ आसनपर विराजमान श्रीकृष्णचंद्रको नवविवाहिता, निन्दारहित, लज्जावती, द्रौपदीने आनकर धीरे धीरे प्रणाम किया ॥ ५ ॥ उसी प्रकार सात्यकीका भी पांडवोंने आकर पूजन कर आसनपर बैठाला फिर और मनुष्योंका भी आदर सन्मान किया ॥ ६ ॥ फिर श्रीकृष्णचंद्रने कुन्तीके पास आकर प्रणाम किया तो कुन्तीने भी स्नेहभरी चितवनसे आलिंगन किया, फिर श्रीकृष्णचंद्रने पिता व बहनकी कुशल कुन्तीसे पूछी और इसके उपरांत कुंती श्रीकृष्णचंद्रसे भाइयोंकी कुशल पूछने लगी ॥ ७ ॥ प्रेमकी व्याकुलतासे गद्गद कण्ठ हो नेत्रोंमें आँसू भर कौरवोंके दिये कष्टकी सुधि करके कुन्ती भक्तोंके क्लेशोंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगी ॥ ८ ॥ कि, हे कृष्ण ! जातिके वन्धु हमको स्मरण करके जिस समय तुमने मेरे भाई अक्रूरको खबर लेने भेजा, उस समय हमारी सब कुशल होगई और तुमने हमको सनाथ करदिया ॥ ९ ॥ यद्यपि सब विश्वके हितकारी आत्मा तुम "यह अपना है, यह पराया है" इस भ्रमसे रहित हो परन्तु तो भी जो कोई तुम्हारा सर्वदा स्मरण करता है, तुम उसके हृदयमें स्थित होकर समस्त क्लेशोंका नाश कर देतेहो ॥ १० ॥ राजा युधिष्ठिर कहनेलगे कि, हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! नहीं ज्ञात होता कि, मैंने क्या कल्याणकारी कार्य किया है, क्योंकि योगेश्वरोंको जिनका दर्शन होना महाकठिन है, उनको हम सरीखे कुमतियोंको दर्शन हुआ ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिरके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थ निवासियोंके नेत्रोंको आनन्द देते वर्षाकालतक वहीं विराजे ॥ १२ ॥ एक समय महाबलवान् शत्रुओंका मारनेवाला अर्जुन कपिध्वजावाले रथमें चढकर, गांडीव धनुष और बाणोंसे भरा तरकसले, कवच पहर बहुत सर्प और मृगवाले बडे वनमें श्रीकृष्णचन्द्रके संग शिकार खेलनेको गया ॥ १३ ॥ १४ ॥ और उस वनमें पहुँचकर व्याघ्र, सूकर, भैंसा, रुरु अर्थात् हरिण, शरभ, रौज, गैंडा, मृग और खरहा इनको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे छेदन करने लगा ॥ १५ ॥ हे राजन् ! अमावास्या पौर्णमासी यह पर्व जब आनकर प्राप्त हुये तब सेवकलोग पवित्र पशु राजा युधिष्ठिरके पास लाये और जब अर्जुनको प्यास लगी तो थकाहुआ यमुनाजीपर आया ॥ १६ ॥ महारथी अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाके

निर्मल जलका आचमन कर और जल पीकर जब खडे हुये, तब इन्होंने एक सुन्दर कन्या बैठी देखी ॥ १७ ॥ सुन्दर जंघा, श्रेष्ठ दाँत, मनोहर मुख, ऐसी प्रेमदा कन्याके पास श्रीकृष्णका भेजा अर्जुन आनकर पूँछनेलगा ॥ १८ ॥ कि, हे सुश्रोणि ! तुम कौन हो ? और किसकी पुत्री हो, कहाँसे आई हो, और तुम्हारे मनमें क्या करनेकी इच्छा है ? से सब वृत्तान्त कहो, मुझे निश्चय जान पडता है कि, तुम्हारी पति करनेकी इच्छा है ॥ १९ ॥ इतना पूँछनेपर कालिन्दीने कहा कि, मैं सूर्यदेवकी पुत्री हूँ, कालिन्दी मेरा नाम है और वरके देनेवाले विष्णुभगवान्‌को पति करनेकी इच्छासे तप कररहीं हूँ ॥ २० ॥ हे वीर ! अत्यन्त स्वरूपवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और किसीको मैं नहीं वरूंगी, वह अनाथके आश्रय मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ मैं कालिन्दी नामसे विख्यात हूं और मेरे पिता सूर्यदेवने यमुनाजलमें स्थान बना दिया है, इसलिये जबतक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन न होगा, तबलों यहाँ वासकरूंगी ॥ ॥ २२ ॥ यह सुन अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रके पास जाकर कालिन्दीके सब वचन कहे कालिन्दी मेरे लिये तप करती है, यह बात जान श्रीकृष्णचंद्र कालिन्दीको रथमें बैठाय धर्मराज राजा युधिष्ठिरके पास आये ॥ २३ ॥ उस समय पाण्डवोंकी आज्ञासे श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके कारीगर विश्वकर्मासे कहकर पाण्डवोंके लिये चित्र विचित्र अद्भुत नगर बनवाये ॥ २४ ॥ पाण्डवोंका भला चाहनेके लिये इंद्रप्रस्थमें वास करनेवाले श्रीकृष्णभगवान् अग्निको खांडववन चरानेके लिये अर्जुनके सारथी हुए ॥ २५ ॥ हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! तब उस अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको धनुष, श्वेतघोडे, तीरोंसे भरा तरकस और जो अस्त्रवालोंसे भी न कटे, ऐसा एक कवच दिया ॥ २६ ॥ और वहाँ इन्होंने अग्निसे मयनाम दैत्यको बचाया, इसलिये उसने प्रसन्न होकर पाण्डवोंको एक सभा दी, जिस सभामें जलमें स्थल और स्थलमें जल इस प्रकार देखकर दुर्योधनकी दृष्टिमें भ्रम हुआ ॥ २७ ॥ राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा पाय और सुहृदोंमें बड़ाई पाय श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदि यादवोंको संग लेकर फिर द्वारकापुरीमें आये ॥ ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त सुन्दर पवित्र ऋतु नक्षत्रमें कालिन्दीका पाणिग्रहण किया और फिर अनेक प्रकारसे परमरूप श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको सुख देनेलगे ॥ २९ ॥ उज्जैनपुरीके रहनेवाले राजा विन्द और अनुविन्दकी बहनने श्रीकृष्णचन्द्रको स्वयंवरमें बरनेकी इच्छा की, परन्तु उन दोनों भाइयोंने मने किया, क्योंकि वह दुर्योधनके अधीन थे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! वसुदेवकी बहन राजाधिदेवीकी पुत्री मित्रविन्दाको श्रीकृष्णचन्द्र सब राजाओंके देखते २ बलपूर्वक हरण करके लेगये * ॥ ३१ ॥ हे राजा

---

* **शंका**–धर्मशास्त्रमें लिखा है कि, फूफीकी लडकी बहिन होती है, फिर श्रीकृष्णने फूफीकी लडकीके साथ विवाह क्यों किया ?

उतर–पूर्व जन्ममें वसुदेवजी तप करते थे, तब वसुदेवजीकी जो दासी थीं सो सब वसुदेवजीकी सेवामें लग रही थीं, जब भगवान्‌ने वसुदेवको वरदान दिया कि, तुम्हारे

परीक्षित्! अयोध्यापुरीका पालन करनेवाला बडा धर्मात्मा राजा नग्नजित् नामसे विख्यात् था, उस राजाके प्रकाशमान् सत्यानामक एक कन्या उत्पन्न हुई कि, जिसका उपनाम नाग्नजिती भी प्रसिद्ध था ॥ ३२ ॥ राजाने यह प्रतिज्ञा करी कि, जो वीर पुरुष गंध भी न सहसके ऐसे दुष्ट, तीखे सींगोंवाले अति दुर्धर्ष सात बैलोंको जीते वह मेरी पुत्रीसे विवाह करेगा, अनेक राजा मार खाकर फिर गये परन्तु कोई भी जीत-नेको समर्थ न हुआ ॥ ३३ ॥ यहाँ यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुना कि, जो बैलोंको जीते, उससे कन्या विवाह करे, यह बात सुनकर बडी भारी सेनाको संग लेकर अयोध्यापुरीमें आये ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! राजा नग्नजित्ने देखा कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं, इसलिये अत्यन्त प्रसन्न हो उठकर "भले आये महाराज" इस प्रकार प्रशंसा करके सुन्दर आसन बिछाय चरण धोकर पूजाकी सामग्रियोंसे उनका पूजन करनेलगा ॥ ३५ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख और अपने योग्य वर जान, इनकी इच्छा करके कहनेलगी कि, जो मैंने श्रद्धा-सहित व्रत किये हैं, तो कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों और मेरा मनो-रथ सत्य हो ॥ ३६ ॥ जिन भगवान्‌के चरणकमलकी रजको लक्ष्मी और कमलयोनि ब्रह्मा वा महादेव और लोकपाल संपूर्ण शिरपर धारण करते हैं और जो अपनी बँधी हुई मर्यादा पालनेकी इच्छासे समयानुसार लीलापूर्वक नृसिंहादि अवतार धारण करते हैं, वह भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त भलीभाँति विधिपूर्वक पूजा करके राजा नग्नजित् कहनेलगे कि, हे नारायण! हे जगत्पते! हे आनन्दसे पूर्ण! आपकी मैं तुच्छ क्या पूजा करूं? ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! आसनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुसकातेहुए मेघके समान गंभीर वाणीसे राजा नग्नजित्के प्रति कहा ॥ ३९ ॥ हे राजन् नग्नजित्! विद्वान् पुरुष कहते हैं कि, मांगना अत्यन्त बुरा है, तोभी स्नेहके वश होकर मैं आपकी कन्या माँगता हूं, कुछ मूल्यके देनेवाले हम नहीं हैं ॥ ४० ॥ राजा नग्नजित्ने कहा कि, हे नाथ! सब गुण जिनमें विद्यमान और लक्ष्मी सदा जिनके अंगमें वास करै ऐसे सर्वगुणालंकृत तुमसे

—पुत्र होगा, तब लक्ष्मीजी भी वसुदेवजीकी दासियोंको वरदान दिया कि, हे दासियो! तुम्हारी सबकी हम बहुतसी कन्या होवेंगी, इस प्रकार भगवान् और लक्ष्मीके वचनसे प्रथमकी जो, वसुदेवजीकी दासी थीं सो सब इस जन्ममें वसुदेवजीकी बहिने हुई उन वसुदेवकी बहिनकी पुत्री लक्ष्मी हुई, अपने वचनके प्रमाणसे, लक्ष्मीरूप जो वसु-देवकी बहिनकी लडकी उनका भगवान् विना दूसरा पुरुष कैसे विवाह करेगा? इसलिये भगवान्‌ने जाना कि, हमारी बहिन है इनको हम विवाह लेवेंगे तो बडा पाप होगा ऐसे जानते थे तो भी विवाह किया ॥

अधिक संसारमें कौन वर है, जिसको मैं अपनी कन्या दूंगा ? ॥ ४१ ॥ हे यादवोंमें श्रेष्ठ पुरुषोंमें पराक्रमकी परीक्षा लेनेके कारण और कन्याके वरकी परीक्षाके लिये हमने प्रथम एक प्रतिज्ञा करी है ॥ ४२ ॥ हे वीर कृष्ण ! इन शिक्षारहित और पकडनेमें न आवैं, ऐसे बैलोंको जो जीतै, वह कन्याको वरै. यह बात सुन बहुतसे राजपुत्र यहाँ आये परन्तु इनसे अपना शरीर जर्जरितही कराकर चलेगये ॥ ४३ ॥ हे यदुनंदन ! हे लक्ष्मीपति ! जो तुम इन बैलोंको जीतलो, तौ निश्चय मेरी कन्याका विवाह करो ॥ ४४ ॥ सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार राजा नग्नजित्का वचन सुनकर फेंट बाँध अपने सात रूप धारणकर लीलापूर्वकही बैलोंको पकडनेलगे ॥ ४५ ॥

दोहा-फेंट बाँधि तहँ हरिगये, सात रूप निज धार ।
श्रीयदुपति ब्रजराजने, नाथे एकहि बार ॥

गर्व और शक्ति नाश करके उन बैलोंको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने रस्सियोंसे बाँधकर, जैसे बालक काष्ठके बैलको खैंचता है, ऐसेही खैंचने लगे ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त आश्चर्यमान राजा नग्नजित् प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी कन्या देनेका उद्योग करनेलगा और सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने समान कन्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ४७ ॥ राजा नग्नजित्की रानी अपनी कन्याके प्रियपति श्रीकृष्णचन्द्रको वर पाकर परम आनन्दित हुई और बडा उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी, नगारे बजने लगे, गीतोंका शब्द सुनाई दिया, ब्राह्मणोंने अनेक आशीर्वाद दिये और सुन्दर वस्त्र मालाओंसे शोभायमान सब नर नारी प्रसन्न होगये ॥ ४९ ॥ सामर्थ्यवान् राजा नग्नजित्ने यौतुकमें दशहजार गौवें दीं और धुकधुकी कंठमें पहरे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान तीनहजार दासियें दीं ॥ ५० ॥ नौहजार हाथी और हाथियोंसे सौगुणे अर्थात् नौलाख रथ, रथोंसे सौगुणे अर्थात् नौ करोड घोडे दिये और घोडोंसे सौगुणे अर्थात् एक अर्ब मनुष्य दिये ॥ ५१ ॥ स्नेहसे व्याप्त हृदय कौशलदेशका राजा नग्नजित् अपनी कन्यासहित श्रीकृष्णको रथमें बैठाल और बहुतसी सेना संग लेकर पहुँचाने चला ॥ ५२ ॥ जिनका पुरुषार्थ प्रथम यादव और बैलोंसे भंग होगया था वह राजा यह बात सुनकर न सहसके और कन्याको लेजाते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मार्गमें रोकलिया ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्यार करनेवाले गांडीवधनुषधारी अर्जुनने बाण चलाकर समस्त राजाओंको क्षणभरमें सिंह जैसे वनके छोटे छोटे जीव व मृगोंको भगा देता है उसीप्रकार भगादिया ॥ ५४ ॥ इसप्रकार यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दहेज लेकर द्वारकापुरीमें आय सत्यारानीसे रमण करनेलगे ॥५५॥ वसुदेवकी बहन श्रुतकीर्तिकी पुत्री केकयदेशोत्पन्न भद्राको संतर्दनादि भाइयोंके देनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने व्याहा ॥ ५६ ॥ सुन्दर लक्षणवाली मद्रदेशके राजाकी कन्या लक्ष्मणाको गरुड जैसे अमृत लाते हैं, उसी प्रकार अकेले श्रीकृष्णचन्द्र हरकर लेआये ॥ ५७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! भौमासुरके बन्दीखानेसे छुडाई हुई सुन्दर स्वरूपवान् हजारों स्त्री और भी थीं ॥ ५८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कन्धे ऽ
ष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

दोहा–उनसठवें अध्यायमें, भौमासुरको मार ।
इन्द्र पराभव कर हरी, कन्या वरीं हजार ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा कि, हे व्यासपुत्र शुकदेवजी ! श्रीकृष्णचन्द्रने जिस प्रकार भौमासुरको मारा और जैसे भौमासुरने वह स्त्रियें रोकीं यह सम्पूर्ण कथा और शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पराक्रम हमारे सन्मुख वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! जब देवराज इन्द्रने श्रीकृष्णचन्द्रसे आनकर कहा कि, हे भगवन् ! मेरा छत्र अदितिके कुण्डल भौमासुर हरकर लेगया और अमराद्रि सुमेरुके मणिपर्वतस्थानमें उसने अपना अधिकार करलिया है और हमैं अत्यन्तही दुःखित करदिया है, देवराजकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र पक्षिराज गरुडपर सवार हो सत्यभामारानीको संग ले प्राग्ज्योतिषनामक भौमासुरके नगरमें गये ॥ २ ॥ जहाँ पर्वत, शस्त्र, जल, अग्नि और पवनके किले हैं, जिनमें कोई प्रवेश न करसके ऐसा भयानक गढ और मुरदैत्यकी हजारों दृढ फाँसियोंकरके चारों ओरसे व्याप्त है ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने गदासे गिरिदुर्ग तोडा, शस्त्रदुर्ग बाणोंसे, चक्रसे अग्निदुर्ग तोडा, इसके उपरान्त जलदुर्ग और पवनदुर्गको तोड, इसीप्रकार मुरदैत्यकी फाँसियोंको काटडाला ॥ ४ ॥ शंख बजनेके शब्दसे अनेक युद्धके यंत्र उलटे चलनेलगे और शूरवीरोंके हृदय व मन थरथर काँपनेलगे, तब गदाधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बडी गदासे भौमासुरकी नगरीके कोटको तोडडाला ॥ ५ ॥ प्रलयकालीन वज्रके शब्दके समान भयंकर शब्द वाले पांचजन्य शंखका शब्द सुनकर पाँच मुखवाला मुरदैत्य जो जलके भीतर सो रहा था, सो उठा ॥ ॥ ६ ॥ अति खोटी दृष्टि प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान तेज, भयंकर रूपवाला मुरदैत्य त्रिशूल हाथमें ले पाँचों मुख फाडकर, मानों त्रिलोकीको निगल जायगा इस प्रकार दौडताहुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आया, जैसे गरुड सर्पोंके सन्मुख जाता है ॥ ७ ॥ और बडे जोरसे त्रिशूलको फिराय गरुडपर चला पाँचो मुख फाडकर महाघोर शब्द किया, उस शब्दका नाद अंतरिक्ष, पृथ्वी सम्पूर्ण दिशाओंमें फैलकर ब्रह्माण्डमें व्याप्त होगया ॥ ८ ॥ उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने गरुडके ऊपर त्रिशूल आता देखकर अपने बाणोंसे तीन टुकडे करदिये और मुरदैत्यके पाँचो मुखमें पाँच बाण मारे तब मुरदैत्य अत्यन्त क्रोधित होकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर गदा चलानेलगा ॥ ९ ॥ तब भगवान्‌ने संग्राममें आती हुई उस गदाके हजारों टुकडे करडाले, उस समय भुजाओंको उठाय दौडकर सन्मुख आयेहुये मुरदैत्यका शिर श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक अपने चक्रसे

काटलिया ॥ १० ॥ जिस प्रकार इन्द्रके वज्रसे पर्वतका शिखर कटकर गिर पडता है, उसी प्रकार मस्तक कटनेपर प्राणमुक्त हो वह जलमें गिरगया, उसके जो अति बलवान् सात पुत्र थे, वह पिताके दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो, महाक्रोधकर बदला लेनेके लिये आये॥११॥ताम्र १, अंतरिक्ष २, श्रवण ३, विभावसु४, वसु५, नभस्वान् ६, और सातवां अरुण७,यह सब पीठ नाम सेनापतिको आगे कर भौमासुरकी प्रेरणासे शस्त्र लेलेकर रणभूमिमें आये ॥ १२ ॥ अत्यन्त क्रोध करके भयानक मुरदैत्यके पुत्र आकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर बाण, तलवार, गदा, बर्छी, गुर्ज और त्रिशूल इत्यादि शस्त्र चलानेलगे, तब महापराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने बाणोंसे उनके चलायेहुये शस्त्रोंको क्षणभरमें तिलके समान काटडाला ॥ १३ ॥ पीठ आदि मुरदैत्यके पुत्रोंके शिर, ऊरू, भुजा, पाँव, कवच, इत्यादि काट और उनको मारकर श्रीकृष्णचन्द्रने यमलोक भेजदिया, तब पृथ्वीका पुत्र नरकासुर श्रीकृष्णचन्द्रके चक्र और बाणोंसे अपने सब सेनापतियोंका नाश देखकर महाक्रोधित हो समुद्रसे प्रगटहुये मद झरते हाथियोंकी सेना लेकर बाहर निकला ॥ १४ ॥ सूर्यके ऊपर जिसप्रकार बिजलीसहित मेघ आता है, उसी प्रकार गरुडके ऊपर सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचन्द्रको विराजमान देख भौमासुर बरछी चलानेलगा और सम्पूर्ण योद्धा भी प्रहार करनेलगे ॥ १५ ॥ गदके बडे भाई श्रीकृष्णचन्द्रने चित्र विचित्र पंखवाले बाणोंसे भौमासुरकी सेनाको काट फिर क्षणमात्रमें तीखे बाणोंसे भुजा, ऊरू, गर्दन और अंग काट हाथी घोडोंको मार छिन्न भिन्न करदिया ॥ १६ ॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित् जो जो शस्त्र योद्धाओंने चलाये, उन सबको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने तीक्ष्ण तीन तीन बाणोंसे एक एक टूक कर काटडाला ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णको अपने ऊपर चढायेहुये गरुडजीने भी अपनी चोंच और पंखोंसे हाथियोंको मार मारकर व्याकुल कर दिया ॥ १८॥ और वह अत्यन्त पीडित होकर पुरमें प्रवेश करगये, तब नरकासुरने युद्ध करतेहुए गरुडसे पीडित अपनी सेनाको भागी हुई देखकर ॥ १९ ॥ भौमासुरने महापैनी धारवाली गरुडजीको बरछी मारी, जिससे वज्र रुक गया था, परन्तु जैसे मालाके प्रहारको हाथी कुछ नहीं गिनता, उसीप्रकार गरुडजी उसके प्रहारसे कुछ भी व्यथित नहीं हुये ॥ ॥ २० ॥ तब भौमासुरने अपना उद्यम वृथा देख श्रीकृष्णके मारनेको त्रिशूल हाथमें लिया, परन्तु हे परीक्षित् ! उस शूलको छोडनेसे प्रथमही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने चक्रसे हाथीपर बैठेहुये भौमासुरका शिर काटडाला ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जिस समय कुण्डलोंसहित मनोहर किरीटसे शोभायमान प्रकाशमान भौमासुरका शिर कटकर पृथ्वीमें सुशोभित हुआ, उस समय दैत्य हाहाकार और ऋषि देवता धन्य धन्य कहते श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षाकर स्तुति करनेलगे ॥ २२ ॥ भौमासुरके मरने उपरान्त पृथ्वी श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर तपायमान सुवर्णमें जडे रत्नोंसे प्रकाशमान कुण्डल वैजयन्ती माला और प्रचेताका छत्र तथा महामणि दी ॥ २३ ॥ हे नृपोत्तम ! उस समय पृथ्वी, विश्वके ईश्वर देवताओंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मादिकोंसे पूजित भगवान् श्रीकृष्ण-

चन्द्रके सन्मुख दोनों हाथ जोड नम्र हो, भक्ति और श्रद्धासहित स्तुति करनेलगी ॥ २४ ॥ "पृथ्वीने पुत्रके लिये तपस्या की थी, तब देवताओंने प्रसन्न होकर पुत्र होनेका वर दिया उसी वरके प्रभावसे भौमासुर उत्पन्न हुआ," पृथ्वीने कहा कि, देवदेव ! हे शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी ! हे परमात्मन् ! भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये साकार रूप धारण करनवाले आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ जिनकी नाभिमें कमल कमलकी माला धारण करनेवाले कमलनेत्र और कमलके समान चरण रखनेवाले आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ भगवान् वासुदेव सम्पूर्ण प्राणी जिनमें वास करैं, विष्णु अर्थात् सबके हृदयमें व्यापक, समस्त कार्योंके आदिकारण पूर्णज्ञानस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥ आप जन्मरहित हो, इस विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्म हो, इसीलिये अजन्मा हो, अनन्तशक्ति हो, इसीसे विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता हो, यदि कोई कहै कि, पित्रादि तो पुत्रादिकोंके उत्पत्तिकर्त्ता हैं और पित्रादिकोंके उत्पत्तिकर्त्ता उनके पूर्वपुरुष हैं और पूर्व पुरुषोंके उत्पत्तिकर्त्ता पंचभूत हैं और पंचभूतोंका अपने कर्म द्वारा जीव है, मैं क्या करूं इसके उत्तरमें पृथ्वी कहैहै कि, हे कार्यकारणरूप ! हे सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा ! हे परमात्मन् ! तुम सर्वरूप हो, इसलिये तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २८ ॥ यहाँ यह शंकाहै कि, तीन गुणोंसे, इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करतेहैं और तीनों गुण मायाके आधीन हैं और मायाका क्षोभ करनेवाला पुरुष है काल निमित्त है और यह बात प्रसिद्ध है, फिर मैं क्या करताहूं इसके उत्तरमें पृथ्वी कहतीहै कि, तुम आवरणरहित हो, हे समर्थ ! जिस समय आप विश्वके रचनेकी इच्छा करते हो, तब रजोगुणको धारण करते हो और हे जगत्पति ! जगत्के पालन करनेको सतोगुण धारण करते हो तथा नाशकरनेके लिये तमोगुणको धारण करते हो, कालरूप हो, पुरुषरूप और सबसे परे हो इसलिये सबके उत्पन्नकर्त्ता तुमहीं हो ॥ २९ ॥ हे ईश ! मुझे (पृथ्वी)जल, ज्योति, पवन, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, देवता, मन, इन्द्रियाँ, अहंकार, तत्त्व और समस्त स्थावर जंगम आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमसे भासते हैं ॥ ३० ॥ हे शरणागतोंके दुःखहर्त्ता ! यह भौमासुरका पुत्र भगदत्त भयभीतहोकर तुम्हारे चरणोंमें आनकर पडा है, सो तुम इसका पालन करो और सब क्लेशोंका शमन करनेवाला अपना हस्तकमल इसके मस्तकपर रक्खो ॥ ३१ ॥ भक्तिपूर्वक नम्र हो मधुरवाणीसे पृथ्वीने, जब इस प्रकार स्तुति और प्रार्थना की, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे अभयदान दे, सर्व सम्पत्तियुक्त भौमासुरके स्थानपर गये ॥ ३२ ॥ वहाँ जाकर श्रीकृष्णचन्द्रने सोलहहजार एक सौ कन्या भौमासुरके मंदिरमें देखीं, जिन्हें भौमासुर अपने पराक्रमसे बलात्कार हरलाया था * ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख सम्पूर्ण स्त्रियें

---

* **शंका**–भौमासुर तो बडा बुद्धिमान् था, फिर कुमारी कन्याओंको क्यों हर हर इकट्ठा किया ? वह तो सर्व लडकियें थीं, उनका विवाह नहीं हुआ था, उनको राक्षसकर्म करनेके लिये हरकर लेआया ?–

मोहित होकर दैवके प्राप्त हुए मनोवांछित पति श्रीकृष्णचन्द्रको मनसे पतिवरण करनेलगीं ॥ ३४ ॥ हे विधाता ! इन्हें ऐसी अनुमति दो कि, यह हमारे पति हों इस प्रकार सब कन्याओंने भक्तिभावसहित अपना अपना मन श्रीकृष्णचन्द्रमें लगाया ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रनें उन्हें उज्वल व स्वच्छ वस्त्र पहराय पालकियोंमें बैठाय द्वारकापुरीको भेज-दिया और साथही बडे बडे खजाने, रथ, घोडोंको भी भेजे ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त चार चार दाँतके श्वेतरंग, शीघ्रगामी, चौसठ ऐरावतकुलके हाथी श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारका-पुरीमें भेजे ॥ ३७ ॥ इसके पीछे जब भगवान् वासुदेवने इन्द्रलोकमें जाकर अदितिको कुण्डल दिये, तब इन्द्राणीसहित देवराज इन्द्रने सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचन्द्रकी विधि-पूर्वक पूजा करी ॥ ३८ ॥ सत्यभामाके कहनेसे श्रीकृष्णचन्द्रने कल्पवृक्षको उखाड, गरुडके ऊपर रख और इन्द्रसहित समस्त देवताओंको जीत द्वारकापुरीमें लेआये ॥ ३९ ॥ और सत्यभामाके बगीचेको शोभायमान करनेके लिये कल्पवृक्ष उसके बगीचेमें लगाया, उसकी सुगन्धके मदके लोभी भौंरे स्वर्गसे पीछे पीछे चले आये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! प्रथम तो देवराज इन्द्रने कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने किरीटोंके अग्रभाग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें लगा नमस्कार करके उनकी प्रार्थना की और कार्य सिद्ध होनेपर भगवान्से विरोध किया, अहो ! देवताओंको बडा क्रोध आता है, धनिकताकोही धिक्कार है ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त एक मुहूर्तमात्रमें सोलह हजार एक सौ आठ महलमें सर्वत्र परिपूर्ण भग-वान् श्रीकृष्णचन्द्रने जितनी स्त्रियें थीं उतनेही स्वरूप धारण कर सबका यथायोग्य पाणि-ग्रहण किया ॥ ४२ ॥ जिनके घरके समान और कोई घर नहीं है, इस प्रकार उन रानि-योंके घरोंमें सदा पूर्ण आनन्द स्वरूप रहते भी औरोंके समान गृहस्थधर्म करते अचिंत्य कार्य करता अविनाशी भगवान् लक्ष्मीका अंशरूप स्त्रियोंके साथ विहार करते थे ॥ ४३ ॥ हे परीक्षित् ! ब्रह्मादिक देवता जिनके मार्गको नहीं जानते, उन लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र-को पति पाय वह स्त्री उनका निरंतर बढीहुई प्रीति और स्नेहभरे हास्यपूर्वक अवलोकन करती थीं और आनंदपूर्वक नवीन २ संगम भाषण और लज्जाका सेवन करती थीं ॥ ४४ ॥ यद्यपि एक एक रानीके पास सौ सौ दासी हाथ जोडे खडी रहती थी, परंतु तो भी

उत्तर-राजाओंका अभिमान भंजन करनेके लिये सब राजाओंकी कन्याओंको हर-कर वह अपना विवाह करनेके लिये लाया था और राजालोग उसका कुछ भी नहीं करसके, तब नारदमुनिने विचारा कि, यह सब कन्या तो भगवान्की स्त्री होंगी, ऐसा विचारके भौमासुरको मने करदिया कि, हे भौमासुर ! विना हमारी आज्ञा लिये इन कन्या-ओंके संग अपना विवाह मत करना, ऐसे कहकर भौमासुरको विवाह करनेकी आज्ञा नहीं दी, इन लडकियोंके संग भौमासुर विवाह करताही करता श्रीकृष्णने उसको मारडाला. कन्याओंको अपने आप वर लिया, इसीलिये भौमासुरने राजकन्याओंको हरण किया था ॥

सामने जाकर लिवालाना, आसनको बिछाना, सुंदर पूजा करनी, चरण धोना, बीरा लगाना, चरण दाबने, पंखा करना, अतर लगाना, फूल चढाना, केशोंका सँभालना, शय्या बिछाना, स्नान कराना और भेंट देना, यह सेवा भलीप्रकार आपही करती थीं ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

दोहा-साठ हँसीसे कुछ कही, हरि रुक्मिणिसों बात।
रूठ गई तब रुक्मिणी, कृष्णमनावन जात ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! किसीसमय सुखपूर्वक एक शय्यापर बैठेहुए जगत्गुरु अपने पति श्रीकृष्णचंद्रकी रुक्मिणी सखियोंसहित चमर करके सेवा करनेलगीं ॥१॥ जो जन्मरहित भगवान् लीलापूर्वक इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करतेहैं, वही भगवान् अपनी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें आनकर प्रगट हुए ॥२॥ वहाँ गृहों-के भीतर अत्यंत देदीप्यमान मालायें लटक रही थीं, अत्यंत शोभायमान छत बँधी थी, और मणिमय दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३ ॥ मधुमल्लिकाके पुष्पोंकी मालाओंपर भौंरोंके झुण्डके झुण्ड गूँजरहे थे और झरोखेकी जालियोंमें होकर चंद्रमाकी निर्मल किरणैं झिल-मिला रही थीं ॥ ४ ॥ कल्पवृक्षके वनकी सुगंधि लिये उद्यानसे सुगंधसनी वायु चली आती थी, हे महाराज! झरोखे जालियोंमें अगर तगरके धूपका धुँआ निकल रहा था ॥ ५ ॥ उस मंदिरके भीतर शय्या बिछी थी, उसपर दूधके फेनके समान कोमल श्वेत बिछौना बिछ रहा था, उसके ऊपर सुखपूर्वक बैठेहुये जगत्के ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी रुक्मिणी सेवा करती थीं ॥ ६ ॥ हीरेकी दंडीवाला चमर सखीके हाथमेंसे लेकर उससे पवन करती रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी ओरको देख रही थीं ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट मणियोंके जडाऊ नूपुरोंका शब्द करती अत्यन्त शोभाय-मान लगतीथीं, कैसी रुक्मिणी हैं, उँगलियोंमें मुँदरी पहरे, कलाइयोंमें चूडी व कंकण पहरे और हाथोंमें बीजना लेरही हैं सारीके छोरसे ढके जो स्तन तिनकी केशरसे रंगा हुआ अरुण जो मोतियोंका हार और कटिमें पहरेहुये जो अमूल्य मेखला उससे शोभा-यमान होरही थीं ॥ ८ ॥ लीलापूर्वक देह धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रकेही योग्य जिसका रूप है और श्रीकृष्णके विना जिसका कोई आश्रय नहीं है, ऐसी रूपवती साक्षात् लक्ष्मीके समान रुक्मिणीजीको देखकर कि, जिसकी अलकें कुण्डल धुकधुकी युक्त कंठसे शोभायमान मुखारविन्दमें मंद मुसकानरूपे अमृत झलक रहा था, उसे देख प्रसन्न हो हँसकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजपुत्री! लोकपालोंके समान ऐश्वर्यवाले महानुभाव लक्ष्मीवान् रूप, उदारता और बलसे बढेहुए राजा तुम्हारी चाहना करते थे ॥ १० ॥ और कामदेवके मदसे व्याकुल

शिशुपालादि राजा तुम्हारे लेनेके लिये आये, जिन्हैं तुम्हारे पिता देभी चुके थे. फिर तुमने किस कारण उन्हैं छोडकर हमें जो तुम्हारी बराबरके भी नहीं हैं, वरण किया ? ॥ ११ ॥ हे सुन्दर भ्रुकुटियोंवाली ! बहुधा राजाओंसे डरकर तो हमने समुद्रकी शरण ली है और बलवानोंके साथ विरोध होनेसेही हमने राजगद्दी त्याग कररक्खीहै ॥ १२ ॥ हे सुभ्रु ! जिनके आचरणकी खबर नहीं और जो स्त्रियोंके कहेमें न चलैं, जिनका मार्ग जगत्से निराला है ऐसे पुरुषोंका जो स्त्रियें अनुसरण करती हैं, वह बहुधा क्लेश और कष्ट पाती हैं ॥ १३ ॥ और हम निष्किंचन हैं जो निष्किंचन है वह जन हमैं अत्यन्त प्रिय है, इसलिये हे सुमध्यमे ! धनवान् पुरुष कहते हैं कि, हम दरिद्री हो जाँयगे, इस भयसे बहुधा मेरा भजन नहीं करते ॥ १४ ॥ जिनके बरावर धन, बराबर जन्म, बराबर ऐश्वर्य और बराबरकी रूप, जाति हैं और सदा जिनका एकसा निर्बाह होताहै, उन्हींका विवाह और मित्रता होतीहै, छोटे बडोंकी कदापि नहीं होसक्ती ॥ १५ ॥ हे राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी ! तुमने कुछ विचार न किया और बराबरका संबंध होताहै, यह बात जानेविना गुणहीन हमको भिक्षुकके सराहनेसे भूलकर वर लिया ॥ १६ ॥ हे सुन्दरी ! अब भी तुम अपनी बराबरीका क्षत्रिय देखकर उसका हाथ पकडलो, उस क्षत्रियसे इस लोक और परलोकके मनोरथोंको प्राप्त होगी * ॥ १७ ॥ तब रुक्मिणीने कहा कि, आप मुझे क्यों ले आये ? श्रीकृष्णचंद्रने कहा कि, हे वामोरु ! शिशुपाल, शाल्व, जरासंध, दंतवक्रादि समस्त राजा हमसे शत्रुता रखतेहैं और तेरा भाई रुक्म भी

---

* **शंका**-श्रीकृष्णचन्द्रने रुक्मिणीसे कहा कि, तुम हमको छोडकर और कोई दूसरा पति करलो ऐसा मूर्खों और अज्ञानियोंकी नांई कुवाच्य भगवान् तो अपने लक्ष्मीको कभी नहीं कह सक्ते, न कभी कहा, फिर इस अवतारमें क्यों कहा ? जो कोई कहै कि, रुक्मिणीका मानभंग करनेके लिये यह वचन श्रीकृष्णने कहा तो कृष्णके सामने तो रुक्मिणीने कभी मान भी नहीं किया, फिर ऐसा खोटा वाक्य भगवान्ने रुक्मिणीसे क्यों कहा !

उत्तर-श्रीकृष्णने समझा कि, कलियुगका राज्य थोडेही दिनोंमें आनेवाला है, यह जानकर संसारके कल्याणार्थ और कलियुगकी स्त्रियोंके मानभंग करनेके लिये, रुक्मिणीसे ऐसा अनुचित वाक्य कहा, श्रीकृष्णने कहा कि, स्त्रीका अभिमान भंजन करनेवाले मेरे इस वचनको कलियुगमें जो कोई स्त्री पुरुष सुनेंगे वह स्त्रीभी डरेंगी और वह पुरुष भी डरेगा और कहैंगे, स्त्री पुरुषका प्रेम सबसे बडाहै, देखो तुच्छ बातपर रुक्मिणीको भगवान्ने त्यागनेके लिये हँसी की थी, तो भी रुक्मिणी प्राण त्यागनेके लिये उपस्थित हुई, ऐसा विचार करके स्त्री तो अपने पतिसे प्रेम करै और पुरुष स्त्रीसे प्रेम करै, इस धर्मसे दूसरा कोई भी बडा धर्म नहीं है, कलियुगके जीव ऐसा मानलेंगे, इसलिये कृष्णावतारमें लक्ष्मीको कुवाक्य श्रीकृष्णने कहा कुछ छलसे नहीं कहा ॥

वैर करताहै ॥ १८ ॥ हे मंगलरूपिणी ! पराक्रमके मदसे अंधे गर्ववंत राजाओंका गर्व दूर करनेके लिये और दुष्टोंका तेज हरण करनेके लिये मैं तुम्हें हरलाया था ॥ १९ ॥ हम घर और देहमें उदासीन हैं, हमको स्त्री पुत्रोंकी चाहना नहीं है, क्योंकि आत्माके आनंदसे सदा परिपूर्ण हैं और ज्योतिके समान साक्षीमात्र कियारहित वर्त्तते हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! रुक्मिणीका मन हरनेवाले और जो आपसे कभी अलग न होय, इसलिये आपको अपना प्राणवल्लभ जाननेवाली, रुक्मिणीका गर्व दूर करनेके लिये इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र चुप होगये ॥ २१ ॥ इस प्रकार त्रिलोकीके ईश्वरोंका पालन करनेवाले अपने प्यारे श्रीकृष्णचंद्रका जो पहले कभी न सुना था, ऐसा कटुवाक्य सुनकर हृदयमें रुक्मिणीजी काँपनेलगीं और भयभीत हो रुदन करके बडी चिन्ता करनेलगीं ॥ २२ ॥ नखकी अरुण कांतिवाले सुकुमार चरणोंसे पृथ्वी लिखनेलगीं, आखोंमें अंजन लगनेके कारण श्याम आँसू बहने लगे, उनसे केसरयुक्त स्तनोंको भिजाती, नीचेको मुख किये अत्यंत दुःखित हो वाणी रुकनेसे रुक्मिणी व्याकुल होकर चुप होगईं ॥ २३ ॥ अप्रियवचन सुननेके कारण अत्यन्त दुःख और त्याग करनेकी आशंकाके शोकसे बुद्धिरहित होकर रुक्मिणी व्याकुल होगई, तब उनके हाथसे पंखा गिरगया, कंकण शिथिल हो गिरनेलगे और महाव्याकुलतासे मोहित हो पवनसे गिराईहुई कदलीके समान रुक्मिणी मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपडीं और उस समय उनके केश भी खुलगये ॥ २४ ॥

स०-भरिआये ललाके दृगै अँसुवा, गयो भूल हँसी करिबो छनमें ।
परयंकते कूदिकै आशु तहाँ, भये आपो दुखी अतिही मनमें ॥
धर चार भुजा द्वै भुजानिते नाथ, उठाय लगाय लियो तनमें ।
इकपाणि सों केश सँवारैं लगे, इकपाणिको फेरत आननमें (१)
प्राणप्रियारीकी देखि दशा, परयंक ते बेग उठे गिरिधारी ।
धाय उठाय लई उरलाय, दयानिधि दृष्टि दयाकी पसारी ॥
आँसुनपोंछि दिये इक हाथसे, त्यों इक हाथसों केश सँवारी ।
बारहि बार गोविन्द कहैं अब, फाँसी भई यह हांसी हमारी (२)

हास्यकी गंभीरता न जाननेवाली अपनी प्यारी रुक्मिणीका प्रेमबंधन देख करुणाकर श्रीकृष्णचंद्र द्रवीभूत होगये ॥ २५ ॥ और चार भुजा धारणकर शीघ्र पलँगसे नीचे उतर दोहाथोंसे रुक्मिणीको उठाय एक हाथसे उसके केशोंको सँभालकर, कमलके समान मुखको कोमल कमलसी भुजासे पोंछनेलगे ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! आँसूभरे नेत्र और शोकसे ताडित स्तनोंको पोंछ अनन्य आश्रय पतिव्रता रुक्मिणीको भुजाओंसे आलिंगन कर ॥ २७ ॥ हंसीसे चलायमान चित्त और कठोर हँसीके अयोग्य दीन रुक्मिणीको साधु पुरुषोंकी गति सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचंद्र समझाने लगे ॥ २८ ॥ भगवान्

श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, हे रुक्मिणी ! तुम मुझसे ईर्षा मत करो और यह बात मैं निश्चय जानताहूं कि, मेरे अतिरिक्त तुम और किसीको नहीं जानती हो, हे सुन्दरी ! तुम क्या कहोगी, यह जाननेके लिये मैंने हँसी करी थी ॥ २९ ॥ स्नेहके कोपसे फडके हैं अधर जिसमें और चलायमान अरुण कटाक्षसे टेढी भ्रुकुटिवाले मुखकी शोभा देखनेके लिये हँसी करी थी ॥ ३० ॥ हे भीरु प्रिये ! अपनी प्राणप्यारीके संग हँसी करके समय व्यतीत करना गृहस्थियोंके घरमें यही लाभ है ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने जब शांत करी, तब रुक्मिणीने "प्यारेने मुझसे हँसी करी है" यह बात जानकर त्यागनेके भयको छोडदिया ॥ ३२ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! लाजभरी मधुर मुसकान और शोभायमान स्निग्ध, कटाक्षोंसे सुंदर मुख देखतीहुई रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रसे कहनेलगी ॥ ३३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचंद्रने कहा था कि, तुम हमारे समान नहीं हो, फिर हमारा हाथ क्यों पकडा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणी बोली कि, कमलदललोचन ! तुम्हारे समान मैं नहीं हूं, छःप्रकारके ऐश्वर्ययुक्त आपकी बात सत्य है अपनी महिमासे आप आवृत तीनों ब्रह्मादिकोंके ईश्वर, आप कहाँ ? और सकाम पुरुषोंने जिसके चरण पकडे ऐसी सत्त्वगुणी तमोगुणी रूपवाली, मैं माया कहाँ, मुझमें और आपमें बडा अंतर है ॥ ३४ ॥ और श्रीकृष्णचंद्रने यह जो कहा था कि, राजाओंके डरके मारे समुद्रमें आनकर रहे हैं, उसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि, हे उरुक्रम ! यह सत्यहै, सत, रज और तम यह तीन गुणहीं राजा हैं उनके भयसेही मानो सागरके समान अगाध विषयोंसे अक्षोभित हृदयमें चैतन्यघन तुम निश्चलतासे प्रकाश करतेहो और बलवानोंसे हमने वैर किया है, यह बात ज़ो आपने कही, सो भी सत्य है, क्योंकि विषयमें जिनकी इन्द्रियें लगरही हैं ऐसे पुरुषोंने तुमसे विरोध किया है, सो उनमें तुम्हारी अप्रीति है और जो श्रीकृष्णचंद्रने कहा था कि, हमको राज्याधिकार नहीं है उसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि, महा अविवेकका स्थान राज्य है, इसलिये तुम्हारे सेवकलोग भी उसको छोड देते हैं, फिर आपने छोड दिया तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णचंद्रने यह जो कहा था कि, हमारा मार्ग जाननेमें नहीं आता और स्त्रीके वशमें नहीं हूँ इसके उत्तरमें रुक्मिणीने यह कहा कि, तुम्हारे चरणाविंदमकरन्दका सेवन करनेवाले मुनि लोगोंका आचारभी पशुतुल्य मनुष्योंकी समझमें नहीं आता, यदि तुम्हारा मार्ग जाननेमें न आवे तो इसमें क्या आश्चर्य है ? क्योंकि तुम्हारे अनुवर्ती भक्तोंकी और तुम्हारी चेष्टा अलग है, फिर इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ ३६ ॥ और निष्किंचन पुरुषोंके हम प्रिय हैं और धनवान् पुरुष यह समझकर हम दरिद्री होजायँगे, इस डरके मारे हमारा भजन नहीं करते, यह वार्त्ता जो श्रीकृष्णचंद्रने कही थी, उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि, आपसे भिन्न कुछ नहीं, इसलिये तुम निष्किंचन हो, दरिद्रतारूपी निष्किंचनता तुमसे नहीं बनती है, प्रजा लोगोंसे भेंट लेनेवाले ब्रह्मादिक देवता आपको भेंट देते हैं और

जो तुमने कहा कि, हम निष्किंचनोंके प्यारे हैं और वे मुझको प्रिय हैं, सो भी सत्य है क्योंकि जिनको किंचित् भी देहाभिमान नहीं है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मादिकोंको आप प्यारे हैं, वे आपके प्रिय हैं और जो आपने कहा कि, धनवान् लोग हमारा भजन नहीं करते यह बात भी सत्य है, क्योंकि धनपात्रताके अभिमानसे अंधे लोग कालस्वरूप आपको नहीं जानते. इसलिये वह इन्द्रियोंको तृप्त करते हैं, आपका भजन नहीं करते ॥ ॥ ३७ ॥ जिनका बराबरका जन्म है, उनका विवाह और मित्रता होती है, यह जो श्रीकृष्णचंद्रने कहा था, सो इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहने लगीं कि, हे पूर्णस्वरूप ! तुम सम्पूर्ण पुरुषार्थ और परमानन्दरूप हो, सुन्दर बुद्धिवाले मनुष्य तुम्हारी प्राप्तिके लिये सब वस्तु त्याग देते हैं, हे प्रभो ! उन पुरुषोंका और तुम्हारा सेव्यसेवकभाव है, सुख दुःखसे व्याकुल व परस्पर प्रीतिकी ग्रंथि बाँधेहुए पामर स्त्री पुरुषोंके योग्य नहीं ॥ ॥ ३८ ॥ और भिक्षुकोंने झूंठी बडाई करी है, यह जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था, उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि, सबको भयदान देकर संन्यासी और मुनिजन आपकी सराहना करते हैं और यह जो आपने कहा कि, तुमने विनाजाने हमें वरा, सो यह ऐसे नहीं है क्योंकि, आपको जिसके लिये सब वस्तु प्रिय लगती हैं, उस जगत्के आत्मारूप और अपना स्वरूप देनेवाले आप हो, इसलिये आपको वरा और भूलकर वरा, यह भी आपका कथन ठीक नहीं औरोंकी तो बातही क्या है ? ब्रह्मा और इन्द्रादिक देवताओंको भी कि,जिनका आपकी भ्रुकुटीसे प्रेरित कालके वेगसे सुखका नाश होता है, यह विचार उन्हें छोड मैंने आपको वरण किया, इस कारण जो आपने मुझपर अविचारताका दोष लगाया, सो ठीक नहीं ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! अपने अज्ञानको दूर करके और पुरुषोंकी बडाईसे क्रोधित हो, श्रीकृष्णचन्द्रसे रुक्मिणी कहनेलगी कि, हे गदाग्रज ! तुमने शार्ङ्ग धनुषके शब्दसे जरासन्धादि राजाओंको भगाकर जिसप्रकार सिंह पशुओंको भगाकर अपना बलि लाते हैं,उसी प्रकार आप अपना भागरूप मुझे ले आये इसलिये तिन राजाओंसे डरकर हम समुद्रमें आनकर रहेहैं, यह भी आपका कहना नहीं बनता ॥ ४० ॥ आपने कहा कि, जो हमारे चरणोंमें पडते हैं, वह दुःख पाते हैं सो भी नहीं बनता, हे कमलदललोचन ! तुम्हारे भजनकी इच्छासे राजाओंके मुकुटमणि राजा अंग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि चक्रवर्ती राजा राज्यको त्यागकर वनको चलेगये, तुम्हारा भजन करनेवाले राजाओंको कहाँ दुःख हुआ है ? किन्तु सुखही हुआ और वैकुण्ठधामकी प्राप्ति हुई है ॥ ४१ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि, समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड लो,इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि,साधुओंसे वर्णित जनोंको मोक्षका देनेवाला और लक्ष्मी जिसका सेवन करै, ऐसे गुणोंकी खानि तुम्हारे चरणारविन्दको सूँघकर फिर त्यागसकै मरणधर्मिणी कौन विवेकिनी स्त्री है,जो सदा मृत्युसे डरनेवाले पुरुषकी सेवा करैगी ? इसीलिये मैंने तुम्हारा हाथ पकडा है ॥ ४२ ॥ हे जगदीश्वर ! आत्मारूप भजन करनेवालोंको इस लोक और परलोकमें कामनाओंके पूर्ण करनेवाले अपने योग्य

तुम्हाराही मैंने सेवन किया है, चाहे अनेक प्रकारकी योनियोंमें मेरा जन्म होय, परन्तु उन जन्मोंमें भी मिथ्या संसारके भयका नाश करनेवाले और भक्तोंको अपनानेवाले तुम्हारी चरणोंकी शरण मुझे प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ ४३ ॥ हे शत्रुदमन ! हे अखण्डरूप ! आपने कहा कि, बडे बडे वैभववाले राजा आपकी इच्छा करते थे, सो उन्हें किसलिये छोड दिया, यह आपका कहना असंगत है,क्योंकि, आपने जो राजा बतायेहैं वह कैसे हैं, कि, जो स्त्रियोंके गृहोंमें गधेके समान केवल भार उठानेवाले, बैलके तुल्य सर्वदा क्लेश उठानेवाले, श्वानकी नाईं अपमान पानेवाले, बिडालके समान कृपण और क्रूर और सेवककी भाँति पराधीन हैं,वह तो उस मंदभागिनी स्त्रीको पति मिलने चाहिये कि, जिसके कानमें शंकर और ब्रह्माजीकी सभाओंमें गाईजाती आपकी कथा न आई हो, अर्थात् जिसने तुम्हारे गुण न सुने हों, वह तो कदाचित् भूल जाय, परन्तु मैंने तो प्रथमही आपके गुणानुबाद सुनलिये थे ॥ ४४ ॥ और जिस स्त्रीने तुम्हारे चरणारविंदकी सुगंधि नहीं सूँघी है वह स्त्री जीवितही मृतक पुरुषको पति मानकर भजै, जो कि, बाहर तो चर्म, रोम, नख और केश इनसे ढका है और भीतर मांस, हाड, रुधिर, कीडे, विष्ठा, कफ और बात, पित्तसे भरा है उसे अपना पति मानकर कौन सेबन करै ? ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हम घर और देहमें उदासीन हैं, रुक्मिणीने कहा कि, हे कमलदललोचन ! तुम अपने स्वरूपमें रमण करते हो और मुझमें आसक्त नहीं है, दृष्टि जिनकी अर्थात् मेरी चाहना नहीं हैं तोभी तुम्हारे चरणारविंदोंमें मेरा स्नेह हो, तब श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, स्नेह होनेसे तुम्हैं क्या लाभ होगा? इसके उत्तरमें रुक्मिणीजीने कहा कि, तुम्हारे चरणारविंदोंमें अनुराग होनाही बडा लाभ है, और जिस समय इस विश्वको बढानेके लिये गुणको ग्रहणकर मुझ मायाकी ओर देखोगे, वही बडा अनुग्रह है ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसप्रकार श्रीकृष्णचंद्रने जो जो बातें कहीं, उन सबका यथायोग्य उत्तर देकर रुक्मिणी बोली कि, हे मधुसूदन ! "आपने कहा कि, अपने समान् क्षत्रियका अब भी हाथ पकडलो यह मैं झूंठ नहीं मानती, जैसे काशीके राजाकी पुत्री अंबा,अम्बिकाऔरअम्बालिका इन तीनों कन्याओंमेंसे अम्बा कन्याकी शाल्व राजासे जैसी प्रीति हुई,उसी प्रकार मेरी प्रीति आपमें हुई है ॥ ४७ ॥ और हे अच्युत ! विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्रीके मन नवीन पुरुषोंमें जाते हैं, ऐसी बहुत कथा हैं, विवेकी पुरुष इस प्रकारकी खोटी स्त्रियोंको अपने घरमें नहीं रखते हैं, यदि रक्खैं भी तो इस लोक और परलोकसे भ्रष्ट होजायँ ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, हे रुक्मिणी ! तुम्हारी बात सुननेके लिये मैंने ऐसी ऐसी बातें कही थीं और मेरे वचनका जो जो उत्तर तुमने दिया सो सब सत्य है ॥ ४९ ॥ हे भामिनी ! हे मंगलरूपिणि ! जिस जिस वस्तुकी तुम चाहना करती हो, सो सो मुझमें एकांत भक्ति होनेसे तुमको प्राप्तही हैं हे कल्याणी ! मुक्तिपर्यंत तुम्हारे सब मनोरथ प्राप्त होंगे ॥ ५० ॥ हे निष्कलंक रुक्मिणी ! तुम्हारा पतिपर प्रेम और पतिव्रतापन हमने भली

प्रकार जानलिया, क्योंकि हमने यद्यपि वचन कहकर तुमको चलायमान भी किया, परंतु तो भी तुम्हारी बुद्धि मुझसे चलायमान न हुई॥५१॥ विषयोंमें आत्मा और मन लगाये जो पुरुष तपस्या और ब्रह्मचर्य करके स्त्री पुरुष भोगार्थ सुखके लिये मेरा भजन करते हैं, वह मेरी मायासे मोहित होकर भूलरहेहैं ॥ ५२ ॥ हे भामिनी ! मोक्ष सहित सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका दाता मुझे पाकर भी जो विषयोंकी चाहना करते हैं, और मेरी चाहना नहीं करते, वह पुरुष अभागे हैं, क्योंकि विषयोंका सुख तो कुत्ते और शूकरोंकी योनिमेंभी मिल जाता है, विषयोंमें मन रहनेसे नरक होता है ॥ ५३ ॥ हे घरकी महारानी ! संसारकी छुडानेवाली चाहना रहित मनकी वृत्ति जो तैंने मुझमें लगाई, यह भली बात है, खोटे अभिप्राय और अपने प्राणोंका भरण पोषण कर औरको ठगनेवाली स्त्रीके मनकी वृत्ति मुझमें नहीं लगती है ॥ ५४ ॥ हे प्राणेश्वरी ! सोलह हजार एकसौ आठ महलोंमें तुम्हारे समान प्यार करनेवाली मैं और स्त्री नहीं देखता, क्योंकि विवाहके समय आयेहुये राजाओंको त्यागकर मेरी ओर देख पाती लिखकर मेरे पास ब्राह्मणको भेजा ॥५५॥ युद्धमें तुम्हारे भाईको जीत उसका शिर मूँडकर त्रिरूप करदिया था और अनिरुद्धके विवाहमें चौपड खेलते खेलते उसे मारडाला, यह भाईका दुःख हमारे त्यागनेके भयसे तुमने सहन करलिया और मुझसे कुछ न कहा, ऐसी तुम्हारी बातोंने हमको वश करलिया है ॥ ५६ ॥ हे प्राणवल्लभे ! मेरे बुलानेके लिये सबसे छिपाकर दूतको मेरे पास भेजा और जब मुझे आनेमें विलम्ब हुआ तब इस विश्वको शून्य मानकर "और राजा मेरे योग्य नहीं हैं" यह निश्चय कर शरीर त्यागनेकी इच्छा करने लगी, यह बात तुम्हारे अतिरिक्त और किससे होसक्ती है, हम तुम्हारी क्या प्रशंसा करैं ? ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हेभरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार जगत्केईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मनुष्यलोककी लीलाका अनुकरण कर हास्यकी बातें करिके रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ रमण करते थे ॥ ५८ ॥ सामर्थ्यवान् सम्पूर्ण लोकोंके गुरु सबका दुःख हरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र इसी प्रकार और रानियोंके महलोंमें भी रहकर गृहस्थाश्रमकेसा धर्म सिखाते थे ॥ ५९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

दोहा-इकसठमें परिवार हरि, वरणौं सब सन्तान।
विवाहमें अनिरुद्धके, हनो रुक्म बलवान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एक एक रानीने श्रीकृष्णचन्द्रकेही समान रूप, गुणवाले दश दश पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ घरसे कहीं बाहर न जायँ अपने पासही रहैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर राजाओंकी पुत्री "श्रीकृष्ण आत्माराम हैं" इस बातको न जान अपना अपना प्यारा माननेलगीं ॥ २ ॥ व्यापक

श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्‌ने कमलकोशके समान सुकुमार मुख, बडी भुजा, बडे नेत्र और प्रेमसहित मन्द मुसकान, रसभरी चितवन, मनोहर वाणी इत्यादिकोंसे मोहित होकर जो स्त्री अद्भने अपने अनेक विलासोंसे पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रका मन मोहित करनेको समर्थ नहीं हुईं ॥ ३॥ गूढ हास्ययुक्त कटाक्षसे जताये अभिप्रायसे मनके हरनेवाले भ्रुकुटीरूप मण्डलप्रेरित जो सुरत सम्बन्धी विचार उनमें प्रगल्भ जो मन्मथ (कामदेव) के बाण और दूसरे भी कामशास्त्रमें प्रसिद्ध जो उपाय; उनसे यह सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियें भी भगवान् वासुदेवका मन वश करनेको समर्थ न हुई ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक देवता भी जिनके मार्गको नहीं जानते, ऐसे लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको इस प्रकार पति पाकर यह स्त्रियें निरन्तर बडे आनन्दसे स्नेहभरी हँसनि, चितवन और हास्य चितवनपूर्वक नवीन संगम उस नवीन संगममें बोलना इत्यादि विलाससमूहोंका सेवन करतीथीं ॥ ५ ॥ यद्यपि एक एक रानीके सन्मुख सौ सौ दासी हाथ जोडे खडी रहती थीं, परन्तु तोभी सम्मुख जाकर लिवालाना, आसन बिछाना, पूजन करना, चरण धोना, बीरा लगाना, चरण दाबना, पंखा करना, अतर लगाना, पुष्प चढाना, केश सुधारना शय्या बिछाना, स्नान कराना और भेंट देना इत्यादि यह श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा आपही करती थीं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! दश दश पुत्रोंवाली श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियें थीं, उनमें आठ पटरानी प्रथम वर्णन कर आये हैं उनके प्रद्युम्नादि पुत्रोंके नाम तुमसे वर्णन करता हूं ॥७॥ यथा-१प्रद्युम्न, २ चारुदेष्ण, ३, सुदेष्ण बलवान्, ४ चारु देह, ५ सुचारु, ६ चारुगुप्त, ७ भद्रचारु ॥८॥ ८ चारुचन्द्र, ९ विचारु और १० चारु यह दश पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रके रुक्मिणीसे उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ १ भानु, २ सुभानु, ३ स्वर्भानु, ४ प्रभानु, ५ भानुमान्, ६ चन्द्रभानु, ७ बृहद्भानु, ८ रतिभानु ॥ १० ॥ ९ श्रीभानु और १० प्रतिभानु यह दश पुत्र सत्यभामाने उत्पन्न किये और १ साम्ब, २ सुमित्र, ३ पुरजित, ४ शताजित, ५ सहस्राजित् ॥ ११ ॥ ६ विजय, ७ चित्रकेतु, ८ वसुमान्, ९ द्रविड और १० क्रतु यह साम्बसे आदि लेकर श्रीकृष्णचन्द्रके समान गुणवाले दश पुत्र जाम्बवतीके उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ और १ बीर, २ चन्द्र, ३ अश्वसेन, ४ चित्र, ५ वेगवान्, ६ वृष, ७ आम, ८ शंकु, शोभायमान ९ वसु और १० कुंति यह दश नाग्नजितीके पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ १ श्रुत, २ कवि, ३ वृष, ४ वीर, ५ सुबाहु, ६ भद्र, ७ शान्ति, ८ दर्श, ९ पूर्णमास और इन सबसे छोटा १० सोमक यह दश पुत्र कालिन्दीके हुए ॥ १४ ॥ १ प्रघोष, २ गात्रवान्, ३ सिंह, ४ बल, ५ प्रबल, ६ ऊर्ध्वग, ७ महाशक्ति, ८ सह, ९ ओज और १० अपराजित इन दश पुत्रोंने लक्ष्मणासे जन्मग्रहण किया ॥ १५ ॥ १ वृक, २ हर्ष ३, अनिल, ४ गृध्र, ५ वर्द्धन, ६ उन्नाद, ७ महाश, ८ पावन, ९ वह्नि और १० क्षुधि यह दश पुत्र मित्रविन्दासे जन्मे ॥ १६ ॥ १ संग्रामजित् २, बृहत्सेन, ३ शूर, ४ प्रहरण, ५ आरिजित्, ६ जय, ७ सुभद्र, ८ वाम, ९ आयु, और १० सत्यक यह दश पुत्र भद्रानाम रानीसे उत्पन्न हुए. हे नृपोत्तम परीक्षित् ! यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आठ रानियोंके पुत्रोंका

वर्णन किया, अब बलदेवजीकी रानी रेवतीके दीप्तिमान् ताम्रतप्तादि पुत्र उत्पन्न हुए, जैसे रुक्मिणी आदिके पुत्र कहे इसी प्रकार और सोलह हजार रानियोंके भी दश दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥१७॥ हे राजा परीक्षित्! भोजकटपुरवासी रुक्मकी पुत्री रुक्मवतीमें प्रद्युम्नजीसे महाबलवान् अनिरुद्ध नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ हे परीक्षित् ! यह जो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र और उनके पुत्र और नाती करोडों हुए और श्रीकृष्णचन्द्रसे उत्पन्नहुए पुत्रोंकी सोलह हजार माता हुईं ॥ १९ ॥ राजा परीक्षित्ने कहा कि, हे भगवन् ! रुक्मने अपने वैरीके पुत्रको अपनी कन्या कैसे व्याही ? वह तो युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे पराजित होकर उनके मारनेका उपाय देख रहा था, हे विद्वन् ! इन दोनों शत्रुओंके बीचमें विवाहका सम्बन्ध कैसे हुआ ? यह विस्तार सहित हमारे आगे वर्णन कीजिये ॥ २० ॥ कदाचित् आप कहैं कि, हम इस बातको क्या जाने इसका उत्तर यह है कि, योगीश्वर तो भूत, भविष्य, वर्तमान, इन्द्रियोंसे अगम्य दूर अथवा किसीके ओटमें हो, उसे भी भलीप्रकार जानते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! रुक्मकी पुत्री रुक्मवतीने साक्षात् मूर्त्तिमान् कामदेवका अवतार प्रद्युम्नको स्वयंवरमें वरलिया, तो वह युद्धमें इकट्ठे हुए राजाओंको एकही रथसे जीत उसे हरण करके लेगये ॥ २२ ॥ यद्यपि रुक्म श्रीकृष्णचन्द्रके तिरस्कारका वैर स्मरण रखता था परन्तु तो भी बहनको प्रसन्न करनेके लिये भानजेको अपनी कन्या दी ॥ २३ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! सुन्दरबुद्धि विशालनेत्रवाली रुक्मिणीकी चारुमती पुत्रीका बलवान् कृतवर्माके पुत्रने पाणिग्रहण किया ॥ २४ ॥ यद्यपि रुक्म वैर बांध रहा था परन्तु तोभी अपनी बहनको राजी करनेके लिये श्रीकृष्णके नाती अपने दौहिते अनिरुद्धको अपनी पोती रोचना नामक कन्या दी, शत्रुके साथ सम्बन्ध करना अयोग्य है, इस बातको स्वयं रुक्म जानता था परन्तु स्नेहके पाशसे बँधकर विवाह करदिया * ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस अनिरुद्धके

---

* **शंका**–भागवतमें लिखा है कि, राजा रुक्मी जानता था कि, फूफीकी लडकीके साथ विवाह करनेका तथा मामाकी लडकीके साथ विवाह करनेका महादोष है, इस धर्मको विना जाने जो विवाह करेगा तो पाप होगा और जो जानबूझके करेगा तो उस को महापाप होगा, फिर जानबूझकर अपने पुत्रकी लडकीको अनिरुद्धके संग क्यों विवाह दी ? क्योंकि वह कन्या अनिरुद्धके मामाकी थी और जो कोई कहै कि, रुक्मीने श्रीकृष्णचन्द्रजीके स्नेह करके अधर्मरूप कन्यादान किया है तोभी यह बात ठीक है, परन्तु जिस स्नेहसे संसारमें निन्दा होय और मृत्यु होनेके पीछे प्राणीको रौरवनरकमें जानापडै, ऐसे स्नेहकी मुनिलोग प्रशंसा नहीं करते ॥

उत्तर–राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मैं अपने लडकेकी लडकीको श्रीकृष्णके पोतेको विवाह दूंगा तो श्रीकृष्ण मेरे ऊपर बहुत प्रसन्न होवेंगे, ऐसा विचारके अपने ऊपर श्रीकृष्णका स्नेह समझकर अधर्मरूप विवाह किया और लोककी निन्दा और नरककी

वर्णन किया, अब बलदेवजीकी रानी रेवतीके दीप्तिमान् ताम्रतप्तादि पुत्र उत्पन्न हुए, जैसे रुक्मिणी आदिके पुत्र कहे इसी प्रकार और सोलह हजार रानियोंके भी दश दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित्! भोजकटपुरवासी रुक्मकी पुत्री रुक्मवतीमें प्रद्युम्नजीसे महाबलवान् अनिरुद्ध नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ हे परीक्षित् ! यह जो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र और उनके पुत्र और नाती करोडों हुए और श्रीकृष्णचन्द्रसे उत्पन्नहुए पुत्रोंकी सोलह हजार माता हुईं ॥ १९ ॥ राजा परीक्षित्ने कहा कि, हे भगवन् ! रुक्मने अपने वैरीके पुत्रको अपनी कन्या कैसे व्याही ? वह तो युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे पराजित होकर उनके मारनेका उपाय देख रहा था, हे विद्वन् ! इन दोनों शत्रुओंके बीचमें विवाहका सम्बन्ध कैसे हुआ ? यह विस्तार सहित हमारे आगे वर्णन कीजिये ॥ २० ॥ कदाचित् आप कहैं कि, हम इस बातको क्या जाने इसका उत्तर यह है कि, योगीश्वर तो भूत, भविष्य, वर्तमान, इन्द्रियोंसे अगम्य दूर अथवा किसीके ओटमें हो, उसे भी भलीप्रकार जानते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! रुक्मकी पुत्री रुक्मवतीने साक्षात् मूर्त्तिमान् कामदेवका अवतार प्रद्युम्नको स्वयंवरमें वरलिया, तो वह युद्धमें इकट्ठे हुए राजाओंको एकही रथसे जीत उसे हरण करके लेगये ॥ २२ ॥ यद्यपि रुक्म श्रीकृष्णचन्द्रके तिरस्कारका वैर स्मरण रखता था परन्तु तो भी बहनको प्रसन्न करनेके लिये भानजेको अपनी कन्या दी ॥ २३ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! सुन्दरबुद्धि विशालनेत्रवाली रुक्मिणीकी चारुमती पुत्रीका बलवान् कृतवर्माके पुत्रने पाणिग्रहण किया ॥ २४ ॥ यद्यपि रुक्म वैर बांध रहा था परन्तु तोभी अपनी बहनको राजी करनेके लिये श्रीकृष्णके नाती अपने दौहिते अनिरुद्धको अपनी पोती रोचना नामक कन्या दी, शत्रुके साथ सम्बन्ध करना अयोग्य है, इस बातको स्वयं रुक्म जानता था परन्तु स्नेहके पाशसे बँधकर विवाह करदिया * ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस अनिरुद्धके

---

* **शंका**-भागवतमें लिखा है कि, राजा रुक्मी जानता था कि, फूफीकी लडकीके साथ विवाह करनेका तथा मामाकी लडकीके साथ विवाह करनेका महादोष है, इस धर्मको विना जाने जो विवाह करेगा तो पाप होगा और जो जानबूझके करेगा तो उस को महापाप होगा, फिर जानबूझकर अपने पुत्रकी लडकीको अनिरुद्धके संग क्यों विवाह दी ? क्योंकि वह कन्या अनिरुद्धके मामाकी थी और जो कोई कहै कि, रुक्मीने श्रीकृष्णचन्द्रजीके स्नेह करके अधर्मरूप कन्यादान किया है तोभी यह बात ठीक है, परन्तु जिस स्नेहसे संसारमें निन्दा होय और मृत्यु होनेके पीछे प्राणीको रौरवनरकमें जानापडै, ऐसे स्नेहकी मुनिलोग प्रशंसा नहीं करते ॥

उत्तर-राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मैं अपने लडकेकी लडकीको श्रीकृष्णके पोतेको विवाह दूंगा तो श्रीकृष्ण मेरे ऊपर बहुत प्रसन्न होवेंगे, ऐसा विचारके अपने ऊपर श्रीकृष्णका स्नेह समझकर अधर्मरूप विवाह किया और लोककी निन्दा और नरककी

विवाहोत्सवमें रुक्मिणी, श्रीकृष्ण बलदेव और साम्ब प्रद्युम्नको आदि लेकर सब यादव भोजकटपुरको बरातमें गये ॥ २६ ॥ जब विवाह होचुका, तब कलिंगदेशके राजाको आदि ले घमंडी राजा रुक्मसे कहनेलगे कि, हे रुक्म ! बलदेवजीको जुएमें जीत लो ॥ ॥ २७ ॥ हे राजा रुक्म ! यह बलदेव पाँसेका खेल नहीं जानते, परन्तु इनको खेलनेका व्यसन बडा है, यह सुनतेही रुक्म बलदेवजीको बुलाय उनके संग जुआ खेलनेलगा ॥ २८ ॥ बलरामजीने वहाँ प्रथम सौ, फिर हजार, इसके पीछे दशहजार रुपयेका दाँव लगाया, परन्तु वह दाँव रुक्मही धाँधलबाजी करके जीतगया उस समय कलिंगदेशका राजा दाँत दिखाकर बलदेवजीकी बहुत हँसी करके कहने लगा कि ॥

चौ०-जुवाखेल पाँसेकी सार। यह तुम जानो कहा गँवार॥
जुआ युद्धगति भूपति जानै। ग्वाल गोप गैयन पहिचानै॥

तब बलरामजी उस हँसीको सहन न करसके ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त रुक्मने एक लाख मोहरोंका दाँव लगाया, उसे बलदेवजी जीते, परन्तु उस समय कपट करके "मैंने जीता" इस प्रकार रुक्म कहनेलगा ॥ ३० ॥ जिस प्रकार अमावस व पूर्णमासीको समुद्र क्षोभयुक्त होताहै, उसी प्रकार श्रीमान् बलदेवजी अत्यन्त क्रोधसे क्षुभित होगये और स्वभावहीसे जिनके अरुण नेत्र हैं ऐसे बलरामजीने अति क्रोधकर दश करोडका दाँव लगादिया ॥ ३१ ॥ और वास्तवमें बलदेवजी वह दाँव जीतगये तब फिर रुक्मने कपट करके कहा कि, मैं जीताहूं, इस विषयमें यह जो सभासद उपस्थित हैं. इनसे बूझलो इस प्रकार बलदेवजी और रुक्मका विवाद हो रहा था कि, इतनेहीमें आकाशवाणी हुई कि, बलदेवजी जीते हैं और रुक्मका बचन मिथ्या है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय आकाशवाणीका निरादर करके दुष्ट राजाओंका सिखाया रुक्म महात्मा बलदेवजीकी हँसी करता कालसे प्रेरित होकर यह वचन कहनेलगा कि ॥ ३४ ॥ गौओंके चरानेवाले तुम पाँसे खेलना नहीं जानते, पाँसोंसे और बाणोंसे तो राजालोग खेलते हैं, आपसरीखे पाँसे खेलना क्या जाने ? ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित् जब इस प्रकार रुक्मने अनादर और राजाओंने हँसी करी, तब महाबलवान् बलरामजीने अत्यंत क्रोधित हो,परिघ उठाय मंगल सभामें रुक्मका संहार किया और कहा ॥ ३६ ॥

चौ०-करी सगाई बैर न छाँडो। हमसे फेर कलह तुम माँडो॥
मारों तोहिं अरे अन्याई। भलो बुरो मानै भौजाई॥

हे राजन् ! जब बलरामजीने सब राजाओंके देखते २ रुक्मको मारडाला उस समय

–त्रास दोनोंको त्यागकर अपनी पोतीका विवाह श्रीकृष्णके पोतेके संग करदिया, राजा रुक्मीने विचार किया कि, जो मेरे ऊपर कृष्ण प्रसन्न रहैंगे तब लोकमें मेरी निन्दा कौन कर सक्ता है ? और नरकमें भी कृष्णके सामने मुझे कौन डालसक्ता है । ऐसा विचारके रुक्मीने अधर्मरूप विवाह किया था ॥

कलिंगदेशका राजा अत्यंत भयभीत होकर भागा, तब झुँझलाकर बलरामजीने उसे दश ही पगपर पकड लिया और जौनसे दाँत फाडकर वह हँसा था, वह दाँत तोडदिये ॥ ॥ ३७ ॥ और राजा भी बलदेवजीके परिघसे पीडित हो, डरकर भागगये, जिनके हाथ, जंघा और शिर टूट गये थे और रुधिरसे उनका शरीर भीग रहा था ॥ ३८ ॥ हे परीक्षित्! जब श्रीकृष्णका साला रुक्म मारा गया, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने न तो अच्छा कहा न बुरा कहा क्योंकि जो अच्छा कहते तो रुक्मिणी अप्रसन्न होतीं और बुरा कहते तो बलदेवजी अत्यंत बुरा मानते, इसलिये कुछ न कहा चुप चाप रहे ॥ ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत दुलहिनके साथ अनिरुद्धजीको रथमें बिठाय बलरामादि सब यादव भगवान् श्रीकृष्णचंद्रका आश्रय पाय सब मनोरथ सिद्धकर भोजकटपुरसे चल द्वारकापुरीमें आये ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे
एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

दोहा-बासठवें अध्यायमें, बाणासुर बलवान।
बाँधिलियो अनिरुद्धको, सो सब कहौं बखान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! भगवान् विष्णुने जब वामनरूप धारण करके राजा बलिसे पृथ्वी माँगी तब सब पृथ्वी जिनने दान करदी ॥ १ ॥ ऐसे महात्मा राजा बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें ज्येष्ठ पुत्र भगवान् महादेवजीका अत्यंत भक्त, सबका मान्य, ज्ञानवान्, बुद्धिमान् सत्यसंकल्प, दृढव्रत, बाणासुर नामसे प्रसिद्ध था और शोणितनाम रमणीकपुरमें राज्य करता था ॥ २ ॥ ३ ॥ उस बाणासुरके संमुख भगवान् महादेवजीकी कृपासे संपूर्ण देवता सेवकोंकी भाँति खडे रहते थे, एक समय तांडव नृत्यमें हजार भुजाओंसे बाजे बजाय भोलानाथको बाणासुरने प्रसन्न किया, तब सब प्राणियोंके ईश्वर भक्तवत्सल भगवान् महादेवजी बाणासुरको वर देनेकी इच्छा करने लगे. तब शिवजीसे " मेरे पुरकी तुम रक्षा करो " यह बाणासुरने वर माँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ पराक्रमके दुर्मदसे बाणासुर अपने पास रहनेवाले शिवजीके चरणारविन्दोंको सूर्यके तेजके समान किरीटसे स्पर्श करके एक समय कहनेलगा ॥ ६ ॥ कि, हे सब लोकोंके गुरु महादेव! जिनके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए हैं, तुम उन पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हो इसलिये आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥ और हे देव! आपने जो कृपाकरके हजारभुजा मुझे दीं, सो इनका अबतक केवल बोझही हुआ है, इसलिये त्रिलोकीमें तुम्हारे विना और कोई मुझे बराबरका युद्ध करनेवाला नहीं मिलता ॥ ८ ॥ हे आदिपुरुष! जब मेरी भुजाओंमें बहुत खुजली उठी, तब मैं युद्ध करनेके लिये पर्वतोंको तोडता फोडता दिग्गजोंके पास गया, परन्तु वह भी मेरे भयसे भीत हो दिशाओंको छोडकर भागगये, इस कारण कृपाकरके आप मुझसे युद्धकर मेरा मनोरथ पूर्ण

कीजिये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार बाणासुरका वचन सुन भगवान् महादेवजी अत्यन्त क्रोधित होकर कहनेलगे कि, मूढ ! जिस समय मेरी दी हुई ध्वजा तेरे महलपरसे टूटकर गिरपडेगी, उस समय तेरी बराबरीके बलवान्से तेरा युद्ध होगा, और तेरा गर्व भी उसी समय चूर्ण होजायगा ॥ १० ॥ हे परीक्षित् ! जब भगवान् भूतनाथ महादेवजीने इस प्रकार कहा, तब कुबुद्धि बाणासुर शिर नवाय अपने घरको चलागया और अपने बल, बुद्धि पराक्रमके नाश करनेवाली महादेवजीकी आज्ञाका पैंडा देखने लगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस बाणासुरके एक ऊषानामक कन्या थी उसके पहले कभी जिसको न देखा और न कभी सुना ऐसे सुन्दर अनिरुद्धके साथ स्वप्नमें समागम हुआ ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त जागनेपर वहाँ अनिरुद्धको न देख अत्यन्त लज्जित हो, हे कांत ! तुम कहाँ गये ? इसप्रकार पुकारती पुकारती विह्वल होकर सखियोंके बीचमें गिरपडी ॥ १३ ॥ तब बाणासुरके मंत्री कुंभाण्डकी पुत्री चित्ररेखा आश्चर्य मानकर अपनी प्रियसखी ऊषासे पूँछनेलगी ॥ १४ ॥ कि, हे सुभ्रु ! हे प्यारी ऊषा ! तू किसे ढूँढती है और तेरा क्या मनोरथ है ? हे राजकुमारि ! अभी तो तेरा विवाह भी नहीं हुआ है, फिर किस प्रकार पति पति पुकारती फिरती है ? ॥ १५ ॥ इस प्रकार चित्ररेखाका वचन सुनकर ऊषा बोली कि, श्यामस्वरूप, कमलके समान नेत्र पीताम्बर धारण किये, बडी भुजा और स्त्रियोंके मनका मोहित करनेवाला ऐसा पुरुष मैंने स्वप्नमें देखा है ॥ १६ ॥ मैं उसी प्रीतमको ढूँढ रही हूँ, वह मुझे अधरामृत पिलाय मुझ अभिलाषिणीको दुःखके समुद्रमें पटककर कहीं चला गया ॥ १७ ॥ यह वचन सुनकर चित्ररेखा बोली कि, हे ऊषा ! तेरा दुःख मैं दूर करूँगी, जिस पुरुषने तेरा चित्त चुराया है, यदि वह त्रिलोकीमें कहीं होगा तो ढूँढकर ले आऊंगी, परन्तु उसे बता दे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त चित्ररेखा देवता, गंधर्व, सिद्ध, चारण और पन्नग इनके चित्र लिखकर फिर दैत्य, विद्याधर, यक्ष, मनुष्य इन सबके चित्र लिखनेलगी ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें भी वृष्णि और वृष्णिमें भी शूरसेन, वसुदेव, राम, कृष्ण और प्रद्युम्नका चित्र लिखा उसको देखतेही " यह श्वशुर है " ऐसा समझकर लज्जित होगई ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पृथ्वीपति ! ऊषा अनिरुद्धका चित्र देखकर अत्यन्त लाजसे नीचेको मुख किये " मेरा चित्तचोर यही है" ऐसे मुसकराकर सखीसे कहने लगी ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! योगकी ज्ञाता चित्ररेखा उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पौत्र जान आकाशमार्गसे होकर कृष्ण पालित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहाँ उस समय अनिरुद्धकुमार पलँगपर शयन कर रहे थे उन्हें योगके बलसे उठाय शोणितपुरमें लेआई और सखी ऊषाको दर्शन कराया * ॥ २३ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान् सुन्दर वर अनिरुद्धजीको देख प्रसन्नमुख ऊषा

* **शंका**-श्रीकृष्णके तेजसे रची हुई द्वारकापुरी, जिसके चारोंओर समुद्र, रात दिन सुदर्शनचक्र घूमता रहै, ऐसी अद्भुत द्वारकापुरीमें जो कोई पुरुष कपटवेष धारण करके-

पुरुषोंके देखनेमें न आवै इस प्रकार अपने घरमें अनिरुद्धके संग रमण करनेलगी ॥ ॥ २४ ॥ और बडे मोलके वस्त्र, माला, सुगंधि, धूप, दीप आसन इत्यादि और पीने की सामग्री तथा भोजन, भक्ष्य वचनोंसे उनकी पूजा करनेलगी ॥ २५ ॥ अत्यन्त बढा है स्नेह जिसका ऐसी ऊषाने हरी है इन्द्रियें जिनकी ऐसे अनिरुद्धजीको मोहित होकर वास करते कितनेही दिन रात बीतगये, परन्तु उन्हें कुछ सुधि न हुई ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! यादवोंमें वीर अनिरुद्धजीके भोग करनेसे जिसका कन्यापनेका व्रत दूर होगया तब उस अत्यन्त प्रसन्नमन ऊषाको गुप्त न रहनेवाले लक्षणोंसे पहरेदारोंने पहिचान लिया और उसीसमय बाणासुरसे आनकर कहा कि ॥ २७ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार कुलको कलंक लगै, ऐसी तुम्हारी कन्याकी कुचेष्टा हमको दीख पडती है ॥ २८ ॥ हे समर्थ ! बाणासुर ! हम लोग तो घरका अखण्ड पहरा देते हैं और राजकुमारी ऊषाकी रक्षा करते हैं, इसे कोई मनुष्य देख भी नहीं सक्ता इतनेपर भी कन्या को यह दूषण कहाँसे लगगया ? सो हम नहीं जानते ॥ २९ ॥ इस प्रकार कन्याका दोष सुन अत्यन्त दुःखी हो, बाणासुरने शीघ्रही कन्याके घरमें जाकर यादवोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको देखा ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! कामदेवका पुत्र त्रिभुवनमें एक सुन्दर श्यामस्वरूप, पीताम्बर धारण किये, कमलके समान नेत्र, बडी भुजा, कानोंमें दीप्तिमान् कुण्डल और केशोंकी कान्ति व मुसकानपूर्वक चितवनसे शोभायमान मुख ॥ ३१ ॥ और सब मंगलरूप प्यारीके साथ पाँसोंसे खेलता, उस प्यारीके अंगसंगसे जिसमें स्तनोंकी केशर लगगई थी, ऐसी मनोहर जो वसन्त ऋतुकी मालतीहै, उसके पुष्पोंकी

–उस पुरीमें जानेकी इच्छा करना चाहै तो कभी नहीं जासक्ता, जो ब्रह्मदेवके बनाये जीव हैं उनको तो सामर्थ्यही नहीं. जो कपट करके द्वारकाके भीतर जासकै, फिर क्या कारण जो चित्ररेखा रक्षा करनेवाले प्राणियोंकी आज्ञा नहीं ली, बिना बूझे कपट करके द्वारकामें जाकर सोतेहुए अनिरुद्धकुमारको पलँगसहित उठाय, बडे सुखसे लेकर चली गई, कोई दूसरा यादव नहीं, वह स्वयं श्रीकृष्णके पोतेहीको हरकर लेगई किसी और दूसरे यादवको लेजाती तो थोडी ही शंका होती कि, कोटके बाहर सोताहुआ रहगया होगा वह तो कोटके भीतर इक्कीस ड्योढीवाले मन्दिरमेंसे अनिरुद्धको लेगई अरु किसीको सुधि भी न हुई यह बडा अचंभा है ?

उत्तर–बाणासुरके दर्पनाशका उपाय भगवान्ने विचारकर और उसकी कन्याके संग अपने पोतेका विवाह विचारकर, सुदर्शनचक्रको आज्ञादी कि, द्वारकापुरीको चित्ररेखा राक्षसी आवैगी, उसको तुम द्वारकाके भीतर जानेसे मत रोकना, एक बार द्वारकासे बाहरको जाय तो चली जानेदेना और भीतरसे कोई वस्तु बाहरको लेजाय तो लेजाने देना वर्जना मत, ऐसी भगवान्की आज्ञाको मानकर सुदर्शनचक्रने चित्ररेखाको नहीं वर्जा इसलिये चित्ररेखा अनिरुद्धको हरकर लेगई ॥

माला कण्ठमें धारण किये कामदेवके पुत्र अनिरुद्धजीको ऊषाके निकट बैठा देखकर बाणासुर अत्यन्त आश्चर्य करनेलगा ॥ ३२ ॥ शत्रुओंको संगलिये अनेक पैदलोंसहित बाणासुरको मन्दिरमें आता देखकर मधुवंशोत्पन्न अनिरुद्धजी लोहेका परिघ उठाय मारनेके लिये दंड धारण करके कालके समान खडे होगये ॥ ३३ ॥ पकडनेके लिये चारों ओरसे चले आते, सूकरोंके यूथका पालन करनेवाले मुख्य सूकर जैसे कुत्तोंको मारता है, उसी प्रकार मारनेलगे और मार पडनेके कारण शिर, हाथ, पाँव टूटनेसे वह सिपाही घरमेंसे निकलकर भागगये ॥ ३४ ॥ राजा बलिके पुत्र बली बाणासुरने क्रोध करके अपनी सेनाको मारतेहुए अनिरुद्धकुमारको नागफाँससे बाँधलिया, उस समय अनिरुद्धजीको बँधा देख कर अत्यन्त शोक और खेदसे व्याकुल हो नेत्रोंमें जल भरकर ऊषा रोने लगी ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

दोहा-तिरसठमें यादवन अरु, बाणासुरको युद्ध।
सहसभुजातेहि काटि हरि, बरो बहुरि अनिरुद्ध ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित्! अनिरुद्धजीको देखे बिना बंधु बांधवोंको शोच करते वर्षाऋतुके चार महीने व्यतीत होगये ॥ १ ॥ हे राजन्! जिस समय सब यदुवंशी शोच सागरमें निमग्न पडे थे, उसी समय देवर्षि नारदजीने आनकर अनिरुद्धके बँधनेका सब समाचार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा, सुनतेही श्रीकृष्णचन्द्र बहुतसे यादवोंको साथ ले बाणासुरके शोणितपुरको गये ॥ २ ॥ प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्य, सारण, नंद, उपनन्द और भद्रादि राम कृष्णके आज्ञाकारी मुख्य मुख्य यादवोंको श्रीकृष्णचन्द्रने संगले बारह अक्षौहिणी सेनासे बाणासुरके नगरको चारोंओरसे घेरलिया ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे परीक्षित्! यादवोंसे अपने पुरके बाग, परकोटे, अटारी, द्वार आदि टूटे देख अत्यन्त क्रोधित हो, बारह अक्षौहिणी सेना लेकर बाणासुर पुरसे बाहर निकला ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त अपने भक्त बाणासुर पर विपत् पडी जान, अपने पुत्र स्कंद और बहुतसे भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी इत्यादि साथ ले नंदीश्वरपर चढकर कृष्ण बलदेवसे युद्ध करनेके लिये भगवान् महादेवजी रणभूमिमें आनकर सुशोभित हुये ॥ ॥ ६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! अब वहाँ परस्पर बडा अद्भुत व भयानक जिसको देखतेही रोमांच खडे होजायँ, इस प्रकार युद्ध होनेलगा, श्रीकृष्णचन्द्र महादेवजीके सम्मुख, प्रद्युम्न स्वामिकार्त्तिकजीके सम्मुख ॥ ७ ॥ कुभांड और कूपकर्णका युद्ध बलदेवजीसे होनेलगा, साम्बका बाणासुरके पुत्रके संग और बाणासुरका युद्ध सात्यकीके साथ होनेलगा ॥ ८ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक और मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष यह सब विमानोंपर चढकर युद्ध देखनेकी इच्छासे आये ॥ ९ ॥ उस समय भगवान्

भूतेश्वरके अनुचर भूत, प्रेत, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वैताल, विनायक ॥ १० ॥ प्रेत, मातृ, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षस इन सबको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र पैनी धारके भालोंसे मार मारकर भगानेलगे ॥ ११ ॥ पिनाक धनुषधारी महादेवजी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर अलगही अस्त्र शस्त्र चलानेलगे, परन्तु आश्चर्यरहित श्रीकृष्णचन्द्रजीने उन सब अस्त्र शस्त्रोंको शान्त कर दिया ॥ १२ ॥ श्रीभोलानाथने ब्रह्मास्त्र चलाया उसे श्रीकृष्णजीने ब्रह्मास्त्रसे शान्त कर दिया, इसके उपरान्त जब महादेवजीने वायुदेवताका अस्त्र चलाया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतदेवताका अस्त्र छोडा उस समय पर्वतसे रुककर पवन थँभगया, इसके पीछे महाक्रोधित हो शिवजीने अग्निदेवताका अस्त्र चलाकर आग लगा दी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय मेघास्त्र छोडकर क्षणमात्रमें सब अग्निको शान्त कर दिया फिर भगवान् भूतनाथने अपना पाशुपत अस्त्र चलाया, उसको श्रीकृष्ण-चन्द्रने अपने नारायणास्त्रसे काटडाला ॥ १३ ॥ फिर भगवान् वासुदेवने जृम्भणास्त्र चलाया, उससे शिवजी जँभाई लेनेलगे, इस प्रकार उन्हें मोहित करके बाणासुरकी सेनाको तलवार गदा और बाणोंसे, मारनेलगे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! प्रद्युम्नजीके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर स्वामिकार्त्तिकजीके अंगोंमेंसे रुधिर बहनेलगा, तब वह समर छोड मोरपर चढकर भाग गये ॥ १५ ॥ कुंभांड और कूपकर्ण मूसलके लगनेसे पृथ्वीपर गिरगये, तब स्वामी-के मरजानेसे उनकी सम्पूर्ण सेना चारोंओरका भागगई ॥ १६ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार अपनी सेनाको जहाँ तहाँ भागती देख बडी असहनतासे बाणासुर संग्राममें सात्यकी यादवको छोडकर श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥ १७ ॥ और रणमें बडे गर्वसे बाणासुरने एक संग पाँचसौ धनुष खैंच एक एक धनुषमें दो दो बाण लगाये ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय बाणासुरके वह पाँचसौ धनुष काट डाले फिर सारथी और घोडोंको मार रथको चूर्णकर शंखध्वनि करी ॥ १९ ॥ उस समय कोटरानाम बाणासुरकी माता अपने बालोंको खोल, नग्न हो, पुत्रके प्राण बचानेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आनकर खडी होगई * ॥ २० ॥

---

* **शंका**—अपने पुत्रकी रक्षा करनेके लिये बाणासुरकी माता नंगी होकर श्रीकृष्णके सामने क्यों खडी होगई, नग्न होकर खडी होनेसे क्या जान पडताहै ? जैसे किसीकामीके सामने स्त्री नग्न होकर खडी होजाय तो वह कामी स्त्रीको देखकर मोहित होजाय तो स्त्री जो कुछ आज्ञा करै, सो सो आज्ञा वह कामी पुरुष उसकी पूर्ण किया करै वही काम बाणासुरकी माताने किया, यह शंका भारी है ॥

उत्तर—ब्रह्माने कोटराको बरदान दिया था कि, हे कोटरे ! तीन लोकमें जो पुरुष हैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव और चौरासी लक्ष योनिके पुरुषमात्र तुमको नंगी देखेंगे तब उसी समय भस्म होजायँगे, केवल एक तेरा पतिही भस्म न होगा और सब जल्दी भस्म होंगे, कोटराने ऐसा जानकर श्रीकृष्णको भस्म करनेके लिये श्रीकृष्णके सम्मुख खडी हुई ॥

देखतही प्रभु मूँदे नैन। पीठ दई ताके सुनि बैन॥

हे राजन्! नंगी स्त्रीको देखना शास्त्रकी आज्ञा नहीं है, इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुख फेर कर खडे होगये, इस बीचमें जिसका रथ टूटगया, धनुष कटगया, ऐसा बाणासुर रणभूमि छोड पुरमें भागगया॥ २१ ॥ भूतोंके गण जिस समय भागगये, तब तीन शिर और तीन पाँवका ज्वर दशों दिशाओंको जलाता शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया॥ २२ ॥ तब नारायण देव श्रीकृष्णचंद्रने शिवजीके ज्वरको आया देख अपना शीतज्वर छोडा, इसके उपरान्त शिवजीका ज्वर और भगवान्का ज्वर दोनों परस्पर मिलकर युद्ध करनेलगे॥ २३ ॥ जब विष्णुके ज्वरने शिवजीके ज्वरको बलपूर्वक दबालिया, तब अत्यन्त पीडित होकर पुकारने लगा और अपनी रक्षाके लिये कोई निर्भय स्थान न पाय, हाथ जोड भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगा॥ २४ ॥ ज्वर बोला कि, अनन्तशक्ति, ब्रह्मादिकोंके ईश्वर सबके आत्मा शुद्ध; चैतन्यघन जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण, वेदसे गम्य, शान्तमूर्ति, ब्रह्म जो आप हैं, सो मैं आपको नमस्कार करताहूं॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, द्रव्य, शरीर, प्राण, अहंकार, विकार और मन अर्थात् ग्यारह इन्द्रियें और पंचमहाभूत, अर्थात् पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इन तत्त्वोंका बना यह देह जैसे बीजसे अंकुर और अंकुरसे फिर बीज होताहै, इसी प्रकार कर्मोंसे देह, फिर देहसे कर्म, फिर कर्मसे देह ऐसे जलकेसा प्रवाह चला जाता है, बस यही तुम्हारी माया है, तुम उसके निषेधके अवधि हो, इस लिये मैं आपकी शरण आया हूं॥ २६ ॥ यदि कहो कि, मैं देवकीका पुत्र हूँ सो यह मुझसे कैसे बन सक्ता है इसका उत्तर यह है कि, आप लीलापूर्वक मत्स्यादि अवतार धारण करके देवताओंका पालन और वर्णाश्रमके धर्मकी रक्षा करते हो और धर्म करनेवाले साधुलोगोंका पालन व हिंसा सहित पापमार्गका नाश करतेहो, इस कारण पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिये तुम्हारा जन्म है॥ २७ ॥ आपके उत्पन्न किये दुःसह भयंकर उग्र शीतज्वरसे मैं तपायमान हुआहूं क्योंकि देहधारियोंको तबतकही ताप है जबतक आशा बाँधकर आपके चरणकमलोंका सेवन न करैं॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित! जब इस प्रकार शिवज्वरने भगवान् वासुदेवकी स्तुति करी तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे तीन शिरके ज्वर! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हुआहूँ और मेरे ज्वरसे जो तुझे भय हुआ है वह डर निवृत्त हो परन्तु जो पुरुषगण इस संवादका स्मरण करैं उनको तू मत व्यापना॥ २९ ॥ इस प्रकार जब कहा, तो शिवज्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके चलागया, इसके उपरान्त बाणासुर रथमें चढ श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये आया॥ ३० ॥ हे महाराज! हजार भुजाओंमें अनेकप्रकारके शस्त्रोंको धारण कर बाणासुर अत्यन्त क्रोधित हो, चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा॥ ३१ ॥ निरन्तर शस्त्रोंको चलाते बाणासुरकी भुजाओंको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने छूरीके समान पैनीधारके चक्रसे जैसे नाली वृक्षोंको काटता है, उसी प्रकार

काटडालीं ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित ! जब बाणासुरकी भुजा कटगई, तो उस समय भक्त बाणासुरपर कृपा करनेवाले भगवान् भूतनाथ आकर चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ महादेवजीने कहा कि, हे परब्रह्म ! आपके विनाजाने इस बाणासुरने युद्ध किया है. इसमें आश्चर्य नहीं, इस कारण वाणीमय वेदमें तुम छिपेहुए परब्रह्म हो और ज्योति सूर्यादिकोंके तुम प्रकाशक हो, इसलिये किसीके जाननेमें नहीं आते, यदि कहो कि, प्रतीत कैसे हो? इसके उत्तरमें शिवजी कहते हैं कि, निर्मल मन, बुद्धिवाले पुरुष आकाशके समान निर्लेप, निर्गुण तुम्हें देखतेहैं ॥ ३४ ॥ निर्गुण ज्ञानकी बात तो एक ओर है परन्तु तुम्हारी लीलाका आश्रय ब्रह्माण्ड भी जाननेमें नहीं आता जैसे गूलर फलके भीतरके जीव गूलरके फलको नहीं जानते उसी प्रकार इस अभिप्रायसे ब्रह्माण्डरूप करके शिवजी स्तुति करतेहैं कि, आकाश आपकी नाभि, अग्नि मुख, जल वीर्य, स्वर्ग मस्तक, दिशा कान, पृथ्वी चरण, चंद्रमा मन, सूर्य नेत्र, आत्मा अहंकार, समुद्र उदर, इन्द्र भुजा, औषधी रोम, मेघ केश, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति लिंग और धर्म हृदय है. लोकोंकी कल्पनासे विराट् पुरुष तुम हो ॥ ३५ ॥३६ ॥ सो हे अखण्डरूप ! यह तुम्हारा अवतार धर्मकी रक्षा और जगत्का कल्याण करनेके लिये हुआ है और हम सब लोकपाल आपहीसे रक्षित होकर सब लोकोंका पालन करतेहैं ॥ ३७ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थामें पुरुषके आप कारण हो और शुद्ध हो इसीलिये अद्वितीय पुरुष हो और सब विश्वके कारण हो, स्वयं कारण रहित हो परन्तु तो भी संपूर्ण विषय प्रकाश करनेके लिये अपनी मायासे जो देह धारण किया है, उसमें ऐसेही प्रतीत होते हो ॥ ३८ ॥ जैसे सूर्य अपनी मेघरूपी छायासे ढकाहुआ होनेपर भी बादलोंको प्रकाशित करता है और बादलोंके बाहर भी रूपको प्रकाशमान करता है उसी प्रकार हे भूमन् ! स्वयंप्रकाश आप जीवकी दृष्टिमें अपने कार्यरूप अहंकारसे ढकेहुए प्रतीत होनेपर भी सत्त्व, रज, तम,गुण रूप, उपाधि और उनके जीवोंको भी प्रकाशित करते हो ॥ ३९ ॥ तुम्हारी मायासे मोहित होकर स्त्री, पुत्र और धरादिमें लगेहुए लोग दुःखमय संसारसागरमें ऊंच, नीच योनियोंको पाते हैं ॥ ४० ॥ भगवान्की दीहुई मनुष्यदेहको पाकर जिसने अपनी इन्द्रियोंको नहीं जीता और जिस पुरुषने तुम्हारे चरणोंका भलीभाँति पूजन न किया उस पुरुषको शोच करने योग्य और आत्माका ठगनेवाला समझना चाहिये ॥ ४१ ॥ प्यारे पुत्रादिकोंके लिये जो पुरुष प्रिय आत्मा आपका त्याग करता है, वह पुरुष अमृत छोडकर विष पीता है ॥ ४२ ॥ मैं (शिव) ब्रह्मा और देवता निर्मल अंतःकरणवाले मुनि भी प्रिय ईश्वर और आत्मरूप आपकाही भजन करतेहैं ॥ ४३ ॥ जगत्के उत्पत्ति पालन और नाशके कारण सबमें समान, शान्तस्वरूप, हितकारी आत्मा, ईश्वर, अनन्य और दूसरा जिनके समान नहीं, बडा नहीं, जगत्के आत्मा आश्रय देव तुम हो ! सो तुम्हें संसार त्यागनेके लिये हम भजतेहैं ॥ ४४ ॥ हे प्रकाशमान ! यह बाणासुर मेरा अत्यन्त प्रिय और इष्ट भक्त है इस कारण मैंने इसे अभयदान दियाहै, जैसे आपने प्रह्लादपर दया

की, उसी प्रकार इसपर भी दया करनी चाहिये ॥ ४५ ॥ यह प्रार्थना सुनकर भगवान् वासुदेवने कहा कि, हे भगवन् ! आपने जिस प्रकार कहा, मैं वैसेही आपको प्रसन्न करूंगा आपने जिस बातका विचार किया है, मैं उसमें भलीभाँति सम्मति देता हूं ॥ ४६ ॥ विरोचनके पुत्र राजा बलिका बेटा यह बाणासुर है, इसलिये मारने योग्य नहीं, क्योंकि, मैंने प्रह्लादको वर दिया है कि, जो तेरे वंशमें उत्पन्न होगा, मैं उसको नहीं मारूंगा ॥ ४७ ॥ अभिमान दूर करनेके लिये मैंने इसकी सहस्र भुजा काटी हैं और जो पृथ्वी-पर भारी बोझ होरहा था उसको भी मैंने उतारदिया ॥ ४८ ॥ कटनेसे इसकी चार भुजा शेष रहगई हैं, सो अजर अमर होंगी और यह दैत्य बाणासुर भयरहित तुम्हारे पार्षदोंमें मुख्य पार्षद होगा ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! इस प्रकार अभय पाकर बाणासुरने श्रीकृष्णचन्द्रको वारंवार प्रणाम करके ऊषा सहित अनिरुद्धको रथमें बैठालकर बिदा करदिया ॥ ५० ॥ और बाणासुरकी दीहुई एक अक्षौहिणी सेना संगलिये सुन्दर वास्त्रालंकारोंसे शोभायमान स्त्री सहित प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको आगे कर शिवजीसे अनुमोदन पाय श्रीकृष्णचन्द्रने वहाँसे पयान किया ॥ ५१ ॥ नगरके मनुष्य सम्बन्धी और ब्राह्मणोंसे घिरे हुए, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रने शंख, आनक, नगारे बजाते तोरण व ध्वजाओंसे शोभायमान मार्गमें जहाँ छिडकाव होगया है, ऐसी अपनी नगरी द्वारका-पुरीमें प्रवेश किया॥५२॥हे राजन् ! यह श्रीकृष्णचंद्रकी जीत और श्रीकृष्णका शिवजीसे युद्ध जो पुरुष प्रातःकाल उठकर स्मरण करैंगे, उनकी कभी हार नहीं होगी ॥ ५३ ॥

चौ०–यह संवाद सुने जो कोय । ज्वरको भय ताको नहिं होय ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

दोहा–चौंसठमें श्रीकृष्णने, नृगको शाप छुटाय ।
ब्रह्म अंशकी लगनको, सब फल दियो दिखाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! सांब, प्रद्युम्न, चारुभानु, गद इत्यादि यादवोंके पुत्र विहार करनेके लिये वनको गये ॥ १ ॥ उस वनमें बहुत देरतक क्रीडा करते रहे, जब प्याससे पीडित हो यादवोंके पुत्रोंने जलको ढूँढा, तब विना जलके कुएँमें एक अद्भुत जीव पडा देखा ॥ २ ॥ पर्वतके समान करकेटा देख आश्चर्ययुक्त मनसे कृपायुक्तहो यादवोंके बालक उसके निकालनेका यत्न करनेलगे ॥ ३ ॥ हे राजन्! यह बालक उस करकेटेको चाम और सूतके रस्सोंसे बाँधनेपर भी निकालनेको नहीं समर्थ हुए. तब उत्कंठायुक्त बालक श्रीकृष्णचन्द्रसे आनकर कहनेलगे ॥ ४ ॥ तब विश्व उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वहाँ आकर लीलापूर्वक ही बायें हाथसे उस करकेटेको निकाललिया॥५॥उत्तम श्लोक श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगतेही वह करकेटा रूप त्याग तप्त सुवर्णके समान सुन्दर वर्ण, अद्भुत आभूषण और वस्त्र मालाओंको धारण किये, वह

देव स्वरूपको प्राप्त होगया ॥ ६ ॥ मुक्ति देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि उसके करकेंटा होनेका कारण जानतेभी थे परन्तु तो भी सबको दिखानेके लिये पूछने लगे कि, हे बडभागी! सुन्दर स्वरूपवान् आप कौन हो? मुझे तुम देवताओंमें उत्तम देवता जान पडते हो ॥ ७ ॥ हे मंगलरूप! इस योग्य तुम नहीं हो? किस अपराधसे तुम्हें यह करकेंटेकी योनि प्राप्तहुई, जो हमको कहनेयोग्य समझो तो हमारे सम्मुख अपना सब वृत्तांत वर्णन करो ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! जब अनन्तमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार पूँछा, तब राजा नृग सूर्यके समान तेजवाला किरीटोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके कहने लगा॥९॥ राजा नृगने कहा कि, हे समर्थ! मैं इक्ष्वाकुका पुत्र नृग नाम राजा हूं जब कभी दानी राजाओंकी बात चली होगी, तो मेरा नाम भी आपके सुननेमें आया होगा ॥ १० ॥ हे नाथ! सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी और सर्वांतर्यामी आप हैं सो तुम क्या नहीं जानते? और कालसे तुम्हारे ज्ञानका नाश नहीं होता, तो भी आपने जो पूँछा है सो आपकी आज्ञानुसार मैं वर्णन करता हूं ॥ ११ ॥ हे भगवन्! जितनी पृथ्वीकी रेणुका और जितने आकाशमें तारे अथवा जितनी वर्षाकी बूँदें हैं उतनीही गायोंका मैंने दान दिया है * ॥ १२ ॥ दूध देनेवाली तरुण अवस्था शील स्वभाव रूप गुणसे

---

* **शंका**–जो वचन श्रीकृष्णसे राजा नृगने गोदान देनेवाले कहे थे, उन वचनोंको सुनकर हमारा सब का मन काँपता है, ऐसे मूर्खोंके समान राजा नृगने वचन क्यों कहे, भला रेतेके कणका क्या प्रमाण? एक मूठी भर रेता हाथमें ले तो दश वीस कोटि कण मूठीभर रेतमें होंगे, फिर गंगा आदि नदियोंके अथवा रेतेवाले देशोंमें रेतके सिवाय और दूसरी मृत्तिका नहीं, तहाँ कण की क्या गणना है, फिर तारा भी गणनासे हीन हैं, वर्षाकी धारा पृथ्वीपर पडती है, उनकी गिनती नहीं है ऐसा वचन बडा अयोग्य है ॥

उत्तर–मेदिनीकोशमें सत्रह १७ श्लोकसे लेकर बयालीस ४२ श्लोकतक भूमिका और द्वीप आदिका पर्वतोंका नाम लिखा है 'सिकता' सात द्वीपका नाम लिखा है और 'तारका' बडी बडी नदियोंका नाम लिखा है, 'अदिव' मर्त्यलोकका नाम लिखा है, मर्त्यलोकका भी भरतखण्डका भी नाम अदिव है, 'वर्ष धार' पर्वतका नाम लिखाहै और राजा नृग भरतखण्डमें वसता था इसलिये भरतखण्डकी नदियोंके पर्वतोंके और सात द्वीपोंके बहानेसे गोदान करनेकी गिनती श्रीकृष्णसे गुप्त करके बताई थी कि, सबको प्रगट होनेसे पुण्यका नाश होजाताहै, पंचमस्कन्धके उन्नीसवें अध्यायमें लिखाहै कि मर्त्यलोकमें भरतखण्डमें पर्वतोंमें श्रेष्ठ २७ पर्वत हैं और नदियोंमें श्रेष्ठ नदी ४५ हैं और पंचमस्कंधके प्रथम अध्यायमें लिखाहै कि, पृथ्वीमें सात द्वीप हैं इसलिये गुप्त करके श्रीकृष्णसे राजा नृगने कहा था कि, महाराज! जितने भूमिके सिकता कहिये द्वीपहैं उतनी गायें मैंने दीहैं और भरतखण्डमें जितने तारका कहिये गंगा आदि बडी बडी नदी हैं उतनी गायें मैंने दीहैं और जितने वर्षधार कहिये पर्वत मर्त्यलोकके भरतखण्डमें

भरी कपिला और नीतिपूर्वक संचय करी, सुवर्णसे सींग, रूपेसे खुर मढे बछडे साथ और वस्त्र, माला गहने पहराय, ऐसी गायें मैंने दान की थीं ॥ १३ ॥ भलेप्रकार शोभायमान गुण शीलयुक्त, दूध विना दुःखित कुटुम्बी पाखण्डरहित आचारवाले तपस्या करके प्रसिद्ध, वेदपाठी तरुण अवस्थावाले द्विजोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करके दी थीं ॥ ॥ १४ ॥ गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, महल, हाथी, घोडे इत्यादि दान करे और दासियोंसहित कन्यादान करीं तिल, रूपा, शय्या, वस्त्र, रत्न, और आच्छादनके श्रेष्ठ वस्त्र और रथोंका दान किया, यज्ञ किये, कुआँ, तालाब, सरोवर बनवाये ॥ १५ ॥ ऐसा मैं दानी था, परन्तु मुझे एक संकट आनकर प्राप्त हुआ सो सुनो, किसी एक अयाचक ब्राह्मणकी गौ भागकर मेरी गायोंमें मिलगई, वह गाय विना जाने मैंने ब्राह्मणको दान करदी ॥ ॥ १६ ॥ उस गौका स्वामी गौको लेजाता देखकर " यह गौ मेरी है " इस प्रकार कहनेलगा, दूसरा ब्राह्मण बोला कि, भाई यह गौ मुझे राजा नृगने दान करके दी है ॥ ॥ १७ ॥ हे दीनबन्धु ! इस प्रकार आपसमें विवाद कर अपने अपने प्रयोजनको सिद्ध करनेवाले वह दोनों ब्राह्मण मेरे निकट आये, तब जिस ब्राह्मणको गाय दान करके दी थी, वह बोला कि, हे राजन् ! इस गायके आपही दाता हैं और जिसकी गाय थी, वह बोला कि, यह क्या दाता है, जो पराई गौका दान करता है, हे भगवन् ! यह बात सुनकर मुझे अत्यन्त भ्रम हुआ ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त धर्मसे कष्टित मैंने उन दोनों ब्राह्मणोंको बहुत विनती करके कहा कि, हे महाराज ! इस गौके बदलेमें सुन्दर सुन्दर एकलाख गौ दूँगा, यह गौ देदीजिये ॥ १९ ॥ मैं तुम्हारा दास हूं, मैंने यह नहीं जाना कि, यह गौ तुम्हारी है सो मेरे ऊपर अनुग्रह करके घोर नरकमें गिरते हुए मेरी रक्षा करो ॥ २० ॥ तब ब्राह्मण बोला कि, हे राजा नृग ! और तेरी लाख गौकी मुझे आवश्यकता नहीं है जो दानकरके दी है, सोई लूंगा, यह कहकर जिस ब्राह्मणको गौ दी थी, वह उस गौको त्यागकर घरको चलागया ॥ २१ ॥ हे देवदेव ! इसके उपरान्त जब मेरा देहान्त हुवा तब यमदूत आनकर यमराजके पास मुझे लेगये वहाँ धर्मराजने मुझसे पूँछा कि ॥ २२ ॥ हे राजा नृग ! मैं तुम्हारे दान और धर्मका प्रकाशकलोकका मैं अन्त नहीं देखता परन्तु यत्किंचित् तुम्हारा पाप भी है और संपूर्ण शुभ है सो प्रथम तुम पाप भोगोगे अथवा पुण्य ॥ २३ ॥ इस प्रकार जब धर्मराजने कहा तब प्रथम पाप भोगूंगा ऐसा मैंने कहा उसी समय धर्मराजने आज्ञा करी कि, इसको करकेंटेकी योनिमें गिरादो हे प्रभो ! तब मैंने गिरतेही अपनेको करकेंटके रूपमें

—हैं उतनी गायें मैंने ब्राह्मणोंको दी हैं सब गायोंकी संख्या इतनी हुई विद्वान् लोगो विचार लेना, अंककी उलटी रीतिसे प्रथम सात ७ दूसरे ४५ तीसरे सत्ताईस सब जोडकर २७४५७ सत्ताईस सहस्र चारसौ सत्तावन गायें देनेको श्रीकृष्णसे राजा नृगने कहा था रेतकी कण, आकाशके तारे, जलवृष्टिके लिये नहीं कहा था ॥

देखा ॥ २४ ॥ हे केशव ! ब्राह्मणोंका भक्त और दाता तुम्हारे दर्शनोंकी अभिलाषा अबतक मुझे लगरही थी क्योंकि आपकी कृपासे स्मृतिका नाश नहीं हुआ था ॥ ॥ २५ ॥ हे योगेश्वर ! वेदरूप नेत्र करके निर्मल हृदयमें जिनकी भावना करें और इन्द्रियोंकी जिनमें पहुँच नहीं ऐसे परमात्मा तुम अति दुःखोंसे अँधेरी बुद्धिवाले मुझे कैसे दिखाई दिये ? क्योंकि इस संसारमें जिस मनुष्यका संसार छूटनहार होता है, उसको ही आपके दर्शन मिलते हैं ॥ २६ ॥ हे देवदेव ! हे जगत्के नाथ ! हे गोविन्द ! हे पुरुषोत्तम ! हे नारायण ! हे इन्द्रियोंके प्रेरनेवाले ! पवित्रयशी ! श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अखण्डरूप ! हे अविनाशी ! ॥ २७ ॥ हे कृष्ण ! हे समर्थ ! अब मैं स्वर्ग जाऊँ मुझे आज्ञा दो और जहाँ कहीं मैं रहूं वहां मेरा चित्त तुम्हारे चरणोंमें लगा रहे ॥ २८ ॥ आप सब कार्योंके उत्पन्न करनेवाले विश्वके कर्त्ता और विकार रहित हो, अनन्त माया शक्तिमान् वासुदेव अर्थात् सब प्राणियोंके आश्रय कृष्ण अर्थात् सर्वदा आनन्दरूप, वेदोंके कहे जो यज्ञादिक कर्म और स्मृतियोंके कहे जो कुआँ, बावडी, तालाब इत्यादि कर्मोंके फलदाता आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ राजा नृग इस प्रकार कह श्रीकृष्णचन्द्रको परिक्रमा दे अपने मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श कर, आज्ञा ले सब प्राणियोंके देखतेही विमानपर बैठकर स्वर्गको चलागया ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोंके भक्त, धर्मात्मा देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र क्षत्रियोंकी शिक्षाके लिये अपने कुटुम्बी यादवोंसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ कि, देखो ! अग्निके समान तेजस्वी पुरुषोंको भी ब्रह्म अंश नहीं पचता और अपनेको ईश्वर माननेवाले राजाओंकी तो बातही क्या है ? ॥ ३२ ॥ मैं विषको हलाहल विष नहीं मानता क्योंकि उसके दूर करनेकी औषधी हैं परन्तु ब्रह्म अंश विषसे भी अधिक विष है, और इस पृथ्वीमें ब्रह्म, अंशके दूर करनेका कोई उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥ विष तो केवल खानेवालेकोही मारता है और अग्नि भी जलसे शान्त होजाती है, व अग्निके जलानेमें जड बाकी रहजाती है, परन्तु ब्रह्मअंशरूप लकडीमेंसे उत्पन्नहुई अग्नि मूलसहित कुलको भस्म करडालती है ॥ ३४॥ ब्राह्मणकी पूर्ण आज्ञा लिये विना उसका धन खाया-जाय तो तीनपीढीको नरकमें गिराता है और हठसे वा राजा आदिकी सहायतासे भक्षण किया जाय तो दश प्रथम और दश पीछेकी पीढियोंको और एक अपनी,इस प्रकार इक्कीस पीढीको नरकमें डालता है॥ ३५॥इसलिये ब्राह्मणका पूजनही करै, इस कथापर एक दृष्टान्त भी लिखते हैं * जो कि लक्ष्मीसे अंधे हुए राजा हैं,सो अपना नरकमें गिरना नहीं देखते

* **दृष्टान्त**-एक राजा परदेशी ब्राह्मण जो द्वारपर आता उसे लाख रुपया दिया करते थे, तो एक दरिद्र ब्राह्मणकी स्त्रीने कहीं सुनकर अपने पतिको इस राजाके नगरमें भेजा, यह चले, राजा शिकार खेलकर आ रहे थे, मार्गमें ब्राह्मणसे भेंठ हुई, राजाने कहा कि,महाराज ! आप कहाँसे आये और कहाँ जाओगे ? ब्राह्मणने कुछ उत्तर न दिया तब राजाने प्रार्थनाकर चरण पकडकर पूँछा कि, क्या काम है, कहो तो ? तब यह बोले

और जो पुरुष ब्रह्मअंशपर मन ललचाते हैं, सो नरकमें जानेकी इच्छाकरते हैं ॥ ३६ ॥ कुटुम्बी उदार जीविका हरजानेसे सो ब्राह्मण रुदन करते हैं, उनके नेत्रोंसे आँशुवोंकी बूँद गिरकर जितनी पृथ्वीकी रेणुका भीजती हैं, उतने वर्षतक ब्राह्मणका धन हरण करनेवाले निरंकुश राजा और उनके मंत्री, प्रधान टहलुए हैं, सो सब कुम्भीपाक नरकमें गिरते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जो पुरुष अपनी दान की हुई अथवा औरकी दी हुई ब्राह्मणकी जीविका हरै वह पुरुष साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाका कीडा होता है ॥ ३९ ॥ मेरे घरमें ब्राह्मणका धन न आवै, जिस धनके लोभसे राजा अल्प आयुष्यवाले पराजयको प्राप्त हुए और राज्यसे भ्रष्ट होकर मनुष्योंको भय देनेवाले सर्प होजाते हैं ॥ ४० ॥ हे मित्र ! जो ब्राह्मण अपराध करे, मारताही आवै और गालियेंभी बहुत दे ऐसे ब्राह्मणसे भी द्रोह करना उचित नहीं बरन् उसको नित्यप्रति नमस्कारही करना चाहिये ॥ ४१ ॥ जैसे सावधान होकर समय समय पर ब्राह्मणोंको मैं नमस्कार करता हूं, उसी प्रकार तुम भी नमस्कार करो और जो कोई मेरी इस आज्ञाको उल्लंघन करेगा, वह पुरुष मुझसे दण्ड पावेगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणका धन हरनेवाला नरकमें गिराया जाता है, इस बातको कोई मिथ्या मत समझना, क्योंकि जैसे विनाजाने नृग राजाने ब्राह्मणकी गाय यद्यपि ब्राह्मणकोही दान करदी थी, परन्तु तो भी नरकमें गिरा इसी प्रकार और भी जो ब्रह्मअंश लेते हैं, उन्हें नरकमें गिरना पडता है ॥ ४३ ॥

–कि, हम पण्डित हैं और काशीजीसे आये हैं, इस राजाके शिरपर पनही मार लाख रुपये लेजायँगे राजाने कहा कि, ब्राह्मण बुरे, जो लाख रुपया लेजायँ और पनही मारैं, सो महलोंमें जाकर डयोढीवानोंसे कहा कि, किसी ब्राह्मणको भीतर मत आनेदो अब उन पण्डितजीकी यहाँतक दशा हुई कि, थाली, कटोरा बेचकर खागये, परंतु भीतर न घुस सके, तब फिर लौटकर अपने घर जाय सब समाचार सुनाये, यह राजा वैष्णव था और कृष्ण, बलदेवका पूजन करता था, एक दिन अकस्मात् बलदेवजी सिंहासन परसे गिरपडे यह देख राजा अत्यन्त भयभीत हुआ। उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाकर पूँछा कि, क्या उत्पात होगा ? कोई कुछ कोई कुछ कहनेलगे, परन्तु यथार्थ उत्तर कोई न दे सका, तब राजाने ढँढोरा पिटवाया कि, जो समाधान करेगा, उसे बडा द्रव्य मिलेगा, इसके उपरान्त फिर उस ब्राह्मणकी स्त्रीने प्रार्थना करी, तव वही ब्राह्मण राजाके प्रश्नका उत्तर देनेको आये और बोले कि, राजा ! तू कुछ मत डरै, कुछ उत्पात नहीं होगा, जगन्नाथजी गिरते तो उत्पात होनेकी सम्भावना थी और बलदेवजी तो नित्य बारुणी पिये उन्मत्त रहते हैं, इनके गिरनेका क्या आश्चर्य है, तब राजाने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणको लाख रुपये देदिया और कहा कि, ब्राह्मणको आनेसे कोई मत रोकियो यह पनही मार करही द्रव्य लेते हैं यदि यह ब्राह्मण न होते तो मेरे प्रश्नका उत्तर कौन देता ? ॥

चौ०-विप्रन मानै सो मोहिं मानै । विप्रन अरु मोहिं भिन्न न जानै ॥
विप्रन दिया फेरि जो लेहीं । ताको दण्ड दूत यम देहीं ॥
सब अपराध विप्रको सहहू । मतकोइ अंश विप्रको लहहू ॥
मन संकल्प कियो जिनराखो । सत्य वचन विप्रन सों भाषो ॥
जो विप्रन सन ईर्षा करहीं । रौरव नरक कल्प शत परहीं ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पाण्डुनन्दन ! सब लोकोंको पवित्र करनेवाले मुकुन्द भगवान् इस प्रकार द्वारकावासी यदुवंशियोंको समझाकर अपने मन्दिरमें चलेगये ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
उत्तरार्द्धे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

दोहा-पैंसठमें बलरामने, वृन्दावनमें आय ।
रास रचो यमुना निकट, सबको ताप मिटाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! एक समय भगवान् बलदेवजी अपने सुहृदोंके देखनेके लिये रथमें चढकर गोकुलको गये ॥१॥ और बहुत दिनोंके आशा लगाये गोप गोपियोंसे मिले, इसके उपरान्त बलदेवजीने पिता माताको प्रणाम किया, तब उन्होंने इनको आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न ! जगदीश्वर ! छोटे भाई कृष्ण सहित तुम हमारी बहुत कालतक रक्षा करो, इस प्रकार गोदमें बैठाल छातीसे लगा नेत्रोंके आँसुओंसे बलदेवजीको भिजोनेलगे॥ ३ ॥विधिपूर्वक वृद्ध गोपोंको प्रणाम करके,छोटे गोपोंने इनको प्रणाम किया,इस प्रकार बलदेवजी जैसी जिसकी अवस्था और जैसी जिससे मित्रता जैसा जिससे सम्बन्ध था ॥४॥ उसी प्रकार उनको प्राप्त होकर हास्य और हाथसे पकड इत्यादिकोंसे मिलकर जब बलरामजी विश्राम लेचुके, तब सुखपूर्वक बैठे और कुशल पूँछी ॥ ५ ॥ उस समय सब गोप कि जिन्होंने कमललोचन श्रीकृष्णके लिये सब विषय त्याग दिये हैं, वे सब बलदेवजीके निकट आय चारों ओर बैठ गये और प्रेमसे गद्गद वचन हो अपने बन्धु यादवोंकी कुशल पूछने लगे ॥६॥कि, हे राम ! हमारे सब बन्धु तो कुशल हैं ? स्त्री और पुत्र सहित तुम हमारी भी कभी सुधि करते हो ? ॥ ७ ॥ यह बडी प्रसन्नताकी बात हुई जो महा दुराचारी पापी कंस मारागया और यह भी बहुत अच्छा हुआ जो सुहृद् लोग बन्दीखानेसे छूटगये, फिर वैरियोंका नाश कर समुद्रमें द्वारकापुरी बसाई, यह भी अत्यन्त मंगल की बात है ॥ ८ ॥ बलरामजीके दर्शनसे गोपियें प्रसन्न हो हँसकर पूँछने लगीं कि, जिनको नगरकी स्त्रियें अत्यन्त प्यारी हैं वह श्रीकृष्ण तो अच्छे हैं ॥ ९ ॥ वह श्रीकृष्ण कभी अपने बन्धु बांधवोंकी भी सुधि करते हैं ? क्या अपनी माताका दर्शन करनेको एकवार भी वह यहाँ आवेंगे ? और बडी भुजावाले श्रीकृष्णचन्द्र कभी हमारी भी सुधि करते हैं ? ॥ १० ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न समर्थ बलदेवजी ! जिसके कारण हमने दुस्त्यज माता, पिता, भाई, पति, पुत्र, बहन और सुहृद् यह सब

त्याग दिये ॥ ११ ॥ वह हम सबको त्याग शीघ्रही चलेगये और स्नेह तोडदिया परन्तु उनके वैसे मनोहर कहनेपर कौन स्त्री भरोसा न करै ? ॥ १२ ॥ हमैं अचम्भा होता है कि, कृतघ्न और जिसका मन स्थिर नहीं, ऐसे श्रीकृष्णके कहनेको बुद्धिमान् द्वारकाकी स्त्रियें किस प्रकार स्वीकार करतीहोंगी ? परन्तु हम कल्पना करती हैं कि, चित्र विचित्र कथावाले श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमान हास्यपूर्वक भौहैं चलानेसे बढा जो कामदेव उससे आतुर हो स्वीकार करती होंगी * ॥ १३ ॥ और गोपियें बोलीं कि, उनकी बातसे हमें क्या काम ? और बात क्यों नहीं कहती क्योंकि हमारे विना जैसे उनका समय व्यतीत होता है उसी प्रकार उनके विना हमारा काल भी व्यतीत होता है, उनका सुखसे बीतै है, हमारा दुःखसे, अंतर इतनाही है ॥ १४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण-चन्द्रकी हँसनि बोलनि सुन्दर चितवन शोभायमान चलना और प्रेमपूर्वक आलिंगन इन बातोंका स्मरण कर सब गोपियें रोनेलगीं ॥ १५ ॥

दोहा-करि करि सुधि श्रीकृष्णकी, व्याकुल भईं ब्रजबाल।
कब आवेंगे कृष्णजी, सुखदायक नँदलाल ॥
कहँ श्याम अति निठुरता, करी हमारे संग।
कहँ यह दुःख दिखावने, कहाँ रास रसरंग ॥

अनेक प्रकारसे समझानेमें निपुण, भगवान् संकर्षण श्रीकृष्णचन्द्रके संदेशेको कहकर समझानेलगे ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त भगवान् बलदेवजीने उस व्रजमें गोपियोंको अनेक प्रकार आनन्द देते चैत्र और वैशाख दो महीने तक वास किया ॥ १७ ॥ पूर्ण चन्द्रमाकी कलासे शोभायमान कुमुदिनियों की सुगंधयुक्त पवन जहाँ आरही थी इस प्रकार शोभायमान यमुनाजीके बागमें स्त्रियोंको संग लेकर बलदेवजी रमण करनेलगे ॥ ॥ १८ ॥ उससमय वरुणजीकी भेजी वारुणी मदिरा वृक्षोंकी खोतरियोंमेंसे गिरकर सब वनको अपनी गंधसे सुगंधित करनेलगी ॥ १९ ॥ पवनसे प्राप्त मधुधाराकी सुगन्ध सूंघ-

---

* दृष्टान्त-"एक लालाने बिल्ली पाली थी और उसको नित्यप्रति दूध मलाई खिलाते थे, एक दिन लाला कार्यवश गाँवको गये और बिल्लीको डोरीसे खंभमें बाँधगये और उसका स्मरण न रहा और कई दिन लगगये बिल्लीका भूखके मारे प्राणान्त होनेलगा इसके पीछे घरमें कहीं दल्लानके कोनेमें एक रुईका गाला धरा था, सो बिल्लीने जाना कि, यह घीका लोंदाहै, सो उछल उछलकर बिल्ली उस रुईके गालेपर जाय परन्तु वह हाथ न आवै, "अब लिया अब लिया" इसी आशामें अठारह दिन व्यतीत होगये इधर लाला अठा-रह दिनके उपरान्त आनकर कहनेलगे कि, हरे राम बिल्लीकी तो इतिश्री होगई होगी ताला खोलकर देखैं तो अभी जीवित है यह विचार ज्यों उसकी डोरी खोली कि, वह झपटकर रुईके गालेपर गिरी परन्तु वह तो रुईही थी, इसलिये निराशा हो झट बिल्लीके प्राण निक-लगये, इसलिये जीवित है आशा, मरै निराशा, यह बात सत्य है ॥

कर बलदेवजी वहाँ आय स्त्रियोंके साथ मदिरा पान करनेलगे ॥ २० ॥ स्त्री जिनके चरित्र गान कररहीं और हलायुध धारण करनेवाले मतवाले अमलसे विह्वलनेत्र हो बलदेवजी अपने मनमें विचार करनेलगे ॥ २१ ॥ वनमाला और कानोंमें कुण्डल पहरे मतवाले, वैजयन्तीमाला धारण किये इससे अधिक शोभायमान और पसीने की, विन्दुसे सुन्दर मंद मंद हास्ययुक्त, कमल रूप मुख धारण किये ॥ २२ ॥ जलक्रीडा करनेके लिये सामर्थ्यवान् बलदेवजी यमुनाजीको बुलानेलगे "यह मतवाले हैं" इसलिये बलदेवजीके वचनका अनादर करके यमुना नहीं आई, तब भगवान् बलरामजीने अत्यन्त क्रोधित हो हलके अग्रभागसे खैंचलिया ॥ २३ ॥ और बोले कि, रे पापिनि ! मैंने तुझे बुलाया और तू न आई, इसलिये स्वच्छन्द फिरनेवाली तुझको मैं हलके अग्रभागसे खण्डित करदूँगा * ॥ २४ ॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार बलदेवजीने कहा तब यमुना अत्यन्त भयभीत और चकित हो उनके चरणोंमें गिरकर कहनेलगी ॥ २५ ॥ हे राम ! हे राम ! ! हे महाबाहो ! ! ! मैं तुम्हारा पुरुषार्थ नहीं जानती, जिन आपके अंश शेषजीने सम्पूर्ण पृथ्वीको सहस्र फणोंमेंसे एक फणपर धारण कररक्खा है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! मैं आपके श्रेष्ठ प्रभावको नहीं जानती परन्तु आपकी शरण आई हूं सो आप मुझे छोडनेको योग्य हो ॥ २७ ॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! जब इस प्रकार प्रार्थना करी, तब प्रसन्न होकर भगवान् बलदेवजीने यमुनाको छोडदिया और जिसप्रकार हाथी हथिनियोंके संग विहार करता है, उसी प्रकार यमुनामें गोपियोंके साथ विहार करने लगे ॥ २८ ॥ इच्छापूर्वक विहार करके जब बलदेवजी जलमेंसे बाहर निकले तब लक्ष्मीजीने इनको दो नीलाम्बरी वस्त्र अमूल्य आभूषण और शोभायमान माला दी ॥ २९ ॥ बलरामजी भी नीलवस्त्र पहर और सुवर्णकी माला धारण कर, अच्छी प्रकार चन्दन लगाय इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! महा वीर्यवान् भगवान् बलरामजीने यमुनाजीको खैंचा, इस कारण वह स्थान अबतक अनन्त पराक्रम बलरामजीके पराक्रमको जताता हो वैसे ही देख

---

* **शंका**–शेषावतार बलदेवजीका मुनियोंने वर्णन किया है, सो बलदेवजीने बडे कामीकी नाईं यमुनाको क्यों खैंचा ? यमुनाकी मर्यादाका भी नाश किया यह बडी शंका है !

उत्तर–श्रीकृष्णने जब यमुनासे कालियनागको बाहर निकाल दिया तब यमुना बहुत-अभिमान करनेलगी, विनाही वर्षाके अधिक मर्यादाको छोडकर चढनेलगी, मुनिजन मथुराको और वृन्दावनको आतजाते तो रात दिन भरी पाते, नौकाको चलन नहीं दे, इस प्रकार यमुनाको उन्मत्त जानकर जलक्रीडाके मिस करके बलदेवजीने यमुनाको दण्ड दिया ॥

नेमें आता है ॥ ३१ ॥ ब्रजकी स्त्रियोंके संग विलास करके चलायमान चित्त बलदेवजी को ब्रजमें रमण करते एक रात्रिके समान संपूर्ण रात्रियें व्यतीत होगईं ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कंधे
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

दोहा–छासठ काशी जाय हरि, पौंड्रकनृपको मार।
मित्र सुदक्षिण सहित सब, हनो तासु परिवार ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब बलरामजी नन्दरायके ब्रजमें आये तब अज्ञानी करूषदेशके राजा पौंड्रकने "मैं वासुदेव हूँ" इस प्रकार मनमें विचारकर श्रीकृष्णचन्द्रके पास दूत भेजा ॥ १ ॥ आप जगत्पति भगवान् वासुदेव प्रगट हुए हो ऐसे मूर्ख मनुष्योंकी प्रशंसासे उत्साह दिलानेपर उसने अपने आपको वासुदेव समझलिया ॥ २ ॥ अचिंत्य मार्गवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास द्वारकापुरीमें अज्ञानी पौंड्रकने दूत भेजा, जैसे खेलमें बालक एक बालकको राजा बना देता है और वह अपने को राजा मानता है, उसी प्रकार अपने आपको पौंड्रक वासुदेव माननेलगा ॥ ३ ॥कमलपत्रके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णचन्द्रको दूत सभामें बैठा देखकर राजा पौंड्रकका संदेशा कहनेलगा ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेके लिये मैं एकही वासुदेव उत्पन्न हुआ हूँ दूसरा नहीं है, इस कारण तैंने जो अपना मिथ्या नाम वासुदेव धर रक्खा है उसे त्याग दे ॥ ५ ॥ हे यादवमूढ ! तैंने मेरे चिह्न गदा पद्मादि जो धारणकर रक्खे हैं, उन्हें शीघ्रही त्यागकर मेरी शरणमें आ और जो इन्हें त्याग न दे और मेरी शरण न आवै तो मुझसे युद्ध करनेके लिये तैयारी कर ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार मंदबुद्धि पौंड्रकका संदेशा सुन उग्रसेनादि सब सभासद इस बातको असत्य जानकर हँसनेलगे ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर दूतसे कहनेलगे कि, हे मूर्ख ! कृत्रिम सुदर्शनादि चिह्नोंसे तू अपनी ऐसी बडाई करता है, उन चिह्नोंको मैं तुझपरसे छुडादूंगा ॥ ८ ॥ हे अज्ञानी ! जिस समय तू अपने मुखको ढककर और काक, गृध्र बगलोंसे घिरकर मरके सोवैगा, उस समय तू कुत्तोंकी शरण लेगा, अर्थात् वह तुझको भक्षण करेंगे ॥ ९ ॥ उस समय जो श्रीकृष्णचन्द्रने अनादर करके कहा, सो उसी प्रकार दूतने अपने स्वामी मिथ्यावासुदेवसे जाकर सब कहा और श्रीकृष्णचन्द्र भी रथमें चढकर काशीपुरीको गये क्योंकि उस समय पौंड्रक भी अपने मित्र काशीनरेशके यहाँ आया था, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र भी वहाँ पहुँचे ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस समय महारथी पौंड्रक भी श्रीकृष्णचन्द्रके युद्धका उद्यम जान दो अक्षौहिणी सेना संग लेकर शीघ्रही काशीपुरीसे बाहर निकला ॥ ११ ॥ उस पौंड्रकका मित्र काशीनरेश मित्रकी सहायता करनेके लिये पीछेसे आया, तब तीन अक्षौहिणी सेना संगलिये पौंड्रकको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देखा ॥ १२ ॥ शंख, चक्र, तलवार, गदा, धनुष,

भृगुलता आदि चिह्नयुक्त और कौस्तुभमणि धारणकिये वनमालासे देदीप्यमान ॥ १३ ॥ रेशमी पीली धोती, उपरना पहरे गरुडध्वज बडे मोलका मुकुट और आभूषण पहरे मकराकृत कुण्डलोंसे प्रकाशमान है * ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! जैसे रंगभूमिमें वेष बनाकर नट आता है, उसी प्रकार अपने समान वेष बनाये, मिथ्यावासुदेवको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र हँसनेलगे, क्योंकि नकलीने ज्योंकी त्यों नकल उतारी थी ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त शत्रुलोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर त्रिशूल, गदा, बेडे, बर्छी, गुर्ज, नेजा, तलवार, पटा, बाण आदि शस्त्र चलानेलगे ॥ १६ ॥ जैसे प्रलयाग्नि जरायुज, स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके प्राणियोंको पीडा देती है, उसी प्रकार भगवान् वासुदेव, मिथ्या वासुदेव, और काशी नरेश व उनके हाथी, घोडे, प्यादे इत्यादि संपूर्ण चतुरंगिणी सेनाको गदा, तलवार, चक्र, बाणादिसे पीडा देनेलगे ॥ १७ ॥ हे महाराज! चक्रसे कटेहुए रथ, घोडे, हाथी और प्यादे जिसमें पडे, वह भूमि उस समय भगवान् भूतनाथकी क्रीडाभूमिके समान भयंकर लगनेलगी, जिसको देखकर वीर पुरुषोंके हृदयमें अति आनन्द प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ सेना मारने उपरान्त शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र क्रोधित होकर पौंड्रकसे कहनेलगे कि रे! रे! पापिष्ठ, जो तैंने दूतसे कहलाया था, वह शस्त्र अब तुझपरही छोडता हूँ ॥ १९ ॥ अरे अज्ञानी! जो तैंने हमारा मिथ्यानाम वासुदेव रखलिया है यह तेरा नाम शीघ्रही छूट जायगा और यदि तेरे सम्मुख युद्ध न करूं तो तेरी शरण लूंगा ॥ २० ॥ हे राजन्! इस प्रकार तिरस्कार कर अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले बाणोंसे पौंड्रकका रथ तोड जिस प्रकार देवराज इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतका शिखर काटते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने मिथ्यावासुदेव पौंड्रकका शिर काट डाला ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित्! काशी नरेशका बाणोंसे शिर उखाड काशीपुरीमें ऐसे पटक दिया कि, जिस प्रकार कमलकोशको पवन पटक देताहै ॥ २२ ॥ इस प्रकार मित्रसहित मिथ्यावासुदेवको मार सिद्धोंसे गाईहुई अपनी कीर्त्तिको श्रवण करतेहुए भगवान् वासुदेव द्वारकापुरीमें आये ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! सदा भगवान्का ध्यान करनेके कारण कटगये हैं सब बंधन जिसके, ऐसा वह मिथ्यावासुदेव पौंड्रक श्रीकृष्णचन्द्रका रूप धारण किये तद्रूप होगया ॥ २४ ॥ हे महाराज! काशीके राजद्वारपर कुण्डलोंसहित पडे शिरको

---

* **शंका**—योगियोंको बडे दुःखसे प्राप्त होनेयोग्य जो भगवान् वासुदेवका रूप, उस रूपको पौंड्रक नाम राजा क्यों प्राप्त हुआ?

उत्तर—पूर्वजन्ममें पौंड्रकनाम राजा भगवान्का बड़ा भारी तप करता था. जब भगवान् प्रसन्न होकर वर देनेको आये तब उसने यह वरदान मांगा कि, आपका स्वरूप बनानेकी बुद्धि मुझको दीजिये, तथा पृथ्वीमें जन्म धारण करके आपके हाथसे मेरी मृत्यु हो तब भगवान् यह वरदान दिया इसलिये पौंड्रकने भगवान्का रूप बनाया था ॥

'देखकर' यह क्या है ? किसका शिर है ? इस प्रकार मनुष्य सन्देह करनेलगे ॥ २५ ॥ हे कुरुकुलावतंस ! पीछे काशीपुरीके राजाका शिर जानकर रानी, पुत्र, भाई और पुरवासी, हे नाथ ! हे नाथ ! हम मरे, इस प्रकार कह रोदन करने लगे इस पर एक दृष्टान्त है * ॥ २६ ॥ काशीनरेशका सुदक्षिण नाम पुत्र अपने पिताके मरनेसे अत्यन्त शोकाकुल हो "पिताके मारनेवाले कृष्णको मारकर पिताका ऋण चुकाउँगा ॥ २७ ॥ " इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय करके उपाध्यायों सहित सुदक्षिण परमसमाधि लगाकर भगवान् महादेवजीका पूजन करनेलगा ॥ २८ ॥ विशेष करके मुक्त भगवान् भूतेश्वर प्रसन्न होकर सुदक्षिणसे " वर माँग" इस प्रकार कहने लगे, तब सुदक्षिणने "पिताके मारनेवालेके मारनेका उपाय बताओ " यह वर माँगा ॥ २९ ॥ तब भगवान् भोलानाथ बोले कि, तू ब्राह्मणोंके संग ऋत्विक्के समान आज्ञाकारी दक्षिणाग्निका मारणकी विधिसे पूजन कर, वह अग्नि प्रमथोंके साथ तेरे सब मनोरथोंको पूर्ण करेगी ॥ ३० ॥ परन्तु यह प्रयोग ब्राह्मणकी भक्तिसे रहित पुरुषपर चलावेगा तो तेरा संकल्प सिद्ध होगा, अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रपर चलावेगा तो उलटा पडेगा, क्योंकि वह तो ब्राह्मणोंके सेवा करनेवाले और उनके अत्यन्त प्रिय हैं, इस प्रकार आज्ञा पाय, नेम ग्रहण कर सुदक्षिण श्रीकृष्णकी घात और उनके मारनेके लिये जैसे शिवजीने आज्ञा दी थी उसी प्रकार करने लगा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! तब कुण्डमेंसे अत्यन्त भयानक मूर्त्तिमान् अग्नि निकला, जिसकी तप्त ताम्रके समान शिखा और दाढी मूंछैं थीं, नेत्र और मुखसे अंगारे उगलता था ॥ ३२ ॥ जिसका मुख, दाढ और बडी तीक्ष्ण भ्रुकुटी दंडसे विकराल हैं, इस प्रकार अपनी जीभसे होठोंको

---

* **दृष्टान्त**—एक बनियेने देखा देखी अपनी डंडी तोलनी छोड दी और चोरोंके साथ रह कमर बाँध चोरी करनेलगा. अपने मनमें विचार किया कि, भला रोजगार है, घडीभरमेंही हजारोंका माल मिलजाता है, सो कहीं किसी चोरोंके संग कुमलदे भीतर घुसे तो जाग होगई राजाके सिपाही दौडपडे, सो वह चोर तो संगके सब रफूचक्कर होगये, परन्तु इस बनियेसे न भागागया तब निकटही एक तालाबमें तलबार डाल वह बनिया जलमें घुसा अब सिपाहियोंको चोर तो मिले नहीं और प्यास लगी तो वह तालाबके निकट आये, सो वहाँ लालाको देखकर पकडा कि, तुम यहाँ कैसे आये ? बनिया बोला कि,महाराज मैं शौचके लिये यहाँ आया था सो चोरोंको देख डरकेमारे तालावमें घुसगया. फिर आपसे डरा कि कहीं चोर जानकर मुझे भी न पकडलें और चोरोंको मैंने पहँचान लिया है, जिनके नाम भी आपको बतलाताहूं, परसा, सेहू, रामसहा, फकीरा,ऊघा, लल्ला, बाँके, शंकर, सिपाहीलाल, ज्ञानी, बाबू, मुन्नासिंह, चोखे, गौरी, और मक्खन इत्यादि पचास आदमियोंके नाम लिखवाकर सबको पकडवादिया और अब बनियेंपर भी गंगाराम घूमें, इसलिये अपना काम छोडकर पराया काम नहीं करना चाहिये देखो पराया काम करनेसे पौंड्रक मारागया ॥

चाटता नम्न और देदीप्यमान त्रिशूलको घुमाता ॥३३॥ बडे तालके समान लम्बे पाँवोंसे पृथ्वीको कम्पायमान करता और दशों दिशाओंको जलाता, भूत प्रेतोंको संग लिये वह अग्नि द्वारकापुरीमें पहुँचा ॥ ३४ ॥ वनके जलनेसे मृग जैसा त्रास पाते हैं, ऐसी कृत्याग्निको देखकर उसी प्रकार सब द्वारकावासी लोग त्रास पानेलगे ॥ ३५ ॥ और वह सब भयभीत हो सभामें पाँसोंसे खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर कहनेलगे कि, हे त्रिलोकीनाथ! अग्निसे सब पुरी भस्म हुई जाती है, इसकी रक्षा करो ॥३६॥ मनुष्योंकी अधिक व्याकुलता सुन और अपने पुरवासियोंकी घबराहट देखकर, शरणागतोंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर "भय मत करो मैं रक्षा करूंगा" इसप्रकार कहनेलगे ॥ ३७ ॥ सबके भीतर बाहरके देखनेवाले सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे श्रीमहादेवजीकी कृत्याग्नि जान उसका नाश करनेके लिये समीपही खडेहुये चक्रको आज्ञा कर दिया ॥ ३८ ॥ करोड सूर्यके समान तेजस्वी प्रलयकालकी अग्निकी तुल्य कान्तिमान् अपने तेजसे आकाश, दिशा, स्वर्ग और पृथ्वीको प्रकाशमान करता भगवान्का अस्त्र सुदर्शनचक्र उस अग्निको पीडा देनेलगा ॥ ३९ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित्! श्रीकृष्णचन्द्रके अस्त्रके तेजसे प्रतिहत और भग्नमुख होकर वह अग्नि पीछेको लौट गई और काशीमें आकर यज्ञ करानेवाले ऋत्विजोंसहित सुदक्षिणको जलानेलगी, क्योंकि अपना किया अभिचार है, इसका यही स्वभाव है कि, जो शत्रुपर चलजाय तो चलजाय, नहीं ता जो चलावै उसको भस्म करै, सो सुदक्षिणको क्षणमात्रमें भस्म करादिया॥४०॥उस अग्निके पीछे पीछे आय श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रने मचान सहित सभा, हवेली, दूकान, पुरके दरवाजे और खजानेसहित अटारी, कोठे, घोडे, अन्न इनकी शालावाली काशीपुरीको क्षणमात्रमें भस्म करदिया ॥ ४१ ॥ सरलकर्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका सुदर्शनचक्र संपूर्ण काशीको भस्म कर फिर निकट आनकर खडा होगया ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित्! उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह पराक्रम जो मनुष्य सावधान होकर श्रवण करते हैं अथवा औरको श्रवण कराते हैं वह संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

दोहा-सरसठमें बलरामजी, रैवत गिरिपर जाय।
नारिन सँग क्रीडा करत, हनो द्विविद कपिराय॥

राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! अद्भुतकर्मा अनन्त अप्रमेय बलदेवजीने जो जो चरित्र किये उनके सुननेकी फिर मेरी अभिलाषा है, सो कृपा करके मेरे सन्मुख वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित! नरकासुरका मित्र सुग्रीवका

मंत्री और मयंदका भ्राता बड़ा पराक्रमी कोई वानर द्विविद नामसे प्रसिद्ध था * ॥ २ ॥ सो अपने मित्र नरकासुरका ऋण चुकानेके लिये इस बंदरने पुर, ग्राम, खानि, खिरक, छपरोंको और देशोंका नाश करदिया ॥ ३ ॥ कभी यह बन्दर पर्वतोंको उठाय, उनसे देशोंका चकनाचूर कर देता और विशेष करके आनर्त्तदेशोंको महाकष्ट देने लगा, क्योंकि नरकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्ण वहीं विराजते थे ॥ ४ ॥ दशहजार हाथीके बलवाला द्विविद बन्दर समुद्रके बीचमें खड़ा होकर भुजाओंसे जलको उछालता समुद्रके तटपर जो देश थे उनको डुबोने लगा ॥ ५ ॥ वह दुष्ट वानर बड़े बड़े ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर वृक्षोंको तोड़, मल, मूत्र करके यज्ञकी अग्निको दूषित करनेलगा ॥ ६ ॥ महाघमण्डी वह बन्दर स्त्री और पुरुषोंको पकड पकडकर पर्वतोंकी गुफा व कंदराओंमें रखकर जैसे भ्रमरी कीडेको मूँद देती है उसी प्रकार मूँद दिया ॥ ७ ॥ इस प्रकार वह बन्दर देशोंमें उपद्रव करता और कुलकी स्त्रियोंको दोष लगाय, मनोहर गीत सुनकर रैवतक नाम पर्वतपर चला गया ॥ ८ ॥ वहाँ जाकर यादवोंके पालन करनेवाले, कमलकी माला धारण किये, सुन्दरअंग, स्त्रियोंके बीचमें बैठे बलरामजीको देखा ॥ ९ ॥ वारुणी मदिरा पीकर गान करते, मदसे विह्वलनेत्र, मतवाले हाथियोंके समान शरीरसे प्रकाशमान हैं ॥ १० ॥ दुष्ट शाखामृग बंदर वृक्षकी शाखाओंपर चढकर उनको हिलाता हुवा आपेको दिखाकर किलकिला शब्द करनेलगा ॥ ११ ॥ उस बंदरकी धृष्टता देख, स्वभावसे चंचल जो हास्य-प्रिय श्रीबलदेवजीके संगकी स्त्रियें हँसनेलगीं ॥ १२ ॥ वह बन्दर भ्रुकुटी चढाकर सामने ही घुडककर स्त्रियोंको अपनी गुदा दिखलाय बलदेवजीके देखतेही स्त्रियोंकी अवज्ञा करने लगा ॥ १३ ॥ प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने क्रोधित होकर उस बन्दरको पत्थर मारा, परन्तु वह धूर्त बंदर पत्थरको बचाय, मदिराके कलशको फोड ॥ १४ ॥ उसे लेकर हँसकर बलदेवजीको क्रोध उत्पन्न कराय अवज्ञा करने लगा, इसके पीछे वह धृष्ट बन्दर मदिराके कलशको फोड स्त्रियोंके वस्त्रोंको खैंचकर फाडनेलगा, बडाब-

---

* **शंका**-द्विविद नाम वानर रामचन्द्रका बडा प्यारा था, तब सब वानर तो त्रेतामें स्वर्गको चलेगये द्विविदको श्रीराघवजी स्वर्गको क्यों नहीं लेगये ?

उत्तर-रामचन्द्र और रावणका युद्ध होता था उस समय अर्द्धरात्रि थी, द्विविद नाम वानरने रामचन्द्रसे बूझा भी नहीं अपनी सेना लेके रावणके मन्दिरमें घुसगया और बहुतसी रावणकी रानियोंको पकडकर नंगी कर दिया और मारा भी कुछ देर पीछे श्रीमर्यादा-पुरुषोत्तम जो श्रीरघुनाथजी थे उनको यह खोटा कर्म द्विविदने किया ऐसा जानपडा, तब उसी समय श्रीरघुनाथजीने अपनी सेनासे उसको निकाल दिया द्विविदने पीछेसे अपने मोक्ष होनेके लिये श्रीरघुनाथजीकी विनय की, तब रामचन्द्रजीने कहा द्वापरमें तेरी मुक्ति होगी, रे दुष्ट ! आजसे हम तेरा मुख नहीं देखेंगे परन्तु शेषजी तुझको द्वापरमें मारेंगे तब तेरी मोक्ष होगी इसलिये द्विविदको बलदेवजीने मारा और त्रेतामें स्वर्गको नहीं गया ॥

लवान् मदसे उद्धत बन्दर बलदेवजीकी कदर्थना करके दुःख देनेलगा ॥ १५ ॥ उस बन्दरकी अनम्रता देख और उसका किया देशोंमें उपद्रव देख अत्यन्त क्रोधित हो बलदेवजीने उस वैरीको मारनेके लिये अपने हाथमें हल, मूसल ग्रहण किया ॥ १६ ॥ हे राजन्! उस बडे पराक्रमी बंदरने भी हाथसे शालवृक्षको उखाड और शीघ्रतासे निकट आय उस वृक्षकी चोट भगवान् बलरामजीके माथेमें मारी ॥ १७ ॥ पर्वतके समान माथेपर पडतेहुए शालवृक्षको भगवान् बलरामजीने बलपूर्वक पकड लिया और अपने मूसलको घुमाकर उस बंदरको मारा ॥ १८ ॥ मूसलसे बंदरका शिर फूट गया, तब जलप्रवाहके समान रुधिरकी धारा बहने लगी, जिससे वह गेरू निकलते पर्वतके समान शोभायमान होनेलगा और उस प्रहारको कुछ न विचारकर उस बन्दरने ॥ १९ ॥ अत्यन्त क्रोधसे फिर बलपूर्वक और वृक्षको उखाड उसके सब पत्तोंको छुडाकर बलदेवजीको मारा, बलदेवजीने उसी समय उस वृक्षके टुकडे टुकडे कर दिये, इसके उपरान्त इस बन्दरने और वृक्षको उखाड महावीर्यवान् बलदेजीके ऊपर प्रहार किया, परन्तु बलदेवजी उसके भी सौखण्ड करदिये, इस प्रकार भगवान् बलदेवजीके साथ युद्ध करते बारम्बार जब वृक्ष कटगये तब यह चारोंओरसे वृक्षोंको उखाड कर निर्वृक्ष वन करने लगा ॥ २० ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त असहनतासे वह बन्दर महात्मा बलदेवजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करनेलगा, तब मूसलधारी बलदेवजीने लीलापर्वक ही बन्दरके वर्षाये पत्थरोंको चूर्ण करदिया ॥ २२ ॥ बन्दरोंके स्वामी इस बन्दरने तालवृक्षके समान बडी भुजाओंकी मुट्ठी बाँध रोहिणीके पुत्र बलरामजीके पास जाकर उनकी छातीमें एक घूँसा मारा ॥ २३ ॥ हे राजन्! यादवोंके इन्द्र बलरामजी भी हलमूसलको छोड और अत्यन्त क्रोधित होकर भुजाओंसे उसके कंठको मर्दन करनेलगे, उस समय वह बन्दर रुधिरकी वमन करताहुआ पृथ्वीमें गिरकर मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ हे कुरुशार्दूल ! जिस समय वह बन्दर गिरा तब जैसे जलमें नाव काँपती है, उसी प्रकार टंक और वृक्षोंसहित वह पर्वत काँपने लगा ॥ २५ ॥ आकाशमार्गमें देवता, सिद्ध, मुनीश्वर फूलोंकी वर्षा कर जय शब्द और नमः शब्द और भले भले शब्द करनेलगे ॥ २६ ॥ इस प्रकार जगत्के नाश करनेवाले बन्दरको मार और जनोंसे स्तुतिको प्राप्त होकर ऐसे भगवान् बलदेवजी अपनी पुरी द्वारकामें आये ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

दोहा-अरसठमाहीं साम्बको, कौरव कीन्हो बन्द।
हलधर गजपुर उलटकर, लाये सुत निरद्वन्द ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! युद्धमें जीतनेवाला जाम्बवतीका पुत्र साम्ब दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको जब स्वयम्बरमेंसे हर लाया उस समय सम्पूर्ण कौरव

क्रोधित होकर कहनेलगे कि,यह बालक बडा अनम्र है क्योंकि हमारा अनादर करके इच्छा न करती हमारी कन्याको बलात्कार हरण किया ॥ १ ॥ २ ॥ इसलिये इस अनम्र बालकको पकडकर बाँध लो, यादव हमारा क्या करैंगे, क्योंकि वह तो हमारी ही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुएहैं और हमारी ही दी हुई पृथ्वीका भोग करते हैं ॥ ३ ॥ यदि इस बालकको बँधा सुनकर जो यहाँ यादव आवेंगे, तो जैसे प्राणायाम करनेपर इन्द्रियें शान्त होजाती हैं उसी प्रकार गर्वभंजन होनेपर शान्तिको प्राप्त होवेंगे ॥ ४ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार भीष्मजीकी संमतिसे कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधन यह बाँधनेका उपाय करनेलगे ॥ ५ ॥ महारथी साम्ब पीछे आते छः धृतराष्ट्रके अनुयायिओंको देखकर सुन्दर धनुष हाथमें ले सिंहके समान अकेलाही खडा हुआ ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त कर्णादि धनुषधारी वीर क्रोधमें भर साम्बको पकडनेके लिये "खडा रहु, खड़ा रहु" इसप्रकार कहतेहुए निकट आकर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ७ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! यदुवंशियोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके पुत्र साम्बको जब कौरवोंने बाण मारे तब वह क्षुद्र पशुओंके पराक्रमको सिंह जैसे सहन नहीं करता है उसी प्रकार साम्ब उनका बल नहीं सहसके ॥ ८ ॥ इसके पीछे वीर साम्बने मनोहर धनुष चढाकर कर्णादिक छः वीरोंको, छः बाणोंसे एक संग बींधडाला ॥ ९ ॥ चार बाणोंसे रथके चारों घोडोंको और एक बाणसे रथवान्को बींधडाला, तब बडे बडे धनुषधारी छः रथी साम्बके पराक्रमकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १० ॥ उन कौरवोंमेंसे चार तो साम्बके चारों घोडोंको और एकने रथवान्को मारा, एकने धनुषको तोडदिया इस प्रकार मिलकर साम्बको विरथ करने लगे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित् ! कौरव वीर युद्धमें बालक साम्बको विरथकर उन्हें बाँध जीतके अपनी कन्या ले अपने पुरमें चले गये ॥ १२ ॥ हे नृपोत्तम ! देवर्षि नारदजीके मुखसे साम्बको बँधा सुन यादव अत्यन्त क्रोधित हो राजा उग्रसेनकी आज्ञा पाकर कौरवोंसे लडनेका उद्यम करनेलगे ॥ १३ ॥ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाले बलदेवजी, कौरव और यादवोंका विरोध न हो, यह विचार कवच पहर, हथियार बाँध, यादवोंको समझाय ॥ ॥ १४ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान रथमें बैठ, ब्राह्मण और कुलवृद्ध पुरुषोंको संग लेकर, जैसे ग्रहों सहित चन्द्रमा जाता है, उसी प्रकार हस्तिनापुरको चले गये ॥ ॥ १५ ॥ हे महाराज ! महाबलवान् बलरामजीने हस्तिनापुरमें पहुँच और पुरके बाहर बगीचेमें ठहरकर कौरवोंका अभिप्राय जाननेके लिये धृतराष्ट्रके पास उद्धवजीको भेजा॥ ॥ १६ ॥ उद्धवजीने अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको प्रणाम कर भीष्मजी और बाह्लीक सहित द्रोणाचार्य व दुर्योधनको विधिपूर्वक प्रणाम करके "बलदेवजी आये हैं" यह कहा ॥ १७ ॥ अत्यन्त हितकारी बलरामजीको आया हुआ सुन सब कौरव अतिप्रसन्न हो उद्धवजीका पूजनकर और भेंट हाथमें ले ले भगवान् बलरामजीके सन्मुख गये ॥ १८ ॥ और संपूर्ण कौरवोंने यथायोग्य बलदेवजीसे मिलकर गौ और धन दिया और

उन कौरवोंमें बलरामजीके प्रभावको जाननेवाले इन्हें शिर नवाकर प्रणाम करनेलगे ॥ १९ ॥ समस्त बंधु बांधवोंकी कुशल श्रवणकर, परस्पर कुशल क्षेम पूछ, इसके पीछे जिसके सुननेसे व्याकुलता उत्पन्न हो, ऐसा वचन बलरामजी कहने लगे ॥ २० ॥ बलरामजीने कहा कि, सामर्थ्यवान् पृथ्वीके ईश्वर राजा उग्रसेनने जो तुम्हें आज्ञा की है, उसे एकाग्रचित्तसे श्रवणकर शीघ्र उसका पालन करो ॥ २१ ॥ राजा उग्रसेनने यह कहा है कि, तुम बहुत जनोंने जो अधर्म कर उस धर्मात्मा बालकको बाँध लिया है यह तुम्हारा अपराध भाइयोंकी परस्पर एकता रहै, विरोध न हो, इसलिये हमने सहन कर लिया अब तुम शीघ्र साम्बको लाकर हमारे अर्पण करो ॥ २२ ॥ इस प्रकार पराक्रम, शूरता, बलयुक्त और अपने सामर्थ्यके समान बलरामजीके वचन सुन अत्यन्त कुपित होकर कौरव कहनेलगे ॥ २३ ॥ कि, अहो! बडे आश्चर्यकी बात है, देखो! कालकी गति बडी दुरत्यय है जो मुकुटके सेवाकरने योग्य मस्तकपर जूती अपना अधिकार करना चाहती है ॥ २४ ॥ इनके यहाँसे जबसे पृथाको व्याह कर लाये तबसेही यादवोंसे संबन्ध हुआ और हमने ही पलँगपर सुत्रा, संगबिठा संगभोजन करा राज्यसिंहासन दे यादवोंको अपने समान करलिया है ॥ २५ ॥ चमर, पंखा, श्वेतछत्र, किरीट, आसन और शय्या इत्यादि हमारी दीहुई वस्तु यादवलोग भोग करते हैं जैसे कोई ॥ ॥ २६ ॥ सर्पोंको दूध पिलाता है और वह पिलानेवालेको ही काटते हैं, उसी प्रकार इन्होंने हमारे साथ वर्त्ताव किया, ऐसे यादव राज्यकी वस्तु छत्र, चामरादिकसे परिपूर्ण हो और हमारीही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुये, अब हमकोही आज्ञा करते हैं, बडे कष्टकी बात है कि, इन्हें लाज न आई, इसलिये यादव बडे निर्लज्ज हैं ॥ २७ ॥ भीष्म, द्रोण और अर्जुन आदि कौरवोंकी न दी हुई वस्तु क्या इन्द्र भी लेसक्ता है? कभी नहीं, जिस प्रकार सिंहकी वस्तु उसके दिये विना भेड नहीं ग्रहण कर सक्ती ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! इस प्रकार जन्मबन्धु और लक्ष्मीसे मदोन्मत्त वह असभ्य कौरव बलरामजीसे दुर्वचन कहकर हस्तिनापुरको चलेगये ॥२९॥ कौरवोंकी दुष्टता देख और न कहने योग्य वचन सुन अत्यन्त क्रोधित हो, देखनेमें न आवैं इस प्रकार बलदेवजी बारबार हँसकर कहने लगे ॥३०॥ कि, अनेक प्रकारके मदसे मर्यादा, रहित असाधु कौरव निश्चयही शान्ति नहीं चाहते, पशु जैसे लाठीसेही शान्त होते हैं, उसी प्रकार दुष्टोंके शान्ति करनेका उपाय दण्डही है ॥ ३१ ॥ अत्यन्त क्रोधी यादवोंको धीरे धीरे समझाकर और क्रोधमें भरे श्रीकृष्णको समझाकर इन कौरवोंका मिलाप करानेके लिये मैं यहाँ आया हूँ ॥ ३२ ॥ और यह मंदबुद्धि, कलहप्रिय, दुष्ट, अभिमानी कौरवोंने मेरा अपमान करके और मुझे निन्दित वचन कहे ॥ ३३ ॥ भोज, वृष्णि, अंधक कुलके ईश्वर, उग्रसेनकी आज्ञाको इन्द्रादि बडे बडे लोकपाल भी मानते हैं, सो क्या वह कौरवोंको आज्ञा करनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रने देवराज इन्द्रकी सभाको पाँवोंसे खूँद और देवताओंका कल्पवृक्ष लाकर अपने महलके

बगीचेमें लगाया, वह क्या समर्थ नहीं हैं ? ॥ ३५ ॥ संपूर्ण जगत्की ईश्वरी लक्ष्मी साक्षात् जिनके चरणारविन्दोंका सेवन करें वह लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचंद्र क्या राजाओंकी वस्तुके योग्य नहीं हैं ॥ ३६ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंकी रज सब लोकोंका पालन करनेवाले ब्रह्मादिक अपने मुकुट युक्त माथेपर धारण करते हैं और जो गंगा तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाली है, जिनके अंशके अंश ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी और हम संपूर्ण बहुत दिनों तक चरणारविन्दकी रजको माथेपर धारण करते हैं उन श्रीकृष्ण-चन्द्रके सन्मुख राजासिंहासन क्या पदार्थ है ? ॥ ३७ ॥ कौरवोंने पृथ्वीके खण्ड कर दिये हैं उसका यादव भोग करते हैं और हम पाँवकी जूती और कौरव शिर ठहरे ॥ ३८ ॥ अहो ! ऐश्वर्यसे मतवालोंके समान अभिमानी कौरवोंके कर्कश टेढे वचनोंको सुनकर दण्डका देनेवाला कौन पुरुष सह सकेगा ? ॥ ३९ ॥ इसलिये अब कौरवोंसे रहित पृथ्वी करूंगा, इस प्रकार भगवान् बलदेवजी मनमें निश्चयकर हल हाथमें ले मानो त्रिलोकीको भस्म कर देंगे, ऐसे अत्यन्त क्रोधित हो खडे होगये॥ ४० ॥असहनतासे बलदेवजीने हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको उखाडकर नाश करनेके लिये गंगाजीमेंको खैंचा * ॥ ४१ ॥नौकाके समान भ्रमण करते गंगाजीमें गिरते नगरको देख अत्यन्त भ्रमित हो,कौरव लक्ष्मणासहित साम्बको आगे कर,हाथ जोड, कुटुम्बसहित जीवनकी इच्छा करके सामर्थ्यवान् भगवान् बलरामजीकी शरण आये ॥४२॥४३॥ और आनकर कहने लगे कि, हे राम ! हे राम ! हे सबके आश्रय ! हम तुम्हारा प्रभाव नहीं जानते थे,इसलिये हमारे ऊपर तुम क्षमा करने योग्य हो ॥ ४४ ॥ स्थिति, उत्पत्ति और नाश इनके तुम निराश्रय कारण हो, हे ईश ! यह लोक तुम्हारी लीला करनेका खिलौना है ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! हे सहस्रमूर्द्धन् ! तुम इस भूमंडलको लीलापूर्वक ही मस्तकपर धारण करते हो और अंत समय सब विश्वको उदरमें धरकर शेषशय्यापर शयन करते हो, इसलिये आप अद्वितीय ब्रह्म हो ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! सतोगुणी तुम्हारा क्रोध सबको शिक्षा देनेके लिये है, कुछ द्वेष और मत्सरता नहीं है, हे राम ! विश्वकी स्थिति और पालन करना कोपका तात्पर्य है ॥ ४७ ॥

---

* **शंका**-हस्तिनापुरमें अनेक प्रकारके प्राणी तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, साधु, संन्यासी, गाय, पशु और अनेक जातिके पशु पक्षी वसते थे, ऐसे हस्तिनापुरको जलमें डुबोनेके लिये बलदेवजी उपस्थित हुए, इस पापसे नहीं डरे कि, हस्तिनापुरको जलमें डुबावेंगे, तो असंख्यजीवोंकी हत्या होगी यह विचार क्यों नहीं किया ? अकेले कौरवोंको डुबोनेकी क्यों नहीं इच्छाकी, सब पुरवासियोंने क्या अपराध किया था, अपराध तो कौरवोंने ही किया था ?

उत्तर-कौरवोंने उग्रसेनकी और यदुवंशियोंकी निन्दा करी ? तब बलदेवजीने अपने बडोंकी और सब कुलकी निन्दा सुनके बडे क्रोधित हुये उसी क्रोधसे व्याकुल होकर जीवोंकी हत्याको भूलगये ॥

हे सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा ! हे सम्पूर्ण शक्तिके धारण करनेवाले ! आपको नमस्कार है, हे विश्वके धारण करनेवाले ! हम आपकी शरण आये हैं ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम ! उद्वेगयुक्त शरण आये कौरवोंने कि, जिनका नगर कम्पित होरहा था, जब इस प्रकारसे भगवान् बलरामजीको प्रसन्न किया, तब बलरामजीने प्रसन्न होकर उनको, "भय मतकरो" यह अभयदान दिया ॥ ४९ ॥ इसके उपरान्त राजा दुर्योधनने अपनी कन्याके दहेजमें साठ साठ वर्षकी अवस्थाके बारह सहस्र हाथी और बारह हजार घोडे दिये ॥ ५० ॥ हे राजन् ! सुवर्णके साजसे शोभायमान, सूर्यके समान चमचमाहट ऐसे छः हजार रथ दिये और पुत्रीपर प्यार अधिक होनेके कारण दुर्योधनने धुकधुकी कंठमें पहरे हजार दासी दीं ॥ ५१ ॥ यादवश्रेष्ठ बलदेवजीने सम्पूर्ण दहेज ग्रहणकर और बेटा बहूको संग ले, कौरवोंका अभिवादन ग्रहणकर वहांसे प्रस्थान किया ॥ ५२ ॥ हे नृप ! संपूर्ण कौरवोंसे विदा हो हलधारी बलदेवजी अपने पुरमें आय, स्नेह भरे चित्तसे, सब बंधु बांधवोंसे मिल, उत्तम यादवोंकी सभामें बैठ कौरवोंने जो जो बातें की थीं, सो सो सब कहने लगे ॥ ५३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इस कारण अबतक हस्तिनापुर, बलरामजीके पराक्रमको सूचना कराता दक्षिण दिशाकी ओरसे गङ्गाजीमें झुका दिखाई देता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे उत्तरार्द्धे दशमस्कंधे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

दोहा-उनहत्तरवें देखकर, घर घर कृष्णविहार।
अति विस्मित भये देवऋषि,पुनि सब मिटो विकार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे पाण्डुनन्दन परीक्षित् ! नरकासुरको वधकर अकेले भगवान्ने बहुत स्त्रियोंके साथ विवाह किया यह बात सुन देखनेकी इच्छासे देवर्षि नारद द्वारकापुरीमें आये * ॥ १ ॥ नारदजी विचार करनेलगे कि, बडे आश्चर्यकी बात है. एक देहसे

*** शंका**-हे मुनीश्वर ! नारदकी बुद्धि क्यों भ्रष्ट होगई ? त्रिलोकीनाथको षोडश सहस्र १६००० स्त्रियोंके संग क्रीडा सुनके आश्चर्यमाना विना प्रयोजन दुःखी होना यह काम साधु लोगोंका नहीं है, यह काम तो मूर्खोंका है, जो कोई कहे कि, नारदको माया ग्रसित कररही है, तो यह बात वृथा है, माया तो बारंबार ग्रसित नहीं करती है, एकबार पाप ग्रसित करता है ॥

उत्तर-जो कोई प्राणी भूलकर थोडासा भी पाप करलेताहै, फिर वह पाप करनेसे नहीं डरता, ऐसेही बहुतसे जीवोंको विना विचार किये नारदने शाप दिया इसी प्रकार बहुतसे जीवोंको नारदने शाप देकर दुःख दिया, उन पापोंसे भक्तवत्सल श्रीकृष्ण उन भगवान्में दुष्टबुद्धि करनेलगे, पापसे सम्पूर्ण मूर्ख होगये ॥

एकसंग, अलग अलग घरोंमें सोलह सहस्र स्त्रियोंका श्रीकृष्णचन्द्रने एकही साथ पाणि-ग्रहण किया ॥ २ ॥ इस प्रकार उत्कंठासे नारदजी द्वारकापुरीमें आये, जिस द्वारकापुरीमें फूली फुलवारी और बागमें पक्षी तथा भौंरोंके झुण्ड गुंजार रहे थे ॥ ३ ॥ फूले हुए इंदीवर, अंभोज, कल्हार, कुमुद और उत्पलोंसे सरोवर व्याप्तथे उनमें उच्चस्वरसे हंस सारस बोलतेथे, उनका शोर होरहा था ॥ ४ ॥ स्फटिकमणि और महामणियोंसे प्रकाश-मान सुवर्ण व रत्नोंकी सामग्रीसे युक्त नौलाख महल बन रहे थे ॥ ५ ॥ अगल अलग राजमार्ग और गली, कूचे, बाजार, शाला, सभा और देवतालोंगोंके मन्दिर बनरहे थे, उनसे वह पुरी अत्यन्त शोभायमान लगती थी. मार्ग, आँगन, गली और देहलियोंमें छिडकाव होरहा था, छोटी २ पताका और बडी बडी ध्वजाओंके फहरानेसे वहाँ धूप नहीं आती थी ॥ ६ ॥ इस द्वारकापुरीमें संपूर्ण लोकपालोंसे पूजित श्रीकृष्णचन्द्रके अंतःपुरकी रचनामें विश्वकर्माने अपनी संपूर्ण चतुराई दिखाई थी ॥ ७ ॥ इसप्रकार सोलह हजार महलोंसे शोभायमान अंतःपुरसे श्रीकृष्णचन्द्रकी रानीके एक भवनमें देवर्षि नारदजी गये ॥ ८ ॥ वह भवन कैसा है, जहाँ मूंगोंके खम्भ लगरहे थे और वैदूर्यमणियोंके फलको-त्तम अर्थात् खम्भेधरनेकी चौकियें बन रही थीं, इन्द्रनीलमणियोंकी भीतैं और अत्यन्त शोभायमान नीलमणिकी भूमि बन रही थी ॥ ९ ॥ मोतियोंकी झालर जिनमें लगीं, ऐसे विश्वकर्माके बनाये चँदोवेसे वह भवन अधिक शोभायमान था, मणियोंसे शोभाय-मान हाथीदाँतकी चौकी और पलँग बिछरहेथे, उनकी अलगही शोभा होरही थी ॥ १० ॥ धुकधुकी कंठमें पहरे सुन्दरवस्त्र धारे दासियोंसे शोभायमान जामा, पगडी, पटका और मणियोंके कुण्डलोंको पहरे पुरुषोंसे शोभायमान था ॥ ११ ॥ हे राजा परीक्षित्! रत्नोंके दीपकोंकी पंक्ति लग रही थीं, उनके प्रकाशसे उस भवनमें अंधकार नहीं था और घरोंके भीतर अगरकी धूपका धुआँ जाली झरोखोंमें होकर निकल रहा था, उसे देख बादल आये जान मोर शब्द करके भवनके चित्र विचित्र छज्जोंके ऊपर नृत्य कररहे थे ॥ १२ ॥ उस महलमें रूप, गुण, अवस्थामें अपने समान, गहना पहरे सहस्र दासियोंके संग सदा सुवर्णकी डंडीका चमर पंखा लिये रुक्मिणी यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर चँवर कर रहीथीं, इस प्रकार नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ १३ ॥ सब धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने नारदजीको देख, पलँगपरसे शीघ्र उठ किरीट युक्त शोभायमान शिरसे चरणोंमें नमस्कार कर हाथ जोड उन्हें अपने आसनपर बैठाला ॥ १४ ॥ जगत्के अतिशय गुरु साधुओंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि नारदजीके चरण धो, चरणामृत अपने मस्तक पर चढाया; जिन श्रीकृष्णका चरणोदक गंगा सबको पवित्र करती हैं उनमें ब्रह्मण्यदेव यह गुणयुक्त नाम ज्योंका त्यों बनता है ॥ १५ ॥ नरके सखा ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण, नारदजीको शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पूजनकर अमृतकी तुल्य प्रमाणीभूत मधुरवाणीसे कहने लगे कि, हे नारदजी! आपके आनेसे मंगल हुआ हे समर्थ भगवन्! हम तुम्हारा क्या पूजन करैं? यह कहने लगे ॥ १६ ॥ नारदजी

बोले कि, हे समर्थ ! हे उरुगाय ! आप सब जीवोंसे मित्रतारखते हो और दुष्टोंको दण्ड देते हो, सब लोकोंके नाथ तुममें यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि, जगत्की स्थिति और रक्षासहित कल्याण करनेके लिये अपनी इच्छानुसार अवतार लेते हो, यह मैं भले प्रकार जानता हूँ कि,दुष्टोंको दण्ड और साधुओंका सत्कार करना, यही तुमको योग्य है॥१७॥ मनुष्योंको मोक्षके देनेवाले और बडे ज्ञानी, ब्रह्मादिक देवता जिनका हृदयमें ध्यान धरते हैं, जो संसाररूपी कूपमें पडे जीवोंको निकालनेके आश्रयभूत तुम्हारे चरणारविन्दोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ, अब ऐसी कृपा करो कि, मुझे सदा तुम्हारा स्मरण बना रहै, और तुम्हारे चरणारविन्दोंका ध्यान करता हुआ सुखसे विचरूं ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार कह नारदजी योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमाया जाननेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रकी और रानीके महलमें गये ॥ १९ ॥ उस महलमें भी प्यारी सत्यभामाके संग और उद्धवजीके संग चौपड खेलते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने देखा, इनको देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र परमभक्तिपूर्वक उठ, आसन बिछाय,अर्घ्य देकर पूजन करनेलगे॥२०॥ "तुम कब आये" इस प्रकार अज्ञानीके समान श्रीभगवान् नारदजीसे पूँछने लगे, पूर्ण तुमको हम अपूर्ण क्या पूजन करैं ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! हम पूर्ण नहीं हैं, परन्तु तो भी हमसे कुछ आज्ञाकर हमारा जन्म सार्थक करो, यह सुन नारदजी आश्चर्य मानकर वहाँसे और मन्दिरमें गये ॥ २२ ॥ उस महलमें भी छोटे छोटे बालकोंको खिलाते श्रीकृष्णचन्द्रजीको देखा, इसके उपरान्त और महलोंमें जाकर देखैं तो स्नानका उपाय कररहे हैं ॥ २३ ॥ किसी महलमें श्रीकृष्णचन्द्र अग्निहोत्र कररहे हैं, किसीमें पंचयज्ञ कररहे हैं और किसी महलमें ब्राह्मणोंको भोजन जिमाय उनका बचा प्रसाद आप भोजन कररहे हैं, इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ २४ ॥ किसी महलमें संध्या और किसीमें मौन होकर गायत्री जप रहे हैं,एक महलमें ढाल तलवार लेकर फिर रहे हैं, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ ॥ २५ ॥ किसी महलमें घोडे, हाथी रथोंपर चढकर फिर रहे हैं और किसी महलमें शयन कर रहे हैं बन्दीजन स्तुति कररहे हैं, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका नारदजीने दर्शन किया ॥ २६ ॥ किसी महलमें उद्धवादिक मंत्रियोंके संग विहार करते देखा और किसी महलमें मुख्य मुख्य वरांगना स्त्रियोंके संग जलमें विहार करते श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ २७ ॥ किसी महलमें शृंगार करके ब्राह्मणोंको गौ दान कररहे हैं और किसी महलमें इतिहास, पुराण, मंगलरूपी वाक्य श्रवण करते श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन किये॥२८॥किसी महलमें हँसीकी बात कहकर श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीके संग हँसरहे हैं, कीसी महलमें अपने धर्मकी सेवा करते हैं और किसी महलमें अर्थ और कामका संपादन कररहे हैं ॥ २९ ॥ किसी महलमें मायासे अतीत परब्रह्मका एकासनपर बैठे ध्यान कर रहे हैं और किसी महलमें काम, भोग, पूजन इत्यादिसे गुरुकी शुश्रूषा कररहे हैं ॥ ३० ॥ किसी महलमें वियोग और किसीमें मिलापकी बातें कर रहे हैं और किसी महलमें बलदेवजीके संग साधुओंके सुखार्थ यत्न कररहे हैं, ऐसे श्रीकृष्णच-

न्द्रका दर्शन किया ॥ ३१ ॥ किसी महलमें पुत्रको समयपर सदृश स्त्रियोंको देखकर विवाह करते हैं और किसी महलमें अपनी कन्याके समान बर देख द्रव्योंकरके विवाह करते हैं ॥ ३२ ॥ किसी महलमें कन्या और जमाईको बिदा कररहे हैं और किसी महलमें पुत्रोंके सुसराल भेजकर उनकी स्त्रियोंको बुलाते है, इस प्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर, श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोंका बडा उत्सव देख लोग आश्चर्यको प्राप्त होगये ॥ ३३ ॥ किसी महलमें बडे यज्ञोंसे अपनी कला देवताओंका पूजन कररहे हैं और किसी महलमें, अमुक रास्तेमें कुआँ बनाओ, बागलगाओ और नवीन मंदिर बनवाओ, इस प्रकार धर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने देखा ॥ ३४ ॥ किसी महलसे सिंधुदेशके घोडेपर चढ यादवोंको संग ले शिकार खेलनेको जारहे हैं, वहाँ विचित्र विचित्र पशुओंको मारते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ ३५ ॥ किसी महलमें अपना रूप छिपाकर अंतःपुरके भीतर गृहादिमें प्रजाका अभिप्राय जाननेके लिये विचरते योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मनुष्यदेहको प्राप्त हुए श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका वैभव देख संपूर्ण लीला देखनेके उपरान्त नारदजी हँसकर कहने लगे ॥ ३७ ॥ योगेश्वर ! तुम्हारे चरणारविन्दोंकी सेवा करके मेरे मनमें प्रकाशमान तुम्हारी योगमायाहीको केवल हम जानते हैं और तुम्हारा सत्य स्वरूप नहीं जानते ॥ ३८ ॥ हे देव ! तुम्हारे यशसे व्याप्त लोकोंमें सब लोकोंकी पवित्र करनेवाली तुम्हारी लीला मैं गाता फिरूं, यह आज्ञा तुम मुझे दो इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ३९ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! धर्मका कहनेवाला हूं और दूसरेको धर्म करता देखकर प्रशंसा करताहूं, इस कारणः सब लोकोंके शिखानेके लिये मैं कर्म करताहूं. इसलिये हे अंग ! तुम अपने मनमें खेद मतकरो ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार गृहस्थ पुरुषोंके पवित्र करनेवाले,श्रेष्ठधर्मके कर्त्ता अकेले श्रीकृष्णचन्द्रको सब घरोंमें नारदजीने देखा ॥ ४१ ॥ अनन्त पराक्रम श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका बडा उदय वारंवार देखकर लीलापूर्वकही नारदजीको बडा आश्चर्य प्राप्त हुआ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें श्रद्धासहित मन लगाये श्रीकृष्णचन्द्रसे भलीप्रकार पूजित होकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रको मनमें स्मरण करते चलेगये ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार मनुष्योंका मार्ग चलनेवाले, सब जीवोंका कल्याण करनेके लिये अनेक मूर्त्ति धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र सोलहहजार श्रेष्ठ स्त्रियोंके बीचमें लाजभरी स्नेहकी चितवन, हँसन इनसे सेवित होकर रमण करने लगे ॥ ४४ ॥ हे परीक्षित् ! विश्वकी प्रलय और उत्पत्तिके कारण हरि भगवान्के दूसरोंको अगम्य साधारण कर्म,इस संसारमें जो पुरुष गावैं अथवा सुनैं या बडाई करैं, उन पुरुषोंको मोक्षके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति प्राप्त होतीहै ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

दोहा-सत्तरमें गोविन्दको, भारी परो विचार।
इतते आयो दूत एक, उत नारद अविकार॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! स्वामियोंके गलेमें भुजा डाले हृदयसे चिपटाये श्रीकृष्णकी स्त्रियें प्रातःकालके समय अरुण शिखाओंका (मुर्गोंका) शब्द सुन "श्रीकृष्णचन्द्र जाग उठेंगे" इस प्रकार जानकर विरहसे आतुर हो उन मुर्गोंसे क्रोध कर कहने लगी कि, अरे अभागे! तुम अभीसे बोलनेलगे श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकाल जानकर कहीं उठ न बैठें? ॥ १ ॥ इसके उपरान्त प्रातःसमय सब पक्षी नींदको त्याग बोलनेलगे और कल्पवृक्षकी पवन सूंघकर भौंरे गुंजार करनेलगे; उनके मनोहर शब्दकी ऐसी शोभा होती थी कि, मानो बंदीजन श्रीकृष्णको जगा रहे हैं ॥ २ ॥ अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको भुजाओंके बीचमें प्राप्त हुई रुक्मिणीने आलिंगनका वियोग देख अति सुन्दर प्रातःकालके समयको सहन न किया ॥ ३ ॥ प्रसन्न इन्द्रिय मधुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्म मुहूर्त्त अर्थात् सूर्योदयसे दो तीन घडी पहले उठ जलका आचमन कर मायासे परे अपने स्वरूपका ध्यान करनेलगे ॥ ४ ॥ कैसे स्वरूपका ध्यान किया सो कहते हैं, एक अखण्ड स्वयंज्योतिस्वरूपका उपाधिरहित अविनाशी सर्वकाल अविद्यारहित ब्रह्म विश्वकी उत्पत्ति और नाशके कारण अपनी शक्तिसे देखनेमें आवैं सत्तामात्र आनन्दरूप ॥ ५ ॥ हे राजन्! इसके उपरान्त निर्मल जलमें स्नान कर धोती पहर श्रीकृष्णचन्द्र सन्ध्योपासनादि कर्म और अग्निहोत्र कर मौन हो गायत्रीका जप करने लगे, फिर सूर्यनारायणको अर्घ्य दे अपने अंशके जो देवता, ऋषि, पितृ थे उनका तर्पण करके ज्ञानवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्मणोंका पूजन करने लगे॥ ६॥ ७॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुवर्णसे सींग मढे अत्यन्त सूधी मोतियोंकी माला पडी दूध देनेवाली और एकही वारकी ब्याई शोभायमान बछडों सहित सुन्दर वस्त्र उढाय॥ ८॥ रूपेसे खुरोंके अग्रभाग मढे ऐसी तेरह हजार चौरासी १३०८४ गौ एक एक महलमेंसे प्रतिदिन शोभायमान सत्पात्र ब्राह्मणोंको रेशमी वस्त्र मृगछाला और तिलसहित दान करते थे ॥ ९ ॥ अपनी विभूति गौ ब्राह्मण देवता और वृद्धोंको नमस्कार करके मंगल वस्तु कपिलादि गौका स्पर्श करते थे ॥ १० ॥ और नरलोकका भूषणरूप अपने शरीरको वस्त्र और चन्दन इत्यादिसे शोभायमान करते थे ॥ ११ ॥ घीमें मुख देख व काँच देख गाय वृषभ अथवा देवतालोगोंका दर्शनकर पीछे नगर व रनिवासी व सब प्रजागणकी अभिलाषा सिद्धकर फिर मंत्री और प्रधानोंका मनोरथ पूर्ण व प्रसन्न कर उनका यथायोग्य आदरसत्कार करते थे, फिर कुछ और कार्यको देखते थे ॥ १२ ॥ पहले विप्र फिर मित्र और कार्याधीश व स्त्रियें इनको पान, पुष्प और अरगजा दे, सबसे पीछे उन वस्तुओंको आप अंगीकार करते थे ॥ १३ ॥ हे राजन्! इतनेहीमें सारथीने सुग्रीवादि घोडे जोत परम अद्भुत रथ ला प्रणाम करके सन्मुख खडा करदिया ॥ १४॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे रथवान्का हाथ पकड सात्यकी और उद्धवको संग

ले जैसे सूर्यनारायण सुमेरुपर्वतके ऊपर चढते हैं, उसी प्रकार रथमें चढ गये ॥ १५ ॥ लाजभरी प्रेमकी चितवनसे अंतःपुरकी स्त्रियोंके देखनेसे मुसकाते श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त कष्टसे, उनको छोड और उनके मन हरकर बाहर निकले ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब घरोंसे अलग अलग निकल, पीछे सब एकरूप हो सब यादवोंको साथ ले भगवान् वासुदेव सुधर्मासभामें गये, हे राजन् ! इस सुधर्मा सभामें बैठे हुये पुरुषोंको क्षुधा, पिपासा, शीत, गर्मी, शोक और मोह इत्यादि बाधा नहीं व्यापती हैं * ॥ १७ ॥ उस सभामें यादवोंसे वेष्टित व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासनपर बैठ अपनी कान्तिसे सब दिशाओंको प्रकाशमान करनेलगे जैसे तारागणोंके बीचमें निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है उसी प्रकार यादवोंके बीचमें बैठेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा होने लगी ॥ १८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस सभामें भाट अनेक प्रकारके हँसीकी बातें कर श्रीकृष्णचन्द्रका सेवन करते थे और नटोंमें मुख्य और नृत्यकरनेवाली स्त्रियें अलगही अपने अपने गवैयोंको संग ले सन्मुख खडी हुईं ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त मृदंग, वीणा, मुरज, बाँसुरी, झांझ, शंख इत्यादि बजाकर नृत्य करनेलगे और सूत, मागध, बंदीजन श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख स्तुति करनेलगे ॥ २० ॥ उस समय कोई चतुर ब्राह्मण वेदकी ऋचा पढकर व्याख्या देनेलगे और कोई कोई ब्राह्मण पवित्र वंशवाले राजाओंकी कथा कहनेलगे ॥ ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस समय एक अजान मनुष्य उस स्थानपर कहींसे आया, तब डयोढीवानोंने श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर खबर की, श्रीकृष्णने आज्ञादी कि, जाओ उसे लिवालाओ, तब उस मनुष्यको सभाके भीतर पहुँचाया ॥ २२ ॥ ब्रह्मादिकोंके ईश्वर

---

* **शंका**-सुधर्म्मासभामें बैठनेवाले जीवोंके हृदयमें काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर यह छः वैरी उत्पन्न नहीं होते थे, फिर श्रीकृष्णके हृदयमें वही छहों वैरी क्यों उत्पन्न हुये, जिन छः वैरियोंको ग्रहण करके श्रीकृष्णजीने बडे बडे दुष्टोंको मारा, यह बडी शंका है ?

उत्तर-तीनलोकमें इस लोकका काम तथा परलोकका काम विना काम आदि छहों वैरियोंको सेवन किये नहीं चल सकता इससे विचार कर सेवन करना चाहिये क्योंकि, यह छहों वैरी वश न किये कभीभी सिद्ध नहीं होगा इसलिये कामादिक छःशत्रुओंका सेवन अवश्य करना चाहिये,परन्तु विचारकेसवन करना, क्योंकि यह छः शत्रु सुन्दर काममें भी हैं,सो सुन्दर काममें छःहोंको ग्रहण करना, जैसे सुन्दर कामकी इच्छामें लोभ इसीप्रकारसे जानलेना चाहिये, और बुरे काममें त्यागना चाहिये, सुधर्मासभामें बुरे कामवाले छः शत्रु नहीं थे, सुन्दर कामवाले कामादिक छः वैरीथे, इसलिये, सुन्दर कामोंके छहों वैरियोंको श्रीकृष्णचन्द्रने ग्रहण किया और बुरे कामवालोंको त्यागदिया, क्योंकि, यह कामादिक छः वैरी सुन्दरकर्ममें सुन्दर फल देते हैं, बुरे कर्मसे बुरा फल देते हैं, इसलिये श्रीकृष्णने सुधर्मासभामें बैठकर छहों वैरियोंको ग्रहण करके दुष्टोंको जीता और मारा ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख उस पुरुषने हाथ जोड नमस्कार करके जरासन्धके कैद कियेहुये वीसहजार आठसौ राजाओंका दुःख कहा ॥ २३ ॥ जब जरासन्धने दिग्विजय किया था तब उस समय जिन राजाओंने आकर भेंट नहीं दी थी, इसलिये उसने वीसहजार आठसौ राजाओंको पकड गिरिव्रजनाम किलेमें कैद कर दिया है ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे शरणागतका भय काटनेवाले ! इस संसारमें भयभीत तुमसे प्रेम करनेवाले हम आपकी शरण आये हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि यह लोग अतिशय पाप कर्ममें लग रहेहैं, सो तुम्हारे बताये कल्याणरूप पूजन सेवनरूप कर्ममें भूल रहेहैं इस संसारमें जीनेकी आशा काटनेवाले सामर्थ्यवान् कालरूप आपको नमस्कार है ॥२६॥ हे भगवन् ! जगत्के ईश्वर तुमने इस संसारमें साधु पुरुषोंकी रक्षा और दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देनेके लिये अपने अंशसे अवतार धारण किया है और आपके विद्यमान रहते भी जरासन्ध सरीखा बलवान् तुम्हारी आज्ञाको नहीं मानता आपकी रक्षामें रहे जीव अपने कर्मजनित दुःखोंको प्राप्त होते हैं यह किसलिये होते हैं ? सो हम नहीं जानसक्ते ॥ २७ ॥ हे ईश ! यह राज्यके संबन्धका सुख विषयसाध्य है इसीसे परतंत्र है; इसीलिये यह स्वप्नसुखके समान है और यह शरीर भी सदैव भयसे युक्त मृतकके समान है, परन्तु तो भी हम इस शरीरसे केवल भार्या सन्तानादिकी चिन्ता करते रहते हैं, निष्काम भक्त जिस स्वतःसुखको आपसे प्राप्त होते हैं, उसे त्याग अत्यन्त कृपण बने आपकी मायासे दुःख पाते हैं, क्योंकि पहले निष्काम हो आपके चरणोंकी शरण न ली ॥ २८ ॥ इस लिये दुःखी पुरुषोंका शोक हरनेवाले जिनके चरणकमल हैं, ऐसे आप हम बँधे हुओंको जरासन्धरूपी कर्मबन्धनसे छुडाओ, दशहजार हाथियोंका बल धारण करनेवाले इस जरासन्धने सिंह जिस प्रकार भेडोंको घेर लेताहै, उसी प्रकार अपने दुर्गमें हम राजाओंको रोक रक्खा ॥ २९ ॥ हे चक्रधर ! हे कृष्ण ! आपसे अठारह वार जरासन्धने संग्राम किया और सत्रह बार आपने हरादिया परन्तु अठारहवीं बार संग्राममें आप मनुष्यलीला कर रण छोडगये आपको यह एक बार जीत महागर्वको प्राप्त हुआ है, इसलिये आपकी प्रजा हमको बहुत दुःख देता है, अब जो आप उचित समझो सो करो ॥ ३० ॥ दूत बोला कि, इस प्रकार जरासन्धके रोके आपके दर्शनकी अभिलाषा किये राजालोग आपके चरणकमलकी शरण लियेहुये हैं इन दीनोंका बहुत शीघ्र उद्धार करना चाहिये ॥ ॥ ३१ ॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार राजाओंका दूत कहही रहाथा कि, इतनेहीमें श्रेष्ठ कान्तिवाले पीली जटायें धारण किये श्रीमन्नारदजी सूर्यके समान वहां आन प्रगट हुये ॥ ॥ ३२ ॥ सब लोकोंके महान् ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र नारदजीको आया देख अपने सभासदोंसहित शिर नवायकर प्रणाम करनेलगे ॥ ३३ ॥ आसनपर विराजमान नारदजीका विधिपूर्वक सत्कार करके श्रद्धासहित मधुर मधुर वचनोंसे भगवान् तृप्त करनेलगे ॥ ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, नारदजी ! त्रिलोकीमें कहीं भय तो नहीं है ? तुम्हारे लोकोंमें भ्रमण करनेसे हमें बडा लाभ है, क्योंकि घर बैठेही सब समाचार मिल जाते

हैं ॥ ३५ ॥ ईश्वरके बनाये लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसको तुम न जानो इसलिये हम तुमसे पूछते हैं कि, पाण्डवोंकी क्या करनेकी इच्छा है ? ॥ ३६ ॥ यह सुनकर नारदजीने कहा कि, हे समर्थ ! आप अपनी मायासे ब्रह्माको भी मोहित करते और अपनी अचिन्तनीय शक्तिसे प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे रहनेपरभी काष्ठमें रहे अग्निके समान गुप्त प्रकाशवाले हो आपकी माया मैंने कई वार अवलोकन की है, इसलिये यह आपका चित्र कुछ अद्भुत विदित नहीं होता॥ ३७॥यह संसार जो कि,मिथ्या होनेपर भी आपकी मायासे विद्यमानसा प्रतीत होता है, इसके उत्पन्न, पालन, और संहार करने वाले आपके अभिप्रायको कौन पुरुष भलीभाँतिसे जान सक्ता, है ? अर्थात् कोई भी नहीं जान सक्ता, ऐसे अचिन्त्यस्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥ जिन आपने बहुत प्रकार जन्म, मरण पाते और विविध अनर्थकारक शरीरसे मुक्त होनेका उपाय न जाननेवाले जीवोंका अज्ञानरूपी अंधकारका मिटानेवाला अपना यशरूपी दीपक लीलासे अवतार धारणकर प्रगट किया है, ऐसे आपकी मैं शरण प्राप्त हुआ हूँ ॥ ॥ ३९ ॥ परन्तु तो भी हे ब्रह्मन् ! मनुष्यके अनुकरण करनेवाले आपसे आपकी फूफीके पुत्र भक्त राजा युधिष्ठिर जो कुछ करना चाहते हैं सो मैं कहकर सुनाता हूं ॥ ॥ ४० ॥ पाण्डुका पुत्र चक्रवर्ती राज्य करनेकी इच्छा करनेवाले राजा युधिष्ठिर यज्ञ-राट् राजसूययज्ञ करके तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं, यह आप अनुमोदन करो ॥ ॥ ४१ ॥ हे देव ! उस यज्ञमें तुम्हारा दर्शन करनेके लिये इन्द्रादिक देवता आवेंगे और बडे बडे यशस्वी राजालोग तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे आवेंगे ॥ ४२ ॥ हे ईश्वर ! ब्रह्मरूप तुम्हारी कथाओंके श्रवण करनेसे और तुम्हारा ध्यान करनेसे चाण्डाल भी पवित्र होजाते हैं, और जो तुम्हारे दर्शन करनेहीसे पवित्र होजायँ तो इसमें कहनेकी बातही क्या हैं ? ॥ ४३ ॥ हे त्रिलोकीके मंगलरूप ! तुम्हारा निर्मलयश स्वर्ग, रसा-तल और संपूर्ण पृथ्वीमें फैल रहा है और दिशाओंको चँदोवेके समान शोभायमान कर रहा है, स्वर्गमें मंदाकिनीरूप पातालमें भोगावती रूप और इस संसारमें आपका चरणोदक गंगारूप होकर सब विश्वको पवित्र कररहा है, इसलिये तुम्हार चलतेही यज्ञमें बडा मंगल होगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार देवर्षि नारदजीने जब कहा तब उस सभामें अपनी ओरके यादवोंने जरा-सन्धके जीतनेकी इच्छासे जब यज्ञमें जानेकी अनुमति न दी तब मनोहर वचनोंसे कुछेक मुसकाते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रने कहा कि, हे उद्धव ! तुम हमारे परममित्र और परमहितकारी हो और गुह्य बातोंके अभिप्रायको भलीभाँति जानते हो, इसकारण इस विषयमें हमको क्या करना चाहिये सो कहो, उसको हम श्रद्धापूर्वक करेंगे ॥ ४६ ॥

चौ०-उद्धव तुम हो सखा हमारे। मन आँखनसे कबहुं न न्यारे ॥
दोउ ओरकी भारी भीर। पहले कहाँ चलूं कह वीर॥

इत राजा संकटमें भारी। दुख पावत किये आश हमारी॥
उत पाण्डव मिल यज्ञ विचारो। पहले कहो कहाँ पग धारो॥

सब बातके जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मानों कुछ नहीं जानते, इस प्रकार अनजानकी समान जब पूछा, तब उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा शिरपर धारण कर बोले॥ ४७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धो-त्तरार्द्धे सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७०॥

दोहा-इकहत्तर उद्धव चतुर, हरिकी सम्मति मान।
इन्द्रप्रस्थ गवने तुरत, पाण्डव बुद्धिनिधान॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार बडी बुद्धिवाले उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन और नारदजीकी सम्मति यज्ञमें जानेकी जान और सभामें बैठनेवाले यादवोंकी सम्मति राजाओंकी रक्षा करनेकी देख और श्रीकृष्णचन्द्रकी इच्छा दोनों कार्य करनेकी देखकर कहनेलगे॥ १॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रकाशमान श्रीकृष्ण! देवर्षि नारदजीने जो कहा कि, राजा युधिष्ठिर तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं सो उनकीभी सहायता करनी योग्य है और शरणागत राजाओंकी भी रक्षा करनी योग्य है॥ ॥ २॥ हे समर्थ! संपूर्ण दिशाओंके राजाओंका जीतनेवाला राजसूययज्ञ करके पूजन होगा इसकारण जरासन्धको भी अवश्य जीतना पडेगा, इसमें दोनों कार्य सिद्ध होजायँगे, यज्ञ भी होजायगा और शरणागत राजाओंकी रक्षा भी होजायगी॥ ३॥ हे भगवन्! यज्ञमें आप चलेंगे, तो हमारे मनोरथ इसीसे सिद्ध होजायँगे और हे गोविंद! बँधे राजाओंको जो छुडाओगे, इसमें आपका बडाही यश होगा॥ ४॥ बडी चाहनासे जरासन्धके मारनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंको देखकर कहते हैं कि, जरासन्धके समान बलवान् भीमसेनके विना दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाला जरासन्ध और राजाओंसे नहीं जीता जायगा, क्योंकि भीमसेनके हाथसेही विधाताने उसकी मृत्यु रची है॥ ५॥ द्वंद्वयुद्धमें जरासन्ध जीता जायगा और सेनाको संग लेकर जो पुरुष उसके जीतनेकी आशा करे सो यह आशा कदापि फलवती न होगी, वह जरासन्ध ब्राह्मणोंका भक्त है, इस कारण भीमसेन ब्राह्मणका रूप धरकर जो उससे द्वंद्वयुद्ध माँगे तो आशा है कि, वह निषेध नहीं करेगा॥ ६॥ वृक नामा अग्नि जिसके उदरमें रहे सो भीमसेन ब्राह्मणका वेष धारणकर जरासन्धसे युद्धकी भिक्षा माँगे कि, तुम्हारे साथ मैं द्वंद्वयुद्ध करूँगा, तुम निकट रहो तो भीमसेन जरासन्धको अवश्य मारेगा, इसमें सन्देह नहीं॥ ७॥ प्राकृत रूप रहित तुमहीं तो उत्पन्न, पालन और संहार करते हो, ब्रह्मा और महादेव तो नाम मात्र हैं, इसलिये तुमहीं पास रहकर जरासन्धका संहार करोगे,

भीमसेनका तो केवल नामही होगा ॥ ८ ॥ बन्दीहुए राजाओंकी रानियें तुम्हारे निर्मल यशको गाती हैं और जब उनके बालक रोते हैं, तब वह कहती हैं कि हे पुत्र ! तुम किसलिये रोते हो, जो कोई अनाथ हो सो रोवै, तुम्हारे शिरपर तो द्वारकानाथ श्रीकृष्ण-चन्द्र विद्यमान हैं तुम मत रोओ, जैसे गोपी शंखचूडका मारना और अपना छूटना गाती हैं, और गजराजका छूटना व ग्राहकी मृत्यु गाती हैं, और जनकनन्दिनी जान-कीका छूटना व रावणका मरना जैसे गावैहैं, और माता पिताका छूटना कंसका मरना शरणागत मुनि और हम भक्त गान करते हैं उसी प्रकार जरासन्धका मरना और अपने पतियोंका छूटना राजाओंकी स्त्रियें बारम्बार गातीहैं ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! जरा-सन्धके मरनेसे बडा कार्य सिद्ध होगा, और फिर शिशुपालादिका मारना भी सहज होजायगा, राजाओंके पुण्यका फल उदय होगा, और यज्ञ हो, यह आपकी इच्छा हैही, राजा युधिष्ठिरके पास जानेसे सब काम बन जायगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब ओरसे मगलरूप बडी युक्ति सहित उद्धवजीका वचन सुन नारदजी बडाई करने लगे इसके उपरान्त मुख्य यादव और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी प्रशंसा करने लगे ॥ ११ ॥ इसके पीछे देवकीनन्दन सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चलनेके लिये सेवक दारुक रथवान् और हाथियोंके महावत व वसुदेव इत्यादि यादवोंसे आज्ञा करनेलगे ॥ १२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! पुत्र, दासी, दास और साम-ग्रियोंसहित प्रथम अपनी रानियोंको भेज, बलराम और राजा उग्रसेनसे आज्ञाले, श्रीकृ-ष्णचन्द्र सारथीके लाये गरुडध्वज रथमें चढे ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त रथ, हाथी, प्यादे और महातीव्र सवारोंकी सेना ले मृदंग, भेरी, नगारे, शंख और रणसिंहोंके शब्दसे शब्दायमान दिशामेंसे भगवान् निकले ॥ १४ ॥ सुन्दर वस्त्र, गहने और चन्दन माला पहरे, ढाल तलवार हाथमें लिये, दोनों ओर सिपाहियोंसे रक्षित रथ और पालकियोंमें बैठ, पतिव्रता कृष्णकी रानिये अपने पुत्रोंको साथ ले अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे चलीं ॥ १५ ॥ नौकरोंकी स्त्रियें और वेश्या शृंगारकर चटाइ-योंके बने घर तथा कम्बल और बनातोंके डेरे, तम्बू इत्यादि सब वस्तुको मनुष्य, ऊंट, भैंसे, गधे, खच्चर, गैंडे व हाथियोंपर लादकर चले ॥ १६ ॥ बडे शब्द-वाली सेना बडी बडी ध्वजाओंके वस्त्र, छत्र, चामर और सुन्दर हथियार, गहने, किरीट इत्यादिकोंकी चमकसे और सूर्यकी किरणोंसे, जैसे समुद्र क्षुभित हुए मत्स्यों और कल्लो-लोंसे शोभायमान होताहै, उसीप्रकार शोभा देती थी ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त यादव-पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे सत्कार पाय पूजा ले, श्रीकृष्णके दर्शनसे सुखी इन्द्रियहो, नारदमुनि श्रीकृष्णको प्रणामकर, उनके निश्चयको सुन और श्याम स्वरूपको हृदयमें धारणकर आकाशमार्गमें होकर चलेगये ॥ १८ ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूतको प्रसन्न करनेके लिये बोले कि, हे दूत ! तुम सब राजाओंसे जाकर कहदो कि, किसी प्रकारका भय मत करो, क्योंकि मैं शीघ्रही जरासन्धको मार तुम्हारा कल्याण

करूंगा ॥ १९ ॥ जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा, तब दूत वहाँसे चल राजाओंके पास आकर कहनेलगा कि, किसी प्रकारका भय मत करो श्रीकृष्णचन्द्र आतेहैं तब वह छूटनेकी इच्छासे भगवान्के आनेका पैंडा देखनेलगे ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र आनर्त्त, सौवीर, मरुदेशको पीछे दे, कुरुक्षेत्र, पर्वत, नदियें, पुर, गाँव, ब्रज और खानोंके देशोंको लाँघकर दृषद्वती, व सरस्वतीके पार उतर पांचाल तथा मत्स्यदेशको छोड इन्द्रप्रस्थ पहुँचे ॥ २१ ॥ २२ ॥ मनुष्योंको जिनका दर्शन दुर्लभहै, ऐसे श्रीकृष्ण-चन्द्रका आगमन सुन, प्रसन्नहो, अजातशत्रु राजायुधिष्ठिर उपाध्यायोंको संग ले पुरके बाहर निकले ॥ २३ ॥ गाते बजाते और भारी वेदध्वनिके साथ राजा युधिष्ठिर जैसे आदर युक्त इन्द्रिय प्राण लेनेको आवैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णके सन्मुख लिवानेको आये * ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकर आर्द्र हृदय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने बहुत दिनोंमें देखे अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको बारम्बार आलिंगन किया ॥ २५ ॥ लक्ष्मीके रहनेका निर्मल स्थान, श्रीकृष्णचन्द्रके अंगको भुजाओंसे आलिंगनकर, पापरहित, प्रसन्नवदन, नेत्रोंमें अश्रुयुक्त सब लौकिक व्यवहार विसार राजा युधिष्ठिर अत्यन्त सुखपानेलगे ॥ ॥ २६ ॥ मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगनकर, प्रसन्न भीमसेन प्रेमके वेगसे आकु-लइन्द्रियें होगया, इसके उपरान्त बडे २ नेत्रोंमें आंसूभरे नकुल सहदेव और किरीटधारी अर्जुन यह सब अत्यन्त हितकारी श्रीकृष्णचंद्रको आनंदपूर्वक आलिंगन करनेलगे ॥ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अर्जुन बराबरका होनेके कारण श्रीकृष्णको छातीसे लगाकर मिला और नकुल सहदेवने नमस्कार किया, पीछे यथायोग्य ब्राह्मण और वृद्धोंको नमस्कार करके ॥ २८ ॥ माननेयोग्य कुरुदेश और सृंजयदेशके राजा और सूत, मागध, गंधर्व, भाट, बंदीजनोंका सत्कार करनेलगे ॥ २९ ॥ मृदंग, शंख, ढोल, वीणा, नगाडे, वाँसुरी इनको बजाकर ब्राह्मण स्तुति करनेलगे और नाचने गानेलगे ॥ ३० ॥ इस प्रकार सुहृ-दोंको संगले पुण्ययश युधिष्ठिरादिकोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सबसे स्तुति

---

* **शंका**—हस्तिनापुरमें श्रीकृष्णका और पांडवोंका मिलापहुआ, तब उस समय शूद्र अन्त्यजवर्णसंकार आदि और सब नीच जाति तथा म्लेच्छ तमासा देखनेके लिये तथा अनेक प्रकारके संसारिक काम करनेके लिये उस सेनामें रहते थे, इन सबको सुनाकर ब्राह्मणोंने ब्रह्म अर्थात् वेदोच्चारण क्यों किया ?

उत्तर—वेदको श्रवण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के सिवाय दूसरेको नहीं करना चाहिये दूसरा कोई भी दोष नहीं, सो वेदका पाठ कोई भी नहीं उस समय सुनता था, क्योंकि जब श्रीकृष्णचन्द्र और पाण्डवोंका मिलाप हुवा तब ऐसा शब्द मनुष्योंका परस्पर होने लगा कि, उस कुलाहलमें तोपका शब्द तो किसीको सुनाई ही नहीं पडता था तब वेदपाठ कैसे लोगोंको सुनाई देता ? किसीको भी कुछ सुनाई नहीं पडा, इसलिये ब्राह्मणोंने वेदपाठ किया ॥

और सत्कार पाय शोभायमान राजा युधिष्ठिरके पुरमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ हाथियोंके मद और सुगन्धयुक्त जलसे जिसमें छिडकाव होरहा ऐसे मार्ग और चित्र विचित्र ध्वजाओंसे सुवर्णके तोरण और जलके पूर्ण कलश तथा नवीन वस्त्र, गहने, माला, केशर, अतर, अरगजा लगाये, स्त्री और पुरुषोंसे शोभायमान कौरवोंके राजा युधिष्ठिरको देखा ॥ ३२ ॥ कैसा महलहै कि, जहाँ प्रकाशमान दीपकोंकी पंक्ति और महलके झरोखोंमेंसे निकली धूपकी सुगंधसे शोभायमान होरहा है और प्रकाशमान् पताका तथा रूपेके शिखरोंके ऊपर सुवर्णके कलश संयुक्त कौरवराज युधिष्ठिरके महल देखे ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके नेत्रोंका सौंदर्यरूपी अमृत पीनेके पात्र श्रीकृष्णचन्द्रको आया श्रवण कर उत्कंठासे जिनके केश और वस्त्रोंके बंधन ढीले होगये वह स्त्रियें घरोंके कार्योंको शीघ्र त्याग और शय्याओंके ऊपर पतियोंको त्याग देखनेके लिये राजमार्ग बाजारमें आईं ॥ ३४ ॥ "उत्सव छोड छोडकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनको दौडे, कहीं विवाहसे अधिक उत्सव तो है ही नहीं, एक कन्याका विवाहथा, द्वारेपर नौबत बजरही थी, व भाई बिरादरीके लोग बैठे थे और मंडपके नीचे वर कन्या बैठे थे ब्राह्मण हवन कररहे थे, सो नौबतवालोंने सुना कि, श्रीकृष्ण बलदेव आये हैं, सुनते नगरको छोडकर भागे और जो भीतर नाई, बारी, झगडा कर रहे थे, वह भी सुनतेही भाजे, पाधा, पुरोहित पोथी पटक कृष्णके दर्शनको दौडे, अधिक क्या कहैं! बराती भी चले गये अब दुलहनने शोचा कि, इस चामके दूलहका क्या करना है जाकर उस दूलहके दर्शन करूं, सो आंचल छुडाकर दुलहन भी पहुँचगई, पीछे दूलह भी चलागया" हाथी घोडे, रथ और पैदलोंकी भीरसे युक्त राजमार्गमें रानी सहित श्रीकृष्णचन्द्रको देख कोठोंके ऊपर चढी स्त्रियें फूल वर्षाय, मनसे आलिंगन कर मुसकानपूर्वक चितवनसे देखकर "भले आये" इस प्रकार कहने लगीं ॥ ३५ ॥ जैसे चन्द्रमासहित तारागण, उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंको मार्गमें देख "इन रानियोंने क्या पुण्य कियाहै, जिनके नेत्रोंको पुरुषोंमें मुकुट समान श्रीकृष्णचन्द्र उदार हास्य लीलापूर्वक अवलोकनकी कलासे आनन्द देते हैं" इसप्रकार सब स्त्रियें कहनेलगीं ॥ ३६ ॥ पापरहित पुरवासी पान, सुपारी, बतासे और नारियल इन सब मंगल वस्तुओंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करनेलगे ॥ ३७ ॥ प्रफुल्लित नेत्र खुशीके मारे घबराहटसे अंतःपुरके वासियोंने प्रीतिपूर्वक सम्मुख आकर जब सत्कार किया, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र राजाके मंदिरमें चलेगये ॥ ३८ ॥ त्रिलोकीके ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णचन्द्रको देख प्रसन्न मन कुन्ती अपनी बहू द्रौपदी सहित पलंगपरसे उठकर श्रीकृष्णचन्द्रसे मिली ॥ ३९ ॥ देवोंके देव और ब्रह्मादिकोंके ईश्वर गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रजीको घरमें ला आनन्दसे सुधि बिसार राजा युधिष्ठिर पूजा करनेकी विधि भी भूलगये ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित्! द्रौपदी और बहन सुभद्राके प्रणाम करनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने पिता, वसुदेवकी बहन कुन्ती और बडे पुरुषोंकी

स्त्रियोंको प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ सास कुन्तीकी आज्ञापाय द्रौपदी संपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रकी रानी रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती इत्यादिका पूजन करनेलगीं ॥ ४२ ॥ कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, पतिपूता और नाग्नजिती इनकी और जो संग आई हैं, ऊनकी वस्त्र, माला, अतर, अरगजा, चन्दन इत्यादिकोंसे पूजा करनेलगीं ॥ ४३ ॥ धर्मराज राजा युधिष्ठिर भी सेना सहित मंत्री तथा सेवक और रानियों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको नित्यप्रति नये सुखमें रखनेलगे ॥ ४४ ॥ अर्जुन सहित श्रीकृष्णचन्द्र खांडववनसे अग्निको तृप्त करके मयनाम दैत्यको बचाया, उसने राजायुधिष्ठिर को दिव्य सभा बनाकर अर्पण की ॥ ४५ ॥ रथमें बैठ अर्जुन तथा और योद्धाओंको संगले विहार करते श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये कितनेही दिनतक इन्द्रप्रस्थमें रहे ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

दोहा-जरासन्धकी विजय लख, कृष्ण बहत्तर अंक।
भीमसेनको सैनदे, करवाये द्वै फंक ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित्! एक समय मुनीश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भाई, आचार्य और कुलमें वृद्ध, तथा जातिके सम्बन्धी बांधव इन सहित सभामें बैठेहुए राजा युधिष्ठिर इन सबके सुनते हुए हे कृष्ण! हे भक्तवत्सल! इस प्रकार संबोधन देकर बोले ॥ १ ॥ २ ॥ कि, हे समर्थ! यज्ञोंका राजा राजसूय यज्ञ करके मैं पवित्र कर्मवाले आपका पूजन करूंगा, इस कारण आप इस कार्यको सिद्ध करो ॥ ३ ॥ अभद्रके नाश करनेवाली तुम्हारी चरणपादुकाका जो पुरुष सेवन, ध्यान और पवित्र होकर वाणीसे नाम लेते हैं हे कमलनाभ! वही पुरुष संसारसे छूट जाते हैं और जो चाहना करते हैं, वह मनोरथ भी उनके सिद्ध होजाते हैं और कैसाही चक्रवर्ती क्यों न हो, बिना भक्तिके कुछ नहीं होता ॥ ४ ॥ इसकारण हे देवदेव! यह लोक इस संसारमें तुम्हारे चरणारविन्दकी सेवाके प्रभावको देख, हे समर्थ! कितनेही कुरु व सृंजय वंशी लोग जो कि कर्मादिकको प्रधान मानकर आपकी भक्तिको उत्तम नहीं समझते, उनका अज्ञान दूर करनेको जो आपका भजन करते हैं और जो नहीं करते उन दोनोंकी स्थिति दिखाओ ॥ ५ ॥ सबके आत्मा, समदर्शी आत्मसुख, अनुभवरूप ब्रह्म तुम हो, आपके अपना बिराना यह भेद बुद्धि कुछ नहीं है, जैसे कल्पवृक्षका जो सेवन करै उसीको फल प्राप्त हो, उसी प्रकार जो तुम्हारा सेवन करै तुम उसीपर प्रसन्न होते हो,जो जैसी सेवा करै,उसे वैसाही फल देते हो, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजा युधिष्ठिर! हे शत्रुनाशक! तुमने यह भला निश्चय किया है, क्योंकि इस यज्ञके करनेसे सब लोकोंमें तुम्हारी मंगलरूप कीर्त्ति फैलेगी ॥७॥ हे समर्थ राजा युधिष्ठिर! यह संपूर्ण यज्ञोंका राजा

राजसूययज्ञ तुमने करना विचारा है, सो ऋषीश्वर और पितृ तथा देवता और सुहृद तथा हम आर समस्त प्राणियोंको प्यारा है ॥ ८ ॥ संपूर्ण राजाओंको जीत और संपूर्ण पृथ्वीको वशमें कर और सब सामग्रियें इकट्ठी करके तुम इस यज्ञको करो ॥ ९ ॥ हे राजा युधिष्ठिर! यह तुम्हारे भाई लोकोंका पालन करनेवाले देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए और दूसरेमें भी जिनको अजितेन्द्रिय पुरुष कभी वशमें नहीं करसक्ते, तुम्हारी जितेन्द्रियपनसे तुम्हारे वशमें हूँ इसलिये शीघ्रही यज्ञ पूर्ण होगा ॥ १० ॥ मेरे आश्रयवाले पुरुषोंको लोकमें तेज,वैभव, सेनासे कोई देवता भी पराभव नहीं करसक्ते हैं तो राजा क्या करसक्ते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन, प्रसन्नतासे प्रफुल्लित वदन राजा युधिष्ठिरने भगवान्‌के तेजसे बढे हुये अपने भ्राताओंको दिशाओंके जीतनेको भेजा ॥ १२ ॥ सृंजय देशके राजाओंको संग करके दक्षिणदेशके राजाओंको जीतनेके लिये सहदेवको आज्ञा दी, हे परीक्षित्! सहदेव, अर्जुन, नकुल और भीमसेनने, संपूर्ण दिशाओंके राजाओंको बलपूर्वक जीत यज्ञ करनेकी इच्छावाले अजात शत्रु राजा युधिष्ठिरको बहुत द्रव्य लाकर दिया ॥ १३ ॥ १४ ॥ सब दिशाओंके राजा तो जीतगये परन्तु पूर्व दिशाका राजा जरासन्ध जीतनेमें नहीं आया, इस बातको श्रवणकर अतिचिन्ता प्राप्त हुये राजा युधिष्ठिरसे जो उपाय उद्धवजीने श्रीकृष्णचन्द्रको बताया था, सो उपाय श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥ हे राजन्! तब तो भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र तीनों ब्राह्मणका रूप धारणकर जहाँ बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध गिरिव्रजनाम किलेमें रहता था वहाँ गये ॥ १६ ॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये इन क्षत्रियोंने भिक्षुकों के आनेके समय ब्रह्मभक्त गृहस्थ घरमें स्थित राजा जरासन्धसे भिक्षाकी प्रार्थना की ॥ १७ ॥ कि, हे राजा जरासन्ध! हम बहुत दूरसे अतिथि आये हैं, सो तुम जानो और जिस वस्तुकी हम चाहना करते हैं, वह वस्तु हमको दो, इससें तुम्हारा कल्याण * होगा "यह वस्तु हम माँगते हैं" इसप्रकार नाम लेकर क्यों नहीं कहते इसका उत्तर यह है कि, यदि नाम लेकर हमने पुत्र मांगा, तो पुत्र कब दिया जायगा और मुकुट आदि आभूषण माँगे, तो भिखारियोंको कैसे दोगे? तथा रत्नजटित गहने पुत्रादिकोंके योग्य

---

* **शंका**–श्रीकृष्णने ब्राह्मणका रूप धारणकर जरासन्धसे कहा कि,हे राजन्! तुम्हारा कल्याण होगा, फिर उसी समयमें युद्ध करके कुछ दिन पीछे अमंगलरूप मरणको क्यों प्राप्त हुआ? जब भगवान्‌ने अपने मुखसे मंगल होना कहा फिर वह एक महीने भी जीता न रहा, यह कैसा मंगल?

उत्तर–शूरवीर योद्धा युद्धमें मरनेको अशुभ और अमंगल नहीं समझते, युद्धमें मरण हीको अपना बडा कल्याण मानते हैं, इसलिये श्रीकृष्णके वाक्यके प्रमाणसे युद्धमें मरणरूप कल्याण जरासन्धको प्राप्त होगया ॥

हैं, तो दूसरेको कैसे दिये जायँ, यदि ऐसे जरासन्ध कहै, तो उसका उत्तर यह है × ॥ १८ ॥ सहनशीलपुरुष क्या नहीं सह सकते हैं, और देवताओंको कौन वस्तु देने योग्य नहीं हैं, और समदर्शियोंका कौन दूसरा शत्रु है ? इसलिये नाम लेनेसे क्या प्रयोजन जो मांगें सो दो ॥१९॥ साधुओंसे गाने योग्य नित्य यशको जो पुरुष अनित्य देहसे आप समर्थ होकर नहीं करै, वह पुरुष निन्दा और शोच करने योग्य है ॥ २० ॥ राजा हरिश्चन्द्र तथा रंतिदेव और मुद्गल ऋषि, राजा शिबि, तथा बलि, वधिक और कपोत पक्षी, और ऐसे बहुत महात्मा वा अनित्य देहसे ध्रुव यशको प्राप्त हुये ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जरासन्ध कर्कश बोलना और स्वरूप तथा धनुषकी प्रत्यंचाके गट्ठके चिह्नवाले पहुँचोंको देखकर " यह क्षत्रियोंमें नीच हैं " यह जानकर द्रौपदीके स्वयंवरमें मैंने पहले देखेहैं, यह विचार करने लगा ॥ २२ ॥ यद्यपि यह क्षत्रियोंमें नीच हैं, परन्तु तो भी ब्राह्मणोंका वेष धारण किया है, इसलिये अदेय अपनी आत्मा भी यदि यह मांगें, तो इनको भिक्षा दूंगा ॥ २३ ॥ विष्णु भगवान्ने ब्राह्मणका स्वरूप वामन अवतारधर दैत्यराज बलिको ऐश्वर्य भ्रष्ट किया, परन्तु उसकी निर्मल कीर्त्ति पृथ्वीपर अबतक श्रवणगोचर होती है ॥ २४ ॥ देवराज इन्द्रकी शोभा हरनेके लिये ब्राह्मणका रूप धरके आयेहुये विष्णु भगवान्को यद्यपि जानता भी था कि, मेरे छलनेके लिये आये हैं और शुक्राचार्यने मने भी किया, परन्तु तोभी दैत्योंके राजा बलिने वामनजीको पृथ्वीका दान दिया ॥ २५ ॥ एक दिन तो अवश्य ही यह देह पतित होगा, फिर जीवितही क्षत्रियके देहसे ब्राह्मणके लिये निर्मलयशको न करै तो इस देहसे प्रयोजन ही क्या है ? ॥ २६ ॥ इसप्रकार निश्चय करके उदार-

---

× दृष्टान्त-"एक साधु कहीं जंगलमें बैठेथे सो उनके पास चार धूर्त आये, उनमेंसे एक बाबाजीको देखकर बोला कि, यह तो कल जुआ खेलरहेथे, आज बाबाजी बनि आये बाबाजी बोले कि, बच्चा तू सत्य कहता है, दूसरा बोला हमने इसे मद्य पीते देखाथा, तीसरा बोला कि,हमने इसे चोरी करते देखाथा, चौथा बोला हमने इसे वेश्याके यहाँ देखाथा. बावाजीने सबको यही उत्तर दिया कि, तू भी सत्य कहता है, एक भला आदमी यह सब कौतुक देख रहाथा, जब वह चारों धूर्त्त चले गये तो बाबाजीके पास आकर वह मनुष्य पूँछने लगा कि, महाराज ! सबको तुमने एकसाही उत्तर दिया इसका क्या कारण है ? बाबाजी बोले तू भी सत्य कहता है वह बोला मैं ऐसे नहीं मानूंगा तब बाबाजी उसकी हठ देखकर बोले कि, जो जैसे होता है,उसे वैसाही सूझता है,जो मद्यपान करता था, उसने मद्यप, चोरने चोर, जुआरीने जुआरी और वेश्यागामीने वेश्यागामी कहा, यह सुन वह भला पुरुष प्रसन्न होकर चलागया. कहाभी है-

दोहा-खूंदनतो धरती सहै, बाट सहै वनराय।
कुवचन तो साधूसहै, और पै सह्यो न जाय ॥ १ ॥

बुद्धि जरासन्ध श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहनेलगा कि, हे ब्राह्मणो ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो तब श्रीकृष्णचन्द्र फिर पक्की करते हैं, कि राजन् ! हम जो मांगेंगे सो दोगे ? तब जरासन्ध बोला कि, बारम्बार क्या कहते हो यदि आपको मेरे शिरकी भी आवश्यकता होगी, तो वह भी काटकर समर्पण करूंगा ॥ २७ ॥ तब तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे राजाओंके इन्द्र राजन् जरासन्ध ! यदि तुम्हारे मनमें आवै तो द्वन्द्वयुद्ध हमको दो और युद्धके लियेही हम क्षत्रिय तुम्हारे पास आये हैं, अन्नके लेनेवाले हम ब्राह्मण नहीं हैं ॥ २८ ॥ तब जरासन्धने पूछा तुम कौनहो ? यह सुन श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, वृकनामा अग्नि जिसके उदरमें ऐसा यह भीमसेन है, इसका भाई यह अर्जुन है और इनके मामाका पुत्र तेरा पहला वैरी मैं श्रीकृष्ण हूं, सो मुझे तो तुम भलीभाँति जानते होगे ॥ २९ ॥ इसप्रकार सुनकर मगध देशका राजा जरासन्ध बहुत हँसा इसके उपरान्त क्रोधमें भरकर हे मूर्ख ! मैं तुमको युद्ध दूंगा, इस प्रकार कहनेलगा ॥ ३० ॥ अरे डरपोक कृष्ण ! व्याकुलाचित्त तेरे संग मैं युद्ध नहीं करूंगा, क्योंकि मेरे डरसे तो तू प्रथम ही मथुरापुरीको त्याग समुद्रमें जाय बसा है ॥ ॥ ३१ ॥ अर्जुन मुझसे युद्धमें न्यून है और न मेरे समान बलवान् है, इसलिये अर्जुन योद्धा नहीं है, हां भीमसेन कुछेक मेरे समान बलवान् है, इसके संग युद्ध करूंगा ॥ ॥ ३२ ॥ इतनी बात कह जरासन्ध, भीमसेनको बडी गदा दे और आप दूसरी गदा लेकर पुरसे बाहर निकला ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित् ! बडा मदवाला भीमसेन और जरासन्ध परस्पर मिलकर रणभूमिमें वज्रके समान गदाका प्रहार करनेलगे ॥ ॥ ३४ ॥ रंगभूमिमें प्राप्त हुए नटोंके समान बांये दांये विचित्र मंडलमें फिरते इन दोनोंका युद्ध अत्यन्त शोभायमान लगनेलगा ॥ ३५ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! दांतवाले हाथियोंका जैसा शब्द होता है उसीप्रकार इन दोनों वीरोंके गदा चलानेका वज्र जैसे पिसे ऐसे ही शब्द होने लगा ॥ ३६ ॥ युद्ध करनेसे बढ़ा है क्रोध जिनका ऐसे हाथियोंकी लडाईमें आकडो जैसे चूर्ण होजाती है, उसी प्रकार भुजाओंके वेगसे आपसमें बडा क्रोधकर लडनेवाले हाथियोंके शरीरपर पछाडकर जैसे आककी गुद्दियां टूट जातीहैं, उसी प्रकार बाहोंके वेगसे चलायमान गदा, कंधा, कमर, पाँव, हाथ, जंघा इनसे लगकर चूर्ण होगई ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब दोनों वीरोंकी गदा टूटगई, तब क्रोधी मनुष्योंमें वीर भीमसेन और जरासन्ध लोहेके समान स्पर्शवाले घूँसोंकी मार शरीरमें मारनेलगे, हाथियोंके समान आपसमें मारते जरासन्ध व भीमसेनके प्रहारसे उठा शब्द जैसे विना बादल वज्रपातका शब्द होता है, उसी प्रकार कठोर शब्द होनेलगा ॥ ॥ ३८ ॥ हे राजा परीक्षित् ! नहीं घटा है बल जिनका और बराबर है दाँव, पेंच, बल, प्रभाव जिनका इसी प्रकार घूंसोंकी मारसे भीमसेन और जरासंधका बरावर युद्ध होनेलगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! इस प्रकार दिनमें तो युद्ध करें और रातको मित्रके समान एक स्थानपर रहैं ऐसे जरासन्ध और भीमसेन दोनों वीरोंको युद्ध करते

सत्ताईस दिन बीत गये ॥ ४० ॥ हे राजा परीक्षित् ! एक समय मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रसे भीमसेनने कहा कि, हे माधव ! युद्धमें जरासन्धको मैं, नहीं जीत सक्ता ॥ ॥ ४१ ॥ क्योंकि जरासन्धका दो भाग होकर जन्म हुआ है, और उन खण्डोंको जरा नाम राक्षसीने जोड दिया है, इस कारण यह दो खण्ड होनेसेही मरेगा, इस बातके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने भीमसेनको अपने तेजसे बढाया और जरासन्धके चीरनेका विचार किया ॥ ४२ ॥ सफलज्ञान श्रीकृष्णचन्द्र वैरी जरासन्धके मारनेका चिंतवनकर तिनुका चीरकर भीमसेनको सैनसे जताया कि, जैसे मैंने तिनुका चीरा उसी प्रकार तू इसको चीर डाल ॥ ४३ ॥ मारनेवालोंमें श्रेष्ठ, महाबलवान् भीमसेनने श्रीकृष्णचन्द्रके संकेतको जान वैरी जरासन्धका पाँव पकडकर पृथ्वीमें पटकदिया ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! जैसे बडा हाथी वृक्षकी शाखाको पकडकर चीर डालता है, उसी प्रकार अपने पाँवसे उसके एक पाँवको दाब और दूसरे पाँवको भुजाओंसे पकड गुदाके बीचसे चीर डाला ॥ ४५ ॥ एक एक पांव, जंघा, अंडकोश, कमर, पीठ, स्तन, कंधा, एक एक भ्रुकुटी और कान ऐसे दोखण्ड किये सब प्रजाने देखा ॥ ४६ ॥ मगधदेशका राजा जरासन्ध जिस समय मारागया, उस समय महा हाहाकार शब्द होनेलगा, इसके पीछे अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र भीमसेनको आलिंगन करके पूजा करनेलगे ॥ ४७ ॥ अप्रमेय स्वरूप, समर्थ, सब प्राणियोंके पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगध देशका राज्यतिलक दिया इसके उपरान्त जरासन्धने जो वीस हजार आठसौ राजाओंको बंदी करलिया था, उन्हें भी बंदीखानेसे छुडा दिया ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

दोहा-तेहत्तर हरि बन्दिसे, सब नृप दिये छुटाय।
भोग्य योग्य बहु वस्तु दै, दिये घरन पहुँचाय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! मलिनरूप, क्षुधासे कृश, सूखे मुख, ऐसे वीस हजार आठसौ राजा जो गिरिद्रोणी नाम दुर्गमें कैद थे उन्हें लीलापूर्वकही छुडादिया, तब उन सब राजाओंने बन्दीखानेसे बाहर निकलकर मेघके समान श्याम रूप, पीले वस्त्र धारण कियेहुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ अब जैसे स्वरूपसे श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया, सो वर्णन करते हैं, तुम श्रवण करो, हृदयमें शोभायमान भृगुलताका चिह्न, चार भुजा और कमलके गर्भके समान अरुण नेत्र, सुन्दर प्रसन्न मुख और प्रकाशमान मकराकृत कुण्डल धारण किये, कमल हाथमें लिये विराजमान, शंख, चक्र, गदा धारण करे और किरीट, हार, कडा, करधनी व बाजूबन्द पहरे ॥ ३ ॥ ४ ॥ प्रकाशमान सुन्दर मणिग्रीवा तथा गलेसे पांवतक वनमालासे शोभायमान इस प्रकार रूपको देखकर राजाओंमें लूटसी पडगई और नेत्रोंको ऐसे चलानेलगे,

मानो रूपको पीजाँयगे ॥ ५ ॥ जीभ ऐसी चलावैं मानो चाट जाँयगे, नाक ऐसी फुलावैं मानो सूँघ जाँयगे, भुजा ऐसी चलावैं मानों स्वरूपको आलिंगन करलेंगे, इस प्रकार पाप दूर होनेसे वह राजा मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम करने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इन राजालोगोंके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण बन्दीखानेके सब क्लेश मिटगये; तब यह सब राजा हाथ जोड हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर वाणीसे स्तुति करनेलगे ॥ ७ ॥ राजा लोग कहने लगे कि, हे देवदेव ! हे शरणागतका कष्ट हरनेवाले ! हे अविनाशी ! हे कृष्ण ! इस घोर संसारसे दुःखी हुए और तुम्हारी शरण आये हमारी रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हम लोग जरासन्धको दोष नहीं लगाते, क्योंकि, हे प्रभो ! राजाओंका जो राज्य भ्रष्ट होवे यह आपका अनुग्रह समझना चाहिये, राज्य संबन्धी ऐश्वर्यसे मदमत्त राजा आपकी मायासे मोहित होकर अनित्य पदार्थोंको स्थिर मानते हैं और उसीसे कल्याणको प्राप्त नहीं होते ॥ ९ ॥ १० ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सूर्यकी किरणोंसे चमकते हुए वालूको जलका सरोवर मानते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष नाना सृष्टि असद्रूपी जो माया है, उसको सत्य मानते हैं ॥ ११ ॥ हे समर्थ ! हम लक्ष्मीके मदसे अंध हो इस पृथ्वीके जीतनेकी इच्छासे परस्पर द्वेष करते और मृत्युके समान शिरपर खडे कालरूप आपको नहीं गिनते थे और मदसे उन्मत्त हो, निर्दयीपनसे अपनी प्रजाको महाकष्ट देते थे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! गंभीर वेग और बडे पराक्रमवाली तुम्हारी कालमूर्तिने हमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट करदिया, परन्तु अब तुम्हारी कृपासे गर्वरहित होकर आपके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं * ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त नित्य आयु

---

* **शंका**–श्रीकृष्णचन्द्रने जरासन्धका वध करके बीससहस्र २०००० राजाओंको कारागारसे छुटाया तब तो सब राजा भगवान्को हे कृष्ण ! कहिकर क्यों पुकारे ? जैसा कोई मनुष्य अपने बराबरवालेको पुकारते हैं इस प्रकार क्यों पुकारा ? यह बडा अयोग्य वचन कहा ! राजाओंको ऐसा वचन कहना नहीं चाहिये था, उनको इसप्रकार कहना चाहिये था कि, हे महाराज ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे दीनपालक ! हे दीनदयालु ! हे करुणासागर ! हे भक्तवत्सल ! ऐसे वाक्योंसे और अनेक प्रकारका दुलार करके श्रीकृष्णको पुकारना चाहिये था ।

उत्तर–राजालोग प्रथम तो अपने २ राज्यसिंहासनपर बैठे थे तब तो अभिमानसे सत्संग किया नहीं इस कारण मूर्ख तथा गँवार होगये, पीछे जब जरासन्ध पकडकर लाया और बेडी पहराकर बन्दीगृहमें डालदिया तब दुःखी होकर सुधि बुधि भूलगये; दोनों भाँतिसे उनको बोलनेकी चतुराई न आई, वह बिना सींगके पशु हैं इसीलिये उन राजाओंके मुखसे जो वचन निकले सोई अच्छे हैं क्योंकि दुःखी और अभिमानी जो न कहै सो थोडा इस बातपर एक दृष्टान्त है ॥ एक ब्राह्मणको किसी प्रेमीने बडी शुश्रूषासे–

जिसकी क्षीण हो और एक न एक रोग जिसमें उत्पन्न हो, ऐसे देहसे मृगतृष्णारूप मिथ्या राज्यकी हम इच्छा नहीं करते, केवल राज्यकी इच्छा नहीं करते इतनाही नहीं, बरन् परलोकमें क्रियाके फलरूप कर्णप्रिय स्वर्गादिक भोग भी नहीं चाहते ॥ १४ ॥ और हे भगवन् ! इस संसारमें भूले हम राजा लोग किसी योनिमें भी तुम्हारे चरणारविन्दोंको न भूलें ऐसा उपाय बताओ ॥ १५ ॥ भक्तोंके क्लेशको दूर करनेवाले, शुद्ध अंतःकरणके प्रकाशक हरि परमात्मा और अपने भक्तोंका क्लेश काटनेवाले गोविन्द आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब जरासंधके बंदीखानेसे छूटे राजाओंने इस प्रकार स्तुति करी तब शरणके योग्य करुणावान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मनोहर वाणीसे राजाओंसे कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे राजाओ ! जैसे तुमने चाहना करी उसी प्रकार सबका ईश्वर और आत्मा जो मैं हूं, सो मुझमें तुम्हारी आजसे दृढ भक्ति हुई ॥ १८ ॥ हे राजालोगो ! सत्यवादी तुमने मेरा भजन करना, यह भला सत्य संकल्प निश्चय किया है, क्योंकि मनुष्य धन और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो इच्छानुसार विचरते देखे जाते हैं ॥ १९ ॥ कृतवीर्यका पुत्र चक्रवर्ती राजा सहस्रबाहु एकसमय जमदग्नि ऋषिकी गौ हरके लेआया तब उसका परशुरामजीने पुत्रोंसहित संहार किया और राजा नहुष मदोन्मत्त होकर इन्द्राणीके पास जानेके लिये ब्राह्मणोंको पालकीमें जोतकर चला, तब ब्राह्मणोंने उसे ऐश्वर्यभ्रष्ट करके सर्प करदिया और राजा वेणुने मदोन्मत्त होकर ब्राह्मणोंका तिरस्कार किया, तब ब्राह्मणोंने अत्यन्त क्रोधित होकर हुंकार शब्दसे उसका प्राणसंहार किया और राक्षसराज रावणने सीताकी आकांक्षा करी, तब महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने उसका वध किया और दैत्यराज नरकासुरने जब अदितिके कुण्डल हरलिये तब उसे मैंनेही मारा और कितनेही देवता और राजा धनके मदसे स्थानभ्रष्ट होगये ॥ २० ॥ और तुम समस्त उत्पन्न देहादिकसे नाश होंगे, यह जान सावधान हो यज्ञ करके मेरा पूजन और प्रजाकी रक्षा करो ॥ २१ ॥ और पुत्रादिकोंको उत्पन्न करो, जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख जो प्राप्त होय उसका सेवन करो और मुझमें चित्त लगाकर विचरो ॥ २२ ॥ आत्मामें रमण करते व्रतधारण किये देह और घरोंमें उदासीन होकर भलेप्रकार मुझमें मन लगाओगे तो अंतमें परब्रह्मरूप मुझे प्राप्त होगे ॥ ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! त्रिलोकीके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इसप्रकार राजाओंको आज्ञा कर और उनको उबटन स्नान और क्षौर इत्यादि कर्म करानेके लिये स्त्री पुरुषोंको भेजा ॥ २४ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! राजाओंके स्नान कर चुकनेपर जरासन्धके पुत्र सहदेवसे राजाओंके योग्य वस्त्र आभूषण माला और चंदनादिकसे उनकी पूजा करानेलगे ॥ २५ ॥ सुन्दर स्नान करे वस्त्र आभूषणोंसे शोभित

—न्योता और अनेक प्रकारके भोजन उसको जिमावे जब उसका पेट बहुत भरगया तब वह बोला बडे सत्यानाशीके यहाँ भोजन किया, इससे मूर्खोंके दुर्वाक्योंपर ध्यान न करै॥

और अनेक प्रकारके भोगोंसे युक्त राजाओंको श्रेष्ठ अन्न भोजन कराय राजाओंके योग्य ताम्बूलादिक देनेलगे ॥ २६ ॥ मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे पूजित और प्रकाशमान कुण्डलोंको पंहरे बन्दीखानेके क्लेशसे छुटाये राजा वर्षाऋतुके पीछे आकाशमें तारागणोंके समान शोभायमान लगनेलगे ॥ २७ ॥ मणि और सुवर्णके गहनोंसे शोभायमान राजाओंको सुन्दर घोडे जुते रथोंमें चढाय और मनोहर वचनोंसे प्रसन्न कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें अपने देशोंको भेजदिया ॥ २८ ॥ हे महाराज ! इसप्रकार जगत्पति महात्मा श्रीकृष्णचंद्रके छुडायेहुए कष्टमुक्त राजालोग भगवान्का और उनके चरित्रोंका ध्यान करते अपने अपने नगरको चलेगये ॥ २९ ॥ वह समस्त राजा जैसे महापुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने छुडाए थे और जैसे पूजा कराई थी, उसी प्रकार वह सब वृत्तांत अपनी प्रजाके सन्मुख वर्णन किया और जिस प्रकार श्रीकृष्णचंद्रने शिक्षा दी थी, उसी प्रकार आलस्य छोडकर करनेलगे ॥ ३० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र इस प्रकार भीमसेनके हाथसे जरासंध को मरवाय और सहदेवसे अपना पूजन कराय भीम और अर्जुनके साथ इंद्रप्रस्थ आये ॥ ॥ ३१ ॥ दुष्ट हृदय शत्रुओंको दुःख देनेवाले और अपने सुहृदोंको आनंद देनेवाले श्रीकृष्ण, भीम, अर्जुन यह सब वैरी जरासंधको मार इंद्रप्रस्थमें आनकर शंखध्वनि करनेलगे ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! शंखका शब्द सुन प्रसन्नमन इंद्रप्रस्थनिवासी "जरासंधकी मृत्यु हुई" यह जानगये और धर्मराज राजा युधिष्ठिरके मनोरथ पूर्ण होगये ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त भीम अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रने आय राजा युधिष्ठिरको प्रणाम कर आपने जो कुछ किया सो सब कहा ॥ ३४ ॥ धर्मराजके पुत्र राजा युधिष्ठिर ब्रह्मा महादेवके वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो कार्य किया उसे सुन, नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी धार बहाते, प्रेमसे विह्वल हो कुछ न बोले ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

दोहा-चौहत्तरमें राजसुय, कियो युधिष्ठिर यज्ञ ।
तबहिं हनो शिशुपाल नृप, श्रीकृष्ण सर्वज्ञ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर जरासंधका वध और श्रीकृष्णका प्रभाव सुन अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले कि ॥ ॥ १ ॥ जो पुरुष त्रिलोकीके गुरु हैं सब लोकोंके बडे ईश्वर हैं, वह भी दुर्लभ मानकर तुम्हारी आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं ॥ २ ॥ हे व्यापक कमलनयन ! आप हम दुःखी और सामर्थ्यपनका अभिमान रखनेवालोंकी आज्ञाको शिरपर धारण करते हो, यह विडम्बना मात्र है, वास्तवमें आपको यह बात संभव नहीं हो सक्ती ॥ ३ ॥ एक अद्वितीय अर्थात् कोई जिनकी बराबर नहीं और कोई जिनसे बडा नहीं ऐसे परमात्मा तुम हो, आपका तेज परोपकारके लिये कर्मोंसे न्यून भी नहीं होता, जैसे सूर्यका

उदय अस्तमें तेज बढताही है, घटता नहीं ॥ ४ ॥ यदि कहो कि, मैं परमेश्वर हूं सो सबकी आज्ञा माननी, यह मंदकर्म करना योग्य नहीं है, सो कहते हैं कि, हे मधुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अजित ! जैसे अज्ञानी पुरुषोंके देहमें अहंकार और देहके संगमें ममता रहती है, उसी प्रकार तुम्हारे भक्तोंके "तू और तेरा मैं और मेरा" यह बुद्धि नहीं होती है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यह वचन कह और उनकी सम्मति ले, यज्ञ करनेके योग्य वसंतादिकालमें वेदके पढनेवाले योग्य ब्राह्मणोंको होता, उद्गाता, अध्वर्यु, इत्यादिकोंमें वरण किया ॥ ६ ॥ द्वैपायन, भरद्वाज, सुमंतु, गौतम, आसित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, ॥ ७ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशंपायन ॥ ८ ॥ अथर्व, काश्यप, धौम्य, परशुराम, भार्गव, आसुरी, वीतिहोत्र, मधुछन्द, वीरसेन, अकृतव्रण ॥ ९ ॥ इसीप्रकार बुलाये हुए द्रोणाचार्य, भीष्मजी तथा कृपाचार्यादि ऋषि आये तब पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र और बडे बुद्धिमान् विदुरजी भी आनकर सुशोभित हुए ॥ १० ॥ हे राजन् ! और भी यज्ञ देखनेके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व सब राजा और उनके प्रधान दीवान आये ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त ब्राह्मण लोग यज्ञ करनेकी भूमिमें सुवर्णका हल चलाय भूमि शोधनकर राजा युधिष्ठिरको यज्ञदीक्षा देनेलगे ॥ १२ ॥ जैसे पहले वरुणके यज्ञमें सुवर्णकी सामग्री और सुवर्णके पात्र थे उसी प्रकार इस यज्ञमें भी थे और ब्रह्मा, महादेव, तथा इन्द्रादिक देवताओंको संग लेकर लोकपाल भी आये ॥ १३ ॥ गणों सहित सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और बडे बडे सर्प, मुनीश्वर, यक्ष, राक्षस, खग, किन्नर, चारण इनके समूहके समूह आये ॥ १४ ॥ और आयेहुए राजाओंकी सब स्त्रियें भी पांडुपुत्र राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें आईं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! इस बातको कोई आश्चर्य न करे क्योंकि हरिभक्तकी सब वार्ता सिद्ध हो सकती है इसीलिये इन्होंने युधिष्ठिरके यज्ञमें विस्मय न किया, जैसे देवताओंने वरुणको यज्ञ कराया था उसी प्रकार देवताओंके समान कान्तिवाले ऋत्विज राजसूययज्ञ करके विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरसे यजन करानेलगे ॥ १६॥ अतिशय करके सावधान पृथ्वीका पालन करनेवाले राजा युधिष्ठिरने जिस दिन सोमवल्ली कूटीगई, उस दिन यज्ञ करानेवालोंका तथा बडभागी जो सभामें मुख्य थे उनका पूजन किया ॥ १७ ॥ सभाके बैठनेवालोंमें प्रथम किसकी पूजा करनी चाहिये ॥

चौ०-पहले पूजा काकी कीजै, अक्षत तिलक कौनको दीजै ॥
कौन बडो देवनको ईश, जाहि पूज हम नावें शीश ॥

यह विचार करते करते एककी अपेक्षा एक बडा है, इसकारण जब किसीका निश्चय न हुआ तब युधिष्ठिरके भाई सहदेवने कहा * ॥ १८ ॥ भक्तोंका पालनकरनेवाले अखण्ड

---

* **शंका**-पृथ्वीपर युधिष्ठिरनेही कुछ पहिले यज्ञ नहीं किया, यज्ञ तो सतयुगसे अनेक राजा करते चले आये हैं फिर युधिष्ठिरके यज्ञमें पहिले पूजन करनेके लिये देवताका-

रूप समस्त देवता देश काल धनादिकरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रही इस यज्ञमें पूजा करनेके योग्य हैं ॥ १९ ॥ यह सब विश्व कृष्णकाही रूप है और यज्ञादिक भी कृष्णरूपही हैं और अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान, उपासनादि भी सब कृष्णपरायण हैं ॥ २० ॥ हे सभाके बैठनेवालो ! अजन्मा एक अद्वितीय यह कृष्ण हैं सो अपने स्वरूप विश्वको अपने आत्माहीसे दूसरेकी सहायता विना उतपन्न पालन और नाश करते हैं ॥ २१ ॥ सब जनोंके अनुग्रहसे इस संसारमें अनेक प्रकारके तप योगादिक कर्म करके धर्मादिकरूप कल्याणको करते हैं और अनेक प्रकारके सब कर्मोंके फल भी सब कृष्णके अधीनही हैं ॥ २२ ॥ इसलिये सबसे बडे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकीही पहले पूजा करनी योग्य है और इनकी पूजा करनेसे सब प्राणियोंकी पूजा होजायगी ॥ २३ ॥ और जो कोई पूजाके योग्य होगा उसकी भी पूजा होजायगी, इसकारण जो पुरुष पूजाके अनन्तफलकी चाहना करै वह पुरुष सब प्राणियोंके आत्मा, भेदभावरहित और शान्ति परिपूर्ण भगवान् वासुदेवकी पूजा करै ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इतनी बात कह श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको जाननेवाला सहदेव चुप होगया और उस समय सब श्रेष्ठपुरुष सहदेवका वचन सुनकर "सत्य कहा सत्य कहा" इसप्रकार कहकर बडाई करने लगे ॥ २५ ॥ स्नेहसे विह्वल और प्रसन्न हो राजा युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंके कहे वचन सुन और सभामें बैठे हुए पुरुषोंके हृदयका अभिप्राय जान इन्द्रियोंका प्रेरणकरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन किया ॥ २६ ॥ स्त्री, भाई, मंत्री और सब कुटुम्बके पुरुषोंसहित राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंको धोय सब लोकोंके पवित्र करनेवाले चरणारविन्दका धोवन जल अपने मस्तक पर चढाय ॥ २७ ॥ पीले रेशमी वस्त्र और बहुत मोलके आभूषणोंसे भी पूजा कर आँसू भरे नेत्रोंसे राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करनेको समर्थ न हुआ ॥ २८ ॥ इस

-विचार क्यों किया ? कुछ ब्राह्मण भी प्रथम हीं यज्ञ करनेके लिये नहीं आये थे, पहिले सतयुगमें ब्राह्मण सहस्रों यज्ञ कराचुके थे, फिर धर्मराजके यज्ञमें इतना विचार क्यों किया ? जो नई बात हो उसका विचार करना चाहिये और सैकडों वर्षसे जिस बातकी रीति चली आती हो, उस बातमें क्या सन्देह ?

उत्तर-सब ब्राह्मण भगवान्को भूल नहीं गये थे सब जानते थे कि, सब कामोंमें और यज्ञमें भगवान्का पूजन करना चाहिये ऐसा सब जानते थे, परन्तु दैवयोगसे शिशुपालने कालवश मुनियोंको और यज्ञकी सभामें बैठनेवाले प्राणियोंको मोहित करलिया काल करके सब मुनि जन मोहित होगये और सब मनुष्योंने बालक सरीखा काम किया क्यों कि जो यज्ञमें पहिले पूजन करने योग्य कौन है ऐसा विवाद न होता तो शिशुपाल श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों करता ? और बिनानिन्दाकिये भगवान् उसको क्यों मारते ! शिशुपालके काल करके मोहित जो मुनि और सब सभाके बैठनेवाले प्रथम पूजन करने योग्यका विचार करनेलगे ॥

प्रकार जब राजा युधिष्ठिरने पूजा करी, तब श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर सब जन हाथ जोड नमोनमः और जय २ शब्दसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके फूलोंकी वर्षा वर्षानेलगे ॥ २९ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा हुई तब उससमय दमघोषका पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंका वर्णन सुन अत्यन्त क्रोधित हो भुजा उठाय ईर्षाकर निर्भय हो श्रीकृष्णचन्द्रको कठोर वचन सुनाकर यह कहने लगा ॥ ॥ ३० ॥ नाशरहित श्लाघ्य सामर्थ्यवान् काल बडा प्रबल है, वास्तवमें यह वेदकी श्रुति सत्य है, क्योंकि कालसे ही वृद्ध वृद्धसभामें बैठनेवालोंकी बुद्धि इस बालक सहदेवके कहनेसे चलायमान होगई ॥ ३१ ॥ हे पात्रके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सभापतियो ! भला यह कृष्ण पूजाके योग्य है ? कदापि नहीं. इसकारण इस बालकका वचन मानना उचित नहीं ॥ ३२ ॥ क्योंकि तप करनेवाले विद्यावान्, व्रती, ज्ञानी, पापरहित, ब्रह्मनिष्ठ और लोकपालोंसे पूजित ब्रह्मर्षि ॥ ३३ ॥ इस सभामें विराजते हैं, इन सबको त्याग गायोंका चरानेवाला और कुलको दोष लगानेवाला पूजाके योग्य कैसे हो सकताहै ? और यज्ञमें देवताओंके योग्य बलि कौआ कैसे ग्रहण करनेके योग्य है ? ॥ ३४ ॥ न जिसका कोई वर्ण, न आश्रम और न कोई कुल है, संपूर्ण धर्मसे बहिष्कृत, जैसे मनमें आवै वैसे ही करै गुणहीन, ऐसा कृष्ण कैसे पूजाके योग्य हो सक्ताहै ? ॥ ३५ ॥ राजा ययातिने इसके कुलको शाप दिया और सत्पुरुषोंने जातिबहिष्कृत किया और सर्वदा वृथा मदिरापान करनेवाला इसका कुल है, फिर इस कुलमें आज कृष्ण कैसे पूजाके योग्य होताहै ॥ ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षिसेवित देशोंको त्याग ब्रह्मतेजरहित समुद्रके किलेका आश्रय लेकर यादवोंमें चोरके समान बाधा देताहै ॥ ३७ ॥ हे भूपाल ! नष्टमंगल शिशुपाल और भी अनेक प्रकारके अमंगल वचन कहता रहा, परन्तु जैसे सिंह सियारोंके बोलनेपर ध्यान नहीं देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुछ न बोले ॥ ॥ ३८ ॥ सभासद दुस्सह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इसप्रकार निन्दा सुन, कर्ण मूँदि अत्यन्त क्रोधित हो शिशुपालको गाली देने लगे ॥ ३९ ॥ भगवान्की निन्दा सुन अथवा भगवत्परायण पुरुषोंकी निन्दा सुनकर जो पुरुष उस स्थानसे न उठ जायँ वह पुरुष अपने पुण्यसे भ्रष्ट होकर नरकमें गिरते हैं ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त हे परीक्षित् ! क्रोधसे पाण्डुके पुत्र और मत्स्यदेश व सृंजयदेशके राजा अपने अपने शस्त्रोंको उठाकर शिशुपालके मारनेको उपस्थित हुए ॥ ४१ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! इसके पीछे घबराहटरहित शिशुपालने श्रीकृष्णचन्द्रके पक्षी राजाओंको मारनेके लिये ढाल और अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली तलवार ग्रहण की ॥ ४२ ॥ यह मेरा पार्षद है और मेरे समान बलवान् है यह सबको मारेगा इससे मैं ही इसको मारूं, यह विचार उसी समय उठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी ओरके राजाओंको निवारण करके सम्मुख आते अपने वैरी शिशुपालका शिर क्षुरेके समान पैनीधारवाले चक्रसे काट लिया ॥ ४३ ॥ उस समय बडा कोलाहल शब्द हुआ और शिशुपालके पिछलगू राजा जीनेकी इच्छा करके भाग-

गये ॥ ४४ ॥ उस समय शिशुपालके देहमेंसे निकलीहुई ज्योति सब प्राणियोंके देखते श्रीकृष्णचन्द्रमें मिलगई, जिस प्रकार आकाशसे गिरे तारे पृथ्वीमें मिल जाते हैं ॥ ४५ ॥ पहले जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु हुये, दूसरे जन्ममें रावण, कुम्भकर्ण हुये, तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दन्तवक्र हुये, इस प्रकार तीन जन्मके चले आये वैरसे तन्मय बुद्धिसे रूपका त्याग करते करते, उसी रूपको प्राप्त हुये, अर्थात् पार्षद होगये, क्योंकि जैसी जो भावना करता है, वैसाही उसका जन्म होताहै ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त चक्रवर्त्ती राजा युधिष्ठिरने यज्ञके करानेवाले ब्राह्मणोंको और बडे सभामें बैठनेवालोंको बडी दक्षिणा दी और विधिपूर्वक सबका पूजन करके यज्ञांत स्नान किया ॥४७॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने राजा युधिष्ठिरका यज्ञ सिद्ध करके और सुहृदोंकी विनयसे कितनेही मास पर्यन्त वहाँ वास किया ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त जाने देनेकी इच्छा न करनेवाले राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा माँग सामर्थ्यवान् भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र अपने स्त्री पुत्रोंको संग लेकर द्वारकापुरीमें आये ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! वैकुण्ठके वास करनेवाले जय, विजय पार्षदोंको सनकादिकका शाप लगा इसकारण वारम्वार जन्म हुआ, प्रथम यह कथा तुम्हारे आगे विस्तार सहित वर्णन कर चुके हैं ॥ ५० ॥ राजसूययज्ञ कर चुकनेके पीछे स्नानकर राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण और क्षत्रियोंके मध्यमें बैठे इन्द्रके समान सभामें शोभायमान लगने लगे ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिरसे सत्कारपाय सब देवता और आकाशके विचरनेवाले मनुष्य, प्रमथगण श्रीकृष्णचन्द्र और सभा तथा यज्ञ इनकी प्रशंसा करते हुए आनन्दपूर्वक अपने अपने लोकोंको चलेगये ॥ ५२ ॥ परन्तु कौरवोंके कुलमें कलियुगरूप कुलका नाशक, धर्मद्वेषी दुर्योधन पांडुपुत्र महाराज युधिष्ठिरकी बडी शोभाको देख अपने मनमें बहुत कुढा ॥ ५३ ॥ शिशुपालके वध आदिक जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म बीस हजार आठसौ राजा कैदसे छुटाये और राजा युधिष्ठिरका यज्ञ कराया, इस प्रसंगको जो पुरुष कहैं अथवा सुनैंगे, वह सब पापोंसे छूट जाँयगे ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

दोहा–पिछहत्तर ध्यममें पडो, अवभृथको अस्नान।
दुर्योधनको क्षमाविन, भयो मान अपमान ॥ १ ॥

राजा परीक्षित बोले कि, हे व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी ! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी बडी शोभा देखकर जो राजा आये थे, वह सब प्रसन्न हुये ॥ १ ॥ और संपूर्ण देवताओंने भी आनन्द पाया, केवल दुर्योधन ही आनन्दसे वंचित रहा, यह हमने आपके ही मुखसे सुना, सो दुर्योधनको आनन्द क्यों न हुआ इसका कारण कृपा करके मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजापरीक्षित् !

महात्मा तुम्हारे दादे राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें सब बन्धु बांधव प्रेमवश होकर सबहीकी टहल करते थे ॥ ३ ॥ किसने कौन काम किया सो कहते हैं, भीमसेनको रसोईका अधिष्ठाता, दुर्योधनको खर्च करनेका स्वामी कोशाध्यक्ष किया, क्योंकि यह हमको शत्रु जानकर बहुत द्रव्य उठावेगा, तो इसमें हमारा यश होगा, सहदेवको आये गयेकी पूजा करनेका काम सौंपा और नकुलको अनेक प्रकारकी सामग्रियोंका सम्पादक बनाया ॥ ४ ॥ साधुओंकी सेवा अर्जुन करता था, और श्रीकृष्णचन्द्र यज्ञमें आनेवालोंके पाँव धोकर पोंछ देते थे, परोसा परोसीमें द्रौपदी लगरही थी उदारमन कर्ण दान देनेकी टहलमें लग रहाथा ॥ ५ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! सात्यकी, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुरादिक-भूरिश्रवादि, बाह्लीक राजाके पुत्र और संतर्दन आदि उस बडे यज्ञमें अनेक प्रकारके कामोंमें लगा दिये, उस समय वह सब महाराज युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये प्रवृत्त होगये ॥ ६ ॥ ऋत्विक् और सभासद तथा विवेकी सुहृज्जनोंने सुन्दर मनोहर वचन, गहने और दक्षिणासे पूजित होकर शिशुपालको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्राप्ति होनेके उपरान्त स्वर्गनदी गंगामें यज्ञकी समाप्तिका स्नान किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ यज्ञकी समाप्तिके उत्सवमें मृदंग, शंख, ढोलक, खंजरी, नगारे, गोमुख, नरसिंहादिक चित्र विचित्र बाजे बजनेलगे ॥ ९ ॥ नाचनेवाली नाचनेलगीं और आनन्दपूर्वक गवैयोंके झुण्डके झुण्ड गानेलगे, तिनके वीणा वेणु और हथेलीका शब्द स्वर्गतक व्याप्त होरहा था ॥ १० ॥ चित्र विचित्र छत्र, ध्वजा पताका जिनके ऊपर ढकी, ऐसे बडे बडे रथ, हाथी और घोडोंपर चढ सुवर्णकी माला पहरे सेनाको संग लेकर राजा निकले ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरको आगे किये यदु सृंजय, कांबोज कुरु कैकय और कौशल देशके राजा पृथ्वीको कम्पायमान करते सेना सहित चले ॥ १२ ॥ सभासद, ऋत्विज तथा ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करते चले और ऋषि, पितृ, गंधर्व, पुष्पोंकी वर्षा कर करके स्तुति करतेथे ॥ १३ ॥ चन्दन, माला, गहने और वस्त्रोंसे शृंगार करे स्त्री पुरुष अनेक प्रकारके दूध दही आदि रसोंको लेपन और छिडकाव करतेथे ॥ १४ ॥ तेल और माखन सुगंधिके जल हरदी व केशर इत्यादिकोंको लेपन करते और छिडकते परस्पर बिहार करते थे ॥ ॥ १५ ॥ इस उत्सवको देखनेके लिये जैसे उत्तम विमानोंपर बैठकर देवांगना आई हों उसी प्रकार वीर और रावतोंसे रक्षित हो राजा युधिष्ठिरकी रानियें रथ और पालकियोंमें बैठकर निकलीं, वह रानियें मामाके पुत्रोंसे और सखियोंसे भिगोयीहुई लाजभरी मुसकान व प्रफुल्लित मुखसे शोभायमान होरहीथीं ॥ १६ ॥ भीजनेसे और शरीरमें चिपटनेसे उन स्त्रियोंके अंग, कुच, जंघा और मध्यभाग स्पष्ट दिखाई देतेथे उत्सुकतासे चोटी शिथिल होनेके कारण उससे फूल बिखर रहेथे देवर और सखीजन उन्हें डोलचियोंसे भिगोरहेथे उनकी लीला देखकर मलीनमन कामीजनोंके चित्त अत्यन्त क्षुभित होतेथे ॥ १७ ॥ सुवर्णकी माला पहरे और सुन्दर घोडे जुते रथमें बैठे राजा युधिष्ठिर जैसे क्रियाओं सहित

यज्ञ सुन्दर लगता है उसी प्रकार स्त्रियों सहित शोभायमान लगने लगे * ॥ १८ ॥ ऋत्विजोंने वे पत्नी संयाज और आवभृथ्य नाम दो यज्ञांग करके गंगामें द्रौपदी सहित आचमन करे राजा युधिष्ठिरको स्नान करवाया ॥ १९ ॥ देवता तथा मनुष्योंके नगारे बजनेलगे और देवता ऋषि पितृ मनुष्यादि फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ वर्ण युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह चारों वर्ण और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इन चार आश्रमोंने भी गंगामें स्नान किया; क्योंकि इस गंगामें स्नान करनेसे महापापी पुरुष भी शीघ्र पापसे छूट जाते हैं ॥ २१ ॥ स्नान करने उपरान्त राजा युधिष्ठिर नवीन रेशमी धोती पहर भलेप्रकार शोभायमान होकर ऋत्विज सभासद और ब्राह्मणादिकों-की वस्त्रोंसहित पूजा करने लगे ॥ २२ ॥ नारायणके आश्रयी राजा युधिष्ठिरने भाइ बंधु, जातिके राजा मित्र सुहृद् और भी सब मनुष्योंका वारंवार पूजन किया ॥ २३ ॥ देवताओंके समान कान्तिवाले मणियोंके जडाऊ कुण्डल, माला, पगडी, जामा, पटुका और बडे मोलके हार पहरे पुरुष और दोनों कुण्डल अलकोंके समूहसे शोभायमान मुखवाली स्त्रियें सुवर्णकी कौंधनी पहरे सब शोभायमान लगतींथी ॥ २४ ॥ हे राजन् ! स्नानकरे पीछे राजा युधिष्ठिरसे पूजित हो शील स्वभाववाले ऋत्विज सभासद वेदपाठी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और राजा ॥ २५ ॥ देवता, ऋषि, पितृ सब प्राणी अनु-चरोंसहित लोकपाल राजा युधिष्ठिरसे पूजन कराय आज्ञा माँग अपने अपने स्थानको चलेगये ॥ २६ ॥ हरि भगवान्के भक्तोंमें राजर्षि राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी बडी शोभाकी प्रशंसा करते २ तृप्त नहीं हुए, जिसप्रकार मनुष्यका चित्त अमृत पीते पीते तृप्त नहीं होता ॥ २७ ॥ सुहृद, सम्बन्धी, बंधू और श्रीकृष्णचन्द्रके बिछुडनेसे कायर मन हो राजा युधिष्ठिरने प्रेमसे रक्खा ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! उन राजा युधि-ष्ठिरका प्रिय करनेके लिये सांब आदि पुत्र और यादवोंमें शूरवीरोंको द्वारकामें भेज आप श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रहनेलगे ॥ २९ ॥ धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरने दुस्तर मनोरथ-रूपी बडा समुद्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सहायतासे तरकर सब खेद दूर किया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! एक समय भगवद्भक्त राजा युधिष्ठिरके रनवासकी लक्ष्मी व राजसूययज्ञकी महिमा देखकर दुर्योधन संताप करनेलगा ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरका अंतःपुर कि जहाँ

---

* **शंका**-शास्त्रमें और लोकमें भी ऐसा सुना है कि, राजा युधिष्ठिरने एक स्त्रीके सिवाय दूसरी स्त्रीके संग अपना विवाह नहीं किया, क्योंकि राजा युधिष्ठिरके एक स्त्री थी, फिर यज्ञमें बहुत स्त्रियों करके शोभायमान क्यों हुए ?

उत्तर-द्रौपदीने युधिष्ठिरकी सेवा ऐसी की कि, जो सेवा करोडों स्त्रियोंके करनेसे नहीं हो सक्ती ऐसी, द्रौपदीके पतिव्रतको युधिष्ठिर देखकर मनमें जाना कि, हमारे करोडों स्त्री हैं और व्यासजीने भी युधिष्ठिरके मनकी बात जानकर कहा कि, युधिष्ठिर बहुतसी स्त्रियों करके अपने यज्ञमें शोभित हुए ॥

मयदैत्य रचित नरपति दैत्यपति और देवपतियोंकी नाना प्रकारकी विभूतियाँ प्रकाशमान होरही थीं और जहाँ उन विभूतियोंके साथ द्रौपदी अपने स्वामियोंकी सेवा करती थीं उसे देख दुर्योधनका मन अत्यन्त तापको प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ राजा युधिष्ठिरके अंतःपुरमें उससमय मधुपति श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके समूह नितम्बोंके भारसे धीरे धीरे चलनेमें बजते नूपुरोंसे शोभित चरण, कुचोंकी केशरसे अरुणहार धारण किये, चंचल कुण्डल और केशपाशसे युक्त सुन्दर मुख,रमणीय कटिसेयुक्त श्रीकृष्णकी सहस्रों रानियें वहाँ फिरती थीं ॥ ३३ ॥ मयदैत्यकी बनाई सभा, उसमें किसी समय अपने आज्ञाकारी भाई, बंधुसहित और हित अहितके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसहित धर्म पुत्र राजा चक्रवर्ती युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥ साक्षात् सिंहासनपर जैसे इन्द्र विराजमान होताहै, उसीप्रकार सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान होकर राज्यकी शोभासे सेवित और बन्दीजनोंसे स्तुति पाय शोभायमान होनेलगे ॥ ३५ ॥ हे राजा परीक्षित्! उसी समय भाइयोंको संग ले किरीट धारण किये,माला पहरे और हाथमें तलवार लिये क्रोधकर द्वारपालोंको डाटताहुआ अभिमानी दुर्योधन सभामें आया ॥ ३६ ॥ वहाँ मयदैत्यकी बनाई सभामें सूखेमें जल दीखे और जलमें सूखादीखे, ऐसी मयरचित सभामें मयदैत्यकी मायासे मोहित होकर दुर्योधनने भ्रमसे सूखेमें जल जान अपना जामा उठाया और सूखा जानकर जलमें छोडदिया और जलमें गिरगया ॥ ३७ ॥ हे राजा परीक्षित्! दुर्योधनको गिरा देखकर भीमसेन व सब स्त्रियें हँसनेलगीं यह देख राजा युधिष्ठिरने यद्यपि मने भी किया, परन्तु तोभी श्रीकृष्णचन्द्रकी सैन देनेसे पहिले भीमसेन हँसा फिर पीछे सब राजा हँसनेलगे ॥ ३८ ॥ इन राजाओंको हँसता देख दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हो नीची नारकर क्रोधाग्निसे भभकताहुवा सभासे निकल चुप चाप हस्तिनापुरको चलागया, उस समय साधुओंके बीच बडा हाहाकार शब्द हुआ और अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर उदास होगये, जिनकी दृष्टिसे सब जगत् भ्रमण करताहै वह भगवान् तो चुप होकर बैठगये, क्योंकि उनकी इच्छा पृथ्वीका भार उतारनेकी थी कि, किसी न किसी प्रकार यह पृथ्वीका भार उतरै, सो यह समागम सहजमें बनगया प्रथम यही भारतका बीज जमा ॥ ३९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! जो आपने प्रश्न किया था कि, राजसूययज्ञमें दुर्योधन कैसे कुढा सो उसका उत्तर मैंने सब आपके सन्मुख वर्णन करदिया ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

दोहा-युद्धछिहत्तरमें भयो, यादव शाल्व अपार।
घूमत गदा प्रहारसे, गये प्रद्युमन हार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इसके उपरान्त क्रीडासेही मनुष्य शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके और भी अद्भुत कर्म हैं, जिस प्रकार सौभविमानका

पति शाल्वको मारा, सो श्रवण करो ॥ १ ॥ शिशुपालका मित्र शाल्व रुक्मिणीके विवाहमें आयाथा, तब उसको संग्राममें यादवोंने जीतलिया और उसीप्रकार जरासन्धादि राजा भी जीते ॥ २ ॥ सब राजाओंको सुनाकर राजा शाल्वने यह प्रतिज्ञा करी कि, संपूर्ण पृथ्वी यादवकुल रहित करूंगा, अब तुम सब मेरे पराक्रमको देखो ॥ ३ ॥ हे परीक्षित्! इसप्रकार मूर्ख शाल्व प्रतिज्ञाकर केवल धूलकी एक मुट्ठी फाँकता हुआ पशुपति शिवजीकी आराधना करनेलगा ॥ ४ ॥ शीघ्र संतुष्ट होनेवाले शिवजी श्रीकृष्णके द्वेषी शाल्वको वर देना निष्फल जान शीघ्र प्रगट न हुए, परन्तु शरण आये शाल्वसे एक वर्षके पीछे यह कहने लगे कि, वर माँग ॥ ५ ॥ उस समय देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस इनसे न टूटै और जहाँकी इच्छा हो वहाँ पहुँचावै, यादवोंको भयका देनेवाला, ऐसा विमान दो यह वर माँगा ॥ ६ ॥ तब ऐसा ही होगा, यह कहकर भगवान् महादेवजीने मय दानवको आज्ञा दी, उसने झट वैरियोंके पुरको जीतनेवाला सौभनाम लोहेका बना विमान शाल्वको दिया ॥ ७ ॥ अंधकारका घर, दुष्प्राप्य और इच्छानुसार चलनेवाला विमान पाय वह शाल्व कृष्णके वैरका स्मरण करके द्वारकापुरीकी ओरको चला ॥ ८ ॥ हे राजन्! शाल्व बडी सेनासे द्वारकापुरीको घेरकर संपूर्ण फूलोंके बाग और उद्यानोंको तोडनेलगा ॥ ९ ॥ गोपुर, दरवाजे, महल, अटा उनकी भीतैं व विहार स्थान तोडनेलगा, और उस उत्तम विमानपरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥ १० ॥ और शिला, वृक्ष, बिजली, सर्प, ओले, बरसने लगे और प्रचण्ड पवन चलनेके कारण सम्पूर्ण दिशायें आच्छादन होगईं ॥ ११ ॥ हे परीक्षित्! इसप्रकार सौभविमानसे पीडित श्रीकृष्णचन्द्रकी द्वारकापुरी जैसे त्रिपुर दैत्यसे पृथ्वी दुःखी हुईथी, उसी प्रकार दुःखी होगई, सुखका कहीं लेश भी न रहा ॥ १२ ॥ बडे यशस्वी महारथी भगवान् प्रद्युम्न अपनी प्रजाको दुःखी देखकर "भय मति करो" इस प्रकार कहकर सन्मुख आये ॥ ॥ १३ ॥ और सात्यकी, चारुदेष्ण, सांब और छोटे भाई अक्रूर तथा हार्दिक्य, भानुविन्द गद, शुकसारण ॥ १४ ॥ बडे धनुषधारी महारथी योद्धा कवच पहर, रथ, हाथी, घोडे और पैदल इत्यादिकोंको संग लेकर निकले ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त हे राजन्! असुरोंका जैसे देवताओंके संग युद्ध हुआथा. उसी प्रकार रोमाञ्चकारक महाभयानक युद्ध शाल्वकी सेनाका यादवोंके संग होने लगा ॥ १६ ॥ जैसे रात्रिके अंधकारको भगवान् सूर्य दूर करदेते हैं, वैसेही रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने सौभ विमानके पति शाल्वकी मायाओंका क्षणभरमें नाश करदिया ॥ १७ ॥ सोनेके पुंख लोहेकी भाली और छोटी छोटी गांठवाले पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको शीघ्र बींध डाला ॥ १८ ॥ इसके उपरांत भगवान् प्रद्युम्नजीने सौ बाण शाल्वके और एक एक बाण प्यादोंके तथा दश दश बाण सारथी और तीन तीन बाणोंसे घोडे हाथियोंको बींध डाला ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्नजीके यह अद्भुत पराक्रम देखकर अपनी पराई सेनाके योद्धा सबही प्रद्युम्नजीकी बडाई करने

लगे ॥२०॥ * मयदैत्यका बनाया वह मायामय विमान कभी तो नानारूपसे और कभी एक रूपसे दिखाई देता, कभी बिलकुल दीखताही नहीं, इसलिये शत्रु जो यादव उनको उसका तर्क करना महाकठिन होगया ॥ २१ ॥ वह विमान कभी भूमिपर, कभी आकाश मार्गमें, कभी पर्वतोंके शिखरपर और किसी जलमें अलातचक्रके समान भ्रमण कर रहाथा इस कारण उसकी व्यवस्थाका ठिकाना लगना अत्यन्त कठिन होगया ॥ २२ ॥ विमान और सेना सहित जहाँ जहाँ शाल्व दिखाई देता था, वहाँ वहाँ यादवोंमें मुख्यवीरगण बाणोंको छोडते थे ॥ २३ ॥ अग्नि सूर्यके समान गरम स्पर्शवाले विषके तुल्य असह्य वैरियोंके चलाये बाणोंसे शाल्वकी सेना अत्यन्त पीडित होगई और शाल्वभी व्याकुल होगया ॥ २४ ॥ शाल्वकी सेनाके शस्त्रोंके समूहसे अत्यन्त पीडित होकर भी लोक परलोकके जीतनेकी इच्छावाले यादव शूरवीरोंने अपनी अपनी युद्ध भूमिको नहीं छोडा ॥ ॥ २५ ॥ प्रद्युम्नके पहले गदा प्रहारसे पीडित हुआ शाल्वका बली द्युमाननाम मंत्री लोहे की गदा छातीमें मारकर पुकारनेलगा ॥ २६ ॥ वैरीको शांत करनेवाले प्रद्युम्नजीका वक्षस्थल गदाके लगनेसे विदारित होगया, तब धर्मका जाननेवाला दारुकका पुत्र सारथी प्रद्युम्नजीको लेकर रणभूमिसे बाहर निकल आया ॥ २७ ॥ दोघडीमें चैतन्यहो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र, प्रद्युम्नजी सारथीसे बोले कि, अहो रथवान् ! तू रणमेंसे जो मुझे भगाकर ले आया, यह बुरा काम किया ॥ २८ ॥ व्याकुल चित्तवाले तुझ रथवानने मुझे कलंक लगाया, क्योंकि मुझ विना यादवोंके कुलमें जन्मले रणमेंसे भागा और किसीको नहीं सुना, परन्तु मेरा इसमें क्या दोषहै, यह कलंक तो सारथीने लगाया ॥ २९ ॥ पिता रामकृष्णसे मिलूंगा तो क्या कहूंगा वह पूछेंगे, तब युद्धमेंसे भागकर निकला हुआ मैं अपनी योग्यताके विषयमें किसप्रकार निवेदन करूंगा ॥ ३० ॥ भाइयोंकी स्त्रियें भाभी हे वीर ! युद्धमें शत्रुओंके सन्मुखसे नपुंसकहो कैसे आज भाग आये, हमसे तो कहो, इस प्रकार हँसकर मुझसे कहेंगी ॥ ३१ ॥ यह सुनकर रथवान बोला हे चिरंजीवि हे समर्थ ! धर्मका ज्ञाता मैं तुम्हें रणमेंसे निकाल लाया, क्योंकि धर्ममें ऐसाही कहा है कि, रथमें बैठनेवालेको कष्ट आनकर उपस्थित हो तो रथवान् रक्षाकरै और सारथीके ऊपर कष्ट

---

* **शंका**–प्रद्युम्नने बाणोंसे शाल्वको और शाल्वकी सेना मूर्च्छित करदिया तब प्रद्युम्नके ऐसे पराक्रमको देखकर शाल्वकी सेना और प्रद्युम्नकी सेनाने क्यों आश्चर्य माना ? प्रद्युम्नका क्या यह नवीन कर्तव्य था ? ऐसा कर्तव्य तो प्रद्युम्नने अनेक बार कियाथा ?

उत्तर–शाल्वको ब्रह्माने किसीसमय वर दियाथा कि, तुमको और तेरी सेनाको संग्राम में श्रीकृष्णजी मूर्च्छित करेंगे और त्रिलोकीमें कोई प्राणी तुझको और तेरी सेनाको दुःखित नहीं कर सकेगा, जब प्रद्युम्नने शाल्वको और उसकी सेनाको मूर्च्छित करदिया तब ब्रह्मादिक सब देवता आश्चर्य मानने लगे उस समय और प्राणियोंने आश्चर्य माना तो क्या बडी बात है ?

आवै तो बैठनेवाला उसकी रक्षा करै ॥ ३२ ॥ हे वीर ! शत्रुने आपके गदा जो मारी तो आप अति पीडित होकर मूर्च्छित होगये, इसलिये धर्म जानकर मैं तुम्हें रणमेंसे निकाल लाया ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

दोहा-सतहत्तर अध्यायमें, शाल्ववीरको मार।
तोरो सौभ विमान पुनि, यदुपति परम उदार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरान्त प्रद्युम्नजीने हाथ पाँव धो कवच पहर और धनुष हाथमें लेकर कहा कि, हे रथवान् ! वीर द्युमानके पास मुझे लेचल ॥ ॥ १ ॥ रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने मुसकाकर अपनी सेनाके योद्धाओंको मारते हुये द्युमानको अत्यन्त तीक्ष्ण आठ बाण मारे ॥ २ ॥ चार बाणोंसे चारों घोडोंको, एक बाण से रथवान्को मारा,दो बाणोंसे धनुष्य और ध्वजाको काटडाला और एक बाणसे महारथी प्रद्युम्नजीने द्युमानका शिर काटलिया ॥ ३ ॥ गद सात्यकी और सांब आदि यादव विमानका पालन करनेवाले शाल्वकी सेनाको मारनेलगे और शिर कटनेसे संपूर्ण विमानके बैठनेवाले समुद्रमें गिरगये ॥ ४ ॥ हे नृपोत्तम ! इसप्रकार २७ सत्ताइस दिनतक यादव और शाल्वकी सेनाका महाभयानक युद्ध हुआ ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरके बुलाये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें गये थे. वहाँ जब राजसूय यज्ञ हो चुका और शिशुपाल मर चुका ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कौरवोंमें वृद्धोंसे और मुनियोंसे और पुत्रों सहित कुन्तीसे आज्ञा माँग मार्गमें कुत्सित शकुन देख द्वारकापुरीको प्रस्थान किया ॥ ७ ॥ और मार्गमें खोटे शकुन देखकर विचार करनेलगे कि, बडे भाई बलदेवजी सहित मैं यहाँ यज्ञमें आयाहूं, इससे शिशुपालकी ओरके राजा निश्चय मेरी पुरीका नाश करते होंगे ॥ ८ ॥ अपने यादवोंका कष्ट देख, बलदेवजीको द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिये कहकर सौभविमानमें बैठे हुये शाल्वको देख केशव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्से कहनेलगे कि ॥ ९ ॥ हे रथवान् ! शीघ्र मेरे रथको शाल्वके समीप पहुँचा, क्योंकि इस विमानका राजा शाल्व बडा मायावी है, इससे तू घबराना मत ॥ १० ॥ इसप्रकार वचन सुन रथवान् रथपर बैठकर रथको हाँकनेलगा और अपनी पराई सेनाके लोगोंने रथकी ध्वजामें गरुडको आता देखा॥ ११ ॥ शाल्वकी बहुतसी सेना नाश होगई,उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको युद्धमें आया देखकर शाल्वने उनके सारथीपर अत्यन्त भयंकर वेगवाली शक्ति फेंकी॥ १२ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दिशाओंको प्रकाश करती बडे तारेके समान आकाशमें चली आती बरछीको अपने बाणोंसे सौ खण्ड करदिये ॥ १३ ॥ और अत्यन्त कुपित हो सोलह बाणोंसे शाल्वको बींधडाला, फिर आकाशमार्गमें भ्रमण करनेवाले विमानको सूर्यकी किरणोंसे बिंधे हुये आकाशके

समान बाणोंके समूहोंसे वेध दिया॥१४॥शार्ङ्गधनुषधारी शौरि श्रीकृष्णचन्द्रकी धनुष सहित वाम भुजाको शाल्वने बींध दिया, तब श्रीकृष्णचन्द्रके हाथसे धनुष गिरगया, यह बडीही आश्चर्यकी बात हुई ॥ १५ ॥ हाथमेंसे धनुष गिरा देख प्राणियोंमें बडा हाहाकार शब्द हुआ और उसी अवसरमें विमानका राजा शाल्वने अत्यन्त ऊँचे स्वरसे गर्जनाकर श्रीकृष्णचन्द्रसे कहनेलगा कि ॥ १६ ॥ हे मूर्ख ! जो तू हमारे भाई अथवा सखा शिशुपालकी स्त्रीको हमारे देखतेही हरकर लेगया और सभाके बीच असावधान विराजमान तैने हमारे सखाको मारा ॥ १७ ॥ अपनेको अजित माननेवाले तू जो आज मेरे सन्मुख खडा रहेगा तो निश्चय यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ १८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे अधम ! तू वृथा बकवाद करताहै, और निकटही जो तेरी मृत्यु उपस्थित है उसे नहीं देखता. शूरवीर बहुत बकते नहीं अपना पुरुषार्थ दिखाते हैं, और जो बहुत बकते हैं,सो वह कुछ पराक्रम नहीं करते ॥ १९ ॥ इस प्रकार कह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बडे वेगकी गदा क्रोध करके कण्ठके नीचे हाडमें मारी कि, जिसके लगनेसे शाल्व रुधिर वमन करता हुआ काँपने लगा ॥ २० ॥ और तत्कालही शाल्व अंतर्धान होगया. फिर, दो घडी पीछे एक पुरुष आय शिर झुकाय श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर, रोता हुआ "मुझे देवकीने भेजा है" यह वचन कहनेलगा ॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! हे पिताका हित करनेवाले ! जैसे कसाई पशुको बाँधकर लेजाता है, उसीप्रकार शाल्व तुम्हारे पिताको बाँधकर लेगया ॥ २२ ॥ ऐसा अप्रियवचन सुने मनुष्य स्वभावमें प्राप्तमन दयावान् श्रीकृष्णचन्द्र विमन होकर प्राकृत मनुष्यके समान कहने लगे ॥ २३ ॥ कि, संभ्रमरहित देवता असुरोंके अजेय बलदेवजीको जीतकर तुच्छ शाल्व मेरे पिताको कैसे बाँधकर ले गया ? विधाता बलवान् है, कदाचित् लेगया होगा ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र इतना कहते ही थे कि, इतने में मायाके वसुदेवको लेकर शाल्व आया और श्रीकृष्णचन्द्रसे बोला कि, हे नीच ! यह तेरा उत्पन्न करनेवाला पिता है, जिसके लिये तू जीवित है, सो अभी तेरे देखते इसे मारूंगा, यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य होय तो इसकी रक्षा कर * ॥ २५ ॥२६॥

---

* **शंका**-शाल्वने माया करके वसुदेवजीकी मूर्त्ति साक्षात् बनाली यह बडी शंका है ? क्या माया रात दिन सबकी बुद्धि भ्रमाती है, क्योंकि राक्षस मायाके द्वारा अनेक प्रकार की वस्तु बनालेते हैं, परन्तु शास्त्रोंमें लिखा है कि, वसुदेव सरीखे तपधारी, और श्रीकृष्ण भगवान् भक्त हितकारी वैकुण्ठनाथसे जिनके पुत्र, ऐसे धर्मात्माकी मूर्तिको मायासे क्षुद्र राक्षसने बनालिया यह महा आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर-ब्रह्माने किसी समय शाल्वको वर दियाथा कि, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकी मूर्त्ति तो तुझसे बनेगी नहीं, और त्रिलोकीमें जिसकी मूर्त्ति बनाया चाहेगा उसकी मूर्ति बना लेगा, और ब्रह्माने वरदानके देते समय शाल्वसे यह भी कहाथा कि, जब तू वसुदेवकी मूर्त्ति बनावेगा उसी समय तू मारा जायगा, उस ब्रह्माके वचनको कालवश होकर भूल-

मायावी शाल्वने इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको कटुवाक्य कह, तलवारसे वसुदेवजीका मस्तक काटडाला और उस मस्तकको ले आकाशमें स्थित सौभ विमानमें पहुँचा ॥ २७ ॥ स्वतःसिद्ध ज्ञानवाले श्रीकृष्णचन्द्र अपने जनोंके संग दो घडी तक मनुष्योंके स्वभावसे शोकमें डूबे रहे इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मय दैत्यकी प्रगट करी शाल्वकी चलाई आसुरी मायाको जान लिया ॥ २८ ॥ जब इसप्रकार चेते तो जैसे जागता हुवा पुरुष स्वप्नके पदार्थको न देखे उसी प्रकार रणभूमिमें श्रीकृष्णचन्द्रने न तो दूतको देखा, और न पिताके देहको देखा, बरन् सौभ विमानमें विराजमान आकाशमें भ्रमण करते हुए शत्रुको देखकर उसके मारनेका उपाय करने लगे ॥ २९॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे महाभागवत परीक्षित् ! पूर्वापरका अनुसंधान न रखनेवाले कितने एक ऋषिलोग यह कहते हैं, पर वह अपनी वाणीमें, जो बिरोध आता है, उसका ध्यान नहीं करते, उन्होंने पहले कहा कि, "बलदेवजीकी आज्ञा ले और उन्हें हस्तिनापुरमें छोड आप इन्द्रप्रस्थ गये" इसके उपरान्त कहते हैं कि, "इन्द्रप्रस्थसे आ, शाल्वको युद्ध करता देख बलदेवजीको द्वारकाकी रक्षा करनेके लिये भेजा" यह उनके वचनमें ही भेद होता है, सो शुकदेवजी कहते हैं कि, हे राजन् ! यह हमारा मत नहीं है, और ऋषियोंका है ॥ ३० ॥ शोक, मोह, स्नेह, भय, यह कहाँ ? और अखण्ड विज्ञान ऐश्वर्य देवता जिनकी स्तुति करैं ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ ? ॥ ३१ ॥ जिनके चरणारविन्दकी सेवासे पुष्ट हुई, आत्मविद्याके प्रभावसे सज्जन पुरुष अनादिकालकी देहात्मबुद्धिको त्याग अनंत ईश्वरसम्बन्धी पद आत्माको पातेहैं, उन सर्वोत्तम शरणागतपालक श्रीकृष्णचन्द्रमें कदाचित् मोह नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥ यही यथार्थहै कि, बडे पराक्रमी शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने बलपूर्वक शस्त्रोंके प्रहारसे शाल्वको वेध उसका कवच धनुष और उसके शिरकी मणि काटकर उसके विमानको गदासे चूर्ण कर दिया ॥ ३३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हाथकी चलाई हुई गदासे हजारों खण्ड होकर वह विमान चूर्णीभूत हो पृथ्वीमें गिर गया, उस समय शाल्व विमान छोड गदा हाथमें ले श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपरको दौडा ॥ ३४ ॥ दौडते हुए शाल्वका गदासहित हाथ भालेसे काटकर उसके मारनेके लिये प्रलय कालके सूर्यके समान सुदर्शनचक्रको ग्रहणकर उदयाचल पर्वतपर सूर्यके समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शोभायमान लगने लगे ॥ ३५ ॥ जैसे देवराज इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरका माथा काटा था, उसी प्रकार अत्यन्त मायावी शाल्वका कुण्डलों सहित शिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काट लिया, उससमय मनुष्योंमें बडा हाहाकार शब्द हुवा ॥ ३६ ॥ इतनी कथा सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! जिससमय गदासे विमान टूटा और अत्यन्त पापी दुराचारी

–गया और वसुदेवकी मूर्त्ति बनाई उसी समय वृन्दावनविहारी श्रीगोवर्धनधारीने शाल्वको मारडाला. देखो जब मृत्युके दिन आते हैं, तब परमेश्वर वैसाही बानक बना देता है, इस लिये शाल्वने वसुदेवकी मूर्त्ति बनाई थी, मूर्त्ति क्या बनाई थी अपना काल बुलायाथा ॥

शाल्व पृथ्वीमें गिरपडा, तव स्वर्गमें देवताओंके नगारे वजने लगे, इसके उपरान्त मित्र शिशुपाल और शाल्व, तथा पौण्ड्रक इनका ऋण चुकानेके लिये क्रोधित हो दंतवक्र आया ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
उत्तरार्धे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

दोहा-दन्तवक्र हरि मार पुनि, हनो विदूरथ वीर ।
रोमहर्षण हलधर वधो, अठहत्तर रणधीर ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! परलोकमें प्राप्त हुए शिशुपाल और शाल्व तथा पौण्ड्रकके परोक्षमें मित्रताका जाननेवाला दुष्टवुद्धि दंतवक्र क्रोधकर अकेलाही पांवप्यादा महावलवान् गदा हाथमें लिये पृथ्वीको कम्पायमान करता अत्यन्त शीघ्रतासे आताहुआ दिखाई दिया ॥ १ ॥ २ ॥ इसप्रकार दंतवक्रको आता हुआ देख भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गदा हाथमें ले रथसे उतर समुद्रके जैसे किनारे रोके हैं, उसी प्रकार दंतवक्रको रोक दिया ॥ ३ ॥ दुर्मद करूषदेशका राजा दंतवक्र मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि, तू जो मेरे नेत्रोंके सन्मुख आया यह वडाही मंगल हुआ ॥ ४ ॥ हे कृष्ण ! तू हमारे मामाका पुत्र और हमारे मित्रका मारनेवाला है और मुझे भी मारना चाहताहै, इसलिये हे मूर्ख ! वज्रके समान इस गदासे तेरा प्राण संहार करूंगा ॥ ५ ॥ हे अज्ञानी ! देहमें रहे रोगको जिस प्रकार नाश करते हैं, उसी प्रकार बन्धुरूप वैरी जो तूहै उसे मारूंगा, तव मित्रवत्सल मैं मित्रोंके ऋणसे उऋण हूंगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार कठोर वाक्य कह श्रीकृष्णचन्द्रके माथेमें गदा मारकर सिंहके समान दंतवक्र गर्जनेलगा, जैसे हाथीके अंकुश लगे ऐसेही वह गदा लगी ॥ ७ ॥ संग्राममें गदा लगनेसे भी श्रीकृष्णचन्द्र न गिरे, इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी कौमोदकी बडी गदाको ले दंतवक्रकी छातीमें मारी ॥ ८ ॥ अत्यन्त वेगवान् गदा पडनेके कारण हृदय विदीर्ण होनेसे दंतवक्र मुखसे रुधिरका वमन करता हुआ, प्राणोंको छोड केश, हाथ, पाँव, फैलाकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ ९ ॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरान्त दंतवक्रके शरीरसे अद्भुत सूक्ष्मज्योति निकलकर सब प्राणियोंके देखते शिशुपालके वधके समान श्रीकृष्णचन्द्र में प्रवेश करगई ॥ १० ॥ इसके उपरान्त भाई दंतवक्रके शोकसे व्याकुल विदूरथ ढाल, तलवार ले श्रीकृष्णचन्द्रको मारनेके लिये वडे वडे श्वास लेता हुआ आया ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! विदूरथको इसप्रकार आता हुआ देख मुकुट और कुण्डलोंसहित उसका शिर क्षुरेके समान धारवाले चक्रसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने काटलिया ॥ १२ ॥ इसप्रकार सौभ विमान और शाल्व तथा भ्राताओंसहित दंतवक्रको जब भगवान् वासुदेव मार चुके, तब देवता और मनुष्य स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ मुनीश्वर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर और बडे सर्प, अप्सरा, पित्रोंके गण, यक्ष, किन्नर, चारण ॥ १४ ॥ यह सब कोई श्रीकृ-

ष्णचन्द्रकी विजय गाय फूल बरसाय कर चलेगये इसके उपरान्त श्रीकृष्णचन्द्र सब यादवोंको संग ले शोभायमान द्वारकापुरीको गये ॥ १५ ॥ इस प्रकार योग और जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा जयकोही प्राप्त करते हैं, पशुओंके समान दृष्टिवाले अज्ञानी पुरुषोंको जरासन्धसे हारे जीते प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ पीडित कौरवोंको एक तुल्य माननेवाले बलदेवजी उनके युद्धका उद्यम सुनकर तीर्थयात्राका बहानाकर द्वारकासे चलेगये, क्योंकि यहाँ रहनेसे जिसकी ओर न हूंगा वही बुरा मानेगा ॥ १७ ॥ प्रभासतीर्थमें स्नान कर देवता ऋषि पितृ मनुष्यको तर्पणकर और ब्राह्मणोंको संग ले सरस्वतीके प्रवाहके सन्मुख महात्मा बलदेवजी गये ॥ १८ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित्! पृथूदक, बिंदुसरोवर, त्रितकूप, सुदर्शन तीर्थ, विशालब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती, व यमुनाके तीर्थ, गंगाके तीर्थ और जहाँ ऋषि यज्ञ करैं उस नैमिषारण्यमें बलदेवजी गये ॥ १९ ॥ २० ॥ बडे यज्ञवाले मुनि बलदेवजीको आयाहुआ देख प्रशंसा करतेहुए शीघ्र उठ प्रणाम कर यथायोग्य उनका पूजन करने लगे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंसहित पूजा पाय और आसनपर बैठ महात्मा बलदेवजीने वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षणको बैठा देखा ॥ २२ ॥ यह सूतजाति होकर उन सब ब्राह्मणोंसे ऊँचे आसनपर विराजमान था, न तो इसने प्रत्युत्थान किया और न विनय की और न हाथ जोडकर स्तुति करी,तब इसको देखकर भगवान् बलरामजीको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ और अपने मनमें विचार करनेलगे कि, यह प्रतिलोम जाति होकर इन ब्राह्मण और धर्मपालक हमसे भी ऊँचे आसनपर विराजमान है, इस अपराधसे यह दुर्बुद्धि मारडालनेके योग्य है ॥ २४ ॥ क्योंकि भगवान् वेदव्यासजीका शिष्य होकर, इतिहास और पुराणोंसहित धर्मशास्त्र पढकर यह सूत ऐसा आचरण रखता है ॥ २५ ॥ सत्य है जो नटके समान वेष धारण करनेवाले, अजितेन्द्रिय, अजितमन, विनयरहित, वृथा पण्डिताभिमानी पुरुष हैं, उनको शास्त्राभ्यास भी गुणकारक नहीं होता ॥ २६ ॥ इस लोकमें मैंने इसलिये अवतार लिया है कि, ऐसे धर्मध्वजी पुरुषोंका विनाश करना, क्योंकि वह सबसे अधिक पापी होते हैं ॥ २७ ॥ हे राजन्! यद्यपि महात्मा बलरामजीने दुष्टोंको मारना छोड दिया था, परन्तु तोभी होनी ऐसेही थी, इस कारण इतना कहकर उन्होंने हाथमें स्थित डाभके अग्रसे उसको मारडाला * ॥ २८ ॥ तब उसके मरतेही सब मुनिलोग महा हाहाकार

---

* **शंका**–भावी प्राकृत जीवोंके लिये है उनहीसे भला बुरा कर्म करसक्ती हैं, कुछ भगवान्के ऊपर भावी नहीं चलसक्ती? फिर भगवान् शेषजी तो बलदेवजी थे सो भावीके वश कैसे होगये? जो सूतजीको मारडाला यह बडी शंका है?

उत्तर–ब्रह्मा, विष्णु, महेशके ऊपर भावी कुछ भी नहीं करसक्ती, तो भी भावीकी मर्यादा पालन करनेवाले तीनों देव संसारमें भावीके वश होकर अनेक प्रकारके काम करते हैं, इसलिये अनन्त रूप बलदेवजीने मायाके वशीभूतहो सूतको मारडाला ॥

करनेलगे और खेदको प्राप्त होकर बलरामजीसे बोले कि हे भगवन् ! यह आपने बडा अधर्म किया ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! जबतक यज्ञ सम्पूर्ण हो, तब तक हमारे पास पुराणोंकी कथा कहनेके लिये हम लोगोंने इस सूतको ब्रह्मासन दिया था और शरीर खेदित न हो, ऐसी आयु दीथी, परन्तु आपने विना जाने यह ब्रह्महत्याकासा कार्य किया ॥ ३० ॥ हे लोकपावन बलरामजी ! तुम योगेश्वर हो इस कारण आपको वेदमें कही ब्रह्महत्याका निषेध नहीं लगता परन्तु तो भी आप स्वयं इस ब्रह्महत्याके समान पापका प्रायश्चित्त करोगे, तभी संसारकी मर्यादा रहेगी ॥ ३१ ॥ यह सुनकर बलरामजीने कहा जगत्की मर्यादाके रक्षा करनेके लिये मैं प्रायश्चित्त करूँगा, इस कारण मुख्य पक्षमें जो नियम होवै सो मुझे बताओ ॥ ३२ ॥ इस रोमहर्षणकी दीर्घ आयु, बल, इन्द्रिय और सामर्थ्य होनेमें जो तुम्हारी अभिलाषा हो सो वर्णन करो, क्योंकि जसी आप आज्ञा करेंगे वैसाही मैं योगमायाके प्रभावसे करूंगा ॥ ३३ ॥ तब मुनि बोले कि, हे राम ! जिस प्रकार तुम्हारे अस्त्रकी, पराक्रमकी और मृत्युकी सत्यता हो और तुमने जो वचन हमसे कहा है वहभी सत्य होजाय उसीप्रकार करो ॥ ३४ ॥ बलरामजी बोले कि, "पिता ही पुत्ररूप उत्पन्न होताहै" इस प्रकार वेदकी आज्ञा है, सो इसका पुत्र उग्रश्रवा तुम्हें पुराण श्रवण-करावेगा और आयुष्य इन्द्रियशक्ति व शरीरके बलसे परीपूर्ण होगा ॥ ३५ ॥ हे मुनि-जनो ! आपको दूसरी किस बातकी अभिलाषा है ? सो हमसे कहो, आप जो कहेंगे सो मैं करूंगा ? हे बुधलोगो ! मैं प्रायश्चित्त नहीं जानता, इस कारण उसकाभी विचार करो ॥ ३६ ॥ तब ऋषीश्वर बोले कि, हे राम ! घोररूप इल्वलका पुत्र बल्वल नाम दानव अमावस पूनोंको आनकर हमारे यज्ञको भ्रष्ट करता है ॥ ३७ ॥ सो हे दाशार्हवं-शोत्पन्न बलदेवजी ! पीव, रुधिर, मूत्र, विष्ठा, मदिरा और मांस इनकी वर्षा करनेवाले पापी बल्वलको मारो, यही हमारी सेवाहै ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त सावधान होकर काम क्रोधादिकोंको त्याग भरतखण्डकी परिक्रमाकर जब एक वर्षतक तीर्थोंमें स्नान करोगे तब शुद्ध होंगे ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
उत्तरार्द्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

दोहा-उन्नासी अध्यायमें, बल्वलको वध राम।
बहुरि तीर्थयात्रा करी, जहाँ जहाँ शुभधाम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! बलरामजीने उन ऋषियोंसे कहा कि, हे कृपा-सिंधो ! मेरी इच्छा यहहै कि, प्रथम मुझे सुना दीजिये कि,तीर्थोंमें स्नान और दान कर-नेसे क्या पुण्य होताहै ? सो हमारे आगे विस्तार सहित वर्णनकीजिये॥१॥तब ऋषि बोले कि, हम तुमसे तीर्थोंके फलको कहते हैं, सावधान मनसे सुनो, यह ऋषियोंके सुनने योग्य है ॥ २ ॥ जिसके हाथ, पाँव, मन, विद्या और कीर्त्ति वशमें होती है,वही तीर्थोंके

फलको भोगता है, जो सब घरोंसे लौटकर एक किसी स्थानपर संतुष्ट होकर रहता है, जिसको अहंकार नहीं होता, वही तीर्थके फलको भोगता है. जो छल और कार्योंके आरंभसे दीन, थोडा खानेवाला, इन्द्रियजित और सब पापोंसे रहित होता है, वही तीर्थोंके फलको भोगता है ॥ ३ ॥ हे बलराम ! जो क्रोधसे रहित सत्य और शीलसे भराहुआ, दृढव्रतधारी, और अपने समान सब प्राणियोंको देखनेवाला हो वही तिर्थोंके फलको भोगताहै ॥ ४ ॥ जो यज्ञ ऋषियोंने देवताओंके लिये कहा है, जिनका फल इसलोक और परलोकमें होता है, उन यज्ञोंको दरिद्री पुरुष नहीं कर सकता, क्योंकि यज्ञमें अनेक सामग्री और बहुत वस्तुओंका विस्तार चाहिये ॥ ५ ॥ उन यज्ञोंको राजाही कर सकते हैं और कहीं कहीं धनवान् पुरुष भी करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु थोडे धनवाले सहाय रहित अकेले साधनहीन पुरुष नहीं करसकते ॥ ६ ॥ हे राम ! हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! जो विधि दरिद्रोंकेलिये यज्ञफलके समान कही हैं उनको श्रवण कीजिये ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! यह ऋषियोंका परमगुप्त मत है कि, पवित्र तीर्थोंमें जाना यज्ञोंसेभी अधिक फलदायक है, तीर्थोंमें सोना और गऊदान न करके भी तीन रात तीर्थोंमें रहनेसे दरिद्री भी पवित्र होता है. भारी भारी दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञ करनेसे जो फल होते हैं, सो इन तीर्थोंमें जानेसे भी होते हैं ॥ ८ ॥ देवताओंका तीर्थ पुष्करनामक मृत्युलोकमें विद्यमान है वह तीनों लोकमें विख्यात है महाभागी पुरुषको वहाँ जाना उचित है, हे महामते ! पुष्करतीर्थमें तीनों संध्याओंके समय दश करोड तीर्थ इकट्ठे होते हैं वहाँ सूर्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुत, गंधर्व्व और अप्सरा सदाही निवास करते हैं ॥ ९ ॥ हे संकर्षण ! जहां देवता, दैत्य, और ब्रह्मर्षि लोग महापुण्यके सहित तप करके दिव्यभोगको प्राप्त होते हैं, उस पुष्करका जो मनस्वी पुरुष मनसे भी ध्यान करता है, वह सब पापोंसे पवित्र हो स्वर्गमें जाकर पूजित होता है ॥ १० ॥ हे बलभद्र ! उस तीर्थमें सब लोकोंके पितामह परमप्रीतिके सहित सदाही निवास करते हैं ॥ ११ ॥ हे रेवतीरमण ! पुष्करमें पहले देवता और ऋषिलोग पवित्र पुण्यके सहित तप करके परमसिद्धिको प्राप्त हुए हैं॥१२॥पितर और देवताओंकी पूजा करनेवाला पुरुष यदि उसमें स्नान करै, तो अश्वमेध यज्ञसे बारह गुणे फलको पाता है ॥ १३ ॥ यदि पुष्करमें रहनेवाले एक ब्राह्मणको भी भोजन करावै,तो उस कर्मके प्रभावसे इसलोक और परलोकमें आनन्द करताहै, साग, लौण, फल या जो कुछ आप खाय, वही ब्राह्मणको श्रद्धा सहित खिलावे, उसी कर्मके फलसे बुद्धिमान् पुरुष अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ हे राम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, या शूद्र, जो कोई हो, उस तीर्थमें स्नान करके फिर गर्भमें नहीं आता, विशेष करके जो कार्त्तिकी पूर्णमासीको पुष्करमें स्नान करता है उसको अक्षय ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ जो संध्या अथवा प्रातःकालको हाथ जोडकर पुष्करका स्मरण करता है, उसे सब तीर्थ स्पर्श करनेका फल होता है ॥ १६ ॥ चाहै पुरुष हो वा स्त्री हो, उसने जन्मभरमें जो पाप किया है, वह सब पुष्करमें स्नान करतेही

नष्ट होजाता है ॥ १७ ॥ जैसे सब देवताओंमें पहले विष्णु हैं वैसेही सब तीर्थोंमें आदि पुष्कर है ॥ १८ ॥ हे बलदेवजी ! जो पवित्र और इन्द्रियजित् होकर बारह वर्ष पुष्करमें रहै वह सायुज्य मोक्ष पाता है, और ब्रह्मलोकमें वास करता है ॥ १९ ॥ जो सौ वर्षतक अग्निहोत्र करै और जो एक कार्त्तिककी पूर्णमासीको पुष्करमें स्नान करै, उन दोनोंको समानही फल मिलता है ॥ २० ॥ तीन शिखप और तीन पुष्करादि झरने सिद्ध हैं किन्तु इसका कारण हम नहीं जानते ॥ २१ ॥ पुष्करमें जाना, तप करना, दान करना, अत्यन्त कठिन है, जो थोडा भोजन करनेवाला इन्द्रियोंको वशमें करके प्रदक्षिणाके पश्चात् जो बारह दिनतक पुष्करमें रहता है वह जम्बुमार्गमें जाता है. देवता, ऋषि और पितरोंसे सेवित जम्बूमार्गमें जाकर सब काम पाकर अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है ॥ २२ ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलरामजी ! जो पितर और देवताओंकी पूजा करनेवाला अगस्त्यसरमें जाकर तीन रात रहता है, उसे अग्निष्टोमयज्ञका फल होता है ॥२३॥ ॥ २४ ॥ जो शाक और फलोंको खाता है, उसे कुमारभाव प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ हे राम ! वहाँसे लक्ष्मीसे भरेहुए लोकपूजित कण्वमुनिके आश्रममें जाय ॥ २६ ॥ उसका नाम धर्मारण्य है, वह पवित्र स्थान और आदि स्थान है, जहाँ जातेही पुरुष सब पापोंसे छूट जाताहै, वहाँ इन्द्रियजित और अल्पाहारी होकर यदि पितर और देवताओंकी पूजा करे तो सब काम पूर्ण होते हैं, और यज्ञका फल मिलता है ॥ २७ ॥ उसकी प्रदक्षिणा करके ययातिवन नामक तीर्थमें जाय, वहाँ जातेही अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है ॥ २८ ॥ वहांसे अल्पाहारी और जितेन्द्रिय होकर महाकालतीर्थमें जाय, वहाँ करोड तीर्थोंका स्पर्श होनेसे अश्वमेधका फल मिलता है ॥ २९ ॥ आगे धर्म जाननेवाला पुरुष भद्रवटनामक तीर्थमें जाय, यह स्थान पार्वतीनाथ भगवान् महादेवजीका है, और तीनों लोकोंमें विख्यात है ॥ ३० ॥ वहाँ भगवान् शिवजीका दर्शन करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है, और शिवके प्रसादसे गणेशका फल मिलता है ॥ ३१ ॥ लक्ष्मी सहित शत्रुओंसे रहित बुद्धिसे भरा हुआ पुरुषोंमें श्रेष्ठ यात्री वहाँसे चलकर तीनों लोकोंमें विख्यात नर्मदा नदीपर जाय ॥ ३२ ॥ वहाँ देवता और पितरोंका तर्पण करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है ॥ ३३ ॥ आगे ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर दक्षिण समुद्रके तटपर जाय, वहां जानेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है और चढनेको विमान प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ आगे जितेन्द्रिय और जिताहार होकर चर्म्मण्वती (चम्बल) नदीके तटपर जाय, वहाँ जानेसे रंतिदेवकी करी हुई अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है ॥ ३५ ॥ हे बलराम ! वहाँसे हिमाचलके पुत्र अर्बुदमें जाय जहाँ पहले पृथ्वीमें छेदथा, वहाँ तीनों लोकोंमें विख्यात वसिष्ठमुनिका आश्रम है, वहाँ एक रात वास करनेसे हजार गोदानका फल मिलता है ॥ ३६ ॥ हे राम ! यदि जितेन्द्रिय होकर वहाँ पिङ्गतीर्थका स्पर्श करै तो सौ १०० गोदानका फल पावे ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! वहाँसे उत्तम प्रभासतीर्थमें जाय, जहाँ भगवान् अग्नि आपही निवास करते हैं॥ ३८ ॥

हे वीर ! अग्निका सारथी ज्वलन्त जो देवताओंका मुख है, वह वहाँ वास करता है जो मनुष्य पवित्र हो मनको स्थिरकर वहाँ स्नान करै और तीन रात वास करै तो वह अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है ॥ ३९ ॥ वहाँसे सरस्वती और समुद्रके संगमको जाय तो उसे सहस्र गोदानका फल होता है, और स्वर्ग मिलता है ॥ ४० ॥ हे हलधर ! वह तीर्थ अग्निके समान तेजसे भराहुआ है वहाँ मनको स्थिर करके समुद्रमें स्नान करै, फिर तीन दिन वहीं निवास करके पितर और देवताओंका तर्पण करै तो अश्वमेधयज्ञका फल पाता है और चन्द्रमाके समान तेजस्वी होता है ॥ ४१ ॥ हे महाराज ! वहाँसे वरदान तीर्थको जाय, हे बलराम ! विष्णु भगवान्‌ने उसी स्थानमें दुर्वासाको वर दियाथा॥ ४२ ॥ आगे पुरुष जिताहार होकर द्वारकापुरीको जाय वहां पिंडारक तीर्थमें स्नान करै तो बहुत सुवर्ण प्राप्त होता है, हे शत्रुनाशन ! उस तीर्थमें अब भी पद्मके समान एक मुद्रा दिखाई देती है ॥ ४३ ॥ यह परमआश्चर्य है कि, वहाँ त्रिशूल और पद्मके चिह्न दीखते हैं, और वहाँ महादेवजी निवास करते हैं ॥ ४४ ॥ वहाँ सिन्धु और समुद्रके संगममें जाय वहाँ मनको स्थिर करके समुद्रमें स्नान करै और पितर देवता तथा ऋषियोंका तर्पण करै ॥ ४५ ॥ यहाँ स्नान करनेसे अपने तेजसे प्रकाशित वरुणलोक मिलता है ॥ ॥ ४६ ॥ वहाँ शंकुकर्णेश्वर महादेवकी पूजा करनेसे महात्मा लोग कहते हैं कि, अश्वमेधसे दशगुणा फल होता है ॥ ४७ ॥ आगे प्रदक्षिणा करके तीन लोकोंमें विख्यात दमीनामक तीर्थमें जाय, वह सब पापोंका नाश करनेवाला है और वहीं ब्रह्मादिक देवता भगवान् शिवजीकी पूजा करते हैं ॥ ४८ ॥ वहाँ स्नान कर जलपी देवताओंसे वेष्टित शिवजीकी पूजा कर पुरुष जन्मभरके पापोंसे छूट जाता है ॥ ४९ ॥ हे पुरुषसिंह ! इसी स्थानपर सब देवताओंने दमीकी स्तुति की थी, वहाँ स्नान करनेसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ पहले लोककर्त्ता विष्णुने दैत्य और दानवोंको मारकर इसी स्थानपर पवित्रता पाई थी ॥ ५१ ॥ वहाँसे वसुधारा नामक तीर्थको जाय, उसकी सब देवता लोग स्तुति करते हैं, वहाँ जानेहीसे अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ५२ ॥ सावधान और जितेन्द्रिय होकर स्नान करना चाहिये, वहाँ देवता और पितरोंकी तपस्या करनेसे विष्णुलोक मिलता है ॥ ५३ ॥ इस तीर्थमें वसुओंका तडाग है, वहाँ स्नान करनेसे पुरुष वसुओंका प्यारा होजाता है ॥ ५४ ॥ आगे सिंधूत्तम नामक तीर्थमें जाय, वहाँ स्नान करनेसे सब पापोंका नाश और बहुत सुवर्ण मिलता है ॥ ५५ ॥ आगे पवित्र और शीलवान् पुरुष भद्रतुङ्ग नामक तीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है और मोक्ष होती है ॥ ५६ ॥ आगे कुमारिका तीर्थ जो इन्द्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है और जिसकी सिद्धलोग सेवा करते हैं, वहाँ स्नान करनेसे पुरुषको स्वर्ग मिलता है ॥ ५७ ॥ वहाँ सिद्ध सेवित रेणुकातीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे ब्राह्मण चंद्रमाके समान निर्मल होजाता है ॥ ॥ ५८ ॥ आगे जितेन्द्रिय और जिताहार होकर पंचनद तीर्थपर जाय, वहाँ जानेसे पाँच यज्ञका फल प्राप्त होता है, इनके नाम पहले कह चुके हैं ॥ ५९ ॥ वहाँसे उत्तम

भीमा स्थान पर जाय, वहाँ स्नान करनेसे पुरुष देवीका पुत्र होता है और उसका रंग तपेहुए सोनेके समान होजाता है वहाँ जानेसे लाख गोदानका फल होता है ॥ ६० ॥ वहाँसे तीन लोकमें विख्यात श्रीकुण्डतीर्थ पर जाय, वहाँ ब्रह्माको नमस्कार करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है ॥ ६१ ॥ वहाँसे अत्युत्तम विमलातीर्थको जाय, जहाँ अबतक भी सोने और चाँदीके रंगवाली मछली दीखती हैं, वहाँ स्नान करनेसे पुरुषको इन्द्रलोक मिलता है और वह पुरुष सब पापोंसे छूटकर मोक्षको पाता है ॥ ६२ ॥ फिर वितस्तानदीमें जाकर स्नान करै और वहाँ पितर तथा देवताओंका तर्पण करै ॥ ६३ ॥ इस तीर्थमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है ॥ ६४ ॥ हे बलरामजी ! वहाँसे काश्मीर देशको जाय, वहाँ तक्षक नागका वन जो सब पापोंका नाश करनेवाला है उसमें जाकर वितस्तानदीमें स्नान करै, ऐसा करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और सब पापोंसे छूटकर मुक्ति होजाती है ॥ ६५ ॥ वहाँसे तीन लोकोंमें प्रसिद्ध वडवातीर्थमें जाय, यहाँ विधिपूर्वक सायंकालकी संध्यामें स्नान करै, वहाँपर शक्तिके अनुसार भगवान् सूर्यको नैवेद्य दे ॥६६॥ पण्डित लोग कहते हैं कि,पितरोंके लिये वहाँ जो दान किया जाय सो अक्षय होता है ॥ ६७ ॥ हे राम ! गंधर्व, ऋषि, पितृ, देवता, अप्सरा, गुह्यक, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर, किंपुरुष,राक्षस, दैत्य, रुद्र और ब्रह्मा उसी स्थानमें विष्णुका भोग लगाकर विष्णुको प्रसन्न करते हैं॥६८॥ उसी स्थानपर यह सब लोग ऋग्वेदकी सात ऋचा पढकर विष्णुकी स्तुति करते थे और विष्णुने भी उनके ऊपर प्रसन्न होकर उनको वहीं आठ सिद्धियाँ दी थीं ॥ ६९ ॥ और भी उनकी इच्छानुसार अनेक सिद्धियाँ देकर भगवान् विष्णु वहीं अंतर्द्धान होगये थे जैसे मेघोंमें बिजली ॥ ७० ॥ इसी लिये उस तीर्थका नाम सप्तचरु है,वहाँपर सूर्यको नैवेद्य देनेसे लाख गोदान हजार राजसूययज्ञका और हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल होताहै ॥ ७१ ॥ वहाँसे चलकर रुद्रतीर्थको जाय,वहाँ भगवान् महादेवजीकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ७२ ॥ आगे ब्रह्मचारी और सावधान होकर मणिवनतीर्थको जाय, वहाँ एक रात रहनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फलहोताहै ॥ ७३ ॥ वहांसे लोकविख्यात देविकातीर्थमें जाय, वहींपर सब ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे ॥ ७४ ॥ आगे तीन लोकमें विख्यात शूलपाणिरुद्रके स्थानपर जाय, वहाँपर देवता लोग वास करते हैं ॥ ७५ ॥ वहाँ स्नान करके पुरुषको शीघ्रही सिद्धि मिलती है, वहाँ यज्ञ करै और करावै वहाँके फल फूल और जलको छूनेसे पुरुष मरनेके पश्चात् शोचसे रहित होता है, अर्थात् मोक्ष पाताहै ॥ ७६ ॥ देव और ऋषियोंसे सेवित पवित्र देवीका वह स्थान दो कोश चौडा और दश कोश लम्बाहै ॥ ७७ ॥ वहाँसे क्रमके अनुसार दीर्घसत्र तीर्थपर जाय जहाँ ब्रह्मादिक देवता सिद्ध और महाऋषि लोग दीक्षित होकर बडे बडे यज्ञोंको करते हैं ॥ ७८ ॥ दीर्घसत्र तीर्थमें जानेहीसे राजसूय और अश्वमेधका फल मिलताहै, आगे जिताहार नियमधारी पुरुष विनशन तीर्थमें जाय जहां मेरुके शिखरपर सरस्वती अंतर्द्धान हुई है ॥ ७९ ॥ आगे चमसोद्भेद शिवोद्भेद और नागोद्भेद तीर्थ दीखते

हैं, वहां चमसोद्भेद तीर्थमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है ॥८०॥ शिवोद्भेदमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है और नागोद्भेदमें स्नान करनेसे पुरुषको नागलोक मिलता है ॥ ८१ ॥ आगे हम भीशस्यान तीर्थमें जाय, जहां कार्त्तिकीमें ईश्वर-स्वरूप पुष्करधारी दीखते हैं ॥ ८२ ॥ वह लोग प्रतिवर्ष सरस्वतीमें आते हैं, वहां स्नान करनेसे पुरुष सदा दिनमें चंद्रमाके समान प्रकाशित होता है ॥ ८३ ॥ वहांसे देवता और पितरोंकी पूजा करनेवाला नियमधारी पुरुष कुमारकोटी तीर्थमें जाकर स्नान करै, वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है और उसके कुलकाभी उद्धार होजाता है ॥ ॥ ८४ ॥ वहाँसे सावधान होकर रुद्रकोटि तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ पहले मुनियोंका समूह शिवके दर्शनकी इच्छासे आया था और उन्होंने वहाँ अत्यन्त प्रसन्न होकर हम पहले शिवजीका दर्शन करैंगे, हम शिवजीका दर्शन करैंगे, ऐसा विवाद किया था और वे लोग ऐसाही विवाद करते हुए आगे चले, तब योगेश्वर शिवजीनेभी महात्मा ऋषियोंके क्रोधको प्रकाश करनेके लिये सब ऋषियोंके आगे अपने अनेक २ स्वरूप बनाते और उनको सब ऋषि अलग अलग देखकर कहनेलगे कि, शिवजीको हमने पहले देखा ॥ ॥ ८५ ॥ अनन्तर उन महात्मा मुनियोंको परमभक्तिसे शिव प्रसन्न हुए और ऐसा वर-दान दिया कि, आजसे तुम लोगोंका धर्म बढेगा ॥ ८६ ॥ उस रुद्रकोटि तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुष पवित्र होता है और अश्वमेधका फल मिलता है और कुलका भी उद्धार होजाता है ॥ ८७ ॥ वहाँसे लोकविख्यात सरस्वतीके संगमको जाय, जहाँ चैत्र शुक्र चतुर्दशीके दिन विष्णुकी उपासना करनेके लिये ब्रह्मादिक देवता और तपस्वी ऋषिलोग आते हैं ॥ ८८ ॥ वहाँ स्नान करके पुरुष बहुत सुवर्ण पाता है और ब्रह्मलोकको पाताहै और सब पापोंसे शुद्ध होजाता है ॥ ८९ ॥ वहाँ ऋषियोंके यज्ञ समाप्त हुएथे, वहाँ रहनेसे हजार गोदानका फल मिलता है ॥ ९०॥ इसके उपरान्त ऋषि बोले कि, हे बलराम ! वहाँसे प्रशंसित कुरुक्षेत्रको जाय जहाँके दर्शनहीसे सब प्राणी पापोंसे छूट जाते हैं जो कोई सदा यही करताहै कि, मैं कुरुक्षेत्रको जाऊँगा, वहाँ रहूँगा, वह सब पापोंसे छूट जाता है, वायुसे उड़तीहुई वहाँकी धूरिभी यदि पापीके शरीरमें लगजाय तो सब पापोंसे छुडाकर परमगतिको पहुँचाती है ॥९१ ॥ सरस्वतीसे दक्षिण दृषद्वतीसे उत्तर कुरुक्षेत्रमें जो पुरुष वसते हैं वह सब स्वर्गवासी हैं ॥ ९२ ॥ वहाँ धीर पुरुष एक महीने रहै, जहाँ ब्रह्मादिक देवता ऋषि, सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष और सर्प लोग निवास करते हैं ॥ ९३ ॥ जहाँसे वह लोग महापवित्र ब्रह्मक्षेत्रको जाते हैं जो मनसेभी कुरुक्षेत्रकी इच्छा करते हैं, वह सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मलोकको चलेजाते हैं ॥ ९४ ॥ हे राम ! श्रद्धायुक्त कुरुक्षेत्रमें जानेसे पुरुषको अश्वमेध और राजसूय यज्ञका फल होता है, वहाँ मचकुक नामक यक्ष द्वारपालको नमस्कार करनेसे हजार गोदानका फल होता है ॥ ९५ ॥ हे वीर ! वहाँसे अतिउत्तम सतत नामक विष्णुके स्थानको जाय, वहाँ सदाही नारायण वास करते हैं, वहाँ तीन लोकके कर्त्ता विष्णुको

प्रणाम करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है, और विष्णुलोकभी प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ वहाँसे चलकर तीनों लोकमें विख्यात पारिप्लव नामक तीर्थमें जाय वहाँ जानेसे अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ९७ ॥ हे बलराम ! वहाँसे पृथ्वी तीर्थमें जाकर हजार गौदानका फल लाभ करै ॥ ९८ ॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष शालकनी तीर्थमें जाय वहाँ दशाश्वमेधमें स्नान करनेसे दश अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होताहै ॥ ९९ ॥ आगे सर्पोके उत्तम तीर्थ नागदेवीमें जाय वहाँ जानेसे अग्निष्टोमका फल और नागलोक मिलता है ॥ १०० ॥ वहाँसे तरन्तु नामक द्वारपाल तीर्थको जाय वहाँ एक रात रहनेसे हजार गौदानका फल मिलता है ॥ १०१ ॥ वहाँसे पञ्चनद (पञ्जाब) देशमें जाकर कोटितीर्थमें स्नान करै वहाँ अश्वमेधका फल होताहै ॥ १०२ ॥ अश्विनीकुमार तीर्थमें जानेसे पुरुष रूपवान् होजाताहै, वहाँसे उत्तम वाराहतीर्थमें जाय, जहाँ वाराहरूपधारी विष्णुने वास कियाथा, हे राम ! वहाँ स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होताहै ॥ १०३ ॥ वहाँसे जयन्ततीर्थमें जाकर सोमतीर्थका स्नान करै वहाँसे पुरुषको राजसूययज्ञका फल मिलता है और हंसतीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल होताहै ॥ १०४ ॥ हे बलभद्र ! आगे तीर्थसेवी पुरुष कृतशौच तीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे कमलाको प्राप्त होता है और पवित्र होजाता है ॥ १०५ ॥ वहाँसे महात्मा शिव मुञ्जवट नामक स्थानको जाय, वहाँ एक रात रहनेसे गणेशका पद मिलता है और वहीं विख्यात यक्षिणीतीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष सब कामोंको प्राप्त होता है ॥ १०६ ॥ हे कालिन्दीदमन ! वही कुरुक्षेत्रका द्वार है, आगे प्रदक्षिणा करके वहाँ स्नान करै, फिर पुष्करसम्मिती तीर्थमें स्नान करै वहाँ पितर और देवताओंका तर्पण करै, वहीं जमदग्निके पुत्र महात्मा परशुरामजीने भारी काम कियाथा हे शीरपाणी ! वहाँ जानेसे पुरुष कृतकृत्य होजाता है, और अश्वमेधका फल मिलता है ॥ १०७ ॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष सावधान होकर रामसरमें स्नान करै, तेजस्वी परशुरामने वहीं शीघ्रतासहित क्षत्रियोंको मारकर पांच तडाग बनाये हैं, यह बात विदित है कि, उन्हीं तडागोंको परशुरामने रुधिरसे भरकर अपने पितर और पूर्व पितरोंका तर्पण कियाथा तब उनके पितर उनसे प्रसन्न होकर बोले कि हे राम ! हे महाभाग! हे भार्गव ! हे विभो ! हे महातेजस्वी ! हम तुम्हारे इस पितृभक्ति और पराक्रमसे बहुत प्रसन्न हुए ॥ १०८ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारा कल्याण हो और जो तुम्हारी इच्छा हो सो वरदान माँगो ॥ १०९ ॥ हे कामपाल ! शस्त्र चलानेवालोंमें श्रेष्ठ परशुरामने आकाशमें खडे हुए पितरोंके ऐसे वचन सुन हाथ जोडकर कहा कि, यदि आप लोग मुझसे प्रसन्न हुए हैं और मेरे ऊपर कृपा करना चाहते हैं, तो मैं आपकी प्रसन्नता चाहताहूँ और पुनः आप लोगोंके तर्पण करनेकी इच्छा रखता हूँ और यह भी वरदान माँगताहूँ कि, मैंने जो क्रोधमें भरकर क्षत्रियोंका नाश किया है, आप लोगोंकी कृपासे उस पापसे छूट जाऊँ और मेरे यह तालाब जगद्विख्यात तीर्थ होजायँ, परशुरामके ऐसे उत्तम वचन सुनकर पितरलोग प्रसन्न होकर आनन्दसहित बोले कि, हमारे आशीर्वादसे तुम्हारा तप बढै,

और तुमने क्रोधमें भरकर जो क्षत्रियोंका नाश किया है, तुम उस पापसे छूट गये, क्यों कि वे लोग अपने कर्मसे मरे हैं ॥ ११० ॥ और तुम्हारे यह तालाव निस्सन्देह तीर्थ होजायँगे, जो कोई तुम्हारे इन तीर्थोंमें स्नान करके अपने पितरोंका तर्पण करेगा, उसको पितर लोग प्रसन्न होकर जगत्में दुर्लभ कामनाओंको देंगे और सनातन स्वर्गमें पहुँचावैंगे हे राम ! पितरलोग इसप्रकार परशुरामको वरदान देकर रामसे वार्त्तालापकर वहीं अंतर्द्धान होगये ॥ १११ ॥ महात्मा भृगुवंशी परशुरामको तीर्थमें इसप्रकार स्नान करके ब्रह्मचारी और व्रतधारी हो परशुरामकी पूजाकर पुरुष बहुत सुवर्ण प्राप्त करता है॥११२॥ ऋषि बोले कि, हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलरामजी ! वहाँसे वंशमूलक तीर्थमें जाय वहाँ स्नान करनेसे वंशका उद्धार होताहै, वहांसे यशोधन तीर्थमें जाय उसमें स्नान करनेसे निस्संदेही शरीर शुद्ध होजातहै और शरीर शुद्ध होनेसे उत्तम और शुभ लोककी प्राप्ति होती है ॥ ११३ ॥ हे धर्मज्ञ ! वहांसे तीन लोकविख्यात लोकोद्धार तीर्थमें जाय, जहाँ पहले जगत्कर्त्ता विष्णुने लोकोंको धारण कियाथा ॥ ११४ ॥ हे राम ! उस उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुष अपने लोगोंका उद्धार करता है, वहांसे मन स्थिर करके श्रीतीर्थमें स्नान करै वहां देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे उत्तम लक्ष्मी मिलती है, आगे ब्रह्मचारी हो मनको स्थिरकर कपिलातीर्थमें जाय, वहां स्नान करके पितर और देवताओंकी पूजा करै तो सहस्र कपिला गौके दानोंका फल मिलता है फिर मन स्थिर करके सूर्य तीर्थमें जाय, वहां व्रत करके पितर और देवताओंकी पूजा करै, इससे अग्निष्टोम यज्ञका फल और सूर्यलोक मिलता है ॥ ११५ ॥ आगे गोभवन तीर्थमें जाकर तीर्थसेवी पुरुष क्रमसे स्नान करै तो हजार गौदानका फल पाता है ॥ ११६ ॥ वहाँसे तीर्थसेवी पुरुष शाकम्भरी तीर्थको जाय वहाँ देवीके स्थानमें स्नान करनेसे उत्तम रूप मिलताहै ॥ ११७ ॥ वहाँसे द्वारपाल मरन्तक स्थानको जाय यह तीर्थ सरस्वतीमें महात्मा यक्षराजका स्थानहै ॥ ११८ ॥ हे संकर्षण ! उसमें स्नान करनेसे पुरुषको अग्निष्टोम यज्ञका फल होताहै वहाँसे उत्तम पुरुष ब्रह्मावर्त्त-विठूर तीर्थको जाय, वहां स्नान करनेसे पुरुषको ब्रह्मलोक मिलता है, वहांसे उत्तम सुतीर्थको जाय, वहांपर सदाही पितर और देवता निवास करते हैं ॥ ॥ ११९ ॥ पितर और देवताओंका पूजक पुरुष वहां स्नान करै तो अश्वमेधयज्ञका फल और पितरलोक मिलता है ॥ १२० ॥ अम्बुवतीके बीचमें स्नान करके काशीश्वर तीर्थमें स्नान करै तो सब दुःखोंसे छूटकर ब्रह्मलोकको जाता है, हे बलदेव ! वहीं मातृतीर्थमें स्नान करना चाहिये ॥ १२१ ॥ उसमें स्नान करनेसे संतान और बहुत धन बढता है, आगे नियमधारी जिताहारी पुरुष शीतवनमें जाय उसमें महातीर्थ है, जो और पुरुषोंको दुर्लभ है, वह जातेही हुये देखनेमात्रसे पुरुषको पवित्र करदेता है और उसमें बाल धोनेसे पुरुष पवित्र होता है ॥ १२२ ॥ हे बलरामजी ! वहाँ जो तीर्थ है, उसका नाम स्वाबिल्लोमाप है, उसमें विद्वान् तीर्थपरायण मुनि लोग स्नान करके परम प्रसन्न होते हैं॥१२३॥ पवित्र आत्मावाले मुनीश्वर उस तीर्थमें प्राणायामोंके द्वारा अपने रुओंको दूर करके पवित्र

हो मोक्ष पाते हैं, हे पुरुषसिंह ! उसीही स्थानमें दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष मोक्ष पाते हैं ॥ १२४ ॥ वहाँसे चलकर विख्यात मानसतीर्थमें जाय, जहाँ व्याधका शर लगनेसे तैरतेहुये हरिण मनुष्य होगये थे और उस तीर्थमें ब्रह्मचारी पुरुष सावधानचित्त होकर स्नान करनेसे सब पापोंसे छूटकर स्वर्गमें जाता है ॥ १२५ ॥ मानसतीर्थसे एककोश पूर्वकी ओर सिद्धसेवित आपगा नाम नदी है वहाँ जाकर जो पुरुष देवता और पितरोंका श्राद्ध करके सवई खाता है उसे बहुत फल होता है, वहां एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे करोड ब्राह्मणोंका फल होता है, वहां स्नान देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे और एक रात रहनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है ॥ १२६ ॥ वहांसे चलकर ब्रह्मोदुम्बर नामक कमलयोनि ब्रह्माके उत्तम स्थानपर जाय, वहां सप्त-ऋषियोंके और महात्मा कपिलके कुण्डमें स्नान करके पवित्र हो मनको स्थिरकर ब्रह्माके दर्शन करने चाहिये, उनका दर्शन करनेसे सब पापोंसे छूट ब्रह्मलोक मिलता है ॥ १२७ ॥ वहांसे जाकर दुर्लभ कपिस्थल कुण्डमें स्नान करे तो पाप जलकर बिलाय जाते हैं ॥ १२८ ॥ वहांसे चलकर लोकविख्यात शरकतीर्थ पर जाय वहां कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिवका दर्शन करनेसे सब मनोरथोंको प्राप्तकर स्वर्गमें जाता है ॥ १२९ ॥ हे बलराम ! स्वर्गतीर्थमें तीनकरोड तीर्थ इकट्ठे हैं वहां रुद्रकोटि कुएँ और तालावोंमें स्नान करना चाहिये ॥ १३० ॥ वहीं इलास्पद नामक तीर्थहै वहां स्नान कर देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती बरन् वाजपेय यज्ञका फल मिलता है ॥ १३१ ॥ किम्हान और किञ्जस्य नामक तीर्थमें स्नान करनेसे अनन्त जप और दानका फल मिलता है ॥ १३२ ॥ जितेन्द्रिय श्रद्धावान् पुरुषको स्पर्श करके कलशी तीर्थमें स्नान करै, तो अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है ॥ १३३ ॥ शरक-तीर्थसे पूर्वकी ओर महात्मा नारदका तीर्थ है, जिसका प्रसिद्धनाम अम्बाजन्म है, उस तीर्थमें स्नान करके प्राण छोडनेसे नारदकी आज्ञासे पुरुष उत्तम लोकोंको जाता है, शुक्लपक्षकी दशमीको पुण्डरीक तीर्थमें जाकर स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल होता है ॥ १३४ ॥ हे राम ! वहांसे त्रिविष्टप नामक लोकविख्यात तीर्थको जाय वहाँ पापनाशिनी तारिणी नामक प्रसिद्ध नदी बहती है, उसमें स्नान करके शूलधारी भगवान् भूतनाथ (शिव) की पूजा करनेसे सब पापोंसे छूटकर पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥ वहाँसे उत्तम फलके वनको जाय वहाँ सदाही देवतालोग रहते हैं, वे लोग सहस्रों वर्षतक महातप करते हैं, वहाँ दृषद्वती नदीमें स्नान करके देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलताहै, हे बलदेवजी ! यह सब देवताओंके तीर्थ हैं ॥ १३६ ॥ आगे पाणीखात तीर्थमें स्नान करके पितर और देवता-ओंकी पूजा करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल मिलताहै ॥ १३७ ॥ वहाँ स्नान करनेसे अग्निष्टोम अतिरात्र और राजसूय यज्ञका फल और ऋषिलोक मिलता है ॥ १३८ ॥ वहाँसे उत्तम मिश्रकतीर्थमें जाय, हे राम ! हमने सुनाहै कि, महात्मा व्यासने ब्राह्मणोंके

लिये उस तीर्थमें तीर्थोंको मिला दिया है,जिस पुरुषने मिश्रकमें स्नान किया, मानों उसने सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया, वहाँसे चलकर नियमधारी जिताहारी पुरुष व्यासके वनमें जाय वहाँ मनोजव तीर्थमें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल होता है ॥ १३९ ॥ आगे पवित्रपुरुष मधुवटी तीथमें जाकर देवीतीर्थमें स्नानकर वहाँ देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे हजार गौदानके फलको पाता है ॥ १४० ॥ जो दृषद्वती और कौशिकीके संगममें आहारको जीतकर स्नान करता है, वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १४१ ॥ आगे व्यासस्थली नामक तीर्थमें जाय जहाँ बुद्धिमान् व्यासने पुत्रशोकसे व्याकुल होकर शरीर छोडनेकी इच्छा की थी और देवताओंने पुनः उठाया था, हे बलराम ! उस स्थानमें जानेसे हजार गौदानका फल होता है ॥ १४२ ॥ आगे त्रिलोचन नामक कुएँपर जाकर तिलदान करनेसे सब ऋणोंसे छूटकर मोक्षको प्राप्त करताहै और वेदी तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको हजार गौदानका फल मिलता है ॥ १४३ ॥ हे पुरुषसिंह ! आगे हय और मुदितनाम दो तीर्थ लोकविख्यात हैं, उनमें स्नान करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है आगे मृगधूम नामक लोकविख्यात तीर्थमें जाय ॥ १४४ ॥ वहां गंगामें स्नान और भगवान् महादेवकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है ॥ १४५ ॥ देवीके तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको हजार गौदानका फल मिलता है, वहांसे तीनों लोकमें विख्यात वामनक तीर्थमें जाय,वहां विष्णुपदमें स्नान करके जो पुरुष वामनकी पूजा करता है वह सब पापोंसे शुद्ध होकर विष्णुलोकको जाता है और कुलम्बन तीर्थमें स्नान करनेसे कुल पवित्र होताहै ॥ १४६ ॥ आगे मरुतोंके पवनतडागमें स्नान करनेसे विष्णुलोक मिलताहै देवताओंके तीर्थमें स्नान करके इन्द्रकी पूजा करनेसे देवताओंके प्रतापसे स्वर्गलोक मिलता है ॥ १४७ ॥ शालिहोत्र और शालिसूर्यनामक तीर्थोंमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे हजार गोदानका फल होता है ॥ १४८ ॥ हे बलरामजी ! सरस्वतीके श्रीकुंजनामक तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अग्निहोत्र यज्ञका फल होता है ॥ १४९ ॥ वहाँसे नैमिषारण्यको जाय वहाँ नैमिषारण्यवासी तपस्वी लोग तीर्थयात्राके अभिप्रायसे पहले कुरुक्षेत्रको जाते थे, जिस कुंजमें ऋषियोंका बडा संतोष प्राप्त होता है उस कुंजमें स्नान करनेसे मनुष्यको अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है, वहांसे कन्यातीर्थपर जाना चाहिये, कन्यातीर्थमें स्नान करनेसे दो हजार गौदानका फल मिलता है ॥ १५० ॥ वहांसे ब्रह्माके तीर्थपर जाय, वरनावरमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्राह्मण होजाता है शुद्धात्मा ब्राह्मण परमगतिको पाताहै वहांसे सोमतीर्थको जाय सोमतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य चन्द्रलोकमें जाता है ॥ १५१ ॥ वहांसे सप्तसारस्वत तीर्थमें जाय, जहां जगत्प्रसिद्ध महर्षि मंकणक नामक ऋषि रहते हैं ॥ १५२ ॥ पहले समयमें मङ्कणक ऋषिके हाथमें कुशका काँटा लगनेसे शाकका रस निकला था वह ऋषि शाकरसको देखकर बडा प्रसन्न हुआ और नाचने लगा उसे नाचता देखकर चर और अचर जो कुछ वहाँ पर थे सब नाचने लगे, तब ब्रह्मादिक देवताओंने भगवान् महादेवजीसे विनती करी कि, महाराज ! आप ऐसा उपाय

कीजिये कि, जिससे वह ऋषि न नाचै, तब महादेवजी उस नाचते हुए ऋषिके पास आये और देवतोंकी हितकामनाके कारण ऋषिसे बोले कि, हे धर्मज्ञ महर्षि ! तुम किसलिये नाचते हो ? ऐसा कौनसा तुमको आनन्द मिला है, ऋषि बोले धर्म मार्गमें स्थित हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुम क्या नहीं देखते हो कि, मेरे हाथसे शाकका रस निकला, जिसको देखकर मैं बडे आनन्दके साथ नाच रहाहूं, तब हँसकर महादेवजी उस ऋषिसे बोले कि, हे ब्राह्मण ! मैं तो इसे देखकर कुछ आश्चर्य नहीं मानता, हे राम ! ऐसा कहकर बुद्धिमान् महादेवजीने अपनी ऊँगलीसे अपने अँगूठेको काटा, काटते ही अंगूठेमेंसे बर्फके समान सफेद भस्म निकला,उसको देखकर वह ब्राह्मण अत्यन्त लज्जित हुआ, और शिवजीके चरणोंमें गिरकर कहने लगा कि, मैं भद्रसे उत्तम किसीको नहीं जानता, देव और दानवोंकी तुम्हीं गतिहो, हे शूलधारी ! तुम्हींने इस चराचर जगत्को बनाया है, और तुम्हीं इस जगत्को प्रलयके समय नाश करते हो, तुमको देवतालोग भी नहीं जान सकते, फिर भला मेरी तो सामर्थ्य ही क्या है ?॥१५३॥हे पापरहित ! सब ब्रह्मादिक देवता तुम्हींको देखते हैं, हे लोकेश ! तुमहीं सब लोकोंके कर्त्ता करानेवाले और सर्व्वरूपहो, तुम्हारेही आश्रयसे सब देवतालोग भयरहित होकर आनन्द करते हैं, इसप्रकार स्तुतिकर ऋषि महादेवजीसे बोले कि, हे महादेव ! तुम्हारी कृपासे मेरा तप नष्ट न हो ॥ १५४ ॥ ब्रह्मर्षिके बचन सुन भोलानाथ (शंकर) प्रसन्न होकर बोले कि, हे ब्राह्मण ! हमारे प्रसादसे तुम्हारा तप सहस्र गुण बढै. हे महामुने ! हम आजसे तुम्हारे सहित इस आश्रममें वास करेंगे, जो पुरुष स्वप्नसारस्वत तीर्थमें स्नान करके मेरी पूजा करेंगे, उनको इसलोक और परलोकमें कोइ वस्तु दुर्लभ न होगी, और वह लोग निस्संदेह सरस्वतीके लोकमें जायँगे ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान होगये ॥ १५५ ॥ अब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार वर्णनकर ऋषि फिर बोले कि, हे बलराम ! वहाँसे तीनलोक विख्यात औशनस तीर्थमें जाय, वहाँसे शुक्रके हितकी इच्छासे ब्रह्मादिक देवता, तपस्वी, ऋषि और भगवान् कार्त्तिकेय नित्य नित्य संध्यामें निवास करते हैं ॥ १५६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! वहाँसे सब पापनाशन कपालमोचन तीर्थमें जाय, वहाँ स्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं, वहाँसे अग्नितीर्थमें जाय वहाँ स्नान करनेसे अग्निलोक मिलता है, और कुलका उद्धार होता है ॥ १५७ ॥ वहीं विश्वामित्रका तीर्थहै, उसमें स्नान करनेसे पुरुष ब्राह्मण होजाताहै, ब्राह्मणके यहाँ जन्मलेकर पवित्र हो मनको स्थिरकर उसमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोकमें जाता है और निस्संदेह सात पुरुषोंको पवित्र करता है ॥ १५८ ॥ वहाँसे तीन लोकविख्यात कार्त्तिकेयके पृथूदक तीर्थमें जाय वहाँ स्नान कर पितर और देवताओंकी पूजा करै, पुरुष या स्त्रीने जाने या विना जाने मनुष्यबुद्धिसे जो कुछ पाप किया हो, वह सब वहाँ स्नान करनेहीसे नष्ट होजाताहै, उसमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और स्वर्गलोक मिलताहै ॥ १५९॥ ऋषियोंने कुरुक्षेत्रको पवित्र कहाहै, कुरुक्षेत्रसे सरस्वती, सरस्वतीसे तीर्थ और तीर्थोंसेभी

पृथूदक तीर्थ पवित्र है ॥ १६० ॥ जो जप करता हुआ उत्तम पृथूदक तीर्थमें प्राण छोडता है, वह मरनेके दुःखको फिर नहीं भोगता ॥ १६१ ॥ सनत्कुमार शक्ति और महात्मा व्यासने ऐसाही कहा है, इसलिये नियमधारी पुरुष पृथूदक तीर्थमें जाय, हे राम! पृथूदकसे श्रेष्ठ तीर्थ कोई नहीं है, वह बुद्धिको बढाताहै और पवित्र है ॥ १६२ ॥ महात्मालोगोंने कहा है कि, पृथूदक तीर्थमें स्नान करनेसे पापी पुरुष भी स्वर्गको चले जाते हैं, वहीं मधुस्रव नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे हजार गौदानका फल मिलता है ॥ ॥ १६३ ॥ वहाँसे क्रमानुसार पवित्र लोकविख्यात सरस्वती और असणके संगममें जाय, वहाँ तीन दिन व्रत करके रहनेसे पुरुष ब्रह्महत्यासे छूटजाता है, तथा अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है, वहाँ स्नान करनेसे पुरुषके सात पुरुष पवित्र होते हैं ॥ १६४ ॥ हे रेवतीरमण ! वहीं अर्द्धकीलनामक तीर्थ है, उस तीर्थको ब्राह्मणोंके हितकी इच्छासे दर्भीने बनायाथा; वहाँ व्रत और उपनयन अथवा उपवास करनेसे कृपा और मंत्रोंसे युक्त होनेसे पुरुष ब्राह्मण होजाताहै और जो मंत्र और क्रियासे हीन पुरुष भी हो वह भी वहाँ स्नान करनेसे चीर्णव्रती और विद्वान् होजाते हैं, यह वृद्धपुरुषोंका देखाहुआ है, इस तीर्थमें दर्भीने चारों समुद्र लाकर मिला दिये हैं, वहाँ स्नान करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और उस पुरुषको चार हजार गौदानका फल होताहै ॥१६५॥ हे वीर ! वह शतसहस्र नामक तीर्थको जाय वहाँ लोकविख्यात शत और सहस्रक नामक दो तीर्थ हैं, उन दोनोंमेंही स्नान करनेसे हजार गौदानका फल होता है, वहाँ जो कुछ दान वा व्रत करते हैं, वह हजार गुणा होजातेहैं ॥ १६६ ॥ वहाँसे उत्तम रेवाके तीर्थमें जाय, वहाँ पितर और देवताओंकी पूजा करनेवाला पुरुष स्नान करै तो समस्त पापोंसे शुद्ध होकर अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होताहै ॥ १६७ ॥ आगे क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर विमोचन तीर्थका स्पर्श करै, वहाँ स्नान करनेसे दान लेनेके सब पाप छूट जाते हैं ॥ १६८ ॥ आगे ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर पञ्चवटी तीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे बहुत पुण्य होता है और स्वर्गलोक मिलताहै, जहाँ साक्षात् योगेश्वर वृषवाहन भगवान् महादेवजी निवास करते हैं, उनकी पूजा करनेसे और वहाँ जानेहीसे पुरुष सिद्ध होजाता है ॥ १६९ ॥ आगे अपने तेजसे प्रकाशित तैजस और वारुणतीर्थमें जाय जहाँ ब्रह्मादिक देवता और तपोधन मुनियोंने मिलकर देवताओंके सेनापति स्वामिकार्त्तिकका अभिषेक किया था, तैजसतीर्थसे पूर्वकी ओर कुरुतीर्थ है, उसमें ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर स्नान करनेसे सब पापोंसे शुद्धहो पुरुष ब्रह्मलोकको जाता है ॥ १७० ॥ आगे नियमधारी और जिताहारी होकर स्वर्गद्वारतीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे स्वर्गलोक और ब्रह्मलोकमें जाता है, हे बलराम ! वहाँसे तीर्थसेवी पुरुष अनरक तीर्थको जाय वहाँ स्नान करनेसे पुरुष दुर्गतिमें नहीं पडता, वहाँ साक्षात् ब्रह्मा नारायणादि सब देवताओंके सहित निवास करतेहैं ॥ १७१ ॥ वहीं पार्वतीका स्थान है, उनके दर्शन करनेसे पुरुष दुर्गतिमें नहीं पडता और वहीं साक्षात् पार्वतीनाथ शिवके दर्शन करनेसे पुरुष सब पापोंसे

छूट जाताहै, वहाँसे जाकर पद्मनाभ नारायणके दर्शन करै, उनके दर्शन करनेसे पुरुष प्रकाशमान होकर विष्णुलोकको जाताहै ॥ १७२ ॥ आगे सब देवताओंके तीर्थमें स्नान करै, ऐसा करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट चंद्रमाके समान प्रकाशित होताहै, वहाँसे तीर्थ-सेवी पुरुष स्वस्तिपुरको जाय, वहाँ प्रदक्षिणा करनेसे हजार गौदानका फल होता है ॥ ॥ १७३ ॥ आगे पवनतीर्थमें जाय, वहाँ जाकर पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे अग्निष्टोमयज्ञका फल होताहै, हे वीर ! वहीं गङ्गाहृद नामक कुआँ है, उसमें तीन करोड तीर्थ पडेहैं ॥ १७४ ॥ ऋषीश्वर बोले कि, हे रेवतीरमण ! उसमें स्नान करनेसे पुरुषको स्वर्गलोक प्राप्त होताहै ॥ १७५ ॥ आगे नदियोंमें स्नान करै और भगवान् महादेवजीकी पूजा करनेसे गणेशका पद मिलता है, और कुलका उद्धार होताहै, आगे तीन लोकमें विख्यात स्थाणुकटको जाय, वहाँ स्नान करनेसे और एक रात्रि रहनेसे शिवलोक मिलता है ॥ १७६ ॥ आगे बदरीपाचन तीर्थमें जाय, वहाँ वशिष्ठ मुनिका आश्रम है वहाँ तीन दिन व्रत करके बेर खाना चाहिये, जो पुरुष बारह वर्ष निरंतर बेरही खातारहे । उसको उतनाही फल होताहै जितना उस तीर्थमें तीन दिन व्रत करनेसे होता है, वहाँ रहकर जो सत्य बोले और नियमधारी होय तो ब्रह्मलोक मिलता है ॥ १७७ ॥ वहाँसे तीन लोक विख्यात तेजराशि महात्मा सूर्यके स्थान पराजयको जाय वहां स्नानकर सूर्यकी पूजा करनेसे पुरुष सूर्यलोकको जाताहै और अपने कुलका उद्धार करता है, तीर्थसेवी पुरुष आगे जाकर सोमतीर्थमें स्नान करै उसमें स्नान करनेसे पुरुषको निस्संदेह चन्द्रलोक मिलता है ॥ १७८ ॥ वहाँसे दधीचि मुनिके आश्रमपर जाय यह तीर्थ तीन लोकमें विख्यात है और परम पवित्रहै, इसी तीर्थमें स्नान करनसे तपस्याके समुद्र अंगिरा मुनि विद्वान् होगयेथे उस तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है, और निःसंदेह सारस्वत गति प्राप्त होती है ॥ १७९ ॥ वहाँसे नियमधारी ब्रह्मचारी जिताहारी पुरुष कन्यातीर्थमें जाकर तीन दिन व्रत करै, ऐसा करनेसे दिव्य सौ कन्या और स्वर्गलोक मिलताहै ॥ १८० ॥ वहाँसे सन्निहिती तीर्थको जाय, जहाँ बहुत पुण्यवान् ब्रह्मादिक देवता और तपोधन मुनि महीने महीने आते हैं, चन्द्रग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेसे सौ अश्वमेधयज्ञोंका फल होताहै और सब इच्छा पूर्ण होतीहै ॥ ॥ १८१ ॥ हे महात्मा बलरामजी ! जितने पृथ्वी और आकाशमें तीर्थहैं, वह सब नदी, कुण्ड, तडाग, झरने, तलैया और बावडी, तथा और तीर्थ भी निःसंदेह अमावसके दिन प्रतिमास कुरुक्षेत्रमें आते हैं, इसीलिये कुरुक्षेत्रका दूसरा नाम सन्निहितीहै, पुरुष उसमें स्नान कर और जल पी ब्रह्मलोकमें जाताहै ॥ १८२ ॥ सूर्यग्रहणकी अमावसमें जो कोई वहाँ श्राद्ध करताहै, उसका फल सुनो, उत्तम रीतिसे कियेहुए हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल उस पुरुषको केवल स्नान करनेसे मिलताहै और पुरुष वा स्त्रीने जो कुछ पाप कियाहो, सो निःसंदेह स्नान करनेसे नष्ट होजाताहै और पद्मके रङ्गवाले विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकको जाताहै आगे द्वारपाल मुचुकुन्द नामक यक्षको प्रणाम करके कोटि-

तीर्थमें स्नान करनेसे बहुत सुवर्ण मिलताहै॥१८३॥१८४॥ हे राम! वहीं गङ्गाह्रद नामक तीर्थ है, उसमें धर्म जाननेवाला ब्रह्मचारी पुरुष सावधान होकर स्नान करै उसमें स्नान करनेसे पुरुषको राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल मिलताहै ॥ १८५ ॥ पृथ्वीमें नैमिषारण्य, आकाशमें पुष्कर और कुरुक्षेत्र तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ है, कुरुक्षेत्रकी धूल जो पवनसे उडती है, उससे भी महापापी पुरुष मोक्ष पाताहै ॥१८६॥ सरस्वतीके दक्षिण और दृषद्वतीके उत्तर कुरुक्षेत्रमें जो पुरुष निवास करते हैं, वह स्वर्गवासी हैं जो पुरुष एक वार भी कहै कि, मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा और वहाँ निवास करूंगा, वह सब पापोंसे छूट जाताहै ॥१८७॥ कुरुक्षेत्र पवित्र ऋषियोंसे सेवित और ब्रह्मवेदी है, उसमें जो पुरुष वास करते हैं, वह शोचने योग्य नहीं हैं ॥ १८८ ॥ तरन्तुक परशुरामके तडाग और मचकुक तीर्थका जो बीच है, उसी पवित्र भूमिका नाम कुरुक्षेत्र है और इसीको समन्तपञ्चक भी कहतेहैं, यह कमलयोनि महात्मा ब्रह्माजीकी उत्तरवेदी है ॥ १८९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् इसप्रकार कुरुक्षेत्रादि तीर्थोंकी व्याख्याकर ऋषि फिर बोले कि हे बलराम ! वहाँसे उत्तर तीर्थपर जाय, जहाँ महाभाग धर्म्मने उग्रतपको कियाथा और उन्होंनेही इस पवित्र तीर्थको अपने नामसे विख्यात किया है, वहाँ स्नान करनेसे धर्मवान् और सावधान पुरुष अपने सात कुलको पवित्र करता है ॥ १९० ॥ वहाँसे ज्ञानपावनतीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल और मुनिलोक मिलता है, वहाँसे सौगंधिक वनको जाय, जहाँ ब्रह्मादिक देवता तपोधन ऋषि, सिद्ध, चारण, गंधर्व, किन्नर और सर्वलोग निवास करते हैं, पुरुष वहाँ प्रवेश करतेही सब पापोंसे छूट जाता है, वहाँसे नदियोंमें श्रेष्ठ पलक्षादेवी नाम पवित्र सरस्वतीमें स्नान करै, वहाँ जल एक बिलसे निकलता है, वहाँ पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल मिलता है, वहीं अत्यन्त दुर्लभ ईशानाध्युषित नामक तीर्थ है ॥ १९१ ॥ यह तीर्थ वाल्मीकिसे छः सम्या (यज्ञमें नापनेके लिये एक दण्ड बनाया जाता है, उसको सम्या कहते हैं) की दूरीपर है, वहाँ जानेसे पुरुषको हजार कपिला दान और अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥ १९२ ॥ हे संकर्षण ! हमने यह भविष्यपुराणादिक पुस्तकोंमें सुना है, कि, इस तीर्थमें जाकर सुगन्धा, शतकुम्भा और पञ्चपक्षा, आदि तीर्थोंमें जानेसे स्वर्गलोक मिलता है, वहीं त्रिशूलखातनामक तीर्थ है, उसमें स्नान करके देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे मरनेके पीछे निःसंदेह गणेशका पद मिलता है ॥ १९३ ॥ वहाँसे उत्तम तीनलोकमें विख्यात उत्तम शाकम्भरी देवीके स्थानपर जाय जहाँ दिव्य हजार वर्षतक व्रतधारिणी भगवतीने एक एक महीनेमें शाक खाकर तप किया था ॥ १९४ ॥ देवीकी भक्तिसे पूरित तपोधन मुनीश्वर वहाँ आये, भगवतीने उसी शाकसे उनका भी सत्कार किया, उसी दिनसे उस देवीका नाम शाकम्भरी हुआ ॥ १९५ ॥ शाकम्भरी देवीमें जाकर पुरुष पवित्र सावधान और ब्रह्मचारी होकर तीन दिन शाक खाय, जो पुरुष बारह वर्षतक शाक खाकर रहे, उसको जो फल होता है, वही फल वहाँ तीन रोज शाक खानेसे होताहै ॥ १९६ ॥ आगे तीन लोकमें

विख्यात स्ववर्णतीर्थको जाय, जहाँ पहले विष्णुने भगवान् महादेवजीको प्रसन्न करनेके लिये तप किया था और देवदुर्लभ वरदानोंको पायाथा ॥ १९७ ॥ शिवने प्रसन्न होकर विष्णुसे कहा था कि, तुम सब लोकके प्यारे होकर कृष्णावतार धारण करोगे, इसमें कुछ संदेह नहीं है कि, सब जगत् तुम्हींको प्रधान मानेगा ॥ १९८ ॥ वहाँ जाकर शिवकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल और गणेशका पद मिलता है, आगे धूमावतीमें जाकर तीन दिन व्रत करे, ऐसा करनेसे निस्सन्देह मनोवांछा सिद्ध होती है ॥ १९९ ॥ देवीके दाहिनी ओर रथावर्त्त (चक्र) तीर्थ है, वहां जितेन्द्रिय और श्रद्धावान् होकर उस चक्रके ऊपर चढे तो परम गतिको प्राप्त होता है,उसकी प्रदक्षिणा करके सब पाप नाश करनेवाले धारातीर्थमें जाय, वहां बुद्धिमान् पुरुष स्नान करे ऐसा करनेसे वह पुरुष शोचरहित होजाता है ॥ २०० ॥ वहाँसे महापर्वतको प्रणाम करके जो स्वर्गद्वारके समान गङ्गाद्वारनामक तीर्थ है, वहां जाय, वहाँ सावधान होकर कोटितीर्थमें स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता है और कुलका उद्धार होता है, वहाँ एक रात रहनेसे हजार गौदानका फल होता है ॥ २०१ ॥ आगे सप्तगङ्गा, त्रिगङ्गा और शक्रावर्त्त तीर्थमें जाय, उन पवित्र तीर्थोंमें विधिपूर्वक पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे उत्तमलोक मिलते हैं ॥ २०२ ॥ वहाँसे चलकर कनखलमें स्नान करे, वहां तीन दिन रहनेसे पुरुषको अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २०३ ॥ वहाँसे तीर्थसेवी पुरुष कपिलावटको जाय, वहाँ एक रात रहनेसे हजार गोदानका फल होता है ॥ २०४ ॥ आगे महात्मा नागराज कपिलके तीर्थमें जाय, यह तीर्थ तीनोंलोकमें विख्यात है, उस नागतीर्थमें स्नान करनेसे हजार कपिलागोदानका फल होता है ॥ २०५ ॥ आगे शान्तनुके उत्तम तीर्थ, ललित तीर्थमें जाय, हे वीर ! वहाँ स्नान करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती ॥ २०६ ॥ जो पुरुष गंगा और यमुनाके संगममें स्नान करता है, उसको दश अश्वमेधका फल होता है और कुलका उद्धार होजाता है ॥ २०७ ॥ वहाँसे लोकविख्यात सुगंधतीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे पुरुष सब पापोंसे छूट ब्रह्मलोकको जाता है ॥ २०८ ॥ वहाँसे तीर्थसेवी पुरुष रुद्रावर्त्त तीर्थको जाय, वहां स्नान करनेसे स्वर्गलोक मिलता है, आगे सरस्वती और गंगाके संगममें जाय वहां स्नान करनेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २०९ ॥ वहाँसे आगे चलकर विधिपूर्वक भद्रकर्णेश्वर महादेवजीकी पूजा करै, ऐसा करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २१० ॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष कुब्जाम्र देशमें जाय, वहां जानेसे हजार गोदानका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २११ ॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष अरुन्धतीवटतीर्थमें जाय, वहां ब्रह्मचारी होकर समुद्रके जलका स्पर्श करै, वहां तीन रात रहनेसे अश्वमेधयज्ञका फल और सहस्र गोदानका फल मिलता है और कुलका उद्धारभी होजाताहै ॥ २१२ ॥ आगे ब्रह्मचारी और सावधान होकर ब्रह्मावर्त्त तीर्थको जाय वहाँ जानेसे अश्वमेधका फल और चन्द्रलोक मिलताहै, फिर वहांसे उस स्थानपर जाय कि जहाँसे यमुना निकली है और

यमुनाके जलको स्पर्श करनेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २१३ ॥ आगे तीनलोक पूजित देवीसंक्रमणतीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है, वहाँसे उस स्थानमें जाय कि जहाँसे सिन्धु नदी निकली है, वहाँपर सिद्ध और गंधर्व रहते हैं, वहाँ पाँचरात रहनेसे बहुत सुवर्ण मिलता है ॥ २१४ ॥ आगे पुरुष परम दुर्लभ वेदी तीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २१५ ॥ वहाँसे ऋषिकुण्डमें जाय, वहाँ वसिष्ठमुनिका दर्शन करै उस वशिष्ठके आश्रमसे चलकर ब्राह्मणोंके ऋषिकुण्डमें जाय, वहाँ स्नान करसेसे पुरुषके सब पाप छूटजाते हैं ॥ २१६ ॥ वहाँ पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे ऋषिलोक मिलता है, यदि शाक खाकर वहाँ एक महीने रहे तो अवश्य ऋषिलोक मिले, वहांसे भृगुतुङ्गतीर्थमें जानेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥ २१७ ॥ और आगे वीरप्रमोक्ष तीर्थमें जानेसे सब पाप छूटजातेहैं, यदि उस तीर्थमें मघा और कृत्तिका नक्षत्रमें जाय तो अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है, वहीं विद्यातीर्थमें संध्या करनेसे और वहां स्नान करनेसे सब पाप नाशको प्राप्त होते हैं, उसी महा आश्रममें रात्रिको वास करै, यदि निराहार होकर एकरात वहां रहै तो उत्तम लोक मिलता है ॥ २१८ ॥ दिनके छटे भागमें भोजन करके एक महीने उस स्थानमें रहनेसे सब पापोंसे शुद्ध होजाताहै और बहुत सुवर्ण मिलता है और दश पहलेके और दश अगाडीके वंशोंका उद्धार होताहै ॥ ॥ २१९ ॥ आगे ब्रह्माके स्थान वेतासिकामें जाय, तो अश्वमेधका फल होता है और शुक्राचार्यकी जाति मिलती है ॥ २२० ॥ आगे सिद्धोंसे सेवित सुन्दरिकातीर्थमें जाय वहां जानेसे पुरुषका रूप सुन्दर होजाता है, यह पुरुषोंने निश्चय किया है ॥ २२१ ॥ आगे ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर ब्रह्माणीतीर्थमें जाय, वहां जानेसे पद्मवर्ण विमान-पर बैठकर पुरुष ब्रह्मलोकको जाता है, वहांसे पवित्र ऋषिसेवित नैमिषक्षेत्रमें जाय वहां देवताओंके साथ ब्रह्माजी सदा वास करते है ॥ २२२ ॥ नैमिषारण्यको ढूंढनेसे आधा पाप और जानेसे सब पाप नष्ट होजाता है, वहांपर तीर्थसेवी धीरपुरुष एक महीना रहै क्योंकि पृथ्वीमें जितने तीर्थ हैं, वह सब नैमिषारण्यमें रहते है ॥ २२३ ॥ यदि जिता-हार और नियमधारी होकर वहां स्नान करै तो गोमेधयज्ञका फल होता है, जो पुरुष निराहार होकर नैमिषारण्यमें मरता है उसके सात कुलका उद्धार होजाता है और महा-त्मालोग ऐसाभी कहते हैं कि, वह सब लोकोंमें जाकर आनन्द करता है ॥ २२४ ॥ हे वीर ! नैमिषक्षेत्र नित्य और पवित्र है आगे वहाँसे गंगाभेद तीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और ब्राह्मण होजाता है ॥ २२५ ॥ आगे सरस्वती नदीमें जाकर पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे निस्संदेह सरस्वतीलोक मिलता है, वहाँसे चलकर ब्रह्मचारी और सावधान होकर बाहुदानदीमें स्नान करै, एक रात रहनेसे स्वर्गलोक मिलताहै ॥ २२६ ॥ वहाँ रहनेसे देवसत्र नामक यज्ञका फल होता है, वहाँसे पुण्यात्मा मुनियोंसे भरीहुई पवित्र सीखती नदीको जाय, वहाँ पितर और

देवताओंकी पूजा करनेसे अश्वमेघका फल होता है, वहाँसे ब्रह्मचारी और सावधान होकर विमलावटको जाय, वहाँ एक रात रहनेसे स्वर्गलोक मिलता है, वहाँसे सरयूके उत्तम तीर्थ गोप्रतार (गुप्तारघाट) को जाय । हे महाराज ! जहाँसे राम अपने शरीरको छोड कर अपने अनुचर, सेना और वाहनोंके सहित स्वर्गको गयेथे, उस तीर्थके तेज और भगवान् रामचन्द्रकी कृपासे तथा निश्चयसे उस गुप्तारघाटमें स्नान करनेसे सब पापोंसे शुद्ध होकर स्वर्गलोक मिलता है ॥ २२७ ॥ आगे गोमतीके राम तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुष को अश्वमेध यज्ञका फल होता है और कुलका उद्धार होजाता है ॥ २२८ ॥ वहीं शतसाहस्रक तीर्थ है, यदि जिताहारी और नियमधारी होकर उसका स्पर्श करै तो पुरुषको सहस्र गोदानका फल होताहै, वहाँसे चलकर उत्तम भर्तृस्थानको जाय तो पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है ॥ २२९ ॥ यदि कोटितीर्थमें स्नान करके स्वामिकार्त्तिकजीकी पूजा करै तो सहस्र गौदानका फल होता है वह पुरुष तेजस्वी भी होजाता है, वहांसे काशी पुरीको जाय, वहां भगवान् महादेवजीकी पूजा करै और कपिलकुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय यज्ञका फल होताहै॥२३०॥वहांसे अविमुक्तेश्वर तीर्थमें जाय, हे बलरामजी! उन देवका दर्शन करतेही पुरुष ब्रह्महत्यासे छूट जाताहै और वहीं प्राण त्यागन करनेसे मोक्ष होती है ॥ २३१ ॥ आगे परमदुर्लभ मार्कण्डेयके तीर्थको जाय, आगे लोकविख्यात गंगा और गोमतीके संगममें जाय वहां जानेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है और कुलका उद्धार होजाता है वहांसे ब्रह्मचारी और सावधान होकर गयाको जाय, वहां जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है और कुलका उद्धार होजाताहै, वहीं तीनलोक विख्यात अक्षयवट तीर्थ है वहाँ पितरोंके लिये जो कुछ दान किया जाता है सो अक्षय होता है, वहां महानदीमें स्पर्श करके पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे अक्षयलोक मिलते हैं और कुलका उद्धार होजाता है ॥ २३२ ॥ आगे धर्मवनमें जाकर ब्रह्मसरमें स्नान करै, वहां एकरात रहनेसे ब्रह्मलोक मिलताहै, उस तालावमें ब्रह्माने उत्तम यज्ञकुण्ड बनायाथा, उसकी प्रदक्षिणा करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलताहै ॥ २३३ ॥ वहांसे लोकविख्यात धेनुकतीर्थमें जाय वहाँ एक रात रह तिलकी गाय बनाकर दान करना चाहिये, ऐसा करनेपर पुरुष संपूर्ण पापोंसे छूट चन्द्रलोकको जाता है ॥ २३४ ॥ उस स्थानमें अबतक भी विचित्र गऊका चिह्न बछडेके सहित बना है और वह चिह्न पर्वतपर चरती हुई गायका है ॥ २३५ ॥ वहीं बछडे सहित गायकी पादुका अभीतक दीखती है, वहाँ उनका स्पर्श करनेसे जो कुछ पाप किया है, सो सब नष्ट होजाता है ॥ २३६ ॥ वहाँसे गृध्रवटको जाय, वह बुद्धिमान् देवका स्थान है, वहाँ भस्मसे स्नान करके भगवान् महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये, वहाँ ब्राह्मण बारहवर्षतक वल्कल वस्त्र पहनकर व्रत करै, तो सब पाप नष्ट हो जाता है, तथा और सब वर्णोंका भी पाप नष्ट होजाता है॥ २३७ ॥ वहाँ गीतशब्दयुक्त उद्यतनामक पर्वतको जाय, वहाँ सावित्रीकी पादुका दीखती है, वहाँ व्रतधारी ब्राह्मण संध्योपासन करै, वहाँ एक दिन सन्ध्या करनेसे बारह वर्षकी संध्याका

फल होता है, वहींपर योनिद्वार तीर्थ है, वहाँ जानेसे पुरुष जन्मके दुःखसे छूट जाता है, जो पुरुष एक मासतक गयामें रहता है, निस्संदेह उसके कुलका उद्धार होजाता है, यदि एक पुत्र भी गयाको चलाजाय और अश्वमेध करै अथवा काले बैलको छोडदे तो बहुत पुत्रोंकी इच्छा क्यों करै ॥ २३८ ॥ वहाँसे तीर्थसेवी पुरुष फल्गूको जाय, वहाँ जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल और महासिद्धि मिलती है. हे वीर बलरामजी ! वहाँसे सावधान पुरुष धर्म्मप्रस्थको जाय, वहाँ सदाही धर्म वास करते हैं वहां कुएँके पानीसे स्नान करनेसे पुरुष पवित्र होता है, पितर और देवताओंका तर्पण करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट स्वर्गको जाता है. वहींपर आत्मदर्शी महामुनि मतङ्गका आश्रम है, उस सुन्दर श्रम और शोकके नाश करनेवाले आश्रममें जानेसे पुरुषको गोमेध यज्ञका फल मिलता है और वहाँ धर्म का स्पर्श करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल होता है ॥ २३९ ॥ हे पुरुषसिंह ! वहाँसे ब्रह्माके उत्तम स्थानको जाय, वहाँ ब्रह्माकी पूजा करनेसे अश्वमेध और राजसूय यज्ञोंका फल होताहै ॥ २४० ॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष राजगृह तीर्थको जाय, वहाँ तीर्थोंका स्पर्श करनेसे पुरुष कक्षीवान्‌के समान आनन्द पाता है, वहाँ पवित्र पुरुष यक्षिणीको नैवेद्य लगाकर भोजन करै तो यक्षिणीके प्रसादसे पुरुषकी ब्रह्महत्या छूटजाती है मणिनागतीर्थमें जानेसे सहस्र गौदानका फल होता है ॥ २४१ ॥ मणिनागतीर्थकी उत्पन्न हुई वस्तुओंको जो पुरुष खाता है, उसको सर्प काटनेका विष नहीं चढता और वहाँ एक रात रहनेसे सहस्र गौदानका फल होता है, वहाँसे ब्रह्मर्षि गौतमके प्यारे वनमें जाय, वहाँ अहल्याकुण्डमें स्नान करनेसे मोक्ष मिलता है. गौतमके आश्रममें जानेसे पुरुष अपनी शोभाको प्राप्त करता है ॥ २४२ ॥ वहां तीनलोकोंमें विख्यात एक तडाग है, उसमें स्नान करनेसे अश्वमेधका फल होता है, वहांसे आगे राजर्षि जनकका कुआँ है, उसकी देवतालोग भी पूजा करते हैं, उसमें स्नान करनेसे विष्णुलोक मिलता है, वहाँसे सब पाप नाश करनेवाले विनशन तीर्थको जानेसे वाजपेय यज्ञका फल और चंद्रलोक मिलता है, हे नीलाम्बरी ! वहाँसे चलकर सब तीर्थोंके जलसे उत्पन्न गण्डकीनदीको जाय, वहाँ जानेसे वाजपेय यज्ञका फल और सूर्यलोक मिलता है, वहाँसे तीनलोकविख्यात विशल्या नदीको जाय तो अग्निष्टोम यज्ञका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २४३ ॥ वहाँसे अधिवङ्गवनको जाय, वहाँ जानेसे निःसंदेह गुह्यकोंके सहित आनन्द करता है वहाँसे सिद्धसेवित कम्पना नदीको जानेसे पौण्डरीक यज्ञका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २४४ ॥ हे बलरामजी ! वहाँसे माहेश्वरीवासमें जानेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है और कुलका उद्धार होजाता है ॥ २४५ ॥ आगे देवपोखरमें जानेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और अश्वमेधका फल होताहै ॥ २४६ ॥ अनन्तर ब्रह्मचारी और सावधान पुरुष सोमपद तीर्थको जाय, वहीं महेश्वरपदमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है । हे राम ! हमने सुनाहै कि, वहाँ करोड तीर्थ इकट्ठे हैं, पहले उन तीर्थोंको दुरात्मा राक्षस लेगयाथा, तब जगत्कर्त्ता भगवान् विष्णुने कच्छ-

परूप धारण करके उससे छीनकर वहीं स्थापन कर दियेहैं ॥ २४७ ॥ हे वीर ! उस तीर्थकोटिमें स्नान करनेसे पौण्डरीक यज्ञका फल और विष्णुलोक मिलता है ॥ २४८ ॥ वहाँसे नारायणके स्थानको जाय, वहाँ सदा विष्णु भगवान् वास करते हैं, जहाँ ब्रह्मादिक देवता, तपोधन, ऋषि, आदित्य, वसु और रुद्र, विष्णुकी उपासना करते हैं, वहाँपर अद्भुत कर्मवाले शालिग्राम नामक विष्णु निवास करतेहैं, उन अव्यय वरदान देनेवाले लोकनाथ विष्णुके दर्शन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और विष्णुलोक मिलता है, वहाँ दान करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं उस कुएँमें चारों समुद्र वास करते हैं, वहाँ जलका स्पर्श करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती, वहीं वरदान देनेवाले अव्यय भगवान् महादेवजीका स्थानहै, उनका दर्शन करनेसे पुरुष ऐसा शोभित होताहै, जैसे मेघसे छूटकर चन्द्रमा, आगे जातिस्मरतीर्थको स्पर्श करनेसे और स्थिर चित्त तथा पवित्र होकर स्नान करनेसे पुरुष कामदेवके समान शोभायमान होजाता है ॥ २४९ ॥ वहाँसे माहेश्वर पुरमें जाकर शिवजीकी पूजा करनी चाहिये, वहाँ व्रत करनेसे मनकी इच्छा पूर्ण होती है, वहांसे सब पापोंके नाश करनेवाले बावनतीर्थको जाना चाहिये, वहाँ विष्णुका दर्शन करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती ॥ २५० ॥ वहाँसे कुशिकके आश्रमको जाय, यह स्थान सब पापोंका नाश करनेवाला है, वहाँ सब पापोंके नाश करनेवाली कौशिकीनदीमें स्नान करनेसे पुरुषको राजसूययज्ञका फल मिलता है ॥ २५१ ॥ वहाँसे चम्पकारण्यको जाय वहाँ एक रात्रि रहनेसे सहस्र गोदानका फल होता है वहाँसे अत्यन्त दुर्लभ ज्योष्ठिलतीर्थमें जाकर एक रात रहनेसे सहस्र गोदानका फल होता है वहाँ पार्वतीसहित महातेजस्वी शिवके दर्शन करनेसे पुरुषको मित्रावरुणका लोक मिलताहै वहाँ तीन दिन रहनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होताहै, वहाँसे कन्यासंवेद्यतीर्थमें जाय वहाँ ब्रह्मचारी और स्थिर मन होकर रहनेसे मनुप्रजापतिका लोक मिलता है, हे वीर ! उत्तम व्रतधारी ऋषियोंने कहा है कि, कन्यासम्वेद्यमें जो थोडा भी दान देता है, वह अक्षय होता है, वहाँसे तीन लोक विख्यात निर्वीरातीर्थमें जाय वहाँ जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल और विष्णुलोक मिलताहै, ॥ २५२ ॥ हे नरशार्दूल ! जो पुरुष निर्वीरासङ्गममें दान देता है, वह दुःख रहित इन्द्र लोकमें जाताहै, वहीं तीन लोकमें विख्यात वसिष्ठ मुनिका आश्रम है, उसमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होताहै, वहाँसे देव और ऋषिसेवित देवकूट तीर्थमें जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल और कुलका उद्धार होजाताहै ॥ २५३ ॥ वहाँसे कौशिकमुनिसे तडागको जाय जहाँ कुशिक पुत्र विश्वामित्र मुनिको महासिद्धि प्राप्त हुईथी॥२५४॥ हे राम ! वहां कौशिकीके कुण्डपर एक महीना रहनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, सब तीर्थोंसे उत्तम उस महातडागपर रहनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती ॥ २५५ ॥ वहाँसे तीन लोक विख्यात अग्निधारा तीर्थपर जाय, उसमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होताहै वहाँसे पर्वतके समीप ब्रह्मसरमें जाकर अनादिदेव वरदेनेवाले विष्णुके दर्शन करने चाहिये, ब्रह्मसरमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है, उसी

ब्रह्मसरसे निकल कर जगत्को पवित्र करनेवाली एक धारा है, उसका नाम कुमारधारा है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष समझ लेता है कि मैं कृतार्थ होगया वहाँ छठे कालका व्रत करनेसे पुरुष ब्रह्महत्यासे छूट जाताहै ॥ २५६ ॥ हे धर्मज्ञ ! वहाँसे तीर्थसेवी पुरुष तीनलोक विख्यात महादेवी गौरीके शिखरपर जाय, वहाँ शिखरपर चढकर स्तन कुण्डमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है,वहाँ पितर और देवताओंकी पूजा करनेवाले पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल और इन्द्रलोक मिलताहै ॥ २५७ ॥ आगे ब्रह्मचारी और सावधान होकर ताम्रारुण तीर्थको जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल और ब्रह्मलोक मिलता ॥ २५८ ॥ हे राम ! नन्दिनीके देवकुएँमें स्नान करनेसे नरमेध यज्ञका फल मिलता है, आगे कालिका, कौशिकी और अरुणाके सङ्गममें स्नान करके तीन दिन व्रत करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है, वहाँसे पण्डित उर्वशीतीर्थ शोभाश्रम और कुम्भणा-श्रमको जानेसे पुरुष जगत्में पूजाके योग्य होजाता है, आगे ब्रह्मचारी और व्रतधारी होकर कोकामुख तीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे पुरुष कामदेवके समान होजाताहै, यह पुराने पुरुषोंने देखाहै, ब्राह्मण प्राचीन नदीमें स्नान करनेसे पवित्रात्मा होजाता है और सब पापोंसे छूटकर इन्द्रलोकमें जाता है, वहाँसे पवित्र ऋषभद्वीपमें जाकर क्रौञ्चासुरके मारने-वाले स्वामिकार्त्तिकका दर्शन करके सरस्वतीका दर्शन करके सरस्वतीका स्पर्श करनेसे पुरुष विमानमें चढकर शोभायमान् होता है ॥ २५९ ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न बल-रामजी ! वहाँसे मुनिसेवित औद्दालक तीर्थमें जाय, फिर वहाँसे ब्रह्मर्षि सेवित धर्म्म-तीर्थमें जानेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है, और विमानमें बैठकर पुरुषको पूजा मिलती है, वहाँसे चम्पामें जाकर गंगामें स्नान करै और उण्डार्त्त तीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है ॥ २६० ॥ ऋषि बोले कि, हे बलरामजी ! वहाँ उत्तम सम्वद्या तीर्थमें संध्योपासन करै और वहाँका जल स्थापन करते पुरुषको निःसंदेह विद्या प्राप्त होती है ॥ २६१ ॥ जिस तीर्थको पहले रामने अपने प्रभावसे लाल कर दियाथा, उसमें जानेसे पुरुषको बहुत सुवर्ण मिलता है, आगे करतोया नदीमें जाकर तीन दिन व्रत करनेसे पुरुषको अश्वमेधयज्ञका फल होता है, यह नियम प्रजापतिका किया हुआ है ॥ २६२ ॥ हे राम ! पण्डितलोग कहते हैं कि, गंगा और समुद्रके संगममें स्नान करनेसे दश अश्वमेध यज्ञका फल होता है, पुरुष गंगाके दूसरे पारमें जाकर स्नान करता है और वहाँ तीन रोज व्रत करता है तो वह पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है वहाँसे सब पापोंके नाश करनेवाली वैतरणी नदीपर जाय, वहाँ विरजा तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुष चन्द्रमाके समान निर्मल होजाता है, उसका सब पाप नष्ट होजाताहै सहस्र गोदानका फल मिलताहै. और कुलका उद्धार होजाताहै, वहाँसे शोण और ज्योतिरथी नदीके संग-ममें जाय वहाँ पवित्र होकर पितर और देवताओंका तर्पण करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होताहै ॥ २६३ ॥ आगे उस स्थानपर जाय, जहाँ शोणा और नर्मदा अलग हुई हैं, वहाँ बासोंके झुण्डका स्पर्श करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होताहै ॥ २६४ ॥ आगे कौशल

देशमें जाकर ऋषभ तीर्थमें स्नान कर, वहाँ तीन दिन व्रत करनेसे वाजपेययज्ञका फल होता है, वहाँ जानेसे सहस्र गौदानका फल होताहै और कुलका उद्धार होजाता है, वहाँसे कौशलतीर्थमें जाकर काल तीर्थका स्पर्श करै, तो निःसंदेह ग्यारह साँड छोडनेका फल होताहै ॥ २६५ ॥ पुष्पावतीका स्पर्श करके तीन दिन व्रत करनेसे सहस्र गौदानका फल और कुलका उद्धार होता है, वहाँसे बदरिकातीर्थमें स्नान करै, बदरिका तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषकी दीर्घ आयु होती है; वहांसे चलकर चम्पामें जाय, वहां गंगामें स्नान करके दण्डतीर्थका दर्शन करनेसे सहस्र गौदानका फल होताहै, वहांसे पवित्र पुण्योंसे भरीहुई चपेटिकामें जाय, वहां जानेसे वाजपेय यज्ञका फल होताहै और सब देवता लोग उसकी पूजा करते हैं, वहांसे परशुरामके आश्रम महेश्वर पर्वतपर जाय, वहां रामतीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है ॥ २६६ ॥ वहींपर मतंग केदारनामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे पुरुषको सहस्र गौदानका फल होता है, वहांसे श्रीपर्वतमें जाकर नदीमें स्नान करै, वहां भगवान् महादेवजीकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होताहै, महातेजस्वी शिव पार्वतीकेसहित वहीं निवास करतेथे और देवताओं सहित कमलयोनि ब्रह्मा वहीं निवास करतेथे, वहां पुरुष पवित्र और स्थिर मन होकर देवह्रद तीर्थमें स्नान करै तो अश्वमेध यज्ञका फल और परमसिद्धि मिलती है, वहांसे पाण्डव देशमें जाकर देवपूजित ऋषभ पर्वतपर जाय, तो वाजपेय यज्ञका फल और स्वर्गमें आनन्द मिलता है ॥ २६७ ॥ वहांसे अप्सरागणोंसे सेवित कावेरी नदीको जाय, उसमें स्नान करनेसे पुरुषको सहस्र गौदानका फल होता है, वहांसे चल, समुद्रके तीरपर जाकर कन्यातीर्थका स्पर्श करै, हे राम ! उस जलके स्पर्श करनेहीसे सब पाप छूट जाते हैं ॥ २६८ ॥ आगे तीन लोक विख्यात समुद्रके बीचमें स्थित सब लोकपूजित कर्ण तीर्थको जाय जहां ब्रह्मादिक देवता, तपोधन ऋषि, भूत, यक्ष, पिशाच, किन्नर, बडे बडे सिद्ध, चारण, गंधर्व, मनुष्य, सर्प, नदी, समुद्र और पर्वत आकर भगवान् भूतेश्वर [शिवकी] उपासना करते हैं, वहां शिवकी पूजा करके तीन दिन व्रत करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और गणेशका पद मिलता है, यदि वहां दश दिन रहे तो पुरुष परमपवित्र होजाता है, वहांसे तीन लोक पूजित गायत्रीके स्थानमें जाय, वहां तीनदिन रहनेसे सहस्र गौदानका फल होता है, हे राम ! यह गायत्रीका प्रत्यक्ष उदाहरण दीखता है ॥ २६९ ॥ कि यदि कोई संकरजाति [जिसकी माता दूसरी जाति हो और पिता दूसरी जाति हो] का उत्पन्न हुआ पुरुष अच्छी रीतिसे भी गायत्री पढै तो भी वह गायत्री स्वरसे हीन छंदरहित गांवके गीतके समान उच्चारण होती है ॥ २७० ॥ और भी उदाहरण हैं कि यदि ब्राह्मणके सिवाय कोई दूसरा वर्ण वहां जाकर गायत्री पढै तो उसको स्मरण नहीं होती, वहांसे चलकर दुर्लभ सम्वर्त्त मुनिकी बावडीमें स्नानकरै वहां स्नान करनेसे पुरुष सुन्दर और ललित होजाता है वहाँसे वेणतीर्थमें जाकर यदि तीनरात व्रत करै तो पुरुषको मोर और हंससहित विमान मिलता है, वहाँसे सदाही सिद्धोंसे सेवित गोदावरी नदीको जाय, वहाँ

स्नान करनेसे गोमेध यज्ञका फल और वासुकीका उत्तमलोक प्राप्त होता है, वहाँ वेणनदीके संगममें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, आगे ब्रह्मचारी और सावधान होकर कुरुप्लवनामक तीर्थमें जाय, वहां तीनदिन रहकर स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है आगे वरदासंगममें स्नान करनेसे सहस्र गौदानका फल होता है, आगे ब्रह्मस्थानमें जाकर व्रतकरनेसे सहस्र गौदानका फल और स्वर्गलोक मिलता है, वहाँसे वनमें जाकर कृष्णवेणाके जलसे उत्पन्न हुए देवहृद तीर्थमें स्नान करै, वहाँ जातिस्मरतीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अपने पूर्वजन्मका स्मरण होजाता है, वहींपर देवराज इन्द्र सौ यज्ञको करके स्वर्गको गये हैं ॥ २७१ ॥ वहाँ जातेही अग्निष्टोमयज्ञका फल होता है, तब सर्वहृद तीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र गौदानका फल होता है वहाँसे चलकर पवित्र बावली और नदियोंमें श्रेष्ठ पयोष्णीमें जाकर पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे सहस्र गौदानका फल होताहै ॥ २७२ ॥ हे राम ! वहाँसे चलकर दण्डकारण्यमें जाय, उस पवित्रतीर्थका स्पर्शकर और स्नान करनेसे सहस्र गौदानका फल मिलता है, वहाँसे शरभंग और महात्मा शुकके आश्रमपर जानेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और कुल पवित्र होजाताहै, वहाँसे परशुरामसेवित शूर्पारक तीर्थमें जाय वहां रामतीर्थमें स्नान करनेसे बहुत सुवर्ण मिलता है, आगे जिताहारी और ब्रह्मचारी होकर सप्तगोदावरी तीर्थमें स्नान करै, वहां स्नान करनेसे पुरुषको महापुण्य और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २७३ ॥ आगे ब्रह्मचारी और नियमसे भोजन करनेवाला होकर देवताओंके मार्गमें जानेसे पुरुषको देवसत्रयज्ञका फल होताहै ॥ २७४ ॥ आगे ब्रह्मचारी और जितन्द्रिय होकर तुंडकारण्यको जाय, वहीं पर पहले सारस्वत मुनि वेद पढातेथे जब पहले वेद नष्ट होंगये तब अंगिरा मुनिके पुत्र सुखपूर्वक ऋषियोंके वस्त्रोंमें बैठगये, तहाँ विधिपूर्वक यथोचित उन्होंने ओंकारको उच्चारण किया, ऐसा करनेसे सब मुनियोंको यह पाठ याद होगया, वहीं देवता, ऋषि, वरुण, अग्नि, प्रजापति, विष्णु, शिव और सब देवताओंके सहित महातेजस्वी भगवान् ब्रह्माजीने महातेजस्वी भृगुऋषिको यज्ञ करनेके लिये बिठलाया था, तब भगवान् भृगुमुनिने विधिपूर्वक ऋषियोंके कार्योंको यथोचित ठहरादिया तब भृगुने विधिपूर्वक शिवसे अग्निको संतुष्ट किया इसके उपरान्त सब देवता और ऋषि अपने २ स्थानोंको चलेगये ॥ २७५ ॥ हे बलराम ! उस तुंगक नाम वनमें जातेही पुरुष व स्त्रियोंके सब पाप नष्ट होजाते हैं, उस स्थानमें नियमधारी वीरपुरुष थोडा भोजन करके यदि एक महीना रहै तो निश्चय ब्रह्मलोकको जाता है ॥ ॥ २७६ ॥ वहाँसे मेधाविक तीर्थको जाय वहां पितर और देवताओंका तर्पण करै तो अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है और स्मरणशक्ति तथा धारणशक्ति बढती है, यहींपर कालिञ्जर नामक पर्वत है, यहाँ देवहृदतीर्थमें स्नान करनेसे सहस्रगौदानका फल मिलताहै ॥ २७७ ॥ जो कोई कालिञ्जरगिरिपर्वतमें जाकर आप स्नान करै अथवा दूसरेको स्नान करावै तो निस्सन्देह स्वर्गलोकको जाता है ॥ २७८ ॥ यहांसे पर्वतोंमें श्रेष्ठ चित्रकूटको

जाय, वहां सब पापोंके नाश करनेवाली मन्दाकिनीमें स्नानकरके पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और मोक्ष मिलता है ॥ २७९ ॥ वहाँसे अत्यन्त उत्तम भर्तृके स्थानको जाय, वहां देवताओंके सेनापति स्वामिकार्त्तिकजी सदाही निवास करतेहैं ॥ २८० ॥ वहां जानेहीसे सिद्धिलाभ होताहै. आगे कोटितीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको सहस्र गौदानका फल होताहै उसकी प्रदक्षिणा करकै अष्टतीर्थको जाय, वहां भगवान् महादेवजीकी पूजा करनेसे पुरुष चन्द्रमाके समान प्रकाशित होजाताहै, हे बलदेवजी ! हमने सुना है कि, उस कुएमें चारों समुद्र वसतेहैं ॥ २८१ ॥ पितर और देवताओंकी पूजा करनेवाला नियमधारी पुरुष वहां स्नान करनेसे पवित्र होकर मोक्षको प्राप्त करताहै वहांसे शृंगवेरपुरको जाय, वहीं दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी गंगापार हुए थे ॥ २८२ ॥ उस स्थानमें ब्रह्मचारी और सावधान होकर गंगास्नान करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है और मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २८३ ॥ वहांसे मजुवटको जाय, वहां बुद्धिमान् भगवान् शिवका स्थान है, वहां शिवकी पूजा और प्रदक्षिणा करनेसे गणेशका स्थान मिलता है और वहां गंगा स्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं ॥ २८४ ॥ वहांसे ऋषिपूजित तीर्थराज प्रयागको जाय जहां ब्रह्मादिक देवता दिशा, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, लोकपूजित पितर, सनत्कुमार आदिक महाऋषि, अंगिरादिक निर्मल ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, चक्रचर, सूर्यादिक (आकाशचारी) नदी, समुद्र, गंधर्व, अप्सरा और प्रजापतिके सहित भगवान् विष्णु निवास करतेहैं. प्रयागमें तीन कुंड हैं, उनके बीचमें सब तीर्थोंके सहित अत्यन्त वेगवती गंगा और तीनलोक विख्यात भगवती यमुना बहती हैं,वहीं जगत्को पवित्र करनेवाली यमुना गंगासे आकर मिली हैं जहाँ गंगा और यमुना मिली हैं, वह स्थान पृथ्वीकी जंघा है, प्रयागको ऋषियोंने पृथ्वीकी योनि कहा है, प्रयाग प्रतिष्ठानपुर (झोंसी) कम्बलाश्वत तीर्थ और भोगवती यह ब्रह्माकी वेदी है, उसमें यज्ञ और वेद मूर्त्तिधारण करकै रहते हैं, वहाँ तपोधन ऋषि ब्रह्माकी उपासना करते हैं, चक्रवर्त्ती और देवता लोग यज्ञ करते हैं ॥ २८५ ॥ इसीलिये प्रयाग परमपवित्र है और मुनि लोग तीन लोकके तीर्थोंसे प्रयागको अधिक कहते हैं, उस तीर्थमें जानेसे और उसका नाम स्मरण करनेसे पुरुष मृत्युके भय और पापोंसे छूट जाता है उस लोक विख्यात गंगा और यमुनाके सङ्गममें जो पुरुष स्नान करता है उसको राजसूय और अश्वमेधका फल होता है, यह संस्कार कीहुई देवताओंके यज्ञ करनेकी भूमि है, वहाँ थोडा दान देनेसे भी बहुत होजाता है ॥ २८६ ॥ हे राम ! न वेदके वचनसे न लोकके वचनसे प्रयागमें मरनेकी बुद्धिको त्यागना चाहिये, जो एक करोड दशसहस्र सात तीर्थ कहे हैं वह सब तीर्थराज प्रयागमेंही निवास करते हैं, तीनों वेद, आत्मविद्या और सत्य बोलनेका जो कुछ पुण्य होता है सो पुण्य गंगायमुनाके संङ्गममें स्नान करनेसे पुरुषको मिलताहै, वहाँ राजा वासुकीका स्थानहै, उसका नाम भोगवती है, उस उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होताहै, वहाँ तीनलोक विख्यात हंसप्रवर्तनामक तीर्थ है ॥ २८७ ॥

प्रयागहीमें गंगाके तटपर दशाश्वमेध नामक तीर्थहै कुरुक्षेत्रके समान गंगाका जहाँ स्नान करै, वहांही फल होता है, परन्तु कनखलमें विशेष फल है और प्रयागमें बहुत अधिक फल है यदि सहस्रों पाप करनेपरभी पुरुष गंगा जलमें स्नान करता है, तो वह गंगा-जल उसके पापोंको ऐसेही नष्ट करता है जैसे अग्नि काष्ठकों, सतयुगके बीच सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे पुण्य होता था, त्रेतामें पुष्कर तीर्थ था, द्वापरका कुरुक्षेत्र तीर्थ है और कलियुगमें तो गंगाही प्रसिद्ध है ॥ २८८ ॥ पुष्करमें तप करै, महालयमें दान दे और मलयमें अग्निमें प्रवेश करै और भृगुतीर्थमें भोजन करै, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गंगा और मगध देशीय तीर्थोंमें स्नान करनेसे पुरुषोंके सात पुरुष पवित्र हो जातेहैं, गंगा देखनेहीसे पापोंको नाश करती है, कीर्त्ति और कल्याणको बढाती है, स्नान करने और जल पीनेसे सात कुलको पवित्र करती है ॥ २८९ ॥ पुरुषकी हड्डी जबतक गंगाजलमें रहती है, तबतक वह पुरुष स्वर्गमें रहता है, जो पवित्र तीर्थ और पवित्र देवताओंके स्थानमें जानेसे पुण्य होता है और उससे स्वर्ग मिलताहै, वह सब उतना चिरस्थायी नहीं होताहै, जितना गंगास्नान करनेसे फल होता है, गंगाके समान कोई तीर्थ, विष्णुके समान कोई देवता और ब्राह्मणके समान कोई पूज्य नहीं है, इस प्रकार ब्रह्माने कहा है, हे महाराज ! जहां गगा है, वह देश तपोवन है, जो देश गंगाके तटपर है वह सिद्धक्षेत्र है। यह सत्य बात ब्राह्मण, साधु, पुत्र, मित्र, शिष्य और नौकरोंके कानमें कहदेनी चाहिये, यह गंगातट धन्य, पवित्र, स्वर्गदायक, उत्तम, पुण्यदायक, रम्य, पवित्र करनेवाला, धर्म बढानेवाला, महर्षियोंके पाप नाश करनेवाला, गुप्तस्थान है, ब्राह्मणोंके बीचमें इस मंत्रको पढनेसे पुरुष निर्मल होजाता है और स्वर्ग मिलता है यह तीर्थोंकी वंशावाली लक्ष्मी, स्वर्ग, पुण्य और बुद्धिकी देनेवाली है, इसका कीर्त्तन करनेसे शत्रुओंका नाश होताहै, अपुत्रको पुत्र और निर्धनको धन मिलता है; इसके पढनेसे क्षत्रिय विजय करताहै, वैश्यको धन मिलताहै, शूद्रकी इच्छा पूरी होती है और ब्राह्मण पण्डित होजाताहै, जो पुरुष पवित्र होकर इस तीर्थ माहात्म्यको सुनता है वह अपने अनेक जन्मोंको स्मरण करके स्वर्गमें आनन्द करता है, जो तीर्थ जानेयोग्य हैं उनमें जाय और जो नहीं जानेयोग्य हैं उनमें सब तीर्थोंके दर्शनकी इच्छा करनेवाले पुरुष मनहींसे चले जायँ ॥ २९० ॥ इन तीर्थोंमें वसु, साध्य, सूर्य, मरुत्, अश्विनीकुमार, देवताओंके समान ऋषि और पुण्यात्मा लोग स्नान करते हैं ॥ २९१ ॥ हे दाशार्ह-वंशोत्पन्न बलरामजी ! इसी प्रकार आप भी इन तीर्थोंमें जाइये, आप नियमोंको धारण करके पुण्योंसे पुण्यको बढातेहुए तीर्थोंको जाइये, आप निश्चित कारणोंको देखकर, आस्तिकता देखकर और वेदोंके प्रमाणको मानकर तीर्थयात्रा कीजिये ॥ २९२ ॥ हे वीर ! जिन तीर्थोंको शास्त्रदर्शी महात्मालोग जासक्ते हैं, उन्हींको आप जाइये, क्योंकि उन तीर्थोंको अव्रती, दुष्ट, अपवित्र और चोर नहीं जा सक्ते ॥ २९३ ॥ हे उत्तम यशवाले बलरामजी ! उन तीर्थोंमें दुष्टबुद्धिवाले पुरुष स्नान नहीं कर सक्ते आपही

सदा धर्म और अर्थके जाननेवाले उन तीर्थोंमें जासक्ते हैं ॥ २९४ ॥ हे रेवतीरमण ! अपने धर्मसे पिता, पितामह, प्रपितामह और उनसे भी पहले पुरुषो, तथा ऋषि लोगोंको संतुष्ट किया है हे वीर ! आपको वसुओंके लोक मिलैंगे और आपकी महाकीर्त्ति इस जगत्में बहुत दिनतक रहैगी ॥ २९५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इस प्रकार बलरामजीसे कहकर प्रसन्नतापूर्वक उन ऋषीश्वरने मौन व्रत धारण किया, इसके उपरान्त बलरामजीभी शास्त्रोंको देख और ऋषीश्वरके वचनसे पृथ्वीमें घूमनेकी इच्छा करनेलगे ॥ २९६ ॥ इस प्रकारसे यह संपूर्ण पापोंके नाश करनेवाली पुण्योंसे भरीहुई महाभाग्यवती तीर्थयात्रा प्रतिष्ठान पुर (झूंसी) में समाप्त हुई, जो पुरुष इस प्रकारसे पृथ्वीके तीर्थोंमें घूमता है, उसको मृत्युके पीछे सैकडों अश्वमेधोंका फल होता है ॥ २९७ ॥ हे महाराज ! आपको भी उससे आठगुणा फल होगा, जैसे कुरुवंशसिंह भीष्मको हुआ था, क्योंकि तुम ऋषियोंके अगुवाहो इसीसे तुमको आठगुणा फल होगा और आज कलके तीर्थ राक्षसोंसे भरगये हैं, सो आपके अतिरिक्त उन तीर्थोंमें और कोई नहीं जा सकता है ॥ २९८ ॥ जो पुरुष इस देवर्षिकथित तीर्थ माहात्म्यको कथारूपसे पढेगा, उनके सब पाप छूट जांयगे ॥ २९९ ॥ हे महाराज ! उन तीर्थोंमें ऋषियोंमें प्रधान वाल्मीकि, कश्यप, आत्रेय, कुण्ड, जठर, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज, वशिष्ठ, उद्दालक मुनि, शौनक, व्यास, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ शुकदेव, मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा और महातपस्वी जाबालि इत्यादि अनेक तपोधन महर्षि लोग आपका मार्ग देख रहेहैं, हे राजन् ! तीर्थोंमें जानेसे इन मुनियोंके दर्शन होगें ॥ ३०० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! यह देखो यह महातेजस्वी लोमश ऋषि आपके पास चले आते हैं, आप इनके संगही तिर्थोंको चले जाइये ॥ १ ॥ क्रमके अनुसार इन तीर्थोंमें आप मुझसे भी मिलैंगे, जैसी राजा महाभिषकी कीर्त्ति हुईथी, उसी प्रकार आपकी भी होगी ॥ २ ॥ हे वीर ! जैसे राजा ययाति और राजा पुरूरवा धर्मात्माथे, उसीप्रकार आप भी अपने धर्मसे शोभायमान हैं ॥ ३ ॥ जैसे राजा भगीरथ और राजा रामचन्द्र विख्यात थे वैसेही सूर्यकेसमान तेजस्वी आपभी विराजमान हैं ॥ ४ ॥ जैसे मनु इक्ष्वाकु महा-यशस्वी पुरुष और पृथु थे, वैसेही आप भी विख्यात हैं ॥ ५ ॥ हे महाराज ! जैसे वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रने सब शत्रुओंको मारकर जगतका राज्य किया था, उसीप्रकार आप भी अपने धर्मसे पृथ्वीको जीत और शत्रुओंको मारकर प्रजाको पालियेगा, जैसे कृतवीर्यके पुत्र अर्ज्जुन प्रसिद्ध हुये थे उसीप्रकार आप भी धर्मसे प्रसिद्ध हूजियेगा ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इसप्रकार ऋषि बलदेवजीसे कहकर चुपचाप होगये और महात्मा बलदेवजी भी उसको सुनकर तीर्थयात्रा जानेका विचार करने लगे * ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त

---

* **शंका**—बलदेवजी सब तीर्थोंमें गये परन्तु काशीको और उज्जैनको क्यों नहीं गये?—

जब पूर्णमासीका पर्व आया तो धूरि वर्षासहित अत्यन्त भयानक प्रचण्ड पवन चलने लगा और चारों ओरसे राधकीसी दुर्गन्ध आई ॥ ८ ॥ इसके पीछे बल्वल दैत्यकी करी विष्ठा और मूत्रकी वर्षा यज्ञ शालामें होनेलगी, फिर त्रिशूल हाथमें लिये वह बल्वल भी दीखपडा ॥ ९ ॥ टूटेहुये अंजनके ढेरके समान बडे शरीरवाला तपे ताँबेकेसी लाल शिखाओं दाढी मूंछवाला और भ्रुकुटीसे डरावने मुखवाले उस दैत्यका देख ॥ ३१० ॥ शत्रुकी सेनाके विदार्ण करनेवाले मूशलको स्मरणकर दैत्योंको मारनेवाले हलका स्मरण किया इसके उपरान्त पार्षदरूप हल मूशल आपही आनकर उपस्थित होगये ॥ ११ ॥ आकाशमें विचरनेवाले बल्वलको हलके अग्रभागसे खैंच, और अत्यन्त क्रोधमें भरकर महात्मा बलदेवजीने ब्रह्मद्रोही बल्वलके माथेमें मूशल मारा ॥ १२ ॥ उसके लगतेही माथेके फूटनेसे बल्वल रुधिरकी वमन करता हुआ वज्रके मारे गेरूके पर्वतके ससान पृथ्वीमें गिर पडा ॥ १३ ॥ तब मुनीश्वरोंने बलदेवजीकी स्तुतिकर सफल आशीर्वाद दे, जैसे बडभागी देवतालोगोंने वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रका अभिषेक कियाथा, उसी प्रकार बलदेवजीको अभिषेक किया ॥ १४ ॥ लक्ष्मीके निवास कोमल कमलोंकी वैजयन्ती माला और दिव्य नीलाम्बर धोती उपरना और अनेक प्रकार के आभूषण उन मुनियोंने महात्मा बलदेवजीको दिये ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त मुनियोंसे आज्ञा पाय बलदेवजी ब्राह्मणोंको संगले कौशिकी नदीमें आय स्नानकर जिस सरोवरसे सरयू निकली है, यहां गये ॥ १६ ॥ और सरयूप्रवाहके किनारे किनारे हो प्रयागमें आय स्नान व देवादिकोंका तर्पणकर पुलहऋषिके आश्रम हरिक्षेत्रको गये ॥ १७ ॥ वहांसे गोमती और गण्डकी तथा विपाशा व शोणनदीमें स्नानकर बलदेवजी गयातीर्थमें गये और वहांसे पितरोंका पूजनकर गंगा और समुद्रके संगममें पहुंचे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त महेंद्राचल पर्वतमें भृगुवंशावतंस परशुरामजीका दर्शन व प्रणामकर सप्तगोदावरी तथा वेणा तथा पंपामें जाकर भीमरथीमें गये ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त स्वामिकार्त्तिक का दर्शनकर जहांपर भगवान् महादेवजी विराजते हैं, ऐसे श्रीशैलपर्वतको गये और द्रविडदेशोंमें परमपवित्र वेंकट पर्वतका दर्शनकर कामकोष्णीपुरीमें गये, फिर कावेरीमें

–काशी और उज्जैनके जो आसपास तीर्थ थे उनको गये फिर क्याकारण जो दोनों मोक्षदायक तीर्थोंको छोडदिया ? ॥

उत्तर–शास्त्रोंमें ऐसा लिखाहै कि विना स्त्रीके जो मनुष्य अकेला इन तीर्थोंमें जाय और उनका दर्शन करै तब उसको आधा फल मिलताहै ? (शंका) आधे फलमें क्या हानि थी वहाँका तो किंचित्फल परमानन्दका देनवाला है ? [उत्तर] वहाँ जानेसे सब तीर्थोंका आधाफल रहजाता इसलिये नहीं गये, क्योंकि यह अकेले गयेथे, स्त्री संग नहीं थी, बलदेवजीने विचारा कि स्त्रीको संग लेकर आवेंगे उससमय काशी और उज्जैन को दर्शन करैंगे, इसलिये काशी और उज्जैनको नहीं गये ॥

स्नानकर बडे पवित्र और जहां नित्य हरि विराजते हैं, ऐसे श्रीरंगनाम विख्यात स्थानको गये ॥ ३२० ॥ २१ ॥ वहाँसे ऋषभाद्रि पर्वत हरिक्षेत्रमें आय, दक्षिण मथुरामें जाकर फिर बडे पापोंके नाश करनेवाले सेतुबंध रामेश्वरको गये ॥ २२ ॥ वहाँ जाकर हलायुध धारण करनेवाले बलदेवजीने दशहजार गायोंका ब्राह्मणोंको दान किया, पीछे कृतमाला नदी और ताम्रपर्णी नदियोंमें होकर मलयाचल कुलाचल पर्वतोंमें गये ॥ २३ ॥ वहाँ पहुँच विराजमान अगस्त्यमुनिको नमस्कार पूर्वक स्तुति की, फिर अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और आज्ञा पाय बलदेवजीने दक्षिणदेशमें समुद्रके तटपर जाय कन्या नाम दुर्गादेवीका दर्शन किया ॥ २४ ॥ इसके पीछे फाल्गुन अनंतपुरमें जाय जहाँ विष्णु भगवान् सदा विराजते हैं ऐसे श्रेष्ठ पंचाप्सरस नाम सरमें स्नानकर दशहजार गायोंका संकल्प किया ॥ ॥२५॥ वहाँसे चलकर भगवान् बलदेवजी केरल और त्रिगर्त देशमें हो धूर्जटी शिवसे नित्य सन्निहित गोकर्ण नाम शिवक्षेत्रमें गये ॥ २६ ॥ वहाँसे आर्याद्वीपवासिनी देवीका दर्शन कर शूर्पारक क्षेत्रमें आये,वहांसे तापी और पयोष्णी नदीमें हो दण्डकारण्यमें आये॥२७॥ जहां माहिष्मती पुरी है, वहां पहुंच रेवानदीपर गये फिर मनुतीर्थमें आचमनकर प्रभास क्षेत्रमें आये ॥ २८ ॥ तब कौरव और पाण्डवोंके संग्राममें सब क्षत्रियोंका नाश होगया यह ब्राह्मणोंका वचन सुन बलदेवजीने अपने मनमें जानलिया कि, पृथ्वीका भार उतर गया ॥ २९ ॥ यादवोंको आनन्द देनेवाले बलदेवजी संग्राममें गदाओंसे युद्ध करते भीमसेन और दुर्योधनको समझानेके लिये कुरुक्षेत्रको गये ॥ ३३० ॥ राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और श्रीकृष्णचन्द्र व अर्जुन बलदेवजीको आये हुए देख प्रणाम कर पूछने लगे कि, हे बलदेवजी ! आप कहां कहां हो आये ? तो यह भयके मारे चुप होगये ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त क्रोधमें भरे एकको एक जीतना चाहै, चित्र विचित्र मण्डलोंमें फिरते भीमसेन और दुर्योधनको देख बलदेवजी कहनेलगे ॥ ३२ ॥ कि, हे राजा दुर्योधन और हे भीमसेन ! तुम दोनों शूरवीर हो और समान तुम्हारा बल है, भीमसेनमें कुछ बल अधिक है, दुर्योधनमें दाव पेंच अधिक हैं, यह मैं जानता हूं ॥ ३३ ॥ इसलिये बराबर पराक्रमवाले तुम दोनोंके बीचमें एककी भी जीत हार न होगी, इस कारण इस निष्फल युद्धको शान्त करो ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! परस्पर कुत्सित वचनोंको स्मरण कर वैरमें भरे भीमसेन और दुर्योधनने बलरामजीके प्रयोजन भरे वाक्यको नहीं माना ॥३५॥ भीमसेन और दुर्योधनका पिछला कर्म ऐसाही है, यह जानकर बलदेवजी द्वारकापुरीमें आये और वहां उग्रसेनसे आदिले प्रसन्नमन यादवोंसे मिले ॥ ३६ ॥ समस्तविरुद्ध-रहित यज्ञमूर्त्ति भगवान् बलदेवजी फिर नैमिषारण्यमें आये, तब उन्हें आनन्दपूर्वक सब ऋषीश्वरोंने यज्ञोंसे यजन करवाया ॥ ३७ ॥ तब सामर्थ्यवान् भगवान् बलदेवजीने उन ब्राह्मणोंको विशुद्ध ज्ञान दिया जिस ज्ञानसे आत्मामें विश्व और विश्वमें पुरुष आत्माको जानता है ॥ ३८ ॥ यज्ञ करनेके पीछे स्नानकर सुन्दर वस्त्र आभूषणोंसे अलंकृत ज्ञाति बंधु सुहृदोंको संग ले अपनी चांदनीसे शोभित चन्द्रमाके समान बलदेवजी अपनी स्त्रियों-

सहित अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ बलवान् अनन्त अप्रमेय अर्थात् प्रमाण करनेमें न आवें मायासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले बलदेवजीके अनेक अनेक लीला और चारित्र हैं ॥ ३४० ॥ हे भारत ! अद्भुत कर्मकारी अनंत बलदेवजीके कर्मोंको जो पुरुष सायंकाल अथवा प्रातःकालके समय स्मरण करेगा, वह श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त प्यारा होगा॥३४१॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे
एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

दोहा-अस्सीमें धन लोभसे, विप्र सुदामा रंक ।
गयो द्वारका कृष्ण पै, धोवन हेत कलंक ॥

राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे भगवन् ! समर्थ अनंतपराक्रम मुक्तिके देनेवाले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रमको और भी सुननेकी मेरी अभिलाषाहै ॥१॥ हे श्रीशुकदेवजी ! उत्तमयशा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विषयोंमें वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली जो मनोहर कथा है, उसको निरन्तर सुनकर कामके बाणोंसे खेदितहो त्रासपावे ऐसे सारके जाननेवाले कौन पुरुष हैं जो श्रवण न करैं ?॥२॥ जिस वाणीमें भगवान्के नाम और गुण निकलैं,वही वाणी सफल है, और जिन हाथोंसे भगवान् वासुदेवकी सेवा पूजाका कर्म बनै वही हाथ सफल हैं, और स्थावर जंगम जीवोंमें अन्तर्यामी रूप होकर बसे भगवान्का जो स्मरण करै वही मन सफल है और जिन कानोंसे भगवान् हरिकी पवित्र कथा सुनै वही कान सफल हैं ॥ ३ ॥ स्थावर, जंगम सब भगवान्के रूप हैं, यह जानकर जो पुरुष शिरसे प्रणाम करै, वही शिर धन्य है, जिन नेत्रोंसे देखे, वही नेत्र धन्य हैं और भगवान् अथवा भक्त जनोंके चरणोंका धोवन जल नित्य जिन अंगोंमें लगै वही अंग धन्य है ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहनेलगे कि, विष्णुरात राजापरीक्षित्के यह प्रश्न करनेपर वासुदेव भगवान्में निमग्न हृदय हो वेदव्यासके पुत्र श्रीशुकदेवजी बोले ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परम भागवत राजा परीक्षित् ! कोई एक ब्राह्मण ब्रह्मके जाननेवालोंमें उत्तम विषयोंमें वैराग्यवान् शांतमन जितेंद्रिय श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र था ॥ ६ ॥ गृहस्थाश्रमको वर्त्ते और जो कुछ अनायास पूर्वक प्राप्तहो, उसीसे अपना निर्वाह करै, जीर्णवस्त्रको धारण करै, उसीप्रकार उसकी स्त्री भी थी, क्षुधाके मारे पीडित होनेसे समस्त अंगोंसे कृशित और जो अन्न प्राप्त हो, उसे पतिको परोस दे, आप भूँखी रहजाय ॥ ७ ॥ बहुत दुःखित और भयके मारे थरथर काँपती वह पतिव्रता स्त्री दरिद्री पतिके समीप आनकर बोली ॥ ८ ॥

चौ०-कौन उपाय करैं प्रिय आजू । तीन दिवससे मिल्यो न नाजू ॥
भीखहु माँगे परत न पूरी । ब्राह्मण धर्म न होत मजूरी ॥
अब प्रिय कोई उपाय विचारो । जाते जाय दरिद्र हमारो ॥
मानो एक वचन मम साईं । जातें कोटि दरिद्र नशाईं ॥

दोहा-कृष्णचन्द्र आनँदभवन, श्रीनँदनन्द मुकुन्द ।
ब्रजभूषण दूषणहरण, श्रीवृन्दावन चन्द ॥
सोरठा-कोटि दरिद्र नशायँ स्वामी तिनके नामसे।
जे जन शरणन जायँ, तिनके अघ किमि रहि सकैं ॥
चौ०-सो ब्रजचन्द द्वंद्व दुखहारी। जगत ईश भक्तन हितकारी ॥
पालैं प्रलय करैं क्षण माहीं। तेहि समान दूसर कोउ नाहीं ॥
भक्त काज नित सारन हारे। सो प्रभु सुनियत मित्र तुम्हारे ॥
जाको ऐसा मित्र जु होई। क्यों घर घर किन माँगत सोई ॥
तिनके पास जाहु तुम स्वामी। ले हैं खबर सु अंतर्यामी ॥
जाहु कन्त तुम हरिके पासा। पूरण करैं तुम्हारी आसा ॥

कि, हे ब्राह्मण ! साक्षात् लक्ष्मीके पति ब्रह्मभक्त शरणागतके पालक यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे सखा सुने हैं ॥ ९ ॥ अहो बडभागी ! साधुओंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास तुम जाओ, दुःखित कुटुम्बी तुमको वह बहुतसा धन देंगे ॥ १० ॥ भोज, वृष्णि, अंधक यह यादवोंके गोत्र हैं, तिनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अब द्वारकापुरीमें विराजते हैं वह अपने चरणकमलोंके स्पर्श करनेवालोंको आत्मातक देनेको समर्थ हैं ॥ ११ ॥

सोरठा-जाओ हरिके पास, और न मन समझो कछू ।
ज्ञान मुक्तिकी रास, दास आश पूजत सदा ॥
चौ०-ऐसी मत समझो मन माहीं। धन कारण भेजत हरि पाहीं ॥
हरि दर्शन है सरिस सुहायो। यह रस भाग्य विना किनपायो ॥
वे भगवान प्राणके दाता। विप्रनको चाहत दिनराता ॥
क्षणमें दुःख तुम्हारे हरिहैं। सफल मनोरथ पूरण करिहैं ॥
जो कोउ जात शरण मोहनकी। पूरी करत आश जनमनकी ॥
गज प्रहलाद धना नरसीकी। राखी लाज द्रौपदीजीकी ॥
माँगन ते लजात मन माहीं। दर्शनको तो पिय डर नाहीं ॥
करत इसी कारण मित्राई। दुख सुखमें सब होत सहाई ॥
नारी इष्ट मित्र मन इच्छा। विपति परै तब करै परिच्छा ॥
जो न अबहिं हरि होयँ सहाई। कवन काज आवै मित्राई ॥
अबहुँ कन्त समुझो मन माहीं। जाओ वेग श्याम घन पाहीं ॥

जगत्के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भजन करनेवाले अपने भक्तोंको परिणाममें दुःखरूप धन और विषयका देना कुछ बहुत नहीं है, इस प्रकार कोमल वचनोंसे स्त्रीने बहुत प्रार्थना करी ॥ १२ ॥ तब तो सुदामा ब्राह्मण उत्तम यशवाले श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन

होगा यह बडा लाभ है, इस प्रकार मनमें विचारकर जानेकी इच्छा करनेलगा, और स्त्रीसे बोला कि, हे मंगलरूपिणी ! तेरे घरमें कुछ भेंट देनेको होय तो ला ॥ १३ ॥

चौ०–हमको उचित प्रिया यह नाहीं । खाली हाथ जायँ हरि पाहीं ॥
होयँ भेंटमें पाँच सुपारी । घरमें एको अक्षत नारी ॥

यह सुन सुदामाकी स्त्री किसी पडोसी ब्राह्मणके घरसे चार मुठी चावल मांगलाई और सुदामाके कपडेमें बांधनेलगी ॥

चौ०–जीरण वस्त्र बांधवे नाहीं । त्यों त्यों कर बाँधे तेहि माहीं ॥

हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको भेट देकर सुदामाको विदा किया ॥ १४ ॥

चौ०–चले गणेश मनाय सुदामा । भये शकुन सुन्दर अभिरामा ॥
मृगके झुण्ड दाहिने आये । नीलकंठ शुभ दरश दिखाये ॥

दोहा–मनमें शोचत जात द्विज, मैं तो दीन अनाथ ।
कैसे कर पहिंचानि हैं, मोहिं द्वारकानाथ ॥

सो०–बहुत दिवस गये बीति, मोहि न देख्यो श्यामने ।
बालापनकी प्रीति, समझैंगे कै नाहिं हरि ॥

चौ०–विना वस्त्र हौं दीन भिखारी । कस जैहौं हरि सभा मँझारी ॥
किमि प्रतिहार जान म्वहिं दैहैं । कैसे जाय श्याम सों कैहैं ॥
जिनको सकल नरेश जुहारें । वे कैसे मम ओर निहारें ॥
जब मैं हरिके सन्मुख जैहों । कहाँ ठौर बैठनको पैहों ॥
जब प्रतिहार कहैं हट जाऊ । तब मैं करिहौं कौन उपाऊ ॥
तब तो हँसी होय अतिभारी । फिरि किमि ऐहों गेह मँझारी ॥
जो कदापि मैं घर फिरजाऊं । नारि न चैन देय तेहि ठाऊं ॥
दोउ भाँति भयो मरण हमारो । विधि मोहिं भले पापमें डारो ॥
जो नहिं मानों त्रियके बैना । घरमें कलह रहै दिन रैना ॥
जो मैं जाऊं जहाँ विहारी । तहँ न बुझे कोइ बात हमारी ॥

दोहा–कबहुँ विप्र यह शोचकर, फिरत भवनकी ओर ।
चलत कबहुँ भय नारिके, जित श्रीनंदकिशोर ॥

सो०–जब फिर आवत लाज, लौटत घरकी ओरको ।
इतै उतै द्विजवर, चकई सम घूमत फिरै ॥

चौ०–यहि विधि शोचत द्विजवर वीरा । पहुँचो जाय गोमती तीरा ॥
निर्मल नीर गँभीर विराजै । कोटि कष्ट दर्शन ते भाजै ॥
भवभय रुजहरणी सुखकरणी । पाप हरणको श्रीवैतरणी ॥
कलिमलदल गंजनभयभंजन । दोषविभंजन मुनिमन रंजन ॥

सुखदानी वैकुण्ठ निशानी । महिमा शेष न सकहिं बखानी ॥
सुंदर घाट बाट मनमोहन । जलमें बनी सुभग आरोहन ॥
तहँ मठ मंदिर ठाकुरद्वारे । इक ते एक अनूप निहारे ॥
तिनमें साधु संत मुनि ज्ञानी । करैं ज्ञानचर्चा सुखखानी ॥
भामिनि यूथ यूथ मिलि आवैं । करि अस्नान परमसुख पावैं ॥
इक दिशि पुरुष करैं अस्नाना । कह हरि हरि श्रीकृष्णनिबाना
दोहा-तहँ करके अस्नान द्विज, कियो कृष्णको ध्यान ।
धनि धनि गंगा गोमती, धनि धनि श्रीभगवान ॥
सोरठा-यह छबि सुभग निहार, चढो वेग द्विज नावपर ।
भयो गोमती पार, तहाँ जाय देखै कहा ॥
चौ०-चारों ओर समुद्र विराजै । ताके बीच द्वारका राजै ॥
बडे बडे पर्वत चहुँ घांई । बसैं रीछ मर्कट तेहि ठांई ॥
वन उपवन लखि सुन्दर बागा। द्विजके मन उपजो अनुरागा ॥
तिनमें सुन्दर वृक्ष सुहाये । लगे फूल फल अति मनभाये ॥
निंबू बिंबू जंब कदंबा । शाल तमाल मालधन अंबा ॥
नारियल दाम बदाम छुहारे । कहीं अनार सरीफे न्यारे ॥
इमली वेल दाडिमी सोहै । सफरी अमृत फल मनमोहै ॥
कहिं कहिं पुष्पवाटिका न्यारी। तिनमें फूलिरही फुलवारी ॥
मौलसिरी केवडा नवेली । गंधराज मोतिया चँबेली ॥
सूरजमुखी सुदर्शन वेला । दाऊदी गुडहर अलबेला ॥
दोहा-मदनबाण चंपा कहीं, कहीं खिला महताब ।
कहीं चाँदनी खिलरही, चटके कहीं गुलाब ॥
सो०-गेंदा हारसिंगार, कुन्द केतकी खिलरही ।
जूही देत बहार, रूप मंजरीके विषे ॥
चौ०-तिनपर पक्षी परम सुहावन। बोल रहे बोली मनभावन ॥
महर कोकिला तीतर मोरा । करै मनोहर सुन्दर शोरा ॥
शुक सारिक जब वाणी बोलैं । बात बातमें अमृत घोलैं ॥
बने सुभग तहँ वापी कूपा । सुंदर बाग तडाग अनूपा ॥
निर्मल नीर गँभीर झकोलै । बकमराल तहँ करत किलोलै ॥
तिनमें जलज खिले अलबेले । वरण अनेक अरुण अरु पेले ॥
तहँ अलिकुलगुंजत बहु भांती। त्रिविध बयार वहत दिनराती॥
उडत पराग परत रज धरनी । तीन भुवनकी पावनकरनी ॥

ठाढे इंदारों पर माली। गावत सुन्दर तान निराली ॥
सो छबि को कबि सकै बखानी। सींचरहे वृक्षनमें पानी ॥
दोहा-मीठे मीठे स्वरन से, जब वे गावत तान।
मनुज दनुजकी को कहै, छुटत मुनिनके ध्यान ॥
सो०-कोसों लौं फुलवार, फूलरही सुन्दर सुखद।
यह छबि सुभग निहार, गयो सुदामा नगर में ॥

हे राजन्! इसप्रकार ब्राह्मण श्रेष्ठ सुदामा चावलोंको ले श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन मुझे कैसे होगा? ऐसे विचार करताहुआ द्वारकापुरीमें पहुंचा ॥ १५ ॥

चौ०-जहाँ कृष्ण द्वारका बसाई। इन्द्रपुरीते अधिक सुहाई ॥
वर्णि न जाय नगरकी शोभा। सो छबिलखि शिव अज मन लोभा ॥
सोहै चारु बजार मनोहर। अपने हाथ रचायो सौहर ॥
सकल वस्तु तहँ बिकत विशेषा। वणिक धनिक सब मनो धनेशा ॥
मंदिर महा अनूप विराजैं। ठौर ठौर मणि माणिक राजैं ॥
तिनपर चित्रविचित्र अटारी। जहँ तहँ मणिमय जटित निहारी ॥
स्वर्ण कलश बिजलीसे चमकैं। रवि प्रकाशते दूने दमकैं ॥
ध्वज पताक अरु वंदन वारे। बजैं दुन्दुभी निज निज द्वारे ॥
बसैं तहाँ नर नारि अनूपा। एक एकते आगर रूपा ॥
पुनि आगेको चलो सुदामा। जहां श्यामसुन्दरको धामा ॥

सुदामा ब्राह्मण तीन चौकी और तीन ड्योढीवानोंको उल्लंघनकर कृष्णके धर्मधारी और अगम्य अंधक और वृष्णियोंके घरोंके बीचमें हो ॥ १६ ॥ उन घरोंके बीचमें सोलह हजार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके घरमेंसे एक अत्यन्त सुन्दर घरमें सुदामाने प्रवेश किया, उससमय ब्रह्मकी प्राप्तिके समान आनन्द पाया ॥ १७ ॥

दोहा-भयो चकित चित लखि भवन, शोभा वरणि न जाय।
तीन भुवन शोभा मनो, रही भवनमें छाय ॥
सोरठा-ललित मनोहर द्वार, हाटकमय फाटक लगे।
गज रथ तुरँग अपार, झूमरहे ठाढे तहाँ ॥

चौ०-लग्यो सरस सुन्दर दरबारा। खडे चक्कवै भूप अपारा ॥
शूर सचिव सैनप तहँ ठाढ़े। जे रणमें उदार अतिगाढे ॥
लिये शस्त्र यदुवंशी डोलैं। राधामाधव की जय बोलैं ॥
द्वारपाल तहँ खडे ललामा। विप्र जान किय दण्डप्रणामा ॥
कौन देशते कियो पयाना। कहिय कृपाकर कृपानिधाना ॥
कौन काज इतको पग धारो। महाराज कह नाम तुम्हारो ॥
द्राविड देश हमारो धामा। कृष्णमित्र ममनाम सुदामा ॥

हम अरु कृष्ण पढे इक संगा। हरिसे कहो सकल परसंगा॥
जान जाँयगे आप मुरारी। बालापनकी प्रीति हमारी॥
द्वारपाल हरिके ढिग आयो। द्विजको सब संदेश सुनायो॥
छंद-शिरपर पगा नहिं तनु झगा प्रभु परम दुर्बल अंग है॥
दुपुटी फटी धोती लटी लकुटी न कर अति तंग है॥
नहिं पगन पनहीं मगन मनहीं रूपमानो अनंग है॥
कहै बार बार पुकार कान्हा पढो हमरे संग है॥

हे राजा परीक्षित्! प्यारी रुक्मिणीकी शय्यापर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णन द्वारपालके मुखसे यह संदेशा सुन और निकट खडे अपने प्राचीन मित्र सुदामाको देख, शीघ्र उठ भुजा पसारके मिले॥ १८॥

चौ०-गये लिपट गहि कोमलचरणा। हिय हुलास सो जात न वरणा॥
पुलक शरीर भरे जलनैना। गदगद कंठ न निसकत बैना॥
द्विजके पग छाँडत हरि नाहीं। महिपति अति लजात मनमाहीं॥
हरिगति लखि अति डरो सुरेशा॥ झपो कलपद्रुम कँपो धनेशा॥
द्विजकी चरणरेणु सुखदाई। कमल नयन ले शीश चढाई॥
जैसे योग ध्यान धरिकोई। देखि आतमा हर्षित होई॥
ताहीविधि हर्षित घनश्यामा। मिले पुरातन मित्र सुदामा॥
बार बार पूछत कुशलाता। इतने दिनन कहाँ थे भ्राता॥
धन्य भाग्यहै आज हमारे। परशे कोमल चरण तुम्हारे॥
आज पवित्र भवन मम भयऊ। परमानन्द मोहिं तुम दयऊ॥
छन्द-अस कहत बारम्बार करकर प्यार हरि द्विजराजसे॥
सकुचतसुदामा मनहिंमन कछुकह सकत नहिं लाजसे॥
सब देव हरषे सुमन वरषे देखि गति व्रजराजकी।
धनि धनि मिलाप सनेह पूरण धनि घडीहै आजकी॥

दोहा-लैगे द्विजको पकरिकर, मन्दिर माहिं मुरारि।
राजरवनि सोलहसहस, चकृत भई निहारि॥
सोरठा-को यह दुर्बल दीन, लै आये हरि भवनमें।
हरितो परमप्रवीन, आज जनै कह है गयो॥

चौ०-को यह दुर्बल दीन भिखारी। लाये मोहन भवन मँझारी॥
शेष महेश दिनेश सुरेशा। तपैं सदासहि कठिन कलेशा॥
अस आदरसों कबहुँ न पावैं। जैसे हरि द्विजके गुण गावैं॥
शोचकरैं आठों पटरानी। विधिकी गति कछु जातन जानी॥
मणिमण्डित चौकी अभिरामा। तहँ बैठारे कृष्ण सुदामा॥

पुनि पुनि पूँछैं कृष्णमुरारी । मित्र कवन गति भई तुम्हारी ॥
कह्यो रुक्मिणिहिं हरि सुखदानी । लावहु वेग थालमें पानी ॥
सुनत वचन आठौं पटरानी । लैलै चलीं परातन पानी ॥
यह कोइ हरिको परमपियारो । सबमिलयाके चरण पखारो ॥
सब सों नाहिं करत गिरिधारी । धोवत चरण आपु बनवारी ॥
छं०-लागे पगन कंटक विकट फटरहिं बिवाईं देखहारि ॥
कपडे फटे तनुक्षीन वदन मलीन केश रहे बिखारि ॥
यह दीन दशा निहारि करुणा करकै हरि रोवन लगे ॥
यदुनाथ हाथ न छुओ जल चख जलसे पग धोवन लगे ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! अपने अत्यन्त प्यारे मित्र सुदामा ब्राह्मणके मिलनेसे अतिआनन्द प्रसन्न हुए कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंसे आंसुओंकी बूंदे टपकने लगीं ॥१९॥

स०-ऐसे विहाल बिवाइनते पग, कंटक जाल गडे पुनिजोये ॥
हाय महादुख पायो सखा तुम, आये इतै न किते दिन खोये ॥
देख सुदामाकी दीन दशा, करुणाकरके करुणामय रोये ॥
पानी परातको हाथ छुओ नाहिं, नैननके जलसों पग धोये ॥

हे राजन् ! लोकोंके पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुदामासे मिल और उसको पलँगपर बैठाय, भेंटदे उसके चरणका धोवन जल अपने मस्तकपर चढाया और दिव्य गंध, अतर, चंदन, केशर इत्यादि सुदामाजीके लगाया ॥ २० ॥ २१ ॥

दोहा-धोय चरण चरणोदक, कृष्ण चढ़ायौ माथ ।
बूंद बूंद पुनि सबनको, देत भये यदुनाथ ॥
सोरठा-मेटो द्विजको खेद, चन्दन धरचत अंगमें ।
धूप दीप नैवेद, मँगा आरती करत हरि ॥

श्रेष्ठगंधयुक्त धूप दी, और बराबर दीपक जलाकर धरदिये और बडे आनन्दसे मित्र सुदामाकी पूजाकर तांबूल दे सन्मुख खडे हो " मित्रभले आये " इसप्रकार कृष्ण कहने लगे ॥ २२ ॥

चौ०-लगे करन हरि जब द्विज सेवा । आये नर तनु धरि सब देवा॥
प्रस्तुति करहिं पुकार पुकारी । जय जय जय भक्तन हितकारी॥
नमो नमो नारायण स्वामी । करहु कृपा भक्तन अनुगामी ॥
जयतिजयतिजयजययदुनायक । कलिमलभंजन संतसहायक ॥
शिव विरंचि तव अन्त न पावत । भक्त सनेह देह धरि आवत ॥
करि प्रस्तुति सब देव सिधाये । भोजन हरि तब द्विजहि जिमाये
प्रस्तुति करैं खडे सुखदानी । पवन डुलावत रुक्मिणि रानी

लोकमर्यादाकेलिये विषयोंमें आसक्त न होने पर भी कर्म करते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मण ! हम तुम जब गुरुके घरमें जाकर रहे थे, तबकी भी कुछ याद है कि नहीं ? जिन गुरुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जाननेयोग्य आत्माका स्वरूप जानकर पुरुष संसारसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें तीन गुरुहैं जन्मदाता पिता, दूसरा यज्ञोपवीतकर वेद पढावै, संध्या गायत्री सुन्दर कर्म सिखानेवाला और तीसरा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन चारों आश्रमोंको ज्ञान देनेवाला गुरु है, इसमेंसे प्रथम गुरु पूज्य है, दूसरा मेरे बराबर पूज्य है और तीसरा गुरु साक्षात् मेराही स्वरूप है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष मनुष्यरूप धारण करके गुरुरूप मेरे उपदेशसे संसाररूपी समुद्रके पार लगते हैं, हे ब्राह्मण ! वह पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णोंमें और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इन चारों आश्रमोंमें चतुर है ॥ ३३ ॥ ज्ञानके देनेवाले गुरुसे अधिक और सेवा योग्य कोई नहीं है, इसलिये उन गुरुके भजनसे और कोई अधिक धर्म नहीं है, सब प्राणियोंका आत्मा मैं जैसा गुरुकी सेवासे प्रसन्न होताहूं, ऐसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासधर्मसे भी प्रसन्न नहीं होता ॥ ३४ ॥

चौ०-तब द्विजके समीप हरि वैसे । बोलत वचन मनोहर ऐसे ॥
जब हम तुम संदीपन घांई । विद्या पढत रहे इक ठांई ॥
वे गुरुदेव परम सुखदाई । जिनकी महिमा कही न जाई ॥
उनकी कृपा कहूं कहँ ताई । कुशल क्षेमसे हैं तेहि ठाई ॥
इक अक्षर पढिये जेहि पाहीं । तेहिते उऋण हूजिये नाहीं ॥
हमतो विद्या सब पढ़लीन्हीं । गुरुकी टहल कछु नहिं कीन्हीं ॥
दोहा-गुरुसेवा दुर्लभ महा, चित दे करे जु कोइ ।
जो मनमें इच्छा करै, सो सब पूरण होइ ॥
सो०-विन गुरु मिलहि न ज्ञान, ज्ञान विना नहिं मोक्ष है ।
याते गुरू समान, और वस्तु नहिं जगतमें ॥
चौ०-जो गुरु सेवामें मन लावै । सो मोको चितमें नित भावै ॥
जो नर धर्म कर्म पहिचानैं । गुरु गोविन्द एक कर मानैं ॥
तब हम गुरु सेवामें रहते । जो गुरु कबहुँ कामको कहते ॥
हम ऊपर दाया तुम धरते । सो कारज तुमहीं सब करते ॥
संथा हमाहिं भूल जब जाती । तुम शिक्षा देते दिन राती ॥
तेहि कारण तुम गुरू हमारे । नहिं भूलत उपकार तुम्हारे ॥
वा दिनकी सुधि है द्विजराजा । हम तुम गये लकरियनकाजा ॥
हमसों लकरी तोरि न जाहीं । तुम हीं बाँध धरी हम पाहीं ॥
सिगरो दिन बीतो तेहि ठाई । सघन घटा उमडी तेहि घाई ॥
धरके बोझ चले तत्काला । वर्षन लग्यो मेघ तेहि काला ॥

हे ब्राह्मण ! हम और तुम जब गुरुके घर रहा करतेथे उस समय हमें तुम्हें गुरुकी स्त्रीने लकडी काटनेको वनमें भेजा, वहां दैवइच्छासे जो कुछ हुआ वह तुम्हें स्मरण है ॥ ३५ ॥ हे मित्र ! लकडी लेनेको हम तुम एक महावनमें गये यद्यपि वहां वर्षाऋतु नहींथी परन्तु तो भी महातीव्र पवनके साथ वर्षा होने लगी और अत्यन्त घोर कठोर गर्जना हुई ॥ ३६ ॥

दोहा-पवनझकोरै तेजसों, शीत भयो दुखदाय।
घन गर्जैं लर्जैं हिया, तनु ठिठरायो जाय ॥

इतनेहीमें भगवान् सूर्य अस्त होगये और सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धेरा छागया, सब स्थलमें जलमें जलहीजल दृष्टि आनेलगा, इसकारण ऊँचा नीचा कुछ दिखाई न दिया ॥ ३७ ॥ जलमय उस वनमें अति प्रचण्ड वायु तथा वर्षासे हम तुम दोनों पीडाको प्राप्त हुए दिशाओंकी कुछ सुधि न रही तब आतुर हो आपसमें हाथ पकड मस्तकपर लकडीके बोझोंको धरकर फिरने लगे ॥ ३८ ॥

सो०-तब तुम करी सहाय, काठ भार शिर पर धरो।
हमको लियो छिपाय, सो गुण कैसे भूलिहों ॥

चौ०-अपनो जीव कष्ट तुम कीन्हों। हमरो गात न भीजन दीन्हों ॥
अब ऐसे सुख संपति माहीं। वे दिन हमको भूलत नाहीं ॥
वर्षा नेक रही कछु नाहीं। सिगरी रात बसे वन माहीं ॥
तब तुम रक्षा करी हमारी। आप शीत वश रहे दुखारी ॥
गुरु अस्मरण भयो जब मोरा। ढूंढत फिरे विपिन चहुं ओरा ॥
कहाँ गये दोउ शिष्य हमारे। कृष्ण सुदामा हैं दोउ वारे ॥
मनमें बढो शोक सन्तापू। रोरो करत विलाप कलापू ॥
हे बलवीर पीर निवारन। कितगये इतते भव भय टारन ॥
हाय सुदामा तू कित गयऊ। तुम बिन मम चित व्याकुल भयऊ ॥

दोहा-तन मन व्याकुल नैन, जल परै न चितको चैन।
इतउत गुरु ढूँढत फिरैं, कहँ गये हे सुखदैन ॥

सोरठा-सूखन लग्यो शरीर, भूषण ब्रज भूषण विना।
दूषण लग्यो गँभीर, रूखन सों पूँछत फिरे ॥

चौ०-हे पीपर पतंग हरि चन्दन। कहाँ गये दामा नँदनंदन ॥
अहो माल धन ताल तमाला। मोहिं बतावहु मदनगुपाला ॥
अम्ब कदम्ब सांच तुम भाखो। कहां छिपाय श्यामको राखो ॥
वटके निकट गये गुरुदेवा। रोय रोय पूंछत सब भेवा ॥
जो नहिं मिलिहैं श्याम सुदामा। कहँ मुँह लेकर जैहों धामा ॥

बिन घनश्याम सुदामा प्यारे। कैसे रहिहैं प्राण हमारे॥
करत विलाप फिरत सब वनमें। बिरह व्यथा छाई सब तनमें॥

हे ब्राह्मण ! जब गुरुजी को इस बातकी खबरहुई, तब सूर्योदय होतेही सांदीपन गुरु हमैं तुम्हैं ढूंढते २ आये और आतुर अपने शिष्योंको बैठा देखा॥ ३९॥

चौ०-जब हम तुमको बैठो पायो। तब गुरुके मन धीरज आयो॥
जेते मित्र बन्धु जगमाहीं। निज प्राणनते प्रीतम नाहीं॥
हम सों हेत बहुत तुम मानो। प्राणन हूं ते प्रीतम जानो॥

और उस समय कृपा करके तीन श्लोक कहे, जिनसे हम कृतार्थ होगये, हे पुत्रो ! तुम हमारे लिये बहुत दुःखित हुये, क्योंकि प्राणियोंको देह बहुत प्यारा है, उसका निरादर करके तुमने हमारी सेवा करी ॥ ४० ॥ सत्पात्र शिष्योंको इसीप्रकार गुरुकी सेवा करनी योग्य है, शुद्ध भावना करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चारों पदार्थ जिससे प्राप्तहों ऐसें देहको गुरुके अर्पण करदे ॥ ४१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हुआ हूं तुम्हारे मनोरथ सब सत्यहों, तुमने मुझसे जो वेद पढे हैं, सो इस लोक और परलोकमें सारभरे नवीन पढे याद बनेरहैं ॥ ४२ ॥

चौ०-गुरुकी सेवा की तुम जैसी। जगमें कौन करत है ऐसी॥
हम नित प्रति यह देहिं अशीशा। तुमपर कृपा करैं जगदीशा॥
सुभग भाग जगमें नर सोई। जापर कृपावन्त गुरु होई॥
गुरु प्रसाद है अति सुखदाई। जाते सकल भक्ति हम पाई॥

"श्रीभगवान्‌ने कहा कि, हे मित्र ! कलियुगमें चेले गुरु दोनो लोभी लालची होते हैं, यहाँ एक दृष्टान्त है, * गुरुके घर जब हम रहते थे, तबके ऐसे अनेक चरित्र हैं,

---

* **दृष्टान्त**-एक चेला गुरुजीके पास आया और सेवा करने लगा, सेवा करनी पडीही पर माल भी बहुत मिलते हैं, नया जानकर पुराने चेलोंने सब काम धन्धा उसीपर डाल दिया, एक दिन उसने गुरुजीसे कहा कि, महाराज ! एकबात कहताहूँ गुरुजी बोले कह, चेलेने कहा कि, महाराज ! ऐसा भी कोई उपाय है कि, जो मैं गुरू होजाऊँ और तुम्हारे समान गद्दीपर बैठ हलुआपुरी उडाऊं चेलोंसे काम कराऊं, गुरुजीने सुनतेही क्रोधकर उसे निकाल दिया और फिर अपने यहां न आने दिया, चेलेको तो चाट लगरहीथी एक दिन एक पल्लेदारको बुला दो पैसे दे उससे कहा कि, रेता पल्लेमें भरकर लेचलो, उसने पल्ला भरलिया यह गुरुजीके दरवाजेपर पहुँच खबर दी कि चेला आया है, गुरुजी बोले कि, हम दर्शन नहीं देंगे, तब चेलेने कहा कि महाराज ! एक पल्लेमें कुछ लाया भी हैं, हम जाने बूरा या खांड है, इससे बुलालो, फिर भगा दीजो, गुरुजी बोले तो बुलालो, चेला सुनते ही बुलाने गया, उसने आतेही आंगनमें-

वह आपको याद है? गुरुओंकी कृपासेही मनुष्य पूर्ण मनोरथ होकर शांतिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ तब सुदामा बोले कि, हे देवदेव ! हे जगत्के गुरु ! सत्यसंकल्प तुम्हारे संग हमारा गुरुके पास वास हुआ था, फिर हमको कौन वस्तुकी प्राप्ति न हुई अर्थात् सब वस्तु पाचुके ॥ ४४ ॥ हे समर्थ ! संपूर्ण कल्याणदायक छन्दोमय वेद आपकी मूर्त्ति हैं, ऐसे आपने गुरुके यहाँ वास किया, यह तो लीलामात्र है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
उत्तरार्धे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दोहा-इक्यासी हरि विप्रके, तन्दुल भोग लगाय।
किये समर्पण लोक द्वै, तौहू रहे लजाय ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सब प्राणियोंके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र द्विजोंमें मुख्य सुदामाके संग बातें करते मुसकाकर बोले ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले साधु पुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रेमभरी चितवनसे देखते और हँसते हुये ब्राह्मण सुदामासे बोले कि ॥ २ ॥

चौ०-बहुत प्रीतिकर देखन आये। हमको कहो भेंट कह लाये ॥
कहा भेंट माँगत मुहिं पाहीं। घरसे मैं लायो कछु नाहीं ॥
कछु नहिं मोहिं ब्राह्मणी दीन्हो। खाली हाथ गमन मैं कीन्हो ॥
बोले मोहन विहँसि बहोरी। काहे राखत हमसों चोरी ॥
भाभी जो कुछ दिय मम काजा। सो अब देहु करहु मत लाजा ॥
दोहा-शाकपत्र इक प्रीतिसों, हमको देय जु कोय।
तेहि समान सब सृष्टिमें, कछु सवाद नहिं होय ॥
सो०-भोजन भूंखे नाहिं, हमतो भूंखे भावके।
क्यों लजात मनमाहिं, लायेहो सो देहू मुहिं ॥

हे ब्राह्मण ! तुम मेरे लिये क्या भेंट लाये हो ? क्योंकि भक्ति प्रेम पूर्वक जो मुझे थोडीसी भी भेंट देता है, सो बहुत होजाती है और जो भक्ति विना मुझे बहुत भी दे, परन्तु उससे मुझे संतोष नहीं होता ॥ ३ ॥ जो पुरुष भक्ति करके पत्र, पुष्प, फल मुझे देतेहैं, सो भक्तिसे भेंट करनेके कारण मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक भोजन करता हूं ॥ ४ ॥

चौ०-विविध भाँति मिष्टान्न जुलावे। बिना भक्ति कछु मोहिं न भावे॥
दुर्योधन बहु पाक बनाये। प्रीति विना ते मोहिं न भाये॥

-पल्ली गिरवाया और गुरूजीकी ओर चरणकर पल्लेको दण्डवत् करी गुरुजी बोले कि मूर्ख यह क्या करताहै ! चेलेने कहा कि महाराज ! मुझे तौ यह पल्लाही लाया है यह कहकर भागगया गुरूजी रेता देख अत्यन्त लज्जित हुये, कलियुगमें गुरू चेले बहुधा कुपात्रही हैं॥

विदुरभक्तिकी प्रीति जुजानी। बासी शाक बहुत रुचिमानी॥
जूठेबेर शबारि मोहिं दीने। ते रुचि सों भोजन हम कीने॥
मीराकी खिचरी हम खाई। ऐसी आज तलक नहिं पाई॥
जो कुछ तुम लाये हम पाहीं। थोरो मति समझो मनमाहीं॥

हे राजन् परीक्षित्! इसप्रकार भगवान्‌ने जब कहा तोभी लज्जाके मारे नीचेको मस्तककर विराजमान सुदामाने लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको तंडुल नहीं दिये॥ ५॥ तब कृष्णने फिर कहा॥

चौ०-वे तंदुल हमको नितभावैं। बहु मिष्टान्न दृष्टि नहिं आवैं॥
जबते गाँठ बाँध तुम लीने। तबते हम उनमें दृग दीने॥
तुम मत समझो चावल रूखे। हमतो भक्ति भावके भूखे॥
ज्यों ज्यों ऐस कहैं यदुराई। त्यों त्यों ब्राह्मण अधिक लजाई॥
दोहा-निज मनमें जानो तबहिं, श्रीकृष्ण महराज।
याहि पठायो ब्राह्मणी, ठेल पेल धनकाज॥

हे राजन्! साक्षात् सब प्राणियोंके साक्षी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाके आनेका विचार करनेलगे कि, धनकी चाहना करके इस सुदामाने मेरा भजन नहीं किया॥ ६॥ पर अपनी पतिव्रता स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये मेरे पास आया है, इसलिये जो संपत्ति देवताओंको भी दुर्लभ है सो इसे दूँगा॥ ७॥

चौ०-याके तो इच्छा कछु नाहीं। अति निरमोह रहै जगमाहीं॥
अष्टसिद्धि नवनिधितेहि दीन्हीं। विश्वकर्माको आज्ञा कीन्हीं॥
रचो नगर द्वारका समाना। भेद न जाने कोइ अयाना॥
बहुरि सुदामा सों हरि बोले। तुमतौ मित्र सदाके भोले॥
अब क्यों राखत हमसों चोरी। तंदुल काहे देत न छोरी॥
छोरत गाँठ न लकुचत मनमें। भली हँसी भइ चौथेपनमें॥
हरिने गाँठ पकर तब ऐंची। अपनी ओर सुदामा खैंची॥
जीरण वस्त्र फाटि तब गयऊ। तंदुल फैलत कौतुक भयऊ॥

इस प्रकार विचार कर चीरमें बँधे चावलोंको "यह क्याहै" ऐसे कह वह चावल सुदामाके वस्त्रमेंसे आपही ले लिये॥ ८॥ और एक मुठ्ठी चावल खाकर केशवमूर्ति बोले कि, हे मित्र सुदामा! यह जो तुम चावल लाये हो सो मुझे अत्यन्त प्यारे लगे हैं, इनको थोडा मत जानो, यह चावल मेरे सब विश्वका पेट भरदेंगे॥ ९॥

चौ०-अबलों बहुत अन्न हमखायो। ऐसो स्वाद कबहुँ नहिं पायो॥
यशुदा बहुविधि भोजन कीन्हे। बहुरो मातु देवकी दीन्हें॥
तिनहूमें यह स्वाद न पायो। जैसो स्वाद आज बनिआयो॥
भोजन नित्य बनत घर माहीं। ऐसो स्वाद होत सो नाहीं॥

दधि माखन खायो बहुतेरो। कबहुँ न भयो मगन मनमेरो ॥
भोजन करैं अनेकन ठाईं। ऐसे नहिं खाये अबताईं ॥
दुसरी बार खात यदुनाथा। तंदुल और लिये निज हाथा ॥
चाहत मुखमें डारैं जबहीं। रुक्मिणि हरिकर पकरो तबही ॥

ऐसे कह एक मुट्ठी चावलोंका भोजनकर और दूसरी मुट्ठी खा जब तीसरी मुट्ठी खानेलगे, तबहीं श्रीकृष्णपरायण रुक्मिणी परमेष्ठी श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ पकडकर कहनेलगीं कि, मित्रके घरकी सब वस्तु आपही भोजन कर जाओगे या कुछ हमको भी रहनेदोगे ? एकतो इसलिये आनकर हाथ पकडा दूसरा कारण आगे कहते हैं * ॥ १० ॥

सवैया-हाथ गहे प्रभुको कमला कहै नाथ कहा तुमने चितधारी।
तंदुल खाय मुठी दुइ दीन कियो तुमने दुइलोक विहारी ॥
खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहाँ निजवासकि आशविचारी॥
विप्रहि आपसमान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी॥

श्रीकृष्ण वचन।

क्यों रसमें विष वाम कियो अब और न खान दियो यक फंका।
विप्रहि लोक तृतीयक देत करी तुम क्यों अपने मन शंका ॥
भामिनि मोहिं जिमाय भली विधि कौन रह्यो जगमें नर रंका।
लोग कहैं हरिमित्र दुखी हमसे न सह्यो यह जात कलंका ॥

रुक्मिणी बोली कि हे विश्वके आत्मा ! एक दो मुट्ठी चावल भोजन करके तो सब विश्वकी संपत्ति इसे दे चुके और तीसरी मुट्ठी भोजन करके क्या मुझे भी दे चुकोगे ? क्योंकि इस लोक और परलोकमें तुम्हारे संतुष्टहोनेसेही संपत्ति प्राप्त होती है ॥ ११ ॥

---

* **शंका**-एक मुट्ठी चावल महाराज श्रीकृष्णने सुदामाके हाथसे छीनकर चाबलिये दूसरी मुट्ठी चावल द्वारका नाथने फिर चाबे जब तीसरी मुट्ठी चावल चाबनेको भरी तब महारानी रुक्मिणीजीने श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ क्यों पकडलिया? इस महा गम्भीर शंकाके समुद्रसे किसी प्रकार हमको पार करो ॥

उत्तर-रुक्मिणीजीने सुदामामें श्रीकृष्णकी अधिक प्रीति देखी तो डरगई, कि लक्ष्मी जो मैं हूं सो मुझे ब्राह्मणको दे देंगे चावलोंके बदलेमें, तब मेरा ब्राह्मण पति होवेगा. और भगवान् आप ब्राह्मणकी स्त्री अलक्ष्मी अर्थात् दरिद्राके पति होवेंगे, तब मेरा पतिव्रत धर्म भी नाश होगा और मेरे पति श्रीकृष्ण भी दुःख भोगेंगे, यह विचारकर रुक्मिणीने भगवान्का हाथ पकडलिया, चावल नहीं चाबने दिये, इसका तात्पर्य यह कि ब्राह्मणके चावल चाबकर भगवान् ब्राह्मणको तो लक्ष्मीपति करदेवेंगे और आप दरिद्री होजायँगे इसलिये हाथ पकडा ॥

चौपाई–यक यक मुठी देत यक लोका। याते नाथ हाथ तब रोका ॥
जो त्रिभुवनपति होय सुदामा। कहाँ रहो तुम कहँ हमवामा ॥
जान बूझ तुम भये अयाने। शिवकी नाई तुमहुँ भुलाने ॥
यह सुनिकै विहसे यदुराई। भली बात तुम प्रिया जनाई ॥
दोहा–शोर पर्यो सब नगरमें, आयो इक द्विज आज।
द्विये तासुको भवन द्वै, है प्रसन्न ब्रजराज ॥
सोरठा–रैनभई तेहिकाल, दिवस गयो आनन्दते।
द्विजको तब गोपाल, शयन भवनमें लैगये ॥
चौ०–रत्नजडित पलका तहँ राजै। श्वेत बिछौननकी छबिछाजै ॥
उज्ज्वल सेजसँवार बिछाई। पौढे तहाँ विप्र सुखदाई ॥
पूछी पिछली सकल कहानी। बातनहीं में रैन विहानी ॥
प्रात होत बोले घनश्यामा। अब अपने घर जाहु सुदामा ॥

हे नृपोत्तम परीक्षित् ! ब्राह्मण सुदामाने उस रात्रिको श्रीकृष्णचन्द्रके मन्दिरमें रह, भोजनकर जलपी स्वर्गकी प्राप्तिके समान सुखपाया ॥ १२ ॥ जब प्रातःकाल हुआ तो विश्वके पालन करनेवाले आत्माके आनन्दमें मग्न श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाको प्रणामकर मार्गमें पहुँचानेको पीछे पीछे संग आये, और बोले कि, मित्र सुदामा ! तुमने भला दर्शन दिया, और इस प्रकार स्वाधीन वचनोंसे आनंदहो सुदामा अपने घरको चला ॥ १३ ॥ हे नृप ! न तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसे धनदिया और न उसने लाजके मारे माँगा, श्रीकृष्णके दर्शनहीसे सुखपाकर अपने घरकी ओरको चला ॥ १४ ॥ चलते समय चित्तमें शोचनेलगा कि अहो ! ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवालोंके दैवत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति मैंने देखी, क्योंकि लक्ष्मीको छातीमें धारणकरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अतिदरिद्री मुझ सुदामाको छातीको लगाकर मिले ॥ १५ ॥ कैसा आश्चर्य है कि दरिद्री पापी ब्राह्मणमैं कहाँ ? और लक्ष्मी जिनके अंगमें वासकरैं ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रकहाँ ? मुझमें उनमें बडा अंतरहै, सो भुजापसार कर मुझसे मिले ॥ १६ ॥ अपनी प्रिय भार्याके सेवा करने· योग्य शय्यापर जैसे अपने भ्राता बलदेवजीको बैठालतेथे, उसीप्रकार मुझे बैठाया और मार्गकी थकावट दूर होनेको श्रीकृष्णचन्द्रकी भार्या रुक्मिणीने चमर हाथ में लेकर मेरे पवन करी ॥ १७ ॥ बडी सेवा करके पांवोंका दाबना, धोना, पोछना, इत्यादि सत्कार करके देवोंके देव ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके समान मेरी पूजा की ॥ ॥ १८ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी शोभा मनुष्योंको स्वर्ग मोक्ष और पाताल, पृथ्वीकी संपत्ति, तथा सर्व सिद्धियोंका कारण है, परन्तु तो भी ॥१९॥ दरिद्री सुदामा धनको पाय, बहुत मतवाला होकर मुझे भूल जायगा, इस कारण करुणा-निधान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुझे यत्किंचित् भी धन न दिया ॥ २० ॥

चौ०-बहुरो द्विज समझो मनमाहीं। विघ्न अनेक होत धनमाहीं॥
मित्रजान हरि किरपा कीन्हीं। याते संपति मोहिं न दीन्हीं॥
या विधि मनमें करत विचारा। पहुँचो द्विज निज नगर मँझारा॥

हे महाराज! इसप्रकार सुदामा मनहीं मनमें विचार करता हुआ अपने नगरमें पहुँचा तो क्या देखता है कि-सूर्य, अग्नि, चंद्रमाके समान प्रकाशमान चारों ओर विमान शोभित होरहे हैं॥ २१॥

चौ०-दृष्टिपरी हय गजरथभीरा। चकित भयो लखि द्विजवरवीरा॥
बहुविधि रचना रची बनाई। उपवन शोभा कही न जाई॥
सोहत सुन्दर ताल रसाला। तिनमें फूले कमल विशाला॥
सुन्दर राज समाज न थोरा। कंचन धाम बने चहुँ ओरा॥
हाट बाट सुन्दर चौवारे। तिनमें मणिगण सुभग निहारे॥
अपनी टूटी छानि न पावै। मंदिर देखि बहुत घबरावै॥
सकल नगर चहुँ ओर मझांयो। कहा कुटीको खोज न पायो॥
दोहा-भलोगयो हरिसों मिलन, जानि पाछिली प्रीति।
इत तो खोई ब्राह्मणी, उत खोई परतीति॥
सो०-धन्य कृष्ण महराज, भली प्रीति पाली तुमहिं।
मैंने जाने आज, गुण अवगुण सब आपके॥

चित्र विचित्र बगीचे शोभायमान तिनमें पक्षियोंके झुंडके झुंड बोल रहे हैं और कुमुद, अंभोज, कह्लार, उत्पलसे शोभायमान सरोवर भर रहे हैं॥२२॥ शृंगार किये पुरुष और हरिणके तुल्य नेत्रवाली स्त्रियें जहाँ तहाँ फिररही हैं, ऐसी शोभा और विमानोंका प्रकाश देख आश्चर्यमान "यह क्या है? किसका स्थान है?" फिर अपने मनमें विचार किया कि यह तो हमारेही रहनेका स्थान है, ऐसा कैसे होगया॥ २३॥ इसप्रकार बडभागी सुदामाको देवताओंके समान शोभावाले स्त्री पुरुष गाते बजाते सम्मुख लिवानेको आये॥ २४॥ पतिका आगमन सुन आनंद और घबराहटसे सुदामाकी स्त्री साक्षात् कमल-वनमेंसे रूपधरे लक्ष्मीके समान शीघ्रही घरसे बाहर निकली श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गको सुदामाके महलमें लायेथे इसलिये सुदामा और सुदामाकी स्त्री दोनों देवस्वरूप होगये॥ २५॥

सो०-उतर अटा ते नारि, सखी सहेली संग ले।
करि सोलह शृंगार, चली साजिकै आरती॥
चौ०-यह सुनिकै दासी सब धाई। बाहर लेन सुदामाहिं आई॥
यद्यपि बहुत केरी मनुहारी। पग धारो निज गेह मँझारी॥
दासी सकल पकरिकै बाहीं। लैआईं निज आँगन माहीं॥
प्रथम आय आरती उतारी। चरणन माहिं परी पुनि नारी॥

नमस्कार कर विनती कीन्ही। तीनबार परिकरमा दीन्ही ॥
मनमें अति आनंद बढायो। नयनन नीर प्रवाह बहायो ॥
हरिकी कृपा भई बहु दिनमें। कंचन धाम रचायो छिनमें ॥
कन्त न कछु कीजै संदेहा। हरिने प्रगट कियो जग नेहा ॥

प्रेम और उत्कण्ठासे नेत्रोंमें आंशु भरे पतिव्रता सुदामाकी स्त्रीने पतिको आया देख नेत्र मूँद, बुद्धिसे विचार मनसे आलिंगन कर नमस्कार किया ॥ २६ ॥ जैसे विमानमें बैठी देवी प्रकाशमान होती है, उसी प्रकार धुकधुकी कण्ठमें धारण किये दासियोंके मध्यमें प्रकाशमान अपनी स्त्रीको देख सुदामाजीने बहुत आश्चर्यमाना ॥ २७ ॥ और प्रसन्न हो अपनी स्त्रीके साथ अपने घरमें गये, जहाँ सहस्रों मणियोंके खंभ लग रहे थे, मानों इन्द्रभवन है ॥ २८ ॥

सोरठा-चकित भयो मनमाहिं, मणिमय मंदिर देखिकै।
और ठौर कहुँ नाहिं, इहि समान दोउ लोकमें ॥

चौ०-हेम चीरके चँदवा सोहैं। झालरमें मुक्ता मनमोहैं ॥
चौकी स्वर्णधरी मनभावन। लागेमणिगण अधिक सुहावन॥
रत्न जडित पलँगा तहँ राजै। दूधफेन सम सेज विराजै ॥
वस्तु अनेक धरी तेहि ठाईं। नाम अपार कहूँ कहँ ताईं ॥
महामनोहर सभा जु देखी। इन्द्र सभासम आदि विशेषी ॥
तब द्विजि अपने मनमें जानी। मोपर कृपा करी सुखदानी ॥
जिनको मन उदार जगमाहीं। जो कछु देत कहत वे नाहीं ॥
दीनदयालु नाम हरिकेरो। कैसे करत भलो नहिं मेरो ॥
जन सुखदाई नाम तुम्हारो। नित भक्तनके कारजसारो ॥

दोहा-जब लों नहिं सुमिरे हरिहि, जे संतनके मीत।
ते दिन लेखेमें नहीं, गये वृथा सव वीत ॥

दूधके श्वेत झागोंके समान कोमल श्वेत बिछौने बिछरहे हाथीदाँत व सुवर्णके पलँग जिस मंदिरमें बिछरहे और सुवर्णकीही डंडोंके चमर पंखे धरे हैं ॥ २९ ॥ कोमल २ पथरनोवाले सुवर्णके सिंहासन और मोतियोंके झालरीदार प्रकाशमान चँदोवे तन रहे थे ॥ ३० ॥ और निर्मल स्फटिक मणियोंकी भीतों में महा मरकतमणियोंकी तथा स्त्री सहित मंदिरमें रत्नोंके दीपक प्रकाशमान होरहेथे ॥ ३१ ॥ इसप्रकार उस मंदिरमें संपत्तियोंकी वृद्धि देख स्थिर हो "अकस्मात् इतनी संपत्ति कहाँसे आई" ऐसे सुदामाजी विचार करने लगे ॥ ३२ ॥ सदाके दरिद्री भाग्यहीन मुझे बडे ऐश्वर्यमान यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवन विना निश्चय और कोई इस संपत्तिका कारण नहीं है ॥ ३३ ॥ जिसप्रकार समुद्रको पूर्ण करनेवाला महाउदार मेघ किसी समय अधिक तर वृष्टिको भी सूक्ष्म जानकर मानो लज्जित होता हो ऐसे समक्षमें नहीं वरसता, रात्रिको नगरके लोगोंके

सोजानेपर उनके खेतोंको जलसे पूर्ण करता है, उसी प्रकार मेरे सखा पूर्णकाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी भक्तको देनेके लिये इन्द्रादिक पदको भी तुच्छ और उसके लिये भजनको अधिक मानकर समक्षमें न कहतेहुये सब सम्पदायें प्रदान करते हैं ॥ ३४ ॥ आप बहुत दें, उसे थोडा मानै और सुहृदोंको थोडे दियेको भी बहुत मानते हैं, क्योंकि मैं एक मुट्ठी चावलोंकी लेगया था उसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर लिया ॥ ३५॥ मुझे जन्म जन्ममें उन्हींके विषयमें प्रेम हितेच्छुता मैत्री व दासपन प्राप्तहो और महानुभाव व गुणोंके धाम भगवान् वासुदेवमें आसक्त होते उनके भक्तोंका सत्संग प्राप्त हुआ करै यही उनसे विनय है ॥ ३६ ॥

चौ०-अब हरि सों माँगों यह बाता। तुमको नहिं भुलूं दिन राता॥
पाण्डुसुतन हरि सों हित कीनो। यद्यपि दुर्योधन दुख दीनो॥
एक हाथ पृथ्वी नहिं दीन्हीं। तिनपर कृपा कृपानिधि कीन्हीं॥
हा! यदुनाथ दीनहो भाखे। लाक्षा मंदिरमें तब राखे॥
तिनको दुख दारिद्र सब गयऊ। सकल विश्वके राजा भयऊ॥
जब हरि हरि प्रह्लाद पुकारो। नरतनु धर करि असुर सँहारो॥
गजके हेतु गरुड चढिधाये। द्रुपदीके पट अधिक बढाये॥
जे जन ज्ञानवंत जगमाहीं। हरिसे हरिबिन माँगत नाहीं॥
भक्तन हितकारी घनश्यामा। तारे धुरू धना अरु नामा॥
यद्यपि धनको गये सुदामा। धन अरु मुक्ति दई घनश्यामा॥
छन्द-तंदुल मिलत नहिं एक तिनके, भवन कंचनके करे।
जिन पगनमें पनहीं नहीं, तहँ सुभग रथ गज हयपरे॥
नहिं छानिपरहो फूस ताके, धाम कंचनके करे।
प्रभु जयति जयति कृपालु आनंदकंद श्रीकमलावरे॥

धनी पुरुषोंके धनके अभिमानसे नीच जन्म होते देखकर विवेकसे श्रीकृष्णचन्द्र अपने अज्ञानी भोरे भक्तोंको विचित्र संपदा और राज्यके ऐश्वर्य नहीं देते किन्तु दृढ भक्ति देते हैं, मुझे भक्ति नहीं थी, इससे संपदाका सुख मिला परन्तु अब भक्तिहीकी प्रार्थना करताहूं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चयकर श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त भक्त सुदामा विषयोंका धीरे धीरे त्याग करता अति आसक्त न होकर स्त्रीके साथ विषयोंका सेवन करने लगा ॥ ३८ ॥ देव देव तथा यज्ञपति इन प्रभु श्रीकृष्ण चन्द्रके ब्राह्मणही प्रभु और इष्ट देवता हैं, इन ब्राह्मणोंसे अधिक और कोई देवता नहीं है ॥ ३९ ॥ हे राजन्! इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र वह ब्राह्मण सुदामा उस समय अजित भगवान्को भी भक्तोंके सम्मुख पराजित होते देखकर उनके ध्यानके वेगसे अहंकार दूरकर शीघ्रही सत्पुरुषोंके शरणरूप श्रीकृष्णचन्द्रके धामको चलागया ॥ ४० ॥ जो पुरुष ब्रह्मण्य देव

श्रीकृष्णचन्द्रकी, ब्राह्मणकी गौरवता प्रतिपादन करनेवाली यह लीला मन लगाकर सुनते हैं वह भगवान् वासुदेवकी भक्तिको प्राप्त होकर कर्मबंधनसे छूट जाते हैं ॥ ४१ ॥

चौ०-धनि धनि कृष्णचन्द्र सुखधामा॥धनि धनि धनि द्विजराज सुदामा
देखो हरिकी सुन्दर रीती। पालत सदा भक्तसों प्रीती॥
जबसे द्विजके तंदुल खाये। सो हरि अबलों नहिं बिसराये॥
जगन्नाथ वनि कृपानिकेता। खात भात निज जनन समेता॥
जो कोइ जाय भातसो खैहैं। निस्संदेह सो सुरपुर जैहैं॥
चावल जो हरिको अति प्यारे। तेहिते सबन शीश पर धारे॥
धनि धनि धनि श्रीकृपानिधाना॥जन प्रण प्रति पालक भगवाना॥
कियो रंकते राव सुदामा। तव गति अति अपार घनश्यामा॥

छन्द-तव गति अपार मुरारि वारंवार शिव अज ध्यावहीं।
सनकादि नारद शेष शारद नित्य ध्यान लगावहीं॥
महिमा तुम्हारि अनंत खोजत फिरत अंत न पावहीं।
किमिदास शालिग्राम हे घनश्याम तव गुण गावहीं॥

दोहा-यह चारित्र अद्भुत महा, कहै सुनै जो कोय।
रहै सदा आनंदमय, कबहुँ दरिद्र न होय॥

सोरठा-जे जन चित्त लगाय, सुनैं सुदामाकी कथा।
निशि दिन रहैं सहाय, तिनपर श्रीघनश्यामजी॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

दोहा-अंकबयासीमें भयो, कुरुक्षेत्र रविपर्व।
मिले प्रेम अरु प्रीतिसे, यादव औ नृप सर्व॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! इसके उपरान्त द्वारकापुरीमें वास करते रामकृष्णको एक समय प्रलयकालके समान बडा भारी सूर्यग्रहण आया ॥ १ ॥ हे महाराज! ज्योतिषियोंसे उस ग्रहणको पहलेही जानकर मनुष्य सब ओरसे दान, पुण्य, स्नान, करनेके लिये कुरुक्षेत्रको जाने लगे ॥ २ ॥ जहाँ शस्त्रके धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ महात्मा परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीसवार निःक्षत्रिय करके राजाओंके रुधिर समूहसे कुण्ड भरदिये थे ॥ ३ ॥ यद्यपि पाप रहित हैं, परन्तु तोभी समर्थ भगवान् परशुरामजी अपने पाप दूर करनेके लिये अज्ञानी पुरुषके समान सब लोकोंको शिक्षा देनेके कारण जाकर कुरुक्षेत्रमें यज्ञ किये ॥ ४ ॥ बडी तीर्थयात्रामें संपूर्ण भरतखण्डकी प्रजा आई उसीप्रकार वृष्णि, अक्रूर, वसुदेव, राजा उग्रसेनादि यादव ॥ ५ ॥ अपना अपना पाप दूरकरनेके लिये कुरुक्षेत्रमें आये, गद, प्रद्युम्न, सांबादिक श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र आये परन्तु

सुचन्द्र शुक सारण सहित अनिरुद्ध और कृतवर्मा यह दोनों द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिये रहगये ॥ ६ ॥ बडे तेजस्वी सुवर्णकी माला और दिव्य फूलोंकी माला वस्त्र कवच धारण किये देवताओंके विमानोंके समान प्रकाशमान और जलतरंगके समान चंचल घोडे और बादलोंकेसी कान्ति ऐसे हाथियोंके ऊपर विद्याधरोंकेसी कान्तिवाले सिपाहियोंसहित यादव मार्गमें जातेहुये देवांगना सहित देवताओंके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ बडे भाग्यवान् बहुत सावधान यादवोंने कुरुक्षेत्रमें व्रत स्नानकर वस्त्र और फूल व सुवर्णकी माला पहराय गौ ब्राह्मणोंको दान करके दी ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त यादवोंने परशुरामजीके सरोवरोंमें मुक्त स्नान कर "श्रीकृष्णचन्द्रमें हमारी भक्ति होवै" यह संकल्प करके ब्राह्मणोंको बहुतसा सुवर्ण दान किया ॥ १० ॥ इसके उपरान्त उन ब्राह्मणोंसे आज्ञापाय यादव आप यथेच्छ भोजन कर शीतल छायायुक्त वृक्षोंके नीचे बैठगये ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! वहाँ मत्स्य, उशीनर, कौशल्य, विदर्भ, कुरु, सृंजय, कांबोज, कैकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त्त व केरल देशके वासी अपने मित्र बांधव, व राजा और दूसरे भी अपने पक्षके और परपक्षके सैकडों मनुष्य और नंदआदि अपने प्रिय स्नेही ग्वाल व बहुत दिनोंकी उत्कण्ठावाली गोपियें प्रभृति जो आये, उन सबको देखा ॥ १२ ॥ १३ ॥ परस्पर दर्शनसे उत्पन्नहुए आनंदके वेगसे प्रफुल्लित हृदय और कमलमुखसे शोभायमान पुलकित शरीर प्रेमसे रुद्ध कण्ठ नेत्रोंसे जल बहाते परस्पर आलिंगन करते यादव और दूसरे लोग बडे आनंदमें मग्न होगये ॥ १४ ॥ अत्यन्त स्नेहभरी मुसकान निर्मल कटाक्षयुक्त दृष्टि और स्नेहके आँशू नेत्रोंमें भरे स्त्री स्त्रियोंको देख केशर लगे स्तनोंको स्तनोंसे लगाय भुजा पसार परस्पर मिलनेलगीं ॥ १५ ॥ जब छोटी अवस्थावाले बडोंको प्रणाम करचुके तब वह यादव वृद्धोंको प्रणामकर "भले आये" प्रसन्न हो इसप्रकार कुशल पूछ आपसमें कृष्ण कथाओंको पूछनेलगे × ॥ १६ ॥ कुंती, भाई, बहन, भतीजे, माता, पिता, और भाइयोंकी बहुओंको देख तथा मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रको देख आपसमें प्रेमकी बातचीत कर नेत्रोंसे आँशू बहाने लगी ॥ १७ ॥ कुन्ती

× **शंका**—मुनिसत्तम युधिष्ठिरकी आज्ञा करनेवाले राजा श्रीकृष्णको स्त्रीसहित देखकर विस्मयको क्यों प्राप्तहुए ?

उत्तर—सब शास्त्रोंमें श्रीकृष्णके वचनको राजा लोग मुनियोंके मुखसे सुनतेथे कि, भगवान्ने कहाथा कि, सब शास्त्रोंमें लिखाहै कि स्त्री सदा नरककी देनेवालीहै, जो कोई प्राणी मोक्षकी अभिलाषा करै वह स्त्रीकी संगति न करै, फिर स्त्रियों सहित श्रीकृष्णको देखकर राजाओंने कहा कि, जिस जिस कामको श्रीकृष्ण बुराकहतेहैं उसी उसी कामको आप करतेहैं, इसप्रकार स्त्रियोंके वश हुये श्रीकृष्णको देखकर राजालोगोंने बडा संदेह किया. देखो ! प्राणियोंको स्त्रियोंके वश होना मने करते हैं और आप स्त्रियोंके वशीभूत होरहेहैं, इसलिये राजा लोग विस्मयको प्राप्तहुए ॥

बोली कि हे आर्य ! मैं अपनेको अपूर्ण मनोरथ मानतीहूँ क्योंकि जब मुझपर विपत्ति पडती है, तब जो श्रेष्ठ मेरी बातको स्मरण भी नहीं करते ॥ १८ ॥ जिससे दैव रुष्ट होजाताहै, उसको कोई भी संबन्धी अर्थात् जातवाले, पुत्र, भाई, माता, पिता यह स्मरण नहीं करते ॥ १९ ॥ वसुदेवजी बोले कि, हे बहन ! दैवके खिलौने ऐसे हम मनुष्योंको दोष मत लगावै, क्योंकि लोक ईश्वरके अधीन होकर कर्म करताहै और ईश्वरही कर्म कराता है ॥ २० ॥ प्रथम हम कंससे अत्यन्त दुःखित हो सब दिशाओंमें चले गयेथे, दैव इच्छासे अभी अपने स्थानपर आये हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! वसुदेव उग्रसेनादिक यादवोंसे पूजित हो व राजा लोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर सुखपूर्वक परमानंदमें मग्न होगये ॥ २२ ॥ भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, अंबिकाका पुत्र धृतराष्ट्र, पुत्रों सहित गान्धारी, स्त्रियों सहित पांडव, कुन्ती, संजय, बुद्धिमान् विदुर, कृपाचार्य ॥ २३ ॥ कुन्तिभोज, राजा विराट्, भीष्मक और नग्नजित्, पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, काशीनरेश सहित धृष्टकेतु, बडेनेत्रवाला राजा दमघोष, मिथिलादेशका राजा-मद्रदेशका राजा, और कैकयदेशका राजा युधामन्यु, सुशर्मा, और पुत्रों सहित बाह्लीकादिक, हे राजाओंके इन्द्र राजा परीक्षित् ! महाराज युधिष्ठिरके आज्ञाकारी राजा संपूर्ण रानियों सहित अत्यन्त शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका रूप देखकर परम आश्चर्य मानने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ दर्शन करनेके उपरान्त रामकृष्णसे भलीप्रकार सत्कार पाय राजालोग श्रीकृष्णचंद्रादि यादवोंकी प्रशंसा करनेलगे ॥ २७ ॥ "अहो ! महाराज उग्रसेन ! यहाँ मनुष्योंमें जन्म तो आपहीका सफल है, क्योंकि, जिनके दर्शन योगीजनोंको भी दुर्लभ हैं उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आप नित्य प्रति दर्शन करते हैं ॥ ॥ २८ ॥ वेद जिनकी स्तुति कीर्त्ति वर्णन करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका धोवन गंगाजल और मुखारविन्दका वचनरूप वेद इस विश्वको अत्यन्त पवित्र करते हैं और कालसे दग्ध माहात्म्य जाननेवाली पृथ्वी भी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलके स्पर्शसे शक्तिमान हो हमारी चारों ओरसे संपूर्ण कामना पूर्ण करती है ॥ २९ ॥ उन श्रीकृष्णचन्द्रके संग दर्शन, स्पर्शन, अनुसरण, आसन, गोष्ठी, पलँग, भोजन, विवाह और सपिंडताके संबंधसे बँधे हुए हो और आप यद्यपि नरकके मार्गरूप गृहमें वास करते हो परन्तु तो भी तुम्हारे घरमें स्वर्ग व मोक्षकी तृष्णा निवृत्त करनेवाले विष्णु भगवान् आपही प्रगट हुए हैं, इसलिये तुम्हारा जन्म सफल है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! नंदरायजी कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णादि यादवोंका आगमन जान गोपोंसहित और गाडियोंमें लदी वस्तु सहित देखनेके लिये यादवोंके पास आये ॥ ३१ ॥ बहुत दिनोंसे जिनका दर्शन न हुआ ऐसे कायर चित्त यादव नंदरायजीको देख अत्यन्त प्रसन्न हो, जैसे प्राण देहमें आनेसे इन्द्रियें उठकर सम्मुख होती हैं, उसी प्रकार सम्मुख जाय चिरकालसे दर्शन न पानेसे उत्कंठित हो गाढ आलिंगनकर परस्पर मिले ॥ ३२ ॥ वसुदेवजी नंदरायजीसे मिल प्रसन्न हो प्रेममें विह्वल होगये और कंसके दिये कष्टको और

गोकुलमें जैसे कृष्णको पहुँचा आये थे, उसका स्मरण किया ॥ ३३ ॥ हे राजन्! कृष्ण बलदेव माता पिता नंद व यशोदासे मिल प्रणामकर ऐसे प्रेमसें विह्वल होगये कि, आँशु- ओंसे कंठ रुक गये, इसलिये कुछ भी न बोलागया ॥ ३४ ॥ महाभाग यशोदा और नंदजी कृष्ण बलदेवको अपने आसनपर बैठाय भुजाओंसे आलिंगनकर नेत्रोंसे आँशु बहाने लगे ॥ ३५ ॥

दोहा-नंदराय अति प्रेम सों, मिले श्याम सों आय।
मातु यशोदा दौरिकै, लीन्हों कंठ लगाय॥
अति हित गदगद कंठ है, बैठे श्रीयदुवीर।
नंद यशोदा दृगन ते, चलो उमडि कै नीर॥

पीछे रोहिणी और देवकी ब्रजकी रानी यशोदासे मिल व यशोदाकी करी मित्रताका स्मरण कर आँशु नेत्रमें भर गद्गद कंठ हो यह कहनेलगीं॥ ३६॥ कि, हे ब्रजकी महारानी! जिसका वदला न होसके, ऐसी तुम्हारी मित्रताको कौन भूल सकता है? और देवराज इन्द्रका ऐश्वर्य पाकर भी इस संसारमें तुम्हारी मित्रताका बदला नहीं होसकता,हे यशोदे! जिन्होंने अपने माता पिताको नेत्रोंसे नहीं देखा, ऐसे कृष्ण बलदेवको तुम माता पिताके पास रक्खे, तब तुमसे प्यार बढना पोषण, पालन, लालन, पाय निर्भय तुम्हारे पास वास करनेलगे, जैसे पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, उसीप्रकार तुमने इनकी रक्षा करी, यह तुमको योग्यही है, क्योंकि, साधुओंको यह अपना विराणा इसप्रकार बुद्धि नहीं होती है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् जिनके दर्शनमें पलकोंकी ओट पडनेसे पलकोंके रचनेवाले विधाताको गालियाँ देतीहैं, क्योंकि, वह अति प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र बहुत दिनोंमें दृष्टिगोचरहुए, इसलिये नेत्रद्वारा उन्हें हृदयमें स्थापित कर समाधिनिष्ठ योगियोंको भी जिसकी प्राप्ति बहुत कठिन है, उन श्रीकृष्णचन्द्रके भाव (अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रके रूप को) उन गोपियोंने प्राप्त किया ॥ ३९ ॥ इसप्रकार प्रेमभरी गोपियोंके पास एकान्तमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जाय आलिंगन कर कुशल पूँछ मुसकायकर यह वचन बोले कि ॥ ४० ॥ हे सखियो! हम अपने बांधवोंका कार्य करने की कामनासे गयेथे और वहाँ वैरियोंके पक्षका नाश करनेमें लगगये, जिससे बहुत दिनोंतक रुकगये सो तुमने हमारा भी कभी स्मरण किया? ॥ ४१ ॥ "यह कृतघ्नी है" क्या ऐसे तुमको हमपर कुछ क्रोध तो नहीं उत्पन्न होताहै? हाँ हमको त्यागकर आप चले- गये, इससे यह वात सत्य है, इस प्रकार गोपियोंकी ओरसे संभावना करके कहते हैं कि, दैवही तो प्राणियोंको मिलाता है और वही वियोग करा देताहै, ॥ ४२ ॥ जैसे वायु बादलोंके समूहको तृणोंको रुईको और धूरिको उडाकर संयोग करता है, फिर वियोग करता है, उसी प्रकार सब प्राणियोंका उत्पत्तिकर्त्ता ईश्वर सबको मिलाता है और फिर अलग अलग कर देता है, इसमें मुझे क्या दोष है ॥ ४३ ॥ प्राणियोंकी मुझमें भक्तिही जन्म और मृत्युसे छुडाती है, तुम्हारा मुझमें स्नेह हुआ है, इसलिये मुझे प्राप्त होउगी,

यही बडा मंगल है ॥ ४४ ॥ कैसे तुम हो जिन्हैं स्नेह करके हम पावेंगी ऐसी इच्छा सब गोपियोंकी हुई तो अपना रूप कहते हैं कि, हे गोपियो ! जैसे पंचभूतोंके बने घटादिकके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह आदिमें भी हैं, अंतमें भी हैं, इसी प्रकार जरायुज मनुष्य तथा पशु आदि और अण्डोंसे जन्म पानेवाले पक्षी इत्यादिक और पसीनेसे जन्मवाले खटमल जुए इत्यादिक और उद्भिज्ज अर्थात् ब्रह्मादिक चारप्रकारके आदिमें भी मैं हूं और अंतमेंभी मैं हूं, भीतर बाहर होनेके कारण व्यापक हूं, ऐसे मुझे तुम प्राप्त हुई हो ॥ ४५ ॥ यहाँ एक शंका है कि, चारप्रकारके प्राणियोंका भोक्ता आत्मा आदि अंतमें है और व्यापक आत्मामें सब प्राणी वास करते हैं, फिर तुम्हारी प्राप्ति हमैं कैसे हुई ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि,मृत्तिका घटादिकोंके आदि में भी है और अंतमें भी है ऐसे चार प्रकारके प्राणी अपने कारणसे भूतोंमें वर्त्तमान रहते हैं, भोक्ता आत्मामें नहीं रहता है आत्मा देहमें भोक्ता रूपसे व्यापक है, पंचभूत रूप देहरूप भोग करनेयोग्य पदार्थ और भोग करनेवाले आत्मा परिपूर्ण रूप मुझमें प्रकाशित देखो ॥ ४६ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपका उपदेश कर गोपियोंको समझाया,तब श्रीकृष्णचन्द्रके स्मरणसे उनके लिंगदेह छूटगये, तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति की ॥ ४७ ॥ गोपी बोलीं कि, हे कमलनाभ श्रीकृष्ण ! बडे ज्ञानी योगीश्वरोंके ध्यान करने योग्य और संसाररूपी कुएँमें गिरे प्राणियोंके निकलनेका आश्रय तुम्हारे चरणकमल घरमें रहने पर भी सदा हमारे मनमें स्मरण बनारहै, यही वर माँगती हैं ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

दोहा-कह्यो नारियोंकी कथा, सकल तिरासी अंक।
पाणिग्रह जैसे कियो, श्रीब्रजचन्द निशंक ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशीय राजा परीक्षित् ! गोपियोंके गुरु और शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोपियोंपर अनुग्रह करके पीछे राजा युधिष्ठिरसे और सब सुहृदोंसे कुशल पूंछी * ॥ १ ॥ इस प्रकार लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कुशल

---

* **शंका**-वेद, शास्त्र, पुराणोंका यह प्रमाण है कि, तीन लोकमें जो चराचर जीव हैं उन सब जीवोंके भगवान् गुरु हैं और गति भी हैं, फिर व्यासजी सब जीवोंको त्यागके भगवान्को गोपियोंका गुरु तथा गति क्यों कहा ? यह बडा भारी सन्देह है ?

उत्तर-"गोपीनां गुरुर्गतिः" इस श्लोकका अर्थ व्यासजी ब्रजकी गोपी जो श्रीकृष्णकी प्यारी थीं उन गोपियोंको गोपी नहीं कहे थे उस श्लोकका अर्थ तो व्यासजीने ऐसे किया है कि, गो शब्दको संसार भी कहते हैं, शास्त्रोंमें ऐसा कहा है गो कहिये चराचर संसार उसका जो पालन करै उसका नाम गोप है गोप भगवान् हैं तथा गोपी भगवान्की माया

पूछने और सत्कार करनेसे भगवान्के चरणकमलके दर्शनसे पापरहित हो वह सब लोग प्रसन्न होकर कहनेलगे ॥ २ ॥ कि, हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविन्दका रस जो कि, अभी महात्मालोगोंके मनद्वारा प्रगट हुआ है और जो देहधारण करनेवालोंके देहमें अभिमान उत्पन्न करनेवाली अविद्याको काटता है. उसे जो कर्णरूप दोनाओंसे पान करते हैं उन पुरुषोंके अमंगल कहाँ ? ॥ ३ ॥ स्वरूपके प्रकाशसे बुद्धिकृत जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था दूर होनेके कारणसे संपूर्ण आनंदके समूहरूप आवरण रहित, अकुण्ठचैतन्य शक्तिमान् कालसे नष्ट हुए वेदकी रक्षा करनेके लिये योगमायाको अंगीकार कर मनुष्यदेह धारण करनेवाले और परमहंसकी प्राप्तिके योग्य तुमको हम वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ योगीवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार निर्मलकीर्त्ति पुरुषोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लोग प्रशंसा कर रहेथे कि, इतनेमें अंधक और कौरवोंकी स्त्रियें एकत्र हो परस्पर भगवान् संबंधी जो बातें करती थीं वही कथा जो त्रिलोकीमें गाई है, तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ५ ॥ द्रौपदी बोली कि, हे रुक्मिणि ! हे भद्रे ! हे जाम्बवति ! हे सत्यभामा ! हे सत्या ! हे कालिंदि ! हे मित्रविंदा ! हे रोहिणी ! हे लक्ष्मणा ! और हे सोलहसहस्र श्रीकृष्णकी रानियो ! स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी मायासे मनुष्यलीला कर जैसे तुम्हारे साथ विवाह किया सो सबबातें हमारे सन्मुख कहो ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणी बोली कि, जरासन्धादिक राजाओंके संग जब धनुष उठाय शिशुपाल मुझे व्याहनेके लिये आया तब अजीत योद्धाओंके मस्तकपर चरणधर जैसे भेंड बकरियोंके समूहमेंसे सिंह अपने बलिको बेखटके लेआता है, उसी प्रकार मुझे ले आये, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र लक्ष्मीनिवासके चरणोंकी मैं पूजा करती हूं ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त सत्यभामा अपने विवाहकी बात कहने लगी कि, भ्रातृवधके पारितापसे दुःखितहृदय मेरे पिता सत्राजितने मिथ्या कलंक लगाया, उसको मिटानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ऋक्षराज जाम्बवान् को जीत मणि लाकर मेरे पिताको दी तब मिथ्या कलंक लगानेसे मेरे पिताने भयभीतहो अक्रूरादिकको देना स्वीकार करके भी मुझे श्रीकृष्णचन्द्रकोही दिया ॥ ९ ॥ जाम्बवतीने कहा कि, मेरे पिताने इन वासुदेवको "यह अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं" ऐसे न जानकर इनसे सत्ताईस दिनतक संग्राम किया, इसके उपरान्त "यह अपने स्वामी साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी हैं" इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय होनेपर मेरे पिताने चरणोंमें गिरकर भेंटकी नाईं मणिसहित मुझे भी अर्पण कर दिया यह सुनकर द्रौपदीने कहा कि, तुम बडी श्रेष्ठ हो, इसके उत्तरमें

—है, सोई मायारूप लक्ष्मी है ऐसा अर्थ गोपीका श्रीव्यास भगवान्ने किया है, मायाके और जगदीश्वर जो जगत्पति भगवान् हैं सो श्रीकृष्ण होकर पृथ्वीमें विराजमान रहते थे इसलिये मायाके पति और गुरु भी भगवान् हैं क्योंकि मायारूप संसार है इसलिये श्रीकृष्णको गोपीपति और गुरु, व्यासजीने कहा था, ब्रजवासियोंको पति गुरु अकेला नहीं कहा था ॥

जाम्बवती बोली कि, मैं, तो इनकी दासी हूं ॥ १० ॥ कालिंदी बोली कि, मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण स्पर्शकी आशासे तप कर रही थी कि, भगवान्ने अर्जुन सहित आनकर मेरा हाथ पकड लिया, उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं बुहारी देनेवाली हूं ॥ ११ ॥ मित्रविन्दा बोली कि, लक्ष्मीवक्षनिवास भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयंवरमें जा, राजाओंको जीत और उनका तिरस्कार कर मेरे भाइयोंको भी जीत हाथियोंका शत्रु सिंह जैसे कुत्तोंके बीचमेंसे अपने भक्ष्यको ले आता है उसी प्रकार मुझे अपने पुरमें लेआये, उन श्रीकृष्णचन्द्रके चरण धोनेकी सेवा मुझे जन्म जन्ममें प्राप्त हो, मेरी यही प्रार्थना है ॥ १२ ॥ सत्या बोली कि, बडे बलवान् पराक्रमी बडे पैने सींगवाले और शूरवीरोंके घमण्डको चूर्ण करनेवाले राजाओंकी परीक्षा लेनेके कारण मेरे पिताके पाले हुये सात बैलोंको पकड जैसे बालक काष्ठकी बकरियोंके बच्चोंको बाँधता है, उसी प्रकार भगवान्ने बाँध लिये ॥ १३ ॥ पराक्रमही है मोल जिसका ऐसी मुझे हाथी, घोडे, प्यादों सहित व दासियों सहित मार्गमें क्षत्रियोंको जीत श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार लाये उनकी मैं सदा दासी रहूं, यही प्रार्थना है ॥ १४ ॥ भद्रा बोली कि, हे द्रौपदी ! मेरा मन श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त जान मेरे पिताने मेरे मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाय मुझे अक्षौहिणी सेना सहित इन्हें दे दिया ॥ १५ ॥ अनेक कर्मोंसे भटकनेवाली मुझे जन्म जन्ममें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त हो, जिन चरणारविन्दके स्पर्शसे मोक्षनाम कल्याण मुझे प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥ १६ ॥ लक्ष्मणा बोली कि हे रानी द्रौपदी ! वारंवार देवर्षि नारदजीके गाये हुये भगवान् वासुदेवके जन्म, कर्म, श्रवण कर, आश्चर्य है कि, लक्ष्मीजीने भी लोकपालोंको त्यागकर श्रीकृष्णचन्द्रकोही वरण किया है, इस प्रकार विचार कर मेरा मन भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लग गया ॥ १७ ॥ हे सुशीले द्रौपदी ! पुत्री पै हित करनेवाले बृहत्सेन नाम विख्यात मेरे पिताने मेरे मनकी बात जान श्रीकृष्णचन्द्रके आनेके लिये उपाय किया ॥ १८ ॥ हे रानी द्रौपदी ! जैसे तेरे स्वयंवरमें अर्जुनके आनेके लिये मत्स्य रचा गया था, उसी प्रकार मेरे पिताने भी मत्स्य रचा यह सुन द्रौपदी बोली कि, फिर अर्जुनने उस मत्स्यको क्यों नहीं वेधा ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणाने कहा कि, तेरे स्वयंवरकी मछली बाहर ढकी थी, भीतरसे नहीं ढकीथी इसलिये खंभमें लगाकर ऊपरको दृष्टि करके देखनेसे दिखाई देती थी, और मेरे स्वयंवरकी मछली ऐसी नहीं थी, किन्तु खंभकी जडमें धरे कलशके जलमें केवल परछांई देखाई देती थी, देखना तो नीचे जलमें और वेधना ऊपर, ऐसी मछलीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना और कौन वेध सक्ता है ? ॥ १९ ॥ स्वयंवर रचा है, यह बात सुनकर संपूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले उपाध्याय अर्थात् सिखानेवालोंको संगले सहस्रों राजा मेरे पिताके पुरमें आनकर उपस्थित हुये उससमय जैसा जिसका पराक्रम और जैसी जिसकी अवस्था थी, उसी प्रकार उसका पूजन मेरे पिताने किया, इसके पीछे कोई भी राजा मुझमें मन लगनेके कारण हाथमें धनुष

उठाय मत्स्यके वेधनेको सभामें समर्थ न हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ बहुत राजाओंने तो धनुष हाथमें ले पटक दिया, बहुतसे प्रत्यंचाको खैंच धनुषके चपेटेसेही गिरपडे॥ २२ ॥ और जो शूरवीर जरासंध, अंबष्ट, चंदेलीका राजा भीम, दुर्योधन, कर्ण यह लोग भी अपने अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढाय 'मछली कैसे लगी है' ? यह भी जाननेको समर्थ न हुए ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त जलमें मछलीकी परछाई देख 'ऐसे मछली लगी है' सो जान उपाय करनेवाले अर्जुनने बाण चलाया वह बाण मछलीसे स्पर्श तो होगया परन्तु मछली कटी नहीं ॥ २४ ॥ जब समस्त क्षत्रिय हारकर बैठ रहे, तब अभिमानियोंके अभिमान दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धनुष हाथमें ले लीलापूर्वकही प्रत्यंचा चढाय धनुषमें बाण लगाय और एकही बार मछलीको जलमें देख मध्याह्न समय अभिजित् नक्षत्रमें अर्थात् सब कार्य सिद्ध करनेवाले मुहूर्त्तमें मछलीको बाणसे काटकर पटकदिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ उस समय स्वर्गमें देवताओंके नगारे बजने लगे पृथ्वीमें "जयहो जयहो" इस प्रकार शब्द होनेलगा और देवतालोग आनन्दमें मग्न हो आकाशसे फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २७ ॥ हे द्रौपदी ! इसके उपरान्त लाजभरी हँसनयुक्त मुख और चोटीमें पुष्पमाला गुहे नवीन रेशमी सुन्दर धोती, चद्दर पहर सुवर्णकी जडी रत्नोंकी माला हाथमें ले और मनोहर नूपुरवाले चरणोंसे मैं रंगभूमिमें आई ॥ २८ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्तहृदय मैं बडे केश और कुण्डलोंसे शोभायमान कपोलवाले मुखको उठाय, संतापको दूर करनेवाले हास्य कटाक्षपूर्वक चितवनसे चारों ओरके राजाओंको देख धीरे धीरे जाकर मुरारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें माला डाली ॥ २९ ॥ उस समय मृदंग, ढोल, शंख, भेरी, नगारे आदि बाजे बजनेलगे, नट और नृत्यकारी नाचनेलगे और गवैये गानेलगे ॥ ३० ॥ हे यज्ञसेनकी पुत्री द्रौपदी ! इसप्रकार मैंने जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने वशमें किया, तब ईर्षा और कामसे आतुर राजाओंके यूथोंने यह बात नहीं सहन की ॥ ३१॥ इसके उपरान्त अत्यन्त शोभायमान चारघोडे जुते रथमें उस समय मुझे बैठाय शार्ङ्गधनुषको ले कवच पहर चारभुजायुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र खडेहोगये ॥ ३२ ॥ हे रानी द्रौपदी ! तब रथवान्ने सुनहरी साजका रथ हाँकदिया और जैसे मृगोंके देखते सिंह चलाजाता है, उसी प्रकार राजाओंके बीचमेंसे उनके देखतेही चलेगये ॥ ३३ ॥ इनको जाता देखकर बडे बडे क्षत्रिय राजा इनके पकडनेके लिये पीछे दौडे और कोई राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके रोकनेको आगेजाय धनुषको ऊँचा उठाय, जैसे सिंहके रोकनेको कुत्ता खडा होताहै उसी प्रकार मार्गमें सावधान होकर खडे होगये ॥ ३४ ॥ शार्ङ्गधनुषसे छूटेहुए बाणोंके समूहोंसे भुजा, पाँव, नार कटनेसे अनेक क्षत्रिय युद्धमें गिरगये और बहुतसे संग्रामको छोडकर भागगये ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त यादवोंके पति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शोभायमान सूर्यकी आवरण करनेवाली ध्वजाके वस्त्रोंसे शोभित, और चित्र विचित्र बन्दनवार माला बँधी स्वर्ग और पृथ्वीमें जिसकी स्तुति हो ऐसी द्वारकापुरीमें

अस्ताचलमें सूर्यके समान प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त मेरे पिताने सुहृदयतासे गोत्री और बंधुओंको बडे मोलके वस्त्र, गहने, शय्या, आसन और साजसे पूजन किया ॥ ३७ ॥ संपूर्ण संपत्तिमान् दासी और प्यादे, रथ, हाथी, घोडे और बहुत मोलके शस्त्रों सहित मुझे मेरे पिताने परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रको दिया ॥ ३८ ॥ यह आठों हम आत्मामें रमण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सब संग त्याग अपने धर्मसे साक्षात् घरकी हुई हैं ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त सोलह हजार दासी रानियाँ कहनेलगीं कि, भौमासुरने दिग्विजयमें जिन हम राजकन्याओंको जीतकर रोक रक्खा था, उन्हें संसारसे छुडानेवाले अपने चरणारविन्दका स्मरण करते जान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयं पूर्णकाम रहतेभी संग्राममें भौमासुर और उसके कुटुम्बको मारे हमारे साथ विवाह किया ॥ ४० ॥ हे द्रौपदी ! हम चक्रवर्त्ती राज्य और इन्द्रपदके भोगका भोगना नहीं चाहतीं और अणिमादिक सिद्धि ब्रह्मलोक, मोक्ष तथा वैकुण्ठधामकी भी चाहना नहीं करती परन्तु गदाके धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके लक्ष्मीके कुचोंकी केशर लगे सुन्दर चरणारविन्दोंकी रज अपने माथेके ऊपर चढानेकी चाहना करती हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ महात्मा होतेभी गाय चराते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणरजको जैसे गोप, गोपियें, भीलनियें, तृण और लतायें चाहना करती हैं उसी प्रकार हम भी उनकी चाहना करती हैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
उत्तरार्द्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

दोहा-भयो समागम मुनिनसों, चौरासी अध्याय ।
संस्कार वसुदेवको, कियो सबनि सुखपाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी, सुभद्रा, राजाओंकी स्त्रियें और भक्त गोपियोंने सबके महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें रानियोंका इसप्रकार प्रेम सुन नेत्रोंमें आँसूभर बडा आश्चर्य माना ॥ १ ॥ उस कुरुक्षेत्रमें इस प्रकार स्त्रियोंके संग स्त्री, पुरुषोंके संग पुरुष बात चीत करहीरहे थे कि, इतनेहीमें श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करनेको मुनि लोग आये ॥ २ ॥ उनके नाम यह हैं, यथा-वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानंद, भरद्वाज और गौतम ॥ ३ ॥ शिष्यों सहित भगवान् परशुराम, वशिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति ॥ ४ ॥ द्वित, त्रित, एकत, उसी प्रकार ब्रह्माके पुत्र अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, तथा वासुदेवादि और मुनि भी संपूर्ण आये ॥ ॥ ५ ॥ विश्वपूजित ऐसे मुनियोंको आया देख राजा आदि जो प्रथम बैठे थे और पांडव अर्थात् राजा युधिष्ठिरादि तथा कृष्ण बलदेवने शीघ्र उठकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त इन मुनियोंका यथायोग्य सब जनोंने पूजन किया और बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र 'भले आये' इस प्रकार मुनियोंसे कह आसन दे अर्घ्य, पुष्प,

धूप, दीप और चन्दन इत्यादिसे पूजा करनेलगे ॥ ७ ॥ चुपचाप हो संपूर्ण जिसमें बैठे ऐसी सभामें धर्मकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक बैठे ब्राह्मणोंसे कहनेलगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, अहो ! बडा आश्चर्य है, आज हम सफल जन्म हुए और सब जन्मका साफल्य हमको प्राप्त हुआ, क्योंकि जिनका दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ है उन योगीश्वरोंका दर्शन हुआ ॥ ९ ॥ केवल तीर्थस्नानादिकोंको तप जानै, प्रतिमाहीको देवतास्वरूप मानै, आपसरीखे मनुष्योंका दर्शन, स्पर्शन व वार्त्तालाप, प्रश्न, नमस्कार व चरण पूजा आदिकी प्राप्ति, कहाँ हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती ॥ ॥ १० ॥ जलमय तीर्थ नहीं है, सो नहीं है; मृत्तिका शिलाओंके देवता नहीं है, सो नहीं है, क्योंकि जब बहुत दिनोंतक देवताओंकी पूजा करै, तब वह पवित्र करते हैं और साधु महात्मा लोग तो केवल दर्शनहीसे पवित्र कर देते हैं ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, पवन, वाणी, मन, यदि इनकी भलीभाँतिसे उपासना कीजाय तो भेदबुद्धिके कर्त्ता होनेसे पुरुषके अज्ञानको दूर कर सकते हैं और विवेकी पुरुष तो केवल दो घडी सेवा करते ही अज्ञानको दूर कर देते हैं ॥ १२ ॥ जो पुरुष वात, पित्त, कफमय देहकोही आत्मरूप समझते हैं, और स्त्री पुत्रादिकोंको ही अपना मानते हैं वा मूर्त्तिकोही पूज्य समझते हैं और जलहीको तीर्थ जानते हैं, और विवेकी पुरुषोंको आत्मारूप अपने व पूज्य तीर्थ इत्यादि नहीं समझते वह गायका चारा ढोनेवाले बैल और गधेके समान हैं * ॥ १३ ॥ " यहाँ साधुओंकी महिमा दिखानेका तात्पर्य

---

* **शंका**–श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणोंसे कुरुक्षेत्रमें कहा कि, भौम जो प्रतिमा देवताओंकी होती है, उस प्रतिमामें जो प्राणी देवता मानते हैं कि, यह प्रतिमामें भगवान् वसे हैं यह प्राणी नहीं हैं, ऐसा माननेवाले प्राणी बैल वा गधाही हैं, तथा जलमें तीर्थ मानते हैं कि, मैंने इस तीर्थमें स्नान किया मेरी मुक्ति होगी, नहीं कभी मोक्ष न होगी, वह बैल और गधाही होगा, मुझको यह बडा आश्चर्य है कि, भगवान्ने वेद और शास्त्रके विरुद्ध वचन क्यों कहे ? प्रतिमाकी तथा गंगादिक तीर्थोंकी निन्दा क्यों की ? यह बडाभारी सन्देह है ?

उत्तर–वेदमें और शास्त्रमें दो मार्ग हैं, एक कर्ममार्ग, दूसरा मोक्षमार्ग, संसारीजीव दोनों मार्गोंका सेवन करते हैं, जो जीव कर्म मार्गका सेवन करता है, जैसे गृहस्थादिक प्राणी प्रतिमामें देवताको मानते हैं, तब सेवन करते हैं वह पुरुष प्रतिमामें देवताको जानते हैं, तथा प्रतिमाका पूजन करैंगे वा जलमें स्नान कियेसे मोक्ष होना मानैंगे तब निश्चयसे कर्म करनेवाले मनुष्यको गिनतीसे हीन सुख होगा और जो प्राणी प्रतिमाको देवस्वरूप और जलको मोक्षरूप मानैंगे तब वह प्राणी बैल गधा है, श्रीकृष्णने कर्ममार्ग सेवन करनेवाले जीवके लिये यह वचन नहीं कहा, जो जीव संसारके कर्म त्यागकर ईश्वरका भजन करता है, उसके लिये यह वचन कहा है, श्रीकृष्णके वचनमें भ्रम नहींहै ॥

है मूर्त्ति तथा तीर्थका निषेध नहीं है और विशेष करके यह दिखाया है कि तीर्थको जानेमें बहुतेरा द्रव्य उठावे पूजामें घंटों बैठे, परन्तु महात्मा और हरिभक्तोंको देखते ही दुर्वाक्य कहे उन्हें अन्न तो क्या जल भी न दे, ऐसे भेदबुद्धिवालोंके लिये यह वाक्य है ज्ञानी पुरुष तो सबमेंही उसका प्रकाश देखते हैं, " श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह वचन सुनकर चकित बुद्धि हो वह सब ब्राह्मण चुप होगये ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कर्मोंमें अधिकार बहुत देरतक विचार करके समझा कि, लोकोंको शिक्षा देनेके कारण हमारी स्तुति करते हैं, इस प्रकार मुनीश्वर लोग बुद्धिसे निश्चयकर कुछेक मुसकाय जगत् गुरु श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले ॥ १५ ॥ कि, तत्त्वके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हम और विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक जिनकी मायासे मोहित हुए हैं क्योंकि, जिस मायासे आप मनुष्यलीला करनेको गूढ रहकर मुनीश्वरके समान चेष्टा करते हो, इस लिये आपकी लीला बडी विचित्र है ॥ १६ ॥ चेष्टारहित और एक होकर भी तुम अपने आत्मासे इस विश्वको बहुत प्रकार पालन उत्पत्ति और रक्षा करते हो, जैसे पृथ्वी घटादि विकारोंसे बहुत नामकी होती है, यदि तुम कहो कि, मैं कैसे उत्पत्ति पालन व संहार करता हूं मैं तो वसुदेवका पुत्र हूं ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, परिपूर्ण रूप तुमने वसुदेवके घर जन्म लिया है, यह विचित्र लीला मात्र है सत्य नहीं है ॥ १७ ॥ समयपर अपने भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये और दुष्टोंको दंड देनेके लिये आप शुद्ध सतोगुण रूपको धारण करते हो और अपनी लीलासे सनातन वेदमार्गको प्रवृत्त करते हो यद्यपि तुम किसीके पुत्र नहीं हो, परन्तु तो भी चार वर्ण और चार आश्रमके आत्मा परमपुरुष तुम हो इसीलिये ब्राह्मणोंका बहुत सत्कार करते हो ॥ १८ ॥ शुद्ध वेद तुम्हारा भीतरका रूप है, क्योंकि, तप करना, वेद पढना, इन्द्रियोंका रोकना इन कार्य और कारण दोनोंसे परे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! वेदके कारण आत्मा तुम हो और अपने बतानेवाले ब्रह्मकुलका पूजन करते हो और इसीलिये ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ हो ॥ २० ॥ इस कारण ईश्वर होकर जो तुम हमारा सत्कार करते हो, सो पुरुषोंकी शिक्षा करनेके लिये है और हम तुम्हारे संगसे कृतार्थ हुए, साधुओंकी गति आपका संग हुआ इसलिये हमारा जन्म, विद्या, तप, दृष्टि, यह संपूर्ण सफल हुए, क्यों कि, तुम सब कल्याणकी अवधि हो ॥ २१ ॥ अकुंठित बुद्धि और अपनी योगमायासे गूढ महिमावाले परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ मायारूपी चित्रसे ढके, सृष्टि इत्यादिकोंके कारण ईश्वर आत्मा तुमको आपके साथ एकही स्थानमें रहनेवाले यह यादव और राजा लोग नहीं जानते हैं ॥ २३ ॥ जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें मिथ्या पदार्थको सत्य मानता है मनसे सिंह व्याघ्रादि रूप आप बन जाता है और जाग्रत अवस्थाके स्वरूपको नहीं जानता ॥ २४ ॥ उसी प्रकार स्वप्नादि तुल्य विषय पदार्थमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति रूप मायासे चलायमान चित्त पुरुष विवेकके नाशसे

आपको नहीं जानता ॥ २५ ॥ विना गुण जाने वस्तुकी महिमा प्रगट नहीं होती, यहाँ एक दृष्टान्त है * पापोंके समूहोंको दूर करनेवाले गंगारूपी तीर्थ जिसमेंसे प्रगट हुआ और दृढ योगवाले योगीजन भी जिनका केवल हृदयमें ध्यान करते हैं परन्तु तुम उनको भी दिखाई नहीं दिये और तुम्हारे चरणारविन्दोंका हमने प्रत्यक्ष दर्शन किया, इसलिये हमें भक्ति करनेका अनुग्रह करो, यदि कहो कि भक्ति करके क्या करोगे ! पहलेके समान तप करे जाओ इसका उत्तर देते हैं कि, वृद्धिको प्राप्त हुई भक्तिसे जिनके लिंग शरीरका नाश होगया है, वही पुरुष तुम्हारे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं और नहीं ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज ! इस प्रकार मुनीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और राजा धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिरसे आज्ञा माँग अपने अपने आश्रमोंमें जानेकी इच्छा करनेलगे ॥ २७ ॥ तब महायशवान् वसुदेवजी उन मुनियोंको जाते देखकर उनके समीप आय सावधान होकर कहनेलगे ॥२८॥ वसुदेवजी बोले कि, संपूर्ण देवता रूप तुम हो सो आपको मैं बारम्बार प्रणाम करताहूं, हे ऋषीश्वरो ! मेरी एक आपसे प्रार्थना है, सो कृपा करके सुनिये, जिन कर्मोंके करनेसे कर्मोंका नाश होता है, सो हमें बताओ ? ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रको छोडकर हमसे कल्याण पूछने आये हैं इस प्रकार आश्चर्यमान नारदजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! जो वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र जाननेके कारण अपना कल्याण हमसे पूँछते हैं यह आश्चर्य नहीं है ॥ ३० ॥ क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रको बालक मानना अविद्यासे है इस संसारमें मनुष्योंके पास रहनेसे अनादर होता है, जैसे गंगातटका रहनेवाला पुरुष गंगाको छोड शुद्ध होनेके लिये और जलमें स्नान करनेको जाताहै ॥ ३१ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रका ज्ञान किसी कारणसे भी नष्ट नहीं होता सोई कहते हैं जैसे कालसे काँकरी फटजाती है और इस विश्वको उत्पन्नकर पालन और नाश करनेसे भी तुम्हारा ज्ञान नहीं जाताहै और

---

* **दृष्टान्त**–एक महात्माने कृष्ण नामकी बहुत प्रशंसा करी कि, एकवार नाम लेनेसे अनेक पाप दूर होजाते हैं चेले बोले महाराज ! फिर यह मनुष्य तो दिनरात नामका स्मरण करते हैं, यह क्यों दुःख पाते हैं ? गुरुजी बोले महिमा नहीं जाननेसे यह दशा है चेला मनमें संदेह करने लगा, तो बाबाजीने अपने पाससे एक अमूल्य रत्न दे चेलेसे कहा, कुँजडीसे पूँछ, इसका कितना शाक देगी, चेलेने जाकर पूँछा, उसने सेरभर शाक देनेको कहा, फिर गुरुजीने सराफपर भेजा, उसने बीस रुपये कहे, फिर गुरुजीने जौहरीके पास भेजा, उसने करोड रुपये कहे, फिर गुरुजीने सबसे बडे जौहरीके पास रत्न लेकर भेजा, तब उसने कहा, मेरे यहाँ असंख्य द्रव्य है, परन्तु यह तो इसके द्रव्यके व्याजमें है मेरे यहाँ इसका मूल्य देनेको द्रव्य नहीं, यह अमूल्य है, चेलेने गुरुजीसे सब वृत्तान्त कहा, तब गुरुजी बोले इसीप्रकार कृष्ण नामकी महिमा है, जो जानते हैं, वह संसारसागरके पार होजाते हैं और जो नहीं जानते वह कर्म भोगते हैं ॥

जैसे बिजली चमककर बिलाय जातीहै और जिस प्रकार गुणोंसे पूर्वरूपका नाश और रूपान्तरकी प्राप्ति होती है उसी प्रकार नहीं जाय है ॥ ३२ ॥ ऐसे जो कृष्ण अद्वितीय ईश्वर और अखण्डित ज्ञानस्वरूप हैं उन्हें और मनुष्य जैसे रविमण्डलको बालक राहु वा हिमसे आच्छादित माने, उसी प्रकार क्लेश कर्म सुख दुःख गुणोंका प्रवाह और अपने कार्यरूप प्राणादिकसे आच्छादित मानै तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इसके उपरान्त वह मुनि सब राजा और श्रीकृष्ण बलदेवके सुनते वसुदेवजी-को संबोधन देकर बोले ॥ ३४ ॥ मुनिबोले कि, सब यज्ञोंके ईश्वर विष्णु भगवान्का यज्ञोंद्वारा श्रद्धासहित यजन करना यही सर्वोत्कृष्ट कर्मसे कर्म मिटानेका उपाय कहा है ॥ ॥ ३५ ॥ पण्डित लोगोंने शास्त्र रूप नेत्रोंसे चित्तोपशम और मोक्षका उपाय व शनैः शनैः अंतःकरणको शुद्ध करनेवाला सुगम स्वधर्म भी यही दिखाया है ॥ ३६ ॥ गृहस्थी, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको यही कल्याणका मार्ग है कि, निष्काम होकर प्राप्त हुए शुद्ध द्रव्यसे ईश्वरका पूजन करै, क्योंकि महात्मा पुरुषोंका ही द्रव्य यज्ञादिकोंमें लगताहै और लोभियोंका धन वृथा जाताहै ॥ ३७ ॥ यहाँ इस विषय पर एक दृष्टान्त है × ॥ हे वसु-देवजी ! बुद्धिमानको उचित है कि, धनके फलरूप यज्ञ और दान करके धनकी इच्छाका

× **दृष्टान्त**—एक पीपलसाहके छप्पन कोटि द्रव्य था परन्तु रहे बडे सूम, बेटे कहैं पिताजी गंगा पुष्कर स्नान करनेको चलो पुण्य करो, वह कहैं कि, पुण्य करनेसे कुछ नहीं होताहै, और जो हम चलें तो पीछे घर चोर लूटकर ले जायँगे, रास्तेमें लूट जाओगे बेटोंने कहा हम तो जायँगे, संतोंके दर्शन करैंगे वह बोले तुम मेरा घर लुटानेको फिरते हो, तब बेटे बोले हम भीख माँगते चले जायँगे, वह बोले तो नाम लेजाओगे एक काम करो, गहना कपडा सब उतार धरो मैले कपडे पहरो उन्होंने वैसाही किया, सो इन्होंने भोजनमात्रका खर्च दिया और कहदिया कि, पुण्य मत कीजो जल्दी आइयो वे सब स्त्री बालक गये पीछे इन्होंने गढा खोद सब गहना द्रव्य गाडदिया जब वे स्नान कर आये, तब यह बोले तुम न्हाने गये पीछे चोरी होगई, अब बनियेसे उधार लेकर खाते हैं, हमारे पास कुछ नहीं रहा ऐसा कह बागमें जो बैठे अब यह विलाप करनेलगे कि, परमे-श्वर भलें स्नान करनेको गये भोजनसेही बैठरहे संध्यासमयतक रोते रहे, उस समय महा देवजी शैरको आये, और इनको देखकर बोले कि, द्रव्य तो कोठेमें दब रहा है, यह कह गये, उन्होंने झट गढा खोद सब धन निकाल लिया और बाँटनेलगे पीछेसे पीपल-साह बोले अरे दुष्टो ! जल्दी किवाँड खोलो नहीं तो इसी जगह अपना मस्तक फोडकर मरजाऊंगा, इन्होंने किवांडखोलनेमें विलम्ब किया उन्होंने जाना, कि सब धन लुटगया सो शिर फोडकर मरगये ॥

दोहा—पीपलसाह अपार जग, जोडे छप्पन क्रोड।
एक प्रभूके नामपर, मरे भीत शिर फोड ॥

त्यागन करै, घरकै भोग भोगकर स्त्री पुत्रकी तृष्णा त्यागै और संसारको नाशवान् जानकर अपनी प्रतिष्ठा और स्वर्गादिककी कामना त्यागै ॥ ३८ ॥ ग्राममें चाहना त्याग कर समस्त वीरपुरुष तप करनेके लिये वनको गये, हे वसुदेवजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, देव, ऋषि, पितृ इन तीनों ऋणसे इस जन्ममें उद्धार हो यज्ञ करके देवताओंका ऋण और विद्या पढकर ऋषियोंका ऋण तथा पुत्र उत्पन्न करके पितरोंका ऋण चुकावै, इन ऋणोंके चुकाये विना जो कर्मोंका त्याग करै, तो वह पुरुष नरकमें गिरता है ॥ ३९ ॥ हे मतिमान वसुदेव ! अब तुम दो ऋणोंसे तो छूटगये, विद्यापढे, इसलिये ऋषियोंके ऋणसे तो उद्धार होगये और पुत्र होनेके कारण पितरोंके ऋणसे उद्धार होगये, अब यज्ञ करके देवताओंके ऋणसे उद्धार हो, गृहको त्याग संन्यास ग्रहण करो ॥ ४० ॥ और हे वसुदेवजी ! तुमने बडी भक्तिसे जगत्के ईश्वर हरि भगवान्का पूजन किया था इसी लिये स्वयं भगवान् हरिने आनकर तुम्हारे यहाँ अवतार लिया ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! उदारमन वसुदेवजी इसप्रकार ब्राह्मणोंका वचन सुन मस्तक नवाय नमस्कार कर उन ऋषियोंसे यज्ञ करनेवाले ऋत्त्विजजनोंका वर्णन करनेलगे ॥ ४२ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! धर्मसे वर्णनोंको प्राप्त हो, ऋषि महात्माओंने वसुदेवजीको कुरुक्षेत्र में उत्तम सामग्रियोंसे यजन कराया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जिस समय वसुदेवजीको यज्ञदीक्षा दीगई, उस समय कमलोंकी माला पहरे यादव स्नानकर शोभायमान वस्त्र धारण कर शृंगार कियेहुए बहुतसे राजा आये ॥ ४४ ॥ और कंठमें धुकधुकी व सुन्दर वस्त्र पहरे केशर चंदन लगाये राजाओंकी स्त्रियें पूजाकी सामग्री हाथमें लिये यज्ञशालामें आईं ॥ ४५ ॥ मृदंग, ढोल, शंख, भेरी, नगारे आदि बाजे बजनेलगे नट और नृत्य करनेवाली नाचनेलगीं सूत तथा मागध स्तुति करनेलगे और स्वरीले कंठवाली गन्धर्वपत्नियें अपने पति सहित सुन्दर गीत गानेलगीं ॥ ४६ ॥ नेत्रोंमें अंजन लगाये हुए, शरीरमें मक्खन मले वसुदेवजीका विधिपूर्वक अठारह स्त्रियों सहित ऋत्विजोंने अभिषेक किया, जैसे तारागणों सहित चन्द्रमाका अभिषेक करते हैं॥ ४७ ॥ हे राजन् ! उस समय वस्त्र, कंकण, हार, नूपुर, कुंडल पहरे; स्त्री सहित दीक्षा लिये, मृगछाला ओढे वसुदेवजी अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! रत्नोंके गहने और वस्त्र धारण किये वसुदेवजी यज्ञ करनेवाले तथा, सभामें बैठे पुरुषों सहित वृत्रासुरके मारनेवाले देव-राज इन्द्रके समान शोभाको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥ भगवान् कृष्ण बलदेवजी भी संपूर्ण जीवोंके ईश्वर, अपने अपने बाँधवोंको संग लिये और अपने अपने पुत्र स्त्रियोंसहित अपने अपने ऐश्वर्यसे सुन्दर लगनेलगे ॥ ५० ॥ यज्ञमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रादि प्रकृति और विकृतिरूप यज्ञ अर्थात् समस्त अंगके ज्योतिष्टोम, दर्श पौर्णमास आदि यज्ञ और थोडे अंगवाले शौर्यसत्रादिक द्रव्य अर्थात् साँकल्यमंत्र कर्मसे ईश्वर भगवान्का पूजन करनेलगे ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त वसुदेवजीने समयपर आभूषणोंसे शोभाय-मान यज्ञ करनेवाले ऋषियोंको आभूषणोंसे शोभायमान कर गौ, पृथ्वी, कन्या और

बडे धनकी बडी दक्षिणा वेदविधिसे दी ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त पत्नीसंयाजावभृथ्य यज्ञांग कराकर बडे ऋषि ब्राह्मणोंने यजमान वसुदेवजीको आगेकर रामह्रदमें स्नान कराया ॥ ५३ ॥ स्नानकर वसुदेव और उसीप्रकार उनकी स्त्रीने बंदीजनोंको अपने अंगके आभूषण इत्यादि दिये इसके उपरान्त वसुदेवजीने और आभूषण पहर चारों वर्णोंका दान करके पूजन किया और जीवोंमें श्वानको भी अन्नदिया ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त स्त्री पुत्रों सहित अपने बंधुओंकी बहुत द्रव्यसे पूजा की, फिर विदर्भ, कोशल, कुरु, कैकय, इन देशोंके राजा और सभासद, तथा यज्ञकरनेवाले देवतागण, मनुष्य, भूत, पितर, चारण गणका पूजन किया और फिर सब राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको सम्बोधनदे, यज्ञकी प्रशंसाकर अपने अपने देशोंको जानेकी इच्छा करनेलगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इसके उपरान्त धृतराष्ट्र, विदुर, पृथाके, पुत्र-युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कुंती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यासजी और सुहृद, उनसे तथा नाते गोतेवाले बंधु यादव सबसे मिल, स्नेहकर, खेदित चित्त विरहके कष्टसे अपने अपने देशोंको चलेगये और जो मनुष्य वहाँपर थे, वह भी अपने अपने देशोंको चले गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ राम कृष्ण उग्रसेनादिक यादवोंसे बडी पूजा और सत्कार पाय गोप ग्वालोंसहित नंदरायजीने बन्धु बांधवोंके निकट स्नेहके कारण कुछ दिनतक वहीं वास किया ॥ ५९ ॥ अनायाससे मनोरथरूप महा-सागरको पार उतर प्रसन्नचित्त और सम्बन्धी लोगोंसे आवृत्त वसुदेवजी हाथ पकड नंद-जीसे बोले ॥ ६० ॥ कि, हे भाई नंदजी ! मनुष्योंको स्नेहरूपी फाँसी ईश्वरने रची है,इस-कारण इसे शूरवीर बलसे और ज्ञानी ज्ञानसे भी नहीं काट सकते ॥ ६१ ॥ तुमसे महात्माने जो अकृतज्ञ हमारे साथ मित्रता करी है, उसका पलटा हम किसीप्रकार नहीं देसकते, तोभी वह सदा एकरूप बनी रहती है कभी निवृत्त नहीं होती ॥ ६२ ॥ हे नंदरायजी ! पहले तो हम असमर्थथे, इसलिये तुम्हारा कुछ उपकार न करसके और अब धनसे अंधेहो सम्मुख बैठे तुमसे महात्माओंकी ओरको देखते भी नहीं ॥ ६३ ॥ हे मानदेनेवाले भाई नंदजी ! कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले मनुष्यको राजलक्ष्मी, चाहै न मिलै, क्योंकि इससे अंधा होकर पुरुष अपने आश्रित तथा बंधु बांधवोंको भी नहीं देखता ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इसप्रकार स्नेहसे शिथिलचित्त आँसू नेत्रोंमें भरे वसुदेवजी नन्दजी की मित्रताको स्मरणकर रोनेलगे ॥ ६५ ॥ नन्दरायजी यादवोंसे मान पाकर अपने मित्र वसुदेवजीको प्रसन्न करते भगवान् कृष्ण बलदेवजीके प्रेमसे "आज कल आज कल" करते तीन महीनेतक वहीं रहे ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त बडे मोलके आभूषण रेशमीवस्त्र तथा अनेक प्रकारके बडे मोलकी वस्तुसे व्रजवासियों सहित नंदरायजीको पूर्ण कर दिया ॥ ६७ ॥ और वसुदेव उग्रसेन तथा कृष्ण बलदेवादि यादवोंकी दी हुई प्रीति सहित सामग्रीको ग्रहण कर,जिस-समय नंदरायजी बिदा हुए, उससमय यादवोंने इनके संग एक बडीभारी सेना कर

दीथी ॥ ६८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लगे मनको हटानेमें असमर्थ नन्दरायजी व गोप गोपियें मथुराको चले ॥ ६९ ॥ बंधु लोगोंके जानेपर श्रीकृष्णचन्द्र इष्टदेव माननेवाले यादव वर्षाऋतु निकट आई देख पीछे द्वारकाको चलेगये ॥ ७० ॥ और जाकर सब यादव वसुदेवजीका यज्ञ और कुरुक्षेत्रकी यात्रामें सुहृदोंका मिलाप यह सब प्रजासे कहा ॥ ७१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

दोहा-विनय पचासीमें करी, कृष्ण और बलराम।
मरे पुत्र मातहिदिये, पितुहि ज्ञान सुखधाम ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनेके उपरान्त एकसमय वसुदेवजी आय चरणोंमें प्रणाम और राम कृष्णकी प्रशंसा कर प्रीतिपूर्वक कहने लगे ॥ १ ॥ पुत्रोंके प्रभावको जाननेवाला जो मुनियोंका कहा वचन कि, तुम्हारे पुत्र परमेश्वर हैं, सुनकर श्रीकृष्ण बलदेवका पराक्रम देख प्रीतियुक्त वसुदेवजी संबोधन देकर बोले ॥२॥ कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे राम ! हे महायोगिन् ! हे संकर्षण ! हे सनातन ! इस विश्वके कारण प्रकृति पुरुषके भी कारण साक्षात् ईश्वर तुमहो, यह मैं जानताहूं ॥३॥ जिसमें, जिस साधनसे, जिससे जिस कारणसे, जिसका, जिसके लिये, जिसको, जो, जैसे और जब यह संसार स्थितहै और स्थित कियाजाताहै उस सब भोग्य और भोक्ताके नियंता साक्षात् आपहीहो ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज ! आप जो अजन्माहो, वे अपने रचेहुए इस अनेक प्रकारके जगत्में अपने रूपसे प्रवेश कर क्रियाशक्तिरूप और ज्ञानशक्ति होकर उसका पोषण और भरण करतेहो ॥ ५ ॥ पृथक् पृथक् शक्तिवाले प्राणादिक इस विश्वके कारण जाननेमें न आवें परमेश्वरको कारण रूपसे सर्वरूप कैसे कहतेहो यह शंका जब हुई तो उसका समाधान यह है कि,प्राणादिकोंमें जो शक्ति है सो ईश्वरके करनेवाले प्राण आदि तत्त्वमें जो शक्तिहै सो परम कारण ईश्वरकी ही है, क्योंकि प्राणादिक ईश्वरके आधीन है और जैसे तीरमें वेधनेकी स्वतंत्र शक्ति नहीं है किन्तु पुरुषकी शक्तिसे वेधताहै. उसी प्रकार प्राणादिकोंमें ईश्वरकी शक्तिहै, प्राणादिक जडहैं, और ईश्वर चैतन्य है और जड पदार्थको चैतन्यकी आधीनता योग्यहै, वहाँ कहतेहैं कि, प्राणादिकोंमें शक्ति नहीं है तो क्रिया कैसे करते हैं. उसका उत्तर यह है कि, चेष्टा करनेवाले प्राणादिककी चेष्टा यहाँ कुछ शक्ति नहीं है, जैसे पवनकी शक्तिसे तृण हिलतेहैं, उसी प्रकार क्रिया करतेहैं ॥ ६ ॥ चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, नक्षत्र, व बिजलियोंकी स्फुरसत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता और पृथ्वीकी आधारता तथा गंध यह संपूर्ण तुम्हारीही शक्तियें हैं ॥ ७ ॥ हे देव ! जल उसकी तृप्ति करनेकी शक्ति जीवित करनेकी शक्ति व उसका रस यह सब तुम्हीहो । हे ईश्वर ! वायुके जो ओज, सह, बल,

चेष्टा और गतिहैं यह सब तुम्हारेही रूप हैं ॥ ८ ॥ दिशाओंमें जो खालीपन और दिशाएँ समस्त तुम्हारेही रूपहैं और आकाश तथा आकाशमें शब्दरूप गुण सब तुम्हारेही रूप हैं, वाणी आकार और नामरूप कहनेमें न आवै सो सब तुम्हीं हो ॥ ९ ॥ नेत्रोंमें दर्शन शक्ति और कानोंमें श्रवणशक्ति तथा जिह्वामें रसकी ग्रहण शक्ति इत्यादिक इन्द्रियोंमें विषयोंके ग्रहण करनेकी शक्ति तुम्हींहो और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता तुम्हीं हो देवता इन्द्रियोंको प्रेरणा करतेहैं, यह तुम्हारी शक्तिहै, बुद्धिमें निश्चय करनेकी शक्ति तुम्हींहो और जीवोंको श्रेष्ठवार्त्ता जो स्मरण रहती है, यह तुम्हारीही शक्ति है ॥ १० ॥ पंचभूतका कारण, तामसाहंकार इन्द्रियोंके देवताओंका कारण, सात्त्विकाहंकार, इन्द्रियोंका कारण, राजसाहंकार और जीवोंके संसारका कारण प्रधान यह सब तुम्हींहो ॥ ११ ॥ नाशमान पदार्थमें जो शेष रहै अर्थात् जिसका नाश न हो सो तुम्हींहो, जैसे मृत्तिका, सुवर्णके बने घड़े; मूँदरी, कड़े इत्यादि सब नाशमानहैं, मृत्तिका सुवर्णका नाश नहीं होता ॥ १२ ॥ सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी वृत्ति साक्षात् परब्रह्ममें योगमायासे कल्पितहैं ॥ १३ ॥ इसी कारण यह पदार्थ आपसे अलग नहीं हैं, जब यह पदार्थ कल्पना कियेजाते हैं तभी प्रतीति मात्रसे आपमें हैं और आप कारणतासे उनमें अनुगत हो और जब कल्पना नहीं किये जाते, तब निर्विकल्प आप ही अवशेष रहते हो ॥ १४ ॥ यह जो गुणोंका प्रवाह रूप संसार है, उसमें सबके आत्मा तुम्हारी संसारसे अलग गतिको नहीं जाननेवाले अज्ञानी पुरुष देहमें अभिमानसे करे कर्मसे इस संसारमें जन्मे हैं ॥ १५ ॥ हे ईश्वर! शोभायमान हाथ पाँव, नाक, कान सब इन्द्रिय युक्त बहुत दुर्लभ देहको इस संसारमें कोई एक पुण्यके फलसे पाकर स्वार्थमें भूल कर मैंने अपनी अवस्था तुम्हारी मायासे वृथाही गँवाई ॥ १६ ॥ मैं ब्राह्मण हूं, क्षत्रियहूं, इस प्रकार देहमें अभिमान और इस देहके संबंधी स्त्री पुत्रादिक मेरे हैं इस अभिमानसे स्नेहके रस्सोमें यह जगत् तुमने बाँध रक्खाहै ॥१७॥ हम तुम्हारे पुत्र हैं तुम क्यों हमारी स्तुति करते हो, उसके उत्तरमें वसुदेवजी कहते हैं कि, तुम हमारे पुत्र नहीं हो, किन्तु प्रधानपुरुष ईश्वर हो, और पृथ्वीके भाररूप क्षत्रियोंका नाश करनेको आपने अवतार धारण किया है, क्योंकि, आप ऐसे ही हैं ॥ १८ ॥ हे दीनबंधु! शरण प्राप्तहुए पुरुषके संसारी भयको दूर करनेवाले! मैं तुम्हारे चरणारविन्दकी शरणमें प्राप्त हुआहूं "तुमतो बडे सुखी हो वृथा क्यों खेद करते हो ऐसे जो कदाचित् श्रीकृष्ण कहैं" इसके उत्तरमें वसुदेवजी कहते हैं कि, विषयकी लालसा इतनीही है कि, मरणधर्मा शरीरको आत्मा माना, और तुम परमेश्वरको पुत्र माना ॥ १९ ॥ तुमने सूतिकागृहमेंही कहाथा, कि"जब तुम सुतपा और पृश्नि व कश्यपजी, अदिति रूप दंपती हुए, तब और अभी वसुदेवजी देवकी रूप दंपती हो मैं अजन्मा प्रथम निज धर्मकी रक्षाके लिये आपसे प्रगट हुआ,और अब भी प्रगट हुआहूं" आप असंग रहकर भी अनेक अवतार धारण करते हो और छोडते हो सर्व व्यापक

आपकी विभूति रूप मायाको कौन जान सक्ता है ? ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार पिताके वचन सुन अधीनतापूर्वक नम्र हो मनोहर वाणीसे कहा ॥ २१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे पिता ! हम पुत्रोंके विषयमें आपने जो तत्त्व समूहोंका भलीभाँति निरूपण किया सो तुम्हारे वचनको हम यथार्थ मानते हैं ॥ २२ ॥ हे यदुश्रेष्ठ पिता ! तुम और बडे भ्राता बलदेवजी तथा सब द्वारकावासी यादव और स्थावर जंगम जगत्को ब्रह्मरूप जानो ॥ २३ ॥ यहाँ एक शंका है, नाना विकारवान्को ब्रह्मरूपता कैसे बनै ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, आत्मा एक स्वयं प्रकाश नित्य सबसे पृथक् निर्गुण है, अपने रचे सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुणसे उत्पन्न देहमें बहुत प्रकार प्रतीत हो फिर जैसी देह उसमें वैसाही प्रतीत होता है, जैसे आकाश, पवन, ज्योति, जल, पृथ्वी यह पंचभूत घट पटादि पदार्थोंमें कहीं प्रगट कहीं अंतर्द्धान कहीं थोडे कहीं बहुत प्रतीत होय हैं ऐसे एक आत्मा ब्रह्म स्वरूप अनेक रूपसे प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कहा वचन सुन भेदभाव त्याग प्रसन्न मनहो वसुदेवजी चुप होगये ॥ २६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! फिर अपने पुत्र,गुरु पुत्रको पीछे ले आये, यह वृत्तान्त सुन अत्यन्त आश्चर्य मान, कंसके मारे पुत्रोंकी सुधि करके सब जगत्की देवतारूप देवकी व्याकुल हो नेत्रोंमें आँशू भर श्रीकृष्ण बलदेवको बतलाकर इस प्रकार दीन वचन कहने लगी ॥ २७ ॥ २८ ॥ देवकी बोली कि, हे राम ! हे राम ! हे अप्रमेय आत्मन् ! हे कृष्ण ! हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! आप विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकोंके ईश्वर ! और आदि-पुरुष हो तुमको मैं जानतीहूँ ॥ २९ ॥ कालसे सत्त्वगुणका नाश होनेपर शास्त्रकी मर्यादा त्यागनेवाले पृथ्वी पर भाररूप राजाओंका नाश करनेके लिये तुम मेरे यहाँ आनकर प्रगट हुए हो ॥ ३० ॥ हे सबके कारण ! हे विश्वके आत्मा ! तुम्हारा अंश पुरुष है, उसकी अंश माया, उस मायाके अंश सत्त्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंके परमाणुमात्रले-शसे इस विश्वकी उत्पत्ति पालन और प्रलय होती है, ऐसे तुमहो, सो मैं तुम्हारी शरण आई हूं ॥ ३१ ॥ हे योगेश्वर ! चिरकालसे मरेहुये पुत्रको लानेके लिये गुरुने आज्ञा की, तब तुमने यमराजके लोकमेंसे उस पुत्रको लाकर गुरुके गुरुदक्षिणारूप अर्पण किया, उसी प्रकार मेरी कामना भी पूर्ण करो अर्थात् कंसके मारेहुए मेरे पुत्रोंको मैं यहाँ लायेहुए देखना चाहती हूं ॥३२॥३३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब माता देवकीने इसप्रकार कहा,तब राम कृष्ण योगमायाका आश्रय ले सुतललोकमें गये॥३४॥ वहाँ दैत्यराज बलिने विश्वके आत्मा देवता अपने इष्टदेव कृष्णबलदेवको सुतललोकमें आया देख और उनके दर्शनसे आनन्द हो, परिपूर्ण अंतःकरणसे परिवार सहित शीघ्र उठकर नमस्कार किया ॥३५॥ और प्रीति सहित आसन लाकर उन महात्माओंको आस-नपर बैठाया फिर चरण पखार ब्रह्म पर्यन्त जगत्को पावन करनेवाला जल, दैत्यराज बलिने और उसके परिवारने अपने मस्तकपर चढाया ॥३६॥ उत्तम वस्त्र आभूषण, लेपन,

तांबूल,दीप और अमृतसे भोजन आदि अनेक बैभवसे उनकी पूजा की और अपना तन,धन, कुटुम्ब सब अर्पण किया ॥ ३७॥ हे नृप ! राजा बलि भगवान्‌के चरणारविन्दको बारम्वार मस्तकपर धर प्रेमसे द्रवीभूतहुई बुद्धिसे आनन्दके आँशू नेत्रोंमें भरे पुलकित शरीर हो इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३८ ॥ राजा बलि बोले कि, समस्त विश्व फणके ऊपर धारण करने वाले शेषरूप तुमको प्रणाम है और सब जगत्‌के रचनेवाले तुमको नमस्कार है, सांख्य-शास्त्र योग शास्त्रके विस्तार करनेवाले ब्रह्म परमात्मा तुमको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ योगी श्वरोंको भी तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है सो हमको हुआ, यह आश्चर्य नहीं है, यद्यपि प्राणि-योंको तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है, परन्तु तो भी तुम्हारी कृपासे किसी किसीको सुलभ हो जाता है, इसलिये रजोगुणी, तमोगुणी स्वभाववाले हम असुरोंको अकस्मात् आपने दर्शन दिया ॥ ४० ॥ बडा आश्चर्य है, हम शत्रु सत्त्वगुणी भक्तोंसे भी बडभागी हैं, दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच भूत और प्रमथोंमें मुख्य हैं ॥ ४१ ॥ हम और हमसे दूसरे लोगोंने शास्त्रके रक्षा करनेवाले सत्त्वगुणी स्वभाव तुमसे नित्य शत्रुता कररखी है, उन्हें भी आपका दर्शन प्राप्त होजाता है ॥ ४२ ॥ कोई एक (शिशुपालादि) वैर भक्तिसे तुमको जैसे पागये,और गोपी आदिकोंने काम भक्तिसे जैसे तुम्हें पाया उसी सत्त्वगुणसे देवता तुमको प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरोंके ईश्वर इसप्रकार तुम्हारी योगमायाको जब योगेश्वर भी नहीं जानते, तो हम असुर क्या जान सकते हैं ॥ ४४ ॥ इसलिये हम पर आप ऐसी दया करो कि, जिससे निष्काम पुरुषोंके ढूंढने योग्य तुम्हारे चरणारविन्दका आश्रय ले चरणारविन्दसे अलग घर रूप कुएँसे निकल-कर विश्वकी रक्षा करनेवाले वृक्षकी जडोंमें आपहीसे गिरे फल फूलको भोजन कर मैं शान्त चित्त होकर अकेला विचरूं, अथवा सबके सहाय करनेवाले महात्मा पुरुषोंके संग विचरूं ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! सब जीवोंके स्वामी ! हमें शिक्षा देकर पापरहित निष्पाप करो, कि जिस शिक्षाको श्रद्धापूर्वक पालनेसे पुरुषोंके विधि निषेध रूप बन्धन छूट जाते हैं ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, इस स्वायंभुव मन्वन्तरमें मरीचि प्रजापातिके ऊर्णा स्त्रीमें छः पुत्र हुये एक समय देवता रूप छहों पुत्र अपनी कन्याके पीछे भाजे और ब्रह्मा-जीको देखकर हँसे ॥ ४७ ॥ इस पापकर्मसे असुरयोनिको प्राप्त हुये, फिर उन्होंने हिर-ण्यकश्यपके जन्म लिया, सोई छहोंने हिरण्यकश्यपके यहाँसे योगमायाके प्रेरे ॥ ४८ ॥ देवकीके उदरमें जन्म लिया, जो कंसके हाथसे मारेगये, सो अब वह तुम्हारे पास हैं, इन्हें देवकी अपना पुत्र मानकर शोच करती है ॥ ४९ ॥ माता देवकीका शोक दूर कर-नेके लिये यहाँसे इन छहों पुत्रोंको लेजायँगे इसके उपरान्त शापसे छूट खेद रहित होकर यह देवलोकमें जायँगे ॥ ५० ॥ १ स्मर २ उद्गीथ, ३ परिष्वंग ४ पतंग, ५ क्षुद्रभृक् और ६ घृणी ये जो छः पुत्र हैं,सो मेरे प्रसादसे मुक्त हो जायँगे ॥ ५१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार जब कहा तब राजा बलिसे पूजित हो, श्रीकृष्ण बलदेव उन पुत्रोंको संगले, द्वारकापुरीमें आय माता देवकीको देदिये ॥ ५२ ॥ पुत्रोंके स्नेहसे

स्तनोंमें दूध चुवै, ऐसी देवकी उन बालकोंको देख गोदमें बैठाय छातीसे लगाय बार-म्बार माथा सूँघनेलगी ॥ ५३ ॥ सृष्टिको उत्पन्न करनेवाली विष्णु भगवान्की मायासे मोहित और पुत्रोंको छातीसे लगानेके कारण मग्न देवकी प्रसन्न होकर पुत्रोंको स्तन पिलाने लगी ॥ ५४ ॥ गदाके धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पीनेसे बचा अर्थात् भगवान्का प्रसाद वह अमृतरूप देवकीका दुग्ध पानकर और श्रीकृष्णके अंग स्पर्श कर-नेसे "हम देवता हैं" यह ज्ञान होनेसे वह देवता गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र और देवकी तथा वसुदेवजीको नमस्कारकर सब प्राणियोंके देखते देवताओंके धाम देवलोकमें चले गये × ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! मरेहुये पुत्रोंका आगमन और फिर गमन देखकर विस्मित देवकीने जानलिया कि, यह सब श्रीकृष्णचन्द्रकी रची हुई माया है ॥ ५७ ॥ अनंतशक्ति परमातमा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे ऐसे आश्चर्ययुक्त अनंत चरित्र हैं ॥ ५८ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिक ऋषीश्वरो ! व्यासनंदन महात्मा शुकदेवजीके कहेहुए और सब जगत्के पापोंके दूर करनेवाले, भक्तोंके कानोंको आनन्द-दायक अमृतरूपी कीर्ति मुरारी भगवान्के चरित्रोंको भगवान् में चित्त लगाकर जो पुरुष श्रवणकरै अथवा श्रवण करावे, वह पुरुष काल और मायासे रहित भगवान्के परमधामको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

दोहा-हरण सुभद्राको कियो, छयासी अर्जुन धीर।
कियो सुखी श्रुतदेवको, अरु द्विजको यदुवीर ॥ १ ॥

× शंका-देवकीके सब बालकोंको श्रीकृष्णने लादिया, तब वह सब बालक देवकीके स्तनका दूध पीनेलगे, श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि, कैसा देवकीके स्तनोंका दूध था जिसको बालक पीरहेथे, पहिले तो भगवान्ने देवकीके स्तनोंका दूध पियाथा, जो दूध शेष रहाथा उसको देवकीके और बालकोंने पिया, अब यहाँ मुझको यह सन्देहहै, कि, श्रीकृष्ण तो जन्मलेतेही गोकुलको चलेगये देवकीका दूध नहीं पिया, फिर व्यासजी क्यों कहते हैं देवकीके स्तनोंका दूध भगवान्ने पिया, और जो बाकी रहा उसका और पुत्रोंने पिया ॥

उत्तर-शास्त्रमें लोकमें तीन प्रकारका कर्म वर्णन होता है; एक वचनसे कर्म होताहै, दूसरा मनसे कर्म होताहै, तिसरा शरीरसे कर्म होताहै, इस तीनों कर्मोंमें कोई कर्म छोटा नहीं है, अरु कोई कर्म बडा भी नहीं है. यह तीनों कर्म समान हैं, देवकीके दूधको भगवान् सदा मनसे पीतरहे, जो मनसे दूध पिया तो वचन तथा शरीरसे दूधका पीना सत्य होगया, इसलिये व्यासजीने देवकीके दूधको कहा ॥

राजा परीक्षित् पूंछने लगे कि, हे योगीश्वर श्रीशुकदेवजी ! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रकी भगिनी सुभद्रा जो मेरी दादी थी, उसके संग अर्जुनने जिसप्रकार विवाह किया, सो मेरी सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! एकसमय सामर्थ्यवान् अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिये पृथ्वीपर भ्रमण करता करता प्रभासतीर्थमें पहुँचा ॥ २ ॥ वहाँ जाय अपने मामाकी पुत्री सुभद्रा बलदेवजी दुर्योधनको व्याह देंगे और वसुदेवादिकोंकी इसमें सम्मति नहीं है, यह बात सुन उस सुभद्राके लेनेकी इच्छासे अर्जुन संन्यासी बन तीन दंड धारणकर द्वारकापुरीमें आया ॥ ३ ॥ अपने कार्यको सिद्ध करनेकी इच्छासे अर्जुनने चार महीने वर्षाऋतुके द्वारकापुरीमें बिताये, पर वहाँके मनुष्योंको और बलरामजीको भी इस छलकी खबर न हुई, इसकारण वह उसका नित्य प्रति सन्मान करते थे ॥ ४ ॥ एक दिन संन्यासीभावसे अर्जुनका निमंत्रणकर घरमें बुला श्रद्धा पूर्वक बलदेवजीने जो भोजन परोसा, सो अर्जुनने भोजन किया ॥ ५ ॥ वहाँ शूरवीरोंके मनको हरनेवाली एक अत्यन्त सुन्दर कन्या अर्जुनने देखी, जिसपर दृष्टि पडतेही उसके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित होगये और रतिके अभिप्रायसे चलायमान मन सुभद्रामें लगगया ॥ ६ ॥ स्त्रियोंका मन हरनेवाले अर्जुनको देख सुभद्राने भी अपना मन अर्जुनमें लगाया और लाजभरे नेत्रोंसे कटाक्ष सहित उसकी ओर देखनेलगी ॥ ७ ॥ बडे बलवान् कामदेवसे चलायमान चित्त अर्जुनने केवल सुभद्राका ध्यान और हरण करनेका अवसर देखते बलदेवजीके किये सन्मानसे कुछ सुख नहीं पाया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त बडी देवीकी यात्रामें रथमें बैठकर निकली सुभद्राको माता पिता, देवकी, वसुदेव, और श्रीकृष्णकी सम्मतिसे महारथी अर्जुनने हरण किया ॥ ९ ॥ रथमें बैठ धनुष हाथमें ले अर्जुन चारों ओरसे रोंके प्यादोंको भजाय उनके पुकारतेही जैसे सिंह अपने भागको ले जाताहै, उसी प्रकार ले गया ॥ १० ॥ अर्जुन सुभद्राको लेगया, यह बात श्रवणकर जैसे पूर्णमासीको समुद्र उमडता है, उसीप्रकार क्रोधितहुए बलदेवजीको सुहृदों सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शान्त किया ॥ ११ ॥ फिर बलदेवजीने अति आनन्दपूर्वक दहेजमें उन दूलह दुलहनके लिये अमूल्य सामान, हाथी, घोडे, रथ, दास और दासियें आदि भेजे ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे महाराज परीक्षित् ! श्रीकृष्णचन्द्रकी एक भक्तिसे संपूर्ण मनोरथ, शान्त स्वभाव विवेकी विषयोंमें अनासक्त एक श्रुतदेव नाम प्रसिद्ध ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था ॥ १३ ॥ बिना उपाय करे मिले भोजनहीसे निर्वाह करके अपने कर्मोंको करे, ऐसे गृहस्थी ब्राह्मण विदेह देशकी मिथिलापुरीमें वास करता था ॥ १४ ॥ जितनेमें शरीरका निर्वाह हो, उतना भोजन प्रतिदिन अकस्मात उसके लिये आजाता था और अधिक नहीं, परन्तु उतनेहीमें संतोष करके यथायोग्य संध्योपासनादि कर्म करता था ॥ १५ ॥ हे परीक्षित् ! जैसा श्रुतदेव ब्राह्मण भक्त था, उसी प्रकार मिथिलादेशका पालन करनेवाला जनकके वंशमें हुआ निरभिमान बहुलाश्व नामसे विख्यात राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त

था, ब्राह्मण और राजा यह दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके प्यारे हैं ॥ १६ ॥ उन दोनों भक्तोंके ऊपर प्रसन्न हुए सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्के लाये रथमें बैठ मुनियोंको संग ले विदेह देशको चलेगये ॥ १७ ॥ तब नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यासजी, परशुराम, असित, अरुणि मैं (शुकदेवजी) बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय और च्यवन, आदि ऋषि भी संगगये थे ॥ १८ ॥ हे राजन् ! मार्गमें मुनियोंको संगलिये श्रीकृष्णचन्द्र जहाँ जहाँ गये तहाँ तहाँ पुरवासी उनके लिये अर्घ्य हाथमें लेकर उनकी स्तुति करतेथे, जैसे ग्रह उदय होकर सूर्यको अर्घ्य देते हैं ॥ १९ ॥ आनर्त्तदेश, धन्व, कुरु, जांगल, कंक, मत्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, कैकय, कोशल, अर्ण इन देशोंके वासी स्त्री पुरुष उदार हँसनियुक्त स्नेहभरी चितवनवाल श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द दृष्टि भरकर देखनेलगे ॥ २० ॥ अपनी कृपादृष्टिसे अज्ञान दूरकर पुरुषोंकी दृष्टिको कल्याण और तत्त्वज्ञान देते, दिशाओंके अंततक व्याप्त पाप नाशक देवता और मनुष्योंसे गाये अपने यशको श्रवण करते त्रिलोकीके गुरु श्रीकृष्णचन्द्र धीरे २ विदेहादिक देशोंमें पहुँचे ॥ २१ ॥ हे राजा परीक्षित् ! वह संपूर्ण पुरवासी देशवासी जन श्रीकृष्णचन्द्रको आया सुन हर्षित हो पूजाके योग्य सामग्रियोंको हाथमें ले सम्मुख आये ॥ २२ ॥ उत्तम यशस्वी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर प्रफुल्लित मुख और अंतःकरणवाले पुरुष हाथ जोड मस्तक झुकाकर नमस्कार करने लगे और उक्त मुनियोंको भी प्रणाम किया * ॥ २३ ॥

---

* **शंका**–मुनीश्वर लोग विदेह राजाके नगरको सदा आते थे और नगरमें कुछ दिन वास करके अपने अपने आश्रमोंको चलेजाते थे, जब कि, जनकपुरमें बडे बडे महात्मा और प्रजागण वसते थे, तब वह पुरवासी प्रजागण और महात्माजन मुनियोंको देखते थे और पहिचानते थे, फिर व्यासजीने क्यों कहा कि, प्रथम जिन मुनियोंको ब्राह्मण सुन रक्खा था उन मुनियोंका पूजन किया, इस बातसे यह जान पडता है कि, नारदादि मुनि जनकपुरीको कभी भी नहीं गये, नये नये कृष्णके साथ गये हैं, इसलिये व्यासजी कहे हैं कि, जनक पुरवासी प्रजा देखे नहीं थे परन्तु सुने तो थे कि, अमुक अमुक मुनि पृथ्वीपर हैं, यह शंका बडी भारी है ?

उत्तर–"श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान्" इस श्लोकमें विद्वान् पुरुष सब दिन तथा वर्षको तथा बहुत दिनको बहुत पहिले नहीं मानतेथे बहुत दिन तथा वर्षसे तो पुरवासी प्रजा सब मुनियोंको जानते थे परन्तु जब श्रीकृष्णके साथ सब मुनि आये तब सब मुनियोंको पुरवासी प्रजाने देखा, उस समयसे पहिचाना और पहिलेसे तो सुन रक्खा था, मुनियोंको पुरवासी ऐसा अर्थ है क्योंकि जनकपुरमें बडा कुलाहल मच गयाथा कि श्रीकृष्णचन्द्र जनकपुरको आते हैं, उनके संग अमुक२ मुनि लोगभी आते हैं ऐसा पुरवासियोंने सुनाथा तब जिन जिनके आनेको सुनाथा सो सब आगये उन सबका यथायोग्य पूजन किया "श्रुतपूर्वान्मुनीश्वरान्" का अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है और ऐसा नहीं किया कि कभी देखे नहीं थे सुने ही थे ॥

जगत्के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये आये हैं, इसप्रकार बुद्धिसे निश्चयकर मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें आनकर गिरपडे ॥ २४ ॥ मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेवजी इन दोनोंने एक संग हाथजोड़ ब्राह्मणोंसहित श्रीकृष्णचन्द्रका आतिथ्यभाव कर निमंत्रण किया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दोनोंका निमंत्रण मान दोनोंका प्रिय करनेके लिये ब्राह्मणों सहित दो रूप धर दोनोंके घरगये, उससमय राजा और ब्राह्मणोंने यह नहीं जाना कि इन्होंने दो रूप करालिये हैं ॥ २६ ॥ उदारमन बड़ी भक्तिसे हृदयमें हर्ष, नेत्रोंमें आँसूभरे जनकवंशी राजा बहुलाश्व असत् पुरुषोंके सुननेमें भी न आवै ऐसे भगवान्को अपने घर लाय बिछाये आसनपर सुखसे बिठाया और वह सुखसे यथायोग्य आसनपर बैठे ॥ २७ ॥ इसीप्रकार मुनियोंको नमस्कारकर उनके चरणोंको धोय लोकोंको पवित्र करनेवाला चरणोंका जल ॥ २८ ॥ कुटुम्ब सहित राजा बहुलाश्वने अपने माथेपर चढ़ाय ईश्वर और ईश्वरके समान ब्राह्मणोंका गंध, पुष्प, माला, वस्त्र, आभूषण, दीप, अर्घ्य, गौ, बैल इन सामाग्रियोंसे पूजन किया ॥ २९ ॥ भोजनकर तृप्त हुए उन ब्राह्मणों व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रसन्न करता गोदमें धरे श्रीकृष्णके चरण धीरे धीरे दाबता वह यह कहनेलगा ॥ ३० ॥ राजा बहुलाश्वने कहा कि हे समर्थ ! सब प्राणियोंके आत्मा साक्षी स्वयंप्रकाश तुम्हीं हो, इसलिये तुम्हारे चरणारविन्दका स्मरण करनेवाले मुझे तुमने दर्शन दिया है ॥ ३१ ॥ "मेरे एकान्त भक्तसे बढ़कर शेषजी, लक्ष्मीजी और ब्रह्माजी भी प्यारे नहीं हैं" यह जो तुमने कहा, सो अपना वचन सत्य करनेके लिये आपने हमको दर्शन दिया ॥ ३२ ॥ भक्त तुम्हैं प्रिय हैं, इसप्रकार जानकर कौन पुरुष तुम्हारे चरणारविन्दको त्यागन करैगा, निष्किंचन अर्थात् जिनके पास कुछ नहीं है, शान्त शील स्वभाव मुनियोंको तुम अपने पद दे चुके हो ॥ ३३ ॥ ऐसे तुम यदुवंशमें अवतार लेकर संसारी जीवोंके संसार छुडानेके लिये त्रिलोकीका दुःख दूर करनेवाले यशका विस्तार करते हो ॥ ३४ ॥ अकुंठ बुद्धि शान्त तप करनेवाले नारायण ऋषि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे व्यापक ! सब ब्राह्मणों सहित कुछ काल हमारे घरमें वास कर अपने चरणकमलकी रजसे इस निमिराजाके कुलको पवित्र करो ॥ ३६ ॥ राजा बहुलाश्वने जब इस प्रकार बहुत प्रार्थना की, तब लोकोंके पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथिलापुरीके पुरुष स्त्रियोंका कल्याण करनेके लिये कुछेक दिन तक वहां वास किया ॥ ३७ ॥ जैसे जनक वंशोत्पन्न बहुलाश्व राजाको प्राप्त हुए, उसी प्रकार श्रुतदेव ब्राह्मण भी आया और श्रीकृष्णचन्द्र तथा मुनियोंको नमस्कार कर अत्यन्त हर्षित हो नाचनेलगा ॥ ३८ ॥ तृणपट्टा लायकर बिछाय और कुशके आसनपर ब्राह्मणों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको बैठाय "भले आये" इस प्रकार बडाई कर स्त्रीसहित श्रुतदेव ब्राह्मण उनके चरण धोनेलगा ॥ ३९ ॥ और अति प्रसन्नतासे पूर्ण मनोरथ हो बडभागी श्रुतदेव ब्राह्मणने चरणारविन्दके

धोवन जलसे आत्मासहित संपूर्ण कुलको पवित्र किया ॥ ४० ॥ आमले आदि फलोंसे और मंगलरूप अमृतके समान मधुर जलसे तथा सुगंध युक्त मृत्तिका तुलसी, कुश और अनायास लब्ध पूजाकी सामग्रीसे, सत्त्वगुणको बढ़ानेवाले शुद्ध अन्नसे श्रुतदेव ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करके आराधना करनेलगा ॥४१॥ जिनकी चरणरेणु सब तीर्थोंको पवित्र करनेवाली है और श्रीकृष्णचन्द्रके रहनेके स्थान ब्राह्मणोंका संग घररूप कुएँमें पड़े मुझे किसकारणसे प्राप्त हुआ, इस प्रकार ब्राह्मण तर्क करने लगा ॥ ४२ ॥ आतिथ्यकर भलीभाँति विराजमान किये ब्राह्मणोंके निकट स्त्री, कुटुम्ब और पुत्रसहित उपस्थितहो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका स्पर्श करता श्रुतदेव यह वचन कहनेलगा ॥४३॥ श्रुतदेव बोला कि, जिससमय शक्तिसे इस विश्वको रचकर अपनी सत्तासे इसमें प्रविष्ट हुए, उसीसमय तुम परम पुरुषने हमको प्राप्त हुए, परन्तु इस साँवरे स्वरूपका दर्शन अभी प्राप्त हुआ है ॥ ४४ ॥ जिसप्रकार सोतेहुए पुरुष अपनी अविद्यासे स्वप्नमें मनहीसे दूसरे शरीरको रचकर उसमें मानो प्रवेश किया हो, उसीप्रकार तुमने भी इस संसारको निर्माणकर मानों इसमें घुसेहो, मुझको ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ तुम्हारी कथाओंको श्रवण करै, तुम्हारे नामका कीर्त्तन करै, सदा तुम्हारी पूजा करै, तुमको प्रणाम करै, उन शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषोंको भी आप हृदयमेंही दर्शन देतेहो, परन्तु मुझे तो आपने प्रत्यक्षही दर्शन दिया इसकारण मुझे जान पडता है कि मैं सबसे बढकर आजदिन भाग्यशाली पुरुष हूं ॥ ४६ ॥ कर्मोंसे चलायमान चित्त पुरुषोंके हृदयमें भी स्थितहो, परन्तु अति दूरहो और तुम्हारी कथाको सुनने और तुम्हारे नाम लेनेसे जिनके निर्मल अंतःकरण हो गये हैं, उन पुरुषोंके तुम सदा समीप रहते हो ॥ ॥४७॥ देह और गेहमें अभिमान रहित पुरुषोंको मोक्ष देनेवाले और देह गेहमें अभिमान करनेवाले पुरुषोंको आप संसार देतेहो, कार्य महदादिक कारण माया जो दोनों उपाधि हैं उनको सेवन करतेहो अपनी मायासे आप ढके नहीं हो और जीवोंका ज्ञान मायासे आच्छादन करनेवाले आपको मैं प्रणाम करताहूं, तुम हम भक्तोंको शिक्षा दो, हे प्रकाशमान! हम तुम्हारा क्या पूजन करैं? जब तक तुम नेत्रोंके सन्मुख नहीं आते हो, तब तकहीं मनुष्यको क्लेश रहता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! इसप्रकार श्रुतदेव ब्राह्मणका कहा वचन सुन शरणागतोंका दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड हँसकर यह वचन बोले ॥५०॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्राह्मण! यह मुनिलोग तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये यहाँ आये हैं यह तुम निश्चय जानो, क्योंकि यह पुरुष अपने चरणारविंदकी रजसे मनुष्योंको पवित्र करते मेरे साथ भ्रमण किया करते हैं ॥ ५१ ॥ देवता, क्षेत्र, तीर्थ, इनके दर्शन स्पर्शन अर्चन करनेसे बहुत कालमें धीरे धीरे पवित्र करते हैं, सो भी महात्माओंकी इच्छाहोय तो और ब्राह्मण तो शीघ्रही पवित्र कर देते हैं ॥ ५२ ॥ इस संसारमें समस्त प्राणियोंकी अपेक्षासे ब्राह्मण जन्महीसे श्रेष्ठ हैं और जो तप करके श्रेष्ठ होय तो इसमें

कहनाही क्या है ? ॥५३॥ यह मेरा चतुर्भुज रूप भी मुझे ब्राह्मणोंसे विशेष प्यारा नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण सर्व वेदमय हैं और देवतारूप मैंहूं और देवताओंकी सिद्धि वेदके अधीन होनेसे ब्राह्मण मुझे इस रूपसे भी अधिक प्रिय हैं ॥५४॥ खोटीबुद्धि गुणोंमें दोषको देखनेवाले पुरुष भी ब्राह्मण वेदमय हैं,यह न जान गुरुरूप, ब्राह्मणरूप सबके आत्मा मेरा निरादर करते हैं ॥५५॥स्थावर, जंगम, यह विश्व और इस विश्वके कारण महदादिक पदार्थ सब ईश्वरही रूप हैं,इस प्रकारसे ब्राह्मण सब ओर अपनी दृष्टिसे जानतेहैं॥५६॥हे ब्राह्मण! श्रुतदेव जैसी श्रद्धा मुझमें है, इसीप्रकार श्रद्धा सहित ब्रह्मऋषियोंका पूजन करो, मुझमें इनमें एकसा भाव करोगे तो मेरी साक्षात् पूजा होजायगी और जो भेदभावसे मेरी बहुतसी संपत्तियोंसे भी पूजा करोगे तो मैं प्रसन्न न हूंगा ॥५७॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभाग परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञापाय श्रुतदेव ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्र सहित सब ब्राह्मणोंका एक भावसे आराधनकर सुन्दरगतिको प्राप्त हुआ और मिथिलापुरीके राजाने भी सुन्दरगति पाई ॥ ५८ ॥ हे राजन् इसप्रकार भक्तोंपर प्रीति करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने भक्त बहुलाश्व और श्रुतदेवके यहाँ वासकर सन्मार्ग अर्थात् उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड इन तीनों काण्डोंका उपदेश कर फिर द्वारकापुरीमें आनकर सुशोभित हुए ॥ ५९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

दोहा-सत्तासी अध्यायमें, नारद हरि सुखधाम ।
परब्रह्म निश्चय कियो, वेदस्तुतिपरिणाम ॥

राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! पहले अध्यायके अंतमें भगवान् वेदका अर्थ ब्रह्मपर है इसप्रकार उपदेश करके द्वारकाको चलेगये, यह कहा तहाँ शब्दरूप वेदोंको ब्रह्मपरत्व नहीं बनता क्योंकि मुख्या लक्षणा और गौणी इन तीन प्रकारकी वृत्तियोंसे शब्दकी प्रवृत्ति होती है मुख्यावृत्ति भी दो प्रकारकी है रूढि और योग जो वस्तु स्वरूप जाति, अथवा क्रियासे वा गुणसे निर्देश करी जाय उसमें रूढिकी प्रवृत्ति होतीहै, जिसका स्वरूप जाति क्रिया गुणसे निर्देश न हो, उसमें यह संभव नहीं हो सकता, सो ब्रह्म तो जाति, गुण, क्रिया, अथवा स्वरूपसे निर्देश नहीं होता, इससे ब्रह्ममें रूढिकी प्रवृत्ति नहीं होसकती और कार्य कारणसे परे और असंग होनेसे योगवृत्तिका भी संभव नहीं होसकता और लक्षणामें सम्बन्धकी आवश्यकताहै, ब्रह्म सब सम्बन्धसे रहित है इस लक्षणावृत्तिका भी संभव नहीं होसक्ता और जो श्रुति गुणका निरूपण करै,ब्रह्म स्वयं निर्गुण है,इससे गौणी वृत्तिसे ब्रह्मका निरूपण नहीं होसकता, फिर ब्रह्मको श्रुति किस प्रकारसे प्रतिपादन करती है ? ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्का यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजापरीक्षित्! नित्यमुक्त सर्वशक्तिमान् ईश्वरने प्रलयकालमें अपनेमें लीनहुए प्राणियोंके विषयभोग रूप

अर्थ जन्मसे कर्म पर्यन्त रूप धर्म परलोकमें उनके सुख भोग रूप काम, और कल्पना निवृत्ति रूप मोक्ष पुरुषार्थ देनेके लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राण इनकी रचना की है, यदि यह न हो तो अर्थ धर्म कामकी प्राप्ति नहीं होसकती, और जो स्वरूपका विचार न हो तो मोक्ष भी नहीं मिलसकताहै "यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान्" इसलक्षणका निरूपण करनेवाली श्रुति सगुण ब्रह्मका निरूपण करतीहै, और जीवोंका संसार निवृत्तिके लिये (तत्त्वमसि-वह तू है) यह वाक्य ईश्वरकी ईश्वरता प्रतिपादन करताहै, इसमें नित्यमुक्त ईश्वरका वाचक (तत्) शब्द संसारी जीवका वाचक त्वंपदको समानाधिकरण्य प्रतीत होताहै, सो यह जहदजहत्स्वार्था लक्षणासे अथवा भागत्याग लक्षणासे बन सकै हैं, तत् पद तो सर्वज्ञादि गुणवाले ईश्वरका और त्वंपद अल्पज्ञादि गुणवाले पदार्थका वाचक है, इन परस्पर विरुद्ध गुणवाले शब्दोंमेंसे परस्पर विरुद्ध रूप अंशका त्यागन करनेसे दोनोंमें प्राप्त चैतन्यरूपका समान अंश ग्रहण करके (तत् त्वं) यह दोनों पद ब्रह्मरूप एक अर्थके प्रतिपादक होकर एकताका निरूपणकर शुद्ध ब्रह्मको कथन करतेहैं, और (स्थूल-मनण्वह्रस्वं) इत्यादि निषेधका निरूपण करनेवाली श्रुति तत्पदार्थके शोधन करनेमें चरि-तार्थहो उपाधिके निषेधसे साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममें पर्यवसान होती है उत्पत्ति, पालन और प्रलयकी प्रतिपादक श्रुति भी आवागमनरूप सृष्टिका निरूपणकर उसीसे वैराग्यरूप ज्ञानके साधनोंका उपदेश करती ज्ञानके परम्परा सम्बन्धसे ब्रह्मकोही प्रतिपादन करतीहै, उपास-नाकी निरूपण करनेवाली श्रुति उपासना द्वारा अंतःकरण शुद्ध करके ज्ञान साधनका उप-देश देती ज्ञानद्वारा ब्रह्मकोही प्रतिपादन करतीहै, इसकारण सर्वथा श्रुति ब्रह्मकोही प्रतिपा-दन करतीहै, यह अभिप्रायहै ॥ २ ॥ यह जो ब्रह्मपर उपनिषद् है, सो प्रथम हुए सनका-दिकोंने पहले धारण करेहैं, जो पुरुष निष्किंचन होकर श्रद्धापूर्वक इसे धारण करैंगे, सो मोक्षको प्राप्त होंगे, ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम ! यहाँ तुम्हें नारायण सम्बन्धी गाथा हम सुनाते हैं, जिस गाथामें नारदजी और ऋषि नारायणजीका संवादहै ॥४॥ एक समय भगवान्के प्यारे नारदजी समस्त लोकोंमें फिरते फिरते सनातन ऋषिको देखनेके लिये नारायणके आश्रय बद्रिकाश्रममें आये ॥ ५ ॥ जो नारायण भरतखण्डमें लोकोंके कारण क्षेम और मंगलके लिये धर्मज्ञानसे युक्त तपको कल्पपर्यन्त करतेहैं * ॥ ६ ॥ वहाँ कलाप ग्रामके

---

* **शंका**—बद्रिकाश्रममें नारायण नाम मुनि मनुष्योंके कल्याण होनेके लिये बहुत युग कल्प कल्पान्तसे तप करते हैं सो उस तप करनेसे मनुष्योंका क्या कल्याण होताहै ? ॥

उत्तर—सब जीवोंको इन्द्रियोंको अलग विषय सुख सब लोकमें है, परन्तु नारायण नाम मुनि भरतखण्डमें तप करते हैं, इसलिये मनुष्योंको ज्ञानका सुख तथा मोक्षरूप कल्याण ज्ञानसे होना सिवाय भरतखण्डके दूसरे द्वीप तथा खण्ड तथा और लोकमें ज्ञान नहींहै हे श्रोताओ ! ज्ञानसे दूसरा कल्याण मनुष्योंको कोई भी नहीं है इसलिये मनुष्योंके कल्याण होनेके कारण नारायण मुनि तप करते हैं ऐसा लिखाहै ॥

अर्थ जन्मसे कर्म पर्यन्त रूप धर्म परलोकमें उनके सुख भोग रूप काम, और कल्पना निवृत्ति रूप मोक्ष पुरुषार्थ देनेके लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राण इनकी रचना की है, यदि यह न हो तो अर्थ धर्म कामकी प्राप्ति नहीं होसकती, और जो स्वरूपका विचार न हो तो मोक्ष भी नहीं मिलसकताहै "यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान्" इसलक्षणका निरूपण करनेवाली श्रुति सगुण ब्रह्मका निरूपण करतीहै, और जीवोंका संसार निवृत्तिके लिये (तत्त्वमसि-वह तू है) यह वाक्य ईश्वरकी ईश्वरता प्रतिपादन करताहै, इसमें नित्यमुक्त ईश्वरका वाचक (तत्) शब्द संसारी जीवका वाचक त्वंपदको समानाधिकरण्य प्रतीत होताहै, सो यह जहदजहत्स्वार्था लक्षणासे अथवा भागत्याग लक्षणासे बन सकै हैं, तत् पद तो सर्वज्ञादि गुणवाले ईश्वरका और त्वंपद अल्पज्ञादि गुणवाले पदार्थका वाचक है, इन परस्पर विरुद्ध गुणवाले शब्दोंमेंसे परस्पर विरुद्ध रूप अंशका त्यागन करनेसे दोनोंमें प्राप्त चैतन्यरूपका समान अंश ग्रहण करके (तत् त्वं) यह दोनों पद ब्रह्मरूप एक अर्थके प्रतिपादक होकर एकताका निरूपणकर शुद्ध ब्रह्मको कथन करतेहैं, और (स्थूल-मनण्वह्रस्वं) इत्यादि निषेधका निरूपण करनेवाली श्रुति तत्पदार्थके शोधन करनेमें चरितार्थहो उपाधिके निषेधसे साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममें पर्यवसान होती है उत्पत्ति, पालन और प्रलयकी प्रतिपादक श्रुति भी आवागमनरूप सृष्टिका निरूपणकर उसीसे वैराग्यरूप ज्ञानके साधनोंका उपदेश करती ज्ञानके परम्परा सम्बन्धसे ब्रह्मकोही प्रतिपादन करतीहै, उपासनाकी निरूपण करनेवाली श्रुति उपासना द्वारा अंतःकरण शुद्ध करके ज्ञान साधनका उपदेश देती ज्ञानद्वारा ब्रह्मकोही प्रतिपादन करतीहै, इसकारण सर्वथा श्रुति ब्रह्मकोही प्रतिपादन करतीहै, यह अभिप्रायहै ॥ २ ॥ यह जो ब्रह्मपर उपनिषद् है, सो प्रथम हुए सनकादिकोंने पहले धारण करेहैं, जो पुरुष निष्किंचन होकर श्रद्धापूर्वक इसे धारण करैंगे, सो मोक्षको प्राप्त होंगे, ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम ! यहाँ तुम्हें नारायण सम्बन्धी गाथा हम सुनाते हैं, जिस गाथामें नारदजी और ऋषि नारायणजोका संवादहै ॥४॥ एक समय भगवान्के प्यारे नारदजी समस्त लोकोंमें फिरते फिरते सनातन ऋषिको देखनेके लिये नारायणके आश्रय बद्रिकाश्रममें आये ॥ ५ ॥ जो नारायण भरतखण्डमें लोकोंके कारण क्षेम और मंगलके लिये धर्मज्ञानसे युक्त तपको कल्पपर्यन्त करतेहैं * ॥ ६ ॥ वहाँ कलाप ग्रामके

---

* **शंका**-बद्रिकाश्रममें नारायण नाम मुनि मनुष्योंके कल्याण होनेके लिये बहुत युग कल्प कल्पान्तसे तप करते हैं सो उस तप करनेसे मनुष्योंका क्या कल्याण होताहै ?॥

उत्तर-सब जीवोंको इन्द्रियोंको अलग विषय सुख सब लोकमें है, परन्तु नारायण नाम मुनि भरतखण्डमें तप करते हैं, इसलिये मनुष्योंको ज्ञानका सुख तथा मोक्षरूप कल्याण ज्ञानसे होना सिवाय भरतखण्डके दूसरे द्वीप तथा खण्ड तथा और लोकमें ज्ञान नहींहै हे श्रोताओ ! ज्ञानसे दूसरा कल्याण मनुष्योंको कोई भी नहीं है इसलिये मनुष्योंके कल्याण होनेके कारण नारायण मुनि तप करते हैं ऐसा लिखाहै ॥

वासी ऋषियोंसहित विराजमान नारायणजीसे नम्र होकर यह पूछनेलगे ॥ ७ ॥ उस समय ब्रह्मविचार जनलोकनिवासी सनकादिकोंमें जो हुआथा, सोई भगवान् नव ऋषियोंके श्रवण करते नारदजीके अर्थ कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे नारदजी ! पहले जनलोकमें ब्रह्माके मनसे उत्पन्नहुए नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादिक मुनियोंका ब्रह्मसत्र अर्थात् ब्रह्मविद्याका विचार हुआथा ॥ ९ ॥ अहो ! यह ब्रह्मसत्र मुझे ज्ञात नहीं, इसपर कहते हैं कि हे नारद ! उससमय श्वेतद्वीपके ईश्वर अनिरुद्ध मूर्त्ति देखनेके लिये श्वेतद्वीपमें तुम गयेथे, तब पीछे ब्रह्मवाद हुआ ब्रह्मवादमें श्रुति भगवान्का प्रतिपादन करती हैं, वहाँ यही प्रश्न हुआ जो तुमने मुझसे पूछा है ॥ १० ॥ यद्यपि श्रवण तप शील शास्त्राभ्यास मित्र, शत्रु, मध्यम इन सबमें सनकादिक समान हैं परन्तु तोभी एकको वक्ता बनाकर संपूर्ण श्रोता होगये ॥ ११ ॥ सनंदनजी बोले,कि अपने निर्माण किये इस संसारका नाशकर अपनी शक्ति सहित सोये भगवान्को प्रलयके अंत समयमें ब्रह्मके प्रतिपादक वचनोंसे श्रुतियें जगाने लगीं ॥१२॥ जैसे रात्रिके सोये चक्रवर्त्ती राजाको प्रातःकालको राजोपजीवी बंदीजन उठ उसके पराक्रमके सुन्दर यशको वर्णन करके जगाते हैं ॥ १३ ॥ श्रुतियें बोलीं, कि, हे सर्वविजयी ईश्वर ! तुम्हारी जयहो, आप अपने वैभवको प्रगट करो और इस घोरनिद्राको त्यागकर हमारा प्रतिपालन करो,जिस प्रकार स्त्री और दूसरे पुरुषको छलनेके लिये अनेक प्रकारके रूप और गुण धारण करतीहै, उसीप्रकार आनन्दादिकका आवरण करनेके लिये गुण ग्रहण करनेवाली स्थावर और जंगम शरीराश्रित जीवोंकी अविद्याका नाश करो,क्योंकि अनादिकालसे यह अविद्या संसारके जीवोंको मोहित करके अनेक प्रकारके दुःख दिखाती है और इसीकारण प्राणियोंको अनेक योनियोंमें जन्मलेना पडताहै, यह सब अविद्याहीका प्रभाव है, क्योंकि यह अविद्या महाबलवान् है, मनुष्योंकी तो क्या सामर्थ्य है,देवताओंके मनको भी मोहनेवाली है,वहभी इसके दूर करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते, आपही इसको दूर कर सक्तेहो,क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी और मायासे रहितहो और इस महागंभीर संसारसागरसे पार उतार मोक्षके देनेवाले आपहीहो, इसलिये बारम्बार आपसे यह निवेदनहै कि,आप इन जीवोंपर अनुग्रह करके इस महाप्रबल अविद्याका नाश करो,क्योंकि माया आपके वश होनेसे सब ऐश्वर्य आपको स्वरूपहीसे प्राप्त हैं इसीकारण अविद्या आपमें किसी प्रकारका दोष नहीं लगासक्ती और आप सनातनधर्म पालनेके और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये जगत्में अनेक अवतार धारण करतेहो, हे सर्व प्राणियोंके बोध करनेवाले परमेश्वर ! सृष्टिकी आदि समयमें माया करके क्रीडा करतेहो और आनन्द देकर अपने आत्मा करके वर्त्तमान जो आप हो सो आपका प्रतिपादन करै है और आपही सम्पूर्ण शक्तियोंके जगानेवालेहो, तुम अखण्ड विभव और ज्ञानशक्तिसे जीवोंका अज्ञान दूरकरो हो, इस विषयमें हम [श्रुति] ही प्रमाण हैं ॥ १४ ॥ (१) यदि कहो कि, मंत्रोंमें अग्नि आदि देवताओंका प्रतिपादन देखनेमें आताहै, वेभी सब तुम्हारेही रूपकेहैं, ऐसा ज्ञानी जानते हैं, क्योंकि यह जो कुछ दृश्यमान है, इसके न होनेपर आपही अवशेष

रहेहो, इस सब जगत्की उत्पत्ति नाश आपहीमें होता है, जैसे घटादिकोंका उदय, अस्त मृत्तिकामें होता है, मंत्र द्रष्टा ऋषियोंके मन और वचनका तात्पर्य तुम्हारे विषय है, अन्यमें नहीं जैसे मनुष्य अपने चरण मृत्तिका, पाषाण, ईंट इनके ऊपर धरताहै, परन्तु भूमिसे पृथक् नहीं है, उसी प्रकार जो कुछ विचार है सो सब तुम्हींसे हुआहै, सर्व कारण परमार्थरूप तुम हो इस प्रकार हम (वेद) प्रतिपादन करतेहैं ॥ १५ ॥ (२) हे त्रिगुण माया मृगीके नचानेवाले ! विवेकी पुरुष तुम्हारे अखिल लोकोंके मल नाश करने वाले कथारूपी अमृतके समुद्रको सेवन करके पाप और दुःखोंको त्याग देते हैं जब तुम्हारी कथामात्रसेही पापोंका नाश होजाता है, तब स्वरूपका स्मरणकर अंतःकरणके गुण रागादिक और कालके गुण जरादिक जिनके निवृत्त होगये हैं इसमें फिर क्या ? और हे प्रभो ! तुम्हारा अखण्ड आनंद अनुभव स्वरूपका भजन करके दुःखोंको त्यागे तो इसमें कहनाही क्या है ॥ १६ ॥ (३) अब जो पुरुष तुम्हारा भजन नहीं करते उनकी निन्दा है, और जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करते हैं, उनका सफल जन्म है, इसप्रकार स्तुति करते हैं, अथवा जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करके श्वासोंको पूर्ण करते हैं, वही सफलजन्मा हैं और जो विना भजन करे श्वास लेते हैं, वह लुहारकी धौंकनीके समान वृथा श्वास हैं, तुम्हारे भजनके विना कृतघ्नियोंको फलकी सिद्धि नहीं होती फिर यह कहते कि जिसके अनुग्रहसे महत्तत्त्व अहंकारादिक तत्व इस देहको रचते हैं, उस देहमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश जो देह, प्राण, मन, बुद्धि और ज्ञान कहलाते हैं उनमें प्रवेश करके उनहीं उन आकारोंसे चेतन करनेवाले तुम्हींहो इस प्रकार वेदने अंतमें वर्णन किया है, अन्नमयादिकोंकेसा आकारवाला पुरुष अन्नमयादिकोंमें मिल रहा है यद्यपि यह बात सत्य है परन्तु तोभी तुम्हारा असंगत्व नहीं मिटता तो अन्नमयादिकोंके अंतमेंही इसलिये पुच्छसे वर्णन करते हैं, स्थूल सूक्ष्मसे परे हो और इनमें अविशेष रूप हो, इस कारण सत्य हो, शाखाचन्द्रकी तुल्य शुद्ध रूप दिखानेके लिये अन्नमयादिकोंमें सम्बन्ध कहा है, जैसे शुद्ध चन्द्रमाके दिखानेको वृक्षकी शाखाका अवलम्बन करते हैं, इसीप्रकार ब्रह्मके दिखानेको कोशादिका अवलम्बन है ॥ १७ ॥ (४) हे अनन्त ! जो मनुष्य ऋषिवर्त्म अर्थात् वेदोक्त कर्ममार्गमें स्थित होकर वेदके उदररूपी कर्मकी उपासना करते हैं अर्थात् अग्निहोत्र याग करते हैं भगवद्दर्शनमें रुचि नहीं करते वह कूर्पदृश हैं अर्थात् उनके नेत्रोंमें धूरि पडी हुई है, इसलिये सूक्ष्मवस्तुका दर्शन नहीं करसकते "यज्ञो वै विष्णुः" इस श्रुतिके अनुसार वह भी भगवदुपासकही हैं और योगीजन नाडियों द्वारा हृदयमें भगवदुपासना करते हैं, इसलिये वे आरुणी अर्थात् अरुणोदयमें थोडा प्रकाश होजाता है, इसीप्रकार इनकी उपासना है और आपकी प्राप्तिका स्थान सुषुम्ना नाडी जो मूलाधारसे हृदयमें हो ब्रह्मरंध्रतक गई है, जिसको पाकर फिर प्राणी संसारमें नहीं आते इसीका नाम मुक्ति है ॥ १८ ॥ (५) तुम सबके उपादान कारण हो, इसलिये प्रथमही सबसे वर्त्तमान हो, इसीसे तुम्हारे निर्मित किये, ऊंच, नीच,

मध्यम देहोंमें तुम्हारा प्रवेश होना संभव नहीं होसकता, तो भी जैसे उनमें प्रवेश किये हो, इसीप्रकारसे देहादिकोंका अनुकरण करते न्यूनाधिक प्रतीत होते हो जैसे अग्नि तारतम्य रहित है परन्तु काष्ठमें व्याप्त होनेसे उसीके समान प्रतीत होती है, इसीप्रकार आपको सब उपाधिसे रहित समान एक रस जानकर दोनों लोकके कर्म फल रहित उज्ज्वल बुद्धि-वाले मनुष्य असत्य देहादिमें आपको ही सत्य मानकर तुम्हारी उपासना करते हैं ॥१९॥ (६) अपने कर्मोंसे प्राप्त हुये नरकादिक देहमें यह जीव भोक्तृत्वसे वर्त्तमान है, वह जीव भीतर बाहर आवरण रहित संपूर्ण शक्तियोंके धारण करनेवाले तुम्हारा अंशहीहै, इस प्रकार पण्डित जीवकी गतिको विचार वेदोंके उत्पत्ति स्थान और संसारसे छुडाने-वाले तुम्हारे चरणोंकी उपासना करते हैं, इसप्रकार विश्वास पूर्वक अर्चन वन्दन करना यही मर्त्यलोकमें उचित है ॥ २० ॥ (७) हे ईश्वर! दुर्बोध आत्मतत्त्वके जनानेके लिये अवतार धारण करनेवाले तुम्हारे चरित्ररूपी अमृतसमुद्रमें अवगाहनकर श्रमरहित हो कोई एक तुम्हारे भक्त मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते, और तुम्हारे चरणकमलमें अव-गाहनकर हंसके समान रमण करते हैं, ऐसे भक्तोंके संगके लिये घर भी उन्होंने त्याग दिये हैं, जब गृहादिका त्यागन कर दिया, तब परलोकके सुखकी क्या कथा है ? इस लिये आपकी भक्ति, मुक्तिसे भी अधिक है ॥ २१ ॥ (८) तुम्हारी सेवाका साधक यह शरीर जब आत्मा सुहृद और प्रियके समान स्वाधीन है, तो भी सन्मुख स्थित हित-कारी प्यारे आत्मारूप आपका साक्षात् भावसे भजन नहीं करते हैं, और देहादिके लालन पालन करनेमें पडे रहते हैं, यह बडे कष्टकी बात है, मिथ्याभूत देहादिकोंके सेवनसे असत् उपासनामें वासना वाले नीच देहको धारण करनेवाले बडे भयरूप संसारमें भ्रमण करते हैं, इसलिये वह आत्मघाती हैं ॥ २२ ॥ (९) प्राण, मन, इन्द्रिय जीतकर दृढ योगके करनेवाले मुनिलोग हृदयमें जिसकी उपासना करते हैं, वह जिस तत्त्वको योगद्वारा प्राप्त हुये हैं, उसीप्रकार शत्रु भी तुम्हारे स्मरणसे तुमको प्राप्त हुये हैं, तथा शेषके शरीरके तुल्य तुम्हारे भुजदण्डमें आसक्त बुद्धि भी तुमको प्राप्त हुई है, इसी कारण हम कहते हैं कि, आपकी कृपादृष्टि सबपर समान है और हम तुम्हें देश काल परिच्छेद रहित देखते हैं, तुम्हारा प्रताप ऐसा है कि, जो जिस भावसे आपका ध्यान करै, उन सब को तुम्हारे शरीरकी प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥ (१०) हे भगवन्! इस संसारमें पूर्व सिद्ध तुमको आधुनिक उत्पत्ति विनाशसे युक्त पुरुष कैसे जानेंगे ? अर्थात् नहीं जानेंगे, तुमसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है, ब्रह्माके पीछे अध्यात्मक आधिदेवके देवताओंके गण उत्पन्न हुये, इसके पीछे सब चराचर उत्पन्न हुये, इस लिये इन सबका वृत्तान्त आप तो भलीभाँति जानते हो, क्योंकि, आप तो सबसे पूर्व अनादि हैं, फिर आपको पीछे उत्पन्न होनेवाला और नाशवान् कौन मूर्ख कह सक्ता है? जिस समय तुम सबका संहार करके शयन करते हो, उस समय जीवोंको ज्ञान साधन नहीं है, इसलिये प्रलयके समय स्थूल आकाशादिक नहीं हैं, तथा स्थूल सूक्ष्मसे आरब्ध शरीर भी नहीं है

और शरीरका कारणरूप कालका विषमभाव भी नहींहै, उस समय इन्द्रिय प्राणादिक कुछ नहीं हैं और सबका जाननेवाला पुरुष भी नहीं है, केवल तात्पर्य यह है कि, पूर्व कालके पुरुष अपने पीछे हुओंके वृत्तान्तको जानते हैं, परन्तु पीछे उत्पन्नहुये पूर्वजोंका चारित्र नहीं जानसक्ते, जिसप्रकार पिता पुत्रके वृत्तान्तको तो भलेप्रकार जानता है, क्योंकि, उसके सामने उसका जन्म और सब कार्य हुये, परन्तु पुत्र पिताका वृत्तान्त किसी रीतिसे नहीं जानसक्ता क्योंकि, जब उसका जन्म कर्मही उसके आगे नहीं हुवा, फिर उसके भेद भावको वह कैसे जानसक्ता है, इसीप्रकार आपके पीछे हुये सब प्राणी आपको नहीं जान सक्ते इससे आपका भजनही करना उचित है ॥ २४ ॥ (११) मिथ्याभूत जगत्की उत्पत्ति है, अर्थात् यह पहले कुछ नहींथा इसप्रकार वैशेषिकादिक आचार्य कहते हैं और जीवोंमें ब्रह्मत्व नहीं है, परन्तु योगसाधनसे होजाता है, यह योगशास्त्रवाले कहते हैं और इक्कीस प्रकारके दुःखोंका नाश मोक्ष है, इस प्रकार नैयायिक कहते हैं और सांख्याचार्य आत्मामें भेदभाव मानते हैं और कर्मफलके व्यवहारको मीमांसक सत्य कहते हैं, सो संपूर्ण आरोपित भ्रमसे ही उपदेश करते हैं, तत्त्वदृष्टिसे उपदेश नहीं करते, वास्तवमें वह पुरुष त्रिगुणमय हो तो इनका कहना सत्य है, सो नहीं, त्रिगुणमय पुरुष यह भेद तुम्हारे विषे अज्ञानसे किया है, तुम अज्ञानसे परे संगरहित ज्ञानघन हो, इसलिये तुममें अज्ञानका होना संभव नहीं ॥ २५ ॥ (१२) जो असत् नहीं उपजै और त्रिगुणमय पुरुष नहीं हैं, तो इससे यह विदित हुवा, यह सब प्रपंच और पुरुष संपूर्णतः तुमसे भिन्न नहीं हैं, सो उनके स्वरूपसे सत्यकी प्रतीत कैसे संभव है ? मनो मात्र विलसित, त्रिगुणात्मक प्रपंच मिथ्याही है,तो सत्य कैसे प्रतीत हो सक्ताहै, इसके उत्तरमें कहते हैं तुम अधिष्ठान हो, इसकारण तुम्हारी सत्तासे सत्यसा प्रतीत होता है, यह केवल निषेधसे प्रतीत हुआहै, अर्थात् अभिप्रायसे मनुष्यसे पुरुषकी भिन्न जो सत्त्व प्रतीत होती है, सो मन मात्रका विलास है, आत्माके जाननेवाले इस भोक्ता और भोग्यरूप जगत् को स्थितहुए आत्माकी सत्तासेही सत्तावाला कहते हैं, आत्मासे भिन्न सत्तावाला नहीं मानते आत्माका कार्य है, इसलिये भिन्न नहीं है जैसे स्वर्णके विकार कुण्डलादिक आभूषणोंको स्वर्णके लेनेवाले त्याग नहीं करते हैं, किन्तु स्वर्णही जानकर ग्रहण करते हैं, इसीकारणसे अपने किये विश्वमें प्रविष्ट पुरुष रूप जीव भी आत्माही है, यह निश्चय है ॥ २६ ॥ (१३) परमात्माको सर्वत्र जान लेना और भक्ति न करना यह बात नहीं, परन्तु उसकी सदा भक्ति करनी, क्योंकि, जो आपको सम्पूर्ण पदार्थोंमें स्थित जानकर तुम्हारी सेवा करते हैं वे संसारको तिरस्कार कर मृत्युके मस्तकपर चरणधर मुक्त होजाते हैं और जो तुमसे विमुख हैं और तुम्हारे अभक्त हैं, उन्हें पशुओंके समान वाणीसे तुम बाँधते हो और जिनने आपसे प्रेम किया है, वह निश्चय आपको और दूसरोंको पवित्र कर सक्ते हैं ॥ २७ ॥ (१४) हे प्रभो ! तुम इन्द्रियोंके संबंधसे रहित हो और समस्त प्राणियोंकी इन्द्रियोंकी शक्तियोंको प्रवृत्त करते हो, अपने स्वरूपसेही प्रकाशमान हो, स्वतःसिद्ध ज्ञानशक्ति होनेसे

तुमको इन्द्रियोंकी अपेक्षा नहीं है, इसी कारणसे विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक और इन्द्रादिक देवता संपूर्ण माया सहित तुम्हारी पूजा करते हैं और मनुष्योंका दिया हव्य कव्यादिक बलि भक्षण करते हैं, जैसे संपूर्ण पृथ्वीके ईश्वर चक्रवर्त्ती राजाको खण्ड मंडलोंके राजा भेट देते हैं और आप अपनी प्रजासे भेंट लेते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मणादिक तुमको भेंट देते हैं और जिन्हें आपने अधिकार दे रक्खाहै, उसी अधिकारको तुम्हारे भयसे पूर्ण करते हैं ॥ २८ ॥ (१५) हे नित्यमुक्त ! जिस समय मायासे तुम्हारा विहार होता है, उसी समय आपकी दृष्टिसे प्रगटहुए कर्म अथवा कर्मयुक्त लिंग शरीरसे स्थावर, जंगम जातिके जीव उत्पन्न होते हैं, यदि उत्तम, मध्यम, अधम सृष्टि होनेमें उन जीवोंके पूर्व कर्म निमित्त न मानै तो मन, वाणीसे परे शून्य भावसे बराबरीके करनेवाले आकाशकी सदृश संपूर्णमें सब भाव और परमदयालु आपमें विषमताका लेश भी नहीं है, क्योंकि, तुम्हारी दृष्टिमें कोई अपना पराया नहीं है, इसलिये आपका भजनही मुख्य है, ॥ २९ ॥ (१६) जो जीव अनंत और रूपसे नित्य हैं और सर्वव्यापी हैं, तो यह पक्ष हमारा नहीं क्योंकि, यदि जीव वास्तवमें अनंत नित्य और उसी रूपसे व्यापक हो तो वे व्यापकतादि गुणोंसे आपके समान होगये जब समान हुए तो आप उनके नियन्ता नहीं होसकते, जो यह न माने तो आपसे उनका नियम संभव न हो, क्योंकि जो वस्तु उपाधिसे जिस पदार्थका विकार रूपहै, वह पदार्थ उस वस्तुका निश्चय नियन्ता होगा क्योंकि, उसमें अनुस्यूत रहा, वह पदार्थ कारणतासे उस वस्तुका त्याग नहीं करना तुम्हारे स्वरूपसे "यत्" "तत्" शब्दके अतिरिक्त कुछ भी कहा जाय ऐसे नहीं हैं क्योंकि, हम ब्रह्मको जानते हैं, इसप्रकार जो कहते हैं, वह ब्रह्मस्वरूपको कुछ भी नहीं जानते क्योंकि, ब्रह्म किसीका विषय नहीं और जो जाननेमें आता है, वह अनात्म पदार्थ है ॥ ३० ॥ (१७) प्रकृति और पुरुषका जन्म संभव नहीं, क्योंकि, प्रकृति पुरुष अजन्मा हैं, इसलिये प्रकृति पुरुषके संबंधसे जीव जन्म लेता है, जैसे जलमें बबूला केवल जलसे और पवनसे भी नहीं उत्पन्न होता है, किन्तु दोनोंसे उत्पन्न होता है, तुम कारणरूप ईश्वरहो, तुम्हारे विषे अनेक नाम रूप गुण सहित जीव लीन होते हैं, जैसे शहतमें संपूर्ण वनस्पतियोंके रस लीन होते हैं, जैसे मधुमें सम्पूर्ण फूलोंके रस विशेषतासे दृष्टि नहीं आते, परन्तु सामान्य रूपसे दीख सकते हैं, वैसे निद्रामें और प्रलयकालमें आपमें लय हुए जीव विशेष रूपसे नहीं रहते और मोक्ष तो आपके निरुपाधिक रूपमें जो लीन होते हैं, जैसे समुद्रमें सम्पूर्ण नदी लीन होती हैं, ऐसे वह मुक्ति दशामें आपमें लीन होजाते हैं ॥ ३१ ॥ (१८) जीवोंके विषे तुम्हारी मायासे वारम्वार जन्म मरण रूप यह भ्रमण यह जानकर सुबुद्धि पुरुष संसारके निवृत्ति करनेवाले तुम्हारे विषे भावना करते हैं और जो तुम्हारी शरण होकर भजन करते हैं, उनको संसारका भय नहीं होता क्योंकि, शीत, उष्ण, वर्षानेवाला संवत्सररूपी काल तुम्हारा भ्रूभंगरूप है और जो तुम्हारे शरण नहीं हैं उनके रक्षक नहीं, किन्तु भयकारक हो इसलिये बुद्धिमान् पुरुष तुममें भाव करते हैं ॥ ३२ ॥ (१९) हे अजित !

मनके निग्रह करनेसे ऐसा सेवन बनसक्ता है, परमदेव गुरुके चरणकी शरण लिये बिना जो इन्द्रिय प्राणोंको जीतकर अति चंचल दुर्जय मनरूपी घोडेके जीतनेका यत्न करते हैं, वह उपायसे खेद पाते हैं और विघ्नोंसे व्याकुल होते हैं, क्योंकि, मनका जीतना गुरुकी कृपासेही होता है, जैसे जो व्यापारी मल्लाहको नहीं रखते, वह समुद्रमें पडे दुःख पाते हैं ॥ ३३ ॥ (२०) जो प्राणी आपका आश्रय लेते हैं, उनको सर्व सुखके स्थान आत्मरूप आपके होते सुजन, पुत्र, देह, घर, पृथ्वी, प्राण, रथ, इत्यादि वस्तुसे क्या प्रयोजन है ? जो पुरुष आत्माका सेवन करता है, उसको इन तुच्छ पदार्थोंसे क्या प्रयोजन है ? सत्य परमार्थ सुखको न जान स्त्री पुरुष मिलकर रतिके लिये विचरते हैं, उनको इस संसारमें तुम्हारे सिवाय कौन सुख है? अर्थात् कोई नहीं,यह संसार आपसे मिथ्याभूत और सार रहित है इसलिये तुम्हाराही भजन करना उचित है ॥३४॥ (२१) अहंकारको त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दको हृदयमें धारण करना तुम्हारे भक्त ऋषि मुनि कि, जिनके चरणोंका जल स्वतःही पापनाशक है, परन्तु तो भी इस पृथ्वीमें आपका भजनरूप महापुण्य करनेवाले महात्मा जनोंके आश्रमोंका और अतिपावन तीर्थ क्षेत्रोंका सेवन करते हैं, और पुरुषोंके, ज्ञान वैराग्यके नाश करनेवाले गृहादिकोंका सेवन नहीं करते हैं, जिन्हें गुरुकी कृपासे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति और संसारकी मिथ्या प्रतीति होगई है, वह महात्माओंकी संगति करते हैं, क्योंकि जिसे एकबार भी आत्माके सुखका अनुभव हुआ है, वह कदाचित् गृहमें आसक्त नहीं होता, तब उत्तम पुरुष किसप्रकारसे घरमे आसक्त हो सक्ते हैं ॥ ॥ ३५ ॥ (२२) यह जगत् सत्यसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये सत्य है, जैसे सुवर्णसे उत्पन्नहुए कुण्डलादिक सुवर्णही हैं, इसप्रकार मानोंगे तो व्यभिचार प्राप्त होगा, जैसे पितासे पुत्र होता है, सो प्रथम क्यों मरजाता है ? तथा पृथ्वीसे उत्पन्न हुए घटादिक क्यों फूट जाते हैं इससे यह जगत् मिथ्या है, तो कहते हैं कि, उत्पन्न नाम उपादान कारण नहीं, निमित्त कारण है, इससे कुछ दोष नहीं, इसमें दोष देकर समाधान करते हैं कि, जो वस्तु जिस उपादानसे हुई हो वह वस्तु उस उपादानसे भिन्न नहीं होती है, यह भी नियत नहीं. क्योंकि रज्जुरूप उपादानसे हुआ सर्प रज्जुसे पृथक् होता है रज्जु सत्य और सर्प मिथ्या होता है, यदि सर्प सत्यहो तो जिस प्रकार कुण्डलका बाध नहीं होता. इसीप्रकार सर्पका भी बाध न हो " शंका " रज्जुमें हुए सर्पमें केवल रज्जुही उपादान कारण नहीं, किन्तु अज्ञान भी उपादानका कारण है, इसप्रकारके उपादान कारणसे हुई वस्तुका मिथ्यापन बनसकै और जो केवल सत्य उपादान कारणसे उत्पन्न हो उसका मिथ्यापन सिद्ध नहीं होसकता, इसलिये द्वैत असत्य नहीं "उत्तर" यह द्वैत भी सत्यरूप ब्रह्म और उसके साथ अज्ञानरूप उपादान कारणसे हुआ है "शंका" जो इसप्रकार जगत् नित्य कहा है, तो मिथ्या किस प्रकार है ? "समाधान" कर्म फलको नित्य कहना वेदका तात्पर्य नहीं, किन्तु उन वाक्योंसे कर्मकी स्तुति की है, यदि वेद कर्मफलको नित्य मानता तो जैसे यहाँ परिश्रमसे उत्पन्न किये पदार्थ कालान्तरमें क्षीण होजाते हैं, उसी

प्रकार परलोकमें पुण्यका सुख कालान्तरमें नष्ट होजाताहै "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति" इसकारण कर्म श्रद्धाके भारसे जिनकी बुद्धि मंद होगई है, उन्हें वेद वाणी गौणी और लक्षणावृत्तिमें डालकर भ्रमयुक्त करदेती है, इससे वह यथार्थ वेदके तात्पर्यको न जानकर कर्मफलको नित्य मानते हैं, कर्मसे अंतःकरण शुद्ध होता है, इस बातको नहीं जानते आशय यह है कि, जैसे मकरी अपनेमेंसे तन्तु निकाल फिर आपही ग्रहण करलेती है, उसी प्रकार ईश्वर जगत्को उत्पन्न कर अपनेमें लय कर लेता है, वास्तवमें शुद्ध है, इसलिये अद्वैत सिद्ध है, मिथ्यासे द्वैत भासता है ॥ ३६ ॥ (२३) हम और कारणसे सत्य करेंगे जगत् सत्य है, क्योंकि अर्थ क्रियाका करनेवाला है, यदि न होतो सीपीमें रूपेकी प्रतीत कैसे होती है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, व्यवहारके लिये अर्थ क्रियाके लिये भ्रम इष्ट है, जैसे खोटे रुपयेसे व्यवहार खोजाता है तो कहते हैं, जो एक ठौर सत्य है, उसको और भ्रम होता है, यह प्रसिद्ध है, अत्यन्त झूंठा प्रपंच होय तो भ्रम न हो, इससे सत्य है, तो कहते हैं, सत्य नहीं है. किन्तु अंधपरम्परासे भ्रम कियाहै, इस कारण सत्य नहीं है, तहाँ वेदकर्म फलकी सत्यताका प्रतिपादन करताहै कि, चातुर्मासके पूजन करनेवालोंको अक्षय पुण्य होताहै और अमृतपान करेंगे इत्यादि वचनसे कर्मफलको यह द्वैत सृष्टिसे पहले भी नहींथा और आगेको भी न होगा, मध्यमें आपके शुद्ध अद्वैत रूपमें मिथ्याही प्रतीत होता है, यह निश्चय है, इसीकारण मृत्तिका, सुवर्ण, लोह आदि पदार्थोंके घट, कुण्डल, परशु आदि निर्माण किये हुए आकारसे नाममात्रही हैं, उनके कारण मृत्तिका, सुवर्ण, लोहादि सत्यहै, इसलिये पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाशादि कार्य नाममात्र हैं, उनका कारण ब्रह्म सत्य है, इसकारण द्वैतकी सत्यतामें कुछ प्रमाण नहीं इसकारण मनके विलाससे इस मिथ्याभूत द्वैतको जो सत्य मानते हैं, वह अज्ञानी हैं ॥ ३७ ॥ (२४) जब द्वैत कोई वस्तु नहीं तो इसमें चैतन्यका संबंध लेशमात्र भी न होना चाहिये, फिर जीव किस अपराधसे जन्म, मरण, सुख, दुःखकी प्राप्ति करते हैं और ईश्वर नित्य मुक्त किसप्रकार है? कर्मकाण्ड किस कारण है? इसपर कहते हैं कि यह जीव मायामें पडे अविद्याका आलिंगन करते हैं, इसलिये देह इन्द्रियादिकोंका सेवन करते उन्हें अपनाही स्वरूप मानते हैं इसीलिये देह और इन्द्रियोंके धर्मसे युक्तहो आनंदादि गुणोंके आवरणसे जन्म, मरणकी प्राप्ति करते हैं यह सब काण्ड अविद्यायुक्त जीवमें है और आप तो मायाकी असत्यता जानते हो, जैसे सर्प केंचुलीको सत्य नहीं समझता और उसे त्याग देता है, उसी प्रकार आप मायाको त्याग देतेहो, इसकारण तुम नित्य अखण्ड ऐश्वर्ययुक्त अप्रमेय अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यमान् अपनेमें आपही विराजते हो ॥ ३८ ॥ (२५) हे भगवन्! जो संन्यासी यती अपने हृदयमें स्थित कामकी वासनाओंको नहीं उन्मूलित करते, उन असाधुओंके हृदयमें तुम स्थित होकर भी नहीं मिलते। जैसे स्मृति न रहनेपर कंठस्थित मणि नहीं मिलती उन दुष्ट असाधुओंको आपकी प्राप्ति नहीं होती इतनाही नहीं किन्तु जो इन्द्रियोंके तृप्त करनेवाले हैं

उनको इसलोक तथा परलोकमें दुःखही होता है क्योंकि लोकोंको प्रसन्न करना, धन संचय करना, भोग करना, गुप्त कार्य करना इत्यादिमें यहाँ दुःख होता है और आपकी प्राप्तिके लिये संन्यास लेने पर यदि आपकी प्राप्ति न हुई और धर्मका अतिक्रमण किया तो तुम्हारे दंडरूप नरककी प्राप्ति हुई, इससे परलोकमें भी सुख नहीं, वह दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुए ॥ ३९ ॥ (२६) हे भगवन् ! जिन भक्तोंको तुम्हारा ज्ञान होगया है, वे आपसे प्रगट हुए अपने प्राचीन पुण्य पापोंके फलरूप दुःख सुखके सम्बन्धको कुछ नहीं समझते और देहाभिमानियोंके सम्बन्धी प्रवृत्ति निवृत्तिके करनेवाले विधिनिषेधके वचनोंको नहीं सुनते, देहाभिमान रहित होजानेसे कार्याकार्यका सम्बन्ध नहीं रहता, हे ऐश्वर्यवान् ! आप प्रत्येक युगमें अवतार धारण करके सत्मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको जो प्रतिदिन तुम्हारे चरित्र श्रवणकर हृदयमें धारणकरते श्रेष्ठ गति देतेहो, जब ऐसे पुरुषोंको भी किसीप्रकारकी बाधा नहीं रहती तो तत्ववेत्ताओंको कर्मकी शंका भी नहीं होसकती और जो पुरुष कपट प्रबंधकर इन्द्रियोंका भोगसे पूजन करते हैं, वह इस लोक और परलोकमें दुःख पाते हैं ॥ ४० ॥ (२७) हे भगवन् ! स्वर्गलोकादिके पति ब्रह्मादिक तुम्हारे प्रतापके अंतको नहीं पाते और आप भी अपने अंतको नहीं पाते, ब्रह्मादिक आपके अंतको नहीं जानते, इसमें क्या आश्चर्य है ? अपने अन्तको न जाननेसे आपकी सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता नष्ट नहीं होती जैसे शशकके सींग न मिलनेसे सर्वज्ञका सर्वज्ञपन नहीं जाता, क्योंकि शशकके सींग हैंही नहीं फिर मिलैं कहाँसे इसी प्रकार आपका अंत जब हैही नहीं तो कोई जानै कहाँसे ? क्योंकि तुम्हारे स्वरूपमें, आकाश में, रज कणके सदृश दशदश गुण उत्तर उत्तर अधिक सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डोंके समूह कालचक्रसे भ्रमण करते हैं इस कारण श्रुति तात्पर्यसे आपकाही प्रतिपादन करती हैं साक्षात् नहीं कह सकतीं सगुण स्वरूपके तो गुण अपार हैं और निर्गुणमें वाणीकी गति नहीं इस कारण तुम्हारा संपूर्ण और साक्षात् निरूपण नहीं होता अनात्म पदार्थोंका निषेध कर अंतमें हम (श्रुति) आपकोही वर्णन करती हैं, क्योंकि अवधिके विना निषेध नहीं हो सकता इसकारण निषेधके अवधि रूप आपमें ही हम (वेदों) का तात्पर्य निकलता है ॥ ४१ ॥ (२८) श्रीभगवान् बोले कि, हे नारदजी ! इसप्रकार ब्रह्माके पुत्र सनकादिक वेदोंकी स्तुति सुनकर आत्माकी गति जान सनंदनजीकी पूजा करनेलगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार आकाशमें गमन करनेवाले सृष्टिमें प्रथम उत्पन्न हुये, ऐसे महात्मा सनकादिकोंने समस्त वेद पुराण और उपनिषद्का रस उद्धार किया है ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्माके पुत्र नारदजी ! तुम श्रद्धापूर्वक आत्माके अनुशासनको धारण करके पृथ्वीमें यथेच्छ विचरो, यह आत्मानुशासन मनुष्योंकी विषय वासनाका नाश करनेवाला है ॥ ४४ ॥ इतनी कथा सुनाकर योगीवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीनारायणके उपदेशको सुनकर कृतार्थ नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रुतियोंके धारण करनेवाले नारद मुनि कहनेलगे ॥ ॥ ४५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संपूर्ण भूतोंके कल्याणके लिये

सुन्दर अवतार धारण करते हैं, उन निर्मल कीर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके अर्थ नमस्कार है ॥४६॥ उदार मन नारद आदि ऋषि नारायण और उनके शिष्योंको नमस्कार कर मेरे पिता साक्षात् व्यासदेवके आश्रममें चलेगये ॥ ४७ ॥ व्यासदेवजीने सन्मानकर आसन दिया, उसको ग्रहणकर नारदजीने नारायणके मुखसे जो श्रवण किया था, वह सब व्यासजीके अर्थ वर्णन कर दिया ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तुमने पूंछाथा, सो हमने वर्णन किया, जैसे अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्ममें श्रुतियें प्रवृत्ति होती हैं ॥ ४९ ॥ मायाके दूर करनेवाले भक्तोंके भयनाशक नारायण जो कि अपने स्वरूपमें शयन करते जीवोंके पुरुषार्थ सिद्ध करनेके लिये सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं, जो इस संसारके आदि, मध्य और अंतमें भी रहते हैं, जो प्रकृति पुरुषके भी उपादान कारण हैं और जो इस जगत्को उत्पन्न करके जीवके साथही प्रवेश कररहे हैं, जिन्होंने जीवोंको भोग देनेके लिये पृथक् २ शरीर बनाये हैं, जो जीवोंको अनेक भाग देके शरीरोंका पालन करते हैं और प्रणामादिकसे भक्ति करनेवाले जीव उन्हें प्राप्त होकर जैसे सुषुप्तिमें सोताहुआ शरीरके सम्बन्ध रहित होता है, उसीप्रकार देहादिरूप अविद्याको वह भक्त त्यागन करदेते हैं, उन्हीं नारायणका भजन करना चाहिये ॥ ५० ॥ वह नारायण कैसे हैं ?

दोहा-आदिपुरुष अद्वैत अज, अविनाशी अविकार।
कष्टहरण आनँदकरन, प्रतिपालक संसार ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे
उत्तरार्धे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

दोहा-विष्णुभक्तिसे मुक्ति है, अन्यदेवसे भोग।
अट्ठासी अध्यायमें, कहौं भक्तिके योग ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! देवता, असुर, मनुष्योंमें जो भोग सुखके तिरस्कार करने वाले शिवका भजन करतेहैं वह धनवान् होते हैं और लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रका भजन करनेवाले धनी नहीं, यह जाननेकी हमारी इच्छा है, शिव और विष्णुके भजन करनेवालोंको संपूर्णतः विरुद्ध फल मिलते हैं, क्योंकि जो शिवजी विभूति लगा श्मशानमें वास करनेवाले अमंगल रूप शिवजीके कुछ नहीं, उनका जो पुरुष भजनकरैं, वह लक्ष्मीवान् हों और भोग भोगें, और लक्ष्मीपति अच्छे भोग भोगें, सुन्दर वस्त्र पहरें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रका जो भजन करैं; वह बहुधा दरिद्रीही देखे जातेहैं यह स्वामि-योंकी गति और है, सेवकोंकी गति और है उचित तो यहहै कि, जैसा स्वामी होय उसी प्रकार सेवकहो ॥ १ ॥ २ ॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भारत ! शिवमें शक्ति रहतीहै, गुणोंके परस्पर जो आपसमें संघर्षणसे तमोगुण तीन प्रकारकाहै, सात्त्विक अहंकार, राजस अहंकार और तामस अहंकार ऐसे तीन प्रकारके अहंकारके अधिष्ठानसे विष्णु, ब्रह्मा, शिव यह तीन रूप धारण करते हैं ॥ ३ ॥ उस अहंकारसे

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पंचभूत और दश इन्द्रिय तथा एक मन सोलह विकार हुए इन विकारोंमें कोई एक विकारवान् उपाधिरूप विकारके भजन करनेसे संपत्ति मिलतीहै और उपाधिवालेका भजन करनेसे उपाधि मिलती है ॥ ४ ॥ निर्गुण साक्षात् मायासे परे सबके देखनेवाले साक्षीभूत हरि भगवान्का जो पुरुष भजन करैं वह निर्गुण होतेहैं ॥ ५ ॥ अश्वमेधयज्ञ जब पूर्ण होचुका तब तुम्हारे दादा राजा युधिष्ठिरने वैष्णवधर्मको श्रवणकर पीछे श्रीकृष्णचन्द्रसे यही बात पूँछीथी ॥ ६ ॥ तब मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये यदुकुलमें आप अवतारधारी समर्थ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरसे कहनेलगे ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जिस पुरुषके ऊपर मैं कृपा करताहूं, उस पुरुषका धन धीरे धीरे हर लेताहूं इसके उपरान्त जब वह दरिद्री हो जाताहै, तब उसे दुःखीके तुल्य और निर्धन जानकर उसे उसके भाई बंधु सब त्याग देते हैं ॥ ८ ॥ यह भक्त, भाई लोगोंके आग्रहसे धन उपार्जन करनेका फिर उद्योग भी करै, परन्तु मेरे अनुग्रहसे उसके सब उद्योग व्यर्थ होजातेहैं और जब उसमें प्रबल वैराग्य उत्पन्न होजाता है, तब वह भक्त मेरे और भक्तोंके संग मित्रता करता है, तब उस पुरुषके ऊपर मैं असाधारण अनुग्रह करताहूं ॥ ९ ॥ मेरी कृपासे उसे परब्रह्म सूक्ष्मचैतन्य सर्वव्यापी नाशरहित आत्माका ज्ञान होता है इसीलिये मेरा आराधन बहुत कठिनहै, और इसी कारण मुझे त्यागकर वह पुरुष और देवताको भजताहै ॥ १० ॥ सेवन करनेसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले देवताओंसे राज्य और धनप्राप्ति होनेसे उद्धत मतवाले उन्मत्त होकर वे प्राणी वरके देनेवाले देवताओंको भूलकर अवज्ञा करतेहैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे श्रेष्ठ ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादिक देव शाप और अनुग्रह करनेमें समर्थ हैं, शिव, ब्रह्मा, दोनों शीघ्रही प्रसन्न होते हैं, और शीघ्रही शाप देते हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्र प्रसन्न नहीं होते और जिसपर प्रसन्न होते हैं फिर उसे शाप नहीं देते ॥ १२ ॥ इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासहै, सो वर्णन करते हैं, जैसे शिवजीने वृकासुरको वर देकर कष्ट पाया ॥ १३ ॥ दुष्टबुद्धि शकुनिका पुत्र वृकासुर मार्गमें देवर्षि नारदजीको देख, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इन तीनों देवताओंमें शीघ्र कौन प्रसन्न होताहै, यह पूँछनेलगा ॥ १४ ॥ तब देवर्षि नारदजीने कहा कि तू भगवान् भूतनाथ महादेवजीकी पूजा कर यह करनेसे शीघ्र तेरा मनोरथ सिद्ध होगा, क्योंकि शिवजी थोडेही गुणोंसे शीघ्र प्रसन्न और थोडेही दोषसे क्रोधित होजाते हैं ॥ १५ ॥ बंदीजनोंके समान स्तुति करनेवाले राक्षसराज रावण और बाणासुरके ऊपर प्रसन्न होकर शिवजीने बडा ऐश्वर्य दे फिर उन असुरोंसे आपहीने कष्ट पाया, रावणने तो कैलास उखाडलिया और बाणासुरने कहा कि, मेरे पुरकी रक्षा करो ॥ १६ ॥ इस प्रकार जब देवर्षि नारदजीने कहा तो उसी समय वृकासुर अपने देहसे शिवजीका सेवन करने लगा, इसके उपरान्त केदारतीर्थमें शिवजीकेलिये अपने शरीरका मांस काटकर अग्निमें हवन करनेलगा ॥ १७ ॥ जब महादेवकी प्राप्ति न हुई, इसलिये सातवें दिन

तीर्थमें स्नान करनेसे भीजे केशवाले शिरको छूरी लेकर काटने लगा ॥ १८ ॥ उससमय अत्यन्त करुणानिधान शिवजी हेम सरीखे मूर्त्तिमान् अग्निकेसमान प्रकाश युक्त, अग्निकुण्डमेंसे निकल, हाथोंसे असुरकी भुजा पकड जैसे कोई दुःखके मारे मरनेको आवै उसे मने करते हैं, उसीप्रकार मने करने लगे और शिवजीका हाथ लगतेही उसका देह ज्यों का त्यों होगया ॥ १९ ॥ वृकासुरसे शिवजी बोले कि, हे वृकासुर ! तू तप करके पूर्ण होगया, अब वर माँग, जो तेरी इच्छा हो सोही वर दूँगा, क्योंकि जो मनुष्य मेरी शरण आते हैं, उनके ऊपर जलमात्रके चढातेही मैं प्रसन्न होजाता हूं. बडा आश्चर्य है ? तैंने वृथाही अपने शरीरको कष्ट दिया ॥ २० ॥ तब वृकासुरने जिस जिस पुरुषके शिरपर मैं हाथ धरूं, वह पुरुष उसी समय मर जावै इस प्रकार संपूर्ण प्राणियोंको भयका देनेवाला वर माँगा ॥ २१ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इस प्रकार वृकासुरका वचन सुन उदासीनसे हो "अच्छी बातहै" इस प्रकार शिवजीने मुसकाकर सर्पको दूध पिलानेके समान वृकासुरको वर देदिया ॥ २२ ॥ इसप्रकार सुनतेही जगज्जननी पार्वतीके लेनेकी चाहनासे वह असुर वर मिथ्या है वा सत्य है, यह परीक्षा लेनेके लिये महादेवजीके माथेपर हाथ धरनेका उपाय करनेलगा, उससमय अपने कर्त्तव्यसे भयभीत होकर भगवान् शिवजी भागने लगे ॥ २३ ॥ असुर जिनके पीछे लगा ऐसे शिवजी डरकर स्वर्गतक भागे और पृथ्वीका जहाँतक अंत है, तहाँतक भागे, फिर उत्तर दिशामें भागकर गये ॥ २४ ॥ उससमय उपायको न जान संपूर्ण देवता चुप होगये, इसके उपरान्त प्रकाशमान मायासे परे वैकुण्ठधाममें शिवजी गये ॥ २५ ॥ जिस वैकुण्ठधाममें शान्त स्वभाव और कालके दण्ड रहित संन्यासियोंकी परमगति अर्थात् प्राप्त होने योग्य नारायण विराजमानहैं ॥ २६ ॥ दुःखोंके दूर करनेवाले भगवान् नारायण शिवजीके पीछे दौडे चले आते वृकासुरको दूरसे देख अपनी योगमायासे ॥ २७ ॥ ब्रह्मचारीका वेष धर मूंजकी करधनी मृगछाला दण्ड मालाओंको पहर तेजसे अग्निके समान प्रकाशमान कुश हाथमें लिये भगवान् नम्र हो अभिवादन कर उससे बोले * ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले

---

* **शंका**—वृकासुरको छलनेके लिये परमेश्वरने ब्रह्मचारीका स्वरूप क्यों धारण किया ? क्योंकि वेदमें ब्रह्मचारीके लिये झूठ बोलना बुरा लिखा है, इसलिये और अनेकरूप भगवान्के बनाये संसारमें बहुत हैं दूसरा रूप धारण करके छल करना था, ब्रह्मचारी बनकर क्यों छला ?

उत्तर—वृकासुरको त्रिलोकीमें किसीका विश्वास नहीं था, क्योंकि वह बडा धूर्त्त था, अरु उसको अपने बलका बडा घमण्ड था, परन्तु त्रिलोकीमें उसको दो जनोंका विश्वास था एक नारदमुनिका और दूसरे ब्रह्मचारी वेषका, भगवान्ने विचारा कि, इस दैत्यने नारद मुनिकी आज्ञा मानके यह कर्म किया है, इसलिये ब्रह्मचारीका रूपधर भगवान्ने सब काम किये ।

कि, हे शकुनिके पुत्र ! तुझे निश्चय खेद है तू इतनी दूर क्यों आया ? थोडी देर विश्राम ले, क्योंकि समस्त कामनाओंका देनेवाला यह देह है, इसे पीडा मत दे ॥ २९ ॥ हे समर्थ ! जो तुम्हारा अभिप्राय हमारे आगे सुनाने योग्य हो तो कहो; क्योंकि बहुधा दूसरोंकी सहायतासे पुरुष अपना कार्य सिद्ध करसकते हैं ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार अमृतरूप वचनसे जब भगवान्ने पूँछा, तब खेदरहित वृकासुरने अपना सब वृत्तान्त सुनादिया ॥ ३१ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, शिवने तुमको वर दियाहै तो शिवके वचनको हम सत्य नहीं मान सकते, क्योंकि यह शिव दक्षके शापसे पिशाचोंकी दशाको प्राप्त हुआ है, और प्रेत पिशाचोंका राजा है ॥ ३२ ॥ हे दानवेन्द्र वृकासुर ! यदि इस शिवके वचनमें तुझे विश्वास है तो तू शीघ्र अपने मस्तकपर हाथ धरकर परीक्षा लेले ॥ ३३ ॥ हे दानवश्रेष्ठ ! इस महादेवका वचन कैसे सत्यहोगा ? यह तो मिथ्यावादी है, पीछे जो किसी प्रकार भी महादेवका वचन असत्य विदित हो तो महादेवको मार, जो फिर कभी मिथ्या न बोले ॥ ३४ ॥ इस प्रकार मनोहर विचित्र विचित्र भगवान्के वचनोंसे भ्रष्टबुद्धि हो कुबुद्धि वृकासुरने भूलकर अपने शिरपर अपना हाथ रक्खा ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! शिरपर हाथ धरतेही वज्रके मारेके समान क्षणभरमें शिर फूटनेसे वह वृकासुर गिरगया, उससमय स्वर्गमें जय जय और नमः नमः तथा साधु शब्द होने लगा ॥ ३६ ॥ जिस समय पापात्मा वृकासुर मरगया उससमय देवता, पितृ, ऋषि, गंधर्व फूलोंकी वर्षा करनेलगे और भगवान् महादेवजीको भी कष्टसे छुडादिया ॥ ३७ ॥ जब शिवजी कष्टसे छूटगये तब श्रीपुरुषोत्तम भगवान् बोले कि अहो ! देव महादेव ! यह वृकासुर पापी अपनेही पापसे मराहै ॥ ३८ ॥ ईश्वर और बडोंका अपराध करनेसे कौन पुरुष कल्याणको प्राप्त होता है ? देखो विश्वके ईश्वर जगत्के गुरु तुम्हारा अपराध करनेसे कदापि भला नहीं होता है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार वाणीके अगोचर अनन्त शक्ति सबके साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीको कष्टसे छुडाया, यह चारित्र जो पुरुष कहेहैं और सुनते हैं और उनपर भरोसा करते हैं, वह संसार तथा शत्रुओंसे छूट जाते हैं ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

दोहा-तीन देवमें को बडो, सबको यही विचार।
भृगु मुनिने सबसे कह्यो, विष्णु जगत आधार ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! एकसमय सरस्वती नदीके तटपर ऋषि यज्ञ कर रहेथे, तहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन तीनों देवताओंमें कौन बडा है ! इसप्रकार परस्पर झगडा होने लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! इनमें कौन बडा है, इसकी परीक्षा करनेके

लिये ब्रह्माके पुत्र भृगुको भेजा, सो भृगु परीक्षाके कारण ब्रह्माकी सभामें गये × ॥ २ ॥ भृगुजीने ब्रह्माके स्वभावकी परीक्षा लेनेके लिये स्तुति प्रणाम कुछ भी नहीं किया, तब ब्रह्माजीने अपने क्रोधसे प्रज्वलित हो भृगुके ऊपर अत्यन्त क्रोध किया ॥ ३ ॥ परन्तु ब्रह्मा अपने पुत्रके लिये चित्तमें उठे क्रोधको आपही शान्त करनेलगे, जैसे अपने कारण जलसे अग्नि शान्त होती है और अग्निके शान्त करनेमें जैसे अग्निसे उत्पन्न जल काम आताहै, उसीप्रकार ब्रह्माका क्रोध शान्त करनेमें उन्हींसे उत्पन्न हुए भृगुजी काम आये ॥ ४ ॥ वहाँ से भृगुजी कैलास पर्वतपर शिवजीके पास गये, उस समय शिवजी भाई भृगुसे प्रीतिपूर्वक उठकर मिलनेको उद्यत हुए ॥५॥ तब भृगुजीने महादेवजीसे मिलनेकी इच्छा न की और कहा तुम कुमार्गमें चलतेहो,हम तुमसे नहीं मिलैंगे,यह सुनतेही महादेवजी क्रोधसे लाल नेत्रकर हाथमें त्रिशूलले मारनेको प्रस्तुत हुए॥६॥उससमय पार्वती महादेवजीके चरणोंमें गिरकर बोलीं कि,महाराज ! तुम्हारा भ्राता है, इसे कैसे मारते हो ? इस प्रकार वाणीसे शान्त करनेलगीं, इसके उपरान्त भृगु वैकुण्ठमें गये जहाँ जनार्दन भगवान् बास करते हैं ॥ ७ ॥ लक्ष्मीकी गोदीमें शयन करते विष्णु भगवान्के हृदयमें भृगुने जाकर लात मारी तदनंतर साधुओंकी गति विष्णुभगवान्ने लक्ष्मीसहित पलँगपरसे उठ और पृथ्वीमें मस्तक धर भृगुजीको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ और कहनेलगे कि, हे ब्रह्मन् "तुम भले आये" आसन ग्रहण करो. हे समर्थ ! आपके आनेको हमने नहीं जाना, सो अपराध क्षमा करो ॥ ॥९॥हे तात ! हे महामुनि ! तुम्हारे चरण कोमल हैं और मेरी छाती अत्यन्त कठोर है, तुम्हारे चरणोंमें चोट लगी होगी. इसप्रकार कह अपने हाथोंसे ब्राह्मणके चरण सहलाने

× **शंका**–तीनों देवताओंमें बडा देवता कौन है ? ब्रह्मा बडे हैं, कि, विष्णु बडे हैं, कि, शिव बडे हैं ऐसा विचार मुनि लोगोंने क्यों किया ? क्योंकि, ऐसा विचार तो बडे बडे अज्ञानी तथा बालक और बडेबडे मूर्ख किया करते हैं, मुनि लोग ऐसा विचार कभी नहीं करते, फिर उन लोगोंने क्यों किया ?

उत्तर–सारस्वत मुनिके वंशमें जो जन्म लिये ब्राह्मण हैं सो सब ब्रह्मकर्ममें बडे निपुण होते थे, ऐसा ब्रह्मकर्मका अभिमान करके सब देवताओंका और मुनिजनोंका अनादर करने लगे, वचनोंसे भी किसीका आदर नहीं करते थे, ऐसा सारस्वत ब्राह्मणोंका अभिमान जानकर विचार किया कि, ऐसा अभिमान करके सब सारस्वत ब्राह्मण नरकमें पडेंगे, क्योंकि हमें आदि लेके जितने देवता हैं तथा ब्राह्मण हैं, उन सबको यह ब्राह्मण कुछ भी नहीं जानते, ऐसा भगवान्ने विचार करके उनहीं ब्राह्मणोंकी यज्ञमें कृपाकरके उनहीं ब्राह्मणोंकी बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया, तब उन सब ब्राह्मणोंने ज्ञान त्याग दिया और मूर्ख होगये और उस मूर्खतासे भस्म होने लगे, कुछ कालोपरान्त भगवान्का चारित्र भृगुजीने वर्णन किया तब सब सारस्वत ब्राह्मण अभिमानरहित होगये, इसलिये सारस्वत ब्राह्मण बुद्धिभ्रष्ट होगये ॥

लगे ॥ १० ॥ गंगादिक तीर्थोंको पवित्र करनेवाले अपने चरणोंके जलसे मुझे और मुझमें अधिष्ठित लोक और लोकपालोंको पवित्र करो ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मण ! अब मैं लक्ष्मीके वास करनेका अत्यन्त पात्र हुआ और तुम्हारे चरण स्पर्शसे पाप दूर हुए, इसलिये मेरी छातीमें सदा लक्ष्मी वास करैगी ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीनारायणकी कही मनोहर वाणीसे तृप्त होकर भक्तिसे आनंदमें मग्नहो भृगुजी नेत्रोंमें आँशू भरकर चुप होगये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! भृगुजीने फिर अपने यज्ञमें आय वेदपाठी मुनियोंसे तीनोंकी जो बात देखकर आयेथे सो कहदी ॥ १४ ॥ भृगुकी बात सुन आश्चर्यको प्राप्तहो संदेहोंको त्याग मुनियोंसे कहा कि इतना उनका अपराध किया, परन्तु क्रोध न आया, विष्णु भगवान्मेंही शान्ति है और किसी देवतामें नहीं है, इसलिये सबसे बडे विष्णु भगवान्ही हैं, यह निश्चय है ॥ १५ ॥ साक्षात् धर्म और धर्मके लिये ज्ञान तथा वैराग्य और आठ प्रकारके ऐश्वर्य और आत्माके मलोंका दूर करनेवाला यश यह सब भगवान्मेंही विद्यमान है ॥ १६ ॥ कालदंडके भयरहित, शान्त स्वभाव और समान चित्त, निष्किंचन अर्थात् किसी वस्तुकी जिनमें चाहना नहीं, साधु मुनियोंको जिन भगवान्की परमगति कहते हैं ॥ १७ ॥ सत्वगुण भगवान्का प्यारा रूप है और ब्राह्मण भगवान्के इष्ट देवता हैं,शांत और निष्काम बडी बुद्धिवाले जिनका भजन करते हैं, वही सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ जिन भगवान्ने अपनी मायासे सत्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी तीन प्रकारके देवता असुर राक्षस बनाये हैं, सबही उनका रूप है परन्तु उनमें सत्वगुणी रूप कल्याणका देनेवाला है ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सरस्वतीके तीरवासी ब्राह्मण मनुष्योंका संदेह दूर करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दकी सेवा करके श्रीकृष्णचन्द्रकीही गतिको प्राप्त हुये ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषीश्वरो ! व्यासदेव मुनिके पुत्र श्रीशुकदेवजीके मुखकमलकी सुगंधि मिला अमृतके समान संसारके भयका काटनेवाला श्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्णचन्द्रका यश कानरूपी दोनोंमें भरकर जो पान करेगा, वह संसारके आवागमनके परिभ्रमसे छूट जायगा ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस चरित्रमें श्रीकृष्णचन्द्रका उत्कर्ष कहा अब श्रीकृष्णचन्द्रकाही उत्कर्ष करनेवाला और चरित्र वर्णन करते हैं, हे राजन् ! एक समय द्वारकामें एक स्त्रीके पुत्र उत्पन्न होकर पृथ्वीका स्पर्श करतेही मरगया ॥ २२ ॥ वह ब्राह्मण मरे पुत्रको ले राजा उग्रसेनकी ड्योढी पर धर विलापकर आतुर दीन मन होकर यह कहने लगा ॥ २३ ॥ ब्राह्मणोंका द्वेषी शठबुद्धि लोभी विषयों में आसक्तमन क्षत्रियोंमें अधम इस राजाके दोषसेही मेरा पुत्र मरा है मेरा कुछ दोष नहीं है ॥ २४ ॥ हिंसा करनेवाले दुःस्वभाव अजितेन्द्रिय राजाके सेवन करनेसे प्रजा दुःखी और दरिद्री होती है ॥ २५ ॥ इसीप्रकार वह ब्राह्मण दूसरे पुत्रको फिर तीसरे पुत्रको लेकर राजाके द्वारपर धरकर यही कहने लगा, कि, मेरा कुछ दोष नहीं है, इस राजाके दोषसे यह सब मेरे पुत्र मरे हैं ॥ २६ ॥ किसीसमय अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रके

निकट ब्राह्मणकी बात श्रवणकर नवम बालक जब मर चुका, तब ब्राह्मणसे कहने लगा ॥ ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मण ! तू किसलिये रुदन करता है, क्या तेरे रहनेके स्थान द्वारकामें धनुषका धारण करनेवाला कोई क्षत्रिय नहीं है ? धन, स्त्री और पुत्रोंमें आसक्त यह यादव तो यज्ञमें भोजनको आये हुए ब्राह्मणोंके समान बैठे हैं ॥ २८ ॥ क्षत्रियोंके जीवित होनेपर भी धन, स्त्री, पुत्र, संयुक्त ब्राह्मण जहाँ शोच करते हैं, वे उदरपोषक क्षत्रिय और उनके वेषसे नटही जीते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम दीन हो, इसलिये तुम्हारे पुत्र की मैं रक्षा करूंगा और जो मुझसे रक्षा न होगी अर्थात् मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न होगी तो ब्राह्मणकी प्रीतिसे पाप रहितहो मैं अग्निमें प्रवेश करजाऊंगा ॥ ३० ॥ ब्राह्मण बोला कि, महाराज ! संकर्षण, वासुदेव और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नजी तथा जिसके समान कोई योद्धा नहीं ऐसे अनिरुद्ध यह सब भी मेरे बालकोंकी रक्षा करनेको समर्थ न हुए ॥ ३१ ॥ जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी जिस कर्मको न करसके, हे अर्जुन ! उस कर्मको तू कैसे कर सकेगा ? तू अज्ञानसे करना चाहताहै, इसकारण तेरी बातका मुझे विश्वास नहीं होता ॥ ३२ ॥ अर्जुन बोले कि, हे ब्राह्मण ! मैं संकर्षण कृष्ण प्रद्युम्न नहीं हूं, गांडीव धनुषधारी अर्जुन नामक क्षत्रिय हूं ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मण ! तू मेरा अपमान मत करै, महादेवका प्रसन्न करनेवाला मेरा पराक्रमहै, हे समर्थ ब्राह्मण ! संग्रामके बीच मृत्युको जीतकर भी तेरे पुत्र लादूंगा ॥ ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार धृष्टताके वचनोंसे विश्वासको प्राप्त हो, वह ब्राह्मण अर्जुनके पराक्रमको श्रवणकर प्रसन्न हो अपने घरको चला आया ॥ ३५ ॥ जब स्त्रीको प्रसूतिकालका समय आया, तब ब्राह्मण मृत्युसे "पुत्रकी रक्षाकर" इस प्रकार वारम्वार आतुर हो अर्जुनसे कहने लगा ॥ ३६ ॥ उस समय अर्जुनने पवित्र जलका स्पर्श कर हाथ, पाँव धो; आचमनकर, शिवजीको नमस्कार करके दिव्य शस्त्रोंका स्मरण कर प्रत्यंचा चढाय गांडीव धनुषको हाथमें लिया ॥ ३७ ॥ अनेक शस्त्रोंमें मिलाये बाणोंसे सोवरके घरको पिंजरा बना दिया, तिरछे बाण चलाये, ऊपरको चलाये और नीचेको चलाकर घरके ऊपर बाणोंका पिंजरा करदिया ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त ब्राह्मणकी स्त्रीके उत्पन्न हुआ बालक वारम्वार रुदनकर शीघ्रही शरीर सहित आकाश मार्गमें होकर चलागया और बार देह पडा रहता था, अबकी बार देह भी न रहा ॥ ३९ ॥ उस समय ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रके निकटही अर्जुनकी निन्दा करके यह कहनेलगा कि, मेरी मूढता देखो, मैंने इस नपुंसक अर्जुनका कहना सत्य माना ॥ ४० ॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलदेवजी और श्रीकृष्णचन्द्र यह सब मिलकर भी जिसकी रक्षा न करसके, उसकी रक्षा करनेको और कौन समर्थ है ? ॥ ४१ ॥ मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है, इस अपनी श्लाघा करने वाले अर्जुनके धनुषको धिक्कार है, यह दुर्बुद्धि दैवके विनाश किये पदार्थको मूर्खतासे बचाना चाहता है ॥ ४२ ॥ इसप्रकार जब ब्राह्मणने खोटा वचन कहा, तब अर्जुनने योग विद्याको धारणकर यमराज भगवान्की संयमनीपुरीमें शीघ्र प्रवेश

किया॥४३॥ वहाँ यमराजकी पुरीमें पुत्रोंको न देखा.तब वहाँसे अर्जुन इन्द्रकी पुरीमें गया, फिर अग्निकी पुरीमें गया, वहाँसे कुबेरकी पुरीमें गया, वायुकी पुरीमें गया, वरुणकी पुरीमें गया, इसके उपरान्त रसातल और स्वर्गमें गया फिर धनुषको उठाये और स्थानों को गया ॥ ४४ ॥ सब स्थान ढूँढे परन्तु कहीं ब्राह्मणके पुत्रका पता न मिला, तब प्रतिज्ञासे अर्जुन अग्निमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेलगा, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे मने करके बोले ॥ ४५ ॥ कि ब्राह्मणके पुत्रको मैं ला दूंगा, तू अग्निमें मत जलै, इसलिये जो तेरी निन्दा करते हैं, वेही तुम्हारी निर्मल कीर्त्तिको हमारे साथ पृथ्वीपर निरन्तर गान करैंगे, कि अंतमें श्रीकृष्णके साथ अर्जुनने ब्राह्मणके पुत्रोंको लाही दिया ॥ ४६ ॥ सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इसप्रकार कह और अर्जुनको संग ले अलौकिक अपने रथमें चढ पश्चिमदिशाको चलेगये ॥ ४७ ॥ और सात सात पर्वतके सात द्वीप उल्लंघनकर तथा सात समुद्रोंको और लोकालोक पर्वतको उल्लंघन कर बडे अंधकारमें घुसगये ॥ ४८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! उस अंधकारमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प, बलाहक इन रथके घोडोंकी गति शिथिल होगई ॥ ४९ ॥ महा योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने घोडोंकी शिथिलगतिको देख हजार सूर्यके तेजवाले अपने सुदर्शनचक्रको रथके आगे चलनेकी आज्ञा दी ॥ ५० ॥ अति घोर सघन प्रकृतिके परिमाणरूप अंधकारको अपनी उत्कृष्ट कांतिसे विदीर्णकर मनके तुल्य वेगवान् सुदर्शनचक्रने प्रत्यंचासे सेनापर श्रीरामचन्द्रके बाण के समान प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ चक्रके पीछे गमन करके उस अंधकारसे परै वर्त्तमान श्रेष्ठ व्याप्त भगवान्‌का प्रकाशरूप देख चकाचौंधीसे अर्जुनने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये॥ ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त बडे पवन चलनेसे उठी लहरोंसे शोभायमान जलमें वह रथ गया, उस जलमें प्रकाशमान वस्तुमें श्रेष्ठ और दीप्तिमान् सहस्रों मणियोंके खंभ लग रहे हैं, उनसे शोभायमान अद्भुत भवन देखा ॥ ५३ ॥ उस भवनमें बडी देहवाले अद्भुत सहस्र मस्तकोंमें मणियोंकी कान्तिसे प्रकाशमान दोसहस्र नेत्रोंसे शोभायमान स्फटिकमणिके श्वेतपर्वतकी तुल्य काँति और श्याम कंठ तथा जिह्वा संयुक्त शेषनागको अर्जुनने देखा ॥ ५४ ॥ उन शेषनागके देहको सुखदायक आसन वनाये बडे प्रभाववाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ उत्तम भूमा पुरुषको शयन करते अर्जुनने देखा जिनकी वर्षाऊ मेघके समान कान्ति सुन्दर पीत वस्त्रोंको धारण किये मुख प्रसन्न मनोहर और बडे बडे नेत्रहैं ॥ ॥ ५५ ॥ जिनके केश बढी मणियोंसे जटित किरीट और कुण्डलोंकी कान्तिसे शोभायमान लंबी सुन्दर आठ भुजा कौस्तुभमणिको धारणकरे और भृगुलताके चिह्न संयुक्त वन माला पहररहे थे ॥ ५६ ॥ सुनंद, नद मुख्य अपने पार्षद और मूर्त्तिमान चक्रादि अपने शस्त्र और पुष्टि, श्री, कीर्त्ति, माया तथा समस्त अणिमादिक विभूतियोंसे सेवित ब्रह्मादिकोंके पालन करनेवाले ॥ ५७ ॥ इसप्रकार अनन्तभूमा भगवान्‌के दर्शनकर सब लोकोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपको प्रणाम किया और भयभीत अर्जुनने भी प्रणाम किया, इसके उपरान्त श्रीकृष्ण और अर्जुनको हाथ जोडे खडा देख वह पुरुष

गंभीरवाणीसे मुसकाते हुए बोले ॥ ५८ ॥ कि तुम्हारे देखनेके लिये ब्राह्मणके पुत्रोंको मैं ले आयाहूं, पृथ्वीमें मेरी कलासे अवतीर्ण हुए तुम पृथ्वीके ऊपर बोझरूप असुरोंको मार शीघ्र मेरे पास आजाओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों पूर्ण मनोरथ महाश्रेष्ठ नरनारायण ऋषि हो तो भी लोकोंको शिक्षा करनेकेलिये धर्म करते हो ॥ ६० ॥ श्रेष्ठ आसन पर विराजमान भगवान् भूमापुरुषने जब इस प्रकार आज्ञादी तो श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन धर्म भूमापुरुषको प्रणामकर ब्राह्मणके बालकोंको संग ले अपने धाम द्वारकापुरीमें आय श्रीकृष्ण चन्द्र और अर्जुनने ब्राह्मणको उसी अवस्था और रूपवाले पुत्र दे दिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का प्रभाव देख अर्जुनने महाआश्चर्यमानकर पुरुषमें जो कुछ पराक्रम है सो श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासेही है यह निश्चय किया ॥ ६३ ॥ इसप्रकार अनेक पराक्रम इस संसारमें दिखाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जगत्के विषयोंको भोग किया और बडे यज्ञोंसे यजन किया ॥ ६४ ॥ समयके अनुसार धर्ममार्गमें स्थित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणसे आदि ले सब प्रजाके मनोरथको जैसे इन्द्र, वर्षासे पृथ्वीको पूर्णकरते हैं उसीप्रकार पूर्ण किया ॥ ६५ ॥ अधर्मी राजाओंको मारकर और कितनोंको अर्जुन भीमसेनादिकोंके द्वारा घात कराया, धर्म पुत्र युधिष्ठिरादि धार्मिक राजाओंके द्वारा अनायास संसारमें धर्म प्रवृत्त किया ॥ ६६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे दशमस्कन्धोत्तरार्द्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

दोहा-नब्बेके अध्यायमें, यदुकुलको विस्तार।
हरिलीला संक्षेपसे, वरणौं वारम्वार ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! संपूर्ण संपत्तियोंसे भरी और श्रेष्ठ यादवोंसे सेवित द्वारकापुरीमें ॥ १ ॥ जहाँ नवयौवनकी शोभासे शोभायमान और बिजलीके समान कान्तिवाली स्त्रियें महलोंमें गेंद क्रीडा कर रही हैं, और शृंगारसे मनोहर वेष धारण कररही हैं ॥ २ ॥ जहाँके मार्गोंमें मद चुवाते हाथी और उत्तम वेष किये योद्धा घोडे और सुवर्णसे दीप्तिमान् रथोंकी सदा भीड बनी रहती हैं ॥ ३ ॥ जहाँ फूल संयुक्त अत्यन्त शोभायमान बगीचे लगरहेहैं, और फूलेहुए वृक्षोंकी पंक्तियोंमें चारों ओरसे भौंरे और पक्षी निरन्तर गुंजार करते रहते हैं ॥ ४ ॥ ऐसी द्वारकापुरीमें सोलह सहस्र पत्नियोंके प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र जितने स्त्रियोंके जितनी सम्पन्न महलहैं, उनमें उतनेही विचित्ररूप धारणकर श्रीकृष्णचन्द्रने उनके संग रमण किया * ॥ ५ ॥ इन

---

* **शंका**-श्रीकृष्ण भगवान् अपनी स्त्रियोंके साथ मनुष्योंके समान क्रीडा क्यों करते थे ?

उत्तर-श्रीकृष्णनें विचार किया कि, अब कलियुगके आनेके थोडेही दिन और रहे हैं जब कलियुगमें बडे बडे दुष्ट अधर्मी मनुष्य जन्मैंगे और अपनी स्त्रियोंको छोडकर दूसरी-

घरोंमें फूलेहुए उत्पल, कह्लार, कुमुद, अंभोजपरागकी सुगंधियुक्त निर्मल जलत्राल सरोवरोंमें पक्षियोंके समूह शब्द कररहे ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके आलिंगनसे कुचोंकी केशर जिनके लगरही, ऐसे महाप्रतापी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सरोवरोंके भीतर विहार करते हैं ॥ ७ ॥ मृदंग, ढोलक आदि बाजे और वीणाओंको गंधर्वगण बजाय रहेहैं, और सूत, मागध, बंदीजन स्तुति कररहेहैं ॥ ८ ॥ हँसतीहुई स्त्रियें अपनी २ पिचकारियोंसे भिजोती और श्रीकृष्णचन्द्र भी स्त्रियोंको छिडकते यक्षराज कुबेरके समान क्रीडा करनेलगे ॥ ९ ॥ भीजे वस्त्रोंसे उर, कुच, प्रगटहोने और ढीली चोटियोंमेंसे फूल गिरनेसे स्त्रियें पिचकारीसे बचनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करतेही कामदेवके उत्सवसे प्रकाशमान मुखवाली होगईं और भगवान्को भिजोती शोभा पानेलगीं ॥ १० ॥ स्त्रियोंके स्तनोंकी केशरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी माला भरगई और हथिनियोंके संग विहार करनेवाले हाथीके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ११ ॥ नट और नाचनेवालियोंको गीत गाने तथा बाजे बजाकर जीविका करनेवालोंको श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी स्त्रियोंने क्रीडा करनेके अलंकार और वस्त्र दिये ॥ १२ ॥ इसप्रकार विहार करते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी चलनि, बोलनि, मुसकानि और हास्यकी वार्त्ता, क्रीडा, आलिंगनसे स्त्रियोंकी बुद्धि हर गईथी ॥ १३ ॥ हे राजन्! मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें बुद्धिवाली एक स्त्रीने पहले चुप होय फिर भगवान् वासुदेवका ध्यानकर, उन्मत्त हो जडकी नाईं जो वचन कहेथे, उन वचनोंको मैं वर्णन करताहूं, तुम सुनो ॥ १४ ॥ स्त्रियें बोलीं कि, हे टिटहरी! संसारमें गुप्तबोध भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो शयनकर रहेहैं और तू निद्रारहित हो विलाप करके उनकी

—स्त्रियोंसे मन लगावेंगे और उनहीको अनेक २ प्रकारके वस्त्र आभूषण पहिरावेंगे और अपनी स्त्रियोंको भरकर पेट रोटीभी न देंगे और हरेक वस्तुको तरसावेंगे और बात बातमें लात और घूंसोंसे मार लगावेंगे, तब वेदमें जो विवाहिता स्त्री पुरुषोंका धर्म लिखा है सो सब नष्ट हो जायगा तब सनातन धर्म नष्ट हुए पीछे सब प्रजा वर्णसंकर होजायगी, तब पृथ्वी रसातलको जानेकी इच्छा करेगी, तब मुझको अवतार लेना पडेगा ऐसा भगवान् विचारके कलियुगमें जो मनुष्य उत्पन्न होवेंगे उन मनुष्योंको सिखानेके लिये और कलियुगमें स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी स्त्रियोंके साथ अत्यन्त क्रीडा और विहार करतेथे श्रीकृष्णने विचारा कि, अपनी स्त्रियोंके क्रीडाको कलियुगके मनुष्य सुनके जारकर्म छोडके अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ इसीप्रकार विहार करैंगे और आदर सत्कार सहित उनका पूजन करैंगे और अपनी स्त्री गृहस्थीमें परमोत्तम हैं, क्योंकि श्रीकृष्णने भी उनके साथ अत्यन्त प्रीति की थी, इसीप्रकार हम भी उनसे प्यार करैं और जो परमोत्तम न होती तो श्रीकृष्ण अपनी स्त्रियोंका सन्मान क्यों करते! इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा की थी कामदेवके वश होकर नहीं की थी।

नींदमें बाधा देतीहै, तू शयन नहीं करती, सो यह सत्य नहीं, हे सखी ! क्या हमारीही नाईं कमलनेत्र श्रीकृष्णचन्द्रका हास्य लीलापूर्वक चितवनसे तेरा चित्त बँध गयाहै, इसीसे पुकारतीहै ? ॥ १५ ॥ हे चकवी ! तैंने क्यों नेत्र मूँदलिये हैं, रात्रिमें पतिको न देखनेसे करुणाके मारे रुदन करती है अथवा दास्यभावमें प्राप्त हुई हमारे समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्रसादीमाला अपनी चोटीपर चढानेकी इच्छा करती है, क्या इसी लिये रोती है ? ॥१६॥ हे समुद्र ! निद्राके न आनेसे क्या तुझे भी प्रजागर होगया ? जो सदा चिल्लाता रहता है। अथवा हमारीसी दशा तेरी भी है जैसे भोगसे मुकुन्दने हमारे कुचोंकी केशर लेली है,क्या इसी प्रकार तुझेभी मथकर तुझमेंसे लक्ष्मी और कौस्तुभमणि निकाललीहै ? ॥ १७ ॥ हे चन्द्रमा ! जान पडता है कि, तुझे बलिष्ठ क्षईके रोगने ग्रहण करलिया है, इसीकारण तू क्षीणताको प्राप्त हुआ है, अपनी किरणोंसे अंधकारको दूर नहीं करता, हमारीही समान मुकुन्दकी रहस्य वार्त्ताओंको भूल उसी चिन्ताके मारे क्षीण होगया है और हमै निश्चय है कि, तेरी वाणी भी हमारी समान बंद होगई है ॥ १८ ॥ हे मलयाचलके पवन ! हमने ऐसा तेरा क्या अप्रिय कार्य किया है ? जिससे तू गोविन्दके अंगमें लगकर हमारे हृदयमें कामाग्निको प्रगट करता है ॥ १९ ॥ हे मेघ ! हे श्रीमन् ! हम जानती हैं तू यादवोंके इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्यारा मित्र है, इसीलिये जो ताप दूर करनेको भगवान्में गुण है, सो तुझमें भी है, सो हमारे समान भगवान्के प्रेममें बँधकर तूभी नारायणका चिंतवन करताहै, क्योंकि तेरे हृदयमें जो अति उत्कंठा है इससे भृगुलताके चिह्नवाले श्रीकृष्णका स्मरणकर हमारे समान अश्रुकी धारा बहाता है तेरा हृदय भी श्याम होरहा है, तैंने उनके संग मित्रता क्यों करी ? उनका संग तो दुःखदायी ही है ॥ २० ॥ हे शोभायमान कंठवाले कोकिल ! मृतकको जिलानेवाली कोमलवाणीसे प्यारी बातें करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे वचन कहती है, तेरा मैं क्या प्रिय करूं, सो मुझसे कह ॥ २१ ॥ हे उदार बुद्धे ! हे पर्वत ! तू चलता और बोलता भी नहीं है और बडी चिन्ता करता है, जैसे वसुदेवनंदनके चरण हम अपने हृदयमें धरनेकी चाहना करती हैं, उसी प्रकार तू भी अपने शिखरपर धरनेकी इच्छा करता है, यदि धरेगा तो हमारीसी दशा तेरी भी होगी ॥ २२ ॥ हे समुद्रपत्नियो ! नदियो ! इस समय ग्रीष्मके आनेसे मेघद्वारा समुद्रका जल न पानेसे दुर्बल सूखे हृद और कमलोंकी शोभासे हीन होगई हो, धारा वर्षाकर तुम्है आनन्द नहीं देती, यह बडा कष्ट है, इसीसे तुम्हारे हृदय सूखकर लट गये हैं, जैसे वांछित पति यदुपति श्रीकृष्णचन्द्रकी स्नेहभरी चितवनके पडे बिना हमारे हृदय चुराये जानेसे हम दुर्बल होगई हैं ॥२३॥ अकस्मात् आये हंसको दूत कल्पना करके कहती हैं कि, हे हंस ! आप अच्छे आये ! आओ, विराजो, पय पानकरो, श्रीकृष्णचन्द्रकी वार्ता कहो, आप दूत बनकर आये हो,सो हमको विदित है, श्रीकृष्णचन्द्र भली प्रकार तो हैं ? क्षणिक प्रीति रखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आपही हमसे जो कुछ कहगये थे उसका किसी समय स्मरण करते हैं ? हे दूत ! हमारा

है ॥ ४१ ॥ महात्मा यादवोंकी संख्या कौन कर सकता है ? क्योंकि जिस कुलमें हजारोंके दशहजार उनके लाख इतने यादवोंको लेकर द्वारकापुरीमें उग्रसेनने वास किया ॥ ४२ ॥ देवता और असुरोंके युद्धमें मरे दारुण दैत्यही मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्ववंत होकर प्रजाको बाधा देनेलगे थे ॥ ४३ ॥ हे महाभागवत परीक्षित् ! उन असुरोंको दंड देनेके लिये हरि भगवान्‌की आज्ञा पाय देवताओंने यदुकुलमें अवतार लियाथा ॥ ४४ ॥ उन यादवोंकी प्रभुतामें भगवान्‌ही प्रमाण हुए, उन श्रीकृष्णचन्द्रके आज्ञानुवर्त्ती सब यादव हो वृद्धिको प्राप्तहुए ॥ ४५ ॥ सोते, बैठते, बोलते, क्रीडा, स्नान भोजनादि कर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रमें चित्त लगाये यादवोंने अपने आत्माको नहीं जाना ॥ ४६ ॥ उससे प्रथम श्रीगंगाजीही अधिक तीर्थरहो, जब यादवोंमें श्रीकृष्णचन्द्रका यशरूपी तीर्थ प्रगट हुआ तबसे अपने चरणोदकरूप गंगातीर्थको भी न्यून करने लगे और आपही संपूर्ण तीर्थोंके ऊपर विराजनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जिन पुरुषोंने वैर किया और जिसने स्नेह किया वह भी तद्रूपको प्राप्त हुए. देखो ! जिस लक्ष्मीके लिये ब्रह्मादिक उपाय करते हैं, सो किसीको प्राप्त नहीं हुई, वह लक्ष्मी भी श्रीकृष्णचन्द्रको त्यागकर कहीं नहीं जाती, जिन श्रीकृष्णचन्द्रका नाम श्रवण करनेसे अथवा कथन करनेसे सब पापोंका नाश कर देताहै, फिर उनके स्वरूपका तो कहनाही क्या है ? और ऋषियोंके वंशमें धर्म चलाया कालचक्र आयुधधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दुष्टोंका मारना और पृथ्वीका बोझ उतारना, यह कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ ४७ ॥ सब जीवोंमें अंतर्यामीरूप होकर वास करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वदा उत्कर्षतापूर्वक विराजमान हैं, देवकीमें जन्म हुआ, यह तो कथनही मात्रहै, श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे सेवित इच्छामात्रसे अधर्मके नाश करनेमें समर्थ हैं, परन्तु तोभी क्रीडाके लिये अपनी भुजाओंसे अधर्मको दूरकर स्थावर, जंगम सब जीवोंका दुःख दूरकर सुन्दर मुसकान युक्त अपने श्रीमुखसे व्रजकी स्त्री गोपिका और पुरी मथुरा द्वारकाकी स्त्रियोंको कामदेव बढानेवाले सर्वदा विराजमान रहते हैं, ऐसे सर्वोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जयहो ॥ ४८ ॥ अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये मत्स्य कूर्मादिक अवतार धारण करनेवाले, यादवोंमें उत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो जो रूप धरकर योग्य कर्म कियेथे, उनको सुनकर पुरुष पाप कर्मसे छूट जाता है ॥ ४९ ॥ तीनों कालमें बडी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभायमान कथाका श्रवण कीर्त्तन और विचार करके पुरुष कालकी गतिरहित भगवान्‌के धामको प्राप्त होता है, यह श्रवण करके चक्रवर्त्ती राजा भी अपना राज्य त्याग श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्तिके लिये ग्रामके बाहर वनको चलेगये॥५०॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे श्रीरामगंगातटस्थ मुरादाबाद नगर निवासी सुप्रसिद्ध कविवर माथुरवंशीय श्रीयुत लाला शालिग्राम वैश्यकृत दशमस्कंधोत्तरार्द्धे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां श्रीकृष्णचन्द्रानन्दकन्दचारित्रवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

इति दशमस्कन्ध समाप्त ॥ १० ॥

दोहा-श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज गुणग्राम।
विद्योत्तम उपकाररचित, सकल सुलक्षणधाम ॥ १ ॥
कहाँ होतहैं जगतमें, ऐसे पुरुष उदार।
देशदेशमें छै रह्यो, जिनको सुयश प्रचार ॥ २ ॥
कुटुँब सहित रक्षा करैं, जिनकी श्रीजगदीश।
बार बार यह देत हैं, शालिग्राम अशीश ॥ ३ ॥
भई दशम अस्कन्धकी, भाषा पूरण आज।
विरची शालिग्रामकवि, सुमिरि सु श्रीब्रजराज ॥ ४ ॥
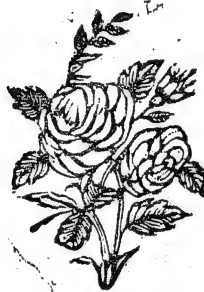
पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस-बंबई.

इति

शुकसागर दशमस्कन्ध

समाप्त.

श्रीमद्वेंकटेशो विजयतेतराम्।

शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत भाषा।

एकादशस्कन्ध ११.

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस–

बंबई.
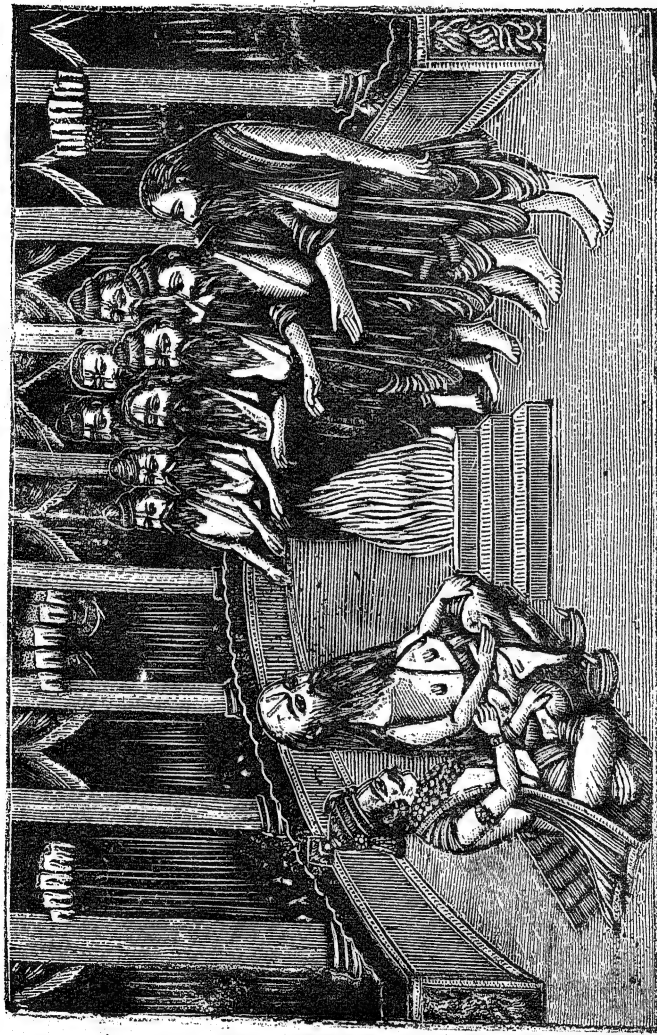
जनकराजा, यज्ञकुंड और नवयोगेश्वर.

शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

एकादशस्कन्ध ११.

दोहा–जय गणेश वारणवदन, विघ्नहरण सुखमूल।
अनुपम भाल विशाल मुख, सोहत साथ त्रिशूल ॥ १ ॥
जय जगजननी शारदा, सुखदानी गुणखान।
शीघ्र पूर्ण हो भागवत, दीजै यह वरदान ॥ २ ॥
जय शिवकाशीनाथ पद, करन अनाथ सनाथ।
बारबार वर माँगिहौं, तिनपर धरकर माथ ॥ ३ ॥

सोरठा–जय हरि कृपानिधान, अधम उधारन सुखसदन।
भाषत वेद पुरान, अस दयालु नहिं दूसरो ॥ १ ॥
प्रभुपद पोतहिं पाय, अगम अथाह भवाम्बुनिधि।
मोसम पतित निकाय, तरन चहत गोपद सरिस ॥ २ ॥

दोहा-गुरुपद रज शिरधर कहौं, एकादश अस्कन्ध ।
हारि उद्धव सम्बाद वर, ज्ञान विराग प्रबन्ध ॥ १ ॥
कहौं प्रथम अध्यायमें, बहु अद्भुत इतिहास ।
जैसे ऋषिके शापसे, यदुकुल भयो विनास ॥ २ ॥

पहले दशमस्कन्धमें भक्तोंका उद्धार और भूमिका भार उतारनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रगट हुए, उनकी लीला कही, अब एकादशस्कन्धमें भक्तोंको आत्मतत्त्वका उपदेश और पूजामार्ग, भक्तिमार्ग, इनके फल निर्णय करके कहैंगे और सब भक्त पुरुषोंको अपने स्थानपर प्राप्त करैंगे. इस प्रकार इस एकादशस्कन्धमें मुक्तिलीला कहते हैं, तहाँ प्रथम कुरुक्षेत्रमें जैसे वसुदेवजीने नारदजीसे कर्मयोग पूछा तब नारदजीने कर्मयोग सब कहा, उससे जब चित्त शुद्ध हुआ तब वसुदेवजीको ज्ञान उत्पन्न हुआ, अर्थात् राम, कृष्ण, यह दोनों साक्षात् ईश्वर हैं और जब यह ज्ञान नहीं रहेगा तो फिर ब्रह्मज्ञान नारदजीसे पूछेंगे, तब नारदजी पाँच अध्यायोंमें वर्णन करैंगे सो पहले अध्यायमें वैराग्य उत्पन्न करानेके लिये यदुकुलको ब्रह्मशापके बहानेसे विषयसुखको अनित्य कहते हैं, इसके उपरान्त चार अध्यायोंमें राजा जनक और नवयोगीश्वरोंका संवाद कहैंगे, उसमें परमतत्त्व निरूपण करैंगे, फिर छठे अध्यायमें श्रीकृष्ण और उद्धवका संगम कहैंगे, इसके पीछे तेईस अध्यायमें उद्धवको श्रीकृष्ण परमतत्त्व निरूपण करैंगे, फिर दो अध्यायोंमें यादवोंका संहार कहैंगे, इसी प्रकार इकतीस अध्यायोंमें "एकादशस्कन्ध" वर्णन करैंगे इसलिये पहले पूर्वस्कन्धकी कथा स्मरण करके श्रीशुकदेवजी प्रारंभ करते हैं ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! जिसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने और बलदेवजीने मिलकर यादवों सहित शीघ्र कलह उत्पन्नकर संपूर्ण पृथ्वीका भार उतारा, सो हम तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं * ॥ १ ॥ कि, जो पाण्डुके पुत्र शत्रुओंसे बहुत

---

* **शंका**-श्रीकृष्णचन्द्रने त्रिलोकीके स्वामी होकर अनेकप्रकारके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र उत्पन्न करके फिर उनका विनाश क्यों किया ? जो कोई कहै कि, कृष्णचन्द्रने विचार किया कि, इन यदुवंशियोंको छोडकर परमधामको जायँगे, तो यह सब पृथ्वीके मनुष्योंको दुःख देंगे, जो ऐसा कहैं, वे सम्पूर्ण मूर्ख हैं, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र महाराज तौ घट घटको जाननेवाले थे कुछ मनुष्य नहीं थे जानते थे कि, हम वैकुण्ठधामको जायँगे, सर्वान्तर्यामी ईश्वरथे, विचारो कि, यह हमारे अंशसे जो जन्मे यादवहैं सो पृथ्वीको अत्यन्त दुःख देवेंगे, ऐसा जानते थे तो उन सबको उत्पन्न क्यों किया ? क्योंकि आपही उत्पन्न करके आपही नाश करना ? यह बडा अयोग्य कर्म है, क्योंकि शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, विषके खायेसे प्राणी मरजाते हैं, विष ऐसी बुरी वस्तु है, परन्तु जो अपने हाथसे विषका वृक्ष भी लगाते हैं, अपने हाथसे वह लोग उसको भी नहीं काटते और-

कोपित कियेगये, जुआँ खेलनेसे जिनका राज्य जातारहा, अवज्ञासे द्रौपदीके केश खैंचे गये, लाक्षाभवनमें पाण्डवोंको बन्द करके आग लगादी गई, जहाँतक होसका वहाँतक कष्टपर कष्ट दिये उन्हींके लिये दोनों पक्षोंमें मिले राजाओंको मार पृथ्वीका भार उतारा, परन्तु तो भी विचारने लगे ॥ २ ॥ कि, यद्यपि पृथ्वीका भाररूप जो राजाओंकी सेना थी सो अपनी भुजाओंसे पालित यादवोंसे नाश भी करवाई, परन्तु तो भी भार न गया, क्योंकि यदुकुल अभी अनन्त शेष है, जिसका कि, पृथ्वीपर बडा भारी भार है ॥ ३ ॥ जिसके मैं आश्रय हूँ, उसका पराजय तो और किसी दूसरेसे हो नहीं सक्ता, और यह संपूर्ण यादव वैभवसे उद्धत होगये हैं और बिना इनका संहार किये किसी प्रकार पृथ्वीका भार उतर नहीं सक्ता इसलिये इनमें परस्पर कलह उत्पन्न करा, जैसे बांसोंमें अग्नि उत्पन्न होती है उसी प्रकार सुलगाय शान्तिको प्राप्त हो पीछे अपने परमधामको जाऊँगा ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार बुद्धिसे निश्चयकर सत्यसंकल्प भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मशापके मिससे अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥ जिनके समान लोकमें कहीं लावण्यता नहीं और जिनके संबंधसेही लोकोंको शोभा मिलती है, इसप्रकार अपनी देहसे पुरुषोंके चित्त हरकर जिससे चित्त औरको स्मरण न करै और जो चरणारविन्द देखते हैं, उनकी योग और क्रिया चरणोंके देखनेसे हरली, फिर भक्तोंकी सब इन्द्रियें वृत्तिमें और अपने संसारी जीवोंका अज्ञानरूपी अँधेरा दूरकर, उनके लिये पृथ्वीमें अतिनिर्मल कीर्ति विस्तारकर श्रीकृष्णचन्द्र व बलरामजी अपने धामको चलेगये ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ राजा परीक्षित् पूँछने लगे कि, हे ब्रह्मन् ! यादव तो ब्राह्मणोंके भक्त, अतिदानी और नित्य प्रति वृद्धोंकी सेवा करते थे, इतनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जिनके मन लगरहे थे उन्हें किसलिये ब्राह्मग लोगोंने शाप दिया ? ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! इस शापका

–चेतनस्वरूपको उत्पन्न करके आपसे आपही उसको विनाश करना यह बडा खोटा कर्म है, फिर श्रीकृष्णने ऐसा खोटा कर्म क्यों किया ?

उत्तर–श्रीकृष्णने ऐसा विचार किया कि, जिस दिन हम इस लोकसे परलोकको जायँगे उसीदिन कलियुग महाघोर इस मर्त्यलोकका राजा होगा और यह सब यादव हमारे अंशसे जो उत्पन्न हुए हैं और कलियुगमें जो यह सब ऐसेही रहैंगे तो अनेक दुःख पावेंगे, इसलिये इन सबका प्रबन्ध ऐसा करैं कि, प्रथमही अपने लोकमें भेजकर पीछे हम जायँगे. क्योंकि यादवोंके नाश होनेसे दुःख तो होहीगा परन्तु पीछे सुख होगा कैसा ? कि, जैसे कोई औषधि खानेके समय कडुवा मुख हो जाता है, परन्तु पीछेसे सुख होता है, फोडेको चीरनेके समय जीव दुःख मानता है, परन्तु पीछे सुख पाता है, इस बातको विचारके पृथ्वीके भारके कारणसे अपने अंश करके जो यादव उत्पन्न किये उन सबको नाश करके अपने अंशको संग लेकर चले गये, कुछ निर्दयपनसे यादवोंका विनाश नहीं किया ।

क्या कारण है ? क्यों हुआ ? और यह सब लोग एकचित्त थे; उनमें भेद क्यों उत्पन्न हुआ ? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! यह सब मुझसे कहो ॥ ९ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! प्रथम भक्तोंको सुख देनेके लिये संपूर्ण शोभायमान स्वरूप धारणकर भूमिपर अत्यन्त मंगल कर्म किये और यद्यपि आप पूर्णकाम हैं, परन्तु तो भी फिर द्वारकापुरीमें घर बनाय अनेक क्रीडाकर सब भक्तोंको सुख दिया, इसका तात्पर्य यह है कि, पहले जीवोंका उद्धार करनेके लिये उदार कीर्त्तिका विस्तार किया, फिर अपने कुलका संहार करनेकी इच्छा करनेलगे, यही काम शेष रहा था ॥ १० ॥ जब श्रीकृष्ण-चन्द्रने इसप्रकार इच्छा करी तभी ब्रह्मशापका निमित्त हुआ, क्योंकि जो कर्म अत्यन्त पुण्यरूप, मंगलरूप, गानेवालोंके संपूर्ण पाप दूर करै, ऐसे कर्म करनेको जो मुनि बुलायेथे, वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे पिंडारक तीर्थको चलेगये श्रीकृष्णचन्द्र स्वयंकाल-रूप होनेसे वसुदेवजीके घरमें वासकर निजकुलका नाश करना चाहतेथे इसीलिये मुनि-लोगोंको पिंडारक स्थानको भेजा ॥ ११ ॥ विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ और नारद आदि ऋषि श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानु-सार पिंडारक स्थानमें वास करतेथे ॥ १२ ॥ एकसमय इन ऋषीश्वरोंके पास खेलते खेलते सब यदुकुमारोंने आय नमस्कार कर, चरण पकड पूँछा, परन्तु मनमें इन लोगोंके कपट भरा हुआथा ॥ १३ ॥ वह सब बालक जाम्बवतीके पुत्र–

दोहा–साम्बहिं सुन्दर जानकर, नारी वेष बनाय ।
उदर ऊँचकर वसनभर, सुन्दर वस्त्र उढाय ॥

ऐसी सुन्दर स्त्री बनाय मुनियोंके सन्मुख लेजाय हाथ जोडकर पूँछने लगे कि, अहो मुनीश्वरो ! तुम सर्वज्ञ हो, यह स्त्री गर्भवती है, इसको पुत्रकी इच्छा है और प्रसव होने-वाला है, तुम्हारे सन्मुख आते इसे लज्जा होती है, इसकारण आप कृपा करके बताइये, इसके लडका होगा या लडकी ? ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार जब छलसे पूँछा तब यादवोंके बालकोंपर अत्यन्त क्रोधित होकर मुनि बोले कि, हे मूर्खो ! यह तुम्हारे कुलनाशक मूशलको उत्पन्न करेगी ॥ १६ ॥ यह सुन वह बालक अत्यन्त भय-भीतहो, उतावलीसे सांबके उदरको खोल, लोहेका मुशल देख त्रसित होगये ॥ १७ ॥ और परस्पर कहनेलगे कि, हमने यह क्या किया ? हमको मनुष्य क्या कहैंगे, इसप्रकार विह्वल हो मुशलको ले आये ॥ १८ ॥ जिनके मुखकी शोभा मलीन होगई ऐसे सब बालक उस मुशलको सभाके बीचमें लाय सब यादवोंके निकट राजा उग्रसेनसे कहनेलगे परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रसे न कहा ॥ १९ ॥ हे महाराजपरीक्षित् ! मुनियोंका अमोघशाप श्रवणकर और मुशल देख सब द्वारकावासियोंने बडा अचरज माना और भयभीत होगये ॥ २० ॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्णचन्द्रके विना पूँछेही उस मुशलको राजा उग्रसेनने चूर्ण करवाकर समुद्रके जलमें बहादिया और रेतनेसे शेष जो बचा उसे भी समुद्रके जलमें डालदिया ॥ २१ ॥ वहाँ कोई मत्स्य उस लोहेको निगलगया और उसका चूरा अपनी

तरंगोंसे बहता २ समुद्रके तीरपर आलगा, उससेही सब पटेले उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ वह मत्स्य भी और मत्स्योंके संग धीमरोंने जालमें पकडा, उस मत्स्यके पेटमेंसे लोहा जो निकला उससे उसने अपने तीरकी भाल करी ॥ २३ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संपूर्ण बातोंको जानते थे, परन्तु तो भी निवारणकी इच्छा न करी, विप्रशापहीको मुख्य रक्खा इसकारण इससमय आपही कालरूप हैं ॥ २४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-दुसरेमें वसुदेव अरु, नारद प्रश्न सुस्वाद।
योगेश्वर अरु जनक सों, भयो धर्म सम्वाद ॥ १ ॥

दूसरे अध्यायमें भक्तिसे पूछे वसुदेवजीको नारद, जनक और नव योगियोंके संवादसे शुद्ध धर्म कहेंगे श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! गोविन्दकी भुजासे पालित द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें प्रेम करनेवाले नारदजी निरंतर वास करते थे ॥ १ ॥ क्योंकि, ऐसा कहा भी है, जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें मुक्त पुरुषोंको भी उत्कंठा होती है, उनको कौन नहीं भजता, सर्वत्र मृत्युसे त्रासित कौन इन्द्रियवन्त भगवान्के चरणारविन्दका भजन नहीं करता, जिन चरणकमलोंकी देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक सेवा करते हैं ॥ २ ॥ एक दिन देवर्षि नारदजी वसुदेवजीके घर आये, तब वसुदेवजीने अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम आसनपर बैठाल पूजा और नमस्कार करके पूछा ॥ ३ ॥ कि, हे भगवन्! जैसे हरिकी प्राप्तिका मार्गरूप महत् पुरुष हैं, उनका आगमन दीनोंका कल्याण करनेके लिये है और जैसे पिताका आना पुत्रादिकोंके सुखके लिये है, उसीप्रकार तुम्हारा आगमन सब देहधारियोंके कल्याणार्थ है ॥ ४ ॥ महात्मा लोगोंको देवताओंकी उपमा भी अनुचित है, क्योंकि देवताओंका चारित्र बहुत वृष्टि आदिसे दुःख और सुख दोनों करता है, परन्तु साधुओंका चारित्र तो सदा सुखही करता है, इसकारण तुम सरीखे अच्युत रूप पुरुषोंका आगमन सुखहीके लिये है ॥ ५ ॥ यद्यपि देवतालोग सुख देते हैं, परन्तु तो भी जिसने जितना भजन किया हो, उसे उस भजनके अनुसारही सुख देतेहैं, क्योंकि जैसे मनुष्य जितना कार्य करै, उतनाहीं उसकी परछाहीं कार्य करै, ऐसे ही मनुष्य जैसा और जितना काम करै, उसे देवतालोग कर्मानुसारही फल देते हैं, परन्तु आप सरीखे साधु पुरुष तो दीनोंके देखतेही कृपालु होजातेहैं ॥ ६ ॥ हे नारद! यद्यपि हम तुम्हारे आनेसेही कृतार्थ होगये, परन्तु तो भी आपसे जिन धर्मोंसे भगवान् प्रसन्न हों, सो वैष्णवधर्म पूछते हैं, जिस धर्मको श्रद्धासहित श्रवण करनेसे मनुष्य संसारसे छूट जाता है ॥ ७ ॥ यदि तुम कहो कि, भगवान्की प्रसन्नताके पात्र तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं सो इसका उत्तर यह है कि, मुक्तिदाता अनंतभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रथम मैंने पुत्र कामनासे आराधन कियाथा, देवमायासे मोहित हो, मोक्ष प्राप्तिके लिये

आराधन नहीं किया, यह बात सूतिकागृह (सोवर) में ही श्रीकृष्णचन्द्रने मुझसे कहीथी सो मुझे याद है ॥ ८ ॥ हे नारद ! इसलिये अनेक दुःखसंयुक्त सब ओरसे भय देनेवाले संसारसे जिसमें हम विनाही श्रमके छूट जायँ, वैसीही तुम शिक्षा दो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार जब अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने पूछा, तब भगवान्के गुणोंको स्मरण करानेसे प्रसन्न हो, देवर्षि नारदजी वसुदेवजीसे कहनेलगे ॥ १० ॥ कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ वसुदेवजी ! तुमने यह भला निश्चय उत्तम प्रश्न किया, क्योंकि तुमने सबके चित्तको शुद्ध करनेवाला वैष्णव धर्म पूछा ॥ ११ ॥ यह धर्म सुननेसे, स्मरण करनेसे, श्रद्धापूर्वक आदरसे ध्यान करनेसे, सम्मति देनेसे समस्त विश्वके पातकी जनोंको शीघ्र पवित्र कर देता है, क्योंकि यह भगवत् सम्बन्धी धर्महै * ॥ १२ ॥ हे वसुदेव ! तुमने परमकल्याणरूप जिनके श्रवण और कीर्त्तन अत्यन्त पावन पवित्र हैं, ऐसे भगवान् नारायणको मुझे स्मरण कराकर मेरा आपने बडाही उपकार किया ॥ १३ ॥ अब मैं यहाँ तुमसे एक प्राचीन कथा कहताहूं, जिसमें उदारचित्त राजा जनक और ऋषभदेवके पुत्र नव योगीश्वरोंका संवाद है ॥ १४ ॥ स्वायंभुवमनुका प्रियव्रतनाम एक पुत्र हुआ उसके आग्नीन्ध्र इनके नाभि, और नाभिके ऋषभदेवजी हुए ॥ १५ ॥ यह वासुदेवके अंशरूप ऋषभदेवजी मोक्षसम्बन्धी धर्म कहनेकी कामनासे प्रगट हुएथे, इनके सौ १०० पुत्र हुए, सो सब, वेदके जाननेवालेथे ॥ १६ ॥ इनमे नारायण और भरतजी अत्यन्त श्रेष्ठ हुए, अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं यह अजनाभ खंडही जिनके नामसे भरतखण्ड प्रसिद्ध होगया ॥ १७॥ सो राजा भरत पृथ्वीका भली प्रकार भोगकर, अंतमें पृथ्वीको छोड, तपस्या करनेको चले गये और भगवान् हरिकी उपासना करते करते तीन जन्ममें हरिकी पदवीको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ शेष निन्नानवे पुत्रोंमें नौ पुत्र इस भरतखण्डके मध्य नवो द्वीपोंके पति हुए

* **शंका**—ऐसा उत्तम कौनसा धर्म है, जो शीघ्रही दुष्टोंको पवित्र करता है ? कैसे दुष्टोंको ? जो दुष्ट तीन लोककी और देवताओंकी बुराई करते हैं, उनको पवित्र करना महाकठिन है, क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि, जो प्राणी किसी दूसरे प्राणीकी एक भी बुराई करैगा तो वह बुराई करनेवाला पुरुष कभी पवित्र नहीं होगा, वह तो चाण्डालके सदृश बना रहैगा और जो तीनलोककी तथा तीनलोकके देवताओंकी निन्दा करैगा वह कैसे पवित्र हो सक्ता है ?

उत्तर—जो धर्म तीनलोक अथवा सब देवताओंकी निन्दा करनेवाले प्राणीको भी पवित्र करता है, वह धर्म यह है कि, मनमें दया करके भगवान्का भजन करना. यह ऐसा सुन्दर धर्म है कि, सब पापोंका नाश करता है, जैसे रुईके ढेरको एक सरसों प्रमाण अग्नि भस्म कर देती है, ऐसाही भगवान्के नामाका जप है, थोडाभी करैगा तो अनेक जन्मके पापोंका नाश करदेगा, ऐसा लिखा है ।

और इक्यासी पुत्र कर्ममार्गके प्रवर्त्तक ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ और जो नौ पुत्र यहाँ भागवतमुनिथे, वह परमार्थके उपदेश करनेवाले आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर। दिगंबर वेष आत्माविद्यामें निपुण हुए ॥ २० ॥ उनके नाम यथा—१कवि, २हारि, ३ अंतरिक्ष, ४ प्रबुद्ध, ५ पिप्पलायन, ६ आविर्होत्र, ७ द्रुमिल, ८ चमस और ९ करभाजन ॥ २१ ॥ यह सब इस विश्वको भगवद्रूपसे देखनेलगे, स्थूल सूक्ष्मको आत्मासे भिन्न देखनेलगे, अधिक क्या कहैं. वह सब आत्मरूपही को देखते संपूर्ण पृथ्वीमें फिरनेलगे ॥ २२ ॥ अप्रतिहत गतिसे आसक्तिरहित यह योगीश्वर देवता, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, यज्ञ, मनुष्य, किन्नर, नाग, मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गौओंके लोकोंमें अपनी इच्छासे विचर रहेथे ॥ २३ ॥ विचरते २ यह सब अपनी इच्छासे एक दिन ऋषियोंसे विस्तृत उदार चित्त अजनाभ राजा जनकके यज्ञमें आये ॥ २४ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी परम-भागवत इन ऋषियोंको देख यजमान, अग्नि, ब्राह्मण, सब उठकर खडे होगये ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त राजा जनक उनको नारायणपरायण जान अतिप्रसन्न हो आसन दे यथा-योग्य पूजा करनेलगे ॥ २६ ॥ अपनी कांतिसे शोभासंयुक्त सनकादिकोंके समान उन नवयोगीश्वरोंको देख, प्रसन्न हो, विनयकर, नम्र होकर पूछनेलगे ॥ २७ ॥ प्रथम उनकी स्तुति करी कि, तुम साक्षात् मधुदैत्यके द्वेषी भगवान्के पार्षद हो. जिससे विष्णुभक्त लोगोंके पवित्र करनेको सब ठौर विचरते हो ॥ २८ ॥ मैंने दुर्लभ वस्तु पाई है, इसलिये मेरा बडा भाग्य है, क्योंकि ऐसा कहा है कि, देहधारियोंको मनुष्यदेह दुर्लभ है, सो भी क्षणभंगुर है उसमें भी भगवान्के प्रिय भक्तोंका दर्शन तो अत्यन्तही दुर्लभ है ॥ २९ ॥ हे निष्पाप ! इसलिये मैं आपसे पूछताहूं कि, संसारमें सबसे उत्तम कल्याणका साधन क्या है ? क्योंकि इससंसारमें अर्द्धक्षणका सत्संग भी मनुष्योंको बडी निधि है ॥ ३० ॥ इस कारण यदि आप हमैं सुननेका अधिकारी समझो तो हमसे वैष्णवधर्म कहो, जिन धर्मोंसे प्रसन्न होकर भगवान् भक्तोंको अपना आत्मा तक भी दे देते हैं ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले कि, हे वसुदेव ! इसप्रकार जब राजा जनकने पूछा, तब उन महंत ऋत्विजोंने सभा-सदों सहित राजा जनककी स्तुति करके प्रीतिपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ जनकजीने नौ प्रश्न किये, प्रथम वैष्णवधर्म, दूसरा परमेश्वरकी भक्ति, तीसरे माया, चौथे मायाके तरनेका उपाय, पाँचवाँ ब्रह्म, छठा कर्म, सावताँ अवतार चारित्र, आठवाँ भक्ति प्राप्ति, नवाँ युग, इन एक एक प्रश्नका उत्तर नवों मुनीश्वरोंने दिया, प्रथम अति कल्याणरूप धर्मकवि योगेश्वर बोले कि, हरिके चरणारविन्दकी उपासनाही सब प्रकारके भय दूर करती है, जिसके करनेसे देहादि भिन्न पदार्थोंके गर्वसे सदा उद्वेगको प्राप्त होकर यह पुरुष संसारके भयसे छूट जाता है ॥ ३३ ॥ अब वैष्णव धर्मके लक्षण कहते हैं, प्रथम मनु आदि ऋषियोंके मुखसे सब वर्ण आश्रम धर्म कहते हैं फिर अति रहस्यसे अपने मुखसे भगवान्ने अज्ञानि-योंको सुखपूर्वक आत्मज्ञान पानेके जो उपाय कहे हैं, वह सब वैष्णवधर्म हैं ॥ ३४ ॥ उन धर्मोंका आश्रयकर मनुष्य कभी विघ्नोंसे पीडित नहीं होता, हे राजन् ! नेत्र बन्द करके

दौडे, तो भी नहीं गिरता और यदि वर्ण आश्रम धर्म न बन पडे तो भी प्रतिवादी नहीं होता और न फलसे भ्रष्ट होता है ॥ ३५ ॥ जिस विधिसे बताये शास्त्रोक्त किये कर्महीं नारायणके अर्पण करै, यह नियम नहीं है, किन्तु शरीर, वाणी, मन, बुद्धि, अहंकार और अध्याससे मानेहुये ब्राह्मणत्वादिसे भी जो कुछ कर्म करनेमें आवें, वह सब परमेश्वरके अर्पण करनेसे शारीरक क्रिया सब नारायण सम्बधी धर्मरूप हो जाती हैं ॥ ३६ ॥ परमेश्वरसे विमुख पुरुषको ईश्वरकी मायासे भगवत् स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, वरन् उससे अहंदेह, मैं देहहूं, अभिमान होता है तब दूसरेके अभिनिवेशसे भय होता है, जिस कारण कि, उनकी मायासे भय होता है, इससे गुरुको देवता और इष्ट माननेवाले बुद्धिमान् निश्चय करके भक्ति सहित ईश्वरको ही भजैं, तहाँ पूर्वपक्षमें कहते हैं कि, चित्त तो विषयोंसे चंचल है, फिर निश्चल भक्ति कैसेहो ? और भक्ति न हो तो भय कैसे जाय ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, विषय कुछ वस्तु नहीं है, केवल मनका विलास मात्र है, इसलिये मनको निग्रह करके जो भजन करै तो अभय होय, यद्यपि यह प्रपंच सब ब्रह्मरूपही है, दूसरा कोई नहीं ॥ ३७ ॥ परन्तु तोभी अविद्यासे द्वैत भासता है, जैसे ध्यान करनेवाले पुरुषको मनसे स्वप्न और मनोरथ दीखते हैं, इसकारण संकल्प विकल्पके कर्त्ता मनको बुद्धिवान् पुरुष रोंके, तब निश्चल भक्तिसे भजन करै, तो अभय होवै ॥ ३८ ॥ जो जगदीशके शुभकर्म जन्म हैं ओर जो जन्म कर्मसे हुये नाम लोकोंमें प्रसिद्ध हैं,उनको लज्जा छोड निस्पृही होकर गाता फिरै ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भजन करनेसे प्रेमलक्षणा भक्ति योगको प्राप्त होनेसे उसकी संसारसे न्यारीही गति होजाती है, ऐसा जिसका आचरण है और भगवान् वासुदेवके नाम कीर्त्तनसे अनुराग बढने और चित्त अति कोमल होनेसे वह भक्त भगवान्‌को जीत लेतेहैं, तब उनकी यह दशा हो जाती है कि, कभी भगवान्‌को अपने वशमें जानकर हँसते हैं और कभी इतना समय व्यर्थ गया, यह जानकर रोते हैं, कभी अति उत्कण्ठासे पुकारते हैं, कभी आनंदमें मग्न हो उच्च स्वरसे गाते हैं,अरु कभी नाचते हैं, इस प्रकार अलौकिक उन्मत्तोंकेसी चेष्टा करते हैं, जैसे मतवाले अज्ञानी पुरुष करते है ॥ ४० ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ज्योति, सब प्राणी मात्र, दिशा, वृक्ष, नदी, सबको हरिहीका शरीर जाने, अनन्य चित्तहोकर प्रणाम करै, यह वैष्णवोंके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ यदि कोई कहै कि, यह धर्म तो योगीश्वरोंकोभी दुर्लभ है, अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त नहीं होसक्ता, सो एक नाममात्रका कीर्तन करनेसे एकही जन्ममें कैसे होसक्ता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, प्रेमलक्षणा भक्ति और प्रेमाश्रय भगवत् स्वरूपकी स्फूर्ति और गृहादिकोंमें वैराग्य, यह तीनों हरिके भजनकर्त्ता पुरुषको एकही समय होते हैं, जिस प्रकार भोजन करनेसे सुख, पुष्टि, पेट भरना, भूंखकी निवृत्ति यह तीनों एकही कालमें ग्रास विषे होती है ॥ ४२ ॥ फिर भगवान्‌के प्रसादसे कृतार्थ होता है सो कहते हैं—इस प्रकार जब पुरुष हरिचरणारबिन्दका नित्य भजन करै, तो उसे प्रेमलक्षणाभक्ति तथा वैराग्य, और साक्षात् भगवत् स्वरूप ज्ञान तीनों होते हैं,

तब पुरुष परमशान्तिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ यह सुनकर राजा जनकने पूछा कि, हे मुनिश्रेष्ठ ! वैष्णव मनुष्योंके बीचमें कैसे होते हैं, किस धर्मके विषे स्थित कैसा स्वभाव, कैसा आचरण, कैसा बोलना, और कैसे चिह्न हैं ? जिससे भगवान्‌का प्रिय होता है, सो कृपापूर्वक संपूर्ण मेरे आगे वर्णन करो ॥ ४४ ॥ इसका उत्तर हरिनामा योगीश्वर तीन श्लोकोंसे देते हैं कि, जो अपनेको सब प्राणीमात्रमें ब्रह्मस्वरूपमें स्थित देखे और ब्रह्मरूप अपनेमें सर्व प्राणीमात्रको देखै, सो उत्तम भागवत है ॥ ४५ ॥ ईश्वरमें प्रेम करै, भगवान्‌के भक्तोंसे मित्रता करै, मूर्खोंपर कृपाकरै, और शत्रुओंकी उपेक्षा करै, वह मध्यम वैष्णव है ॥ ४६ ॥ भेदबुद्धिसे केवल प्रतिमाहीमें श्रद्धा रखता है और जीवोंमें तथा भक्तोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं है, वह प्राकृत भक्त है ॥ ४७ ॥ अब आठ श्लोकोंमें उत्तम वैष्णवोंके लक्षण कहते हैं, जो इन्द्रियोंसे विषयोंको भोग करते हैं, परन्तु न किसीसे द्वेष है, न प्रीति है, सब वस्तुमात्रको ईश्वरकी मायासे जानते है, सो भक्तोंमें उत्तम हैं ॥ ४८ ॥ देहके संसारी धर्म, जन्म, मरण, इन्द्रियोंको कष्ट, प्राणोंको भूँख, मनको भय, बुद्धिको तृष्णा, इन संसारके धर्मोंसे जो मोह न पावैं और निरंतर भगवान् हरिका स्मरण करैं सो वैष्णव भक्तोंमें मुख्य हैं ॥ ४९ ॥ जिसके मनमें काम, कर्म और वासना न उत्पन्न हो, चित्त केवल भगवान् वासुदेवके स्वरूपमेंही वसता रहै, सो वैष्णवोंमें उत्तम है, इन तीन श्लोकोंमें भक्तोंके आचरणको उत्तम कहा ॥ ५० ॥ जिसके इस देहमें कुल, तप, वर्ण, आश्रम और जातिका अभिमान नहीं है; सो भगवान्‌का अतिप्यारा भक्त है ॥ ५१ ॥ जिससे चित्त और आत्मामें अपनी पराई बुद्धि नहीं और सब प्राणीमात्रमें समान दृष्टि होकर शान्त हो सो वैष्णवोंमें उत्तम है ॥ ५२ ॥ त्रिलोकीके राज्यके लिये भगवान् वासुदेवमेंही जिनका चित्त है और जो देवताओंसे दुर्लभ भगवान्‌के चरणकमलके भजन विना अर्द्धक्षण लवमात्रभी नहीं व्यतीत करते, सो वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इनको ऐसा दृढ ज्ञान है कि, भगवान् वासुदेवके चरणोंसे अधिक और कुछ सार नहीं ॥ ५३ ॥ यदि विषयके संगसे और कामसे संतापितहुए भक्तोंके मन चंचल होयँ तो क्या ? इसपर कहते हैं कि, हरिसेवामें सुख माननेवालेको तो मन नहीं चलायमान हो, परन्तु अनंत पराक्रम भगवान् वासुदेवके चरणकी शाखारूप अंगुलियोंके नखरूप मणिकी चन्द्रिकासे सब कामादि ताप दूर होनेसे भक्तके हृदयमें ताप उत्पन्न नहीं होता, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे सूर्यका ताप दूर होजाता है और भी मुख्यलक्षण कहते हैं ॥ ५४ ॥ केवल नाम मात्रके लेतेही सम्पूर्ण पापोंके समूहका नाश करनेवाले साक्षात् भगवान् वासुदेवको हृदयमेंसे न त्यागै वही वैष्णवोंमे उत्तम है, क्योंकि इनसे प्रेमडोरीसे हरिके चरणकमल हृदयमें बाँध रक्खे हैं ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-माया, मायासे तरन, ब्रह्म कर्म यह चार।
इनको उत्तर देत अब, योगेश्वर सुविचार ॥ १ ॥

माया और मायासे तरनेका उपाय तथा ब्रह्मकर्म इन चार प्रश्नोंका उत्तर ऋषभदेवके पुत्र मुनि तीसरे अध्यायमें कहैंगे, राजा जनकजी बोले कि, हे भगवन्! परमात्मा ईश्वर विष्णुकी मायाको मैं जानना चाहताहूं सो कृपापूर्वक तुम मुझसे कहो, जो माया बडे जाननेवालोंकोभी मोहित कर लेती है ॥ १ ॥ यदि तुम कहो कि, उक्त (जिनको प्रथम कह आये हैं) लक्षणवाला भक्त होकर कृतार्थ होय तो बहुत परिश्रम करके क्या करैंगे? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, मरणधर्ममें संसारके तापसे अत्यन्त ताप होताहै, उस तापकी औषध हरिकथारूप अमृतको तुम्हारे वचनों द्वारा पीनेसे मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ ॥ २ ॥ यह सुनकर अंतरिक्षनामा योगेश्वर बोले कि, हे राजन्! आदिपुरुष भगवान् सब प्राणीमात्रके कारण अपने अंशभूत जीवोंको मोक्षके अर्थ पंचमहाभूतोंकी शक्तिसे, बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राण और शरीर उत्पन्न करते हैं. सो शक्ति मायाका रूप है ॥ ३ ॥ इसप्रकार पंचमहाभूतोंसे सृष्टि रच सम्पूर्ण प्राणियोंके मध्यमें भगवान् अंतर्यामी रूपसे प्रविष्ट होकर एक प्रकार मन और दश इन्द्रियरूपसे जीवोंको भिन्न भिन्न विषयभोग कराते हैं ॥ ४ ॥ तब जीवात्मा अंतर्यामीसे प्रकाशित इन्द्रियोंसे विषयभोग करते मायारचित शरीरको आत्मा मान उसी शरीरमें आसक्त होते हैं ॥ ५ ॥ यह जीव कर्मेन्द्रियोंसे वासनासहित कर्म करते हैं और इन्हीं कर्मोंसे सुख दुःख रूप फलको भोग करते संसारमें भ्रमण करते हैं, परन्तु मोक्ष नहीं होते, यह परमेश्वरकी माया है ॥ ६ ॥ इस भाँति अनेक क्लेशयुक्त कर्ममार्गमें चलते जीवात्मा पराये वश होकर महाप्रलयतक जन्म मरणको प्राप्त होतेहैं ॥ ७ ॥ अब प्रलय कहते हैं कि, पंचमहाभूतोंके नाशका काल जब निकट आता है, तब आदि अंत रहित कालमें लीन करनेको इस स्थूल सूक्ष्म प्रपंचको खैंच लेते हैं ॥ ८ ॥ अब नाशका कारण कहते हैं, पहले पृथ्वीमें सौ १०० वर्षतक अतिदारुण अनावृष्टि होगी, पीछे उस कालमें बडी उष्णतासे सूर्य तीनों लोकोंमें तपैगा ॥ ९ ॥ और पाताल तलसे आरंभ होकर जलाताहुआ ऊंचेको शिखाकिये अग्नि, वायुसे प्रेरा हुआ चारोंदिशाओंमें बढैगा ॥ १० ॥ इसके उपरान्त सांवर्त्तकनाम प्रलयकालके मेघगण सौ १०० वर्षतक हाथीकी सूंडके समान धारोंसे वर्षैंगे, तब उस जलमें यह ब्रह्माण्ड लीन होजायगा ॥ ११ ॥ हे राजन्! जैसे अग्नि काष्ठ न हो तो शुद्ध अग्निमें मिलजाती है, इसीप्रकार ब्रह्माण्डरूप शरीरवाला विराट्पुरुष ब्रह्माण्डरूप अपने शरीरको छोडकर सूक्ष्म परब्रह्ममें प्रवेशकर आताहै ॥ १२ ॥ पृथ्वीका गुण गंध है, उसको प्रलयाकारकी पवन हरलेती है, तब पृथ्वी गुणरहित होकर जलमें लीन होजाती है, पीछे जलके गुणरस को वही पवन सोख लेता है, तब जल तेजमें लीन होजाता है ॥ १३ ॥ प्रलयकालके अंधकारसे रूपरहित हो तेज वायुमें लीन होजाता है, पीछे आकाशसे स्पर्श गुण हरजा-नेसे वायु आकाशमें लीन होजाता है, इसके उपरान्त आकाशके गुण शब्दको कालरूप

ईश्वर हरलेते हैं, तब आकाश तामसाहंकारमें लीन होजाता है ॥ १४ ॥ फिर इन्द्रियें और बुद्धि राजसाहंकारमें लीन होती हैं, मन इन्द्रियोंके देवताओं सहित सात्विक अहंकारमें लीन होते हैं, हे राजन् ! इसीप्रकार तामस, राजस और सात्विक यह तीनो गुणोंका कार्य इन्द्रियादिक सहित अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होता है और वह महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन होता है ॥ १५ ॥ सात्विक, राजस, तामस, तीनों गुणयुक्त उत्पत्ति पालन और प्रलय करनेवाली यह भगवान्‌की माया है, सो मैंने तुमसे इसका रूप वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार अति दयायुक्त मुनिको देख इस संसारकी मायासे तरनेका उपाय राजा जनक पूँछनेलगे, कि यह ईश्वरकी माया अजितेन्द्रियोंको अति दुस्तर है, इसलिये देहाभिमानी भी जिसप्रकार इसे सुख पूर्वक तरसके सो हे महाऋषि ! वोही उपाय तुम मुझे बताओ ॥ १७ ॥ तब प्रबुद्ध नाम चौथे योगीश्वर बोले कि, हे राजन् ! भगवान् वासुदेवकी भक्ति बिना मायाके तरनेका और उपाय नहीं है, यह जान साधन सहित भक्तिको वर्णन करते हैं, पहले वैराग्यसे गुरुओंके निकट जाय, सो चार श्लोकोंमें कहते हैं हे राजन् ! स्त्री पुरुष मिलकर अपने सुखको और दुःख दूरकरनेके कर्मोंका आरंभ करते हैं, और फिर उन कर्मोंके फलमें दुःखही देखते हैं ॥ १८ ॥ कर्मके साधनसे धनादिक मिलकर भी सुख नहीं देते, इसपर कहते हैं कि, नित्य दुःखदायी उसपर भी दुर्लभ, अपनी मृत्युकारक धन, गृह, पुत्र, बंधु और पशुओंके पायेसे क्या सिद्धि है ? यह तो सब मिथ्याहै ॥ १९ ॥ इसीप्रकार कर्मोंसे उत्पन्न हुए परलोकको भी मिथ्या जानै, जिसमें अपने समानसे ईर्षा, अधिककी निन्दा, स्वर्गसे गिरनेकाभय, इतने दुःख स्वर्गके विषे भी हैं, जैसे थोडी भूमिके राजाओंको समान देखकर ईर्षा अधिककी निन्दा और चक्रवर्त्ती राजासे भय इत्यादि दुःख होते हैं ॥ २० ॥ इसलिये अपना उत्तम कल्याण चाहे तो भक्तिपूर्वक गुरुकी सेवा करै, गुरुके लक्षण कहते हैं, मुख्य तो वेदका अर्थ अतिश्रेष्ठ जानताहो, जिससे कि, सब संदेह दूर करसकै और परब्रह्म भगवान्‌के स्वरूपको जानै, जो आप ब्रह्मको न जाने तो औरको कैसे ज्ञान देगा ? अतिशांत रूपहो, क्योंकि ब्रह्मज्ञान उसेही होगा जो पुरुष शांत होगा ॥ २१ ॥ भक्तोंको आत्माके देनेवाले परमात्मा भगवान् हरि जिन वैष्णवधर्मसे संतुष्ट होते हैं, उन धर्मोंको गुरुको आत्मा और इष्ट जानकर भक्तजन गुरुकी निष्कपट सेवा करनी सीखै ॥ २२ ॥ पहले तो संपूर्ण वस्तुओंमें मनको चलायमान न करै, इसके उपरान्त सत्संग करै, फिर सब प्राणियोंमें और दीनों पर मन वचनसे दयायुक्त चित्तमें सबसे मित्रता करै और उत्तमोंमें नम्रता सीखै ॥ २३ ॥ बाह्य शौच सीखै, (मृत्तिकासे हाथ पाँव आदि धोवै) अनन्तर शौच सीखै (मनमें दंभ अहंकार न रक्खे) धर्मका आचरण, क्षमा यथायोग अध्ययन, ब्रह्मचर्य सीखै, वृथा वार्त्ता न करै, कुटिल न रहै, द्रोह न करै, सुख दुःखमें समान बुद्धि रक्खै ॥ २४ ॥ सब प्राणीमात्रमें समान चैतन्य आनन्दरूपसे ब्रह्मको

विचारै, नियंता समझकर ईश्वरको विचारै, एकान्तमें वास करै, गृहादिकोंमें अभिमान न करै, निर्जन मार्गमें पडेहुए वस्त्र अथवा वल्कलको पहरै, अधिक क्या कहैं, जो वस्तु प्राप्तहो उसीमें संतोष रक्खै औरकी इच्छा न करै ॥ २५ ॥ जो शास्त्र केवल भगवान्‌ही बतातेहैं, वह भागवत शास्त्रहै, इसे सुननेकी श्रद्धा रक्खैं औरकी निन्दा भी न करै और मन, वचन, कर्म इन तीनोंको दण्डदे, मनको तो प्राणायाम करके रोकै, वाणीका दण्ड यह है कि, मिथ्या वचन न कहै, कर्मका दण्ड चेष्टा न करै, सत्य वचन सीखै, अंतःकरण और सब इन्द्रियोंको निग्रह करै ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् हरिके जन्म कर्म गुणका श्रवण कीर्त्तन तथा ध्यान करै और भी जो कर्म करै, सो सब भगवान् वासुदेवमें अर्पण करै ॥ २७ ॥ यज्ञ, दान, तप, सदाचार और आपको जो प्रियवस्तु होय सो सब गंध पुष्पादिक और स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण यह सब परमपुरुष भगवान् वासुदेवको निवेदन करै और यह सब धर्म गुरुके पाससे सीखै ॥ २८ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आत्मा माननेवाले मनुष्योंसे मित्रता और स्थावर, जंगम प्राणियोंमें सेवा विशेष करके मनुष्योंकी और उनमें भी महात्मा तथा साधुओंकी सेवा करै ॥ २९ ॥ इन साधुओंका सत्संग करके भगवान् वासुदेवके पवित्र यशको परस्पर कहना सीखै, फिर ईर्षा छोड आपसमें प्रीति, सबसे संतोष, परस्पर सुख, समस्त दुःखोंकी निवृत्ति सीखै ॥ ३० ॥ संपूर्ण पाप समूहके नाश करनेवाले भगवान् हरिको आप निरंतर स्मरण करै तथा औरोंको स्मरण करावै, तब स्मरण, कीर्तन रूप भक्तिके करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तिसे रोमांच युक्त शरीर होजाता है * ॥ ३१ ॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेवका चिंतवन करनेवाले कभी रोवै हैं, कभी हँसैहैं, कभी आनन्दको प्राप्त होते हैं, कभी बालकोंके समान वचन कहते हैं, कभी नाचते हैं, कभी गाते हैं, कभी भगवान्‌के स्वरूपकी लीला करते हैं; कभी परमसुखमें मग्न होते हैं और कभी चुप चाप रहते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यह वैष्णवधर्म सीखकर प्राप्त हुई भक्तिसे नारायण परायण होकर सुखपूर्वक दुस्तर मायासे तरै ॥ ३३ ॥ यह सुनकर राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन्! तुमने कहा कि, नारायण परायण होकर मायाको तरै सो नारायणके तो तीन नाम सुने हैं, एक तो नारायण, दूसरा ब्रह्म, तीसरा परमात्मा सो इन तीन नामोंसे निर्विशेष वस्तु कहिये अथवा इनमें कुछ भेद है ? सो बिशेष करके मुझसे कहो, क्योंकि तुम ब्रह्मको भली-

---

* **शंका**–भक्ति करके उत्पन्न जो भक्तिहै, उस भक्तिसे भगवान्‌के भक्तोंका रोम रोम खडा होजाताहै, ऐसी रोमांच हुई देहको धारण करके भक्तजन भगवान्‌का भजन करतेहैं ऐसी उत्तमभक्ति कौनसी है?

उत्तर–भगवान्‌में बडी भक्ति जैसा अम्बरीष आदिक भक्त भक्ति करतेथे ऐसी भक्ति करके भगवान्‌के चरणकमलमें प्रीति उत्पन्न होय, उसी प्रीति करनेका नाम भक्तिसे उत्पन्न हुई भक्तिहै, ऐसी भक्ति करके भगवान्‌का भजन करैगा तब प्राणी मोक्षको प्राप्त होजायगा।

प्रकार जानते हो ॥ ३४ ॥ तब पांचवें पिप्पलायन ऋषि उत्तर देते हैं कि, हे राजा जनक ! जो इस विश्वके उत्पत्ति, पालन, तथा प्रलयके कारण हैं और आप कारण रहित हैं सो नारायण हैं, वही परमतत्त्व हैं. जो स्वरूप स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्तिमें एकरसहैं, सो ब्रह्म हैं, वही परमतत्त्व हैं, समाधिमें जिसको मुनीश्वर देखते हैं, उसीको ब्रह्म कहते हैं, वही परमतत्त्व हैं और जिससे देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, यह सब चैतन्यही कार्यको समर्थ होते हैं सो परमात्मा है वही भगवान्का स्वरूप है, इस प्रकार तीनों नामके भेदसे एकही तत्त्व, जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यदि तुम कहो कि, इससे ब्रह्मको विषय तत्त्वता प्राप्त हुई तो इसका निषेध करते हैं कि, इस ब्रह्मको वाणी, नेत्र, बुद्धि, प्राण और सब इन्द्रियें स्पर्श नहीं करसक्ते जैसे छोटी चिनगारी महाभूत अग्निको नहीं प्रकाश करसकती और न जला सक्तीहै, ऐसेही मन आदि जड इन्द्रिय सृष्टिके प्रकाश ब्रह्मको जड इन्द्रिय क्यों कर सकेगी ? तहाँ पूर्वपक्ष करते हैं कि, अहो !वेदतो ब्रह्मको बताते हैं, तो कहते हैं. वेद भी प्रगट नहीं कारण यह है कि, वेद स्वयंही कहता है कि, वाणी मन आदिसे जो पदार्थ जाने जाते हैं, जो इनके बोध न करनेवाले हैं, वह ब्रह्मको नहीं प्राप्त होसक्ते, इससे यह न समझलेना कि, वेद ब्रह्मको नहीं कहते किन्तु वेद कहते हैं, स्थूल भी ब्रह्म नहीं है, अणु भी ब्रह्म नहीं जो वाणीसे कहा जाय सो भी ब्रह्म नहीं इत्यादि इस निषेधकी जो अवधि हैं, वही ब्रह्म है, विना अवधिके निषेध नहीं होसक्ता ॥ ३६ ॥ फिर कहते हैं कि, जो सबका प्रमाण जहाँ वेदकी भी गम्य नहीं. तो ब्रह्मही न होगा, इसका उत्तर देतेहैं कि, ब्रह्म नहीं यह नहीं कहा जाता, जो कुछ स्थूल सूक्ष्म देखा जाताहै, सो सब ब्रह्मही भासताहै, इसलिये सब विश्वके कारण भगवान् वासुदेवही हैं(यहाँ पूछतेहैं कि) एक ब्रह्म बहुविध विश्वका कारण क्यों है(सो कहतेहैं कि)ब्रह्मकी शक्ति अनंत सामर्थ्यसे अनंत रूप है,पहले एक रूप होकर पीछे सत, रज, तम मायाके रूप हुये पीछे क्रियाशक्तिसे प्राण रूप हुये, फिर ज्ञानशक्तिसे महत्तत्त्व हुये, फिर अहंकार रूप हुये, जिसमें जीव बँधा है इसके उपरान्त इन्द्रियरूप हुये, फिर इन्द्रियोंके देवतारूप हुये, फिर कर्मोंके फल सुख दुःख रूप हुये, इसभाँति सब रूप ब्रह्मही हैं और सर्व रूप आपसे प्रकाशमान ब्रह्मकी स्थापना विषे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं ॥ ३७ ॥ तहाँ पूर्वपक्ष करते हैं, संपूर्ण रूप आपही हैं, तो यह सब विश्व तो मरताहै, फिर उत्पन्न होताहै, इससे ज्ञात होताहै कि, ब्रह्मका भी जन्म मरण होता है, इसके उत्तरमें कहते हैं कि, यह आत्मा न जन्म लेता है न मरता है न बढै है, न क्षीण होता है, इसकारण आगमापाई बालयुवादिक देहोंकी अवस्थाका साक्षी है और साक्षीको यह अवस्था नहीं लगती, केवल ज्ञानरूप है, यदि यहाँ कोई कहै कि, ज्ञान तो एकक्षणमें उत्पन्न होताहै,एकही क्षण रहता है और एकही क्षणमें नाशको प्राप्त होजाता है (सो कहते हैं) यह ज्ञान सदा रहताहै, जो कोई कहै कि, नील ज्ञान उत्पन्न हुआ, पीत ज्ञान गया, ऐसे ज्ञानकी भी उत्पत्ति और नाश सुना है इसके उत्तरमें कहते हैं कि, नील पीत इन्द्रियोंकी वृत्ति उत्पन्न होती हैं और वृत्तियोंकाही नाश होता है, ज्ञान तो एक

रूप है, यह प्राणके दृष्टान्त कहे गये ॥ ३८ ॥ इन्द्रियादि केवल हरिहीको दिखाती हैं, जैसे पशु, पक्षी, स्वेदज, वृक्षादिकोंमें सर्वत्र जहाँ जहाँ जीव जाताहै, उसी उसी स्थानमें इसके संग प्राण भी जाते हैं, परन्तु प्राण निर्विकारहैं, जैसे आत्मा भी निर्विकार रहताहै, (यहाँ शंकाहै कि) मनुष्यादिक देहोंमें आत्मा सब विकारसा क्यों दीखता है ? तो कहते हैं कि, जाग्रत्में इन्द्रिय गणके दोषसे, स्वप्नमें अहंकारसे, सब विकारसा दीखता है, सुषुप्तिमें तो इन्द्रियगण और अहंकारके लयसे निर्विकार आत्मा है, इससे विकारके हेतु लिंग शरीरकी उपाधिका अभाव है (यहां शंकाहै) सब नष्ट होनेसे आत्मा रहता है यह कैसे जाने ? सो इसका उत्तर यह है, कि जब जागताहै, तब जो सुषुप्तिमें आत्माको सुख अनुभव हुआ है उसका स्मरण होता है, आज मैं बहुत सुखसे सोया, यह ज्ञान अनुभवके स्मरण विना नहीं होता, इसलिये सुषुप्तिमें आत्माका अनुभव निर्विकार होता है, पर विषयका सम्बन्ध नहीं, इसलिये वह अनुभव प्रगट नहीं होताहै ॥ ३९ ॥ फिर पूछते हैं कि, इसका सुस्वप्नमें निर्विकार अनुभव होय तो संसार फिर क्यों होताहै, यदि कहो कि, इसकी अविद्या नहीं गई, उसकी वासनासे संसार होताहै, तो अविद्या कैसे जाय ? सो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जब गृह पुत्र धनादिकोंकी बासना छोडकर केवल भगवान् वासुदेवकी इच्छा करै, ऐसा करनेसे भक्ति बढती है उस भक्तिसे चित्तके गुणकर्मसे उत्पन्न हुए सब पाप दूर होजाते हैं, तब चित्त शुद्ध होकर प्रगट आत्मतत्त्वको प्राप्त करताहै, जैसे निर्मल दृष्टिके होनेसे सूर्यमण्डलका प्रकाश दीखता है ॥ ४० ॥ राजा जनक बोले कि, भक्ति तो कर्मयोगके अधीन है, इसलिये प्रथम मुझसे कर्मयोग कहो ? जिस कर्मके करनेसे शुद्ध होकर फिर कर्मका वेग दूर करके पुरुष निष्कर्म श्रेष्ठ ज्ञान पाताहै, जिससे सब कर्म निवृत्ति होय सो कर्मयोग कहो ? ॥ ४१ ॥ हे महाराज ! यही प्रश्न मैंने पिताके आगे जब सनकादिक आये थे, तब किया था, उन्होंने भी मुझे कुछ उत्तर न दिया इसका क्या कारण है, सो मुझसे कहो ॥ ४२ ॥ तब आविर्होत्र बोले कि, हे राजन् ! वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है वह कर्महै, जिसका निषेध है, वह अकर्म है और जिसके करनेकी आज्ञा है, वह न करै तो विकर्म कहाजाताहै, यह तीनोंभेद वेदहीको गम्य हैं, इसका निर्णय मनुष्योंको अशक्य है, इससे वेद साक्षात् ईश्वररूप है, पुरुषके वचनमें वक्ताका अर्थ जानना अति कठिन है, यहाँ पण्डित भी मोहको प्राप्त होते हैं, तब तुम बालक थे, इसलिये तुमसे न कहा ॥ ४३ ॥ वेदका तात्पर्य क्यों नहीं जानाजाता सो कहते हैं, यह वेद सब परोक्ष वाद है, अर्थ तो और भाँति होता हो उसके छिपानेको और भांति कहै, इसे परोक्षवाद कहते हैं, उसी प्रकार वेदमें कर्म छुटानेका कर्म कहाहै मूर्ख उसी कर्मको जानता है, यहाँ पूछँते हैं कि, कर्मका तो स्वर्गादिक फल सुना जाता है, फिर कर्मको त्यागकर फल कैसे जानै ? इसका उत्तर कहते हैं कि, यह जो कर्म कारण कहे हैं, सो मूर्खोंकी शिक्षाके लिये हैं, नहीं तो धर्ममें किसीकी भी प्रवृत्ति नहीं हो, जैसे बालकोंको औषधी खिलानी चाहिये, तब लड्डू दिखाइये, और दीजिये उस लड्डूके

लोभसे वह बालक औषधी पीलेगा, तब औषधीका यह फल नहीं जो लड्डू खाय, औषधीका तो यही फलहै कि, आरोग्य कर देगी, उसी प्रकार सब जीव विषयी हैं, लोभी हैं उनको स्वर्गादिकका लोभ दिखाय कर्ममें प्रवृत्ति करते हैं, पीछे इससेभी निवृत्तिका फल उत्तम है, इस ज्ञानसे उन कर्मोंको छुडाते हैं, यह वेदका तात्पर्य है ॥ ४४ ॥ जो कर्म त्यागनाही मुख्य है, तो पहलेही कर्मत्याग कीजिये, तो कहते हैं कि, आप अज्ञहो, अजितेन्द्रिय हो, जो वेदोक्त कर्म न करै तो कर्मके बिना करै अधर्मसे मरकर फिर मृत्युहीको प्राप्त होता है और सदा कालकेही मुखमें रहता है ॥४५॥ इसलिये वेदोक्तही कर्म करै, निषिद्ध कर्म न करै; फिर कर्मके फलकी इच्छा न रक्खै, जो कुछ कर्म करै, सो सब ईश्वर भगवान् वासुदेवमें ही समर्पण करै तब पुरुष मोक्षरूप सिद्धिको प्राप्त हो. (तहाँ पूर्वपक्ष कहते हैं) कि, अहो वेदविषे जो फल सुनेजाते हैं, जैसे औषध पिलानेके लिये बालकोंको लड्डू देता है, उसी प्रकार कर्म करनेसे फल अवश्य होगा. तो कहते हैं कि, यह मत कहो, कर्मोंमें प्रीति उपजानेका फल सुनाना है, जैसे औषध देनेके समय बालकोंको मीठी चीज दिखाते हैं. अब वैदिककर्म कहकर आगमकी विधि कहते हैं ॥ ४६ ॥ जो कोई निर्विकार जीवकी अहंकारकी गाँठि छुडाना चाहै सो आगम और वेदोक्तके प्रकारसे सबकी पूजा करै ॥ ४७ ॥ सो पूजाकी विधि कहते हैं कि, जब इस पुरुषपर ईश्वर अनुग्रह करै, तो सद्गुरु मिलते हैं, फिर उन गुरुओंसे पूजाकी विधि जाने तब आपको जैसी मूर्त्ति रुचे, उसी प्रकार मूर्त्ति बनाकर भगवान् वासुदेवकी पूजा करै ॥ ४८ ॥ सो विधि कहते हैं कि, पहले तो स्नानादिक करके पवित्र हो और फिर उस मूर्त्तिके सन्मुख बैठ प्राणायाम और भूत-शुद्धि कर देहको शुद्ध करै, इसके उपरान्त उत्तम न्यासोंको कर अपनी रक्षाकरके भगवान् हरिकी पूजा करै ॥ ४९ ॥ पुष्पादिक द्रव्यको जंतुआदि शोधन कर, भूमिको संमार्जन और मनको सावधानकर, मूर्तिको स्नानादिक कराय आसनको प्रोक्षणकर प्रतिमादिक विषे अथवा हृदयमें यथाप्राप्त उपचारोंसे पूजा करै ॥ ५० ॥ पाद्य, अर्घ्य इत्यादि सब विधिपूर्वक देनेके उपरान्त पहले अपने हृदयमें पूजित भगवान् वासुदेवको संनिधापन मुद्रासे दृढ धर सावधान होकर ध्यान करै, इसके पीछें हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, मंत्र और मूलमंत्रसे पूजा करै ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त अंग, हृदयादिक, उपांग, सुदर्शन आदि पार्षद परिवार, देवतासहित उस मूर्त्तिको पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, उपचार कर ॥ ५२ ॥ गंध, पुष्प, अक्षत, माला, धूप, दीप नैवेद्यसे पूजा करै फिर स्तोत्रोंसे स्तुतिकर नमस्कार करै और अक्षत सहित उस मूर्त्तिको तिलक करके पूजै और समय न पूजै. क्योंकि अक्षतसे भगवान् हरिकी और केतकीसे महादेवजीकी पूजा निषिद्ध है ॥ ५३ ॥ और फिर मूर्त्तिरूप भगवान् वासुदेवका ध्यान करके पूजा करै, इसके उपरान्त उस निर्माल्यको मस्तकपर चढा, देवताका स्वरूप हृदयमें धारण कर पूजीहुई मूर्त्तिको विसर्जन करके अपने स्थानमें रक्खै ॥ ५४ ॥ इसप्रकार

अग्नि, सूर्य, जल, आदिमें स्थित अतिथिमें, हृदयमें आत्मारूप ईश्वर भगवान् वासुदेवकी जो पुरुष पूजा करेगा सो थोडेही कालमें संसारी बंधनोंसे छुटकर मुक्त हो जायगा, यह आगमकी विधि वर्णन की ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम—शुकसागरे एकादशस्कन्धे
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा-इस चौथे अध्यायमें, द्रुमिल नाम योगीश।
लीला हरि अवतारकी, कहत धरनिधरशीश ॥ १ ॥

राजा जनक बोले कि, हे भगवन् ! आपने प्रथम कहा कि, भगवान् हरिकी मूर्त्तिको जैसा मनमानै वैसी बनाकर पूजा और स्तुति करै, सो हमको न तो मूर्त्तिका ज्ञान है, न गुण कर्मका ज्ञान है, जो स्तुति करैं इसलिये तुम उनके अवतार और कर्म कहो कि, भगवान् वासुदेवने जो जो जन्म लिये हैं और जो जो कर्म किये हैं और अब करते हैं और जो आगेको करैंगे सो सब वर्णन कीजिये × ॥ १ ॥ राजा जनकने जब इसप्रकार पूँछा, तब द्रुमिल योगीश्वर बोले कि, जो पुरुष अनंतरूप भगवान् वासुदेवके चारित्रको गिनना चाहै वह अज्ञानी है, क्योंकि पृथ्वीके परमाणुओंको तो बहुत कालतक परिश्रम करके कोई बुद्धिमान गिन भी सकता है, परन्तु अनंतशक्तिका आश्रय भगवान् वासुदेवके गुणोंको कोई नहीं गिन सक्ता ॥ २ ॥ परन्तु तोभी संक्षेपसे उनके कितने एक गुण वर्णन करताहूं कि, जब स्वयं भगवान् वासुदेव पंचमहाभूत उत्पन्न कर ब्रह्माण्डरूप नगर बनाय उसमें लीलापूर्वक प्रविष्टहुए, इसलिये इनका आदिदेव नारायण पुरुष नाम हुआ ॥ ३ ॥ यह तीन लोककी स्थापना जिस पुरुषको देता है और जिसकी इन्द्रियोंसे सब देहधारियोंकी इन्द्रियें होतीं हैं, जिसके स्वरूपसे भूत सत्त्वगुणसे ज्ञान होता है, प्राणसे देहशक्ति और इंद्रियशक्ति तथा चेष्टा इत्यादि यह सब होती हैं, इससे ज्ञात होता है कि, विश्वका कर्त्ता भी कोई है ॥ ४ ॥ प्रथम इस विश्वके उत्पन्न करनेको रजोगुणसे ब्रह्मा हुए सतोगुणसे यज्ञके फलदाता ब्राह्मण और धर्मके रक्षा करनेवाले विष्णु हुए, तमोगुणसे संहार करनेको रुद्र हुए, इसप्रकार प्रजाओंके बीच जिससे निरंतर जन्म, पालन और नाश होता है वही आदि पुरुष हैं ॥ ५ ॥ वही

× **शंका**-राजा जनक बडे ब्रह्मके जाननेवाले थे, ऐसे ब्रह्मज्ञानी होकर ब्रह्मकी कथाको त्यागकर मुनिराजसे सगुण अवतारकी कथा क्यों बूझी ? क्योंकि ब्रह्मज्ञानी महात्मा पुरुष सगुणमें प्रीति नहीं करते ॥

उत्तर-तीन लोकमें जो चर अचर जीव हैं, उन सबका बीज बिना जन्म नहीं होसक्ता किसीका भी जन्म आजतक बीज बिना नहीं सुना, तैसेही ब्रह्मज्ञानका बीज सगुण ब्रह्मका कीर्त्तन है, सगुणके कीर्त्तनसे ब्रह्मज्ञान होता है, इसलिये राजा जनकने ब्रह्मज्ञानी होकर सगुण भगवान्के अवतारकी कथा बूझी ॥

आदिदेव दक्षकी बेटी मूर्ति नाम धर्मकी स्त्रीके विषे ऋषियोंमें श्रेष्ठ अतिशान्तस्वरूप नरनारायण अवतार हुआ और जिससे कर्म नष्ट न हो, ऐसा निष्कर्म ज्ञान बनाया और आपने भी उसीके अनुसार कर्म किया, सोही श्रेष्ठ ऋषियोंसे सेवित जिनके चरण सो भगवान् नरनारायणरूपसे बद्रिकाश्रममें आजतक विराजमान हैं ॥ ६ ॥ हे महाराज ! इससमय एक भगवान् वासुदेवके अवतारोंका बतानेवाला परमशक्ति दिखानेवाला इतिहास कहते हैं, सो आप मन लगाकर श्रवण करें. एक समय नर नारायणको परमशान्त तप करते देख देवराज इन्द्रने मनमें विचार किया कि, यह मेरा स्थान तप करके लेना चाहते हैं, यह विचार तपस्यामें विघ्न करनेके लिये परिवारसहित कामको भेजा और भगवान् वासुदेवकी महिमाको नहीं जाननेके कारण कामदेव उनके स्थानमें अप्सराओंके गण वसंत और मंद वायुसहित जाकर स्त्रियोंके कटाक्षरूप बाणोंसे उनको मारने लगा ॥ ७ ॥ तव गर्वरहित नरनारायण इन्द्रका किया हुआ अपराध जान शापके भयसे काँपतेहुए कामादिक देवता, ओंसे हँसकर बोले कि, हे कामदेव देवांगनाओ ! भय मत करो, हमारा आतिथ्य ग्रहण करके हमारे आश्रमको सुवास करो, क्योंकि जिस स्थानपर अतिथिका आदर सन्मान नहीं होता वह स्थान शून्य कहलाताहै ॥८॥ हेराजन् ! अभयके देनेवाले श्रीभगवान् हरिके इस प्रकार कहनेपर लज्जासहित और नम्र शिर हो, कामादिक देवता दयासंयुक्त श्रीनारायणसे बोले कि, हे प्रभो ! तुम्हारा इसप्रकार कहना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं, क्योंकि तुम मायासे परे हो; निर्विकार हो, आत्माराम और धीर मुनियोंके समूह तुम्हारे चरणकमलको नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ हमारे अपराधका आचरण भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि हमारा स्वभावही ऐसा है, तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुष देवताओंके स्थानको उल्लंघनकर आपका जो परमधाम वैकुण्ठ है उसमें जाते हैं, उनको इन्द्रादिक देवता बहुत विघ्न करते हैं तुम्हारी सेवा नहीं करनेवाले दूसरे पुरुष कि, जो यज्ञमें देवताओंको उनके भागरूप कर देते हैं, उनको विघ्न नहीं करते, परन्तु जिसके तुम रक्षक हो, वह तुम्हारा भक्त निश्चय विघ्नोंके माथेपर चरण धरकर तुम्हें प्राप्त होजाता है ॥ १० ॥ अभक्तोंको काम क्रोधादिक सब वशमें करलेते हैं, उनमें जो जो हमारे वश होते हैं, सो भोग भी करते हैं और जो क्रोधके वश हैं, वह तो अतिमूर्ख हैं. क्षुधा, तृष्णा, शर्दी, गर्मी, वर्षा, पवन, जीभका रस और शिश्नका रस ये रूप हैं, उनको लाँघकर जो पुरुष निष्फल क्रोधके वशीभूत होजाते हैं, वह अपार समुद्रको पार उतरकर गायोंके खुरोंके गढोंमें डूब जाते हैं,यह लोग शाप आदि देकर अतिकठिन तपस्याको वृथा छोड देते हैं, न तो मोक्षके अर्थ न भोगके अर्थ है ॥ ११ ॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेवने कामादिककी स्तुति सुन अपने योगबलसे उत्पन्न अद्भुत रूपवाली सेवा करती आभूषणों सहित स्त्रियें कामादिकको दिखाईं ॥ १२ ॥ वह देवताओंके सेवक मूर्तिमान लक्ष्मीके समान उन स्त्रियोंको देख, उनकी गंधसे मोहित हो, रूप गुण उदारतासे इनकी शोभा दर्प सब जाता रहा ॥१३ ॥

तब देवोंके देव प्रभु भगवान् वासुदेव हास्यकर नम्र हुए कामादिक देवताओंसे बोले कि, इन स्त्रियोंमेंसे किसीको तुम वरो, यह सुनकर देवताओंने कहा कि, हम तुच्छ हैं, कहाँ ऐसी स्त्रियें, कहाँ हम, तब नारायण बोले कि, तुम्हारे समान जो हो उसे ग्रहण करो, तव कामादिक देवताओंने फिर कहा कि, हे महाराज ! इनमें हमारे समान एक भी नहीं है, तब भगवान्ने कहा कि, एक तो तुम लो, तुम्हारे स्वर्गका भूषण होगी ॥ १४ ॥ तव कामादिक देवता भगवान् नर नारायणकी आज्ञा मान अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्व्वशीको ले, प्रभुको नमस्कारकर स्वर्गको चलेगये ॥ १५ ॥ स्वर्गमें जाय देवराज इन्द्रको प्रणामकर सभामें सब देवताओंके सुनते नारायणका बल कहा, तब इन्द्र अति आश्चर्यमान अत्यन्त भयको प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ इन्हीं प्रभुने हंसावतार लेकर संपूर्ण आत्मयोग कहा, फिर एक दत्तात्रेय, एक सनकादिक एक भगवान् ऋषभदेव हमारे पिता यह सब विष्णुरूपही अपने अंशसे जगत्का कल्याण करनेको प्रगट हुए थे और इन्हीं विष्णुने: एक समय हयग्रीव अवतार ले, मधुदैत्यको मार वेदोंका उद्धार किया था ॥ १७ ॥ एक समय प्रलयके समुद्रमें मत्स्यरूप धारण कर मनु, पृथ्वी और औषधियोंकी रक्षा की थी, वाराह अवतार ले हिरण्याक्षको मार जलसे पृथ्वीका उद्धार किया, कूर्मावतार ले अमृत मथनेको अपनी पीठपर मंदराचल पर्वत धारण किया, इसके उपरान्त दुःखित होकर शरण आये-हुए गजेन्द्रको ग्राहसे छुडाया ॥ १८ ॥ एक समय वालखिल्य ऋषि कश्यपजीके लिये काष्ठलेने गयेथे, सो वहाँ गायके खुरके गढेमें पानी भर रहाथा उसमें डूबने लगे, तब इन्होंने बहुत स्तुति करी, वहाँसे आत्मविद्यामें तत्पर ऋषियोंको छुडाया और वृत्रासुरके मारनेसे जो ब्रह्महत्या हुई थी, उससे देवराज इन्द्रको छुडाया, अनाथ देवताओंकी स्त्रियें असुरोंके घरमें रुक रहीथीं, उन सबको अनेक अवतार लेकर छुडाया, फिर नृसिंहरूप धारणकर भक्तोंको अभयदान देनेके लिये हिरण्यकश्यपका वध किया ॥ ॥ १९ ॥ मन्वन्तरोंमें देवता और दैत्योंके संग्राममें देवताओंके लिये अपनी कलासे दैत्यपतियोंका संहार किया, सपूर्ण लोकोंकी रक्षा करी और वामनरूप धरकर राजा बलिसे भीखके मिष इस पृथ्वीको लेकर देवताओंको देदी ॥ २० ॥ परशुरामका अवतार ले इक्कीसवार पृथ्वीको क्षत्रियरहित किया है यह कुलके नाशको भृगुवंशमें अग्निरूप प्रगट हुए. उन्होंनही फिर रामावतार लेकर समुद्र बाँधा और लंकापुरीमें स्थित परिवारसमेत राक्षसराज रावणका वध किया, जिनकी कीर्त्ति संसारके पाप नाश करती है; सोई रघुनाथजी अब विद्यमान हैं ॥ २१ ॥ भूमिका भार उतारनेके लिये अजन्मा आप यादव कुलमें जन्म ले; जो देवताओंसे भी न करे जायँ ऐसे कर्म करैंगे. पीछे जो यज्ञादिक करनेके अयोग्य दैत्योंको बौद्धरूप धर मोहित करेंगे; इसके उपरान्त कलियुगके अंतमें कल्कि-अवतार लेकर शूद्र जातिके राजाओंको मारेंगे ॥ २२ ॥ हे महाराज ! महाभुज ! इस प्रकार जगत्पति भगवान् वासुदेवके जन्म और कर्म अनंत हैं, मैंने तो संक्षेपसे वर्णन किये ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा–पंचम हरिकी भक्तिबिन, नरकी गति है कौन। सो सब वर्णन करतहौं, पूजन सेवन जौन ॥ १ ॥

राजा जनक बोले कि; हे ब्रह्मन् ! जिनकी कामना नहीं छूटी वह पुरुष बहुधा भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते उनकी क्या गति होगी ? सो कृपापूर्वक आप हमसे बर्णन कीजिये ॥ १ ॥ तब आठवें चमसऋषिने उत्तर दिया कि; हे राजन् ! पहले परमपुरुषके मुखद्वारा सतोगुणसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए, भुजाओंसे सतरजसे क्षत्रिय हुए, ऊरू द्वारा रजोगुण तमोगुणसे वैश्य हुए, चरण द्वारा केवल तमोगुणसे शूद्र हुए अर्थात् आश्रम सहित भिन्न २ वर्ण उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ अपना जन्मदाता पुरुष ईश्वरका इन वर्णोंके मध्य जो भजन नहीं करता और जान बूझकर निरादर करता है, वह पुरुष वर्ण आश्रमसे भ्रष्ट होकर अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ कोई एक पुरुष इसप्रकारके हैं, जिनको हरिकथा सुनना बहुत कठिनहै, किसी किसीको हरिका कीर्तन बहुत कठिन हैं, इसप्रकार कितनेएक द्विजलोग और स्त्रियें तथा शूद्रादिक कि, जो भगवान् वासुदेवको न जाननेसे नहीं भजते, उनके ऊपर आप सरीखेही कृपा करते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यह यज्ञोपवीतरूप दूसरे जन्मसे और वेदाध्ययनसे हरिभजनके उत्तम अधिकारी हैं, परन्तु तो भी वेदके फलस्तुतिके वचनोंमें मोहित होकर जाननेपर भी भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते और कर्मोंमें आसक्त होरहे हैं, उन अर्द्धदग्ध लोगोंको सुधारनेका उपाय कोई न होनेसे आप सरीखे पुरुषोंको उनकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ कर्म करनेमें अकुशल मूर्ख अपनेको पण्डित माननेवाले अनम्र ऐसी मनोहर बातें कहते हैं कि, जिनमें मोह उत्पन्न हो वह यह है कि, यज्ञादिकोंका फल अक्षय होगा, न स्वर्गमें शीत है, न उष्ण है, न मलिनता है, न पराजय है और वचनसे उत्कंठित होकर कहतेहैं कि, हम अप्सराओंसे विहार करेंगे, यह कहतेहुए कर्ममें बँधे रहते हैं ॥ ६ ॥ उनको उस फलके भ्रमसे कर्महीमें आदर होताहै, उससे काम, क्रोध मदादिक वृद्धिको प्राप्त होते हैं और यह भी कहा है कि, रजोगुणसे राग द्वेष उत्पन्न होता है, उससे अभिचारके कर्मोंपर मन होता है, तब वह घोर संकल्पी, महातृष्णावाले सर्पके समान क्रोधी महाअभिमानी दुष्टस्वभावसे अधजले लोग नारायणके भक्तोंपर हँसते हैं ॥ ७ ॥ जो सदा स्त्रियोंकीही सेवा करते हैं, वृद्धोंकी सेवा नहीं करते, केवल मैथुनमेंही सुख माननेवाले अतिथिका पूजारहित घरोंमें रहकर मनके मनोरथवाले लोग कहा करते हैं कि, आज मैंने यह पाया यह मनोरथ फिर प्राप्त करूंगा और जो कदाचित् किसी देवताकी पूजा करें तो अपने स्वार्थके लिये पशुकी हिंसा करते हैं, न कुछ विधि न दक्षिणा न अन्न दान करैं ऐसे मूर्ख हैं, जो हिंसादोषको नहीं जानते ॥ ८ ॥ धन, ऐश्वर्य, कुल, विद्या, दान, रूप, बल और कर्मोंसे उनको गर्व उत्पन्न होता है, इससे मंदबुद्धि दुष्ट ईश्वर सहित साधु परमेश्वरके भक्तोंका निरादर करते हैं ॥ ९ ॥ यह दुष्ट पुरुष वेदके अर्थको नहीं जानते, वेद कहते हैं कि, यद्यपि सब देहधारियोंमें यह आत्मा

सदा आकाशकी भाँति व्यापरहा है और अपने प्रिय ईश्वरको फिर वेद प्रगट बताते हैं, परन्तु तोभी यह मूर्ख नहीं सुनते, अपने मनोरथोंकीही बातोंमें वाद विवाद करते हैं ॥ ॥ १० ॥ तहाँ पूर्वपक्ष कहतेहैं कि, स्त्री संभोग तो कहा है कि, रजस्वला होनेपर मैथुन करै देवताका बचा हुआ भोजन करै, फिर तुम क्यों निन्दा करतेहो ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, लोकमें स्त्री प्रसंग माँसभक्षण और मदिराका सेवन नित्यहै और विषयासक्तोंको अनुराग स्वभावहीसे प्राप्त है, फिर कुछ विधि नहीं, वस एक यही चाहिये और जहाँ विधि कही है तहाँ ऋतुकालके दिन स्त्रीसंग करै, यज्ञहीमें मांस मद्य ग्रहण करै और दिन न करै इस नियमसे करै, परन्तु दिनका निषेध किया है, इसे विषयी मूर्ख लोग नहीं समझते, जो कामी अरुचिसे अथवा द्वेषसे स्त्री प्रसंगादिक करै उनका यह नियमहै और जिनके यह कामना नहीं, उनका नियम नहीं वेदका अभिप्राय तो सब दिन छुडानेकाही है, उसे मूर्ख नहीं समझते * ॥ ११ ॥ धर्म करनाही धर्मका फलहै, क्योंकि धर्मानुष्ठान करनेसे परोक्षज्ञान (नहीं दीखने वाला ज्ञान) और तत्काल शांतिदायक अपरोक्ष ज्ञान दोनों प्राप्त होजातेहैं, ऐसे सुखदायक धनको यह पुरुष देहादिकके लिये घरोंमें वृथा खोदेतेहैं, हा न तो इसका विचार करते हैं और न शिरपर घूमतींहुई मृत्युकोही देखते हैं ॥ १२ ॥ और वेदका तात्पर्य नहीं जानते कि, ऋतुके दिनभी स्त्रीप्रसंग गर्भाधानहीको कहाहै कुछ यथेष्ट काम भोगको नहीं कहा और सुरापान भी नहीं कहाहै, आघ्राण कहाहै, पशुकी हिंसा देवताके लिये करै अपने लाभसे न करै, ऐसे शुद्ध धर्मको विषयकी आसक्तिसे न करै इस बातको यह मूर्ख नहीं जानते ॥ १३ ॥ जो इस धर्मको नहीं जानते सो असाधु हैं, अनम्रहैं, वैसेही अपनेको साधुकरके मानलेते हैं, बिश्वाससे पशुओंका वध करते हैं और कहते हैं कि, इसके करनेसे मनोरथ सिद्ध होगा, परन्तु ऐसा कहा गया है कि, इस जन्ममें उसका माँस यह खाते हैं, अगले जन्ममें वह इनका माँस भक्षण करैगा, इसलिये इसका नाम मांस है ॥

दृष्टान्त—बास्तवमें उसका तात्पर्य यह है, जैसे किसीका लडका खेलमें अत्यन्त मतवाला हो और वेश्याके घर दिन रात पडा रहता हो और पढनेमें उसकी रुचि न हो, तो उसके पिताको कहना चाहिये कि, तू प्रातःकाल उठकर तो वेश्याके घर जायाकर, फिर एक घंटाभर खेलाकर और जो तू प्रातःकाल वेश्याके घर नहीं गया और एक घंटाभर न खेला तो मैं तुझको बहुत मारूंगा, क्योंकि इन दोनों कामोंसे दो घंटेमें निश्चिंत होकर फिर अपना चित्त कहीं इधर उधर मत भटकाना और जो फिर भटकावेगा तो पिटैगा, यह वाक्य निवृत्तिका निरूपण करता है, इसीप्रकार वेद भी निवृत्तिका निरूपण करता है, प्रवृत्तिका निरूपण नहीं करताहै जो मनुष्य समीप आनेपर भी ऋतुस्नात भार्यासे प्रसंग न करै, तो गर्भहत्याका जो महापाप होता है, वही पाप उस मनुष्यको लगता है, अनेक श्रुतियोंके वचन तो यह है कि, मनमें कामना होनेपर भी स्त्रीके विषे अरुचि अथवा द्वेषादिक होनेसे उसके साथ प्रसंग न करै, ऐसे जानना ॥

अत्र मनुः-मां स भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १४ ॥

मृतक समान अपने और पुत्रादिकोंमें स्नेहसे बद्ध हो पराये भी देहोंमें विद्यमान अपने आत्मा ईश्वर हरिसे जो पुरुष द्वेष करते हैं, वह मरनेके पीछे नरकमें पडते हैं ॥ १५ ॥ जो अज्ञ हैं, वह ज्ञानीपुरुषोंकी कृपासे संसारसागरको तरजाते हैं और जो मध्यवर्ती हैं सो नरकमें गिरते हैं, अधिक क्या कहैं ? जो जो तत्त्वज्ञानको प्राप्त नहीं हुए, मूढताहीको प्राप्त हुए और अपने स्वार्थकेही लिये धर्म, अर्थ, कामादिक करे, वह पुरुष वारम्वार जन्ममरणको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष आत्मघाती व अशांत हैं, अज्ञानहीको ज्ञान मानते हैं और जो कृतकृत्य नहीं हुए, सो कालसे नष्ट मनोरथ हो दुःखही पाते हैं ॥ ॥ १७ ॥ और जो पुरुष भगवान् वासुदेवसे विमुख हैं, वह अतिश्रमसे गृह, पुत्र, मित्र, धन, संपूर्ण वस्तुको प्राप्त होकर इच्छा न रहनेपर भी नीच योनि अंधतममें पडते हैं * ॥ १८ ॥ राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! आपने जो सब त्यागकर केवल भगवान् नारायणकी भक्ति करनेको कहा सो यह भगवान् किस समयमें ? कैसे वर्णके ? कैसी आकृतिके ? कौनसे नामसे ? और किस विधिसे लोकोंमें पूजे जाते हैं सो मुझे भली भाँति समझाकर आप कहिये ॥ १९ ॥ तब करभाजन ऋषीश्वर नौवें प्रश्नका उत्तर देते हैं कि, हेराजन् ! सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चार युगोंमें नाना वर्ण, नाम,

---

* **शंका**-राजा जनकने मुनियोंसे भगवान्‌का भजन और सेवन आदि सब कर्म युग युगके अलग २ बूझे कि, सतयुगमें किस प्रकारका भजन सेवन होताहै और त्रेतामें और द्वापरमें और कलियुगमें किस किस प्रकारका भजन और सेवन होना चाहिये और मुनि भी चारों युगोंमें भिन्न भिन्न पूजन भजन आदि करतेहैं, यह बडा अनुचित कर्म है, किसलिये कि, शास्त्रमें भगवान् सर्वव्यापी निरंजन लिखा है, भिन्न भिन्न कर्म तो जीवोंके लिये होताहै, ईश्वरके नहीं होता यह बडी शंका है ॥

उत्तर-भगवान् तो भक्तवत्सल और दीनदयालु हैं, त्रिलोकीमें जो चराचर प्राणी हैं, उन सब प्राणियोंमें भगवान् किसी युगमें भी भिन्न भाव नहीं रखते, सबको एक समान मानते हैं, ऐसे कृपासिंधुहैं, परन्तु मनुष्योंमें अनेक प्रकारके जीवहैं, जितने मनुष्यके देहहैं उतनेही जीवहैं इसलिये सब जीवोंमें भगवान्‌की भक्ति अलग अलग होतीहै, सब युगोंमें कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है कोई किसी प्रकारकी भक्ति करता है और भगवान्‌के नाम और चरित्रोंका भी अन्त नहीं, जिस नामपर जिस प्राणीको भक्ति हुई उसी नामको जपने लगा, युग युगमें भगवान् उस अपने नाम जपनेवाले प्राणीकी रक्षा कैसे करते हैं ? जैसे गाय अपने वत्सकी रक्षा करती है और राजाजनकभी भगवान्‌के भक्तकी लीला करके उन्मत्त होरहेथे, भगवान्‌की भक्तिकी वृद्धि होनेके लिये युग युगमें भिन्न भिन्न भगवान्‌के नाम और सेवन बूझने लगे, कुछ भिन्न भाव मानकर नहीं बूझा ॥

आकार युक्त भगवान् केशव अनेक विधिसे पूजे जाते हैं ॥ २० ॥ सतयुगमें शुक्लवर्ण, चतुर्भुज, जटा धारण करे, वल्कल वस्त्र पहरे, काले मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्ष, दण्ड, कमण्डलु धरे, ब्रह्मचारीके रूपसे दर्शन देते हैं ॥ २१ ॥ उस युगमें मनुष्य सब शांत निर्वैर, सुहृदय, समदृष्टि, शम, दम और ध्यानसे देवताको पूजते हैं ॥ २२ ॥ उस कालमें इन नामोंसे भगवान् हरि गाये जाते हैं. हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा ॥ २३ ॥ त्रेतामें आरक्त, चार भुजा, तीन मेखला धारण करे, सुवर्णके समान केशवाले, वेदत्रयीमय मूर्त्ति और स्रुक् व स्रुवा आदि चिह्नोंको धारण करते हैं ॥ २४ ॥ जो अति धर्मात्मा वेदके ज्ञाता मनुष्य हैं, वे सर्व वेद रूप भगवान् वासुदेवका, तीनों वेदोंके कर्मसे, त्रेतामें पूजन करते हैं ॥ २५ ॥ और विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत, उरुगाय, यह नाम गाये जाते हैं ॥ २६ ॥ द्वापरमें भगवान् वासुदेव श्याम मूर्त्ति, पीताम्बर धरे, श्रीवत्सादि चिह्न और कौस्तुभादिक लक्षण धारण करते हैं ॥२७॥ हे राजन् ! जो मनुष्य ईश्वरके जाननेकी इच्छा रखते हैं, वे मनुष्य उससमय महाराजोंके लक्षण संयुक्त उन महापुरुषकी वेदमंत्र और आगमके मंत्रोंसे पूजा करते हैं ॥ २८ ॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध-रूप भगवान् तुमको नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥ नारायणऋषि पुरुष, महात्मा, विश्वे-श्वर, विश्वरूप, सर्वभूतोंके आत्माको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इसप्रकार द्वापरमें भगवान् वासुदेवकी स्तुति करते हैं, अब नाना आगम मार्गोंसे कलियुगमें भी जैसे पूजे जाते हैं, सो सुनो ॥ ३१ ॥ कलियुगमें कृष्णवर्ण है, कांतिसे अति निर्मल है और जैसे नीलमणि होती है, इसी प्रकार अंग हृदयादि उपांग कौस्तुभ तथा सुदर्शनादिक अस्त्र पार्षद सुनंदनादिकनामका कथन और स्तुति आदिक प्रधान पूजासे अति बुद्धिमान् मनुष्य भगवान् हरिकी पूजा करते हैं ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त स्तुति करते हैं कि, हे प्राणियोंके रक्षक ! हे महापुरुष ! तुम्हारे चरणारविन्दको नमस्कार है, जो चरणारविन्द सदा ध्यान करनेके योग्य हैं, इन्द्रिय कुटुंबके संगसे अनिष्टको दूर करते हैं, मनके अभि-लाष पूर्ण करतें है, गंगादिक तीर्थके स्थानभूत हैं, शिव ब्रह्मादिकसे स्तुति किये हुए हैं और जो दीन होकर शरण जाता है, उसके रक्षकहै, सेवककी पीडाको दूर करते है, और संसारसागरसे तरनेको नौकारूप है ॥ ३३ ॥ हे धर्मात्मन् ! हे श्रीरामचंद्रजी ! आप जो देवताओंसे भी न त्यागी जाय, देवता जिसकी अभिलाषामेंही रहते हैं, ऐसी राज्यलक्ष्मी पिताकी आज्ञासे छोडकर धर्मकी रक्षा करनेके लिये वनको चलेगये, और प्रिय सीताके प्रेम तथा वचनके मायामृगके पीछे दौडे, उन भक्तप्रिय आपके चरणारविन्दोंको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजा जनक ! इसप्रकार चारोंही युगमें नाम रूप भेदसे उस उस युगके मनुष्योंसे कल्याणके देनेवाले हरि भगवान् पूजे जाते हैं ॥ ३५ ॥ अब चारों युगोंमें कलियुग श्रेष्ठ है, क्योंकि जो श्रेष्ठ हैं, गुणज्ञ सारग्राही हैं, वह कलियुगकी स्तुति करते हैं, और युगोंमें ध्यान, यज्ञ, पूजा आदिसे जो फल होता है, सो सब स्वार्थ

कलियुगमें भगवान्‌के भजन कीर्तन मात्रसेही प्राप्त होजाते हैं ॥ ३६ ॥ यह प्राणी देहके अभिमानसे संसारमें भ्रमण करते हैं, उनको इससे परम और लाभ नहीं ॥ ३७ ॥

दोहा-सतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु योग।
जौ गति होय सो नाम जप, कलिमें पावहिं लोग ॥

हे राजन् ! सतयुगादिकी प्रजा कलियुगमें जन्म पावै, ऐसी इच्छा करते हैं, इस कारण निश्चय ज्ञात होता है कि, कलियुगमें सब जीव नारायणपरायण होंगे ॥ ३८ ॥ हे महा राज ! कहीं कहीं महाराष्ट्र देशमें भी भक्त होंगे और द्रविडदेशमें भी बहुत होंगे, जहाँ ताम्रपर्णी नदी कृतमाला और पयस्विनी है ॥ ३९ ॥ कावेरी आदि परमपवित्र नदियें हैं, इनका जल पान करते है, हे मनुजेश्वर ! वह मनुष्य निर्मलचित्त होकर श्रीभगवान् वासुदेवमें बहुधा भक्त हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य सर्वथा भेद छोडकर केवल शरणदाता मुकुन्द भगवान्‌को शरण होते हैं, उनपर देवता, ऋषि, भूत, कुटुम्बी मनुष्य और पितरोंका ऋण नहीं रहता. हे राजन् ! इनके लिये पंचयज्ञादिकोंक करनेकी भी प्रबल विधि नहीं,जो सर्वत्र एक हरिकोही देखते हैं॥४१॥ यहाँ यह सन्देह राजा जनकने किया कि, हे महाराज!जो कि सब कर्म छोडकर केवल भजन करै तो कर्म छोडनेका पाप लगैगा । इसका समाधान यह है कि, जो सब देवादिकोंको छोडकर एक हरिकेही चरणारविंदोंका भजन करते हैं, उनको विकर्म सर्वथा नहीं होते, जो कदाचित् प्रमादसे हो तो उसके हृदयमें भगवान् हरि बैठ जाते हैं, यह यमादिकोंके भी नियंता हैं और उसके भी सब कर्म नाश करते हैं, इससे भगवान्‌को भक्तही प्यारे हैं ॥ ४२ ॥ इन नौ योगीश्वरोंका संवाद कहकर श्रीनारदजी बोले कि, हे वसुदेव ! इसप्रकार भगवद्धर्म सुन संतुष्ट होकर राजा जनकने अपने गुरुओंसहित जयंती पुत्र योगीश्वरोंकी पूजा की ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त वह योगीश्वर संपूर्ण मुनि सिद्ध लोगोंके देखते देखते अंतर्धान होगये और राजा जनक भी उन्हीं धर्मोंके करनेसे परम गतिको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि, हे महाभाग वसुदेव ! तुम भी यह वैष्णवधर्म करो, इन धर्मोंमें श्रद्धा करनेसे निःसंग परममंगलको प्राप्त होंगे ॥ ४५ ॥ यह तो मैंने शास्त्रादिकोंकी रीतिसे सब तुमसे कहा है, परन्तु हे वसु देवजी ! तुम तो विनाही शास्त्रके क्रम कृतार्थहो तुम दोनों स्त्री पुरुष परम भागवत हो, तुम्हारे यशसे सब जगत् पूर्ण होरहा है, क्योंकि तुम्हारे यहाँ स्वयं भगवान् ईश्वरने आनकर अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ तुमको और लोगोंके समान भ्रान्ति, सर्व कर्म समर्पण आदि वैष्णव धर्मोंसे चित्त शुद्ध करना नहीं पडेगा, क्योंकि दर्शन, आलिंगन, आलाप, शयन, आसन, भोजनसे श्रीकृष्णमें पुत्र स्नेह करनेसे तुम्हारा भगवान् ईश्वर, आत्मा पवित्र होगया ॥ ४७ ॥ शिशुपाल पौण्ड्रक तथा शाल्व आदि राजा शय्या आसन आदिमें जिसका वैरसे भी ध्यानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति चिन्तवन आदिसे तदाकार हुइ बुद्धिसे सारूप्य मुक्तिको प्राप्त होगये. तो जो पुरुष स्नेहसे इनमें चित्त रखते हैं, वह सारूप्य गतिको प्राप्त हो तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ ४८ ॥ अहो ! जो

पुत्रस्नेह मुक्तिका कारण है, तो सबही मुक्त होने चाहिये ? तो कहते हैं कि, हे वसुदेवजी ! तुम इनपर पुत्रबुद्धि मतरक्खो, यह तो सर्वात्मा ईश्वर हैं, मायासे मनुष्याकर दिखाई देते हैं, अलौकिक ऐश्वर्य इनका गुप्त है, यह श्रीकृष्णचन्द्र अविनाशी परमपुरुष हैं ॥ ४९ ॥ यह पृथ्वीका भाररूप राजाओंके मारनेको और साधु पुरुषोंकी रक्षा करनेको तथा मोक्ष देनेको अवतार लेकर लोकोंमें यह विस्तार करते हैं ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित् ! यह सुन महाभाग वसुदेव देवकीने अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्तहो अपने आपका मोह स्नेह छोडदिया ॥ ५१ ॥ यह इतिहास अति पुण्यजनकहै. जो पुरुष नेमसे इसे मनमें धरते हैं,सो इसी देहमें मोह दूरकर ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं॥५२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे
उत्तरार्द्धे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-छठयेंमें ब्रह्मादिकन, विनय करी करजोरि ।
मोहिं संग लीजै प्रभू, उद्धव कही निहोरि ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसप्रकार वसुदेवजीसे नारदजी कहकर चलेगये इसके उपरान्त द्वारकामें ब्रह्मा, सनकादिक और संपूर्ण देवता मिलकर आये ॥ १ ॥ सृष्ट भूतोंके ईश्वर महादेव भूतगणोंसे मिलकर आये, देवराज इन्द्र आये,आदित्य,वसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, अंगिरा, एकादश रुद्र, विश्वदेव, साध्य ॥ २ ॥ गंधर्व, अप्सरा, नाग,सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर, किन्नर, यह सब श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेको द्वारकामें आये ॥ ३ ॥ जिस देहसे भगवान्ने मनुष्यलोकमें परमसुन्दर मूर्त्तिसे सब लोगोंका पाप दूर करनेवाले यज्ञका विस्तार किया, उसी मूर्त्तिके देखनेको आये ॥ ४ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान्, धनी पुरुषोंसे अति समृद्ध द्वारकामें आय अतृप्तरूप देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त नंदनवनके फूलोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा और विचित्र पद तथा अर्थयुक्त वाणियोंसे जगदीश्वरकी स्तुति करनेलगे ॥ ६ ॥ देवता बोले कि, हे नाथ ! जो जीव कर्मरूप बडे पापसे छूटनेको बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय, मन वचनसे भावयुक्त हो जिनका हृदयमें सदा चिंतवन करतेहैं, परन्तु तोभी दर्शन नहीं पाते और हम तुम्हारा प्रगट दर्शन कर रहे हैं, हमारा अहोभाग्य है, इसलिये हम तुम्हारे चरणारविन्दको बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ तहाँ हरि यह एक तर्क करते हैं कि, मोक्षके लिये मेरे चरणारविन्दका चिंतवन क्यों करते हो ? क्योंकि मैं तो अनेक दुष्ट कर्म करताहूं, मेरा तो कर्म छूटताही नहीं तो तुम्हारे कर्म क्या छुडाऊंगा ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, हे अजित ! तुम ऐसी बात मत कहो, क्योंकि जो औरोंपर मनसे भी न जाने जायँ ऐसे महत्वादि प्रपंचको त्रिगुण अपनी मायासे आपहीमें उत्पन्न करतेहो, पालते हो, संहार करते हो, परन्तु तो भी इन कर्मोंमें लिप्त नहीं होते, तुम मायाके गुणोंमें नियंता स्वरूपसे स्थित हो,रागादि रहित हो और नित्य अपने

आनंदस्वरूप विषे मग्न रहते हो ॥ ८ ॥ तो मुझको कर्म करनेका क्या प्रयोजन है, मैं तो आत्मारामहूं तो कहते हैं कि, हे स्तुतियोग्य ! हे परम श्रेष्ठ देव ! विषयी पुरुषोंके चित्त, विद्या, श्रवण, अध्ययन, दान, तप और कर्म करनेसे वैसे शुद्ध नहीं होते जैसे साधु पुरुषों के चित्त तुम्हारे यश श्रवण करनेसे शुद्ध होजाते हैं ॥ ९ ॥ अब प्रार्थना करते हैं कि, तुम्हारे चरणकमल हमारी अशुभ वासना जलानेके लिये अग्निरूप हों; जिन चरणोंका संपूर्ण मुनि अत्यंत प्रेमपूर्वक कोमल हृदय हो; मोक्षके कारण ध्यान करते हैं और भक्त-जन सारूप्य मुक्तिकी इच्छासे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूहसे तीन कालमें पूजाकरते हैं और उनके बीचमें भी जो ज्ञानी हैं, वह इन्हींसे स्वर्गको उल्लंघन करके वैकुण्ठ जानेके लिये पूजते हैं ॥ १० ॥ हे ईश ! सदा तुमको यज्ञ करनेवाले कर्म-मार्गमें हाथ जोड यज्ञकी अग्निमें तीनों वेदकी विधिसे हविको लेकर चिंतवन करते हैं और योगिराज अध्यात्मयोगसे तुम्हारी माया अणिमादिक ऐश्वर्य जाननेका चिंतवन करतेहैं और परमभक्त सर्वत्र पूजते हैं ॥ ११ ॥ हे विभो ! तुम्हारे सब अंगोंमें व्याप्त जो वन-माला सो उससे भगवती लक्ष्मीजी सौतकी समान ईर्षा रखती हैं और यह वनमाला भक्तोंने अर्पण करी है. इसी कारणसे तुम इसको धारण करते हो. उसी मालासे पूजाको ग्रहण करते हो, तुम्हारे चरण हमारी विषय वासनाके जलाने को अग्नि हैं ॥ १२ ॥ हे व्यापक ! जब तुम त्रिविक्रम रूप हुए. तब आपने बलि राजाको बाँधा, तब तुम्हारा एक चरण सत्यलोकमें रहा सो वह चरण जैसे विजयपताका हो इसी प्रकार दिखाई देताथा और उसी चरणसे गंगाजीके तीन प्रवाह छूटे, सो पताका हुई चरध्वज दण्ड हुवा, सो सुर असुर सबकी सेनाको भय अभयका देनेवाला हुआ,देवता और साधुओंको अभयका दाता स्वर्ग दिया, असुर दुष्टोंको भयदायक अधोगति दी, वह आपका चरण हम कि, जो भजन कर रहे हैं, उनके पापको दूर करो और हमारी रक्षा करो ॥ १३ ॥ यदि कहो कि;युद्धमें देवता, दैत्य परस्पर जीतते हैं हारते हैं, मेरा वहाँ क्या निमित्तहै ? तो कहते हैं कि,ब्रह्मासे आदि लेकर देहधारी सब जगत् परस्पर युद्धसे जब पीडित होते हैं,तब तुम्हारे वशमें आते हैं, इसलिये कालरूप तुम हो और कालके आधीन सब हैं,इससे जय पराजय सब आपहीके अधीन हैं, जैसे नाथके अधीन बैल है, इसीप्रकार सब तुम्हारे आधीन हैं, तुम प्रकृति पुरुषसे भी परे हो, पुरुषोत्तम हो, तुम्हारे चरण हमको सुखकारी हों ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! तुम इस जगत्के उत्पत्ति, पालन और प्रलयके कारण हो और प्रकृति पुरुष महत्तत्त्वके भी नियंता हो, यह काल संवत्सर है सो चक्ररूप है, इसके ग्रीष्म, वर्षा, शरद् तीन नाम हैं, सबका नाश करनेको प्रवृत्त है, इसका वेग अत्यन्त गंभीर है, सो काल तुम्हाराही रूप है, इसलिये तुम उत्तम पुरुष हो ॥ १५ ॥ अब सृष्टिका प्रकार कहते हैं, प्रथम तुमसे सफल वीर्य एक पुरुष उत्पन्न होताहै, सो पुरुष तुमसे शक्तिको प्राप्त हो, मायासे मिलकर विश्वका गर्भरूप महत्तत्त्व उत्पन्न करता है और वही महत्तत्त्व मायासे मिल आत्मासे यह स्वर्णमय अण्डकोश बाहरके सात आवरण संयुक्त सृजता है ॥ १६ ॥

इसलिये सब तुमसेही प्रगट हुआ है और इसीकारण इस स्थावर जंगम, विश्वाधीश तुम हो, हे संपूर्ण स्त्रियोंके पति मायासे उत्पन्न हुई इन्द्रियवृत्ति करके विषय भोग करते भी तुम निर्लेप रहते हो, यद्यपि योगीश्वर योगसे विषयको छोड देते हैं, परन्तु तो भी डरते हैं कि, कदाचित् हमको विषयवासना उत्पन्न न हो, क्योंकि तुम प्रपंचसे मिल रहेहो और विषय सम्बन्ध नहीं, यह तुम्हारा विशेष धर्म है ॥ १७ ॥ क्योंकि जो सोलह हजार (१६०००) स्त्रियें अपने मंद हास्य सहित चितवनके कटाक्षसे दिखाये अभिप्रायसे मनको हरनेवाली भूमण्डलसे प्रेरे संभोग मंत्रोंके विषय निपुण, कामके बाण और कामकी कलासे भी वशमें न करसकीं तो तुम विषयोंसे निर्लिप्तही हो ॥ १८ ॥ इसलिये तुम्हारी अमृतरूपी कथा, जलभरी कीर्त्तिरूपी नदी और तुम्हारे चरणोदकरूपी गंगा, यह दोनों त्रिलोकीका पाप दूर करनेको समर्थ हैं, श्रवणेन्द्रियसे वेदमें गाये तुम्हारे यशके सुननेसे सब पाप नष्ट होजातेहैं, गंगामें स्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं, इस प्रकार जो पुरुष धर्म जानते हैं, सो इन दोनों तीर्थोंका सेवन करते हैं ॥ १९ ॥ इसप्रकार ब्रह्मा, महादेवसहित देवताओंसे मिल, स्तुति और नमस्कार कर, आकाशहीमें खडे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे बोले ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा कि, हे प्रभो ! हे सर्वांतर्यामी ! हमने भूमिका भार उतारनेके लिये प्रथम आपसे विनती की थी सो भार तुमने उसी प्रकार दूर किया ॥ २१ ॥ संतोंमें धर्म स्थापन किया, साधुओंमें सत्य रक्खा और सबोंका पाप दूरकर दशोंदिशाओंमें कीर्त्तिका विस्तार किया ॥ २२ ॥ यदुवंशमें अवतार ले उत्तमरूप धर जगत्का हित करनेके लिये अति उदार चरित्र और कर्म किये ॥ २३ ॥ हे ईश ! जिन कर्मोंको कलियुगमें साधुजन श्रवण कीर्तन करके सुखपूर्वक संसार सागरसे तरैंगे ॥ ॥ २४ ॥ हे विभो ! हे पुरुषोत्तम ! यदुवंशमें अवतार लिये तुमको एकसौ पच्चीस (१२५) वर्ष बीतगये ॥ २५ ॥ हे सर्वाश्रय ! अब तुमको कोई देवकार्य भी करना शेष नहीं है और यह तुम्हारा कुल भी ब्रह्मशापसे नष्ट होरहा है ॥ २६ ॥ इसलिये यदि अब आपकी इच्छा हो तो अपने वैकुण्ठ धामको चलो; हे वैकुण्ठनाथ ! हम तुम्हारे किंकर हैं, लोक सहित लोकपालोंकी रक्षा करो * ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णभगवान् बोले कि,

---

* **शंका**–भगवान्ने अनेक अवतार धारण करके पृथ्वीपर अनेक प्रकारके चरित्र किये, परन्तु पृथ्वीसे भगवान्को वैकुण्ठधामके जानेके लिये किसी अवतारमें ब्रह्माने प्रार्थना नहीं की कि, महाराज ! आप अब परमधामको चलो । और इन्द्रको तथा ब्राह्मणोंको ब्रह्माने अपने संग लेकर वैकुण्ठको संग चलनेके लिये श्रीकृष्णकी याचना क्यों किया कि, अब आप वैकुण्ठको चलो ॥

उत्तर–संसारको सुख देनेके लिये भगवान्ने अनेक अवतार धारण किये, ऐसेही पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीकृष्णरूप धरकर मर्त्यलोकमें आये, जब श्रीकृष्ण मर्त्यलोकमें आये तब तारकनाम राक्षस वैकुण्ठपुरीको भगवान्से हीन देखकर भगवान्की–

हे देवताओंके ईश्वर! तुमने जो कहा सो मैंने मनमें धारण किया, तुम्हारा सब काम पूर्ण करदिया और भूमिका भार उतारा ॥ २८ ॥ परन्तु अभी यह यादवकुल बल, शूरता और श्रीसे अति उद्धतहै, लोकको ग्रसा चाहता है, इसे भी महासमुद्रको जैसे वेला (तट) रोंक रक्खे, उसीप्रकार मैंने रोक रक्खा है ॥ २९ ॥ जो मैं ऐसे गर्वसे उद्धत यादवोंके विशाल कुलका संहार किये बिना अपने लोकको चला जाऊंगा तो यह लोक मर्यादारहित या यदुकुलसे नष्ट होजायगा ॥ ३० ॥ सो विप्रशापसे इस कुलके नाशका अब आरंभ किया है, हे ब्रह्मा! इनको संहार करके मैं वैकुण्ठ जाऊंगा, हे निष्पाप! तुम्हारे घर आऊंगा ॥ ३१ ॥ लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी इसप्रकार वाणी सुनकर स्वयंभू देव ब्रह्मा श्रीकृष्णको नमस्कार कर देवताओंसे मिल अपने धामको चलेगये ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त द्वारकापुरीमें बडे बडे उत्पात होनेलगे, उन्हें देखकर बडे वृद्ध यादव इकठे हुए, उन यादवोंको एकत्र देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥ ॥ ३३ ॥ कि, सब ओरसे यहाँ बडे बडे उत्पात उठते हैं और अपने कुलको ब्राह्मणोंका शाप भी हुवाहै ॥ ३४ ॥ इसलिये हे यादवो! जो जीनेकी इच्छा है तो हमको यहाँ रहना नहीं चाहिये, अतिपुण्य प्रभासतीर्थको आजही चलो, विलम्ब मत करो ॥ ३५ ॥ जिस तीर्थमें स्नान करके दक्षके शापसे क्षयरोगसे ग्रसा चन्द्रमा पापसे छूटा और तत्काल फिर कलाओंकी वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ३६ ॥ हम भी वहाँ स्नान और पितरोंका तर्पण कर अनेक गुण संयुक्त अन्नसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करवाय ॥ ३७ ॥ श्रद्धासहित महान् सत्पात्रों विषे बीज बोय उन दानोंसे पापोंको तरैंगे, जैसे नावमें बैठकर समुद्रको तरते हैं ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इसप्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी, तब सब यादव भगवान्‌की आज्ञा मान चलनेको उद्यम करनेलगे, तीर्थ जानेकी इच्छासे रथ जुतवाने लगे ॥ ३९ ॥ हे राजन्! उससमय यादवोंके प्रभासतीर्थ जानेका उद्यम देख और श्रीकृष्णके वचन सुन तथा घोर उत्पातोंको देख नित्य श्रीकृष्णके निकट रहनेवाले उद्धवजी ॥ ४० ॥ एकांतमें निकट जाय जगत्‌के ईश्वरोंके ईश्वरको माथेसे नमस्कारकर हाथ जोड कहनेलगे ॥ ४१ ॥ कि, हे देवदेवेश! हे योगेश! हे पुण्यश्रवणकीर्त्तन! तुम्हारी ऐसी इच्छा जानी जाती है कि, इस कुलका

-पुरीको दुःख देनेका विचार करनेलगा, आज दुःखदें, कलदुःखदें, ऐसा विचार करते करते एकसौ चौवीस १२४ वर्ष, दश १० महीने बीत गये, परन्तु जिस दिन निश्चय करके दुःख देनेको चला, तब कुछ थोडा थोडा उत्पात वैकुण्ठमें हुवा, तब सुदर्शनचक्र तारकके मारनेके लिये उसके पीछे दौडा उस समय सुदर्शनके डरके मारे तारक भाग निकला, तो उसी दिन ब्रह्माने विचार किया कि, आज दुष्ट राक्षसने वैकुण्ठमें उपद्रव कियाहै, न जानिये क्या हो? ऐसा विचारकर ब्रह्माने श्रीकृष्णसे वैकुण्ठ जानेके लिये प्रार्थना की ॥

संहारकर निश्चयसे भूलोकको छोडना चाहते हो, यद्यपि तुम ईश्वर संपूर्ण कार्य करनेको समर्थ हो, परन्तु तोभी विप्रशापको निवारण नहीं किया ॥ ४२ ॥ हे केशव ! हे नाथ ! मैं तुम्हारे चरणकमल छोडनेको असमर्थहूं अर्थात् आधे क्षणको भी नहीं छोड सक्ता, इसलिये मुझे भी अपने धामको लेचलो ॥४३॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी लीला मनुष्योंको परम मंगलदायक है, श्रवणेन्द्रियको अमृतरूप है, उसका आस्वाद, ले मनुष्य औरकी इच्छाको छोडते हैं, हम तुम्हारे दिनरात्रिके सेवक हैं ॥ ४४ ॥ शयन, आसन, गमन, स्नान, क्रीडा, भोजन, आदि और भी क्रियाओंमें सदा संग रहे हैं, सो हम भक्तप्रिय आत्मारूप तुमको कैसे छोड सक्ते हैं ! ॥ ४५ ॥ तुम्हारे समीप तुम्हारे प्रसादकी माला सुगंध चंदन और प्रसाद वस्त्रसे चर्चित होकर बाह्य शुद्ध होते हैं, पीछे तुम्हारे उच्छिष्ट महाप्रसाद भोजनसे अंतर शुद्ध करके तुम्हारी मायाको जीतते हैं ॥ ४६ ॥ हे महायोगिन् ! जो केवल वायु भक्षण करके रहते हैं, वह दिगंबर हैं, शमयुक्त हैं, जितेन्द्रिय हैं, संन्यासी हैं, निर्मलचित्त हैं, आत्मविद्यामें जिसने श्रम किया है, वह ऋषि अनेक क्लेशसे तुम्हारे वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ हे महायोगीश्वर ! हम तो तुम्हारे भक्तोंके संग तुम्हारी वार्ता करते सकल कर्मोंमें भ्रमते भी तुम्हारी दुस्तर मायाको तरैंगे ॥ ४८ ॥ मनुष्य लोकको आश्चर्यदायक तुम्हारे कर्म वचन गाते हास्य चितवन हास्यकी वार्त्ता और जो कुछ मनुष्य लोकमें लीला करी है, उसका स्मरण, कीर्तन करैंगे इससेही तर जायँगे, मैं यह आपके भयसे प्रार्थना नहीं करताहूं; परन्तु आपका संग नहीं छोडा जाता ॥ ४९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार उद्धवजीकी विनती सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा निकटवर्त्ती परमप्रिय भक्त उद्धवजीसे बोले ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

दोहा-हरि विवेककी सिद्धिको, वरणों जस इतिहास।
सो सप्तम अध्यायमें, वर्णत सहित हुलास ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले कि, हे महाभाग उद्धव ! तुमने जो मुझसे कहा, सो सब मुझे करना है, क्योंकि ब्रह्मा, महादेव और लोकपाल यह सब स्वर्ग जानेके लिये मेरी प्रार्थना कर गये हैं ॥ १ ॥ मैंने यहाँ वह सब देवकार्य सिद्ध किया, जिसके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे बलदेव सहित मैंने अवतार लियाथा ॥ २ ॥ हमारा कुल शेष रहा है, सो भी विप्रशापसे जल रहा है, इससे निश्चयही परस्परकी लडाइयोंसे नष्ट हो जायगा और आजसे सातवें दिन इस द्वारकापुरीको समुद्र डुबावेगा ॥ ३ ॥ जिस दिन मैं इस लोकको छोडूंगा उसदिन यह मंगल नष्ट होजायगा, हे उद्धव ! इसके उपरान्त फिर कलियुग भी प्रवृत्त होकर सब धर्मको दूर करेगा और थोडेही कालमें इसलोकका निरादर करेगा ॥ ४ ॥ मेरे त्याग किये महीतल विषे तुम मत वास करना, क्योंकि

हे उद्धव ! कलियुगमें मनुष्योंकी प्रीति अधर्ममें होगी × हे उद्धव ! तुम तो स्वजन, बन्धु और कुटुम्बका स्नेह छोड मेरे स्वरूपमें चित्त रख समदृष्टि होकर पृथ्वीमें विचरण करो ॥ ६ ॥ इस संसारमें दृष्टि मत रखना, क्योंकि वचन, नेत्र, श्रवणादिक करके जो ग्रहण किया है, सो सब झूठी मायाका रचा यह मन भी मिथ्या है. ऐसा जानो ॥ ७ ॥ विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषको वेदार्थ अनेक प्रकारसे दीखते हैं, सो भ्रमते हैं, गुण दोष संयुक्त हो कर्म, अकर्म, विकर्म, भेद गुणदोषबुद्धिवालेको हैं, समदृष्टि आत्मज्ञानवंतको यह भेद नहीं ॥ ८ ॥ इसलिये इन्द्रियोंके समूहको और चित्तको वश करके इस विशाल जगत्को अपने आपमें देखो, आपको परमेश्वरमें ब्रह्मरूपसे देखो ॥ ९ ॥ यदि कहो कि, विघ्न बहुत हैं, कैसे देखैं ? इसका उत्तर यह है कि, वेदके अभिप्रायका निश्चय और उसके अर्थका अनुभव मिलाय आत्माके ज्ञानसेही संतुष्ट और दीनता आदि भी आत्मरूप जानोगे तब कोई विघ्न नहीं करेगा और जबतक आत्मज्ञानकी प्राप्ति न हो तबतक वर्णके अनुसार कर्म करै, अनुभव प्राप्त होनेपर विघ्नोंसे कुछ नहीं होता ॥ १० ॥ इससे यह न समझ लेना कि, "ज्ञानी मनुष्य यथेष्ट आचरण करै" क्योंकि जैसे बालक संकल्प विकल्पसे रहित होनेपरभी कोई कर्म करता है, कोई नहीं करता, इसीप्रकार गुणदोषबुद्धिसे रहित हुआ यह पहले कर्मोंके संस्कारसे विवर्त्त होता है, किन्तु न दोषबुद्धिसे बहुधा विहित कर्मका कर्त्ता है, न गुणबुद्धिसे ॥ ११ ॥ सब प्राणियोंका मित्र हो, ज्ञान विज्ञानका निश्चयवाला हो, सब विश्वको मेराही रूप समझकर देखै, वह पुरुष फिर कभी इस संसारमें न आवै ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत राजा परीक्षित् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने समझाया, तब परमभागवत उद्धवजी प्रणामकर तत्त्वज्ञानकी इच्छा किये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगे॥१३॥ उद्धवजी बोले कि, हे योगके फलदाता ! हे योगके आधार! हे योगरूप ! हे योगके कारण ! जो मोक्षके अर्थ यह संन्यासरूपका त्याग आपने मुझसे कहा सो अपनी सहज दयासे कहा, क्योंकि मैं तो ऐसा अधिकारी नहीं था ॥१४॥ हे सर्वव्यापक ! हे सर्वात्मा ! मेरी बुद्धि तो ऐसी है कि, जिन पुरुषोंका मन विषयोंमें लगा हुआ है, उनसे ऐसा त्याग बनना अशक्य है और जो उसमें भी तुम्हारे भक्त नहीं उनको तो बहुतही कठिन है ॥ १५ ॥ और जो मुझसे तुम त्याग कहते हो सो महाराज ! मैं अहंता ममतासे मूढमति हूँ तुम्हारी मायासे उत्पन्न हुए पुत्र कलत्र देह

× **शंका**–श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवसे कहा कि, हम पृथ्वीको त्याग कर परमधामको जायँगे, तब तुम पृथ्वी पर वास मत करना, तब श्रीकृष्णके वैकुण्ठ जानेके पीछे बद्रिकाश्रममें उद्धवने वास क्यों किया ?

उत्तर–वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, नैमिषारण्य, द्वारका, काशी, बद्रिकाश्रम इन सब क्षेत्रोंको सात द्वीपोंकी पृथ्वीपर गिनती नहीं है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है, यह सब मोक्ष भूमिहैं, सात द्वीपकी सदृश भूमि नहीं, इसलिये बद्रिकाश्रममें उद्धवजीने वास किया ।

आदिमें मग्न हूँ इसलिये हे भगवन्! जैसे यह सब तुम्हारी आज्ञा विना परिश्रम करसकूं उसी प्रकार तुम मुझे शिक्षा दो ॥ ॥ १६ ॥ तुम समान रूप हो, स्वप्रकाश हो, आत्मा हो, इसलिये हे ईश! मुझे और ऐसा वक्ता देवताओंमें भी कोई नहीं देख पडता है, क्योंकि यह ब्रह्मादिक देहधारी तो तुम्हारी मायासे मोहित बुद्धि हैं और बाहरके विषयोंमें इनकी अर्थ बुद्धिहै ॥ १७ ॥ कोई एक दुष्टबुद्धि हैं और कोई एक ऐसे हैं जो सेवा करनेपरभी फल देनेके समय नष्ट होजाते हैं, कोई अज्ञानी हैं, कोई रक्षा करनेमें असमर्थ हैं, कोई स्थान भ्रष्ट हैं, इसलिये संसारके दुःखसे अतीत नहीं, मैं अति विरक्तचित्त हूं इसकारण तुम्हारी शरण आया हूं, क्योंकि तुम तो निंदारहित हो, तुम्हारा कालसे अंत और देशसे पार नहीं, सर्वज्ञहो, ईश्वरहो, तुम्हारा नाश रहित वैकुण्ठ स्थान है, तुम सब जीवोंके आश्रयहो जीवके सखा हो ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, जो लोग तत्त्वको अतिश्रेष्ठ जानते हैं, वह मनुष्य बहुधा गुरुविनाही अपने आत्माको संसारसे उद्धार करते हैं, गुरुके उपदेशकी अपेक्षा नहीं करते ॥ १९ ॥ अपना गुरु आपही हैं, क्योंकि विशेषकर पुरुष जो यह प्रत्यक्षसे अथवा अनुमानसे विचारै तो आपहीसे सुख पावै और सहजसेही अपने स्वरूपकी प्राप्ति हो, पशुओंको अपने हित ज्ञानका कौन गुरू है, आपहीसे अपने हितमें प्रवृत्त होते हैं, इसलिये अपना आपही गुरु हैं, तहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान दिखलाते हैं कि, जब जीव पुरुषजन्म प्राप्त करता है, तब यह ज्ञान मार्गमें निपुण होजाता है ॥ २० ॥ मनुष्यके शरीरमें आत्मा अधिक प्रत्यक्ष है, यह सांख्य योगमें चतुर बुद्धिवाले धीर पुरुषोंका निश्चय है ॥ २१ ॥ वह शक्तियुक्त मुझे प्रत्यक्ष देखते हैं, मेरे उत्पन्न किये बहुतरूप और बहुत शरीर हैं, कोई एक चरण है, कोई अर्द्ध चरण है, कोई नीचे चरणहै, कोई चार चरणहैं, कोई बहुत चरण हैं, कोई चरण रहितहैं, परन्तु इन सबोंमें जो पुरुषरूप देह है, सो मुझे अतिप्रिय है ॥ २२ ॥ इस पुरुषदेहमें जो सावधान है, सो अहंकारादिकोंसे रहित मुझे प्रगट ढूंढ लेते हैं, बुद्धि आदि यत्नोंको एक स्वप्रकाश आत्माविना प्रकाश नहीं होसक्ता ऐसा अनुमान करके मुझे ढूंढ लेते हैं ॥ २३ ॥ इस विषयसे एक बडे तेजस्वी राजा यदु और अवधूतका संवादरूप प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥ २४ ॥ अवधूत वेष किये महा पण्डित और सदा तरुण अवस्थावाले गुरु दत्तात्रेयजी कि, जो निर्भय रीतिसे संसारमें घूम रहेथे उन्हें देखकर धर्मके ज्ञाता राजा यदुने इस प्रकार पूँछा ॥ २५ ॥ कि, हे ब्रह्मन्! अकर्त्ता तुमको ऐसी निपुणमति कहाँसे प्राप्त हुई है, जिसको पाकर अवधूत पण्डित तुम बालकके समान इस लोकमें विचरते हो ॥ २६ ॥ बहुधा मनुष्य अर्थ धर्म कामना विषे और आत्माके विचार विषे आयुर्दाय कीर्ति और श्रीकी कामनासे प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ परन्तु तुम तो कुछ नहीं चाहते हो न कोई कर्म करते हो और जड उन्मत्त पिशाचके समान हो और सब कार्य करनेको समर्थ और पूर्ण ज्ञानवान् हो, अतिप्रवीण हो सुन्दर हो आपकी उत्तम मधुर वाणी है ॥ २८ ॥ मनुष्य काम, लोभरूप दावानलसे जलता है, उसमें तुम उस तापसे

संतप्त नहीं हो, जैसे अग्निसे छूटकर गंगामें खडा हाथी उस तापसे तप्त नहीं होता है ॥ ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम विषयभोग रहितहो, कलत्र आदिसे शून्यहो, आनंदरूप हो, इसलिये हम आपसे पूँछते हैं कि, तुम्हारे आनंदका कारण क्या है ? सो हमसे कहो ॥ ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इसप्रकार जब अतिब्रह्मण्य सुबुद्धि राजा यदुने विनयपूर्वक पूजाकर पूँछा, तब महाभाग अवधूतजी राजा यदुसे बोले ॥ ३१ ॥ कि, हे राजन् ! अपनी बुद्धि करके मेरे बहुत गुरुहैं, जिनसे मैं बुद्धि पाकर मुक्त हुआ हूं और इसलोकमें फिरताहूं, उनको सुनो ॥ ३२ ॥ १ पृथ्वी, २ वायु, ३ आकाश, ४जल, ५ अग्नि, ६ चन्द्रमा, ७ सूर्य, ८ कपोत, ९ अजगर, १० सिंधु, ११ पतंग, १२ मधुकृत, १३ गज ॥ ३३ ॥ १४ मधुहा, १५ मृग, १६ मीन, १७ पिंगला, १८ कुररपक्षी, १९ बालक, २० कुमारी, २१ कडेडी (वाणका बनानेवाला) २२ साँप २३ मकरी और २४ भृंगी ॥ ३४ ॥ हे राजा यदु ! मैंने यह चौबीस गुरु सेवन कियेहैं, इनके आचरणसे मैंने अपनी शिक्षा ग्रहण करलीहै ॥ ३५ ॥ हे ययातिपुत्र ! हे पुरुषसिंह ! मैंने जहाँ जातेहुए जो शिक्षा ग्रहणकी है, सो उसी प्रकार कहताहूं, तुम श्रवण करो ॥ ॥ ३६ ॥ प्रथम भूमिसे क्षमा सीखी है. सो कहते हैं कि, पृथ्वीको सब प्राणी खूँदतेहैं, परन्तु तो भी वह अपने नियमसे चलायमान नहीं होती इसीप्रकार दैवके वशीभूत प्राणी धीर पुरुषको कष्ट दें तो भी उनके दैवाधीन पनको जाननेवाले उस पुरुषको अपने नियमसे चलायमान होना उचित नहीं, यह पृथ्वीसे सीखा है ॥ ३७ ॥ पृथ्वी दो प्रकारकी है, एक तो पर्वतरूप, एक वृक्षरूप, यहाँसे जो सीखा है; सो कहतेहैं कि, पर्वतकी जो वस्तु है; वृक्ष, तृण, झरना, फूल, फल, यह सदा पराये अर्थ हैं और पर्वतका तो केवल जन्म भी पराये ही अर्थ है, अपना स्वार्थ कुछ नहीं, इसीप्रकार अपनी वस्तु और देह सब परोपकारार्थ लगा दीजिये, यह पर्वतरूप भूमिसे सीखा है और वृक्ष भी पराये अधीन हैं, यदि उनको कोई काटे उखाडे तो वह सहलेते हैं और क्षमाको नहीं तजते, इसीप्रकार साधुपुरुष भी जो अपने संग भलाई बुराई करै तो उसे सहन करलें (१) ॥ ३८ ॥ वायु भी दो प्रकारकी है, एक तो प्राणरूपहै, दूसरी बाहर फिरती है, सो प्राण जैसे आहार मात्रसे संतुष्ट रहते हैं और इन्द्रियोंके भोग नहीं चाहते, इसीप्रकार मुनीश्वरभी रहैं, आहार जो न मिलै, तो मन वचन विक्षिप्त होकर ज्ञान सिद्धि न हो, इसालिये एक आहारमात्रसे ही संतोष मानलें, इससे अधिककी चाहना न करै यह विद्या प्राणवायुसे सीखी है ॥ ३९ ॥ जैसे पवन सब जगह चलताहै, पर कहीं आसक्त नहीं होता. इसी प्रकार योगिराज भी शीत उष्ण आदि नानाधर्मवाले विषय भोग करते भी आसक्त नहीं होते; इससे सबमें गुणदोष रहित मन होवे, यह विद्या बाहिरकी वायुसे सीखी है ॥ ४० ॥ और भी एक बात पवनसे सीखी है, सो कहते हैं कि, यद्यपि वायु सुगंधसे मिलीसी चलती है और ऐसाही जानाजाता है, परन्तु तोभी वायु गंधसे मिला नहीं है, गंध कुछ वायुका गुण नहीं है पृथ्वीका गुण है, उसीप्रकार आत्मा पृथ्वीके विकार देहमें प्रविष्ट है.

देहके धर्मका आश्रय है, पर मिला नहीं है, देहोंसे अलग है. इसप्रकार समझै और स्थानमें आत्माहीको देखै यह विद्या भी पवनसेही सीखी इस लिये वायु गुरुहुआ (२) ॥ ४१ ॥ अब आकाशसे जो विद्या सीखी है, सो कहते हैं, जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक और बडा है परन्तु घटमें छोटा दिखाई देताहै, सो घटसे आकाशका कुछ सम्बन्ध नहीं, क्योंकि वह निर्विकार है, तैसेही आत्मा इस देहमें है और यह देहसे मिला है, इस कारण इतनाही है और ठौर नहीं ऐसे न समझे. क्योंकि जो आत्मा देहमें है, सोई सर्वत्र है, जैसे आकाश सब ठौर है, वैसेही स्थावर जंगमविषे ब्रह्म व्यापकहै, यह एक विद्या आकाशसे सीखी है ॥ ४२ ॥ द्वितीयवायु कहतेहैं जैसे पवनके प्रेरेसे तेज, जल, पृथ्वीमय मेघादिक आकाशमें व्याप्त होते हैं, पर मेघादिकोंसे आकाशका स्पर्श नहीं होता, वह निर्लेप है. वैसेही यह पुरुष कालसे सृजे पंचभूतरूप इस देहसे संयुक्त है, उनका निजके साथ स्पर्श नहीं है, यह धर्म भी आकाशसेही सीखा (३) ॥ ४३ ॥ जैसे स्वभावहीसे जल अतिनिर्मल है, ऐसेही मुनि भी निर्मल हो सबके ऊपर स्नेह करै मीठा बोलै जल भी मधुर है, जैसे जल तीर्थ स्थान है, और मनुष्योंको पापसे छुडाता है, इसीप्रकार मुनीश्वरभी दर्शन स्पर्श कीर्त्तनसे सबको पवित्र करैं, यह गुण जलसे सीखे हैं (४) ॥ ४४ ॥ अब अग्निसे सीखा सो कहते हैं, जैसे अग्नि अतितेजस्वी है; तेजसे दीप्त है, अति दुःसह है और उसका उदरही पात्रहै क्योंकि जो होमकरते हैं, वह अग्निके उदर मेंही डालते हैं, इससे वही पात्र है; जो संपूर्ण वस्तुको भक्षण करतीहै और तोभी पवित्र करनेवाली है, ऐसेही मुनीश्वरभी हों ॥ ४५ ॥ जैसे अग्नि कहीं गुप्तहै, कहीं प्रगट है, जो अपने कल्याणकी चाहना करते हैं, उनको सेव्य है,दाताकी इच्छासे सर्वत्र हविष्य लेती है, उनके भूत, भविष्य, वर्त्तमान पाप सब दूर करतीहै, इसीप्रकार मुनि रहै ॥४६॥ और भी अग्निसे सीखा है; जैसे अग्नि एक रूप है, बहुत ईंधनसे बहुत भाँति बडी दिखाई देती है और जब ईंधन थोडा रहताहै तो छोटी दीख पडतीहै, ऐसेही जीवात्मा एकरूप है, न छोटा है न बडाहै, अपनी अविद्यासे उपजाये ऊंच नीच भेदसंयुक्त देहमें प्रविष्ट हुआ ऊँच नीच रूपसे दिखाई देता है (५) ॥ ४७ ॥ चन्द्रमासे जो सीखा है; सो कहते हैं, जन्मसे आदिलेकर मरणपर्यन्त धर्म देहकेही हैं आत्माके नहीं. इसमें दृष्टान्त कहते हैं, जैसे चन्द्रमाका मण्डल सदा पूर्ण एकरूप है, नित्य वृद्धि और क्षय जो देखा जाता है सो कलाओंका है, जितना सूर्यमण्डलसे नित्य अलग पडै है, उतनाही दीखता है और ज्यों ज्यों मण्डलके नीचे दबता है, त्यों त्यों घटता है. इसीप्रकार आत्मा एक रूप है, अप्रगट गति कालसे जन्ममरणादिक भाव देहको होते हैं, आत्माको नहीं, यह ज्ञान चन्द्रमासे पाया है, इससे चन्द्रमा गुरु है (६) ॥ ४८ ॥ अग्नि गुरुकी फिर प्रशंसा करते हैं, जैसा अग्निका स्वरूप है कि, नाश नहीं होता, अग्निकी ज्वालाओंका नाश होता है,परन्तु दीखता नहीं,वैसेही काल नदीके वेगसे जन्म मरण इस देहकोही हैं; आत्माको नहीं क्योंकि आत्मा तो नित्य अर्थात् अमर है ॥ ४९ ॥ अब सूर्यसे जो

सीखाहै सो कहते हैं जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जल सोखताहै और फिर वर्षाके समय वही जल छोड देता है, परन्तु उसमें आसक्त नहीं है, इसीप्रकार योगीजन इन्द्रिय अपेक्षित पदार्थोंका ग्रहण करैं और कोई याचना करैं तौ तत्काल देदें, ममता न रक्खैं ॥ ॥ ५० ॥ जिस प्रकार सूर्य आकाशमें अपने स्वरूपमें रहता है और एकही है परन्तु जलादिकमें प्रतिबिम्ब पडनेसे अनेकरूप दीखता है, इसी प्रकार आत्मा स्वरूपसे भिन्न नहीं है. देहादिकोंमें व्याप्त होनेसे स्थूल बुद्धिवालोंको अनेकरूपका प्रतीत होता है (७) ॥ ५१ ॥ अब कपोतसे जो सीखा हैं, सो कहते हैं, कहीं किसीसे अधिक स्नेह न करै, किसीसे आसक्त न हो, जो संग करे तो संतापको प्राप्त होता है और दीनमति होती है, जैसे कपोतको हुआ ॥ ५२ ॥ सो कपोतकी कथा कहते हैं, एक कपोत वनमें किसी वृक्षपर अपना घर बनाय कपोतिनी अपनी स्त्रीसे मिलकर कितने वर्षतक दोनोंने वास किया ॥ ५३ ॥ वह दोनों स्त्री पुरुष कपोत कपोतिनी परमस्नेहसे बँधेहुए दृष्टि दृष्टिसे बँधी, हृदय हृदयसे बँधा, अंग अंगसे बँधा, बुद्धि बुद्धिसे बँधी ॥ ५४ ॥ शयन, आसन, गमन, स्थान, वार्त्ता, क्रीडा, भोजन, सब काम, एकही स्थानपर बैठकर करैं, अलग २ होकर कभी न करैं. इसप्रकार एक पंगतमें निःशंक हुए फिरा करैं ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त वह कपोतिनी अपने हावभाव, लावण्य, मधुर भाषणसे प्रसन्नकर कपोतसे दीन होकर जो जो वस्तु माँगे. सो सो वह कपोत अतिकष्टसे भी ले आवै. इसभाँति अजितेन्द्रिय उसके अधीन रहा करै ॥ ५६ ॥ एक समय प्रथमही गर्भवती हुई सो पतिव्रता कपोतिनीने अपने समीपके आये पतिके समीपही अपने घरमें अंडे दिये ॥ ॥ ५७ ॥ कुछ समय बीतनेपर उन अण्डोंमेंसे अचिन्तनीय हरिकी शक्तियोंसे हाथ पाँव आदि युक्त बच्चे उत्पन्न हुए और उनके कोमल अंगोंमें रूएँ हुए ॥ ५८॥ इसके उपरान्त यह दोनों कपोत कपोतिनी प्रसन्न हुये और अपने बच्चोंका यत्नसहित पालन करने लगे; पुत्रोंमें स्नेह बहुत हुआ और दिन दिन अपने बच्चोंका मधुर बचन सुननेसे उनको बडा संतोष प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥ उनके पंखोंसे जब आपको स्पर्श हो तब बहुत सुख पावैं प्रसन्न होजायँ; अपने पुत्रोंके मुखकी सुन्दर चेष्टा; उनके वचन और अपने निकट आनेसे परमसुख प्राप्त करनेलगे ॥ ६० ॥ उस स्नेहसे बद्धहृदय हो हरिकी मायासे परस्पर मोहित हुए. अतिदीन बुद्धि वे स्त्री पुरुष बच्चोंको पालनेलगे ॥ ६१ ॥ एक दिन वे दोनों कुटुम्बी कपोत वनके चारों ओर बालकोंके अन्नके लिये बडी देरतक अभिलाषासे फिरे ॥ ६२ ॥ अपनी इच्छासे वनमें फिरते किसी एक क्रूर वधिकने अपने घोंसलेके निकट चुगते बालकोंको देख जाल रोपकर पकडलिये ॥ ६३ ॥ इसके उपरान्त वे कपोत कपोतिनी सदा हर्ष संयुक्त; प्रजाका चुग्गा चारा लेनेको गये और लेके अपने घरमें आये ॥ ६४ ॥ तब वह कपोतिनी अपने बालकोंको जालमें अतिदुःखित पुकारते देखकर आप भी पुकारती हुई दौडी ॥ ६५ ॥ वह कपोतिनी बहुत स्नेहसे बँधी दुःखित चित्त जालमें बँधे बालकोंको देख वहाँ हरिकी मायासे ज्ञानरहित हो आप भी जालमें बँधगई ॥ ६६ ॥ इसके

उपरान्त वह कपोत भी आपसे अधिक प्यारे बालकोंको और अपने समान स्त्रीको भी बँधा देख अति दुःखितहो विलाप करनेलगा ॥ ६७ ॥ अहो ! देखो मैं अल्प पुण्य हूं, मूर्ख हूं, इन भोगोंमें अब भी तृप्त नहीं हुआ, देखो मैंने कुछ पुण्य नहीं किया, इसीलिये धर्म, अर्थ, काम, साधक मेरा घर नष्ट होगया ॥ ६८ ॥ यह स्त्री मेरे अनुकूल और पतिव्रता थी, सो आज मुझे सूने घरमें छोडकर साधु पुत्रों समेत स्वर्गको जाती है॥६९॥ मेरे स्त्री, पुत्र सब मरे सो मैं दीन हुआ, बिधुर अर्थात् रँडुआ हुआ. अतिदुःखित हुआ सो अब किसलिये जीनेकी इच्छा करूं; मेरा जीवन दुःखरूप है ॥ ७० ॥ इसप्रकार वह कपोत विलाप करता उन बालकोंको और अपनी प्रियाको मृत्युसे ग्रसे जालमें, चेष्टा करते देख दीन हो आप भी उस पुरुषके देखते जालमें जा पडा ॥ ७१ ॥ इसके उपरान्त उस गृहस्थ कपोतको और कपोतिनी तथा उसके बालकोंको ले कार्य सिद्ध होनेपर वह दुष्ट वधिक अपने घरको चलागया ॥ ७२ ॥ अवधूत बोले कि, हे यदु ! जिसप्रकार कुटुम्बी कपोत अशान्त चित्त हुआ इसीप्रकार यह पुरुष सुख दुःखहीमें रतिमान दीन होकर कुटुम्बका भरण पोषण करते कुटुम्ब सहित दुःखही प्राप्त करते हैं; सुख कभी नहीं पाते किंतु कपोतकी भाँति बँध जाते हैं ॥ ७३ ॥ जो पुरुष मुक्तिका खुला द्वाररूप इस मनुष्य-लोकको पाकर कपोतके समान गृहोंमें आसक्त होता है, वह उत्तम गति पाकर भी अधोगतिमें पडता है, घरकी आसक्ति पशु पक्षियोंको भी अनर्थ देती है, तो मनुष्योंको दे तो इसमें कहनाही क्या है ? यह विद्या मैंने कपोतसे सीखी इसलिये कपोत गुरु हुआ (८) ॥ ७४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कंधे
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-इस अष्टम अध्यायमें, दत्तात्रेय सुजान।
नवमें अजगरकी कथा, सो सब कहों बखान ॥ १ ॥

हे राजन् ! प्रारब्धके कर्मोंका भोग अवश्य करनेसे ही छूटता है, इसलिये कर्मोंके उद्यमसे वृथा आयु न खोवै, तहाँ अजगरकी सीख अवधूतजी कहतेहैं कि, हे राजन् ! जिन पुरुषोंको देहाभिमान, है, उन्हें इन्द्रियोंका सुख नरकमें भी होता है। जैसे दुःख विना इच्छाके होता है, ऐसेही सुख भी होता है, इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित्त है कि, सुखकी चाहना न करै ॥ १ ॥ उद्यम विना अनायाससे जो कुछ प्राप्त हो अथवा विरस हो, थोडा हो या बहुतहो, उसे प्रसन्नतापूर्वक करले, सबसे उदासीन रहै, शरीरके निर्वाह मात्रही ग्रहण करै, इसप्रकार अजगर रहताहै ॥ २ ॥ जिस दिन कुछ न प्राप्त हो उस दिन विना भोजन करेही सो रहे, तो अवश्य अजगरके समान ईश्वर देगा, उद्यम न करै इस प्रकार धैर्यसे रहै ॥ ३ ॥ यद्यपि इन्द्रिय समर्थ हों, मन पुष्ट हो, शरीर पुष्ट हो, परन्तु तो भी कुछ कर्म न करै, जागताही पडा रहै, किसी वस्तुकी अपेक्षा होय तो भी यत्न न करै इस

भाँति निरपेक्ष होकर रहै (९) ॥ ४ ॥ अब जो समुद्रसे सीखा है, सो कहते हैं, जैसे समुद्र जल निश्चल है, ऐसे ही अंतःकरणमें प्रसन्न रहे, समुद्र महागंभीर है, उसका पार और अंत नहीं,जिसको कोई लाँघ न सकै,कोई पकड न सकै,क्षोभ न करसकै,यह सब गुण समुद्रसे सीखे हैं, यही महात्माओंको उचित हैं॥५॥जैसे समुद्र चौमासेमें नदियोंके जलसे चढता नहीं, ग्रीष्ममें सूखता और घटता नहीं, इसीप्रकार योगिराजोंको चाहिये कि, जो कुछ मिलै उसीमें संतोष करैं, यदि न मिले तो खेद न करैं, केवल एक नारायणके विषेही तत्पर होकर विषयोंसे दूर रहैं (१०) ॥ ६ ॥ इन्द्रियोंके पांच विषय हैं, रूप, गंध,स्पर्श, शब्द, रस, इनमें आसक्त होनेसे यह जीव नष्ट होजाता है, जैसे पतंग, भ्रमर,गज,हरिण, मीन, इत्यादिक नाशको प्राप्त होते हैं, इसलिये इन पाँच विषयोंमें आसक्त न हो, यह बात इन पाँचोंके पास से सीखी है, इनमें पहले पतंगसे जो सीखी है सो कहते हैं, जैसे पतंग अग्निका रूप देख भ्रमके वश होकर उसमें जा पडता है ॥ ७ ॥ इसीप्रकार यह स्त्री देव-माया है, सुवर्ण, आवरण और वस्त्रादि माया विलास देख उसके हावभावसे मोहित होकर अजितेन्द्रिय लोभी पुरुष भोगकी इच्छासे अंधकूपमें जा पडते हैं, इनकी दृष्टि नष्ट होगई है, इसलिये अंधकूपको नहीं जानते, रूपको देखतेही उत्तमसे नष्ट होजाते हैं, यह विद्या पतंगसे सीखी (११) ॥ ८ ॥ अब भ्रमरसे जो सीखी है सो कहते हैं, भ्रमर दो प्रकारका होता है, एक शहतकी मक्खी,दूसरा भौंरा जो मुनि हो तो थोडा ग्रासमात्र माँग ले जितनेसे देह रहैं, परन्तु एकही घरसे न माँगै जिससे गृहस्थको पीडाहो, जैसे भ्रमर सुगंधिके लोभसे एक कमलहीमें वसै तो उसमें बँध जाय, ऐसेही यह एक ठौर माँगनेसे बँधजाते हैं॥९॥चतुर मनुष्यको चाहिये कि, सब शास्त्रोंसे सारवस्तु ग्रहण करले,शास्त्र छोटे हों, बडे हों, सार सबका लै ले,जैसे भ्रमर पुष्पोंमेंसे मकरंदका सार ले लेता है, यह बात भ्रमरसे सीखी है ॥ १० ॥ भ्रमरका दूसरा नाम मधुकर है, सो मधुकर मधुमक्खियों-हीमें रहता है,उन मधुमक्खियोंसे जो सीखा है, सो कहते हैं, मुनि भिक्षाको ले आवै, परन्तु साँझको अथवा दूसरे दिनको संग्रह न रक्खै, पाणिपात्रमें लेकर उदरपात्र पूर्ण करै मधुमक्खीकी नाईं संग्रह न करै,देखो मधुकी मक्खी सब वृक्षोंके पुष्पोंका रस संग्रह करके एक मुहाल बनाती हैं,वह शहद अनेक रोगोंको दूर करता है, ऐसेही मुनि लोगोंको चाहिये कि, शास्त्रोंमेंसे ऐसा उत्तम सार निकालें जो मनुष्योंके मायारूप रोगोंको हरै ॥ ११ ॥ और जो मोहमें फँसकर संग्रह करै तो नष्ट होय, जैसे मधुमक्खी मधु सहित नष्ट होजाती है (१२) ॥१२॥अब हाथीकी सीख कहते हैं, भिक्षुक काष्ठकी स्त्री पूतरीको पाँवसे भी न छूवै और यदि छूवे तो बँध जाय;जैसे हाथी हथिनीके अंग संगसे बँध जाते है,यह विद्या मैंने हाथीसे भी सीखी ॥१३॥ जो बुद्धिमान् होय तो कभी स्त्रीके निकट न जाय, जाय तो अवलम्बन करके पिटै, क्योंकि स्त्री आत्माकी मृत्यु है, जैसे बलवान् हाथियोंसे हाथी माराजाता है (१३) ॥ १४ ॥ जो कोई मधुमक्खियोंके पास जाय, उन्हें छुडाय मधु हरकर ले आवै सो मधुहा कहावै, जो मनुष्य लोभी हैं और अनेक दुःखोंसे धनसंचय करते हैं, न दान

करते हैं न आप भोग करते हैं, तो उस धनका भोग और ही कोई करैगा, जैसे मक्खी ठौर ठौरसे मधु लाकर संग्रह करती हैं, परन्तु भोग और ही कोई करता है, यह धनके उपाय जानने ॥ १५ ॥ अति दुःखसे संचय करेहुए धनसे ग्रहण करे मनोरथोंकी चाहना करनेवाले गृहस्थोंके पहले संन्यासी भोजन करता है, जैसे मधुहा मक्खियोंसे प्रथम भोजन करता है, संन्यासी और ब्रह्मचारी रांधे अन्नके स्वामी हैं; इनको पहले दिये विना जो पुरुष भोजन करलेता है वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है (१४) ॥ १६ ॥ संन्यासी वनमें फिरते हैं, गाँवके गीत प्राकृत कभी नहीं सुनते यदि सुनैं तो बंधनमें पडैं, जैसे मृगगण वधिकके गीत सुनकर मरजाते हैं, यह विद्या हरिणसे सीखी ॥ १७ ॥ गाँवके गीत नृत्य वादित्र सुन और उनके वशमें हो बंधनमें पडते हैं, जैसे मृगीके पुत्र ऋष्यश्रृंग ऋषि वेश्याओंके विषय सम्बन्धी नाच वाद्य और गाना सुननेसेही, उन वेश्याओंके खिलानेको सेवनकर वशमें होगये (१५) ॥ १८ ॥ मीनसे जो विद्या सीखी सो कहते हैं, यह मूर्ख मनुष्य अतिबलवंत जिह्वाके वश हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, जैसे वंशीके लोहेमें माँस लगाते हैं, उसके स्वादसे मछली वंशीको पकडतीहै, तो मृत्युको प्राप्त होतीहै ॥ १९ ॥ पण्डितजन आहारको त्यागकर शीघ्र इन्द्रियोंको जीत लेते हैं परन्तु एक रसेन्द्रियको नहीं जीत सकते हैं, क्योंकि आहार त्यागनेसे जिह्वाका लोभ बढता है ॥ ॥ २० ॥ जिस पुरुषने और इन्द्रिय जीत ली हैं; परन्तु तबतक जितेन्द्रिय नहीं होता है, जबतक जिह्वा न जीतै, क्योंकि जो जीभ जीते. तो जानो कि, सब जीते, यहाँ अभिप्राय यह है कि, जो आहार छोडिये तो केवल और इन्द्रियोंकी जय होय रसेन्द्रिय बढै और भोजन करै तो रसकी आसक्तिसे सब इन्द्रियोंको लोभ होय इसलिये रसकी आसक्ति छोडकर ओषधीके समान अन्न ले (१६) ॥ २१ ॥ अब पिंगलाका उपाख्यान कहते हैं, अवधूतजी बोले कि, हे महाराज ! पिंगला नामक एक वेश्या पहले विदेह नगरमें थी उससे भी मैंने कुछ सीखा है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! एक दिन उस कामचारिणी वेश्याने द्वारेपर नगारे धरकर यह संकेत किया कि, जो पुरुष इस नगाडेपर जितने डंके मारे वह रात्रिमें मेरे पास आनकर उतने हजार रुपये देगा, इस प्रकार समस्या बनाई, इतनेहीमें मैंने जाकर उस नगाडेपर दश बीस दंडे लगा दिये और सामने जो दूकान खुली पडी थी उसमें जा बैठा, तब उस वेश्याने समझा कि, आज कोई बडा धनी पुरुष आया, इस आशापर वह कंतको रति स्थानमें लेजानेकी इच्छासे अत्युत्तम रूप धारण किये सायंकालके समय द्वारपर आनकर स्थित हुई ॥ २३ ॥ उस वेश्याने मार्गमें आतेहुए धनवान् मोलके दाता पुरुषोंको देख अपने मनमें जाना कि, यह भोगके योग्य हैं, क्योंकि उसके तो अधिक अर्थकी ही कामना थी ॥ २४ ॥ उनको आये और गये देखकर और कोई धनवान् मुझे बडा दाता प्राप्त होगा, इस आशासे वह संकेतकी जीवनहारी वेश्या द्वारपर बैठी रही ॥ २५ ॥ इसप्रकार दुराशासे जागते हुए द्वारपर आवै कभी भीतर जाय इस भाँति अर्द्धरात्रि होगई ॥ २६ ॥ उसका

धनकी आशासे चित्त दीन होगया मुख सूखने लगा और चिंतासे परमवैराग्य उत्पन्न होगया, उस वैराग्यसे जो कहा सो सुनो * ॥ २७ ॥ उसका धनकी आशासे चित्त दीन हुवा, मुख सूखने लगा, निर्वेद चित्तसे उस समय कामकंदलाने जो गाया सो मैं कहताहूं, तुम सुनो, वह मनमें विचार करै है, कि वैराग्य पुरुषके दुराशापाश काटनेको खड्ग है हे राजन् ! जिसको वैराग्य नहीं उस पुरुषके देहके बंधन नहीं छूटते हैं ॥ २८॥ पिंगला बोली अहो देखो ! मेरे लोभका विस्तार कि, मैंने अपना मन न जीता मैं विवेक रहित हूं, जो ऐसे दुष्टोंका प्रियकर अपना अभिलाष पूर्ण किया चाहती हूं ॥ २९ ॥ अपना अतिप्रिय निकट ही सदा रहता है, अति सुखकारी रतिका दाता धनदाता नित्य प्रियको छोड़ दुःखित हुई, चिंता शोक मोहके देनेवाले तुच्छ मनुष्योंको मैंने सेवन किया, न तो उनसे मेरा काम पूर्ण होताहै, न सुखही होता, मैं मूढहूं ॥ ३० ॥ अहो ! मैंने यह आत्मा वृथा सताया, जिससे अतिनिन्दा संयुक्त शोकसे ग्रसे धन और रतिकी इच्छासे मेरी देह विकी ॥ ३१ ॥ हाथ पावोंके हाड थूनी पसलियोंके हाड बाँस और पीठके हाड जहाँ वरेंडा है, ऐसा शरीर रुधर त्वचा रोम नखसे ढका है, जिसके नौ-

---

* **शंका**-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मुनियोंने अनेक जन्म तप किया और तपस्याही करते करते अनन्तयुग बीत गये, परन्तु ज्ञानकी प्राप्ति मुनियोंको नहीं हुई, ज्ञान ऐसा महा कठिन है और पिंगला वेश्याने कभी भी सुन्दर कर्म नहीं किये कि, जिन कर्मों करके ईश्वर प्रसन्न हो ऐसी पतित महाअपवित्र पिंगला गणिका एक क्षणमात्रमें ज्ञानको कैसे प्राप्त होगई ? यह बडे आश्चर्यकी बात है ।

उत्तर-जिस काम करनेके लिये ब्रह्माने जिस प्राणीको बनाया है, वह प्राणी उसी कामको करैगा तो उसको किसी प्रकारका दोष नहीं लगनेका, देखो ! हरिश्चन्द्रने चाण्डालकी नौकरीकी और मरघटमें मुर्दोंको उससमय फेंकने देता था, जब अपना दंड लेलेता था, परन्तु भगवान् उस पै अत्यन्त प्रसन्नहुए और ऐसेही सदना कसाईपर भगवान् प्रसन्न हुए सो अपने कारबारमें किसी प्रकारका दोष नहीं परन्तु अपने कुलका धर्म करके कुछ देर भगवान्का प्रीति सहित ध्यान करैगा तो निस्सन्देह भगवान् उससे प्रसन्न होंगे, ऐसे ही ब्रह्माने जिस कर्म करनेके लिये पिंगलाको बनाया था, वही कर्म पिंगला करती थी, क्योंकि जनकपुरीमें सब प्राणी अपने अपने कुलके धर्मको करके पीछे भगवान्में प्रीति करते थे, ईश्वरको नहीं भूलते थे, स्त्री पुरुष सब भगवान्का नाम जपते थे और पिंगला भी पुरुषोंके संग रति करके पीछेसे स्नान करके दूसरे वस्त्र पहनकर भगवान्का ध्यान करती थी, और ईश्वरकी प्रार्थना करके अपनी देहसे जो पाप होते थे उनको बारम्बार क्षमा कराती थी उस दिन भगवान्की कृपा होगई जो उसने पापकर्मसे ग्लानि मानी और ज्ञानमें लय होगई, एक क्षणमें पिंगलाको ज्ञान हुवा तो कुछ आश्चर्यकी बात नहीं ।

द्वार स्रवते हैं, सो विष्ठा मूत्रसे पूर्ण नरक रूप कांतको मेरे विना कौन स्त्री सेवैगी ? ॥ ॥ ३२ ॥ इस विदेह राजाके नगरमें एक मैंही अति मूढ हूं, क्योंकि जो मैं असाध्वी साक्षात् अच्युत परमात्माको छोड तुच्छ काम भोगकी इच्छा करती हूं ॥ ३३ ॥ यह ईश्वरही सब देहधारियोंका आत्मा और सुहृद है, परमप्रिय नाथ है, क्योंकि अपने देहको देकर दूसरेको मोल लेलेता है, इसालिये अब उसीसे लक्ष्मीके समान रमण करूंगी ॥ ॥ ३४ ॥ विषय और कामके दाता मनुष्य और देवता यह सब उत्पत्ति मरणसंयुक्त हैं, कालसे ग्रसे हैं, वह स्त्रीकी कामना क्या करैंगे ॥ ३५ ॥ अब अपने भाग्यकी सराहना करती है, मुझे जान पडता है कि, निश्चय मुझपर भगवान् विष्णु किसी कर्मसे प्रसन्न हुये हैं, जिससे दुष्टआशासंयुक्त मुझे सुखदायक ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ॥ ३६ ॥ कदाचित् कहो कि, धनकी प्राप्ति न हुई उसका खेद हुआ, विष्णु क्या प्रसन्न हुये ? तो कहते हैं कि, मंदभागिनीको ऐसे क्लेश वैराग्यके कारण नहीं होते, क्योंकि इसीप्रकार और भी पहले दिन हो गये थे, जब धनकी प्राप्ति न हुई थी, न कोई पुरुष आया था, आज मुझे क्लेशसे वह वैराग्य हुआ है, जिस बैराग्यसे यह पुरुष गृहादिक बंधन छोडकर शान्तिको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ ईश्वरने मेरा यह बडा उपकार किया है, इस उपकारको मैंने माथेपर चढा लिया और नीच लोगोंके योग्य दुष्ट आशाओंको त्याग मैं उन्हीं जगदीशकी शरण लेतीहूं ॥ ३८ ॥ अब मैं संतुष्ट हो परमेश्वरमें श्रद्धा करती, यथालाभसे जीविका करती, निश्चयसे आत्माकोही रमणकर आनंदसे विहार करूंगी ॥ ३९ ॥ जो पुरुष संसारके कुएँमें पडाहै, विषयोंसे अंधदृष्टि है, कालस्वरूपसे ग्रस रहा है, ऐसे आत्माकी रक्षा करनेको इन आत्मस्वरूप भगवान् विना और कौन समर्थ है ? ॥ ४० ॥ जब सबसे यह आत्मा विरक्त हुआ तब अपनी आपही रक्षा करनेको सावधान हुआ इस जगत्को जो कि, कालस्वरूपसे ग्रसित है, अप्रमत्त होकर देखै ॥ ४१ ॥ अवधूत बोले कि, हे महाराज ! इस भाँति निश्चय मतिसे धन और विषय भोगकी आशा छोड, शान्तिको प्राप्त हो वह वेश्या शय्यापर सोगई ॥ ४२ ॥ इसमें मैंने फलितार्थ इतना लिया है कि, आशा परमदुःखरूप है, आशाको छोड बैठनाही परमसुख है, जैसे पिंगला कांतकी आशा छोड सुखसे सोई साधुओंको संग्रह करना उचित नहीं है, इससे दुःख होता है (१७) ॥ ४३ ॥ यहाँ एक दृष्टान्त है *

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

* **दृष्टान्त**-एक बाबाजीने महाकष्टसे पचीस अशरफी संग्रह करीं, जब तब निकाल चुटियामें धरा करते थे, एक दिन किसीने देख लीं, सो बाबाजीसे आनकर बोला महाराज आपका आज मेरे यहाँ निमंत्रण है, बाबाजी बोले अच्छा, तब वह घर लिवा लेगया और इतना हलुवा पूरी खिलाया कि,बाबाजीसे उठा न गया, तब उसने खाट बिछादी-

दोहा-इस नवमें अध्यायमें, कुररी सों उपदेश।
जो पायो सो कहतहौं, सुनहु कृपालु नरेश ॥ ९ ॥

अवधूतजी बोले कि, हे यदु ! अब कुरर पक्षीसे जो मैंने सीखाहै सो कहते हैं, मनुष्योंको जो जो वस्तु प्रिय हैं सो सो मुझे दुःखदाई हैं, यह जानकर जो पुरुष संग्रहको छोडे वह अनंत सुखको प्राप्त होगा ॥ १ ॥ यहाँ एक दृष्टान्त कहते हैं-एक कुरर पक्षीने माँस पाया, तब उससे बलवंत माँसरहित और पक्षी आये, सो उसको मारने लगे तब इसने वह मांस डाल दिया, तब यह उसे छोड माँसको चिपट गये यह छूटकर अत्यन्त सुखी हुआ, मुनिजनोंको चाहिये कि, संसारके व्यवहारोंको माँसकी नाईं परित्याग कर दें (१८) ॥ २ ॥ अब बालककी सीख कहते हैं कि, हे राजन् ! न तो मुझे मान अपमानका सुख दुःख है, न घरकी चिंता है, न पुत्रोंकी चिन्ता है, एक आत्माहीके संग क्रीडा करता यहाँ फिरता हूं,जैसे बालक चिन्तासे छूटकर आनन्दमें मग्न होते हैं॥३॥ हे राजन् ! दोही मनुष्य चिन्ता रहित हो परमानन्दमें मग्न होते हैं, एक तो उद्यमसे रहित अज्ञ बालक, दूसरा गुण रहित ईश्वरको प्राप्त होनेवाला * (१९) ॥ ४ ॥ कुमारीसे जो विद्या सीखी है सो कहते हैं, कहीं एक कन्या थी उसके भाई बंधु पिता कहीं गयेथे, इसके पीछे कन्याको वरण करनेके लिये घर पाहुने आये तब उनका

-और अपनी स्त्रीसे कहा कि, इनके चरण खूब दाबना और मैं जाताहूं,यह तो सेवा करने लगी और वह पुरुष थोडी देरमें व्याकुलतासे घरमे आय आलेमें ढूँढने लगा. स्त्रीने कहा कि, क्या ढूँढते हो ? तब उसने कहा कि, यहाँ पचीस अशरफी रक्खी थीं सो कहां गईं? अब बाबाजी सकुचाये, वह स्त्रीको मारनेलगा कि, तैंनें बाबाजीको देदी होंगी बाबाजी बोले हमारे कपडे देखलो, दोचार आदमी इकट्ठे होगये, तब इसने बाबाजीकी चुटिया देखी उसमेंसे अशरफी निकलीं बाबाजी बडे लज्जित हुये, धनका धन गँवाया, चोरके चोर हुये, जब बाबाजी चले तो इसने हाथ जोडकर कहा कि, महाराज ! फिर भी दर्शन देना, तब बाबाजी बोले कि, पचास और करलूंगा तब आऊँगा ॥

* **शंका**-उद्धवजीसे श्रीकृष्णने कहा था कि, बालकोंके मनमें चिन्ता नहीं रहती, इसमें हमको यह शंका है कि, जो बालकोंको चिन्ता न होती तो जन्महीसे क्यों रोते हैं जिससमय माताके उदरसे पृथ्वीपर गिरते हैं, उसी कालसे राति दिन रोते हैं, जो प्राणी चिन्तासे रहित हैं उनको रोनेसे क्या प्रयोजन ? और बालकका तो जबतक बालपन रहता है, तबतक रोते हैं ?

उत्तर-ज्ञानकी वार्त्तामें सज्जन लोग बालकको बालक नहीं कहते, पण्डित लोग बालक उसको कहते हैं कि, जो प्राणी संसारकी तथा अपने कुलकी लाजको तथा भयको त्याग दे, इसप्रकार पण्डितोंके वचनके प्रमाणसे कृष्णचन्द्र भी उसी बालकको कहते हैं कि, चिन्ता नहीं रहती, जन्मलिये बालकको नहीं कहते ॥

आतिथ्यभाव उसने आपही किया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! कन्या उनके भोजन करानेके लिये एकान्तमें बैठकर धान कूटने लगी, तब उसकी चूडियोंका बडा शब्द होने लगा ॥ ६ ॥ वह कन्या आप धान कूटना निंदित दरिद्रका कर्म जान क्रमसे एक एक चूडी उतारने लगी, केवल हाथमें दोदो चूडी रक्खीं ॥ ७ ॥ परन्तु धान कूटनेमें दो दो चूडियोंका भी शब्द होने लगा, जब उसने उनमेंसे भी एक एक उतार दी तब एक एकमेंसे शब्द न हुआ ॥ ८ ॥ हे शत्रुनाशक ! लोकोंका तत्त्व जाननेकी इच्छासे सर्वत्र फिरते मैंने एकदिन कुमारी इसप्रकार धान कुटती देखी तब यह उपदेश उससे सीखा ॥ ९ ॥ बहुतोंका जहाँ वास होय वहाँ अवश्य कलह होता है, जो दो होयँ तो आपसमें बातैं तो भी करैं इसलिये अकेलाही विचरण करै, जैसे कुमारीका कंकण (२०) ॥ १० ॥ अब बाणबनानेवालेसे जो सीखा है सो कहते हैं, मनको ईश्वरमें स्थिरकर प्राणोंको वशकर आसन जीतै, वैराग्यके अभ्याससे मन स्थिरकर सावधान रहै ॥ ११ ॥ गुण और तिनके कार्य रहित यह मन परमानंदरूप भगवान् विषे जब स्थान पावै, तब शनैःशनैः कर्मवासना छोडै, जब इसको सतोगुण बढै, तब रजोगुण, तमोगुणको दूर करके ब्रह्ममें लीन होय, तब ब्रह्मविना और कुछ दृष्टिमें नहीं आता ॥ १२ ॥ इसप्रकार जब आत्मासे चित्त मिलजाय, तब बाहर भीतरका भेद नहीं रहता, सब एकरूपसे दीखते हैं, जैसे बाण बनानेवालेका चित्त बाण बनानेमें ऐसा लगाथा कि, निकट होकर सेनासमेत राजा चलागया परन्तु उसने न जाना, ऐसेही साधुओंको चाहिये कि, ईश्वरमें ऐसा मन लगावैं जो और कुछ सुधि न रहे (२१) ॥ १३ ॥ अब सर्पसे जो सीखा है सो कहते हैं–जैसा सर्प सब लोकोंसे डरताहुवा इकलाही रहता है, एकही ठौर घर बनाकर नहीं रहता, सदा सावधान रहता है, एकान्तहीमें रहता है, दूसरेकी सहायता न चाहै अपनी गति दूसरेसे छिपाये रक्खै है और विष निर्विष जाननेमें नहीं आता ऐसा रहता है, थोडा बोलता है, इसीप्रकार मुनियोंको रहना चाहिये ॥ १४ ॥ यह देह अनित्य है, इसके लिये घर न कीजै,घर दुःखका रूपहै और फल कुछ नहीं है. जैसे साँप पराये घरमें प्रविष्ट होकर सुखसे बैठै बसै, परन्तु आप घर न करै ॥ १५ ॥ एक नारायण देव ईश्वर आप इस विश्वको अपनी मायासे सृजते हैं, फिर प्रलयमें कालशक्तिसे संहार करके आपही रखते हैं॥१६॥ तब एक अद्वितीय आत्मा आधार सबोंका आश्रयहो आपही एक रहता है, वे अपने इस समतारूप कालसे सतोगुण आदि शक्तिमायामें लीन करता है, वही आदिपुरुष माया और पुरुषके ईश्वर हैं॥१७॥ब्रह्मादिक और मुक्त पुरुषोंके पाने योग्य हैं, मोक्षके रूप केवल अनुभव आनंदके पात्र निरुपाधि अनन्त हैं॥१८॥हे शत्रुनाशक ! जब सृष्टि उत्पन्न करते हैं, तब केवल अपने प्रभावसे त्रिगुण अपनी मायाको क्षोभ उपजाय उस मायासे पहले सूत्ररूप महत्तत्त्व उपजाते हैं॥१९॥उससे त्रिगुणरूप विश्व अहंकार द्वारा होता है, जिस महत्तत्त्वमें यह विश्व बँधाहै, जिस प्राणसूत्रसे पुरुष संसारको प्राप्त होते हैं (२२) ॥ २० ॥ अब मकरीकी शिक्षाका दृष्टान्त कहते हैं, जैसे मकरी अपने हृदयसे उगलकर तागा मुखसे

निकाल फैलाय उससे क्रीडाकर फिर निगलजाती है, इसीप्रकार ईश्वर स्वयं इस जगत्को बनाय फिर संहार करते हैं ॥ २१ ॥ यह जीव स्नेहसे द्वेषसे अथवा भयसे बुद्धि कर जहाँ जहाँ एकाग्र मन धारण करता है और उसी उसी रूपको प्राप्त होता है, इसलिये जो ईश्वरका ध्यान करै तो ईश्वररूप होवै इसमें क्या आश्चर्य है? (२३) ॥२२॥ हे राजन्! जैसे भृंगीने भीतमें रक्खा कीट भृंगीका ध्यान करते उसी देहसे उस रूपको प्राप्त करता है (२४) ॥ २३ ॥ इसप्रकार इतने गुरुओंसे मैंने यह मति सीखी परन्तु हे राजन्! एक बुद्धि अपनी देहसे सीखी है, सो मैं कहता हूं तुम सुनो ॥ २४ ॥ देह मेरा गुरु है, क्योंकि इस देहसे मुझे वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुआ है, यह देह पीडासहित सदा जन्म मरणको धारण करता है, इस देहसे यथार्थ तत्त्वोंका विचार करनेसे मुझे वैराग्य हुवा है, तो भी मैं इसपर प्रीति नहीं करता; क्योंकि यह कुत्ते और स्यारका भक्ष्यहै, यह निश्चय कर सर्व संग रहित हो विचरताहूं ॥ २५ ॥ जिस देहको प्रसन्न करनेकी इच्छासे स्त्री, पुत्र, धन, पशु, दास, गृह बंधुके समूहोंका पोषण करते हैं और बहुत कष्टसे धन संचय करते हैं, इतनेपर भी अंतमें यह देह आपही नाश होजाती है, फिर देहके जाने पर भी दुःख नहीं जाता, दूसरे देहका कर्म बीज उपजाये जाता है, उस कर्मसे फिर दुःखरूप देह इस प्रकार उत्पन्न होजाता है, जिस प्रकार रूख अपना बीज छोडता है, उससे फिर रूख उत्पन्न होजाता हैं॥२६॥और इस देहको एक ओरसे जिह्वा रसके लिये खैंचती है, शिश्न स्त्री संगके लिये खैंचता है, त्वगिन्द्रिय एक ओरसे स्पर्शके लिये खैंचै है, श्रवण शब्दके लिये खैंचते हैं और घ्राण गंधके लिये खैंचते हैं, चंचल दृष्टि रूपके लिये खैंचती है, कहीं कहीं कर्मशक्ति अपने विषयके लिये खैंचती हैं, जैसे बहुत सौत गृहस्थको लूटती हैं, इसीप्रकार यह सब इन्द्रियें देहको लूटती हैं ॥ २७ ॥ हे देव! अपनी शक्ति मायासे वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, डांस, मछरी अनेक प्रकारके शरीरोंको उपजाकर ब्रह्मा संतुष्ट हृदय न हुए परन्तु ब्रह्मज्ञानकी बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंकी देह रचकर आनन्दको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ उससे यह अतिदुर्लभ मनुष्य देह अनेक जन्मों पीछे पाया है, पुरुषार्थका दाता है, पर अनित्यहै, यह जानकर शीघ्र मोक्षके लिये जबलों मृत्यु न हो शीघ्र यत्न करै क्योंकि विषय तो इसको सब योनिमें होंगे ॥ २९ ॥ इसप्रकार जब मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ और ज्ञानका प्रकाश हुआ, तब आत्मनिष्ठ हुआ, इसलिये संग और अहंकार छोडकर मैं पृथ्वीपर फिरताहूं ॥ ३० ॥ यदि कहो कि, तुमने बहुत गुरु क्यों किये? गुरु तो एक करना चाहिये तो कहते हैं, कि, एक गुरुसे अति निश्चल ज्ञान विस्तारको प्राप्त नहीं होता है, इसलिये अद्वितीय ब्रह्मको ऋषि निश्चल बहुत भाँतिसे कहते हैं, कोई कहते हैं कि, वह प्रपंचरहित है, कोई कहते है सप्रपंच है, जिससे भ्रम उत्पन्न होता हैं, सो भ्रम इन गुरुओंसे निवृत्त होजाता है, परमगुरु मुख्य ज्ञानका देनेवाला एकही है, परन्तु ज्ञानके लिये पीछे अपनी बुद्धिसे उपदेशके अनुकूल दृष्टान्त लेनेसे वह ज्ञान दृढ होजाता है॥३१॥श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! इतना वृत्तान्त कह यदुकी आज्ञाले और गंभीर बुद्धिवाले राजासे प्रणामको प्राप्त हो उसको

स्वीकार कर प्रसन्न हो अवधूत अपनी इच्छासे जैसे आये थे वैसेही चलेगये ॥ ३२ ॥ यह अवधूत दत्तात्रेय हैं, इनकेही वचन सुन हमारे बडोंके भी बडे राजा यदु सब संग छोड समाचित्त होगये, यह सब श्रीभगवान्ने उद्धवजीसे कहा और कपोत, मत्स्य, मृग, कुमारी, हाथी, सर्प, पतंग, कुरर, यह आठ तो त्यागके लिये गुरु किये भ्रमर, मधुहा, पिंगला यह तीनों त्याज्य और ग्राह्य अर्थके लिये गुरु किये ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-दशवें तनु सम्बन्धसे, है सिगरो संसार।
तत्त्वज्ञानसे होतहै, साधन और विचार ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! मेरे कहे स्वधर्मोंमें सावधान होकर मेरा आश्रय करै और वर्ण आश्रम कुलका आचरण निष्काम होकर करै ॥ १ ॥ जब अंतःकरण शुद्ध हो-जाता तब पुरुषको उचित है कि, विषयोंके लगेहुए प्राणी जो विषयोंको निश्चल मानकर उद्योग करते हैं उनके कार्योंके फल विपरीत होते हैं, उनको विचारता रहै इससे निष्का-मता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ जो विषय इन्द्रियोंसे जान जाते हैं, वह सदा नहीं रहते इसीसे वह अनेक प्रकारके प्रतीत होते हैं और जो अनेक प्रकारके हैं, वह अध्रुव हैं, जिसप्रकार मनसे उत्पन्न हुए स्वप्न और मनोरथ अनेक होनेसे चल हैं, ऐसा अनुमान करनेसे निष्का मना प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ निष्काम कर्म करै सकामका त्याग करै मुझमें तत्परहो, आत्माके विचारमें रहै, कर्मकी विधिमें आदर करै ॥ ४ ॥ जो मेरे विषे तत्पर होकर आदरपूर्वक संयमोंको सेवै और जब सामर्थ्य होय तो शौचादिक नियमका सेवन करै इससे भी विशेष धर्म यह है कि, सहनशील हो, मेरे स्वरूपको जानताहो, शान्तहो, सो मेराही रूपहै ऐसे गुरुकी सेवा करै ॥ ५ ॥ अभिमान न रक्खे आलस्य न करै असहनता न करै, स्त्रीपुत्रादिकमें ममता न करै, गुरुओंमें सुहृदता रक्खै, कर्ममें व्यग्र चित्त न करै, परमार्थ जाननेकी इच्छा करै, किसीकी निन्दा न करै, व्यर्थ बातैं न करै॥६॥स्त्री,सम्पत्ति, घर, खेत, स्वजन, धन इत्यादि सबसे उदासीन रहै, क्योंकि सबमें एकही आत्माहै, इससे अपनीही भाँति सबोंमें सुखादिक समान देखै॥७॥यह आत्मा स्थूल सूक्ष्म देहसे भिन्न है, सबका द्रष्टा है, व्यापकहै, स्वयं ज्ञानवान् है, आकाशवत् है, जैसे अग्नि दाह्यकाष्ठके मध्यही रहता है, परन्तु काष्ठसे भिन्नहै, प्रकाशक है और काष्ठको दाह कर्त्ता है ॥८॥ जैसे काष्ठमें प्रविष्ट अग्नि काष्ठके संगसे उत्पत्ति, नाश, अल्पता,महत्त्व, नानात्व गुणको धारण करती है और जैसे यह आत्मा भी इस देहके संगसे देहके गुणोंको धारण करताहै, पर देहसे आत्मा भिन्न और अमर है ॥ ९ ॥ यदि कोई कहै कि, जो देहसे आत्मा भिन्न है, तो देहके गुण क्यों धारण करता है ? तो उत्तरमें इसके कहते हैं कि, ईश्वरके अधीन मायाके गुणसे पुरुषका यह सूक्ष्म स्थूल शरीर उपजाया हुआ है, जिस देहमें अहं यह अभिमान

करनेसे संसारमें गिरताहै, जिस देहको मेरा यह संसार काटनेको आत्मविद्या उपाय है ॥ १० ॥ इसलिये आपहीमें स्थित देहके भिन्न आत्मा ज्ञानकी इच्छासे आत्मामें चित्त मिलाय क्रमसे स्थूल सूक्ष्म देहादिकोंमें आत्मबुद्धिको छोडे ॥ ११ ॥ यह ज्ञान किसप्रकार प्राप्त होता है ? सो कहते हैं, आचार्य रूप नीचेकी अरणी शिष्यरूप ऊपरकी अरणी तथा उपदेशरूप मंथनका काष्ठ इनसे ब्रह्मविद्यारूप परमसुखदायक अग्नि उत्पन्न होती है ॥ १२ ॥ जिस समय बुद्धिमान् गुरुसे चतुर बुद्धिवाला शिष्य यह विद्या पाता है, तब यह विद्या गुणोंका कार्यरूप संसारको और जिनसे निर्मित होकर यह जगत् जीवके संसारका निमित्तरूप होता है, उन गुणोंको भस्मकर काष्ठरहित अग्निके समान आप भी शांत हो जाता है, इसीप्रकार कार्य कारण और विद्याकी एकता होनेसे जीव परमानन्दरूप होता है ॥ १३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! आत्मा स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप नित्य और एक है इसमें कर्त्ता भोक्ता धर्म देहकी उपाधिसे प्राप्त होते हैं, आत्माके अतिरिक्त और पदार्थ मायारचित है, इससे विरक्तहो पुरुष मुक्तिको प्राप्त होताहै, परन्तु मीमांसक कहते हैं कि, मैं हूँ ऐसा प्रतीत करनेवाला आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है, वही कर्म कर्त्ता और सुख दुःखका भोक्ता है, इसका स्वरूपभूत कोई दूसरा निर्विकार परमात्मा नहीं है, भोगके स्थान रूप लोक भोगका काल भोगरूप कर्मोंका बतानेवाला वेद भोगके साधन और भोग भोगनेवाला आत्मा यह अनित्य होवें तो वैराग्य होना संभव है, परन्तु वह सब नित्य हैं, इससे वैराग्य होना संभव नहीं भोग्य पदार्थ बीचमें नष्ट हो जाते हैं,अथवा मायामय होवै, तोभी वैराग्य होना संभव है॥१४॥ माला, चन्दन, आदि भोगोंकी स्थिति प्रवाह रूपसे नित्य है और यथार्थ है, इससे वैराग्य होना असंभव है, क्योंकि जिस दिशामें यह संसार देखा जाताहै, उस दिशामें पहलेभी था, इसकारण जगत्का कर्त्ता कोई ईश्वर नहीं, आत्मा स्वयं नित्य ज्ञानमय नहीं है, उसमें अनेक ज्ञानका विपर्यास होता है, एक क्षणमें घटका ज्ञान नष्ट होकर पटका ज्ञान होता है, इस प्रकार अनेक ज्ञान उत्पन्न होते रहते हैं, पूर्व ज्ञानसे पृथक् हो जाता है, इससे आत्मा नित्य ज्ञानमय नहीं, सो कहते हैं कि, ज्ञानका विपर्यास होनेसे क्या आत्मा अनित्य होजाता है ? नहीं। आशय यह है कि, ज्ञानरूप विकार आत्मामें कुछ बाधा नहीं करसक्ता, मुक्तिमें आत्मा इन्द्रिय रहित है, इससे उसमें ज्ञानका परिणाम न होनेके कारण जडता हो जायगी इसमें मुक्तिकी प्राप्ति होना पुरुषार्थ रूप नहीं, प्रवृत्ति मार्गही इससे श्रेयस्कर है, निवृत्ति नहीं ॥ १५ ॥ हे उद्धव ! सत्य प्रवृत्तिमार्ग ऐसाही है, परन्तु आगे अनर्थका हेतु है, इन देहियोंको देहके संयोगसे संवत्सररूप कालसे जन्म-मरणादि भाव वारम्वार होते हैं ॥ १६ ॥ तुम्हारे मतहीमें कर्मोंके कर्त्ताओंको और सुख दुःखके भोक्ताओंको पराधीनता देखी जाती है, इसलिये ऐसे परवशका जो भजन करता है, वह क्या सिद्ध है ? और जीव स्वतंत्र हो तो उसे दुष्टकर्म वा दुःखकी प्राप्ति संभव नहीं हो सकती ॥ १७ ॥ इस प्रकार इसलोकमें तो सुख कहीं नहीं और लोकोंमें भी

सुख नहीं सो कहते हैं, ईर्षा, निंदा, नाश होनेसे स्वर्गादिकमें भी कर्मोंकी विधिके जानने वाले विद्वान् अभिमानीको किंचित् सुख प्राप्त नहीं होता, उसीप्रकार मूर्खोंको दुःख देखनेमें नहीं आता, जो कहते हैं कि, हम कर्ममें निपुण हैं, इससे सुखी हैं, यह उनका वृथा अहंकार है, इससे श्रेष्ठ कर्म करनेसे सुख मिलता है, यह नियम भी न रहा ॥ १८ ॥ और जो कदाचित् सुखदुःखकी प्राप्ति और विघात अर्थात् नाशक जानते हैं परन्तु इस उपायको वह भी नहीं जानते, जिससे साक्षात् मृत्यु न हो ॥ १९ ॥ क्योंकि जब मृत्यु अपने निकट है, तो अर्थ अथवा कामके प्राप्त होनेसे कौन सुखी होसक्ता है ? जैसे अपराधीको मारनेको लेजाते हैं, उससमय उस पुरुषको अर्थ कामादि सुख नहीं देते ॥ २० ॥ इस प्रकार जैसे यहाँ सुख नहीं ऐसेही परलोकमें भी नहीं है, स्वर्गादिकमें भी पराये सुखकी असहनता और ईर्षादिक रहती हैं, इससे यहाँके समान वहाँ भी दोषहै, जैसे कृषीके सफल होनेमें अनेक विघ्न होते हैं ऐसेही यजनसे मिलनेवाले स्वर्गमें भी भूल चूकके अनेक विघ्न होते हैं ॥ २१ ॥ इतने पर विघ्नको निवारणकर जो धर्म अच्छी भांति करै; उन धर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्थानोंमें जैसे यह प्राणी जाते हैं, सो सुनो ॥ २२ ॥ इसलोकमें देवताओंको यज्ञसे संतुष्टकर यज्ञके कर्त्ता स्वर्गमें जाते हैं. और देवताओंके समान अपने उपार्जन कियेहुए दिव्यभोग करते हैं ॥ २३ ॥ और वहाँ अपने पुण्यसे प्राप्तहुए उत्तम विमानमें बैठ सुन्दर वेषधरे, अप्सराओंके विषे विहार करते फिरते हैं, गंधर्व उनकी बडाई करते हैं ॥ २४ ॥ किंकिणी अर्थात् घुंघुरुओंके समूहसे शोभित और मनकी रुचिके अनुसार चलनेवाले विमानमें बैठ सुखको प्राप्तहो देवताओंके बागोंमें देवस्त्रियोंके संग विहार करते फिरते हैं, परन्तु आत्मपातको नहीं जानते है × ॥ २५ ॥ स्वर्गमें वहाँतक सुख करते हैं, जहाँतक पुण्य पूर्ण हो, जब पुण्य क्षीण होजाता है, तब कालसे अनचाहत नीचे डाल दिये जाते हैं ॥ २६ ॥ यह फल जो सकाम कर्म करता है, उसको है, तहाँ भी जो निषिद्ध प्रकार न करै, जब हो और जो असत् संगकरै तो अधर्मी हो, जितेन्द्रिय न हो, स्त्री लंपट हो, कामहीमें चित्तहो, प्राणियोंको दुःख देताहो, लोभीहो. कृपण हो ॥ २७ ॥ और जो अविधिसे पशुओंको मारकर भूत प्रेतगणको पूजते हैं, ऐसे जीव परवश हो नरकमें पडे स्थावरके भावको प्राप्त होतेहैं ॥ २८ ॥ उन कर्मोंमें दुःखही

× **शंका**-श्रीकृष्ण भगवान्ने उद्धवसे कहा था कि, ईर्षा, निन्दा आदि लेकर जो खोटे कर्म हैं, उन खोटे कर्मोंसे वेदोंके वचन नष्ट होगये, इसमें यह शंका होती है कि, ईर्षा आदि जो बुरे कर्म सो सत्ययुग, त्रेता, द्वापारमें भी थे ?

उत्तर-शास्त्रमें लिखाहै कि, भगवान्की देहमें धर्म और अधर्म दोनों रहते हैं, सत्य युगमें अथवा और युगोंमें थोडा बुराकर्म भगवान्की देहमें रहता है और किसी युगमें अधिक रहता है, क्योंकि युगोंकी मर्यादा पालन करनेके लिये दूसरी बात मत जानना, इसालिये कृष्णचन्द्रने उद्धवजीसे कहा था।

फलहै, ऐसे कर्मोंको देहसे करते मेरे पीछे फिर उन कर्मोसे दुःख भोगकर वैसाही देह धरते हैं, इसलिये जो मरेगा उसको क्या सुख है? ॥ २९ ॥ यद्यपि लोकपाल कल्प-पर्यन्त जीते हैं, परन्तु तो भी उनको मुझ कालरूपसे भय रहता है और कल्पपर्यन्त जीनेवाले लोकपालोंको भी वह भय रहता है, मेरे भयसे यह सब देवता अपना २ काम करते हैं, ब्रह्माकी आयु दो परार्द्ध है, परन्तु उसे भी मौतका डर है ॥ ३० ॥ कर्म कुछ ईश्वर नहीं, ईश्वर नियता फलका दाता मैं हूं, परन्तु मुझसे और उन कर्मोंसे सम्बन्ध नहीं, कर्मका सम्बन्ध इस देहसे है, सो प्रकार बताते हैं, प्रथम इन्द्रियें कर्मोंसे सृजी हैं गुण, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह इन्द्रियोंको सृजते है, आत्मा कुछ, नहीं करता है, पर यह जीव तो इन्द्रियोंके संगसे अहंकर्त्ता अभिमान धारण करता है, इसलिये कर्मोंके फल भोगता है ॥ ३१ ॥ यदि कहो कि, यह आत्मा अनेक क्यों दिखाई देते हैं, आत्मा तो एकही सुना है, तो कहते हैं कि, इन गुणोंके धर्मसे जबतक अहंभाव है तबतक अनेक प्रतीत होते हैं और जब यह मायाके गुण छूट जायँगे, तब आत्मा एकही दिखाई देगा और जहांतक उसे आत्मा अनेक लगते हैं, तभी लों पराधीन भी है ॥ ३२ ॥ जबलों इसे पराधीनता है, तबलों ईश्वरका भय है, इस प्रकार प्रवृत्ति मार्गमें दोष है, इसका जो सेवन करते हैं सो मोहमें पडे शोकही युक्त हैं ॥ ३३ ॥ काल, आत्मा, शास्त्र, लोक, स्वभाव, धर्म, यह नाम गुण तो सम्बन्धसे कहे, परन्तु गुण सम्बन्ध छूटनेपर यह मेरेही स्वरूप है सबमें मैं ही हूं, मायाके सम्बन्धसे अनेक रूप दीखते हैं, इससे निवृत्तिमार्गही उत्तम मुक्तिका कारण है ॥ ३४ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे भगवन्! यद्यपि यह आत्मा गुणोंसे मिला हुआ है, परन्तु तोभी गुणका कार्य सुख दुःख कर्मसे बद्ध नहीं है, इसलिये आकाशकी भाँति सर्वत्र व्यापक है और निर्लेप है, आवरण रहित तुम्हारे मतमें आत्मा एकही है, तो वह कैसे बंधनमें आता है? कि, जिससे उसे मुक्तिकी अपेक्षा होती है, सो कहिये ॥ ३५ ॥ और बँधनेके पीछे किस प्रकारसे रहै, जब मुक्ति होजाय तब किस प्रकार रहै? सो कहो किस भाँति रहै कैसे आहार विहार करै, किस लक्षणसे जाना जाय? क्या भोजन करै? क्या छोडै? कहाँ सोवै? कैसे बैठे? कहाँ जाय? यह दोनों किन लक्षणोंसे दूसरोंके जाननेमें आवै सो कहो ॥ ३६ ॥ हे अच्युत! हे विदाम्बर! इसके उपरान्त मेरे मनमें एक और संदेह है कि, एकही आत्मा शरीरादिकोंके अनादि संबंधके कारण अनादिकालसे बद्ध है, इसप्रकार निश्चय करना पडता है और इसभाँति निश्चयकर फिर उसको मोक्ष होजाता है इसप्रकार निश्चय करै तो मुक्ति उत्पन्न हुई, होनेके कारण मुक्तिमें अनित्यता आजाती है, इसलिये वह आत्मा निरंतर मुक्तही है ऐसा भी मानना पडता है। तब एकके समयमें ही बद्धत्व और मुक्तत्व यह दोनों एक संग होने कैसे संभव होसकते हैं? इस प्रश्नका उत्तर कृपापूर्वक दीजिये ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-इस ग्यारह अध्यायमें, बद्ध मुक्तका ज्ञान।
साधु सन्त अरु भक्तिके, लक्षण कहौं बखान॥ १॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धवजी! आत्मा बद्ध मुक्त है यह कथन मेरे गुण संबंधसे है सत्य नहीं गुणका मूल माया है मैं तो मायाका नियंताहूं इसलिये मुझे न बन्ध है न मोक्ष है॥ १॥ हे उद्धव! मुझे मोह सुख दुःख देहको प्राप्त यह सब संसारके धर्म मायासे होतेहैं, जैसे स्वप्नसे बुद्धिका विवर्त्त है इसीप्रकार संसार है सत्य नहीं है॥ २॥ हे उद्धव! एक विद्या दूसरी अविद्या यह दोनों मेरी मायासे रची हैं मेरी देहरूप शक्ति हैं अनादि देहधारियोंको मोक्ष और बंधन करती हैं॥ ३॥ हे महाबुद्धिमान् उद्धव! यह सब मेराही एक अंश जीव है उसे अविद्यासे अनादि बंध है, विद्यासे मोक्ष है मुझे तो न बंधन है न मोक्ष है॥ ४॥ अब इसका भेद बताते हैं परस्पर आत्मा और परमात्मा विरुद्ध धर्म होकर एकही देहमें स्थित हैं, इनमें एक तो जीव ईश्वरका भेद, दूसरे जीवसे जीवका भेद यह दो भेद हैं एक शरीरमें स्थित जीव ईश्वरमें ईश्वरका धर्म आनंद और जीवका धर्म दुःख है एक नियंता ईश्वर एक जीव है देहाभिमान धरे बद्ध हैं इन दोनोंका भेद दृष्टान्तसे कहते हैं॥ ५॥ दोनों पक्षी हैं चैतन्यरूपसे समान हैं दोनों मित्र हैं, अपनी इच्छासे एक देहरूप वृक्षके ऊपर आन बैठे हैं, इनमें एक तो इस देहके फलको भोग करता है, दूसरा साक्षी हुआ देखता है, भोग नहीं करता, तो भी ज्ञानशक्तिसे अतिबलिष्ठ है; इस भाँति एकही रूपके दोनों विरुद्ध कर्म करते हैं॥ ६॥ जो परमात्मा ईश्वर साक्षी ज्ञाता है, वह अपने स्वरूपको और जीवके स्वरूपको भी जानता है और जो जीवात्मा है सो न आपको जानते हैं न ईश्वरको जानते हैं वह अज्ञ हैं, इसलिये जो अविद्यासे मिलाहै; सो नित्य बद्ध है; जो विद्यासे संयुक्त है; सो नित्य मुक्त है॥ ७॥ ज्ञानकी विलक्षणता कहकर स्थितिकी विलक्षणता कहते हैं वही पण्डित हैं जो अपने स्वरूप और परमात्माको जानते हैं, सो यद्यपि देहहीमें हैं परन्तु देहसे न्यारे हैं देहके धर्म उसे व्याप्त नहीं जैसे स्वप्नसे उठेको स्वप्नको देहके धर्म नहीं लगते जो अज्ञानी हैं सो यद्यपि वस्तुसे और देहसे अलगही हैं परन्तु देहके अभिमानसे देहमें स्थित हैं सुख दुःखको भोग करते हैं, जैसे स्वप्नके देहमें स्थित स्वप्नके सुख दुःख भोगते हैं॥ ८॥ और भी विलक्षणता कहते हैं यद्यपि इन्द्रिय अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं परन्तु तोभी रागद्वेषादि रहित मुक्तपुरुषमें इन विषयोंको भोगताहूं ऐसे नहीं मानते हैं इसका कारण यही है कि विषयोंको जो इन्द्रिय स्वीकार करती है वह गुणोंके कार्यको गुणही ग्रहण करते हैं ज्ञानी उससे आपको निर्लेप मानते हैं॥ ९॥ यह देह पूर्वकर्मके आधीन है, उस देहमें स्थित इन्द्रिय अपने विषयोंमें प्रवृत्त होती है तहां मैं कर्त्ताहूं, इस अभिमानसे यह आत्मा बँधजाता है, यह अज्ञहै, शयन, आसन, गमन, स्नान, दर्शन, स्पर्शन, आघ्राण, भोजन, श्रवण यह सब इन्द्रियोंके धर्म हैं, मेरे धर्म नहीं, वृथा अभिमान करनेसे बँध जाते हैं॥ ॥ १०॥ इसप्रकार वैराग्य और विवेक जिसे हो सो वह बद्ध नहीं होसक्ता, क्योंकि वह

तो इन्द्रियोंको विषय भोग करातहै, कुछ आप नहीं करता, इसीलिये बंधनमें नहीं पडता ॥ ११ ॥ यहाँ दृष्टान्त देते हैं कि जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है, पर सबसे निर्लेपहै जैसे सूर्य जलादिकोंमें प्रतिबिंबित है परन्तु तोभी कम्परूप जलके धर्मसे भिन्न है, जैसे वायु सर्वत्र फिरतीहै पर तोभी निर्लेप है, इसीप्रकार आत्मा इस देहमें स्थित है और इन्द्रियोंके स्वभावसे उन उन विषयोंको ग्रहण करता है परन्तु तोभी उनसे भिन्न है ॥ १२ ॥ वैराग्यद्वारा तीक्ष्ण निर्मल ज्ञानसे सब संशय काट अनेक विधिके इस प्रपंचसे निवृत्त होवैं जैसे स्वप्नसे जाग स्वप्नके धर्मोंसे निवृत्त होजाते हैं ॥ १३ ॥ जिसके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्ति संकल्प विकल्प रहित होकर सो देहमें स्थित हैं तोभी देहके धर्मोंसे मुक्त है ॥ १४ ॥ जिसका देह स्वेच्छासे दुर्जनसे पीडितहो वा किसीसे पूजितहो तो जिसको इसमें सुख दुःख न हो और कुछ विकार उत्पन्न न हो वही ज्ञानवान् है ॥ १५ ॥ कोई भलाकरै अथवा बुरा, अच्छा कहै वा खोटा, परन्तु आप किसीकी निन्दा स्तुति न करै लौकिक व्यवहारसे अलग रहै, समान दृष्टि होकर रहै, वही मुनि और मुक्त है ॥ १६ ॥ कर्मादिकोंमें उदासीन रहै, न कुछ करै न कुछ विचारै, भला बुरा मनमें न धरै, एक आत्माहीसे रमता रहै, इस वृत्तिसे जडकीसी नांई मुनि लोग फिरा करते हैं ॥ १७ ॥ मुक्त पुरुषके जो लक्षण हैं, वही मुमुक्षुके साधन हैं जो पुरुष वेदार्थमें निपुणहो वह प्रथम कहे साधनोंसे वेदमें निष्ठा रखकर ईश्वरका ध्यानादिक करै तो उनका शास्त्र पढाहुआ जैसे बहुत दिनोंकी प्रसूता गौसे फिर दूध मिलना संभव न होतो उसके दूधकी आशावाले पुरुषके श्रमका फल केवल श्रमही होता है, इसी प्रकार क्रिया न करनेसे शास्त्राभ्यास व्यर्थ है * ॥ १८ ॥ हे उद्धव! जिसके

---

* **शंका**-शास्त्रमें और वेदोंमें ऐसा लिखा है कि, गाय चाहै, व्याती हो चाहै न व्याती हो चाहै व्यानेपरभी दूध न देतीहो, चाहै, लात मारती हो परन्तु गायको तो चारा, मोदक, जल, अन्न और अनेक प्रकारकी वस्तु खिलाकर उसकी सेवा करै और दंश, मच्छर, मक्खी आदि अनेक कष्टोंसे उसकी रक्षा करना, दूध देय चाहै दूध न देय गाय सदा कामधेनु और धर्मकी मूल है, इसका तो सेवनही करना उचित है, तो फिर उद्धवसे श्रीकृष्णने क्यों कहा कि, जो गाय दूध देना बन्दकर दे अथवा बाँझहो, जो मनुष्य ऐसी गायका पालन पोषण करैगा वह दुःखसे बडा जो महादुःख है, उसको भोगेगा श्रीकृष्णके मुखका ऐसा वचन सुनके हमको अत्यन्त शंका होती है ।

उत्तर-"गां दुग्धदोहां यो ज्ञात्वा तामरक्षति यो नरः सनरो दुःखदुःखं वै भुनक्तीति विनिश्चितम्" इस श्लोकमें भगवान्की नीति वर्णन की है सो सुनिये हम कहते हैं, श्रीकृष्णभगवान्ने कहा था कि, जो प्राणी गायको ऐसा जानकर कि, यह गाय अब दूध नहीं देती अथवा बांझ है, व्यायगी नहीं, ऐसा समझकर उस गायकी रक्षा करना छोड देगा अथवा उसको खाने पीनेको नहीं देगा भूखी प्यासी रक्खैगा, तब इस लोकमें तो-

दूध दुही गौ दुष्टा स्त्री पराधीन देह और दुष्ट सत्संग पात्र विषे न दिया धन मेरा नाम रहित वचन इतनी बातोंवाले सदा दुःखीही रहते हैं और आगे भी दुःख पावेंगे ॥ १९ ॥ मेरा जिस वाणीमें नाम न हो वह बात न कहै, इस विश्वकी मर्यादा जन्म, पालन, नाश-रूप, पावन मेरे कर्म और लीला अवतारोंके विषे जगत्का प्रिय श्रीराम कृष्णादिक जन्म जिस वाणीमें न हो, उस वाणीको बुद्धिमान् पुरुष धारण न करै ॥ २० ॥ इस प्रकार निश्चय कर आत्माविषे नानाप्रकारका भ्रम दूर कर विचारसे निर्मल मन मुझ अंतर्यामी विषे स्थिर होकर निवृत्तिहो ॥ २१ ॥ जो मुझमें मन निश्चलकर धरनेको समर्थ न होय तो सब कर्म मुझमें अर्पण करै निरपेक्षहो कर्म करै ॥ २२ ॥ ज्ञानमार्ग कठिनहै, भक्ति मार्ग-हीसे कृतार्थ होगा, यह कहते हैं कि, प्रथम तो श्रद्धा संयुक्तहो, पीछे अतिसुन्दर लोकोंके पवित्र करनेको समर्थ, मेरी कथा श्रवण करै, मेरे जन्मकर्म गावै, स्मरण करै, वारम्वार· वैसीही लीला करै ॥ २३ ॥ धर्म, अर्थ, काम, मेरे लिये करै, विषय भोगार्थ न करै मेराही आश्रय करै, हे उद्धव ! तब सनातन स्वरूप, मेरे, विषे निश्चल भक्तिको प्राप्त हो ॥ २४॥ इसप्रकार सत्संग कर प्राप्त हुई भक्तिसे मेरा सेवन करै तो मेरे स्थानको निश्चय प्राप्त होगा, यह मेरे पानेका मार्ग साधन करि दिखाया है ॥ २५ ॥ तब उद्धवजी साधुके और भक्तिके लक्षण पूँछने लगे कि, हे, उत्तम श्लोक, हे प्रभो ! साधु पुरुष कैसे होते हैं; उनके चिन्ह क्या होते हैं और उनकी की हुई भक्ति कैसी होती है ? जिस भक्तिको आप

—गायका मूल्य डूब जायगा क्योंकि पालन करता तो फिर व्याती अथवा बाँझ होती तो भी गोबर करती और अन्त समय रौरवनरकका वास होगा, इसी प्रकार जो स्त्री दुष्टा होजाय तो उसका भी पालन करना अवश्य चाहिये क्योंकि जो उसने खोटा कर्म किया तो संसारमें उस प्राणीकी निन्दा होगी और परलोकमें नरक भोगना पडेगा और जो उसको पालन करैगा तो धीरे धीरे चाहै, ज्ञान उपदेश होनेसे सुधर भी जाय और सन्तान भी उत्पन्न होजाय फिर न जानिये कि, सन्तानमें कैसा महापुरुष निकलै ऐसेही पराधीन देह समझकर हानि मानकर देहका पालन करना नहीं छोडे, क्योंकि उसका न पालन कर-नेसे उसका नाश होजायगा और जो शरीरका पालन करैगा तो कभी न कभी सुख हो-हीगा, ऐसेही धनको मानलेवै कि, इस धनमेंसे मैं पुण्य नहीं करताहूं यह धन किस काम आवैगा, ऐसा जानकर धनकी रक्षा करनी छोडदेगा तो चोर चोरी करके लेजायँगे, और जो धनकी रक्षा करता रहैगा तो कभी न कभी तो पुण्य होहीगा ऐसेही वचनसे भगवान्का नाम नहीं लिया, ऐसे खोटे वचनको जानकर सत्संग छोडदिया तो भ्रष्ट होजायगा और जो बिगडे वचनसे सत्संग करैगा और अच्छा प्रबन्ध करेगा तो कभी भगवान्का नाम वचनसे निकलैहीगा, ऐसा नीति युक्त अर्थ भक्त उद्धवके सामने भगवा-न्ने किया है, यह नहीं किया कि, गाय दूध देना बन्दकरदे तो उसकी पालना नहीं करना ।

मानते हैं और साधु आदर करते हैं ॥ २६॥ हे पुरुषके नियंता ! हे जगत्पते ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, अनुरक्त हूँ, आपकी शरण आया हूँ, इसलिये यह सब मुझसे कहिये ॥ ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! तुम साक्षात् परब्रह्म प्रगट हुये हो, प्रकृतिसे भी परेहो; पुरुषको आकाशकी भाँति निर्लेप हो; भक्तोंकी इच्छासे रूप धारण करतेहो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि. हे उद्धव ! जो पराया दुःख न देखसके और किसीसे द्रोह न करै; क्षमावंतहो, सत्यही बोलै निंदा आदि दोष रहितहो, समदृष्टि हो, सुख दुःखमें समान हो, यथाशक्ति सबका उपकार करै सब प्राणियोंका अपराध सहै ॥ २९ ॥ काम करके, बुद्धि चंचल न होय, बाहरकी इन्द्रिय जीते होय, कोमल शुद्ध चित्त होय, परिग्रही न होय, व्यर्थ कार्य न करै; भोजन थोडा करै, शांत होय, स्वधर्ममें स्थिर हो मेराही एक आश्रय करै, मेराही स्मरण करै ॥ ३० ॥ सावधान रहै, निर्विकार रहै, धैर्यवन्त होवै, क्षुधा, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु, यह सब जीते होय अभिमानी न हो, दूसरेको मान देनेवालाहो, औरके प्रबोधको समर्थ हो, सबका मित्र हो, सबका भला चाहै, दयावन्त हो, पूर्णज्ञानवान् हो ॥ ३१ ॥ ऐसेही पुरुष साधु कहाते हैं, मेरे स्वरूप भूत वेदके धर्म करनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है, नहीं करनेमें दोष है, यह जाननेपर भी यह धर्म स्वामीके ध्यानमें विक्षेप करनेवाले हैं और जो यह धर्म मैं न करूं तो भक्तिसे ही सिद्ध होजायँगे इस प्रकार भक्ति की दृढताके लिये दृढ निश्चय कर अपने धर्मका अधिकार रुद्ध हो जानेसे उन धर्मोंको छोडकर जो प्राणी मेरा भजन करै वह भी महात्मा है ॥ ३२ ॥ तब जैसे मेरे चरित्र हैं, उसी प्रकार मुझे जाने अथवा विना जाने भी जैसे होय तैसे जो कोई अनन्य भावसे मेरा भजन करते हैं, सो मेरे परमभक्त हैं ॥ ३३ ॥ साधुओंके लक्षण कह कर अब भक्तिके लक्षण कहते हैं कि, मेरे चिह्न प्रतिमा आदि ले अनेक भाँतिके और मेरे भक्त जनोंका दर्शन, स्पर्शन, पूजा, सेवा, स्तुति, प्रणाम, गुण, कर्म, कीर्त्तन॥३४॥ हे उद्धव ! मेरी कथा श्रवण करनेमें श्रद्धा, मेरा ध्यान करै, जो कुछ मिले सो सब मुझे समर्पण करै दास्यभावसे अपनी आत्मा निवेदन करै ॥ ३५ ॥ मेरे जन्म, कर्म, गावै,जन्माष्टमी आदि पर्वमें फूल नैवेद्य आदिसे मेरी पूजा करै, गीत, नृत्य, वादित्र, गोष्टिसे मेरे मंदिरमें उत्सव करै ॥ ३६ ॥ मेरे लिये यात्रा करै, पुष्पादिकोंसे पूजा करै भेट समर्पण करै,वर्ष प्रति वर्ष उत्सव करै, वैदिक, तांत्रिक दीक्षा ले मेरे व्रत करै ॥ ३७ ॥ और प्रतिमामें श्रद्धा रक्खै आपसे अथवा औरसे मिलकर मेरे लिये फूलोंका बाग, मंदिर, क्रीडा स्थल, नगर, गाँवके करनेमें उद्यम करै ॥ ३८ ॥ मेरे मंदिरमें बुहारी देना, लीपना, छिडकाव करना, चौक पूरना और रंगवल्ली आदि चित्रांग करना, इस प्रकार मेरे गृहकी शोभा करै, दासकी भाँति निष्कपट मेरी उपासना करै ॥ ३९ ॥ आप अभिमान तथा दंभ न करै जो करै सो कहै नहीं मेरे निवेदित दीपादि वस्तुसे अपने घरका काम न करै ॥ ४० ॥ " और ग्रंथोंमें कहा है कि, छःमासके उपवासोंसे जो फल होता है सो कलियुगमें विष्णुके नैवेद्यके शेषसे पुण्य होता है" जिसके हृदयमें हरिका रूप हो, मुखमें हरिका नाम हो उदरमें

हरिका प्रसाद नैवेद्य हो, माथेपर प्रसादी पुष्पादिक हो, वह पुरुष भगवान् हरिका रूप है अथवा और देवताको समर्पण की हुई वस्तु मुझे अर्पण न करै "यह अर्थ और ग्रंथोंमें है, विष्णुके नैवेद्य अन्नसे और देवताओंको पूजै फिर वह प्रसादी नैवेद्य पितरोंको दे तो अनन्त पुण्य हो. यदि कोई पुरुष पितरोंकी शेष वस्तु हरिको दे तो उसके पितर वीर्य खानेवाले हों और फिर क्लेशको प्राप्त हों दीपक तक भी यदि मेरे मंदिरमें निवेदन किया होवै तो उसके प्रकाशसे अपना काम न करै" जो वस्तु इस लोकमें आपको अतिप्रिय हो निषिद्ध न हो सो मुझे अर्पण करै तो वह वस्तु अनंत फलको करैगी ॥ ४१ ॥ अब यह ग्यारह ठौर पूजाके कहते हैं कि, हे उद्धव ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, भूमि, आत्मा इत्यादि सब प्राणीमात्र मेरी पूजाके स्थल हैं ॥ ४२ ॥ अब जिसकी पूजा जिस प्रकार करनी चाहिये सो कहते हैं, वेदोक्त विद्यासे सूर्यकी पूजा करै, अग्निमें घृत होमकर मेरी पूजा करै, ब्राह्मणमें आतिथ्य अभ्यागतसे पूजै, गायमें अच्छे सुन्दर तृणादिकसे सेवा करै ॥ ४३ ॥ वैष्णवोंमें अपने बंधुके समान आदरसे मेरी पूजा करै हृदय आकाशमें ध्यान धरके पूजा करै, वायुमें प्राण बुद्धिसे पूजा करै, जलमें तर्पण आदि द्रव्यसे पूजा करै ॥ ४४ ॥ भूमिमें गोप्य मंत्र न्यासकर मेरी पूजा करै, अपने आपमें आत्माकी पूजा भोग करके जो भोग करै सो सब आत्माको समर्पण करदे, सब प्राणी मात्रमें समान दृष्टि रखकर मेरी पूजा करै मैं अंतर्य्यामी हूं ॥ ४५ ॥ एकाग्र मन हो इन स्थलोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धरे चतुर्भुज शांतरूपका ध्यान कर मेरी पूजा करै ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य ऐसा करते हैं वे पुरुष निश्चय मन होकर यज्ञ, वापी कूप, तडाग, बागसे मेरी पूजा कर साधुओंकी सेवासे मेरा स्मरण करते मुझमें परमभक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ४७ ॥ इसप्रकार ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहकर विशेषसे भक्तिमार्गको श्रेष्ठ कहते हैं कि, हे उद्धव ! पहले सत्संग करै कि, जिससे भक्ति उत्पन्न हो संसारसागरसे तरनेका इससे उत्तम उपाय और कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि साधुओंका एक मैंही आश्रयहूं,इस-लिये अतिश्रेष्ठ उत्तम वैष्णवोंका सत्संग अतिश्रेष्ठ है ॥ ४८ ॥हे उद्धव ! तुम सर्वप्रकारसे मेरे उत्तम सुहृद सखा हो, इसलिये तुमसे कहा है कि, यह जो भक्तियोग गुप्त है सो तुमको सुनानेके लिये कहता हूं ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा-बारहमें सत्संगकी, महिमा कहौं बखान।
कर्म करन अरु त्यागको, वरणो आत्मज्ञान॥ १२ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! योग और तत्त्वोंका विवेक और अहिंसा आदि धर्म विद्याका अध्ययन, तप, त्याग, अग्निहोत्रादिक, वापी कूप, तडाग,दक्षिणा ॥ १ ॥व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नेम, संयम, यह सब मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते, जैसे श्रेष्ठ विष्णुभक्तिका

सत्संग मुझे वश करता है क्योंकि सत्संग सब कुसंगोंका छुडानेवाला है ॥ २ ॥ दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक ॥ ३ ॥ विद्याधर और मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्री यह सब नीच जाति राजस, तामस स्वभावयुक्त भी उन उन युगोंमें ॥ ४ ॥ मेरे पदको प्राप्त हुये और भी बहुत हैं वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय, विभीषण ॥ ५ ॥ सुग्रीव, हनुमान्, जांबवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार, व्याध, कुब्जा, गोपी, ब्रजमें यज्ञपत्नी ऐसे और भी अनेक मुझे प्राप्त हुये हैं ॥ ६ ॥ यह तो वेदार्थ नहीं पढे थे, महत्पुरुषोंकी उपासना नहीं करी थी, व्रत, दान, तप, कुछ नहीं करते थे, एक मेरे संगसेही मुझे प्राप्त हुये ॥ ७ ॥ गोपी, गाय, यमलार्जुन, मृग और मूढबुद्धि कालीसे आदि ले नाग सिद्ध अनायास मुझे प्राप्त होगये ॥ ८ ॥ * सांख्य, योग, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, अध्ययन इतने यत्नसे भी जिन्होंने मुझे न पाया, उसे एक भाव मात्रसेही प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ अब मुख्य उत्तमभाव गोपियोंका कहते हैं इस कारण पहले गोपियोंके भावकी स्तुति करते हैं हे उद्धव ! जब अक्रूर आन कर बलदेव सहित हमको मथुरा लेगये, तब दृढप्रीतिसे मुझमें आसक्त चित्तवाली वियोगसे दुःसह चित्त गोपियोंने सुखके लिये मेरे आतिरिक्त और किसीकी ओरको न देखा ॥ ॥ १० ॥ हे उद्धव ! वृन्दावनमें फिरते उनको अतिप्रिय मेरे संग जो जो रात्रियें एक क्षणके समान बीती है, सो सो रात्रि मुझ विना उन गोपियोंको कल्प समान बीतीं ॥ ॥ ११ ॥ मुझमें गोपियोंकी बुद्धि अधिक आसक्त होगईथी, इसलिये उन्हें पति, पुत्रादि तथा देह और परलोकका भी कुछ ध्यान न रहाथा, जैसे समाधिमें मुनियोंको नाम स्वरूपका ध्यान नहीं रहता अथवा जैसे नदी समुद्रमें मिलजाती हैं, उसी प्रकार गोपियें मेरे स्वरूपमें लीन होगई ॥ १२ ॥ इस प्रकार केवल मेरी इच्छावाली सहस्रों स्त्रियें यद्यपि मेरे स्वरूपको नहीं जानतीथीं परन्तु तो भी जार बुद्धिसे जाने हुए मुझ परब्रह्मके सत्संगकी महिमासे मुक्त होगई ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! मेरे भजनका ऐसा प्रभाव है कि, गोपियें जार बुद्धिसे भजन करनेपर भी मुझे प्राप्त हुई इसलिये तुम श्रुति स्मृतिके विधि निषेध छोड, प्रवृत्ति निवृत्ति धर्म छोड सुना सुनाया छोड ॥ १४ ॥ सब देह धारि-

* **शंका**–श्रीकृष्णभगवान्ने उद्धवसे कहा कि, हे उद्धव ! पर्वत, पक्षी, मृग, यह सब सत्संगसे हमारे लोकको गये सो इस बातका हमको बडा सन्देह है कि, सत्संग तो बडे बडे महात्माओंको भी बडा दुर्लभ है सो इन तुच्छ जीवोंको क्योंकर हुआ ?

उत्तर–महात्मा पुरुष तो पर्वतोंपर वसते हैं इसलिये उनको पर्वतोंका सत्संग हुआ और महात्माओंके सन्मुख नित्य राति दिन पक्षी और मृग वसतेथे, महात्माओंका नित्य दर्शन करतेथे कुछ सत्संगकी बात कानोंसे सुनली कुछ भगवान्के पूजन आदिककी सामग्री नेत्रोंसे देखली. इस प्रकार योगियोंसे दुर्लभ जो सत्संग सो पर्वतोंके पशुओंको तथा मृगोंको प्राप्त हुवा ऐसा कृष्णने कहा था।

योंका आत्मा जो मैं हूं इस कारण सर्वोंमें मेरा भाव रख केवल एक मेरी शरणको प्राप्त होकर तुम निर्भय होगे ॥ १५ ॥ यह सुनकर उद्धवजी बोले कि, योगेश्वरोंके ईश्वर ! तुम्हारी बात सुनकर आत्मा विषयक मेरा संदेह निवृत्त नहीं होता क्योंकि प्रथम तो आपने कहा कि, मेरा भजन करो, अब कहते हो कि, सर्व धर्म छोडकर हमारी शरण आओ इन दोनोंमेंसे क्या करना उचितहै ? त्याग करना चाहिये, अथवा भजन करना चाहिये यह मुझे बडा भ्रम है, सो निवारण करो ? ॥ १६ ॥ तव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! पहले तो यह जीव ईश्वरहै, ब्रह्महै, परन्तु अविद्याके संगसे अपना धर्म भूल गयाहै, अविद्याके धर्महीको अपना धर्म समझ अहंकर्त्ता अभिमानसे बँधता है, जब अविद्याके धर्म दूर होजायँ तब शुद्धचित्त हो उसके लिये निष्काम कर्म करना कहाहै, जब चित्त शुद्ध हुआ, तब कर्मका त्याग कहा जब विवेक उसको उत्पन्न होगया, तब विवेकसे सर्वत्र वह मेरा रूप जानता है, अब कर्म और ज्ञानका अधिकार हुआ, इसकारण सब कर्म त्यागकर मेरी शरण आवै, यह उपदेश दिया, अब ईश्वरसे वाणी इन्द्रिय द्वारा जीवके संसारका कारण भूत प्रपंचकी उत्पत्ति कहते हैं सो ईश्वर आधारादि चक्रोंमें प्रगट होते हैं उस प्रगटताको भी कहते हैं, सो इश्वरनादवन्त परनाम प्राण सहित आधार चक्रोंमें प्रविष्ट होकर मनोमय सूक्ष्मरूप देखैं और मध्यमा नाम मणिपूरक और विशुद्ध चक्र विषे आनकर मुखमें हूँ, स्वरादिक मात्रा, उदात्तादिक स्वर, अकारादिक अक्षररूप वैखरी नाम अति स्थूल नानाविधि रूप होते हैं ॥ १७ ॥ जैसे आकाशमें गर्मीरूप अग्नि रूप अप्रगट है, बलपूर्वक काष्ठके मथनेसे वायुकी सहायतासे पहले सूक्ष्म रूपसे निकलती है, पीछे हविष्यसे वृद्धिको प्राप्त होती है. इसी प्रकार यह प्राणी मेरे प्रगट होनेके स्थान हैं ॥ १८ ॥ हाथोंका धर्म क्रिया, चरणका धर्म तीर्थ गमन करना और गुह्येन्द्रियका धर्म मलादि विसर्जन करना, आघ्राण, रस, दर्शन, श्रवण यह सब ज्ञानेन्द्रियोंके धर्म-संकल्प मनका धर्म, विज्ञान और बुद्धि चित्तका धर्म, अभिमान अहंकारका धर्म, सूत्र मायाका धर्म, सत, रज, तम, इन तीन गुणोंका विकार अधिदैव अध्यात्म अधिभूत यह सब मेरे प्रगट होनेके स्थान हैं ॥ १९ ॥ यह आत्मा ब्रह्म है, एकही है, अप्रगट है, कालसे अलगकरि वाणीरूप इन्द्रियोंकी शक्तियोंको अनेक भाँतिसे प्रकाशै है, जिससे आदि है, तीन गुणोंका आश्रय है, सृष्टि कमलका कारणभूत है, जैसे बीज खेतको पाकर अनेक भाँति प्रकाशमान होताहै इसीप्रकार यह आदिकारण ईश्वर भी कालकी गतिसे मायाको अंगीकारकर प्रपंचरूप हो जाते हैं ॥ २० ॥ इसमें दृष्टान्त कहते हैं, तंतुके विस्तारमें स्थितिमान पट जैसे तंतुओंमें ओतप्रोत है और तंतुओंसे पृथक् नहीं है, इसी प्रकार यह सब जगत् ब्रह्ममें विद्यमान है उससे भिन्न नहीं है, ऐसेही समष्टि व्यष्टिरूप अविद्यासे आत्मामें अध्यास किया हुआ प्रपंचरूप वृक्षही जीवके कर्त्ताभोक्ता आदि संसारका कारण है, इससे जब यथार्थ रीतिसे आत्माकी सत्यता आर प्रपंचकी अनित्यता जाननेमें आवै उस समय कामादि सबका त्याग करना कहा है यह अनादि कालसे प्रवृ-

त्तिवाला प्रपंचरूप वृक्ष अपने भोगादि रूप पुष्पफलोंको उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥ इसके पाप पुण्य दो बीज हैं, अनेक भाँतिकी वासना इसकी जड है तीनों गुण (रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण) इसकी डाँडि है, पांच रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द यह रस हैं, पांच महाभूत इसके स्कंध हैं, एकादश इन्द्रिय शाखा हैं, दो पक्षी जीव और परमात्माका घर है, वात, पित्त, कफ, यह तीनों वल्कल हैं, फल दो दुःख सुख हैं, सूर्यमण्डल तक यह वृक्ष है इससे आगे संसार नहीं ॥ २२ ॥ अब इसके फलके भोक्ताको कहते हैं इसके एक फल दुःखरूपका गृहस्थ ग्रामचारी कामीके समान गीध भोग करते हैं, दूसरे सुखरूप फलको अरण्यवासी परमहंस संन्यासी भोग करते हैं इससे यह एकही परमात्मा मायामय अनंतरूप है इतना तत्त्वार्थ गुरुद्वारा जिस पुरुषने जान लिया है, उसने सब देह जान लिया ॥ २३ ॥ इसप्रकार धीर सावधान होकर तुमभी गुरुकी सेवा कीजियो और एकान्त भक्तिसे तीक्ष्ण ज्ञानरूप कुठारसे त्रिगुणमय इस लिंग शरीरको काटि परमात्मासे मिल, पीछे सब साधन छोड देना ॥ २४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा-इस तेरह अध्यायमें, हंसरूप इतिहास।
बढै अधिक जब सतोगुण, प्रगटै बुद्धि विलास ॥ १३ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तीनोंगुण प्रकृतिके हैं आत्माके नहीं इसकारण सतोगुणकी वृद्धिसे रजोगुण तमोगुणकी वृद्धिका नाशकर सत्त्व दयादिरूप सत्त्वगुणका उपशमरूप सत्त्वगुणसे नाश करना ॥ १ ॥ रजोगुण, तमोगुणके सन्मुख सतोगुण कैसे बढै और जो सतोगुण बढै तो मेरी भक्ति लक्षण धर्महो, उसीसे रज, तम भी दूर हो ॥ २ ॥ सत्त्वकी वृद्धि इसलिये होतीहै इस कारण भक्ति अति श्रेष्ठ है रज, तमके दूर होनेपर रज, तम, मूलवाला अधर्म निश्चयसे शीघ्र दूर होता है ॥ ॥ ३ ॥ शास्त्र, जल, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र, संस्कार यह सब गुणके हेतु हैं ॥ ४ ॥ यह भी दश सात्त्विक, राजस, तामस हैं इनके मध्य जिसकी बडाई करते हैं सो सात्त्विक है, जिसकी निंदा करते हैं, सो तामस है, और न जिसकी स्तुति करते हैं न निंदा करते हैं सो राजस है ॥ ५ ॥ सतोगुण बढानेके लिये पुरुषको सात्त्विक वृत्ति शास्त्रका सेवन करना चाहिये, प्रवृत्ति मार्गके पाखण्डियोंके शास्त्र न देखे, जल तीर्थहीका सेवन करै परन्तु सुगंधित जलका सेवन न करै, संग निवृत्ति मार्गवालों-काही करै, दुराचारियोंका न करै, देश एकान्तही सेवै चोर, ठग और जुआ खेलने-वालोंका संग न करै, ध्यानका सेवन काल ब्रह्ममुहूर्त्त आदिमें करै, आधीरातके समय प्रदोष कालका सेवन न करै, कर्म नित्यही करै काम्य और अभिचारादि कर्म न करै, वैदिक तांत्रिक दीक्षारूप जन्मलेना क्षुद्र देवताओंकी दीक्षा न ले, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र-

कोही गुरु करै, अस्त्रोंका और शत्रुओंका ध्यान न करै, जब प्रणव आदि उत्तम मंत्रको जपै उससमय काम्यमंत्र और क्षुद्रमंत्रको न जपै, जो संसारसे आत्माका शोधक होय सो करै, देह गृहको न करै, इसप्रकार सब सात्त्विक सेवै, तो सतोगुणकी बुद्धिहो और राजस, तामस छूटै, तब भक्ति रूपी तप धर्म होवै, उससे मेरे स्वरूपका ज्ञानहो ॥ ६ ॥ जैसे बाँसोंके वनकी अग्नि आपसमें घिस और प्रज्वलित हो सब अरण्यको जलाय ईंधन घटजानेपर आपही शान्त होजाती है, उसीप्रकार गुणके क्षोभसे उत्पन्न हुवा देह आपही शान्त होजाता है ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! बहुधा सब मनुष्य कहते हैं कि; विषय दुःख रूप है उससे दुःख पाते हैं तो फिर क्यों इसीको यह पुरुष कूकर, गर्दभ, बकरेके समान निर्लज्ज हो उसीमें प्रवृत्त होते हैं ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! जब यह विवेकसे रहित होते हैं; तब इसके हृदयमें अहंभाव बुद्धि सत्यसी होती है, तब सात्त्विक भी मन दुःख रूप राजस धर्मसे व्याप्त होते हैं ॥ ९ ॥ यह पुरुष जब रजोगुणसे व्याप्त होता है, तब मनमें संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं और संकल्पसे विषयका जो ध्यान करता है, इससे इस दुष्टबुद्धि पुरुषको काम उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ इसके उपरांत उनके वश हो रजोगुणके वेगसे मोहित हुवा यह अजितेन्द्रिय दुःखही फल वाले कर्मोंको करताहै ॥ ११ ॥ इसमेंभी जो विवेकी होय सो यद्यपि रजोगुण तमोगुणसे विक्षिप्त मन है असावधान है, परन्तु तो भी मनको खैंचकर रक्खै, तब वह दोष जानकर विषयमें आसक्त न होगा ॥ १२ ॥ जो विवेकी स्नेहसे मुझमें मन लगाता है और आलस्य छोड श्वासरोक आसन दृढकर मुझमें मन स्थिर करताहै ॥ १३ ॥ सो हे उद्धव ! मेरे शिष्य सनकादिकोंने इतनाही योग बतायाहै कि, यह जीव सब ओरसे मन खैंच प्रत्यक्ष मुझमें रक्खै ॥ १४ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे केशव ! सनकादिकोंके रूपसे जिससमय तुमने यह योग कहाथा सो तुम्हारा रूप और वह समय जाननेकी इच्छा है सो कहिये ॥ ॥ १५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! एक समय ब्रह्माके मानसीपुत्र सनकादिक योगकी सूक्ष्मगति ब्रह्मदेवसे पूँछनेलगे ॥ १६ ॥ सनकादिक बोले कि, हे प्रभो ब्रह्माजी ! चित्त अपने स्वभावसे ही रागादिकोंके हेतु विषय धर्ममें प्रविष्ट होताहै और अनुभूत विषय वासनारूपसे चित्तमें प्रवेश करते हैं; अब विषयोंका त्याग करनेको इच्छावाला मुमुक्षु पुरुष परस्पर इन दोनोंको किसप्रकार भिन्न भिन्न करै ? ॥ १७ ॥ इस प्रकार पुत्रोंके पूँछनेपर ब्रह्माजीने जो कुछ कहाथा, वही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे कहते हैं कि; इसभाँति जब सनकादिकोंने कहा, तब स्वयंभू ब्रह्मा बडेदेव विश्वके पालक विचारने लगे परन्तु प्रश्नका पार न पाया, इससे कर्मसे विक्षिप्त बुद्धि हुई * ॥ १८ ॥

---

* **शंका**-सनकादिकोंने ब्रह्मासे ज्ञान पूछा तो ब्रह्माने उत्तर क्यों नहीं दिया ! ब्रह्माके मौन होनेका क्या कारण है ?

उत्तर-ब्रह्माने सनकादिकोंके प्रश्नसे पहिले अपनी कन्यासे रमण करनेकी इच्छा-

तब प्रश्नका उत्तर देनेके लिये ब्रह्माने मेरा चिंतवन किया, तब मैं हंसरूपहो ब्रह्माके निकट आया ॥ १९ ॥ तब मुझे देखतेही सब प्रणामकर ब्रह्माके आगेसे मेरे निकट आये तुम कौनहो ? इस प्रकार पूँछने लगे ॥ २० ॥ हे उद्धव ! तत्त्वके जाननेकी इच्छासे मुनिने जब इसप्रकार मुझसे पूँछा, तब मैंने जो उनसे कहा वह तुम सुनो ॥ २१ ॥ यह सुनकर हंसरूप भगवान् सनकादिकोंसे बोले कि, तुम आत्माको आगेकर प्रश्न करते हो वा आत्माके उपाधि स्वरूपभूत समूहको लेकर प्रश्न करते हो ! जो आत्माका अधिकार प्रश्न करते हो तो परमार्थसे आत्मामें अभेद होनेके कारण तुम कौनहो ! यह प्रश्न करना कि, जो अनेकोंमें एकका निश्चय करनेके लिये है संभव नहीं होसकता और मैं तुम्हें क्या विषय लेकर उत्तर दूं, आत्मा कोई जाति वा गुणादि रूपहो तो उत्तर दिया जाय कि, मेरी यह जाति और मुझमें यह गुण है, परन्तु आत्मामें कोई बात नहीं, इससे तुम्हारा प्रश्न ठीक नहीं बन सकता ॥ २२ ॥ और जो पंचभूत संधानका प्रश्न है वह अनर्थ रूप है देवमनुष्यादि देह सब पंचभूतात्मक हैं वस्तुसे सब समान हैं अपने कारणसे न्यारे नहीं वे सब कारणरूप एकही हैं ब्रह्म रूपही हैं यह नाम रूप अलग अलग धर लिये हैं, सो अज्ञान है* कारण इसका मैं क्या उत्तर दूं ॥ २३ ॥ मन, वचन, दृष्टि और इन्द्रियोंसे जो ग्रहण किये जाते हैं, सो मैंहूं मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है, यह तत्त्वका विचार करके जानलो ॥ २४ ॥ इसप्रकार उनके प्रश्नका खण्डन करनेके बहाने आत्माका स्वरूप कहा, अब ब्रह्माकोभी जो अशक्य उत्तर है, सो देते हैं कि, यह विषय और चित्त दोनों गुँथे हैं, ब्रह्म रूप जीवका देह है, सो उपाधि है, कुछ सत्य नहीं है, जो पुरुष अपने आपको ब्रह्मरूपसे विषयोंको मिथ्या करके जानते हैं और वैराग्यसे भगवान्का भजन करते हैं वह पुरुष उपाधि छोडकर मुक्त होजाते हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि विषयोंकीही सेवा करनेसे और उनकी वासनासे विषयोंमें चित्त प्रविष्ट होता है, इसलिये विषय और चित्त यह दोनों जब मेरा रूप जानैं, तब छूटैं ॥ २६ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंसे रहित जीव शुद्ध आत्मरूप कैसेहो ! सो कहते हैं यह अवस्था तीन गुणसे होती है, सो बुद्धिही की वृत्ति अवस्था है, जीव इन अवस्थाओंसे भिन्न है, ऐसा निश्चय किया गयाहै,इसलिये जीव इन सबका साक्षीहै॥२७॥जो यह साक्षी हुआ तो भिन्न क्या है और "मैं सोया" "जागा" ऐसे क्यों कहता है? क्योंकि, जब अहंकारके धर्मसे संसारका बन्धन है, तब मैं जागता हूं, सोताहूं, यह बुद्धि है, जब अहंकार देहसे छूटे और आत्माके मध्यमें दृष्टि हो तब यह अवस्था भी सब जाती रहै और विषय तथा चित्तका परस्पर त्याग होय ॥ २८ ॥ यह बन्धन देहके अभिमानसे है, इसीसे आत्माको भी

-कीथी, उसी लज्जाके मारे ब्रह्माकी देहका तेज नष्ट होगया, हानि मानके नहीं बोले और अपने मनमें कहने लगे कि, इनके सन्मुख ज्ञानमार्गमें किस मुखसे उत्तरदूं इस लज्जाके मारे नहीं बोले।

अनर्थ लगता है, इसप्रकार निश्चयकर वैराग्यसे आत्मामें चित्त लगाय संसारकी सब चिन्ताको त्यागन करै ॥ २९ ॥ जबतक इसकी भेद बुद्धि युक्तियोंसे निवृत्त नहीं है, तब तक यह अज्ञानी पुरुष कर्मादिकोंमें जागता अर्थात् जानकर भी स्वप्नमें अपनेको जाग्रत् मानतेहुये मनुष्यके समान स्वप्नकोही देखते हैं, क्योंकि उन्हें यथार्थ ज्ञान नहीं है ॥ ३० ॥ यह सब देह और देहका किया सबसे भेद, वर्ण, आश्रम, स्वर्ग, आदि फल कर्म आत्माके धर्म नहीं हैं, यह देहके धर्म हैं, अविद्यासे उत्पन्न होते हैं, इसकारण मिथ्या हैं, उत्तम नहीं जैसे स्वप्न देखने वालेके सब मनोरथ मिथ्या हैं ॥ ३१ ॥ यह जीव जागतेमें जो विषय भोग करता है, सो वह भोग एक क्षणभरका है, कुछ नित्य नहीं, जैसे बाल्यावस्था और तरुणपन आये और गये जाग्रत्के समान भोग करते हैं और सुषुप्तिमें यह सब धर्म लीन होजाते हैं, केवल एक आत्माही रहता है, मैंने पहले तो स्वप्न देखा फिर सुखसे सोया कुछ ज्ञान न रहा, इस अनुभवके स्मरणसे तीनों अवस्था बुद्धिकी हैं, इनका साक्षी एक आत्माही रहता है और सब लीन होजाते हैं, इसकारण आत्मा सब इन्द्रियोंका ईश्वर है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार यह तीनों अवस्था मनके वशमें हैं आत्माके वशमें नहीं, सो मेरी शक्ति अविद्यासे आपको मान लेती है, ऐसा निश्चय कर सब संदेहका स्थान अहंकार है, तिसको विवेकसे अनुमानसे प्रणाम वचनसे उपजा जो ज्ञानरूपी खड्ग उससे काटकर हृदयमें स्थित मेरा भजन करै ॥ ३३ ॥ अनुमान किसप्रकारका है, सो कहते हैं कि, यह जो जगत् दीखता है, सो सब मनका विलास है, भ्रम और मिथ्या विलास है, यह द्वैत भी भ्रान्तिरूप है क्योंकि यह अतिचंचल है और जो चंचल हो, वह अलातचक्रके समान भ्रांतिरूप है, ब्रह्ममें द्वैतकी अनेक भ्रान्ति होती हैं, इसलिये भ्रान्तिका अधिष्ठान रूप एक ब्रह्मही अनेक प्रकारका दीखता है और जो यथार्थ विचारसे देखते हैं, तो यह त्रिगुणात्मक मायाका भ्रम स्वप्नके समान है ॥ ३४ ॥ इससे हे उद्धव ! ऐसे प्रपंचसे दृष्टि फेर तृष्णा छोड, आत्मसुखके विचारमें तत्पर हो इन्द्रियोंके सब धर्म छोड दे यदि कहो कि, देहवं-तसें देहकी चेष्टा कैसे छूट सकती है और न, छूटनेसे द्वैतही होजायगा तो कहते हैं कि, कहीं ऐसे भी देहकी चेष्टा देखी जाती है, परन्तु वह चेष्टा अलंकार रहितहै, सत्य नहीं जिससे प्रपंचमें उनकी मिथ्या बुद्धिहै, जो मिथ्या जानकर छोड दिया जाता है, वह फिर मोह उत्पन्न नहीं करता, यह निश्चयहै । देहतक कर्मोंका संस्कार है ॥ ३५ ॥ जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष इस विनाशीदेहको दैवगतिसे वा आसन उठा, आसनमें स्थित उठकर खडा-हुआ, बाहरको गया अथवा दैवगतिसे फिर आयाहुआ नहीं देखते जैसे मदिरा पानसे मत्त हुआ पुरुष पहने वस्त्रको नहीं जानता, इसी प्रकार ज्ञानीपुरुष ब्रह्मको प्राप्त होचुके हैं ॥ ३६ ॥ यहाँ तर्क करते हैं कि, देहको न जाने तो वह क्यों नहीं गिरे, तो कहते हैं कि, देह भी दैवके अधीन है और जबतक इसका प्रारब्ध कर्म है तब तक प्राण इन्द्रि-योंसहित देह रहता है, इसलिये जो समाधियोगमें आरूढहैं, परमार्थ वस्तु और आत्म-स्वरूपको जानते हैं, वह पुरुष प्रपंच सहित स्वप्नसमान इस देहको नहीं भजते ॥ ३७ ॥

हे ब्राह्मणो ! सांख्य और योगमार्गका जो रहस्य था, वह मैंने अ[illegible] पुरुषको पवित्र नहीं धर्म और ज्ञानका उपदेश देनेके लिये मैं यज्ञरूप विष्णु आया हूं, ऐ[illegible]न हों, द्रवी[illegible] ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! योगसांख्य, सत्यऋत, अर्थात् शास्त्रोक्त धर्म, तेज, प्रभाव, श्री, कीर्ति और इन्द्रियपन इन सब धर्मोंका मैं ही परमार्थ स्थान हूँ यह सब मुझीमें रहते हैं ॥ ३९ ॥ सबगुण मेरेहीमें आश्रय हैं.मैं निरपेक्ष हूं, सुहृद् परमप्रिय हूं, सबका आत्मा और सब मुझे समानहैं संग किसीका नहीं, ऐसे गुण मुझीमें हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार मेरे वचन सुन संदेह निवृत्ति कर सनकादिक मुनियोंने अतिभक्तिसे मेरी पूजा और स्तुति की ॥ ४१ ॥ जब उन ऋषियोंने भलीभांति स्तुति और पूजा की, तब ब्रह्माके देखते २ मैं भी अपने धामको चला आया ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा-इस चौदह अध्यायमें, सबका यही विचार।
सब साधनमें मुख्य है, भक्ति भुक्ति दातार ॥ १४ ॥

उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! जो पुरुष ब्रह्मका विचार करते हैं, वह तो ब्रह्मका साधन बहुत बताते हैं, इन सबोंमें जो एक मुख्य साधन है, सो कहो ॥ १ ॥ हे ईश्वर! तुम निरपेक्ष भक्तिही एक मुख्य साधन कहते हो कि, सब संग छोड भक्तियोगसे मुझमें चित्त रक्खै ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! भक्तिही सबसे श्रेष्ठ साधन है और जो अनेक साधन हैं, वह अपनी इच्छानुसार संसारके लोगोंने मूर्खपनसे मुख्य मान रक्खे हैं, वह सब तुच्छ फलके देनेवाले हैं और मुख्य तो यह मेरी वेदरूप वाणीहै जो प्रलयकालमें नष्ट होगई थी, यह वह वाणीहै कि, जिससे प्राणीका मन मुझमें लगजाय यह पहले मैंने ब्रह्माजीसे कहा था ॥ ३ ॥ ब्रह्माने अपने बडेपुत्र मनुसे वह वाणी कही, मनुने महर्षि भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, इन सात ब्रह्माके पुत्रोंसे वह वाणी कही ॥ ४ ॥ उनसे उनके पुत्र दैत्य, देवता, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गंधर्व,विद्याधर ॥ ५ ॥ चारण, किंदेव, (मनुष्य जातिमें देवतुल्य) किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुषादिक इन सबोंने वह वाणी ग्रहणकी, जिनकी वासना रजोगुण, तमोगुण आदिसे अनेक प्रकारकी हैं ॥ ६ ॥ जिन वासनाओंसे देवतुल्य मनुष्यादिक प्राणियोंके शरीर भिन्न भिन्न होते हैं और उनकी बुद्धियोंमें भी भेद पडता है, इन सबोंने अपनी वासनाके अनुसार भिन्न भिन्न वेदका व्याख्यान किया है ॥ ७ ॥ इस प्रकार प्रकृतिकी विचित्रतासे मनुष्योंकी बुद्धि विचित्र होगई और शास्त्रोंमें भी भेद पडगये, किसी प्राणीके उपदेशकी परंपरासे वेदविरुद्ध पाखण्ड बुद्धि हुई ॥ ८ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! मेरी मायासे मोहित बुद्धि पुरुष अनेक प्रकारसे इच्छानुसार कल्याणके साधन कहते हैं ॥ ९ ॥ कोई धर्महीको मुख्य कहता है, कोई यशको, कोई कामको, कोई सत्यको, कोई शमदमको, कोई ऐश्वर्यको और कोई स्वार्थ

अनर्थ लगता है, इसप्रकार कोई दान करो, भोग करो यही कहते हैं, कोई यज्ञ, तप, दान, व्रतको त्यागन करै यह सब साधन कहते हैं ॥ १० ॥ इन प्राणियोंको अपने कर्मानुसार लोक कर्मफलसे मिलते हैं, वह सब परिणाममें दुःखसे पूर्ण किंचित् आनन्दयुक्त शोकसे व्याप्त आदि अंतवाले हैं ॥ ११ ॥ हे सौम्य ! मुझमें जिन्होंने आत्मसमर्पण किया है, और जो सबसे निरपेक्ष हैं, उनको मेरे परमानन्दस्वरूपकी प्राप्तिसे सुख मिल रहा है, वह सुख विषयोंमें लगे पुरुषोंको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जो भक्तोंको सुख है वह विषयी पुरुषोंको कहाँ ? ॥ १२ ॥ जो अकिंचन दांत समचित्त वैसेही संतुष्ट मन हैं, उनको सब दिशायेंभी सुखरूप हैं ॥ १३ ॥ जिन्होंने मुझमें आत्मा समर्पण करदिया है, उनको मेरे अतिरिक्त और किसी वस्तुकी चाहना नहीं है एक मैंहीं उन्हें प्रिय हूं, अधिक क्या कहैं ब्रह्मलोक, इन्द्रका संपूर्ण राज्य, भूमिका राज्य, पातालका राज्य, अणिमा महिमादिक योग्य सिद्धि मोक्षतककी भी उनको चाहना नहीं है ॥ १४ ॥ इसलिये भक्तोंके समान मुझे कोई प्यारा नहीं, हे उद्धव ! अब मैं तेरे आगे अधिक क्या कहूं मेरा आत्मा भी मुझे प्रिय नहीं. हे उद्धव ! जैसे तुम मुझे प्यारे हो, वैसे मेरा पुत्र, ब्रह्मा, महादेव, संकर्षण और लक्ष्मीजी भी मुझे प्यारी नहीं हैं, यह अतिसंतोषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥ १६ ॥ उत्तम भक्तोंकी तो कथाही क्या है, जो सामान्य भी मेरे भक्त हैं वह भी कृतार्थ हैं और जो मेरे भक्त विषयोंसे पीडित अजितेन्द्रियहैं, उनको भी दृढ भक्ति होनेके कारण विषय पराभव नहीं कर सक्ते ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जिसप्रकार प्रचण्ड अग्नि काष्ठको भस्म कर देतीहै, इसीप्रकार मेरी दृढभक्ति सब पापोंका नाशकर देतीहै ॥ १९ ॥ इससे भक्ति विना और कोई उपाय नहीं है, हे उद्धव ! योग सांख्य धर्म, पाठ, तप, त्याग, यह कोई मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते हैं, जैसी एक दृढ भक्ति मुझे वश कर लेती है ॥ २० ॥ भक्तोंको प्रिय आत्मा रूपमें श्रद्धासे उत्पन्न हुई भक्तिसेही महात्माओंके वश होजाताहूं, यदि मेरी भक्ति, चाण्डाल भी करै तो उसके जाति दोष पवित्र होजाते हैं ॥ २१ ॥ इसपर एक दृष्टान्त है *

---

* **दृष्टान्त**—एक तिलोक सुनार बडे साधुसेवीथे जो कुछ वस्तु प्राप्त होती सब साधुओंमें व्यय करदेते थे, एक समय राजाके यहाँसे कुछ आभूषण बनानेको आये, सो इनके यहाँ बहुत साधू आगये, इन्होंने उस राजाके द्रव्यकी भोजन सामग्री मँगाकर साधुओंको खिलादी और आप टालवाल करते रहे, जब राजाके यहाँ व्याहका दिन आया तो यह जंगलको भाग गये, भगवानूने भक्तकी रक्षा करी और तिलोकका रूप बना गहना लेकर राजाके घर गये वहाँसे अच्छे आभूषण वनानेके कारण पुरस्कार पाया और गहना लिया भगवान् वह पुरस्कारका द्रव्य तिलोकके घरदे जंगलमें जाकर उससे कहने लगे कि, घरको जा, राजाने बहुत द्रव्य दिया है, तिलोक सुनतेही घर आय अत्यन्त प्रसन्नहुए सो ईश्वरके भक्त कभी नष्ट नहीं होते ।

सत्य और दयासंयुक्त धर्म और तपसे संयुक्त विद्या भी उस पुरुषको पवित्र नहीं कर सक्ती, जिसके चित्तमें मेरी भक्ति नहीं ॥ २२ ॥ जिसके रोमांच न हों, द्रवीभूत चित्त न हो आनंदके आंशू न चलैं, उसकी भक्ति कैसे जानी जाय ? और भक्ति विना हृदय कैसे शुद्धहो ? ॥ २३ ॥ अब भक्तिका लक्षण कहते हैं, जिसकी वाणी गद्गद हो चित्त द्रवीभूत कोमलहो, नेत्रोंसे वारंवार आंशू बहैं कभी हँसे, कभी लज्जा छोड उच्चस्वरसे गावै, नाचै इस प्रकार जो मेरी भक्तिसे युक्तहो, वही लोकोंको पवित्र करता है ॥ ॥ २४ ॥ जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेसे श्यामता छोड निर्मलहो अपने रूपको प्राप्त होता है वैसेही यह आत्मा मेरे भक्तियोगसे कर्म वासना त्यागकर मेरेही स्वरूपको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ ज्ञान विना अविद्या नहीं जाती, अविद्याके गये बिना हम नहीं मिलते, इसप्रकार कहते हैं कि, यह पुरुष जैसे जैसे मेरी पुण्य कथा श्रवण कीर्त्तन करते हैं, वैसेही वैसे शुद्ध चित्त होते हैं, नेत्र जैसे जैसे अंजनसे सूक्ष्म होते हैं, वैसेही वैसे सूक्ष्म पदार्थ देखनेमें आते हैं ॥ २६ ॥ यद्यपि विषयके ध्यानमें मन विषयमें रहता है, परन्तु तो भी मेरा ध्यान करनेसे शुद्ध चित्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाता है, क्योंकि, मेरी भक्ति विना ज्ञान नहीं होता और मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होनी यही ज्ञान है ॥ २७ ॥ हे उद्धव ! इसलिये स्वप्न मनोरथके समान मिथ्या वस्तुका ध्यान छोड मेरी भावनासे चित्त शुद्ध कर मेरे स्वरूपमें रक्खै ॥ २८ ॥ स्त्रियोंका संग और स्त्रियोंके संगियोंका संग दूरसे छोड आत्माको जान, धीरहो, एकान्तमें बैठ परमकल्याण रूप मेरा चिंतवन करै ॥ २९ ॥ क्योंकि जैसा स्त्रियोंके संगसे और स्त्रियोंके संगियोंके संगसे इसे क्लेश बंध होता है, ऐसा औरके संगसे नहीं होता है ॥ ३० ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कमलनयन ! जो मोक्ष चाहै, वह तुम्हारा ध्यान किस प्रकार करै, किस स्वरूपका करै ? यह मुझसे कहो, क्यों कि मैं तो आपके दासभावके पुरुषार्थको प्राप्त होचुकाहूं × ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव ! समान आसनपर बैठ अपनी देह समरख जैसे मुखहो, वैसेही बैठ, अपने दोनों

× **शंका**—श्रीकृष्णसे उद्धवने बूझा कि, मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगीजन भगवान्का ध्यान कैसे करते हैं ? तब श्रीकृष्णने उद्धवकी बातको त्याग कर सगुणरूपका वर्णन किया इसका क्या कारण ?

उत्तर—श्रीकृष्णचन्द्रने विचार किया कि, ब्रह्मका ध्यान मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगिराज करते हैं, सो ज्ञान सुननेसे और कहनेसे प्राप्त नहीं होता, वह ध्यान तो बहुत दिनोंतक सत्संग करनेसे प्राप्त होता है और उद्धवका हृदय ज्ञानमें, कच्चा है और हमारी इच्छा परमधामके जानेकीहै, जो कुछ अधिक दिन हमको मर्त्यलोकमें रहना होता तो भी उद्धव ब्रह्मज्ञान जाननेमें पक्का होजाता, ऐसा विचार करके सगुणका ध्यान वर्णन किया कि, धीरे धीरे सगुणका ध्यान करते करते ब्रह्मके ध्यानको उद्धव प्राप्त होजाँयगे, इसलिये ब्रह्मके ध्यानको त्यागकर सगुणका ध्यान श्रीकृष्णचन्द्रने वर्णन किया ।

हाथ गोदपर रक्खै नासिकाके अग्रपर दृष्टि रक्खै ॥ ३२ ॥ इस प्रकार बैठ प्राणके मार्ग पूरक, कुंभक. रेचक, करके शुद्ध हो, जितेन्द्रियहो शनैः शनैः प्राणायामका अभ्यास कर रेचक, पूरक, कुंभक, क्रमसे अभ्यास करै ॥ ३३ ॥ प्राणायाम दो प्रकारका है, एक तो प्रणव सहित प्राणसे प्रगट करके ॐ कारमें घंटेके शब्दके समान उदात्त नाद स्थित करै ॥ ॥ ३४ ॥ इसप्रकार प्रणव संयुक्त प्राणके अभ्याससे प्रकट करै और प्रणवमें घटाना, बढाना, संधानका स्थित अभ्यास करै, दश प्राणायाम तीनों काल करै, इस प्रकार अभ्यास करनेसे एक महीनेमें प्राणवायु वशमें होजाता है ॥ ३५ ॥ इस देहके भीतर हृदय कमल अधोमुख है, उसकी दंडी ऊपर रहती है, जैसे केलेकी फली होती हैं, ऐसे ही कमलकी कली होती है उसका ध्यान ऐसा करै कि, वह नीचे नालवाला और ऊपर मुखवाला खिलाहुआ आठ पखुरीसे युक्त है, कर्णिकासहित मनमें चिंतवन करै ॥ ३६ ॥ उस कमलकी कर्णिकामें सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं, उस अग्निमें मेरे इस रूपका क्रमसे ध्यान करै उसमें प्रथम अग्निके बीचमें वक्ष्यमाण ध्यानके मंगल रूप विषय मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सम अति शान्त सुन्दर मुख दीर्घ सुन्दर चार भुजा धारण करे अतिसुन्दर ग्रीवा, उत्तम गोल कपोल, अति उज्ज्वल मंद मुसकान युक्त ॥ ३८ ॥ समान कानोंमें प्रकाशमान मकराकृति कुण्डल धारण किये पीताम्बरं पहरे, मेघकी भाँति श्यामसुन्दर श्रीवत्स संयुक्त लक्ष्मीको वक्षस्थलमें धरे ॥ ३९ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमालासे भूषित नूपुरोंसे शोभित चरण कमल कौस्तुभ मणिकी कांतिसे संयुक्त ॥ ४० ॥ प्रभावसे दीप्ति मुकुट, कंकण, कांटे, मेखला, बाजूबंद धरे, सर्वांग सुन्दर और मनोहर प्रसन्नताके कारण अतिसुन्दर शोभित मुख और नेत्र अति सुकुमार रूपका ध्यान करै. सब अंगोंमें मन दे ॥ ४१ ॥ प्रथम इन्द्रियोंको विषयोंसे खैंच मनमें मिलावै, मनको बुद्धि सारथीसे बिषयोंसे निकाल मेरे स्वरूपमें मिलावै ॥ ४२ ॥ यह चित्त सर्वत्र व्याप्त है, अंग अंगमें फिरता है, उसको उन अंगोंसे निकाल मेरे मुखकी भावनामें रक्खै, मंदहास्य संयुक्त मेरे मुखका बहुत काल तक चिंतवन करै और कुछ मनमें न धरै ॥ ॥ ४३ ॥ जब मुखमें मन स्थिर होजाय, तब मुखसे भी खैंचकर सबके मूल भूत साक्षात् मेरे स्वरूपमें रक्खै, उसे वहाँसे छुडाय साक्षात् शुद्ध ब्रह्मरूप मेरे संपूर्ण स्वरूपमें संलग्न होय, तब और कोई चिंतवन न करै ॥ ४४ ॥ इसप्रकार समाधिमें दृढ मति हो, अपने आत्मामें आत्मरूप मुझे ही देखै. जैसे ज्योतिमें ज्योति मिलजाती है, उसीप्रकार सर्वात्म-रूपमें अपने आत्माको मिला देखै ॥ ४५ ॥ इसप्रकार सुदृढ तीक्ष्ण ध्यानसे योगीजन मुझमें मन संयुक्त करैं, तब वह द्रव्य ज्ञान क्रियारूप भ्रम शीघ्रही निवृत्त होनेसे शान्तिको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा-प्रथम धारणा अनुसरण, करत विष्णुपद प्रेम।
विघ्नरूप सिद्धो सकल, समझ यही दृढ नेम ॥ १५ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जो जितेन्द्रिय हो और श्वास जीते चित्त मुझमें रखता हो, योगी हो, स्थिर चित्त हो, उसे यह सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥ तब उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! कैसी धारणासे यह सिद्धि प्राप्त होती है और सिद्धि कितनी हैं ? इनका रूप क्या है ? सो सब मुझसे कहो, क्योंकि तुम योगियों को भी सिद्धियोंके देनेवाले हो ॥ २ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! धारणा और योगके पारंगतोंने अठारह (१८) सिद्धि कही हैं, उनमें आठ मेरे आश्रय रहती हैं, वह मुझे ही प्राप्त होती हैं, अथवा जो मेरे सारूप्यको प्राप्त हैं उन्हैं होती हैं, परन्तु कुछेक न्यून हो और दश सिद्धि गुणोंका कार्य हैं, सतोगुणका उत्कर्ष बढाती हैं ॥ ३ ॥ उनको कहते हैं, अणिमा, महिमा, लघिमा, यह तीनों देहकी सिद्धि हैं प्राप्ति सिद्धि इन्द्रियकी हैं, इन्द्रियोंसे मिल इन्द्रियोंके देवताओंका संग होना, परलोक और इस लोकके विषयोंके भोग देखनेकी सामर्थ्य, तथा भूमिके गुप्त पदार्थका ज्ञान होना प्राकाश्य सिद्धि है, ईश्वरमें मायाकी और दूसरोंमें मायाके अंशोंकी प्रेरणा करनेकी सामर्थ्य को ईशिता सिद्धि कहते हैं ॥ ४ ॥ गुणमें असंग हो, विषय भोग करै और संग दोष न लगे, उसे वशिता सिद्धि कहते हैं और जिसकी कामना करै वही प्राप्त हो, उसे प्राकाम्य सिद्धि कहते हैं, हे उद्धव ! यह आठ सिद्धियें मेरे आश्रय रहती हैं ॥ ५ ॥ क्षुधा पिपासादिक शरीरमें न व्यापै, उसको अनूर्मिमत्व सिद्धि कहते हैं (१) दूरकी सब बातें सुननेमें, भले प्रकार आवैं, इसका नाम दूरश्रवण सिद्धि है (२) दूरके सब पदार्थ और सर्वत्र स्थान घर बैठे दीखैं, उसका नाम दूरदर्शन सिद्धि है (३) जहाँ मन जाय वहाँ देह सहित पहुँचना इसका नाम मनोजव सिद्धिहै (४) जैसा रूप बनाना चाहै उसी प्रकारका रूप होजाय, इसका नाम कामरूप सिद्धि है (५) दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना इसका नाम परकाय प्रवेशन सिद्धि है (६) ॥ ६ ॥ अपनी इच्छानुसार मरना, इसका नाम स्वच्छन्द मृत्यु सिद्धिहै (७) देवता अप्सराओंके साथ क्रीडा करतेहैं उनको देखनेकी सामर्थ्य इसका नाम देवानांसह क्रीडानुदर्शन सिद्धिहै (८) जो मनमें इच्छा हो, वही वस्तु तत्काल प्राप्तहो, इसका नाम यथासंकल्प सिद्धिहै (९) किसी स्थलमें आशाका भंग न हो इसका नाम अप्रतिहताज्ञा सिद्धि है (१०) यह दश सिद्धि सत्वगुणकी वृद्धिसे मिलती हैं ॥ ७ ॥ पांच सिद्धि तुच्छ हैं सो कहते हैं, तीन कालका ज्ञान होना, इसका नाम त्रिकालज्ञ सिद्धि है (१) शीत उष्ण कुछ न लगना, इसका नाम अद्वन्द्व सिद्धिहै (२) पराये मनकी बात जान लेना इसका नाम प्रचित्ताद्यभिज्ञता सिद्धि है ॥ ३ ॥ अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिसे देहको किसी प्रकारकी हानि न हो, इसका नाम प्रतिष्टंभ सिद्धि है (४) और कहीं पराजय न हो, इसका नाम अपराजय सिद्धि है (५) यह पाँच क्षुद्र सिद्धि

हैं ×॥८॥ हे उद्धव ! यह सब योगधारणाकी सिद्धि मात्र कहीं अब ज्ञान धारणासे सिद्धि जो प्राप्त होती हैं, वह मैं आपके सामने वर्णन करताहूँ सो सुनो ॥ ९ ॥ सूक्ष्म मेरे रूपमें सूक्ष्म भूत अर्थात् शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध, सूक्ष्म, तन्मात्राके आकारसे इस भूत सूक्ष्म उपाधिमान मेरे स्वरूपमें धारण करनेसे सूक्ष्मरूपका उपासक पुरुष अणिमा सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ ज्ञानशक्ति महत्तत्त्वरूपमें महत्ततत्त्वरूप मनमें धारण करै तो महिमा सिद्धिको प्राप्त हो और भिन्न२आकाशादिक भूतोंहीके रूपमें मन लगावै तो भूतोंकी महिमा सिद्धिको प्राप्त हो ॥ ११ ॥ पंचभूतोंके परमाणु अतिसूक्ष्म हैं, सो मेरा रूप है, उसमें चित्त अनुरक्त करै, तब योगी परमाणु कालके रूपको प्राप्त होता है; इसीका नाम लघिमा सिद्धि है ॥ १२ ॥ सात्विक अहंकार तत्वरूप मुझमें एकाग्रमन धरै तो सब इन्द्रियोंका अधिष्ठाता होवै,मुझमेंही मन लगानेके प्रभावसे यह प्राप्तिसिद्धि प्राप्त होतीहै॥१३॥प्रकृतिसे क्रियाशक्ति रूप महत्व होयहै; सो रूपहै, उसमें मन लगावै, तो सबसे उत्तम प्राकाम्य सिद्धिको प्राप्त हो ॥ १४ ॥ त्रिगुण मायाके नियंता अंतर्यामी कालरूपी व्यापक मेरे स्वरूपमें मन लगावै तो सब जीव और चर अचर शरीरका नियंता होवै, सो ईशिता-सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ विराट हिरण्यगर्भ और कारणसे चौथे तुरीय ब्रह्म भगवान् नारायणमें जो मन लगावै तो वह योगी मेरे धर्मको प्राप्त होवै, तब वशिता सिद्धिको पावै ॥ १६ ॥ निर्गुण ब्रह्ममें निर्मल मन रक्खै तो परमानन्दको प्राप्त हो जहाँ सब कामना समाप्त होती हैं ॥ १७ ॥ अब गुणहेतुसिद्धि कहते हैं—कि, श्वेतद्वीपके पति शुद्ध धर्ममय मेरे रूपमें मन लगावै तो मनुष्य शुद्धताको प्राप्त हो और उसे क्षुधा पिपासा आदि यह छः ऊर्मी लहरी नहीं व्यापतीं ॥ १८ ॥ आकाश रूप प्राण है, सो मेरा स्वरूप है, उसमें मन लगाकर शब्दका चिंतवन करै तब वह आकाशमें भूतोंकी वाणी प्रगट दूरहीसे सुनता है ॥ १९ ॥ यह नेत्र सूर्यमें मिलावै मनसे मेरा ध्यान करै

× **शंका**-अग्नि, सूर्य, विष, जल, इत्यादि और बडे २ पदार्थोंका तेज रोकनेके लिये श्रीकृष्णने सिद्धियें वर्णनकी हैं, ऐसी सिद्धियोंसे योगीजन अग्नि, सूर्य, विष, जल, इन सबके सम्पूर्ण तेजको रोकलेतेहैं. इसमें यह शंकाहै कि, भगवान् वासुदेवमें जिन योगीश्वरोंका मन लगा है उनको इन सब पदार्थोंके रोकनेसे क्या प्रयोजन ?

उत्तर-योगशास्त्रके जाननेवाले मुनिजन दो प्रकारके योगी होते हैं, एक तो गृहस्थ योगी जो घरमें बैठे २ योग करते हैं, जैसे राजा जनक दूसरे विरक्त योगी जो घर त्याग कर योग करते हैं, जैसे भूतनाथ शिव, आठ सिद्धि भी आदिसे चली आती हैं, श्रीकृष्णने गृहस्थ योगियोंके लिये इन सिद्धियोंको कहाथा अग्नि, सूर्य, विष, जलका तेज रोकनेके लिये नहीं कहा जो कोई कहै कि, ऐसा भेद नहीं कहा कि, गृहस्थ, योगियोंके लिये यह सिद्धि तो ठीक हैं, भगवान्को वैकुण्ठके जानेकी इच्छा थी इसलिये आतुरतासे योगियोंका नेम नहीं किया ।

तब सूक्ष्म दृष्टि हो विश्वको दूरहीसे देखै ॥ २० ॥ मन वायुके संग देहको मुझमें संयुक्त करके जो मेरी धारणा करै तो इस धारणाके प्रतापसे जहाँ मन करै वहाँही देह चली जाय ॥ २१ ॥ जब मन मेरे विषे मनकी धारणासे धरै तब मेरे प्रभावसे जैसा रूप करना चाहै वैसाही रूप करै क्योंकि उन्हें मेरे योगबलका आश्रय है ॥ २२ ॥ जो सिद्धि पराई कायामें प्रवेश करना चाहै, सो आत्माका चिंतवन करै, तब अपनी देह छोड प्राणरूप हो बाहरकी वायुमें प्रविष्ट हो वायुके संग परकायामें प्रविष्ट होते हैं, जैसे भ्रमर पुष्पसे दूसरे पुष्पमें अनायास चले जाते हैं ॥ २३ ॥ अब स्वच्छंद मृत्युकी क्रिया कहते हैं, योगधारणा करते समय प्रथम एँडीसे गुदाका द्वार दाबकर रोकै, पीछे प्राणको हृदयमें ले आवै फिर हृदयमें उरु बक्षःस्थलमें मिलावै इसके पीछे कण्ठमें ले आवै, माथेमें लावै तब ब्रह्मरंध्र द्वारा इस देहको छोडै और जिस स्थानमें जाना चाहै वहां जाय ॥ २४ ॥ और जो देवताओंके क्रीडास्थलमें विहार करना चाहै तो मेरी सतोगुणरूपी मूर्त्तिका ध्यान करै तब सतोगुणके अंशसे वहांही बिमान समेत देवांगना आनकर उपस्थित होजाती हैं ॥ २५ ॥ पुरुष मुझमें विश्वासकर बुद्धिसे मनोरथ करै, तब सत्यसंकल्परूप मेरे रूपमें मन संयुक्त करै तब वैसेही मनोरथको प्राप्तहो यथा संकल्प नाम सिद्धिको पाता है ॥ २६ ॥ मैं सबोंका ईश्वर और नियंताहूं, स्वतंत्र हूं. मेरे भावको प्राप्त हुआ पुरुष कहीं प्रतिहत नहीं होता जैसे मेरी आज्ञा सब मानते हैं, वैसेही उसकी आज्ञाभी सब मानते हैं, कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, यह पुरुष सब गुण हेतु अप्रतिहताज्ञा नाम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ॥ २७ ॥ अब तुच्छ सिद्धि कहते हैं; मेरी भक्तिसे शुद्ध सत्वरूपमय होकर, योगी और त्रिकालके ज्ञाता ईश्वर इसप्रकार मेरी धारणा करै, तब जन्म, मृत्यु सहित तीनों कालका ज्ञान होय और इसीसे दूसरेके चित्तकी सब बात जानी जाती है ॥ २८ ॥ मेरे योगसे जिसका चित्त युक्त हो उसकी देह भोगमय होय सो अग्निसे और अनेक उपाधिसे उपहत नहीं होता है, जैसे जलजंतुको जल वाधा नहीं करता, ऐसेही इसको कोई बाधा नहीं करसकता है ॥ २९ ॥ श्रीवत्स, अस्त्र, ध्वज, छत्र, चमर युक्त मेरी विभूति अवतारका ध्यान करै, तो कभी इसकी पराजय न होय ॥ ३० ॥ इसप्रकार मेरी उपासना करै, तब मेरी योगधारणा करनेसे पहले कही सब सिद्धि उसके आगे हाथ जोडे खडी रहती हैं ॥ ३१ ॥ अनेक भाँतिकी धारणामें कष्ट बहुत हैं, इसकारण एकही धारणा ऐसी करै कि, जिससे सब सिद्धि प्राप्त हों, सो कहते हैं, जितेन्द्रिय होय, दांत होय, श्वास जित् होय मनजीत होय, तुरीय ब्रह्म नारायणस्वरूप जो मैंहूं मेरी धारणा धरनेवाले पुरुषको कौन सिद्धि दुर्लभ है ? ॥ ३२ ॥ जो मेरे साक्षात् स्वरूपकी धारणा करते हैं, उनको मेरी प्रीति होनेके कारण यह सिद्धि विघ्नकरती हैं, इसलिये इन सिद्धियोंसे व्यर्थ काल न खोवै, अर्थात् इन सिद्धियोंकी चाहना न करै ॥ ३३ ॥ एक सिद्धि जन्महीसे होतीहै, जैसे देवताओंका सिद्धिसहितही जन्म होताहै, सहितहीसिद्धि है, एक मंत्रसे औषधीसे तपसे जितनी सिद्धि होती हैं, यह सब योगसे पाते हैं परन्तु इससे सालोक्यादिक मुक्तिको नहीं

प्राप्त होते हैं ॥३४॥ इसलिये हे उद्धव ! सब सिद्धियोंका एक मैंही प्रभुहूँ क्योंकि उनकी उत्पत्ति और पालन मैं ही करताहूँ सिद्धियोंहीका प्रभु मैं नहीं हूं किन्तु मैं मोक्ष, सांख्य, ज्ञान, धर्म, और ब्रह्मके जाननेवालोंका पालक हूँ इसलिये सिद्धियोंकी अपेक्षा नहीं रखकर मुझको प्राप्त होना यही योगका प्रधान फल है ॥ ३५ ॥ मैं सब जीवोंका आत्मा हूं क्योंकि मैं सबका अंतर्यामी हूँ सर्वत्र व्यापक हूँ जैसे भूतोंमें महाभूत सर्वत्र व्याप्त हैं और आवरणरहित हैं ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा-इस सोलह अध्यायमें, ज्ञान प्रभाव विचार।
वह विभूति वर्णन करौं, देत सदा फलचार ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! तुम साक्षात् परब्रह्म निरावरण तथा स्वतंत्र हो जिनमें सब भूतमात्रकी उत्पत्ति, प्रलय, रक्षा और जीवन होताहै, ऐसे तुम सबके कारण हो, आदि अंतसे रहित हो ॥ १ ॥ हे भगवन् ! जो वेदके तत्त्वको जानते हैं, सो सर्वत्र ऊँचे नीचे पदार्थोंमें कारण रूप तुमको जान तुम्हारी उपासना करते हैं * ॥ २ ॥ जो आत्म तत्त्वको नहीं जानते हैं, उनके जाननेमें तुम नहीं आते और जिन जिन भावना विषे ऋषीश्वर भक्ति करके तुम्हारी उपासना करके सिद्धिको प्राप्त होते हैं सो मुझसे उन पदार्थोंके नाम कहो ॥ ३ ॥ सब प्राणियोंके मध्यमें गुप्त तुम अंतर्यामी हो, प्राणियोंका कार्य कारण समर्थके दाता तुम्हैं सब भूत तुम्हारी मायासे मोहित होकर नहीं देखते हैं॥ ॥ ४ ॥ जिनमें गुप्त रहतेहो, उन विभूतियोंको पूछते हैं, हे महाविभूतियोंके पति ! जो तुम्हारी विभूति भूमिसे स्वर्ग, पाताल, दिशाओंमें निश्चय करी हैं और जो विभूति तुम्हारे

---

* **शंका**-भक्तोंके प्यारे भगवान्का पूजन करै, भजन करै, ध्यान करै, जो और भगवान्की सेवा है, सो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, सबको लिखा है, ऐसा नहीं लिखा है कि, ब्राह्मण अकेला भगवान्का पूजन करै, हे ब्राह्मणोंमें उत्तम कुलभूषण ! तो फिर श्रीकृष्णसे क्यों उद्धवजीने कहा कि, हे भगवन् ! जिस विधिसे ब्राह्मण अपने आपको पूजन करते हैं, सो विधि कहो, हमको यह बडी भारी शंकाहै, क्योंकि वेदकी विधिके पूजनमें तो एक विधि है और शूद्रकी अलग है और भक्तिमार्गमें सबकी एक विधि है, सो उद्धव परमभक्तथे, भक्तिमार्गकी पूजाका वृत्तान्त बूझा था ॥

उत्तर-उद्धवने ब्राह्मणके शापसे यदुवंशियोंकी क्षय देखकर ब्राह्मणोंने भगवान्को माना क्योंकि, श्रीकृष्णके देखते ब्राह्मणोंके शापसे यादवोंका नाश होगया, श्रीकृष्णने कुछ सहाय नहीं की, इसवास्ते उद्धवजीने जाना कि ब्राह्मणोंके ऊपर भगवान्का कुछ भी वश नहीं चलता ।

प्रताप संयुक्त हैं, सो मुझसे कहो, तुम्हारे तीर्थरूप चरणारविन्दोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! इसीप्रकार उद्धवका प्रश्न सुन अति संतुष्ट हो भगवन् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे प्रश्नके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ! इसीभाँति शत्रुओंसे युद्ध करनेकी इच्छावाले अर्जुनने युद्धके समय कुरुक्षेत्रमें प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ यदि कोई कहै कि, युद्धके समयमें इस प्रश्नका क्या प्रसंग था, तो इसका उत्तर यह है कि, राज्यके लिये अपने जातिवालोंका वध करना अनुचित अति निन्दित और अधर्मरूप जानकर कि, मैं इन्हें मारूंगा, यह मरैंगे इससे करुणा व्याप्त बुद्धि होनेसे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन युद्ध करनेसे निवृत्त हो स्थित हुआ ॥ ७ ॥ तब मैंने युक्तिसे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनको समझाया कि, कौन मारता है? और कौन मृत्युको प्राप्त होताहै ? उस उपदेशके प्रसंगमें उसने भी इसीप्रकार मुझसे पूँछाथा जैसे अभी तुमने पूँछा और उससे जो मैंने वर्णन किया है, वही मैं तुमसे कहताहूँ ॥ ८ ॥ सो तुम सुनो, हे उद्धव! इन सब प्राणीमात्रका आत्मा मैं हूं, सुहृद ईश्वर नियंता मैं हूं और सब प्राणिमात्रमें भी हूं, सबकी उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयकर्त्ता भी मैंहीहूं ॥ ९ ॥ गतिवालोंकी जो गति चलती फिरती है, उनका भी योग, मन और कर्म मैंही हूं, जो सबको वशमें करते हैं, उनमें मेरा रूप है, अनंत गुण हैं, तिनमें समता गुण मेरा रूप है, गुण संयुक्त पुरुषका स्वाभाविक गुण मैं हूं॥१०॥ गुणवाले पदार्थोंमें क्रियाशक्ति प्रधान जो महत्तत्त्वहै, वह मैंहीहूं, सूक्ष्मोंमें प्रथम जीव मैं हूं दुर्जयोंमें मन मैं हूं ॥ ११ ॥ देवोंका अध्यापक मैं हूं, मंत्रोंमें प्रणव मैं हूं, अक्षरोंमें ओंकार मैं हूं, छंदोंमें गायत्री मैं हूं ॥ १२ ॥ सब देवताओंमें इन्द्र मैं हूं, आदित्योंमें विष्णु मैंहूं रुद्रोंमें नीललोहित मैं हूं ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षियोंमें भृगु मैं हूं देवर्षियोंमें नारद मैंहूं,राजर्षियोंमें मनु मैं हूं गायोंमें कामधेनु मैं हूं ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वरोंमें कपिल देव मैं हूं पक्षियोंमें गरुड मैं हूं, प्रजापतियोंमें दक्षप्रजापति मैं हूं, पितरोंमें अर्यमा मैं हूं ॥ १५ ॥ हे उद्धव! दैत्योंमें दैत्योंका राजा प्रह्लाद मैंहूं, नक्षत्र औषधियोंका पति प्रभु चंद्रमा मैं हूं, यक्ष राक्षसोंका प्रभु कुबेर मैंहूं ॥ १६ ॥ गजेन्द्रोंमें ऐरावत मैंहूं, जलजंतुओंमें प्रभु वरुण मैंहूं, प्रतापवानोंमें और दीप्तिवंतोंमें सूर्य मैं हूं, मनुष्योंमें नराधिप मैं हूं ॥ १७ ॥ घोडोंमें उच्चैःश्रवा मैं हूं, धातुओंमें सुवर्ण मैं हूं, दण्डकर्त्ताओंमें यम मैं हूं, सर्पोंमें वासुकी मैं हूं ॥ ॥ १८ ॥ नागेन्द्रोंमें अनंत शेषनाग मैं हूं, सींग तथा दाढ वालोंमें सिंह मैं हूं, आश्रमोंमें संन्यास मैंहूं, हे निष्पाप! वर्णोंमें ब्राह्मण मैं हूं ॥ १९ ॥ तीर्थ और प्रवाहोंमें गंगारूप मैं हूं स्थिर जलोंमें समुद्र मैंहूं, आयुधोंमें धनुष मैं हूं,धनुष धारियोंमें त्रिपुरका घाती महारुद्र मैंहूं निवासस्थानमें सुमेरु मैंहूं, दुर्गमस्थलोंमें हिमालय मैंहूं, वनस्पतियोंमें अश्वत्थ मैंहूं, औषधियोंमें यव मेरा रूप है ॥ २० ॥ २१ ॥ पुरोहितोंमें वसिष्ठ मैं हूं, वेदार्थज्ञाताओंमें बृहस्पति मैंहूं, सेनापतियोंमें स्वामिकार्त्तिक मैंहूं उत्तम मार्ग प्रवृत्तियोंमें ब्रह्मा मैंहूं ॥ ॥ २२ ॥ यज्ञमें ब्रह्मयज्ञमैंहूं, व्रतमें हिंसारहित व्रत मैं हूं, शोधकोमें वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाणी, रूप, शोधक मैंहूं, यह सदा पवित्रकारी हैं ॥ २३ ॥ योगीजनोंमें समाधि

मैंहूं, विजयकी इच्छावालोंका जो विचारहै वह मैंहूं, विवेकियोंमें आत्मा, अनात्माके विवेक कारी विद्या मेरा रूपहै, पांच प्रकारके जो व्याख्यादि वादी हैं, वह य~ हैं, अख्याति, अन्यथा-ख्याति, शून्यताख्याति असत् ख्याति और अनिर्वचनीय ख्यातियां हैं इनमें अनेक प्रकार वाद विवाद करनेवालोंका यह इस प्रकारके हैं, वह उस प्रकारके हैं, इस रीतिके जो अनेक विकल्प हैं, वह मैंहूं ॥ २४ ॥ स्त्रियोंमें शतरूपा मैंहूं, पुरुषोंमें स्वायंभुवमनु मैं हूं, मुनियोंमें नारायण मुनि मैंहूं ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मैंहूं ॥ २५ ॥ धर्मोंमें अभयदान मेराही रूप है, निर्भय स्थानोंमें आत्मनिष्ठा मैं हूं, अति रहस्योंमें प्रियवचन और मौन मैंहूं, मिथुन अर्थात् स्त्री पुरुषोंमें ब्रह्मा मैंहूं. जिनके दो अर्द्धभागोंसे स्त्री और पुरुष प्रगट हुए हैं ॥ २६ ॥ जो पुरुष धर्ममें सावधान हैं, उनका संवत्सररूपी काल मैंहूं, ऋतुओंमें वसंत मैंहूं, महीनोंमें मार्गशिर मैंहूं, और संपूर्ण नक्षत्रोंमें अभिजित् मैंहूं ॥ २७ ॥ युगोंमें सतयुग मैंहूं, धीरोंमें असित् देबल मैंहूं, वेदके विभागकर्त्ताओंमें द्वैपायन व्यास मैंहूं कवि-योंमें शुक्राचार्य मैंहूं ॥ २८ ॥ प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलयगति अगति विद्या अविद्याका जाननेवाला वासुदेव मैंहूं हे उद्धव ! वैष्णवोंमें तुम मेरे रूपहो, किंपुरुषोंमें हनुमान् मैंहूं, विद्याधरोंमें सुदर्शन मैंहूं ॥ २९ ॥ रत्नोंमें पद्मराग मैंहूं, अतिसुन्दर वस्तुओंमें पद्मकोश मैंहूं, दर्भजातियोंमें कुश मैंहूं, घृतोंमें गौ का घृत मैं हूं ॥ ३० ॥ उद्यमी पुरुषोंमें लक्ष्मी मेरा रूपहै, धूर्त्तोंमें छल करके जो ग्रहण करना है, वह मेरा रूप है, क्षमावान् पुरुषोंमें क्षमा मैंहूं, सत्यवादियोंमें सत्य मैंहूं ॥ ३१ ॥ बलवानोंमें इन्द्रियबल और उत्साहबल मैंहूं, भक्तोंमें भक्तिरूप कर्म मैंहूं, नौमूर्त्ति भक्तोंकी पूजालेनेको प्रगट हैं उन वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वाराह, नृसिंह, ब्रह्मामें, आदि मूर्त्ति वासुदेव मैंहूं ॥ ॥ ३२ ॥ गंधर्वोंमें विश्वावसु मैंहूं, अप्सराओंमें पूर्वचित्ति मैंहूं, पर्वतोंमें स्थैर्यवान् हिमालय मैंहूं ॥ ३३ ॥ जलोंमें उत्तम माधुर्यरस मेराही रूप है, तेजस्वियोंमें अग्नि मैं हूं, सूर्य चन्द्र और तारोंमें कान्ति मैंहूं, आकाशमें परानाम शब्द मैंहूं ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणके भक्तोंमें बलिराजा मैंहूं, वीरोंमें अर्जुन मैंहूं, हे उद्धव ! निश्चय करके संपूर्ण भूतमात्रकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय मैंहूं ॥ ३५ ॥ चरण, वाणी, गुदा, हस्त, लिंग इन पांचकर्मेन्द्रियोंका गमन, वचन, मलत्याग, आनंद लेना यह कर्म मैंहूं, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, श्रवण, नासिका ज्ञानेन्द्रियोंके स्पर्श, चितवन, आस्वाद, सुनना, आघ्राण कर्म मैंहूं, उन उनके अर्थ ग्रहण करनेकी शक्ति भी मैंहूं ॥ ३६ ॥ विशेष कहकर अब सामान्यसे सब विभूति कहतेहैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पाँच सूक्ष्म मात्राहैं, अहंकार महत्तत्त्व आदि यह सात प्रकृतिके विकारहैं पंच महाभूत और एकादश इन्द्रिय यह सोलह तत्त्व हुए एक पुरुष और प्रकृति, दो यह हुए, इस प्रकार सब पचीस (२५) तत्त्वहुए रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण यह तीनगुण, इनसे आगे परब्रह्म सो सब मैंहीं हूं इनकी संख्या, इनका लक्षण सहित ज्ञान और उसका फल तत्वका निश्चय सब महीं हूं ॥ ३७ ॥ मैंही सबका ईश्वर हूं सब जीव रूप हूं, मैंही गुणीरूप हूं, मैंही क्षेत्ररूप और क्षेत्रज्ञरूप मैंहीं हूं, इसलिये मुझ

विना जीव, ईश्वर, गुणी, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ इत्यादिक भाव कहीं नहीं ॥ ३८ ॥ अहो ! तुम ऐसे संक्षेपसे क्या कहते हो अच्छी भाँति विस्तार सहित समझाकर कहो, तो इसका उत्तर यह देते हैं कि, पृथ्वीके परमाणुकी संख्या कितनेही कालमें मैं करताहूं और करके कहनेको भी समर्थ हूं परन्तु मेरी जो विभूतियें हैं उनकी संख्या नहीं करी जाती, मैं अनेक कोटि ब्रह्माण्डोंको सृजता हूं, जब ब्रह्माडोंकी ही संख्या नहीं तब उनमें स्थित मेरी विभूतियोंकी संख्या कौन करसक्ता है ? ॥ ३९ ॥ परन्तु तौभी संक्षेपसे विशेष कर विभूति कहताहूं कि, जहाँ जहाँ तेज, श्री, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, दान, मान, और नेत्रोंका आनंद, भाग्य, वीर्य, क्षमा, विज्ञान इत्यादि ये धर्म हैं, सो ये सब मेराही अंशहैं ॥ ४० ॥ ये विभूतियें संक्षेपसे मैंने इसलिये कहीं कि, ये मनका विकार हैं, परमार्थ रूप नहीं, जैसे आकाशके फूल, आदि वाणीमात्रसे कहीं हैं, उनके तुल्य हैं ॥ ४१ ॥ पुरुषको उचित है कि, सतोगुणयुक्त बुद्धिसे वाणीको रोकै, मनका नेम करै, प्राणोंको रोकै, इन्द्रियोंको निरोध करके बुद्धिको रोकै तब फिर संसारके मार्गमें न पडै ॥ ४२ ॥ यदि जो पुरुष इन्द्रियोंका और बुद्धिका संयम नहीं करै तो दोष उपजै, सो कहते हैं, जो बुद्धिसे भली भाँति वाणी और मनका संयम नहीं करै तो उसके व्रत और ज्ञान सब क्षीण होजाते हैं, जैसे कच्चे घडेका जल क्षणक्षणमें क्षीण होता है ॥ ४३ ॥ इसलिये वचन, मन, प्राणको जीत मुझमें तत्पर हो, बुद्धि मेरे विषे युक्त करै, क्योंकि ऐसा करनेसे पुरुष कृतकृत्य होजाताहै ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-इस सत्रह अध्यायमें, साधन भक्ति उपाय।
हंसरूप धर जो कही, सो वरणी यदुराय ॥ १७ ॥

उद्धवजी बोले कि, हे कमलदललोचन ! तुमने पहले कह दिया है कि, धर्मरूप कर्म भक्तिका और मोक्षका साधन है, परन्तु इसप्रकार कर्म करनेवालोंको अवश्य भक्ति मिलजाती है, ऐसा नियम देखनेमें नहीं आता, इसकारण वर्ण व आश्रमके आचारवालोंका तथा उस आचारके अधिकारसे रहित संपूर्ण पुरुषोंका स्वधर्म वर्णन करो कि, वह धर्म जिस भाँति करनेसे पुरुषोंमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न हो जाय सो श्रवण करनेकी इच्छा है, तुम्हें अवश्य वर्णन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥ हे प्रभो ! हे महाभुज ! हे श्रीमाधव ! पहले आपने हंसरूप धारणकर जो धर्म ब्रह्माजीसे कहा था वह परमसुखरूप धर्म निश्चय करके कहो ॥ ३ ॥ हे शत्रुनाशक ! बहुधा पहले सिखाया भी धर्म बहुत कालसे अब मनुष्य लोकमें न होगा ॥ ४ ॥ इस धर्मका वक्ता, कर्त्ता, रक्षक, तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा भूमिपर नहीं है, हे अच्युत ! हे प्रभो ! ब्रह्माजीकी सभामें भी तुम्हारे विना और नहीं, जहाँ मूर्त्तिमंत वेदादिक हैं ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन ! सब धर्मके कार्यकर्त्ता; सब

धर्मके वक्ता, रक्षक जब तुम इस पृथ्वीको छोडोगे, तब नष्ट हुए धर्मोंको कौन कहैगा ? ॥ ६ ॥ सो सब धर्मके ज्ञाता तुमहो इससे हे प्रभो ! तुम्हारी भक्ति जिसप्रकार करैं, सो सब धर्म जैसे जिसका कर्त्तव्यहै, वैसेही मुझसे कहो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इसप्रकार भक्त उद्धवजीके पूछनेसे भगवान् हरि अतिसंतुष्ट हो मनुष्योंका मरणधर्म दूर करनेवाला सनातन धर्म कहनेलगे, श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! यह तुम्हारा प्रश्न धर्मरूप है और वर्णाश्रमोंके आचारवंत पुरुषोंको भक्ति आनंदकारी है, उसको मैं कहताहूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ८ ॥ पहले सतयुगमें मनुष्योंका वर्ण हंसरूप था, तब सब प्रजा जन्महीसे कृतकृत्य थी, इसीसे कृतयुग नाम हुआ, और कर्म भी कुछ कर्त्तव्य था, सो कहते हैं ॥ ९ ॥ उससमय प्रणव ओंकारही वेद था, चारोंपाँवोंसे धर्म वृषभरूप धारण कर रहा था, ये यज्ञादिक कर्म नहीं थे, एक तपस्यासेही इन्द्रियोंको स्थिरकर एकाग्रचित्तहो हंसरूप शुद्ध मेरा ध्यान करते थे ॥ १०॥ हे महाभाग ! जब त्रेतायुग हुआ तब विराट् मेरे प्राणसे और हृदयसे वेदत्रयी विद्या प्रगट हुई, उससे होता, अध्वर्यु, उद्गाता, सहित त्रिरूप यज्ञ प्रगट हुआ, सो यज्ञ मेरा रूप है ॥ ११ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह चारों वर्ण विराट् स्वरूपके मुख, बाहु, जंघा और चरणोंसे प्रगट हुए, और भी जो जिसका स्वधर्म था सो प्रगट हुआ ॥ १२ ॥ गृहस्थका तो आश्रम जंघासे प्रगट हुआ, ब्रह्मचर्य्यका धर्म हृदयसे हुआ, वानप्रस्थ वक्षस्थलसे हुआ, संन्यास मस्तकसे प्रगट हुआ ॥ ॥ १३ ॥ और सब वर्णआश्रमके स्वभाव भिन्न भिन्न हुए, जिसने नीचयोनिमें जन्म धारण किया, उसका स्वभाव नीच हुआ, जिसने उत्तम योनिमें जन्म लिया, उसका स्वभाव उत्तम हुआ ॥ १४ ॥ शम, दम, तप, शौच, संतोष, क्षमा, शुद्ध भाव, मेरी भक्ति, दया, सत्य, यह सब ब्राह्मणका स्वभाव है ॥१५॥ तेज, बल, धैर्य शौर्य्य, क्षमा, उदारता, उद्यम, स्थैर्य, ब्रह्मण्यता,ऐश्वर्य यह क्षत्रियोंका स्वभाव है ॥ १६ ॥ आस्तिकता, दान, निर्दम्भ, ब्राह्मणकी सेवा, द्रव्य संग्रहमें अतृप्ति यह वैश्यका स्वभाव है ॥ १७ ॥ गायोंकी ब्राह्मणोंकी और देवताओंकी निष्कपट सेवा करै जिससे जो पावै उसीमें संतोष रक्खै, यह शूद्रका स्वभाव है ॥ १८ ॥ अशौच, मिथ्या वाणी, चोरी, नास्तिकता, वृथा कलह, काम, क्रोध, तृष्णा यह सब नीच जातिके स्वभाव हैं ॥ १९ ॥ हिंसा न करै, सत्य बोले, चोरी न करै, काम, क्रोध, लोभ, न हो, क्योंकि सबसे बडा जातिका धर्म है ॥ २० ॥ अब चार आश्रमोंमें पहले ब्रह्मचारी धर्म कहते हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके गर्भसे लेकर सब संस्कार हुए हों अर्थात् जन्म धारण करनेके उपरान्त दूसरा जन्म गायत्री उपदेश होनेके पीछे गुरूके घर जायरहै, इन्द्रियोंको दम करै जब गुरू बुलावै तब वेद पढै ॥ २१ ॥ मेखला, मृगचर्म, दंड, रुद्राक्ष माला,यज्ञोपवीत, कमण्डलु, जटा इत्यादि सब धारण कियेरहै, तेलसे स्नान नकरै, दाँत धावन न करै, वस्त्र क्षारसे न धोवै आसनको न रंगै, दर्भ धारण करै ॥ २२ ॥ स्नान, भोजन, होम, जप,

मूत्र, पुरीष जब करे, तो मौन रहै, नख, रोम और क्षौरकर्म न करावै, और काँखके उपस्थके केश दूर न करावै ॥ २३ ॥ वीर्यस्खलन न करै, आप ब्रह्मचर्यका धारण करे रहै और जो प्रमादसे स्वप्नमें वीर्यस्खलितहुआ होय तो जलमें स्नान करके प्राणायाम करके गायत्रीका जप करै ॥ २४ ॥ अग्नि, सूर्य, आचार्य,गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, देवता ओंकी पवित्र और एकाग्रचित्तसे उपासना करै और यतवाक् होकर जप करै ॥ २५ ॥ गुरुओंका मनुष्यबुद्धिसे सेवन न करै, किन्तु मेरा स्वरूप जानकर सेवन करै, कभी अवज्ञा न करै. क्योंकि, संपूर्ण देवता गुरुओंमें वास करते हैं ॥ २६ ॥ साँझ सबेरे भिक्षा ले आवै, सो गुरुके आगे धरै, और भी जो कुछ प्राप्त हो, सो सब गुरुके समर्पण करै और जब, गुरुजीकी आज्ञा होय तो संयमसे भोजन करै ॥ २७ ॥ जो गुरु कहींको जायँ, तो उनके संग जाय, जब गुरु सोवैं तो उनके चरण दाबै,जब बैठैं, तब सावधान हाथ जोड बहुत दूर न बैठे, आचार्यका आदर सन्मान करै, अच्छी भाँति सदा उपासना करै ॥ २८ ॥ इसप्रकार विषय भोग रहित होकर गुरुकुलमें वास करै और जबतक विद्या पूर्ण हो तबतक अखण्डित व्रत धारण करे रहै ॥ २९ ॥ यह तो ब्रह्मचारीके आश्रमका सामान्य धर्म कहा, अब जो ब्रह्मलोकके जानेकी इच्छा करै सो मेरी निष्ठासे ब्रह्मचर्य्य व्रत करै, सो कहते हैं कि, जो यह ब्रह्मचारी, जहाँ मूर्त्ति धारण करे वेद रहते हैं, ऐसे ब्रह्म लोकमें जाना चाहै तो गुरुओंहीके पास रहै, वेदाध्ययन करै, निष्काम ब्रह्मचर्य व्रत करै, अधिक क्या कहैं ? अपना देहतक भी गुरुके समर्पण कर दे ॥ ३० ॥ पूजाके स्थल कहते हैं, अग्नि, गुरु, आत्मा सब प्राणीमात्रमें मेरी बुद्धि रक्खै मुझसे भिन्न न जानै इसप्रकार ब्रह्मतेजयुक्त निष्पाप मेरी उपासना करै ॥ ३१ ॥ स्त्रियोंका दर्शन उनसे भाषण परिहास न करै और जो कहीं कोई स्त्री पुरुष इकट्ठे होकर बैठे होयँ तो उनको न देखै, आप गृहमें न रहे ॥ ३२ ॥ यह धर्म सब आश्रमोंका कारण है, शौच मट्टीसे हाथ पाँव धोवै, आचमन करै, स्नान, संध्या, शुद्धभाव, तीर्थसेवन, तप भिक्षा, करै; परन्तु स्पर्श किसीका न करे जो असंभाष्यहैं, उन नीचोंका त्यागकरै ॥ ३३ ॥ हे कुलनंदन ! सब प्राणिमात्रमें मेरा भाव रक्खै, मन वचन इन्द्रियोंको संयुक्त करै, यह नेम सब आश्रमोंका है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जो व्रत रक्खै सो अग्निके समान तेजस्वी होवै, सब कर्म जला, निर्मलहो, मेरी भक्तिको प्राप्त होवै ॥ ३५ ॥ यह निष्काम ब्रह्मचारीके लिये मोक्षका प्रकार कहा, जो सकाम होय सो वेदार्थ विचार, ब्रह्मचर्य छोड गृहस्थके आश्रममें आना चाहै, तो गुरुको दक्षिणा दे, आज्ञा ले तब अभ्यंगादिक करके मेखला, दंड, मौंजी छोडै (इस कर्मका नाम समावर्त्तन कहते हैं) ॥ ३६ ॥ तहाँ दोनों पक्ष कहते हैं कि, जो विवाहकी इच्छा होय तो गृहस्थ होजाय, निष्काम होय तो वानप्रस्थ आश्रम ले, अथ वा संन्यास ले, आश्रमसे आश्रममें जाय, आश्रम बिना न रहै, ब्राह्मणमें श्रेष्ठ उस आश्रममें मेरी भक्ति करता हुआ विचरै और पिछले आश्रमसे पूर्वमें न आवै,अर्थात् संन्यासी गृहस्थी न हो ॥ ३७ ॥ जो गृहस्थ होना चाहै सो समावर्त्तन कर्मसे विवाह करै, गृहस्थी होकर लक्षणवंत अपने कुल समान कुलकी कन्या विवाहै, प्रथम तो अपने वर्णकी व्याहे

पीछे और भी करना चाहै तो अनुक्रमसे और व्याहै ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, यह तीन धर्म समान हैं यज्ञ, अध्ययन, दान, यह तीनो वर्णोंको समान हैं, परन्तु पर-प्रतिग्रह, अध्यापन, यज्ञ कराना यह तीनों कर्म ब्राह्मणहीको करने उचित हैं ॥ ३९ ॥ प्रतिग्रह लेनेमें जप, यज्ञमें कृपणता आदि दोष जब देखेतो स्वामीसे छोडे खेतमें पडे कणसे आजीविका करै अथवा और किसी वस्तुसे आजीविका करै यज्ञ करावै अथवा विद्या पढावै यह दो वृत्ति करै, जो इनमें भी हीनता दोष देखै तो उंछ वृत्तिही करै ॥ ४० ॥ ब्राह्मणका यह देह निश्चयही तपस्याके कष्ट सहनेको उत्पन्न किया है, क्षुद्र कामको न करै तो परलोकमें अनंत सुख ब्राह्मणको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ जो हाटमें अथवा क्षेत्रोंमें अन्न पडा रहै उससे बीन उसीसे निर्वाह करै और उसीसे संतोष रक्खै उत्तम निष्काम धर्म करै, मुझमें चित्त रक्खै घरमें तो रहै परन्तु बहुत आसक्त न हो, इसप्रकार शान्ति-को प्राप्त हो ॥ ४२ ॥ दारिद्रीके लिये इस प्रकार निर्वाह करनेको कहाहै, जो सद्रव्य है, उसका प्रकार कहते हैं जो ब्राह्मण दरिद्री होय और मेरी भक्ति करनेमें तत्पर होय उसको जो आपदासे उद्धार करते हैं, सो हे उद्धव ! उन मनुष्योंको मैं थोडेही कालमें उद्धार करूंगा, जैसे समुद्रमें डूबते हुओंको नाव पार लगाती है, वैसेही जो मनुष्य अथवा ब्राह्मणका निर्वाह करते हैं, मैं संसाररूपी समुद्रसे उन मनुष्योंको निश्चय पार करूंगा * ॥ ४३ ॥ राजा होय तो उसका आवश्यक धर्म यही है कि,

---

* **शंका**-श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि, हमारा भजन करनेवाले ब्राह्मणको दुःख दारिद्र आदि लेके अनेक संकटसे जो कोई छुडाता है, तो उस छुडानेवाले मनुष्यको हम बहुत शीघ्र दुःख दारिद्रसे छुडादेते हैं, इस बातमें यह शंका होती है कि, अपने भजन करनेवाले ब्राह्मणको आप दुःख दारिद्रसे क्यों नहीं छुडाते; दूसरेको लोभ क्यों दिखातेहैं जैसे बनिये आडती लोगोंसे काम करते हैं ऐसा वचन श्रीकृष्णचन्द्रने क्यों कहा ? ॥

उत्तर-बडे बडे पाप ब्राह्मणलोग करते हैं, तो उन बडे बडे पापोंसे दुःख दारिद्र ब्राह्मणोंको होता है और क्षत्रिय, वैश्य शूद्रको थोडेही पापोंसे दुःख होता है, इस बातका भगवान्‌ने विचार किया कि, हम शीघ्र ब्राह्मणोंको अपना भजन करनेवाला जानकर दुःख दारिद्रसे छुडा सकैंगे तो ब्राह्मण और अभिमान करके पाप करैंगे और जान लेंगे कि, भजनके प्रतापसे दुःख नाश जल्दी होजाताहै फिर संसारका सुख क्यों नहीं भोगैं हमारा पाप क्या करैगा ? ऐसा विचार कर ब्राह्मणोंका माननाश करनेके लिये जब तक ब्राह्मण पापसे नहीं छूटता, तबतक उस ब्राह्मणके दुःख दारिद्र्यको दूसरे मनुष्यसे दूर कराते हैं कि, ब्राह्मणोंको विदित होजाय कि, हम भगवान्‌का ऐसा बडा भजन करते हैं तो भी हमको पापी जानकर हमारे दुःख दारिद्रका नाश नहीं किया, जो हमारा पाप हमारे पास न होता तो शीघ्रही भजनके प्रभावसे हमारे दुःखका नाश करदेते, अब पाप कभी नहीं करैंगे ऐसा विचारके ब्राह्मण पाप बुद्धिको त्याग देते इसलिये दूसरेसे ब्राह्मणका दुःख दारिद्रनाश करनेके लिये श्रीकृष्णने कहा ।

जैसे पिता पुत्रको कष्टसे छुडाता है, तथा जैसे कीचडमें पडे हाथीको हाथी निकालता है, उसी प्रकार संपूर्ण प्रजाको दुःखसे उद्धार करै, इसी प्रकार धैर्य-वान् राजाको विपत्तियोंसे अपनी आप रक्षा करनी उचित है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार राजा लोग इस लोकमें सब पाप दूर कर सूर्यके समान प्रकाशित विमानमें बैठ इन्द्रके संग आनन्द करते हैं ॥ ४५ ॥ यदि ब्राह्मण दरिद्रसे दुःख पाता हो, तो उसको उचित है कि, वाणिज्य वृत्तिकर आपदासे छूटै, परन्तु मदिरा (शराब) और रसादिक न बेचै और इसमें भी जो निर्वाह न हो तो क्षत्रिय वृत्ति करै, परन्तु नीच सेवाकी वृत्ति कभी न करै, यह ब्राह्मणका धर्म कहा ॥ ४६ ॥ अब क्षत्रियका धर्म कहते हैं, जो आपदा आनकर पडै तो वैश्यवृत्तिसे जीविका करै, परन्तु नीचकी सेवा न करै ॥ ४७ ॥ वैश्य-को यदि आपदा पडै तो शूद्रकी वृत्तिको करै, उसमें भी आपदाहो तो चतुरताकी क्रियासे जीविका करै, जब अपनी आपदा निवृत्त होजाय तो नीचवृत्ति छोडदे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सबोंकी वृत्ति कही, अब गृहस्थका आवश्यक पंचयज्ञ कर्त्तव्य कर्म कहते हैं कि, ब्रह्मयज्ञ करके तो ऋषियोंको संतुष्ट करै, श्राद्धमें स्वधासे पितृयज्ञ करै, होममें स्वाहा करके देवताओंका यज्ञ करै, बलिदानसे भूत यज्ञ करै, अन्न जलसे मनुष्योंको तृप्त करै, यथाशक्ति करै, सबमें मेरी बुद्धि रक्खै, यह कर्म सब अवश्य कर्त्तव्य हैं ॥ ४९ ॥ शक्तिके अनुसार कर्त्तव्य कर्म कहते हैं, विनाही उद्यम अथवा उद्यमसे पाया हो और शुद्ध हो, तो उस धनसे जिसमें कुटुम्बको पीडा न हो, वैसेही न्यायसे यज्ञोंको करै ॥ ॥ ५० ॥ कुटुम्बमें आसक्त न हो, परंतु मेरे भजनमें सावधान रहै, इस संसार प्रपंचको मिथ्या जानै, स्वर्गको भी मिथ्या मानै, आत्माहीको केवल सत्य जानै ॥ ५१ ॥ पुत्र, स्त्री, कुटुम्बी, बंधु इत्यादिकोंका संग यात्रा करनेवालोंके संगके समान है, जैसे निद्रामें स्वप्न देखते हैं और जागतेही नष्ट होजाते हैं, ऐसेही देहके नष्ट होनेपर यह सब चले जाते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार घरमें विचार करता अतिथिकी भाँति रहै, यह मेरा घर है, ऐसा अहंकार न रक्खै, क्योंकि अहंता और ममता छोडनेसे ही पुरुष नहीं बँधता ॥ ॥ ५३ ॥ गृहस्थके जो धर्म कहे हैं, उनसे मेरी पूजा करे मुझमें भक्ति करै और गृह-स्थाश्रममें रहनेके उपरान्त वानप्रस्थ होकर जो संतान हो तो संन्यास ले ॥ ५४ ॥ जो पुरुष केवल घरमें ही आसक्त हैं, पुत्र वित्तमें प्रीति कर स्त्रीके वशमें रहते हैं, वे महा-दीन हैं, मूर्ख हैं और अहंता ममतासे बँधे हैं ॥ ५५ ॥ मेरी माता और मेरा पिता वृद्ध है, स्त्री छोटी है, बालक छोटे हैं, यह मेरे विना कैसे जीवन धारण करैंगे ? हम विना यह दीन अनाथ दुःखी होजायँगे, इसप्रकार जो शोचते हैं ॥ ५६ ॥ और ऐसे गृहकी आशा करके विक्षिप्त मनहो मति (बुद्धि) मूढ होनेसे स्त्री पुत्रादिकोंका ध्यान करते हैं, सो पुरुष कभी तृप्त न होकर मरनेके उपरान्त अत्यन्त तामसी योनिमें पडते हैं ॥ ५७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे

सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा-अष्टादश अध्यायमें, वानप्रस्थ संन्यास।
कहूँ दो उनके धर्म में, करहु यही अभ्यास ॥ १८ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, जब आयुका तीसरा भाग आवै, अर्थात् सौ वर्षकी आयुके हिसाबसे पिछत्तर (७५) वर्ष पूरे हों तो पुत्रोंको घर सौंपकर वनमें बसै और यदि स्त्री अपने संग आवै तो वनमें रक्खै, नहीं तो वह पुत्रके पास रहै आप वनमें शांत होकर रहै ॥ १ ॥ कंद, मूल, फलोंसे आत्माको तृप्त करै वल्कल वस्त्र पहरै, तृण, पत्ते और मृगचर्म धारण करै यह सब वनकी वस्तु अति पवित्रहैं ॥ २ ॥ केश, रोम, नख, दाढी, मूंछ दूर न करावै और इनको धोवै भी नहीं, जलमें तीन काल स्नान करै भूमिमें शयन करै ॥ ३ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तपै, वर्षामें जलवृष्टि सहै जाडेमें कंठ तक जलमें मग्न रहै इस प्रकार तप करै ॥ ४ ॥ अग्निसे पकाहुआ पदार्थ खाय या समयके पक्व फलादि खाय, ओखली व पत्थरसे कुटी होय वह वस्तु खाय, दाँतसे कुटी बस्तुको न खाय ॥ ॥ ५ ॥ अपनी सब आजीविकाकी वस्तु आपही ले आवै और देशकालका बल देखै, पहला संग्रह न रक्खै, जब नवीन अन्न प्राप्त होजाय तो पुराने का त्याग करै ॥ ६ ॥ वनकी वस्तुके चरु पुरोडाशनसे देवताओंका यज्ञ करै, वनमें आश्रम बनाकर रहै, परन्तु वेदोक्त पशुसे मेरा यजन करै ॥ ७ ॥ पूर्ववत् नाम गृहस्थाश्रम सरीखे अग्निहोत्र दर्श-पूर्णमासेष्टि चातुर्मास्य यज्ञ इतनाही वेदने गृहस्थाश्रमोंको अनुष्ठान कहा है ॥ ८ ॥ इस प्रकार जीवन तक तपस्या करनेसे जिसका माँस सूख जानेसे संपूर्ण देहमें नसैं दिखाई देने लगैं, वह वानप्रस्थ जो कि, मैं तपोमय हूं सो मेरा आराधन करनेसे प्रथम ऋषिलोकसे महर्लोकमें जाय, इसके उपरान्त क्रमसे मुझे भी प्राप्त होगा ॥ ९ ॥ इतने कष्टसे प्राप्त हुई मोक्ष फलदायक तपस्या तुच्छ काममें न लगावैं, जो लगावै तो उससे मूर्ख कौन है ? ॥ १० ॥ इसप्रकार संपूर्ण धर्म निष्काम करै, तो निश्चय मोक्ष होजाय और जो आयुके तीसरे भागमें वैराग्य थोडा सा उत्पन्न हो तो संन्यास ले, यदि शरीरकी सामर्थ्य पहलेही घट जाय तो विरक्त होकर रहै, संन्यास ले और जो विरक्त भी न होसके उससे क्या करना चाहिये ? तो कहते हैं कि, जब यह धर्मके नेम करनेमें असमर्थ हो वृद्धावस्था हो तो अग्निहोत्रकी अग्नि आपमें रखकर चित्त मुझमें स्थिरकर अग्निमें प्रविष्ट हो शरीरको छोडदे ॥ ११ ॥ और जो विरक्त होंय, सो कर्मोंका फल तथा देवताओंके लोकको नरकके समान जानै, ऐसा कर-नेसे यह सब अग्निहोत्रादिक कर्म छोड अच्छी भाँति संन्यास लेय ॥ १२ ॥ संन्यासके आरंभके उपदेशके अनुसार मेरा पूजन करै, ऋत्विजोंको सर्वस्वदे, अग्निहोत्रको अपने प्राणोंमें प्रविष्ट कर, आप निरपेक्ष हो संन्यास लेय ॥ १३ ॥ जब ब्राह्मण संन्यास लेता है तब देवता, स्त्री, पुत्ररूप होकर उसको इसकारण विघ्न करते हैं कि, यह हमारी अवज्ञा करके आगे चलना चाहता है, परन्तु तो भी यह पुरुष उन विघ्नोंको लाँघ संन्यास ग्रहण

करे, उनके विघ्न न माने * ॥ १४ ॥ यदि संन्यासी वस्त्र पहरना चाहै तो जितनेसे कोपीन ढके उतना वस्त्र पहरे और कुछ धारण न करै, एक दंड धारण करै; एक जल-पात्र अर्थात् कमंडलु अपने पास रक्खै और कुछ नहीं रक्खै ॥ १५ ॥ पृथ्वीमें देखकर पांव धरै, वस्त्रसे छना जल पान करै, वचन सत्य बोलै और आचरण मनमें विचार जब शुद्ध मन होय तब करै ॥ १६ ॥ हे उद्धव ! वचनका दंड मौन रहना, देहका दंड सकाम कर्म नहीं करना, चित्तका दंड प्राणायाममें स्थिर करै, जिसके यह दंड नहीं वह बाँसके दंडका संन्यासी कहलाताहै ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंमें ही प्रतिग्रह, यजन, अध्ययन, शिलोंछवृत्ति यह चार वर्ण होतेहैं, उनके घर भिक्षा करै और जो निन्दित हो उसके घर भिक्षा न करै यहाँसे मुझे यह अलभ्य लाभ होगा इस उद्वेगसे रहित सात घर भिक्षा करै, जो कुछ प्राप्त हो उसीमें संतोष करै ॥ ॥ १८ ॥ भिक्षाले जहाँ जलाशय होय वहाँ जाय पांव धोवै आचमन करै मौन होकर मार्जन करै, मार्गके दोषकी शुद्धि करै,पीछे विभाग कर विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, भूतोंको समर्पण करै थोडा २ अलग अलग करके रक्खै, बाकी सब भोजन करै ॥ १९ ॥ अब एक दूसरी क्रिया और भी है कि, संपूर्ण पृथ्वीमें फिरे, परन्तु संग किसीका न करै, जितेन्द्रिय रहै, आत्माहीमें संतुष्ट धीर और समदृष्टिहो ॥ २० ॥ एकांत निर्भय स्थलमें रहै, मेरी भावनासे चित्त निर्मल रक्खै, आत्मामें और मुझमें भेद नहीं देखे, अभेदसे एक आत्मा विचारै ऐसा विचारशील हो ॥ २१ ॥ ज्ञान निष्ठासे अपने बंध मोक्षका विचार करै (इन्द्रियोंके विक्षेपको बंध कहते हैं और इन्द्रियोंके संयमको मोक्ष कहते हैं) ॥ २२ ॥ इसलिये इन्द्रियोंको निग्रह करके मुझमें चित्त रक्खै, तुच्छ कामनाओंसे विरक्त रहै तब मुनि अति उत्तम आत्मसुखको प्राप्त हो सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक विचरै ॥ २३ ॥ नगर, ग्राम ब्रजमें भिक्षाको जाय, जहाँ कहीं बहुतसे मनुष्योंका संग आया हो, या यात्रियोंका संग हो तहाँ भिक्षाको जाय, जो पुण्य देश, नदी, पर्वत. वन, आश्रम हैं, वहाँ पृथ्वीमें

---

* **शंका**–जो ब्राह्मण वैराग्यमें मन लगाकर संन्यास लेनेकी इच्छा करते हैं उनके विघ्नको स्त्री आदि परिवार कैसे करैंगे ? क्योंकि मन कच्चा हो तब तो जो चाहैं सो विघ्नकर देवै और जो मन पक्का होकर वैराग्यमें लग गया तो किसीका किया विघ्न नहीं होसक्ता ।

उत्तर–भाई, स्त्री, पुत्र, कुटुम्बसे उत्पन्न हुई जो फाँसी है उसको सब चर अचर जीव जन्तु काटा चाहै तो किसीकी काटी नहीं कटसक्ती, जो कोई महात्मा काटनेकी इच्छा करैंगे तो बडे कठिनतासे वह फांसी कटसक्तीहै क्योंकि स्त्री पुत्रके मोहमें पशु पक्षी भी बँध गये हैं तो मनुष्य बँधगया तो क्या आश्चर्यकी बात है ? इस लिये श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा कि ब्राह्मणका मन वैराग्यमें लगा है तो भी स्त्री पुत्र आदि परिवार संन्यासमें विघ्न करते हैं ।

फिरै॥२४॥ वानप्रस्थके आश्रममें जाय नित्य भिक्षा करै, उसका अन्न शुद्ध है,उससे सत्त्व शुद्ध होताहै, तब शीघ्रही सिद्धि मिलती है और मोह संपूर्ण घट जाता है ॥ २५ ॥ गृहस्थके घर उत्तम सामग्री मिष्टान्न पावे, वहाँ भिक्षा छोड उंछवृत्तिके अन्नकी भिक्षाको मन कैसे चलै ? तो कहते हैं कि, इन मिष्टान्नादिकोंको वस्तु करके न देखे इससे नाशको प्राप्त होता है, इस लोक तथा परलोकमें मन आसक्त न करे मिष्टान्नादिकके लिये उपाय न करै ॥ २६ ॥ जो यह जगत् और, शरीर, मन, वचन प्राणसे युक्त हैं अहंता, ममताके धर्म यह आत्मामें सब मायामात्र हैं, यथार्थ नहीं, ऐसी युक्तियोंसे आत्मनिष्ठहो फिर देहादिकका स्मरण न करैं, क्योंकि स्मरणसे वैराग्यमें प्रतिबंध होता है ॥ २७ ॥ अब परमहंस धर्म कहते हैं, एक वैराग्यसे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पूर्णज्ञानी अथवा मुक्तिभी न चाहनेवाले मेरी दृढ भक्ति, करनेवाले भक्त दंडादिककी आवश्यकतावाले आश्रम धर्मोंकी आसक्ति त्यागकर जितना अपनेसे होसकै उतना आश्रमसम्बन्धी धर्म करै, परन्तु अत्यन्त उसमें लिप्त न हो ॥ २८ ॥ विवेकी होनेपर भी बालकके समान फिरते हैं, मान अपमानसे शून्य रहते हैं, अति चतुरहैं परन्तु तोभी जड की भाँति रहते हैं, फलका अनुसंधान नहीं रखते हैं, सो बुद्धिमान् हैं परन्तु उन्मत्तके समान वेदके धर्मोंमे निष्ठ हैं, परन्तु कुछ आचार का नेम नहीं है ॥ २९ ॥ कर्महीं करना मुख्य है, ऐसे वेदके वादमें आसक्त न हो,पाखण्डी न हो केवल तर्कही सब जगह न करै और जहाँ प्रयोजन विना वाद होता हो वहाँ किसीका पक्ष न करै ॥३०॥ किसी मनुष्यसे उद्वेग न करै न मनुष्योंसे आप उद्विग्न हो,अपमान सहै, इस देहके लिये पशुके समान किसीसे वैर नहीं करै॥३१॥ क्योंकि सबमें आत्मा एकही है वैर किससे करै ? ऐसे समझकर निवृत्तिहोवै, जैसे जलके पात्र अनेक होते हैं और उनमें अनेक चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब दीखते हैं परन्तु चन्द्रमा एकही है इसीप्रकार आत्मा भी एकही है, और अनंतसे भासै है ॥ ३२ ॥ और जो समय समय में भोजन न मिलै तो खेद न करै, पावैं तो हर्ष न करै, धैर्य रक्खै क्योंकि प्राप्ति अप्राप्ति दोनों दैवाधीनहैं ॥ ३३ ॥ आहार तो अवश्य चाहिये कि, जिससे जीवन हो प्राण धारण का तो प्रयोजन यह है कि, जो तत्व को विचारे तो मुक्त हो ॥ ३४ ॥ ईश्वरेच्छासे जो कुछ मिलै सोई भक्षण करै, भला हो वा बुरा हो इसीप्रकार मुनि भी वस्त्र, शय्या जैसी पावै, उसेही ग्रहण करै ॥ ३५ ॥ जैसे मुझे कुछ चाहना नहीं और जैसे मैं लीलापूर्वक धर्म करताहूं, उसीप्रकार ज्ञानी पुरुष भी आसक्ति छोड शौच आचमन, स्नान और भी नेम करै, विधिके वश होकर न करै, ज्ञानदृष्टि रखकर करै ॥ ३६ ॥ ज्ञानीको भेदकी प्रतीति नहीं होती और जो होती है, वह पहलेही मेरे ज्ञानसे नष्ट होजाती है यद्यपि देह गिरनेतक कभी कभी आहारादिकमें भेद प्रतीति देखी जाती है, परन्तु तो भी वह अयथार्थ रूप जानी हुई है, देहके गिरनेपर मुक्ति होजाती है ॥ ३७ ॥ अब केवल वैराग्ययुक्त हो ज्ञानकी इच्छा रखनेवालेका कर्त्तव्य कहते हैं कि, जो यह गृह पुत्र आदि सबको दुःखरूप जान वैराग्य युक्त हो और ज्ञानकी इच्छा करताहो मेरे धर्म

भी कुछ जानता हो, सो उत्तम गुरुका सेवन करै ॥ ३८ ॥ जब तक ब्रह्मज्ञान मिले तबतक श्रद्धा और भक्ति रखकर ईर्षा छोड गुरुको मेराही स्वरूप जान अत्यन्त आदर सत्कारसे उसकी सेवा करै ॥ ३९ ॥ अब अधिकार विना जो संन्यास लेता है, उसकी निंदा करते हैं जो इन्द्रियोंका निग्रह न कियाहो, बुद्धि अति आसक्तहो ज्ञान वैराग्यसे रहित हो ऐसा जो संन्यास लेता है सो वह संन्यास जीविकाके अर्थ है इसीकारण निंदित है ॥ ४० ॥ वह अधर्मी संन्यासी है जिन्होंने देवताओंकी वंचना करी है जो गृहस्थ धर्ममें देवता अतिथि पूजन करता था सो छोड दिया संन्यास धर्म भी नहीं करते इससे सबकी अवज्ञाही करते हैं, उनकी वासना दग्ध नहीं और आत्मरूप हृदयमें स्थित मेरी भी वंचना करतेहैं इसीलिये इस लोक और परलोकसे नष्ट होजाते हैं ॥ ४१ ॥ संन्यासीका मुख्य धर्म शम और अहिंसा है वानप्रस्थका मुख्य धर्म तपस्या और विचार है गृहस्थका मुख्य धर्म प्राणीमात्रकी दया, रक्षा और देवताओंका यज्ञ है और ब्रह्मचारीका धर्म यहीहै कि, गुरुओंकी सेवा करै ॥ ४२ ॥ यहाँ गृहस्थका और भी धर्म कहते हैं ब्रह्मचर्य, तप, शौच, संतोष प्राणीमात्रसे सुहृदताई और ऋतुके दिन स्त्रीसंग करै, यह गृहस्थके धर्म हैं मेरी सेवा करनी तो सबकाही धर्म है ॥ ४३ ॥ हे उद्धव ! इसप्रकारके स्वधर्मसे मेरा नित्य भजन करै और स्त्री पुत्रादिकोंमें प्रीति न रक्खै सब प्राणीमात्रमें मेरी भावना रक्खै उस पुरुषको शीघ्रही मेरी भक्ति मिलजाती है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! ऐसी अव्यभिचारिणी भक्तिसे सब लोकके महेश्वरको जो सबकी उत्पत्ति पालन और प्रलयका कारण ब्रह्मरूप मुझको प्राप्त होजाता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार स्वधर्मसे शुद्धचित्त होनेसे मेरा स्वरूप जाननेमें आता है, विज्ञान और वैराग्ययुक्त होकर शीघ्र मुझे प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ अब सबका निर्धार तात्पर्य कहते हैं कि, वर्णाश्रमवालोंका यह आचाररूप धर्मका फल, पितृलोककी प्राप्ति करानेवाला है, यही धर्मभेंही भक्तिसे मुझे समर्पण करै तो परमफल मोक्षानंदको प्राप्त हो ॥ ४७ ॥ हे साधो यह सब धर्म मैंने तुमसे कहा, जो तुमने मुझसे पूँछाथा, जो भक्त स्वधर्म संयुक्त होकर इसे करै तो वह मेरे परब्रह्मरूपको प्राप्त होताहै ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा-उन्निसवें अध्यायमें, पूर्वधर्म निर्वाह।
सो सब वर्णन करतहूं, सुनो सहित उत्साह ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, जिसको विद्या करके श्रवण करके आत्मतत्त्वका अनुभवतक ज्ञान प्राप्त होगया है, सो प्रपंचकी निवृत्तिका साधन मुझमें मायामात्र जाने, तो और ज्ञानके साधन सब छोडै उसको विद्वान् संन्यासी कहते हैं ॥ १ ॥ ज्ञानीपुरुषका आत्मरूप मैंही प्रियहूं, उसको और स्वार्थका हेतु कुछ नहीं है, परस्वार्थका हेतु मुझेही चाहते हैं,

इससे स्वर्ग और मोक्ष तथा और भी अर्थ मुझ विना उन्हें प्रिय नहीं, इसकारण उसका न कुछ कर्त्तव्य है, प्राप्त करना है ॥ २ ॥ यहाँ ज्ञानका अनुभव प्रमाण बताते हैं, ज्ञान विज्ञानसे जो सिद्धिको प्राप्त हुए हैं; वह मेरे श्रेष्ठ स्थानोंको जाते हैं इसकारण मुझे ज्ञानी वह अतिप्रिय हैं ज्ञानहीसे मुझे हृदयमें धारण करे रहते हैं ॥ ३ ॥ तप, तीर्थ, जप, दान और पवित्र साधन उस सिद्धिको नहीं करते जो सिद्धि ज्ञानके लेशसे होती है × ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! इसलिये तुम ज्ञानके रूपको जान, ज्ञानविज्ञानयुक्त होकर भक्तिसे मेरा भजन करो ॥ ५ ॥ जो कि मैं सब यज्ञोंका स्वामी और आत्माहूं, उसका अपने आपमेंही ज्ञान वा विज्ञानरूप यज्ञसे यजन करके मुनिगण मेरे रूप सिद्धिको पाचुके हैं ॥ ६ ॥ इसलिये तुम भी इसी ज्ञानसे धर्म में प्रवृत्त हो. हे उद्धव ! यह जो देह और इन्द्रियोंके विकार हैं, यह सब मायाके हैं. कुछ परमार्थ वस्तु नहीं हैं. यह विकार देहसे पहले भी आत्माके नहीं हैं, पीछे भी नहीं, मध्यमें हैं, सो भ्रम जानिये. आत्मा शुद्ध है, जन्मादिक भी जो देखे जाते हैं, यह देहहीके हैं, कुछ आत्माके नहीं हैं, देहको जन्म मरण नहीं, देह भी माया-रूपी है, देहके आदि अंत जो ब्रह्म हैं, सो मध्यमें रहते हैं जब देहही नहीं तब सब ब्रह्म होते हैं तो फिर देहके जन्म मरण कहाँसे होसकते हैं ? जब यथार्थसे देहके भी जन्मम-रणादिक नहीं, सब ब्रह्मरूप है तो ब्रह्म न जन्मै है न मरै है, निर्विकार ब्रह्महो है, इसमें क्या कहना ? ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे विश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्त्ते ! जिस प्रकार मुझे निश्चय हो, वैसेही वैराग्ययुक्त और विज्ञानयुक्त पुरातन विशुद्ध ज्ञान तुम कहो और जिस-को ब्रह्मादिक खोजते हैं, ऐसे भक्तियोगको कहो ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! इस घोर संसारमार्गमें तीन तापसे तपा हुआ मुझे तुम्हारे चरणद्वंद्वरूप छत्रके अतिरिक्त और शरण नहीं दीखती. यह छत्र केवल छायाही नहीं करताहै, बरन् सब ओरसे अमृत बरसाताहै ॥ ९ ॥ हे महानुभाव ! यह पुरुष इस संसारके कुएँमें गिरा हुआ है और वहाँ कालरूपी सर्प इसे काट गया है, तुच्छ सुखोंमें बहुत तृष्णा है, ऐसे इस जनको कृपापूर्वक उद्धार करो

× **शंका**–तप, तीर्थ, जप, दान आदिक जो अनेक अनेक सुन्दर क्रिया हैं, उन सबको त्यागकर अकेले ज्ञानकोही श्रीकृष्णने बडा क्यों कहा ?

उत्तर–जितने संसारमें उत्तम क्रिया कर्म हैं तप तीर्थ आदि यह सब बहुत जन्ममें फल देते हैं, क्योंकि जप शीघ्र फल नहीं देता; तीर्थमें स्नान करने मात्रसे स्वर्ग नहीं प्राप्त होगा और जिससमय शरीरमें ज्ञान उत्पन्न होजायगा तो उसीसमय अनेक जन्मोंका दुःख दूर होकर शीघ्र सुख प्राप्त होगा और लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने अपना और उद्धवका समागम थोडे दिनोंका समझा इसलिये उद्धव अपने परममित्रको सुख होनेके निमित्त ज्ञानकी उपासना बताई, क्योंकि श्रीकृष्णके वियोगका दुःख जप, तप, तीर्थ करनेसे दूर नहीं हो सक्ता और उस दुःखको ज्ञान बहुत शीघ्र दूर करसक्ता है, इसलिये जप तपको त्यागकर श्रीकृष्णने ज्ञानको श्रेष्ठ कहा ।

और मोक्षको कहो, ऐसे अपने वचनरूपी अमृतसे सींचो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब इसप्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! इसी भाँति पहले राजा युधिष्ठिरने हमारे सबके सामने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्म पितामहसे पूँछाथा ॥ ११ ॥ भारतयुद्ध निवृत्त होनेके उपरान्त बंधु वधसे व्याकुल हो राजा युधिष्ठिरने पूँछा ॥ १२ ॥ वहाँ भीष्मने जो धर्म युद्धिष्ठिरसे वर्णन किया, वह हमने भी सुना, सोई हम तुमसे कहते हैं, जो ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य, श्रद्धा भक्तिसे संयुक्त है ॥ १३ ॥ यहाँ प्रथम तो ज्ञान कहते हैं, प्रकृति और पुरुष और महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह नौ तत्त्व कहते हुए और एकादश इन्द्रियें, पंचमहाभूत तीन गुण यह सब मिलकर अट्ठाईस (२८) तत्वहुए, सो यह सब प्राणियोंमें व्याप्त हैं,ज्ञानसे देखै और इन तत्त्वोंमें भी एक परमात्माको जिस ज्ञानसे व्याप्त देखै सो निश्चय मेरा ज्ञान है ॥ १४ ॥ जैसे ज्ञानके समय सब पदार्थ देखनेमें आते हैं, वैसे यह पदार्थ देखनेमें नहीं आते, केवल एक परब्रह्म देखनेमें आता है, वही ज्ञान विज्ञान कहाजाता है और उत्पत्ति, प्रलय, स्थिति होनेसे पदार्थ त्रिगुणात्मक नाशवान् हैं ऐसा देखै ॥ १५ ॥ यदि कोई कहै कि, सब ब्रह्मरूपही हैं तो जन्मादिक क्यों होता है ? उत्पत्ति तथा दूसरे रूपकी प्राप्तिके मध्यमें सबका आश्रय कारण होनेसे जो कार्य और कार्यांतरमें रहता है, जो उत्पत्तिमें व्याप्त होताहै और इनके प्रलयमें जो अवशेष रहता है, सो ब्रह्म है, इसेही देखै ॥ १६ ॥ अब विज्ञान कहकर वैराग्य कहते हैं वेद, प्रत्यक्ष, परंपराकी प्रसिद्धि और अनुमानसे यह प्रपंच मिथ्या है, अद्वैतही सत्यहै, जैसे यह दृश्य ब्रह्मसे भिन्न नहीं है क्योंकि ब्रह्मसे उत्पन्न है, जो जिससे उत्पन्न है, वह उससे भिन्न नहीं, जैसे मिट्टीके बने घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं, इसप्रकार भ्रमरूप द्वैत जानकर विकल्पसे विरक्त होना चाहिये ॥ १७ ॥ कदाचित् स्वर्गादिकमें सुखभोग हैं, वहाँकी इच्छा हो तो विरक्त होना किसप्रकार संभव है ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, ब्रह्मलोकतक स्वर्गादिकका भी सुख इस लोकके समान जो पण्डित हैं सो दुःखरूप मिथ्या ही देखते हैं, क्योंकि यह विनाशी कर्मोंके फल हैं ॥ १८ ॥ अब वैराग्य कहकर भक्ति कहते हैं, हे निष्पाप उद्धव ! मैंने भक्तियोग पहले भी तुमसे कहाथा और अब फिर अपनी भक्तिके परमकारणसे प्रीतियुक्त तुमसे कहता हूं ॥ १९ ॥ हे उद्धव ! प्रथम अमृतरूप मेरी कथामें श्रद्धाहो कथाके सुननेमें आदर हो, सुननेके उपरान्त निरंतर मेरा कीर्त्तन करै ॥ २० ॥ मेरी पूजामें तत्पर हो, सर्वांग से नमस्कार करै, आदरपूर्वक मेरे भक्तकी अधिक पूजा करै, सब प्राणिमात्रमें मेरी बुद्धि रक्खै ॥ २१ ॥ लौकिक कार्योंको मेरे लिये करै वचनसे मेरे गुणानुवादको कहै, मन मेरे रूपमेंही अर्पण करै, सब, कामनाओंका त्याग करै ॥ २२ ॥ मेरे लिये अर्थका त्यागकरै, भोग और सुखका त्याग करै, विषय भोग न करै, यज्ञ दान, होम, जप, तप, सब मेरे लिये करै ॥ २३ ॥ हे उद्धव ! इसप्रकार धर्मसहित जो मनुष्य मुझमें आत्मा निवेदन करते हैं, उन मनुष्योंको

प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है, फिर उनको कुछ करना नहीं रहता ॥ २४ ॥ क्योंकि जब शांत सतोगुणसे बढा चित्त मुझमें लगादिया, तब और सब ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आपहीसे प्रगट होजाते हैं ॥ २५ ॥ और यही चित्त जब गृह कुटुम्बादिमें आसक्त होताहै, तब इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंसे भ्रमण करता है, जिससे अधर्म, अज्ञान अनुरक्तता और कुभाग्यता प्राप्त होतीहै ॥ २६ ॥ धर्म सोई है जो मेरी भक्ति करै, ज्ञान वही है, जिससे आत्माका रूप दीखै, इन्द्रियोंके धर्मोंमें आसक्त न होना वैराग्य और अणिमादिकका होना ऐश्वर्यहै ॥ २७ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे शत्रुनाशक ! हे कृष्ण ! हे प्रभो ! संयम नियम कैप्रकारकेहैं ? शम दम किनको कहतेहैं ? क्षमा, धैर्य क्या है ॥ ॥ २८ ॥ दान, तप, शौर्य, सत्य, ऋत, त्याग, धन, इष्ट, यज्ञ, दक्षिणा इत्यादि क्या हैं ? ॥ २९ ॥ हे श्रीमन् ! पुरुषका बहुत भाग्य क्या है ? परम विद्या क्याहै ? लज्जा, श्री, दुःख, सुख, क्या है ? ॥ ३० ॥ पण्डित कौन है ? मूर्ख कौन है ? मार्ग उन्मार्ग कौन है ? स्वर्ग नरक कौनहै, बंधु गृह कौनहै ? ॥ ३१ ॥ धनी दरिद्री कौनहै ? कृपण ईश्वर कौन है ? हे साधुओंके पति ! यह प्रश्न मुझसे समझाकर कहो ॥ ३२ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! जीवमात्रकी हिंसा न करै, सत्य बोले, मनसे भी पराई वस्तुको न चुरावै, आसक्ति कहीं न रक्खै, लज्जा, असंचय धर्ममें विश्वास, ब्रह्मचर्य मौन, स्थैर्य, क्षमा, यह बारह संयम हैं ॥ ३३ ॥ शौच दो भाँतिके हैं अंतःकरणकी शुद्धि और बाह्यशुद्धि, शौच, तप, जप, होम, श्रद्धा, अतिथि और मेरी पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार, संतोष, आचार्यसेवा यह बारह नियम हैं ॥ ३४ ॥ जो यह संयम, नियम नित्य करै तो जो कुछ चाहै सो सब पूर्णहो ॥ ३५ ॥ अब शम, दम, कहतेहैं कि, मुझमें बुद्धि स्थिर होय सो शम है, केवल शान्तिही शम नहीं कहाती इन्द्रियोंका संयम दम है, चोर दुष्टका मारना दम नहीं, दुःखका सहना क्षमाहै, बहुत भार सहना क्षमा नहीं, जिह्वा और उपस्थ वेग सहै, सो धैर्य, उद्वेग मनमें न उत्पन्नहो, इतनाही धैर्य नहीं ॥ ३६ ॥ प्राणीमात्रसे द्रोह, त्यागनेको दान कहते हैं, धनका त्याग दान नहीं कामका त्याग तप कहाता है,कृच्छ्रचान्द्रायण तप नहीं, स्वभावको जिसने जीतलिया सो ही शूर, पराक्रम शौर्य नहीं, ब्रह्मका दर्शन सत्यहै ॥ ३७ ॥ पण्डितोंने सत्य और प्रियवाणीको ऋत कहाहै,कर्मोंकी अनासक्तिको शौच और त्यागको संन्यास कहाहै ॥ ३८ ॥ मनुष्योंका श्रेष्ठ धन धर्म है, पशु पुत्रादिक धन नहीं, परमेश्वरही यज्ञ है, मेरी बुद्धिसे यज्ञ करै, कर्मबुद्धिसे न करै,मेरे ज्ञानका उपदेशही उस यज्ञकी दक्षिणाहै, सुवर्णादि धन दक्षिणा नहीं, प्राणायामसे मनको वशमें करै,वही परम बल है ॥ ३९ ॥ मेरा ऐश्वर्य सौभाग्य है, कुछ लौकिकसंपत्ति सौभाग्य नहीं. मेरी भक्ति पावै, सोई परम लाभ है,कुछ धनका लाभ नहीं, आत्मामें भेदबुद्धि दूर हो सो विद्याहै केवल ज्ञानमात्र विद्या नहीं कुत्सित कर्मका त्याग करना ही लज्जा है, केवल लाज लज्जा नहीं ॥ ४० ॥ गुण अच्छे हों वही शोभाहै कुछ आभूषण शोभा नहीं, दुःख सुखका स्मरण करै, वही सुखहै, भोग सुख नहीं, बंध

मोक्षको जानै सो पण्डितहै, केवल शास्त्र पढे पण्डित नहीं, भोग सुखकी इच्छा दुःखहै, अग्नि दाहादिक दुःख नहीं ॥ ४१ ॥ देहादिकमें जिसके अहंकार है सो मूर्खहै, जिस मार्गमें मुझे पावै वही उत्तम मार्गहै, काँटोंसे रहित सन्मार्ग नहीं, जहाँ मन चंचलहो, संसारमें फिर प्रवृत्त होय सो ऐसे मार्गको कुत्सित मार्ग कहते हैं, चौरादिकोंसे व्याप्त उत्पथ मार्ग नहीं, सत्वगुण अधिकहो, राजस, तामस, गुण न हो, सोई स्वर्ग है, कुछ इन्द्रलोक स्वर्ग नहीं ॥ ४२ ॥ तमोगुण अधिक होय सोई नरक है और नरक नहीं और बंधु सब बंधु नहीं परमबंधु गुरु है, सो गुरु मैं हूं, मनुष्यका शरीर गृह है और गृह नहीं, जो गुणसे सम्पन्न है, वही धनी है और धनी नहीं ॥ ४३ ॥ जो सदा असंतोष रक्खै, सो दरिद्री है धनहीन दरिद्री नहीं, जो इन्द्रियोंको न जीत सकै सोई कृपण है,दीनकृपण नहीं, विषयोंमें आसक्त न होकर जो स्वाधीन है, सो ईश्वर है, राजा स्वाधीन नहीं, जो गुणमें आसक्त है, वही परवश है ॥ ४४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! यह तुम्हारे सब प्रश्न तुमको अच्छी प्रकार समझाये, अब बहुत क्या वर्णन करैं, गुण दोषका लक्षण इतनाही है, जो सबोंके गुण दोष विचारता रहै, वही दोष है और न गुण देखै न दोष देखै वही गुण है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा-कहूं बीस अध्यायमें, गुण अरु दोषके अर्थ।
भक्ति ज्ञान औ कर्म यह, तीनों योग समर्थ ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! विधिनिषेध वेद कहते हैं सो वेद तुम्हारी आज्ञा है, तुम सबोंके ईश्वर हो, आपकी आज्ञासे वेद कर्मोंके पुण्य पापोंको देखते हैं ॥ १ ॥ उन धर्मोंके अधिकारी उत्तम,मध्यम,हीन तीन प्रकारके हैं, सो वह वर्णाश्रम अलग हैं जिनका गुण दोष सब वेद देखते हैं॥२॥ अब आप कहते हो कि, गुण दोष छोडकर धर्ममें प्रवृत्त हो सो गुण दोष भेददृष्टि विना विधिनिषेध तुम्हारा वचन मनुष्योंको कैसे फलदायक होसकता है ? ॥ ३ ॥ हे ईश्वर ! पितृदेवता तथा मनुष्योंको तुम्हारा वेदही मोक्ष और स्वर्गादिकोंमें श्रेष्ठ प्रमाण है और साध्य साधन विषे प्रमाण है ॥ ४॥ और गुण दोषके भेदका ज्ञान तुम्हारे वेदही है, आपसे नहीं मानी है, गुणदोषोंपर दृष्टि न रक्खै, यह अब तुम्हीं कहते हो, इसलिये भ्रम होता है, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥ ५ ॥ कि, हे उद्धव! मनुष्योंके कल्याणार्थ वेदमें भेदसे तीन योग मैंने कहे हैं, ज्ञान, कर्म, भक्ति इनसे परे और उपाय कहीं नहीं ॥ ६ ॥ इनके अधिकारी अलग अलग हैं, एक ही नहीं सो कहते हैं इनमें जो कर्मोंसे विरक्त हैं फल कुछ नहीं चाहते उसे ज्ञानयोग कहाहै ॥ ७ ॥ यदृच्छासे मेरी कथामें जिसको श्रद्धा हुईहो अतिविरक्त न हो अतिआसक्त भी न हो उसे भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है ॥ ८ ॥ प्रथम कर्मयोगको कहते हैं, कर्म वहाँतक करै जहाँ-

तक वैराग्य उत्पन्न न हो और मेरी कथा श्रवणादिकमें श्रद्धा न उपजै ॥ ९ ॥ हे उद्धव! अपने स्वधर्ममें स्थित हो, फलकी इच्छा छोड निष्काम यज्ञ करै तब उसे न नरक हो न स्वर्ग हो जो और आचरण न करै ॥ १० ॥ इस लोकमें स्वधर्ममें स्थित हो निषेधका त्याग करै ऐसा करनेसे जब मन शुद्धहो, तब विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त करै या यदृच्छासे मेरी भक्ति पावै ॥ ११ ॥ ज्ञानभक्तिको यह मनुष्यदेह कर्त्ता है इससे मनुष्यदेह उत्तम है सो कहते हैं जो स्वर्गमेंहैं और नरकमें हैं वह मनुष्यदेहकी बाधा करतेहैं जिस देहकी ज्ञान भक्ति करनेसे मोक्ष होती है, स्वर्ग और नरकमें भी शरीरहै सो मोक्षसाधक नहीं ॥१२॥ चतुर मनुष्य होय सो स्वर्गकी गति न चाहै जैसे मनुष्य नरककी गति नहीं चाहते हैं और यह लोक भी नहीं चाहते, क्योंकि देहके आवेशसे प्रमाद होता है ॥ १३ ॥ अर्थसिद्धिके दाता भी मनुष्यदेहको जानकर मृत्युसे पहले सावधान मनुष्य मोक्षका यत्न करै ॥१४॥ जैसे पक्षीने एक रूखपर घर किया, उस वृक्षको कोई निर्दयी पुरुष आनकर काटै, उसे काटता जान अनासक्त होकर घर छोड दे तो जियै ॥ १५ ॥ जैसे अहोरात्रसे काल आयुर्बलको काटै है, यह जान भयसे काँपते इस देहकी आसक्ति छोड शांत चित्त होकर रहै ॥ १६ ॥ ऐसी देहको जानकर भी जो सावधान नहीं होता उनकी निंदा करते हैं यह मनुष्य देह अत्यन्त दुर्लभ है, अनेक जन्मके पुण्यसे पाई है, साधन करनेको समर्थ है संसार समुद्रसे तरनेको नाव है गुरु नावके चलानेवाले हैं, मैंने अनुकूल पवनसे प्रेरित करी है, ऐसे साधनको पाय जो यह प्राणी संसारसमुद्रसे न तरै तो वह आत्मघाती है ॥ १७ ॥ यह कर्मयोग तो जो विरक्त न हों उनका कहा, अब जो विरक्त होय उनको ज्ञान उपजै, पहले जो कुछ कर्त्तव्य है सो प्रकार कहते हैं कि, जब कर्मोंमें उद्वेग हो वैराग्य उपजै तब इन्द्रियोंका निग्रह करै स्थिरतासे आत्माके अभ्याससे मनका निग्रह करै, तब यह योगी होय ॥ १८ ॥ मनका निग्रह करै परन्तु तो भी जब चंचल होय तब सावधान हो कुछ मनकी कांक्षा पूर्ण करके फिर मनको वशकरै ॥ १९ ॥ मनकी धारणा नहीं छोडै प्राण वायु जीतै इन्द्रियें जीतैं और सतोगुणी बुद्धिमें अपने मनको वशमें करै ॥ २० ॥ यह मनको निग्रह निश्चय उत्तम योग है जैसे सवार दमन करने योग्य घोडेकी गतिको अपनी इच्छानुसार चाहता हुआ पहले उसे इच्छानुसार जाने देता है, फिर लगामको थामकर चलाता है ऐसेही शनैः शनैः मनको वशमें करै ॥२१॥ सब तत्त्वोंके विवेकसे और प्रकृतिसे उत्पत्तिका क्रम विचारै, वह पृथ्वी आदि क्रमसे अनुलोम प्रतिलोमसे लीन होते हैं, ऐसा ध्यान करता रहै, वह ध्यान उस समय तक करै जबतक चित्त प्रसन्न न हो ॥ २२ ॥ जब चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो, तब गुरुके बताये धर्मका विचार करै, भ्रमसे यह चित्त देहका अभिमान छोड देता है ॥ २३ ॥ संयम नेम आदि योग धारण, आत्मविचार और मेरी प्रतिमा की सेवा इन उपायोंसे योग्य परमात्माका मनसे स्मरण करै, क्योंकि मेरे स्मरणका इससे अधिक और उपाय नहीं है ॥ २४ ॥ जो प्रमादसे योगी कुछ निंदित कर्म करै, उस योगीको

योगाभ्यासहीसे अपने पाप दूर करने चाहिये, क्योंकि इसका और प्रायश्चित्त नहीं है ॥२५॥ अपने अधिकारमें रहनाही गुण है, प्रवृत्तिमार्ग स्वभावहीसे अशुद्ध है तथापि जो सहसा (एकाएकी) न छोडाजाय तो प्रवृत्ति संगके छुडानेकी इच्छासे गुण दोष कह इन कर्मोंके संकोच द्वारा निवृत्ति होनी चाहिये, क्योंकि योगीको स्व भाविक वृत्ति न होनेसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं ॥ २६॥ मेरी कथामें श्रद्धा कर्मोंमें वैराग्य होनेपर और काम्य कर्मोंको दुःखरूप जाननेपर भी उनका परित्याग न होसकै ॥ २७ ॥ तो प्रीतिपूर्वक श्रद्धायुक्तहो दृढनिश्चयसे मेरा भजन करै, विषय भोग करै तो आसक्त न हो, उनकी निंदा करता रहै, अब भजनका प्रकार कहते हैं॥२८॥पहले मैंने भक्तियोग तुमसे कहा है इस रीतिसे जब निरन्तर मुनि मेरा भजन करै तो उसके हृदयमें मेरा वास होनेसे उसकी सब कामना नष्ट होजायँगी ॥ २९ ॥ सबके आत्मारूपसे जब मुझे देखे तब इसके हृदयकी गाँठि छूट जाती है और सब संदेह मिटकर संपूर्ण कर्म क्षीण होजाते हैं ॥ ३० ॥ इसलिये मेरी भक्ति संयुक्त मुझमें चित्तयुक्त करनेवाले योगीको न तो ज्ञान और न वैराग्य कल्याणका साधन है, किन्तु भक्तियोगही कल्याणका साधकहै ॥ ३१ ॥ जो फल, कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म और तीर्थ यात्रादिकके साधनसे होता है ॥ ३२ ॥ वही फल केवल मेरी भक्ति करनेसे प्राप्त होजाता है, मेरे भक्त सुखसे मेरा वैकुण्ठधाम पाते हैं, परन्तु मेरे भक्त कुछ चाहना नहीं करते हैं * ॥ ३३ ॥ हे उद्धव! जो पुरुष बुद्धिमान् हैं उनकी मुझमें अत्यन्त प्रीति है, वह परमसाधु हैं, यद्यपि मैं उनको अनेक विभव देता हूँ परन्तु तो भी वह कुछ चाहना नहीं करते ॥ ३४ ॥ मेरी निरपेक्ष भक्तिही परम कल्याणरूप है उसमेंभी मेरी निष्काम भक्ति निष्काम भक्तकोही प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ जो मेरे विषे एकान्त भक्त रागद्वेषादिरहित समचित्त हैं और बुद्धिसे परे ईश्वरको प्राप्त हैं, उनको विधिनिषेधके गुणदोषसे उत्पन्न हुए पुण्य पाप नहीं लगते ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मेरे कहे मार्गोंमें जो पुरुष चलते हैं, वे परमकल्याणरूप मेरे धामको कि, जिसको परब्रह्म कहते हैं, प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कंधे विंशतितमोऽध्यायः२०

---

* शंका-पहिले तो श्रीकृष्णने ज्ञानकी प्रशंसा की, फिर कुछ कालोपरान्त ज्ञान, वैराग्य, तप, जप, तीर्थ आदि लेकर और जो सुन्दर सुन्दर कर्म हैं उनको भी त्यागकर भक्तिकी प्रशंसा की कि, सबसे भक्तिही बडी है, यह बडे सन्देह की बात है, किसको श्रेष्ठ मानै और किसको मध्यम मानै भगवान् श्रीकृष्ण तो कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ कहतेहैं, ऐसे वचन सुनकर हमको बडा भ्रम होता है।

उत्तर-श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि, थोडेही दिनोंमें कलियुग आवेगा, जप, तप, तीर्थादिक सब सुन्दर सुन्दर कर्मोंका नाश करदेगा, परन्तु भक्तिका नाश नहीं होसक्ता, इसलिये भगवान्‌ने भक्तिकी प्रशंसा की कि, कलियुगमें भक्तिके सिवाय मनुष्योंसे और कोई दूसरा काम नहीं होगा।

दोहा-इक्किसवे अध्यायमें, कर्म भक्ति औ ज्ञान।
सबके गुण अरु दोष मैं, वरणौं सहित विधान ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी बोले कि, हे उद्धव ! जो पुरुष मेरे बताये मार्ग, भक्ति, ज्ञान, निष्काम कर्मको छोडकर इन चंचल प्राणोंसे तुच्छ कामनाओंका सेवन करतेहैं, वह संसारको फिर प्राप्त नहीं होते हैं ॥ १ ॥ जिसप्रकार अग्निका किसीको ताप होना और किसीको न होना संभव नहीं, इसी प्रकार उन्हीं कर्मोंसे किसीके गुण और किसीके दोष होना संभव नहीं, यह संदेह करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि निज निज अधिकारमें, निष्ठा रखनेको गुण और निष्ठा न रखनेको दोष कहते हैं,गुण दोषके विचारका यही निश्चय है॥२॥यह शुद्ध है लीजिये यह अशुद्ध है न लीजिये ऐसे संदेहसे स्वाभाविक प्रवृत्तिको निवृत्त करनेके लिये समान वस्तुओंमें भी वेदमें शुद्धि और अशुद्धिका विधान किया है और इसीके लिये उनमें गुण दोष माने हैं, इसीसे पुण्य और पाप मानते हैं ॥३॥ हे निष्पाप ! धर्मका भार धारण करनेवाले पुरुषोंको मैंने ही मनु आदिरूपसे यह आचार दिखाया है, यह शुद्धि और अशुद्धि धर्म व्यवहार तथा निर्वाहके लिये गुण और दोषरूपसे प्रतिपादन कीहैं धर्मके लिये शुद्धिसे धर्म अशुद्धिसे अधर्म, व्यवहारमें अशौचादिसे अशुद्ध भी राजा व्यवहारमें न्याय करनेको शुद्ध और दूसरे कार्योंमें अशुद्ध है, आपदामें निर्वाह मात्र पदार्थ लेनेसे शुद्ध और अधिक लेनेसे अशुद्ध होती है ॥ ४ ॥ यद्यपि यह सब वस्तु समान हैं, क्योंकि पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, ब्रह्म आदि जड तक सबकी देहके कारण पंचमहाभूत हैं और आत्माभी सब एकही हैं ॥ ५ ॥ परन्तु तोभी हे उद्धव ! समान भी देहविषे वेदने नाम रूप, वर्ण, आश्रम संपूर्ण इन जीवोंके स्वार्थ सिद्धिके लिये पृथक् पृथक् किये हैं ॥ ६ ॥ केवल देहमेंही विभाग नहीं, किन्तु देशकाल आदि संपूर्ण वस्तुओंमें कर्मके संकोचके किये गुण दोषका विधान किया है,अब शुद्धि अशुद्धिका विषय कहते हैं ॥७॥जिस देशमें काला मृग न हो, वह देश अशुद्ध है और सत्पात्र रहित देश, मार्जन रहित देश, ऊषरदेश, यह अशुद्ध हैं और जहाँ ब्राह्मणोंमें भक्ति न हो वह तो अत्यन्त ही अशुद्ध है, अंग, वंग, कलिंगादिक भी देश अशुद्ध हैं, जहाँ काली मृगी और सत्पात्र हों सो अशुद्ध भी देश शुभ है, देशकी शुद्धि अशुद्धि कहकर अब काल समयकी शुद्धि कहते हैं * ॥ ८ ॥ जो काल द्रव्यकी संपत्तिसे कर्मके योग्य है और जो स्वतःही प्रात-

---

* **शंका**-श्रीकृष्णने कहाथा कि, जिस देशमें काला मृग नहीं होता वह देश भ्रष्ट है यह बडे आश्चर्यकी बात है कि, जिस देशमें गंगा यमुना आदि नदी प्रयाग पुष्कर आदि तीर्थ बद्रीनारायण आदि आश्रम हैं, वह भी देश काले मृग विना भ्रष्ट हैं ? तो इस बातसे यह सिद्ध हुवा कि, काला हरिणही सर्वोपर मुख्य ठहरा यह गंगा और प्रयागादि तीर्थ किसीको शुद्ध नहीं करसक्ते ।

उत्तर-श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा सो सब सत्य है, परन्तु विना व्याकरण पढेसे अर्थ-

पूर्वाह्न, मध्याह्न काल कर्मके योग्य हैं, सो काल उस कर्मको शुद्ध है, जो सूतिकादिक काल कर्मके योग्य नहीं हैं, यद्यपि काल सब एक है, परन्तु तो भी यह भेद किया गया है कि, कर्मके अयोग्य काल अशुद्ध है ॥ ९ ॥ अब द्रव्यकी शुद्धि कहते हैं, द्रव्यकी शुद्धि अशुद्धि द्रव्य वचन संस्कार बडेपन और छोटेपनसे मानी जाती है, द्रव्यको शुद्ध जल करता है सूत्रादिक अशुद्ध करते हैं कि, ब्राह्मणका वचन प्रमाण है वह कहैं यह वस्तु शुद्ध है तो वह शुद्धही है अशुद्ध कहैं तो अशुद्धही है, पुरुष सूंघ ले तो अशुद्ध हो जाय, प्रोक्षणादिक संस्कारसे शुद्ध होय, कालसे जलकी शुद्धता दश दिन हो जानेसे नये जलकी शुद्धि चातुर्मास्यमें तीन दिनसे शुद्धता बडेपनसे चाण्डालादिकके स्पर्शसे तालाबका जल बहुत भरा हो तो चाहै कोई भरो वह जल शुद्ध है, छोटेपनसे घटादिका जल चाण्डालादिके स्पर्शसे अशुद्ध होजाता है ॥ १० ॥ अब शक्तिसे अशक्तिसे शुद्धाशुद्धि कहते हैं, सूर्यग्रहणमें जिसको शक्ति हो, उसे सूतक लगै, स्नान दानसे शुद्धि होती है और जो अशक्त हैं उन्हैं नहीं, बुद्धिसे पुत्रजन्मादि आशौचकी दशदिनके भीतर जानेसे अशुद्धि उपरान्त शुद्धि समृद्धि होनेके कारण जीर्ण वस्त्र मलिन वस्त्र श्रीमंतको अशुद्धि हैं, दरिद्रीको शुद्ध हैं, सूतकका अन्न समर्थको तो अशुद्ध हैं, असमर्थको शुद्ध है, यह द्रव्य वचन आदि द्रव्यकी अशुद्धिसे आत्माको पातक लगाते हैं, सो देशकाल अवस्थाके अनुसारही लगाते हैं, निभर्य देशमें यही पापदायक चौरादिके उपद्रव युक्त देशमें नहीं, युवावस्थामें यही पापदायक और वृद्धावस्था तथा बालकपनमें शुद्ध है ॥ ११ ॥ इस प्रकार द्रव्यकी शुद्धि द्रव्योंसे कही, वचन शुद्धि एक ही भाँति है, द्रव्यकी शुद्धि बहुत प्रकार है सो कहते हैं अन्न, काष्ठ, हाथीदाँत, सूत्र, रस, तैल, घृत आदि सुवर्ण और मार्गकी कीच, कलश, ईंट यह सब काल वायु अग्नि जलसे यथायोग्य शुद्ध हैं अर्थात् धान्यकी शुद्धि वायुसे, यज्ञ पात्र तथा काष्ठकी जलसे, हाथीदाँत आदिकी कालसे, तैल घृत सुवर्णादिकी अग्निसे, तंतुओंकी जलसे, चामकी काल और रंगसे, पार्थिव विकार ईंट आदिकी कालसे शुद्धि होती है, कहीं तो यह सब मिलकर शुद्धि करते हैं और कभी अकेले करते हैं तोभी जो काक और चाण्डालादिक नीच जातिका स्पर्श हुआ हो तो उसके देश अवस्था

–करनेकी शक्ति नहीं होसक्ती वह पुरुष अर्थका अनर्थ कर देते हैं, क्योंकि भागवतमें अकृष्णसारका अर्थ है ऐसा व्यासजीने कहा कि, जिस देशमें काला मृग नहीं होगा वह देश भ्रष्ट होगा जो कोई ऐसे मनुष्य हैं कि संसारको कुछभी नहीं मानते इससे कुछ भी सार नहीं है ऐसा जानकरके बडी निश्चयसे श्रीकृष्णको सार जानते हैं कि, सब झूठा है, श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका आश्रय सत्य है, ऐसे जाननेवाले पुरुष जिस देशमें नहीं हैं वह देश भ्रष्ट है सो श्रीकृष्णने ऐसा कहाथा कुछ ऐसा नहीं कहाथा कि, जिस देशमें काला मृग नहीं है वह देश भ्रष्ट है।

देखकर विचार करै तब शुद्ध हो ॥१२॥ और भी शुद्धि कहते हैं, पीढा पात्र वस्त्र आदिमें जो अपवित्र वस्तु लेपकी लगजाय तो काष्ठ छिलायेसे शुद्ध हो, द्रव्यकी शुद्धि राख और खटाईसे धोवै तब शुद्ध हो, वस्त्र खारसे गंध और लेप छूटनेतक धोवे तब शुद्ध हो, जब दुर्गंध न रहै स्वच्छ होजाय तब शुद्ध है ॥ १३ ॥ अब कर्ताकी शुद्धि कहते हैं—स्नान, ध्यान, तप, अवस्था, बाल्य, कौमार, वीर्य संस्कार, गायत्री उपदेश कर्म, संध्या दीक्षादिक कर्मसे ब्राह्मण जब शुद्ध होय तब कर्म करै और आत्माकी शुद्धि मेरे स्मरणसे होती है और प्रकारसे नहीं, ब्राह्मणादिकके देहकी शुद्धि इन संस्कारोंसे होती है और प्रकार नहीं, देहकी शुद्धि इन संस्कारोंसे होती है, सो भी व्यवहारके लियेही है उसके निमित्त विहित कर्म करै ॥ १४ ॥ अब मंत्रकी शुद्धि कहते हैं, श्रेष्ठ गुरुके मुखसे सुने, इसके उपरान्त उस मंत्रका अच्छी प्रकार ज्ञान हो तो मंत्रकी शुद्धि हो, जो कुछ कर्म भले अथवा बुरे करै सो सब मुझे समर्पण करे, यह कर्मशुद्धि है, देश काल द्रव्य कर्ता मंत्र कर्म इन छः पदार्थोंके शुद्ध होनेसे धर्मकी शुद्धि होती है, यही अशुद्ध हो तो अधर्म होता है ॥ १५ ॥ यह गुण दोषका विभाग यथार्थ नहीं है कहीं आपदामें प्रतिग्रह लेनेसे दोष गुण होजाता है, धनहोनेसे निषेध होनेके कारण कहीं दोष है और कहीं दोष भी विधिसे गुण होजाता है, जैसे कुटुम्बका त्यागना दोष है, परन्तु विरक्तको कुटुम्ब त्यागना दोष नहीं, गुण दोषके कहनेवाले शास्त्रगुण दोषके बाधक हैं ॥ १६ ॥ दोष भी कहीं दोष नहीं होता, यहाँ एक दृष्टान्त कहते हैं, जो सुरापानसे पतित नहीं है उन पतितोंको सुरापानसे दोष नहीं होता, क्योंकि वह जातिकर्ममें पहलेही पतित है उनको सुरापान अधिक पातक क्या करेगा ! और जो धर्मशील हैं, उन्हें उसका संगही पातक है, संन्यासी को संगही बंधनमें डाल देता है, सोई गृहस्थका गुण है, क्योंकि गृहस्थको संग करना होता है, जैसा कि वेदमें कहा है " ऋतुके दिन स्त्री संग करै परन्तु जो पहलेही पृथ्वीपर सोया है, वह नीचे नहीं गिरता " ॥ १७ ॥ इस प्रकार गुण दोषका विचार प्रवृत्तिमार्गमें है निवृत्ति होनेके उपरान्त कुछ नहीं सो कहते हैं, वेदका यही तात्पर्य नहीं है कि जो सदा प्रवृत्तिमेंही रहै, वेद प्रवृत्ति छुटाकर निवृत्ति बताते हैं, इस कारण जिस जिस विषयसे निवृत्त हुआ, उससे मुक्त होजाता है, यह धर्म मनुष्योंको अत्यन्त शुभकारी है और शोक, मोह तथा भयको दूर करने वालाहै ॥ १८ ॥ प्रवृत्तिमार्ग अनर्थ रूप है, सो कहते हैं कि, जब मनुष्योंको विषयमें इन्द्रियोंका अभ्यास होजाता है, तब आसक्ति उत्पन्न होती है आसक्तिसे काम और कामहीसे कलह उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥ कलहसे अतिअसह्य क्रोध होता है, क्रोधसे तम और अज्ञान होता है, अज्ञानसे पुरुषकी चेतना जो सब देहमें व्याप रही है सो शीघ्रही नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥ हे साधो ! जब वह चेतनासे रहित हुआ, तब यह जीव असाधुके तुल्य हो मूर्च्छित होता है, मूर्च्छा होतेही मृतक समान होनेसे इसके पुरुषार्थकी हानि होती है ॥ २१ ॥ जो मृतक समान है उसका स्वरूप कहते हैं, जो विषयोंमें आसक्त होनेके कारण

आत्माको तथा औरको भी नहीं जानते, सो वृक्षोंकी जीविकाकी नाईं वृथा जीते हैं, धौंकनीके समान श्वास लेते भी मृतक समान है ॥ २२ ॥ यह जो प्रवृत्तिमार्गको आज्ञा है, सो वेदने यहाँ कर्मोंके फल रुचि दिखानेके लिये वर्णन किये हैं, जैसे रोगीको औषधि रुचि उपजाकर पिलाते हैं, तात्पर्य आरोग्यतासे है. सदा औषधि सेवनसे नहीं. इसी प्रकार जबतक ज्ञान न हो तब तक कर्म करनेकी वेद आज्ञा करता है, सब काल कर्म करनेसे तात्पर्य नहीं ॥ २३ ॥ मनुष्य स्वभावहीसे पशु आदिमें और इन्द्रिय, बल, वीर्यमें, पुत्रादिकोंमें आसक्त चित्त होजाता है सो सब अपने आपको अनर्थका हेतु है ॥ २४ ॥ इससे स्वार्थ अर्थात् परम सुखको जो पुरुष नहीं जानते, वह अनेक पापरूप मार्गोंकी उन उन योनियोंमें भ्रमण करते हैं, इसके पीछे जडरूप वृक्ष आदि योनियोंमें प्रविष्ट होते हैं, उनको फिर वेदभी धर्मोंमें नहीं प्रवृत्त करे, जिससे अनिष्ट हों, उसीमें वेद प्रवृत्त करै तो हितकारी हो ॥ २५ ॥ कर्ममार्गी कैसे फल बताते हैं, सो कहते हैं, इसप्रकार वेदका अभिप्राय जाने विना कुबुद्धि ही यह फल बताते हैं और जो वेदके तात्पर्यको जानते हैं, वह व्यास आदि ऋषि ऐसा नहीं कहते ॥ २६ ॥ कामी कृपण, लोभी, पुष्परूपी स्वर्गादि सुखरूप आवान्तर फलको मुख्य माननेवाले अग्निहोत्रादिसे मुग्ध धूम्रयुक्त चित्तवाले अपने सुखदायक लोकको नहीं जानते ॥ २७ ॥ हे उद्धव! जिससे यह जगत् प्रगट है और जो जगत्रूप है, ऐसे मुझ परमात्माको वे हृदयमें स्थित नहीं जानते कर्मरूप शास्त्रोंसे पशु हिंसाकर बकवत् प्राण पुष्ट करते हैं जैसे कुहरेको कुछ नहीं दीखता, वैसेही अज्ञानसे उनके नेत्र व्याप्त हैं, क्योंकि जो समीपमें स्थित मुझे नहीं जानते ॥ ॥ २८ ॥ इसी कारणसे मेरे वाक्यरूप वेदके गूढ तात्पर्यको विषयी नहीं जानते, मेरा मत यह है यदि मांस भक्षणके लिये हिंसाकी विधिमें वेदकी प्रीति होती तो वेद यज्ञमेंही मांस भक्षणकी विधि नहीं करता, किन्तु सदाके लिये आज्ञा देता मनुष्योंकी मांसमें अधिक प्रवृति देख उनको इससे छुडानेके लिये कि, एक संग तो छूट नहीं सकता, इस कारण छुडानेका उपाय प्रतिपादन करता है कि, पशुको यज्ञमेंही मारना और स्थलमें नहीं उसमें भी अमुक पशु मारना, इससे वेदका अभिप्राय पशुहिंसासे निवृत्तिही करनेका है ॥ २९ ॥ हिंसामें जिनके व्यवहार हैं, अपने विषय भोगोंके लिये पशुओंकी हिंसा करके देवता, पितृ, भूतपतियोंका जो पुरुष पूजन करते हैं वह अतिदुष्ट हैं ॥ ३० ॥ स्वप्नके समान कानोंको सुखदायक परलोकको और इस लोककी कामनाओंका मनमें संकल्प करके अपने धनको सकाम कर्मोंमें व्यय करते हैं और दोनों लोकसे भ्रष्ट होजाते हैं, जैसे बनियाँ दुस्तर समुद्रके उल्लंघनकरनेमें बहुत धन प्राप्तिकी इच्छाकर अपने संचित किये धनको छोड दोनों ओरसे भ्रष्ट होजाता है ॥३१॥ और जो रजोगुण,सत्त्वगुण तमोगुणसे युक्त होकर जैसे इन्द्रादिक देवताओंकी सेवा करतेहैं, वैसे मेरी सेवा नहीं करते ॥ ३२ ॥ मनमें अनेक मनोरथ करते हैं कि, "यहाँ यज्ञसे देवताओंको सन्तुष्टकर स्वर्गमें जाकर विहार करेंगे और फिर यह भोग भोगकर अंतमें यहाँ आय बडे बडे गृह तथा वडे कुलमें

स्थित होंगे " ॥ ३३ ॥ इस प्रकार फूली बातोंसे चंचल चित्त मनुष्य मान अहंकार भरे गृहमें अनम्र रहते हैं, उनको मेरी वार्त्ता अच्छी मालूम नहीं होती ॥ ३४ ॥ इसकारण वेदका तात्पर्य ब्रह्मविषे है, निवृत्तिहीको बतातेहैं, यद्यपि कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, उपासना-मार्ग, भिन्न भिन्न कहेहैं परन्तु तोभी तात्पर्य ब्रह्ममेंही है मंत्र और मंत्रोंके द्रष्टा ऋषि परोक्ष रीतिसेही पदार्थका प्रतिपादन करते हैं, इससे ब्रह्म आत्मामें गूढ होनेके कारण प्रकाशित नहीं होता, परोक्षरीतिसे कहनेका कारण यह है कि, मुझे परोक्ष प्रिय है जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं वेही उसको जान सकते हैं दूसरे नहीं जान सकते दूसरोंके जाननेमें हित तो दूर रहे, किन्तु कर्मभ्रष्ट होनेकी आपत्ति आनपडती है ॥ ३५ ॥ तो कहते हैं कि, जैमिनि आदि ऋषि वेदके ज्ञाता थे इन्होंने ऐसा क्यों नहीं कहा ? इसका उत्तर यह है कि, वेदका तत्त्व मुझे विना कोई नहीं जानता है क्योंकि शब्दब्रह्म अतिदुर्ज्ञेय है वही सूक्ष्म और स्थूल भेदसे दो प्रकारका है, सूक्ष्मका तो स्वरूप जानना भी अतिकठिन है, क्योंकि प्रथम तो वह परा नामक प्राणमय है, दूसरा पश्यंती नाम मनोमय है, तीसरा मध्यम नाम इन्द्रियमय है, देहमें यह तीनों स्वरूप सूक्ष्मरूपसे रहते हैं, इसलिये इनका जानना कठिन है चौथा वैखरीस्वरूप है जिससे मनुष्य बोलतेहैं,समष्टि प्राणमय वेदब्रह्मका देशकालसे परिच्छेद न होनेके कारण उसके पारका अंत नहीं है, जिसप्रकार यह वेदब्रह्म शब्दसे जानना कठिन है, उसी प्रकार अर्थसे भी यह महागंभीर समुद्रके समान अवगाह करनेको दुस्साध्य है ॥ ३६ ॥ अनन्तशक्ति व्यापकरूप अंतर्यामी ब्रह्मसे यह नादवन्त वाणीरूप कमलनालमें तंतुके समान सब प्राणीमात्रमें प्रतीत होता है, इस स्वरूपका विद्वान् पुरुष विचार करते हैं ॥ ३७ ॥ जैसे मकरी हृदयसे निकाल मुखद्वारसे जालको प्रगट करती है उसीप्रकार प्राणोपाधि हिरण्यगर्भ प्रभु भगवान् वेदमूर्त्ति अमृतमय नादवंत स्पर्शादिकोंका कर्त्ता और मन करके हृदयाकाशसे वैखरी नाम वाणीको उपजाकर जाते हैं जो बृहती वा वैखरी नामक वाणी उपजाते हैं फिर आपही संहार करते हैं, वह कैसी वाणी है ? कि जिसके अनेक मार्ग हैं॥ ३८ ॥ हृदयमें प्राप्त अतिसूक्ष्म प्रणवसे प्रगट हुए जो स्पर्श, स्वर, ऊष्मा, अंतस्थसे शोभित ॥ ३९ ॥ अनेक लौकिक भाषाओंसे फैली उत्तरोत्तर चार चार अक्षर जिनमें बढे ऐसे गायत्री आदिसे छंदोयुक्त पारावार रहित है वह प्राण उसे आपही प्रगट करके उपसंहार करते हैं ॥ ४० ॥ उनमें कितनेही छंदोंको दिखाते हैं–गायत्री उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती, अत्यष्टि, अतिजगती और अतिविराट इत्यादि छंद हैं. चार चार अक्षर बढानेसे बनते हैं जैसे चौवीस २४ अक्षरोंका गायत्री छंद होता है, अट्ठाईश २८ अक्षरका उष्णिक् छन्द होता है, बत्तीस ३२ अक्षरका अनुष्टप्छन्द होता है, इसीप्रकार चार चार अक्षरोंको अधिक करके छन्दोंका लक्षण जानलेना ॥ ४१ ॥ यह वेदवाणी कर्मकाण्डोंमें विधिवाक्योंसे क्या प्रतिपादन करती है और मंत्रवाक्योंसे देवताकाण्डमें किसका प्रकाश करती है, ज्ञानकाण्डमें यही वेदवाणी किसका अनुवाद करके विकल्प बताती है, इसप्रकार वेदवाणीके तात्पर्यको मेरे

अतिरिक्त जाननेकी किसीको सामर्थ्य नहीं ॥ ४२ ॥ वेदवाणी देवतारूप मेराही प्रतिपादन करती है और (उससे आकाश उत्पन्न हुआ) इत्यादि वाक्योंसे विकल्प कथनकर पीछे निराकरण कहते हैं, सोभी मेराही स्वरूप है सब वेदका तात्पर्य यही है कि, परमेश्वर परमार्थरूप है, भेद मायामात्र है, इसप्रकार जो ओंकारमें अर्थ है वही सब काण्डोंमें है, जैसे अंकुरका रस शाखा प्रशाखा फल पुष्पादि सबमें आजाता है ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा-बाइसवें अध्यायमें, प्रकृतीपुरुषविचार ।
तत्त्वोंकी संख्या सकल, अरु अविरोध प्रकार ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले कि हे भगवन् ! हे विश्वेश्वर ! हे प्रभो ! कितने एक महात्मा तत्त्वोंकी संख्यामें विवाद करते हैं, उन्होंने अपने शास्त्रोंमें तत्त्वोंकी संख्या पृथक् २ की है और सब मिलाकर तत्त्वोंकी संख्या अट्ठाईस २८ कहते हैं यह आपकेही श्रीमुखसे सुना है ॥ ॥ १ ॥ कोई छब्बीस २६ कहता है, कोई सात ७ कहता है कोई नौ ९ कहताहै, कोई छः ६ कहता है, कोई चार ४ कहता है, कोई ग्यारह ११ कहता है, कोई सत्रह १७ कहता है, कोई सोलह १६ कहताहै कोई तेरह १३ कहता है ॥ २ ॥ ऋषीश्वर जिस प्रयोजनके अर्थ इतनी संख्या भिन्न भिन्न कहते हैं, सो हे चिरंजीव ! यह मुझे समझाकर कहो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब इसप्रकार पूँछा तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! ब्राह्मण जो कहते हैं, सो युक्ति है, यह तत्त्व सर्वत्र है मेरी मायाको अंगीकार करके कहते हैं,जिस मायामें किसी प्रकारका कहना अशक्य नहींहै॥ ॥४॥तुम जैसे कहते हो,यह ऐसे नहीं जो मैं कहता हूं सो सत्य है,इसप्रकार उन तत्त्वोंके मूल कारणमें जो ब्राह्मणोंका विवाद है वह यथार्थरूपसे देखाजाय तो अपने अपने स्वभावके अनुसार परिणाम होनेवाले मायाके सत्त्वादि गुणही विवादका कारण है ॥ ५ ॥ जिन शक्तियोंके क्षोभसे विवाद कर्त्ताओंका भेद आश्रय हुआ है, जब शम प्राप्त होनेसे भेद दूर हो तो भेद जानकर पीछे विवाद शान्त होजाता है ॥ ६ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! तत्त्वोंके परस्पर अनुप्रवेशसे कार्यकारणरूप तत्त्वोंकी संख्या वक्ताकी इच्छानुसार होसकती है ॥ ७ ॥ अब अनुप्रवेशको कहते हैं, एकही तत्त्वमें सब तत्त्व कारणमें अथवा कार्यमें प्रविष्ट दीखते हैं, जैसे मृत्तिकामें घट और घटमें मृत्तिका अन्योन्य प्रविष्ट है ॥ ८ ॥ इन तत्त्वोंका कार्यकारणभाव और न्यूनाधिक संख्याको वादियोंके मध्य जैसे कहनेकी इच्छासे जैसे कि, जिह्वा जिसप्रकार प्रवृत्त होती हैं, वह वैसीही सिद्धि करसकती है, हम इस सबको संभव जानते हैं ॥ ९ ॥ जीव ईश्वर जो चैतन्यरूप है, उसके भेद अभेद माननेके कारणको कहता हूं कि, जो जीव अनादि कालसे अविद्यासे संयुक्त है, इसलिये उसे अपने स्वरूपका ज्ञान स्वयं नहीं होसक्ता, उसे ज्ञानदाता सर्वज्ञ ईश्वर पृथक् है, ऐसा

जानकर जीव ईश्वरमें भेद माननेवालोंके मतमें चौबीस तत्त्व और पचीसवाँ जीव तथा छब्बीसवाँ ईश्वर तत्त्व है ॥ १० ॥ स्वयं संख्या विषे भेद कल्पना व्यर्थ है, क्योंकि जीव ईश्वर दोनों चैतन्य होनेसे उनमें कुछ भेद नहीं और ऐसा माननेवाले पचीस तत्त्व कहते हैं ज्ञान प्रकृतिका गुण है, इसीसे प्रकृतिमें गिना है, यह एक पक्ष है ॥ ११ ॥ अहो! ज्ञान तो जीवका धर्म है, प्रकृतिका गुण कैसे है ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, तीनों गुणोंके समान अवस्था प्रकृति है, गुण प्रकृतिहीके हैं, आत्माके नहीं, सत्त्व, रज, तम, गुण उत्पत्ति, पालन और प्रलयके कारण हैं ॥ १२ ॥ सत्त्वमय ज्ञान प्रकृतिका गुण है, कर्म रजोगुणका गुण है, अज्ञान तमोगुणका गुण है और स्वभाव यह महत्तत्त्वका स्वरूप है काल ईश्वरका स्वरूप है. इसलिये काल स्वभाव भिन्न तत्त्व नहीं है, मैंने जो अट्ठाईस तत्त्व कहे हैं, उनमें पूर्वोक्त पचीस और तीनगुण यह सब मिलाकर अट्ठाईस होतेहैं॥१३॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, यह मैंने नौ तत्त्व कहे हैं ॥ १४ ॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका, जिह्वा यह पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं, वाणी, हाथ, पाँव, उपस्थ, गुदा, यह पाँच कर्मेन्द्रिय हैं, हे उद्धव ! ज्ञान और कर्म, रूप, मन यह ग्यारह ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रस, गंध, रूप यह पाँच ज्ञानेन्द्रियके विषय हैं, गति, वचन, मलत्याग, ग्रहण,आनन्द, यह पाँच कर्मेन्द्रियोंके फल हैं, यह सब इंद्रियोंके फल हैं भिन्न नहीं, इससे अट्ठाईसके भीतर हैं, तत्त्व नहीं है ॥ १६ ॥ इस विश्वकी आदिमें कार्यकारणरूपिणी प्रकृति सत्त्वादि गुणसे इस विश्वकी उत्पत्ति, अंत, आदि अवस्था रखते हैं, निर्विकार पुरुष केवल साक्षी हुआ देखता है, इसकारण विकारयुक्त प्रकृतिसे पुरुष भिन्न है ॥ १७ ॥ प्रकृतिसे उत्पन्न हुए महत्तत्त्वादिक धातु विकारको पाकर पुरुषके चितवनसे बल पाय महत्तत्त्वादिक परस्पर मिल प्रकृतिके आश्रयसे ब्रह्माण्डरूप कार्यको उत्पन्न करते हैं इससे संघातको प्राप्त होकर उनके उत्पन्न किये देहादिक पदार्थ उन्हींके अन्तर्भूत हो जाते हैं, इससे देहादिक पृथक् तत्त्व नहीं है ॥१८॥ किसीके मतमें आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, यह पाँच पदार्थ और द्रष्टय जीव आकाशादि पदार्थोंका और जीवका आधार आत्मा, यह सात तत्त्व हैं, इस मतमें प्रकृति महत्तत्त्व और अहंकार इस कारण तत्त्वोंका आकाशादिमें अन्तर्भाव माना है, इन्हीं सातों देह इन्द्रियादिकी उत्पत्ति मानी है ॥ १९॥ जिनके मतमें छः तत्त्व हैं, वह पाँच तो पंचमहाभूत और छठे परमात्माको मानते हैं, इस मतमें परमात्मा अपनेसे उत्पन्न हुए भूतोंसे जगत्को रचकर उसमें प्रविष्ट है इससे सब पदार्थोंका परमात्मामें अंतर्भाव है ॥२०॥ जिनके मतमें चार तत्त्व हैं उनमें आत्मा और आत्मासे प्रादुर्भूत हुए तेज, जल, पृथ्वी, यही चारतत्त्व हैं इससे सब जगत् उत्पन्न हुआ है, सब कार्यका उसमें अन्तर्भाव है ॥ २१ ॥ सत्रह तत्त्वके मतमें पंचमहाभूत पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पांच ज्ञानेन्द्रिय एक मन सत्रहवाँ आत्मा ॥ २२ ॥ सोलह तत्त्वके मतमें आत्माही मन कहा है और तेरहके मतमें पंचमहाभूत और पांच ज्ञानेन्द्रिय एक मन, जीवात्मा और परमात्मा यह तेरह हैं ॥ २३ ॥ ग्यारहके मतमें पंचमहाभूत

और पांच ज्ञानेन्द्रिय, एक आत्मा, नौके पक्षमें पांच महाभूत प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार और पुरुषसे यह कहते हैं ॥ २४ ॥ इसप्रकार ऋषियोंने तत्त्वोंकी पृथक् पृथक् संख्या कही है यह सब प्रकृतिसे पुरुषके भिन्न जाननेको हैं, यह सब यथार्थ है क्योंकि विद्वानोंका कहा और न्यायसिद्ध है विद्वान् क्या नहीं कह सकते ? ॥ २५ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! प्रकृति और पुरुष जिनमें एक जड और एक चैतन्य है यद्यपि यह स्वभावसेही भिन्न हैं परन्तु तो भी परस्परका त्याग करते उनकी प्रीति नहीं होती, इससे भेद नहीं देखा जाता ॥ २६ ॥ हे पंकजलोचन ! आत्मा देहमें भासता है, देह आत्माको ग्रहण कर प्रतीत होता है "मैं हूँ" इस प्रकार दोनोंका अभेद प्रकाशनेसे देहका आत्मासे भेद नहीं देखा जाता है सर्वज्ञ मेरे इस संदेहको युक्तिके वचनोंसे दूर करो ॥ २७ ॥ तुम्हारी कृपासेही संसारी जीवोंको ज्ञान प्राप्त होताहै. तुम्हारी मायासेही अज्ञान होता है, आपके अतिरिक्त आपकी मायाकी गति कोई नहीं जानता ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, देह और आत्मामें बहुत विलक्षणता है, गुणोंके क्षोभसे होनेवाला यह देह तो विकारी है आत्मा विकाररहित है ॥ २९ ॥ हे उद्धव ! मेरी गुणमयी मायाने अनेक भाँति भेद और भेदके ज्ञान रचे हैं, यद्यपि इस देहमें अनेक भेद हैं परन्तु तो भी तीन प्रकारके कहे हैं, एक अध्यात्मरूप, एक अधिदैवरूप, एक अधिभूत रूप ॥ ३० ॥ दृष्टि अध्यात्म है और अधिभूत नेत्रगोलकमें प्रविष्ट सूर्यका अंश अधिदैव है, नेत्रोंसे रूप जानिये, सो नेत्रोंकी प्रवृत्ति प्रेरणावाले देवता बिना नहीं होती, इससे अधिष्ठात्री देवतासे नेत्रोंकी प्रवृत्ति इससे रूपज्ञान होता है, इस प्रकार तीनों परस्पर सिद्ध होते हैं, जो आकाश विषे सूर्य है तो आपसेही सिद्ध है इसलिये आत्मा अध्यात्मादिकोंका कारण है इससे भिन्न है अपने आपसे सिद्ध प्रकाश करके परस्पर प्रकाश करनेवालोंका भी प्रकाशकहै जैसे नेत्रमें तीन प्रकार हैं ऐसेही त्वचा, अध्यात्म, स्पर्श, अधिभूत, वायु, अधिदैव श्रवण अध्यात्म शब्द, अधिभूत, दिशा अधिदैव, जिह्वा अध्यात्म रस अधिभूत वरुण अधिदैव, श्रवण अध्यात्म गंध अधिभूत अश्विनीकुमार अधिदेव, चित्त अध्यात्म, जिसके चित्तसे जानने ऐसा अधिभूत वासुदेव अधिदैव मन अध्यात्म जिसको मनकीजे सो अधिभूत चन्द्रमा, अधिदेव बुद्धि अध्यात्म जो जानिये ऐसेही अधिभूत ब्रह्मा, अधिदेव अहंकार अध्यात्म अहंकारसे जो कीजिये सो अधिभूत रुद्र अधिदेव ॥ ३१ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है सात्विक, राजस, तामस, गुणके क्षोभ कर्त्ता कालसे और प्रकृतिसे मूल महत्तत्वसे उत्पन्न हुए विकार हैं, यही अधिदैव अध्यात्म अधिभूतरूपी मोहसे देहादिके विकल्पके कारण हैं जब देहादि अहंकार मिटजाय तब आत्माकी प्रतीति होसकती है ॥ ३२ ॥ आत्माका न जानना इसका रूप है, यह है यह नहीं ऐसा विवाद भेटके अधर्ममें निष्ठा और यह विवाद व्यर्थ ही है परन्तु तोभी स्वरूपभूत मुझसे विमुख जिनकी बुद्धि हैं उनको निवृत्ति नहीं होती है परन्तु विवादसे किये कर्मोंसे ऊंच नीच देहमें जन्म, मरणको प्राप्त होते हैं ॥ ॥ ३३ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो ! तुमसे जिनकी बुद्धि विमुख है वह अपने करे

कर्मोंसे आपही नीच देहोंको ग्रहण करते हैं व्यापक आत्माको देहसे और देहमें जाना अकर्त्ताका कर्म और नित्यका जन्म, मरण कैसे संभव होसकता है? ॥ ३४ ॥ हे गोविन्द! अजितेन्द्रियोंसे जो जाननेयोग्य है वह मुझसे कहो, क्योंकि लोकमें बहुधा इसके जाननेवाले नहीं हैं और हैं तो भी वह मायासे मोहित हैं * ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! कर्ममय मनुष्योंका मन पाँच इन्द्रियोंके सहित इस लोकसे और लोकमें जाता है और मनसे भिन्न आत्मा अहंता ममतासे मनके पीछे जाता है लिंगदेहसे यह सब बन सकता है ॥ ३६ ॥ कर्मोंके अधीन मन इस लोक और परलोकके विषे ध्यान करता उन विषयोंमें प्रगट होता है और पहले विषयोंमें लीन होजाता है, इसके उपरान्त उसको पहले पिछलेका स्मरण जाता रहता है ॥ ३७ ॥ कर्मोंके द्वारा दूसरे देहमें अत्यन्त अभिनिवेष होनेपर वह देवतादिकका देह हो तो हर्षसे अधमहो, तो शोकके भयसे जीवको प्रथम देहका बिस्मरण होना, और उस देहका अहंकार नष्ट होना, यही आत्माका मरण है, कुछ देहके समान उसका मरण नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे दानी! मनका दूसरे देहके साथ सम्बन्ध होनेपर उसमें अत्यन्त अहंकार प्रादुर्भूत होताहै मनके अभ्यास से आत्मामें देहका ममत्व होताहै, यही आत्माका जन्म है ॥ ३९ ॥ जैसे एक स्वप्न देखनेके उपरान्त दूसरा स्वप्न होता है तथा एक मनोरथके उपरान्त दूसरा होता है, तब पहला मनोरथ और स्वप्न विस्मृत होजाता है, इसीप्रकार आत्मा मनके अभ्याससे अपने आपको नवीन उत्पन्न मानता है, इस भाँतिकी दशा होनेसे मनके अभ्यासके कारण एक देहका अभिमान नष्ट होनेपर दूसरे देहका तीव्र अभिमान होनेसे यह अपने पूर्व जन्मको नहीं जानता ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंका आश्रय जो मन और देहके अभिनिवेशसे उत्पत्ति द्वारा आत्मामें उत्तम, मध्यम, नीचता, मिथ्या होनेपर भी प्रकाशित होते हैं, उन्हींके द्वारा आत्मा बाह्य विषयोंको और अंतरमें सुखादिकोंको देखता है, जैसे जीव स्वप्नमें झूठे बहुत देहोंका कर्त्ता देखता बहुत रूप भासै है, अथवा जैसे दुष्ट पुत्रका पिता पुत्रके प्रेमसे पुत्रके शत्रु मित्रोंको अपना शत्रु मित्र मान लेता है, इसीप्रकार आत्मा मनके

***शंका**--श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि, पृथ्वीमें विद्वान् नहीं हैं एक विद्वान् तो वे हैं जो व्याकरण आदि शास्त्रको पढते हैं ऐसे विद्वान् तो पृथ्वीपर बहुत हैं परन्तु उद्धव! जिनको विद्वान् कहैं वह विद्वान् कौन हैं!

उत्तर--शास्त्र पढनेवालेको विद्वान् योगीश्वर लोग नहीं कहते, विद्वान् उसका नाम है कि, जो पुरुष मोक्ष विद्याको जानता हो मोक्ष विद्या कैसी है कि, जिस मोक्ष विद्याकी प्राप्तिके लिये बडे बडे चतुर योगीजन अनेक उपाय कर करके हारगये, परन्तु मोक्ष विद्या प्राप्त नहीं हुई और जो किसी योगी पुरुषको हो भी गई तो बडे कठिनसे. ऐसी विद्या जाननेवाले विद्वान् पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये उद्धवजीने कहा कि, शास्त्र पढनेवाले विद्वानोंके लिये नहीं कहा।

अभिनिवेशसे देहको अपना जानता है ॥ ४१ ॥ जिसकी तीव्र गति जाननेमें नहीं आती, ऐसे कालके लिये यह शरीर क्षण क्षणमें उत्पन्न होते और मरते हैं परन्तु कालकी सूक्ष्मताके कारण अज्ञानी इस जन्म मरणको नहीं जानते ॥ ४२ ॥ नित्य जन्म मरण होता है, यद्यपि इसका प्रमाण कहीं देखनेमें नहीं आता है परन्तु तो भी अनुमानसे जन्म बनाते हैं, जैसे ज्योति पहले कोमल होती है, फिर कुछेक अधिक होती है, इसके उपरान्त अतिक्षीण होजाती है, जैसे वृक्षका फल पहले कच्चा हुआ, फिर कुछेक पीला पडा, इसके उपरान्त पकगया जिसप्रकार क्रमसे भिन्न अवस्था कालसे होती है, पर जानी नहीं जाती. ऐसेही इसी अनुमानसे शरीरको भी कालसे नित्य वय अवस्थादिक होती हैं, परन्तु जानी नहीं जाती हैं, प्रथम अवस्थाका त्याग दूसरेका ग्रहण यही जन्म मरण नित्य होता है यही जगत् अवस्थाका भेदवाला है, इसीसे क्षण क्षण में उत्पत्ति और नाशको प्राप्त होता है, अवस्थाके भेद वालोंकी यही दशा है ॥ ४३ ॥ यहां तर्क करते हैं कि, नित्य अवस्था भेदसे जन्म मरण होनेवालेको ऐसा ज्ञान क्यों होता है ? कि यही देह है, सो यहाँ दृष्टान्त दिखाकर कहते हैं कि जातियोंके सादृश्यसे यह वही दोष है, ऐसा ज्ञान होता है, जिसप्रकार जल क्षण क्षणमें बदलता है. परन्तु नया जल आने परभी उन्हें वही जल है, यह भ्रांति होती है, इसी प्रकार शरीर क्षणक्षणमें परिवर्तित होता है, परन्तु यह वही शरीर है ऐसी वाणी अज्ञानी पुरुष भ्रांतिसे कहा करते हैं ॥ ४४ ॥ अहो ! बडा आश्चर्य है जिसको देहाभिमान है, जिसको कर्म, जन्म, मरण सब है औरों को नहीं, सो कैसे संभव होसकता है ? तो उत्तरमें कहते हैं कि. वस्तुसे देहाध्यासवत्का भी जन्म मरण नहीं, अध्यासवत् पुरुष अपने कर्म बीजसे न उत्पन्न होता न जन्म लेता है भ्रान्तिसे अजन्मा होनेपर भी जन्मतासा और होनेपर भी मरतासा प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ अब देहकी अवस्थानको कहते हैं, देहका प्रथम तो उदरमें प्रवेश और फिर गर्भवास होता है, पीछे जन्म फिर बाल्य कौमार यौवन पैंतालीस वर्षसे पीछे साठ वर्षतक मध्यम वय, उपरान्त जरा, पीछे मृत्यु, यह तो देहकी अवस्था हैं ॥ ४६ ॥ यह मनोरथमयी अवस्था ऊँच नीच देहको है. सत, रज, तम, गुणके संगसे आपको मान लेते हैं, इनमें कोई एक ईश्वरके अनुग्रहसे भक्त इन अवस्थाओंको बहुत विवेक ज्ञानसे छोड देते हैं ॥ ४७ ॥ यदि कहो कि, देहके जन्म मरणमें तो वह मूर्च्छित रहता है, इसे इतना ज्ञान कैसे होसकै ? तो सुनो, पिता मरता है, उसकी क्रिया करते हैं, तब देहका नाश देखते हैं, पुत्र जन्म होता है, तब जात कर्म करते हैं, तहाँ देहका जन्म देखते हैं, उस अनुमानसे अपने देहका जन्म मरण जानते हैं, परन्तु जन्म मरण खाली देहको हैं, द्रष्टाको जन्म मरण नहीं होते ॥ ४८ ॥ जैसे धानादिके बीजसे जन्मका और पकजानेसे मरणका जाननेवाला जो द्रष्टा है, वह वृक्ष और फलसे भिन्न है इसी प्रकार देहके जन्म मरण जाननेवाला द्रष्टा देहसे पृथक् है ॥ ४९ ॥ इस भाँति शरीरादिसे आत्माका यथार्थ विचार करना चाहिये यदि यह विचार न किया जाय तो विषयमोहमें गिरनेके कारण

यह मूढ प्राणी संसारमें गिरता है ॥ ५० ॥ गुणके भेदसे त्रिविध संसार कहते हैं, तहाँ एक एकके दो दो भेद हैं सो कहते हैं कि, सतोगुणके संगसे ऋषि देवता होते हैं, रजोगुणसे असुर और मनुष्य होते हैं, तमोगुणसे भूत, पशु, पक्षी, इत्यादि सब उत्पन्न होते हैं सो वह अपने कर्मोंसे भ्रमण करते हैं, उनही उन योनियोंमें पडे हैं॥५१॥ अहो ! आत्मा तो कर्त्ता नहीं तो कर्मोंसे क्यों भ्रमण करता है? इसपर कहतेहैं कि,जैसे नाचते और गाते पुरुषको देखकर यह पुरुष उनमें स्थित गाने और तालको अपने मनमें अनुवर्त्तन करता है इसीप्रकार बुद्धि और गुणोंके अवलोकनसे गुणोंकी सामर्थ्यसे अकर्त्ता पुरुष उन्हें अपने आपमें मान लेताहै ॥ ५२ ॥ जैसे जलमें तीरके वृक्ष दौडतेसे दीखते हैं जैसे दृष्टिके भ्रमसे पृथ्वी भी भ्रमती सी दिखाई देतीहै, तो यह धर्म वृक्षमें भूमिमें नहीं यह अपने दोषसे दीखते हैं इसी प्रकार दृश्यका धर्म द्रष्टामें स्फुरण होता है और आनन्दादि आत्माके लक्षण होनेपर भी विषयोंके गुणसे प्रतीत होते हैं ॥ ५३ ॥ यदि कोई कहै कि आत्मा भोग करता है सो भी मिथ्या है, जैसे मनोरथकी बुद्धि मिथ्या है और स्वप्नमें देखी बुद्धि सब मिथ्या है, इसी प्रकार आत्मामें प्रतीत होता हुआ विषयोंका अनुभवरूप संसार भी असत्य है ॥ ५४ ॥ तो निवृत्तिके उपायका प्रयोजन क्या है ? इसपर कहते हैं कि यद्यपि स्वप्न असत्य है परन्तु तो भी उन विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषके उस अवस्थामें स्वप्नके दुःख नहीं जाते, इसी प्रकार संसारके मिथ्या होनेपर भी विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषके जन्म मरण नहीं जाते ॥ ५५ ॥ हे उद्धव ! इसी लिये तुम इन दुष्ट इन्द्रियोंसे विषय भोग मत करो आत्माके ज्ञान विना यह संसारका भ्रम हुआ है,ऐसा जानो ॥५६॥ कोई निन्दा करो, कोई अपमान करो, कोई उपहास करो, कोई वंचना करो, कोई ताडना करो, कोई रोक रक्खो, वृत्ति छीनलो ॥ ५७ ॥ कोई मूत्र डालो, जूँठन डालो, ब्रह्मनिष्ठा बिगाडै परन्तु अपना कल्याण चाहनेवाला पुरुष इतने कष्ट सहै और आत्मासे आत्माका उद्धार करै, क्रोधित होकर अपने धर्मको न खोवै ॥ ५८ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम्हारा वचन हम अच्छी रीतिसे समझ सकैं उसीप्रकार समझाकर कहो कि, नीच अधम पुरुष इसप्रकार पांडित्य करैं तो उसका सहन करना महाकठिन है ॥ ५९ ॥ हे विश्वके आत्मरूप ! जो तुम्हारे चरणके आश्रय हैं तुम्हारे धर्ममें तत्पर और शांत हैं उनको छोडकर अति पंडितको भी ऐसे अपराधोंका सहन होना अति कठिन है ऐसा मैं मानता हूं, क्योंकि स्वभाव बडा बली होता है ॥ ६० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे एकादशस्कन्धे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा–तेइसवें अध्यायमें, सहन भीख अपमान ।
बुद्धीसे मनको करैं, निग्रह मुनि विद्वान ॥ १ ॥

व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे नृपोत्तम राजा परीक्षित् ! इसप्रकार भक्तोंमें मुख्य

यादवोंमें श्रेष्ठ उद्धवजीके पूँछनेपर मुकुंद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उत्तर देने लगे, जिन भगवान्के चारित्र श्रवण करनेमें अत्यन्त सुखकारी हैं॥१॥श्रीभगवान् बोले कि, हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव! इस लोकमें वह साधु नहीं है जो दुष्ट वचनसे खेदयुक्त मनको समाधान न करसके ॥ २ ॥ मर्म स्थानमें लगे बाणोंसे विद्ध पुरुष ऐसा ताप नहीं पाते जैसे मर्ममें लगे दुष्ट वचनसे व्यथा पाते हैं ॥ ३ ॥ तथापि मेरे कहे उपाय करै तो उपाय कहताहूँ, हे उद्धव! इस विषयमें एक अतिपवित्र इतिहास है सो मैं आपसे वर्णन करताहूं, तुम भले प्रकार सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ कोई एक भिक्षुक था सो दुर्जनसे पीडित हो धैर्य धारणकर अपने प्रारब्ध कर्मोंको भोगमानकर यह कहने लगा ॥ ५ ॥ परन्तु वह भिक्षुक पहिले बडा धनवान् और सज्ञान था अत्यन्त दुःखसे जो धन प्राप्त किया था उसके विनाश होजानेसे वह अत्यन्त पीडित और संतप्त होगया फिर चित्तमें धैर्य बढाने और वैराग्य आनेसे संन्यास धारणकर भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करनेलगा, परन्तु नगरनिवासी उसको पिछले वैरभावसे अनेक प्रकारके दुःख देनेलगे, तब उस भिक्षुकने एक कथा कही सो उसके चारित्र हम आपके आगे कहते हैं, अवन्तिका (उज्जैन) के देशमें एक ब्राह्मण लक्ष्मीसे अतिसंपन्न खेती और वाणिज्य करै कामी लोभी महाक्रोधी महाकदर्य था कदर्यका लक्षण स्मृतिमें कहा है आत्माको, धर्मकार्यको, पुत्र, स्त्री, देवता, अतिथि और सेवकोंको दुःख दे सो कदर्य है ॥ ६ ॥ बांधव और अतिथिको वचनसे भी न पूजै धर्म, काम करके हीन शून्य देहरूप घरमें भोगोंसे कभी आत्माकी पूजा नहीं की ॥ ७ ॥ ऐसे दुःशील कदर्यके पुत्र, बांधव, स्त्री, बेटी, सेवक इत्यादि सब दुःख पावैं कोई उसे भला न कहै ॥ ८ ॥ फिर वह इसप्रकार दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुआ कि, धर्म, अर्थ, कामसे हीन केवल भूतकी तरह द्रव्यकी रक्षा करता रहै, ऐसे पुरुषपर नित्य कर्तव्य पांच महायज्ञोंके अंशके भागी देवता अत्यन्त क्रोधित हुए देवताओंके तिरस्कार करनेसे पुण्यका विस्तार सब क्षीण होगया, तब अनेक परिश्रमसे युक्त खेती आदि परिश्रमसे कमाया द्रव्य भी नष्ट होगया ॥ ९ ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव! कुछेक द्रव्य उसके घरका बांधव लेगये, कितनाही द्रव्य चोर लेगये, कितना एक द्रव्य गृहदाहसे जाता रहा, कितनाही जहाँ गाड दिया था, वहाँसे गया, कुछ द्रव्य अधर्मी ब्राह्मण और मनुष्य लेगये, कितनाही द्रव्य राजद्वारमें गया ॥ ११ ॥ सो फिर इसप्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे धर्म, अर्थ, कामसे रहित हुआ, स्वजन कुटुम्बी इसका अनादर करने लगे, तब यह अपार चिंताको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ द्रव्य जानेसे वह ब्राह्मण अतिचिन्ता करके उस धनका बहुत ध्यान करता संतप्त हुआ और गद्गद कंठ होकर उसको बहुत वैराग्य उत्पन्न हुआ * ॥ १३ ॥

* शंका—महादुष्ट, खोटी बुद्धि, अत्यन्त कृपण, भगवान्में प्रीति नहीं, ऐसा दुष्ट ब्राह्मण मुनियों करके, बडे दुःखसे प्राप्त होने योग्य जो ज्ञान, उस ज्ञानको क्यों प्राप्त हुवा? यह भ्रम है? ॥

तब यह कहनेलगा कि, अहो! यह देखो बडाही कष्ट है इतना बडा भारी मेरा द्रव्यका परिश्रम वृथाही गया जो यह आत्मा संतप्त किया न तो धर्मके अर्थ और न कामार्थ हुआ, सब वृथाही गया ॥ १४ ॥ बहुधा जो कदर्य हैं उनको द्रव्यका सुख कभी नहीं होता, जीवित इस लोकमें आपको संताप होता है और मरनेपर नरक मिलता है ॥ १५॥ जो यशस्वी हैं, उनका यश अतिनिर्मल है और गुणियोंको गुणहै, सो बडाईको योग्य है, परन्तु जो थोडा भी लोभ होय तो सब गुण यशको दूरकरै जैसे उत्तम रूपको थोडा भी कोढ दूर कर देताहै ॥ १६ ॥ इसलिये द्रव्य सबदुःखरूप है, प्रथम तो साधनमें कष्ट है, इसके उपरान्त सिद्ध होनेपर वह द्रव्य बढाना चाहै, उसमें भी कष्टहै, फिर उसकी रक्षा करनी चाहिये भोगमें व्यय होताहै, नाश होताहै, इसप्रकार आदिसे अन्ततक, श्रम, भय, चिन्ता, भ्रम, मनुष्योंको रहते हैं, इस कारण कभी अर्थ सुखकारी नहीं है ॥ १७ ॥ और भी दोष कहते हैं चोरी, हिंसा दंभ, झूंठ, काम क्रोध धनके साधनमें हैं, गर्व अहं-कार, भेद, वैर, अविश्वास, अश्रद्धा, यह छःअनर्थ पाये पीछे होते हैं और तीन व्यसन स्त्री, मद्य, जुआ, इसी धनसे होते हैं ॥ १८ ॥ इसप्रकार पन्द्रह अनर्थ अर्थसे (द्रव्यसे) होते हैं, सुनो उद्धवजी! इसका नाम तो अर्थ है पर अनर्थरूप है, इसलिये जो पुरुष अपना भला चाहै तो वह दूरहीसे अर्थका त्याग करै ॥ १९ ॥ दोष यह है कि माता, पिता, भ्राता, स्त्री संबंधी जो स्नेहके कारण एक चित्त होकर मिले रहते हैं वह भी धनके लिये पृथक् होजाते हैं और बीस कौडीके ऊपर तत्काल वैरी होजाते हैं ॥ २० ॥ यह प्राणी थोडेही द्रव्यके लिये क्षेमको प्राप्त हो महा क्रोध कर श्रद्धासे एक साथ सुहृदता और स्नेह छोडकर परस्पर मारने लगते हैं ॥ २१ ॥ इस लोकमें जो अनर्थ उठे हैं और जो परलोकमें भी अनर्थ होंगे सो कहते हैं देवताओंके प्रार्थनीय मनुष्य जन्मको पाकर उसमें भी उत्तम ब्राह्मण जन्मको पाय उस जन्मका अनादर कर अपना स्वार्थ खो देते हैं, वह अधमगतिको प्राप्त होंगे ॥ २२ ॥ इसलिये स्वर्ग और मोक्षका द्वार यह देह पाय, इस अनर्थके घर द्रव्यमें कौन मरणधर्मा पुरुष आसक्त होगा? ॥ २३ ॥ देवता,

---

उत्तर–धनका नाश होगया तो ब्राह्मण दुःखी होकर मनमें भ्रमता भ्रमता सन्ध्या होगई तो क्या देखता है! कि एक गाय गारमें सँदी हुई पडी है और दलदलसे किसी प्रकार निकल नहीं सक्ती, उस गायको देखकर ब्राह्मणको बडी दया आई और यह विचार किया कि, किसी प्रकार यह गाय इस दलदलसे बाहर निकलै, उसने हाय हाय शब्द करके बडे परिश्रमसे उस सँदी हुई गायको दलदलसे बाहर खैंच खाँचकर निकाल लिया, गाय प्रसन्न हो ब्राह्मणको आशीर्वाद देती हुई धीरे धीरे चली गई, गायकी कृपासे बहुत शीघ्र ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त होगया, वह ज्ञान जो ज्ञान मुनि लोगोंको महाकठिनतासे प्राप्त होता, गृहस्थीमें जो खोटे कर्म ब्राह्मणने किये थे उन कर्मोंसे धनका नाश हुवा, अनेक विघ्न हुए परन्तु ज्ञानको पाकर आनन्द होगया, इस उपायसे दुष्ट ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त हुआ था।

ऋषि, पितर, भूत, जाति, बंधु और जो अंशके भागी हैं. इनको और अपनी आत्माको जो न दे सो अधम गतिमें जाय इससे वे भूतकी नाई द्रव्यके रक्षक हैं ॥ २४ ॥ अब अपनी अवस्था कहता हूँ, मैं व्यर्थ अर्थकी क्रियासे सदा असावधान रहा, मेरा द्रव्य व्यर्थ ही गया और वयक्रम अवस्था भी व्यर्थ गई, जो विवेकी हैं, वह अर्थसे मोक्षके अधिकारी होते हैं, और मेरा बलभी व्यर्थ गया अब मैं वृद्ध होगया हाय ! मैं कुछभी न कर सका ॥ २५ ॥ यह अर्थकी चेष्टा व्यर्थ होनेपर भी जानबूझकर इसकी तृष्णासे ज्ञानी पुरुष भी क्यों क्लेश पाते हैं? इससे विदित होताहै कि,किसीकी मायासे यह प्राणी अत्यन्त मोहित होरहे हैं ॥ २६ ॥ यद्यपि धनसे संसारी भोगोंको भोगते हैं, परन्तु जब कि, इस प्राणीके निकट प्रतिदिन मृत्यु चली आती है, तब इसे धनसे, धनके देनेवालेसे, सुखसे, सुखके देनेवालोंसे तथा वारबार जन्मदाता कर्मोंसे क्या सिद्ध है ? ॥ २७ ॥ मेरे ऊपर निश्चयही सर्वदेवरूप भगवान् संतुष्ट हुए जो भगवान्से मैं इस दशाको प्राप्त हुआ, मुझे वैराग्य उपजा, वैराग्य संसारसमुद्रसे तरनेको नौका है ॥ २८ ॥ अब मेरा जितना समय शेष रहा है, उस कालसे तपस्या करके मैं अपने अंगोंको क्षीण करूंगा, आत्माहीसे संतोष मान समस्त धर्मोंमें सावधान होकर रहूंगा ॥ २९ ॥ मुझपर त्रिलोकीके ईश्वर तथा देवता अनुग्रह करते हैं कदाचित् कहो कि, देवताओंके अनुग्रह करनेसे वृद्ध हुआ, सो समय थोडा रहगया, अब क्या कर सकूंगा? तो कहते हैं कि खट्वांग राजाने एक मुहूर्त्तमें ब्रह्मलोकको साध लिया था ॥३०॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! जब अवंती नगरीका ब्राह्मण इसप्रकार मनमें निश्चय कर हृदयकी गाँठ अहंता ममताकी खोल शान्त मन हो संन्यासी होगया ॥ ३१ ॥ इन्द्रिय, वायु, मनको निश्चय करके पृथ्वी पर फिरने लगा, इसके उपरान्त भिक्षाके लिये एक नगरमें आया ॥ ३२ ॥ वहाँ भी कहीं आसक्त नहीं और न किसीको अपनी श्रेष्ठता दिखावै, विचरता रहै कल्याणरूप वह ब्राह्मण अतिवृद्ध भिक्षुक अवधूत वेषसे रहै, इसको देखकर दुष्ट जन अनेक प्रकारके तिरस्कारसे दुःख देनेलगे ॥ ३३ ॥ अब सात श्लोकोंमें इसका उत्तर कहतेहैं, किसीने तो उसका त्रिदंड लेलिया और कोई आसन पीढा लेलेकर चलेगये ॥ ३४ ॥ हे महापुरुष! पहले इसप्रकार दिखाकर मुनिको देकर फिर लेलिया और जब भिक्षा माँग अन्नले नदीके तीर भोजन करै ॥ ३५ ॥ तब पापी इसके माथेपर मूत्र करदें, फिर वह जो मौन रहैं तो बुलावैं, यदि न बोले तो मारैं, कोई इसप्रकार डरावैं कि यह चोरहै, ऐसे वचन कहैं ॥ ३६ ॥ कितने एक यह कहने लगे कि इसे बाँधो, ऐसे कहकर उसको रस्सियोंसे बाँधतेथे, कितने एक कहने लगे कि मारोमारो क्योंकि यह धर्मका ढोंग बनानेवाला और लोगोंको ठगानेवालाहै, इसप्रकार तिरस्कार करके उसकी निंदा करनेलगे ॥ ३७ ॥ यह पाखण्डीहै, धूर्त्तहै, अब द्रव्य तो सब गया स्वजन संबंधियोंने सबने छोड दिया अब यह वृत्ति ग्रहण कीहै ॥ ३८ ॥ अहो ! देखो यह बडा ढीठ और अतिबली है, क्योंकि पर्वतके समान धैर्यवान् मौनसे बकध्यानी होकर अपना स्वार्थ साधरहा है, इसका दृढ निश्चय

है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार एक तो हँसैं, कोई उसके ऊपर अधोवायु छोडै, कोई बाँधै, कोई रोक रक्खै ॥ ४० ॥ इस भाँति बहुत दुःख दुर्जनोंने दिया, देहका दुःख ज्वरादिकोंका किया, दैवके दुःख शीत, उष्ण, " यह सब अपना प्रारब्ध भोग है " दुःख पाकर उस ब्राह्मणने ऐसे समझलिया ॥ ४१ ॥ यद्यपि यह ब्राह्मण नराधम दुर्जनोंसे तिरस्कृत हुआ, परन्तु तोभी सात्विक धैर्यसे अपने धर्ममें रहकर इस कथाको गाने लगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण बोला कि यह जन, देवता, आत्मा ग्रह और काल कोई भी मेरे सुख दुःखका कारण नहीं है, मनही केवल कारणहै, जो यह संसार चक्रको फिराता है ॥ ४३ ॥ सोई कारण कहते हैं, बलवान् मनही गुणकी वृत्ति सृजताहै फिर उन गुणोंसेही सात्विक, राजस, तामस भिन्न भिन्न कर्म होते हैं और उन्हीं कर्मोंसे सात्विक, राजस, तामस देवता मनुष्य पक्षियोंकी जाति होती है ॥ ४४ ॥ अब कहते हैं कि, मनहीका संसार होताहै आत्माका संसार कैसे होसक्ताहै, तो कहतेहैं कि, अविद्या और मनके अभ्याससे आत्माका संसार है,आपसे,संसार नहीं इससे वासनासहित मनहै उसके संग नियन्ता होकर रहते हैं, तथापि आत्माके संग नहीं, कर्म भी नहीं क्योंकि वह ज्ञानरूपहै, जीवका सखा है और यह जो जीवहै, सो मनके धर्मोंको ग्रहणकर अहंकार और गुणके संगसे विषयोंका सेवन करनेसे बँधा है ॥ ४५ ॥ मनका निग्रह किये विना सब व्यर्थ है सो कहतेहैं, दान, स्वधर्म, नेम, आचार, विद्याध्ययन कर्म उत्तम व्रत आदि यह सब एक मनके निग्रह करनेके उपाय हैं इससे निश्चय करके परमयोग मनका निग्रहहीहै ॥ ४६ ॥ जिसका मन स्थिर और शांतहै उसे दान आदि करनेसे क्या प्रयोजनहै ! मनतो समाधिमें स्थिर हुआ है और जिसका मन विक्षिप्त है, तथा आलस्य युक्तहै सो उसे दानादिकोंसे और जपसे क्या होगा ? ॥ ४७ ॥ यदि कहो कि दान आदि धर्मसे और इद्रियोंका तो जय होगा, वहाँ उनको जय तो नहीं होता ऐसा कहते हैं और जो देवता, इन्द्रिय यह सब मनके वशहैं कुछ मन उनके वशमें नहीं है, यह मन आपही देवहै, महाबलिष्ठ है योगीजनोंको भी महाभयंकरहै, इसको जो पुरुष अपने वशमें करलेतेहैं,वह देवको भी देखलेते हैं ॥४८॥ अब मनरूप शत्रु दुर्जयहै इसका वेग नहीं सहाजाताहै, सबको पीडा करताहै, सबको जीते विना और मनुष्योंसे युद्धकरताहै, इसमें और भी अनुकूल प्रातिकूल मित्र उदासीन शत्रु कर लेतेहैं, वे मूर्ख हैं ॥ ४९ ॥ और इसीसे संसारमें भ्रमण करते हैं,यह देही एक मनकी वासनासे इसदेहको ग्रहण करके यह मेरी देहहै, इस ममतासे अहंकारसे अंध बुद्धि मनुष्य " यह मैं, यह तू " इस भ्रमसे अंतपारसे रहित संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ इससे सुख दुःखका कारण मन है और कोई नहीं है, यह कहते हैं कि, सुख दुःखका कारण मनहै तो आत्माका कारण क्या है ? दोनों देह मट्टीके विकार हैं, उनको सुख दुःखही कारणता है आत्माका कुछ नहीं लगता है जीव तो देहके अभिमानसे मान लेताहै,आत्माके मूर्त्ति नहीं, क्रिया नहीं, किसको मारैं, किसको सुख दें, परमात्मा दोनों जगह एक है, उसको कुछ नहीं लगता तो कहते हैं कि, जैसे अपनी जीभ आप काटै तो क्रोध किसपर

करै, इसीप्रकार देहसे देहका सुखदुःख मानले तो आत्मा क्या करै ? ॥ ५१ ॥ जो सुख दुःखके हेतु देवता हैं तो यह आत्माको क्या? दुःखका कारण तो देवताओंको है और देवता विकारी हैं जैसे अंगसे अंगको मारिये तो पुरुष अपनी देहमें किसपर क्रोध करै जैसे एकके मुखमें, हाथ डाले वह काट खाय, तो मुखका देवता अग्नि है, हाथका देवता इन्द्र है उनका किया दुःख है, अविकारी अहंकार रहित आत्माको कुछ नहीं लगता ॥ ५२ ॥ जो आत्माहीको सुख दुःखका कारण मानो तो औरसे क्या है ? जिसके ऊपर कोप करै, इस पक्षमें भी औरसे दुःख हुआ, यह कहना संभव नहीं हो सक्ता, क्योंकि वह अपनाही स्वभाव है, आत्मा तो सर्वत्र एकही है आत्मासे और दूसरा नहीं, कदाचित् कहो कि, जो कुछ यह दीखता है, सो मिथ्या है जब अपना आत्मा और दूसरेका आत्मा एकही है तो कोप किसपर करै इससे निमित्त नहीं दुःख भी नहीं ॥ ५३ ॥ जो कहो कि, ग्रह सुख दुःखका निमित्त है तो भी आत्माको क्या ? ग्रह तो लगेहैं जिसका जन्म है, जन्मतो देहका है आत्माका नहीं, क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है, जिस लग्नमें देह जन्म लेताहै उस लग्नमें जैसे ग्रह हों, उसीके अनुसार सुख दुःखका निमित्त है, जिसको देहाभिमान है उसको ग्रहहै इससे ग्रहतो अंतरिक्षमें हैं ग्रह परस्पर दृष्टि पडनेसे ग्रहको पीडा देते हैं, ऐसा ज्योतिषी कहते हैं, परन्तु आत्माको क्या ? आत्मा ग्रह और देहसे भिन्नहै, इसलिये पुरुष क्रोध किसपर करै ? ॥ ५४ ॥ जो कर्महीं सुख दुःखका हेतु है, तो भी आत्माको क्या ? आत्मा तो कर्मसे भिन्न है, सो कर्म हो तो दुःख होय और कर्मही नहीं तो दुःखका हेतु कहाँसे हो ? सो कहते हैं, कर्म तब होय, जब एक देहहीको जड रूपता और अजड रूपता हो, जडरूपसे तो विकारी हो, अजडरूपसे हितकारीपन, यह दोनों धर्म आने चाहिये उनमें विकारता जडतावालोंको हो और हितका अनुसंधान जडता रहितोंको हो और जो कहैं कि, देह कर्म करता है, तो देह जड होनेसे उसमें अपने हितका अनुसंधान नहीं और आत्माका भी कर्म करना नहीं बनसकता क्योंकि वह शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, जब सुख दुःखका कारणरूप कर्म सिद्ध नहीं तो फिर पुरुष किसपर क्रोध करै ? ॥ ५५ ॥ जो काल सुख दुःखका हेतु है, तो भी आत्माको क्या ? क्योंकि आत्मा भी कालरूपही है, काल भी ब्रह्मका अंश है आत्मा ब्रह्मही है, अपने अंशको आपसे भय उत्पन्न नहीं होता जिसप्रकार अग्निकी ज्वालाका ताप अग्निको नहीं व्यापता और हिमकण तुषारका शीत हिमको नहीं व्यापता, ऐसेही कालके किये सुख दुःखसे आत्माको सुख दुःख नहीं होता आत्मा असंग है इसकारण उसमें सुख दुःखका द्वंद्व नहीं व्यापता दुःख सुखका कारण अज्ञान है, आत्मा नहीं ॥५६॥ इन छः दुःख सुखके कारण विना जो कोई और हेतु कहे, सो ईश्वरकी महिमा जानकर संभव नहीं, यह कहते हैं, जो प्रकृतिसे भी परे है, उसे किसी भाँति भी सुख दुःखका संबंध नहीं, जैसे अहंकार संसाररूपी है,उसीसे सुख दुःख होता है जो इसप्रकार समझता है वह किसीसे नहीं डरता उसको डरही नहीं, इस भाँति मैं परमात्मामें चित्त रखकर समुद्र तरूंगा ॥ ५७ ॥ पूर्व

महर्षियोंकी यह जो परमात्माकी निष्ठा है उस निष्ठाको धारणकर साक्षात् मोक्षके देनेवाले भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंकी सेवा करके पारसे रहित संसार समुद्रके पार जाऊंगा ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इसप्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे द्रव्यका लेश दूर-कर संन्यास लेकर वह ब्राह्मण पृथ्वीपर फिरता रहा, यद्यपि दुष्टोंने उसका बहुत अपमान किया, परन्तु तोभी उसका चित्त अपने स्वधर्मसे चलायमान न हुआ, तब यह गाथा गाई ॥ ५९ ॥ कि, पुरुषको सुख दुःखका दाता मनके भ्रम विना और दूसरा कोई नहीं है, मित्र उदासीन शत्रु यह जो संसार है, सो अज्ञानसे होता है, तत्त्वविचारसे कुछ नहीं ॥ ६० ॥ हे उद्धव ! इसलिये तुम सब भावसे मुझमें बुद्धि रखकर मनको निग्रह करो इतनाही योगका तात्पर्य है ॥ ६१ ॥ जो कोई यह भिक्षुककी गाई ब्रह्मनिष्ठाको सावधान होकर धारण करैंगे सुनैंगे, अथवा सुनावैंगे, वह सुख दुःख आदि द्वंद्व धर्मोंसे पराभव नहीं पावैंगे ॥ ६२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा-चौबिसवें अध्यायकी, कथा कर्म आधीन।
आत्मासे सब होतहै, आत्माहीमें लीन ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! अब मैं तुमसे कपिलदेव आदि पहले आचार्योंका निश्चय कियाहुआ सांख्य वर्णन करूंगा कि, जिस सांख्यके जाननेसे पुरुष शीघ्र भेद बुद्धिसे उत्पन्न हुई सुख दुःखादिकी भ्रान्तिको त्याग देता है ॥ १ ॥ महाप्रलयमें द्रष्टा और दृश्यभेद रहित एक ब्रह्ममें लीन होगया, इसके उपरान्त प्रथम सतयुगमें जब सब प्राणी विवेकसे निपुण थे तब भी कुछ भेद न होनेसे सब ईश्वर रूपही जानाजाता था भेद नहीं था ॥ २ ॥ पीछे जब बहुत सृष्टिकी इच्छा हुई, तब वह अक्षर ब्रह्मभेद रहित दोरूप केवल आनन्दमय एकरूप अपने रूपके द्रष्टा और दृश्य भेद रहित करादिये, एक मायाका फल रूप वाणी मनको गम्य प्रपंच रूप करादिये, एक सत्य रूप दो हुए ॥ ३ ॥ ब्रह्मसे हुए, उनके मध्य एक कार्य कारणरूपिणी प्रकृति हुई, दूसरे भावसे ज्ञानरूप पुरुष हुआ जो प्रकृतिपुरुष कहाते हैं ॥ ४ ॥ पुरुषरूप मेरे देखनेसे क्षोभित हुई प्रकृति द्वारा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण प्रगट हुए ॥ ५ ॥ प्रथम इन तीनों गुणोंसे सूत्र क्रिया शक्ति रूप हुआ, पीछे वह सूत्र ज्ञानशक्ति रूप तत्व प्रगट हुआ, एक ही तत्वज्ञान क्रियाभेदसे दोनों रूप हुए, उस महत्तत्वसे अहंकार हुआ, जो सबको मोह उत्पन्न करता है और जीवको भ्रमण करा रहा है ॥ ६ ॥ सो अहंकार तीन प्रकारका है, सात्विक अहंकार, राजस अहंकार, तामस अहंकार यही अहंकार शब्द, स्पर्श, रस, गंध, इन्द्रिय, मन तथा देवताओंका कारण है, जीव और देहकी ग्रंथि रूप यही है ॥ ७ ॥ अब इस त्रिविध अहंकारसे त्रिविध प्रपंचकी उत्पत्ति हुई है सो दिखाते हैं इनमें तामस

अहंकारसे पहले सूक्ष्म भूत प्रगट हुए ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त पंचमहाभूत प्रगट हुए, प्राणियोंके आवरणरूप दश अहंकार हुए, प्रवृत्ति स्वभाव, रूप सात्विक अहंकारसे देवता दश इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दिशा वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, प्रजापति यह सब दश, मनका देवता चन्द्रमा मिलकर ग्यारह देवता हुए क्योंकि मन विना इन्द्रियोंका प्रकाश नहीं होता, वह प्रकाशक है; इसप्रकार सब तत्त्व भिन्न भिन्न हुए ॥ ९ ॥ पीछे एक अण्ड उत्पन्न किया सो ब्रह्माण्ड विराट् पुरुषके अंतर्यामी मेरा उत्तम घर है जलमें अंड हुआ उस अंडमें श्रीनारायणरूप लीलाशरीरसे मैं स्थित हुआ वहाँ मेरी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ सो पद्म जगत्रूप तत्त्वात्मक लोकोंका कारणभूत है, कमलमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए * ॥ १० ॥ उन ब्रह्माजीने विश्वरूप तपस्या करके गुणसे युक्त मेरे अनुग्रहसे लोकपाल समेत तीन लोक भूमि, अंतरिक्ष, स्वर्गादिको सृजा, उन लोकोंमें ही चौदह लोक समझ लेना,सो भूमि कहनेसे पाताल लोक नीचेके आये,भुवः कहनेसे अंतरिक्ष कहा और स्वर्ग कहनेसे महर्लोकसे लेकर सत्यलोक सब कहे ॥ ११ ॥ लोकसृष्टिका प्रयोजन कहतेहैं, देवताओंका लोकस्थान स्वर्ग हुआ, भूत प्राणियोंका स्थान अंतरिक्ष हुआ. मनुष्योंका लोक भूमि हुई, जो सिद्ध हैं और योगसाधना करते हैं, उनका स्थान महर्लोकसे आदि लोक जान लेना ॥ १२ ॥ महात्मा ब्रह्माजीने नाग तथा असुरोंका निवासस्थान पृथ्वीके नीचे अर्थात् पाताल बनाया है त्रिगुणात्मक कर्म करनेसे जो गतियें होतीहैं, वह सब त्रिलोकीके मध्यमें हैं, इस प्रकार लोक भिन्न भिन्न रचे हैं ॥ ॥ १३ ॥ महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोकमें योग संन्यास ज्ञानसे निर्मल गति होतीहै, वैकुण्ठकी गति मेरी भक्ति विना नहीं होती सो भक्तियोग करनेसे होतीहै ॥ १४ ॥ तहाँ वैकुण्ठकी गति विना और सब स्थान चंचल हैं स्थिर नहीं, एक स्थिर तो मेरी गति है इससे और ठौर वैराग्य रखना उचित है, मैं कालरूप परमेश्वर हूं, यह सब जगत् मैंने ही कर्मयुक्त किया है, सो मायाके गुणप्रवाहमें सब विश्व डूबता, उछलता है इस लोकसे और लोकमें जाकर फिर गिरता है, इसलिये इसमें चित्त न लगावे ॥ १५ ॥ इसको ब्रह्मरूप कहते हैं जो पदार्थ सूक्ष्म है, जो बडाहै, जो स्थूल है, दुर्बल है, सो प्रकृति

---

* **शंका**-श्रीकृष्णने वारम्वार "मम" ऐसा वचन क्यों कहा ? क्योंकि, परमेश्वर होकर अभिमान युक्त वचन कहना यह बडे आश्चर्यकी बात है ? ऐसी बात तो मूर्ख कहते हैं ।

उत्तर-पहिलेही उद्धवने श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रार्थनाकी थी कि, हे महाराज ! मेरे सामने आप किसी दूसरे देवताकी और अपने दूसरे अवतारकी कथा मत कहना और कहना भी तो अपनी एक कथा कहना क्योंकि आपके नामके रसके सुखमें मै मग्न होगया हूं. दूसरेका चारित्र मुझको अच्छा नहीं जानपडता, ऐसी उद्धवकी प्रार्थनाको मानकर श्रीकृष्णचन्द्रने मम शब्द कहा था कुछ अभिमानसे नहीं कहा ।

और पुरुष इन दोनोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ जिस कार्यका जो आदि कारण है और जो पीछे भी रहनेका स्थान है सोई इसके मध्यमें है, तो वह इसीका रूप है बीच व्यवहारमें और प्रकार भासै है, जो सुवर्णके भूषण हैं और मट्टीके घडे सरैयें हैं, नाम अलग हैं, वस्तुसे सुवर्ण और मिट्टी है; इसप्रकार सब समझकर नामभेदसे जो व्यवहार है, सो मिथ्या है इतना हीं समझना चाहिये ॥ १७ ॥ यहाँ तर्क करते हैं कि, जो तुम इसप्रकार कार्यको एकरूप कहकर सत्यरूप कहते हो, तो अपने अपने कार्यमें महत्तत्त्व आदि लेके सब तत्त्व आदि तत्त्व मध्यमें संयुक्त है, तो महत्तत्त्वोंको सत्यता होसक्ती है, तो कहते हैं कि, वे कारणरूप ब्रह्मभाव रूपको अंगीकार करके कार्यको सृजतेहैं जैसे मृत्तिकाके पिण्ड निमित्त कारण घटको सृजतेहैं, आदि अंतमें उसके मृत्तिकाही है, जो जिसका आदि अंतहै, सो सत्य है, इससे सबके आदिसे मृत्तिकाको लेकर ही सृजते हैं, अंत ब्रह्म ही है॥ ॥ १८ ॥ प्रकृति इस जगत्का उपादान कारण है, उत्पत्ति स्थान है, पुरुष आधार अधिष्ठाता है और कालगुणोंके क्षोभसे उसको प्रगट करनेवाला है सो यह तीनों ब्रह्मरूप मैंहीं हूं, मुझसे यह भिन्न नहीं है, प्रकृति मेरी शक्ति है, पुरुष और काल मेरी अवस्था है, मेरा रूप होनेसे मैंहीं अद्वितीय स्वरूप हूँ ॥ १९ ॥ अब इस सृष्टिकी अवधि कहतेहैं, जीवोंके भोग देनेके लिये प्रगट हुई यह मेरी सृष्टि जबलों इसका अंत आवे तबतक पिता पुत्र रूपसे निरंतर चलतीहै और जबतक परमात्माका ईक्षण हो, तबतक रहतीहै इसके उपरान्त प्रलय होजातीहै सो कहते हैं ॥ २० ॥ यह ब्रह्माण्ड विराटरूप जिसमें लोकोंकी कल्पना है, जब इसके निकट मेरा स्वरूप भूतकाल पहुँचने लगताहै तब मुझसे पीड्यमान हो, सब लोक नाशको प्राप्त होतेहैं जैसे उत्पन्न हुए हैं ,उसी क्रमसे तत्त्व भिन्न भिन्न होकर अपने कारणसे मिलकर नष्ट होजातेहैं ॥ २१ ॥ यह शरीर अन्नसे हुआ है, इस कारण शतवर्ष अनावृष्टिके होनेसे क्षीणहो उस अन्नमें लीन होताहै, अन्न बीजमें लीन होताहै, बीज भूमिमें लीन होताहै, जब बोनेसे न उपजे भूमि गंधमें महाप्रलयकी अग्निसे दग्ध हो गंधमात्र रहताहै ॥ २२ ॥ गंधजलमें लीन होताहै, जल अपने गुणमें लीन होताहै, रस ज्योतिमें लीन होताहै, ज्योति रूपमें लीन होतीहै ॥ २३ ॥ रूप वायुमें लीन होताहै, वायु स्पर्शमें लीन होताहै, स्पर्श आकाशमें लीन होताहै और आकाश शब्दमें लीन होजाताहै ॥ २४ ॥ शब्द अहंकारमें लीन होजाताहै, इसप्रकार पंचभूतोंकी प्रलय कहकर अब इन्द्रियोंकी प्रलय कहते हैं, इन्द्रियें अपने प्रवर्तकमें लीन होतीहैं, जिस इन्द्रियका जो देवताहै उसी देवतामें लीन होजातीहैं ॥ २५ ॥ वह देव सबके मनके वश हैं, इसीकारण मनमें लीन होतेहैं, मन सब इन्द्रियोंका ईश्वर है, उसमें प्रविष्ट होती हैं, मन अपने सब देवता सहित सात्त्विक अहंकारमें लीन होताहै, शब्द तामस अहंकारमें लीन होताहै, इसीसे कालके आधीन है ॥ २६ ॥काल ज्ञानरूप महापुरुषमें लीन होताहै, पुरुष आत्मारूप जन्मरहित मुझमें लीन होताहै, तब आत्मा एक शुद्ध विकल्प संकल्प रहित अपने ही आनंदमें स्थित होकर रहताहै, इस भाँति सब सृष्टिका प्रकार कहा, अब

इसका प्रयोजन कहते हैं ॥ २७ ॥ जब इस प्रकार ज्ञानसे देखे तब उसके मनका कल्पना किया हुआ भ्रम क्यों हो? और हुआ भी भ्रम हृदयमें क्यों रहे ? जैसे आकाशमें सूर्योदयके भयसे अंधकार नहीं रहताहै ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि, हे उद्धव ! यह सांख्यज्ञानकी विधि मैंने तुमसे वर्णन करी, इसके जानते ही हृदयकी गाँठ छूट जातीहै और इसीलिये उत्पत्ति तथा प्रलयके प्रकार तुमको समझाकर कहे, क्योंकि मुझे सब ज्ञान पूर्ण है ॥ २९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा- निर्गुणता, पच्चीसमें अरु कुछ सत्य विवेक।
मनमें प्रगटतहै सदा, सतरज वृत्ति अनेक ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जबतक प्रकृति पुरुषका ज्ञान न हो, जबतक तीनों गुणोंके स्वभाव न जीते हों, तबतक सुख दुःख आदि द्वंद्व धर्म नहीं जाने जाते, इससे जैसे गुणके स्वभाव जाने जातेहैं उस उपाय करनेको प्रथम गुणके स्वभाव कहते हैं, हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ उद्धव ! तीनों गुण भिन्न भिन्न होतेहैं, जब जिस गुणसे जैसा पुरुष होताहै, सो आप मन लगाकर सुनिये, मैं कहताहूं ॥ १ ॥ जिसका सतोगुणी स्वभाव होय,उसके यह धर्म होतेहैं, शम, दम, क्षमा, विवेक, तप, सत्य, दया, पहला और पिछला स्मरण, संतोष, त्याग, वैराग्य, आस्तिक्य बुद्धि, अनुचितकर्ममें लज्जा, दान, आत्मासे रति, यह सतोगुणकी वृत्ति कही ॥ २ ॥ अब रजोगुणकी वृत्ति कहते हैं, कामना, चेष्टा, दर्प,तृष्णा, गर्व, देवताओंसे सुखकी आकांक्षा, विषयभोग, बुद्ध्यादिकोंका उत्साह, जगमें प्रीति, हास्य, वीर्य्य बलका उद्यम इत्यादि यह सब रजोगुणकी वृत्ति कही ॥ ३ ॥ अब तमोगुणकी वृत्ति कहते हैं, क्रोध, लोभ, मिथ्या, हिंसा, याच्त्रा, दंभ, अनुद्यम, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दुःख, हीनता, निद्रा, आशा,भय, यह तमोगुणकी वृत्ति भिन्न भिन्न कही अब जो एक मिली है, वह वृत्ति सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! "अहं मम" यह जो बुद्धि है, इसमें मन,शब्द, स्पर्श, रूप,रस,गंध, इन्द्रिय और प्राण यह सात्त्विक,राजस, तामस हैं, इनसे जो कार्य है उसे सन्निपातजनित कार्य कहना चाहिये, क्योंकि तीनों गुणोंके मिले कार्य हैं, मैं शान्त हूं,मैं कामी हूँ,मैं क्रोधी हूं, मुझे शांति है,काम है, क्रोध है इसप्रकार व्यवहार तीनों गुणोंका सन्निपात कहाता है ॥ ६ ॥ जब यह पुरुष धर्म अर्थ काममें स्थित हो, तब जान लीजिये कि, तीनों गुणोंकी एकता है, धर्म सात्विक, अर्थ राजस, काम तामस, धर्ममें श्रद्धा हो, अर्थमें प्रीति हो, काममें धन हो ॥ ७ ॥ प्रवृत्ति सकाम धर्ममें निष्ठा रक्खे, गृहस्थाश्रम धर्ममें निष्ठा रक्खे यह भी गुणोंके सन्निपातसे होताहै, क्योंकि सकाम धर्म रजोगुणमय है, घरमें आसक्ति तमोगुणमय है, नित्य नैमित्तिक धर्ममें निष्ठा है सो सत्त्वगुणमय है ॥ ८ ॥ इस प्रकार भिन्न भिन्न और मिले

गुणोंकी अवस्था कहकर जिस गुणसे जैसा पुरुष होताहै, सो कहतेहैं कि, पुरुषके जो शम, दम, क्षमा, दया, यह धर्म होतेहैं, सो सात्विक जानना, काम अनुरागसे राजस समझ लेना क्रोधादिसे तामस जानना ॥ ९ ॥ और जो भक्ति पूर्वक निरपेक्ष हो स्वकर्मसे मेरा भजन करे, सो पुरुष हो अथवा स्त्री हो, उसका सतोगुणरूपी स्वभाव जानना, जो स्वकर्मसे मेरा भजन करतेहैं और मुझसे कुछ चाहना करतेहैं सो रजोगुण स्वभाव जानना ॥ १० ॥ और जो किसीके मारनेको मेरा भजन करे उसे तमोगुणी स्वभाववाला जानना ॥ ११ ॥ अब कहते हैं कि, इन गुणोंके वश तो तुम भी देख पडते हो ? और जो नहीं हो तो तुम सेव्य क्यों हुए ? और जीव सेवक क्यों हुआ सो कहो ? इसका उत्तर देते हैं कि, यह तीनों गुण जीवको हैं, कुछ मुझे नहीं हैं, यह सब चित्तके विकारसे होतेहैं, जिसमें प्राणी आसक्त होकर बँध जाताहै,मैं तो आसक्त नहीं हूँ, नियंता हूं और द्रष्टा होरहा हूँ इससे बंधनमें नहीं, इसीलिये अपना भजन करनेके लिये वारंवार कहता हूं ॥ १२ ॥ जब एक गुणकी अधिकता होतीहै, उसका कार्य दिखातेहैं कि, जब प्रकाश-रूप निर्मल शान्त सतोगुण बढकर रजोगुणको जीते तब पुरुष धर्म ज्ञानसे परमसुख युक्त होताहै जब रजोगुण सतोगुण तमोगुणको जीते, तब पुरुष धर्म ज्ञानसे परम सुखयुक्त हो ॥ १३ ॥ जब रजोगुण सत्वगुण और तमोगुणको जीते, तब रजोगुणसे संग हो, उस संगसे भेदबुद्धि सर्वत्रहो, उससे प्रवृत्तिमार्गका स्वभाव हो, कर्म, यश, श्री और दुःखसे युक्तहोता है ॥ १४ ॥ जब तमोगुण सतोगुण और रजोगुणको जीते, तव अज्ञानसे मोहको प्राप्त हो शोक, मोह, निद्रा, हिंसा, आशासे युक्त हो, विवेक तज अनुद्यम रूप जडता होकर रहताहै और लय होजाताहै ॥ १५ ॥ जब चित्त निर्मल होकर इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्ति हो, देहमें अभय हो, मनकी आसक्ति कहीं न हो, वह सतोगुण मेरी प्राप्तिका स्थान जानना चाहिये ॥ १६ ॥ जब क्रियासे विकारको प्राप्त हो,बुद्धिका विक्षेप हो, ज्ञानेन्द्रियोंको शान्ति न हो, कर्मेन्द्रियोंको निश्चलता न हो, मन भ्रमे तब जानलो कि, रजोगुण बहुत बढगया है ॥ १७ ॥ जब चित्त अन्तर्धान होकर लीन होजाय, ज्ञानसे पदार्थ ग्रहणको असमर्थ हो, मनमें भी संकल्प विकल्प उपजते रहें, नष्ट होकर शून्यसा रहे, अज्ञान ग्लानि दुःखहो तब जानिये कि, तमोगुण बढा है ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! यदि सतोगुण बढे तो देवताओंका बल बढताहै, रजोगुण बढे तो असुरोंका बल बढताहै और तमोगुण बढै तो सब राक्षसोंका बल बढ जाताहै ॥ १९॥ सतोगुणसे जाग्रत्, रजोगुणसे स्वप्न और तमोगुणसे सुषुप्तिकी अवस्था होतीहै, इन तीनों अवस्थाओंमें व्याप्त एक चतुर्थ अवस्था रूप आत्मतत्त्व है सो वह, तुरीय निर्गुण अवस्था है ॥ २० ॥ गुणके उत्कर्षसे कर्मफलको दिखाते हैं, सतोगुणके उत्कर्षसे ब्राह्मण वेदोक्त कर्मकर्त्ता, ऊपर ब्रह्मलोक तक जातेहैं, तमोगुणसे नीचेके लोकोंमें जातेहैं और रजोगुणसे मनुष्यदेहको प्राप्त होतेहैं ॥ २१ ॥ अब जिस गुणकी अधिकतामें मरनेसे जो गति होतीहै सो कहतेहैं, सतोगुणमें मरे तो स्वर्गमें जाय, रजोगुणमें मरे तो मनुष्यलोकमें जाय, तमो-

गुणमें मरे तो नरकमें जाताहै और निर्गुण हो तो मुझे ही प्राप्त होतेहैं ॥ २२ ॥ जो स्वकर्म करे और उनका फल न चाहे अथवा मुझे अर्पण करे, वह सात्विक कर्म है, जिस कर्ममें फलकी याचना है वह राजस है, जिसमें हिंसा अधिक है सो तामस कर्म है ॥ २३ ॥ अब सगुण निर्गुण भेदसे ज्ञान और भक्ति भी चार प्रकार की है, सो कहतेहैं केवल आत्मनिष्ठ ज्ञान सात्विक है जो ज्ञान देह इन्द्रियोंके सम्बन्धसे लीन होताहै सो राजस और जो बालक गूँगेका ज्ञानहै यह तामस है, केवल शुद्ध पुरुषोत्तमनिष्ठ ज्ञान हो सो निर्गुण कहलाता है ॥ २४ ॥ बनमें वास है, सो सात्विक है, ग्रामका वास राजस है, जुएँके घरमें वास तामस है और भगवत् मंदिरमें निर्गुण वास है ॥ २५ ॥ आसक्ति विना कर्मका कर्त्ता सात्विक कहलाता है आसक्तिसे अंधा होकर कर्म करना राजस है, स्मरणसे रहित कर्त्ता तामस है और केवल एक मेरी शरणको प्राप्त हो, अहंकार छोडकर कर्म करे सो निर्गुण है ॥ २६ ॥ आत्माकी श्रद्धा सात्विकी, कर्मकी श्रद्धा राजसी, अधर्ममें श्रद्धा तामसी और मेरी सेवामें श्रद्धा निर्गुण है ॥ २७ ॥ जो आहार भक्ष्य भोज्य वस्तु हो, पवित्र हो, विना श्रम प्राप्त हुई हो सो सात्विक कहलाती है और इन्द्रियोंका परमप्रिय मधुर, कटु, अम्ल, लवण, यह सब राजस हैं, जिससे पीडा हो, अशुद्ध हो उसे तामस कहतेहैं और जो वस्तु मुझे निवेदनकी हो वह निर्गुण कहलाती है ॥ २८ ॥ आत्माके अनुभवसे, हुआ सुख सतोगुग रूपी है, विषय अनुभवसे हुआ सुख राजस है, मोह दीनतासे सुख हो सो तमोगुणी है और केवल मेरे आश्रयका सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ यह जितने पदार्थ कह आये हैं, द्रव्य, पवित्र, वस्तु, देश, वन, ग्राम फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता श्रद्धा अवस्था, आकृति, मरण यह सब त्रिगुणमय हैं ॥ ॥ ३० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह सब प्रपंचरूप भाव गुणमय जानना, पुरुष और प्रकृतिसे अधिष्ठित है, जितना देखा है सुना है, बुद्धिसे ध्यानमें रहता है सो सब गुणमय है ॥ ॥ ३१ ॥ यह गुण कर्मसे बँधे पुरुषको संसारकी गति हैं, हे सौम्य ! जो जीव चित्तसे उपजे गुण जीते सो भक्तियोग करके नेष्ठासे मेरे भावको प्राप्त होतेहैं ॥ ३२ ॥ इसलिये विवेकी पुरुष जीतनेहीका उपाय करतेहैं, सो कहतेहैं, ज्ञान विज्ञानका देनेवाला मनुष्यदेह या गुण संगको दूरकर निपुण मेरा भजन करे ॥ ३३ ॥ ज्ञानवान् सावधान जितेन्द्रिय पुरुष सब संग छोडकर निस्संग हो मेरा भजन करे ॥ ३४ ॥ सतोगुणकी सेवासे रजोगुण तमोगुणको जीते इसके उपरान्त निरपेक्ष और शान्त बुद्धि हो मुझमें चित्त रखकर सतोगुणको भी जीते * ॥ ३५ ॥ तब इस प्रकार मुझे प्राप्त हो सो कहते हैं कि, जब यह

---

* **शंका**-जीव क्या वस्तु है जो जीव छूट जाताहै ?

उत्तर-जीव ब्रह्मका रूप है, अजीव देह है जबतक देहके सुखकी इच्छा करताहै तबतक दुःख भोगताहै और देहसे बँधा भी रहताहै और देहके सुखकी इच्छाको जब त्याग देताहै, तब देहको भी त्यागके ब्रह्मसुखको प्राप्त होजाताहै यह अर्थ "जीवोऽजीवो विहाय माम्" इस श्लोकमें है ॥

जीव गुणोंसे छूटे तब अपने वासनादेहको छोड मुझे प्राप्त हो और जब मुझे प्राप्त हुआ फिर उसे संसारका आवागमन नहीं रहता, लिंगशरीरसे और चित्तसे उत्पन्न हुए गुणसे मुक्त हुए अथवा मैं कि जो परब्रह्म हूं उसीमें पूर्ण हुआ जीव विषयभोग नहीं करता और विषयभोगोंका स्मरण भी नहीं करता ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कंधे पंचविंशोऽध्यायः२५

दोहा-छब्बिस माहिं कुसंगते, होत योगमें भंग।
योग भोग पूरण करै, सन्तनको सत्संग ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जिससे मेरा स्वरूप जाना जाय, ऐसे मनुष्य देहको पाकर मेरे धर्ममें स्थित हो सो अपने आत्मामें स्थित आनंदरूप परमात्माको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ ज्ञाननिष्ठाके प्रभावके कारण गुणमय लिंगशरीरसे मुक्त हुआ पुरुष गुणकी जो मायामात्र और वास्तविक रीतिसे प्रतीत हो रहे हैं उनमें निवास करनेपर भी इस मिथ्या गुणोंके संगको प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ यद्यपि उसे सर्वत्र वस्तुकी इच्छा नहीं है, परन्तु तो भी दुष्ट संग न करे, जो केवल उपस्थ इन्द्रिय और उदरको तृप्त करनेवाले हैं, ऐसे दुष्टोंका कभी संग न करे, क्योंकि जो एक भी दुष्टजनका संग होय तो भी महाघोर अंध-तम नरकमें पडता है, जिसप्रकार एक अंधेके पीछे दूसरा अंधा गिरता है और बहुतोंका संग बाधा करता है, इसमें तो कहनाही क्या है ? ॥ ३ ॥ इलाका पुत्र बडा यशस्वी राजा पुरूरवा जब प्रथम उर्व्वशीके विरहसे मोहित हुआ था, तब अत्यंत दुःखसे कातर हो कुरुक्षेत्रमें पहुँचा और वहाँ उर्व्वशीको देख प्रार्थना की,उपासना बताई, उसके द्वारा राजा गंधर्वलोकमें प्राप्त हुआ, जब वहाँ उसका शोक निवृत्त हुआ, तब उसने यह गाथा गाई ॥ ४ ॥ पुरूरवा राजाको छोडकर जब उर्व्वशी चली गई, तब उन्मत्त कीसी नाईं नग्न उसके पीछे विलाप करता जाय कि, हे घोरे ! तिष्ठ तिष्ठ, इस प्रकार विह्वल हो उठकर उसके पीछे चला ॥ ५॥ पुरूरवा राजा अपनी पहली अवस्था कहता है कि, तुच्छ काम-नाओंका सेबन करनेमें मैं अभी तृप्त न हुआ क्योंकि अनेक वर्षोंकी रात्रियाँ आनकर बीत गईं, परन्तु मैंने नहीं जाना, चित्त उर्व्वशीसे हर रहाथा जब ज्ञान हुआ, तब जैसे वचन कहे सो कहते हैं ॥ ६ ॥ पहले आठ श्लोकोंमें राजाका पश्चात्ताप कहते हैं, अहो ! देखो मेरे मोहका विस्तार कि, मैंने इतना विषय किया परन्तु तो भी कामसे मलीन चित्तमें उर्व्वशीने मेरे कंठका आलिंगन किया सो इसीमें मेरी इतनी आयु व्यर्थ गई, मैंने कुछ नहीं जानी ॥ ७ ॥ अब अत्यन्त खेदित होकर कहता है कि, देखो ! इस उर्वशीसे मैं वंचित हुआ, सूर्य उदय हुवा वा अस्त हुआ यह भी मैंने न जाना, बहुत वर्षोंके इतने दिन बीतगये, परन्तु मैंने कुछ न जाने ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! वह फिर कहने लगा अहो मेरे मनको देखो कि, मेरा आत्मा इन स्त्रियोंने खेलनेको हरण किया मैं राजाओंका राजा हूँ, सो मैं इसप्रकार पराधीन हुआ ॥ ९ ॥ राज्यादिसहित चक्रवर्त्ती मुझे देखो जो तृणके

समान मुझे छोड उठकर चली गई, उस स्त्रीके पीछे नग्न उन्मत्तकीसी भाँति मैं भी उठ चला ॥ १० ॥ ऐसे मुझे प्रताप, तेज, ऐश्वर्य, कहाँसे हो ? कि, जो मैं चलीजाती हुई स्त्रीके पीछे लगाही चला आया जैसे गधैयाके समान वह तो लातोंसे मारती जाती है और गधा उसके पीछे जैसे चला जाता है, ऐसेही मैं चलागया ॥ ११ ॥ जिसका मन स्त्रियोंसे हर गया है, उसको विद्या, तप, ज्ञान, अध्ययन, एकान्तवास मौन इन साधनोंसे क्या होता है ॥ १२ ॥ इससे मैंने अपना स्वार्थ न जाना और आपको पण्डित मान-लिया, इसलिये मैं अतिमूर्ख हूं मुझे धिक्कार है कि, जो मैं ऐश्वर्यको प्राप्त होकर भी स्त्रीसे बैल गधेकी भाँति अधीन हुआ ॥ १३ ॥ यद्यपि अनेक वर्षोंके समूहसे मैंने उर्व-शीका अधर मधु पिया, परन्तु तोभी यह काम तृप्त नहीं होता है जैसे आहुतियोंसे अग्नि तृप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ इसप्रकार आठ श्लोकोंमें वैराग्य कहा अब दश श्लोकोंमें विवेक कहते हैं कि, जिनके चित्त वेश्याओंने हरलिये हैं, उन्हें छुडानेको आत्माराम ईश्वर अधो-क्षज भगवान्के विना और कौन समर्थहै ? इसलिये एक परमेश्वरकाही भजन करना उचित है, क्योंकि बहुतरोंने यज्ञोंसे देवता प्रसन्न किये, परन्तु अंतसमयमें दुःखही पाया ॥ १५॥ ईश्वरके प्रसादविना मोह निवृत्त नहीं होता, इसलिये उन्हींका भजन करना चाहिये देखो उर्वशीने मुझे उत्तम वाक्योंसे समझायाथा परन्तु तोभी मेरे मनका मोह न गया, मैं अजितेन्द्रिय महामूढ हूं ॥१६॥ उर्व्वशीका अपराध नहीं, यह मेराही अपराध है,क्यों कि मैं अपने अजितेन्द्रियपनसेही दुःखी हुआहूं, उसने मेरा क्या अपराध कियाहै? रस्सीको न जान जैसे रस्सीमें सर्पका भ्रम करे तो विद्यमान रस्सीका क्या अपराध है ॥१७॥ यदि कहो कि, इसने अपने रूप गुणसे मोह उत्पन्न किया, यह दोष इसीका है, यह दोनों दोष मनमें रचे हैं. अज्ञानसे हैं सो कहते हैं, यह अतिमलिन दुर्गंधादिसे भरी देह कहाँ और पुष्पकी सुगंधके तुल्य आत्माके गुण कहाँ, सब ठौर ममत्व अविद्याका किया है, वस्तुसे विचारसे सब मिथ्या है ॥ १८ ॥ यह देह माताकी है, अथवा स्त्रीकी है, व स्वामीकी है, वा अग्निकी है, या कूकर गिद्धोंकी है, वा आत्माकी है वा मित्रकी है, किसकी कहनी चाहिये इतना तो इसका निश्चय होताही नहीं और न होगा ॥ १९ ॥ जैसे अपवित्र तुच्छ देहमें, आसक्त होते हैं, सो कहते हैं कि, देखो तो कैसा सुन्दर मुख है, कैसी सुन्दर नासिका है, कैसा सुन्दर हँसनाहै, यों भूले हैं और यह तो सब कृमि विष्ठा भस्म रूपहै ॥ २० ॥ त्वचा, मांस, रुधिर, आँत, भेद, मज्जा, हड्डी संघातरूप देहमें जो आसक्त हैं, उनमें और विष्ठा मूत्र पीबमें जो रमते हैं, उनमें क्या अंतर है ? कुछ नहीं. मैं जैसे कृमि, ऐसे वह मनुष्य हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि इस प्रकार स्त्री कदर्यमयी जाने हैं परन्तु तो भी उनके गुरु स्त्री लंपटोंके निकट जो विवेकीहो तो जाय, विषय असत् इन्द्रियोंके संग से मन सर्वथा विकारको प्राप्तहो. संग न हो तो हो इससे दूर रहै ॥ २२ ॥ जो वस्तु देखी सुनी नहीं है, उसमें मनकी इच्छा नहीं होती, इस कारण जो पुरुष इन्द्रियोंको रोकता है, उस पुरु-षका मन निश्चल होकर शान्त होजाता है ॥ २३ ॥ इससे इन्द्रियोंका, स्त्रियोंका और

स्त्रीलंपटोंका संग न करै, जो ज्ञानवंत हैं, उनको भी इन इन्द्रियोंका विश्वास करना योग्य नहीं है मुझ सरीखों की तो बातही क्या है ? ॥२४॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! इस प्रकार गाताहुवा वह राजाधिराज पुरूरवा उर्व्वशी लोकको छोड अपने आपमें आत्मरूपको जान ज्ञानसे मोह निवृत्ति कर निवृत्त होगया ॥ २५ ॥ इसलिये दुःखदायी संगको छोड बुद्धिमान् होकर साधुओंका संग करै, वह अपने वचनसे इसके मनकी गाँठि काट देते हैं ॥ २६ ॥ साधु पुरुष कुछ चाहना नहीं करते हैं, क्योंकि वह तो निरपेक्ष हैं, और उनके चित्त मुझमें लग रहे हैं, वह समदृष्टि और ममतारहित हैं, अहंकाररहित शान्त हैं, सुख दुःख परिग्रह हीन हैं इसकारण उनका संगही इन मनुष्योंको तार देता है॥२७॥ हे महाभाग ! वह बडे भाग्यवंत हैं, जो निरंतर मेरी कथाओंको श्रवण करते हैं, वह कथा मनुष्यके मनके संपूर्ण पाप दूर करती है ॥ २८ ॥ जो कोई मेरी कथा सुनेंगे, गावेंगे, स्तुति करेंगे, अथवा आदर करैंगे, वह मुझमें तत्परहो श्रद्धा सहित मेरी भक्तिको प्राप्त होंगे ॥ २९ ॥ अनंतगुण पूर्ण आनंद और अनुभवरूप मुझमें जिस साधुने भक्ति प्राप्त की, फिर उसे और क्या बाकी रहा ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्निकी सेवासे अंधकार शीत जाता रहता है, इसी प्रकार साधु पुरुषोंकी सेवा करनेसे संसारका भय जाता रहता है ॥ ३१ ॥ प्राणी घोर संसाररूपी समुद्रमें डूबते उछलतेहैं उनको ब्रह्मके ज्ञाता साधु शान्तही परमगति हैं जैसे जलमें डूबते पुरुषको दृढ नाव परमगति होती है ॥ ३२ ॥ प्राणियोंका जैसे अन्न प्राणहै,ऐसेही आर्त्त पुरुषोंको शरण मैं हूं,मनुष्यको परलोकका धर्मही धनहै, ऐसेही संसारसे डरे पुरुषको शरण देनेवाले साधु हैं * ॥ ३३ ॥ सूर्य तो भली भाँति उदय होनेपर भी बाहिरी एक चक्षु इन्द्रियकोही देताहै और साधुपुरुष तो सगुण तथा निर्गुण ज्ञानरूप आंतरीय अनेक चक्षुओंको देतेहैं, इस कारण देवता और बंधुरूप साधु पुरुषहीहैं और आत्मा तथा तद्रूप भी साधुओंमें हीहै ॥ ३४ ॥ प्रथम इसका पिता शुद्ध मनसे स्त्रीरूप होकर पार्वतीके वनमें गयाथा, इसलिये उसके पुत्र पुरूरवाका नाम वैतसैन कहा सो उस उर्व्वशी लोकसे इसप्रकार निस्पृह होकर, संग छोड आत्मारामहो, इस पृथ्वीमें विचरण करने लगा ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम—शुकसागरे एकादशस्कन्धे
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

* **शंका**—सब वेद और शास्त्रोंमें लिखाहै कि, भगवान् तीन लोक और १४ भुवनके प्राणियोंके स्वामी हैं तो फिर श्रीकृष्णने अपने मुखसे क्यों कहा कि.दुःखी प्राणीकी शरण हम हैं, यह बडी शंका है ॥

उत्तर—तुम्हारी सबकी बात सत्य है,परन्तु अभिमानी कामी दुष्ट यह सब परमेश्वरको नहीं जानते और दुःखी रात दिन परमेश्वरको जानते हैं, इसलिये दीन लोग परमेश्वरको प्यारे हैं, अभिमानी द्रोही हैं—इसलिये श्रीकृष्णने कहा कि, मैं दीनलोगोंका स्वामी हूं।

दोहा-सत्ताइस अध्यायमें, स्वस्थचित्तकी मूल।
सब फलदायक कहतहौं, पूजा हरि अनुकूल ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! अपना आराधनरूपक्रियायोग मुझसे कहो और तुम्हारे भक्त जैसे तुम्हारी पूजा करते हैं, सो सब कहो ॥ १ ॥ तुम्हारा यह पूजन मनुष्योंको परमश्रेयदायक है नारद भगवान् व्यास और अङ्गिराके पुत्र बृहस्पति यह सब मुनीश्वर वार वार कहते हैं ॥ २ ॥ जो वाणी तुम्हारे मुखकमलसे निकली वही भगवान् अजन्मा ब्रह्माजीने अपने पुत्र भृगु आदि सबसे कही जो महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा था सोई तुमने हमसे कहाहै ॥ ३ ॥ हे मानके दाता ! यह सब वर्ण आश्रमोंका सम्मत है और स्त्री शूद्रोंको परमकल्याणकारी है * ॥ ४ ॥ हे कमलदललोचन ! हे विश्वेश्वरोंके ईश्वर ! इस कर्मबंधनका छुडानेवाला पूजाविधान मुझसे कहो क्योंकि मैं तुम्हारा भक्तहूं और तुम्हींमें अनुरक्तहूं ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इस प्रकार उद्धवजीने प्रार्थना करी तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! यह कर्मकाण्ड अनंत है इसका पार नहीं इसलिये जैसे हैं वैसेही क्रमके संक्षेपसे कहताहूं ॥ ६ ॥ वैदिक, तांत्रिक, मिश्रित तप यह तीन प्रकारका मेरा पूजन है, इन तीनोंमें जिसकी जो इच्छा हो, उस विधिसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करै ॥ ७ ॥ जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनों वर्ण अपनी विधिसे भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करना चाहैं, उसका प्रकार सुनो, प्रथम गर्भसे अष्टमके एकादशके द्वादशके वर्षमें अपने वेदमें कहा गायत्रीउपदेश पाकर पुरुषको जिसप्रकार भक्तिपूर्वक मेरा भजन करना चाहिये, सो तुम मुझसे श्रवण करो ॥८॥ प्रतिमामें पूजायोग्य, भूमिमें,अन्नमें,हृदयमें,सूर्यमें,जलमें,ब्राह्मणमें द्रव्य करके भक्तिसे निष्कपट होकर अपने गुरुजीकी पूजा करै॥९॥आप प्रथम तो दंतधावन करै और फिर मट्टीले अंग शुद्धिके लिये स्नान करै,इसके उपरान्त वैदिक तांत्रिक मंत्रोंसे स्नान करै ॥ १० ॥ इसके

---

* **शंका**-छहों शास्त्रोंका चारों वर्णोंका चारों आश्रमोंका मत यह है स्नान, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नीराजन और अनेक सामग्री करके ईश्वरका पूजन करना योग्य है परन्तु तीन आश्रम जैसे,ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ यह तो तीनों भगवान्का पूजन करना मानते हैं,परन्तु इन तीनोंसे बडे जो संन्यासी लोग हैं,वह भगवान्का पूजन करना क्यों मानैंगे ? उन्होंने तो सब कर्म त्यागदिये हैं तो फिर उद्धवजीने क्यों कहा कि, भगवान्का पूजन करना चारों आश्रमोंका मत है ।

उत्तर-मुनिजन पहिले तो बडी २ विधियोंसे वैकुण्ठनाथका पूजन करते पीछे संन्यास लेते हैं,संन्यास लिये पर फिर उनका मत यह नहीं है कि अब भी पहिलेकी नाई सामग्री संग्रह करके भगवान्का पूजन करना, परन्तु जो कोई सज्जन भगवान्की पूजा करनेकी विधि उनसे बूझताहै तो वह उसको बतादेते हैं, इसलिये उद्धवने कहा कि, संन्यासी देहसे पूजन नहीं करते परन्तु मनमें तो जानते हैं कि, पूजनको भूले नहीं जो भूल जाते तो दूसरेको कैसे बताते ? इसलिये चारों आश्रमोंका मत पूजन करनेको उद्धवने कहा ॥

उपरान्त वेदविहित संध्योपासनादि कर्म सब करै, इसके पीछे उन कर्मों करके कर्मकी दूर करनेवाली मेरी पूजा करै, मनका संकल्प मुझमें रक्खै ॥ ११ ॥ अब प्रतिमाके भेद कहते हैं, शिलाकी, काष्ठकी, धातुकी, मट्टीकी, चंदनकी, चित्रकी, रेतकी, मानसी मणि-जटितहो यह आठ प्रकारकी प्रतिमा कही हैं ॥ १२ ॥ हे प्यारे उद्धव ! भगवान्‌की मानसी पूजा करनाहो तो हृदयमें मनोमयी मूर्तिकी पूजा करनी प्रतिमा दो प्रकारकी है, एक तो चर, दूसरी अचर, तहाँ स्थिर मूर्तिकी पूजामें आवाहन विसर्जन नहीं है ॥ १३ ॥ शालिग्राममें आवाहन विसर्जन न करै और स्थानमें करै स्थिर प्रतिमामेंभी आवाहन विसर्जन है, कहीं नहीं भी है, मिट्टी और चंदनकी प्रतिमामें तथा चित्रकीमें मार्जन मात्र करै, स्नान नहीं करावै ॥ १४ ॥ अब सकाम निष्काम भेदसे विशेष कहते हैं; सकामका प्रसिद्ध द्रव्य पूजामें कहते हैं उनसे मेरी प्रतिमामें पूजा करै, जो भक्त निष्कामहो सो जो सामग्री यथा लाभ पावै सो सब मुझे समर्पण करै, न पावै तो वह हृदयमें भावना करके पूजा करै तो वह पूजा मैं उसके भावसेही स्वीकार कर लेता हूं ॥ १५ ॥ स्नान अलंकार यह सब प्रतिमामेंही मुझे प्रिय हैं, हे उद्धव ! स्थंडिलमें मंत्रहीसे अपने स्थानमें उन उन देवताओंका स्थापन है; अग्निमें घृतसंयुक्त हविसे होम करै ॥ १६ ॥ सूर्यमें अर्घ्य उपस्थान करै, जलमें तर्पणादि करै, भक्तोंका दिया श्रद्धासे जलमात्र भी मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ १७ ॥ सुगंध, फूल, धूप, दीप, अन्नादिक समर्पण करै, तो उसकी तो बातही क्याहै ? मेरा भक्त न हो, बहुत समर्पण करै तो मैं उससे संतुष्ट नहीं होता ॥ १८ ॥ अब पूजाका प्रकार कहते हैं कि, प्रथम तो आप स्नानादिक शौचसे शुद्ध हो, इसके उपरान्त पूजाकी सब सामग्री शुद्ध करके रक्खै, फिर पूर्वमुख वा उत्तरको मुख करके बैठे, पूर्वमुखको अग्र करके, दर्भोंसे आसन बनाय प्रतिमाके सम्मुख स्थिर होकर पूजा करै ॥ १९ ॥ प्रथम तो न्यास करै, फिर, मूलमंत्रोंसे न्यासकृत मेरी प्रतिमाको हाथसे स्पर्श करै, रातके निर्माल्य फूल पत्र जो कुछ होयँ तो दूर करै, अपने आगे जलभरा कलश रक्खै और प्रोक्षणीपात्र रक्खै उसे चंदन, तुलसीपत्र तथा पुष्पसे शोधन करै ॥ २० ॥ इसके उपरान्त प्रोक्षणीके जलसे पूजाका स्थान शुद्ध करै उसीसे द्रव्यका और अपने आपका प्रोक्षण करै, फिर पाद्यके लिये उस कलशके जलसे तीन पात्र भरकर रक्खै उनको भी इन वस्तुओंसे शोधन करै, पाद्यके पात्रमें श्यामा दूब, कमल और विष्णुक्रान्ता आदि पदार्थ डालना, गंध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों यह अर्घ्यके आठ द्रव्य चाहिये. जावित्री, लौंग, कंकोल यह आचमनको चाहिये ॥ २१ ॥ पाद्य, अर्घ्य और आचमनको तीन पात्रोंका हृदय, मस्तक, शिखा, मंत्रोंसे तथा गाय, त्रीसे अभिमंत्रण करै ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त देहको कोष्ठगत वायुसे शोधन करै मूलाधारमें स्थित अग्निमें जलावै फिर ललाटमें स्थित चन्द्रमण्डल है तहाँ अमृत प्रवाह करके अमृतमय करै, वहाँ हृदयकमलमें स्थित जीव कला श्रीनारायणजीकी मूर्ति है, उसका ध्यान करके प्रणव अक्षरके अकार उकार मकार की जिसका सिद्ध ध्यान करते हैं

ध्यान करै ॥ २३ ॥ दीपकके प्रकाशसे घरके समान अपने स्वरूपकी भावनासे जब देह व्याप्तहो, तो प्रथम उस देहहीमें पूजा करके आप तन्मय होय, इसके उपरान्त आवाहन करके प्रतिमामें स्थापन करै, फिर न्यास करनेके पीछे मेरी पूजा करै ॥ २४ ॥ फिर आवाहनसे प्रतिमामें पाद्य, आचमन, अर्घ्यादि सब उपचार करै, धर्मादिक नव शक्ति हैं, उनसे मुझे आसन दे ॥ २५ ॥ अष्टदल कमल बनावै, केशरसे उज्ज्वल सुन्दर कर्णिकामें वेद आगममें कथित मुक्ति पाने और फलकी सिद्धिके लिये वैदिक तांत्रिक मार्गोंसे मेरी पूजा करै, वह आसन सुखशय्याहै, उसके चार कोनेहैं, चार पाँवहैं; वहाँ धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य ईशान, इन चारों कोनोंमें रक्खै ॥ ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त सुदर्शनचक्र, पांचजन्य शंख, गदा, खड्ग बाण, धनुष, हल, मूसल, कौस्तुभ माला, श्रीवत्सादि आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये, तहाँ सुदर्शन आदि आठ आयुधोंका आठ दिशाओंमें और कौस्तुभ आदि तीनकी वक्षस्थलमें पूजा करै ॥ ॥ २७ ॥ नंद, सुनंद, गरुड, चण्ड, प्रचण्ड, महाबल, कुमुद, कुमुदेक्षण यह आठ पार्षद हैं, इनकी आठों दिशाओंमें पूजा करै ॥ २८ ॥ दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्से-नको कोनोंमें रक्खै, गुरुको वामभागमें रक्खै. देवता, इन्द्र आदि लोकपालोंको पूर्वसे लेकर अपनी अपनी दिशाओंमें ईश्वरके सम्मुख रक्खै और अर्घ्य, पाद्य, देकर पूजा करै ॥ २९ ॥ चंदन, उशीर, कपूर, कुंकुम, अगर, इन सुगंधियों करके रक्खै, मंत्रोंके जलसे स्नान करावै जो वैभवहो तो यह सामग्रियें करै, न हो तो जो होय उससेही करै ॥ ॥ ३० ॥ सुवर्ण धर्मानुवाक और महापुरुष विद्या, तथा सहस्रशीर्षा और राजाओं कीसी सामग्रियोंसे मेरी पूजा करै ॥ ३१ ॥ स्नान करनेके उपरान्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण मकराकृति कुण्डल, माला, सुगंध, लेपन आदि करके शृंगार करै, इस प्रकार प्रेमपूर्वक मेरे भक्तको मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ पाद्य, आचमन, गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, यह सब श्रद्धासहित मेरे भक्तको मुझे देने चाहिये ॥ ३३ ॥ यदि वैभव हो तो नैवेद्यसे अनेक प्रकार की सामग्री बनावै; गुड, मिश्री, खीर आदिक घृत, पूरी, पूआ, लड्डू, गेहूंकी खीर, दहीको डालके करै ॥ ३४ ॥ पर्वमें, उत्सवमें अथवा नित्य फुलेलसे अभ्यंग उबटन, दर्पण, दंतधावन, स्नान, अन्नादि पाकसामग्री, गीत नृत्य यह सब करने चाहिये, यदि सदा न होसके तो पर्वमें वा उत्सवमें तो अवश्यही करै ॥ ३५ ॥ इसप्रकार प्रतिमामें पूजा कहीहै, अब अग्निमें पूजा कहते हैं; विधिपूर्वक कुंड बनावै, मेखला गर्त्त और वेदीकर उसमें अग्नि रक्खै, प्रथम हाथमें जब एकत्र कर ले, तब कुण्डमें रक्खै ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त कुशा बिछाकर चारों दिशा छिडकै, अन्वाधान नाम कर्म समाधिसे होम करै, फिर जल छिडककर मेरा ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इसप्रकार मेरे रूपका ध्यान करना चाहिये, सो कहतेहैं कि जैसा तप्त सुवर्ण लाल होता है, उसी प्रकारका रूप पीताम्बर पहरे, शान्तरूप, शंख, चक्र, गदा, पद्मसे चारों भुजा शोभायमान ॥ ३८ ॥ प्रकाशित मुकुट, कंकण, मेखला, बाजूबंद श्रीवत्सका वक्षस्थलमें चिह्न, क्षोभ-

युक्त वनमाला धारण कियेहुए ॥ ३९ ॥ इसप्रकारके रूपका ध्यान करनेके उपरान्त, घृत मिठाई समिध् इत्यादिसे होम करै, फिर आज्यभाग और अघोरनामक होम करै और घृतमें बूडी हविष्य ले ॥ ४० ॥ फिर मूलमंत्रके द्वारा सहस्रशीर्षाकी ऋचाओंसे धर्मादिक देवताओंके लिये यथायोग्य होम करै ॥ ४१ ॥ पार्षदोंको बलि दे, नारायणरूप ब्रह्मका स्मरण कर देवताओंके समीप बैठ, मूल मंत्र जपै फिर नैवेद्य करके भोजनकी सामग्रियोंका ध्यान करै ॥ ४२ ॥ इसके उपरान्त आचमन दे और वह बचाहुआ उच्छिष्ट भाग विष्वक्सेनके आगे रख उनकी आज्ञासे आप ग्रहण करै, इसके पीछे मुखवासार्थ सुगंध, तांबूल समर्पण करै ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त मेरे चरित्रोंका गान करै, नृत्य करै, मेरे कर्मोंका अभिनय दिखावे, मेरी कथा मुझे सुनावे और आप भी सुनै, एक मुहूर्त्तभर निश्चल चित्त होकर रहै ॥ ४४ ॥ वेद पुराण तथा प्राकृत भाषाके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करै " हे भगवन् ! प्रसन्न होउ " इस प्रकार कहकर दण्डवत् प्रणाम करै ॥ ॥ ४५ ॥ प्रणाम इसप्रकार करै कि. मेरे चरणोंपर शिर रक्खै दोनों हाथ बाँधकर पीठपर रक्खै " अपराधीकी समान तुम्हारी शरणहूं " हे प्रभो ! मुझे शरणमें रखलो, क्योंकि मृत्युरूप जहाँ ग्राह है, ऐसे संसार समुद्रसे भयभीतहूं ॥ ४६ ॥ इसप्रकार पूजा करके शेष प्रसाद पुष्प तुलसीदल मुझे दे, ऐसा ध्यान करे, उसको लेकर माथेपर धरे आदरपूर्वक विसर्जन कर ज्योति ज्योतिसे जाकर मिलावे ॥ ४७ ॥ इतने स्थल तथा प्रतिमादिकोंमें कौन मुख्य हैं, इसपर कहतेहैं कि, जिसकी जहाँ श्रद्धा हो वहाँ पूजा करै, क्योंकि सर्वभूतोंमें सर्वरूप मैंहीं स्थित हूं और सबभूत मुझमें निवास करतेहैं ॥ ४८ ॥ इसप्रकार क्रिया योगके मार्ग तथा वैदिक तांत्रिकके प्रकारसे पूजा करनेवाले पुरुष मुझसे इस लोक और परलोककी वांछित सिद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ ४९ ॥ मेरी प्रतिमाकी स्थापना करके दृढ मंदिर बनावे पीछे फूलोंका उत्तम बाग बनावे, जहाँ मेरी यात्राका उत्सव होताहै ॥ ५० ॥ नित्य अथवा बडे पर्वोंमें पूजा सदा चली जाय, उसके लिये क्षेत्र वा पुर ग्राम लगादे, तब मेरे समान ऐश्वर्यको प्राप्त हो ॥ ५१ ॥ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करे तो सब पृथ्वीका राजा होय, मंदिर बनानेवाला त्रिलोकीका राज्य पावे, पूजा आदि यह सब कृत्य करे तो ब्रह्मलोकको प्राप्त हो और तीनों प्रकार करनेसे मनुष्य मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥ इस प्रकार पूजाका फल मुक्ति तक कहा, अब जो निष्काम हैं उनकी भक्तिका फल कहतेहैं, निरपेक्ष भक्तियोग करके मुझेही पावे सो भक्ति कैसे हो ? तो कहते हैं, भक्ति तब हो जब इस भाँति मेरी पूजा करे ॥ ५३ ॥ दाताका फल कहा, अब जो देकर फिर छीन लेता है, उसका निंदित कर्म कहतेहैं कि, जो अपनी दी तथा पराई दी ब्राह्मण देवताकी वृत्तिका हरण करलेताहै, सो अयुत वर्षतक विष्ठाभोजन करताहै ॥ ५४ ॥ जो फल कर्त्ताको होता है, वही सहाय करनेवालेको भी होता है, प्रेरक अनुमोदन कर्त्ता इन सबोंको परलोकमें फल होता है, कारण यह है

कि, यह सब कर्मके विभागी हैं जिसने जितना अधिक किया. उसे उतनाही अधिकफल मिलता है यदि सहाय आदि बहुत कर्म किया होय तो बहुत फल मिलता है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा-अट्ठाइस अध्यायमें, ज्ञान योग विस्तार।
अब वरणौं संक्षेप सौं, सज्जन लेहु विचार ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! जो मेरी भक्तिमें अथवा पूजामें रहे सो यह ज्ञान निष्ठा करे पराये स्वभाव कर्मोंकी स्तुति और निन्दा न करै संपूर्ण विश्वको प्रकृति पुरुष करके जाने भुक्तिसे भिन्न न जाने * ॥ १ ॥ जो पराये स्वभाव और कर्मकी निन्दा करताहै, अथवा सराहना करता है सो मिथ्या भूत प्रपंचदृष्टि होकर शीघ्रही ज्ञानसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ २ ॥ जब इन्द्रियगण निद्रासे व्याप्त होतीहैं, तब मनसे यह जीव स्वप्न देखताहै, मायारूप स्वप्नहै पीछे मन भी लीन होजाता है, तब चेतना नष्ट होजाती है, तब मनुष्य मृतकसमान सुषुप्ति दशाको प्राप्त होता है, इसलिये जिसकी बुद्धि इस विश्वको नाना प्रकारसे जानती है सो विक्षेप लयको प्राप्त होती है व स्वप्नमें जो होताहै, सोई भ्रमरूप यह है ॥ ३ ॥ और जो वस्तुही नहीं केवल भ्रम है, उसमें यह भला हुआ यह बुरा हुआ इतना भला, इतना बुरा इसका क्या कहना ? इसका धरा हुआ नाम सब मिथ्या है, मनसे ध्यान करते हैं और नेत्रोंसे जो देखते हैं, सो सब मिथ्या है तहाँ भला बुरा कहे तो सब अपनाही अज्ञान भ्रम है ॥ ४ ॥ जैसे प्रतिबिम्बकी नांईं सीपीमें रूपेकी बुद्धि मिथ्याहै, कार्यको करते हुए उसीप्रकार यह देहादिक भाव मरनेतक भय देतेहैं ॥ ५ ॥ वेदमें जो सृष्टि कही है सो आपही ब्रह्म विश्वरूप होकर प्रगट होते हैं आपही उत्पन्न हो आपही सृजतेहैं और आपही रक्षाकरते हैं, आपही ईश्वर संहार करते हैं और जिसका संहार करते हैं वह आत्माही है ॥ ६ ॥ आत्मा जो सबसे पृथक् निरूपण किया

* **शंका**-श्रीकृष्णने कहा कि, कोई सुन्दर कर्म करे तो उसकी बडाई नहीं करना जो कोई बुरा कर्म करै तो उसकी निंदाभी नहीं करना, क्योंकि जैसा स्वभाव जिस जीवका होता है, वह वैसाही कर्म करता है तो सुन्दर वचन श्रीकृष्णचन्द्रने किसके लिये कहा ? गृहस्थ किसीकी निन्दा स्तुति न करै कि, विरक्त किसीकी निन्दा स्तुति न करै, यह बात बताओ ?

उत्तर-यह वचन भगवान्ने विरक्तोंके लिये कहा है और विरक्तोंमें जो कोई संन्यासी हो तो उसके लिये भी कहा है और संन्यासियोंमें जो कोई परमहंस होजाते हैं उनके लिये तो निश्चयही कहा है यह अर्थ है कि, सब साधु महात्माओंको किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करनी चाहिये यह श्रीकृष्णके वचन गृहस्थ लोगोंके लिये नहीं हैं ॥

है उससे कोई पदार्थ पृथक् नहींहै यह अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूप जो प्रतीत होता है वह सब माया रचित होनेसे निर्मूल है, यह अध्यात्मादि तीन प्रकारका गुणयुक्त संसार आत्मामें मायाके द्वारा भासता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष यह मेरी कही हुई ज्ञान विज्ञानकी चेष्टाको जानते हैं, वह किसीकी निंदा स्तुति नहीं करते, सूर्यकी भांति, समान होकर लोकोंमें विचरण करते हैं ॥ ८ ॥ वह कैसे हो ? सो प्रकार कहते हैं, जो वस्तु आदि अन्तयुक्त है, सो मिथ्या है, यह जानकर प्रत्यक्ष उपजे और नष्ट हुए जगत्को अनुमान वेद और अपने अनुभवसे ऐसे जाने कि, जो यह दीखताहै, सो सब मिथ्या है, यह ज्ञान जब दृढ होजाय, तब निःसंग होकर, विचरण करै ॥ ९ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे भगवन् ! आत्मा स्वयंप्रकाश है, ज्ञानरूप है,देह तो जड है तो यह संसार किसको लगता है ! हे प्रभो ! यह संसार आत्माका है अथवा देहका है ? इन्हींका आत्मा द्रष्टा है वही देखता है देह तो जड है, आत्मा जड नहीं, परन्तु देखनेवाला है ॥ १० ॥ आत्मा अव्यय है, सगुण है, शुद्ध है, स्वयंज्योति है, आवरण रहित है और देह तो जड है,परंतु इसका संयोग काष्ठ और अग्निसे है, अग्नि और काष्ठ भिन्न नहीं हैं, इसीप्रकार आत्मामें एकताहै, इन दोनोंमें संसार किसीको भी संभव नहीं और जो संभव है तोभी अग्नि प्रकाशकहै, काष्ठ प्रकाश्यहै ॥ ११ ॥ यद्यपि सत्यहै, परन्तु तो भी संसारका अविवेक कारण है, तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जहाँतक देह इन्द्रिय और प्राणसे आत्माका सम्बंधहै, तहाँतक मिथ्या भी संसार भासताहै, यद्यपि आत्माका और इन्द्रियोंका संबंध नहीं, परन्तु तोभी अविवेकसे मान लेते हैं ॥ १२ ॥ उद्धवजी बोले कि, देह तो असत्य है, इसको संसार क्यों भासता है ? तो इसके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि, यद्यपि विषयभोगकी वस्तु पास नहीं परन्तु तो भी संसार नहीं जाता, क्योंकि इसको ध्यान विषयोंका रहता है, इससे संसार होता है और स्वप्नमें अनर्थको देखता है ॥ १३ ॥ अब तर्क करते हैं कि, ध्यानसें जो विषयकी स्फूर्त्ति है, सो तो जीवन्मुक्तिसे भी निवारण नहीं होती है, तो मोक्ष किसीकी होतीही नहीं ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जैसे शोचनेवालेको स्वप्न भी अनर्थ देता है सोई जो जागता रहे, तो जागनेवालेको वह अनर्थ नहीं होते जीवन्मुक्त पुरुषोंको विषयकी स्फूर्ति अनर्थ नहीं करसकती ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध लोभ, मोह, काम, जन्म और मृत्यु यह सब अहंकारसे हैं, आत्माको कुछ यह नहीं लगती है ॥ १५ ॥ देह, इन्द्रिय, प्राण और मनका अभिमानकर यह आत्माही उनके मध्यमें स्थित जीव है, इसीसे गुण कर्ममय मूर्त्ति है और इन्हीं गुणकर्मसे पुरुष बँधरहा है,इसीकारण ईश्वरके अधीन होकर सब संसारमें दौडते फिरते हैं सूत्र और महत्त्व आदि नानारूपसे अनेक प्रकारका कहा है ॥१६॥ इस प्रकारके अहंकारसे जब यह जीव बँधरहाहै तब ज्ञानसे मुक्ति होती है सो कहते हैं कि, वचन मन प्राणमें अहंकार निर्मूल है, अज्ञानमें बहुतरूप प्रकाशते हैं, इसलिये गुरुकी सेवाकर तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग हाथमें ले, इस अहंकार बंधनको काट, संग छोड, पृथ्वीमें फिरै, इसके कारणका यह

उपाय है ॥ १७ ॥ अब वही ज्ञान कहते हैं, जो विवेक ज्ञान उस ज्ञानका साधन करने-वाला वेद है, सो वेदके कहे धर्म करै, तब विवेक उत्पन्न हो तब स्वधर्म अपना अनुभव उपदेश तर्क इतने साधनसे ज्ञान उत्पन्न हो उस ज्ञानका फल कहते हैं कि, योग तप है और कारण है और जगत्के आदि अंत मध्यमें वही है ॥ १८ ॥ नाना भेदके व्यवहार भी एक ब्रह्म मध्यमेंही होते हैं, सो कहते हैं, जैसे सुवर्णके अनेक आभूषण बनते हैं और उनकी उत्पत्ति प्रथम भी और पीछेभी सुवर्णही है, अनेक भाँति होनेके उपरान्त भी सुवर्णही रहता है, क्योंकि सुवर्णसे और कोई वस्तु तो नहीं, इसी प्रकार यह विश्व अनेक रूपसे दीखता है, सो भी मैंहीहूं ऐसा जानना चाहिये ॥ १९ ॥ इसप्रकार विश्वका रूप कहकर इस देह इन्द्रियोंमें जिससे प्रकाश होता है, उसका तद्रूप कहते हैं, इस मनकी तीन अवस्था कारण हैं. सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, यह गुण हैं, जो सब कार्य कारण कर्त्ता रूप हैं अध्यात्म कारण कार्य अधिभूत कर्त्ता अधिदैव इसप्रकार त्रिगुण रूप जगत् है इसप्रकार भी जिससे होता है. और जिसके अनुभवसे प्रकाशै है, सो चतुर्थ स्थान ब्रह्म है, इन्द्रियादिकके ज्ञान विना जो समाधि आदि विषे हैं, सोई सत्य हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार ज्योतियोंमें भी और भाँति न हो, सो सत्य है, यह कहा अब जो और प्रकार होता है सो असत्य है, इसपर कहतेहैं कि, जो वस्तु प्रथम नहीं और पीछे भी न होगी, मध्यमें भी नहीं, केवल नाम मात्रही कहनेको है, जिससे प्रगट हुई और प्रकाशी सो वहीहै, ऐसी मेरी बुद्धि है ॥२१॥ प्रपंचका ब्रह्मसे अभेद कहतेहैं कि, यद्यपि प्रथम मैंहीहूं, यह रजोगुणसे उत्पन्न हुआ विकारका समूह ब्रह्मका कार्य है, परन्तु तोभी ब्रह्मके प्रकाशसे भासता है ब्रह्म आप स्वयं ज्योति है इससे इन्द्रिय विषय आत्मा, देवता, पंचभूत, यह सब तत्त्व ब्रह्मरूप होकर भासते हैं, यह विचित्रता ब्रह्महीका कार्य है ॥ २२ ॥ इस प्रकार ब्रह्म विवेकके हेतुसे और देहादिकमें, आत्मबुद्धिका त्यागकर गुरुद्वारा अपना संदेह काट, सब कामनाओंसे निवृत्तहो आत्माके, आनंदसे संतुष्ट होकर रहै ॥ २३ ॥ जो छोडनी चाहिये उनका स्वरूप कहते हैं, यह देह आत्मा नहीं, यह पृथ्वीका विकार है, इन्द्रियोंके अधि-ष्ठाता देवता प्राण, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार यह सब आत्मा नहीं है, क्योंकि अन्न मात्रके आश्रयसे रहता है, इससे विकारयुक्त है और वायु, जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, यह पंचभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध. प्रकृति यह भी सब आत्मा नहीं, क्योंकि जडहैं ॥ २४ ॥ इस प्रकारके विवेक ज्ञानवंत, ज्ञानी मुक्तपुरुषको इन्द्रियोंका क्रिया गुण दोष नहीं होता, सो कहते हैं कि, जो विवेकी ज्ञानवंत हैं जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हैं उन्होंने गुणरूप इन इन्द्रियोंका निग्रह कियाहो अथवा न किया हो, तोभी उसे न तो गुण है, न दोष है, जैसे मेघके आकाशमें आनेसे सूर्यको कुछ दोष नहीं लगता है और मेघ जानेके उपरान्त कुछ गुण भी नहीं लगता है ॥ २५ ॥ जो निःसंगहैं और ब्रह्मरूप होरहे हैं, उनको किसीसे गुण दोष नहीं लगता जैसे आकाश भूमिमें आते जाते ऋतुके गुण शीत उष्णादिक और वायु, अग्नि, जलसे, बंद नहीं होते, इसी प्रकार अक्षय ब्रह्म

सत्त्व, रज, तम यह गुण अहंकारके हैं, संसारका हेतु कारणसे नहीं मिलता, उनसे भिन्न भिन्न है ॥ २६ ॥ तथापि तवतक मायाके गुणोंका संगम करै, जहाँतक मेरी दृढभक्ति योग करके यह मनकी विषयोंमें आसक्ति न जाय ॥ २७ ॥ जैसे रोगको भले उपचारोंसे दूर न किया हो तो वारंवार वह रोग उत्पन्न होकर दुःख देता है, इसीप्रकार रागादिक और कर्म जिसके दग्ध नहीं हुए और सब विषयोंमें आसक्त मन भी योगी पुरुषको फिर बाधा करता है ॥ २८ ॥ और जो योगसे भ्रष्ट होगयाहो तो फिर उसका क्या उपाय ? तो कहते हैं कि; योगीको देवताओंके प्रेरे जो बंधुरूप भ्रष्ट करते हैं योगके भ्रष्ट होनेसे फिर पूर्व अभ्यास बल करके योग करै, परन्तु, कर्ममार्गके धर्म न करै केवल धर्म-हीकी साधना करै ॥ २९ ॥ जो किसीसे प्रेरितहो तो मरनेतक कर्मोंसे सुख दुःख जाताहै विकारको पावै, जो विवेकी होय सो देहमें स्थित भी आत्मसुखके अनुभव करके तृष्णासे निवृत्त हुए विकारको प्राप्त नहीं होगा ॥ ३० ॥ जिसकी मति बुद्धि आत्मामें स्थित हैं, सो खडे होते, चलते, सोते मूत्र करते, अन्न भोजन करते और भी स्वभावसे दर्शन आदिक करते देहको नहीं जानते हैं ॥ ३१ ॥ जो इन्द्रियवंतहैं सो विना देखै क्यों रहैं ? सो कहते हैं कि, जो विवेक युक्त हैं, सो यद्यपि इन इन्द्रियोंके विषयोंको देखते हैं, परन्तु तोभी अनुमानसे विरुद्ध जान आत्मासे और बस्तुसे मानते हैं, वह स्वप्नकी भाँति सब मिथ्या जानते हैं, जैसे जागनेपर स्वप्नके विषय सब आपही अंतर्द्धान होजातेहैं ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! आत्मामें मुक्तावस्थादिमें भी विकार नहीं होता, क्योंकि बृद्धावस्थामें गुण और कर्मोंसे विचित्र अज्ञानके कार्यरूप करो, देहेन्द्रियादि अध्याससे अपने स्वरूपमें मिलेहुए माने गयेहैं, वही देहेन्द्रियादि मुक्तावस्थामें ज्ञानसे निवृत्त होजातेहैं, यह आत्मा किसीसे त्याग और ग्रहण नहीं किया जाता, यदि मुक्तिको क्रियाका फल मानें तो आत्मामें विकार होताहै इससे मायिक पदार्थोंकी निवृत्तिका होनाही मोक्षहै बंध मोक्ष आत्माका स्पर्श नहीं करते, इसकारण आत्मा निर्विकार है ॥ ३३ ॥ परन्तु प्रथमसेही विद्यमान घटादिक पदार्थोंमें कुछ विकार नहीं करता, इसी प्रकार मेरी अध्यात्मविद्या मनुष्योंके मनके अंधकारको दूर करती है. परन्तु आत्मामें कुछ विकार नहीं होता, आत्मा तो जिस स्थितिमें स्थित है, उसीमें रहता है ॥ ३४ ॥ यह स्वयं प्रकाश जन्मरहित ज्ञान विज्ञानसे भी जाना नहीं जाता, महान् प्रतापयुक्त किसी विकारसे न बढै न घटै, सदा एक रूप रहै और सबोंका प्रकाशक एक है, वह दूसरेसे रहित है, जिसमें वचनकी गति नहीं, श्रुति भी कहती है कि, जब आगे गम्य नहीं, वहाँसे मन समेत वाणी फिर आती है जिसके प्रेरे वाणी और प्राण कार्य करते हैं ॥ ३५ ॥ केवल भेद रहित आत्मा है, उसमें भेद देखना इतनाही भ्रम मनकाहै, अपने आत्माके विना इस भेदका आश्रय हैही नहीं ॥ ३६ ॥ और जो भेद मानतेहैं, उनका मन दूषित है, क्योंकि रूप और नामसे जो वस्तु कही जाती है, सो पंचभूत रूप है, देह इन्द्रिय, दूसरा पदार्थ यह मत पण्डित लोगोंका वादहै, तत्त्व जाननेवालोंके लेखे वस्तु विचारकर देखो तो सब

मिथ्या हैं ॥ ३७ ॥ जो कच्चा योगी योग साधै है, उसे उसकी देहसे उठे रागादिक उपद्रव करके योगभ्रष्ट करदेतेहैं उनको मैंने यह आगे लिखी विधि कही है ॥ ३८ ॥ सो कहते हैं कि, योगकी धारणासे चन्द्रमा तथा सूर्यके तापको जीते, आसनसे प्राणवायु और धारण वायुसे वात रोग जीते, तप, ग्रह, औषधिसे पापग्रह सब कृत अशुभ दूर करै ॥ ॥ ३९ ॥ चित्तका दोष मेरा ध्यान करके दूर करै, मेरे नामकीर्त्तन आदिसे काम क्रोधादिकोंको दूर करै और कितने ही योगीश्वरोंकी सेवा करके सब दंभ अहंकारादिक अशुभोंको शनैः शनैः दूरकरे ॥ ४० ॥ कितनेही योगीश्वर इस देहको समर्थ तरुणतामें अनेक उपायोंसे स्थिर करके परकायप्रवेशकी सिद्धिके लिये योग करते हैं, ज्ञानकी निष्ठा नहीं करते ॥ ४१ ॥ और जो कुशल ज्ञाता हैं, सो उनका आदर नहीं करते, क्योंकि देह अनित्य है, इस कारण निश्चय मनसे योग करके इसके रखनेका श्रम निरर्थक है, जैसे वटवृक्षके फल मिथ्या हैं ॥ ४२ ॥ यद्यपि योगसिद्धिका नित्य सेवन करते करते प्राणायामादिके प्रभावसे शरीरमें होही जाय, परन्तु तो भी बुद्धिमान् मेरे भक्त पुरुषको समाधि त्यागन कर इस शरीरकी सिद्धिपर विश्वास करना योग्य नहीं है ॥ ४३ ॥ इसलिये योगीजनोंको चाहिये कि, मेरे आश्रयसे यह योग करें तब विघ्न न हो निस्पृह होकर आत्माका अनुभव प्राप्त हो,जब मेरे आश्रयसे सब विघ्न निवृत्त हों तो वह योगी आनंदसे परिपूर्ण होता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दोहा-उनतिसवें अध्यायमें, भक्तियोग विस्तार।
प्रथम निरूपण करचुके, अब संक्षेप विचार ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण ! यह तुमने योगकी क्रिया कही सो जिस पुरुषका मन वशमें नहीं उसको तो अति कठिन लगती है और जिनका चित्त वशमें नहीं वे अज्ञानीहैं, इसलिये इसको जैसे शीघ्र सिद्धि हो सुगम हो सो उपाय मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे कमलनेत्र ! बहुधा जो योग करते हैं वह मनका निग्रह करनेमें अत्यन्त क्लेशको प्राप्त होते हैं, परन्तु तोभी मननिग्रह नहीं होता तब थकितहो विषाद युक्त होते हैं ॥ २ ॥ योगमें अतिक्लेश है, जो परमहंस हैं वह सार असारको जानते हैं, हे कमलदललोचन ! जो तुम्हारे चरणारविन्दोंका आश्रय करते हैं तो यह चरणारविन्द उसके आनंदकोही पूर्ण करतेहैं, हे कमलदललोचन ! आप भक्तोंको सुखरूपहो और जो तुम्हारी मायासे मोहित योगीश्वर योग कर्म करके अभिमानको धारण करते हैं,वह सिद्धि नहीं ॥३॥ हे श्रीकृष्ण ! हे सबके बंधु ! जो अनन्य शरण तुम्हारे दास हैं, उनके तुम्हीं वश हो यह क्या आश्चर्य है, जैसे नंद यशोदाके घर खेलते फिरे, रामरूप धारण कर बंदरोंसे मित्रताई करी, ब्रह्मा आदि देवताओंके शोभा संयुक्त मुकुटोंके अग्रने तुम्हारे चरणारविन्दका सिंहासन पीडित

किया है ऐसे तुमहो ॥ ४ ॥ जो तुम भक्तोंकी सेवा जानतेहो, सबके आत्माहो इसीकारण अतिप्रियहो, ईश्वरहो, जो पुरुष केवल तुम्हारेही आश्रय रहते हैं, उनको सब अर्थ देतेहो, प्रह्लाद आदि भक्तोंमें किया उपकार जान कौन आपको छोड सक्ता है, तो किस फलके लिये मेरा सेवन करे, तो कहते नहीं और देवता अथवा धर्म ज्ञानादि साधन तो ऐश्वर्यके अर्थ है, फिर मोक्षके लिये कौन भजे ? सो कहते हैं कि, साधन विना मोक्षका फल कैसे होता है ? तो तुम्हारे चरणारविन्दकी रेणुका जो सेवन करते हैं, उनको क्या फल नहीं होता ? जो चाहते हैं सो फल होता है ॥ ५ ॥ अब कहते हैं कि, और भजनकी बात तो दूर रहे, तुम्हारे किये उपकारको तुम्हारे विषे आत्मा निवेदन करे तभी प्रत्युपकारहो और प्रकारसे नहीं होता सो कहते हैं, आनंदबद्ध ब्रह्मके ज्ञाता तुम्हारे उपकारको स्मरण करके ब्रह्माकी आयुसे भी तुम्हारे उपकारसे उऋण नहीं हो सकते उपकारको कहते हैं कि जो तुम बाहर गुरुरूप हो और मध्यमें अंतर्यामीरूपसे प्राणियोंकी वासना दूर करतेहो, अपना आनन्द रूप प्रगट करतेहो, हम इसका प्रत्युपकार क्या करें ? ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! जब अनुरक्त चित्त उद्धवने इस प्रकार पूँछा, तब ईश्वरके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि, जो भगवान् सत्त्व, रज, तम इन शक्तियोंसे ब्रह्मादि तीन मूर्ति धारण करते हैं और जगत् जिनका खिलौना है ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! मैं सुमंगल अपने धर्म तुझसे कहूंगा, जिन धर्मोंको श्रद्धासहित करनेसे यह मनुष्य दुर्जय मृत्युको जीत लेताहै ॥ ८ ॥ मेरा स्मरण करते करते शनैः शनैः सब कर्म करे, वह सब कर्म मेरे लिये करै मुझमें ही मन तथा बुद्धि अर्पण करे तथा धर्महीमें आत्माकी और मनकी प्रीति रक्खे ॥ ९ ॥ जहाँ मेरे भक्त साधु पुरुष निवास करते हों उन्हीं पुण्य दर्शनोंमें जाकर वास करे, देव, असुर, मनुष्योंमें जो मेरे भक्त हैं, उनके कर्मोंका आश्रय करे ॥ १० ॥ उन भक्तोंसे मिलकर उत्सव करै, अथवा अलग आपही सबकी यात्रा उत्सव करे, नृत्य गीत सब करावे महाराजके छत्र चामरादि उपचारसे सब करावै ॥ ११ ॥ निर्मल चित्त पुरुष सब भूतमात्रमें अपनेमें भी बाहर भीतर मुझेही देखै, मैं आकाशकी नाईं असंग होनेके कारण सबमें स्थित होकर भी आवरण रहित और बाहर भीतर सदा पूर्ण हूं ॥ १२ ॥ जो इस प्रकार ज्ञानमें स्थित हो सब प्राणिमात्रको मेराही भाव जानकर पूजे, वही पण्डित है ॥ १३ ॥ ब्राह्मण, नीच जाति, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, अग्निके काणिका यह क्रूरहों अथवा नहों इनमें जो समदृष्टि हो वही पण्डित है ॥ १४ ॥ मनुष्योंमें मेरे भावकी भावना रक्खे तो वेगही पुरुषके ईर्षा, निंदा, तिरस्कार, अहंकार यह सब निश्चयही नष्ट होजांय ॥ १५ ॥ इसलिये अन्तर्यामी ईश्वरकी दृष्टिसे सबको प्रणाम करै, हँसी करते अपने मित्रोंको छोड और अपनी ऊंच नीच दृष्टि लज्जा छोड भूमिको दण्डवत् करै कूकर, चाण्डाल, बैल, खर ऐसे नीचोंको भी मेरी बुद्धिसे प्रणाम करै ॥ १६ ॥ जब तक सब भूत मात्रमें मेरा भाव न उत्पन्न हो तब तक पुरुषको चाहिये कि, वाणी मन और देहकी प्रवृत्तिसे मेरी उपासना करै ॥ १७ ॥

इस प्रकार उपासना करके उसे सब विश्व ब्रह्मरूपही भासता है, आत्मविद्यासे सर्वत्र ब्रह्महीं देखते संदेह सब दूर होजाते हैं और आप सबसे विरक्त होजाता है ॥ १८ ॥ यह सब पक्षोंसे निश्चय किया हुआ मेरा उत्तमपक्ष है जो देह प्राण मनसे सब प्राणिमात्रमें मेरा भाव हो ॥ १९ ॥ हे उद्धवजी ! यदि निष्काम मेरे धर्म करते करते कुछ भूल चूक होजाय तो भी हानि नहीं, क्योंकि यह उत्तम धर्म निर्गुणपनकेलिये मैंने निश्चय कियाहै ॥ २० ॥ हे साधु श्रेष्ठ ! जो जो व्यर्थ भी लौकिक पारिश्रम करते हैं, सो भी जो मुझे समर्पण करै फल वाँछा विना मेरेलिये करै जैसे भय शोकादिसे दौडना, रोना, क्लेश व्यर्थ है सो भी मुझे समर्पण कर देनेसे धर्म होजाते हैं ॥ २१ ॥ वही बडे बुद्धिमानोंकी बुद्धि और चतुरोंकी चतुरताहै जो असत्य रूप इस मनुष्य देहसे सत्य रूप मुझे इस जन्ममें प्राप्त होवै ॥ २२ ॥ हे उद्धव ! यह ब्रह्मवादका संपूर्ण संग्रह मैंने तुझसे संक्षेप और विस्तार सहित वर्णन किया, जो कि देवताओंको भी दुर्लभ था ॥ २३ ॥ वारम्वार मैंने तुझसे प्रगट करके युक्तियोंसे यह ज्ञान कहा है, क्योंकि यह ब्रह्मवाद रीतिका ज्ञान जानकर पुरुष संदेहसे रहित और मुक्त होजाता है ॥ २४ ॥ जो इसका स्मरण रक्खै, कहै, सुनै, पढै तो भी इसका फल होता है सो कहते हैं, हे उद्धव ! मैंने यह तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दियाहै इसे जो कोई चित्तमें धारण करैगा वह नित्य वेदमें भी गोप्य परब्रह्मको प्राप्त होजायगा ॥ २५ ॥ जो पुरुष मेरे भक्तोंसे विस्तार सहित यह ज्ञान कहता है उसे मैं अपनी आत्मातक देदेता हूं, क्योंकि वह भक्तोंका दाता है ॥ २६ ॥ जो कोई परममित्र साधकको इस ज्ञानरूपी दीपकसे मेरा दर्शन करावै सो दिन प्रति दिन शुद्ध होता है ॥ ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इसको श्रद्धासहित नित्य सावधान होकर श्रवण करते हैं, सो मुझमें परमभक्तिको प्राप्त होकर कर्मोंसे बद्ध नहीं होते ॥ २८ ॥ हे उद्धव ! हे मित्र ! तैंने यह ज्ञान अच्छी प्रकार मनमें धर लिया है इसलिये क्या तेरे मनका मोह शोक गया ? ॥ ॥ २९ ॥ बुद्धिमानूको चाहिये कि, यह ज्ञान दंभी, नास्तिक, धूर्त्त इत्यादि और जिसके सुननेकी इच्छा न हो उसे कभी न सुनावै ॥ ३० ॥ हे उद्धव ! जो इन दोषोंसे रहित हो, ब्रह्मण्यहो, अतिप्रिय साधु हो, शुद्रहो, उससे यह ज्ञान कहना चाहिये, जो भक्ति होय तो स्त्री शूद्रसे भी कहै ॥ ३१ ॥ जाननेवालेको इसके जाननेके उपरान्त फिर कुछ जाननेकी आवश्यकता नहीं, जैसे सुस्वाद अमृत पीनेके पीछे और पीनेके योग्य नहीं रहता ॥ ॥ ३२ ॥ भक्तोंको और साधना कुछ नहीं चाहिये, क्योंकि भक्तोंका तो केवल सब मैं ही हूं, ज्ञानसे मोक्ष होती है, विहित कर्म करनेसे धर्म होता है, योग करै, अणिमादि सिद्धि हो, सहजके कर्म करनेसे काम होय, खेती करै, अर्थ होय, दण्ड नीति करै, ऐश्वर्य, मैं हूँ होय और इन साधनाओंसे चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते है, हे उद्धव! सब पुरुषार्थरूप तुमको इस लिये और कुछ नहीं करना चाहिये, केवल एक मेरी शरण रहो ॥ ३३ ॥ जब यह मनुष्य सब कर्मोंको छोडकर मुझे आत्मा निवेदन करै, तब मेरे श्रेष्ठ कर्म करनेके योग्य होता है उसीसे फिर मोक्षको प्राप्त होताहै और निश्चयही मेरे समान ऐश्वर्यके योग्य हो [illegible]

है॥ ३४॥जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने सफल योगमार्गका स्वरूप दिखाया,तब उत्तम यश श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन,हाथ जोड,प्रीतिपूर्वक गद्गद कंठ हो, नेत्रोंसे अश्रुपात करते,गला रुकजानेके कारण उद्धवजी कुछ भी न बोलसके॥ ३५॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत राजा परीक्षित् ! अति स्नेहसे विह्वल चित्तको " धैर्यकर " थामकर, अपनेको कृतार्थ मानने लगे इसके उपरान्त हाथ जोड माथेसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्पर्शकर उद्धवजी बोले ॥ ३६ ॥ कि, हे ब्रह्मादिकोंके उत्पन्न कर्त्ता मैंने जो मोहरूपी अंधकारका आश्रय कियाथा, सो तुम्हारे समीपसे जातारहा जैसे सूर्यके समीप अंधकार, सीत, भय, कहाँ होसकते हैं * ॥ ३७ ॥ तुमने अति दया करके मुझे अपने सेवकको विज्ञान दीपक दिया, इसकारण कौन तुम्हारे उपकारका ज्ञाता है, अब तुम्हारे चरणारविन्द मूलको छोडकर और मैं किसकी शरण जाऊं ? ॥ ३८ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो ! जो सृष्टिकी वृद्धिके लिये तुमने अपनी मायासे मेरा स्नेहरूप पाश दाशार्ह, वृष्णि, अंधक, सात्वतनमें बढाया था; सो आत्मज्ञान शस्त्रसे तुमनेहीं काटकर दूर करदिया ॥ ३९ ॥ महायोगिन् ! तुमको प्रणाम है, मैं शरणहूं, मुझे इतनी शिक्षा दो कि, मेरी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें दृढ प्रीतिहो ॥ ४० ॥ यह बात उद्धवजीकी अंगीकार करके लोकसंग्रहके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी कि, हे उद्धव ! मेरी यह आज्ञा है कि तुम बद्रिकाश्रमको जाओ, क्योंकि वहाँ मेरे चरणतीर्थ गंगाजलसे स्नान आचमन करके शुद्ध होंगे ॥ ४१ ॥ हे उद्धव ! अलकनंदाके दर्शनसे सफल हो पाप दूरकर वल्कल वस्त्र पहर वनके फल खाय सुखमें स्थित होओ ॥ ४२ ॥ वहाँ सब इन्द्रियोंके निग्रहसे शीत, उष्ण सह, सुशील शान्त हो, ज्ञान विज्ञानसे संयुक्त समाधिमें बुद्धि स्थिर करो ॥ ४३ ॥ और मुझसे तुमने जो जो सीखा है, तथा अच्छी भाँति विचारा है उसकी भावना करते आवेशयुक्त वचन चित्तसे मेरे धर्ममें तत्पर हो, इन तीन गुणोंकी गतिका अतिक्रम करके

---

* **शंका**-श्रीकृष्णसे उद्धवने कहा कि, महाराज ! मेरा मोह अब मेरे शरीरको छोड कर भागगया, मोहसे अब मैं छूटगया, तो फिर यमुनाके तटपर विदुरजीने उद्धवसे श्रीकृष्णका वृत्तान्त बूझा तो क्यों मोहग्रसित होगये ? श्रीकृष्णका वृत्तान्त भी पुरा नहीं कहसके हाल भी कुछ देर पीछे कहा जो कोई कहै कि, ज्ञान पानेके पीछे फिर मोहने घेर लिया होगा तो सत्य है जो बहुत दिन होगये होंगे तो आश्चर्य नहीं था, परन्तु ज्ञान पाकर कृष्णके पाससे दो अथवा तीनहीदिन बीतेथे जब विदुरजीका और उद्धवका समागम हुवा था, यह शंका है ।

उत्तर-निस्सन्देह उद्धवजीका मोह नाश होगयाथा परन्तु मनुष्यके स्वभाव करके क्षणक्षणमें मोहके बश होकर श्रीकृष्णका स्मरणकर फिर मोहको त्याग दिया और श्रीकृष्णका मोह भी इस लिये किया कि, श्रीकृष्णही भक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं, इसलिये यमुनाके निकट उद्धवको मोह प्राप्त हुआ कुछ अज्ञानपनसे मोह उत्पन्न नहीं हुवा ।

आगे मुझे प्राप्त होंगे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कहनेसे उद्धवजी प्रदक्षिणाकर माथा भगवान्के चरणोंमें रख अश्रुपातके जलसे भगवान्के चरणको अभिषेक करने लगे, यद्यपि सुखदुःख रहित हुए हैं, परन्तु तो भी चलनेके कारण स्नेहसे कोमल बुद्धि होगये ॥ ४५ ॥ अत्यन्त दुस्त्यज स्नेहके वियोगसे अति अधीरहो अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके छोडनेको समर्थ न हुए और इसके उपरान्त अति कष्ट पाय फिर अपने स्वामीकी पादुका माथेपर धर प्रणाम करके चले, इस प्रकार वारंवार प्रणाम करके चले ॥ ४६ ॥ इसके उपरान्त अपने अंतःकरणमें श्रीकृष्णको धारणकर परम भागवत उद्धव बद्रिकाश्रमको चले गये और जगद्बंधु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे इस भाँति उपदेश पाय उसी भाँति तपस्याको साध हरिकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ जिनके चरण कमलोंका योगीश्वर सेवना करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह ज्ञानरूप अमृत आनंदसमुद्र परम भागवत उद्धवजीसे कहा, जो पुरुष श्रद्धापूर्वक इसका सेवन करते हैं, सो संसारसे मुक्त होजातेहैं ॥ ४८ ॥ जिन वेदकर्त्ता भगवान्ने संसारका भय दूर करनेके लिये एक ज्ञानरूप वेदसार अमृतका भ्रमरकी भाँति उद्धार किया, एक अमृत तो समुद्रमेंसे निकाला था सो तो देवताओंको पिलाया अब दूसरा यह वाणीरूप अमृत अपने सेवक तथा भक्तोंको पिलाया ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कन्धे
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥
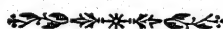
दोहा-तीसमाहिं वैकुण्ठकी, सुरति करी करतार।
मुशलयुद्धमिस सबनको, क्षणमें कियो सँहार ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन् ! परम भागवत उद्धवजीके वन चले जानेपर विश्वके रक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्या किया ? ॥ १ ॥ अपने कुलको ब्रह्मशापसे व्याप्त देख सबके नेत्रोंके परम प्रिय शरीरको यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रने कैसे छोडदिया ॥ २ ॥ जिस रूपमें लगे हुए नेत्रोंको स्त्रियें खैंचनेको समर्थ न हुईं, जो स्वरूप कर्णद्वारा हृदयमें प्रविष्ट हुआ और साधु पुरुषोंके मनमें तो लिखासा रहता है, जिस रूपकी शोभा वर्णन करनेसे पण्डितोंकी वाणीमें प्रीति उत्पन्न होतीहै अर्जुनके रथपर स्थित जिस स्वरूपको देखकर भारतमें मेरे युद्ध विषे जो योद्धाहैं, वह सारूप्य मुक्ति को प्राप्त हुए ? ॥ ३ ॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गमें सूर्यके मण्डल आदि भूमिमें कंपादि, अंतारिक्षकी दिशामें दाहादिक उठे बडे बडे उत्पातोंको देख सुधर्मा सभामें बैठे यादवोंसे यह कहने लगे ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! यह घोर मृत्युको बतानेवाले उत्पात उठ रहे हैं,इसलिये अब हमको दोघडी भी द्वारकामें

वास करना योग्य नहीं है ॥ ५ ॥ इसकारण सब स्त्री, बालक और वृद्ध शंखोद्धारको जाओ और हम प्रभासक्षेत्रको जायँगे, जहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वती हैं ॥ ६ ॥ वहाँ स्नानसे पवित्रहो, उपवासकर, भलीभाँति सावधानतासे स्नान कराय, चंदन और पूजाकी सामग्रियोंसे देवताओंका पूजन करैंगे ॥ ७ ॥ बडे भाग्यवान् ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र और हाथी घोडे रथोंसे पूजैंगे ॥ ८ ॥ निश्चय करके यह विधि अरिष्टकी नाशकहै और उत्तम मंगलकी आश्रयहै प्राणियोंमें देवता, ब्राह्मण, गौकी पूजा कल्याण-का हेतुहै ॥ ९ ॥ यादवोंमें सब वृद्ध इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन "ऐसे ही है" इस भाँति स्तुतिकर, नावों द्वारा समुद्र उतर सब प्रभास क्षेत्रको चलेगये ॥१०॥ यादवोंके देव भगवान्के उपदेशको सब यादव मंगलों सहित परमभक्तिसे प्रभासक्षेत्रमें करनेलगे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त प्रभासक्षेत्रमें दैवसे हतबुद्धि यादवोंने सुरस मदिराका महापान किया जिस मदिराके रससे बुद्धि भ्रष्ट होजाती है ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रकी मायासे मोहित मद्यपानसे अतिगर्वयुक्तचित्त यादवोंका अति बडा कोलाहल हुआ ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त क्रोधित हो वधको उद्यत यादव समुद्रके तटपर धनुष, खड्ग, गदा, तोमर और रिष्टियोंसे युद्ध करनेलगे ॥ १४ ॥ दुर्मद यादव चलायमान ध्वजा वाले रथ, हाथी, खच्चर, ऊंट, बैल और भैंसोंसे परस्पर मिलकर बाणोंसे मारने-लगे जैसे बनमें हाथीदाँतोंसे परस्पर हाथियोंको मारते हैं ॥ १५ ॥ असहनताको प्राप्त हो प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर तथा भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्रामजित्, अति दारुण होकर गद श्रीकृष्णकाभाई, एक श्रीकृष्णका पुत्र सुमित्र और सुरथ यह अतिक्रूर स्वभाववाले मत्सरसे व्याप्त होकर परस्पर घोर युद्ध करनेलगे ॥ १६ ॥ इसी प्रकार और भी निशठ, उल्मुक, सहस्रजित्, शताजित्, भानु आदि यादव जो भग-वान्की इच्छासे मोहित होगयेथे, वह वारुणीके पानसे मत्त और अन्धप्राय हो परस्पर युद्ध करकरके लडने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अंधक, भोज, सात्वत्, मधुके वंशके और अर्बुद, माथुर, शूरसेन देशके, विसर्जन, कुकुर, कुंति देशके स्नेहको तोड परस्पर मारने लगे ॥ १८ ॥ पुत्र पितासे और भाई भानजेसे, धेवतोंसे काकाओंसे, मित्रोंसे, सुहृदोंसे युद्ध करने लगे, मूर्ख जाति जातियोंहीको मारने लगे ॥ १९ ॥ बाणोंसे हीन होनेके उपरान्त, धनुषके टूटनेसे, शस्त्रोंके छीन जानेसे, पेटरोंको ग्रहण करनेलगे ॥ २० ॥ वह पटेरे यादवोंके हाथमें लेतेही वज्रके समान दुधार खाँडे होगये, उससे यादव वैरि-योंको मारने लगे ॥ २१ ॥ और जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हैं वरजा, तब हे परी-क्षित ! वह श्रीकृष्ण और बलदेवजीको वैरी मान मारनेकी बुद्धिसे यादव मोहितहो शस्त्र ले सन्मुख आये ॥ २२ ॥ हे कुरुनंदन ! इसके उपरान्त दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो खड्गरूप पटेरोंको हाथमें लेकर युद्धमें विचरते मारने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापसे व्याप्त श्रीकृष्णकी मायासे मोहित आत्मा यादवोंको स्पर्द्धासे उत्पन्न हुए क्रोधने क्षय कर दिया, जैसे बाँसकी अग्नि वनका क्षय कर डालती है ॥ २४ ॥ इसप्रकार अपना सब कुल

नाश होजानेके पीछे एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रही केवल अवशेष रहगये तब श्रीकृष्णने जाना कि, अब भूमिका भार उतर गया ॥ २५ ॥ महात्मा बलदेवजीने समुद्रके तटपर परमपुरुषके ध्यानरूप योगसे आपको आपमें युक्तकर मनुष्यलोक छोड दिया ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त श्रीदेवकीजीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीका चलना देख पीपलका आश्रय ले मौन होकर भूमितलमें बैठगये ॥ २७ ॥ शोभायमान चतुर्भुजरूप धारण किये अपनी कांतिसे दिशाओंका अंधकार दूर करते निर्मल अग्निसे दिखाई देने लगे ॥ २८ ॥ अब चतुर्भुज रूपका वर्णन करते हैं, श्रीवत्सका चिह्न, मेघके समान श्याम, सुवर्णके समान कांतिवाले, पीताम्बर पहरे, परममंगल ॥ २९ ॥ सुन्दर हास्य युक्त मुखकमल नील केशसे शोभित, कमलकेसे सुन्दर नेत्र, देदीप्यमान मकराकृति कुण्डल ॥ ३० ॥ कटिसूत्र, जनेऊ, मुकुट, कंकण, विराजमान हार, नूपुर, मुद्रिका, कौस्तुभसे शोभित ॥ ३१ ॥ वनमालासे व्याप्त अंग, मूर्तिमत् अपने आयुधोंसे युक्त, लाल कमल किसी शोभावाला वाम चरण दाहिनी जाँघपर धरकर बैठे ॥ ३२ ॥ मूशलके अवशेष लोहेके खण्डसे जिसने बाण बनायाथा उस जरा नाम बधिकने मृगके आकारवाले उस चरणको मृगकी शंकासे वींध डाला "यह व्याधा कुछ बहुत समयका नहींथा, यह उसी समय स्वर्गसे भगवत्की इच्छानुसार अंगद व्याधके रूपमें आया और मोहित हो बाण मार पिताके ऋणसे मुक्त हुआ" * ॥ ३३ ॥ फिर भगवान्के समीप आय चतुर्भुज श्रीभगवान्को देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ इसके उपरान्त वह अपराधी बधिक माथेसे

---

* **शंका**–बधिकको मनुष्यके और मृगके पहँचाननेमें भेद क्यों हुआ ? जिस भ्रमसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणारविंदको मृग समझकर महाराजके चरणमें बाण क्यों मारा ? निशाना लगानेवाले मनुष्य कभी नहीं चूकते, छोटी वस्तु होती है तो भी देख दृष्टिसे खेलतेहैं और त्रिलोकीनाथकी देह तो बडीथी वह बधिक कैसा मूर्ख होगया ? मृग और मनुष्य उसको नहीं जाने पडे । बडे सन्देहकी बात है ?।

उत्तर–अंगद वालिका पुत्र श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंकी सेवा करके स्वर्गको जाने लगा तो रघुनाथजीने अंगदसे कहा कि, जो वरदान तुझको चाहिये सो मांग, तब अंगदने कहा कि, हे रघुनन्दन ! हे दीनबन्धो ! मेरे पिताको आपने विना अपराध मारडाला सो उसका बदला आपसे लिया चाहता हूं, तब रघुनाथजी बोले कि, हम कुछ युग बीते द्वापरमें कृष्णावतार धारण करेंगे तब तुम्हारे पिताका ऋण तुमको चुकावेंगे और तुम्हारे हाथके बाणसे हम प्राण तजकर परम धामको जायँगे,जिस समयको श्रीरघुनाथजी कहगयेथे वही समय देखकर वीर अंगदने स्वर्गलोकसे उसी वनमें आनकर बधिकका रूप धारणकर लक्ष्मीपति भगवान्के चरणमें बाण मारा इसलिये व्याधेको मनुष्यकी और मृगकी पहँचान नहीं हुई, क्योंकि बहुत दिनका व्याध नहीं था वह तो नया बधिकथा केवल पिताका बदला लेनेको आयाथा ।

दैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें गिर पडा ॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन! पापबुद्धि मैंने यह अपराध अज्ञानसे किया है, हे उत्तमयश निष्पाप! मुझ पापीको क्षमा करो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो! जिसका स्मरण मनुष्योंके अज्ञानतमका नाश करता है, उन्ही तुम विष्णुका मैं अपराधी हूं ॥ ३६ ॥ हे वैकुण्ठनाथ! इसलिये मुझ मृगलोभी पापीको शीघ्र मारो, जिससे फिर कभी साधुओंका ऐसा अपराध न करूं ॥ ३७ ॥ जब तुम्हारी स्वाधीन मायाकी रचनाको ब्रह्मा और ब्रह्माके पुत्र रुद्रादिक तथा वेदके द्रष्टा भी नहीं जानते उन्हें ब्राह्मणोंके शापका लगना मायासे अंधे हुए पुरुषोंसे किसप्रकार कहा जासकता है? इससे यह बात चाहे कुछ भी न हो, परन्तु आप मुझे मार डालिये ॥ ३८ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे जरा! तू भय मत करे, उठकर खडा हो, तैंने तो यह मेरी इच्छानुसार ही कार्य किया है, इसलिये तू मेरी आज्ञासे पुण्यवानोंके स्थान स्वर्गको जा ॥ ॥ ३९ ॥ इच्छा करके शरीरधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाय, वह बधिक श्रीकृष्णकी तीन परिक्रमा दे नमस्कार कर विमानमें बैठ स्वर्गको चलागया ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त दारुक मार्गमें भगवान्को विना पाये तुलसी चन्दनकी गंध मिली वायुको सूंघता श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥ ४१ ॥ उस पीपलके वृक्षके नीचे तीक्ष्ण कांतियुक्त आयुधोंसे व्याप्त अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रको बैठा देख स्नेहसे मग्न आत्मा नेत्रोंमें जलभर दारुक रथसे उतर उनके चरणोंमें गिरा ॥ ४२ ॥ हे प्रभो! तुम्हारे चरणारविन्द विना देखे मेरा सब ज्ञान नाशको प्राप्त होगया और मोहमें प्रविष्ट हुआ मैं दिशाओंको भी नहीं जानताहूं, तथा शान्ति भी मुझे नहीं है. जैसे रात्रिमें चंद्रमाके गये पीछे दिशा नहीं जानी जातीहैं ॥ ४३ ॥ हे राजन्! जब इसप्रकार दारुक सारथीने कहा तब सारथीके देखतेही गरुडचिह्नयुक्त रथ घोडे ध्वजा सहित आकाशको उड गया ॥ ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त विष्णुके दिव्य आयुध चले गये इससे विस्मित सारथीसे भगवान् जनार्दन कहने लगे ॥ ४५ ॥ कि हे सूत! तू द्वारकाको जा, बांधवोंसे परस्पर जातिका मरण, योगमार्गसे बलदेवजीका प्रस्थान और मेरी दशा जो कुछ तैंने देखी है, सो कहना ॥ ४६ ॥ तुम बांधवों सहित द्वारकामें मत रहना, क्योंकि मुझसे छोडी हुई द्वारकाको अब समुद्र बोरेगा ॥ ४७ ॥ इसलिये अपनी सब सामग्री तुम हमारे माता पिताको लेकरके अर्जुनसे रक्षित हो इन्द्रप्रस्थ जाओ, इसप्रकार बांधवोंसे कहो ॥४८॥ तुम ज्ञाननिष्ठ निस्पृह हो मेरे धर्मसे और यह मेरी मायाकी रचना जान शान्तिको प्राप्त होओ ॥४९॥ जब इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब दारुक श्रीकृष्णचन्द्रकी वारम्वार परिक्रमा दे माथा नवाय कुलके नाश होनेसे मलीन चित्त हो द्वारकापुरीको चलागया ५०

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे एकादशस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

दोहा-इकतिसमें नरलोकते, कृष्ण गये निजधाम।
गये देव निज निज भवन, तज द्वारका ललाम॥ ३१॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! दारुक सारथीके जाने उपरान्त वहाँ

ब्रह्मा, पार्वती सहित महादेव, इन्द्रादिक देवता, सनकादिक मुनि, मरीचि आदि प्रजापति ॥ १ ॥ पितर, गंधर्व, विद्याधर, महानाग,चारण,यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा, पक्षी ॥ २ ॥ भगवान्‌का प्रस्थान देखनेकी इच्छासे परम उत्कंठित श्रीकृष्णके जन्म कर्म गाते और कहते वहाँ आये ॥ ३ ॥ हे राजन् ! फूलोंकी वर्षा करते, परमभक्तिसे युक्त, विमानोंकी पंक्तिसे आकाशको संकुल करने लगे ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त प्रभु सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, ब्रह्मा इन्द्रादिक अपनी विभूतिको देख अपने आपको अपने आपमें संयुक्त कर, अपने लोक लेजानेके लिये आये हुए बहुतसे देवताओंको देख, समाधि लगाकर अपने नेत्रकमल मूँदलिये ॥ ५ ॥ जैसे स्वेच्छा मृत्युवाले योगी अपने शरीरको योगधारणासे जलाय लोकोंमें प्रवेश करते हैं, परन्तु श्रीकृष्णने वैसे नहीं किया, किन्तु उसी शरीरसे अपने परमधामरूप वैकुण्ठको चले गये, कारण यह था कि, यदि इस शरीरको योगधाराणसे जला देते तो उसमेंका संपूर्ण जगत् भी भस्म हो जाता और उस शरीरका ध्यान व धारणा करनेवाले उपासक लोगोंको पीछे उस देहका साक्षात्कार और फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ६ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वधाम पधारे, उस समय देवलोकमें नगाडे बजने लगे आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे भूमिसे सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्त्ति, लक्ष्मी यह सब चले गये ॥ ॥ ७ ॥ परन्तु ब्रह्मादिक देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको स्वधाममें प्रवेश करते न देखा, इस कारण यह अतिआश्चर्यको प्राप्त हुए, क्योंकि श्रीकृष्णकी गति किसीने न जानी ॥ ८ ॥ जैसे मेघमण्डलीको छोडकर आकाशमें जाती बिजलीकी गति मनुष्योंसे नहीं देखीजाती, उसी प्रकार देवताओंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति नहीं देखी गई, उनकी गति उनके पार्षद ही जानते हैं ॥ ९ ॥ सो ब्रह्मा, रुद्रादिक देवता श्रीकृष्णचन्द्रकी योगगति देखकर अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए और उस गतिकी स्तुति करते अपने अपने लोकोंको चले गये ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! यादवोंमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म धारण करना मायासे अनुकरण मात्र जानना, जैसे नट निर्विकार हैं, परन्तु नानारूपोंसे अनुकरण करता है, इसप्रकार आप ही इस जगत्‌को उत्पन्न कर और अंतर्यामी भावसे उसमें आवेशकर अंतकालमें संहार करते हैं, परन्तु आप अपनी महिमासे निर्विकार हैं ॥ ॥ ११ ॥ तुम और मूर्त्ति मत जानो इसी अवतारमें श्रीकृष्णचन्द्रका प्रताप बहुत बडा देखा है, जिन्होंने परलोकसे सांदीपनका पुत्र प्राप्त किया और उसे उसी शरीरसे शरणागतरक्षक श्रीकृष्ण ले आये, ब्रह्मास्त्रसे दग्ध तुम्हारी रक्षा करी, फिर कालोंके महाकाल रुद्र भगवान् महादेवजीको बाणासुरके संग्राममें जीत लिया और जरानाम वधिकको देह सहित स्वर्गको भेज दिया, तो वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्या अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ थे ? ॥ १२ ॥ अहो ! जो श्रीकृष्णचन्द्र समर्थ थे तो कुछ काल अभी यहाँही क्यों न रहे ? तो इसके उत्तरमें कहतेहैं कि, संपूर्ण जगत्‌के सृष्टि प्रतिपालन और संहारमें आप ही कारण हैं और की आकांक्षा वह नहीं रखतेहैं अनेक शक्तियोंको धारण करते हैं,

यद्यपि ऐसे हैं परन्तु तो भी यादवोंका संहार होजानेसे अपने देहका इसलोकमें रखनेकी इच्छा न की, आपही निज धाममें अपने देहको प्राप्त किया, यहाँ हेतु कहतेहैं, भगवान्ने विचारा कि, अब इस देहका यहाँ क्या काम है ? स्वधर्मी आत्मनिष्ठोंकी जो रीति थी सो दिखाई, और भाँति वह आत्मनिष्ठ दिव्य गतिके अनादरसे, योगबलसे देहकी सिद्धि कर कहीं यहाँही क्रीडा करनेको मन करे, इसकारण भगवान् आप भी चले गये ॥ १३ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर, सावधान मनसे, अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रकी परमगतिको कहेगा, सो परम उत्तम गतिको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ अब वसुदेवादिककी गति कहते हैं,इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे बिछुडा हुआ दारुक नाम सारथी द्वारकामें आय वसुदेव उग्रसेनके चरणोंमें पड, अपने अश्रुजलसे उनके चरणोंको सींचने लगा ॥ १५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इसके पीछे उस सारथीने सब यादवोंके नाश होनेका वृत्तान्त कहा वह सुनकर बसुदेवादिकोंके हृदयमें अत्यन्त उद्वेग हुआ और शोकसे मूर्च्छित हो ॥ १६ ॥ मुख कूटते श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल उतावले वहीं आये, जहाँ बांधव प्राणरहित शयन कर रहेथे ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी और वसुदेव, श्रीकृष्ण और बलदेव अपने पुत्रोंके विना देख शोकसे आतुर हो बेसुधि होगये ॥ १८ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगसे अत्यन्त आतुरहो, वहाँही प्राण छोडदिये और अपने अपने पतियोंसे मिलकर स्त्रियें चितामें प्रवेश करगईं ॥ १९ ॥ बलदेवजीकी स्त्री बलदेवजीके देहको आलिंगनकर चितामें प्रवेशकर गईं और वसुदेवकी स्त्री वसुदेवसे, श्रीकृष्णकी पुत्रवधू प्रद्युम्न आदि अपने अपने पतियोंसे मिलकर रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी स्त्री श्रीकृष्णमय हो अग्निमें प्रवेश करगईं ॥ २० ॥ अर्जुनने अपने परम प्रिय सखा श्रीकृष्णचन्द्रके विरहसे आतुर होनेपर भी सच्ची मुक्ति देनेवाले भगवान्के वचनोंको स्मरण करके उसने अपने आत्माको सांत्वना दी ॥ २१ ॥ जिनकी संपत्ति नाशको प्राप्त हुई और आप भी नाशको प्राप्त हुए, उन बांधवोंका अर्जुनने पिंडदान, तर्पण आदि कार्य विधिपूर्वक क्रमसे किया ॥ २२ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इसके उपरान्त श्रीयुत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मंदिरको छोडकर श्रीकृष्णसे त्यागी संपूर्ण द्वारकाको समुद्रने क्षण भरमें डुबादिया ॥ २३ ॥ मंदिर बचानेका कारण यह है कि, भगवान् मधुसूदन वहाँ नित्य विराजते हैं और वह मंदिर कैसा है कि, जिसका स्मरणमात्र करनेसेही संपूर्ण अमंगल नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ २४ ॥ मरनेसे बचे हुए स्त्री, बालक, वृद्धको अर्जुनने लेकर इन्द्रप्रस्थमें प्रवेश कराय वहाँ वज्रनामयादवको अभिषेक किया ॥ २५ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परमभागवत परीक्षित् ! तुम्हारे पितामह पांडव अर्जुनके मुखसे सुहृदोंका वध सुनकर तुमको वंशधारी समझ महाप्रस्थानको चले गये ॥ २६ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासहित देवदेव भगवान् विष्णुके जन्म और कर्मोंको सुनेंगे अथवा कहेंगे, वह संपूर्ण पापोंसे छूट जायँगे ॥ २७ ॥ इसप्रकार इस ग्रन्थमें और

दूसरे ग्रन्थोंमें वर्णन किये हुए परममंगल भगवान् वासुदेवके सुन्दर अवतारोंके चरित्र जो मनुष्य कहेंगे सो परमहंसोंके शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त होंगे ॥ २८ ॥

भजन-जनप्रतिपाल दयाल दयानिधि क्यों चितवत नहिं ओर हमारी। कीजै कृपाजान जन हमपर हे ब्रजेश गोपाल मुरारी। जबसे सतशिक्षा हम त्यागी। बुधिबल औ सुख सम्पति भागी। पीछे विपति अविद्यालागी ॥ निशिदिन देत रहत दुखभारी ॥ १ ॥ कुमति कलह घटघटमें छाई ॥ शुभगुण सुमति समूल नशाई। करत परस्पर द्वेष बुराई ॥ हानिलाभ नहिं तनक बिचारी ॥ २ ॥ हम सब तुम्हरी ओर निहारैं ॥ त्राहि त्राहि दिन रात पुकारैं। तुम विन जाको जाय जुहारैं ॥ ऐसो को भक्तन हितकारी ॥ ३ ॥ वेगजननकी ओर निहारो ॥ कलह कुमतिकी भूल उखारो। दारिद दुर्गुण दुर्ग बिदारो ॥ दुष्टदलन दीनन दुखहारी ॥ ४ ॥ नाथ विनय मम स्वीकृत कीजै ॥ विद्यादान दयाकर दीजै। चरण शरणमें हमको लीजै ॥ लाग रही दृढ आश तुम्हारी ॥५॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे श्रीरामगंगातटस्थ मुरादाबाद नगर-निवासी सुप्रसिद्ध कविवर माथुरवंशीय श्रीयुत लाला शालिग्राम वैश्यकृत एकादशस्कन्धे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां श्रीकृष्णानिज-धामगमनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस-बम्बई.

इति

शुकसागर एकादशस्कंध

समाप्त.

श्रीमद्वेंकटेशो विजयतेतराम्।

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा।

द्वादशस्कन्ध १२.

गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.

बालमुकुन्द.

॥ श्रीदत्तात्रेयाय नमः ॥

शुकसागर।

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा.

द्वादशस्कन्ध १२.

दोहा–आदि ब्रह्म अद्वैत अज, अविनाशी अविकार।
श्रीमुकुन्द गोविन्दपंद, भज मन वारम्वार॥

कबित्त–काहुको सहारोहै भवानी राजरानीजूको, काहुको सहारो नीको गिरिजा के प्यारेको। काहुको सहारो पुनि काली विकराली-जूको, काहुको सहारो भूत नाथ बैलवारेको॥ काहुको सहारो भलो भैरों हनुमानजीको, काहुको सहारो नीको पूर्ण नाथद्वारेको। जानै गिरिधारो ओ उबारो ब्रज शालिग्राम, मोहिं तो सहारो वाहि नन्दके दुलारेको॥ १॥ काहुकोहै उमा रमा शारदामैं बडी प्रीति, काहुको भवानी और लक्ष्मीमैं मन है॥ काहुको गणेश औ महेश माहिं लागो चित्त, काहुको तो इष्टदेव पानी रु पवन है॥ काहुको है ध्यान हनुमान और भैरवको, काहुको सुपूज्य शम्भु पुत्र गजानन है॥ काहुके शालि-ग्राम रामनाम अमरमूल, मेरे तौ केवल एक राधिकाही धन है॥ २॥

सोरठा-जय ब्रजचन्द मुकुन्द, आनँदनिधि ऋधिसिधिभवन।
जय वृन्दावनचन्द, नन्दसुवन त्रिभुवनपती॥

राजा परीक्षित्‌ने बूझा कि, हे मुने! यदुकुलके भूषणरूप श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द जब अपने परमधामको चलेगये, तब पृथ्वीपर आगेको किसका वंश चला? यह मुझको समझाकर कहो॥ १॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! बृहद्रथके कुलके अन्तमें पुरंजय नाम राजा होगा, जिसका वर्णन प्रथम नवमस्कन्धमें आपको सुनाचुकाहूं, उसका मंत्री शुनक पुरंजयको मारकर प्रद्योतनाम अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बिठावेगा, उसके पालक नाम पुत्र होगा॥ २॥ उसके विशाखयूप नाम पुत्र होगा, उसके राजक नाम एक पुत्र होगा, राजकके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा, यह पाँच राजा प्रद्योतन नामसे प्रसिद्ध होंगे॥ ३॥ और एकसौ अडतीस वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करेंगे, उनके पीछे शिशुनाग नाम राजा होगा, उसके पीछे काकवर्ण राजा होगा, काकवर्णके क्षेमधर्मा नाम पुत्र होगा, उसके क्षेत्रज्ञ नाम पुत्र होगा॥ ४॥ क्षेत्रज्ञके विधिसार नाम पुत्र उत्पन्न होगा, उसके अजातशत्रु नाम पुत्र होगा, उसके दर्भकनाम पुत्र होगा, उसके अजय नाम पुत्र होगा॥ ५॥ अजयके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा, उसके महानन्द नाम पुत्र होगा; हे कुरुवंशभूषण! यह शिशुनागादिवंशी दश राजा तीनसौ साठ ३६० वर्षतक कलियुगमें राज्यभोग करेंगे॥ ६॥ हे महाराज! महानन्दका पुत्र शूद्रीके गर्भसे बडा तेजस्वी और पराक्रमी॥ ७॥ महापद्म सेनाका पति, नन्दनाम क्षत्रिय वंशका विध्वंस करनेवाला होगा, इस नन्दराजासे लेकर आगेको शूद्रके तुल्य अधर्मी राजा होंगे॥ ८॥ सो यह नन्द पृथ्वीपर एक महाछत्रधारी राजा होगा और कोई संसारमें उसकी आज्ञाको उल्लंघन न करैगा, मानो क्षत्रियोंका मानभंग करनेमें दूसरा परशुराम होगा॥ ९॥ उस नन्दराजाके सुमाल्यादिक आठ पुत्र होंगे, वह सब राजा होकर सौ १०० वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करेंगे॥ १०॥ अपने अनुगत उन नवो नन्दराजाओंको कोई एक चाणक्य नाम ब्राह्मण मारेगा, तिनके मरणोपरान्त कलियुगमें मौर्य नाम राजा पृथ्वीका राज्य करैगा॥ ११॥ फिर वही नवनंदका मारनेवाला चाणक्य नाम ब्राह्मण चन्द्रगुप्त मौर्यको राज्यसिंहासनपर बैठावेगा, उस चन्द्रगुप्तके वारिसार नाम पुत्र होगा, उसके अशोकवर्द्धन नाम पुत्र होगा॥ १२॥ अशोकवर्द्धनके सुयशा नाम पुत्र होगा, उसके संगतनाम पुत्र उत्पन्न होगा, संगतके शालिशूकनाम पुत्र होगा, उसके सोमशर्मा नाम पुत्र होगा॥ १३॥ सोमशर्माके शतधन्वा पुत्र होगा, उसके दूसरा बृहद्रथ पुत्र होगा; यह दश मौर्यवंशी राजा कलियुगमें एकसौ सैतीस १३७ वर्षतक पृथ्वीपर आनन्द भोगेंगे, हे कौरवकुलमार्त्तण्ड! इन सब मौर्यमें पहले एकादशरथ नाम मौर्य होगा, यह जानने योग्य बात है॥ १४॥ फिर मौर्यवंशका राजा बृहद्रथका सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामीको मारकर अपने पुत्र पौष्पमित्रको वहाँका राज्यसिंहासन देगा, पौष्पमित्रका पुत्र अग्निमित्र राजा होगा उसका सुज्येष्ठ नाम पुत्र होगा॥ १५॥ सुज्येष्ठका पुत्र

वसुमित्र होगा, वसुमित्रका भद्रक नाम पुत्र होगा, भद्रकका पुत्र पुलिन्द होगा, पुलिन्दका पुत्र घोष होगा, घोषका पुत्र वज्रमित्र होगा, वज्रमित्रका पुत्र भागवत होगा; भागवतका पुत्र देवभूति होगा ॥ १६ ॥ यह दश शुंगराजा कहाये जायँगे और दशो राजा एकसौ बारह ११२ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करैंगे, हे कुरुकुलभूषण ! इन सबमें शुंग नाम राजा पहिले होगा, हे नरेन्द्र ! फिर यह भूमि: अल्पगुणवाले कण्व नाम राजाओंके आधीन रहैगी ॥ १७ ॥ देवभूति नाम शुंगाका मंत्री बडा बुद्धिवान् वसुदेवनामा होगा सो परस्त्रीगामी देवभूति शुंगाको मारकर आपही राज्य करैगा, उसके भूमित्र पुत्र होगा भूमित्रके नारायण नाम पुत्र होगा ॥ १८ ॥ नारायणके सुशर्मा नाम पुत्र होगा यह कण्व वंशी चार राजा कलियुगमें तीनसौ पैंतालीस ३४५ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करैंगे ॥ ॥ १९ ॥ सुशर्माका कोई चाकर महानीच शूद्र जाति असत्तम बली नाम कण्ववंशी सुशर्माको मारकर कुछ वर्षतक आप पृथ्वीका राज्य करैगा ॥ २० ॥ फिर उसके पीछे उस बली नाम राजाका भ्राता कृष्णनाम पृथ्वीका पति होगा, उसके श्रीशान्तकर्ण नाम पुत्र होगा, श्रीशान्तकर्णके पौर्णमास नाम पुत्र होगा ॥ २१ ॥ उसके लम्बोदर नाम पुत्र होगा, लम्बोदरका पुत्र चिविलक होगा, चिविलकके मेघस्वाति नाम पुत्र होगा, उसके अटमान नाम पुत्र होगा ॥ २२ ॥ अटमानके अनिष्टकर्मा नाम पुत्र होगा, उसके हालेय नाम पुत्र होगा, हालेयके तलक नाम पुत्र होगा, तलकके पुरीषभीरु नाम पुत्र होगा उसका सुनन्दन नाम पुत्र होगा ॥ २३ ॥ सुनन्दनके चकोर नाम तनय होगा, चकोरके नवभाशिवस्वाति नाम पुत्र होगा । हे रिपुदमन ! उसके गोमती नाम पुत्र होगा, गोमतीके पुरीमान् नाम पुत्र होगा ॥ २४ ॥ उसके मेदशिरा नाम पुत्र होगा मेदशिराके शिवस्कन्द नाम पुत्र होगा, ताके यज्ञश्री नाम पुत्र होगा, यज्ञश्रीके विजय नाम पुत्र होगा, उसके चन्दविज्ञ नाम पुत्र होगा और उसके सलोमधि नाम पुत्र होगा ॥ २५ ॥ हे कुरुनन्दन ! यह तीस राजा चारसौ छप्पन ४५६ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करैंगे ॥ २६ ॥ इनके उपरान्त आवभृति नाम नगरीमें सात आभीर जातिके राजा होंगे, उनके पीछे फिर दश गर्दभ नाम राजा होंगे, उनके उपरान्त कंकजातिके सोलह राजा महालोभी होंगे ॥ २७ ॥ उनके पीछे आठ यवन राजा होंगे, उनके पीछे चौदह तुरुष्क (तुरुक, तुरकिस्तानके वासी राजा होंगे) फिर दश गुरुण्ड (अंगेरज,इंगलिस्तान निवासी) राजा होंगे, उनके पीछे ग्यारह मौन राजा होंगे ॥ २८ ॥ यह सब राजा एक सहस्र निन्यानवे १०९९ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करैंगे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! ग्यारह मौन राजा तीनसौ ३०० वर्षतक पृथ्वीका भोग करैंगे, उनके मरनेके पीछे किलकिला नगरमें भूतनन्द नाम राजा होगा, उसके पीछे वंगिरि नाम राजा होगा ॥ ३० ॥ फिर उसके पीछे उसका भाई शिशुनंदि और शिशुनन्दिके पीछे यशोनन्दि यशोनन्दिके पीछे प्रवीरक, यह सब राजा एकसों छः १०६ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करैंगे ॥ ३१ ॥ उस शिशुनन्दिके तेरह पुत्र होंगे और वह सब बाह्लीकही कहलावेंगे और आनन्द-

पूर्वक पृथ्वीका राज्य करैंगे, फिर और एक दूसरा पुष्पमित्र नाम राजा होगा, उसके दुर्मित्र नाम पुत्र होगा ॥ ३२ ॥ फिर सात तो अंध्र, सात कौशल और एक वैदूर्य नगरका नरेश नैषध यह सब खण्डमण्डलेश्वर राजा एकही समयमें होंगे ॥ ३३ ॥ फिर मगध देशमें विश्वस्फूर्जित पुरंजय नाम राजा होगा, सो बडा पराक्रमी विदुर्मति होगा और ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको धर्मसे भ्रष्ट करके पुलिन्द, यदु और मद्रक म्लेच्छकी तुल्य करदेगा ॥ ३४ ॥ और जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, न हों ऐसी नीच प्रजाको स्थापन करैगा, यह वीर्यवान् पुरंजय क्षत्रियोंका विध्वंस करके पद्मावती नाम पुरीमें बसकर हरद्वारसे लेकर प्रयागतक राज्य करैगा ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्रदेश, उज्जैन, आभीर, शूर, अर्बुद, मालवादेशनिवासी द्विज अर्थात् तीनों वर्ण यज्ञोपवीत क्रिया न करके संस्कार हीन होजायँगे और राजा भी शूद्रके समान काम करने लगैंगे ॥ ३६ ॥ सिन्धुनदीसे लेकर चन्द्रभागानदीके किनारेतक और कौंतीपुरी काश्मीर आदि सब देशोंमें शूद्र क्रियाहीन म्लेच्छप्राय वेदमर्यादा रहित, तेजहीन राजा होंगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह सब एकही कालमें म्लेच्छप्राय अधर्मी, असत्यपरायण, अल्पदाता, महाक्रोधी ॥ ३८ ॥ स्त्री बालक गो ब्राह्मणको मारनेवाले, परनारी, पराये द्रव्यके, हरनेवाले उत्पन्न होंगे और मरैंगे, अल्प पराक्रम, अल्प आयुर्बलवाले होंगे ॥ ३९ ॥ गर्भाधान आदिक संस्कारोंसे रहित, सन्ध्या तर्पणादि क्रियाओंसे हीन, रजोगुण, तमोगुणसे, आवृत्त म्लेच्छ राजाओंका रूप धारण किये प्रजाको अनेक अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले होंगे ॥ ४० ॥ इन पालनेवाले राजाओंके सब देश उन राजाओंके भाव और आचरणको और अपवाद करनेवाले लोगोंको परस्परके क्लेशोंसे और राजाओंके किये हुए दुष्ट कर्मोंसे दुःखी होकर क्षयको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कन्धे
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-दुसरे जब कलिकालको, बढै दोष अत्यन्त ।
तब हरि कल्की रूपधर, मारहिं दुष्ट असन्त ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके उपरान्त फिर महा बलवान् कालके प्रभावसे दिनपर दिन धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल, स्मरण आदि घटता चला जायगा ॥ १ ॥ कलियुगके विषे जिस पुरुषके पास धन होगा, वही बलवान्, गुणनिधान, आचारवान् और बुद्धिवान् कहलावेगा और जो महा बलवान् होगा, वही धर्माध्यक्ष और न्यायशाली हो सबको जीतैगा ॥ २ ॥ रीति प्रीति केवल एक स्त्री और पुत्रहीमें रहैगी और सुहृद, मित्र कुल, गोत्रादिकमें कपट व्यवहार रह जायगा स्त्री, पुरुष होनेमें कुछ श्रेष्ठ कुल, आचार विचार न होगा केवल रति करनेमें कुशल देखलैंगे और ब्राह्मणपनमें केवल जनेऊ मात्रही रहजायगा ॥ ३ ॥ आश्रम चिह्नमात्रहो करके पहिचाने जायँगे, परस्पर स्नेह कहीं नहीं रहैगा, धनहीन न्यायमें नित्य प्रति हारतेही रहा करैंगे, क्योंकि न्यायाध्यक्ष जबतक

धनपात्रोंसे द्रव्य पाते रहैंगे तबतक धनहीनको हरातेही रहा करैंगे और अधिक बोलने वालेहीको लोग पण्डित कहैंगे ॥ ४ ॥ निर्धनोंका नाम लोग असाधु रक्खैंगे दम्भवान् और कपटीहीको लोग साधु कहैंगे, विवाह स्वीकार मात्रही समझा जायगा और स्नानही सब शृंगार मात्र होगा ॥ ५ ॥ जो ताल वा सरोवर दूर होगा, वही तीर्थ माना जायगा माता पिता और गुरुको कोई तीर्थ नहीं मानेंगे,सब शिरपर बाल रखना यही सुन्दरता कहावेगी, जैसें तैसे पेट भरलेना परम चतुरता और पराक्रम गिना जायगा, और ढीठ पुरुषही सत्यवादी कहलावेंगे ॥ ६ ॥ कुटुम्बका उदरपूर्ण करनाही स्यानपन और चतुराईका मूल समझा जायगा धर्मका सेवन केवल इसीलिये किया जायगा जिससे संसारमें यशहो इसप्रकार जब सर्वत्र भूमण्डल प्रजाओंसे व्याप्त होजायगा ॥ ७ ॥ तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इनमें जो बली होगा वही भूपाल कहा जायगा लोभी निर्दयी लुटेरोंसे और राजाओंसे ॥ ८ ॥ अपना स्त्री,धन छीन लेनेके भयसे सब प्रजा भागकर पर्वतोंमें, वनोंमें जा छिपैगी और वहाँ शाक, कन्दमूल, फल, मधु, माँस, पुष्प, बीज, इनसे अपना उदर पूर्ण करैगी ॥ ९ ॥ अकाल और राजाओंके दण्डसे कष्टपाकर अनावृष्टि, शीत, वायु, धूप, वर्षा और हिमसे परस्पर अत्यन्त पीडित हो क्लेशपाकर सम्पूर्ण नष्ट होजायगा ॥ १० ॥ भूख, प्यास, रोग, संताप और चिन्तासे प्रजा अत्यन्त पीडित होजायगी और मनुष्योंकी पूर्ण अवस्था कलियुगमें बीश २० अथवा तीस ३० वर्षकी हुआ करैगी ॥११॥जब कलियुगका महादोष बढैगा तब प्राणी तनु क्षीण और महामलीन होजायँगे ॥

दोहा–जब वर्णाश्रम धर्म सब, ह्वै हैं जगत विनाश।
तब वेदनके पन्थको, नेक न रहै प्रकाश ॥ १२ ॥

धर्मके बदलेमें पाखण्डही पाखण्ड रहजायगा, राजा लुटेरे होंगे, वृथा हिंसा और बात-बातमें झूठ बोलकर नाना प्रकारकी वृत्तियोंको करैंगे और सदा बुरे कामोंमें निष्ठा रहैगी ॥ १३ ॥ सब वर्णाश्रम शूद्रके सदृश होजायँगे और गायें बकरीके समान छोटी छोटी होंगी,चारों आश्रम गृहस्थप्राय होजायँगे और स्त्रीके भैयोंसे लोग प्यार करैंगे और घरको सम्बन्ध मात्र मानैंगे ॥ १४ ॥ अन्न और औषधियें सब क्षीण होजायँगी, केवल वृक्षोंमें शमीके वृक्षही रहजायँगे, वर्षाकालमें बिजली अधिक चमकेगी,वर्षा बहुत थोडीहुआ करैगी, गृहस्थियोंके घर धर्मकर्मसे शून्य होजायँगे ॥ १५ ॥ इसप्रकार कलियुगमें सब मनुष्य अधर्मी हो गधेके समान होजायँगे और महाभयंकर कलियुगके अंतका समय आवेगा, तब धर्मकी रक्षा करनेके लिये आदि पुरुष भगवान् शुद्ध सतोगुण मूर्ति धारण करके निष्कलंक रूपसे प्रगट होंगे ॥

दोहा–संतनके सुख करनको, हरन भूमिको भार।
ह्वैहैं कलियुग अन्तमें, निष्कलंक अवतार ॥ १६ ॥

चराचरके गुरु सबके आत्मा ईश्वर विष्णुका अवतार महात्मा पुरुषोंके धर्मकी रक्षा और उनके कर्मोंके प्रचारके लिये होगा ॥ १७ ॥

दोहा-गंगाके तटमें अहै, संभल नामक ग्राम।
तहाँ विष्णुयश विप्रइक, ह्वै है अति मतिधाम ॥

उस विष्णुयशा ब्राह्मणके घरमें चैत्रशुक्ला द्वादशीको विष्णु भगवान् कल्किअवतार धारण करैंगे ॥ १८ ॥ उसी समय देवतालोग अत्यन्त शीघ्रगामी देवदत्त नाम एक घोडा लेकर उनके सन्मुख उपस्थित होंगे, तब भगवान् उस घोडेपर चढकर खड्ग हाथमें ले दुष्टोंके दमनकर्त्ता अणिमादिक अष्टसिद्धियोंसे संयुक्त ॥ १९ ॥ जगदीश्वर भगवान् अनुपम कान्तिवाले महातेजस्वी कल्कीरूपसे राजाओंकेसा वेष धारण किये, उस घोडेपर चढ करोडों चोरोंका विध्वंस करैंगे ॥ २० ॥ जब सब चोरोंका संहार होजायगा, तब देश, देशान्तरके मनुष्योंके अतिपुण्यरूप सुगन्धयुक्त पवनके लगनेसे उन मनुष्योंके मन उज्ज्वल होजायँगे ॥ २१ ॥ और उन नगरनिवासियोंके हृदयमें शुद्ध चैतन्य सत्त्वमूर्त्ति भगवान् वासुदेव स्थित होंगे, तब उन प्रजानके पुत्रादिक उत्तम और पुष्ट होंगे ॥ २२ ॥ जब धर्मके पालनेवाले कल्किभगवान् प्रगट होंगे तब सतयुग वर्त्तने लगेगा और प्रजाकी सन्तान सात्विकी होगी ॥ २३ ॥ जब चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति यह सब पुष्यनक्षत्रके योग करके एक राशिमें आवैंगे तब सतयुग होगा ॥ २४ ॥ जो चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी राजा हो चुके हैं और जो इससमय विद्यमान हैं और जो आगेको होंगे, उन सबके नाम संक्षेपसे भिन्न भिन्न मैंने आपको सुनाये ॥ २५ ॥ तुम्हारे जन्मसे लेकर नन्दके राज्यतक पन्द्रहसौ दश, १५१० वर्ष बीतगये ॥ २६ ॥ आकाशमें सप्तऋषियोंके मध्य जो दो तारे पुलह और क्रतु, पहिले दीखते हैं उन दोनोंके मध्यमें रात्रिके समय उन दोनोंको समान देखने वाले ॥ २७ ॥ अरुंधतीके नक्षत्रसहित सप्तऋषि, मनुष्योंके सौ १०० वर्षतक प्रत्येक नक्षत्रपर रहा करते हैं, अर्थात् जैसे चन्द्रमा एक नक्षत्रपर एक दिवस रहता है, इसीप्रकार सप्त ऋषि सौ १०० वर्षके अनुमान एक नक्षत्रपर रहते हैं, सो यह सप्तऋषि तुम्हारे जन्मके समय मघा नक्षत्रपर थे और इससमय भी मघा नक्षत्रपर स्थित हैं ॥ २८ ॥ कलियुगके आनेका समय ठीक ठीक इस प्रकार निश्चय कियाहै कि, जब महातेजस्वी शुद्ध सत्यमूर्ति श्रीकृष्ण भगवान् अपने परमधामको सिधारे, उसी समय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, जिस कलियुगके आतेही मनुष्योंके मनकी पापमें रुचि हुई ॥ २९ ॥ हे राजन्! जबतक रमापति भगवान् अपने चरणारविन्दोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते और इसपर विराजमान रहे, तबतक कलियुग पृथ्वीपर अपना कुछ कर्तव्य न करसका ॥ ३० ॥ जबसे मघा नक्षत्रमें सप्तऋषि वर्त्तें हैं, तबहीसे कलियुग प्रवृत्त होकर देवताओंके बारह सौ १२०० वर्षतक कलियुग रहता है ॥ ३१ ॥ अब सप्तऋषि मघानक्षत्रसे निकले पूर्वाषाढा नक्षत्रपर जायँगे, तब नन्दका राज्य वर्त्तेगा और उसी नन्दके राज्यसे कलियुगका अत्यन्त प्रताप बढैगा ॥ ३२ ॥ जिसदिनसे जिस मुहूर्त्तसे जिस क्षणसे श्रीकृष्ण भगवान् अपने परमधामको सिधारें उसीदिन और उसीसमय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, ऐसे भूत कालके जाननेवाले ऋषि लोग कहते

हैं ॥ ३३ ॥ जब देवताओंके एक सहस्र १००० वर्ष व्यतीत होजायँगे जो कलियुगका प्रमाण है, फिर पीछे सतयुगका प्रवेश होगा और सतयुगके आनेका यही लक्षण दिखाई देगा कि मनुष्योंके मनमें आपसे आप आत्माका प्रकाश होजायगा ॥ ३४ ॥ हे राजन्! जिसप्रकार पृथ्वीपर मनुका वंश हुवा और आपसे कहा, उसीप्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंका वंश युग युगमें जाननेको योग्यहै ॥ ३५ ॥ जो आजतक नाममात्रसेही जाने जाते हैं, उन जाननेवालोंकी केवल कथामात्रही कहनेको रहगई है, ऐसे महात्मा पुरुषोंकी कीर्त्तिही संसारमें आजतक चली जाती है, वह लोग पृथ्वीपर न रहे इसलिये प्राणियोंको चाहिये कि, राज्य और पुत्रादिककी मोह ममताको त्यागकर अपने धर्म कर्ममें तत्पर रहैं ॥ ३६ ॥ चन्द्रवंशी शान्तनका भ्राता, देववापी, और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ सूर्यवंशी राजा मरु यह दोनों राजा अत्यन्त योगबलके प्रतापसे कलाप ग्राममें वास करते हैं ॥ ॥ ३७ ॥ यह दोनों राजा कलियुगके अन्तमें भगवान्की शिक्षा पाकर पहिलेके समान सब वर्णाश्रमके धर्मोंका विस्तार करैंगे ॥ ३८ ॥ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, यह चारों युग इस क्रमसे पृथ्वीपर मनुष्योंके विषे वर्तते रहते हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन्! यह जो राजा मैंने आपके आगे वर्णन किये और इनके सिवाय और भी जो हुए, सो सब इस भूमिसे ममता करके और भूमिको यहीं छोडकर आप रीते हाथों नाशको प्राप्त हुए ॥ ॥ ४० ॥ जिस देहका नाम राजाथा उस देहको अन्त समय कृमि, विष्ठा, राख, यह नाम होते हैं, ऐसे शरीरसे जो कोई शरीरधारी दूसरेसे द्रोह करते हैं, उनका कौनसा स्वार्थ सिद्ध होता है? नरकमें वास करनेके सिवाय कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता ॥ ४१ ॥ किसप्रकार इस महाअखण्ड भूमिको हमारे पुरुषाओंने पालीथी और अब किसप्रकार हमारे पुत्र पौत्रके पास और हमारे वंशजोंके पास स्थिर रहैगी? ॥ ४२ ॥ वह मूर्ख-लोग पंचभूतमय इस देहको अपना मानकर भूमिसे ममता करके अन्तसमय दोनोंको छोड कर आप अकेले चलेगये ॥ ४३ ॥ हे राजन्! जो जो भूपति हुए वे सब अपने पराक्रमसे भूमिका भोग करते रहे, इस महाविकराल कालने उन सबकी कथामात्रही कहनेको रक्खी ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-तिसरेमें वसुधा वचन, राज्यदोष गुणग्राम।
कुल कलंक कलिकालके, मेटन हरिका नाम ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! यह पृथ्वी अपने जीतनेका परिश्रम करते हुए राजाओंको देखकर अपने मनहीं मनमें ठट्ठे मार मारकर हँसती है कि, अहो! यह सब मृत्यु खिलौने राजा मुझको जीतना चाहते हैं, यह नहीं जानते कि, हमसे अनन्तराजा मरमरकर खपगये ॥ १ ॥ जिस कामनाने बुद्बुदेके समान इस देहके विषे जिन राजा-

ओंको विश्वास उपजाया, उन राजाओंकी भी कामना निष्फल है ॥ २ ॥ मुख्य तो राजाओंका यह विचार है कि, पहले तो पाँचो इन्द्रिय और छठे मनको जीतकर, पीछे मंत्री, प्रधान, सचिव, पुरवासी और कुटुम्बादिक अपने वशमें करके शत्रुओंकी जडको उखाड, महाव्रत और कटककी ओरसे वेखटकहो राज्य करेंगे ॥ ३ ॥ और इस रीतिसे समुद्रतककी भूमिको जीतैंगे, इस प्रकार आशावेष्टित हृदयवाले सब राजा अपने २ निकट रात दिन डंका बजानेवाले कालका कुछ ध्यान नहीं करते ॥ ४ ॥ अनेक राजा तो समुद्रके पारतक मुझको अपने पुरुषार्थसे जीतकर अत्यन्त तृष्णासे समुद्रके देशोंमें (द्वीपोंमें) भी प्रवेश करते हैं, इन्द्रिय और मनके जीतने पर राज्य साधनेकी इच्छा करनी मूर्खता है और आत्मजयका फल तो एक मुक्ति ही है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! वसुधा कहती है कि, देखो ! जो मुझको छोडकर मनु और मनुकी सन्तान मेरे ऊपर जैसे आये वैसेही हाथ पसारे चले गये, ऐसी मुझ अचलाको यह कुबुद्धि राजा युद्धमें जीतना चाहते हैं ॥ ॥ ६ ॥ देखो ! राज्यकी ममतामें बँधेहुए असत् राजा मेरे लिये पिता, पुत्र, भ्राता यह सब परस्पर भी क्लेश करते हैं ॥ ७ ॥ हे मूढ ! यह वसुधा मेरी है, इसमें तेरी किंचिन्मात्र भी नहीं है, यह कहते कहते और परस्पर स्पर्द्धा करते २ मेरे लिये अनेक राजा युद्धही करते करते मरगये ॥ ८ ॥ पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, अर्जुन, भरत, मांधाता, सगर, राम, खट्वांग, धुन्धुमार, रघु ॥ ९ ॥ तृणबिन्दु, ययाति, शर्यात, शान्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग ॥ १० ॥ हिरण्यकश्यपु, वृत्रासुर, रावण, नमुचि, नरकासुर, शम्बर, हिरण्याक्ष, तारक ॥ ११ ॥ ऐसे २ अनेक दैत्य और राजा जो कि, बडे बडे बलवान् और सर्वगुणनिधान योद्धाओंके पराजय करनेवाले, जिन्होंने कहीं भी हार नहीं मानी, सबही अजीत होगये ॥ १२ ॥ सो सब मरणधर्मा मेरेविषे अत्यन्त ममता करके वर्त्ततेथे सो सब विनाही मनोरथ पूर्ण किये कालके गालमें चले गये ॥ १३ ॥ और सबकी एक कथाही मात्र रहगई ॥

कवित्त–मान्धाता दिलीप दशरथ औ दधीचि भये, रावण सों कंचनकी लंकमें परो रहो। बलि वेणु चक्कवै विदेह राजा भृगु राजा, अवनि सुत धरा महिमंडल सों भरो रहो ॥ भरत पृथ्वीराज दुर्योधनसे जरासन्ध, करण सों दानी जो कह्यो सो करो रहो । जेते देहधारी तेते बखत बजायगये, केते उठगये इहां जमा खर्च धरो रहो ॥

हे समर्थ ! इस प्रकार पृथ्वीने हँसकर कहा कि, हे विभो ! लोकोंमें यश विस्तार करके आप तो परलोकको चलेगये, ऐसे बडे बडे राजाओंकी कथा मैंने तुमसे कही, सो केवल विषयोंकी असारता और विज्ञान और वैराग्यका निरूपण करनेके लिये, सो इसमें केवल वाणीका विलास है, कुछ परमार्थ नहीं ॥ १४ ॥ जिस अमंगलके दूर करनेवाले उत्तमश्लोक भगवान्के गुणोंको कवीश्वर लोग सदा गाते हैं, जो कोई श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी

निर्मल भक्तिको चाहै सो निरन्तर उन गुणोंको सुनै ॥ १५ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि, हे भगवन् ! हे महामुने ! कलियुगके बडे बडे दोषोंको कलियुगके मनुष्य कौनसे उपायसे दूर करसक्ते हैं ? सो तुम हमसे कहो ॥ १६ ॥ पहले तो युगोंके धर्मका और प्रलय कल्पका प्रमाण कहो ? फिर महात्मा कालरूप विष्णुभगवान्‌की गति कहो ? ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नरेन्द्र ! सतयुगमें मनुष्योंका धर्म चार चरण करके वर्त्ते है, एक तो सत्य, दूसरी दया, तीसरा तप, चौथा दान यह धर्मके चार चरण हैं ॥ १८ ॥ सत्युगके मनुष्य सन्तोषी, करुणावान्, सब प्रेम प्रीति रखनेवाले, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, सहनशील, आत्माराम, समदृष्टि और परमार्थमें निरालस्य युक्त और परिश्रमी होते हैं ॥ ॥ १९ ॥ त्रेतायुगके विषे झूठ, हिंसा, तृष्णा, विग्रह इन चार अधर्मके चरणोंसे, सत्य, दया, तप, दान यह धर्मके चरण हैं, इनमेंसे धीरे धीरे चौथा भाग क्षीण होता जाता है ॥ २० ॥ हे राजन् ! क्रिया तपमें निपुण न तो अतिहिंसक और न अत्यन्त लम्पट, धर्म, अर्थ, काममें निष्ठा, वेदत्रयी, धर्मपरायण ब्राह्मण वर्ण जिनमें मुख्य ता युगकी प्रजा होती है ॥ २१ ॥ द्वापर युगमें अधैर्य, हिंसा, झूंठ बोलना और द्रोह इन अधर्मके चार चरणोंसे दया, तप,सत्य, दान यह धर्मके पाँव आधे आधे घट गये ॥ २२ ॥ इससे द्वापर युगमें यशस्वी, बडे शीलवान्, वेदाध्ययनमें निपुण, अति ऐश्वर्यवाले कुटुंबी, प्रसन्न मुख ब्राह्मण और क्षत्रिय चारों वर्णोंमें मुख्यमाने जायँगे ॥ २३ ॥ कलियुगमें जब अधर्मकी वृद्धि होगी तब धर्मका एक चरण रहजायगा; सोभी शनैः शनैः करके अन्तमें नष्ट हो जायगा ॥ २४ ॥ कलियुगमें लोग लोभी, दुराचारी, निर्दयी झूठी लडाई करनेवाले, दुर्भागी, अत्यन्त तृष्णावाले, शूद्र और दास जिनमें मुख्य माने जायँगे ॥ २५ ॥ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तीनों गुण ईश्वरके आधीन हैं काल करके प्रेरित हैं प्राणियोंमें सदा फिरते दिखाई देते हैं ॥ २६ ॥ जब मन, बुद्धि और इन्द्रिय सतोगुणमें स्थित होयँ तब सतयुग समझना चाहिये कि, जिस सतयुगके प्रभावसे ज्ञानमें रुचि होती है ॥ २७ ॥ हे बुद्धिमान् नृप ! जब प्राणियोंकी रुचि सकाम कर्मोंमें होय तब रजोगुण युक्त त्रेतायुग जानिये ॥ २८ ॥ जब लोभ, तृषा, अभिमान, दम्भ, मत्सरता, और काम्य कर्ममें प्रवृत्ति होय तब रजोगुण तमोगुणका उत्पन्न करनेवाला मुख्य द्वापर युग समझना चाहिये ॥ २९ ॥ जब मनुष्योंके मनमें कपट, झूंठ, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय, दीनता होय, तब तमोगुणका प्रगट करनेवाला मुख्य कलियुग जानिये ॥ ३० ॥ सो प्राणी कलियुगके हेतुको पाकर मन्दबुद्धि भाग्यहीन बहुत भोजन करनेवाले कामी और निर्धन होंगे और स्त्री असाध्वी और व्यभिचारिणी होंगी ॥ ॥ ३१ ॥ देश देशान्तरोंमें चोरोंका बडा भय होगा, वेद पाखण्डसे अत्यन्त दूषित होंगे, राजा प्रजाके लूटनेवाले होंगे, ब्राह्मण स्त्रीलम्पट उदरपरायण होंगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारी ब्रत आचार भ्रष्ट होंगे, गृहस्थ भिखारी होंगे, तपस्वी ग्रामवासी होंगे, संन्यासी द्रव्यके लोभी होंगे ॥ ३३ ॥

चौ०-भ्रष्ट कर्म करिहैं वैरागी। सपनेहु नाहिं धर्म अनुरागी ॥
ह्वै हैं सब जन अतिशय कामी। करिहैं नारिन केरि गुलामी ॥
घरमें अन्न वस्त्र तक नाहीं। ऐश करनको चहैं सदाहीं ॥
विप्र महाविषयी ह्वै जाहीं। वेश्यनको राखैं घरमाहीं ॥
नारि लाजतजि करहिं अनीती। राखैं पर पुरुषन सों प्रीती ॥
सासश्वशुरसों करिहैं रारी। विन अपराध देयँ नितगारी ॥

कलियुगकी नारी अत्यन्त ठिंगनी और बहुत भोजन करनेवाली, काली काली, बहुत सन्तान उपजानेवाली, महानिर्लज्ज, सदा कटुक वचन बोलनेवाली, चोर, ढीठ, कपटकी भरी हुई, अनेक प्रकारकी मायादिखानेवाली होंगी ॥ ३४ ॥ तुच्छ किरातादि; कपटी, दुराचारी, म्लेच्छ व्यापारी होंगे आपदा विनाहीं सब लोक निन्दितजीविकाको श्रेष्ठ समझेंगे, जिस वृत्तिको सत्पुरुष स्वप्नमें भी धिक्कार करतेथे ॥ ३५ ॥ धनहीन उत्तमपतिको भी स्त्री त्यागदेंगी, नौकर अपने स्वामियोंकी नौकरी छोडकर औरोंकी नौकरी करैंगे और नौकर रोगी होजायँगे तो स्वामी लोभके मारे नौकरीसे छुटादेंगे, विनादूधकी गायोंको लोग म्लेच्छोंके हाथ बेंचडालेंगे ॥ ३६ ॥ पिता, भ्राता, सुहृद और जातिवालोंको छोडकर स्त्रीके सम्बन्धियोंसे प्यार करैंगे और स्त्रीकी बहिन (साली) स्त्रीका भ्राता (शाला) और उसकी स्त्री (सलेहज) के साथ गुप्त मतिकी बातें करैंगे, दीन और स्त्री लम्पट नर कलिमें होंगे; यहाँ कलियुगकी प्रशंसामें एक लावनी कहते हैं ॥

लावनी-धनि कलियुग महाराज आपने लीला अजब दिखाई है। उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ नीति पंथ उठ गया कचहरी पापन आन लगाई है । धर्म्म गया पाताल सबके मनमें बेधरमी छाई है ॥ गुप्त हुए सच्चे वकील जूठोंकी बात सवाई है। सच्चोंकी परतीति नहीं झूठोंने सदन बनाई है ॥ न्याय छोड अन्याय करैं राजोंने नीति गँवाई है । हकदारोंका हक मेट बेहकपर कलम उठाई है ॥ जो है जाली फरबेवाले उनकी ही बनिआई है। उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ १ ॥ गूजर जाट बने संन्यासी पोथी बगल दबाई है। मूड मुडाकर इक धेलेमें कफनी लालरँगाई है ॥ पन्थचले लाखों पाखण्डी अद्भुत कथा बनाई है। मुँह काला करलिया किसीने शिरपर जटा रखाई है ॥ हुए नीच कुरसी नसीन ऊंचोंको नहीं तिपाई है । जुगुनू पहुँचे आसमानपर जाकर दुम चमकाई है ॥ फाँके करते संत मिलैं भडुओंको दूध मलाई है । उलटा चलन चला दुनियामें सबकी मति बौराई है ॥ २ ॥ सास बहूसे लडै बहू भी आँख फेर झुझलाई है। लेकर मूशलहाथ कोस्ती दाँत पीस उठधाई है॥ घरवालेको छोड़ स्त्री कुलकी लाज गँवाई है । निजपतिकी सेवा तजकर

परपतिसे प्रीति लगाई है ॥ पुरुष हुए ऐसे व्यभिचारी विषय वासना छाई है। वेश्याओंके फन्देमें पड़ घरकी तजी लुगाई है ॥ मात पिताकी करैं बुराई नारि परम सुखदाई हैं। उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥३॥ व्याह बुढ़ापेमें जो करते उनपर गजब खुदाई है। साठबरसके आप करी कन्याके संग सगाई है ॥ कुछ दिन पीछे आप मरगये करके रांड बिठाई हैं। लगी करने व्यभिचार स्त्री घर घर लोग हँसाई है ॥ पण्डित पाधा करैं दलाली मंत्री जिनका नाई है। शर्म रही नहिं बेशर्मोंको बेटी बेंचकर खाई है ॥ बहन भानजी त्यागन करके साली न्योति जिमाई है । उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ४ ॥ गंगाजल गोरसको छोडकर गाढी भाँग छनाई है। भक्ष्य अभक्ष्य लगे खाने मदिराकी होती छकाई है ॥ श्वशुर बहूको कुदृष्टि देखै अपनी नियत डुलाई है । ठठ्ठा अरु मसखरी करैं सासे ज्वान जमाई है ॥ कहै भतीजा चचासे अपने तु मूरख सौदाई है। हमैं चैन करनेसे मतलबँ किसकी चाची ताई है ॥ बहिन बहिनसे लडै और लडता भाईसे भाई है । उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ५ ॥ जामा अंगादिया त्याग अरु पगडी फाड बहाई है। पहन कोट पतलून शीशपर टोपी गोल जमाई है ॥ तोडतख्त अरु सिंहासनको लाके बेंच बिछाई है। खीर खाँडको त्यागन करके रोटी डबल पकाई है ॥ तोडके ठाकुरद्वारा मसजित सबकी करी सफाई है। गिरजाघरमें जाकरके ईसाकी करी बडाई है ॥ बात करैं सब अँगरेजीमें निज भाषा बिसराई है। उलटा चलन चला दुनियाँके सबकी मति बौराई है ॥ ६ ॥ मित्र शत्रुसम हुए प्रीतिकी डाली तोड जलाई है। विद्याहीन होगये विप्र गायत्री तलक भुलाई है ॥ क्षत्रिय बैठे नारी बनकर ले तलवार छिपाई है । बन आई ना कुछ बनियोंसे माया मुफ्त लुटाई है ॥ शूद्र हुए धनवान ब्राह्मणोंने कीन्ही स्योकाई है। गयावाल और मथुराके चौबोंकी बात बन आई है ॥ चारों युगोंसे कलिने अपनी नई रीति दिखलाई है। उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ७ ॥ अपूज पुजने लगे कहैं सब शिरपर देबी आई है। घर घरमें गुल गुले शेख सद्दोंकी चढी कढ़ाई है ॥ परब्रह्मको छोड भूत प्रेतोंकी दई दुहाई है । मुँड हिलाती कहीं मलनियाँ कहैं कुसुम्भी माई है ॥ बालभोग ठाकुरको नहीं सय्यदके लिये मिठाई है। संतको कम्बल नहीं पतुरियाको कुरती सिलवाइ है ॥ गुरू हरैं चेलोंका धन चेला करता चतुराई है। उलटाचलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ८ ॥

विधवा लग गई पान चाबने दे सुर्मा मुसकाई है। नित करती शृंगार देखकर अहिवाती शरमाई है॥ बैठे ज्वारी और अगामी हुवा जगत अन्यायीहै। सब लक्षण विपरीत और घरघरमें होत लडाई है॥ गाय-जायँ लाखों मारी करता नहीं कोई सुनाई है। इसीसे पडता काल सृष्टि में संपति सकल बिलाई है। हो दयालु हेनाथ ! आज कलियुगकी महिमा गाई है। उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है९॥३७॥

शूद्र तपस्वियोंका वेष धारण करके जीविका करेंगे और प्रतिग्रह लेंगे और अधर्मी लोग ऊँचे आसनोंपर बैठकर अपने धर्मका उपदेश करेंगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जब पृथ्वी अन्नहीन होजायगी तब प्राणी अनावृष्टिके भयसे अत्यन्त पीडित और सदा दुर्भिक्ष और राजाओंके करसे क्लेशवान् और अत्यन्त व्याकुल होजायँगे ॥ ३९ ॥ और वसन, भूषण, खान, पान, स्नान, शयन, मैथुन आदि सुखोंसे हीन पिशाचसे दिखाई देगें, सब प्रजा कलियुगमें इस प्रकार होजायगी ॥ ४० ॥ कलियुगमें बीस कौडियोंके लिये मित्रता छोडकर परस्पर लडैंगे और उसीको धन समझकर मरने मारनेको उपस्थित होंगे ॥ ४१ ॥ और अपने माता पिताका पालन नहीं करैंगे,सब अर्थोंसे निपुण पुत्रकी भी रक्षा न करैंगे केवल स्त्रीसंग और उदर पूर्ण करके, सब प्रजा क्षुद्र होजायगी ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! सब सृष्टिके परमगुरु और त्रिभुवनके पति जिनके चरणकमलको ब्रह्मादिक देवता नित्य प्रति नमस्कार करते हैं, ऐसे जगदीश्वर भवगान् अच्युतको कलियुगमें मरनेके समय, पाखण्डोंसे दूषित हो बहुत पूजन न करैंगे, कभी रामनवमी,नृसिंह चौदश, जन्माष्टमीको भगवान्‌की पूजा करलिया करैंगे ॥ ४३ ॥ वा जब मरण समय आतुर होकर अथवा ऊँचेसे गिरकर वा मार्गमें रपटनेके समय विवश होकर कहेंगे कि, हे भगवान् ! परन्तु नाम लेतेही वह मनुष्य कर्मबन्धनसे छूटकर परम गतिको प्राप्त होंगे, परन्तु तो भी उन भगवान्‌का कलियुगमें लोग पूजन नहीं करैंगे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! अब कलिकालके सम्पूर्ण दोषोंके दूर करनेका उपाय आपके सामने वर्णन करता हूं, आप सावधान होकर सुनिये, द्रव्य देश शरीरसे उत्पन्न हुए कलियुगके सब दोषोंको पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्यके चित्तमें स्थित होकर सब दोषोंको हरलेते हैं ॥ ४५ ॥ जो प्राणी परमेश्वरका श्रवण, कीर्तन, पूजन, ध्यान और सत्कार करते हैं, भगवान् उन पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर दशसहस्र जन्मके पापोंको दूर करदेतेहैं ॥ ४६ ॥ जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त होकर और सब धातुओंके मिले हुए मलिनपनको दूर कर देता है, ऐसेही विष्णु भगवान् हृदयमें स्थित होकर सब अशुभ वासनाओंको कलियुगमें दूर करैंगे ॥ ४७॥ विद्या अर्थात् अन्यदेवकी उपासना, तप, प्राणायाम, मित्रता, तीर्थस्नान, व्रत, दान,जप आदिकके करनेसे जैसा मन शुद्ध होता है, वैसाही अत्यन्त भगवान् जब हृदयमें वास करैं तब शुद्ध होता है ॥ ४८ ॥ इसलिये हे राजन् ! आपका मरणसमय निकट आगया है अब तुम सब प्रकारसे सावधान हो वासुदेव भगवान्‌का हृदयमें ध्यान धरो, तब तुम परमगतिको

प्राप्त होओगे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! मनुष्यको चाहिये कि, जिसकी मृत्यु निकट आजाय, वह सर्वाश्रय, सर्वात्मा, सर्वेश्वर भगवान्का ध्यान करनेसे आदिपुरुष अविनाशी परमात्माके विषे लय होजाताहै ॥ ५० ॥ हे राजन् ! यह महाघोर कलियुग अनेक दोषोंकी खानि है परन्तु इसमें भी एक गुण बडा भारी है कि, इस युगमें केवल परमेश्वरके कीर्त्तन करनेहीसे मनुष्य सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूटकर तीनहीं दिनमें कृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके परमधामको चलाजाताहै ॥ ५१ ॥ सतयुगमें विष्णु भगवान्के ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, त्रेतामें यज्ञोंके करनेसे जो फल होता है, द्वापरमें परिचर्या करनेसे जो फल होता है, वह सब फल कलियुगमें केवल हरिके कीर्तनही करनेसे प्राप्त होजाते हैं ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा-नैमित्तिक प्राकृतिक अरु, आत्यन्तिक औ नित्त।
चौथे चार प्रकारके, प्रलय कहे लखिमित्त ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजापरीक्षित् ! जो कि, आपने दो प्रश्न किये थे कि, कलियुगका दोष किस उपायसे निवारण होसक्ता है ? और कलियुगमें कौनसा धर्म मुख्य है जो पालना चाहिये, इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर तो मैंने आपसे वर्णन किया, अब प्रलयकालको निरूपण करताहूं, परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्धतक काल और युगोंके प्रमाण मैं तुमसे पहिले कह चुकाहूं, अब कल्प और प्रलय (सृष्टिका अन्त) का प्रमाण सुनो ॥ १ ॥ हे प्रजापालक ! युगोंकी सहस्र चौकडीका ब्रह्माका एक दिन होता है, उसीको कल्प कहते हैं जिसमें चौदह मनु राज्य करते हैं ॥ २ ॥ फिर अन्तमें चार सहस्र युगवाली ब्रह्माकी रात्रि होती है, उस रातमें इस त्रिलोकीकी प्रलय होजाती है ॥ ३ ॥ इस प्रलयको विद्वान् लोग नैमित्तिक प्रलय कहते हैं, इस प्रलयमें विश्वस्रष्टा श्रीनारयण ब्रह्मा सहित त्रिलोकीको अपने उदरमें धारण करके अनन्त भगवान् शेष शय्यापर शयन करते हैं ॥ ४ ॥ अब प्राकृतिक प्रलयका वृत्तान्त सुनिये, परमश्रेष्ठी ब्रह्माजीके द्विपरार्द्धका जब अन्त होता है तब महत्तत्त्व अहंकार और पाँच तन्मात्रा इन सातों प्रकृतियोंका प्रलय होता है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसलिये इसप्रलयको पण्डितलोग प्राकृतिक प्रलय कहते हैं, जिस प्रलयमें नाशका कारण प्राप्त होनेसे सातों प्रकृतियाँ और उनके कार्यरूप सब ब्रह्माण्ड भी लय होजाते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जब प्रलय होगा उससमय सौ १०० वर्षतक मेघ नहीं वर्षेगा, तब सब पृथ्वी अन्नरहित होजायगी, उस समय सब प्रजा क्षुधासे पीडितहो एक एकका भक्षण करनेलगेगी, इसप्रकार कालाधीन हो सहज सहजमें सब नाशको प्राप्त होजायगी ॥ ७ ॥ फिर प्रलयकालका मार्त्तण्ड अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्रके और सब शरीरोंके रसोंको खैंचलेगा किंचिन्मात्र भी नहीं छोडेगा ॥ ८ ॥ फिर संकर्षण भगवान्के मुखमें जो स्थित प्रलयका अग्नि वायुके वेगसे भडककर इस शून्य मण्डलको सातों पाताल

सहित जलादेगा ॥ ९ ॥ फिर ऊपर नीचे सब ओर सूर्यकी मित्राग्निसे जलकर ऐसा शोभित होगा जैसे जलताहुवा उपला (सूखाहुवागोबर) शोभित होताहै ॥ १० ॥ फिर इसके पीछे प्रलयकालकी महाप्रचण्ड पवन सौ १०० वर्षतक चलेगी, उससमय आकाश धूरिसे आवृत होकर धूम्रवर्ण होजायगा ॥ ११ ॥ हे अंग ! फिर पीछे विचित्र वर्णवाले अनेक प्रकारके मेघोंके समूह गम्भीर गर्जन शब्द करते सौ १०० वर्षतक वरषेंगे, फिर पीछे यह ब्रह्माण्ड टूटफूटकर सब विश्व जलमय होजायगा ॥ १२ ॥ उस समय भूमिका गन्ध गुण जल ग्रस्त हुआ सो पृथ्वी गन्धहीन होकर प्रलयको प्राप्त होगी ॥ १३ ॥ जलके रसको तेजने ग्रस लिया, सो जल निरस होकर प्रलयको प्राप्त होगा, तेजका रूप गुण वायुने ग्रसलिया सो तेज रूपहीन हो पवनमें लीन होगा ॥ १४ ॥ पवनका स्पर्श गुण आकाशने लिया,सो वायु आकाशमें लीन होगा ॥ १५ ॥ हे राजन् ! फिर आकाशका शब्दगुण उसको तामस अहंकारने ग्रसलिया, सो आकाश गुणहीन होकर अहंकारमें लीन होगा. राजस अहंकारने वृत्तियोंसहित इन्द्रियोंको ग्रसलिया सात्विक अहंकारने इन्द्रियोंके देवताओंको ग्रसलिया तब देवता सात्विक अहंकारमें लीन हो जायँगे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! तीनों प्रकारके अहंकारको महत्तत्त्वने ग्रसलिया, तब अहं महत्तत्त्वमें लीन होजायगा और महत्तत्त्वको सत्त्वादि गुणोंने ग्रसलिया, तब सत्त्वादिक गुणोंको कालकी प्रेरित माया ग्रस लेगी ॥ १७ ॥ इस मायाका कालके वेगसे राति दिन घट बढ नहीं होता और यह माया आदि अन्त करके अव्यक्त नित्य है, एक रसहै, न स्पष्ट देखनेमें आती है सर्वत्र जगत्की कारणरूप है ॥ १८ ॥ जहाँ वाणी मन सत्त्व रज तम तीनों गुण महत्तत्त्वादिक नहीं हैं और प्राण, बुद्धि इन्द्रियोंके देवता विश्वकी रचना भी नहीं है ॥ १९ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, आकाश, पवन, अग्नि, जल भूमि, और सूर्य भी वहाँ नहीं हैं. सुषुप्ति शून्यकी समान है उसको कविलोग अतर्क्य मूल पद कहते हैं ॥ २० ॥ प्राकृतिक प्रलय यह आपसे कहा, जिस प्रलयके पुरुष प्राकृतिकी शक्ति सब कालसे प्रेरित होकर लीन होजाताहै यह माया ईश्वरकी शक्ति है इससे सबके कारण रूप एक परब्रह्म परमेश्वरही है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! अब आपसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं,बुद्धि, इन्द्रिय विषयरूप इनसबका आश्रय ज्ञानही भासैहै जिससे अन्वय व्यतिरेक करके जो आदि अन्तवान् हैं, सो सब वस्तुहैं विचार करके देखो तो यही मोक्ष आत्यन्तिक प्रलयहै, क्योंकि यह मोक्ष आत्मज्ञानसे सब प्रपंचका लयरूप है यहाँपर प्रलय अर्थात् मृत्तिकाके ज्ञानसे जैसे घट वारुणी आदिका प्रतिरोध होता है इसीप्रकार ब्रह्मज्ञानसे और दूसरे सबका प्रतिरोध समझना, जो आत्माकी सदृश प्रपंच यथार्थ होय तो उसका प्रतिरोध होना ठीक नहीं इससे ज्ञात होता है कि,प्रपंच, परब्रह्मसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है यह ब्रह्मसे भिन्न सत्ताको नहीं रखते, इसलिये यह बुद्धि आदि प्रपंच भी दृश्यपनके हेतु और आदि अन्तवान् होनेके कारण और अपने कारणभूत परब्रह्मसे भिन्न नहीं है इसलिये वास्तविक भी नहीं है ॥२२॥जैसे दीपक,नेत्र,रूप यह सब ज्योतिसे भिन्न नहीं है,ऐसेही बुद्धि इन्द्रिय तन्मात्रा ब्रह्मसे

भिन्न नहीं है॥ २३ ॥हे राजन् ! जब यह बुद्धि परमात्मासे विलग नहीं है,तब उसकी अवस्थारूप जाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्ति यह तीनों परमात्मासे किसप्रकार विलग होसकतीहैं क्योंकि यह तीनों अवस्था बुद्धिहीकी हैं सब विद्वान् लोग यही कहते हैं कि, तीनों अवस्थाओंके माननेके लिये जगत् तेजस और प्राज्ञपन जो आत्मामें मानाजाता है वह केवल मायामात्र ही है ॥ ॥ २४ ॥ जैसे किसी समय मेघ आकाशमें नहीं होते और कभी होते हैं, ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् कभी दीखता है कभी नहीं दीखता जैसे घट चिह्नवाला है इससे आदि अन्त वाला है और जो पदार्थ आदि अंतवाला होताहै वह अपने आपसे किसी प्रकार भिन्न सत्तावाला नहीं होसक्ता, इस बातका विद्वान् लोगोंने भलीभाँति निर्णय किया है ॥ २५॥ हे राजन् ! सब अवयवी जगत्में कारणभूत जो एक अवयवहै वही मुख्य है, क्योंकि अवयवी विना भी अवयवकी प्रतीति होती है, इसी प्रकार जगत् विना ब्रह्म भी प्रतीत होताहै, इसलिये जगत्का कारण रूप ब्रह्मही है देखो ! तंतु विना वस्त्रका ज्ञान नहीं, होता, परन्तु वस्त्र तंतुओंसे भिन्न नहीं है, क्योंकि वस्त्र तन्तुरूपही है, इसप्रकार ब्रह्म विना जगत्की प्रतीति नहीं होती, इसलिये जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ २६ ॥ कार्य कारण मिलके जो कुछ होय सो सब भ्रमसे है, इसलिये आश्रयसे आदि लेकर अन्ततक जो कुछ है सो सब अवस्तुहै ॥ २७ ॥ यद्यपि विकारमय यह सब जगत् प्रकाशवान् भी है परन्तु ब्रह्म विना उसका किंचिन्मात्र भी प्रकाश नहीं होसक्ता और जो ब्रह्म विना प्रकाश होय तो उस आत्मासे ब्रह्मरूपही होगा, किसी प्रकार भिन्न होही नहीं सक्ता ॥ २८ ॥ सत्य वस्तुमें अनेक रीति नहीं होसक्ती और जिसमें अनेक रीति हैं उसमें सत्यता नहीं होसक्ती, यद्यपि आत्मामें और जीव ब्रह्ममें भेद दृष्टि आताहै, परन्तु यह जीव और ब्रह्मका भेद घटाकाश और महाकाशकी समानहै, घटाकाश परिच्छिन्नहै और महाकाश अपरिच्छिन्न होनेपर भी जैसे दोनोंके मध्यमें भेद नहीं है इसीप्रकार जीव परिच्छिन्न और ब्रह्म अपरिच्छिन्न होनेपर भी जीव ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं जैसे जलके बीचमें सूर्य कम्पायमान विकार सहित और आकाशमें निर्विकार सूर्य होनेपर कुछ भेद नहीं, इसी प्रकार ब्रह्मकी सृष्टि आदि और जीवकी सृष्टि आदि क्रियामें अलग अलग होनेपर कुछ भेद नहीं जानपडता, यह सब उपाधिही मात्र भेदहै, जीव ब्रह्ममें भेद मानना मूर्खोंका कामहै ॥ २९ ॥ जैसे सुवर्ण मनुष्योंके व्यवहारादिकोंमें मुकुट कुण्डलादि रूपोंसे अनेक प्रकारका दृष्टिआताहै इसीप्रकार अहंकाररूप उपाधिवाले मनुष्य ऐसेही भगवान् अधोक्षजकी लौकिक वैदिक वाणियोंसे अनेक अनेक प्रकारकी महिमा वर्णन करतेहैं ॥ ३० ॥ जैसे बादल सूर्यसेही प्रगट हुए और सूर्यहीसे प्रकाशितहुए सूर्यके अंशरूप नेत्रोंकी आवरण करता है, ऐसेही ब्रह्मसे प्रगट हुवा और ब्रह्महीसे प्रकाशित अहंकार ब्रह्मके अंश जीवको उस ब्रह्मके दर्शनका आवरण करता है ॥ ३१ ॥ सूर्यसे उत्पन्न हुवा बादल जब विदीर्ण होजाता है, तब चक्षु सूर्यको देखै हैं, ऐसेही अहंकार रूप उपाधि जब तत्त्व विचार करके विनष्ट होय, तब यह जीव अपने ब्रह्म-

स्वरूपको पहँचानता है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार अविवेक रूप खड्गसे मायामय अहंकाररूप आत्माके बन्धनको काटकर जब शुद्ध ब्रह्मका अनुभव करके स्थित होय तब उसको कविलोग आत्यन्तिक प्रलय (मोक्ष) कहते हैं ॥ ३३ ॥ हे शत्रुओंके ताप देने वाले ! सूक्ष्मवेत्ता विद्वान् लोग कहते हैं कि, ब्रह्मादिक सब प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलय क्षण क्षणमें होती रहती है ॥ ३४ ॥ नदीका प्रवाह और दीपककी ज्वाला आदि परि णामी पदार्थोंकी जैसी क्षण क्षणमें लौट पौट होनेसे जो अवस्थायें हैं, वैसीही अवस्थायें हैं, वैसीही अवस्थायें कालरूप नदीके वेगसे नित्य आयुर्बल हरीजानेसे देहादिकनकी अवस्था नित्य जन्ममरणके कारणको प्राप्त होती हैं ॥ ३५ ॥ आदि अन्तसे हीन ईश्व-रकी मूर्त्तिकालसे प्राणियोंकी सूक्ष्म अवस्था नहीं जानी जाती जैसे आकाशमें नक्षत्रा दिकी क्षण क्षणकी चालैं दिखाई नहीं देतीं इसीप्रकार कालसे झपटी हुई शरीरादिकोंकी क्षण क्षणकी अवस्थायेंभी दिखाई नहीं देती ॥ ३६ ॥ नित्य नैमित्तिक प्राकृतिक और आत्यन्तिक यह चार प्रकारकी प्रलय आपसे कही और कालकी गति भी आपसे कही ॥ ॥ ३७ ॥ हे कौरवकुलभूषण ! जगत्के कर्त्ता और सब प्राणियोंके जीवनआधार श्रीमन्नारायणकी लीला और कथा आपसे संक्षेप मात्र कही और सम्पूर्ण चरित्र कहनेकी तो ब्रह्माको सामर्थ्य नहीं ॥ ३८ ॥ जो प्राणी अनेक भाँतिके दुःखरूपी दावाग्निसे कष्ट पाकर इस महा दुस्तर संसाररूपी समुद्रके पार उतरना चाहैं उनको भगवान् पुरुषोत्तमकी लीला और चरित्रोंकी कथारूपी रसपानके सिवाय इस संसार सागरसे पार होनेका दूसरा उपाय नहीं, विश्वासरूपी नौकापर चढकर संसाररूपी समुद्रसे तर सक्ता है ॥ ३९॥ इस बातपर एक दृष्टान्त है * अव्ययरूप श्रीनारायण ऋषिने यह पुराणसंहिता पहिले

* **दृष्टान्त**—एक गूजरी कहीं पण्डितजी की कथा सुननेको गई, पण्डितजी उस समय यह कथा कहरहे थे कि, परमेश्वरके नामलेनेसे प्राणी संसाररूपी समुद्रके पार हो जाता है. गूजरी इस बातको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, क्योंकि उसे प्रतिदिन यमुना-जीके उतरनेमें नाववालेको पैसा देना पडता था, वह विचारनेलगी कि, जब श्रीकृष्णके नामसे समुद्रको तर जायँ हैं, तो क्या यमुनाजी नहीं तरी जायँगी ? बस वह उसी समय श्रीकृष्णका नामले यमुनामें घुसपडी और क्षणमात्रमें पार उतर गई. इसी प्रकार प्रति-दिन यमुना उतर जाने लगी, तब एकदिन गूजरीने अपने मनमें विचार किया कि, पंडितजीने मेरे संग बडा उपकार किया जो विनाही नौका यमुनापार हो जाती हूँ, उनको निमंत्रण देना चाहिये. सो उसने पंडितजीको निमंत्रण दिया और भोजन करानेके लिये पण्डितजीको अपने साथ लेकर घरको चली, पंडितजी उसको यमुनाजीमें घुसती देख आप भी उसके पीछे पीछे हो लिये और समझा कि, घाट वहुत गहरा न होगा, जब कण्ठतक पानी आगया और पाँवोंके नीचेका रेता निकलने लगा, परन्तु उस गूजरीके घुटनेतक न भीजे, तब तो पंडितजीने घबराकर पुकारा कि, अरी ! तू किधरको ले-

नारद मुनिसे कहीथी और नारदमुनिने श्रीवेदव्यासजीसे कही ॥ ४० ॥ हे महाराज ! उन आत्मज्ञानी भगवान् वेदव्यासदेवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह सब वेदोंके समान श्रीमद्भागवत संहिता मुझको पढाई ॥ ४१ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! नैमिषारण्यमें बडे यज्ञके करनेवाले शौनकादि ऋषि जब पूछैंगे तब सूतजी उन ऋषियोंको यह श्रीमद्भागवत पुराण कहैंगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-पञ्चममें संक्षेप सों, परब्रह्म उपदेश।
सर्प डसन भय नृपतिको, काटो शुकदेवेश ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस भागवतमें निरन्तर विश्व आत्माहीका वर्णन है जिन भगवान्के रजोगुणसे ब्रह्मा और तमोगुणसे रुद्र हुए ऐसे ब्रह्मारुद्रादि सब सृष्टिके कर्त्ता भगवान्का गुणानुवाद जो हित चितसे सुनता है उसको किसी प्रकारका भय नहीं ॥ १ ॥ हे राजन् ! हम मरैंगे इस पशुबुद्धिको छोड दो इस देहसे न तो तुम पहिले उत्पन्न हुए और न नष्ट होओगे यह आत्मा तो अजर अमर अनादि है, यह तो न कभी मरता है न जीता है ॥ २ ॥ यह शरीर बीज और अंकुर की नाई पुत्र पौत्रादि रूप होकर जन्मता मरता रहताहै, कभी बीजसे अंकुर होताहै, कभी अंकुरसे बीज होताहै, ऐसे तुम बीज अंकुरवत् देहादिकोंसे भिन्न हो, जैसे अग्नि काष्ठसे भिन्न है ॥ ३ ॥ जैसे कोई प्राणी स्वप्नमें अपना शिर कटा हुआ देखे, ऐसे ही जाग्रत् अवस्थामें देहके मरणको आप देखता है, इससे मैं मरूंगा, यह केवल भ्रान्ति है क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है ॥ ॥ ४ ॥ आत्माका जन्म मरणादिक जगत्की भ्रान्ति देह रूप उपाधिके साथ है, इसलिये उपाधिकी निवृत्ति होनेसे इस जीवकी मुक्ति होजाती है, जैसे घट फूट जानेसे आकाश घटाकाशमें जा मिलता है, जैसा प्रथम महाकाश रूप था वैसाही फिर होजाता है, जब

-आई मैं तो डूबा ? मुझे किसी प्रकार बचा ? गूजरी बोली क्या तुमने श्रीकृष्णका नाम नहीं लिया ? श्रीकृष्णका नाम लेलो क्या तुम उसदिनकी कथाके वृत्तान्तको भूलगये, आपने कहाथा एक श्रीकृष्णके नामसे प्राणी महादुस्तर समुद्रके पार हो जाता है, पंडितजी बोले क्या यह नदी भी श्रीकृष्णका नाम लेनेसे तरी जाती है ? गूजरीने कहा कि, क्या आप इतना भी नहीं जानते कि, जब समुद्रहीके पार होगये तो क्षुद्र नदी कहाँ रही ? गुजरीने पंडितजीका हाथ पकडकर कहा कि, श्रीकृष्णका नामलो और संग संग चले चलो. देखो ! विश्वासवाली गूजरीने इसप्रकार पंडितजीको पार उतार अपने घर लेगई और अत्यन्त प्रेम प्रीतिसे पंडितजीको भोजन कराया. इसीसे कहते हैं कि, विश्वास करके भक्ति करै तो संसाररूप सागरके पार होय ॥

जीवको आत्मज्ञान होजाता है तो फिर वह ब्रह्मका ब्रह्म होजाता है॥ ५॥आत्माके देह,गुण और कर्मोंको मनहीं उत्पन्न करता है और मनको माया उत्पन्न करती है और इसी करके जीवका जन्म मरण होता है और विचार करके देखो तो आत्मा निर्लेप है ॥ ६ ॥ जबतक तेल सरवा बत्ती और अग्निका संयोग बना रहता है, तबहीतक दीपक कहलाता है, ऐसेही जबतक कर्म मन चैतन्य संसारादिक और इस देहको संयोग है, तबही तक संसार है और जब इन समुदायोंकी निवृत्ति होजाती हैं, तब यह संसार भी नहीं रहता ॥ ७ ॥ यह देहही सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जन्मता मरता है आत्मा न जन्में न मरे, इससे स्थूल सूक्ष्म दोनों देहोंसे परे है और स्वयंप्रकाश है, देहादिकोंका आश्रय है, नित्य है, निर्विकार है, अनन्त है, अनादि है, निरुपम है, वह कभी नष्ट नहीं होता ॥ ८ ॥ हे प्रभो! अनुमानयुक्त बुद्धिसे भगवान् वासुदेवका चिन्तवन करते शरीरमें स्थित शुद्ध आत्माको मनसे विचार करो ॥ ९ ॥ इसप्रकारका विचार करोगे तो ब्राह्मणके वाक्योंसे प्रेषित किया वा तक्षक सर्प तुमको नहीं जला सकैगा, क्योंकि परब्रह्मको मृत्यु भी नहीं जला सक्ती ॥ १० ॥ जो मैंहूँ सो परमधामरूप ब्रह्म है और जो परमधाम रूप ब्रह्म है, वह मैंहूँ, यह विचार करके निरुपाधि ब्रह्ममें तुम अपने आपको रक्खोगे तो ॥ ११ ॥ विषयुक्त मुखसे अपने चरणमें काटते हुए तक्षक नागको किसीप्रकार न देखोगे, न इस देहको देखोगे और न आत्मासे भिन्न विश्वको देखोगे ॥ ॥ १२ ॥ हे तात! हे नृपेंद्र! विश्वके आत्मा भगवान्का चरित्र जो कुछ तुमने पूँछा वह सब मैंने आपसे कहा। अब आप क्या सुनना चाहते हो सो कहो? ॥ १३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-इस छठयें अध्यायमें, भये परीक्षित् मुक्त।
सुतने अहि होमे सकल, इन्द्रासन संयुक्त ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि! सबकी बुद्धिको जाननेवाले निवृत्तिपरायण व्यासके पुत्र शुकदेवजीके गूढ वचन सुनकर, विष्णुरात परीक्षित शिर झुकाय, चरणारविन्दोंकी वन्दना कर हाथ जोडकर बोले ॥ १ ॥ हे मुने करुणानिधान! आपने परम अनुग्रह करके मुझको कृतार्थ किया, जिससे आदि अन्तसे हीन साक्षात् भगवान् परब्रह्मका चरित्र मुझको सुनाया, जिसको सुनकर मैं सिद्ध हुआ ॥ २ ॥ आपसे मुक्तरूप सज्जनोंका,इस संसाराग्निके तापोंसे तपे हुए अधम लोगोंका अच्युत भगवान्में मन लगाना और उनपर अनुग्रह करना मैं इस बातको कुछ अद्भुत नहीं समझता ॥ ३ ॥ यह पुराणसंहिता आपके मुखारविन्दसे मैंने सुनी, इस श्रीमद्भागवत संहितामें उत्तम यशवाले भगवान्का निरन्तर वर्णन है ॥ ४ ॥ हे भगवन्! तक्षकादिक मृत्युओंसे अब मुझे किसी प्रकारका भय नहीं रहा, क्योंकि आपने जो परमानन्द ब्रह्मरूप मुझे दिखा दिया मैं

उसीमें लय होगया ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो मुझको आज्ञा हो तो वाणीको रोककर निष्काम चित्तको भगवान् अधोक्षजमें रखकर प्राणोंका त्यागकर दूं ? ॥ ६ ॥ ज्ञान विज्ञानकी निष्ठासे मेरा सब अज्ञान निवृत्त होगया, जबसे आपने मंगलरूप भगवान्‌का परमपद मुझको दिखाया ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! राजा परीक्षित्‌ने इस प्रकार प्रार्थना कर श्रीशुकदेवजीका पूजन किया,तब भगवान् बादरायण परीक्षित्‌की पूजा स्वीकार कर बिदा माँग, मुनियों सहित वहाँसे पधारे ॥ ८ ॥ पीछे राजऋषि परीक्षित् बुद्धिसे मनको रोक, परब्रह्ममें मन लगा, श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानमें मग्न हो, इन्द्रियोंको निश्चल कर, सूखे वृक्षकी नाईं अचल होगया ॥ ९ ॥ गंगाके किनारेपर पूर्व अग्र कुशासनपर बैठ, उत्तर दिशाकी ओरको मुख करके छिन्न संशय निःसंग महायोगी परब्रह्ममें तदाकार होगया ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो ! क्रोधी ब्राह्मणके पुत्रका भेजा हुआ तक्षक राजाके काटनेकी इच्छा करके चला,तब मार्गमें कश्यपजीको देखा ॥११॥ कि,कश्यपजी राजा परीक्षित्‌के पासको जाते हैं और यह विषके उतारनेमें चतुर हैं, तब तक्षक × ने उस विषके दूर करनेवाले कश्यपजीको धनसे तृप्तकर जानेसे रोंक लिया, तब

× जिस समय तक्षक ब्राह्मणका वेष धारण करके राजा परीक्षित्‌को काटनेके लिये चला, तो मार्गमें उसको कश्यपजी मिले, तक्षकने कश्यपजीसे बूझा कि, आज आप कहाँको चल दिये ? कश्यपजी बोले कि, राजा परीक्षित्‌को आज सर्प काटेगा, हम उसको अच्छा करनेके लिये जाते हैं, तब तक्षकने कहा कि, तक्षकके काटेको आरोग्य करनेकी किसीकी सामर्थ्य नहीं, आप तो क्या वस्तु हैं ? कश्यपजी बोले कि, यदि वह होता तो हम उसको अपना कर्त्तव्य दिखाते, तक्षक बोला कि, मैंही तक्षक हूं और इस वृक्षको काटताहूं, अब तुम इसको अच्छा करो, ज्योंही वृक्षको डसा त्योंही वह जलकर भस्म होगया, वरन् उस वृक्षपर सूखी लकडी तोडनेके लिये एक लकडहारा चढा था वह भी उस वृक्षके संग जलकर भस्म होगया, तब कश्यपजीने संजीवनी मंत्र पढकर दो घडीमें लकडहारे सहित उस वृक्षको यथावत् करदिया, तब तक्षक आश्चर्यमय होकर कहने लगा कि, आप कुछ ज्योतिष विद्या भी जानते हैं ? कश्यपजी बोले हाँ । तक्षकने कहा कि, विचारो तो राजाकी अवस्था कितनी और रही है, कश्यपजी बोले कि, हमारे विचारमें ऐसा आता है राजाकी आयुर्बल दो घडी शेष है, तब तक्षकने कहा कि, मंत्र अकाल मृत्युवालेको जीवित करसक्ता है ? परन्तु जिसकी मृत्युही निकट आगई होय उसको कोई नहीं बचा सक्ता, फिर वृथा उपाय करनेसे मानहानि होती है और जो आपको धनकी इच्छा है तो इसी वृक्षके नीचे बहुत गडा है, जितना चाहिये उतना ले जाओ, कश्यपजीको और किसी बातसे प्रयोजन नहीं था अपनी इच्छानुसार धन लेकर अपने आश्रमको लौट गये, तब तक्षकने राजाके पास जाकर एक पुष्पमें कीडेका रूप धारणकर घुस बैठा और तक्षकके पुत्रने ब्राह्मणका रूप धरकर वह फूल राजाको दिया,राजा-

इच्छारूपी तक्षकने ब्राह्मणका रूप धरके अपने आपको छिपाकर राजा परीक्षित्को जाकर काटा ॥ १२ ॥ ब्रह्मस्वरूप राजऋषि परीक्षित्की देह विषाग्निसे सबके देखते देखते उसी समय जलकर क्षार होगई ॥ १३ ॥ उस समय पृथ्वी, आकाश, सब दिशाओंमें बडा हाहाकार शब्द होने लगा, सब नगरमें कुलाहल मचगया, देवता, असुर, मनुष्यादिक सब आश्चर्यमय होगये ॥ १४ ॥ आकाशमें देवताओंके दुन्दुभी बजनेलगे, गन्धर्व गानेलगे, अप्सरा नृत्य करने लगीं और पुष्पोंकी बर्षा होने लगीं और महात्मा पुरुष वारम्वार धन्यवाद देनेलगे॥१५॥राजा जन्मेजय अपने पिता परीक्षित्को तक्षकसे डसा सुनकर महा-

---

-फूलको देखकर कहनेलगे कि, संध्या होगई और तक्षक अभीतक नहीं आया कहीं ब्राह्मणका वचन झूठा न होजाय इस कारण इस कीडेहीसे मस्तकमें कटवालें, ज्यों राजाने कीडेसे कटवाया त्योंही तक्षकने अपना रूप धरकर राजाको डसा कि, वह तुरंत भस्म होगया और तक्षक उसी समय उडगया, उस लकडहारेने जब सब वृत्तान्त कहा तब जन्मेजयने तक्षकका अपराध विचार सर्पसत्रयज्ञ किया ।

शंका–द्वादशके पाँचवें अध्यायमें शुकदेवजीने कहा कि, हे राजन् ! ब्राह्मणके शापकी आज्ञाको जिस सर्पने पाया वह सर्प तुमको नहीं डसेगा, भागवतके श्लोकमें त्वां शब्द लिखा है सो शुकदेवजीने त्वां किसको कहा था परीक्षित्की देहको कहाथा कि, जीवको कहाथा जो जीवको त्वां कहा तो भी अयोग्यहै, क्योंकि जीव किसीके जलानेसे जलनहीं सक्ता, जो कदापि ऐसा देखकर कि, संसारमें शरीरहीकी प्रशंसा है जीवको कोई नहीं जानता, शरीरहीको त्वां कहाथा तो फिर सर्पके काटनेसे शरीर क्यों भस्म होगया ? मुनिने तो कहाथा कि, भस्म नहीं होगा ? यह शंका होती है ।

उत्तर—जो प्रश्न तुम लोगोंने किया सो सत्य है, संसारमें शरीरकी प्रशंसा देख-कर कि, देहके सिवाय जीवको कोई भी नहीं जानता इसलिये शुकदेवजीने देहको त्वां कहाथा, अब देह भस्म होनेका कारण सुनो शुकदेवजीका वचन सत्यथा कि, राजाका देह सर्पके काटनेसे भस्म नहीं होता परन्तु परीक्षित्ने मरनेके समयमें भगवान्का विचार शुकदेवजीसे भागवतसुनी सात दिनसे पहिले जो मरते हैं, उन प्राणियोंको नरक होता है भागवतके प्रभावसे अब इसको नरक नहीं होना चाहिये, जो ऐसा करेंगे तो सर्पकी मर्यादा नाश होजायगी, इसलिये भागवतकी, सर्पकी शुकदेवजीकी इन तीनोंकी मर्यादा रखनेके लिये भगवान्ने परीक्षित्को तीन कर्म करके तीनोंकी मर्यादा रक्खी, सर्पके काटनेसे मृत्यु होती है तो उस प्राणीको नरकमें जाना पडताहै सो श्रीमद्भागवत सुननेके प्रतापसे राजा परीक्षित्को भगवान्ने नरकवाससे छुटाया और शुकदेवजीका राजा शिष्य था इसलिये वैकुंठमें राजाको भेजा, सर्पकी मर्यादा रखनेके लिये राजाका देह भस्म किया, इसलिये राजाकी देह भस्म होगई कुछ शुकदेवजीका वाक्य झूठा नहीं था, जो सर्पकी मर्यादा भगवान् न रखते तो कभी राजा की देह भस्म न होती ।

क्रोधित हुआ और ब्राह्मणोंको बुला सर्पसत्र यज्ञमें सर्पोंका होम कराने लगा ॥ १६ ॥ उस यज्ञकी महाप्रचण्ड अग्निमें बडे बडे सर्पोंको जलता हुवा देखकर तक्षक डरके मारे अत्यन्त व्याकुल हो इन्द्रकी शरण गया ॥ १७ ॥ परीक्षित् के पुत्र राजा जन्मेजयने जब तक्षकको यज्ञमें न देखा तो ब्राह्मणोंसे बूझा कि, सर्पोंमें अधम तक्षक यहाँ आनकर क्यों नहीं भस्म हुवा ? ॥ १८ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि, हे नरेन्द्र ! अपनी शरण गये तक्षककी इन्द्र रक्षा करता है और इन्द्रनही उसको अपने समीप बैठाल रक्खा है, इसीलिये वह अग्निमें आनकर नहीं पडा ॥ १९ ॥ ब्राह्मणोंका यह वचन सुनकर उदार बुद्धिवाला राजा जन्मेजय ब्राह्मणोंसे बोला कि, हे ब्राह्मणो ! इन्द्रसहित उस तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं डाल देते, क्या इतनी सामर्थ्य आपको नहीं है ? ॥ २० ॥ जन्मेजयका यह वचन सुनकर सब ब्राह्मण इन्द्रसहित उस तक्षकको आहुति मंत्र पढकर आवाहन करने लगे " हे तक्षक ! मरुद्गणाधीश इन्द्रके संग तू शीघ्र यज्ञाग्निमें आनकर पडै " इसप्रकार आहुति मंत्रोंसे इन्द्र सहित तक्षकको बुलाया ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके कठोर वचनोंसे और मंत्रोंके आकर्षणसे तक्षकसहित इन्द्र अपने स्थानसे चलायमान हो विमान और तक्षक सहित अपने मनमें घबरागया ॥ २२ ॥ इन्द्रको विमान और तक्षक सहित आकाशसे गिरता हुआ देखकर, अंगिराके पुत्र बृहस्पतिजीने जन्मेजयसे कहा ॥ २३ ॥ हे नरेन्द्र ! यह सर्पराज आपके हाथसे वधकरने योग्य नहीं है, क्योंकि इसने अमृतपान किया है इसलिये यह अमर अजर है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! तक्षकके डसनेसे पिताका मरण सुनकर आपको इतना क्रोध तक्षकपर करना नहीं चाहिये, क्योंकि जीवोंका जीवन मरण और परलोक अपने कर्मोंहीसे होता है, इसे सुख दुःखका दाता और कोई दूसरा नहीं जान पडता ॥ २५ ॥ हे नरेश ! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली, क्षुधा, तृषा, रोगादिकोंसे प्राणी मृत्युको प्राप्त होताहै, सो वह अपने प्रारब्ध और कर्मोंहीके भोगसे भोगताहै कुछ सर्पादिक स्वतंत्र नहीं हैं, उनको भी प्रारब्ध और कर्महीं प्रेरणा करता है ॥२६॥ हे राजन् ! यह प्राणी अपने अदृष्टहीका भोग करै है, इसलिये इस अभिचार हिंसक यज्ञको समाप्त करो, देखो ! इस यज्ञमें अनेक निरपराधी सब भस्म होगये, परन्तु उसमें आपका भी कुछ दोष नहीं, क्योंकि प्राणी सदा अपने प्रारब्ध और कर्मोंका भोग भोगते रहते हैं ॥ ॥ २७ ॥ जब बृहस्पतिजीने इस प्रकारके वचन कहे तब राजानें उसी समय बृहस्पतिजीके वचनोंको आदर सन्मान दे, अभिचार यज्ञसे निवृत्त हो, देव गुरु बृहस्पतिजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ देखिये ! ब्राह्मणके क्रोधसे परीक्षित्का मरण हुवा और परीक्षित्के पुत्र जन्मेजयने कोप करके करोडों सर्पोंको जलाडाला, सो यह क्रोधरूप मोह ऐसे ऐसे महात्मा पुरुषोंको भी हुवा, इसमें कोई आश्चर्य माननेकी बात नहीं है, क्योंकि विष्णुभगवान्की अलक्षित माया किसीप्रकार किसीसे निवारण न होसक्ती, देखो ! उनहीं विष्णु भगवान्की मायासे विष्णु भगवान्हीके अंशरूप जीव दूसरे जीवोंपर अपनी देहमें तीनों गुणोंकी वृत्ति क्रोधादिकोंसे मोहित हो, संसारमें भ्रमते हैं ॥ २९ ॥ यह माया

तत्त्ववादी ब्रह्मविचार करनेवालोंके सिवाय और सब स्थानोंमें निर्भय वास करती है और ब्रह्मवादी लोग जब तत्त्वविचार करते हैं तो वह लोग भलीभाँति जानते हैं कि, यह माया बडी कपटकारिणी है और लोकोंकी वंचना करनेवाली है, जिन महात्मापुरुषोंने ऐसा समझ रक्खा है उनके सन्मुख निर्भय होकर माया अपना प्रकाश नहीं करसक्ती, क्योंकि उनसे भय मानती है और मोह ममतादिक कार्योंको नहीं करती, अपने दिन पूरे करती है और जहाँ तत्त्वविचार है, माया कारणके अनेक वाद विवाद नहीं हैं और संकल्प विकल्प वृत्तियोंके युक्त मन भी जहाँ नहीं है ॥ ३० ॥ सृष्टिके करनेवाले सब कारण और कर्मसे सिद्ध हुए फल, इन तीनों सहित अहंकारयुक्त जीव जिस विष्णुमें विघ्न डालनेवाला विघ्नभी जहाँ नहीं रहता, अहंकारादि ऊर्मियोंके त्यागनेवाले मुनिलोग उसी विष्णुपदमें रमण करते हैं ॥ ३१ ॥ और स्थान, सौहृद, दुष्टता और अनात्म पदार्थोंको त्याग नेति नेति कह, अहंभावकी निवृत्तिकर सिवाय परमात्माके और किसीसे स्नेह न रखनेवाले विवेकी पुरुष परमतत्त्वरूपहीको विष्णुका परमपद कहते हैं, उसीका ध्यानादिक सावधानतासे विज्ञानीलोग हृदयमें धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ विष्णुके परमपदको वही आत्मतत्त्ववेत्ता जाते हैं. जिनके देह गेहमें अहंता, ममता, दुर्जनताका मिथ्या अभिमान नहीं है ॥ ३३ ॥ मनुष्यको उचित तो यह है कि, अज्ञानियोंके दुर्वाक्योंको सहन करै किसीकी अवज्ञा न करै और इस देहके कारण किसीसे शत्रुता न करे ॥ ३४ ॥ अकुण्ठित बुद्धिवाले भगवान् व्यासदेवजीको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं कि, जिनके चरणकमलके ध्यानसे मैंने यह "श्रीमद्भागवत-संहिता" पढी है ॥ ३५ ॥ शौनकऋषि बोले, हे सौम्य! व्यासदेवजीके शिष्य! वेदोंके आचार्य पैलादि महात्माऋषियोंने वेदोंका कितनी रीतिसे विभाग किया सो यह वृत्तान्त हम बूझते हैं और पुराणोंकी संहिताओंके विभाग किसप्रकारसे किये गये हैं, सो जाननेकी हमारी अभिलाषाहै ॥ ३६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे ब्रह्मन्! एकाग्रमन परमेष्ठी ब्रह्माके हृदय आकाशसे प्रथम एकनाद शब्द उत्पन्न हुवा जो कि, कानोंपर हाथ रखनेसे सुनाई आताहै ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन्! जिस नादकी उपासना करके योगी पुरुष अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, इन तीनों मनके मलोंको दूर करके मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ उस नादशब्दसे स्वयंप्रकाश हुवा जिसकी उत्पत्ति स्पष्टरीतिसे किसीप्रकार जाननेमें न आवै, ऐसा अव्यक्त तीन अक्षर युक्त ॐकार हुवा जो कि, भगवान् परमात्मा परब्रह्मका जतानेवाला है ॥ ३९ ॥ इन्द्रिय मन विनाही जो भगवान् हैं, सब शून्य होजानेपर भी आप ज्ञाता होनेसे कानोंके बन्द करनेपर भी इस अव्यक्त ओंकारको सुनते हैं, जीव इन्द्रियोंके आधीन है, इसलिये कान बन्द किये जानेपर भी कुछ नहीं सुनता, हृदय रूप आकाशमें आत्मासे उत्पन्नहुए ओंकारसे वैखरी विस्तृत वाणी प्रगट होती है ॥ ४० ॥ अपने आश्रयरूप सर्वव्यापक साक्षात् परमात्मा परब्रह्मका बताने वाला सब मंत्रोंका रहस्य, वेदोंका बीज, सनातन ओंकार है ॥ ४१ ॥ हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ! उस ओंकारसे अकार, उकार, मकार, यह तीनवर्ण हुए तीन वर्णसे सत्त्व, रज,

और तम यह तीन गुण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद यह तीन वेद भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक यह तीनोंलोक जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीनों अवस्था हुईं ॥ ४२ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इनही वर्णोंसे अक्षरोंके समूह रचे सोलह १६ तो स्वर पच्चीस २५ स्पर्श चार ४ अन्तस्थ चार४ऊष्माण यह सब ह्रस्व दीर्घ जिह्वामूली करके युक्तहैं॥४३॥भगवान् ब्रह्माजीने उन्हीं अक्षरोंसे चारों मुखोंसे और छन्दोंसे ओंकार सहित चारों वेदोंको रचा चातुर्होत्र कर्मोंके लिये अथर्वण, यजुर्वेदी उद्गाथा, सामवेदी होता, ऋग्वेदी ब्रह्मा, आहुतिदेनेवाले रचे॥४४॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने वेदोंके उच्चारणादिकोंमें चतुर ब्रह्मर्षि अपने पुत्रोंको वह वेद पढाये और धर्मोंके उपदेष्टा अपने वेदको बनाया ॥ ४५ ॥ उन सब वेदोंके हृदयमें धारण करनेवाले व्रतधारी शिष्योंकी परंपराय चारों युगोंमें चली आई है, द्वापरके अन्तमें महाऋषियोंने वेदोंके विभाग क्यों किये ॥४६॥ इसका कारण यहहै कि, भगवान्ने जाना कि, कलियुगमें सब ब्रह्मऋषि कालसे क्षीण, अल्प आयु, वीर्यहीन, अशक्त और मन्दमति होंगे, यह विचारकर अच्युत भगवान्ने उनके हृदयमें विराजमान होकर प्रेरणा की, तब उन ऋषियोंने वेदका विभाग किया ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् धर्मकी रक्षाके लिये ब्रह्मा, शिवादिक लोकपालोंकी स्तुति करनेसे ॥ ४८ ॥ विभु भगवान् अपने अंशकलाओंसे पराशरमुनिके वीर्य करके सत्यवतीके गर्भमें वेदव्यासरूपसे अवतीर्ण होकर वेदके चार विभाग किये ॥ ४९ ॥ जैसे रत्नपारखी अनेक मणियोंकी राशियोंसे पद्मरागादि मणियोंको छाँटछाँटकर अलग कर लेता है, ऐसेही मंत्रोंके समुदाय एक वेदमेंसे ऋग, यजु, साम और अथर्वण नामके मंत्रोंको उद्धारके उन मंत्रोंसे चार संहिता श्रीवेदव्यासजीने रचीं ॥ ५० ॥ हे शौनक ! फिर पीछे महामति व्यासदेवजीने अपने चार शिष्योंको बुलाकर एकएक संहिता देदी ॥ ५१ ॥ पैलनाम शिष्यको बहुत ऋचा होनेसे बह्वृचनाम ऋग्वेदकी संहिता दी, निगदानाम यजुर्वेदकी संहिता वैशंपायनको दी ॥ ५२ ॥ छन्दोगनाम सामवेदकी संहिता जैमिनीको पढाई और अंगिरसनाम अथर्वण वेदकी संहिता अपने शिष्य सुमंतुको पढाई ॥ ५३ ॥ पैल मुनिने अपनी पढी हुई संहिता इन्द्रप्रमित और बाष्कलनाम अपने दोनों शिष्योंको दी ॥ ५४ ॥ हे ब्रह्मन् ! बाष्कलने अपनी संहिताके चार विभाग करके बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र, इन चारों अपने शिष्योंको पढाई महात्मा इन्द्रप्रमितने अपनी संहिता कवि मंडूक ऋषिको पढाई ॥ ५५ ॥ मंडूकने देवमित्रको पढाई देवमित्रने सौभर्यादि ऋषियोंको पढाई ॥ ५६॥ मंडूकके पुत्र शाकल्यने अपनी संहिताके पाँच विभाग करके वात्स्य, मुद्गल, शालीन, गोखल्य, शिशिरनाम अपने पाँचो शिष्योंको दी ॥ ५७ ॥ शाकल्यके छठे जातुकर्ण्य नाम शिष्यने अपनी संहिताके तीन भाग किये और वैदिक पदार्थोंका व्याख्यानरूप निरुक्त नाम ग्रन्थ रचकर बलाक, पैज, वैताल और विरजनाम अपने चार शिष्योंको पढाया ॥ ५८ ॥ बाष्कलि, बाष्कलके पुत्रने सब संहिताओंकी शाखाओं

मेंसे वालखिल्यनाम संहिता बनाकर वह संहिता बालायनि, भज्य और कासारनाम अपने तीनों शिष्योंको दी ॥ ५९ ॥ यह सब ब्रह्मऋषि ऋग्वेदकी वचानाम संहिताके धारण करनेवाले हुये जो पुरुष इस वेदके विस्तारको सुनेगा वह सब पापोंसे निवृत्त होजायगा ॥ ६० ॥ वैशंपायनके शिष्यने यजुर्वेद संहिता पढी, इसलिये उन्होंने यज्ञमें अध्वर्युकी पदवी पाई, जब उनके गुरु वैशंपायनको ब्रह्महत्याका पाप लगा तब उस पापके निवारणके लिये अपने गुरुके बदले उन्होंने अपने आप प्रायश्चित्त किया उस दिनसे उनका नाम चरकाध्वर्यु हुवा ॥ ६१॥ याज्ञवल्क्यने ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करानेके समय वैशंपायनाम अपने गुरुसे कहा कि, हे स्वामिन्! अल्प दृढतावाले जो और आपके शिष्यहैं, जो आपके पापका प्रायश्चित्त करें तो क्योंकर होगा? यह महाकठिन प्रायश्चित्त मैं इकलाही करूंगा ॥ ६२ ॥ याज्ञवल्क्यका यह वचन सुनकर वैशंपायन अत्यन्त कुपित होकर बोले कि, तू मेरे सामनेसे चलाजा, तू दूसरे ब्राह्मणकी अवज्ञा करनेवाला शिष्य है, इसलिये मुझसे तुझसे कुछ प्रयोजन नहीं तैंने मुझसे जो कुछ पढा है, उसको इसी समय त्यागदे ॥ ६३॥ गुरुके मुखसे इस प्रकारके कठोर वचन सुनकर देवरातके पुत्र याज्ञवल्क्यने अभिमानमें आनकर यजुर्वेदके मंत्रोंको उगल वहाँसे चलदिया, उस समय मुनिगणोंने यजुर्वेदके अमूल्य मंत्रोंको पडा देखा ॥६४॥ जिनमंत्रोंमें उन मुनियोंकी परम इच्छा थी, उन मंत्रोंको उन मुनियोंने तीतर पक्षीका रूप धारण करके याज्ञवल्क्यके वमन किये हुए यजुर्वेदके मंत्रोंको ग्रहण करलिया, उसी दिनसे उस यजुर्वेदकी तैत्तिरीय नाम शाखा हुई ॥ ६५॥ हे ब्रह्मन्! याज्ञवल्क्यजीने गुरुसे भी अधिक वेद विद्या प्राप्त करनेके लिये श्रीसूर्यनारायणकी उपासना करनी आरम्भ की ॥ ६६ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच ।

ओं नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतानामंतर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भगवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ॥ ६७ ॥

अर्थ—याज्ञवल्क्य बोले कि, हे सूर्यनारायण भगवान् आदित्यस्वरूप! आपको वारम्वार नमस्कार है,आप ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके समुदाय रूपसहित इस विश्वके हृदयमें निरुपाधि अन्तर्यामी रूपहो और बाहर लवनिमेष क्षणके अनेक अवयववाले वर्षोंके समुदायवाले कालरूपसे आकाशकी सदृश उपाधिसे आच्छादित नहीं होते और प्रत्येक वर्षमें पानीके सोखने और वर्षानेसे एकही आप इस जगत्की दिन रात यात्रा करते रहते हो ऐसे जो आप त्रिलोकीनाथ हो आपको वारम्वार प्रणाम करताहूं ॥ ६७ ॥

यदुहवाव विबुधर्षभसवितरदस्तपत्यनुसवनमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जनभगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥

हे त्रिभुवनपते ! हे त्रयतापके नशानेवाले ! हे नित्य त्रिकाल वेदविधिसे पूजन करनेवाले भक्त जनोंके अखिल पापोंके बीजको जलानेवाले ! हे सर्व देवताओंमें श्रेष्ठ ! हे सविता भगवन् ! आपका जो यह मण्डल त्रिलोकीमें प्रकाश करता है, ऐसे जो आप निशिवासर जगत्के तपानेवाले हैं सो मैं एकाग्रचित्तसे आपका ध्यान करताहूं ॥ ६८ ॥

य इह वावास्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मांतर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥

हे भास्कर ! आपके रहनेके स्थान स्थावर जंगम अनंत समुदायके जडरूप मन इन्द्रिय प्राणोंके समूहोंको आपही अन्तर्यामी आत्मारूप होकर प्रेरणा करतेहो ऐसे तेजरूपको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥ ६९ ॥

यएवेमं लोकमतिकरालवदनांधकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्त्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥

हे विश्वतमनाशक ! हे कृपानिधे ! महाभयानक मुखवाले अन्धकाररूप अजगरसे ग्रसे हुये मृतकके समान संज्ञारहित अचेतन लोकोंको देखकर परमकरुणानिधान आप दयादृष्टिसे उनको उठाकर नित्य समय समयपर कल्याणरूप स्वधर्मनिष्ठामें प्रवृत्त करते हो और भूपतिकी तुल्य असाधु लोगोंको भय देतेहुये सब ओर घूमते रहते हो, ऐसे जो आप दयालु हो सो आपको वारंवार प्रणाम करताहूं ॥ ७० ॥

परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥७१॥

हे सूर्य ! जहाँ तहाँ दिक्पाल देवता कमलकोशयुक्त अंजलियोंसे आपको अर्घ्य देदेकर आराधना करते हैं, ऐसे जो सर्वान्तर्यामी आप हो आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥७१॥

अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वन्दितमहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति ॥ ७२ ॥

हे भगवन् ! आप ऐसे दीनदयालु हो, त्रिलोकीके अधीश्वरोंसे पूजित आपके चरणारविन्दकी उत्तम यजुर्वेदकी कामनाके लिये मैं शरण आया हूं ॥ ७२ ॥

दोहा–सूर्यमंत्र यह षट् अहैं, रवि सन्मुखही नित्त।
पढैपढावैं जो कोई, सविधिसप्रीतिसचित्त ॥
ताकी भानुप्रसन्न हो, करहिं कामना पूर।
इन पुरुषनके होतहैं, महापाप सब दूर ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनकादि ऋषियों ! याज्ञवल्क्यने जब इस प्रकार सूर्यनारायणकी प्रार्थना की तब उस प्रार्थनाको सुन, सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर अश्वका रूप धारण किया और याज्ञवल्क्यको उसकी इच्छानुसार सहित यजुर्वेदके मंत्र दिये ॥ ७३ ॥ तब याज्ञवल्क्य मुनिने उस यजुर्वेदकी पन्द्रह १५ शाखा करीं, सूर्यनारायणने अपनी केशावलीसे जो मंत्र निकाले इसलिये यह शाखा वाजसनेयी नामसे प्रसिद्ध हुई, उन शाखाओंको कण्व और माध्यंदिनादि ऋषियोंने ग्रहण किया ॥ ७४ ॥ सामवेदके वेत्ता जैमिनिने सुमन्तु नाम अपने पुत्रको और सुन्वान् नाम अपने नातीको एक एक संहिता पढा दी ॥ ७५ ॥ फिर जैमिनिजीका दूसरा शिष्य सुकर्मा नाम द्विज बडा चतुर था उसने सामवेदवृक्षकी सहस्र संहिता बनाकर अलग अलग शाखा रचीं ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभ कौशल्य, पौष्पंजि और वेदपाठी आवंत्य यह तीन शिष्य सुकर्माके हुए, उन्होंने सहस्रों संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ हिरण्यनाभ, पौष्पंजि और आवंत्यके महाचतुर पांचसौ ५०० शिष्य साम वेदके गानेवाले उदीच्या, (उत्तर दिशानिवासी) नाम हुए उनमें कोई कोई पूर्वदिशाके वासी कह लाये ॥ ७८ ॥ पौष्पंजिके शिष्य लौगाक्षि, मांगलि, कुल्प (कुसीद), कुक्षी यह पांच शिष्य और थे उन्होंने सौ सौ संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ हिरण्यनाभका कृत नाम दूसरा और शिष्यथा उसने अपने शिष्योंको चौबीस संहिता पढाईं और जो संहितायें अवशेष रहगईंथीं वह ज्ञानवान् आवंत्यने अपने शिष्योंको पढादीं ॥ ८० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-सप्तममाहिं अथर्वको, कहों सहित विस्तार ।
फेर पुराणोंके कहौं, लक्षण सकल विचार ॥ ७ ॥

सूतजी बोले कि, अथर्ववेदपाठी सुमन्तुने अपनी संहिता अपने कबन्ध नाम शिष्यको पढाई, कबन्धने अपनी संहिताके दो भाग करके पथ्य और वेददर्श नामको पढाई ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! वेददर्शने अपनी संहिताके चार भाग किये और शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि नाम अपने चार शिष्योंको पढाई,और पथ्यने अपनी संहिताके तीन भाग करके कुमुद, शुनक, और जाजलि नाम तीन शिष्योंको पढाई ॥ २ ॥ शुनकने बभ्रु और सैन्धवायन नाम दो शिष्योंको अपनी संहिताके दो विभाग करके पढाया सैन्धवायन आदिके सावर्णि आदि शिष्य हुए ॥ ३ ॥ नक्षत्र कल्प, शान्ति कल्प, कश्यप और आंगिरस आदि शिष्य हुए, हे मुनिराज ! यह तो मैंने आपसे अथर्ववेदके आचार्य्य कहे अब मैं आपके सामने पुराणोंके आचार्योंका वर्णन करता हूँ,सो आप सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशंपायन, और हारीत यह छः पुराणोंके आचार्य्य हुए ॥ ५ ॥ वेदव्यासजीने पहिले पुराणोंकी छः संहिता रचकर मेरे पिता रोमहर्षणको पढाईथीं,फिर रोमहर्षणके मुखसे इन छहों जनोंने छहों संहिताओंको पढा

मैं इन छहों महात्मा जनोंका शिष्य हुवा और सबसे एक एक संहिता पढी ॥ ६ ॥ इसमें जो पुराणोंकी चार संहितायें मूल थीं उनको कश्यप, सावर्णि, परशुरामजीका शिष्य अकृतव्रण और चौथा मैं इन चारों जनोंने व्यासजीके शिष्य मेरे पितासे चारों मूलसंहिताओंको पढा ॥ ७॥ हे शौनक ! ब्रह्मऋषियोंने जो पुराणोंके लक्षण वर्णन किये हैं, वेदशास्त्रके अनुसार हम कहते हैं आप सावधान हो ध्यान लगाकर सुनिये ॥ ८ ॥ सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, राजाओंके वंश, उन वंशवाले राजाओंके चरित्र, निरोध, मुक्तिहेतु और अपाश्रय ॥ ९ ॥ जिसमें यह दश लक्षण होंय विद्वान् लोग उसको महापुराण कहते हैं और कोई कोई आचार्य लोग पाँच लक्षण (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश,मन्वन्तर,वंशानुचारित्र) वाले ग्रन्थको भी पुराण कहते हैं, यह केवल छोटे बडेकी व्यवस्था है ॥ १० ॥ इस मायाके गुणक्षोभसे महत्तत्त्व, तीन प्रकारका अहंकार, पंचमहाभूत और इन्द्रियगणकी उत्पत्तिको सर्ग कहते हैं ॥ ११ ॥ ईश्वरके अनुग्रहसे महत्तत्त्व आदिसे प्रगट होता हुवा और बीजमेंसे बीजकी सदृश प्रवाहरूपसे चलतेहुए स्थावर जंगमरूप प्रपंचको विसर्ग कहते हैं॥१२॥जंगम प्राणियोंके स्थावर आहार हैं और जंगमोंकी मांसमें भी साधारण प्रीति है, उनमें मनुष्योंके निमित्त रागसे अथवा शास्त्र वचनोंसे जो आजीविकाका विधान है, वह वृत्ति कहाती है॥१३॥ पशु,पक्षी,मनुष्य,ऋषि, देवताओंमें भगवान् अवतीर्ण होकर युगयुगमें जो लीला करके विश्वकी रक्षा करते हैं, वही विश्वकी रक्षा कहलाती है और वही अनेक प्रकारके अवतार धारण करके वेदके द्रोही दुष्ट और पाखण्डियोंको मार पृथ्वीकी रक्षा करते हैं, वही रक्षा कहलाती है ॥ १४ ॥ मनु, देवता, मनुके पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और हरिके अंशावतार, यह छः मिलकर मन्वन्तर कहलाता है॥१५॥ ब्रह्मासे उत्पन्न हुए शुद्ध राजाओंकी भूत, भविष्य, वर्त्तमान कालकी सन्तानको वंश कहते हैं, उन राजाओंके वंशको और उन वंशोंमें हुए चारित्रोंको वंशानुचारित्र कहते हैं॥१६ ॥ नित्य नैमित्तिक,प्राकृत,आत्यन्तिक,चार प्रकारकी प्रलयको कविजन संस्था (निरोध) कहतेहैं॥१७॥ अविद्याके कारण कर्म कर्त्ता जीव जिसे मुख्यवेत्ता अनुशयी और उपाधिवेत्ता अव्याकृत कहतेहैं उसकी वासना इस जगत्की सृष्टि होनेमें निमित्त है, वह मुक्तिहेतु (ऊति) कहलाती है ॥ १८ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिमें जीवरूपसे वर्तनेवाले ईश्वर मायामें विश्व तेजस और प्राज्ञमें प्रविष्ट हैं और समाधिमें उनसे पृथक् हैं, इसलिये वह अपाश्रय कहलाते हैं ॥ ॥ १९ ॥ जैसे घटादिक पदार्थमें मृत्तिकादि प्रविष्ट है उनके नाम रूपमें सत्तामात्रही है, ऐसेही जन्मसे लेकर मरणतक उन सब अवस्थाओंमें ब्रह्मयुक्तभी है और अलग भी है ॥ ॥ २० ॥ जब सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंकी वृत्तियोंको त्यागकर पुरुषका चित्त शान्त होय, अथवा योगाभ्यास करके शान्त होय; तब यह पुरुष अपने शुद्धरूपको जानकर संसार चेष्टाओंसे छूट जाताहै ॥ २१ ॥ इन छोटे बडे लक्षणोंसे पुराण पहँचाने जाते हैं, अठारह १८ महापुराण हैं और अठारह १८ लघु पुराण हैं, इसप्रकार बडे बडे प्राचीन कविवर कहते हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्मपुराण १, पद्मपु-

राण २, विष्णुपुराण ३, शिवपुराण ४, लिंगपुराण ५, गरुडपुराण ६, नारदीयपुराण ७, भागवतपुराण ८, अग्निपुराण ९, स्कन्दपुराण १०, ॥ २३ ॥ भविष्यपुराण ११, ब्रह्मवैवर्तपुराण १२, मार्कंडेयपुराण १३, वामनपुराण १४, वाराहपुराण १५, मत्स्यपुराण १६, कूर्म्मपुराण १७, ब्रह्माण्डपुराण १८, यह अठारह पुराण कहे * ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन्! वेदव्यासजीने और उनके शिष्योंने और उनके शिष्योंके शिष्योंने जो वेदकी शाखाओंका विस्तार किया है, वह वृत्तान्त मैंने आपको सुनाया क्योंकि वह ब्रह्मतेज और भक्तिका बढानेवाला है ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-मोह मार्कण्डेयको, तपच्चर्य्या अरु काम।
इस अष्टमअध्यायमें, हरि स्तुति सुखधाम ॥ १ ॥

शौनकादि मुनि बोले कि, हे साधो! हे श्रीसूतजी महाराज! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! इस अपार संसारमें भ्रमनेवाले मनुष्योंको पार लगानेवाले तुम चिरजीवित रहो ॥ १ ॥ मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेयजीको लोग चिरजीवी कहते हैं, क्योंकि जिस प्रलयमें सब जगत् ग्रस्त हुवा तो उस कल्पान्तमें मार्कण्डेयजी किस प्रकार बचरहे? ॥ २ ॥ जो भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ इसी कल्पमें हमारे वंशमें उत्पन्न हुए, उस दिनसे लेकर आजतक प्राणियोंका प्राकृतिक अथवा नैमित्तिक कोई भी प्रलय नहीं हुवा, फिर उनका प्रलयमें अवशेष रहना क्योंकर संभव हो सक्ताहै? ॥ ३ ॥ कोई महात्माजन ऐसा भी कहते हैं कि, मार्कण्डेय ऋषि

---

* **शंका**-राजा जन्मेजयकी यज्ञमें बृहस्पतिजीने राजा जन्मेजयसे कहा कि, हे राजन्! तक्षकने अमृत पीलिया है अब आपके मारनेसे वह नहीं मरेगा, क्योंकि अमृतको जो प्राणी पीलेता है वह किसीके मारनेसे नहीं मरता, इस बातमें यह सन्देह है कि, अमृतका स्वामी इन्द्र, जिसने रातदिन अमृत पिया, बरन् अमृत पीते पीते अनेक युग बीत गये ऐसे इन्द्रको ब्राह्मणोंने तप और मंत्रोंके प्रभावसे राजा जन्मेजयके यज्ञवाले कुण्डमें भस्म करनेके लिये स्वर्गसे गिराकर भस्म करनेकी सामर्थ्य तो ब्राह्मणोंमें थी और जिस तक्षकने राईभर अमृत पीलिया क्या वह ब्राह्मणोंके मंत्र और तपके प्रभावसे भस्म नहीं होसक्ता?

उत्तर-जो प्राणी बहुत दुःखी होकर भगवान्का नाम एक बार भी लेताहै उसको असंख्य नामके जपनेका फल प्राप्त होता है ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है, ऐसा तक्षकने जाना कि, मैं बडे बडे देवताओंके पास गया किसीने भी मेरी सहायता नहीं की ऐसा विचार कर इन्द्रलोकमें गया महादुःखी हो रहाथा। नेत्रोंसे आँसू चले जाते थे, तब अत्यन्त आतुर होकर हे भगवन्! हे नारायण! इस प्रकार बडे आदर सत्कारसे वारम्वार भगवानका नाम जपा, तब वही भगवान्का नाम अमृत होगया उसी भगवन्नाम अमृतको

इकलेही प्रलयके समुद्रमें घूमरहे थे और वहाँ उन्होंने वटवृक्षके पत्रके दुप्पेमें एक अद्भुत बालकको सोता हुवा देखा "सौ प्रलयकालमें वटका वृक्ष कैसे रह गया ? ॥ ४ ॥ हे सूत ! हे महायोगिन् ! हमको बडा सन्देह है और उसका उत्तर सुननेकी अभिलाषा है, सो आप सब पुराणोंके ज्ञाता और परमज्ञानी हो, आप हमारे इस संशयको निवारण करो ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि, हे महापुरुषो ! आपका यह प्रश्न सम्पूर्ण लोकोंके पापोंका दूर करनेवाला है, क्योंकि इस प्रश्नमें श्रीनारायणकी कथा कलियुगके दोषोंकी मिटानेवाली है, * ॥ ६ ॥ क्रम करके पितासे द्विजन्म संस्कार पाय मार्कंडेयने विद्याध्ययनयुक्त धर्म-पूर्वक वेदोंको पढा ॥ ७ ॥ नैष्ठिक, बालब्रह्मचारी, शान्त, वल्कलवस्त्रधारण किये, जटा, दंड, कमंडलु, उपवीत (जनेऊ) पहिरे ॥ ८ ॥ कृष्ण मृगचर्म, कमलाक्षकी माला, नित्य नैमित्तिक सिद्धिके लिये कुशाओंको धारण किये, अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मामें दोनों सन्ध्यां करके भगवत् आराधना करनेलगे ॥ ९ ॥ साँझ सबेरे भिक्षा लाकर गुरुके सन्मुख रखदेते और जब गुरु आज्ञा देते तब मौन साध एक बार भोजन करलेते और जो गुरु कभी आज्ञा न देते तो उसदिन निराहारही रहजाते ॥ १० ॥ इस प्रकार मार्कण्डेयजीने विद्याध्ययन परायण होकर दश करोड १०००००००० वर्षतक हृषीकेशका आराधन करके तप किया और अतिदुर्जय मृत्युको जीतलिया ॥ ११ ॥ तब तो ब्रह्मा, महादेव, भृगु, दक्ष और भी ब्रह्माके अनेक पुत्र, मनुष्य, देवता, पितर, भूत और सम्पूर्ण देहधारियोंको बडा आश्चर्य हुवा ॥ १२ ॥ इसप्रकार नैष्ठिकब्रह्मचारी व्रत धारणकर मार्कण्डेययोगी तप अध्ययन संयमों करके क्लेशरहित मनसे अधोक्षज भगवा-

---

-तक्षकने पान किया, इसलिये गुप्त करके बृहस्पतिजीने कहाथा कि, तक्षकने अमृत पीलिया है तुम्हारे मारनेसे नहीं मरेगा, कुछ इन्द्रवाले अमृतको नहीं कहा था ।

* **शंका**-श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कंधके अष्टम अध्यायमें लिखा हैं कि, सूतके मुखसे ब्राह्मणोंने विद्या पढी, तो इसमें यह शंका है कि, क्या उस समय ब्राह्मणोंको विद्या पढानेके लिये ब्राह्मणवंश नहीं था ? क्या सब ब्राह्मण नष्ट होगयेथे ? जो ब्राह्मणोंने सूतके मुखसे विद्या पढी यह बडा आश्चर्य है ?

उत्तर-सूतने व्यासदेवजीकी सेवा बहुत वर्षतक की, तब व्यासजीने सूतको अपना पुत्र मानकर शास्त्र और पुराण पढाये और यज्ञोपवीत कर्म भी सूतका किया, क्योंकि व्यासजी साक्षात् भगवान्का अवतार थे, संस्कारकरके सूतको वरदान दिया कि, हे पुत्र सूत ! तुम्हारे मुखसे भगवान्की कथाको जो ब्राह्मण अभिमान त्यागकर सुनैंगे अथवा पढैंगे तब उन सुननेवाले पढनेवाले ब्राह्मणोंको सहस्रगुणा कथाका फल होगा और सहस्र गुणाही विद्या पढनेका फल होगा, इसलिये सब ब्राह्मण और सनकादिकोंने अभिमानको तजकर सूतसे कथा सुनि और विद्या पढी ब्राह्मणोंका वंश नष्ट नहीं हुवा था, पुण्यके लोभसे सब ब्राह्मणोंनें पढा सुना ।

नूका ध्यान करने लगे ॥ १३ ॥ इसप्रकार भगवान्में मन लगाये उस महायोगी मार्कण्डेयको छः मन्वन्तर बीतगये ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन्! तब सातवें मन्वन्तरमें मार्कण्डेयके तपको देखकर इन्द्र शंकायुक्त हुवा और उनके तपमें विघ्न डालनाचाहा ॥ १५ ॥ तब इन्द्रने उनका तपभंग करनेके लिये गन्धर्व, अप्सरा, मनोभव, वसन्तऋतु, मलयपवन, रजोगुणके मित्र लोभ व मदको मार्कण्डेयमुनिके पास भेजा ॥ १६ ॥ हे विभो! वह सब मिलकर हिमालयकी उत्तर ओर उन मुनिके आश्रममें गये, जहाँ पुष्पभद्रानदी और चित्रानाम शिला है ॥ १७ ॥ वह परमपवित्र मार्कण्डेयजीका आश्रम जहाँ सुन्दर सुन्दर वृक्ष और लतायें शोभायमान थीं अनेक प्रकारके पक्षियोंके शब्दसे व्याप्त हो रहा था, जहाँ परमविद्वान् ब्राह्मणोंके कुल निवास करते थे और सरोवरोंमें जहाँ तहाँ निर्मल जल, झकोल रहेथे ॥ १८ ॥ मतवाले भ्रमर गुंजार रहे थे, मदोन्मत्त कोकिला कुहू कुहू पुकार रही थीं, मदमाते मोर जहाँ तहाँ नटोंकी नाच नाच रहेथे और मत्त पक्षियोंके समुदाय अपनी अपनी वाणी बोल रहेथे ॥ १९ ॥ शीतल जलके झरनोंके कनकाओंको लेकर वनपवन पुष्पोंको स्पर्श करती परम सुगन्धवाली कामदेवको बढानेवाली कामदेवको देखकर सबके चित्तको प्रफुल्लित करनेलगी ॥ २० ॥

दोहा-पल्लव पल्लवमें तहाँ, गई चन्द्रिका छाय।
फूल उठीं सिगरीलता, सन्ध्यासमयसुहाय ॥

चन्द्रमाके उदय होनेसे सन्ध्यासमयके सुंदर नवीन पल्लव और फूलोंके गुच्छोंके समूह अनेक शाखा और वृक्ष लताओंसे युक्त वसन्त ऋतु वहाँ आनकर प्रगट हुई ॥२१॥ गीत और वादित्रवाले गन्धर्व और अप्सराओंके समूहोंसे युक्त कामदेव हाथमें धनुषबाण लिये दिखाई दिया ॥ २२ ॥ अग्निहोत्रसे निश्चितहो उस आश्रममें ध्यानसे नेत्र मूँदकर ऐसे बैठे थे जैसे मूर्त्तिमान अग्निके समान अनन्त तेजस्वी मार्कण्डेयजीको आसनपर विराजमान देखा ॥ २३ ॥ उस समय मार्कण्डेयजीके सामने अप्सरायें नाचने लगीं, गन्धर्व गाने लगे, मृदंग, बीणा, ढोलकादि अनेक प्रकारके सुंदर सुन्दर बाजे बजाने लगे॥ ॥ २४ ॥ ऐसा सुन्दर समय पाकर कामदेवने सोषण, दीपन, संमोहन, संतापन, उन्मादन नाम यह पाँच मुखवाले बाण अपने धनुषपर धारण किये और वसन्त लोभादिसे सब इन्द्रके अनुचर मार्कण्डेयजीके मनको कम्पायमान करने लगे ॥ २५ ॥ गेंदको उछालती अनेक प्रकारकी क्रीडा करती पुंजिकस्थली नाम अप्सरा स्तनोंके भारसे जिसकी लंक लचक रहीथी कि, जिसके केशपाशसे शिथिल होनेके कारण पुष्प गिर रहे थे ॥

दोहा-खसत कचनते सुमन बहु, लचतलंकलचकील।
करतकटाक्षनसोंकटा, चढीमत्तमदफील ॥ २६ ॥

गेंदको उछालती तिरछी चितवनसे चारों ओरको देखती भालती जब वह चंचल चित्तवाली चली तब कटिमेखला टूट जानेसे उसका वस्त्र भी छूट गया, पीछे समीरने उस बीरबालाका सूक्ष्म वस्त्र हरण कर लिया ॥२७॥ उस समय यह पंचशर मार्कण्डेय-

जीको अपने वशमें जानकर अपना महातीक्ष्ण शर चलाया, परन्तु उस अवसरमें कामदेवके सब शर उद्यम व्यर्थ होगये, जैसे भाग्यहीनके सब उद्यम निष्फल होजातेहैं ॥ ॥ २८ ॥ हे मुने ! इस प्रकार मुनिके तिरस्कार करनेवाले मन्मथादिक मार्कण्डेयके तेजसे भस्म होने लगे, तब तो भयभीत होकर वह अभागे भागने लगे, जैसे बालक सर्पको जगाकर भागताहै ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार पुरन्दरके अनुचरोंके किये हुए कर्त्तव्यको वृथा देखकर मार्कण्डेयजीके मनमें किसी प्रकारका अहंकार और विकार नहीं उपजा, सो इस बातका महात्मा पुरुषोंमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ ३० ॥ गणोंसमेत कामदेवको निस्तेज देखकर और ब्रह्मर्षिका प्रभाव सुनकर इन्द्र अपने मनमें अत्यन्त विस्मित हुआ ॥ ३१ ॥ इस प्रकार तप, अध्ययन और संयमोंसे मनको वशमें रखनेवाले भगवान्में जिनका चित्त लग रहा ऐसे मार्कण्डेयजी पर अनुग्रह करनेके लिये नर नारायण भगवान् वहाँ आनकर प्रगट हुए ॥ ३२ ॥ शुक्ल श्याम नवीन कमलसे सुंदर नेत्र चतुर्भुज मृगचर्म, वल्कलके वस्त्र, हाथमें कमण्डलु, जनेऊ सूधे बाँसके दण्डको धारण किये ॥ ३३ ॥ कमलकी माला, जीव जन्तु न मर जायँ उनको हटानेके लिये वस्त्रकी झाड़ू,वेदको धरे, गौरवर्ण तेजधारी, बिजलीके समान प्रकाशवान्, साक्षात् मूर्त्तिमान, तपरूप शरीर, परमश्रेष्ठ, देवताओंके पूज्य दोनो ऋषीश्वर आये ॥ ३४ ॥ भगवत्स्वरूप नर नारायण ऋषीश्वरोंको देखकर, मार्कण्डेयजीने बहुत आदरपूर्वक उठकर दण्डके समान गिरकर दोनोंको दण्डवत् साष्टांग किया ॥ ३५ ॥ नर नारायणके दर्शनके आनंदसे बुद्धि, इंद्रिय, मनसे शांत हो और अंगमें प्रफुल्लित होनेसे और नेत्रोंमें जल भर आनेसे मार्कण्डेयजी भगवान्की ओर देखनेको समर्थ न हुए ॥ ३६ ॥ फिर सँभालकर खडे हो, हाथ जोड नम्रता और उत्कण्ठासे आलिंगन कर गद्गद वाणीसे केवल नमो नमो शब्द नरनारायणकी ओरको देखकर कहा ॥ ३७ ॥ फिर उन दोनोंको आसनपर बैठार, चरण पखार, अर्घ्य दे, चन्दन, धूप, मालासे पूजन किया ॥ ३८ ॥ सुखपूर्वक आसनपर बैठे, प्रसन्नमुख, ऐसे दीनदयालु नर नारायणके चरणारविन्दोंमें मार्कण्डेयजीने फिर दण्डवत् करके यह वचन कहा ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, हे प्रभो ! मैं आपकी क्या स्तुति करूँ ? जिस आपकी प्रेरणासे ब्रह्माके, शिवके, सब प्राणी मात्रके और मेरे भी प्राण चेष्टा करतेहैं, उन प्राणोंके पीछे मन, वाणी, इन्द्रियें चेष्टा करती हैं, तो भी आप अपने भजन करनेवालोंपर अधिक दया करतेहो, क्योंकि आप दयाके सागर हैं पिता आदिक तो इस शरीरके ही बन्धु हैं परन्तु आप सदैव इस आत्माके बन्धु हो ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! सदासे जैसे इस विश्वकी रक्षाके लिये आप अनेक प्रकारके स्वरूप धारण करतेहो इसी प्रकार यह दो स्वरूप भी त्रिलोकीके मंगल करनेके निमित्त, सांसारिक तापोंके दूर करनेके अर्थ और मृत्युको जीतनेके लिये आपने धारण किये हैं, जैसे आप सृष्टिकी रक्षा करनेमें प्रसिद्ध हैं, ऐसेही विश्वके संहार करनेमें भी आप विख्यात हैं, जैसे मकरी जालेको रचकर पीछे आपही निगल जातीहै ॥ ४१ ॥

स्थावर जंगमके रक्षा करनेवाले ईश्वर आपके चरणारविंदोंका मैं भजन करताहूं, जिन चरणारविंदोंके आश्रयसे मनुष्योंको कालकर्म गुणोंके मान्य तापादिकोंको कोई स्पर्श भी नहीं करसक्ते और बडे बडे वेदपाठी महात्मा लोग जिन चरणारविन्दोंकी प्राप्तिके लिये नित्य ध्यान करतेहैं, यजन करतेहैं और दिन रात स्तुति करतेहै ॥ ४२ ॥ हे ईश ! अपवर्गमूर्त्ति ! जिन प्राणियोंको चोरोंसे भय है उन प्राणियोंके लिये आपके चरणकमलकी प्राप्तिसे अधिक मंगल और निर्भय स्थान हम और कोई दूसरा नहीं समझते, दो परार्द्धकी आयुर्बलवाला ब्रह्मा भी आपकी भ्रुकुटी वंकरूप कालसे अतिशय भयभीत रहता है, उसके सृजेहुए प्राणी भयभीत हों तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ४३ ॥ आत्माके आवरण करनेवाले तुच्छ नश्वर निष्फल भी हैं, परन्तु सत्यसे दृष्टि आते हैं, ऐसे देहादिकोंके भजनको छोडकर सत्य ज्ञान स्वरूप सब जीवोंके नियंता सबसे परे आपके उन चरणारविन्दोंको मैं भजताहूं, जो आपके चरणकमलके भजनेवाले हैं, उनको आपसेही सब अभिलाषा पूर्ण होतीहैं ॥ ४४ ॥ हे ईश ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, यह तीनों गुण आपकी मायाहीसें उत्पन्न हुए हैं और पालन, उत्पत्ति, संहारका कारण विष्णु आदि सब आपहीकी लीला मूर्त्ति हैं, परन्तु उनमें जो सत्त्वगुणकी मूर्त्ति है वह मनुष्योंके मनको शान्त करनेवाली है और रज, तमोगुणवाली मूर्त्ति मनको शान्त नहीं करती बरन् दुःख, मोह और भय, उपजानेवाली है ॥ ४५ ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मादिक देवता और भक्तलोग शुद्ध सत्त्व मूर्त्तिकाही भजन करतेहैं और सत्त्वगुणकोही ईश्वर मानतेहैं, रजोगुण तमोगुणमें प्रवृत्त नहीं होते और ज्ञानीलोग इसीलिये आपकी इस नर नारायण नाम सत्त्वमूर्त्तिका भजन करतेहैं कि, जिस सत्त्वगुणके प्रभावसे पुरुष निर्भय और सुखी होकर तुम्हारे लोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ४६ ॥ विश्वका गुरु, विश्वरूप, सर्वोत्तम, पुरुषेदव, शुद्धस्वरूप, वाणीके नियंता, वेदके प्रवर्त्तक, भगवान् नर नारायण ऋषि आपको मैं वारम्वार नमस्कार करताहूं ॥ ॥ ४७ ॥ कपटरूप इन्द्रियोंके मार्गसे विक्षिप्त बुद्धिवाले और आपकी मायासे आवृत मतिवाले प्राणी, अपने हृदय आकाशमें, प्राणोंमें, नेत्रोंमें, निरन्तर विराजमान हों तोभी आपको नहीं जानते, हे भगवन् ! आदिपुरुष अखिलके गुरु ब्रह्माको भी जब आपने अपने प्रकाशे वेद दिये, तब ब्रह्माको भी आपके साक्षात् रूपका ज्ञान हुआ ॥ ४८ ॥ रहस्य तत्त्वका प्रकाश करनेवाला आपके दर्शनका ज्ञान एक वेदहीके जाननेसे होता है, इसीसे सांख्ययोगादिकोंकी रीतिसे यत्नके करनेवाले ब्रह्मादिक कवि सब आपके दर्शनको पाते हैं, निर्गुण,सगुणादिक सबके वचनके अनुकूल स्वभाव और देहादिकके अभिनिवेशसे गूढ तत्त्व ज्ञानवाले महापुरुष आपको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

दोहा-नववेंमें भगवानकी, माया परम अनूप।
बूडत प्रलय समुद्रमें, देखेउ मुनि हरिरूप ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि, बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके इसप्रकार स्तुति करनेसे नरके मित्र भगवान् नारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर मार्कण्डेय मुनिसे कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ ! मनकी एकाग्रतासे और तप अध्ययन संयमोंसे और अनपायिनी हमारी भक्तिसे तुम सिद्ध हुएहो ॥ २ ॥ हे मुने ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कर्मसे हम बहुत संतुष्ट हुए, वरदान देनेवालोंके ईश्वर हम तुमको वरदान देनेके लिये आये हैं, तुम मनोवांछित वर मांगो, जो तुम्हारी इच्छा हो ? ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, हे देव ! हे ईश ! हे भक्तभयभंजन ! हे अच्युत ! आप जो वारंवार वर देनेके लिये मुझसे कहते हो यह आप अपनी उत्कृष्टता (बडाई) प्रगट करते हो परन्तु मुझको किसी प्रकारके वरदानकी अभिलाषा नहीं, आपने जो मुझको दर्शन दिया यही महावरदान है, इससे अधिक और क्या वरदान होगा ? ॥ ४ ॥ योगकर परिपक्क हुए मनसे, आपके स्वभावयुक्त चरणारविन्दके दर्शन पाकर प्राकृत पुरुष भी ब्रह्मादिक देवताओंके सदृश होकर कृतार्थ होते हैं, सो आप साक्षात् मेरे नेत्रोंके आगे विराजमान हो, क्या इससे भी बढकर कोई और वरदान दोगे ? ॥ ५ ॥ हे कमलदललोचन ! हे पुण्यशिखामणि ! जो आपकी वर देनेहीकी इच्छा है तो यह वर दीजिये कि, जिस आपकी मायासे लोकों सहित लोकपाल मोहित होजाते हैं, उस अपनी मायाको मुझे दिखाओ ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि, ऋषियो ! इसप्रकार मार्कण्डेयसे स्तुति और वरदानका माँगना सुन भगवान् ईश्वर उन मुनिसे पूजित हो, मुसकाकर वही वरदे बद्रिकाश्रमको चलेगये ॥ ७ ॥ तब मार्कण्डेयजी उस मायाके वरदानका चिन्तवन करनेलगे और अपने आश्रममें बैठकर अग्नि, सूर्य, जल, चन्द्रमा, पृथ्वी, पवन, आकाश और मनमें भगवान्का ध्यान करनेलगे ॥ ८ ॥ भावनारूपी द्रव्यसे नित्यप्रति भगवान्का पूजन किया करें, कभी एक भक्तिके आवेशसे पूजाको भी भूलजाते ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! हे मुने ! हे ब्रह्मन् ! एक दिन सन्ध्यासमय पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कण्डेयजी बैठे थे, वहाँ बडा भयंकर पवन चलने लगा ॥ १० ॥ महा वेगसे प्रचण्ड शब्द होने लगा, उस पवनके पीछे महा विकराल कालरूप प्रलयकेसी काली काली घन घटा चारों ओरसे उमडने लगीं, बडे गम्भीर शब्दसे बिजली कडकडाने लगी, वज्रपात होने लगा, गजशुण्डके समान मोटी जलधारा वर्षने लगी ॥ ११ ॥ पवनके वेगसे पानीमें तरंगें उठने लगीं, पृथ्वी डूबने लगी, उग्र ग्राह जहाँ तहाँ दिखाई देने लगे, महाभयानक भ्रम जलमें पडनेलगे, चारों ओर समुद्रकेसा अरराहट होने लगा ॥ १२ ॥ आकाशके अतिक्रम करनेवाले जलसे और महातीक्ष्ण पवनसे और अत्यंत दमकती हुई दामिनीसे चार प्रकारके जगत्को बाहर भीतरसे व्याकुल देख और पृथ्वीको पानीमें डूबीहुई निहारकर मुनि अपने मनमें घबराने लगे और विस्मय होकर त्रासको

प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजीके देखतेही देखते तरंगें उठनेसे भयानक पवनसे चलायमान वर्षतेहुए मेघोंसे पूर्ण हो समुद्र सब ओरसे द्वीप, खण्ड, पर्वतों सहित पृथ्वीको डुबाने लगा ॥ १४ ॥ भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्ग नक्षत्र, दिशाओं सहित त्रिलोकी जलमय होगई, उस समय केवल एक मार्कण्डेयजी अवशेष रहे, सो वह इकलेही अपनी बडी बडी जटाओंको फैलाये, जड अन्धकी सदृश जलमें भ्रमनेलगे * ॥ १५ ॥ भूख और प्याससे पीडित, मकर और तिमिंगिलोंसे भयभीत, महाप्रचण्ड पवनके झकोरोंसे और जलकी तीव्र तरंगोंके प्रहारसे व्याकुल, अपार अन्धकारमें भ्रमण करते हुए, अनेक प्रकारके विचारमें व्याप्त और विस्मित ॥

दोहा–कबहुँ मकर लीलत तिनहिं, कबहुँ तजत मलद्वार ।
कबहुँ डरावत बहुरि पुनि, अति भयंक मुखफार ॥
कबहुँ तिनहिं मारुत प्रबल, दूरहि देत उडाय ।
नहिं अकाश नहिं महि दिशा, मुनिको परत दिखाय ॥ १६ ॥

कभी महागम्भीर भँवरोंमें उछलते डूबते थे, कभी तरंगोंमें आनकर इधर उधर चले जाते थे, कभी भूखे जल जन्तु उनको खानेके लिये परस्पर लड रहेथे ॥ १७ ॥ कभी शोक, कभी मोह, कभी दुःख, कभी सुख, कभी मरण, कभी जीवन, कभी रोगादिकोंसे ग्रसितहो अनेक प्रकारके क्लेश पाते थे ॥ १८ ॥ नारायणकी मायासे आवृतचित्तवाले मार्कण्डेयजीको उस जलमें भ्रमते भ्रमते अयुतायुत सहस्रों सैकडों अर्थात् एक शंख १००००००००००००००००००वर्ष बीत गये ॥ १९ ॥ तब उस महाप्रलयके समुद्रमें भ्रमते भ्रमते एक टापू दिखाई दिया, उस टापूमें फल फूलोंसे अत्यन्त शोभायमान एक वटका वृक्ष दृष्टि आया ॥ २० ॥ उस वृक्षके पूर्व उत्तर (ईशान) की कोणकी शाखाके पत्रके जोडेमें सोता अपनी कान्तिसे अन्धकारको दूर करनेवाला एक बालक देखा ॥ २१ ॥ महामरकत मणिके सदृश श्यामवर्ण, अत्यन्त शोभायमान मुखारविन्द, शंखके तुल्य तीन रेखाओंसे युक्त ग्रीवा, परम विशाल वक्षस्थल, सुन्दर नासिका और सुन्दर भौहैं हैं ॥ २२ ॥

---

* **शंका**–इन्द्र असुरोंको भेजकर मुनियोंका तप भ्रष्ट करदेता है, तब मुनिलोग क्रोध करके इन्द्रको शाप क्यों नहीं देते ? युग युगमें मुनि लोगोंके तपको भंग करता रहता है, यह शंका है ?

उत्तर–अश्वमेधका पुण्य इन्द्रके पास जबतक रहता है, तबतक मुनिलोग भी उसको शाप नहीं देते क्योंकि वह जानते हैं कि, पुण्यके प्रभावसे भगवान्‌की कृपादृष्टि इसके ऊपर है जो हम इसको शाप देवेंगे तो भगवान् हमसे अप्रसन्न होंगे ऐसा विचारके मुनिजन उसका अपराध क्षमा करते हैं और कष्ट सहते हैं, परन्तु मुनियोंके दुःखसे इन्द्रका तेज दिन दिन नष्ट होता रहता है, तब राक्षस लोग इन्द्रको ऐसा दुःख देते हैं कि, अनेक युगोंतक इन्द्र दुःख भोगता है, इसलिये मुनिजन इन्द्रके अपराधको क्षमा करके शाप नहीं देते ।

श्वाससे काँपती हुई अलकोंकी मनोहर छबि, भीतरकी ओरको शंखकी तुल्य आँटी खाये हुए शोभित, कानोंमें दाडिमके फूलोंकी कली धरी, विद्रुमसे अरुण अधरोंकी कान्ति,सुधा-सरस मन्दमुसकान ॥ २३ ॥ कमलकोशकेसे अरुण नेत्रोंके कोये, सुन्दर हास्ययुक्त चित-वन, श्वास लेनेमें चलायमान त्रिवलीसे शोभित,गम्भीर नाभि अत्यन्त शोभा देरही पीप-लके पत्रके समान सुन्दर उदर ॥ २४ ॥ अपने दोनो हाथोंकी उँगलियोंसे दाहिने चरणके अँगूठेको थाँभे हुए मुखसे पीरहाथा, उस बालकको देखकर मार्कण्डेयजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २५ ॥ उसके दर्शनके आनन्दसे सब श्रम दूर होगया, हृदयकमल खिल गया, शरीर पुलकायमान होनेलगा इस अद्भुत प्रभावको देख मुनि अति सशंकित होकर बूझनेके लिये उस बालकके समीप गये ॥ २६ ॥ उस समय वह भृगुवंशी मार्कण्डेय मुनि, उस बालकके मुखके समीप बूझनेको झुके, इतनेमें बालकने श्वास जो लिया उसके श्वासके संगही मच्छरकी नाईं बालकके मुखके मार्ग होकर उसके उदरमें पहुँच गये, वहाँ भी यह विश्व प्रलयसे पहिलेकी नाईं देखा, उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो मोहित होगये ॥ २७ ॥ और वैसाही आकाश, भूमि, स्वर्ग, वृक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, पर्वत, समुद्र, द्वीप, खण्ड, दिशा, देवता, असुर, वन, देश, नदी, पुर, खान, किसानोंके ग्राम, गायोंके खरक, वर्ण, आश्रम, और इन सबकी जीविकाको देखा ॥ २८ ॥ पंच महाभूतोंके रचे प्राणी, युग, अनेक पदार्थ और कल्पोंकी कल्पना करानेवाला काल, और भी जो जो व्यवहारोंके कारण थे वह सब उस बालककी सत्तासे, सत्यसे प्रतीत होते मार्कण्डेयजीने देखे ॥ २९ ॥ घूमते घूमते हिमालयमें पहुँच गये, वहाँ पुष्पभद्रा नाम नदी, और अपना आश्रम और उसमें रहनेवाले ऋषि और मुनि-योंको भी देखा "तब मार्कण्डेयजीने अपना स्थान जानकर रहनेका विचार किया, परन्तु मनमें यही सन्देह कि, यह क्या माया है" मार्कण्डेयजी यह विचार करही रहेथे इत-नेमें बालकने ऊर्ध्व श्वास जो लिया तो फिर मुखसे बाहर निकलकर उसी प्रलयरूप समुद्रके जलमें आन पडे ॥ ३० ॥ फिर वहाँ वही पृथ्वीका टापू और वही वटका वृक्ष और वही बालक उस वटके पत्तेपर सोता हुवा देखा और उस बालकने भी प्रेमरूप सुधासरस मन्दमुसकान सहित बाँकी चितवनसे मुनिकी ओरको देखा ॥ ३१ ॥ तब तो मनको मोहित करनेवाले बालकको दोनों नेत्रोंसे देखकर लज्जित हो अत्यन्त क्लेश मान मार्कण्डेयजी उन अधोक्षज भगवान्को आलिंगन करनेके लिये उनके सन्मुख धाये ॥ ३२ ॥ इतनेमें वह बालरूप साक्षात् योगके ईश्वर सर्वान्तर्यामी भगवान् मार्क-ण्डेयजीके देखते देखते अंतर्ध्यान होगये, जैसे हरिविमुखोंकी क्रिया लोप होजाती है ॥ ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! तब तो उस वटवृक्ष और प्रलयके जलसे लोकोंके डूबनेका चिह्न भी न रहा, एक क्षणमात्रमेंही सब अन्तर्हित होगये और मार्कण्डेयजी पहिलेकी नाईं अपने आश्रममें बैठ गये ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-कहौं दशम अध्यायमें, शिवागमन मुनिधाम।
अति प्रसन्नहो वरदिये, शिव अरु शिवकी वाम ॥ ४ ॥

सूतजी बोले कि, मार्कण्डेयजी नारायणसे निर्मित योगमायाके वैभवका ऐसा अद्भुत चरित्र देखकर भगवान्की शरणमें आये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले, हे ईश्वर ! शरणागतोंके अभयदान देनेवाले, आपके चरणारविंदकी मैं शरण आया हूँ, देखो ! ज्ञानसी प्रकाशमान आपकी मायासे बडे बडे पण्डित ज्ञानी भी मोहित होजाते हैं, क्योंकि अपने तप और पुरुषार्थके घमण्डमें आपका भजन नहीं करते वह मेरे समान मायारूप समुद्रमें उछलते डूबते रहते हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि, एकदिन बैलपर चढे भवानीको संग लिये भगवान् महादेवजी आकाशमें गणोंसे वेष्टित पर्यटन करते फिरते थे कि, पुष्पभद्रा नदीने निकट एकाग्र चित्तवाले मार्कण्डेय मुनिको वैठा देखा ॥ ३ ॥ शैलनन्दिनी भवानी मार्कण्डेयजीको देखकर शिवजीसे बोलीं कि, हे भगवन् ! जैसे पवन न चली होय उस समय समुद्रका जल और जल जन्तु आदि निश्चल रहते हैं, ऐसेही इसके अंग, इन्द्रियें और मन निश्चल होगये हैं, ऐसे इस विप्रको देखो और इसके तपका फल इसको दो, क्योंकि तुम सब सिद्धियोंके दाता हो ॥ ४ ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे पार्वती ! अव्यय अविनाशी आदि पुरुष भगवान्में प्रेमलक्षणाभक्ति होनेसे यह ब्रह्मऋषि मोक्ष पर्यन्त कामनाको भी नहीं चाहता ॥ ६ ॥ तो भी हे भवानी ! इस साधु पुरुषसे कुछ सुख संवाद करेंगे, क्योंकि मनुष्योंमें साधु पुरुषोंका समागम होना परमलाभदायक-है × ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! सर्व मुनि और साधुओंकी गति जाननेवाले सर्वविद्याओंके और सम्पूर्ण जीवोंके ईश्वर भगवान् शिवजी पार्वतीसे यह बात कहकर मार्कण्डेयजीके सन्निकट गये ॥ ८ ॥ अन्तःकरणकी वृत्तियोंके रोकनेके कारण मार्कण्डेयजीको अपने आत्मा और विश्वकी ओर कुछ ध्यान नहीं था, इसलिये साक्षात् ईश्वर और विश्वात्मा विश्वनाथ महादेव और पार्वतीके शुभागमनको भी उन्होंने नहीं

× **शंका**-दुष्ट लोगोंका लक्षण यह है कि, बात करते करते मुसका देते हैं और जो कोई मनुष्य उन दुष्टोंके स्थानपर जाय तो उनको आता देखकर हँसते हैं और चलते समय भी वह दुष्ट मनुष्य उनके ठट्ठे उडाते हैं, वह दुष्ट उनके घर जाँय तो भी हँसी करैं, चलते समय भी हँसी करते हैं, यह दुष्ट लोगोंकी पहिचानके लक्षण हैं, मार्कण्डेयमुनिके आश्रमसे नारायण जब अपने आश्रमको चले तब मुसकाते हुए क्यों चले ? बडे मुनीश्वर होकर ऐसा बुरा कर्म क्यों किया ?

उत्तर-नारायणमुनिने विचार किया कि, मार्कण्डेयजी मायाका प्रभाव देखना चाहते हैं इनके मनमें ऐसा अभिमान है कि, मैंने मायाको तप करके जीत लिया है, ऐसा माया करके इनको मोह उपजाऊंगा, जो यह युगानयुग भूलैंगे नहीं, ऐसा विचारके अपने मनमें नारायण मुनि मुसकाये, कुछ दुष्टकर्मसे नहीं मुसकाये।

जाना ॥९॥ मार्कण्डेय ऋषिको समाधिनिष्ठ जानकर पवन जैसे छिद्रमें घुस जाता है, ऐसेही कैलासपति भगवान् महादेवजीने योगमाया करके मुनिके हृदयाकाशमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ तीन नेत्र, दश भुजा, ऊँचा शरीर, बिजुली सदृश पीत जटाओंको धारण किये, प्रातःकालके सूर्यके समान शोभायमान तेजस्वी ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्मके वस्त्र पहिने, त्रिशूल, धनुष, बाण, खड्ग, ढाल, डमरू, रुद्राक्ष, कपालमाल, और परशु हाथमें लिये, शिवजीको अकस्मात्ही हृदयमें प्रकाशमान देख अत्यन्त विस्मित होकर बोले ॥ ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्य है ? यह कौन हैं ? कहाँसे आये ? इस विचारही विचारमें मुनिकी समाधि निवृत्ति होगई, तब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती और गणों सहित शिवजी सन्मुख खडे हैं ॥ १३ ॥ त्रिभुवनका प्रधानगुरु शिवजीको समझकर मार्कण्डेयजीने मस्तक नवाकर नमस्कार किया, भले आये महाराज, यह कह आसन दे, चरणामृत ले, अर्घ्य, चन्दन, माला, धूप, दीपादिसे गण और गिरिजा सहित शिवजीका पूजन किया ॥ १४ ॥ और फिर कहा कि, हे विभो ! हे ईश ! हे नाथ ! आप तो अपने प्रभावहीसे पूर्ण काम और विश्वके आनन्ददाता हो मैं आपका क्या पूजन करूं ? ॥ ॥ १५ ॥ आप निर्गुण शान्त, सत्त्वके अधिष्ठाता सबके परम सुखदाता और रजोगुण तमोगुणके धारण करनेवाले होकर भी अघोर हो, सो मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनिने स्तुति की, तब संतुष्ट हृदयवाले महात्मा पुरुषोंके शरणरूप, आदिदेव विश्वनाथ प्रसन्न होकर हास्यपूर्वक मुनिसे कहने लगे ॥ १७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे मुने ! तुम हमसे मनवांछित वर माँगो? क्योंकि हम तीनों वर देनेवालोंके ईश्वर हैं हमारा दर्शन तीनों देवताओंको अमोघ है, जो जिस कार्यके लिये भजता है उसका कार्य सफल होता है और मरणधर्माओंको मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण, साधु, सन्त, शान्तचित्त, रागरहित सब प्राणियोंपर दया रखनेवाले हमारे पूर्णभक्त, वैरभावरहित, समदर्शी हैं ॥ १९ ॥ उनका लोकोंसहित लोकपाल और देवता वन्दन करते हैं, पूजते हैं और दिन रात सेवन करते हैं सब इतनाही न समझना चाहिये जो सबके अधिष्ठाता विष्णु, ब्रह्मा और हम भी उनका सेवन करतेहैं ॥ २० ॥ आपके समान ब्राह्मण हममें, विष्णुमें, ब्रह्मामें अपने आत्मा और लोकोंमें किंचिन्मात्र भी भेददृष्टि नहीं रखते, इसीलिये हम आपका निरन्तर भजन करते हैं* ॥२१ ॥ जलमें क्या तीर्थ नहीं है ? क्या मूर्त्तियोंमें देवता नहीं-

---

* **शंका**-मार्कंडेय मुनिने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवसे बूझा नहीं कि, तुम तीनों देवताओंमें कौन बडा कौन छोटा है!कि,तुम तीनों एकसे हो,फिर बिना बूझे शिवजीने क्यों कहा, कि, हे मार्कंडेय ! ब्रह्मामें, विष्णुमें और मुझमें कुछ भेद नहीं हम तीनों देव एकही हैं, शिवजीने विना बूझे क्यों कहा ? यह हमको सन्देह है ?

उत्तर-मार्कंडेयजीके मनमें यह सन्देह था कि, तीनों देवोंमें कौन बडा है और-

हैं ? निश्चय है परन्तु वह तत्काल फल नहीं देते, बहुतकाल करके पवित्र करतेहैं और हे महाराज ! आप सरीखे महात्मा तो दर्शनहीसे पवित्र करतेहैं ॥ २२ ॥ चित्तकी एकाग्रता, तपस्या, स्वाध्याय, संयम, वेदत्रयी यम, हमारे रूपको जो ब्राह्मण धारण करतेहैं उनको हम भी नमस्कार करतेहैं ॥ २३ ॥ जब कि, आपके श्रवण अथवा दर्शनसे महापातकी और चाण्डाल भी शुद्ध और पवित्र होजातेहैं, तब आपके संभाषणसे शुद्ध हो तो उसमें कहनाही क्या है ? ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, कि इस प्रकार चन्द्रभाल शिवजीके गूढ धर्ममय अमृतरूप वचनोंको श्रवणद्वारा पान करके मार्कण्डेयजी तृप्त न हुए ॥ ॥ २५ ॥ नारायणकी मायासे बहुत दिनतक भ्रमण करते और क्लेशपाते मार्कंडेयजीने शिवजीकी सुधारूप मधुरवाणीसे सम्पूर्ण क्लेशोंके समुदायसे निवृत्त होकर भवानीपतिसे यह वचन कहा ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले अहो ! यह विष्णु भगवान्के चरित्र प्राणियोंके जाननेमें आने बहुत कठिन हैं, क्योंकि आप त्रिलोकीके ईश्वर होकर अपनी शरणागत रहनेवाली प्रजागणकी स्तुति करके उनको नमस्कार करतेहो ॥ २७ ॥ मुझको तो ऐसा जान पडता है कि, ईश्वर भी धर्मके उपदेष्टा होकर धर्मके ग्रहण करानेके लिये प्राणियोंके आचरणोंकी स्तुति और अनुमोदन करते हैं और आप भी उनहीं आचरणोंको करते हैं ॥ २८ ॥ आप अपनी मायामय वृत्तियोंसे और लोकोंको नमस्कारादि किया करते हैं, इससे आपकी महिमामें किसी प्रकारका दोष नहीं लगता, क्योंकि जैसे नट नाटकके विषे दूसरा रूप धारण करके अपने पुत्र, पौत्र और दास दासियोंको दण्डवत् प्रणाम करताहै, और दीन वचन कहताहै, उस दीनता और दण्डवत् करनेसे उसकी महत्त्वतामें किसी प्रकारका लांछन नहीं लगसक्ता ऐसेही आपको भी किसीप्रकारका दोष नहीं लगता ॥ २९ ॥ जो ईश्वर आपही अपने मनसे गुणोंके द्वारा इस सृष्टिको रचकर उसमें आप प्रवेश होकर कर्ताके समान जान पडताहै, जैसे स्वप्नमें कोई पुरुष नया नगर बनाकर उसमें आप प्रवेश होकर कर्त्ताहीके सदृश प्रतीत होताहै ॥ ३० ॥ ऐसे त्रिगुणोंके नियन्ता शुद्धरूप अद्वितीय सबके गुरु ब्रह्ममूर्त्ति आपको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ३१ ॥ हे सर्वोत्तम ! हे भगवन् ! आपका दर्शन मुझको होगया, अब इससे अधिक और क्या वर है ? जो मैं आपसे माँगू, जिस मनुष्यपर आपकी कृपादृष्टि होतीहै, उस पुरुषके सब सत्यकाम और पूर्णकाम होजाते हैं ॥ ३२ ॥ तो भी जो आप पूर्णकाम और भक्तोंकी कामनाओंको वर्षानेवाले हो तो मैं आपसे इतना वरदान माँगूहूँ-सो वह वरदान यह है कि, अच्युत भगवान्में और उनके भक्तोंमें और उसी प्रकार आपके चरणकमलोंमें मेरी निश्चल भक्ति रहे ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि, जब इसप्रकार शिवजीकी स्तुति और पूजा मार्कण्डेयजीने की तब भगवान् महादेव और गिरिराजकुमारी

-कौन छोटा है, परन्तु लज्जाके मारे बूझ नहीं सके थे, तब महादेवजीने मार्कंडेयके हृदयकी शान्ति होनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एक स्वरूपकी कथा कहने लगे ॥

अतिप्रसन्न हो मुनिसे कहने लगे ॥ ३४ ॥ हे महर्षि ! आपके सब मनोरथ पूर्ण होंगे, क्योंकि आप तो पहिलेहीसे अधोक्षज भगवान्के भक्त हो, आपका यश और पुण्य कल्प कल्पान्तर अखंड हो और सदा आप अजर अमर रहें ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम त्रिकालज्ञ होओ और विज्ञान सहित पूर्ण वैराग्य होय, ब्रह्मतेजमें पूर्ण और पुराणाचार्य भी होओगे ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले कि, इसप्रकार मुनिको वर देकर मुनिके पिछले चरित्र जो कुछ भगवान्की मायाके वैभव देखे थे सो सब वृत्तान्त त्रिलोचन महादेवजी भवानीसे कहते हुए चले गये ॥ ३७ ॥ परमयोगकी महिमाको पाकर विष्णु भगवान्की एकान्तभक्तिसे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी अबतक पृथ्वीपर विचरते हैं ॥ ३८ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने भगवान् वासुदेवकी अद्भुत माया वैभव आदि जो देखी सो मार्कण्डेयजीका पवित्र चरित्र आपके सन्मुख वर्णन किया ॥ ३९ ॥ सृष्टिके जो उत्पत्ति प्रलय आदिक होते रहते हैं, वह सब आदिपुरुष भगवान्कीही माया है कोई कोई मूर्ख लोग इस बातको नहीं जानते, मार्कण्डेयजीने जो यह मायाका वैभव देखा सो केवल भगवदिच्छासे देखनेमें आया, कुछ प्राकृतिक वा नैमित्तिकमेका यह कोई प्रलय नहीं था और अज्ञानी लोग अबतक उसे अनादि कालके समान सातवारका हुआ नैमित्तक प्रलयही समझ रहे हैं इसीसे मार्कण्डेयजीकी सात कल्पकी अवस्था संसारमें विख्यात है, परन्तु यह सम्पूर्ण भ्रान्ति है और जो मायाके वेत्ताहैं, वह उस कालको निमेषमात्र कहते हैं, अर्थात् मायाका कौतुक देखाथा वह सब एक क्षणमात्रका था ॥ ४० ॥ हे भृगुवंशियोंमें उत्तम ! भगवान्के प्रभावयुक्त मार्कण्डेयका यह चारित्र जो कोई प्रेम प्रीति एकाग्र चित्त हो सुने सुनावेगा उन दोनोंको कर्मवासनायुक्त संसारकी माया न व्यापेगी ॥ ४१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे द्वादशस्कंधे दशमाऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा–इस ग्यारह अध्यायमें, महापुरुषका ध्यान ।
भिन्न भिन्न प्रतिमासमें, व्यूह सूर्य भगवान् ॥ १ ॥

शौनकादिक बोले कि, हे भागवतोंमें श्रेष्ठ महामुनि सूतजी ! आप सर्वतंत्र शास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता हो इसलिये हे बहुज्ञाता महात्माओंमें मुकुटमणि हम आपसे यह प्रश्न करते हैं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! सर्वतंत्रोंके उपासक केवल हरि भगवान्की परिचर्या विषे अंग अर्थात् पादादिक, उपांग, गरुडादिक आकल्प चक्रादिक, अलंकार कौस्तुभादिक आभूषणोंकी रचना जिस जिस भाँति कल्पना करते ॥ २ ॥ उस क्रियायोगके जाननेकी हमारी इच्छा है, जिसकी निपुणतासे मरणधर्मा पुरुष अमरत्वको प्राप्त होजाँय, हे सूतजी ! आप उस विद्याके जाननेवाले हैं, सो अनुग्रह करके हमको बतलाइये ? आपका कल्याण होगा ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, गुरुओंको नमस्कार करके विष्णु भगवान्की विभूतियोंका वर्णन करूँगा, जिन विभूतियोंका वर्णन ब्रह्मादिक देवताओंने भी वेद और तंत्रोंमें वर्णन

किया है ×॥४॥मायारूप महत्तत्त्व,अहंकार,पाँच तन्मात्रा इन नौ तत्त्वोंसे ग्यारह इन्द्रिय पंचमहाभूत रूप यह विराट् शरीर ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ कि, जिस चैतन्यसे अधिष्ठित ब्रह्माण्डमें पृथ्वी आदि सब लोक देखनेमें आतेहैं, इन्हीं पृथ्वी आदि लोकोंसे भगवान्के अंगोंकी पूजा करनेमें आती है ॥ ५ ॥ इस ब्रह्माण्डको भगवान्में कल्पित होनेके कारण भगवान्का देहरूप मानकर उसमें पृथ्वीको चरणरूप, स्वर्गको मस्तकरूप, अन्तरिक्षको नाभिरूप, सूर्यको नेत्ररूप, पवनको नासिका रूप,दिशाओंको कानरूप ॥ ६ ॥ प्रजापतिको शिश्नेन्द्रियरूप, मृत्युको गुदेन्द्रियरूप, लोकपालोंको भुजारूप, चन्द्रमाको मनरूप, यमको भ्रुकुटीरूप ॥७॥लज्जाको ऊपरके ओष्ठरूप, लोभको नीचेके ओष्ठरूप, चाँदनीको दाँतरूप, भ्रान्तिको हास्यरूप, वृक्षोंको रोमरूप और मेघोंको केशरूप कल्पना करते हैं ॥ ८ ॥ ऐसे ब्रह्माण्डरूपका धूप, दीप, चन्दनादिसे पूजन और ध्यान एकबारमें नहीं बनसक्ता, इस-लिये पाषाण,धातु आदिकी प्रतिमामें उस विराट् देहकी और अवयवोंकी कल्पना कर उसका पूजन और ध्यान ठीक ठीक करनेमें आता है,इस ब्रह्माण्डरूप पुरुषका जो प्रमाण है जैसी स्थिति है वह प्रमाण और वह स्थिति भगवान्की छोटी मूर्त्तिमें भी जानी जाती है, इसलिये मूर्त्तिमें भगवान्का पूजन करते हैं॥९॥मूर्त्तिमें जो प्रभुने कौस्तुभमणि धारण की है, यही शुद्धचैतन्य धारण किया है,ऐसा मान रक्खा है और प्रतिमाके वक्षस्थलमें श्रीका चिह्न है, उसकी प्रभासे व्याप्त जीव है ॥ १०॥ उनकी माया ही अनेक गुणमयी वनमाला है और वेदही साक्षात् पीताम्बर है और अकार, उकार, मकाररूप त्रिमात्रावाला ओंकारही यज्ञो-पवीत है ॥ ११ ॥ सांख्ययोग और योग यह दोनों मकराकृत कुण्डल हैं, सब लोकोंसे नमस्कृत और अभयदायक ब्रह्मलोक मुकुटमणि है ॥ १२ ॥ वसुधाके आधाररूप शेष भगवान् हैं,वह अनंत नामसे प्रसिद्ध हैं,वही नारायणके विराजनेका कमलासन है और कोई कोई विद्वान् लोग ऐसा भी कहतेहैं,अनेक रंगकी जो परमेश्वरकी माया है वह मायाही अनंत आसन है, कोई कहते हैं, धर्मज्ञानादिसहित सतोगुण कमलासन है ॥ १३ ॥ इन्द्रियोंकी निपुणता, मनका उत्साह शरीरके बल सहित प्राणही विराट् स्वरूपकी गदा है, जलका तत्त्वही शंख है, तेजका तत्त्वही सुदर्शनचक्र है ॥ १४ ॥ आकाशही नीलवर्ण बिजली-

---

× **शंका**-बडे आश्चर्यकी बात है कि,सूतजी कहते हैं कि, अब अपने गुरुको दंडवत् प्रणाम करके विष्णुकी विभूति ऐश्वर्य मैं वर्णन करताहूं यह मुझको संशय है कि,पहिले स्कन्धसे बारहवें स्कन्धके ग्यारह अध्यायतक विष्णुकी विभूतिका वर्णन नहीं हुआ ? फिर किसकी विभूतिका वर्णन पहिले हुवा ? यह सन्देह मेरे मनको स्थिर नहीं होने देता।

उत्तर-पहिले ऐसा वर्णन हुआ है तीनलोक चौदह भुवन चराचर यह सब ईश्वरका स्वरूप हैं,इसलिये विष्णुरूप जो सम्पूर्ण संसार है उनकी विभूतिका वर्णन हुआ है और अब अकेले भगवान्की महिमा और चरित्रोंका वर्णन होगा, इसलिये सूतने कहा था कि, अव हम भगवान्की विभूतिका वर्णन करते हैं।

युक्त झमझमाताहुवा खड्ग है आकाशरूप तत्त्व जो अन्धकार है, वही ढाल है, कालही शार्ङ्गधनुष है और कर्महीं बाणोंसे भरा हुवा तूणीर (तरकस) है ॥ १५ ॥ इन्द्रियेंही भालवाले बाण हैं, मनही रथ है, तन्मात्राही इस रथकी चाल है, अभयवरदानकी देनेवाली क्रियाही विराट् पुरुषकी मुद्रा है ॥ १६ ॥ सूर्य, अग्नि चन्द्रमण्डल परपुरुष भगवान्‌की पूजाकरनेका स्थान है, गुरुकी दी हुई जो मंत्रदीक्षा है, वही पूजन करनेवालोंका संस्कार है, भगवान्‌की परिचर्याही आत्माके पापोंको नाश करनेवाली है ॥ १७ ॥ छः प्रकार भगवत् शब्दका अर्थ लीलाकमल है, धर्म, यश, दोनों चामर और वीजना हैं ॥ १८ ॥ हे द्विजो ! छत्र धारण करनेका निर्भय धाम वैकुण्ठ है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदही यज्ञपुरुष भगवान्‌का वाहन गरुड है ॥ १९ ॥ साक्षात् भगवती लक्ष्मी जो भगवान्‌के पार्श्वमें विराजमान् हैं, वह हरिकी अनपायिनी शक्ति हैं, पार्षदोंमें अधीश्वर जो मुख्य विष्वक्सेन है वही तंत्रशास्त्रकी मूर्त्ति है, अणिमादिक अष्टसिद्धियां जो हैं, वह नंदादिक भगवान् वैकुण्ठाविहारीके द्वारपाल हैं ॥ २० ॥

दोहा-वासुदेव संकर्षणहुँ, प्रद्युम्नहुँ अनिरुद्ध ।
कृष्णचन्द्रकी जानिये, चार मूर्त्ति यह शुद्ध ॥ २० ॥

हे ब्रह्मन् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यही श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी चार मूर्त्ति परमपवित्र हैं ॥ २१ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, चार अवस्थाओंसे और इनके कारण विषय, मन अज्ञान और ज्ञानसे भगवान् जाने जाते हैं, यही भावना ईश्वर सम्बन्धी है ॥ २२ ॥ अंग, उपांग, चरणादिक चार भुजावाली मनोहर मूर्त्ति, गरुडादिक, आयुध, आकल्प, अलंकार इन चारोंसे संयुक्त, चतुर्मूर्त्ति भगवान् हरि ईश्वर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय इन चारों अवस्थाओंको धारण करते हैं, जो पुरुष इन चारों मूर्त्तियोंका घ्यान धरते हैं, उनको भगवान् वासुदेव चार फल देते हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तम ! ॥

कवित्त-शौनक सुनहु यदुनाथ ब्रह्मकारण हैं, आपने प्रकाशही ते परम प्रकाश मान ॥ महिमा महान महि माहिं जाकी पूर रही, विधु वपुधार विश्व रचै औ अहैं अमान ॥ पालत रमेशरूप घालत महेशरूप मूढनको गूढ है अगूढ जे हैं भक्तिमान । ज्ञाता सब लोकनको त्राता सब दासनको दाता रघुराज निज कंजपद प्रीति दान ॥ २४ ॥

हे राजन् ! जिन मनोहर मूर्त्तियोंकी उपासना कही अब उनकी सूतजी स्तुति करते हैं, हे श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अर्जुनके प्रियसखा ! हे यदुकुलभूषण ! हे वसुधाके द्रोही राजाओंके वंशके विध्वंस करनेवाले ! हे अग्निरूप एकरस पराक्रमी ! हे गोविन्द ! हे श्रवणमंगल ! हे गोपवनिताओंके समुदाय ! और नारद भृत्यादिकोंसे पवित्र यश गायेहुये ! तीर्थोंके समान पवित्र कीर्तिवाले ! हे हरि ! हे विश्वभगवान् ! हे वैकुण्ठविहारी ! हमारी इस कालरूप संसारीसे रक्षा करो ॥ २५ ॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर एकाग्रचित्त हो

महापुरुष भगवान्के इन लक्षणोंको चित्तमें रखकर ध्यान करेगा वह पुरुष सर्वघटवासी वासुदेव भगवान्को अपने हृदयमें विराजमान देखेगा वह भगवान् कैसे हैं ?

कवित्त ।

शेषशायीनाभिजात ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात,
कमल १ ब्रह्मा २ मरीचि ३ कश्यप ४ सूर्य ५
ताकोजात, ताकोजात,।ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात,
मनु ६ इक्ष्वाकु ७ कुक्षि ८ विकुक्षि ९ वान १० अनरण्य ११
ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात॥ताकोजात, ताकोजात,
पृथु १२ त्रिशंकु १३ धुंधमार १४ यवनाश्व १५ मांधाता १६ सुसन्धि १७
ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात।
ध्रुवसन्धि १८ भरत १९ आसित २० सगर २१ असमंजस २२ अंशुमान २३
ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात, ताकोजात, सोई रघुवंश अवतंश
दीलीप २४ भगीरथ २५ ककुत्स्थ २६ रघु २७
रघुराज जात ॥ २६ ॥

शौनकादिक बोले कि, हे सूतजी ! मूर्त्तियोंके विषयमें जो व्यूह आपने कहा उसको सुनकर हमको सूर्यके व्यूह सुननेकी अभिलाषा हुई, और राजा परीक्षित्से श्रीशुकदेवजीने (पंचमस्कन्धमें) वर्णन कियाथा कि " गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, दैत्य, ऋषि और देवता, इन सात सातका सूर्यसम्बन्धी गण मास मास प्रति कहा है" ॥ २७ ॥ इन गणोंके नाम और इनके स्वामी सूर्योंके नाम और कर्म हमको सुनाओ क्योंकि सूर्यनारायण भी नारायणहीका स्वरूप हैं, इसलिये उनका व्यूह श्रवण करनेकी हमारी श्रद्धा है ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि, सर्वत्र जीवमात्रकी आत्मा विष्णु भगवान्की माया है, उस अनादि मायासे रचित सब लोकोंकी सीमामें प्रवृत्त करानेवाले यह सूर्यनारायण लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं ॥ २९ ॥ सब लोकोंके आत्मा और आदिकर्त्ता जो विष्णु भगवान् हैं, वही प्रगटरूपसे सूर्यनारायण हैं और यह भगवान्ही सब वेदोंकी क्रियाओंका कारण हैं, इसीसे ऋषिलोग उन उन क्रियाओंसे नानाप्रकारका कहते हैं ॥ ३० ॥ हे शौनक ! भगवान्ही सब कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये मायाके संग काल, देश, क्रिया, कर्त्ता, अनुष्ठान, यजमान, साधन, यज्ञादिक, मंत्र, हविष्य यह नौ प्रकार हरिकी मायासे हैं, इसप्रकार कविलोग कहते हैं ॥ ३१ ॥ कालरूप सूर्य भगवान् चैत्रादिक बारहों मास लोकोंके कर्मोंके विषे प्रवृत्त करनेको अपने गणोंको साथ लिये अलग अलग द्वादशरूप धारण किये घूमते रहते हैं ॥ ३२ ॥ चैत्रके महीनेमें कृतस्थली नाम अप्सरा,हेतिनाम राक्षस, वासुकी नाग, तुम्बुरू गन्धर्व, रथकृत यक्ष, पुलस्त्य नाम ऋषि, इनके साथ धाता नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३३ ॥ वैशाखमें पुंजिकस्थली नाम अप्सरा, प्रहेतिनाम राक्षस, लच्छनीर नाम नाग, नारदनाम गन्धर्व, अथौजा यक्ष, पुलह ऋषि, इनके साथ अर्यमा नाम सूर्य

विचरण करता है॥ ३४॥ज्येष्ठमासमें मेनका नाम अप्सरा,पौरुषेय नाम राक्षस, तक्षक नाम नाग,हाहा नाम गन्धर्व,रथस्वन यक्ष,अत्रि ऋषि, इनके साथ मित्रनाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३५॥आषाढ मासमें रम्भा नाम अप्सरा,मित्रस्वन नाम राक्षस, शुक्रानाम नाग, हूहू नाम गन्धर्व,सहजन्य यक्ष,वसिष्ठ ऋषि इनके साथ वरुण नाम सूर्य प्रकाश करता है॥ ३६॥ श्रावण मासमें प्रम्लोचा नाम अप्सरा, वर्य नाम राक्षस, एलापत्र नाम नाग, विश्वावसु नाम गन्धर्व, श्रोता यक्ष, अंगिरा नाम ऋषि, इनके साथ इन्द्रनाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३७ ॥ भाद्रपद महीनेमें अनुम्लोचा नाम अप्सरा, व्याघ्र नाम राक्षस, शंखमाल नाम नाग, उग्रसेन नाम गन्धर्व, आसारण यक्ष, भृगु नाम ऋषि, इनके साथ विवस्वान नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३८ ॥ आश्विन मासमें घृताचीनाम अप्सरा, वात नाम राक्षस, धनंजय नाम नाग, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष, गौतम नाम ऋषि, इनके साथ पूषा नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३९ ॥ कार्त्तिकके महीनेमें सेनाजित् नाम अप्सरा, वर्चा नाम राक्षस, ऐरावत नाम नाग, विश्व नाम गन्धर्व, क्रतु यक्ष, भरद्वाज नाम ऋषि इनके साथ पर्जन्य नाम सूर्य भ्रमण करता है ॥ ४० ॥ अगहनके महीनेमें उर्वशी नाम अप्सरा, विद्युतशत्रु नाम राक्षस, महाशंख नाम नाग, ऋतुसेन नाम गन्धर्व, तार्क्ष्य, यक्ष, कश्यप ऋषि, इनके साथ अंशुनाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ४१ ॥ पौषके महीनेमें पूर्वचित्ती नाम अप्सरा, स्फूर्जरा नाम राक्षस, कर्कोटक नाम नाग, अरिष्टनेमि गन्धर्व,ऊर्णयक्ष,आयु, ऋषि, इनके साथ भग नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४२ ॥ माघमासमें तिलोत्तमा नाम अप्सरा, ब्रह्मपेत नाम राक्षस, कंबल नाम नाग, धृतराष्ट्र नाम गन्धर्व,शताजित् यक्ष, जमदग्नि ऋषि, इनके साथ त्वष्टा नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४३ ॥ फाल्गुनमें रम्भा नाम अप्सरा, मखापेत्त नाम राक्षस, अश्वतर नाम नाग, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि, इनके साथ विष्णु नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४४ ॥ यह सब सूर्यरूप विष्णु भगवान्‌की विभूतियोंका जो पुरुष दोनों संध्याकालमें स्मरण करते हैं, उनके सम्पूर्ण पाप विनष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ यह सूर्यनारायण इन छहोंगण सहित बारह महीनेमें सब ओर घूमते हैं और लोकोंको इस लोकमें और परलोकमें उत्तम बुद्धि देते हैं ॥ ॥ ४६ ॥ अप्सरायें सुन्दर शृंगार कर करके सूर्यनारायणके सन्मुख नृत्य करती हैं बलवान् राक्षस रथको पीछेसे ढकेलते हैं, यक्ष रथको जोडते हैं, नाग रथको बाँधते हैं,गन्धर्व सूर्यके आगे यश गान करतेहैं और ऋषीश्वर मुनीश्वर ऋग्, यजु,सामवेदके मंत्रोंसे श्रीसूर्यनारायणकी स्तुति करते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ साठ सहस्र ६०००० निर्मल वालखिल्य ब्रह्मऋषि अंगुष्ठप्रमाणमात्रस्वरूप सब मिलके स्तोत्रोंसे विभुके सन्मुख होकर पिछले पावोंसे चलते श्रीनारायणकी स्तुति करते हैं॥४९॥ आदि अंत रहित अजन्मा भगवान् हरि ईश्वर इसप्रकार कल्प कल्पमें आपका सूर्यरूप विभाग करके सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करतेहैं॥५०॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कन्धे
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा-इस द्वादश अध्यायमें, श्रीभागवत पुराण।
वरणौं सब संक्षेपसों, जो शुक किय निर्माण ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि, श्रेष्ठ धर्मको नमस्कार करके और सृष्टिकर्त्ता श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके अब सब ब्राह्मणोंके चरणोंमें शिरधर इस श्रीमद्भागवत पुराणमें जो जो सनातनधर्म और सब कथाओंकी अनुक्रमणिका है वह मैं आपसे कहताहूं * ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! सम्पूर्ण प्राणियोंके सुनने योग्य यह विष्णु भगवान्‌का अद्भुत चारित्र इसमें जो जो प्रश्न आपने किये उन उनके उत्तर मैंने आपको दिये ॥ २ ॥ इस पुराणमें सब पापोंके विध्वंस करनेवाले भक्तवत्सल हृषीकेश भगवान् हरि नारायणकी साक्षात् महिमा वर्णन कीहै ॥ ३ ॥ अब यहाँसे आगे पहले कही हुई "बारहोंस्कन्ध" की कथाको सूतजी शौनकादिकोंको फिर स्मरण कराते हैं, जिसमें जगत्‌की उत्पत्ति, पालन, संहार, ऐसे परमगुह्य परब्रह्मके यशका गान, और उस परब्रह्मका प्रकाशक विज्ञान और ज्ञानके साधन, इस महापुराणमें कहे हैं ॥ ४ ॥ भक्तियोग और भक्तियोगसे प्रगट होनेवाला वैराग्य भी कहा, नारदजीका आख्यान और परीक्षित्‌का उपाख्यान ॥ ५ ॥ ब्राह्मणके शापसे राजऋषि परीक्षित्‌का अनशन व्रत धारण करना, उन राजर्षि सहित ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजी महाराजका सम्वाद यह सब प्रथमस्कन्धमें वर्णन किया ॥ ६ ॥ योगधारणासे प्राणका छोडना, ब्रह्मा नारदका सम्वाद और अवतारोंका वर्णन, विराट् पुरुषकी उत्पत्ति, यह सब द्वितीयस्कन्धमें वर्णन किया ॥ ७ ॥ विदुर और उद्धवका सम्वाद, फिर विदुर और मैत्रेयका सम्भाषण, पुराण संहिताके विषयमें प्रश्न, विराट् पुरुषकी रचना ॥ ८ ॥ पहिले मायाके गुणोंसे महत्तत्त्वादिक सातप्रकारकी सृष्टि रचीगई, उससे फिर इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति,

---

* **शंका**-सूतजीने मुनियोंसे कहा कि, अब हम सनातनधर्म कहते हैं, आप सावधान होकर सुनो, इसमें हमको यह शंका है कि, पहिले जो धर्मवर्णन हुवा सो सनातनधर्म नहीं है, क्या ये शीघ्रताके बनाये हैं ? ॥

उत्तर-भागवतमें जो धर्मवर्णन किये हैं, सो सब सनातन धर्म हैं, शीघ्रताके बनाये हुए कोई भी नहीं हैं परन्तु एक कारण है सो वह भी कहते हैं, मुनियोंने प्रथम इस धर्मको बहुत संक्षेपके साथ वर्णन कियाथा वारम्वार वर्णन हुवा परन्तु जब हुवा तव संक्षेपसेही हुवा और धर्मका विस्तार बहुत श्लोकोंमें कविलोग वर्णन करते हैं, इस अध्यायमें बारहस्कन्धोंकी कथाको व्यासजीने थोडेहीमें वर्णन की है, जैसे पहिले मुनियोंने थोडे थोडे श्लोकोंमें सम्पूर्ण धर्म वर्णन किये थे, इसलिये सूतजीने कहाथा कि, अब मैं सनातन धर्म वर्णन करताहूं क्योंकि सनातनधर्म तो वोही है, जो मुनि लोग थोडे श्लोक करके वर्णन किये थे, बहुत विस्तार तो पीछेसे कवि लोगोंने किया है सूतने ऐसे विचारके नहीं कहाथा कि, अबतक सनातन धर्म वर्णन नहीं हुवा, सनातनधर्म अब वर्णन करता हूं ॥

जो कि, वैराज पुरुषके रहनेका स्थान है ॥ ९ ॥ स्थूल सूक्ष्म कालकी गति, नाभिसे कमलकी उत्पत्ति, समुद्रसे पृथ्वीका उद्धार, हिरण्याक्षका वध ॥ १० ॥ वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य, इन तीनोंकी सृष्टि, रुद्रकी सृष्टि, ब्रह्माके आधे अंगसे पुरुष और आधे अंगसे नारी (स्त्री) हुई, उनमें पुरुष तो स्वायंभुव मनु और स्त्री शतरूपा हुई, कर्दम प्रजापतिसे धर्मपत्नियोंकी सन्तान कही ॥ ११ ॥ १२ ॥ जिन प्रजापति कर्दमजीसे महात्मा भगवान् कपिलदेवजीका अवतार, और उन बुद्धिमान् कपिलदेवजीसे देवहूतीका सम्भाषण, यह तीसरे स्कन्धकी कथा है ॥ १३ ॥ मरीच्यादिक ब्राह्मणोंकी सन्तानकी उत्पत्ति, दक्षके यज्ञका विध्वंस, ध्रुवजीका चरित्र, पृथु और प्राचीनबर्हिराजाके चरित्रका वर्णन, यह चौथे स्कन्धकी कथा हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! नारद प्रियव्रतका सम्वाद, फिर राजा प्रियब्रतका चरित्र, नाभिराजाका आख्यान, ऋषभदेवजीका चरित्र, राजा भरतका इतिहास ॥ १५ ॥ द्वीप, समुद्र, पर्वत, खण्ड और नदियोंका वर्णन, ज्योतिश्चक्रका स्थापन, पातालकी रचना, नरकोंका वर्णन, यह पञ्चमस्कन्धकी कथा हैं ॥१६ ॥ प्रचेतानसे दक्षका जन्म फिर उस दक्षकी पुत्रियोंका वृत्तान्त, जिस सन्तानसे देवता, असुर, नर, पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी आदिकी उत्पत्ति ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणो ! वृत्रासुरका जन्म और दितिके दोनों पुत्रोंकी उत्पत्ति, हिरण्यकशिपुका और महात्मा प्रह्लादका चरित्र, यह षष्ठ और सप्तम स्कन्धकी कथा हैं ॥ १८ ॥ मन्वन्तरोंका वर्णन, गजेंद्रका छुडाना, मन्वन्तरोंमें विष्णुभगवान्के हयग्रीवादिक अवतारोंका वर्णन ॥ १९ ॥ उन विष्णुभगवान्के अवतार कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, वामनका उपाख्यान, देवताओंको समुद्रका मथना ॥ २० ॥ देवता, असुरोंका महाभयंकर संग्राम, यह अष्टमस्कन्धकी कथा हैं, राजाओंके वंशोंका वर्णन, राजा इक्ष्वाकुका जन्म और उनके वंशका वर्णन और महात्मा सुद्युम्नका इतिहास ॥ २१ ॥ इला और ताराका आख्यान, शशादि, नृगादि सूर्यवंशी राजाओंका वर्णन ॥ २२ ॥ सुकन्याका चरित्र, शर्यातिका चरित्र, बुद्धिमान् ककुत्स्थका उपाख्यान, खट्वांग, मान्धाता, सौभरि, सगरका चरित्र ॥ २३ ॥ कौशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी कथा, सब पापोंका नाशक निमिके शरीरका त्यागन, जनकवंशियोंकी उत्पत्ति ॥ २४ ॥ भृगुवंशी परशुरामजीका पृथ्वीको निःक्षत्रिय करना, चन्द्रवंशी ऐलादि ययाति राजा नहुषका वृत्तान्त ॥ २५ ॥ दुष्यन्तका पुत्र राजाः भरत, शन्तनु और शन्तनुके पुत्रका चरित्र और राजा ययातिके ज्येष्ठ पुत्र राजा यदुके वंशका वर्णन, ये नवमस्कन्धकी कथा हैं ॥ २६ ॥ जिस यदुके वंशमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जगदीश्वरने अवतार लेकर भूमिका भार उतारा था, वह वृत्तान्त इस भाँति है कि, वसुदेवके घर अवतीर्ण होकर गोकुल गये और वहाँ वृद्धि पाई ॥ २७ ॥ असुरोंके शत्रु श्रीकृष्णजीके अपार चरित्र हमने कहे, बाल अवस्थामें पूतनाके प्राणसहित स्तनोंका पान, लात मारकर शकटका तोडना, तृणावर्त्त और वत्सासुरका मारना, अघासुरका वध, ब्रह्माका वत्स और बालकोंका हरना, धेनुक प्रलम्बासुरका वध ॥ २८ ॥ २९ ॥ सब

और फैली हुई दावानलसे गोप गायोंको बचाना, कालिय सर्पका दमन और महाअजगर सर्पसे नन्दजीको छुडाना ॥ ३० ॥ ब्रजकन्याओंका व्रत करना और व्रतसे अच्युत भगवान्‌का प्रसन्न होना, द्विजपत्नियोंपर संतुष्ट होकर ब्राह्मणोंको पश्चात्ताप करना ॥ ३१॥ गोवर्द्धन पर्वतका करपर धरना, सुरभियोंके सहित इन्द्रका किया श्रीकृष्णका अभिषेक और रात्रिके समय ब्रजबालाओं सहित श्रीकृष्णकी रासक्रीडा ॥ ३२ ॥ दुर्बुद्धि शंख-चूडका वध और केशी, अरिष्टका संहार, अक्रूरका ब्रजमें आना फिर रामकृष्णका मथुराको प्रस्थान ॥ ३३ ॥ उस समय ब्रजयुवतियोंका विलाप, उसके पीछे मथुराका देखना और मुष्टिक, चाणूर, कंसादिक दैत्योंका वध ॥ ३४ ॥ सान्दीपन गुरुके मरेहुए पुत्रको फेरकर ला देना, मथुरामें वसकर उद्धव बलदेव सहित मिलकर यादवोंसे स्नेह करना ॥ ३५ ॥ हे विप्रो ! जरासन्धकी लाई हुई सेनाका वारंवार वध करना और मुचकुन्द द्वारा कालयवनका मारना और समुद्रके टापूमें द्वारकापुरीका वसाना ॥ ३६ ॥ इन्द्रलोकसे पारिजात और सुधर्मासभाका ले आना और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर रुक्मिणीको हरलाना ॥ ३७ ॥ युद्धमें जृंभास्त्र करके शिवको जम्भाई लेना, बाणासुरकी भुजाओंका काटना, नरकासुरका मारना, सोलह सहस्र एकसौ आठ (१६१०८) कन्याओंका उद्धार ॥ ३८ ॥ शिशुपालका वध, मिथ्या वासुदेवका मारना, शाल्वका संहार, दुर्मति दन्तवक्रका दमन, द्विविदका हनन, पीठासुरका प्राणहरण,मुरका मारण, पंचजनको मारकर कृतार्थ करना ॥ ३९ ॥ काशीका जलाना, दैत्योंका प्रभाव प्रगट करना, पाण्डवोंको निमित्तमात्र बनाकर पृथ्वीका भार उतारना, यह दशमस्कन्धकी कथा हैं ॥ ॥ ४० ॥ ब्राह्मणके शापका बहाना रखकर अपने कुलका संहार करना, वासुदेव और उद्धवका उत्तम संवाद ॥ ४१ ॥ जिस संवादमें आत्मतत्त्वका निर्णय और धर्मका निर्णय फिर अपनी मायाके प्रभावसे मनुष्यलोकका छोडना, यह एकादशस्कन्धकी कथा हैं ॥ ४२ ॥ योगोंके लक्षण, उन युगोंमें जीविकाका वर्णन, कलियुगमें प्राचीनका उपद्रव और चार प्रकारकी प्रलय, मायासे और ब्रह्मासे उत्पन्न होनेवाली तीन प्रकारकी उत्पत्ति ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् राजर्षि विष्णुरातकी देहका त्यागना, व्यासजीसे वेदकी शाखाओंका विस्तार, मार्कंडेय ऋषिकी सुन्दर कथा ॥ ४४ ॥ हे द्विजोत्तम ! जगत्‌के आत्मा सूर्य-नारायणका मास मासका वर्णन तुमने जो कुछ हमसे बूझा सो सब कहा, इस भागवत पुराणमें भगवान्‌की लीलाअवतार सम्बन्धी कर्मोंका यश गाया है ॥ ४५ ॥ गिरते, पडते, उठते, बैठते, विपत्तिके समय, छींकते, विवशतासे 'ऊंचे स्वरसे' "हरये नमः" जो पुरुष इसप्रकार कहता है, वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष भगवान्‌का कीर्तन करताहै,अथवा उनके गुणोंको गाता है,तो अनन्त भगवान् उसके चित्तमें प्रवेश करके सब पापोंको दूर करदेते हैं, जैसे सूर्यनारायण अन्धकारको, पवन मेघोंको दूर करता है ॥ ४७ ॥ जिस वाणीसे भगवान् अधोक्षजकी सत्कथा नहीं गाई जाती उस वाणीको मिथ्या और विषयवाली समझनी चाहिये, जिसमें भगवान्‌के नामका

गुणानुवाद हो, वही वाणी सत्य मंगलरूप और पवित्र करनेवाली है ॥ ४८ ॥ वही वाणी रमणीक और रुचिर नित्य नये २ मनको महाउत्सव रूप मनुष्योंके शोक समुद्रकी सुखानेवाली है, जिस वाणीसे उत्तमश्लोक भगवान्‌का यश गाया जाता है ॥ ४९ ॥ जिस वाणीमें चित्र विचित्र पद भी हों और उत्तम रचना भी हो, परन्तु जगत्‌के पवित्र करनेवाले हरिका यश कुछ नहीं है, तो उस वाणीमें काककी तुल्य विषयी रमण करतेहैं, हंसके समान साधुजन उस वाणीसे संतुष्ट नहीं होते, साधुजन उसी पवित्र वाणीमें रमण करते हैं, जिस वाणीमें अच्युत भगवान्‌का वर्णन है ॥ ५० ॥ जिस वाणीमें श्लोक श्लोक विषे उत्तम पदरचना नहीं, केवल हरियश और हरिनामहीका वर्णन है वह वाणी प्राणियोंके पापोंके समूहोंको नाश करनेवाली है, उस वाणीको निर्मलचित्तवाले सब सुनते हैं, गाते हैं और कहतेहैं ॥५१॥ ब्रह्मका प्रकाश करनेवाला निर्मूल भी जो अच्युत भगवान्‌के भावसे रहित है वह किसीप्रकार शोभित नहीं होता, उत्तम कर्म भी ईश्वरके अर्थ विना अमंगलरूप है सो किसी प्रकार शोभित नहीं हो सक्ता ॥ ५२ ॥ वर्णाश्रमके आचार, तप, वेदाध्ययन आदिमें बडे परिश्रमसे केवल यश और ऐश्वर्य प्राप्त होता है, परन्तु हरिके गुणका कथन और श्रवणादि करनेसे भगवान्‌के चरणकमलका नित्यप्रति स्मरण होता है ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्मरण सदा अमंगलका हरनेवाला, मंगलका विस्तार करनेवाला और अंतःकरणको शुद्ध करता है, परमात्मामें स्नेह बढाता है और ज्ञान विज्ञान सहित वैराग्यको उपजाता है ॥ ५४ ॥ हे द्विजोत्तम ! आप बडे भाग्यवान् हो, जो अखिल लोकोंके आत्मा, भगवान्, सर्वोत्तम, सर्वान्तर्यामी, सर्वहितकारी, नारायण देवको निरन्तर हृदयमें धारण करके सदा अखंड भावसे भजते रहते हो ॥ ५५ ॥ जब कि, राजा परीक्षित् अन्न पानी त्यागकर गंगाके किनारे जा बैठे, उससमय बडे ऋषीश्वर मुनीश्वर श्रीमद्भागवतके सुननेको उस सभामें विद्यमान थे, वहाँ श्रीशुकदेवजीके मुखसे पहिले मैंने जो कुछ सुना था वह आत्मतत्त्वका ज्ञान मुझको आपने स्मरण कराया,यह आपने बडी कृपादृष्टि की ॥ ५६ ॥ विप्रो ! जिनके सब कर्म और चारित्र वर्णन करनेके योग्य हैं उन वासुदेव भगवान्‌का कीर्त्तन और माहात्म्य सब अशुभोंका विनाश करनेवाला है सो मैंने आप लोगोंके सन्मुख वर्णन किया *॥५७॥

---

* **दृष्टान्त**-परन्तु ऐसी कथा नहीं सुननी चाहिये, जैसी कथा एक पंडितजीने कही और बुढिया स्त्रीने सुनी. एक पंडित किसी ठाकुरद्वारेमें कथा कहते थे और एक बुढियाभी कथा सुननेको जाया करती थी और वहाँ बैठकर बहुत रोती, पंडितजीने समझा कि, यह बुढिया बडी प्रेमिन है, कुछ अधिक दक्षिणा चढावेगी, जब कथा सम्पूर्ण होनेका दिन आया तो बुढिया नहीं आई पंडितजीने कथामें कुछ विलम्ब भी किया बुढिया तोभी न आई अब कथा पूरी हो चुकी, पंडितजीने जाना कि बुढियाको कुछ होगया नहीं तो बुढिया अवश्य आती, दूसरे दिन पंडितजीने कहा कि, बुढियाके घरको चलै कुछ-

जो कोई पुरुष अनन्य बुद्धि होकर नित्य एकप्रहर, वा एकक्षण इस माहात्म्यको सुने अथवा जो कोई श्रद्धापूर्वक इसको सुनावे, वह प्राणी अपने आपको पवित्र करता है ॥ ५८ ॥ जो कोई पुरुष एकादशी वा द्वादशीके दिन इस महापुराण भागवतको सुने उसकी आयुर्बल अधिक होतीहै और जो कोई निर्जलव्रत धारण करके एकाग्र चित्त हो इसका पाठ करे वह सब पापोंसे छूटकर निष्पाप होजाताहै ॥ ५९ ॥ पुष्कर, मथुरा, द्वारकामें वास करके एकाग्रचित्त हो जो इस संहिताको पढेगा वह सब भयादिकोंसे छूट जायगा ॥ ६० ॥ जो कोई इस महापुराण संहिताको सुनता है, कीर्त्तन करता है, उसको देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनुष्य और राजालोग, यह सब मनोवाँछित मनोरथको देते हैं ॥ ६१ ॥ द्विजवर्णोंको, ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेदके पढनेसे जो फल प्राप्त होता है और शहतकी नदी, घृतकी नदी, दूधकी नदीके दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, सो सब फल इस महापुराण संहिताके पढनेसे होता है ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष पवित्र होकर इस महापुराण संहिताको पढते हैं, वह भगवान् वासुदेवके परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥ इस महापुराणसंहिताको ब्राह्मण पढकर उत्तम बुद्धिको प्राप्त होते हैं, क्षत्रिय पढे तो उदय अस्ततक सर्वत्र भूमंडलका राजा हो, वैश्य पढे तो निधिपतिहो और शूद्र पढे तो सब पापोंसे छूट जाय ॥ ६४ ॥ कलिकालके मलके समूहोंका विध्वंस करनेवाले अखिलैश्वर्यवान् वासुदेव भगवान् इसप्रकार और दूसरे शास्त्रोंमें वारंवार नहीं गाये गये और इस पुराणमें तो कथाओंके प्रसंग प्रसंगमें पद पदके विषे अशेष मूर्त्ति भगवान् हीके चरित्र गायेगये हैं, इसीसे इस पुराणका नाम महापुराण है ॥ ६५ ॥ जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाली जिनको शक्ति है और ब्रह्मा इन्द्र शिवादिक देवताओंको जिसकी स्तुति दुर्लभ है, ऐसे ऐसे अजन्मा अनंत आत्मतत्त्व अच्युत भगवान्को नमस्कार है ॥ ६६ ॥ वृद्धिको प्राप्ति हुई प्रकृति आदि जो शक्तियोंसे जिसने अपने स्वरूप स्थावर जंगम उत्पन्न किये हैं ऐसे सबमें व्यापक देवताओंमें श्रेष्ठ, अनादि ज्ञानमात्र स्वरूप भगवान्को मैं वारम्वार प्रणाम करताहूं ॥ ६७ ॥ अपने आत्मसुखसेही सम्पूर्ण चित्त होनेसे अन्य पदार्थोंमें भाव न रखनेवाले कि, जिन्होंने अपना मन नारायणकी सुन्दर लीलाओंमें आकर्षित होजानेसे नारायणके

–दक्षिणा प्राप्त हो जायगी, यह विचार उसके द्वारेपर पहुँचे और जाकर पुकारा, बुढिया चरखा कातरहीथी बोली पंडितजी आओ बैठ जाओ कैसे कैसे कृपा करी ! पंडितजी बोले बुढिया कैसे हो रही है ? कल कथाभी समाप्त होगई और तू न आई तू तो बडी प्रेमिनथी फिर न आनेका क्या कारण ? तूतो घंटोंतक कथामें बैठी रोया करतीथी। बुढिया बोली क्या कथाको सुनकर थोडेही रोतीथी, पंडितजी बोले कि, फिर क्यों रोतीथी, बुढिया बोली कि जैसा तुम्हारी पोथी बांधनेका वस्त्र है ऐसाही मेरी लल्ली मोहिनीके लालाका पाजामाथा सो उसको देखतेही मोहिनीके लाला मुझको याद आजातेथे इसलिये रोतीथी पंडितजी सुनतेही सुन्न होगये और उठकर सीधे अपने घरको चले गये ॥

तत्त्वका प्रकाशक यह पुराण संसारके उपकारके लिये अनुग्रह करके प्रगट किया है, उन सब जगत्के पाप दूर करनेवाले व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी महाराजको प्रणाम करताहूं ॥ ६८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे द्वादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा-इस तेरह अध्यायमें, पूरण होत पुराण।
संख्या सकल पुराणकी, वरणौ सहित प्रमाण ॥ १ ॥

सूतजी बोले कि, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, और मरुतदेवता दिव्यस्तोत्रोंसे जिन भगवान्की स्तुति करतेहैं और सांगोपांग पदक्रम उपनिषद् सहित वेदोंसे सामवेदके गानेवाले जिनका गान किया करतेहैं और ध्यानमें स्थित होकर मन लगाय योगीजन जिनको देखा करतेहैं, देवता, असुरगण जिनका आदि अन्त नहीं जानसक्ते ऐसे परमदेवको वारम्वार मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥ पीठपर भ्रमते श्रेष्ठ मन्दराचलकी शिलाओंके अग्रसे गात्र खुजानेके समान निद्राका अनुभव करते कच्छपरूप भगवान्के श्वासोंकी पवन तुम सबोंकी रक्षा करो, जिस पवन संस्कारके लेश अनुवर्त्तनके वशसे समुद्रके क्षोभके मिसकरके निरंतर आना जाना बन्द नहीं होता, नित्य घटता बढता रहताहै आजतक विश्राम नहीं लेता, वह तुम्हारी रक्षा करो * ॥ २ ॥ पुराणोंकी संख्याका निरूपण और श्रीभागवतका आश्रय प्रयोजन दान और दानका माहात्म्य और पाठादिकोंका माहात्म्य अब सावधान होकर हमसे सुनिये ॥ ३ ॥ १ ब्रह्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १०००० है, २ पद्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या पचपन सहस्र ५५००० है, ३ विष्णुपुराणके श्लोकोंकी संख्या तेईस सहस्र २३००० है, ४ शिवपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौबीस सहस्र २४००० है ॥ ४ ॥ ५ श्रीमद्भागवतके श्लोकोंकी संख्या अठारह सहस्र १८००० है, ६ नारदपुराणके श्लोकोंकी संख्या पच्चीस सहस्र २५००० है, ७ मार्कंडेयपुराणके श्लोकोंकी संख्या नव सहस्र ९००० है, ८ अग्निपुराणके श्लोकोंकी संख्या पन्द्रह सहस्र चारसौ १५४०० है, ॥ ५ ॥ ९ भविष्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र पाँचसौ १४५०० है,१० ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्लोकोंकी संख्या अठारह सहस्र १८००० है,

---

* **शंका**-श्रीमद्भागवतकी समाप्तिमें सूतजीने अपने गुरुको और सब देवताओंको ब्रह्मा, विष्णु भगवान्के सब अवतारोंको, इन सबको त्यागकर कच्छप भगवान्को नमस्कार क्यों किया ?

उत्तर-कच्छप भगवान्की कृपासे समुद्रको मथकर देवतालोगोंने अमृत पाया, अमृत पाकर देवताओंका मनोरथ सिद्ध हुवा, तैसे सूतजी कूर्मका स्मरण करके समुद्ररूप भागवतके पार उतर गये, इसलिये सूतजीने अपने नेत्रोंसे प्रेमके आँशू बहाय सबको त्यागकर कूर्मभगवान्को नमस्कार किया और भगवान्के अवतारोंमें कुछ भेद नहीं समझा ॥

११ लिंगपुराणके श्लोकोंकी संख्या ग्यारह सहस्र ११००० है, ॥ ६ ॥ १२ वाराहपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौबीस सहस्र २४०००है, १३ स्कन्दपुराणके श्लोकोंकी संख्या इक्यासी-सहस्र एकसौ ८११०० है, १४ वामनपुराणके श्लोकोंकी संख्या दश सहस्र १०००० है, ॥ ७ ॥ १५ कूर्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या सत्रह सहस्र १७००० है, १६ मत्स्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र १४००० है, १७ गरुडपुराणके श्लोकोंकी संख्या उन्नीस-सहस्र १९००० है, १८ ब्रह्माण्डपुराणके श्लोकोंकी संख्या बारह सहस्र १२००० है ॥८॥ इस प्रकार अठारह पुराणके श्लोकोंकी संख्याका प्रमाण—समाहार चार लाख ४००००० श्लोकका है यह प्रमाण कवीश्वरोंने कहा है, जिसमें भागवत अठारह सहस्र १८००० है ॥ ९ ॥ अपनी नाभिकमलमें विराजे हुए संसारमें भयभीत ब्रह्माजीको यह भागवतपुराण भगवान्ने सुनायाथा ॥ १० ॥ इस श्रीमद्भागवत महापुराणके आदि मध्य और अन्तमें संपूर्ण वैराग्यकेही उपाख्यान कहे हैं, इस पुराणने हरिकी लीला और कथाओंके समूह अमृतसे साधुओंको और देवताओंको आनन्द कर रक्खा है, ऐसा आनन्ददायक और अघ-ओघनाशक यह श्रीमद्भागवत पुराणही है ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण वेदान्तका सारभूत, ईश्वर जीवकी एकताको दरशानेवाला जो यह अद्वितीय पदार्थ (परब्रह्म) है सो इस महापुराणका विषय है और मुख्य प्रयोजन इस महापुराणका केवल कैवल्य अर्थात् मोक्ष है ॥ १२ ॥ भादोंसुदी पूर्णमासीके दिन सोनेके सिंहसहित जो मनुष्य इस महापुराण श्रीमद्भागवतका दान करे वह परमोत्तम गतिको पाताहै ॥ १३ ॥ उसी समयतक और दूसरे पुराण महात्मा पुरुषोंकी मण्डलीमें शोभा पातेहैं, जिस समयतक अमृतके समुद्ररूप यह श्रीमद्भागवत महापुराण सुननेमें नहीं आता ॥ १४ ॥ सब उपनिषद् और वेदान्तका सार श्रीमद्भागवतको माना है इसलिये इस पुराणके अमृतरससे जो प्राणी तृप्त होरहेहैं उनकी प्रीति कभी और ठौर नहीं होती ॥१५॥ जैसे नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ मानी हैं, देवताओंमें अच्युत भगवान् सर्व सुखदानी हैं वैष्णवोंमें महादेव परमज्ञानी हैं ऐसे पुराणोंमें श्रीमद्भागवत बखानी है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जैसे सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें परमोत्तम काशी है ऐसेही सब पुराणोंमें श्रीमद्भागवत अत्युत्तम पुराण है॥१७॥परमहंसोंका परमप्रिय निर्मल और श्रेष्ठज्ञान जिसमें गाया है और निर्दोष परब्रह्मका निरूपण करके दरशायाहै, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको एकत्र करके भगवत्तत्त्वको जिसमें झलकायाहै ऐसे श्रीमद्भागवत पुराणको जो कोई भक्तजन भक्तिसे सुने, वा पढे और हितचित्तसे विचारे, वह इस संसारसागरसे पार उतरकर परमधामको जाता है ॥ १८ ॥ प्रथम विष्णु भगवान्ने इस अतुल श्रीमद्भागवतरूप ज्ञानदीपकको करुणा करके ब्रह्माजीके सन्मुख प्रकाशित किया, ब्रह्माजीने ब्रह्मरूप धारण करके नारदजीके आगे प्रकाशित किया, फिर नारदरूप होकर व्यासजीके निकट प्रकाशित किया फिर वेदव्यासरूपसे परमयोगेश्वर श्रीशुकदेवजीके समीप प्रकाशित किया, अन्तमें श्रीशुकदेवरूप धरकर करुणानिधान भगवान्ने करुणा करके विष्णुरात राजापरीक्षित्के सामने प्रकाशित किया, उन शुद्ध, सत्त्व निर्मल, सदा आनन्दमय निरुपाधि, सर्वोत्तम, मोक्ष-

रूप परब्रह्म वासुदेव भगवान्‌का हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ सर्वसाक्षी वासुदेव भगवान्‌ने जो अनुग्रह करके यह श्रीमद्भागवत पुराण संसारसे मुक्तिपानेवाले ब्रह्माजीके आगे वर्णन किया उन विष्णु भगवान्‌को वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ २० ॥ जिन्होंने संसाररूप सर्पसे डसे हुए विष्णुरात राजापरीक्षित्‌को छुडाया, उन ब्रह्मरूप योगिराज श्रीशुकदेवजीको मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥ २१ ॥ हे योगेश ! हे प्रभो ! जिसप्रकार जन्म जन्मान्तरमें आपके चरणकमल कोमल अमलकी भक्ति होय ऐसा कोई उपाय करो, क्योंकि हमारे ऊपर दया करने और कष्ट हरनेवाले आपही नाथ हो ॥ २२ ॥ जिन श्रीकृष्णभगवान्‌के नामका संकीर्त्तन सब पापोंका नाशक है और जिनको नमस्कार करनेसे सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति होजाती है, उन सर्वोत्तम सर्वान्तर्यामी भगवान्‌को हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे श्रीरामगंगातटस्थ मुरादाबाद नगर–निवासी सुप्रसिद्ध कविवर माथुरवंशीय श्रीयुत लाला–शालिग्राम वैश्यकृत द्वादशस्कन्धे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां संक्षेपभागवत-वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवत अर्थात् श्रीशुकसागर समाप्त ॥ शुभमस्तु ॥

दोहा–व्यासपुत्र शुकदेवको, विनवत वारंवार।
जिनकी कृपाकटाक्षसे, मिटत अनेक विकार ॥ १ ॥
"शुकसागर" पूरण भयो, गुरुप्रसादसे आज।
पढे सुनेते जासुके, सिद्ध होत सब काज ॥ २ ॥
हरिलीलामृत जानिकै, जहँ तहँ किय विस्तार।
तामें दोष न दीजिये, सज्जन सकल उदार ॥ ३ ॥
यदपि मूल भर रचनको, निजमन कियो विचार।
वर्णत वर्णत बढगयो, कृष्णचरित्र अपार ॥ ४ ॥
होत न चितमें तृप्तता, निशिदिन यही विचार।
बढै कृष्णलीला अधिक, मुद मंगल दातार ॥ ५ ॥
शशिशशिधर मुखरस धरणि, सम्वत विक्रम व्याप्त।
ज्येष्ठ शुक्र द्वितिको भयो, शुकनिधि ग्रन्थ समाप्त ॥६॥
श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराजनिधिराज।
छायरह्यो जिनको सुयश, देश देशमें आज ॥ ७ ॥
वैश्यवंशमें जन्म ले, रविसम कियो प्रकाश।
वास बंबईमें करत, पूजत जनमन आश ॥ ८ ॥

जिन जिन ग्रन्थनको कभी, नाम सुनो नहिं कान।
मुद्रित करिकरि ग्रन्थसो, निशिदिन करत प्रदान ॥ ९ ॥
पुत्र पौत्र परपौत्र हों, बढै अधिक परिवार।
माँगत शालिग्राम यह, हरिसो वर हर वार ॥ १० ॥
मैं अजान जानत नहीं, गद्यपद्यकी सार।
पण्डित जन जन जान मोहिं, लीजो सकलसुधार ॥ ११ ॥
दोहा-सम्पूरण भइ भागवत, भक्ति मुक्तिकी धान।
लिखत शान्तिके हेतु अब, विष्णु सहस्रो नाम ॥ १२ ॥

अथ विष्णुसहस्रनाम।

छन्द-पद्धरी।

जय विश्व विष्णु जय वषट्कार। प्रभु भूत भव्य भवतहु उदार ॥
जय भूत कृतहु जय भूत भृत्त। जय भाव जयति भूतात्म नित्त ॥ १ ॥
जय जयति भूतभावन परेश। जय भूतात्मा परमात्मा वेश ॥
जय मुक्तनके गति परमनाथ। जय अव्यय कृत दासन सनाथ ॥ २ ॥
जय पुरुष साक्षि क्षेत्रज्ञवीर। जय अक्षर योग स्वरूप धीर ॥
जय योगविदनके हो नियंत। परधान पुरुष ईश्वर अनन्त ॥ ३ ॥
जय नारसिंह वपु श्रीनिधान। जय केशव पुरुषोत्तम सुजान ॥
जय सर्व सर्व जय शिव सुयान। भूतादिहु अव्यय निधि सुजान ॥ ४ ॥
जय संभव भावन भर्त सोय। जय प्रभव प्रभो ईश्वरहि जोय ॥
जय जय स्वयंभु जय शंभु ईश। आदित्य पुष्कराक्षहु सुधीश ॥ ५ ॥
जय जयति महास्वन भुवन माहिं। जय जय अनादि निधनहु सदाहि ॥
धाता विधात जय धात धेय। जय धात उत्तमहु अप्रमेय ॥ ६ ॥
जय हृषीकेश जय पद्मनाभ। जय अमर प्रभो घनश्याम आभ ॥
जय विश्व कर्म जय मन त्वष्ट। जय जय थविष्ट जय थविर इष्ट ॥ ७ ॥
जय ध्रुव अग्राह्यहु सरसिजाक्ष। जय शाश्वत कृष्णहु लोहिताक्ष ॥
जय जयति प्रतर्दन जय प्रभूत। जय त्रिककुब्धामहु यश अकूत ॥ ८ ॥
जय करन पातकिन कहँ पवित्र। जय मंगलपर ईशान मित्र ॥
जय प्राणद प्राणहु ज्येष्ठ श्रेष्ठ। जय परजापति अति कुमतिनेष्ठ ॥ ९ ॥
जय हिरण्यगर्भ भूगर्भ धारि। जय माधव मधुसूदन मुरारि ॥
जय ईश्वर जय विक्रमी राम। जय धन्वी मेधावी अराम ॥ १० ॥
जय विक्रम जयक्रम कौशलेश। जय जयति अनुत्तम द्वारिकेश ॥
जय दुराधर्ष जय जय कृतज्ञ। जय जय कृति आतमवंत प्रज्ञ ॥ ११ ॥

दुर्मर्षण शास्तहु विश्रुतात्म । जय सुरारिघ्न गुरु परम आत्म ॥ २८ ॥
जय गुरु तम जय जय धामसत्य । जय सत्य पराक्रम रूप नित्य ॥
जय निमिष जयति अनिमिष सुमालि । जय वाचस्पति व्रज कुंजशालि २९
जय बुधि उदार अग्रणीज्ञान । जय जयति ग्रामणी जय श्रीमान ॥
जय न्याय समीरण जय नियन्त । जय सहसशीर्ष विश्वातम संत ॥ ३० ॥
जय सहस अक्ष जय सहसपाद । जय आवर्त्तन जय धुत म्रजाद ॥
जय निवृत्त आतम संवृत सुजान । जय संप्रमर्दन हूँ अमल थान ॥ ३१ ॥
जय जय अहसंवर्त्तक परेश । जय वह्नि अनिल धरणी धरेश ॥
जय सुप्रसाद जय प्रसन्नात्म । जय विश्वसृजक जय शुद्धआतम॥ ३२ ॥
जय विश्वभोजि विभु सत करत । जय जय सतकृत जय साधु संत ॥
जय जह्नु नारायण नराकार । जय असंख्येय अतिशय उदार ॥ ३३ ॥
अप्रमेयात्म जय जय विशिष्ट । जय जयति शिष्टकृत शुचि प्रतिष्ठ ॥
सिद्धार्थ सिद्धसंकल्प नाम । जय सिद्ध सिद्ध साधन आराम ॥ ३४ ॥
जय जयति वृषाही वृषभ विष्णु । वृषपर्व वृषोदर वर्धयिष्णु ॥
जय वर्द्धमान जयजय विविक्त । जय श्रुति सागर सुभुज निक्त ॥ ३५ ॥
जय दुर्धर वाग्मी जय महेंद्र । जय वसुद जयति वसुजय गवेंद्र ॥
जय जय अनेक वपु बृहद्रूप । शिपिविष्ट प्रकाशन अवध भूप ॥ ३६ ॥
जय ओज तेज द्युति धृत अनंत । जय प्रकाशात्म जय रमाकंत ॥
जय जयति प्रतापन ऋद्ध सोय । जय जय असपष्टाक्षरहु जोय ॥ ३७ ॥
चन्द्रांशुमंत्र भास्कर प्रकाश । जय अमृतांशु भव भानु भास ॥
शशिबिन्दु सुरेश्वर ओषधीश । जय जगतसेतु जय सत्य ईश ॥ ३८ ॥
जय सत्य धर्म विक्रम अमान । जय भूत भव्य भवपति महान ॥
जय पौन जयति पावन मुरारी । जय अनल जयति मनसिज विहारी ३९
जय जयति काम कृत कांत काम । जय जयति कामप्रद प्रभु ललाम ॥
जय २ युगादि कृत युगावर्त । जय २ कामाय बहु अशन कर्त ॥ ४० ॥
जय २ अदृश्य अव्यक्तरूप । जय जय सहस्रजित छबि अनूप ॥
जय जय अनंत जित मोद धाम । इष्टहु विशिष्ट शिष्टेष्ट नाम ॥ ४१ ॥
जय जय शिखण्डि जय नहुष वीर । जय जय वृष जय क्रोधघ्नधीर ॥
जय जयति क्रोध कृत कर्त्रि कृष्णु । जय विश्वबाहु महिधर सुविष्णु ४२॥
जय जय अच्युत जय पार्थप्राण । जय प्राणद इन्द्रानुज प्रधान ॥
जय जयति अंबुनिधि अधिष्ठान । जय अप्रमत्त भगवान् ज्ञान ॥ ४३ ॥
असकंध प्रतिष्ठित जयति राम । असकंध धार जय धुर्ज धाम ॥
जय वरद वायु वाहन महान । जय वासुदेव जय बृहदभान ॥ ४४ ॥

जय जयति पुरंदर आदिदेव । जय जय अशोक तारन सुभेव ॥
जय तार सूर जय सौरि शुद्ध । जय जयति जनेश्वर शुद्ध बुद्ध ॥ ४५ ॥
जय जय अनुकूलहु शतावर्त्त । जय पद्मी दासन दुर्ष्य दर्त्त ॥
जय पद्मनिभेक्षण पद्मनाभ । जय अरविंदाक्ष अनूप आभ ॥ ४६ ॥
जय पद्मगर्भ जय भृत शरीर । जय जय महर्धि जय ऋद्ध धीर ॥
वृधातम जयति जय जय महाक्ष । जय गरुडध्वज जय विशालाक्ष॥४७॥
जय अतुल शरभ जय जयति भीम । सब जगह विहरहारि धर्म सीम ॥
जय सब लक्षण लक्षण्य नाथ । जय लक्ष्मीपति जयकर सुनाथ ॥४८॥
जय समिति जय विक्षर ललाम । जय रोहित मार्गहु हेत राम ॥
दामोदर सह जय सुर सहाय । जय जयति महीधर मोददाय ॥४९ ॥
जय महाभाग जय वेगमान । जय जय अमितासन मोद मान ॥
जय उद्भव क्षोभण जयति देव । श्रीगर्भहु परमेश्वर सुसेव ॥ ५० ॥
जयकरन जयति कारणहु कर्त्त । जय गहन गुहा जय जयविकर्त्त ॥
जय जय व्यवसायहु व्यवस्थान । जय संस्थानहु थानद महान ॥ ५१ ॥
जय ध्रुव परर्द्धि जय परस्पष्ट । जय तुष्ट पुष्ट शुभ नयन इष्ट ॥
जय जयति राम जय २ विराम । जय विरज जयति मार्गहु ललाम ५२॥
जय निज भक्तनके सततु नेथ । जय जय जय अनयहु देव धेय ॥
जय वीर शक्ति युत श्रेष्ठ नाथ । जय धर्म धर्म धरकर सनाथ ॥ ५३ ॥
जय जय विकुण्ठ जय पुरुष प्रान । जय प्राणद प्रणवहु पृथु प्रधान ॥
जय हिरण्यगर्भ शत्रुघ्न व्याप्त । जय वायु अधोक्षज ऋतुसु आप्त ॥५४॥
जय जयति सुदर्शन जयति काल । जय परमेष्ठी परिग्रह कृपाल ॥
जय उग्र जयति संवत्सरेश । जय दक्ष जयति विश्राम वेश ॥ ५५ ॥
जय विश्व दक्षिणहु जग अधार । जै विस्तारहु जय नंदकुमार ॥
जय थावर थानहु जै प्रमान । जय २ बीजहु जय जय अमान ॥ ५६ ॥
जय जयति अर्थ जय अनर्थ । जय महाकोष जय जय समर्थ ॥
जय जयति महाधन महाभोग । जय अनिर्विण्ण जय जगत रोग ५७ ॥
जय २ थविष्ठ भुव धर्म यूप । जय जयति महामख वपु अनूप ॥
जय २ नक्षत्रि नक्षत्रनेमि । जय क्षमहु जयति जय क्षाम क्षेमि ॥५८॥
जय जयति समीहन यज्ञ इज्य । जय ऋतु जय सत्रहु जय महेज्य ॥
जय संतनके गति सर्व दर्शि । जय निवृत्तातम सर्वज्ञ हर्षि ॥ ५९ ॥
जय जय सुवृत्त उत्तम ज्ञान । जय सुमुख जयति सूक्षम महान ॥
जय २ सुघोष जय सुखद भूरि । जय सुहृद मनोहर सुछवि पूरि६०॥
जय २ जित क्रोधहु वीर बाहु । जय जयति विदारण दुष्ट दाहु ॥

जय स्थापन स्ववशहु जयति व्यापि । जय २ अनेक आतम प्रतापि॥६१॥
जय जय अनेक कर्मन करंत । जय वत्सर वत्सलनाथ संत ॥
जय वत्सि जयति जय रत्नगर्भ । जय जयति धनेश्वर नंदअर्भ ॥ ६२ ॥
जय धर्म रक्ष धर्महि करंत । जय धरमो पालक सदा संत ॥
जय सद सतक्षर अक्षर अज्ञान । जय सहस्रांशु जय २ विधान ॥ ६३ ॥
जय कृत लक्षणहु गभस्ति नेम । सत्त्वस्थ सिंह जय करन क्षेम ॥
जय भूत महेश्वर आदि देव । देवेश देव भृत् महादेव ॥ ६४ ॥
जय गुरु उत्तर गोपति ललाम । जय गो प्रज्ञान गम्यहु अराम ॥
जय जयति पुरातन प्रभु अकाम । जय देह भूत भृत् भोक्त श्याम ॥६५ ॥
जय भूरि दक्षिणहु जय कपींद्र । जय सोमप अमृत जय महींद्र ॥
जय सोम जयति पुरजित ब्रजेश । पुरुषोत्तम जय २ विनय वेश ॥ ६६ ॥
जय सत्यसन्ध दाशार्ह बीर । जय सात्त्वतपति जय जीव धीर ॥
जय २ विन इत साक्षी मुकुन्द । जय अमित विक्रमहु वदन चंद ॥६७ ॥
जय जय अंभोनिधि अनन्तात्म। जय जयति महोदधिसे महात्म ॥
जय जय अंतक अज महा अर्ह । जय २ स्वभाव्य शुचि जसह गर्ह ६८॥
जय जयति प्रमोदन जिता मित्र । आनंद नंदनहु नंद मित्र ॥
जय जयति त्रिविक्रम सत्य धर्म । जय कपिलाचार्य महर्षि शर्म ॥ ६९ ॥
जय जयति मेदिनीपति कृतज्ञ । जय त्रिपद त्रिदश अध्यक्ष प्रज्ञ ॥
जय २ कृतांत कृत महा श्रृंग । जय महावराह गोविन्द अंग ॥ ७० ॥
जय कनक अंगदी जै सुषेन । जय गुह्य गभीरहु गहन चैन ॥
जय गुप्त चक्र अरु गदा धारि । जय वेद्य स्वांग अजितहु खरारि ॥ ७१॥
संकर्षण जय दृढ कृष्णनाथ । जय वरुण वारुणहु अच्युताथ ॥
जय वृक्ष जयति जय पुष्कराक्ष । जय महा मनहु भगवान् स्वाक्ष ॥७२॥
जय जय भगघ्न नंदी कपाल । जय वनमाली हलधर विशाल ॥
आदित्य ज्योति आदित्य वेष । जय जय सहिष्णु गति सत्यमेश ॥ ७३॥
जय खंड परशु जय भय स्वधन्व।जय द्रविण प्रदहु दारुण अकन्ध ॥
जय जयति दिविसप्रिय सर्व दर्श।जय वाचस्पति जय व्यास हर्ष ॥७४॥
जय जयति अयोनिज जय त्रिसाम । जय २ सामग निर्वाण साम ॥
जय भेषज भिषज संन्यास कारि।जय समजय शान्तहु तिर्विकारि ॥७५॥
जय निष्ठा शान्तहु सुभग अंग । जय जयति परायण यश अभंग ॥
जय शांतिदस्रष्टा कुमुद कांत । जय कुवलेश गोहित सुशान्त ॥ ७६ ॥
जय गोपति गोप्ता वृषभ अक्ष । जय वृष प्रिय अनवर्त्ती प्रत्यक्ष ॥
जय निवृत्तात्म संक्षेप्त क्षेम । जय जयति क्षेमकृत शिव सुनेम ॥ ७७ ॥

जय श्रीवक्षस श्रीवास श्रीद। श्रीमंत श्रेष्ठ श्रीपति प्रसीद ॥
जय श्रीनिवास जय जयति श्रीश। जयश्रीविभावनहु श्रीनिधीश ॥७८॥
जय श्रीकर श्रीधर जयति श्रेय। जय श्रेय श्रीमान् विरंचिधेय ॥
जय लोकत्रयाश्रै स्वच्छ स्वंग। जय सतानंद नंदी अभंग ॥ ७९ ॥
जय ज्योतिगणेश्वर विजित आत्म। जय विधेयात्म जय जय परात्म ॥
जय जयति छिन्न संशय उदीर्ण। जय २ सतकीरति बल अजीर्ण ॥८०॥
सर्वत्र चक्षु जय जय अनीश। जय शाश्वत थिर भूसे महीश ॥
जय भूषण नूति विशोक राम। जय जयति शोक नाशक अकाम॥८१॥
जयअर्चित अर्चि समान नाथ। जय कुंभ विशुद्धातम सुगाथ ॥
जय जयति विशोधन शुद्ध बुद्ध। अनिरुद्ध जयति नित दुष्ट क्रुद्ध॥८२॥
जय अप्रतिरथ प्रद्युम्नवीर। जयअमित विक्रमहु समर धीर ॥
जय कालनेमि दानव सँहार। जय सौरि सूर देवकिकुमार ॥ ८३ ॥
जय सुर जनेश्वर त्रिलोकात्म। जय त्रिलोकेश केशव सुआत्म ॥
जय केशि विनाशन हरि दयालु। जय कामदेव जय कामपालु ॥ ८४ ॥
जय जयति कृतागम कामिकान्त। जय अनिर्देश्यवपु दांतशांत ॥
जय विष्णुवीर जय जय अनंत। जय जयति धनंजय सीयकंत ॥ ८५ ॥
ब्रह्मण्य ब्रह्म कृत ब्रह्म ब्रह्म। जय ब्रह्म विवर्द्धन परब्रह्म ॥
जय जयति ब्रह्मविद्ब्रह्मि विष्णु। जय जय ब्राह्मण ब्रह्मज्ञ जिष्णु ॥ ८६॥
जय जय ब्राह्मण प्रिय धुर्य धर्म। जय जयति महाक्रम महाकर्म ॥
जय जयति महोरग महातेज। जय जयति महाकृत सर्प सेज ॥ ८७ ॥
जय महायज्व जथ महायज्ञ। जय महा हविष जय प्रभु कृतज्ञ ॥
जय जय स्तव्य जयस्तवपियार। जय जय स्तोत्र जय स्तुति उदार॥८८॥
जय जय स्तोतारन प्रियहु पूर्ण। जय पूरे ताकिय शत्रु चूर्ण ॥
जय पुण्यकीर्ति जय पुण्यरूप। जय जयति अनामय दुष्ट दूर ॥ ८९ ॥
जय जयति मनोजव तीर्थ कारि। वसुरेत वसुप्रद जय मुरारि ॥
जय वसुप्रद जय जय वासुदेव। जय वसुजय वसुमन हविषदेव ॥९०॥
जय सद्गति सत्कृति सर्वयामि। जय सत्ता जय सह भूति स्वामि ॥
जय सत परायणहु शूरसेन। जय जय यदुनायक कंजनैन ॥ ९१ ॥
जय जयति सुयामुन सन्निवास। जय वासुदेव जय भूतवास ॥
सर्वासुनिलय जय अनल रूप। दर्पघ्न जयति दर्पद अनूप ॥ ९२ ॥
जय २ अद्रिय दुर्द्धर उदंड। जय जय अपराजित जय अखंड ॥
जय विश्वमूर्त्ति जय महामूर्त्ति। जय दीप्त मूर्ति जय जय अमूर्ति ॥ ९३ ॥

जय मूर्ति अनेकहु जय अव्यक्त। जय सत मूर्तिहु सत वदन व्यक्त ॥
जय एक अनेकहु मोदधाम। जय सः जय वः जय कासुनाम ॥ ९४ ॥
जय किं जय जत जय तत्परेश। जय जयति अनुत्तम पदरमेश ॥
जय लोक बंधु जय लोकनाथ। जय जय माधव जय जगन्नाथ ॥ ९५ ॥
जय जयति भक्तवत्सल गुपाल। जय सुवरण वर्ण हेमाङ्ग लाल ॥ ९६ ॥
जय चंदनांगदी जय वरांग। जय जयति वीरहा विषमसांग ॥
जय सुनष्ट तासी अचल थान। जय जयति अमानी चल महान ॥ ९७ ॥
जय मानद मान्यहु लोक स्वामि। जय जयति लोक धृक अमृत नामि ॥
जय जय सुमेध मेधजहु धन्य। जय सत्य मेध जय जय ब्रह्मण्य ॥ ९८ ॥
जय जयति धराधर धराधार। जय तेजो वृष द्युतिधर उदार ॥
जय सर्व शस्त्रभृत् मह ललाम। जय प्रग्रह निग्रह अव्ययाम ॥ ९९ ॥
जय जयति गदाग्रज नैक श्रृंग। जय चतुर मूर्ति सत कमल भृंग ॥
जय चतुर्बाहु जय चतुर्व्यूह। जय चतुर गती प्रिय संतजूह ॥ १०० ॥
जय चतुर आत्म जय चतुर भाउ। जय सदा सरल कोमल स्वभाउ ॥
जय चतुरवेत विधि एकपाद। जय समावर्त्त जय ब्रह्म वाद ॥ १०१ ॥
जय निवृत्तात्म दुर्जय दुरंत। जय दुरति क्रम दुर्लभ अनंत ॥
जय दुर्गम दुर्गहु दुरवास। जाय दुरारिघ्न दुःख दीर्घनाश ॥ १०२ ॥
जय जय सुभंग जय जय सुतंतु। जय जयति लोक सारंगसंतु ॥
जय जयति तंतु वर्द्धन सुधर्म। जय इन्द्र कर्म जय महा कर्म ॥ १०३ ॥
जय जय कृत कर्म कृतागमेश। जय उद्भव सुन्दर सुन्दरेश ॥
जय सुंद सुलोचन रत्ननाभ। जय अर्क बाजसन पद्मनाभ ॥ १०४ ॥
जय जय श्रृंगी जय जय जयंत। जय सर्व ज्ञात विजयी अनन्त ॥
जय सुवरन बिंदु अक्षोभ्य श्याम। जय सर्व वाचस्पति पति ललाम १०५ ॥
जय जयति महाह्रद महागर्त्त। जय महाभूत सब जगत भर्त्त ॥
जय जयति महानिधि कुमुद कुन्द। जय कुदर पर्जन्यहु मुकुंद ॥ १०६ ॥
जय पावन अनिलहु अमृत आसि। जय अमृतरूप आनन्द रासि ॥
सर्वज्ञ सर्वसुख सुलभ दास। सुव्रतहु सिद्ध न्यग्रोधवास ॥ १०७ ॥
रिपुजित रिपुतापन जय अमंद। अश्वत्थ उदुंबर जय अनंद ॥
चाणूर अंध्र सूदन सुजान। जय सप्त जिह्वा सहसार्चिमान ॥ १०८ ॥
सप्तैध सप्त दाहन अमूर्त्ति। जय अनघ अचिंत्यहु काम पूर्त्ति ॥
जय भयकृत भयनाशन मुकुंद। जय अनुवहतहु कृश शूल नंद ॥ १०९ ॥

जय गुणभृति निर्गुण जय महांत। जय अधृत जय स्वास्य सांत॥
जय प्रागवंश वर्द्धनहि वंश। जयभार भूतहु कथितहु प्रशंस॥ ११०॥
जय योगि जयति जय योगिईश। जय सर्वकामप्रद पति अनीश॥
जय आश्रम श्रमनहु जयति छाम। जय जय सुपर्ण रघुपति ललाम॥१११॥
जय जयति वायुवाहन अषेट। जय जयति धनुर्धर धनुर्वेद॥
जय दंड दमतया अदमनाथ। जय सर्वसहू अपराजिताथ॥ ११२॥
यज जयनियंत नियमहु यमेश। जय सत्त्ववान सात्विक रमेश॥
जय सत्यधर्म पारायणार्य। जय अभिप्राय सत्यहु अचार्य॥ ११३॥
जय जय प्रियार्ह जय अरह स्वामि। जय जयति नाथ प्रियकृत अकामि॥
जय जयति विहाय संगति सुजान। जय प्रीति वर्द्धनहु प्रभु महान ११४
जय ज्योति सुरुचिर बिसूर्यनाथ। जयहुतभुक् विभु सुखकर सनाथ॥
जय जयति विरोचन जय सवित्र। जय रविलोचन लीला विचित्र ११५
जय जय अनंत हुत भोजि भोग। जय सुखद नैकदहु अमल योग॥
जय जय अग्रज जय अनिर्विन्न। जय सदा मर्षि नहिं परिच्छिन्न॥११६॥
जय अद्भुत लोकन अधिष्ठान। जय जयति सनातन तम सुजान॥
जय जय सनातन जय कपिल योगि। अव्यैकपि स्वस्तिद स्वस्तिभोगि ११७
जय जयति स्वस्तिकृत जय अछौद्र। जय स्वस्ति दक्षिणहु जय अरौद्र॥
जय चक्री जय कुंडली नाथ। जय जयति विक्रमी अभैहाथ॥ ११८॥
जय शब्दातिग जय यादवेन्द्र। जय ऊर्जित शासन राघवेन्द्र॥
जय जयति शब्द सहसाशिरस्वामि। जय जयति शर्वरीकर सुनामि॥११९॥
जय जय अक्रूर पेशलहु दक्ष। जय जय छामिणावर जय प्रत्यक्ष॥
जय दक्षिण विद्वत्तम कृपाल। जय वीत भयहु यदुवंश लाल॥ १२०॥
जय पुण्य श्रवण कीर्त्तन रसाल। जय उत्तारण रघुवंश लाल॥
जय दुष्कृतिघ्न जय पुण्यशील। दुःस्वप्न विनाशन जय सुशील॥ १२१॥
जय जीवन रक्षण वीरघ्न संत। जय जयति परजन्यास्थित अनंत॥
जय जय अनंत श्रीविजितमन्तु। जय जयति भयापह प्रबल धन्तु॥१२२॥
जय जय चतुरष गंभीर आत्म। जय विदिश व्यादिशहु दिश अनात्म॥
जय जय अनादि भूर्भुव ललाम। जय जय सुवीर लक्ष्मी अकाम॥१२३॥
जय रुचिरांगद जय जनन ईश। जय २ जन्मादि सुविसे वीश॥
जय भीम पराक्रम भीमकर्म। आधार निलै धाता सुधर्म॥ १२४॥
जय जयति प्रजागर पुष्पहास। जय ऊर्ध्वग प्रभु लक्ष्मीनिवास॥
जय जयति सतपथाचार ज्ञान। जय प्राणद प्रणवहु प्रण प्रमान॥१२५॥

जय प्राण निलय जय मान धर्त । जय जयति प्राणजीवन सुमर्त ॥
जय तत्त्व तत्त्व वित जय एकात्म । जय जन्महु मृत्यु जरातिगात्म १२६॥
जय भूर्भुवस्वः जय तरुस्तार । जय सपिता प्रपितामह उदार ॥
जय यज्ञ यज्ञपति यज्जुरूप । यज्ञांग यज्ञ वाहन अनूप ॥ १२७ ॥
जय जयति यज्ञभृत यज्ञकारि । जय जग्मी यज्ञ भुजी मुरारि ॥
जय जयति यज्ञ साधन परेश । जय यज्ञ अंत कृत जय रमेश ॥ १२८ ॥
जय जयति गुह्य अन्नाद अन्न । स्वय जात आत्म जोनहु प्रसन्न ॥
वैषान साम गायन गोविंद । जय जय स्रष्टा देवकीनंद ॥ १२९ ॥
जय जयति पाप नाशन क्षितीश । जय जयति शंखधारी महीश ॥
जय २ चक्री नंदकी नाथ । जय जय कोदण्ड शारंग हाथ ॥ १३० ॥
जय जयति गदाधार रमा जानि । जय जयति अक्षोभ्य रथांगपानि ॥
जय सर्वप्रहरणायुध उदार । रघुराज दीनके जय अधार ॥ १३१ ॥

दोहा—व्यासदेव भारत विषे, लिखो सहस्र सुनाम ।
सो शुकसागर अन्तमें, वरण्यो शालिग्राम ॥ १३२ ॥

इति श्रीविष्णुसहस्रनाम समाप्तम् ।

नाम.	की. रु. आ.
देशकी बात.	१।)
आनन्दमठ.	[illegible]

भाषापुराणग्रंथाः ।

शुकसागर–अर्थात् भाषाभागवत लालाशालिग्रामजी कृत इस पुस्तककी भाषा ऐसी सरल बनाई गई है कि जिसको छोटे बडे सब भलीभांति समझ सके-हैं जगह २ पर दोहा कवित्त सवैया भजनादि भी स्थलानुकूल हैं शंका समाधान भी उचित रीतिसे किया गया है और उपयोगी दृष्टान्त भी स्थलानुकूल डाले गये हैं अक्षर भी इतना बडाहै कि जिसके पढनेमें नेत्रोंको बहुत कम परिश्रम पडताहै इसका वजनभी पक्का १० सेरहै सुन्दर विलायती कपडेकी दो जिल्द बँधी हैं रफ ... ... १०)

शुकसागर–मध्यम अक्षर लालाशालिग्रामजीकृत उपरोक्त सर्वालंकारों समेत ग्लेज कागज ... ... ८)

,, तथा उपरोक्त विषयों सहित रफ कागज ... ... ७)

शुकसागर–उपरोक्त समस्त अलंकारोंसे युक्त छोटा गुटका ग्लेज ... २)

शिवपुराण–भाषा वार्त्तिक पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत जिल्दबँधा शिवभक्तोंको अवश्य लेना चाहिये पहिलेसे बहुत बडा होगया है ... ... ८)

तथा रफ ... ... ७)

शिवमहापुराणसंदेहभेदिका–भाषा ... ... ।)॥

मार्कंडेयपुराण–भाषा जिल्द बँधा ... ... ३)

वामनपुराण–भाषा जिल्द बँधा ... ... [illegible])

देवीभागवत–भाषा जिल्द बँधा देवीभक्तोंको अवश्य लेना चाहिये ... ६)

आनंदाम्बुनिधि–भाषा भागवत छन्दबद्ध महाराजारघुराजसिंहजी कृत ग्लेज ७)

तथा रफ ... ... ६)

भागवतसार–भाषा भागवतकी संक्षिप्त सरल कथा ... ... १)

पुराणोंकी संरक्षा–पुराणोंका संपूर्ण वृत्तांत लिखा गया है... ... =)

अष्टादशपुराणदर्पण–पं० ज्वालाप्रसादमिश्रद्वारा निर्मित अर्थात् अठारहों पुराणोंका दर्पणकी समान वर्णन इसमें वेदसे पुराणविषयका वर्णन सब पुराणोंके अध्याय और उनकी कथा पुराणोंपर विचार तथा शंका समाधान सहित लिखी हैं सबको पास रखना चाहिये ... ... २)

भारतादिइतिहासकथाग्रंथाः ।

हरिवंश–सटीक माहात्म्य और संतानगोपाल यन्त्रानुष्ठान सहित इसके श्रवणादिसे बन्ध्यत्व अष्टदोष निवारणहोके सुसंतति वंश प्राप्त होताहै ... ६)

इति

शुकसागर

समाप्त.